080582

080582

सारिका

फ़रवरी १९७५

पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी

13/3/75

समांतर कहानी विशेषांक-५

आम आदमी के आस
आज की कहानियां

कामतानाथ, ओम गोस्वामी, अभिमन
अनत, हिमांशु जोशी, विभुकुमार, रशि
तन्खा, सतीश जायसवाल, अकुलेश
परिहार, पाल भसीन, मुद्राराक्षस
राम सुरेश, दिनेश पालीवाल,
प्रभातकुमार त्रिपाठी की सशक्त
कहानियां

- भगवतीचरण वर्मा की विशिष्ट कहानी
- तथा सभी स्थायी स्तंभ

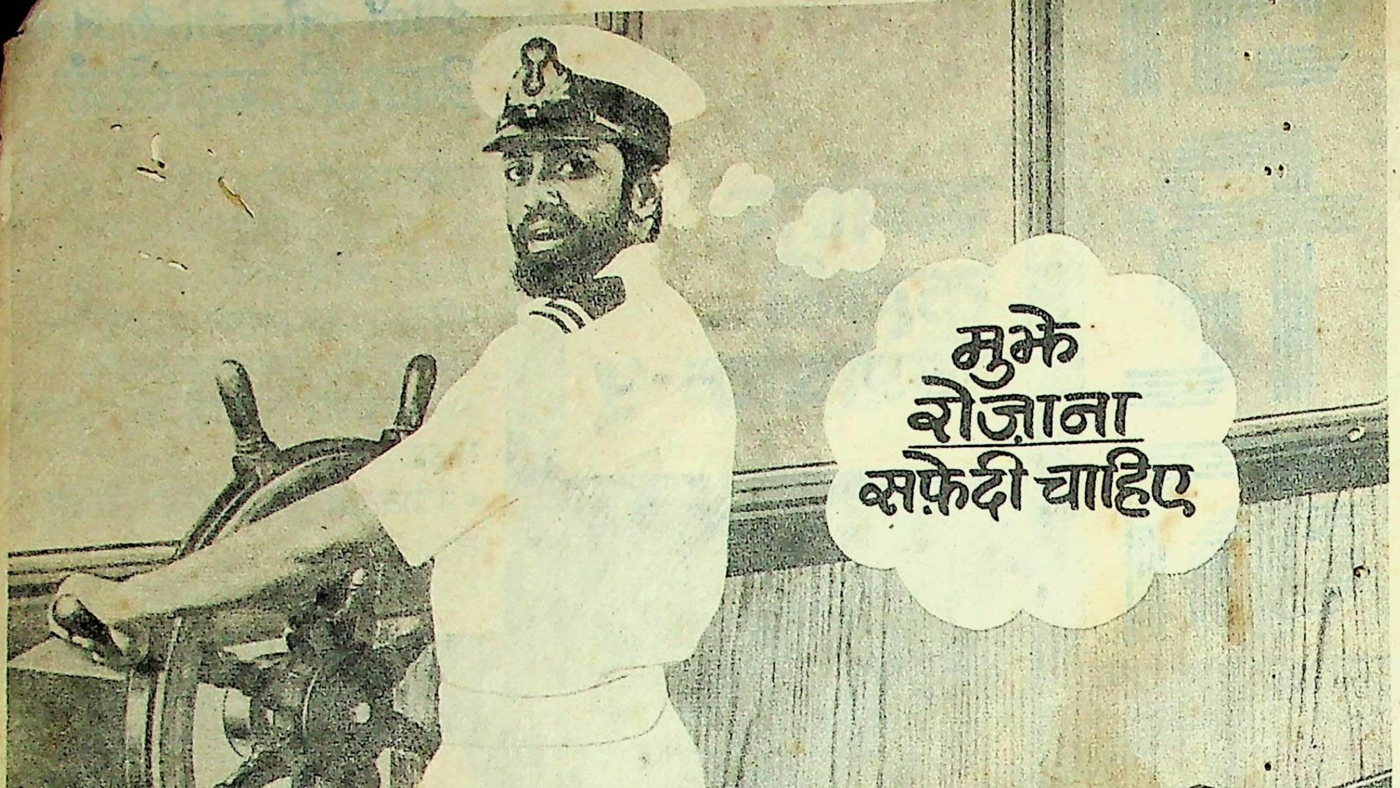
मुझे
रोज़ाना
सफ़ेदी चाहिए

New
Rinso
WASHES
DAZZLING
WHITE
Net weight 550 gm
रिन्सो
पैसे
बचाए

रिन्सो से
रोज़ाना सूती कपड़े
चकाचौंध सफ़ेद धुलते हैं

रोज़ाना के सूती कपड़े सचमुच मैले हो जाते हैं और उन्हें रोजाना सफ़ेद धोना एक मुसीबत है. रिन्सो का फ़ार्मूला इतना जोरदार है कि मैल बाहर...और धुलाई चकाचौंध सफ़ेद ! सबसे अच्छे साबुनों के मुक़ाबले में रिन्सो गारण्टी के साथ बेहतर धोता है. इसके अलावा, धुलाई के दूसरे पाउडरों के मुक़ाबले में इसकी क़ीमत भी कम है.

अधिक चकाचौंध सफ़ेदी के लिए
रिन्सो से गर्म पानी में धोइए
गर्म पानी में रिन्सो मिलाइए. फेंटिए. कम से कम १/२ घंटे तक कपड़े भिगोए रखिए. सामान्य तरीक़े से धोइए. देखिए, अपने सूती कपड़ों की चकाचौंध !

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

लिंटास-RINSO.5-140 HI

080582

सांस में दुर्गंध जुदाई कराये...

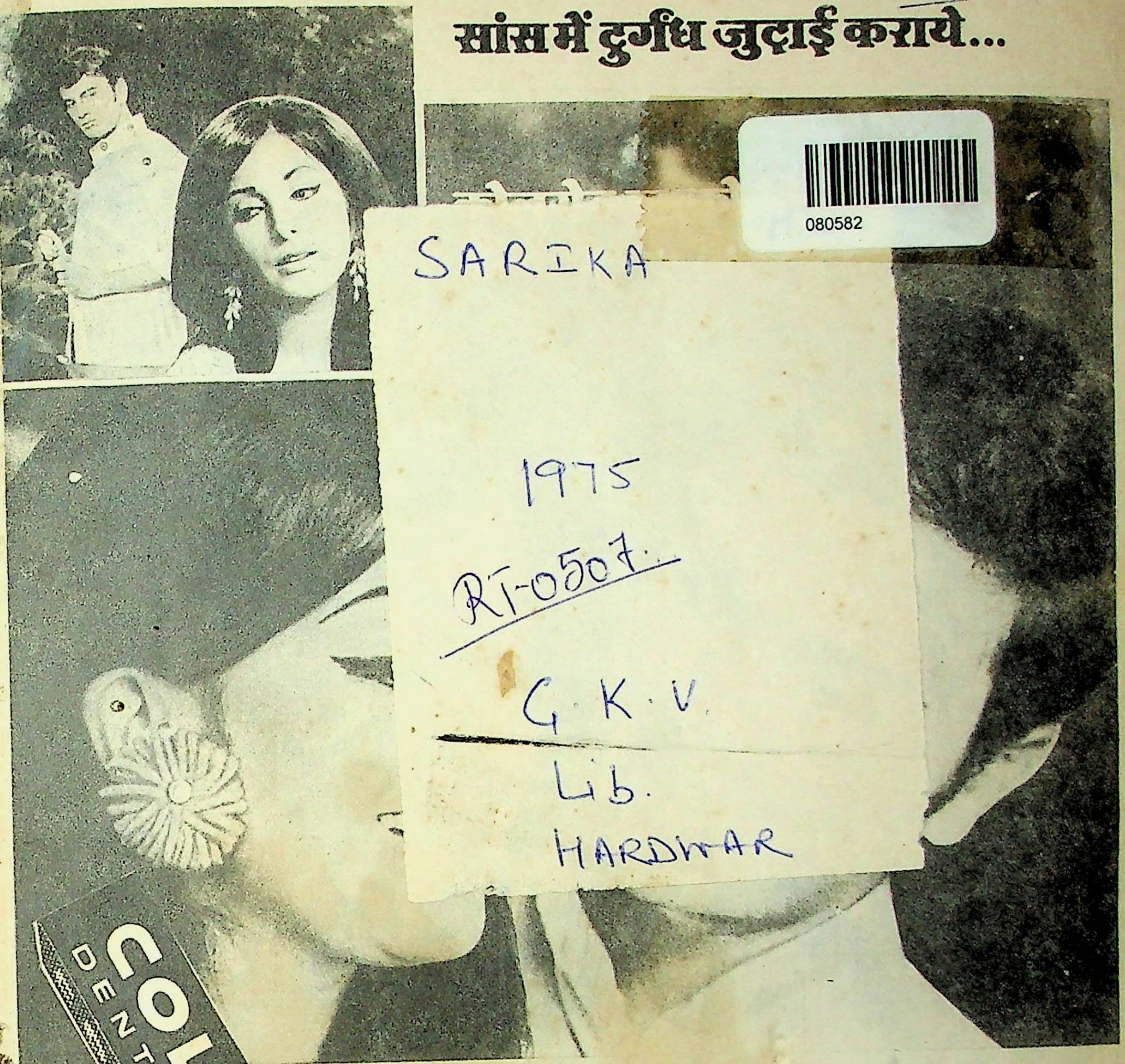

080582

SARIKA

1975

RT-0507.

G.K.V.
Lib.
HARDWAR

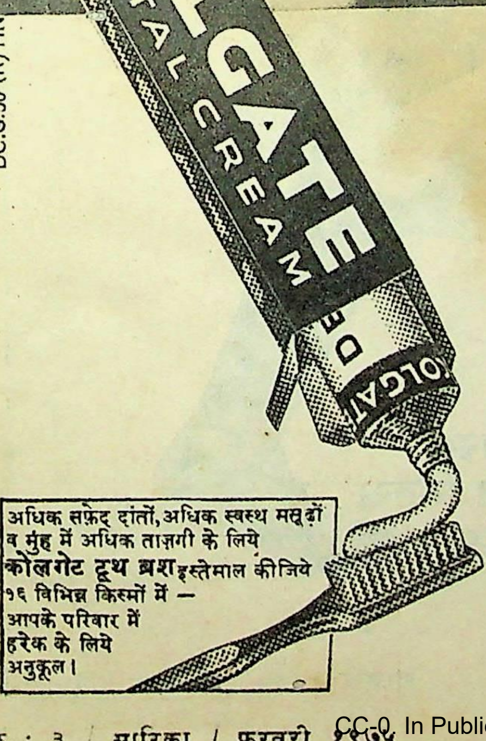

DC.G.50 (R) HN

कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की दुर्गंध रोकिये... दंतक्षय का दिनभर प्रतिकार कीजिये!

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल ख़त्म कर देता है और खाना खाने के तुरंत बाद कोलगेट विधि से दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का—अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक कीटाणुओं को दूर कर देता है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए...
दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही ख़रीदते हैं।

अधिक सफ़ेद दांतों, अधिक स्वस्थ मसूड़ों व मुंह में अधिक ताज़गी के लिये **कोलगेट टूथ ब्रश** इस्तेमाल कीजिये
१६ विभिन्न किस्मों में —
आपके परिवार में
हरेक के लिये
अनुकूल।

श्रीनिवास नारी-शक्ति को नयी दिशा प्रदान करेगा

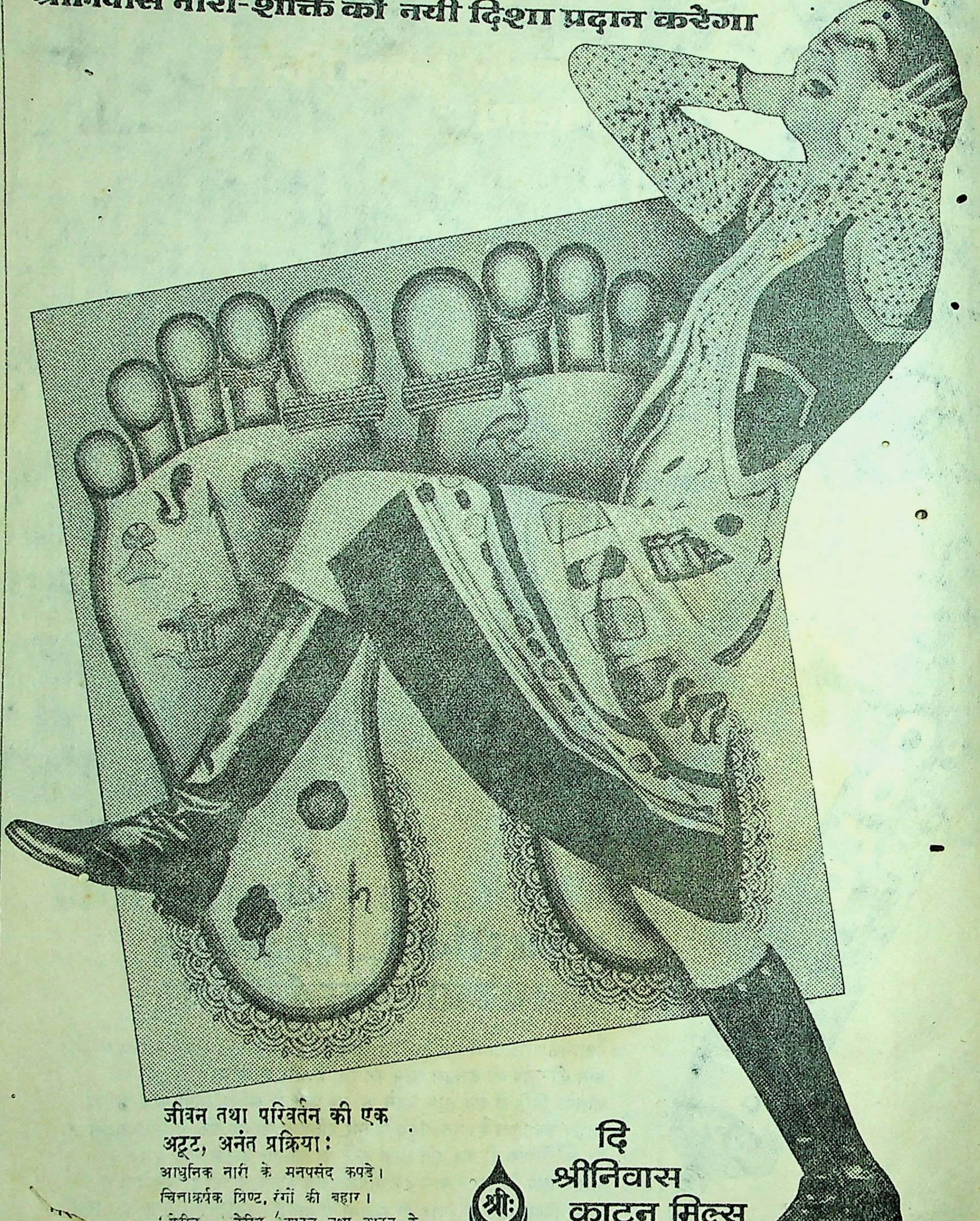

जीवन तथा परिवर्तन की एक अटूट, अनंत प्रक्रिया :

आधुनिक नारी के मनपसंद कपड़े।
चित्ताकर्षक प्रिण्ट, रंगों की बहार।
'टेरीन', 'टेरीन' काटन तथा काटन के नाना प्रकार के पोशाक के कपड़े।

श्री:

दि श्रीनिवास काटन मिल्स लिमिटेड

AFGHAN SNOW

आपका
चेहरा ही
आपका
भाग्य

उसकी उसी
प्रकार उचित तरीके से सुरक्षा करें

अफगान स्नो—संपूर्ण रूप से त्वचा की सुरक्षा करनेवाला स्नो।
इसके प्रयोग से आपकी त्वचा खिलती हुई पंखुड़ी की तरह
मृदु और सुबह की ओस की तरह ताजी रहती है।

यही कारण है कि महिलायें अपनी त्वचा की
सुंदरता और सुरक्षा के लिये अफगान स्नो पर पूर्ण भरोसा करती हैं।

अफगान स्नो. त्वचा की संपूर्ण सुरक्षा के लिये

आइये, शामिल हो जाइये

भारत के त्योहारों और मेलों में. दिवाली, दशहरा, होली, इस्टर, क्रिसमस, मोहर्रम, बैसाखी, रक्षा बन्धन, दुर्गापूजा, ओणम, ईद-उल-फितर, गणेश चतुर्थी में. बहुत लम्बी है यह सूची पर त्योहार सिर्फ़ यही नहीं और सिर्फ़ ऐसे भी नहीं. बड़ा अजीबोगरीब संसार है इन त्योहारों का. आप ने देखा है ?

* नावों की दौड़ से तीतर युद्ध तक
* आदिम अंचलों के मेले नज़र जहां नहीं जाती
* सौंदर्य और फैशन मेले, कुरुपता के मेले, मूर्खों का उत्सव...
* मौसमी पर्व
* धार्मिक परंपरा से जुड़े सांस्कृतिक त्योहार
* अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले
* बच्चों के मेले
* फिल्मी मेले

आइये, देखिये यह सब घर बैठे: नवभारत टाइम्स वार्षिकांक 1975 में. केवल 5 रुपये में. अपनी प्रति के लिये अखबार वाले से कहें या हमें लिखें . रजिस्टर्ड डाक द्वारा मूल्य सात रुपये

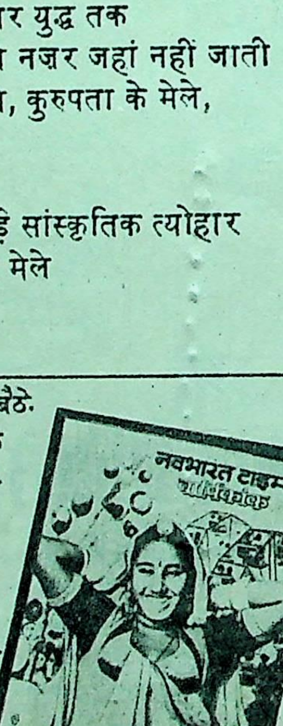

नवभारत टाइम्स
वार्षिकांक 1975

टाइम्स
ऑफ
इण्डिया
प्रकाशन

७ बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली ११०००१

HT-BC-3661 B

लंबाई बढ़ाइए

बढ़िए और बढ़िए
(महिलायें भी !)

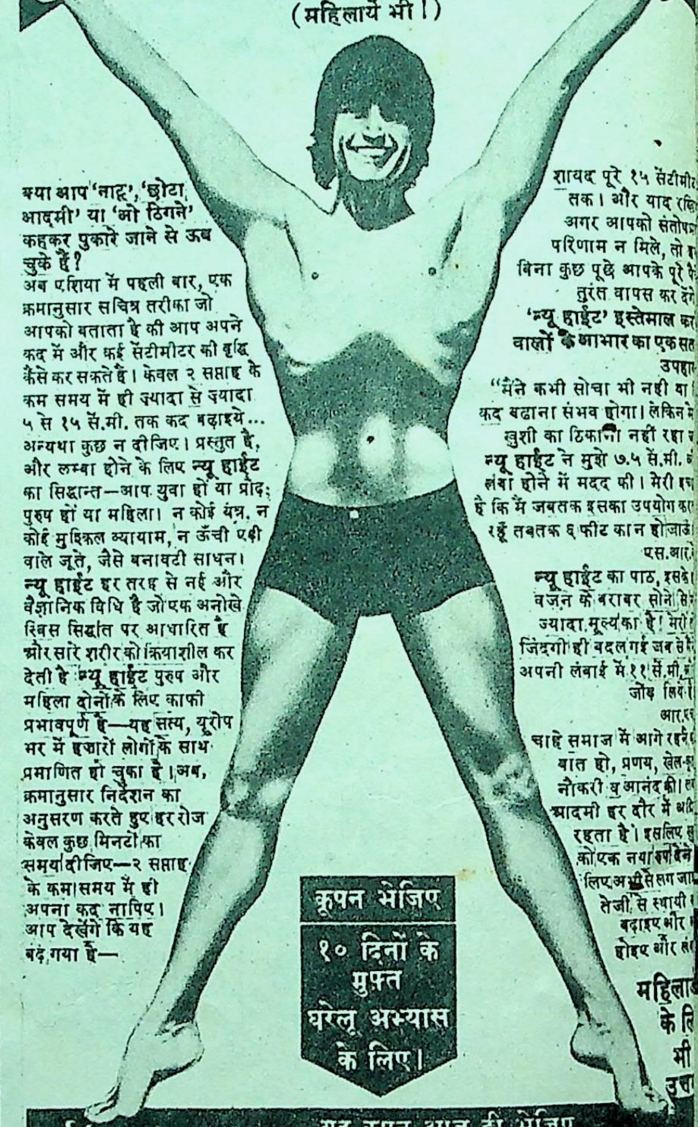

क्या आप 'नाटू', 'छोटा आदमी' या 'ओ ठिगने' कहकर पुकारे जाने से ऊब चुके हैं?

अब एशिया में पहली बार, एक क्रमानुसार सचित्र तरीका जो आपको बताता है की आप अपने कद में और कई सेंटीमीटर की वृद्धि कैसे कर सकते हैं। केवल २ सप्ताह के कम समय में ही ज्यादा से ज्यादा ५ से १५ सें.मी. तक कद बढ़ाइये... अन्यथा कुछ न दीजिए। प्रस्तुत है, और लम्बा होने के लिए **न्यू हाईट** का सिद्धान्त—आप युवा हों या प्रौढ़; पुरुष हों या महिला। न कोई यंत्र. न कोई मुश्किल व्यायाम, न ऊँची एड़ी वाले जूते, जैसे बनावटी साधन। **न्यू हाईट** हर तरह से नई और वैज्ञानिक विधि है जो एक अनोखे स्विस सिद्धांत पर आधारित है और सारे शरीर को क्रियाशील कर देती है **न्यू हाईट** पुरुष और महिला दोनों के लिए काफी प्रभावपूर्ण है—यह सत्य, यूरोप भर में हजारों लोगों के साथ प्रमाणित हो चुका है। अब, क्रमानुसार निर्देशन का अनुसरण करते हुए हर रोज केवल कुछ मिनटों का समय दीजिए—२ सप्ताह के कम समय में ही अपना कद नापिए। आप देखेंगे कि यह बढ़ गया है—

शायद पूरे १५ सेंटीमी
तक। और याद रखि
अगर आपको संतोषप्र
परिणाम न मिले, तो
बिना कुछ पूछे आपके पूरे पै
तुरंत वापस कर देंगे
**'न्यू हाईट' इस्तेमाल कर
वालों के आभार का एक सत**
उपहा

"मैंने कभी सोचा भी नहीं था
कद बढ़ाना संभव होगा। लेकिन मे
खुशी का ठिकाना नहीं रहा
न्यू हाईट ने मुझे ७.५ सें.मी.
लंबा होने में मदद की। मेरी इच
है कि मैं जबतक इसका उपयोग कर
रहूं तबतक ६ फीट का न हो जाऊं।
एस.आर.

न्यू हाईट का पाठ, इसके
वज़न के बराबर सोने से
ज्यादा मूल्य का है! मेरी
जिन्दगी ही बदल गई जब
अपनी लंबाई में ११ सें.मी.
जोड़ लिये।
आर.ए

चाहे समाज में आगे रहने
बात हो, प्रणय, खेल-
नौकरी व आनंद की।
आदमी हर दौर में अ
रहता है। इसलिए
को एक नया रूप देने
लिए अभी से लग जा
तेजी से स्थायी
बढ़ाइए और
होइए और सं

कूपन भेजिए
१० दिनों के मुफ़्त घरेलू अभ्यास के लिए।

महिला
के लि
भी
उप

सिर्फ़ रु. २९ में

यह कूपन आज ही भेजिए

न्यू हाईट १० वीं मंज़िल, १५ मैथ्यू रोड, बम्बई:४०० ००४.

हाँ, मैं कद बढ़ाना चाहता हूँ। अपने १० दिनों के घरेलू अभ्यास योजना के अंतर्गत, मुझे न्यू हाईट शीघ्र भेजिए अगर मैं पूरी तरह संतुष्ट नहीं हुआ तो मैं सबकुछ लौटा दूंगा ताकि तुरन्त पूरे पैसे वापस पा सकूं, कोई पूछ-ताछ नहीं होगी।

(कृपया सही चौकोर पर ☑ निशान लगाइए)

☐ मैं रु.२९ (तथा ४ रु. डाक व्यय व पैकिंग खर्च) चैक/बैंक ड्राफ्ट/आइ.पी.ओ. द्वारा भेज रहा हूँ।
☐ रु. ३३ का मनी ऑर्डर भेजा है (मनी ऑर्डर रसीद नं............तारीख..........)
☐ मैं साथ में रुपया नहीं भेज रहा हूँ लेकिन वी.पी.पी. द्वारा मिलते ही डाकिये को रु. ३३ दे दूँगा।

नाम..उम्र..........................
पता..

बचत कीजिए डाक व पैकिंग खर्च ५ दिन के अन्दर इस कूपन को भेजने पर।

SB

लंबाई बढ़ने का आश्वासन, वर्ना कुछ भी मत दिजिए।

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

फरवरी, १९७५; वर्ष : १५; पूर्णांक : १६५

समांतर कहानी विशेषांक-५

कहानियां

कामतानाथ : तीसरी सांस : १२
नवतेज सिंह : अन्न और स्वप्न : १८
ओम गोस्वामी : दैर्यें की मछली : २०
अभिमन्यु अनत : नयी तलाश : २४
हिमांशु जोशी : जलते हुए डैने : २८
विभुकुमार : एक बिछा हुआ आदमी : ३४
रश्मि तन्खा : पार्टी : ३६
सतीश जायसवाल : जाने किस बंदरगाह पर : ४६
अकुलेश परिहार : छुट्टी का एक दिन : ४८
पाल भसीन : सौदा : ५६
मुद्राराक्षस : निहत्थे : ६०
राम सुरेश : मदारी : ६८
दिनेश पालीवाल : एक चालू आदमी : ७२
प्रभातकुमार त्रिपाठी : ऋषि : ७६

विशिष्ट कहानी

भगवतीचरण वर्मा : गुन न हिरानो, गुन गाहक हिरानो है : ४०

लघुकथाएं

सुभाष उपाध्याय : समानांतर : २७
वीणा गुप्ता : मेरे देश में : ४५
नरेंद्र भारद्वाज : पक्का सबूत : ५९
हरजिंदर सिंह : रखवाला, मिलावट : ६५
रामशंकर देवांगन : ब्लडप्रूफ : ६६
अशोक दुबे : आत्महीन : ६६
एस. एस. शाहनवाज : चढ़ती कीमत, घटती कीमत : ६६
मनीषराय यादव : अपना - अपना भाग्य : ६६
कृष्णदेव झा : पावर : एक, पावर : दो, उम्मीदवार, समीक्षक : ६७
माधुरी शाह : निवटारा : ७१
रमेश बहादुर पोद्दार : समझदार भेड़िये : ७१

विशेष टिप्पणी

डॉ. रामवचन राय : वर्ग तथा वर्ण संघर्ष और समांतर साहित्य : ८९

स्थायी स्तंभ

मेरा पन्ना : कमलेश्वर : ८, पाठकीय : १०, गुस्ताखियां : प्रकाश पंडित : ३२ कबिरा खड़ा बजार में : हरिशंकर परसाई : ८२, फिल्में : मीनाकुमारी की डायरी; नज्म : गुलजार : ८४, चंद सतरें और : अनीता औलक : ८६, व्यंग्य विचार : अरविंद मालवीय : ८९, नयी पौद : ९१, सारिका कथा-पहेली : ९१

● आमुख : एम. डी. शर्मा

● संपादक : कमलेश्वर

● मुख्य उप-संपादक :
आनंदप्रकाश सिंह

● उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल, सुदीप

● कार्यालय सहयोगी :
श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

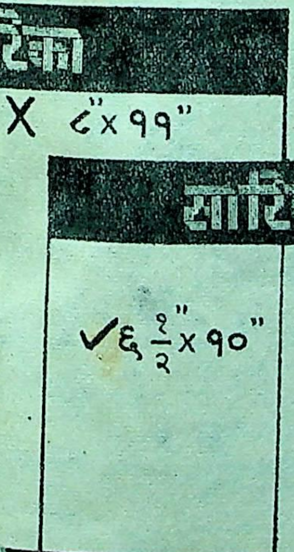

अब सारिका नये रूप नये आकार और नयी सज्जा में

अप्रैल १९७५ अंक से सारिका आपको नये रूप और आकार में उपलब्ध होगी. सारिका के वर्तमान आकार का कागज अकसर समय पर नहीं मिल पाता था साथ ही कुछ तकनीकी कारण भी थे जिनके कारण हमें सारिका के आकार में कुछ परिवर्तन करना पड़ रहा है. हालांकि यह परिवर्तन अधिक नहीं है लेकिन इससे सारिका अधिक ग्राह्य हो जायेगी. कीमत और पृष्ठ संख्या में कोई अंतर नहीं आया है.

आज का यथार्थ : समांतर संसार . . . (५)

करुणा, समन्वय और संस्कार!

करुणा की नैतिकता और समन्वय की सामाजिकता के संदर्भ में संस्कारों की बात भी कर ही लेनी चाहिए. जब तक कोई जाति स्वयं अपने लिए विचार और मूल्य तय नहीं करती, तब तक संस्कार नहीं बनते; फैशन आते और जाते रहते हैं, जिन्हें हम आदतन संस्कार कहते हैं. आज का विपुल साहित्य बार-बार परिवर्तन की मांग करता है, पर यह नहीं सोचता कि संस्कारग्रस्तता को तोड़ना ही लाजिमी नहीं है, बल्कि नये संस्कारों का सृजन भी उतना ही अपेक्षित है. संस्कारग्रस्तता को तोड़ने के नाम पर बहुत कुछ हुआ है, पर यह भूल कर कि मनुष्य कभी भी शून्य में संस्कारों को नहीं त्यागता. वह हमेशा नये संस्कारों के पक्ष में रूढ़ संस्कारों को छोड़ता है. किसी अमानुषिक इतिहास के दौर में बने विचार और मूल्य मनुष्य के चाहे जितने विपरीत चले जायें, वह उन्हें इसीलिए नहीं छोड़ पाता, क्योंकि उसके सामने नये मूल्यों और विचारों को चुनने का कोई विकल्प नहीं होता. परिवर्तित विचार और मूल्य ही 'संस्कारग्रस्तता' का पर्याय हो सकते हैं. परिवर्तित विचार या मूल्य शून्य में से नहीं आते. ये मनुष्य को उन्हीं स्थितियों और विषमताओं में से स्वयं प्राप्त करने होते हैं, जहां उसके अस्तित्व की शर्तों को पैदा किया जाता है. यहीं पर हरेक को जीने की शर्तों और अपनी जीने की अपेक्षाओं का रिश्ता तय करना पड़ता है.

यथार्थ से आंखें मूंद कर हम बेहद जोशीले स्वर में कह सकते हैं कि कल क्रांति होने वाली है. . . कि मजदूर-किसान अब ज्यादा सहन करने वाले नहीं हैं! यह सही है कि सबके धीरज का बांध टूट चुका है, पर यह भी सही है कि सबके संस्कारों के बांध में दरार तक नहीं पड़ी है. परिवर्तन चाहना और परिवर्तन के आड़े आने वाले कारणों को नकारते जाने की बौद्धिक ऐय्याशी बड़े जोर-शोर से चालू है. क्या कभी हमने भारतीय मजदूर की 'प्रकृति' को समझने की कोशिश की है? उसकी संस्कारग्रस्तता को जानने की तकलीफ उठायी है? क्या हमारे आंदोलनों ने कभी भी मजदूर और मशीन के रिश्ते को तय किया है? जब मशीन मजदूर की अच्छी या बुरी तरह से जीने की शर्त भर हो, तब क्या वह अपने संघर्ष को ज्यादा दिनों तक चला सकता है? मशीनें दूसरों की और मेहनत मजदूर की, इस संदर्भ में मशीनों की बात छोड़ कर मेहनत की कीमत वसूल करने की क्रांतिवादिता एक आसान और सुविधावादी क्रांतिकारिता है! और इस तरह की क्रांतिवादिता जैसे मशीनों को छोड़ देती है, वैसे ही संस्कारों को भी नजरअंदाज कर जाती है; क्योंकि भाग्यवादी संस्कारग्रस्तता और साथ ही कर्मफल की मानसिकता वाले संस्कार की बुनियाद यही है. जब तक मशीन और मजदूर का रिश्ता तय नहीं होता, तब तक संघर्ष की भूमिका भी स्पष्ट नहीं हो सकती, और ऐसे में रूढ़ संस्कारों का पर्याय भी पैदा नहीं किया जा सकता.

● के. के. उपाध्याय

जब तक बहुसंख्यक किसान और जमीन का रिश्ता तय नहीं होता, संस्कार-बद्धता को नहीं तोड़ा जा सकता. जब तक कलम और लेखक का रिश्ता तय नहीं होता, तब तक नये संस्कारों या मूल्यों की खोज सार्थक नहीं हो सकती. आज जिस संघर्ष-चेतना की कामना चारों ओर व्याप्त है, वह सक्रिय क्यों नहीं हो पाती? परिवर्तन फलित क्यों नहीं होता? शायद इसीलिए कि हम मनुष्य को उसके पूरे परिवेश और संदर्भों में स्वीकार नहीं करते. उसकी सच्चाइयों को मंजूर न करके, अपनी गढ़ी हुई 'सच्चाइयों' के आईने में उसकी तसवीर देखते रहते हैं. इच्छामूलक सच्चाइयों और परिवेशगत सच्चाइयों के अंतराल को जब तक समाप्त नहीं किया जाता, तब तक कुछ भी संभव नहीं हो सकता. इन इच्छामूलक सच्चाइयों की भी जरूरत पड़ती है, पर ये तभी संगत हो पाती हैं, जब ये सच्चाइयां परिवेशगत सच्चाइयों की कोख से जन्म लेती हैं. परिवेशगत सच्चाइयों की कोख से उन्हें मूल्य और विचार ही संस्कार का रूप ले कर अंततः संस्कृति में तब्दील होते हैं. सांस्कृतिक सच्चाइयों और राजनीतिक मंतव्यों (इच्छामूलक सच्चाइयों) में जब तक तालमेल नहीं होता, तब तक सम्यक् परिवर्तन की बात लंगड़ाती रहेगी. संस्कार एक ऐसी सांस्कृतिक शक्ति है जो समाज को एकीकृत रखती है— व्यक्ति और व्यक्ति को समाज में साथ होने का विश्वास देती है. अपने प्रचलित संस्कारों से टूट कर व्यक्ति चाहे 'व्यक्तित्व' प्राप्त कर ले, पर वह अपने वर्तमान समाज से बाहर चला जाता है.

जब किसी समाज के 'जीने' के साधन बदलते हैं — यानी उसके और समाज के रिश्तों के बीच उत्पादन के साधनों का रूप बदलता है, तो नये सामाजिक-आर्थिक रिश्तों के लिए संस्कारों का बदलना भी जरूरी हो जाता है. पर मुश्किल सिर्फ यह है कि बदली हुई परिस्थितियों में सामाजिक रिश्तों, पूंजी और संपदा का उत्पादन जितनी तेज रफ्तार से हो पाता है, संस्कारों का परिवर्तन उतनी तेजी से नहीं होता. मशीन के आते ही मनुष्य और मनुष्य का रिश्ता जिस तेजी से बदलता है, उतनी ही तेजी से मनुष्य और मनुष्य के सांस्कृतिक (या सांस्कारिक) रिश्ते नहीं बदलते. इन सांस्कारिक रिश्तों को शून्य या वैक्यूम में नहीं बदला जा सकता — इनका पर्याय खोजना ही पड़ता है. पर्याय की यह खोज तब तक संभव नहीं है, जब तक हम परिवर्तन करने वाले जन सामान्य और उसके जीने की शर्त पैदा करने वाले उत्पादन के स्रोतों तथा साधनों का रिश्ता यथासंभव साफ न कर लें, उन उत्पादन के स्रोतों तथा साधनों का, जिन्होंने समाज और साथ ही सामाजिक व्यक्ति के कार्य-क्षेत्र तथा कार्य-पद्धति का नक्शा ही बदल दिया है. आज का मजदूर या किसान उत्पादन की इकाई नहीं है, वह उत्पादन की इकाई का एक अंश है. दस-दस या बीस-बीस मजदूर या किसान मिल कर उत्पादन की एक इकाई बनते हैं. क्योंकि अब जमीन से सिर्फ अन्न पैदा करके नहीं जिया जा सकता. मशीन से सिर्फ वस्तु तैयार करके जिंदा नहीं रहा जा सकता : यह आत्मनिर्भरता का दौर नहीं है, यह परनिर्भरता का नृशंस दौर है, क्योंकि अब जमीन पे अन्न उगा कर उसे पैसे में बदलना होता है, या मशीन से कपड़ा तैयार करके उसे पूंजी में तब्दील करना होता है; और तब उसी अर्जित पूंजी या पैसे से वही उत्पादित अन्न या कपड़ा खरीदना पड़ता है. यह विद्यादान का युग नहीं है. . .पहले यहां दूसरों के बच्चों के लिए मास्टर को अपनी विद्या को बेचना पड़ता है और तब अपने बच्चे के लिए उसे ही दूसरों से विद्या खरीदनी पड़ती है. कोयला-खदान के मजदूर को कोयला खोद कर जो पैसा मिलता है, उसी पैसे से वह बाजार में अपने लिए कोयला भी खरीदता है. यानी यह आत्मनिर्भरता, उत्पादन-संतुष्ट, आवश्यकतापूरित दान और प्रतिदान के रिश्तों का दौर नहीं है— इस दौर में जमीन का रिश्ता किसान से और मशीन का रिश्ता मजदूर से वहीं तक है, जहां तक वह 'उत्पादन' करता है. उत्पादन के बाद जब (उसी के द्वारा उत्पादित वस्तु को) उसी के द्वारा खरीदने का सवाल आता है तो रिश्ते एक अलग धरातल पर चले जाते हैं. यानी तब हम परनिर्भरता, मुनाफा-केंद्रित, उत्पादनच्युत, आवश्यकता-विकेंद्रित, क्रय और विक्रय के स्थापित किये गये नृशंस बाजार में गरीब की तरह हाथ फैलायें जीने के लिए भीख मांगते खड़े होते हैं! आज आपकी मां अपने नेत्रदान कर जायें और कल आपको अगर अपनी लड़की के लिए उन्हीं नेत्रों की जरूरत पड़े तो मां के नेत्र आपको वापस दान में नहीं मिलेंगे, आपको अपनी ही मां के नेत्रों को लड़की के लिए खरीदना पड़ेगा.

जहां आदमी और आदमी, आदमी और समाज, समाज और बाजार, जमीन और किसान, मशीन और मजदूर के रिश्ते पूरे जीवनगत सांस्कृतिक ढांचे को चकनाचूर कर दें, वहां दान और प्रतिदान, कर्म और करुणा, त्याग और तपस्या, अपरिग्रह और संतोष; जन्म, जीवन और मृत्यु, बलिदान और उत्सर्ग, संयम और साधना, कार्य और फल, इहलोक और परलोक, भौतिक और आध्यात्मिक आदि सांस्कृतिक कुंठाओं की पहचान समय और मनुष्य के संदर्भों में की जानी चाहिए.

सवाल आदमी को संस्कारविहीन कर देने का नहीं है, जो कि मनुष्य कभी होता भी नहीं; जरूरत है संस्कारों के परिष्कार और पर्याय की! संस्कारगत वर्जनाओं और कुंठाओं से उपजने वाले आत्मिक दंश और दोष भावना की ग्रस्तता से आहत आज के मनुष्य की आत्मा को बेबाक बना देने की. सांस्कारिक निरीहता, लाचारी और निष्क्रियता से उबार कर उसकी आत्मा को यथासंभव और अधिकतम स्वतंत्र कर सकने की, ताकि वह सामने आये समय और समाज के नये रिश्ते सांस्कारिक मजबूरियों में तय न कर ले, बल्कि सांस्कारिक पर्यायों की दृढ़ता ले कर सम्यक् परिवर्तन का वाहक बन सके!

* *

इस अंक की कहानियां भी इसी संदर्भ में देखी जानी चाहिए. इन कहानियों का आदमी सांस्कृतिक निरीहता के खिलाफ लड़ाई में जुटा है लेकिन संस्कारहीन नहीं हुआ है. उसने नये संस्कारों को अपने बाहर और भीतर पैदा किया है. उसके लिए जिंदगी की निष्क्रियता मौत से भी बदतर चीज है. चाहे कामतानाथ की 'तीसरी सांस' का केबिन-मैन हो या हिमांशु जोशी की 'जलते हुए डैने' के शिवदा या अकुलेश परिहार की 'छुट्टी का एक दिन' का प्रभाकर और उसका पिता अथवा ओम गोस्वामी की 'दर्द की मछली' का धर्मू, सभी जिंदगी के इसी पहलू से बंधे हुए हैं. इसी तरह मुद्राराक्षस, विभुकुमार, अभिमन्यु अनत, प्रभातकुमार त्रिपाठी, राम सुरेश, पाल भसीन, रश्मि तन्खा, सतीश जायसवाल, दिनेश पालीवाल और नवतेज सिंह की कहानियों के पात्र ही भी जिंदगी की सक्रियता से जुड़े रह कर ही अपने अस्तित्व के सही अहसास को भोगते हैं. वे हर विकृत और भयावह परिस्थिति को लड़ाई जारी रखने के एक नये धरातल के रूप में स्वीकार करते हैं.

कमलेश्वर

पाठकीय

समांतर कहानी विशेषांकों पर प्रतिक्रियाएं

'सारिका' का नवंबर अंक पढ़ा. सभी कहानियां अत्यंत मार्मिक रहीं. आज जिंदगी को देखने का सिर्फ एक ही दृष्टिकोण रह गया है—और वह है आर्थिक. सिर्फ एक मोर्चे पर हमारी समस्त शक्ति केंद्रित हो गयी है और वह है आर्थिक मोर्चा. हम अपने पारिवारिक व मानवीय संबंधों को सिर्फ एक ही तराजू में तोलते हैं और वह है—आर्थिक. यानी दो वक्त की रोटी ही सब कुछ हो गयी है. एक कातिल के खिलाफ, जो हमारे हक छीन लेता है, हम सिर्फ रोटी के डर से नहीं बोल सकते (**'शहादतनामा'**), अपने अधिकारों के लिए लड़ने से पहले हमें अपनी रोटी की खैरियत मनानी पड़ती है (**'उल्टी करने वाला आदमी'**), हमें अपनी रोटी के लिए अपने बाप के मरने का इंतजार है (**'आगे बढ़ो'**), अपनी दो वक्त की रोटी के लिए आज हमें किराये की बेटी ढूंढनी पड़ती है. उफ, क्या स्थिति है!

एक बहुत बड़ा सवाल हमारे आगे है. आर्थिक मोर्चे पर हम एक भयंकर षड्यंत्र के शिकार हो गये हैं. और सिवा छटपटाने के हम कुछ करने के काबिल नहीं रहे. हमारा सारा आक्रोश नपुंसक आक्रोश बन गया है. हम भुगत सकते हैं, ज्यादा-से-ज्यादा लिख सकते हैं—कुछ बोल नहीं सकते, कुछ कर नहीं सकते. स्वतंत्र भारत (!) में क्या विचारों की स्वतंत्रता है!

☐ **जगमोहन बवे, उदयपुर**

समांतर कहानी विशेषांक : २ (नवंबर '७४) पढ़ा. सभी कहानियां आम आदमी की वर्तमान दारुण और तनावपूर्ण स्थितियों की ओर आक्रोशमय ढंग से इंगित करती हैं. **'शहादतनामा'** (जितेंद्र भाटिया) और **'आगे बढ़ो'** (राजेश कुमार जैन) में निम्न स्तरीय मजदूरों का आर्थिक तनाववश अपने आत्मिक सुख-शांति को खो देना, **'सूखा'** (जसवंतसिंह विरदी) और **'हवा'** (दामोदर सदन) में प्राकृतिक और रक्त-संबंध की मजबूरियां वर्तमान संत्रस्त और निराधार मजबूरियों के साथ हैं, **'आतंक भरा सुख'** (मेहरुन्निसा परवेज) **'तमाशा'** (स्वदेश दीपक), **'एक और हत्या'** (मिथिलेश्वर) और **'जब ईश्वर नंगा हो गया'** (शिव शर्मा) में दो जून की रोटी प्राप्त करने के लिए आम आदमी की नग्न और पिसती हुई विवशता, **'रिसता हुआ बिंदु'** (अंजनी चौहान) और **'तपती हुई जमीन'** (सुभाष पंत) में वर्तमान कुंठित वातावरण में अपनी निम्नस्तरीय और लुढ़कती हुई स्थिति को कायम रखने या उजागर करने की सफल-असफल चेष्टा, **'मजमेबाज'** (हबीब कैफी) और **'उल्टी करने वाला आदमी'** (ब्रह्मदत्त) में सामाजिक संदर्भ में सत्ता के खिलाफ अपने व्यक्तिगत अधिकार से वंचित आम आदमी का अकेलापन बहुत ही जीवंत और ज्वलंत अभिव्यक्त किया गया है.

आमुख पर सुख-सपनों की सेज पर बिलखता हुआ निरीह बालक आम आदमी के आस-पास की आज की कहानियों के संदर्भ में सही प्रतीत होता है. छायाकार दयाराम चावड़ा को बधाई.

☐ **सी. बी. बोरकर, बंबई.**

पांच वर्षों से भी अधिक समय से **'सारिका'** का पाठक हूं. कहानियों के ढांचे में नयी-नयी अलभ्य सामग्री प्रस्तुत करने के लिए **'सारिका'** को धन्यवाद. अक्तूबर अंक की सारी कहानियां मैंने पढ़ीं. सभी अकाट्य हैं, पर **'अंधेरे का सैलाब'** को अंगूठी का नग ही कहा जा सकता है. मध्यम वर्ग का मानव धनी वर्ग के स्तर से तालमेल बैठाने का किस प्रकार प्रयास करता है, और असफलता के कारण किस प्रकार अपने आप में घुटता हुआ जीता है, इसका यह सजीव चित्रण है. इस वर्ग के समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रस्तुत कहानी के नायक ने सत्य का नग्न रूप सामने रख दिया है. कहानी अपने साथ पाठक को ले कर चलती है. लगता है, पाठक भी पात्र की छाया है. ☐ **सभाजीत मौर्य, बंबई.**

समांतर कहानी के दोनों अंक मिले. आज के पाठक को **'सारिका'** सही कहानी दे रही है, निश्चय ही यह एक जिम्मेदारी भरा बड़ा काम है. अक्तूबर अंक में भीष्म साहनी (**'वाङ चू'**), हृदयेश (**'गुंजलक'**), आलम शाह खान (**'परायी प्यास का सफर'**) और श्रवणकुमार (**'नहीं, यह कोई कहानी नहीं'**) ने अत्यधिक प्रभावित किया. ईसप-कथाओं का नवरूप भी अच्छा लगा. छायाकार सुरेश शेठ भी तारीफ के हकदार हैं. समांतर–२ (नवंबर, ७४) की कथाएं और भी तल्ख हैं, विशेष रूप से **'शहादतनामा'** (जितेंद्र भाटिया), **'सूखा'** (विरदी), **'तमाशा'** (स्वदेश दीपक), **'हवा'** (दामोदर सदन) और **'एक और हत्या'** (मिथिलेश्वर). शिव शर्मा की कहानी **'जब ईश्वर नंगा हो गया'** लोकल संदर्भों और साफगोई के कारण बेहद पसंद आयी. कामतानाथ का लेख **'समांतर कथा यात्रा'** वाकई विशिष्टता लिये हुए है. **'मेरा पन्ना'** के लिए कमलेश्वर जी को किन शब्दों में सराहूं? अंत में छायाकार-द्वय (चावड़ा-गाथा) को विशिष्ट तस्वीरों के लिए बधाई. ☐ **शाहिद मिर्जा, उज्जैन**

'सारिका' का नवंबर, '७४ का अंक पढ़ा. इस अंक की समस्त कथाएं सामान्य जन की पीड़ा, आंतरिक घुटन व जीवन की विडंबनाओं को सही ढंग से पेश करने में समर्थ रहीं. इस अंक की **'शहादतनामा'** (जितेंद्र भाटिया) कारखानों में चल रहे वर्ग-संघर्ष की पूरी तस्वीर साफ कर देती है.

☐ **देवेंद्रकुमार पाठक, भुड़सा, जबलपुर.**

आम आदमी के आसपास आज की कहानियों में **'रिसता हुआ बिंदु'**, **'तमाशा'** **'सूखा'**, **'जब ईश्वर नंगा हो गया'** और मिथिलेश्वर जी की **'एक और हत्या'** मुख्य रूप से सराहनीय हैं. भगवतीचरण वर्मा की आठवीं कहानी **'गनेसीलाल का रामराज'** बहुत ही रोचक एवं हास्यमय लगी! **'तमाशा'** इस अंक की कहानियों में सबसे अच्छी लगी एवं हृदय को छू गयी. मीनाकुमारी की डायरी भी अपनी जगह पर ठीक थी.

☐ **अब्दुल बहराम, गढ़वा, पलामू**

नवंबर अंक मिला. आम आदमी के आस-पास आज की कहानियां पढ़ीं. वस्तुतः ये कहानियां न हो कर आम आदमी की जिंदगी के दस्तावेज हैं. उसके दुख-दर्द की करुण दास्तान हैं. इस अंक की सभी कहानियां काफी गहराई से मन को अभिभूत कर गयी. सभी एक-दूसरे से बढ़ कर थीं. लेकिन सबसे अधिक प्रभावित किया जितेंद्र भाटिया की **'शहादतनामा'** ने. यह कहानी मेरे मन-मस्तिष्क को झकझोर कर रख गयी. आज की दुनिया में न जाने कितने अमरजीतों को अपनी आवाज उठाने के लिए समाप्त कर दिया जायेगा. और कितनों को सच्चाई का गला घोंटते हुए अपनी जिंदगी के होठों पर सदा के लिए झूठ भर कर जीना होगा.

समूची **'सारिका'** पढ़ने की प्रक्रिया एक ऐसे अनुभवों के दौर से गुजरने की प्रक्रिया रही, जिसे शब्दों में व्यक्त कर पाना सहज नहीं.

'मेरा पन्ना' **'सारिका'** का सिरताज है. इसकी प्रशंसा में कुछ भी कहना कम होगा.

☐ **'मधु', गया (बिहार)**

नवंबर अंक में प्रकाशित जितेंद्र भाटिया की कहानी 'शहादतनामा' मुझे बेहद पसंद आयी. 'समांतर कहानी' को असली दिशा-बोध देने वाली 'सारिका' में प्रकाशित यह कहानी सर्वश्रेष्ठ है. समांतर कहानी-चर्चा चलाते हुए कमलेश्वर जी ने जीवन की अपेक्षाओं और शर्तों की बात उठायी है. जीवन की अपेक्षाएं सामान्य जन की अपेक्षाएं हुआ करती हैं. जितेंद्र भाटिया की कहानी का कोई दूसरा सानी मुझे कोई बता सकता है? शायद, मेरी समझ में जितेंद्र भाटिया और उनकी **'शहादतनामा'** कहानी का पात्र 'अमरजीत', पूरे मजदूर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं. उसकी जिंदगी वास्तविकता के धरातल पर टिकी है. क्या वास्तव में यह कहानी यथार्थ का चित्रांकन नहीं करती? जी हां, पूरे सवाल-जवाब के साथ करती है. इसी संदर्भ में मिथिलेश्वर की कहानी **'एक और हत्या'** स्वतंत्रता के बाद भी गांव के आम मजदूर के जीवन की वास्तविकता को पूर्ण रूप से संकेतित करती है. बिहार के गांवों में अभी भी वही सामंती व्यवस्था का रूप चला आ रहा है. यह कहानी यथार्थ का संस्पर्श करती हुई ग्रामीण मजदूर वर्ग का पूर्ण प्रतिनिधित्व कर रही है.

☐ **उमेशकुमार श्रीवास्तव, छिंदवाड़ा.**

'सारिका' के बहुप्रतीक्षित समांतर कहानी विशेषांक (अक्तूबर, नवंबर) देखे. पूर्व-घोषणा के अनुरूप इन समांतर विशेषांकों की कहानियां वास्तव में आम आदमी की जटिल समस्याओं, उफनते आक्रोश और जलते सवालों का दस्तावेज बन पायी हैं. वस्तुतः ये कहानियां न सिर्फ आम आदमी के आस-पास से गुजरती हैं, बल्कि उसकी आंतरिक टूटन, यातनादायी घुटन, भयावह पीड़ा और संपूर्ण मायूसी के प्रति खुली सड़क पर इजहार भी करती हैं.

दरअसल यह सब कुछ हिंदी कथा-साहित्य में बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था. लेकिन साहित्य के महंतों ने इसे अब तक रोक रखा था, क्योंकि साहित्य उनके लिए कोई स्वर्गिक और कल्पनालोक की वस्तु थी. धरती के यथार्थ और खुरदरे सत्य को वे साहित्य के लिए वर्जित और दूषित मानते थे. उनकी परंपरा आज भी कायम है. आम आदमी के जलते सवालों और जूझते संदर्भों से टकराती आज की इन समांतर कहानियों को वे पचा नहीं पाते हैं. इन कहानियों पर राजनीतिकता का वे झूठा आरोप लगा देते हैं.

वस्तुतः उनके इस आरोप को विश्लेषित करके देखा जाये तो इसके पीछे उनकी सोच की दयनीयता है. चूंकि आज की कहानियों के सवाल साहित्येतर हो गये हैं, और समय से जुड़ गये हैं, इसीलिए इन पर राजनीतिकता का आरोप लगाया जा रहा है, क्योंकि अब तक लोगों ने ऐसा मान रखा है कि समय से जुड़ा सवाल राजनीतिक ही होता है. लेकिन मेरी दृष्टि में आज की कहानियों की यह सबसे बड़ी उपलब्धि और सार्थकता है कि वे साहित्य के कल्पनालोक से हट कर धरती की विकराल और भयावह स्थितियों को रूपायित करने लगी हैं तथा आम आदमी (देश के बहुसंख्यक जन समुदाय) की मुक्ति के लिए उसके शोषण के खिलाफ एक व्यापक फलक पर संघर्ष की भूमिका निभा रही हैं.

'सारिका' के अक्तूबर और नवंबर समांतर कहानी विशेषांकों से कुछ ऐसी कहानियां उदाहरणार्थ पेश की जा सकती हैं जो चौतरफे शोषणों से शोषित आज के आम आदमी की दारुण व्यथा को उजागर करती हैं और इसके खिलाफ अपना संघर्ष भी अनवरत रूप से जारी रखती हैं.

गरीब तमाशे वाला एक रुपये का आटा लाने बाजार जाता है तो दूकानदार राशन कार्ड मांगता है, मगर तमाशे वाला दूकानदार पर उबल पड़ता है कि एक रुपये का आटा तोल दे नहीं तो तू अस्पताल पहुंचेगा और मैं जेल (**'तमाशा'** : स्वदेश दीपक). जगेसर को कुत्ते द्वारा काट लेने के बावजूद उसे अपने मालिक हरपालसिंह के कार्यों में तल्लीन रहना पड़ता है. फिर भी हरपाल सिंह सुबह-शाम गालियां नहीं भूलते (**'एक और हत्या'**) मिथिलेश्वर : इतना ही अत्याचार और शोषण नहीं, यह तो घर और बाजार की बात है; अस्पताल में भी एक गरीब मास्टर की पत्नी दवा-दारू के अभाव में मर जाती है और मास्टर अस्पताल के विरोध में भूख-हड़ताल करता है और अंत में वह भी हमेशा के लिए सो जाता है (**'एक और निवेदन'** : गुरबचनसिंह) लोग समझते हैं होटल के बैरे साले खूब खाते-पीते होंगे. रोज नये-नये भोजन करके फूले रहते होंगे. मगर आलम शाह खान ने अपनी **'परायी प्यास का सफर'** में एक बेयरे की दर्दनाक कहानी प्रस्तुत की है, जो दूसरों को निरंतर खिलाता-पिलाता रहता है, लेकिन खुद प्यासा ही सो जाता है.

पहले लोग जेलों में नहीं जाना चाहते थे, अमीर हों या गरीब, क्योंकि इससे तौहीन होती थी. गांवों में पुलिस का आना बेइज्जती समझी जाती थी. मगर बेकारी की स्थिति में, रोटी-कपड़े की समस्या के चलते, मांगेराम जैसा इनसान गांव छोड़ कर शहर में नौकरी के लिए आया और उसे वहां भी कुछ हासिल नहीं हुआ और तब वह जेल जाने के उपाय सोचने लगा कि उसमें कम-से-कम दोनों जून खाना तो मिलेगा (**'नहीं, यह कोई कहानी नहीं'** : श्रवण कुमार.)

और ये तमाम कहानियां न सिर्फ आम आदमी की तकलीफ और आक्रोश को ही व्यक्त करती हैं, बल्कि आम आदमी के पक्ष में उसकी मुक्ति के लिए, देश के स्तर पर चल रही जनवादी लड़ाई को और अधिक तेज और प्रखर कर रही हैं. इन कहानियों के जुझारू तेवर को देखते हुए हमें यह कहना पड़ता है कि निश्चित रूप से ये कहानियां सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलाव में सफल भूमिका अदा करेंगी.

इन विशेषांकों में **'मेरा पक्ष'** के माध्यम से कमलेश्वर जी ने इन कहानियों के अंदर निहित सवालों और विचारों को समयगत यथार्थ के साथ जोड़ कर देखने का प्रयत्न किया है. कमलेश्वर जी की महान प्रगतिशील दृष्टि, गहन अध्ययन और प्रखर जनवादी चिंतन इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है— 'कितना विचित्र और विकराल है यह दृश्य जो कुछ ही वर्षों में इस देश में उपस्थित हो गया है! जहां जहर खा कर आदमी जीवित रह सकता है, पर एक कटोरी दाल पी कर मर सकता है! यह इसी देश में हो सकता है कि शाम को कानून पास हो तो सारा अनाज गायब हो जाये और दूसरे दिन कानून तोड़ दिया जाये तो मनमाने दामों पर बिक्री के लिए वही अनाज फिर निकल आये. . .'

☐ **डॉ. बिध्येश्वरी, आरा**

नवंबर की सर्वश्रेष्ठ कहानी **'शहादतनामा'** (जितेंद्र भाटिया) रही. इसके अलावा मीनाजी की डायरी और अनीता औलक जी का **'चंद सतरें और'**—इन दोनों का मुझे हमेशा इंतजार रहता है. अनीता जी के ये संस्मरण पुस्तक के रूप में अवश्य प्रकाशित होने चाहिए ताकि सभी लोग उस 'जिंदा इनसान' की एक यादगार अपने पास रख सकें.

☐ **शेखर बहुगुणा, नयी दिल्ली**

समांतर कहानी विशेषांक–३ पढ़ा. सभी कहानियां अपने अंदर आज के आम-आदमी का दर्द समेटे हुए हैं. पर केशव दुबे की कहानी 'श्रमदान' वाकई अछूती है! एक दर्द भरा करारा व्यंग्य जिसकी पीड़ा कोई गरीबी ही महसूस कर सकती है! बधाई! . . .

☐ **के. पी. सक्सेना, लखनऊ**

तीसरी सांस

कामतानाथ

मोबिल ऑयल में भीगे हुए जूट में उसने माचिस दिखायी तो वह गहरा काला धुंआं छोड़ता हुआ जलने लगा. लकड़ियों को उसने पहले ही जालीदार आकार में सजा दिया था. अब वह कोयले के छोटे-बड़े ठीकरों से अंगीठी पर पिरामिड बनाने लगा. एक क्षण उसने उसमें पंखे से हवा दी, तब उसे उठा कर बरामदे के बाहर रख दिया.

सामने फौलाद-की पटरियां बिछी थीं, जो दोनों ओर दूर तक एक-दूसरे के समांतर चली गयी थीं. इन्हें वह रेल की आत्मा कहा करता था. पता नहीं, यह उपमा उसके दिमाग में कब और क्यों सूझी थी. उसने सुना था कि आत्मा अमर होती है. शरीर एक प्रकार से उसका वस्त्र होता है. जब वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो जाता है तो आत्मा उसे त्याग देती है. इसी प्रकार ये रेल की पटरियां हैं. अपने स्थान पर मजबूती से बिछी हुईं. अनेकानेक डब्बे, इंजन तथा गाड़ियां इनके ऊपर से गुजरते रहते हैं. डब्बे टूटते-बदलते रहते हैं. इंजन भी मरम्मत के लिए जाते रहते हैं. परंतु पटरियां अपने स्थान पर निश्चित लेटी रहती हैं. अगर ये न हों तो सब-कुछ बिखर जाये. एक क्षण में रेलवे का सारा खेल धराशायी हो जाये.

हलका-हलका धुंधलका अभी भी आसमान में था. चार-साढ़े चार का समय होगा, उसने अनुमान लगाया, और लोटे में पानी ले कर सिग्नल की ओर चल दिया. सिग्नल की लाल बत्ती दूर से चमक रही थी. सवा पांच की डाक निकलने के कुछ देर बाद तक यह जलती रहती है. वह पटरी के किनारे-किनारे चलने लगा.

पटरी के किनारे लगे नरकुलों में हवा सीटी बजा रही थी. खजूर के पेड़ में बया के घोंसले लटक रहे थे. आज से दो-तीन वर्ष पहले कुल जमा एक घोंसला था. उसके देखते-देखते एक से पांच हो गये. अगर एक चिड़िया मर जाती है तो क्या दूसरी उसमें रहने लगती है या वह खाली पड़ा रहता है? उसने मन-ही-मन सोचा, परंतु बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचे आगे बढ़ गया.

गड्ढों का पानी लगभग सूख गया था. इस बार फिर बरसात को देर हो गयी थी. लगता है फिर सूखा पड़ेगा, उसने सोचा. पूरा कलयुग आ गया है. न पहले जैसी बरसात होती है, न जाड़ा, न गर्मी. असाढ़ लगभग समाप्त होने को आया, मगर पानी का कहीं नाम नहीं.

पटरी फलांग कर वह मंदिर की ओर आ गया, जिधर अब भी कुछ झाड़-झंखाड़ शेष थे. आज फिर मंदिर की दीवार पर उल्लू बैठा था. यह साला कहां से आ गया? उसने मन-ही-मन उसे गाली दी और झुक कर पटरी की बगल से एक बड़ा-सा पत्थर उठा कर उसने उसकी ओर फेंका. उल्लू दीवाल पर से उड़ कर सिग्नल पर जा बैठा.

पुजारी भी अजीब आदमी हैं! महीने भर के लिए कह गये थे और आज तीन महीने से ऊपर हो गये, उनका कहीं नाम-निशान नहीं. शुरू में वह उनके कहे अनुसार सुबह-शाम दोनों वक्त मंदिर में आ कर आरती-पूजा करता था. भगवान का भोग लगाता था. केवल एक महीने के लिए वह कह गये थे, जिस पर दो-ढाई महीनों तक वह ऐसा करता रहा. आखिर जब पुजारी जी नहीं लौटे, तो उसने आरती-पूजा बंद कर दी. उसके बस का यह सब होता, तो वह रेलवे का कैबिनमैन क्यों होता! किसी मंदिर में पुजारी होता और सुबह-शाम भगवान की आरती-पूजा करके दिन भर मौज में डंड पेलता. हां, शाम को भगवान की मूर्ति के पास दीया वह अब भी जला आता है.

लगता है पुजारी ने इस बार अच्छी आमदनी कर ली है. तभी इतने दिन लगा रहे हैं गांव में. शादी-ब्याह, रामलीला आदि में तो उनका हाथी चलता ही था, चुनाव में भी उसकी कोई उपयोगिता हो सकती है, यह पुजारी जी ने भी नहीं सोचा था. बात यह थी कि पिछले चुनाव में कोई राधेश्याम वैद्य खड़े हुए थे. उनका चुनाव-निशान हाथी था. पूरे एक महीने के लिए उन्होंने पुजारी जी का हाथी बुक करा लिया था. पुजारी जी सुबह-सुबह हाथी ले कर निकल जाते और रात देर से लौटते. उन दिनों में भी वही मंदिर में आरती-पूजा करता था. और अगर वह न होता तो क्या पुजारी जी हाथी का धंधा छोड़ कर पूजा में लगे रहते? पेट की पूजा से बढ़ कर भी कोई पूजा होती है? तभी तो लोग कहते हैं— 'भूखे भजन न होय गोपाला.' उसे अपनी ही बात पर हंसी आयी. आखिर जब पेट-पूजा ही सबसे बड़ी पूजा है, तो लोग यह सब ढोंग क्यों करते हैं? शायद यह भी पेट-पूजा का ही एक तरीका हो. खैर, राधेश्याम जी की तो जमानत जब्त हो गयी. परंतु पुजारी जी ने अच्छी रकम बना ली. तभी उसके बाद एक दिन वह हाथी पर सवार हो कर अपने गांव चले गये. जाते तो खैर वह हर वर्ष थे. परंतु इस बार कुछ ज्यादा ही समय लगा गये.

* *

पुजारी जी जब यहां थे, तो उसका समय अच्छा कट जाया करता था. शाम को तो नित्य प्रति ही. और वैसे भी जब कभी दिन में उसे समय मिलता, पुजारी जी के पास जा कर बैठ जाता. वह उसे ज्ञान की बातें बताते थे. श्रीमद्भागवत की कथाएं सुनाते थे, कि किस प्रकार राजा परीक्षित के मुकुट में कलयुग आ कर बैठ गया था, जो अभी तक बैठा हुआ है. या किस प्रकार भगवान ने गज को ग्राह के मुख से बचा लिया. या इसी प्रकार की अन्य पौराणिक कथाएं— कि किस प्रकार इंद्र ने छल करके अहिल्या का सतीत्व भंग किया और गौतम ऋषि के शाप से वह पत्थर बन गयी. अहिल्या तो बिल्कुल निर्दोष थी, वह कभी-कभी सोचता, फिर उसे क्यों सजा मिली? फिर वह टाल जाता. ऋषि-मुनियों का मामला, वही जानें. उसको क्या करना!

जब तक वह दिशा-मैदान से लौट कर आया, तब तक अंगीठी

• मदन मेहता,

पूरी तरह सुलग चुकी थी. उसने मिट्टी से हाथ मले और लोटा मांज कर उसी में चाय के लिए पानी डाल कर अंगीठी पर चढ़ा दिया. पानी चढ़ा कर वह अंदर जा कर चाय और गुड़ का डिब्बा उठा लाया. गुड़ तोड़ कर उसे भी उसने लोटे में डाल दिया और पानी उबलने की प्रतीक्षा करने लगा. पानी उबल गया तो उसने उसमें चाय की पत्ती डाली और गिलास में छान कर पीने बैठ गया. चाय पी रहा था, तभी साढ़े पांच वाली डाक का सिग्नल आ गया. उसने चाय वहीं रख दी, और बोर्ड से कुंजी ले कर फाटक बंद करने चला गया.

उसके फाटक बंद करके लौटते-लौटते दो ट्रक, एक कार और एक स्कूटर दाहिने वाले फाटक पर पहुंच चुके थे. कार वाला ही सबसे पहले पहुंचा था. उसने उसे फाटक बंद करते देख कर हॉर्न भी बजाया था. परंतु उसने उसकी ओर कोई ध्यान दिये बिना फाटक बंद कर दिया था. शुरू में वह ऐसी स्थिति में प्रतीक्षा कर लिया करता था. परंतु, दो-एक बार उसके ऐसा करने में और ट्रैफिक भी वहां पहुंच गया था और तब उसे परेशानी हुई थी. वैसे भी कार वालों से उसे कुछ चिढ़-सी हो गयी थी. एक मिनट रुकना भी वे अपनी शान के खिलाफ समझते थे. गाड़ी निकल जाने के बाद यदि एक क्षण की देर भी उसे फाटक खोलने में होती, तो वे बिगड़ने लगते. खामख्वाह हॉर्न बजाने लगते. अकसर वे गालियां भी बकने लगते. और कार वाले ही क्यों, मोटरसाइकिल या स्कूटर वाले भी कभी-कभी उससे उलझ जाते. शुरू-शुरू में उसने दो-एक बार उनसे झख भी लड़ायी. परंतु, पिछले काफी दिनों से उसने अपना स्वभाव बना लिया था कि कोई कुछ भी कहे, उसे ध्यान नहीं देना है. वह चुपचाप कुंजी ले कर जाता और फाटक बंद करके वापस चला आता. लोग बकते तो बकते रहते. पहले वह दक्षिण वाला फाटक बंद करता, तब उत्तर वाला. वैसे ऐसा करने के पीछे कोई विशेष कारण नहीं था. महज उसकी एक आदत-सी बन गयी थी. कभी-कभी ऐसा भी होता कि जब तक वह दक्षिण वाला फाटक बंद करता होता, तब तक उत्तर की ओर से कोई स्कूटर या मोटरसाइकिल वाला अंदर घुस आता. परंतु, उन लोगों की ओर भी उसने ध्यान देना बंद कर दिया था. और जब-जब ऐसा होता, तब ऐसे दुस्साहसी लोगों के लिए अपना स्कूटर या मोटरसाइकिल ले कर गेट के अंदर ही एक ओर खड़ा करके गाड़ी निकल जाने की प्रतीक्षा करने के अलावा कोई चारा नहीं होता. कोई कितनी ही खुशामद करे, या गाली दे, उसने अपना नियम बना लिया था कि एक बार फाटक बंद करने के बाद तभी खोलता, जब गाड़ी निकल चुकी होती.

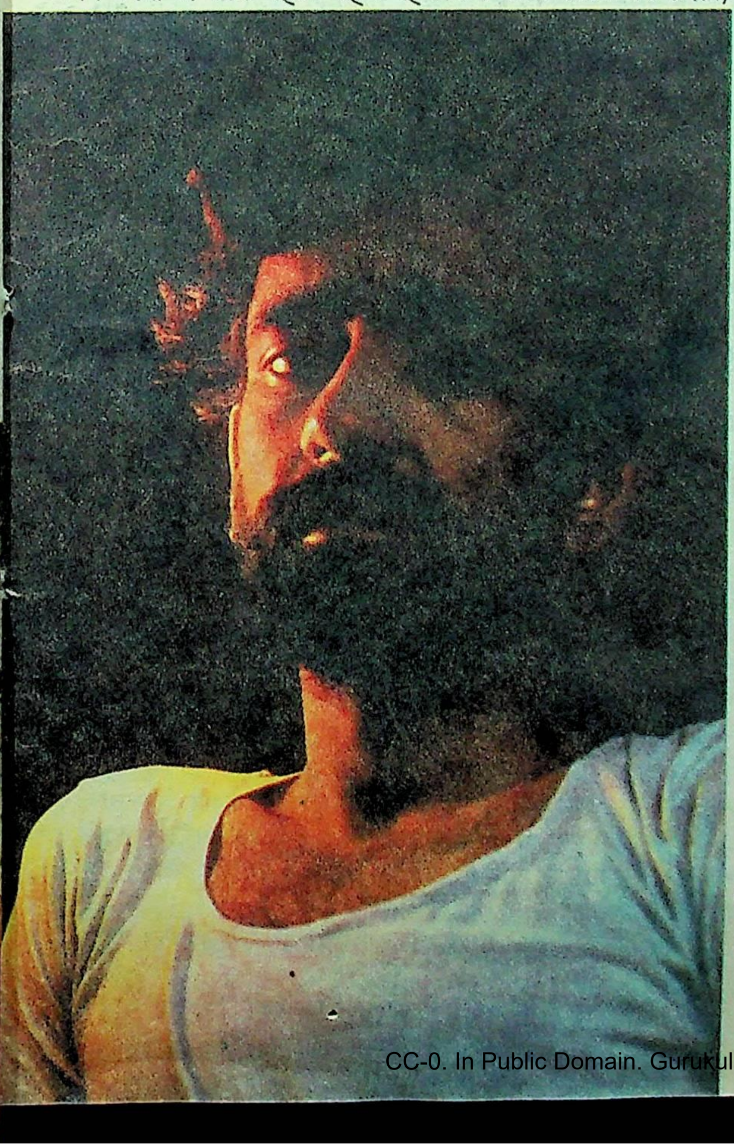

वैसे शुरू में यहां बहुत कम ट्रैफिक था. ट्रकों का तो आज से आठ-दस वर्ष पहले तक प्रश्न ही नहीं उठता था. कारें और स्कूटर भी कभी-कभी ही निकलते थे. हां, बैलगाड़ियां जरूर थीं उन दिनों. परंतु, जब से गंगा का नया पुल बना है, तब से सब काया पलट गयी है. सड़क की नये सिरे से मरम्मत हुई है और चौबीस घंटे उस पर ट्रैफिक चलने लगा है. अब यह सड़क गंगा के पुल को जी. टी. रोड से जोड़ती है और इस मायने में एक महत्वपूर्ण मार्ग बन गयी है. यही कारण है कि शहर ने अपने पंजे अब यहां तक फैला लिये हैं और धीरे-धीरे सारे गांव को अपने आधिपत्य में ले लिया है. अब यहां खेत, तालाब और खलिहानों की जगह ऊंची-ऊंची इमारतें बन गयी हैं. स्कूल और पार्क बन गये हैं. एक अस्पताल भी बन गया है, तथा दो-एक सरकारी दफ्तर भी खुल गये हैं. पुराने जमींदार और किसान अपनी-अपनी जमीनें बेच कर जाने कहां चले गये हैं. बस पुराने दिनों की यादगार की बतौर एक वह, और एक पुजारी जी रह गये हैं. बल्कि पुजारी जी भी पिछले दो-तीन महीनों से अब कहां हैं? अब तो केवल वह, उसकी यह गुमटी और फौलाद की ये पटरियां. इंजन और डब्बे. माल और डाक गाड़ियां. दूर से आवाज सुन कर ही वह बता सकता है कि डाकगाड़ी है, पैसिंजर या माल. खलीक के इंजन की तो वह सीटी तक पहचानता है. खलीक की ही बदौलत उसे जूट और कोयला मिल जाता है. उसे इशारा करने भर की देर होती है. बस, दस-बीस किलो कोयला पटरी पर गिरा देना खलीक के लिए कौन बड़ी बात है! और जूट तो वह उसके कहे बिना ही फेंक जाता है.

* *

आज से अट्ठारह-बीस बरस पहले जब वह यहां पहली बार आया था तो आसपास लगभग जंगल था. रात में नरकुलों में सियार बोलते थे. कभी-कभी भेड़िये भी नजर आ जाते थे. पास के गांव से बदलू सुनार की बकरी उठा कर भेड़िये ने उसकी गुमटी के पीछे ही खायी थी. रात के सन्नाटे में वह हड्डियों के चटखने की आवाज सुनता रहा था. सुबह वहां आधी खायी हुई बकरी मिली थी, जिसे दुखी चमार उठा ले गया था और घर में कलिया बनाया था. बदलू तो भगत थे. गले में कंठी पहनते थे.

बदलू के घर पर ही उसने पहली बार चांद को देखा था. चांद यानी फजलू मनिहार की लड़की. गांव में तो वह पहले ही चक्कर लगाया करता था और पंचमसिंह के कोल्हू से गन्ने की फसल के दिनों में ढेरों रस पी आता था. गुड़ भी ले आता था वहां से. मगर जिस दिन बदलू की बकरी को भेड़िया उठा लाया था और सुबह आधी खायी हुई बकरी की लाश पर बदलू उसके सामने अपना सिर धुनता रहा था, उस दिन से उसका बदलू के यहां आना-जाना भी होने लगा था. अकसर फुर्सत में वह बदलू के पास

बैठ कर चांदी और सोने को गला कर जेवरों के आकार में ढालते देखा करता. उन दिनों गाड़ियां भी इतनी नहीं थीं. मालगाड़ियां तो नहीं के बराबर थीं. डाक भी कम ही थीं. इसीलिए दिन में उसे रोज ही दो-चार घंटे का समय घूमने-फिरने के लिए मिल जाता था.

तभी एक दिन जब वह बदलू के यहां बैठा था, तो चांद वहां आयी थी. लहंगा और सलूका पहने. अल्हड़ और जवान. यह तो उसे बाद में पता चला कि वह विधवा है और एक बच्चे की मां है. उस समय तो उसे लगा था कि अभी उसकी शादी भी नहीं हुई. चांद बदलू के यहां अपने लच्छे गिरवी रखने आयी थी. पौने किलो के बीस लच्छे बदलू ने बीस रुपये में गिरवी रखे थे. चांद के चले जाने के बाद उसने बदलू से चांदी का मोल पूछा था, तो बदलू ने बताया था, डेढ़-दो सौ से कम नहीं होगा. पता नहीं क्यों, उसी दिन से उसके मन के किसी कोने में बदलू के प्रति घृणा पनप गयी थी.

इसी के कुछ दिनों बाद उसने चांद को रेल की पटरी के पास कोयला बीनते देखा था और चांद उसे देखते ही बीना हुआ कोयला वहीं छोड़ कर भागने लगी थी. उसने चांद को आवाज दे कर रोक लिया था और उसे कोयला ले जाने की अनुमति दे दी थी. बल्कि उसे गुमटी पर ला कर उसने अपने पास से भी कुछ कोयला दे दिया था. इस घटना के बाद से ही वह चांद के यहां आने-जाने लगा था. चांद, यानी फजलू के यहां. फजलू को वह 'काका' कहा करता था. वह दुबले शरीर के, ढलती उम्र के आदमी थे. उनके छोटी, खिचड़ी दाढ़ी थी और प्राय: चारखाने की तहमद और पूरी आस्तीन की बंडी पहनते थे. अपने बाहर के बरामदे में फूस के छप्पर के नीचे बैठे अंगीठी में कोयला सुलगाये वह लाख की चूड़ियां बनाया करते. कभी गांव के दो-एक लड़के आ जाते तो उनके लिए गोलियां या फिर लड़कियों के लिए गुट्टे भी बना देते.

* *

अब तो खैर उसे ठीक से याद नहीं कि यह सब कैसे हुआ था, परंतु, धीरे-धीरे वह चांद के निकट आता चला गया था. फजलू भी उसे अपने बेटे की तरह मानने लगे थे. बदलू के यहां बीस रुपये में गिरवी रखे चांद के लच्छे भी वह छुड़वा लाया था. चांद फजलू की अकेली लड़की थी. फजलू चाहते थे कि चांद दुबारा ब्याह कर ले. कभी-कभी वह उससे भी कहते कि वह चांद को इस बारे में समझाये. वह हंस कर टाल देता. चांद भी कभी-कभी उसके यहां आ जाती और घंटों वहीं बनी रहती. उसकी गुमटी के पीछे लगी साग-सब्जी में पानी देती रहती. उसकी अंगीठी सुलगा देती. उसे खाना बनाने में मदद कर देती. वह उसके बच्चों को गोद में लिये खिलाता रहता.

अकसर सांझ ढले देर तक चांद उसके यहां रह जाती और तब वह उसे उसके घर तक छोड़ने जाता. परंतु गांव वालों को यह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने इस पर आपत्ति करना शुरू कर दिया. पहले तो उन लोगों ने फजलू से कहा कि वह अपनी बेटी को रोके और जब फजलू इसमें कामयाब नहीं हुए या जान-बूझ कर उन्होंने इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया, तो बात यहां तक बढ़ी कि एक दिन पंचायत जुड़ी इसी बात पर. वैसे चांद उसके साथ हमेशा-हमेशा रहने के लिए तैयार थी, और उसे भी उन दिनों यही लगता था कि उसकी जिंदगी भी चांद के बिना अधूरी है. परंतु चांद से ब्याह करने की बात उन दिनों उसके मन में कभी आयी ही नहीं. शायद इसलिए कि उनके बीच धर्म की दीवार थी. जो भी हो, मामला पंचायत में पहुंचा और पंचों ने फैसला दिया कि यह गांव की इज्जत का सवाल है. फजलू इस बारे में अंतिम निर्णय लें और यदि वह कुछ नहीं करते तो गांव छोड़ कर चले जायें.

आखिर फजलू ने निर्णय लिया और चांद की मर्जी के खिलाफ उसका ब्याह हबीब बिसाती से कर दिया, जिसकी उम्र पचास के आस-पास थी. और हबीब ने चांद को ले जा कर अपने घर में बंद कर लिया. बाकायदा ताले-कुंजी में.

उसे यह सब अच्छा नहीं लगा था. परंतु कहीं कुछ गलत हो रहा है, यह बात भी उसके मन में नहीं आयी थी. और तभी एक रात चांद ने आ कर उसका दरवाजा खटखटाया. बच्चे को गोद में लिये हुए. दरवाजा खुलते ही उसने कहा कि वह उसे ले कर कहीं चला जाये. उसके बिना वह जिंदगी जीना नहीं चाहती. और तब पहली बार उसे लगा कि कहीं कुछ बहुत गलत हो गया है. हालांकि कोई निर्णय वह फिर भी नहीं ले सका. रात भर चांद उसकी बाहों में सिसकती रही, बच्चा अलग चारपाई पर सोता रहा और उसका मन अनेक दुविधाओं के बीच भटकता रहा.

आखिर जब सुबह उसने दरवाजा खोला तो हबीब, फजलू के साथ, उसकी गुमटी के सामने खड़ा था. अगर चांद तुरंत हबीब के पैरों पर न गिर पड़ती और फजलू बीच में न आ जाते, तो वह दिन शायद उसकी जिंदगी का आखिरी दिन होता.

इसी के तीसरे या शायद चौथे दिन सुबह साढ़े पांच वाली डाक, जो उन दिनों शायद छह बजे निकलती थी, अचानक ब्रेक लगा कर रुक गयी. गार्ड और कुछ मुसाफिर भी अपने डब्बों से उतर आये. वह भी दौड़ा-दौड़ा गया तो देखा, पटरी पर चांद की लाश पड़ी थी. खून से लथपथ.

* *

साढ़े पांच वाली डाक निकल गयी तो उसने जा कर फाटक खोल दिया और लौट कर अपनी गुमटी के पीछे बनी सब्जी की क्यारियों में पानी देने लगा. आम के पेड़ पर कोयल कूकने लगी थी. यह पेड़ उसकी गुमटी के पास कूड़े के ढेर पर अपने आप उग आया था. बाद में उसने उसकी देखभाल करके उसे इतना बड़ा किया था. पहली बार उसमें फल आया था. हरी-हरी, छोटी-छोटी अमियां डालों से लटक रही थीं. उसका सारा दिन अमियों की रखवाली में निकल जाता था. जरा-सा वह इधर-उधर हुआ नहीं कि आस-पास के लड़के आ कर ढेलेबाजी करने लगते.

क्यारियों में पानी दे कर वह फिर अपनी गुमटी में लौट आया और चारपाई बाहर निकाल कर उस पर बैठ कर बीड़ी पीने लगा. पश्चिम की तरफ सिग्नल की बत्ती बुझ गयी थी. सूर्य निकल आया था और उसके उजाले में रेल की पटरियां दूर-दूर तक चमकने लगी थीं. बया अपने घोंसलों से निकल कर अपने बच्चों को दाना चुगाने लगी थीं.

पूर्व की ओर बना नया पुल भी सूर्य के प्रकाश में चमक रहा था. यह पुल पिछले दो-तीन वर्षों में बन कर तैयार हुआ था. बीसियों मजदूर इस काम में लगे थे. परंतु, आज जब यह पुल बन कर तैयार हो गया था, वे मजदूर कहीं नहीं थे. शायद अब कहीं और किसी दूसरे पुल की तामीर में लगे होंगे, उसने सोचा.

इस पुल के बन जाने का अर्थ था कि अब उसकी गुमटी बंद कर दी जायेगी. सड़क को पुल से जोड़ दिया गया था.और वह अब थोड़ी-सी घूम कर ऊपर से निकल जायेगी. अब ट्रैफिक को उसके फाटक पर रुकने की असुविधा नहीं उठानी होगी. पिछले कई महीनों से वह एक प्रकार से अपने दिन गिन रहा था. उसने सुना था कि कोई मंत्री जी इस पुल का उद्घाटन करने आने वाले हैं. तभी उसने देखा, पानी छिड़कने वाला इंजन पुल के ऊपर बनी सड़क पर पानी का छिड़काव कर रहा था. अभी तक इस पुल के दोनों ओर सड़क पर कोलतार के ड्रम रख कर पुल का रास्ता बंद कर दिया गया था. पानी छिड़कने वाले इंजन के पुल पर आने के मायने थे, कम-से-कम एक ओर के ड्रम हटा दिये गये होंगे.

अंगीठी बुझने लगी थी. उसने उसमें नये सिरे से कोयला डाला

कामतानाथ (जन्म : ४ अप्रैल, १९३५) ने आम आदमी की दारुण परिस्थितियों को बड़ी गहराई से प्रस्तुत किया है. कामता की कहानियां ऊपर से बेहद सहज और खामोश लेकिन अपनी प्रकृति में बहुत विस्फोटक होती हैं. वस्तुतः कामता का संपूर्ण लेखन मानवीय संवेदना और अपने समय से संबद्धता का लेखन है.

और दो-चार हाथ पंखे की हवा दे कर पतीली में दाल डाल कर चढ़ा दी. दाल चढ़ा कर वह पीछे की ओर लगे हैंडपाइप पर नहाने चला गया. नहा कर उसने अपनी धोती निचोड़ी और उसे वहीं सब्जी की क्यारियों के पास घास पर ही फैला कर गुमटी में लौट आया. दाल में एक उबाल आ चुका था. वह दूसरे उबाल की प्रतीक्षा करने लगा. दूसरा उबाल आने पर उसने दाल उतार दी और चावल चढ़ा दिये. पीछे सब्जी की क्यारी से लौकी तोड़ कर, उसे काट कर एक बरतन में रखा और तब आटा निकाल कर तसले में गूंथने लगा.

खाना पका कर उसने गुमटी में ला कर ढक दिया और मंदिर की ओर निकल गया. काफी देर तक अब कोई गाड़ी आने वाली नहीं थी. आज वैसे ही उसका मन हो आया, अन्यथा दिन में उसने मंदिर जाना लगभग छोड़ दिया था. मंदिर में शंकर जी की मूर्ति पर किसी ने दो-चार कनेर के फूल चढ़ा दिये थे. हो सकता है, कोई भक्त इधर निकल आया हो, या फिर बच्चों ने ही यह हरकत की हो. कहीं पुजारी जी तो नहीं लौट आये? परंतु नहीं, वह आये होते तो उनका हाथी भी होता.

थोड़ी देर वह मंदिर के अहाते में इधर-उधर टहलता रहा. तब वहां से लौट कर साढ़े ग्यारह वाली पैसिंजर के निकलने की प्रतीक्षा करने लगा. पौने दस की डाक, वह खाना बना रहा था, तभी जा चुकी थी. साढ़े ग्यारह की गाड़ी निकलने के बाद उसने खाना खाया और तब आम के पेड़ के नीचे चारपाई डाल कर आराम करने लगा. गर्मियों में प्रायः उसकी यही दिनचर्या रहती थी. खाना खाने के बाद कम-से-कम दो घंटे सोना. वैसे हवा में काफी गर्मी थी. परंतु पेड़ के नीचे अब भी कुछ गनीमत थी.

★ ★

कोई तीन बजे वह सो कर उठा तो आसमान में हलके-हलके बादल जमा होने लगे थे. हो सकता है आज बारिश हो, उसने आसमान की ओर देख कर मन-ही-मन अनुमान लगाया. कल आंधी आयी थी, परंतु आज आंधी के कोई आसार नहीं थे. केवल हलके स्लेटी रंग के बादलों के टुकड़े आसमान में तैर रहे थे. एक टुकड़ा बिल्कुल पुजारी जी के हाथी की तरह लग रहा था. उसे मन-ही-मन हंसी आयी. क्या पुजारी जी ने अब अपना धंधा इस लोक से उस लोक तक बढ़ा लिया है?

उसने चारपाई वहीं पेड़ के नीचे पड़ी रहने दी और गुमटी में आ कर चाय बनाने के लिए दुबारा अंगीठी सुलगाने लगा. तभी उसने देखा, नये पुल पर एक ट्रैफिक कांस्टेबल खड़ा था. कुछ और लोग पुल को रंग-बिरंगी झंडियों से सजा रहे थे. इसके मायने आज ही उद्घाटन होगा, उसने सोचा. उसके उत्तर वाले फाटक पर भी एक ट्रैफिट कांस्टेबल तैनात था. यानी आज से उसका दाना-पानी यहां से खत्म! कल से अब जाने कहां ड्यूटी लगे.

साढ़े तीन पर फिर एक पैसिंजर थी. उसके निकल जाने के बाद वह वैसे ही इधर-उधर टहलने लगा. एक बार पुल तक भी हो आया. वहां उसे पता चला कि पांच बजे मंत्री जी आने वाले थे—पुल का उद्घाटन करने. साढ़े पांच पर एक डाक गुजरती थी. शायद अब उसे इस डाक के आने पर फाटक बंद करने की जरूरत न पड़े. खैर, फाटक तो उसे बंद करना ही पड़ेगा. परंतु अब इसकी कोई एहमियत नहीं रह गयी थी! दो-एक दिन में उसकी नयी पोस्टिंग का ऑर्डर आ जायेगा. और तब रेलवे के मजदूर आयेंगे और उसकी गुमटी के खिड़की, दरवाजे, टेलीफोन, कीबोर्ड—सब उखाड़ ले जायेंगे. अंग्रेजी के बड़े-बड़े अक्षरों में उसकी दीवाल पर एबंडंड लिख दिया जायेगा. जाड़ों में आवारा कुत्तों के सोने के लिए अच्छा प्रबंध हो जायेगा. तब कौन जानेगा कि उसने जिंदगी के अट्ठारह-बीस वर्ष इस गुमटी में गुजारे हैं! इस आम के पेड़ और सब्जी की क्यारियों का क्या होगा? खैर, उसे क्या करना! उसका तो बस इतने ही दिनों का नाता था.

अचानक उसे चांद की याद हो आयी. आज चांद होती तो वह उसे ले कर कहीं भी चला जाता. शायद उनके दो-तीन बच्चे भी होते. चार-पांच हजार फंड तो उसका हो ही गया होगा. नौकरी छोड़ कर कोई दूकान कर लेता. मगर यह सब उसके भाग्य में नहीं था. उसकी किस्मत में तो बस ये रेल की पटरियां हैं. न ये पटरियां सही, दूसरी पटरियां सही. कभी-कभी तो उसे स्वप्न में भी ये पटरियां दिखायी देती हैं. धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिछी हुई. एक-दूसरे को काटती, एक दूसरे के समानांतर. या फिर ऐसे ही कोई अकेली पटरी किसी अनजान दिशा की ओर क्षितिज तक जाती हुई.

★ ★

वह गुमटी में वापस आया तो उसका मन कुछ अजीब उचटा हुआ-सा था. एक निगाह उसने गुमटी में फैले हुए अपने सामान पर डाली. मिट्टी के तेल की कुप्पी, छोटे-मोटे डिब्बे और कनस्तर. एक कोने में लगा हुआ कोयले का ढेर. उसी के पास दफ्ती के एक डिब्बे में जूट का छोटा-सा अंबार. बांस की चारपाई पर लिपटा हुआ एक मुख्तसर-सा बिस्तर. उसी के नीचे पड़ा हुआ टीन का एक पुराना संदूक. खूंटी पर टंगा हुआ खाकी गर्म ओवरकोट, जिसे वह जाड़े के दिनों में पहनता है. इस वर्ष शायद नया मिले, उसने सोचा. दो-एक और खूंटियों पर कुछ और गंदे कपड़े. बस, यही गृहस्थी थी उसकी. हां, एक ताक पर जगन्नाथ जी के धुंआ खाये हुए पट, जिन्हें वह बरसों पहले कभी पुरी गया था, तब वहां से लाया था. उसी की बगल में गुटका रामायण और बियर की एक टूटी हुई बोतल, जिसे आज से चार-पांच वर्ष पहले, जब वह सड़क का फाटक बंद करके अपनी गुमटी के सामने खड़ा गाड़ी निकलने की प्रतीक्षा कर रहा था, फर्स्ट क्लास के किसी मुसाफिर ने अपने डब्बे से फेंका था, और वह उसके सिर में आ कर लगी थी. हफ्तों उसे पट्टी बांधनी पड़ी थी. टांके लगे थे, जिनका निशान आज तक उसके माथे पर है. एक और ताक पर किस्सा तोता-मैना और आल्हा की किताब. दो-एक पुरानी फिल्मों के गानों की किताबें, जो उसने बरसों पहले कभी खरीदी थीं. . .

एक बार उसके मन में आया कि वह सारा सामान समेटने का प्रबंध करे. परंतु फिर वह टाल गया और पेड़ के नीचे से चारपाई उठा कर अपनी गुमटी के सामने डाल कर उस पर बैठ कर बीड़ी पीने लगा. आसमान में बादल अभी भी टुकड़े-टुकड़े ही थे. परंतु हबा में गर्मी काफी कम हो गयी थी.

पुल पर चहल-पहल बढ़ गयी थी. दक्षिण वाले सिरे पर सड़क के

आर-पार एक लाल फीता बांध दिया गया था. काफी लोग वहां जमा होने लगे थे. लाउडस्पीकर भी लग गया था, जिस पर कोई 'हलो, एक, दो, तीन. . . टेस्टिंग, टेस्टिंग' चिल्ला रहा था. कुछ मोटरें भी रेल के फाटक से निकल कर पुल के उस ओर जमा होने लगी थीं. पांच बजने वाले होंगे, उसने मंदिर के कलश पर पड़ती हुई धूप की लाइन से अंदाज लगाया. यानी मंत्री जी अब आने ही वाले होंगे. सामने टेलीग्राफ के तार पर उल्लू बैठा था.

सड़क पर ट्रैफिक बढ़ने लगा था. दफ्तरों के छूटने का वक्त था यह और प्राय: इस समय तथा सुबह नौ और दस के बीच ट्रैफिक का जोर कुछ ज्यादा ही होता था. बल्कि, पिछले दो-चार वर्षों से हो गया था. शुरू में तो ट्रैफिक के नाम पर उसके लिए बस यही गाड़ियां थीं. डाक और पैसिंजर. फिर कभी कोई भूली-भटकी मालगाड़ी आ जाती थी.

सहसा उसे टेलीफोन की घंटी सुनायी दी, तो वह लपक कर गुमटी में गया. साढ़े पांच वाली पैसिंजर की सूचना थी. उसने बोर्ड से कुंजी उतारी और धीमे कदमों से फाटक बंद करने चला गया. उत्तर वाले फाटक पर ताला लगा रहा था, तभी उसने देखा, कोई दस गज की दूरी पर मंत्री जी की कार आ रही थी. वहां फाटक पर खड़े ट्रैफिक पुलिस वाले ने उससे हड़बड़ी में कुछ कहा भी था, परंतु वह दक्षिण वाला फाटक पहले ही बंद कर चुका था. गाड़ी किसी भी क्षण आ सकती थी. वह चुपचाप फाटक बंद करके अपनी गुमटी में लौट आया.

मंत्री जी की कार और उसके साथ आया हुआ सारा काफिला उत्तर वाले फाटक पर ही रुक गया. पुल पर जमा भीड़ में मंत्री जी की कार आते ही हलचल-सी मच गयी थी. लोग पुल से नीचे झांकने लगे. उनमें से कुछ के हाथों में फूलमालाएं थीं. लाउडस्पीकर पर लोगों से व्यवस्थित रहने के लिए अपील की जा रही थी. घोषणा हो रही थी कि मंत्री जी आ गये हैं, उनकी गाड़ी रेल के फाटक पर खड़ी है, लोग अपने-अपने स्थानों पर रहें. खबरदार कोई लाल फीते के पार न जाये! फिर भी कुछ लोग फीते के पार नजर आ रहे थे. हो सकता है, वे प्रबंध करने वालों में से हों.

उसे लगा, गाड़ी आने में कुछ अनावश्यक देर हो रही है. फाटक के दोनों ओर ट्रैफिक की लाइनें लंबी होती जा रही थीं. पुल पर जमा भीड़ में कुछ बेचैनी भी नजर आने लगी थी. मंत्री जी के साथ आये हुए पुलिस-अधिकारी आदि अपनी-अपनी गाड़ियों से उतर कर फाटक के पास खड़े हो गये और पटरी के दोनों ओर झांकने लगे थे. तभी उसके मन में एक बात आयी. अच्छा, अगर वह गाड़ी निकल जाने के बाद भी फाटक न खोले तो? मान लो, थोड़ी देर के लिए वह चाबी ले कर कहीं चला जाये? अचानक उसके बदन में एक सिहरन-सी हुई. या उसे शक हुआ. परंतु नहीं, उसके दिल के हल्के में एक भयानक दर्द उठा और उसके दोनों हाथ अपने आप सीने पर पहुंच गये.

लड़खड़ाता हुआ-सा वह अपनी चारपाई पर बैठ गया. साथ ही डीजल इंजन की घहराती हुई आवाज उसके कान में पड़ी और एक क्षण में लोहे की पटरियों पर फौलाद के पहिये फिसलने लगे. उल्लू टेलीग्राफ के तार से उड़ कर उसकी गुमटी के ऊपर से गुजर गया.

उसने चाहा कि वह उठ कर खड़ा हो जाये. परंतु उसे लगा जैसे उसके शरीर की सारी शक्ति निचुड़ गयी हो और वह चुपचाप अपनी चारपाई पर लुढ़क गया. गाड़ी के डब्बे उसकी आंखों के सामने से गुजर रहे थे, परंतु उनका आकार उसकी दृष्टि में धुंधला-सा पड़ने लगा था. जैसे कोई वस्तु कैमरे के फोकस से हट जाये.

गाड़ी गुजरे बीस-पचीस सेकंड हो गये, परंतु वह अपनी चारपाई पर चुपचाप लेटा रहा. फाटक के दोनों ओर खासा ट्रैफिक पहले से ही जमा हो चुका था. लोग उतावले होने लगे थे. कुछ लोगों ने उसे आवाजें भी दीं, परंतु वह अपनी जगह से हिला तक नहीं. तभी दोनों ओर से कुछ लोग फाटक के बीच से या उसके बगल में पैदल चलने वाले लोगों के लिए बने रास्ते से निकल कर उसकी गुमटी की ओर बढ़ने लगे. उसमें मंत्री जी के साथ आये हुए पुलिस-अधिकारी भी थे. परंतु वह उनकी गालियों से बेखबर अपनी चारपाई पर शांत लेटा हुआ था.

उसके निकट पहुंचते-पहुंचते लोग खासा जोर से चिल्लाने लगे थे. जब वे उसके बिल्कुल निकट आ गये तो उसने एक बार आंखें खोल कर उनकी ओर देखा. दोनों हाथों से चारपाई की पट्टियां पकड़ कर उठने का प्रयत्न किया, परंतु दूसरे ही क्षण उसके दोनों हाथ चारपाई के नीचे हवा में झूल गये.

* *

लोग अपने-अपने स्थान पर रुक गये. केवल दो-एक पुलिस अधिकारियों ने आगे बढ़ कर उसे हिलाया. परंतु दूसरे क्षण वे भी वापस लौट पड़े और मंत्री जी की गाड़ी के पास आ कर उसमें बैठे लोगों से बात करने लगे. और लोग भी अपनी गाड़ियों से उतर कर वहां आ गये.

सामने पुल पर जमा भीड़ में भी खलबली मचने लगी. लोग फीते को पार करते हुए या फिर ऊपर से ही सड़क के किनारे लगे मिट्टी के ढेर पर से उतरते हुए फाटक के पास जमा होने लगे. कुछ लोग फाटक फलांगते हुए उसकी चारपाई के निकट भी आ गये.

साथ ही फाटक के दोनों ओर ट्रैफिक की लाइनें लंबी होती जा रही थीं. कुछ लोग अपनी गाड़ियों को मोड़ने और हॉर्न बजाने लगे. नतीजा यह निकला कि दोनों ओर का ट्रैफिक जमा होने लगा. दो-एक पुलिस-अधिकारी आगे बढ़ कर ट्रैफिक कंट्रोल करने का प्रयत्न करने लगे. परंतु वे स्थिति संभाल सकने में सफल नहीं हो पा रहे थे.

तब तक दोनों ओर की ट्रैफिक लाइनों में से पीछे वाले लोगों ने अपनी गाड़ियों को मोड़ना शुरू कर दिया. उनमें से कुछ नये पुल पर निकल आये. एक-दो का उधर बढ़ना था कि दोनों ओर से पुल पर हो कर निकल जाने के लिए होड़-सी लग गयी, परंतु पुल पर खड़े ट्रैफिक पुलिस वाले ने उन्हें वापस भेजना शुरू कर दिया और इस सारी हड़बड़ी में पुल पर भी ट्रैफिक जमा हो गया.

मंत्री जी के स्वागत को आयी भीड़ भी तितर-बितर होने लगी. उनमें से कुछ फाटक की ओर बढ़ आये. जो ऐसा करने में सफल नहीं हो पाये, वे पुल पर से ही नीचे की ओर झांकने लगे. सारा इलाका ट्रैफिक और मनुष्यों का मिला-जुला समुद्र-सा हो गया, जिसमें दोनों फाटकों के बीच वाला हिस्सा एक वीरान टापू की तरह लग रहा था, जिसके एक किनारे उसकी गुमटी बनी हुई थी. सामने उसकी चारपाई पड़ी थी, जिस पर वह लेटा हुआ था. उसकी आंखें बंद थीं और दोनों हाथ चारपाई के दोनों ओर हवा में झूल रहे थे. दो-चार लोग आस-पास खड़े उसे देख रहे थे.

तभी अचानक जोर की बारिश आ गयी और वहां जमा लोगों में भगदड़-सी मच गयी. परंतु, वह उसी प्रकार अपनी चारपाई पर पड़ा हुआ था, निश्चल और निर्विकार. □□□

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया स्टाफ क्वार्टर्स,
रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, कानपुर.

आम आदमी के आसपास—आज की कहानियां

आज कहानियां महज कहानियां ही नहीं रह गयी हैं, वे आसपास के जीवन से लेखक और पाठक की संबद्धता और संलग्नता का ज़रिया भी बन चुकी हैं. आज की 'समांतर' कहानी का लेखक खुद सामान्य आदमी है और उन्हीं तनावों—आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कारिक—को अभिव्यक्ति देता है, जिनके बीच वह जी रहा है.

आज की भारतीय स्थिति का संपूर्ण जायज़ा लेने वाली ये कहानियां जहां एक ओर आम आदमी की दारुण स्थितियों को अभिव्यक्ति देती हैं, वहीं दूसरी ओर उन मूर्त और अमूर्त शक्तियों की ओर भी इंगित करती हैं, जो इन स्थितियों के लिए जिम्मेदार हैं.
इन विशेषांकों की **सारिका** के लिए विशेष रूप से लिखी गयी विशिष्ट कहानियां आपकी अपनी कहानियां हैं—आपके अपने, नितांत निजी, फिर भी सामूहिक, अनुभवों की कहानियां।

समांतर कहानी विशेषांक-५

मार्च '७५ अंक के लेखक

गंगाप्रसाद विमल, राही मासूम रजा, रामसरूप अणखी आबिद सुरती, सुधा अरोड़ा, सुदीप, राजेंद्र किशोर, प्रेम कासलीवाल, कृष्ण भावुक, किशोर जाधव, राधेश्याम, बसंत कुमार, बल्लभ डोभाल, कमलेश्वर आदि.

साथ ही—
भगवतीचरण वर्मा द्वारा सारिका के लिए विशेष रूप से लिखी १२ कहानियों में से अंतिम कहानी.
और—
● मेरा पन्ना ● कबिरा खड़ा बजार में–हरिशंकर परसाई ● लघुकथाएं ● **मीनाकुमारी** की डायरी और **गुलजार** की काव्य रचना ● चंद सतरें और—अनीता औलक ● समांतर साहित्य पर दो विशेष टिप्पणियां ● नयी पौद ● **सारिका** कथा-पहेली.

तथा सभी स्थायी स्तंभ.

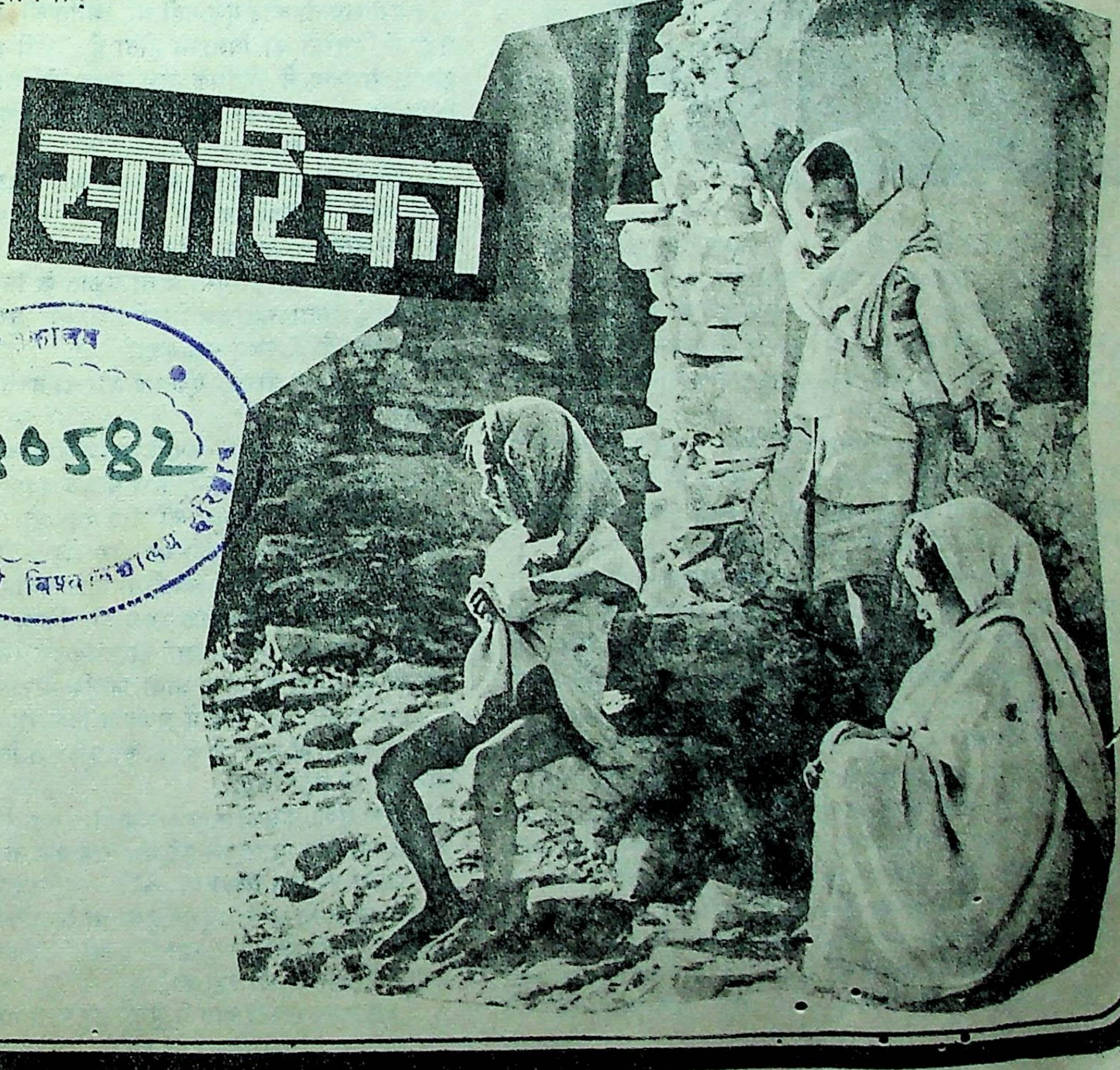

040582
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

अन्न और स्वप्न

• नवतेज सिंह

दारा छह वर्षों से गर्मी-सर्दी में निरंतर रिक्शा चलाता आ रहा था किंतु इसके पहले उसने इतनी घनी धुंध कभी नहीं देखी थी.

धुंध में रास्ते गुम थे. घंटाघर मले कब के नौ बज चुके थे, किंतु धुंध के कारण दूर खड़ा हो कर कोई मानव भी नजर नहीं आता था. दारा ने पायदान में पड़ी बोरी को उठाकर सीट के नीचे रख लिया. इसमें आटा डलवाना था.

मां ने घर से चलते समय यह बोरी तथा राशन कार्ड उसे दिया और साथ ही सचेत कर दिया— कहीं ऐसा न हो कि तुम काम में फंसे रहो और डिपो बंद हो जाए. घर में आटा बिल्कुल नहीं और मशीन वाला रुपये का डेढ़ सेर आटा देता है.

उसे नफरत-सी हो रही थी क्योंकि बदचलन पाशो अपने पैरों के नीचे इस बोरी को मसलती आयी थी. वह अपनी ऊंची एड़ी की गुर्गाबीर (ऊंचे पैरों वाली चप्पल) इसके ऊपर रखकर रिक्शा से उतरी थी. सुबह ही किसी ग्राहक के यहां से लौटी थी. पता नहीं उसकी ऊंची एंड़ियों में कैसा कीचड़ लगा होगा.

कैसी धुंध थी! और कैसी बोहनी थी! इसी कारण उसे सवारी नहीं मिल रही थी. पौन घंटे से वह एक ही स्थान पर खड़ा था.

रिक्शा से उतर कर, ऊंची एड़ी पर झूलती पाशो ने जब दारे को एक रुपये का नोट दिया था (पाशी के नाखूनों पर लाल रंग लगा हुआ था), तब हमेशा की भांति बोहनी की कमाई को चूमने के ख्याल से दारा यह नोट अपने होठों तक ले तो गया पर फिर किसी अज्ञातघृणा भाव से यह अपना हाथ नीचे ले आया.

और जितनी देर पाशो को खुदरा देने के लिए पैसे टटोलता रहा, उसे पाशों के रंगें होंठ नजर आते रहे. . .उसे लगा कि जैसे कोई आदमी यह नोट पाशो के होंठों पर रख रहा हो. . .और उस आदमी के होंठ पाशो के होंठों के साथ मिल गये हों. . . .

कम से कम आज के आटे के लिए उसे ऐसा ही एक नोट और चाहिए था. और अभी रिक्शा मालिक को महसूल भी देना था.

कैसी गंदी शक्ल थी रिक्शा मालिक की (अभी-अभी उसने ऐसी ही शक्ल देखी थी, पाशो के होंठों पर अपने होंठ रखने वाले की शक्ल) दारे ने अपन आपको कोसा, रात उसके यहां खाना नहीं बना था— शायद भूख उसे सता रही थी.

इनी घनी धुंध उसने कभी नहीं देखी थी— और इतनी महंगाई भी शायद कभी नहीं.

उसका दादा बताया करता था कि दूसरे विश्व युद्ध के दिनों में भी एक बार आटा राशन कार्डों पर मिलना शुरू हो गया था— पर दारे को उस समय की कोई बात याद नहीं. उस समय तो युद्ध छिड़ा हुआ था, संसार में पता नहीं कितनी जमीन यूं ही खाली पड़ी रही होती! कितनी जमीन मुर्दे दबाने के काम आयी होगी!... और फिर उस समय फिरंगियों का राज्य था, उन्हें हमारी क्या चिंता.

पर, अब तो कोई युद्ध नहीं था, शांति थी. जिस प्रकार सिनेमा घरों में सिगरेटों का विज्ञापन होता है, उसी प्रकार पिछले दिनों हमारी सरकार ने 'अधिक अन्न उपजाओ' का धड़ल्ले से प्रचार किया था, स्कूल के लड़कों ने इस संबंध में जुलूस निकाले थे. . . . अन्न. . . अधिक अन्न!

कल एक सवारी कहती थी, इस बार सर्दियों में चौमासा लगा रहा! पहले तो वर्षा बंद नहीं होती, फिर धुंध पल्ला नहीं छोड़ती. इन सभी बातों का कारण नये युद्ध की तैयारी है. एटम-बम के प्रयोग हो रहे हैं. इन बमों की गैसों ने तो प्रकृति के नियमों में परिवर्तन ला दिया है. पता नहीं युद्ध छिड़नेवाला हो. धुंध और महंगाई युद्ध का ही सबूत है. . . किंतु यहां कहां?. . .

दारे को एक औरत, एक मर्द और दो बच्चे अपनी ओर आते दिखाई दिये.

——भाई रिक्शावाले कंपनी बाग चलोगे, और फिर वह जोड़ा अपने बच्चों समेत दारे के रिक्शा में बैठ गया.

सूरज की रोशनी धुंध को चीर रही थी. जब रिक्शा कंपनी बाग पहुंचा— धुंध हट चुकी थी और बाग में दिन पूरी तरह खिल आया था. वहीं पर उसकी सवारियां उतर गयीं. उस आदमी ने उसे साधारण भाड़े से कुछ अधिक रकम दी. फिलहाल ये बोहनी के पैसे नहीं थे, किंतु फिर भी अनजाने ही उसने इन पैसों को चूमा. . . और उसे उन दो बच्चों की महक आयी, जो कि सारा रास्ता उसके रिक्शा में अपने मां-बाप की गोद में चुपचाप टिके रहे थे, और अभी-अभी उतर कर बाग में घूम रहे थे. . . दो फूल, दो तितलियां. . . वहां से जाने का जी नहीं किया.

जब सुबह उसकी पहली सवारी, वह पाशो, उतरी थी, तो दारे के मन में घृणा उत्पन्न हुई थी. तब एक नामुराद धुंध ने उसके सारे शरीर को ढांप लिया था और अब जब कि यह जोड़ा और ये बच्चे उतरे थे, उसे अनुभव हुआ था कि इनकी खुशी का सूर्य जैसे उसके अंदर की धुंध चीर रहा हो और उसका शरीर इसके उजले प्रकाश में खिलता जा रहा हो!

इस समय कंपनी बाग में घूमने का वक्त नहीं था— न ही आज

कोई खास दिन था. उसने रिक्शा में बैठे इस जोड़े की बातें सुनी थीं. वह आदमी किसी दूसरे शहर में काम करता था. अपनी पत्नी और बच्चों समेत वह घर छुट्टी पर जा रहा था. रास्ते में यहां से गाड़ी बदलनी थी. तीन घंटे बाद दूसरी गाड़ी मिलनी थी. वे स्टेशन पर ही सामान रखकर कंपनी बाग में सैर के लिए आ गये थे.

उस आदमी ने रिक्शा में बैठी अपनी पत्नी से कहा था— याद है तुम्हें, इस कंपनी बाग में तुम मुझे पहली बार मिली थीं?

——हां, वह मिलाने वाली समा मुझे याद है,जैसे कल की बात हो.

——कल तो नहीं, उस मिलन के एक वर्ष बाद हमारा विवाह हुआ था, और अब छः वर्षों की तो हमारी हनी है.

मां ने बड़ी बच्ची को चूमा— बेशक कल नहीं था, किंतु मुझे तो वह गीत इस समय भी सुनायी दे रहा है, जिसे उस समय आपने जलसे में गाया था.

——बेशक कल नहीं था, किंतु तुम मुझे उसी रूप में नजर आ रही हो–जब कि नाटक में तुम लोक-स्वतंत्रता की देवी बनी थीं.

——और फिर पानी की बूदें बरसी थीं.

——और नाटक समाप्त होने पर जब मैं तुम्हारे हॉस्टल तक पहुंचने गया था, रास्ते में आंधी के कारण आम हमारे ऊपर गिरते रहे थे.

——कितना मीठा था उनमें से एक आम, पहला आम जो हमने मिलकर चूसा था.

——कल ही तो था. . . मेरे मुंह में उस आम का स्वाद अब भी उसी तरह का है.

और उस आदमी ने दारे से कहा था—— कंपनी बाग के बायीं ओर आम के झाड़ों के करीब.

और जब दारे ने आम के झाड़ों के समीप उन्हें उतारा तो उस समय उसने सुना—— पत्नी पति से कह रही थी, कल नहीं, अब तो आज हो गया है.

दारे की आंखें उन बच्चों को देखती रहीं. वे आंख-मिचौनी खेल रहे थे. उन पति-पत्नी को देखती रहीं. (वे एक आम के पेड़ के साथ टेक लगाये बैठे थे) और उसके कानों में ये शब्द गूंज रहे थे. . . लोक-स्वतंत्रता की देवी. . . पहला आम. . .जो हमने मिल कर चूसा था.

पता नहीं कौन-सा आकर्षण उसे यहीं ठहरने के लिए बाध्य कर रहा था. उसे आटा लेने के लिए डिपो पर जाना था. वह यहां खड़े-खड़े सोच रहा था, डिपो पर कितनी भीड़ लग गयी होगी.

पर दारा वहीं खड़ा रहा. . . एक-दो बार उसने शराब पी थी, उस समय भी उसका अपने पर काबू नहीं रहा था. वह हैरान था कि परायी खुशी में भी किस तरह शराब का-सा नशा हो सकता है. और भूखे को तो कभी कोई नशा नहीं आता. अब भी दारा वहीं खड़ा था, मीठी-मीठी धूप में. अलसाकर अपने रिक्शे में ही उसकी आंख लग गयी.

——दारे आज तो तेरे विवाह की रात है. वह देखो 'सोहनी-महीवाल' चलचित्र की तस्वीर. कैसे दोनों प्रेम कर रहे हैं. ऐसे ही आज तुम अपनी नववधू से प्रेम करना. . . उस समय का प्रेम सच्चा होता था, तभी तो आज की इस युग की प्रेम-कहानियां लिखी जाती हैं, चलचित्र बनते हैं. आजकल तो हरेक चीज बनावटी है—— नींद में ही वह बहुत दूर की सोचता रहा.

सारा दिन दारा रिक्शा के आगे जुता रहा. रात को कहीं अपनी नववधू के पास लौटा था.

नवतेज सिंह : लेखन–कार्य इनके लिए नया नहीं, विरासत में मिला है. (पिता भी पंजाबी के वरिष्ठ लेखक रहे हैं) अब तक तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. पंजाबी की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'प्रीत लड़ी' के संपादक हैं.

एक किराये का कमरा था. एक गुलदस्ता था कागज के फूलों का. कमरे में दारा था——उसकी नववधू थी, दारे की मां थी, उसका बाप था, दो-चार मेहमान थे, रसोई थी, डिपो का आटा था, जो कि अभी फौरन दारे की मां लेकर आयी थी. नव-वधू को अकेला छोड़कर दारे की मां डिपो पर आधा दिन इस आटे के लिए सर खपाती रही थी और अब गीली लकड़ियों के धुएं में कुढ़ रही थी. सर्दियों का मौसम था. ठंड हद से ज्यादा पड़ रही थी.

. . .दारे की सोहाग रात थी. चांदनी नहीं थी. चारों ओर धुआं ही धुआं था. सारी रात 'सोहनी महीवाल' चित्र का पोस्टर उसकी आंखों में घूमता रहा था. वह स्वप्न में पागलों की तरह हंसता रहा. कल ही उसकी पत्नी को ससुराल चला जाना था. फिर छः महीने के बाद कहीं उसे आना था. और दारा उसके रंगे होंठ देखा करेगा, पैसे लेते समय कभी-कभी पाशो की ऊंगलियां छू लिया करेगा, बस. . . उसकी अपनी पत्नी की अंगुलियों की पकड़ कैसी थी? उसने अपनी मां के अतिरिक्त केवल एक ही औरत की अंगुलियां छुई थी, और वह थी पाशो की अंगुलियां. . .

दारे को कंपकंपी-सी अनुभव हुई और उसकी नींद टूट गयी.

——रिक्शावाले भाई, जल्दी ही स्टशन चलो,हमें गाड़ी पकड़नी है, वह जोड़ी अपने बच्चों समेत लौट रही थी. बच्चों ने दारे को पहचानते हुए कहा, यह तो वही रिक्शावाला है.

दारा स्टेशन की ओर जाने की बात सुन कर मन ही मन प्रसन्न हुआ, क्योंकि आटे का डिपो उधर ही था. दारे को भी जल्दी थी. वह जोर-जोर से पैडल मारने लगा, किंतु उसके कान उन दोनों की बातें की ओर लगे हुए थे.

——कल नहीं था. यह तो आज है.

——आम वैसे के वैसे ही हैं.

——ऐसी स्मृतियों के बाग सदा खिले रहें!

——लेकिन सब के पास ऐसी स्मृतियां नहीं.

——सब को ऐसी यादें नसीब हों.

दारा उन्हें स्टेशन पर उतार कर डिपो की ओर बढ़ गया. वहां पहले से ही भीड़ जमा थी. रिक्शा एक ओर खड़ा कर, बोरी निकालकर दारा कतार के अंतिम सिरे पर खड़ा हो गया. उसने खाली बोरी दबा कर पकड़ ली थी. उसका दिल पूछ रहा था. . . जिस धरती पर ऐसे बाग हैं, वहां ऐसे डिपो क्यों?. . .वहां यह पाशो क्यों?

. . .वहां दो होंठों के बीच नोट क्यों?

. . .वहां केवल तस्वीर में ही प्यार क्यों?

. . .वहां धुएं वाले कमरे में विवाह की पहली रात क्यों?

. . .कैसा युद्ध है, यह जिसके कारण बम बनते है, धुंध फैलती है, अन्न गायब हो जाता है. . .

डिपो पर खड़ी कतार धीरे-धीरे कम हो रही थी. दारे की पारी आने के पूर्व ही डिपो का आटा खत्म हो गया.

वह जब शाम को खाली बोरी लेकर लौटा. उस समय फिर धुंध में रास्ते गुम थे.

□□□

(अनुवाद : तरनजीत)

दर्द की मछली • ओम गोस्वामी

हलकी-सी बूंदाबांदी हुई थी. सड़क का काला,.धूमिल रंग निखर आया था. दलदल से निकला मानो अजगर लेटा था, काला-कलूटा, कीचड़-सना. फिसलन भरे गोले से हट कर उस तंग और बल खाती गली की ओर मुड़ते ही बदबू का भभका नासापुटों में घुस गया था. बदबू, जिसका संबंध गलियों के जाल वाली बस्ती में रहने वाले हर व्यक्ति से था. अजीब जाल था यह. प्रत्येक व्यक्ति के तालू में कांटा चुभा हुआ था और वह छटपटा रहा था. पर इससे भी अजीब बात यह है कि उनमें मुक्ति की चाह न थी. तंग गलियों से और-और तंग गलियां निकलतीं और सिकुड़ते-सिकुड़ते वे धागे की तरह बारीक हो आतीं. इन धागों के सिरों पर विवश आदमी टंके हुए थे.

मानस-चक्षुओं के सामने सड़क के मध्य चिथी हुई वह जिंदा लोथ घूमने लगी है, जिसके गिर्द राहगीरों का घेरा था.

. . . लहू की खाड़ी-सी बनी हुई थी. और वह दुर्भाग्यग्रस्त जहाज की तरह इसमें डूब रहा था.जिज्ञासावश जब मैं घेरे में दाखिल हुआ था,मेरे ख्वाब-खयालों में भी यह बात नहीं थी कि हादसे का शिकार वह आदमी होगा जो मेरा सुपरिचित है. आज से नहीं, वर्षों से.

दिन दहाड़े फटने से उसके मुंह-सिर पर टिंक्चर आयोडिन के फाहे चिपके रहते. हरे जख्मों के पीले-पीले दाग थे और उनसे कपास के सफेद रेशे— बिजली की तारों-से लटकते, मरे हुए चमगादड़ों की तरह झूलते रहते. फिल्मी खलनायकों-सा खतरनाक चेहरा था. अनजान व्यक्ति साहब के कमरे में दाखिल होने से पहले उसका चेहरा देख कर दहशतजदा हो जाता. बेखयाली में सांप की केंचुल दिखायी पड़ जाने जैसा भय.

मुझे उससे अपनत्व भरी सहानुभूति होने लगती. पर इसे मैंने कभी प्रकट न होने दिया, क्योंकि मैं नहीं चाहता दो सहानुभूतिपरक शब्द निकलते ही किसीकी याचक आंखें मेरी जेबों की तलाशी लेने लगें. यह मेरी अपनी मजबूरी थी. मैं सोचा करता,नौकरी छूटने पर इसका क्या होगा? उस वक्त यह नौशादरी भट्ठी को छोड़ कर स्पिरिट और बहोशी के कैपसूलों के सस्ते नशों पर उतर आयेगा. तब यह पूरा-पूरा दिन बेहोशी के कुएं में बेजान लकड़ी की तरह पड़ा रहेगा. शारीरिक हरकतें रुक जाना चाहेंगी. इतना नाकारा, एक मानव अस्तित्व! सिर से पैरों तक ठंडे पसीने में डूबा हुआ. . .

बड़े साहब 'टेबल बेल' पर हाथ रखते हैं. एक गुंजायमान यांत्रिक चीत्कार. धर्मू हड़बड़ाहट में पैर साधता अंदर आता है. दहशत भरा प्रश्न-अंकित चेहरा हुक्म ले कर, बाहर से पानी ले जाने लगता है. गिलास को यत्न से पकड़ने पर भी ऊपर रखी प्लेट ठल. . . ठल ध्वनि करती कांप रही है. मैं हस्ताक्षर करवाने लायी फाइलें आगे सरकाता हूं. साहब ने आंखें धर्मू पर गड़ा रखी हैं. टकटकी बंधी है. इस दुरूह पुस्तक को पढ़ना चाहता है साहब. धर्मू जिस्म तना कर खड़ा होने का प्रयास करता है. माथे पर पसीने के छोटे-छोटे कतरे उग आते हैं. नाचती प्लेट की ध्वनि बढ़ती है. ढीली वर्दी के अंदर शरीर का कांपना छिपता नहीं. साहब एक आंख दबा कर गिलास थाम लेते हैं.—समज गिया साब. धर्मू सलाम के लिए हाथ ऊपर उठाता है—जो नाक की चोंच से जा लगता है.—अब फीर लाक में दर्द होता साब? साहब के समतल माथे पर उभरी ऊबड़-खाबड़ लकीरें धर्मू को वरज देती हैं. चेहरे की भंगिमाओं की गुफ्तगू अधूरे प्रसंगों पर असमंजस का कोहरा जमा देती है. नजर चुराता धर्मू कमरे से बाहर हो गया है. साहब उसके कदमों की आखरी आहट तक दरवाजे पर हिलते परदे की ओर देखते रहते हैं. द्वंद्वयुक्त एकाग्रता के टूटते ही साहब मुझे आंखों से तौलते हैं. . .

—सफाई यह देता है कि मुझे हाथ कांपने की बीमारी है.डाक्टर ने पौआ पीने की सिफारिश कर रखी है. जानता हूं यह सिर्फ बहानेबाजी है. पर इसलिए कुछ नहीं कहता कि समझाने पर भी शराब से कोताही तो करनी नहीं इसे. ऐसे लोग बेवक्त की मौत मरते हैं. एक्शन लूं तो यह चार रोज पहले ही मर जायेगा.उस हालत में सजा इसकी औरत और बच्चों को मिलेगी. दिलचस्पी न होते हुए भी, साहब के उदार भावों की कद्रदानी में मैं अपनी गरदन हिलाता रहा. अनमांगे स्पष्टीकरण से जाहिर हो चला था कि इशारों और अधूरे वाक्यों में कोई महत्वपूर्ण संदर्भ छिपा पड़ा था.

बेहोश और लहू में तरबतर शरीर के चौगिर्द खड़े मेले में प्रत्येक चेहरा 'साहब' से मिलने-जुलने लगा है. साहब अपनी भविष्यवाणी के पूरा उतरने पर एक कसैली मुसकान भर रहे हैं.—मैं. न कहता था?

—अरे! यह आदमी घड़ी भर पहले 'रसमंजरी' पर एक लखपति से झगड़ रहा था! एक अपरिचित चेहरे ने गिरे हुए जिस्म को तीखी नजरों से देखते हुए कहा.

—किस लखपति से?

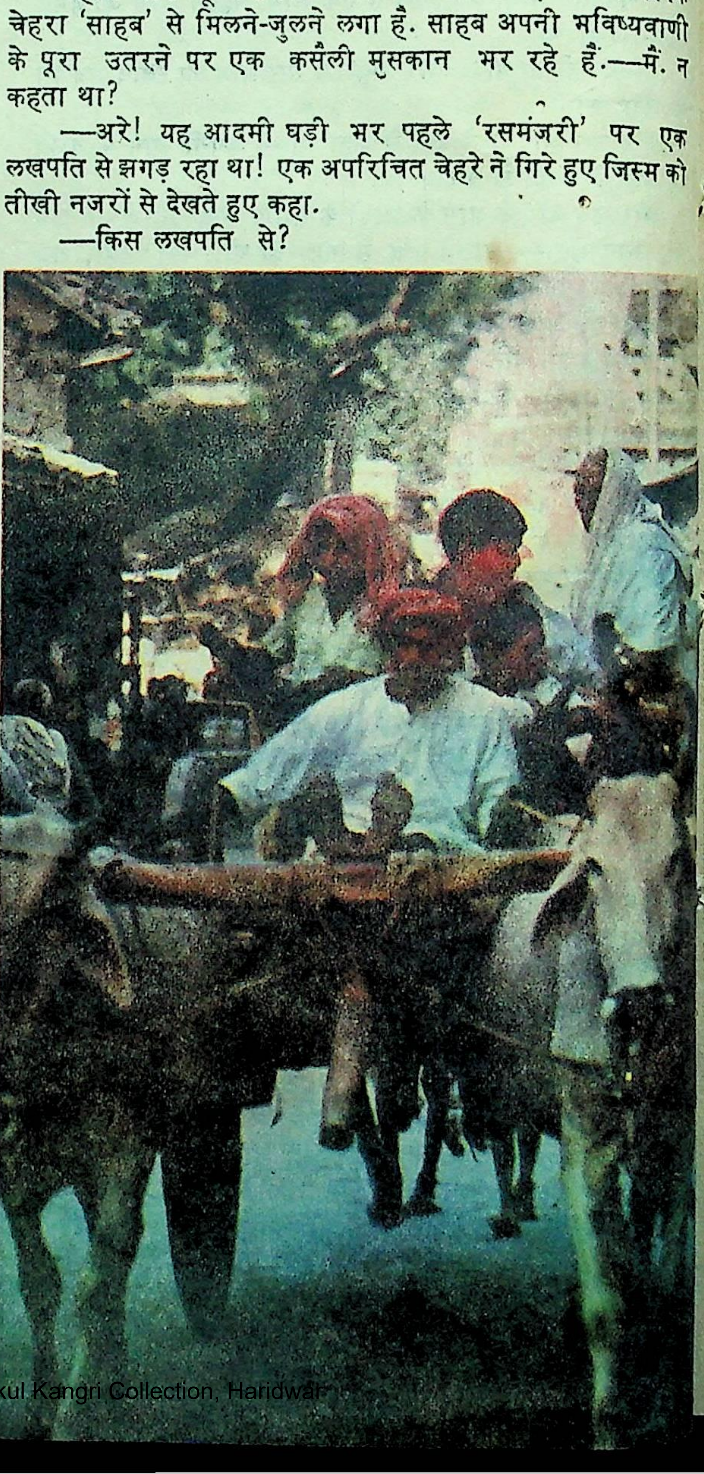

• एस. के. उपाध्याय

080582

---घसीटाराम शाह से.

---उसीकी कार तो गिरा कर नहीं चली गयी?

---सुना है कोई ट्रक-ड्राइवर था.

---घसीटाराम से झगड़ा किस बात पर हुआ?

---उसने व्हिस्की और अनन्नास-रस के डिब्बे खरीदे थे. पैसे चुकाने लगा कि इसने फुर्ती से सौ का नोट झपट लिया. ऊपर से सीनाजोरी देखो कि डट कर खड़ा हो गया. एक इंच भी हिला नहीं.

---भागता कैसे? पी रखी थी.

---कहने लगा, तुम लोग कारों में घूमते हो. शराब में फलों का रस मिला कर पीते हो, चलो, देखो, मेरे घर में बच्चे भूखे मर रहे हैं.

---अब ऐसा ही हुआ करेगा, भाई! जिंदा रहने के लिए हक छीन कर लेना होगा. एक दाढ़ी वाले व्यक्ति ने गहरी शिनाख्त करते हुए कहा---सांसें चल रही हैं, लेकिन बचेगा नहीं.

---कोई आदमी इसे अस्पताल क्यों नहीं पहुंचाता? मैंने उनकी मनुष्यता को लानत भेजते हुए पूछा.---अगर आप लोग इस हादसे का शिकार हुए होते?. . .

दो व्यक्तियों ने तुरंत अपनी जाग्रत चेतना को उछाला. एक ने कहा--- जो थाने में खबर पहुंचाने जायेगा, उसीको वे बदबूदार कोठरी के एक कोने में बिठा देंगे. दूसरे ने मनुष्यता की सतह से ही पूछा---आप स्वयं ही क्यों नहीं यह नेक काम करते? पहले वाला कह रहा था---कौन फालतू मुसीबतें गले लगाये! आवाज में जो तल्खी है, वह अनुभव के बाद ही आती है.--इसे अस्पताल पहुंचाने जाओगे तो भी पुलिस आपको ही बांधेगी. अपने बीस काम छोड़ कर पड़े रहो थाने और कचहरी के चक्कर में. . .कौन भड़भूंजा आपको अक्लमंद कहेगा. . .? इस बात पर एकाएक बहुत-से लोग मजमे से खिसकने लगे. मैं भी धर्मू से परे जाने लगा तो मन को तसल्ली दी कि जिस धर्मू के प्रति तेरे परिचय की जवाबदारी थी, वह छुटपन वाला क्लास-मॉनीटर था---यह वाला शराब पर न्योछावर व्यक्ति नहीं. जब भी मन किसी कटु सत्य का सामना नहीं कर पाता तब बुद्धि कुछ बेपर की गढ़ कर प्रत्येक कर्तव्य से सुर्खरू हो लेती है. परिचय कच्चे सूत की तरह छोटी-छोटी बातों पर टूटता रहता है.

* *

धर्मू कभी बीते दिनों की याद कराता तो मेरा सिर शर्म से जमीन में गड़ने लगता. ऐसे व्यक्ति का हम-जमाती होना लोगों के लिए क्या मायने रखेगा, यह सोच कर ही तमाम कुढ़न मेरे आस-पास सिमट आती. उन दिनों धर्मू स्कूल का सबसे लड़ाकू लड़का था. नेता की तसवीर मात्र से प्रभावित होने वाले मुझ जैसे लड़के वैसे ही उससे खौफजदा रहते.

वह मेरे बचपन की स्मृतियों में रावण की तरह खलनायक बन बैठा है. मेरे संस्कार उसके अस्तित्व को अनदेखा नहीं कर पाते. लाख नकारों के बाद भी भावनाएं कहीं अवांछित व्यक्ति से अवश्य जुड़ी रहती हैं.

यदि साहब जैसे कारोबारी व्यक्ति को उसके बीवी-बच्चों पर रहम आ सकता है, तो क्या मैं ही इतना गया गुजरा हूं कि उसके घर वालों को इसकी खबर तक न दूं! वहां कानून के यांत्रिक जबड़ों का भय नहीं. यही सोच कर मैं उसके घर की ओर चला था.

उससे संबद्ध प्रत्येक बात को मैं अंधेरे में पड़ा रहने देना चाहता हूं ताकि उस हौलनाक पसमंजर पर सिर तोड़ती स्मृतियों की लहरें तकलीफ का कारण न बनें. लेकिन सर्पिल गली के उस मोड़ पर बदबू की लहर पर सवार वह पुनः मेरे अंग-संग चला आता है. दफ्तर में भी जब कभी खाली वक्त में वह मेरे पास आता तो ऐसी ही दुर्गंध उसके अस्तित्व से हवा में झरने लगती.

---पता नहीं तू किस बदबू की बात करता है! यहां इतनी बड़ी बस्ती के निवासियों में किसीको भी मैंने बदबू की बात करते नहीं सुना! वह कहता.

मेरे मस्तिष्क में कील-सी धंसने लगी है. जैसे-जैसे आगे बढ़ो, चुभन असह्य होती जाती है.

---एक वह भी दिन थे. ये भी दिन हैं. . .वह मेरे साथ बैठ कर अपने स्कूल के दिनों की याद ताजा करना चाहता. पर मैं अपनी ही चिंता में खोया हुआ कहता---यदि कभी इस शहर में प्लेग पड़ी तो सबसे पहले इस बस्ती से उसकी शुरुआत होगी. . .

जब वह नशे में धुत हो कर दफ्तर में ही ढह गया था, तब पहली दफा उसके घर आया था. मजदूरों ने स्ट्रेचर उठा रखा था. दूसरा चपरासी घर का रास्ता दिखाता आगे-आगे चल रहा था. उस दिन गली में इतनी दुर्गंध महसूस नहीं हुई थी. संभवतः वह धर्मू के अंदर से फूटती, सड़ी हुई बदबू के नीचे दब गयी थी.

आज नालियों में कूड़ा, कीचड़ तीखी दुर्गंध छोड़ रहा है. डीजल की तरह गाढ़े पानी में बुलबुले फटते हैं---जैसे सड़े अंडों की बदबू हवा में घुल जाती है. उस स्थान पर जहां नाली के किनारों के पत्थर टूट गये हैं---और जहां कच्ची नाली शुरू होती है---गंदे पानी का ठहराव तालाब की शक्ल अख्तियार करने लगा है. वहां सफेद बत्तखें तैर रही हैं. छोकरे-छोकरियां उनके पीछे छपाक्-छपाक् करते दौड़ रहे हैं. बनने से ले कर आज तक उनकी कमीजें धोयी नहीं गयीं. बनाते वक्त उन्हें कफ,काज या बटन भी नहीं लगाये. जिस्म पर जहां कहीं कीचड़ सूखता है, वहीं राख की रंगत उभर आती है. छोटे-छोटे बच्चे पिंडलियां, बगलें, शिश्न, बाहें खुजलाये जा रहे हैं. चमड़ी से बुरादे-सा कुछ उतरता है. दुर्गंधयुक्त दलदल को अनेक छोटे-छोटे पैर मथ रहे हैं. किसी-किसीके हाथ में गोल की हुई रोटी का टुकड़ा है. इनमें धर्मू के बच्चे भी होंगे, सोचता हूं, अब वे दलदल से निकल कर असमय रस्सी कंधे पर धरे मजदूरी के लिए सड़कों पर दरबदर होंगे. मेरी सूचना इनके भाग्य की पुश्त ही पलट देगी.

चाहता हूं इन्हें हाइजीन की बिना पर रोकूं. पर क्या मैं जो कुछ कहूंगा, वह इनकी समझ में आ जायेगा? अब नियति को बदलने का कौन-सा साधन है मेरे पास? मैं स्वयं क्षुद्र हूं.

कीचड़ की मछलियों को जिंदगी भर अपनी छोटी-छोटी वेदनाओं के संग, सुविधा भोगी लोगों के दस्तरखानों पर कांटों से बिंधना है. इससे छुटकारा नहीं. पर क्यों? जरूर कहीं गड़बड़ है. जाल में फंसी मछलियों के लिए मेरे पास मुक्ति की कोई युक्ति नहीं. फिर भी मैं चला आया हूं---हादसे की खबर देने!

बिना संदर्भ की गंभीरता को समझे मैं कितनी मनहूस मुहिम पर चढ़ आया हूं! पर इतनी दूर आ कर दिमाग पर वही बोझ लादे वापस लौटना और भी दुःसाध्य होगा. सोचता हूं नाली में खेल रहे लड़के इधर देखें तो हादसे की खबर दे कर पीछे लौट जाऊं. थोड़ा आगे कुछ बड़े लड़के नाली में से ढूंढ़ कर कुछ निकाल रहे हैं. गंदगी के कीड़ों के अलावा और क्या होगा यहां? उनकी तत्परता जाने किस चीज के लिए है?

पास आने पर देखता हूं, ठोस-ठोस वस्तुएं निकाल कर बाहर रख रहे हैं. कंकड़, जंग लगी कीलें, तारें, कांच की किरचें, बिल्लौरें, चमड़े, तांबे और पीतल के टुकड़े. सभी ढेरियां अलग पड़ी हैं. सोचता हूं इन्हें बेखटके खबर दी जा सकती है. मेरे सफेद-सुथरे कपड़े भी लड़कों का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पा रहे. प्रसंग से जुड़ने के लिए कुछ देर मैं हैरानी से उनके माहौल में खड़ा रहता हूं. फिर पूछता हूं---कुछ खो गया है?

उनकी व्यंग्यमयी नजरों की ताब लाना कठिन हो जाता है.

---हां, मेहरबान! चांदी का चम्मच था.

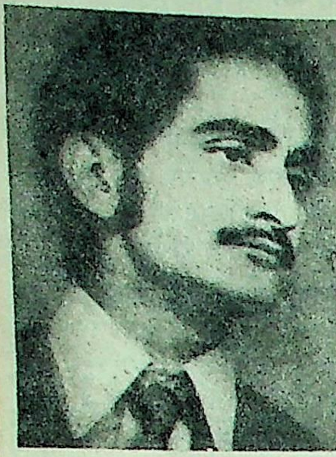

ओम गोस्वामी (जन्म : १९४८) की डोगरी में अनेक कहानियां छप चुकी हैं. इन्होंने हिंदी की नयी कहानी का विशेष अध्ययन किया है. इन्हें स्वतंत्रता और समानता के खोखले नारों में विश्वास नहीं है क्योंकि इनके अनुसार स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी आम हिंदुस्तानी दिमागी तौर पर गुलाम है, इन्हें डोगरी का युवा विद्रोही लेखक माना जाता है.

--कहां गिरा था? सोचता हूं यदि यहां होता तो जरूर निकल आया होता.

—यह राज क्यों पूछ रहे हो? तुम्हारा इरादा भी निकालने का तो नहीं? बड़े गुस्ताख लड़के हैं. शायद इस गंदगी के टब में रह कर इनका चिंतन भी दूषित हो चला है. बिजली जैसे एक ही झटके में दोबारा हाथ न लगाने के लिए खबरदार करदे, बेवजह अपमानित हो कर मैं वहां से खिसक आता हूं. बुद्धि तर्क रखती है---यह इनका नहीं अशिक्षा का दोष है. लेकिन मन कहता है---लंगड़ी दलीलें न दिया कर. पढ़े-लिखे लड़के हुल्लड़ करें तो वह शिक्षा के कारण. अपढ़ करें तो अशिक्षा. . .

अब स्वयं खबर पहुंचाने के अतिरिक्त और चारा नहीं.

★ ★

मैं चिर परिचित कोठरी के भीतर चला आया हूं. धर्मू के पिता पहचाने नहीं जाते. बड़े दुबले हो गये हैं. जिस्म से सिकड़ी-सी उतर रही है. मुझे वह निरीह आंखों से देखते हैं. अपरिचित को अपने छप्पर के नीचे देख कर उनका कुछ न बोलना मुझे खलने लगता है. स्थिर आंखों का खालीपन मानो सारे कमरे में व्याप गया है. बात शुरू कैसे की जाये? उम्र की अंतिम सीढ़ी पर बैठे व्यक्ति को कैसे कहा जाये कि उसका बेटा गाड़ी के नीचे आ गया था. . .?

मुझे तसल्ली होती है कि इस अंधियारे कमरे में वह दुर्घटना की खबर सुनाने वाले की सूरत अच्छी तरह न देख सकेगा.

पता नहीं क्योंकर दिन दोपहरी, इस कुटिया में अंधियारा पसरा पड़ा है?" अंधेरे से अभ्यस्त होने के लिए कुछ समय लगता है— आंखें चारों ओर कमरे के आयाम तलाशती घूमती रहती हैं. जैसे एक अतल कुआं है, जहां कुछ सुझायी नहीं देता.

सहसा बाहर से आवाज आयी---'बाबा! कोई चार किलो शीशियां और दो किलो कीले हो गये हैं. डेढ़ रुपये की तार हो गयी है. तांबे की तारों की मैंने खील लेली थी, खोमचे वाले से. मैं जा कर बेच आऊं? बूढ़ा उत्तर नहीं देता पर मेरा जेहन बाहर की आवाज को तुरंत पहचान लेता है. वही कड़वी तीखी आवाज वाला लड़का, जिसने बिना उम्र या रुतबे का लिहाज किये क्षण भर में तमाम औपचारिकताओं का फासला बराबर कर डाला था.

—बोल नहीं रहे. नशा खत्म हो गया है क्या? लड़का अंदर आ कर खिड़की खोल देता है. बूढ़ा रोशनी की ओर देखता है---जैसे युगों की बैरिन हो! रोशनी की कुछ किरणें दीवार पर टंगी ग्रुप फोटो पर पड़ रही हैं, पांचवे दरजे की यादगार है यह. वर्षों से जमी धूल ने चेहरों को धुंधला कर डाला है. लगता है कुछ चेहरों से धर्मू बराबर धूल हटाता रहा है. तभी उनकी पहचान कठिन नहीं. नीचे वाली पंक्ति में मैं और ऊपर वाली में धर्मू खड़ा है. मेरी आंखों के सामने वो मंजर चला आता है जब स्कूल में कोई नेता भाषण देने आये थे. भाषण के बाद उन्होंने धर्मू को खादी भंडार के कपड़ों का जोड़ा और गांधी टोपी दी थी. यह भी ताकीद की थी सभी लड़कों को उससे बराबरी का व्यवहार करना चाहिए. उस समय मन में आया था कहूं---आप ही इससे कहिए कि दूसरों के साथ मार-पिटाई न किया करे.

उनके जाने के बाद फारम मास्टर ने समझाया था, हरिजनों का सप्ताह मनाया जा रहा है. धर्मू हरिजन है, यह सुन कर उसमें मेरी श्रद्धा-सी बन गयी थी. मैंने उससे पूछा था---तू हरिजन है—यह कितनी अच्छी बात है, फिर तू दूसरे लड़कों पर रौब क्यों डाला करता है? उत्तर में उसने कस कर एक तमाचा मेरे गाल पर जड़ दिया था. बोला—बड़े हिंदू के बच्चे! एक बार हरिजन कहा है, दोबारा कहा तो गटर में डाल आऊंगा.

मैं रोने को हो आया था. सोचता रहा, मुझसे क्या भूल हुई है. हरिजन, मतलब परमात्मा का जन--पर इसे उसने गाली के समतुल्य क्यों समझा है. मास्टरजी ने उस सप्ताह के लिए धर्मू को क्लास मॉनीटर नियुक्त किया था. फिर वह पूरा वर्ष जबरी मॉनीटर बना रहा. वही धर्मू खादी भंडार के नये कपड़े पहन कर नाली में उतर गया है. लकड़ी का एक अनघड़ तोंदा किनारे से फिसलता-फिसलता उसपर आ पड़ा है. लकड़ी भारी भरकम वाहन में बदल गयी है. मौत के पास कारण नहीं होता, बहाना होता है– बड़ा लचर बहाना! धर्मू अचेत पड़ा है. फटी रगों से लहू नहीं काला कीचड़ बह रहा है. मैं कांप उठता हूं. स्वप्न-तंद्रा टूटती है. हर चीज अपनी जगह ठहरी हुई है.

—ले आना रत्ती भर. काफी देर बाद बूढ़ा बोलता है. स्वर ऐसे हैं जैसे जीभ को लकवा पड़ा हो. उसे कंपकंपी छूटी हुई है.

—बड़े चालाक! चार किलो शीशियां और दो किलो कील! सवा दो रुपये नहीं बने? एक स्त्रैण स्वर कुटिया के साथ वाले दरवाजे से निकला. लड़के ने भौंचक हो मेरी ओर देखा. वह थोड़ा-सा झुकता है. फिर दहलीज के पास चला जाता है---हां, भराविये! पर मांझे वाला सवा किलो का एक किलो तौल लेता है. मैं क्या करूं, लुहार भी कुछ पल्ले नहीं डालता. पत्तियों के अच्छे दाम मिल जाते थे पर आजकल उन्हें कोई कूड़े में फेंकता ही नहीं.

—चुप करके नमक आटा ले आना नासपिटे! बहाने बड़े बनाता है. रात मुझसे मोहन भोग न मांगना.

—और बाबे की अफीम?

—मरे! ऐसा करना, ज्यादा ले आना. सभी फांक लेंगे?

—मैं जरा देर से आ पाऊंगा. नयी फिलम लगी है. चार टिकटें निकल गयीं तो दाल की जुगाड़ हो जायेगी.

वो चला जाता है. पर वह बड़बड़ाती रहती है—मेरे भाग फूट गये इनसे माथा लगा कर. घड़ी भर में बंदर सेना रोटी के लिए चिल्लायेगी. अंदर आटे की एक छटांक नहीं. वह शराबी जाने किस भट्टी पर ओक लगाये बैठा होगा. नौकरी छूटेगी तो मुझे साब के सामने थाली बना कर हाजिर करेगा. . . बेईमान मर्द. . .

—रांड, अभी तेरा वो यार गया कि नहीं? बूढ़ा जैसे किसी यंत्र में कसा जा कर बोल रहा हो.

—तेरे हाथ जोड़ती हूं, बूढ़े! धीरे बोल, सैनटरी साब ने सुन लिया तो नाराज होगा.

—शक्ल न दिखाया करे. कहदे मैन के यार से. हलवाइयों, ठेलेवालों से मुफ्तखोरी करके खाते हैं और मांस भी बिना दाम नोंचने चले आते हैं—हरामखोर! बाप का सरमाया समझ रखा है सालों ने. . . बूढ़ा हांफता है. वह और कितना बोल पायेगा इसका अनुमान करता मैं कोठरी के गुम कोनों में किसी अन्य वजूद की तलाश करता हूं.

—कौन मुफ्तवारी करता है? पंदरा-पंदरा रोज डियूटी पर न जाओ तो नौकरी क्या बहाल रहेगी? इलाके की पूरी गंदगी दूसरे लोगों से उठवाता है. किसके लिए? क्या मेरे बाप के टके देने हैं उसने. महीने में एक बार खुस कर देती हूं. . . उसका भी पीठ-दर्द हट जाता है. क्या बुरा होता है?

—जबान दराजी न कर रांड. . . बूढ़ा रोशनी की ओर देख कर चिल्लाता है. पर आवाज कच्चे सूत की तरह अधबीच ही टूट जाती है. गुस्से में उसके दांत कटकटाने लगते हैं.

साथ की खोली से एक मर्दाना आवाज गूंजती है—नसीबो, मैं जा रहा हूं. सुबह झाड़ू लगाओगी तो हाजरी लगेगी. कदमों की चाप उठती है और परे-परे जाने लगती है. . .

—सुन तो सैनटरी बाबू! वह कहती है. . . कांपता हुआ सन्नाटा. . . मोटर साईकल स्टार्ट होती है. —तू जहां कहेगा, मैं आ जाऊंगी बाबू. अब गुस्सा थूक दे. . . मोटर साईकल का फटा हुआ शोर निरंतर दूर-दूर होने लगा है.

मेरी मौजूदगी से बेखबर बूढ़ा अपने आप में कुछ मुनमुनाये जा रहा है. अचानक वह दहलीज के निकट चली आती है. देखता हूं, निचुड़ा हुआ निःसत्व चेहरा, जिस पर केवल एक जोड़ी आंखों की सत्ता निःशेष है. . .

आंखें. . . प्रश्न. . . निमंत्रण.

—इन बाबूजी से निपट ले. बूढ़ा बड़े कारोबारी लहजे में नसीबो को हुक्म देता है.

मैं कहना चाहता हूं कुछ. लेकिन दहलीज के परे, नसीबो के पीछे उभरे चेहरे को देख कर चौंक उठता हूं. वह भी झेंप जाता है. निरर्थक मुसकान उसके होठों पर उतर आयी है. —क्या आपको भी पीठ-दर्द का रोग लग गया मिस्टर? वह कहता है—मुझे तो खोखला कर दिया रेंगते दर्द ने.

नसीबो पीछे देखती है. अब मेरा खबर देना जरूरी हो गया है—धर्मू का एक्सिडेंट हो गया है. बूढ़े पर असर देखने के लिए मैं शब्दों को तोड़-तोड़ कर बोलता हूं. बूढ़ा निडोल आंखों से गोबर लिपी धरती देख जा रहा है. बड़ी देर तक मैं उसके कुछ बोलने की प्रतीक्षा में रहता हूं. पर वह अझिप आखों को जमीन पर गढ़ाये रखता है. मच्छर कब से मेरे कानों के गिर्द 'रिट्रीट-वादन' कर रहे हैं. अब और बटना कठिन हो चला है. बूढ़े के किसी दुविधा से बाहर आने तक की प्रतीक्षा है. एक मच्छर बूढ़े की पांडुरोग का दिखावा करती नग्न बांह पर आ बैठा है. मैं इंतजार करता हूं कब वह इस लहू के प्यासे को हाथ मार कर खत्म करेगा. पर वह मच्छर का पेट लहू से फूलते देखता रहता है. मच्छर उड़ गया है—एक कतरा खून ले कर. मेरी हथेलियों में तिलमिलाहट होने लगी है. अब तक धर्मू के शरीर से खून की आखरी बूंद भी बह कर सड़क के होठों पर पपड़ी बन जम चुकी होगी?

बूढ़े का शरीर डगडग कांप रहा है. सीलन भरी गुदड़ी उसने लपेट ली है. शीत से जैसे ठिठुर रहा हो. उसके दांत बज रहे हैं. मुंह से सी-सी निकल रही है. पर मुझसे कमरे की उमस अब सही नहीं जा रही. बड़ी गर्मी है. उसके होठों की कोरों में फेन इकट्ठी होने लगी है.

—रांड, जा अफीम ला दे! वो कलैकिया जाने कब वापिस मरेगा. नसीबो उत्तर नहीं देती. बूढ़ा रोने लगता है. . . रोता है. . दहाड़े मारता है. उत्तर आने तक काफी अंतराल पसर चुका है.

—एक वो गाड़ी के नीचे आ मरा. अब तू मरे या मैं मर जाऊं. बच्चों की तरह रो रहा है. . . घर में रोटी नहीं है. . . बता, तेरे नशे के लिए रुपये कहां से लाऊं. . .

—रांड, जल्दी कर, निपट ले उन सेठजी से.

मुझे लगता है एक पल भी और मैं यहां ठहरा तो कोठरी की कांपती दीवारें मुझ पर गिर पड़ेंगी. मैं तेजी से बाहर निकल आता हूं. नसीबो उस व्यक्ति के साथ खोली के भीतर चली जाती है.

—उस दिन आया था उस नामुराद को स्ट्रेचर पर डलवा कर. आज उसकी मौत की खबर ही ले आया. नसीबो का स्वर मेरा पीछा करता है.

इस बस्ती से जितनी जल्दी हो मैं बाहर चला जाना चाहता हूं. पर दर्द से बिंधी मछलियों की मौन वेदना मेरे हर कदम पर अंकुश लगा रही है. □□□

१८१, पहाड़ियां स्ट्रीट, जम्मू तवी.

सारिका के वरिष्ठ सहयोगी को विदाई

इस अंक से 'सारिका परिवार' के वरिष्ठ सदस्य श्री नरेंद्र मालवीय सेवा-निवृत्त हो रहे हैं. मालवीयजी बचपन से ही हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करते रहे हैं. इनके पत्रकार-जीवन का विधिवत प्रारंभ बनारस से प्रकाशित होने वाले 'आज' दैनिक से हुआ था. उस समय मालवीयजी पराड़कर जी के सहयोगी थे. पराड़कर जी से इन्होंने हिंदी पत्रकारिता के विषय में बहुत कुछ सीखा. वहीं इनमें भाषा की शुद्धता के प्रति मोह पैदा हुआ, जो अभी तक बना हुआ है.

बनारस छोड़ने के बाद मालवीयजी ने पंजाब, दिल्ली और मध्य प्रदेश के पत्रों में कार्य किया. आप पिछले २३ वर्षों से टाइम्स आफ इंडिया बंबई के हिंदी प्रकाशनों से संबद्ध थे. कई वर्षों तक आप 'नवभारत टाइम्स' के संपादकीय विभाग में रहे. जब बच्चों की पत्रिका 'पराग' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ तब मालवीयजी को वरिष्ठतम सहयोगी के रूप में उससे संबद्ध कर दिया गया. और गत १४ वर्षों से आप 'सारिका परिवार' के सदस्य थे. 'सारिका' ने अब तक वैचारिक स्तर पर कई मोड़ पार किये हैं और मालवीयजी हर मोड़ पर उसके साथ पूरी तरह जुड़े रहे हैं. हिंदी पत्रकारिता की सेवा इन्होंने जिस लगन, ईमानदारी और मेहनत से की है वह निश्चय ही सराहनीय है.

गत माह सारिका परिवार ने अपने साथी को भाव-भीनी विदाई दी. उस समय पर नवभारत टाइम्स के इनके कुछ साथी भी उपस्थित थे. सभी ने मालवीयजी के प्रति शुभकामनाएं प्रकट कीं और आशा की कि सेवा-निवृत्त होने के बाद भी एक स्वतंत्र पत्रकार के रूप में वह हमें अपना विशिष्ट सहयोग देते रहेंगे.

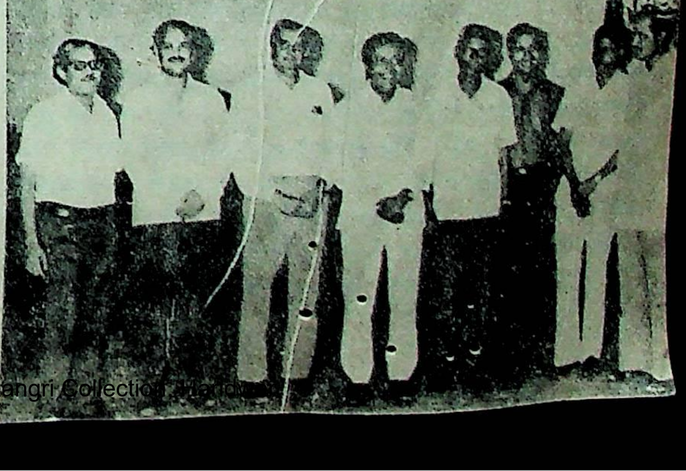

सारिका परिवार के सदस्य—बायीं ओर से—सर्वश्री सुदीप, श्रीनाथ पांडेय, आनंदप्रकाश सिंह, कमलेश्वर जी, मालवीय जी, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के और अवधनारायण मुद्गल.

नयी तलाश

• अभिमन्यु अनत

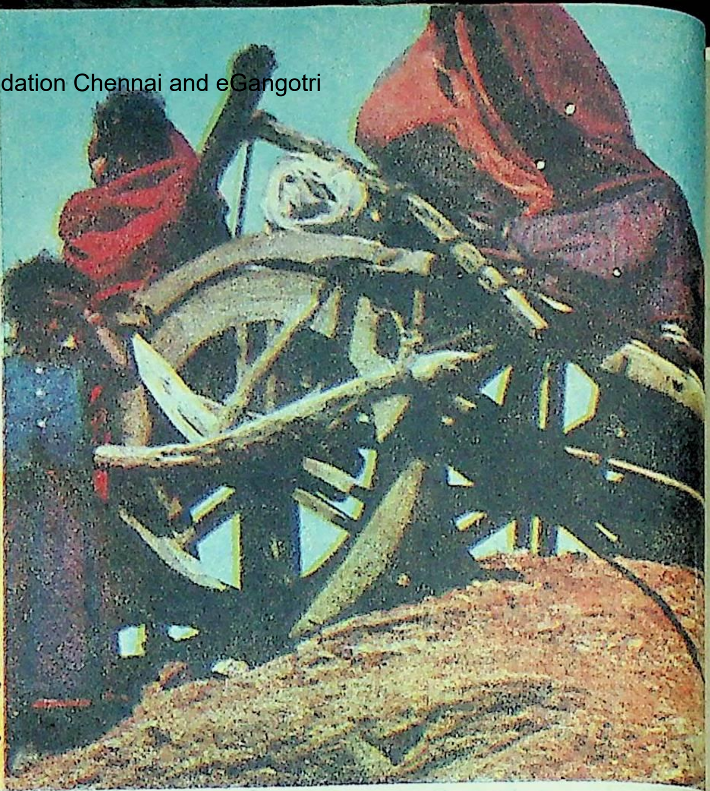

• बी. गोस्वामी

सूरज झिलमिला रहा था उसके सांवले शरीर के ऊपर. वह हेमंत की शांत सुबह थी और सूरज के ताप में वह शक्ति नहीं थी जिससे त्वचा जलती-सी प्रतीत होने लगे. गरमी जो ऊपर नहीं थी, वह उसके भीतर थी. ऊपर की हल्की गरमी में सुख का अनुभव था जबकि भीतर की गंरमी उसे भीतर ही भीतर झुलसती जा रही थी. अपनी मुट्ठी की बालू के कणों को जोर से दबाते हुए वह उन्हें नीचे बिखेरने को मजबूर कर रहा था. उस काली चट्टान पर शांत बैठा हुआ वह समुद्र की प्रवालरेखा की ओर एक टक देख रहा था जहां ज्वारभाटा प्रलयंकर था. वहां की उफनती लहरों को वह अपने भीतर महसूस रहा था. उसकी आंखें कुछ भी नहीं देख रही थीं. वह जो कुछ भी देख रहा था, अपने खयालों से देख रहा था. वह जानता था कि शाम तक अगर उसकी धमनियों की उष्णता कम न हुई तो रात को सर के असह्य दर्द से वह झपकियां तक नहीं ले सकेगा. सुहानी किरणों के सुहाने ताप से उसकी पलकों में शिथिलता-सी आने लगी थी पर उसके खयालों की सक्रियता बनी रही.

समुद्र तट सुहाना था. वह केवल लहरों के कराहने की आवाज थी जो सन्नाटे को खंडित किये जा रही थी. चांदी की तरह चमचम करती बालू पर कोई भी तैरने के हलके कपड़ों में नहीं था. वह भलीभांति जानता था कि तैरने के लिए अभी कुछ सबेरा था पर उसके अपने भीतर के जो भाव थे, वे समय से पहले पैदा हो गये थे. विद्रोही लहरें उसके पैरों तक पहुंची थीं. वह पानी भी उसके भीतर के पानी को धो न सका. वह बैठा रहा.

पीछे चंद कदमों पर जो होटल था, वह इस वक्त लगभग खाली था. दो कमरों में केवल जापानी मछुए टिके हुए थे. उनके शरीर से कभी न मिटने वाली बिसाइन गंध से समूचा शरीर समुद्री गंध का था. तीन दिन पहले होटल में भारी रौनक थी. उस समय बंदरगाह में अंग्रेजी लड़ाकू जहाज का लंगर था. होटल के सभी कमरे नाविकों से भरे हुए थे. सभी के साथ (उन्हीं के शब्दों में) मनोरंजन का कोई-न-कोई साधन था. वे लोलुप नाविक कोई चालीस-पचास दिन बाद जमीन पर पहुंचे थे और जमीन पर पहुंच कर अपने को जमीन की चीजों से अलग बनाये रखना उनके लिए बेवकूफी होती इसलिए उन्हें अपनी शक्ति, पैसे और स्वास्थ्य की बहुत कम परवाह थी.

उन शारीरिक लावण्य वाली औरतों के लिए भी इन अवसरों को चूक जाना पछतावे की बात हो जाती इसलिए उन नाविकों को इस सुंदर द्वीप में अकेले भटकने को उन्होंने नहीं छोड़ा था. एमिल का बाप कोई तीन वर्ष से इस होटल का रसोईया था. तीन वर्ष से एमिल इस होटल के कमरों को झाड़ देता आ रहा था लेकिन इधर कुछ महीनों से उसने अपने को भी अन्य मर्दों की तरह मर्द महसूस किया था. इस होटल में उसने तरह-तरह के लोगों को टिकते देखा था. वे धनीमानी लोग भी यहां टिक जाते थे जिन्हें कमरे की कीमत अधिक देना गवारा नहीं था. एमिल यह भी जानता था कि इस होटल में टिकने वाले रजिस्टर पर कभी भी अपने असली नाम और पते नहीं लिख जाते. इसका कारण जब उसने अपने आपसे पूछा था, तभी उसके भीतर अजीब-सी जिज्ञासा जगी थी. उस समय उसकी उम्र कच्ची थी, फिर भी होटल के एक विशेष ग्राहक को हर बार एक नयी औरत के साथ पहुंच कर होटल के किसी कमरे में तीन-चार घंटे बिता कर जाते देख उसने अपने आपसे कई तरह के प्रश्न किये थे. लेकिन उन प्रश्नों का धुंधला-सा उत्तर उसे उस वक्त मिला था जब कि एक कमरे के हार्डबोर्ड की दीवार में उसने छोटे-से कीले से एक छोटा-सा छेद बना दिया था.

उसके सामने अथाह सागर था. उस खुले हुए माहौल में भी अपने को चार दीवारों के बीच से एक छिद्र के द्वारा तीन दिन पहले के उसी दृश्य को देखता हुआ पा रहा था जिसकी उष्णता से उसका बदन अब भी झुलस रहा था. कुछ दूरी पर तीन बच्चे रेत पर रेत से घिरौंदे बना रहे थे. एमिल अपने भीतर के खयालों पर खयालों से खयाल पैदा कर रहा था. होटल के इस उष्ण वातावरण से ऊब कर कई बार वह नौकरी की तलाश में शहर की सड़कों पर निकल पड़ा था.

वह चुनाव का मौसम था. राजनीति की सरगर्मी थी. बरसाती मेंढ़कों का बोलवाला था. हर ठौर पर लाऊड स्पीकरों से आती हुई बिन शब्दों की अस्पष्ट आवाजें थीं.

वह आवाज अब भी उसके कानों में बज रही थी.

—बहुत सारी नौकरियां! सभी के लिए नौकरी! सभी बेकारों को नौकरी मिलेगी! शीघ्र मिलेगी! नौकरी! नौकरी!! नौकरी ! ! !

एमिल की नौकरी नहीं थी. नौकरी की तरह वह जो कुछ करता था, वह दिन भर में आठ आने की कीमत भर ही थी. दूसरे शब्दों में, वह अपने बाप के कामों में हाथ बंटा दिया करता था. होटल का मालिक जब कुछ अधिक खुश होता तो अठन्नी की बजाय हथेली पर रुपया रख देता. बेकारों की सूची में उसके नाम लिखवाये महीने होने को आये थे. शीघ्र ही मिलने वाली नौकरी अपनी सभी रफ्तार के साथ दौड़ कर पहुंचने के प्रयास में खुदगर्जी की दीवार से टकरा गयी थी. एमिल ने तो ऐसा ही सोचा था. वह पढ़ा-लिखा नहीं था मगर कभी-कभार परिस्थिति उसे बहुत कुछ सोचने को विवश कर जाती है. यही कारण था कि एमिल भी कभी-कभी लंबी-चौड़ी बात सोच जाया करता था. अपने भीतर की अकुलाहट को अपने आप में दबाये हुए वह होटल को लौट आया. नंगे डांसिग हाल में उसने होसेन को तन्हा बैठे पाया.उसका सिर झुका हुआ था और दोनों हाथों की अंगुलियां परस्पर सक्रिय थीं. एमिल को समझते देर न लगी कि होसेन गांजे के पत्तों को अपनी एक पैसे की सिगरेट

के साथ मिला रहा था. एमिल होसेन की [illegible] वह बहुत ही दिलेर था. एमिल के बाप का तो बात-बात पर यही कहना था. उसकी उन बातों से एमिल को यकीन हो गया था कि होसेन बहुत ही साहसी आदमी है. तभी तो पुलिस को हर चौराहे पर चकमा देकर वह गांजे का व्यापार करता आ रहा था. कुछ लोग कहते कि होसेन की पुलिस वालों से काफी पटती थी, कुछ कहते कि पुलिस उससे डरती है. बात कुछ भी हो, एमिल मन हीमन उसको सराहे बिना नहीं रह सकता था. वही भी अपने को उसी तरह निडर बनाने को सोचता. पिछले दिनों जब शहर के मुसलमानों और क्रिओलों के बीच दंगा-फसाद शुरू हुआ था और खूनखराबे हो रहे थे, उस समय एमिल के बाप ने होसेन को अपने घर में छिपा रखा था.बाद में एमिल के बाप ने उसे बताया कि कभी होसेन ने शराबखाने में अपनी जान की परवाह न करके उसकी जान बचायी थी. यह जानकर उसकी नजरों में तो होसेन की इज्जत और भी बढ़ गयी थी. उसको चाहने का यह भी एक कारण था कि वही एक व्यक्ति ठहरा जो एमिल को कुछ न कुछ दे दिया करता था.

★ ★

उसके पास पहुंच कर एमिल खाली कुर्सी पर बैठ गया. रेडियोग्राम से एक अश्लील गाना आ रहा था. होसेन कभी कंघी न करनेवाला अपना सिर झुकाये उसी के साथ झूम रहा था, उसके कपड़ों से सस्ती सिगरेट की गंध आ रही थी. उधर रसोईघर की कड़ाही में आमलेट तैयार हो रहा था. उसकी गंध भी एमिल की नाक तक पहुंची. वह जान गया कि दोनों जापानी मछुए जाग गये होंगे. आम्लेट उन्हें छोड़ किसी दूसरे का आर्डर नहीं हो सकता था. एमिल ने चारों ओर देखकर होसेन से धीरे से पूछा—तो होसेन वे तस्वीरें?

—चलो हटो! तुम्हारे लिए वे चीजें देखना ठीक नहीं. बगल में थूकते हुए होसेन बोला. उसके चेहरे पर चाकू के जो दाग थे, वे उसकी निडरता के प्रमाण थे.

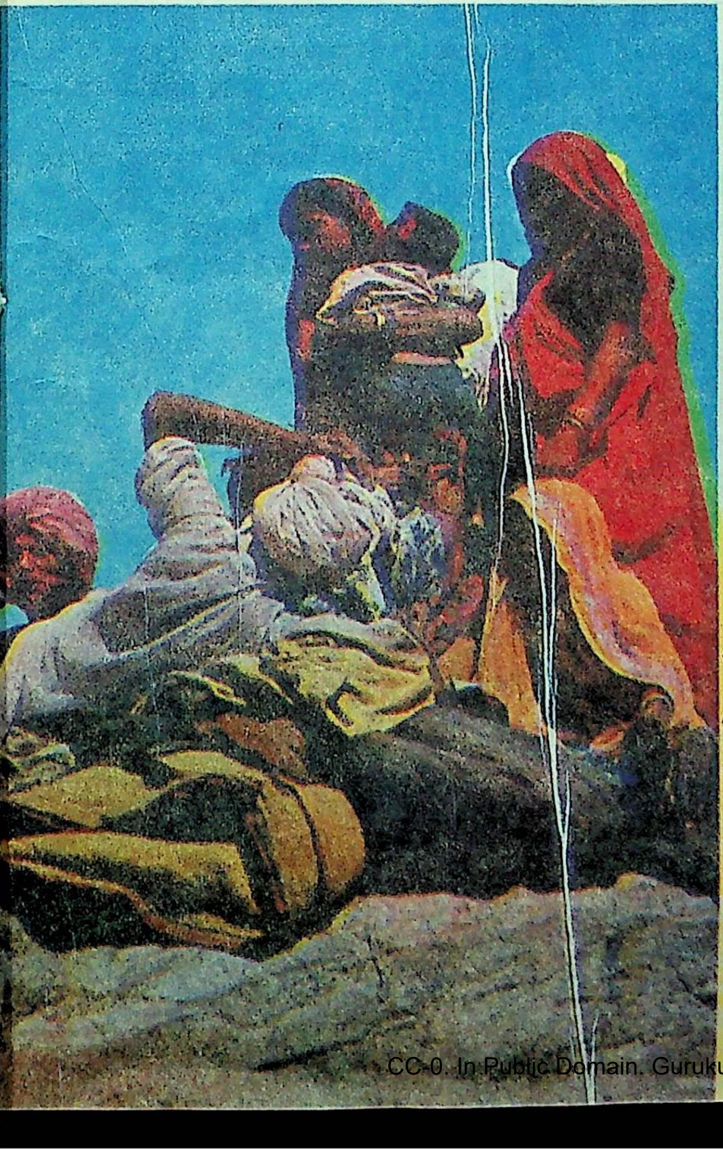

● बी. गोस्वामी

—पर तो. . . उस दिन तो तुम्हीं ने. . . उसकी बात को काटते हुए होसेन ने झट कह दिया.

—उस दिन बता दिया था, इसका यह मतलब नहीं कि रोज तुम्हें बताता रहूं. और उसने अपने मैले कोट की आस्तीन से नाक पोंछ ली.

—एक आखिरी बार तो!

होसेन ने सिगरेट में गांजा भर चुकने के बाद उसे होंठों तक पहुंचाया और सुलगाते हुए मुस्करा दिया—एक शर्त पर देने को तैयार हूं.

—तुम उन तस्वीरों को लिये गुसलखाने की ओर न झपट पड़ो तब.

—इधर पापा आ सकता है.

—तो फिर हटो यहां से.

—खैर, यहीं देख लेता हूं.

—दूसरी शर्त है.

—वह क्या?

—उन्हें अपने मैले हाथों से मैला न करना वरना खरीदने वाला इन्हें जूठा समझ बैठेगा. ये आंखों से खाने वाली चीजें हैं. यह कहते हुए कोट की भीतरी जेब से उसने नीले रंग का एक मैला लिफाफा बाहर निकाला और एमिल की ओर बढ़ा दिया.

एमिल ने लिफाफे को इस तेजी से ले लिया गोया सचमुच वह कोई रखने की चीज हो और वह खुद बहुत भूखा हो उन तस्वीरों को एक-एक करके मिनटों तक देखता हुआ वह चाहता रहा कि उनमें जो चीजों थीं, वे देखते ही देखते सजीव हो जायें. होसेन के पहले ही कश के बाद हवा गांजे की गंध से भारी हो चली थी. उसी तरह का नशीला भारीपन एमिल ने अपने भीतर पाया. उसकी धमनियों में अजीब गरमी दौड़ने लगी थी. उसके अपने भीतर उन तस्वीरों को जीने की चाह पैदा हो गयी थी. उनमें बिजली की झनझनाहट थी. होसेन ने उसे बताया था कि ये तस्वीरें उसे जापानी नाविकों से मिलती हैं और एक तस्वीर वह दो से पांच रुपये के बीच बेचने का आदी था. एमिल की नजरों में इन तस्वीरों की कीमत इससे भी अधिक थी. उन पच्चीस तस्वीरों को वह पूरे आध घंटे तक देखता रहा. उसके शरीर में सख्ती आ गयी थी. उसकी अपनी ही कठोरता उसे चुभने लगी थी. अपनी ही गरमी में वह जलने, झुलसने लगा था.

बाहर पुलिस जीप के रुकने की आवाज आयी. होसेन ने झट एमिल के हाथों से तस्वीरें ले लीं.एमिल को हैरत हुई क्योंकि वह जानता था कि होसेन ने पुलिस से डर कर तो ऐसा नहीं किया था. उसे अपनी ओर हैरत से ताकते पाकर होसेन ने कहा—अरे, तुम नहीं जानते. ये लोग देखते ही बनावटी डांट-डपट के साथ इन तस्वीरों को मुफ्त में ले लेंगे.

अधखुले गेट से प्रवेश करते हुए दोनों पुलिस सिपाही रिसेपशन की ओर बढ़ गये. गांजे की वह गंध उनकी नाकों तक नहीं पहुंची क्योंकि उनकी नाकों में पहले ही से कोई दूसरी गंध थी. वह उन दो बंडलों की भीनी-भीनी गंध जिन्हें एमिल ने इन महानुभावों के फोन के बाद होटल के मालिक के कहने पर तैयार किया था. इन बंडलों की बदौलत ही होटल के मालिक को भी कभी पुलिस से डरने की नौबत नहीं आयी.और फिर पुलिस तो हिफाजत के लिए थी. यहां जो कुछ होता रहा है, कानून के लिहाज से ही होता रहा है.

★ ★

एमिल उस खाली कमरे में पहुंच कर उस चारपाई पर लेट गया जिस पर तीन दिन पहले उसने होसेन की उन तस्वीरों को सजीव पाया था. वह दीवार के उस पार से छेद के रास्ते अपनी सांसों को रोके सभी कुछ देख रहा था. उस समय उसके अपने भीतर खलबली

अभिमन्यु अनत : मॉरिशस के उत्साही हिंदी कहानीकार जिनका उपनाम 'शबनम' है. इनकी कहानियों में मॉरिशस के प्रवासी भारतीयों की समस्याओं का सुंदर चित्रण देखने को मिलता है. इससे पहले भी 'सारिका' में लिखते रहे हैं.

मच गयी थी. उस गरमी से उसके शरीर के कीटाणु खौल उठे थे. वह आदमी जितना सांवला था, उतनी ही गोरी थी वह औरत, उतनी ही मांसल उतनी ही उत्तेजित. . .उसी क्षण एमिल ने अनुभव किया था कि वह केवल नौकरी की तलाश में नहीं था, उसे और भी किसी खास चीज का अभाव था.

उसी चारपाई पर अपने को पाकर उसने ऐसा एहसास किया कि अभी-अभी एक गहरी नींद से उसकी आंखें खुली हैं. उस गहरी नींद में उसने जो सपना देखा था, वह इस वक्त भी उसकी आंखों के सामने अपना धुंधलापन लिये झिलमिला रहा था. उसने अपनी कल्पना पर जोर दिया ताकि वे धूमिल चित्र कुछ अधिक स्पष्ट हो जायें. उसके अपने मस्तिष्क का कोई दरवाजा हौले-हौले खुलता गया. एक यथार्थ को सपने में और एक सपने को यथार्थ में परिवर्तित करने के लिए उसने आंखें खोलीं पर यथार्थ और सपने दोनों का वही हुआ जो नींद के बाद सपने का होता है.

* *

कमरे में उमस थी. उसे सांस लेने में मुश्किल हो रही थी. वह चुपके से समुद्र की ओर चल पड़ा. इने-गिने बंगलों से कुछ लोग बाहर आने लगे थे. तट पर धीरे-धीरे रौनक आने लगी थी. कोई तो चार रंगों की बिकिनी नजर आयी. वह झाबे के पेड़ के नीचे बैठ गया. बगल के उस लाल बंगले से एक जोड़ी दौड़ती हुई आयी और बालू पर खड़ी हो गयी.

मर्द ने औरत को अपने अंक में कस लिया. औरत की बांहे मर्द के गले में जा लिपटीं. दोनों एक दूसरे को चूमते रहे. औरत की पीठ एमिल की ओर होने के कारण एमिल उस शरीर की बनावट को अपनी लोलुप नजरों से देखता रहा. उसकी अपनी भाषा में वह देखना न होकर, पीना था. वह पीता रहा. तभी उसे आभास हुआ कि वह जो पी रहा था, वह समुद्र का खारा पानी था. वह जितना अधिक पीता गया, उतनी अधिक बढ़ती गयी उसकी वह प्यास. समुद्र की विद्रोही फेनिल लहरों की तरह वह भीतर ही भीतर कराहता और चीत्कारता रहा. वह प्रभाव रेखा के उस पार के सागर की तरह था जो ऊपर से शांत होते हुए भी न जाने कितने बवंडर अपने भीतर छिपाये हुए था.

तभी उसके सामने से समुद्र के हलके लिबास में एक अधेड़ औरत गुजरी. उसके पीछे कोई तीन वर्ष का एक लड़का था. बच्चे की नजर एमिल पर पड़ जाने से वह 'मम्मी-मम्मी' पुकारता हुआ उस औरत से जा लिपटा एक झटके से एमिल के शरीर की सभी उष्णता काफूर हो चली. उसे अपनी मां की याद आ गयी.

उसने भी कोई आठ नौ वर्ष होने को था, अपनी मां से लि
कर गिड़गिड़ा उठा था. —मां-मां पा कित कवां!

लेकिन उसकी मां ने उसकी वह बात नहीं मानी थी और उ
छोड़ कर चली गयी थी. तीन ही महीने बाद एमिल के बाप को ज
खबर मिली थी, उसे उसने एमिल को आज तक नहीं बताया था
एमिल आज भी यही सोचता था कि उसकी मां कहीं न कहीं ज
रही होगी. उसके बाप ने उसे यह बताना चाह कर भी नहीं बता पाय
था कि उसकी मां जिस ड्राइवर के साथ भागी थी, उसी के हाथ
मारी जा चुकी थी.

बहुत कम अवसरों पर एमिल का बाप एमिल से
बातें करता था. एमिल कभी-कभार एकदम भूल जाता कि इस
होटल में वह अपने बाप के साथ रहते आ रहा है. अपने इर्द गि
की बहुत भारी तन्हाई को महसूस करके वह अपने आप से ऊब जाता.
कई मौकों पर उसने एक ऐसा एहसास किया है कि वह हर नाते से
अलग था.

मां ने बच्चे का हाथ थाम लिया था. दोनों आगे निकल चुके
थे पर एमिल बालू पर छूटे उन दोनों के पदचिह्नों को देखता रहा.
वे छोटे-बड़े पदचिह्न जितने स्पष्ट बालू पर थे, उतने ही स्पष्ट एमिल
के मस्तिष्क में भी थे. उसकी अपनी मां उससे दूर जा कर इसी तरह
का पदचिह्न उसके जीवन में छोड़ गयी थी.

* *

जिस जोड़ी को कुछ ही क्षण पहले उसने बिकिनी में देखा था,
इस समय वह समुद्र की तरंगों के बीच थी. दोनों एक दूसरे से सटे
हुए तैर रहे थे. उनकी आवाजें साफ सुनाई पड़ जाती थीं. उन पर
से नजरें हटा कर एमिल ने अपने अतीत की ओर देखा. वे दृश्य उसे
अच्छे नहीं लगे इसलिए उधर से भी उसने नजरें फेर लीं. अपने भविष्य
की ओर देखने का प्रयास किया. . . . उस घटाटोप अंधेरे में उसे कुछ
भी दिखाई न पड़ा अंधेरे के सिवाय. उसने एक आवाज सुनी. वह
उसके वर्तमान की आवाज थी. उसकी जिंदगी की एकमात्र हकीकत.
वर्तमान की आवाज सुनने के लिए उसे पीछे की ओर मुड़ना पड़ा.
सामने होसन खड़ा था अपने मैले फटे कपड़ों में. गांजे की खुमारी का
बोझ था उसकी आंखों और चेहरे पर—तुम्हें ढूंढा जा रहा है. जल्दी
करो. कई ग्राहक आये हैं.

एमिल अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ. अपने बोझिल शरीर को
लिये वह होटल पहुंचा. होटल का मालिक उसे देखते ही बरस पड़ा.

—तुम हर वक्त कहां गायब हो जाते हो? क्या हर वक्त तुम्हें
ढूंढ निकालने के लिए मुझे एक नौकर रखना होगा? कमरे नंबर
सात और दस अब तक साफ नहीं हुए है. पहले जाकर नंबर पांच का
आर्डर ले लो.

—जल्दी करो यों आंखें फाड़े मुझे क्यों घूर रहे हो?

एमिल चल पड़ा. नंबर पांच के सामने पहुंच कर ठिठका फिर
दरवाजे पर धीरे से दस्तक दिया

भीतर से आवाज आयी.

—ठहरो!

वह खड़ा रहा. पूरे तीन मिनट बाद दरवाजा खुला अब तक
कि रेडियो प्रोग्राम का झींगो समाप्त न हो गया.

झिझकते हुए भीतर पहुंच कर उसने सभी व्यापारी शिष्टाचा
के साथ पूछा·· —आप का आर्डर?

पूछते-पूछते उसकी नजर चारपाई पर लौट गयी थी जहां ए
औरत अपने अस्तव्यस्त कपड़ों में सिर झुकाये बैठी थी.

—एक बोतल मार्टिनी, साथ में मेनू भी लेते आना.

निकलने से पहले भी एमिल ने छिपी नजरों से चारपाई पर की औरत की ओर देखा. कोई पांच मिनट बाद ट्रे में मार्टिनी की बोतल दो गिलास, तौलिया और दूसरे प्लेट पर मेनू की पुस्तिका लिये दोबारा भीतर पहुंचा. इस बार औरत मेज के सामने की कुर्सी पर थी. उसकी आंखों की वह झिझक भी इस समय कुछ कम थी, फिर भी एमिल इसी नतीजे पर पहुंचा कि इस औरत का यहां पहुंचने का यह पहला अवसर रहा होगा.

हाथ में मेनू की किताब लेकर उस व्यक्ति ने औरत की राय ली और एमिल से पूछा —आपके यहां भेड़ हलाल होते हैं?

—दोनों तरह के हैं, आप जो चाहें. एमिल ने कहा.

—हलाल ही अधिक अच्छा रहेगा पर देखना अभी तुरंत नहीं पूरे दो घंटे बाद.

—जैसी आपकी मर्जी.

यह होटल के मालिक का सबसे कपट उसूल था कि हर चीज ग्राहक की मर्जी से सही. अपने मालिक का आर्डर निभा कर ग्राहक का आर्डर निभाने के लिए एमिल कमरे से बाहर होकर सीधे रसोई में पहुंचा जहां उसका बाप दो औरतों के बीच उबले हुए लाबस्टर को पकाने में लगा हुआ था. उनके सामने आर्डर रखकर एमिल बाहर आ गया.

होटल की खुली जगह में एक मिनट बैठा. सभी की नजरें बचाकर चार नंबर के कमरे में पहुंचा और भीतर से दरवाजा बंद कर लिया. बगल के पांच नंबर के कमरे की फुसफुसाहट अस्पष्ट थी लेकिन जो स्पष्ट था, वह था रह-रह कर उधर से आता हुआ सीत्कारने का स्वर.

चारपाई पर बैठा-बैठा एमिल सोचता रहा. तय करता रहा. सोचना जितना आसान था, तय करना उतना ही कठिन.

वह अपने आपसे झगड़ता रहा. उस ओर से आती आवाजों के साथ उसने उधर के दृश्य की कल्पना की उसके समूचे शरीर में आग-सी दौड़ने लगी थी. उसके शरीर में उष्णता भी थी, कठोरता भी और थोड़ा बहुत गीलापन भी. अपनी जगह से उठ कर वह दीवार की ओर बढ़ा. दीवार के उस छोटे से छिद्र से उधर के दृश्य को देखने के खयाल से वह कुछ झुका पर फिर एकाएक न जाने क्या सोच कर वह सीधा खड़ा हो गया.

उसने एक क्षण सोचा और दूसरे ही क्षण दरवाजा खोल कर कमरे से बाहर हो गया. होटल से बाहर हो कर उसने समुद्र की ओर देखा और फिर दूर तक फैली हुई पीछे की उस दुनियां की ओर जिससे वह दूर था, अपने ढंग की सीमित-सी दुनियां में.

होटल की घिरावट से बाहर होकर उसने एक लंबी सांस ली. अपने को कैद से बाहर महसूस किया और बिना किसी को कुछ बताये वह अपने सामने के विस्तृत संसार की ओर दौड़ पड़ा.

वह होटल और उसके माहौल से बहुत दूर निकल आया था, फिर भी उसका भागना बंद नहीं हुआ था.

वह अपने आप से भाग कर अपने आप को खो देना चाहता था. अपने आप को खो कर वह नये सिरे से अपने को पाना चाहता था.

वह बेहताशा दौड़ता रहा, एक नये क्षितिज की तलाश में.

□□□

त्रियोले,
मॉरिशस

एक लघुकथा

समानांतर

• सुभाष उपाध्याय

आंगन में मैंने लेटे हुए ही फुसफुसाहट को सुनकर पीछे गर्दन घुमा कर देखा तो मुन्नी और माया मेंहदी का घोल चिकना करने में संलग्न .

माया से कहता हूं—अच्छा ला, मैं तेरे मेंहदी लगाता हूं. चिकनी मेंहदी के घोल में से माचिस की तीली से छोटी-सी हथेली पर दो समानांतर रेखाएं खींच देता हूं—ऐसे ही रेखाएं. . .रेखाएं. . .कभी रंग न लानेवाली रेखाएं.

वही बाढ़. . . सूखा और फिर सहायता के लिए झिक-झिक. पंच, सरपंच, नगर परिषद के सदस्यों की ठप्पावेही. ऐसे ही दोपट्टी के लोग तीनपट्टी के लोगों को अपने जोर से अधभूखा-भूखा मरने पर विमर्श कर रहे होंगे.

. . .खटीकों को साढ़े तीन सेर, बामणों को साढ़े तीन सेर और कोलियों को दो सेर—बहन. . .लूट है लूट. . . हमारे बच्चा भूखे नहीं मर रहे हैं. . .जाने बिनी के बच्चा हैं. . .

मैं चिल्लाकर कहना चाहता हूं कि यहां क्यूं चिल्लाते हो. . .उखाड़ दो इन सब के झंडे. .मरना ही है तो लड़ के मरो—सड़ के नहीं. . .लेकिन चिल्ला नहीं पाता और मेरे चेहरे के सामने हाथ में लट्ठ लिये इस शहर के सरगना पहाड़ियाजी की जै के नारे लगाते गुजर जाते हैं.

तभी मेरी तर्जनी होठों तक जाकर रुक जाती है अनायास ही. . .और मुझे नंगा कर देती है—अंदर से अंदर तक. मार्केट की तरफ बाजार के पास वाली गली में सैकड़ों लोग थैला, चद्दरें लिये हुए होते हैं—एक दुकान पर. भीड़ में से पीछे खड़े एक आदमी से पूछने पर मालूम होता है, वार्ड मेंबर मुंशी गेहूं बांट रहा है. चारों ओर शोर है दुकान में. इस शोर के मध्य एक कड़कती तीखी टिटहरी-सी आवाज आती है—पच्चीस बोरी आयी हैं अभी से इतेक जल्दी कैसे खतम हो गयीं? 'बंटी नहीं हैं का' प्रति उत्तर में कई स्वर उभरते हैं—हां. . . हां. . .जा जा नहीं है हमारे पास तेरे जंचे जो कर लीजो. . .

—कर का लीजो. . .मैं हूं, तेरे का बाप को है!

भीड़ कम होने पर देखा कि मुंशी से झगड़नेवाला केशव है. सुनते ही मुंशीजी की मुट्ठियां कस जाती हैं—ऐसो ही भूख्यो मरयो जाय तो मांग खा ससुरे. . .

—पच्चीस बोरी कैसी देर में खतम हैं गयी?

केशव का अभी वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था कि मुंशी के छोटे भाई ने थप्पड़-घूंसा शुरू कर दिया. एक धक्के से गिरा केशव गली के कीचड़ में.

केशव उठा और गर्दन झुका कर चुपचाप एक ओर चल दिया, लेकिन इस आज के एक ओर जाने में व उस रोज के एक ओर जाने में बड़ा फर्क है. उस रोज हरिकीर्तन हो रहा था, इंद्रदेव की प्रसन्नता के लिए. मैंने इससे पूछा कि तुझे क्या मिलेगा? वर्षा होने से तेरी तो मजूरी मारी जायेगी.

केशव ने ऐसे देखा मानो मैंने मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछ लिया है.

मैंने माया की हथेली पर देखा. एक लाइन को बड़ी दिखाने हेतु उसके समानांतर एक छोटी लाइन खींच दी है. एक सूरज उन दो समानांतर रेखाओं के ऊपर ज्यामितिय शैली में बन गया है और उनके नीचे कटोरे-सी आंख है. माया के प्रश्न के उत्तर में मैं सिर हिला देता हूं. वह गुस्सा खाकर नल की टोंटी खोल हाथ नीचे धार के कर देती है. □□□

जलते हुए डैने • हिमांशु जोशी

खबर पढ़ कर सन्न रह गया! सच नहीं लगा कि शिव 'दा चल बसे!

बेड़ियों से जकड़ी उनकी दुर्बल देह; और सीमा भाभी का आंसुओं से भरा चेहरा बार-बार आंखों के आगे घूमने-सा लगता.

अभी कुछ ही दिन पहले की तो बात है, जब पुलिस का दस्ता अकस्मात हमारे क़स्बे में आया था. . .शिव 'दा को पकड़ कर ले जाने लगा तो जमघट-सा लग गया था. आतंकित औरतें, मरद, बच्चे, बूढ़े घरों से निकल-निकल कर बाहर आये और भयत्रस्त-से चारों ओर देखने लगे थे.

सेंवार की तरह शिव 'दा के बाल बढ़े थे, वैसे ही दाढ़ी! खादी के अस्त-व्यस्त, फटे कपड़े. कंधे पर तौलिये का काला चीथड़ा डाले नहाने जा रहे थे कि सीढ़ियों पर ही पुलिस ने घर दबोचा. वह कुछ कहें, कुछ बोलें, इससे पहले ही उनकी सूखी, पतली कलाइयों को लोहे की भारी-भारी हथकड़ियों से जकड़ दिया और पिल्ले की तरह उनके पिंजर को घसीट कर नीचे ले आये थे.

लोहे के टोप ओढ़े, संगीनधारी लंबे-तगड़े पुलिस के सिपाहियों के बीच घिरे कृशकाय शिव 'दा कैसे लग रहे थे. . .अवश भाव से चारों ओर देखते हुए!

गीले आटे से सने हाथ लिये सीमा भाभी खड़ी थीं—रो रही थीं. नन्हीं रूही खड़ी थी—रो रही थी. . .

पुलिस की गाड़ी चलने लगी तो शिव 'दा की देह कांपने लगी. मुट्ठियां भिचने लगीं. अजीब-से तनाव को चीरते हुए चीख पड़े सहसा—बं. . .दे. . .मा. . .त. . .र. . .! शब्द पूरा भी कह न पाये कि किसीके फौलादी पंजे ने उनका मुंह भीच लिया और गाड़ी धूल का गुबार उड़ाती हुई ओझल हो गयी.

सब सकते में आ गये थे. डरे हुए लोगों का आक्रोश अब उमड़ रहा था. वे तरह-तरह की बातें कर रहे थे. क्रुद्ध बच्चे धूल के गुबार की तरह दौड़ कर ढेले फेंक रहे थे. . .

रमाकांत शहीदाना अंदाज में जम कर खड़ा, आसमान की ओर अंगुली उठाये, भाषण दे रहा था—अंधेर है, अंधेर! ऐसा तो अंग्रेजों के राज में भी नहीं हुआ था. मैं पूछता हूं—इस भले आदमी का कसूर क्या है? इसने ऐसी क्या गलती की है? फिर इस निरपराध को इतनी बड़ी सजा क्यों दी जा रही है?. . .बोलो, देख क्या रहे हो—जवाब दो! शिवदास रोगी हैं—तपेदिक के. डाइबिटीज के. शिवदास जेल में मर गये तो उनके अबोध बच्चों का क्या होगा?. . .

पुलिस का खाकी ट्रक कस्बे की सीमा से दूर चला गया था. फिर भी सर्वत्र दहशत छायी हुई थी—पता नहीं पुलिस कब, किसे पकड़ कर ले जाये!

रमाकांत पागलों की तरह देर तक बड़बड़ाता रहा तो न जाने कब उसके वृद्ध पिता उसे घसीट कर ले गये. भीतर से कुंडी चढ़ा कर बोले—शिवदास की तरह क्या तू भी पगला गया है? सरकारी गल्ले की दूकान है मेरी. किसीने रपट कर दी तो लाइसेंस छिन जायेगा. बता, फिर इतने बच्चो का पेट कैसे भरेगा?

आवेश में रमाकांत चिल्लाया—मैं पूछता हूं, अब आपकी दुकान में गल्ला ही क्या है? क्या अब भी अपने बच्चों का पेट आप भर पा रहे हैं, जो व्यर्थ में चीखे जा रहे हैं. . .?

—अरे, तू तो सचमुच पगला गया है रे रमा! पिता हताश हो कर बोले—अब नहीं है तो फिर कभी तो होगा ही! आशा पर दुनिया जीती है!

रमाकांत ने अजीब-सा कड़ुवा मुंह बनाया—आशापर दुनिया जीती है. . .! हुं! और जमीन पर थूक दिया—पुच्च् से.

शिव 'दा के टूटे घर में फिर कभी दीया न जला. सारी-सारी रात किसीके रोने-सिसकने की आवाजें आती रहीं. अंधेरे में काले चमगादड़-से उड़ते दीखते तो भय लगता.

लोग कहते, दूर किसी अंधी जेल में शिव 'दा को ठूंस दिया है; जहां ऐसे हजारों कैदी हैं, जो पशुओं से भी बदतर जिंदगी जी रहे हैं. जानवरों के बाड़े की तरह औरतों को रखा गया है. तन ढकने के लिए पूरे वस्त्र तक नहीं. औरतों के पूरे वार्ड में केवल एक धोती! कभी बाहर से किसीका कोई रिश्तेदार मिलने आता है, तब वही धोती वह तन पर लपेट लेती है. और वापस आ कर उसीको फिर खूंटी पर टांग देती है.

अपना ही देश!

अपने ही लोग

जगह-जगह फटी हुई धरती, लाशों को नोचते हुए गिद्ध और सियार!

मेरा सिर घूमने लगता है. शिव 'दा का वह मासूम मुखड़ा आंखों के आगे तैरने लगता है, जब वह सुबह-सुबह इन वीरान खेतों में भटकते हुए बंकिम बाबू का गीत गुनगुनाया करते थे—

'सुजलाम् सुफलाम्. . .शिव 'दा की आंखों से रक्त की बूंदें झरने लगती थीं. . .

उस साल भी अकाल पड़ा था. पूरे तीन महीने तक शिव 'दा भटकते रहे. घर-घर, द्वार-द्वार, घूम-फिर कर अकाल-पीड़ितों के लिए अन्न जुटाते रहे.

दुर्बल तन पर चीथड़े टंगे रहते. पांवों में जूते तक नहीं! जब जो मिला, खा लिया, जहां रात हुई, सो गये.

सीमा भाभी रोती रहतीं. रूही जंगले पर खड़ी—ममी ओऽ पापा तो नहीं! फटे चीथड़े पहने जो भी भिखारी आता, उसीकी ओर चहकती हुई लपक पड़ती.

* *

कहते हैं—शिव 'दा के पिता सेमुअल रामदास यहां के आदिवासी क्षेत्र में बने मिशन अस्पताल में डाक्टर थे कभी. खादी के कपड़े पहनते थे. चर्खा कातते थे. इसलिए विदेशी सहायता से चलने वाले इस अस्पताल से संबंधित गोरे, अधगोरे अफसर और पादरी उनसे क्रुद्ध थे. उनका वश चलता तो कब का उन्हें हटा देते. किंतु इस पूरे इलाके में उनकी बड़ी धाक थी. उनके एक इशारे पर सारे आदिवासी सदैव मर मिटने को तैयार रहते.

ऐसा कोई आदमी न था, जिसकी उन्होंने सहायता न की हो. जाड़े में, पश्मीना ओढ़ कर किसी मरीज को देखने गये तो उसके शीत से ठिठुरते गात पर अपना पश्मीना डाल दिया. किसी रोगी के घर में राशन नहीं तो दवा के साथ-साथ राशन भी पहुंचा दिया. कितने ही आदिवासी बच्चों को उन्होंने पाठशाला भिजवाया. कितनों की किताबों और कापियों के लिए पैसे जुटाये.

अंत में सन् ४२ का आंदोलन शुरू हुआ. करो या मरो का नारा लगा तो, उन्होंने भी अस्पताल छोड़ दिया. तिरंगे झंडे के नीचे आदिवासी-क्षेत्र में नये आंदोलन का सूत्रपात किया. सरकार के पिट्ठुओं ने आदिवासियों के झोंपड़े गिरा डाले. स्कूल

की इमारतें तोड़ डालीं. कई पशु और आदमी जिंदा जला दिये. और उसी दमन-चक्र में शहीद हो गये—सेमुअल रामदास भी.

आज भी बाबा भीखनचंद उस दिन का आंखों देखा हाल सुनाते हैं तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं.

सेमुअल रामदास की लहूलुहान देह जमीन पर कुचले हुए केंचुए की तरह छटपटा रही थी. उनकी कांपती हुई मुट्ठियों में झंडा जकड़ा हुआ था. ओठ कांप रहे थे. फुसफुसाहट की-सी कांपती आवाज आ रही थी— इ–न–क–ला–ब!

यही उनके अंतिम शब्द थे शायद.

लोग कहते हैं—उस दिन मैदान में फैला बरसात का पानी तक लाल हो गया था.

जहां पर सेमुअल रामदास शहीद हुए थे, वहां अब बाजार बन गया है. 'शहीद चौक' के नाम से एक चबूतरा है (जिसमें कभी-कभी कस्बे के गुंडे ताश खेलते हैं.)

वही 'शहीद-चौक' अब सराय बनी शिव 'दा की.

वैसी ही कद-काठी, वैसा ही रूप-रंग. शिव 'दा जब खादी के कपड़े पहनते, लोग कहते—हू-ब-हू पिता की प्रतिमूर्ति लगते हैं. बोलने का लहजा, चलने का ढंग—कहीं रत्ती-भर भी तो अंतर नहीं...

मां जनते ही मर गयी थीं. कुछ समय बाद पिता भी यों अनाथ छोड़ गये तो मौसी के घर पले... दूसरों के सहारे पढ़-लिख कर शिव 'दा एक दिन अध्यापक हो गये थे—आलमगंज के इसी प्राइवेट स्कूल में.

रूप-रंग, चाल-ढाल ही नहीं, आदतें भी उन्हें विरासत में मिली थीं— पिता से. रात में प्रौढ़ पाठशाला चलाते. दिन में स्कूल से लौट आने पर गरीब बच्चों को घर पर बुला कर पढ़ाते.

सीमा भाभी कुढ़ती रहतीं, लेकिन परमहंस की तरह शिव 'दा मौन साधे रहते.

कभी-कभी हंसी में कहतीं—याद है, आपका जन्म २५ दिसंबर को हुआ था—ईसा की तरह...

शिव 'दा सीमा भाभी के चेहरे की ओर अबोध बालक की तरह ताकते रहते. उनकी बात काटते हुए चट बोल पड़ते—हां, तब तो मुझे भी एक दिन सलीब पर लटकना होगा ...देखना, जरूर लगेगी फांसी.

—चुप, चुप! सीमा भाभी उनके होठों पर हथेली रख देतीं—ऐसा क्यों कहते हैं? आपको क्यों लगेगी फांसी? आपने क्या गुनाह किया है ऐसा...?

यों ही व्यंग्य भाव से हंस देते शिव 'दा—तू तो निरी भोली है. फांसी पर झूलने के लिए क्या गुनाह करना जरूरी है? बता, ईसा ने क्या गुनाह किया था? सुकरात को क्यों जहर दिया गया था..?

सीमा भाभी प्रत्युत्तर में चुप हो जातीं और शिव 'दा भी.

* *

आधी-आधी रात तक वह चर्खा कातते, पुस्तकें पढ़ते और पत्नी को समझाते—जिंदगी तो एक दिन खतम होनी ही है, पर इसे किसी अच्छे काम पर क्यों न लगायें? अपना पेट तो चौपाया भी भरता है. आदमी और पशु में कुछ तो अंतर है...

सीमा भाभी चुपचाप सुनती रहतीं और मौन हो जातीं. कभी-कभी यह सब असह्य हो उठता तो तुनक पड़तीं—मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए. मैं आधे पेट खा कर, फटे कपड़े पहन कर भी रह लूंगी, पर इस रूही का तो कुछ खयाल करो. इसके भविष्य के बारे में भी तो सोचो.

—ये जो सड़क पर टूटा कटोरा लिये भीख मांगते, नंगे बच्चे देखती हो—क्या इनमें कहीं कभी तुम्हें रूही की शक्ल नजर नहीं आती? ऐसी कितनी ही रूहियां हैं—तुम नहीं जानतीं...तुम नहीं जान सकतीं...

शिव 'दा पता नहीं किस समाधि में लीन हो जाते. और सीमा भाभी आसमान की ओर देखने लगतीं—जैसे कुछ खोजती हुई निगाहों से.

* *

एक दिन शिव 'दा की नौकरी छूट गयी. प्राइवेट स्कूल था—सरकारी सहायता से चलता था. मैनेजिंग कमेटी के चेयरमैन लाला सुखनप्रसाद का आरोप था कि शिवदास विद्यार्थियों को भड़का रहे हैं. सरकार के खिलाफ आंदोलन में भाग ले रहे हैं. अगर शिवदास इस स्कूल में बने रहे तो सरकारी सहायता नहीं मिलेगी... अगर सरकारी सहायता नहीं मिलेगी तो स्कूल नहीं चलेगा. अतः सरकार बंद करवाये, उससे पहले ही हमें स्कूल बंद कर देना चाहिए.

उन्हें डर था कि शिवदास को जबर्दस्ती हटाने पर विद्यार्थी स्कूल की इमारत जला डालेंगे.

—पर स्कूल बंद कैसे हो सकता है? इस देश में तो अभी करोड़ों लोग हैं—निरक्षर, जिन्हें शिक्षा की जरूरत है—ज्ञान की. शिव 'दा ने कहा और स्वयं ही हट गये रास्ते से.

* *

जहां-जहां बाढ़ आती, जहां-जहां अकाल पड़ता, महामारी फैलती—शिव 'दा वहां पहुंच जाते.

इस वर्ष चेचक से कितने ही लोग मर गये, पर अखबारों में यों ही लीपा-पोती होती रही. हजारों लोग मरते, पर सरकारी आंकड़े

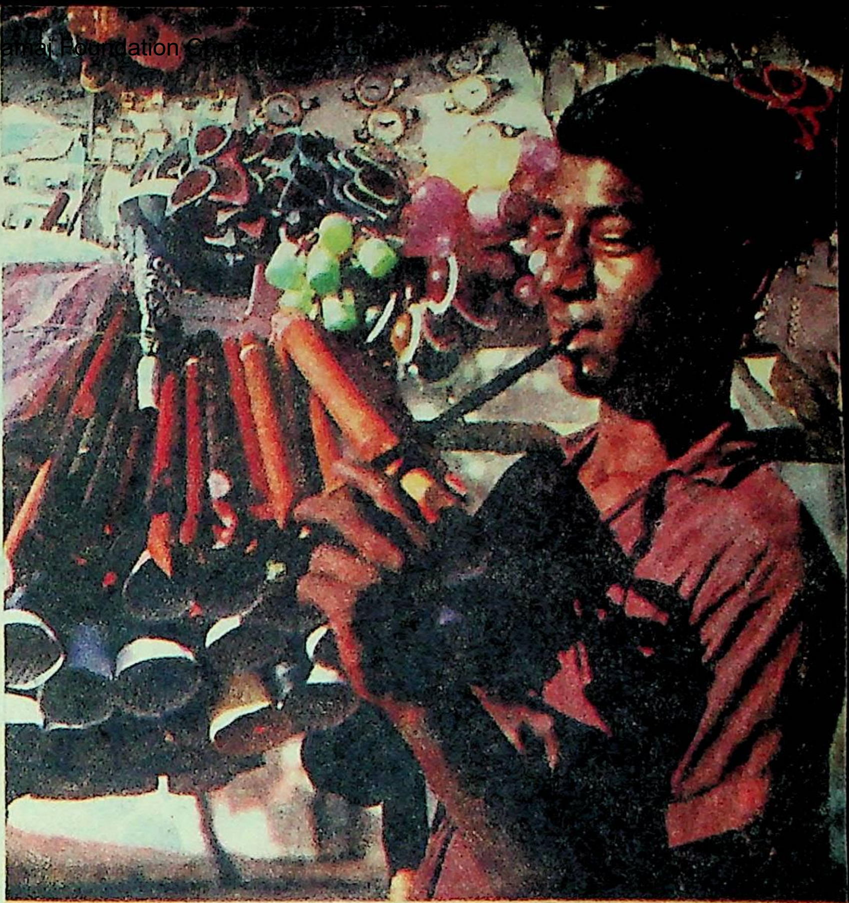

● भगवानदास रूपानी

उसकी
सुन्दरता का
रहस्य ही
ऐटेक्स सौंदर्य प्रसाधन

EYETEX
REGD.
EYETEX
BINDI
EYETEX

ARAVIND LABORATORIES MADRAS-33

ताक़त
मर्द की शान मर्द की पहचान

इस ताक़त को बनाये रखने के लिए, सदाबहार चुस्ती, फ़ुर्ती और नौजवानी की सी उमंग के लिए ओकासा स्वास्थ्यदायक टॉनिक टिकियाँ लीजिये। ओकासा टॉनिक टिकियों की अनोखी शक्ति से आपके शरीर और दिमाग़ को लगातार नयी ताक़त मिलती है।
ओकासा की टिकियों पर चाँदी चढ़ी रहती है।

ओकासा
टॉनिक टिकियाँ
पुरुषों के लिए चांदी वाली
हार्मो-फ़ार्मा लिमिटेड लंदन-बर्लिन का उत्पादन
सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहां मिलता है।

OKASA CO. PVT. LTD.
12A Gunbow Street, P.B.No.396,
Bombay-400001.

SILVER FORMED
OKASA
THE 20TH CENTURY TONIC
RESTORATIVE
Manufactured by
OKASA CO. PVT. LTD BOMBAY 1
FOR
HORMO-PHARMA LTD.
LONDON-BERLIN

दस-बीस से ऊपर न पहुंच पाये. [illegible] मची थी. चीटियों की मौत मर रहे थे लोग. लावारिश लाशों के अंबार लगे थे. पर कोई पूछने वाला तक न था...

शिव'दा प्राणों की परवाह न कर अपने कुछ साथियों के साथ निकल पड़े. लोग कहते––शिवदास वहां से बच कर नहीं लौटेंगे. पर शिवदास कुछ महीनों बाद फिर सामने खड़े थे ––जीते-जागते !

और इस अकाल में तो उन्होंने हद ही कर दी. जब कहीं कुछ न बना तो सरकारी दफ्तरों के आगे धरना दिया. अफसरों की कारों के आगे लेट गये.

बड़े-बड़े मंत्रियों को, नेताओं को लिखा, तब भी पूरी सहायता न मिली तो शिव'दा अपने साथियों के साथ घर-घर, द्वार-द्वार घूम कर अन्न के दाने और फटे चीथड़े इकट्ठा करते.

सरकारी अफसर कहते कि लोग भूख से नहीं, पौष्टिक तत्वों की कमी के कारण मर रहे हैं. तो शिव'दा भूख से मरे लोगों के अस्थिपिंजर अपने दुर्बल कंधों पर लाद-लाद कर थाने के सामने पटकते––यह देखो, अब भी कह सकते हो कि ये भूख से नहीं मरे? शिव'दा के दांत भिंच जाते. आंखों में लाल डोरे उभर पड़ते.

लोग पागल समझते उन्हें और हंस देते.

कुछ आत्मीय लोगों ने कहा––शिवदास, तुम्हारे पिता स्वाधीनता–संग्राम में शहीद हुए थे. यह फार्म भर दो. तुम्हारे बच्चों को कुछ सहायता मिल जायेगी.

शिव'दा ने फार्म के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और 'हां-हा-हा !' पागलों की तरह अट्टहास करते हुए हंसने लगे.

* *

इस आदिवासी क्षेत्र में भूख से नौ सौ पंद्रह लोग मरे... सरकारी अनाज चोरबाजारी में बिकता रहा––शहरों में.

दवाएं देखने तक को न मिलीं..दुर्भिक्ष-पीड़ितों ने जुलूस निकाले तो उन पर गोलियां बरसायी गयीं. उन्हें देशद्रोही करार किया गया...नेता लोग आये और फोटो खींचवा कर चले गये....थाने के आगे धरना देने वालों को चौराहों पर घसीटा गया. आदिवासी औरतों के साथ बलात्कार किया गया...

वह रात-रात भर जाग कर कागज के टुकड़ों पर पता नहीं क्या-क्या लिखते और उन्हें किसी डिब्बे में जतन से सहेज कर गड्डे में डाल देते–––ऊपर से मिट्टी आदि से ढक कर.

कहते––ये 'कालपात्र' हैं. कभी कोई जमाना आयेगा, जब लोग देखेंगे कि जनतंत्र और समाजवाद के नाम पर इस देश में क्या-क्या नहीं हुआ ?

'शिव'दा सचमुच पागल–से हो गये थे. पत्थरों पर कोयले से लिखते, बड़ी-बड़ी दीवारें रंग देते. चौराहों पर खड़े हो कर भाषण देने लगते.

उनकी इन हरकतों से परेशान हो कर पुलिस उन्हें स्वयं पीटती, गुंडों से पिटवाती. न जाने कितने इल्जाम लगा कर उन्हें कितने दिनों तक थाने में बंद रखती––भूखा, प्यासा!

* *

इस बार लगान की वसूली के प्रश्न पर जो आंदोलन छिड़ा उससे कानूनी-व्यवस्था ही खतरे में पड़ गयी थी. आंदोलनकारियों की धर-पकड़ शुरू हुई तो सबसे पहले पुलिस की निगाह शिव'दा पर ही पड़ी. बेचारों को मेमने की तरह घर से घसीट कर ले गयी..

अदालत में मुकदमा चला तो शिव'दा ने केवल इतना ही कहा था, अपनी सफाई में––मैंने जो कुछ भी कहा, सच कहा था. सच बोलने की सजा अगर मृत्यु-दंड है तो मुझे वह भी मंजूर है...

शिव'दा का सारा शरीर लहूलुहान था. कपड़े तार-तार फटे हुए थे!

फिर पता नहीं किस काल-कोठरी में ठूंस दिया था उन्हें, तड़प-तड़प कर मरने के लिए. जहां से एक दिन बाहर निकला था केवल उनका अस्थिपंजर!

सूखा हुआ शरीर––हड्डियों का ढांचा मात्र! बढ़ी हुई दाढ़ी! कैदियों के फटे कपड़े! खुली हुई निष्प्राण आंखों में विचित्र-सी वेदना !

* *

शव आलमगंज लाया गया तो एक भी आदमी बाहर न निकला––पुलिस के आतंक से. पादरी समेत केवल चार-पांच लोग थे.

शव को ताबूत पर रखते समय मैंने देखा––उनके सारे शरीर पर जगह-जगह नीले निशान थे. लगता था अब भी जख्म कराह रहे हैं..सूखे हुए होंठ कुछ कहने के लिए अब भी फड़फड़ा रहे हैं...

मैं निर्निमेष उनकी ओर ताकता रहा...

उन्हें दफनाये आज कितने दिन हो गये ! पर लोग कहते हैं––रात के अंधियारे में 'शहीद-चौक' पर शिव'दा आज भी बैठे दिखलाई देते हैं. आज भी अकाल-पीड़ितों के लिए भीख मांगते हुए भटकते हैं. रात के अंधकार में आज भी अपने खंडहर के द्वार खटखटाते हैं तो सीमा भाभी दहाड़ मार कर रोती हैं. रूही चीख पड़ती है, पर उस वीरान खंडहर में सारी आवाजें विलीन हो जाती हैं और फिर छा जाता है ––मौत का-सा सन्नाटा ! ☐☐☐

६०६, नेता जी नगर,
नई दिल्ली–११००२३

हिमांशु जोशी (जन्म: ४ मई, १९३५) ने अपने समय की सच्चाइयों को समझा और परखा है. इन्होंने मानवीय संवेदना और नयी मानसिकता का सूक्ष्म निरूपण किया है और भ्रष्ट व्यवस्था के घृणित पक्ष को उजागर किया है. इनकी कहानियां जिंदगी के यथार्थ की कहानियां हैं. इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से जीने की अनिवार्य शर्त के रूप में आम आदमी के संघर्ष को अभिव्यक्त की है. इनके पात्र समाज में व्याप्त छल के खिलाफ लड़ाई जारी रखने वाले लोग हैं.

गुस्ताख़ियां

• प्रकाश पंडित

एक जमाने में दिल्ली में उर्दू के चार अदीबों की चंडाल चौकड़ी बड़ी मशहूर थी. जगन्नाथ 'आजाद', पद्मश्री गुलाम रब्बानी तावां, प्रकाश पंडित और रवि चोपड़ा (जो अदीब नहीं अदब-नवाज थे). अदब-नवाज रवि चोपड़ा हर शनिवार की शाम को अपने तीनों दोस्तों को अपने यहां खाने पर आमंत्रित करके खूब डट के व्हिस्की पिलाते थे और हर बार व्हिस्की में सोडा डालने के बाद उसे चम्मच से खूब अच्छी तरह घोंटते हुए दोस्तों को भी वैसा करने की हिदायत करते थे और बताते थे कि ऐसा करने से बुढ़ापे में हाथों में रा'शा (कंपन रोग) नहीं आयेगा.

संयोग की बात! एक बार सोडा न मिला और पानी से काम चलाना पड़ा. चम्मच नियमानुसार मेज पर पड़े थे. गिलास में व्हिस्की और फिर पानी पड़ते ही आजाद साहब ने नियमानुसार गिलास में चम्मच चलाना शुरू कर दिया. इस पर उन सबने उनकी ओर आश्चर्य से देखा और तावां साहब ने, जो उस समय तक पद्मश्री नहीं बने थे, उनसे कहा--यह तो पानी है आजाद! इसे क्यों चला रहे हो?

--चला लेना अच्छा होता है, व्हिस्की के मामले में नये पापी होने के कारण आजाद साहब ने बड़े सरल भाव से कहा, उमसे बुढ़ापे में रा'शा नहीं आयेगा.

शक्कर में चाय

जगन्नाथ आजाद साहब के स्वर्गीय पिता जनाब तिलोकचंद 'महरूम' उस जमाने की पैदावार थे जब पंजाब में चाय पीने का कतई रिवाज नहीं था. चाय सख्त जाड़े के दिनों में कभी-कभार ही घरों में बनती थी जिसमें सौंफ, मोटी इलायची और ढेर सारी शक्कर डाल कर जाड़ा दूर करने की औषधि के रूप में घर के छोटे-बड़े सभी लोगों को गिलास भर-भर कर दी जाती थी.

भारत-विभाजन के बाद उन्हें भी विवश हो भारत में और फिर राजधानी दिल्ली में आना पड़ा. और उस समय दिल्ली की साहित्यिक गतिविधियों की संचालिका हमीदा सुल्तान साहिबा (सेक्रेटरी अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू) द्वारा बुलायी गयी एक साहित्यिक गोष्ठी में शामिल होना पड़ा, जहां जीवन में पहली बार उन्होंने देखा और सुना कि चायदानी को रुई की रजाई ओढ़ायी जाती है और उसे टीकोजी कहते हैं.

टीकोजी उठा कर हमीदा सुल्तान साहिबा ने प्यालों में चाय उंडेली. फिर दूध डाला और शक्करदानी उठा कर सबसे पहले पड़ने वाले 'महरूम' साहब से पूछा--आप कितनी शक्कर लेंगे?

--शक्कर! महरूम साहब बौखलाये क्योंकि पंजाब में शक्कर गुड़ के चूरे को कहते हैं जिसमें असली घी डाल कर मकई की रोटी के साथ खाया जाता है-- आप औरों को दीजिए, मैं बाद में ले लूंगा.

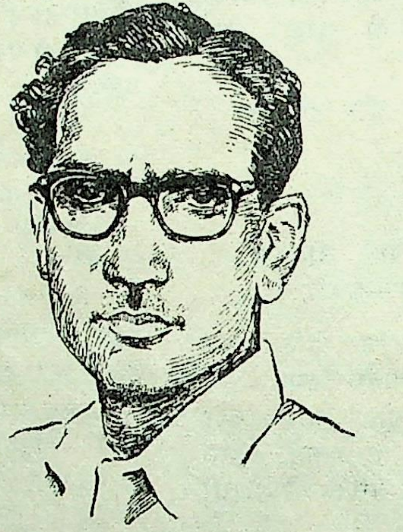

जगन्नाथ 'आजाद'

और जब उन्होंने देखा कि वह शक्कर नहीं चीनी थी तो वह संतुष्ट हो गये. सबके प्यालों में चीनी या शक्कर डालने के बाद हमीदा सुल्तान साहिबा ने पुन: उनकी ओर शक्करदानी और चम्मच बढ़ाया तो बुजुर्गवार ने उनके हाथ से शक्करदानी लेते हुए कहा-- आप क्यों जहमत फर्माती हैं, मैं खुद ही लिये लेता हूं. और यह कह कर अपने प्याले की चाय शक्करदानी में उडेल कर और चम्मच से हिला कर अपनी लंबी-लंबूतरी मूंछों को बचाते हुए सुड़क-सुड़क कर वह काढ़ा पीने लगे.

प्रतीक्षा

चाय, शक्कर, दूध के जिक्र से एक बड़ी पुरानी घटना ताजा हो गयी है. प्रकाश पंडित उन दिनों शाह आलमी दरवाजा (लाहौर) के इलाका वच्छोवाली की एक संकरी गली में रहते थे और चालीस रुपये मासिक वेतन पर अमृतधारा फार्मेसी में नौकरी करते थे कि उन्हीं की तरह के एक खस्ता हाल अदीब उनसे मिलने आये. बीवी से चाय बनाने के लिए कहा तो उस भागभरी ने बताया कि घर में दूध नहीं है.

--दूध मैं ले आता हूं. सम्मानित अतिथि ने अपनी विशालहृदयता का प्रमाण देते हुए कहा, बशर्ते कि आप दूध के पैसे दे दें.

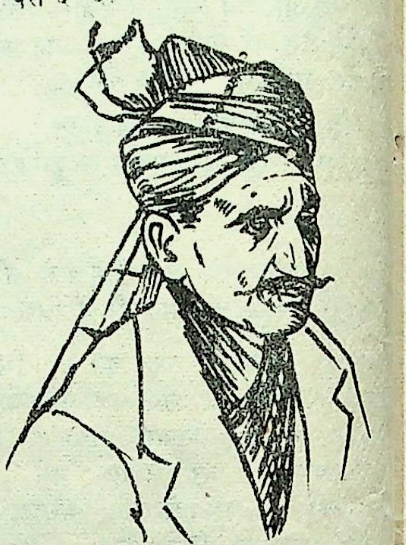

तिलोकचंद 'महरूम'

चार आने से भी कम में सेर भर दूध मिलने वाले उस जमाने में पाव भर दूध लाने के लिए घर में रेजगारी नहीं थी इसलिए किसी अत्यंत आवश्यक काम के लिए संभाल कर रखा हुआ एक रुपये का सालम नोट सम्मानित अतिथि को दे दिया गया.

वह दिन और आज का दिन--प्रकाश पंडित की बीवी आज तक चाय के लिए दूध लाने वाले उस सम्मानित अतिथि की प्रतीक्षा कर रही है जो उस भले दिनों में उससे पूरा एक एक रुपया हथिया ले गया था.

--और वह सम्मानित अतिथि थे उस समय के उभरते कहानीकार और आज के प्रसिद्ध फिल्म-निर्माता --रामानंद सागर!

प्रतिकूल

अब जब कि खाने-पीने का जिक्र चल

निकला है तो चलिए आपको गुड़गांव (हरियाणा) में कृश्नचंदर के एक अभिन्न मित्र डॉक्टर गरेवाल के यहां ले चलें, जो कृश्नचंदर के परामर्श पर फिल्म बनाने के बावजूद आज भी अदब-दोस्त और अदीबनवाज हैं.

गुड़गांव में बड़ा सुंदर बंगला बनवाया है उन्होंने और मौका-बेमौका शायरों और अदीबों को घेर-घार कर वह उन्हें अपने यहां ले जाते हैं.

उन्हें व्हिस्की पिलाते हैं. उम्दा खाना खिलाते हैं और अपने सामाजिक स्तर को नये सिरे से ऊंचा उठाने के लिए उन महफिलों में क्षेत्र के सम्मानित व्यक्तिओं को आमंत्रित करते हैं.

ऐसी ही एक महफिल में इन पंक्तियों का लेखक भी उनका मेहमान था. और अन्य कई शायरों के साथ जवांमर्द नरेश कुमार 'शाद' भी थे. घुत हो लड़खड़ाते हुए वह सम्मानित आतिथ्यकर्ता के बेडरूम में जा घुसे और अश्लील गालियां बकते हुए बोले——हुस्न और जवानी को कैद करने के लिए मा. . . शानदार बंगले बनवा कर उनकी नुमाइश करते हैं. न जाने उनके भीतर से क्या चीज बोल रही थी——आज रात मैं यहां सोऊंगा.

रामानंद सागर

लेकिन उन्हें वहां नहीं सोने दिया गया. कार में लाद कर उन्हें उनकी मोटी-फुसक्कड़ लेकिन ब्याहता हिंदू पत्नी के पास पहुंचा दिया गया.

और यह सब कुछ देख कर इन पंक्तियों के लेखक को आत्महत्या करने वाले रूस के क्रांतिकारी कवि मायकोवस्की के जीवन की वह घटना याद आ गयी जब एक अत्यंत सुंदर अमीरजादी ने मायकोवस्की से कहा था——मायकोवस्की, तुम्हारी कविता इतनी कर्कश क्यों है? यह तो कानों के पर्दे फाड़ती है.

——यह अत्यंत कोमल हो सकती है प्रिये ! मायकोवस्की ने उत्तर दिया था——अगर तुम एक रात मेरे साथ रह जाओ.

नेक मशविरा

खाने-पीने की एक और महफिल जमी थी——स्टंट फिल्मों के हीरो चंद्रशेखर के अंधेरी स्थित बंबई के मकान में. चंद्रशेखर साहब के हिसाब से तो वह काम के सिलसिले की मीटिंग थी क्योंकि अपने मित्र भारतभूषण के मशविरे से उन्होंने स्वयं एक सामाजिक फिल्म बनाने और उसमें हीरो बनने का प्रोग्राम बनाया था. फिल्म के कहानीकार और निर्देशक तय हो चुके थे——कुंदनकुमार. और भारत भूषण साहब के सेक्रेटरी पाराशर साहब को एक हजार एक रुपये का चेक इस निर्देश के साथ दिया गया था कि जब फिल्म की कहानी सुन कर प्रकाश पंडित उसके संवाद लिखने पर सहमत हो जायें तो वह चेक उन्हें अग्रिम राशि के रूप में दे दिया जाये.

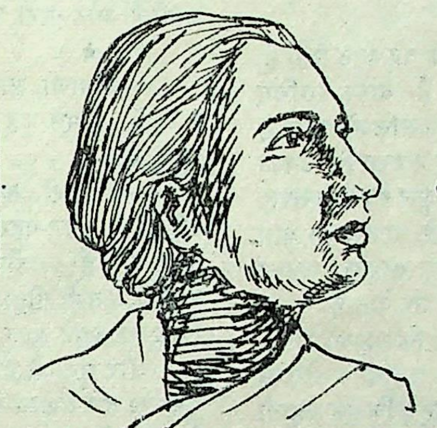

नरेशकुमार 'शाद'

कहानी सुनाने के लिए रात के आठ बजे का समय निश्चित हुआ और उस जमाने में चूंकि बंबई में पूर्ण नशाबंदी थी इसलिए व्हिस्की की एकाध असली और अनगिनत नकली बोतलें जुटाने के बाद कहानी सुनाने का प्रोग्राम प्रारंभ हुआ.

और रात के न जाने कितने बजे जब कहानी का अंत हुआ तो उस समय तक प्रकाश पंडित बिलकुल 'सत्य की स्थिति' में पहुंच चुके थे. और जब उनसे पूछा गया कि उन्हें वह कहानी कैसीं लगी थी तो उन्होंने मशविरा दिया कि वह उस कहानी पर फिल्म न बनायें.

——क्यों? प्रत्यक्ष है कि इतनी तैयारी के बाद जब कि उन्हें वह कहानी पसंद थी, वह यही पूछ सकते थे.

——क्योंकि यह फिल्म बनेगी नहीं, प्रकाश पंडित ने अपने एक हजार एक रुपयें के चेक को नजरअंदाज करते हुए उन्हें समझाया——किसी तरह बन गयी तो बिकेगी नहीं. बिक गयी तो लगेगी नहीं. लग गयी तो चलेगी नहीं. चलेगी तो केवल कुर्सियां और दूसरे शो में आने वाले लोग जब सिनेमा के मैनेजर से पूछेंगे कि हाल की आधी कुर्सियां कहां गयीं, तो उन्हें जवाब मिलेगा कि पहला शो देखने वाले तोड़ गये हैं.

किस्मत

उन्हीं दिनों संगीतकार ऊषा खन्ना फिल्मालय की फिल्म 'हम हिंदुस्तानी' का संगीत दे रही थीं और उनके पूज्य पिताजी यह टोह लगा लेने के बाद कि प्रकाश पंडित स्टुडियो के मालिकान से अपने संबंधों के आधार पर उनकी बेटी को अगली फिल्म का संगीत भी दिलवा सकते हैं, प्रायः प्रकाश पंडित के कमरे में पहुंच कर बंबई की भाषा में उन्हें मसका लगाते, ऊषा खन्ना से दिलीपकुमार के इश्क की अफवाह फैलाते.

एक दिन इसी प्रकार की बातों के दौरान वह प्रकाश पंडित का हाथ पकड़ कर बैठ गये और कभी सीधा और कभी उलटा करके, कभी यहां से और कभी वहां से दबा कर फर्माने लगे——अगरचे आप किस्मत को नहीं मानते लेकिन आपका हाथ बता रहा है कि आप किस्मत के धनी हैं. किस्मत ! किस्मत ही तो सब कुछ है. किस्मत न हो तो कोई मेहनत, कोई तदबीर कारगर नहीं होती. आप खुद ही सोचिए कि यह किस्मत ही तो है जिसने फिल्मी दुनिया में आते ही आपको मुकर्जी ऐसे प्रोड्यूसर से मिला दिया.

——लेकिन इस किस्मत का नाम तो साहिर लुधियानवी है.

——यह भी तो किस्मत ही है कि साहिर लुधियानवीं आपके दोस्त थे और उन्होंने आपको मुकर्जी से मिलवा दिया. वर्ना मुझ ऐसे राइटर (किसी जमाने में वह राइटर भी थे) बरसों फिल्मी दुनिया में जूतियां चटखाते रहे और किसी ने 'फिट्टे मुंह' तक न कहा. और इसीलिए मैं आपसे कहता हूं कि आप किस्मत को मान जाइए.

——अच्छी बात है, प्रकाश पंडित ने किस्मत को मानते हुए कहा, आखिर यह मेरी किस्मत ही तो है जो पिछले डेढ़ घंटे से मैं आपकी यह बकवास सुन रहा हूं. □□□

एक बिछा हुआ आदमी

विभु कुमार

मुझे उनसे कोफ्त होने लगी थी. मैं आज तक भी नहीं जान पाया कि यह स्थिति मेरे साथ कब से शुरू हुई. बस अचानक ही मुझे महसूस हुआ कि अब तक मैं इस आदमी को कुछ और समझ रहा था, जबकि वह कुछ और ही है. मुझे दुख हुआ था कि इस आदमी के बारे में मेरा असेसमेंट गलत निकला. यूं मेरे साथ ऐसा अकसर ही होता है— कोई नयी बात नहीं थी. बल्कि बाबूजी की मुझसे अकसर यही शिकायत रही है कि मैं आदमी नहीं पहचान पाता. जिसे देखो वही मुझे मूर्ख बना जाता है. इसलिए मुझे दुख नहीं होना चाहिए था. क्योंकि मेरा विश्वास था कि जिंदगी में मैंने पहली बार सही चुनाव किया है. और अपनी इस खुशफहमी को मैं काफी दिनों तक बनाये रहा. इसीलिए मुझे पहली बार दुख हुआ— और मुझे लगा कि मैं सचमुच चुगद हूं.

वे मेरे जीवन के अजीब-से दिन थे. आज सोचता हूं तो हंसी आती है. उस वक्त मैं हर आदमी का विश्वास प्राप्त करना चाहता था और हर आदमी का प्यार पाना चाहता था. यही वजह थी कि जहां भी कहीं मैं ढलान देखता, फिसल जाता. ऐसे वक्त वह मेरे लिए एक सहरा बन कर आये थे. मैंने फौरन उन्हें पकड़ लिया. आज लगता है कि मैंने रस्सी के धोखे में सांप पकड़ लिया था.

मुझे सांप से डर लगता है, इसलिए नहीं कि वह काट लेता है, कि उसमें जहर होता है, जिससे आदमी मर जाता है, बल्कि इसलिए कि वह लिजलिजा होता है— और मुझे हर लिजलिजी चीज से कोफ्त होती है, घिनोनापन लगता है और इसलिए नफरत है. उनका व्यक्तित्व भी बेहद की हद तक लिजलिजा है, बिल्कुल सांप की तरह. यही कारण है कि वह अब मुझसे बरदाश्त नहीं होते. एक कदम आगे बढ़ कर कहूं कि मैं उन्हें बरदाश्त नहीं करना चाहता. उनका लिजलिजापन मुझमें अजीब-सी घिनौनी अनुभूति भर देता है.

मुझे मालूम है कि आपको नहीं लग रहा होगा कि यह कहानी है. लेकिन कहानी होती क्या है. शायद आपके लिए कहानी मनोरंजन का दूसरा नाम है. लेकिन मैं आपसे साफ-साफ कह दूं कि इस कहानी से आपका मनोरंजन नहीं होगा. आप चाहें तो इसे पढ़ना या सुनना बंद कर सकते हैं. मैं क्या करूं, मुझे मनोरंजन के लिए लिखना जो नहीं आता. मैं तो अनुभवों को लिखता हूं. अनुभव, जो तल्ख सच्चाइयां होते हैं और मनोरंजन नहीं देते. अतः आप मुझे माफ करेंगे— अगर आपको लगे कि मैंने आपका समय नष्ट किया हो. चूंकि अब मैं कहानी शुरू कर चुका हूं— इसलिए खत्म तो करूंगा ही.

वह अच्छे खासे आदमी हैं. बिछे-बिछे-से, यानी सर्मपित किस्म के. उनकी यही खूबी है कि वह बिछना जानते हैं और इसी बिछने के बल पर वह एक सफल-दुनियादार आदमी हैं. हर आदमी उनके गुण गाता है (यूं मैंने उनकी पीठ पीछे उन्हें गालियां खाते भी सुना है) कई अवसरों पर मैंने देखा है, कि जहां उन्हें आपे से बाहर हो जाना चाहिए था— वह हंसते रहे, मुसकराते रहे. सच मानिए, अगर मैं या आप भी होते तो आपे से बाहर हो जाते.

मैं समझ गया कि आप बोर हो रहे हैं. अब बताइए मैं क्या करूं. मेरे साथ यही तो दिक्कत है कि मैं वैसा नहीं कर सकता जैसा सब करते हैं— मेरी समझ में नहीं आता कि आप मेरी मजबरी क्यों नहीं समझते. मैं, आजकल का, तथाकथित 'पाकिट बुकी' कथाकार नहीं हूं, जो हर कहानी प्यार-मोहब्बत की चासनी में डुबा कर लिखते हैं.

लीजिए मैं फिर से उनकी बात पर आता हूं. अब कुछ दूसरी तरह से.

—सर, मैं आपके घर गया था. आप नहीं थे. भाभीजी मिली थीं.

(सर चुप हैं और होठों में मुसकरा रहे हैं.)

—सर, कुछ भी कहिए, भाभीजी से मिल कर तबियत प्रसन्न हो गयी.अन्नपूर्णा हैं, साक्षात् अन्नपूर्णा. उस दिन जो जो चीजें आपके घर खायीं, आहा! क्या बात थी. क्या स्वाद था. सच जानिए सर, तब से आज तक घर में भर पेट नहीं खाया. दरअसल खाना ही नहीं चाहता. कम-से-कम इसी बहाने स्वाद तो बना रहेगा.

(सर अब कुछ और मुसकरा देते हैं.)

—सर, वो आपसे कहा था न, सब ठीक हो जायेगा. मैंने कर दिया है. आप चिंता न करें— एकदम. (सर पीठ पर हाथ रख कर फेर देते हैं. उनका मुंह कुत्ते-सा हो जाता है. पीछे दुम-सी निकल आती है. और सारा शरीर कदमों में बिछ जाता है.)

* *

—गीताजी, आप भी क्या बात करती हैं. आप बुलायें और हम न आयें. आपने कह दिया यही बस है— हमारे लिए. (गीताजी बहूत खुश.)

—गीताजी, कमाल का लिखती हैं आप भी. चकित हूं आपकी प्रतिभा से. घर-गृहस्थी, बाल-बच्चों की झंझट के बावजूद आप लिख लेती हैं— और इतना अच्छा. वाह कमाल है. क्या बात है आपकी. (तभी गीताजी की बेटी आ जाती है) आओ बेटी, आओ. (उठ कर अपने बाजू में बैठा लेते हैं. बेटी के कंधे पर हाथ रखते हुए) और सुनाओ बेटी, कैसा चल रहा है? सब ठीक है न? (बेटी मुसकरा कर संकोच से 'ठीक चल रहा है' के भाव में सर हिला देती है.) बेटी के कंधे पर रखा उनका हाथ वैसे ही रखा है. स्पर्श सुख से वह रोमांचित हैं. गीताजी मुसकरा रही हैं.

—गीताजी, आपकी बेटी बिल्कुल आप ही की तरह होनहार है. हो भी क्यों न, आपकी बेटी है न. इतने में घर का नौकर

सिद्धार्थ पटेल

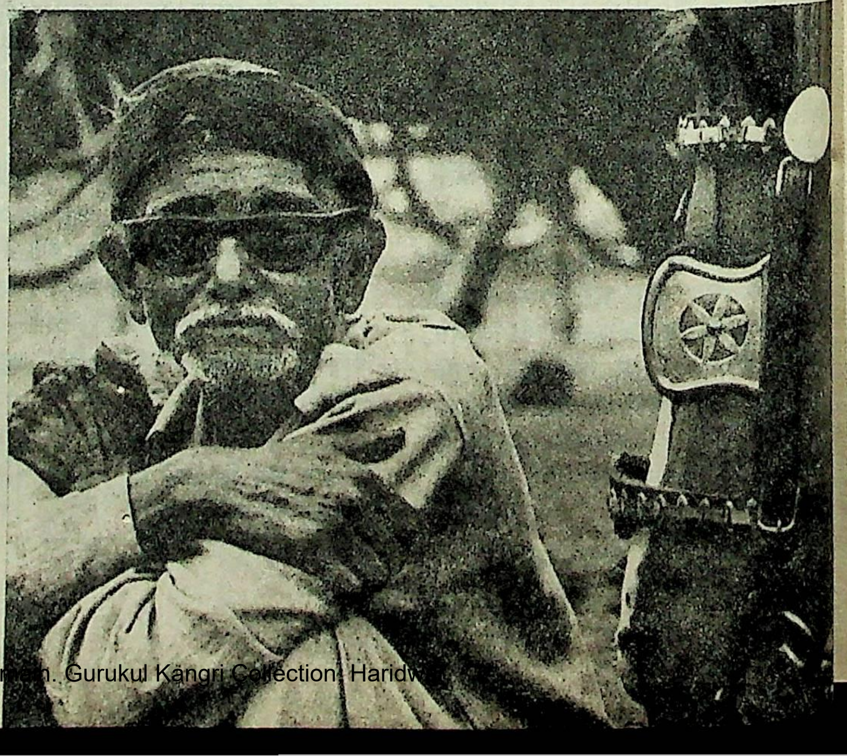

नाश्ता और चाय ले आता हूं. वह तृप्त भाव से उसे पाते हैं. बेटी और गीताजी उन्हें साग्रह खिलाती हैं.

—गीताजी, अब आप हमारे घर कब आ रही हैं? वह मुसकरा कर गीताजी और बेटी दोनों की ओर देखते हैं. दोनों अपने-अपने ढंग से भाव ग्रहण करती हैं.

—आना बेटी मम्मी के साथ. बेटी के कंधे पर एक बार फिर हाथ रखते हुए वह कहते हैं. बेटी और गीताजी अपने-अपने ढंग से मुसकराती हैं. वह गुलामों की तरह बिछ जाते हैं.

* *

—आपके जैसा नाकारा और काहिल आदमी मैंने नहीं देखा.

(वह चुप हैं. सिर झुकाये हुए.)

—आपसे पचासों बार कहा है, आप सुनते-समझते ही नहीं.

(वह फिर भी चुप हैं.)

—आपको अपनी इज्जत का खयाल न सही, मेरी इज्जत का खयाल तो रखिए.

(वह अब भी चुप हैं)

—जाइए और जैसा कहा है कर के लाइए. जाहिल कहीं के. जाने कहां-कहां से आ जाते हैं. यही एक जगह मिली है कमबख्तों को आ कर मरने के लिए.

(उनके चेहरे से दयनीयता चू रही है. उन्हें इसकी चिंता नहीं है. वह हाथ बांध उसी एक मुद्रा में खड़े हैं. जानते हुए भी कि गलती उनकी नहीं है.)

—लेकिन सर. . .

—फर्माइए.

—(स्निग्ध भाव से) सर, क्रोध करना भी कोई आपसे सीखे. डांटते भी हैं तो सामने वाले की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए. सर, आपका क्रोध भी आपका साथ नहीं देता. कितने स्नेहिल हैं आप. क्रोध तो आपकी रगों में जैसे है ही नहीं. मैं तो ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूं कि आप जैसा बास सभी को मिले. क्या व्यक्तित्व है आपका, बिल्कुल मक्खन की तरह— स्निग्ध और केवल स्निग्ध. (बास मुसकरा देता है.वह धन्य हो जाते हैं.)उनका समूचा व्यक्तित्व बिस्तर हो गया है — और बास उस पर लेट गया है.

* *

—क्या कर रहे हो आजकल?

(गद-गद होते हुए)

—बस, आपकी कृपा है.

—कहां हो आजकल?

(समर्पित मुद्रा में)

—जी, आपके चरणों में.

—सब कुछ ठीक चल रहा है न?

(दयनीय-सी मुद्रा में शब्दों को थोड़ा लंबा खींचते हुए)

—जी. . . हां ऽ आं ऽ ऽ ठीक ही चल रहा है. आपका आशीर्वाद चाहिए बस.

—और कुछ?

—(वे) बस आशीर्वाद.

—शरमाओ नहीं, निःसंकोच कहो. जो तुम चाहते हो, जैसा चाहते हो, वैसा ही होगा. (एक क्षण उनके चेहरे को देखते हुए) मैंने कहा न, निःसंकोच कहो—जो तुम चाहोगे, जैसा तुम चाहोगे, वैसा ही हो जायेगा.

(भक्ति की मुद्रा में)

—इसीलिए तो कह रहा हूं—बस आपका आशीर्वाद, आपकी चरण धूलि चाहिए.

—अच्छी बात है, आश्वस्त रहो, सब हो जायेगा. परसों किसी भी वक्त आ जाना. उनका मुंह 'प्रणाम' कह रहा था और शरीर का रोम-रोम दंडवत की मुद्रा अख्तियार किये हुए था.

विभुकुमार (जन्म : १३ मार्च, १९४२) ने आज के मध्यम वर्ग की कुंठाओं, आस्थाओं और परंपराओं से चिपके रहनें की मजबूरी को सहज ढंग से अभिव्यक्ति दी है. इनकी कहानियां व्यवस्था की मार से पिटे और त्रस्त आदमी की कहानियां हैं और वे समय-सत्य से पूरी तरह जुड़ी हुई हैं.

* *

—हो सकता है (वह कह रहे थे) आई मे बी रांग. लेकिन, व्हाट आई फील, कि यह प्रश्न और इसका संदर्भ यूं न हो कर, यूं होना चाहिए. क्योंकि मेरे विचार में जीवन के वृहत्तर संबंधों से जब कोई चीज जुड़ती है, तो वह कुछ और ही शक्ल अख्त्यार कर लेती है. लेकिन मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि. . .

—(कोई एक टोक कर) लेकिन आप जो कह रहे हैं. . . उसमें...

—(उसे बीच में ही टोक कर) मैंने आप लोगों से पहले ही कहा न कि आई मे बी रांग, और जैसा कि, व्हाट आई फील. . .

(और अपने सारे वक्तव्य के दरम्यान या तो वे कमीज के बटन को घुमाते रहे या फिर एड़ियों के बल पर उचकते रहे. मुझे उनकी इस मुद्रा पर अकसर हंसी आती रही)

(किसीने फिर टोका)

—(हलके से दुखी भाव से)अच्छी बात है अगर आप लोगों को नहीं पसंद ये सब तो मैं अपने शब्द वापस लेता हूं. पर जैसा कि मैंने पहले ही कहा था, आई मे बी रांग, बट व्हाट आई फील. . .

और वह अपनी कुर्सी पर बैठ गये.चेहरे पर हलके से पराजय के भाव थे. थोड़ी देर में उठ कर वह बाहर चले गये. इसके बावजूद उनकी लंबी छाया कमरे में बिछी हुई थी.

* *

और मैं फिर वहीं आ गया हूं. मुझे नहीं मालूम कि आप सुधी और विज्ञ जन इसे कहानी मानेंगे भी या नहीं. वैसे न मानें तो ही अच्छा है. कहीं आपने इसे कहानी मान लिया तो आप इसमें भोगा हुआ यथार्थ, परिवेश की प्रामाणिकता, और न जाने क्या-क्या खोजने लगेंगे. इसीलिए मैं आपसे साग्रह-आग्रह कर रहा हूं— इसे आप कहानी न ही मानें तो अच्छा है.

लेकिन मैं जानता हूं. आप नहीं मानेंगे. क्योंकि अगर इसे आप कहानी नहीं मानेंगे, तो आपका मनोरंजन तो नहीं होगा— जबकि आप जानते हैं, मैं मनोरंजन के लिए नहीं लिखता.

मुझे मालूम है आप फिर भी नहीं मानेंगे. इसलिए मैं आपको बता दूं कि इसका संपूर्ण परिवेश, घटना और पात्र काल्पनिक है. किसी भी जीवित अथवा मृत आदमी से इसका कोई संबंध नहीं. . . बस. □□□

संपादक हस्ताक्षर, तात्यापाड़ा, रायपुर

पार्टी • रश्मि तन्खा

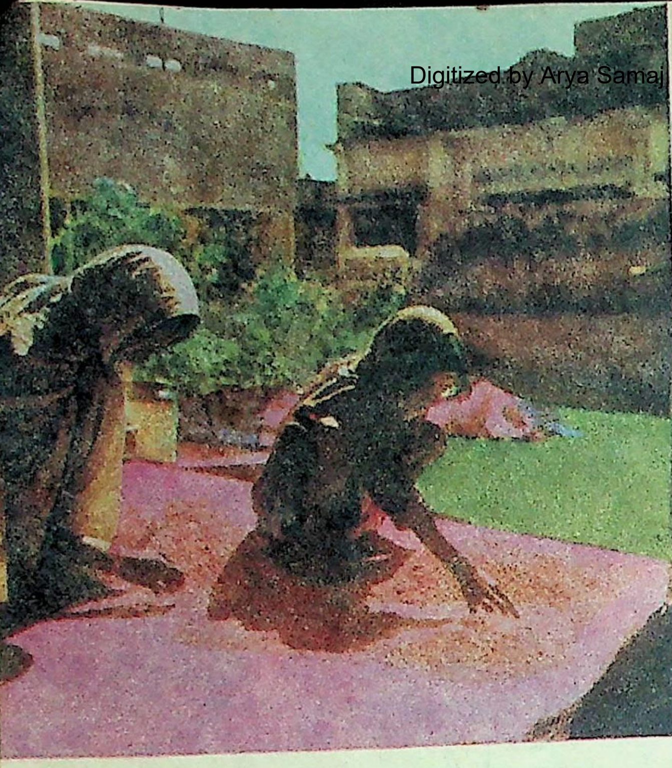

• सत्यपाल प्रेमी

उसने हल्के-से रिसीवर रख दिया. फिर कमरे में आकर वार्डरोब से अरुणा के कपड़े एक-एक कर के निकाले और उन्हें हैंगर से अलग कर पलंग पर लगा दिया . फिर सोचा , अब अपने कपड़े भी निकाल ही लिये जाएं. छोड़ो, वह भी कर लेंगे.

वह बाहर बाल्कनी पर आ गयी. एक भरपूर नजर आसमान को देखा. कोई दस मिनट पहले जिन सुरमई बादलों में सुनहरी चमक छोड़ कर वह अंदर गयी थी, अब गुलाबी हो उठे थे. डूबता हुआ सूरज आसमान के नीलेपन में लाल टिकुली-सा चमक रहा था. कैसी सिंदूरी शाम है देखने को, डूबते हुए सूरज के रंग और सुनने को खामोशी. सोचा, अभी तो इन सबके साथ आराम से घंटा, डेढ़ घंटा और गुजर सकता था. गुजरने को अब भी गुजर सकता है. रात को आठ बजे खाने पर निमंत्रण है, कोई जल्दी नहीं है. मगर अब उसका मूड उखड़ गया है. अब स्थिति यह है कि न तो इस शाम का ही आनंद लेते बन रहा और न पार्टी के लिए ही कोई विशेष उत्साह अनुभव हो रहा है. उसे तो ऐसा लग रहा है जैसे एक बेकसूर शाम बेमौत मार दी गयी हो. शामों के लिए, उसके मन में यह कमजोरी कहीं बहुत पहले से चली आ रही है.

स्टेशन से ब्राहर निकल कर अगर बायें मुड़ जाएं और कुछ दूर तक सीधे चल कर बंगला नंबर छः से दायें घूम जाने वाली सड़क पर चलना शुरू कर दें तो सीधे घंटाघर के पास पहुंच जाएंगे. फिर युनिवर्सिटी, मेडिकल कालेज, इन्हीं के आस-पास कहीं एक बड़ा-सा पार्क है जिसमें वह रोज शाम को अन्य बच्चों के साथ सैर के लिए भेजी जाती है. पता नहीं उस पार्क का सही नाम क्या है —— हैलेट पार्क या नकवी पार्क? शायद तभी डूबते हुए सूरज के रंग उसके मन में उतरते चले जाते हैं.

उसे पार्क में बड़ा अच्छा लगता है. सुनहरी धूप चादर-सी बिछ कर कैसे हर वस्तु को झांप लेती है. उदास, वीरान पतझड़ में भी उसे यहां आना अच्छा लगता है. लाल पड़ गयी लान की सूखी हुई घास, कुछ सूखे पेड़-पौधे. . . अक्सर जब अन्य बच्चे मेरी गो राउंड और फिसलने पर जुटे रहते हैं, तो वह चुपचाप आकर झरती पत्तियों का संगीत सुनने पेड़ के नीचे खड़ी हो जाती है. उनके यहां तो इतने बड़े अहाते में गेट के पास केवल दो ताड़ के पेड़ हैं. शायद इन्ही पेड़ों के कारण उनके बंगले का नाम 'पामट्री' है. वहां ऐसे बड़े-बड़े पेड़ तो हैं ही नहीं जिनके नीचे खड़े हो जाओ तो पीली मुड़ी हुई पत्तियां एक-एक कर के ऊपर से झरती हुई नीचे पैरों तले बिछ जाएं —— बिछती ही चली जाएं. ये स्पर्श सदा याद रह जाने वाले स्पर्श हैं. समझने में दुष्कर, उन झरी हुई पत्तियों का अमिट मृतपन, उसकी चेतना पर अंकित होता रहता है —— होता रहता है. तब से चली आ रही, शामों के लिए इस कमजोरी ने, उसके मन को आज भी बांध रखा है. किसी के साथ उसे अपनी शाम शेयर करनी पड़े, यह उसे बिल्कुल अपील नहीं करता है. अक्सर ऐसा भी हुआ है कि वह इन में अकेली पड़ गयी है, लेकिन उसे कोई शिकायत नहीं हुई है. किसी गलत आदमी के साथ समय व्यतीत किया जाए, इससे तो अच्छा है समय बिल्कुल अकेले ही बिता दिया जाए — यह उसकी थ्योरी है.

कभी-कभी तो उसे अपनी शामें कई लोगों के बीच में बांट कर भी जीनी पड़ी हैं. तब उसे महसूस हुआ है जैसे एक पूरी शाम टुकड़े-टुकड़े कर के उसके हाथ में थमा दी गयी हो. चलो, आज फिर वही टुकड़े-टुकड़े हुई शाम सही. पार्टीज और चेहरे ——चेहरे नहीं, मुखौटे. वह भाग जाना चाहती है, इन जाने-पहचाने चेहरों से कहीं दूर.

पता नहीं क्यों, कभी-कभी हर परिचय उसे एक भार-सा लगने लगता है. उसका मन होता है एक बैग में कुछ कपड़े डाल कर बिना किसी से कुछ कहे चुपचाप घर से निकल पड़े और घूमती रहे ——घूमती रहे. न जाने कैसी छटपटाहट है —— मन होता है कोई बंधन न रहे. फिर लगता है, नहीं, शायद यह बंधन ही जीवन को नये अर्थ दें. वह यह भी जानती है कि यह मुक्ति-वुक्ति की बातें वह केवल सोच भर सकती है, इस दिशा में कर कुछ नहीं सकती है. हर स्त्री कुछ संदर्भों मे घिर कर जीती है. वह पहले किसी की बेटी, बहन, पत्नी या मां होती है — फिर कुछ और. शायद सब कहीं ऐसा ही होता है. सभी देशों में स्त्रियां ऐसे ही जीती हैं. लेकिन वे इन दायित्वों में इतनी नहीं उलझ जातीं कि उनके 'व्यक्ति' की हत्या हो जाए. वे मात्र इन्हीं बातों भर की हो कर नहीं रह जातीं.एक न एक दिन उनका 'व्यक्ति' स्वीकारा जाता है. क्या यह छटपटाहट उसी 'व्यक्ति' की छटपटाहट है? उसे याद है, जब काफी दिन बाद उसने अरुण से विवाह करने के लिए हामी भर दी थी, तो प्रभा दी ने क्या कहा था, 'यू हैव ए पर्सनेलिटी बट यू मस्ट नैवर एस्सर्ट इट'. उसे लगा था जैसे किसी ने उसे पहाड़ी के किनारे पर लाकर नीचे का खड्ड दिखा दिया है. शायद इसीलिए किसी लड़की के विवाह का निमंत्रण पाकर उसे लगता है : लो हुई आज एक 'व्यक्ति' की हत्या. जिसकी विचार शक्ति छिन जाए, वह 'व्यक्ति' नहीं रहता.

* *

हां, पार्टी में जाने के पूर्व मैचिंग साड़ी, बिंदी और चूड़ियों का चयन करते समय उसें एक पुलक-सी होती अवश्य है. लेकिन फिर यह ख्याल आते ही कि हर पार्टी की शाम इतिहास की तरह अपने को दोहराती है, उसे ऊब होने लगती है. क्यों न कहीं ऐसी जगह चला जाए जहां सब नये चेहरे हों? वह एक एक की आंखों में झांके और अपने आपसे कह उठे: हम एक दूसरे के लिए अजनवी हैं और इसलिए एक दूसरे से मुक्त. तब कितना अच्छा हो, कम से कम जिंदगी में एक बार तो उसका व्यवहार सभी संदर्भों के भार से मुक्त हो सके —— एकदम 'अनकंडीशंड'. मैंने क्या कहा, किसने क्या सुना, किसने क्या समझा? हर लड़की के नाजुक कंधों पर लदा इन बातों का बोझ भी कितना करुण है——एक दम पथैटिक

उसे मालूम है, आज की शाम कैसे शुरू होगी. ठंडे कोकाकोला

के गिलास को वह उंगलियों में थामे रहेगी और सोचती रहेगी, यह गिलास कभी खत्म न हो. अगर गिलास खाली हो गया तो उससे जरूर कहा जाएगा —— अनैदर कोक? और वह कहेगी . . . वही, जो हर बार कहती है. पूछने वाले की ओर देखेगी, फिर थोड़ा-सा मुसकुरा कर कहेगी 'नाट राइट नाउ'. कभी-कभी लगता है, पूछने वाला भी महज औपचारिकता बरत रहा है. असल में उसका कोकाकोला वगैरह लाने का कतई इरादा नहीं है. वह भी यही चाहता है कि हर बार पूछने पर उसे यही कहा जाए 'ए लिट्ल लेटर पर-हैप्स' और बात यों ही मुसकराहटों तक आकर खत्म हो जाए. पूछने वाला अपनी ओढ़ी हुई शिवैलरी को जल्दी पैक कर के रख दे —— दूसरे मौके के लिए. दो अलग-अलग संस्कृतियों का बोझ अपने दो अदद कंधों पर ढोता बेचारा हिंदुस्तानी आदमी भी सचमुच कितना बेचारा है!

—आरंट यू थ्रिल्ड, वीमेन जस्ट लव पार्टीज? अरुण उससे पूछ रहे हैं और वह उनका भ्रम तोड़ना नहीं चाह रही है. क्या वह यह बर्दाश्त कर पाएंगे कि उनकी पत्नी एक अपवाद है? विलक्षणता को समझना पड़ता है और बीवी को समझना कितनी फालतू-सी बात लगती है. प्रेमिका के व्यवहार की पेचीदगी की बात और है —— बीवी, हर आदमी सुलझी हुई चाहता है. उसकी तबीयत होती है कहे 'ओह, आइ हेट सच इवनिंग्ज'. लेकिन अगर अरुणा ने पूछा 'बट व्हाई'? तो वह क्या कहेगी? मुझे शामें अकेले ही बिताना अच्छा लगता है . . . या फिर 'तुम्हारे साथ' वह कुछ रुक कर जोड़ देती है. और तब अरुण मुसकराते हैं और कहते हैं यू नो समथिंग, आइ डिटेस्ट पार्टीज. सुन कर वह चौंकती है. तुम्हें आश्चर्य हो रहा है? वह पूछते हैं. फिर घड़ी की ओर देख कर कहते हैं वी बेटर लीव नाउ — इट्स आल मोस्ट टाइम.

मिस्टर शंकरन ने शायद यह सवाल आज पच्चीसवीं बार दोहराया है ' हाउ डू यू लाइक दिस प्लेस?' नहीं, पिछली बार झाज के यहां पार्टी में इन्होंने कुछ दूसरी तरह पूछा था, शायद 'हाउ आर यू लाइकिंग दिस प्लेस' —— या कुछ ऐसा ही. और उसने उन्हें वही जवाब दिया है जो आज से पहले चौबीस बार दे चुकी है : इट्स नाट बैड ऐट आल —— आइ रादर लाइक इट. जब कि चाहती है कहे, 'डैम इट —— इट्स हौरीबल!'

वह आंखे घुमा कर चारों ओर देखती है —— कौन इतनी पी गया है कि अब रो देगा. कहीं उसी के कंधे पर सिर रख कर किसी ने रोना शुरू कर दिया तो? उसे अपने ऊपर हंसी आती है; कैसे ऊल-जलूल विचार आते हैं कभी-कभी उसके दिमाग में भी! कौन कितना चहकने लगा है? न जाने क्यों उसे हवा में उड़ते गैस के गुब्बारे याद आ जाते हैं.

उसे सुनाई पड़ता है मिसेज खन्ना किसी से कह रही हैं —— पता, मिसेज विष्णुदत्त अभी तक नहीं लौटी हैं, अप्रैल में गयी थीं, अब अगस्त बीत रहा है.

—असल में सर्किट हाउस में, एक कमरे में —— दिक्कत होती होगी, कोई कह रहा है.

—नहीं जी, कुछ-कुछ और बात है.

—अच्छा?

वह सोचती है 'होगी'. वह ऊबने लगती है. फिर सोचती है, यह मिसेज खन्ना भी खूब हैं. चिट्टे बालों वाले विष्णुदत्तजी की और क्या बात हो सकती है?

विष्णुदत्त का नाम सुनते ही महिलाएं अपनी-अपनी कुर्सी हल्के-से मिसेज खन्ना के पास खिसका लेती हैं.

—अरे, इनका है कुछ—— चक्कर. कोई लेडी डाक्टर है, उसके साथ होटलों में रूम लेकर रहते-फिरते हैं.

—अच्छा! महिलाएं चौंकती हैं.

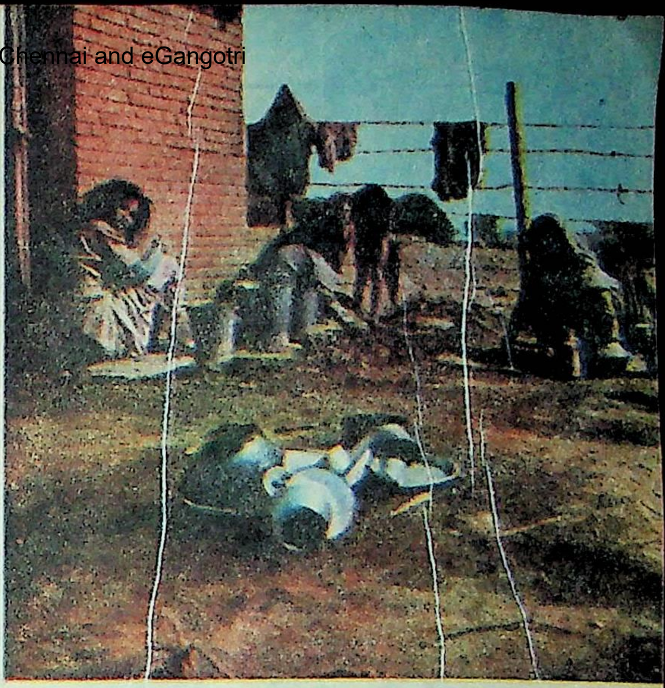

• एम. के. सरीन

मगर मिसेज विष्णुदत्त को इस तरह जाना नहीं चाहिए था. इस बार वह चौंकती है —— क्यों?

—अरे, आदमी थोड़े दिन इधर-उधर घूम-फिर कर पुनः बीवी के पास लौट आता है.

वह सोचती है ——क्यों? क्या इसलिए नहीं कि वह जानता है, चाहे वह जब भी लौट कर जाए, उसकी पत्नी उसी जगह, उसी रास्ते पर खड़ी मिलेगी —— ठीक लैंपपोस्ट की तरह —— जहां वह उसे किसी 'अन्य' के लिए छोड़ गया था! बात उसकी समझ में नहीं आती है. जब स्त्री स्वयं ही अपना स्वाभिमान नहीं सहेज पाएगी तो कोई दूसरा उसे क्यों सम्मान देने लगा? उसे वह प्रसंग याद आ जाता है जिसे पढ़ कर रामायण पर सिर रख कर अक्सर वह बहुत रोई है. दुबारा अपनी विशुद्धता प्रमाणित करने के लिए सीता ने धरती में समा जाना क्यों चुना? लेकिन अब रोना नहीं आता है. अब लगता है, ठीक ही किया. कहीं फिर कोई अफवाह फैलती और रामचंद्र उनसे तीसरी बार परीक्षा देने को कहते!

ठीक-ठीक पहचान नहीं पा रही है. . . यह सामने विष्णुदत्त जी ही हैं? चिट्टे बालों वाले विष्णुदत्त एकदम काले बालों में उसके सामने खड़े हैं. तो क्या सचमुच . . .? इन्हें अपने बालों को काला बनाने की क्या जरूरत थी? उसे खीज होती है. काश, उन्हें पता होता एडवर्ड हीथ अपने सफेद बालों में भी कितने अच्छे लगते हैं. कौन जाने, शायद लेडी डाक्टर को इनके काले बाल ही पसंद हों. अगर ऐसा होता है तो निश्चय ही वह इनसे बहुत छोटी है. उसके बाल अभी काले ही होंगे.

आखिर मिसेस खन्ना उन्हें टोक ही देती हैं—— अब आप मिसेज विष्णुदत्त को बुला ही लें. कितने दिन हो गये हैं, उन्हें ऐसे गये हुए.

—असल में छोटे से कमरे में. . .उस पर गर्मी का मौसम.

—आखिर जब आप नये-नये सर्विस में आए थे, तब भी तो यहीं एक कमरे में ही. . .

विष्णुदत्तजी, जिन पर ड्रिंक्स की खुमारी छाने लगी है, थोड़ा उनके पास खिसक आते हैं और कुछ शोखी से कहते हैं— तब की बात और थी, यंग थे—— न सर्दी महसूस होती थी—— न गर्मी. अब तो मच्छर मारते-मारते और पानी पीते-पीते सारी रात गुजरती है. मिसेज खन्ना कुछ झेंप-सी जाती हैं. वेल सर्वज हर राइट—— वह सोचती है.

हमारी सभी उड़ानें आप के लिये फिर से चालू!

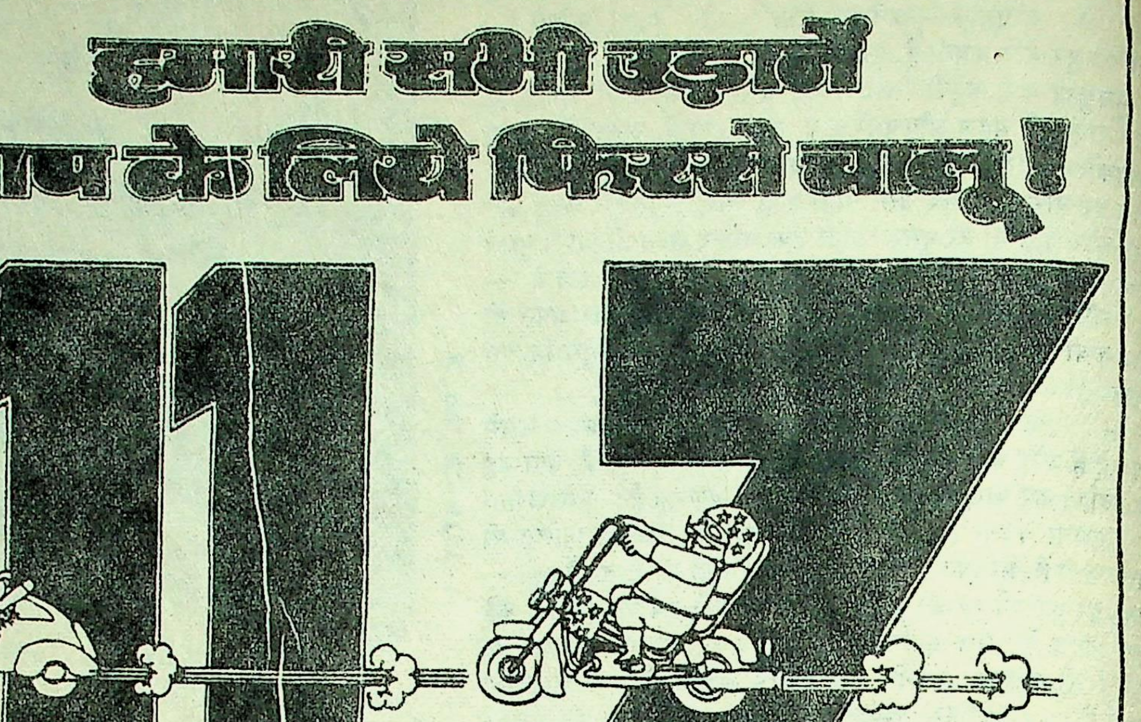

यूरोप

यूरोप के लिए सप्ताह में ११ उड़ानें

हमारे ७४७ विमान अब फिर से पहले की ही तरह उड़ानें भरने लगे हैं—सप्ताह में ८ बार लंदन के लिए, ४ बार फ्रैंकफर्ट के लिए, ५ बार रोम तथा ५ बार पेरिस के लिए और एक बार जिनेवा के लिए. हमारे ७०७ विमानों की उड़ानें भी शुरू हो गई हैं—सप्ताह में दो बार मॉस्को के लिए तथा एक-एक बार जिनेवा और लंदन के लिए.

न्यूयॉर्क

न्यू यॉर्क के लिए सप्ताह में ७ उड़ानें

सप्ताह में हर रोज़ ७४७ विमान की उड़ान—मध्य पूर्व तथा यूरोप होते हुए. और हमारे एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत यात्रा करने पर किसी भी जगह जाकर वापस लौटने का किराया एकतरफ़ा किराये से भी कम पड़ता है.

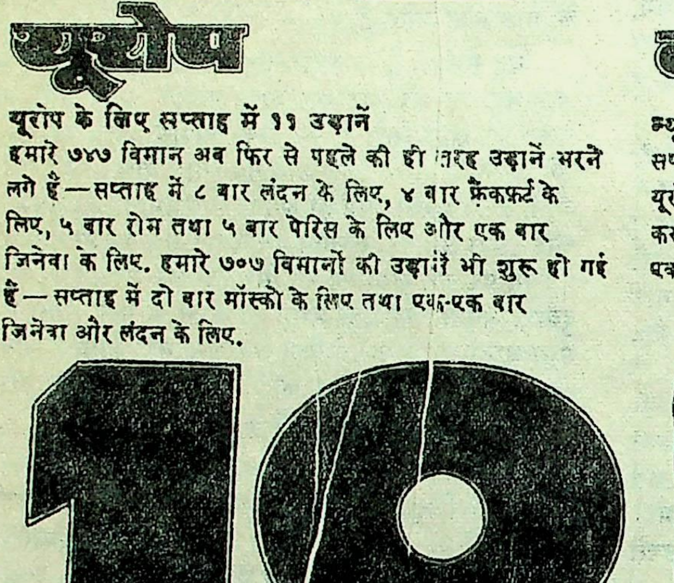

मध्य पूर्व

मध्य पूर्व के लिए सप्ताह में १८ उड़ानें

प्रति सप्ताह हम प्रस्तुत करते हैं कुवैत और बेरूत के लिए ५ उड़ानें, दुबई और बाहरैन में से प्रत्येक के लिए ३ उड़ानें, आबूधाबी, दहरान और तेहरान में से प्रत्येक के लिए २ उड़ानें तथा अदन, मस्कत, दोहा और केरो में से प्रत्येक के लिए एक उड़ान.

इसके अलावा हर सप्ताह :

३ उड़ानें
पूर्वी अफ्रीका के लिए
१० उड़ानें
दक्षिण पूर्व एशिया के लिए
६ उड़ानें
जापान के लिए
२ उड़ानें
मॉरिशस के लिए
२ उड़ानें
ऑस्ट्रेलिया के लिए

एयर-इंडिया

रश्मि तन्खा : (जन्म ३ जनवरी १९३८) : लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम. ए. करने के बाद कुछ अर्से तक अध्यापन किया है.

पिछले कुछ वर्षों से कहानी-लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं.

उसे लगता है औरत की जिंदगी में शायद कोई समय ऐसा नहीं होता है जिसमें वह पूरी तरह सुरक्षित महसूस करती हो. और शायद जब उसे सुरक्षा की सबसे अधिक जरूरत होती है, तब वह बिल्कुल असुरक्षित महसूस करने लगती है. ढलती उम्र के साथ उसका आत्मविश्वास उल्टे बिखरने लगता है.

* * *

न मालूम कब की बात उसे याद आ जाती है — सेमिनार में उसे पेपर पढ़ना है. लेकिन वहां पढ़ने से पहले चाहती है उसे अपने रिसर्च गाइड प्रो. गोयल को दिखा लेना. अंतिम क्लास पढ़ा कर निकलते-निकलते उसे काफी समय लग जाता है. कालेज से यूनिवर्सिटी काफी दूर है. जब डिपार्टमेंट पहुंचती है, प्रो. गोयल जा चुके होते हैं अतः उसे उनके घर जाना पड़ता है. वे उसे मिसेज गोयल से मिलवाते हैं. मिसेज गोयल उससे चाय के लिए पूछती हैं. फिर बड़े तपाक से कहती हैं, 'डोंट बी फार्मल इन दिस हाउस ऑर यू शैल बी मिजरेबल'. उसे उनकी यह आत्मीयता अच्छी लगती है. फिर वे लोग उसके पर्चे पर बातचीत करने लगते हैं. खासी चर्चा रहती है. प्रो. गोयल कई सुझाव भी देते हैं. इस बीच मिसेज गोयल तैयार हो कर कहीं जाने के लिए बाहर निकलती हैं. वह धीरे से कहती है, 'हमारे लिए भी एक रिक्शा मंगवा दीजिए'. उस तरफ रिक्शा बहुत मुश्किल से मिलता है. बहुत देर हो जाती है, मिसेज गोयल जाकर वापस भी आ जाती हैं लेकिन रिक्शा नहीं मिलता है. प्रो. गोयल श्रीमती गोयल से कहते हैं— शी इज टेकिंग हर वर्क सीरियसली.

—हां, लगता तो ऐसा ही है — सो इट अपीयर्स— पता नहीं उनके स्वर में क्या है जो उसकी चेतना में बिंध जाता है.

वह नमस्ते कर के, गोयल को धन्यवाद दे कर पैदल ही चल पड़ती है. रास्ते में सोचती है, मिसेज गोयल उसे लेकर व्यर्थ क्यों चिंतित हो गयीं? 'लेकिन मिसेज गोयल', वह मन ही मन कहती है, 'आप को मुझसे कोई खतरा नहीं है. आप नाहक हर ताजगी से डरने लगी हैं. रहीं मेरी यह 'लुक्स' तो अच्छा होता यह किसी महत्वाकांक्षी लड़की को मिलती. खतरा आपको उनसे हो सकता है जिनके लिए विभागाध्यक्षों के सुसज्जित कमरो में कहीं-कहीं सोफा-कम दीवान भी रहता है. फिर प्रो. गोयल तो अच्छे-खासे, भले, साफ नीयत आदमी हैं. फिर उसे लगा — कौन जाने? आदमी को उसकी स्त्री ही सबसे ठीक तरह जानती है. लेकिन शायद यह भी आवश्यक नहीं है. उसे अमृता भाभी याद आ जाती हैं.उन्हें देखा. क्या सचमुच उन्हे भय्या की असलियत का पता नहीं है? जब अमृता भाभी कहतीं हैं, 'ये तो बिल्कुल भगवान रामचन्द्रजी हैं', तो उसका मन होता है,उन्हे चुप करा दे,'नहीं, भाभी नहीं, रामचन्द्र और शंकर नहीं अगर पति को भगवान ही कहना है तो कृष्ण भी चलेगा.'

—आइए जी, खाने, मिसेज कपूर आदमियों से कह रहीं हैं. खाना लग गया है. 'आइए जी', मिस्टर कपूर महिलाओं से कह रहे हैं. जिस सोफे पर एक अन्य महिला के साथ वह बैठी है, उसके पीछे पहुंच कर उसके कंधे पर कुछ ज्यादा ही झुक कर वे लगभग उसके कान में ही कहते हैं —'प्लीज कम'. उसे बुरा लगता है, फिर सोचती है, शायद उसे वहम हुआ हो.

—आप तो बहुत झटक गयी हैं, एक हाथ में प्लेट थामे हुए मिस्टर मुकुंद मिसेज झा से कह रहे हैं. मुझे तो पहचानने में भी मुश्किल हुई. फिर उसकी ओर मुड़ गये हैं,बट आइ मस्ट से यू आर जस्ट द् सेम — इन फैक्ट यू आर लुकिंग यंगर ऐण्ड प्रिटीयर, वह उसे तीन वर्ष बाद देख रहे हैं. अब उसके पास एक बच्ची भी है. वह जल्दी-जल्दी तय कर डालना चाहती है कि मिस्टर मुकुंद ने नशे में यह बात कही है या अपने पूरे होशोहवास में. अगर नशे में कही है तो संभव है, इसमें सच का कुछ अंश हो अन्यथा एकदम झूठ है. क्या सचमुच वह बड़ी दिखने लगी है? अपने पुराने रीति-रिवाज भी कितने अच्छे थे जब पत्नी पति से कम से कम दस वर्ष छोटी होती थी.

कौन जाने कभी अरुणा भी . . . विष्णुदत्त की तरह. . . . यह क्या, कोई जरूरी तो नहीं हर व्यक्ति विष्णुदत्त ही हो जाए? उसे लगता है, वह यों ही डर गयी है. और शायद इसीलिए उसे हर आदमी विष्णुदत्त लगने लगा है. लेकिन फिर भी, अपने को किसी ऐसी स्थिति के लिए मानसिक रूप से तैयार रखने में तो कोई हर्ज नहीं है? अगर कोई चीज अचानक होती है तो अधिक तोड़ कर रख देती है. पर अगर अरुण ने ऐसा कुछ न किया तो? तब तो एक अपराध-बोध ही उसे खाने लगेगा.

—थैंक गॉड इट्स ओवर! कार में बैठते हुए अरुण ने सब से पहले यही बात कही है. वह और अरुण दोनों दो सिरों पर बैठ गये हैं. अब फियेट की रीयर विन्डो से दूर से ही देख कर किसी को भी पता चल जाए कि वे दोनो पति-पत्नी हैं. सब पति-पत्नी ऐसे ही बैठते हैं. जैसे स्पष्ट कर देना चाहते हों, 'हम दोनों पति-पत्नी हैं— हम लोगों के बीच 'ऐसा-वैसा' कुछ नहीं है.'

अक्सर रेस्त्रां में घुसते ही वहां बैठे जोड़ों को देख कर उसे पता चल जाता है कि वे पति-पत्नी हैं या नहीं. अगर पुरुष पत्रिका पढ़ता हुआ या किसी दूसरी स्त्री को देखता हुआ नजर आता है या एकदम निर्लिप्त-सा दिखता है, तो उसे विश्वास हो जाता है, जरूर यह इस स्त्री का पति ही होगा. पता नहीं शादी होते ही दिलचस्पी के टिमटिमाते जुगनू कब दम तोड़ देते हैं. फिर किसी आदमी के लिए यह बात भी तो कितनी शर्म की बात है कि वह अपनी पत्नी से प्यार करता है. लोग अगर सुनें तो क्या कहेंगे — रहे यार, तुम भी पूरे घोंचू के घोंचू ही!

ओफ, एक बज गया है— सुबह जल्दी उठा देना — हूं? मुझे सुबह पौने आठ की फ्लाइट पकड़नी है. कुछ गड़बड़ चल रही है— जाकर देखना है वहां. वह एकदम सजग हो आती है. वह एक कामकाजी, व्यस्त आदमी की पत्नी है. पहले जब वह लेक्चरर थी, तब प्रभा दी या अपनी अन्य बहनों की बातें सुन कर उसे बेहद हंसी आती थी. जब वे लोग आपस में बात करते हुए कहतीं, 'अरे, हमारे डिपार्टमेंट में तो . . . .या 'हमारी नेवी में' आदि. इन लोगो ने भी अपने को अपने अपने पतियों के पेशों के साथ कैसा आइडेंटीफाइ कर लिया है जैसे अपना अलग कुछ हो ही नहीं! और वह तो, अपने को कभी भूल ही न पायी.

सब कहीं बीच में लहराते हुए अजनबियत के अथाह समुद्र हैं और एक छटपटाहट है कि कैसे इन पर छोटी-बड़ी बातों के सेतु खड़े हों और एक दूसरे तक पहुंचा जा सके लेकिन इन समस्त यत्नों के बावजूद असल में कौन किस तक पहुंच सका है? □□□

द्वारा श्री एस. एस. एन. तन्खा,
३१, कैसर बाग, लखनऊ

ारिका के लिए विशेष : १२ कहानियों के क्रम में

गवतीचरण वर्मा की ग्यारहवीं कहानी

गुन न हिरानो, गुन गाहक हिरानो है

हिस्ट्री कांग्रेस का शानदार अधिवेशन समाप्त हुआ और उस अधिवेशन में दिल्ली से आए हुए डाक्टर श्यामनाथ वर्मा के पेपर की धूम थी. इस कांग्रेस के संयोजक थे, इतिहास विभाग के अध्यक्ष डाक्टर जयदयाल शर्मा, और डाक्टर जयदयाल शर्मा डाक्टर श्यामनाथ के पुराने मित्र थे. तो डाक्टर शर्मा नें डाक्टर वर्मा को उस दिन शाम के समय अपने यहां भोजन के लिए आमंत्रित कर दिया.

अकेले एक आदमी की दावत निहायत मनहूस होती है, जयदयाल की पंडितानी नें बताया तो श्री जयदयाल शर्मा ने राजनीति विभाग के अध्यक्ष और अपने पड़ोसी डाक्टर राधेश्याम चौरसिया को भी निमंत्रित कर दिया, और उधर डाक्टर श्यामनाथ वर्मा अपने साथ आए हुए युनिवर्सिटी ग्रांट कमीशन के वरिष्ठ अधिकारी सरदार भूपेंदर सिंह को लेते आए.

आधुनिक शिष्टाचार के नियमों का पालन करने के क्रम में डाक्टर जयदयाल शर्मा ने चार गिलासों में व्हिस्की डाली और बातचीत करने बैठ गये. डाक्टर श्यामनाथ वर्मा ने कुछ मजे में आते ही पूछा— अरे शर्मा, वह शास्त्री युनीवर्सिटी का अविनाशचंद्र नहीं दिखाई दिया?

कड़ुवा-सा मुंह बनाते हुए डाक्टर जयदयाल शर्मा ने उत्तर दिया— भई वर्मा, तकदीर का सिकंदर जिसे हम कह सकते हैं, वह उसे समझो. न जाने कैसे उसने मिडिल ईस्ट के विश्वविद्यालयों का निमंत्रण पटा लिया. काबुल, तेहरान, अंकारा और एथेंस युनीवर्सिटियों के तीन महीने के भारतीय इतिहास के लेक्चर टूर पर निकल गया है— वहां मौज कर रहा होगा!

और तभी सरदार भूपेंदर सिंह बोल उठे—अरे, वह शास्तरी युनीवर्सिटी का अविनाश चंदर, क्या कहा? लेक्चर टूर पर गया है? तभी उसके खिलाफ जो इंक्वाइरी चल रही थी, वह रुक गयी.

राधेलाल शर्मा चौंक उठे— कैसी कंक्वाइरी सरदारजी?

—अजी उसके खिलाफ किसी ने शिकायत कर दी. वह तो एम. ए. भी नहीं पास है, योरोप से जाली डाक्टरेट खरीद लाया है और सांठ-गांठ लगा के शास्तरी युनीवर्सिटी में हिस्ट्री का प्रोफेसर बन गया. इस मुल्क का क्या हो गया है जी?

डाक्टर श्यामनाथ की आंखें चमक उठीं—इस देश में हमेशा से यही चलता आया है सरदारजी! पिछले दिनों मध्य प्रदेश के इतिहास की खोज करते हुए मेरे सामने एक बड़ी दिलचस्प घटना आयी. मैं सोच रहा हूं कि उस घटना का का इतिहास में उल्लेख किया जाय या न किया जाय— कुछ समझ में नहीं आ रहा.

—जरा हम लोग भी सुनें, एक की अपेक्षा अनेक रायों का अधिक महत्व होता है, डाक्टर राधेलाल चौरसिया बोले.

कुछ गला साफ करके डाक्टर वर्मा ने कहानी आरंभ की.

पूना से सदाशिव यशवंत सेने नामक का एक युवा ब्राह्मण अपने पिता की मृत्यु के बाद रोजी-रोटी की तलाश में उत्तर दिशा की ओर रवाना हुआ. निश्चित सन्-संवत का तो पता नहीं चल सका, लेकिन यह घटना सन् १८६० के आस-पास की होनी चाहिए. भारतवर्ष पूरी तौर से अंग्रेजों की चपेट में आ गया था. बड़ी-बड़ी देशी रियासतें तो कायम थीं, लेकिन वह सब अंग्रेजों की छत्रछाया में आ गयी थीं.

वह युवा ब्राह्मण विद्या-बुद्धि से युक्त था, उच्च कुल का अभिजात्य, मुख पर एक प्रकार का तेज, चरित्रवान, लेकिन निपट दरिद्र. पास-पड़ोस से मांग-जांच कर उसने कुछ द्रव्य एकत्रित किया और चल पड़ा भगवान के भरोसे.

उसने सुन रखा था कि उत्तर में ग्वालियर नाम की एक अति संपन्न रियासत है जहां उसके मामा रहते हैं. वहां के महाराजा बड़े तेजस्वी और गुणग्राही हैं, पंडितों और विद्वानों का आदर करते हैं. थे। उन दिनों न रेल थी, न मोटर थी, न हवाई जहाज थे. सड़कें कच्ची, ऊबड़खाबड़, कहीं-कहीं कंकड़ या पत्थर कुटे हुए. सवारी के नाम पर पालकी, घोड़े, ऊंट, हाथी, और कहीं-कहीं बैलगाड़ियां तथा रथ. इन सवारियों पर खर्च लंबा पड़ता था, किराए पर मिलती नहीं थीं, गति बड़ी धीमी थी, तो लोगबाग पैदल ही रास्ता तय करते थे. सदाशिव यशवंत सेने ने भी पैदल ही रास्ता नापा.

रास्ते में कथा बांचते, उपदेश देते, मांगते-खाते, लड़ते-झगड़ते वह छः महीने में ग्वालियर पहुंचा. पूछताछ कर उसने अपने मामा के घर का पता लगाया. मामा बाल हरिहर आपटे पक्षाघात से पीड़ित कराह रहे थे. रियासत से पांच रुपया महीना दक्षिणा के रूप में बंधे थे. उससे ही मामी यमुना बाई अपने चार बच्चों और अपने पति का उदर भरती थीं. सदाशिव को देखते ही बालकृष्ण की आंखों से जलधारा प्रवाहित हो उठी. यह आंसू आनंद और हर्ष के आंसू थे क्योंकि उनके घर में एक सहारे के रूप में सदाशिव सेने का उदय हुआ था. उनकी बहिन अर्थात् सदाशिव की माता का देहांत तो दस वर्ष पहले ही हो चुका था. अपने बहनोई की मृत्यु का समाचार सुन कर उन्होंने वेदांती की मुद्रा में शोक प्रकट किया. फिर उन्होंने बतलाया कि महाराज तो बड़े गुण-ग्राही हैं, लेकिन महाराज के दरबार में एक से एक धूर्त लोगों का प्रभाव है जो योग्य व्यक्तियों को महाराज के सम्मुख आने ही नहीं देते. यानी जो सदाशिव ने पूना से ग्वालियर आने का कष्ट उठाया, वह बहुत संभव है व्यर्थ जाए. फिर भी, मामा प्रसन्न थे कि उन्हें एक सहारा तो मिला, कभी-न-कभी सदाशिव को मौका मिल ही जायगा. और मामी नें बड़े प्रेम के साथ सदाशिव को भोजन कराया.

सदाशिव धुन का पक्का था. उसकी अंटी में दस स्वर्ण मुद्राएं थीं तो एक बेंच कर उसने वस्त्र खरीदे, कुछ पुस्तकें एकत्रित कीं, तिलक-चंदन का उसने प्रबंध किया और तीसरे दिन धवल वस्त्र धारण करके तथा पगड़ी बांध कर वह महाराज के

राजभवन की ओर रवाना हुआ. राजभवन के फाटक पर दरबान ने उसे रोका—— महाराज से मिलने के लिए प्रार्थनापत्र देना होता है, पंडित आनंद गोपाल मेडे की सिफारिश ही से महाराज पंडितों को समय देते हैं—— तो उनसे मिलना होगा.

सदाशिव पंडित आनंद मेडे के दरबार में हाजिर हुआ. आनंद मेडे उस समय मुख में खैनी दबा कर ऊंघ रहे थे. आंखें बंद किये हुए ही उन्होंने कहा—— साला पंडित. . .महाराज का दर्शन करेगा! महाराज का दर्शन साक्षात भगवान का दर्शन, फीस पांच स्वर्ण मुद्रा, तब दर्शन की व्यवस्था हो.

बड़ी विनय के साथ सदाशिव ने कहा——मैं साहित्याचार्य हूं, मैंने वेदांत और सांख्य का तुलनात्मक अध्ययन किया है, अति दीन और दरिद्र ब्राह्मण हूं. पांच स्वर्ण मुद्राएं कहां से लाऊं?

आनंद मेडे ने आंखें खोलीं, लेकिन उन आंखों को अधखुली ही कहा जा सकता था. एक मुस्कान के साथ उन्होंने कहा—— राज में साहित्य, वेदांत और सांख्य नहीं चलता. यहां चलता है सोना-चांदी. पांच स्वर्ण मुद्राएं तो देनी ही होंगी. उधार लाओ.

——उधार मुझे कोई देगा नहीं, मैं पूना से आ रहा हूं, मुझे कोई जानता नहीं.

——तो भीख मांग कर लाओ. कह पंडित आनंद मेडे ने आंखें बंद कर लीं.

——मेरे ऐसे हट्टे-कट्टे आदमी को कोई भीख नहीं देगा.

——तो फिर चोरी करो! और पंडित आनंद मेडे खर्राटे भरने लगे.

सदाशिव का खून खौल उठा. तबीयत हुई, आनंद मेडे का गला दबोच दे, लेकिन भावना पर बुद्धि ने विजय पायी, एक दर्जन नौकर-चाकर आनंद मेडे की रक्षा करने के लिए इधर-उधर घूमते दिखाई दिये उसे.

ग्वालियर के महाराज अत्यंत न्यायप्रिय, कुशल और सहृदय प्रशासक थे, लेकिन उनमें केवल एक कमजोरी थी. वह अपने कृपापात्रों के अवगुण देखने से कतई इंकार कर देते थे. सदाशिव ने दो-एक सामंतों की शरण चाही, लेकिन वह किसी के पास पहुंच नहीं पाया. हरेक आदमी ने आनंद मेडे का गुणगान किया.

महाराज ने राजभवन के फाटक पर एक पेटी रखवा दी थी जिसमें जनता अपने दुख-दर्द की कहानी तथा अपनी शिकायतों की दर्खास्तें डाल दे. इन दर्खास्तों को स्वयं महाराज पढ़ते थे और अपना निर्णय देते थे. हार कर सदाशिव ने एक दर्खास्त लिखी, जिसमें उसनें पंडित आनंद मेडे को बेतहाशा गालियां दीं,चार-पांच सामंतों को गदहा बताया, और अंत में उसने लिखा—— श्रीमंत का जो न्यायप्रिय और कुशल-शासक होने का यश है, वह नितांत झूठा है. महाराज के शासन में ऊपर से नीचे तक हर तरफ पोल ही पोल है.

महाराज ने दर्खास्त पढ़ी और उन्हें दर्खास्त देने वाले पर बेतहाशा क्रोध आया. फिर एकाएक उनके मुखपर एक मुस्कान आयी. उन्होंने उस दर्खास्त पर अपने हाथ से लिखा——तू भी उस पोल में घुस जा, और उस दर्खास्त पर अपनी मुहर लगा कर लिखे पते पर वापस करा दी.

सदाशिव सेने ने महाराज का उत्तर पढ़ा और इसके बाद उसने महाराज के उत्तर सहित उस पत्र को सहेज कर रख लिया. रात में उसने अपनी समस्या पर विचार किया और एकाएक उसकी आंखें चमक उठीं. एक योजना की रूपरेखा बना कर वह सो गया.

★ ★

प्रातः होते ही सदाशिव अपनी योजना को कार्यान्वित करने पर जुट गया. सबसे पहले उसने ग्वालियर राज की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन किया. ग्वालियर राज्य युक्त प्रांत में इटावा, आगरा और झांसी की सीमाओं से लेकर मालवा और राजस्थान के इलाकों को पार करता हुआ गुजरात की सीमा तक फैला हुआ था. पूरा राज्य कई सूबों में विभाजित था और हरेक का प्रशासक सूबेदार अथवा सूबा कहलाता था. बीच-बीच में कई छोटी-छोटी रियासतें भी थीं, कुछ बड़ी रियासतों के भाग भी आ जाते थे. यात्रा की असुविधा तथा पहाड़ियों और घाटियों की दुर्गमताओं के कारण कुछ सूबों का संपर्क राजधानी ग्वालियर के साथ नहीं के बराबर था. साल में एक-दो बार सूबेदार सूबे का कर भिजवा देता था या स्वयं ही दरबार के समय महाराज के सामने उपस्थित होता था. बाकी सूबेदार स्वयं ही सूबे पर हुक्म चलाता था.

पता लगाने पर मालूम हुआ कि ग्वालियर से प्रायः दो सौ मील की दूरी पर अंजोर नाम के सूबे का सूबेदार अति वृद्ध और निःसंतान है. सुदूर गुजरात और राजस्थान की सीमाओं से मिला वह सूबा निहायत बीहड़ और दुर्गम है. किसी तरह सूबेदार अपना काम चलाये जा रहा था. इधर कई वर्षों वह महाराज के दरबार में स्वयं न आ कर अपने-मातहतों से आधा 'पर्दा कर' भिजवा देता था.

सदाशिव सेने ने पास की मुहरें बेचीं, अपनी मामी से कुछ रुपया प्राप्त किया और उसने एक राज्यपत्रक तैयार किया——श्रीमंत ग्वालियर के महाराज की राजाज्ञा से अंजोर के सूबेदार

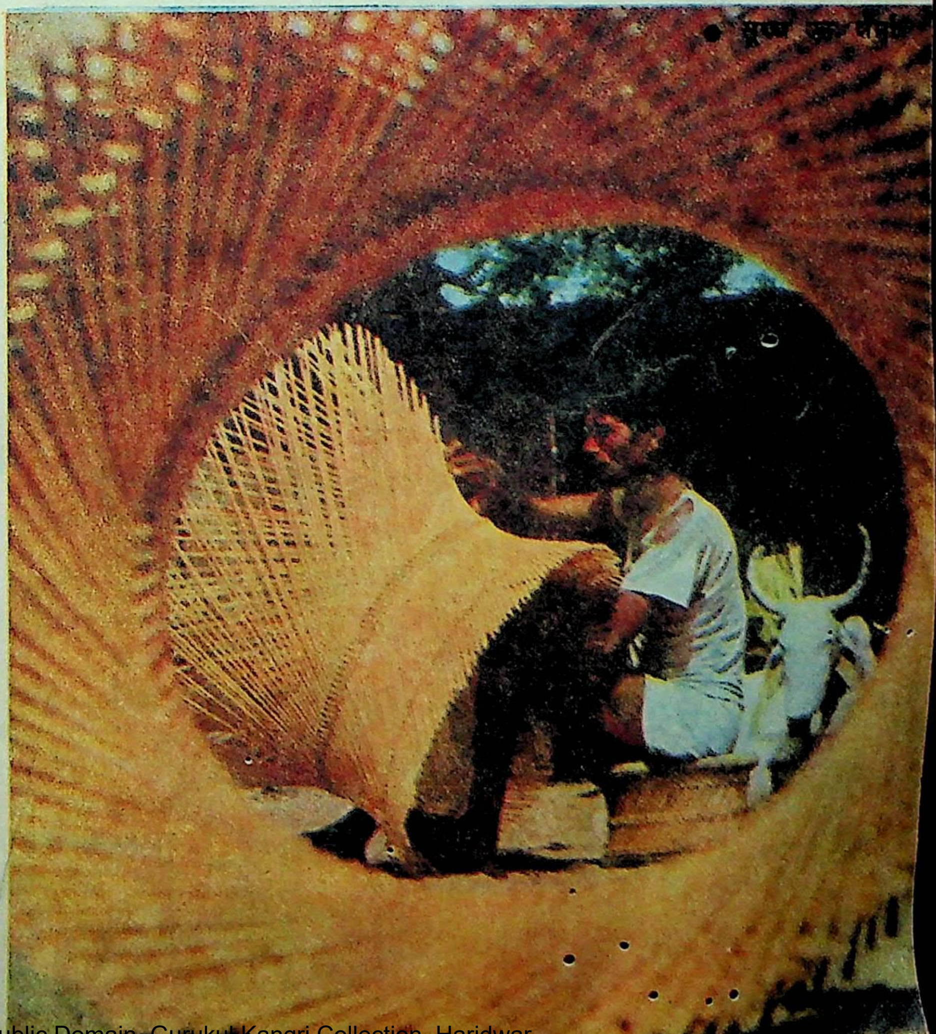

उम्मेद के
फैशन की दुनियाँ में
बढ़ते कदम
Sobhagya

उम्मेद—जिन्होंने अब तक दिये हैं सतरं
सुन्दर छपे वस्त्र...स्कूली
बच्चों के ड्रेस...शानदार शर्टिंग...
अब पेश करते हैं
६७% पॉलिएस्टर ३३% कॉटन-शर्टि
और अनेक मनभावन रंग-बिरंगे व
साथ में कई कई रंगोंवाले औद्योगिक धागे भी

सुन्दर वस्त्रों के निर्मा
महाराजा श्री उम्मेद मिल्स लिमिटे
पाली-मारवाड़ (राजस्था

गजानन महाजी धमधड़े की वृद्धावस्था को ध्यान में रखकर सदाशिव यशवंत सेने को अंजीर का सूबेदार नियुक्त किया जाता है और सदाशिव यशवंत सेने को आज्ञा दी जाती है कि वह तत्काल जा कर सूबेदार का पद संभाल लें. सूबेदार गजानन महाजी धमधड़े की सेवाओं को ध्यान में रख कर सदाशिव यशवंत सेने को आदेश दिया जाता है कि वह गजानन महाजी धमधड़े को एक बार हजार रुपया महीना उसके जीवन पर्यंत सूबे की आय से देता रहे, और सूबे के प्रबंध में उससे आवश्यक परामर्श लेता रहे. इस राज्य-पत्रक पर सदाशिव सेने ने जाली मुहर लगायी, और दो सौ रुपये लेकर अंजोर की ओर रवाना हो गया.

रास्ते में उसने बीस घुड़सवारों को पांच-पांच रुपये देकर नौकर रखा, और चालीस रुपयों में एक अरबी नस्ल का घोड़ा खरीद कर उस पर सवार हुआ. ठाठ के साथ उसने अंजोर में प्रवेश किया और राज्यपत्रक अंजोर के सूबेदार गजानन महाजी घमघड़े के हाथ में रख कर उसने बड़ी विनय के साथ उनका अभिवाद ने किया. सदाशिव यशवंत सेने की शालीनता से गदगद हो कर घमघड़े ने तत्काल सूबेदार का पद सदाशिव सेने को सौंप दिया और चैन की सांस ली.

घमघड़े के शासनकाल के अंतिम चरण में उनकी वृद्धावस्था के कारण अंजोर सूबा की हालत बेहद बिगड़ गयी थी. न रिआया घमघड़े को कर देती थी, न उनसे दबती थी. सदाशिव सेने ने तत्परता के साथ शासन की बागडोर संभाली और छह महीने के अंदर उसने सूबे की कायापलट कर दी. बदमाशों और लुटेरों का उसने सफाया किया, प्रजा संपन्न और समृद्ध होने लगी. निर्धारित समय पर महाराजा ग्वालियर के पास निर्धारित कर की राशि तथा अनेकों उपहार पहुंचने लगे. अपने मामा-मामी को भी उसने अंजोर बुलवा लिया.

* *

पांच वर्ष बीत गए. ग्वालियर के महाराज अंजोर सूबे की आर्थिक व्यवस्था से अति संतुष्ट और प्रसन्न थे. एक दिन अंग्रेज रेजीडेंट देशी रियासतों का दौरा करते हुए ग्वालियर पहुंचा. उसने महाराज से अंजोर के नये सूबेदार की कार्यकुशलता तथा उनके आतिथ्य-सत्कार की बड़ी प्रशंसा की. महाराज का माथा ठनका. यह कौन-सा और कैसा नया सूबेदार? महाराज ने तो अंजोर में कोई नया सूबेदार नियुक्त नहीं किया था. उन्होंने पता लगाया तो यह मालूम हुआ कि राज्य से कोई नियुक्ति नहीं हुई है. हां, पिछले चार-पांच वर्ष से अंजोर से नियमित रूप से रुपया आने लेगा है. महाराज चक्कर में. यह क्या रहस्य है? और महाराज ने अंजोर के सूबेदार को ग्वालियर तलब किया.

सूबेदार सदाशिव सेने बड़े ठाठ के साथ लाव-लश्कर लेकर ग्वालियर के लिए रवाना हुए. आगे-आगे तुरही और नगाड़े वाले, उनके पीछे बीस घुड़सवार सैनिक, उनके पीछे पालकी पर सवार सूबेदार सदाशिव यशवंत सेने, उनके पीछे हाथी पर महाराज ग्वालियर का चित्र और एक हाथी पर चारणों तथा वेदवाणी ब्राह्मणों का दल, उसके बाद दस ऊंटों पर महाराज के लिए एक लाख रुपयों की थैलियां तथा उपहार के लिए वस्त्राभूषण, यात्रा की रसद और उनके पीछे फिर बीस घुड़सवार सैनिक. एक-एक घड़ी के बाद महाराज की जयजयकार के नारे.

ग्वालियर से जब यह दल दस कोस की दूरी पर आ गया, तब महाराज के गुप्तचर हरकारों ने अंजोर के सूबेदार के ठाठ-बाट और शान-शौकत की सूचना महाराज को दी. इतनी शान के साथ राज्य का कोई सूबेदार ग्वालियर नहीं आया था. महाराज ने शहरपनाह के बाहर ही यह काफिला रुकवा दिया. सूबेदार सदाशिव यशवंत सेने ने शहर-पनाह के बाहर ही खेमे गाड़ दिये. एक मेला-सा लग गया. महाराज के नाम का कीर्तन आरंभ हो गया, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा बंटने लगी, भिखारियों को भीख मिलनी आरंभ हो गयी.

खबर पाकर महाराज चक्कर में. एक सप्ताह तक यह काफिला नगर के बाहर रुका रहा. फिर महाराज की आज्ञा हुई कि सूबेदार अपने लश्कर के साथ नगर में प्रवेश करे. सूबेदारों की अतिथिशाला में सूबेदार के ठहरने की व्यवस्था हुई, और फिर से महाराज के नाम के कीर्तन, वेदपाठ, दान-दक्षिणा का क्रम चलने लगा.

इस तरह एक सप्ताह और बीता और महाराज ने सूबेदार को दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया. एक लाख रुपयों की थैलियां लदवाये हुए, वस्त्राभूषणों के उपहार के साथ सदाशिव यशवंत राव सेने महाराज के सम्मुख उपस्थित हुए. उन्होंने स्वयं महाराज की आरती उतारी और हाथ जोड़कर दीनभाव के साथ महाराज के सम्मुख खड़े हो गये.

महाराज ने गौर से सदाशिव यशवंत सेने को देखा, एक नितांत अनजाना और अपरिचित चेहरा, जिसे उन्होंने पहले कभी भी न देखा था. वह कुछ देर तक सोचते रहे फिर बड़े धीमे स्वर में जिसे इर्द-गिर्द के लोग न सुन सकें, उन्होंने कहा—मैंने तुम्हें कब अंजोर का सूबेदार नियुक्त किया? मैंने तो तुम्हें पहले कभी देखा ही नहीं.

सदाशिव यशवंत सेने ने अपने अंगरखे से वह अपना शिकायत वाला पत्र निकाला जो उन्होंने पांच वर्ष पहले लिखा था और जिस पर महाराज ने अपने हाथ से आज्ञा दी थी—'तू भी उस पोल में घुस जा.' और उसे महाराज के सामने बढ़ा दिया.

महाराज ने आदि से अंत तक वह पत्र पढ़ा. उन्होंने अपनी आज्ञा देखी. उनकी भवें तन गयीं और वह बेतरह गंभीर हो गये. दरबारी कांप उठे कि क्या होने वाला है. सदाशिव यशवंत सेने हाथ जोड़े उसी तरह अविचलित खड़े रहे, चेहरे पर शिकन नहीं. लेकिन वाह रे महाराज, एक हलकी-सी मुसकान उनके मुख पर आयी, उस पत्र के टुकड़े-टुकड़े करते हुए उन्होंने कहा—हां, मैंने तुम्हें नियुक्त किया था. और घूम कर उन्होंने दीवान से कहा, सूबेदार के स्वागत में कल राज्यभोज हो और सूबा का स्थान मेरी बगल में होगा. और उन्होंने सदाशिव यशवंत सेने को अपना स्थान ग्रहण करने का संकेत किया.

* *

चारों के गिलास खाली हो गए थे, डाक्टर जयदयाल शर्मा ने फिर से दौर मारे, फिर डाक्टर जयदयाल शर्मा ने कहा—अगर आप इस घटना का इतिहास में उल्लेख न करें डाक्टर वर्मा तो बड़ा अच्छा हो.

—क्यों जी, यह तो बड़ी मजेदार कहानी है! अपने देश में बड़े-बड़े गनी लोग होते रहे हैं, सरदार भूपेंदर सिंह बोले.

चारों के गिलास खाली हो गए थे, डाक्टर जयदयाल शर्मा ने फिर से दौर मरे, फिर डाक्टर जयदयाल शर्मा ने कहा—अगर आप इस घटना का इतिहास में उल्लेख न करें डाक्टर वर्मा तो बड़ा अच्छा हो.

—जी हां, सरदारजी, तब गुनगाहक भी होते थे. अब देखिये, कि सदाशिव यशवंत ऐसे गुनी थे तो महाराज ग्वालियर ऐसे गुनगाहक थे. लेकिन आज का युग बदल गया है. कोई दूसरों के गुणों को ग्रहण करने वाला दिखता ही नहीं, हरेक आदमी स्वयं गुनी बन गया है. इसका एक उदाहरण मुझे अपने प्रदेश में ही देखने को मिला. राधेलाल चौरसिया ने कहा.

'दो बांके' और 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' जैसी व्यंग्य कथाओं के लेखक भगवतीचरण वर्मा अब फिर कहानी के क्षेत्र में रचनाशील हुए हैं. आज के संदर्भों में उनका व्यंग्यकार का रूप एक बार फिर आपके सामने है. वर्माजी 'सारिका' के लिए विशेष रूप से बारह कहानियां लिख रहे हैं, उनमें से अब तक आप दस कहानियां पढ़ चुके हैं— 'सौदा हाथ से निकल गया' (अप्रैल '७४), 'क्षमायाचना' (मई '७४), 'संकट' (जून '७४), 'रंगीलेलाल तीर्थयात्री' (जुलाई '७४) 'वसीयत' (अगस्त '७४), 'खानदानी हरामजादे' (सितंबर '७४), 'समझौता' (अक्तूबर '७४), 'गनेसीलाल का रामराज' (नवंबर '७४), दिल का दौरा (दिसंबर '७४), और 'जबरा मारे और रोने न दे' (जनवरी '७५). उस क्रम की यह ग्यारहवीं कहानी है.

—आपके प्रदेश में ही मिला जी, जरा हम भी सुनें. सरदार भूपेंदर सिंह बोले.

कुछ संकोच के साथ डाक्टर राधेलाल चौरसिया बोले—लेकिन इसका जिक्र इतिहास में न किया जायगा, पहले डाक्टर, जयदयाल शर्मा और श्यामनाथ वर्मा मुझे यह वचन दे दें.

दोनों ने अपने वचन दे दिये.

व्हिस्की का एक लंबा घूट गले के नीचे उतार कर डाक्टर राधेलाल चौरसिया ने आरंभ किया.

* *

हमारे नगर का एक नागरिक है रत्नकुमार. रत्नकुमार के पिता रामकुमार बहुत बड़े व्यापारी हैं, करोड़पति आदमी समझिये. उन्हीं रत्नकुमार के दो भाई अपने पिता के साथ सब काम-काज सम्हालते हैं, ब्लैक मार्केटिंग, मुनाफाखोरी में दक्ष. अकेले रत्नकुमार ही कोई कामकाज नहीं करता, वह केवल राजनीतिक हरकतों में ही भाग लेता रहता है. शिक्षा के नाम पर मुबलिक हाई स्कूल फेल, भगवान ने बुद्धि तो दी ही है लेकिन बुद्धि के संचालन से उन्हें कोरा रखा है. लंबे-से, गोरे-से स्वस्थ नौजवान, प्रभावशाली व्यक्तित्व से युक्त, वह सब तब तक जब तक वह आपसे बात न करे. वैसे बात भी बड़े रंग से आरंभ करते हैं. ऐसा लगता है कि वह एक पहुंचे हुए राजनीतिज्ञ हैं, एक बहुत बड़ा विद्वान आपसे बात कर रहा है—आपको ऐसा लगेगा. लेकिन चार-पांच मिनट के अंदर ही बातों का संतुलन गड़बड़ा जाता है. उनके इसी संतुलन के कारण उनके परिवार वालों ने उन्हें राजनीति में पूरी छूट दी है.

कुछ मंत्रियों से, कुछ उच्च कांग्रेस-नेताओं से पारिवारिक संबंध से रत्नकुमार की गणना नगर के महत्वपूर्ण लोगों में होती है. सभी राजनीतिक पार्टियों में उनकी पहुंच है, कांग्रेस के तो वह सदस्य हैं. प्रायः हरेक मंत्री या नेता की बगल में खड़े हुए उनके फोटोग्राफ परिवार के दफ्तरों की शोभा बढ़ाते हैं जिनके बल पर रत्नकुमार के परिवारिक धंधे चमक रहे हैं.

तो हुआ ऐसा कि प्रदेश में एक मुख्य मंत्री की नियुक्ति हुई यानी वह चुने नहीं गये बल्कि तत्कालीन मुख्य मंत्री के त्यागपत्र देने के बाद केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त करके भेजे गये. अस्थायी रूप से उनका विधिवत चुनाव उनके कार्यभार संभालने के बाद होने को था. तो नगर में आने पर स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत हो, प्रदेशीय नेतृत्व ने इसकी योजना बनाई. हजारों आदमी फूल-माला ले कर उनकी जयजयकार करते हुए स्टेशन पर उपस्थित हुए.

मुख्य मंत्री के ट्रेन से उतरते ही भीड़ में रेल-पेल आरंभ हुई उन्हें हार पहनाने के लिए, और रत्नकुमार ने लोगों को धक्का देते, गिराते हुए सबसे पहले मुख्य मंत्री को एक निहायत शानदार और कीमती गजरा पहनाया जिसे उन्होंने पंद्रह रुपया खर्च करके विशेषरूप से बनवाया था. कांग्रेस के अध्यक्ष, कांग्रेस के मंत्रिगण सबों के गजरे मुकाबिले में तुच्छ थे. बड़े प्रेम से साथ मुख्य मंत्री ने रत्नकुमार से हाथ मिलाया, और तत्काल उस मुद्रा में उनके अनगिनती फोटो खिंच गये. अब रत्नकुमार मुख्य मंत्री की बगल में लग गये.

स्टेशन के बाहर यह व्यवस्था थी कि एक खुली जीप पर मुख्य मंत्री की सवारी निकले. जीप पर खड़े हो कर वह लोगों का अभिवादन करेंगे, लोगों की फूल-मालाएं ग्रहण करेंगे, लोगों को दर्शन देंगे और जनता का जय-जयकार स्वीकार करेंगे. कांग्रेस पार्टी के मंत्री श्री नत्थूलाल गुप्त की निजी जीप जो एकदम नयी थी, मुख्य मंत्री की सवारी के लिए चुनी गयी.

स्टेशन से बाहर निकलते ही मुख्य मंत्री उचक कर जीप पर खड़े होकर ड्राइवर की बगल में खड़े हो गये. उनके बगल में कांग्रेस के अध्यक्ष बैठ गये. पीछे बैठने के लिए धक्कम-धक्का आरंभ हुआ और श्री नत्थूलाल गुप्त को धक्का देकर श्री रत्नकुमार ठीक मुख्य मंत्री के पीछे खड़े हो गये. कांग्रेस का एक कार्यकर्ता और चढ़ पाया, तब तक जीप चल पड़ी. हाथ जोड़े हुए मुख पर मधुर मुसकान धारण किये हुए मुख्य मंत्री खड़े थे, और उनको मालाएं भेंट की जा रही थीं.

जब-जब मुख्य मंत्री के गले में मालाओं का बोझ अधिक हो जाता था, तब-तब रत्नकुमार उन्हें लेकर साथ वाले कांग्रेस कार्यकर्ता को दे देते थे. इस तरह मुख्य मंत्री का जुलूस उनके अस्थायी निवास स्थान पर पहुंचा. अपने निवास स्थान पर पहुंच कर मुख्य मंत्री ने बड़े प्रेम से रत्नकुमार का नाम और पता पूछा, फिर 'मिलते रहना' का निमंत्रण देकर वह विश्राम करने चले गये.

* *

एक सप्ताह बाद कांग्रेस पार्टी के मंत्री नत्थूलाल गुप्त मुख्य मंत्री के घर पर पार्टी के संबंध में कुछ परामर्श करने के लिए पहुंचे. उन्होंने देखा कि मुख्य मंत्री रत्नकुमार के साथ बैठे चाय पी रहे हैं और घुल-घुल कर बातें कर रहे हैं. एकाएक नत्थूलाल गुप्त चौंक उठे. लेकिन मुख्य मंत्री के साथ रत्नकुमार की आत्मीयता देख कर वह जैसे खून का घूंट पीकर रह गये. कुछ औपचारिक बातें करके मुख्य मंत्री ने रत्नकुमार को विदा किया.

बातचीत समाप्त होने पर श्री नत्थूलाल गुप्त को लगा कि मुख्य मंत्री का मूड अच्छा है. उन्होंने हिम्मत करके कहा—मुझे नहीं मालूम था कि इन रत्नकुमार से आपकी घनिष्टता और आत्मीयता है, आपके पुराने परिचित मालूम होते हैं.

मुख्य मंत्री मुसकराए--- इससे मेरा परिचय तो एक हफ्ता पहले जब मैं लखनऊ आया था तभी हुआ, लेकिन बड़ा बुद्धिमान और सज्जन मालूम होता है. हरेक काम में मेरी सहायता करने को तत्पर रहता है. शायद कांग्रेस का कोई प्रभावशाली नेता है.

नत्थूलाल गुप्त की अब हिम्मत खुली—नेता क्या निहायत निठल्ला और आवारा किस्म का आदमी है! हर जगह जबरदस्ती घुस जाता है.

—तो क्या यह रत्नकुमार कांग्रेस का कार्यकर्ता नहीं है?

--श्रीमान कैसा कार्यकर्ता और कहां का कार्यकर्ता! बहुत संभव है कांग्रेस का साधारण सदस्य हो, मुझे तो पता नहीं. इस आदमी के कारण आपकी बदनामी फलने का डर है.

मुख्य मंत्री गंभीर हो गए. अभी तब वह न जाने कितने लोगों को उल्लू बना चुके थे, एक साधारण आदमी उन्हें उल्लू बना रहा है, यह उन्हें अखर गया. उठते हुए उन्होंने केवल इतना कहा--- हूं, अच्छा जाइये. आपने मुझे सतर्क कर दिया— धन्यवाद!

और छाती फुलाये हुए नत्थूलाल गुप्त चले गये.

मुख्य मंत्री ने अपने पी.ए. को बुला कर आदेश दिया कि रत्नकुमार को अब उनके सामने न आने दिया जाय.

नत्थूलाल गुप्त ने लौटते ही आफिस में यह आदेश दिया कि रत्नकुमार को कांग्रेस की किसी संख्या में अब स्थान न मिले. जहां-जहां उन्हें स्थान मिल गया है, वहां-वहां से वह निकाल बाहर किये जायं.

और तीसरे दिन जब रत्नकुमार मुख्य मंत्री की कुशलक्षेम पूछने तथा उनका दर्शन करने मुख्य मंत्री के बंगले पर पहुंचे, तब चपरासी ने उनसे कहा— मुख्य मंत्रीजी को फुर्सत नहीं है.

रत्नकुमार बोले--- हम जानते हैं, केवल दर्शन करने और प्रणाम करने हम आए हैं.

चपरासी ने कड़े स्वर में कहा—कह तो दिया कि फुर्सत नहीं है. अब आगे से यहां मत आना. मुख्य मंत्री ने आदेश दे दिया है.

—ऐं-ऐं, क्या बात है, किस बात पर नाराज हो गये हैं?

चपरासी ने तेवर बदलकर कहा— जाते हो कि धक्का देकर तुम्हें यहां से भेजा जाय?

और रत्नकुमार मुंह लटकाये हुए वापस चला गया.

* *

सरदार भूपेंदर सिंह ने हंसते हुए कहा—मुझे तो इस रत्नकुमार के साथ हमदर्दी है जी. डाक्टर वर्मा वह तुम्हारे सदाशिव यशवंत सेने से कुछ ऊंचा ही बैठता है क्योंकि सेने तो अक्कलमंद और पढ़ा-लिखा आदमी था और यह रत्नकुमार ठेठ किस्म का आदमी.

डाक्टर राधेलाल चौरसिया बोले— यह उस नत्थूलाल गुप्त की बदमाशी थी.

डाक्टर श्यामनाथ ने कहा—नहीं, यह मुख्य मंत्री की नाकाबलियत थी कि उन्होंने रत्नकुमार के गुण की दाद नहीं दी.

और डाक्टर जयदयाल शर्मा ने उठते हुए कहा— न किसी की नाकाबलियत, न किसी की बदमाशी! हमारे यहां किसी कवि ने कहा है--- गुन न हिरानो, गुनगाहक हिरानो है. लेकिन आज के युग में सब गुनी बन गये हैं. गुनगाहक कोई दिखता ही नहीं. अच्छा चलिये, अब खाना खा लिया जाय. □□□

'चित्रलेखा', महानगर,
लखनऊ —९

एक लघुकथा

मेरे देश में

● वीणा गुप्ता

कुछ ही समय पहले की बात है कि नरकपति यमराज के सम्मुख एक विकट समस्या खड़ी हो गयी.

बुरे कर्मों वाले प्राणियों को नरक में इसलिए डाला जाता था कि वहां पर दी जाने वाली यंत्रणाओं और असुविधाओं से दुखी होकर प्राणी अपने किये पर पश्चाताप करे.

परंतु यह क्या? इन दिनों हर प्राणी बड़ी से बड़ी यंत्रणा भी झेल लेता था. दुखी होना तो दूर रहा, हर कोई खुश और मस्त दिखाई देने लगा था. जिसको देखो, वही नाचने-गाने, हंसी-मजाक, तरह-तरह के मनोरंजन में मशगूल.

एक दिन यमराज ने एक नये प्राणी से पूछा — एक बात बताओ, क्या तुम्हें किसी प्रकार का दुःख नहीं है?

—नहीं महाराज, मैं तो यहां बड़े आनंद से हूं.

नये प्राणी का यह उत्तर सुन कर यमराज स्तब्ध रह गये.

उन्होंने फिर प्रश्न किया—यहां तो लोहे के चने तुम्हें चबाने के मिलते हैं, क्या यह अच्छा लगता है?

—यहां लोहे के चने तो खाने को मिल जाते हैं, महाराज!

—इतना बोझा यहां उठाना पड़ता है, क्या उससे तुम्हारी कमर दर्द नहीं करती?

—लेकिन वहां तो महंगाई से कमर टूट ही गयी थी, प्रभु!

—यहां तुम्हें किसी भी प्रकार के अभाव का अनुभव नहीं होता?

—यहां किसी वस्तु के लिए वर्षों तक लाईन तो नहीं लगानी पड़ती, दयासागर!

अपने हर प्रश्न का उत्तर नये प्राणी को बड़ी शालीनता और धैर्य से देते पा कर यमराज बौखला उठे.

इस पर जब वह प्राणी मंद-मंद मुस्कराने लगा तो यमराज ने क्रुद्ध होकर पूछा — तो क्या तुम यह कहना चाहते हो कि पृथ्वी पर लोगों को इससे भी अधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं?

तब उस प्राणी ने सहज भाव से उत्तर दिया — पूज्य, सारी पृथ्वी का तो मुझे नहीं मालूम. हां, यदि आप मेरे देश में चले जायें तो फिर किसी प्राणी से ये प्रश्न पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी. □□□

जाने किस बंदरगाह पर

• सतीश जायसवाल

भला कहीं इतनी बड़ी मंजिलों वाली एयरकण्डीशंड इमारत अपनी-जगह छोड़ कर चलने लगेगी? लेकिन वहम का तो कोई इलाज नहीं होता ना. बस यही बात अग्निपुष्प के साथ है. उसे अपना आफिस हमेशा किसी भीड़ भरे बंदरगाह पर लंगर डाल कर पड़े हुए विशाल जहाज की तरह लगा. और एक भ्रम हमेशा उसके मन में, किसी निर्जन द्वीप की तरह स्थायी तौर पर बना रहा, किसी भी दिन ऐसा हो सकता है कि मनचले नाविक की तरह वह किसी प्रेमिका के घर की तलाश में देर तक शहर भटकता रह जाये और लौटने पर पाये कि जहाज उसे छोड़ कर निकल चुका है.

इसीलिए इस बेतरतीब भीड़ के बीच, ऐतिहाती तौर पर उसने अपनी पहचान के लिए कुछ ऐसे चिह्न निश्चित कर लिये हैं जो दूर से दिखाई पड़ जायें और उसे अपनी स्थिति का फौरन पता लग जाये.

यह बैंक ऑफ बड़ौदा की शानदार सफेद इमारत दूर से पास नजर आती है और अग्निपुष्प को हमेशा, दूर स्थित सागर से दिखायी पड़ने वाले प्रकाश स्तंभ की तरह लगती है. नीराजना ने अपनी ओर से कोई ऐसा संकेत नहीं दिया है कि वह अपने मन में कोई आश्वासन पालने लगे. लेकिन वह मान कर चलता है कि एक बार मुलाकातों का सिलसिला भर चल जाये, तो फिर अपनी प्रत्याशता सिद्ध करने के रास्ते खुल जाते हैं. नीराजना वैसे भी शुरू से बड़ी उदार रही है. पहले दिन से ही जिस दिन पहली बार, दोनों बस में मिले थे, अग्नि ने जितना घुमा-फिरा कर पूछा था---अगर दुबारा कभी मिलने का मन करे तो? उसने उतनी ही सहजता के साथ अपने बैंक का पता दे दिया था---इसी शानदार सफेद इमारत का. और इसी तरह, सामने वाले ऊपरी दांत झलकाते हुए हंस दी थी. यह उसका हंसना, उसके प्रत्यक मनोभाव को अभिव्यक्ति देने वाला सबसे जटिल माध्यम है. लेकिन ऐसे हंसते हुए, यह गोल चेहरे वाली लड़की इतनी बचकाना लगने लगती है कि किसी का मन करे, उठाकर अपनी जेब में भर ले. दूसरे ही दिन अग्नि उसके पास पहुंच गया था और उसे देख कर वह इसी तरह हंस दी थी. फिर वह उससे लगातार मिलता रहा. दोपहर में लंच के समय अपने आफिस से नीचे उतर कर आता और सरकस पार कर के अपने प्रकाश-स्तंभ तक पहुंच जाता.

वह बराबर हंस कर उसका स्वागत करती और हंस कर विदा देती. लेकिन यह हंसी कभी-कभी अग्नि के लिए एक ऐसी जटिल पहेली बन जाती जिसमें से अपने लिए वह कोई अर्थ नहीं निकाल पाता. एक दिन झुंझला कर उसने तय किया कि आज फैसला हो ही जाय, साफ-साफ उसी से पूछ लूं. लेकिन वह, पूछना चाहता था कुछ, और पूछ गया कुछ और---इस तरह हंसना कहां से सीखा?

---कांवेंट से जहां मैं पढ़ती थी.

अपनी कंपनी के सालाना जल्से में वह राजन को अपने साथ लेकर गया था. उसने अपने लिए नीराजना का संक्षेपीकरण भी कर लिया---राजन, सुनने में किसी लड़के के नाम की तरह लगता है,?

---हां, जैसे अग्नि कहने से लगे, किसी लड़की को पुकारा!

सर्दी की उस कोहरे भरी रात में लौटते हुए वह बेहद प्रेमिल हो उठा था. उसने प्रस्ताव किया कि किसी दिन तुम्हारी इस इमारत की सबसे ऊपर वाली मंजिल पर चढ़ कर देखेंगे, वहां से शहर कैसा दिखता है.

---ना, मुझे डर लगेगा!

---अरे,मैं जो साथ रहूंगा.उसने बड़े उत्साह में भर कर कहा था.

पर उतनी ही सादगी से राजन ने कहा---तब तो मैं बोर हो जाऊंगी. पढ़ाई के दिनों में सीखी हंसी का उसने एक और मुक्त प्रयोग किया. अग्नि फिर कुछ नहीं समझ सका, हां या ना.

बस यहीं आकर वह थकने लगता है. एक स्पष्ट स्थिति के लिए उसका आग्रह जितना प्रबल हुआ है, ठीक उसके उलट परिमाण में उसे अनिश्चयात्मकता में गुजारा करना पड़ता है. चीजों के हाथ से फिसल जाने का संयम-सा हर समय इर्दगिर्द व्याप्त रहता है---कहीं ऐसा न हो कि किसी परियोजना में वह अपनी संपूर्ण शक्ति केंद्रित कर दे और आखिर में जाकर मालूम हो कि आधार ही विफल हो गया. तब क्या होगा? या तो पीछे हट जाये या बगल होकर देखता रहे और अपने लिए किसी अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करता रहे. वह बस इतना कर पाता है कि पूरी चेष्टा के साथ उस जगह अपने को बनाये रखने में जुटा रहे. अंततोगत्वा कुल लड़ाई का, उस पर अनिवार्यतः लागू होने वाला, निर्णय ही सामने आता है. विकल्प के अवसर वह अपने लिए कभी नहीं बचा पाया.

जाहिर है, फैसले के रूप में लागू होते नतीजों ने हमेशा

• सुशील भारती

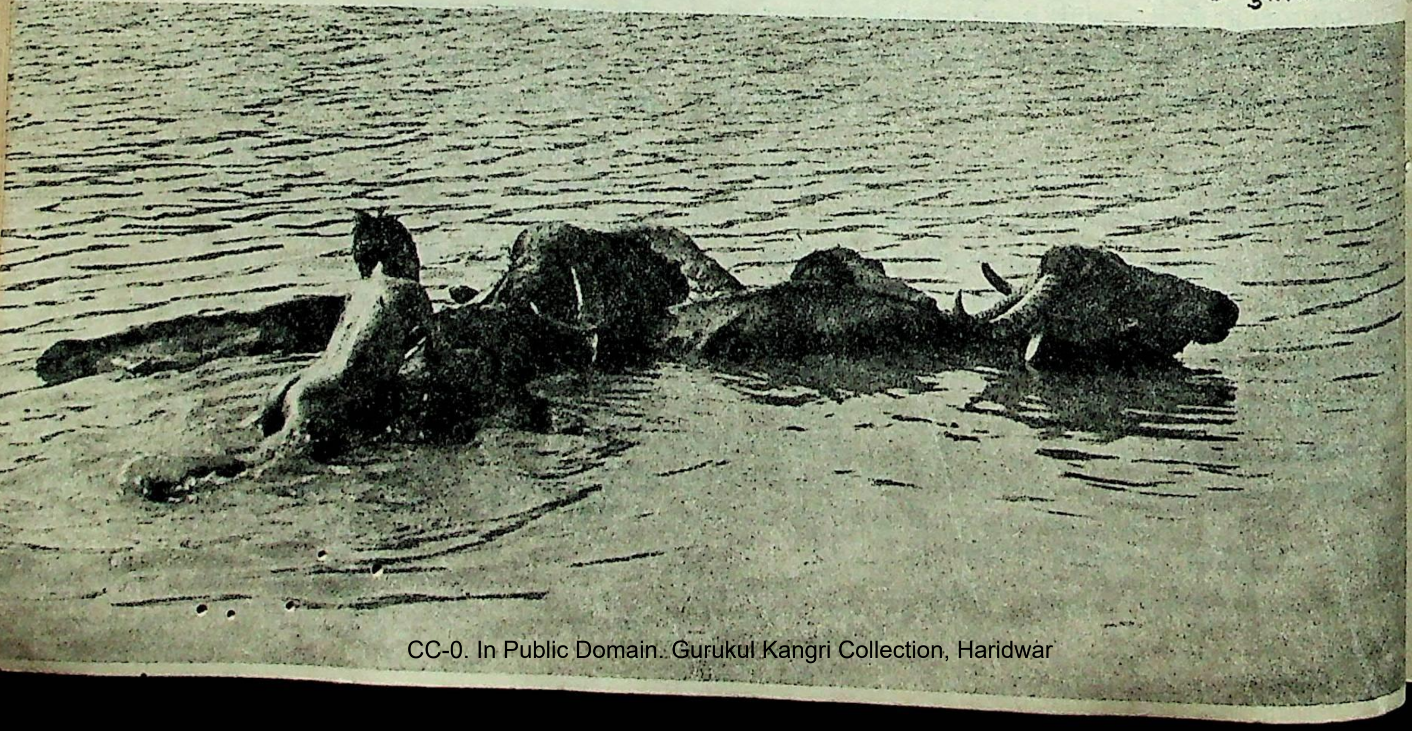

उसके सुंदर से सुंदर स्थापत्य को उनकी जगह से सरका दिया. अब जैसे, उसका यह लगना कि इतनी बड़ी, पांच मंजिलों वाली एयर-कंडीशंड इमारत उसे छोड़कर किसी जहाज की तरह किसी अज्ञात द्वीप के लिए रवाना हो जायेगी और वह भीड़ भरे बंदरगाह में अकेला छूट जायेगा---कुछ नहीं, असुरक्षा की एक गहरी भावना उसमें स्थायी तौर पर घर बना कर बैठ गयी है.

असल बात तो यह है कि जिस दिन से उसने इस कंपनी में काम शुरू किया, ठीक उसी दिन से उसकी जड़ काटने की साजिशें भी साथ-साथ शुरू हो गयीं. हुआ यह कि सेक्शन का आफिसर माहेश्वरी अपने किसी आदमी को वहां लाना चाहता था लेकिन परसनल मैनेजर तेनानी साहब तय कर के बैठे थे---कोई भी, लेकिन माहेश्वरी का आदमी नहीं. इस "कोई भी" वाली श्रेणी में ही अग्निपुष्प का नंबर लगा था. लेकिन माहेश्वरी ने, जिसके ठीक नीचे उसे काम करना था, उसे तेनानी साहब का आदमी मान लिया.

अग्निपुष्प को तय करना था कि भ्रम की इस स्थिति को कायम रहने दे या इसे दूर करके अपनी स्थिति साफ कर ले या फिर अपना स्वतंत्र क्षेत्र निर्धारित करे. कुछ तो करे. लेकिन उस समय उसे ऐसी कोई तात्कालिक आवश्यकता नजर नहीं आयी.

वह हमेशा यही करता है. जब किसी एक निश्चय पर नहीं पहुंच पाता तो उसे किसी भी अगली तारीख के लिए टाल कर उधर से आंखें मूंद लेता है और अपने को मुक्त महसूस करता है. लेकिन इस बार वह अधिक देर तक बालू में सर डाल कर सुरक्षित नहीं रह सका. लेकिन मालूम नही किस आधार पर वह सोचता रहा कि यदि कल तक के लिए टल जाता तो जरूर कोई काट निकाल सकता. वह अपने सहकर्मियों के अतिशय गंभीर होते चेहरों को देखकर समझ चुका था कि माहेश्वरी अपनी तरफ से उसका खेल खत्म कर चुका है, अपनी जगह बैठे-बैठे फिल्मी अंदाज में कंधे उचका कर अपने आपसे मशविरा किया---फिर चलेंगे अपने गांव. सरकार से कर्ज लेकर ट्रैक्टर खरीदेंगे.और घर की खेती करेंगे.क्यों ठीक?---ठीक!

हां, यहां तक तो सब ठीक था क्योंकि यहा तक उसके अख्तियार के बाहर कुछ भी नहीं था. लेकिन परसनल सेक्सन की एक छोटी-सी स्लिप ने उसकी इतनी दिनों की सारी दिमागी तैयारी एकबारगी गड़बड़ा दी---आपकी प्रोबेशन-अवधि खत्म हो चुकी है. आपके स्थायित्व के संबंध में प्रबंधक विचार-विमर्श कर रहे हैं. इस बीच आप अपना कार्यभार व अन्य दायित्व लेखा विभाग को सौंप कर यथा आशय का प्रमाणपत्र प्रस्तुत कीजिये.

अपने नाम का विजिटिंग कार्ड जमा करते समय अग्नि को ऐसा महसूस हुआ जैसे आज से वह बेनाम हो गया. एकाएक उसके भीतर इतनी टूट-फूट हो गयी और वह इतना आत्म-विश्वास-विहीन हो उठा कि उसका मन करने लगा---सीधे तेनानी साहब के कमरे में घुस जायें और घुटने टेक दे. यह नहीं हो सका. कोई फायदा भी नहीं था. वे पहले ही किसी निर्णय पर पहुंच चुके थे, अब उसकी औपचारिक घोषणा भर बाकी थी.

इन तीन दिनों के यातना शिविर ने उसे असुरक्षा, भविष्यहीनता की अंतिम सीमा तक पहुंचा दिया. आखिर अपने उत्पीड़न से ही विद्रोह कर के वह इस अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचा था---बस नौकरी ही लेंगे ना? ले लें. इसके बाद उसका अपना संघर्ष तो अब शुरू हो रहा था---क्या वह इतना आसान हल है?

लेकिन प्रोबेशन पर चल रहा एक अस्थायी आदमी प्रबंधकों के लिए और कितना जटिल सवाल हो सकता है? वह चाहे तो भी अपनी ओर से क्या प्रयास कर सकता है---जिसका कोई आधार ही नहीं? बस एक ही आसरा बार-बार दिखायी पड़ता---तेनानी साहब का कमरा. लेकिन इतनी-सी तुच्छ बात के लिए एक आदमी के सामने गिड़गिड़ाने की कल्पना वह नहीं झेल सका.

सतीश जायसवाल : (जन्म : १७ जून, १९४२) अकेलेपन और सैलानी जिंदगी के फैलाव में बार-बार अनिर्णय के अवसर आये जिनका प्रभाव कहानियों में भी दिखलाई पड़ता है. मूलतः कहानीकार किंतु कविताएं और लेख भी लिखे हैं.

अंततः कुछ करने के लिये अब उसके हिस्से में कुल एक चीज रह गयी थी---या तो चुप, पंगु बना बैठ कर उस आनेवाले निर्णय को अपने ऊपर लागू होने के लिए खुद को प्रस्तुत करता रहे या बस, एक कदम आगे बढ़कर उस आगत निर्णय पर अपना विकल्प चस्पा कर दे. उसे लगा, श्रेयस्कर यही है कि टर्मिनेशन आर्डर आने के पहले वह खुद अपनी ओर से बढ़कर त्यागपत्र प्रस्तुत कर दे.

दूसरों के निर्णय और अपने विकल्प के बीच बस कुल एक झटके का फासला शेष था. लेकिन यह भी कोई आसान बात सिद्ध नहीं हुई. वह थक गया और हांफने लगा---इससे तो अच्छा है, उन्हें ही फैसला सुनाने दो. यह विश्वास भी बांधा कि कुछ नहीं, बस अपना वहम है. हो सकता है, अंतिम चरणों में कुछ चमत्कृत घट जाये.

वहां कोई द्विविधा, दो राय नही थी. उनके चेहरे पर कुछ भी ऐसा नहीं था जिससे परिचय का कोई संकेत मिले और मन में साहस का संचार हो. केवल कागज बोल रहे थे. और कागज माहेश्वरी के तैयार करवाये हुये थे. उसकी सेवा-मुक्ति का आदेश टाइप होकर सामने पड़ा हुआ था.दस्तखत करके उसने एक प्रति प्राप्त कर ली. दो महीने की तनख्वाह वाले लिफाफे के साथ तेनानी साहब ने अपना दाहिना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया.

कमरे से बाहर निकल कर अग्नि ने सहज दिखने का यत्न किया, ठीक वैसा ही जैसा कमरे में जाने के पूर्व था, लेकिन उससे नहीं बना. चलते-चलते उसने टेबल पर रखी रहने वाली अपनी नामपट्टिका को इस तरह उलट दिया जैसे किसी फांसी के आदेश के बाद न्यायाधीश निब तोड़ कर उठ जाता है. उतने सारे जाने-पहचाने लोगों के बीच से अकेले-अपरिचितों की तरह निकल आने में भी उसे बड़ी मेहनत लगी. नीचे पहुंच कर उसने सोचा, मुक्ति से भरा वातावरण खुशगवार होगा लेकिन वहां कोई मौसम नहीं था. कनाट प्लेस की भीड़ में वह नितांत अकेला पड़ गया. उसने सर उठाकर देखा, आकाश गिद्ध-चील और कौवों से भर उठा. मुक्त रहने का उसका अभ्यास जा चुका था.

थोड़ी देर तक उसकी समझ में ही नहीं आया, रास्ते किधर जाते हैं. उसने सामने देखा, वह पांच मंजिलों वाली एयरकंडीशंड इमारत सचमुच किसी विशाल जहाज की तरह सरकने लगी थी और वह बंदरगाह में अकेला छूट गया था. उसने घबरा कर बैंक आफ बड़ौदा की उस शानदार सफेद इमारत की तरफ, जो दूर से पास नजर आती है, देखा. लेकिन उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा. उसने देखा, जहाज के बंदरगाह छोड़ते ही उसका वह अपना प्रकाश स्तंभ भी अपनी जगह छोड़ कर सरकने लगा था. □□□

द्वारा--हिन्दी प्रकाशन, बिलासपुर (म. प्र.)-४९५००१

छुट्टी का एक दिन • अकुलेश परिहार

प्रभाकर जब उठा, बाहर धूप निकल आयी थी. मिडिल ढलान पर क्वार्टर के होने का यही फायदा था कि सुबह धूप जल्दी आ जाती थी. फिर गर्मी के मौसम में तो सुबह ऐसी हवा चलती है कि मन बरबस ही देवदारों के नीचे बैठ जाने को हो आता है.

प्रभाकर की चारपाई के पास ही अठारह बाई अठारह की एक चौकोर खिड़की है. जाड़ों के दिन हों या वर्फानी रातें, वह हमेशा खुली रहती है. गर्मियों में पत्नी कुछ नहीं कहती, किंतु जाड़ों के मौसम में जब पतझड़ शुरू हो जाता है वह खिड़की को खुली रखने के पक्ष में नहीं रहती. अक्सर कहती रहती है—सुनो जी, इस मोरी (खिड़की) को बंद कर दो. आजकल पत्ते गिरते रहते हैं. कभी कोई छाया-वाया बच्चे पर लग गयी तो? फिर आजकल ठंड भी तो होती है. तुम तो खर्राटे भर-भर कर नींद लेते हो और मैं जाड़े से कांपती रहती हूं. परंतु प्रभाकर हंसते हुए सहज ही टाल जाता है. कहता है—तुम भी न जाने क्या-क्या सोचती रहती हो. पत्ते सूख कर जमीन में गिरेंगे ही. उन पर कोई प्रेत-श्रेत नहीं बैठा रहता. खिड़की खुली रहने से रात भर ताजा हवा आती रहती है. सुबह उठते ही शरीर ताजा-चंगा रहता है. वास्तव में औरतें बड़ी डरपोक होती हैं. आखिरी वाक्य वह कुछ इस तरह कहता कि पत्नी बरबस ही मुसकरा आती. तब प्रभाकर मन-ही-मन खुश हो जाता कि पत्नी उसकी हर बात मान जाती है. पत्नी के रुष्ट हो जाने के इन क्षणों में जब प्रभाकर उसे हंसा लेता, तब वह अपने में एक गर्व-सा अनुभव करने लगता है. शायद हर पुरुष इन क्षणों में वही महसूस करता हो. किंतु प्रभाकर की वह मनःस्थिति उसे पत्नी के प्रति बेहद आत्मीय बना डालती. और प्रभाकर इन आत्मीय क्षणों में पत्नी से कोई-न-कोई शरारत कर बैठता तो पत्नी चेहरे पर बनावटी क्रोध ले आती है. किंतु उसकी आंखें पति के प्रति अथाह प्यार से भरी होती हैं.

प्रभाकर ने विस्तर पर बैठे-बैठे ही एक जमुहाई ली. चौकोर खिड़की के रास्ते धूप का एक टुकड़ा चारपाई पर छिटक आया था. खिड़की से चारपाई तक रोशनी की एक मोटी लकीर बन गयी थी. प्रभाकर उसमें चमकते हुए धूल कणों को देखने लगा. किंतु क्षण भर बाद ही जैसे कुछ याद आ गया हो. वह चारपाई से उतर कर खड़ा हो गया. पत्नी तन्मय हो कर फर्श पर झाड़ू लगा रही थी. बाल खुल कर बिखर आये थे. साड़ी कंधे से नीचे खिसक गयी थी. इस वक्त पत्नी को देखते रहना प्रभाकर को बड़ा सुखद लगा.

पत्नी ने दरवाजे के पास कूड़े को एक गत्ते पर उठाया और बाहर फेंक आयी. फिर साड़ी ठीक करते हुए प्रभाकर के सामने आ खड़ी हुई.—तुम तो अब उठ रहे हो, बाबूजी कब के उठ गये हैं. नहा-धो कर गायत्री जाप भी कर लिया है. अब चाय पी कर टहलने को निकल गये हैं. कहने लगे, थोड़ी दूर तक टहल आता हूं. ताजी हवा चल रही है. . . जानते हो वह तुम्हारे बारे में क्या कह रहे थे? पत्नी शरारत से मुसकराने लगी.

—क्या? प्रभाकर सचमुच चौंक गया था.

—डेढ़ पसलिया. पत्नी खिलखिला कर हंसने लगी.

—क्या मतलब? साफ बात क्यों नहीं कहती?

—अरे सुबह बाबूजी को चाय देने गयी तो मैंने तुम्हें जगा देने के लिए पूछा. सोचा, उनके साथ तुम भी टहल आओगे. परंतु बाबूजी ने मना कर दिया. कहने लगे, आजकल के डेढ़ पसलिया लौंडे हैं, सोये रहने दे उसे अभी. वरना फिर दिन भर आफिस में हा-हा करता रहेगा. . .ताकत-वाकत इन लोगों को कुछ होती नहीं, बस पुतले की तरह होते हैं. पत्नी फिर खिलखिला उठी. प्रभाकर ने पहले अपने दुबले-पतले शरीर को देखा, जो बनियान और अंडरवियर में कहीं अधिक दुबला अनुभव हुआ. फिर पत्नी की ओर देख कर मुसकरा दिया. किंतु प्रभाकर यह तय नहीं कर सका कि यह सब पिताजी ने कहा या यूं ही पत्नी ने शरारत से बना लिया.

अचानक बच्चा जाग गया. पत्नी झूले की ओर लपकी. झूले को हिलाते ही बच्चा चुप हो गया. प्रभाकर ने झूले को देखा. सोचा;

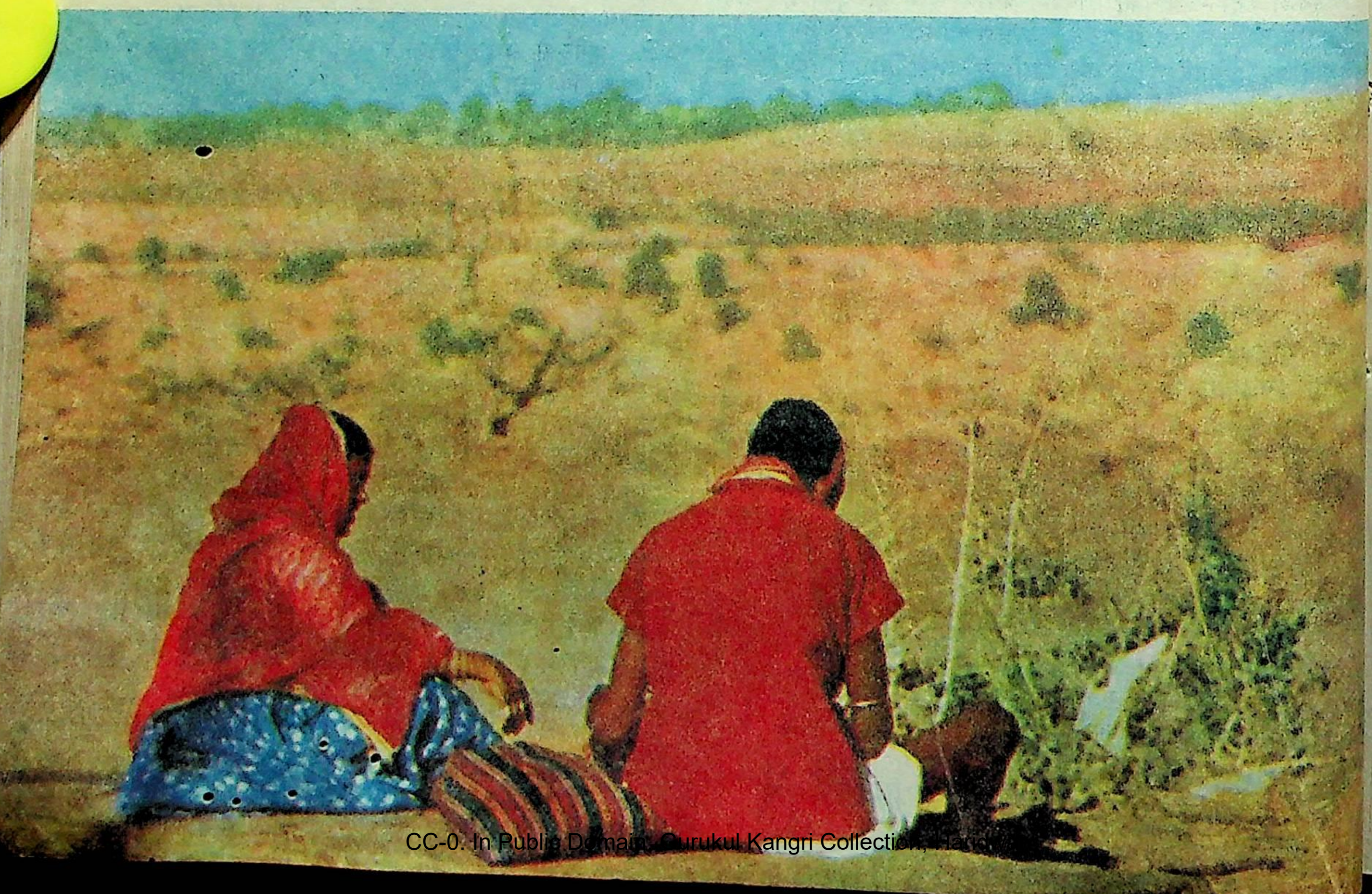

● सूरज एन. शर्मा

ठीक ही किया जो साढ़े छह रुपये में फेरी वाले से इसे खरीद लिया. बच्चे को भी आराम है और पत्नी को भी सहूलियत हो गयी है.

—क्यों, झूला तो अच्छा है न?

—हां, क्यों नहीं. अब तुम्हीं देखो, हिलाते ही बच्चा कैसे चुप हो गया. मैं तो कब से कह रही थी.

दरअसल प्रभाकर झूले की बात अचानक इसीलिए सोच गया कि उसे उसने दो रोज पहले फेरी वाले से लिया था. प्रभाकर को वह तब पसंद नहीं था. किंतु पत्नी ने दबाव दिया. एक बात और थी, पत्नी ने आखिरी बार उससे यह भी कह दिया था कि जो दूसरा आयेगा, यही झूला उसके काम भी आ जायेगा. प्रभाकर ने जब—इतनी जल्दी—कब? कह कर पत्नी के पेट की ओर देखा तो वह रुष्ट हो गयी. फिर प्रभाकर को झूला खरीदना ही पड़ा.

—हां-हां, क्यों नहीं. यही झूला दूसरे के काम भी तो आयेगा. शरारत से प्रभाकर ने कहा और लोटा ले कर बाहर चला गया.

* *

प्रभाकर जब हाथ-मुंह धो कर लौटा तो पत्नी स्टूल पर चाय का गिलास रख चुकी थी. चारपाई पर ताजा धुली चादर देख कर प्रभाकर खुश हो गया. इससे भी बड़ी खुशी उसे पत्नी के एकनिष्ठ और संतुष्ट व्यवहार से हो रही थी.

पत्नी एक थाली में चावल उठा लायी. प्रभाकर के सामने फर्श पर बैठ कर चावलों में से कंकर बीनने लगी.

—आज थोड़ी-सी पालक भी बना लेना. बाबूजी को पालक बहुत पसंद है. प्रभाकर चाय पीते-पीते बोला. बचपन से ही उसे चाय सुड़क कर पीने की आदत हो गयी थी. पत्नी को चाय पीने का यह फूहड़ तरीका बहुत खटकता है. किंतु उसने प्रभाकर से कभी कुछ नहीं कहा.

—नये वाले मर्तबान से अचार भी निकाल देना. बाबूजी को अचार भी बहुत पसंद है.

—क्यों, पुराने वाले मर्तबान का अचार खत्म हो गया?

—नहीं, खत्म तो नहीं हुआ है, परसों उसमें पानी गिर गया. शायद उन्हें अच्छा नहीं लगे.

—ठीक है. आज छुट्टी का दिन है, कहीं घूमने चलोगी? प्रभाकर एक क्षण चुपचाप सोचता रहा. फिर बोला—ठंडी सड़क की ओर चलेंगे, बाद में टिकिट मिल गया तो पिक्चर चले जायेंगे.

पिक्चर वाली बात सुन कर पत्नी का चेहरा खिल आया. प्रभाकर की ओर देख कर उत्साह से कहने लगी—पिक्चर तो बहुत अच्छी आयी है. गौरी नाम ही है ना. कल ही साहजी की लड़की देख आयी है. बहुत तारीफ कर रही थी पिक्चर की. फिर जैसे कुछ याद आ गया हो. एकाएक चुप हो गयी.

—तब तो पिक्चर अवश्य चलेंगे. मैं जल्दी से नहा लेता हूं. तुम स्टोव जला कर उसमें पालक चढ़ा दो.

—लेकिन बाबूजी? पत्नी ने सहमते-सहमते प्रभाकर के सामने प्रश्न छोड़ दिया. प्रभाकर खूंटी से तौलिया खींचने ही जा रहा था कि फिर चारपाई पर बैठ कर सोचने लगा.

—हां बाबूजी क्या सोचेंगे.?

दोनों कुछ क्षणों तक अपने-अपने ढंग से सोचते रहे. जब कभी भी छुट्टी का दिन होता तो प्रभाकर, पत्नी और दो साल के बच्चे के साथ खा-पी कर बाहर निकल जाता था. दिन भर इधर-उधर घूमते रहते. फिर पत्नी किसी रेस्त्रां या चाट हाउस पर चलने की बात सोच लेती. प्रभाकर ऐसे क्षणों पर हमेशा चुपचाप हो आता. वह जानता था, पत्नी ने इस मद के लिए कुछ रुपये बचाये होंगे. किसी भी तरह वह हमेशा कुछ-न-कुछ रुपया बचा ही लिया करती है. रेस्त्रां में चाट-वाट खा लेने के बाद, बाहर आ कर दोनों ही बाकी बचे पैसों को गिनने लगते. यदि गुंजायश निकलती तो कभी बोट पर

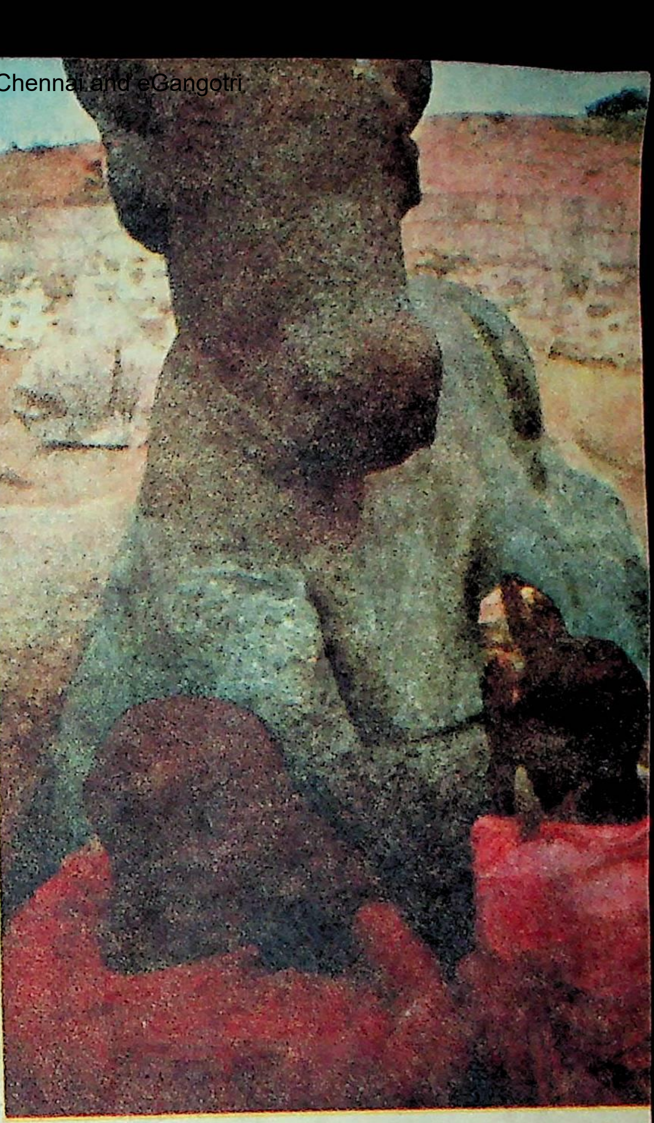
सिद्धार्थ पटेल

झील का चक्कर ही लगा लेते या पिक्चर चले जाते. कभी-कभी पत्नी बच्चे के लिए कोई सस्ता-सा खिलौना खरीद लेती. और क्वार्टर पर आ कर उन्हें दीवार पर लगी आलमारी पर सजा देती. इससे वहां खिलौनों की लंबी कतार बन गयी थी.

बाबूजी की नजर,आते ही उन खिलौनों पर पड़ी तो मुसकराये. कहने लगे—वाह, इतने खिलौने और इस तरह सजा कर! जरूर बह की करामात होगी.

यद्यपि क्वार्टर की हर बात में बहू की करामात थी. साफ सुथरा रखने से सजावट तक. किंतु बाबूजी जैसे इसी बात पर गौर कर पाये. हो सकता है बहू से विनोद करने का मूड हो आया हो. कुछ भी हो,उनका स्वभाव है ही विनोदी और प्रभाकर को यही सबसे अच्छा लगता है.

तब पत्नी ने तो लजा कर सिर झुका लिया था. किंतु प्रभाक बाबूजी के साथ हंसता रहा था.

—क्यों न बाबूजी को भी साथ ले चलें. घूम-फिर भी लेंगे मन हुआ तो पिक्चर भी देख लेंगे. पत्नी ने सहज ही अपनी राय दी

पत्नी की यह राय प्रभाकर को भी अच्छी लगी. वह भी यही बात सोच रहा था. बोला—सोच तो मैं भी यही रहा हूं. अगर बाबूज ने मना कर दिया तो फिर हम भी नहीं जा पायेंगे.

—नहीं, ऐसी बात नहीं. बाबूजी को मैं राजी कर लूंगी. वह अ आने ही वाले होंगे. . .तुम जल्दी से नहा लो. पत्नी चावल का थाल ले कर रसोई में चली गयी. वह दांतोन करता हुआ बाथ रूम चला गया.

• •
• • •

बाबूजी जब टहलने से लौटे तो बाथरूम से गुनगुनाने की आवाज आ रही थी. वह समझ गये, कि प्रभाकर अब नहा रहा होगा. बहू को देखते ही अपने विनोदी स्वभाव से विवश कहने लगे––बहू, प्रभाकर को गुनगुना तो तुमने सिखा दिया लेकिन यह दस बजे नहाने का समय भी तुमने ही बताया?

––बाबूजी, असल बात यह है कि आज इनके आफिस में छुट्टी है.

––ओह, तभी इनकी सब बातें इत्मीनान से हो रही हैं. हंसते हुए बाबूजी ने अखबार खोल लिया. शायद अभी बाहर से खरीद लाये. कुछ महीने प्रभाकर ने भी अखबार लगाया था. हाकर सुबह ही आ कर दरवाजे से भीतर फेंक जाता. किंतु प्रभाकर पूरा अखबार कभी नहीं पढ़ पाता. हत्या, चोरी, डकैती आदि दुर्घटनाओं को हेडिंगें पढ़ लेता. फिर अखबार को चारपाई के नीचे फेंक देता. अखबार से पत्नी भी संतुष्ट नहीं थी. कहती रहती थी––अजी तुमने अखबार बेकार लगवा रखा है. पढ़ते तो हो नहीं. खाली इकट्ठा करके क्या फायदा. बेकार में पैसे खर्च होते हैं. बाद में तो यह फिर रद्दी के भाव ही बिकेगा. . .प्रभाकर ने पत्नी की बात का कोई प्रतिवाद नहीं किया. दूसरे ही दिन से अखबार बंद करवा दिया.

अब बाबूजी के हाथ में जो अखबार देखा तो पत्नी को कुछ अजीब-सा लगा. सोचने लगी, नाहक ही अखबार बंद करवाया. लगा होता तो बाबूजी को अपने पैसों से खरीद कर नहीं लाना पड़ता. आज ही इनसे कह कर एक महीने के लिए अखबार लगवा दूंगी. जब बाबूजी चले जायेंगे तो बंद करवा देंगे. बाबूजी को तो परेशानी नहीं होगी.

बाबूजी कुछ देर अखबार पढ़ते रहे. पढ़ने को मन नहीं हुआ तो क्वार्टर से बाहर निकल आये. अकारण ही झील की ओर देखने लगे. झील पर तैरती बहुत सी किश्तियों को देख कर वह खुश हो गये. कुछ क्षण यूंही टहलते रहे. निरुद्देश्य. तभी उनकी नजर क्वार्टर की दीवारों के पास लगे फूलों पर पड़ गयी. यद्यपि फूलों के पौधों से सूखी पत्तियों को प्रभाकर हमेशा निकाल देता. किंतु बाबूजी भी सूखी पत्तियों को चुनने लगे. इस तरह पत्तियों को चुन-चुन कर निकालने में उन्हें बड़ा सुख महसूस होता है.

बाबूजी जब ट्रान्सफर हो कर बरेली में आये थे, तभी एक अच्छा क्वार्टर उन्हें वहां मिल गया था. बाबूजी ने क्वार्टर के चारों ओर बहुत से फूलों के पौधे स्वयं लगाये थे. तब उल्लास के दिन थे. हर रोज सुबह अपने ही हाथों से उन्हें सींचते रहते. जब तक प्रभाकर की मां जीवित थी, वह भी मदद कर दिया करती थी. किंतु दो साल पूर्व एक ट्रक से टकरा कर उसका ऐक्सीडेंट हो गया. सप्ताह भर अस्पताल में पड़ी रही. फिर आपरेशन हुआ. किंतु आपरेशन के बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी. बाबूजी कुछ दिनों तक दुखी रहे. परंतु फिर इसे ईश्वर का ही एक विधान समझ कर अपने को समझाने लगे. पूरे महीने भर तब प्रभाकर अपनी बहू के साथ उनके ही पास रहा. प्रभाकर छुट्टियां और बढ़ाना चाहता था. उसे महसूस हुआ था कि बाबूजी अगर अकेले रह गये तो ज्यादा दुखी रहेंगे. किंतु बाबूजी ने मना कर दिया. तब प्रभाकर ने बहू को वहीं रुक जाने के लिए कहा था. किंतु बाबूजी तब भी टाल गये––बेटे क्या करेगी बहू यहां ठहर कर. बेकार में ऊब जायेगी. वह बाबूजी की जिद के सामने कुछ भी नहीं कर सकता था. एक दिन बहू के साथ लौट आया.

. . .उन दिनों बहुत पहले से ही बाबूजी के रिटायरमेंट की बात चल रही थी. किंतु पत्नी की मृत्यु के बाद बाबूजी ने एक्सटेंशन के लिए अर्जी भेज दी. कुछ ही दिनों बाद तीन साल का एक्सटेंशन का आर्डर मिल गया. इतनी जल्दी एक्सटेंशन मिल जाने का मुख्य कारण यही था कि वह बड़े कर्मठ और ईमानदार समझे जाते रहे. पिछले वर्ष बाबूजी ने अपने फंड का कुछ रुपया निकाल कर पोते के नाम से बैंक में जमा कर दिया. प्रभाकर को जब मालूम हुआ तो वह चौं किंतु बाबूजी से कुछ नहीं पूछ सका.

यद्यपि बाबूजी को पत्नी की याद बहुत आती थी. किंतु उ अपने को बहुत व्यस्त बना लिया था.ताकि सोचने के लिए खाली ही न रहे. परंतु यादें तो आती ही रहती हैं. बाबूजी अक्सर यह कर कि उनका अब सब कुछ एकमात्र प्रभाकर, उसकी बहू उसका बच्चा है, उन लोगों के प्रति बेहद दयालु हो जाते हैं. तब क्षणों में वह या तो प्रभाकर को लंबे-चौड़े पत्र लिखते या छुट्टि का मौका होता तो स्वयं प्रभाकर के पास चले आते.

प्रभाकर हमेशा चाहता रहा कि बाबूजी उसके साथ रहें. बाबूजी हमेशा टाल जाते हैं. कहने लगते कि तीन सालों के फिर ऐसा ही तो करना है. अभी सब ठीक है. बहू भी बाबूजी के व्यवहार से उनके प्रति अथाह श्रद्धा संजोये थी. वह जानती थी बाबूजी सब कुछ जानते हैं. इसी वजह से वह उनको परेशानी में डालना चाहते हैं. यद्यपि बाबूजी के साथ रहने पर परेशानी कोई बात नहीं थी. किंतु कुछ-न-कुछ असुविधा अवश्य होती. वक्त बाबूजी की उपस्थिति का अहसास कुछ-न-कुछ बदलाव अव ला देता.

बाबूजी बहुत देर तक सूखी पत्तियां बीनते रहे. जब कुछ खिन्नता सी महसूस हुई तो उठ कर देवदारों के नीचे चले आये. ठंडी ह से उनका मन प्रसन्न हो आया.

★ ★

प्रभाकर जब नहा कर आया तो कमरे में स्टूल पर अखबा देख कर चौंका. परंतु उसने तत्काल अनुमान लगा लिया कि बाबूजी टहलने से लौट आये होंगे. . . रास्ते में कहीं पर अखबार वाला मिल गया होगा. बाबूजी की अखबार पढ़ने की आदत को याद कर प्रभा कर भी अखबार लगा लेने वाली बात क्षण भर में ही सोच गया. किंतु बाबूजी को कमरे में न पा कर उसे आश्चर्य हुआ. गीले तौलिया को खूंटी से लटका कर वह रसोई के कमरे में चला आया. रसोई का कोई अलग कमरा नहीं है. दो बड़े-बड़े कमरे और एक बाथरूम, तथा पीछे की ओर खुली बरामदेनुमा थोड़ी जगह. पूरे क्वार्टर में प्रभाकर के पास बस इतनी सी जगह मिली है.

पीछे की ओर खुली बरमादेनुमा जगह में ही प्रभाकर ने कनस्तरों के टिन और चाय की खाली पेटियों के तख्ते ठोक कर रसोई के लिए स्थान बना लिया. राशन वगैरह सब भीतर के कमरे में ही रख लिया जाता है.पहली को जब तनख्वाह मिलती है तो प्रभाकर पूरे महीने भर का राशन वगैरह इकट्ठा कुली लगा कर उठा लाता है. शुरू-शुरू में उधार की एक दुकान लगायी. किंतु उसकी पत्नी ने यह कह कर कि उधार कभी नहीं खाना चाहिए, दुकान छुड़वा दी. तब से प्रभाकर को एक अनुभव हुआ कि उधार खाने में रुपया अधिक खर्च होता है किंतु एक साथ नकद ले आने में ऐसी बात नहीं.

बाहर के कमरे में दो खाटें और दो स्टूल, एक आल्मारी और ईंटों पर रखे तीन ट्रंक. बस इतना ही सामान रहता है. बहू ने अपने हाथों से काढ़ कर बनाये गये मेजपोश ट्रंकों के ऊपर बिछा दिये हैं. जिससे बक्से फूहड़ नहीं दिखायी पड़ते. दीवारों पर एक ओर राम-लक्ष्मण की फ्रेम की हुई फोटो लटका दी है. दूसरी दीवार पर दो एक कलैंडर, और बायें कोने में बच्चे का झूला लटका दिया है. कमरे में निहायत सादगी होने के बावजूद भी वह सजा-संवरा ही लगता है.

प्रभाकर ने चाहा कि बाबूजी बाहर वाले कमरे में ही रहें, और बहू भीतर के कमरे में रह ले. किंतु बाबूजी ने उनकी असुविधा भांप ली. कहने लगे––मुझे अंदर वाले कमरे ही अच्छे लगा करते हैं.शायद बाबूजी यह महसूस कर गये कि बाहर वाले कमरे में उनके सोने से बहू-बेटे के बीच एक दूरी आ जायेगी. फिर उन्हें रात में

जाग कर सिगरेट पीने की भी आदत है. बाबूजी सिगरेट नहीं पीता है. इससे शायद वह कुछ असुविधा महसूस करे. यही सब सोच कर बाबूजी ने अपने लिए भीतर वाले कमरे में बिस्तर डलवा लिया. भीतर वाले कमरे में खिड़की कुछ बड़ी है. बहू उसे हमेशा बंद रखा करती है. किंतु बाबूजी ने रात में खोल लिया था. सुबह ताजी हवा और प्रकाश दोनों ही कमरे में भर गये थे.

पत्नी ने प्रभाकर की उपस्थिति महसूस की. उसे समीप ही खड़ा देखा तो मुसकरा कर पूछा—– नहा लिया?

—–हां. उसने संक्षिप्त उत्तर दिया. फिर बाबूजी के बारे में पूछने लगा—– बाबूजी तो टहलने से आ गये शायद. बाहर अखबार देखा था. पता नहीं इस वक्त कहां चले गये?

—–शायद बाहर टहल रहे होंगे.

—–तुमने बात की?

—–अभी कहां? बात करने की सोच ही रही थी, तभी वह अखबार पढ़ने लगे थे. अब तुम्हीं कह रहे हो वहां नहीं हैं.

—–सुनो, ऐसा करना, अब खाते समय बात कर लेना.

—–हां ठीक है. और सुनो, जब तक बाबूजी यहां हैं तब तक अखबार लगा लो. उन्हें खरीद कर लाना पड़ता है. पता नहीं क्या सोचते होंगे?

—–हां, मैंने भी यही सोचा है. नाहक बाबूजी को अखबार के लिए इधर-उधर खड़ा रहना पड़ता होगा. आज ही पुराने वाले हाकर से कह दूंगा. लाओ वह प्लेट दो, अचार निकाले देता हूं.

पत्नी ने चीनी मिट्टी की बनी सफेद प्लेट प्रभाकर को थमा दी. प्रभाकर ने बीच वाले कमरे की अलगनी में रखे मर्तबान से अचार निकाल कर प्लेट पत्नी को थमा दी. पत्नी की ओर देख कर अकारण ही मुसकरा दिया. कुछ क्षण पूर्व बच्चा जाग गया था. अपने पास किसीको न पा कर रोने लगा.

—–अरे सुनो, बच्चा जाग गया है. उसे दूध दो. मैं जा कर बाबूजी को देखता हूं. खाना तो बन चुका है न?

—–हां. पत्नी ने संक्षिप्त उत्तर दे कर मुसकरा दिया. फिर बच्चे के झूले वाले कमरे में आ गयी. पत्नी के पीछे-पीछे प्रभाकर भी आया. बालों को हथेलियों से पीछे की ओर तराश कर बाहर आ गया.

★ ★

बाबूजी ऊंचे देवदार के नीचे खड़े हो कर झील की ओर देख रहे थे. प्रभाकर के चलने से हुई आहट से चौंके तो बोले—– आओ प्रभाकर. नहा तो लिया?

—–हां बाबूजी, प्रभाकर ने उत्तर दिया. किंतु बाबूजी के शब्दों में व्यंग्य की हलकी झलक देख कर झेंप गया. बाबूजी के चेहरे की ओर देखा तो पाया वह मुसकरा रहे थे. प्रभाकर ने अपनी नजरें झुका लीं और बाबूजी के पास आ गया.

—–अगर कहीं प्लाट-वलाट मिल जाय तो खरीदने के लिए बातचीत क्यों नहीं करते? बाबूजी बिना किसी संदर्भ के कहने लगे—– यहां अपना एक मकान हो जाये तो वह अच्छा रहेगा. बाबूजी शायद बहुत देर से मकान के ही बारे में सोच रहे थे. प्रभाकर पास आया तो सहज ही कह गये.

प्रभाकर पहले एकाएक सकपका आया. क्या उत्तर दे? किंतु उत्तर तो कुछ देना ही था. कहने लगा—– बाबूजी आजकल तो जमीन सोने से भी ज्यादा कीमती चीज हो गयी है. मेज रखने भर की जगह के लिए हजारों की बात करते हैं. फिर यह क्वार्टर तो ठीक ही है. किराया भी थोड़ा-सा और खुली जगह भी है. क्या आपको कोई असुविधा महसूस हुई?

—–नहीं. ऐसी बात नहीं है. दरअसल मैं सोच रहा था कि अब दो-तीन साल बाद नौकरी से अलग हो कर गांव जाना पड़ेगा. परंतु गांव में रहने को अब मन नहीं करेगा. सारा जीवन तो शहरों के बीच गुजरा है. अब बुढ़ापे में गांव के सारे नाज-नखरे कैसे कर पाऊंगा. इसलिए सोच रहा था कि अपना एक मकान यहां हो जाय तो जीवन के शेष दिन यहीं बिता लूंगा. बाबूजी धीरे-धीरे किंतु एक ही सांस में सारी बातें कह गये. अब चुप हो कर सवालिया निगाह से प्रभाकर की ओर देखने लगे.

प्रभाकर कुछ क्षण सोचता रहा. फिर बोला—– बाबूजी जमीन तो मिल ही जायेगी. परंतु रुपया बहुत लगेगा. फिर मकान बनाने का खर्च अलग से. . .

—–क्यों, गांव की जमीन और मकान बेचा भी जा सकता है. यूं भी मकान में चूहे के बिल-ही-बिल होंगे और खेत तो सालों से बंजर पड़े हैं. घास-पात के सिवा कुछ होगा ही नहीं. प्रभाकर की बात काट कर बाबूजी क्षण भर को चुप हुए, फिर कहने लगे—– भई, रुपया तो एक समय खर्च होगा ही चाहे यहां हो या गांव में. यहां मकान बन जायेगा, तो तुम्हें भी सुविधा रहेगी और मुझे भी.

बाबूजी की बातों से प्रभाकर यह अनुभव कर चुका था कि वह गांव नहीं जाना चाहते हैं. ठीक भी है, गांव जा कर करना क्या है. प्रभाकर सोचने लगा कि गांव में अपना दम घुटवाने के सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता. इसी क्षण प्रभाकर को विचार आया कि अपने रिटायरमेंट के बाद से भी तो गांव ही जाना पड़ेगा. अगर यहां मकान बन ही जाये तो बुरा नहीं. सोच कर ही वह बोला—– ठीक है बाबूजी, मैं कोशीश करूंगा. अगर कोई ठीक-सा प्लॉट मिल गया. किंतु घर की जमीन आदि . . .

—–भई, जब तुम प्लॉट तलाश लो तो मुझे इत्तला कर देना. मैं तत्काल गांव की जमीन आदि के कागजात तैयार कर बिकवा दूंगा. प्रभाकर की बात काट कर बाबूजी उत्साहित हो आये. इन क्षणों में प्रभाकर बराबर बाबूजी के उत्साह को अनुभव करता रहा. और सोचता रहा कि जब मकान बन जायेगा तो सचमुच बाबूजी बेहद खुश हो आयेंगे. एक असीम सुख उन्हें मिलने लगेगा. प्रभाकर ने मकान बनाने के विचार को अपने भीतर दृढ़ कर लिया.

बहुत क्षणों तक दोनों के बीच एक गहरा मौन समाया रहा. दोनों ही झील की ओर देखते रहे. जब किश्तियां आंखों से ओझल हो गयीं तभी प्रभाकर बाबूजी की ओर मुंह घुमा कर बोला—– बाबूजी, आप कल से अखबार नहीं खरीदना. हाकर सुबह ही यहां आ कर दे जाया करेगा.

—–नहीं, ऐसी कोई बात नहीं थी. टहलने तो जाता ही हूं. खैर तुमने हाकर से कह दिया है तो ठीक ही है. शायद बाबूजी को अखबार वाली बात अच्छी नहीं लगी. अनमने ढंग से उत्तर दिया. प्रभाकर को इससे एक ग्लानि-सी हो आयी. उसे लगा, वह नाहक ही बाबूजी से औपचारिक बातें करने लगा है. .

इसी क्षण प्रभाकर ने सोचा कि आज घूमने और पिक्चर जाने वाली बात बाबूजी से कह दे. किंतु उनके चेहरे पर उलझनें देख कर वह चुप ही रहा. इस तरह की उलझनें, उनके चेहरे पर वह कई बार देख चुका था. कई बार प्रभाकर ने इसका कारण जानना चाहा. किंतु उसे या तो मां की मृत्यु का कारण ही नजर आता या फिर कोई कारण ही नहीं तलाश पाता. अब तक इस पर प्रभाकर ने एक दृढ़ विचार बना लिया था कि बाबूजी जब-जब अपनी स्मृतियों में खोने लगते हैं तभी वह अनमने-से हो आते हैं. क्योंकि बाबूजी के चेहरे पर उलझनें उसे मां की मृत्यु के बाद से ही अनुभव हुई थीं. फिर प्रभाकर यह भी जानता था कि बाबूजी 'उसे' बहुत प्यार करते थे.

—–खाना तैयार है. पत्नी बच्चे को गोद में लिये क्वार्टर के दरवाजे पर खड़ी हो कर बोली थी.

प्रभाकर क्षण भर पत्नी को देखता रहा. फिर घूम कर बाबूजी की ओर देखा. वह सोच रहा था कि बहू की आवाज को बाबूजी

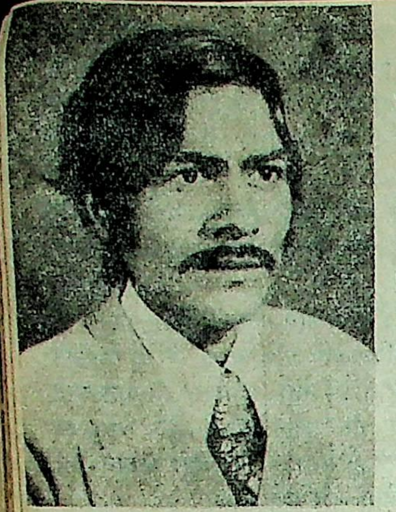

अकुलेश परिहार (जन्म: १९४७) के लिए लेखन उस तकलीफदेह प्रक्रिया से गुजरना है जो जीने की आवश्यक शर्त है. इन्होंने लेखन को अपने और अपनी असमर्थता के खिलाफ एक लड़ाई के रूप में स्वीकार किया है. इन्हें गलत व्यावस्था में सांस ले रहे आम आदमी की तकलीफों का हमेशा अहसास रहा है और उन्हें अपनी कहानियों में मूर्त किया है.

ने महसूस किया या नहीं. किंतु बाबूजी पूर्वतः नीचे की ओर देखते रहे. शायद बहू की आवाज को उन्होंने नहीं महसूस किया. अंत में प्रभाकर को ही कहना पड़ा—— बाबूजी, खाना तैयार हो गया है.

—हूं. बाबूजी ने क्षण भर प्रभाकर की ओर देखा. कमीज की आस्तीन समेटते हुए भीतर आ गये. पीछे-पीछे प्रभाकर भी आ गया.

—अरे वाह, बहू ने तो पालक भी बना लिया और अचार भी रखा है. बाबूजी खुश हो कर, थाली परोस रही बहू की ओर देखने लगे थे. मन-ही-मन सोचने लगे कि उनके प्रभाकर की पत्नी सचमुच साक्षात लक्ष्मी है. . . सब कुछ नसीब का है. बाबूजी मन-ही-मन कह गये.

अभी इससे पहले बाबूजी ने चौके के चारों ओर जल छिड़का और फिर जनेऊ हाथ में पकड़ कर कुछ गुनगुनाते रहे. प्रभाकर उन्हें तब तक देखता रहा जब तक कि उन्होंने आंखें नहीं मूंद लीं. प्रभाकर ने इसी बीच चुपके से घड़ी देख ली. पूरे आठ मिनट लगे थे. बाबूजी ने रोटी का एक छोटा-सा कौर तोड़ा. उसे सब्जी आदि में भिगो कर चौके के पास रख दिया. बाबूजी को उस पर जल छिड़कते देख कर प्रभाकर एकाएक सिहर आया. उसके मन में तत्काल एक विचार कांप गया कि कहीं बाबूजी ने वह कौर उसकी मां के लिए तो नहीं रख छोड़ा? स्मृति-दंश कितना कचोट रहा होगा बाबूजी को? सोचते ही प्रभाकर का दिल पीड़ा से भर आया . . . किंतु वह कर ही क्या सकता है. चुपचाप कौर तोड़ने लगा.

जब बाबूजी दो-तीन रोटिया खा चुके थे, तो बहू ने चावल परोसते पूछ लिया—— बाबूजी, आज इनकी छुट्टी है. . . फिर वह एकाएक झिझक कर चुप हो गयी. किंतु तत्काल ही संभल कर कहने लगी—— ये कह रहे हैं, आज सब लोग कहीं घूमने को चलेंगे. उसने फिर प्रभाकर की ओर इशारा कर दिया.

—मैं कहां कह रहा हूं, यह सब तो तुम्हीं कह रही थी. प्रभाकर मुंह में कौर लिये ही अपनी सफाई देने लगा. बनावटी क्रोध से बहू की ओर देखा तो वह शरारत से मुसकरा दी.

बाबूजी ने भी यह सब देख लिया था. सोचा, इतने बड़े हो गये हैं अभी भी इस तरह डरते हैं. मुसकराते हुए कहने लगे—— ठीक है, तुम लोग घूम आना. मैं यहां बच्चे को बहला लूंगा.

—नहीं बाबूजी, हम सब चलेंगे. सुना है गौरी पिक्चर आयी है. पड़ोसिनें बड़ी तारीफ कर रही थीं. बहू रोटी बेलते-बेलते बच्चों की तरह बाबूजी को फुसलाने लगी——इस बार मौका पड़ा है. सब साथ है. फिर आज इनकी छुट्टी भी है. कुछ समय टहल भी लेंगे और पिक्चर भी. . . सब साथ रहेंगे तो बड़ा अच्छा लगेगा.

बाबूजी कुछ क्षण कौर चबाते रहे. फिर मुसकरा कर प्रभाकर की ओर देखने लगे—— लगता है तुमने बहू की आदत भी बिगाड़ दी है. पिक्चरों का शौक तो तुमको ही था. क्यों?

प्रभाकर एकाएक झेंप सा गया. बहू मुसकराने लगी. किंतु जब उसे प्रभाकर की झेंप असली महसूस हुई तो वह उसके लिए सफाई देने लगी—— नहीं बाबूजी, ये तो अब पिक्चर देखते ही नहीं. वह तो गौरी पिक्चर आयी है, तब कह रही हूं. . .

——वाह बहू, हो तो बड़ी होशियार. जब जैसी बात करनी चाहिए तब वैसी बात कर सारी स्थिति को संभाल लेती हो. बाबूजी बहू की बात काट कर खिलखिला उठे. साथ में बहू और प्रभाकर भी.

* *

बाबूजी तौलिये से हाथ पोंछते हुए जब बाहर के कमरे में आये तो बच्चा रोने लगा था. बहू भीतर से लपकती हुई आयी. किंतु तब तक वह बच्चे को गोद में उठा कर चुप करा चुके थे. बहू को देखा तो कहने लगे——बहू तुम भी खा लो. इसे मैं बहला लूंगा. और बच्चे को हिलाते हुए बाहर निकल आये. एकाएक बाबूजी को उन दिनों की याद ताजा हो आयी जब वह जवान थे और अपनी पत्नी के साथ छोटे से प्रभाकर को बहलाया करते थे. . . तब प्रभाकर चुप ही नहीं होता था तो पत्नी झिड़क देती थी—— अजी. . . तुम क्या जानो बच्चों को कैसे चुप कराया जाता है. तुम्हें तो बस हर वक्त शरारत ही सूझती है. . . तब वह सचमुच पत्नी के साथ शरारत कर बैठते थे और प्रभाकर अपनी छोटी-छोटी आंखों में आंसू लिए उन्हें टुकर-टुकर ताका करता था. . . किंतु अब. . . बाबूजी ने एक हलकी-सी आह ली और बच्चे को हवा में उछालने लगे.

बहू उतने क्षणों तक बाबूजी को अपलक देखती रही. आहिस्ता कदमों से प्रभाकर के पास आयी. कहने लगी—— देखा, बाबूजी की गोद में जाते ही बच्चा कैसे चुप हो जाता है.

प्रभाकर हाथ धो चुका था. बहू की साड़ी से ही हाथ पोंछते हुए कहने लगा—— किंतु बाबूजी मेरे बारे में कहा करते थे कि मैं तो चुप होता ही नहीं था.

——तुम शैतान जो हो. बहू ने तपाक से प्रभाकर की बात काट दी.

——सच! प्रभाकर ने आश्चर्य में भर कर बहू की ओर देखा. एकाएक तेजी से उसे आलिंगन में भर कर दो-तीन बार चूम लिया.

——छोड़ो भी. बाबूजी देखेंगे तो क्या कहेंगे. बेशरम कहीं के. पत्नी साड़ी ठीक करते हुए चूल्हे के पास चली गयी. प्रभाकर शायद उसे एक बार और आलिंगनबद्ध करना चाहता था. किंतु कर नहीं पाया. मुसकराता हुआ बाहर के कमरे में चला आया. किंतु तत्काल ही जैसे कुछ याद आ गया हो. वापस रसोई में आ गया.

——सुनो, तुम्हारे पास बीसेक रुपये तो होंगे ही?

——हूं. बहू ने सिर हिला कर हामी भरी.

——तुम खाना खा कर तैयार हो जाना. चौका-बरतन शाम को लौट कर कर लोगी. अभी देर हो जायेगी तो फिर टिकट भी नहीं मिल सकेंगे. प्रभाकर एक क्षण को चुप हुआ किंतु तत्काल शरारत से बोला —— हो तो तुम बड़ी तेज, आखिर बाबूजी को पटा ही लिया.

किंतु बहू ने इस बात को ज्यादा महत्व नहीं दिया. वह मन-ही-मन दिन भर का प्रोग्राम और खर्च का हिसाब लगाने लगी.

प्रभाकर ने उसे चुपचाप विचारों में खोते देखा तो वह बाहर चला आया.

प्रभाकर अपनी पत्नी से कुछ अधिक ही स्नेह रखता है. इसका कारण कदाचित पत्नी की सहजता और उसका उन्मुक्त व्यक्तित्व ही हो. शायद यही वजह थी कि वह जब भी पत्नी को गंभीर या किन्हीं विचारों में खोये देखता तो उसे उलझन हो आती थी. वह पत्नी को रत्ती भर भी क्लेश नहीं देना चाहता था. प्रभाकर की हमेशा एक ही इच्छा रही कि जिस तरह पत्नी अपने सब कुछ के साथ उसके लिए समर्पित है, वह भी उसी तरह पत्नी के लिए समर्पित

रहे. इसी वजह से प्रभाकर तैयार होने के पूरे समय भर पत्नी के ही बारे में सोचता रहा. पत्नी का गंभीर हो आना और एकाएक किसी विचार में खो जाना, प्रभाकर के लिए अकसर परेशानी का कारण बन जाया करता है. जबकि पत्नी के लिए वह समस्या ज्यादा मानी नहीं रखती.

शीशे के सामने खड़े हो कर प्रभाकर ने बालों में कंघा किया. फिर पत्नी के कुल्ला करने की आवाज को महसूसा, और कोट के बटन लगाता हुआ बाहर चला आया.

---बाबूजी, इसे मैं बहला लेता हूं. आप भी तैयार हो लीजिए.

---ओ-ओ-रे. . . बंदर, देख तो कौन खड़ा है? तेरा बाप. बाबूजी ने बच्चे के गाल पर एक मीठी चपत लगायी. प्रभाकर की ओर देख कर मुसकराये और बच्चा उसे थमा तैयार होने भीतर चल दिये.

बाबूजी और पत्नी के तैयार होने तक प्रभाकर बच्चे को खिलाता रहा. कभी झील या कभी चिड़िया दिखाता रहा.

* *

प्रभाकर, बाबूजी और बहू जब तैयार हो कर बाहर निकले तो आसमान पर बादल छा चुके थे. सुबह से तेज हो रही धूप फीकी हो आयी थी. जून के महीने के आखिरी दिनों में हमेशा ही ऐसा हो जाया करता था. सैलानियों का सीजन अब लगभग बीत चुका होता है. इक्के-दुक्के जोड़े कभी कभार मूंगफली टूंगते दिखाई पड़ जाते थे या फिर चुलबुलाते, ग्रुप में चलते कालेजी लड़के. इसके सिवा यदि था तो वह अपारदर्शी कोहरा. किंतु इन दिनों कोहरे और बादलों पर कतई भरोसा नहीं किया जा सकता है. कुछ देर पहले चमकती तेज धूप होती है तो चंद क्षणों बाद ही तेज मूसलाधार वर्षा. इसी वजह से क्वॉर्टर से बाहर निकलते वक्त बाबूजी ने छाते साथ रखवा लिये थे. गेट से बाहर निकलते ही प्रभाकर ने बच्चे को स्वयं अपनी गोद में ले लिया. दाहिनी ओर बाबूजी, फिर प्रभाकर और तब बहू, तीनों कदम से कदम मिला कर चलने लगे. इन क्षणों में तीनों में से प्रत्येक जिस चीज को महसूस कर रहा था--- वह था एक अव्यक्त सुख. सफल जीवन का. यद्यपि बाबूजी पत्नी के एक्सीडेंट के साथ ही जीवन की बाजी हार चुके थे, परंतु प्रभाकर के सफल जीवन को महसूस कर ही वह सुख की अनुभूति कर लिया करते थे.

मुश्किल से फ्लैट तक पहुंचते ही बारिश शुरू हो गयी. बाबूजी ने छाता खोल कर एक सिगरेट सुलगा ली और अपने में खोये-खोये-से दो-तीन कदम आगे बढ़ लिये.

---अब कहां चलें? कम्बख्त बारिश शुरू हो गयी. प्रभाकर ने बहू की ओर देख कर धीरे से कहा. बहू ने अपना शाल कंधों पर अच्छी तरह फैला कर मुसकरा दिया, जैसे बारिश का इस तरह हो आना उसे अच्छा लगा हो.

कुछ आगे चल कर जब बारिश तेज हो गयी तो बाबूजी ने सबको मंदिर के आंगन में रोक लिया. कहने लगे---क्या फायदा बारिश में भीग कर. काफी तेजी से बरस रहा है. जब बंद हो जायेगा तब चलेंगे. दोनों ने उनकी बात मान ली. बच्चा जिज्ञासु-सा कभी इधर कभी उधर देखने लगा.

बारिश बंद होते ही वह कुछ दूर तक ठंडी सड़क पर टहल आये. इस बीच प्रत्येक चुप रहा. शायद बहुत कुछ बातें कर लेने की चाह ही अंततः एक विशाल चुप्पी में तिरोहित हो कर रह गयी.

ठंडी सड़क से लौटते ही बहू खिलौने वाले की दुकान पर ठहर गयी. एक लकड़ी का खिलौना देखा तो दाम पूछने लगी. किंतु तत्काल जैसे कुछ याद आ गया हो, खिलौने को छोड़ कर एक सींक से बंधा, कंकर भरा गुब्बारा, खरीद लिया. और उसे हिलाते हुए बच्चे को पकड़ा दिया. बाबूजी गौर से बहू को देखते रहे.

---क्यों बहू, खिलौना क्यों नहीं लिया? है तो बड़ा सुंदर, बाबूजी ने तनिक मुसकरा कर कहा.

---बाबूजी, खिलौने तो बहुत इकट्ठा हो गये हैं घर में, बहू ने ही भोलेपन से कहा. प्रभाकर हंसे बिना नहीं रह सका. दरअसल बहू ने इस वाक्य से बाबूजी पर मीठा-सा व्यंग्य किया था. क्योंकि खिलौनों के अधिक इकट्ठा हो जाने की बात बाबूजी ने ही कही थी.

बादल कुछ छंटे तो हलकी-सी धूप फैल आयी. फव्वारे के पास चाट आदि की अधिकांश दुकानें, वर्षा के कारण बंद हो चुकी थीं. केवल एक-दो चाय और पान, कोकोकोला आदि की दूकानें ही खुली थीं.

---बाबूजी, उधर दुकान पर चलते हैं, चाय-वाय ले लेंगे. अब पिक्चर का समय भी हो रहा है. मैं जा कर टिकटें ले आता हूं.

प्रभाकर ने एक बार दुकानों और कैपिटल हाल की ओर देखा. भीड़-भाड़ कहीं नहीं थी. वहां से दृष्टि हटा अर्थपूर्ण दृष्टि बहू पर फेंकी. बहू तत्काल समझ गयी. बाबूजी के पीछे की ओर खिसक कर पर्स से दस रुपये का नोट निकाल कर हाथ में पकड़ लिया. और बच्चे को पकड़ते वक्त बाबूजी की नजरें बचा कर वह नोट प्रभाकर को थमा दिया. आपस में नजरें मिलीं तो दोनों ही मुसकरा दिये.

बाबूजी और बहू चाय की दुकान पर बैठ गये. कुछ ही मिनटों में प्रभाकर टिकट ले कर वापस चला आया.

---क्यों, मिल गयें? बहू ने प्रभाकर की ओर देखा.

---हां. भीड़-भाड़ नहीं है. पीछे की सीटें मिली हैं---प्रभाकर ने उत्तर दिया. दूकान पर ऊंघ रहे बुड्ढे की ओर देखा और तीन चाय तथा एक प्लेट तले हुए काजुओं के लिए इशारा कर दिया. बच्चे के लिए प्रभाकर ने एक चाकलेट मंगा ली.

चाकलेट खाते-खाते बच्चा सो गया तो उसे प्रभाकर ने अपनी गोद में उठा लिया. चाय आदि के पैसे बहू ने चुका दिये. बाबूजी पहले ही सिगरेट सुलगा कर पिक्चर हाल की तरफ बढ़ लिये थे.

* *

न्यूज रील शुरू हो चुकी थी. इस वजह से सीटें तलाशने में कुछ असुविधा हुई. थोड़ी देर बाद टार्च ले कर गेट कीपर आया तो तीनों ही अपनी सीटों पर बैठ गये. प्रभाकर बाबूजी और बहू के बीच वाली सीट पर बैठ गया. बच्चा अब तक जाग चुका था. उसे प्रभाकर ने अपनी गोद में ले लिया.

पर्दे पर बंगला शरणार्थियों का भारत में आना दिखाया जा रहा था. प्रभाकर को इसमें कोई विशेष दिलचस्पी नहीं हुई. वरन वह नंगे, भूखे जानवरों जैसे शरणार्थियों को देख कर एक घृणा-सी अनुभव करने लगा. सोचने लगा था, न जाने सरकार ऐसे वैसों को क्यों आने देती है? इतने शरणार्थी आ रहे हैं, इनसे जितना भी होगा यहां का नुकसान ही होगा.

किंतु दूसरी ओर बहू इसके बिलकुल विपरीत सोच रही थी. उनका मन उन लोगों के प्रति अथाह वेदना से भर आया था. वह सोचने लगी थी कि अगर वह भी शरणार्थी कैंपों के आसपास रहने वाली होती तो इन लोगों की पूरी सहायता करती.

परंतु बाबूजी न तो प्रभाकर की तरह सोच रहे थे और न बहू की तरह. तन्मय हो कर पर्दे पर वह भी देख रहे थे. किंतु वह पूरे समय भर यही सोचते रहे कि पाकिस्तानी सैनिकों की यह क्रूरता क्या आवश्यक थी? यद्यपि बाबूजी पर्दे पर शरणार्थियों की आती बाढ़ को और भारतवासियों द्वारा उनका स्वागत देख रहे थे. परंतु वह इन्हें महसूस नहीं रहे थे. इनसे अलग, जो चीज पर्दे पर थी ही नहीं, वही बाबूजी को उलझाये थी. दरअसल उनके दिमाग में सिर्फ पाकिस्तानी सैनिक उतरा रहे थे. क्रूरता लिये हुए.

न्यूज रील के खत्म होते ही पिक्चर की कास्टिंग शुरू हो गयी. तभी बहू ने शाल अच्छी तरह लपेट लिया. वह अब पहले से भी अधिक एकाग्र हो गयी थी. प्रभाकर का भी मन पिक्चर में रमने लगा था. किंतु बाबूजी का मन नहीं लगा. उनके बगल में बैठे प्रभाकर को बार बार यही महसूस होता रहा कि बाबूजी को बैठने में शायद कोई

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं

सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

२ ऐस्प्रो लीजिये

ASPRO

माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है

Nicholas

A.G.63.HN

असुविधा हो रही हो. किंतु बाबूजी को बैठने में कोई भी असुविधा नहीं हो रही थी. बस पिक्चर देखने को उनका मन नहीं हो रहा था. वह तो मात्र बहू का मन रखने के लिए चले आये थे.

पिक्चर में जहां-जहां पर भी दुखांत प्रकरण आते, बहू सहज ही सुबकने लगती. यह बहू के अत्यधिक कोमल हृदय के कारण हमेशा ही होता है. शायद अधिकांश औरतें पिक्चर हालों में इसी तरह सुबका करती होंगी--- प्रभाकर मन-ही-मन अनुमान लगाता रहा. पहली दफा के सुबकने में प्रभाकर ने उसे हाथ से हिला दिया. किंतु दूसरी बार के सुबकने में प्रभाकर कुढ़ कर कह गया--- अब और सुबकीं तो मैं उठ कर बाहर चला जाऊंगा. हालांकि बहू उसके बाद भी सुबकती रही. परंतु अपनी सुबकियों को जितना हो सका दबाये रखा.

इंटरवल में प्रभाकर भुनी हुई मूंगफलियां खरीद लाया. किंतु बाबूजी ने खाने से इनकार कर दिया. कहने लगे--- मूंगफलियां मुझे पचती नहीं. तुम लोग खाओ. बहू पूरे इत्मीनान से मूंगफलियां टूंगती रही. सिगरेट के लिए बाबूजी को कुछ क्षण बाहर रहना पड़ा.. दुबारा पिक्चर के शुरू होते ही वह ऊंघने लगे. बाबूजी को ऊंघता जान कर प्रभाकर ने आहिस्ता अपना हाथ पत्नी की ओर बढ़ाया और उसकी बांह को सहलाने लगा.

शो जब खत्म हुआ तो हाल स बाहर निकलते लोगों के मुंह फीके-फीके-से हो आये थे. यद्यपि बाबूजी के चेहरे पर किसी भी प्रकार के तनाव के चिह्न नहीं थे. किंतु प्रभाकर और बहू के चेहरों पर तनाव बिखरा हुआ था. घर से तैयार होते वक्त बहू ने चेहरे पर हलका-सा पाउडर लगाया था. वह अब आंसुओं के साथ भीग कर बड़ा भद्दा-सा हो आया था.

हाल से बाहर आ कर जब चाट हाउस की ओर जाने लगे तभी बहू ने प्रभाकर की ओर देख कर कहा--- पिक्चरों की बातें यदि सच होतीं तो अच्छा रहता, क्यों?

बाबूजी ने शायद बहू की बात सुन ली थी. बहू से कहने लगे--- बहू, पिक्चर-विक्चरों की बातें कहां सच होती हैं. सच कुछ नहीं होता सिवाय इसके कि आदमी जीवित है. सबसे बड़ा सच यही है कि तुम हो, प्रभाकर है और बच्चा है. बाकी सब कुछ झूठ है--- बाबूजी एकाएक चुप हो आये. उनके चेहरे पर पीड़ा भर आयी थी.

बहू, यद्यपि बाबूजी के शब्दों का अर्थ और उनके चेहरे पर फैली पीड़ा को नहीं समझ सकी. परंतु अब वह भी चुपचाप हो गयी, पिक्चर के बारे में तमाम सारी बातें पूछने को मन करते हुए भी. बहू ने मन-ही-मन रात को प्रभाकर से बातें करने का निश्चय कर लिया.

* *

चाट हाउस पर बैठते ही प्रभाकर ने घड़ी देखी. पौने पांच बज चुके थे. कोहरा और बादल अभी भी पूर्वतः बने थे. किंतु बारिश नहीं हो रही थी. हां, वातावरण में सर्दी कुछ बढ़ चुकी थी. बहू ने च्चे को शाल से लपेट दिया, ताकि सर्दी-वर्दी न लग जाये.

बाबूजी यद्यपि चाट-वाट पसंद नहीं किया करते थे. परंतु बहू के आग्रह को नहीं टाल सके. उन्हें ज्ञात है कि बहू को चाट और पानी के बतासे खाने का शौक बचपन से ही है, और बहू के साथ-साथ वह शौक प्रभाकर को भी हो गया है.

चाट खाते वक्त एकाएक बाबूजी को एक ऐसे ही पुराने दिन की स्मृति हो आयी. तब शायद पत्नी के साथ बाबूजी ने पहली बार किसी चाट हाउस से चाट आदि खायी थी. बाबूजी को याद हो आया कि मिर्च के तेज हो जाने से पत्नी सी-सी करते-करते रो आयी थी और वह हंसते रहे थे.स्मृति दंश से घायल बाबूजी के ओठों पर अनायास मुसकान खिल आयी.

---क्या बात है बाबूजी? प्रभाकर ने उस मुसकान को देख लिया था. कारण पूछने लगा.

यद्यपि प्रभाकर का इस तरह कारण पूछना बाबूजी को कतई अच्छा नहीं लगा क्योंकि वह अपनी यादों के कारण मुसकराये थे. किंतु बाबूजी प्रभाकर को कभी कुछ कहना नहीं चाहते थे.सहज ही बहाना बना कर टाल गये---मैं तो बहू को देख कर मुसकरा रहा था कि यह चाट को कितने चाव से खाती है. और चुप हो कर बाबूजी जोर से हंस पड़े.उनकी हंसी में साथ प्रभाकर और बहू ने भी दिया. किंतु बाबूजी की हंसी ज्यादा देर नहीं टिक सकी. बरबस ही मन के किसी कोने में दुबका पड़ा कोई खयाल छिटक आया.

चाट हाउस से बाहर निकलने के बाद बाबूजी और बहू सीधे क्वार्टर की ओर चले जाये. परंतु प्रभाकर सब्जी मार्केट से होता हुआ आया. शाम की सब्जी के लिए ताजे टमाटर और कुछ पालक उठा लाया.

क्वार्टर पर पहुंचते ही सबसे पहले बहू ने बच्चे को स्तन पिला कर सुला दिया. बाबूजी चारपाई पर लेट कर सुबह का अखबार पढ़ने लगे. दरअसल अखबार पढ़ना एक माध्यम भर था. बाबूजी अखबार के माध्यम से भी सिर्फ अपना अतीत तलाश रहे थे. एक विशाल अतीत. जिसमें बाबूजी थे और उनकी पत्नी थी, चारों ओर उन्मुक्त खिलखिलाहटें थीं. पत्नी से जुड़ा एक लंबा जमाना. अखबार के चौड़े पृष्ठ की तरह. किंतु बाबूजी उसे स्पष्ट नहीं पढ़ पा रहे थे.

सवा सात बज चुके थे. शाम का सुरमुई अंधेरा ऊपर पहाड़ों से उतर कर धीरे-धीरे पूरे शहर पर फैल गया था. स्पष्ट था कि छुट्टी का दिन अब बीत रहा था.

बहू डेगची में सब्जी भूनते हुए गौरी पिक्चर की ही बात सोचने लगी थी. वह मन-ही-मन फैसला कर रही थी कि वह भी गौरी की तरह बन सकती है. गौरी, जो एक आदर्श नारी थी. वह भी आदर् हो सकती है, बहू सोचने लगी, कि यह आज का दिन भी कितना अच्छा बीता.

बाबूजी, यद्यपि अखबार के कालमों और हेड लाइनों पर उदास नजर गड़ाये थे. किंतु उनका मस्तिष्क केंद्रित हो कर समूचे दिन के अस्तित्व पर आ कर अटक गया. बाबूजी को महसूस होने लगा कि यदि हर छुट्टी का दिन इसी तरह बीता तो वह बहुत जल्दी घबड़ कर रोने लगेंगे. वह शायद इस उन्मुक्त दिन का ही असर है कि व जिसे भूल जाना चाहते हैं, वही बार बार याद आ रहा है. दरअसल अब बाबूजी को पत्नी की स्मृति बेहद तेजी से कचोटने लगी. सुरमु अंधेरे में पत्नी का खिलखिलाहट से उन्मुक्त चेहरा अनायास उभर आया और इसके साथ ही बाबूजी को अपने अकेलेपन क अहसास साल गया. मन जब अधिक खिन्न हो आया त बाबूजी उठ खड़े हुए. करने को कुछ नहीं था. अतः फिर बैठ गये किंतु इस निर्णय के साथ कि वह तीन-चार दिन में लौट जायेंगे औ ड्यूटी ज्वाइन कर लेंगे.

प्रभाकर कुछ क्षण बाहर फूलों के आस पास टहलता रहा. कि जब भीतर आया तो उसके मन पर सिर्फ दो ही विचार थे--- ए तो प्लाट खरीदने का और दूसरा विचार एक प्रत्याशा थी, बढ़े हु वेतन के एरियर के मिलने की.

कमरे में पहुंचते ही एक खटका हुआ. शायद बिल्ली कोई बरतन गिरा दिया. प्रभाकर ने सोचा, अगर बाबूजी पूरे मही भर रहे तो कम-से-कम दो महीने का बजट डिस्टर्ब करना पड़े और. . . प्रभाकर ने एकदम अपने सोचने को ब्रेक किया. छोटी- खिड़की के पास आया. बाहर की ओर देखा. काला अंधकार समू शहर को निगल चुका था. खिड़की बंद कर वह चारपाई पर ले गया. एक-दो बार पलकें झपकायीं और फिर आंखें मुंद लीं.

छुट्टी का यह एक दिन अब पूरी तरह बीत चुका था.□□

क. नं १६, हिमालया होटल, रानीखेत, अल्मोड़ा, उ. प्र.

● एल. जे. उपाध्याय

सौदा

• पाल भसीन

गोप पहलवान भांग पीस रहा है.

सामने जमना मैया के गंदले पानी का वहाव, जिस पर सवार सूखे-बासी गेंदे के फूल, अध-जली लकड़ियों के टुकड़े, किनारों से जड़ों समेत उखड़ कर चली आयी घास. . .उस पार से शुरू होता है, रेत का विस्तार –आदमी की आदिम प्यास-सा अंतहीन, बीच-बीच में झाऊ की झाड़ियां, तरबूज और खरबूजे की बेलें, जो तपती हुई रेत पर लोट-पोट हुई जाती हैं. कहीं-कहीं फूस के झोपड़े तीसरे पहर की धूप में बदनुमा स्याह धब्बों-से चमकते हैं.

पक्के घाट की मुख्तसर-सी हलचल में जैसे एकाएक निर्द्वंद्वता, अल्हड़ता और मस्ती घुल गयी हो. पहाड़गंज, सदर, कुतुब रोड, तेलीवाड़ा, चांदनी चौक. . .सभी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले जेबकतरे, चोर, छोटे-मोटे तस्कर मौजूद हैं. पाजामे की जेबों में हाथ डाल, जांघों को लगातार खुजाता हुआ नयी दिल्ली टेशन का अनोखे भी आ चुका है. अब देर काहे की! इसीलिए गोप पहलवान भांग पीसने में जुटा है.

—जै जमना मैया की! मैया बड़ी दयालु है पहलवान! इसके भंडारे में कभी कमी नहीं आती. तू बूटी छान पट्ठे! थोड़ा नसा-पत्ता हो जाये. तब इसके किरिया-करम के लिए उस पार चलेंगे झाऊ के जंगल में, बाबा बालकनाथ की समाधी के पास, जहां तूने पार साल गांजे की चिलम चढ़ायी थी! भाना बाबा गेंहुवन-से लहरा रहे हैं. उनकी आंखों में तैरते हुए गांजे के लाल-लाल नशे के डोरे कुछ धुंधले हो आये हैं. . .ठीक सामने बहते जमनाजी के जल की तरह. घाट की बिखरी हुई चहल-पहल अब उनके सामने दायरे में सिमट आयी है. बीचो-बीच लकड़ी की एक मुड्ढी सुलग रही है. उसके पास ही त्रिशूल गड़ा है और दीवार का सहारा लिये बाबा विराजमान हैं. सिर पर जटाएं और तन पर कपड़ों के नाम पर महज एक लंगर. बुढ़ापे की दहलीज तक पहुंच कर भी उनके तन में लगता है, अभी जान है. आवाज कड़क, ऐसी कि इस पार से बोलें तो उस पार सुनायी दे.

गोप पहलवान ने क्षण भर के लिए हाथ रोक माथे का पसीना पोंछा. बाबा ने देखा तो फबती कसी—क्यों बे पैलवान की दुम! बस इत्ते मेंई दम खुसक हो गिया! लगा रगड़ा पियारे! दिसा-मैदान जाने का बखत हो रिया है!

पहलवान ने अपनी सांप की-सी गोल-गोल निर्निमेष आंखों से बाबा और पूरी मंडली की ओर घूरा. फिर रगड़ा लगाने लगा.

सनातन इन सबसे बेखबर घाट की सबसे नीचे की सीढ़ी पर बैठा है, जहां बाबा की नाव लंगर से बंधी है. अंतर्द्वंद्व की स्थिति में एक के बाद एक लगातार कई सिगरेटें वह फूंक चुका है. बीच-बीच में बाबा की कड़कदार आवाज का कोई टुकड़ा उसके कानों के पास से गुजर जाता है. अब वह गोप पहलवान के बड़े भाई का किस्सा दुहरा रहे हैं—क्या मरद की जिनगी जिया था वो पट्ठा! सात बार कांटी खायी थी विन्ने. सात-सात कतल किये थे. कुल बीस बरिस की उमर में फांसी पर गया. सेठ छदम्मीमल ने विसकी जिनगी की किताब छापी की थी. . .

अपने मरहूम भाई की गौरवगाथा सुन कर गोप पहलवान के चेहरे पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं उभरी. बस क्षण भर के लिए अपनी छोटी-छोटी, मटमैली आंखों से उसने बाबा की ओर देखा. फिर अपने काम में व्यस्त हो गया.

नाटा कद, चिकने आबनूसी शरीर के प्रत्येक भाग पर थिरकती हुई मछलियां, निहायत संकरा माथा, जीरो नंबर की मशीन फिरा कर मुंडवाया हुआ सिर—जिसे वह गांधीकट कहता है—पिचका पेट जैसे स्वाभाविक उड्डियान बंध की स्थिति में हो, निरंतर खुला रहने वाला मुंह, जिसमें से मैल का पीला पलस्तर लिये चिपचिपे दांत हर क्षण अपनी 'आभा' बिखेरते रहते हैं—यह सब मिला कर बनता है गोप पहलवान का व्यक्तित्व. उसकी लंबी ठोड़ी और सख्त जबड़े को देखते ही मन में सिहरन-सी दौड़ जाती है.

सनातन ने जब पहले-पहल उसे देखा था तो यह कल्पना तक दूभर लगी थी कि इस बीहड़ व्यक्ति के अंतर के किसी कोने-अंतरे में कोई कोमल तत्व भी छिपा हो सकता है. लेकिन था—पता तब लगा था जब पहलवान ने कासगंज की हरदिल-अजीज तवायफ बिलकीस की प्यार भरी चिट्ठियां उसे पढ़वायी थीं. 'जानेमन! बहोत दिन भये. . .' वगैरा-वगैरा.

बात बहुत दिनों तक सनातन के जी में घुमड़ती रही थी. फिर एक बार उसने पूछ ही डाला था—क्यों पहलवान! ये तुम पे बहुत मरती है?

—मरेगी नईं स्साली! एक दिन मुजरा कर रई थी. मैंने ससुरी के झाड़-फनूस तोड़ डाले गुस्से में. विदिन सेई हम से आसना हो गयी. यादों के भंवर में डूबते हुए पहलवान मुसकराया था. फिर चरस-भरे सिगरेट का लंबा कश खींच अचानक ही उदास हो गया था.

बूटी पिस चुकी थी. भाना बाबा अपना प्रवचन बीच में छोड़ उठ खड़े हुए. भोलेनाथ की जयकार बुला कर उन्होंने विजया का काफी बड़ा गोला बना हलक में फेंका और लोटा उठा ओक से गट-गट पानी पीने लगे. उनकी देखा-देखी सभी ने यही क्रिया दुहरायी.

नाव का लंगर खोलने का आदेश हुआ. सनातन अब भी निश्चल बैठा था. गोप पहलवान ने नाव की रस्सी खोल सनातन के कंधे पर हाथ रखा. बोला—तुम चलोगे, भाईजी, उस पार?

सनातन ने पास पड़ा कंकड़ उठाया और पानी में फेंक दिया. नदी के पानी में चंद गोलाइयां उभरीं और मानो उन्हीं में से सनातन का स्वर फूट कर आया हो—ऊंहू. तुम जाओ पहलवान, मैं यहीं बैठूंगा.

पहलवान ने विशेष आग्रह नहीं किया. वह सनातन के स्वभाव से परिचित है. वह जानता है कि भाईजी बैठे-बैठे अकसर कहीं खो जाया करते हैं.

घाट की सीढ़ियों से भाना बाबा धीरे-धीरे नीचे उतर रहे थे और पीछे-पीछे उनके गण. अनोखे अभी भी पाजामे की दोनों जेबों में हाथ डाले जांघों के आसपास खुजला रहा था. बीमारी हो गयी है. इलाज चल रहा है भाना बाबा का. बाबा ने तनिक रुक कर सनातन को स्नेहसिक्त स्वर में पुकारा और परिहास करते हुए कहा—नसा-पत्ता भी तो नहीं करते हो, बाबू! बम भोले की बूटी में बड़ी सक्ती है. सब अलाय-बलाय, चिंता-फिकर फुर्र से उड़नछू! और क्या कहने हैं बाबा बालकनाथ की समाधी के पास वाले गड्ढे के पानी के! असनान करते ही तरावटें आ जाती हैं. बाबा की महिमा! चलने को मन न हो तो पड़े रौ जईं पे!

सनातन ने सिर हिला कर फिर अस्वीकृति प्रकट की. सब के नाव पर सवार हो जाने के बाद पहलवान ने साल की लंबी बल्ली संभाली और नाव धीरे-धीरे उस पार सरकने लगी.

पहलवान तैरना नहीं जानता. अलबत्ता, नौका खूब खेता है. पतवार वाले छोर पर खड़ा हो बल्ली को नदी के तल पर जमा कर जब वह पीछे को झुकते हुए जोर लगाता है तो पीठ, बांहों और कंधों की मछलियां तड़प-तड़प उठती हैं.

धीरे-धीरे उस पार पहुंचती हुई नौका को देखते हुए सनातन ने एक और कंकड़ उठा कर धीरे से पानी में फेंका.

* *

दूर जमना के पुल से गुजरते हुए ट्रक, मोटरें, बसें, तांगे खिलौनों-से लग रहे थे. नौका धीरे-धीरे तिरती हुई उस पार तट पर जा लगी थी और भाना बाबा, गोप, सबके सब इधर-उधर झाड़ियों में सिमट चुके थे. सनातन ने बची हुई आखिरी सिगरेट भी सुलगा ली और एक लंबा कश खींच फुफकार-सा दिया. जहां पानी में उसने अभी कुछ क्षण पूर्व कंकड़ फेंका था, वहां छोटे-छोटे दायरे उभर कर विलीन भी हो चुके थे. अब वहीं सनातन ने एक कछुए को लंबी गरदन मटकाते अपनी ओर ताकते हुए पाया...

बचपन में एक बार एक कछुए को उसने सड़क के किनारे पड़े देखा था. बच्चों का एक झुंड उसके इर्द-गिर्द जमा था. सनातन ने पहल की और निशाना ताक कर एक पत्थर उसे मारा. फिर तो ढेर-के-ढेर पत्थर पड़े और कछुए का भुरता बन गया. तब वह बड़ा खुश हुआ था. फिर एक बार उसने कछुआ पालने की कोशिश की. एक बड़ी बाल्टी में हैंडपंप का पानी भर, उसमें कछुए को कई दिनों तक रख छोड़ा था.

लंबी गरदन मटकाते हुए कछुआ मानो अभी भी सनातन की ओर ताक रहा था. सनातन ने एक गहरी सांस ली. कछुआ पानी में डुबकी लगा गया और भीतर-ही-भीतर तैरते हुए काफी दूर जा कर फिर अपनी गरदन पानी से बाहर निकाल कर मटकाने लगा.

भावुकता की एक उम्र होती है. पर सारी उम्र की भावुकता! सनातन को लगता कि वह वक्त से बहुत पिछड़ गया है. कभी लगता कि वह वक्त को नकारता हुआ उसे बहुत पीछे छोड़ आया है. और उसके वर्तमान के लिए दोनों ही स्थितियां दुर्भाग्यपूर्ण हैं.

पिता ने एक बार कहा था—मानता हूं, तुम काबिल हो, तुम्हारा अखलाक़ बुलंद है. पर बेटे, इसी पूंजी को ले कर जियोगे कैसे? मैं कब तक जिंदा रहूंगा!

मां कहती—रिश्तेदारों के लड़के कितनी तरक्कियां कर गये हैं! विलायती राम का बेटा पिछले साल कारपोरेशन की नौकरी पा गया. अब उसने स्कूटर ले लिया है. हमारी औलाद भी तो खुशियां बटोरे! पर हमारी रीझ पूरी होती दिखायी नहीं देती.

छोटी बहन! बित्ते भर की थी, जब से उसे गोद में ले कर खिलाता रहा. जवान हुआ तो उसे बिट्टो-बिट्टो कह कर दुलारता रहा जैसे अपनी ही बिटिया हो. समृद्ध परिवार में ब्याही गयी.

पीठ पीछे भाई उसका जिक्र करते तो नाम ले कर. भाई साहब कहना जैसे भूल चुका हो उन्हें. रेडियो, स्कूटर, टेलीविजन, गोदरेज की अलमारी...आमदनी-आमदनी, पैसा ...पैसा...

तब वह स्कूल-मास्टरी छोड़ कर व्यवसाय में आ चुका था और बुरी तरह असफल हो रहा था...भाई साहब...इज्जत...

सनातन का निर्णय था कि वह जीवन के सिर्फ ईमानदार क्षणों को ही जियेगा. इधर लोगों की सवालिया नजरें जैसे उसके पौरुष का मजाक उड़ाती हों. जैसे ईमानदार क्षणों की जांघों में लिजलिजी जोंकें आ लिपटी हों. एक औसत जीवन-स्तर! बेचारा सनातन, पगला! नहीं पगला नहीं, पढ़ा-लिखा मूर्ख! उसके भीतर का सनातन प्रतिशोध लेने को मचल उठता. वह नहीं जानता कि उसे किससे प्रतिशोध लेना है. किसका प्रतिशोध लेना है. 'प्रतिशोध!' बस यही ध्वनि बार-बार उसके अंतर में गूंजने लगी. सिर्फ एक बार कथित औसत जीवन-स्तर हासिल करके वह दिखा देना चाहता था कि उसे निरा बौड़म न समझा जाये.

दिल्ली से अलीगढ़. रेल का सफर. फिर कासगंज तक बस की सवारी. सांझ के झुटपुटे में वह मिर्जा साहब के दौलतखाने पर पहुंचा था. गोप पहलवान का मौखिक संदेश उन्हें दिया था. उनकी बांछें खिल गयी थीं.

—कौन लोग हो, पूत? मिर्जा साहब ने हुक्के की नली को अपने होंठों में लेते हुए पूछा था.

—ठाकुर हूं, मिर्जा साहब!

—तब तो तुम्हारे लिए बाजार से बढ़िया मिठाई मंगा दी जाये!

—क्यों? एक क्षण के लिए वह झिझक कर, फिर खुल गया था. आपके यहां आज क्या चूल्हा ठंडा है?

—नहीं तो. कीमा और करेले का सालन पका है.

—चलेगा.

फिर तो मिर्जा साहब ने जैसे एकदम उसे अपना करीबी मान लिया था. एक सप्ताह तक उसकी वो खातिरें हुईं कि उसे आज तक याद हैं. इसे पी लो, पूत. खास तुम्हारे लिए रख दी थी. पहले फूल की है...इस हड्डी को जरा चूसो तो सही. ये बिरियानी क्या जायकेदार नहीं लगी? तुम डालर का बिजनेस शुरू कर लो. बड़े लोग हो जाओगे. हमारे रैते किसी किसिम की कोई फिकिर चिंता नईं...

दरअसल यह समूचा सिलसिला अचानक ही चल निकला था. गोप पहलवान उस दिन डेढ़ बोतल चढाये हुए था. आमतौर पर पी कर वह बहकता नहीं. पर उस दिन जाने क्या हुआ कि वह लमलेट हो गया. नशे की हालत में ऊटपटांग बकता रहा—मैं अफीम बेचूंगा. अफीम और चरस. काला धंधा नहीं, काली का

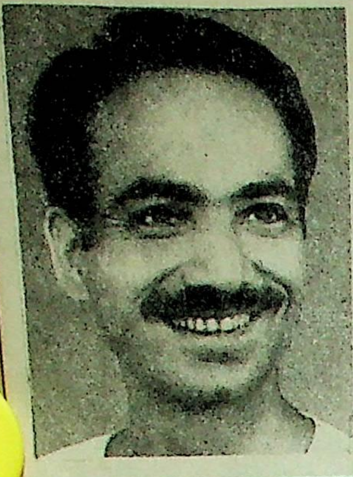

पाल भसीन (जन्म : १५ मई, १९४१) की कहानियों में विभिन्न दारुण अनुभवों की यातना परिलक्षित होती है. इनके पात्र जहां औसत जीवन-स्तर को हासिल करने के लिए संघर्षरत दिखायी देते हैं, वहीं अपनी मानवीयता को बचाये रखने के लिए भी लड़ते नजर आते हैं.

वरदान...जै मां काली. उत्तराखंड का 'गोला और बत्ती.' पुलिस साली क्या करेगी, भाई जी! जब हाथों में सर-सर करती नोटों की गड्डियां हों. कांटी खा जाते हैं वो टुच्चे! हमारा बाल कोई क्या बांका करेगा! और फिर वह रोने लगा—बिलकीस साली मर गयी होगी. हम पे कित्ती आसना थी. रत्ना का खसम उसकी बोटी-बोटी बेच कर खा गया. कासगंज में बिसकी सानदार कोठी है. औरत की बोटियां! इनका सुवाद क्या है भाई जी, तुम्हें पता है? कहीं से जुगाड़ करो न. उस पार मैंने रेत में दो बोतलें और दबा छोड़ी हैं. हो जाये जसन! और गोप पहलवान रोता रहा, हंसता रहा. . .रोता रहा. . .

सनातन को उस पर तरस आया था. बुनिआदी तौर पर उसमें और गोप पहलवान में क्या फर्क है? एक है जो ईमानदार क्षणों का पल्ला पकड़ कर भी औसत जीवन-स्तर हासिल न कर पाया और दूसरा अपनी आस्थाओं का सारा सुख भुला कर भी गलाजत के दलदल में कीड़े-सा बुलबुला रहा है. शराब की एक बोतल और चंद रुपयों की दिहाड़ी पर अपनी साहसिकता के बूते चंद धन्ना सेठों के लिए माल को इधर से उधर करता रहता है. अपने इस जीवन की शुरुआत से ले कर आज तक उसकी क्या उपलब्धि है? अजीबोगरीब बीमारियां! फिर भी कितनी उद्दाम जिजीविषा! मौत का भयानक जबड़ा बार-बार खुलता है, जिसे किसी नशे की झोंक में वह वज्र मुट्ठियों से परे धकेल देता है: साहस की पराकाष्ठा!

जिस दिन गोप पहलवान डेढ़ बोतल चढ़ा कर बहक रहा था, उसी दिन सनातन मानो पूरी तरह धराशायी हो गया था. एक नये जीवन की शुरुआत. एक औसत जीवन-स्तर! . . .

गोप पहलवान अकसर कहता—क्या समझते हो, भाई जी, बड़ों-बड़ों ने ये धंधे किये हैं! लखपती और करोड़पती बने हैं. नाम बता दूं तो ताज्जुब करोगे. . . और सनातन नयी दिशाओं की ओर मुड़ गया.

. . .वह अकेला जायेगा. देखेगा कित्ते जोखिम का काम है.किसी के कंधे पर रख कर बंदूक नहीं चलायेगा वह. जो करेगा अपने बूते पर.

और रवाना होने के पूर्व गोप पहलवान ने धंधे की सारी ऊंच-नीच उसे समझा दी थी. पते-ठिकाने बता दिये थे. यह भी कहा था—भाई जी, जा रहे हो तो बिलकीस से जरूर मिल कर आना. गजब की लुगाई है. मेरा नाम लेने से तुम्हारी खूब खातिर-तवज्जो होगी.

★ ★

मिर्जा साहब के यहां पहुंच सनातन चकित था, भ्रमित था. भय और शहादत का मिला-जुला बोध. ऐन सड़क के किनारे उनका घर. दरवाजे के बाहर वह खाट बिछा कर हुक्का पीते रहते.हुक्का पीने वालों में पुलिस के जवान भी होते, पर क्या मजाल जो दो से अधिक इकट्ठे भीतर चले जायें! मिर्जा साहब का पहाड़ी नौकर फुटबाल के ब्लैडर से उंडेल-उंडेल कर पिलाता—नीट. पीने वाले पीते और अंगुली से नमक चाटते हुए बाहर आ जाते. कहीं कोई विघ्न नहीं, बाधा नहीं.

मिर्जा साहब सिआसत में भी दखल रखते थे. अजीबो-गरीब सिआसत थी उनकी. न सिर, न पैर. ढलती उम्र में एक जवान रंडी घर बिठा छोड़ी थी, जिसके नाज उठाने में उन्हें बेहद सुकून मिलता. उन्हीं मिर्जा साहब के सान्निध्य में सनातन ने भावी कार्यक्रम की रूपरेखा तय की और फिलहाल एक किलो गोला खरीद लिया.

लौटने से पहले वह बिलकीस से मिला था. बीमार चल रही थी. पर आतिथ्य में कसर नहीं छोड़ी. सिगरेट, पान . . . जर्द चेहरा लिये बिस्तर पर लेटे-लेटे बोली— अच्छा हुआ लाला, तुम आ गये. अपने उस भाई से कहना, एक बेर मिल तो जाये. देर हो गयी तो मुंह भी न देख पायेगा. कह कर वह हंसी थी. आंखों में शरारत लिये. फिर मुखर हुई— तुम भी आना, लाला. ऐसा सजीला जवान नहीं देखा. अब हमारी तबीयत तुम पे आ गयी है. आओगे न?

बिलकीस के यहां जाते समय कैसा अजीब-सा लगा था सनातन को! मुलाकात के दौरान गले में थूक नहीं सटका जाता था. आवाज में एक अनजाना कंपन. पर वहां से लौटा तो अजीब-सी करुणा सहेजे. वह गोप पहलवान को खूब फटकारेगा— उसने सोचा था.

जैसा गोप पहलवान ने कहा था, सभी चोंचले पूरे किये सनातन ने. माल को प्लास्टिक की थैली में लपेटा और पेट पर रख ऊपर से कस कर लंगर बांध लिया. कानों में सेंट की फुहिया खोंसी ताकि चरस की तेज महक दबी रहे.

बस में बैठे-बैठे उसे ऐसा लगा रहा था जैसे हर मुसाफिर की नजरें उसी को घूर रही हैं. पुलिस के किसी कर्मचारी को बस में चढ़ता देख वह अनायास अपने को संयत करने की कोशिश करता. मन को दिलासा देता कि यह सब गड़बड़ियां सिर्फ पहले चक्कर में ही होंगी. बाद में तो जान-पहचान बढ़ेगी. संपर्क-सूत्र बनेंगे. फिर वह बड़े पैमाने पर धंधा चला सकेगा. माल लाने के लिए अलीगढ़ से बस छोड़ उसने ट्रेन पकड़ी. रास्ते में बिना टिकट सफर करने वालों की धरपकड़ के लिए ट्रेन रोक दी गयी. उसे लगा कि सिर्फ उसी को पकड़ने के लिए यह सारा इंतजाम हुआ है. कपड़ों के भीतर वह पसीने-पसीने हो गया. गोप पहलवान का निर्देश याद आते ही वह संडास में घुस गया और कमोड के पाइप के भीतर माल को छिपा आया. अब वह गुनाहगार होते हुए भी गुनाह से मुक्त था.

ट्रेन रुकी. . . ट्रेन चली. माल एक बार फिर उसकी कमर पर बंधा था. साहिबाबाद पहुंच कर वह उतर पड़ा और रेल की पटरी के साथ-साथ चलते हुए बॉर्डर पार कर फिर बस पकड़ी और पहुंच गया अपनी मंजिल पर. लगा जैसे कोई मोर्चा फतह किया हो. छाती फूल-फूल जाती.

पर यही अंत नहीं था. असली काम तो अब शुरू होना था. गोप पहलवान ने पट्टी पढ़ायी थी— ईमानदारी से कोई काम नहीं होता, भाई जी. कित्ते खरचे हैं! कमाई साली क्या खाक होगी! दुगना नहीं तो कम-से-कम ड्योढ़ा तो होना ही चाहिए माल को.

फिर माल ड्योढ़ा हो गया. मिलावट की थी शायद भांगरे की.

और आज सनातन माल ले कर यहां पहुंचा था. यहीं सौदा होने की बात तय थी. गोली बना-बना कर बेंचते हैं परचूनिये. वह मोटा धंधा करेगा.

★ ★

पानी की सतह पर लंबी गरदन मटकाता हुआ घिनौना कछुआ जाने कब डुबकी लगा गया था. सनातन उठा और घाट पर उन्मादी-सा चहलकदमी करने लगा. पास ही चबूतरे पर धूनी सुलग रही थी. घाट पर ही बने छोटे-से शिवमंदिर में किसी ने आ कर माथा नवाया.

शाम का आना तनिक और लंबा हो आया था. काफी देर हुई.

बाबा की मंडली उस पार से लौट आयी थी. आते ही महफिल फिर जुड़ गयी. फिर 'जिसने न पी सुलफे की कली, उस लड़के से लड़की भली!' का मंत्रोच्चार कर बाबा ने कश खींच कर पहल की. चिलम बारी-बारी से सब के हाथों में घूमती रही. . .

लेकिन सनातन उन सबके लौटते ही नाव पर सवार हो गया. गोप से उसने कहा था—आओ पहलवान, थोड़ा घूम आयें. गोप पहलवान भाई जी के स्वभाव का जानकार ठहरा. मान लो वह कहीं सेंघ लगाने के लिए अपने साथियों के साथ मिटिंग कर रहा हो और भाई जी उसे तलब करें, तब भी वह इनकार नहीं कर सकता. अब भी वह चुपचाप नाव में जा बैठा.

बल्ली से नाव खेना सनातन को नहीं आता. वह चप्पू चलाता है. सांझ के झुटपुटे में नदी का शांत जल जब चप्पुओं के छपाके उभारता है, तो एक करुण संगीत की सृष्टि होती है. जैसे अथाह शांति के गर्भ से हलचलों का प्रस्फुटन हो रहा हो और फिर वे हलचलें पुनः अथाह शांति में विलीन हो जायें.

जमना के बीचो-बीच पहुंच सनातन ने चप्पू समेट लिये और नौका को धारा के संग-संग बह जाने दिया.

—सेठ आने वाला होगा, भाई जी. नोखे बता रिया था! गोप पहलवान ने सूचित किया और हथेली पर चरस की गोली रख उसे दिया सलाई दिखायी. फिर सिगरेट की तंबाकू निकाल कर मिश्रण बनाने लगा. फिर सिगरेट के खोल को होठों में दबा, बिना हाथ लगाये मिश्रण को उसमें भरा और दायें हाथ की अंगुलियों से माचिस खोल तीली निकाली. एक ही हाथ से माचिस पकड़ना और तीली निकाल कर जलाना—सनातन को उसकी यह अदा बहुत भाती है.

सनातन ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया और नदी के शांत बहाव को ताकता रहा. फिर एकाएक पेट से बंधा लंगर खोल प्लास्टिक की थैली निकाल ली और अडोल ही उसे जल-प्रवाहित कर दिया. जैसे कोई रात के सन्नाटे में छिप कर कच्चे भ्रूण को नदी के समर्पित कर दे.

—भाई जी! . . . गोप पहलवान बुदबुदाया.

—ठीक है पहलवान. यही ठीक है. . .

—क्या ठीक है, भाई जी? गोप पहलवान ने कहा.

—कुछ भी नहीं. . . शायद कहीं भी नहीं.

गोप पहलवान आंखें झपका रहा था. . .

काला आखर भैंस बरोबर गोप. शब्दों का खाक भी उसके पल्ले नहीं पड़ा, पर चेहरे की भी तो एक भाषा होती है. सिगरेट फेंक कर उसने सनातन के कंधे पर हाथ रख दिया. सनातन मुसकराया. एक स्निग्ध मुसकान.

अभी-अभी उन्होंने नाव को किनारे से लगाया है. आते ही गोप पहलवान ने चिलम का दम खींच रहे अनोखे को आवाज दी—अबे ओए 'नोखे! जरा वरे को अइयो.

अनोखे चिलम आगे को सरका कर उठ खड़ा हुआ. पहलवान उसे शिवमंदिर वाली कोठरी के पास एकांत में ले गया और धीरे से लेकिन रोबदार आवाज में बोला—देख बे! भाई जी मेरे संग चाय पीने जा रिये हैं. फिर सलीमा जायेंगे. वो सेठ आये तो विससे कह दियो कि उसका-हमारा पड़ता नहीं खायेगा. भाई जी ने भौत ऊंचे दामों में सौदा निकाल दिया है. . .

सनातन की निगाहें क्षितिज के उस छोर पर टिकी थीं, जहां फिलहाल मटमैली धरती पर गंदला पानी बह रहा था और जिस पर मटमैला आसमान मरे कछुए की पीठ-सा धूसर उलटा पड़ा था. . . और अंधकार और भी गहराता जा रहा था. . . □□□

१२१९।२ ए, बाबरपुर रोड,
रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली—३२.

फ्रांस की एक लघुकथा

पक्का सबूत

• नरेंद्र भारद्वाज

उस रात को जब वह सोया, तो बड़ा प्रसन्न था. उसने चुपके से बाहर जा कर खूब शराब पी थी, और नशे में अपने पियक्कड़ साथियों के साथ दंगा-फसाद भी कम नहीं किया था. उसके चेहरे पर बुरी तरह से चोटें आयी थीं. मगर उसने उन पर मरहम-पट्टी लगा ली थी.

जब वह रात को एक बजे घर लौटा, तब वह खुर्राटे भर रही थी. जूते हाथ में ले कर, बिना आवाज किये, वह अपने बिस्तर पर जा कर सो गया. सबेरे उठा, तो पत्नी ने चाय सजा दी थी और बड़ी गंभीर बनी खड़ी-खड़ी उसका इंतजार कर रही थी. उसने पत्नी की गंभीरता को झकझोरते हुए कहा — गंभीरता में तो तुम और भी सुंदर लगती हो. एकदम फरिश्ता दिखती हो! क्या रात को नींद नहीं आयी थी?

—बातें न बनाइए, मैं अब इस घर में नहीं रहूंगी. बस! वह बोली.

—क्यों, क्या हो गया आखिर इस घर को? अभी तक तो तुम मुझसे ही नाराज थीं, अब घर से भी हो गयीं... यह क्या हो गया है तुम्हें आजकल?

—कल रात तुमने फिर शराब पी थी न?

—नहीं तो! किसने कह दिया तुमसे? उसने निर्दोष भाव से कहा.

—तुम्हारे दुश्मनों ने नहीं! मुझसे कहा है बाथरूम के शीशे ने!

—कैसे कहा? उसने बहस की.

—सबेरे मैंने देखा कि शीशे में जगह-जगह पर मरहम-पट्टियां चिपकी हुई हैं.

उसने अपने चेहरे पर हाथ फेरा—उफ! बाल-बाल बच कर भी कैसे पकड़ा गया!

वह फिर गुस्से में ही बोली — चेहरे पर हाथ क्या फेरते हो? तुमने अपना नहीं, शीशे में देखने वाली अपनी शक्ल का ड्रेसिंग किया था. तुमने शराब पी थी, इसका इससे पक्का सबूत और क्या हो सकता है? □□□

पाठकों के लिए एक सूचना

समांतर विशेषांकों में अधिक से अधिक कहानियां देने के इरादे से हमें कुछ बेहद लोकप्रिय स्थायी स्तंभों के प्रकाशन को स्थगित कर देना पड़ा है. ये स्तंभ—आद्य कथाकार, गर्दिश के दिन, कृतियां, विविधा आदि—बंद नहीं किये गये हैं. समांतर विशेषांकों की शृंखला के समाप्त होते ही इन्हें फिर से शुरू कर दिया जायेगा. हमें आशा है, इन स्तंभों को चाव से पढ़ने वाले पाठक अन्यथा नहीं लेंगे.

—संपादक

निहत्थे

• मुद्राराक्षस

दूर से देखने पर वह क्यू इस तरह दिखाई दे रहा था जैसे किसी कनस्तरों और थैलों की कतार हो. दूकानें उस कतार से काफी दूर थीं और कतार के बायीं ओर एक सूखा हुआ नाला था. लू और गर्द और धूप की वजह से लोगों की आंखें पिचक गयी थीं और टांगों से बहने वाला पसीना जूतों के अंदर इकट्ठा हो रहा था.

दूकानें सारी की सारी ही बंद थीं और मकान उस गर्दभरी दोपहर में इस तरह दिख रहे थे जैसे किसी अस्पताल में शीशे के मर्तबानों में बंद बदरंग और सूजे हुए जानवर हों.

——गाड़ी अभी तक नहीं आयी!, सुखबीर के सामने वाले बूढ़े ने मैला तौलिया उड़ने से बचाते हुए कहा. सुखबीर बूढ़े के ठीक पीछे खड़ा था. उसके पीछे वाले दो-तीन लोग बीच-बीच में नाहक धक्कामुक्की करने लगते थे.

पीछे की तरफ अपने कूल्हे धकेलकर सुखबीर ने थोड़ी दबी जबान से कहा——धक्का क्यों देते हो जी?

कतार की देखरेख के लिए खड़ा सिपाही सुखबीर को फिर घूरने लगा. सुखबीर को अजीब भय हुआ. उसे लगा कि वह सिपाही उसे लगातार घूरता रहा है और घूरे जाने पर वह किसी केंचुए की तरह सिकुड़ने लगता है.

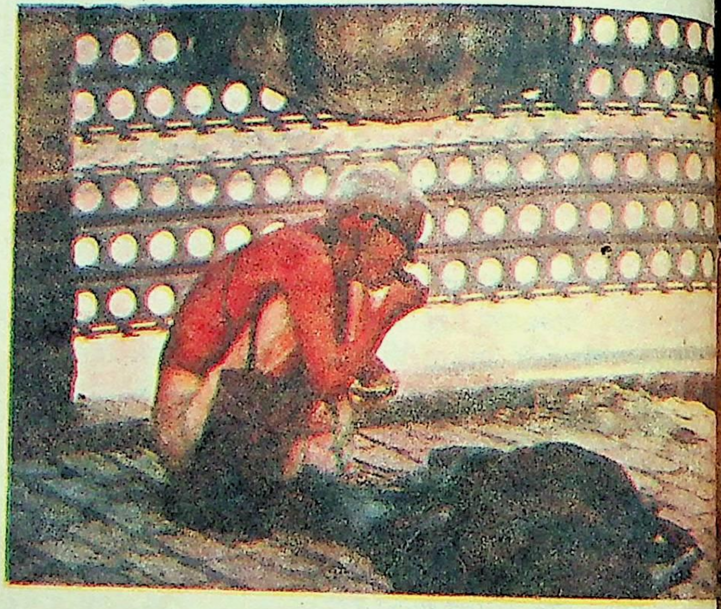

• एल. के. उपाध्याय

——लगे रहो, साला, लगे रहो! हात्तेरी की!, एक आदमी ने क्यू के बीच से रुक कर कहा. सिपाही ने उसकी ओर देखा तो वह इस तरह मोंदू बन गया गोया वह बात गंदी हवा की तरह अनायास निकल गयी हो.

आज छठा रोज था, फिर भी लोग निराश होकर हटना नहीं चाहते थे. उनका खयाल था कि जैसे ही वे हटेंगे वैसे ही गाड़ी आ जायगी. कुछ लोग तो सुबह तीन-चार बजे से ही लाइन में खड़े हो जाते थे. बीच में उनके बच्चे कभी-कभी उनकी जगह आ खड़े होते थे.

वैसे लोगों का खयाल था कि हालत ऐसी बुरी भी नहीं थी. एक बार पर्चियां कट जातीं तो आटा आराम से मिल जाता लेकिन पर्चियां तभी तो कटतीं जब गाड़ी आती.

समूची पंक्ति में जैसे एक छटपटाहट आ गयी. धक्का मुक्की फिर शुरू हो गयी. पंक्ति के सिरे से किसी ने बताया कि गाड़ी आ रही है. सुखबीर को एहसास था कि वहां खड़ा सिपाही उसे लगातार घूर रहा था इसलिए उसने उस धक्कामुक्की में शामिल होने से अपने आपको भरसक रोका, फिर भी वह लड़खड़ा गया. सिपाही उसे दो कदम आगे की ओर [illegible] लगा. उसने अपनी निगाहें फेर लीं. वह अपने आप पर थोड़ा शर्मिंदा भी हुआ —— आखिर वह नागरिक है. नागरिक के कुछ अधिकार भी होते हैं. जरूरत पड़ी तो वह अपने अधिकारों की बात अंगरेजी में भी कह सकता है.

कुछ धक्के की वजह से और कुछ सिपाही की नजरों से सिकुड़ गये साहस की वजह से, उसके दोनों कूल्हे क्यू से बाहर आ गए. उसने तुरंत अपनी बांह वहीं घुसा दी. बांह की वजह से उसकी जगह और तंग हो गयी. लिहाजा उसने बांह छुड़ा कर नये सिरे से क्यू में घुसने के लिया अपना कंधा दो आदमियों के बीच घुसाया.

उसे अपनी गर्दन पर खुरदरी-सी कोई चीज छूती हुई महसूस हुई. वह समझा, कोई सूखा पत्ता हवा से उड़कर वहां घुस गया है. उसने हथेली से उसे झाड़ना चाहा लेकिन तभी एक डर उसके सिर से होता हुआ पैरों तक उतर गया. वह दरअसल सिपाही का डंडा था.

——बाहर निकल! सिपाही ने उसे घुड़का.

——जी? उसके सोचे हुए सारे संवाद जाने कहां चले गए और वह यकायक सकते में आ गया.

——बीच में घुसता है बहन. . . . पीछे चल लाइन में!, सिपाही ने अपना डंडा उठाया. उसने घबराकर क्यू के पीछे की ओर देखा. पीछे को पांच सौ लोगों की भीड़ होगी. आज वह सबेरे पांच बजे ही पहुंच गया था इसलिए उससे आगे मुश्किल से पचास लोग ही थे. अगर आज आटा नहीं मिला तो बहुत मुश्किल हो जायगी क्योंकि लोग कह रहे थे कि कल से कर्फ्यू लग जायगा.

——अबे हट यहां से! हटता है या लगाऊं? सिपाही ने धमकाया. आगे से किसी ने कहा : ——कानून कायदा तो कोई मानता नहीं है.

——कौन कानून छांट रहा है उधर? सिपाही ने ललकारा लेकिन बोला कोई नहीं. सिपाही का ध्यान बंटा देखकर सुखबीर अपने आगे-पीछे के आदमियों की ओर कातर निगाहों से देखने लगा. उन लोगों ने उसकी ओर से आंखें हटाकर इधर-उधर देखना शुरू कर दिया. उसने सिपाही द्वारा जबर्दस्ती वहां से हटाए जाने से पहले भुनभुनाकर पास वाले आदमी से कहा——तुम्हारे साथ ही खड़ा था न मैं?

वह आदमी कुछ नहीं बोला. इस बीच एक गाड़ी तेजी से आयी और क्यू से थोड़ी दूर जाकर खड़ी हो गयी. वह पुलिस की गाड़ी थी और उसमें वायरलेस लगा हुआ था. सिपाही का ध्यान बंट गया.

दरअसल आटे के ट्रक के बजाय कोई जुलूस आ रहा था. जुलूस के नारे सुनाई पड़ रहे थे.

—फिर जुलूस आ गया. बूढ़े आदमी ने भुनभुनाकर कहा, —किसी की जान की तो जेसे किसी को परवाह ही नहीं है. अभी कहीं गोली चल जाय तो बस!

जुलूस के आगे पुलिस.की जीप के साथ-साथ पैदल सिपाहियों की काफी बड़ी टुकड़ी चल रही थी. क्यू की देखरेख के लिए खड़ा सिपाही सहसा बेहद फुर्तीला हो उठा था. जीप पर बैठे अफसर ने उसे हाथ के इशारे से कहा कि वह क्यू में खड़े लोगों को थोड़ा-सा पीछे खिसकने को कहे. सिपाही डंडा लेकर लोगों पर पिल पड़ा—भागो, भागो इधर से!

डंडा पड़ते ही क्यू छितरा गया और लोग भेड़ों की तरह भाग कर नाले के उसपार कूद गए. सुखबीर भी भागा. लेकिन इस बार उसने सोचा कि वह औरों की तरह नाले के उस पार नहीं जायगा. जुलूस गुजरने के बाद बाकी लोगों से पहले ही वह क्यू में खड़ा हो जायगा.

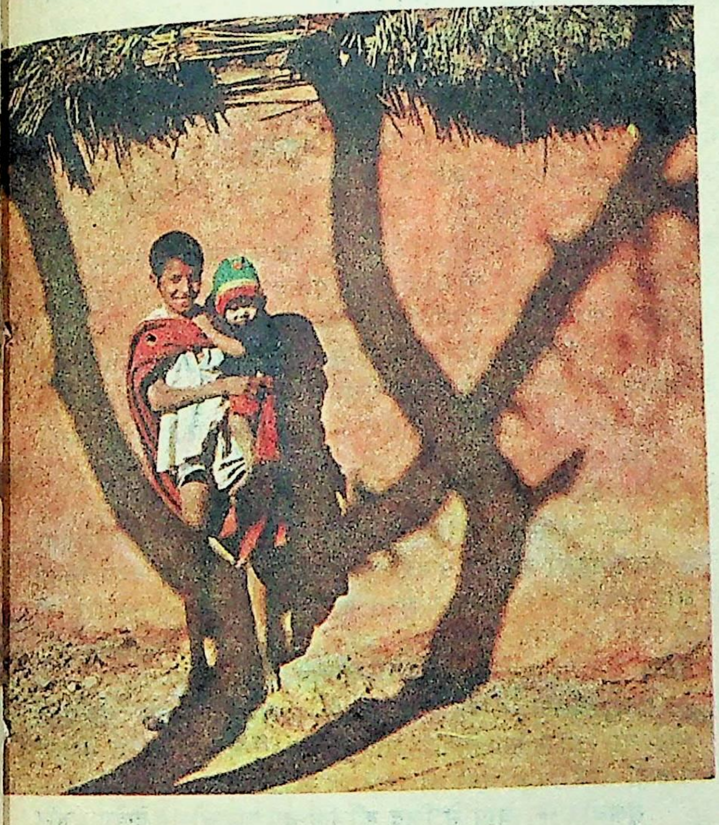

सुरज एन. शर्मा

लू और धूप काफी जलन भरी थी और जीप पर बैठे अफसर की आंखें चुंधिया रही थीं. अगला मोड़ पार करने तक उसे इसी तरह रेंगती जीप में बैठे-बैठे गर्मी को सहना था क्योंकि मोड़ के बाद राजभवन वाले मार्ग पर जुलूस रोका जाना था. वहां बड़ी तादाद में पुलिस ने मोर्चाबंदी कर रखी थी.

सुखबीर की जांघों का पसीना रेंगता हुआ पिंडलियों तक आया तो उसे खुजली महसूस होगे लगी. लेकिन पुलिस वालों की मौजूदगी में वह खुजली करके उनका ध्यान नहीं बंटाना चाहता था. लेकिन पसीना रेंगता हुआ टखने तक आया तो वहां वह और जोर से चुभने लगा जैसे कोई चींटी काटने लगी हो.

उसने सोचा कि पुलिस वालों का ध्यान बंटने से पहले ही वह फुर्ती से झुक कर खुजली कर ले और सीधा हो जाये. परेशानी में वह भूल गया था कि टांग उठाकर भी खुजली की जा सकती थी. लिहाजा वह पलक झपकने के साथ नीचे झुका और दाहिने हाथ से खुजली करके फुर्ती से सीधा हो गया.

जीप पर चल रहा पुलिस अफसर धूप में आंखें मिचमिचा कर सामने देख रहा था. उसे दाईं ओर एक आदमी के जमीन की ओर झुकने और सीधा होने की झलक मिली. वह चेहरे पर हाथ लगा कर नीचे झुका और चिल्लाया — अरे, पत्थर मारता है हरामी!

—पत्थर? क्यू वाला सिपाही चौंक गया. तब तक जीप के साथ चल रहे सिपाही उसकी ओर लपके. दो क्षण का भी अवकाश मिलता तो वह भाग खड़ा होता. वह निश्चय ही काफी तेज भाग सकता था. लेकिन क्यू संभालने के लिए खड़े सिपाही ने लपक कर उसका कालर पकड़ लिया—मैं तो बहुत देर से देख रहा था, तभी समझ गया था. . .

—अरे मगर, वह छटपटाया लेकिन तब तक कई पुलिस वालों ने उसे दबोच लिया. एक ने उसकी गर्दन इतनी जोर से दबा ली थी कि उसे खांसी ही आने लगी थी. पुलिस की एक जीप जब उसे लेकर रवाना हुई, उस वक्त तक भी उसे यकीन नहीं था कि उसे सचमुच पकड़ लिया गया है. उसे गाड़ी के अंदर इस तरह धकेला गया था कि उसकी कुहनियां और माथा रगड़ गया था. उसे लगा कि अगर वह यों ही मुर्गे की तरह पड़ा रहा तो पुलिस वाले शायद उसे पीटेंगे इसलिए वह उठकर बैठने लगा.

—भागेगा बहन. . . ! एक सिपाही चिल्लाया और उसने जूते सहित अपना पैर उसकी पीठ पर दे मारा. सुखबीर को लगा जैसे वहां रीढ़ के कई टुकड़े हो गए हों.

सुखबीर के पकड़े जाने की घटना के बाद वहां भारी गड़बड़ी मच गयी थी हालांकि वह इससे बिल्कुल बेखबर था. जुलूस वालों ने समझा कि उन्हीं में से किसी को गिरफ्तार किया गया है इसलिए वे अचानक उत्तेजित हो गए. जुलूस के दूसरी तरफ के पुलिस वालों तक खबर पहुंची कि उनका अफसर पथराव से सख्त घायल हुआ है इसलिए उन्होंने उत्तेजित होकर लाठियां घुमानी शुरू कर दीं.

इस बीच एक और हंगामा हो गया. जाने किधर से एक डिब्बे जैसी कोई चीज जीप पर आ गिरी. गिरते ही फटी और वहां बुरी तरह धुआं फैल गया. धमाके की आवाज जुलूस वालों ने भी सुनी. पीछे से कोई चिल्लाया—आंसू गैस!

—रोटी कपड़ा दे न सके जो वो सरकार निकम्मी है! —लोगों ने सीना फुलाकर जोशीला नारा लगाया. लोग आसपास पत्थर खोजने लगे. इसी वक्त धमाके से घबराई भीड़ का रेला पीछे की ओर आया. जो वालंटियर सीटी लिये हुए जुलूस के साथ-साथ चल रहा था, वह भगदड़ देखकर बौखला गया और किनारे हट कर जोर-जोर से सीटियां बजाने लगा.

धमाके की पहली सनसनी उतरते ही जीप के पीछे वाले अफसर ने अपनी पिस्तौल से गोली चला दी. पुलिस के जिन लोगों के पास बंदूकें थीं, वे भीड़ के पास से भागे क्योंकि धमाके से वे खुद भी डर गए थे. लेकिन पुलिस अफसर द्वारा चिल्ला कर पिस्तौल दागने पर वे रुके और पलट कर अंधाधुंध गोलियां चलाने लगे.

पिस्तौल की तुलना में इन राइफलों की आवाज बहुत घटिया थी. दरअसल उनसे धमाके की बजाय फटे बांस जैसी आवाज निकलती थी और दूर तक लुढ़कती चली जाती थी.

जुलूस की भगदड़ से घबरा कर सीटी बजाने वाले वालंटियर ने महसूस किया जैसे उसे किसी ने जबर्दस्त धक्का दिया हो. वह समझ नहीं पाया कि भीड़ से इतनी दूर होने पर भी उसे धक्का किसने दिया हो सकता है. लेकिन अगले ही क्षण उसे लगा जैसे उसकी एक टांग किसी ने उसके नीचे से गायब कर दी और वह असंतुलित होकर गिर गया. गिरने के साथ ही उसने महसूस किया कि उसकी जांघ चिकनी-चिकनी हो गयी है. दरअसल वह खून से तरह हो गयी थी.

वह समझ नहीं पाया कि उसके साथ यह क्या हुआ. उसने अपने कूल्हे पर हाथ फेरा तो वहां गर्म गिलगिला गढ़ा-सा महसूस हुआ. इसके बाद वह चिल्लाया. बहुत ही भयार्त और बेहूदी-सी चीख निकली और वह बेहोश हो गया.

क्यू से खदेड़े गये लोग इतनी तेजी से घटी घटनाओं से चकरा गये. गोली चलते ही वे लोग पहले तो पीछे हटे, फिर जोर से भागे. अभी वे थोड़ी ही दूर गये होंगे कि उन पर पुलिस वालों की नजर पड़ गयी. पुलिस वाले उधर भी गोलियां चलाने लगे. एक पुलिसवाला बार-बार गोली चला रहा था, फिर भी उसे लग रहा था कि उसका निशाना ठीक नहीं बैठ रहा. इसलिए वह भागते हुए लोगों के पीछे दौड़ लिया.

क्यू में सुखबीर के आगे खड़े-खड़े भुनभुनाने वाले बूढ़े के पेट में गोली लगी थी. वह किसी तरह घिसट कर एक लेटर बाक्स के पीछे छुप गया था. दौड़ने वाला सिपाही उसे देख कर रुक गया—हैं, हरामी, चोर, साला.!

बूढ़ा आदमी अपने पेट पर मैली धोती दबाये था, फिर भी, खून बड़ी तेजी से बह कर धूल में लिथड़ता जा रहा था. सिपाही को देख कर उसने दोनों आंखें फाड़ीं और रेत में पड़ी हुई मछली की तरह मुंह फैलाया. आवाज कोई भी नहीं हुई. सिपाही की बंदूक से वही फटे बांस जैसी आवाज हुई और उसके खुले हुए मुंह का आधा हिस्सा जबड़े सहित दूर-दूर तक छितरा गया. उस आदमी ने गरारा करने जैसी आवाज की, गिर कर थरथराने लगा.

★ ★

सुखबीर को लेकर पुलिस की गाड़ी दस मिनट में ही कोतवाली पहुंच गयी थी. वहां काफी हलचल थी. सुखबीर को कालर से पकड़ कर धकेलते हुए ले जा कर उन्होंने एक मैले से कमरे में खड़ा कर दिया. वह कमरा क्या, एक बहुत वजनी मेज पड़ी थी.

उसके अंदर धकेले जाते ही एक छोटा अफसर तेजी से आया और मेज की दरवाजें टटोलने लगा. लगभग उसके पीछे आ रहे सिपाही ने दरवाजे से झांक कर पूछा — साइकिल लाऊं?

—साइकिल को दे अपनी मां की. . में . साले वक्त देखते नहीं और—! वह गालियां फेंक कर दराज में अंदर तक हाथ घुसा कर कुछ खोजने लगा. ऊपर की दराज में न मिलने पर उसने दूसरी दराज खोलनी चाही. वह खुली नहीं. आने के बाद से अब तक सुखबीर दीवार से सटा चुपचाप खड़ा था. दर-असल वह बहुत तेजी से कुछ सोचने की कोशिश कर रहा था. थैला और राशन कार्ड अभी उसके हाथ में ही था. उसने सोचा कि दराज खोलने में मदद करने पर शायद उसके प्रति पुलिसवालों का रुख थोड़ा नरम हो जायगा इसलिए दराज की तरफ लपकते हुए उसने कहा—जनाब, लाइए मैं खोला देता हूं.

—अबे तू कौन है? छोटा अफसर एकदम चौंक गया. दरवाजे पर खड़े दो सिपाही अंदर आ गये.

—बात ये है जी कि मैं राशन लेने निकला था, सुखबीर ने हकला कर कहा.

—अबे तो ये राशन की दूकान है? देखो साले को! छोटा अफसर चिढ़ कर लगभग मार ही बैठने वाला था कि अंदर आए सिपाहियों ने बताया कि इसे अभी जुलूस से गिरफ्तार किया गया है.

—अबे हरामजादो तो इसे इस तरह मेरे खोपड़े पर क्यों खड़ा किया है! बंद क्यों नहीं किया अब तक?

—मगर जनाब आप मेरी बात सुनिए. . .

बात सुनने की वहां किसे फुरसत थी? और फिर इस हंगामे में आठवीं गाड़ी की चाभी खो गयी थी. सिपाहियों ने फुर्ती से सुखबीर का कालर पकड़ा और खींच कर एक कोठरी में बंद कर गये.

कोठरी का दरवाजा बंद होने के बाद सहसा उसे लगा कि उसके साथ कोई भयानक गड़बड़ी हो गयी है हालांकि उसे यह विश्वा जरूर था कि अगर उसने धीरज से काम लिया तो गलतफहमी भी हो सकती है.

हो जाता है. सभी के साथ हो जाता है, उसने सोचा. और दो रोज पहले वह बीवी को बता रहा था कि लोगों को किस तरह आम आदमी की मुश्किलों का ध्यान ही नहीं रह गया. वह एक बार दफ्तर जा रहा था कि बस रुक गयी. मालूम हुआ कोई जुलूस निकल रहा था. और कोई छोटा-मोटा जुलूस होता तो कहा जाता. कोई पच्चीस-तीस हजार लोग तो होंगे ही.

दो छोटे बच्चों की आवाज से सुखबीर का ध्यान बंट गया पुलिस स्टेशन पर इस तरह बच्चों की आवाज सुन कर उसे ताज्जुब हुआ. कोठरी के दरवाजे की मोटी और मैल चढ़ी हुई छड़ों से उसने बाहर झांका. धकेल कर यहां लाए जाते वक्त उसने ध्यान ही नहीं दिया था कि थाने के अंदर एक बड़ा-सा आंगन था और उसके चारों ओर ऐसी ही कोठरियां बनी हुई थीं.

बाहर किसी ने आवाज दी—एई सुनो!

आवाज में रोष था. आवाज देनेवाला वहां से दिखाई नहीं दे रहा था. भारी-भारी बूट पटकता हुआ कोई भाग कर उस आवाज की दिशा में भाग कर जाता सुनाई दिया.

—सुनो नरिंदर कहां है?

—बुलाऊं हुजूर?

—नहीं रहने दो. सुनो ये मेरे कजिन के बच्चे हैं. ये चोर देखना चाहते हैं. जरा इन्हें चोर दिखा दो. नरिंदर से कहना, रात को कोठी पर मुझे फोन कर ले. रोबीली आवाज ने कहा.

—बाई अंकल, दोनों बच्चों ने एक साथ माउथ आर्गन जैसी आवाज में कहा. थोड़ी दूर से रोबीली आवाज सुनाई दी. 'बाई!'

—और सुनो बच्चों को चोर दिखा कर कोठी पर पहुंचाना.

—जी हुजूर.

सुखबीर कान लगाये रहा.

—उधर से नहीं, इधर से दिखाओ, किसी बच्चे ने कहा. इधर से सबसे पहली कोठरी सुखबीर की ही थी. दोनों बच्चे चिकने और चमकदार थे. उन्होंने चुस्त कपड़े पहन रखे थे. सुखबीर की कोठरी से थोड़े दूर खड़े हो कर बच्चे उसे देखने लगे. उसे अजीब शर्मिंदगी महसूस हुई. कोठरी में वह थोड़ा पीछे की ओर हट गया. बचपन में वह चोर देखने भी गया था. तब वह बहुत छोटा था. रात के पिछले पहर शोर से वह भी जाग गया था. मुहल्ले में कहीं चोर पकड़ा गया था.

सुखबीर ने बाप से जिद की कि वह भी चोर देखेगा. चोर देखने के बाद वह एकदम निराश हो गया था. चोर बेहद दुबला-पतला और आम आदमियों जैसा ही था बल्कि पिटने के बाद वह सबसे ज्यादा निरीह और भयभीत लग रहा था. चोर जैसी कोई बात उसमें थी ही नहीं.

सुबह के करीब उसने जब अपनी प्रतिक्रिया दी तो उसका बाप उसका मुंह देखता रह गया था.

दोनों बच्चों में लड़की कुछ बड़ी थी और तेज भी थी. लड़का अभी सुखबीर की कोठरी के सामने ही था कि लड़की सिपाही को घसीटती हुई तीसरी-चौथी कोठरी तक चली गयी थी.

बच्चा उसे अजीब निगाहों से देख रहा था. उन निगाहों में भय भी था और तिरस्कार भरा दर्प भी.

बच्चे को पता नहीं क्या सूझा कि वह दो कदम पीछे हटा. इधर-उधर खोज कर उसने एक पत्थर का टुकड़ा उठा लिया. सुखबीर जब तक कुछ बोले, तब तक बच्चे ने वह पत्थर उस पर फेंका. पत्थर इत्तफाक से अंदर नहीं आया. जंगले से टकरा कर बाहर ही गिर गया. बच्चे ने इधर-उधर देखा लेकिन और पत्थर नजर नहीं

मुद्राराक्षस (जन्म : २४ जून १९३३) : की कहानियों में आज के आदमी की मानसिकता और आर्थिक स्थितियों के टकराव का बखूबी चित्रण देखने को मिलता है. इनके अधिकांश पात्र परिस्थितियों से जूझने वाले विद्रोही हुआ करते हैं.

आया. एक बहुत ही छोटा पत्थर मिला लेकिन उसे फेंक कर बच्चे को खास मजा नहीं आया.

सुखबीर ने महसूस किया कि बच्चा वह पत्थर उठाते हुए डर रहा है. सुखबीर पहले तो इस पत्थरबाजी से चिढ़ा था लेकिन बाद में उसने सोचा कि बच्चा नासमझ है. उसे क्या पता कि वह कौन है. अगर बच्चा यह छोटा-सा मनोरंजन कर ही ले तो कौन वह घायल हो जायगा.

बच्चा तनाव भरी नजरों से उसे घूरता हुआ पत्थर की ओर झुक रहा था. सुखबीर उसकी बचकानी दहशत देख कर मुसकाराया. बच्चा जाने क्यों उसके मुसकराने से ही डर गया और डर कर दो कदम पीछे हटा. सुखबीर को उस पर तरस आ गया. अपनी मुसकराहट और ज्यादा फैलाते हुए उसने जंगले के पास आकर कहा-- उठा लो बेटे, उठा लो.

बच्चा इस बार पीछे नहीं हटा. हां उसकी आंखें भय से और चौड़ी हो गयीं. उसके होंठ कांपे और वह जोर-से रोने लगा.

--रोमी, क्या हुआ? उसकी बहन ने पूछा. तब तक साथ वाला सिपाही भाग कर बच्चे के पास पहुंच गया था. बच्चा जोर-जोर से रोए जा रहा था. बड़ी मुश्किल से उसने हाथ उठा कर सुखबीर की तरफ इशारा किया.

--ओहो, सिपाही ने सुखबीर की तरफ देख कर दांत पीसे. सुखबीर खुद घबरा गया था. हकलाते हुए बोला, वो बात ये है कि वो डर गया---मैं. . .

--डर गया का बच्चा, सुअर साला!, सिपाही दहाड़ा और डंडा उठाकर सुखबीर की ओर झपटा. डंडा उसने मारा तो मगर वह जंगले से टकरा गया. इससे उसे और गुस्सा आ गया. इस बार उसने जंगले में हाथ डाल कर डंडा उसकी पसलियों में घंसा दिया. वह दर्द से तिलमिला गया. वह छटपटाने लगा. बच्चा चुप हो गया था. लड़की ने उसे एक बाजू में लपेट कर सटा दिया और सुखबीर की तरफ देख कर बोली --- ईडियट!

--डेजी देख कितने चोर! बच्चे ने खुश हो कर कहा. थाने के आंगन में अचानक बहुत-से कैदियों की भीड़ जमा हो गयी. उन्हें एक बस में भर कर लाया गया था. उन्हें हथियारबंद पुलिसवालों ने घेर रखा था. एक-एक कोठरी खोल कर उन्हें भरा जाने लगा.

सुखबीर की कोठरी में आठ आदमी और ठूंस दिये गये. अब वहां बैठने की जगह भी मुश्किल से ही बची थी. आनेवालों में एक बुड्ढा आदमी भी था. बाकी छोटी उम्र के छात्र लग रहे थे. बुड्ढा दरवाजा बंद होते ही गालियां बकने लगा--- उनकी मां को. . . साले जेल में बंद करेंगे. अरे कर दो. जेल क्या बुरी है. बहन. . . बाहर मेहनत भी करो और भूखे भी मरो. जेल में साली मेहनत होगी तो रोटी तो मिलेगी. हमें क्या!

लड़के बेहद खामोश, कुछ सहमे हुए लग रहे थे. सुखबीर बूढ़े को ताज्जुब से घूरने लगा. बूढ़ा खामोश होने की बजाय बोलता ही चला जा रहा था. आखिर सुखबीर ने टोका---जनाब आप गलती कर रहे हैं.

---क्या? बूढ़े ने ताज्जुब से उसे घूरा.

--मैं ठीक कह रहा हूं, जनाब. इस तरह ताव खा कर आप अपना केस बिगाड़ लेंगे. सुखबीर ने कहा.

---केस बिगाड़ेंगे? बुड्ढ़े ने व्यंग्य से कहा. लो, इसकी सुनो. केस बिगाड़ेंगे. केस मां का. . . बनता कैसे है? ऐं?

---आप गाली क्यों देते हैं, जनाब?

---क्या है बे! करीब से गुजरते हुए एक सिपाही ने हाथ की फाइल जंगले पर ठोंकी.

---जनाब हवलदार साहब, बात ये है कि. . .

सुखबीर अभी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि एक मोटी-सी गाली निकालता हुआ सिपाही आगे बढ़ गया. सुखबीर सकपका कर चुप हो गया. बुड्ढ़ा चुप नहीं हुआ---लोग पुलिस वाले को जाने क्या समझते हैं. हद ही हो गयी है. बहन. . .सोच कर देखो तो यकीन नहीं होता. अरे अंगरेज साले ने दो सौ साल में इतनी गोलियां नहीं चलायी होंगी जितनी इन हरामियों ने बीस बरस में चला दीं. आदमी की जान की तो कोई कीमत ही नहीं रह गयी.

---वैसे देखिए, मैं आपके खिलाफ कुछ नहीं कहता. सुखबीर ने सफाई देनी चाही.

--अबे कहा भी तो परवाह किसको है! क्यों? किसको परवाह है! कहो! बुड्ढ़ा भिन्नाया.

छोटी उम्र का लड़का बहुत देर से कुछ कहना चाह रहा था. बुड्ढा चूंकि लगातार बोले जा रहा था इसलिए उसे मौका ही नहीं मिल रहा था. उसे दरअसल पेशाब लगी हुई थी लेकिन वह समझ नहीं पा रहा था कि कहां करे.

---अरे इतनी सी बात थी? बुड्ढा सुन कर हंस पड़ा, अरे बहन. . . यहीं कर दे. कौन अपना घर है.

लड़का और ज्यादा सकपका गया.

---लो साहबजादे डर रहे हैं. अरे अभी पुलिस वाला बर्फ पर लिटा कर हंटर लगाये तो अपने आप निकल जायगा या नहीं? उस वक्त क्या उसे पकड़ कर रखोगे? वैसे पेशाब तो मुझे भी लगी है. . .कह कर बुड्ढा अपना पायजमा खोलने लगा.

---अरेरे, यहीं. सुखबीर घबरा कर पीछे हट गया.

बुड्ढा तब तक अपना काम करने लगा था. लड़के ने फिर भी पेशाब नहीं किया. सुखबीर कुढ़ने लगा. एक तो इतने लोगों के आने के बाद वैसे ही बैठने की जगह नहीं बची थी, ऊपर से बुड्ढे ने दीवार के सहारे जो गंदगी फैलाई थी, वह सारे फर्श पर फैल गयी थी. वैसे भी उसे इन लोगों से कोई खास सहानुभूति नहीं थी. फिर इस गड़बड़ी के बाद तो उसका मन बिल्कुल ही खट्टा हो गया था.

* *

थाने की गालियों और चिघाड़ों के बीच शाम से एक आवाज शामिल हो गयी थी--- किसी के कराहने और दर्द से चीख-चीख पड़ने की आवाज . हालांकि यह आवाज उतनी तेज नहीं थी, फिर भी सुखबीर को सबसे ज्यादा साफ सुनाई दे रही थी. बीच-बीच में जब वह आवाज कुछ ज्यादा ही तेज हो जाती थी तो वह कोठरी के बाकी लोगों की ओर देखने लगता था.

वैसे अब अंधेरा हो गया था और एक-दूसरे के चेहरे साफ नहीं दिखाई दे रहे थे, फिर भी न जाने कैसे बुड्ढा सुखबीर के मन की बात भांप लेता था. एक बार जब कराहने की आवाज बहुत ही तेज आयी तो बुड्ढ़ा हंस पड़ा. फिर खुद ही जैसे अपनी हंसी पर टीका

करता हुआ बोला---अभी साली हंसी आ रही है. दूसरे को तकलीफ हो तो ऐसा ही लगता है. जब अपनी. . .

---मैंने सुना है नाखूनों में कीलें ठोंक देते हैं, सुखबीर ने कहा.

---घबराते क्यों हो बर्खुर्दार, अभी पता लग जायगा. जब आ ही गए हो तो यह भी देख लेना, बुड्ढे ने मजे लेते हुए व्यंग्य किया.

बहुत देर से पेशाब रोके हुए छोटी उम्र का लड़का जैसे अचानक छटपटाया और लोगों को धक्का देते हुए जंगले तक आया. जंगलों से एकदम बंदर की तरह चिपट कर वह पूरे जोर से चिल्लाया---इन्कलाब जिंदाबाद!

---अरे ये सब को मरवाएगा, सुखबीर धीरे से भुनभुनाया.

बुड्ढे की नजरों में तरस उभर आया. वह समझ गया कि चीखने वाला लड़का दरअसल बहुत डर गया था. लड़के की आवाज फट गयी थी लेकिन वह बिना रुके नारे लगाये जा रहा था. उसके उत्तर में अब कुछ कोठरियों से भी नारे दुहराए जाने लगे थे. लेकिन लड़के की आवाज उन सबसे अलग थी.

सुखबीर डर रहा था कि अभी कोई सिपाही आएगा और लड़के को पीटने लग जायगा. हो सकता है, गुस्से में वह कोठरी के सभी लोगों को पीट डाले. ऐसे मौकों पर शांत और धीरज से काम लेना चाहिए, उसने सोचा. लड़के की आवाज जब तक बिल्कुल बैठ नहीं गयी तब तक वह जोर लगाता रहा.

सुखबीर को लगा, शायद वह खुद वहीं खड़े-खड़े ही सो गया था. उसे अपनी नींद पर ताज्जुब भी हुआ. जंगले वाले दरवाजे की खड़क से उसकी नींद खुली. बाहर कई बंदूकधारी सिपाही खड़े थे.

---एई, बाहर आओ. किसी ने उसे ललकारा. उसी को बुलाया जा रहा था. अचानक उसके पेट में एक मरोड़ जैसी उठी. उसके टखने कमजोर हो गये. उसने घबरा कर पूछा--- जी मैं?

---बाहर आ!

सुखबीर यंत्रचालित-सा बाहर आ गया. उसके साथ के बाकी लोग भी बाहर निकाल लिये गये. अपने साथ बाकी लोगों के भी निकाले जाने पर वह थोड़ा आश्वस्त हुआ. उसने सोचा, अब मौका आ गया है, इन्हें असलियत बता देनी चाहिए. कह देना चाहिए कि वह नाहक पकड़ा गया है.

---भाई साहब, आप मेरी बात सुनेंगे? उसने हकलाकर बेहद दयनीय आवाज में कहा. लेकिन उसकी बात सुनने की जैसे किसी को फुरसत ही नहीं थी. उन्हें लगभग खदेड़ते हुए बाहर लाया गया. सड़क पर जबर्दस्त सन्नाटा था. एक बड़ी-सी काली गाड़ी वहां पहले से ही खड़ी थी. बड़ी फुर्ती के साथ उन्हें गाड़ी में ठूंस दिया गया. उनके साथ ही बंदूकधारी सिपाही भी बैठ गये. बुड्ढा अब बिल्कुल खामोश हो गया था. उनके बैठते ही गाड़ी रवाना हो गयी. गाड़ी के अंदर जबर्दस्त घुटन, अंधेरा और मनहूसियत थी. सुखबीर को अब थोड़ा संतोष हो रहा था क्योंकि उसे यकीन था कि नाखूनों में कीलें ठोंकने की बजाय उसे जेल ले जाया जा रहा था.

लगभग आधे घंटे बाद गाड़ी रुकी. सिपाही कूद-कूद कर नीचे मुस्तैदी से खड़े हो गये. उसके बाद कैदियों को उतारा गया. सुखबीर को ताज्जुब हुआ कि गाड़ी यहां क्यों रोकी गयी थी. यहां से करीब आधे फर्लांग पर नदी का पाट चमकता हुआ दिखाई दे रहा था. हवा बिल्कुल स्तब्ध थी. उनके साथ दो अफसर भी आए हुए थे. थोड़ी देर में एक अफसर इन लोगों की तरफ आया. उसने सब की ओर देखा और फिर एक आदमी छांट लिया---तुम इधर आओ!

उस युवक को साथ लेकर एक अफसर नदी की तरफ चला. दूसरे अफसर ने दो बंदूकधारियों को कोई इशारा किया. बंदूक वाले भी उनके पीछे चले गये. सड़क के बाद पथरीली ढाल और घनी झाड़ियां थीं. दो क्षण बाद ही चारों निगाह से ओझल हो गए. अभी कोई दो-तीन मिनट ही बीते होंगे कि दो गोलियां चलने की आवाज उसी ओर से आयी. परिंदे शोर करते हुए आसमान में उड़ने लगे.

सुखबीर यकायक समझ नहीं पाया कि वह क्या करे. उसने चाहा कि वह अफसर से कुछ कहे लेकिन उसकी आवाज गले में ही फंस कर रह गयी. उस आदमी के साथ गया हुआ अफसर वापस आ गया. पंक्ति में से एक और युवक की ओर इशारा करके उसने कहा---एई, तुम आओ!

बुलाया जानेवाला युवक कांपा और अपनी जगह खड़ा रह गया. एक सिपाही ने अपनी बंदूक के कुंदे से उसे धकेला. लगा वह गिर जाएगा लेकिन चलेगा नहीं. उसके खुश्क होंठ इस तरह फड़क रहे थे जैसे वह कोई मंत्र पढ़ रहा हो. सिपाही ने बांह पकड़ कर उसे खींचा तो वह गिरने लगा. दो सिपाहियों ने फुर्ती से उसे दोनों बाजुओं से लटका लिया और लगभग घसीटते हुए ले चले. युवक के गले से कुछ इस तरह की आवाज निकल रही थी जैसे वह नींद में हंस रहा हो.

दो गोलियां चलने की आवाज फिर सुनाई दी. सुखबीर को लगा जैसे वह आवाज कानों की बजाय कहीं और से शरीर के अंदर घुस रही हो. उसके मुंह में ढेर-सा कसैला पानी भर गया. जब तक वह उसे थूके, तब तक उसका कंठ फोड़ कर एक लंबी-सी उल्टी हुई. वह उल्टी करके अपराधी की तरह पुलिसवालों की ओर देखने लगा जैसे माफी मांग रहा हो. उसके कान अब बिल्कुल बंद हो गए थे और उनमें अजीब-सी सनसनाहट होने लगी थी. उसने कान के पास हाथ फेरा तो महसूस हुआ कि ठंढे पसीने से वह बुरी तरह भीग चुका है. लेकिन उसकी खाल इतनी मुर्दा हो गयी थी कि अपनी हथेली का स्पर्श भी मुश्किल से ही महसूस हो रहा था.

इस बार वे लोग बुड्ढे को ले जाना चाह रहे थे. बुड्ढा पीछे हटता हुआ बड़बड़ाया---तुम लोग गोली मारोगे? बहन के. . मुझे गोली मारोगे---मादर. . .

सिपाहियों ने उसे जबर्दस्ती घसीटना चाहा तो वह बुरी तरह दम लगाकर चीखने लगा---बचाओ, बचाओ!

पीछे से एक सिपाही ने तुरंत उसके कंधों के बीचोबीच बंदूक के कुंदे से भरपूर चोट की. बुड्ढा दुहरा होकर इस तरह आवाज करने लगा जैसे पानी में डूबते हुए हिचकियां ले रहा हो. उसके बाजू पकड़ कर घसीटते हुए वे लोग झाड़ियों में गायब हो गये.

ठीक इसी वक्त एक जबर्दस्त हंगामा हो गया. छोटी उम्र का लड़का किसी मरती हुई मछली की तरह तड़फड़ाया और जोर से चीखा---मारो! जब तक सिपाही सावधान हों तब तक वह छोटा-सा दुबला लड़का किसी नाराज बिल्ली की तरह एक बंदूकवाले पर टूट पड़ा. उस सिपाही की बंदूक शायद अनायास ही चल गयी. लड़का छटपटा कर, चीखता हुआ गिरा लेकिन उसी क्षण बाकी लोग बेतहाशा भागे.

अफसर ने पिस्तौल निकाल ली. सुखबीर को लगा जैसे वह सब कुछ किसी नशे में देख रहा है. भागते हुए लोगों पर सिपाही तेजी से गोलियां चलाने लगे. जैसे नींद में कोई चलता है, इस तरह सम्मोहित-सा आ कर वह अफसर के पास खड़ा हो गया. अफसर ने झटके से अपनी पिस्तौल उसकी ओर उठायी.

सुखबीर ने हाथ जोड़ दिये---जनाब देखिए, मैं तो नहीं भागा और फिर मैं इन लोगों में था भी नहीं. जनाब---मैं. . .

उसे लगा जैसे वह किसी भारी ट्रक से टकरा गया हो. गोली चलने की आवाज उसने नहीं सुनी. सिर्फ बारूद की एक लपट अंधेरे में दीखी, या शायद उसके दिमाग में. उसके बाद सब कुछ ढीला होता गया जैसे वह रेत की बोरी हो और रेत तेजी से निकल कर छितराती जा रही हो.

□□□

ए १५१५ राणा प्रताप बाग, दिल्ली---११०००७

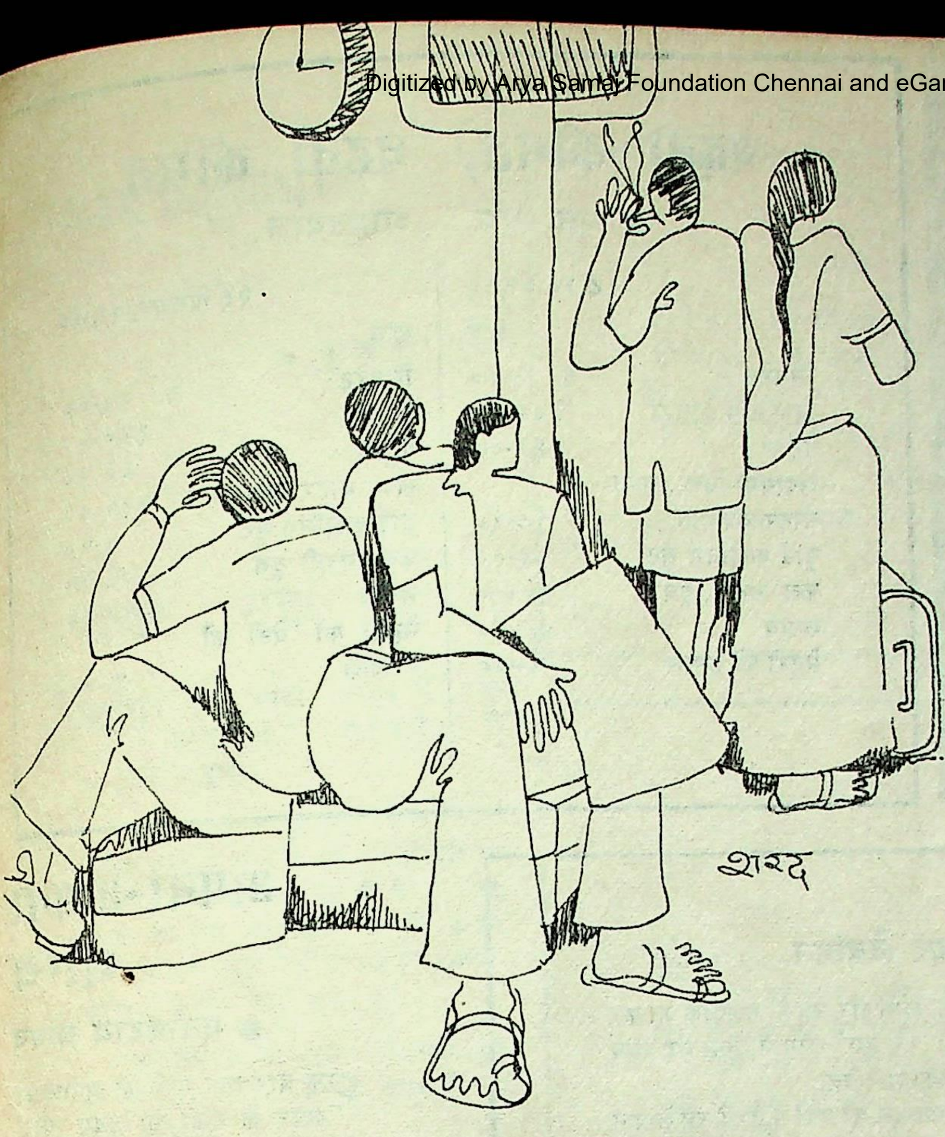

मिलावट

• हरजिंदर सिंह

कम तनख्वाह, बढ़ती महंगाई, बेभाव अभाव और तिसपर भी चीजों में मिलावट के कारण उसे अपना जीवन रसहीन लगने लगा था. खाद्य-पदार्थों में मिलावट इस कद्र बढ़ गयी थी कि उनका असली स्वाद ही न मालूम होता. घोड़े की लीद, लकड़ी का बुरादा, हड्डियों का चूरा मिली चीजें खा-खा कर, उसके चेहरे का रंग उड़ गया. ऐसी रूखी जिंदगी से तंग आ, एक रात उसने जहर खा लिया. मिलावटी जहर ने उसे मरने नहीं दिया. अगली सुबह हमेशा की तरह वह उठा. जिंदगी फिर उसी पुराने ढर्रे पर चलने लगी.

वह भीतर से कुढ़ता, बेबस, नीरस जिंदगी जीता रहा. उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो गया और ऐसे ही एक दिन वह बिस्तर से लग गया. डाक्टर ने उसे चैक किया—घबराने की कोई बात नहीं, केवल ज्यादा सोचने की वजह से वह बीमार पड़ गया था. उसे आराम की जरूरत थी. डाक्टर ने दवा लिख दी. दवाई खाते ही वह मर गया. □

रखवाला

• हरजिंदर सिंह

बांसुरी बजाते हुए चरवाहा चला जा रहा है. बांसुरी की धुन पर अपना सिर हिलाते हुए उसकी भेड़ उसके पीछे-पीछे चली जा रही है. बांसुरी बजाने में तल्लीन लड़के को भेड़ का खयाल नहीं, बांसुरी की धुन पर झूमती भेड़ को आसपास की खबर नहीं. सहसा एक चीख सुन कर लड़का पलट कर देखता है—एक भेड़िये ने उसकी भेड़ को दबोच लिया है. ऐसा अकसर होता है. भेड़िया किसी-न-किसी चरवाहे की भेड़-बकरी खा जाता है. मायूस लड़का लौट पड़ता है.

गांव पहाड़ी की तलहटी में ही बसा है, जिसमें अधिकांशतः बस्ती चरवाहों की है. बांसुरी वाले की मायूसी देख कर गांव वालों को कारण समझते देर नहीं लगती. तुरंत कुछ युवक भेड़िये को मारने की योजना बना लेते हैं.

पहाड़ी पर चरागाह के क्षेत्र को कंटीले तारों से घेर दिया जाता है. पांच-छह लड़के कुछ भेड़-बकरियां ले कर वहां पहुंचते हैं. बांसुरी बजती है. लड़के झूमने लगते हैं. भेड़िया भी अपने शिकार की गंध पा कर वहां आता है और मौका देख कर चरागाह में घुस जाता है. भेड़िये को अंदर आया देख लड़के अपने-अपने हथियार ले कर भेड़िये पर टूट पड़ते हैं और उसे मार डालते हैं.

बांसुरी की धुन और ऊंची होती है. मरे भेड़िये को अपने कंधों पर उठा कर चरवाहे नाचते हैं, गाते हैं, खुश होते हैं और भेड़िया मारने का जश्न मनाते हैं और इस जश्न में वे अपनी सभी भेड़-बकरियां भून कर खा जाते हैं. □

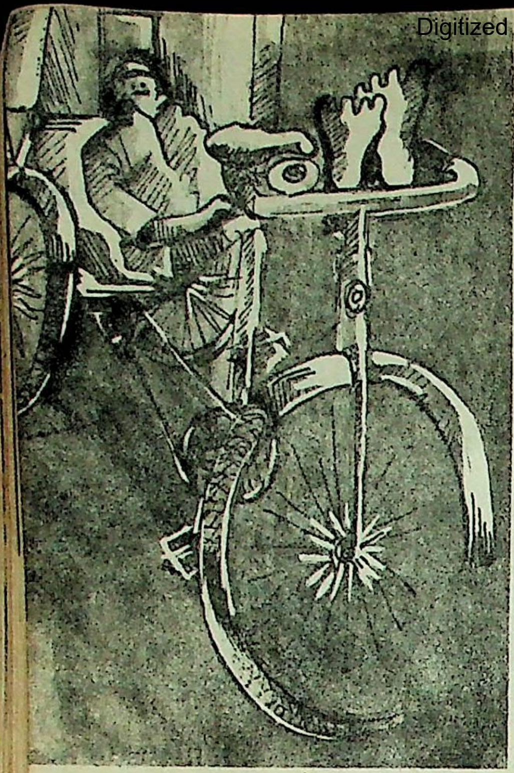

चढ़ती कीमत, घटती कीमत

● एस. एम. शाहनवाज

८.१०.१९६३	खर्च
सिगरेट	रु. ५-००
हिल टॉप रेस्तरां	" ४२-३०
पेट्रोल	" १५-००
अदायगी बिल : खन्ना मोटर वर्कशाप	" ३८-५०
ड्राई क्लीनिंग सूट	" ३-००
फल, सब्जी, दूध	" १०-००
शराब	" ७०-००
मेहरी को इनाम	**५-००**

☐

२३ दिसंबर, १९७४	खर्च
सिगरेट	रु. १५-००
रेस्तरां	" १४०-००
पेट्रोल	" ६०-२०
खन्ना मोटर वर्कशाप	" २१५-००
ड्राई क्लीनिंग सूट	" ६-५०
फल, सब्जी दूध	" ४५-१५
शराब	३००-००
मेहरी की बेटी को बख्शिश	**१-००**

☐

ब्लडप्रूफ

● रामशंकर देवांगन

एक खून की नदी बह रही है. उसमें कुछ लोग तैर रहे हैं. नजदीक जा कर देखने पर पता चला, तो वे अपने ही 'चुने हुए' लोग थे. कुछ देर बाद जब वे बाहर आये तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा.

—सज्जनो ! आप सब इतनी देर तक खून की नदी में तैरते रहे लेकिन आपके वस्त्रों पर खून का एक छींटा तक नहीं?

प्रत्युत्तर में एक समवेत अट्टहास हुआ, शायद मेरी बेवकूफी पर! एक ने अपना खद्दर उतारते कहा—श्रीमान ! हमने यह ब्लडप्रूफ जो पहन रखा था. ☐

आत्म-हीन

● अशोक दुबे

आखिर अ-न्याय मंत्री श्री 'रिश्वत प्रसाद जी भ्रष्ट' का अंतिम समय आ गया. यमलोक से यमदूत आये. उन्होंने 'भ्रष्ट जी' के शरीर का कोना-कोना छान मारा. परंतु उन्हें 'भ्रष्ट जी' के शरीर में 'आत्मा' का कहीं पता न चला.

हार कर यमदूत असफल ही वापस यमलोक लौट आये. अपनी असफलता उन्होंने यमराज के दरबार में निवेदित की.

—हूं. . .यमराज ने पूछा—क्या वह 'मंत्री' है ?

—हां महाराज, यमदूतों ने कहा.

—ठीक है. . .यमराज ने कुछ सोच कर कहा—वापस जाओ! उसकी 'आत्मा' कुर्सी में अटकी हुई है. ☐

अपना-अपना भाग्य

● मनीषराय यादव

एक बार एक मंत्री की अपील पर शहर के गुंडों का हृदय परिवर्तन हो गया. उन्होंने उनके समक्ष आत्म समर्पण करने की इच्छा व्यक्त की.

मंत्रीजी के लिए इससे प्रसन्नता की और क्या बात हो सकती थी. बड़ी धूमधाम से समारोह आयोजित किया गया.

जनता समर्पण का दृश्य देखने के लिए उमड़ पड़ी, पर गुंडे केवल दस-बीस ही उपस्थित हुए.

मंत्रीजी को बड़ी निराशा हुई. यहां तक कि वे तथाकथित संभ्रांत भी नहीं दिखाई दे रहे थे, जिनकी सेवाएं. आज से चार साल पहले चुनाव के समय उन्हें मजबूरन अर्जित करनी पड़ी थीं. उन्होंने तुरंत एस. पी. को बुला कर पूछा—बाकी समर्पणकर्त्ता कहां गये ?

—सर, कुछ जिला बदर कर दिये गये, कुछ पुलिस के मुखबिर बन गये और कुछ हिकमत अमली से कुर्सियों पर बैठे हुए हैं. एस. पी. ने नम्रता पूर्वक जानकारी दी. ☐

चार लघुकथाएं

● कृष्णदेव झा

पावर : एक

'क्या तुम्हें अपनी सफाई में कुछ कहना है?' न्यायाधीश ने अपराधी से पूछा.

—बस इतना ही हुजूर कि मेरे साथ सोलह आदमी और थे, दस को तो मुखिया ने छोड़ दिया और छह आदमी को दारोगा जी ने. तो क्या आपको इतना भी पावर नहीं कि एक मुझ गरीब को छोड़ सकें! अपराधी ने हाथ जोड़ कर कहा.

न्यायाधीश को अपने पावर का स्मरण हुआ. और उसने अपराधी को छोड़ दिया.

□

पावर : दो

—देखो मैं चलती गाड़ी को रोक सकता हूं पति ने अपनी पत्नी से कहा. और गाड़ी में लगी जंजीर को खींच कर गाड़ी खड़ी कर दी.

इसी बीच पता लगाते हुए टी. टी. आई. के साथ एक आदमी उस डिब्बे में घुसा.

उसने नजदीक आ कर इसे दो तमाचे जड़ दिये.

उन दोनों के चले जाने के बाद पत्नी ने पूछा—इन लोगों ने तुम्हें क्यों मारा?

—यह तो अपने-अपने पावर की बात है. मेरा पावर था गाड़ी को खड़ी कर देना, उसका पावर था मुझको पीट देना. पति ने मुसकराते हुए उत्तर दिया.

□

उम्मीदवार

चुनाव के दिन थे, एक इलाके के आदमी सही और योग्य उम्मीदवार की तलाश में थे. आम राय थी कि इस बार ऐसे उम्मीदवार को खड़ा किया जाये जो न तो बहुत उग्र हो और न एकदम दकियानूसी. मतलब यह कि वह ऐसा हो जो बीच रास्ते पर चले.

—क्या खयाल है कि इस बार हम किसी बस ड्राइवर को खड़ा कर दें. किसीने सुझाव दिया.

□

समीक्षक

किसी गरीब समीक्षक पर दया कर के एक प्रकाशक ने अपने घर में जगह दी. एक महीने तक खिलाया-पिलाया. एक दिन उसने समीक्षक महोदय को समीक्षार्थ एक पुस्तक दी.

समीक्षक ने इस टिप्पणी के साथ पुस्तक लौटा दी—पढ़ कर देखा पाया कि जो अंश मौलिक है वह अच्छा नहीं है, और जो अंश अच्छा है वह मौलिक नहीं है.

दूसरे दिन समीक्षक फिर दर दर भटकते लगा.

□

वह एक कस्बे का कालेज था, जिसकी स्टूडेंट्स यूनियन का सेक्रेटरी, पारसनाथ, पास के एक गांव का रहने वाला था.

पारसनाथ देखने में दुबला किंतु कसी और लाल देह वाला लड़का था. वह बड़ी-बड़ी मूंछें रखता था और भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद पर प्रायः बातें किया करता था. बी. ए. प्रथम वर्ष में ही कालेज की एक मील लंबी दौड़ में पहला स्थान प्राप्त कर, इस कुर्ता-पैजामा पहनने वाले लड़के ने लोंगों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया था. कालेज के प्रिंसपल ने उसे पुरस्कार दिया था, साथ ही एक आत्मीय मुस्कान के जरिये, मिलते-मिलाते रहने का आह्वान.

बस, तबसे, पहले से ही हुलसे (उत्साहित) पारसनाथ के पैरों में तेजी और आवाज में जोश आ गया था. वह जहां भी खड़ा होता, लड़के समझ जाते, वहां या तो राजनीति की बातें हो रही होंगी, या फिर भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद की कुर्बानी की चर्चा.

कालेज में पारसनाथ अभी नया ही था, लेकिन उसे किसी ने कभी अकेला नहीं देखा. राजनीति और स्वतंत्रता-संग्राम के बलिदानियों की बातों के अतिरिक्त कभी-कभार वह पंद्रह-बीस लड़कों की टोली के साथ किसी खाली कमरे में बैठकर किसी अच्छी-खासी तन्दुरुस्ती वाले लड़के से पंजा लड़ाता था. हर बार सामने वाला प्रतिद्वंद्वी बदला होता, मगर पंद्रह-बीस लड़कों की टोली गवाह थी कि पारसनाथ पूरे साल किसी भी लड़के से पंजा लड़ाने में हारा नहीं.

कसी और पतली देह,लंबी डील-डौल,घनी मूंछ और रोबदार आवाज के कारण, पारसनाथ का व्यक्तित्व, कुल मिलाकर, आक्रमक होने का एहसास कराता था. गलत बातों और चीजों के प्रति उसकी मुद्रा अक्सर विरोध लिये होती हालांकि यह सब बहुत दिनों तक सामान्य रहा. कस्बाई कालेज के दबे-दबे व्यक्तित्व वाले लड़के पारसनाथ को जानने तो लगे, पर अलग-अलग संदर्भों में. मसलन, कोई उसे एक मील लंबी दौड़ का प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने वाले के रूप में जानता, कोई चंद्रशेखर आजाद और भगतसिंह पर धाराप्रवाह वक्ता के रूप में, तो कोई पंजा लड़ाने में माहिर के रूप में.

लेकिन पारसनाथ की विरोधी मुद्रा भी एक दिन सबके सामने आ गयी. फरवरी माह में कालेज के प्रयोगात्मक विषय वाले विभागों में प्रत्येक लड़के से नियमित रुप से पांच रुपये की वसूली की जाती थी. पर इस बार पारसनाथ ने भूगोल विभाग के लड़कों से राय-मशविरा करके तय किया कि कोई भी लड़का पांच रुपये नहीं देगा. कुछ लड़कों ने पारसनाथ को बताया कि वह रकम बाहर से आनेवाले परीक्षकों पर खर्च की जाती है, तो पारसनाथ ने कहा—— यह कतई जरूरी नहीं है. और फिर, परीक्षक को विश्वविद्यालय की तरफ से आने-जाने और ठहरने का खर्च मिलता है.

बात धीरे-धीरे अन्य विभागों में भी पहुंची. पारसनाथ ने अन्य विभागों के लड़कों को आश्वासन दिया और कहा——इस मुद्दे पर मैं प्रिंसिपल से बात करूंगा. हां, आप लोग दृढ़ निश्चय कर लें कि पैसा नहीं देना है.

कुछ लड़कों ने आशंका प्रकट की कि अगर पैसा नहीं दिया गया, तो हम लोगों को हमारे विभागाध्यक्ष प्रैक्टिकल में फेल करवा देंगे.

इस पर पारसनाथ ने कहा——फेल करवाना, पहले तो, आसान नहीं है. और फिर इतने लड़कों को फेल करने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता.

कुछ लड़कों ने प्रस्ताव रखा कि इस मुद्दे पर युनियन के वर्तमान सेक्रेटरी, वीरेंद्र से भी बात कर ली जाय, लेकिन लड़कों के बहुमत ने वीरेंद्र को प्रिंसिपल का चमचा कह कर इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया.

विरोध की खबर धीरे-धीरे पूरे कालेज में फैल गयी. युनियन के वर्तमान सेक्रेटरी, वीरेंद्र ने प्रिंसिपल को सारी बातों से अवगत करा दिया, और यह भी कहा, वह भरसक कोशिश करेगा कि बात रफा-दफा हो जाय और कोई हंगामे जैसी स्थिति भी न हो.

मगर बात रफा-दफा नहीं हुई. पारसनाथ ने प्रिंसिपल से बात करने का समय ले लिया. प्रिंसिपल के घर जाने से पहले उसने सक्रिय और उत्साही लड़कों की एक मीटिंग बुलवायी. मीटिंग में सारे मुद्दों पर एक बार फिर विचार हुआ. अन्ततः लोगों ने निर्णय किया कि पारसनाथ, उन सब लोगों का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रिंसिपल से इस संबंध में बात कर ले.

प्रिंसिपल की दलील थी कि अगर यह रकम वसूल नहीं हुई, तो कालेज बाहर से आये परीक्षकों को खिलाने-पिलाने में असमर्थ होगा जिससे न सिर्फ लड़कों का नुकसान होगा, बल्कि कालेज की भी बदनामी होगी.

——लेकिन सर, पारसनाथ ने कहा, परीक्षक को मानवता के नाते अगर खाना खिलाना है, चाय पिलानी है, तो विश्वविद्यालय के अन्य तमाम कालेजों की तरह उन्हें इन्टरनल इक्जामिनर के साथ भी रखा जा सकता है. एक-दो रोज के खाने-पीने में, हम समझते हैं, इतना खर्चा नहीं आयेगा कि इन्टरनल बर्दाश्त न कर सकें.

——वो तो ठीक है, प्रिंसिपल ने कहा, लेकिन यह एक नयी शुरु-

● सुशील भारती

मदारी

• राम सुरेश

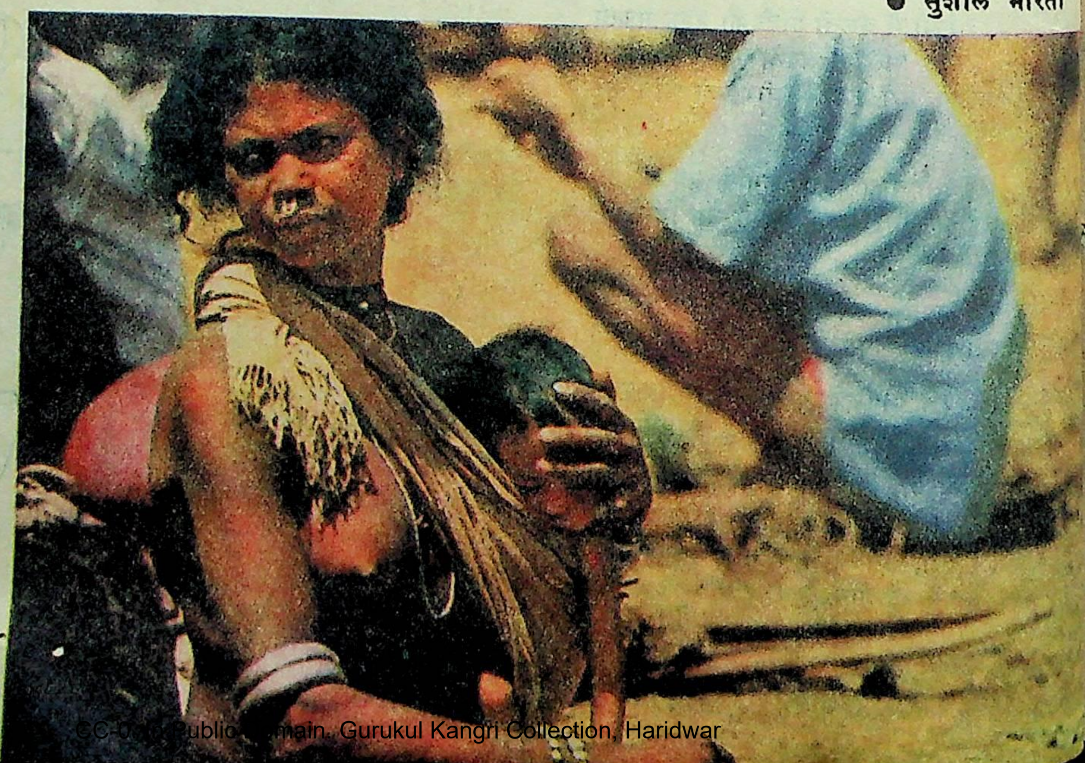

आत होगी. और जहां तक मैं समझता हूं, संबंधित प्राध्यापक इस पर आपत्ति करेंगे.

—तो फिर खाने-पीने का इंतजाम हर माह ली जाने वाली प्रैक्टिकल फी के एकाउंट से कालेज को करना चाहिए. और नहीं, तो हम लोग शुरू में विभागों में जो दो रुपये एसोसियेशन फी देते हैं, उससे किया जा सकता है.

—उसमें भी दिक्कत है, पारसनाथ! प्रिंसिपल ने मुसकराकर किन्तु सख्त आवाज में कहा.

—तब, तो, सर, माफ कीजिएगा, दिक्कत ही दिक्कत है! .... हम पांच रुपये नहीं दे सकते!

—फिर कितना दे सकते हैं?

—इस बात के लिए एक पैसा भी नहीं!

—यह तुम लोगों के हक में नहीं रहेगा, प्रिंसिपल ने चेतावनी दी.

—ठीक है सर, देखा जायेगा, पारसनाथ ने कहा और 'नमस्ते' कहकर बाहर आ गया. सड़क पर लड़कों की एक टोली खड़ी थी, पारसनाथ ने कहा, मसला हल नहीं हो सका. लड़के जोर-जोर से नारे लगाने लगे.

—पारसनाथ, जिंदाबाद!

—धांधागर्दी, नहीं चलेगी! नहीं चलेगी!!

उधर प्रिंसिपल अपने पीछे वाले कमरे की जालीदार खिड़की से लड़कों का जोश देखते रहे और सोचते रहे. यह तो नहीं कहा जा सकता कि डेढ़-दो सौ लड़कों को इकट्ठा देखकर वे घबड़ा गए थे, हां, इतना जरुर था कि प्रिंसिपल इस मुद्दे पर गहराई से सोचने लगे थे. कहीं-न-कहीं से उन्हें लगा, इस बार पैसा जमा करवा पाना शायद मुश्किल हो. वह हल्के-से मुस्करा उठे. सामने दीवाल पर टंगी कालेज-व्यवस्थापक अपने स्वर्गीय मामा की तस्वीर की तरह. यह उनकी आदत थी, जो शायद मामा के साथ काम करते-करते पड़ गयी थी और अब मामा के बाद स्वयं ही कालेज का भार वहन करने में अकसर ही होंठो पर आ जाती थी.

ऐसा प्रायः तभी होता था, जब कठिन-से-कठिन परिस्थिति में पड़कर वे कोई दांव-पेंच में लग जांय, मामा की ही तरह लोगों के विचारों को मोड़ देना, किसी को अपने करीब ले आना, किसी को दूर कर देना, यह सब उनकी प्रिय बातें थीं, जिसे एक शासक के लिए वह जरूरी मानते थे. और शायद सोचते समय काट-छांट, तोड़-मरोड़ की एक हल्की रूपरेखा भी बना लेते थे, जिसे सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने की क्षमता उनमें थी.

लड़कों के नारों को सुनकर, सोचते-सोचते अनायास मुसकराने के पीछे भी शायद कोई ऐसी ही बात रही हो.

* *

दूसरे दिन शाम को प्रिंसिपल ने कालेज के सभी विभागाध्यक्षों की एक मीटिंग बुलवायी और लोगों से राय-मशविरा किया.

प्रिंसिपल की राय थी, इस बार लड़कों से पांच रुपये की वसूली न की जाय.

—लेकिन, विभागाध्यक्षों ने कहा, इस तरह तो लड़कों को और शह मिल जायेगी. और फिर पारसनाथ की नेतागिरी भी चमकेगी, जिसके परिणाम भविष्य में अच्छे नहीं होंगे.

प्रिंसिपल फिर मुसकराये और बोले — मैंने इस बात पर भी विचार किया है, लेकिन फिलहाल लड़कों को यह छूट देनी ही पड़ेगी. पारसनाथ को बाद में देखेंगे.

आखिरकार निश्चय किया गया कि इस बार लड़कों से रकम की वसूली नहीं की जायेगी और परीक्षकों को खिलाने-पिलाने का खर्चा कालेज बर्दाश्त करेगा.

अगले रोज कालेज में इसकी खबर कानों-कान लड़कों तक पहुंच गयी. लड़कों ने एकजुट होकर पारसनाथ के प्रयत्नों की सराहना की और जोश में आकर अगली बार पारसनाथ को यूनियन का सेक्रेटरी बनाने का प्रस्ताव रखा.

पारसनाथ ने कहा—भाइयो, मुझे सेक्रेटरी बनने का कोई लोभ नहीं है. सेक्रेटरी की हैसियत से, हमारे आपके काम में कोई फर्क आ जायेगा, ऐसा भी मुझे नहीं लगता. हम तो चाहेंगे, आप सब लोगों का सहयोग मिलता रहे, तो आनेवाले दिनों में किसी भी गलत बात के प्रति हम अपना विद्रोह प्रकट कर सकते हैं.

मगर लड़कों का उत्साह ढीला नहीं पड़ा. अगले साल की ही बात थी, और लड़के चाहते थे, तैयारी अभी से होने लगे.

पारसनाथ ग्रुप ने दूसरा विरोध शीघ्र ही फिर किया. उस दिन कालेज की ओर से लड़कों के नामों की एक टंकित सूची सभी विभागों में आयी थी. परंपरा के अनुसार सभी लड़कों को उस सूची पर हस्ताक्षर कर अपनी सहमति देनी थी कि लाइब्रेरी की जमा-निधि (काशन मनी) मैं स्वेच्छा से कालेज लाइब्रेरी को दान करता हूं हालांकि स्वेच्छा वाली बात कतई नहीं थी. जो लड़का दस्खत करने में आनाकानी करता था, उसे किसी-न किसी तरह से नुकसान उठाना ही पड़ता था. परसनाथ ग्रुप ने उसका विरोध किया.

प्रिंसिपल से की गयी एक मुलाकात में पारसनाथ ने कहा—सर, ये कॉशन मनी लड़के अपनी स्वेच्छा से नहीं, दबाव और डर से देते हैं, इसलिए हमारा अनुरोध है कि यह परिपाटी समाप्त कर दी जाय.

इस बार प्रिंसिपल ने बिना किसी बहस-मुबाहिसे के इस बात को मान लिया.

लड़कों में एक बार फिर सनसनी फैल गयी.

पारसनाथ को जो मानते थे, अपनाने लगे, जो नहीं जानते थे, जानने लगे, जिन्होंने देखा था, करीब आने लगे, जिन्होंने नहीं देखा था, पहचानने लगे यहां तक कि कालेज के अध्यापकों में भी पारसनाथ अनायास ही चर्चित हो उठा.

हालांकि यह बात लोगों के गले नहीं उतरती थी, प्रिंसिपल ने आज तक कभी झुकना नहीं सीखा था लेकिन महज आश्चर्य के सिवा, लोग कुछ कह या कर नहीं सकते थे.

* *

बी. ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा देकर पारसनाथ पास हो गया. तमाम अन्य सहयोगी भी पास हो गये. जो नहीं हुए, वे भी साथ थे ही. कुछ लड़के नये आये, कुछ पुराने चले गये, लेकिन [illegible] भी कालेज खुलते-खुलते पारसनाथ लड़कों के दिमाग पर छा गया. पारसनाथ ग्रुप ने एक बार फिर पुराने फैसले को दुहराया और तय किया कि इस बार पारसनाथ को सेक्रेटरी अवश्य बनाया जाय.

लड़कों के इस फैसले की खबर वीरेंद्र ने शीघ्र ही प्रिंसिपल को दी. प्रिंसिपल सदा की भांति फिर मुस्कराये और बात समझते हुए बोले— तो ठीक है वीरेंद्र! इसमें परेशानी की कोई बात नहीं. लड़के पारसनाथ को चाह रहे हैं, तो वह सेक्रेटरी होगा ही.

—लेकिन सर, वीरेंद्र ने शंका प्रकट की, तब तो कालेज में और हाय-तोबा मचेगा. अभी पिछले साल पारसनाथ का रवैया तो आपने देखा ही है. इस वर्ष अगर वह सेक्रेटरी हो जायेगा, तब तो रोज ही आपको उसका मुकाबला करना पड़ेगा.

—तो क्या हुआ भई, मुकाबला करेंगे, प्रिंसिपाल ने तटस्थ होकर कहा.

—इसके माने, आपकी भी यही इच्छा है कि पारसनाथ सेक्रेटरी बने, वीरेंद्र ने कुछ झुंझलाकर कहा.

—हां, हालत को देखते हुए तो यही इच्छा है, प्रिंसिपल ने कहा.

रामसुरेश (जन्म : १७ जुलाई १९४९) डी. ए. वी. कालेज, कानपुर में भूगोल के प्रवक्ता. छोटी-मोटी पत्रिकाओं में पिछले कई वर्षों से लिखते आ रहे हैं. इधर कुछ अर्से से 'सारिका' में भी इनकी कहानियां प्रकाशित हो रही हैं.

——फिर तो कोई बात ही नहीं है, सर! वीरेंद्र ने बात को समाप्त करने की मुद्रा में कहा.

——सुनो वीरेंद्र! प्रिंसिपल ने उसे टोका, तुम्हें खराब लग रहा है न, पारसनाथ का सेक्रेटरी बनना?

वीरेंद्र सिर झुकाये बैठा रहा.

——खराब मुझे भी लग रहा है, प्रिंसिपल ने वीरेंद्र की नस पकड़ते हुए कहा, लेकिन फिलहाल, पारसनाथ सेक्रेटरी बनेगा. इसलिए बेहतर है, ऊपरी तौर पर मैं उसके साथ रहूं. अपनी भलाई के लिए तुम चाहो तो किसी तरह पारसनाथ के करीब पहुंचो. समय आने पर मैं तुम्हें अगले कदम के बारे में बता दूंगा.

वीरेंद्र की समझ में कोई बात नहीं आयी. फिर भी, इतना विश्वास उसे हो गया कि मन से प्रिंसिपल उसी को चाहते हैं, और उसे अपना आदमी समझते हैं, अब भी.

इतनी बात वीरेंद्र के लिए काफी थी. वह प्रिंसिपल की राय के मुताबिक सेक्रेटरी के चुनाव के लिए जोर-शोर से तैयारियां करने लगा. कक्षाओं में चुनाव-प्रचार शुरू हो गया . यह देख कर पारसनाथ ग्रुप भी सक्रिय और सजग हो गया. चुनाव-प्रचार धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगा. नामांकन पत्र दाखिल हो गये. सेक्रेटरी के लिए केवल दो लोग मैदान में थे—— वीरेंद्र और पारसनाथ!

धीरे-धीरे वीरेंद्र का चुनाव-प्रचार रंग लाने लगा. लोगों की आशा के विपरीत कालेज में जीपें घूमने लगीं. लाउड्स्पीकर पर वीरेंद्र की चर्चाएं होने लगीं. तमाम पोस्टर्स वीरेंद्र के समर्थन की मांग करते हुए कालेज की दीवारों पर छा गये.

उधर पारसनाथ ग्रुप को लगने लगा, उनका चुनाव-प्रचार कमजोर पड़ रहा है. था भी ऐसा ही.पारसनाथ के पास न तो चुनाव में खर्च करने के लिए पैसा था, न बिपुल साधन. फिर भी, एकाध मीटिंग किसी तरह पारसनाथ ग्रुप वालों ने भी की.

नामांकन पत्र वापस लेने वाले दिन तक, लोगों को लगा, वीरेंद्र के चुनाव-प्रचार की आंधी-सी आ गयी है. लोगों का विश्वास डगमगाने लगा. मगर ऐन वक्त पर वीरेंद्र ने सबको आश्चर्य में डाल दिया. लोग यह देखकर दंग रह गए कि वीरेंद्र ने अपना नामांकन पत्र वापस ले लिया.

इतना ही नहीं, वीरेंद्र ने विद्यार्थियों के सामने घोषणा की कि——मैं यह चुनाव अपने लिए नहीं, आप सबके लिए लड़ रहा था. लेकिन जब मुझे मालूम हुआ कि मेरे प्रतिद्वंद्वी भाई पारसनाथ वही हैं, जिन्होंने पिछले वर्ष कालेज की तमाम गड़बड़ियों को, सेक्रेटरी न होने के बावजूद ठीक कराया था, तो मैंने भाई पारसनाथ से बातचीत करके, अपना नामांकन पत्र वापस ले लिया है. मुझे उम्मीद है, भाई पारसनाथ, बतौर सेक्रेटरी, आप लोगों का अधिक से अधिक भला कर सकेंगे और हमें भी उन कामों में शामिल रखेंगे.

इसके बाद वीरेंद्र ने पारसनाथ को गले लगाया और नारा दिया. हमारा सेक्रेटरी, पारसनाथ! पारसनाथ, जिंदाबाद!

देखते-देखते पूरे कालेज में पारसनाथ के निर्विरोध सेक्रेटरी होने की खबर फैल गयी. अगले दिन के चुनाव के बाद पारसनाथ और वीरेंद्र साथ-साथ प्रिन्सिपल के घर गये. प्रिन्सिपल ने पारसनाथ को हार्दिक बधाई दी और कहा——मुझे उम्मीद है पारसनाथ कि इस वर्ष तुम और वीरेंद्र मिलकर कालेज यूनियन को अच्छी तरह चलाओगे. पिछले वर्ष की भांति इस वर्ष भी कालेज या किसी विभाग में जो खामियां हों, उन्हें हमसे बताओ. मैं उन्हें ठीक करने का पूरा प्रयत्न करूंगा.

पारसनाथ एक आत्मीय बोझ के तले दबकर चुप खड़ा रहा. कालेज में शांतिपूर्वक पढ़ायी होती रही. लड़के चैन-से पढ़ते रहे. पूअर ब्वायज फण्ड और फीस माफी के लिए पारसनाथ और वीरेंद्र ने मिलकर एक सूची तैयार की, जिसे प्रिंसिपल ने न सिर्फ स्वीकार कर लिया, बल्कि पारसनाथ को आश्वासन दिया कि इस वर्ष जितनी भी उचित मांगे होंगी, उन पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेंगे.

प्रिंसिपल के आश्वासन और कुछ अपने बहुमत के बल पर पारसनाथ और वीरेंद्र ने मिलकर फैसला किया कि इस बार लाइब्रेरी की भारी अनियमितताओं को खत्म कराया जाय. यह कालेज का एक ऐसा भाग था, जिसमें तमाम-तमाम किताबें लापता थीं. लाइब्रेरी के क्लर्क मनमानी करते थे और जिसे चाहते थे, किताबें देते थे, जिसे नहीं चाहते थे, नहीं देते. क्लर्कों का यह 'चाहना' और 'न चाहना' व्यक्तिगत पहुंच और खिलाने-पिलाने पर निर्भर था.

पारसनाथ और वीरेंद्र ने मिलकर लाइब्रेरी में सुधार की एक रूपरेखा तैयार की, जिसमें प्रिंसिपल से अपील की गयी थी कि लाइब्रेरी की किताबों का हर वर्ष लेखा-जोखा हो, और उसे कालेज के विद्यार्थी यूनियन के सामने प्रस्तुत किया जाय. इसके अतिरिक्त, लाइब्रेरी में कुछ इस तरह की व्यवस्था हो, जिससे विद्यार्थी अपनी आवश्यकतानुसार पुस्तकें स्वयं निकालकर, उपस्थित क्लर्क से इशू करा सकें. और अंतिम बात——लाइब्रेरी का अध्ययनकक्ष नियमित रूप से रात के आठ बजे तक खोलने की व्यवस्था हो.

रूपरेखा तैयार होने के बाद पारसनाथ और वीरेंद्र ने आपस में विचार-विमर्श किया.

——मागें तो उचित ही हैं. . .क्यों? पारसनाथ ने वीरेंद्र की राय ली.

——बिलकुल उचित हैं, यार!

——लेकिन अगर प्रिंसिपल न मानें तो?

——तो मनवाना तो हम जानते हैं! वीरेंद्र ने दृढ़ता से कहा.

——कैसे?

——अरे, कैसे क्या, स्ट्राइक करवा दूंगा. . .आग लगा दूंगा कालेज को. . .जरा मना करके तो देखें!

——नहीं भाई, पारसनाथ ने कहा, यह तरीका ठीक नहीं रहेगा. इस कालेज में अभी तक शांतिमय हड़तालें हुई हैं, उसी का पालन हमें भी करना है.

——दुरुस्त! पर, हमारा अंतिम हथियार तो वही है. . . खैर, पहले प्रिंसिपल से इस मुद्दे पर बात करने के लिए समय तो ले लें.

पारसनाथ ने यह काम वीरेंद्र को सौंप दिया.

लेकिन वीरेंद्र ने प्रिन्सिपल से अलग ढंग से बात की. एक बात की जाती है, अपनी बात, योजना मनवाने के लिए, एक बात की जाती है, स्थिति को भड़काने के लिए.

वीरेंद्र ने कुछ इसी भड़काने वाली मुद्रा में सारी बातों को सामने रखा——सर, वीरेंद्र ने प्रिंसिपल से कहा, इस बार पारसनाथ की नजर लाइब्रेरी पर पड़ी है. उसने एक रूपरेखा बनायी है, और

आपसे बात-चीत के लिए समय मांगा है.

प्रिंसिपल ने पूरी रूपरेखा देखी. कुछ देर सोचा. फिर बोले—अच्छी बात है वीरेंद्र! परसों बात-चीत कर लो तुम सब. फिर उन्होंने वीरेंद्र को कुछ और हिदायतें दीं और कहा, लेकिन ध्यान रखना, तोड़-फोड़ का काम लाइब्रेरी के बरामदे वाले सेक्शन तक सीमित रहे. कालेज का वास्तव में कोई नुकसान न होने पाये.

वीरेंद्र ने हामी भरी—जी, ठीक है.

बातचीत वाले दिन पारसनाथ और वीरेंद्र दोनों आश्वस्त थे कि वार्ता जरूर सफल होगी. कल उन्होंने यूनियन के अन्य पदाधिकारियों के सामने भी पूरी रूपरेखा पर जमकर बहस की थी और तय पाया गया था कि पारसनाथ और वीरेंद्र इस रूपरेखा के आधार पर बात कर लें.

मगर बातचीत शुरू से ही उखड़ने लगी. प्रिंसिपल का कहना था, विद्यार्थी स्वयं पुस्तकें निकालकर इशू करायें, यह व्यवस्था फिलहाल संभव नहीं है. और यह भी संभव नहीं है कि पुस्तकों की अप-टू-डेट सूची हर वर्ष विद्यार्थी यूनियन के सम्मुख रखी जाय.

वीरेंद्र और पारसनाथ ने पहले तो इस बात पर जमकर बहस किया, लेकिन फिर वे लोग यूनियन के समक्ष सूची प्रस्तुत करनेवाली मांग को छोड़ने के लिए तैयार हो गये.

पर प्रिंसिपल फिर भी नहीं माने. आज उनका मूड एकदम उखड़ा हुआ था. उन्होंने पूरी रूपरेखा को अस्वीकार करते हुए साफ शब्दों में कहा—देखो पारसनाथ, ये व्यवस्था कालेज से संबंधित है, और मेरा ख्याल है तुम लोगों की दखलंदाजी ठीक नहीं है.

बात बिगड़ने लगी और धीरे-धीरे झड़प तक की नौबत आ गयी. वीरेंद्र और पारसनाथ रोष में वार्ता छोड़ कर उठ आए.

और अगले ही दिन हड़ताल का आह्वान कर दिया गया.

पारसनाथ ने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा—दोस्तों, हम अपने सही मांगों के लिए लड़ रहे हैं. . .हमारी हड़ताल शांतिपूर्ण ढंग से चलेगी. किसी प्रकार के तोड़-फोड़ को हमें प्रोत्साहन नहीं देना है.

लेकिन जलूस ज्यों ही लाइब्रेरी भवन के पास पहुंचा, गड़बड़ी शुरू हो गयी. पहले तो जमकर पथराव हुआ. लड़के उतेजित हो गए. कुछ विद्यार्थियों ने अंदर घुसकर तोड़फोड़ किया, लाइब्रेरियन को घसीटा, देखते-देखते स्थिति गंभीर हो गयी.

प्रिंसिपल को बाहर आना पड़ा. बाहर आते ही उन्हें भी घसीट लिया गया. नारों और गालियों की भरमार हो गयी.

. . . और पुलिस के आने और हड़तालियों पर काबू पाने तक स्थिति बेहद खराब हो गयी. प्रमुख नेता पारसनाथ को गिरफ्तार कर लिया गया. वीरेंद्र न जाने कहां गायब हो गया.

प्रिंसिपल ने समाचार एजेंसियों को लाइब्रेरी फर्नीचर और किताबों के नुकसान की अनुमानित धनराशि दस हजार रुपये लिखवायी, जबकि असलियत में कितना नुकसान हुआ था, यह लाइब्रेरियन प्रिंसिपल, और दो-एक विभागाध्यक्षों को छोड़कर कोई नहीं जानता था. हां, टूटी-फूटी सामग्री को अगर कोई ध्यान से देखता, तो उसे लगता, दस-बीस कुर्सियों और चंद पुरानी जिल्द वाली किताबों के अलावा वहां कुछ नहीं है. लेकिन प्रिंसिपल भी मूर्ख नहीं थे. उन्होंने तमाम रद्दी कागजों को जलवाकर मलवा इकट्ठा करा लिया था, जिसे वे पुस्तकों का मलवा कहते थे.

और लाइब्रेरियन तथा दो-एक विभागाध्यक्ष कहते थे, इसी तरह के पारसनाथ हर साल यूनियन के सेक्रेटरी हों, ताकि गायब और न खरीदी गयी पुस्तकों, फर्नीचरों तथा अन्य सामानों को आसानी से तोड़-फोड़ और आगजनी में दिखाकर फुर्सत पा लें, और कमा लें इधर-उधर से एक निश्चित रकम! □□□

१२८।३१७, 'के', किदवई नगर, कानपुर–११

तीन लघु कथाएं

निबटारा

● माधुरी शाह

स्वास्थ्य-लाभ के लिए चित्रगुप्तजी छुट्टी पर गये थे. लंबी छुट्टी से स्वास्थ्य प्राप्त कर वह वापस लौटे. उनकी अनुपस्थिति में कर्मचारियों की लापरवाही के कारण सारा कार्य पेंडिंग में पड़ा हुआ था. करीब ६० करोड़ केस उनके सामने उपस्थित किये गये. इतने अधिक केस देख कर वह परेशान हो गये और उन्होंने बिना जांच-पडताल के ९० प्रतिशत व्यक्तियों को सदेह नर्क जाने की और १० प्रतिशत व्यक्तियों को सदेह स्वर्ग जाने की आज्ञा दे दी.

उन सबको भारत भेज दिया गया. □□□

समझदार भेड़िये

● रमेशबहादुर पोद्दार

एक राजनीतिक दल की ओर से एक सभा का आयोजन था. सामने दूसरे दल का मंच तैयार हो गया. तू-तू में-मैं, शुरू हो गयी. 'दल' के नेता दूसरे दल के 'नेता' से बोले– तुम भेड़िये हो, जनता के भक्षक !

दूसरे दल का नेता बोला – हम जो हैं, उजागर हैं, पर तुम भेड़ रूपी जनता में, भेड़िये होते हुए भी, भेड़ का मुखौटा लगाकर, भेड़ की जमात को, ऐसे भूल-भुलैया सब्जबाग का स्वप्न दिखा रहे हो जिसका कोई ओर-छोर नहीं. . , और तुम पर विश्वास करने वाली भेड़ जमात तुम्हारे पीछे है.

दल के नेता के मुंह हठात् निकला–हम समझदार भेड़िये हैं.' □□□

चर्चा

● मनीषराय यादव

दो प्रशासकीय अधिकारी बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों [illegible] मुआयना करने निकले हुए थे. दोनों को बड़ा भ्रम था कि वे बड़े विनोदी स्वभाव के हैं. दोनों में बड़ी गंभीर चर्चा चल रही थी. मुख्य विषय यह था कि बाढ़ का अतिरंजित रूप कैसे प्रस्तुत किया जाये और स्थानीय अखबारों में उनके भ्रमण की चर्चा कैसे छपे. चर्चा जब अपनी चरम सीमा पर थी, तभी सड़क के बीचों बीच दो गधे आवाज निकालते हुए आकर खड़े हो गए. ड्राइवर ने जोरों से हार्न बजाया पर जब वे नहीं हटे तो नीचे उतर कर हटाना पड़ा.

जब ड्राइवर गधों को हटाकर लौटा तो एक अधिकारी ने बड़े विनोद से पूछा–क्यों भाई, गधे सड़क के बीचो-बीच क्या कर रहे थे?

—सर, बाढ़ की समस्या पर गंभीर चर्चा कर रहे थे. ड्राइवर ने विनम्रता पूर्वक कहा.

इसके बाद दोनों अधिकारी यात्रा के अंत तक कुछ नहीं बोले. □□□

एक चालू आदमी • दिनेश पालीवाल

रमदीना अपनी जली हुई दूकान के सामने वाली पटिया पर चित्त पड़ा था. गुनगुनी धूप का सेंक उसे इस वक्त काफी अच्छा लग रहा था वर्ना सारी रात सिकुड़ते ही कटी थी. आज उसे किसी तरह की जल्दी नहीं थी वर्ना रोज उसे तड़के उठ कर भट्टी सुलगा देनी पड़ती थी. भट्टी का कड़वा धुआं वहां सारी सड़क पर फैल जाता था. उसी समय आ जाती थी सड़क झाड़ने वाली महतरानी. धूल और धुआं. . .सड़क से गुजरने वाले पेशल लोग या तो जल्दी-जल्दी, तेज कदमों गुजर जाते थे, या फिर जेबों के रूमाल नाकों पर रख लिया करते थे. . .कोई रमदीना से पूछे कितनी धूल नहीं फांकी है उसने? और कितना धुआं नहीं निगला है?. . .लेकिन रमदीना से कौन पूछेगा ? किसे पड़ी है ?

रमदीना न जाने क्यों. . .कल से लगातार एक ही बात सोचे जा रहा है. . . .एक ही बात के इर्द-गिर्द या एक ही बात के तमाम पहलू. कल से पहले उसे कभी फुर्सत ही नहीं मिली कि वह किसी बात को कभी बैठ कर सोचता. सोचने से उस जैसे आदमी का भला क्या वास्ता? लेकिन कल से उसे फुर्संत ही फुर्संत हो गयी है. सामने उसकी दूकान जली हुई पड़ी है. उसी की क्या, सामने की सारी दूकानें कल भीड़ ने फूंक दी थीं. पहले पत्थरबाजी हुई थी, फिर भीड़ ने आग लगा दी थी. पुलिस जब तक दमकलों के साथ आयी, आसपास की सारी दूकानें भस्म हो गयी थीं.

रमदीना को तब से फुर्संत ही फुर्संत है. . .कुछ भी सोचे और कुछ भी करे. कल से ही उसके दिमाग में लगातार एक ही बात घूमे जा रही है. . .पूरी दुनिया दो हिस्सों में बंटी हुई है. . . दुनिया . . .रमदीना की अपनी अलग दुनिया है. . .वह, जो उसने अपने चालीस सालों में देखी और समझी है. . .वह दुनिया जिसमें उसने इन चालीस सालों में तमाम ऊंच-नीच, अच्छा-बुरा, न्याय-अन्याय, जोर-जुलम सहा और भुगता है. दुनिया इसके अलावा भी बहुत बड़ी है, उसके बारे में रमदीना नहीं जानता. यह पूरी दुनिया दो हिस्सों में बंटी हुई है. . .एक पेशल और एक चालू! . . . उसकी दूकान पर भी दो तरह की चाय बनती थी, एक पेशल और एक चालू! . . .पेशल चाय पेशल लोगों के लिए और चालू. . .चालू लोगों के लिए. यह दुनिया दरअसल दो हिस्सों में बंटी हुई है, यह बात रमदीना की समझ में कल से ही पूरी तरह आयी है. . . पेशल चाय में दूध ज्यादा पड़ता था. चाय कड़क बनती थी और साथ ही इलायची के कुछ दाने डाले जाते थे. महकती हुई चाय पेशल लोग पी कर प्रसन्न हो जाते थे. और चालू चाय. . .हर वक्त केटली में खौलने वाली काढ़ा-नुमा होती थी जिसमें दूध डाला नहीं, सिर्फ दिखाया जाता था. चालू लोग उसे भी चाय ही मानते थे और चाय ही समझ कर चुस्कियों के साथ पी जाते थे. पेशल पीने वाले तो कभी-कभार शिकायत भी कर दें, लेकिन चालू पीने वालों ने कभी शिकायत नहीं की. अगर हो भी तो उनकी शिकायत सुनता कौन है. . .? सुने भी तो मानता कौन है. . .? माने भी तो . . .? इसलिए चालू लोग चुप रहते हैं और जहर हो या अमृत, चुपचाप गले उतार कर उठ जाते हैं.

सारी रात न जाने वह कहां-कहां भटका है, कहां-कहां अटका है और फिर सिकुड़ कर अपने भीतर की दुनिया में कैद हो-हो गया है. . .स्कूलों में जाने वाले बच्चे भी तो दुनिया के हैं, एक पेशल. . . जो रिक्शों, स्कूल की बसों या 'पराईवेट' गाड़ियों में टाई और प्रैस किये हुए लक-दक कपड़े पहन कर चिकने-चुपड़े, चमकते हुए मासूम चेहरों के साथ जाया करते हैं और दूसरे चालू. . .जो साबुन या फटे-पुराने कपड़ों में अंटे, मैले-कुचैले, गंदे, रूखे-सूखे बालों और चेहरों वाले. . .अपने मामूली-से बस्ते अपने कंधों पर लटके झोलों में रखे, नंगे पैरों जलती हुई सड़क पर दौड़े चले जाते हैं. . . पेशल बच्चों के चेहरों पर किसी भी प्रकार का न तनाव होता है, न चिंता की शिकनें. और चालू बच्चों के चेहरे किस कदर ऐंठे और सिकुड़े हुए होते हैं. . .लगता है, यह बच्चों के चेहरे नहीं हैं, बूढ़े और गृहस्ती के बोझ से दबे-टूटे आदमियों के चेहरे हैं. पेशल बच्चों में से एक रिक्शेवाला एक बच्चे को ले कर कहीं गायब हो गया था तो पूरे शहर में तहलका मच गया था. सारी पुलिस उसे खोजने के लिए भर्राई घूमती रही थी और चालू बच्चों में से एक बार एक कार के नीचे दब कर सड़क पर चिपक गया था. . .तो पुलिस ने कार वाले से जवाब-तलब तक नहीं किया था. पूरी दुनिया किस कदर दो दुनियाओं में बंटी हुई है. . .एक चालू और दूसरी पेशल.

औरतें भी दो दुनियाओं में बंटी हुई हैं. . . .एक पेशल और एक चालू! अमूमन पेशल औरतों के चेहरे कितने सौम्य, शांत, मुस्कराते हुए, तनावहीन, गोरे, चहकते हुए, चमकते-दमकते हुए, प्यारे-प्यारे,. . .मानों जरा छू दिया तो खून चुचिया पड़ेगा. . चालू औरतों के चेहरे. . .? चुसे हुए गन्ने की गंडेरी जैसे. . .फोक, थोथे, झुर्रियों और चिंताओं की रेखाओं से घिरे-उलझे हुए, रूखे-सूखे मुरझाए, पीले, रक्तहीन और बेजान! पेशल औरतों के मह-मह महकते हुए बदन और सरसराते हुए वस्त्र . और चालू औरतों के पसीने, धूल-मिट्टी से अंटे, चीकट और बदबू देते फटे पुराने वस्त्र! पेशल लड़कियों और औरतों के करीने से कटे बॉब हेयर या कंधों पर बिखरी हुई खुली लटें. . .और चालू औरतों के रूखे, उलझे, चिड़ियों के घोंसलों से झुंड! . . .वही हालत पेशल आदमियों और चालू आदमियों की.

कल से. . .जब से इस दुनिया का बंटवारा उसकी समझ में आया है, उसे साफ-साफ लगने लगा है कि सब बेकार है, या सब बेकार था, या सब बेकार रहेगा. पेशल दुनिया चालू दुनिया का खून चूस कर जी रही है, जी रही थी, जीती रहेगी. न कुछ किया जा

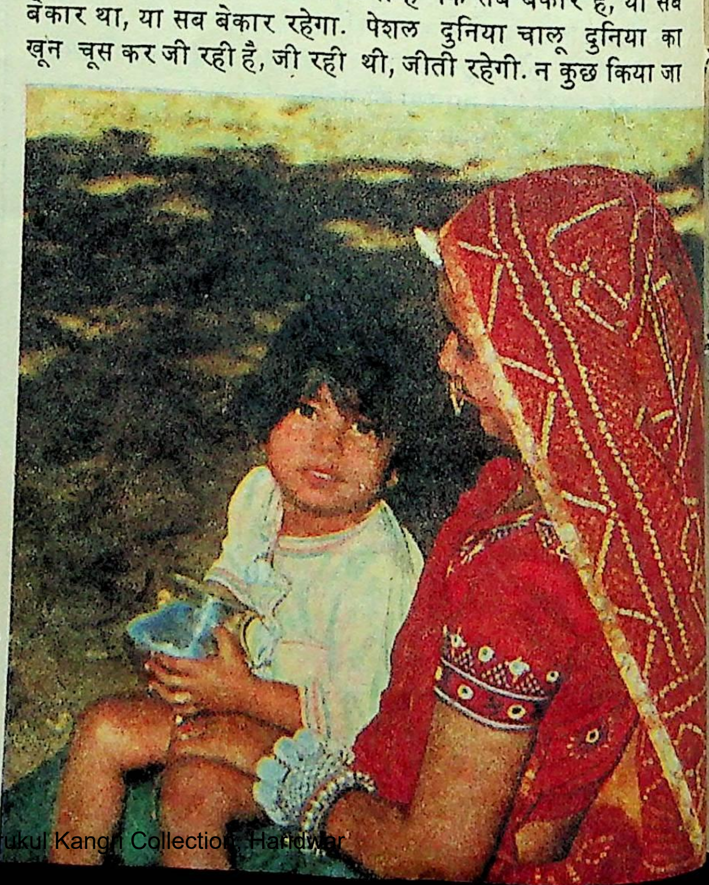

सूरज एन. शर्मा

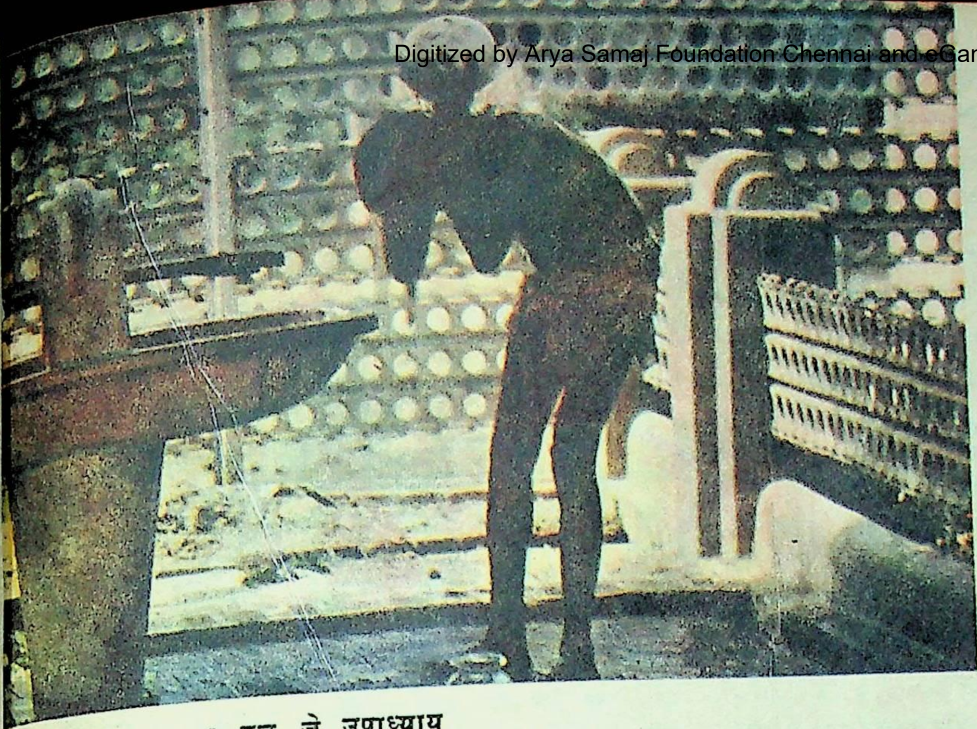

● एल. जे. उपाध्याय

सकता है, न कुछ किया जा पाया है, न कुछ किया जा पाएगा. यह नेता या अफसर जो इन दोनों दुनियाओं का अंतर खत्म करने की बातें करते रहते हैं, यह वास्तव में चालू दुनिया से अपने आपको निकाल कर पेशल दुनिया में ले जाने का ही स्वांग कर रहे हैं. यह सारी नारेबाजी, सारे आंदोलन, सारी भागदौड़ इस दुनिया से उस दुनिया में शामिल हो जाने के लिए की जा रही है. उन्हें सिर्फ अपनी परवाह या चिंता है, चालू जनता की न किसी को परवाह है, न चिंता. सब पेशलों की माया है और उन्हीं की माया में सब रमे हुए हैं या उन्हीं के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं. कानून भी, पुलिस भी, अफसर भी, नेता भी, संविधान भी, सरकार भी, धन भी, देश भी, विदेश भी. कोई भी तो नहीं जो रमदीना जैसे चालू आदमियों के इर्द-गिर्द घूम रहा हो.

रमदीना की दूकान जल गयी है. लेकिन किसी ने आ कर पूछा तक नहीं कि कितना नुकसान हुआ? किस-किस की रोजी-रोटी गयी? और उस दिन बिजली के तारों की गड़बड़ी के कारण सेठ रामरतनजी की कोठी के एक हिस्से में जरा-सी आग लग गयी तो सारा शहर उनकी कोठी की आग बुझाने दौड़ पड़ा और दमकलों की लाइन लग गयी. बीमा कंपनी ने फौरन कोठी का हर्जाना दिया और अखबारों में बड़े-बड़े अक्षरों में छपा कि सेठ का लाखों का नुकसान हो गया था. कितना अंतर है, पेशल और चालू दुनिया में!

रमदीना रोज अपनी बगल वाली राशन की दूकान के सामने लगी कुंजड़ियों की भीड़ देखता रहा है. उनकी लड़ाइयों, चखचखों, झगड़ों-झंझटों, मारपीटों, और राशन पहले ले जाने की कोशिशों को अपनी आंखों रोज देखता रहा है. बगल से गुजरते पेशल लोगों की कारें, मोटरें और उनमें बैठी हुई संगमरमरी औरतें और ड्राइव करते साहब. और पीछे की सीट पर बैठे हुए झबरा वालों वाले कुत्तों की झबरा पूंछें. . .कार की खिड़की से बाहर की हवा में लहराती हुई. . .रमदीना सोचे जा रहा था. गुनगुनी धूप उसे आज बहुत सुहा रही थी और वह इन दो दुनियाओं का अंतर भली प्रकार समझता जा रहा था.

★ ★

आज अचानक ही याद आया रमदीना को. . .रमदीना अपुआं थबई का लड़का है. नहीं गलती हो गयी, अपुआं थबई का लड़का था. वह यह कभी नहीं जान पाया कि उसका बाप थबई क्यों कहलाता है. सारे गांव के लोग अपनी जाति से जाने जाते थे. भरोसे ठाकुर. रामजी मिसुर, दीनानाथ वैश्य. लेकिन जगुआ धोबी और अपुआं थबई, भूरे बढ़ई अपने कामों से क्यों जाने जाते थे? यह उसकी छोटी समझ में तब नहीं आया था. अब. . .आज समझ में आ रहा है. . . यह सब भी इन्हीं दो दुनियाओं का रहस्य है.

बाप कभी थबई का काम करता था. ठेके पर इंटें थापता था. तभी से उसका नाम हो गया था अपुआं थबई. लेकिन ईंटें थापने से घर का काम न चलता था. किल्लत हर वक्त बनी रहती थी. तब वह और मां दोनों ही ठाकुर, मिसुर और वैश्यजी के खेतों पर जा-जा कर काम करने लगे थे. और ठाकुर, मिसुर और वैश्यजी के लड़के-बाले. . .वे पट्टी-बोदका ले कर स्कूलों में पढ़ने जाते थे. अपुआं थबई ने गलती की थी. . .उसे भी स्कूल भेजना चाहा था. फीस नहीं लगती थी. स्कूल सरकारी था. पर. . .नंगी क्या नहाए, क्या निचोड़े? अपुआं थबई यानी बाप बीमार पड़ गया. मां कूट-पीस कर किसी न किसी पेड़-पौधे की पत्ती या छाल छान-औटा कर बाप को पिलाती रही. और बाप. . .खाट में लगा-लगा सूखता चला गया. गांव में भरोसे ठाकुर की पली हुई बिल्ली मरी तो पूरे गांव में मातम मनाया गया. बाकायदा अर्थी सजा कर श्मशान की तरफ शवयात्रा ले जायी गयी और रमदीना का बाप सूख-सूख कर किसी बीमारी से मर गया तो मां घर-घर जा कर रोती फिरी कि कोई उसके आदमी को कंधा दे दे, तो उसे मुर्दघटा ले जाए.

अपुआं उसका बाप था. . .बीमार पड़ा तो स्कूल जाना छूट गया. मर गया तो उसका गांव भी छूट गया. भूरे बढ़ई का लड़का सोना, चौपिया का लड़का किसना और अपुआं का लड़का वह. . .यानी रमदीना. . .इन तीनों की तीनों की पक्की दोस्ती थी.

सोना का मन अपने बाप की बढ़ईगीरी की दूकान में नहीं लगता था. काम बहुत और दाम बहुत कम मिलते थे. सोना दिन भर बाप की गालियां सहता और लातें खाता था, चौपिया अपने लड़के किसना को ढोर-डंगरों के साथ हाट में ले जाता था. किसना ढोर-डंगरों को चराया करता और बाप किसी दूसरे चौ[illegible] के साथ जुआ खेलता या ठर्रा या ताड़ी पिया करता. संझा होते जब दोनों ढोर-डंगरों के साथ घर लौटते तो चौपिया के पांव ताड़ी के असर से लड़खड़ाते होते और किसना चुपचाप पशुओं को हांकता रहता. मढ़ैया में आने पर चौपिया किसना की मां को मारना शुरू कर देता. मां चौपिया को गाली देती जाती और मार से चीख-चीख कर सारी मढ़ैया को सिर पर उठाती रहती. मौका मिल जाता तो रमदीना, किसना और सोना तीनों 'बच्चा छाप' बीड़ी एक-दो पैसे की ले आते और किसी न किसी खेत की मेंड़ पर ओट में बैठ कर अपने-अपने बापों की तरह उन्हें सुलगाते और उनका धुआं भीतर सूंतते और अगर खांसी का ठसा न लगता तो नाक में से धुआं निकाल कर खुश होते थे.

उस दिन सोना ने ऐसे ही वक्त पर कहा था—रजऊआ को जानते हो? वह दोनों चकराये थे. . .रजऊआ. . .? वह कौन है! तभी किसना बोला था—राजाराम.

—हां वही! सोना ने कहा था, फौज में भर्ती हो कर राजाराम बन गया है वर्ना पहले गांववाले उसे रजऊआ कहा करते थे.

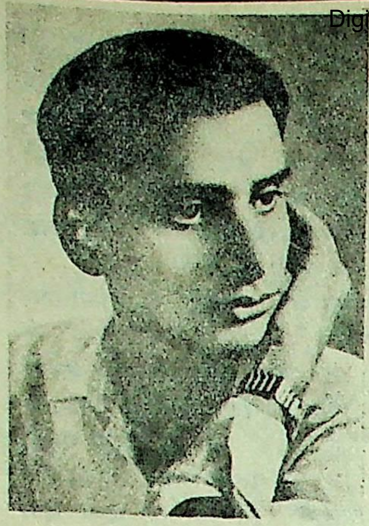

दिनेश पालीवाल : पिछले तीन-चार वर्षों से कहानी-लेखन के क्षेत्र में क्रियाशील हैं. आम आदमी की जिंदगी को इन्होंने करीब से देखने-परखने का यत्न किया है अतएव वही इनकी कहानी का प्रमुख पात्र हुआ करता है.

रजऊआ फौज के हालचाल सुना रहा था. बड़ा मजा आता है. हर आदमी को भर पेट खाना मिलता है, दोनों वक्त! 'नासता' अलग से. पीने को ठर्रा से भी बढ़िया चीज. कपड़े और तनखा ऊपर से. मजे ही मजे हैं. बीड़ी का बंडल मुफ्त मिलता है. चाहे जितनी पिओ.

—लेकिन सुनते हैं, आजकल अंगरेजों की लड़ाई और देशों से चल रही है. . .उसमें हमारे फौजी जवान जा रहे हैं और मारे जाते हैं, किसना ने कहा था.

—मरना तो एक दिन सबको है. सोना बोला था. उसके स्वर में लापरवाही थी. मरने की बात रमदीना को कुछ जमी नहीं थी. वैसे उसे फौजी नौकरी काफी लुभावनी लगी थी क्योंकि उस नौकरी में दोनों जून का खाना और तनखा मिलती थी. यहां, इस गांव में दोनों जून का खाना मिल जाना, उन दिनों बड़े नसीब की बात थी.

* *

वे तीनों दोस्त थे और तीनों के नसीब फूटे हुए थे. इस देश के नसीब की तरह. सोना, किसना और रमदीना. . .तीनों को अपने पुश्तैनी धंधे पसंद न थे लेकिन मजबूरी थी, और करें तो क्या करें? सोना ने फौज में भरती होने के सपने देखे तो एक दिन भरती के समय गांव से भाग गया. बाप ने मुंह भर गालियां दीं. . .स्साला हरामी! अच्छा रहा कहीं जा कर मरा तो. चौपिया किसना और अपुआ थवई का लड़का वह. . . दो ही रह गये. और दोनों परेशान. रात-दिन [illegible]ते थे, सोना अच्छा रहा, घर से भाग गया. अगर उन्हें भी कहीं कोई काम मिल जाए तो वे भी भाग जायें. घर में क्या रखा है? खूसट मां और चें-चें भाई-बहनें.

किसना बोला था—मालदार बनने का सबसे आसान तरीका जानता है, क्या है. . .!

रमदीना की आंखें चमक उठी थीं—क्या?

—कहीं से एक बंदूक मिल जाए तो डकैतियां डाली जाएं. धनवानों को लूटो और धनी हो जाओ.

—लेकिन उसमें तो बड़ा खतरा है. पुलिस पकड़ लेगी. सारी जिंदगी जेल में चक्की पीसते निकल जाएगी.

— क्या हो गया? जेल में भूखों तो नहीं मरेंगे. यहां तो यही डर खाए जाता है कि कल पता नहीं भर पेट रोटी मिलेगी या नहीं?

—और बदनामी होगी सो. . .? वह अचकचाया था.

लेकिन किसना हंसने लगा था—गरीब का नाम भी होता है! बदनामी ही होगी.

रमदीना की समझ में नहीं आया था. और किसना चौपिया चोर बन गया था. डाकू बनने के लिए बंदूक जरूरी थी. बंदूक इंतजाम वह कर नहीं पाया तो चोरों से दोस्ती गांठ कर छो मोटी चोरियां करने लगा. रमदीना को किसना का यह काम कु न लगता. लेकिन उसमें उसे कोई खास आकर्षण न दिखा क्योंकि चोरियों के बावजूद किसना धनी नहीं बन पाया, न ही खतरे से उब पाया. वह हर समय परेशान रहता. बेचैनी घेरे रहती. कहीं पक न जाए. कहीं रंगे हाथों पकड़ गया तो गांव वाले लाठियों से मा डालेगें. . . .जोखिम हर वक्त बनी रहती.

रमदीना समझ नहीं पाता, वह करे तो क्या करे! फौज भरती हो चुकने के एक साल बाद किसी छुट्टी में सोना आया था. . रमदीना उससे रोया-गाया. कहीं उसे भी हिल्ले से लगा दे. लेकि सोना उसकी कोई मदद नहीं कर पाया था. हां, एक रास्ता सुझ दिया था. . .शहर भाग जा! वहां कोई काम मिल जाएगा. कुछ न मिले तो रिक्शा ही चलाने लगना.

और वह एक रात चुपके से अपना घर छोड़ कर भाग आया था. . .वह दिन और आज का दिन, रमदीना वापस कभी भी घ नहीं गया. उसे नहीं पता, उसकी मां मर गयी या जीती है. दूस भाई-बहन जीते हैं या मर गए. जीते हैं तो किस हाल में हैं. औ मर गए तो किस हारी-बीमारी से.

शहर में आ कर रमदीना ने सब कुछ किया. बड़ी हसरत थी किसी तरह अमीर बन जाए. बड़ी कोशिशें कीं. लेकिन अमीर यहां अमीर ही बन सकते हैं,यह उसकी समझ में अब आया. . .गरीब यहां जब-जब अमीर बनने की कोशिश करता है,वह और गरीब हो जाता है. . .जैसे उसकी दूकान का मालिक रातदिन अमीर बनने के लिए चालें और तरकीबें सोचता रहता था. . . .वह रमदीना को अपना नक्शा रात-दिन समझाता रहता था और वह समझता रहता था. लेकिन हुआ कुछ नहीं. बगल वाली राशन की दूकान पर लोगों की भीड़ थी. चीजें मिल नहीं रही थीं. भीड़ बढ़ती जा रही थी. लोगों को गुस्सा आ गया. पहले गाली-गलौज हुआ. फिर पत्थरबाजी हुई. बाद में गुस्सैल भीड़ ने आग लगा दी.

आग की लपटों में राशन की दूकान के अगल-बगल वाली सारी दूकानें भी जल कर भस्म हो गयीं. उनमें उसके मालिक की चाय की दूकान भी थी, जिसमें वह पिछले दसियों साल से पेशल और चालू चाय लोगों को प्यालों से बांट रहा था और उनके जूठे प्यालों को धो-धो कर रखता रहा था. मालिक की दूकान क्या जली, वह एकदम माथा पीट कर घर में जा बैठा. और वह दूकान के सामने पड़ी इस पत्थर की पटिया पर सदा की तरह ही लेटा रहा. . .पूरी दुनिया दो भागों में बंट गयी है. . .बंटी हुई थी. . .एक पेशल, दूसरी चालू.

भीड़ ने आग कल शाम को लगायी. पुलिस रात को आग बुझा गयी थी. आज सुबह पुलिस तहकीकात करने आयी हुई थी. . . आग कैसे लगी, किसने लगायी? किसी को पहचानते हो? पहचानते हो तो नाम बताओ. पुलिस उन्हें पकड़ेगी और सजा देगी.

रमदीना बोला—हमारे मालिक को चाय के इस होटल का हरजाना दिला दो जिससे हमारा मालिक फिर यह होटल जिंदा कर सके और मेरी रोजी-रोटी चल सके.

पुलिस वाले उसके गले पड़ गए— पहले आग लगाने वालों के नाम बताओ.

भीड़ का कोई नाम होता है, यह वह नहीं जानता. वह सिर्फ भीड़ थी जो गुस्सा थी, और जो पहले पत्थरबाजी पर उतर आयी

थी, फिर आगजनी पर. राशन की दूकान में हजारों का सामान जल गया था, वह सामान जो पेशल लोगों की सहायता से ऊपर ही ऊपर बिक जाया करता है. लेकिन कभी-कभी चालू लोगों के सब्र का समंदर भी सीमाएं तोड़ देता है, और राशनकार्डों के बदले पत्थर उठा लेता है या आग की चिनगारियां. पुलिस पूछती है कि आग लगाने वाले लोग कौन थे? उस भीड़ का क्या नाम बताए वह? रमदीना तो सिर्फ इतना जानता है कि वह भीड़ भूखों और नंगों की, चालू लोगों वाली भीड़ थी. उसमें कोई पेशल नहीं था. हां, भड़काने वाले जरूर पेशल लोग थे. . .जो किसी न किसी चुनावी 'पालटी' से टिकट ले कर चुनाव में खड़े हुए थे.

रमदीना को याद है. . .एक मोटर आ कर उस भीड़ के सामने रुकी थी. भीड़ ने उसमें से निकलने वाले कुर्त्ता-धोती को घेर लिया था. और वह कुर्त्ता-धोती बोल पड़ी थी——देखते क्या हो, यह पूरी सरकार भ्रष्ट हो गयी है. इस भ्रष्ट सरकार को नष्ट किये बिना कुछ नहीं हो सकता. अगर तुम लोग चाहते हो कि तुम्हें खाना मिले, राशन मिले, तेल और शक्कर मिले तो मेरी सुनो. . .इस पूरी सरकार को नष्ट करो. सब कुछ जला कर भस्म कर दो. न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी.

और भीड़ तुरंत बेकाबू हो गयी थी. उसी का परिणाम आगजनी थी. लेकिन पुलिस पूछ रही थी, आग किन लोगों ने लगायी? पुलिस जानती हुई भी आग लगाने वाले को क्यों नहीं पकड़ती, यह भी एक रहस्य है. पुलिस भी पेशल लोगों की ही रक्षा के लिए है. चालू लोगों को ही धमकाती है, गिरफ्तार करती है और जेलों में डालती है.

★ ★

उस आगजनी के बाद पूरे शहर में हवा बन गयी थी. . .इस बार के चुनाव में सरकारी 'पालटी' का आदमी जरूर चुनाव हार जाएगा. चालू लोग बहुत नाराज थे. मंहगाई, गरीबी, बेरोजगारी अन्याय और भ्रष्टाचार का दानव सीधे चालू लोगों की हड्डियां पेलता हुआ तेल निकाल रहा था. पेशल लोगों को इस सरकार के रहते फायदे ही फायदे थे. वे सब इस सरकार को जिताने की कोशिश कर रहे थे और चालू लोग हराने की.

चुनावों में उसकी कभी रुचि नहीं रही थी. वह जानता था, इनसे कुछ नहीं होगा. गलत लोगों द्वारा गलत लोग चुन लिये जाते हैं और गलत सरकार बन जाती है. वह गलत नियम और गलत व्यवस्था चलाती रहती हैं. उस गलत व्यवस्था में पेशल लोगों को ही लाभ होते रहते हैं और बहुत बड़ी चालू लोगों की आबादी उन पेशलों की मनमानी की शिकार होती रहती है. रमदीना भी उन्हीं का शिकार है, होता रहा है, होता रहेगा. . .लेकिन इस बार चालू लोग सरकार से बहुत नाराज थे. रमदीना को जाने क्यों यह विश्वास हो गया था कि पेशल लोगों की छोटी जमात हार जाएगी और चालू लोगों की बड़ी आबादी जीत जाएगी. लेकिन नतीजा कुछ और ही हुआ. पेशल लोग ही जीत गए और चालू लोगों की बड़ी संख्या जमानत तक न बचा पायी. . .उसको यह कतई समझ में नहीं आया कि रातोंरात हो क्या गया. आग लगाने वाली चालू जनता की भीड़ कैसे सरकारी आदमी को ही वोट दे आयी.

रमदीना सब कुछ समझ गया है. . .लेकिन समझ कर भी वह कर क्या सकता है. इस दैत्याकार व्यवस्था को वह अकेला कैसे बदल सकता है. . .कैसे भी तो नहीं. वह तो अपनी व्यवस्था नहीं बदल पाया, इस दैत्याकार व्यवस्था को क्या खा कर बदलेगा.

★ ★

रमदीना अपनी ठंडी पीठ को धूप की तरफ किये सेंक रहा था. सेंकने के साथ-साथ ही सोच भी रहा था कि दुनिया दो हिस्सों में बंटी हुई है.

उसी समय यकायक एक पुलिस की जीप मरमराती हुई आयी और उसकी पटिया के ऐन सामने आ कर रुक गयी. जीप में से एक अदद धोती-कुर्त्ता निकला. साथ ही कई वर्दीधारी और लट्ठधारी. अचानक ही एक लट्ठ उसकी पीठ पर आ कर पड़ा तो वह हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ. उसकी कुछ समझ में आए, उससे पहले दस-पांच लट्ठ और पड़ गए. वह घबराया——क्या कुसूर है, हुजूर. . .मालिक?

——हुजूर के बच्चे! जरा कोतवाली चल, तब पता चलेगा. गालियों के साथ लताड़.

खींच-घसीट कर कोतवाली ले जाया गया.

वहां भी कुसूर तो पता नहीं चला. . .अलबत्ता लट्ठ जरूर उस पर बजता रहा. रमदीना बौखलाया-घबराया हुआ चीखता-चिल्लाता रहा.

तभी कुर्त्ता-धोती ने रपट लिखाते हुए कहा——हां साब! यही वह आदमी है, जिसने भीड़ को भड़काया और राशन की दूकान में आग लगवायी. . .उस आग से आसपास की सारी दूकानें जल गयीं. लाखों का नुकसान हुआ! वह उस धोती-कुर्त्ता को पहचान गया था लेकिन पहचानने से क्या होता है. चालू लोगों की पहचान का इस पेशल लोगों वाली दुनिया में कोई अर्थ नहीं होता.

कुर्त्ता-धोती ने और भी कई रहस्य खोले. यह आदमी फलां गांव का है. . .इसका बाप अपुआं थबाई था. लेकिन रिक्शा चलाना मेहनती लोगों का काम है. यह मेहनत से हमेशा जी चुराता रहा था. वह काम इसे पसंद न आया इसलिए यहां भी इसने कई बार चोरियां कीं. जेबें काटी. भीड़ में गुजरती महिलाओं के जेवर छीने. . .यह अरसे से इस शहर में गुंडई करता रहा है. . .कहने के लिए इधर यह चाय की दूकान पर नौकरी करता था, लोगों को चाय दिया करता था और उनके जूठे प्याले धोया करता था लेकिन सच बात यह है कि यह बड़ा खतरनाक किस्म का आदमी है. . .यह व्यवस्था के खिलाफ है और व्यवस्था का अमन-चैन इसे पसंद नहीं है. उस दिन मैं राशन की दूकान के सामने लगी लाइन से वोट मांगने गया था. यह आदमी पास की चाय की दूकान पर चाय दे रहा था. मेरे सामने ही इसने लोगों को भड़काया था और दूकान में चीजें नहीं मिल रही थीं तो आग लगाने की सलाह दे रहा था.

अनगिनती लाठियों की मार से उसकी हड्डियां [illegible] हो गयी थीं और मांस कई जगह से फूल-फूल गया था. कई जगह नीलें उभर आयी थीं और कई जगह खून झलक आया था. धोती-कुर्त्ता का बयान लिख लिया गया था. यही रपट थी. धोती-कुर्त्ता कार में बैठ कर चला गया था और उसे. . .यानी चालू आदमी रमदीना को हवालात में बंद कर दिया गया था.

वह एक खतरनाक आदमी था क्योंकि उसकी समझ में आ गया था दुनिया दो हिस्सों में बंटी हुई है. एक पेशल और दूसरी चालू. पेशलों की पेशेलिटी तभी तक चलती रह सकती है, जब तक चालुओं की समझ में यह रहस्य न आए. अगर चालू यह रहस्य समझ जायेंगे तो पेशलों की पेशिलिटी खत्म हो जाएगी. इसलिए जरूरी है कि ऐसे खतरनाक डाकुओं को उम्र-कैद करके रखा जाए. □□□

राधाकृष्ण भवन,
न्यू कालोनी, इटावा, (उ. प्र.)

ऋषि • प्रभातकुमार त्रिपाठी

बहुत छोटी-सी बात थी. और अगर अभी भी वह किसी गुबरैले कीड़े की तरह भनभना रही है, तो इसका जिम्मेदार कोई नहीं है. ऐसा सोच कर भी मैं उस बात को स्थगित नहीं कर सका. वह वहीं थी. कितनी भारी जीवित-शक्लों को उभारती हुई . . .

बिल्कुल बगल में पत्नी थी और उसके बाद थोड़ा हट कर छोटा भाई. वह फर्श पर कंथरी बिछा कर नींद में गाफिल था. बरामदेनुमा इस कमरे का एकांत स्वामित्व, हमारे दांपत्य के क्रमशः प्राचीन होते जाने की वजह से हमसे छिन गया था, इसकी दूसरी वजह मकान की तुलना में परिवार की बढ़ी हुई जनसंख्या थी. मेरे बाद एक छोटी बहन, दो छोटे भाई और हैं. माता-पिता और दादी भी. कुल तीन कमरों के मकान में यह एक बरामदा है, जो पीछे की तरफ खुलता है. पीछे की तरफ आंगन है. यह अच्छा है. हमेशा गरम रहने वाले इस इलाके में, लकड़ी की जाफरी से घिरा यह बरामदा, मुझे जब शादी के बाद पहली बार मिला था, तो पत्नी खुश हुई थी. मुझे तब पहली बार लगा था कि मकान में अपने लिए किसी अलग कमरे का होना कितनी अच्छी बात हो सकती है. लेकिन धीरे-धीरे मैं भूल गया कि इस अच्छी बात को याद करता रहूं. अब कभी छोटी बहन, तो कभी छोटा भाई यह याद नहीं करने देते कि बैंगन और मिर्चों के पौधों,अमरूद के दरख्त के पत्तों से छन कर आने वाली हवा को अंकोरने वाले इस बरामदे में मैंने कुछ निजी दिन जिये हैं और बिना यह सोचे, कि मैं गधा हूं, या कुत्ता हूं, या सुअर हूं, मैं मग्न रहा हूं.

आज भी यह बात याद नहीं आती. थकान और स्मरण के संग्राम में आज भी थकान जीतती और मुझे अपनी गोद में मेमने की तरह सुला लेती लेकिन वह बात हो गयी. और अब किसी गुबरैले कीड़े की तरह मेरी सुअर नींद से टकरा रही है.

मैं बहुत थका हुआ था. दोपहर का खाना भी मैंने नहीं खाया था. रात दस बजे लौटा, तो आंतें कुलबुला रही थीं. पत्नी नींद में डूबी हुई थी. बरामदे में टिम टिम तारे वाले अंदाज में जल रहे बल्ब की पीली रोशनी में मैंने उसके चेहरे की ओर देखा. थकान की मार के निशान उसके सुते हुए चेहरे में देखे जा सकते थे. उसके कपड़ों से हल्दी और पिसी मिर्च के साथ, पसीने की बदबू भी आ रही थी और जिसे सूंघ कर मैंने अचानक मौसम के बारे में सोचा था. यह मार्च की शुरुआत थी और थोड़े दिनों में लू और सनस्ट्रोक वाली ग्रीष्म-ऋतु का आगमन संभावित था.

मुझे [illegible] भर की भूख थी. कचहरी कैंटीन के गरम पकौड़े पेट के किसी कोने में दफ्न हो चुके थे. भूख की याद से भूख तेज हो गयी. पत्नी को सोती देख कर गुस्सा लगा. भूख और तेज हुई. स्टूल पर गिलट का डिब्बा रखा था,जिसमें मेरा खाना और पत्नी का पातिव्रत्य एक साथ मौजूद थे.

मैं खाट पर बैठे-बैठे सारा डिब्बा खाली कर गया. मटके से पानी निकाल कर पीने के बाद लगा कि फिर एक सुबह बिना बुलाये अभी इसी क्षण आ जायेगी. तभी वह करिश्मा हुआ. पत्नी की तरफ करवट लेने पर मैंने देखा कि बालों का एक गुच्छा उसके कपोल पर आ गया है और अच्छा लग रहा है. यही वह बरामदा है, जहां अच्छा लगने वाले जुमले का शरीर-संस्करण मैंने पढ़ा था. वह अनुभव चंद्रकांता संतति के कई संस्करणों का योगफल था. एक धुंधली-सी याद ने, एक गैरजरूरी याद ने मुझे थोड़ा आगे धकेला. मैंने पत्नी के ओठ चूम लिये. यह मेरा अधिकार था. और/बल्कि कई बार यह मेरी जिम्मेदारी थी, लेकिन इस वक्त यह मेरा खेल था. बचपन के खेलों जैसा एक अभिप्रायहीन खेल. चूमने पर भी पत्नी की आंख नहीं खुली . मेरा खेल थोड़ा आगे बढ़ा और मैं उसके ब्लाउज में हाथ फेरने लगा. रूखे बालों का वह गुच्छा वहीं था और उसका अच्छा लगना मुझे बाहर-भीतर से हिला रहा था.

तभी वह बात हो गयी. पत्नी की नींद खुली. उसकी आंखों की भाषा में ही इतनी लाल आग थी कि उसे जुबान खोलने की जरूरत नहीं थी. लेकिन उसके पास भी इस चीज के उपयोग के लिए उचित जगह का नितांत अभाव था.

——जानवर हो गये हो क्या? देखते नहीं नरेश सोया है.

मैं चुपचाप अलग हो गया. पत्नी दूसरी ओर मुंह फेर कर लेट गयी. थोड़ी देर बाद फिर पलटी. मेरा उलटना-पलटना देख कर उसे लगा, शायद गुस्से की वजह से मुझे नींद नहीं आ रही है. उसने आहिस्ते से पूछा —— नींद नहीं आ रही?

मैंने कुछ नहीं कहा.

——नाराज हो गये क्या? उसने दुबारा पूछा.

मैं चुप था. पत्नी को यह समझाना कितना कठिन था कि मैं गुस्सा नहीं हूं. मैं न दुखी हूं, न क्रोधित. और अब उसकी बात, उसकी बात कहां रह गयी है? कितने सारे गुबरैले कीड़े हैं. . .और मैं सो रहा हूं.

दो मिनट सोच कर ही मुझे लगा कि पत्नी जानवर शब्द की जगह, खास शब्द का उपयोग करना चाहती होगी. वह खास शब्द कुत्ता है. और कुत्ता सोचते ही मुझे मिसेज सिन्हा की याद आयी और कचहरी की और कीचड़ तालाब की और बाबूजी की— यानी कुल मिला कर मैं सुबह के इलाके में पहुंच गया.यह बीती हुई सुबह की बातें हैं, लेकिन आने वाली सुबह की भी हो सकती हैं. . .

* *

सुबह छह बजे उठना मेरी आदत नहीं मजबूरी है. मैं ही नहीं, सारा परिवार छह बजे पूरी तरह जागृत हो जाता है और ठीक सात बजे सबके सब कर्मलीन हो जाते हैं. पत्नी और मां रसोई घर में, छोटी बहन मुहल्ले के नल में और छोटे भाई अपनी किताबों में डूब जाते हैं. सुबह की यह शुरुआत हमारे चरित्र को जड़ता और आलस्य जैसे मध्यवर्गीय दुर्गुणों से बचाये है.

मैं उठा. चाय पीने के बाद, अपने पहले ट्यूशन की तैयारी में अपने बरामदेनुमा कमरे में कपड़े पहन रहा था कि सरला (मेरी पत्नी) आयी.

अमूमन पत्नी से मेरी मुलाकात रात को होती है. और वह भी महीने में दो-तीन बार, क्योंकि मेरे दूसरे ट्यूशन के खत्म होने के पहले, वह दूसरी सुबह के लिए तैयार हो रही होती है, यानी सो चुकी होती है. पत्नी कारण सहित कमरे में आयी थी. रसोई घर के धुएं की मार से उसका सद्यःस्नात रूप बिखर चुका था.

——जाने के पहले बाबूजी से मिल कर जाना. पत्नी ने कहा. मैंने सिर उठा कर पत्नी के चेहरे को गौर से देखा. वहां उसके ससुर का इरादा नहीं लिखा था. फिर मैं कमीज के बटन लगाने लगा.

सरला दुबारा बोली —— मेरे दोनों लहंगे बिलकुल तार-तार हो गये हैं, आते वक्त लहंगे का कपड़ा लेते आना.

जिस इच्छाहीन स्वर में उसने यह मांग की थी, उतने ही अनुत्साह से मैंने पूछा —— कितना कपड़ा?

और उसके कुछ कहने के पहले पल भर को लगा था— क्या हो गया है हमारी भाषा को? हम आदमी हैं या किराने की दुकान का बही-खाता?

पत्नी की फर्माइश के ऐन बाद मैंने सोचा था, साहूके तीस रुपयों में से कुछ नहीं तो बारह तो निकल गये ——बाकी बचे अठारह— अब इतने में पानवाले का और ऑफिस कैंटीन का पिछला कर्ज चुकाऊंगा या महीने भर का खर्च चलाऊंगा.

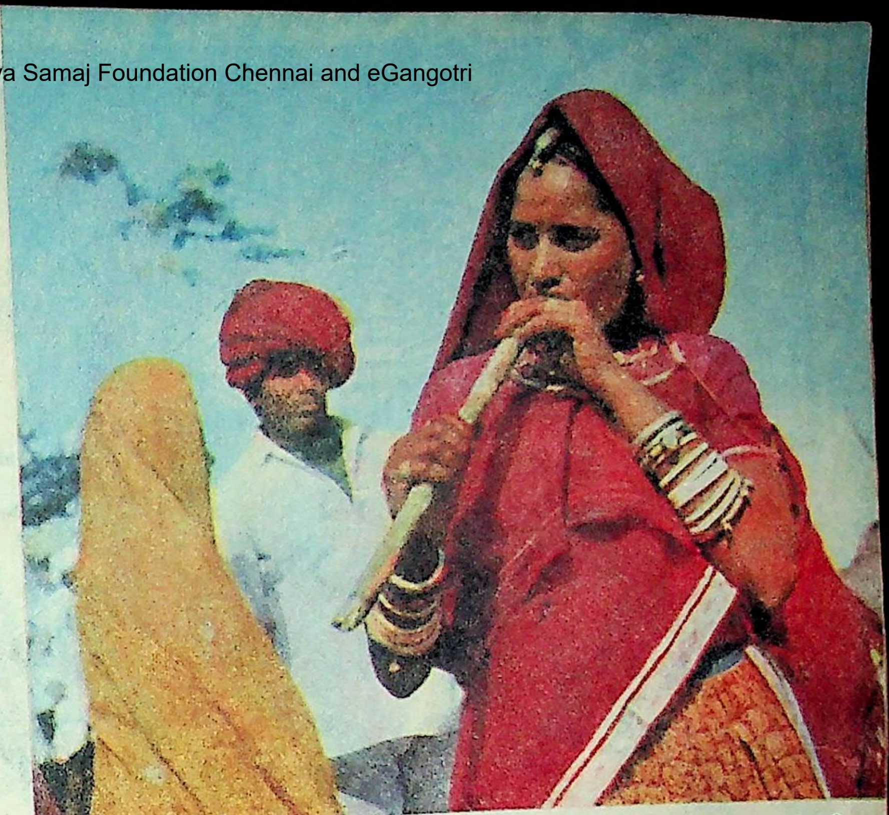

● भगवानदास रूपानी

मैं म्युनिसिपैलटी के दफ्तर में नौकर हूं. कुल दो सौ दस रुपये मिलते हैं. सुबह और शाम के ट्यूशन से साठ रुपये और. बाबूजी सिविल कोर्ट की नौकरी से रिटायर हो चुके हैं और अब कोआपरेटिव की एक दुकान में पार्ट टाइम काम करते हैं. रिटायर होने के ऐन पहले न सिर्फ उन्होंने मुझे बी. ए. पास करा दिया था, बल्कि सरकारी वकील सिन्हा साहब से कह कर म्युनिसिपल स्कूल के मिडिल सेक्शन में नौकरी भी दिला दी थी. दो साल पहले जब मिडिल सेक्शन सरकार के हाथ में चला गया तो उन्होंने यह कह कर मुझे म्युनिसिपल दफ्तर के स्वास्थ्य विभाग में क्लर्की दिला दी थी कि सरकारी नौकरी में हर मिनट ट्रांसफर का खतरा है, कहां-कहां भटकते फिरोगे? हाईस्कूल तो कमेटी के हाथ में ही है, अपने सिन्हा साहब हैं ही (मिसेज सिन्हा पिछले तीन चुनावों से म्युनिसिपैलटी की चेयरमेन (वुमेन) हैं) भगवान ने चाहा तो हाईस्कूल के लेक्चरर ग्रेड तक पहुंच ही जाओगे. मुझे पता था कि बाबूजी को मेरे दर-दर भटकने की फिक्र क्यों हुई थी. तब बाबूजी वास्तविक रिटायर्ड आदमी लगे थे और तब ऐसा भी लगा था कि को-आपरेटिव की जिस दुकान पर बाबूजी सेल्समेन हैं, वह अगर उनकी खुद की होती तो वे बिजनेस में कितने सफल होते. और तब यह भी लगा था कि मेरे और बाबूजी के बीच भी बिजनेस है. रिटायर्ड बाप और कमाऊ पूत के बीच संपर्क की एक मोटी रस्सी अर्थशास्त्र की होती है और जगन्नाथ का रथ इसी रस्सी से खींचा जाता है. सोच-विचार का रथ तो शादी के बाद रुक गया. उसके चक्के एक वृत्त में चक्कर लगाते रहे. आज उस चक्कर की कौन सौवीं वर्षगांठ है — यह याद किये बगैर मैं बाबूजी के कमरे में दाखिल हुआ.

को-आपरेटिव की दुकान में जाने से पहले वह अपनी फटी धोती सी रहे थे. उनके हाथ में सिलाई करने का फ्रेम था. धोती का फटा हिस्सा उसमें फंसा था. वह अपनी दैनिक प्रार्थना में तन्मय थे.

—बैठो, उन्होंने सिर बिना उठाये ही कहा.

उनकी कुर्सी के सामने के लंबे बेंच पर मैं बैठ गया. बाबूजी की टेबल - घड़ी में सात बजने को दस मिनट थे. मेरे पास दस मिनट का बिलकुल निजी वक्त था और बाबूजी उसे चाट लेने पर तुले थे. क्या मैं बाबूजी का जरखरीद गुलाम हूं, सोच कर मैंने उनकी तरफ देखा.

—तुम्हारी कितने दिन की छुट्टी बची है? उन्होंने ध्यान तोड़े बगैर प्रश्न किया.

—दस दिन की.

—तुम आज की छुट्टी ले लो, अब की बार उनका चेहरा दिखा. चेचक के दागों वाला सांवला चेहरा बुढ़ापे की वजह से डरावना-सा लग रहा था— तुम जरा सिविल कोर्ट चले जाओ. उसके पहले वकील साहब के यहां हो आना. वह कोई चिठ्ठी देंगे. बाबूजी रुके. उन्होंने मेरी तरफ देखा. वह मेरे चेहरे का भाव पढ़ना चाहते थे. क्या वहां कुछ है? मैंने सोचा.

—सिन्हा साहब कह रहे थे कि तुम उनकी बच्ची की अंग्रेजी थोड़ा देख लेते तो अच्छा रहता, बी. ए. में तुम्हारी अंग्रेजी थी न? बाबूजी ने पूछा.

—हां, मैंने कहा. सिन्हा साहब की बच्ची की अंग्रेजी क्या मुझे बेगारी में देखनी होगी, जैसी एक शंका मेरे दिमाग में घुसने को थी कि बाबूजी ने साफ कर दिया. —सिन्हा साहब कह रहे थे कि अगले सेशन से हाई स्कूल में अंग्रेजी की एक जगह खाली होने वाली है. . .

बाबूजी पक्के बिजनेसमैन हैं. सिर्फ उनके पास पूंजी नहीं है. पूंजी के नाम पर खुद के मैट्रिकुलेशन का सर्टिफिकेट है और मेरी बी. ए. की डिग्री.

क्या मैं बाबूजी की पूंजी हूं? पूछना था. मैंने दूसरा सवाल किया—लेकिन कोर्ट में क्या काम है?

बाबूजी मुसकराये — वही पेंशन वाला केस.

मैं उठने लगा. बाबूजी ने रोका — और सुनो, साहू के ट्यूशन वाले रुपये तो मिल गये न?

—जी. मैंने कहा.

—तो राशन कार्ड लेते जाना, इस महीने की शक्कर ले आना, रामौतार की दुकान भी तो कोर्ट के रास्ते में ही पड़ती है. बाबूजी रफू करने लगे.

बेंच से उठ कर मैंने अपनी पीठ सीधी की और साहित्य की तरह सोचने लगा, कि पीठ पर पेट का एक पहाड़ है औ[illegible] उसे लादे दौड़ लगा रहा हूं. कहीं कोई आम का दरख्त नहीं, कहीं नदी नहीं, तालाब नहीं, सिर्फ पेट को लादे दौड़ती-हांफती पीठ है —पीठ दिखाते रहने की दिनचर्या में डूबा मैं हूं और आत्मा लापता है.

* *

सोचने का विलास मिनट भर भी नहीं चलता. कोई धौल जमा कर कहता है, गणित की बात सोचो प्यारे! राशन कार्ड जेब में डाल कर, थैला सायकिल के हेंडल से लटका कर, मैं जब निकला, तो एक नया गणित मेरे मन में घुमड़ रहा था. एक सौ पचास रुपये की बेसिक में महंगाई कितनी मिलती है, इसका ठीक-ठीक पता नहीं होने के बावजूद मैंने अंदाज लगाया कि सब मिला कर पौने तीन सौ के आस-पास बैठेंगे. मैं ख़ुश हुआ. और तभी सिन्हा साहब के बंगले पर मेरी सायकिल रुकी.

बंगला था. बड़े आदमियों के घर जैसा घर. गेट के कोई तीसेक गज बाद असल मकान. सामने की खुली जगह पक्की चारदीवारी से घिरी थी. बीचो - बीच बजरी का रास्ता. दोनों तरफ खूबसूरत फूलों के पौधे. करीने से कटी हुई क्यारियां. हरी घास की नरम

the merry world of
Shreelon & Shreester

the yarns that make
beautiful fabrics

श्रीलॉन नायलॉन यार्न– जानकार
महिलाओं की मनमोहक साड़ियों और मनोरम ड्रेस मटीरियल्स
(पोशाकों के कपड़े) बनानेवाला यार्न (धागा)
श्रीएस्टर पोलिएस्टर यार्न– तरक्कीपसन्द पुरुषों की
आधुनिकतम सूटिंग और शर्टिंग बनानेवाला यार्न (धागा)
इसलिए जब हो श्रीलॉन और श्रीएस्टर का मिलन,
तो छा जाता है उमंगभरी खुशियों का सावन!

श्री

बनानेवाले: श्री सिन्थेटिक्स लि., नौलखी, उज्जैन
सेल्स ऑफ़िस: श्री निवास हाउस, एच्. एम्. सोमानी मार्ग, बम्बई-४०० ००१

JAISONS 427 Delhi

प्रभातकुमार त्रिपाठी (जन्म : १४ सितंबर १९४१.) मूलत : कवि हैं. इन्होंने कविता और कहानी के माध्यम से अपने भीतर के उस आदमी की तलाश की है जो एक बेहतर मानवीय जिंदगी के लिए लड़ते हुए टूट रहा है और टूटते हुए लड़ रहा है. इन्होंने कहानी को सही आदमी की तलाश का माध्यम माना है.

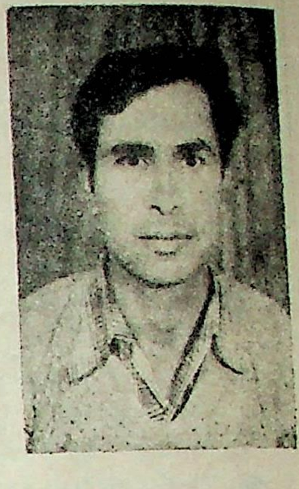

चादर. मुझे लगा, कितने अरसे बाद फूल देख रहा हूं. मन-ही-मन तय किया कि सिन्हा साहब की लड़की को जरूर पढ़ाना है. कम-से-कम दिन में एक बार फूलों की महक तो नाक से टकरायेगी. जीभ न सही नाक का स्वाद तो बदलेगा.

मेरे खोलने पर लकड़ी का फाटक चरमराया. बगल के पौधों में फव्वारे से पानी सींचता हुआ माली चौकन्ना हुआ. उसने इधर-उधर नजर घुमायी.

—कौन है?

—मैं—रमेश वर्मा. मैंने कहा.

माली तब तक सामने आ गया था. उसके हाथ में फव्वारा था. उसने अपनी आंखों से मेरा मुआयना किया तो मुझे लगा, वह मुझे सूंघ रहा है. मुझे फाटक में टंगी तख्ती की याद आयी—बी वेयर ऑफ डॉग्स. क्या सिन्हा साहब के घर में कोई कुत्ता नहीं है? मैंने बावजह मुसकरा कर माली की तरफ देखा. वह प्रश्नवाचक मुद्रा में संदेहभरी आंखों से मुझे घूर रहा था. शायद उसे लगा कि इतनी विपन्न सूरत का आदमी उसके साहब का मुलाकाती नहीं हो सकता. मैंने कपड़ों के महत्व पर धन्य धन्य की अस्फुट ध्वनि के बाद पूछा—सिन्हा साहब हैं?

वह भौंका — आप कौन हैं?

मुझे गुस्सा लगा. उघड़े बदन वाले उस काले चेहरे तक की आंखों में मेरी हैसियत गड़ती थी. दुबारा अपना नाम बोलने की बात मुझे अपमान जैसी लगी. मैंने यथाशक्ति रुआब डालने की कोशिश की— सिन्हा साहब ने मुझे बुलाया था, और उसकी पूछती-ताकती आंखों की परवाह किये बिना मैं आगे बढ़ गया.

बिलकुल पहले के कमरे का दरवाजा खुला था लेकिन हद है क्या मेरे पांव बिल्ली के पंजे हैं कि सुंदर सन्नाटे वाले उस सजे सजाये कमरे में मेरी पदचाप तक नहीं गूंजी. कोई नहीं था. सिर्फ कमरा. सजा हुआ. किसीके आने, न आने के व्यर्थ इंतजार में पड़े रहने की आदत न कमरे को थी, न कमरे के मालिकों को. क्या मैंने गलती की कि उस कुत्ते की औलद के थ्रू मैं यहां नहीं घुसा? अब यहां इस चुप मकान में, मेरी मिमियाती पुकार को सिन्हा साहब तक पहुंचाने का काम कौन करेगा? लेकिन जब तक थोड़ा टहल कर मैं कमरे के असूर्यम्पश्या—सौंदर्य को अपनी लालची आंखों से चाटूं – बगल के कमरे का पर्दा हिला . मुझे लगा कि मेरे पांवों में वजन है. ये मेरे पांव हैं. आखिर मैं खड़ा हूं उन पर.

पर्दा हिलने के बाद, अपने वजनी होने का एहसास सोचते न सोचते गायब हो गया . कमरे का पर्दा खिसका कर , जिस सुंदर महिला ने प्रवेश किया—वह मिसेज सिन्हा थीं. उनके आने की महक से मेरे बोल लड़खड़ा कर फूटे—जी, वो, सिन्हा साहब ने. . . मैं ओम प्रकाश वर्मा का लड़का हूं. . .

—ओह, तो तुम हो, क्या नाम है तुम्हारा, रमेश, रमेश ही हो न, वह मुसकरायीं, मुसकराती ही रहती होंगी हमेशा—आओ अंदर आओ न.

उन्होंने पीठ कर ली. पीछे की तरफ उनका ब्लाउज दिल के आकार का कटा था. ब्लाउज स्किन कलर का था और पता ही नहीं चलता था कि उन्होंने कुछ पहना है. अचानक अपने को, उन्हें घूरते हुए पा कर मैं थोड़ा सकपका गया, लेकिन बाद में लगा कि मेरा सकपकाना फिजूल है. मिसेज सिन्हा कोई म्युनिसिपल में क्लर्क तो नहीं हैं कि पीठ की आंखों से चीफ म्युनिसिपल अफसर को, अपनी गपबाजी के दौरान देख लें और उसी क्षण फाइल में डूब जायें—और मैं क्या चीफ म्यु. अफसर हूं? अगर होता भी तो, मिसेज सिन्हा तो चेयरमेन-वुमेन हैं और चेयरमेन को पीछे मुड़ कर देखने की जरूरत पांच साल में सिर्फ एक बार पड़ती है.

मिसेज सिन्हा का अनुकरण करते हुए मैं जिस जगह में पहुंचा, उसे अंग्रेजी की भाषा में डायनिंग स्पेस कहा जाता है. वहां एक गोल टेबल थी और अपनी पुत्री के साथ महामहिम वकील साहब विराजमान थे. उनके चलते हुए मुंह और तन्मय चेहरे को देख कर अंग्रेजी सभ्यता के एक दूसरे शब्द का स्मरण हुआ—ब्रेकफास्ट. वह ब्रेकफास्ट कर रहे थे. मिसेज सिन्हा आधे में उठी थीं. मुझे वहां मौजूद पा कर मिस्टर सिन्हा की तन्मयता टूटी. मैंने नमस्कार किया.

उन्होंने सिर ऊपर उठाया—आओ भाई रमेश, आओ बैठो. फिर मिसेज सिन्हा की ओर मुड़े—अरे भाई, रमेश के लिए नाश्ता मंगवाओ, फिर मेरी ओर — अरे भई, तुम्हारे बाबूजी वाला केस तो बिलकुल फाइनल हो चुका है, कोर्ट में तो और कोई काम नहीं है, तुम जरा मेरी चिट्ठी के साथ ट्रेजरी ऑफिसर से मिल लेना. . . अरे, तुम अभी तक खड़े हो.

मुझे इतने में ही यकीन हो गया कि सिन्हा साहब अपने पेशे में सफल हैं. उनकी वाणी में अपनावे की मिठास है, मैं गिरफ्तार हो रहा था, मुवक्किल भी जरूर होते होंगे. पर उनकी शालीनता के बावजूद मुझे अपने कपड़ों पर लिखी अपनी हैसियत का खयाल था और [illegible]ह भी पता था कि कमीज के नीचे चमड़ी का जो भी रंग है [illegible] उस कुत्ते-माली के भाई बंद के रंग के करीब का है. यह खय[illegible] मुझे कोंच रहा था कि अदब से खड़े रहो, लेकिन मैं बैठ गया. मेर[illegible]ास अपनी चमड़ी के रंग के अलावा अंग्रेजी में आनर्स का सर्टिफिकेट भ[illegible] था.

मिसेज सिन्हा नौकर को आवाज दे चुकी थीं. नौकर मेरे सामने की प्लेट पर टोस्ट और आमलेट रख कर जा चुका था. कांटे-छुरी वाली भोजन प्रक्रिया मेरी वर्गीय आदतों के इलाके के बाहर की, एक खास शहरी चीज थी, और बावजूद इसके कि पिछले दिनों हमारे शहर में नया एयरकूल सिनेमा हाल चालू हो गया है और वहां एक काफी हाउसनुमा जगह में दोसे के साथ छुरी-कांटा भी रखा जाता है, मैं अभी भी इस प्रक्रिया में पारंगत नहीं हो सका था. सो पहले तो अंडे का आमलेट देख कर मुझे अपनी जीभ की कमीनगी का अनुभव हुआ, लेकिन दूसरे पल से मैं सोचने लगा, यह तय था कि अगर मैं शहरी औपचारिकता की रक्षा के लिए कांटे-छुरी का उपयोग करता, तो आमलेट के साथ-साथ प्लेट के भी टुकड़े-टुकड़े हो जाते.

अचानक, मिसेज सिन्हा का मुंह की ओर उठा हाथ देख कर मुझे राहत मिली. वह टोस्ट हाथ में ले कर कुतर रही थीं—देखो भाई रमेश, ये है हमारी बेबी वाणी, इसने इसी साल कलकत्ते के

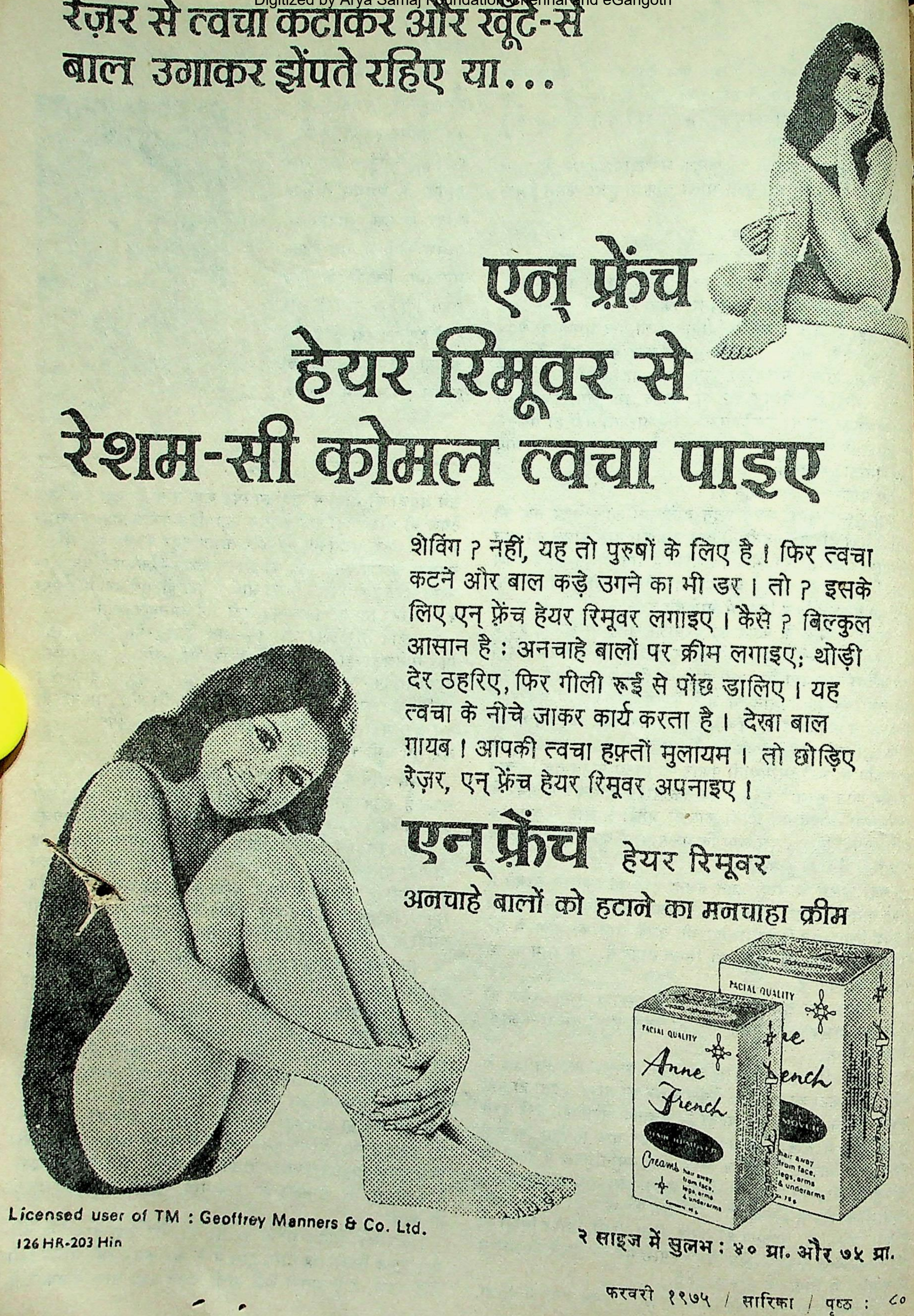

FACIAL QUALITY
Anne French
Cream
hair away from face, legs, arms & underarms

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूंटे-से बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर से रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब। आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए।

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर

अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

Licensed user of TM : Geoffrey Manners & Co. Ltd.

126 HR-203 Hin

२ साइज में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५ ग्रा.

डिसोजा-कान्वेंट से सीनियर कैंब्रिज किया है और अब की यहीं डिग्री कॉलेज में फर्स्ट इयर साइंस में दाखिला ले रही है, हम तो चाहते थे कि . . . मिसेज सिन्हा रुकीं. मेरा नाश्ता अभी शुरू नहीं हुआ था. मैंने अपना अकारण झुका हुआ चेहरा ऊपर उठाया. वाणी सिन्हा ने मुझे नमस्कार किया. वह अपनी सुंदर मां की सच्ची बेटी थी. उसके चेहरे में उसके घर का मेनू लिखा हुआ था.

——हम तो चाहते थे कि वह वहीं कलकत्ते में रह कर ह्यूमेनिटीज में ही कंटीन्यू करती, लेकिन बेबी कहती है कि मेडिकल में जायेगी, वे फिर रुकीं. उन्होंने पहले बेबी की तरफ, फिर मेरी तरफ देखा. बेबी मुसकरायी.

मैं सोच रहा था कि सबकी नजर बचा कर टोस्ट के टुकड़े के साथ आमलेट को मुंह में डाला जा सकता है. इससे टेबलवालों का सौंदर्यबोध भी नहीं भसकेगा और मेरी जीभ को अपने कमीने सपनों का चेहरा भी दिख जायेगा. मैंने अपने सोच को निरापद भाव से पूरा करने के लिए मिस्टर सिन्हा की तरफ देखा. वह चाय बना चुके थे और सिगरेट का कश ले रहे थे. बातचीत में उनका मत जरूरी था, ——अब तुम्हीं बताओ भई रमेश, आजकल मेडिकल में धरा क्या है, एक तो पहले दाखिले का चक्कर और दाखिला मिला तो छह साल की रटाई और पढ़ाई और उसके बाद शायद सरकार ने देश-सेवा के लिए भी कुछ साल तय कर दिये हैं, क्यों भई?

——जी, सिन्हा साहब को अपनी तरफ देखते हुए मुझे लगा कि अब शायद नाश्ता कर्म हो ही नहीं सकेगा. वह पता नहीं कितने सवाल करेंगे और इस जगह मेरे पास जी-जी के अलावा और कौन-सा शब्द है. मैं नहीं जानता था कि गरीबी की वजह से वोकाबुलेरी इतनी क्षीण हो जाती है.

इस सारी बातचीत का मोटिव अभी तक छिपा था. हाफ कंसील्ड, हाफ रिवील्ड वाली आर्ट अदा के साथ मिसेज सिन्हा ने कहा —— मेरी तो राय है कि ब्रिलियंट स्टूडेंट को कांपिटिशन में ही बैठना चाहिए, दूसरी जगह इतना खून जला कर पढ़ने के बाद भी आपको एडमिनिस्ट्रेटिव अफसरों की जी हुजूरी करनी पड़ती है और . . . ओह नो नो, नो टायगर नो. . . मैं चौंका. मिसेज सिन्हा के मग्न व्याख्यान के दौरान मैंने टोस्ट में आमलेट जमा कर हाथ ऊपर कर लिया था. पहला कौर अंदर जा चुका था. दूसरा जाने की तैयारी में था कि मैं चौंका.

मिसेज सिन्हा की साड़ी पर अपने पवित्र पंजे गड़ा कर उनका प्रिय टायगर खड़ा था और उनकी जांघ चाट रहा था. यह देख कर अव्वल तो मुझे किसी अश्लील पुस्तक में देखी तसवीर की याद आयी; और दुबारा मैंने सोचा कि मिसेज सिन्हा मुझे आमलेट खाने के लिए मना नहीं कर रही थीं.

टायगर को पुचकारते हुआ मिस्टर सिन्हा ने प्लेट में बचा टोस्ट का टुकड़ा उसकी तरफ फेंका और कहने लगे——इस साल म्युनिसिपल स्कूल में जगह खाली हो रही है, किसी तरह वहां लग जाओ तो. . . एम. ए. कर कराके. . . वरना इनके दफ्तर में तो. . . मिस्टर सिन्हा मुसकराये. मिसेज ने उनका साथ दिया. टायगर दुम हिलाता रहा. क्या मेरी कोई पूंछ है? सोचता हुआ मैं मि. सिन्हा के पीछे-पीछे उनकी स्टडी तक गया. वहां मैंने चिट्ठी ली. क्या मेरी कोई जुबान है, सोचता हुआ मैं सड़क तक आया और खोया-खोया-सा चलने लगा.

★ ★

एक लंबी सड़क पर सायकिल चला कर मुझे कचहरी तक पहुंचना था. चिट्ठी मेरी जेब में थी. टोस्ट का टुकड़ा मेरी आत्मा के पेट में था. आत्मा सायकिल चलाने में महारत हासिल करती हुई कहां जा रही थी?

मुझे याद आया, बाबूजी ने कहा था, रास्ते में रामौतार की दुकान पड़ती है, वहां से शक्कर खरीदनी है. कार्ड थैले में था. साहू के ट्यूशन के रुपये मेरी जेब थे. पत्नी की फर्माइश रह रह कर मेरे दिमाग में झनझना रही थी. इन सबके साथ, सबसे पहले मैं मुहल्ले के चौराहे की पान की दुकान पर रुका. मुझे जैसे किसी किरानी का इंतजार करना था और छुट्टी की दरख्वास्त पहुंचवानी थी कि वारदात हुई. वह कोई दुर्घटना नहीं थी. अभी, इस वक्त, जब मैं सोच कर याद कर रहा हूं, जब जाने कई दिनों बाद, इतनी थकान के बाद भी मुझे नींद नहीं आ रही है, तब यकायक मामूली दृश्यों की कतार मुझे एहसास के एक नये प्रदेश में छटपटा कर जीने का मौका दे रही है. अपने दिमाग को काम करता देखने की इस मनुष्य-इच्छा का आकस्मिक-उदय मुझे कहां ले जायेगा, मैं नहीं जानता.

चौराहे की पान की दुकान पर बैठने के लिए तख्ता था. उस कठियल सतह पर बैठ कर मैं सिन्हा साहब के बंगले को भूलना चाहता था. एक ट्रक दुकान के ऐन सामने खड़ा था. उसमें सीमेंट के बोरे भरे थे. तीन-चार कुली बोरों को लाद कर मंसाराम सेठ के गोदाम पर पहुंचा रहे थे. मैं पान की दुकान में दाखिल हुआ. पान वाले ने इशारे से पूछा कि क्या पान चाहिए. मैंने हां कहा और देखने लगा. वे काली पीठ वाले चेहराहीन मनुष्य थे. उन्हें, काम करते हुए नहीं थकने का, कभी नहीं थकने का वरदान प्राप्त था. इतने में एक शापग्रस्त अपवाद आया और तख्ते के नीचे फर्श पर बैठ कर बीड़ी सुलगाने लगा. उसने दो-चार कश लिये होंगे कि पान की दुकान के सामने वाले गोदाम से एक तोंद बाहर आयी और उसकी आवाज चौराहे में गूंज गयी——साले, वहां बैठ कर मस्ती मार रहा है, एक बोरा उठा कर पहुंचाने में घंटे भर लगायेगा, तो बगीचे का काम क्या तेरा बाप देखेगा?

आवाज अपने चेहरे के साथ पान की दुकान तक आयी. वह मंसाराम का प्रामाणिक पुत्र था. प्रमाण उसकी तोंद नहीं, उसकी जुबान थी. क्या हुआ? उसकी बीड़ी का क्या हुआ? मैं जब तक सोचूं, पान वाले ने मसालेदार मुसकान से कहा——कुछ तो रहम करो सेठजी, बेचारे सुबह से गधे की तरह ढो कर तुम्हारा गोदाम भर रहे हैं.

——तो कोई एहसान नहीं कर रहे हैं दादू. आदमी अपनी अक्ल से आदमी होता है, दो हाथ, दो पैर होने में ही हर गधा आदमी नहीं हो जाता.

मैं चिल्लाया. यह बकवास है. मैं गधा नहीं हूं. मैं सौ फीसदी आदमी हूं. मेरी पीठ पर सीमेंट का कोई बोरा नहीं ल[illegible] मैं सिर्फ कुछ पेट अपनी पीठ पर लादे हूं. मेरी पीठ पर एक बनियान है. और उसके ऊपर कमीज. मैं गधा नहीं हूं. मेरी सायकिल के हैंडल में राशन का थैला भर अटका है. मैं गधा नहीं हूं. थोड़ी देर बाद थैली में चार किलो शक्कर भरी होगी. और मेरी जेब में इस वक्त वकील साहब की चिट्ठी है.

लेकिन मेरी आवाज नहीं निकली. दरअसल मैं चिल्ला ही नहीं रहा था. कुछ शब्द बिना किसी मतलब के वहां थे, मैं उन्हें पीक के साथ निगल गया. मैं पान चबा रहा था. फिर पान वाले को एप्लिकेशन थमाते हुए मैंने कहा——राम सहाय आये तो उसे दे देना.

और उस दृश्य या वारदात को आंख में गिरे कचरे की तरह बाहर निकाल कर मैं सायकिल की सीट पर यथास्थिति में आ गया. □□□

हिंदी-विभाग
राउरकेला साइंस कालेज,
राउरकेला (उड़ीसा)

कबिरा खड़ा बजार में (१२)

• हरिशंकर परसाई

इस बार कबीरदास की भेंट अटलबिहारी बाजपेयी से

कबीर अटैची लेकर निकला तो वही कनछेदी बरामदे में बैठा दिख गया. मैंने कहा—कहो कनछेदी क्या कर रहे हो?

कनछेदी ने जवाब दिया—सोच रहा हूं.

कबीर ने कहा— अरे, तुम भी सोचने लगे! मत सोचा करो. बड़ी बुरी लत है. जिसे लग जाती है, दुबला हो जाता है. पर सोच क्या रहे हो?

कनछेदी ने कहा—देश के बारे में सोच रहा हूं.

कबीर ने कहा—यह और भी बुरी बात है. बड़े-बड़े नेता तो अपने ही बारे में सोचते हैं और यह पिद्दी कनछेदी इतने बड़े देश के बारे मे सोच रहा है.

कनछेदी ने कहा—यही सोच रहा हूं कि ईश्वर है या नहीं? और इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि ईश्वर है. ईश्वर न होता तो यह देश कभी का मर गया होता. इसे सिर्फ ईश्वर ही मरने से बचा रहा है—यही सबसे बड़ा सबूत है. पर तुम कहां चले?

मैंने कहा—एक और नेता से मिलने जो कई की तरह अपने को देश का भाग्य-विधाता समझता है—अटलबिहारी बाजपेयी.

कनछेदी ने कहा—अरे खतरनाक आदमी है. लच्छेदार भाषा और अदाओं में फंसाता है. दो घंटे भाषण उसका सुनो. बड़ा मजा आता है. पर घर जा कर सोचो कि इसने क्या कहा, तो तो जवाब निकलता है कि कुछ नहीं कहा. वह बस बोलता है. क्या? यह मत पूछो. बस मूंगफली खाते जाओ और भाषण सुनते जाओ.

कबीर ने कहा—वह मुझसे ऐसा नहीं बोलेगा, क्योंकि मैं 'पबलिक मीटिंग' नहीं हूं. ये ऐसे नेता लोग जब जनता को सामने देखते हैं तो कहते हैं—आज सुरन मोहि दीन्ह अहारा! जैसा हनुमान को देख कर सुरसा ने कहा था. पर इस हनुमान रूपी जनता का यह कमाल है कि—

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा,
तासु दुगुन कपि रूप दिखावा.

खैर चलूं. गाड़ी का समय हो रहा है.

कबीर अटलजी के कमरे में दाखिल हुआ तो यह पूछे बिना ही कि मैं कौन हूं,वे गवकने लगे—इस इंदिरा गांधी की तानाशाही ने...

मैंने रोका—अटलजी, मैं पबलिक मीटिंग नहीं हूं और तुम्हारे सामने माइक भी नहीं है. मैं कबीरदास.

अटल थोड़े हतभ्रम हो गये. कहने लगे—अरे साधु, मुझसे भूल हो गयी. पर यह बात बाहर नहीं फैलना चाहिए कि मैंने ऐसा किया. मेरी छबि बिगड़ेगी. बैठो-बैठो. कैसे आये?

मैंने कहा—यों ही. मिलने और बात करने.

अटल जी ने कहा—पर मैं ब्राह्मण हूं और तुमने ब्राह्मणों के खिलाफ बहुत कहा है. तुम शूद्रों से मिला करो.

मैंने कहा—शूद्रों से भी मिलता हूं. पर तुम ब्राह्मण ब्राह्मण भी एक नहीं हो. इंदिरा गांधी भी ब्राह्मण और तुम भी ब्राह्मण. और सुभद्रा जोशी भी ब्राह्मण जो बलरामपुर में तुम्हें चुनाव हराती थीं. आपस में क्यों लड़ते हो?

अटलजी ने कहा—यह राजनीति है. इसमें कोई किसी नहीं होता. तुम अपढ़ साधु को यह राजनीति समझ में नहीं आये तुम तो कहते हो—ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय! अक्षर-ढाई प्रेम में ही नहीं घृणा में भी होते हैं. हमारे विरोधी से घृणा ही करना चाहिए.

कबीर ने कहा—करो घृणा! पर यह बताओ, तुम 'शाखा' आये हो न?

अटल जरा तैश में बोले—तुम्हें क्या मतलब?

कबीर ने जवाब दिया—मतलब है—क्या तुम भी शाखामृग हो? यही जानना चाहता हूं.

अटलजी ने कहा—यहां कोई स्वयंसेवक नहीं है, वरना तुम्हें दिखा देता.

कबीर ने कहा—याने तुम 'शाखामृग' हो, तभी ऐसी बात साधु से कहते हो. क्या यही 'भारतीय संस्कृति' है, जिसका तुम नारा लगाते हो? भारतीय संस्कृति की क्या परिभाषा है?

अटलजी ने कहा—भारतीय संस्कृति कोई खाने की चीज नहीं. पीने की चीज नहीं. वह भारतीय है और संस्कृति है. समझे?

कबीर ने कहा—समझ गया. तो इस भारतीय संस्कृति में कबीरदास है कि नहीं?

अटल जी ने कहा—तुम जुलाहे बुनकर भारतीय संस्कृति में कैसे आ सकते हो? गुरुजी के शब्दों में तुम 'स्वकीय' नहीं 'परकीय' हो. तुम्हारा भारतीयकरण नहीं हुआ.

मैंने पूछा—पर इस 'भारतीयकरण' के सिद्धांत को प्रतिपादित करनेवाले बलराज मधोक से तुम्हारा क्या झगड़ा है? बेचारे ने एक पूरी किताब लिखी है, इस पर.

बाजपेयी ने कहा—वह समझता था कि वह 'थियरी' दे रहा है. मगर नेता तो अटलबिहारी बाजपेयी है.

मैंने कहा—इसलिए कि आया उसी जगह से, पर जनतंत्री होने का रोल अच्छा खेलता है.

अटलजी खुश हुए. फिर बोले—ये इंदिराजी हम लोगों को फासिस्ट कहती हैं. और हम इंदिराजी को फासिस्ट कहते हैं. यह 'फासिस्टवाद' क्या है?

कबीर ने कहा—पढ़ो. समझो. अपने देश की हालत देखो.

अटलजी बोले—इन हजारों लड़के-लड़कियों को जो नक्सलवादी हैं, जेलों में इतने साल बंद रखना क्या 'फासीवाद' (लोहिया की भाषा) नहीं है?

कबीर ने कहा—है. पर लाखों स्वयंसेवकों को छुरा, लाठी से लैस रखना, उनका आतंक के लिए उपयोग करना क्या फासीवाद नहीं है? फिर इन नक्सलवादियों से कबीर को कोई शिकायत नहीं है. पर अगर ये छूट गये, तो खतरा पहला तुम्हें है, दूसरा कांग्रेस को. वे पहले वर्गभेद को मिटायेंगे. और आपकी पार्टी तथा कांग्रेस पार्टी कहती है कि वर्ग हैं ही नहीं. तो इन नक्सली लड़के-लड़कियों का शत्रु कौन है?

अटलबिहारी थोड़े चौंके. बोले---म भी कुछ पढ़ा-लिखा इनके वर्ग-शत्रु हम लोग हैं. हां यह वर्गसंघर्ष है. पर लोहिया कई बार कहा था कि वर्णसंघर्ष भी है.

कबीर ने सीधा पूछा---एक नीचे वर्ण का सूदखोर क्या उस ह्मण को माफ कर देगा, जिसने उससे कर्ज ले लिया है? वह उस ह्मण को मार डालेगा पर बाद में दूसरे ब्राह्मण के चरण भी गा. वह धर्म के साथ धंधा भी निभाता है. कहां रहा, तुम्हारा र्णसंघर्ष? क्या बैंक से कर्ज इस कारण मिलता है कि वह ह्मण है? पर हां सामंती सभ्यता में इस ब्राह्मण का महत्व था, ब भी है. अब देखो न, हमारी अणु-विज्ञान सफलतावाले नों पारसी हैं---भाभा और सेठना 'ब्राह्मण भी होंगे. पर यदि म्हारे परम पूज्य (पूप्पू) गुरुजी की बात चलती तो किसी ह्मण मुंशी को वे एटामिक इनर्जी कमीशन का अध्यक्ष बना देते, योंकि भाभा और सेठना 'परकीय' हैं, मुंशी स्वकीय हैं. अटलजी, यह ब्राह्मण ही है जिसने बुद्ध काल के बाद रिसर्च नहीं होने दी. नागार्जुन के बाद कौन महान 'केमिस्ट' हुआ? मैंने एक बहुत बड़े अंग्रेज विशेषज्ञ की किताब पढ़ी है---'दी कान्क्वेस्ट आफ पेन'---याने आपरेशन के लिए दी जानेवाली दवा जो दर्द नहीं होने देती. उसने लिखा है कि 'एनेस्थीसिया' भारत में २५ सौ साल पहले इतना अच्छा था, जितना पश्चिम के पास १९२५ तक नहीं था. पर इसके बाद ब्राह्मणों ने कहा---चुप! सारा. ज्ञान हमारे पास है, पोथी में.

और पोथी बंद कर ली. फिर यह देश पैदा कर सका केवल शंकराचार्य, अरविंद. और कबीर जैसा जुलाहा, कुंभनदास कुम्हार, रैदास चमार! पर इस संस्कृति ने दूसरा नागार्जुन, दूसरा चरक, दूसरा वाग भट्ट पैदा नहीं किया. याने विज्ञान से यह संस्कृति अविज्ञान की तरफ बढ़ी है.

अब अटल बिहारी थोड़ा अधिक चौंके. कहने लगे--- कबीरदास तुम्हारी तरह कविता मैंने भी लिखी है. पर कविता से क्या फायदा? मैं किसी समय कवि-सम्मेलनों में बड़ी तालियां पिटवाता था. पर कविता से समाज को क्या होता है?

कबीर ने कहा---पर कविता को समाज से कुछ होता है. कविता को समाज से 'कुछ' नहीं होता, तो वह सार्थक कविता नहीं होती, अटलजी पर हम लोग राजनीति की बात करें न? इस समय रणनीति क्या है?

कबीर ने कहा---फिर तुम दूसरे की भाषा बोले. यह रणनीति वर्गसंघर्ष की भाषा है. यह कोई कौरवों का व्यूहचक्र नहीं है.

भारतीय लोकतंत्र के रक्षक जयप्रकाशनारायण (लोक नायक) के शब्दों में अटलजी बोले ---हमें पूर्ण क्रांति चाहिये.

मैंने पूछा---यह पूर्ण क्रांति क्या है? क्या हिंदू और मुसलमान उन लड़के-लड़कियों की रक्षा करता है, जो भाग कर शादी कर लेते हैं? तो फिर क्रांति विभाजित नहीं होती. क्रांति होगी तो पूरे सामाजिक जीवन में, इसे ही पूर्ण क्रांति कहते हैं और विप्र तुम शास्त्र मानते हो, मैं नहीं. पर शास्त्र वचन सुनना चाहो तो यह कि मार्क्स और लेनिन ने कहा है---क्रांति लगातार होती है.

बाजपेयी ने कहा---तुम तो साधु हो. बताओ न, मध्यावधि चुनाव होगा या नहीं?

कबीर ने कहा---सब लोग यही पूछते हैं. जब तुम्हें संसद पर विश्वास नहीं है तो मध्यावधि चुनाव के बारे में क्यों चिंतित हो?

तब अटलजी ने मेरे कान में कहा---अरे संसद से इस्तीफा देने, की घोषणा तो एक स्टंट था. कौन लगी-लगाई नौकरी छोड़ेगा? पर बोलो, क्या मध्यावधि चुनाव होगा?

कबीर ने कहा---नो बडी नोज दी लेडीज माइंड! पर तुम्हारी रणनीति क्या है?

अटलजी ने कहा---मुझे तो होना है अगला प्रधान मंत्री. अब यह जयप्रकाशी फौज दिल्ली पर हमला कर रही है. जब दिल्ली पर कब्जा कर ले तो पुकारे---अटलजी, आइये न! प्रधान मंत्री हो जाइये.

कबीर ने कहा---अटलजी, आपको किसका डर है? किसे पुकारा जा सकता है? मोरारजी भाई को?

अटलजी ने कहा---नहीं, वे बहुत बूढ़े हैं.

कबीर ने कहा---राजनीति में कोई बूढ़ा नहीं होता. मरने तक जवान रहता है. बहरहाल, किससे डर है?

अटलजी ने कहा---इस चौधरी चरणसिंह से! यह अभी से प्रधान मंत्री की तरह बोलने लगा है---शेडो प्राइम मिनिस्टर. कहीं यह चौधरी कूदकर दिल्ली के तख्त पर न चढ़ जाय! मैं अभी से सावधान हूं.

कबीर ने कहा---नहीं, आप ही बनेंगे. पर मध्यावधि चुनाव हो गये तो?

अटलजी ने कहा---यही तो मैं तुमसे पूछता हूं, साधु? क्या होंगे? अरे, 'पूर्णक्रांति' पूर्ण होने के पहले कहीं मध्यावधि चुनाव हो गये तो सारा खेल बिगड़ जायगा.

इसके बाद अटलजी रिहर्सल करने लगे. बोले---देखो साधो, मैं राष्ट्रपति फोर्ड से यों हाथ मिलाऊंगा. और कोसिजिन से यों. ऐसा हाथ न नेहरू ने मिलाया, न इंदिरा गांधी ने.

कबीर ने कहा---आप डटकर रिहर्सल करो. मैं चलता हूं.

अटलजी बोले---अरे, ठहरो.. यह तो बता जाओ कि मध्यावधि चुनाव होंगे या नहीं.

कबीर ने कहा---स्त्री का मन साधु भी नहीं जानता.

लौटा तो कनछेदी ने पूछा---कहो कैसे रहे अटलबिहा[illegible]?

मैंने कहा---अच्छे हैं. हाथ मिलाने का रिहर्सल कर रहे हैं. प्रधान मंत्री होना ह न?

□□□

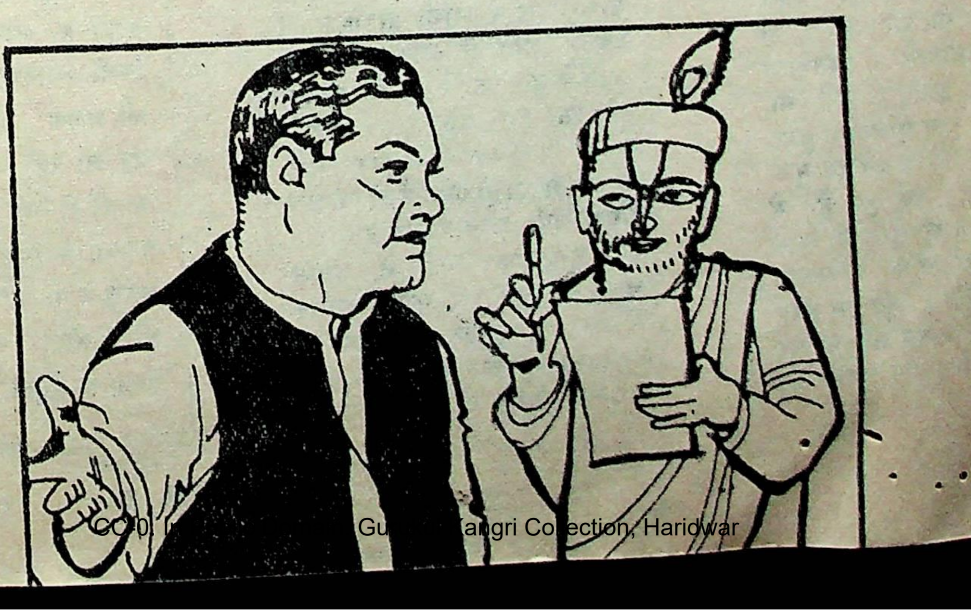

फिल्मी

मीनाकुमारी की डायरी: १३

चालीस मील लंबी मौत

•गुलज़ार द्वारा प्रस्तुत

नवंबर, '७३ अंक से सारिका में मीनाकुमारी की इस काव्यमय डायरी की शुरुआत की गयी थी, जिसे सारिका के लिए विशेष रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं मीनाकुमारी के अंतरंग मित्र व प्रसिद्ध शायर गुलजार. उन्हीं के शब्दों में "मीनाजी की डायरियों में उस कबीले का इतिहास भी है, जिसे लोग 'फिलम वाले' कहते हैं, और साहित्य भी. . .वे निजी ज्यादा हैं. लेकिन उस वक्त की झलक जरूर देती हैं, जिसमें वह जी रही थीं—या उनके अपने लफ्जों में 'मर रही' थीं." (इस रचना के किसी अंश का उपयोग करने से पहले श्री गुलजार, ९१ ए, कोजी होम, २५१, पाली हिल, बंबई, से अनुमति लेना जरूरी है.)

रात इस कदर गहरी नींद आयी कि सुबह भी बड़ी मुश्किल से आंख खुली. फिर सईद भाई और भाभी के साथ 'सलावा' झरना देखने गये. यह जगह सरधना के करीब है और मेरठ से पंद्रह मील दूर है. नहर गंगा के किनारे-किनारे वहां तक सड़क चली गयी है. इस नहर को देख कर चंदन को अकबर इलाहाबादी का वह मिस्रा (पंक्ति) याद आ गया : 'काटली साहब ने गंगा काट ली.' यह वही कटी हुई गंगा की नहर है जिसे 'काटली' साहब ने काटा था. देहातों से होते हुए सलावा पहुंचे. यहां का डाकबंगला देख कर वहीं रहने को जी चाहने लगा और अगली दफा के लिए प्रोग्राम फिलहाल मुलतवी (स्थगित) किया. बिजलीघर के ग्राउंड में गुलाब के फूलों का बाग है. इस कदर बड़े और खुशबूदार गुलाब के फूल मैंने पहली बार देखे. हमने फौरन एक गुलदस्ता बना लिया. वापस आते हुए जब सईद भाई वहां के निगरान (पहरेदार) बूढ़े को रुपये देने लगे तो उसने पुरानी रवायात (परंपरा) को बरकरार रखते हुए, यह कह कर लेने से इनकार कर दिया कि 'आप तो हमारे देहात में इतनी दूर से आये हैं, हमारे मेहमान हैं; बल्कि हमें आपका चाय-पानी करना चाहिए.'

फिर हम सरधना का मशहूर चर्च देखने गये जो सरधना की बेगम जेब-उलनिसा ने बनवाया था, चूंकि वह इसाई हो गयी थीं. बाद में उनका नाम जूलियाना हुआ. इस चर्च में इटली के बने हुए मुजस्समे (मूर्तियां) रखे हुए हैं. ये मुजस्समे बहुत खूबसूरत हैं. खास तौर पर एक औरत का मुजस्समा बहुत ही हसीन है. बुत इस तरह का है कि एक औरत सीढ़ियों पर सर झुकाये बैठी है और घुटनों तक उसका घूंघट कढ़ा हुआ है. उसके हाथ में एक सांप है. यह बुत संगमरमर का बना हुआ है और इस कदर नेचुरल दिखायी देता है कि बस! लेकिन मैंने महसूस किया कि इस चर्च में 'बेगम' ज्यादा हैं और मजहबियत कम. हर चर्च की तरह यहां का माहौल भी बहुत पुर-असर था. हर तरफ एक खामोशी-सी थी. न जाने कहां से और किस कोने से ऑर्गन की हलकी-हलकी आवाज आ रही थी.

वापसी में काफी देर हो गयी और कल की तरह आज भी चार बजे खाना खाना पड़ा. मुझे चांदी का, कानों में पहनने का जेवर 'मगरमच्छ' खरीदना था. शाम को जब हम बाजार जाने के लिए निकले तो दरवाजे पर अजीब हंगामा था. भला सईद भाई के यहां हम आयें और मेरठ वालों को पता न चले! अब तक घर में औरतों और लड़कियों के कई ग्रुपों से तो मिल चुकी थी, मगर बात आखिर बाहर चली ही गयी. भाभी चूंकि बुर्के में मेरे साथ थीं, इसलिए सोचा कि बचाव हो जायेगा. और हम हिम्मत करके बाजार को चल ही दिये. मगर यू.पी. में बचाव कैसे हो सकता है? कुछ लोग साइकिलों पर हमारी गाड़ी का पीछा करने लगे. उनमें से एक आदमी तो काफी गुस्ताख और बदतमीज था. वह खुद तो पीछे आ ही रहा था, इशारे से बाजार के और लोगों को भी बुलाता जा रहा था. चंदन को तो बहुत ही गुस्सा आया और उनके कहने से बाकर भाई ने उसकी साइकिल को टक्कर लगा दी. लेकिन गिर कर उठने के बाद फिर उसने वही हरकत की. फिर हम रुके. इसी परेशानी में एक गलत आदमी से बाकर भाई का झगड़ा भी हो गया. मैं तो बिलकुल घबरा गयी. लोग इकट्ठे होने लगे और मैंने बाकर भाई से वापस चलने को कहा. इस गुंजान बाजार में अगर यह तूफान खड़ा होता तो मुकाबला मुश्किल था. जान बचा कर भागे. भाभी ने कहा कि 'मगरमच्छ' वह मुझे भिजवा देंगी. वाकई सईद भाई और भाभी के इखलाक का जवाब ही नहीं. मैं तो इनकी मेहमान-नवाजी और मुहब्बत देख कर हैरान रह गयी. आज शाम को मैं और चंदन सईद भाई के वालिद और चचा साहब का बैंड का कारखाना 'नादिर अली ऐंड संज' देखने भी गये थे जो मकान के नीचे ही है. बैंड के सारे इंस्ट्रुमेंट्स (वाद्ययंत्र) यहां बनते हैं और सारे हिंदुस्तान में भेजे जाते हैं. यहां ज्यादा काम हाथों से होता है. मशीनें भी काफी हैं. कारीगरों को साज बनाते हुए देखना मुझे तो बड़ा दिलचस्प मालूम हुआ.

आज हमें घर से निकले हुए पूरा एक महीना हो गया. कल सुबह मेरठ से भी रुखसत हो जायेंगे.

(१-१२-५७)

सुबह जब गाड़ियों पर सामान लादने लगे तो सब लोगों को मालूम हो गया कि हम जा रहे हैं. मजमा इकट्ठा होने लगा. लोग शोर मचाने लगे. हमने यह तरकीब की कि अपनी दोनों गाड़ियों में काफिले को रवाना कर दिया और एक घंटे के बाद सईद भाई की गाड़ी में हम रवाना हुए. पहली गाड़ियों को जाते देख कर लोग छंट गये थे, इसलिए हमको परेशानी नहीं हुई.

सईद भाई हमें अपनी नौचंदी मैदान की कोठी दिखाने ले गये. नौचंदी मेरठ का मशहूर मेला है. उर्स होता है और मजार के कुछ फासले पर, मगर सामने ही, चंडी का मंदिर है. कहते हैं कि इसीलिए इस मेले का नाम 'नौचंडी' है. मेरठ तारीखी हैसियत से भी काफी अहमियत रखता है; क्योंकि 'गदर' यहां से ही शुरू हुआ था. और जिस जगह पहला आदमी हिंदुस्तान पर कुरबान हुआ, वहां अब अट्ठारह सौ सत्तावन की यादगार बनायी जा रही है, जो इसी साल, १९५७ के खत्म होने तक मुकम्मिल हो जायेगी. यह यादगार अशोक लाट की शक्ल में है.

मेरठ से विदा ले कर आगे चले. गढ़ मुक्तेश्वर के बाद ही गंगा पार करनी थी. कितनी सफेद और चमकीली रेत है गंगा की कि आंख नहीं ठहरती! पांच मील के पाट में से अब सिर्फ साठ कश्तियों के पुल के पाट में गंगा बहती है, क्योंकि इसकी बहुत-सी शाखें इधर-उधर फैला दी गयी हैं. कश्तियों के पुल पर लिखा था—'सूरज छुपने से सूरज निकलने तक यह पुल बंद रहता है.' यहां कुछ देर रुकना पड़ा. मजरौला के बाद हसनपुर इस रास्ते से हट कर आता है. इसका बोर्ड पढ़ कर मुझे 'दायरा' याद आ गयी, क्योंकि 'दायरा' में हसनपुर का जिक्र था.

यहां के बाद अचानक मेरी अजीब हालत हो गयी. हाथ-पैर ठंडे हो गये. दिल की धड़कन तेज हो गयी. गला खुश्क हो गया और अपनी घबराहट छुपाने के लिए मैं उलटी-सीधी हरकतें करने लगी; क्योंकि मेरा [illegible] और आखिरी घर अमरोहा [illegible] आ रहा था.

चंदन चुपके से मुझे दादा जी के मजार पर सलाम कराने के लिए लिये जा रहे थे. इतने बड़े बुजुर्ग के हुजूर में जाने से इनसान कांप ही जाता है. और फिर मैं तो पहली बार अमरोहा जा रही थी.

अपने इस घर को देखने का किस कदर शौक था मुझे! यहां के घरों, सड़कों, मोहल्लों के नाम मुझे इसी तरह याद हैं जैसे कि मैं हमेशा से यहां रहती रही हूं. अमरोहा स्टेशन को मैं इस तरह देख रही थी, जैसे इससे पहले मैंने कोई स्टेशन न देखा हो. (क्रमशः)

एक नज़्म

सूरज के जख्मों से रिसता लाल लहू
दूर उफक से बहते-बहते इस साहिल तक आ पहुंचा है
किरनें मिट्टी फांक रही हैं
साये अपना पिंड छुड़ा कर भाग रहे हैं
थोड़ी देर में लहरायेगा चांद का परचम.

रात ने फिर रण जीत लिया है
आज का दिन फिर हार गया हूं.

☐ **गुलज़ार**

CC-0. In Public Domain. Haridwar

● जतीनदास

राकेश के पहले / राकेश के सा
राकेश के बाद :
यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (८

● अनीता औलक

पिछले अंकों में आपने पढ़ा है कि देश विभाजन ने अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. घर जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी से भी परिचय बढ़ रहा था. राकेशजी के पत्र आने लगे. दोनों एक दूसरे के सामने खुलने लगे और स्पष्ट हो गया कि दोनों ही एक दूसरे को प्यार करते हैं. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगामा हो गया और कुछ फैसले किये गये. राकेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया लेकिन फिर भी कालेज के बहाने वे मिलते रहे. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये अब आगे पढ़िए. . . ●

हम सब ३१ अगस्त को राकेशजी के छोटे भाई से मिलने गये. उसे साथ ले कर हम लोगों ने रात बाहर खाना खाया. राकेशजी ने हम दोनों का परिचय भी करवाया था –– यह है वीरेन, मेरा छोटा भाई और यह है अनीता, तुम्हारी 'भाभी'. उसने मुझे हाथ जोड़ कर नमस्कार किया. लेकिन 'भाभी' नाम से तो घबरा गया था. इस घबराहट को मैंने तत्काल ही भांप लिया था. मेरा अनुमान ठीक ही निकला था क्योंकि राकेशजी इस बात से सहमत थे कि वह 'भाभी' नाम से अब बहुत एलर्जिक हो [illegible] है.

स्वीडिश खाते-खाते जब रात के बारह बज गये तो टेबल पर बैठे सभी लोगों ने वीरेन को हैपी बर्थ डे विश किया. पहली अगस्त को उसकी सालगिरह थी.

हम लोग उसे ३ अगस्त को मेरी सालगिरह का निमंत्रण दे कर विदा हुए. सालगिरह के दिन राकेशजी ने अपने कई मित्रों को सिर्फ इसलिए भी बुलाया था कि वह चाहते थे कि मैं सभी से मिल लूं–– अर्थात् वह अपने नये जीवन के बारे में सबको सूचित करना चाहते थे. अन्य दोस्तों के अलावा उस दिन श्री कृश्नचंदर, सलमा सिद्दीकी, ऐनी, मनहर, राजेंद्र अवस्थी और अब्बास साहब भी आये थे.

इस सालगिरह का दूसरा महत्व यह था कि अब मैं बालिग हो चुकी थी. इक्कीस की हो गयी थी.

यहां एक बात याद आयी. सालगिरह के दिन की बात है कि यह तो सभी जानते थे कि राकेशजी कितने फक्कड़ आदमी हैं, इसीसे कृश्नचंदरजी राकेशजी को ५०० रु. यह कह कर दे गये थे कि यह मैंने एक बार तेरे से उधार लिया था जब तू सारिका में था. तब का यह करजा मुझपर चढ़ा हुआ था जो आज मैंने उतारा है. जहां राकेशजी यह जानते थे कि कृश्नचंदर झूठ बोल रहे हैं वहां कृश्नचंदर यह भी जानते थे कि राकेशजी का ईगो वह किसी कीमत पर नहीं तोड़ सकते थे. फिर मन्नू जी ने भी ३०० रु. का चेक भेजा, लिख कर ––बहुत छोटी रकम है मिलते ही भूल जाना.

फिर एक-दो दिन बाद कमलेश्वरजी भी बंबई पहुंच गये, जैसा कि उन्होंने वादा किया था. वह सिर्फ यही देखने आये थे कि सब कुछ कैसा चल रहा है. उन्होंने पहुंच कर बहुत मजेदार किस्से सुनाये. उन्होंने बताया कि जिस दिन मैं घर नहीं पहुंची उस दिन मां कमलेश्वरजी के दफ्तर पहुंच गयी थीं. उन्हें धमकी देने लगीं कि वह उन्हें गिरफ्तार करवाने के लिए पुलिस ले कर आयी हुई हैं. तब कमलेश्वर चाय पी रहे थे. बोले––तो पुलिस क बाहर क्यों खड़ा किया हुआ है. अंद लाइए न –– आखिर चाय का वक्त भ तो हो गया. है. जब वह बहुत गिड़गिड़ायी कि वह बता दें कि मैं कहां हूं तो वह बोले– आप घबरायें नहीं वो दोनों भी बड़े आराम से बंबई के किसी - न - किसी होटल म चाय-वाय पी रहे होंगे. कहने के साथ उन्होंने मां के आगे चाय की प्याली रख दी.

एक और मजेदार सूचना जो कमलेश्वरजी ने आ कर दी वह यह कि पुलिस न मां का यह केस दर्ज करने से सरासर इंकार कर दिया था. यह कह कर कि अठारह साल की उम्र में तो व्यक्ति बालिग हो जाता है.

जहां मां को इस बात का शाक लगा होगा, वहां हम लोगों को भी कम नहीं लगा. बहरहाल कमलेश्वरजी हमें यह सलाह जरूर दे गये कि अभी काफी देर तक दिल्ली जा कर रहना हम लोगों के हित में नहीं होगा. इसीलिए हम लोग बंबई में ही रहने के लिए मजबूर हो गये थे. कमलेश्वरजी कुछ दिनों बाद दिल्ली लौट गये.

जिंदगी में पहले नंबर पर मेरे लिए लेखन है, दूसरे नंबर पर मेरे दोस्त और और तीसरे नंबर पर तुम––लेकिन तीनों

मेरे लिए आवश्यक हैं—यह एक ध्रुव त्य था.

हम जितनी देर बंबई में रहे राकेश किसी-न-किसी मित्र से घिरे ही रहे और ब कभी अकेले हुए तो आत्मलीन रहते तना कि हम दोनों एक दूसरे को सिर्फ तना ही जान पाये जितना जिंदगी शुरू रने से पहले जानते थे—और वह जानना, सा कि मन्नूजी ने मुझसे कहा था, कोई ानना नहीं था.

और वह घर, जिसके बारे में राकेशजी ने बात की थी, मुझे दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था. मुझे लगा कि जितना बड़ा चैलेंज मैंने उसे महसूस किया था वह आज कहीं उससे भी ज्यादा बड़ा था.

कैसे और कब उनसे कोई बात पूछूं या क्या करूं यही अपने में एक बहुत बड़ी समस्या हो गयी थी. इसलिए जितना थोड़ा समय भी मिलता उसमें हम सिर्फ एक दूसरे से उलझ कर ही रह जाते. फिर एक दूसरे को सिर्फ मनाने-संभालने की जद्दोजहद—अभी पहली गलतफहमी ही नहीं सुलझती कि दूसरी में उलझ जाते. जब भी कभी अलग होते तो सिर्फ एक दूसरे से शिकायत करते-करते ही अपने को फना कर देते. नतीजा, हमें कभी यह मौका नहीं मिला कि हम एक दूसरे के अच्छे पहलू को भी देखें, समझें. हमें सिर्फ इतनी ही फुरसत मिलती कि एक दूसरे को यह बता सकें कि हम दोनों में किस-किस चीज की कमी है.

सिर्फ इतना ही नहीं हम उन दिनों जिन परिवारों से संबद्ध थे वह लोग मुझे देख कर पहले ही दिन घबरा गये थे कि मैं उस दुर्द्धर्ष आदमी के साथ कैसे पूरी उतरूंगी. नतीजा कि मेरे एक-एक व्यवहार, एक-एक बात को ले कर चीमी गोइयां होने लगीं. मेरी किसी भी की गयी बात को मैग्नीफाइंग ग्लास से देखा जाता—नतीजा, मैं कोई व्यक्ति न हो कर केवल एक केंद्र बन कर रह गयी थी.

मुझे सिर्फ आस-पास के लोगों से ही पता चलता था कि राकेश क्या है, क्या नहीं है. उसे क्या पसंद है क्या नहीं है— यहां तक यह बात भी मुझे मित्रों से ही पता चली कि वह एक बहुत बड़े लेखक हैं. यह बात तो एक तरफ की थी—मुझे तो राकेशजी के मित्रों से उनके बारे में सब कुछ पता चलता रहा लेकिन मेरे बारे में राकेशजी तक कुछ भी पहुंचाने वाला कोई नहीं था. मुझे वहां कोई भी नहीं जानता था कि मैं क्या हूं—और शायद इस बात की जरूरत भी किसीने महसूस नहीं की.

यह बात पूरी तरह मान ली गयी थी कि अगर मैं राकेशजी के जीवन में आयी हूं तो सब कुछ सोच-समझ कर ही आयी होऊंगी—और वह सब कुछ क्या था, इसी पर शोध करते-करते मैं अपने आपको भूल गयी—और यहीं पर शोध समाप्त हो गया था—मैं राकेशजी को समझ गयी थी लेकिन यह बहुत बाद की बात है. अभी तक तो यही सच था, 'बस के दुश्वार है—'.

दीवाली से कुछ दिन पहले हम दोनों बंबई के पास माथेरान हिल स्टेशन चले गये. वहां राकेशजी ने एक बहुत बड़ा काटेज बुक करवाया था. दो दिन बाद उज्ज्वला भाभी (मिसेज वेदी) हमें खाने-पीने की ढेर सारी चीजें दे गयी थीं—दीवाली पास ही थी. फिर दिवाली के दिन भाई (मिस्टर वेदी) अपना कैमरा ले कर पहुंचे. हम तीनों ने एक बहुत ही प्यारी दीवाली शहर से दूर उन घाटियों में मनायी थी. वो दीवाली मुझे जिंदगी भर नहीं भूल सकती. मैं अंदर कमरे में रंगोली बना रही थी. भाई ने अंधेरे में दीयों की रोशनी में मेरी सालों तक याद रहने वाली दीवाली को कैमरे से कैद किया था.

बाहर राकेश जी दीये जलाते-जलाते दु:खी हो गये थे. वह मुझे अंदर से बाहर खींच लाये—भाई के कैमरे ने वहां भी मेरा पीछा किया. उस अंधेरे में प्रकाश देती मेरी परछाइयां निश्चित ही ठीक उतरी थीं.

फिर दीवाली के बाद सभी मित्र निमंत्रित किये गये. बासू-रिंकी और उनकी मौसी—श्री और श्रीमती वैद—श्री और श्रीमती कपूर—भाई-भाभी और बच्चे. एक मेला-सा लग गया था. कैसे दिन निकल गये, पता ही नहीं चला. कितना हो-हुल्लड़ हुआ, तोबा-तोबा.

धीरे-धीरे सब लोग चले गये—रह गये पीछे सिर्फ बासू—रिंकी. वह लोग भी जाने लगे तो राकेशजी ने तय किया कि हम लोग भी क्यों न कुछ दिनों के लिए बंबई हो आयें.

प्रोग्राम बन गया था—हम लोग सब एक साथ रवाना हुए. मैं उस दिन का डकन क्वीन का सफर कभी नहीं भूल सकती.

मैं और रिंकी उस पूरे सफर में अपने कंपार्टमेंट में ही बैठे बातें करते रहे. फिर अचानक रिंकी बोली—अरे, वो दोनों कहां हैं? फिर वह कंपार्टमेंट से निकल कर उन्हें ढूंढ़ने गयी. आयी तो बोली—वह दोनों उसी लड़की को घेरे डाइनिंग कार में बैठे हैं. आज मैं समझ [illegible] बासू को भी.

'उसी लड़की' से तात्पर्य उस एक लड़की से था जिसे स्टेशन पर सी-आफ करने पूरा माथेरान आया हुआ था. फिर जब गाड़ी रवाना हुई तो उस लड़की को सी-आफ करने में जो शोर उस स्टेशन पर मचा था उसमें इंजन की आवाज भी डूब गयी थी.

रिंकी और बासू 'दादर' स्टेशन पर उतर गये और हम लोग बंबई सेंट्रल पर. स्टेशन पर राकेशजी ने उस लड़की से जब मेरा परिचय कराया तो मैंने उसे 'विश' नहीं किया. फिर क्या था—घर जा कर जो हुआ, उसे सिर्फ कल्पना पर ही छोड़ :देना चाहिए.

अनीताजी : शादी के बाद पहला जन्मदिन

राकेशजी ने अपने सब मित्र इकट्ठ कर लिये थे और मुझे बीच में बैठा कर उन्होंने मुझे क्या कुछ नहीं कहा—क्या कुछ नहीं सुनाया. राकेशजी मुझे उज्ज्वला भाभी के पास छोड़ कर अकेले ही माथेरान चले गये थे. यह कह कर कि मैं इसी तरह बनी रही तो उन्हें मेरे से कोई लेना-देना नहीं है. मुझे भाभी के पास रहना है और वही सब कुछ करना है जो वह कहती हैं.

हमारी नयी जिंदगी का अंत यहां हो सकता था लेकिन नहीं हुआ. क्योंकि जिस घर की जरूरत की बात राकेशजी ने मुझसे की थी—उसी 'घर' की जरूरत कहीं मुझे थी.

राकेशजी से रिश्ता जोड़े मुझें छह महीने ही हुए थे—लेकिन उन छह महीनों में हम दोनों एक दूसरे से और भी बेगाने हो गये थे. यह अलग बात है कि जिस रूप को हमने एक दूसरे में पाया उसकी हम दोनों में से किसी को भी जरूरत नहीं थी. घर से चले थे हम तो खुशी की तलाश में—लेकिन कैसी नियति थी. कैसी विडंबना थी.

राकेशजी जब माथेरान से लौटे तो काफी बदले-बदले से थे—यों एक तरह से और भी बेगाने—उनसे मैं कोई बात भी कर सकती हूं ऐसा मुझे नहीं लगता था.

एक दिन वह मुझे बाहर एक होटल में ले गये.वहां बैठा कर उन्होंने मुझसे बहुत आत्मीयता से बात करने की कोशिश की, लेकिन हम लोगों के बीच अब तक इतनी खाई पैदा हो गयी थी कि बात नहीं बनी. उन्होंने जितने विश्वास के साथ बात करनी शुरू की उतने ही अविश्वास के साथ समाप्त भी हो गयी.

उस छिन से बात नहीं हो सकी और [illegible] यों के यों ही वापस घर लौट आये, इतना जरूर उन्होंने मुझसे कह दिया था कि हम लोग जल्दी ही एक फ्लैट अलग से लेंगे.जो हमने भाभी के घर से चार बिल्डिंग छोड़ कर ले भी लिया था.

इस सब में मैं आपको यह बताना भूल गयी कि करवाचौथ पर अम्मां ने इलाहाबाद से मुझे लाल साड़ी, सिंदूर और शगुन भेजा था. उसे पाने पर जो सुख मुझे तब मिला था वो आज नहीं भूलता. इसीसे जनवरी में जब राकेशजी दिल्ली श्री ओंप्रकाश जी की लड़की विनीता की शादी में गये थे तो प्रोग्राम यह तय हुआ कि मैं इस बीच इलाहाबाद जा कर अम्मां से मिल आऊं. उसके बाद राकेशजी मुझे इलाहाबाद से लेते हुए वापस बंबई आ जायेंगे.

अम्मा से मिल कर बड़ा सुख मिला था. वहां उनके पास कुछ दिन रहने से फिर से यह विश्वास मन में पैदा होने लगा था कि मैं भी किसीकी बीवी हूं, किसीकी बहू हूं. राकेशजी आये तो मुझसे रहा नहीं गया—ऐसा ही—ऐसा ही मैं एक घर चाहती हूं—जहां हम तीनों हों—बस.

रात हुई तो अंधेरे में राकेशजी टटोलते-टटोलते मेरी चारपाई तक आ गये. मेरे सीने में सिर छुपा कर वह चुपचाप उसे भिगोते रहे. एक बार फिर मन में विश्वास जागा था—आने वाले कल में.

हम दोनों को ही यह विश्वास हो गया था कि अम्मां के साथ रहने से हम दोनों को ही बल मिलेगा—शक्ति मिलेगी—एक मजबूत धरातल—एक 'घर' बनाने के लिए राकेशजी ने यह बात स्वीकार कर ली थी.

दोनों का ही मन नहीं कह रहा था अम्मां को छोड़ कर जाने का. कितना-कितना अच्छा लगता था मां का अंगीठी जलाना, उस पर उबलती दाल—फूलते फुलके फिर अम्मां के दोनों तरफ बैठ कर ताजा, ताजा फुलका खाना—फिर करारे करारे फुलकों के लिए लड़ना—और अम्मां के न्याय में विश्वास करना—सभी कुछ तो कितना अच्छा-अच्छा था.

अम्मां इतनी निश्छल और निर्मल थीं कि देखते ही बनता था. लगता था कि कोई कितना भी असंभव या दुर्लभ क्यों न हो, वहां आ कर बदल सकता है. वो सिर्फ प्रेरित ही नहीं करती थीं बल्कि शक्ति भी देती थीं—हर उसको जिसे उसकी जरूरत होती और हम, हम तो थे ही भिखमंगे—दर-दर भटकने वाले. . .

अम्मां से हम वादा करके आये थे कि हम उन्हें जल्दी ही अपने पास बुला लेंगे—अपने घर में. बंबई पहुंचे तो राकेशजी का वहां मन नहीं लगा. उन्होंने बहुत सोचा, फिर मुझसे बोले—चल, दिल्ली चलें.

दिल्ली में वही पहले वाला घर था. वहां पर कभी राकेशजी ने मुझसे पूछा था कि क्या मैं उस घर से कभी जाना चाहूंगी. उस घर को देखते ही कितना कुछ आंखों के आगे घूम गया. सब कुछ याद करके एक बार आंखें फिर भर आयीं—अपनी एक और ही प्रकार की असमर्थता लिये.

इस बार हम सब थे. अम्मां भी तार मिलते ही ठीक उसी दिन गयी थीं.

बीच की मंजिल पर अब कमले जी और गायत्री भाभी रहते थे. और बरसाती में हम तीनों ने एक छो घोंसला बनाया था. राकेशजी को अपो मैं सिर्फ इतना ही समझ पायी थी कि सुबह देर तक साते हैं इसलिए आस कोई चिड़िया भी नहीं फड़कनी चा इस एक बात को समझने के बाद मुझसे बहुत प्रकार की गलतियां होती रहती जिन्हें मैं बारबर कंठस्थ करती रहती कि फिर कभी न हों.

हर रोज मुझे लगता था कि मैंने राकेशजी को समझ लिया है कोई परेशानी नहीं रही, लेकिन हर दिन लगता था कि बस यही एक और समझने को रह गयी थी—बस, सब ठीक होगा. . .

दिल्ली पहुंच कर मुझे याद आया अगर मैं अपने बी. ए. की परीक्षा इस जू में नहीं दूंगी तो फिर कभी पंजाब वर्सिटी से प्राइवेट एपीयर नहीं हो सकू क्योंकि प्राइवेट कंडीडेट के लिए वह आ वर्ष था.

मैंने जब राकेशजी से यह बात तो वह मान गये. उस दिन जा कर मैं कित भी खरीद लायी.

जब कुछ समय ऐसे ही नि गया और फार्म भी चले गये राकेशजी को लगने लगा कि वहां मेरी पढ़ाई ठीक से नहीं हो पा रही. आ से अधिक समय तो मैं उनके इस या काम में ही लगी रहती फिर खाना बना और शाम को उनके मित्रों अटैंड करने में निकाल देती.

उन्होंने मुझे सलाह दी कि पढ़ाई के लिए बंबई चली जाऊं. वह मुझे काफी समय मिल जायेगा. लेकि जैसे ही मैंने उनकी बात मान ली, मैं देखा कि उनका चेहरा उतर गया था. कहने के बाद ही उन्हें लगने लगा कि उन्होंने गलत सलाह दी है.

वह नहीं चाहते थे कि मैं जाऊं लेकिन एक बार कह कर उसे वापस लेना उनके ईगो के खिलाफ था. मैं बंबई चली आयी.

—अगले अंक में—

जिस घर की राकेशजी को तलाश थी, क्या वह घर उन्हें मिल सका?

र्ग तथा वर्ग संघर्ष और समांतर साहित्य

● डॉ. रामवचन राय

भारतीय समाज स्वरूपतः सामंती रहा है. वह वर्ण और वर्ग के चौखटे में बद्ध हो कर किसी भी अज्ञात-कुलशील सामने प्रश्नचिह्न लगाता आया है. कर्म दुहाई देते हुए भी व्यवहार में वह कुल ही व्यक्ति की श्रेष्ठता का आधार नता रहा है. यही वजह है कि समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा अछूत के नाम पर सदियों से शोषित, पीड़ित और तिरस्कृत आजादी के बाद संविधान में इस दलित वर्ग के उत्थान के लिए कुछ प्रावधान रखे गये और इन्हें समाज में समान दर्जा दिलाने की बात उठायी गयी. किंतु आज तक हमारे समाज की सवर्ण मानसिकता ने इसे स्वीकार नहीं किया है.

दूसरी ओर गरीबी और अशिक्षा के कारण दलित-वर्ग के भीतर वर्ग-चेतना नहीं विकसित हो पायी है, जिससे वह अपने अधिकार की लड़ाई लड़ सके. व्यवहार में देखा यही गया है कि हमारे यहां वर्ग-चेतना के विकास के मार्ग में वर्ण सबसे बड़ी बाधा है. जब तक वर्ण की दीवार नहीं टूटती, वर्ग की लड़ाई तेज नहीं हो सकती. यहां की वर्ण-व्यवस्था भले ही कभी उदार रही हो; किंतु इसका संकीर्ण, घातक और घिनौना रूप ही हमारे सामने ज्यादा है. उच्च वर्ग हमेशा से सुविधाभोगी और अधिकारयुक्त रहा; अतः समाज में उसका प्रभुत्व बना रहा. हिंदुस्तान में यही (उच्च) वर्ण (उच्च) वर्ग के रूप में विकसित हुआ है. यह जन्मना अभिजात, सामंत और संपत्तिशाली है. इसके साथ नव-धनवान वर्ग को भी शामिल कर लेना चाहिए जो आजादी के बाद उद्योग-धंधे, ठेकेदारी और तस्करी के कारण बढ़ा है. दोनों ही समान रूप से समाज का शोषण करते हैं. ये अपने बचाव के लिए वर्ण को ढाल के रूप में इस्तेमाल करते हैं. यानी जब भी वर्ग पर हमला होता है, पूंजीपति गरीबों को अलग-अलग जातियों में विभक्त कर फूट डाल देते हैं और हमारी लड़ाई कारगर नहीं हो पाती. यही कारण है कि गरीबों और शोषितों का संगठन नहीं बन पाता; अगर कोई बनता भी है तो उसका नेतृत्व सवर्णों और धनवानों के हाथ में होता है और वे अपनी मर्जी के अनुसार उसका इस्तेमाल करते हैं.

साहित्य इस सामाजिक गैर-बराबरी, को पाटने में अपनी भूमिका निभा सकता है. किंतु अब तक इस दिशा में छिट-फुट प्रयास ही हुआ है. उसके चिंतन के मूल में वर्ण और वर्ग के संस्कार निहित रहे हैं. इसलिए दलितों और शोषितों के प्रति वह न्याय नहीं कर पाया है.

मराठी में दलित-साहित्य का जो आंदोलन चला है, वह परंपरागत सवर्ण और सामंती साहित्य की ही प्रतिक्रिया है.

हिंदी में कथा-साहित्य के माध्यम से इस वर्ग-चेतना का विकास हो रहा है. चूंकि कथा में घटनाएं प्रधान होती हैं और ये घटनाएं सामान्य आदमी के जीवन में निरंतर घटती रहती हैं, अतः जागरूक कथाकार इस सामाजिक सत्य को अनदेखा नहीं कर सकता. हिंदी कहानी आज अपनी यात्रा के जिस मोड़ पर है, वहां लेखन की अन्य विधाओं की तुलना में उसका ज्यादा लोकप्रिय होना अकारण नहीं है. आम आदमी के सुख-दुख और उसकी जीवन-चर्या से कहानी सीधे जुड़ती है. सच पूछा जाये तो आदमी से अलग कहानी का अस्तित्व भी नहीं. उसके मूल में संघर्षशील आदमी होता है और कहानी उसके अनुभवों, क्रिया-कलापों और संबंधों का दस्तावेज होती है.

यह एक जाहिर तथ्य है कि पूंजीवादी व्यवस्था की विकृतियों के फलस्वरूप सामाजिक संघर्ष तीव्र होता जाता है और ऐसी दशा में मानवीय संबंधों का विघटन होने लगता है. प्रेमचंद ने मानवीय संबंधों के इस विघटन को अपनी **'कफन'** कहानी में अत्यंत गहराई के साथ उपस्थित किया.

बाद की कहानियों में सामाजिक यथार्थ की जगह मनोविश्लेषण ने ले ली. जैनेंद्र, जोशी और अज्ञेय इस धारा के प्रमुख कहानीकार हुए, जिनमें वर्ग-चेतना का नितांत अभाव था. व्यक्ति की काम-कुंठाओं को कहानी का विषय बना कर इन लोगों ने एक वृहत्तर सामाजिक जीवन से अपने को काट लिया.

इसके बाद कमलेश्वर, यादव और राकेश ने कहानी को फिर से सामाजिक यथार्थ से जोड़ने की कोशिश की. किंतु यह मध्य वर्ग का यथार्थ था. इनकी कहानियों में घर-बाहर, दफ्तरों में अनेक तरह की समस्याओं से जूझते हुए लोग हैं. कमलेश्वर के अनुसार इस 'मरते हुए मध्यवर्ग की आखिरी सांसें कहानी में सन् '६४-६५ तक सुनायी देती रहीं'. इस बीच रेणु ने गांव को केंद्र बना कर वहां के जन-जीवन को कहानियों में उपस्थित किया. एक ओर **'रसप्रिया'** कहानी में पचकौड़ी, मृदंगिया और मोहना के माध्यम से वर्णाश्रित वर्ग-चेतना को अभिव्यक्ति दी, दूसरी ओर **'मैला आंचल'** में निम्न-वर्ग पर होने वाले सवर्णों के अत्याचार और शोषण के सजीव चित्र उपस्थित किये.

सामाजिक और आर्थिक स्वार्थों के संघर्ष के फलस्वरूप जो परिस्थितियां पैदा हुई हैं, उनमें जीवन की सच्चाइयां आज और अधिक नंगी हो कर सामने आयी हैं. कमलेश्वर ने इन स्थितियों का विश्लेषण करते हुए लेखन की दो अनिवार्य भूमिकाएं स्पष्ट की हैं — 'मूर्त्त प्रतिरोधी शक्तियों से सीधे संघर्ष करना और अमूर्त्त प्रतिरोधी शक्तियों को वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषित करके टकराना और संस्कार-बद्ध या उसका शिकार हो गये आदमी को उन गुंजलकों से मुक्त करना — लेखन की यही दो भूमिकाएं हो सकती हैं.'

कहानी में सन् '६७ के बाद ये भूमिकाएं साफ और स्पष्ट हुई हैं, और लड़ाई का असली मुद्दा सामने आया है. कामतानाथ, सुदीप, मधुकर सिंह, जितेंद्र भाटिया, से. रा. यात्री इब्राहीम शरीफ आदि की कहानियों में ये भूमिकाएं लक्षित होती हैं. सचमुच, यदि कहानी वर्ण और वर्ग के सामंती शिकंजे में फंसे आदमी की मुक्ति के लिए एक सार्थक लड़ाई लड़ सके, तो सामाजिक परिवर्तन की दिशा में यह बहुत बड़ा कदम होगा. □□□

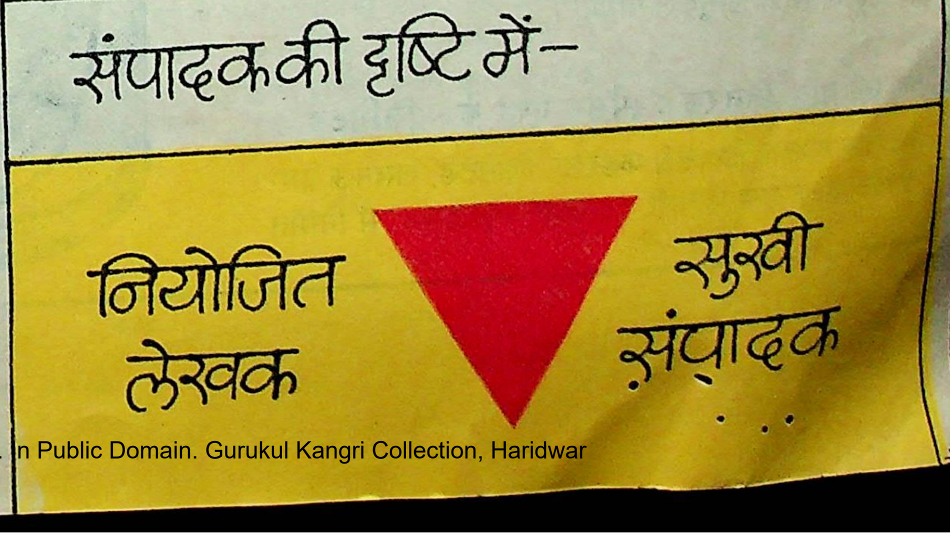

● व्यंग्य कल्पना : अरविंद मालवीय

सही पालन पोषण का आधार
पराग
(स्प्रे-ड्राईड)
शिशु दुग्ध आहार

parag
parag
INFANT MILK FOOD
(SPRAY DRIED)

'पराग' नवजात शिशु के सही पालन पोषण के लिए विश्वसनीय दु[illegible] आहार है। इसे आप शिशु को जन्म के बाद पहले ही सप्ताह से [illegible]कती हैं । स्वादिष्ट तथा शक्तिदायक 'पराग' पिलाने से शिशु सदा स्वस्थ और सक्रिय रहेगा।

ताज़े दूध से अत्याधुनिक स्प्रे-ड्रांइग प्रक्रिया द्वारा निर्मित, पलभर में तैयार प्रोटीन, विटामिनो (आठ), खनिज पदार्थों तथा अन्य पौष्टिक तत्वों से भरपूर पराग को आप अपने शिशु की कोमल पाचन शक्ति के अनुकूल पायेंगी।

एकमात्र वितरक : स्पैंसर एण्ड कं० लिमिटेड

प्रादेशिक कोआपरेटिव डेरी फेडरेशन लिमिटेड, लखनऊ द्वारा
इन्फैंट मिल्क फूड फैक्टरी, दलपतपुर (मुरादाबाद) में निर्मित

ASIAN/PIMF/82

नयी पौध

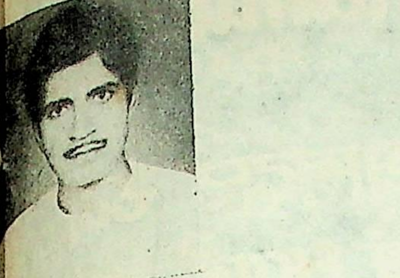

□ सदानंद झा

जन्म ७ जून १९४२ को झाझा, मुंगेर (बिहार) में. सात साल से लिख रहा हूं. रचनाशील रहूंगा— जब तक जिंदा हूं. उस क्रम में बहुत कुछ लिख चुका हूं. सात उपन्यास, दर्जनों कहानियां. कुछ कहानियां प्रकाशित जहां-तहां से. दो उपन्यासों की पांडुलिपि प्रेस में.

मेरी यह दृढ़ आस्था है—जो कुछ भी लिख रहा हूं, वह आम आदमी की जिल्लत है. व्यथा है. टीस है. देख रहा हूं. अनुभव कर रहा हूं. आज की अर्थ-व्यवस्था की चोट से बुरी तरह संत्रस्त है, घायल है—आम आदमी. इस कारण, वह तड़प रहा है. छटपटा रहा है आर्थिक स्वतंत्रता के लिए. यह पूर्ण सत्य है कि निम्न मध्यवर्गीय परिवार टूट रहा है. बिलट रहा है. सच यह है कि वह जानवर से भी बदतर जिंदगी गुजार रहा है. इस आर्थिक खींचातानी के बीच वह परिवार खिसकता जा रहा है सर्वहारा की तरफ. लेकिन दुर्भाग्य है यह कि वह वहां भी अपने पैर को जमा नहीं पाता है. भ्रमजाल को तोड़ नहीं पाता है. तब, इस भाग-दौड़ विघटन की प्रक्रिया के मध्यम से एक नयी क्रांति का जन्म होता है. मैं इस तथ्य को नजर अंदाज नहीं कर सकता हूं. मेरी कलम दोगली अर्थ-व्यवस्था के बूट के नीचे चरमराते आम आदमी की अभिव्यक्ति है.

सारिका पाठक-परिवार १९७५

● सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार-विजेता

इस बार न्यूनतम एक अशुद्धि पर ११ प्रतियोगियों को २०–२० रु. का पुरस्कार दिया जा रहा है जो हैं :

१. कृष्ण कुमार अग्रवाल, १।७३ मेडिकल कालेज हास्टेल, जबलपुर, २. वीरेंद्र कुमार जैन, कमरा नं. ३१, इंजीनियरिंग होस्टल नं. ३, जोधपुर (राज.), ३. कुंजबिहारी मिश्र, द्वारा नवीन कुमार भाटिया, सीमा बुक सेंटर, स्टेशन रोड, बीकानेर (राज.), ४. सुशील कुमार जैन ११८६, एन. एच. ४, एन. आई. टी. फरीदाबाद (हरियाणा), ५. पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव, माल गोदाम रोड, बजरिया बीना, बीना (म. प्र.), ६. जवाहर लाल अग्रवाल, स्टेट बैंक आफ इंडिया, कटनी (म. प्र.), ७. वर्धमान सकलेचा, प्रेसिम केमिकल डिवीजन, बिरला ग्राम, नागदा (म. प्र.), ८. ओमप्रकाश गुप्त, पलैट नं. ९ न्यू साहू बिल्डिंग्स, अनन्तपुर, रांची (बिहार), ९. भुवनेश वशोत्तर, द्वारा डा. ए. ए. नईम, शिंदे की गोठ, हुजरात पुल, लश्कर, ग्वालियर (म. प्र.), १०. हरचरन सिंह रेखी, ४।१०१, निरंकारी कालोनी. दिल्ली–१, ११. अवतार सिंह, १३३ सायर भवन, आजाद रोड, विले पार्ले (पूर्व), बंबई–५७.

और यह रहा इस बार का सर्वशुद्ध हल : १. एक और हत्या, २. स, ३. मजमेबाज, ४. पृ. ४८–४९, ५. गनेसीलाल, ६. जबलपुर, लखनऊ, गाजियाबाद, ७. पृ. १२।७९, ८. पृ. ७९, ९. आतंक भरा सुख.

सारिका कथा पहेली

ध्यान से कहानियां पढ़िए और २५० रु. पुरस्कार प्राप्त कीजिए

इस कथा-पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' के जनवरी ७५ के अंक पर आधारित हैं. डाक द्वारा कार्यालय में हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि ७ मार्च ७५ है. लिफाफे पर मात्र यह पता लिखिए :

सारिका कथा पहेली : फरवरी : पो. बा. २१३, बंबई–१

१. इस पुरुष-पात्र के प्रति बरबस ही सहानुभूति उमड़ आती है : बड़े बाबा ( ), दीनबंधु पाठक ( ), लगनराम ( ), जीनियस ( )

२. लक्ष्मी का जिक्र इस पृष्ठ पर आया है : ( )

३. इस पुरुष पात्र के प्रति आक्रोश से अधिक घृणा ही उपजती है : देवेन बाबू ( ), मास्साब ( )

४. इस स्थान का जिक्र इस अंक में आया है : सुलतानपुर ( ), रीवां ( ) पानीपत ( ), सतना ( ), हाजीपुर ( )

५. पृष्ठ ६६-६७ की लघुकथाओं में से जिसका व्यंग्य सबसे तीखा है, वह इस अक्षर से शुरू होती है : ( )

६. इन दो रंगीन पृष्ठों की साज-सज्जा और ले आउट सर्वश्रेष्ठ है : २४-२५ ( ), ३६-३७ ( ), ४८-४९ ( ) ६०-६१ ( ), ७२-७३ ( )

७. इस कहानी का शीर्षक इसके कथ्य के सर्वथा उपयुक्त है : बूहेवाली ( ), फिर एक बार ( ), घुन ( )

८. इस कहानी के प्रमुख पात्र का व्यवहार समझ पाना सरल नहीं : घुन ( ), यह सब अंतहीन ( ), हजारेवारी ( )

आयु. . . . . . .

नाम . . . .

पता. . . . .

. . . . .

Reshamwala
RAYONS

शानदार रंग
एवं छपाई का
अजब मिलाप

modipon
Makes Better Nylon & Polyester Yarn

Reslon®
Makes Better Synthetic Fabrics

Reshamwala RAYONS (SURAT) PVT. LTD.

सफ़र में थोड़ा सामान रखें

ज्यादा सामान से आपको और अन्य यात्रियों को परेशानी होगी।

मध्य रेल

AGMARK

खाने की
खालिस वस्तुओं
के लिए
एगमार्क
निशान देखिए

मक्खन, घी, तेल, पिसे
मसाले, गेहूं का आटा,
शहद, अंडे आदि खरीदते
समय एगमार्क निशान
जरूर देखिए ।

एगमार्क निशान
असली की पहचान

davp 4/414

अजी-साठे
माल्टएक्स
इतना स्वादिष्ट
होगा ही!
इसमें
माल्ट है न!

साठे माल्टएक्स बिस्कुट
SATHE MALTex BISCUITS
SATHE MALTex BISCUITS
साठे बिस्कुट

ताज़ा, करारा व स्वाद में अनोखा—वाह!

इस अनोखे स्वाद का कारण है मॉल्ट,
जो इस बिस्कुट में भरपूर है।
पचने मे हलका व पोषक सत्वों से भरपूर
यह बिस्कुट चाहे जितने भी खायें,
और खाने को जी चाहता है।
इसलिये कि इसमे मॉल्ट है!

IS:1011
आई. एस. आई मुहर वाले
माल्टएक्स का मतलब है अच्छी
किस्म की गारंटी वाले बिस्कुट

heros·SBC-53L HIN

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित
व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई-१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली-१; कलकत्ता आफिस : १३/१
और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०-ए, डिस्ट्रिक्ट रोड. सडबरी, वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.

पंजीयत सं. एम. एच. दक्षिण बंबई-३९९

शाही सवारी आधुनिक सवार...

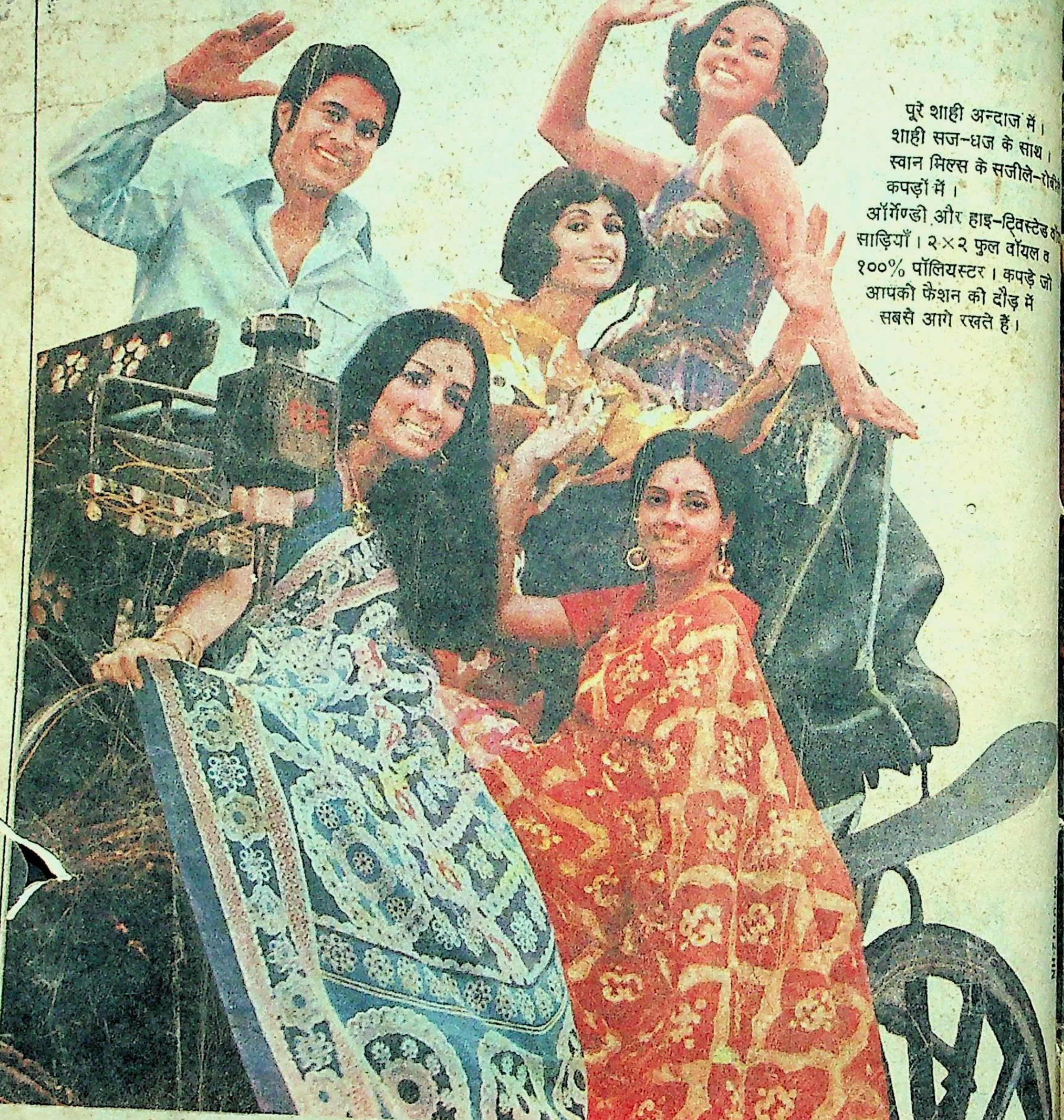

पूरे शाही अन्दाज में।
शाही सज-धज के साथ।
स्वान मिल्स के सजीले-
कपड़ों में।
ऑर्गेण्डी और हाइ-ट्विस्टेड
साड़ियाँ। २×२ फुल वॉयल व
१००% पॉलियस्टर। कपड़े जो
आपको फैशन की दौड़ में
सबसे आगे रखते हैं।

स्वान मिल्स के कपड़े-बस आपकी पसन्द **स्वान मिल्स**

खुदरा दुकानें – बम्बई : ३, खुशरो बाग, कोलाबा ☐ 'अप्सरा' १३०/१३४ ए, प्रार्थना समाज ☐ १५, ठाकरसी जीवराज रोड, शिवरी ☐ ४३४, न्यू मिल रोड, कुर्ला. कलकत्ता : २९, वॉटरलू स्ट्रीट ☐ २०८/२५, विधान सरणि. नई दिल्ली : एम-५, बाराखंबा रोड, कनॉट सर्कस ☐ मद्रास : ३६-डी, माउण्ट रोड. अमृतसर : ७, धरमसिंग मार्केट, साराधरी चौक ☐ अधिकृत विक्रेता–बम्बई : ए टू जेड टेक्स्टाइल डिपार्टमेंट स्टोर्स, कॉफर्ड मार्केट के सामने ☐ बम्बई स्वदेशी स्टोर्स, वेस्टर्न इंडिया हाऊस, सर पी. एम. रोड ☐ अहमदाबाद : टेक्स्टाइल इम्पोरियम, २२, हर्षिद चेम्बर्स, आश्रम रोड. ☐ वाराणसी : राजहंस टेक्स्टाइल्स, डी १३/२७, बांस फाटक ☐ स्थानीय विक्रेता-कलकत्ता : हनुतमल पूनमचंद, १३ जमनालाल बजाज स्ट्रीट.

15/4/75

क्र.सं. 158
15/4/75

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

समांतर कहानी विशेषांक-६

आम आदमी के आसपास: आज की कहानियां ● राही मासूम रज़ा, गंगाप्रसाद विमल, सुधा अरोड़ा, [illegible], कृष्ण भावुक, किशोर जाधव, आबिद सुरती, राजेंद्र किशोर, प्रेम कासलीवाल, राधेश्याम, बल्लभ डोभाल, सुदीप, बसंतकुमार और कमलेश्वर की [illegible] कहानियां ● भगवतीचरण वर्मा की [illegible]

एक पै
दुगुना फ़

धुनिक सवार...

पूरे शाही अन्दाज में।
शाही सज-धज के साथ।
स्वान मिल्स के सजीले-रोबी
कपड़ों में।
ऑर्गेण्डी और हा
साड़ियाँ। २×
१००%

With love from "Terene"

हो सकता है आपने कभी ऐसा न सोचा हो। लेकिन यह तो आप जानते ही हैं कि 'टेरीन'® की पैंट, एक साधारण पैंट से कहीं ज़्यादा टिकाऊ है। सच पूछिए तो 'टेरीन' तीन गुना ज़्यादा टिकाऊ है। माना कि पैसे कुछ अधिक लगते हैं लेकिन फ़ायदा इससे ज़्यादा होता है। इसीलिए ख़रीदते समय अगर आप कपड़े पर 'टेरीन' ट्रेडमार्क देख लें तो आपको फ़ायदा ही फ़ायदा है।

आप कई तरह से बचत करते हैं। 'टेरीन' हो तो आप लॉण्ड्री के भारी ख़र्च से बच जाते हैं। 'टेरीन' कपड़े आसानी से घर ही पर धोये जा सकते हैं और इनके लिए इस्त्री का भी झंझट नहीं।

कपड़े पर केवल 'टेरीन' ट्रेडमार्क देखकर ही आप इसकी गुणवत्ता का पूरा भरोसा कर सकते हैं।

TERENE

® 'टेरीन'—केमिकल्स एण्ड फ़ाइबर्स ऑफ़ इंडिया लिमिटेड का रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क है।

CHAITRA-CAFI-312 HIN

सांस में दुर्गंध जुदाई कराये...

कोलगेट इनको फिर से मिलाये

COLGATE
DENTAL CREAM

अधिक सफ़ेद दांतों, अधिक स्वस्थ मसूढ़ों व मुंह में अधिक ताज़गी के लिये **कोलगेट टूथ ब्रश** इस्तेमाल कीजिये १६ विभिन्न किस्मों में —
आपके परिवार में
हरेक के लिये
अनुकूल।

कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की दुर्गंध रोकिये... दंतक्षय का दिनभर प्रतिकार कीजिये!

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल ख़त्म कर देता है और खाना खाने के तुरंत बाद कोलगेट विधि से दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का—अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत–मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक कीटाणुओं को दूर कर देता है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

ज़्यादा साफ़ व तरोताजा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए...
दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही खरीदते हैं।

यह रहा नया स्वादिष्ट घी
जिसे कहते हैं

विजया घी

बिल्कुल घर में बने घी जैसा

गुणों में उत्तम...
कीमत में कम

AGMARK
Vijaya
GHEE

हालांकि यह घर में नहीं बनता लेकिन फिर भी आपको लगता है जैसे यह आपके घर में ही बना है क्योंकि विजया घी भरपूर तत्त्वोंवाले ताज़े दूध से आधुनिक फैक्टरी में बनाया जाता है. इसमें विटामिन भी होते हैं जो अच्छी सेहत के लिए आवश्यक हैं.
पोषक तत्त्वों से भरपूर...गाढ़ा और स्वादिष्ट... बस यही है
विजया घी
उत्पादक : आंध्र प्रदेश डेरी डेवलपमेन्ट कॉर्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड,
लालापेट, हैदराबाद ५०० ०४०
विजया घी पर उत्तमता का चिन्ह 'एग्मार्क' भी लगा होता है.
यह वैज्ञानिक ढंग से हानिरहित डिब्बों में बंद किया जाता है.
एकमात्र घरेलू घी — जो घर में नहीं बनाया जाता.

ANDHRA PRADESH
DAIRY DEVELOPMENT CORPORATION
PRIVATE LIMITED

kalpa/apd/1/75

बीमेदारों के हित के लिए प्रकाशित

आप
अपने जीवन बीमा एजेंट का पता नोट कर लीजिए

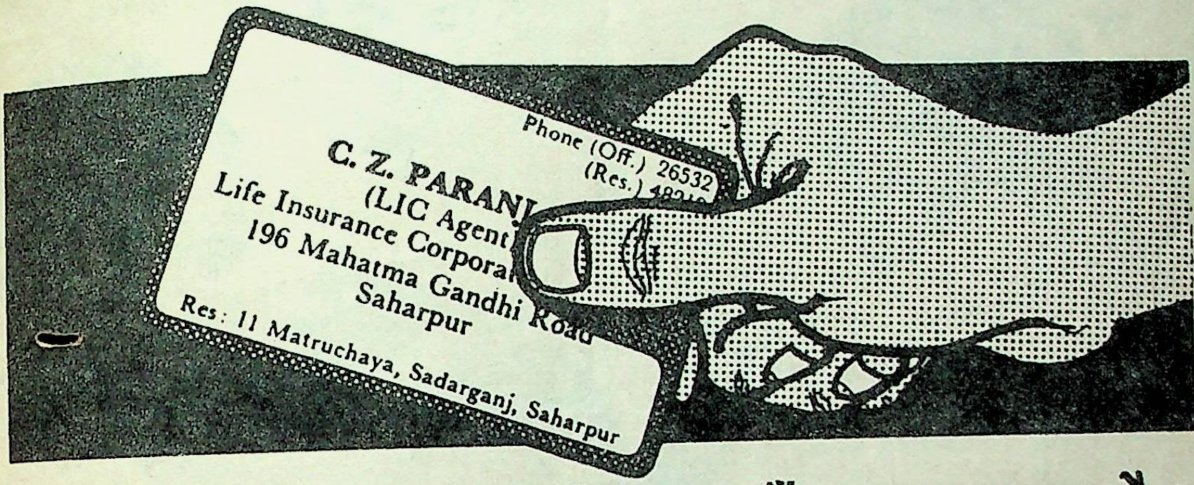
Phone (Off.) 26532
(Res.) 4821
C. Z. PARANJ
(LIC Agent
Life Insurance Corpora
196 Mahatma Gandhi Road
Saharpur
Res: 11 Matruchaya, Sadarganj, Saharpur

वह आपकी बीमा संबंधी सभी समस्याएँ हल कर सकता है।

जीवन बीमा एजेंट आपका मित्र है। पालिसी की अवधि पूरी होने तक आपकी सेवा करना उसका कर्तव्य है। उससे सहायता की अपेक्षा करना आपका अधिकार है।......अतः उससे सम्पर्क बनाये रखिए। जीवन बीमा निगम से पत्र व्यवहार करते समय उसकी सलाह लीजिए। यदि आप और बीमा कराना चाहते हों तो उससे मिलिए, वह अवश्य आपकी मदद करेगा।

बहुत-से दावों के निपटारे में इसलिए विलम्ब लगता है कि उससे संबंधित काग़जातों की पूर्ति समय पर नहीं की जाती। इस बारे में क्या-क्या कदम उठाने होंगे इसकी पूरी जानकारी जीवन बीमा एजेंट आपको देगा। इसमें अपने वारिसों के नाम दर्ज़ करना, आयु का प्रमाण-पत्र भेजकर अपनी आयु प्रमाणित करा लेना, समय पर ही प्रीमियम अदा करना और अपने परिवर्तित पते की सूचना निगम के उस कार्यालय को देना जो आपकी पालिसी की सेवा करता है, आदि कई बातें सम्मिलित हैं।

जिस एजेंट से आपने पालिसी ली है उसी से सहायता लीजिए। उसकी तत्पर और तत्काल सेवा से आपकी पालिसी, नियमानुसार, अच्छी हालत में चालू रहेगी। आवश्यकता पड़ने पर निगम के निकटतम कार्यालय से सम्पर्क प्रस्थापित कीजिए।

लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन आफ इण्डिया

RADEUS/LIC/AS-6

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं

सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

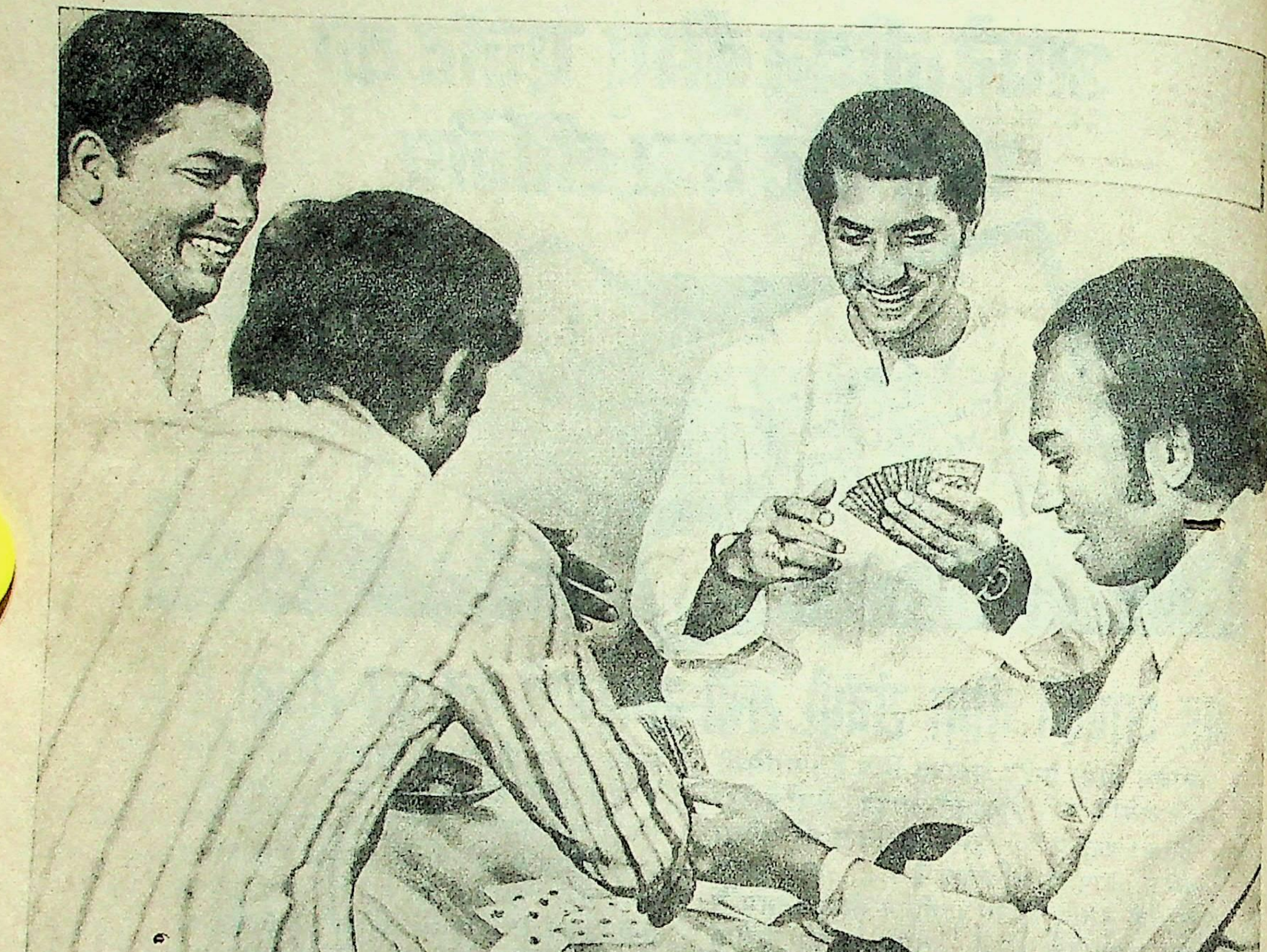

२ ऐस्प्रो लीजिये

माइक्रोफ़ाइन्ड **ऐस्प्रो** दर्द को जल्दी खींच निकालता है

ASPRO

Nicholas

A.G.52 HN

कहानियां

सुधा अरोड़ा : दमनचक्र : १२
सुदीप : अंतहीन-दो : १७
रामसरूप अणखी : एमरजेंसी : २०
गंगाप्रसाद विमल : उसकी पहचान : २४
कृष्ण भावुक : व्याख्याकार : २८
किशोर जाधव : अपाहिज : ३६
अबिद सुरती : सड़क के उस पार : ३८
राजेंद्र किशोर : अग्निरेखा : ४८
प्रेम कासलीवाल : विदेश : ५६
राही मासूम रजा : एम. एल. ए. साहब : ६०
प्रदीप पंत : आम आदमी का शव : ६६
राधेश्याम : अथवा : ६८
बसंतकुमार : सांप : ७२
बल्लभ डोभाल : कोई एक आवाज : ७६
कमलेश्वर : इतने अच्छे दिन. . .: ८०

विशिष्ट कहानी

भगवतीचरण वर्मा : मोर्चाबंदी : ४०

लघुकथाएं

मुकुंदमाधव मेहरोत्रा : नेता और आदमी : १६
लक्ष्मण भंभाणी : समय की बात ; उलटी गंगा : ३४
भुवनेश दशोत्तर : नौकरी : ३४
वीणा गुप्ता : वास्तविकता ; मूल्यांकन : ३५
कुंजबिहारी मिश्र : चुनाव-यज्ञ : ३५
मुकुंदमाधव मेहरोत्रा : भूख और वित्तमंत्री : ६५
रामदेव आचार्य : डाइयोजिनीज और अलेग्जेंडर : ७९

विशेष टिप्पणी

ललितमोहन अवस्थी : वैचारिकता के राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ : ८८

स्थायी स्तंभ

मेरा पन्ना : कमलेश्वर : ८
पाठकीय : १०
कबिरा खड़ा बजार में : हरिशंकर परसाई : ४६
फिल्में : मीनाकुमारी की डायरी; नज्म : गुलजार : ८४
चंद सतरें और : अनीता औलक : ८६
व्यंग्य-विचार : कुलदीप भंडारी : ८९
कृतियां : मधुकर सिंह : ९०
नयी पौद : ९१
सारिका कथा-पहेली : ९१

- आमुख : महेंद्र और सूरज एन. शर्मा

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका
मार्च, १९७५
वर्ष : १५; पूर्णांक : १६६

समांतर कहानी विशेषांक-६

इस अंक के सज्जाकार

इस अंक की सज्जा के लिए हमने एक छविकार—चंद्रशेखर कामकर, तथा एक चित्रकार—सतीशचंद्र—की रंगीन पारदर्शियों और चित्रों का इस्तेमाल किया है. अपने-अपने क्षेत्र में दोनों ही कलाकार पर्याप्त तेजी से उभर कर आ रहे हैं.

बेलगाम, महाराष्ट्र में जन्मे कामकर ने बंबई के जे. जे. स्कूल से ललित कला में डिप्लोमा लिया है तथा आजकल एयर इंडिया में सहायक मुख्य-कलाकार के रूप में काम कर रहे हैं. इन्होंने काफी देश-भ्रमण किया है.

१९४१ में जन्मे सतीशचंद्र ने लखनऊ के गवर्नमेंट कॉलेज से ललित कला में स्नातकोत्तर उपाधि ली है. अब तक अपने चित्रों की १० प्रदर्शनियां कर चुके हैं और इनके चित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है.

चंद्रशेखर कामकर
सतीशचंद्र

● संपादक : कमलेश्वर
● मुख्य-उपसंपादक : आनंदप्रकाश सिंह
● उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
● कार्यालय - सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

मेरा पन्ना

आज का यथार्थ : समांतर संसार-(६)

सवाल नैतिकता का भी है.

करुणा, समन्वय और संस्कार के साथ ही नैतिकता का प्रश्न भी उठता है. इसे टाला नहीं जा सकता. विशेष रूप से इसलिए कि नैतिकता को हमेशा हम व्यक्तिबद्ध हो कर देखते रहे हैं. लगातार जोर आदमी की नैतिकता पर रहा है, क्योंकि हम नेक होने को ही नैतिकता का पर्याय मानते रहे हैं या सदाचार को उसका स्थानापन्न बनाते रहे हैं. यह अकारण नहीं हुआ है. साधु, सदाचारी और नेक होने की जरूरतें मूलतः धर्ममूलक धारणाएं ही रही हैं, वे सामाजिक आचारसंहिता के रूप में चाहे कुछ या काफी असर भी डालती रही हों, पर कुल मिला कर हमारे समाज के पास नैतिकता का कोई साफ सक्रिय सामाजिक संबोध (कॉन्सेप्ट) नहीं रहा है.

यह तब तक तो चलता था, जब तक देश पराधीन था या उससे पहले भी, जब आदमी इतनी ज्यादा संश्लिष्ट संस्थाबद्ध जिंदगी नहीं जी रहा था, पर आज की संश्लिष्ट समाज-संरचना और आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक संस्थाओं के उदय के साथ यह धर्ममूलक, व्यक्तिगत या व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की नैतिकता की धारणा कद में बहुत छोटी पड़ रही है, क्योंकि आदमी और सभी संस्थाओं के संबंधों के कद बहुत बढ़ गये हैं. अब धर्ममूलक नैतिकता की धारणा उन विकसित और उलझ गये संबंधों को नहीं नाप पा रही है जो इधर पैदा हुए हैं.

व्यक्ति और व्यक्ति, व्यक्ति और शक्ति (सत्ता), वर्ण और वर्ण के संबंधों की नैतिकता की धारणा को तो धर्म ने गलत या सही रूपायित किया है, पर वहीं तक, जहां तक आम आदमी को प्रजा माना गया है और उससे उसकी स्वतंत्रताएं समाज और सत्ता के हित में समर्पित करवायी गयी हैं और यह माना गया है कि अपनी स्वतंत्रताओं (या अधिकारों) का उत्सर्ग करके ही एक समाज-प्रणाली को विकसित किया जा सकता है. शायद यह सब तब तक तो ठीक था जब राजा राजा था और प्रजा प्रजा थी.

लेकिन जब प्रजा प्रजा नहीं रही— वह स्वतंत्र हो कर स्वयं अपनी नियामक बनी तो प्रजातंत्र की प्रणाली के लिए उसे फिर अपनी स्वतंत्रताओं को एक बदले हुए संदर्भ में त्यागना पड़ा— यानी अपनी 'स्वतंत्रताएं' प्रजातंत्रीय सं को प्रदान कीं.

इन दो संदर्भों में आज की नैति का सवाल उठता है. यह सवाल पिछले कुछ वर्षों की परिधि तक नहीं रह सकता, इसके लिए हमें उस में भी जाना पड़ेगा जब प्रजा प्रजा क्योंकि सदियों से आदमी द्वारा अर्पित गयी इन 'स्वतंत्रताओं' का विपुल भयानक रूप से बड़ा भंडार आज समाज के पास मौजूद है. इस भंडार जमा की गयी 'स्वतंत्रताओं की पूंजी' फैलाव इतना ज्यादा है कि इससे आदमी के मन में उठते प्रश्नों को दिया जाता है. और उसे यह बताया है कि तुम्हारे नाम पर तुम्हारे पूर्वजों स्वयं इन 'स्वतंत्रताओं' को समर्पित था या कि इनका उत्सर्ग किया था.

अब आज उन सदियों का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है (साहित्य इतिहास) जो यह कह सके कि ये 'स्व ताएं' समर्पित नहीं की गयी थीं व सुपुर्द की गयी थीं. या कि समर्पित

करवा ली गयी थीं.

उस दौर में अपनी स्वतंत्रताओं को पित या सुपुर्द करके जो कुछ आम मी ने हासिल किया, वह कितना अनै- था, यह इसी बात से जाहिर है कि समाज-व्यवस्था को टूटना पड़ा उसे दूसरी तरह की समाज-व्यवस्था लिए स्थान छोड़ना पड़ा. अगर वह स्था आदमी के हितों के विपरीत ली गयी होती, तो प्रजातंत्र की स्थापना कोई जरूरत नहीं थी.

प्रजातंत्र में आते ही आदमी अपनी त्रताओं (या कि अधिकारों) को तंत्रीय संस्थाओं के सुपुर्द करता है, राजकाज चलाने वाले उसके द्वारा किये गये अधिकारों के तहत राज- चलायें, आर्थिक संरचना करने वाले हित में सही आर्थिक तंत्र का निर्माण आदि. . . ताकि आदमी निश्चित कर अपनी आत्मिक और पारिवारिक गी जी सके. आम आदमी की इतनी आकांक्षा होती है. पर अब उसके जीवन सुख पड़ोसी, रिश्तेदारों या दोस्तों से हुआ नहीं है — उसका सुख उन ओं पर निर्भर करता है, जिन्हें उसने अधिकार सुपुर्द किये हैं. इसलिए के संदर्भ में यह समझ लेना बेहद री हो गया है कि धर्ममूलक (व्यक्ति र व्यक्ति की) नैतिकता का संकट ण होते हुए भी उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना दारुण और महत्वपूर्ण उस तकता का संकट है जो आदमी तथा के द्वारा सुपुर्द किये गये अधिकारों शक्ति से चलने वाली संस्थाओं बीच उत्पन्न हो गया है. अत: यह जा सकता है कि धर्ममूलक नैति- ता की व्यक्ति-केंद्रित धारणा को जब समाजमूलक नैतिकता के जन-केंद्रित बोध में बदला नहीं जाता, तब तक आज सही नैतिक प्रश्नों तक पहुंचा ही नहीं सकता.

आज का नैतिक संकट मात्र इतना नहीं है कि कुछ व्यक्ति बेईमान हो गये आज का सही नैतिक संकट यह है कि जातंत्र के तहत जिन संस्थाओं और यवस्थाओं को जन्म दिया गया — वे ईमान हो गयी हैं. और बेईमान हो यी इन राजनीतिक-आर्थिक संस्थाओं र से आदमी का यकीन उठ गया . बेईमान व्यक्तियों ने इन संस्थाओं को हले दूषित किया और अब ये संस्थाएं ईमान लोगों को पैदा करने वाली मशीनों तब्दील हो गयी हैं.

इसलिए नयी नैतिकता की जरूरत हमें हर क्षेत्र में है! चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या आर्थिक संरचना का या सामाजिक न्याय का. सामाजिक अन्याय का जितना गौरवशाली इतिहास इस भारत नाम के देश के पास है, उतना तो किसी व्यवस्था और देश के पास है ही नहीं!

क्या कारण है कि आज हर संस्था के लिए, हर व्यक्ति के लिए या किसी भी उठाये जाते कदम के लिए आदमी के मन में शक घर कर गया है? क्या बात है कि किसी बात पर यकीन नहीं आता? यह क्या हुआ है अपने दौर के इस आदमी को, कि वह 'विश्वास के ह्रास' के इतने बड़े संकट को झेलता जा रहा है, पर व्यक्तिगत नैतिकता के पैमानों को समयगत नैतिकता के प्रश्नों में बदलने से फिर भी कतरा रहा है!

नैतिकता के ह्रास का यह जो भयानक संकट आज मौजूद है, उसने आदमी को इस कदर अकेला और शंकाग्रस्त कर दिया है कि वह सिवा अपने, किसी और के ऊपर विश्वास टिका नहीं पाता. और स्वयं अपनी नैतिकता के बारे में भी वह इतना दृढ़ नहीं रह गया है कि किसी भी निर्णयात्मक स्थिति में वह खुल कर 'नहीं' कह सके, सिर्फ कह ही न सके, बल्कि उस 'नहीं' पर लगातार टिक सके. ऐसा नहीं है कि 'नहीं' कह सकने वाले लोग नहीं हैं. पर जब नैतिकता के व्यक्तिगत मानदंड ही कारगर न रह गये हों, तब उस व्यक्ति का 'नहीं' कह सकना कितना कारगर रह जाता है? यानी इस व्यक्तिगत 'नहीं' को जब तक व्यापक और मूल्यगत 'नहीं' का रूप नहीं मिलता, तब तक यह आदर्शवादी संकट यथार्थ की जमीन पकड़ ही नहीं पायेगा. गलत की 'नैतिकता' सही की नैतिकता को बेकार करती जायेगी और आदमी अपने इस एकांत संकट को लिये हुए बुझता चला जायेगा. 'नहीं' कह सकने वाले अकेले पड़ते जायेंगे और वे संस्थाएं अधिक क्रूर और बेलगाम होती जायेंगी (हो गयी हैं) जिन्हें उसने अपने अधिकार सुपुर्द किये हैं. नैतिकता के इन नये मूल्यों की तलाश और संस्थाओं (सब तरह की) की शक्ति के पुनर्निर्धारण के लिए साहित्य अत्यंत कारगर भूमिका निभा सकता है, क्योंकि समाज के नैतिक मूल्य सीधे-सीधे मानसिकता से जुड़े होते हैं और यह मानसिकता ही उन्हें मंजूर या नामंजूर करती है!

ऐसे संकटकाल में यह जरूरी हो जाता है कि हम आदमी की आत्मा में धंसे हुए नैतिकता के व्यक्ति-केंद्रित प्रश्नों को बदल कर समयगत न्याय की धारणा के संदर्भ में उठायें और संस्थागत-व्यवस्थागत नैतिकता के सामाजिक संबोध को सामने लायें! सौ-दो सौ, या दो हजार-दस हजार लोगों पर अनैतिकता का दोषारोपण करके नैतिक आचरण का परिशोध प्राप्त नहीं किया जा सकता — बल्कि संस्था और व्यवस्था के प्रतिमानों को बदल कर ही यह परिशोध प्राप्त किया जा सकता है. यानी संस्थाओं और व्यवस्थाओं के लोगों को बदलने से नैतिकता की प्राप्ति नहीं हो सकती, बल्कि इन संस्थाओं और व्यवस्थाओं के वर्ग-चरित्र को बदलने से ही नयी नैतिकता हासिल हो सकती है.

* *

आज के आदमी से जुड़ा समय-सापेक्ष समांतर लेखन नैतिकता के व्यक्ति-केंद्रित प्रश्नों को समयगत न्याय की धारणा के संदर्भ में उठाने से कतई नहीं कतराता. बल्कि इसी में उसकी आंतरिक शक्ति और सार्थकता निहित है. सुधा अरोड़ा की 'दमनचक्र', रामसरूप अणखी की 'एमरजेंसी', बसंतकुमार की 'सांप', प्रेम कासलीवाल की 'विदेश' तथा सुदीप की 'अंतहीन-दो' कहानियों के पात्र संस्थागत-व्यवस्थागत 'नैतिकता' और अन्याय को बड़ी शिद्दत से महसूस करते और भोगते हैं. सामूहिक और समग्र रूप में इनका परिवेश एक ही है और उसी संस्था-व्यवस्था के शिकंजों में आबद्ध परिवेश के विरुद्ध उनका सामूहिक स्वर उभरता है. ये कहानियां संस्थाओं और व्यवस्थाओं के वर्ग-चरित्र की पहचान तो प्रस्तुत करती ही हैं, उनके सख्त खोल को तोड़ कर उनकी असली शक्ल दिखाने का प्रयास भी करती हैं. गंगाप्रसाद विमल की कहानी 'उसकी पहचान', किशोर जाधव की 'अपाहिज' तथा आबिद सुरती की 'सड़क के उस पार' कहानियां इसी कथ्य को एक अन्य स्तर पर उठाती हैं, जहां आदमी अपने आस-पास के कसावपूर्ण 'तंत्र' को समझते हुए उसकी पकड़ से छूटने के लिए संघर्ष करता नजर आता है. राही मासूम रजा की कहानी 'एम. एल. ए. साहब' तथा प्रदीप पंत की 'आम आदमी का शव' व्यंग्य के स्तर पर व्यवस्था के मुखौटे को छीलती हैं, जबकि कृष्ण भावुक की 'व्याख्याकार', राजेंद्रकिशोर की 'अग्निरेखा', राधेश्याम की 'अथवा' तथा बल्लभ डोभाल की 'कोई एक आवाज' सब मिल कर संस्थागत नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं—इन संस्थाओं का नाम कुछ भी हो सकता है, इनकी प्रकृति एक ही है.

कमलेश्वर

पाठकीय

समांतर कहानी विशेषांक-३

'विदा-अलविदा' (राम अरोड़ा)—काफी दिनों बाद इतनी साफ-सुथरी रचना पढ़ने को मिली. 'संघर्ष', 'संपूर्ण क्रांति' आदि नारों के सींगों से आज के जीवन को उलटने की जो कोशिश की जाती है, उससे तो हाथ लगा बिखराव 'चिर-प्रभावित करने' या 'एक दृष्टिकोण देने' जैसा कोई काम नहीं कर पाता. बल्कि आम पाठक उसे मात्र 'अजीब चीज' मान कर उस पर सरसरी निगाह ही फेंक पाता है, उसे भोगने का एहसास नहीं कर पाता. अगर वे लेखक अपने दिमाग को 'संघर्ष-मोह' से संपृक्त न करें तो फलीभूत रचना अपने आप उसी संघर्ष को ज्यादा सशक्त और अनौपचारिक ढंग से कह जाती है, क्योंकि आज जीवन और संघर्ष अन्योन्याश्रित हैं! उदाहरण **'विदा-अलविदा'** है. भुवन का चरित्र अंत तक इतना अच्छा निभ पाया है और कहानी इतनी रोचक है कि अंक की सबसे लंबी कहानी सबसे छोटी कहानी लगती है.

'मेरा पन्ना' भी हर बार एक नया व्यक्तित्व ले कर प्रस्तुत हो रहा है. कभी दोस्त की तरह हाल-चाल पूछता नजर आता है तो कभी जुए में हारे पार्टनर को फिर से ट्राई करने के लिए पीठ ठोंकता. कभी पूरे जीवन की विद्रूपता सोख कर बर्फ की तरह ढंका तो कभी संपूर्ण दूषण को जला देने वाली आग ले कर. यह कालम आज की विक्षिप्तता के धुएं में कंपास है. यह हमारे लिए मनोरंजन तो है नहीं जो हम कमलेश्वर जी को धन्यवाद दे सकें. यह तो हमारे लिए रोटी की तरह ही आवश्यक है!

☐ **रामाधार शर्मा, पटना**

समांतर कहानी विशेषांक—३ की सभी कहानियां व्यक्तिगत, सामाजिक विसंगतियां लिये हुए हैं, जो आदमी को सहज ही प्रभावित कर जाती हैं.

ध्रुव जायसवाल की **'केवल एक क्षति'**, आशीष सिन्हा की **'आदमी'** व केशव दुबे की **'श्रमदान'** मार्मिक हैं.

इस अंक के चित्रकार शब्बीर दीवान को मेरी ओर से विशेष बधाई. उनके चित्र कहानियों को सार्थक करते हैं.

☐ **सुधाकर, दिल्ली**

समांतर विशेषांक—३ पढ़ा, जिसमें पूरी ग्यारह कथाएं हैं. पर सबसे ज्यादा असर करने वाली चार कथाएं हैं **'विदा-अलविदा'**, **'असंबोधित देवदास'**, **'श्रमदान'** एवं **'तीसरी दुनिया'**. वैसे **'सारिका'** के समांतर विशेषांक पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे भटकी हुई कहानी अपने सही रास्ते पर आ रही है.

☐ **सुरेश तिवारी, मीरजापुर**

दिसंबर अंक लंबी प्रतीक्षा के बाद प्राप्त हुआ. इसमें **'मेरा पन्ना'** एवं इब्राहीम शरीफ का लेख **'कहानी : इनसानी सोच के समांतर एवं विपरीत'** यथार्थ के अत्यंत नजदीक लगे. मैंने समांतर कहानी के तीनों विशेषांक पढ़े हैं और सोचता हूं, क्या इनमें प्रकाशित कहानियों को कोई श्रेणी दी जा सकती है—क्या यह कहना आसान है कि उनमें से कौन-सी कहानी अच्छी है और कौन-सी बुरी! शायद नहीं. इस तरह की श्रेणियां कहानियों को प्रदान की जा सकती हैं, वास्तविकताओं को नहीं. इन तीनों विशेषांकों में प्रकाशित रचनाओं को कहानी की बजाय वास्तविकता कहना ही ज्यादा उपयुक्त होगा.

☐ **विनोदकुमार अग्रवाल, कानपुर**

समांतर कहानी विशेषांक—३ प्राप्त हुआ. अपनी प्रवृत्ति के अनुसार एक ही बैठक में पढ़ डाला. आज कहानी की दिशा क्या है— इस सवाल का जवाब पाने में मुझे सबसे ज्यादा मदद **'सारिका'** ने दी है. आज की फार्मूलाबद्ध आलोचना समांतर कहानी की प्रकृति और दिशा का ज्ञान कराने में लूली मालूम पड़ती है. आज कोई सिर्फ समांतर कहानी को पढ़ कर उसे नहीं समझ सकता. इसे समझने के लिए उस परंपरा से भिज्ञ होना जरूरी है, जो प्रेमचंद, यशपाल, जैनेंद्र और अज्ञेय से होती हुई यहां आ कर मिलती है.

आज आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, हर क्षेत्र में बड़ी तेजी के साथ बदलाव आ रहा है. इस बदलाव की स्थिति में एक बात बड़ी शिद्दत के साथ महसूस की जा रही है कि आज सामान्यत: हर आदमी अपने कंधे से दायित्व का जुआ खिसका देना चाहता है. व्यवस्था के पोप प्रलोभन दे कर सामान्य जन को दिग्भ्रमित कर रहे हैं. लेकिन लेखक इनकी शतरंजी चाल को पहचान गया है, क्योंकि उसकी कलम से भी आग्रह किया जा रहा है कि वह बंदूक बने. लेकिन लेखक अपने दायित्व को जानता है. वह इस छलावे में आ कर कलम को बंदूक नहीं बना सकता. आज तक के इतिहास में साहित्यकार की कलम कभी बंदूक नहीं बनी है. कमलेश्वर जी ने कलम और बंदूक के इस अहम सवाल को इस अंक के 'मेरा में बड़ी सजगता के साथ उठा एक ईमानदार लेखक के रूप में लेखक के दायित्व को समझाया है. की कलम व्यवस्था के खिलाफ प्रयो जाने वाला अस्त्र नहीं बन सकती. नीतिक प्रपंच में फंस कर वह अपनी शक्ति को पंगु नहीं बनाना चाहेगा. का दायित्व 'खामोशी को पीते हुए' दारी के साथ सृजन करना है, बेईमा झूठी लड़ाई लड़ना नहीं.

इस अंक की सभी कहानियां 'वि की कतार' हैं. श्रेष्ठ कहानी की मुश्किल-सी बात है. लेकिन फिर भी सोच कर लिख रहा हूं कि जवाहर सि **'गुस्से में आदमी'** ने जेहन की परतें खो

☐ **जानकीप्रसाद शर्मा, सिरोंज, विदिशा, (म.**

दिसंबर अंक के लिए बधाई. अरोड़ा की **'विदा-अलविदा'** तथा जायसवाल की **'केवल एक क्षति'** श्रे कहानियां हैं. इनके अलावा प्रणवकु बंद्योपाध्याय, चंद्रकांत बक्षी, केशव तथा भगवतीचरण वर्मा की कहा भी काफी अच्छी हैं. प्रकाश बाथम **'तीसरी दुनिया'** में काफी सजीव चि किया है. अन्य स्थायी स्तंभ भी अच्छे

☐ **अरविंद सुंवर, दा**

समांतर कहानी विशेषां पढ़ा. सभी कहानियां आम आदमी के जी का नपा-तुला खाका प्रस्तुत करती समांतर कहानी विशेषांक निकाल **'सारिका'** ने आम आदमी के बारे में सो के लिए युवा लेखन को प्रोत्साहित सराहनीय कार्य किया है. प्रेमचंद के विशेषकर पिछले पूरे दशक में हिंदी लेखक आम आदमी से अलग रहा दुख यह देख कर होता है कि आज भी हि में, दरबारी-परंपरा को जीवित रखने व्यक्ति-पूजा के हिमायती लेखकों की क नहीं. जाहिर है आम आदमी को नकार आने वाली पीढ़ी को गुमराह करना और यह बड़ी भयावह बात है. हिंदुस्त का सही चित्र साठ किलोमीटर प्रति की रफ्तार से दौड़ती हुई कार की खि कियों से नहीं देखा जा सकता.

भगवती बाबू की नवीं कहानी बे पसंद आयी. लघुकथाओं को मैं स पहले पढ़ता हूं. **'सारिका'** की लघुकथ मुझे रुचती हैं. इस बार अनीता औलक संस्मरण बड़ा मर्मस्पर्शी था.

☐ **अवध बैरागी, लखन**

समांतर कहानी विशेषांक—३ पठन किया. सभी कहानियां यथार्थ

धरातल को छूती हुई कटु सत्य की अनुभूति करा गयीं. **'श्रमदान,' 'आदमी', 'केवल एक क्षति'** तथा **'गुस्से में आदमी'** बहुत ही अच्छी एवं सराहनीय कहानियां हैं. कथाकार इब्राहीम शरीफ के समांतर कहानी के लेख ने अत्यधिक प्रभावित किया. भाई इब्राहीम का यह लेख उन कथाकारों को सचेत करता एवं चुनौती देता है, जो मात्र शब्दजाल एवं बौद्धिक घटनाक्रम में बंधी हुई 'कहानी' को ही कहानी मानते हैं. यथार्थ से कतराने वाला, कहानी में व्यक्तिगत स्वार्थों को भरने वाला वास्तविक कथाकार नहीं है. जीवन एक कहानी है और उसकी सूक्ष्मता एवं स्थूलता का स्वाभाविक एवं यथार्थ बोध कराने वाला ही आज के युग का सफल कथाशिल्पी है.

☐ **डा. राकेश 'बिराग', कानपुर**

समांतर कहानी विशेषांक-४

जनवरी, १९७५ का अंक बेहद पसंद आया. विशेषरूप से मधुकर सिंह की **'हरिजन-सेवक'**, वल्लभ सिद्धार्थ की **'जुलूस'** और निर्मला ठाकुर की **'इंतजार'** कहानियां. कालिदास सेन की लघुकथाएं बहुत अच्छी लगीं. **'आकर्षित'** वर्तमान संदर्भ में एक नयी परिभाषा है. अनीता औलक की बेबाक बयानी जहां आकर्षक है, वहीं **'कबिरा खड़ा बाजार में'** कुछ खास प्रभाव डालने में असफल रहा है.

☐ **मदनलाल वर्मा, देवादा, दुर्ग**

'सारिका' को तीन वर्षों से 'लगातार' पढ़ता आ रहा हूं. पढ़ता पहले भी था, लेकिन कैशोर्य-रोमांटिक ख़यालों के 'दाल-भात' में इसकी कहानियां 'मूसरचंद' के समान लगती थीं. लेकिन जबसे जीवन पर मजबूरियों की बढ़ती उमर के भार और परेशानियों की लंबी परछाइयां पड़ने लगी हैं — इसकी कहानियां अपने जीवन से जुड़ी कहानियां लगने लगी हैं.

'समांतर कहानी' का प्रत्येक अंक हथेली पर जलते अंगारों की अनुभूति दे रहा है. विशेषत: जनवरी अंक ने तो एकबारगी ही झुलसा दिया है. आज की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों के बीच हिंदुस्तान का आम आदमी कहां है— इसकी सही पहचान इस अंक की कहानियां दे रही हैं.

'जमीन का आखिरी टुकड़ा', 'चूहेदानी', 'हरिजन-सेवक', 'यह सब अंतहीन' 'इजारेदारी', 'जुलूस' आदि कहानियां आम आदमी से संबद्ध समांतर साहित्य के चेहरे को उजागर करती हैं.

'जमीन का आखिरी टुकड़ा' के बड़े दादा का परिवार अब अपना अस्तित्व तेजी के साथ खोने लगा है. आज का सामाजिक परिवेश आर्थिक तंगी के कारण इस कदर उबाऊ हो गया है कि आदमी अपने अस्तित्व को बेचने से रोक नहीं पा रहा है. सभी अपनी-अपनी सुरक्षा के लिए बिलों का निर्माण कर चुके हैं, कर रहे हैं. सभी को अपने बिलों में जाने की जल्दी है. और, इस भागने-जाने की जल्दी में 'उसका' अस्तित्व भागते कदमों के नीचे कुचला जा रहा है. हम जानते हैं कि दो-दो आने में बिकने वाले ऊंटों का दाम हजार रुपये 'क्यों' हो गया है. लेकिन 'क्या' हम उस 'क्यों' को हटाने की स्थिति में हैं? सच तो यह है कि हमारी सारी स्थितियां 'क्या', क्यों और 'इसलिए' के चक्कर में ही पड़ी हैं. इस स्थिति से उबरने के लिए हमें इन्हीं पंक्तियों को व्यवहार में लाना होगा : 'आप अपने यहां के इब्बू हरामजादे का कलेजा फाड़ दीजिए . . . मैं अपनी फैक्टरी के मालिक की बोटियां नोच लूंगा. . . . और ये . . . ये अपनी सरकार को गरदन काट देगें. . .तभी हम अपने पिताजी की जमीन वापस कमा सकते हैं. . . .'

'चूहेदानी' सत्ता की राजनीति के चेहरे पर झूठ के चढ़ाये नकाब को उलटती है. **'यह सब अंतहीन'** एकबारगी ही हमारे अस्तित्व को झिंझोड़ कर रख देने वाली कहानी है. यह एक कटु कहानी होने के कारण बिल्कुल सत्य है, और हमारे आस-पास की घटनाएं इसकी साक्षी हैं. आज की दोगली अर्थव्यवस्था ने मध्यवर्गीय और निम्नमध्यवर्गीय जमात को और कुछ दिया हो या नहीं, अपने शरीर का उपयोग अपनी भूख मिटाने के लिए कैसे किया जा सकता है— इसका ज्ञान खूब दिया है.

जितेंद्र भाटिया एवं मधुकर सिंह ने अपने-अपने निबंधों के द्वारा 'आम आदमी से संबद्ध समांतर साहित्य' पर अच्छा प्रकाश डाला है. इस प्रकार की रचनाएं प्रत्येक अंक में होनी चाहिए.

☐ **प्रकाश, गुदरी, छपरा (बिहार)**

'मेरा पन्ना' में कमलेश्वरजी ने हम पाठकों को शुभकामनाएं न दे कर बहुत ही उपकार किया है. मुझे तो (बल्कि हम सब को) सोचने पर मजबूर कर दिया है. वर्तमान में जितना हमें सामूहिक हो कर चलना है, उतने ही हम व्यक्तिगत और मुखौटावादी हो रहे हैं. शायद हमने अपने अंदर की दृढ़ता को नहीं समझा है, इसीलिए हम अपने परिवेश के प्रति जागरूक हो कर भी अपना असली स्वरूप नहीं जान पा रहे हैं.

'चंद सतरें और' शीर्षक के माध्यम से अनीता जी जो कुछ हम लोगों तक पहुंचा रहीं हैं, महज प्रशंसनीय ही नहीं, प्रेरणात्मक भी है. 'समांतर विशेषांकों' के माध्यम से आम आदमी को **'सारिका'** ने जितना ऊंचा उठाया है, वह **'सारिका'** ही कर सकती है. ☐ **सुषमा पाराशर, लखनऊ**

पहले मैं **'सारिका'** का नियमित पाठक नहीं था. पेपरवाले ने समांतर कहानी विशेषांक - १ जबरदस्ती दे दिया. पढ़ कर जो प्रतिक्रिया हुई वह लिखते-लिखते न लिख पाया. पेपरवाले को धन्यवाद दिया और **'सारिका'** का स्थायी ग्राहक बन गया. एक महीना देर से प्राप्त जनवरी अंक अभी-अभी समाप्त किया है. लगता है ये कहानियां नहीं, भारत के अभागे इनसान की यथार्थ के पन्नों पर खींची गयी सच्ची तस्वीरें हैं.

'मेरा पन्ना' जैसे सशक्त स्तंभ के लिए तथा दुष्यंतकुमार की गजल प्रकाशित करने के लिए मेरी बधाई!

☐ **गोपेश नौनिहाल, पकड़ियार**
गोपालगंज (बिहार)

'सारिका' के जनवरी अंक के विषय में मैं एक बात 'सारिका' के पाठकों को अवश्य बताना चाहूंगा.

अपनी साइट पर, जो शहरों से सैकड़ों मील दूर घनघोर जंगल में स्थित है, 'सारिका' का जनवरी अंक अपने साथ ले गया था. मेरा एक मजदूर 'सारिका' उठा कर पन्ने पलटने लगा. मैंने गौर किया कि वह बड़ी तन्मयता के साथ हर पृष्ठ को देख रहा है. अंत में प्रसन्न होता हुआ अपने साथी को 'सारिका' दिखाते हुए बोला— बुधवा, ई किताब में तो आपन लोगन के बारे में लिखा जनात है. . . गायन (गांव) की तस्वीरें हैं. फिर अपने कथन की पुष्टि मुझसे चाहते हुए बोला— ई हम लोगन की किताब है न!

मैं इस अंक के छायाकार श्री विद्याव्रत को 'सारिका' के पाठकों की ओर से बधाई देना चाहूंगा और उन लेखकों को भी, जिनकी कहानियां तस्वीरों में घुल-मिल गयी हैं.

☐ **अरुण मिश्र, रीवा (म. प्र.).**

दमनचक्र

सुधा अरोड़ा

मुझे अपने बचपन की बहुत कम बातें याद हैं. बाबा बताया करते थे कि हमारा बचपन घर से ज्यादा इस पार्क में बीता है. सुबह-दुपहर-शाम, हर वक्त घर से गायब—हम दोनों हमेशा पार्क में पाये जाते थे. मुझे बस इतना भर याद है कि मुझमें तब गुस्सा बहुत था और मैं जब-तब दामू को पीटती रहती थी. वह मार खा कर भी मां-बाबा-दादी, किसी से मेरी शिकायत नहीं करता था और चुपचाप सहमा-सा मेरी ओर देखता रहता था. उसके बदन का पोर-पोर दर्द कर रहा होता और वह फिर मेरे पीछे लग लेता. शुरू से ही वह एक मरघिल्ला-सा, डेढ़ हड्डी का लड़का था. चश्मा लगाने के बाद वह और भी मासूम दिखाई देता था. अब भी उसका यही डील-डौल, यही ढांचा था. पर सब कुछ एकाएक ही बदल गया था. अपनी इसी रंगत में दामू अचानक एकदम सख्त और अक्खड़ लड़का बन गया था. मुझे 'दीदी' कहना तो उसने तभी बंद कर दिया था जब उसकी आवाज बदलनी शुरू हुई थी और वह फटे बांस-सी खरखराती आवाज में बोलता था, जिससे मुझे बहुत खीझ होती थी. अब वह मुझसे बिना संबोधन के बात करता था.

जाने कब, कैसे, हम दोनों में एक गहरी दुश्मनी पैदा हो गयी थी. उसकी नुकीली, उठी हुई ठुड्डी, पिचके हुए गालों की उभरी हुई हड्डियां और मोटे कांच वाला चश्मा—सब मेरी बर्दाश्त के बाहर थे. जब वह गुस्से में बोलता हुआ मुंह से थूक के छींटे उछालता था, मेरा मन होता था, उसका कॉलर पकड़ कर उसे दरवाजे से बाहर धकेल दूं. वह भी मुझे पसंद नहीं करता, यह जाहिर था. बगैर किसी कारण के, जिस तरह वह मुझे निगल जाने वाली नजरों से देखता था, मैं दूसरी ओर मुंह घुमा लेती थी.

. . .पर इन तीन दिनों में उसके घर न लौटने से, न जाने क्यों, पिछली सारी बातें वक्त-बेवक्त सामने आ कर खड़ी हो जाती हैं. हालांकि हर साल दुर्गापूजा के दिनों में हफ्ता-हफ्ता घर से गायब रहना मामूली बात थी. बाबा ने तो इन तीन दिनों में कभी पूछा तक नहीं कि दामू कहां है. पर रोज इस पार्क से गुजरते हुए मैं ठिठक जाती हूं. कोई फायदा नहीं, पर मन होता है कि एक बार बीती हुई बातों का नक्शा फैला कर खोजूं कि कहां सब कुछ इस कदर गलत हो गया. . . .

पार्क के फाटक से बाहर निकलते ही सामने वाले फुटपाथ पर हमारे मकान का दरवाजा ह. इस पार्क से हो कर आने में रास्ता छोटा पड़ता है. बस, यह शार्टकट नहीं बदला और यह मकान नहीं बदला. बाबा की शादी हुई थी और वह अपनी नयी-नवेली दुल्हन को इसी दरवाजे से भीतर ले गये थे. सुनते हैं, तब इस मोहल्ले के लोग हर शनिवार की सुबह अपने दरवाजे पर खड़े रहते थे कि आनंद चक्रवर्ती की बहू काली मंदिर पूजा के लिए जायेगी. दादी थीं कि अपनी गोरी-चिट्टी, सुंदर बहू को घर से बाहर निकलने नहीं देती थीं. . . और दो साल पहले जब मां की अर्थी इसी दरवाजे से निकली थी, खटिया पर हड्डियों का ढांचा था, चादर पर दो-चार सलवटों से बाहर निकली हुई गरदन पर धंसी हुई आंखें और उभरे हुए दांत. अर्थी देख कर किसी ने कहा था—आदमी तो जिंदगी भर क्लर्क का क्लर्क ही रहा. तीन-तीन बेटियों की कमाई पर घर चलाया है बुढ़िया ने. तीन बेटियों ने तो मां-बाबा को दान-दहेज से बचा लिया और अपनी मर्जी से शादी करके इस दरवाजे से जो बाहर निकलीं, फिर पीछे मुड़ कर उन्होंने नहीं देखा. अच्छा हुआ, मां तभी चली गयीं, चौथी बेटी की कमाई की शर्म उन्हें नहीं उठानी पड़ी और न ही अपने इकलौते, सबसे लाड़ले बेटे दामू की हाजिरजवाबी का सामना उन्हें करना पड़ा, जो उनकी धुंधलाती हुई आंखों की आखिरी उम्मीद था.

बाबा, मां के मरने के बाद और समझदार हो गये थे. अपनी बीमारी पर अब उन्हें खीझ नहीं होती थी बल्कि हर चीज के प्रति उनमें एक उदार दृष्टि आ गयी थी. एक ही बात को ले कर वह मुझे भी उतने ही ठोस तर्कों से समझाते थे और दामू को भी और दोनों को अपनी-अपनी गलती का एहसास करवा देते थे. पर पिछले दो महीनों से वह कुछ ढीले-से हो गये हैं—एक ही बिस्तर पर लेटे-लेटे उदास और पस्त. . .

★ ★

आज ताला खोलते वक्त मेरे हाथ कांप रहे हैं. नहीं, बाबा की फिक्र नहीं. शुरू-शुरू में अपना यह कार्यक्रम बहुत घातक, बहुत क्रूर लगता था कि बीमार बाप को ताला बंद कर लड़की अपनी नौकरी पर चली जाती है. तब मैं लौटती थी तो दूर से ही यह मनाते हुए कि दरवाजा खुला हो, दामू लौट आया हो. दामू तब इतना गैरजिम्मेदार भी नहीं था. अब तो इस ताले की दूसरी चाभी भी उसके क्लब की दुर्गापूजा के महोत्सव में पूजा के साज-सामानों में कहीं खो गयी होगी. अब घर से जाते वक्त यह मालूम होता है कि इन छह-सात घंटों में बाबा को किसी चीज की जरूरत नहीं होगी. दरवाजा खोलते हुए, पहले की तरह, यह दहशत नहीं होती कि कहीं बाबा

ओठ खुले हुए न हों, आंखें छत पर टिकी न हों. उस कोने की ओर बहुत डरते-डरते मैं देखती थी. अब दरवाजा खोलते ही मैं यह भांप लेती हूं कि खटिया से घुटी हुई सांसों की आवाज आ रही है. बाबा सो रहे हैं. रात भर उन्हें नींद नहीं आती. अब तो यह नियम-सा बन गया है कि वह मेरे जानें के बाद ही सोते हैं. इस वक्त उनका सोना मेरे लिए बहुत सुविधाजनक रहता है. पता नहीं, उन्होंने मेरे अनुसार यह आदत डाल ली है या सचमुच वह रात को सो नहीं पाते. इस उम्र और इस बीमारी में आदमी बहुत गुस्सैल, बहुत चिड़चिड़ा हो जाता है. पर बाबा और ज्यादा सहनशील, अंतर्मुखी हो गये हैं. बस, उनकी एक ही आदत है जिससे मैं बौखला जाती हूं. उठते ही कहेंगे—सामने से अखबार ले आ, खबरें पढ़ कर सुना. या ट्रांजिस्टर चला दे, खबरें आ रही होंगी. लगता है, उनके दिमाग में एक घड़ी फिट हो गयी है, खबरें आने का वक्त उन्हें पता चल जाता है. जितनी देर आकाशवाणी से समाचार आते रहते हैं, मेरे माथे की नसें तनी रहती हैं. लगता है, भीतर एक ज्वालामुखी सुलग रहा है, जो फट जायेगा. सब कुछ बर्दाश्त के बाहर हो जाता है—खबरें, खबरें खबरें. परमाणु विस्फोट और क्रिकेट का टेस्ट मैच और प्रधानमंत्री का विदेश दौरा–इन सबसे बाबा को, जो अपनी खिड़की से बाहर भी नहीं झांक सकते, कैसी दिमागी शांति मिलती होगी! हां, एक बार कितना गिरा हुआ, कितना नीच खयाल मेरे दिमाग में आया था कि बाबा को गलत दवा दे दूं या चाय में स्लीपिंग पिल्स की पूरी शीशी उंड़ेल दूं. उनके जीने का कोई अर्थ मेरी समझ में नहीं आता था. पर फिर यही सोचना बदल गया था. जब उन्हें अपनी जिंदगी बोझ नहीं लगती तो क्या हक है मुझे उनकी जिंदगी खत्म करने का—सिर्फ इसलिए कि उन्हें दो वक्त का रूखा-सूखा खाना मैं दे देती हूं और रोज सुबह उनका कमोड जमादार से साफ करवाने के लिए बाहर रख देती हूं. कभी उन्हें अखबार पढ़ कर सुना देती हूं, कभी पड़ोस में ताला बंद है, का बहाना बना कर कह देती हूं कि अखबार ही नहीं मिला. . . और अब तो उनका होना बहुत जरूरी लगता है. वह कुछ कहते-सुनते नहीं, समझाते भी नहीं, पर उनके इस बेजान शरीर का होना भर अपने-आपमें कितना अहम हो गया है—मेरे और दामू के बीच एक पुल. बाबा नहीं रहेंगे तो इस घर में पता नहीं हम दोनों में से कौन होगा—मैं या दामू!

सोचा तो अपने लिए भी यही था. अपनी इस तेईस साल की जिंदगी का ही कौन-सा अर्थ मेरी समझ में आया था! रोज बीमार बाप की सेवा-टहल और अपने आवारा, निकम्मे भाई से दो-चार कड़ी बातें सुनना. काम के नाम पर यह कि कभी इस, कभी उस कंपनी की चीजों के नमूने झोले में डाल कर दरवाजे-दरवाजे घूमना, और एक ही रटा-रटाया पाठ सबके सामने सुना देना. कभी किसी दरवाजे से यह सुनना कि माफ करो, इस वक्त हमें फुर्सत नहीं है, कभी किसी आदमी का गलत इरादे से देखते हुए यह कहना कि और कोई काम करना हो तो. . .पर नहीं, एक अनाम इंतजार में यह सोचना भी टल गया था कि किसी दिन तो कोई सही आदमी सामने होगा. . . और मेरी तीन बड़ी बहनें, जो इसी चौखट से निकली हैं, अब सुखी तो हैं न.

घर की सारी चीजें वैसे ही अनछुई पड़ी हैं. दामू करीने से रखी हुई चीजों को बिखेर देता है, पर उस बिखराव में यह एहसास तो रहता है कि इस घर में लोग रहते हैं. मेज पर से हाथ हटाया है तो वहां उंगलियों के निशान पड़ गये हैं. इतनी धूल—यह घर किस कदर भुतहा लग रहा है! मां इस एक कमरे को भी किस तरह सजा-संवार कर रखती थीं. उन्हें तो सफाई करने की सनक थी. हर वक्त उनके हाथ में झाड़न होता और एक-एक शीशी-बोतल उठा-उठा कर वह पोंछती रहतीं. अब इस घर में सामान ही कितना है. बाबूजी की खटिया के किनारे वाली तिपाई पर ट्रांजिस्टर था, अब नहीं है. लगता है, घर का एक आदमी चला गया है. विश्वास करने को मन नहीं होता, पर दामू अब कुछ भी कर सकता है. उसकी यह मजबूरी कभी मेरी समझ में नहीं आयेगी कि उसने ट्रांजिस्टर बेच दिया. दो साल से जो अपने फटे हुए जूतों को घसीट रहा है, उसकी कौन-सी शान बाकी है जिसे ट्रांजिस्टर बेच कर उसे बचाना पड़ा है? यह घटना हम दोनों के बीच हुए झगड़े की चरम स्थिति थी, लेकिन मैं उसे भूल गयी थी. हो सकता है, दामू भी भूल गया हो और तीन दिन से घर न आना सिर्फ उसकी व्यस्तता हो . . .

★ ★

अब याद करूं तो लगता है कि वह बात इतनी बड़ी नहीं जितना हमने उसे तूल दे दिया था. उस दिन दुपहर उस मनहूस माहौल में बहुत शिथिल हो कर लेटी ही थी कि किसी ने इतनी जोर से सांकल बजायी थी कि वह चोट हथौड़े-सी सर पर लगी थी. दरवाजा खोला था तो सामने टाई-सूट वाला एक रोबदार आदमी था.—दमन चक्रवर्ती यहां रहता है? वह गुस्से से कांप रहा था.

—हां.

—उसके पिताजी घर में हैं?

—आपको जो भी कहना हो मुझे कहिए. बाबा बीमार हैं, उठ नहीं सकते.

—आप उसकी बड़ी बहन हैं? उसने दांत पीसे,—देखिए, अपने भाई को समझा दीजिए. गली-मुहल्ले दुर्गा-पूजा के लिए चंदा मांगते फिरते हैं. महंगाई का जमाना है, हमारा जितना मन होगा, चंदा देंगे. नहीं मन होगा तो कोई हमसे जबर्दस्ती चंदा ले लेगा? चंदा नहीं दिया तो साला आंखें दिखा रहा था. नीचे उतर कर चिल्ला कर कहता है, मने राखबेन, आमार नाम दमनचक्र. आप लोग अपने घर के लड़कों को समझाते नहीं? आज उससे कह देना, उसने कुछ गड़बड़ की तो मेरी बहुत बड़ी फैक्टरी है, साले को गुंडों से पिटवा दूंगा, होश ठिकाने आ जायेंगे साहबजादे के! हुंह, मने

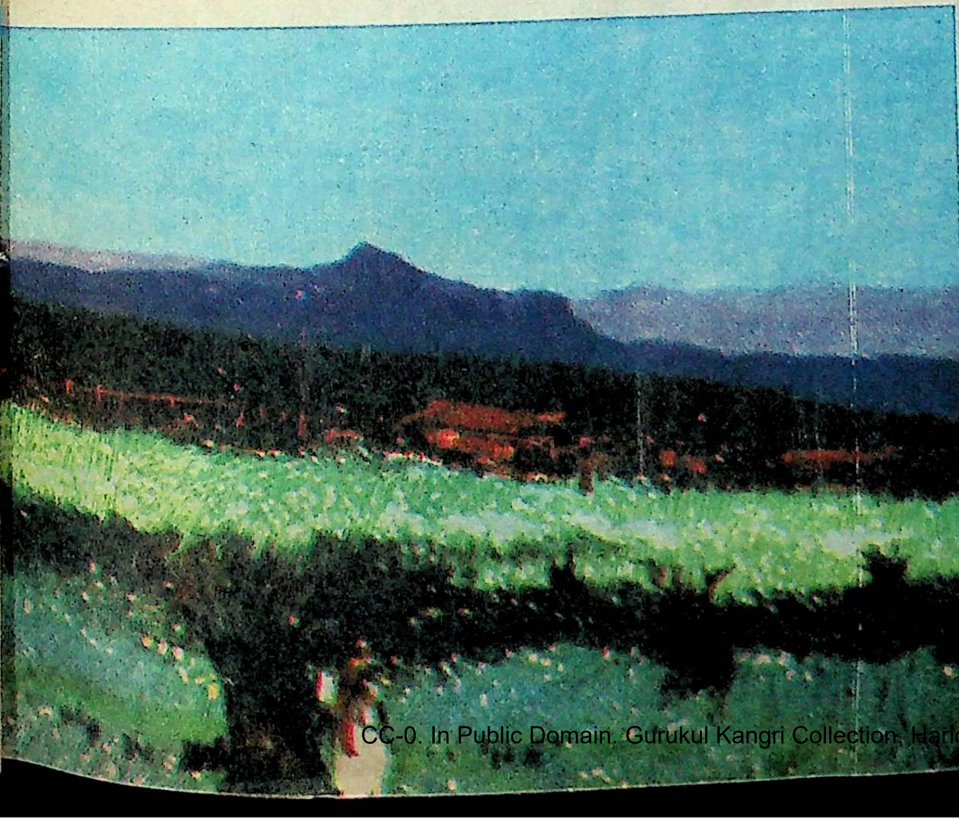

राखबेन, आमार नाम दमनचक्र. . .

मैं क्या कहती? पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये थे. सामने वाले घर से अम्माजी अपनी ऐनक संभालती हुई आयीं—दामू के लिए कह रिया था? दामू तो साच्छात क्रिशन महाराज हो रिया है, लोग उलाहने ले-ले कर आवें. कितना अच्छा लड़का था अपना दामू. . .

हां, अब दामू अच्छे की परिभाषा से बाहर आ गया था. एक वह जमाना था—हम दोनों चक्रवर्ती भाई-बहन स्कूल के वार्षिकोत्सवों में ढेरों पुरस्कार लाते थे. अपनी-अपनी क्लास की बारी आते ही दीप्ति चक्रवर्ती और दमन के नाम सबसे ऊपर रहते थे. पढ़ाई में, स्पोर्ट्स में, यहां तक कि शत प्रतिशत उपस्थिति में भी—कितनी किताबें, मैडल घर में जमा हो गये थे. अब वह सारे बदरंग हो गये मैडल और दीमक लगी किताबें पुरानी अलमारी में बेतरतीबी से रखी हुई थीं. . .उस दिन स्कूल की हायर सेकेंड्री की फाइनल परीक्षा थी. बायलॉजी का पेपर था और परीक्षाकेंद्र में फसाद हो गया था. बाहर निकाले गये छात्रों में एक नाम दमन चक्रवर्ती का भी था. बस, उस दिन से उसकी दुनिया बदल गयी थी. जाने कैसे दोस्तों से वह गंदी-गंदी गालियां सीख गया था. दूसरे साल हायर सेकेंड्री में किसी तरह पास हो गया था और कॉलेज म नाम भी उसने लिखवा लिया था, लेकिन पढ़ने में उसका मन नहीं लगता था. अपने-आपको कलाकार समझने लगा था वह. उसने पेंटिंग शुरू की, पर वह एक महंगा शौक था. अपने एक रईस दोस्त के घर जा कर उसकी इलेक्ट्रिक गिटार बजाना वह सीख रहा था. तभी हमारी तीसरी दीदी एक दिन अचानक घर से गायब हो गयीं और दामू ने बाबा का कहना मान कर एक बड़ी कंपनी में सेल्समैन की नौकरी कर ली. और कलाकार बनने का भूत उसने अपने दिमाग से उतार दिया था. दिन भर काम और शाम के लिए उसने एक क्लब ज्वायन कर लिया था. धीरे-धीरे वह छह-सात लड़कों का शुरू किया हुआ क्लब काफी बड़ा हो गया था और वहां आये दिन नाटक और संगीत के प्रोग्राम हुआ करते थे. अब उस क्लब में कुछ बड़े-बड़े रईसों के लड़के भी आ गये थे और दामू जैसे लड़कों को चंदा बटोरने और ऊपरी दौड़ भाग का काम ही सौंपा जाता था. दामू तब बहुत बौखलाया-सा घूमता था... एक बार मैंने तीन-चार दिन लगातार उसे सुबह-दुपहर सड़क पर घूमते पाया तो रात को मैंने उससे पूछा कि आजकल वह काम पर नहीं जाता? उसने उतनी ही आसानी से जवाब दिया—मैंने सात दिन पहले नौकरी छोड़ दी है.

मुझे पहले ही लग रहा था कि वह ज्यादा दिन इस नौकरी पर नहीं टिकेगा. पर बाबा अपना आपा खो बैठे थे—मुझे तुमसे यही उम्मीद थी. घर के लिए अढ़ाई सौ रुपल्ली लाते थे, उसमें से सौ-सवा सौ क्लब में और अपने जेबखर्च में फूंक आते थे और अब नौकरी भी छोड़ दी. हुआ क्या था?

—उन लोगों को लगता था, मैं एक घंटे का काम चार घंटे में करता हूं. गाड़ियों में घूमने वाले लोगों को क्या मालूम, कलकत्ते की बसों में धक्के खाना क्या चीज होती है!

—बस, इतनी सी बात और जनाब ने नौकरी छोड़ दी! बाबा गरम हो गये थे.—अरे, हमारी तो सरकारी नौकरी थी, फिर भी क्या-क्या नहीं सुनना पड़ता था. तुम आजकल के लड़के खाली बातें बनाना जानते हो. अभी हफ्ता भर पहले तू ही कह रहा था न अपनी बहन से, मैं बंगाल का नेता बन जाऊं तो सबसे पहले हाथरिक्शा वालों को साइकिल-रिक्शा दिलवा दूं जैसे द्रमुक सरकार ने किया है. नेता बनने से पहले कितना कुछ सहना पड़ता है, कितनी गालियां खानी पड़ती हैं, वह भी मालूम है? बस, दो बातें सुनी, नौकरी छोड़ आये.

—ये दो बातें हैं? साला मेरी पूरी कौम को गाली दे रहा था. तुम लोग बस आर्टिस्ट बन सकते हो या भीख मांग सकते हो. तुम्हारे बाप-दादों ने भी कभी मेहनत का काम किया है? एक घंटा देर क कर मेरा दस हजार का नुकसान कर दिया. मैंने भी कह दिया, संभालो अपनी नौकरी. दमन चक्रवर्ती ऐसी नौकरी नहीं करेगा.

—हां, बाबा की आवाज कांप रही थी,—दमन चक्रवर्ती के तो सिर पर सींग हैं. यह नहीं सोचा कि अढ़ाई सौ रुपये देता है वह तुम अढ़ाई बात नहीं सुन सकते! तुम्हारी इज्जत कम हो गयी क्या सब सुन कर? ईमानदारी से काम करते रहते, अपने आप बढ़

इस बार दामू का चेहरा तन गया था. —बाबा, आपका जमाना गया. लात खा लो, चुप रहो, क्योंकि महीने की पहली तारीख को कागज के दो टुकड़ों की खैरात मिलती है. दामू मुंह से थूक के छींटे उछाल रहा था —आपने बहुत ईमानदारी से काम किया न, क्या दिया हमें? यही एक घर, यह बगैर रंग-रोगन का एक कमरा, जहां सुबह उठ कर आधा घंटा पेशाब रोक कर खड़े रहना पड़ता है, क्योंकि नीचे क्यू लगी रहती है. . . . और आपके साथ के लोग, जिन्होंने बेईमानी की, आज बालीगंज-टालीगंज में दोमंजिला मकान बना कर ठाठ से रह रहे हैं और उनके लड़के-लड़कियां जाने किस-किस की सिफारिश पर ऐसी-ऐसी नौकरियों पर लगे हैं जिनके काबिल उनके पास डिग्री भी नहीं. . .

* *

वह पहली और आखिरी नौकरी थी. उसके बाद दामू को नौकरी नहीं मिली. और अब तो उसने हार कर कोशिश भी छोड़ दी है. वह जब देखो, किराये की साइकिल लिये इधर से उधर भाग रहा है — क्लब के लिए चंदा उगाहना, पंडाल सजाने वालों को खुद सारे डिजाइन समझाना, लाउडस्पीकर लगा कर नये-से-नये और रवींद्र-संगीत के रेकार्ड बटोरते फिरना — हर तरफ से यह कोशिश कि उ मोहल्ले की पूजा सबसे अलग, सबसे कलात्मक हो. दुर्गापूजा खत्म होने के बाद महीने भर वह इतना उदास और लावारिस घूमता था जैसे किसी अपने की मौत हो गयी हो. इस बार वह कुछ ज्यादा ही जुटा हुआ था — न खाने की सुध, न पहनने की. जब से नौकरी छूटी थी, वह बाबा से आंखें चुराने लगा था. अब तो बाबा खुद ही उसे कुछ नहीं कहते थे पर वह न घर पर खाना ठीक से खाता था, न चैन से सो पाता था. एक दिन सुबह मेरे काम पर जाने से पहले वह मेरे सामने आ कर खड़ा हो गया था — मुझे पच्चीस रुपये चाहिए. वह नीचे देख रहा था, पर यह साफ था कि वह रात भर नहीं सोया है.

—क्या लेना है?

—पूजा के लिए चंदा चाहिए.

—चंदा? वाह! अब घर वालों से भी चंदा मांगने लगे.

—इस बार लोगों ने पहले की तरह चंदा नहीं दिया है. हमें चार हजार का फौरन इंतजाम करना है. सब अपने-अपने घरों से कम-से-कम पच्चीस-पच्चीस रुपये दे रहे हैं.

—अपने-अपने घरों से नहीं, अपनी-अपनी कमाई से. सिर्फ मेरी कमाई से यह घर कितनी अच्छी तरह चल रहा है, शायद तुझे दिखाई नहीं देता. तुझे कमा कर हम सबको खिलाना चाहिए! उलटे मुझसे पच्चीस रुपये मांग रहा है.

—हां, मैं तो अपनी मर्जी से हाथ पर हाथ धरे बैठा हूं न! तुम दिलवा दो न काम. खैर, मुझे लेक्चर नहीं सुनना. मुझे पच्चीस रुपये चाहिए. उसने मेरा पर्स पकड़ा था.

—मेरे पास हैं रुपये, पर मैं दूंगी नहीं तेरे उस क्लब को, जिसमें सब तेरे जैसे निकम्मे, काहिल, अड्डेबाज लोग भरे पड़े हैं या फिर उन रईसों के बेटे, जिनके पास बहुत-सा काला पैसा है. तूने अपनी जिंदगी, अपना उठना-बैठना सब उस क्लब के नाम लिख दिया है, अब क्या हमें भी. . .

—देखो, बढ़-चढ़ कर मत बोलो. मुझे दो वक्त का खाना दे ती हो, यह बहुत बड़ा एहसान है न तुम्हारा! मैं अपनी मर्जी से एक त्रिका तक खरीद कर नहीं पढ़ सकता, अपनी पसंद से घर के लिए क चीज नहीं ला सकता और तुम हर महीने तीन रुपये अपनी ाईब्रोज शेप करवाने के लिए खर्च करती हो, वह बहुत जरूरी र्च है. मेरा मुंह मत खुलवाओ, लेकिन तुम भौंहे बनवा कर इतनी दसूरत और बनावटी लगती हो जैसे. . .जैसे मंगलग्रह से उतर र आयी हो. . .

—दामू, तू निकल जा यहां से बाहर. बात करने की तमीज भी झमें नहीं रह गयी है.

—मैं नहीं जाऊंगा. तुम जाओ और ले जाओ अपनी कमाई ी साथ ही. मैं बाबा को भूखा नहीं रखूंगा, तुम्हें हमारे लिए मिटने ी जरूरत नहीं है. बड़ी दीदी जैसे गयी ह न, तुम भी रोज घर-घर ाती हो, अब तक ढूंढ़ क्यों नहीं लिया?. . .लेकिन याद रखना, च्चीस रुपये मैं आज ही ले कर जाऊंगा, यह मेरा प्रेस्टीज ईशू है.

मैं बगैर कुछ कहे घर से बाहर निकल आयी थी. हां, इसकी प्रेस्टीज' कितनी है, यह मुझसे बेहतर कौन जानता है? मुझे एकाएक ामू पर तरस आया था. यह लड़का कितनी गलत जगहों पर अपनी ारी प्रतिभा खर्च कर रहा है. . . लेकिन घर लौटते ही दामू पर आया सारा तरस झड़ गया था. वह सामने होता तो मैं उसे दो-चार माचे जड़ देती. घर से ट्रांजिस्टर गायब था---डेढ़ सौ का ट्रांजिस्टर तीस-चालीस रुपये में बेच आया होगा. घर में एक यही चीज थी जो उसके काम आ सकती थी. लेकिन दामू भी यह तो जानता था कि बाबा को ट्रांजिस्टर का कितना बड़ा आसरा है. अकेले में उनका मन लगा रहता है. दामू इतना क्रूर हो सकता है, यह तो मैं सोच भी नहीं सकती थी---वह मेरी कोई भी चीज बेच आता, लेकिन बाबा... और अब एक बाहरी आदमी आ कर हमें हिदायत दे रहा था कि अपने भाई को संभाल कर रखो. शाम को दामू लौटा था, चेहरा तना हुआ---आते ही बाबा के पास खड़ा हो गया था, उनके माथे पर हाथ रखा था उसने.

--खाना रखा है, मैंने कहा था.

--मैं खाना खा कर आया हूं.

—वह तो तेरी शक्ल ही बता रही है कि कितना खाना खाता है. वह इन दो महीनों में आधा रह गया है. चेहरा इस कदर मुरझाया हुआ कि अर्थी के वक्त मां की धंसी हुई आंखें और गालों की उभरी हुई हड्डियां याद आती हैं.

--बाबा ठीक हैं? उसने पूछा था.

—तुझे क्या करना है? वह दिन में चार बार ट्रांजिस्टर सुनते थे और वह तू बेच आया.

--तुम किसी बात का सीधा जवाब नहीं दे सकतीं? रुपये मुझे देने ही थे. ट्रांजिस्टर तुम्हारा नहीं था, तुम्हारी कमाई का नहीं था. मैंने तुम्हारी चीज नहीं ली और मुझे तुमसे कुछ नहीं कहना है.

—लेकिन मुझे कहना है. आज सामने वाले त्रिलोक भवन से एक आदमी आया था, दमन चक्रवर्ती को पूछ रहा था. तुझे तो अपना नाम पसंद नहीं था न, अब जिस-तिस से झगड़ा करके तू अपने नाम का ढिंढोरा पीटता रहता है, मने राखबेन, आमार नाम दमनचक्र!

--तुम भी वही सब मुझसे कहना चाहती हो जो वह आदमी कह कर गया है! मुझे अपनी सफाई नहीं देनी है.

--मुझे तेरी सफाई चाहिए भी नहीं. सिर्फ इतना बता दूं कि वह अपने गुंडों से किसी दिन तुझे पिटवा देगा. वे बड़े लोग हैं, उनके हजार हाथ हैं, उनसे तू उलझ नहीं सकता.

--मेरा खून करवा देगा तो तुम काली मंदिर जा कर प्रसाद चढ़ा आना, लौट कर बाबा को भी थोड़ा प्रसाद दे देना.

सुधा अरोड़ा (जन्म : ४ अक्तूबर, १९४६) ने अपनी कहानियों में हमेशा आज की जिंदगी के धुंधलकों के पार देखने की कोशिश की है. परंपराओं के प्रति एक तीव्र आक्रोश इनके पात्रों में नजर आता है. सुधा की कहानियां अनजाने दर्द और मुक्ति की तलाश की कहानियां हैं.

--इस बार चंदा पूरा नहीं मिला तो तू ऐसे अनजाने लोगों से झगड़ रहा है. उन्होंने ठेका लिया है क्या दुर्गापूजा करवाने का? अभी दुर्गापूजा है, फिर लक्ष्मीपूजा, फिर कालीपूजा, फिर जगधात्री पूजा, फिर सरस्वती पूजा---कोई कितना चंदा देगा, हर एक की अपनी सीमाएं हैं.

---हां हां, देखी हैं सीमाएं. हर शनिवार वह पांच-सात सौ रुपये रेस में हार आता है, हर महीने उसके यहां शराब की पार्टियां होती हैं और वह हमें दस रुपये नहीं दे सकता! न दे, पर चंदा न देने के साथ-साथ इतना लंबा उपदेश क्यों देता है हमें कि कुछ काम-धंधा करो, चंदा क्यों मांगते फिरते हो, तुम लोगों को बैठे-बैठे खाने की आदत पड़ गयी है, चंदे से रुपया जमा करोगे, आधा पूजा में लगाओगे, आधे से साल भर बैठ कर खाओगे. मैं उसे छोड़ूंगा नहीं, वह साला मुझे क्या पिटवायेगा. . .

---चंदा मांगने जाओगे तो वह सब सुनना ही पड़ेगा. इसी बित्ते भर के मोहल्ले में दस जगह पंडाल लगे हैं, दस लोग चंदा लेने सिर पर आ खड़े होते हैं. मुझे तो आज तक समझ में नहीं आया, जिन गलियों में इतनी गरीबी पल रही है, वहां हजारों का खर्च सिर्फ बिजली और सजावट पर करने से क्या मिलता है तुम लोगों को. इस सबको एनजॉय तो फिर वही करते हैं न जो छुट्टी मनाने, घूमने निकलते हैं. भूखा आदमी इन सजावटों से अपना पेट तो भर नहीं सकता. तुम लोगों के लिए तो दुर्गापूजा मनाना, टीमटाम करना एक हॉबी है, ढकोसला है. बस, इससे ज्यादा कुछ नहीं. इतना पैसा बटोर कर क्यों नहीं उनमें बांट देते, जिन्हें सचमुच इसकी जरूरत है?

---हां, दो दिन अच्छा खा लेंगे, पहन लेंगे, फिर वही भूख. साल भर हम इस भूख से, गरीबी से लड़ने की ताकत यहीं से लेते हैं. हमें मानसिक शांति मिलती है, पर यह सब तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा.

---अच्छा, तुझे सचमुच मानसिक शांति मिलती है? मुझे नहीं मालूम था कि तू इतना बड़ा आस्तिक हो गया है. तू तो ईश्वर, पूजा, मंदिर---कुछ नहीं मानता था.

दामू ने जवाब नहीं दिया. वह बाहर जाने लगा तो मैंने पूछा---ट्रांजिस्टर तूने सचमुच बेच दिया क्या? कितने रुपये मिले?

---मैं जा रहा हूं. कल भी खाना नहीं खाऊंगा.

---फिर घर आने की भी क्या जरूरत है?

तब मुझे नहीं लगा था कि उसने मेरा यह आखिरी वाक्य सुना भी है. वह तीन दिनों से घर नहीं लौटा. आज चौथा दिन है. मैंने तो अभी बाबा को यह भी नहीं बताया कि ट्रांजिस्टर बिन्नू नहीं ले गया, दामू बेच आया है. बाबा कुछ नहीं कहेंगे, बस, सूनी-सूनी पनियायी आंखें एक तरफ स्थिर कर देंगे.

• • •

—दी ऽ ऽ पू. यह शायद बाबा ने दूसरी बार मुझे आवाज दी है. उनकी आवाज और पुकार सुनाई नहीं देती.

—आ गयी, बेटा? कब आयी? उनकी आवाज बेतरह कांप रही है—तनखा मिली?

—आज तो अट्ठाईस है, बाबा. परसों मिलेगी.

—अगले महीने जाना है? पता नहीं उनकी आवाज को क्या हो गया है. एक-एक शब्द बोलने में जैसे उनकी पूरी ताकत खत्म हो जाती है.

—जाना है.

—चलो, अच्छा है. बाबा उठने की कोशिश करते हैं. उनकी आवाज सुन कर डर लगता है. मौत के नजदीक पहुंचते हुए आदमी की आवाज क्या इतनी सूनी, इतनी भयावह हो जाती है?

—कुछ चाहिए, बाबा?

—अखबार है?

तभी दरवाजे की सांकल जोर से बजी है. फिर कोई नया आदमी, फिर कोई नया उलाहना. या शायद दामू आ गया है. मैंने झटके के साथ दरवाजा खोल दिया है. नहीं, दामू नहीं लौटा. उसका कोई साथी है. वैसी ही उजड़ी हुई शक्ल. अट्ठारह-उन्नीस साल के नौजवान और सबके एक जैसे पिटे हुए चेहरे. मैं कहने को हुई हूं कि दामू घर में नहीं है. तभी वह एक सांस में बोला है—दामू अस्पताल में है—सुबह से.

—क्या ऽ ऽ! मैं चौंकी हूं. एक-न-एक तमाशा खड़ा करने की उसे आदत है. दामू, तू हमें चैन से नहीं रहने देगा.

—दामू पी. जी. के एमरजेंसी वार्ड में है. कल रात उसके पेट में बहुत दर्द था. वह कहता रहा, डाक्टर को बुलाने की कोई जरूरत नहीं, ठीक हो जायेगा. सुबह अचानक बहुत बढ़ गया तो अस्पताल ले गये. फूड पायजनिंग है शायद. आप अकेले चली जायेंगी? मुझे जरा काम है. वैसे दामू के पास दो लड़के हैं हमारे.

मेरे होंठ कांप रहे हैं. नहीं, ऐसा कुछ नहीं होगा. मैंने बाबा को कहा है, अभी बाजार से अखबार ले कर आती हूं. दरवाजा बंद कर ताला लगाया और बाहर आ कर रिक्शा लिया. वही हाथरिक्शा. इस मैनपुलिंग रिक्शे में दामू आज तक एक बार भी नहीं बैठा. . . कहीं दामू ने खुद कुछ खा तो नहीं लिया? नहीं, यह काम वह कभी नहीं कर सकता. मैंने रिक्शे वाले को तेज चलने को कहा है, पर वह झटके के साथ रुक गया है. सामने लंबा जुलूस है और रास्ता बहुत संकरा है. इतना शोर, इतने बैंड-बाजे—आज दशहरा है, दुर्गा की प्रतिमा का विसर्जन. रिक्शे वाले ने एक से कहा है—रास्ता दे दो, अस्पताल जाना है, पर सड़क के दोनों ओर देखने वालों की भीड़ जमा हो गयी है. नहीं दामू, तुम जा नहीं सकते, मुझे वहां तक पहुंच लेने दो, मैं सब देख लूंगी, तुम इतनी आसानी से मर नहीं सकते. . .उफ, यह कैसा जुलूस है! पहले लाल पगड़ी वाला बैंड, फिर 'आरोही संस्थान' के नीली वर्दी वाले लड़के बांसुरी बजाते हुए, उनके पीछे एक और रंगीन बैंड, फिर ढोल-नगाड़े वालों का जत्था, फिर बॉक्सिंग क्लब के लड़के एक कतार में तुरही जैसा कुछ बजाते हुए. . .अब भी वह सजी हुई ट्रक कितनी दूर है. अब मोटर साइकिल की दोनों तरफ चार कतारें, जिन पर सवार लोग कभी एक हाथ, कभी दोनों हाथ छोड़ कर करतब दिखाते जा रहे हैं, फिर कुछ सरदार लड़के हाथों में बंधे रेशमी रूमाल फहराते हुए, भांगड़ा करते हुए. . .और अब ट्यूबलाइट्स से सजी हुई गाड़ी. . .गाड़ी के सामने आते ही मैंने भय से आंखें मूंद ली हैं—इसमें तो सिर्फ राक्षस है—त्रिशूल सीने में उतरा हुआ, खून से सराबोर. क्या इसे ले जाने के लिए इतनी सजावट की गयी है? फिर रेशमी पोशाक में एक और लंबा बैंड-बाजे वालों का जुलूस—उफ, क्या तमाशा है! किस कदर रास्ता रोक रखा है. . . और इतना शोर. . .कान फट रहे हैं. . .और अब आखिरकार की कतार से सजी हुई गाड़ी, जिसमें दुर्गा की प्रतिमा है. चेहरे पर एक चमक है, पीछे रंग-बिरंगा घूमता हुआ चक्र है— पीला, नीला, हरा, रंग बारी-बारी से चक्राकार घूम रहा है, चौंधिया गयी हैं. . .

रिक्शा गलियों से निकल कर एक अंधेरे-से रास्ते पर रुक जाता है—अस्पताल आ गया है. उतरिए. मुझे कुछ दिखाई दे रहा है. इतनी रोशनी, इतने शोर के बाद इस अस्पताल के कितना अंधेरा लग रहा है! पर यहां भी उतनी ही भीड़ है. बाहर एक झुर्रियों वाले हाथ ने थरथराती हुई आवाज में रास्ता है—दीदीमोनी, खाली शीशी-बोतल औषध जन्ये नियें जाओ. दस पैसा, मां. मैं उसे परे कर भीड़ को चीरती हुई निकल आयी हूं.

एमरजेंसी वार्ड के सामने लाल वत्ती जल रही है. कोई नहीं. अंदर जाना मना है. नहीं-नहीं. इन चीजों से तुम इतनी छुटकारा नहीं पा सकते. मेरे भीतर की हलचल शांत हो गयी है. तुम इतनी आसानी से मर नहीं सकते. एटा होते पारे ना. . . एक स्थिरता-सी आ गयी है. बाबा अखबार का इंतजार कर और मैं कितने जुलूसों, कितनी बाधाओं को पार कर यहां आ गयी हूं. . .

मेरी बगल में सिर्फ एक लड़का है जो शायद दामू का साथी उसके चेहरे का चिंतित भाव एक सुकून-सा देता है और मैं बेंच की पीठ पर अपना सिर टिका देती हूं. भीतर से उल्टियां की आवाज आ रही है. ऐसी आवाज सिर्फ दामू की ही हो सकती डाक्टरों की अस्पष्ट, हलकी बातचीत सुनाई दे रही है. अभी बाहर निकल कर अपनी मशीनी आवाज में यह सूचना देगा— इज आउट आफ डेंजर.

बाहर, कॉरिडोर की खिड़की की तरफ हलका-हलका शोर वह जुलूस घूम कर शायद इधर ही आ रहा है. इतनी तरह मिश्रित आवाजों का शोर दूर से कितना हास्यास्पद लगता है. . . ☐☐

४०३, सी क्रेस्ट–१, सात बंगला, जयप्रकाश रोड,
अंधेरी (पश्चिम), बंबई–४०००५८.

एक लघुकथा

नेता और आदमी

● मुकुंदमाधव मेहरोत्रा

नगर में एक आलीशान बिल्डिंग का निर्माण-कार्य चल रहा था. एक बार एक नेता जी अपने चमचों सहित उधर से गुजरे. वहां खड़े एक व्यक्ति से उन्होंने पूछा—यह किस बिल्डिंग का निर्माण-कार्य चल रहा है? उस व्यक्ति ने नेता और उनके चमचों को अपने सामने खड़े देखा तो सकपका गया. हाथ जोड़ कर बोला— जी! यह म्युनिसपैलिटी की नयी बिल्डिंग बन रही है. फिर कुछ रुक कर बोला—

. . .इस बिल्डिंग का शिलान्यास तो हो चुका है और शायद बिल्डिंग पूरी हो जाने के बाद उदघाटन करने के लिए भी किसी और को बुलाया जा चुका है . . . ☐

अंतहीन-दो

• सुदीप

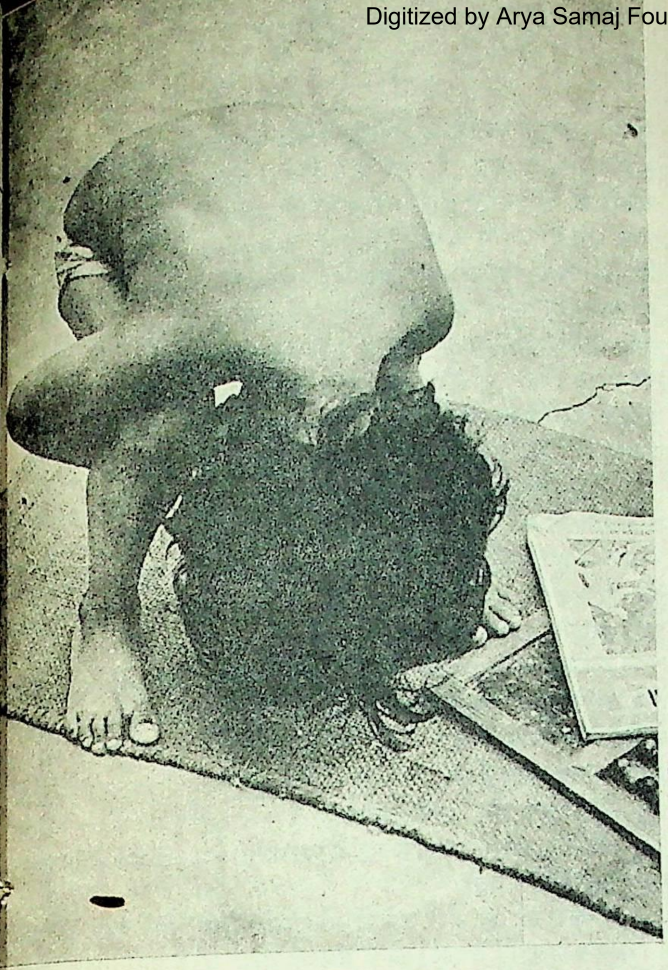

• एस. सी. सिन्हा

राम-राम करके किसी तरह गाड़ी चल पड़ी थी.

जून की गर्मी, लू, धूप, मक्खियां, पसीना और भीड़. हवा का कहीं नामो-निशान नहीं. रात को थोड़ी-सी बारिश पड़ गयी थी, जिसने उमस को और भी ज्यादा बढ़ा दिया था. तीसरे पहर की धूप में प्लेटफॉर्म का कोना-कोना चमक और झुलस रहा था और कंपार्टमेंट में ठुंसी हुई भीड़ को देख कर मेरा दम निकला जा रहा था. समझ नहीं आ रहा था यह चौबीस-पचीस घंटों का सफर कैसे तय होगा. वैसे भी यह बोगी गाड़ी में बाद में लगायी गयी थी. कोई गंगा-स्नान चल रहा था और लोग दिनों से स्टेशन पर पड़े हुए थे. इसीलिए रेलवे वालों ने हर गाड़ी के साथ एक-एक, दो-दो अतिरिक्त बोगियां लगाना शुरू कर दिया था.

इन अतिरिक्त बोगियों की हालत भी यह थी कि लगता था, न तो महीनों से इनकी सफाई की गयी है, न इनका कभी इस्तेमाल किया गया है. न उनमें बिजली का प्रबंध था, न पानी का. मदन का स्टेशन पर कुछ लोगों से परिचय था. उसी ने किसी तरह मेरा रिजर्वेशन करवा दिया था और फिर कहीं से ढूंढ-ढांढ कर एक इलेक्ट्रीशियन को ले आया था, जिसने फ्यूज जोड़-जाड़ दिया था.

मनहर मक्खियों की वजह से परेशान था. एक मोटी-सी मक्खी बार-बार आ कर उसके चश्मे के कांच पर बैठ जाती थी और वह बार-बार झुंझला कर चश्मा उतार लेता था. चश्मा उतारते ही मक्खी उड़ कर इधर-उधर मंडराने लगती थी और उसके दुबारा चश्मा लगाते ही फिर आ कर कांच पर जम जाती थी.

—यह साली तो मान ही नहीं रही! आखिर उसने बेहद खीज कर अपनी हथेली चश्मे के कांच पर दे मारी. मक्खी उड़ गयी, और वह बड़बड़ा कर रह गया—साली किसी लेनदार की तरह बार-बार अड्डा जमा लेती है!

—तो देनदार की तरह तुम भी उससे मुंह चुरा जाओ न! सती ने कहा. इस पर सभी हंस पड़े. मनहर ने एक बार मोटे कांच के पीछे से बड़ी संजीदा नजर से सब की ओर देखा और चुपके से चश्मा उतार कर जेब में रख लिया.

—अब देखोगे कैसे? मदन ने उसे छेड़ दिया. साथ ही वह एक सुराही वाले से बातें करने लगा.

—देखने को है ही क्या? मक्खियां! मनहर चिढ़ गया. पर तभी गार्ड ने सीटी दे दी. मदन ने फुर्ती से पानी से भरी एक सुराही मेरे हाथों में थमा दी, जो गिरते-गिरते बची और गाड़ी के साथ चलते-चलते वह चिल्लाया—साले, बंबई आऊंगा तो सुराही का एक रुपया वसूल कर लूंगा. छोड़ूंगा नहीं! . . .

. . .और सब के सब हाथ हिलाते प्लेटफार्म पर ही छूटने लगे.

मुझे रिजर्वेशन में दरवाजे के पास वाली अकेली सीट मिली थी. मेरा अटैची अभी तक उस पर पड़ा था. इस डर से मैंने उसे ऊपर की बर्थ पर नहीं टिकाया था कि कहीं कोई सीट ही न हथिया ले. मुझे अटैची नजर नहीं आयी. हां, एक सूरत जरूर उस सीट पर बैठी नजर आयी. मुझे कुछ हैरानी-सी हुई.

मेरी सवालिया नजरें उस चेहरे पर टिकी हुई थीं. चेहरा क्या था, दो मोटी-मोटी आंखें थीं, जिनके कोये एकदम सफेद थे और पुतलियां एकदम काली. वह पंद्रह-सोलह साल की उम्र का एक लड़का था. तांबई काला रंग. चौड़े कंधे. सीने की मांसपेशियों में तनाव. . . बाहें दमदार. हाथ और हाथों की अंगुलियों में कुछ करने की छटपटाहट. सिर के बाल अजीब गुच्छा-मुच्छा और उसकी एक लट उसकी नाक पर लहरा आयी थी. . .उसके पूरे शरीर पर एक सफेद फटी धोती के अलावा कुछ नहीं था.

करीब एक-डेढ़ मिनट तक मेरा यह मुआयना चलता रहा. इस बीच उसने दो-एक बार आंखें उठा कर मेरी ओर देखा भी, लेकिन जैसे उससे उसे कोई सरोकार न हो, उसने फिर आंखें घुमा लीं. मुझे लगा यह जिद्दी किस्म का लड़का है. इसलिए इससे आंखों से या संकेत से नहीं, जबान से बात करनी पड़ेगी.

—क्यों भैया! मैंने कहा. . .तुम्हारी सीट कहां है?

उसने अपनी चमकती हुई आंखों को एक बार मेरी ओर उठाया और फिर दूसरी ओर घुमाते हुए उत्तर दे दिया—बैठे तो हैं!

—मगर यह तो हमारी सीट है, भैया! मैंने कहा. हमारा रिजर्वेशन है!

—सो हम कुछ नहीं जानते. . . सीट उसकी जो उस पर बैठा हो. हम इस पर बैठे हैं. . .

अब मुझे थोड़ा सख्त होना पड़ा. मेरे स्वर में भी थोड़ी-सी तेजी आ गयी.—तुम्हारे पास टिकट भी है? मैंने उसे पूछा.

—हमारा टिकट इंदिरा मैया के पास है. . .

—तो यहां क्या कर रहे हो? इंदिरा मैया के पास जाओ न!

—वहीं तो जा रहे हैं. . .

आसपास के लोग इस बीच इस बातचीत में रस लेने लगे थे. उन्हें शायद बोरियत से निजात पाने का यह एक जरिया मिल गया था. लड़के के इस उत्तर पर कुछ लोग ठहाका लगा कर हंस पड़े.

अब मुझे ताव आने लगा. गुस्से और खीज से भर कर मैंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया और उससे कुछ कहने ही वाला था कि उसने मेरा हाथ झटक दिया. साथ ही बोला—अरे, हम तो यों ही बैठे हैं. अभी उठ जायेंगे. . . इसके साथ ही वह ऊपर के होंठ को टेढ़ा करके हलके से मुसकरा दिया और सीट से उठ खड़ा हुआ. मैंने झट से सीट पर कब्जा कर लिया. सुराही को सीट के नीचे टिका

दिया और अटैची को ऊपर की सामान रखने की जालीदार बर्थ पर. लड़का सीट के सामने ही लगे वाश बेसिन से टिक कर खड़ा हो गया. उसकी आंखें नीचे ताक रही थीं और ऊपर का होंठ रह-रह कर फड़क रहा था, जैसे वह कुछ कहना चाह रहा हो.

जो लोग निश्चित हो कर अपनी-अपनी सीटों पर जम गये थे, वे आपस में बतियाने लगे थे, लेकिन अनेक ऐसे भी थे जो कॉरीडोर में ही अपने साज-सामान पर जमे हुए थे. औरतें बच्चों को चबेना या रोटी का टुकड़ा देने लगी थीं, मर्द बीड़ी-सिगरेट पीने लगे थे या सुर्ती मलने-फांकने लगे थे. फिर शौचालय की ओर जाने-आने वालों का सिलसिला शुरू हो गया. लड़का चूंकि रास्ते में खड़ा था, इसलिए हर आने-जाने वाले का कोई-न-कोई अंग उससे टकरा जाता था और लोगों ने बड़बड़ाना शुरू कर दिया था. एक लाला-किस्म का आदमी कुछ ज्यादा ही मोटा था. वाश बेसिन पर आ कर वह अपने लोटे से हाथ-मुंह धोने लगा.जगह की कमी के कारण लाला को भी परेशानी हो रही थी, इसलिए उसने डांट कर कह दिया—अरे, तुम एक तरफ बैठ क्यों नहीं जाते! सब को दिक्कत हो रही है!

लड़के ने एक बार फिर चमकती हुई आंखों से उसे देखा और बोला—— हमारी मर्जी! गाड़ी तुम्हारी ही नहीं है! हमारी भी है!

——अरे वाह! लाला बिगड़ गया. एक तो बिना टिकट सफर करते हो, ऊपर से अकड़ते भी हो!

——आप अपना काम करो! हमसे मतलब!

——ठीक है. अगला स्टेशन आने दो. . . पुलिस बुलवा कर तुम्हें ठीक करवाना पड़ेगा.

——पुलिस की ऐसी-तैसी! पुलिस क्या कर लेगी हमारा! . . . मालूम है, हम रेभोलूसनरी हैं. . .आर-इ-भी-ओ-एल-यू-एस-एन. . . .

मैंने उसकी ओर देखा—— उसकी आंखों में पहले से भी ज्यादा चमक थी, जबकि गाड़ी के बाहर रोशनी ढल चुकी थी. आसमान में गहरे काले बादल थे, जिससे यह अंदाज भी नहीं मिलता था कि सूरज आसमान में ही कहीं है या ढल चुका. मैं कुछ क्षण खिड़की से बाहर ही देखता रहा और भीतर के दृश्य को करीब-करीब भूल ही गया. लेकिन तभी किसी की आवाज ने मेरा ध्यान फिर गाड़ी के भीतर खींच लिया. किसी किसाननुमा आदमी का स्वर था, जो लड़के को छेड़ रहा था—— भैया, तुम्हें अगर इंदिरा मैया के पास जाना है तो इस गाड़ी से काहे जा रहे हो? . . . . यह तो बंबई जायेगी!

——अरे हम चाहें तो उन्हें हमसे मिलने हमारे गांव तक में आना पड़ेगा. . . हम क्रांतिकारी हैं. . . रेभोलूसनरी. . .और इसके साथ ही उसने जो वाक्य बोला, उसने मुझे चौंका दिया : यही तो हमारा दुर्भाग्य है, उसने कहा, इस देश का गरीब भी गरीब का मजाक उड़ाता है!

★ ★

बाहर जोरों की बारिश होने लगी थी. मैंने खिड़की बंद कर ली. फिर भी पानी उसके कांच के नीचे से सीट पर गिरने लगा.

एक स्टेशन आ गया था. मन में बड़ी इच्छा थी कि एक कप चाय मिल जाये तो थोड़ी राहत मिले. लेकिन हमारा डब्बा प्लेटफॉर्म से बहुत दूर रह गया था. और चाय वाले प्लेटफॉर्म पर ही आवाजें लगा रहे थे. मन मार कर बैठा रहा. आखिर गाड़ी चल दी.

सिगरेट पास थी, इसलिए कुछ गनीमत थी. मैंने एक सिगरेट सुलगा ली. धुआं लड़के की ओर उड़ा तो उसने मेरी ओर देखा. फिर धीरे से बोला—— एक बीड़ी हमको भी पिलवाइए न!

मैंने एक बार व्यंग्य भरी नजर से उसकी ओर देखा और फिर सिगरेट और माचिस उसकी ओर बढ़ा दी. उसने सिगरेट सुलगा ली और मुट्ठी बांध कर जोर-जोर से सुट्टे लगाने लगा.

डब्बे में अंधेरा घिरने लगा था. दो-तीन बल्ब बड़ी मरियल-सी रोशनी से उसमें जिंदगी का एहसास भरने की कोशिश कर रहे थे. गंवई लोगों ने अपने-अपने खानों की पोटलियां खोल ली थीं और बड़े-बड़े कौर मुंह में भर कर उन्हें सूखा ही निगलने लगे थे. लोगों के चलते मुंह देख कर मुझे भी एहसास हुआ कि मैं भूखा हूं. रात भर हम लोग चर्चा-गोष्ठी में व्यस्त रहे थे. बहुत तेज-तर्रार बातें हुई थीं. हम देश के मौजूदा हालात पर विचार करते रहे थे. इन हालात में अपने कर्त्तव्यों की बातें करते रहे थे. . .बहुत देर तक खाना-पीना-बहसें चलती रही थीं. फिर सुबह उठ कर गाड़ी की चिंता सवार हो गयी थी. दिन में थोड़ा-सा नाश्ता ही किया था. स्टेशन पर मित्र लोग खाने को कहते रहे थे, पर गर्मी और हड़बड़ाहट के बारे मन ही नहीं हुआ था कि कुछ खाया जाये! . . .

बहरहाल. लोग फिर बातों और खामोशी के सिलसिलों के बीच गुम हो गये थे. अब एक बार फिर मैं उस लड़के की ओर मुखातिब हो गया. सोचा, इससे बातें ही की जायें तो अगले स्टेशन तक का रास्ता कट जायेगा. इसलिए मैंने उससे कहा——कौन गांव के हो, भैया?

——चक चमरिया के. . . सी-एच-के सी-एच-एम-आर-आइ-ए. . .और उसने सिगरेट का आखिरी कश ले कर टोटे को वाश बेसिन में ही फेंक दिया.

——वह कहां है?

——बिहार में. . .इन बिहार . . .

अब मैंने उससे कहा कि वह मेरे साथ ही मेरी सीट पर बैठ जाये. वह चुपके से बैठ गया.

——कुछ पढ़े भी हो? अंग्रेजी तो खासी बोलते हो! नाम क्या है?

——कलुआ. . .कालू सिंह है हमारा नाम. और उसने गरदन मेरी ओर घुमा ली. . . के-ए-एल-यू-एस-आइ-एन-जी. . . आठ किलास तक पढ़े हैं. गांव के इस्कूल में.

——आगे क्यों नहीं पढ़े?

——कैसे पढ़ते! हम जात के चमार हैं. हमारा बाप चमारी नहीं करता था. किसानी करता था. पिछले बरस ठाकुरों ने हमारे घरों को आग लगा दी. बाप जल मरा. हम फीस नहीं भर सके तो इस्कूल से निकाल दिये गये. . .

——ठाकुरों ने घर क्यों जला दिये?

——वो तो रोज का ही काम है उनका. . . मजूर जरा-सी मांग करे तो उसे लाठी-गोली-आग ही तो मिलती है! . . .

——तो अब क्या करते हो?

——कुछ नहीं. . . क्रांति करते हैं. . . रेभोलूसन. . . .

मुझे अजीब-सा लगा.

——ऐसे भटक-भटक कर कहीं क्रांति होती है क्या?

——हम अकेले नहीं हैं. . . लाखों हैं. . . करोड़ों हैं. . . सब सब जगह क्रांति करेंगे. . . जब तक यह राछस-राज खत्म नहीं होता, तब तक कुछ नहीं होगा. . .

और सहसा जैसे किसी ने उसकी चाबी ही भर दी हो. . .अब वह बिल्कुल किसी भाषणकर्त्ता की तरह ऊंचे स्वर में बोलने लगा. लोगों की आंखें उसकी ओर खिंच गयीं—— बैठे हुए उसकी ओर देखने लगे, लेटे हुए उठ कर बैठ गये. खड़े हुए उसकी ओर घूम गये. . .और कलुआ वाश बेसिन के पास ही खड़े हो कर बड़े नपे-तुले, सधे-संवरे, फिर भी गंवई ढंग से देश में फैले भ्रष्टाचार की बातें कह रहा था, पूंजीपतियों की खूंखार प्रवृत्तियों की बातें कह रहा था, वर्ग और वर्ण-संघर्ष की बातें कह रहा था और शोषित वर्ग को एकजूट हो जाने का आह्वान दे रहा था. . .——इस देश को सिर्फ एक ही झटके की जरूरत है. यह खूनी दीवार अब ढहने ही वाली है. . . क्रांति हो कर रहेगी. . . मजूर जाग उठा है. . . किसान जाग उठा है. . . हम सब को दिल्ली जाना है. . . व्यवस्था की चूलें हिला देनी हैं. . . क्रांति हो कर रहेगी. . . रेभोलूसन. . . टोटल रेभोलूसन . . . . सहसा

सुदीप (जन्म : अप्रैल, १९४२) की कहानियां ऐसे संदर्भों से आती हैं कि वे मात्र सामाजिक न हो कर इस समाज में जीने वाले मनुष्य की आत्मिक संकुलता की कहानियां हो जाती हैं. पात्र पिघल कर अदृश्य हो जाते हैं और सामने रह जाता है समय. . . और समय के बीच जीते हुए मनुष्य के प्रश्न. . .और प्रश्नों का उत्तर मांगती हुई आवाजें. . .

उसका चेहरा तमतमा आया था. . . गले की नसें फूल उठी थीं. . . पेशानियों की नसें तेजी से बहती जल-धाराओं की तरह एक-दूसरे को काटने लगी थीं. . . . सीने की मांस-पेशियां फड़कने लगी थीं. . . टोटल रेमोलूसन. . . . संपूर्ण क्रांति . . . टी-ओ-ट-एल-आर-इ-भी-ओ-एल-यू-एस-एन. . .

पूरे डब्बे में बेचैन-सी खामोशी व्याप गयी थी. सभी इस कदर मंत्रमुग्ध-से हो गये थे कि पता नहीं चला कि कब अगला स्टेशन आ गया और गाड़ी रुक भी गयी. रात के खाने की थालियां लिये एक वेटर डब्बे में चढ़ आया था और सभी का मंत्र-प्रभाव तभी टूटा जब उसने कलुआ को कोहनी से ठेलते हुए कहा--- चल बे क्रांति की औलाद! रास्ते में क्या खड़ा है!

खाने की थालियां आते ही डब्बे में एक हलचल-सी मच गयी. कलुआ और उसकी बातें उस हलचल में गुम हो गयीं. उसने मेरे हाथ से सिगरेट की डिबिया ले कर एक सिगरेट सुलगायी और जोर-जोर से सुट्टे लगा कर धुआं बिखरने लगा. लेकिन चेहरा उसका अब भी तमतमा रहा था--- आंखों की गहरी काली पुतलियां अब भी सफेदी से घिरी चमक रही थीं.

---भूख ने ही तो इस देश को इतना ओछा बना डाला है और हमारे सत्ताधारियों ने हमें भूखा बना डाला है. . . . वह बड़बड़ाया.

भूख मुझे भी लगी हुई थी. खाना लाने वाले लड़के से मैंने खाने की एक थाली मांगी तो उसने कह दिया--- खाना केवल ऑर्डर देने वालों को मिलेगा. ऑर्डर शायद वह तभी ले गया था, जब कालूसिंह ने भाषण देना शुरू किया था और मैं उसे सुनने में मशगूल था.

बारिश अब भी बहुत तेज थी. इसलिए नीचे उतरना संभव नहीं था--- प्लेटफॉर्म भी तो काफी दूर था!

खाने वाला लड़का खाने की थालियां बांट रहा था. कलुआ ने एक बार उसे रोक लिया और बोला--- भूख हमें भी लगी है! एक थाली हमें भी दे दो!

वेटर ने उसे झटक दिया--- अबे ओ भिखारी की औलाद! चुपचाप बैठा रह! खबरदार जो किसी थाली को हाथ भी लगाया तो--- हाथ तोड़ दूंगा!

वेटर देखने में काफी हट्टा-कट्टा था--- बारिश में भीग जाने की वजह से कपड़े उसके शरीर से चिपक-से गये थे और शर्ट की ऊपर चढ़ी आस्तीनों के नीचे उसकी बाहों की मछलियां काफी मजबूत लग रही थीं. कलुआ खामोश हो कर बैठ गया.

खाने की ओर से अपना ध्यान हटाने के खयाल से मैंने फिर सिगरेट सुलगा ली. गाड़ी अभी भी खड़ी थी--- स्टेशन कोई जंक्शन था, इसलिए. बारिश की बौछारें अभी भी बड़ी तेजी से पड़ रही थीं.

थोड़ी देर बाद वेटर खाली थालियां समेटने लगा और दरवाजे के पास ढेर लगाने लगा. मैं देख रहा था, कलुआ की नजरें उन खाली थालियों पर लगी थीं--- उनमें से कुछेक में कुछ-न-कुछ जूठन शेष थी. दो-एक रोटियां थीं--- कुछ दाल थी, कुछ रायता था.

इस बार वेटर दूसरी ओर की थालियां लेने गया तो कलुआ उठ कर दरवाजे के पास चला गया. वेटर लौट कर आया तो उसे वहां खड़े देख वह गुर्राया--- खबरदार, जो किसी चीज को हाथ लगाया तो! . . . और वह थालियों को ढेर करके फिर चला गया.

और अब कलुआ एकदम झुका और उसने नीचे की थाली में बची दो रोटियां और रायता उठा लिया. रायते की कटोरी उसने मुंह से लगा ली--- लेकिन उसके कटोरी उठाने से ऊपर की थालियां नीचे फिसल गयी थीं. खनखनाहट की एक आवाज हुई--- थालियां पास पड़े कांच के गिलासों से टकरायीं--- गिलासों के गिरने से झनझनाहट हुई. . . और बस, एक कहर ही बरपा हो गया--- वेटर चिल्लाता हुआ और मां-बहन की गालियां बकता हुआ, बिजली की-सी फुर्ती से वहां आ पहुंचा और उसने कलुआ को उसके बालों से पकड़ कर पीछे धकेल दिया--- वह गिलासों के ऊपर गिरा. उसका सिर दीवार से जा टकराया और फिर उस पर घूसों और जूतों और लातों की बौछार पड़ने लगी--- वेटर उसे मारता जाता और गालियां बकता जाता---साले! हरामजादे! चोरी करता है! सूअर! गिलास तोड़ता है. . .हरामजादे! . . . .

जूतों और लातों और घूसों की धड़ाक्-धड़ाक् की आवाजें. . . . कलुआ के शरीर के बार-बार कभी फर्श तो कभी दीवार तो कभी दरवाजे से टकराने की आवाजें. . . और बीच-बीच में उसके शब्द--- यही तो दुर्भाग्य है . . . यही तो कमी है. . . मार ले साले. . . मार ले... लेकिन . . . एक दिन तुझे भी हमारे साथ चलना होगा. . . क्रांति हो कर रहेगी. . . संपूर्ण क्रांति. . . टोटल रेभोलूसन. . .

लातों और घूसों के बीच ही वेटर ने कलुआ को उसकी बाहों से पकड़ कर उठा लिया और यह कहते हुए कि 'साले अभी निकालता हूं तेरी क्रांति!' उसने उसे दरवाजे से नीचे रेल के पत्थरों पर धकेल दिया. . . . धड़ाक की एक आवाज हुई. . . लगा जैसे कुछ हड्डियां चटखी हों. . . और फिर एक बदहवास-सा सन्नाटा छा गया. . . जैसे पूरे डब्बे को लकवा मार गया हो. . .

वेटर और उसके एक साथी ने थालियों वगैरा को चलती गाड़ी में से ही उतारा. . . और कुछ ही पल बाद गाड़ी प्लेटफॉर्म के प्रकाश को पार करती हुई रात के अंधकार में आगे बढ़ रही थी.

पूरे डब्बे में सन्नाटा था. कोई कुछ नहीं बोल रहा था. . . .शायद हर यात्री इसी सोच में डूबा था कि कलुआ का क्या बना होगा. लेकिन यह घटनाक्रम इतनी तेजी से घटित हुआ था कि न तो कोई उसके बारे में कुछ सोच पाया था, न कह पाया था. इसीलिए वह सन्नाटा मौत के बाद के-से सन्नाटे जैसा भयावह लग रहा था. फिर धीरे-धीरे पूरा डब्बा नींद की आगोश में आ गया था.

मैं बहुत देर तक बाहर फैले अंधकार और उस अंधकार में चमकती बारिश की धाराओं को देखता रहा. फिर जाने कब मेरी भी आंख लग गयी.

फिर जब लगातार बैठे रहने से मेरी हड्डियां दुखने लगीं तो मेरी आंख खुल गयी. मुझे ताज्जुब हुआ कि बाहर रोशनी हो रही थी. कोई स्टेशन आ चुका था. सवेरा हो चुका था. बारिश गायब थी. चाय वाले आवाज दे रहे थे. मैं नीचे उतर आया.

मैंने चाय वाले से चाय मांगी. तभी मेरे पीछे से एक आवाज आयी --- एक चाय हमारे लिए भी, भाई साहब. . .

मैंने घूम कर देखा --- कलुआ मेरे पीछे खड़ा था और अब उसकी आंखें भी मुसकरा रही थीं. . . □□□

एन ४/१३, सुंदर नगर,
एस. वी. रोड, मालाड (वेस्ट), बंबई – ४०००६४.

एमरजेंसी

• रामसरूप अणखी

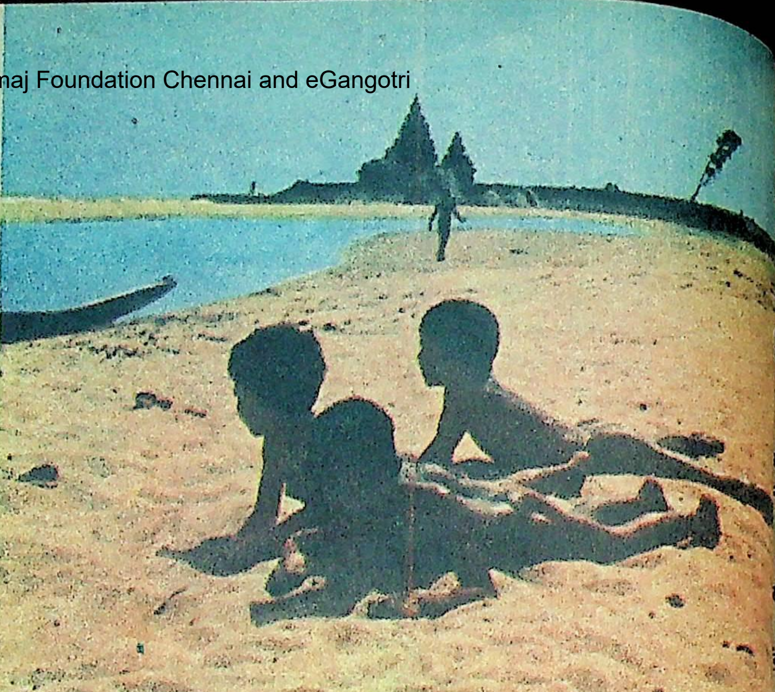

शाम के पांच बजने को हैं. नेहरू स्वास्थ्य केंद्र के बड़े गेट के सामने आ कर टैक्सी रुकी है. टैक्सी से उतर कर सागर ने संतरी से एमरजेंसी वार्ड का रास्ता पूछा है.

—सामने ही लाल अक्षरों में एमरजेंसी लिखा है, भाई साहब! वहां से दायीं ओर के रास्ते पर मुड़ जाइए, एमरजेंसी वार्ड के दरवाजे पर पहुंच जायेंगे. . . संतरी ने समझा दिया है.

टैक्सी में वापस लौट कर उसे पल भर की राहत मिली है. मधु को अपनी बगल से लगा कर उसने उसे सांत्वना दी है—बस, पहुंच गये अब तो. यहां तो जल्दी ही तुम्हें ठीक कर देंगे. अब फिक्र मत करो. जितना दुख भोगना था, भोग लिया.

मधु के सिर में लगातार दर्द हो रहा है—मारक किस्म का भयंकर दर्द. कमर और पिंडलियों में भी दौरे की तरह दर्द उठता है. इस दर्द के बेहद बढ़ जाने से उसका शरीर पसीने से भीग जाता है. ठंडा पसीना उसे नहला देता है और पूरा शरीर ठंडा यख हो जाता है. कुछ देर ही आराम रहता है. और एक बार फिर वही हालत हो जाती है. पिछले एक हफ्ते से मधु के साथ यही हो रहा है—लगातार.

वह दूर गांव का रहने वाला है. सरकारी मुलाजिम है. तनखाह बहुत थोड़ी है. आमदनी का और कोई जरिया भी नहीं है. दो बच्चे हैं. गुजर बड़ी मुश्किल से होती है.

दो-तीन दिन मधु की ऐसी ही हालत रही तो सागर उसे पास के शहर के सरकारी अस्पताल ले गया था. उन्होंने चार दिनों तक उसे रखा था और अपनी समझ के अनुसार उसका इलाज किया था. लेकिन मधु की हालत और भी बिगड़ती गयी थी. आखिर में उन्होंने सलाह दी थी—इन्हें अभी तुरंत नेहरू स्वास्थ्य केंद्र ले जाइए. बीमारी खतरनाक लगती है. टैक्सी में डाल कर ही ले जाइए. बस!

सागर के गांव के पास वाले शहर से सौ मील दूर स्थित बड़े शहर में बना हुआ है यह नेहरू स्वास्थ्य केंद्र. कई करोड़ रुपये इसे बनाने में खर्च हुए हैं. प्रांत का सबसे बड़ा अस्पताल. देश के चंद, गिने-चुने, रिसर्च इंस्टीट्यूटों में से एक. अन्य प्रांतों के बिगड़े हुए केस भी यहीं आते हैं.

टैक्सी एमरजेंसी वार्ड के दरवाजे पर आ खड़ी हुई है. टांगों और कूल्हों के नीचे सहारा दे कर सागर ने मधु को टैक्सी में से उतारा है, और पहले से ही तैयार खड़ी ट्रॉली पर उसे लिटा दिया है. ट्रॉली वाला कर्मचारी उसे भीतर ले जा रहा था.

—क्या बीमारी है जी? ट्रॉली मैन ने सागर से पूछा है.

—बस जी, दर्द होता है, यही समझ लीजिए. सागर ने इस तरह जवाब दिया है, जैसे यह कोई खास बीमारी न हो.

. . . लेकिन अब तो यही बीमारी खास बनी हुई है.

—पहले दिखाया नहीं किसीको? ट्रॉली मैन ने कुछ इस तरह सवाल किया है, जैसे कह रहा हो कि इतनी-सी शिकायत पर ही ले आये एमरजेंसी वार्ड में!

—बहुत दिखाया है, दोस्त. आखिर में आये हैं. . .सागर ने कहा है.

ट्रॉली मैन दबे होठों से मुसकराया है. वेटिंग हॉल में ट्रॉली को उसने रोक दिया है. एक बेड की ओर इशारा करके सागर से कहा है—इस पर लिटा दो. डॉक्टर सा'ब आते हैं.

वेटिंग हॉल के बेड नंबर दो पर पड़ी हुई मधु सहज हो आयी लगती है. कोई शिकायत नहीं. टांगों और कमर में कोई दर्द नहीं. न ठंडा पसीना और न ही शरीर में ठंडक. शायद सिर दर्द भी न रहा हो. हो भी रहा होगा तो सख्त नहीं.

ड्यूटी वाला डॉक्टर आया है.

—बीबी जी, तबियत कैसी है?

—दर्द उठते हैं, भाई साहब,. . .बहुत धीमे स्वर में मधु ने उतर दिया है. भाई साहब कह कर अपनत्व दिखाने की कोशिश भी करती है.

—जबान दिखाइए! डॉक्टर का स्वर अचानक कठोर हो गया है.

जीभ को बाहर निकाल मधु उत्सुक निगाहों से डॉक्टर के चेहरे की ओर देखने लगी है.

—बैठो. बैठ जाओ! डॉक्टर ने सिर्फ जबान ही हिलायी है.

शरीर का सारा जोर लगाने पर भी वह बैठी नहीं हो सकी. सागर ने उसे सहारा दे कर बिठाना चाहा है. डॉक्टर ने उसे रोक दिया है.

—डॉक्टर साहब!. . .सागर ने हाथ जोड़ दिये हैं.

—एमरजेंसी वाला केस तो यह है नहीं! . . .मधु से जरा-सा दूर हट कर डाक्टर ने सागर से कहा है.

—यह तो बहुत परेशान है, डाक्टर साहब! दूसरे अस्पताल वालों ने हमें खुद ही भेजा है.

—डिस्चार्ज-स्लिप दिखाओ.

सागर ने दूसरे अस्पताल वाली स्लिप दिखायी है.

—ठीक है. . .कहते हुए डॉक्टर ने स्लिप को वापस सागर के हाथों में दे दिया है और कहा है—ओ. पी. डी. में दिखाओ, परसों. कल रविवार है.

—आज कहां रहें, डॉक्टर साहब? हमारा तो इस बड़े शहर में कोई भी नहीं है. यही हालत रही तो परसों तक यह बचेगी कैसे?

—बस, कह दिया न परसों ओ. पी. डी. . .

—डॉक्टर साहब, मैं बहुत दुखी हूं. गरीब मुलाजिम हूं. दो बच्चे हैं. . .अगर इसे कुछ हो गया. . .

—देखो मिस्टर, इस दुनिया में सभी दुखी हैं, कोई कम, कोई ज्यादा. तुम थोड़े-से ज्यादा होंगे. परसों आना.

सागर फिर गिड़गिड़ाया है. डॉक्टर के घुटनों की ओर निगाह गयी है.

डॉक्टर जा चुका है. सागर की निगाहें स्वास्थ्य केंद्र के चिप्स लगे, चमचमाते फर्श पर गड़ी रह गयी हैं.

मधु की हृदय-विदारक हूक सुनायी दी है.

—क्यों मधु?

—सिर थाम लो मेरा. . .

सागर उसका सिर थाम लेता है. धीरे-धीरे उसे दबाने लगता है. तभी मधु कराह कर अपना कूल्हा पकड़ लेती है. सागर उसकी कमर दबाने लगता है. एक हाथ से उसके सिर को भी थामे रहता है. हूक-सी ले कर मधु अपनी पिंडलियों को पकड़ लेती है. सागर के हाथ उसकी पिंडलियों की ओर बढ़ जाते हैं. . .

—हाय! पिंडलियों में से प्राण गये. . .

वह एक-एक हाथ से एक-एक पिंडली को बहुत जोर-जोर से दबा रहा है. उसकी अपनी बांहें दुखने लगी हैं. . .

—हाय कमर!. . .हाय सिर. . .हाय पिंडलियां. . .

और फिर मधु की आंखें स्थिर हो जाती हैं. अब उसे कोई होश नहीं है. उसके शरीर के किसी भी हिस्से को दबाना-थामना फिजूल है. सारा शरीर पानी-पानी हो गया है. और फिर ठंडा बर्फ. . . . लेकिन मधु को होश नहीं आता. . .

वह डॉक्टर की ओर दौड़ता है.

—डॉक्टर साहब. . .

—अरे भाई! समझे नहीं क्या? कितनी बार कह दिया ओ. पी. डी. पर आना. . . जाओ, और भी बहुत-से मरीज हैं. . .

—जी. . .वह तो. . .वह तो बेहोश. . .

—श्रीमान जी, जाइए. . .

वह भाग कर मधु के बेड की ओर आया है. . .

—मधु!

मधु होश में है.

—क्या कहते हैं? मधु ने बहुत धीमे स्वर में पूछा है.

—दाखिल नहीं कर रहे हैं.

—फिर?. . .

शाम के छह बज चुके हैं. सर्दी का मौसम है. अंधेरा पसरने लगा है.

मधु को बेड पर ही छोड़ कर सागर एक क्षण के लिए वेटिंग हॉल के दरवाजे से बाहर झांकता है. ट्रॉली नया मरीज ले कर आयी है. उसने गर्म कोट-पैंट पहन रखे हैं. टाई की गांठ ढीली है और कमीज का ऊपरी बटन खुला हुआ है. नौजवान है. सिर पर लंबे बाल, घुर जबड़े तक रखी हुई कलमें और छोटी-छोटी मूंछें. उसके एक पैर में चोट लगी है. उसकी ट्रॉली को वेटिंग हॉल में नहीं लाया गया. सीधे वार्ड के बेड पर ले जा कर उसे लिटा दिया गया है. ट्रॉली से वह अपने आप ही उतरा था और बिना किसी तकलीफ के वह बेड पर लेट गया था. साथ आये दो लड़कों ने ड्यूटी पर उपस्थित डॉक्टर के कान में कुछ कहा है. दो नर्सें उसके बेड के पास जा पहुंची हैं. उनकी आंखों में नौजवान के लिए हैरानी का भाव है. वह मुसकरा रहा है. एक नर्स ने अपने होठों को सिकोड़ कर सिर को झटका दिया है. सोच रही होगी. . .एमरजेंसी में आने का मतलब?

चार अन्य डॉक्टर बेड के पास आये हैं और उस मरीज की जांच-पड़ताल करने लगे हैं.

ड्यूटी पर हाजिर डॉक्टर ने सागर को खड़े देख लिया है. सिस्टर को आंख से इशारा किया है. सिस्टर सागर के पास आयी है. उसने उससे पूछा है—आपका कोई पेशेंट है यहां?

—नहीं. वह तो. . .

—प्लीज, बाहर जाइए.

—वह तो वेटिंग. . .

—मैंने कहा न, प्लीज. . .

सागर वार्ड से बाहर आ गया है. उसे कोई नहीं पूछता. वह हताश हो उठा है. तेज कदमों से चल कर वह वेटिंग हॉल में आया है. मधु सामान्य लग रही है. उसने पूछा है—क्या हुआ?

—कुछ नहीं. कुछ भी नहीं.

—अब?

—चलें अब. कहीं कोई सराय तो होगी ही. रात वहीं काटेंगे.

—कल?

—कल तो रविवार है. परसों देखेंगे.

—रविवार?. . .ये दो रातें कैसे निकलेंगी? उसकी हालत फिर बिगड़ने लगी है.

ट्रॉली पर डलवा कर वह मधु को बाहर ले जा रहा है.

जाते-जाते वार्ड के मेन गेट के पास ड्यूटी पर बैठे क्लार्क से सागर ने पूछा है—क्यों जी, कल कुछ नहीं हो सकता?

—कुछ होना होता, भाई साहब, तो आज हो जाता!

—तो अब कोई रास्ता है?

—एक ही रास्ता है, बस. . .सिफारिश.

—सिफारिश?

—हां, भाई. जमाना ही सिफारिश का है. वह अभी आपके सामने एक मरीज दाखिल हुआ है. पैर में साधारण-सी चोट आयी है. उसे तो कोई भी डॉक्टर ले सकता था. एमरजेंसी वाला केस तो है नहीं यह. . .है क्या?

—न. . .

—फिर? मालूम है बेटा किसका है?

—किसका है?

क्लर्क प्रांत के एक बड़े पुलिस-अधिकारी का नाम लेता है. और कहता है—डंडा काम करता है, भाई साहब! सिफारिश का डंडा!

ट्रॉली मधु को लिये कॉरीडोर को आधा पार कर गयी है. सागर बहुत तेजी से ट्रॉली से जा मिलता है. एमरजेंसी के बड़े गेट के पार ट्रॉलीमैन ने मधु को उस जगह पर उतार दिया है, जहां टैक्सी उन्हें छोड़ कर गयी थी.

★ ★

एक मोटर-रिक्शा में बिठा कर सागर उसे एक सराय के दरवाजे पर ले आया है. उसे रिक्शा में ही छोड़ कर वह स्वयं सराय के भीतर गया है. पूछताछ की है. कोई कमरा खाली नहीं है.

वह वहां मौजूद एक आदमी से किसी दूसरी सराय का पता पूछता है.

—मोटर-गैराजों के पीछे की ओर भी एक सराय है, उस आदमी ने बताया है.

वह मोटर-रिक्शा को उस छोटी सराय के दरवाजे पर ले आया है. वहां भी कोई कमरा खाली नहीं है.

कहां ले जाये अब वह मधु को?

शहर में तो ठहरने का कोई भी स्थान नहीं है. न ही कोई जान-पहचान है.

सर्दी बहुत उतर आयी है. बर्फ-भीगी तेज हवा छुरी की तरह शरीर को छीलती हुई निकल जाती है.

—यहां किसी मोटर-गैराज में ही बिस्तर लगा लो, दोस्त. रात निकल जायेगी. सुबह कोई प्रबंध कर लेना! रिक्शा-ड्राइवर ने सलाह दी है.

सागर ने देखा है कि मोटर-गैराजों के टूटे-तड़के फर्शों पर अन्य लोगों ने भी बिस्तर लगा रखे हैं. एक कोना देख कर उसने भी अपना बिस्तर खोल दिया है. गदेले पर घिसी हुई चादर बिछायी है. खेस का तकिया बना कर रखा है. फिर सहारा दे कर मधु को मोटर-रिक्शा में से उतारा है. मधु खड़ी नहीं रह सकी है. वहीं पर लुढ़क गयी है. अपने कंधे पर उठा कर उसने उसे बिस्तर पर लिटा दिया है. फिर रिक्शा वाले से पूछा है—क्या दे दूं?

—जो मर्जी दे दीजिए.

—फिर भी?

—दे दीजिए. दस पैसे कम भी दे देंगे तो क्या हो जायेगा!

—नहीं, बता दो, भाई!

फिर जितने पैसे उसने मांगे हैं, सागर को कुछ ज्यादा ही लगे हैं, लेकिन उसने बिना किसी आपत्ति के उतने ही दे दिये हैं.

उसने लिहाफ की तह खोल कर मधु के सारे शरीर को अच्छी तरह लपेट दिया है.

मधु सहज अवस्था में है.

वह उसे हौसला दे कर जल्दी से बस-स्टॉप के पास बने अस्थायी होटलों पर गया है. जो भी होटल सामने आया है, उसी में जल्दी से रोटी खायी है. खायी क्या, पशुओं की तरह अधचबायी ही निगल ली है. उसे पता है, मधु खाना नहीं खायेगी. दूध भी शायद ही पी सके. उसने एक गिलास चाय बनायी है, और डबलरोटी के दो स्लाइस ले कर हवा की-सी तेजी से मधु के पास आ गया है.

मधु को दौरा पड़ा हुआ है.

उसके तकिये के पास चाय के गिलास पर डबलरोटी के स्लाइस रख कर वह पानी लाने गया है. पानी उसे नहीं मिल रहा है. वह वापस आया है. मधु! मधु!! कह कर ऊंचे स्वर में पागलों की तरह उसे पुकारने लगा है. ठोड़ी पकड़ कर उसे झिंझोड़ता है. वह नहीं बोलती. फिर उसने उसकी नाक पकड़ कर दबा दी है. दूसरे हाथ से मुंह खोल दिया है. मधु बड़ी मुश्किल से मुंह से सांस लेती है. उसने आंखें खोली हैं.

रामस्वरूप अणखी (जन्म : २८अगस्त, १९३२) की कहानियां अपनी सादगी और सपाटबयानी की तह में तीक्ष्ण व्यंग्य छिपाये रहती हैं. गांव और छोटे कस्बे का परिवेश और वहां के पात्र ही उनकी कहानियों की आधार-भूमि हैं. अब तक सौ से ऊपर कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं.

—मधु!

—हां!

—ठीक हो?

—जी.

सागर ने अपनी हथेली से मधु के माथे का पसीना पोंछा है.

—चाय का घूंट लोगी?

—ले कर देख लेती हूं.

—डबलरोटी का पीस भी ले लो. दो पीस लाया हूं. अन्न आधार होगा तो नींद आ जायेगी. रात निकल जायेगी.

कंधे से पकड़ कर उसने मधु को बैठाया है. चाय का गिलास से लगा दिया है. छोटा-सा एक घूंट ले कर उसने बस कर दिया और लिटा देने के लिए कहा है.

—कुछ तो लेतीं.

—क्या करूं, ली नहीं जाती.

—फिर?

—बस ठीक है. कोई जरूरत नहीं. . . .

★ ★

सारी रात मधु की हालत खराब रही है. सिर, कमर औ टांगों में सख्त दर्द का दौरा. . . कंपकंपी, फिर ठंडा यख शरीर. क कंपी से ठंडक तक का सफर . . .

उसकी गरम पैंट पिछले सात दिनों से पाजामा बनी हुई टेरीकॉट की कमीज बहुत मैली हो चुकी है. कोट वह पहन कर न आया था. कई साल पुराना आसमानी रंग का स्वेटर पहन र है, जो अब बेहद बदरंग हो चुका है. सारी रात वह मधु के शरी को दबाता रहा है. बैठे-बैठे ही. एक क्षण के लिए भी आंखें न मूंद सका.

फिर छह बजे के करीब मधु टिक गयी है. न वह हूं-हां कर र है, न करवट बदलती है. शायद सो गयी है. सागर ने उसे बुला उचित नहीं समझा. सारी रात के दर्दों से टूट कर उसका शरी निढाल हो गया है. इसीलिए नींद आ गयी होगी. अच्छा ही है—प भर आराम कर ले.

पेशाब करने के लिए वह गैराज से बाहर आया है. स्वास्थ्य के की ट्यूबें मद्धिम-मद्धिम जल रही हैं. गैराजों पर लगी डॉक्टरों की नेमप्लेटों की ओर उसकी निगाह गयी है. गैराजों की लाइन दूर त चली गयी है. वह चार-पांच नाम ही पढ़ पाया है. वैसे उसे दूर त लगी काली प्लेटें दिखायी जरूर दे रही हैं. कल वाले ड्यूटी पर हाजि डॉक्टर की प्लेट कौन-सी होगी?

वह दबे पांव गैराज की छत के नीचे आया है. चुपचाप मधु के साथ लिहाफ में दुबक गया है. मधु हिली नहीं. सागर ने पल भर को आंख मूंदने की कोशिश की है. सो गया है.

स्वप्न में भी वह संघर्ष से गुजर रहा है...

सब किस्म के लोगों के लिए डाक्टरी सुविधाएं एक-सी क्यों नहीं हैं?...

मधु जिंदगी से लड़ रही है...

यह एमरजेंसी वाला केस तो नहीं है...

पुलिस-अधिकारी का बेटा...एमरजेंसी बेड...

ये डाक्टर हैं या बूचड़?...

एक डाक्टर उसके सामने आया है. पैंट की हिपपॉकेट में से चाकू निकाल कर उसने उस डाक्टर की पसलियों में उतार दिया है. फिर एक और डाक्टर ... फिर एक और... सात डाक्टर जमीन पर औंधे-मुंह पड़े हैं. खून बह रहा है. जमीन लाल हो गयी है. एक-एक डाक्टर को उलट-उलट कर उसने देखा है. इनमें कल वाला डाक्टर तो है ही नहीं! काले बूट तो सबने पहन रखे हैं. उस जैसी पैंट भी अनेक की है. सफेद कोट तो सभी ने पहन रखे हैं. चश्मा भी तीन ने लगा रखा है. अब फर्श पर गिर कर तीनों चश्मे टूट गये हैं और दूर जा गिरे हैं. सांवला रंग दो डाक्टरों का है. हां...हां...लेकिन उसकी नाक पर बड़ा-सा मस्सा था... लेकिन मस्सा तो अब किसी की भी नाक पर नहीं है!....

* *

साथ के गैराजों में बिछे बिस्तर उठाये जा रहे हैं. कुछ दबा-दबा-सा शोर जाड़े की सुबह में घुलने लगा है. बरतनों के बजने की आवाज. सागर की आंख खुल गयी है. एकदम वह उठ बैठा है. उसने [illegible]ु को जगाने की सोची है... लेकिन जगाया नहीं है.

क्यों न जल्दी से चाय का गिलास ले आऊं और खुद भी पी आऊं! उसने सोचा है.

वापस आ कर उसने मधु को बहुत धीमी आवाज में पुकारा है. वह नहीं बोली. सागर ने उसका कंधा झिंझोड़ दिया है. वह फिर भी नहीं हिली. न ही बोली है. फिर उसने ऊंचे स्वर में पुकारा है-- मधु!...

वह नहीं बोली.

उसमें कोई सांस नहीं है...

बहुत ऊंचे स्वर में उसने मधु का नाम ले कर पुकारा है और चीख उठा है.

आठ बजने को हैं...

डाक्टरों की इक्का-दुक्का कारें आना शुरू हो गयी हैं. हर डाक्टर की कार उसके गैराज में. अपना गैराज, जिस पर उसके नाम की तख्ती लगी हुई है.

बेसुध-सा सागर घुटनों में सिर दियें चुप बैठा है. बौराया-सा, पथराया-सा.

साढ़े आठ.

एक कार उसके बेहद करीब से गुजरी है. उससे थोड़ी दूर जा कर रुकी है. एक डाक्टर बाहर आया है. सांवला रंग. नाक पर मस्सा.

सागर ने उसे पहचान लिया है.

अब उसकी नजर पास ही पड़े एक अनघड़ पत्थर पर जा टिकी है. बिजली की फुर्ती से पत्थर को उठा कर उसने डाक्टर की ओर दे मारा है. डाक्टर के माथे से खून की धार फूट निकली है.

---यह एमरजेंसी केस नहीं था, डाक्टर?...

सागर की चीख जैसी आवाज वातावरण में गूंज गयी है.

□□□

गांव व डाकघर घौला, (बरास्ता हडियाया),
जिला संगरूर (पंजाब)

उसकी सुन्दरता का रहस्य ही
ऐटेक्स सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX REGD.
EYETEX BINDI
EYETEX
ARAVIND LABORATORIES MADRAS-33

उसकी पहचान

गंगाप्रसाद विमल

बिल्कुल अजीब बात है कि आपको कोई आदमी मिला हो और आप उसके बारे में सोचने लग गये हों. और जहां तक मेरा ताल्लुक है मैं उस आदमी के बारे में सोचता ही नहीं, उसे खोजने की जल्दबाजी में भी लगा हूं. यह ऐसा मामला है यानी उस आदमी को खोजने का, जो मैं जानता हूं कि वह मुझे कभी नहीं मिलेगा—— पर जिस ढंग से मैं बेचैन हूं अगर उस ढंग से कोई दूसरा होता तो मुझे जरूर लगता कि बेचैन आदमी या तो बीमार है या फिर उसके पास करने के लिए कोई काम नहीं.

इसीलिए यह अजीब बात लगती है. मैं दूसरों की जगह खड़े हो कर जब अपने बारे में सोचता हूं तब——तब लगता है तरतीबवार बातें बताना निहायत जरूरी है. . .लेकिन इसमें एक तकलीफ है. और वह तकलीफ है अपनी सफाई में कुछ कहने की मजबूरी.

★ ★

शुरू करूं कि वह मुझे कहां मिला था. . .मैं एक हड़ताली जलूस को देखने के लिए खड़ा था. उनके नारों की गूंज ने कई दिनों की पस्ती को हिला दिया था. लोगों के तमतमाये चेहरों में एक आशावाद झलक रहा था. सबसे पहले तालियां पीटते नौजवानों की टोली थी और उसके बाद थे हड़ताली लोग.

उन्हें देखने के लिए आसपास के बहुत से लोग ठिठक गये थे. बच्चे दौड़-दौड़ कर उनके करीब जा रहे थे. सड़क अच्छे खासे तमाशबीनों से पट गयी थी. तभी जलूस रुका. हड़तालियों के नारे एकदम थम गये थे. और अगली पांत के एक आदमी ने तमाशबीनों की भीड़ से बोलना शुरू किया. लगा, जैसे वह लोगों से बात कर रहा हो. बिल्कुल इसी लहजे में, जैसे हम अपने दोस्तों से बहुत अंतरंग बातें करते हैं.

वह बोला——आप लोगों की जुबान पर मैं इस वक्त सिर्फ यही सवाल ठिठका देख रहा हूं कि हम लोग कौन हैं. तो साथियो, हम ठीक आपकी तरह के लोग हैं. फरक इतना है कि हम अपनी जरूरतों के लिए लड़ रहे हैं.

मुझे खयाल आया, अगर कोई पेशेवर नेता होता तो वह कहता, यानी बड़ी-बड़ी दार्शनिक बातें फेंकता, बताता, 'देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना हमारा फर्ज है' या इसी तरह 'हमारी सोयी हुई कौम को जागना चाहिए.'

लेकिन वह आदमी बोल रहा था——आपकी और हमारी जरूरतें कोई अलग चीज नहीं हैं. . .

जलूस फिर चल पड़ा था. बच्चे चहक-चहक कर जलूस के साथ-साथ बढ़ रहे थे. ठिठके हुए लोगों के पांव पहियों की तरह चल पड़े थे. सब अपनी दिशाओं की ओर चले गये. अपने को अकेला पा कर मैं भी अपने काम की ओर जाने ही वाला था कि तभी. . . तभी मुझे वह आदमी मिला था. असल में वह सड़क के बीचों बीच दौड़ रहा था. हांफते हुए वह मुझ तक आया——आपने अभी जाते हुए जलूस को देखा है?

मैंने हां में सिर हिलाया.

वह मुड़ कर दौड़ने ही वाला था, तभी मुझे याद आया कि मैंने यह तो पूछा ही नहीं कि आखिर यह जलूस किन लोगों का था.

——सुनिए, मेरे कहते ही वह रुका और सुस्ताने की मुद्रा में खड़ा हो गया——ये लोग थे कौन?

——क्यों? फिर तुरंत बोला——हड़ताली. उसने अपने हाथ झटके जैसे पूरा जवाब दे दिया हो.

——नहीं. मेरा मतलब है कहां काम करने वाले हैं ये?

——अच्छा. उसने इतमीनान से कहा——तो आप इन लोगों के बारे में ब्यौरेवार जानना चाहते हैं.

मैं मुसकराया या मैंने मुंह खोल दिया होगा, पर जो कुछ भी दर्शाया होगा वह यही कि मैं पूरी बातें जानना चाहता हूं. इससे वह खुश हो गया और उसने मेरा हाथ पकड़ कर खींचा——तो चलिए.

एक तरह से वह मुझे खींच कर ले चला. सड़क के नुक्कड़ पर, करीब ही एक चाय की दुकान थी. वहां काफी सारे लोग बैठे थे. ज्यादातर लोग आराम की मुद्रा में धूप सेंक रहे थे. कुछ लोग थे जो जल्दी-जल्दी चाय सुड़क कर पीते हैं और जल्दी ही चले जाते हैं.

हम दोनों बैठ गये तो उसने चाय के लिए आवाज लगाते ही मेरे हाथ में एक पर्चा पकड़ा दिया——हत्यारे पूंजीवाद से अपनी रक्षा के लिए एक हो जाओ. मैंने पर्चा पढ़ना शुरू किया. मैं ऐसे कई पर्चे पढ़ चुका था. अकसर आम हड़ताल के दिनों इस किस्म के पर्चे हाथों में आ जाते थे. और अकसर एक गुस्सा और प्रशासन के प्रति नफरत का भाव जागता था लेकिन जैसे ही घर की समस्याओं से निपटने में लग जाता——वह सब चीजें दिमाग से निकल जातीं.

——जानते हो यह पूंजीवाद किस आदमी का नाम है?

मैं हंसने-हंसने को हुआ——आदमी नहीं——यह एक वर्ग का, एक विचार धारणा का नाम है.

——तो तुम्हें भी किताबी ज्ञान है, उसने हिकारत से मेरी तरफ देखा——अगर मजदूरों के बीच जाओ और ऐसे बोलो तो क्या वे सम-

ढंगे ? उसने मुझे डांटा तो मैं चुप हो गया.

—यह एक आदमी का ही नाम है. उस आदमी का, जिसने चालाकी से सबकी मेहनत का हिस्सा खाने का गुर व्यापारियों को बता दिया है.

वह काफी बातूनी आदमी है. मैंने अंदाजा लगाया और जिस ढंग से वह बोल रहा है उस ढंग से वक्त का काफी हिस्सा यहां चौपट हो जायेगा. इसलिए तुरंत मेरे मन में यह बात आयी कि किसी तरह इससे पिंड छुड़ाना चाहिए.

—तो भाई ये हड़ताली लोग वे हैं, जिन्हें पता चल गया है कि उनकी मेहनत का हिस्सा गैर जिम्मेदार लोगों द्वारा हड़प किया जा रहा है. उसने मेरे चेहरे की तरफ गौर से देखा—शायद तुम्हारी दिलचस्पी खत्म हो गयी है. और वह फिर मेरे चेहरे की तरफ गौर से देखने लगा.

—नहीं तो. . .पर मैं यह चाहता था कि ये लोग हैं कौन और इनका उद्देश्य क्या है?

वह हंसा—तुम्हारा यह पूछना भी काफी किताबी है दोस्त. खैर. . .ये लोग हैं छोटी-छोटी फैक्टरियों के मजदूर. इन्होंने पिछले पंद्रह दिनों से अपनी पगार बढ़ाने के सिलसिले में काम रोका हुआ है. लेकिन हमारी सरकार को इनकी भूख से कोई ताल्लुक नहीं—फैक्ट्री मालिक के दरवाजे पर पुलिस है, कारखानों में पुलिस. बस, कामगारों को डरा कर अपने वश में करने के तरीके आजमा रहे हैं.

—हां—याद आया. मैंने अखबारों में पढ़ा था.

—पढ़ा मैंने भी था. और मैं सोचता था ये लोग काम बंद करके मुल्क की तरक्की के रास्ते में रोड़ा अटका रहे हैं. . .

—बिल्कुल ऐसा ही तो मैं सोचता हूं. देखिए न, आखिर कितना नुकसान होता है. मसलन आपको एक दिन में दूध के बीस डिब्बे तैयार करने हों और आप पंद्रह दिन तक कुछ न करें तो क्या छोटे-छोटे बच्चे तड़प कर मर न जायेंगे? मैं बीच में बोल पड़ा.

हम लोग चाय की दुकान में थे. ठीक बातचीत के बीच चाय आ गयी.

—जलूस बड़ी दूर पहुंच चुका होगा?

—हां तो, मैंने उसका जवाब दिया.

—अपना मुल्क बहुत बड़ा मुल्क है. उसने मेज पर पड़ा वही पर्चा उठाया—जाना तो मुझे जल्दी था पर अब कोई जल्दी नहीं. देखो भाई, तुम्हारा सोच-विचार गलत लाइन पर है. पंद्रह दिन तक अगर डिब्बे न भी बनें तो ज्यादा फर्क नहीं पड़ता. डिब्बे का दूध पीने वाले बच्चे हैं ही कितने. अपने मुल्क में करोड़ों बच्चे भूखे ही सो जाते हैं. कभी तुमने उनके बारे में भी सोचा है?

वह खड़ा हो गया—देखो भाई, इस बात को सही तरह से देखो. उस आदमी, जिसका नाम 'पूंजीपति' है उसके फायदे की नजर की हमारी ट्रेनिंग है. अखबार, सरकार हमें जानबूझ कर ट्रेनिंग देते हैं. तो पहले इससे मुक्त हो जाओ.

—मेरा मतलब ये है कि. . .

—तुम्हारा मतलब जो भी हो. . .एक आदमी के मतलब से जनता का मतलब नहीं सध सकता. अगर ऐसा होता तो इस धर्मप्राण मुल्क में कितने चमत्कारी लोग हैं. हैं न बाबा—क्यों नहीं वे ही सुधार करते. आखिर कुछ ही लोग क्यों खायें—क्यों पहनें?

मैं उसकी बातों से ऊब गया था.

फिर न जाने क्या हुआ, वह रुका नहीं. सड़क की ओर दौड़ पड़ा. फिर न जाने क्या सोच कर वह मेरे पास आया और कितनी ही देर मेरे कानों के पास कुछ बोलता रहा—देखना. . .पूरी बातें. . . देखना. . .

यही तो मामला था कि उसने मेरे कानों में जो बातें कही थीं वे उस वक्त अफवाह की तरह थीं लेकिन अब एक-एक कर सच हो रही हैं. और मैं परेशान हूं.

★ ★

मुझे लगता है, उसने मुझे एक कहानी सुनायी थी. या यह सिर्फ मेरा वहम हो. पर इतना जरूर है कि उसने जो बातें मेरे कान में फुसफुसायी थीं उनमें से एक बात का ताल्लुक किसी कहानी से था.

शायद उसने कहा था कि देखना राक्षसों की हत्या हो जायेगी. ठीक जब उसने 'राक्षस' शब्द कहा तब मुझे लगा, वह मुझे पूरे हिंदुस्तान के इतिहास से बांध गया है.

दो दिनों के बाद सुबह-सुबह अखबार के बायें कोने से ले कर दायें कोने तक सुर्खी वाली सभी खबरें हत्या और मारपीट से पटी थीं. तो उसने ठीक कहा था. यह सब शुरू हो गया. मैं उन खबरों के ब्योरों को गौर से पढ़ रहा था, तभी मुझे उस आदमी की याद आयी थी.

फिर हुआ यह कि मुझे खबरें पढ़ने का शौक जाग पड़ा. और अपने तमाम खाली वक्त में अखबार पढ़ने लगा. अपने और दूसरे मुल्कों के अखबार भी. नतीजा यह हुआ कि शहर की तमाम लाइब्रेरियों में मेरी शामें बीतने लगीं.

यहां तक तो ठीक था.

* *

गड़बड़ शुरू हुई थी उस बेचैनी से कि मुझे उस आदमी की तलाश करनी चाहिए. उससे मिल कर बताना चाहिए कि भाई तुम ठीक कहते थे. अगर मैं उससे न भी मिलूं---जैसा कि निश्चित ही है-- तो फर्क क्या पड़ता है! पर मैं एक परेशानी में पड़ गया हूं. उस परेशानी का इलाज दिमागी डाक्टर के पास भी हो सकता है. लेकिन भरी उम्र में---जब आप अपना चेहरा शीशे में भी देखते हों और आप खाते-पीते, बोलते-हंसते और चालाकियां बरतते हों, तब दिमाग का इलाज करने वाले डाक्टर के पास जाने की जरूरत क्या है---तय है, मुझे उलझन से छुटकारा उस आदमी से मिलने से ही मिल सकता है.

जिद जैसी चीज नहीं है कि मैं उस आदमी से मिलूंगा ही. आखिर वह सिर्फ मुझे एक दिन मिला था. लेकिन खराबी यह है कि अब जो-जो मैं देखता हूं---मुझे महसूस होता है यह सब उसने मुझे बताया था.

* *

उदाहरण के लिए छुट्टी के दिन मैं अपने घर पर लेटा हूं. पड़ोस के घरों में शोर हो रहा है तो अचानक मेरी आंखों के आगे तसवीर बन जायेगी कि अभी पीले मकान की छत पर वह सुंदर औरत आयेगी और छींट-छींट कर गीले कपड़े फैलायेगी.

यहां तक भी ठीक है. मैं मान लूं कि मुझे होने वाली बातों का अंदाजा हो जाता है.

लेकिन वह औरत आयेगी. थोड़ी देर कपड़े फैलायेगी, फिर अपने घर चली जायेगी. फिर सजने-धजने के लिए अपने कपड़े उतारेगी. . . .

किसी अंदाजे की हद भी होती है. यानी मैं चाहूं तो उसके नंगे जिस्म का अंदाजा भी लगा सकता हूं. यह भी देख सकता हूं कि उसकी बायीं जांघ पर एक काला तिल है. लेकिन खुदा के लिए---मैं इस किस्म के घोंचू वक्त-बिताऊ विलास में नहीं पड़ना चाहता.

अब वह औरत सज-धज कर निकल रही होगी. सिर्फ यह देखने के लिए कि यह क्या सच होगा---जब मैं अपनी छत से गली की तरफ झांकने लगा तो मैंने उस औरत को गली से गुजरते देखा.

समस्या यह नहीं कि मैं सोचूं कि अब क्या होगा. तसवीर खुद-ब-खुद बनती है. वह औरत गली से निकल कर बड़े बाजार की ओर जाती है. बाजार का आधा चक्कर लगाती है. वह कुछ खरीदने के लिए वहां नहीं गयी. उसके घर में तीन बच्चे हैं. उसके पति के पास कोई काम नहीं है. उनके घर में रात के खाने के लिए भी कुछ नहीं है.

बस यही बात है. उनके घर में खाने के लिए कुछ नहीं है. वह खाने का जुगाड़ करती है.

वह जाती है. बाजार के बीचों-बीच एक बेहद कुरूप आदमी को देख कर वह हंसती है. और फिर वे लोग एक गली में चले जाते हैं.

बाजार में धौल-धप्पा किस्म का शोर है---कोई क्या बोल रहा है, किसी तीसरे को यह समझ में नहीं आता. किसी भी तीसरे आदमी को इससे मतलब नहीं है.

उस गली में सन्नाटा है. ऊपर की मंजिल के अकेले कमरे में वे लोग पहुंचते हैं. और वह औरत निर्वस्त्र होने लगती है.

---आज तुम्हें बीस रुपये देने पड़ेंगे? औरत कहती है.

---क्यों? आदमी गुर्राता है.

---मुझे दवाइयां भी लेनी हैं. और औरत रोने लगती है.

वह आदमी एक नामी दुकानदार है. वह सब तरह का गैर-कानूनी धंधा करता है. साफ कपड़े पहनता है. उसका भाई विधान सभा का सदस्य है. और उसके इस तरह की बीसियों औरतों से संबंध है.

मुझसे यह मत पूछिएगा कि उसकी अपनी औरत के कितने लोगों से संबंध हैं.

मुझे वह रोती हुई औरत ही दिखायी देती है, जिसके बच्चे अपने घर के रसोईघर के खाली डिब्बे खोल रहे हैं. उन्हें भूख लग आयी है. वह औरत रोती है तो आदमी उठ जाता है.---मैं तुम्हें एक पैसा भी नहीं दूंगा. तुम मुझसे काफी पैसा ऐंठ चुकी हो! वह आदमी फिर गुर्राता है.

वह दुकानदार है जिसने बीसियों औरतों को वेश्या-कर्म के लिए मजबूर किया हुआ है.

* *

बस आगे जानने की मेरी सभस्या नहीं है. मैं इस जानने से ही तो छुटकारा पाना चाहता हूं. वह आदमी मेरे कान में ये बातें फूंक गया है. बुरा हो उसका.

खैर. . .आप सोच रहे होंगे मैं आपको बना रहा हूं. जब मैं अपनी प्रज्ञा से इतनी चीजें जानता हूं या जान सकता हूं तो क्यों नहीं मैं उस आदमी की गतिविधियों को जानूं---वह कहां है---क्या कर रहा है. . .इस वक्त किस हालत में है?

ठीक यही एक बाधा है. या कहूं कि यही बंधन है. मैं उस आदमी के बारे में नहीं जान सकता. सोच-सोच कर सिर्फ तड़प सकता हूं. उसे गालियां दे सकता हूं.

* *

एक दिन मैंने सोचा, अपनी इस क्षमता का कहीं और उपयोग करूं.

मसलन कि हिंदुस्तान में क्रांति होगी तो वह कैसी होगी--तो आप विश्वास नहीं करेंगे---उस पूरे दिन मैं क्रांति के उस विराट स्वरूप का दर्शन करता रहा. . .

छोटी-छोटी मजदूर टोलियां लाल किले के इर्द-गिर्द जमा थीं. उनके हाथों में लाल झंडियां थीं. एक विराट मंच पर कितने ही लोग थे. निहायत अनौपचारिक वातावरण था. . .

अब आपको बताऊं कि वे क्या कर रहे थे. वे क्रांति की सफलता के सिलसिले में दूर-दराज प्रांतों से आये हुए थे और जन नेताओं को सर्वहारा की इस अविस्मरणीय विजय की बधाई दे रहे थे.

क्रांति का सिलसिलेवार ब्योरा मैं दे सकता हूं---लेकिन खुद मेरे देखते-देखते ---उस पूरे दिन घटनाओं की वे तसवीरें इतनी तेजी से घूमी थीं कि मुझे अब उनमें से महत्वपूर्ण घटनाएं याद हैं.

परंतु क्या इतने से तसल्ली नहीं हो सकती कि क्रांति अवश्यंभावी है. क्रांति की घटनाएं रक्तधाराओं के प्रवाह से जुड़ी हैं और मैंने देखा था, उसमें कितने ही प्रतिक्रांतिवादियों, प्रतिक्रियावादियों

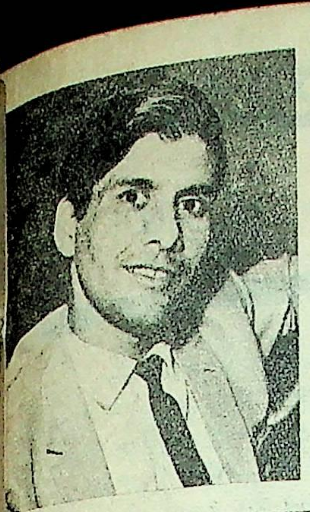

डॉ. गंगाप्रसाद विमल (जन्म : २ जून, १९३९) ने आज के आदमी की जिंदगी को बहुत निकट से देखा-परखा है. उसका दुख-दर्द और अपने आसपास की चीजों को न समझ पाने की छटपटाहट ही इनकी कहानियों का मुख्य विषय है. फिर भी इनके पात्र अपने यथार्थ से भागते नहीं, उसका सामना करते हैं.

को होम करना पड़ा था. उन घटनाओं के बीच उभरते हुए ऐसे जन-नेताओं के चेहरे भी देखे थे, जिन्हें मैंने कभी, कहीं नहीं देखा. जिनकी तसवीरें कभी अखबारों में छपी नहीं हैं.

* *

मुश्किल यह है कि पिछले दिनों ही जब मुझे अपने गांव-घर से आयी बूढ़े पिता की चिट्ठी मिली थी, तभी मुझे अंदाजा हुआ था कि यह मेरे पिता की आखिरी चिट्ठी है.

मैं उस चिट्ठी के हर आखर, पिता के दस्तखतों को ले कर बेहद भावुक हो उठा था. इसके बाद वे आखर नहीं दिखायी देंगे. अतीत से नाता जोड़े रखने वाली यह कड़ी टूट जायेगी. और फिर मैंने देखा था उन्हें---वे मेरे भाई के साथ कस्बे तक आये थे. पहाड़ी कस्बे के चारों ओर की पहाड़ियां बर्फ से भरी थीं. उस सफेद चकमक सफेदी में मैंने उन्हें मरते हुए देखा था. . .

वह एक कुर्सी पर बैठे थे. अंग्रेजी भाषा में लिखी कोई धार्मिक पुस्तक पढ़ रहे हैं. और फिर वैसे ही बैठे रह गये हैं. हाथ से पुस्तक नीचे जा गिरी है. और वह वैसे ही जैसे किताब पढ़ रहे हों—बैठे रह गये थे. मुद्रा ठीक किताब पढ़ने की थी. आंखों पर वही पुरानी ऐनक थी. और मुंह पर वही पुरानी बूढ़ी हंसी.

लेकिन मैं यह जान कर डरा नहीं था. दुःखी हुआ था और उस तार का इंतजार करने लग गया था.

न जाने क्यों, पिता की याद आते ही मुझे पिता के साथ हुई लड़ाइयां याद आती हैं. मुझे अफसोस होता है. वह हमेशा निहत्थे रहे. मैं उनसे लड़ता रहा. मैं समझता था पुरानी दुनिया के मूल्य, परंपराएं और उनकी धार्मिक आस्थाएं उनका कवच थीं. वह बहुत मामूली औजार थे. लेकिन एक निहत्थे आदमी से लड़ने का अपना सुख है. आदमी निहत्था हो और हार न स्वीकार करे!

जब मुझे तार मिला तो मैं जैसे जाने के लिए तत्पर बैठा था. लेकिन पहाड़ी कस्बे तक पहुंच कर पता चला था कि गांव जाने के सारे रास्ते बंद हैं. ठीक वैसे ही जैसे मैंने देखा था, मैं और मेरे बड़े भाई बर्फानी तूफान में गांव के लिए चल पड़े थे. बर्फ के बड़े-बड़े घब्बे हमें थोड़ी ही देर में ढंक लेते थे और हम उन्हें झटकने लगते. ठीक वैसा ही---जैसा मैं पहले देख चुका था.

* *

अब मैं किसी आदमी को देखता हूं तो पहले उसको तलाश करता हूं. लेकिन आंख मिलने के बाद ही, वह मेरी खोज का आदमी तो नहीं निकलता, पर मैं उसके अतीत और उसके वर्तमान के बारे में देखने लगता हूं. जैसे एक फिल्म मेरी आंखों के आगे खुलने लगती हो.

बारिश की एक शाम, जब ठंड की वजह से गरीब लोग झोंपड़ियों के अंधेरे में दुबके होते हैं और अमीर लोग जिस्म को गर्माने के लिए शराब की टोह में होते हैं, तभी मुझे एक मकान के कोने में इंतजार करता एक आदमी दीखा था.

---क्या आप. . .वह मेरी तरफ बढ़ा. उसके कपड़े शौकीन लोगों के कपड़ों की तरह थे.

मैं उससे आंख नहीं मिलाना चाहता था. मैंने बड़े रूखेपन से पूछा---क्या चाहिए?

---आपने रेडियो सुना?. . .

अजब पागल है यह, मैंने मन में सोचा---क्यों, क्या खास खबर थी?

---असल में मैं यूनियन की मीटिंग में फंस गया था. मुझे पता ही नहीं है कि हिंदुस्तानी खिलाड़ियों की क्रिकेट में क्या हालत रही!

मेरे आगे क्रिकेट का पूरा खेल था और उसमें नजर आ रहा था कि हिंदुस्तान हार जायेगा.—हिंदुस्तान हार गया, मैंने अपने देखे के मुताबिक कहा.

तो उसने लपक कर मेरा गला पकड़ लिया. उसकी आंखें मेरी आंखों से मिलीं और मैं जान गया कि वह क्या चीज है.

—अभी मैच तीन दिन और है, और तुम कहते हो हिंदुस्तान हार गया! . . .वह गुस्से में था.

और वह जो यूनियन का आदमी था, उसका अतीत था, कि वह बेहद चालू, चंदा हजम करने वाला चालाक था और उसका भविष्य था 'जेलखाना', पर मैं उसे उसी के भविष्य से कैसे परिचित करा सकता था? आदमी अपने भविष्य के बारे में चिंतित होता है, दूसरे के भविष्य से दुःखी.

पाठकगण, मैं खुद अपना भविष्य नहीं जान सकता. यही तो दिक्कत है. न मैं उस आदमी के बारे में जान सकता हूं जिसने मेरे कान में ये सारी बातें भर दी हैं और न अपने बारे में.

* *

मैं सड़क पर चलता हूं तो मुझे सड़क का अतीत भी दीखता है. एक टीला और एक जंगल. और सड़क का भविष्य दीखता है—निर्जन. . .वीरान. . .सन्नाटे से भरा और फिर मैं उस आदमी को देखता हूं---उसने यह भविष्य नहीं बताया था. . .कुछ और बताया था. . .मैं किसी खूबसूरत लड़की को देखता हूं तो मुझे उसका अतीत दीखता है---बहती नाक वाली, गंदा फ्रॉक पहने लड़की और उसका भविष्य—कई-कई आदमियों के साथ सहवास.

लेकिन इससे क्या! यह हमारी जर्जर मान्यताओं को तोड़ने के लिए जरूरी है, लेकिन उसके बाद उसी खूबसूरत लड़की का भविष्य है जो मुझे परेशान करता है.

और मुझे एक बेहद स्वस्थ नौजवान का भविष्य दिखायी देता है---पसीने से लथपथ दौड़---बेकारी, जलूस, जेल-यात्रा, अतिवादियों की संगत और फिर खत्म. . .

हां---मैं अब किसी की ओर नहीं देखना चाहता. मैं जब-जब देखता हूं. . .सभी चीजों का निकट भविष्य बहुत अंधकारपूर्ण है और उसके बाद. . .या. . . तो वह आदमी मिले. जिसने कुछ और बताया था या. . .

मैं उस आदमी की तलाश में हूं जिसने मुझे इस काम में फंसा दिया है. उसीसे मिल कर---उसे ही बता कर मैं छुटकारे की कामना करूंगा.

हो सकता है वह आदमी आपको मिले. आप उसे तब तक पकड़ रखिए; जब तक मैं आप तक नहीं पहुंच जाता. उसकी पहचान है. . .

२६।५३ रामजस रोड, करौल बाग, नयी दिल्ली---११०००५.

व्याख्याका

• कृष्ण भावु

—भाइयो, हम से अब और अधिक सहन नहीं होता. जितनी जल्दी हो सके हमें यह बुनकर कला-कुंज छोड़ देना चाहिए. यह निर्णय हमें आज नहीं तो कल, एक न एक दिन लेना तो था ही, तो आज ही क्यों न ले लें? व्यक्तिगत रूप से मुझे उस तारा मुकर्जी की मनहूस सूरत से नफरत है, बल्कि कहूं 'एलर्जी' है. वह 'यू ब्वायज' की बच्ची जब भी बिल्ली की तरह दबे पांव आती है, मेरी पीठ पर एक गिलगिली छिपकली रेंगने लग जाती है. बात करने और हमारे डिजाइन चुनने में उसकी तमीज एक जैसी रहती है. दो-ढाई महीने हो गये हैं और अब उसका चक्कर लगने ही वाला है. मैं चाहता हूं इससे पहले कि 'यू ब्वायज, वहां क्या करता, इधर आओ' बोलती हुई वह सफेद बिल्ली हमारे सीनों पर अपने पंजे गाड़ दे, हम लोग यहां से अपना बोरिया–बिस्तरा गोल कर जायें. जहां तक मैं समझता हूं...

अभी मंजरेकर अपना वक्तव्य समाप्त भी नहीं कर पाया था कि मैंने अपना हाथ पूरी लंबाई में चौराहे के सिपाही की मुद्रा में सीधा खड़ा कर दिया–स्टाप. चुप हो जाइए महाशय!

——जॉली, क्यों रोकते हो इस बेचारे को? बोलने दो न अरसे बाद तो आज इस कमबख्त का मुंह खुला है, सुधाकर ने मोटे शीशों के चश्मे से चुंधी आंखें मिचमिचाते हुये हस्तक्षेप किया.

इस पर शिंदे, सुरजीत और डेविड थामस कभी सुपाकर की ओर और कभी मेरी ओर चेहरे घुमा-घुमा कर देखने लगे. राये शून्य में ताक रहा था.

मैंने मंच की बागडोर संभालते हुए कहा –– भाइयो, बात यह है कि . . . और साथ ही जमुहाई लेने की मुद्रा में मेरा मुंह अंडाकार खुल गया. तंबाकू को चुटके में भरकर खुले मुंह में बुरकाने वालों की तरह मैंने भोजन-पानी के प्रवेश-द्वार पर दो-तीन बार चुटकी चटचटाई और कुर्सी से टेक लगाते हुए शब्द उगलने शुरू कर दिये, महाशय, अब आप सब चुप हो जाइए और सिर्फ मेरी बातें सुनिए, क्योंकि मुझे अपनी कहने का शौक है, दूसरों की सुनने का नहीं.

——की मोशाय? राये ने (जो अब तक मेज की टांग.पर पिये गए चाय के कपों के निशान लगा चुका था) अनायास अपना तकिया कलाम मेज के कोने से ठीक बीच में उछाल दिया.

मैंने राये को धुड़की की एक खुराक पिलाते हुए कहा –– ओ, बंगाली मोशाय के बच्चे! सीधे चुपचाप बैठे रहो, वरना तुम्हारी जिराफ-सी गर्दन इस मेज की नीचे फंसा दूंगा. हां, तो दोस्तो! श्री गोपाल मंजरेकर की बातों से असहमत होने का प्रश्न ही नहीं उठता. हमें अब यह 'कला कुंज' छोड़ कर कहीं और डेरा लगाना चाहिए. यहां तो तुम जीवन भर इसी तरह कपड़ों के लिए नये-से नये डिजाइन तैयार करते रहोगे और मैं तुम्हारे डिजाइनों की व्याख्याएं कर-कर के उन्हें मैडम मुकर्जी को पसंद करवाता रहूंगा. आज जो एजेंट हमारे पसंद किये हुए डिजाइनों के अनुसार कपड़ों का आर्डर सप्लाई करते हैं और जो व्यापारी उन कपड़ों के निर्यात से हजारों रुपयों की विदेशी मुद्रा प्राप्त करते हैं, वे वही रहेंगे, सिर्फ उनकी जगह लेने के लिए दूसरे आ जाएंगे. सौ बातों की एक बात, इतने कम वेतनों में आजकल हमारा गुजारा नहीं हो सकता. हम मर जाएंगे, लेकिन अपना आर्थिक शोषण किसी कीमत पर नहीं होने देंगे. दिस इज आवर लास्ट विड– डू, आर डाइ. बी आर नाट टू बी. . .

बुनकर कला-कुंज के डिजाइन हाल में तालियों की पटपटाहट. 'हियर-हियर ब्रेवो, ब्रेवो, जौली दी ग्रेट' की मिली-जुली ध्वनियां कलाकारों की चेतना में चितकबरे पक्षियों-सी फड़फड़ा उठीं. सुपाकर ने मेज पर ही है १२मात्रा, १६ ताल पर सदा की तरह तबला बजाना चालू कर दिया. उसकी ताल के साथ बी. के. राये ने 'भालो माशे, भाशो महो' कहते हुए सिर हिलाना शुरू कर दिया. डेविड ने थैले से अपना नारियल का बौना हुल्का निकाल लिया और उसकी चिलम में सिगरेटों का तंबाकू भरने लग गया.

मुझे अपनी ओर खूनी नजरों से घूरते देख कर सुपाक तबलावादन तो रुक गया, किंतु उसकी अंगुलियां हवा के राइटर पर नि:स्वर थिरकती रहीं. राये की बंगला घुट क गयी, किंतु सिर कठपुतली-सा दायें-बायें डोलता रहा. मुझे लगा भीतर ही भीतर मेरे भाषण के शब्दों की जुगालियां कर डेविड ने 'हुक्की' (क्योंकि उसे 'हुक्का' कहना 'हुक्कों' का करना था) की चिलम तो भर ली थी, किंतु उसे पीना चाल किया था,अपितु आंखों में अपार दयनीयता भर कर मेरी ओर हुए उसे एक कोने में टिका कर गंजी चांद सहलानी शुरू कर दी मुहम्मद रफई मेरी ओर यूं टुकुर-टुकुर निहार रहा था जैसे मे से शब्द सुनने को अत्यंत उत्सुक हो. मुझे लगा, उसका गला सूख रहा है. पता नहीं, चाय के चार प्यालों के कारण या वैसे ही भ्रम हो रहा था.

—तो इसका मतलब है, आप सब निर्णय कर चुके हैं– वेरी गुड. अब आगे की बात ध्यान से सुनो. वाराण कमरों की किल्लत है. हमें गुजारे लायक सिर्फ एक कमरा च भवानी शंकर दुबे का एक कमरा बहुत दिनों से खाली पड़ा है, आप ने भी देखा होगा. देखा नहीं, तो सुना तो होगा ही. आप अपना हाथ खड़ा कर के बतायें कि वह कमरा देखा-सुना है नहीं?

इस पर मेज की अगल-बगल से कई हाथ निकल कर सीधे की ओर तन गये. एक, दो, तीन, चार, दस, ग्यारह, बारह छहों कलाकारों ने अपने दो-दो हाथ गर्दन से ऊपर दंडायमान कर दिये थे.

—हूं, हाथ नीचे कर लें. तो इसका मतलब है, वह क 'चलेगा'. एक बार फिर सोच लें, कमरा १० फुट बाई १० फुट का है. कमरा लेने में सबसे बड़ी दिक्कत मालिक लाला भवानी दुबे को तैयार करने में आएगी. सुना है, लालाजी किरायेदारों बहुत पूछ-ताछ करने के बाद ही कमरा किराये पर चढ़ाते हैं, तो इतने दिनों से वह खाली पड़ा है. अब यह बतायें, आपमें से लालाजी से कमरा 'सैटल' करने का जिम्मा अपने सिर लेता है?

चारों ओर एक भी हाथ खड़ा दिखाई नहीं दिया. हां, अलब गोपाल मंजरेकर अवश्य घड़ी पर नजरें टिकाये फुसफुसाता सु पड़ा– बहुत देर हो गयी, उमा घर में अकेली होगी. मुझे अब ज चलना चाहिए.

——ओ पत्नीव्रत की औलाद! कभी तो धैर्य से काम लिया क जरा-सी देर हुई नहीं कि वही अपनी 'उमा' का राग अलापना कर दिया. मैं फट पड़ा था. मेरा स्वर खीझ और कंपन ओढ़े हुए

इस डांट पर मंजरेकर की ४८ इंच छाती सिकुड़ कर लग ४०–४२ इंच रह गयी और उसका मुंह जरा-सा निकल आ डेविड थामस की रंग-पुंछो टाई मरियल-सी पड़ी रही. उसके मु पर गाढ़ी कोलतार का लेप पुतने लग गया था. वही हम सातों में ए मात्र अविवाहित व्यक्ति था. घर-गृहस्थी की चर्चा से उसे खा 'एलर्जी' थी और वह चाहता था कि उनकी मजलिस में 'घर-बा की कतई टपकना नहीं चाहिए. सुपाकर के हाथ धीरे-धीरे कांप

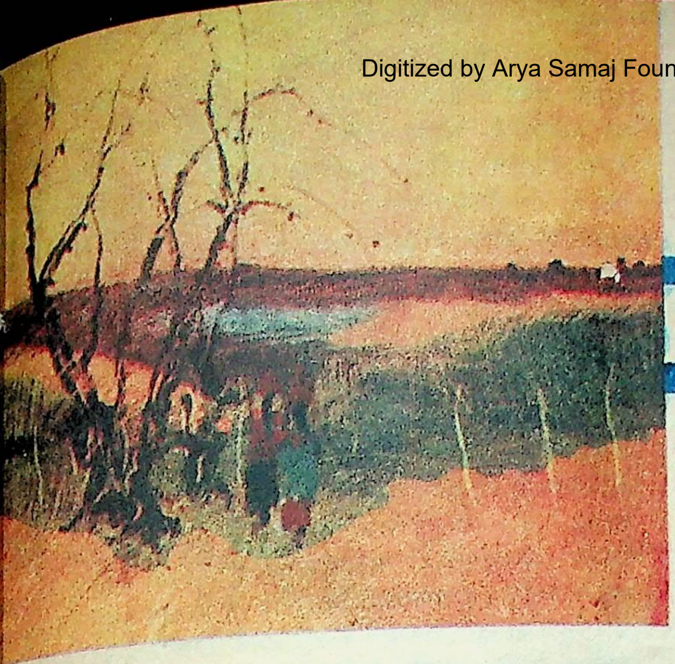

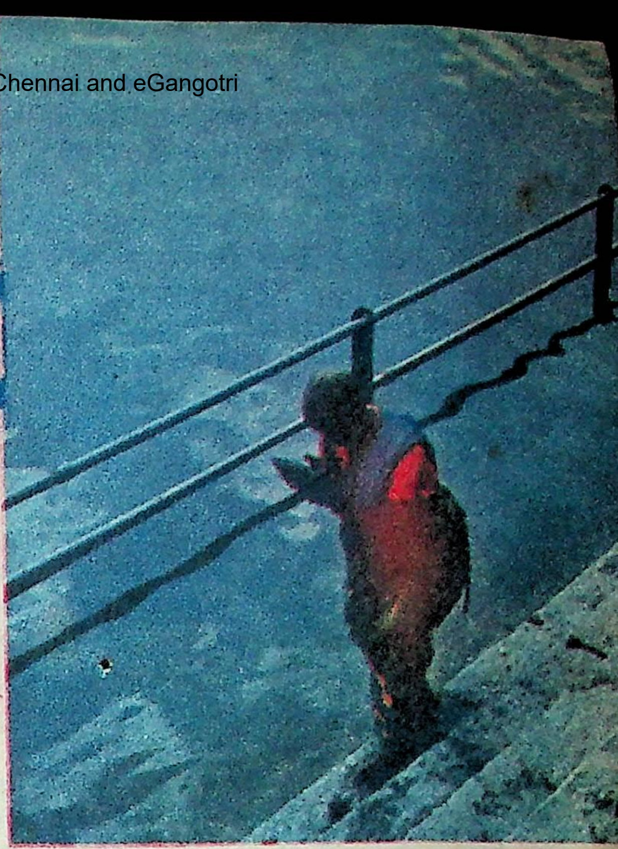

थे– सदा की तरह. उन्हीं कंपानमाय हाथों से वह अपने लड़कियों जैसे बाल्ड कट बालों में कंधो-सी कर रहा था. सुरजीत का एक हाथ बार-बार अपनी पलस्तर गिरी दीवार-सी मटमैली पगड़ी की शिकनें दुरुस्त कर रहा था– अदृश्य शिकनें.

—खैर, मैं आपकी यह मुश्किल भी अपने सिर लेता हूं. मैं खुद लाला दुबे से कमरे की बातचीत करूंगा. शर्त यह है कि आप छहों मेरे पीछे बापू के बंदरों की तरह चुपचाप खड़े रहेंगे और कुछ भी ऊलजलूल नहीं बकेंगे. तो आज की यह मजलिस अब यहीं बरखास्त होती है. 'बुनकर कला-कुंज अलविदा! 'गोपाल स्वीट हाऊस अलविदा !!' अब कल हम सब प्रातः १० बजे लाला दुबे के घर के बाहर मिलेंगे. पूरे घंटे की यह कुलीगीरी-समाप्त.जब जी चाहे काम करो, जब जी चाहे आराम. किसी स्साले की कोई धौंस नहीं. हम लोग 'मंडल चुनाव-समिति' के इंटरव्यू में पास हो सकते हैं, तो अपना स्वतंत्र धंधा भी चला सकते हैं. हम सब 'कलाकार' हैं. मैंने अपने कला-केंद्र का एक बढ़िया-सा नाम भी सोच लिया है– जोर-से एक साथ बोलो, 'सप्तर्षि कला-निकेतन जिंदाबाद!'

इस पर डिजाइन हाल की दीवारें सप्तर्षियों के नारों से गूंज उठीं. तभी सुरजीत सिंह हाथों में बूट पकड़ कर पिछले दरवाजे की ओर दौड़ता नजर आया. पहले तो किसी की समझ में कुछ नहीं आया, किंतु सामने वाले दरवाजे से धुंध के में उभरते चेहरे को देखते ही कई स्वर मुखर हो उठे —भाभी

'भाभी' अर्थात् जीते (सुरजीत) की पत्नी हरशरण कौर. आज घर पहुंचने में देर हो गयी थी न, सो उसकी पत्नी स्वयं आ टपकी थी. लंबे-चौड़े सुरजीत की पत्नी भी लंबी-चौड़ी थी. खालिस पंजाबी जटनी.

सुरजीत अमृतसर (पंजाब) का रहने वाला था. वह दूसरे दोआबियों की तरह टखने से नीचे तक का तंग पांयचों का पाजामा पहना करता था और हरदम एक लंबा चोगेनुमा सफेद कुर्ता धारण किये रहता था. प्रायः मोटे शीशों वाले चश्मे से उसकी बड़ी-बड़ी आंखें एकटक आसमान की ओर ताका करती थीं. कहते हैं, पहले वह अब से भी अधिक कुरूप था. वह और हरशरण अमृतसर के पास पट्टी नामक गांव में रहा करते थे. वह गांव के बाहर बैठ कर अपनी पेंटिंग्स बनाया करता था और हरशरण मुटियार उसके उन्हीं आड़े-तिरछे चित्रों पर ही लट्टू की तरह नाच उठी थी. यह रहस्य उद्घाटित होने के बाद हमारी यह जिज्ञासा शांत हो गयी थी कि इतनी 'सोहणी मुटियार' इतने 'कोझे जाट' के हाथ कैसे पड़ गयी. सुनते हैं, हरशरण ही उसे गांव से भगा कर वाराणसी ले आयी थी क्योंकि उन दोनों के माता-पिता अत्यंत रूढ़िवादी थे. हरशरण के माता-पिता को तो विशेषतः यह 'शक्ल न सूरत का' रांझा एक आंख नहीं भाया था. यहीं आकर एन दोनों ने एक गुरद्वारे में शादी कर ली थी और यहीं बस गये थे.

सबने देखा, हरशरण की सांसें फूली हुई थीं और उसका चौड़ा-चकला वक्षःस्थल जल्दी-जल्दी उठ-गिर रहा था. फूलदार कुर्ता कसीदे के फ्रेम पर चढ़े हुए कपड़े की तरह कसा-कसाया लग रहा था. उसे देख कर मुझे सुपाकर का वह कसा हुआ तबला याद आ जाता था, जो हरदम बज उठने की मुद्रा में सन्नद्ध रहता था.

हमारे चलते हुए कदमों में 'भाभी' का भारी-भरकम स्वर किसी हठीले बालक-सा लिपट गया – कित्थे गया ओ कायर किते दा? सौरा, पंजाबीयां दा नां डोबदा है. लोकां दे डिजाइन वणाओंदा आप ही डिजाइन बण गया है –

इस पर वाई. पी. सुधाकर ने आंख की कोर दबाकर संकेत किया कि आज भाभी का पारा काफी 'हाई' है. रामा शिंदे ने कदम तेज करने में पहल की. मुहम्मद रफई अपनी कंटीली दाढ़ी पर बार-बार हाथ फेर रहा था और आंखों ही आंखों में मुझे भाभी का पारा शांत करने का गुप्त संदेश प्रेषित कर रहा था. बी. के. राये अपनी बड़ी-बड़ी मूंछों और कलमों को ही चलते-चलते आदमकद आईने में देख रहा था और सहला रहा था. डेविड के कंधों पर सदा की तरह दोनों थैले लटके हुये थे. एक थैले में तो कैन्वस, तूलिका, ब्रुशों का बंडल और मृगछाला थी और दूसरे बड़े थैले में गिलास, प्लेटें, थाली और गृहस्थी का अन्य जरूरी सामान था. डेविड को देखकर मुझे सदा गालिब के एक शेर की 'बे दरोदीवार-सा इक घर बनाया चाहिए' पंक्ति सताने लग पड़ती थी और मैं अधरों की चौखट के भीतर ही अपने आप से बुदबुदा उठता था—–स्साला, खानाबदोश कहीं का! चित्रकारी के सामान के नीचे कंधे से झूलता कैमरा जब-तब झांक उठता था. डेविड मितभाषी था, किंतु उसका यह सामान अधिक बोलता था और उसके व्यक्तित्व की रेखाएं गहरी उकेर

जाता था.

पता नहीं, सहसा मेरे जी में क्या आया कि मैं बोल उठा—भाभी, जीते विचारे को क्यों कोसती रहती हो. यह भारत का उच्च कोटि का चित्रकार बनेगा.

—उंह—चित्तरकार, हरशरण कौर चलते-चलते ठसक से खड़ी हो गयी और हवा में हाथ लहराते हुए फट पड़ी, मूरतां चंगी बणाउंदा होऊगा—मैंनूं तो एह पता है कि एह शादी दे सत सालां विच इक बच्चे दी वी मूरत बणा नहीं सक्या. कायर किते दा!

यह तीखी प्रतिक्रिया सुनते ही सब को सांप सूंघ गया. मेरे साथ एक दिक्कत यह है कि मुझे असमय ही इधर-उधर की बातें याद आ जाया करती हैं. मसलन, इसी समय मुझे सुरजीत की 'सोहणी के आंसू' पेंटिंग याद हो आयी. उस चित्र में सोहणी की आंखों का अनुपात काफी बड़ा था और घड़ा काफी चमक रहा था, मानो सोहणी के अश्रुओं से उसका कोई संबंध हो. सुरजीत के घर से हम लोग जबरदस्ती वह पेंटिंग ले आये थे और हमने उसे एक प्रदर्शनी में रखवा दिया था. उस दिन सुरजीत प्रदर्शनी के सभी चित्रों को छोड़ कर केवल अपने उसी एक चित्र के आगे बैठा दो घंटे तक टसुवे बहाता रहा था. पूछने वालों से वह यही कहता रहा था—यारो, एस तस्वीर विच विखाये सोहणी दे अथरू मेरे हन, ते शकल किसे होर दी है.

प्रदर्शनी के अंत में राम शिंदे ने आदत के अनुसार सिर खुजलाते हुए सुरजीत के घाव कुरेद दिये थे—शुक्र कर जीते! यह शक्ल तेरी नहीं, वरना तेरी इस पेंटिंग को कोई न पूछता.

भारतीय बुनकर सहकारी-मण्डल की उस शाखा से बाहर निकले तो हमारे कदम तेजी से उठ रहे थे, क्योंकि बूंदाबांदी की रिमझिम हमारी चेतना पर जलतरंग-सी बजने लग गयी थी.

* *

आप भी सोचेंगे कि कितना अजीब आदमी है, अपने छहों कलाकार मित्रों की बावत बताये चला जा रहा है, किंतु अपने बारे में कुछ नहीं कहता. मैं भी अपने छह कलाकार मित्रों के साथ बंबई में हुए मण्डल चुनाव-समिति के इंटरव्यू से चुना जा कर इस वाराणसी-स्थित बुनकर कला-कुंज में नियुक्त होकर आया था. पूरा नाम बृजमोहन जौली है. डेविड और सुरजीत को छोड़ कर शेष मंजरेकर, राये, शिंदे और सुपाकर की भांति मेरे नाम की पूंछ भी झड़ चुकी थी. और मैं मात्र 'जौली' रह गया था.

गोपाल मंजरेकर रत्नागिरी का रहने वाला था. कद ४ फुट ६ इंच. छाती ४८ इंच. उसे तारदेव में रहते हुए अपने मकान-मालिक नानूभाई की अत्यंत रूपवती कन्या उमा से प्रेम हो गया था और वह उसकी चाल से उसे भगा कर ले आया था. लड़की के माता-पिता इतने निर्धन थे कि अनेक भारतीयों की तरह वे अपनी बेटी की शादी नहीं कर सकते थे. जब मंजरेकर की इस पोस्ट पर नियुक्ति हुई तो उसी दिन उसने उमा को दादर के रेलवे स्टेशन पर विदा के बहाने बुला लिया और गाड़ी चलने पर बांह पकड़ कर उसे ऊपर ही चढ़ा लिया. कल्याण पहुंच कर उसने मुझे तार दिया—मेक एरेंजमेंट्स फार मैरिज. मैं बंबई से वाराणसी पहले ही आ चुका था. उसका तार पा कर मैं हक्का-बक्का रह गया.

रेलवे स्टेशन पर मंजरेकर के साथ तीन कपड़ों में खड़ी उमा को देखा तो बस देखता ही रह गया. मैंने उससे स्पष्ट कह दिया—जैसे भी हो स्साले, भोला शंकर की बारात भी अब मुझी को बनानी पड़ेगी.

सो साहब, बारात में कुल तीन व्यक्ति जुट सके थे. एक बाराती था मुहम्मद रफई, जिसने शादी में वर के पिता की भूमिका अच्छी तरह निभाई. दूसरा था रामा शिंदे, जो महाराष्ट्र से आया था और तीसरा मैं स्वयं था. साढ़े नौ बज रहे हैं और सामने से आते हुए मंजरेकर को देखते-देखते मैं अतीत में गोता लगा चुका हूं. मग इसकी शक्ल के साथ-साथ मुझे तारा मुकर्जी की भी सूरत याद जाया करती है. शायद इसलिए कि मंजरेकर से अधिक कोई मैडम को घृणा नहीं कर सका था. तारा मुखर्जी किसी श्र फर्म की तकनीकी परामर्शदात्री थी. वह दो-तीन महीने बाद बु कला-कुंज आती थी और खादी के कपड़ों पर डिजाइन बनवाने लिए छहों कलाकारों के डिजाइनों की व्याख्याएं मुझसे करती थी.

आधे-आधे इंच और उससे भी छोटे टुकड़ों से एक संपूर्ण को अस्तित्व देना यह सब वही जानते हैं, जिन्होंने इस क्षेत्र का ए कोना झांका हो. मैं वक्तृत्व कला में असाधारण रूप से संपन्न के कारण अपने कलाकार मित्रों की पोस्ट बरकरार रखे हुए मैडम चित्रों को अपने घर ले जाती थी और टेपों पर मेरी आव का रस-पान करती हुई डिजाइन कार्डों के नंबर अपने एजेंटों के भिजवा दिया करती थी, जो कपड़े का आर्डर दिया करते थे. फिर सब डिजाइनों के तकनीकी विवरणों पर विचार करते हुए क और लाभ का हिसाब लगाने के बाद उनके सप्लाई आर्डरों का स करते थे. उसके बाद कपड़े के निर्माण का कार्य बुनकरों का रह था. मंजरेकर ने मेरे कंधे पर दबाव डाल कर मेरी चेतना भंग सामने रफई आ रहा था—आओ रफई! मैं अब तक तुम्हारे ही में सोच रहा था. वहां मोड़ पर क्यों रुक गये थे?

—एक पुराना परिचित मिल गया था. लगा बाल-बच्चों बारे में पूछने. फिर वही पुराना सवाल कि मैंने अपने इकलौते का नाम 'सत्यसाची' क्यों रखा. रफई की दाढ़ी काफी बढ़ी हुई

मैंने ध्यान से देखा. उसका चेहरा उड़ा-उड़ा सा था. माथे के ओर बालों का एक गुच्छा लटका हुआ था और शक्ल पर वही ह वाली मनहूसियत टपक रही थी. मुझे उसके रुआंसेपन को तोड़ने इच्छा हो आयी. इसलिए बार-बार सुने हुए उत्तर को सुनने के पूछा—फिर तुमने क्या उत्तर दिया?

रफई का चेहरा सहसा ताजा गुलाब हो आया और उसकी बु बुझी-सी आंखों में एक दुर्बोध चमक तैर आयी, अधरों पर भी विरल मुस्कान का उत्तरण हुआ.

—मैंने कह दिया, मैं यह मानता हूं कि अर्जुन जैसा तीरंदाज तक भारत ने पैदा नहीं किया. मुझे महाभारत में उसका चरित्र स अधिक पसंद रहा है इसलिए मैंने अपने इकलौते बेटे का नाम 'स साची' रखा है. . .

—और अपनी इकलौती बेटी रेशमा के नामकरण का क नहीं बताया चुगद? यह वाई. पी. सुपाकर था.

—आ गये कंठे महाराज के शिष्य? मैंने उसका स्वागत कि बात यह थी कि सुपाकर को कूची से ज्यादा तबले का शौक और वह भारत के प्रसिद्ध तबलानिगार कंठे महाराज का शिष्य था

मुहम्मद रफई ने उसी भावावेग में कह डाला—वह भी मैंने दिया कि रेशमा मुझे बहुत पसंद है और मैं रेशमा का डिजाइनर

तभी पास की गली से डेविड थौमस प्रकट हुआ. उसके कंधों एक कैमरा और दो थैले दीख रहे थे. ऐसा लगता था यदि अभी को उससे कह दे, 'मधुबनी चलोगे' तो वह 'हां' में सिर हिला कर अ कंधों पर अपना 'घर' उठाये चलने भी लग जाएगा.

आते ही डेविड ने सुपाकर की आंखों से चश्मा उतार पुराना मजाका दोहराने की इच्छा से उसकी आंखों के सामने अं लियों खड़ी कर के पूछा—बताओ, ये कितनी अंगुलियां हैं?

सुपाकर ने झट उसके हाथ से चश्मा छीन कर नथुने फुंका हुये कहा—स्सालो! मुझे तुम्हारी सारी बातें पसंद हैं, मजाक क ही है तो सुरजीत (जो उसी की तरह मोटे शीशों वाली ऐ लगता था) से किया करो. हां, नहीं तो. . .

डा. कृष्ण भावुक (जन्म : १८ जनवरी, १९-४१) का विश्वास है कि कहानी 'जीवन के समांतर साक्षात्कारों से लैस हो कर एक तेजाबी हथियार की तरह बरती जा सकती है.' अब तक करीब सौ कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं.

मेरे पास कोई फटक कर तो दिखाये. यह कह कर उसने तुरंत आस्तीन ऊपर चढ़ा कर बांहों की उभरी हुई मछलियां दिखायीं.

सुरजीत हिंदी और पंजाबी दोनों धारा-प्रवाह बोल लिया करता था. उसके बस दो ही शगल थे——आसमान की ओर ताकते रहना और जब-तब बैठे-बैठे आहें भरते हुए कहना——हाये साडा पंजाब! पंजाब दीयां की रीसां ने! ओहो जेहे खाणे नूं तां तरस गए असां ऐत्थे. वह प्रायः दफ्तर से छुट्टी होने पर घर लौट जाया करता. हरशरण कौर उसकी ऐसी ही आदतों से जली-भुनी रहती थी. कभी पत्नी की अनुपस्थिति में भी उसका नाम ले दिया जाता तो वह तुरंत बगल में जूते दबा कर रफूचक्कर हो जाया करता था.

राये और शिंदे के बारे में सोच ही रहा था कि दोनों बगलों में हाथ दिये सामने से आते दीख पड़े. जो बात जीते के 'साडा पंजाब' में थी, वही बी. के. राये के 'आमार बंगला, भालो बाशा' में.

——कमबख्तो! इतनी देर कहां लगा दी तुमने? सवा दस बज रहे हैं, मैंने आते ही रोब झाड़ा.

——जौली डियर! उस नुक्कड़ वाले खोखे में चाय पीने लग गये थे, राये ने ऊंट-सी गर्दन हिलाते-डुलाते हुए कहा.

——चाय-चाय-चाय! तुम्हें तो मोशाय सारे दिन चाय से ही फुरसत नहीं——मैं पुनः खीझ उठा. कहीं यह स्साला घर बैठ कर अपनी पत्नी प्रवीणा का सितारवादन न सुनता रहा हो, जो कि इतनी देर में आया. प्रवीणा शादी से पहले भी सितार बजाया करती थी, इसीलिए इस भलेमानस को जब देखो रविशंकर के सितारवादन की प्रशंसा से ही फुरसत नहीं मिलती. हर महीने इसकी एक ही रट रहती है, 'अगर मेरा यह चित्र बिक जाये तो मैं प्रवीणा को एक नयी सितार खरीदवा दूंगा. . .'

अरे हां, मैं आपको यह बताना तो भूल ही गया कि मेरे ये छहों कलाकार मित्र पेट भरने के लिए प्राइवेट रूप से अपनी कला-कृतियां बेचने की भी जान-तोड़ कोशिश करते रहते थे. 'मरता क्या न करता' वाली बात ही समझिये. यदि सौभाग्य से कभी कोई पेंटिंग बिक भी जाती तो उसके पैसों से सिगरेट, पान, चाय और राशन वाले के उधार चुकता किये जाते थे. यह बिचारे राये का दुर्भाग्य था. वह दुकानदारों को गिने-चुने नोट ऐसे गिन-गिन कर कांपते हाथों से पकड़ाता था, जैसे कोई बाप अपनी प्राण-पियारी इकलौती बिटिया को घर से विदा कर रहा हो.

अब वही राये अपनी ३२ इंची छाती तान कर उस पर हाथ फेरते हुए अपना तकिया कलाम दुहरा रहा था——मोशाय! अगर मैं यह चाय न पीता होता तो मेरी यह छाती २६ इंच की ही रह जाती. इस पर दुबे की हवेली का दालान कहकहों से प्रतिध्वनित हो उठा. तभी पिछले कोने से फर्श-चूसती धोती का पल्लू थामे दुबेजी परशुराम की मुद्रा में मंच पर प्रकट हुये——क्यों जी? क्या बात है? कहां घुसे चले जा रहे हो? अपने बाप का घर समझ रखा है क्या?

सुपाकर और राये आगे बढ़ने लगे, तो उन्हें धकियाते हुए मैं बीच में से आगे लपक कर लाला के पांव छूते हुए बोला——पांय लागी महाराज, हम लोग आपका खाली कमरा किराये पर लेने की इच्छा से आए हैं, इतना कह कर मेरे घूमते ही सभी कलाकार मित्र स्वीकारात्मक ढंग से गर्दनें हिला कर मानो जताने लगे कि हां, हां यही बात है. बोले वे इसलिए नहीं क्यों कि उन्हें चुप्पी धारण करने के लिए एक दिन पहले दी गयी मेरी चेतावनी स्मरण हो आयी होगी.

—कमरा? उसका तो किराये बहुत है. तुम लोग नहीं दे पाओगे. जाओ, जाओ अपना रास्ता देखो.

—क्या कह रहे हैं लालाजी? वह रामायण में विभीषण ने जैसा कहा है न कि 'श्रवण सुजसु सुनि आयउं, प्रभु भंजन भव भीर' हम तो आप ही की शरण में आए हैं. हमें निराश मत करें, शरणागत हैं आपके. जो भी किराया मांगेंगे आपको दे देंगे.

——हूं. भलेमानस जान पड़ते हो. कान खोल कर सुन लो, किराया पूरे पचास रुपये होगा, लाला ने जनेऊ में बंधे चाबी के गुच्छे को हथेली में जकड़े हुए कहा. मुझे पता था, पहले बीस रुपये पर चढ़ा था कमरा.

——क्या साठ? डेविड धीरे से बुदबुदाया, सिक्सटी इज टू लैस.

इतना सुनते ही मैं दांत पीसने लगा. इससे पहले कि मैं कुछ कहता, लाला दुबे बोल उठे——तुम सब लोग मेरे साथ आकर कमरा देख लो पहले.

और हम सब उनके पीछे-पीछे बाहर गली में आ गये, जहां उनका वह कमरा खाली था. लाला अभी ताला खोल ही रहा था कि सुरजीत उकडूं हो कर बैठ गया और देखते-देखते सुपाकर उसकी पीठ पर खड़ा हो गया और दो निकली हुई ईंटों वाले रोशनदाननुमा झरोखे में गर्दन डाल-डाल कर भीतर झांकने लगा. डेविड भी एड़ियां उठा-उठा कर वैसे ही उचक रहा था, मानो अभी रोशनदान तक पहुंच जाएगा. यदि लाला वहां न होता तो मैं इन कलाकारों के झापड़ रसीद किये बिना न रहता. भला ऐसी भी क्या जल्दबाजी हुई.

कमरा १० फुट × १० फुट का था. दरवाजा इतना छोटा और संकरा था कि हमें औरंगजेब से भेंटार्थ जाने वाले शिवाजी के बौने दरवाजे से झुकने का ऐतिहासिक दृश्य स्मरण हो आया. कमरे के ईंटों वाले फर्श पर तीन-तीन फुट की सेंक (सीलन) जमी हुई थी. तीनों ओर दीवारें थीं——एकदम बंद और रोशनदान के नाम पर बस वही दो ईंटों का झरोखा था. सो, कमरे में दमघोंट अंधेरा होना स्वाभाविक ही था. मैंने बाहर आकर कलाकार मित्रों से राय पूछी तो पता चला कि उन सबको कमरा पसंद है. जब मैंने दुबे को स्वीकृति दी, तो वह जोर से चौंका. मैंने लाला दुबे का संदेह ताड़ लिया और उनसे सम्बोधित हुआ——दुबेजी, आप इन लड़कों के आचार-व्यवहार से मत घबरायें. ये सब निहायत शरीफ आदमी हैं और इन के संबंध में सारा जिम्मा मैं लेता हूं.

अब बाहर से बी. के. राये अपनी सारसी गर्दन झरोखे में डाल कर देख रहा था और उषा के पंखे की तरह सिर हिला-डुला कर कह रहा था—भालो बाशा, भालो बाशा.

——बात यह है कि मुहल्ले की बदनामी से मैं बहुत डरता हूं, लाला बार-बार धोती का पल्लू अंगुलियों में लपेट और खोल रहा था.

उसी समय मंजरेकर मुझे एक ओर खींच कर ले गया और कान में धीरे से फुसफुसाया——जौली, लाले को बता दो कि मैं सिर्फ एक उमा को भगा कर लाया हूं और आगे भविष्य में किसी और लड़की को घर से भगाने का मेरा इरादा फिलहाल नहीं है.

इतने में लालाजी कहने लगे——तुम यहीं ठहरो, मैं अभी नर्मदा

से कमरा चढ़ाने के बारे में पूछ कर आता हूं.

मैं समझ गया कि अब सब गुड़-गोबर हुआ ही समझो. लालाइन कभी 'हां' नहीं कहेगी——कम से कम इतने सारे मुस्टंडों की हरकतें देखकर. कुछ देर पहले जैसे ही लाला ने दरवाजा खोला था, वैसे ही सब मित्र ऐसे भीतर घुसे थे, जैसे कांजी हाऊस का फाटक खोलते ही पशु खुद-बखुद घुसपैठ करने लग जाते हैं.

डेविड ने तुरंत कमरे का एक कोना 'रिजर्व' कर लिया था और वहीं टांगें पसार कर बैठा सिगरेटें फूंके जा रहा था. बार-बार उसके मुंह से यही सुनाई दे रहा था——मेरा मन करता है, इसी समय यहां से सीधा मधुबनी चला जाऊं. सुपाकर ने भी दूसरे कोने पर अधिकार जमा लिया था और वहीं बनी अलमारी के पल्ले पर तबले का गत-तोड़ा बजाना शुरू कर दिया था. इस पर डेविड चीख उठा——अबे शोर मत मचा! मैं अपने हिस्से का किराया दे कर जाऊंगा.

अब तक गली के बाहर लगभग डेढ़ दर्जन हरिजन बच्चों का जमाव हो गया था और वे भीतर ताक-झांक कर रहे थे. पूरा कमरा सील की दुर्गंध से गंधा रहा था. सुरजीत ने कमरे का तीसरा कोना सुरक्षित कर लिया था और शिंदे ने चौथा. तभी बाहर से रफई की 'हाय-हाय-हाय' की आवाज कानों में पड़ी. बाहर जाकर क्या देखता हूं, उसने बाहर वाली सीढ़ी पर अपनी घिसी-पिटी बाल-उड़ी मृगछाला बिछा कर कैन्वस पर ब्रुश से चित्र बनाना भी शुरू कर दिया था और एक-दो रेखाओं के नशे में धुत्त होकर 'हाय-हाय' कहने लग गया था. बोला——एक सिगरेट होगी जौली?

——न-हीं, मैंने चेहरा सख्त कर के एक शब्द उगला और भीतर लौट आया. भीतर लाला अपनी लालाइन के साथ हतप्रभ खड़ा यह सब ऐसे निहार रहा था, मानो उसके घर की कुर्की हो रही हो. मैं उन दोनों को अपने मित्रों के स्वभाव और आदतों के बारे में पक्षपातपूर्ण ढंग से बताने लग गया. सच पूछिये, तो मेरी हालत उस समय ठीक उस व्यक्ति जैसी थी, जो पहले तो परिवार नियोजन वालों को अपने बच्चों की संख्या कम बता कर पीछा छुड़ाना चाहे और बाद में उन्हीं के सामने घर से दूसरे बच्चे निकलते देख कर शर्म से धरती में गड़ जाए.

तभी सुपाकर लालाइन के सामने हाथ जोड़ कर हनुमान की तरह उकड़ूं बैठ गया और अत्यंत विनम्रतापूर्वक बोला——माताजी! अशोक वाटिका में सीताजी को जो स्तुति हनुमान ने सुनाई थी, वही मैं आपको अभी तबले में सुना सकता हूं, यह कह कर उसने आलमारी के पल्ले पर तबला बजाना चालू कर दिया. पता नहीं लालाइन के मन पर कैसा प्रभाव हुआ कि उसने एकदम मौन साध लिया. उसके चुप्पी धारण करते ही लाला किराया एडवांस मांगने लगा. मैंने सब मित्रों को एकत्र किया और पीठ पीछे एक हाथ पसार कर खड़ा रहा, कि जो जिसके पास हो, इस पर धर दो. बड़ी कठिनाई से ८ रुपये कुछ पैसे जमा हुये. २ रुपये स्वयं डाल कर मैंने १० रुपये लालाजी को सौंपे और शेष ४० रुपये ८-१० दिन में चुकता करने का वायदा किया. लाला ने स्वीकार कर लिया किंतु एक शर्त रखी——पहले तुम सब मुझे यह बताओ कि तुम्हें इस कमरे में पसंद क्या आया!

डेविड दूर कोने से लपक कर आया. उसने शायद लाला की बात नहीं सुनी थी. वह मेरे कान में फुसफुसाया——सिक्सटी रूपीज में लाला नहीं मानता, इससे कह दो हम 'एटी' रूपीज दे देंगे.

मैंने उसे तुरंत घूरा तो वह एक ओर छिटक कर खड़ा हो गया. ठीक इसी समय मंजरेकर ने कैन्वास खड़ा कर के उस पर एक गोलाई में घूमती हुई-सी रेखा खींची और उसी को देखते हुए 'वाह-वाह', 'कमाल है' आदि शब्द उगलने लगा. जब ऐसा करते हुए ५-१० मिनट हो गये तो लाला ने चमत्कृत ढंग से पूछा——भाई, यह है क्या?

——लालाजी, आपको चित्र में क्या दिखाई दे रहा है?

लाला भवानीशंकर कुछ मिनट निरर्थकता में गुम सोचते रहे, फिर हाथ हिलाते हुए बोले——पता नहीं, बंदर की पूंछ जैसी कोई रेखा ही लगे है. . .

इस पर मंजरेकर ने ठहाका लगाया और उनके कंधे पर आघात करते हुए बोला——दुबे महाराज! यह एक लाइन साठ रुपये की है. यह तुम्हारी गली है न, यह ऊपर हवाई जहाज से बिल्कुल ऐसी दिखाई देगी और ये छोटी-छोटी बिंदियां हैं न, ये गली में चलते हुए लोगों के सिर हैं. . .

अपने प्रश्न का उत्तर पाये बिना लाला विस्फारित नजरों से उस वक्ररेखा को देखते हुए लालाइन के साथ भीतर चला गया. उसके जाते ही सब मित्रों ने मुझे घेर लिया और मुझसे पान और सिगरेट के पैसे मांगने लगे, जिससे पता चला कि उन सबकी जेबें खाली हो चुकी हैं. मैंने उन्हें फटकारा——स्सालो, अगर तुम्हारे पास पैसे नहीं थे तो कला-निकेतन किस बूते पर खोलने चले थे?

जैसे-तैसे इधर-उधर से उधार लेकर कमरे का शेष किराया लाला के हाथ पर रखा गया. सप्तर्षि कला-निकेतन खुल गया, किंतु कोई बोर्ड-वोर्ड नहीं लगाया गया.

——कितनी शांति है यहां. . .रामा शिंदे यह बात कई बार कह चुका था और उतनी ही बार डेविड समर्थन कर चुका था.

——ठंढ़ा भी कितना है यह कमरा! सुपाकर भी कई बार अपनी पसंद का कारण दोहरा चुका था.

हम सब ने मिलकर जो बातें तय कीं. वे इस प्रकार थीं——

१. रफई कमरे के बाहर बैठ कर चित्र नहीं बनायेंगे. हां, वे प्रेरणा के लिए यदा-कदा कमरे से बाहर जाकर प्राकृतिक दृश्य देख सकते हैं.

२. सुपाकर सिर्फ पेंटिंग बनायेंगे और तबला बजा कर शोर नहीं करेंगे.

३ सुरजीत पेंटिंग बनाते समय लंबी-लंबी डकारें लेकर दूसरों को डिस्टर्ब नहीं करेगा.

४. गोपाल मंजरेकर चित्र बनाते समय जोर-जोर से ठहाके नहीं लगायेगा.

५. बी. के. राये (जिसका कद सबसे लंबा था) धरती पर बैठकर चित्र बनायेंगे, खड़े होकर नहीं.

६. भाषण केवल मैं ही दिया करूंगा और इसके लिए मेरे 'सर्वाधिकार सुरक्षित' होंगे.

यद्यपि पहले महीने मेरी दौड़-धूप के कारण कलाकार मित्रों के कुछ चित्र बिक भी गये और उनके चित्रों की ख्याति वाराणसी में फैल गयी, तथापि बंबई में घर की स्थिति काफी डावांडोल हो जाने के कारण मुझे तुरंत वहां जाना पड़ गया. पीछे मेरे उन कलाकार मित्रों के साथ क्या बीती, क्या न बीती, मुझे कुछ पता न चल सका. आखिर ५ वर्ष बाद मेरा वाराणसी में चक्कर लगा.

* *

वाराणसी के रेलवे स्टेशन पर गाड़ी से उतरते समय मेरी चेतना में मुहम्मद रफई की लंगड़ी टांग (जो उस दिन चोट लगने के कारण लंगड़ा कर चलने से 'लंगड़ी' ही जान पड़ती थी) और दूसरे साथियों की यतीमी सूरतें मेले के हिंडोलों की तरह ऊपर-नीचे आ-जा रही थीं. उन्हें देख कर उस दिन बंबई की ट्रेन पकड़ने के लिए इसी प्लेफार्म पर चलते हुए ऐसा जान पड़ता था, मानो मेरे सभी कलाकार मित्रों के संरक्षक या तो स्वर्गवासी हो गये हैं या उन्हें सदा के लिए छोड़ कर किन्हीं अज्ञात स्थानों पर चले गये हैं, रफई काफी लंगड़ा कर चल रहा था और अपने आप बुदबुदा रहा था——अब मुझे अपनी दूसरी टांग कभी नहीं मिलेगी.

सुपाकर फड़फड़ाते अधरों से केवल एक शब्द निकाल पाया था——जौली. . .डेविड ने कंधों से थैले फर्श पर पटकते हुये मेरा

—जौली. . .अब फिर कब. . .! अश्रुओं ने शेष शब्दों को पूरा कर दिया था. रामा शिंदे को पता नहीं क्या सूझी कि उसने झुक कर मेरे पैर छू लिये. गोपाल मंजरेकर मुझसे आंखें नहीं मिला रहा था और बार-बार रूमाल से आंखों की कोरें साफ कर रहा था. राये आंखों में अपार दर्द और दयनीयता भर कर कह रहा था—जौली डियर, प्रवीणा भी तुम्हें 'सी-ऑफ' करने के लिए आना चाहती थी, लेकिन. . .

और राये महाशय भी अपना वाक्य अधूरा छोड़ कर पायदान पर चढ़ गये थे. सच पूछिए तो इस समय मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या भूलूं, क्या याद करूं. डेविड की वह मैली टाई मेरी चेतना में बिजली के खंभे के तारों से लटके हुए किसी मृत नीलकंठ के पंजों-सी फरफरा रही है, रह-रह कर. पता नहीं ये सब लोग कहां होंगे, अच्छे-भले होंगे भी या नहीं.

मैं प्लेटफार्म से बाहर निकल आया हूं. सहसा धरती से आठ-नौ फुट की ऊंचाई पर लगे पैनल में एक मॉडर्न पेंटिंग देख कर ठिठक गया. अरे! यह तो मंजरेकर का बनाया हुआ चित्र है. मैं एड़ी के बल जरा-सा उचक कर पेंटिंग के नीचे कोने में निर्माता का नाम खोजता हूं. स्पष्ट अक्षरों में लिखा था 'प्रोड्यूस्ड बाई तारा मुकर्जी' और उसके नीचे कुछ कम छोटे शब्द बड़ी कठिनाई से पढ़ पाया. 'पेंटिड बाई' इन दो शब्दों के बाद टेढ़े-मेढ़े अक्षर थे—— 'जी. एम.'

तभी एक कुली मेरी अटैची लेने के लिए आगे बढ़ा.——बाबूजी, कहां जाना है आपको?

पता नहीं कैसे मैं उबल पड़ा—— नहीं जाना है मुझे कहीं, रहने दो. बाद में सोचा तो पता चला यह मंजरेकर का पूरा नाम न देख सकने की तात्कालिक प्रतिक्रिया थी.

बहुत छानबीन के बाद वाराणसी की एक तंग बदबूदार गली में सुपाकर का पता-ठिकाना मिल गया. आंखों पर लगे चश्मे के शीशों पर खरोंचें पड़ी हुई थीं, फिर भी पता नहीं उसने चश्मा क्यों नहीं बदला था. मुझे देखते ही वह सुबकते हुए मुझसे लिपट गया. बाद में उसने बताया कि पत्नी और बच्चों को उसने एक साल से मायके में छोड़ा हुआ है.

——क्या करता, मेरा हाथ इतना तंग था कि. . . क्या बताऊं जौली, तुम गये तो जैसे मेरी किस्मत भी. . . खैर छोड़ो, ये बातें तो होती रहेंगी, पहले मैं तुम्हारे लिए चाय-वाय ले आऊं खोखे से.

मैंने उठ कर भीतर से उमड़ती रुलाई को रोकते हुए कहा——यार! रहने दो. चाय तो मैं अभी स्टेशन से पी कर आ रहा हूं. यह बताओ, तुम्हारा तबले का अभ्यास अब कैसा है?

यह सुनते ही उसके अधरों पर एक रेतीली मुस्कान आयी और शीघ्र ही लुप्त हो गयी. वह सीना फुला कर बोला—— मेरी प्रैक्टिस अब भी जारी है डियर. और तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि जीवन की अंतिम सांस तक जारी रहेगी.

—गुड! आइ एम प्राउड ऑफ यू सुपाकर! अच्छा, यह बताओ, सुरजीत कहां मिलेगा? डेविड का पता बता सकोगे?

——जौली! सुरजीत को बनारस छोड़े तो दो साल हो गये. तुम्हारे जाने के बाद ही हम लोगों ने दुबे का कमरा छोड़ दिया था, किंतु लौट कर पुरानी नौकरी पर भी नहीं गये. कभी किसी का एकाध चित्र बिक जाता था. सुरजीत तो पंजाब चला गया, रही डेविड की बात, तो वह तुम न पूछो तो ही अच्छा है!

—क्यों, क्या हुआ डेविड को? सहसा मेरे हाथ में पकड़ा सिगरेट का पैकेट थरथराने लगा और मेरी स्मृति में डेविड की टाई फांसी के फंदे की तरह मरियल-सी झूल गयी.

पता नहीं सुपाकर से क्या सुनने को मिलेगा! सुपाकर खाली सीपियों-सी आंखें शून्य में गाड़े हुये बोला——जौली डियर! बहुत [illegible] उससे कम देने चाहे इसी पर डेविड उससे उलझ पड़ा. सड़क सूनसान देख कर सेठ ने उसी कार से उसे कुचल दिया. देखा तो नहीं, पर सुना है उसके शरीर का बायां हिस्सा बुरी तरह से घायल हो गया था और मांस की थैलियां-सी सड़क पर निकल पड़ी थीं. कहते हैं कई घंटे तक एक पुलिसमैन उसके थैले उठाये लोगों से उसका परिचय पूछता रहा था. पोस्ट मार्टम के लिए ले जाने से कुछ पहले बंगाली मोशाय राये ने स्ट्रेचर पर उसकी शिनाख्त की और पुलिस को बयान दिया कि एक मित्र के नाते लाश उसे सौंप दी जाये.

——च-च-च. . .हे भगवान्! उसकी. . .अर्थी में कौन-कौन था? मैं एकाएक रुआंसा हो गया था. मुंह से शब्द नहीं फूट रहे थे.

——राये स्वयं उन दिनों अस्पताल में दाखिल था, क्योंकि हृदय-गति रुक जाने से कुछ महीने पहले प्रवीणा चल बसी थी और उसी के गम में वह भी बीमार पड़ गया था. बहुत खोजने पर शिंदे ही मुझे मिल गया था. बस, यहां जिस खोली में डेविड रहता था, उसी की बगल में रहने वाले चार आदमी और हमारे साथ थे. हमने कार वाले सेठ के विरुद्ध पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज करायी, किंतु कुछ नहीं हो सका.

——ओह! बस करो सुपाकर. मुझसे अब और नहीं सुना जाता. अब चलूंगा. यह कह कर मैं उठ खड़ा हुआ. अच्छा यह बताओ, अब राये——उस बंगाली मोशाय का क्या हाल है? शिंदे कहां है? और हां, रफई और मंजरेकर का पता तुम्हें मालूम है?

——राये स्वास्थ्य-लाभ तो कर चुका है, किंतु उसने चित्रकला छोड़ कर रामा शिंदे के साथ उपन्यास लिख-लिख कर पेट भरने का धंधा अपना लिया है. सुरजीत ने कितनी बार कहा, स्साले तुम अपने जैसा कोई काम क्यों नहीं तलाश करते? इस पर रफई एक ही उत्तर देता था, कोई कर्म किसी के बाप की बपौती नहीं होता. मैं जो चाहूं करूं. उसके मुहल्ले के लोग कई बार आ कर उससे शिकायत करते थे कि वह जुम्मे की नमाज उनकी तरह जमात में जाकर क्यों नहीं पढ़ता. उन्हें भी रफई फटकारते हुए कहता था, पहले खूब गुनाह करो, फिर उन गुनाहों की तलाफी के लिए जाओ, यह हम से न होगा. हमारा खुदा हमारी रूह में कायम है, जब जरूरत होगी उसे अजान दे लेंगे. सुनते हैं यही कहता-कहता वह पागल हो गया. आजकल पागलखाने में है. कुछ लोगों का मत है कि चित्रकला के क्षेत्र में उपेक्षा ने ही उसे पागल कर दिया था. रही मंजरेकर की बात——तो वह आजकल तारा मुकर्जी की शरण में है. पता चला है उसका वहां भी दम घुटता है. जौली, उसकी एक पेंटिंग 'चूहा और बिल्ली' को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला है. तुमने देखी है क्या?

——क्या बताऊं जौली? बस लाल-सुर्ख धब्बे ही धब्बे भरे पड़े हैं. लोगों की समझ में भी पेंटिंग बिल्कुल नहीं आयी है. मैंने सोचा शायद तुमने देखी हो तो तुम्हीं से उसकी व्याख्या सुन लूंगा.

किंतु तब तक मेरे भीतर बहुत-सी दीवारें गिर चुकी थीं. कुछ देर तक मौन का एक कैन्वस हमारे बीच तना रहा.

——अच्छा. . .तो चलूं. . .मैंने सुपाकर के कंधे थपथपाते हुए ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा. सांझ ढल रही थी और आकाश की चादर पर सूर्य खून के थक्के ही थक्के उगल रहा था. मेरे कदम लड़खड़ा रहे थे. इतनी अधिक संवेदनशीलता पता नहीं मेरे स्वभाव में जन्मजात थी याकि अपने उन कलाकार मित्रों के संपर्क से आयी थी. पर क्या मेरे लिए वे सिर्फ 'मित्र' ही थे? क्या खयाल है आपका?

□□□

६४/४, कुदरत निवास,
तोपखाना रोड, पटियाला १४७००१

समय की बात

• लक्ष्मण भंभाणी

एक एम. एल. ए. ने सचिवालय में चिकित्सा विभाग के उपसचिव श्री लाल के कमरे में मुलाकात के लिए अपने नाम की चिट भेजी. आधे घंटे के बाद चपरासी ने आ कर कहा कि सा'ब मीटिंग में जा रहे हैं, आज मिल नहीं पायेंगे.

कुछ दिनों के बाद ही मंत्रिमंडल में परिवर्तन हुआ. नये मुख्य मंत्री आये, जिन्होंने उस एम. एल. ए. को भी मंत्रिमंडल में सम्मिलित कर लिया और उसे चिकित्सा विभाग दिया. चिकित्सा विभाग के उपसचिव श्री लाल नये चिकित्सा मंत्री से मिलने आये. मंत्री महोदय ने चपरासी के हाथ कहलवाया कि थोड़ी-सी प्रतीक्षा कीजिए. आधा दिन निकल गया. उन्होंने फिर चपरासी द्वारा मंत्री जी को कहलवाया.

ज्यों ही मंत्रीजी ने उन्हें अपने चेंबर में बुलवाया, वह हाथ जोड़ कर बोले—मैं बहुत ही लज्जित हूं कि उस दिन. . .

मंत्री जी सिर्फ मुसकराते रहे.

निष्कर्ष : अफसरों को कभी भी किसी एम. एल. ए. को नाराज नहीं करना चाहिए. क्या पता वह कब मंत्री बन जाये. ☐

उलटी गंगा

• लक्ष्मण भंभाणी

ज्यों ही अफसर के चेंबर का दरवाजा खोलकर बाबू अंदर आया, अफसर चौंक कर खड़ा हो गया और चेहरे पर नम्रता के भाव ला कर, हाथ जोड़ कर पूछने लगा—जी. . . जी. . . हुक्म फरमाइए.

बाबू ने रोब से कहा —तूने मुझे अभी बुलवाया था?

अफसर ने हकलाते हुए कहा—जी हां. . . वास्तव में बड़े साहब मिल्क सप्लाई स्कीम वाली फाइल मांग रहे थे, इसलिए मैंने आपको कष्ट दिया.

—पर यह भी कोई मुझे बुलाने का समय है? तुम्हें मालूम है कि इस समय मैं चाय पीने जाता हूं. दिस इज माई टी-टाइम.

—सॉरी, गलती हो गयी, लेकिन बड़े साहब को फाइल तुरंत ही चाहिए, इसलिए. . .

—मैं यह कुछ भी सुनना नहीं चाहता. मैं चाय पी कर, पान खा कर और सिगरेट पी कर जब वापस आऊंगा, उस समय यदि मूड हुआ तो फाइल निकालूंगा. . . और ज्यों ही बाबू चेंबर से बाहर निकला, अफसर ने अपने ललाट का पसीना पोंछा और अपनी कुर्सी पर बैठ गया. ☐

ना

• भुवनेश दशो

तो आपने एम. ए. किया उसने कहा.

—जी, वह बोला.

—टाइप आता है?

—जी. . . नहीं.

—सॉरी, टाइप जरूरी

यह उसका पहला इंटरव्यू था

—आपको टाइप आता

उसने पूछा.

—जी. वह बोला.

—शार्टहैंड?

—जी. . नहीं.

—सॉरी, हमारे यहां

हैंड जरूरी है. यह उसका

इंटरव्यू था.

—आपको शॉर्टहैंड

है? उसने पूछा.

—जी. वह बोला.

—पहले कहीं काम

है?

—जी. . . नहीं.

—सॉरी, हमें अनुभवी

चाहिए. यह उसका

इंटरव्यू था.

इसके बाद वह अनुभव

वाली दूकान की तलाश

लग गया.

• दत्ता राने

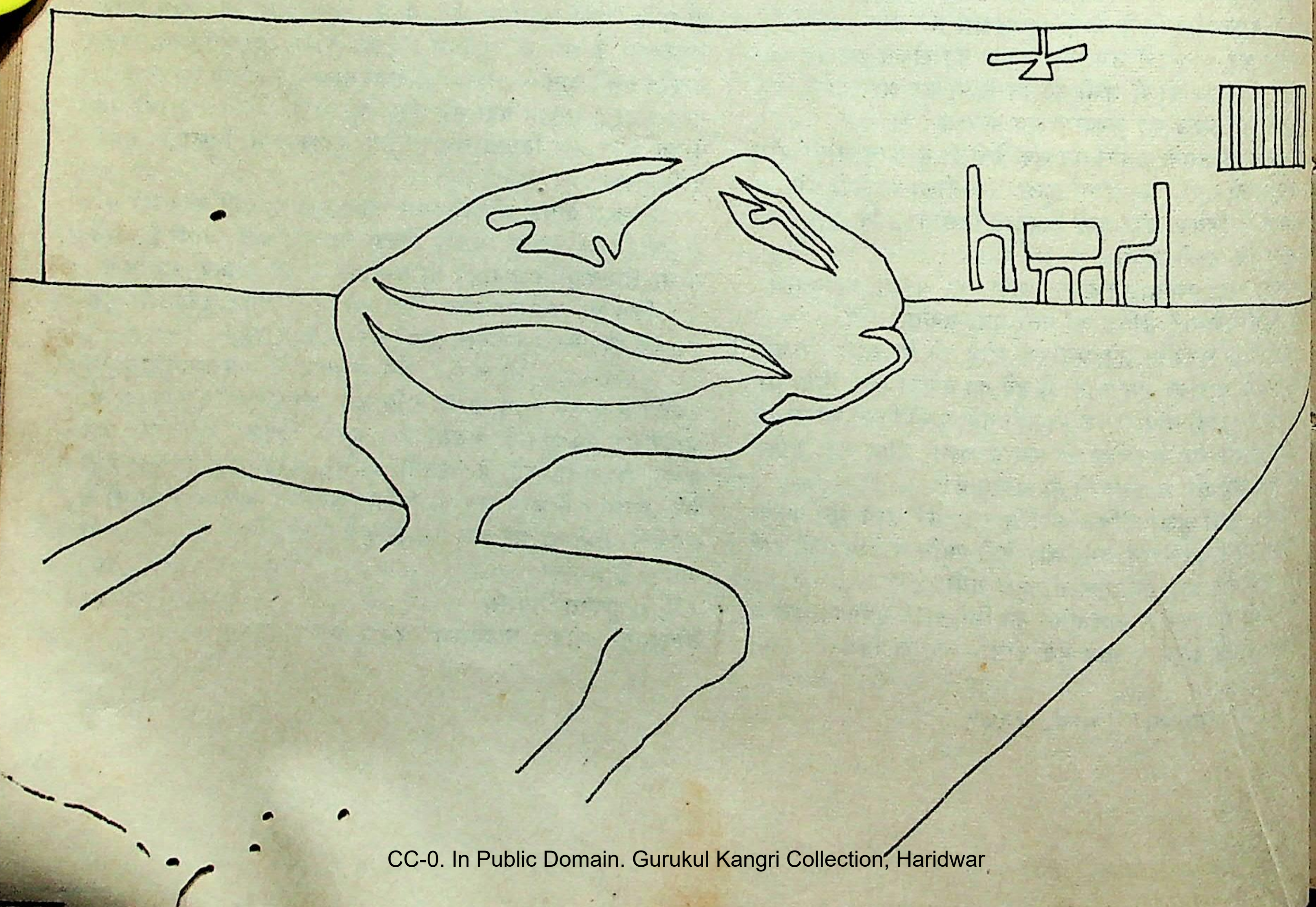

वास्तविकता

• वीणा गुप्ता

युवक दौड़ा-दौड़ा वहां पहुंचा तो एक शामियाने के नीचे कुंदाल, तसला, कस्सी आदि एक कोने में पड़े थे और पास ही चार-छह व्यक्ति खड़े कोका कोला पी रहे थे.

—यहां एक सड़क के निर्माण का काम शुरू होना है ना, साहब?

लगभग हांफते हुए युवक ने पूछा तो एक वृद्ध ने शामियाने के बाहर खुदे हुए जमीन के टुकड़े की ओर संकेत करते हुए उत्तर दिया—तुमने थोड़ा-सा अधिक सुन लिया नौजवान, यहां केवल निर्माण के पहले का कार्य, मेरा मतलब है उद्घाटन होना था. □

मूल्यांकन

• वीणा गुप्ता

नये अस्पताल के बाहर गिर गये युवक की नब्ज देखते हुए डॉक्टर ने कहा— इसे तुरंत अंदर ले चलो. यदि शीघ्र ही खून निकलना बंद नहीं हुआ, तो इसका बचना असंभव हो जायेगा.

—लेकिन अभी तो अस्पताल का उद्घाटन ही नहीं हुआ. बस मंत्रीजी की कार आती ही होगी.

—लेकिन तब तक क्या इस का कोई उपचार नहीं होगा?

डॉक्टर के प्रश्न का उत्तर देते हुए उस नेता रूपी चमचे ने कहा—परंतु उद्घाटन हुए बिना अस्पताल में किसीका उपचार कैसे. . .

और तभी डाक्टर ने युवक का हाथ छोड़ते हुए कहा—लो, अब यह आपके उद्घाटन समारोह की जंजीर से मुक्त हो गया है. □

चुनाव-यज

• कुंजबिहारी मिश्र

रामचंद्रजी अपने प्रचार विभाग में हनुमानजी के साथ बैठे थे, कि भरत जी दौड़े-दौड़े आये और हांफते हुए बोले—सुना भाई साहब! उस धोबी के बच्चे ने सीताजी पर क्या-क्या इल्जाम लगाये हैं? ओह, अब क्या होगा? चुनाव में सिर्फ दो महीने बाकी हैं और वह आपकी इमेज बिगाड़ने पर तुला है. लगता है यह सब विरोधी पार्टी वालों की करतूत है. आप आज्ञा दीजिए भाई साहब, मैं उस पर देशद्रोही होने का इल्जाम लगा कर, सीखचों के पीछे बंद करवा दूं.

—नहीं भरत, जनतंत्र में ऐसा करना ठीक नहीं. विचारमग्न रामचंद्रजी बोले—इस तरह हमारी पब्लिक इमेज एकदम बिगड़ जायेगी. फिर दूसरे ही क्षण उछलते हुए बोले — आइडिया! भरत, तुम लक्ष्मण से बोलो कि वह सीता को जंगल में छोड़ आये. और हनुमान, तुम हमारे विशेष दूत बाल्मीकि को सीता की अगवानी और उसके लिए विशेष प्रबंध करने के लिए कह आओ. और भरत, तुम यह समाचार सभी अखबारों, पत्रिकाओं में छपवा दो कि हमने एक मामूली व्यक्ति के संदेह-मात्र से कितना बड़ा बलिदान किया है! देखना, इस तरह हमारी कैसी इमेज बनती है. बेवकूफ विरोधी पार्टी वालों ने अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारी है.

इस तरह चुनाव-यज्ञ बिना सीता के ही संपन्न हुआ. और रामचंद्रजी की पार्टी को इस कदर बहुमत मिला कि एक भी विरोधी सामने नहीं टिक पाया.

मंत्रि-मंडल बनते ही, उन्होंने एक विशेष विमान भेज कर सीता को वापस बुलवा लिया.

अपाहिज

• किशोर जाधव

अभी तक शुशी आयी न थी.

दिन भर की कड़ी गर्मी के बाद ठंडी हवा चलने लगी थी. पर इसमें भी हलकी कातिलता थी. लकड़ी के सहारे वे उठ खड़े हुए और डग-मग चलते हुए शुशी के घर तक पहुंचे. धुंधले प्रकाश में रह-रहकर आसपास देखने का प्रयत्न करते रहे.

—शुशी. . . बेटा. . . शुशी. . .

क्षणभर, बंद दरवाजे के सामने वे विचार करते खड़े रहे और धीरे-धीरे थरथराते कदमों से वापस मुड़े. सुबह से शुशी दिखाई दी न थी. और स्वयं कई देर तक बाहर चुपचाप बैठे रहे थे. घर में दाखिल होते ही, उनके सामने और सामने तैरा करती धुंधलाहट एकाएक हिल उठी. दीवार पर हाथ रखते हुए, वे थम गये. 'कुछ तो बोलना चाहिये न .' वे बड़बड़ाये. आज वे कुछ भी बोल नहीं पाये थे. कुछ भी नहीं. अब, दिन भर के मौन की गहराई उन्हें लगने लगी. उसके बोझ में से छूटने का प्रयत्न करते हुए, एक दीर्घ निःश्वास निकल गया. उन्हें यही असह्य लगता था – उनकी पत्नी का कुढ़न भरा मौन. पर उसका स्वभाव ही ऐसा था. जब देखो तब, कुछ न कुछ इधर-उधर का काम करती रहती है – चुपचाप . देखकर कभी-कभी वह उत्तेजित हो उठते.तब वह उनके सामने टुकुर-टुकुर देखा करती. और . . वैसे तो उन्होंने भी समझ पकड़ी तभी से, उस मौन को पहचानते थे– नाम लिया था. और उसके कारा श्वास के साथ अपना श्वांस मिलाकर जीवित थे. पर कुछ तो बोलना ही चाहिये न! उसे कुछ तो कहना चाहिये न! रात में, शांति के क्षण में, एक बार उन्होंने पत्नी को आवाज दी. पहले तो अंधकार की सलवटों का कोमल घिस्सा सुनाई दिया. कोने में, बिस्तर पर वे बीड़ी का
मारते रहे. खयाल था कि उनके पास में आकर वह मौन-मौन
हुई थी.

—अपना हाथ ला तो!

वे आवेश में आ गये. और सामने से लंबे किये हुए हाथ
सुलगती बीड़ी चिपका दी. अंधकार में सिसकारी सरक पड़ी.
वे जोर से हंसे.

—और क्या हो सकता था तुमसे? यही ना. . .

—तो और क्या करूं. . . बोल? हं. . .उत्तेजना में वे
और एकाएक चुप हो गये. उस हाड़-हाड़ में उतर गयी भारी-भर
चुप्पी के बीच, उसके बाद घंटों तक सुनमुन बैठकर बीड़ियां
करते. इस कारण खांसी ने जोर पकड़ लिया था. उसका
आते ही वे तेजी से बाहर निकले. रास्ते पर त्वरा से दौड़े जा रहे
के चक्के चिचिया उठे. उन्हें कुछ बेचैनी हो आयी. खांसी उठती
तब चौड़े हो जाते दोनों हाथों की तनी हुई अंगुलियों को जमीन
टिका रखनी पड़ती थीं. उस समय, दुहरे हो जाते सारे शरी
भयंकर जलन हो उठती थी. गले की नसें तन आती थीं और
टूट-टूट जाता हो, ऐसा लगाता था. पर यह भी आदत हो गयी
तभी सामने से किसी के आने का अहसास हुआ. वे रुके. कुछ
बाद देखा तो, शुशी की भी काम पर से लौट रही थी.

—शुशी को देखा, आते. . . ? वे बोले.

—नहीं. क्यों, आपके यहां नहीं? कहते, उसके फुफ
पैर दरवाजे की ओर मुड़े. साड़ी तले ढके हुए पेट का आगे तनता
थोड़ा-सा दिखाई दिया. यहीं कहीं खेलती होगी. . .

सुनकर, अनमनेपन से उन्होंने कुछ कहने का प्रयत्न
आखिर, दूर की जलती बत्ती के कारण अस्थिर हो उठी शाम
परछाइयों में वे आगे बढ़े. खांसी का दौर न आए तो ठीक,
सोचा. क्या . . .? हं. . .? मजाक! पर आज फटकी ही नहीं,
ओर. . . मन ही मन फुसफुसाये. पास के छप्पर में से मजदूरों
बातचीत सुनाई दी. और पानी के हौज के सामने वे ठिठक

कोठरियां बन रही थीं. वहां शुशी कभी छिप जाती थी. तब वे यहां, आसपास चक्कर लगाते– शुशी की खिलखिलाती हंसी को पकड़ लेते. और इस तरह देर तक मनोरंजन चलता. सोचते हुए, स्फूर्ति से उन्होंने कदम उठाये. एक के बाद एक कोठरी में झुकते हुए जोर से आवाज दी––शुशी बेटा. . .शुशी! निस्तब्धता में उनको केवल लकड़ी के ठेके ही सुनाई देते रहे. एकाएक भान हो आया. लकड़ी को झेलकर, उनके साथ ही साथ कोई चलता हो, ऐसा लगा. वे घबराये. कौन है? कौन है? पीछे मुड़ कर देखा. ईंट पर पैर पड़ते ही, वे लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बच गये. तब लकड़ी को नीचे से पकड़कर, कोई जैसे उनको नीचे, अथाह गहराई में बलपूर्वक खींचता जाता हो, ऐसा लगा. और यों, वे जैसे किसी खाली बावड़ी में उतरते––खिंचते जाते थे. शु. . . शी. . . उनका फटा हुआ स्वर चारों ओर गूंजकर शून्य में डूब गया. भयविह्वल दशा में वे ठहर गये. और दूर-दूर से, बत्ती के प्रकाश में, भागदौड़ करती छोटी-छोटी आकृतियों की किलकारियां सुनाई दीं. उस दिशा को झेलकर बाहर आने के लिए प्रयत्न करते, हांफते, तेज कदमों से, मैदान के पास आये. बत्ती के खंभे को पकड़कर, उसके आसपास चकफेरी खाते हुए बच्चे, हल्ला-गुल्ला मचा रहे थे. फिर वहां से बिखरकर, यहां-वहां उछलते हुए, चारों ओर घूम रहे थे. आंदोलित हो उठी हवा में, उस ओर कई देर तक, अनिमेष दृष्टि से ताकते रहे.

—शुशी को खोजते हैं? पहले तो वे चौंके. सामने विनु खड़ा था. शुशी घर गयी, आपके वहां. कहकर, वह छलांग मारता, तैरते प्रकाश में दूर सरक गया.

उठकर वे घर की ओर मुड़े.वहां पहुंचकर देखा तो कोई न था.

—छोक. . .रे. हंसे. खीं. . .खीं. . .खीं. . .खूब हैं, छोक. . .रे.

बीड़ी सुलगाकर, दीवार के सहारे टिककर बैठ गये. जलते धुएं को, सांस के साथ घोंटकर, मुंह से शर्राटे की आवाज निकाली. और एकाएक एक तीखी चीख सुनाई पड़ी––शुशी के घर की ओर से, शुशी के माता-पिता लड़ रहे थे. और अचानक शुशी दिखाई दी. नन्हें-नन्हें कदम भरती, दोनों ओर सिर झुलाती, वहां घर के सामने आयी. क्षण भर सहमकर खड़ी रह गयी. और घबराहट में वहां से वह भाग छूटी.

––शुशी. . . वे बोले.

आते ही, उनकी गोद में वह छिप गयी.

किशोर जाधव (जन्म : १९३८) गुजराती की नयी पीढ़ी के सशक्त कथाकार हैं. दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. तीसरा प्रेस में है. १९६३ से नागालैंड के रिहाइशी और स्टेट कमिश्नर के निजी सचिव.

––कहां गयी थी, बेटा तू? उसके सिर पर हाथ फेरा.

—हम खेलते थे. . . सब.

—पर अभी तक क्या खेलते थे ?

––बताऊं. . . ? उत्सुकतापूर्वक वह उठ खड़ी हुई. बताऊं. . . . हं. . .अं. . . . याद करती हो ऐसे, निचले होंठ पर अंगुली दबा रखी. 'धूप छांव. . . और हर्षविश में नाच उठते हुए, खिलखिलाकर हंस पड़ी. कांतु है न, वह जाता था. . . भागता. . . हमारे चितकबरे कुत्ते ने उसकी कमीज पीछे से काट खाई. . . मजा आ गया. . .

—यहां तो तू सारे दिन नहीं दिखाई दी.

––आप मजाक नहीं करते जाइये. . . रूठते हुए वह बोली.

––अच्छा . . . बता देखें. . . शुशी की मां किस तरह चलती है?

शुशी ने, दोनों हाथों का पेट के आगे लंबा वर्तुलाकार बनाया और लगभग घिसटते पैरों से चलने लगी. इसके साथ ही दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े. धुंए के कारण उनकी आंखों में पानी बढ़ आया.

—नहीं. . .आप मजाक करिये. . .कहकर शुशी पीठ पीछे से उनके गले टंग गयी.

—पर भई, तू छोड़ तो सही. गले को भींचते शुशी के दोनों हाथों को अलग करने का उन्होंने यत्न किया.

—नहीं. ..नहीं. . .नहीं छोड़ने वाली. . .

उन्हें घुटन लगने लगी.आंखों के आगे अंधेरा आने लगा. पर. . . प. . .भई. . .सांस घुटती हो ऐसा लगा. प. . .र. . .छो...छटपटाहट में, शुशी के हाथ पर सुलगती बीड़ी चिपक गयी. और चीख मारती शुशी वहां से भागी. क्षण भर वे स्तब्ध वहां बैठे रहे. आखिर धीरे-धीरे शुशी के घर की ओर चल पड़े. उसकी मां आंगन में अभी भी दबी-दबी सिसकियां भरती, कराहती पड़ी थी. एकाएक मन में कुछ चिंता व्याप्त हो आयी. इस समय तो वह नींद में होगी, सोचकर तेजी से लौट गये.

घर में दाखिल होते अचकचाये. चारों ओर कोई अनजान-सी अराजकता फैल गयी हो, ऐसा लगा. और वे अंधेरे सन्नाटे में, पहली बार भयभीत हो उठे. वहां कोई न था. उनकी पत्नी न थीं. शुशी न थी. अभी शुशी होती तो ठीक रहता, उन्होंने सोचा. □□□

कमिश्नर के निजी सहायक, कोहिमा (नागालैंड)

फुटपाथ के किनारे पर बैठे सदरू को आज पहली बार एहसास होता है. . . बुजदिल, मैं बुजदिल हूं.

होः होः होः हो!

सुबह की धूप में दम मारते गंजेड़ी 'साला छक्का कहीं का' कह कर एक साथ हंस देते हैं.

गंजेड़ियों को कब्रिस्तान की दीवार का सहारा है—दीवार के पीछे सैंकड़ों कब्रें हैं. कच्ची मिट्टी की, संगमरमर की, टूटी हुई, धंसी हुई, गली हुई. . .

कब्रें दीवार को ताक रही हैं. दीवार गंजेड़ियों की पीठ को. गंजेड़ी सदरू की पीठ को. सदरू सामने के फुटपाथ को. सामने का फुटपाथ अपनी छाती पर खड़ी 'चाल' को. चाल सदरू के लटके हुए चेहरे को.

यहां सब कुछ एक-दूसरे में घुल-मिल गया है. यहां, जीने के लिए एक-दूसरे में घुल-मिल जाना जरूरी है. यहां तुम्हें अकेले मौत भी नही मिल सकती, सदरू सोचता है. मरना आसान है. आत्महत्या कर लेना कोई मुश्किल काम नहीं. पर अकेले हो तब. यहां तो पीछे कतार खड़ी है. मां, कुंवारी बहन, बीवी, नन्हें-नन्हें बच्चे, दादी. . .ये सब सदरू के साथ चल पड़े तो? वे मौतें मामूली नहीं होंगी. एक तरह से देखा जाये तो वे मौतें खास भी नहीं होंगी.

—ए सदरू!

वह पलट कर देखता है.

——यहां आके बैठ न! आज हम तेरेकू मुफत में दम मारने को देगा.

सदरू की बायीं ओर बसस्टॉप है. सदरू और बसस्टॉप के बीच घनी छाया वाला पेड़ है. मौसम सूखा है. दो कुली बसस्टॉप के शेड में चारपाई डाले बैठे हैं.

मुसाफिरों ने शेड से बाहर क्यू लगा ली है. बस आती है. रुकती है. घंटी बजती है. घरघराहट होती है. बस दौड़ जाती है. मुसाफिर घटते नहीं. मुसाफिर बढ़ते नहीं. सदरू को लगा, मुसाफिर कम जरूर होते हैं, पर घटते नहीं. उसे यह भी एहसास हुआ कि नये मुसाफिर क्यू में आ खड़े होते हैं, पर मुसाफिर बढ़ते नहीं.

सामने की चाल की बाल्कनी में खड़ी एक बेवा टूथब्रश से दांत साफ कर रही है. सदरू मन-ही-मन हंस देता है. पागल तो नहीं हो गया? सवेरे दस के बाद दांत साफ करना क्या हंसी की बात होती है? पैडर रोड और अल्टामाउंट रोड पर तो दिन के दो बजे के बाद भी [illegible] होता है.

——साली चालू है. . .पहले शब्द आते हैं. उनके पीछे तुरंत ही मुक्त हास्य का बवंडर आता है. बवंडर सदरू के खुले अंगों को छूते हुए सड़क पार कर जाता है. सदरू मुड़ कर पीछे देखता है. गंजेड़ी तीन हैं. चिलम एक. एक के बाद एक दम मारते गंजेड़ी लाजवाब जोक्स छेड़ रहे हैं. इन जोक्स का विषय है——औरत. इन जोक्स का टेस्ट है——चुलबुला. इनकी कैटेगरी है– मांसाहारी. यहां मजाक के अनेक पहलू होते हैं.

इन गंजेड़ियों ने कल ही सदरू को एक इंपोर्टेड जोक सुनाया था. पल भर को जी बहल गया था. आज सोचने पर उसे लगा. . .वह जोक, जोक न था. कुत्ते के गोश्त का सींक कबाब था.

सदरू खामोश बैठा रहता है. सोचता रहता है. . .बेकारी के ये दिन. . .गर्दिश के ये बादल न जाने कब बिखरेंगे. अचानक सदरू की आंखों के क्षेत्र में एक मदारी आता है. सामने की सड़क पर खेल शुरू करने से पहले वह अपनी दूकान सजा रहा है. टोकरी में से सांप निकलते हुए देख कर दो बच्चे पीछे हट जाते हैं. और तीन आ कर उसके साथ घुल-मिल जाते हैं. सदरू की नजर मदारी के सिर पर से उछल कर सामने की चाल पर चढ़ जाती है.

पांचवी मंजिल की मटमैली खिड़की से साड़ी झूल रही है. दूसरी मंजिल की ग्रिल वाली बाल्कनी में बैठा कोई बूढ़ा सो गया है. तीसरी मंजिल पर एक लड़की खिड़की के परदे डाल रही है.

सदरू को फिर हंसी आ जाती है. अबे, पागल तो नहीं हो गया? दोपहर के बारह बजे परदे गिराना क्या हंसने की बात होती है? पैडर रोड और अल्टामाउंट रोड पर तो अकसर दिन में ही परदे डाले जाते हैं.

सदरू की नजर पहली मंजिल की बाल्कनी पर टिक जाती है. कहां गयी? वह बेवा कहां गयी? शायद. . .दांत साफ करने के बाद नाश्ता कर रही हो तो हैरानी की कोई बात नहीं. पर. . .पर यह तो लंच का समय है! सदरू सोचने पर मजबूर होता है. लंच के वक्त नाश्ता और डिनर के समय लंच. अजीब, सचमुच अजीब! इस साले भिंडी बाजार और पैडर रोड में ज्यादा फर्क नहीं रहा. शायद बाजार और रोड में हो! आदमी और आदमी में तो कतई नहीं है.

• भगवानदास रूपानी

सड़क के उस पार

• आबिद सुरती

पेट पर हाथ फेरते सदरू मदारी के खेल में मन पिरोता है. मदारी भीड़ के दायरे के बीच कहीं [illegible] फुटपाथ तक सुनायी पड़ती है. उसकी डुगडुगी की आवाज सुनायी पड़ती है. कभी डुगडुगी वाला हाथ ऊंचा होने पर अनेक सिरों के बीच उगे हाथ का एक हिस्सा दिखायी पड़ जाता है.

सड़क पार कर सदरू दायरे में घुल-मिल जाता है.

--छोकरा, तुम्हारा भाई कितना है?

--पांच.

--छोकरा, तुम्हारा बहन कितना है?

--दस.

--छोकरा, तुम्हारा बाप कितना है?...

वही सालों पुराना जोक. फिर भी सब इसका आनंद लेते हैं. दायरा खी: खी: खी: कर हंस देता है. छोकरे का कॉमेडी चेहरा देख कर सदरू कुछ पलों के लिए अपने दुख भूल जाता है.

--बच्चा लोग! एक बार जरा जोर से ताली बजाओ. जो ताली नहीं बजायेगा, उसको उसके भगवान का कसम.

तालियों की गड़गड़ाहट.

धीरे-धीरे सड़क पार कर वह अपनी जगह आ जाता है. यही किनारा फुटपाथ का, यही छाया छटादार पेड़ की, यही गंजेड़ी, यही बसस्टाप, यही कब्रिस्तान की दीवार, यही मुर्दे. खेल खतम. पैसा हजम.

मदारी अपनी दूकान समेट कर चल देता है. खाली हुई जगह पर एक तांगा आ कर रुक जाता है. हाथ में चाबुक थामे बूढ़ा तांगेवाला नीचे कूद पड़ता है. घोड़े के आगे कुछ सूखी घास डालता है और सड़क पार कर सदरू के पीछे बैठे गंजेड़ियों में घुल-मिल जाता है.

सूरज सिर पर से गुजर रहा है. गंजेड़ी दीवार का सहारा छोड़ कर बसस्टाप के शेड में आ जाते हैं. एक चारपाई यहां पहले से ही खाली पड़ी है. कुछ मिनटों पहले यह चारपाई खाली न थी. इस पर दो कुली बैठे ख्वाब देख रहे थे. रोटी के चक्कर में वे कहीं चलते बने हैं. गंजेड़ियों ने अब चारपाई पर कब्जा कर लिया है. इनके जाने पर कोई तीसरा व्यक्ति इस पर कब्जा जमा लेगा. रात को कोई चौथा आदमी इस पर सोयेगा. कमबख्त, यह चारपाई चारपाई है या रंडी? सदरू इतना जानता है.. रंडी हलकट नहीं होती. बाकी जब साली इंटरनैशनल रांडें होती हैं.

--ए सदरू!

--परेशान मत कर, यार!

--कुछ खायेगा या यों ही भूखा बैठा रहेगा?

इस प्रश्न का उत्तर उसके पास नहीं है. उदास नजरों से वह घास खाते हुए घोड़े को देख रहा है.

--साले, अब भी नहीं समझेगा तो तबाह हो जायेगा.

गंजेड़ियों की बात सच नहीं. दूसरे ही पल सदरू को लगा... गंजेड़ियों की बात झूठ भी नहीं. तबाही की राह पर वह दूर तक निकल गया है.

बाल्कनी में अपने लंबे बाल झटकती बेवा की साड़ी पर सदरू की नजर फिर एक बार ठहरती है. वह सोच रहा है...साड़ी सिल्क की होगी! या फिर नाइलोन की! चिकनी जरूर होगी. जगमगाती है. काफी महंगी होगी.

यह साड़ी पैंडर रोड या अल्टामाउंट रोड की है. वहां से यहां तक आयी होगी. शायद यह बेवा साड़ी लेने वहां तक गयी होगी. दोनों बातें संभव है. संभव इसलिए कि पैंडर रोड तथा अल्टामाउंट रोड के पास सुलेमान का खजाना है. बेवा के पास क्लिओपेट्रा की जवानी. और जवानी खजाने का मुख फेर सकती है.

नयी-नयी शादी होने पर सदरू की बीवी ने ऐसी ही ख्वाब-सी एक साड़ी की प्यार भरी फरमाइश की थी. फिर खीझ कर. फिर गुस्से से. फिर झगड़ कर. और अंत में यह मामूली फरमाइश रोजमर्रा के झगड़ों में दफन हो गयी थी.

बालों के साथ सांवले बदन को भी झटका देती हुई बेवा अंदर चली जाती है. सदरू हथेली से हथेली मसलता है. हथेली में देखता है. रेखाओं की उलझन देखता है. सब कुछ स्पष्ट है. जीने के लिए कोई नया काम ढूंढना जरूरी है. नया काम...वह काम कुत्ते के गोश्त के सींक कबाब-सा भी हो सकता है.

इस बार उसकी नजर विधवा की बाल्कनी तक पहुंचे, इससे पहले ही कब्रिस्तान के दरवाजे तक पहुंच जाती है. किसी श्रीमंत मुसलमान का जनाजा है. काफी भीड़ है. मुर्दा, जनाजा, मुर्दे के नाते-रिश्तेदार, किराये के कंधा देने वाले, सब के अंदर चले जाने पर सदरू की लखखड़ाती नजर लौट आती है. वह हौले से खड़ा होता है. सड़क पार कर चाल के प्रवेश तक आता है. सीढ़ियों पर एक नजर फैलाता है. चढ़ जाऊं...जाऊं...जाऊं...जाऊं?

भीतर की आवाजें बढ़ती जा रही हैं. साथ ही गूंज भी तेजी से बढ़ती जाती है. सदरू दोनों हाथों के बीच अपना सिर दबा लेता है. पैर पीछे की ओर खिसकने लगते हैं. सूरज डूबने की कोशिश में लगा है. परछाइयां लंबी होती जा रही हैं.

गंजेड़ी अंगड़ाई के साथ खड़े हो गये हैं. ताश के पत्ते चारपाई पर इधर-उधर बिखरे पड़े हैं. बूढ़ा तांगे वाला पत्ते इकट्ठे कर रहा है. एक गंजेड़ी नुक्कड़ के ईरानी होटल तक चला गया है. बाकी के दो आपस में गुफ्तगू करते हुए वहीं खड़े हैं.

--मेरी बात मान ले, यार! आज मेंडी से दूआ आयेगा.

--ख्वाब देखा क्या!

--वो देख!

कब्रिस्तान की दीवार से टिका एक पागल बैठा है. उसका मुंह खुला है. यानी मेंडी और दूआ. पागल के फैले पैरों के बीच दो फुट का फासला है.

--और...अगर मेंडी से दुआ नहीं आया तो?

--मेरे मुंह में पेशाब कर देना.

अचानक सदरू के कंधे पर उस गंजेड़ी का हाथ टिकता है. सदरू सिर उठा कर उसके चहरे में देखता है.

--जिंदगी बनानी है तुझे?

सदरू एकटक देख रहा है.

--अबे जवाब तो दे!

सदरू 'हां' नहीं कहता. सदरू 'ना' नहीं कहता. बस, खड़ा हो कर सड़क पार कर जाता है.

□□□

भूलाभाई मेमोरियल इंस्टीट्यूट,
आकाशगंगा, वार्डन रोड, बंबई–३६

आबिद सुरती (जन्म : ५ मई, १९३५) गुजराती के प्रख्यात युवक कथाकार हैं और हिंदी में भी कभी-कभी लिखते हैं. हिंदी में इनकी चार किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं. इन्होंने छल-कपट और गैरइनसाफी के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई में अपनी कलम को हथियार बनाया है. लेखक के साथ-साथ यह जाने-माने चित्रकार भी हैं.

सारिका के लिए विशेष : बारह कहानियों के क्रम में

भगवतीचरण वर्मा की अंतिम कहानी

मोर्चाबंदी

यह अपने ढंग का अनोखा युद्ध है और इस युद्ध की अपने ढंग की अनोखी मोर्चाबंदी है.

युद्ध क्षेत्र है लखनऊ की छोटी-सी संजीवन कालोनी, जो प्रमुखतः छोटे-छोटे अफसरों, राजकर्मचारियों एवं व्यापारियों की बस्ती है. पढ़े-लिखे संपन्न लोग, ऊपर से आधुनिक युग के प्रगतिशील, लेकिन अंदर से बड़े धार्मिक, असीम आस्था और विश्वास रखने वाले. बुद्धिमत्ता, तिकड़म, सरलता और दांव-पेंच का विचित्र योग.

यह युद्ध कैसे ठन गया, किन लोगों में ठन गया, इसे समझने के पहले संजीवन कालोनी का इतिहास जान लेना आवश्यक होगा.

इस प्रदेश की राजधानी इलाहाबाद से हट कर लखनऊ आयी थी, घुमरा तल्लुके के ताल्लुकेदार राजा चंद्रभूषण सिंह ने गोमती के किनारे पांच एकड़ जमीन खरीद कर उसके बीचों बीच एक निहायत शानदार कोठी बनवायी थी जिसके चारों ओर फलों और फूलों के बाग और लंबे-चौड़े लॉन थे.

राजा साहेब शौकीन-मिजाज आदमी थे, उनके पास हाथी थे, घोड़े थे; फिटन थी, मोटर थी—— दर्जनों नौकर चाकर थे. इस कोठी का नाम का था घुमरा हाउस, और घुमरा हाउस के चारों ओर एक ऊंची चहार दीवार थी.

तै बात है इन लंबे खर्चों के कारण राजा चंद्रभूषण सिंह करीब-करीब दिवालिये हो गये थे. उनके मरने के बाद जब रियासत उनके पुत्र सूर्यभान सिंह को मिली, उन्होंने खर्चों में कटौती की. हाथी-घोड़े बेच कर कर्ज चुकाया गया, घुमरा हाउस के नौकर-चाकर रियासत भेज दिये गये और घुमरा हाउस में ताला लटका दिया गया. सूर्यभान सिंह संयत आदमी थे, समय की धारा वह पहचानते थे. उन्होंने अपने पुत्रों को शिक्षा दिलायी.

सन १९४८ में जमींदारी उन्मूलन एक्ट के बाद ताल्लुकेदारी समाप्त हो गयी. जमींदारी समाप्त होने के सदमे से चार-पांच वर्षों में ही सूर्यभान सिंह की मृत्यु हो गयी. उनके दो पुत्र थे, बड़े का नाम सिंहासन सिंह, छोटे का नाम संजीवन सिंह. सिंहासन सिंह ने कृषि विद्यालय का डिप्लोमा प्राप्त किया,और वह राज का उत्तराधिकारी होने के नाते अपना डेढ़ हजार एकड़ का फार्म संभालता हुआ घुमरा के महल में रहने लगा. छोटे लड़के संजीवन सिंह ने लखनऊ विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में एम. ए. पास किया, और लखनऊ के एक डिग्री कालेज में लेक्चरार हो गया.

लाल संजीवन सिंह लंबे -से रौबदार आदमी थे, शांत और गंभीर . किसी कदर कलाप्रेमी. म्यूजिक कालेज में उन्होंने कुछ दिन संगीत का अभ्यास किया, मुशायरों और कवि-सम्मेलनों में उन्हें बेहद दिलचस्पी थी. राजा सूर्यभान सिंह ने लखनऊ वाला घुमरा हाउस अपने छोटे पुत्र के नाम कर दिया था, और लाल संजीवन सिंह संतुष्ट थे. लेकिन उनके गंभीर और शांत व्यक्तित्व के भी छिपा हुआ एक अत्यंत जिद्दी और उग्र व्यक्तित्व भी था जो प्र होते ही विस्फोट का रूप धारण कर लेता था. शायद इसीलि लाल संजीवन सिंह ने अपनी शादी करने से इंकार कर दिया और राजा सूर्यभान सिंह अपने इस छोटे पुत्र से इस कदर डरते कि उन्होंने संजीवन सिंह पर विवाह करने के लिए अधिक जोर नहीं दिया. लाल संजीवन ने घुमरा हाउस को फिर से आबाद क की कोशिश की, लेकिन अकेले आदमी—— साथ में रामसिंह रा उनका खिदमतगार, उनका अंगरक्षक, उनका रसोइया— उनकी गृहस्थी का मालिक. कहावत है कि बिन घरनी घर मूत डेरा, तो एक-एक कर घुमरा हाउस के कमरे गिरते गये और ला संजीवन सिंह उसका मलबा बेचते रहे.

कामकाज ठीक तरह से चल रहा था कि एक दिन कालेज प्रिंसिपल से उनकी कुछ कहा सुनी हो गयी.कालेज के प्रिंसिपल मिस्ट जैकब तानाशाह किस्म के आदमी थे. गाली बकने और धौंस जम में माहिर. चारों ओर उनकी धाक थी. कहासुनी ने उग्र रूप धार किया और मिस्टर जैकब ने आदत के अनुसार लाल संजीवन सि को गाली दी. उसे लाल साहब के अंदर अनेक पर्तों में दबे विस्फोटक व्यक्तित्व का पता नहीं था. और तभी लाल साहब आव देखा न ताव, मिस्टर जैकब को धरपटका और उनकी इत पिटाई की कि चार दिन तक मिस्टर जैकब की मरहम पट्टी होती रही. तहलका मच गया कालेज में, और लाल साहब काले से बर्खास्त कर दिये गये.

कालेज की नौकरी छोड़ कर उन्होंने अपने बंगले में संगी विद्यालय स्थापित करने का प्रयत्न किया, लेकिन एक तो बंगल शहर से दूर फिर मिरासियों से वह आजिज आ गये, विश्वविद्याल बंद हो गया. बड़े भाई सिंहासन सिंह समय-समय पर उनकी थोड़ी बहुत आर्थिक सहायता कर देते थे, लेकिन किसी पर अवलंबित रह उन्हें अच्छा न लगता था. सहसा उनकी मुलाकात बाबू चिरंजीला बंसल से हो गयी जो ओवरसियरी के लंबे अनुभव के बाद तीन-चा साल तक पी. डब्ल्यू. डी. के असिस्टेंट इंजीनियर का पद सुशोभि करने के बाद रिटायर हो रहे थे. निहायत घिसे हुए आदमी तो उन्होंने लाल साहब को घुमरा हाउस के प्लाट बना कर बेचने की सलाह दी. उन्होंने इस योजना का ब्ल्यू-प्रिंट बना दिया चालीस प्लाट बने, हरेक प्लाट की कीमत छह हजार रुपया. दो ला चालीस हजार रुपयों में दो लाख रुपये लाल साहेब ने बैंक में ज कर दिये, चालीस हजार रुपयों में इस कालोनी के एक किनारे चा कमरों का आधुनिक ढंग का एक काटेज बनवा लिया और उ कालोनी का नाम पड़ा संजीवन कालोनी. आउट हाउसेज तुड़व दिये गये थे, पुराने नौकरों में चार वहां रह रहे थे, तो दो-दो कोठरि के चार मकान बना कर उन पुराने नौकरों को उनकी सेवाओं पुरस्कार में दिये गये. लेकिन उस समय न नौकरों के दिमाग में य बात आयी और न लाल साहब के दिमाग में यह बात आयी कि उ कोठरियों की लिखा-पढ़ी हो जाये. दान तो दान ठहरा.

संजीवन कालोनी आदर्श कालोनी थी. सभी मध्यवर्ग के आदमी, शांतिप्रिय, धार्मिक और आस्थावान. कहीं कोई टंटा-बखेड़ा नहीं. आपस में भ्रातृभाव. बाबू चिरंजीलाल बंसल उस कालोनी के मुखिया, सरपंच सभी कुछ थे. और लाल संजीवन सिंह राजा की तरह अपने बंगले में रहते थे. उनके यहां संगीत पार्टियां जमती थीं. कवि-सम्मेलन या मुशायरे होते थे और लाल संजीवन सिंह की जिंदगी मौज में बीत रही थी. संजीवन कालोनी को बने दस वर्ष से अधिक बीत गये, लेकिन किसी को लाल सिंह के चरित्र के विस्फोटक पहलू का पता नहीं चल पाया.

एक कहावत है—— ना जाने का भेस में नारायण मिल जायें. तो उस कहावत के अनुसार लाल साहब के चरित्र का विस्फोटक रूप एक अति साधारण घटना को ले कर प्रकट हुआ.

बाबू चिरंजीलाल को कालोनी वाले इंजीनियर बाबू कहते थे. बड़े रौब-दाब के आदमी, उम्र कोई पैंसठ वर्ष, लेकिन हाव-भाव में, चाल-ढाल में तथा व्यवहार में नौजवानों का उत्साह. तो उस दिन उनके पुत्र रामबिहारी की मंगनी आयी थी. दूसरे दिन सत्यनारायण की कथा हुई, और सत्यनारायण की कथा में कालोनी के निवासियों को निमंत्रण था. लाल संजीवन सिंह को बाबू चिरंजीलाल स्वयं जा कर आमंत्रित कर आये थे.

सत्यनारायण की कथा बांच रहे थे, चंद्रिकाप्रसाद अवस्थी उर्फ चंद्रिका महाराज. चंद्रिका महाराज राजा सूर्यभान सिंह के पुरोहित शिवाधार अवस्थी के पुत्र थे और लाल संजीवन सिंह ने अपने आउट हाउस में बना दो कोठरियों वाला एक हिस्सा मुफ्त दे रखा था. आजीविका के लिए चंद्रिका महाराज स्टेट बैंक में चपरासी की सीढ़ियां पार करते हुए जमादार बन गये थे. अवस्था कोई पचासी वर्ष की, बड़ी-बड़ी घनी मूछें चेहरे का रौब बढ़ा रही थीं. हेड जमादार बनने की जितनी योग्यताएं होनी चाहिए, उनमें सब थीं. कानून का अधकचरा ज्ञान, जिद पर अड़ जाना, यूनियन के बल पर अपनी मांगें मनवा लेना, जनतंत्र के इस युग में बड़े-बड़े अफसरों को चुनौती दे

मोटी और भद्दी आवाज जो लगातार गाली-गलौज करने के कारण और भी भद्दी और मोटी हो गयी थी, मिडल स्कूल तक पढ़ी हिंदी और संस्कृत का कच्चा-पक्का ज्ञान, लेकिन कथा बांचने में सिद्धहस्त थे. जैसे-तैसे उठते-बैठते, घूमते-फिरते लाल संजीवन सिंह कथा के अंत तक बैठे रहे, लेकिन कथा समाप्त होने के बाद बाबू चिरंजीलाल बंसल ने खड़े हो कर मध्यवर्गीय घरों में प्रचलित 'जय जगदीश हरे' की आरती आरंभ की. और देखा-देखी वहां उपस्थित पुरुषों, महिलाओं तथा बच्चों ने खड़े हो कर आरती के कीर्तन में योग दिया. लाल संजीवन सिंह को भी शिष्टतावश हाथ जोड़ कर खड़ा होना पड़ा.

और तभी लाल संजीवन सिंह को अनुभव हुआ कि वह किसी ऐसे माहौल में आ फंसे हों जहां हरेक व्यक्ति चीख रहा था, चाहे वह स्त्री हो, चाहे पुरुष हो. कहीं भैंस रंभा रही थी, कहीं कौवा कांव-कांव कर रहा था, कहीं गधा रेंक रहा था, कहीं बकरी मिमिया रही थी. उन्हें लगा कि उनके कान के परदे छिलने लगे हैं और जल्दी ही वे पर्दे फट भी जायेंगे. घबरा कर उन्होंने इधर-उधर देखा और फिर घूम कर वह तेजी के साथ वहां से भागे. उनका भागना किसी ने देखा, किसी ने नहीं देखा. लेकिन इस आरती-गायन में लोग इस कदर व्यस्त थे कि किसी ने उन्हें रोका नहीं.

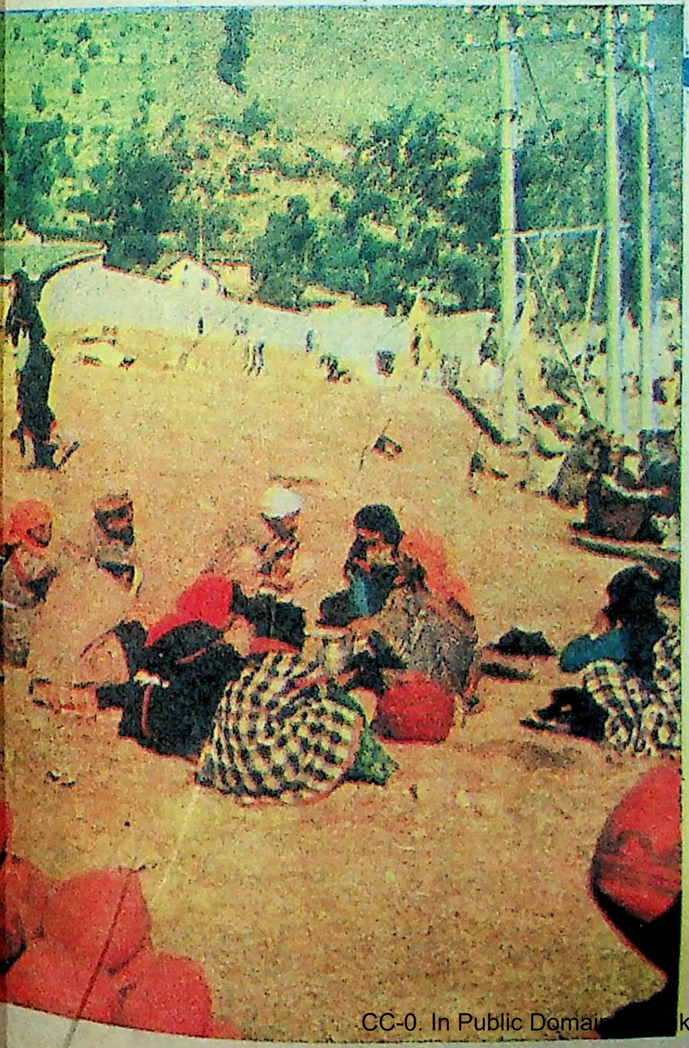

आरती वाला कीर्तन समाप्त हुआ, और प्रसाद बंटना आरंभ हुआ. अब बाबू चिरंजीलाल को यह भास हुआ कि संजीवन सिंह बिना प्रसाद लिये ही चले गये हैं. प्रसाद जैसा एक संपन्न वैश्यकुलीन इंजीनियर के घर का मंगनी के बाद वाली कथा का होना था, वैसा ही था. पंजीरी तो औपचारिक थी, उसके साथ एक पाव वाले दोने में खोए की मिठाइयां तथा कटे हुए फल थे. एक-एक कुल्हड़ बादाम, किशमिश और चिरौंजी पड़ा हुआ दही के साथ अधऔंटे दूध का चरणामृत. सब लोगों को प्रसाद बांट कर बाबू चिरंजीलाल ने चंद्रिका महाराज से कहा—— चंद्रिका महाराज, लाल साहेब तो बिना परसाद पाये चले गये.

——हां बाबू, इहां तो आखीर बखत तक रहे, बड़े ध्यान से कथा सुनिन. जब आरती गाय रहे न तबहू रहें. तौन कुछ तबियत खराब

हुई गई होई, बड़कवा मनई आयें.

——राम जाने. बाबू चिरंजीलाल बोले—— लेकिन सत्यनारायण बाबा का परसाद तो उन्हें मिलना चाहिए.

——हां बाबू! ई मांमला कौनो सकआम! हम उनका परसाद दिये आइत आब, मुला तुमहूं साथ चलो. मिजाज-पुरसी करि लेव चलिके! और चंद्रिका महाराज हंस पड़े.

एक अधसेरे दोने में प्रसाद भरवा कर बाबू चिरंजीलाल ने लिया, एक अधसेरे गिलास में चरणामृत चंद्रिका महाराज ने पकड़ा. दोनों लाल साहब के काटेज की ओर रवाना हो गये.

★ ★

लाल संजीवन सिंह बाबू चिरंजीलाल के यहां से जो भागे तो अपने ड्राइंग रूम में पहुंच कर उन्होंने दम लिया. ड्राइंग रूम का दरवाजा उन्होंने अंदर से बंद कर लिया फिर कुछ देर तक बेचैनी के साथ ड्राइंग रूममें ही चहल-कदमी करते रहे. लेकिन कीर्तन का कौवा-रोर उनके कानों में लगातार गूंज रहा था. एकाएक उन्हें एक खयाल आया. लपक कर उन्होंने अपने ग्रामोफोन के रिकार्डों का कैबिनेट खोला, और वैसे ही प्रसिद्ध ठुमरी गायिका मेहरुन्निसा का ठुमरी का रेकार्ड उनके हाथ में आ गया. तत्काल उन्होंने रिकार्ड रिकार्ड प्लेयर पर चढ़ा दिया, और सोफा पर इत्मीनान के साथ पैर फैला कर ठुमरी के संगीत में लय हो गये.

मुश्किल से दो-तीन मिनट ही बीते होंगे कि उनके काल बेल की घंटी बोल उठी. उठ कर उन्होंने दरवाजा खोला, दरवाजा खोलते ही प्रसाद हाथ में लिये हुए चिरंजीलाल और चंद्रिका महाराज ड्राइंग रूम में घुस आयें. चरणामृत का गिलास मेज पर रखते हुए उन्होंने बाबू चिरंजीलाल से कहा—— बाबू, लाल साहेब की तबीयत तो ठीकै आय. कइस भगन भाव से गाना सुन रहे आय!

बाबू चिरंजीलाल ने भी प्रसाद का दोना मेज पर रख दिया. कुछ मुसकराते हुए वह लाल साहब से बोले—— मैंने तो समझा था कि आपकी तबीयत कुछ खराब हो गयी जो आप बिना कुछ कहे एकाएक चले आये. सत्यनारायण बाबा का धन्यवाद कि आप भले-चंगे हैं.

——धन्यवाद सत्यनारायण बाबा का नहीं बल्कि मेहरुन्निसा बेगम के संगीत को है जो कानों में कुछ राहत मिली.

——जी राहत मिली. मैं आपका मतलब नहीं समझा. कौन-सी तकलीफ हो गयी थी आपको? चिरंजीलाल ने पूछा.

एकाएक लाल संजीवन सिंह अपना संयम खो बैठे, गुर्राकर बोले—— कान के परदे फटते-फटते बच गयें. निहायत भोंड़ी आवाज में और अशुद्ध भाषा में सत्यनारायण की कथा, और उसके बाद वह कीर्तन. हद हो गयी. एक से एक मोटी, भद्दी और बेसुरी आवाजों का सम्मिश्रण.

लाल साहेब अभी अपनी बात पूरी भी न कर पाये थे कि चंद्रिका महाराज ने तमक कर कहा—— भगवान के कीर्तन से कान केर परदा फाटत आय और पतुरिया के गाना पुरखन की आत्मा तार रहे हैं.

चंद्रिका महाराज का इतना कहना था कि लाल साहेब तमक कर उठ बैठे—— क्यों बे हरामजादे, गाली देता है. और इसके पहले कि लाल साहब हमला बोलें, चंद्रिकामहाराज उलटे पैर भागे. लाल साहब ने मुड़ कर चिरंजीलाल से कहा——खैरियत इसीमें है कि आप इसी समय यहां से मुंह काला करें, वरना मैं आपके हाथ-पैर तोड़ कर रख दूंगा.

चिरंजीलाल चुपचाप सर झुकायें हुए चल दिये. उनका हृदय प्रतिहिंसा से जल रहा था. इस तरह उन्हें किसीने कमरे से नहीं निकाला था. घर लौट कर उन्होंने देखा कि चंद्रिका महाराज भरे बैठे हैं; चिरंजीलाल के घर पहुंचते ही वह बोले—— बाबू तुम्हारे कारण हम खून का घूट पी के रहि गयेन नाही तो चंद्रिका महाराज के हाथन आज एक हत्या हुई गई होत. तुम्हारी पद-मर्जादा कै खयाल नाहीं कीन्हेउ!

चिरंजीलाल ने दांत किटकिटाते हुए कहा—— उस बदमा ने हम लोगों का नहीं भगवान का अपमान किया है.

——तो भगवान उसे बदला लेहिएं, ऊका नष्ट करिके देहिएं.

चिरंजीलाल धीरे-धीरे संयत हो रहे थे. कुछ सोच कर उन्होंने कहा—— भगवान खुद बदला लेने को अवतार लेंगे नहीं, दस कालकी अवतार जब होगा, तब होगा. इस लाल से तो बदला हमें लेना होगा, हमें!

चंद्रिका महाराज इस बात से उत्साहित नहीं हुए—— बा हाथ-पैर से तो हम लोग ई लाल साहब से बदला लै ना पाब लंबे-तड़गे आदमी. फिर उनके पास तमंचा है, राइफल है. औ उनकेर खिदमतगार रामसिंह. पूर भेड़िया समझौ ऊका! तौन कौ जुगत भिड़ोवै का पड़ी, तुमही सोचो.

चिरंजीलाल कुछ देर तक सोचते रहे फिर एकाएक उछ पड़े—— आ गया समझ में. बड़ा साला कलावंत बनता है. अख कीर्तन होना चाहिए चंद्रिका महाराज एक हफ्ते का. भगवान का गुणगान कराके बदला लें.

——आप कीर्तन करहियो तो लाल साहब का रूप तो आज दे देख चुके आप, जान जोखिम मां समझिए लेंय.

——अरे मैं इतना बेवकूफ नहीं हूं कि अपने घर में अखंड कीर्तन कराऊ.

——तो बाबू हमहूं ऐस गदहा न आन कि हम अपने घर मां कीर्तन बैठाई. नाहीं, यू ना चली.

——चलेगा तो कीर्तन ही. चिरंजीलाल बोले—— ध्यान से मेरी बात सुनो. वह जो लाल साहेब के काटेज के पास छोटी-सी मढ़िया पड़ी है, उसका उद्धार होना चाहिए. तो यह लो मुझ से सौ रुपया कालोनी वालों से चंदा करके हजार-डेढ़ हजार रुपया इकठ्ठा कर लो थोड़ी बहुत टीप-टाप करके नई मूर्ति की स्थापना हो और मूर्ति की स्थापना के उपलक्ष्य में अखंड कीर्तन करा डालो. लेकिन अभी नहीं, तीन-चार महीना चुप रहो वरना यह लाल कुछ बवाल पैदा कर देगा.

——वह बाबू——का बात कहेस. रूपिया आनन-फानन इकठ्ठा और अखंड कीर्तन के लिए एक-से-एक जवां मर्द आदमी बाहर से आय जइहें. मान गये न तुम्हारी बुद्धि का.

★ ★

तीन महीने बीत गये और इन तीन महीनों में यह घटना आई गयी हो गयी. कालोनी वालों के दिन हंसी-खुशी में बीत रहे थे और तीन महीने बाद एक दिन चंद्रिका महाराज हाथ जोड़ कर लाल साहेब के सन्मुख उपस्थित हुए—— लाल साहेब, अपने पिता मह की बनाई भगवान की मढ़िया टूट गयी आय तो हम सोचा कि ई केर मरम्मत हुई जाय और मूरती की स्थापनौ हुई जाय.

——हां-हां, लेकिन—— लेकिन, लाल साहेब कहते-कहते रुक गये.

——अरे खरिचा की कौनो चिंता न करें लाल साहेब, मंदिर का उद्धार कारण तो कालोनी के निवासियों का धरम समझो. तौन हम कालोनी वालों से चंदा करिलीन हव. चौदह सौ रुपया हुई गये हैं. एक मंदिर उद्धार कारण कमेटी बनाय दीन है. तौन आपसे विनय आय कि आप सौ रुपया दै के डेढ़ हजार पूरा करि देव और कमेटी के अध्यक्ष बन जायं. बाकी आपके काम करें की कोनो आवश्यकता नहीं—— हम पंच करि लेइब.

लाल साहेब ने तत्काल सौ रुपए दिये, अध्यक्ष बन गये.

मंदिर की मरम्मत में चार-पांच दिन लगे. इस बीच लखनऊ

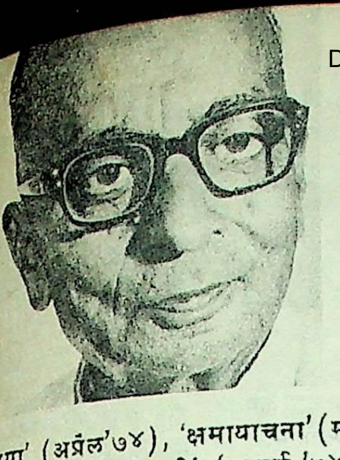

कथाओं के लेखक भगवतीचरण वर्मा अब फिर कहानी के क्षेत्र में रचनाशील हुए हैं. आज के संदर्भों में उनका व्यंग्यकार का रूप एक बार फिर आपके सामने है. वर्मा जी 'सारिका' के लिए विशेष रूप से बारह कहानियां लिख रहे हैं, उनमें से अब तक आप ग्यारह कहानियां पढ़ चुके हैं---'सौदा हाथ से निकल गया' (अप्रैल'७४), 'क्षमायाचना' (मई'७४), 'संकट' (जून '७४), 'रंगीलेलाल तीर्थयात्री' (जुलाई '७४), 'वसीयत' (अगस्त '७४), 'खानदानी हरामजादे' (सितंबर '७४), 'समझौता' (अक्तूबर '७४), 'गनेसीलाल का रामराज' (नवंबर '७४), 'दिल का दौरा' (दिसंबर '७४) 'जबरा मारे और रोने न दे' (जनवरी '७५) और 'गुन न हिरानो गुन गाहक हिरानो हैं' (फरवरी '७५).

म्यूजिम के दरबान को दस रुपया दे कर चंद्रिका महाराज वहां विष्णु भगवान की एक पत्थर की मूर्ति उठा लाये, एक कुम्हार से उन्होंने इसे इस तरह रंगाया कि कोई उसे म्यूजियम वाली मूर्ति पहचान न सके. रामनवमी के दिन ठीक बारह बजे दोपहर को जब भगवान राम का जन्म हुआ था, बद्रीनाथ ट्रस्ट एवं अन्य मंदिरों के प्रबंध वाले प्रदेश के मंत्री श्री वर्मा के करकमलों से मूर्ति की स्थापना हो गयी.

इस अवसर पर कालोनी के सब निवासी मौजूद थे. उत्सव की अध्यक्षता स्वयं लाल संजीवन सिंह ने की. बड़ा शानदार उत्सव था. लाल साहेब प्रसन्न मन वापस लौटे. भोजन करके उन्होंने अपनी दोपहर वाली नींद पूरी की. शाम के समय वह घूमने निकले. आठ बजे रात को जब वह घूम-फिर कर वापस लौटे, उन्हें लगा जैसे कालोनी में एक हंगामा-सा मचा हुआ है. लाउडस्पीकर से निहायत बेसुरी चीख और चिल्लाहट की आवाजें निकल कर कालोनी के शांत वातावरण में एक बवंडर-सा ढाये हुए हैं. यह आवाजें मंदिर से आ रही थीं. लाल साहब ने अपने खिदमतगार रामसिंह रावत को देखने भेजा कि यह हंगामा कहां और कैसे मच गया है. उसने लौट कर बतलाया--- सरकार, मंदिर में आठ-दस आदमी ढोलक और मजीरा लिये कीर्तन कर रहे हैं. चंद्रिका महाराज को तो हम पहचानते हैं. बाकी आदमी कालोनी के बाहर के हैं.

लाल साहेब करीब आधे घंटे तक प्रतीक्षा करते रहे कि कीर्तन बंद हो और उन्हें चैन मिले, लेकिन कीर्तन बंद होने के स्थान पर जोर पकड़ता जा रहा था. आखिर लाल संजीवन सिंह स्वयं उठे. उन्होंने मढ़ियानुमा मंदिर में जा कर देखा--- दस आदमी गला फाड़-फाड़ कर रामायण का पाठ कर रहे हैं. न कहीं सुर, न ताल. ढोलक कहीं जा रही है, मजीरा कहीं जा रहा है. माइक्रोफोन लगा हुआ है और लाउडस्पीकर का रुख ठीक उनके बंगले की तरफ है. लाल साहब चुपचाप विमूढ़-से कुछ समय तक यह दृश्य देखते रहे, किसीने जैसे लाल साहब को पहचाना तक नहीं. उन्होंने अंदाजा कि वहां एकत्र लोग बैंकों या सरकारी दफ्तरों के चपरासी या दरबान हैं, हट्टे-कट्टे, लंबे-तड़ंगे आदमी. हार कर लाल साहब को पूछना पड़ा--- यह क्या हंगामा मचा रखा है तुम लोगों ने?

कीर्तन चलता रहा, उत्तर चंद्रिका महाराज ने दिया---ई हंगामा दिखत है लाल साहेब! ई कीर्तन, भगवान की पूजा! भगवान की पूजा पतुरिया और भांड़न के गाना सो तो ना होत है.

बिजली की तरह तीन-चार महीने पहले वाली बात लाल संजीवन सिंह के मस्तिष्क में कौंध गयी, जब चंद्रिका महाराज के पीछे वह दौड़े थे. इस बीच कालोनी वाले कुछ लोग इकट्ठा हो गये थे. एकाएक लाल साहब गरज उठे--- बंद करो यह कीर्तन-वर्तन! नहीं तो मैं लाउडस्पीकर फेंक दूंगा. चंद्रिका महाराज के दो तगड़े शिष्यों ने आगे बढ़ कर कहा--- लाउडस्पीकर में हाथ न लगें, समुझ लेव, ई धरम का मामला आय. खून खराबा हुइ जाई.

तभी चंद्रिका महाराज ने आगे बढ़ कर कालोनी-निवासियों की भीड़ से पूछा--- आप लोगन का तो भगवान के कीर्तन मां कौनो आपत्ति न आय?

कालोनी-निवासियों की भीड़ की ओर से बाबू चिरंजीलाल ने उत्तर दिया--- भला भगवान के कीर्तन से किसी को कोई एतराज हो सकता है, महाराज? और उन्होंने संजीवन सिंह से कहा--- आपके ही मंदिर में यह कीर्तन हो रहा है, आप इस कमेटी के अध्यक्ष हैं. आपको अगर कुछ असुविधा हो तो सहन कीजिए.

लाल साहब ने स्थिति ताड़ी. उनके मुकाबिले आठ-दस आदमियों का दल. हट्टे-कट्टे और लड़ाकू, फिर कालोनी का जनमत उनके विरुद्ध. वह चुपचाप वापस लौट आये. उन्होंने कार निकाली और अपने मित्र चौधरी नईम हैदर के यहां सोने के लिए चले गये. यह चौधरी नईम हैदर भी पुराने रईस थे--- करीब आध मील की दूरी पर उनका बंगला था. लाला साहब के बचपन के साथी.

दूसरे दिन करीब ग्यारह बजे दिन में लाल साहब अपने यहां वापस लौटे. कीर्तन बदस्तूर चल रहा था. उन्होंने फिर रामसिंह रावत को पता लगाने भेजा, उसने लौट कर बताया कि चंद्रिका महाराज सो रहे हैं. रात वाले आदमी चले गये हैं, कीर्तन करने वालों का एक नया दल आ गया है. यह दल दफ्तरों और बैंकों के चौकीदारों का है जो रात की ड्यूटी करके कीर्तन करने आये हैं.

झुंझला कर लाल साहब उठे. उन्होंने जा कर चंद्रिका महाराज को जगाया. बड़े शांत भाव से उन्होंने पूछा--- चंद्रिका महाराज! कब तक यह चलता रहेगा?

उसी तरह शांत भाव से चंद्रिका महाराज बोले---राम-राम लाल साहेब! आप ई का हंगामा कहत आय? यू तो अखंड कीर्तन आय---एक हफ्ता समझौ आप, भगवान की महिमा का बखान हुई रहा है.

लाल संजीवन सिंह उबल पड़े--- कान के परदे फट जाते हैं, नींद हराम है.

---अरे लाल साहेब, हम तो बड़े सुख की नींद सोय के उठे आन. तौन धरम-करम मां मन लगाओ, हफ्ता की तो बात आय! तौन कीर्तन तो चलिहे!

---यह कीर्तन नहीं चल पायेगा. कहते हुए लाल साहब घूम पड़े. घर पहुंच कर उन्होंने थाने में फोन मिलाया. थानेदार ने धरम-करम के मामले में दस्तंदाजी करने के संबंध में अपनी विवशता बतलायी. उन्होंने सुपरिंटेंडेंट पुलिस को फोन मिलाया. वहां से भी यही उत्तर मिला कि लाउडस्पीकर लगा कर ईश्वर की उपासना या उसका गुणगान करना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है.

---जन्मसिद्ध अधिकार है, धर्म-सिद्ध अधिकार है! किटकिटाते हुए उन्होंने रिसीवर पटक दिया.

दोपहर के शोर-शराबे में घर के दरवाजे और खिड़कियां बंद कर लेने के कारण कीर्तन के स्वरों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा. लाल साहब ने बियर की दो बोतलें चढ़ायीं और भोजन करके सो

था. उन्होंने दूसरी रात भी चौधरी नईम हैदर के यहां बिताने का संकल्प किया, और तैयारी करने लगे. तब तक कालोनी के एक दर्जन आदमियों का एक शिष्टमंडल लाल साहब के यहां पहुंचा. सेल्स टेक्स इंस्पेक्टर बाबू संकटा प्रसाद, सेक्रेटेरिएट में सुपरिंटेंडेंट पंडित शिवराम पांडे, कपड़े के व्यापारी लाला गिरधारी लाल, कांग्रेस कमेटी के सचिव श्री रामाधार आदि.

लाला गिरधारी लाल ने बड़े विनम्र भाव से कहा--- लाल साहब, आपसे विनम्र निवेदन है. आपने एक दिन सत्यनारायण की कथा में चंद्रिका महाराज और बाबू चिरंजीलाल का अपमान कर दिया था. आपको याद होगा.

आंखें फाड़ कर लाल संजीवन सिंह ने उस शिष्टमंडल को देखा. फिर बोले--- मैंने अपमान कब किया था? बेसुरे चंद्रिका दीक्षित के बेसुरेपन की बात ही कही थी कि उसने गाली दी तो मुझे क्रोध आ गया था.

अब रामाधार यादव बोले--- इस अखंड कीर्तन से आप कितने परीशान हैं, यह हमको मालूम है. हमने चंद्रिका महाराज से कहा तो वह बोले कि अगर लाल साहेब धम के संबंध में अपने अपशब्दों पर खेद प्रकट करें तो कीर्तन बंद हो जाये.

लाल साहब भड़क उठे--- तो आप लोगों का मतलब है कि मैं उस हरामखोर से माफी मांगूं?

बाबू संकटाप्रसाद ने लाल साहब को शांत करने का प्रयत्न किया--- इस तरह गाली देना आपको शोभा नहीं देता. चंद्रिका महाराज ब्राह्मण हैं, स्टेट बैंक के हेड जमादार हैं.

लेकिन लाल साहब का पारा चढ़ता जा रहा था.---वह साला हमारे बाप-दादा के टुकड़ों पर पला है. मैंने उसे अपनी परजा समझ कर उसे सर्वेंट क्वार्टर में दो कोठरियां दे दी हैं, अब साले की इतनी हिम्मत हो गयी कि वह मुझसे माफी मंगवाये. उससे कह दीजिए कि कीर्तन बंद कर देने में ही उसका भला है, वरना मैं उसे उन कोठरियों से निकाल बाहर करूंगा. माफी मांगे मेरी बला, वही मुझसे माफी मांगे. मैं अपने दोस्त चौधरी नईम हैदर के यहां जा रहा हूं. वहीं वह आ जाये. और लाल साहब उठ कर चौधरी नईम हैदर के यहां रवाना हो गये.

सब लोगों ने एक-दूसरे का मुंह देखा, तभी बाबू चिरंजीलाल आ गये. उन्होंने ही यह शिष्टमंडल भिजवाया था. इस शिष्टमंडल के साथ वह चंद्रिका महाराज के यहां पहुंचे. उन्हें सब बातें बतलाई गयीं. चंद्रिका महाराज ने कड़क के साथ कहा--- देखी कौन ससूर हमें निकालत है आय के, हम आन चंद्रिका महाराज, ई लाल सें हम घुटना टिकवाय के रहिबे.

* * *

लाल साहब चंद्रिका महाराज की प्रतीक्षा करते रहे, लेकिन वह नहीं आये. सोने से पहले लाल साहब ने चौधरी नईम हैदर से पूछा--- चौधरी साहेब, क्या कव्वाली मुसलमानों का धार्मिक संगीत है?

---सौ फीसदी धार्मिक. क्यों, क्या बात है?

---सोच रहा हूं कल से एक हफ्ता के लिए अपने घर पर कव्वाली की महफिल कराऊं. कोई कव्वाल-पार्टी है आपकी नजर में? कितना खर्च लगेगा?

---अरे अर्च-खर्च की बात नहीं. वह जुम्मन कव्वाल अपने ही बावर्ची का बेटा है. पांच-छह आदमियों की पार्टी है. पचीस-तीस रुपयों पर एक रात के लिए राजी कर दूंगा.

---तो फिर कल शाम से ही वह कव्वाली का प्रोग्राम होना चाहिए.

रॉयट हो जाने का खतरा है. उन लोगों की जान की जिम्मेदारी कौन लेगा?

सीना तान कर लाल साहब ने कहा---उसकी जिम्मेदारी मुझ पर. रघुकुल रीति सदा चलि आयी, प्राण जाय पै बचन न जायी.

दूसरे दिन लाल साहब ने चंद्रिका महाराज पर बेदखली और ट्रेसपासिंग का मुकदमा दायर कर दिया.शाम के समय वह कव्वालों की पार्टी ले कर अपने घर लौटे, एक जबर्दस्त माइक्रोफोन और उसके भी जबर्दस्त लाउडस्पीकर वह साथ में लेते आये.

* *

रात आठ बजे कीर्तन की पाली बदली और उसी समय लाल साहब के बंगले में कव्वाली का कार्यक्रम शुरू हुआ.कालोनी वालों को थोड़ी देर तक तो यह पता ही नहीं चला कि यह सब क्या और कैसे हो रहा है, और फिर कीर्तन और कव्वाली में घमासान युद्ध छिड़ गया. दोनों लाउडस्पीकर पूरी ताकत के साथ खोल दिये गये. घंटे-दो घंटे तो कालोनी वाले तमाशा देखते रहे, फिर धीरे-धीरे मंदिर के आसपास लोग इकट्ठा होने लगे. करीब बारह बजे रात तक चंद्रिका महाराज ने चालीस-पचास आदमियों को इकठ्ठा किया. लाठियां लिये हुए इस भीड़ ने लाल साहब के बंगले को घेर लिया और चंद्रिका महाराज ने कड़े स्वर में आवाज लगायी --- लाल साहेब, यू मुसलमानी कव्वाली बंद करो---भगवान के कीर्तन में बाधा पड़त आय.

---यह भी खुदा की परस्तिश है! लाल साहब ने बरामदे में निकल कर कहा, और खुदा की परस्तिश मैं करवा रहा हूं. जो इसमें दखल देगा, उसे जान से हाथ धोना पड़ेगा. और लोगों ने देखा कि लाल साहब के हाथ में रिवाल्वर है और उनकी बगल में खड़े राम-सिंह रावत के हाथ में राइफल है.

चंद्रिका महाराज गरजे --- हम ई कौवालन को आगाह किये देइत हैं कि इनकी जान की खैर नहीं आय! आपन कल्याण चहत हो तो उलटे पैर अबहीं वापस जाओ, नाहीं तो दंगा हुई जाई.

लाल साहब ने भी आवाज लगायी---कौन साला दंगा करने आया है? जरा दंगा करके तो दिखाए? मैं हूं लाल संजीवन सिंह और उन्होंने अपने रिवाल्वर से हवाई फायर कर दिया.

भगदड़ मच गयी. चंद्रिका महाराज ने बाबू चिरंजीलाल से कहा---बाबू, अब कुछ करो.

बाबू चिरंजीलाल ने कांग्रेस कमेटी के सचिव रामाधार यादव से कहा---यादव जी, आन का मामला है.

* *

चिरंजीलाल के साथ रामाधार यादव थाने पहुंचे. खबर एस. एस. पी. को दी गयी. गृहमंत्री सो रहे थे. उन्हें जगाया गया. स्थिति भयानक रूप से गंभीर हो गयी थी. उसी समय पी. ए. सी. का एक सशस्त्र दस्ता संजीवन कालोनी में तैनात कर दिया गया. रात जैसे-तैसे बीती.

दूसरे दिन सुबह के साथ गृहमंत्री स्वयं संजीवन कालोनी में आये.अखंड कीर्तन और कव्वाली में घमासान मचा हुआ था. समस्त कालोनी लाल साहब के विरुद्ध हो गयी थी, क्योंकि वह विशुद्ध हिंदू कालोनी थी और वह इस हिंदू कालोनी में मुसलमानों को बुला लाये थे और सांप्रदायिक दंगा करवाने पर तुले हुए थे.

गृहमंत्री ने दोनों ओर के तर्क सुने.बहुत सोच-विचार कर उन्होंने निर्णय दिया --- कीर्तन और कव्वाली, दोनों ही भगवान के गुणगान हैं, उन पर प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता. लेकिन इस कालोनी में बाहर वाले लोगों के आने से, विशेष रूप से शुद्ध हिंदू कालोनी में

लोगों ने हर्षध्वनि की, चंद्रिका महाराज ने नारा लगाया—गृहमंत्री जिंदाबाद!

अपमानित और पराजित लाल संजीवन ने बड़ी हिकारत की नजर से गृहमंत्री को देखते हुए कहा— आपने कहा है कि कव्वाली और कीर्तन पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जायेगा, केवल व्यक्तियों पर प्रतिबंध लग सकता है.

गृहमंत्री ने उत्तर दिया — बिल्कुल यही बात कही है मैंने.

—तो फिर यह जो कालोनी के बाहर से कीर्तन करने वाले आये हैं, उनके संबंध में आपको क्या कहना है?

गृहमंत्री ने चंद्रिका महाराज को देखा और चंद्रिका महाराज ने कहा—ई हमार नाते-रिश्तेदार आय. भाई-भतीजा पर तो रोक नहीं लगा सकते हैं?

—ठीक है, लेकिन जो लोग रिश्तेदार न हों, वे भी यहां से चले जायें, गृहमंत्री ने आज्ञा दी.

* *

लाल साहब ने कव्वालों को विदा किया, चंद्रिका महाराज ने गैर-रिश्तेदारों को. कालोनी के ही चार आदमी अब कीर्तन में शामिल कालोनी के निवासियों ने संतोष की गहरी सांस ली.

लेकिन शाम के समय जब कीर्तन बाकायदा चल रहा था, लाल साहब के यहां कव्वाली का कार्यक्रम आरंभ हो गया. हुआ यह कि दिन में लाल साहब एक दर्जन ग्रामोफोन रेकार्ड खरीद लाये और उन्होंने अपने इलाके से रामसिंह के छोटे भाई श्यामसिंह रावत को बुलवा कर लगातार रिकार्ड बजाने की ड्यूटी पर लगा दिया.

लाल साहब रिवाल्वर ले कर बैठ गये, और लाउडस्पीकर तेज कर दिया गया.

* *

नोट : कल से लगातार तार आ रहे हैं कि कहानी भेजो, तो आज तक की कहानी इतनी ही है — आगे क्या होगा, कहा नहीं जा सकता. इतना तै है कि दंगा नहीं होगा — यह मोर्चाबंदी भी कुछ दिनों की है. सुलह हो ही जायेगी. लेकिन चंद्रिका महाराज पर जो मुकदमा दायर कर दिया गया है, वह बरसों चलेगा. □□□

चित्रलेखा,
महानगर, लखनऊ-६

समाचार पंजीयन (केंद्रीय) नियम १९५६ के ८ वें नियम (संशोधित) से संबंधित प्रेस और पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा १९ डी. की उपधारा (बी) के अंतर्गत अपेक्षित बंबई के 'सारिका' नामक समाचारपत्र के स्वामित्व तथा अन्य बातों का ब्यौरा :

प्रपत्र चतुर्थ (देखें नियम ८)

१–प्रकाशन का स्थान :	दि टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, दि टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई.
२–प्रकाशन की आवर्तिता :	मासिक
३–मुद्रक का नाम :	श्री श्रीकृष्ण गोविंद जोशी, स्वत्वाधिकारी, बेनेट कोलमैन एंड कं. लिमिटेड के लिए
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	ए–१/२ सुमन नगर, सायन ट्रांबे रोड, चेंबूर, बंबई ४०००७१
४–प्रकाशक का नाम :	श्री श्रीकृष्ण गोविंद जोशी, स्वत्वाधिकारी, बेनेट कोलमैन एंड कं. लिमिटेड के लिए
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	ए–१/२ सुमन नगर, सायन ट्रांबे रोड, चेंबूर, बंबई ४०००७१
५–संपादक का नाम :	श्री कमलेश्वर
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	सारिका, टाइम्स आफ इंडिया, बंबई–४००००१
	शेयरहोल्डर्स :
६–उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो २१-१-१९७५ को समाचारपत्र के स्वामी और भागीदार या कुल पेड-अप पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के शेयरहोल्डर हैं :	१. भारत निधि लिमिटेड, टाइम्स हाउस, चौथा माला, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली. २. मेसर्स साहू जैन लिमिटेड, 'टाइम्स हाउस', चौथा माला, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१. ३. अशोक विनियोग लिमिटेड, १४, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता–१. ४. अशोक होल्डिंग्स लिमिटेड, 'टाइम्स हाउस', चौथा माला, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१. ५. अर्थ उद्योग लिमिटेड, डालमियानगर, बिहार. ६. पंजाब नेशनल बैंक, विप्लवी रासबिहारी बासु रोड, कलकत्ता–१. ७. मेसर्स साहू प्रॉपरटीज लिमिटेड, १८ ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता–१. ८. श्री अशोककुमार जैन, 'टाइम्स हाउस', चौथा माला, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१. ९. श्री मनोजकुमार जैन, ११, क्लाइव रो, कलकत्ता–१. १०. श्री चुन्नीलाल जयपुरिया तथा श्री प्रभुदयाल डाबरीवाला, द्वारा साहू जैन ट्रस्ट, ७, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१. ११. श्री मौलिचंद्र शर्मा तथा श्री सीताराम सेक्सरिया, द्वारा भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५–४७ कनाट प्लेस, नयी दिल्ली–१. १२. कु. नंदिता जैन, अपने पिता तथा अभिभावक श्री अशोककुमार जैन ६, सरदार पटेल मार्ग, नयी दिल्ली के माध्यम से.

मैं, श्रीकृष्ण गोविंद जोशी, घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं.

(एस. जी. जोशी)
प्रकाशक के हस्ताक्षर

तारीख : १. ३. १९७५

कबिरा खड़ा बजार में (१३)

• हरिशंकर परसाई

इस बार कबीर की भेंट भारत सेवक समाज के नेता से

कबीर अटैची लेकर बाहर निकला तो देखा वही कनछेदी बरामदे में बैठा अंगीठी ताप रहा है.

कबीर ने पूछा––कहो कनछेदी, क्या कर रहे हो?

उसने कहा–कुछ नहीं, अंगीठी ताप रहे हैं. भीतर भूख की आग तो बाहर कोयले की आग. गनीमत है कि कोयला मिला रहा है. गेहूं तो अभी तक राशन दूकान पर आया नहीं. जहां तक चावल का सवाल है, एक डिब्बे में मुट्ठी भर नमूने के लिए रख छोड़ा है. आगे नाती-पोते पूछें कि बाबा आपके जमाने में चावल क्या होता था तो निकाल कर बता दें कि बेटा इस चीज को हम चावल कहते थे.

कबीर ने कहा––इतने निराश मत होओ कनछेदी! अच्छा समय आ गया है. अमेरिका में अपने राजदूत कौल ने दरबार में कान पकड़ कर कह दिया है––अन्नदाता, भूलचूक माफ! फिर बाबू जगजीवनराम भी गये हैं.

कनछेदी ने कहा––ठीक है.हम तो अब यह सोच रहे हैं कि जनसंघ में चले जायें. जब अटल बिहारी प्रधान मंत्री हो ही रहे हैं तो इस कनछेदी को कोई राशन दूकान दिला ही देंगे. पर तुम कहां चले?

कबीर ने कहा––भारत सेवक समाज के एक नेता से मिलने.

कनछेदी ने कहा––कैसे साधु हो? साधु-संतों, भले आदमियों को तंग करते हो. लोगों का दिमाग खराब करते हो. तुम्हें भी क्या सुकरात की तरह जहर का प्याला पीना है?

कबीर ने कहा––जहर का प्याला तो रोज पीते हैं, कनछेदी! पर मरते नहीं. अच्छा, अब चलूं.

कबीर जब भारत सेवक समाज के नेता के पास पहुंचा, तो वे चिंतित बैठ थे. सामने एक आदमी हिसाब कर रहा था–दस और दस बीस-बीस और पंद्रह पैंतीस.

मैंने कहा––भारत सेवकजी मैं कबीरदास हूं–राम की लुगाई.

वे बोले–बैठो साधु, तुम राम की लुगाई और हम भजन गाते हैं–रघुपति राघव राजाराम, सबको सन्मति दे भगवान.

कबीर ने कहा––याने भगवान, सबको सन्मति दे पर हमें मत दे?

भारत सेवक बोले–नहीं, भगवान ने हमें भी सन्मति दी कि मौका मिला है तो कुछ कर लो. तभी तो यह जांच चल रही है. हिसाब बनवा रहे हैं.

कबीर ने कहा––याने

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम !
सांचे से तो जग नहीं; झूठे मिलै न राम!

भारत सेवक बोले––बस यही मुश्किल आ पड़ी है. जग और राम दोनों को साधने के कारण यह जांच कमेटी बैठ गयी है.

कबीर ने कहा––चिंता मत करिये. राम सब ठीक कर देंगे.

भारत सेवक बोले––राम ठीक करते होते तो यह जांच क्यों होती. हमारा काम तो राम को समर्पित है. अब राम अपने ही काम की जांच करवा रहे हैं. स्वर्ग से गांधीजी भी हमारी मदद नहीं करते.

वे बहुत दुखी हो गये.

कबीर ने कहा –आप इन मामलों में इतने पुराने माहिर हैं कि सब ठीक कर लेंगे. किसी मंत्री को नहीं पटाया?

वे बोले–पटाये तो तीन मंत्री हैं.

कबीर ने कहा––बस, फिर होने दीजिए जांच. दो-तीन मंत्री मैं पटाये देता हूं.

वे खुश हुए. कहने लगे––साधु, तुक इतना कर दो तो हम संकट से उबर जायें.

मैंने कहा––मैं कर दूंगा. पर अब जरा भारत सेवक समाज पर बात हो जाय. यह भारत सेवक समाज किसलिए बना?

वे बोले ––भारत की सेवा के लिए .

कबीर ने कहा––नहीं, गांधीवाद एक मीठे फलों का झाड़ है. इस झाड़ की हर शाखा पर कई पक्षी बैठे हुए मीठे फल खा रहे हैं. एक शाखा पर आप भी बैठे हैं और मीठे फल खा रहे हैं.

भारत सेवक ने कहा––नहीं, बात यह है कि आजादी के बाद कांग्रेस के कुछ लोग तो सत्ता में चले गये-विधायक, संसद सदस्य, मंत्री वगैरह हुए. फिर भी काफी कांग्रेसी बच गये. इन्हें कहीं फिट करना था. फिट नहीं करते तो ये बेकार कांग्रेसी ऊधम मचाते. इसलिए नेहरू सरकार ने सोचा कि २०-२५ करोड़ से कुछ फर्क नहीं पड़ता. इन्हें दे-दिवा दो और काम से लगा दो.

कबीर ने पूछा–तो इन बेकार कांग्रेसियों के लिए ये सब संस्थाएं खोली गयीं ?

वे बोले–और नहीं तो क्या! बेकार कांग्रेसियों में कुछ सर्वोदय में चले गये, कुछ सर्व सेवा संघ में और काफी भारत सेवक समाज में. ग्रांट मिलती जाती थी और काम में लगे थे.

कबीर ने कहा––तो क्या बेकार कांग्रेसियों को चुप रखने के लिए भारत सेवक समाज बना?

उन्होंने जवाब दिया––हां, और हम यही सेवा करते आ रहे हैं कि चुप हैं. वरना हम बोलते. सबकी पोल खोलते. तिकड़म करते तो मंत्री हो जाते. तब हम खुद ग्रांट देते. पर आज यह हाल है, कि हमें ग्रांट के लिए मंत्रियों के दरवाजे खटखटाना पड़ता है.

कबीर ने कहा––आप तो बहुत पुराने वयोवृद्ध भारत सेवक हैं. आप क्या यह नहीं समझते कि पंडित नेहरू ने स्वतंत्रता के बाद ही यह सोचा कि हो सकता है उन्हें कांग्रेस छोड़ना पड़े इसलिए एक संस्था खड़ी कर दो जिसका नेतृत्व वे संभाल लें और कांग्रेस से बड़ी पार्टी खड़ी कर दें. गांधीजी ने कहा ही था कि आजादी के बाद कांग्रेस को खत्म कर दो. पंडित नेहरू का विराट व्यक्तित्व भारत सेवक समाज को कांग्रेस से बड़ा संगठन बना देता .

भारत सेवक बोले––हां, यह हो सकता है. पर ऐसा मौका आया ही नहीं , क्योंकि सरदार पटेल की मृत्यु हो गयी.

कबीर ने कहा –याने सरदार पटेल की मृत्यु ठीक समय पर हुई ?

उन्होंने कहा–हां, ठीक समय पर हुई.

कबीर ने कहा—और गांधीजी की मृत्यु ?

वे बोले—वह भी ठीक समय पर ही गयी. हर मृत्यु ठीक समय पर हुई.

कबीर ने पूछा—गांधीजी जीवित रहते तो क्या होता?

भारत सेवक ने कहा—मैं क्या जानूं! तुम साधु हो, गांधीजी भी साधु. तुम काइयां साधु हो. गांधीजी भी काइयां साधु थे.

कबीर ने कहा—तुम ठीक कहते हो. वे कांइया साधु थे. वाइसराय लार्ड वेवेल से उनकी तीन घंटे बात हुई. लार्ड वेवेल ने कहा—आप संक्षेप में लिख दीजिए कि आप क्या चाहते हैं. गांधीजी ने पांच वाक्य लिख दिये. वेवेल ने पढ़ा और संतुष्ट हो गया. रात को उसने फिर पढ़ा और आधी रात को अपने सेक्रेटरी को पुकार कर कहा—अरे, यह गांधी तो मुझे बेवकूफ बना गया. ये पांच वाक्य ठीक हैं, पर हर वाक्य दूसरे को काटता है. बड़े काइयां साधु थे गांधीजी.

भारत सेवक ने कहा—सही है साधु. पर वे जीवित रहते तो सरकार की फजीहत होती.

कबीर ने कहा—और वे रोते :

दुखिया सब संसार है, खावै और सोवै,
दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै!

खैर, छोड़ो गांधीजी को! यह बताओ कि भारत की क्या सेवा कर रहे हो?

भारत सेवक ने कहा—चुप हैं. यह क्या कम सेवा है? सर्वोदयी भी चुप हैं. यह भी भारत की सेवा है. फिर हम चरखा अभी भी चलाते हैं. दतौन करते हैं. 'रघुपति राघव' करते हैं.

कबीर ने कहा—पर यह जांच किसलिए हो रही है ?

उन्होंने कहा—हिसाब-किताब की जांच है. कहते हैं, हमने घपला किया, पैसा खाया .

कबीर ने पूछा—क्या ऐसा हुआ?

वे बोले—भई, बात यह है कि हम भी भारतीय हैं. हम कोई विदेशी तो हैं नहीं. आम भारतीय जैसा करेगा, वैसा ही हम करेंगे वरना हम देशद्रोही हो जायेंगे. तो हमने भी देशवासी की तरह आचरण किया. इसमें गलत क्या हुआ?

कबीर ने कहा—गलत कुछ नहीं . पर आप ऊंचे हैं. आप भारत सेवक समाज वाले हैं. आप पर ये व्यक्तिगत खाने-वाने के आरोप नहीं लगना चाहिये.

भारत सेवक ने दो टूक बात कही—साधु, हम क्या भारत के अंग नहीं हैं? यदि हमने अपनी ही सेवा की तो क्या यह भारत की सेवा नहीं हुई?

कबीर ने कहा—ठीक है. आपने अपनी सेवा करके भारत की ही सेवा की है. एक मरीज अस्पताल से मुफ्त इलाज कराके निकलने लगा, तो डाक्टरों ने कहा, कुछ दान गरीबों के लिए दे जाइये. उसने कहा कि गरीब तो मैं भी हूं, इसलिए वह दान अपने आपको दे लेता हूं. ऐसा ही आपने किया. आपने अपने को भारत मान लिया और अपनी सेवा करने लगे. यही भारत सेवा हुई और भारत सेवक समाज का काम.

तभी हिसाब करने वाला बोला—मैयाजी, तीन रसीदें नहीं मिल रही हैं.

भारत सेवक ने कहा—रसीदें नहीं मिल रही हैं? अरे तुम्हें इतने पैसे क्या इसलिए दिये जाते हैं कि तुम मुझसे कहो कि रसीदें नहीं मिल रही हैं? नहीं मिल रही हैं तो बना लो. तुम्हारे और. दूसरे कार्यकर्त्ताओं के पास अंगूठे नहीं हैं? क्या तुम लोग जाली दस्तखत नहीं बना सकते? यदि ऐसा नहीं कर सकते तो क्यों इस संस्था में हो ? क्यों इस पवित्र संगठन को बदनाम करते हो ?

उसने कहा—मैं सब ठीक कर लूंगा मैयाजी, आप चिंता न कीजिये.

भारत सेवकजी ने कहा—देखो संत कबीर, क्या दुर्भाग्य है! जिस पवित्र संस्था में सेवक के ईमान पर शक किया जाय, वह भी क्या संस्था है ! जी चाहता है कि इसे छोड़ दूं.

कबीर ने कहा—अगर पेट भर गया हो तो छोड़ दीजिये. जब आदमी का पेट भर जाता है तो वह थाली को हटा देता है.

भारत सेवक ने कहा—साधु, तुमसे क्या छिपाना! अभी एक रोटी की भूख और है. एक रोटी और खा लूं तो थाली पड़ी रहेगी और मैं कुल्ला करने चला जाऊंगा.

कबीर ने कहा—यह भी ठीक है. अधपेटे मत उठो.

भारत सेवक ने कहा—साधु एक बात कहूं—मेरे पास अभी गुंजाइश है. मैं दे सकता हूं. कुछ रुपये अपने मठ के लिए लेते जाओ. पर दो-तीन मंत्रियों को पटा देना.

कबीर ने कहा—नहीं मुझे नहीं चाहिये. कबीर को पैसे से क्या लेना देना! मंत्री मैं पटा दूंगा पर इसकी मजदूरी नहीं लूंगा.

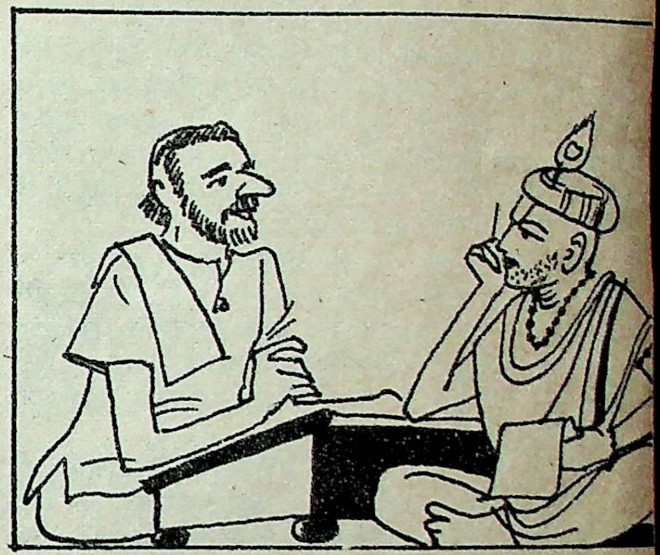

आप साफ बच जायेंगे.

भारत सेवक ने कबीर के चरण पकड़ लिये. कहने लगे—कोई मेरे लिए उपदेश?

कबीर ने कहा—क्या उपदेश दूं? तू बाम्हन, मैं काशी का जुलाहा! फिर भी सुनो—

झूठ बराबर तप नहीं, सांच बराबर पाप,
जाके हिरदय झूठ है, ताके हिरदय आप।

* *

कबीर लौटा. वही कनछेदी मिल गया . पूछा—कहो कबीर क्या हाल हैं भारत सेवक के?

कबीर ने कहा—हिसाब की जांच होनेवाली है. दस और दस बीस-बीस बीस बीस— और पंद्रह पैंतालीस!

कनछेदी ने कहा—अरे बाप रे बीस और पंद्रह पैंतालीस? □□□

इतने वर्षों बाद फिर एक दिन दमयंती से मुलाकात हो जाएगी इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी. और वह भी इतनी दूर बड़ौदा में, राह चलते नहीं, किसी पार्क में या सिनेमा के वेटिंग हाल में नहीं, खंडेराव मार्केट में सब्जियों की दूकान पर.

देख कर ठगा-सा रह गया था. देर तक करीब-करीब गूंगा. दमयंती ने मुझे देखा था और एकदम बच्चों-सी किलक पड़ी थी. सब्जियों के बास्केट को जमीन पर पटक कर एकदम दोनों हाथों की मुट्ठियों में मेरी दोनों बांहें मींचते हुए उसने कहा था—जाना मत. दो मिनट रुको. थोडी-सी और सब्जियां ले लूं. उफ, क्या महंगाई है!

कह कर वह अपने खास अंदाज में खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. यों ही . आदतन. बेमानी. और एकदम से सब्जियों का बास्केट उठाकर सब्जियों की दूकानों की तरफ दौड़ गयी थी. जाते-जाते तनिक-सा मुड़कर पूछा था—तुम्हारे लिए हरी मटर ले लूं? या. . .

आगे की बात उसने बीच में ही छोड़ दी थी और खिलखिला कर हंस पड़ी थी. मैं वैसे ही गूंगा बस मुस्करा कर रह गया था. उसके व्यवहार में उस झगड़े का कोई ट्रेस नहीं था, जिसकी वजह हम एक दूसरे से जुदा हो गए थे. और तो और, पंद्रह साल के बाद भी उसे मेरी आदतें याद थीं. मटर के दिनों में बिस्तर पर पड़े-पड़े छीमियां छुड़ाकर दाना चबाते रहना मुझे बड़ा अच्छा लगता है.

सब्जियों के मोल-तोल में दमयंती जिस तरह व्यस्त हो गयी थी, उससे जाहिर था, दुनिया के तौर-तरीके काफी बदल गए थे. मैंने अपने कानों सुना था, वह भाव में पांच पैसे छुड़वाने के लिए सब्जीवाले से कह रही थी – दो रुपये का पेट्रोल जलाकर यहां आकर सब्जियां खरीदने से तब मुझे क्या फायदा होगा? इस भाव में तो ठेलेवाला मैयाजी दरवाजे पर दे जाता है.

तीन रुपए की जगह दो रुपए पंचानबे पैसे की हरी मटर. दो रुपए का पेट्रोल. यानी दमयंती बेहद सयानी हो गयी थी. और दुनियादार. सब्जीवाले को पैसे देकर उसने ब्लाउज के अंदर हाथ डाल कर एक नन्हीं-सी डायरी निकाली थी और दो मिनट वहीं खड़े-खड़े जाने क्या नोट किया था. शायद सब्जियों का हिसाब. वह कितनी गिहथिन हो गयी थी!

मैंने उसे बहुत गौर से देखने की कोशिश की थी. दिन कब का ढल चुका था, लेकिन आकाश में अब भी बड़ी चमक थी. एक बड़ी खुशरंग चमक, मुलायम–मुलायम-सी, आंखों पर रेशम की तरह फिसलती हुई. ऐसी शाम अपनी तरफ नहीं होती. अपनी तरफ मद्धिम और उदास कर देती है. यहां की तरह झलकाती नहीं.

वह डायरी में जाने क्या नोट कर रही थी और रह-रह कर मेरी ओर देखकर मुस्करा रही थी. और मैं पिछले पंद्रह सालों के संभावित परिवर्तननों को उसमें चीन्हने की कोशिश कर रहा था. ललाट पर सिंदूर की एक बड़ी-सी बिंदी के सिवा नक्शा हू-ब-हू वही था. वही कसा-कसा-सा छरहरा बदन. बड़ी रुच्रि से कपड़ों में जरूरत भर ढंका हुआ. यानी वह पंद्रह साल के बाद भी उम्र की उसी सीढ़ी पर थी, जिस पर एक दिन हमारी मुलाकात हो गयी थी.

शायद मैं दमयंती को आंखों से और उधार कर देखने की कोशिश करता, मगर अब उसका वक्त नहीं था. उसने अपनी वह नन्ही-सी डायरी ब्लाउज में पहले की जगह डाल ली थी और हाथों में सब्जियों से भरा बास्केट उठाकर मेरी तरफ तेज कदमों से चल चुकी थी. मैंने यों ही अनुमानने की कोशिश की थी कि उसे मुझ तक पहुंचने में कितने सेकेन्ड्स लगेंगे, मगर इतना अवसर ही नहीं मिला था. उसने मेरे पास पहुंचकर एकदम से कहना शुरू कर दिया था—उफ, क्या महंगाई आ गयी है! दस रुपए की सब्जियां लीं और बास्केट भी नहीं भरा. तुम्हारे लिए गोभी का मुसल्लम बनाना चाहती थी,

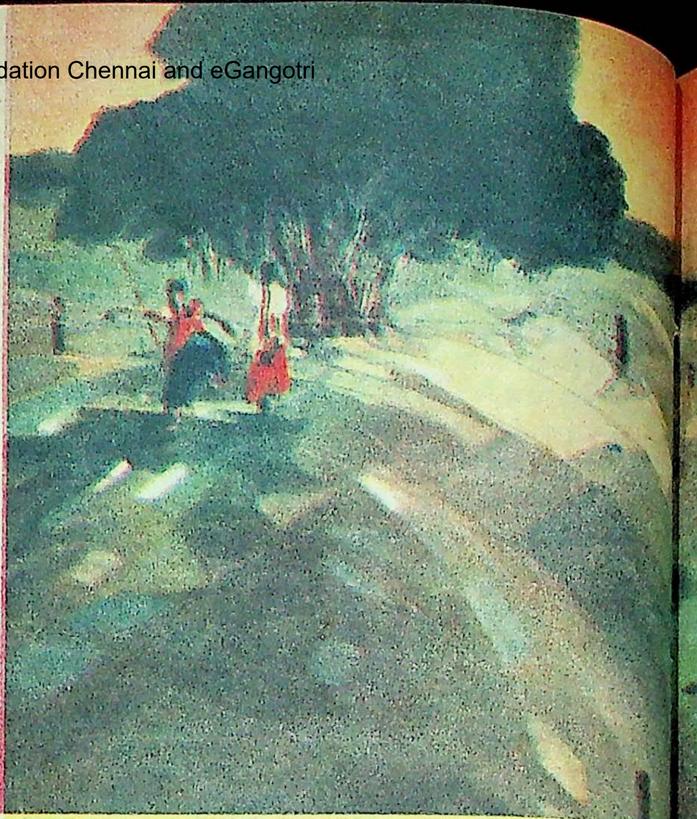

अग्निरेखा

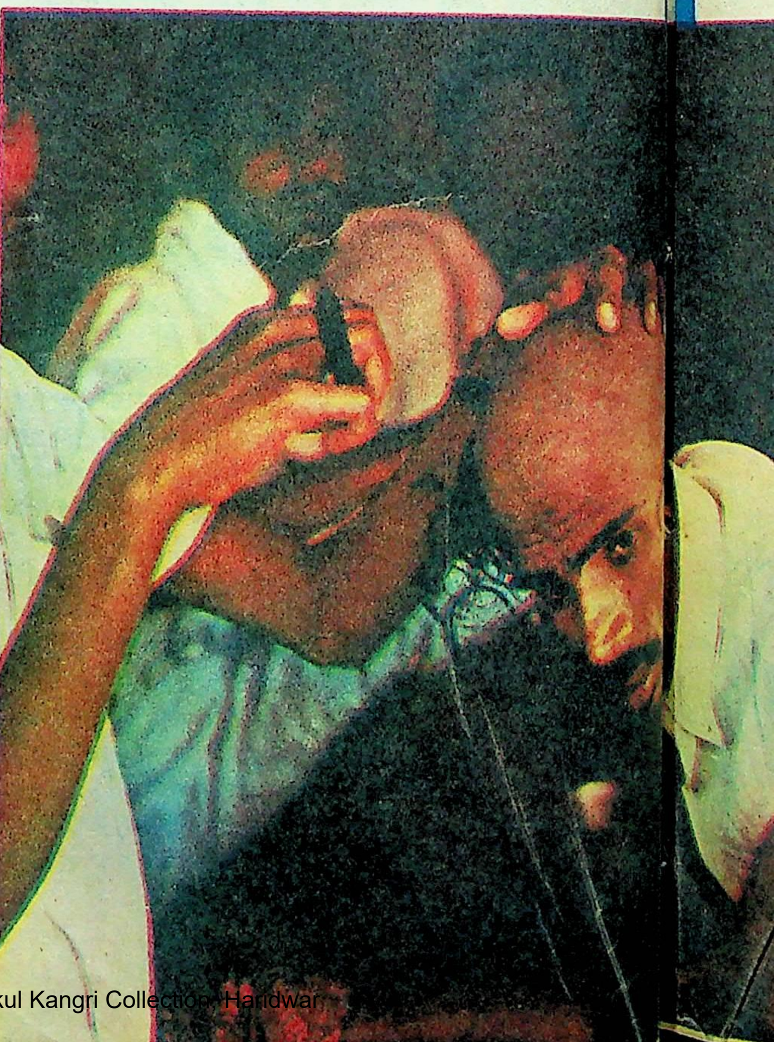

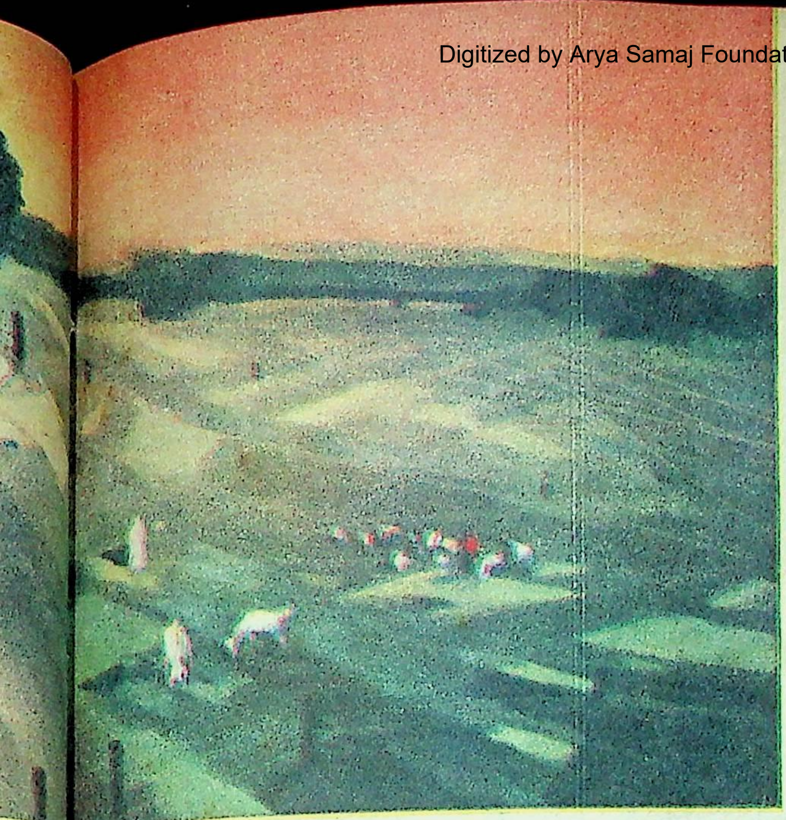

•राजेंद्र किशोर

मगर क्या खाक खाऊंगी! हर चीज में जैसे आग लग गयी है. कि महंगी है गोमी! चार रुपए की किलो. यानी मुसल्लम बनाने लाय एक गोभी. और तेल. बाप रे बाप! यहां तो मूंगफली का तेल चलता है खुले बाजार में सात रुपए का पांच सौ ग्राम. यानी गोभी का मुसल्लम बनाया और सात-आठ रुपए फुंक गए. कोई क्या खाएगा गोभी का मुसल्लम? क्यों?

इतनी बातें दमयंती एक सांस में कह गयी थी. दूसरी गंभीरता के साथ और चेहरे से उस समझ की परेशानी जाहिर करते हुए. और मैं उसके बारे में पहले से भी ज्यादा कंफ्यूज्ड हो गया था. ऊपर से उसका नक्शा जरा भी नहीं बदला था. उसकी अदाएं भी वही थीं. मगर फिर भी वह कुछ अजीब-सी, अनमनी लग रही थी. मैं उसकी तमाम बातों के जवाब में सिर्फ मुस्करा सकता था, क्योंकि सब्जियों और तेल के भाव से परेशान दमयंती से कितना कुछ और क्या कहना चाहिए, मैं इसका निर्णय नहीं कर पा रहा था. मैं पहले की तरह उससे कहना चाहता था, दमयंती, मेरे पास आओ. बहुत देर के बाद मिली हो. पहले मैं तुम्हें सूघूंगा, फिर तुमसे बातें करूंगा. मगर यह कहने का साहस मैं बटोर नहीं पा रहा था. इसलिए नहीं कि पंद्रह साल पहले हम झगड़ कर जुदा हो गए थे. वह रेखा मैं निःसंकोच और निर्भय लांघ सकता था. साहस के अभाव की वजह दूसरी थी और वह वजह ही मेरी समझ में नहीं आ रही थी.

यह अच्छा हुआ था कि उसने ही मुझे इस सांसत से उबार लिया था. मेरे चेहरे पर फैली हुई अजनबी जिज्ञासा को देखकर वह खुद ही अपनी बातों के बेतुकेपन पर खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. आदतन. बोली थी—मैं भी कैसी वह हूं.

इससे मुझे कुछ कहने को एक मौका मिल गया था. बहुत दिनों के बाद उसकी परिचित देह-गंध का मन-ही-मन स्वाद लेते हुए मैंने पूछा था— कैसी वह हो?

फिर वही खिलखिलाहट आदतन. वही लहजा, वही अदा. वही मुहावरा. उसने कहा था– अरे, बड़ी वह हूं. इतने दिनों के बाद तुम मिले हो और मैं तुमसे महंगाई डिस्कस करने बैठ गयी हूं. मगर मैं भी क्या करूं? ससुरी हमारी चेतना में समा गयी है. यहां मैं कोई मौज करने तो आयी नहीं हूं, कमाने आयी हूं और इस महंगाई की वजह पता ही नहीं चलता कि मैं कमा रही हूं. पैसे को मैं दांत से पकड़ने लगी हूं, मगर

मैंने गौर किया था, कहते-कहते फिर उसके चेहरे पर परेशानी उभरने लगी थी और बायीं भौंह के ऊपर कुछ वैसी ही सिकुड़न पैदा हो गयी थी,जैसी अक्सर गुस्से की हालत में पैदा हो जाया करती थी. वह बड़ी खतरनाक सिकुड़न हुआ करती थी. जब वह पैदा हो जाया करती थी, उसके भीतर का रस बदल जाता था. कई दिनों तक वह बोलती थी मगर इस तरह जैसे उसके अंदर से कोई दूसरा बोल रहा हो और उसका उससे कोई रिश्ता न हो. यहां तक कि उसकी देह-गंध बदल जाती थी. लगता था, कोई मुर्दा महक रहा है.

पंद्रह साल पहले उस सिकुड़न को देखकर जिस तरह मैं डर जाया करता था, मुझमें कुछ उसी तरह का डर समा गया था. इसीलिए बात पलटने की गरज से हल्के हंसते हुए कहा था—देखता हूं, तुम बहुत समझदार हो गयी हो.

दरअस्ल मैं उससे कहना चाहता था, तुम बहुत सयानी हो गयी हो. मगर कहते वक्त खुद-ब-खुद मुंह से सयानी की जगह समझदार शब्द निकल गया था. शायद यह उस अलार्म का असर था, जो उस सिकुड़न को देखकर पैदा से हो जाया करता था और इस वक्त भी अनायास ही मेरे मन में पैदा हो गया था. सयानी —इस शब्द से उसे किस कदर नफरत थी!

मैंने पहला परिवर्तन नोट किया था. वह सिकुड़न तुरंत गायब हो गयी थी और उसने फिर आदतन खिलखिलाकर हंसते हुए

था—– खाक समझदार हो गयी हूं! तुम इतने दिनों के बाद मिले हो और मैं अपना पचड़ा ले बैठी हूं. [illegible] कंपनी के काम से आए हो? कहां ठहरे हो?

—होटल में.

—क्यों?

उसने एकदम गुस्से से भर कर पूछा था और फिर तुरंत अपने गुस्से के बेतुकेपन पर इतने जोर से हंस पड़ी थी कि आसपास सब्जियां खरीदते लोग भौंचक होकर हमारी तरफ देखने लगे थे. तनिक दम लेकर उसने कहा था —– जाने आज मुझे क्या हो गया है! जरूर यह तुम्हारा असर है. बेतुकी बातें करनी लगी हूं, बेवजह गुस्साने लगी हूं. तुम क्या जानो कि मैं यहीं हूं!

मैं कहना चाहता था, यह जानता होता भी कि तुम यहीं हो, तो भी क्या फर्क पड़ता? मगर मैं यह नहीं कह सका था. वह बहुत खुश और खुली-खुली नजर आ रही थी और मैं कहीं की मिट्टी कुरेद कर उसे मूंद देना नहीं चाहता था. मगर इसके सिवा और क्या कहा जा सकता था?

मैंने कुछ कहने से कतराने के लिए अपनी नजर उसके चेहरे पर से उतार ली थी और सब्जियों की दूकानों की तरफ देखने लगा था, जिधर शाम की चमक बहुत कम हो गयी थी. मुझे उसकी तरफ फिर उसके एक छोटे-से शब्द ने मुखातिब किया था, उसने सब्जियों की बास्केट जमीन पर से ले ली थी और बोली थी—चलो.

मगर उसकी तरफ मुखातिब होने की वजह यह नहीं थी कि उसके 'चलो' में वह स्पष्ट निमंत्रण नहीं था जिसकी कहीं मुझमें बड़ी गोपन वासना उत्पन्न हो गयी थी. मैं तो चौंक कर उसकी तरफ मुखातिब हुआ था, क्योंकि उसकी आवाज में अचानक एक नयापन पैदा हो गया था. मैंने उसके चेहरे से यह जानने की कोशिश की थी कि उस आवाज में परेशानी, ऊब और झुंझलाहट में किसका अनुपात अधिक था. पर उसका चेहरा एकदम सपाट था और उसकी आंखें बाहर से खुली होकर भी अंदर से एकदम मुंदी हुई थीं.

मैंने सिर्फ यह नोट किया कि यह जो दमयंती मेरे सामने खड़ी थी, उसका वर्तमान से कोई रिश्ता नहीं था. वह कोशिश करके बार-बार वर्तमान में लौटती तो थी, मगर टिकती नहीं थी.

पता नहीं, क्या वजह थी, मगर इस अनुभव से एक अजीब-सा अनबूझ डर मुझमें पैदा हो गया था और सिर्फ उस डर के संदर्भ से निकलने के लिए मैंने उसका वह हाथ पकड़ लिया था, जो खाली था, और उसके साथ-साथ मार्केट से बाहर आ गया था. उसका स्कूटर मार्केट के फाटक पर खड़ा था. वह मुझे उसके पास लिये चली गयी थी और उसने स्कूटर के सामने की खाली जगह में सब्जियों की बास्केट रख दी थी और मैंने उसका हाथ छोड़ दिया था और वह जल्दी-जल्दी स्कूटर को स्टैंड पर से उतारने लगी थी.

मुझे जाने कैसा लगा था. लगा था, किसी वीराने में अकेला खड़ा हूं. शायद इसीलिए बहुत घबरा कर मैंने पूछा था—तुम्हें बहुत जल्दी है क्या ?

वह वर्तमान में नहीं थी.उसकी आवाज कुछ इतनी दूर से आती लगी थी. बोली थी—तुम इस तरह यहां मिल जाओगे, इसका गुमान भी नहीं था. तुम मिल गये तो कुछ ऐसा उछाह आ गया कि समय के कांटे पर से ध्यान उतर गया. इतनी देर मुझे किसी दिन नहीं होती. आती हूं और फुर्र से लौट जाती हूं. दूध का डीपो बंद हो गया तो भारी मुश्किल हो जाएगी. तुम्हें चाय कैसे पिलाऊंगी? बाजार में पानीवाला दूध ढाई रुपए लिटर है. स्वाद तो जाएगा ही, पेट्रोल ऊपर से फुंकेगा.

जितना मैं दमयंती को जानता हूं, उसके आधार पर मैं सहज ही कह सकता हूं कि स्वार्थ उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है. पर स्वार्थ के साथ जुड़ी यह समझदारी एकदम नयी चीज थी. उसकी तुच्छता और उसके काइयांपन से मैं अच्छी तरह परिचित था और हमारे झगड़े और बिलगाव के मूल में उसका यही स्वभाव था. पर यह तो सर्वथा अजाना था. उसके स्वार्थ में एक विचित्र-सी तर्कसंगति आ गयी थी.

मन में किसी किस्म की कोई कचोट उठने की कोई वजह नहीं थी. पंद्रह साल पहले उससे चाहे मेरा जो रिश्ता रहा हो, आज उस रिश्ते की कोई संभावना नहीं थी. हमने जुदा होने के पहले एक दूसरे के बीच नफरत की ऐसी दीवार खड़ी कर दी थी जिसके आर-पार उचक कर झांकना भी मुमकिन नहीं था. मगर फिर भी मुझे अपने भीतर एक अनबूझ व्याकुलता अंकुराती-सी लग रही थी और इस अहसास से रह-रह कर मन डरा जा रहा था कि मन के किसी गोपन रहस्यलोक में दमयंती की वासना, उसकी मांग अब भी बनी थी.

इसीलिए मेरे मन में हुआ था कि मुझे वहां से तुरंत कट जाना जाना चाहिए. मुझे उसमें किस्म-किस्म की नवीनता नजर आने लगी थी और यह बेहद खतरनाक बात थी. शायद मन उससे जुड़ने के बहाने ढूंढ़ रहा था.

इसीलिए मैंने झट से कह दिया था—– तुम्हें बहुत जल्दी है, तुम जाओ.

कहकर मैं खुद ही ठगा-सा रह गया था. जल्दीवाली बात मैंने उसे चोट पहुंचाने के लिए कही थी, क्योंकि खुद को उससे तोड़ने का कोई-न-कोई बहाना तो चाहिए ही था. पर मेरी बात सुनकर वह एकदम से खिलखिलाकर हंस पड़ी थी और कुछ देर तक मेरी तरफ चुहलभरी आंखों से देखते हुए ही रह गयी थी. बोली थी—कभी-कभी मैं सोचती थी, तुम बहुत बदल गये होगे. न, पंद्रह साल बाद भी तुम तो वही हो. उतने ही ईर्ष्यालु.

वह स्कूटर में चाबी लगा चुकी थी. कसकर उसने चाबी निकाल ली थी और फिर जोर लगाकर स्कूटर को खींच कर स्टैंड पर खड़ा कर दिया था. मेरी तरफ मुड़ कर उसने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये थे और बड़ी आत्मीयता से अपने खास लहजे में कहा था—ए, खट्टी ही रहेगी? मिट्ठी नहीं करोगे?

कहा था और एकदम से मेरे बाएं गाल में जोर से चिकोटी काट ली थी. मैं अपना गाल सहलाने में व्यस्त हो गया था और वह फिर खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. बोली थी—क्या नखरे करते हो? देख लो, अब मेरे हाथ में नाखून नहीं हैं.

उसने दोनों हाथ के पंजे मेरी आंखों के सामने फैला दिये थे. बेशक, अंगुलियों में वे नाखून नहीं थे, जिनकी वजह मैं उसे शेरनी कहा करता था या जिनसे वह कभी-कभी गुस्से में मेरे चेहरे को बुरी तरह खंरोच दिया करती थी.

पता नहीं क्यों, मुझे उसका उस तरह नाखून दिखाना बड़ा अच्छा लगा था. शायद वह मेरी किसी गोपन वासना या आकांक्षा के बहुत अनुकूल था. मैंने सहज होते हुए कहा था— अच्छा किया, तुमने अपने वे नाखून काट दिये . मैं अब धमकियों से आगे भी जाने लगा हूं. हाथ पकड़ कर दांतों से तमाम नाखून कुतर दे सकता हूं.

—अच्छा? दमयंती ने अपने होंठ मेरी कनपट्टी से छुआते हुए कहा, देखूंगी.

कहकर उसने बड़ी रहस्यभरी आंखों से मुझे देखा था. एकदम वैसे ही अपनी बड़ी-बड़ी बोझिल पलकें ऊपर ही ऊपर फुरफुराते हुए अपनी सहज, निर्द्वंद्व, विमुक्त, ऐच्छिक आत्मीयता से फिर मेरे हाथ पकड़ लिये थे और कुछ दूर पर लगी लकड़ी की बेंच की तरफ मुझे लिये चली गयी थी. खुद बैठ कर हाथ के शरारती झटके से खींचकर मुझे अपने पास बिठा लिया था.

कुछ देर हम दोनों चुपचाप बैठे रहे थे और उस अंधेरे को देखते रहे थे जो आकाश से बड़ी तेजी से उतर रहा था. बीच-बीच में

जरूरी कहना हो, पर कुछ कहते नहीं बन पड़ता था. शायद हमारा कथ्य स्वयं हमारे भीतर के अंधेरे में कहीं खो गया था.

थोड़ी देर बाद मैंने अपनी पीठ पर सांप की तरह रेंगते उसके हाथ का अनुभव किया था. वह हाथ रेंगते हुए मुझे घेर कर मेरी पसलियों के नीचे पहुंच गया था और तब अचानक मुझे अपनी पसलियों के नीचे उसकी दो-तीन अंगुलियों की बड़ी तेज चुभन का अनुभव हुआ था.

मैं कुछ वैसे ही चौंक पड़ा था जैसे पंद्रह साल पहले प्रायः गहरी नींद में उसकी अंगुलियों की खुलन से मैं चौंक कर जग जाया करता था और वह उसी तरह मेरी तरफ देखकर मुस्कराए जा रही थी.

ठीक उसी तरह मेरी झुंझलाहट का स्वाद लेते हुए उसने बड़े ही शरारती अंदाज में पूछा— ऐ, मुझसे बहुत गुस्सा हो?

मेरे कानों को वह आवाज बड़ी अच्छी लगी थी. मगर मैंने कोई जवाब नहीं दिया था. उसने उसी शरारती अंदाज में फिर पूछा था—यहां कब तक रहोगे?

—कल तक, मैंने कहा था.

—फुर्सत है? उसने पूछा था.

—क्यों? मैंने अंधेरे में उसकी तरफ देखते हुए बड़े गंभीर और निरासक्त स्वर में जिज्ञासा की थी.

उसने या तो जिज्ञासा के संकेत पर ध्यान नहीं दिया था या जानबूझ कर उस संकेत को कतरा गयी थी. मुझे उम्मीद थी, मेरा सवाल सुनकर अपने स्वभाव के अनुसार वह बेहद गुस्से में आ जाएगी. वह अपनी नजर में वह शाश्वत नारीत्व थी जिसकी वासना से पुरुष कभी मुक्त नहीं हो सकता. अपने इस आकर्षण को छीजा देखकर वह बौरा जाती थी और कई बार उसने अपने बड़े-बड़े नाखूनों से मेरा मुंह बुरी तरह खरोंच दिया था. मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ था. मेरी जिज्ञासा पर वह खिलखिला कर हंस पड़ी थी और मेरी पसलियों के नीचे दोबारा अपनी अंगुलियां कोंचते हुए उसने कहा — देखती हूं, तुम्हारी अक्कल सठिया गयी है. यहां आए हो. मैं यहीं हूं. और मेरे यहां आए बगैर चले जाओगे.

बात इतनी सहज आत्मीयता और अधिकार के साथ कही गयी थी कि मुझे कोई विरोध रचने का अवकाश ही नहीं मिल सका था. कहकर दमयंती एकदम से उठ कर खड़ी हो गयी थी. बोली थी—चलो, तुम्हें तुम्हारे होटल में छोड़ती चली जाऊंगी. और देर हो जाएगी तो खाना भी न बना सकूंगी और होटल में पांच-सात रुपए फुंक जाएंगे. मगर कल सुबह तुम्हें मेरे यहां आ जाना है. मैं सात बजे एक जगह ट्यूशन करने जाती हूं. लौटते में तुम्हें लेती आऊंगी. इससे पेट्रोल की बचत होगी. ठीक?

उसने झुक कर मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये थे और झटके से मुझे खींच कर खड़ा कर दिया था. मैं सही-सही नहीं बता सकता कि वजह क्या थी, मगर भीतर एक बड़ी गहरी उदासी उग कर मुझ पर छा गयी थी. मैंने भीतर-ही-भीतर अपने मन को टटोलने की कोशिश की थी. क्या समस्त तटस्थता के बावजूद मुझे आज रात के निमंत्रण की प्रतीक्षा थी? मुझे वहां कोई उत्तर नहीं मिला था. उसने स्कूटर चालू करके मुझे पीछे बैठ जाने का इशारा किया था. मैं बैठ गया था. सड़क पर आ कर उसने मुझसे मेरे होटल का नाम पूछा था, मैंने बता दिया था. मेरे होटल के सामने मेरे उतर जाने पर उसने एक गहरी सांस लेकर कहा था— नौ बज गये. ट्यूशन के लिए दो लड़कियां आकर लौट गयी होंगी. चालीस रुपये का घच्चा बैठ गया. और मैंने सुन लिया था. जाने के पहले जितनी खोयी-खोयी-सी आवाज में उसने मुझसे पूछा था— कल सुबह का तय है न? उतनी ही खोयी-खोयी और बेलौस आवाज में मैंने कह दिया था— हूं.

नहीं बदले थे और बिस्तर पर आ गिरा था. मुझे अपने बदन अजीब-सी हरारत का अनुभव हो रहा था. सारा बदन अंदर अंदर कांपता, झुनझुनाता मालूम हो रहा था. चेहरे में त्वचा भीतर एक विचित्र-सी दहकती दपदपाहट-सी लग रही थी जैसे सहसा रक्तचाप बढ़ गया हो. आंखों पर बिजली की रोशनी कड़कती हुई-सी मालूम हो रही थी. उससे बचने के लिए मैंने अपनी आंखें मूंद ली थीं.

बदन में सहसा एक बड़ी तेज सनसनाहट दौड़ गयी थी. एकदम व्याकुल होकर मैं एक ही झटके में उठ कर बैठ गया था. पेरी खाना के एक-एक अणु में मोगरे के फूल फूट गये थे और मेरी सांसें उनकी गंध से इतनी बोझिल हो गयी थीं कि उठाये नहीं उठती थीं. मैं बार-बार अपनी जुड़ी फली हथेलियों को सूंघ रहा था और याद करने की कोशिश कर रहा था कि ये हथेलियां कब और कहां दमयंती के कंधों से छू गयी थीं, मगर कुछ भी याद नहीं आ रहा था.. बस, क्षण-क्षण भीतर उदासी घनी और जमा होती जा रही थी.

* *

सुबह जब दमयंती ने आकर दरवाजे को नॉक किया था, मैं सोया था. वैसे ही शाम के कपड़ों में. पांव पलंग के नीचे लटके हुए थ और बदन बिस्तर पर एक किनारे लुढ़क गया था. पता नहीं, कब ऐसा हो गया था, क्योंकि मुझे अच्छी तरह याद है, मैंने सुबह को खिड़कियों से झांकते हुए देखा था.

दरवाजा खोलते हुए मुझे सहसा हंसी आ गयी थी. दमयंती को अपने विगत अनुभव को प्रमाणित सिद्ध करने का पंद्रह साल बाद फिर एक मौका मिल गया था. जैसे मैं दरवाजा खोलने के पहले ही यह दावे के साथ कह सकता था कि अब मेरी सांसों में कौन-सी गंध भर जाएगी, वैसे ही मैं यह भी कह सकता था कि दरवाजा खुलते ही वह कहेगी, अरे, तुम भैंस ही रहोगे, आदमी नहीं बनोगे.

मैंने दरवाजा खोल दिया था और दमयंती के उस अनुमानित वाक्य पर ठहाके लगाने को तैयार हो कर मैं एकदम तन कर उसके सामने खड़ा हो गया था. दमयंती ने मुझे देखा था और वही वाक्य कहा था. मेरी सांसों में वही अनुमानित गंध भर गयी थी. मगर ठहाका अंतड़ियों के नीचे जरा-सा सुगबुगा कर यकायक मुर्दा हो गया था. दमयंती के चेहरे पर न वह झुंझलाहट थी, न वह गुस्सा था. वह मुझे देखकर मुस्करायी थी और उस मुस्कराहट में जितनी ऊब थी, उतनी ही विरक्ति, जितना संकोच था, उतना ही पश्चाताप.

वह कमरे के अंदर आ गयी थी, मगर मेरे पांव जैसे वहीं थिरा गए थे. मैं चुपचाप कमरे में उसकी गतिविधि को देखता रह गया था. उसने कमरे में चारों ओर नजर दौड़ा कर मेरे सामान का अनुमान किया था और मैंने साफ देखा था, सामान के नाम पर सिर्फ मेरे पास चमड़े के एक छोटे-से सूटकेस को देखकर उसके चेहरे पर एक निश्चितता का भाव झलक आया था. मेरी तरफ देखकर उसने कंठ-ही-कंठ में हंसते हुए कहा था—बौड़मराम, तुम जल्दी से होटल का हिसाब साफ कर आओ. मैं तुम्हारा सामान पैक करती हूं. सवा आठ होने को है और नौ बजे एक लड़की से वक्त तय है. मैं पंद्रह मिनट के अंदर घर पहुंच जाना चाहती हूं.

मैं पूछना चाहता था, तुम्हें आज छुट्टी नहीं है. मुझे ले जा कर क्या करोगी? मगर यह सवाल होंठों तक आकर रुक गया था. एक तो इस सवाल में जो मांग छिपी हुई थी, मैं उसे जाहिर नहीं करना चाहता था, दूसरे मुझे एक क्रिया में उकसा कर वह स्वयं में व्यस्त हो रही थी. मैं कुछ देर तक चुपचाप उसे सूटकेस में सामान सहेजते देखता रहा था, फिर दबे पांव कमरे से निकल कर सीढ़ियां उतर गया था. शायद वह नीचे बिल तैयार करने को कह आयी थी और इसलिए मुझे वापस आने में पांच मिनट का वक्त भी नहीं लगा

ते ही उसने एक बार चौकन्नी आंखों से आजू-बाजू देखा था और हसा मेरे गले में अपनी बांहें डालकर मुझे कमरे के अंदर खींच लया था और फिर सहसा मुझे छोड़ते हुए बोली थी—— न, अभी नहीं. ोड़े की तरह महक रहे हो.

कहकर उसने मुझे बड़ी शरारती आंखों से देखा था और मुझसे छिटक कर खिलखिला कर हंस पड़ी थी. मैं एक विचित्र-सी प्रसन्नत ं सने अचरज में डूब गया था. न, इस दमयंती के बारे में अब कोई नुमान नहीं टिकता.

जब मैं दमयंती के घर पहुंचा था, नौ बजने में पचीस मिनट ाकी थे. रास्ते में पिछली बातें उरेह-उरेह कर हम इतना हंसे े कि उस हंसी में हमारा सारा संगठित निजत्व बह गया था. वह ्क हाथ में मेरा सूटकेस उठाये और दूसरे से मेरा हाथ पकड़े हुए ुझे खींचते हुए सीधे अपने बेड़-रूम में लिये चली गयी थी. कोने ें पड़ी तिपाई पर मेरा सूटकेस पटक कर मुझे दोनों हाथों से बल- र्वक बिस्तर पर रोपते हुए बड़े प्रसन्न स्वर में बोली थी—— मैं चाय ाती हूं. इतने में तुम गुस्लखाने हो लो. तुम जितनी देर मुझको ासिल हो, उसका एक पल भी मैं गंवाना नहीं चाहती.

मुझसे कुछ कहते नहीं बन पड़ा था. जब वह चली गयी थी ैं कुछ देर तक यों ही बैठे-बैठे उस कमरे का मुआयना करता रहा था. कमरे की सजावट में उसका सिद्धांत साफ झलक रहा था. वह कहा करती थी, कला की दो ही विशेषताएं होती हैं—— सादगी और ताजगी. हर चीज इस तरह अपनी जगह करीने से रखी हुई थी कि लगती थी कि कोई कमरे को अभी-अभी सहेज गया है.

मैं दमयंती की कलात्मक सूझबूझ का कायल रहा हूं. कमरे की साज-सजावट, पहने-ओढ़ने के अंदाज में हमेशा एक सुखद संगठन और अनुरंजक नवीनता उसमें मुझे दीखी है. कभी-कभी तो ताजगी और नवीनता के प्रति उसका यह मोह मुझमें बड़ी झुंझलाहट ला देता था. शाम को लौटकर कमरे की ताजा व्यवस्था में मुझे जरूरत की हर चीज नये सिरे से ढूंढनी पड़ जाती थी. वह ताजगी उसके स्वभाव की मांग थी. एक ऐसी वहशी मांग, जो उसे मुझसे भी काट कर ले गयी थी और इसका उसे कतई अफसोस नहीं था. मगर ताजगी की उस चाह में नवीनता का चाहे जितना आयोजन-संगठन हो, उसमें वह स्थिर कसाव नहीं था, वह स्थिर रूपात्मकता नहीं थी जिसका अनुभव इस वक्त मुझे कमरे में हो रहा था.

एक अस्पष्ट-सी बेचैनी की हालत में मैं उठा खड़ा हुआ था. जाने कैसी एक आशंका मुझमें समा गयी थी और मैं मैं अनायास ही सामने के दरवाजे से भीतर के बरामदे पर निकल गया था. मुझे दमयंती को ढूंढ़ने या पुकारने की जरूरत नहीं हुई थी. वह मुझे दरवाजे के करीब ही आती हुई मिल गयी थी– ट्रे में चाय की प्यालियां लिये हुए.

मुझे देखकर होठों को एक किनारे पर बटोर कर मुस्कराते हुए बोली थी—— हाय, तुम्हारा कुकुरपन अभी तक नहीं गया! मुझे सूंघते फिर रहे हो. और ट्रे लिए हुए कमरे के अंदर चली गयी थी.

उसके उस कथन की भंगिमा में कुछ ऐसा प्राचीन और मौलिक था कि सहसा मुझे मेरा तात्कालिक संदर्भ विस्मृत हो गया था. दरअसल एक कुत्ते की तरह मैं उसकी गंध के सहारे बेडरूम के बाजूवाले कमरे में जा पहुंचा था.

वह शायद उसका सिटिंग रूम था या साधना-कक्ष या ट्यूशन-रूम. एक किनारे एक फूलदार कालीन पर तबलों के जोड़े के पास घुंघरुओं की भारी-भरकम पट्टी पड़ी थी और दूसरे किनारे पर दीवार से लगा सोफासेट पड़ा था. वह तिपाई पर चाय की ट्रे रखकर सोफे पर मेरा इंतजार कर रही थी. मेरे बैठते ही उसने हाथ का

किसी भी वक्त टपक सकते हैं. तब मजबूरन कटेंसी में मुझे दोबारा [illegible] इन दिनों गैस कितनी मुश्किल से मिलती है. और चीनी तीन रुपये पचास पैसे की पांच सौ.

कहते-कहते अपना प्याला लिये वह उठ खड़ी हुई थी. मैं अभी उसके कथन के दो संकेतों के बीच कहीं स्थिर होने की कोशिश कर ही रहा था कि वह फिर वैसी ही चिंतित आवाज में बोल उठी थी——चिमनभाई किसी भी वक्त टपक सकते हैं. नौ बजा ही चाहता है. वह लड़की भी आती होगी. तुम वक्त जाया मत करना. जितनी देर मैं ट्यूशन करूंगी, उतनी देर में तुम नहा-धो लेना. तुमसे कितनी बातें करनी हैं और तुम कितनी कम देर के लिए मुझे हासिल हुए हो.

आखिरी वाक्य बोलते-बोलते उसकी बड़ी-बड़ी अधमुंदी-सी चिंतित आंखें सहसा दरवाजे से लौट कर मेरी आंखों में खुल गयी थीं. बोध के अनिश्चय और अभिव्यक्त न होने की कोशिश के बावजूद शायद उसे मेरे अंदर कसती हुई ग्रंथियां दीख गयी थीं, क्योंकि उसकी आंखों में अचानक वही बड़ी तेज वहशी चमक पैदा हो गयी थी, जिसकी आंच मेरी हर कोशिश के बावजूद आज तक मेरे लहू में मद्धिम न हो सकी थी.

मैंने अपनी आंखें झुका ली थीं. मुझे अपने अनुभव से सब मालूम था और मुझे कुछ देखने की जरूरत नहीं थी. मैंने जल्दी से प्याले को होंठों से लगा लिया था और एक ही सांस में सारी चाय सुरक गया था. पंद्रह साल में वह चमक देखकर मैं बौरा जाया करता था. तंतु-तंतु में असंख्य अनियंत्रित ज्वार फूट पड़ते थे. पर आज लहू में उस चमक की आंच के मौजूद रहने के बावजूद मन में जाने कैसा एक जड़ अनिश्चय समा गया था. मैं उसकी आंखों की वह चमक अंकोरने के लिए अपनी पलकें तोलना चाहता था, मगर आशंकाओं के बोझ से पलकें तोले नहीं तुलती थीं.

वह ट्रे उठा कर चली गयी थी. ट्रे उठाते हुए उसकी निकटता को मैंने अपने रोओं पर जाना था. पर मुझसे न उधर देखते बन पड़ा था, न उससे कुछ कहने को मैं कोई शब्द उचार सका था. कोई एक परदा था जो मुझ पर गिर गया था. मैं उसे उठाना तो चाहता था, मगर उसके अंदर सुरक्षा की चेतना से भीतर-ही-भीतर अभिभूत भी था.

बेड-रूम से उसने मुझे पुकारा था. और उठ कर इस तरह उस पुकार पर दौड़ गया था, जैसे जन्म-जन्मांतर से मैं उसी पुकार के इंतजार में बैठा था. वह परदे की आड़ में दरवाजे के पाट से लग कर खड़ी थी. अंदर प्रवेश करते ही उसने अचानक मुझे अपनी बांहों में खींचकर कस लिया था और पंजों पर उचक कर मुझे बेहताशा चूमना शुरू कर दिया था.

प्रतिवाद असंभव था, विरोध की चेष्टा अर्थहीन . ज्वार के लौटने पर मुझे छोड़कर हल्के हांफते हुए उसने बड़े प्यार से कहा था——बौड़म! और मुझे उसी तरह कमरे में छोड़कर चली गयी थी.

★ ★

मैं कुछ देर वैसे ही खड़ा इस घटना को मन में कहीं खोजने की कोशिश करता रहा था, फिर सूटकेस से कपड़े निकाल कर संलग्न गुसलखाने में घुस गया था. जब मैं गुसलखाने से निकला था, बाजू के कमरे में घुंघरुओं की झनक शुरू हो गयी थी. मेरा जी हुआ था कि जाकर बैठ जाऊं, लेकिन दमयंती की सुविधा-असुविधा की चिंता से मैंने यह इरादा छोड़ दिया था. वह पलंग के पास ही एक नन्ही-सी मेज पर नाश्ते की तश्तरी रख गयी थी—— टोस्ट और उबले हुए अंडे. पर इसको देखकर मात्र भावनात्मक सुख हुआ था, खाने की कोई इच्छा नहीं हुई थी.

राजेंद्र किशोर (जन्म : ७ अगस्त, १९३२) की कहानियां आदमी और आदमी के बीच के रिश्तों को बड़े सूक्ष्म स्तर पर उकेरती हैं. ये कहानियां जहां पाठक को संवेदनात्मक स्तर पर उद्वेलित करती हैं, वहीं उसे जिंदगी की बेहतर पहचान भी करवा जाती हैं.

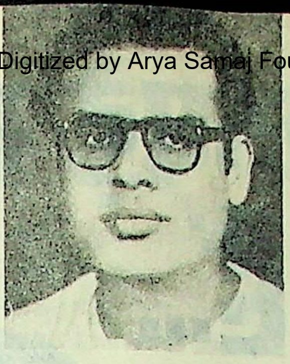

ठंडी, तेज फुहारों से जी भर नहाने से शरीर के साथ-साथ मन बहुत हल्का हो गया था. मैं बिस्तर पर लेट गया था और मैंने अपनी आंखें बंद कर ली थीं.

कब पिछली रात का जागरण मुझमें सक्रिय हुआ था और कब मुझे नींद आ गयी थी, पता नहीं. मुझे दमयंती ने ही जगाया था—- उठो, नाश्ता नहीं करोगे?

पुरानी आदत के अनुसार मैंने आंख खोले बिना ही उसे पकड़कर बिस्तर पर खींच लेने के इरादे से अपना हाथ बढ़ा दिया था, मगर मेरा हाथ हवा में तिरकर खाली लौट आया था. आंख खोलकर मैंने देखा था, वह मेरे पायताने बैठी थी. उसकी गोद में प्लास्टिक के एक झोले में ऊन के कई गोले पड़े थे. उसकी नजर हालांकि मुझ पर टिकी थी, उसके हाथ बुनाई की सलाइयों पर बड़ी तेजी से दौड़ रहे थे.

यह उसकी प्रकृति और सिद्धांत के खिलाफ था. इसीलिए उठकर बैठते हुए मैंने सहज कुतूहल के भाव से पूछा था—- क्या बुन रही हो?

—-कार्डिगन.

—-अभी से?

—-अरे ना. उसने बित्ते से बुने हुए अंश की लंबाई नापते हुए बड़े आत्मीय एवं सहज स्वर में इस तरह कहा था, जैसे हमारे और उसके बीच सूचनाओं का तार कभी टूटा ही न हो—-तुम जानते हो, अपने कपड़े बुन-सी कर पहनना मुझसे कभी नहीं हुआ. यह तो जया के लिए बना रही हूं. लगभग चौदह की हो रही है. आज इसको पार्सल कर देना बहुत जरूरी है. स्कूल से लड़कियां कश्मीर जा रही हैं न.

जया? कौन जया? यह नाम तो कभी सुना नहीं. मैं पूछना चाहता था—-जया से तुम्हारा क्या रिश्ता है? पर इसका अवसर ही नहीं मिला था. वह यकायक गोद से बुनाई का सामान बटोर कर झोले में रखते हुए उठ खड़ी हुई थी. बोली थी—-तुम बैठो, मैं जरा किचेन में झांक लूं. गैस का बड़ा खयाल रखना पड़ता है. और एकदम झटकती हुई कमरे से बाहर निकल गयी थी.

मैं चुपचाप वैसे ही बैठा कुछ देर तक जया के संबंध में तरह-तरह के अनुमान करता रहा था. मन इस जया के उल्लेख से कहीं पीड़ित हो गया था और मैं जानना चाहता था कि उस पीड़ा का वास्तविक आधार क्या है? मगर मेरी जिज्ञासाएं मेटने को दमयंती को फुर्सत कहां थी?

आधे घंटे के बाद उसने यह पूछते हुए कमरे में प्रवेश किया था —- तुम्हें कूकर की चने की दाल पसंद है न ? और आकर फिर बिस्तर पर बैठते हुए बुनाई का काम शुरू कर दिया था. बोली थी—- बस उधर दाल तैयार होगी, इधर यह बांह तैयार हो जाएगी. चावल पार्सल तैयार करने में कितनी देर लगेगी? बस, फुर्सत. फिर इत [illegible] जाकर जी. पी. ओ. से पार्सल कर आएंगे

मुझे जाने क्यों यह सब अच्छा नहीं लग रहा था और रह-रहकर संयमित करने पर भी मुझे अपनी व्यर्थता का अनुभव हो आता था और मुझे अपने आत्मदाह को छिपाने के लिए मन को अनावश्यक कल्पनाओं में उलझा देना पड़ता था. मैं यह कतई नहीं चाहता था कि दमयंती को किसी भी रूप में मेरी असुविधा का अनुमान हो जाए. फिर भी, मेरे मुंह से निकल गया था —- दमयंती, तुम इतनी ही व्यस्त रहती हो?

मेरी बात सुनकर वह खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. बुनाई को गोद से बिस्तर पर डालते हुए घुटनों पर उठ बैठी थी और उलझ कर मेरे गले में अपनी बांहें डालकर खींच कर मेरे सिर को जोर से अपनी छातियों के बीच भींच लिया था. हंसी से उसके वक्ष में उठते हुए आंदोलनों को अपने चेहरे पर झेलते हुए मैंने सुना था, उसने अपने खास उकसानेवाले अंदाज में फुसफुसाहट की-सी आवाज में कहा था —- व्यस्त तो रहती हूं, मगर आज तुम्हें तरसा रही हूं.

पहले मैंने उस गिरफ्त से छूटने की कोशिश की थी, फिर अभिभूत हो गया था. उसे मेरी दुर्बलताएं किस कदर याद थीं! अब उसकी बांहें ढीली पड़ी थीं और आहिस्ता-आहिस्ता मुझसे अलग होकर वह फिर अपनी जगह पर बैठ गयी थी. मैंने अपनी फूलती हुई सांसों को काबू में करने की कोशिश करते हुए उसकी तरफ देखा था. उसका चेहरा रक्त के चाप से लाल भभूका हो आया था और बुनने की कोशिश करती हुई उसकी अंगुलियां सलाइयों पर बुरी तरह कांप रही थीं. मैंने चाहा कि उसे अपनी देह में समेट कर इस ज्वार को वहां पहुंचा दूं, जहां से यह आता है. कुछ इसी इरादे से उठकर मैं उसके पास गया भी था मगर मन के जाने किस निर्देश से उसे छुए बगैर चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया था.

बाहर बरामदे पर मैंने कूकर से निकलती सीटी की आवाज सुनी थी. दो-एक मिनट बाद दमयंती ने अपनी ठनकती आवाज में मुझे पुकार कर कहा था —- बाहर अकेले क्या कर रहे हो? मगर उस पुकार पर दौड़ जाने की अपनी मांग के बावजूद मैं देर तक बरामदे पर चहलकदमी करता रह गया था. कभी-कभी जैसे अधिक प्रकाश के लिए उकसाए जाने की प्रक्रिया में तेल में डूब कर बाती बुझ जाती है, मेरा मन भी दमयंती के प्रति तीव्र आसक्ति एवं मोह में समाकर कुंठित हो गया था.

दमयंती ने ही बाहर आकर मुझे घेरा था. मैं बरामदे पर एक किनारे खड़ा सूनी आंखों सामने सड़क पर लोगों को आते-जाते देख रहा था. उसकी निकटता का अनुभव कर मैंने घूम कर उसकी तरफ देखा था. मुझे मुखातिब हुआ देखकर उसने बड़े सहज भाव से कहा था —- बौड़मराम, बारह बजने को है और तुम यहां निश्चित खड़े हो. मेरा खाना भी बन चुका और कार्डिगन भी तैयार हो गया. तुम्हें दोबारा नहाना हो तो नहा लो. खा-पी कर जरा आराम करेंगे फिर जी. पी. ओ जाएंगे. ठीक चार बजे बस मिलती है. पेट्रोल की बचत हो जाएगी. कहकर उसने वैसे ही सहज भाव से फिर मेरी आंखों में देखा था और कार्डिगन को दोनों हाथों से पकड़ कर अपने वक्ष पर फैलाते हुए पूछा था—-अच्छा, बोलो तो, यह जया पर कैसा दीखेगा?

सफेद और काली चौड़ी पट्टियों के बीच में नन्हें-नन्हें एक दूसरे पर औंधे चटक लाल त्रिकोण. उस रचना से प्रभावित होकर मैंने हंसते हुए कहा था —- मैंने जया को देखा तो नहीं है, मगर कार्डिगन बेशक खूबसूरत है. मगर शायद मेरी वह हंसी झूठी थी या मेरे चेहरे पर कोई भीतरी दंश मेरे अनजाने ही प्रकट हो गया था. उसने कार्डिगन समेट कर कंधे पर डाल लिया था और आकर बिल्कुल

सुपर सर्फ़ से कपड़े सबसे सफ़ेद धुलते हैं...

सबसे सफ़ेद!

SUPER
Surf
washes whitest of all
Net weight 150 gm

सुपर सर्फ़ में आलीशान सफ़ाई की शक्ति है. यह छिपी मैल को भी निकाल बाहर करता है और आपके कपड़े इतने सफ़ेद धोता है कि लोग देखते रह जांय. तभी तो यह भारत का सबसे अधिक लोकप्रिय धुलाई का पाउडर है—सुपर सर्फ़!

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

लिंटास - SU.180-140 HI (R)

मुझसे सटकर खड़ी हो गयी थी. कु [illegible] आंखों में एकटक देखती रही थी, फिर सहसा आवेश में आकर उसने मुट्ठियों में मेरे दोनों हाथ मींच लिये थे. गुस्से में बोली थी---मेरा कोई कसूर नहीं है. मैं तुम्हें जया का पिता बना सकती थी.

एक पल के लिए अचानक मेरी नसों में बड़ी तेज झुनझुनी दौड़ गयी थी. जया का पिता हुए होने के संभव किंतु व्यतीत सुख से नहीं, उस इतिहास से जिसे सहसा उसने मुझ पर धकेल दिया था. मुझे अपना दम भीतर -ही-भीतर घुटता हुआ मालूम हुआ था. घबरा कर मैंने उसकी आंखों में झांका था. उसकी आखों में इसकी जितनी शिकायत थी, इसके अभाव का उतना ही गुस्सा भी मुझे दीख पड़ा था. शायद मैं चुप रहकर उसकी वह मुद्रा टाल गया होता, मगर उसके चेहरे पर वह जिद भी थी, जिसने हम दोनों को एक दूसरे से जुदा कर दिया था. मैंने भीतर एक ही साथ बड़ी व्याकुलता और झुंझलाहट का अनुभव करते हुए कहा था--मगर तुम्हारी जिंदगी के उसूल दूसरे थे.

--उसूल उसूल उसूल, चीख को काबू में करने के लिए उसने दांतों को दांतों से कुचलते हुए कहा था---उसूल की बात मत करो. तुम सब मुझे एक मुर्दा गाड़ी समझते हो. जब चाहा जोत लिया, सामान लाद दिया या फिर अगले उपयोग के लिए अपने घर में कहीं सुरक्षित रख दिया. कहते-कहते उसकी आंखें सुर्ख हो गयी थीं और अपनी मुट्ठियों में गिरफ्तार मेरे हाथों को उसने एक खिसियायी बिल्ली की तरह पूरी बेदर्दी से बकोट लिया था और एकदम झटके से मुड़कर मुझे वहीं छोड़कर अंदर चली गयी थी.

मुझे बेहद गुस्सा आ गया था. उस पर नहीं, खुद पर. जो कांच रेशा-रेशा चिनक गया था, उसमें अपनी तस्वीर देखने की अपनी कमजोरी पर. उसने ठीक कहा था, मुझमें मेरा नैसर्गिक कुकरपन बना था. उसकी गंध लगते ही मेरा विवेक मर गया था.

मगर फिर कोई आधे घंटे बाद जब दमयंती ने आकर पीछे से मेरी पीठ पर अपना हाथ रखते हुए पूछा था—ए, मेरी पिटायी करने से तुम्हारा गुस्सा झर जाएगा? तो मुड़कर उसकी तरफ देखते ही मुझे हंसी आ गयी थी. उसके चेहरे पर कुछ ऐसी ही सरलता थी और वह एक नन्हीं शरारती बच्ची की तरह खट्टी करने के बाद मिट्ठी करने के लिए एक बनावटी उदासी ओढ़े हुए थी. मुझे दोनों हाथों से पकड़कर खींचते हुए बोली थी---चलो, नहा लो.

बेडरूम में मुझे बिस्तर के पास छोड़कर वह झटक कर आगे निकल गयी थी और आलमारी से एक पुरानी लुंगी निकालकर मेरी तरफ उछाल दी थी. हंसते हुए बोली थी -- इसे चीन्हते हो? यह तुम्हारी ही लुंगी है.नहाकर पहन लेना, तुम जब चले जाओगे, मैं उसे सूंघूंगी और अगले पंद्रह वर्षों तक तुम्हें याद रखूंगी.

कहकर वह अपने खास अंदाज में एकदम खिलखिलाकर हंस पड़ी थी. उसके कथन में जो सूक्ष्म अर्थ-संकेत था, वह मुझमें पहुंचा तो था और मैंने तुरंत उसकी यातना का अपने भीतर अनुभव भी किया था, पर उसकी खिलखिलाहट इतनी सहज और उन्मुक्त थी और लुंगी से उकेरा हुआ इतिहास इतना उत्तेजक और कामाद्रिमुख कि उस यातना को पनपने का मौका ही नहीं मिला था. मैंने लुंगी उठाकर कंधे पर डाल ली थी और उसकी खिलखिलाहट में अपनी खिलखिलाहट जोड़ते हुए गुसलखाने में घुस गया था.

जब मैं गुसलखाने से निकला था, मैं एक दूसरा आदमी था. मेरी गुनगुनाहट सुनकर उसने आंगन के बरामदे से आवाज दी थी---यहीं आ जाओ. मैंने वहां पहुंच कर देखा था, एक छोटी-सी मेज पर खाना लगाये वह मेरे इंतजार में बैठी थी. मुझे देखते ही बड़ी प्रसन्न आवाज में उसने कहा था--चलो शुरू हो जाओ. एक बज चुका है. चौका समेटने हुए घंटा भर लग ही जाएगा. बस चार बजे हैं.

मैंने सहज उत्सुकतावश पूछा था--- क्यों, नौकरानी नहीं है क्या?

मुंह में डाले हुए निवाले को जल्दी से निगलते हुए अपनी बड़ी आंखों को और भी फैलाते हुए कहा था---बाप रे! नौकरानी यहां? जरा-से काम के पचास रुपए मांगती है. कहकर वह कुछ दे थाली में हाथ रोपे हुए मेरी तरफ देखते हुए जाने क्या सोचती औ मुस्कराती रही थी. फिर उसने यकायक लजाकर अपनी आंखें झुका ली थीं और एकदम धीमी आवाज में बोली थी — तुम्हें ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ेगा.

मैंने देखा था और अवाक् देखता ही रह गया था.वही दमयंती. इसके बाद कुछ नहीं किया जा सकता था. मैंने थाली में रुपे हुए उसके हाथ पर अपना कांपता हुआ बांया हाथ रख दिया था और कुछ देर वैसे ही रखे चुपचाप बैठा रह गया था.

जब हम खा कर उठे थे, वह बहुत प्रसन्न थी. मेज पर से थालियां बटोरते हुए उसने चहकती हुई आवाज में कहा था — तुम चलो, मैं मिनटों में आती हूं.

मैंने एक नजर उसके प्रसन्न चेहरे पर डाली थी और जाकर बेडरूम में लेट गया था. आंखें मूंद पड़े-पड़े चौके से आती हुई बर्त्तनों की खनक मुझे जितनी पीड़क लग रही थी, जाने क्यों मन को उतना ही अच्छा भी लग रहा था.झपकी-सी आ गयी या खुशफहमियों में खोए-खोए मैं तंद्रा में चला गया था, क्योंकि जब दमयंती ने मेरे पास लेटते हुए मुझे अपनी तरफ घुमाने की कोशिश की थी, मुझे वैसा ही लगा था जैसे ताजा नींद टूटने पर लगता है. कुछ देर मैं उसे सकुआया-सा देखता रह गया था.

जब तंद्रा टूटी थी, मुझे एक ही साथ बहुत-सी बातें दीख पड़ी थीं. वह नहा कर आयी थी. उसने अपने बाल खोल कर छितरा रखे थे और उसका कुछ हिस्सा इस तरह रख छोड़ा था कि मैं उस पर अपना मुंह रख सकूं. उसने वही गाउन पहन रखा था, जिसमें रेशम के फुंदों की सिर्फ दो गठाने थीं --- एक गले के नीचे, एक कमर के पास. और उस पारदर्शी गठन के अंदर सिर्फ उसकी गोरी-गोरी गुदाज देह थी, नृत्य से कसी हुई और उम्र से बेनियाज.

व्याकुल होकर उसे अपनी देह में समेटते हुए मैंने शिकायत की थी---बड़ी देर लगा दी. मैं जानता था, वह कुछ नहीं बोलेगी. मैंने इसीलिए यह शिकायत की थी. मुझे मालूम था, वह जवाब में सिर्फ मुझमें और व्याकुल होकर घुल जाएगी. मगर उसने दाहिने हाथ में बंधी घड़ी देखने के लिए मेरे गले में लिपटा अपना हाथ खींच लिया था और बोली थी– हां, देखो न, तीन बज गए.

जो वह बोली थी, उसमें कुछ नही था.मगर मुझे लगा था, दमयंती वर्तमान में नहीं थी. अचानक कहीं चली गयी थी. मैंने कंधों से तनिक सिर उठाकर उसके चेहरे को देखा था और हमारी आंखें टकरा गयी थीं. मैं उन वासनाकुल आंखों को चीन्हता था, मगर वह चेहरा? शायद दमयंती मेरा भाव बूझ गयी थी. उसने फिर से मेरे गले में अपनी बांहें डाल दी थीं और एकदम पागलों-सी मेरे बदन से चिपट गयी थी. मगर अब मैं क्या कर सकता था?

न, मुझे इसकी चिंता नहीं थी कि दमयंती पंद्रह साल में एक वेश्या से किसी एक जया की मां हो गयी थी और जब वह नहाकर मेरे पास आकर लेटी थी, उसके ललाट पर सिंदूर की एक बड़ी-सी बिंदी चमक रही थी. दमयंती के संदर्भ में पाप-पुण्य से मेरा क्या वास्ता? मगर मैं उस अग्नि-रेखा को क्या कर सकता था जिसका उसे कोई ज्ञान नहीं था, मगर जिसे लांघने की प्रक्रिया में अचानक उसका वर्तमान जल कर भस्म हो जाता था. इसीलिए, थोड़ी देर बाद उठते हुए मैंने उसके ललाट का होंठों से हल्के स्पर्श किया था और उसको इस असफलता का दुख न हो. इसलिए कहा था --- उठो, तैयार हो जाओ. कहीं चार बजे की बस छूट न जाए.

□□□

हरेंद्र भवन, सलेमपुर छपरा (बिहार)

मैंने एकदम से जीभ काट ली थी. थोड़ी देर पहले [illegible] ौर अपनत्व जैसे उड़ गया था. ओफ! क्या कह गया! मैंने चोर नगाहों से उसकी ओर देखा था. उसका काला चेहरा एकदम छोटा ौर फक्क पड़ गया था. मैंने अपनी ही जीभ दांतों के बीच दबा ली ी—आखिर क्या हक है कि दूसरे को बाध्य करूं कि वह अपने ापको बौना होते जाना महसूस करे. क्या हक है? दुख और पश्चा-ाप से गर्म कनपटी की नसें तड़तड़ करने लगी थीं. मैंने तड़पती नगाह कमरे में चारों ओर घुमायी थी.एकाएक जैसे टेबल,आलमीरा ौर ड्रेसिंग टेबल की दराजें खुल गयी हों और उनमें लुढ़कती-टक-ाती सोडा और ब्लैकनाइट की खाली बोतलें खनखना रही हों. कानों ं एक तीखा दर्द उठा था—एक ऐसा दर्द जो कुछ भी चीरता या ाटता न हो, सिर्फ टकराता हो.

मैं घबरा कर तेजी से उठा और झपटकर आलमीरा और सिंग टेबल की ओर दौड़ा. दराजे बंद थीं, फिर भी दराजों के ंडल पर पड़ी हथेली दबी जा रही थी. दराजे बंद थीं, फिर भी ाली बोतलों की आवाजें रिस रही थीं. . .रिसती चली जा रही ीं. चेहरे और गले पर पसीने की बूंदें झलकने लगी थीं. मैंने गले र हाथ फेरते हुए उसकी ओर देखा था और लगा था हाथ चप्पू की रह लहरें काट रहा है.

वह पलंग की किनार पर ऐसा बैठा ा जैसे खड़ा हो. तीखी चुप्पी से भरी और र्मांतक पीड़ा से तार-तार उसकी नजर ाहर हवा को टटोल रही थी. क्या ूंढ़ रहा होगा वह? अपना अभी-अभी बीता अतीत. क्या बंद दराजों से रिसती खाली बोतलों की आवाजें उसे भी महसूस हो रही थीं?

कमरे की मुर्दा हवा जग और गिलास के टकराने की आवाज से ऐसे तिड़क गयी थी जैसे कोई शव जल रहा हो. वह गिलास में पानी भर रहा था. उसने जेब से दो मेनड्रेक्स की गोलियां निकालीं और हलक के नीचे उतार गया था. थोड़ी देर बाद उसने एक गिलास पानी और पिया था और पलंग पर लेट कर बेफिक्र और विजयी नजर से मेरी ओर देखा था—तुम साले खाना खिला कर मेरे दो

हूं. हूं.

दस मिनट बाद ही वह घुटनों को पेट में धंसाए, दीवार की ओर करवट लिये सो रहा था. बारह बजने को थे. चिलचिलाती धूप परदे को हटा कर बार-बार आती-जाती जा रही थी. वह खर्राटे भर रहा था और मैं दिन के उजाले में भी उसे पहचानने की कोशिश कर रहा था. सारी कोशिश महज एक गडमड छटपटाहट के सिवा और कुछ नहीं थी क्योंकि खाली बोतलों और मेनड्रेक्स की गोलियों के बीच में सिर्फ आठ महीनों का अर्सा था. इसके बावजूद कि वह इस छोटे से अर्से में काफी कुछ मुझसे खुल चुका था, मैं चकित था कि अभी भी बहुत कुछ अजाना है. और यह कम त्रासदायक स्थिति नहीं थी कि पहचानने की हर कोशिश उसे और अपरिचित बनाये दे रही थी. कई बार सोचता काश, वह बेकार होता और उस पर अपने बड़े भारी परिवार का बोझ होता. छोटे भाई के पढ़ाने या बहन की शादी की चिंता होती तो कम से कम इस पीड़ा, त्रास और निराशा भरी स्थिति के पीछे यह भयावना और नकली खालीपन, तो नहीं होता. परंतु ऐसा नहीं था. वह एक संपन्न परिवार का लड़का था. खुद डाक्टर था. कुछ दिनों पहले तक उसका खर्चा सात सौ से ऊपर था. चार सौ अस्पताल से मिलते थे, शेष घर से नियमित रूप से आ जाते थे, वह घर लिखे या नहीं.

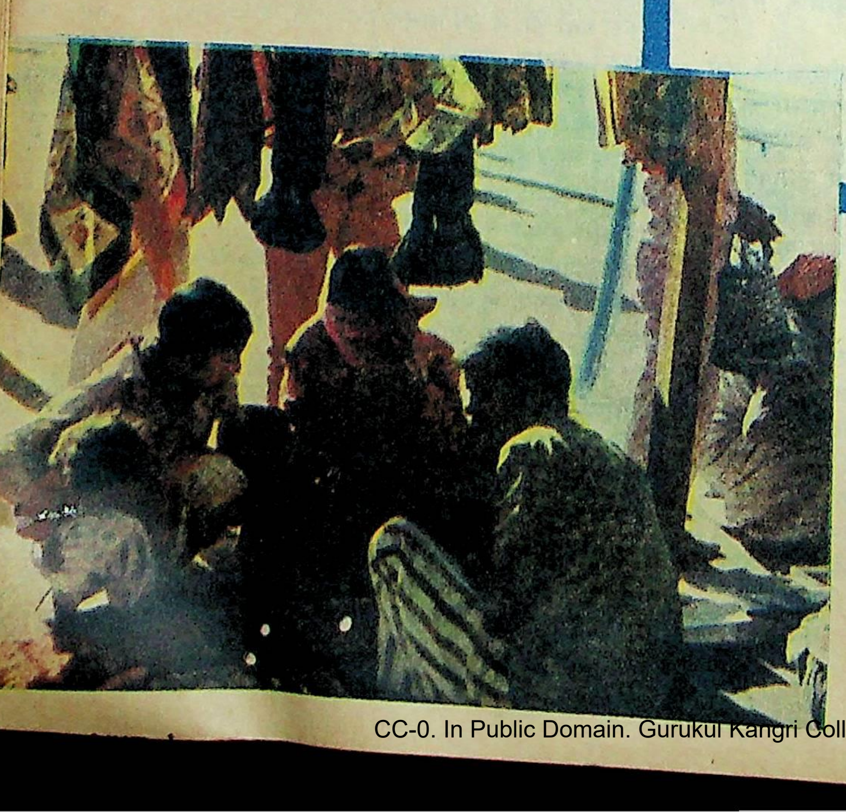

विदेश

• प्रेम कासलीवाल

—सोचता हूं, यह जाब छोड़ दूं. एक दिन उसने बेहद उदासी से कहा था. पता नहीं क्या सोच रहा था. सिगरेट जली हुई थी, फिर भी वह जलती हुई तीली सिगरेट के पास ले गया था और फिर घबरा-कर एक दम जलती हुई तीली खिड़की के बाहर फेंक दी थी.

मैं चुप रहा था. वह कई बार कह चुका था कि सिर्फ कुछ करने के लिए कर रहा था. यह भी कोई काम है, साला क्लर्की है, क्लर्की. वह गुस्से में भर कर बोलता और आग्नेय नेत्रों से मुझे देखता जैसे मैं इतना गलीज काम करने के लिए उसे बाध्य कर रहा होऊं. यह सही था कि मैंने , जब तक कोई दूसरा सही काम न मिले, तब तक यहीं 'अटेच' रहने की सलाह दी थी. ठीक है, प्रायवेट अस्पताल है. किसको फुरसत है कमाने से जो सिखायेगा. फिर भी जब तक. . .

—तुम जे. जे. में क्यों नहीं अप्लाय करते. मैंने सिर्फ उसे उम्मीद बंधाने के लिए कहा था परंतु वह जैसे फट पड़ा था—नांसेंस. पहले खुद के कैंडिडेट, फिर दूसरे बंबई के कालेजों के, फिर महाराष्ट्र के तब जाकर हम आउटसाइडर. . .विदेशी. उसमें भी मिनिस्टिरियल लेवल की पव्वेबाजी. . .

—तुम्हारा भी तो 'लग्गा' होगा बच्चू! स्थिति का पैनापन कम करने के लिए मैंने मजाक में कहा था.

—हां. . .आं. . .तभी तो इस तरह पिटा. . .वह एकदम चुप हो गया था. बाहर शून्य में देखने लगा था. गर्म पानी के गिलास में पड़े बर्फ के टुकड़े की तरह उसकी आंखों की पुतलियां गलती जा रही थीं. मैं एक बेहद नर्म नजर उसकी ओर डाल कर रह गया था जैसे उस गर्मी को सहलाने की कोशिश कर रहा हूं.

—तुम यहां क्यों आए? उसने सिगरेट का धुंआ छोड़ते हुए आश्यचर्यजनक ढंग से स्थिर और एकाएक दृढ़ स्वर में कहा था. मुझे लगा था, एकाएक वह प्रतिद्वंद्वी हो गया है. उसने यह पूछ कर जैसे ढेर सारे अंगारे आंखों में फेंक दिये थे. आंखें खौलते पानी में पड़े आलुओं की तरह बाहर निकली जा रही थीं. नीरेन. . .प्लीज. मैं बेहद दयनीय और भिखमंगी आवाज में बुदबुदाया था. यह कोई नया प्रश्न नहीं था. मैंने अपने से कई बार पूछा था और लहूलुहान हो आया था. मैं स्वयं उन इने-गिने दिनों को भूल जाना चाहता था जो मैंने डिग्री लेने के बाद उस छोटे-से गांव की डिसपेंसरी में बिताये थे और जो एक पूरी जिंदगी से कम नहीं थे. एक धूल से मढ़ी बोतल थी, जिसमें रंगीन पानी भरा था (मुझे उसे 'पानी' कहते हुए शर्म आनी चाहिए) जिससे मुझे सिरर्दद भी दूर करना होता और फोड़ा भी चीरना होता. कई दिनों तक वह मिक्श्चर बांटता, कभी खाने के पहले तो कभी खाने के बाद लेने को कहता परंतु फिर दूसरे दिन बढ़ते हुए फोड़े को देख कर मैं खाट पर बैठ सिर पकड़ कर इतनी जोर से दबाता. . .इतनी जोर से दबाता. . .मुझे लगता मेरे बाल पीब के तालाब में तैर रहे हैं. . .भारी दुर्गंध के मारे दम घुटा जा रहा है. . .नाक जैसे बंद हो गयी है और कोई अदृश्य और भयानक प्रेत मेरी ओर रंगीन पानी से भरी बोतल लिये अट्टहास करता हुआ बढ़ा चला आ रहा है. . .

—सर्जन बनने के लिए! क्यों! ! वह बेहताशा हंसे जा रहा था. हवा में तेजाब ही तेजाब था और मैं दोनों हथेलियों से चेहरा ढप कर चीख पड़ा था.

—शट अप. आई से ए. .ए. .शट.

—डोंट बी एक्साइटेड, माइ ब्वॉय. डोंट. उसकी जहरीली हंसी जैसे बंद होने का नाम ही नहीं ले रही थी—तुम ही बताओ, एक फोड़ा भी चीरने को मिला अभी तक. तुम तो साल भर बाद एम.एस. की परीक्षा दोगे. . .

मेरी सारी नसें झनझना उठी थीं. मैं तेजी से उठा था. एक भयानक उत्तेजनावश उस पर चढ़ बैठा था. मेरी लुंजपुंज हथेलियां उसके गले से लिपटी थी. मैं जितनी अंगुलियां मोड़ने की कोशिश करता, सारा शरीर शिथिल होता जाता.

—उठो! उसने बेहद तिरस्कार से कहा था.

मैं लाचारी से हांफता हुआ उतर कुर्सी पर बैठ गया था. वह चुप था और मेरी ओर लगातार घूर रहा था. उसके ओठों के पास बिखरा तीखापन और आक्रामकता उड़ गयी थी और वह मुझसे भी ज्यादा दयनीय हो आया था. मुझे आश्चर्य था कि मैं ऐसा अच्छा मौका क्यों चूक गया—आखिर वह भी यहां क्यों आया? वह भी तो सिर्फ फार्म भरा करता है. उस दिन डा. मेहता को असिस्ट करते हुए उसकी आंखें गीली नहीं हो आयी थीं? रिट्रेक्टर ढीला होते ही डा. मेहता चीखे थे और उसने रिट्रेक्टर कस कर पकड़ लिया था जैसे अपने आपको पकड़ लिया हो. उस सारे दिन वह अपने प्रति घृणा से भरा रहा था जो व्यर्थता के तीखे अहसास से निचुड़ी थी. बिना खाना खाये वह बहुत देर तक आरामकुर्सी में करवट बदलता रहा था. मैं सोने का बहाना किये लेटा था परंतु उसकी हर एक हलचल मेरी बरौनियों में से छन रही थी. वह उठा था. ड्राज में से उसने लेटरपैड निकाला था और बहुत देर तक उस पर लिखता, काटता रहा था. वह बाथरूम गया तो मैंने देखा—लेटर पैड उसके आड़े-तिरछे नाम से भरा था और नाम के आगे बी. ए. की डिग्री लिखी देख मेरी आंखों के सामने मरीजों के केस-शीट्स, इनवेस्टिगेशन फार्म, समरीज और डिस्चार्ज कार्ड फड़फड़ाने लगे थे—किसी कौवे के पंखों की तरह. आखिर इतने कागज रंगने के लिए बी. ए. की डिग्री काफी नहीं है—मेरे जेहन में यह खयाल भरसक दबाने के बाद भी बार-बार उभर रहा था.

मेरी पलकें गीली होने लगी थीं और इसके पहले की वह आये, मैं भी बाथरूम में घुस गया था.

★ ★

उस शाम को वह बेहद खुश था. स्कूटर को स्टैंड से उतारता हुआ वह बेहद निश्चित और तनावहीन लग रहा था. उसे देख कर इस शहर में कहीं सूना बस-स्टॉप दिख जाने जैसा अहसास हुआ था.

—कहीं जा रहे हो?

आवाज सुन कर वह मुड़ा था और स्कूटर को वापस स्टैंड पर लगा कर सिगरेट का धुंआ छोड़ते हुए बोला था—चल रहे हो?

—कहां?

—भाई जान का फोन आया था. यू. के. से लेटर आ गया है.

—सच! कानग्रेचू. . .

मैं नहीं जानता हूं, मैं ही पूरा नहीं बोल पाया था या उसकी हंसी के बीच अपने शब्द नहीं सुन पाया था. बाद में सोचा था तो कहीं किसी कोने में मेरे उन सारे दोस्तों के खत फड़फड़ा रहे थे जो इंग्लैंड में बेहद अपमानजनक स्थिति से घिरे दिन काट रहे थे, जिनके लिए हल्के और झिल्लीदार अंधेरा और धुंधले रोशनी के धब्बों में फर्क कर पाना मुश्किल हो रहा था. वे लौटने की सोचते थे परंतु आसपास आ घिरते ढेर सारे प्रश्न चिन्हों को समझते वे खुद प्रश्न चिह्न बन जाते जिन्हें वे खुद समझा रहे होते.

—कब तक लौटोगे? मैंने किसी गहरी लंबी और अंधेरी खोह से निकलते हुए पूछा था.

—आज तो प्रोग्राम होगा!

मैं प्रोग्राम से मतलब समझता था. महीने में कम से कम दो बार वह उसके साथ सारी रात किसी होटल के कमरे में गुजारता था और दूसरे दिन देर तक सोता रहता था.

—यू गो, डा. मेहता 'राऊंड' पर आने वाले हैं. एकाएक मुझे लगा कि मुझे यह बात नहीं कहनी चाहिए थी. 'बेस्ट आफ लक' कहते हुए उसके ओंठ व्यंग्य से दाहिनी ओर खुल गये थे. मैंने देखा तो कट कर रह गया था. निरर्थकता के तीखे बोझ से भारी कदमों से मैं इन्क्वायरी पर खड़ा डा. मेहता का इंतजार करने लगा था.

वो दो जो मेरी साँसों में बसा करते हैं—

एक तुम...

सच, बिनाका ग्रीन की निर्मल ताज़गी में बसीं मेरी साँसें... और मेरी हर साँस में समाए तुम! मुझे तुमसे प्यार है... मुझे बिनाका ग्रीन से प्यार है क्योंकि क्लोरोफ़िलयुक्त बिनाका ग्रीन में पाये जाने वाले प्राकृतिक गंधनाशक से मेरी साँसों में फूल खिल जाते हैं...

एक बिनाका ग्रीन...

आह! वह बहार... तुम्हारे साथ गुज़रे वह सुनहरे क्षण... वह महका महका सा मेरी साँसों का मधुबन!

Binaca
Green
toothpaste
CIBA
MADE IN INDIA
Charm Enclosed
Binaca
Green
toothpaste
Binaca

महकी साँसों का मधुबन

बिनाका टूथब्रश की गोल बनायी गयी नोकें आपके मसूड़ों को छिलने से बचाती हैं।

CIBA-GEIGY

Rediffusion CG/194/i hin

——यस डॉक. मैं एकदम चौंक पड़ा था. सामने डा. मेहता खड़े थे. मैं मरे-मरे कदमों से उनके साथ हो लिया था. लिफ्ट ऊपर गयी थी और मैं चाह रहा था लिफ्ट घंटे भर तक नहीं आये. उम्मीद थी कि इस अर्से में मुझमें हिम्मत आ जायेगी और मैं स्थिर और तटस्थ स्वर में कहूंगा——आ ऐम सारी, सर. आय हैव रिजाइंड फ्रॉम टुडे. परंतु मैं आज तक ऐसा नहीं कह पाया. आगे लिफ्ट का दरवाजा खुला था और मैं उसमें घुस गया था. बंद लिफ्ट में डा.मेहता के साथ खड़े ढेर सारे शब्द कान में भनभना रहे थे——कल इसका एक्सरे करवा लो. . .नंबर दो का. . .ब्लड नंबर दस के स्पाइनल-सपोर्ट के लिए केस सर्जिकल को फोन किया. . .दस को डिस्चार्ज कर दो.

——व्हाट हैपंड टू यू. . .डा. मेहता चीखे थे.

लिफ्ट पांच माला पर रुकी थी. दरवाजा खुला था और मैं तीखे दर्द से आंखें भींचे खड़ा था.

——ओह! मैं धीरे से बुदबुदा कर बाहर निकल आया और हाथ में कागज के टुकड़े और पेन लिये घूमता रहा था. कॉलेज की सोशल गैदरिंग में मैंने एक ड्रामे में मुनीम का पार्ट अदा किया था. प्राइज मिला था. क्या मुझे अब फर्स्ट प्राइज नहीं मिलना चाहिए?

रात को दरवाजा बज रहा था. मैंने घड़ी देखी थी——कौन होगा? वह तो किसी होटल या कोलाबा के किसी कमरे में होगा.

——तुम? आज प्रोग्राम नहीं हुआ क्या?

——प्रोग्राम! प्यारे दो सौ रुपये का माल छाना है आज तो.

——फारेनर थी क्या?

——चुप, साले! वह एकदम चीखा था और फिर धीमे और एक तिरस्कार भरे स्वर में बोला था——हिंदुस्तानी थी.

फिर एक सिगरेट जलाते हुए बोला——लेटर देखोगे! लो.

उसने एक लिफाफा मेरी ओर बढ़ाया था.

——तो तुमने डिसाइड कर लिया है?

——डिसाइड करने को है ही क्या?

——फिर भी. . .नितिन का खत आया था लंदन से. तुमने पढ़ा था, क्या हालत. . .

——हूं. हालत. जानता हूं. वह चीखा था——परंतु एक कुत्ते के लिए इससे ज्यादा शर्मनाक और हालत क्या होगी कि वह अपनी ही गली में पिटता रहे! खैर छोड़ो. पियोगे? वैट सिक्स्टी नाइन है.

वह बोतल खोलने लगा था और मैं पीछे कमर के नीचे कुछ ढूंढ़ने के लिए हाथ फेर रहा था.

मैंने गिलास में थोड़ा सोडा और डाला था और एक घूंट निगल कर उसकी ओर देखा था——फादर से पूछ लिया?

——क्या पूछना!

——क्यों? कुछ कम नहीं, तीन हजार की बात है.

——छोड़ बे. कल फोन कर लूंगा. टी. एम. ओ. कर दें. टिकट, वीसा, सभी काम बाकी हैं.

सुबह-सुबह पेशाब करने को उठा था तो वह टेलिफोन के पास खड़ा था. सुबह की धुंधली रोशनी में उसके ओठों और पेशानी पर चिपका पसीना चमक रहा था.

——आप टी. एम. ओ. कर रहे हैं या नहीं! यह एकदम नयी आवाज थी, जो मैं सुन रहा था. क्या वह फादर से बात कर रहा है?

दूसरे ही पल उसने फोन फेंक दिया था और लगभग हांफता हुआ कमरे में घुस गया था. पीछे-पीछे मैं भी घुसा था.

——फादर थे? मैंने पूछा था.

उसने नहीं सुना था या कुछ और ही सुना था. वह तीसरी या चौथी बार बुदबुदा रहा था——समझते क्या हैं! पैसा नहीं देंगे तो मैं नहीं जाऊंगा. . .देख लेना. . .बस फरमा दिया, अभी चले आओ. अरे, पर यह तो बताओ कि करूंगा क्या वहां आ कर. . .कहा नहीं था——सिंह दोस्त है, संयोग से 'हैल्थ' में डिप्टी मिनिस्टर है. . .कहीं डिस्ट्रिक्ट प्लेस में ही पोस्टिंग करवा दो, परंतु नहीं. . .

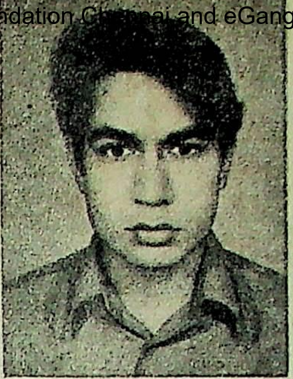

प्रेम कासलीवाल (जन्म : अप्रैल, १९४७) की कहानियों में युवा आक्रोश के तो दर्शन होते ही हैं, युवा पीढ़ी की रचनात्मक छटपटाहट भी दिखायी देती है. पेशे से डाक्टर हैं, इसलिए इनकी अनेक कहानियां भी चिकित्सा के क्षेत्र से निकल कर आयी हैं.

बुदबुदाते हुए उसका चेहरा कुरूप हो उठा था. उसने अलमारी और टेबल की दराजें झटके से खींची थीं और ब्लैक नाइट, वैट सिक्सटी नाइन और सोड़े की खाली बोतलों को गरदन से पकड़ कर कमरे के बाहर पटक दिया था——वार्ड ब्वाय से कहना, फेंक दे!

नहा कर लौटा तो देखा, वह कमरे में नहीं था. आठ बजे थे. नौ बजे तक तो वह उठता ही नहीं था. कहां गया होगा. बाथरूम? बहुत देर तक नहीं आया तो मैंने चाय पी और अस्पताल चला गया.

——सुबह खाना कहां खाया? मैंने पूछ तो लिया परंतु प्रत्युत्तर में एक बेहद दयनीय नजर पा कर अंदर तक हिल गया.

वह बिस्तर पर लेटे-लेटे सोने का बहाना कर रहा था, बार-बार अधखुले दरवाजे से उसकी दृष्टि मेस में घूम रही थी.

पानी पीने उठा तो वह बोला——देख, मेस का वार्ड ब्वाय चला गया क्या?

——नहीं तो! क्यों?

——यूं ही उसने बेहद मरे हुए स्वर में कहा, कब जाता है वह?

——ग्यारह बजे!

* *

दरवाजे की खटखटाहट से नींद खुली. बत्ती जलायी. उसका पलंग खाली था. कहां गया होगा? सोचते हुए दरवाजा खोला तो देखा अस्पताल से वार्ड ब्वाय था. धीरे से आवाज दी——अशोक.

एकाएक गिलास टेबल पर गिरा और हवा हड़बड़ा गयी. काले और सुनसान मेस में एक छाया खाना खा रही थी. मैंने स्विच ऑन किया तो वह हड़बड़ा कर पलटा जैसे चोरी करता हुआ पकड़ा गया. फिर संभलने का असफल और असहज-सा प्रयास करते हुए बोला था——नींद नहीं आ रही थी, पर बोलते-बोलते वह अजीब से ढंग से हंसा था.

वह गहरी नींद सो रहा था परंतु मारे भूख के मुझे नींद नहीं आ रही थी. मैं बार-बार उसकी ओर देख कर खुद को बहलाने की कोशिश कर रहा था, परंतु मेस से आती थालियों, चम्मचों और गिलासों की आवाजें मेरे अंदर अंगारे फेंक रही थीं. मैं डेक्स खा कर सो जाऊं. . .नहीं, डा. मेहता दो बजे आपरेशन करने वाले हैं. . .

मैंने तकिये के नीचे से गोली निकाली और निगल गया. धीरे-धीरे नींद एक हलकी-सी खुमारी की तरह चढ़ने लगी, फिर भी भूख की तिलमिलाहट कम नहीं हो रही थी.

पैंट और शर्ट पहनते हुए लगा जैसे किसी ने चारों तरफ से सी दिया हो. कमरे से बाहर निकला और धीरे-धीरे कदमों से मेस की तरफ बढ़ने लगा. जितने धीरे मैं मेस की तरफ जा रहा था, अपने ही अंदर कहीं उतनी ही तेजी से मैं मेस से दूर भाग रहा था.

मुझे लगा, मैं बेहताशा भागने से, नहीं इधर-उधर भागने से, बेहद ढह चुका हूं, बेहद. □□□

३/ ३६ टाटा कंपाउंड, इरला, अंधेरी (प.), बंबई-५८

एम.एल.ए. साहब

• राही मासूम रज़ा

एम.एल.ए. साहब के बारे में जानने की सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि वह एम.एल.ए. नहीं थे. जो वह एम. एल. ए रहे होते तो उनकी तरफ मेरा ध्यान ही न गया होता क्योंकि आज एम. एल. ए होने में क्या बड़ाई है. हर सातवां-आठवां आदमी या तो एम. एल. ए है या होना चाहता है. क्योंकि कोयले की इस दलाली में मुंह तो जरूर काला होता है पर मुट्ठी गर्म रहती है तो आज मुंह की क्या हैसियत. असल चीज तो मुट्ठी है. और एक आसानी यह भी है कि यह काले लोगों का तो देश ही है, फिर मुंह की कालिख दिखाई किसे देगी, इसीलिए ज्यादातर लोग एम. एल. ए या एम. एल. ए के रिश्तेदार बनने की फिक्र में दुबले या मोटे होते रहते हैं. कहने का मतलब यह है कि एम. एल. ए होने या न हो पाने में कोई नयापन नहीं रह गया है. आपको हर मुहल्ले में दो-चार एम. एल. ए या एक्स एम. एल. ए या एम. एल. ए होते-होते रह जाने वाले मिल जायेंगे. तो फिर ऐसों की कहानी सुनाने में क्या मजा? और ऐसों की कहानी ही क्या इसीलिए एम. एल. ए साहब में मेरी दिलचस्पी तब बढ़ी जब मुझे यह मालूम हुआ कि वह एम. एल. ए हैं ही नहीं.

चुनाव के दिन थे. हर तरफ बड़ी चहल-पहल थी. लोग अपने-अपने कारोबार छोड़ कर चंद दिनों के लिए नेता बने ठस्से से तकरीरें करते घूम रहे थे.

कड़कड़ाते जाड़ों की रात थी. मैं सिनेमा देख कर लौट रहा था कि कान में आवाज आयी—— और अब मैं एम. एल. ए साहब से दरख्वास्त करता हूं कि वह माइक पर तशरीफ लायें और अपने खयालात से आप लोगों को फायदा उठाने का मौका दें.

सामने वाली गली में दरी का फर्श लगा हुआ था. सामने कुछ बच्चे रूमाल के चूहे दौड़ा रहे थे. उनके पीछे बूढ़े चुनाव लड़ने वाले की चाय पी कर उसका विरोध करने वाले की बात कर रहे थे.

कि एक आदमी, दुबला-पतला, रुवा खड़ा, सांवले रंग वाला सफेद शेरवानी वाला माइक पर आया. गला साफ करने के बाद बोला— तकरीरें तो आजकल आप लोग दिन-रात सुन रहे होंगे. मैं तो सरकार से कहने वाला हूं कि चुनाव में खर्च पर रोक-टोक करने का उसे कोई हक नहीं है. साहब यह बाबू दुवार्का प्रसाद अपने चुनाव में सरकारी पैसा तो फूंक नहीं रहे हैं कि सरकार के पेट में दर्द हो रहा है. पर तकरीर राशन कार्ड पर मिलनी चाहिए. जो एक वोटर को दो से ज्यादा तकरीरें चटाये,उस पर मुकदमा चलाना चाहिए और उसकी जमानत जब्त कर लेनी चाहिए.

यह आवाज मेरी साइकिल का पीछा कर रही थी. मैं पलट आया.

एम. एल. ए. साहब बड़े मजे में बोल रहे थे— तो साहब मैं तकरीर नहीं करूंगा. मैं तो तीन सौ मील का सफर करके और दो रातें आंखों में काट के आपके पास सिर्फ यह कहने आया हूं कि कांग्रेस को वोट देने से क्या फायदा? अब तक क्या फायदा हुआ जो अब कोई फायदा होगा. जनसंघ और मुस्लिम लीग और इस तरह की दूसरी पार्टियां तो न किसी गिनती में, न शुमार में. नफरत के इन ताजिरों से हमें या आपको क्या लेना-देना? अब आइये, लाल झंडे वालों को लीजिए. तो साहब, लाल झंडा तो सौ फीस दी बिदेसी है. . . . वह रुके. भीड़ को घूरा, चेहरा जरा सख्त पड़ा और फिर कड़कदार आवाज में बोले— अगर यह सच है कि हिंदुस्तान आजाद हो गया है तो आपके वोटों का हकदार सिर्फ कोई आजाद उम्मीदवार ही हो सकता है. और बाबू दुवार्का प्रसाद से ज्यादा आजाद तो कोई दूसरा उम्मीदवार है नहीं. . . .

बाबूजी के लोगों ने तालियां बजायीं.

एम. एल. ए. साहब मुसकराये. बोले— तो मैं यह अर्ज कर रहा था कि मैं कोई तकरीर नहीं करूंगा. हां, आप लोगों में से कोई साहब कोई सवाल करना चाहे, तो मैं हाजिर हूं.

कोई साहब नहीं बोले.

एम. एल. ए. साहब ने कहा——कोई बात नहीं. मैं खुद ही आपकी तरफ से सवाल भी करूंगा और जवाब भी दूंगा. आप कह सकते हैं कि बाबूजी को वोट देने से क्या फायदा, वह कर ही क्या सकते हैं? बिलकुल सही सवाल है... आपका, और मैं इस सवाल का सीधा जवाब देता हूं. बाबूजी एम.एल. ए. हो जाने के बाद आपके लिए कुछ नहीं करेंगे. पर अब मैं पूछता हूं कि अब से पहले आप जिन लोगों को यहां से एम.एल. ए. बना चुके, उन लोगों ने आपके लिए क्या किया? कितने तीर मारे? कितने मैदान जीते? तो फिर आप बाबूजी ही से यह सवाल क्यों करें? अब तक

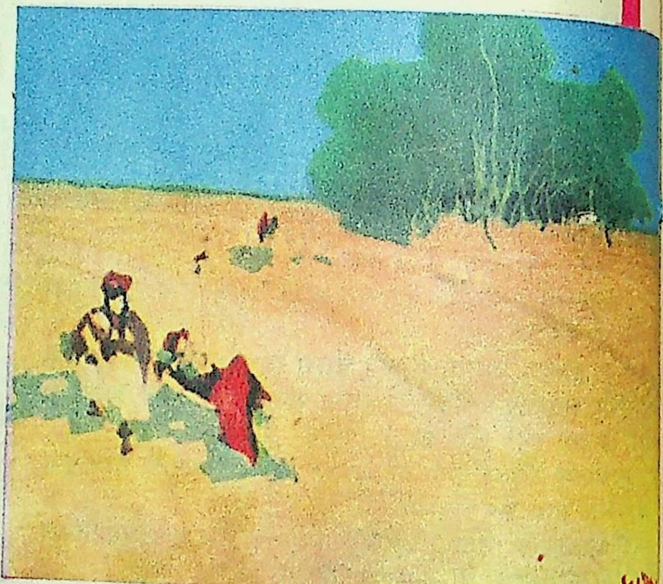

तो आप लोगों को इसका आदी हो जाना चाहिए था कि जिसे वोट दिया जाता है, वह आपके लिए कुछ करता-वरता नहीं. पर बाबूजी और दूसरों में एक फर्क जरूर है. यह दूसरों की तरह आपसे झूठे वादे नहीं कर रहे हैं. यह एलेक्शन मेनिफेस्टो तो नहीं बंटवाते और सबसे बड़ी बात यह है कि इनका पेट कई पुश्तों से भरा हुआ है. आप अगर फिर किसी भुक्खड़ को बावरचीखाने का दारोगा बनाना चाहें तो आपकी मरजी. मगर पांच बरस फिर फाके ही करने पड़ें तो यह मत कहियेगा कि भैया बात तो एम. एल. ए. साहब सोलह आने पाव रत्ती खरी कह गये थे.

वह रुक गये क्योंकि एक नौजवान की गांधी टोपी बीच में खड़ी हो गयी थी.

एम. एल. ए. साहब मुसकरा कर बोले —कहिए मियां?

टोपी ने कहा——सरकार ने हमारे लिए बहुत कुछ किया है साहब . . .

ए. एल. ए. साहब ने टोक दिया—बहुत कुछ किया है. गेहूं तीन

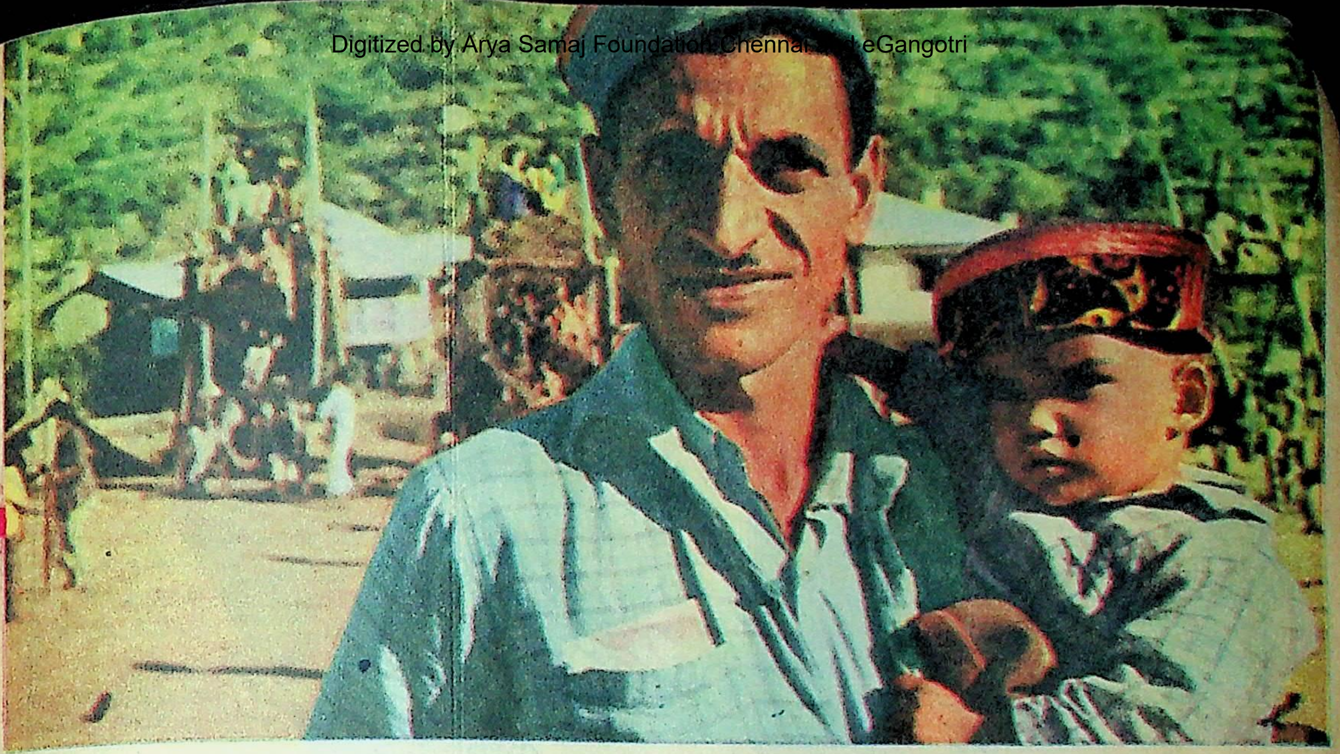

सेर से ढाई सेर का कर दिया गया है ताकि लोगों को भूखे मरने में आसानी हो. क्या बात करते हो साहबजादे. अरे इस सरकार ने तो मरने तक पर टैक्स लगा दिया है. कहां रहते हो तुम, क्या किया है सरकार ने. कभी सेर भर चावल उधार दिया है उसने आपको? टैक्स में कभी मोल-तोल किया है आपने. सरकार है कि बाटा की दूकान? एक रेट बांध दिया है. जिंदगी नकली मिलेगी पर दाम ऐसी जिंदगी का वसूलेगी जैसे यह जिंदगी आर्डर भेज कर खास आप लोगों के लिए ऊपर से मंगवायी गयी है. क्या किया है सरकार ने जरा मैं भी तो सुनूं ?

बिचारी कमसिन टोपी घबरा गयी. भरे मजमे में चोरों की तरह खड़ी रह गयी. थूक घोंट कर बोली—सरकार ने क्या पन-बिजली द्वारा. . .

टोपी टोक दी गयी—– एक मिनट मियां. आपने अच्छा याद दिलाया. पन– बिजली की बात तो मैं भूल ही गया था. सरकार ने पानी से बिजली तो जरूर निकाली है मियां पर दोस्तो, इसे कहते हैं चोरी और उस पर सीनाजोरी. असली घी अब दवा के लिए नहीं मिलता. असली मक्खन किसी को लगाने तक के लिए नहीं मिलता और यह श्रीकृष्ण का देश कहा जाता है. चावल में इतना कंकर होता है कि कभी-कभी यह ख्याल होता है कि चावल में कंकर नहीं बल्कि कंकर में चावल मिला हुआ है. एक पानी बचा था जिसे पी कर लोग जीते थे तो सरकार ने उस पानी की बिजली निकाल ली. अरे बिजली ही निकल गयी तो पानी में रहा क्या ? यह हिजड़ा पानी पी कर नयी नस्ल का क्या हाल होगा साहब? और सितम जरीफी यह कि पानी की बिजली निकाल ली और वाटर टैक्स बढ़ा दिया. आप पूछते हैं कि बाबूजी एम. एल. ए. होने के बाद क्या करेंगे? बाबूजी कोशिश करेंगे कि पानी की निकली हुई बिजली पानी में वापस मिला दी जाये. . .

इस बार बाबूजी के आदमियों को ताली नहीं बजानी पड़ी. सामने बैठे हुए बच्चे तो कब के सो चुके थे, पर यह बात बड़े बूढ़ों की समझ में आ गयी.

विचारी कमसिन गांधी टोपी के पास इस बात का कोई जवाब नहीं था.

दूसरे दिन शहर के राजनीतिक वातावरण में हलचल मच गयी. किसी के पास इस बात का जवाब नहीं था. किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि बेपढ़े लोगों को कैसे समझाया जाये कि पानी हिजड़ा नहीं हुआ है. और दूसरे ही दिन एम. एल. ए. साहब के इशारे पर बाबूजी ने तुरुप का एक्का चल दिया. लाउडस्पीकर पर एलान किया गया कि बाबूजी खास अपने खर्च पर शहर में एक सौ पचास कुएं खुदवायेंगे और दो सौ कुओं की सफाई करवायेंगे.

सारी राजनीति घरी रह गयी. एलेक्शन मेनिफेस्टो रद्दी बाजार में आ गये. अखिल भारतीय नेताओं ने एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया पर पानी का हिजड़ापन न गया और बाबू दुवार्का प्रसाद चुनाव जीत गये.

मैं तो उसी रात वाली मीटिंग में एम. एल. ए. साहब का कायल हो गया था. पर फिर बात आयी गयी हो गयी. हां, जब चुनाव के दिन आते तो मुझे एम. एल. ए. साहब की याद जरूर आती. और मैं सोचने लगता कि आजकल वह किसका चुनाव लड़ा रहे होंगे. बात कभी इससे आगे नहीं बढ़ी कि एक दिन फिर उनकी भनक मिली.

चुनाव ही के दिन थे. कम्युनिस्ट पार्टी के ष्क दोस्त ने अपनी तरफ से एक लतीफा सुनाया.

बोला—एम. एल. ए. साहब ने तो नाक में दम कर दिया है, यार. क्या-क्या तरकीबें सूझती हैं उसे. अब वह कांगरेसी हो गये हैं. एक बीहड़ इलाके में कैन्वेसिंग करने गये. उस कांस्टिटुएंसी में हम लोग चार साल से काम कर रहे हैं और यकीन था कि इस चुनाव में हम ही जीतेंगे कि बिटिया रानी ने एम. एल. ए. साहब बुक कर दिया और साहब उस आदमी ने एक घंटे में हमारी चार साल की मेहनत पर पानी फेर दिया.

मैं हंस पड़ा—हुआ क्या ?

वह बोला—–हुआ वह जो कोई सोच भी नहीं सकता था. हम लोगों ने सारा जोर इस पर लगाया था कि उस क्षेत्र में एम. एल. ए. ने ट्युब वेल लगवाने का वादा किया था. जाहिर है कि वादा पूरा नहीं हुआ तो हम लोगों ने तय किया कि चुनाव की हर मीटिंग में यही एक सवाल उठाया जाये. पर एम. एल. ए. साहब ने पैंदली मात दे दी और अब इस चुनाव में तो हम लोग वहां से जीत नहीं सकते. क्या सूझती है कमबख्त को !

हमारी सभी उड़ानें
आप के लिये फिर से चालू !

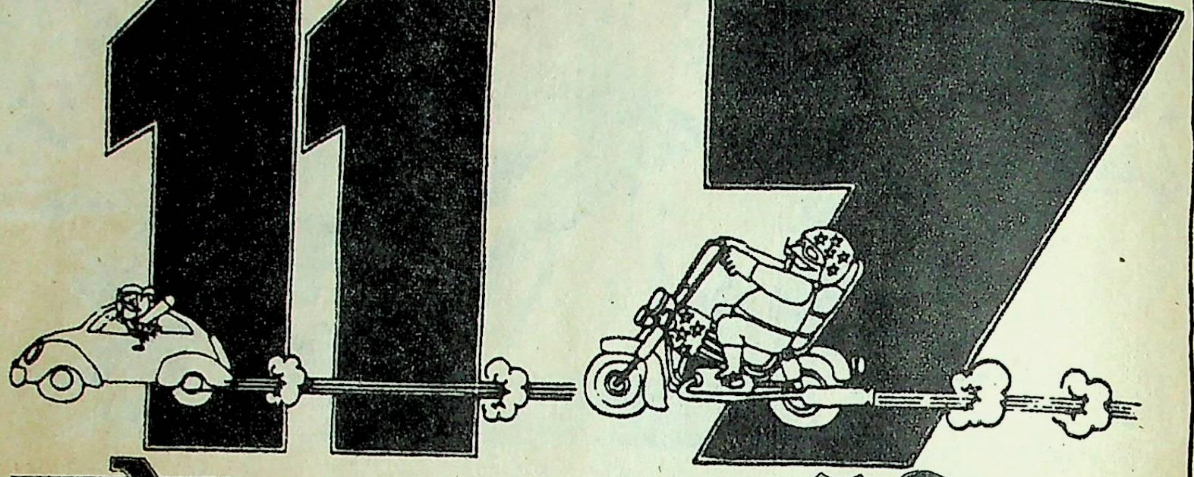

यूरोप

यूरोप के लिए सप्ताह में ११ उड़ानें
हमारे ७४७ विमान अब फिर से पहले की ही तरह उड़ानें भरने लगे हैं—सप्ताह में ८ बार लंदन के लिए, ४ बार फ्रैंकफर्ट के लिए, ५ बार रोम तथा ५ बार पेरिस के लिए और एक बार जिनेवा के लिए. हमारे ७०७ विमानों की उड़ानें भी शुरू हो गई हैं—सप्ताह में दो बार मॉस्को के लिए तथा एक-एक बार जिनेवा और लंदन के लिए.

न्यू यॉर्क

न्यू यॉर्क के लिए सप्ताह में ७ उड़ानें
सप्ताह में हर रोज़ ७४७ विमान की उड़ान—मध्य पूर्व तथा यूरोप होते हुए. और हमारे एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत यात्रा करने पर किसी भी जगह जाकर वापस लौटने का किराया एकतरफ़ा किराये से भी कम पड़ता है.

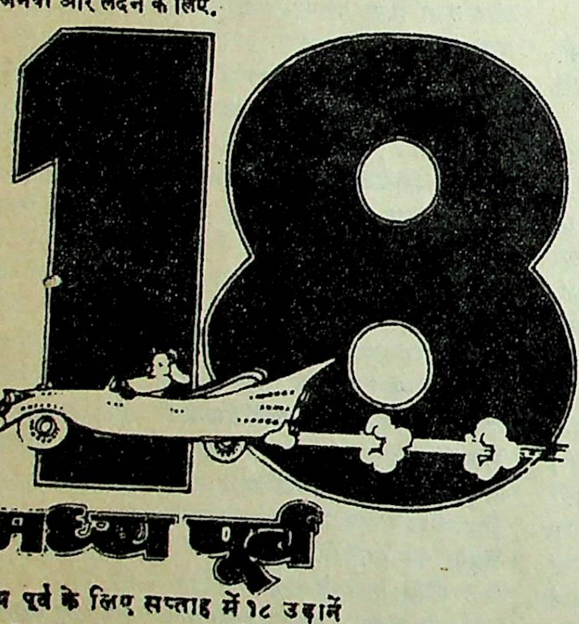

मध्य पूर्व

मध्य पूर्व के लिए सप्ताह में १८ उड़ानें
प्रति सप्ताह हम प्रस्तुत करते हैं कुवैत और बेरूत के लिए ५ उड़ानें, दुबई और बहरैन में से प्रत्येक के लिए ३ उड़ानें, आबूधाबी, दहरान और तेहरान में से प्रत्येक के लिए २ उड़ानें तथा अदन, मस्कत, दोहा और केरो में से प्रत्येक के लिए एक उड़ान.

इसके अलावा हर सप्ताह :
३ उड़ानें
पूर्वी अफ्रीका के लिए
१० उड़ानें
दक्षिण पूर्व एशिया के लिए
६ उड़ानें
जापान के लिए
२ उड़ानें
मॉरिशस के लिए
२ उड़ानें
ऑस्ट्रेलिया के लिए

एयर-इंडिया

कि एम. एल. ए. साहब साइकिल चलाते चले आ रहे हैं. साइकिल के कैरियर पर मजबूत रस्सी से एक बक्स बंधा हुआ है.

बूढ़ा किसान बोला——लगि रहा कि ओट की फसिल आय गयी तनी पानी खींच लिया रे.

छह-सात साल का एक लड़का रस्सी-डोल ले कर कच्चे कुएं की तरफ लपक गया. इतने में साइकिल पास आ गयी. किसान खड़े हो गये.

बूढ़े किसान ने सलाम किया——सलाम एमएल्ले साब.

वह साइकिल से उतरते हुए बोले——सलाम भाई, सलाम. क्या हाल चाल हैं?

नौजवान किसान बोला——अ हाल चाल कैयसा साब खाये को केत मिलत ना बा. हाल चाल कहां से होई. . .

एम. एल. ए. साहब इस बात को साफ टाल गये. वह तीन-साल के उस बच्चे के सर पर प्यार से हाथ फेरने लगे, जो उनकी तरफ गौर से देख रहा था. बोले——अरे, यह तो जरा नहीं बढ़ा.

नौजवान किसान खड़ी बोली में बोला——इ वह लड़का नहीं है जेको आप पांच बरस पहिले देख गये रहे. वह तो आप खातिर कुएं से पानी खींच रहा है. चुनाव में एही तो लंबरी खराबी है कि पांच बरिस के बाद होता है. भेंट-मुलाकात का चानस नहीं भिड़ता.

अधेड़ उम्र वाला बोला——भैया त आपको देखते ही ताड़ गये रहे कि होय न होय चुनाव का जमाना अगइल बाय नहीं त भला आपका दरसन होत इ खड़ी दुपहरिया मां!

एम. एल. ए. साहब मुसकराते रहे. उनकी मुसकराहट में एक शिकन तक नहीं पड़ी. बोले——कह लो भई, कह लो. तुम लोग नहीं कहोगे तो क्या कहने वाले किराये पर बुलाये जायेंगे रूस या चीन से. तुम लोग यही सोचते हो ना कि एम. एल. ए. साहब पांच बरस के बाद आते हैं और वह भी वोट मांगने. पर भई राम अवतार, हम तो हैं खल्क के खादिम——क्या कहते हैं, हां, जनता के सेवक. और जनता खाली इस गांव के आस पास तो रहती नहीं. सारे सूबे, मतलब परदेश का चक्कर लगाना पड़ता है. जब तक इधर का नंबर आये-आये पांच बरस बीत जाते हैं. रुपये की तरह बरस की कीमत भी बहुत लटक गयी है. दन से खतम हो जाता है.

लड़का पानी ले कर आ गया और एम.एल. ए. साहब कुल्ली करने और हाथ-मुंह धोने में लग गये. पर बोलते भी जा रहे थे कि जो वह न बोलते तो इसका खतरा था कि नौजवान किसान फिर कोई टेढ़ी बात शुरू कर देगा.——अब साइकिल नहीं चलायी जाती. थक जाता हूं. पर क्या करूं, न आऊं तो तुम लोग ताना दोगे.

बूढ़ा किसान बोला——एक ठो मोटर कीन लिजिए. सब झंझटे खतम हो जायी.

एम.एल.ए साहब आखिरी कुल्ली करने के बाद बोले——क्या बात करते हो? अरे हम वह नहीं हैं जो मोटर पर चढ़ के इंकिलाब की खबर सुनाते फिरते हैं. और कौम के गम में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ. जनता तो धूप में जले और जनता का खादिम मोटरों पर दनदनाता फिरे, तो लानत है उस आदमी पर.

बूढ़ा किसान लाजवाब-सा हो गया. बोला——बाकी. . .

पर एम.एल.ए. साहब भला उसे कहां बोलने देते. बात काट के बोले——न बाकी न जमा. इंदिरा गांधी एक दिन हम से खुद बोलीं कि एम.एल.ए. भाई, हमको भाई कहती हैं. रक्षा बंधन पर जो मैं दिल्ली न जाऊं, तो फूल जाती हैं. हां तो क्या कह रहा था मैं कि वह एक दिन खुद बोलीं कि एम.एल.ए. भाई, कहिए तो आपको एक-आधा मोटर खरिदवा दूं. मैंने कहा, बिटिया मुझे तो माफ ही रखो. हमको हवाई जहाज पर चढ़ के जनता के दुःख-दर्द का तमाशा देखने का कोई शौक नहीं है. भरी सभा में जो मैंने तड़ाक से यह कहा

की जेब से पानों की डिबिया निकाल कर पान खाने में ल

किसान परिवार मुंह खोले इस इंतिजार में कि आगे होगा.

एम.एल.ए. साहब ने पान खाने और डिबिया को जेब में र के बाद फिर बात का सिरा थामा——तो बिटिया खिसिया के हंस लगीं. अरे भई, हम क्यों दबें किसी से. हम सियासत, मतलब राज नीति का काला ब्योपार तो करते नहीं. खरे आदमी हैं और ख बोलते हैं.

नौजवान किसान तक पर रोब पड़ गया. पूछने लगा——आ परधान मंतरी से ई बोल दिया?

वह बोले——क्यों न बोलता. भाई दीनदयाल शर्मा की तरफ मु के बोलीं——हम इस साल एम.एल.ए. भाई को टिकट देना चाहते हैं शर्मा जी पूछने लगे, कितने टिकट दे दूं. मैंने पूछा, सनीमा ओनीम के टिकट की बात हो रही है क्या? इस पर शर्माजी झेंप गये औ बिटिया खिलखिला के हंसने लगीं. जब हंसी खतम हुई तब हमने बिटिया से कहा कि हम तो गांधीजी के नाम लेवा हैं. चुनाव हर गिज नहीं लड़ेंगे. पर जो हमको खुश करना चाहती ही हो तो से धरमदास को टिकट दे दो. अब मेरी बात तो वह टाल नहीं सकती थीं जगजीवन राम, दीनदयाल शर्मा, ए साहब चावन साब ने एड़ी चोटी का जोर लगा दिया कि धरमदास को किसी तरह टिकट न मिल पाये. पर बिटिया ठन गयी कि एम.एल.ए. भाई ने जिंदगी में पहल मरतबा तो कुछ मांगा है. टिकट तो उसीको मिलेगा, जिसे भाई टिक दिलवाना चाहेंगे. तो सेठ साहब को टिकट मिल गया और चुना का सारा भार मेरे सर आया. अब घूम रहे हैं गांव-गांव वो मांगते——

नौजवान बोला——ए साहब आप का कहा सिर आंख पर. पर हम काहे को वोट दें आपके कहे से? बदले में हम्में का मिलेगा? पिछले चुनाव से पहिले आप बचन दे गये रहे कि चुनाव के बाद हिया ट्युब बेल लग जायेगा. कहां है ऊ ट्युब बेल?

एम.एल.ए. साहब को ताव आ गया. बोले——क्या कहो, नहीं लगा वह ट्युब वेल? अभी खबर लेता हूं बिटिया की. जरा वह बक्सा उतरवाना.——

साइकिल के कैरियर से बक्सा उतर कर उनके सामने आया. उन्होंने उसे खोला. उसमें एक ड्राई बैट्री सेट था. लकड़ी का एक चौकोर तख्ता था. जिसमें दो बल्ब लगे हुए थे. दो प्वाइंट्स थे. टेलिफोन का एक चोंगा था. एम.एल.ए. साहब ने चोंगे का प्लग लगाया. तख्ते को बैट्री से जोड़ा. दोनों बल्ब जलने-बुझने लगे किसानों का मुंह खुले का खुला रह गया. पर एम.एल.ए.साहब उनकी तरफ देख ही नहीं रहे थे. वह तो गुस्से में नंबर डायल कर रहे थे. नंबर मिल गया. यह धाड़े——हलो. कौन? जगजीवन राम? अरे भई आपसे कौन बात कर रहा है. मैं एम.एल.ए. बोल रहा हूं.——नमस्ते नमस्ते. जरा प्रियदर्शनी को फोन दीजिए. अब आप प्रियदर्शनी को नहीं जानते? अरे साहब प्रइम मिनिस्टर. वजीरे-आजम. परधान मंत्री. अब समझे कि अरबी फारसी में भी बोलूं? क्या लोग हैं——क्या कहा? सो रही हैं. अरे तो जगा दीजिए साहब. आप क्या मक्खी झल रहे हैं——

उन्होंने किसानों की तरफ देखा जो उनके रोब के बोझ से दबे जा रहे थे. बूढ़ा किसान तो डरा-डरा-सा लग रहा था कि कहीं पता चल गया कि जगजीवन राम पर उसके पास से झाड़ पड़ी है और पुलिस ने पूछ गछ शुरू की तो वह क्या जवाब देगा. बोला——अरे रहे देई, मुला गइल होइहें. ट्युब बेल कहां भागल जात बा लग जाई.

एम.एल.ए. साहब कहां रुकने वाले थे. बोले——रहने कैसे द जी, झूटा तो मैं बना ना——हलो. बिटिया? यह सब क्या आफत मचा

१ अगस्त १९२७) आम आदमी की लड़ाई में शरीक लेखक हैं. इन्होंने अपने लेखन को आज की सही जिंदगी की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है. इनके हिंदी में पांच उपन्यास प्रकाशित हुए हैं—आधा गांव, हिम्मत जौनपुरी, टोपी शुक्ला, ओसकी एक बूंद और दिल एक सादा कागज.

मंतरी बनी क्या बैठी हो! इस्तीफा दे कर छुट्टी करो—नहीं नहीं नहीं. इस बहाने बाजी से काम नहीं आयेगा—अरे अमरीका से ट्युब वेल नहीं आया तो हम क्या करें. तुम तो वहां दिल्ली में बैठी हो. जनता का सामना तो मुझे करना पड़ता है—क्या कहा? मार्च तक जरूर लग जायेगा. ठीक है. मार्च में अब कितने दिन रह गये हैं. पर कान खोल के सुन लो कि जो मार्च तक ट्युब वेल न लग गया तो मैं फ्लोर क्रास करके अपोजिशन से मिल जाऊंगा और जो मैं अपोजिशन में चला गया तो समझ लो कि न तुम्हारी पार्टी की खैर है न तुम्हारी सरकार की—हां, हां. ठीक है. अब बंद करो फोन. तुम्हें तो कोई काम-धाम है नहीं. बस फोन ले कर बैठ गयीं—

एम.एल.ए. साहब ने फोन रख दिया और डरे हुए किसानों की तरफ देख कर उदासी से मुसकराते हुए बोले—तुम लोगों की वजह से झाड़ पड़ गयी बिचारी पर. मगर अब मार्च नहीं तो अपरैल तक ट्युब वेल जरूर लग जायेगा.—

उन्होंने बक्सा बंद किया. उसे नौजवान किसान की तरफ सरकाते हुए बोले—जरा इसे साइकिल पर चढ़ा दो. नौजवान किसान का सारा विरोध खत्म हो चुका था. जो आदमी प्रधान मंत्री को डांट पिला दे उससे डरना चाहिए.

तो एम.एल.ए. साहब अपने टेलिफोन समेत साइकिल पर चले गये और कम्युनिस्ट पार्टी यह सोचती रह गयी कि लोगों को यह कैसे बताये कि फोन यूं नहीं किये जाते. सुनेगा कौन, क्योंकि यह तो आंखों देखी बात थी. जब तक पार्टी वालों को पता चले चले यह बात जंगल की आग की तरह फैल गयी कि प्रधान मंत्री पर एम.एल.ए. साहब की डांट पड़ गयी और उन्होंने खुद वादा किया है कि मार्च में ट्युब वेल लग जायेगा.

★ ★

चुनाव का नतीजा क्या निकला यह मुझे नहीं मालूम. पर मैं सोच में पड़ गया. यह एम.एल.ए. साहब तो बहुत ही दिलचस्प आदमी हैं. यानी यह आदमी तो कहीं रुकने वाला ही नहीं है. धूल में रस्सी बटने की कहावत भी साफ समझ में आ गयी और जी चाहने लगा कि एम.एल.ए. साहब से मिला जाये. पर जिंदगी के अपने चक्कर होते हैं. आदमी जिससे मिलना चाहता है उसीसे नहीं मिल पाता और जिनसे नहीं मिलना चाहता उनसे बार बार मिलना पड़ता है और हर बार यह साबित करना पड़ता है कि उनसे मिल कर बड़ी खुशी हुई.

जिंदगी की तमाम भाग-दौड़ के बावजूद एम.एल.ए. साहब मेरे दिमाग के एक कोने में पड़े रहे और मैं उनके बारे में सोचता रहा. पर उनसे मिलने की कोई शक्ल न निकली क्योंकि हम दोनों के क्षेत्र अलग-अलग थे. वह राजनीति के ट्रेव्लिंग एजेंट थे. उठल्लू चूल्हे. आज यहां और कल वहां. और चूंकि राजनीति उनका आदर्श नहीं थी बल्कि केवल पेशा थी इसलिए उनका कोई एक मंच भी नहीं था. जैसे रंडियां मुजरे का बीड़ा लेती हैं, वह चुनाव का बीड़ा लिया करते थे. उन्हें इससे मतलब नहीं था कि चुनाव लड़ कौन रहा है. जनसंघ से ले कर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी तक वह सबका चुनाव लड़ाने को तैयार रहते थे. और चुनाव लड़ाते तो ऐसा कभी नहीं लगता कि वह किराये पर लाये गये हैं. लगता कि जो कुछ कह रहे हैं वही उनके दिल में है. उनके जानने वाले उनके रेल-टिकट को देख कर भांप लिया करते थे कि चुनाव कहीं होने वाला है? फर्स्ट क्लास में सफर करते तो बताये बिना लोग जान लेते कि चुनाव कम-से-कम असंबली का है. सेकेंड में दिखाई देते तो इसका मतलब यह निकलता कि चुनाव म्युनिसिपैलिटी या टाउन एरिया का है. थर्ड में होते तो मतलब यह कि अपने किसी काम से मजबूरन यात्रा कर रहे हैं.

कवि कवि समेलन मारते हैं मां-बाप चांटा मारते हैं. पहलवान दंगल मारते हैं. छैले आंख मारते हैं. अमरीका वाले बम मारते हैं—एम.एल.ए. साहब चुनाव मारा करते थे.

चुनाव के दिन आते तो महीनों पहले से उनकी आव भगत शुरू हो जाती. भांत-भांत के लोग उनके घर पर दिखाई देने लगते. मोल-तोल शुरू होता. चाय चल रही है. पुराने चुनावों के हथकंडे सुनाये जा रहे हैं. और साथ-ही-साथ एम.एल.ए. साहब यह मांपने में लगे हैं कि असामी कितने में कटेगा—एक आध बार तो ऐसा भी हुआ कि एम.एल.ए साहब को पता चलता कि उन्होंने एक ही कास्टिटुएंसी के दो उम्मीदवारों से पैसे ले लिये हैं. अब वह धर्मसंकट में पड़ जाते. पर वह आदमी नमक हराम नहीं थे. थे? देखिए यह बताना तो भूल ही गया कि एम.एल.ए. साहब का देहांत हो चुका है. और यह लेख नहीं श्रध्दांजली है. उन्हें थे लिखना बड़ा अजीब लग रहा ह. हो सकता है कि ऊपर भी कोई चुनाव हो रहा हो और एम.एल.ए. साहब ने वहां का बीड़ा ले लिया हो. क्योंकि जो आदमी इतना जीवित हो वह मर कैसे सकता है.

उनके मर जाने से भारतीय डिमाक्रेसी का इतना बड़ा नुकशान होगा कि मैं कह नहीं सकता. क्योंकि उनके सिवा भारत में मुझे कोई पक्का राजनीतिक दिखाई ही नहीं देता. चुनाव उनका पेशा भी था और जिंदगी भी. चुनाव हारने या जीतने में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं थी और यही उनका सबसे बड़ा गुण था.

क्योंकि घपले तो चुनाव हारने या जीतने के बाद ही शुरू होते हैं. जो जीत जाते हैं वह घूस खाना शुरू कर देते हैं और जो हार जाते हैं वह 'डिमाक्रेसी बचाओ' अंदोलन चलाने में लग जाते हैं और उस वक्त तक यह आंदोलन चलाते रहते हैं जब तक कि खुद चुनाव न जीत लें. चुनाव जीत कर वह घूस खाने में लग जाते हैं और डिमाक्रेसी बचाओ अंदोलन उनके हाथ में आ जाता है जो अब चुनाव हारे हैं.

यही कारण है कि एम.एल.ए. साहब कभी भारतीय प्रजातंत्र के भविष्य से मायूस नहीं हुए. उनका कहना था कि कोई-न-कोई तो चुनाव हारेगा ही और जो हारेगा वह अगले पांच बरसों तक प्रजातंत्र बचाओ अंदोलन अवश्य चलायेगा क्योंकि यदि इस बीच में प्रजातंत्र का देहांत हो गया तो फिर उन्हें चुनाव जीतने का अवसर ही नहीं मिलेगा.

उनका थीसिस यह था कि भारत में प्रजातंत्र चुनाव हारने वालों की अथक कोशिशों की वजह से बचा हुआ है. और साहब आप बुरा मानें या भला, इस मामले में मैं एम.एल.ए. साहब से सहमत हूं.

सुना है कि मरने से कुछ ही दिनों पहले वह एक आल इंडिया चुनाव हारन कमेटी के नाम से एक अखिल भारतीय पार्टी बनाने की सोच रहे थे और इस सिलसिले में बहुत से सुप्रसिद्ध चुनाव हारने वालों से उनकी बातचीत चल रही थी. यदि यह पार्टी बन गयी होती तो यह अपनी तरह की पहली पार्टी होती और विश्व राज-

नीति के इतिहास में उनका नाम सोने के अक्षरों से लिखा जाता. पर उनका नाम था क्या? उनके पिता [illegible] नाम किसी को याद नहीं, क्योंकि तमाम लोग उन्हें एम. एल. ए. साहब ही के नाम से जाना करते थे. उनकी पत्नी तक उन्हें एम. एल. ए. साहब ही कहा करती थीं. मैंने वोटरों की लिस्ट देखी तो पता चला कि उसमें उनका नाम ही नहीं है. वह वोटर बने ही नहीं. उनका कहना था कि जो वह वोटर बने तो किसी-न-किसी उल्लू के पट्ठे को वोट देना ही पड़ेगा. और वह किसी को इस लायक ही नहीं समझते थे कि उसे वोट दिया जाये.

बहुत छानबीन के बाद पता चला कि उनका नाम लतीफ अहमद था. नास्तिक थे इस लिए अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सटी में मौलाना कहे गये. जल्दी में पुकारना हो तो मौलाना लतीफ अहमद पुकारने में देर लगती थी. और जब तक नाम पूरा हो, यह एक-आध फर्लांग निकल जाया करते थे. क्योंकि इन्हें तेज चलने का खब्त था. खाली मौलाना पुकारो तो डिपार्टमेंट ऑफ थियालोजी का कोई विद्यार्थी मुड़ पड़ता. उन दिनों यूनिवर्सटी में १० या ११ लतीफ अहमद थे. तो मौलाना लतीफ अहमद को जल्दी में पुकारने लायक बनाने के लिए एम. एल. ए. कर दिया गया.

पहली जनवरी १९२२ को सवेरे चार बजे पैदा हुए.

इकत्तीस दिसंबर १९७४ को मरे.

होश संभालने से ले कर होश गंवाने तक केवल लड़ाते रहे.

उन्होंने अपने पीछे एक बाप, दो माएं और एक पत्नी छोड़ी.

एक आदमी की पूरी जिंदगी इन तीन जुमलों में आ गयी. तीन जुमले भी मरने के बाद मिलते हैं. जिंदगी तो एक जुमले में आ जाती है. जन्म-दिन——जो शायद इसलिए महत्वपूर्ण होता है कि उसके सहारे मरने के दिन गिनने में आसानी होती है.

पर एम. एल. ए. साहब चुनाव हारने वालों को सदा याद आते रहेंगे. उनके मर जाने से चुनाव का मजा आधे से कम रह गया. भारतीय प्रजातंत्र को उतना नुक्सान श्रीमती गांधी या श्री जयप्रकाश नारायण मिल-मिला कर भी नहीं पहुंचा सकते, उसे उतना नुक्सान मौत के फरिश्ते ने पहुंचा दिया. मैं मांग करता हूं कि उनकी मौत की छानबीन की जाये. मुझे तो इसमें साफ सी. आई. ए. का हाथ दिखाई देता है. और यदि ऐसा नहीं तो फिर यह काम——जाने दीजिए, नाम लेने से क्या फायदा. पाकिस्तान के स्वर्गवासी डॉक्टर तासीर का एक शेर याद आया :

> दावरे-हश्र मेरा नामये-आमाल न देख,
> इसमें कुछ पर्दानशीनों के भी नाम आते हैं. □□□

१० देवदूत, बांद्रा बैंडस्टैंड, बांद्रा (पश्चिम), बंबई–५०

एक लघुकथा

भूख और वित्तमंत्री

● मुकुंदमाधव मेहरोत्रा

सुबह से शाम तक मिल की भट्ठी में कोयला झोंकने के लिए मुझे एक बड़ा चमकदार सिक्का मिला. मैं बेहद थक चुका था. सारा दिन आग के पास खड़े रहने से सिर भी दुख रहा था; और बहुत जोरों की भूख भी लग आयी थी. रोटियों की तलाश में पास की एक दूकान पर पहुंचा. रोटियां खरीदने के लिए सिक्के को उंगलियों में दबा कर मैंने उसे दूकानदार की ओर बढ़ाया. तभी मुझे महसूस हुआ कि जैसे कोई मेरे हाथ से सिक्के को छीनने की कोशिश कर रहा है. क्रोध से घूम कर मैंने पीछे देखा. मुझे उसे पहचानने में कोई भी मुश्किल न हुई. इससे पहले भी मैंने उसे कई लोगों के हाथों से, इसी तरह, पैसे छीनते हुए देखा था. शायद वह पेशेवर उठाईगीर था.

इससे पहले कि मैं उसके बारे में कोई राय कायम कर पाता, वह ठठा कर हंस पड़ा.——शायद तुम मुझे अच्छी तरह नहीं पहचानते हो. मैं इस देश का वित्तमंत्री हूं! उसने अपनी नजर मेरे हाथ में दबे सिक्के पर गड़ाये रख कर ही कहा. इस सिक्के में पचास प्रतिशत हिस्सा मेरा भी है. उसकी आंखें फैल कर चौड़ी हो गयीं. वह फिर ठठा कर हंस पड़ा.

——पर, मैंने यह सिक्का सारा दिन पसीना बहा कर कमाया है. . .और फिर मैं तुम्हें जानता तक नहीं हूं. . .भला इसमें से आधा हिस्सा तुम्हारा कैसे हो सकता है? मैंने घबराहट से थूक निगलते हुए पूछा. गुस्से से मेरी ओर घूरते हुए उसने उत्तर दिया——मैं इस देश का वित्त मंत्री हूं. मैं जितना भी हिस्सा चाहूं, तुम्हारे इस सिक्के में से ले सकता हूं.

मुझे दयनीय स्थिति में देख कर वह थोड़ा नम्र हुआ.——घबराओ मत! तुमसे लिया हुआ यह पैसा बाद में तुम्हारे ऊपर ही खर्च किया जायेगा –तुम्हारे लिए रोटी और काम आदि जुटाने के लिए. मेरी समझ में कुछ भी न आ रहा था. जैसे ही उसने अपनी सतर्क नजर दूसरी ओर फेंकी, मैं वहां से भाग निकला.

भाग कर मैं एक दूसरी दूकान पर पहुंचा. मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मैंने देखा कि वह व्यक्ति मुझसे पहले ही वहां पहुंच चुका था. मैं एक दूकान से दूसरी दूकान और एक शहर से दूसरे शहर तक भागता रहा, पर वह व्यक्ति हर जगह मेरा पीछा करता रहा.

हार कर मैं अपना देश छोड़ कर पड़ोसी देश जा पहुंचा. मगर वहां भी सीमा पर से ही उस देश का वित्तमंत्री मेरे पीछे लग लिया. वह भी अपने हिस्से (टैक्स) की मांग कर रहा था. मुझे पूरा यकीन हो गया कि मैं इन लोगों के जाल में बुरी तरह फंसा गया हूं. और अब अपने सिक्के को सही सलामत बचा पाना बहुत ही मुश्किल है. उसी वित्तमंत्री ने मुझे यह भी बताया कि उसके देश में मेरे सिक्के की कीमत बहुत कम हो गयी है. मैं और भी निराश हो चला.

मैंने फिर भी हिम्मत न हारी. एक देश से दूसरे देश तक मैं लगातार दौड़ता ही रहा.

मैं बेहद थक चुका था. मैंने सोचा कि यदि सिक्के को कम पैसों में ही खर्च करना है, तो क्यों न मैं इसे अपने देश में ही खर्च करूं. मैं वापस अपने देश आ गया. उसी दूकान पर पहुंच कर मैंने फिर रोटियों की मांग की और सिक्का आगे बढ़ाया. अचानक मेरे पीछे से किसी के ठठा कर हंसने की आवाज आयी.–अब तुम इस सिक्के से कुछ भी नहीं खरीद सकते. . .अब इस सिक्के की कोई भी कीमत नहीं बची है. मैंने घूम कर पीछे देखा. हंसने वाला कोई और नहीं, मेरे देश का वित्तमंत्री ही था. उसकी हंसी सिक्कों की तरह खनक रही थी. मैं बेहोश हो कर गिर पड़ा. □□□

आम आदमी का शव

● प्रदीप पंत

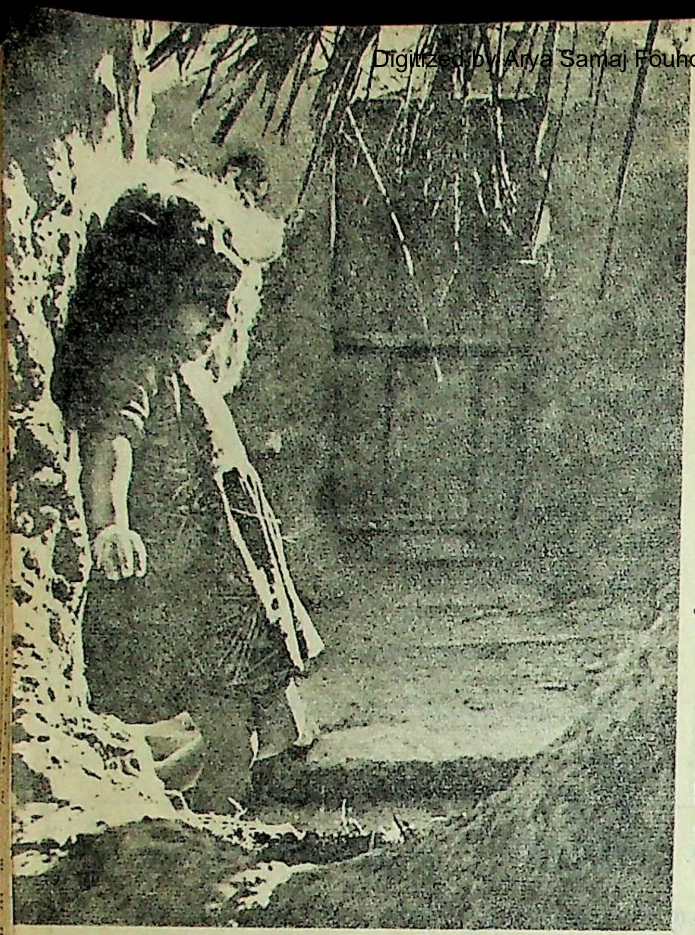

● भगवानदास रूपानी

शव जिंदा हो उठा था!

पहले शरीर में हरकत हुई थी. फिर गरदन उचकी थी और मुंह ऊपर उठा था. इसके बाद टांगें हिलीं और सिमटी थीं. फिर हथेलियों के बल पर वह एकाएक उठ खड़ा हुआ था और आश्चर्यजनक बात तो यह कि उसका एक हाथ अप्रत्याशित रूप से लंबा होता हुआ. . .

खैर, छोड़िए, इस प्रकरण को यहीं. पर बात इस तरह शुरू नहीं की जा सकती. किसका शव था वह? और कैसे एकाएक जिंदा हो उठा था? ये तथा ऐसे ही अनेक प्रश्न भी उठ सकते हैं या उठाये जा सकते हैं. लेकिन इन प्रश्नों के उत्तर खोजने से पहले उन परिस्थितियों को जान लेना आवश्यक है जिनके कारण शव जिंदा हो उठा था, या और सरल शब्दों में, उसमें चेतना आ गयी थी.

* *

यह उसी रात की घटना है, जिस रात वह प्रदेश की राजधानी पहुंचा था और कर्फ्यू उठाया जा चुका था.

वह स्टेशन से बाहर निकलने में घबरा रहा था. लेकिन फिर उसने सोचा, इस तरह घबराने से आखिर कब तक काम चलेगा? और वह स्टेशन से बाहर निकल आया था. दरअसल बाहर निकलने का एक और भी कारण था—यह जानने की उत्सुकता कि कर्फ्यू के बाद लोग कैसा महसूस करते हैं और शहर कैसा नजर आता है? वास्तव में यही उत्सुकता उसे ३०-४० किलोमीटर दूर शहर से राजधानी लायी थी.

वह स्टेशन से निकला तो उसने देखा कि सड़क पर आमदरफ्त शुरू हो चुकी थी लेकिन लोग डरे हुए थे. उनके चेहरों पर भय था, बल्कि कहा जाना चाहिए कि आतंक था. थोड़ी-थोड़ी दूरी पर सेना के जवान बंदूकें हाथ में लिए तैनात थे. उनके चेहरों पर वहशियत थी. वैसे किसी-किसी चेहरे पर विवशता भी थी, मानो वे अपना काम रोजी-रोटी की मजबूरी में कर रहे हों.

वह एक चौराहे पर पहुंचा ही था कि उसे प्रदेश के मुख्य मंत्री दिखाई दे गये. वह उसे पहचान गये थे क्योंकि पहले भी पत्रकार की हैसियत से वह उनसे मिल चुका था. उसे देख कर वह ठिठक गये. उसने उनसे पूछा—इस समय रात को आप यहां कैसे?

उन्होंने उत्तर देने की बजाय पिस्तौल उसके सामने कर दी.

वह इस स्थिति के लिए तैयार नहीं था, इसीलिए घबरा कर पीछे हट गया.

वह जोरों से हंसे, फिर बोले—घबराओ मत, यह तुम्हारे लिए नहीं है.

वह आश्वस्त हुआ और उसकी घबराहट कुछ कम हुई. उसने साहस बटोर कर पूछा—चाहे जिसके लिए भी हो, मुख्य मंत्री महोदय, लेकिन इसकी जरूरत क्यों आ पड़ी?

मुख्य मंत्री के होठों पर एक कुटिल मुस्कान आयी. उन्होंने कहा—पुलिस और सेना तो इसका इस्तेमाल जनता को सही रास्ते पर लाने के लिए कर रही है.

—और आप किसे सही रास्ते पर लाने के लिए इसका इस्तेमाल करना चाहते हैं? उसने जानना चाहा.

वे बोले—हमारी पार्टी के ये जो असंतुष्ट नेता हैं, बड़े खतरनाक हैं. ये लोग हमें हटाना चाहते हैं. इनके अगुवा पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष और महामंत्री हैं. ये लोग हमें हटा कर राष्ट्रपति शासन लागू करवाना चाहते हैं या फिर विपक्ष से मिल कर दूसरी सरकार बनाना चाहते हैं. हम इन्हें सीधे रास्ते पर लाएंगे. कह कर उन्होंने भरी हुई पिस्तौल फिर उसके सामने कर दी. वह घबरा कर पीछे हटा. वे फिर बोले, हम अब भी इनसे कहते हैं कि मान जाओ.

इतना कह कर मुख्य मंत्री हाथ में पिस्तौल थामे हुए पार्टी के असंतुष्ट नेताओं की खोज में एक गली की ओर मुड़ गए. वे अकेले थे. असंतुष्टों ने उन्हें प्रदेश की राजनीति में अकेला कर दिया था. नहीं, वे अकेले नहीं थे. उनके पास पिस्तौल भी थी और बंदूकधारी सैनिक भी.

वह उन्हें जाते हुए देखता रहा. उन्हें रोकना ठीक न था. वे क्रुद्ध थे.

वह आगे बढ़ लिया.

तभी उसे दूसरे चौराहे पर विधायकों के साथ सत्ताधारी दल के अध्यक्ष और महामंत्री दिखाई पड़ गए. विधायकों के चेहरों पर क्रांतिकारियों जैसा आक्रोश और आवेश नजर आ रहा था. वे मुख्य मंत्री की 'सत्ता' को उलट देना चाहते थे लेकिन 'व्यवस्था' को नहीं. अखबारों में उनका वक्तव्य छप चुका था, जिसके अनुसार, मुख्य मंत्री तानाशाह बनता जा रहा था और वे स्वयं जनतंत्र की रक्षा के लिए लड़ रहे थे. पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष और महामंत्री के चेहरों पर मुस्कान खेल रही थी, जैसे माओ-त्से-तुंग के चेहरे पर खेलती रहती है.

उसने सत्ताधारी पार्टी के अध्यक्ष से कहा—यह सब क्या कर दिया आप लोगों ने?

वे बोले—सांस्कृतिक क्रांति.

प्रदीप पंत (जन्म १९४१) का खयाल है कि पेशेवर राजनीति के षड्यंत्र में हमेशा साधारण जन ही मारा जाता है, लेकिन पिटने और मरने के बावजूद एक ऐसा दौर भी आता है कि यह आम आदमी पेशेवर राजनीति के लिए बड़ी चुनौती बन कर उठ खड़ा होता है. उनका उपन्यास 'एक असंभव मृत्यु' हाल में प्रकाशित हुआ है और एक व्यंग्य संकलन छप रहा है.

उसने कहा——मजाक छोड़िए,आप इस समय भी मजाक कर रहे हैं! सच-सच बताइये.

वे बोले——सच तो यह है कि क्रांति लड़कों ने की थी. हम तो बस क्रांति का फल चख रहे हैं. कर्फ्यू हटा तो हम क्रांति का फल चखने सड़कों पर आ गए.

उसकी समझ में नहीं आया कि यह आखिर कैसी क्रांति है?

उसने कहा——आपका मतलब समझा नहीं.

वे उसे एक तरफ ले गए, फिर बोले——यह साला मुख्य मंत्री मानता नहीं था, बहुत ऐंठता था. हमने ही मुख्य मंत्री बनाया और हमसे ही अकड़. जनता ने जरा-सा शोर मचा दिया, बस टैं बोल गयी.

उसने कहा——सो तो है. आखिर जनता को अनाज की दुकानों से अनाज नहीं मिल रहा था. बनिये चोर-बाजारी कर रहे थे, अमीर किसानों ने गल्ला छिपा लिया था, इसलिए जनता को तो शोर मचाना ही था...

उन्होंने बीच में ही उसकी बात काट दी——अरे, सो तो ठीक है. इसकी इजाजत तो अमीर किसानों और बनियों को हमने, मुख्य मंत्री ने और बड़े अफसरों ने मिल कर दी थी. इस मुद्दे पर तो विपक्षी दल भी हमारे साथ थे. झगड़े का कारण यह नहीं है.

——फिर क्या है? उसने पूछा.

पार्टी अध्यक्ष ने अपने साथियों की ओर इशारा करते हुए कहा, ——देख रहे हो इन्हें! इनकी काया कितनी सूख गयी है! इन्होंने कितना त्याग किया है. लेकिन फिर भी साले मुख्य मंत्री ने इनमें से किसी को मंत्रिमंडल में नहीं लिया. इसलिए क्रांति करवा दी.

उसने कहा——खैर, क्रांति की बात आप छोड़िए. बताइये, अब आपकी क्या मांगें हैं?

वे बोले——मांगें बहुत साफ और सीधी हैं—हमारे आदमियों को मंत्रिमंडल में लिया जाए या फिर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लागू किया जाए.

——अगर इन दोनों बातों में से कुछ भी नहीं किया गया तो?

——तो हम पार्टी छोड़ देंगे. पार्टी अध्यक्ष ने दृढ़ता के साथ कहा, हम पार्टी तोड़ देंगे. हम जो कहते हैं, वह करते हैं. सिद्धांतों की खातिर हम पार्टी भी छोड़ सकते हैं. फिर वे धीरे से बोले, यों भी आजकल हवा का रुख हमारे दल के विपरीत है. कह कर वे अपने असंतुष्ट साथियों के साथ आगे बढ़ लिये.

वह उन्हें जाते हुए कुछ देर तक देखता रहा. वे जिस फुर्ती और चुस्ती से चल रहे थे, उससे लग रहा था कि सचमुच क्रांति आ रही है.

कुछ देर में वह भी आगे बढ़ गया.

आगे एक चौराहे के बीचोंबीच एक शव पड़ा था, जिससे बदबू आने लगी थी. न जाने क्यों, कर्फ्यू उठ जाने के बावजूद इस शव को नहीं उठाया गया था.

वह जैसे ही शव के निकट पहुंचा, एक किनारे से दौड़ते हुए एक नेता उसके पास आ गए. उसने उन्हें आते नहीं देखा था, लेकिन उन्होंने उसे शव के पास जाते हुए देख लिया था. उन्होंने पीछे से उसे खींचते हुए कहा——ए मिस्टर, लाश को छूना मत.

उसने उनकी पकड़ से मुक्त होते हुए पूछा——आखिर क्यों? और किसका शव है यह?

वे बोले—देखते नहीं, सड़क चलते आदमी का शव है यह——तुम्हारे ही जैसे आदमी का. हम इस आदमी का फोटो प्रदेश और देश के प्रमुख समाचार पत्रों में छपवाएंगे. हमने प्रेस फोटोग्राफर बुलवाए हैं ताकि लोगों को बताया जा सके कि सरकार ने कैसी निरंकुशता बरती है.

उसने पूछा-आप कौन हैं?

——विपक्ष, कह कर वे सीना तान कर उसके एकदम सामने खड़े हो गए, मानो उसी के साथ उनका मोर्चा हो.

वह छटक कर शव के दूसरी ओर चला गया. अब उनके और उसके बीच खासा फासला था—बीच में शव था. उसने विपक्ष के नेता से कहा——अगर प्रेस फोटोग्राफर न आए तो?

वे बोले—कोई बात नहीं. सड़ने दो, हमारी राजनीति इसी पर निर्भर है.

——शव के साथ भी राजनीति, उसने आश्चर्य से कहा.

लेकिन उसे उत्तर नहीं मिला——वे गायब हो चुके थे.

★ ★

वह अवाक् खड़ा रह गया.

कुछ ही देर में प्रेस फोटोग्राफर और कुछ पत्रकार वहां आ गए. विपक्ष के नेता उनके साथ थे और उनके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान थी. तभी सत्ताधारी दल के असंतुष्ट अध्यक्ष, महामंत्री और विधायक भी पहुंच गए. भीड़ जमा होने लगी. इसी बीच भीड़ को चीरते हुए क्रुद्ध मुख्य मंत्री भी वहां आ पहुंचे. उनके पीछे-पीछे पुलिस और सेना के जवान भी संगीनें ताने आ गए. प्रेस फोटोग्राफरों ने अपना काम शुरू कर दिया. मुख्य मंत्री के इशारे पर सैनिक उन्हें अपनी गिरफ्त में लेने के लिए लपके. विपक्ष के नेता हाथापाई के लिए आगे बढ़ आए. मुख्य मंत्री से असंतुष्ट नेता नारे लगाने लगे.

लेकिन तभी एक विचित्र घटना हो गयी.

शव एकाएक जिंदा हो गया.

सबसे पहले शरीर में हरकत हुई. इसके फौरन बाद गरदन उचकी और मुंह ऊपर उठा. क्षण भर में ही टांगें हिलीं और सिमटीं और हथेलियों के बल पर वह एकाएक उठ खड़ा हुआ. उसकी आंखों से अंगारे निकलने लगे.

तमाशाई भीड़ में भगदड़ मच गयी और क्रूर सैनिकों के हाथों से न जाने कैसे बंदूकें गिर गयीं.

एक झपाटे के साथ शव ने मुख मंत्री को दबोच कर गिरा दिया. असंतुष्ट नेता बेहोश होकर गिर पड़े. विपक्ष के राजनीतिज्ञ भागते कि इसके पहले ही जीवित शव का एक हाथ अप्रत्याशित रूप से लंबा होता हुआ उनकी गरदन पर आ टिका और पंजे की जकड़ में आए हुए वे कठपुतली के धागे में बंधे हुए से पीछे खिंचते चले गए.

दरअसल शव पूरी तरह जिंदा हो उठा था और एक जीते-जागते सचेत इंसान की तरह हरकत करने लगा था. □□□

सी २।३१, पूर्वी कैलाश,
(चार मंजिली डी. डी. ए. फ्लैट्स)
नई दिल्ली –११००२४

अथवा

• राधेश्याम

मैं बाहर बिजली के खंभे के पास प्रजातंत्र का इंतजार करने लगा. वैसे उसका नाम प्रजातंत्र नहीं था. लेकिन पिछले साल उसने खुश हो कर, एक उपनाम बेदिल, बेदर्द, दीवाना आदि उपनामों की तरह रख लिया था. तभी से हम उसे प्रजातंत्र के नाम से पुकारते आ रहे थे. वास्तव में वह यहां के एक मंत्री का रिश्तेदार था. लेकिन सैद्धांतिक मतभेद होने की वजह से,अलग एक कमरा किराये पर ले कर रहता था. साथ ही साथ अपने रिश्तेदार मंत्री के दल की नीतियों के खिलाफ काम किया करता था. जब कि उस मकान का किराया भी वह उसी मंत्री से मांग लिया करता था.

मैं खड़ा हो कर उन दोनों लड़कों को देखने लगा जो एक औरत की ओर भद्दे और अश्लील संकेत कर रहे थे. वह औरत जो भिखारिन जैसी लगती थी, चुपचाप मुस्कुरा कर उनकी ओर देख रही थी. वैसे उसकी मुस्कुराहट की चालाकी को अनुभव कर चुका था, फिर भी मैं चुप लगा गया. जब भी वह हंसने लगती, उसके गंदे दांतों के बीच, दरारों में फंसे अन्न के नन्हें टुकड़े साफ झलकने लगते. यहां तक कि उसके मसूड़ों का गुलाबी रंग भी बदरंग हो कर, एक अजीब प्रकार की विरक्ति का भाव पैदा करता था. इसी बीच लड़के हंसते हुए चले गये. उनके जाते ही वह औरत बुझ-सी गयी और आसमान की ओर देखने लगी. मानों वहां से अभी-अभी टपकने वाला हो. तभी प्रजातंत्र आ गया. उसे देख कर वह औरत प्रसन्न हो गयी और उसकी तरफ लालची निगाहों से मुड़ी. उसको अपनी तरफ आते देख कर मेरा मित्र रुक गया और उसने एक अठन्नी निकाल कर दे दी. वह औरत जैसे संतुष्ट नहीं हुई.

अब मैंने काफी नजदीक से उस औरत को देखा. पर्याप्त वस्त्र नहीं रहने के कारण झूलते हुए स्तन दिखालायी पड़ रहे थे. देह पर तंग चीकट ब्लाउज बुरी तरह चरमरा गया था. उसके गले के आस-पास की हड्डियां अजीब प्रकार के सूखेपन का एहसास दिलाती थीं. उसकी टांगें नीरस और लंबी थीं. चूतड़ का हिस्सा सिकुड़ गया था.

—क्या मांग रही है,.दे दो न? मैंने स्थिति को समझते हुए कहा क्यों कि हमें उस बेशर्म औरत के साथ देख कर लोग-बाग घूरने लगे थे.

—यार, आठ आने तो दे दिये, मित्र ने खीझते हुए कहा.

—नहीं. . .आठ आना और. . .उस औरत ने काफी मद्धिम आवाज में फिर दुहराया.

—भागती है या नहीं. . . ? मैंने जरा डांट कर कहा क्योंकि अब वह हमारी उपस्थिति का एक हिस्सा बनने लगी थी.

—दे दो यार. . .रिफ्यूजी औरत है. . .क्या हैं तुम्हारे पास आठ आने? मेरे पास चिल्लर नहीं हैं. . ., प्रजातंत्र एक सांस में बोल गया. मैंने फौरन आठ आने दे कर उसे चलता किया और अपने मित्र को प्रश्नवाचक की मुद्रा में देखने लगा. फिर मैंने उसकी मुस्कराहट के उत्तर में कहा—हद हो तुम भी प्रजातंत्र. . .कितनी बू आती है, इस औरत के शरीर से!

—यार नशे में बस एक ही बू आती है और फिर इन दिनों मेरी कड़की चल रही है. . .! खैर, जाने दो. अभी तुम प्रो. दयानंद के यहां जाओ और कह देना शाम को उससे मिलूंगा. लेकिन, तुमने जो भी सोचा है, उससे मैं असहमत हूं. कम से कम उस बुलेटिन से कुछ पैसे तो मिल जाते थे.

मैंने कुछ नहीं कहा. कहना भी फिजूल था. वैसे व्यक्तिगत

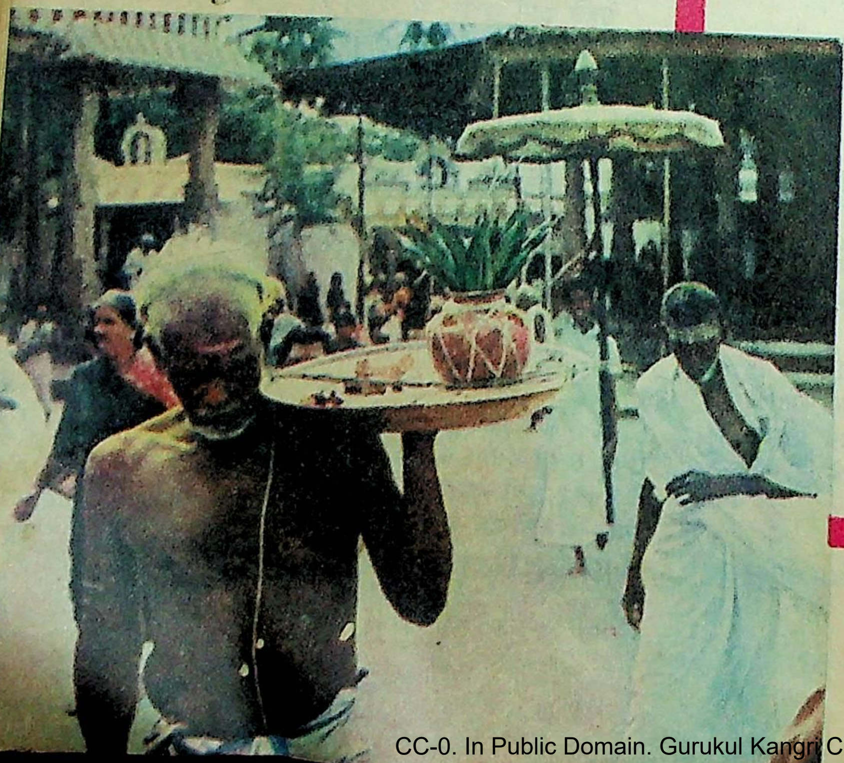

रूप से मने यह फैसला कर लिया था कि मुझे इनका साथ छोड़ देना ही चाहिए. पिछले चार सालों में मेरे तमाम मित्र कहीं न कहीं नौकरी करने लगे थे और मैं अभी तक उसी लस्टम-पस्टम स्थितियों से गुजरते हुए, अपमानित मन से इनके क्रांतिकारी विचारों का संपादन करता जा रहा था.

इनमें से अधिकांश विश्वविद्यालयों में जा लगे थे क्योंकि इनके अनुसार यही एक जगह थी, जो किसी प्रतिष्ठान या व्यवस्थात्मक नीतियों के दबाव से अलग थी और जहां रह कर क्रांति की आग को हवा देते रहा जा सकता था.

—तुमने इसका अथवा सोच लिया है? उसने क्षण भर मौन रहने के बाद पूछा.

--अभी कुछ नहीं जानता, क्या होगा? मैंने कहा.

--तुम रिस्क ले रहे हो. कम से कम अपने बच्चों के बारे में तुम्हें सोचना चाहिए. क्या, किसी सरकारी नौकरी में जाने का इरादा है? उसने फिर पूछा.

--मुझे कुछ नहीं मालूम, जो भी काम सबसे पहले मिलेगा कर लूंगा, इतना कह कर मैं चुप हो गया.

--तुम्हारे इस अचानक निर्णय पर हम लोग अगली गोष्ठी में बहस करना चाहेंगे.

—लेकिन तुम तो जानते हो मेरा स्वभाव बहस करने का नहीं है. . .

—फिर भी. . .बहस से तुम कुछ सीख सकते हो.

इस बार मैं चुप हो गया, क्योंकि बहस करना मेरी आदत नहीं थी. जब अगला मोड़ आया, तब वह जाने लगा. जाते-जाते उसने कहा--तुम प्रोफेसर दयानंद से ज्यादा बातें मत करना इस संबंध में. . .मैं उससे मिल कर समझ लूंगा.

मैं प्रोफेसर दयानंद के घर की ओर जाने लगा.

★ ★

प्रोफेसर ने 'क्रांति' शब्द को गेंद की तरह हवा में उछाल दिया और वह शब्द लुढ़कता हवा में अदृश्य हो गया. उसने भरपूर नजरों से मेरी ओर देखा और कनपटियां खुजलाते हुए पूछा---तो तुमने बिल्कुल तय कर लिया कि अब हमारा साथ नहीं दोगे.

--जी हां! मैंने दृढ़तापूर्वक कहा. कहते समय मेरा चेहरा सख्त हो गया था. उसने एकटक मेरे चेहरे को कुछ देर तक देखा और फुसफुसाया, बताओ, इस देश में क्रांति कैसे आयेगी? जब तुम्हारे जैसे पढ़े-लिखे नवयुवकों का यह हाल है. . .

वह ऐसा ही कहेगा यह मुझे पहले से ही मालूम था क्योंकि ऐसे मौके पर यह उसका आखिरी जुमला होता था. किंतु इस बार मैं पहले से ही सतर्क हो कर आया था. इसलिए उसके इस जजबाती हमले को नाकाम करने में मुझे दिक्कत नहीं हुई.

---प्रोफेसर, आप जैसे लोगों के सामने हमारी क्या बिसात? अगर आप लोग नहीं होते तो जो कुछ भी क्रांति हुई है. . .नहीं हो पाती. यह कह कर जब मैंने उसकी ओर देखा, वह तिलमिला गया. उसे इस प्रकार रूबरू बात करने का तनिक अंदेशा नहीं था इसलिए एक बार अचरज भरी दृष्टि से मुझे देख कर वह मौन हो गया. क्षण भर बाद तनिक विनीत होते हुए उसने आग्रहपूर्वक मुझे समझाया--देखो भाई, भावुकता में इतनी जल्दी निर्णय नहीं लेना चाहिए. कभी-कभी छोटी बातें भी काफी महत्वपूर्ण हो जाती हैं. यह तुम्हारी रोजी-रोटी का सवाल है. अगर तुम 'कैरियरिस्ट' होना चाहते हो तो बात अलग है. . .

मुझे उसकी बातों में कोई अर्थ नहीं मिला. मैं चुप हो गया. वह मुझे पढ़ने की कोशिश करने लगा. हठात् वह मुसकुराया किंतु मेरे सूखे होंठ महज औपचारिकता के लिए भी नहीं हिल सके. फिर वह गंभीर हो गया. मुझे भी इस प्रकार निष्प्रयोजन बैठे रहना अच्छा नहीं लगा. मैं उठ कर खड़ा हो गया. मुझे खड़ा होते देख कर उ जैसे अंतिम बार कहा--जा रहे हो? चाय पी लो. . .तुम्हारे सा मैं भी पी लूंगा. अगले अंक का मैटर प्रेस में दे दिया है?

--जी हां. . .! अगले सप्ताह छप जायगा. चाय फिर कभी लूंगा. . . ! यह कह कर मैं उसके गेट से बाहर हो गया. वह बेह चिंतित-सा हो गया. मुझे छोड़ने गेट तक आया और फाटक बंद करते हुए कहा--ऐसा करो आज शाम को तुम नाटक देखने आओ. आज हमारे बॉस का नाटक है. . क्या करें इतना घटिया नाटक भी कभी कभी देखना पड़ता है. . . आना जरूर.

मैं उसके मकान के घेरे से निकल कर सड़क पर आ गया फेफड़े से एक लंबी सांस निकली और मैं आगामी कार्यक्रमों के बारे में सोचने लगा. तत्काल मुझे त्यागपत्र देने की सूचना बनर्जी बाबू को देनी थी, क्योंकि वे ही हमारे इस गुप्त प्रेस की देखरेख कर रहे थे. जैसे ही मैं उन की ओर जाने के लिए मुड़ा, पिछली कई बातें जेहन में मुड़ने लगीं.

उन दिनों पुलिस हमारी पार्टी के पीछे हाथ धो कर पड़ गयी थी. हम लोगों में से कइयों के खिलाफ वारंट जारी किये जा रहे थे. उनमें आलम, सेनगुप्ता, प्रोफेसर दयानंद और मेरे नाम भी थे. पुलिस हमारे तमाम रिश्तेदारों को हमारी जानकारी के लिए बेहद परेशान कर रही थी. कुर्की-जब्ती के आदेश मिल गये थे. लेकिन हम चारों एक ऐसी निरापद जगह समाविस्थ हो गये थे जहां के बारे में किसी को भी कुछ मालूम नहीं था; सिर्फ काफी निकट के लोगों को छोड़ कर. छः महीने में ही सामान्य-जीवन की गतिविधियों से हम इतने कट गये थे कि हमारी हालत कैदियों के जीवन से भी बदतर हो गयी थी.

सुबह होते ही हम लोग रोटियों के बारे में सोचने लगते. बंद दरवाजे पर थोड़ी-सी आहट होती. हम चौकन्ने हो जाते. 'नौकर' को छोड़ कर, किसी दूसरे को न पा कर, हम उदास हो जाते. यह 'नौकर' एक छोटा लड़का था, जो हमारे लिए जरूरत की चीजें लाया करता. हम लोगों में से सबसे ज्यादा बेसब्र आलम हो जाता. क्योंकि वह काफी पुराना और अनुभवी फरार था. अतएव भागते-भागते काफी कमजोर हो गया था. उसकी हड्डियां निकल गयीं थी. कभी-कभी जोर से खांसने पर खून के थोके गिरने लगते थे. चूंकि उसके इलाज की व्यवस्था संभव नहीं थी, इसलिए वह दिनोंदिन कमजोर हो रहा था. उसे पुलिस के हाथों मारे जाने से नफरत थी.

तब हम रोटियों को देख कर जैसे जानवर में तब्दील हो जाते. कभी-कभी दोनों हाथों से रोटियां पकड़ कर, हबड़-दबड़ चबाने लगते. अधिकांशतः रोटियां रात की बासी और ठिठुरी हुई होतीं. फिर भी, बिना इसकी परवाह किये हम लोग मस्त हो कर पल भर में सफाया कर देते और फिर परसने के इंतजार में बैठ रहते, लेकिन कोई नहीं आता दुबारा. शुरू-शुरू में ज्यादा तकलीफ होती थी, क्योंकि कभी-कभी पेट नहीं भरता. धीरे-धीरे हम लोग इसके अभ्यस्त होने लगे थे. आलम समझाता, जेल में इस से भी भयंकर यातनायें दी जाती हैं. शुक्र है, हम लोग एक उद्देश्य के लिए जी रहे हैं. यह सुन कर हमारे अंदर थोड़ी-सी आशा जगती. हम भूख को इसी आशा से मार देते. लेकिन इसके मारने का असर हम लोगों के स्वास्थ्य पर बुरी तरह पड़ रहा था. मेरे गले के आसपास की हड्डियां भी निकलने लगी थीं. पुट्ठों के गोश्त झिंगुर गये थे. लेकिन आलम हम लोगों में से ज्यादा कमजोर था. उसे देख कर उसकी मौत का ख्याल आने लगता था.

हमें अपने हक मांगने की सजा क्यों दी जा रही है? कभी-कभी वह इस सवाल को दुहरा कर बेहताशा चीखने लगता. लेकिन उसकी यह चीख हम लोगों के कानों को खरोंच कर कहीं

गृहिणियों की सेवा में

अब प्रस्तुत है!

पराग शुद्ध घी

पराग शुद्ध घी अब आपके नगर में उपलब्ध है। आज से ही नया पराग शुद्ध घी अपनाइये—भोजन को अधिक स्वादिष्ट और पौष्टिक बनाइये।

शुद्ध दूध से हमारे अति आधुनिक डेरी प्लांट में निर्मित, पौष्टिक तत्वों से भरपूर पराग घी पूर्णतया शुद्ध एवं स्वास्थ्यवर्धक है। स्वाद में घर में बने घी जैसा। निःसंदेह इसकी लुभावनी-भीनी सुगन्ध से युक्त पकवान आपके परिवारजन खुशी से खायेंगें।

पराग घी परिवार के स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम है।

१ एवं २ किलो के मुहरबन्द डिब्बों में उपलब्ध।

पराग शुद्ध घी से एक बार जो भोजन बनाये
कोई और घी फिर उसके मन को न भाये

निर्माता :
प्रादेशिक कोआपरेटिव डेरी फेडरेशन लिमिटेड,
लखनऊ द्वारा इन्फैंट मिल्क फूड फैक्टरी,
दलपतपुर (मुरादाबाद) उत्तर प्रदेश

एगमार्क
स्पेशल
श्रेणी का
घी

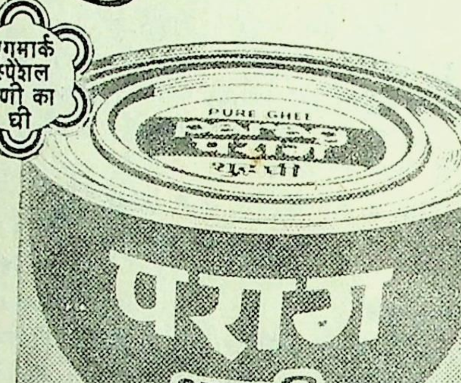
PURE GHEE
पराग शुद्ध घी
पराग
शुद्ध घी
PCDF
निर्माता
प्रादेशिक कोआपरेटिव डेरी फेडरेशन लिमिटेड
लखनऊ

पराग शिशु दुग्ध आहार
के निर्माताओं द्वारा अत्याधुनिक
डेरी प्लांट में निर्मित

अदृश्य हो जाती थी. हम लोग भी निरुत्तर थे, क्योंकि ऐसे ही सवाल हमारे अंदर भी उठा करते.

वैसे जेलों से भिन्न, हमें थोड़ी-बहुत सुविधाएं मिल जाती थीं. उतनी बंदिशें नहीं थी जितनी आम जेलों में हुआ करती हैं. हम लोग मर्करी लाइट को काफी देर तक जानबूझ कर जलाये रखते थे जिससे कि आदमी के जीवित होने का कोई सबूत हो. इस कोठरी के चारों ओर खूबसूरत फूलों के पौधे उग आये थे. किंतु हम करवटें बदले सिर्फ एक-दूसरे की सांसों की आवाजें सुनते रहते. यह एक अजीब प्रकार की सजा थी, जिसे हम भुगत रहे थे. पिछले छह-सात सालों की लंबी अवधि की असह्य, दर्दनाक स्थितियों ने हमें अपनी तमाम चीजों से अलग कर दिया था.

सिर्फ आलम ही एक ऐसा था जिसे सब कुछ याद रहता—उसकी पत्नी सिआह और उसके बच्चे. कभी-कभी वह सिआह के बारे में बहुत चिंतित होता. सिआह भी हमेशा उसे खत लिखती रहती थी, जो उसे कभी-कभी मिल जाया करते थे. अपने अकेलेपन और उसके साथ बीते क्षणों के एहसास की तल्खी से भरे पत्र लिखती. हर पत्र के अंत में लिखती—— तुम किसी तरह जल्द चले आओ. तुम्हारे बिना जी नहीं लगता.

आलम इन खतों को हमेशा पढ़ने की कोशिश करता और आवेश में खिड़कियों के सीखचों को पकड़ कर धुनने लगता. हम उसे ब-मुश्किल रोक पाते. उसे इस प्रकार चिंतित होते देख कर हम तमाम कैदी एक खूबसूरत चिड़िया की चोंच में फंसे कीड़े की तरह जीवन के लिए कुलबुलाते हुए अनुभव करते.

वह लड़का जब भी हम लोगों के लिए रोटियां लाता, उसके चेहरे पर अजीब-सी मुस्कराहट होती. एक क्षण के लिए उसकी मुस्कराहट हमें तिलमिला जाती और हमें हमारी व्यर्थता का बोध करा जाती. खाना रख कर वह कुछ देर तक हमारी जंगली हरकतें देखता और—इसी से काम चलाना होगा—कह कर चला जाता.

—हरामी का पिल्ला. . . साला खाना बुरा लेता है! मैं जानता हूं बड़ी-बड़ी जेलों में ऐसा ही होता है, आलम कहता. हम लोग खामोशी से सुनते, क्योंकि उसकी बातों में सच्चाई थी.

—नहीं. . . हमें मजबूर किया जा रहा है. यह एक साजिश है. वे जानबूझ कर हमें भूखा मारना चाहते हैं! प्रोफेसर विरोध में कहता. फिर दोनों में बहसें होतीं. देर-देर तक.

—क्या तुम्हें पार्टी में संदेह है? खीझ कर आलम पूछता.

—हां.

—तो फिर निकल क्यों नहीं जाते? मुखबिर बन कर पुलिस को बता दो कि हम यहां छिपे हुए हैं.

डाक्टर कहता—— अगर यही स्थिति रही तो. . . मेरा मतलब है मैं कैरियर नहीं बिगाड़ सकता. मैं पछता रहा हूं. . . सिर्फ मेरे भूखे मरने से क्रांति नहीं आ सकती.

आलम बौखला कर रह जाता. गुस्से में प्रोफेसर को गालियां देने लगता. फिर हम लोग बीच-बचाव करने लगते.

इसी बीच आलम की मृत्यु हो गयी. रात आधी से ज्यादा खतम हो चुकी थी, जब आखिरी दौरा पड़ा था. खून का एक गाढ़ा, काला थक्का निकल कर जमीन पर गिर पड़ा था. हम लोग उसकी मृत्यु पर चीख भी न सके. ठीक इसके तीसरे ही दिन बाद हम लोगों पर से मुकदमा उठा लेने की घोषणा की गयी थी, जब मंत्रि-मंडल बदल गया था. हम सब बेगुनाह साबित हो चुके थे.

जब मैं शाम को थियेटर हॉल पहुंचा, वह लोगों को 'रिसीव' करने में व्यस्त था. उसने मुझे देखा और इशारे से थोड़ी देर रुकने को कहा. मैं बाहर नाटक के शुरू होने का इंतजार करने लगा. लेकिन जब नाटक शुरू हो गया, तब उसने मुझे खींचते हुए ले जा कर एक खाली सीट पर बैठा दिया और बगल की सीट पर खुद बैठ गया.

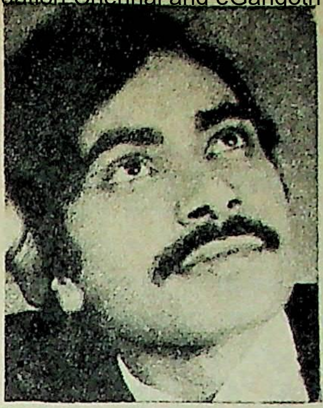

राधेश्याम ने कहानियां भी लिखी हैं और नाटक भी लिखे हैं. रंगमंच पर अभिनेता के रूप में भी उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है. कहानियां हों या नाटक, उन्होंने अपने आपको हमेशा समय-संगत कथ्य से ही जोड़े रखा है.

फिर कान के पास धीरे से फुसफुसा कर कहा—— चार फंस गये हैं! इंटरवल में निकल चलेंगे. कितना घटिया नाटक है! वैसे मैंने तुम्हारे संबंध में बातें की हैं. . . अभी हम बात करेंगे. अभी प्रजातंत्र भी यहीं आयेगा. तुम्हारा पिछला हिसाब कर देगा. तुम जल्दी मत करो. . .

जब मैंने कुछ कहना चाहा, तब उसने मेरा हाथ दबा दिया. मैं चुप हो गया. इंटरवल तक बेसब्री से नाटक देखता रहा. जैसे ही हॉल की बत्तियां जलीं, उसका चेहरा खिल गया. फुर्ती से उठ कर अध्यक्ष महोदय को बधाइयां देने लग गया. फिर उसने मुझे बाहर बुला लिया. हम दोनों कॉफी पीने लगे. इसी क्रम में उसने कहा—— देखा चूतिये को. . .? समझ रहा होगा उसने भयानक नाटक लिख मारा है. . . कूड़ा है. . . .

इतने में प्रजातंत्र आ गया.

—अरे मैं तो आप दोनों को तलाश रहा था. कैसा लगा नाटक?

—अच्छा किया तुम देर से आये. . . रब्बिश! प्रोफेसर ने कहा.

—तो फिर चलिए. इससे बातें कर लें. प्रजातंत्र ने मेरी ओर इंगित कर के कहा. इसका किस्सा तो मालूम ही है.

—हां. . . मैं सुबह भी समझा रहा था कि तुम जरा प्रैक्टिकल बनो. सरकारी नौकरी में कुछ नहीं है. व्यवस्था का विरोध. . . प्रोफेसर कुछ और कहता, तभी दूसरे लोग आ गये.

जब नाटक खत्म हो गया, तब प्रजातंत्र जबर्दस्ती प्रोफेसर को घसीट कर बाहर ले आया और टैक्सी पर हम तीनों बैठ कर प्रजातंत्र के मकान के पास आ गये. रास्ते भर प्रजातंत्र नाटक को ले कर प्रोफेसर को गालियां देता रहा था और प्रोफेसर निर्लजता पूर्वक हंसता जा रहा था. जैसे ही हम टैक्सी से उतर कर प्रजातंत्र के कमरे में दाखिल हुए, एक औरत जाने कहां से आ गयी थी. औरत साधिकार एक कोने में बैठ गयी. प्रोफेसर ने सकपका कर मेरी ओर देखा. तभी प्रजातंत्र ने कहा—— अरे हम लोग अपने आदमी है. . . शर्म की क्या बात? फिर उसने मेरी ओर सौ के तीन नोट निकाल कर बढ़ाते हुए कहा——देखो भाई,यह है पुराना हिसाब. . . लेकिन तुम त्यागपत्र देने के बारे में अभी ठंडे दिमाग से सोचो. . .

मैंने रुपये ले लिये. उसने उठ कर अलमारी से शराब की बोतल निकाली और प्रोफेसर की ओर बढ़ा दी——लो दयानंद, तुम क्रांति शुरू करो, मैं अभी आता हूं. . . इसे छोड़ कर. बाहर निकलते हुए उसने उस औरत के गाल को मसल दिया.

जब वह लौटने लगा तो गर्मजोशी से हाथ मिलाते हुए बोला—— यार, हमें निराश नहीं होना चाहिए. क्रांति एक दिन जरूर आयेगी.

वह लौट गया. जब मैं घर वापस जाने लगा तो सड़क की बिजली चली गयी. सड़कों पर अजीब-सा सन्नाटा अंधेरे में जमने लगा. मैंने रुपये को कस कर पकड़ लिया और उस खामोशी को चीरते हुए तेजी से चलने लगा. उदासी धीरे-धीरे घुलने लगी थी. . . . □□□

दूरदर्शन उपग्रह तुलसीपुर, कटक –८

सांप • बसंतकुमार

बस यही वह सड़क है जो चौराहे से उस आभिजात्य मोहल्ले में घुसती है. चौराहा, जिसके बीच में छोटा-सा गोलाकार पार्क है, इसी कारण गोल चक्कर भी कहलाता है. गोल चक्कर के एक ओर दवाओं की दो-तीन दूकानें हैं. एक मैगजीन कार्नर है, दो चाय की दूकानें हैं, दो पान की दूकानें हैं और हर शाम वहां पर कुछ चाट की दूकानें भी लगती हैं. गोल चक्कर की दूसरी ओर दो-तीन सिगरेट की दूकानें हैं. एक फल वाला तथा दो सब्जी की दूकानें हैं. इसके सामने फुटपाथ पर हर शाम अंडों की दो-तीन दूकानें लगती हैं. कुल मिला कर हर शाम वहां अच्छी भीड़ रहती है, क्योंकि तीन और मोहल्लों से निकल कर सड़कें वहीं मिलती हैं. पर एक बात है. जब भी कोई नया या संवेदनशील व्यक्ति उस आभिजात्य मोहल्ले में आता है, कुछ सोचने पर मजबूर हो जाता है. और उन्हें मजबूर करता है सड़क के दोनों किनारों पर का विरोधाभास. एक तरफ तो बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें हैं तथा दूसरी तरफ झोपड़पट्टी. तीस-चालीस झोपड़ियां एक कतार में बनी हैं.

इसी झोपड़पट्टी में अपनी माई के साथ रहता है दिनुआ. उसकी माई म्युनिसपैलिटी के एक स्कूल में दाई का काम करती है. बूढ़ी हड्डियों का दर्द एक-न-एक बार उसे हर साल परेशान करता है तथा मौसम बदलते ही उसकी खांसी बढ़ जाती है.

दिनुआ अब पच्चीस साल का हो चुका है. खूब पीता है, सामने सड़क पर खड़ा हो कर जिस - तिसको गालियां बकता है. और जब कहीं मार-पीट की नौबत आती है, तो उसमें भी सबसे आगे होता है. और इसी से उसकी माई घबराती है. क्योंकि दिनुआ का बाप भी झोपड़पट्टी का सरदार था. पर एक दिन दारू-भट्ठी से लौटते में रेलवे लाइन के पास किसी ने उसे चाकू मार दिया था और वहीं उसकी लाश पायी गयी थी . इसीलिए और सब तो ठीक, पर झगड़े-झंझट से उसकी माई बहुत डरती थी. दिनुआ था कि बस हर वक्त मरने-मारने पर उतारू. उतना दिलेर तो उस झोपड़पट्टी में कोई नहीं था. सब कहते, वह एकदम अपने बाप पर गया है. इसीलिए तो चरित्तर बाबू ने उसे झोपड़पट्टी का सरदार बना दिया था.

चरित्तर बाबू इस इलाके के गणमान्य नेता हैं. पिछले पांच चुनावों में वह बराबर विजयी होते रहे हैं. दिनुआ के बाप की तरह दिनुआ पर भी उनका पूरा विश्वास था. दिनुआ को वह मानते भी बहुत थे. चुनाव का समय नजदीक आने पर बार-बार दिनुआ की खोज होती थी. उस इलाके के सभी झोपड़पट्टी वालों का मामला वही संभालता था. उस वक्त दिनुआ को रुपये-पैसे की भी कमी नहीं रहती थी. दूसरे लोगों को लेने-देने के लिए रुपया उसे ही दिया जाता था और उसमें से वह अपने लिए कुछ अतिरिक्त बचा लेता था. लोगों को कुछ कम दे कर तथा चरित्तर बाबू के गुणों का अधिक बखान करके अपनी ओर मिला लेता था. चुनाव के समय सारे झोपड़पट्टी वालों में एक अतिरिक्त चहल-पहल शुरू हो जाती थी. हर झोपड़ी पर चरित्तर बाबू की पार्टी का झंडा लगा रहता. दिनुआ भी पूरा व्यस्त रहता था. वह तो सरदार था, इसीलिए उसे सब नजर रखनी पड़ती थी. कहीं कोई दूसरी पार्टी वाला न घुसपैठ करने लगे. खूब चौकस रहता था.

पर चुनाव के कुछ ही दिनों बाद फिर वही फाकामस्ती. माई की कमाई से ही काम चलता था. फिर तो पांच साल बाद ही चरित्तर बाबू उससे ठीक से बात करते थे. लेकिन छुपे तौर पर उसका संरक्षण हर मुश्किल के वक्त करते थे. एक बार कहीं मार-पीट में वह पुलिस के हाथों फंस गया था, तो उन्होंने ही फोन वगैरा करवाकर उसे बचाया था. पर प्रत्यक्ष रूप में वह नहीं चाहते थे कि मोहल्ले वाले यह जान पायें कि दिनुआ जैसे पियक्कड़ और गुंडे से उनकी सांठ-गांठ है. दिनुआ उनकी अप्रत्यक्ष मदद से भी बहुत आभारी रहता था और सोचता रहता था कि वक्त आने पर वह चरित्तर बाबू के लिए जान भी दे सकता है. चरित्तर बाबू के चलते ही उस मिजाज बहुत बढ़ गया था.

★ ★

उन्हीं फाका-मस्ती के दिनों की बात है. वह एक महीने की लंबी बीमारी के बाद उठा ही था. घर की हालत बहुत खराब हो गयी थी. दवा वगैरा का खर्च उठाते-उठाते उसकी माई बिल्कुल थक चुकी थी. बड़ी चिरौरी-मनौवल के बाद खजांची बाबू ने कुछ रुपया उसे अपनी ओर से दे दिया था, जिसे महीना लगने पर सूद के साथ वह काट लेने वाले थे. वह भी खत्म हो चुका था. उसकी अपनी खांसी भी इन दिनों बढ़ गयी थी. दिनुआ ने अपने एक आदमी को चरित्तर बाबू के यहां भेजा भी था. पर उस आदमी ने लौट कर बताया कि चरित्तर बाबू सरकार पलटने के मामले में बहुत फंसे हुए हैं, सो उनकी बीबी जी ने दस रुपये अंदर से भिजवा दिये. दिनुआ यह सुन कर चरित्तर बाबू एवं उनकी बीवी के प्रति और श्रद्धालु हो गया था कि वे कितने बड़े हैं कि अपने बुरे दिनों में भी हम गरीबों को नहीं भूलते! पर उसकी माई पर इन सब बातों का कोई असर नहीं हुआ था. वह उसके लिए बार्ली घोटती रहती और उसे कोसती रहती कि कोई काम-धाम करेगा नहीं, बस हर वक्त

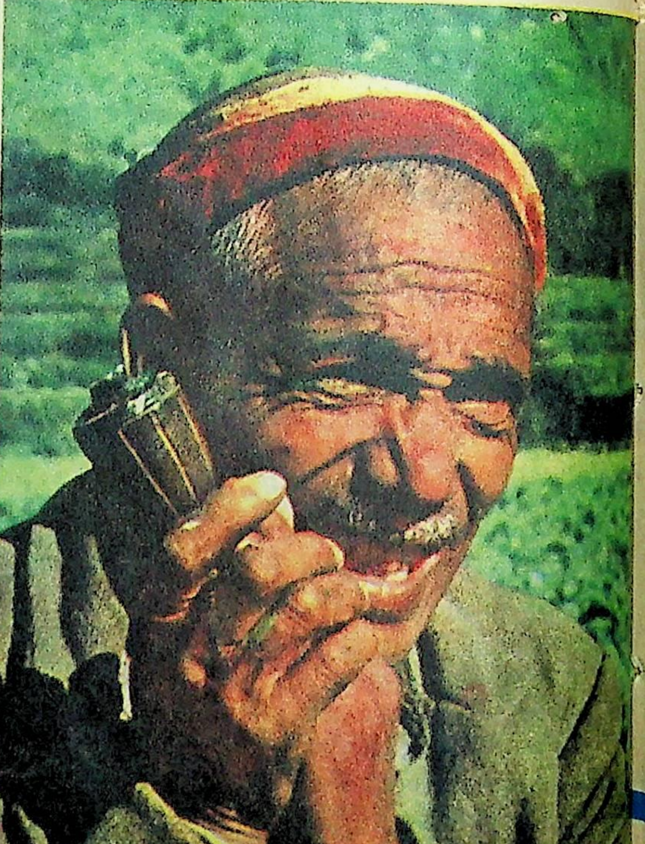

हाय चरित्तर बाबू, हाय चरित्तर बाबू! इसी चरित्तर बाबू के चलते तो बाप को दूसरा पार्टी वाला सब चाकू मार दिया. और वह रोने लगती थी. दिनुआ कई दिनों से सब देख रहा था. आज बाहर निकलने लायक हुआ था. पर कमजोरी बहुत थी. दाढ़ी बढ़ी हुई थी और बाल रुखड़े-रुखड़े-से हो गये थे. इसी हालत में बाहर निकल कर चौराहे तक चला आया था. उसके दिमाग में सिर्फ माई का रोना और पैसा घूम रहा था.

चौराहे की रौनक हर शाम की तरह उस दिन भी थी. रात्रि के नौ बज रहे थे, पर सब दूकानें खुली थीं. चौराहे के एक कोने पर, जिधर सिगरेट की दूकानें थीं, वह खड़ा था. उसके बगल में फुटपाथ पर अंडों की दो दूकानें लगी थीं. उसी समय ठेकेदार रामबहादुर बाबू की गाड़ी अंडों वालों के पास आ कर रुकी. राम बहादुर बाबू उतर कर सिगरेट की दूकान तक बढ़ आये और उनकी पत्नी वहीं पर उतर कर अंडे खरीद रही थीं. हाथ में बड़ा-सा काला पर्स लटक रहा था. उस पर्स पर नजर जाते ही दिनुआ की आंखें चमकने लगीं. उसने सोचा क्यों न यही पर्स झटके से ले कर भाग चलें. कुछ दिनों का ठौर तो हो ही जायेगा. माई भी कुछ दिनों तक नहीं रोयेगी. इतना सोचते ही उसे लगा कि उसकी कमजोरी दूर हो चुकी है. और उसने लपक कर पर्स झपट लिया और दूसरे मोहल्ले की ओर भाग चला. पर तब तक राम बहादुर बाबू सिगरेट ले कर लौट रहे थे. अपनी पत्नी की चीख के साथ साथ उन्होंने दिनुआ को एक धक्का दिया. वह गिर पड़ा. फिर वह उठ कर भागा. पूरे चौराहे पर हल्ला हो गया—पकड़ो-पकड़ो! चोर-चोर! राम बहादुर के साथ कई लोग दिनुआ के पीछे भागे. कुछ लोग यों ही जानने-समझने को अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो गये. फिर भी करीव पंद्रह-बीस लोगों की भीड़ तो दिनुआ के पीछे भाग ही रही थी. अब उसकी कमजोरी उभर आयी थी और वह हांफ रहा था. शुरू में ही गिरने के कारण उसे चोट भी बहुत आयी थी. पर वह भागता जा रहा था. किसी तरह वह दूसरे मोहल्ले की झोपड़पट्टी के पास तक पहुंच पाया और उसी में घुस गया. कलुआ की झोपड़ी के अंधेरे में वह दुबक गया. बहुत जोरों से हांफ रहा था. उसने कलुआ के हाथ में वह पर्स दिया और किसी तरह वहां से निकल जाने को कहा. कलुआ पीछे की ओर से अंधेरे में निकल गया. पर दिनुआ का निकलना अब बहुत मुश्किल था, क्योंकि कमजोरी के कारण उसके पांव-हाथ सब कांपने लगे थे. वह उसी कोने में आंखें बंद किये हांफता रहा.

—पकड़ो-पकड़ो! चोर-चोर! करती भीड़ उस झोपड़पट्टी के पास आ कर रुक गयी. कोई कह रहा था— इसी में घुसा है. चलो भीतर. भीड़ में खूब हल्ला हो रहा था. घुसने के मामले पर विचार हो रहा था कि घुसना ठीक है या नहीं? इसी बीच रामबहादुर बाबू खूब जोर से चिल्लाये—चलो भीतर, देखें कौन क्या करता है! यह सुनते ही पूरी भीड़ भीतर हेल गयी. घबड़ा कर सब औरत-मर्द अपनी झोपड़ियों से बाहर निकल आये. लड़के-बच्चे सब जोर-जोर से रोने चीखने लगे. दिनुआ को लगा कि अब बिना भागे कोई चारा नहीं है तो फिर एक बार झटके से उठ कर भागा कि 'पकड़ो-पकड़ो' का खूब जोर से हल्ला हुआ. दो-चार घूंसे उसके मुंह पर पड़े. उसकी आंखों के आगे अंधेरा छाने लगा. अंतिम बार उसने और जोर लगाया, पर वह उनकी पकड़ से भाग नहीं सका. चारों ओर से उसे गालियां और मार पड़ने लगी. कुछ लोग उसे बचाते हुए कह रहे थे—मारिए मत, इसे थाने ले चलते हैं. कुछ ने कहा— थाने ले जा कर क्या होगा? पुलिस वाला सब तो इन्हीं लोगों का है! रामबहादुर बाबू उसे कालर पकड़ कर खींच रहे थे और पूछ रहे थे— बोल, पर्स कहां है?

दिनुआ हाथ जोड़ कर रोते-रोते कहने लगा— हम नहीं लिये हैं बाबू, हमको छोड़ दो. तभी किसी ने एक घूंसा जमाया— नाटक करता है, गुंडा कहीं का! दिनुआ का पूरा बदन कमजोरी, डर और मार से कांप रहा था. मुंह से झाग निकल रहा था. उसने किसी तरह हाथ से सब पोंछा और रामबहादुर बाबू के पांव पर गिर पड़ा— सच कहते हैं बाबू, हम कुछ नहीं जानते. पांव पर गिरते वक्त उसके मन में एक धिक्कार भी उठा था— किसका पांव पकड़ रहा है? वही राम बहादुर बाबू न, जो तीन वर्ष के अंदर ही अपनी बीवी

the
merry world
of
Shreelon &
Shreester

the yarns that make
beautiful fabrics

श्रीलॉन नायलॉन यार्न– जानकार
महिलाओं की मनमोहक साड़ियों और मनोरम ड्रेस मटीरियल्स
(पोशाकों के कपड़े) बनानेवाला यार्न (धागा)
श्रीएस्टर पोलिएस्टर यार्न– तरक़्क़ीपसन्द पुरुषों की
आधुनिकतम सूटिंग और शर्टिंग बनानेवाला यार्न (धागा)
इसलिए जब हो श्रीलॉन और श्रीएस्टर का मिलन,
तो छा जाता है उमंगभरी ख़ुशियों का सावन!

श्री

बनानेवाले: श्री सिन्थेटिक्स लि., नौलखी, उज्जैन
हेड्स ऑफ़िस: श्री निवास हाउस, एच्. एम्. सोमानी मार्ग, बम्बई-४०० ००१

JAISONS 428 Delhi

की कृपा से गाड़ी-बंगले, सब का मालिक बन बैठा है! पर उनके लिए मन में गाली निकालते हुए भी वह अपने मन के धिक्कार को दबाये हुए था. उसी समय किसी ने पीछे से उसका कालर पकड़ कर उठाया---साला! चोरी करता है और झूठ बोलता है! उसने देखा, वह उसके मोहल्ले के डॉक्टर साहब का लड़का है. वही डॉक्टर साहब, जिनका भाई गांव से आया था और चटपट मर गया. अंधेरे में ही उसकी लाश मोहल्ले से निकली थी. फिर तो पूरी जायदाद के मालिक डॉक्टर साहब ही बन गये थे. पर इस बात को भी दिनुआ ने अपने मन में दबा लिया और उस लड़के के पांव पकड़ कर कहने लगा--- झूठ नहीं बाबू, माई कसम, हम कुछ नहीं जानते हैं!

किसी तरह मारते-पीटते हुए सब उसे चौराहे तक घसीट कर लाये. बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे. एक बार फिर जम कर उस पर मार पड़ने लगी. वह वहीं पर गिर पड़ा. जूता-लात-घूंसा, सब पड़ रहा था. जगह-जगह से कमीज फट गयी थी और बदन के उस हिस्से पर खून छलछला आया था. वह कभी-कभी आंख खोल कर देखता तो सब बड़ी बिल्डिगों वालों के यहां के ही लोग थे. वह सब के बारे में जानता है, पर अभी उसकी बात सुनता कौन है? इसीलिए वह रोने लगा था और अपने को सिर्फ दोनों हाथ से बचाते हुए कह रहा था-- नहीं बाबू, नहीं बाबू! उसके मुंह से खून निकल आया था. उसे लग रहा था कि वह बेहोश हुआ जा रहा है. तभी रामबहादुर बाबू ने कहा कि इसे चरित्तर बाबू के यहां ले चलो, वही इसका फैसला करेंगे. सब ने कहा--ठीक है, ले चलिए इसे वहीं. चरित्तर बाबू का नाम सुनते ही उसकी जान में जान आयी. नीम-बेहोशी की हालत में भी उसे लगा कि अब मरने से बच जायेगा. वह जरूर इन लोगों को समझा-बुझा कर लौटा देंगे. किसी तरह उसे उठा कर सब चरित्तर बाबू के कंपाउंड में पहुंचे. उसे एक तरफ जमीन पर डाल दिया गया.

मार के दर्द से उसकी अंतड़ियां भीतर ऐंठ रही थीं. पूरे शरीर पर लग रहा था घाव-ही-घाव हो गये हैं. वह मुंह के बल पड़ा था. मिट्टी और खून से उसके मुंह के भीतर बदबूदार किचकिचाहट भर गयी थी. थोड़ी-थोड़ी देर पर वह यों ही आंखें खोल-बंद कर लेता था. मात्र यही हरकत उसके शरीर में हो रही थी.

रामबहादुर बाबू के साथ कुछ लोग चरित्तर बाबू के बरामदे की ओर बढ़े ही थे कि तब तक हल्ला सुन कर चरित्तर बाबू खुद ही बाहर निकल आये. उन्हें देखते ही सब ने एक साथ बोलना शुरू कर दिया. चरित्तर बाबू सब को 'हां-हां, शांत रहिए' कहते हुए भीड़ के पास तक चले आये. हल्ला अब भी हो रहा था. किसी तरह सब को शांत करके रामबहादुर बाबू ने चरित्तर बाबू को सब बताया. दिनुआ के कान में सब बातें जा रही थीं, पर वह पूरी बात ठीक से पकड़ नहीं पा रहा था. उसे लगता सिर्फ कुछ आवाजें वह सुन रहा है. चरित्तर बाबू को सुनने के लिए किसी तरह उसने अपने आप को सजग किया. इसी समय चरित्तर बाबू ने उसे ठोकर मार कर सीधा किया और कहा-- क्यों बे साले, मोहल्ले में यही सब करता है! कोई और काम-धाम नहीं रह गया है दुनिया में करने को!

उसे लगा वह फिर बेहोश हो जायेगा. उसे चरित्तर बाबू से ऐसी उम्मीद नहीं थी. वह तो चरित्तर बाबू के बारे में भी सब जानता था--- सिर्फ दलाली का पैसा खा-खा कर ही लखपति बने हैं और वोट के समय कैसे बूथ पर उसी के द्वारा गुंडागर्दी करवा कर अपने आदमियों से सारे वोट डलवा लेते हैं. और वही इस समय. . .वह कुछ भी सोच नहीं पा रहा था कि फिर चरित्तर बाबू ने कहा--- मांग हरामजादे, सब से माफी मांग! बोल माई कसम फिर ऐसा नहीं करेगा और इनका पर्स ला कर दे! उसके सामने सब कुछ एक बार फिर घूम गया. नीचे की जमीन भी. उसने सोचा--- नहीं, नहीं अब वह माई की कसम नहीं खायेगा. फिर, किससे माफी मांगे? यहां तो सब चोर खड़े हैं. बेकार इतने दिनों तक चरित्तर बाबू के भरोसे कूद रहा था. वह भी तो बिल्डिगों वालों का आदमी निकला. माई ठीक कहती थी--- ई सबका कोई भरोसा नहीं--- सब सांप हैं. उसने खून और मिट्टी से बने लोथड़े को जोरों से थूका और माईईऽऽ कह कर झटके से चरित्तर बाबू को धक्का देता हुआ उठा और किसी तीसरी दिशा में भागा. भागते हुए वह चिल्ला रहा था--- साले सब को देख लूंगा, सबको!

इस झटके से हुई घटना से सभी सहमे-से खड़े रह गये और अब शायद उनमें इतनी ताकत भी नहीं बच रही थी कि उसके तूफानी वेग को पकड़ पाते.

□□□

१८९ बी, आर. के. एवेन्यू, राजेंद्र नगर,
पटना- ८०००१६

बसंतकुमार (जन्म : १९४५) ने स्नातक होने के बाद कई नौकरियां करने और छोड़ने की मजबूरी को भोगा. रंगमंच पर अभिनय भी करते हैं. अब तक करीब एक दर्जन कहानियां प्रकाशित.

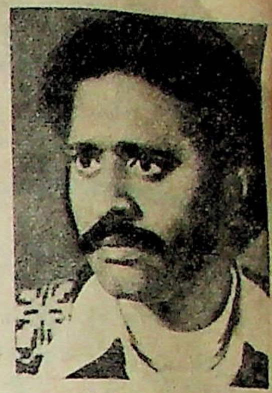

समांतर कहानी विशेषांक--७ और ८

सारिका के आगामी दो अंक
अप्रैल और मई, १९७५
दलित साहित्य विशेषांक होंगे.

अप्रैल, १९७५ : मराठी दलित साहित्य विशेषांक
मई, १९७५ : भारतीय दलित साहित्य विशेषांक

कोई एक आवाज

• बल्लभ डोभाल

नौकरी मिले कुछ ही समय हुआ है. मैं नहीं चाहता कि यह बात दुनिया तक पहुंचे. लेकिन बातें रुकती कहां हैं? फौरन पता ही नहीं चलता, बल्कि बढ़ा-चढ़ा कर ही लोग खबर पहुंचाते हैं. बच्चों से लोग पूछते हैं, 'तुम्हारे डैडी को नौकरी मिल गयी है न?' बच्चों की क्या बात है, हर बात में खुश हो लेते हैं. नौकरी जैसे कोई खिलौना है.

शहरों में काम दिनरात का है इसलिए रात में भी ड्यूटियां लग जाती हैं. वैसे भी कई लोग रात में अच्छा काम कर जाते हैं. रात में जो होता है, वह ठोस और तसल्लीबख्श है.

मुझसे लोगों की बात होती है. पत्नी की शिकायत सुनता हूं कि ड्यूटी रात की क्यों हुई? इतनी देर बाद नौकरी मिली है, वह भी रात की —न दिन आने का पता चलता है, न जाने का.

पता चलना भी नहीं चाहिये नौकरी. दिलाने वाले ने पहले ही सारा कुछ समझा दिया था. नौकरी की जो शर्तें हैं, वे सभी शर्तें मेरे आगे धर दी थीं. उसमें यह शर्त पक्की थी कि नौकरी पर आते-जाते भी कोई देख न पाये. आप सोचेंगे, यह भी क्या शर्त हुई? लेकिन जैसा तय था कि घर से ही पूरे तौर पर तैयारी करके निकलना होगा. ऐसा कि तुम दरवाजे के बाहर हुए और पत्नी-बच्चे भी तुम्हें पहचान न पायें.

ये शर्तें हैं, जिनके अनुकूल सावधान रहता हूं. रात के खाने के बाद अपने कमरे में चला आता हूं. दस-पंद्रह मिनट आराम के बहाने लंबा लेटता हूं. एक बढ़िया सिगरेट सुलगा कर मुंह में रख ली और उसके साथ-साथ अपना आराम भी खत्म होता है.

तब मैं उठ खड़ा होता हूं. परदों से खिड़कियों को ढकता हूं. फिर अटैची खोलकर चिथड़ा हुआ बरानकोट निकलता हूं, साथ में फटे टाट का पाजामा . . . यही पाजामा उसने मुझे दिया है. अलग-अलग तरह के जूते मिलाकर एक जोड़ी बना दी है, तिस पर भी दोनों जूते एक ही पैर के हैं. लेकिन इन्हें पांव में अलग-अलग पहनना है. इन्हें धारण कर चुकने के बाद अपनी दाढ़ी-मूंछ निकालता हूं. अब आप सोचेंगे – किसी नाटक कंपनी में रिहर्सल करने चला हूं. आप यह भी सोच सकते हैं कि हर आदमी अपनी-अपनी रिहर्सल पूरी कर रहा है. सब लोग कहीं न कहीं पात्र बने हैं. पात्र बनने के लिए हर कोई तैयार है, मैं भी हूं और अब कोई मुझे पहचान नहीं सकता.

इसी वेषभूषा में पहली बार जब मैंने उसे देखा तो बिलकुल पहचान नहीं पाया. उस दिन मुझे लगा कि यह आदमी भी किसी थियेटर में काम करने जाता है. या कहीं न कहीं पात्र बना हुआ है. उस दिन अचानक बात बन गयी. बात न बनती, पर मैं उसकी तलाश में जो रहने लगा था. यह आदमी कहां काम करता है, कब घर से निकलता है और क्या काम है इसका आदि, बातों की जानकारी मैं चाहता था. तब रात के कोई नौ बजे होंगे, और मैं उसके घर की तरफ जा निकला. कालोनी के आखिरी कोने में, सबसे किनारे वाला फ्लैट उसी का है. इस कालोनी में लोगों के अपने मकान हैं, सभी कुछ अपना है. कालोनी का विधिवत् नामकरण आज तक नहीं हो सका है. योजना तो यही थी कि अलग-अलग पेशेवर लोगों के लिए अलग-अलग नाम की कालोनियां बनें. इस योजना के अंतर्गत अनेक कालोनियों का निर्माण हुआ और बाकायदा उनके नाम भी रखे गये लेकिन यही कालोनी अब तक अनाम है.

इस बस्ती में वह शान से रह रहा है. रईसाना जिंदगी है. कमी कुछ नहीं. कई बार मैंने उसकी नौकरी के बारे में पूछा लेकिन वह तो कुछ बताता ही नहीं. बातों के भुलावे में डाल देता रहा. कई बार पूछने पर जब उसने कुछ बताया नहीं तो मैंने भी पूछना बंद कर दिया. लोगों के अपने-अपने काम हैं. योग्यता और सामर्थ्य के अनुकूल जब कोई काम नहीं मिलता तो कहने-सुनने का मजा जाता रहता है. यही कुछ इस आदमी के साथ है. शायद इसलिए पूछने पर बात को टाल जाता है.

* *

उस रात को जब मैं उसके दरवाजे पर पहुंचा तो दरवाजा बंद था. लेकिन कमरे में उजाला. . . चारों ओर खिड़की-दरवाजों पर परदे फैल रहे थे. पर एक जगह से परदा हट जाने के कारण खिड़की के आधे शीशे से अंदर झांका जा सकता था. झांकना मनुष्य की नियति है, पता नहीं क्यों. . .? मैंने दरवाजा खड़काने के बदले उस शीशे से अंदर की ओर झांकना पसंद किया. देखकर मेरी उत्सुकता बढ़ी, साथ ही आश्चर्य भी कम न हुआ. उसने गूदड़नुमा लंबा कोट पहन लिया था. पाजामा भी वही. . . जैसा कि मुझे दिया है. वैसे ही दो रंग के जूते पहन लिये. अब चेहरे पर दाढ़ी-मूंछ को लगाता हुआ वह बाहर निकला ही चाहता था कि मैं वहां से हट गया. मकान से लिपटी हुई घनी बेल की आड़ में जा खड़ा हुआ. अब यह आदमी कहां जाता है? उसके मेकअप को देखकर यही लग रहा था कि वह किसी थियेटर में काम करने जाता है. अपने अनुकूल काम का न मिलना कितना कष्टकर है.

अब कमरे की रोशनी बंद थी और वह बाहर निकल कर दरवाजे को ताला देने लगा. फ्लैट में किनारे वाला कमरा इसलिए अपना रखा है कि मर्जी के मुताबिक आना-जाना हो सके. बच्चों को भी किसी तरह की असुविधा न हो.

सोचा, अब इस आदमी से बात करूंगा. पूछूंगा कि कौन-सी ड्रामा कम्पनी ज्वाइन कर रखी है. अब जब कि बात खुल गयी है तो बताने में उसे भी दिक्कत महसूस नहीं होनी चाहिये, सोचकर मैं पीछे हट गया. अब वह सड़क के बीचोंबीच आ गया था. एकदम किनारा होने के कारण मद्धम रोशनी में हल्के कदम बढ़ाने लगा. लेकिन मजे की बात तब बनी जब उसने सीधी सपाट सड़क और रोशनी को छोड़ पिछले गलियारे की राह पर कदम बढ़ा लिये.

शहर के दो ही चेहरे हैं. एक चेहरे की ही तरह स्पष्ट है और दूसरा एकदम वीभत्स. . . मैला-सा. . . भवनों के प्रवेश द्वारा जितने भव्य और आकर्षक हैं, उतनी ही गंदगी उनकी पृष्ठभूमि में है.

एक लाइन में गुंथे फ्लैट्स के पिछले गलियारों में घुसकर उसने अपनी गति मंद कर ली और नई कविता के लहजे में पुकार उठा—माई बाप. . . कोई सूखी रोटी का टुकड़ा. . . कोई फटा. . .पुराना. . . तुम्हारे बाल-बच्चे बने रहें. . .बाबू शाहेब लोगों की कुर्सी बनी रहे. . .

सुनकर मैं चौंका उठा. यह किसकी आवाज है? पिछले गलियारों में जहां वह घुस गया था, वहीं से आवाज पैदा हो रही है. पिछली तरफ किचन-बाथरूम बने हैं. गलियारों में पिछले दरवाजों पर कूड़ेदान रखे हैं. गलियां, गटर सभी कुछ इस अंधेरी जगह में हैं. रोशनी न के बराबर. . . इसी आवाज को सुनकर जब कोई खिड़की या दरवाजा खुलता है तो रोशनी का एकाध टुकड़ा बाहर झांकता है. उसके इर्द-गिर्द चारों तरफ फैली धुंध में बच-बचाते हुए दूर तक चले जाते मैंने उसे देखा. . . देखता रहा.

—बाबू शाहेब की कुर्सी बनी रहे. . . माताजी . . .भूखे को कोई टुकड़ा. . . कोई फटा-पुराना. . .

कैसी दर्दनाक आवाज है! लेकिन यह आवाज है किसकी? इस कालोनी में कोई मांगने वाला नहीं आता. दिन के वक्त किसी के घुसने की हिम्मत नहीं पड़ती. रात में चौकीदार खुखरी से लैस मिलता है लेकिन इस भिखारी को कोई कुछ नहीं कहता. उसकी

आवाज पर भी प्रतिबंध नहीं. बल्कि आवाज को सुनकर ही पिछले गलियारों में दरवाजे खुलते हैं. शायद उसे कुछ देने के लिए. यह भिखारी कौन है, देख लेने के बावजूद भी मेरे मन का असमंजस बना रहा और मेरे सोचते-देखते वह कहीं दूर निकल गया.

आदमी को ठगने में कितनी देर लगती है. यह आदमी देखते-देखते मुझे बेवकूफ बना गया है. कुछ समझ में नहीं आया कि वह कौन हो सकता है. मामले को सफाई के साथ समझ लेने के खातिर अगली रात ठीक उसी वक्त मैं उसके फ्लैट पर जा पहुंचा. तब भी वह अपने मेकअप में लग रहा था. फिर वही कार्यक्रम. . . उन्हीं गलियारों में उसका घुस जाना . . . हर बीस कदम पर वही दर्दनाक आवाजें. . . बाबूशाहेब की कुर्सी बनी रहै. . . माई-बाप. . .

मैंने देखा, सभी घरों से उसे कुछ न कुछ मिल रहा है. कहीं से फटा-पुराना, कहीं से बिस्कुट, काजू-किशमिश और शायद विदेशी सिगरेट के कीमती पैकेट भी – जिन्हें वह बड़े शौक के साथ लंबे कश और बड़े शायराना अंदाज में पीता है. मिलने वाली इन चीजों को वह गूदड़ नुमा कोट की जेबों में भरता जाता है और आवाज देता हुआ आगे बढ़ता ही जाता है.

उस रात लगभग पूरी कालोनी का चक्कर लगा चुकने के बाद वह मेन रोड़ पर आ पहुंचा. इस बार मैंने उसे एक पल अपनी आंखों से ओझल नहीं होने दिया. वरना मेरी आंखें इस बार भी मानने से इन्कार कर सकती थीं.

यह वही आदमी है. अब यह कालोनी के एकान्त कोने में पेड़ के नीचे चला जायेगा. इसी जगह वह थोड़ी देर बैठता है. फटे-पुराने के नाम पर मिले हुए साबुत और नये कपड़ों को जमीन पर रख कर उनमें आग लगा देता है. फिर कोई बढ़िया सिगरेट मुंह में लगा कर आग सेंकेगा और साढ़े ग्यारह-बारह बजे तक वापस घर लौटेगा.

अब वह अपने कार्यक्रम से निवृत्त लौटने को हुआ कि बीच सड़क पर मैंने उसे रोक लिया.

——ठहरो !

वह ठहर गया. कुछ न कहकर उसने मेरे आगे हाथ फैला दिया. मन ही मन मुझे हंसी छूट आयी. इस पर उसकी झुकी हुई पलकें एक बार उठ कर फिर नीचे गिर गयीं. उसकी एक ही नजर मुझे समझने के लिए काफी थी. बोला——बाबूशाहेब. . . कोई पैसा-धेला?

मैं यों ही उसके चेहरे पर देखता रहा. वह दो कदम आगे निकल गया. मैंने फिर से लपक कर उसका रास्ता रोक लिया.

——का है बाबू! वह जैसे खीझ उठा हो.

——कुछ नहीं है, मैं तुम्हें समझना चाहता हूं. कौन हो तुम? मैंने पूछा.

——हमहि का समझो बाबू! मांग खाइत हैं. . .

इस तरह ज्यादा समय देना ठीक न समझा. मैंने कहा——बनने की कोशिश मत करो! मैं तुम्हें अच्छी तरह समझ गया हूं. अब ज्यादा एक्टिंग की तो दाढ़ी-मुंछ उखाड़ कर एक तरफ धर दूंगा. तुम्हें मालूम होना चाहिये कि घर से यहां तक तुम्हारा पीछा किया है मैंने.

सुनकर वह कमजोर पड़ गया. बोला—— तुम ठीक समझे हो. मैं वही हूं. लेकिन इस वक्त रोको नहीं, जाने दो. कल मुझे मिल लेना. कुछ जरूरी बातें तुमसे करनी हैं. अच्छा. . . मैं चलूं. कहते हुए वह निकल गया.

सोचा, इस आदमी को यह नाटक रचने की क्या जरूरत पड़ गयी है. रात भर उसी के बारे में सोचता रहा. लेकिन इस तरह सोचने से कोई बात समझ में आने वाली नहीं. जब कि वह अपने मुंह से कुछ कहेगा तभी. . .

अगले दिन उसके घर जा पहुंचा. तब वह ड्राइंग रूम में बच्चों के साथ खेल रहा था. मेरे वहां पहुंचने पर वे लोग प्रसन्न हुए. कुछ देर बैठने के बाद वह मुझे अपने वाले कमरे में लौटा लाया.

——मेरे कल के अभिनय पर तुम्हें आश्चर्य तो हुआ होगा. उसने स्वयं ही बात शुरू की.

——क्यों नहीं? मैंने कहा. मैं रात भर सो न सका. बार-बार यही एक बात मेरे सामने आती कि तुम्हें ऐसा करने की क्या जरूरत पड़ गयी है.

उसे फ़ोरहॅन्स की आदत भी सिखाइए

नियमित रूप से दाँत ब्रश करने और मसूढ़ों की मालिश करने से मसूढ़ों की तकलीफ़ और दाँतों की सड़न दूर ही रहती है

दाँतों के डाक्टर की राय में मसूढ़ों को मजबूत और स्वस्थ रखने का सर्वोत्तम उपाय है उनकी नियमित मालिश...और दाँतों को सड़ने से बचाने का सबसे बढ़िया तरीक़ा है दाँतों को हर रात और सवेरे व हर भोजन के बाद नियमित रूप से ब्रश करना ताकि सड़न पैदा करनेवाले सभी अन्न कण दाँतों में फँसे न रहें।

अपने बच्चे को दाँतों के डाक्टर द्वारा खास तौर से बनाए गये फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट से नियमित रूप से दाँतों को ब्रश करना और फ़ोरहॅन्स डबल एक्शन जूनियर टूथब्रश से मसूढ़ों की मालिश करना सिखाइए।

फ़ोरहॅन्स से दाँतों की देख-भाल सीखने में देर क्या, सवेर क्या

मुफ़्त! "आपके दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" नामक रंगीन सूचना-पुस्तिका * मुफ़्त प्राप्त करने के लिए २५ पैसे के टिकट (डाक-खर्च के लिए) इस कूपन के साथ इस पते पर भेजिए : मैनर्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई-४०० ००१

नामः__________ S.12

पताः__________ उम्रः__________

*कृपया जिस भाषा की पुस्तिका चाहिए, उसके नीचे रेखा खींच दीजिए : हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, आसामी, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़.

133F-203 HN

Forhan's
Forhan's
FOR THE
GUMS
BRUSH

फ़ोरहॅन्स
दाँतों के डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

बल्लभ डोभाल बचपन से ही घूमने और लिखने के लिए प्रोत्साहन पाते रहे. मन की अनुभूतियों के सजग रहने और उन्हें अभिव्यक्ति मिलने में ही सुख माना है.

अब तक दो सौ से अधिक कहानियां लिखी हैं जिनमें से सौ से अधिक प्रकाशित हो चुकी हैं. 'घाटियों के घेरे' (कहानी संग्रह) और 'तरंग' (उपन्यास) भी प्रकाशित हो चुके हैं.

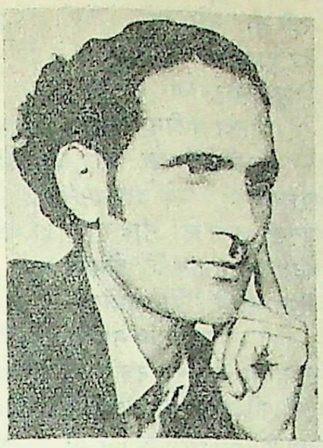

—जरूरत है, तभी तो. . . उसने धीरे से बोलना शुरू किया. तुम जानते हो, यह कालोनी उन लोगों के लिए बनी है जो समाजवाद लाने के काम में जुटे हैं. इन्हीं लोगों के जरिये समाजवाद आ रहा है. आदमी-आदमी के बीच भेद-भाव खत्म हुए जाते हैं. सबको एक बराबर लाने का काम कितना कठिन है. पर छोड़ो. . . काम के आसान और मुश्किल होने की बात नहीं है. बात दरअसल यह है कि कोई भी आदमी अपने काम से संतुष्ट नहीं. यह उसकी ईमानदारी है, या फिर. . . जाने क्यों. . . ! अपने किये पर खुद को यकीन नहीं होता. अब ये लोग सबको एक बराबर लाने का काम करते हैं, पर तुम सोचते हो कि सब लोग अपने काम से संतुष्ट हैं? कुछ लोग चाहें तो सब कुछ कर सकते हैं, कर रहे हैं, लेकिन साथ ही यह भी चाहते हैं कि कोई एक ऐसी आवाज इनके कानों में सदा आती रहे जो इन्हें अपने अस्तित्व का बोध कराती रहे. इन्हें लगे कि हां, हम भी कुछ हैं. महज इनके अस्तित्व को कायम रखने के लिए मैं रात में घूमता हूं. करुणा और आर्द्रता से टूटते हुए मेरी याचना के शब्द इनके दिलों में सुख-संतोष को जगाते हैं और इसी याचना के कारण यह कालोनी अपने जिंदा होने का एहसास करती है. वरना अब कौन किसे समझता है, कौन किसकी सुनता है. मांगना अब संभव नहीं. बराबर सबके अधिकार हैं तो लोग अपने अधिकारों को झपट कर लेना चाहते हैं. मांग कर लेना कोई नहीं चाहता.

कहते हुए वह अपनी लाचारी को मेरे सामने रखता हुआ बोला — इस काम में मुझे कोई दिक्कत नहीं है. पैसा और दूसरी चीजें आसानी से मिल जाती हैं. सब कुछ प्राप्त है, लेकिन कैसे कहूं इन सब चीजों के बावजूद मन को सुख-संतोष नहीं. मैं जिंदा रहना चाहता हूं. चाहता हूं, कोई ऐसी ही आवाज मेरे फ्लैट के आस-पास भी उभरती रहे.

कहते हुए वह यकायक रुक गया. जैसे कि रोने के पहले कोई चुप रहता है.

मन-ही-मन सोचता हूं, समानता को झेलना आदमी की नियति नहीं है. समानता मनुष्य की अंतिम स्थिति बन सकती है. वह ऊंच-नीच, छोटे-बड़े की मौत का कारण बन सकती है. इस मौत से आदमी को छुटकारा दिलाने की खातिर मैं पात्र बना हुआ हूं. उसी दिन से मेरा अभिनय आरंभ होता है. लोग कहते हैं कि मुझे नौकरी मिल गयी है. अब मैं जिंदा रह सकता हूं. पर वे नहीं जानते कि मैं जब तक हूं, तब तक मेरी आवाज लोगों को जिंदगी देती रहेगी. ☐☐☐

६३६, अलीगंज
नयी दिल्ली--३

एक लघुकथा

डाइयोजिनीज और अलेग्जेंडर

सुकरात की मृत्यु के पच्चीस वर्ष के बाद ग्रीस के अथेंस नगर में एक विचित्र हुलिये वाला व्यक्ति चर्चा का केंद्र बना हुआ था. अस्त-व्यस्त बाल, अपूर्ण वस्त्र, बदसूरत दाढ़ी और दुबले-पतले जिस्म वाला यह व्यक्ति और कोई नहीं, डाइयोजिनीज था, दर्शनिक डाइयोजिनीज!

डाइयोजिनीज ग्रीस-वासियों को संयम और सादगी की शिक्षा देता था. एक बड़े टब में दिन-रात पड़ा रहता था. यही उसका घर था. रूखा-सूखा, बासी, त्यागा हुआ और भीख में मिला भोजन ही उसका आहार था. अपने शरीर को सभी प्रकार की यातनाओं के अनुकूल बनाये रखने के लिए डाइयोजिनीज ग्रीष्म में दिन-भर तपते सूरज की आग में रेत पर लेटा रहता था और सर्दी में बर्फ-सी ठंडी प्रस्तर-प्रतिमा से लिपट कर रात बिताता था.

इन्हीं दिनों मेसेडोनिया के राजा फिलिप के प्रसिद्ध पुत्र अलेग्जेंडर ने ग्रीस के नगरों पर आक्रमण किया और अनेक शहरों को अपने अधीन कर लिया. अथेंस पर भी उसका प्रभुत्व स्थापित हुआ. धीरे-धीरे अलेग्जेंडर के कानों तक डाइयोजिनीज की विद्वता तथा विचित्रता की खबरें पहुंचीं.

अपने सैनिकों और दूतों के हाथ उसने डाइयोजिनीज को राजमहल में आने के कई निमंत्रण भेजे. डाइयोजिनीज ने किसी भी निमंत्रण पर कभी ध्यान नहीं दिया. विवश हो कर, बिना भेष बदले अलैग्जेंडर स्वयं डाइयोजिनीज से मिलने उसके टब के पास पहुंचा. जब सम्राट वहां पहुंचा, डाइयोजिनीज टब से बाहर बैठा हुआ था.

सम्राट की आशा के विरुद्ध उसे स्तब्ध करते हुए डाइयोजिनीज एक स्वाभाविक गरिमा और उपेक्षा की मुद्रा में अपने ध्यान में मग्न रहा.

और तब घटित हुआ वह ऐतिहासिक संवाद, जो किसी भी स्वाभिमानी कलाकार को न झुकने की प्रेरणा दे सकता है. अलेग्जेंडर को ही अपना परिचय देना पड़ा— मैं हूं अलेग्जेंडर— तुम्हारा सम्राट!

समानता का स्तर बरतते हुए डाइयोजिनीज ने संतुलित वाणी में उत्तर दिया— मैं हूं डाइयोजिनीज— तुम्हारा दार्शनिक.

इस अवमानना से सम्राट को धक्का लगा.पर, अभी इससे भी बढ़ कर एक और ऐतिहासिक क्षण की रचना शेष थी. उपेक्षा स्वीकार करते हुए अलैग्जेंडर ने संधि-प्रस्ताव किया—मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?

एक स्वाभिमानपूर्ण गरिमा के साथ डाइयोजिनीज ने उत्तर दिया— तुम विजय-दुंदुभि के साथ नगरों में प्रवेश कर सकते हो, पर मेरे ज्ञान के नगर में तुम्हारा प्रवेश वर्जित है. मेरी सेवा यही होगी कि मेरे नगर में घुसने की चेष्टा मत करना. और सम्राट अलेग्जेंडर इस निरस्त्र योद्धा के सम्मुख पराजित योद्धा की तरह खड़ा रह गया, चुपचाप.

(प्रस्तुतीकरण : रामदेव आचार्य)

इतने अच्छे दिन...

• कमलेश्वर

सचमुच इतने अच्छे दिन तो कभी नहीं आये थे.

पास में अगर हड्डी - गोदाम न होता, तो बहुत मुश्किल होती. सभी कुछ तो अच्छा था. तीन-चार गांव पास लगे हुए. सबके बीच में सूखे चरागाह. इतने सारे रिश्तेदारों के घर. तीन कोस पर बहती नदी. ऊंचे-नीचे टीलों वाला बियाबान. पास से जाती बस्ती की सड़क. खास सड़क पर रात में ट्रकों के रुकने का अड्डा. उस अड्डे से मील भर बायें हड्डी-गोदाम. उससे भी तीन मील भीतर रेलगाड़ी का स्टेशन.

चारों गांवों में अगर इतने रिश्तेदार, ढोर-डंगर और जानवर न होते तो भी काम नहीं चलता. और बीस मील दूर शहर में चीनी मिलें न होतीं तो भी दिक्कत होती. सड़क ऊंचे-नीचे टीलों वाले बियाबान से न गुजरती, तब भी ठीक नहीं था.

घर में छोटी बहन कमली न होती, तो कैसे काम चलता! उस बियाबान से ट्रक न गुजरते होते, तो भी दिक्कत होती. और बंतासिंह ट्रक-ड्राइवर अगर रात में कमली को उठा न ले जाता तो उसकी जिंदगी ही बरबाद हो जाती.

सब कुछ अच्छा ही हुआ था.

* *

सबसे अच्छी बात तो यह हुई कि इलाके में लगातार तीसरे साल भी अकाल पड़ गया. अकाल न पड़े तो घर-गांव का आदमी बाहर निकलता ही नहीं. जिनके अपने खेत हैं, वो तो बाहर हो आते हैं. जिनके खेत नहीं हैं, उनका तो कहीं कुछ भी नहीं है. खेत वालों के खेत पर मजूरी करना और वहीं गांव में पड़े-पड़े मर जाना. कहां कुछ और होता है!

कमली के लिए तो और भी अच्छा हुआ. वह कब कहां निकल पाती. बाला के लिए तो फिर भी ऐसा है कि एकाध गांव घूम आये. नदी तक हो आये. दर्जा पांच तक पढ़ने चले गये.

नदी तक बिना कहे-सुने बाला हो आये तो ठीक था. कह दिया तो मुश्किल होती थी. दादी उसे हटकने लगती थी——नदी पर मत जाया कर. जाये भी तो नहाना कभी मत. दादी बोलती थी तो पैर की उंगली में पड़े कासे के छल्ले को घुमाती रहती थी. शायद वह उसके गड़ता था. दादा भी यही बोलता था.

वो दोनों मानते ही नहीं थे कि वह नदी तक जायेगा और नहायेगा नहीं. और बाला को नदी में उतरते हमेशा डर लगता था. ऊपर से दादी झूठ बोलती थी——कहा न, पानी का रंग नहीं होता!

बाला हमेशा कहता था——दादी, मेरी बात सुन. मैं देख के आया हूं पानी का रंग लाल है. खून की तरह लाल!

दादा ठठाकर हंस पड़ते थे——कैसी बातें करता है रे. . .पानी का कोई रंग नहीं होता. तू नदी पर मत जाया कर. जाये भी तो नहाना कभी मत.

दादा-दादी की ये बातें असल में अब बाला को याद आती हैं. हंसी भी आती है. उनके पास और बातें ही नहीं थीं. अपन के पास तो बहुत कुछ है. बहुत कुछ क्या, सभी कुछ है.

सर्दी कुछ साली ज्यादा ही थी. जिधर से कथरी उठ जाती, उधर से हवा अर्जुन के तीर की तरह लगती. कमली खिलखिला रही थी. उसे लगा. . .चलो सब ठीक है. कमली खुद तो नहीं पीती पर ड्राइवरों की शीशी में से दो-चार घूंट बचा के रख देती है. उसके लिए...और क्या चाहिए.

साला क्लीनर ज्यादा ही खुदर-बुदर मचाये हुए था. न सोता था न सोने देता था. बार-बार बीड़ी सुलगाता है. खांसता है. कथरी खींचता है. अबे इतना जाड़ा लग रहा है तो मोबी आइल डाल के अलाव जला ले! नींद तोड़ दी साले ने. कैसी मजे की नींद आती है यहां इस सराय में. कमली यहां है तो सब ट्रक वाले बस्तियां पार करते सीधे यहीं आते हैं.

ट्रक सराय के मालिक ने भी पूरा इंतजाम कर रखा है. बड़ा सा हाता घेर कर ट्रकों की सराय बना ली है. बाहर भी दस-बारह ट्रकों की जगह है. दिन में खाने की मेजें और बेंचें पड़ जाती हैं रात को खटियां. थके-मांदे ड्राइवर और क्लीनर दिन में भी आराम कर लेते हैं. पूरी रात गुजारने के लिए तो पूरा इंतजाम है ही.

हर तरह का खाना. मुर्गा-शुर्गा खाना हो तो सामने दड़बे में से पसंद करो. अपने सामने बनवाओ-पकवाओ और खाओ. बीड़ी-सिगरेट की कमी नहीं. ग्रामोफोन भी बजता ही है.

दांत खोदते-खोदते तसवीरें देखना चाहो तो पचासों लगी हैं. भगवान की तसवीरें अच्छी लगें तो उन्हें देखो. गुरु वाणी सुननी हो तो रिकार्ड सुनो. औरतों की तसवीरें देखनी हों तो वो भी लगी हैं. लुंगी-कच्छा धोना हो तो पटिया बिछी है, ट्यूबवैल लगा है. सुखाने के लिए तार बंधा है. दिशा-मैदान के लिए सूखे खेत पड़े हैं.

——अबे तू क्यों उठ के बैठ गया? सवेरा होने में बहुत देर है. जाड़ा लगता है? अपन को बता! हेऽऽऽसाला बीड़ी सुलगा के खींचे जा रहा है. बीड़ी के जलते फूल में आंखें कैसी चमकती हैं कुत्तों की तरह—— लखन क्लीनर की.

कुत्ता भी साला बड़ा भला जानवर है.

अकाल पड़ा तो भी नहीं भागे. वहीं गांव के बियाबान में लाशों को चींथते-चींथते मर गये. गिद्ध साला बहुत तेज होता है. चार-पांच कुत्ते न लगें तो एक गिद्ध को लाश पर से हटाना मुश्किल होता है.

——तू यहां आया कैसे? लखन ने पूछा.

——तू बीड़ी पी ले, अच्छी तरह खांस ले. बताता हूं! बाला बोला था.

——हां बता!

——तो सुन! तुझे नींद क्यों नहीं आ रही? अच्छा-अच्छा सुन! ये कमली मेरी बहन है न . . .एक शाम. . .

——सच्ची! और लखन कमली की बात पर ही अटक गया.

——अबे और क्या?

——कमली लड़की अच्छी है. समझदार है. ड्राइवर कहीं और रुकता है तो भी उसी की बात करता है. एक रात ट्रक बिगड़ा तो पैदल लौटने को हुआ. तब हमीं ने ड्राइवर को समझाया. . अब दस किलोमीटर है. कोई उधर जाता ट्रक ले लो, सवेरे लौट आना. मैं तो हूं. फिर लदे हुए सामान की जिम्मेदारी भी थी. सो वह नहीं गया.

——अच्छा! तो सुन. . .ये साला बोरा बहुत महक रहा है. पहले इसे हटा दें.

——क्या है इसमें? लखन क्लीनर ने पूछा था..

——है! साली हड्डियां हैं!

लखन क्लीनर समझा नहीं. बीड़ी पी कर खांसने लगा. सर्दी में उठने की हिम्मत नहीं पड़ी तो बोरे से आती बदबू को उसने सह लिया. क्लीनर बीड़ी पीता है तो बदबू दब जाती है. बीड़ी फेंक कर क्लीनर ऊंघने लगा. अपन को क्या जरूरत पड़ी है

किस्सा सुनाने की . सोओ साले. . .

* *

सुबह उठते ही बबूल की टहनी तोड़ कर बालाने दातून की. लखन अब आराम से सो रहा था. उसे जल्दी नहीं थी. तभी एक ड्राइवर रजाई में भालू की तरह हिला. उसने उठ कर तहमद बांधा और दोनों बांहें छाती से चिपकाये दिशा-मैदान के लिए चला गया.

लखन का ड्राइवर बंता सिंह पहले ही उठ गया था. वह मैदान से लौट रहा था. छप्पर में पड़ी कमली गठरी बनी सो रही थी. उसकी खाट के पाये पर बंता सिंह की पगड़ी अजगर की तरह लिपटी रखी थी.

जल्दी उसे भी थी. उसने बोरा उठाया और सिर पर लाद कर हड्डी-गोदाम की ओर चल दिया. साला बोरा बहुत महकता है. पर दाम तो अच्छे देता है. . .कमली भी चार-पांच रुपये बना लेती है. एक-सवा रुपया बोरे भर हड्डियों का मिल जाता है. छह रुपये रोजाना कौन कमाता है साला!

यह तो अच्छा हुआ कि चीनी मिलें खुल गयीं. और यह हड्डी गोदाम भी! चीनी चमकाने के लिए शोरे की जरूरत पड़ती है. पता नहीं इन सूखी हड्डियों में से शोरा कहां से निकलता है. निकलता होगा. . .

गोदाम के तक पर बोरा फंसा कर उसने मोटी-सी गाली दे कर चंदू को पुकारा--तौल कर. . .ये साली सर्दी. . .

चंदू कहीं दिखाई नहीं पड़ा. फिर गोदाम में भरी टनों हड्डियों के बीच से आता वह दिखाई पड़ा जैसे पिंजर उठ कर चला आ रहा हो. आते ही उसने खीसें निपोर दीं.

--आज सवेरे-सवेरे आ गया. . .बाला. . .

--शाम देर हो गयी थी.

--कमली ठीक है?

वह उसका मतलब समझ गया. चंदू के दिल में एक फांस है. नहीं तो पूछने की क्या जरूरत थी? तक के दूसरे पल्ले पर बांट पटकते हुए चंदू ने फिर कहा--ये दिन पहले आ जाते तो काहे हम तीन से दो रह जाते!

चंदू का कहना तो ठीक था. पर तब यह सब व्यापार शुरू कहां हुआ था? इसीलिए तो उसने समझा दिया था. . देख चंदू, तू कमली की लगन मन से निकाल दे. . .खाने को दो के लिए नहीं है तो तीन के लिए कहां से आयेगा?

अगर ये अकाल पहले ही पड़ गया होता और हड्डियों का धंधा शुरू हो गया होता तो कौन-सी दिक्कत थी!

वह यही सब सोच रहा था कि चंदू ने तौल करके बोरा नीचे पटक दिया. चंदू के मन में बाला के लिए खयाल था. धीरे से बोला--इंगरेजी जमाने की एक कबरगाह तीन मील उत्तर में है. कबरों के पत्थर तो सब खोद ले गये, हड्डियां दबी पड़ी हैं, उन्हें खोद ला!

--उनमें से शोरा निकलेगा? बाला ने पूछा था.

--सब चीज में मिलावट होती है. हड्डियों में भी मिला देंगे! आंख दबा कर चंदू ने कहा था.

साला! बाला के मुंह से मन-ही-मन गाली निकली थी. देना चाहे तो एक के पांच रुपये भी दे सकता है. वह नहीं करेगा, पर यह सब बता कर अपनापन जतायेगा. पैसे ले कर वह चला आया था.

लेकिन चंदू ने कबरगाह की ठीक और सही खबर दी थी. हड्डियां ताजी तो नहीं थीं पर जैसे कोयले की खान हाथ आ गयी थी! जहां खोदो वहीं हड्डियां निकलती थीं! उसे लगा था, ऐसी दो-चार खानें और हाथ आ जायें तो जिंदगी ही बदल जाये! आदमी अच्छा है चंदू!

पर पुरानी हड्डियों से ज्यादा चला नहीं.

* *

असल में जब तीसरे साल भी अकाल पड़ा, तब बाला को होश आया था. अपने रिश्तेदारों की हड्डियां कितनी कीमती हैं! अपने रिश्तेदारों के ढोर-डंगरों की हड्डियां कितनी कीमती हैं. हड्डियों के लिए तब महाभारत मचा था. लोग पहरा लगाने लगे थे. . . ये हमारे रिश्तेदारों की हड्डियां हैं. . .ये उनके ढोर-डंगरों की हड्डियां हैं! इन पर हमारा हक है!

तब बाला ने जम कर लड़ाई लड़ी थी. गांव-गांव में और आस-पास रहते रिश्तेदारों की हड्डियों के लिए वह लड़ता था. ढोर-डंगरों के पिंजरों के लिए उसने लड़ाई की थी. . .

• विजय जी. दलाल

तभी दादा और दादी मरे थे. आठ दिनों की दूरी पर. और सत्ताइसवें दिन बापू मरा था. अम्मा तो आठ साल पहले ही मर गयी थी. बापू ने बहुत कहा था पर बाला नहीं माना था कि दादा की लाश को जलाया जाये!

—जलाने से क्या मिलेगा? बाला बापू पर चीखा था.

और बापू चीखा था. . .अरे कमीने! तू हड्डियां भी बेच खायेगा! ऐसी औलाद से तो निपूता ही मरता!

बापू ने जो कुछ कहा हो! पर ये दिन कैसे आते अगर बापू की बात मान लेता! खाने को क्या था? जीने को क्या था? सब तरफ तो धरती झुलसी पड़ी थी.

तभी तो उसने तय किया था कि झुलसी-तपती धरती के नीचे अगर लाश दबा दी जायेगी तो हड्डियां जल्दी साफ हो जायेंगी. गिद्ध और कुत्ते साफ करने में देर लगायेंगे. इधर-उधर खींच के भी ले जायेंगे. पर रात में कोई हड्डियां खोद न ले जाये, इसीके लिए तो उसने कमली को पहरे पर लगाया था, और वहीं से, सड़क किनारे से बंता सिंह उसे उठा ले गया था.

यह भी अच्छा ही हुआ था. अच्छे दिन आते हैं तो एक साथ आते हैं. जब बाला को पता चला था कि कमली ट्रकों की सराय में है तो वह गया था. बापू उस वक्त जिंदा तो था, पर इतना जिंदा नहीं कि सराय तक आ पाता. वह भूख से धीरे-धीरे मर रहा था. पर फिर भी जीने का कोई और रास्ता खोजने के लिए तैयार नहीं था. असल में यह बहुत भीतरी इलाका था जहां तक सरकारी मदद भी नहीं पहुंच पायी थी. जैसे खेत में सरकारी पानी जाता है न, जिस तक पहुंचा, पहुंच गया, उसके बाद . . .

होना वही था. बापू को भी मरना था.

पहले दादा मरा, उसके बाद दादी, उसके बाद बापू! रिश्तेदार और उनके ढोर-डंगर तो मर ही रहे थे.

पर तब तक बापू नहीं मरा था. शायद उसके मरने से एक दिन पहले की बात है. बाला जानवरों की हड्डियां बटोर रहा था. गिद्धों और कुत्तों के बीच. साले घसीट-घसीट कर बहुत दूर ले जाते हैं.

तब कमली उसे खोजती आयी थी. वह बाला को गिद्धों और कुत्तों के जमघट के बीच खोज ही नहीं पायी थी. उनके बीच वह घुटने मोड़े गिद्ध की तरह ही बैठा था. साफ हो गयी हड्डियों को बीनता हुआ.

जब दादी की लाश तपती जमीन के नीचे दबाने गया था तो कमली ने कहा भी था—दादी के पैर की उंगली में पड़ा चांदी का छल्ला निकाल ले!

—चांदी नहीं, कांसा है! उसने परख कर जवाब दे दिया था. कमली इतना जानती भी नहीं थी. कांसा ही होगा.

भला हो चीनी मिलों और बंतासिंह का. ये दोनों न होते तो ये दिन कैसे आते? हड्डियों की खदानें वह क्यों खोदता? कमली ट्रकों की सराय में इतने आराम से क्यों रहती?

यह साला चंदू तो पागल है जो अब भी कहीं कमली की लगन लगाये बैठा है. जो कुछ कमली औरों से पाती है, वह चंदू से तो मिलने से रहा! होगा वही, जो अब होता है, पर ऊपर से चंदू को खिलाना और पड़ेगा!

यही सब सोचता-सोचता वह हड्डियों की खदानों की ओर चला गया था. सात-आठ दिन तो इतना काम रहा कि फुर्सत ही नहीं मिली. बोरा भर-भर कर पहुंचाता रहा. चंदू तौलता रहा और कमली की बात करता रहा, पर साले ने न तौल में साथ दिया न पैसे में! है साला कमीना!

★ ★

हड्डियों की खदानों से वह आठ दिन बाद लौटा था. रात को. कमली काम से थी. वह कथरी ओढ़ कर लेट गया था. सिरहाने रखा हड्डियों का बोरा बहुत बुरी तरह महक रहा था. कमली कुड़बुला रही थी. उसने पास जा कर पूछा था. . .कौन है?

—-बस्ती का लाला है! कमली ने कहा था.

—-इस साले से दस लेना! कहते हुए बाला अपनी खाट पर आ गया था. कुछ ही देर बाद सब कुछ शांत हो गया था. यह अच्छा था. बस्ती का लाला जब भी आता था तो शुरू में शोर ज्यादा मचाता था पर आधे घंटे बाद ही सो जाता था. ड्राइवर तो रात भर हंगामा करते थे. कमली भी बुरी तरह थक जाती थी और दूसरे दिन सोती रहती थी.

कमली तो सो गयी, पर उसे नींद नहीं आ रही थी. उस बोरे के कारण. मन बहुत उचटा हुआ था. रह-रह कर दादी की याद आ रही थी.

आज सर्दी भी बहुत थी और वह गांव के पास वाले ऊंचे-नीचे बियाबान टीले से दादी की हड्डियां खोद कर लाया था.

कमली ने तो रात काट ली थी, पर वह अपनी रात नहीं काट पा रहा था. . .सड़क से ट्रक आ-जा रहे थे. कुछेक सराय पर रुक भी रहे थे.

कड़कड़ाती सर्दी और अर्जुन के तीर की तरह चलती हवा! नीम भी बड़बड़ा रहा था. अंधेरा इतना गहरा कि उठने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी.

मन तो हुआ कि कमली को जा के जगाये और कहे. . . कमली! दादी की हड्डियां इसी बोरे में हैं! बहुत महक रही हैं. इस महक के कारन सो नहीं पा रहा हूं.

पर कमली थक कर सोई थी. बस्ती वाला लाला भी पड़ा था.

उसने आंखें बंद कर सोने की कोशिश की. एक पल के लिए नींद आयी थी. कि तभी कोई ड्राइवर चीखा था. . .अबे ओए, दीना चल!

दीना सोता-ऊंघता जा कर ठंडी गद्दी पर अधलेटा हो गया था. और वह ट्रक गुर्रा कर चालू हुआ था. फिर हाथी की तरह झूमता सड़क पर जा कर कोहरे में खो गया था. कथरी ओढ़ कर वह खाट पर बैठ गया था और सड़क पर भरे कोहरे को देखता रहा था. चारों तरफ सन्नाटा था. मुर्गे तक दरबे में चुप थे. कासनी फूलों की बेल पेट्रोल पंप की गुमटी के सहारे कांप रही थी. सनसनाती हवा. मुंह से निकलती भाप. ठिठुरे हुए पेड़. सामने फैले मैदान में रोंगटों की तरह खड़ी हुई घास.

बाला ने फिर लेटने की कोशिश की. लेट भी गया. पर नींद नहीं आयी. दादी! नाराज मत होना. . . ये दिन तू भी देख लेती तो शायद कुछ आराम से मरती. अब कमली भी बच गयी है और अपन भी. व्यापार भी चल निकला है. यह अकाल न पड़ता और इतने ढोर-डंगर, नाते-रिश्तेदार न मरते तो अपन का भी वही हाल होता.

भला हो हड्डी-गोदाम का. चंदू वहीं लग गया है. कमली भी समझदार हो गयी है, दादी. अपन से उसने बात की थी कहने लगी. . .चंदू से कह दे क्या फायदा? घर बसाऊंगी तो लौट के वहीं गांव के बाहर झोपड़ी डालनी होगी. कुआं सूखेगा तो फिर इधर ही भागना पड़ेगा. तब एक-एक लोटे पानी के लिए बाह्मन-ठाकुर छोड़ देंगे क्या? अकाल तो हम लोगों के लिए पड़ता है, बाकी सबके पास तो बरसों के लिए दाना है, पानी है. . . यहां कोई यह तो नहीं पूछता, कौन जात है! अपनी जरूरत से लोग आते हैं! कल नहीं आयेंगे तो इसी सराय के बर्तन-भांडे मांज-धो कर चलता रहेगा. ऐसे दिन बार-बार हाथ नहीं आते. . .चंदू से कह दे, क्या फायदा. . .

कमली बहुत समझदार हो गयी है, दादी! तू सुन रही है न!

अर्जुन का तीर फिर लगा तो उसने कस कर कथरी लपेटी. पता नहीं कब उठके फिर बैठ गया था. कोहरे की गुफा से एक ट्रक निकल कर फिर कोहरे की गुफा में घुस गया. कुछ देर तक आवाज बजती रही.

बाला उठा. कमली को जगा ले. पर. . .

तभी उसके लिहाफ में हलचल और कुनमुनाहट हुई. लाला लिहाफ से निकल सुड़सुड़ाता हुआ खड़ा हो गया. कमली बोली. . . लेटा रह. . .बहुत जाड़ा है!

लेकिन लाला को अंधेरे-अंधेरे निकल जाना होता है. रात कहीं भी निकले, पर उसका दिन बस्ती में ही निकलता है. टोपा चढ़ा कर, चादर लपेट कर लाला पगडंडी पकड़ कर बस्ती की ओर चला गया.

बाला वैसा ही बैठा रहा. बोरे की तरफ देखता हुआ. कमली की भरक टूट गयी थी. शायद उसने लिहाफ के भीतर से देखा होगा. वह पास आके खड़ी हो गयी थी—अरे बाला! तू अभी तक जाग रहा है?

—नींद नहीं आ रही!

—थोड़ी-सी उधर पड़ी है अद्धे में. पी ले. भरक मिल जायेगी. . . सो जा. . .सो जा. . .कहते हुए कमली अपनी खाट की तरफ जाने लगी थी.

—सुन! बाला ने कहा था,

—बोल!

—दादी सोने नहीं दे रही है!

—दादी! कमली ने ताज्जुब से कहा था.

—हां. . .उसकी काया इसमें बैठी है. . .बोरे में! बाला ने कहा था. . .

—अरे हट्! कमली ने झिड़क दिया था.

—कमली! वो तो अच्छा हुआ कि कोई और खोद कर नहीं ले गया. अपन ही पहुंचे खदान पर. . .पूरा पिंजर निकला!

—ऐसे कह रहा है जैसे पहचान लिया हो! कहते हुए कमली उसी की खाट पर आधी कथरी ओढ़ कर बैठ गयी.

—दादी के पैर की अंगुली में वो कांसे का छल्ला अब भी पड़ा है. . . बाला ने कहा तो कमली आगे नहीं बोली. बोरे की तरफ देखती रही.

★ ★

पेट्रोल के दोनों पंप सफेद रजाई ओढ़े कानों में उंगली डाले खड़े थे. छप्पर के बांसों में लटके टायर पुतली निकली आंख के कोटर की तरह देख रहे थे. सड़क किनारे खड़े नीम के पेड़ों की गर्दनें कोहरे की तलवार ने काट दी थीं. ट्यूबवैल के ठंडे पाइप की बांह कच्ची गुमटी की कमर में लिपटी हुई थी. और वे दोनों वहीं खाट पर चुपचाप बैठे थे. जाड़ा बरस रहा था. अब दोनों को नींद नहीं थी. वक्त का कुछ अंदाजा नहीं था.

घुटनों पर बांहें मोड़े, ठोड़ी टिकाये कमली बैठी थी. पाटी का सहारा लिये बाला अधलेटा था. तभी सामने, दूर कोहरे के टुकड़ों के पीछे काले आकाश में कुछ हलचल-सी हुई थी. काले बादल की लोहे की किनारी थोड़ी-सी चमकी थी. . .जैसे उसके पीछे आग की भट्टी की एक दहकती लपट उठी हो. पर फिर लोहा ठंडा पड़ गया था. एक पल बाद काले लोहे की कई किनारियों पर लपट के आसार दिखाई दिये थे. . .फिर वे बुझ गये थे. पर भट्टी शायद बराबर धधक रही थी. गढ़िया लुहारों का कोई पड़ाव आसमान के पीछे है क्या? धौंकनी चल रही थी और आग बढ़ रही थी. धीरे धीरे लोहे की किनारियां पीली पड़ गयी थीं. . .जगह-जगह बादलों के ओठ नीले हो गये थे. कोहरे के चकत्ते आग ने सोख लिये थे. आसमान में जगह-जगह चीरा लग गया था. तब घास के खड़े रोंगटे सुरमई से सुनहरे हुए थे और गर्दन कटे पेड़ों के सिर नजर आने लगे थे.

बाला कसमसा कर सीधा बैठ गया था.

कमली ने पूछा था—ये हड्डियां गोदाम ले जायेगा?

—हां! बाला बोला था.

—सुन बाला. . .इन्हें नदी में सिरा दे!

बाला अचकचा कर रह गया. यही कुछ तो, कुछ इसी तरह की बात तो वह भी सोच रहा था, पर यह नहीं सोच पाया था कि दादी की काया को नदी में सिरा आये.

—ठीक है न! कमली ने कहा. . .बुरे दिन होते तो दूसरी बात थी. गोदाम में ही दे आता. . .

—हां! वह बोला. . .तड़के-तड़के निकल जाता हूं. . .नदी दूर है. दिन चढ़े तक लौट आऊंगा.

और वह बोरा उठा कर सड़क पार करके मैदान में उतर गया था, उस पगडंडी पर जो नदी की ओर जाती थी. कमली उसे तब तक देखती रही थी, जब तक वह पेड़ों के झुरमुट के पीछे अलोप नहीं हो गया था.

★ ★

कमली जा कर अपनी रजाई में गठरी बन के लेट गयी थी. आदमी साथ होता है तो टांगें पसार कर सोने में भी उतनी सर्दी नहीं लगती. भरक मिलती रहती है. पर नींद बुरी तरह घिर रही थी! लेटते ही उसे नींद आ गयी. बहुत गहरी नींद.

यह पता ही नहीं चला कि दिन पूरी तरह कब निकल आया. शोर कब होने लगा. चारों तरफ जिंदगी अपनी रफ्तार पर आ गयी थी. दरबे में मुर्गे कुड़कुड़ाने लगे थे. कुत्ते पेट्रोल पंप और सड़क तक दौड़ रहे थे. ट्रक-सराय की लंबी मेजें धुल गयी थीं. सब्जियां कट रही थीं. अंगीठियां जल गयी थीं.

रात को रुके हुए ट्रक वाले चाय-पी पी कर सफर पर निकल गये थे. ट्यूबवैल धक-धक कर रहा था. वल्कनाइजर के छप्पर में मशीन पर रबर का टांका लगाने वाले लड़के आ गये थे. सराय के मालिक ने जपुजी का रिकार्ड लगा दिया था. अगरबत्तियों की महक फैली हुई थी.

कमली नींद की मारी थी.

बाला लौटा, तब भी वह सो रही थी. आते ही उसने जगाया. आंखें मलते-मलते कमली ने पूछा—सिरा आया!

—हां! उसके दांत अब भी कटकटा रहे थे. अर्जुन के तीर तो चल ही रहे थे. . .

—अच्छा हुआ! कमली बोली.

—तुझे याद है, दादी से अपन ने हमेशा कहा—दादी मेरी बात सुन! मैं देख के आया हूं. पानी का रंग लाल है. खून की तरह लाल! दादी मानती नहीं थी. जिद करती थी. . .पानी का रंग नहीं होता! सो आज उसकी काया सिराते हुए अपन ने उससे कहा. . .ले दादी! आज देख ले. . .

कमली ने उसकी तरफ भर-आंख देखा. और चूड़ी सरकाते हुए बांहों को भरकाने लगी. उसके चेहरे पर रात का बासापन था. या शायद ठंडक की सफेदी. वह अपने गालों को रगड़ने लगी तो बाला ने देखा. . .उसके बायें गाल की सांवली चमड़ी पर खून की एक सूखी बूंद चिपकी हुई थी. वह उस पर अंगुली फिराने लगी तो बाला ने पूछा—क्या हुआ? उस साले लाला ने फिर काटा इतने जोर से?. . .

—नहीं. . ., कमली ने मामूली तरह से कहा. . .उसका तो एक दांत सोने का है न, वही गड़ जाता है. . .! कहते-कहते वह ट्यूबवैल की तरफ मुंह धोने के लिए चली गयी. □□□

नवंबर, '७३ अंक से सारिका में मीना कुमारी की इस काव्यमय डायरी की शुरुआत की गयी थी, जिसे सारिका के लिए विशेष रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं मीना कुमारी के अंतरंग मित्र व प्रसिद्ध शायर गुलजार. उन्हीं के शब्दों में "मीनाजी की डायरियों में उस कबीले का इतिहास भी है, जिसे लोग 'फिल्म वाले' कहते हैं, और साहित्य भी. . . वे निजी ज्यादा हैं. लेकिन उस वक्त की झलक जरूर देती हैं, जिसमें वह जी रही थीं——या उनके अपने लफ्जों में 'मर रही' थीं." (इस रचना के किसी अंश का उपयोग करने से पहले श्री गुलजार, ९१ ए, कोजी होम, २५१, पाली हिल, बंबई, से अनुमति लेना जरूरी है.)

मीनाकुमारी की डायरी : १४

चालीस मील लंबी मौत

• गुलज़ार द्वारा प्रस्तुत

कब्रिस्तान पहुंच कर मैं शाह विलायत साहब के कदमों में बैठ गयी. इन्हीं की औलाद में से चंदन हैं. आज भी इनके मजार पर जिंदा मोंजजा (चमत्कार) मौजूद है कि इनकी हद में आने के बाद बिच्छू नहीं काटता, और यहां बिच्छू बेइंतिहा हैं. उन बिच्छुओं के डंक हैं, लेकिन जब उन्हें हाथ में उठाते हैं तो वे अपने डंक मोड़ लेते हैं. कई अंग्रेज नैनीताल के मशहूर जहरीले बिच्छू ला कर इस मजार पर रख देते हैं, आजमाने के लिए. और उन्हें भी बहुत ताज्जुब होता है और यकीन लाना पड़ता है. मैंने भी एक बिच्छू अपने हाथ में उठा लिया था. यहां एक और हैरत-अंगेज (आश्चर्यजनक) बात देखने में आती है कि एक मजार है दादी 'बखुई' का. इनके मजार के सिरहाने एक दरख्त बिलकुल बालों की चोटी की शक्ल का काफी ऊंचा गया हुआ है. इस पर कोई शाख या पत्ता नहीं है. लेकिन उर्स के जमाने में जब इसके तने को पकड़ कर झंझोड़ा जाये तो न मालूम कहां से जमीन पर इलायची-दाने बिखर जाते हैं. कितनी अजीब बात है यह!

इस कब्रिस्तान में मेरी बड़ी प्यारी शख्सियत सो रही है. मेरी बड़ी ननद, जिनका दो महीने पहले इंतकाल हुआ. अजीब इत्तफाक है कि इसी सफर का जिक्र करते हुए मैंने उनसे वादा किया था कि मैं उनसे मिलने आऊंगी, यह

नज़्म

खाली डिब्बा है फकत, खोला हुआ, चीरा हुआ
यूं ही दीवारों से भिड़ता हुआ, टकराता हुआ
बेवजह सड़कों पे बिखरा हुआ, फैलाया हुआ
खड़खड़ाता हुआ बस खाली लुढ़कता हुआ डिब्बा

यूं भी होता है कोई खाली-सा बेकार-सा दिन
ऐसा बेरंग-सा, बेमानी-सा, बेनाम-सा दिन.

☐ **गुलजार**

दादा किस दर्दनाक सूरत में पूरा हुआ! मुझे बार-बार यूं महसूस हो रहा था जैसे दादा जी ने मुझे बुलवाया है; वरना इस सूरत-ए-हाल में मेरा यहां आना क्या मानी रखता है? जरूर उन्हीं का बुलावा था.

यहां से निकलते ही हमारा घर नजर आने लगा. चंदन के बताये बगैर मैं पहचान गयी कि मेरा घर कौन-सा है. मेरा बहुत जी चाहा कि मैं वहां जाऊं, मगर बाकर भाई कहने लगे कि अमरोहा में ठहरने के लिए सिर्फ अमरोहा के लिए सफर करना चाहिए, यह बुरी बात है कि यहां भी बस पड़ाव की सूरत हो. खैर, मैंने अहद (निश्चय) कर लिया कि इस मुहर्रम में मैं जरूर अमरोहा जाऊंगी.

वापसी में स्टेशन के पास केवल क्रॉसिंग पर रुकना पड़ा. दूसरी तरफ गुड़ और शक्कर का कारखाना था. गन्ने से लदी हुई बैलगाड़ियां खड़ी थीं. इसलिए गाड़ी में मक्खियां जमा हो गयीं. शानदार कहने लगे—छोटी अम्मी, आपने अमरोहा भी देख ही लिया? कितना अच्छा है ना? एक जरा मक्खियां बहुत हैं, नहीं? मैंने बे-अख्तियार जवाब दिया—तुम्हारा अमरोहा इस कदर मीठा है कि मक्खियां यहां जमा न हों तो कहां जायें?

बाकर भाई हंसते हुए कहने लगे—आय-हाय, अपने ससुराल को न कहोगी तो क्या कहोगी?

(क्रमशः)

अब सारिका

नये रूप नये आकार और नयी सज्जा में

अब अप्रैल १९७५ अंक से सारिका आपको नये रूप और आकार में उपलब्ध होगी. सारिका के वर्तमान आकार का कागज अकसर समय पर नहीं मिल पाता था, साथ ही कुछ तकनीकी कारण भी थे जिनके कारण हमें सारिका के आकार में कुछ परिवर्तन करना पड़ रहा है. हालांकि यह परिवर्तन अधिक नहीं है लेकिन इससे सारिका अधिक ग्राह्य हो जायेगी. कीमत और पृष्ठ संख्या में कोई अंतर नहीं आया है.

इस अंक के लेखक —

○ अण्णाभाऊ साठे ○ बाबूराव बागूल
○ अर्जुन डांगले ○ दया पवार
○ वामन होवाल ○ नामदेव लक्ष्मण ढसाल
○ शंकरराव खरात ○ भास्कर चंदन शिव
○ केशव मेश्राम ○ प्र.ई. सोनकामळे
○ भीमराव शिरवाले. आदि
तथा सभी स्थायी स्तंभ

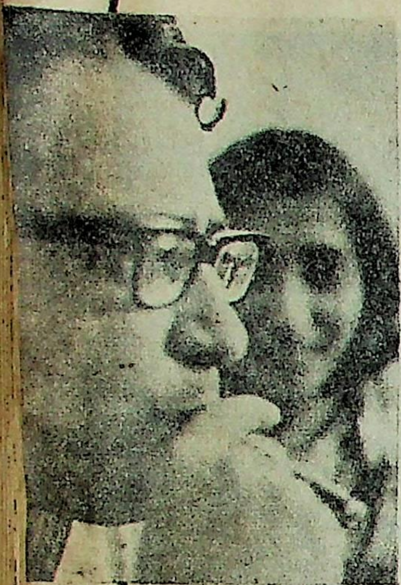

• जतीनदास

राकेश के पहले/राकेश के साथ/राकेश के बाद : यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (१६)

• अनीता औलक

पिछले अंकों में आपने पढ़ा है कि देश-विभाजन से अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. घर जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी से भी परिचय बढ़ रहा था. राकेशजी के पत्र आने लगे. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगामा हो गया और कुछ फैसले किये गये. राकेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया लेकिन फिर भी कॉलेज के बहाने वे मिलते रहे. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये. उन्हें फिर दिल्ली वापस जाना पड़ा. अब आगे पढ़िए...

राकेशजी और कमलेश्वरजी दोनों मुझे स्टेशन पर छोड़ने आये थे. गार्ड ने अंतिम सीटी भी दे दी थी, लेकिन राकेशजी तब तक भी मुझे रोकने की हिम्मत नहीं बटोर सके थे. जब मुझे बंबई पहुंचे तीन-चार दिन ही हुए थे तो राकेशजी ने हार कर भाभी को ट्रंक-कॉल किया कि जिस पहली गाड़ी की टिकट मिले, वह मुझे तुरंत दिल्ली के लिए रवाना कर दें. भाभी ने भी देर नहीं लगायी. उस शाम को ही मुझे दिल्ली के लिए रवाना भी कर दिया. वहां राकेशजी फोन करने के बाद भी बेचैन रहे. फिर पता नहीं क्या सूझी, इधर से खुद गाड़ी से बंबई के लिए रवाना हो गये और कमलेश्वरजी को यह काम सौंप गये कि वह बंबई फोन कर दें कि मुझे भाभी वहीं रोकें, वह खुद ही आ रहे हैं. लेकिन हुआ यह कि मानसून की खराबी के कारण फोन तब लग पाया जब मैं वहां से रवाना हो चुकी थी. नतीजा कि राकेशजी बंबई पहुंचे तो मैं नदारद और जब मैं दिल्ली पहुंची तो राकेशजी नदारद. वह रात मैंने कैसे रो-रो कर काटी थी, कमलेश्वरजी ही जानते हैं. अम्मां थीं कि सब देख कर एकदम चुप बैठी अफसोस करती रहीं. फिर समझाने लगीं, 'ओदा ता इक मिंट वी दिल नईं लगदा तेरे बिना...रो न'. थोड़ी ही देर में बंबई से फोन आया. राकेशजी बोले कि अब मैं फिर यहां से पहली गाड़ी पकड़ कर बंबई पहुंच जाऊं. मैंने जब कमलेश्वरजी से कहा कि मैं नहीं जाऊंगी, क्योंकि राकेशजी फिर कहीं दिल्ली न पहुंच जायें तो कमलेश्वरजी हंस कर बोले—वह इतना गधा नहीं है. मैंने सिर्फ इतना ही कहा—लेकिन? तो कमलेश्वरजी ने पूछ लिया—गधा तो है. और फिर जोर से हंस दिये.

बंबई में हमने फिर कुछ दिन मित्रों से मिलने में निकाल दिये. जब दिल्ली पहुंचे तो परीक्षा सिर पर थी. गनीमत इतनी कि फेल होते-होते बची. इस खुशी में कमलेश्वरजी, जवाहर भाई और राकेशजी ने छत पर ठंडी बीयर का सेवन किया था और अम्मां ने असली घी के लड्डू बना कर खिलाये थे.

मेरे बंबई जाने का दूसरा नतीजा यह हुआ कि '**कांपता हुआ दरिया**' के धारावाहिक प्रकाशन का भी वहीं अंत हो गया था, जो कि बड़े आराम से '**नई कहानियां**' में बराबर निकलता आ रहा था. उसके बाद कितनी बार राकेशजी पहाड़ों पर गये और लौट आये. उन्हें समझना बहुत मुश्किल था...सुबह अपना जम कर काम करने की बात करते और शाम अचानक शिमला जाने की योजना ब लाते. फिर चले भी जाते, लेकिन मन लगने की वजह से वहां से लौट आते... बहाना यह करते कि तेरी याद आ रहती थी. कि अकेली बैठी बोर हो होगी...चलो चलें, आदि-आदि.

और यह बात भी सच थी कि घ के बाहर जा कर उन्हें कुछ दिनों के लिए अच्छा लगता था और वह भी इसलिए कि मन में यह तसल्ली थी कि ए घर पीछे है जिसमें वह जब भी चाहें, जै भी चाहें जा सकते थे...उन्हें कोई कु भी कहने वाला नहीं था. उन्हें एक ऐ घर की तलाश थी जिसमें एक नालाय लड़का हो फिर भी उसके घर वालों को उसकी नालायकी पर नाज हो.

—तुम कभी सुधरोगे नहीं, मैंने एक बार उनके पैर दबाते-दबाते रात में पूछा. मैं मजा ले रही थी. वह उचक कर बैठ गये, बोले—तुमने वो कहानी सुनी है कि एक बार एक बाज के लंबे-गंदे नाखून काट कर एक बुढ़िया ने उसे हमेशा के लिए नाकारा कर दिया था.

—तो मैं बुढ़िया हूं?

—बातें तो दादी-सी कर रही हो

—लेकिन तुम अपने लंबे-गंदे नाखू

बरकरार रखना चाहते हो.

--क्यों नहीं. . .आखिर फिर शिकार किससे करूंगा. . .कभी-कभी शिकार में पता नहीं क्या-क्या हाथ लग जाता है.

दिल्ली में भी राकेशजी ने अपने मित्रों से परिचय कराया और उनके घर आना-जाना शुरू कर दिया. श्री और श्रीमती ओंप्रकाश जी, मन्नू-राजेंद्र, श्री और श्रीमती जवाहर चौधरी, श्री और श्रीमती सुरेश अवस्थी, श्री और श्रीमती नेमिचंद्र जैन, श्री और श्रीमती भारतभूषण अग्रवाल और श्री और श्रीमती बंसीलाल कपूर, श्री और श्रीमती भीष्म साहनी, आदि के दायरे में मैं अब तक बिल्कुल खप चुकी थी. कहीं पर भी कोई भी मौका होता राकेश-अनीता के बिना सबको अधूरा-अधूरा-सा लगता. इससे अलग हट कर एक और ग्रुप राकेशजी ने और मैंने मिल कर बनाया था. जिसमें 'थियेटर प्राणी' थे. इनमें ओम और सुधा शिवपुरी, राजेंद्र पाल, रमेशचंद्र, राजेंद्रनाथ, गुलाटी, प्राण, सत्यदेव दुबे श्यामानंद जालान, और जे. डी. सेठी आते थे. फिर इस सबसे अलग हट कर एक और ग्रुप की स्थापना की, जिसमें रेखा, इंदर मेहरोत्रा, मदन गुप्ता, चमन, शीला, आदि-आदि आते थे, जो नितांत नॉन-प्रोफेशनल ग्रुप था. यह ग्रुप हालांकि चमन की मृत्यु के साथ ही समाप्त भी हो गया था. उसमें से ले-दे कर एक मदन गुप्ता ही रह गया था, जिसके साथ बैठ कर पुराने कॉफीहाउस में बिताये दिनों को कभी याद कर लिया करते थे. इसके अलावा शुरू-शुरू में रवींद्र कालिया, रमेश बक्षी आदि ने राकेशजी से काफी संरक्षण पाया. फिर दूर-दूर चले गये. . . बाद तक भी जरूरत के वक्त राकेशजी को याद करने वाले रमेश बक्षी और दूधनाथ सिंह ही रह गये थे. इनमें दो मित्र ऐसे भी थे जो बराबर आ कर मिलते रहे जिनका राकेशजी से कोई लाभ-प्राप्ति का रिश्ता नहीं था. वे थे श्री शरद जोशी और दुष्यंत.

इस पूरे जमघट में मैं राकेशजी के अपने प्रत्येक मित्र के साथ उनके अलग-अलग बनाये रिश्तों को समझती रही. इनमें से कई प्रोफेशनल होते हुए भी कहीं एक आत्मीयता का रिश्ता भी रखते थे. उनमें थे. . .श्री ओंप्रकाश, डा. मदान, ओम शिवपुरी, श्री जवाहर चौधरी, श्रीमती शीला संधू, शरद जोशी, दुष्यंत, नंदन, भीष्म साहनी, भाई-भाभी और श्री गिरधारीलाल वैद.

इन सबसे आत्मीयता का रिश्ता अधिकतर इसलिए भी था, क्योंकि ये मित्र भी राकेशजी की तरह ईमानदार थे. इनमें अगर उनका सबसे ज्यादा तकलीफ देने वाला लेकिन आत्मीय मित्र था तो वह एकमात्र कमलेश्वर ही था. . . पता नहीं उन्होंने राकेशजी को फिर भी कैसे पटा कर रखा हुआ था. रकेशजी खुद भी कहते थे कि अगर जिंदगी में मैंने कभी किसीकी ज्यादतियां बर्दाश्त की हैं तो वह या तुम्हारी और या फिर कमलेश्वर की. हम दोनों हंस देते.

राकेशजी किसी लड़की को मित्र बनाते तो मैं भी उसे अपना मित्र बना लेती. वह नाराज होते, बोलते. . . तू हर खूबसूरत लड़की को अपनी भी सहेली बना लेती है. . .नतीजा, वह इतनी घर की हो जाती है कि रोमांस की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती.

अब घर में जो लोग आते थे. मिलने तो राकेशजी से ही आते, लेकिन घर मेरे आते थे---अच्छा तो अनीता आज क्या खिला रही हो. . .जवाहर भाई सीढ़ियों से ही चिल्लाते आते. राजेंद्रपाल से पहली बार राकेशजी ने संगीत नाटक एकेडमी में मिलवाया था तो मैंने छूटते ही उसे घर आने को कहा था. अगले दिन वह साथ ही आ भी गया था. ---राकेशजी कितनी बार मिले, लेकिन घर आने को उन्होंने एक बार भी नहीं कहा. आपने बुलाया मैं एकदम आ गया. फिर उसके बाद जब भी आता---कुछ है खाने को---बड़ी भूख लगी है.श्यामा आते तो अपने ही बाप का घर समझते. सोते को भी जगाते---भूख लगी है भई. . . यह कोई सोने का वक्त है! राकेशजी डांट भी देते कि अभी-अभी सोयी थी. तूने आ कर उठा दिया. ---अच्छा-अच्छा कोई और बात करो, श्यामा रोब से कहते.

गाहे-बगाहे मुझे कमलेश्वरजी, चौधरी, शिवपुरी, श्यामा, राजेंद्रपाल से पता चलता रहता कि वह कई-कई बार सिर्फ मेरी और मेरी ही बातें करते रहते हैं. . . उनसे यह कहते रहते कि अनीता के बिना मैं अब एक दिन भी नहीं जी सकता. वह मेरे जीवन का एक अंग बन गयी है. घर में एक दिन भी उसके बिना काटना मुश्किल हो जाता है. . .इसलिए मैं जरूर कहीं एक-दो दिन के लिए चला भी जाता हूं, लेकिन उसे एक दिन के लिए भी कहीं जाने नहीं दे सकता. मैं जब राकेशजी से पूछती कि क्या यह बात सच है तो कहते--तेरे से गप करते हैं. . .तुझे बनाते हैं. . . वो जानते हैं कि अगर वो तुझे मस्का नहीं लगायेंगे तो उन्हें घर में ही नहीं आने देगी. फिर वही ठहाका. मैं भी मजा लेती. कहती कि मुझे आपने ही तो कहा था--लव मी, लव माई. . . यह मेरी तरफ लपकते. कहते. . .कह कर देख आगे. मैं पलट कर कहती---चैलेंज मत करो, नहीं तो कह दूंगी.---तू एक बार कह कर तो देख. मैं फिर दोहराती---लव मी, लव माई. . .गॉड्स. राकेशजी देखते रह जाते. लेकिन यह बात सच है कि मैंने उनके मित्रों को सच ही दिल से अपनाया था. धीरे-धीरे मैंने उस छोटे-से घर को एक बहुत बड़ा कुटुंब बना दिया था. . . जहां कुछ लोग सिर्फ हंसने-हंसाने आते तो कुछ सिर्फ अपना रोना-धोना सुनाने आते.

कई-कई बार तो रात ग्यारह बजे भी राकेशजी अपनी टोली लिये खाना खाने पहुंच जाते. बस इतनी मेहरबानी जरूर करते कि आने से पहले एक छोटा-सा फोन लगा देते ---हम छह आदमी खाने के लिए पहुंच रहे हैं. और कभी-कभी जब ज्यादा दया आती तो रूमाली या कोई मीट की डिश भी उनके मित्र उठाते लाते.

बहुत बार हमारे मित्र हमसे पूछते कि क्या अब हमने पहले जैसा लड़ना-बड़ना छोड़ दिया है, तो मैं कहती---ऐसे कैसे हो सकता है. . .अपने टॉनिक के बिना हम लोग कैसे रह सकते हैं. . .लेकिन इतना जरूर अंतर आया है कि पहले की तरह अब बक्से बना कर मां के घर नहीं चली जाती. कौन पहले बक्से बनाये फिर खोले. . .एक तो एनर्जी बहुत लगती है, दूसरे पैसा बहुत बरबाद होता है . . .फिर आजकल कड़की के साथ-साथ महंगाई भी बहुत है. यह बात सच भी थी, क्योंकि पहली तारीख को घर-खर्च राकेशजी मुझे देते थे, उसमें ५० रु. अलग से लड़ाई के खर्चों के लिए ही दिया जाता था. . .लेकिन जैसे ही स्कूटर टैक्सी के भाड़े बढ़ गये, मैंने ज्यादा मांगना शुरू कर दिया. जोकि संभव नहीं था. इसलिए तय यही हुआ था कि लड़ने के बाद हम अपने-अपने कमरों में बंद हो जाया करें और जब सुलह की इच्छा जागे तो फिर तीसरे कमरे में चले आयें. . . और अगर वहां भी कुछ न बने तो फिर चौथे अथवा अम्मां के कमरे में अपना रोना जा कर सुनायें. . .और अगर फिर भी कुछ न बने तो ईश्वर पर छोड़ दें.

अगले अंक में

क्या छह साल के वैवाहिक जीवन के बाद भी उनके संबंधों में स्थायित्व आ सका?

समांतर लेखन: वैचारिकता के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ

• ललितमोहन अवस्थी

रचनाकार की वैचारिक भूमिका ही साहित्य को सार-तत्व प्रदान करती है, उसका मेरुदंड निर्मित करती है. रचना प्रक्रिया के दौर में यह भूमिका दोहरे फलक पर सक्रिय रहती है—कृति के माध्यम से पाठक की मानसिकता को प्रभावित करना एवं रचना से पूर्व उस कृति को रूप देने वाली रचनाकार की निजी भावभूमि तथा वैचारिक चिंतन को संयोजित करना. निस्संदेह, रचनाकार की वैचारिकता ही अंततः पाठक की मानसिकता को बनाती-बिगाड़ती है और वही किसी भी कृति का प्रासंगिक निकष होती है.

कतिपय क्षेत्रों में इस वैचारिकता संपन्न समांतर लेखन पर प्रश्न-चिह्न लगाये जा रहे हैं. इसलिए समांतर लेखन की सही पहचान बहुत आवश्यक है, जो देश के आम आदमी से, उसके जीवन से, उसकी टूटन से, उसके आक्रोश और असंतोष से संबद्ध है और जो उसी आम आदमी का पक्षधर है.

वस्तुतः समांतर लेखन सही वामपंथी चिंतन से युक्त आज का वह लेखन है जिसे 'प्रगतिशील' विशेषण समग्रतः अपने आप में समेट नहीं पाता, ठीक वैसे ही जैसे कि 'मानवतावाद' शब्द क्रांति की परिभाषा को व्यक्त नहीं कर पाता. प्रगतिशीलता और मानवतावाद वैसे ही सर्व-सुलभ शब्द बन गये हैं जैसे कि 'समाजवाद'—जिसे अब कुछ दक्षिणपंथी भी जी खोल कर इस्तेमाल कर रहे हैं. आज जनता के शत्रु जनता के ही नारे और शब्द ले कर उसे भयानक मृगमरीचिका में फांसने और मीत का नाटक खेलने की तैयारी में जुटे हैं. शब्द-संदर्भों के परिवर्तन के साथ स्थितियों के अर्थ भी बदल रहे हैं. समांतर लेखन की भूमिका ऐसी ही जटिल स्थितियों में स्पष्ट होती है, क्योंकि यह लेखन स्थितियों से कतरा जाने का कायल नहीं बल्कि उनकी सही वैज्ञानिक जांच में रत है! आज का यह सही वामपंथी लेखन ही समांतर लेखन है. इस लेखन के चार प्रमुख आक्रामक मोर्चे हैं—सामंतवाद का विरोध, देशी-विदेशी पूंजीवाद का विरोध, साम्राज्यवाद का विरोध और देशी-विदेशी फासिस्टवाद का विरोध.

पिछले पांच वर्षों के भीतर ही समांतर लेखन ने एक आंदोलन और एक संबद्ध चेतना-संपन्न समुदाय का रूप ग्रहण कर लिया है, वामपंथ की सही समझदारी ही जिसकी एकसूत्रता का आधार है. देश के वर्तमान और भविष्य की चिंताओं से जुड़े हुए हिंदी के कथाकारों द्वारा प्रवर्तित समांतर लेखन इन पांच वर्षों के भीतर ही न केवल हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं और क्षेत्रों में सक्रिय हो उठा है, वरन् वह भारत की अन्य भाषाओं के रचनाकारों को भी अपने प्रभाव-क्षेत्र में समेट चुका है. यद्यपि पांच वर्ष का समय किसी भी प्रवृतिमूलक लेखन के लिए पर्याप्त नहीं कहा जा सकता, किंतु इन पांच वर्षों के भीतर समांतर लेखकों द्वारा सृजित एवं प्रकाशित कृतियों के अध्ययन से तथा उनकी बंबई (१९७१), कानपुर (१९७२), मांडू–मध्यप्रदेश (१९७३) एवं मद्रास-कालीकट (१९७५) की विचार - गोष्ठियों से उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि स्पष्टतः उजागर हो चुकी है. परस्पर मेलजोल एवं विचार-विमर्श की दिशा में समांतर लेखक जितने सक्रिय हैं, किसी भी अन्य प्रवृतिमूलक लेखन के रचनाकार इससे पूर्व शायद ही कभी इतने सक्रिय रहे हों. प्रति वर्ष इस विशाल देश के किसी अंचल में मिल-बैठ कर लेखन का लेखा-जोखा लेना, अपनी चिंता-धाराओं को रूपायित करना और अत्यंत तीव्र गति से संक्रमणशील ऐतिहासिक-सामाजिक शक्तियों की सही परख करना और उस परख के साथ अपने लेखन की सही दिशा निरंतर निर्धारित करते जाना समांतर लेखकों की विशेषता रही है, जो सामाजिक परिवर्तन में भागीदार बनने की उनकी संकल्पमयता का ही प्रमाण है.

ललितमोहन अवस्थी

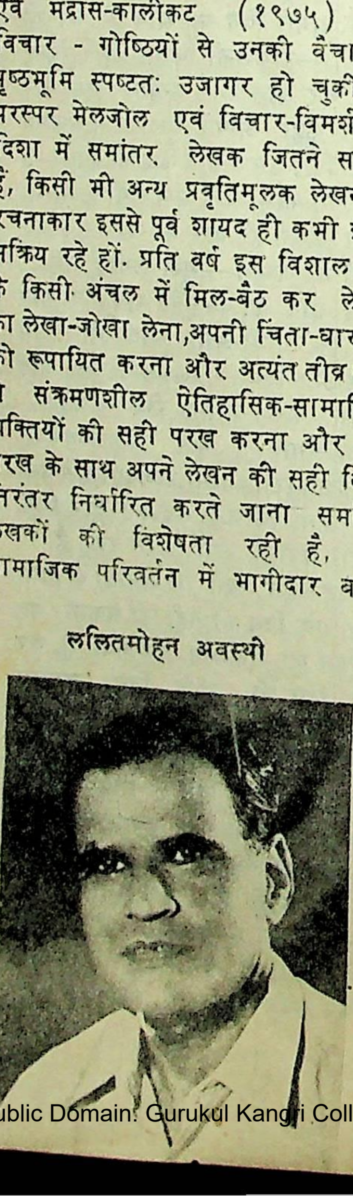

आज का समांतर लेखक लेखनी उठाते ही राष्ट्रीय संदर्भों में अपने को अत्यंत जटिल एवं दुरूह भौतिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों और परिवेश में घिरा हुआ पाता है, जिनका दारुण तनाव वह रचना-प्रक्रिया के पूरे दौर में लगातार झेलता है, उससे लड़ता है और उसे तोड़ता है. चूंकि वह वामपंथ के प्रति समर्पित है और चूंकि वाम पंथ आज दक्षिण वाम, सही वाम, मध्य वाम और अति वाम की अनेक धाराओं में विभाजित है, इसलिए वह अपने को और भी कठिन स्थिति में पाता है. सही मार्ग का चयन उसे तलवार की धार पर चलने के समान लगता है, जहां वामपंथ की कसमें खाने वाले नकाबपोश छद्मवेशी उसके कार्य को और भी कठिन बना देते हैं. किंतु सामाजिक परिवर्तन को रूप और दिशा प्रदान करने वाली भौतिक-ऐतिहासिक शक्तियों पर उसकी आस्था और अपने समय की विवेचना कर सकने की उसकी स्पष्ट समझ अंततः उसे सही मार्ग दर्शाती है.

* *

विश्व-साम्राज्यवाद आज भयानक आंतरिक संकट की गिरफ्त में है, जो पूंजीवादी प्रणाली की ही अनिवार्य उपज है. मकड़ी के जाले की भांति पूंजीवाद-साम्राज्यवाद ने जिस आर्थिक-राजनीतिक विभीषिका का जाल बुना था, आज वह स्वयं उसी में फंसा तड़प रहा है. विश्व के सभी पूंजीवादी राष्ट्र जिस आर्थिक मंदी, मुद्राबाढ़, महंगाई और बेरोजगारी के भंवर में फंसते जा रहे हैं, उससे मुक्ति के सारे प्रयास उसे और गहराई में डुबोते जा रहे हैं. अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए उसे अब वे चालें चलनी पड़ रही हैं जो मानव-हित में नहीं हैं. . . अब वह दुरभिसंधियों का सहारा ले रहा है. और इन दुरभिसंधियों का सीधा नाता हमारे राष्ट्रीय जीवन से भी जुड़ता है, और उसके कदमों की आहट देश के भीतर और देश के बाहर साफ तौर से सुनायी देने लगी है. इसलिए, इनसान की जिंदगी से सीधे-सीधे जुड़ा हुआ, उसकी शांति-स्वतंत्रता और सुखी भविष्य की चिंता रखने वाला समांतर लेखक लेखनी

उठाते ही चिंतित हो उठता है, और उसकी यह चिंता पूरी तरह से स्वाभाविक और वाजिब है, क्योंकि वह जानता है कि युद्ध और युद्ध की तैयारियां सभी विकास-कार्यों और भौतिक-समृद्धि के प्रयासों पर विराम लगा देंगी, जो विश्व-साम्राज्यवाद की चाल है. वह यह भी जानता है कि फासिस्टतंत्र कायम होने पर आम आदमी के सभी नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार और अवसर छिन जायेंगे, सामाजिक परिवर्तन का सपना कोरा सपना ही रह जायेगा और देश मौत और खून में डूब जायेगा. इसीलिए उसकी लेखनी साम्राज्यवाद का विरोध करती है, जो इन सभी खतरों की जड़ है और इसीलिए शीत-युद्ध, शस्त्रों की होड़ आदि का भी वह विरोध करती है जो उसके भौतिक सपनों के साकार होने के मार्ग की प्रमुख बाधा है. और इसीलिए वह साम्राज्यवादियों द्वारा पोषित नव-फासिस्टवादी शक्तियों का विरोध करती है, क्योंकि चिली का दारुण इतिहास सामने है.

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चल रहे दुष्चक्रों के साथ ही राष्ट्रीय फलक पर जो दिखायी दे रहा है, उससे समांतर लेखन का सीधा-सीधा आमना-सामना है. आज देश द्वितीय मोहभंग की दारुण स्थिति के दौर से गुजर रहा है. मोह और आस्था जब टूटती है तब वह आदमी को भीतर से तोड़ देती है, सब कुछ क्षत-विक्षत कर देती है. भीतर से टूटा हुआ आदमी खतरनाक हो जाता है, वह खतरे मोल लेने लगता है. अकसर यह टूटन मनुष्य के विवेक को खा लेती है. विवेकहीनता में आत्मघात भी दिखायी नहीं देता. हम इसी जीवन-यथार्थ को देख-भोग रहे हैं. आज हर आदमी भीतर से टूटा हुआ है. पिछले २८ वर्षों से व्यवस्था जिन हाथों में है और इन हाथों के पीछे जो हाथ हैं, उन सबने मिल कर लगातार इस लंबी अवधि में आम आदमी को तोड़ा है, छला है, मृगमरीचिका में डाला है. आज यह टूटन इतनी सर्वव्यापिनी है कि उसने समाज और जीवन के सभी अंगों को ग्रसित कर लिया है—परिवार टूटे हैं, पारिवारिक और इनसानी रिश्ते टूटे हैं, नैतिक आदर्श और जीवन-मूल्य टूटे हैं. इस टूटन के दुष्परिणाम अब रहा-सहा भी नष्ट करने में लगे हैं.

शताब्दियों पुराने सामंती संस्कार रूढ़ और जड़ बन कर हमारे जीवन से चिपके हुए हैं. सामंती संस्थाएं बरकरार हैं. जटिल जाति-व्यवस्था में सारा जन-समुदाय विभाजित है. सारे देश की रोटी-बेटी एक नहीं है. सवर्णों द्वारा दलितों का वीभत्स शोषण और जघन्य हत्याएं तक जारी हैं. अशिक्षा, अज्ञानता, सामाजिक पिछड़ापन, धर्मभीरुता और धार्मिक अंधविश्वास तथा कर्म-कांड आज भी जन सामान्य की प्रगति को अवरुद्ध किये हैं. इस सबके ऊपर सामंती प्रणाली का अब भी अंत नहीं हो सका है. सशक्त कुलक वर्ग ने उभर कर इन वर्गों में सभी प्रगतिशील भूमिसुधारों को नाकाम और बेअसर कर दिया है. भूमिहीन वर्ग उतना ही प्रताड़ित और शोषित है जितना वह पहले कभी था. शहरी पूंजी और काला धन ग्रामीण क्षेत्रों की ओर पहुंच रहा है और भूमि को हथिया कर सफेद धन बना रहा है. समांतर लेखन की वैचारिकता इन सभी सामंती संस्कारों, संस्थाओं, और षडयंत्रों के विरुद्ध लड़ने और इस लड़ाई को तेज करने तथा उनका उन्मूलन करने की वैचारिकता है, जो अवर्णों, हरिजनों, दलितों और भूमिहीनों के मानवोचित-न्यायोचित अधिकारों की पक्षधर और संस्थापक है.

गलत व्यवस्था का विरोध समांतर लेखन की वैचारिकता का अनिवार्य अंग है. किंतु यह वैचारिकता अंधविरोधवाद के विवेकहीन दर्शन को अस्वीकार करती है. यथार्थ को परखते हुए वह द्वंद्व की वैज्ञानिक नीति का अनुसरण करती है. इसीलिए राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय फलक पर प्रगति और प्रजातंत्र की शक्तियों, संस्थाओं और सिद्धांतों का साथ देती है और पोषण भी करती है. साथ ही साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद एवं युद्ध की शक्तियों और नीतियों का विरोध करती है, स्वतंत्रता-संघर्षों का समर्थन करती है यानी तीसरी दुनिया के साथ सीधे जुड़ी है. यह वैचारिकता व्यवस्था के चरित्र को भी अच्छी तरह समझती है, क्योंकि यह व्यवस्था, ढुलमुल-यकीन मध्यमार्गियों और पूंजीवाद-सामंतवाद का पोषण-अनुरक्षण करने वाले तत्वों के हाथों में है जिनके पीछे इजारेदारों और कुलकों तथा जनता के शोषकों के लंबे हाथ हैं. समांतर लेखन की वैचारिकता की दृढ़ मान्यता है कि मिश्रित अर्थतंत्र की दोहरी नीति के अनुपालन ने ही देश में पूंजीवादी अभिशापों और इजारेदारी को पनपाया है; मुद्रा-प्रसार, महंगाई और काले धन के साथ ही सर्वव्यापी, सर्वग्राही भ्रष्टाचार के गहन गर्त में देश को ला पटका है. यह व्यवस्था जब तक इन गलत नीतियों पर आरूढ़ है, देश में मूलभूत आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन सर्वथा असंभव है.

★ ★

इन्हीं संदर्भों में आज के लेखन का असली सवाल सामने आ जाता है. क्या देश का विभाजित वाम तत्काल परिवर्तन की भूमिका निभा सकता है? क्या नयी व्यवस्था स्थापित करने हेतु खूनी या सशस्त्र क्रांति का भौतिक यथार्थ देश में निर्मित हो चुका है? हमें कितना ही कटु या अप्रिय क्यों न लगे, इन दोनों ही प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक ही है. सशस्त्र क्रांति की दुस्साहसिकता के रूमानी सपने पालना उन्हें ही प्रिय लगता है जो सर्वहारा और क्रांति की शक्तियों के सच्चे साथी नहीं, वरन् प्रतिघाती हैं. निस्संदेह, देश में संगठित-सुनियोजित सशस्त्र क्रांति का कोई भौतिक यथार्थ उत्पन्न नहीं हुआ है. हां, उसकी पूर्वपीठिका तैयार हो चुकी है, संभावना बन रही है, जनमानसिकता ढल रही है. समांतर लेखन

• व्यंग्य-विचार : कुलदीप भंडारी

कॉफी हाउस

यहां उपेक्षित लेखकों की रचनाएं सुनने के लिए श्रोता मिलते हैं. रेट : ५ छोटी या २ लंबी कविताएं—१ चाय; कहानी (५ पृष्ठ तक)—१ चाय + १ मीठा + २ समोसे, बाद के प्रत्येक ५ पृष्ठ या उसके अंश पर चाय + फिल्टर किंग सिगरेट. उपन्यास पर भी यही रेट लागू होंगे. ५ श्रोता से कम तथा उधार का ऑर्डर नहीं चलेगा. व्यंग्य-लेखकों के व्यंग्य सुन कर रो पड़ने वाले श्रोताओं को रूमाल देने होंगे.

—व्यवस्थापक.

सामाजिक क्रांति की इसी मानसिकता को निर्मित करने की वैचारिकता का पालन कर रहा है.

आज सारा देश उग्र जन-आक्रोश और असंतोष की आग में उबल रहा है. समांतर लेखन की वैचारिकता है कि केवल इस आक्रोश और असंतोष को वाणी देना ही प्रगतिशीलता नहीं है और न केवल अंध व्यवस्था-विरोध ही प्रगतिशीलता की कसौटी है.

असली बात इस आक्रोश और असंतोष को सही दिशा देना है, जो कि उन शक्तियों द्वारा अभीप्सित नहीं है जो स्वयं अधिनायकवादी और दक्षिणपंथी हैं और वे जन-आक्रोश को जनतंत्र के विध्वंस के लिए इस्तेमाल करना चाहती हैं! समांतर लेखन इस चरित्र-दोष को भी पहचानता है. इसीलिए वह विश्वास करता है कि व्यवस्था-विरोध और इस जन-आक्रोश को सामाजिक क्रांति की ओर मोड़ना है. आम आदमी को मूलभूत आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों के बृहतर संघर्ष में भागीदार बनाना है.

यही सही वाम का तकाजा है.

* *

समांतर लेखन आम आदमी से जुड़ा हुआ, उसी के जीवन का सच्चा लेखन है. उसमें समकालीन सामाजिक-राष्ट्रीय परिवेश अपने पूरे विराट रूप और वैविध्य के साथ अभिव्यंजित होता है, क्योंकि समांतर लेखक आम आदमी की ही एक इकाई है.

वह सभी रूपवादी एवं अभिजात-सौंदर्यशास्त्रीय मान्यताओं को पूरी तरह अस्वीकार करता है.

वह अपने लेखन में क्षणवाद, अस्तित्ववाद, भोगवाद जैसी सभी आयातित, जर्जर मान्यताओं को ठुकरा चुका है. उसने मानव-मुक्ति के प्रयासों और जन-आकांक्षाओं को नये प्रयोग और नये आयाम प्रदान किये हैं. नयी अभिव्यक्तियां दी हैं. समांतर लेखक किसी भी अर्थ में न तो परंपरावादी है, न रूढ़िवादी और न फार्मूलाबद्ध क्रांति का हामी! वह आधुनिकता को केवल रहन-सहन की प्रणाली के अर्थ में नहीं, वरन् क्रियाशीलता और चिंतन के वैज्ञानिक-सामाजिक आधार के रूप में ग्रहण करता है.

जीवन उसके लिए एक लड़ाई है, जिसके विभिन्न मोर्चे हैं और लेखन इन सभी मोर्चों पर आम आदमी को उस लड़ाई में शामिल करने का रचनात्मक-सांस्कृतिक माध्यम है. □□□

कृतियां

एक उपन्यास

अरण्य

● मधुकर सिंह

हिमांशु जोशी गांव के ऐसे निम्न-मध्यवर्गीय लोगों के कथाकार हैं, जो आज की राजनीतिक चेतना से मुक्त अभी भी गांव के निश्छल और निर्दोष वातावरण में जीते हैं और जिन्हें शहर की बनिया सभ्यता अपने चंगुल में फंसाने के लिए बड़ी तेजी से हाथ-पांव चला रही है. खासतौर पर जब भारतीय स्वतंत्रता जन्म ले चुकी है, तब यहां नयी जिंदगी के लिए एक सामूहिक संघर्ष की बजाय पुरखोत्तम का' जैसे शोषकों का शिकार गांव की मामूली जनता बनती जा रही है. कूर्मांचल की ऐसी ही आर्थिक विषमता को हिमांशु का उपन्यास 'अरण्य' उजागर करता है. 'अरण्य' कूर्मांचल में विषम और तल्ख होती जा रही परिस्थितियों के समांतर लेखक के मानस में भावना के स्तर पर हुए प्रतिकार का ही प्रतीक है.

कूर्मांचल के उन तमाम लोगों के बीच से ही हिमांशु ने 'अरण्य' के अंतर्गत कुछ पात्रों को जीवंत बनाया है. पुरखोत्तम का, पंडित हिरदेराम, कावेरी, मानिक, कुंवरदेव, माधव मामा प्रधान—सभी उक्त अंचल की विशिष्टता और आमफहम जिंदगियों को कथा के स्तर पर मुखरित करते हैं. माधव प्रधान, पंडित हिरदेराम जहां ग्रामीण निश्छलता के प्रतीक हैं, वहीं पुरखोत्तम और पटवारी गांवों में प्रवेश पा गयी बनिया सभ्यता की ओर भी परिलक्षित करते हैं. पुरखोत्तम पंडित हिरदेराम का भाई होते हुए भी संपूर्ण निम्नमध्यवर्ग को अपने शोषण के लिए ही परमात्मा की देन मानता है. कुंवर देव की संपूर्ण जायदाद को हड़पने की साजिश वह रचता है. इसके लिए वह प्रत्येक कुकर्म के लिए भी तैयार रहता है. यहीं शोषकों द्वारा फैलायी जा रही अपनी सभ्यता के कारण ही कावेरी जैसी लड़कियों को बूढ़े ठेकेदार के साथ विवाहित होने के लिए बाध्य भी किया जाता है. पंडित हिरदेराम का लड़का उसका प्रेमी है, परंतु वह अव्वल दर्जे का आवारा और खुदगर्ज है जो गांव छोड़ कर ही भाग जाता है. माधव प्रधान पंडित हिरदेराम की तरह धार्मिक तो नहीं है, परंतु सामाजिकता से संयुक्त प्रधान मृग-शावक की भांति निर्दोष और मासूम है, जिसे पटवारी पेड़ काटने के झूठे इल्जाम में फंसा देता है. यह भी सच है कि पटवारी स्वयं पेड़ काट कर बेच डालता है और सामाजिक-आर्थिक विषमता के शिकार ग्रामीण निर्दोष माधव प्रधान के विपक्ष में गवाह भी बन जाते हैं. इस प्रकार हिमांशु जोशी का उपन्यास 'अरण्य' शिकायत के मिजाज से नहीं लिखा गया है, क्योंकि लू सुन के शब्दों में 'शिकायतों के साहित्य से उत्पीड़क को सुरक्षा महसूस होती है.' हिमांशु वर्तमान गांवों—खासतौर से पहाड़ी अंचलों के गांवों—को बड़े करीब से समझते हैं. इसलिए इनकी संवेदना सामान्य संवेदना में बदल कर अपने पाठकों को गहराई से स्पर्श कर जाती है.

सच कहा जाये तो पहाड़ी गांवों का संपूर्ण वर्तमान हिमांशु के माध्यम से ज्यादा सही ढंग से अभिव्यक्त हुआ है.

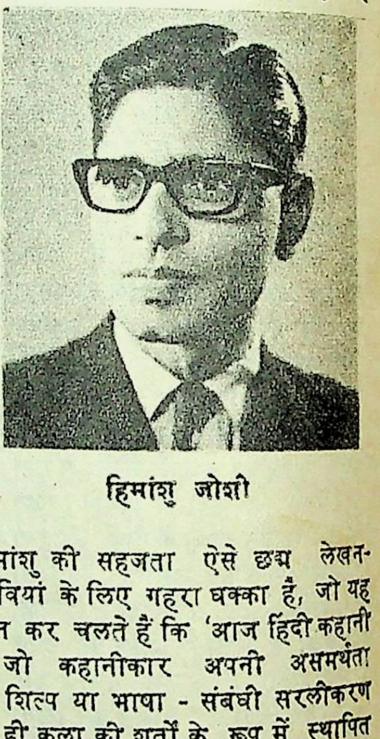

हिमांशु जोशी

हिमांशु की सहजता ऐसे छद्म लेखन-जीवियों के लिए गहरा धक्का है, जो यह मान कर चलते हैं कि 'आज हिंदी कहानी में जो कहानीकार अपनी असमर्थता या शिल्प या भाषा - संबंधी सरलीकरण को ही कला की शर्तों के रूप में स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं, वे रचना की बुनियादी जिम्मेदारियों से भी परिचित नहीं हैं.' यानी कलावादिता और अंधी सौंदर्यप्रियता सन् १९७५ में भी ऐसे कथित लेखकों का पीछा नहीं छोड़ रही है.

हिमांशु ऐसी तमाम फैशनपरस्ती और व्यक्तिनिष्ठ चेतना से मुक्त आसपास फैली जिंदगियों के सही लेखक हैं. □□□

नयी पौध

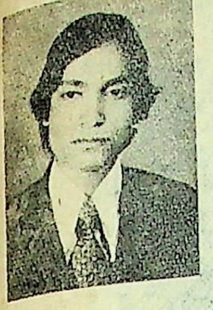

□ जयप्रकाश चंद्र

जन्म : १९ दिसंबर, १९४९, ईदगाह (आगरा) में. सन् १९७१ में मनोविज्ञान में एम. ए. किया. पहली कहानी १९७१ में 'युग छाया' में प्रकाशित हुई. लेखन के अतिरिक्त चित्रकला एवं संगीत में भी रुचि है. अब तक डेढ़ दर्जन कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं.

स्वतंत्रता-प्राप्ति के सत्ताईस वर्ष पश्चात भी आम आदमी बिलख रहा है. अमीर वर्ग उत्तरोत्तर अमीर तथा गरीब और अधिक गरीब होते जा रहे हैं... शासन इस कदर भ्रष्ट, अति लापरवाह तथा क्रूर हो गया है कि वह जैसे प्रत्येक सत्य बोलने वाली जुबान तथा अन्याय का विरोध करनेवाली कलम को बंद कर देने पर आमादा है.. ..हर ईमानदार कोशिश को बेरहम ठोकरों और नाकामियों के तोहफे मिलते हैं... मेरा अपना जीवन भी निरंतर संघर्षमय रहा है चुनांचे मेरा लेखन झूठ, अन्याय और ज्यादती के विरुद्ध विद्रोह है.

मेरे खयाल से आज लेखन को किसी किस्म के चमत्कार अथवा खोखले आदर्शवाद की दरकार नहीं. हर जागरूक कथाकार को अब आम आदमी की व्यक्तिगत तकलीफों, उसके सुख-दुखों तथा आशा-निराशाओं से पूरी तरह से जुड़ना होगा.

सारिका पाठक-परिवार १९७५

• सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार-विजेता

इस बार भी कोई भी प्रतियोगी सर्वशुद्ध हल नहीं भेज पाया अतएव न्यूनतम १ अशुद्धि पर निम्न प्रतियोगियों में से प्रत्येक को ४० रु. का पुरस्कार प्रदान किया जा रहा है जो हैं :

१. सुरेंद्र प्रसाद कक्ष नं. २१९९, २ रा माला, क्षेत्र –६, सी. जी. एस. कालोनी, कोलवाड़ा, अंटाप हिल, बंबई – ३७, २. मुन्नालाल , ग्राम चांदनपुरा, पोस्ट निनावली (रामपुरा), जि. जालौन (उ. प्र.) , ३, सत्यनारायण राव, १०७-२ रेलवे कालोनी. छिंदवाड़ा– ४८०००१, ४. रामभरोस मिश्र, गल्ला बाजार पान की दुकान, सागर (म. प्र.)

और यह रहा इस बार का सर्वशुद्ध हल :

१. गन्नो, २० कारिया, ३. त्रिवेंद्रम, उदयपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, ४. जंगल बाबू, ५. (पृ. ६३), ६. ने, ७ (पृ. ४८-४९), ८ श्रमदान, ९. (पृ. २९)

सारिका कथा पहेली

ध्यान से कहानियां पढ़िए और २५० रु. पुरस्कार प्राप्त कीजिए

इस कथा पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' के फरवरी ७५ के अंक पर आधारित हैं. डाक द्वारा कार्यालय में हल प्राप्त होने की अंतिम तिथि **१० अप्रैल** ७५ है. लिफाफे पर मात्र यह पता लिखिए :

सारिका कथा पहेली : मार्च : पो. बॉ. २१३, बंबई–१

१. इस पात्र के प्रति आक्रोश से अधिक घृणा ही उपजती है : पाशो (   ), नसीबो (   ), होसेन (   )

२. बाबा भीखनचंद का जिक्र इस पृष्ठ पर आया है: (   )

३. इस पात्र के प्रति बरबस ही सहानुभूति उमड़ आती है : शिवदा (   ), सुखवार (, पारसनाथ (   )

४. पृष्ठ ६६-६७ की लघुकथाओं में जो सबसे अधिक प्रभावोत्पादक है, उसका शीर्षक इस अक्षर से शुरू होता है : (   )

५. इस कहानी का शीर्षक इसके कथ्य के सर्वथा अनुरूप है : दर्द की मछली (   ) तीसरी सांस (   ), जाने किस बंदरगाह पर (   )

६. इन दो रंगीन पृष्ठों की साज सज्जा और ले आउट सर्वश्रेष्ठ है : पृष्ठ २४-२५ (   ), ४७-४८ (   ), ६०-६१ (   ), ७२-७३ (   )

७. इस पुरुष पात्र के प्रति जरा भी सहानुभूति नहीं हो पाती : वीरेंद्र (   ), गोप (   )

८. इस स्थान का जिक्र इस अंक की कहानियों में आया है : रायबरेली (   ), साहिबाबाद (   ) आजमगंज (   ), कासगंज)   ), रामपुर (   ),

नाम . . . . आयु. . .

पता. . . . .

. . . .

पीठ का दर्द ?

आयोडेक्स मलिए, जो पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

IODEX
OINTMENT
IODEX
cum Methyl Salicylate
SMITH KLINE & FRENCH (INDIA) LTD
3273

आयोडेक्स मलिए—अपने काम पर चलिए

लिंटास-IODEX. I-140 HI

अजी-साठे
माल्ट एक्स
इतना स्वादिष्ट
होगा ही!
इसमें
माल्ट है न!

साठे
माल्ट एक्स बिस्कुट
SATHE
MALTex
BISCUITS
SATHE
MALTex
BISCUITS
heros' SBC

ताज़ा, करारा व स्वाद में अनोखा—वाह!

इस अनोखे स्वाद का कारण है मॉल्ट,
जो इस बिस्कुट में भरपूर हैं।
पचने मे हलका व पोषक सत्वों से भरपूर
यह बिस्कुट चाहे जितने भी खायें,
और खाने को जी चाहता हैं।
इसलिये कि इसमे मॉल्ट है!

IS:1011
ISI
आई. एस. आई मुहर वाले
माल्ट एक्स का मतलब है अच्छी
किस्म की गारंटी वाले बिस्कुट

आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे ! सर बुरी तरह दुख रहा है।
मेरी मानो तो एनासिन ले लो।

जल्द आराम पाने के लिए
तेज़ असर
और विश्वसनीय
एनासिन लीजिए

तेज़ असर—एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय—एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलानी है।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन
भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A/2/8-74

Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

आइये, शामिल हो जाइये

भारत के त्योहारों और मेलों में. दिवाली, दशहरा, होली, इस्टर, क्रिसमस, मोहर्रम, बैसाखी, रक्षा बन्धन, दुर्गापूजा, ओणम, ईद-उल-फितर, गणेश चतुर्थी में. बहुत लम्बी है यह सूची पर त्योहार सिर्फ़ यही नहीं और सिर्फ़ ऐसे भी नहीं. बड़ा अजीबोगरीब संसार है इन त्योहारों का. आप ने देखा है ?

* नावों की दौड़ से तीतर युद्ध तक
* आदिम अंचलों के मेले नज़र जहां नहीं जाती
* सौंदर्य और फैशन मेले, कुरुपता के मेले, मूर्खों का उत्सव...
* मौसमी पर्व
* धार्मिक परंपरा से जुड़े सांस्कृतिक त्योहार
* अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेले
* बच्चों के मेले
* फिल्मी मेले

आइये, देखिये यह सब घर बैठे. नवभारत टाइम्स वार्षिकांक 1975 में. केवल 5 रुपये में. अपनी प्रति के लिये अखबार वाले से कहें या. हमें लिखें. रजिस्टर्ड डाक द्वारा मूल्य सात रुपये

नवभारत टाइम्स
वार्षिकांक 1975

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

७ बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली ११०००१

HT-BC 3661 B

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूंटे-से बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर से रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब ! आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए !

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर

अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

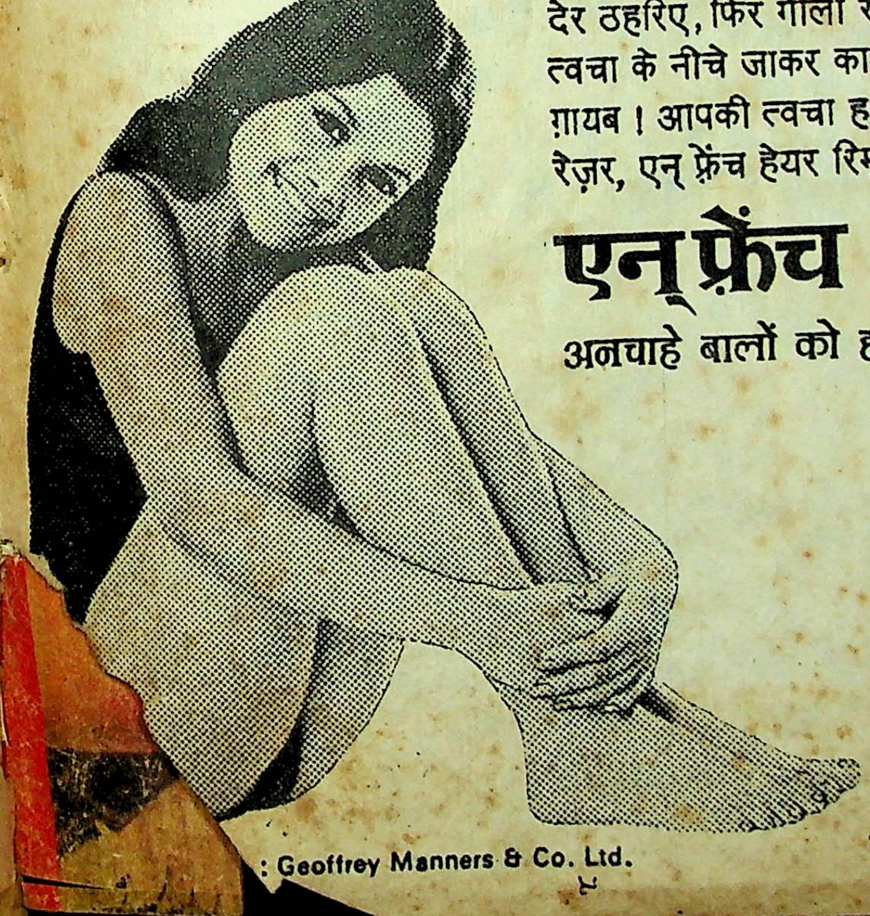

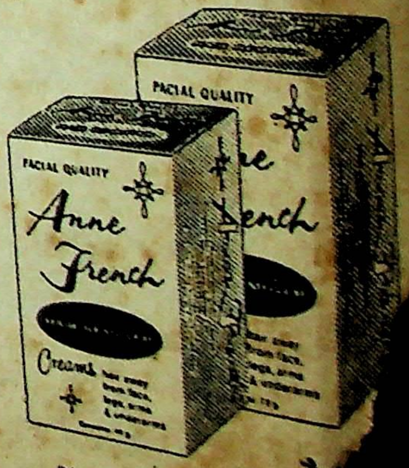

: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

२ साइज में सुलभ : ४० ग्रा. औ

...ी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बं...
... ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-१; कलकत्ता आ...
...२–ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सउथाल, [illegible] मिडिलसेक्स, प्...

715

महिलाओ!

आप, विमल और आपकी अभिलाषाएं

25-4-75

इन्हें परिपूर्ण करने वाले
सुंदर-सुहावने वस्त्र

VIMAL®
A RELIANCE PRODUCT

साड़ियां
पोशाक के कपड़े

आधुनिक पुरुषों के लिए
डबल निट टेक्सलीन सूटिंग
तथा मेल खाती शर्टिंग भी।

ायंस टेक्सटाइल इण्डस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई-अहमदाबाद का रजिस्टर्ड 'ट्रेड मार्क' है।

दुकानें : राक्सी चेम्बर्स, न्यू क्वीन्स रोड, **बम्बई** • कर्नाक रोड, जी. टी. अस्पताल के सामने, धोबीतलाव, बम्ब
ामने, रिलीफ रोड, **अहमदाबाद** • १०२११ पदमसिंह रोड, करोल बाग, **नयी दिल्ली** • दौलत गंज, ग्वा
नरल बाजार, **सिकन्दराबाद** •५ ताजावाला सुपर मार्केट, लखाजीराज रोड, **राजकोट** • और अन्य प्रसिद्ध दुकानों

टाइम्स
ऑफ
इण्डिया
प्रकाशन

HT-BC-3661 B

सारिका

अप्रैल १९७५

5/5/75

समांतर कहानी विशेषांक : ७

दलित साहित्य (मराठी)

आम आदमी के आसपास: आज की रचनाएं

सुबोध का
१०वाँ
वर्ष

सुबोध की नई पुस्तकें

सुबोध की
२००वीं
पुस्तक

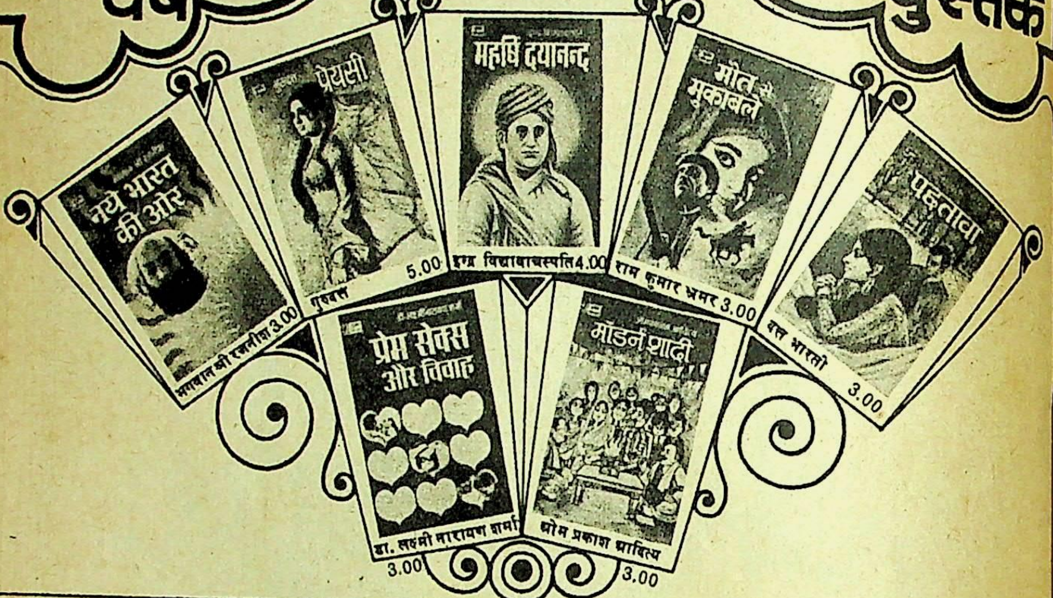
नये भारत की ओर
भगवान श्री रजनीश 3.00
प्रेयसी
गुरुदत्त 5.00
महर्षि दयानन्द
इन्द्र विद्यावाचस्पति 4.00
मौत से मुकाबले
राम कुमार भ्रमर 3.00
पछतावा
दत्त भारती 3.00
प्रेम सेक्स और विवाह
डा. लक्ष्मी नारायण शर्मा 3.00
मॉडर्न शादी
ओम प्रकाश आदित्य 3.00

१० की पुस्तकें मुफ़्त

निम्नलिखित पुस्तकों में से 25 रु० की पुस्तकें मंगायें। 10 रु० की पुस्तकें बिल्कुल मुफ्त प्राप्त करें। डाक व्यय भी हम करेंगे।

२५ रुपये की पुस्तकें इनमें से चुनें

उपन्यास

वरदान	मुंशी प्रेमचन्द	4.00
मंगला	गुरुदत्त	4.00
जंजाल	,,	4.00
सूखी लकड़ी	,,	3.00
सिलसिला	रामकुमार भ्रमर	3.00
चम्बल का विष	,,	3.00
रंजना	द्वारका प्रसाद	3.00
घेरे के बाहर	,,	4.00
समाधि	पं० मुखराम शर्मा	3.00
लालसा	,,	3.00
प्रेम बन्धन	,,	3.00
लकीरें	,,	3.00
समाधान	,,	3.00
प्रेम पंख	अमृता पांचाली	2.00
अम्बिका	अमृता पांचाली	2.00
अधूरे होंठ	,,	2.00
दहकते अंगारे	,,	2.00
मनचली	सत्येन्द्र शरत्	3.00
विदाई	पं० आनन्द कुमार	3.00
घाट का पत्थर	गुलशन नन्दा	3.00
प्यार और प्यास	कृश्न चन्दर	3.00
गुलमर्ग का गुमनाम	,,	3.00
आत्मा	दत्त भारती	4.00
मौत से पहले	,,	4.00
उजड़े घर	,,	3.00
आहट	कुशवाहा कान्त	3.00
कटे पंख	,,	3.00
थपेड़े	,,	3.00
पतन	,,	3.00

जासूसी उपन्यास

गहरे घाव	जोरावर सिंह वर्मा	2.00
पुलिस के कारनामे	,,	2.00
मैं जासूस नहीं हूं	,,	2.00
सभ्यता के चोर	,,	2.00

प्रेरणाप्रद-जीवनोपयोगी

चिन्तामुक्त कैसे हों	स्वेट मार्डन	2.00
हंसते हंसते कैसे जिए	,,	2.00
जो चाहें सो कैसे पायें	,,	2.00
पथ के प्रदीप	भगवान श्री रजनीश	3.00
शून्य के पार	,,	3.00
प्रभु दर्शन	महात्मा आनन्द स्वामी	5.00
दो रास्ते	,,	5.00
भक्त और भगवान	,,	3.00

१० रुपये उपहार की पुस्तकें इनमें से चुनें

नूरबाई	वृन्दावनलाल वर्मा	2.00
मनुष्य के रूप	यशपाल	2.00
प्रायश्चित की सीमाएं	मानकसिंह	2.00
मिस चौधरी	आवारा	2.00
औरत एक चेहरे हजार	परदेशी	2.00
विलायती मेम	शंकर	2.00
यह कंचन सी काया तेरी	उग्र	2.00
पत्थर के आंसू	यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र	2.00
एक रात का नरक	उपेन्द्रनाथ अश्क	1.00
लोपामुद्रा	के० एम० मुन्शी	2.00
सुबोध बुनाई	सुशीला कपूर	4.00
सुबोध पाक विद्या	,,	4.00
रेडियो ट्रांजिस्टर मकैनिक	हयात	4.00
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	,,	4.00
सुबोध मोटर मकैनिक	भारत भूषण	4.00

सुबोध पॉकेट बुक्स की पुस्तकें भारत के सभी पुस्तक विक्रेताओं से मिलती हैं कठिनाई हो तो

सुबोध घरेलु लाइब्रेरी योजना

के सदस्य दो रुपये अमानत राशि भेजकर बनें

- प्रति दो मास में १२-०० की पुस्तकें १०-०० में डाकखर्च सहित प्राप्त करें।
- सुबोध साहित्य मासिक पत्रिका निःशुल्क
- पोस्टकार्ड पर इस पृष्ठ पर छपी कोई सी भी १२-०० की पुस्तकों के नाम हमें लिख भेजें १०-०० की वी० पी० के साथ आपकी अमानत राशि २-०० जोड़कर १२-०० की वी० पी० भेज दी जायगी। फिर हर दो मास में आपको १०-०० की वी०पी० भेजी जाती रहेगी।

सुबोध पॉकेट बुक्स
२-अन्सारी रोड
दरियागंज, दिल्ली-६

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका।
अप्रैल, १९७५
वर्ष : १५; पूर्णांक : १६८

समांतर कहानी विशेषांक-७
दलित साहित्य (मराठी)

कहानियां

अण्णाभाऊ साठे : मकुल मुलाणी : १२
बाबूराव बागूल : मां : २४
अर्जुन डांगले : गारदी : ३२
दया पवार : विटाल : ३६
वामन होवाल : दुमंजिला घर : ४४
नामदेव लक्ष्मण ढसाल : अनादि बंध : ४८
शंकरराव खरात : पत्र : ५२
भास्कर चंदन शिव : पानी : ६०
केशव मेश्राम : पत्तल : ६४
भीमराव शिरवाले : संक्रांति : ८४

भेंट वार्ता :

दया पवार : दादू मारुति इंदुरीकर : १६

विशिष्ट लेख

प्र. श्री. नेरूरकर : दलित साहित्य : प्रक्रिया एवं रूपरेखा : ७४
लघुकथाएं : ४३
घटना कथाएं : २३, ३५, ४२, ४७, ५६, ५७, ६८, ८३, ९१
टिप्पणियां : ५८, ५९
कविताएं : ७०, ७१

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ६, मेरा पन्ना : ८, कबिरा खड़ा बजार में : हरिशंकर परसाई : २१, चंद संतरे और : अनीता औलक : ८०, मीनाकुमारी की डायरी, नज्में : गुलजार : ८८, पहेली हल : ९१, व्यंग्य कल्पना : मदन खंडेलवाल : ९१.

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक :
  आनंद प्रकाश सिंह
- उप-संपादक :
  अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय सहयोगी :
  श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के.

यह अंक

सारिका का बहुप्रतीक्षित नया आकार आपके सामने है. इस अंक की सज्जा प्रख्यात चित्रकार जे. पी. सिंघल ने की है. सिंघल का परिचय और वक्तव्य पृष्ठ ३१ पर देखिए. समांतर अंकों में हम जिन चित्रों को प्रकाशित करते रहे हैं उनका संबंध कहानियों से नहीं है. वे चित्र अपने आप में आम आदमी की जिंदगी की कहानियां हैं और उनका उपयोग मात्र सज्जा के लिए किया गया है. सारिका की पूर्णांक संख्या में एक की भूल थी उसे इस अंक से ठीक किया जा रहा है.

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं
सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

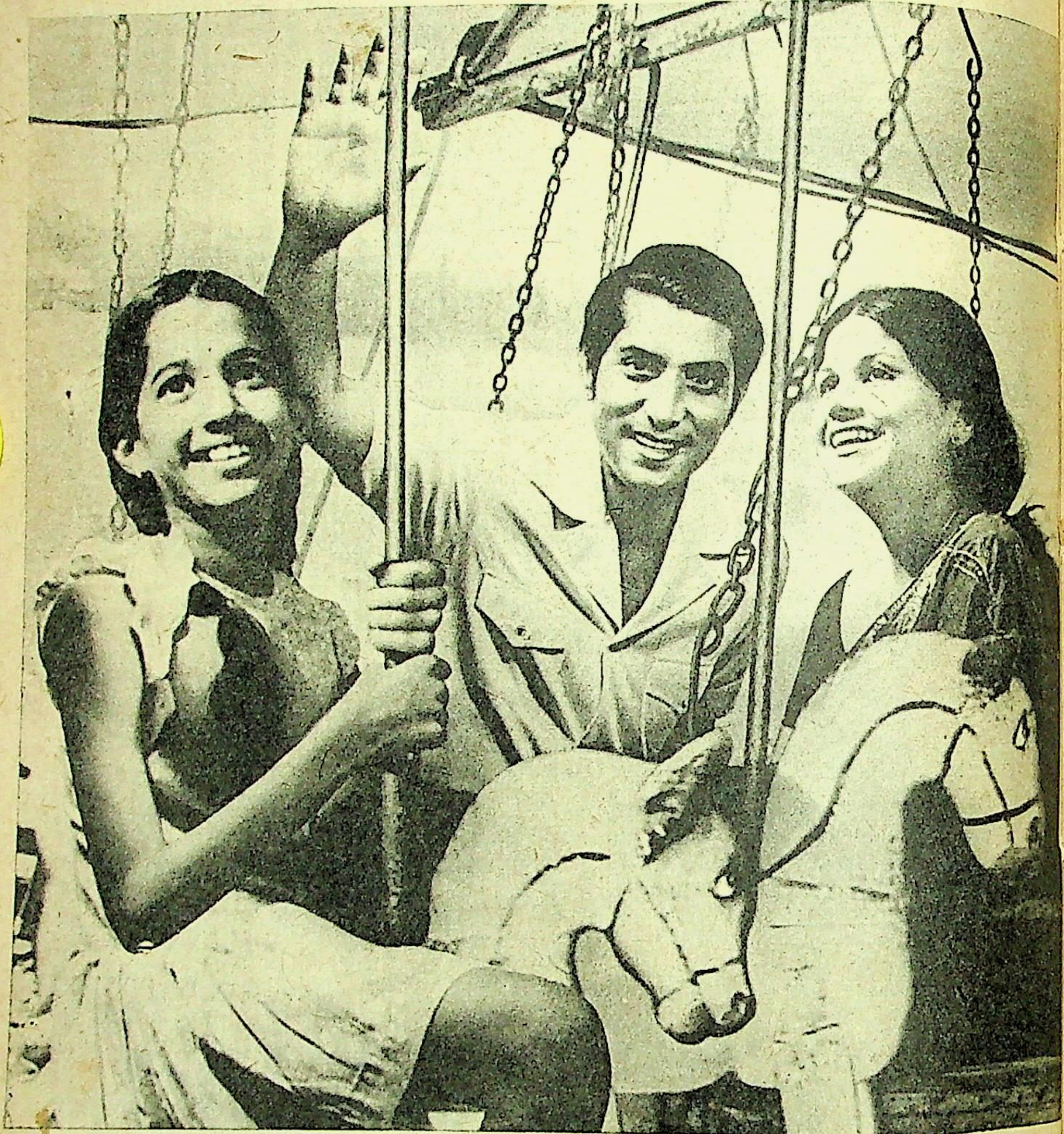

२ ऐस्प्रो लीजिये
ASPRO
Nicholas
माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है
A.G.63

सांस में दुर्गंध जुदाई कराये...

कोलगेट इनको फिर से मिलाये

DC.G.50 (R) HN

COLGATE
DENTAL CREAM

अधिक सफ़ेद दांतों, अधिक स्वस्थ मसूढ़ों
व मुंह में अधिक ताज़गी के लिये
कोलगेट टूथ ब्रश इस्तेमाल कीजिये।
१६ विभिन्न किस्मों में —
आपके परिवार में
हरेक के लिये
अनुकूल।

कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की दुर्गंध रोकिये... दंतक्षय का दिनभर प्रतिकार कीजिये!*

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल खत्म कर देता है और खाना खाने के तुरंत बाद कोलगेट विधि से दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का—अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक कीटाणुओं को दूर कर देता है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए...
दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही ख़रीदते हैं।

समांतर कहानी विशेषांक—४

'**सारिका**' का जनवरी अंक मौजूदा भारतीय परिस्थितियों पर एक करारा व्यंग्य है. '**सजा**' में हृदय लानी ने औसत आदमी के वैचारिक बिखराव, मानसिक विखंडन एवं आर्थिक दारुण्य को जिस भाषायिक कुशाग्रता से रूपायित किया है, वह अंतर्मन को झकझोर देता है. अनीता औलक की रचना '**फिर एक बार**' अवदात मानसिकता एवं शैशवोचित संवेदनशीलता का मार्मिक प्रतिरूपण है. '**यह सब अंतहीन**' में प्रभु जोशी ने 'समयगत, जीवनगत और संदर्भगत सत्यों' को अनावृत्त करते हुए इस बात को बड़े ही सहज ढंग से प्रस्तुत किया है कि आधुनिक समाज का अभावग्रस्त नागरिक भूख से इतनी बुरी तरह से टूट चुका है कि वह अपने उदर की संतुष्टि के लिए पवित्र-से-पवित्र रिश्तों को भी गिरवी रख सकता है. इब्राहीम शरीफ की कहानी, '**जमीन का आखिरी टुकड़ा**' कथानक के दृष्टि-बिंदु से चाहे भले ही साधारण हो, परंतु इसके प्रस्तुतीकरण को यथार्थवाद के पुट ने नितांत जीवनपूर्ण बना दिया है. '**घुन**' में ईश्वरचंदर ने जीवनमोह से उपजे अंतर्द्वंद्व को ईमानदारी के साथ चित्रित किया है. '**इजारेदारी**' में अजित पुष्कल ने वचनबद्धता की दयनीय स्थिति से गुजरते हुए भावुक अफसर की किंकर्तव्यविमूढ़ता का वर्णन करने में जिस सपाटबयानी का सहारा लिया है, उसकी पकड़ बहुत ही मजबूत है. '**चूहेदानी**' का विषय कसावपूर्ण होने के साथ-साथ मनोरंजक भी है. '**यंत्र-पुरुष**' वैयक्तिक तनावों का मार्मिक छायांकन है. '**इंतजार**' वर्तमान परिवेश में छटपटाते व्यक्तियों की निरीहता की संवेदनापूर्ण प्रदर्शनी है. '**हरिजन-सेवक**' भ्रष्ट अफसरों एवं रक्तपायी पूंजीपतियों के अत्याचारों में पिसने वाले, गत्यावरोधी एवं पतनोन्मुखी रूढ़ियों में जकड़े हुए, भौतिक की चकाचौंध से अपरिचित उन निम्नवर्गीय ग्रामीणों की दास्तान है, जो कूपमंडूकता, पाखंड, अशिक्षा एवं उत्पीड़न की गिरफ्त से आजादी के २७ वर्षों के बाद भी नहीं छूट सके हैं. भगवतीचरण वर्मा की विशिष्ट कहानी '**जबरा मारे रोने न दे**' चरित्रहीन पुलिसवर्ग एवं कंटकाकीर्ण पत्रकारिता को बड़े ही व्यंग्यात्मक ढंग में चित्रबद्ध करती है. '**मेरा पन्ना**' सवाक् एवं वजनदार है और '**कबिरा खड़ा बजार में**' काफी हद तक सराहनीय.

☐ **सत्येंद्रकुमार रघुवंशी, कानपुर**

सारिका' एक संवेदनशील और चेतनात्मक दस्तावेज है. तुलनात्मक दृष्टि से आजकल के पूरे जीवन में एक फड़कती नस का काम देती है. शायद '**सारिका**' कई बिखरी सोचों को पिरोती, जोड़ती है, और हम सब का दुख-दर्द बांटती है. '**मेरा पन्ना**' खासकर, क्योंकि यह अपने में ही एक ऐलान है कि आस-पास जो कुछ भी हो रहा है, देश, समाज और आम जनता के नाम पर, उस सब की हकीकत को छिपाया नहीं जा सकता.

हां, एक बात और. जनवरी अंक में अनीता औलक की कहानी '**फिर एक बार. . .**' कुछ असंगत-सी लगी. ईमानदार लेखन का जो प्रज्ज्वलन '**चंद सतरें और**' में मिला, वह अद्वितीय है.

☐ **पंडित पांचाल, नयी दिल्ली**

बधाई—ढेर सारी शुभकामनाएं इब्राहीम शरीफ को मेरी तरफ से '**कहानी : इनसानी सोच के समांतर और विपरीत**' के लिए. कहानी खो गयी थी, शरीफ साहब ने कहानी को खोज कर उसके वास्तविक माता-पिता के पास पहुंचाने की कोशिश की है. लेकिन हमें सचेत रहना है कि गलत लोग फिर से कहानी को छीन न ले जायें या कहानी को बहकाने की कोशिश न करें. कहानी को गलत लोगों से बचाने में '**सारिका**' का विशेष हाथ रहा है.

☐ **भवनाथ झा, जमशेदपुर**

पता नहीं क्यों जब से '**सारिका**' पढ़ना शुरू किया है, जीवन का सब कुछ बदला-बदला-सा लगता है—मानव संबंधों के प्रति अपनी तमाम विचारधाराओं को, '**सारिका**' के हर नये अंक के साथ, फिर से जांच-परख कर नया रूप, नया आयाम देने को बाध्य होता रहा हूं.

'**मेरा पन्ना**' बेहद सफल जा रहा है. यह किसी भी इनसान को आंदोलित किये बगैर नहीं रह सकता. यों तो जनवरी माह की हर कहानी जानदार है, फिर भी कुछ कहानियां बेहद पसंद आयीं. जहां इब्राहीम शरीफ ने आम आदमी की जिंदगी के भीतरी हिस्से को दर्शाया है, सुरेश सेठ ने '**यंत्र-पुरुष**' में हुक्मरानों की आला नक्काशी की है. प्रभु जोशी की '**यह सब अंतहीन**' सचमुच मानव-संबंधों के अर्थों पर अपना एक अंतहीन प्रभाव छोड़ जाती है.

☐ **सुरेंद्र भारती, मोतीहारी**

कभी सोचता था कि '**सारिका**' श्रेष्ठजन (एलीट) की पत्रिका है, परंतु कुछ वर्षों से उसका स्वर क्रमशः आग्नेय होता गया है. जनवरी अंक ने अंतर्मन का हर तार झनझना दिया है. पहली बार महसूस किया कि हिंदी कहानी न सिर्फ आज की विरूपता को प्रतिबिंबित करती है, वरन् एक सीमाहीन आक्रोश जगा कर उसे बदलने का नव दिशाबोध भी देती है. '**जमीन का आखिरी टुकड़ा**' उस ग्रामीण निम्नमध्यवर्ग की आर्थिक त्रासदी और शोषण को चित्रित करती है, जिसकी नियति अंततः सर्वहारा-वर्ग के संघर्ष के साथ जुड़ी हुई है. यह संपूर्ण देश एक '**चूहेदानी**' बन गया है. हर आम आदमी की आंख में 'डर, संताप और आशंका' है. हम सब 'आने वाले विभीषिकाओं भरे क्षणों का इंतजार भर' कर सकते हैं, क्योंकि इस देश को एक 'अंधेरी, सीलन और बदबू भरी सुरंग' में घुसा कर ड्राइवर न जाने कहां गायब हो गया है. '**यंत्र-पुरुष**' में बंसीधर मास्टर का लड़का जिनके बीच से उठा था, उन्हीं को रौंदता हुआ नौकरशाह-वर्गीय चरित्र के अनुरूप क्लब की तरफ पीने और बिलियर्ड खेलने के लिए बढ़ जाता है. अभावों के महासागर में तैरता हुआ हर मध्यवर्गीय संवेदनशील व्यक्ति समृद्धि के द्वीपों

को देखने की **'सजा'** भुगत रहा है और उम्मीद लगातार किसी बदचलन औरत की तरह उसका पीछा करती रहती है!' हृदयहीन नौकरशाही की देन **'इंतजार'** ने न जाने कितनों के जीवन में अधःपतन और यातनाओं के नरक की सृष्टि कर दी है. **'हरिजन-सेवक'** में गांधी के मिथ्या उत्तराधिकारियों का यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है. **'यह सब अंतहीन'** का बीभत्स अंत पढ़ कर मन-प्राण में एक अनाम विक्षोभ हहराने लगता है. अजित पुष्कल की **'इजारेदारी'** का कथ्य उस प्रशासनिक व्यवस्था को नंगा कर देता है, जिसमें कानून निरपराध और अशक्त को तो अपनी गिरफ्त में आसानी से जकड़ लेता है, पर वास्तविक अपराधी उसके जाल से मुक्त रह जाता है. **'जुलूस'** का सहयात्री स्वयं को 'वर्षों से जारी एक अवैध अन्याय का शिकार महसूस करता है' पर साथ ही यह भी महसूसता है कि 'भीड़ एक 'नॉन-इश्यू' के पीछे संगठित हो गयी है. समाजवादी क्रांति के गर्भपात में से जिस अमानवीय क्रूर विरूपता का दूसरा नाम फासिस्टवाद जन्म लेता है, उसकी ओर यह कहानी एक इशारा करती है. इस संपूर्ण मरणांतक माहौल के विरुद्ध एक ही उपाय शेष रह गया है और वह यह है कि **'घुन'** के पात्र की तरह साहसपूर्वक मृत्यु का वरण किया जाये तथा 'अपने को सड़ा हुआ न मानने की जिद पर अड़ा रहा जाये.'

☐ **रमणलाल जैन, डूंगरपुर**

'सारिका' खरीद कर पढ़ने की ख्वाहिश बहुत दिन से थी, मगर हर बार उसे अपने एक मित्र के हाथ में देख कर शर्मिंदा हो जाता कि संयोग से उन दिनों कोई पैसा पास न रहता था. मगर जनवरी, १९७५ अंक खरीद ही लिया. तीन कहानियां विशेष रूप से अच्छी लगीं. **'जमीन का आखिरी टुकड़ा'** (इब्राहीम शरीफ) सशक्त व्यंग्य है. इसका अंत बहुत ही खूब है. **'जबरा मारे रोने न दे'** (भगवतीचरण वर्मा की दसवीं कहानी) इसलिए अच्छी लगी कि मैंने अपने विद्यार्थी-काल में इनका एक उपन्यास—**'वह फिर नहीं आयी'**––पढ़ा था, जिसकी छाप मेरे दिल पर अमिट रही.

'इजारेदारी' (अजित पुष्कल) में मुझे अपना ही किरदार नजर आया. मैं १९५९ से १९६४ तक उत्तर प्रदेश के फूड एंड सिविल सप्लाइज डिपार्टमेंट में मार्केटिंग इंस्पेक्टर रहा और मैंने अजित पुष्कल की ही तरह कानून तोड़ने वालों का नंगापन देखा. बहुत-से सेठ-साहूकारों को मैंने हवालात की हवा खिलायी. गुड़, चावल और अनाज का स्मगलिंग पकड़ने के लिए जान हथेली पर रखी. उस दौरान कुछ जिंदा कहानियां भी लिखीं. लेकिन मैंने यह महसूस किया कि कौवों के घेरे में हंस अकेला क्या-क्या कर सकता है, और फिर मैं उस नौकरी से हट गया.

☐ **सैयद अख्तरुल इस्लाम, मेरठ**

'नया वर्ष शुभ हो!' दुष्यंतकुमार की गजल की अंतिम दो पंक्तियों—'अब नयी तहजीब के पेशे-नजर हम, आदमी को भून कर खाने लगे हैं'—से सजा हुआ नये साल का पहला अंक देखा और पढ़ा. आदमी को भून कर खाने वाले ये आदमखोर कौन हैं—इसका परिचय 'समांतर कहानी विशेषांक-४' में छपी कहानियों में स्पष्ट देखने को मिलता है. आम आदमी के आसपास मंडराने वाले ये जहरीले दांतों वाले आदमखोर हर उस आदमी को टुकड़ा-टुकड़ा कर, नोच-नोच कर खा रहे हैं जो यथास्थिति में जीने का अभ्यस्त हो गया है. जनवरी '७५ में प्रकाशित कहानी **'जमीन का आखिरी टुकड़ा'** (इब्राहीम शरीफ) का कारिंदा, **'यंत्र-पुरुष'** (सुरेश सेठ) का देवन बाबू, **'हरिजन-सेवक'** (मधुकर सिंह) का मुखिया, **'जबरा मारे रोने न दे'** (भगवतीचरण वर्मा) का धम्मन सिंह, **'सजा'** (हृदय लानी) का वह गुमनाम साहब—सभी आदमखोर हैं जो नैतिकता की जंजीरें तोड़ कर सरे-आम पागल कुत्ते की तरह लार टपकाये आम आदमी को काटते फिर रहे हैं. लेकिन यह वैज्ञानिक सिद्धांत है कि जो कुत्ता पागल हो कर दूसरे को काटता है, वह स्वयं भी जीवित नहीं रहता है. ठीक यही हश्र इन आदमखोरों का होगा. आज के लेखन का महत्व इसीलिए बढ़ा है कि उसका रचयिता स्वयं उस वर्ग से है, जिसमें रहते हुए इन आदमखोरों से मुक्त होने की इच्छा मन में दबाये हुए वह छटपटा रहा है. आज के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह झूठा दिलासा दे कर गुमराह नहीं करता, वह नेताओं की भांति झूठे आश्वासनों से निर्धनता मिटाने की डींग नहीं हांकता. वह आदर्शवादी लेखक की तरह अली बाबा चालीस चोर की कहानी गढ़ कर मजमा नहीं जमाता, बल्कि यथास्थिति को सम्यक दृष्टि से देखता हुआ उससे जूझने की शक्ति प्रदान करता है. इससे पहले कि ये आदमखोर अपने नुकीले दांतों, असुर हाथों से हमारी ओर बढ़ें, हमें टुकड़ा-टुकड़ा कर खा जायें, आओ, हम दृढ़ता से अपने परिवेश के सत्य को स्वीकारें और उससे भिड़ते हुए आगे निकलें. क्योंकि हमारी जीवनस्थिति एक-सी है, हमारी परिस्थितियां एक-सी हैं, हमारे हित एक-से हैं. आओ, हम अपनी मानसिकता को कमजोर न बनायें, अपने में सम्यक दृष्टि पैदा करें और उस पागल कुत्ते को मार भगायें.

कमलेश्वर जी ने (**'मेरा पन्ना'**) नये वर्ष की शुभकामनाएं देने की औपचारिकता का विरोध जिन विचारों को ले कर किया है, उनसे मैं भी पूरी तरह सहमत हूं.

☐ **हे. कांत कात्यायन, मंडी**

हाय सारिके!

अपने सुकोमल आकार में, मीठी कटार घुमाने से तू अपना चौथा भाग खो बैठेगी. २२०८ वर्ग इंच की कमी दे कर तू मिनी-सलोनी कहलायेगी. हमें लगभग २५ पृष्ठों से हाथ धोना पड़ेगा! ४ से ५ कहानियां कम पढ़ने व छपने को मिलेंगी.

प्रौढ़ा की जगह भले ही तू अल्हड़ दीखने लगे लेकिन इस क्रूर मजाक को हमें ही तो सहन करना है. कर लेंगे. तू किसी रूप में भी रहे, बस दर्शन देती रहे, यही कामना है.

☐ **मातादीन खरवार, बंबई.**

आज का यथार्थ : समांतर संसार-७

मेरा पन्ना

कितनी कोशिश की है हमने 'आदमी' बनने की! वैदिक काल की सप्त मर्यादाओं से ले कर आज के यथार्थवादी काल की प्रतिबद्धता और संबद्धता की शपथों तक! वैदिक काल में हमने आम आदमी के हित के लिए शपथें खायी थीं--सत्य-निष्ठ, संयत, निर्दोष, भद्र, निष्पाप, उदात्त और उदार होने की!

ब्राह्मण और आरण्यक ग्रंथों में जिस सत्य की कामना की गयी थी, उसे भी व्यक्ति के सदाचरणों के लिए स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया था, ताकि 'सत्य' मनुष्य के विरुद्ध न चला जाये (क्योंकि सत्य की धारणा ही सापेक्षता में है, निरपेक्षता में नहीं.)

उपनिषदों ने भी समस्त प्राणियों में 'ईश्वर का अंश विद्यमान है' स्वीकारने के बाद ईश्वर को सर्वव्यापी, शुद्ध, पापहीन, मुक्त और स्वयंभू माना था, ब्रह्मरूप! और सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, मैत्री, उदारता, आत्म-ज्ञान की अध्यात्मवादी दृष्टि का विकास मनुष्य के लिए ही किया था. अद्वैत आदर्श की प्रतिष्ठा जिन आधारों पर उपनिषदों में हुई थी, उनमें 'इच्छा' का निषेध या संयमन ही प्रमुख था. मोह और शोक से ऊपर उठ कर 'आत्मरूप' होने के लिए! यानी सामाजिक व्यवहार के सद्-नियमों की नींव पर ही व्यक्ति के आध्यात्मिक उदात्तीकरण की सीढ़ी टिकायी गयी थी.

षड्दर्शन (दर्शनशास्त्र) जीव, आत्मा, प्रकृति तथा ब्रह्म की व्याख्या करते हुए भी यम और नियमों को नजरअंदाज नहीं कर देते. वहां भी क्षमा, नम्रता, अक्रोध, दान, दया, मैत्री, मधुरता और कोमलता की मांग मनुष्य के संदर्भ में ही गयी है. . .ब्रह्म के लिए नहीं, बल्कि ब्रह्म (सत्य) की प्राप्ति के लिए!

स्मृतिकारों ने समाज-संरचना का जो चौखटा खड़ा किया और श्रम-विभाजन करके उत्पादक शक्तियों (आध्यात्मिक और लौकिक) को अलग-अलग 'अवसर' और 'स्तर' दिये (जो कालांतर में विषमतामूलक सिद्ध हुए) वे भी, यदि हम स्मृतिकारों की सदाशयता पर विश्वास करें (और उसे कोई साजिश न मानें) तो मनुष्यमूलक ही रहें होंगे, जहां 'जन्मना' स्थिति का नकार और 'कर्मणा' स्थिति का स्वीकार था. स्मृतिकारों को क्यों जरूरत पड़ी कि वे कर्म के आधार पर वर्णों की व्यवस्था करने को तत्पर हुए? शायद इसलिए कि समाज बुरी तरह दूषित हो चुका होगा और लौकिक नियम 'जन्मना' व्यक्तियों द्वारा खंडित किये जा रहे होंगे! विषमता और शोषण का वह दौर जो तत्कालीन समाज में चालू हुआ होगा, उसे संतुलित रूप देने का शायद यह वही लीपा-पोती वाला शांतिमय, विकासवादी रूप रहा होगा, जैसा कि आज फिर अपने देश में होता दिखायी दे रहा है.

स्मृतियुग के इस भूचाल के बाद पुराणों की परिकल्पनाओं, वैष्णव और भागवत धर्मों की मान्यताओं ने फिर मनुष्य के लिए तृष्णा के त्याग, करुणा के वरण और पीड़ा के नाश के लिए भक्ति-द्वार सभी वर्गों के लिए खोलने की शपथ खायी!

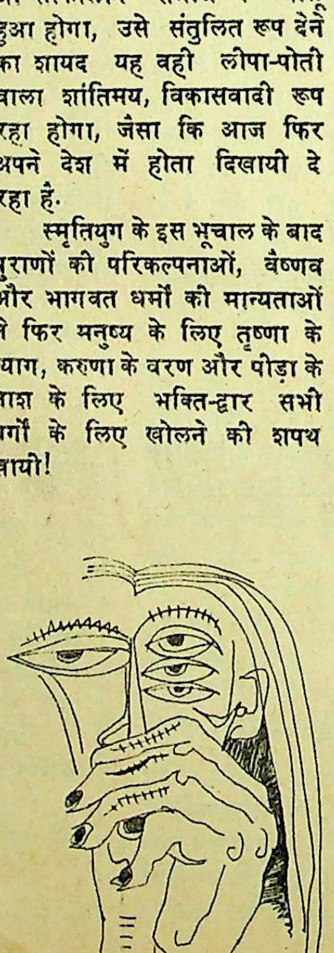
● दत्ता राने

और भगवान बुद्ध को कहना पड़ा: 'जब तक विश्व के क्षुद्राति-क्षुद्र प्राणी को दुख से मुक्ति नहीं मिल जाती,' तब तक बोधिसत्व अपनी मुक्ति की कामना नहीं करते! अष्टांगिक मार्ग भी मनुष्य के लिए ली गयी आठ शपथें ही थीं--ज्ञान, संकल्प, वचन, कर्म, आजीविका, व्यायाम (मेहनत), स्मृति (संताप) तथा समाधि (एकाग्रता) के रूप में! इन आठों बौद्ध शपथों को भी वर्णहीन समाज की नींव पर ही खड़ा किया गया था. लौकिक न्याय के बिना आध्यात्मिक निर्वाण की कल्पना नहीं की गयी थी.

जैन दर्शन ने 'चातुर्याम धर्म' को मनुष्य के लिए विवेचित करते हुए 'अनेकांत' की सापेक्षतावादी दृष्टि को मंजूर किया था--कि वस्तु का एक रूप नहीं होता, एक ही वस्तु के अनेक रूप होते हैं--यानी सत्य एकरूपा नहीं है, बहुरूपा है, और उसके सत् या असत् रूप को आदमी की 'अपेक्षा' तय करती है. यानी सत्य निरपेक्ष नहीं है. सत्य समय और मनुष्य सापेक्ष है.

अगर हम वैदिक काल से जैन युग तक आदमी बन गये होते, तो संत कवियों ने 'सर्वात्मवादी' संबोध को शायद कारगर कर लिया होता. . .पर तब संतों को आदमी और आदमी (आदमी और निराकार ब्रह्म) के बीच आ गये भेद को मिटाने के लिए गरीबदास की तरह कहना पड़ा --

कैसे हिंदू तुरक कहाया,
सब ही एकै द्वारे आया।

कैसे बाहमन कैसे सूद्र,
एकै हाड़ चाम तम गूद।।

* *

बार-बार, हर दौर में ये शपथें खा कर भी हम आदमी नहीं बन पाये. संत कवियों ने अपने

दौर के शोषित, प्रताड़ित और विषमता-पीड़ित आम आदमी के लिए जो संघर्ष किया, उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है.

लेकिन हुआ क्या?

स्वतंत्र भारत का संविधान फिर एक उदात्त किस्म की 'स्मृति' बन कर इतिहास के चौखटे में जड़ जायेगा. इतनी दया, करुणा, नम्रता, अहिंसा, शांति, क्षमा, उदारता, नीति, समता, अद्वैत, अपरिग्रह, अक्रोध, दान, मैत्री, संकल्प, वचन, कर्म और अनेकांत आदि के विराट और उदात्त महामूल्यों की बात करते हुए भी हम इन्हें वास्तव में जीवन-मूल्य क्यों नहीं बना पाये? और अंततः इन्हें सामाजिक संहिता में क्यों शामिल नहीं कर पाये? शुभ की इतनी बड़ी-बड़ी और मानवीय शपथें खा कर भी क्यों मनुष्य को उसका शुभ और सुख नहीं दे पाये?

यहां पर तर्क के लिए कहा जा सकता है कि ये सब पारलौकिक मूल्य थे...आत्मा और ब्रह्म के संदर्भ में! इनका लौकिकता से संबंध नहीं था—जी नहीं, भारतीय मनीषा की विराटता और विशेषता ही यह है कि उसने लौकिक के बिना पारलौकिक की परिकल्पना ही नहीं की है. उसने मनुष्य की आदिम वृत्तियों के शमन और संयमन से बृहत्तर मानव-कल्याण की दृष्टि को विकसित करने की कोशिश की. चिंतनीय यह है कि मानव-कल्याण की इतनी जबरदस्त पैरवी करने वाला देश इतने बड़े अकल्याणकारी यातना-शिविर में क्यों बदल गया?

शायद इसलिए कि इस देश में महान सिद्धांत, धारणाएं और मूल्य तो बनते चले गये, पर उनकी व्यावहारिकता या चलन की जांच-परख कभी नहीं की गयी. क्योंकि भारतीय समाज अपने विभिन्न युगों में सामाजिक नियमों की जरूरतों से चालित न हो कर संरक्षावादी (ट्रस्टीशिप) सिद्धांतों के तहत सही और गलत, जरूरी और गैर-जरूरी का निर्णय करता आया है. यह पुरातन समाज शुरू से ही हर मानवोचित सामाजिक और वैयक्तिक अपेक्षा के लिए संरक्षकों (ट्रस्टीज) को मंजूर करता आया है. आत्मा के संरक्षक, धर्म के संरक्षक, सुख-दुख के संरक्षक, पाप और पुण्य के संरक्षक, भौतिक मूल्यों के संरक्षक और आधिभौतिक शक्तियों के संरक्षक! इन संरक्षकों को यदि पंडा या पुरोहित कह दिया जाये, तो गलत नहीं होगा.

राजनीतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक परिवर्तन का लगातार घोर विरोध इन पुरोहितवादी शक्तियों ने किया. जिस विषचक्र में इन्होंने सदियों से भारतीय समाज और उसकी चौतरफा मुक्ति को कस लिया था, वह नागफांस आज भी पूरी तरह ढीला नहीं हुआ है. मात्र इसीलिए कि मानव-कल्याण की शपथें खाते हुए भी भारतीय चिंतन और साहित्य ने अपनी सामाजिक सापेक्षता और मूल्यों के व्यवहार में लाये जाने के तकाजों पर गिद्ध-दृष्टि नहीं रखी. वे कह कर या चिंतन करके निरपेक्ष होते गये—इस विश्वास के साथ कि सत्य सत्य हो कर रहेगा!

इस सहज विश्वास के साथ कितना बड़ा विश्वासघात किया गया, यह आज सामने है, क्योंकि हम उस आधारभूत आवाज से भी निरपेक्ष हो गये जो कहती रही कि सत्य एकरूपा नहीं है, बहुरूपा है! और उसके सत् या असत् रूप को मनुष्य की अपेक्षा तय करती है!

संतवाणी ने सामाजिक विषमता के स्तर पर इसी मनुष्य-सापेक्ष सत्य को अभिव्यक्ति दी थी. उन्हें भी पुरोहितों और पंडों ने परिवर्तनवादी शक्ति में नहीं बदलने दिया; उन्हें निराकार को समर्पित कर दिया. उनके परिवर्तनकामी मंतव्यों को धीरे से थपथपा कर, उनके निराकार ब्रह्म की साधना को मोटी लाइन खींच कर रेखांकित कर दिया. उसके मनुष्य-सापेक्ष सामाजिक प्रश्नों को दबा कर निरपेक्ष, निराकार साहित्यिकता की गरिमा को धारण कर लिया! साहित्य के प्रश्नों से तटस्थ हो जाने और साहित्य के प्रश्नरहित 'सौंदर्य' को गले लगा लेने की परिपाटी भी साहित्यिक पंडागीरी ही है.

इसीलिए आज का साहित्य तटस्थता और निरपेक्षता को बहुत पीछे छोड़ कर प्रतिबद्धता, और उससे भी आगे बढ़ कर, संपूर्ण संबद्धता की बात करता है और यहीं पर नहीं रुकता—वह मूल्यों के व्यवहार में लाये जाने के तकाजों पर गिद्ध-दृष्टि भी रखता है. उनको कार्यान्वित भी करना चाहता है.

* *

आज का मराठी दलित साहित्य समांतर साहित्य की ही तरह जब सम्यक् परिवर्तन की बात करता है, तो मात्र साहित्य की चिंताओं तक सीमित नहीं रह जाता—क्योंकि दलित साहित्य उन शपथों से आगाह है जो हर युग में ली गयी हैं, पर कार्यान्वित नहीं की गयी हैं. आज दलित साहित्य का यह उन्मेष मात्र साहित्यिक घटना नहीं है. यह ऐतिहासिक घटना है और यह इतिहास का संपूर्ण, वैज्ञानिक और विराट सामाजिक पुनर्मूल्यांकन करना चाहता है!

दलित साहित्य उन निरपेक्षतावादियों, सौंदर्यवादियों और निराशावादियों के लिए भी एक उत्तर है जो यह माने बैठे हैं कि साहित्य की कोई सक्रिय भूमिका अब नहीं रह गयी है. इसी साहित्य ने दलित पैंथर जैसे लड़ाकू सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन को जन्म भी दिया है. (सूचना के लिए इतना कह देना जरूरी होगा कि मराठी अपने देश की जबान है, महाराष्ट्र अपने ही देश का एक राज्य है और दलित साहित्य अपने ही देश के इस राज्य की भाषा मराठी में लिखा जा रहा है.)

कमलेश्वर

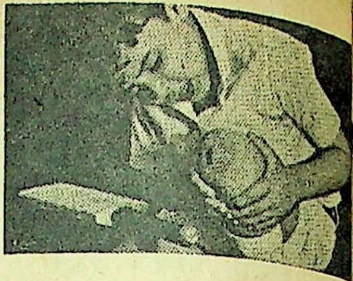

घावों को छूत लगने का ख़तरा रहता है

नयी

सुरक्षा के लिए

बैन्ड-एड पट्टियाँ लगाइए
ब्रान्ड

जिन्हें अब
जल्द घाव भरने के लिए
मर्क्युरोक्रोम
औषधियुक्त किया गया है

NEW STANDARD STRIP
BAND AID
PROTECTS AGAINST INFECTION
MEDICATED DRESSING
WITH MERCUROCHROME

बच्चे तो धूल-मिट्टी में खेलते ही रहते हैं। मगर एक जगह धू
मिट्टी का लगना ख़तरनाक है और वह जगह है—खुला घा
सभी छोटे-मोटे कटावों, खरोंचों और रगड़ों के घावों पर
बैन्ड-एड* पट्टियाँ लगाइए। अब इन्हें जाँची-परखी
एन्टिसेप्टिक, मर्क्युरोक्रोम औषधियुक्त किया गया है—
चोट-खायी त्वचा के घावों को जल्द भरने और आराम पहुँ
में मदद करती है।

आवश्यकता के अनुसार लीजिए : कटाव और खरोंच के लि
स्टैण्डर्ड स्ट्रिप्स। बड़े घावों के लिए लार्ज स्ट्रिप्स। बहुत
घावों के लिए जायन्ट स्ट्रिप्स। फोड़े-फुन्सियों के लिए स्पॉट
जहाँ पट्टियाँ बाँधी न जा सकें उन घावों के लिए पैचेस।
प्रकार की स्ट्रिप्स पाँच-पाँच एक साथ मिलती हैं।

सावधानी बरतिए—

नयी
बैन्ड-एड
पट्टियाँ लगाइए।

A Johnson & Johnson product

*TRADEMARK © J & J '73 घावों की सुरक्षा और उनके इलाज के लिए विश्वसनीय ना

व्यावसायिक पूछ-ताछ के लिए वितरकों को लिखें :

हसमुख एजेन्सी,
गोखले रोड (दक्षिण) बम्बई ४०० ०२५

हसमुखलाल एण्ड कंपनी,
गोखले रोड (दक्षिण) बम्बई ४०० ०२५

ठक्कर परषोत्तम हीरजी एण्ड कं.
मॉडी सेंटर बेसमेंट, सांताक्रुज, बम्बई ४०० ०५४

जवाहर मेडिकल एण्ड जेनरल स्टोर्स
९९-१०१ के. एन. रोड, बम्बई ४०० ००९

उन्होंने कहा था :

हम अपने जीवन की तरफ, अपने कर्तव्यों की तरफ और अपनी सांस्कृति की तरफ ध्यान नहीं देते हैं. जरा इनकी तरफ गौर करें तो हमें पता चलेगा कि हमारे जीवन मूल्य और हमारे संस्कृतिक मूल्य किस प्रकार नष्ट-विनष्ट किये जा रहे हैं. कारण कुछ भी हों, पर यह सच है हम अध:पतन और अवनति के मार्ग पर बढ़ रहे हैं. इसलिए साहित्यकारों का कर्त्तव्य है कि वे तत्परता से और सावधानी पूर्वक इन जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करें, उनमें तेज पैदा करें; उनका विकास करें. 'तुम्हारे कथा उपन्यास की सीता लक्ष्मण रेखा उलांघने लगी है, दुर्योधन के दरबार में तुम्हारी द्रोपदी के वस्त्र हरण किये जा रहे हैं. दुष्यंत तुम्हारी शकुंतला को पहचान नहीं पा रहा है—वह वनवासिनी हो रही है. इसलिए मुझे साहित्यकारों से अपनी सारी शक्ति लगा कर कहना है कि आप अपने साहित्य निर्माण द्वारा उदात्त जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित करें. अपने विचार संकुचित और सीमित न रखें, उन्हें विशाल बनाएं. अपनी वाणी को चार दीवारी से बाहर निकलने दें. अपनी लेखनी का प्रकाश अपने आंगन में ही न रोक लें, उसका तेज गांव-गांव के गहन अंधकार को दूर करने के लिए फैलने दें. यह भूल न जायें कि अपने इस देश में उपेक्षितों, दलितों और दु:खियों का अपना अलग संसार है. उनके दुख, उनकी व्यथा समझें और अपनी सृजन शक्ति उनके जीवन को उन्नत करने के लिए होम दें. यही सच्ची मानवता होगी.

● ●

मैंने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया है और अब आपके साथ अपने इस कदम पर विचार करना चाहता हूं. धर्म परिवर्तन इतना महत्वपूर्ण विषय है कि उस पर खुल कर चर्चा होनी चाहिए. मैं कई स्थानों पर अपने धर्म परिवर्तन की घोषणाएं कर चुका हूं और अब आपके सामने उपस्थित हुआ हूं.

● ●

पहले तो हम यह देखें कि हमारे अस्पृश्य माने जाने मात्र से हम पर क्या-क्या जुलुम ढाये जाते हैं. हम बच्चों को पढ़ा नहीं सकते, कुओं से पानी नहीं खींच सकते, अपने दूल्हे को घोड़े पर नहीं बैठा सकते. यदि हम अधिकार पूर्वक ऐसा करना चाहते हैं तो हमें मारा-पीटा जाता है. अच्छी पोशाकें पहनने, सोने-चांदी के जेवर पहनने, पानी के लिए तांबे-पीतल के बर्तनों का उपयोग करने, जमीन जायदाद खरीदने, मरे जानवरों को न उठाने, जनेऊ पहनने, जूते-मोजे पहनने,मरे जानवरों का मांस न खाने, हिंदुओं को जुहार न करने, शौच के लिए लोटे में पानी ले जाने आदि का विरोध किया जाता देख कर तो विदेशी भी दांतों तले अंगुली दबा लेते हैं.

● ●

और जिस धर्म में आपको नीच कहा गया है वह उन तथाकथित ऊंचों का सनातन धर्म है—सनातन, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता. यदि आप उसमें परिवर्तन कराना चाहें; उनके बराबर के स्तर पर खड़े होना चाहेंगे तो वे ऐसा नहीं होने देंगे,कलह पैदा कर देंगे. ऐसे कलहपूर्ण दयनीय वातावरण में जीना ही आप उचित समझते हों और उनकी सेवा करना ही अपना धर्म मानते हों तो फिर यहां कैसी भी चर्चा करना बेकार है. परंतु यदि आप इस गुलामी को, इस अपमान की बेड़ी को काट फेंकना चाहते हैं और स्वाभिमानपूर्वक जीना चाहते हैं तो इस समस्या पर विचार करना ही पड़ेगा..

● ●

'जिससे सारी प्रजा का धारण होता है' उसे धर्म कहते हैं. यह व्याख्या मेरी नहीं है. यह व्याख्या है सनातन-धर्म के अग्रणी लोकमान्य तिलक की. पर मैं इसे मानता हूं. जिन सामाजिक मूल्यों और रीतिरिवाजों पर समाज का व्यवहार चलता है वही धर्म है. ये मूल्य और रीति-रिवाज ही वे बंधन हैं जो व्यक्ति को समाज से बांधे रखते हैं. इसलिए धर्म की व्याख्या से अधिक महत्वपूर्ण उन बंधनों को जानना है जो समाज का योग्य संचालन करते हैं.

● ●

सहानुभूति, समता और स्वातंत्र्य व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हैं, क्या हिंदू धर्म में आपको इनमें से एक भी उपलब्ध है. सहानुभूति के नाम पर तो सर्वत्र शून्य ही नजर आता है. आपको अपना मानना तो दूर आपको बाहरी से भी बाहरी व्यक्ति की नजर से देखा जाता है. आपकी बस्ती और उनकी बस्ती शत्रुओं के पड़ावों के समान मालूम होती है. कोर्ट-कचहरी, पुलिस स्टेशन कहीं भी आप क्यों न जायें आपके साथ अभद्र व्यवहार ही होगा. क्या यह सहानुभूति है? □□□

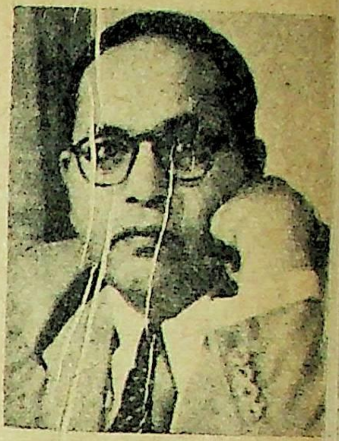

दलित साहित्य के ये दोनों अंक (अप्रैल '७५ तथा मई '७५) बाबा साहब अंबेडकर के (१४ अप्रैल) जन्म दिवस के अवसर पर उनकी स्मृति को सादर समर्पित.

मकुल मुलाणी

★ अण्णाभाऊ साठे

तेरी मुंडी काटे बगैर मुझे चैन नहीं मिलेगा——मकुल के ये शब्द हाजरा के कानों में गूंज रहे थे. उनका तीखापन उसके कलेजे में चुभ रहा था. उसकी आंखों के सामने भयानक अंधेरा छाया हुआ था. उस अंधेरे में आंखें बलपूर्वक बंद कर वह देख रही थी. मकुल ने उसकी गरदन काट डाली. पुलिस ने आ कर मकुल को कैद कर लिया. कोर्ट में मुकदमा शुरू हो गया है. . .ऐसे अनेक दृश्य उसकी आंखों के सामने घूम रहे थे.

विशाल बंबई नगरी का उपनगर, एक पहाड़ी के पैरों पर सर रखे सो रहा था. मशहूर आगरा रोड उसकी पीठ पर पैर रख बंबई की ओर निकली थी. उस उपनगर में वर्षा में भीगे कौओं के झुंड की तरह मकान थरथरा रहे थे. बीते हुए सभी युगों का अस्तित्व वहां दिखायी दे रहा था. पहाड़ी से आने वाली जंगली हवा उन मकानों को प्यार भरे धक्के दे रही थी. भैंसों के तबेलों की मूत्रभरी गंध घरों में भर रही थी. बिल्कुल एक किनारे पर बनी दो चालें. पैर फिसले हुए आदमी क तरह तिरछी हो गयी थीं. वे दोनों एक-दूसरे पर गिर वाली थीं. हर टूटे हुए दरवाजे की तख्ती पर नगर पालिका का यह हुक्म अंग्रेजी भाषा में खतरे का इशार दे रहा था : ये चालें (इमारतें) खतरनाक हैं.

लेकिन हर-एक खोली में दो-दो परिवार मौ से रहते थे. मकुल मुलाणी भी वहां अपने दस लोगों विशाल परिवार ले कर बसा था.

मकुल दरवाजे के पास पड़ा खर्राटे भर रहा उसकी विशाल देह पर हजारों मच्छर भिनभि रहे थे. तकिये के पास बैठा एक दुमकटा कुत्ता एक पुरा चुराया हुआ जूता कुतर रहा था. चाल की छत पर एक बिल्ली उसकी खबर ले रही थी कि कुत्ता क्या- लाया है.

कुछ देर पहले मकुल खाना खा कर दरवाजे पड़ा था. उसके मन में अनंत विचारों की सुइयां चु लगीं–अंगारे से अंगारा जलता है, वैसे ही विचार विचार जलने लगे. विचारों के भंवर में वह डूब गय

हमारे महमद और अमीर, इन दो बच्चों को नौ कब मिलेगी? हमारी जवान बेटी हुर्मत तमाखू म घूमती है, उसकी शादी कब होगी? और तो और, बेटी सकीना महीने में आठ दिन ससुराल रह कर ब सब दिन हमारी छाती पर मूंग दल रही है, उससे क्या क

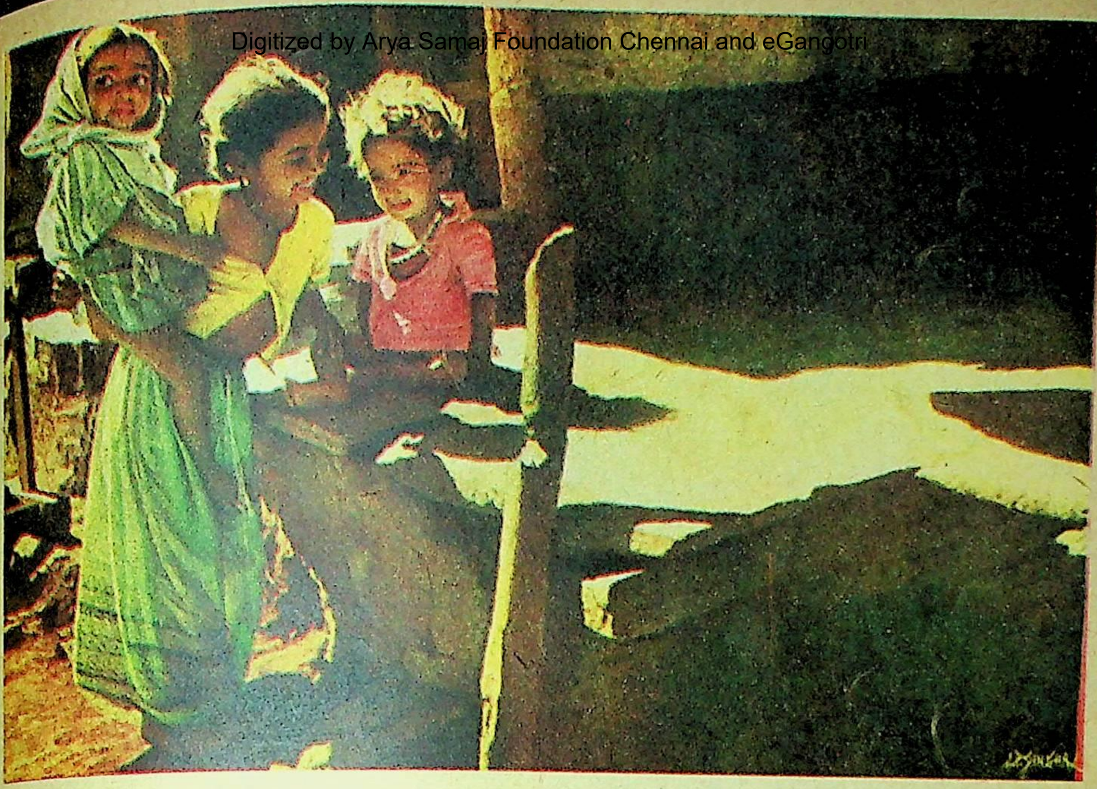

लड़वानी आलोकान के सौजन्य से

और घोड़े के साथ जिनकी तरह आया जवांई भी हमारे घर को हील रहा है, उसका बंदोबस्त कैसे करे? आज तक जैसे-तैसे मैंने इन दस आदमियों का पेट भरा है...अब क्या करूं? इन विचारों के धागों से जकड़ा मकुल का मन तड़प रहा था. तब उसकी पत्नी हाजरा बाहर आ गयी थी. उसने धीरे से कहा—सुनते हो!

—हां, बोलो, क्या है! मकुल ने कहा था.

—मैं कहती हूं सकीना को यहीं रहने दो...हाजरा ने सलाह दी. लेकिन मकुल चमक गया...

—और जवांई के घर कौन रहेगा?

हाजरा ने शांति से कहा—उसे भी यहीं रहने दो!

—और इतने लश्कर का दाना-पानी मैं अकेला कब तक पूरा करूं? मकुल झट से उठ बैठा. उसकी आवाज तेज हो गयी. उसने हाजरा पर तोप दाग दी.—क्या करूं? अपने आपको बेच डालूं? या तुम्हें बेचूं? या तेरी अम्मां को बेचूं? बोल? वह रुका और हाजरा को जोश आया. मां का नाम लेने पर वह भी भड़क उठी...

—हां-हां...मेरी अम्मां का नाम मत लेना नहीं तो...

—क्या कर लेगी तू? मकुल ने चढ़ाई शुरू की.

—सीधे मुंह बात कर! अपना बचाव करते हाजरा ने उत्तर दिया और मकुल गुर्राया—अब मैं सीधे मुंह बोलने वाला नहीं!

—यानी मुझे मारोगे? हाजरा ने गरदन को झटका दे कर कहा और मकुल ने उसी अदा से कहा—हां, अब तुझे मारूंगा!

—मारोगे! पहले कभी मारा था? हाजरा ने अपना हाथ मकुल की नाक की ओर करके पूछा और मुट्ठी बांध कर मकुल बोला—आज तक तुझे नहीं मारा, इसका मतलब यह नहीं कि कभी नहीं मारूंगा. और तुझे न मारने की वजह ये हरामजादे बच्चे हैं—एक बच्चा हुआ, कैसे मारूं? तीन हो गये—कैसे मारूं? ऐसा कहते-कहते तुझे नौ बच्चे हो गये और उन्होंने तुझे बचा लिया लेकिन...

—लेकिन क्या? अब क्या करोगे? हाजरा बीच में चिल्लायी और मकुल ने भी चिल्ला कर कहा—अब तेरी मुंडी काटे बगैर मुझे चैन नहीं मिलेगा.

मकुल की आंखों में लगी आग हाजरा ने देखी थी. उसकी आवाज उसे निश्चयात्मक लगी थी. उसके मन में डर बैठ गया. वह धीरे से पीछे सरक गयी और अपने बिस्तर पर पड़ी विचार करने लगी...कुछ देर पहले का झगड़ा उसके दिमाग में नाच रहा था. वह अपने आपसे पूछ रही थी—यह इतना खूंख्वार कैसे बन गया?

* *

कुछ दिन पहले मकुल के घर में हंसी खेल रही थी. दो लड़के नौकरी पर थे, एक रेलवे में और दूसरा बंदरगाह पर...काम करके वेतन लाते थे. छोटा नबू बकरी की मुंडियां-हड्डियां बेच कर पेट भर लेता था. मकुल मार्केट में बकरों का मांस बेचता था. महीने में दो वेतन बचते थे. वेतन के दिन दो बहूएं, दो नाती, पत्नी, दो लड़कियां, तीन बच्चे और स्वयं मकुल, दस-बारह लोग सजधज कर सिनेमा जाते थे. नमाज को जाते थे. अच्छे लोग मान कर पड़ोसी भी उनका सम्मान करते थे. लोग कहते—मकुल मुलाणी अच्छा है!

लेकिन वह भयानक दिन भी आया. उस दिन

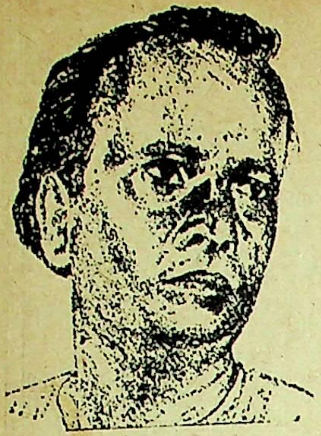

अण्णाभाऊ साठे : उपन्यासकार
कहानीकार, नाटककार, लोककवि

महमद और अमीर की नौकरियां छूट गयीं. दो वेतनों का झरना सूख गया. आज नहीं, कल मिलेगी, इस आशा पर कुछ दिन बीत गये. घर की वस्तुएं बिक गयीं. मकुल के परिवार के सामने मुसीबत की चट्टान आ गयी. दो होनहार जवान बेटे बेकार हो कर काम की तलाश में भटकने लगे और अकेला मकुल संसार का हल गर्दन पर रखे खींच रहा था. परेशानी से खींच रहा था——लेकिन सब व्यर्थ था. प्रपंच की फटी गुदड़ी फिर से नहीं सिल पाती. उसे ठीक करने के लिए एक रोटी की दो रोटियां होने लगीं. नाममात्र का भात बरतन में पकने लगा. दाल की पतीली पानी से बढ़ने लगी और आधापेट खा कर रहने वाले लोग एक-दूसरे को चकमा देने लगे. दोनों बहुएं चुरा कर खाने लगीं और एक-दूसरे की चुगली हाजरा से करने लगीं. हाजरा उन दोनों को दो-दो दिन सोने नहीं देती और उनकी नींद हराम कर देती. लड़कों को काम न मिलने से मकुल उनसे चिढ़ने लगा. कभी कभी हाथ में आये सभी पैसों से होटल में खाना खा कर घर के सभी लोगों को भूखा छोड़ देता. जिसके हाथ में तीर, वही सेनापति था. उस घर के दो आदमी एक साथ आने पर एक-दूसरे पर गुर्राते थे. एक-दूसरे से द्वेष रखते थे. फिर भी एक कमरे में रहते थे.

★ ★

सुबह हो गयी थी.

वह बंबई की सुहावनी सुबह थी. पैंतीस लाख लोगों को जगाने के लिए वह हुई थी. उसके आगमन से करोड़ों हाथ संपत्ति के पर्वत रचने के लिए सज जाते थे. उन हाथों से राक्षसकाय यंत्र को मानवता के आगे झुकाने के लिए मजदूर नये उत्साह से जागा था. उसके फौलादी पैरों से बंबई के सभी राजमार्ग पुलकित थे. आगरा रोड भी जाग कर बंबई की ओर दौड़ रही थी. वह उपनगर जाग गया था. दूध वाले भैय्ये दौड़-दौड़ कर दूध दे रहे थे. लोग काम के लिए निकल पड़े थे. मकुल जाग पड़ा. उसने मुंह पर पानी फेरा. घर में जा कर चाय का प्याला लिया. गंभीर मुद्रा बना कर, चाय का घूंट ले कर उसने हुक्म देने के स्वर में चेतावनी दी——ए, ए, सालो! आज तुम्हें नौकरी मिलनी चाहिए. यह सुन कर महमद बोला—और अगर नहीं मिली तो . . .?

—नहीं मिली तो . . .? मकुल आंखें गड़ा कर चिड़-चिड़े स्वर में बोला——अपने-अपने बीवी-बच्चे संभालो——नहीं तो उन्हें जिंदा गाड़ दो.

——मैं नौकरी करूंगा ही नहीं! अमीर ने झुंझला कर कहा.

—फिर खाओगे क्या? पत्थर! आंखें छोटी कर मकुल ने सवाल किया.

——मैं मार्केट में दूकान शुरू करूंगा, अमीर ने कहा.

——फिर मैं भी वही करूंगा, महमद बोला.

——कुछ भी करो! मकुल चिल्लाया. दूकान डाल कर मटन बेचो या डाके डाल कर जियो—लेकिन जियो. . . मैं चला.

मकुल मार्केट की ओर चला गया.

★ ★

वह रविवार का दिन था. मार्केट में छह दूकानदार ग्राहकों पर नजर जमाये बैठे थे. उनकी नाक की सीध में लटकने वाली बकरों की टांगें झूम रही थीं. उनके पास छुरे चमचमा रहे थे. हरे रंग की बड़ी-बड़ी मक्खियां भिन्ना रही थीं और चोर बिल्लियां कसाई की आंखें बचा कर उन पर हावी होने का इरादा कर रही थीं. पास ही भुखमरे कुत्ते हड्डियां चबा कर अपने मुंह खून से लथपथ कर रहे थे. मकुल अपनी लुंगी कसे, हाथ में छुरा लिये बैठा था. सामने अमीर आने वालों ग्राहकों को बुला रहा था. पड़ोस में महमद तो होश-हवास खो बैठा था. सभी दूकानदार आज जंगली बन गये थे. आने वाले ग्राहकों को अपना-अपना माल थोपने की पूरी-पूरी कोशिश कर रहे थे. ग्राहक के मार्केट में पैर रखते ही 'ए दाऽऽदाऽ' की चिल्लाहट छत को हिला रही थी. ग्राहक भीड़ को देख कर बकरी के बच्चे-सा भागता था. ग्राहक के भागने पर वे छह कसाई एक-दूसरे पर गुर्राते थे. गालियां देते थे.

—ए भोसड़ी के, कायकू चिल्लाते? आरे ओ मामु तो मेरा था!

——अबे भड़वे! मकुल उन सभी से कह रहा था—ओ तो हमारी चाली में र्‌हैत्या है.

उस मार्केट का व्यापार कठिनाई से चल रहा था. छह कसाई लड़-झगड़ कर बिक्री कर रहे थे. मकुल मुलाणी बार-बार अपनी रकम गिन रहा था. उसके सामने सिर्फ सवा रुपया मुंह चिढ़ा रहा था. माथे पर बल डाले उस रुपये की ओर देख कर वह सोचने लगा—आज ग्राहक क्यों नहीं आ रहे? अमीर और महमद की दो दूकानें होने से ही अपना धंधा बैठ गया है. अब अपना क्या होगा? ग्यारह बज गये. अब तक माल नहीं उठा. यह सोच कर मकुल बैठा था.

तभी एक दुबली-पतली क्रिश्चियन बुढ़िया मार्केट में आयी. अंदर आ कर उसने अपना लंबा फ्रॉक ठीकठाक किया. हाथ की थैली झटक कर तिरछी गरदन

से उसने सभी कसाइयों को देखा और खड़िया की तरह सहमती आगे बढ़ी. तब 'मेरी बुढ़िया' कह कर छह कसाइयों ने एक साथ हांक लगायी. उसी समय बुढ़िया झट से रुक गयी. कछुए की तरह उसने गरदन भीतर खींच ली और आंखें फैला कर उन सबकी ओर देखने लगी. हम अंग्रेजों के वारिस हैं, और ये सब जंगली लोग हैं—यह भाव उसके चेहरे पर आया. वह गुस्से से देखती हुई आगे चलने लगी. तभी एक कसाई चिल्लाया :

—खबरदार, उसे आने दो.वह मेरी बुढ़िया है.उसने हाथ का छुरा सभी पर साधा. तभी मकुल ने उठ कर कहा—ए मादर. . .बुढ़िया मेरी है.

मकुल ने सामने कांटे पर लगी बकरे की टांग हाथ में ले कर उस बुढ़िया को पुकारा——आंटी, देख मैं तेराच इंतजार कर रहा हूं. इतना कह कर बुढ़िया के आगे आने का इंतजार न करते हुए उसने झट से छलांग लगायी और उस बुढ़िया को झपट लिया. एक हाथ में बकरी की टांग और दूसरे हाथ में बुढ़िया की पतली बांह पकड़ कर वह उसे खींचने लगा. तभी महमद दौड़ते हुए आया. उसने बुढ़िया की दूसरी बांह पकड़ी और झटका दिया. पल भर में सभी कसाई बुढ़िया पर टूट पड़े और उसकी मिट्टी पलीद होने लगी.

—मेरी दोनों बांहें अब उखड़ जायेंगी. अब मैं मर जाऊंगी, इन जंगलियों की पकड़ से छूटने वाली नहीं—यह बुढ़िया को यकीन हो गया. वह सूअर के पिल्लों की तरह चिल्लाने लगी.

वे छह कसाई शेरों की तरह दहाड़ते हुए उसे खींच रहे थे. तभी अमीर ने मकुल के गालों पर जोर से मुक्का मारा. मकुल नीचे गिर गया. लेकिन तभी चपलता से उसने बुढ़िया की एक टांग पकड़ ली और बुढ़िया के साथ-साथ मकुल भी खिचने लगा. अमीर ने मकुल को मारा, यह देख कर महमद को गुस्सा आ गया. उसने हड्डियां तोड़ने वाली लकड़ी का टुकड़ा उठा कर अमीर की पीठ में दे मारा. उसी समय अमीर सामने की दीवार से टकराया उसका सर फट गया. वह खून से तर हो गया. उसने पल भर रुक कर झट से महमद पर हमला किया. उसकी नाक फोड़ डाली. इस लड़ाई में मौका पा कर बुढ़िया जान बचा कर भाग गयी.

भीड़ बढ़ गयी. लोगों ने बीच-बचाव कर इस यादवी लड़ाई को रोका. बाप को मारने के लिए लोग अमीर को दोष देने लगे.

★ ★

उस भीड़ में अमीर और महमद अपने जख्म पोंछ रहे थे. मकुल मुलाणी गाल पर हाथ धरे बड़बड़ा कर रो रहा था—मुझे मेरे बच्चे ने मारा. मेरी बेइज्जती हो गयी. यह कहते-कहते वह उस भीड़ में कुछ ढूंढ़ रहा था. देखने वाले उसे भी उपदेश दे रहे थे. तभी मकुल ने अपनी गिरी हुई दाढ़ को उंगली में पकड़ा और जोर से चिल्लाया—मेरे बेटे ने मेरी दाढ़ तोड़ दी . . .ये. . .

मकुल एकदम घर की ओर भागा. उसके पीछे-पीछे अमीर और महमद, दोनों दौड़ पड़े. उन लोगों को मुंह दिखाने में उन्हें शर्म आ रही थी.

मार्केट का वह भयानक दंगल देख कर सारी बस्ती थरथरा रही थी. बाप-बेटों की मारा-मारी की खबर चारों ओर फैल गयी थी. यह खबर हाजरा के कानों में भी पड़ी थी. —दोनों ने मिल कर अमीर को मारा, यह चिल्लाते हुए वह दरवाजे पर ही खड़ी थी. बिगड़े हुए बंदर की तरह उसका चेहरा लाल हो गया था. वह मकुल और महमद पर दांत किटकटाते हुए उनका इंतजार कर रही थी.

अमीर की पत्नी ने सास के स्वर में स्वर मिलाया था. बड़ी बेटी मां की सहायता के लिए तैयार हो गयी थी.

और जवांई बाबू ने अपनी पत्नी के समर्थन में हाथ में डंडा उठा लिया और. . .

और दूसरी ओर नबू ने हाथ में टूटी हुई ईंट ले कर बहनोई के सिर का निशाना लगाया. महमद की पत्नी मुकाबला करने लगी थी. हुर्मत कमर कस कर तैयार हो गयी थी. चारों ओर भीड़ जमा हो गयी थी.

मकुल आ गया. उसे देख हाजरा भड़क उठी. —मेरे बच्चे कू क्यूं मार्या? वह चीखी. वह मकुल पर झपट पड़ी. महमद की पत्नी ने उसके बालों को झिंझोड़ कर बहुत दिनों का बदला वसूल लिया. उसी पल सकीना ने भौजाई की पीठ में घूंसा दे मारा. इतने में जवांई बाबू का डंडा मकुल की पीठ पर, नबू की ईंट बहनोई के सिर पर, एक साथ लगे. हाहाकार मच गया. महमद ने आ कर बाप का मोर्चा संभाला. चारों तरफ मारामारी शुरू हो गयी. गटर के गंदे पानी और खून से वे सब लथपथ हो गये. आवेश और द्वेष से वातावरण कांपने लगा. एक ही खून के आदमी एक-दूसरे का खून बहाने लगे. पास-पड़ोस वाले पीछे हट गये. कोई भी आगे आ कर उन्हें शांत नहीं कर सकता था.

अचानक किसी ने कहा——पुलिस आयी! शराब की भट्टी पर छापा मारने वाली पुलिस ने उस दंगल पर छापा मारा. दंगलखोर मकुल मुलाणी के परिवार वालों की गरदनें पकड़ कर उन्हें मोटर की ओर घसीटते हुए उन्होंने दंगा शांत किया. शांति होने पर सभी लोगों ने मोटर के इर्द-गिर्द भीड़ की. तब मकुल मुलाणी और उसका परिवार मोटर में बैठ कर रो रहा था. एक दूसरे के जख्मों को देख कर सब सर पीट रहे थे. मकुल मुलाणी बाहर के लोगों से विनम्रता से कह रहा था——ऐ दादा लोग. . .मैंने आदमीयत छोड़ दी थी. . . मुझे छुड़ाओ——मुझे जेल में मत डालने दो——मैं क्या था और क्या हो गया. . .?

तभी मोटर टरटरायी और मकुल के साथ उसके परिवार को ले कर चली गयी. सभी कहने लगे——सच, मकुल मुलाणी मनुष्य नहीं रहा. □□□

(अनुवाद : रतनलाल सोनग्रा)

भेंटवार्ता

दादू मारुती इंदूरीकर

● दया पवार

कहा जाता है कि आत्महत्या के लिए उद्यत व्यक्ति भी उनका विनोद सुन ले तो हंसता हुआ घर को लौट जाये. . .ऐसे मराठी रंगमंच के प्रख्यात विदूषक इंदूरीकर की अपनी व्यथा पढ़िए इस भेंटवार्ता में.

लालबाग तमाशा का हनुमान मंदिर. 'गाढ़वाचं लग्न' (गधे का व्याह) की प्रसिद्धि प्राप्त दादू मारुति इंदुरकरकी मैं खोज में था. सायंकाल ५ बजे का समय. थियेटर के सामने दर्शकों के लिए जो पतरे का घेरा था, अब उजड़ चुका था. संगीत की खिड़की में काम करनेवाली स्त्रियों का दांत घिसना, वेणी लगाना चल रहा है. पास में ही एक पुरुष तवे पर रोटी सेंक रहा है. पूछने पर बताया जाता है कि इंदूरीकर थियेटर में होंगे. मैं थियेटर की ओर चल देता हूं. कुछ-कुछ अंधेरे स्टेज पर नये वर्ग को शिक्षित किया जा रहा है. मास्टर नृत्य करनेवालों को नृत्य का, अभिनय का, निर्देश दे रहे हैं. पैर में चाल नहीं है, चेहरे पर मेकअप नहीं है, साथी के पास ढोल, टुनटुनी की लय नहीं. इस कारण बाई का हाव-भाव निर्जीव लग रहा है. परदे के पीछे सात-आठ वर्ष की कोमल लड़की परदे पर के हाव-भाव की नकल कर रही है. एकलव्य के समान उसकी नकल में ही शिक्षण चल रहा है.

मैं फिर से इंदूरीकर के बारे में पूछताछ करता हूं. किसी ने बताया कि हाल में सोये होंगे. रात भर स्टेज पर काम करने वाले कुछ लोग बेंच के नीचे सोये हुए थे. हर एक का चेहरा देखता हुआ मैं आगे बढ़ जाता हूं. इंदूरीकर निद्रावस्था में दिखते हैं. उन्हें निद्रा से जगाया जाये या नहीं, मैं विचार में पड़ जाता हूं. महाराष्ट्र की मराठी रंगभूमि का इतना बड़ा विदूषक, चार्ली चैपलिन और इसके सोने का यह स्थान! मुझे धक्का लगता है. असंख्य रसिकों के मन को आनंदविभोर करनेवाला यह कलाकार. आत्महत्या करने के लिए उद्यत व्यक्ति इंदूरीकर का विनोद सुन ले और हंसता हुआ घर लौट जाये. ऐसा था उनका विनोद. ऐसा कलाकार ऐसी स्थिति में सो रहा है? चित्रपट के माध्यम से माया जमानेवाले दादा कोंडके आठवले. कोडाक्या का अभिनय अर्थात इंदूरीकर के अभिनय की हूबहू नकल. उन्हीं के समान शरीर का हिलना-डुलना, बोलने की शैली, धोती का पल्ला पकड़ कर चलना—सभी की तो बाबा कोंडके ने इंदूरीकर के तमाशे देख कर नकल की थी. शुरू में वे इंदूरीकर को अपना गुरु मानते थे. कहते हैं कि उन्होंने इन्हें एक हजार रुपयों की गुरुदक्षिणा दी थी. मैं यह सब सोच ही रहा था कि इंदूरीकर की नींद जाती रही. उठकर बैठ गये. वे पूर्वापेक्षा थके हुए लग रहे थे. वेष हमेशा की तरह ही एकदम सादा. घुटनों तक धोती, नेहरू शर्ट, गांधी टोपी, पैरों में कोल्हापुरी चप्पल. चेहरा वैसा ही भोला-भाला. मैं अपना नाम बताता हूं. मैंने सुझाया कि वहां शोर है, हम बाहर होटल में बै कर कुछ देर बातें करें.

हम थियेटर के बाहर आकर होटल में बैठ गये चाय का आर्डर दे दिया. होटल के नौकर इंदूरीकर को आदर भाव से देखते हैं. हमारी गप्प चल रही थी.

—क्यों दादोबा, गधे के व्याह ने आपको काफी प्रसिद्धि दी न?

गधा, शब्द पर इंदुरकर को हंसी आती है. वे व प्रसंग सुनाते हैं :

मध्यांतर में शिवसेना प्रमुख बाल ठाकरे के पास जाने का अवसर आया. उन्होंने गधे का ब्याह देखा था मुझे देखते ही कहने लगे, आते समय संगी गधा नहीं लाये? इस पर इंदूरीकर तत्काल उत्तर देते हैं, साह शुरू-शुरू में मुझे लोगों ने गधों में पाया था. किंतु अं में गधों ने ही मुझे मनुष्यों में पहुंचा दिया. इस वाक्य से ठाकरे खुश हो उठे.

इसी प्रकार वे एक रिपब्लिकन नेता की बात बताते हैं. रिपब्लिकन नेता कोट-टाई वाले थे. अंग्रेजी फटा फट बोलने वाले, अपनी विद्वता पर गर्व, एक तालुके सभा. उसके समाप्त होते ही गांव की प्रथा के अनुसार सभा में आये हुए लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था की गयी. रास्ते की धूल में ही लोगों की पंगत बैठी. नेता जहां बैठे थे, वहीं इंदूरीकर के लिए भी टाट बिछाया गया नेता से इंदूरीकर का परिचय कराया गया. सब सुन ऐसी आवाज में इंदूरीकर ने नेता से कहा—क्यों साह बाहर के लोगों को सादा खाना और अपने को मु मसाला, यह कैसी बात है! नेता के चेहर पर कालि छा गयी. सभी कार्यकर्त्ता गौर से सुन रहे थे. इंदूरीक को नीचा दिखलाने के लिए नेता कहते हैं :

—गाना, कौन-सा गाते हैं ?

—पट्ठे बापुराव का !

—क्या ब्राह्मण का गाना गाते हो! उस बदले भाउ फक्कड़ का गाना क्यों नहीं गाते?

—साहब , इसमें बात ऐसी है, दस-बारह वर्ष था, तभी से वापुराव का गाना गाता आ रहा हूं. उन के सामने ढोलक बजायी—'तू एक नदी की नारी' उन्हीं का गाना है. साहब इस क्षेत्र से अनभिज्ञ . इ

आगे क्या बोलते?

चाय पी चुके. इसी बीच म्युनिसिपलिटी की झाड़ूवाली इंदूरीकर की बगल में आ बैठती है. इंदूरीकर सहज भाव से अपने कप की आधी चाय उसे दे देते हैं. उनका यह कार्य मुझे बहुत भला लगा. जबानी तौर पर गरीबों से सहानुभूति दिखलाने वाले व्यक्ति की अपेक्षा यह व्यक्ति अधिक सच्चा लगा. मैंने इंटरव्यू की बात की तो उन्होंने कहा कि वे चालीसगांव के कार्यक्रम में जाने की जल्दी में हैं. पुनः मुलाकात की बात करके मैं उनसे विदा लेता हूं.

* *

बचपन में देखे हुए इंदूरीकर की याद आती है. मैं १०-१२ वर्ष का था. तालुके के गांव में गुरुवार के बाजार में इंदूरीकर के साथ शंकर शिवणेकर का तमाशा हुआ करता था. जैसे भी हो, टिकिट के चार आने जमा किया करता. इंदूरीकर का तमाशा याने विनोद का फौवारा. वैसे तमाशा भव्यता लिये हुए नहीं था. सादा तंबू. राजा-रानी के शरीर पर सादी पोशाक. उस माने में उस समय दत्तोबा तांवे खंडेकर नामी तमाशगीर थे. दत्तोबा के तमाशे में तो दर्जन भर नाचनेवालियां थीं, भरापुरा सर्कस लगता था. खंडेकर के तमाशे में ऐतिहासिक नाटक हुआ करते थे. गांव-कस्बे में लोग मंच की साज-सज्जा देखकर दांतों तले उंगली दबा लेते. उस दृष्टि से इंदूरीकर का तमाशा अत्यंत सादा था. हां, एक बार ढोलक की थाप पर जुगलबंदी के बाद मौसी की भूमिका में इंदूरीकर मंच पर आ जाते तो तालियों की गड़गड़ाहट लगा जाती. इंदूरीकर जैसे समर्थ कलाकार सर्कस के विदूषक के समान सारे तमाशे को सिर पर उठाये रहते. जिस प्रकार कसरत करते-करते विदूषक जान-बूझ कर भूल करता है, वैसा ही कुछ इंदूरीकर भी करते. गले में ढोलक बांध कर मुंह बजाते हुए वे प्रेक्षकों की वाह-वाह पाते हैं. आगे गाना गाते हुए उन्हें लगता कि पीछे वाद्य-वृंद में कुछ कमी है, तो तुरंत पीछे चले जाते. 'जी-जी' करते-करते आगे सिपाही का काम भी करने लगते. बाजी अपने ऊपर उलटने न देकर साथ के सिपाही पर उलट देते. राजा की गैरहाजिरी में समूचे दरबार को काबू में रखते. तमाशे में राजा प्रजा पर जुल्म करने लगा तो स्वयं पर हंटर की मार सह लेते. सत्य की ओर से लड़नेवाले सैनिक के रूप में और दुष्टों को निर्मूल करने की लड़ाई में वे सामान्य सैनिक के तौर पर अपने उत्तम अभिनय से प्रेक्षकों का हृदय जीत लेते.

उनका उस समय का सुप्रसिद्ध तमाशा था पट्ठे बापुराव लिखित 'मिट्ठाराणीः' इस तमाशे को सैकड़ों बार खेला गया गया. बोलती पगड़ी, मल्हारराव होलकर, भगवान राव पाटील के तमाशे भी वे करते थे किंतु 'मिट्ठाराणी' यह उनका सफलतम तमाशा था. कार्यक्रम के लिए वे कोई भी साधारण स्थान चुन लेते थे. आज सफेदपोश लोगों को इंदूरीकर का नाम मालूम हुआ है किंतु महाराष्ट्र के गांवों-कस्बों के बच्चे-बच्चे की जबान पर उनका नाम पहले से ही चला आ रहा है.

आज तो उन्हें प्रसिद्धि मिल गयी है किंतु उनका भूतकाल बड़े कष्ट में बीता है. जन्म से ही उन्होंने कष्ट उठाया है. पुणे जिले के इंदूरीकर गांव के हैं वे. ब्राह्मण के घर लिखना, कुर्मी के घर खाना और महार के घर गाना. इसके पहले ही कहा जा चुका है कि नाल काटने के साथ ही उनका गाने से संबंध रहा है. उन्होंने काली महार के घर से ढोल और टुनटुनी खूंटी से उतारी. उनके पिता भी तमाशागीर थे. सातवीं कक्षा तक इंदूरीकर की शिक्षा. मास्टर होने का स्वप्न किंतु तमाशा की ओर रुचि. घर की निर्धनता के कारण चार आना रोज पर कांच कारखाने में काम करना पड़ा. इसी बीच दशरथ देवणपाकर का लहू नामक तमाशा उन्होंने अनेक बार देखा. उनके भीतर के कलाकार से चुपचाप नहीं बैठा गया. लावणी और तमाशा वे कंठस्थ करने लगे. बंबई में पीला हाउस के बागड़ीवाला थियेटर में वे भर्ती हो गये. दिन में कारखाने में काम करना, रात को तमाशा करना, इस प्रकार उनका जीवन बीतता गया. १९५५ में शंकर शिवणेकर नामक कलाकार को साथ लेकर उन्होंने अपना दल खड़ा किया. इसी बीच प्रभा शिवणेकर और हनुमंत जैसे अच्छे कलाकार भी दल में शामिल हो गये. किंतु प्रारंभ के कुछ वर्ष कष्टसाध्य सिद्ध हुए. मेल-ठेले में नाममात्र की प्रवेश फीस पर तमाशा करना. ऐसे ही एक मेला में सातारा जिलान्तर्गत (पाली स्थान) में लगा.

पागलों ने उनका तंबू जला दिया. वे पुनः बेकार हो गये. पाई-पाई, पैसा-पैसा जमा करके उन्होंने पुनः एक दल खड़ा किया. १९६२ में सांगली में संपन्न हुए महाराष्ट्र तमाशा महोत्सव में उन्हें प्रथम पुरस्कार मिला. आज इनके 'गधे का ब्याह', पहले सांवला कुंमार नाम से खेले गये, तमाशे को जो प्रसिद्धि मिल रही है, वह पहले नहीं मिल सकी. इस तमाशे का वास्तविक उद्देश्य क्या है, इसका पता लगाने के लिए मैं इंदूरीकर से पुनः भेंट करता हूं.

एक दिन संध्या समय मैं पुनः थियेटर जाता हूं. साथ में आस्वारे नामक मित्र हैं. वहां पूछने पर पता चलता है कि उनका रवींद्र थियेटर में कार्यक्रम चल रहा है, आधे घंटे में आयेंगे. सुनकर हम आसपास ही चक्कर लगाते हैं. आस्वारे ने 'गधे का ब्याह' नहीं देखा था. मैं उनको कथानक बताने लगता हूं. कष्ट का काम करने वाले सीधे-सादे कुंभार की आशा-आकांक्षा का दर्शन 'गधे के ब्याह' में है.

मिट्टी का काम करके कुंभार थका हुआ है, घर पर पत्नी की खरी-खोटी सुननी पड़ती है. यह सब छोड़-छाड़कर कहीं निकल भागने की उसकी इच्छा होती है. ऐसे में स्वर्ग से आये हुए इंद्र के गुरु से उसकी भेंट हो जाती है. वह उसे स्वर्ग में इंद्र से भेंट कराने ले जाता है. वहां सावला कुंभार की भूमिका में इंदूरीकर

कमाल कर देते हैं. सीधे इंद्र से तंबाकू का बीडा मांगते हैं जिसे इंद्र अपमानजनक समझते हैं. इस पर इंदुरीकर कहते हैं—अरे नीच, इतना बड़ा राजा है तू, किंतु तंबाकू का बीड़ा तक नहीं तेरे पास? मेरे घर चल! बोर भर कर तंबाकू रखी हुई है. धनी लोगों के कितने ही 'मैनर्स' उन्हें हास्यास्पद लगते हैं. दरबार में नृत्य चल रहा है. आगे बैठा हुआ एक यक्ष, एक नर्तकी का हाथ पकड़ लेता है—दरबार के रंग में भंग हो जाता है. इस पर पुनः इंदूरीकर आक्रोश में बोल उठते हैं—ऐसे कैसे हो तुम देवता? हम लोग इस प्रकार का व्यवहार नहीं करते. स्वर्ग के देवता रंडीबाज हैं. इस अनेक अर्थों में क्रांतिकारी लोकनाटक में यक्ष को शाप दिया जाता है. यक्ष को गधे का जन्म लेना होता है. पुनः शाप मिलता है कि राजकन्या के साथ ब्याह कर के ही तुझे मनुष्य रूप पुनः मिलेगा. [illegible] कुंभार [illegible] घर आता है तो अपने गधों में एक की वृद्धि देखता है. कुंभार के घर की बरात जब राजा की बाड़ी में जाती है, तब प्रेक्षकों को समाज की विषमता के विदारक दर्शन होते हैं. गरीब लोगों का ब्याह ऐसा ही होता है क्या? नगर के अनेक लोगों ने मुझ से यह प्रश्न किया है. तब इस तमाशे द्वारा कला को वास्तविक मुखर स्वर मिलता है. प्रेक्षक थियेटर को आसमान पर उठा लेते हैं.

ऐसा ही एक अन्य विनोदी प्रसंग है. सांवला की पत्नी हाथ में लकड़ी लेकर उसे घर चलने की जल्दी करवाती है. उस दिन सांवला की पत्नी बिस्तर नहीं बिछाती. हर रोज मैं ही क्यों बिछाऊं? यह उसका

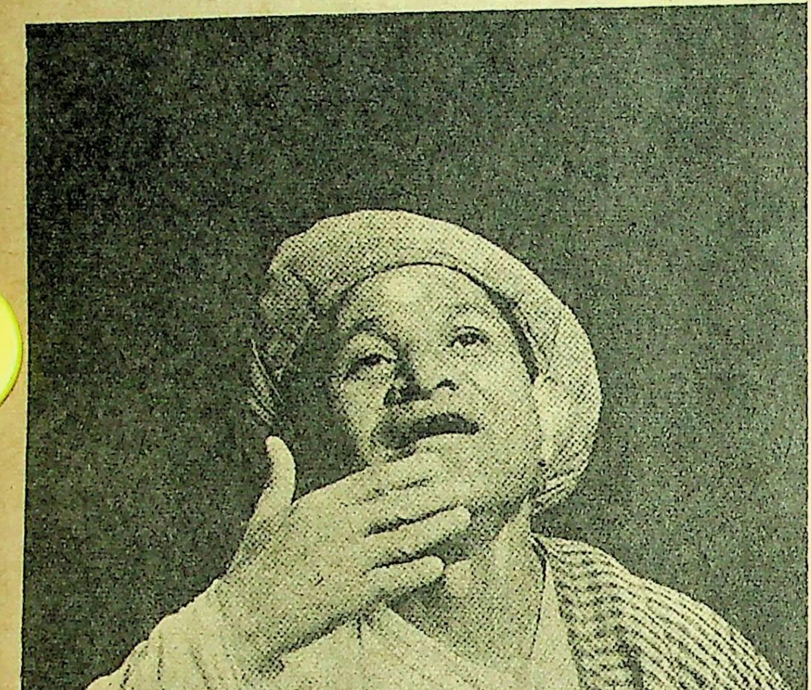

दादू मारुति इंदुरीकर

लभूत प्रश्न है. इस पर इंदूरीकर कहते हैं—चलो, आज तो तुम्हें ही गर्ज है, इस पर प्रेक्षकों का हास्य-विस्फोट. स्फोट खत्म होते न होते इंदूरीकर थोड़ा पोज ले कर प्रेक्षकों की ओर देखते हैं और कहते हैं—आपकी भी बारी आ रही होगी. किंतु यहां सच कौन कहेगा? इस पर फिर हास्य का फौवारा. ऐसे अनेक छोटे-छोटे प्रसंगों से वे जीवन के परत खोलते चलते हैं. सावला कुंभार की पत्नी की भूमिका में जो जान वे डाल देते हैं, वह देखते ही बनती है!

* *

तमाशे के बारे में हमारी बातचीत चल ही रही थी कि खेल खत्म होने पर टैक्सी से इंदूरीकर आ जाते हैं. कार्यक्रम की थकान उनके चेहरे पर दिखलाई पड़ती है.

टैक्सी में से संदूक अकेले ही उठाने के कारण वे हांफने लगते हैं. तार पर कूद लगाने वाला विदूषक और लोगों के सामने थाली फिराने वाला व्यक्ति एक ही है, ऐसा चित्र मुझे स्पष्ट दिखलाई पड़ता है. हमारे पास आ कर वे माफी मांगते हैं. हमें वे 'जसराज' के मालिक के पास ले जाते हैं. ये भेंटवार्ता करना चाहते हैं, इसकी वे अनुमति चाहते हैं. मालिक तटस्थता से हमारी ओर देखते ह. अंत में अनुमति दे देते हैं. मालिक के प्रति इंदूरीकर का व्यवहार अत्यंत विनम्रता का है. हम बाहर आ कर एक होटल में बैठ जाते हैं.

—इन मालिक का मुझ पर बहुत उपकार है. हमें अदालत से बाहर निकाला. २७ हजार का कर्ज चुकाया. इंदूरीकर मालिक के प्रति आभार-प्रदर्शन करते जाते हैं.

—क्या वेतन देते हैं? मेरे मित्र आस्वारे प्रश्न करते हैं.

—महीने का तीन सौ. तमाशगीरों के लिए बहुत है!

—घर में कौन-कौन है?

—पत्नी, चार लड़के, लड़की एस. एस. सी कर रही है.

—फिर कैसे चलता है?

—चल जाता है कैसे भी!

—आज तक कितने प्रयोग किये?

—मालिक के साथ ४०० से ऊपर. उसके पहले भी सैकड़ों प्रयोग किये, गांवों को छोड़ कर. एक नाट्य-प्रयोग में तीन सौ रात लेने वाले मराठी रंगभूमि के कलाकार आठवले के यहां से इंदूरीकर बाहर निकलेंगे तो उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं होगी. यह जानकारी भी होती है—यह आपका पुराना जैसा तमाशा नहीं है न? मेरा प्रश्न था.

—हां, यह तमाशा हरिभाऊ वडगांवकर का है जो जाति के महार थे. वे कविता करते थे, तमाशे लिखते थे, किंतु कोई प्रसिद्ध नहीं हो पाये. उनका स्वयं का एक दल था. इस तमाशे को हम पहले 'सावला कुंभार' नाम से करते थे. किंतु उस समय लोगों की भावनाओं को न दुखाने के विचार से अधिक चला नहीं पाये.

बोलते-बोलते दत्ता बाल की बात निकल पड़ती है. तमाशा के क्षेत्र में और बात दत्ता बाल की! हम कौतूहल से सुनने लगते हैं.

समाज-कल्याण मंत्री प्रतिमा पाटील के यहां सचिवालय में तमाशगीरों की मध्यांतर में एक बैठक हो रही थी. बैठक में मैं था, दत्ता बाल भी उपस्थित थे. तमाशागीर कृष्ण की गोपिकाओं से जो छेड़छाड़ प्रस्तुत करते हैं, वह रोकनी चाहिए, ऐसी मांग दत्ता बाल की थी, इंदूरीकर कहते हैं,

—आप कुछ बोले कि नहीं उस बैठक में?

—मैंने खड़े होकर कहा, महाराज! महाराष्ट्र में प्रथम कीर्तन और फिर तमाशा, ये ही दो कलाएं हैं. गोपिकाओं में से कृष्ण को निकाल देने का अर्थ है गोपिकाओं की आत्मा को निकाल बाहर करना. हम कृष्ण की बदनामी करते हैं, यह एक भूल है. जो पुराण में है, हम उसी को मनोरंजन के रूप में प्रस्तुत करते हैं. पट्ठे बापुराव कहते हैं, मैं ही जग हूं. मैं ही जग में सर्वत्र व्याप्त हूं, मैं स्थूल भी हूं, सूक्ष्म भी हूं, मैं तारक हूं, मैं मारक भी हूं. मैं सुखकारक हूं, अमृतरस बरसाने वाला हूं. मेरी शुद्ध मति, शुद्ध लेखनी, अपरंपार.

इंदूरीकर के वास्तविक आध्यात्म के आगे दत्ता बाल निश्चित ही भौंचक्के रह गये होंगे.

भेंट-वार्ता खत्म हुई. इसमें हिंदू धर्म और मालिकों के लिए कुछ बुरा न कहा जाये, ऐसा अनुरोध इंदूरीकर करते हैं. कला में स्पष्ट इंदूरीकर और वास्तविकता में असहाय बने हुए इंदूरीकर के ये दोनों रूप मुझे एक समान लगते हैं. निकलने के पहले मैं देखना चाहता हूं कि 'लहू' कहां है? पट्ठे बापुराव के तमाशे में नाचने वाला, पवाड़े गाने वाला विदूषक इंदूरीकर की दशा भी तो 'लहू' के ही समान है.

इंदूरीकर खिन्नता से कहते हैं—अब बहुत थक गया हूं. खाली पेट गाने से कष्ट होता है. जंगल से लकड़ियां सिर पर ढोता हूं.

* *

मैं इंदूरीकर को सचिवालय ले गया था, पिछले महीने. दादासाहेब रूपवते से भेंट की, वे मंत्री हैं न अपने? उनकी सहायता के लिए प्रयत्न करेंगे.

वृद्ध इंदूरीकर मुझे मिल जाते हैं. सचिवालय के दरवाजे पर, सहायता पाने के लिए खड़े पंक्ति में. यह कलाकार इस देश के अलावा आज कहीं अन्य जन्मा होता तो? या जिस जाति में जन्म लिया है, उसकी अपेक्षा सवर्ण जाति में जन्म लिया हुआ होता तो उसे यह शोकपूर्ण अंत देखना होता क्या? कला का तब सही मूल्यांकन हुआ होता, सुख-सुविधा में जीवन व्यतीत हुआ होता.

मैं खिन्नता से उनसे विदा लेता हूं. □□□

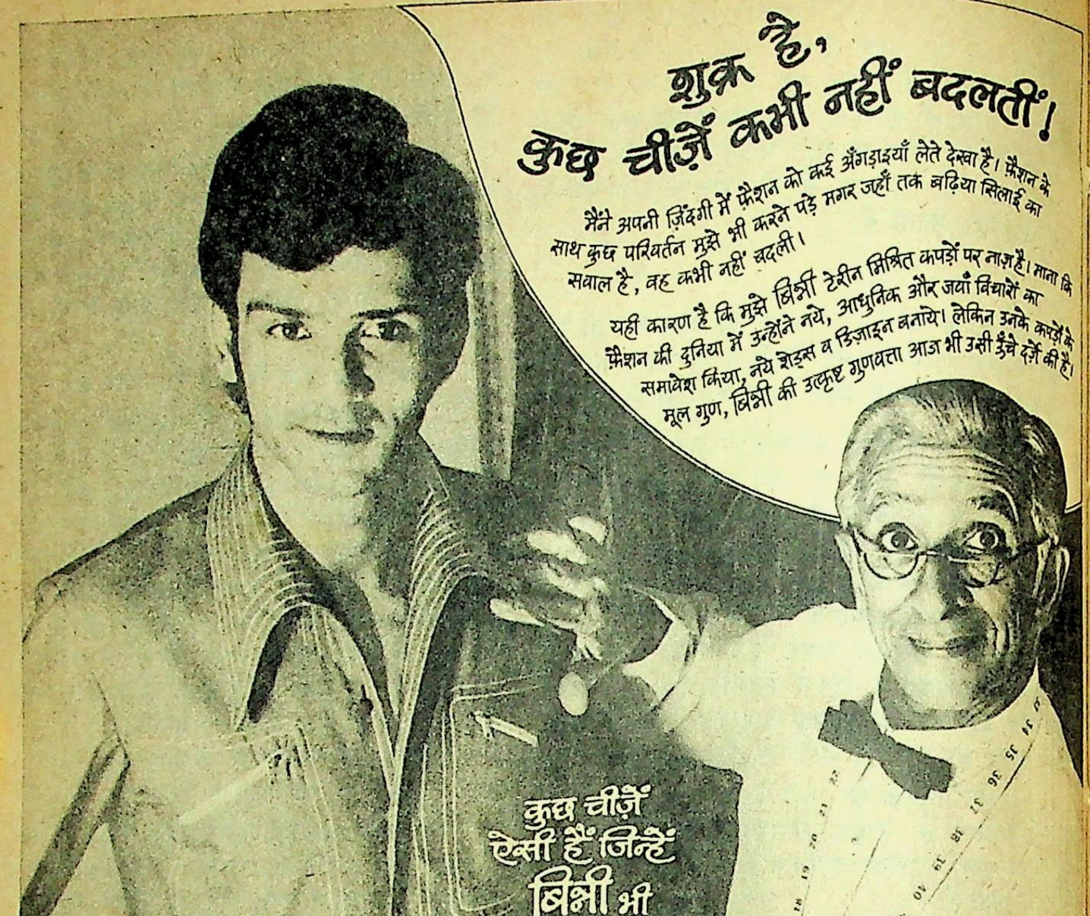

शुक्र है,
कुछ चीज़ें कभी नहीं बदलतीं!

मैंने अपनी ज़िंदगी में फ़ैशन को कई अँगड़ाइयाँ लेते देखा है। फ़ैशन के साथ कुछ परिवर्तन मुझे भी करने पड़े मगर जहाँ तक बढ़िया सिलाई का सवाल है, वह कभी नहीं बदली।

यही कारण है कि मुझे बिन्नी टेरीन मिश्रित कपड़ों पर नाज़ है। माना कि फ़ैशन की दुनिया में उन्होंने नये, आधुनिक और जवाँ विचारों का समावेश किया, नये शेड्स व डिज़ाइन बनाये। लेकिन उनके कपड़ों के मूल गुण, बिन्नी की उत्कृष्ट गुणवत्ता आज भी उसी ऊँचे दर्ज़े की है।

कुछ चीज़ें ऐसी हैं जिन्हें बिन्नी भी कभी नहीं बदलना चाहेंगे!

बिन्नी 'टेरीन' मिश्रित कपड़े

फ़ैशनेबल फिर भी टिकाऊ — केवल बिन्नी ही की बुनावट का कमाल!

Interpub BB/53,75 H

कबिरा खड़ा बजार में (१४)

• हरिशंकर परसाई

इस बार कबीर की भेंट विजया राजे सिंधिया से

कनछेदी कहने लगा—कबीरदास कितने बड़े लोगों से भेंट कर आये पर किसी स्त्री से भेंट अभी तक नहीं की. क्या स्त्री से डरते हो?

कबीर ने जवाब दिया—कनछेदी, स्त्री से डरना चाहिये. बात ये है कि—

माया महाठगनी हम जानी
निरगुन फांस लिये कर डोलै
बोलं मधुरी बानी!

पर मैं एक स्त्री इंदिरा गांधी से मिल आया हूं. लेकिन जयप्रकाश कहते हैं कि वह महाठगनी है. तुम क्या चाहते हो?

कनछेदी ने कहा—अरे कबीरदास, इस देश में एक स्त्री प्रधान मंत्री नहीं है. दो हैं.

कबीर ने पूछा— दूसरी कौन है?

तो कनछेदी बोला—दूसरी हैं ग्वालियर की विजया राजे सिंधिया जो 'राजमाता' कहलाती हैं.

कबीर ने कहा—ठीक है. मैं उनसे मिल आता हूं.

और कबीरदास ग्वालियर पहुंच गया. वहां जयविलास पैलेस में घुस गया. साधु-संतों को कोई रोकता नहीं है. राजमाता के सचिव ने पूछा कि क्या काम है, साधो? कबीर ने कहा कि कुछ नहीं, राजमाता से मिलना और उन्हें आशीर्वाद देना है.

सचिव ने पूछा— कुछ भभूत वगैरह लाये हो?

कबीर ने जवाब दिया—भभूत नहीं, भूत लाया हूं. राजमाता का भूत बताऊंगा.

सचिव मुझे राजमाता के पास ले गये. वैभव से दूर रह कर भी कबीर ने वैभव बहुत देखा इसलिए राजमहल का वैभव मुझे आतंकित नहीं कर सकता.

राजमाता की बैठक में घुसा तो उन्होंने कहा— आओ साधो! कबीरदास हो न? हम लोग साधु-संतों को बहुत दान देते हैं और उनका सम्मान करते हैं.

कबीरदास ने कहा— न मुझे मान चाहिये, न सम्मान. बात ये है कि पिछली बार जब मैं ग्वालियर आया था तो आपके चिरंजीव माधवराव के सचिव ने मुझ से कहा कि जयविलास महल चलिये, वहीं भोजन करिये. वहां बहुत अच्छा म्यूजियम है. उसे देखिये.

कबीर ने पूछा— राजमाता हैं?

सचिव ने जवाब दिया— वे नहीं हैं. विदेश गयी हैं.

तो कबीर ने कहा—तो फिर क्या म्यूजियम हुआ? जब म्यूजियम की सबसे आकर्षक मूर्ति ही नहीं है तो म्यूजियम का कोई मतलब नहीं है.

राजमाता ने मुझे गौर से देखा और कहा— तुम बड़े टेढ़े साधु हो. मैं क्या म्यूजियमपीस हूं?

कबीरदास ने कहा— और नहीं तो क्या? आप शुरू से म्यूजियमपीस रही हैं. संविद सरकार जब बनी थी तो गोविंदनारायण सिंह ने आपको म्यूजियमपीस बना कर रखा और संविद की नेत्री बना दिया.

राजमाता तनतना उठीं. बोलीं— उस लफंगे ठाकुर का नाम मत लो. वह डबल रोल करता था. इधर मुझसे संविद को मजबूत करने की बात करता था और उधर उसी संविद को उखाड़ने की कोशिश करता था. खेत पर ट्रेक्टर चलाता था और संविद पर बुल्डोजर. कहता था कि गांव जा रहा हूं लेकिन भोपाल में यहीं कहीं छिपकर दांव-पेंच करता था.

कबीर ने कहा— मगर उसने रिकार्ड का काम किया है. उसने दो मंत्रिमंडल गिराये. एक तो द्वारकाप्रसाद मिश्र का और दूसरा अपना खुद का. शाम तक टेनिस खेलता रहा. तमाम पत्रकार और राजनीति के लोग उसकी तलाश कर रहे थे, पर वह टेनिस कोर्ट पर था. शाम हुई तो उसने कहा कि अब टेनिस बंद. अब खेल शुरू होगा राजनीति का. और रात को उसने अपना ही मंत्रिमंडल भंग कर दिया.

राजमाता ने कहा—ठीक कहते हो साधो. वह ऐसा ही नाटककार है. मुझे पता ही नहीं कि मेरे पीठ के पीछे क्या कर रहा है, वह पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र को "कनपटिया बाबा" बोलता था और अब कांग्रेस में लौट कर उन्हीं मिश्रजी के साथ हो गया.

कबीर ने पूछा— आप भी तो राजनीति में हैं. क्या आंप दांव-पेंच, उठा–पटक वगैरह नहीं कर सकती थीं?

राजमाता ने कहा— देखो साधो, हम तो राजारानी हैं. कोई टुटपुंजिया नहीं हैं. हम तो महल की राजनीति करते हैं और ये ठाकुर करता था सड़क की राजनीति. राजनीति करना है तो जयविलास पैलेस में आओ. मैं थोड़े ही किसी के पास जाऊंगी. मगर यह ठाकुर किसानों के साथ बैठ कर बीड़ी पीता था. कैसा घटिया मुख्य मंत्री था!

कबीर ने कहा—महल की राजनीति तो पं. द्वारका प्रसाद मिश्र भी करते हैं.

राजमाता बोली— भाई, उनमें मुझमें फर्क है. वे मंजे खिलाड़ी हैं. उन्होंने कांग्रेस के दो हिस्से करवा दिये. गोविंदनारायण ठीक कहता है कि वह कनपटिया बाबा है. बहुत कांइयां है. पता नहीं बंगले में बैठा-बैठा किस के नाश की योजना बना रहा है. हम तो राजारानी लोग हैं. हुक्म दे दिया कि ऐसा करो. फिर हमारे पास पैसा है.

कबीर ने कहा—-राजा-रानी तो खत्म हो गये.

राजमाता ने कहा—कहां खत्म हो गये! नाममात्र के लिए. पुलिस हटा ली तो हमारी अपनी पुलिस है. जो डाकू हैं ये किसकी पुलिस हैं, ये तो हमारी पुलिस हैं और हमारे महल में ही पचासों बंदूकधारी हैं.

कबीर ने कहा— और यह जो प्रिवीपर्स बंद हो गये. सो क्या हुआ?

राजमाता हंसी. बोलीं— अरे यह तो दिखावा है. उन थोड़े से रुपयों से हमारा क्या बनता-बिगड़ता है. हमारे पास अपार संपत्ति है, शेयर हैं, विदेशी बैंकों में पैसा जमा है. हम तो सरकार की बराबरी के हैं.

कबीर ने कहा— मैं जानता हूं. सरकार के पास हैलीकॉप्टर तो आपके पास हैलीकॉप्टर. मुख्य मंत्री हैलीकॉप्टर में घूम रहा हैं तो आप भी हैलीकॉप्टर में घूम रही हैं. सचमुच आप की बराबरी की सरकार हैं. पर क्या आपकी प्रजा भी है?

राजमाता ने कहा— हां प्रजा है. राजवाड़े के सारे लोग हमारी प्रजा हैं. जो मैं कह दूं, वही यह प्रजा करती है. तभी तो मैंने अटलबिहारी वाजपेयी से कहा कि चुनाव यहीं से लड़ो. हमारी प्रजा तुम्हें वोट देगी और उसे जिता दिया.

कबीर ने कहा— मैं जानता हूं. सुभद्रा जोशी उस बेचारे के पीछे पड़ी रहती थी. तो एक स्त्री से घबड़ाकर वह दूसरी स्त्री की शरण में आ गया और आपने उसका उद्धार कर दिया.

राजमाता ने कहा—- मगर वह एहसान फरामोश है. मुझे जनसंघ की अध्यक्षा बनाने के लिए उसने जोर ही नहीं दिया वरना अडवानी की जगह आज मैं होती.

कबीर ने कहा— बात ये है कि जनसंघ हिंदू संस्कृति को मानता है. एक तो आप स्त्री, फिर विधवा. आपको अध्यक्ष कैसे बनाते? आप तो जानती हैं कि जब इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री हुईं तो स्वर्गीय एम. एस. गोलवलकर ने कहा था कि एक विधवा प्रधान मंत्री हो गयी है. अब इस देश का भविष्य अंधकारमय है.

राजमाता ने कहा—साधो, तुम उन्हें एम. ए गोलवलकर कहते हो. परम पूज्य गुरुजी क्यों नहीं कहते

कबीर ने कहा— मैं अपना गुरु खुद चुनता किसी से गुरु उधार नहीं लेता. बहुत लोगों के लिए उधारी के गुरु हैं.

कबीरदास ने पूछा— अब आपका राजनीतिक कार्यक्रम क्या है?

राजमाता ने कहा— मेरा कार्यक्रम है प्रधान मंत्री बनना. जब इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री बन सकती हैं तो मैं क्यों नहीं बन सकती? मैं जयप्रकाश बाबू से कहूंगी कि चाहे जितना पैसा आंदोलन के लिए ले लो पर प्रधान मंत्री मुझे बनाओ.

कबीर ने कहा— आपने क्या इंदिरा गांधी अपनी तुलना करके देखी है. दोनों में क्या समानता है?

राजमाता बोलीं—तुलना क्या करना है! जितना पैसा मेरे पास है, उतना उनके पास नहीं है.

कबीर ने कहा— मैं समझ गया. स्त्रियों में यह स्पर्धा होती है. मामूली औरतें कहती हैं— अरे तू क्या है. तेरे बक्सा में पांच साड़ियां हैं, मेरे बक्सा में आठ. तेरे से बड़ी हूं. लेकिन राजमाताजी बुद्धि, कूटनीति, ज्ञा व्यक्तित्व इनका भी तो कोई महत्व होता है.

राजमाता का जवाब था— इंदिरा का महत्व तुम्हें बताओ. इंदिरा गांधी से क्या मैं कम सुंदर हूं?

कबीर ने कहा— साधु, नीति जानता है. किसी स्त्री के मुंह पर यह नहीं कहना चाहिये कि तू कम सुंदर आप इंदिरा गांधी के बराबर सुंदर हैं. फिर आपके पा पैसा अधिक है. आप बिल्कुल प्रधान मंत्री होने लायक हैं.

राजमाता खुश हुईं, कहने लगीं—यह जो जयप्रका बाबू का आंदोलन चल रहा है तो केंद्र में अब संविद बनें और लोग मेरे पा आयेंगे कि आप संविद की नेत्री जाइये. तो मैं संविद की नेत्री भी हो जाऊंगी और प्रधा मंत्री भी.

कबीर ने कहा— पर पिछली प्रदेशों की संवि

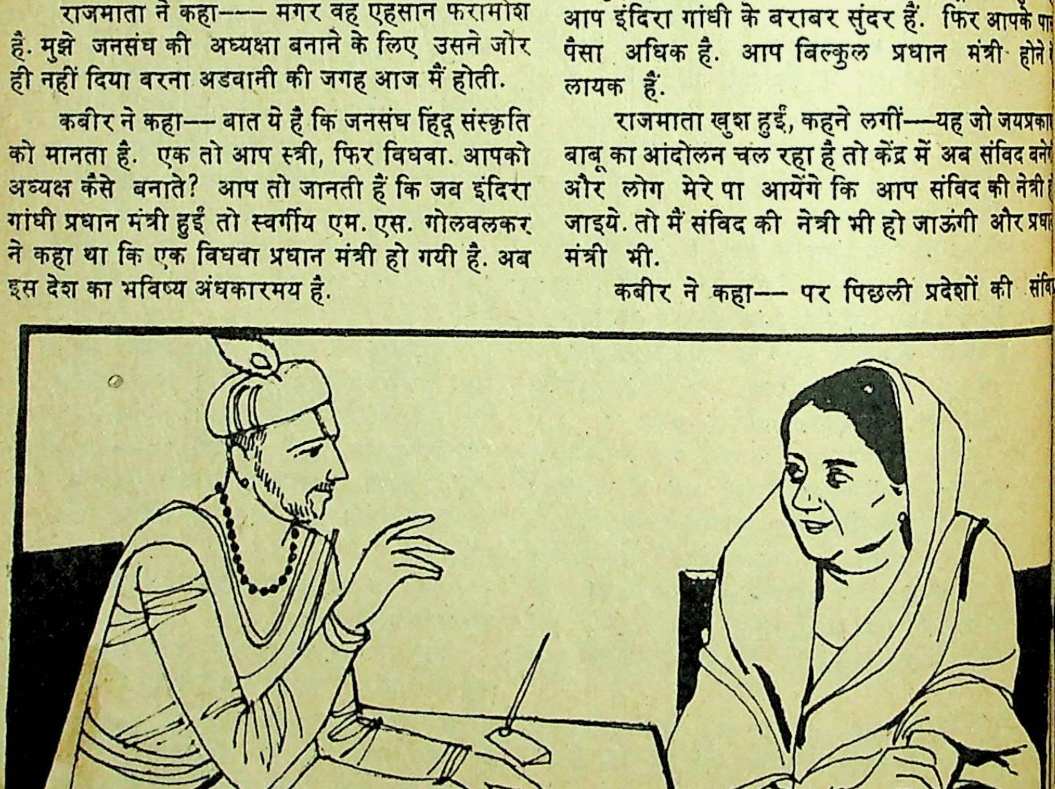

सरकारें बहुत बदनाम हुईं और टूट गयीं. यही हाल केंद्र में हुआ तो?

राजमाता ने कहा— दिल्ली में मैं ऐसा नहीं होने दूंगी जैसा भोपाल में हुआ. मैं वहां गोविंदनारायण सिंह पैदा ही नहीं होने दूंगी.

कबीर ने कहा— अगर अटलबिहारी बाजपेयी गोविंदनारायण हो गया तो? या चौधरी चरणसिंह गोविंदनारायण हो गया तो?

राजमाता ने कहा— एक तो मैं इन्हें गोविंदनारायण नहीं बनने दूंगी. फिर यदि बन भी गये और संविद टूटी तो फिर ये गौरव क्या कम है कि हमने देश पर कुछ समय राज कर लिया.

कबीर ने कहा— चिरंजीव माधवराव के बारे में क्या सोचती हैं?

राजमाता ने जवाब दिया— उसे तो मध्यप्रदेश का मुख्यमंत्री बनना ही है, यह बिल्कुल तय हो चुका है.

कबीर की बात लगभग पूरी हो चुकी थी. उन्होंने कहा— अब मैं चलूं.

राजमाता ने कहा— कुछ खाओ. क्या खाना चाहते हो ? कुछ गांजा-मांजा पीते हो तो मंगा दूं ?

कबीर ने कहा— राजमहलों में साधुओं से खाया नहीं जाता और जहां तक गांजे का सवाल है, वह मेरे झोले में है.

कबीर दास चल दिया. लौटा तो वही कन्छेदी मिल गया. पूछने लगा— कैसी लगी राजमाता ?

कबीर ने कहा— बहुत अच्छी हैं. सब जय और विलास है. इंदिरा गांधी से अपने को बड़ा मानती हैं. बात वही है कि तेरे बक्सा में पांच साड़ी तो मेरे बक्से में आठ साड़ी.

□□□

घटनाकथाएं

समाजवादी भारत : इन्हें हक है

सवर्ण, जिन्हें अपनी मां-बहनों की इज्जत की बहुत परवाह रहा करती है. — हरिजन - आदिवासी लड़कियों के साथ बलात्कार करना अपना हक समझते हैं.

बस्तर की आदिवासी लड़कियों के बारे में प्रसिद्ध है कि वहां जाने वाले बाहरी लोग उन्हें फुसला कर उनके साथ अवैध संबंध स्थापित करते हैं जब शादी की बात आती है तो दुम दबा कर भागते हैं. कुछ सवर्णों की तो उन आदिवासी लड़कियों से जबरन शादी करवायी गयी, जो उनसे 'मजा' ले रहे थे.

सवर्ण १५ वर्ष की अपनी लड़की को बच्ची की नजर से देखते हैं लेकिन अगर वह आदिवासी— हरिजन लड़की हो तब? तब उसके साथ बलात्कार करते हैं. दिन में एक बार नहीं, कई-कई बार. धारा (म. प्र.) जिले के ठाकुर प्रेमसिंह ने दस दिन तक लगातार एक पंद्रह वर्षीय आदिवासी लड़की के साथ बलत्कार किया.

म. प्र. के ही राजगढ़ कस्बे में जलाऊ लकड़ी बेचने आयी एक लड़की को एक आदमी ने भरोसा दिलाया कि मैं तेरी सारी लकड़ियां खरीद लूंगा. लड़की उसके घर की ओर चल दी. जब वह सिर पर से लकड़ी का गट्ठर उतार चुकी तो तीन और लोगों ने उसे घेर लिया फिर चारों बलात्कार करके उसे अधमरी हालत में छोड़ गये.

□□□

समाजवादी भारत : बहुक्म पुलिस

१९७३ के अप्रैल-मई महीने में बिहार के अनेक हिस्सों से सुईभोंकवा-लकड़सुंघवा के किस्से सामने आये थे. उस समय क्रुद्ध भीड़ सुईभोंकवा के संदेह में किसी भी व्यक्ति को मार बैठती थी.

३० अप्रैल १९७३ को इसी संदेह का शिकार हुआ, सिकंदरा थाना का एक सिपाही—तौहीद खां, जो उस समय वर्दी में नहीं था.

मुंगेर जिले में सिकंदरा के पहाड़ी अंचल में पिछड़ी जाति और गरीबों की एक छोटी-सी बस्ती है कहलौर, जिसमें सौ घर हैं. वहीं के लोगों ने अनजाने में तौहीद खां पर हाथ चला दिये थे. ग्रामीणों को जब मालूम हुआ कि वह सुईभोंकवा नहीं, सिपाही है तो उन्होंने माफी मांग ली.

मगर पुलीस को इससे संतोष नहीं हुआ.दो मई की रात को सशस्त्र पुलीस के जवानों-अफसरों ने गांव पर छापा मारा . पूरे गांव को घेर लिया. गाढ़ी निद्रा में सोये लोगों के घर के किवाड़ तोड़ दिये. वृद्धों को लाठी से मारा. नवयुवतियों के साथ वे जो कुछ कर सकते थे, किया. नगदी, खाने-पीने के सामान सहित एक दर्जन लोगों को गिरफ्तार कर लिया.

बिहार विधानसभा के एक सदस्य त्रिपुरारी सिंह के अनुसार १ मई १९७३ को उपआरक्षी अधीक्षक जमुई ने अनुमंडलीय अधिकारी की बैठक में सशस्त्र पुलीस के जवानों को स्पष्ट आदेश दिये थे कि ग्रामीणों के साथ जुल्म किये जायें और स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाये.

□□□

मां

★ बाबूराव बागूल

उस घंटे में मास्टरजी ने 'माता' की कविता ऐसी पढ़ायी कि पिछड़े वर्ग के बच्चे घंटाभर नीचे से ऊपर उठ गये. मास्टरजी पाठ समाप्त कर बाहर गये और 'ऊपर' पहुंचे हुए बच्चे कविता के पाश से सटासट सटकने लगे, नीचे गिरने लगे. अनजाना छलावा पापी पैरों से लौट गया और बच्चे फिर से जैसे थे वैसे हो गये. पांडू को उस कविता ने जकड़ लिया था. उसकी मां उसे सचमुच 'प्यार का सागर' दिखायी देने लगी. उसकी महत्ता उसे जंच गयी. मन की कोई चट्टान पंख-सी हलकी होकर उड़ गयी और इस असह्य बोझ के नीचे दबा उसका बचपन खिल गया. खूब हंसे, खेले, शरारत करे, ऐसी कभी न सूझनेवाली बातें सूझने लगीं. कक्षा के सभी बच्चे मित्र लगने लगे. कक्षा में चल रही धींगामुश्ती देख कर वह हंसने लगा.

कभी न हंसनेवाला, कक्षा में जो घुलमिल कर नहीं रहता, वह पांडू हंस रहा है, आनंदविभोर दिखायी दे रहा है, यह देख कर आवारा लड़कों को जोश आता है. दंगा और शरारतें करने में प्रवीण लखू तो पांडू की हंसी देखकर रस्सी छुड़ाकर दौडनेवाले बछड़े जैसा करने लगा और उसकी शरारत देख कर पांडू झगड़ा-दुश्मनी भूल कर पेट में बल पड़ने तक हंसने लगा.

——लखू, वह देख. . .

दिलीपकुमार जैसी बालों की जुल्फें माथे पर रखनेवाला नामू इतना जोर-जोर से हंस रहा था कि नाक से बहनेवाला पानी होठों पर आ गया था, फिर भी उसे ध्यान नहीं था.

लखू को आगे बोलने का मौका न देते हुए नामू ने नाक पोंछ डाली और सारी कक्षा हो-हो करके हंस पड़ी और पांडू-लखू की दोस्ती देख कर पेट में कपट रखनेवाला भागा और चिढ़कर चिल्लाया–लख्या साले, तेरे बाप से बोलता हूं. . .तूने पांड्या से 'सो' कर ली है, उससे बात की है——उसके गले में हाथ डालकर खड़ा था. उसने तुझे और मुझे इस हरामी की औलाद से बोलने को मना किया है. ये कमीना है——ले कुट्टी!

——ले ली!

लखू ने झट से पांडू के गले से हाथ निकाल कर उसे दूर ढकेल दिया. बच्चों ने तालियां पीटकर कक्षा सर पर उठा ली. अपने मां-बाप को उनकी गंदी गालियां ब्याज के साथ वापस लौटानेवाला प्यारा काला किसन फट से बोला–बच्चे लोग! मेरी मां बोलती है–पांड्या की मां बडी छिनाल है, रंडी है. अब उसने मुकादम को र है! ऐसा. . .उसने लंबे-चौड़े मुकादम का आकार एंडि ऊंची कर बदन चेहरा, फुला कर बताया. बच्चे फि हंसे. पांडू अपनी जगह पर बैठ गया और पगले-गूंगे क तरह अपनी बदनामी सुनने लगा. झगड़ालू मां-बाप लाड़ले बच्चे उसे कौअे की तरह खचाखच नोचने ल अपने घरों में चलने वाली उसकी मां की निंदा उसे सुना लगे. वह बच्चों को जवाब देने लगा. उसका यह नय रूप देखकर बच्चों को उस पर गुस्सा आ रहा था— एक-दो लड़कों ने उसे धक्के दिये. भाग्या ने अपने काबू लड़कों को सुना कर उस पर ढ़केल दिया. कक्षा दंगल शुरू हो गयी और इसी दंगल में स्कूल छूटने क घंटी बजी . सभी बच्चे झटपट बस्ते-थैले लेकर कक्ष से बाहर दौड़ने लगे और भाग्या ने 'दादा' की त शर्ट का कालर उठा कर, बटन फुलाकर पांडू को क दिया——कमीने बाहर आ–तेरा 'मर्डर' करता हूं

और पुस्तक में रखा जंग लगा ब्लेड बाहर निका कर उसने इस अंग से उस अंग तक झट से, घुमा क दिखाया और बस्ती के जगू दादा की तरह झूमते झूमते क्लास के बाहर आया. बाहर अपना इंतज करती खड़ी अपनी टोली में आकर वह गंदी-गं गालियां पांडू को और उसकी मां को देने लगा.

दुख से, क्रोध से पांडू जलने लगा——उन सभी क मरते दम तक मारने का गुस्सा आने लगा. उ मारने की विजयी तस्वीरें उसकी आंखों के साम तैरने लगीं और उसी समय उसे याद आया कि व अनाथ है. बाप के मरने से लखू का बाप दगडू पि झगड़े की तरह मां को मारेगा——उसकी धोती खींचक नंगा करने की कोशिश करेगा. उसके खून में उब वाला क्रोध हवा हो गया और उसे लगा वह विल ढीला हो गया है.

हमेशा की तरह बाहर आकर वह गाली देने को गाली नहीं देता,यह देख कर लखू-भागा की आ टोली ऊब गयी और उसे 'रांड्या', 'छक्का' कहकर चि हुए चली गयी.

* *

लखू-भागा को दूर गया देख कर पांडू धीरे से क के बाहर आया और बोझिल लगनेवाली किताबें सं लते हुए बस्ती में घुसा. चाली के पास लखू-भागा गोलियां खेलते देख कर उसका संभाला हुआ ढाढ़स गया . झगड़े के भय से वह घूम गया और बस्ती चक्कर लगा कर धड़कते दिल से कमरे में गया. होकर वह लखू-भागा और उनकी माताओं की देखने लगा. बहुत देर इंतजार करने पर भी

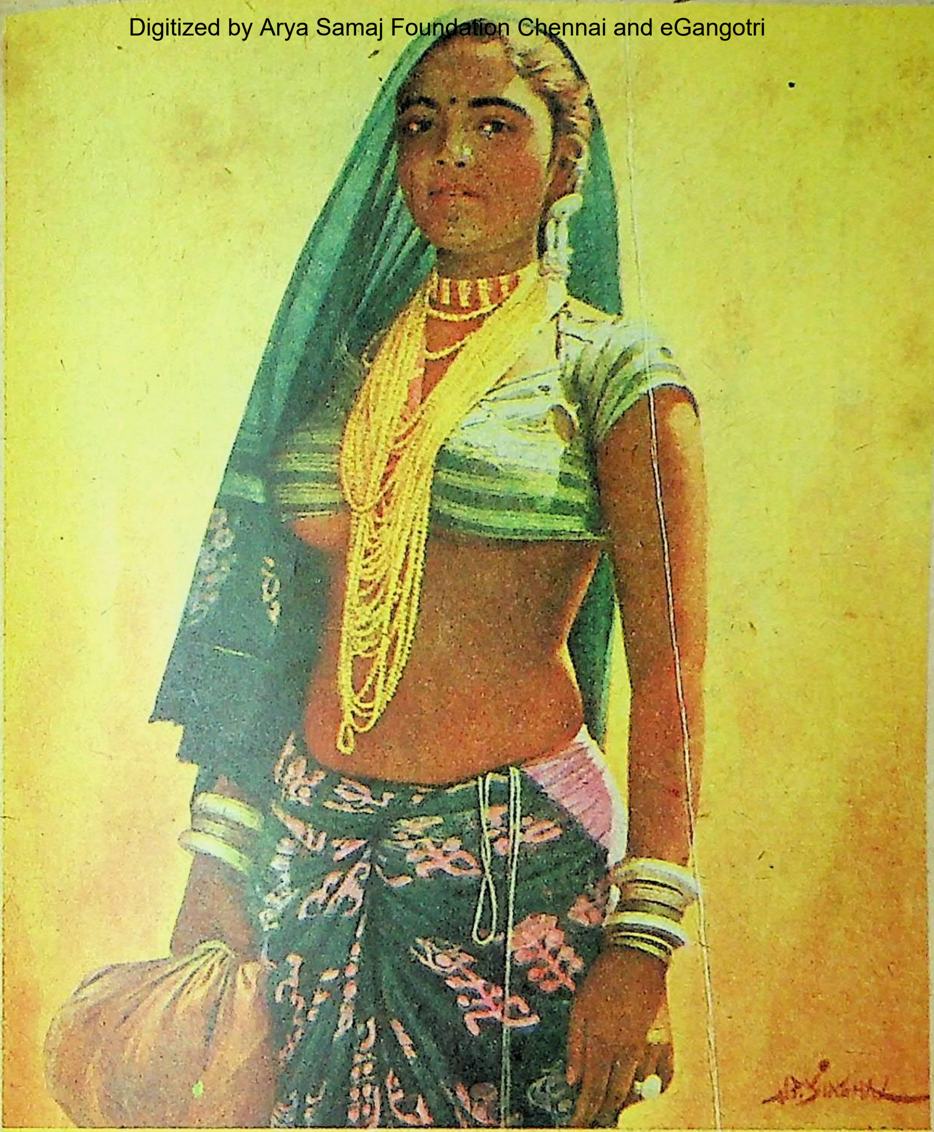

पार्ले प्रोडक्टस प्रा. लि. के सौजन्य से

हीं आया तब कहीं उसका दिल ठिकाने लगा. भय माप्त हुआ और सुबह से मैं भूखा हूं, यह उसके ान में आया. चूल्हे के सामने बैठकर उसने रोटी की करी नजदीक खींची जिसमें से दो-तीन लाल काक्रोच हर आये. उसके बदन पर तिरस्कार के कांटे फूल थे. . .वैसे ही उसने चूल्हे पर की थाली अपने सामने ींची और चूल्हे की राख में रखी भगोनी थाली में डेल दी. भगोनी से मक्खियों का झुरमुट गुनगुनाता बाहर ाया. थाली में उग्र खट्टे बास की जूठन गिर पड़ी. घृणा उसका मन कड़ुवाहट से भर गया, हिचकियों से छाती गयी.

अपनी मां अब पहली-सी नहीं रही. कल रात को सकी इतनी प्रतीक्षा की, फिर भी वह जल्दी नहीं आयी. . .आयी और एक शब्द भी न बोलते हुए काम करने बैठ यी. . .अनमनी-सी रोटी-भाजी बना कर सामने डाल ी और छोटे बच्चे की तरह बिछौना कर अपने से ही सते-बोलते सो गयी. 'खाओ' नहीं कहा—'और लो' नहीं कहा. सुबह भी वैसे नहा कर, नयी साड़ी-चोली पहन कर मुंह के सामने आईना लेकर बैठी थी. आईना बार-बार मुंह की ओर घुमाती थी, मुंह पर से गाल पर से बार-बार हाथ फेरती थी. कंधे पर से पल्लू हटाकर गले में चांदी की चेन और नयी सोने की मणी की काली पोत ऊपर-नीचे कर रही थी.

आईने में देखकर चलनेवाले उसके नये-नये नखरे याद आते ही उसके पेट का जैसे गुब्बारा बन गया. उसे लगा उसने सचमुच 'मिस्तरी' को रखा है. उसका कलेजा फड़फड़ाने लगा. . .खाने से दिल भर गया. रोटी का टुकड़ा हाथ से गिरा कर वह उठ गया और बैचेनी रोकने का हमेशा का उपाय, बस्ता ले कर घर के सामने सबक याद करने लगा. पुस्तक में उसका मन नहीं लगा—बच्चे, दूसरे लोग कैसे ताने देंगे, यही उसे दिखायी दे रहा था और लोगों की बातें टालने के लिए घर से भाग जाने को जी चाह रहा था. जमीन पर बदन झोंक कर, लोट-पोट कर जोर-जोर से

जब बड़ी बूढ़ी औरतें
अपने ज़माने के घरेलू घी की बात करें
तब उन्हें बताइये...

विजया घी

बिल्कुल घर में बने घी जैसा

गुणों में उत्तम...
कीमत में कम

हालांकि यह घर में नहीं बनता लेकिन फिर भी आपको लगता है जैसे यह आपके घर में ही बना है क्योंकि विजया घी भरपूर तत्त्वोंवाले ताज़े दूध से आधुनिक फैक्टरी में बनाया जाता है. इसमें विटामिन भी होते हैं जो अच्छी सेहत के लिए आवश्यक हैं.

पोषक तत्त्वों से भरपूर...गाढ़ा और स्वादिष्ट... बस यही है विजया घी

उत्पादक : आंध्र प्रदेश डेरी डेवलपमेन्ट कॉर्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड. लालापेट, हैदराबाद ५०० ०४०

विजया घी पर उत्तमता का चिन्ह 'एगमार्क' भी लगा होता है.

यह वैज्ञानिक ढंग से हानिरहित डिब्बों में बंद किया जाता है.

एकमात्र घरेलू घी – जो घर में नहीं बनाया जाता.

ANDHRA PRADESH
DAIRY DEVELOPMENT CORPORATION
PRIVATE LIMITED
(A State Government Undertaking)

kalpa/apd/2/75

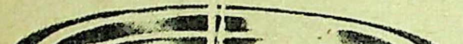

को जी चाहता लेकिन औरतें जमा होंगी, मां की निंदा गी इसलिए वह रोना दबा [illegible] और उसके [illegible] टने की प्रार्थना भी कर रहा था. रास्ते की भीड़ वह मां को ढूंढ़ रहा था. अचानक नशे में डोलता हुआ डू उसके सामने आकर खड़ा हो गया. उसकी ओर कर घृणा से थूक दिया और देखते-देखते बड़बड़ाते चलने लगा—— छिनाल-रंडी! बच्चा घर में रखे के साथ दूकान-दूकान घूमती है क्या? तुझे नी जरूरत थी तो मुझे क्यों नहीं बुलाया? . . .मैं लिए आज कितने सालों से जल रहा हूं. . .लेकिन ब तुझे. . .

और वह बहुत गंदी गालियां देते हुए चलने लगा. डू के तनबदन में आग लग गयी और हमेशा की रह उसका खून करने के विचार से उसका बदन ने लगा.

लड़खड़ाते जाने वाले दगडू पर बड़ा सारा पत्थर लने के विचार से वह झूम गया. दगडू के सर से ने वाले खून के फौवारों से रंग गया——बदले की र क्रोध की आग से उसका शरीर कांपने लगा और गडू की बड़बड़ाहट का मतलब गोली की तरह उसके लेजे में स्वयं से घूम गया. . .फिर दगडू के प्रति द्वेष-ताप, बदला उड़ गया और वहां अपनी मां के प्रति -तिरस्कार, संताप आने लगा. दुख को दांय ढकेलते ए एक-एक सवाल उसके सर से उठने लगा. . .इसलिए देरी होती है? क्या कल रात इसी वजह से देर आयी? और आज वह घर आयेगी? या पड़ोस के की तरह हमेशा के लिए भाग जायेगी? और फिर रा क्या होगा? मुझे कौन खिलायेगा?

अनेक सवाल उठ रहे थे और उसे रुला रहे थे. 'मां ाऽ' कह कर उसने जमीन पर बदन फेंक दिया और ते-रोते पड़ोस की औरतें जमा न हों इसलिए मुंह ाने लगा. लेकिन उसके रोने की आवाज सुन कर ोस की औरत भागते हुए बाहर आ कर चिल्लायी—— रे चंदर की मां. . .अरे, उस छिनाल का लौंडा रोता . .क्या हुआ देखें तो. . .

—क्या . . .?

पास-पड़ोस की दो-चार खोलियों की औरतें बाहर यीं और उसे देख कर सहानुभूति बतलाते हुए उसकी दा करते खड़ी रहीं.

उसी समय वह भूखा होगा, ऐसा सोच कर वह ल्दी-जल्दी घर की ओर आ रही थी. सामने खड़ी ई मैरिनों की टोली देख कर उसका लगाव ढीला हो या. जब से समझने लगा है, तब से वह अपने शत्रुओं से मिला है, उसका यह वहम सामने सबूत देख कर और पक्का हो गया. और वह अपने उसके बाप की तरह री-दुश्मन लगने लगा. . .गुस्से से झट-पट पैर उठाते ए वह आने लगी और गुस्से से अधिक सुंदर बनी उसकी ाल से पूरी चाली की नजरें रुक गयी थीं. हथिनी जैसे ग और दांत वाली दगडू की जोरू, पांडू की मां का बरसों धूप में काम करने पर भी निखरा हुआ रंग, कम-[illegible] और [illegible] देख [illegible] कर पति से बोली——अजी देख क्या रहे हो. . . वह चिमी वहां क्या कर रही है. . .मारो उसकी कमर में लात. . .

अपने प्रति दूसरी ओर से व्यक्त किया गया संताप देख कर पांडू की मां गुस्से से जल गयी और तन कर चलने गयी.

——आ. . .छि. . .नाल. . .उससे झगड़ने के लिए दगडू ने झूठा छींक दिया. वह छींक सुन कर मुस्तैद मुकादम के बल पर पांडू की मां तन कर आगे बढ़ी. उसकी मस्तानी चाल पर ताना मारते हुए उसने कहा——हट तेरी. . .

पति के आंखों की लोलुपता देख कर उसे खुश करने के लिए दगडू की पत्नी हंस दी और उसके दबाव में रहने वाली दो-तीन स्त्रियां मुंह पर पल्लू ढांपे खि:-खि: करने लगीं.

यह सुन कर पांडू दुख भूल कर उठ बैठा. बाहर देखने लगा. . .मां के चाल-चलन में उत्साह, उसका तना हुआ सीना, ऊंची उठी गर्दन, बदन पर पहनी हुई नये ठीक ढंग की नौ गजी साड़ी, कभी न दिखायी देने-वाले पान से रंगे सुंदर होंठ देख कर उसने 'वह बुरी है', यह गवाही उसके शत्रुओं को मन ही मन दे डाली. और उसका पक्ष छोड़ कर वह मन ही मन विरोधी लोगों से आ मिला.

अपने पैरों से लेकर माथे तक संदेह की दृष्टि में चल रहा लड़के का निरीक्षण देख कर उसके हृदय से बचा-खुचा स्नेह, संताप की ज्वाला में जल कर राख हो गया. संदेह से शैतान बने अपने तपेदिक के मरीज पति की तरह वह तुच्छ लगने लगा. उसकी आंखों में पति की शक्की नजर दिखायी देने लगी. उन दुष्ट आंखों से उस पर किये गये अनेक शारीरिक, मानसिक अत्याचारों का उसे स्मरण होने लगा.

जैसे वह बैठा था. . .वैसे ही उसका बाप वह जब मिट्टी ढोकर आती, तब बैठा रहता. वह दूर से आते दिखायी देते ही संदेह की जहरीली नागिन उसकी आंखों से सरसराती. वह एकनिष्ठ है, छोटे बच्चे की मां है. . . पति को बचाने की वह जबरदस्त कोशिश कर रही है. . . इसका उसे ध्यान न होता. वह पापिन है. . .बिना श्रम किये शरीर बेच कर ही वह पैसा लाती है और ऐसी सुंदर पत्नी कोई खाली नहीं रखता, वह भी न रहेगी. . .ऐसा उसे लगता. जब वह देहलीज पर आती तब वह उसके पैर, जांघ की साड़ी, कमर, पल्लू, पेट, छाती, चोली, बाल, होंठ, गाल संदेह की नजरों से देखता. चेहरे पर जरा भी फर्क दिखने पर उसका तनबदन जल जाता और वह झल्ला कर पूछता——आज कौन यार मिला था. . .छिनाल. . .बता. . .बता. . .!!

और फिर वह उसकी कमर में पैसे ढूंढ़ता. . .पैसे न मिलने पर पूछता——उधारी पर है क्या?

—अरे, कुलटा. . .तू मुझे धोखा देती है? मुझे कभी खाना नहीं मिलता तो चल जाता लेकिन तेरे उस पागलपन से तो मैं मर रहा हूं. रोगी हो गया हूं. . .यार तू किये बगैर इतनी ठंडी नहीं रह सकती. . . .आराम से नहीं सो सकती.

मारते समय उसके शरीर से खूब रक्त बहे, वह लूली हो जाय, विद्रूप दिखायी दे, इसी अंदाज से वह मुंह, नाक, सर और आंखों पर मारता. उसकी मार ऊपर ही ऊपर से लेने पर उसे सोते समय मार डालने की, उसका जवान शरीर कुचल डालने की धमकियां देता रहता. उसके इस पागलपन से तंग आ कर उसने कहा था—हम अपने गांव जायेंगे. . .यहां के लोग मुझे सताते हैं. . .तुम भी सताते हो. . .वहां हवापानी ठीक है. . .पैसा है. . . जेठजी पुराना झगड़ा भूल कर अच्छा कर देंगे. बच्चा भी जल्द बड़ा हो जायेगा. . .

—अपने गांव? मेरी ऐसी हालत देख कर तुझे उस भैंसे की याद आयी? अरे. . .अरे पापिन . . .मैं मर जाऊंगा. . .तुझे. . .इस बच्चे को पालूंगा. . .लेकिन उस सुअर की मदद नहीं लूंगा. .

उस भैंसे का अर्थ था, उसका बड़ा भाई. . .वह पत्नी की तरफ बुरी नजर से देखता है इसलिए उसने उस पर कुल्हाड़ी चला दी थी. तब से उनके लिए गांव छूट गया था. गांव-गांव नौकरी करते, प्रत्येक पुरुष पर संदेह करते, झगड़ा मोल लेते, मार खाते वह बम्बई आ पहुंचा और यहीं रहने लगा. उस पर से हुए झगड़ों में मार खाते-खाते वह क्षयी हो गया. . .जैसे-जैसे बीमारी स झड़ने लगा वैसे-वैसे वासना से वह पागल बनता जा रहा था. रात-दिन उसे सताने लगा. उसका भरा-पूरा यौवन आवेश मारने का प्रयत्न करने लगा.

* *

एक बार वह परिश्रम से थक कर गहरी नींद सो रही थी. भिलावे की गंध से उसकी नींद खुली. . देखती है कि वह चूल्हे पर भिलावे जला रहा है. उसने उसके शरीर का वस्त्र खोल दिया था. अपने शरीर की वह कैसी घृणित विडंबना करने वाला था, यह देख कर वह विफर गयी और तब से उसे मारने के लिए उसके बिस्तर पर आ गयी. उसके न चाहने पर भी केवल उसे मारने के लिए उसका संग मांगने लगी. कुछ दिनों से उसके नंगे बदन के सामने ही हड्डियों का ढांचा रख कर वह मर गया. वह मर गया और उसे लगा जैसे मैंने ही उसे मार डाला. गांव भर में उसकी कामुकता का, दुष्टता का ढोल पीटा गया. गत दस-बारह साल से उसे बहुत यातनाएं सहन करनी पड़ीं. कितनी बार दगड़ू की पत्नी ने बहुतों को साथ लें कर उसे मारा. . .उसकी साड़ी खोल दी. कितने ही पुरुष छोटे-छोटे बहानों से उसके शरीर पर टूट पड़े.

बच्चे को शक्की नजर से देखते-देखते उसे आज वह सारे तड़पा देने वाले प्रसंग याद आने लगे और उसका मन मनुष्यों के संसार से उड़ कर भूत-प्रेतों के संसार में च गयी. . .हिंसा [illegible].

पत्थर से कुचल कर जिसका खून करने की बात रात-दिन सोचा करती थी, उस दगड़ू ने खखार कर कहा—थू: तेरी . . . तो. . .

—पेट के बच्चे की भी पहचान नहीं रही?
—मुकादम है बड़ा मुस्टंडा!

—होगा ही! और वह भी अब तपेदि से मरेगा.

—क्यों री?

उस पर दगड़ू की पत्नी ने जिन शब्दों का उच्चारण किया, वह सुन कर उसका शरीर कांपने लगा. औ संताप से उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गय उस समय उसके पास हंसिया-पत्थर, कुल्हाड़ी होती भयभीत होकर देखने वाले नीचे बैठे अशक्त लड़ का, दगड़ू की पत्नी, दगड़ू का और अपना खून कर दे लेकिन उसके सामने कुछ भी नहीं था. हाथ में हथिया नहीं था. वह आवेग से अंदर गयी और दगड़ू को उद्दे कर कड़कड़ाती हुई बोली—भड़वे. . .तेरा जनाजा उठे तेरे मुंह में कीड़े पड़ें. . .तेरे हाथ-पैरों को महारोग हो. . मुझे सताता है? मरेगा. . .

और मुकादम का नाम आते ही वह रुक गयी दगड़ू को छोड़ कर वह पांडू पर बरस पड़ी.

—मर ! ऐसा ही मर! तेरा बाप भी ऐसे ही खीझ कर मरा था—तू भी मर! हिजड़े मुझे ऐसा किसी कहा होता तो तेरा बाप खून से लाल हो जाता औ तू नादान. . . जो मुझे सताते हैं. . .मार उनके पेट छुरी. . .पकड़ उनकी मां-बहनें. किसलिए खून क पानी बना कर तुझे रज से गज बनाया? पकड़ मैं कहती हूं. . .नहीं तो जा मर. . .उठ. . .! उठ. . .!

उसका कड़कना सुन कर पांडू को विश्वास हो गया कि अब मां को अपनी जरूरत नहीं रही. जैसे बाप को मारा वैसे मुझे भी मार डालेगी. अब यहां से चल देना चाहिये. वह उठ कर खड़ा रहा और उसी समय उसे जोर से हिचकी आयी और वह हो-हो कर रोने लगा. . कमीज के अगले हिस्से से मुंह ढांप कर रोने लगा.

उसका वह रोना सुन कर उसका क्रोध उतरने लगा. उसका पीठ से चिपका पेट, दुबले-पतले हाथ-पैर चमकने वाली पसलियां और पूरे बदन पर छायी सफेद मुर्दनी देख कर उसका क्रोध घुल गया और उसके पेट में फैलने लगा. उसकी ओर देखते हुए कलेजे को चीर कर सवाल उठा—बच्चे को भी तपेदिक है क्या? वह घबरा गयी.

—ऐ, तुझे खांसी आती है? बलगम गिरता है. . रात को बुखार आता है क्या. . .अरे कह न बाबा. . क्यों सताता है?

और देखते-देखते उसकी [illegible] से आंसू [illegible] यीं. मन में उठे संदेह से कलेजे पर छुरी चल रही थी. ड़ाक से उठ कर चूल्हे के पास गयी, गड़बड़ी में उसने माचिस ढूंढ़कर बत्ती जलायी और भयशंकित नजर से बच्चे के शरीर पर तपेदिक के निशान देखने लगी.

—बोल बाबा. . .बोल. . .तुझे रात को बुखार होता है?

वह कुछ भी जवाब नहीं दे रहा था. रोना छोड़ घर से बाहर निकलने की बाट देख रहा था लेकिन रोना क नहीं रहा था. और उसे तो कुशंका ने ग्रस लिया था योंकि गत कुछ महीनों से मुकादम से प्यार होने पर उसे उसका ध्यान ही नहीं था. यह विचार उसके मन में चल रहा था. उसी समय उसकी नजर उसके लिए लाये कपड़ों पर गयी. बड़ी हिम्मत से अपनी आवाज को साफ रखते हुए उसने कहा—बच्चे, मुझे माफ कर. यह देख तेरे लिए मलमल की कमीज लायी हूं. पुराने कपड़े निकाल कर इसे पहन ले और खाने पर बैठ. बाबा! मुझ पगली को माफ कर. . .किया ना? बोल ना. . ?

आंसुओं से भीगी उसकी आवाज से वह कुछ शांत हुआ और कपड़ों की ओर देखने लगा. उसने दो जोड़ियां खरीदी थीं. उसके लिए भी दो साड़ी, चोलियां थी लेकिन इतने कपड़ों के देखते हुए उसे पिछली दीवाली की याद आयी.

गत दिवाली को गरम पानी से नहा कर अच्छा गोरा-गोरा होकर उसकी लायी हुई नयी पैंट-शर्ट पहन कर वह रुआब से घूम रहा था. उसके नये कपड़े और बनिये-बामन जैसे गोरे रंगरूप को देख कर मैले कपड़े वाला बदबूदार भागा ईर्ष्या से से बोला——पांडू, साले तेरी मजा है. यह बंडी कब ली? किसने ली.

—मेरी मां ने . . .

और एक विधवा के बच्चे का रोब देख कर लज्जित-सा लखू का बाप दगड़ू बोला——अरे, भागा उसे कौन-सी कमी है? उसकी मां की दुकान जोरों में चलती है. . . इतनी भीड़-भाड़! हरेक ग्राहक दस-पांच रुपये का!

यह सुन कर पास-पड़ोस के औरत-मर्द हो-हो कर के हंसने लगे. ..वैसे ही जले हुए पांडू को सांप की सी चपलता से डस लिया. . .अपनी मां से भी कह दे. . .वहां भी होगी भीड़. . .पटाखों की दुकान की तरह !

और उसके इस वार से दिल में कटे हुए दगड़ूने उसे पीटना शुरू किया. वह चिल्लाने लगा. . .पास-पड़ोस के बड़े आदमी छुड़ाने लगे और यह शोर सुन कर पांडू की मां दौड़ती आयी. बच्चे को छुड़ाने के लिए दगड़ू पर टूट पड़ी. वैसे ही दगड़ू ने उसे छोड़ कर उसे पकड़ लिया. पागल कुत्ते की तरह वह उस पर टूट पड़ा. उसे मारने लगा. उसने उसकी चोली फाड़ डाली. अपनी जांघ पर बैठे दगड़ू के सर पर अपने दोनों हाथ में समाने वाला पत्थर उठा कर डाल दिया. उसे छोड़ कर दगड़ू उसे गिरा कर मारने के लिए दौड़ने लगा. . .लोगों ने बीच-बचाव कर वह मारा-मारी छुड़ायी.उस दिन से वह शरीर पर नये कपड़े नहीं पहनता था. . .अभी की उसकी दो साड़ियां और उसके दो जोड़ी कपड़े देख कर कानों में दगड़ू के शब्द गूंजने लगे. . .उसे किस बात की कमी है! उसकी मां की दूकान जोरों में चल रही है!

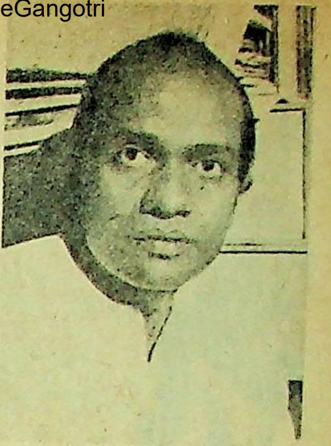

बाबूराव बागूल : उपन्यासकार, कहानीकार

उसकी ओर जाने वाला उसका मन फिर वापस मुड़ने लगा. . .लोग, जैसा कहते हैं वैसी ही वह उसे लगने लगी. अब यहां रहने का कोई फायदा नहीं. लोग यहां स्कूल में रोज चिढ़ायेंगे. . .मारेंगे. . .अभी भाग जाना चाहिये और इन विचारों से उसके खून में तूफान उठने लगा और वह उसे कमरे के बाहर फेंकने लगा.

——देख. . .पहन बाबा ये कपड़े और बैठ खाने पर. . . बच्चे की आंखों में चलने वाला परिवर्तन समझ कर वह उसे पास लेने के लिए उठते हुए बोली.

——डाल दे, अपनी-अपनी लाश पर...छिनाल-रांड! और संताप से किसी तरह कहते हुए वह बाहर भाग निकला.

——पांडा!

आजकल कभी न किये हुए इस बार के व्यवहार से उसके दु:ख की सीमा न रही. . .भागते लड़के की ओर वह हताश दृष्टि से देखती रही.

——भोगो अपने पाप के फल! उसके मन में और भीड़ के मन में एक ही समय आवाज आयी. टूटते पेड़ की तरह वह नीचे बैठ गयी. दु:ख करते हुए बाहर देखने लगी. बच्चे के विषय में विचार करते-करते रोने लगी.

* *

समय बीत रहा था. रात बढ़ रही थी. दगड़ू के भय से दरवाजा बंद करके उसे पीठ देकर वह उसकी प्रतीक्षा कर रही थी. लेकिन वह अब तक नहीं आया था. शंका-कुशंका से उसके प्राण अधमरे हो रहे थे. . . .भगवान के सामने पाप की घोषणा करने की तरह वह मन ही मन बड़बड़ा रही थी—देख बच्चे, तू मुझे वेश्या कह कर गया. . .अपने बाप से भी ज्यादा दु:ख दे गया. . .दु:ख के लिए ही भगवान ने मुझे भेजा है क्या? तू–तेरे बाप ने और बस्ती के स्त्री-पुरुषों ने मुझे सताया:. . मैंने तेरे लिए, तेरे बाप के लिए खूब सहा. वह मुआ महंमद मिस्त्री अपने 'बीवी' बनाने के लिए अपनी मोटर मेरे नाम कर रहा था. . .बालजी सेठ हर घड़ी बीस

पैरों में मोच?

आयोडेक्स मलिए, जो पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

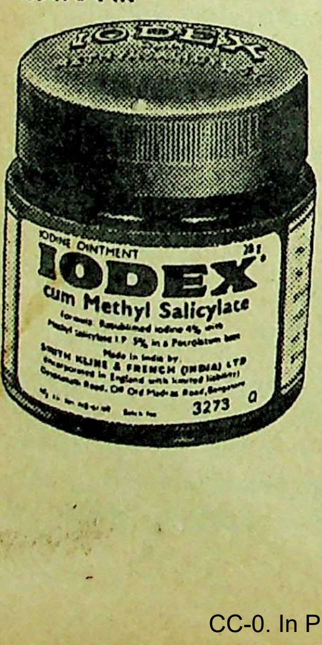
IODEX
IODINE OINTMENT
20g
IODEX
cum Methyl Salicylate
3273

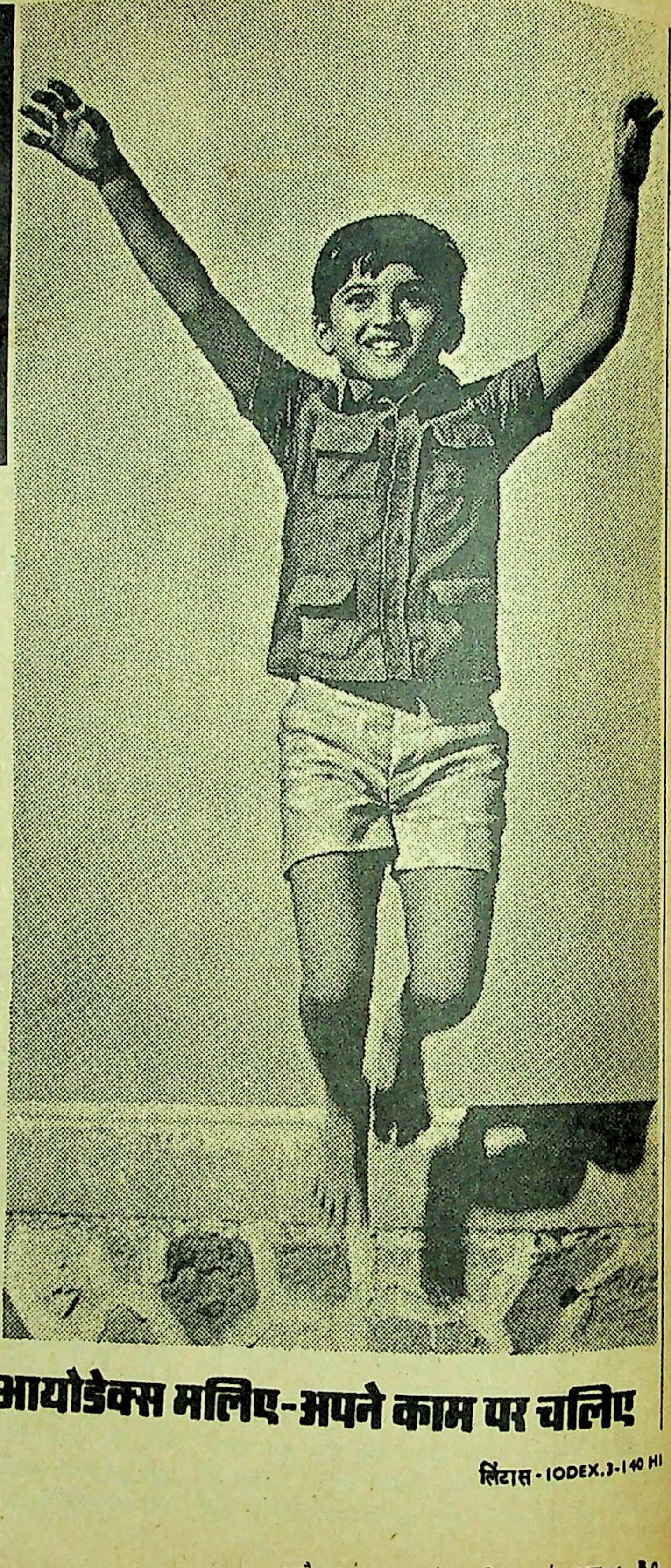

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए

लिंटास-IODEX.3-140 HI

रुपये ठकू भाभी के हाथ भेजता था. यह दगड़ू सारा सर्विस फंड मेरे नाम पर करने के लिए तैयार था लेकिन मैंने तुझे संभालने के लिए दिल जलाया. . .लेकिन तू. . .तुझे समझ आयी तबसे चुप रहने लगा. . .दूर जाने लगा. . . मेरी निंदा सच मानने लगा. पिछली दीवाली पर दगड़ू ने मेरी इज्जत पर हमला किया. . .तू मुझे मां मानता तो मैं यह दूसरा घर नहीं करती. मुझे तेरा सहारा होता. . . लेकिन तू भी मुझे छोड़ गया.

वह रोने लगी. झोपड़ा उसे श्मशान-सा सूना लगने लगा. अचानक उसे एकाएकी अकेलापन महसूस होने लगा और दगड़ू का डर लगने लगा. वैसे ही वह उठी और उसने दरवाजे की कुंडी लगायी और उसी समय उसे लगा जैसे दरवाजे की कुंडी लगा कर लड़के को हमेशा-हमेशा के लिए उसने उसी समय दूर कर दिया हो.वह अब आयेगा तो भी अंदर नहीं आयेगा. वह बैचैन हो गयी. कभी कुंडी निकालने उठती और दगड़ू डर से फिर नीचे बैठ जाती. और उसी समय वह जहां से भागा वहां से कुत्तों का भौंकना सुनायी दिया. वही वापस आ गया हो इस आभास से वह झट से खड़ी हुई और कुंडी निकाल कर उसने कहा—आ जा बेटे, मुझ पापिन को माफी कर दे.

कुछ देर से दरवाजा ढकेला गया.

—आ बच्चे ! उसने आगे हो कर कहा.

भरीपुरी जांघों का ऊंचा-भारी भरकम मुकादम दरवाजे पर खड़ा था. उसकी जबान तालू से सट गयी. अपेक्षा-भंग से वह बिखर गयी.

—क्या हुआ? इतनी क्यों घबराती हो ? पसीना क्यों आ रहा है? उसे अपने आलिंगन में लेते हुए उसने कहा. उसके माथे का पसीना पोंछने के बहाने से वह उसके गाल, गर्दन, छाती, पीठ सहलाने लगा.

गत आठ-दस साल से अतृप्त उसके आकुल शरीर में वासना की वीणा धीरे-धीरे गूंजने लगी. वह उससे प्रेमभावना से चिपकने लगी.

बच्चे की पुकार और दरवाजे की दस्तक उसके कानों पर नहीं आयी. और मां रो-रो कर सो गयी होगी इसलिए जोर से आक्रोश कर पांडू ने दरवाजा ढकेल दिया. लेकिन उसे बाहुपाश में ले कर खड़े मुकादम को देख कर उसका दुःख से उदास मन फट से टूट गया. और अपने-अपने दरवाजों की आड़ में खड़े पड़ोसियों की याद आते ही लज्जा से उसका कलेजा धड़धड़ाने लगा और वह फिर भाग खड़ा हुआ. और मुकादम की बांहों से छूट कर वह उसके पीछे दौड़ी. . . .लेकिन वह दूर चला गया था. . . मुकादम क्रूरता से उसे पीछे खींच रहा था. पांडू बाहर जी-जान से दौड़ रहा था. बस्ती के कुत्ते उसके पीछे दौड़ रहे थे. . .और पीछे लगा कुत्तों का झुंड देख कर वह घबड़ा कर आक्रोश कर रहा था.

हर झोपड़ी से लोग बाहर आ रहे थे. वह मुकादम के आलिंगन से छूटने की कोशिश कर रही थी, लेकिन कीचड़ में धंसे आदमी की तरह उसका छुटकारा नहीं हो रहा था. . . □□□

(अनुवाद : रतनलाल सोनग्रा)

इस अंक के सज्जाकार

अप्रैल ७५ और मई ७५ अंकों की सज्जा प्रख्यात चित्रकार जे. पी. सिंघल के चित्रों की पारदर्शियों से की गयी है. सिंघल ने ये चित्र डांग, बस्तर, सौराष्ट्र, आंध्र, आसाम, गुजरात, राजस्थान, बिहार, त्रिपुरा, मैसूर और महाराष्ट्र के आदिवासी क्षेत्रों में जा कर बनाये थे. इन चित्रों द्वारा आदिवासी कबीलों की जिंदगी का सही परिचय मिलता है. यहां हम इन चित्रों के संदर्भ में सिंघल के वक्तव्य का एक अंश दे रहे हैं—

'एक ही तरह का कार्य करते-करते अपने आपको कुछ अधिक ही व्यावसायिक-सा पाने लगा था. इसी दौरान मुझे नासिक की ओर जाने का अवसर मिला. बरसात के दिन थे. रास्ते में दो आदिवासी बच्चियां बरसात के पानी में नहाने का आनंद ले रही थीं. मन बरबस ही उनकी ओर खिंच गया. जीवन के उल्लास से भरे ये निर्दोष चेहरे मुझे अपना चित्र बनाने के लिए खींच ले गये. और इस तरह मेरा पहला आदिवासियों के जीवन का चित्र बन गया. सोचा था कि इसे न मैं बेचूंगा और न यह बिक ही पायेगा. क्योंकि न तो इसमें रंगों की तेजी थी और उनके चेहरों पर कृत्रिम रेखाओं की दमक. ग्लैमर से दूर इस चित्र को कौन लेना चाहेगा? लेकिन मेरे मन को उस चित्र से बहुत संतोष मिला था.

उन्हीं दिनों में अडवानी आर्लीकॉन के मैनेजिंग डायरेक्टर श्री आई. टी. मीरचंदानी के संपर्क में आया. उन्होंने मेरे सभी चित्रों में से एक कोने में पड़े उसी चित्र को पसंद किया. और साथ ही आदिवासियों के जीवन पर और भी चित्र बनाने के लिए कहा, जो उनकी कंपनी के कलैंडर पर प्रकाशित हुए.

उनसे मुझे बहुत प्रोत्साहन मिला और मेरे आदिवासियों के चित्रों का सिलसिला शुरू हो गया.

मेरे ये चित्र मनुष्य की प्राकृतिक स्वतंत्रता के प्रतीक अपने इन आदिवासी भाई-बहनों को समर्पित हैं. □

अर्जुन डांगळे ★ गारदी

उसके भारी-भरकम पंजों के दबाव से अधपिघला डामर धंस जाता था. रोष से भरा वह तेज कदमों से बढ़ता चला जा रहा था. दोपहर की घूप में तेजी आ गयी थी. उसे इसका कोई भान न था. वह तो बस बढ़ता चला जा रहा था. आगे, और आगे. रोज की आदत के अनुसार उसने रास्ता पार किया. स्कूल को पीछे छोड़ वह गली में मुड़ गया और बगीचे के साथ-साथ चलने लगा.

—क्या बेटा. कुछ हुआ काम का बंदोबस्त? केले बेचनेवाले चाचा की खरखरी आवाज उसके कानों में पड़ी.

उसने ऊपर देखा और नकार में सिर हिला दिया.

—केला तो खा के जाओ, चाचा की आवाज फिर आयी.

—नहीं चाचा. उसके मुंह से अस्पष्ट-से दो शब्द निकल गये.

—कोशिश करते रहना.कभी न कभी. . .पर वह बहुत दूर निकल चुका था. चाचा उसकी तरफ देखता रहा. रोज दोपहर को वह इस बगीचे में आकर आराम करता था. इलाके के सारे भगोड़े वहां जमा होते थे. उनमें कोढ़ी होते थे. भिखारी होते थे. बेकार भटकने वाले छोकरे होते थे. घर में सोने के लिए जगह न होने के कारण सोने के लिए आये आखिरी पाली के कामगार होते थे. चाचा से उसकी अच्छी पहचान हो गयी थी. वह हिसाब-किताब में चाचा की मदद करता था. चाचा उसे नौकरी खोजने के लिए गाड़ी भाड़ा देता था. कभी खाने को केले और कभी चायपानी भी दे देता था. उसे यह सब लेते समय न जाने कैसा-कैसा लगता था. पर और रास्ता ही क्या था? ये सारे दृश्य उसकी नजरों के आगे घूम रहे थे. वह बढ़ता जा रहा था. उसकी चाल नजदीक आ गयी. वह अंदर घुस गया.

—साले फिगर लाकर यहां लगा दिया कर, जिंदगी सुधर जाएगी. रोज-रोज की यह दौड़भाग बंद हो जाएगी, राणे दादा के अड्डे पर काम करने वाले नारायण की आवाज उसके कानों में पड़ी.

उसने उसकी तरफ देखा. वह जोरों से हंस पड़ा.

वह घर में घुसा . बहन नल पर पानी लेने गयी थी. तीन वर्ष की उसकी सुनंदा नितंग नंगी सो रही थी. मक्खियां जहां न बैठना चाहिए, वहां भी बैठ रहीं थी. कोने के ड्रम पर पड़े बेरंग तौलिये को उठा कर उसने सुनंदा के ऊपर डाल दिया. कमीज उतार डाली. अपनी गंदी हुई बनियान की तरफ ऐसी नजरों से देखा जैसे किसी मुरदे को देख रहा हो. पैंट के बटन खोल डाले, फिर उतारने के लिए उसे नीचे खिसकाकर अचानक ऊपर खींच लिया. बटन लगा लिये. गांव में उसके साथ पढ़नेवाली शुभा कल रात उसके स्वप्न में आयी थी. सुबह उठते ही उसे घाडगे से मिलना था. वह उसका रिश्तेदार था. किसी यूनियन में काम करता था. उससे ही मिलने गया था. शायद काम पट जाता. अब उसे नहाने की इच्छा हो रही थी. पर नल पर औरतें ही औरतें जमा थीं. वह गैलरी में पांव पसार कर बैठ गया. इतने में कोने की खोली वाली गंगाबाई की नॉनमैट्रिक चंपा कमर पर पतीली रखे आयी. वह उठ गया. बीच दरवाजे पर खड़ा हो गया. इधर-उधर झांका, अपनी ओर किसी को देखता न पाकर उसने पतीली में से एक मुट्ठी पानी लेकर उस पर छिड़क दिया. उसे अच्छा लगा. वह वैसे ही खड़ा रहा. इतने में गणेश स्कूल से आ गया.

—मां कहां गयी, मामा? उसने पूछा.

—नल पर.

उसने बस्ता घर में फेंक दिया. नीचे जाकर बच्चों में खो गया.

बहन धुले कपड़ों से भरी बाल्टी लेकर नल से आयी.

—क्या हुआ, गया था न? उसने पूछा

—गया था, वह मिला नहीं.

—क्यों?

—बाहर चला गया है.

—लौट आए तब फिर जाना.

—क्या होगा जाकर, बेकार .

—क्या मतलब?

—वह घर में ही था. अंदर के कमरे में सो रहा था. औरत से झूठ बोलने को कह दिया था.

—जाने दो. मरे का मुंह फिर मत देखना. इतनी देर कहां लगायी?

—कहीं नहीं, पैदल आया.

—इतनी दूर से! बस से क्यों नहीं आया. पैसे तो थे.

—थे, पर. . .

—खाना खायेगा न?

—हां.

—ठहर, मैं कपड़े सूखने डाल दूं.

उसने अनमने ढंग से खाना खाया. गटागट पानी पिया. नल पर औरतों की भीड़ वैसी ही बनी थी.

उसने कमीज शरीर में डाल ली.चप्पलें पहन लीं और बगीचे की तरफ चल दिया. थक गया था. फिर भी वहां पहुंचा. चाचा वहां नहीं था. फिर उसे ख्याल आया. उस दिन [illegible] चाचा की जुम्मा. वह मन ही मन

तारीख और वार उसके ध्यान में ही नहीं रह . वह वहीं लेट गया. एक अस्तव्यस्त पड़ी भिखारिन देखता रहा. अंधेरा झुक आया, तब तक वहीं पड़ा

—क्या उधर जाकर अभी लौटा है? बहनोई ने पूछा.

—नहीं. दोपहर को ही आ गया था. घर में था, मिला नहीं.

—मैं जानता था. वह ऐसा ही करता है. . . .का को पैसे चाहिए. जाने दे. कल देखना. . .

—फिर से जाऊं?

—नहीं, कल मैं तुझे एक दूसरे आदमी के पास ले गा. तू उसके साथ जाना. सुना है किसी दवा की नी में लोग लिये जा रहे हैं!

दूसरे दिन दोनों सुबह जल्दी उठे. उस आदमी के पास जाकर बहनोई को काम पर जाना था. कुर्ला स्टेशन पर उतर कर वे पता ढूंढ़ने लगे. जिस रास्ते का नाम दिया गया था, वे उसी पर खड़े थे. सामने के पानवाले से उन्होंने 'गंगा निवास' का पता पूछा.

—पेड़णेकर सेठ चाहिए क्या? पानवाले ने पान पर चूना कत्था लगाते हुए पूछा.

—हां. . .बहनोई ने कहा.

—सीधा जाना. दाहिने हाथ की गली में किसी को भी पूछना, पानवाले ने दूसरे पान पर चूना-कत्था लगाते हुए कहा. दोनों आगे बढ़ गये.

वे दरवाजे पर जा खड़े हुए. पंद्रह-सोलह वर्ष का एक लड़का फिट पैंट पहने स्टूल पर बैठा था. सिर हिला

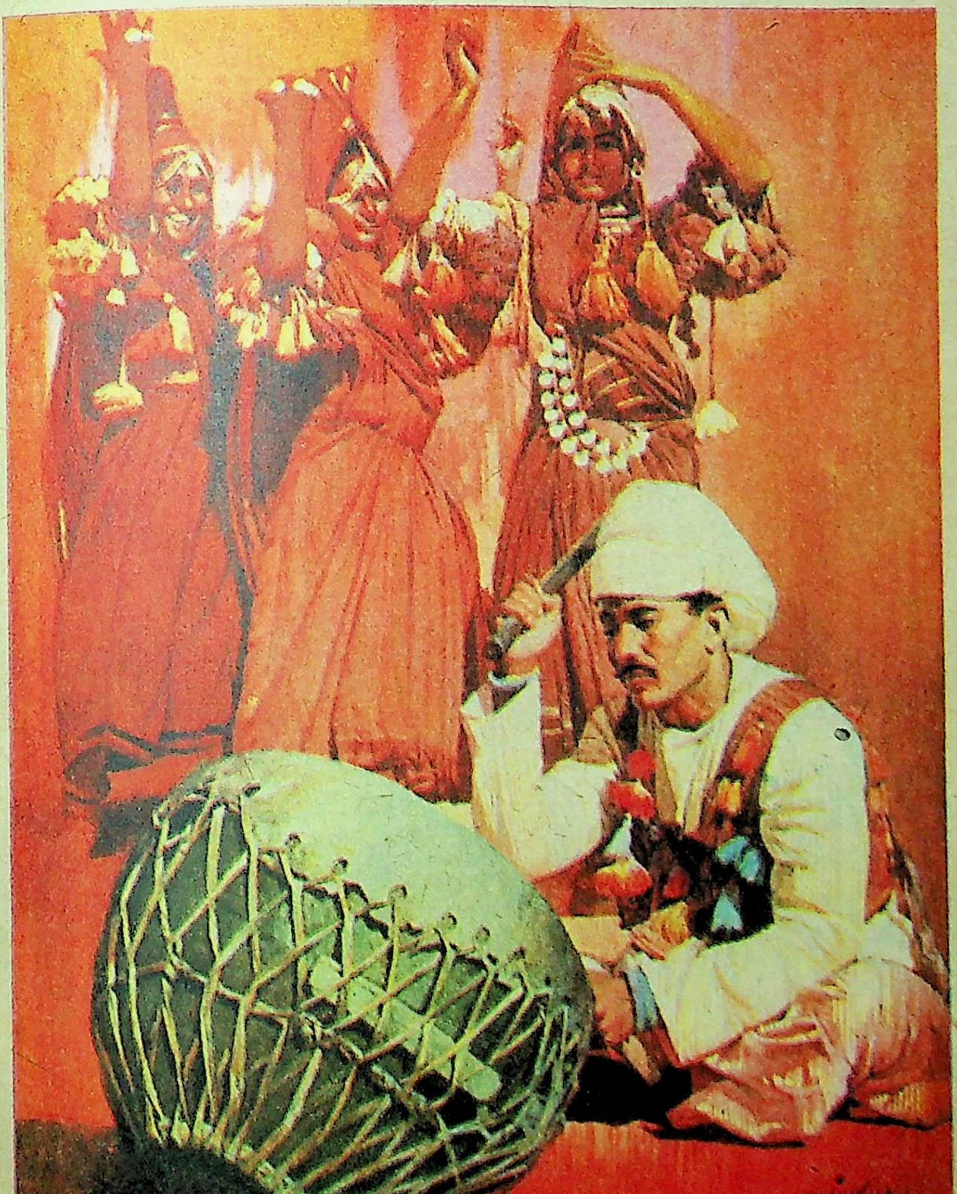

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

कहानीकार
अर्जुन डांगळे : कवि

कर इशारे से ही उसने उन्हें अंदर बुलाया. अंदर घुसते ही एक तेज गंध उनकी नाक में घुसी. वे कोच पर बैठ गये. दोनों ओर दो-दो कोच पड़े थे. हर कोच के सामने एक-एक तिपाई पड़ी थी. दीवार पर शिवाजी महाराज का एक भव्य चित्र टंगा था. उसी के पास शिवाजी पार्क की मूर्ति को हार पहनाते हुए लिया गया किसी समारोह को चित्र टंगा था.

——कितनी दूं, लड़के ने आ कर पूछा.

——हम पीने नहीं आए. पेडणेकर सेठ से मिलना है. बहनोई ने कहा.

——क्या काम है ? मंदिर के लिये चंदा चाहिए ? लड़के ने पूछा.

——नहीं. कदम साहेब ने चिट्ठी दी है.

——अच्छा, अच्छा, नौकरी के लिए सारी गैंग ग्यारह बजे इकट्ठी होगी. सेठ भी तभी आयेंगे.

बहनोई ने उसकी तरफ देखा और कहा—देख मैं तो जाता हूं. तू यहीं बैठ. इच्छा हो तो यहां-वहां घूम आना. मुझे देर हो रही है. मैं जाता हूं.

बहनोई निकल गये. वह सुन्न हो गया था. उसे वहां बैठने में कोई तुक नहीं दिखी. लड़के ने उसकी तरफ सिगरेट बढ़ाई, उसने मना कर दिया. सिगरेट की आदत नहीं है यह अच्छा है. लड़का धुंआ उड़ाने लगा. तब तक दो-चार ग्राहक आ गये. उससे वहां बैठा नहीं जा रहा था. उठ खड़ा हुआ. जरा घूम कर आता हूं. लड़के से कह कर वह बाहर निकल गया.

साढ़े दस बजे के करीब वह वापस लौटा. पच्चीस के आसपास की उम्र के तीस-पैंतीस तरुण वहां जमा थे. 'शिवाजी महाराज की जय, जो हमसे टकरायेगा, वो मिट्टी में. . .' आदि नारे वे लगातार लगा रहे थे. गैलरियों में से लोग झांक रहे थे. पास ही एक तरफ दो ट्रक खड़े थे. मंदिरों पर जैसे झंडे फहराए जाते हैं, वैसे झंडे उन पर फहरा रहे थे. टैक्सी वाले उन्हें देख कर टैक्सी पिछली गली में मोड़ ले जाते थे. वह यह सब देखता रहा. उसे कुछ भी सूझ नहीं रहा था.

उसने पास ही खड़े एक व्यक्ति से पूछा——कहां जाना है?

——चेंबूर.

——क्या?

——अरे, तुझे पता नहीं क्या? लाल झंडे वालों ने ह ताल कर दी है. नये लोग भरती हो रहे हैं. पेडणेक सेठ ने लोगों की पूर्ति का जिम्मा लिया है.

उसका हृदय फट गया . दूसरे ही क्षण वह अंदर ह अंदर भड़क उठा. लाचार मन उस अग्नि में जल गया.

——छि: यह संभव नहीं. वह बड़बड़ाया.

वह भीड़ में से निकल कर भागा. स्टेशन की ओर जाने लगा. सुबह वाला लड़का सामने खड़ा था.

——क्यों, कहां चल दिये? सेठ की ट्रक से जाना न अभी. उसने पूछा.

——घर जा रहा हूं.

——क्यों?

——भूखा मर जाऊंगा पर यह धोखेबाजी नहीं करुंगा. मजदूर पेट के लिए हड़ताल करते हैं और हम जा कर यह सब करें.

——कमाल है!

——कमाल की क्या बात है? मुझे काम मिल जायेगा. तुझे मिल जायेगा. पर उन बेचारों की नौकरी चल जायेगी. उनके भी बाल-बच्चे होंगे. वे बेचारे भूखे मरेंगे.

लड़का खी-खी हंसने लगा. वह और भी भड़क उठा. उसकी मुद्रा गंभीर हो गयी. वह अंदर ही अंद जल रहा था. नारे लग रहे थे. वह लड़का उसकी ओर देख कर बोला——आपको इतनी भी समझ नहीं. अ जो खाने को दे, उसकी तो अपन गांड भी पोंछ दें.

वह स्टेशन की तरफ चल दिया. लड़का दूस तरुणों से कुछ फुसफुसाने लगा. वह गली पार कर के रास्ते पर आया. दो लोग उसके पीछे लग गये.

फाट्, फाट् उसे मार पड़ने लगी. खींचते-खींचते वे उसे भीड़ तक वापस ले आये.

——क्या हुआ? भीड़ ने पूछा.

——साला लाल झंडे वाला है. एक ने उत्तर दिया और फिर वहां खड़ा प्रत्येक व्यक्ति उसकी ओर बढ़ने लगा.

वह बेहोश हो गया. उस भीड़ ने उसके जागृ मन की बलि ले ली.

पेडणेकर सेठ आया.

——शिवाजी महाराज की जय. ट्रक चेंबूर की तरफ दौड़ने लगा.

वह वहीं पड़ा था.

गैलरियां खाली हो गयी थीं. दूकानें खुल गयी थीं. किसी ने उस पर पानी छिड़का.

और . . .

बड़ी देर से दूर खड़ी हुई पुलिस की काली गाड़ी उधर आयी . काली वरदी वाली पुलिस उसमें से उतरने लगी.

□□□

(अनुवाद : महेंद्र झा

सवर्णों का देश

यह कहानी जामनगर, गुजरात से ६० किलोमीटर दूर एक गांव की है. एक ग्यारह वर्षीय हरिजन बालक को जान से मार डाला गया. इस धर्म निरपेक्ष देश में उसने सवर्णों के मंदिर में अनजाने ही घुसने का महापाप किया था.

तीन हरिजन बच्चे मंदिर के पास खेल रहे थे. खेलते-खेलते एक बच्चा मंदिर में जा पहुंचा, तो पुजारी ने बेंत से मारते-मारते उसे बेहोश कर दिया. बाद में अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गयी. ☐

इज्जत का क्या करोगे ?

यह घटना है पिछले वर्ष सितंबर की. अकोला जिले के ढाकली ग्राम के दो भाइयों गोपाल गवई और बाभरू वाहन गवई --की सवर्णों ने आंखें निकाल लीं. सवर्णों की नजर में इनका कुसूर यह था कि ये अपनी इज्जत मांग रहे थे.

गोपाल गवई की लड़की को गांव के पटेल के लड़के ने अपने प्रेम पाश में फांस लिया था. मामला चूंकि बहुत आगे बढ़ चुका था इसलिए गोपाल ने लड़के के पिता से कहा कि वह इन दोनों की शादी कर दे.

पटेल को यह नामंजूर था. उसने धमकी दी कि आगे से ऐसी बात जुबान से निकाली तो जुबान खींच लूंगा.

उसने जुबान नहीं खींची. आंखें निकाल लीं.

२७ सितंबर को गोपाल अपनी झोपड़ी में था. बाहर से कुछ लोगों की आवाज आयी. ये लोग गोपाल को बाहर बुला रहे थे. गोपाल बाहर आया. बाहर आते ही उसे बेंतों से मार कर बेहाल कर दिया गया. फिर एक आदमी छाती पर चढ़ बैठा और उसने नुकीली बेंत से उसकी आंखें निकाल लीं. उसके भाई बाभरूवाहन का हाल भी यही किया गया. जब उसकी पत्नी उसे बचाने आयी तो उसे भी पीटा गया.

इसके बाद गांव वालों को धमकी दी गयी कि अगर इस बारे में कोई बोला, तो उसकी भी आंखें निकाल ली जायेंगी.

वाकई उनकी बात का असर हुआ. घटना के दो महीने बाद अपराधी पकड़े जा सके.

यह मामला सामने न आया होता यदि दलित पैंथर के राजा ढाले ने इसमें गहरी दिलचस्पी न ली होती. ☐

बेगार

पाठकों को शायद भरोसा न हो कि हरिजन इस जमाने में भी १२ से २५ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी पाते हैं.

उत्तर प्रदेश के जयसिंहपुर क्षेत्र में चाहटोना गांव में हरिजनों के १४ झोंपड़ों में इसीलिए आग लगा दी गयी कि उन्होंने दो-चार आने रोज पर मजदूरी करने से इंकार कर दिया था.

कड्डापाह जिले से ६ किलोमीटर दूर मझापल्ली गांव में भी हरिजनों के करीब सौ झोंपड़े जला कर ६०० लोगों के घरबार इसलिए उजाड़ दिये गये कि उन्होंने नाममात्र की मजदूरी पर सवर्णों की गुलामी करना नामंजूर कर दिया था. जहां परंपरागत रूप से सवर्ण वर्ष में सौ रुपये का ऋण दे कर गुलामों की तरह काम करवाते थे. खेत मजदूर साल भर अपना खून-पसीना बहा कर इस ऋण को चुकाते.

इस गांव के हरिजनों ने मना कर दिया तो सवर्ण पास के गांव से अधिक मजदूरी पर मजदूर ले आये. मगर गांव के मजदूरों को वे इतनी मजदूरी देने को तैयार नहीं थे. स्थानीय मजदूरों ने इन्हें समझाया कि वे अपने ही वर्ग के खिलाफ की जा रही इस धोखेबाजी में शामिल न हों. वे शामिल नहीं हुए. इसका बदला सवर्णों ने हरिजनों के झोंपड़े जला कर लिया जिनमें उनकी एक लाख रुपये की संपत्ति नष्ट हो गयी. तीस लोग गंभीर रूप से घायल हुए और एक गर्भवती महिला को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा.

इसी तरह वाराणसी के बेहरा गांव में हरिजनों की बस्ती जला दी गयी. एक आदमी की जान गयी. छह लोगों को गंभीर चोटें आयीं. इनका भी अपराध यही था कि ये तीन रुपये महीने और रोज १.६ किलोग्राम अनाज पर बेगार करने को तैयार नहीं थे. ☐

हरिजनों का एक घर

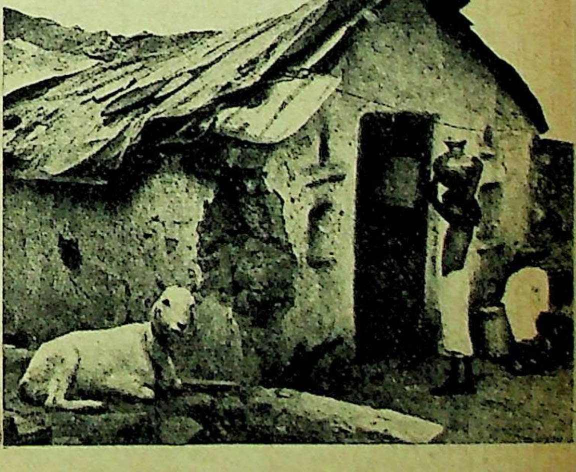

विटाळ ★ दया पवार

पिछले साल की दीवाली की बात. घर-घर में मिठाइयां बनी हैं. बच्चों के लिए बीवी ने पकवान बनाये हैं. मैं अभी-अभी खा चुका हूं. जीभ पर मिठास और तन में सुस्ती महसूस कर रहा हूं. लेटे-लेटे दीवाली विशेषांक के पन्नों पर नजर दौड़ा रहा हूं. बाहर पटाखे फूट रहे हैं और मैं 'दलित साहित्य' के संबंध में मराठी के मशहूर लेखक श्री जयवंत दलवी का लिखा लेख पढ़ने लगा हूं.

चार-पांच साल पहले इस विषय को परे हटाया जाता था. ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मरा हुआ चूहा एक तरफ फेंक दिया जाता है. आजकल लगता है, इसके भाग खुल गये हैं. मुझे संतोष है. साहित्यिक कला-मूल्य की चर्चा चलाते-चलाते दलवी अब सामाजिक समस्याओं की बातें करने लग जाते हैं. उनका दावा है कि 'सफेदपोश सवर्ण लेखक भी अपनी कल्पना एवं प्रतिभा के बल पर दलितों की अनुभूतियों का सशक्त चित्र उतार सकता है.' वह कहते हैं--'बंबई जैसे शहर में, जहां मैं रहता हूं, उसी बिल्डिंग में पवार भी रहते हैं. ऐसी हालत में हम दोनों की अनुभूति का स्तर एक ही रहता है. हम दोनों एक ही स्तर पर जी रहे हैं.' बस. यहीं मैं अड़ जाता हूं.

कहां का "एक ही स्तर"? कहां का . . .

--उठाओ यह थाली, चलो उठाओ. भिखारी समझ रखा है हमें? बीवी के कठोर वचन अचानक सुनायी देते हैं और मेरे विचारों की कड़ी टूट जाती है. मैं अंदर झांकता हूं. देखता क्या हूं, बीवी मारे गुस्से के कांप रही है और सामने खड़ी हैं हमारी पड़ोसिन श्रीमती देशमुख. सोने के कंगन से दमकते हाथों में थामा हुआ मिठाइयों का थाल.

हुआ क्या? आखिर यह डांट-डपट किसलिए? मैं स्थिति को समझने की कोशिश करता हूं. बीवी की आंखों से आंसू झरने लगते हैं और रोते-रोते वह मुझे पूरा वाकया बता देती है.

इस कॉस्मोपॉलिटन बस्ती में आये हमें अब दो महीने हो चुके हैं. हाउसिंग बोर्ड की मेहरबानी. गत दस-पंद्रह साल हम बंबई में सब-टेनेंट के रूप में कभी यहां, कभी वहां घूमते रहे हैं. यहां आने से पहले मोतीलाल नगर में रहते थे, जो 'गोरेगांव का महारवाड़ा' नाम से मशहूर है. बीवी अब खुश है कि बच्चे यहां गालियां नहीं सीखेंगे. एक तरफ गुजराती पड़ोसी, दूसरी तरफ मराठा, ख्रिस्ती, धोबी, ब्राह्मण. . .भारत की सारी जातियों का एक छोटा-सा प्रतिरूप. हमारे घर की दीवार पर टंग रही डा. बाबासाहेब आंबेडकर की तस्वीर हमारी जात का ढिंढोरा पीट रही है. सारे मध्यवर्ग के लोग, आर्थिक स्थिति सबकी लगभग एक जैसी. सोचा नहीं था कि यहां भी हमारा परस कयामत ढा देगा.

सबेरे से एक-दूसरे के घर मिठाइयों से सजे थाल भेजे जा रहे हैं. मेरी बीवी भी देशमुख के यहां थाल ले जाती है. देशमुख परिवार सुशिक्षित है. और अपनी जाति पर उसे नाज है. . .शहाण्णव कुलीचे मराठे. वह कहती हैं, अरे--यह थाल किसलिए? यहां तो ढेर के ढेर पड़े हैं मिठाई के. ले जाइए, आपके बच्चों के लिए हो जायेगा. मेरी बीवी थाल वापस ले आती है. अपमान की कसक उसे सालती रहती है. क्रोध मन में उबलता रहता है. और इस पर तुर्रा . . .देशमुख बाई दोपहर अपना थाल ले आती हैं और समझाने के स्वर में कहती हैं--थाल लौटाया नहीं जाता, बहन. बीवी को बदला चुकाना ही है. अन्न को पूर्ण ब्रह्म समझने वाली देशमुख बाई का थाल लौटा दिया जाता है. इतना-सा मुंह और हाथ में थाल लिये वह लौट पड़ती हैं.

जलते हुए अंगार-सा यह अनुभव मेरी सारी संवेदनाओं को एकबारगी आग लगा जाता है. जीभ पर मिठास अचानक कड़ुवाहट में बदल जाती है. 'घर-घर में दीवाली है, मेरे घर में अंधेरा'. लगता है सारा देश एक महाकाय पिरामिड है और उसके अंदर-अंदर के घने अंधकारों में कहीं 'ममी' की तरह बेजान मैं सड़ रहा हूं. क्या दलवी ने कभी ऐसा अनुभव किया होगा? अस्पृश्यता उनके लिए एक कलंक भर है. लेकिन मेरे लिए? मेरे लिए वह मां के दामन का दाग है. उसको कैसे मिटायें? कैसे?

स्वतंत्रता की रजत जयंती धूमधाम से मनायी जा चुकी है. गत पच्चीस सालों में जाने कितनी बातें बदल गयीं. कितने सुधार हुए. इस दाग को मिटाने के लिए कानून बना. लेकिन इस कानून के खिलाफ हुई वारदातों पर ध्यान नहीं दिया गया. और यह आज का वाकया इसे 'गुनाह' कहें तो कैसे कहें? अदालत गवाही की मांग करेगी. कहां से लायें गवाही? औद्योगीकरण ने शहरों का रूप बदल दिया. पर यह दाग मिटा नहीं. कुछ दलितों की हालत आर्थिक रूप से सुधर गयी. इसके बावजूद यह दाग बना रहा. जब शहरों की यह हालत है, तो पिछड़े हुए देहातों की कुछ न पूछिए. भोगा हुआ अतीत गलगंड की तरह कसकता रहा. एक एक फोड़ा फूटता गया. . .जानलेवा दर्द के साथ.

बीते हुए दिनों के साथ खोया हुआ बचपन याद आया. हम लोग महाराष्ट्र के पूर्वी प्रदेश के रहने वाले

क तरफ अंदर धंसी हुई सह्याद्रि की श्रेणियां, अमृत- हिनी प्रवरा. कलसूबाई की गगन छूने वाली चोटी. कृति के मन मुताबिक बिखरी हुई सुंदरता. लेकिन स भौगोलिक विशालता के खयाल से हमारा सिर भी ऊंचा नहीं हुआ. हर गांव की तरह यहां भी 'महार- ड़ा' था. मराठी के कवियों ने अपने बचपन के बीत ते पर जार-जार आंसू बहाये हैं. लेकिन मैं तो अपना चपन याद करके बुरी तरह सिहर उठता हूं. कविता- द्ध करने योग्य यहां था क्या? हां, एक घटना याद आती . रोंगटे खड़े हो जाते हैं. महारवाड़ा में सिन्नर का ांतिकारी जलसा उतरा है. . . .वह समय ही कुछ और . ऐसे हजारों जलसों ने महाराष्ट्र में जागृति के सुर गाये थे. डा. बाबासाहेब आंबेडकर का दर्शन झोपड़ी- पड़ी तक पहुंचाया था. महार जाति में स्वाभिमान ी ज्योति जलायी थी. . .सिन्नर का वह जलसा देखने व के 'मराठा' लोग महारवाड़ा में आये हैं. उनके ठने का विशेष प्रबंध किया जाता है. ढोलक की थाप र जलसा आरंभ होता है. बाबासाहेब भीमराव आंबेड- कर की प्रार्थना के पद शुरू होते हैं. सांवले रंग के किसन-हीरामन बिजली-से कड़कने लगते हैं. 'गवलण' आरंभ होती है. पर जलसे की यह गवलण अपने ढंग की निराली है. तमाशा की गोपियों के पैर उठते हैं मथुरा के बाजार की तरफ, जब कि ये 'गोपियां' चली हैं नासिक, कालाराम मंदिर के सत्याग्रह में शामिल होने. . .जलसा रंग ला रहा है. पुजारी मंदिर-प्रवेश का विरोध कर रहे हैं. गोपियां अपनी बात पर अड़ी हुई हैं. . वे मंदिर-प्रवेश करने पर तुली हुई हैं कि अचानक मराठा दर्शक हल्ला मचा देते हैं. इस डर से कि कहीं ये गोपियां मंदिर में घुस कर भगवान को भ्रष्ट न कर दें. मूछों पर ताव देते हुए पाटिल गरज उठते हैं—बंद करो यह तमाशा!

—पाटिल, यह तमाशा नहीं. इसे जलसा कहते हैं, जलसा. महारवाड़े का जवान प्रतिनिधि जावजी जवाब देता है.

—उन गोपियों को रोको! भगवान को भ्रष्ट कर देंगी वे.

—यह हमारी बस्ती है. नहीं देखना है तो अपना रास्ता नापो. फिर एक बार जावजी की बुलंद आवाज—गांव वाले लोग गांव की तरफ चल पड़ते हैं. जलसा फिर शुरू हो जाता है, जैसे कुछ हुआ ही न हो. दूसरे दिन जलसे वालों का डेरा उठ जाता है और गांव में असंतोष, क्रोध की लपटें लपलपाने लगती हैं. महारवाड़ा बहिष्कृत कर दिया जाता है. गांव में आना-जाना बंद हो जाता है. मजदूरी नहीं मिल पाती है. कुएं की राह गांव से हो कर जाती है. वह बंद कर दी जाती है.

पर लोग भी अपनी जिद के पक्के. किसी तरह हार नहीं मानने वाले. गांव और महारवाड़े की सरहद पर पत्थर रखे जाते हैं. उन पर महार औरतें खड़ी हो जाती हैं. मर्द लाठियों पर गंडासे बांध लेते हैं. सौ-दो सौ गंडासे चमचमाने लगते हैं. उन्हें ले कर गांव में बड़ी अफवाहें फैलने लगती हैं. काटो तो खून नहीं. आखिरकार सोच-विचार कर महारों को बुलवाया जाता है. नंग-धड़ंग काले शरीर, कंधों पर चमकते गंडासे लिये हनुमान के मंदिर के सामने आ खड़े होते हैं. मंदिर से आवाज आती है—तुम कौन हो?

—हम राजा हैं! छह फुट लंबा काशीराम नजर से नजर मिला कर जवाब देता है. महार कुछ नहीं सुनेंगे. खून-खराबा होगा, इस डर से गांव वाले किसी तरह समझौता कर लेते हैं. अब कभी गांव जाता हूं तो जावजी मिलने आता है. अब बुढ़ापा आ रहा है. उसने इस घटना वाले सारे कागजात जतन से रखे हैं. मानो मुहरों की थैली हो.

पिता जी को मैंने बचपन में देखा था. लंबे, छरहरे, काला रंग, हंसमुख, सर पर ऊंची, काली मलमल की टोपी. कपड़े हमेशा सफेद. पढ़े-लिखे नहीं थे. पर जेब में हमेशा फाउंटेन पेन की शान. हम लोग अभी-अभी बंबई से गांव लौट आये. वह गोदी से रिटायर हो चुके हैं और हाथ लगे फंड के रुपये शराब में, कर्ज में फूंक चुके हैं. फकीर बन कर हम गांव में लौट आये हैं. बंबई की सारी जगमगाहट खत्म हो चुकी है. अब कहीं किसी के खेत में मजदूरी कर लेते हैं, लकड़ी तोड़ते हैं. हां शादी-ब्याह के मौसम में हमारे दिन खुल जाते. चार गांव के चार बजनिये इकट्ठे करके वह चार पैसे जोड़ लेते थे. खुद 'कांड' बजाया करते थे. तमाशे का शौक था. शाम को महारवाड़े के जवानों को इकट्ठा करके लावणियां गाते थे. ढोलक में मसाला खूब अच्छी तरह भरते थे. कभी-कभी ठाकुरवाड़ी से, गांव से भी, ढोलक मसाला भरने के लिए उनके पास आया करते थे, कभी मृदंग भी आया करते थे. पिताजी को मंदिर में प्रवेश करने की मनाही थी. हां, उनकी भरी ढोलक खूब चलती थी. मैं यह पहेली कुछ समझ नहीं पाता था. भली-बुरी कितनी ही बातों का पिटारा थे मेरे पिताजी. गांव का अखाड़ा महारों के लिए बंद था, इसलिए उन्होंने हमारे घर ही में जमीन खोद कर अखाड़ा बना लिया था.

बजनियों के साथ मैं अकसर जाया करता था. 'संबल' के ताल पर झुक कर, माथा टेक कर, सिक्का उठाना उन्होंने मुझे सिखाया था. बारात में वह लावणी गाते थे. बजनियों की मंडली में एक सटवा नाम का आदमी था, जो खूब हंसाया करता था. 'कांड' ऐसे बजाता था कि सब डोलने लग जाते. एक बार मैंने उससे पूछा था—सटवा मामा, इतना अच्छा कांड बजा लेते हो, पर तुम्हारी पत्तल घूरे पर. ऐसा क्यों, सटवा मामा?

उनकी मां के ब्याह में . . .उसकी पेटेंट गाली थी. उस समय उसकी बेपरवाह हंसी से झांकती अनगिनत लाल-पीली लपटें, लपटें, लपटें. . .

—देखो, इनको गालियां देता हूं कांड बजा कर. बारातियों के सामने खड़ा हो कर वह कांड बजात बाराती वाह-वाह करते और मुझे उसके कांड से बज हुई गालियां सुनायी देतीं.

एक और वाकया. बैलगाड़ियों में चढ़ कर बारात जा रहे थे. तपती हुई दोपहरी में दहकती हुई जमीन प बजनिये पैर घसीटते जा रहे थे. मैं बहुत थक गया था सटवा मामा मिन्नतें कर रहा था कि मुझे बैलगाड़ी चढ़ाया जाये, पर क्योंकर सुनता कोई? तब फिर क पिता जी के कंधे पर, कभी सटवा मामा के कंधे पर.

पहुंचते-पहुंचते मुझे जोरों से भूख लग आयी है. लोगों के खा चुकने के बाद ही महार बजनियों को खा मिलता. और फिर मांगें तो किससे, कुछ समझ नहीं रहा था. हम सब हैरान. हमारी मंडली में सुदाम बु सुकरी बजाते थे. सर पर लाल साफा, कान में सोने कुंडल और माथे पर सिंदूर का टीका. फटे हुए कोट जेब में एक चीथड़ों की बनी गुड़िया हुआ करती जिसे वह 'खाला' कहा करते थे. बालों का छोटा-जूड़ा और पैरों में बजते हुए घुंघरू. लोग समझते सुदाम बुवा टोना-टोटका करता है. हां, यह खाला कभी किसी चीज की कमी महसूस न होने देती. इस बा भी यही हुआ. माथे पर कुंकुम का बड़ा-सा टीका औ दूरकली साड़ी में लिपटी देह—एक औरत सुदाम बु के सामने आ खड़ी हुई.

—सुदाम बुवा, मेरी कोख खाली है. बच्चा न आयेगा तो मेरा शौहर सौत ले आयेगा, सुदाम बुवा उसकी वाणी बड़ी दयनीय थी.

—अच्छा, यह तो बड़ी आसान बात है. सुदा बुवा ने जेब से गुड़िया निकाली और उसके सर प घुमायी.

—अब देखो, उतारा करना पड़ेगा. उतारे बारह अंडे, घी में सेंके बारह पराठे, वहां, वह आम पेड़ जो दिखायी दे रहा है. . .बस वहीं रख आ वह हामी भरती है, चली जाती है. इधर सटवा, सुदा बुवा खुश हो कर ताली बजाते हैं, उधर उतारा जाता है. हम लोग पहले से ही वहां छिपे बैठे हैं. उस उतारा रख कर चले जाते ही सब लोग टूट पड़ते पराठों पर, अंडों पर.

* *

मुझे समझ आते-आते गांव के ये सारे सहारे लोक की यात्रा खत्म पर चुके थे. भाइयों-भाइयों लड़ाई-झगड़े शुरू हो गये. और हम तो इस सता हुई दुनिया के और भी गये-गुजरे जीव. पिताजी साया उठ चुका होता है. शराब का उनका बढ़ता हु चस्का उन्हें एक दिन हममें से उठा ले जाता है. स तरफ से अवहेलना, उपेक्षा, तिरस्कार के अंगार बरस रहते हैं. मां स्थिति को किसी तरह संभाल लेती वह न होती, तो परिस्थितियों के पैरों तले इस कदर रौं कुचले जाते कि पता ही न चलता. मरे हुए गाय-बैलों बोझ ढोना, गांव की मैयत की खबर घर-घर पहुंचाना-यही काम मिलते थे. उसमें भी भाई-बंद हिस्सा बंटा

करते थे. गुजारा मुश्किल था. लकड़ियां तोड़ना, बेचना, जाने कैसे-कैसे काम करके वह हमें पाल रही थी, पढ़ा रही थी.

गांव के स्कूल से मैंने चौथी कक्षा पास कर ली थी. पांचवीं से तालुके में जाना पड़ता था. यहां तो विधवा के बच्चे का पढ़ना-लिखना किसी को फूटी आंखों न सुहाता था. वे लोग मां को सलाह दिया करते—क्यों री सखू? बम्मन की तरह इसे पढ़ा-लिखा रही हो. जरा तो किसी के बैलों को चराने भेजा करो. छिटपुट कुछ नमक मसाले के लिए मिल जाया करेगा.

पर मां किसी की एक न सुनती. वह जानती है, उसके बच्चे को पढ़ाना जरूरी है, इस नरक से उबार लेना जरूरी है. कहां से इतनी समझ उसमें आ गयी थी? वह न होती तो पता नहीं मैं कहां होता.

तालुके में भी कुछ ऐसे अनुभव मिलते हैं, जिनसे दिल फट जाये. गांव के कुछ मराठा लड़के साथ हुआ करते थे...मन नये संस्कार ले रहा है. तराशा जा रहा है. हीन भावना के घुटन भरे घेरे से बाहर आ रहा हूं. स्वाभिमान जगने लगा है. कुलकर्णी मास्टर मुझे बच्चों के सामने खड़ा कर कहते—देखो, यह महार का बेटा, लेकिन कैसा साफ-सुथरा, पढ़ाई में तेज है! सभा में भाषण देता है, नाटकों में भाग लेता है. मैं फूला नहीं समाता हूं, यह तारीफ सुन कर. मन का पंछी उड़ानें भरने लगता है, ऊंचे-ऊंचे, दूर-दूर.

दोपहर—खाने का समय हो जाता और मुझे अपनी असली जगह का पता चल जाता. धम्म से जमीन पर गिरता हूं. यह क्यों? यह क्यों? ऐसी क्या कमी है मुझमें? सभी लड़के नदी-किनारे खाना खाने जाते हैं. स्पृश्य लड़के मुझसे दूर हट कर बैठ जाते. उनका अचार, चटनी मेरी रोटी पर आ सकता था, लेकिन मेरा अचार वे कभी नहीं खाते. नदी का पानी मैं बहाव के नीचे की तरफ जा कर पिया करता. अनजाने ही.

एक दिन मैं ठान लेता हूं. अपनी चटनी उन्हें देने लगता हूं. वे समझते हैं कि मैंने उनका घोर अपमान किया है.

—धेड़, महार, कहीं का! गालियां बरसती हैं.

—मेरी चटनी तुम लोग नहीं खाते, मैं भी नहीं खाता तुम्हारा अचार! मैं उनका दिया अचार नदी के पानी में फेंक देता हूं. यह बात? यहां तो यह घमंड और घर पर? वहां हमारे दिये टुकड़े चूसते हो! आठ-आठ दिन के बासी टुकड़े. मेरा मस्तिष्क झनझना उठता है. एकाएक. मेरे हाथ-पांव सारी शक्ति खो बैठते हैं मानो. वहां से हट जाता हूं. दूर-दूर तक. आंखों से आंसू बहते रहते हैं. बड़ी देर तक प्रवाह के किनारे बैठा रोता रहता हूं. आंसू बहाता रहता हूं. यह अमृतवाहिनी प्रवरा. मेरी आंखों के खारे जल से इसे न लेना है, न देना.

* *

फिर एक दिन सोनावने गुरुजी अपने कमरे में बुलवा लेते हैं. —गांव के बोर्डिंग के लिए तुम्हारा चुनाव हो गया है. छठी कक्षा से तुम वहां पढ़ने जाओगे.

खुशी से झूम उठता हूं. उन सहपाठियों से दूर. मां का बोझा मैं थोड़ा हल्का कर सकूंगा. अपना बिस्तर ले कर मैं बोर्डिंग में दाखिल हो जाता हूं. लेकिन पहले ही दिन सारी खुशी पर पानी फिर जाता है.

लोकल बोर्ड का बोर्डिंग है. सभी बच्चे महादेव कोली, यानी शेडयूल्ड ट्राइब के. मैं पहला अकेला महार छात्र. इसी की चर्चा होने लगी है. कोई मुझसे बात नहीं करता. अपनी थाली और लुटिया लिये मैं खाना खाने जाता हूं तो बोर्डिंग सुपरिंटेंडेंट मुझे समझा देते हैं—तुम महार हो. यहां दरवाजे के पास ही खाना खाया करो. अंदर को खिसकने लगोगे तो सब लड़के मिल कर बुरी तरह पीटेंगे.

अपने से फासला रख कर बैठे हुए लड़कों की तरफ मैं एक नजर देख लेता हूं. सबकी आंखें इसी तरफ टकटकी बांधे हैं. लगता है, मैं एक कैदी हूं. बेड़ियों-हथकड़ियों से जकड़ा हुआ. अपनी जगह से जरा-सा खिसका कि सर पर टंगी तलवार गिर पड़ेगी. गरदन कट जायेगी. खटाक से.

* *

धीरे-धीरे जान-पहचान होने लगती है. हर शनिवार को हनुमान की प्रार्थना, भजन—वैष्णव जन तो तेणे कहिए, जो पीर परायी जाणे रे. मेरी आवाज अच्छी थी, इसलिए अकसर सबसे आगे खड़ा हो कर गाता था. लेकिन प्रसाद बांटने के समय प्रसाद का थाल हमेशा किसी दूसरे लड़के को थमा दिया जाता. मैं अपने हाथों को निहारा करता. कहीं मैं कोढ़ी तो नहीं हूं! मन में आता खूब चीखूं, खूब चीखूं! यह चुपचाप गरदन झुका कर अपमान सहना क्यों? इससे तो अच्छा था, बैल चराने ले जाता. बोर्डिंग पर कोई श्री खरात आया करते थे. बहुत ही अच्छी तरह से पेश आते. मेरे प्रति स्नेह रखते थे. कभी-कभी उनके साथ चर्च जाया करता. वह हार्मोनियम पर भजन गाया करते. उनके साथ चर्च में भगवान के पैरों तक पहुंच जाता. लेकिन यहां जिस धर्म का टीका लगा कर पैदा हुआ हूं, वहां, मेरे लिए भगवान के दर की सीढ़ी चढ़ना गुनाह था. चींटी को चीनी खिलाने वाला मेरा धरम.

और एक दिन मैं साहस कर मंदिर में घुस ही गया. बात यह हुई कि छुट्टियों में मैं ननिहाल जाया करता. वहां महार-मांगों को पानी मिलना बड़ा मुश्किल. महार-मांग औरतें कुएं पर पानी की भीख मांगते घंटों खड़ी रहतीं. अगर कभी किसी पानी भरने वाली को तरस आ ही गया तो एक-दो घड़े पानी मिल जाता. कई बार इस करुण दृश्य का मैं साक्षी रहा हूं. मन में आता जा कर कुएं के पानी में गंदगी घोल आऊं. एक दिन यों ही बैठा था कि पास ही हनुमान-मंदिर में भीड़ देखी. चल दिया. उस तरफ कोई आदमी हनुमान की मूर्ति के सामने खड़ा हाथ में चप्पल लिये मूर्ति से लड़ रहा था. उसे मां-बहन की गालियां दे रहा था. सुशिक्षित था. अब सोचता हूं कोई 'सत्यशोधक समाज' का कार्यकर्त्ता होगा. गांव उसे पागल करार दे रहा था. आगे

साठे माल्टेक्स

इतने स्वादिष्ट हैं क्यों कि उनमें माल्ट है

SATHE MALTex
SATHE MALTex BISCUITS
साठे माल्टेक्स बिस्कुट
SATHE MALTex BISCUITS
साठे बिस्कुट

ताज़ा, करारा व स्वाद में अनोखा

इस अनोखे स्वाद का कारण है मॉल्ट, जो इस बिस्कुट में भरपूर है। पचने में हलका यह बिस्कुट चाहे जितने भी खायें, और खाने को जी चाहता है। इसलिये कि इसमें मॉल्ट है!

उपहार में देने के लिए सुंदर पेकेट में और घर लेजाने के लिए खुला मिलता है।

IS:1011
आई. एस. आई मुहर वाले
माल्टेक्स का मतलब है अच्छी
किस्म की गारंटी वाले बिस्कुट

चल कर यह
जब वह गाल
दौड़ता, तब
जब सारे गांव
पीट सकता
मंदिर-प्रवेश
अंदर चला
ने पहचाना
--कस
--यान
गंदा कर दिय
खबर च
—पकड़
लोगों को!
पैर पसीना-प
नजर मुझे नि
गाल पर जड़
मेरी न
ढूंढ़ती हैं. ल
नानी किसी

* *

सातवीं
है, स्कूल-मास्
हैं. पड़ोसी ता
पाने के प्रयास
हूं. थाली,
जाता हूं. बं
मेरी गांधी
चलती है.
यह है कि मु
से मुफ्त में मि
तुम्हारी जाति
—हरिज
सब चौं
जन तो गांधी
कहो, बेटा.
मेरी सम
मरी स्कूल
तुम हरिजन ह
में प्रवेश मिल
हैं डा. आंबे
के अंक पढ़ने
एक दि
मेरी गांधी टो
विषाद से कोस
पचास-स
हुए. दो-तीन
सारे महार.
की तरह यह
बिल्ली बने हु
का संतोष है.

चल कर यह हर किसी पर पत्थर फेंकने लगेगा. जब वह गाली देता या मूर्ति की तरफ चप्पल ले कर दौड़ता, तब हंसी की आवाज गूंज उठती. मुझे लगा, जब सारे गांव के सामने एक आदमी भगवान को चप्पल से पीट सकता है, मां-बहन की गाली दे सकता है, तो मेरे मंदिर-प्रवेश से कोई प्रलय तो नहीं होने वाला. मैं अंदर चला गया. गांव के लिए मैं नया था. पहले किसी ने पहचाना नहीं. फिर किसी ने पूछा—कौन हो?

—कसबे के यहां आया हूं. मेरे मामाजी हैं.

—यानी महार? चल उठ, महार, भ्रष्ट कर दिया! गंदा कर दिया मंदिर!

खबर चारों तरफ पहुंच गयी.

—पकड़ो साले को! बड़ा घमंड हो गया है इन लोगों को! खंभे से जकड़ देने का सुझाव. मेरे हाथ पैर पसीना-पसीना हो जाते हैं. लाल अंगार-सी आंखें एक नजर मुझे निहारती हैं. और फिर चटाख से एक झापड़ गाल पर जड़ दिया जाता है.

मेरी नजरें भगवान से लड़ने वाले आदमी को ढूंढ़ती हैं. लेकिन अब वह कहीं दिखायी नहीं देता! नानी किसी तरह मुझे बचा लेती है.

* *

सातवीं पास कर लेता हूं. आगे? कोई सलाह देता है, स्कूल-मास्टर बन जाओ. लेकिन मुझे तो आगे पढ़ना है. पड़ोसी तालुके में अस्पृश्यों का बोर्डिंग है. मैं वहां प्रवेश पाने के प्रयास में लग जाता हूं. और सफल भी हो जाता हूं. थाली, लुटिया, टीन का बक्सा लिये पहुंच जाता हूं. बंबई से आये हुए ट्रस्टी इंटरव्यू करते हैं. मेरी गांधी टोपी, खादी के पाजामे, कुरते की चर्चा चलती है. मजाक उड़ाया जाता है. असली बात तो यह है कि मुझे ये कपड़े पहले वाले सर्वोदय छात्रालय से मुफ्त में मिले हुए हैं. मुझसे सवाल किया जाता है—तुम्हारी जाति?

—हरिजन! झिझकते हुए मेरा उत्तर.

सब चौंक जाते हैं. बेटा, ऐसा नहीं कहते, हरिजन तो गांधी की दी हुई गाली है. अपने आपको महार कहो, बेटा.

मेरी समझ में कुछ नहीं आता. इससे पहले प्राइमरी स्कूल के ब्राह्मण अध्यापक ने मुझसे कहा था, तुम हरिजन हो. यहां यह रीति. जो हो, मुझे छात्रालय में प्रवेश मिल जाता है. और फिर यहीं मेरा परिचय होता है डा. आंबेडकर के सुदृढ़, अडिग, दर्शन से. 'जनता' के अंक पढ़ने में आते हैं.

एक दिन आंबेडर जयंती के अवसर पर लड़के मेरी गांधी टोपी जला देते हैं. न जाने क्यों, मन दुख, विषाद से कोसों दूर खड़ा है.

पचास-साठ छात्र हैं. आसपास के देहातों से आये हुए. दो-तीन चमार, दो महादेव कोली, एक भांग, बाकी सारे महार. पहले वाले छात्रालय के कोली लड़कों की तरह यह रोब नहीं जमाते, बस यहां सारे भीगी बिल्ली बने हुए हैं. महार लड़कों के हाथ में. इसी बात का संतोष है. पढ़ता हूं.

दया पवार : कवि-कहानीकार

दीवाली की छुट्टियों में घर जाता हूं. मां की हालत मुझसे देखी नहीं जाती. अकाल का विकराल रूप. महार अब चमड़ी फाड़ने जैसे काम नहीं करते. मां गुजारा करे तो कैसे. इसी चिंता में मैं लौट आता हूं. छात्रालय में खाना पकाने वाली बाई काम छोड़ कर चली गयी है. मां का खयाल आता है. मैं छात्रावास के संचालकों से चार बातें कह कर मां को बुलवा लेता हूं.

* *

लेकिन जब से मां आयी है, मेरा जीना दूभर हो गया है. दूसरे लड़के हमेशा इसी पहरे पर कि कहीं मेरी मां छिप कर मुझे खिलाती तो नहीं रहती! मैं मां से मिलना बंद कर देता हूं. वह भी काम के बोझ के नीचे दबी जा रही है. खाना खाने बैठते हैं, तो रसोई की बुराई शुरू हो जाती है—कैसा खाना है. दाल है कि पानी? बिच्छू के डंक-सी बातें. कभी-कभी ये खुद ही जा कर मुट्ठियां भर-भर कर नमक डाल दिया करते हैं और शोर मच जाता है कि बाई को पकाना नहीं आता. वैसे गांव के सुनार, ब्राह्मण, दर्जी जाति के लड़कों का बर्ताव मेरे साथ अच्छा था. वे कभी घर ले जाते, खिलाते-पिलाते. मेरा खयाल है, यही एक बात ऐसी मिली जिंदगी में जिसने मुझे टूटने नहीं दिया.

पर आज भी वह जानलेवा वाकया मन में ताजा है. धड़कन अचानक तेज हो जाती है. पसीना-पसीना हो जाता है सारा बदन, आंखों से झड़ी लग जाती है. छात्रावास में मां को आये हुए दस-पंद्रह दिन हो चुके हैं. स्कूल से लौट कर और अपनी थाली-लुटिया ले कर खाने के दालान में पहुंचा. लड़के बैठे हैं. परोसने की जिनकी बारी है, वे परोस रहे हैं. मुझे देखते ही चिल्ला उठते हैं.

मैं हैरान रह जाता हूं. प्रार्थना खत्म होती है. पर कोई खाने को तैयार नहीं. सब बार-बार चिल्ला रहे हैं. बोर्डिंग सुपरिंटेंडेंट आते हैं. वह भी नहीं समझ पा रहे हैं कि आखिर बात क्या है. कोई बोलता नहीं. मैं उठ कर रसोईघर में झांकता हूं. और मुझे देखते ही गले लग कर मां रोने लगती है.

—क्या हुआ?

बड़ी देर तक कुछ नहीं बोलती. फिर उससे रहा नहीं जाता और कह पड़ती है—मैं छूने की नहीं हूं.

मेरा अंग-अंग सुलग उठा है. तेजाब की अनगिनत धाराएं बह चलीं. जी करता है अपने काले मुंह ले कर मां धरती के पेट में छिप जायें. क्यों यहां जन्मे हम? क्यों न बर्फ ढंके सुनसान ठंडे प्रदेश के वासी बने? वहां ये बातें तो नहीं. रात भर जख्मी दिल लिये छटपटाता रहता हूं. छटपटाता रहता हूं.

* *

कोई मुझे जोर-जोर से हिला रहा है.—दादा, दादा, उठिए तो! मेरी छह साल की बेटी मुझे जगा रही है. अतीत का बोझ उतार कर मैं उठ बैठता हूं.

—दादा, आप रो रहे हैं! वह मुझे अचरज भरी निगाहों से देखती है. मेरी आंखें सजल हैं.

—नहीं तो, बेटी. कचरा चला गया होगा आंख में! बस.

—दादा, मुझे 'मनाचे श्लोक' ला दीजिए. गुरुजी ने कहा है. मुझे याद आता है रामदास का श्लोक. . .मुझे याद आता है . . .

अत्यंत घोर त्या विटाला। त्या विटालाचाचि पुतला।
तेथे निर्मलतेचा सोहला। कैवी घडे।।
वरि वरि दिसे वैभवाचे। अंतरी पोतडे नरका चे।
जैसे झाकणे चर्मकुंडाचे। उघड़ताची नये।।

मूर्तिमान गंदगी (इस नश्वर देह में) विशुद्धता कहां! चमड़ी के इस कुंड (देह) की ऊपरी जगमगाहट के अंदर नरक की गंदगी भरी हुई. इसके बहकावे में न आओ. उस लोक की असलियत पहचानो!

मानव के प्रति यह कैसी घृणा! यह घृणा का दर्शन आज स्कूलों-कालेजों में सिखाया जाता है. इस दर्शन के मंथन में से 'नये मानव' की अपेक्षा कैसे करें? कड़वे घूंट मैं तो निगल गया. कितनी सारी मेरी पुश्तों ने निगले हैं. और अब यह मेरी बच्ची? इसी परंपरा की अगली कड़ी. जाने किस प्याले में वह कड़वा घूंट इसको पीना पड़ेगा. वही अनुभव बाना बदल कर आयेगा. आग लगा दें विषमता का जहरीला दर्शन पिलाने वाले हमारे इन धर्मग्रंथों को. विचारों का यह ज्वालामुखी मेरे मन में घुमड़ता रहा. □□□

(अनुवाद : रेखा देशपांडे)

दो घटनाकथाएं

समाजवादी भारत : दुर्गावतार

सवर्णों ने कमलेश को दुर्गा का अवतार घोषित किया और फिर उनमें से एक ने उसके साथ बलात्कार किया. यह ११-वर्षीय हरिजन बालिका हिमाचल प्रदेश के सिरपुर जिले के सराहम गांव की थी.

कमलेश अपने मां-बाप के साथ गांव के किसी मेले में जा रही थी. तभी गुंडों ने उसका अपहरण कर लिया और उसे घने जंगल की एक गुफा में ला कर पटक दिया. दिन भर उसे वहीं घुटना पड़ता था और रात को वह दुर्गा का अवतार बना दी जाती. उसे पहाड़ की ऊंची चोटी पर बिठाया जाता. उसके चारों ओर ज्वाला प्रज्ज्वलित होती.

अंधविश्वास के मारे हजारों ग्रामीण आते, चढ़ावा चढ़ाते, मनौतियां मांगते, मगर किसी भक्त को देवी के पास जाने की इजाजत नहीं थी.

एक सामाजिक कार्यकर्ता धरमसिंह आनंद और पुलिस के एक सब-इंस्पेक्टर का संदेह दही की तरह जमा रहा. वे एक दिन जंगल में घुसे, उस गुफा पर छापा मारा और अपहरण कर्ताओं को दबोच लिया.

यह प्रपंच एक कांग्रेसी कार्यकर्ता का था, जो प्रति माह दो सौ रुपये राजनीतिक पेंशन के रूप में पा रहा था. वह काफी बूढ़ा था. कमलेश के बयान के अनुसार उसने दो बार बलात्कार किया. मगर डाक्टरी जांच से यह साबित नहीं हो सका. शायद इसलिए कि वह बूढ़ा कांग्रेस का मामूली कार्यकर्ता ही नहीं था, उसके संपर्क बड़े-बड़े नेताओं से थे. और बजाय इसके कि सामाजिक कार्यकर्ता को प्रोत्साहन दिया जाता, उसका तबादला करने की धमकी दी गयी. □□□

समाजवादी भारत : विद्यापीठों की हालत

यह घटना नयी दिल्ली की है. श्रीनिवासपुरी कॉलोनी के कस्तूरबा बालिका विद्यालय की.

विद्यालय के होस्टल में उस दिन जन्माष्टमी का उत्सव मनाया जा रहा था. उत्सव के बाद १७ वर्षीय हरिजन बालिका प्रेमलता प्रिंसिपल को प्रसाद देने गयी. प्रिंसिपल ने उसे झिड़का—हरिजन हो कर तुमने प्रसाद बांटने की हिम्मत कैसे की? दूसरे दिन सुबह प्रेमलता अपने बिस्तर से गायब थी.

दौड़धूप मची. थोड़ी देर बाद एक नौकर ने बतलाया कि प्रेमलता की लाश ट्यूबवेल में पड़ी है.

पुलिस आयी. मामूली खानापूर्ति के बाद मामला साफ हो गया.

बाद में सही बात पता लगी. फिर तो पुलिस और जनता के बीच ऐतिहासिक झड़प हुई. शांति और व्यवस्था के नाम पर १५० व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये. □□□

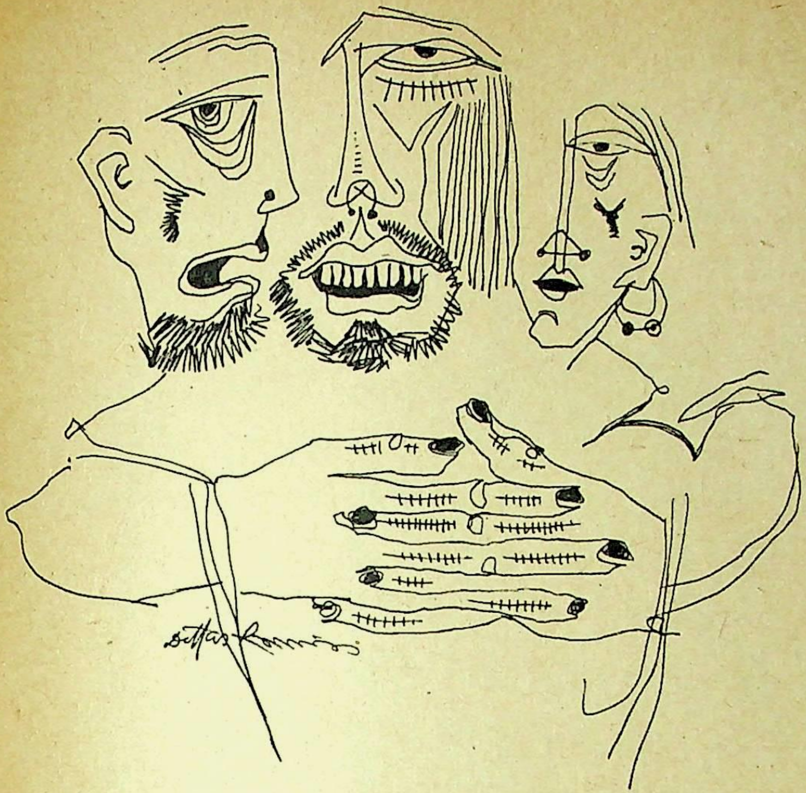

● बलप्रसाद एस. राने

एक लघुकथा

एक गांव, एक पनघट!

इस बस्ती में पीने का पानी नहीं था. दोपहर के समय चार अछूत स्त्रियां मिट्टी के बरतनों के साथ कुएं पर आयीं. पूरे गांव में यही एक सार्वजनिक कुआं था, जिससे पानी मिल सकता था. बड़ी हिम्मत करके वे आगे बढ़ीं. . .एक ने पानी खींचा—अचानक वहां दो दूसरी स्त्रियां आ पहुंचीं, वे ऊंचे कुल की थीं. इनको पानी भरते देख सरपंच की पत्नी ने गाली दे कर कहा—बहुत चर्बी चढ़ गयी है! कुआं भ्रष्ट कर दिया. हरामजादी...!

पानी भरने वाली ने बड़ी मिन्नत से कहा—बाईजी, दो दिन से पानी नहीं है, बच्चे प्यासे हैं. . .

दूसरी स्त्री ने कहा—लेकिन हमसे मांगा क्यों नहीं, बेशर्म-बेसवा!

—बहन, गाली मत दो. . .

—बहन की बच्ची! सरपंच की पत्नी को जोश आ गया. उसने लात मार कर घड़ा फोड़ डाला और पानी भरने वाली के बाल पकड़ कर नीचे पटक दिया. साथ वाली बीचबचाव के लिए दौड़ी. गिरते-गिरते उस स्त्री ने सरपंच की पत्नी की साड़ी पकड़ी थी जिससे वह फट गयी. उसने शोर मचाया—देखो, देखो, यह हरामी महार अभी हमें मारने लगे हैं! सारा गांव जमा हो गया. सरपंच गुस्से में भर गया. अछूत स्त्रियां जान बचा कर भागीं.

—जला दो महारवाड़ा. . .!

—अच्छी धुलाई करो. . .!

लाठियां हाथ में लिये भीड़ अछूतों की बस्ती पर पहुंची. दो-तीन झोपड़े जला दिये. जो लोग हाथ आये उन्हें पीट डाला. किसीका हाथ तोड़ दिया, किसीका सिर फोड़ दिया. सारी बस्ती रोने-चिल्लाने से भर गयी.

सरपंच अपने आफिस में आये. ग्रामपंचायत के सेक्रेटरी ने कहा—साहब, आज यह तो बुरा हुआ, क्योंकि आज शाम को हमारा ग्राम-गौरव समारोह है और अस्पृश्यता-निवारण कार्य का पारितोषिक हमारे गांव को समाज-कल्याण मंत्री द्वारा दिया जायेगा.

रात के आठ बजे थे. पंचायत आफिस के सामने गांव के लोग जमा थे. मंत्री महोदय को पुष्पहार पहनाये गये. सामने दो-तीन लोग हाथ और माथे पर पट्टियां बांधे बैठे थे. मंत्री महोदय के हाथों चांदी की ढाल दी गयी, एक हजार का चेक दिया गया.

—आपके गांव ने हजारों साल का कलंक धो दिया है! एक गांव, एक पनघट! यह घोषणा अब हमारी जीवननिष्ठा है! कैमरे चमके. नारे लगे. समारोह समाप्त हुआ. पंचायत आफिस में चाय-पानी चल रहा था. हरिजन मेंबर जमीन पर बैठे थे. □

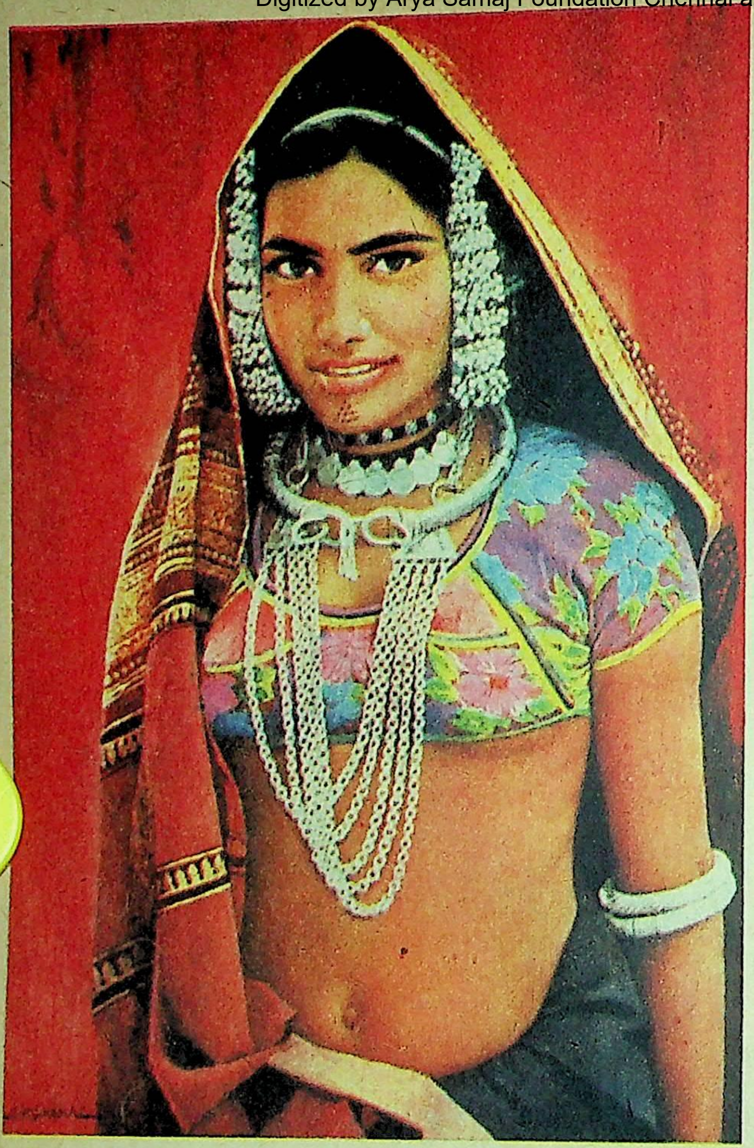

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

दुमंजिला घर

★ वामन होवाळ

एस. टी. की बस में जरूर कोई खराबी आ गयी थी, तभी वह घाट ऐसे चढ़ी थी, जैसे उसके प्राण निकले जा रहे हों. और फिर दवाखाने के करीब पहुंचने से पहले ही अड़ियल टट्टू की तरह अड़ गयी. गांव अब बहुत दूर नहीं रह गया था. यही कोई मील-डेढ़ मील. लेकिन ड्राइवर खीज उठा था. कंडक्टर असहाय-सा चुप्पी साधे बैठा था.

कंडक्टर ने सभी पुरुष यात्रियों से नीचे उतरने को कहा. फिर सभी ने जोर लगा कर बस को ढकेला. जरा-सी गति मिलते ही बस चालू हो गयी. यात्री एक-दूसरे को धकियाते हुए ऊपर चढ़े. कंडक्टर के घंटी बजाते ही बस मंथर गति से आगे बढ़ी. गांव के मोड़ पर बस अंडा देती मुर्गी की तरह कराही और ठांय से मुजाबा पाटिल के बाड़े के सामने खड़ी हो गयी. रुकते-रुकते भी उसने एक जोरदार हिचकोला दे ही दिया. इस हिचकोले से लोग ऐसे डोले, जैसे ठेस लगने पर सिर पर रखे मटके का पानी.

बस की छत पर रखे एक बड़े संदूक को उठाते हुए हमाल चिल्लाया —किसका संदूक है यह?

बदन से धूल झटकते हुए बयाजी बोला—मेरा है. छोड़ो नीचे.

हमाल ने दांत से होंठ चबाते हुए वह वजनी संदूक वे छोड़ा और बयाजी ने उसे बीच में ही थाम लिया. इस संदूक में बयाजी अपनी सारी गृहस्थी बंबई से ाया था. अब वह बंबई में रह कर क्या करता? पिछले ीस साल उसने गोदी में ईमानदारी से काम किया था. महीने पहले वह नौकरी से निवृत्त हुआ था.

बयाजी ने उम्र के भले ही साठ साल पूरे कर लिये , लेकिन स्वास्थ्य उसका अभी भी बढ़िया था. माल को पंद्रह नये पैसे थमाये और सिर पर संदूक लाद र बयाजी घर की ओर बढ़ गया. बरतन-भांडों के अलावा दूक में वह और भी बहुत-सा सामान भर लाया था.

कदम के घर के पास उसका सामना भुजाबा से गया. यह भुजाबा गांव का माना हुआ ठग था. सिर बोझ को गरदन से जमाते हुए बयाजी बोला—नमस्कार टिल, सब ठीक-ठाक तो है?

जाति से बयाजी महार था. रीति के अनुसार उसे ोहार माई-बाप' कहना चाहिए था. बयाजी के मुंह 'नमस्कार पाटिल' सुन कर भुजाबा भड़क उठा—यों? नमस्कार पाटिल कहने से बामन कुल की पैदा-ा लगती है क्या? बुद्ध होते ही अपनी जगह भी ल गये?

बयाजी समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या जवाब ! एक पल सोचा कि सिर पर का भारी संदूक भुजाबा ी खोपड़ी पर पटक दे. लेकिन ऐसा करना भी संभव हीं था. अब वह अपने गांव पांढरी लौट आया था.

जरा नरमाई से बोला बयाजी — पाटिल, पांढरी या की मिट्टी में कदम रखते ही आपने नजर टेढ़ी कर ी. अब तो आखिरी दम तक मुझे यहीं रहना है.

—क्यों, नौकरी पर नहीं लौटोगे? भुजाबा पूछा.

—पाटिल, सर्विस पूरी हो गयी. साठ पार कर का... बयाजी ने सिर का बोझ जरा-सा ऊपर ठाया और फिर धीरे से टिका लिया.

—हूं...तब तो फंड वगैरा के पैसे भी मिल गये गे? भुजाबा टटोलने लगा.

—हां. कुछ अभिमान से बयाजी ने कहा.

—कितने? किसी लालची की तरह भुजाबा पूछा.

—मिले हैं थोड़े-से. रोज मजूरी वालों का क्या ड और क्या पैसा! बयाजी का जवाब था.

—अरे आंकड़ा बता पट्ठे, आंकड़ा! नाटकीय दाज में भुजाबा ने कहा.

—मिले हैं, यही कोई दो-ढाई हजार रुपये! याजी ने सच्ची रकम बता दी.

और अचानक झूठी सहानुभूति जताते हुए भुजाबा ोला—अरे बयाजी, खोपड़ी पर बोझ है तेरे. पहले घर ा. फिर फुरसत से बातें करेंगे.

—अच्छा-अच्छा, कहते हुए बयाजी घर की ओर चल पड़ा.

उस पल बयाजी ढाई हजार रुपये नकद रकम का मालिक था. वह महार हो या बुद्ध, इससे क्या होता है? मीठी बातें कर बयाजी महार को, छीः छीः नव बुद्ध को चार-पांच सौ से मूंड़ सका तो भी बहुत है. इसी की योजना बनाते हुए भुजाबा ने अपने बाड़े में प्रवेश किया.

जो-जो रास्ते में मिला-बोला, उसे हालचाल बताते हुए बयाजी चबूतरे तक आया. इस चबूतरे को बुद्ध लोग अब 'बुद्ध विहार' कहने लगे थे. 'बुद्ध विहार' के पास चिंदियों की गेंद से सड़क पर खेल रहे लड़कों ने बयाजी को देखते ही खेल बंद किया और 'बैजू नाना आया. . .बैजू नाना आया' का ढिंढोरा पीटते हुए उसके घर की ओर लपके. बयाजी के आगमन का समाचार सुनते ही उसकी ८५ वर्षीय मां हड़बड़ा कर उठी. 'बयाजी आया' सुन कर वह खिल उठी.

दरवाजे पर आते ही बयाजी की पत्नी ने हृदय की प्रसन्नता आंचल से ढांप ली और आगे बढ़ कर सिर से पेटी उतारी. नाती टांगों में घुस कर लाड़ लड़ाने लगे. आसपास के लड़के 'बैजू नाना' को कुतूहल से निहारते खड़े रहे.

—अरे पिल्लो, घर में तो चलो . . . बयाजी बोला.

बुढ़िया झुकी. कमर संभालते बाहर आते हुए बोली—जरा वहीं रुक जा.

बुढ़िया ने आगे बढ़ कर रोटी के टुकड़े पर पानी छिड़का और बयाजी पर से उतार कर फेंक दिया.

* *

बयाजी की गृहस्थी सुचारु रूप से चल रही थी. उसे आठ संतानें थीं. छह बेटे और दो बेटियां. बेटियां ब्याही जा चुकी थीं और बच्चों वाली भी बन गयी थीं. दो बड़े बेटे खेती-बाड़ी देखते. मंझले दो बेटे सरकारी नौकरी में थे. उनसे छोटा स्कूलमास्टर था और छठवां अभी पढ़ रहा था. बयाजी आने वाला है सुन कर नौकरी वाले दोनों बेटे, पढ़ने वाला बेटा और दोनों बेटियां अपने पिता से मिलने पहले ही घर आ पहुंचे थे. बयाजी अपनी जीवन भर की कमाई में से उनके लिए क्या लाया होगा, सब यही अनुमान लगा रहे थे.

बयाजी ने दूसरे दिन पेटी खोली तो उसमें सिर्फ कुछ बरतन-भांडे और फोटो नजर आये.

बड़ी बेटी यह देख कर बोली—नाना, हमारे लिए कुछ भी नहीं लाये?

दो-तीन बच्चों की मां बन जाने के बावजूद अपनी बेटी का यह बाल-सुलभ सवाल सुन कर बयाजी हंस पड़ा. सब बच्चों पर नजर फेर कर वह बोला— बच्चो, तुम्हारे लिए कपड़े लाता तो वे फट जाते. गहने लाता तो वे आज न कल खिया जाते. मेरी कमाई से सदा के लि कुछ बन जाये, यही इच्छा है.

इतना कह कर बयाजी चुप हो गया. बड़ा बेटा देवगुणी है. वह बोला—लेकिन आप क्या करना चाहते हैं, यह तो बताइए!

—बच्चो, इतना बड़ा परिवार है अपना! मेरी कमाई से एक घर बन जाये, यही इच्छा है. घर दोमंजिला हो. इस दड़बे में कैसे गुजारा होगा?

वामन होवाळ : कहानीकार

बयाजी के प्रस्ताव से सभी बच्चे खुश हो गये.

इरादा पक्का हो गया और वर्ष प्रतिपदा के शुभ मूहूर्त पर दुमंजिले घर की नींव खोदी गयी.

बयाजी दोमंजिला घर बना रहा है, खबर गांव में ऐसे फैली जैसे किसी ने ढिंढोरा पीटा हो. गांव में अब तक सिर्फ कोंडी पाटिल का घर ही दोमंजिला था. बयाजी जैसा महार मजदूर उनकी टक्कर का घर बना रहा है, यह सुन कर कोंडिबा पाटिल गुस्से से भर उठा. और भी कुछ लोग बुदबुदाने लगे—महार अपनी औकात भूल गया.

नींव की भराई चल रही थी. दत्ताराम वडार ने घर बनाने का 'कंटराट' लिया था. नींव के खड्डों में कीचड़, पत्थर, गिट्टी भरी जा रही थी. काम तेजी से बढ़ रहा था.

कोंडिबा को देखते ही बयाजी ने 'जय राम जी की' की और हंसते हुए बोला—इस दोमंजिले घर का काम आपके आशीर्वाद से शुरू किया है, पाटिल.

—बैजू, हाथ में दो पैसे होन पर आदमी को बहकना नहीं चाहिए. दोमंजिला घर बना कर क्या तुम हमारी बराबरी करना चाहते हो? कोंडिबा ने पूछा.

—नहीं नहीं. . .ऐसी कोई बात नहीं, पाटिल. . . बयाजी को दिन में तारे नजर आने लगे.

—तो फिर कैसी बात है? आदमी को अपनी औकात पहचाननी चाहिए.

—ऐसी कोई बात नहीं है, पाटिल. . .बड़ी इच्छा है कि अपना घर हो. . .फिर मैं संतोष से आंखें मूंद लूं, बयाजी घिघियाते हुए बोला.

—अरे भई, घर बनाने को कौन मना करेगा? बना ले, आगे-पीछे बरामदा और बीच में घर! दोमंजिला बना कर क्यों पैसा बेकार बरबाद करता है!

—लेकिन. . .बयाजी बुदबुदाया.

—हां, अगर तुझे गांव में रहना न हो तो बात अलग है. फिर जरूर तू दोमंजिला घर बना. अब जो भी कुछ करना, सोच समझ कर करना! कोंडिबा आखिरी चेतावनी दे कर चलता बना.

बहुत सोच-विचार के बाद बयाजी ने दोमंजि मकान का इरादा त्याग दिया. आगे-पीछे बरामदा औ बीच में घर! यही सही. काम शुरू हुआ. दीवारें उठ गयीं, आगे-पीछे के बरामदे बन गये. बीच का घर ज ऊंचा कर अंदर-ही-अंदर एक और छत बना कर अ अंदरूनी माला बना लिया. उस माले पर जाने के लि रसोईघर में जीना बनाया गया. बाहर से देखने पर कौ अनुमान नहीं लगा सकता था कि अंदर माला होगा.

* *

घर बन कर तैयार हो गया. गृहप्रवेश समारो धूमधाम से करने का निश्चय हुआ.

बयाजी ने नये घर के सामने शानदार मंडप ब वाया. उस मंडप की सजावट में बयाजी के बेटे दो दि से लगे हुए थे. दूर-पास के गांवों से मेहमान आ चुके थे.

दिन ढलते ही मंडप के चारों कोनों में गैसबत्तिय जगमगाने लगीं. उस पीले-सुनहरे उजाले ने वातावरण एक अलग ही रंग भर दिया था. मेहमान गप्पों में व्यस् थे, कि कोंडिबा पाटिल आ पहुंचा. उसके साथ मुजाब ठग था. विठोबा घायकुंते, परसू मातंडा और अन्य चा पांच दादा लोग भी थे. दुल्हन की तरह सजा नया शानदा घर, आगे सजा-धजा मंडप, हंसते हुए चेहरे देख क इन्हें जैसे किसी चिता ने ग्रस लिया. रसोईघर के जी से बयाजी उन्हें ऊपर ले गया. वह अंदरूनी माला दीवा खाने जैसा दिखायी दे रहा था. दीवारों पर नील तैलरंग था. उस रंग की एक अनोखी मधुर सुग महक रही थी. दीवार पर भगवान गौतम बुद्ध, गा बाबासाहेब आंबेडकर, कर्मवीर भाऊराव पाटिल, महात् ज्योतिबा फुले आदि महान व्यक्तियों की तस्वी लगी थीं.

पाटिल मंडली के बैठने के लिए बयाजी ने कं बिछाया. पाटिल चुपचाप बैठ गया. उसके साथी भ अनिच्छा से ही बैठे. बयाजी ने उन्हें पान-सुपारी पाटिल ने स्वीकार तो की लेकिन तुरंत पान-सुपा बयाजी को लौटाते हुए वह बोला—हूं, बढ़िया सब कुछ!

—लेकिन पान-सुपारी तो खाइए. . .बयाजी अ मंजस से बोला.

नकली हंसी ओढ़ते हुए मुजाबा बोला— मान रख लिया. हो गया. पान-सुपारी खानी ही चाहि ऐसा थोड़े ही है. अब हम चलते हैं. कोंडिबा पाटि मुजाबा और उनके साथी तुरंत निकल पड़े. सीढ़ि उतरते हुए मुजाबा को लगा जैसे वह सीढ़ियों पर से लुढ़कता हुआ गिरा जा रहा है.

—महार चढ़ गया है. इसे ठीक करना हो इस अंदाज में सबने एक-दूसरे को इशारे किये.

मेहमानों को बयाजी ने हलवा-पूरी का मीठा भो कराया. पान-सुपारी के साथ गप्पें चबायीं जाने और फिर सामाजिक भजनों का गायन शुरू हुआ.

बयाजी मंडप में डोलता फिर रहा था. कभी कि के पास बैठ जाता और हालचाल पूछने लगता.

की तरह बिखरे पड़े थे. भजन अब पूरे रंग में आ चुका था. "बाई म्यां स्वप्न पाहि[illegible] छाती" (सखि, मैंने रात एक सपना देखा और मेरा मन भर आया). जैसे बेमतलब भजनों की बजाय मंडली सामाजिक भजन गा रही थी.

कालेकर बापू मास्तर अपनी पहाड़ी आवाज में गा रहा था—

भीमरायाच्या गोड मुखींचा उपदेश ध्यानी घ्यावा रे,
उद्धारास्तव आम जगाच्या शरण बुद्धाला जावा रे!

(भीमराय के मधुर मुख से प्राप्त उपदेश मान कर दुनिया के उद्धार के लिए बुद्ध की शरण जाइए.)

वातावरण में एक अनोखा जोश और रंग भर गया था कि अचानक विपरीत घट गया.

बयाजी के नये घर में आग लग गयी. आग चारों ओर से अचानक भड़क उठी. बरामदे में बैठी महिलाओं में एकदम हल्ला मचा. मेहमान तुरंत उठ कर हड़बड़ायी हुई महिलाओं को जानवरों की तरह बाहर खींचने लगे. बयाजी तो जैसे पागल हो गया.—मेरा घर. . .अरे मेरा दुमंजिला पर. . .दुछत्ती मंजिल वाला घर जल गया. . .किसने. . .?

—मेरा घर. . .मेरा घर. . . रटते हुए बयाजी जलते घर में घुस गया. जीने से ऊपर चढ़ा, दीवार पर टंगी बुद्ध, बाबासाहेब की तस्वीरें उसने झटपट नीचे फेंकीं. और फिर जैसे ही उतरने के लिए जीने की ओर आया, जलता हुआ जीना ढह गया.

पास के कुएं से गगरियां भर-भर कर लोग-बाग उस भयानक आग पर पानी उलीच रहे थे. लेकिन आग काबू में नहीं आ रही थी.

—बयाजी, नीचे कूदो. . .नीचे कूदो! लोग पुकार रहे थे. औरतें-बच्चे चीख-चिल्ला रहे थे. जीना खाक हो जाने के कारण उस माले पर जाने की कोई राह नहीं थी. लपटों से झुलसता हुआ बयाजी इधर-उधर भागता फिर रहा था—मेरा घर. . .मेरा घर. . . रट रहा था.

और इतने में वह माला धराशायी हो गया. बयाजी नीचे गिरा. लोगों ने उसे खींच कर बाहर निकाला.

बयाजी का पूरा शरीर झुलस गया था. उसका सारा शरीर दहक रहा था. सूखा गला बार-बार पानी मांग रहा था. प्राण कंठ में आ अटके थे. बयाजी की पुतलियां घूमने लगीं. उसका बड़ा बेटा आगे बढ़ा. दुख-दर्द पर काबू पाते हुए उसने पूछा—नाना, आपकी कोई इच्छा शेष है?

—और कुछ नहीं. . .एक दुमंजिला घर बनाओ. . . बयाजी इतना ही बोल पाया और उसकी गरदन लटक गयी. बयाजी का शरीर शांत हो गया.

बयाजी की मां तार स्वर में चीख रही थी—तेरे बाप के हाथ से मिट्टी नहीं मिली. कम-से-कम तेरे हाथ से तो मिल जाती. . .ए बयाजी, अरे मुझसे बोल ना!

बयाजी की पत्नी का विलाप जारी था—किस बैरी ने बदला चुकाया? अरे जल जाने दो यह घर, पहले मेरे मालिक को बचाओ!

घटनाकथा

समाजवादी भारत : नक्सल-पंथ की आड़

सवर्णों ने हरिजनों पर किये गये अत्याचारों को वाजिब ठहराने के लिए नक्सलपंथियों की आड़ भी ली.

जब बलिया जिले के भरौली गांव के हरिजनों ने गत वर्ष जून में सवर्णों के खेतों पर नाममात्र की मजदूरी पर काम करने से इनकार कर दिया तो उन्होंने हरिजनों को मारा. दिन-दहाड़े उनके झोपड़े जला दिये. यह सब हुआ पुलिस की मदद से. फिर भी चैन नहीं मिला तो स्थानीय अधिकारियों ने हरिजन खेत-मजदूरों के इस विद्रोह को नक्सली रंग देने की कोशिश की.

इसके कुछ ही दिन पहले बलिया जिले के नारायणपुर गांव में भी ठीक इसी तरह की घटना को नक्सली रंग देने की नाकाम कोशिशें हुईं. वहां एक हरिजन की हत्या की गयी. कई हरिजनों को पीटा गया. यह बात खुल न जाये, इसलिए स्थानीय पत्रकारों को भी धमकाया गया. ☐

इस घटना से सारा घर लूला-लंगड़ा हो गया था. सब लोग पानी डाल कर बुझाये हुए चूल्हे की तरह ठंडे हो गये थे.

सुबह पाटिल - पटवारी, एक पुलिस सिपाही और कुछ पंच आये. सब जानकारी हासिल करने के बाद उन्होंने पंचनामा किया : 'पेट्रोमैक्स भड़कने से लगी आग में बयाजी की मृत्यु हुई.'

★ ★

बयाजी का अंतिम संस्कार समाप्त कर लोग मुंह लटकाये लौट आये.

सब लोग मंडप में खिन्न मन से बैठे थे. उसी समय बयाजी का बड़ा बेटा एक कुदाली, फावड़ा और तीन-चार टोकरियां ले कर आया. उसने कुदाली से एक चौकोर खींचा. और जमीन खोदना शुरू कर दिया.

बड़ा बेटा कुदाली से जमीन खोद रहा था. दूसरा फावड़े से मिट्टी भर रहा था. और बाकी मिट्टी उठा कर फेंक रहे थे.

चकित हो कर अतिथियों ने पूछा—बेटा, इस दुख की घड़ी में तुम लोग यह क्या कर रहे हो?

—इसके बिना हमारे पिता की आत्मा को शांति नहीं मिलेगी.

—लेकिन क्या? कर क्या कर रहे हो तुम?

—घर की शुरुआत. अंदरूनी माले वाले नहीं, दुमंजिले घर की शुरुआत! बयाजी के बड़े बेटे का जवाब था. और दुमंजिले मकान की नींव खोदने का काम छहों भाइयों ने दृढ़ निश्चय के साथ शुरू कर दिया. ☐ ☐ ☐

(अनुवाद : मालती चौधरी)

अनादि बंध

★ नामदेव लक्ष्मण ढसाळ

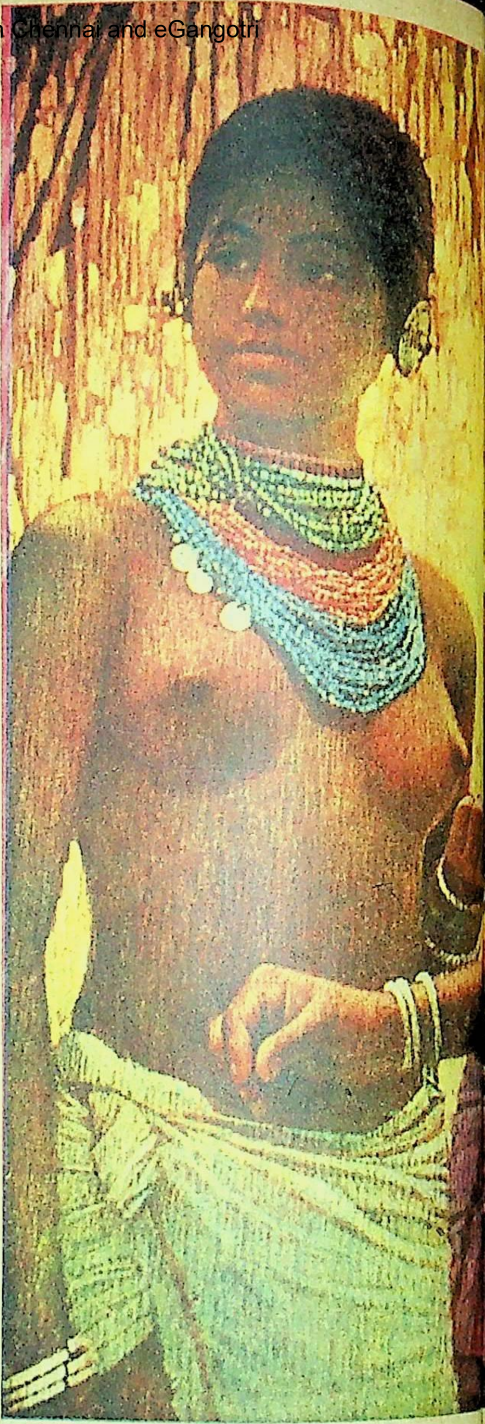

उस झुंड के साथ दूसरे दिन सोते समय वहां की विशाल दीवार के बारे में वह गंभीरतापूर्वक सोचने लगा. और उस दीवार के सहारे रात बिताने वाले लोगों से उसने कहा—अब तुम इस दीवार के सहारे सोने की आदत छोड़ दो, नहीं तो किसी दिन जान गंवानी पड़ेगी. कुछ लोगों ने इसे पागल का प्रलाप समझ उपेक्षा कर दी.

कुछ लोगों ने उसे डांटा—कहां से चला आया है. बे लौंडे ? चल, दीवार पकड़ ले. और कुछ उसे तिरस्कृत करते हुए चीखे, हमारी कई पीढ़ियों ने इस दीवार के सहारे जिंदगी काटी है. इसी के नीचे वे पैदा हुए, पले बढ़े और मर गये. इसी के आसरे उन्होंने नीड़ बनाये, अंडे-बच्चे पैदा किये.

उनकी आवाजों में जरा भी मृदुता नहीं थी. परंपरा के बोझ के नीचे वे मर्यादा से भी ज्यादा झुक गये थे. अंधे हो गये थे. समाजशास्त्र की भाषा में उनका रूपांतर कोयलों में हो गया था. आत्मशक्ति जैसे उनमें पैदा हो ही नहीं सकती थी. उनके हर शब्द में सिर्फ पूर्वजों की संस्कृति के अस्तित्व की ध्वनि ही गूंज रही थी. उस दीवार से अनादिबंधन था. इस जन्म-जन्मांतर के बंधन से बंधे से गये थे. वह दीवार उनके लिए अपने पूर्वजों की एकमात्र निशानी थी. पुरखों की इस देन को वे पूरे जतन से संभाले हुए थे. लगता था जैसे इस दीवार से उन्हें अपने बाल-बच्चों से भी ज्यादा प्यार है. उनके व्यवहार से लगता कि दीवार को छोड़ना अपने आप को छलना होगा.

और उनके व्यवहार को नजरअंदाज करते हुए वह आगे बोला—इस खोखली दीवार की बजाय तुम अपने अस्तित्व के बारे में ज्यादा सोच-विचार करो. और वे क्रोधित हो उठे जैसे किसी ने उनके उद्देश्य पर आघात कर दिया था. उसे घृणापूर्वक देखते रहे. रात भर हंगामा करते रहे. एक स्वर में पागलों की कहानियां कहते-सुनते रहे.

उसके लिए पलकें झपकना भी मुश्किल हो रहा इस झुंड में वह अकेला महसूस कर रहा था. उसे रहा था जैसे किसी तेज हथियार से उसकी उतारी जा रही हो. वह तिलमिलाने लगा. बढ़ता चंद्र-प्रकाश उसके लिए निरर्थक हो गया. डोलते हुए और निश्चल इमारतें, सब कुछ लुप्त हो गया था. उसे

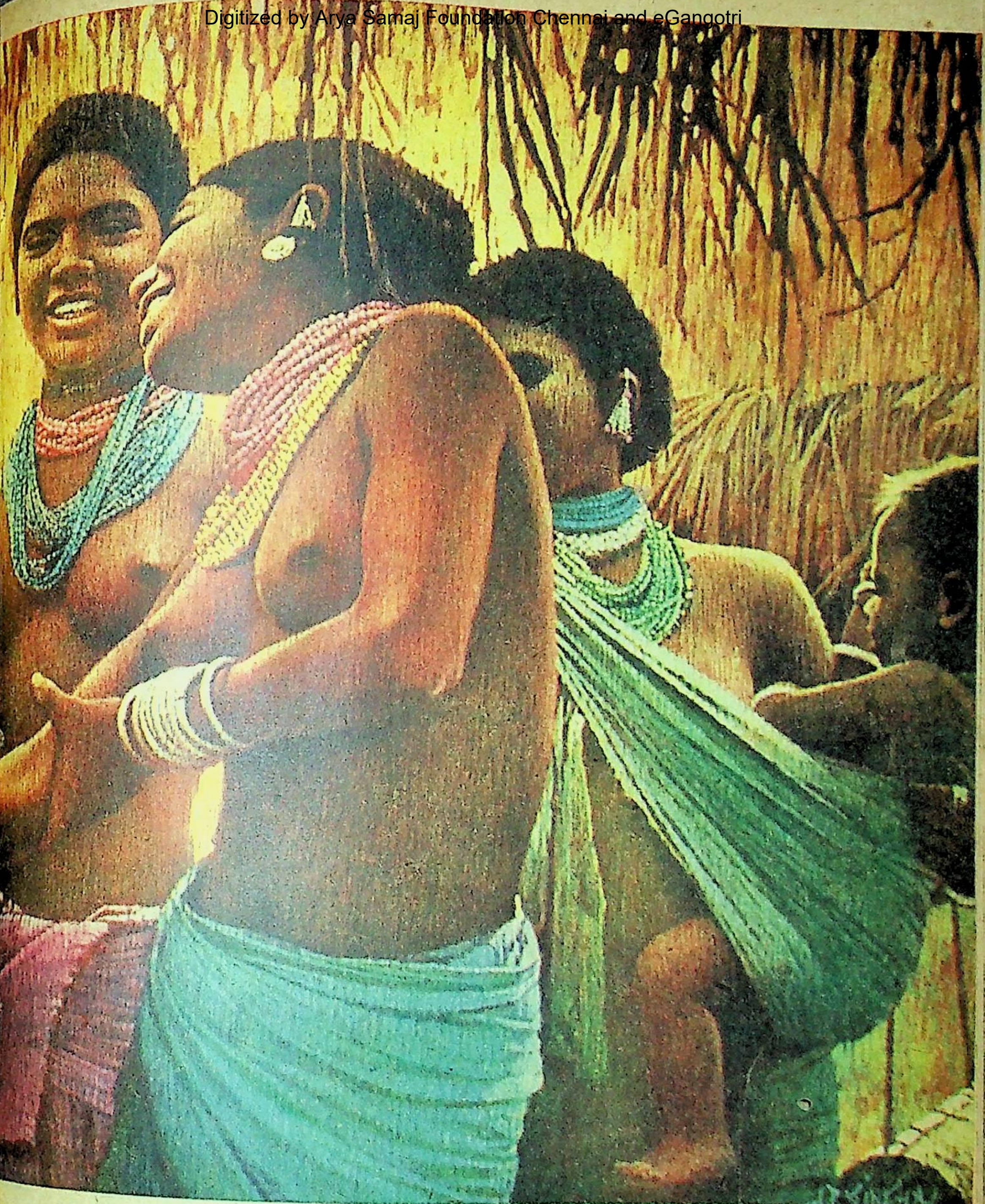

रहा था जैसे घनघोर अंधियारे में से मानवों की विशाल भीड़ उसे ग्रसने चली आ रही है.

परेशान होकर वह बिछौने में उठ बैठा. बगल में सोये हुए बूढ़े को जोरों से हिला कर उठाया और पूछा—दीवारों के अंदर रहनेवाले अमीरों के वैभव का उद्गम कहां है?

बुड्ढा दाढ़ी के बाल नोंचता हुआ बोला—तकदीर, बेटा तकदीर! इन शब्दों को सुनकर वह दंग रह गया. अचानक उसकी नसों में रक्तप्रवाह तेज हो गया. वह मन ही मन बुदबुदाया—साला बुड्ढा, मसान पहुंचने की तैयारी है फिर भी. . . .हाथ में तलवार होती तो साले की गर्दन धड़ से अलग कर देता. उसने पच्च से थूक दिया. बुड्ढे को उपेक्षित कर वह बिछौने में लेट गया.

भारतीय आदमी की औसत आयु पचास वर्ष.

नामदेव लक्ष्मण ढसाल : कवि और पेंथर नेता

ारी आयु पूरा परिश्रम करने पर भी वह कितनी संपदा ोड़ लेगा ? उसमें कितनी ईमानदारी होगी? उसकी ोपड़ी को जैसे गिरमिट छेदने लगा. विशाल यंत्र, ारखाने, इमारतें, मोटरें, ऐशोआराम, मांसल युवतियां, ाबरे कुत्ते उसकी आंखों के आगे घूमने लगे. शरीर पसीने ा तर हो गया. वह अब नींद की जरूरत महसूस रने लगा. लेकिन सोना उसके लिए संभव नहीं था. स बूढ़े से तो वह १०० साल पहले वाला बूढ़ा अच्छा जसे उसने अभी नहीं देखा था, सिर्फ किताबों में पढ़ा ा. बुढ़ापे के बावजूद शास्त्रीय पद्धति से वस्तुस्थिति ा विवेचन करता था.

एक. . .दो. . .तीन. . .चर्च का घंटा बजता जा रहा था. ेकिन उसकी पसंद का चेहरा नहीं बन पा रहा था. इस ंद्व को गति देने वाली स्वरावलि दूर कहीं उभर रही थी.

इतिहास के अध्ययनकर्ता जानते हैं कि शुरू-शुरू में पूंजी का संचय खुलेआम लूटपाट कर के ही हुआ है. धूर्त लोगों ने सोना-चांदी, अन्य मूल्यवान वस्तुएं और धन-संपत्ति बड़ी मात्रा में लूटी. तरह-तरह के हथकंडों से सामाजिक मिल्कियत की जमीन हड़पी और प्राचीन काल के इस पाप के कारण ही बहुसंख्य लोगों में दरिद्रता जन्मी. अतएव बहुसंख्यकों के सामने अपने आपको बेचने के अलावा कोई रास्ता ही नहीं बचा. एक आवारा कुत्ता उसके पास आया. उसके खुले हाथ को चाटने लगा. कुत्ते की गर्म गीली जीभ के स्पर्श से उसे कुछ राहत महसूस हुई. उस घटाटोप अंधेरे में भी वह दीवारों के पार की इमारत को आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा. वे इमारतें उसे अजीब तटस्थ और उदासीन लगीं. वह दूर सितारों में खो गया. पिछले दो दिनों से वह यहां आ टिका था. लेकिन किसी ने भी उससे नाम-पता नहीं पूछा था. अपने जैसा ही कोई आसरे का खोजी है! इससे ज्यादा उन दीवाराश्रितों ने उसकी ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी थी.

--रंडी. . .दर्द होता है. . .उसने उठ कर अगल-बगल निहारा. चार हाथ की दूरी पर महारोगी युगल संभोग के लिए लिपट-चिपट रहा था. उस अंधेरे में जुडवां जैसे जुड़े हुए वे सड़े शरीर उसे ड्रैगन जैसे लगे. उसे उबकाई-सी आ गयी. शरीर गल गया लेकिन मन अभी नहीं गल पाया. उसमें अभी भी भूख बरकरार है. और ये दीवार से माथा फोड़ने वाले लोग? शरीर मजबूत होने के बावजूद उनकी सारी भूख ही मर गयी. उनके मन महारोगी हो गये. शोषकों के खिलाफ वे कभी उठ ही नहीं सकते. भूख लगने पर आक्रोश व्यक्त नहीं कर सकते. वह उठा, शरीर के निचले हिस्से पर फटी चादर लपेट कर चल पड़ा.

एक-एक मुर्दे को वह लांघ रहा था. तेजी से आगे बढ़ने लगा. एक अजीब-सी अनुभूति उसे होने लगी. दीवार से लगे सारे मैदान में हंगामा होने लगा. लंगड़े, लूले, अवैध, अंधे, खूनी, चोर, बटमार, गंजेड़ी, शराबी, जिनकी जिंदगी को कैंसर ने जकड़ लिया. हर चीज पर जिनकी लार टपकने लगती है, उन सबके धड़ गोलाकार घूमने लगे. वह रोमांचित हो उठा. पूर्व दिशा में सफेदी उभरने लगी थी.

* *

उस दीवार से उसे जल्द दूर चला जाना था. आवागमन के रास्ते पर वह ज्यादा देर ठहर नहीं सकता था. यह दीवार लुकाछिपी खेलने के उपयुक्त थी इसलिए उसने किसी तरह दो दिन इस झुंड के बीच काटे थे. अब उनके बीच रहना खतरे से खाली नहीं था. पुलिस उसकी खोज में थी. 'पूंजीवादी सत्ता उखाड़ फेंको'-जैसे आशय के पत्रक कुछ दिन पहले उसने और उसके मित्रों ने प्रसारित किये थे. इस कांड के अन्य लोग गुनाह कबूल कर छूट गये थे. क्योंकि उनके पास खाने के लिए बहुत-कुछ था.इस बहुत-कुछ का संस्कार वे झटक नहीं पाये थे. एक ही आघात में वे झुक गये थे. कहीं न कहीं उनके पैरों तले जमीन थी. लेकिन उसकी कई पीढ़ियां झुक-झुक कर राख हो गयी थीं. राख होने के लिए मन अंधा होना चाहिए. समय ने उसके मन को अंग्खें दे दी थीं. और इसलिए उसने जिद ठान ली थी. माईबाप सरकार की पकड़ में नहीं आ रहा था. और उसके पकड़े न जाने के कारण उनके अंतिम हित में बाधा आने वाली थी.

मशीन, जानवर, इमारतें, पेड़, जमीन, पहाड़, की तरह आदमी भी किसी की मिल्कियत बन जाय, यह उसे पसंद नहीं था. और इस देश की माई-बाप सरकार ठीक इस तरह व्यवहार कर रही थी. आदमी को यही व्यवहार मिल रहा था. मुट्ठी भर लोगों को बहुसंख्या का मालिक बना रही है. उनकी सारी जिंदगी चाकरी करते बीत गयी. अछूत के रूप में बीत गयी. अब वह राजमार्गों पर स्वाभिमानपूर्वक घूमना चाहता है. अपनी बाहुओं के बल पर जी सकता है, यह दिखाना चाहता है. उसके कानों में महात्मा फुले गूंजने लगे. डा. आंबेडकर की गर्जनाएं घूमने लगीं. सब महार, मांग, भंगी मोहल्ले-गांव की सीमा के अंदर स्पर्श कहलाने वाले जानवरों के बीच बसाये जाने चाहिए. बाधा पहुंचाने वालों को खौलती कढ़ाई में डुबो देना चाहिए. जो वर्ण-द्वेषियों के सिर कलम कर गांव की सीमा पर टांग देने चाहिए क्योंकि यह लोग समझने की सीमा पार कर चुके हैं. वर्ण श्रेष्ठता की घोषणा कर वे विशेष अधि-

कार, प्रतिष्ठा, धन-संपत्ति, सत्ता सदा के लिए केंद्रित कर लेते हैं. वह दौड़ पड़ा. वह दीवार, वे दीवाराश्रित दूर-दूर होने लगे और अचानक वायरलेस का सायरन गूंजने लगा. क्या हो रहा है, यह समझने से पहले खाकी ड्रेस वाले तस्कर उस पर टूट पड़े और उठा कर गाड़ी में बिठा दिया.

इस दौरान वह बिल्कुल खामोश रहा. 'चलो ड्राइवर', बस इतना ही सुनायी पड़ा. विचार-चक्र भी उतनी ही तेजी से घूमने लगा. सब असंगठितों को संगठित करना चाहिए. उन्हें वर्ग-संघर्ष सिखाना चाहिए. उत्पादन पद्धति के अनुसार समाज के दो वर्ग हैं. एक वर्ग कामगार, किसान, अछूत, महिलाएं और दूसरा इन सबका मालिक, भूस्वामी, पूंजीपति, साहूकार, जमाखोर आदि मुट्ठी भर लोग. इन लोगों के खिलाफ पहले वर्ग के लोगों को लड़ना चाहिए. लेकिन वे संगठित नहीं हैं. धर्म, जाति, श्रेणी नामक दीवारें उनके बीच खड़ी हैं. दुनिया की किसी भी दीवार से इनकी तुलना नहीं की जा सकती. यह अदृश्य दीवारें खून में समायी हुई हैं. उन्हें गिराना चाहिए, उन्हें रौंदना चाहिए, उनकी होली जलानी चाहिए. कुदाली-फावड़ों के वार किये जाने चाहिए.

★ ★

वह होश में आया. गाड़ी का जायजा लेने लगा. सिपाहियों के चेहरे खुशी से दमक रहे थे. उनके चेहरे देखने लगा. कोई काला, कोई खुरदरा, कोई लंबोतरा, कोई चौकोनी, कोई दढ़ियल तो कोई सफाचट. लेकिन उसे एक ही साम्य नजर आ रहा था. सब जैसे बीमार कुत्तों के चेहरे हों! उसने आंखें बंद कर लीं. वह अपने बारे में सोचने लगा. वह अकेला विद्रोही है. घर-बार, मां-बाप, भाई सब उसके कारण संकट में फंस गये थे. उसने अपने शरीर पर हाथ फेरा. लगा जैसे वह पूर्णतः नग्न हो. उसके कपड़े गल गये थे. लाचार बनाने वाली माया, स्नेह, प्रेम सब कुछ समाप्त हो गया था. वह अंदर ही अंदर हुंकार रहा था. मेरे अंदर से आंधी उठनी चाहिए. वह अकेला है. पूना जैसे शहर में घूमने पर समझ में आ जाता है कि उसे क्या-क्या नष्ट करना है, किस-किस से टक्कर लेनी है. वह कांप उठा. समाज के सब स्तरों से यह आंधी उठनी चाहिए. समाज व्यवस्था का सबसे निचला स्तर अछूत इस आंधी में अग्रदूत होना चाहिए. लेकिन यह कैसे संभव है? उन्होंने अपने लिए दरवाजे सदा के लिए बंद कर रखे हैं. कुछ कहते हैं, इस सब के लिए बहुत समय चाहिए.

मैं यह नहीं कहता कि यह सारा परिवर्तन मेरी अपनी जिंदगी में ही हो जाय. लेकिन वह दिन ज्यादा से ज्यादा पास लाने के लिए कम से कम मुझे तो तीव्र से तीव्रतर होना चाहिए. अपने आप को नपुंसक परिवार के जतलाते हैं. सोये हुए को दो लातें जमा कर उठाया जा सकता है लेकिन जो सोने का ढोंग कर रहा हो उसे कैसे जगाया जाये? सब निर्बुद्धि हैं. हलदी के आधे टुकड़े में पीले होने वाले. वे कभी भी क्रांति में नहीं कूदेंगे. पुरानी नींव खोद कर नया घर नहीं बनायेंगे. पुराने को ही लीप-पोत कर संतुष्ट हो जायेंगे. मैं, मुझे कम से कम अपने लिए ही क्रांतिप्रवण होना होगा. तभी यह सनात दीवार टूटेगी. मुझे शोषण की अनुभूति है. मेरी चम रक्तहीन है.

कस्टडी में उसे कब ढकेला गया, मालूम नहीं पड़ा.

—आइए जनाब .

—किस खुशी में बिना भाड़े की खोली में तशर लाये?

वह होश में आया. सवालिया चेहरे पर से न हटाकर बोला—राजकैदी हूं.

वे कुछ कुछ चकित हुए. फिर दूर हट गये.

वह दूसरे कैदियों से नाम पूछने लगा, गुनाह पू लगा.

—मैं चीनाशंकर.

—मैं खटमल.

—मैं चट्टान.

—मैं मर्डरबाज.

—मैं कैंचीबहादुर.

—मैंने एसिड फेंका.

—मैंने पुलिस को जिंदा जलाया.

कस्टडी का इतिहास बोल रहा था. उसने लोगों को पास बुलाया.

उनके हाथ थामे, उन्हें निहारा, उनके सिर सू वह कस्टडी सूंघी और उसकी नजर दीवारों घूमने लगी. दीवार पर तस्वीरें ही तस्वीरें. गुनाहग भावनाओं की तस्वीरें. किसी ने आंबेडकर चि किया था तो किसी ने साइ बाबा. किसी ने माओ, कि ने शर्मिला, किसी ने सरस्वती, किसी ने नग्न शरी किसी ने इंद्रियों का आकार. किसी ने बलात्का किसी ने बंदूकधारी, किसी ने चाकूबाज. उसने दो के हाथ झटक दिये और जमीन पर कुछ खोजने ल उसे एक कील मिल गयी. उसका खून गरम होने ल आंखों के सामने दुनिया की क्रांतियां साकार होने ल रूस, चीन, क्यूबा, श्रीलंका, बांगला देश, वियतना फ्रांस. . .और वह होश खोने लगा. कस्टडी की दीवा पर हिसाब लिखने लगा. हल करने लगा.

कस्टडीवासी चकित होकर उसे देख रहे थे. भयभी हो रहे थे. और उसे फिर दो दिन पहले वाली वह दीवा याद आ गयी. उस दीवार के पार के अमीर याद आ आश्रित याद आये. वह तेजी से ठहरने वाली दीवा की नींव चित्रित करने लगा. गिर गयी, गिर गयी, दीवा गिर गयी . वे नपुंसक मर गये. देखो, उस दीवार व रौंदते हुए मुक्ति-सेनाएं चली आ रही हैं. ए अमके इस टुकड़ी का लेफ्टनंट बन जा, तमके तू उस आर्टिल टुकड़ी का कर्नल बन. उस कस्टडी के एक गुनाहगा पर वह उंगली रखने लगा. गुनाहगारों को प्रज्ज्वलि करने लगा.

उस पुलिस स्टेशन के सिपाही और अधिकारी दौड़ धूप करने लगे. बेचारे समझ नहीं पा रहे थे कि व अनादिबंध तोड़ रहा है. □□[

(अनुवाद : लच्छीराम चौधरी

शंकर राव खरात ★ पत्र

स समय मैं छोटा था. गन्ने रखाने जाया करता था. पढ़ने नहीं जाता था. रात का समय था. मेरे पिता घर में बैठे हुए थे. इतने में गेनबा तराल ने आकर मेरे घर ; पत्र दिया. पिता ने वह पत्र हाथ में लिया और बाहर कल आये. गेनबा तराल ने मेरे पिता से कहा—अरे मा, तेरे नाम से यह 'पतर' आया है, देख! पिता ने हाथ में ले लिया और आंखें फाड़ कर उसे देखने लगे.

बात तो दरअसल यह है कि आज तक मेरे पिता को सी ने कोई पत्र भेजा ही नहीं था. जो भी खबर आती, ; के मुंह से दूसरे के मुंह जाती. उस समय यही एक स्तविक रूप में डाक से आया पत्र था. मेरे पिता ने व का मजदूर-महार होने के नाते डाक के कागज-पत्र ; गांव से दूसरे गांव के पाटील-तलाटी, मामलतदार-लदार-फौजदार को गांव के काम से पहुंचाने का काम वश्य किया था. इसी में उनका आज तक का जीवन ता था. और पत्र भेजने जैसा कोई था भी तो नहीं!

मेरी बहन अपने पति के घर थी. पति का काम ा था कि डाक से पत्र आने की आशा ही नहीं थी. , पिता की एक बहन बंबई रहती थीं. अब इस ायु में वह पत्र से क्या समाचार भेजती. उसने तो बई जाने के बाद कभी कोई पत्र भेजा ही नहीं. वैसे त्र भेजने योग्य कोई घटना घटी भी तो नहीं थी.

पिता ने तत्काल गेबा से पूछा—गेनबा, यह 'कागद' झे ही आया है न?

—हां, तुम्हें ही.

—इस पर मेरा नाम रामा तात्या महार ही ठखा है न?

—फिर क्या! इस पर पता भी अपने गांव का ा है.

और वह इत्मीनान से छप्पर में बैठ गया और मेशा की भांति बोला—रामा, जरा तंबाकू तो दो.

किसका पत्र है, जानने के लिए मैं भी बाहर निकला. लट-पलट कर देखने के बाद मेरी भी अकल काम नहीं र रही थी.

पिता ने तंबाकू देकर गेनबा से पूछा.

—गेनबा किसका 'कागद' है यह भला?

—मुझे क्या मालूम! मेरे हाथ आया, तुम्हारे ास लाया. खरसुंडी के बाजार में डाकिये ने रामोशा ो दिया था.

—उसे पूछना तो चाहिए था कि पत्र में क्या लेखा है.

—हां, यह तो है, मैं ही पूछना भूल गया.

ऐसा कहकर गेनबा ने पड़ोस के छप्पर की ओर कृा. पिता ने पत्र मेरे हाथ में दिया. दीपक के उजाले में उस पर पुनः दृष्टि डाली.

—इस पत्र में कुछ अधिक लीपापोता नहीं गया है.

—ऐसा कहते हो! गेनबा ने अचरज से पत्र हाथ में ले लिया और रोशनी में उस पर दो ही सतरें लिखी देख कर चमत्कारिक रूप से बोला—रामा, तुझे पत्र आया भी तो आधा ही आया, देख.

अब पिता के मन में संदेह घर कर गया.

—सच कहते हो, पत्र आया. भी तो आधा!

—अब तलाटी से पढ़वाये वगैर क्या पता क्या लिखा है.

—यह भी सही है. सवेरा होते ही तलाटी के पास जाता हूं.

—किंतु रामा तलाटी आज और कल गांव में नहीं है!

—ऐसी बात, फिर कहां जाकर पढ़वाएं?

—क्यों न अपने गांव के बामन मास्टर के पास जाओ.

—ऐसा ही करूंगा, सबेरे उठने के साथ ही चला जाऊंगा.

गपशप के बाद गेनबा अपने घर लौट गया.

★ ★

दूसरे दिन सबेरे मेरे पिताजी सबेरे ही पत्र लेकर घर से निकल पड़े. मैं भी साथ गया. दोनों सीधे मास्टर के घर पहुंचे.

सबेरे के पहर मास्टर के दरवाजे पर रंगोली की हुई थी. हम दरवाजे पर खड़े रहे, कोई न दिखा तो पिता ने पुकारा—मास्टर हैं क्या, घर में?

—कौन है रे?

—मैं रामा महार हूं, जी!

मेरे पिता की यह आवाज सुनते ही मास्टर की पत्नी चटपट बाहर आ पहुंची. उसका ध्यान ज्यों ही मेरे पैरों की ओर गया, वह चीख पड़ी—ये लड़के, नीचे देख! दिखता नहीं, तूने रांगोली मिटा दी!

ऐसा सुनते ही मैं झटके से दूर जा खड़ा हुआ मानो विच्छू ने डंक मार दिया हो.

इस पर वह पुनः बड़बड़ायी—मरे! चलते समय आंखें फूट जाती हैं.

—उसे मालूम न था, बच्चा ही तो है! पिताने कहा.

अब कहीं जाकर मास्टर की पत्नी ने भीतर आवाज लगायी.

—अजी, भीतर क्या कर रहे हैं आप? दरवाजे पर महार खड़ा है. चार लकड़ियां ही कटवा लीजिये. घर में ईंधन है ही नहीं.

फिर मेरे पिता की ओर मुड़ कर बोली —– हमारा ईंधन खतम हो गया है. लकड़ी के चार टुकड़े तो काट दे!

इतने में ही मास्टर बाहर आये.

—क्यों रामा, सबेरे-सबेरे ही दरवाजे से आ लगे?

—हां, ऐसा ही एक काम आ पड़ा, पिता बोले.

भीतर जाते-जाते मास्टर की पत्नी बोल गयी—सुना, महार से लकड़ी कटवा लो, दरवाजे की ओट में रखी है.

—ठीक है, ठीक है! क्या चार लकड़ियां काटने के लिए रामा न कहेगा, मास्टर सहज भाव से बोले फिर पिता की ओर गर्दन मोड़ कर कहा, क्यों कैसा काम है?

—कोई बड़ा काम नहीं है? यही 'कागद' पढ़ कर बताना है कि क्या लिखा है इसमें.

ऐसा कहकर उन्होंने अपनी बंडी की जेब से पत्र बाहर निकाला और ऊपर से ही मास्टर के हाथ पर रखनेवाले थे कि मास्टर ने काम बतलाया—अरे रामा! घर में ईंधन के लिए लकड़ी के चार टुकड़े तो काट दे!

—मैं कहां 'नहीं' कह रहा हूं. कुल्हाड़ी तो दीजिये! चार टुकड़े काट देता हूं.

—अजी, वह कुल्हाड़ी कहां है? आज के लिए चार टुकड़े कटवा लूं!

इस पर भीतर से कर्कश आवाज आयी—अजी, आजके लिए क्या, चार-आठ दिनों के लिए कटवा लीजिये.

यह सुनते ही पिता ने स्वयं से बड़बड़ा कर कहा—तेरे बाप के घर का महार है क्या, अच्छा पकड़ा गया!

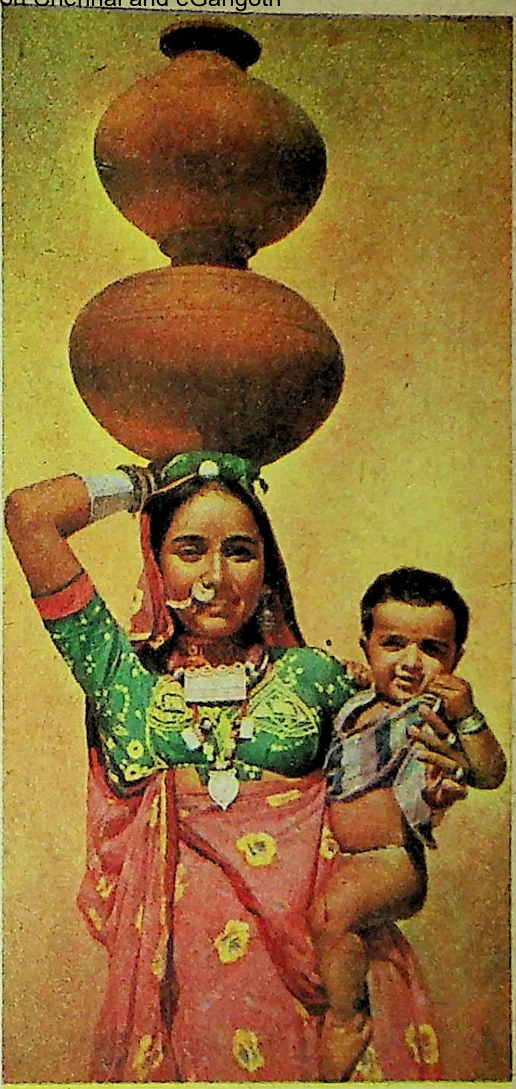

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

* *

सचमुच ही यह क्रोध आने जैसी ही बात थी. किंतु कोई दूसरा रास्ता भी तो न था. पत्र पढ़वाने का काम नहीं होता था तो भी गांव के मास्टर के घर जाने पर लकड़ी तो काट ही दी जाया करती थी. पिता ने पहले भी कभी मना नहीं किया था, यह बात जुदा है. आज तो वे काम से आये थे. पत्र पढ़वा लेना था. किंतु आज वे खुशी से लकड़ी काट कर देनेवाले नहीं थे. ऊपर से मास्टर की पत्नी के बोल सुन कर वे खीझ उठे और बड़बड़ाने लगे.

हमारे तो सिर्फ दो आंखें थीं, किंतु मास्टर के शिक्षण द्वारा चार थीं. ऊपर से वह गांव का ब्राह्मण मास्टर था. इतने में फिर से दहलीज के भीतर पैर रख कर मास्टर ने पत्नी से पूछा—अजी, लकड़ी तो कटवा लेता हूं. किंतु कुल्हाड़ी कहां है?

—वहीं वाजू के कोने में तो पड़ी है! भीतर से कर्कश आवाज आयी.

सुनते ही मास्टर ने कुल्हाड़ी ला पटकी और पिता से बोला—रामा, चटपट चार दिन की लकड़ी काट दे! फिर मैं तेरा पत्र पढ़ देता हूं. तब तक मैं स्नान कर आता हूं, पानी ठंडा हो रहा है!

—मास्टर लकड़ी भी तो दीजिये! क्या काटें? पिता ने कहा.

इस पर मास्टर ने कोने में पड़ी हुई भारी लकड़ी दिखलाई —अरे, वह कोने में पड़ी लकड़ी काट!

—मास्टर, इसे वहां से हटाये बिना तो बड़ा समय लगेगा!

—अरे रामा, लकड़ी हटाना क्या हमारा काम है!

—अजी, उसे बीचोबीच आरी से चीर लेने से टुकड़े करने में सरलता होगी.

—तू भी ठीक कह रहा है किंतु आरी कहां से लायी जाये? ईंधन कब मिलेगा, भोजन कब तैयार होगा, और मैं स्कूल कब जाऊंगा?

पिता ने फिर कहा—अरे जैसा है, वैसे ही काट दे!

EYETEX
EYETEX BINDI
EYETEX KAJAL

उसकी
सुन्दरता का
रहस्य ही
ऐटेक्स सौंदर्य प्रसाधन

ARAVIND LABORATORIES MADRAS-33

SCIENCE TODAY
हर महीने अंग्रेजी में प्रकाशित.

अब
सूर्य-शक्ति भी
हमारी
मुट्ठी में!

जी हाँ, सबसे पहले इसकी कल्पना हमने ही की थी— लेकिन किया कुछ नहीं...पर आज इसी कल्पना को साकार करने के लिए दुनिया भर के वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं कि सूर्य-शक्ति का उपयोग हम रोजमर्रा की जिन्दगी में कैसे करें?

- किसी ने कहा — वह हिमालय से ऊंचा है... और फिर हिमालय बढ़ने लगा — ऊंचा, ऊंचा और ऊंचा... कोई कहे तो सही कि हिमालय से भी कोई ऊंचा है? अभी तो वह बढ़ ही रहा है... है न रोचक बात?
- लेकिन इससे भी विचारणीय विषय है एथलीटों का... इन्हें कौन बनाता है— भगवान या इन्सान?
- और साथ ही सनसनीखेज विचारोत्तेजक लेख — आखिर ये वैज्ञानिक प्रतिभाएं स्वदेश छोड़कर क्यों चली जाती हैं?

इसके अलावा विज्ञान संबंधी सामयिक रोचक सामग्री।

पढ़िए साइन्स टुडे अप्रैल, १९७५

ज्ञान-विज्ञान की रोचक पत्रिका

—
जायेगा.
—अ
पिता
आपके क
—ह
अब
उद्यत हो
—अ
तक तू लक
—अ
जरा!
यह व
पर गिरा
भीतर चल
जाते कह
जल्दी से

★

पत्र
वैसे पत्र प
बात न थ
पिता ने
दिया था.
नहीं था.

पिता
ऊपर चढ़
लगा कर
लगाया. अ
लग गयी

अब
थूक से ग
के बेट को
का वार
गिरने लगे

पिता
पर गिराते
साथ उन

उनक
रहे पसीने

★

इस
पिता ने
को अब उ

मंडी
और दरव
आवाज

—किंतु मास्टर, ऐसे तो मेरा पसीना निकल जायेगा.

—अरे, निकलने भी दे आज के दिन !

पिता बेचारे क्या करते, बोले—अरे, कभी आज तक आपके काम को न कहा है!

—हां, अब तुम ठीक-ठीक बातें कर रहे हो !

अब पिता ने पत्र मास्टर के हाथ में देने के लिए उद्यत हो कहा—यह पत्र तो पहले देख लीजिये.

—अरे नहा कर निकलते ही पत्र पढ़ दूंगा, तब तक तू लकड़ी भी काट लेगा.

—अजी, किंतु एक नजर तो डाल दीजिये जरा!

यह कहकर पिता ने पत्र ऊपर से मास्टर के हाथ पर गिरा दिया. किंतु मास्टर ने उसे पढ़ा नहीं, लेकर भीतर चले गये. पत्र रख कर स्नान के लिए जाते-जाते कह गये—लकड़ी काटने के साथ ही पत्र पढ़ दूंगा! जल्दी से काट दे.

★ ★

पत्र पढ़ाने के लिए पिता को लकड़ी काटना ही था. वैसे पत्र पढ़वाने के बदले लकड़ी काटनी कोई विशेष बात न थी. मास्टर के घर बिना प्रयोजन आते-जाते पिता ने अनेक बार काटकर लकड़ियों का ढेर लगा दिया था. इस अर्थ में आज का काम भी विशेष काम नहीं था.

पिता ने बंडी निकाल कर रख दी. धोती को ऊपर चढ़ा लिया. आगे बढ़ कर लकड़ी के कुंदे को हाथ लगा कर एक ओर खींचना शुरू किया. मैंने भी हाथ लगाया. अब लकड़ी कोने से एक ओर बाहर की ओर लग गयी थी.

अब उन्होंने कुल्हाड़ी लकड़ी पर टिकाई, हथेली थूक से गीली की, दूसरी हथेली पर मली, फिर कुल्हाड़ी के बेंट को कस कर पकड़ा. अब वे लकड़ी पर कुल्हाड़ी का वार करने लगे, टुकड़े कट-कट कर अलग गिरने लगे.

पिता जब कुल्हाड़ी को ऊपर उठा कर लकड़ी पर गिराते तो उनके हाथ के उठने और गिरने के साथ-साथ उनके पेट की पसलियां भी दिख जातीं.

उनका शरीर पसीने से नहा गया था. मुंह पर आ रहे पसीने को रह-रह कर वे हाथ से पोंछते जाते थे.

★ ★

इस तरह लकड़ी पर कुल्हाड़ी चलाते-चलाते पिता ने लकड़ियों का ढेर लगा दिया. खोंसी हुई धोती को अब उन्होंने नीचे गिरा दिया.

बंडी उठा कर पहन ली. सिर पर पगड़ी पहन ली और दरवाजे की सीढ़ी पर बैठ कर भीतर की ओर आवाज दी—मास्टर, ओ मास्टर!

शंकरराव खरात,
कहानीकार, उपन्यासकार

साथ ही मास्टर बाहर आ निकले और पूछा—क्यों रामा, लकड़ी काट ली न?

—वह देखिये, ढेर के ढेर !

मास्टर ने शाबासी देते हुए कहा—बहुत अच्छे! यह तो कई दिन चलेगी. फिर कभी आये तो आठ दिन के लिए काट देना!

—ठीक है, उसकी चिंता न करिये. हां अब तो उतना पतर पढ़ दीजिये.

—अरे वह तो मैं पढ़ना भूल ही गया !

इतना कह कर मास्टर ने कोने में रखा हुआ पत्र उठा लिया और आश्चर्य से बोले—अरे, यह पत्र तो आधा ही है! क्या हुआ ?

अब मास्टर ने वह पत्र अपनी आंख के नजदीक किया. बार-बार मुंह ही मुंह में पढ़ते गये, फिर मास्टर के होंठ हिले और वे पिता से पूछने लगे—अरे रामा, बंबई में तेरी कोई बहन थी ?

—हां, थी ! धोंडाबाय !

—अरे उसे पिछले मंगलवार को देव-आज्ञा आ गयी, आज दस दिन हो गये.

—हे भगवान, धोंडाबा चली गयी, क्या कह रहे हैं! चकित होकर पिता ने मास्टर से फिर कहा, मास्टर, पूरा कागज जरा साफ-साफ पढ़ दीजियेगा तो.

अब मास्टर ने वह पत्र नजर के सामने रखा और एक-एक शब्द अलग करके पढ़ा —

रामा तात्या महार को दंडवत –

तेरी बहन धोंडाबाई को इस मंगलवार देव-आज्ञा आ गयी. सूचना दे रहा हूं!

मास्टर ने पत्र को जोर से पढ़ कर पिता के शरीर पर फेंक दिया. पिता चुप हो गये. गर्दन झुका कर वे सीढ़ियों पर से उठे और मास्टर के घर से बाहर निकल पड़े.

रास्ते में अपनी डबडबायी आंख को उन्होंने पोंछ लिया. □□□

(अनुवाद : रेखा सिंह)

सवर्णों की पुलिस

गत वर्ष बंबई के वरली क्षेत्र में हरिजनों की ३० चालों पर हमला हुआ. पुलिस भी इस हमले में शामिल थी.

हमले का कारण सवर्णों ने यह बताया कि हरिजनों की इन चालों में हिंदू देवी-देवताओं का अपमान होता है, गो कि यह बात सही नहीं थी. ब्लिट्ज के संवाददाता के अनुसार वे कई देवी-देवताओं के पूजक थे. अगर हरिजनों ने इनका अपमान भी किया होता तो भी इन्हें किसने यह हक दिया था.

बात कुछ दूसरी ही थी. उन हरिजनों ने एक सभा में यह निर्णय लिया था कि वे चुनाव का बहिष्कार करेंगे. इसके अलावा इस सभा में कोई दूसरा मुद्दा उठा ही नहीं था. लेकिन हरिजनों के इस निर्णय के दूसरे दिन ही हमले होने लगे. ये हमले आकस्मिक नहीं थे, जैसा कि पुलिस बता रही थी. ये हमले, वरली के निवासियों ने नहीं किये थे, जैसा कि पुलिस का बयान था. ये हमले नियोजित ढंग से पुलिस की छत्रछाया में, उसके सहयोग से हुए. एक दिन हमला हुआ. बाहर हल्ला मचा तो सरकार ने बयान दिया कि अब स्थिति शांत है. ऐसा नहीं था. फिर हमले हुए--लगातार तीन दिनों तक. शांति समिति के एक सदस्य को, जो अपने घर में अपने बच्चे का जन्मदिन मना रहा था, पुलिस ने बाहर खींच लिया. उसे मारा. उसे पुलिस थाने लाया गया. उसने बार-बार कहा कि मैं शांति समिति का सदस्य हूं. लेकिन शांति समिति के सदस्य होने से क्या बनता-बिगड़ता है, वह हरिजन तो था. ☐

नागरिकता से वंचित

महाराष्ट्र के दो हरिजन परिवारों ने स्थानीय अधिकारियों को १९७३ में दरखास्त दी थी कि उन्हें नागरिकता के अधिकारों से वंचित कर के गुलाम घोषित कर दिया जाये.

इनमें से एक परिवार के लोगों को गांव के सवर्णों ने बुरी तरह पीटा. उनका घर जला दिया. दूसरे परिवार को गांधी-शताब्दी वर्ष में खोदे गये कुएं से पानी नहीं लेने दिया गया. उस परिवार के लोगों को भी पीटा गया. उनकी झोपड़ियां जला दी गयीं.

दरखास्त के साथ इस परिवार ने झोपड़ी के मुआवजे में मिले पच्चीस रुपये भी वापस कर दिये.

गनीमत है सरकार हरिजनों को मुआवजा दे देती है. वह भी कम नहीं, पूरे पच्चीस रुपये का. ☐

मरो तो मरो

गत वर्ष सितंबर में औरंगाबाद जिले के कोले गांव में १२ नवबौद्ध आंत्र शोथ से मर गये.

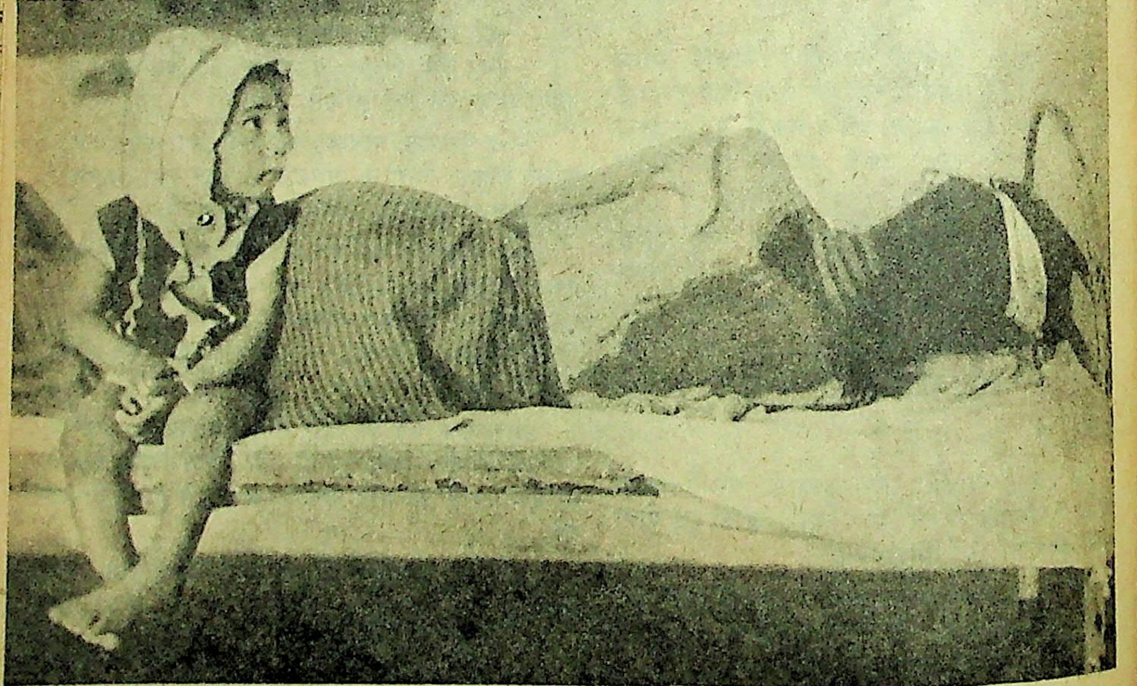

अस्पताल में एक हरिजन महिला---घायल और खून में नहायी हुई.

इसका कारण यह था कि सवर्णों ने हरिजनों को अपने कुएं से पानी लेने से रोक दिया था, इसलिए मजबूरन उन्हें गंदा, जहरीला पानी पीना पड़ा. ☐

समाज से बाहर

कोल्हापुर जिले के कागल तालुका के एक गांव में ४० हरिजन परिवारों को सवर्णों ने भूखा मार डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी. उन्हें आठ दिनों तक राशनकार्ड पर अनाज नहीं दिया गया. उन्हें दैनिक जरूरत की सारी वस्तुओं से वंचित रखा. उनका सामाजिक बहिष्कार किया.

उनका कुसूर यह था कि वे सवर्णों के मोहल्ले से गुजर रहे थे. सवर्णों को यह बरदाश्त नहीं हुआ. उनका एक आदमी आया और उसने हरिजन पुरुषों और महिलाओं को पीटा. हरिजनों ने उस आदमी को पकड़ कर पुलिस के हवाले कर दिया.

इसका जवाब एक नहीं, तीस सवर्णों ने दिया. वे सवर्ण, रात को हरिजनों के मोहल्ले में घुसे. उन्होंने आदमियों को तो मारा ही, औरतों पर भी अपने हाथ की खुजली मिटायी. उनके घरों के सामान को तोड़-फोड़ डाला. इस काम की अगुआई कर रहा था प्राथमिक स्कूल का सवर्ण अध्यापक!

उस बीस वर्षीय हरिजन युवक के हाथ-पैर बांध कर उसे पेड़ से लटका दिया गया. नीचे आग जलायी गयी. वह तड़पता रहा, तड़पता रहा. इतना तड़पा कि बेहोश हो गया. होश में आया, तब भी वह पेड़ से लटक रहा था और नीचे थी दहकती आग. और थे कुछ तमाशबीन, जो सिर झुकाये नाटक देख रहे थे.

किसी तरह रमेश को पेड़ से उतारा गया. वह अगले दिन दोपहर तक कराहता रहा, तब पुलिस के सिपाही आये. उन्होंने रमेश के हाथ-पैर खोले और चलते बने.

उसके बाद आये वे लोग, जिन्होंने उसकी यह गत बनायी थी. वे उसे अगली सुबह पास के एक गांव में ले गये. उसके अगले दिन फिर पुलिस का सिपाही आया. अब उसके साथ एक और आदमी भी था. उसे अस्पताल में भरती किया गया.

यह अस्पताल था गाजियाबाद का. हरिजन युवक रमेश था—असरोली बादशाहपुर गांव का. यह घटना थी १५ अप्रैल १९७४ की. और सवर्णों की नजर में उसका गुनाह था, उसकी अंधी वफादारी.

वह बचपन से ही भवर सिंह के यहां काम कर रहा था, जो लंबी-चौड़ी जमीन-जायदाद के मालिक थे. एक दूसरा परिवार भंवर सिंह का [illegible] सिंह को जलील करने पर तुला था, जिसका शिकार बना रमेश. रमेश को लालच दे-दे कर भंवर सिंह के प्रतिद्वंद्वी ने अपने यहां काम करने को बुलाया, परंतु वह नहीं माना, जिसकी उसे यह सजा मिली. ☐

राजनीति मत करो

हरिजन कुसूर करते हैं अगर वे सवर्ण के खिलाफ चुनाव में खड़े होते हैं. इसकी सजा मौत भी हो सकती है.

पूना जिले के बावड़ा गांव के एक नवबौद्ध खानूदास कांवले ने जिला परिषद के चुनाव में एक सवर्ण के विरुद्ध नामांकनपत्र भर दिया.

इसकी सजा सारे हरिजनों को मिली. १० दिनों तक सवर्णों ने उनका सामाजिक बहिष्कार किया. इस काम में महाराष्ट्र सरकार के एक मंत्री के भाई शाहजीराव पाटिल भी थे.

हरिजनों को, जो करीब-करीब सभी खेतिहर मजदूर थे, सवर्णों ने कोई काम नहीं दिया. उन्हें भूखों मार कर भी उन्हें संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने हरिजनों के कुएं में जहर डालने की कोशिश की, जो किसी तरह नाकामयाब हुई. ☐

अपने बेटे के साथ एक हरिजन महिला, जिसका पति सवर्णों की घृणा का शिकार हो गया.

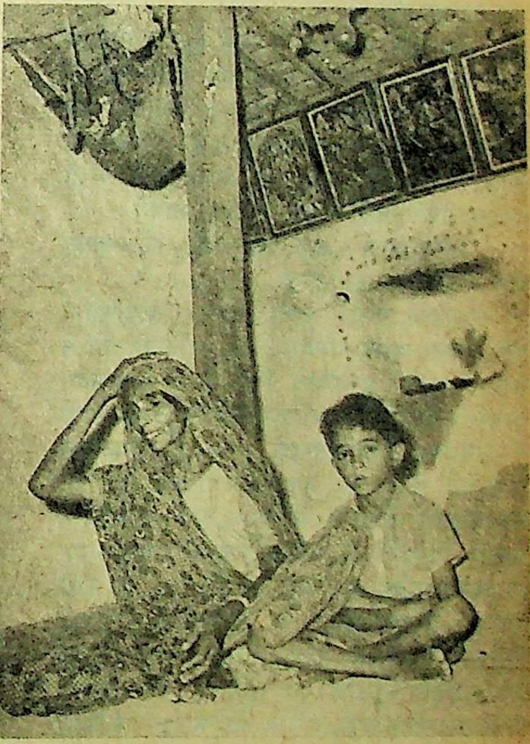

दलित साहित्य की पहली मासिक पत्रिका : अस्मितादर्श

(संपादक-प्रा. गंगाधर पानतावणे.)

नयी साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रसार तथा नये विचारों के आदान-प्रदान के लिए 'अस्मितादर्श' का जन्म हुआ था. पिछले सात वर्षों से वह सफलतापूर्वक अपने ध्येय में लगी हुई है और अब तो यह कहा जाने लगा है कि 'अस्मितादर्श' समय की मांग है.

डा. बाबा साहेब आंबेडकर का मानवतावाद, उनकी विज्ञाननिष्ठा और उनके अंतर्मन का विद्रोह 'अस्मितादर्श' की प्रेरणाशक्ति हैं. इसलिए साहित्य में जिन शोषितों, दलितों और बहिष्कृतों का नाम भी लेना उचित नहीं माना जाता था, उनके चित्रण के लिए नहीं, बल्कि उन्हीं के लिए और उन्हीं के द्वारा साहित्य-निर्माण कराने का प्रयत्न यह पत्रिका कर रही है. नयों को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना ही पड़ता है. उनमें जो सच्चे होते हैं और विरोध को पचा सकते हैं, वे ही विकसित हो पाते हैं. दलित साहित्य भी अपवाद नहीं है.

अब वाणी मुखर होने लगी है. सामाजिक ज्ञान की दुखती हुई रगें अक्षरबद्ध होने लगी हैं. गांव की सीमा के बाहर के दुख घेरा तोड़ कर उभरने लगे हैं. ये दुख अपने अंदर मानव की खोज कर रहे हैं. इनमें जो सच्चे होंगे, वे ही डटे रह सकेंगे. झूठे मुखौटे नष्ट हो जायेंगे.

'अस्मितादर्श' इन सब की खोज-खबर लेती हुई बढ़ती जा रही है.

साहित्य, समाज, कला, शिल्प, तत्वचिंतन, धर्म, शिक्षा आदि विषयों पर 'अस्मितादर्श' ने सामाजिक लेख प्रकाशित किये हैं. प्रा. जनार्दन वाघमारे के नीग्रो साहित्य संबंधी लेख मराठी में सर्वप्रथम 'अस्मितादर्श' में ही प्रकाशित किये गये थे. आनंद कुमारस्वामी, डा. डी. डी. कोसंबी जैसे विद्वानों के कला, धर्म व साहित्य संबंधी विचारों ने इसी पत्रिका में स्थान पाया. डा. बाबा साहेब अंबेडकर के विचारों पर इसी पत्रिका में कुछ लेखों के माध्यम से चर्चा की गयी थी. महार तथा अन्य शोषितों के जीवन-कार्यों तथा साहित्य-निर्माण का परिचय इसी पत्रिका द्वारा कराया गया है. दलित लेखकों और कवियों के दहकते अनुभवों को ललित लेखों का स्वरूप दे कर छापने का श्रेय इसी पत्रिका को है. सामाजिक बंधनों को स्वीकार करने वाले प्रसिद्ध दलितेतर लेखकों के लेखों के समानांतर प्रसिद्ध दलित लेखकों के लेख भी इस पत्रिका में पढ़ने को मिलते हैं. उदाहरणार्थ प्रा. बा. ल. कुलकर्णी, तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी, ग. त्र्यं. माडखोलकर, दि. के. बेडेकर, पु. ल. देशपांडे, कुसुमाग्रज, प्रा. विंदा करंदीकर, दिलीप चित्रे, प्रा. रा. मि. जोशी, प्रा. शांता शेलके, डा. भालचंद्र फडके, प्रा. शरदचंद्र मुक्तिबोध, प्रा. रा. रं. बोराडे, आदि के साथ-साथ शंकरराव खरात, प्रा. म. मि. चिटणीस, डा. वानखेडे, केशव मेश्राम, वामन निंबालकर, दया पावर आदि लेखकों के लेख छापने का सौभाग्य 'अस्मितादर्श' को मिला है. आज २० से २५ दलित लेखक-लेखिकाएं लेखनकार्य कर रहे हैं जिनमें से कई तो प्रसिद्धि के शिखर तक पहुंच चुके हैं.

'अस्मितादर्श' की मान्यता है कि दलित साहित्य का अपना स्वतंत्र क्षेत्र होना चाहिए. दलित साहित्य के अनुकूल तथा प्रतिकूल, दोनों प्रकार के विचार व्यक्त करने वाले अनेक विद्वानों के लेख 'अस्मितादर्श' में प्रकाशित हो चुके हैं. परंतु दलित साहित्य को प्रकाश में लाने का एकमात्र ध्येय ले कर चलने वाले तथा साहित्य-सृजन को मात्र साधन मानने वाले प्रा. गंगाधर पानतावणे के समर्थ संपादन ने 'अस्मितादर्श' को मराठी साहित्य-संसार में स्वतंत्र स्थान प्राप्त करा दिया है.

और अब इस सफलता के बाद 'अस्मितादर्श' ने प्रकाशन के क्षेत्र में भी कदम बढ़ा दिया है. अब तक फ. मुं. शिंदे के 'जुलूस' तथा वामन निंबालकर के 'गावकुसावाहेरील कविता' शीर्षक दो कविता-संग्रह यह प्रकाशन संस्था प्रकाशित कर चुकी है. प्रा. गंगाधर पानतावणे के समीक्षात्मक लेखों का संग्रह 'मूल्यवेध' के प्रकाशन की तैयारियां भी चल रही हैं. □

दलित साहित्य

दलित लेखक 'विद्रोह-विद्रोह' की आवाज उठाते हैं, पर यह विद्रोह है आखिर किसके खिलाफ? विद्रोह का अर्थ द्वेष नहीं होता. विद्रोह का अर्थ होता है—क्रांति. दलित लेखकों का विद्रोह प्रस्थापित साहित्य व नैतिक मूल्यों के विरुद्ध है. 'कला के लिए कला' के विरुद्ध सनातन रूढ़ियों, परंपराओं और जातीयता के विरुद्ध. परंतु यह विद्रोह समाजाभिमुख होने के कारण और द्वेष पर आधारित न होने के कारण बांझ नहीं है...

संसार में जितने भी क्रांतिकारी हुए हैं वे सभी दलित लेखकों के आदर्श हैं, फिर वे भले ही साहित्य के क्षेत्र में हुए हों चाहे अन्य क्षेत्रों में हुए हों. चार्वाक से ले कर महात्माफुले और बाबा साहेब अंबेडकर तक उनके आदर्श हैं. नीग्रो साहित्य व नीग्रो लेखक भी उनके आदर्श हैं क्योंकि नीग्रो लेखकों ने भी मानवीयता, मानवीय हकों, समता वगैरह के प्रश्न बड़े प्रमाण में उठाये हैं. □

चाल संस्कृति

चालों और सार्वजनिक नलोंका नाता अटूट है. तीस-पेंतीस किरायेदार और घंटेभर चलने वाला एक नल. पूरा पड़ना तो खैर कठिन है, पर फिर भी समझा-बुझा कर लाइन वगैरह लगा कर पानी भरना चलता ही रहता है. मैं अपनी इस चाल में रहने आया उसके दूसरे ही दिन की बात है. मेरे लिए तो वह अनुभव नया नहीं था पर मध्यमवर्गीयों की चाल में यह मेरा अनुभव नया ही था. सुबह नल आने की खबर सुनते ही घर-घर से बालक बूढ़े और स्त्रियां नल की तरफ भागे. मेरी पत्नी भी कलसा ले कर नल पर पहुंची. वह बड़ी देर तक खड़ी इंतजार करती रही. मैं गैलरी में खड़ा यह सब देख रहा था. आखिर पत्नी अपने प्रयत्नों में सफल हुई, पर जैसे ही उसने नल में अपना कलस लगाया, आसपास की औरतें दूर खिसक गयीं और नल के पास एक तरफ बरतन मांजने वाली स्त्री बोली——ओ बाई साहेब ! जरा संभाल कर, हमारे बरतनों पर तुम्हारा पानी न गिरे. पत्नी चुप थी और कलसा भर जाने पर एक तरफ हट गयी. फिर कलसा उठा कर वह घर की तरफ आने लगी तो मैंने देखा कि नल पर बरतन मांजने वाली उस सुसंस्कृत बाई ने एक बालटी भर कर पानी नल पर उंडेला और एक कलसा भर कर नल के फर्श पर फैलाया और तब कहीं जा कर उसने अपने बतन नल के नीचे रखे. □

राबता

बात है १९५० की. औरंगाबाद जिले के नलणी गांव के अछूतों से खूब बेगार ली जाती थी. अगर कोई अफसर तांगे या बैलगाड़ी में बैठ कर निकलता तो गांव के एक महार को तो उस तांगे या बैलगाड़ी के आगे-आगे भागना पड़ता था और दूसरे महार को साहब के मुर्गे, जूते, पेटी, बिस्तर वगैरह सिर पर लाद कर पीछे-पीछे दौड़ते चलना पड़ता था. यानी आगे भी महार, पीछे भी महार और दोनों को उसके वाहन की गति से भागना पड़ता था. इस परिपाटी से लोग बड़े दुःखी थे.

एक बार नलणी में कालूबाबा का मेला भरा. मेले में जिले के अधिकारीगण भी आये थे और इन अधिकारियों की टहल में दो-दो, तीन-तीन महार लगाने पड़े. इस पद्धति को 'राबता' कहते थे. इसी मेले में मराठवाड़ा के उत्साही नेता भाऊ साहेब उर्फ बी. एस. मोरे भी गये थे. महारों के बाड़े में आ कर पुलिस और उसके जमादार खूब गाली गलौज करते थे और अफसरों की सेवा के लिए महारों को पकड़ कर ले जाते थे. भाऊ साहेब मोरे के खयाल में यह बात आयी तो वे वहां पहुंचे और कड़क कर पुलिस वालों से बोले——वो कौन-सा हुद्देदार है, उसको यहां भेज दो. उनकी तेजी देख कर पुलिस के सिपाही तो लौट गये पर उन्होंने अपने इंस्पेक्टर को भेज दिया. खूब तकरार हुई——श्री मोरे बोले, महारों को ले जाना है तो लिख कर दो, नहीं तो एक भी महार 'राबता' के लिए नहीं जायेगा. खूब गरमा गरमी हुई पर फिर उसके बाद 'राबता' की प्रथा बंद हो गयी. □

अनुष्ठान

मेरे बचपन की घटना है. बरसात के दिन थे, पर पानी था कि बरसना ही नहीं चाहता था. गांव वालों को बड़ी चिंता होने लगी. इसलिए उन्होंने गांव के पाटील के साथ मंत्रणा की और रामोशा को डौंडी पीटने का आदेश दिया. रामोशा ने डौंड़ी पीटी. "सुनो रे सुनो, कल सुबह मारुती को पानी चढ़ाया जायेगा सब हाजिर रहें. . ." दूसरे दिन लोग कामधाम छोड़ तालाब की तरफ चल दिये तो हम बच्चे भी साथ हो लिये.

मंदिर में पहुंच कर सब शांत हो गये तो पहले पंडित ने कुछ मंत्र बोले और फिर तालाब में उतर पड़े. उसके बाद जैसे भेड़ें अपने बाड़े में कूदती जाती हैं वैसे ही सब जन तालाब में कूदने लगे. तालाब का पानी गंदा हो गया, फिर भी सभी बड़े भक्तिभाव से स्नान कर रहे थे.मैं तालाब में घुसना ही चाह रहा था कि पीछे से आवाज आयी——अरे ओ,तू तालाब में मत घुसना. तू महार का लड़का है ना. तुम लोगों को तालाब से दूर रहना चाहिए. दूर खड़ा रह, मैं तुझे पानी देता हूं. कहने वाला एक सभ्य व्यक्ति था. उसने तालाब से पानी ला कर मेरे शरीर पर उड़ेल दिया. पानी डालते समय वह बहुत होशियारी बरत रहा था जिससे उसके ऊपर पानी का एक छींटा भी न पड़ जाये. पवित्र हो कर मैं मारुती के मंदिर की तरफ गया तो वहां पर भी मुझे रोक दिया गया. मेरे मित्रों ने मंदिर में जा कर पानी चढ़ाया पर मुझे तथा मेरे जातिभाइयों को मंदिर की सबसे निचली सीढ़ी भिगो कर ही संतोष कर लेना पड़ा. □

पानी * भास्कर चंदन शिव

री दोपहर, जलती धूप. . .झुलसते हुए कोमल बूढ़े पेड़. . . कमर से टूटे हुए सूखी लकड़ियों के गट्ठर द्विप. . . .और कहीं-कहीं रेती के पेट में सड़ांध पैदा रनेवाला हरा पानी . . .मर कर सड़ी सूखती हुई ढकों की, मछलियों की और केकड़ों की लाशें. . . .

सात-आठ महार कंधों पर कुदाल-फावड़े लिये पानी ो खोज करते घूम रहे हैं. कहीं पनियारी जगह नहीं मिल ही थी. यहां खोदें या वहां खोदें? कहां खुदाई करें? ानी चाहिये. . .

—अण्णा, दो बाल्टी इस मटकी में डालो जी. . .

—बाईसाब, एकाध बाल्टी देती हो. . . .

हम अपना खुद का झरना खोदें नदी में. . .इस वचार से महार जगह ढूंढ़ रहे थे. कहीं न कहीं गहरी गह देख कर परस डेढ़ परस कुआं खोदे. . .लेकिन वैसी गह अब तक मिली नहीं थी. लगातार खोज-खबर ल रही थी.

—सदान्ना, यहां जम सकता है यार, रेती भी ीली है. . .ज्योती कुदाल से कुरेदते हुए बोला.

—पर यह कुआं गांववालों से देखा जायेगा?

—क्यों?

—“. . . .”

—हां रे. . .लेकिन क्यों रुकावट डालेंगे?

—छी-छी: सदान्ना हमेशा फटे में पैर डालता है! चलो रे बच्चो, चलो. . .

और महार खुले बदन से रेती निकालने लगे-ऊपर से धूप, पेट के गड्ढे में भूख की आग. . .लेकिन पानी! . . .पानी ! ! ! पानी चाहिये था. पेट की, भूख की आग रोकने के लिए महार रुक-रुक कर खोद रहे थे. खुली पीठें झुलस रही थीं. पसीना बह रहा था.

—बच्चो, जरा आराम करो. . .बैठो. . .तमाखू खायें. . .

—सदान्ना, आराम नहीं, हराम नहीं. . .आराम बस ऊपर जाने पर ही. . . .

—अरे बाबा, इतना खोदकर फिर पत्थर कूटने पर जाना है. . .

—तुम खोदो भाई. . .मैं जरा बैठूंगा. . .मां कसम सात-आठ दिनों से छाती में दरद होता है. और सदान्ना तमाखू मलने लगा. बच्चे खोद रहे थे. जैसे-जैसे नमी लगती बल आ रहा था, जोश आ रहा था और मन संदेह से भरा जा रहा था. बच्चों का कहना मुश्किल था, वही कड़क कर बोलते थे.

—मां की. . .सदा करना भी नहीं चाहता और दूसरों को भी खुले मन से कोई काम नहीं करने देता.

बोले या न बोले इस कैंची में जकड़ा सदा बैठ गया था.

इतने में दाम्या चिल्लाकर बोला—अरे-अरे. . .रे. वह देखो पानी. . .तैयार नाली-सा झरना आया, . . और नाचते-हंसते ऊपर आया. सभी जमा होकर पानी की ओर देख रहे थे. तालियां बजाकर हंस रहे थे.

—अरे सदान्ना, देखते क्या हो. . .नारियल-गुलाल लाओ. . .भागो-भागो. . .लेकिन सदा बैठा रहा, देखता रहा.

—अरे ए सदा, मां की. . .उसे नदी की चुड़ैल तो नहीं दिखायी दी? अरे उठ, अरे ये, पानी तो देख. . . पानी, पानी. . .

—बच्चो, भगवान देता है लेकिन करम आड़े आते हैं. . .उसे क्या करें? हूंऽऽ, और सदा ने पच् से तमाखू थूक दी. भारी कदमों से वह झरने के पास आया. पानी को देखा. . .मन भर कर लहलहाया. . .लेकिन यह पानी रहेगा? पीने के लिए मिलेगा? आंखें सरीखी पानी पर तैर रही थीं और आंखों का पानी देख रही थीं. पल भर सदा वैसे ही खड़ा रहा. . .खंभे की तरह. . .आंखें नहीं ठहरती थीं. . .शीतल हो रही थीं. . .सारा तनबदन सिहर रहा था. हिलने-डुलने को मन नहीं होता—अकेलेपन से सदा बाहर आया और नीचे झरने में उतर कर पानी के किनारे बैठा. पेटू की तरह पेट भर भर के पानी पिया. संतोष से डकारें देता बाहर आया, गांव के रास्ते से चलने लगा.

गांव की पगडंडी की घास नंगे पैर को झुलसा रही थी. और सदा चल रहा था. मन में न जाने कौन-सी बातें खोज-खोज कर आती-जाती रहीं, उसे पागल कुत्ते की तरह तड़पाती रहीं.

—इसलिए मैं बार-बार बच्चों को बोल रहा था, बाबा. . .यहां झरना मत खोदो—अब नीचे की ओर गांव-वालों का झरना है. यह बच्चों को पता नहीं था. . . कल गांववाले भड़क गये तो. . .

सदा अपने ही मन से बोल रहा था. . .और रास्ता रोक कर चमरौटी में आया. . .घर के पास नीम के नीचे रुका. निश्वास छोड़कर फटे रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछा, खखारकर गला गीला किया, जेब से थैली निकाल कर तमाखू-चूना मलने लगा. . . . गांव से नारियल-गुलाल लाये संता ने आकर कुछ पूछा. सदा का ध्यान टूटा-मुंह में तमाखू डाल खखारकर बोला.

—हां. . .अभी-अभी-आकर बैठा हूं. . .बैठ जरा. . .

—सदान्ना, मुझे तुम्हारी बात जंचती थी लेकिन दस लोगों को कौन रोके? इसलिए चुप रहा.

पैर से मिट्टी साफ कर संता बैठ गया.

—अरे अभी गांव में गया था नारियल-गुलाल लाने तो भगा बनिया भड़क गया, यार.

—क्या कहा?

—भड़वो, झरना खोद कर आये हो लेकिन भरो, पानी कैसा भरते हो? मां की. . .हमारा पानी भ्रष्ट करने के लिए ऊपर ही अपनी . . .मां. . .ऐसा बोलते हुए दांत कटकटाने लगा.

—संतू, यही मेरे मन में आया था. . .चोखा को जरा कहा भी था लेकिन वह सभी मुझे लताड़ने लगे. . .कहा . . .करो कुछ भी. . . .जवान खून है तो क्या हुआ?

दोनों कुछ पल चुप. अचानक कहीं से एक अकेला कौआ कांव्. . .कांव्-चिल्लाया और सदा के सामने झूलती सूखी नीम की डाली पर बैठ गया. सदा की नजर नारियल से उड़कर कौओे की ओर गयी और अपने आप से वह बोला—क्यों बाबा, तेरा सराप सच्चा हो गया यार. . .और अब कौन-सा सराप देते हो? अरे बचे-खुचे जानवर मर गये. . .अब क्या रहा है? दो अब इस बचे-खुचे पानी को सराप!

सदा के बोल पर संता रोनी हंसी हंसने लगा—क्या बोले? फिर दोनों बारी-बारी से मुंह ताकने लगे. पल भर यही रहा—संता, जा नारियल चढ़ाकर तो आ, निश्वास छोड़कर सदा बोला और वहीं सो गया.

* *

दिन ढल गया. अंधेरा फैला . दिये जलने लगे. चूल्हे जले. बड़े आदमी खाना खाकर बोलने लगे. . . हमेशा सूने रहनेवाले रास्ते एक भाषा बोलने लगे.

—घेड़ों को मस्ती आ गयी.

—उन्होंने जानबूझ कर ऊपर की ओर झरना निकाला.

—बुलाओ सरपंच को. . .

—छि :-छि. . .खुद हम चलकर उनके घर क्यों जायें? घेड़ों को बुलाओ गांव में. . . .

—बुलावो-बुलावो! एक साथ चिल्लाहट.

रामा येसकर चमरौटी में निकला. उसका खरगोश-सा दिल घबड़ा गया. सदान्ना-संताजी चाचा, संभा भाई, चोखा चचेरा भाई—सभी रिश्तेदार जातिबंधु, कैसे बुलाये? क्या कहे? मैं येसकर गांव का नौकर! गांव का कहना मानना पड़ेगा लेकिन अब क्या करे? दिमाग में मधुमक्खियों का छाता फूट गया और मन पर भिनभिनाने लगा. . . धड़कता मन . . .

रामा के बदन में चलते-चलते पसीना छूट गया.

रामा कहां चले? गुनहगारों को बुलाने? तू कौन है? तुझे पानी नहीं चाहिये? मरने पर कौन कंधा

[illegible] [illegible] के सौजन्य से

जब चले
आराम की बात
कीजिये
एरोकॉम को
याद

'एरोकॉम' गद्दे और कुशन-गद्दियों में आराम व सुख-चैन का पूरा समाधान है। नर्म व गुदगुदे, बच्चों के मनभाये—मजबूती व सुदृढ़ता से बड़ों को भी ललचायें!

हजारों सूक्ष्म कॉयर के रेशों पर वैज्ञानिक विधि से लेटक्स रबर की परत चढ़ा कर नर्म व गुदगुदा बना लिया जाता है, इसीलिये तो इसकी रग रग में आपके आराम व सुख-चैन का ख्याल समाया है। वर्षों इस्तेमाल के बाद भी इनका आकार नही बिगड़ता। घर घर को आरामदेह बनायें—कम दाम में शान बढ़ायें, लम्बे समय तक साथ निभायें!

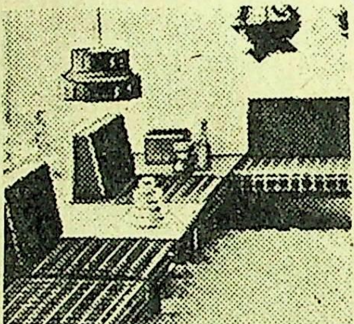

गद्दे, कुशन-गद्दिया, तकिये, बाथ मैट, कार्पेट अंडरलेज और फर्नीचर ब्लॉक से घर सजाइये—आरामदेह बनाइये।

व्यापार संबंधी पूछताछ आमन्त्रित है।

इन्डियन लेटक्स फॉइबर कार्पोरेशन,
३०, चितरंजन एवेन्यू,
कलकत्ता-१२.
फोन : २३-६४३२/२३-७३०८;
टेलेक्स : ०२१-७०९४
स्टील चेम्बर्स, भड़ोच स्ट्रीट, बम्बई-१.
फोन : ३२०२६०/६८/६९; ३६३०९८
टेलेक्स : ०११-३१६७
२३, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-६
फोन : २७-८५७१; टेलेक्स : ०३१-२०६६
२४, नॉर्थ बीच रोड, मद्रास-१.
फोन : २५-५४४; टेलेक्स : ०४१-७३२२.
फैक्टरी : सातशंख,
ज़िला : पुरी, उड़ीसा
फोन : साखीगोपाल २९.

देगा ? गांव वाले? फिर-फिर? . . .दुःख-दर्द में कौन आयेगा ? रामा चमरौटी में आया. [illegible] उसके बीच में खड़ा रहा. पागल सा हो गया.

—कौन खड़ा है रे—रामा दादा. . .अंधेरे में क्यों अकेले खड़े हो ? . . .संभा पास आया.

—संभा, गांव भड़क गया है तुम सब पर. तुम्हें सभी को बुलाया है चौपाल पर. . .रामा घुट-घुट कर लेकिन हिम्मत से बोला.

—क्या कहते हैं चौधरी? संभा बुदबुदाया.

—क्या कहते—अपने झिरे को पानी लगा और उनका शायद सूख रहा है.

—लेकिन वो झिरा तो पहले से सूख गया था. . .

—लेकिन तुमने जानबूझ कर झिरा भ्रष्ट करके ऊपर झिरा खोदा है. . .

—हूं, जाओ आगे! आते हैं कहो, जाओ. रामा वापस घूमा और संभा सदान्ना के पास गया.

रात को देर से बैठक जमी. एक ओर गांव वाले दूसरी ओर महार . . .धेड़, बीच में गैस बत्ती जल रही थी. गुटों-गुटों में बातचीत हुई और कुछ देर बाद चौधरी कड़कती आवाज में बोला—अरे -ए सदा–क्या किया तुमने? बच्चों को अच्छी राह बता कर देखते रहने की उम्र है तुम्हारी—या उनके दिमाग में गोबर मिलाने की?

—झिरे की बात करते हैं ना आप? सदा आगे बढ़ा.

—झिरे की नहीं–हमारी शादी की बात है. . .ये देखो-चौधरी तिरछे बोला और सभी खिलखिलाकर हंस पड़े. सदा शरमा गया. संभा के होठ दांतोंतले जा रहे थे. . .कान की पर्तें गर्म होने लगीं. . .

—ये झिरा खोदने को किसने कहा? नदी क्या तुम्हारे बाप की जागीर है? कल सरकार हमारी छाती पर बैठ जाये तो?

—अब आप ही कहें, हम पानी पियें तो कहां से पियें?

—नदी में झिरा खोदा इसका मतलब नदी बांध कर तो नहीं लाये हम. . . गांव वालों ने बड़े-बड़े पेड़ तोड़ डाले तब सरकार नहीं आयी और अब. . .संभा बड़ी मुश्किल से बोला.

—अजी सरपंच, ये सरकार के जंवाई हैं, इनका रूठना -मनाना आप नहीं करोगे तो कौन करेगा ?

चौधरी के कहने पर फिर हंसी का धमाका. . . पागलों की तरह.

—सदा, तुम ही बोलो, ऊपर के झिरे का भ्रष्ट पानी नीचे हमारे झिरे में नहीं आयेगा? फिर जानबूझकर यह बुरायी की है या नहीं ? भगा बनिया जल कर बोला .

पल भर सभी चुपचाप. मुंह से कान लगे —कान मुंह को—जलती हुई बत्ती की सूंऽऽसूं आवाज. . .बढ़ कर एक सूरने लगा–चौधरी ने एक-दो की ओर नजरें घुमायी. वे झट से उठ कर चल दिये–पल भर से भगा बनिया उठा–लोग कुलबुलाने लगे —चौधरी खंखार कर बोला—क्यों, सरपंच मुंह सिल गये क्या उनके? भगा क्या झूठ कहता है? जानबूझ कर ऊपर झिरा बनाया इन्होंने. . .इतनी देर मुट्ठी मींचे संभा भड़क कर बोला— यह बिल्कुल झूठ है! ऐसी नीचता हमारे सपने में भी नहीं थी. . .भड़के सदा को झट से खींच कर सदान्ना सबूरी से बो

—चौधरी इसकी बात दिल पर मत लाना. अपने समय की बात अभी नहीं रही–नहीं तो हम चौपाल की फर्श पर भी नहीं बैठते. . .बोलते-बोल सदान्ना ने संभा की चिमटी ली और संभा के पास बै

रामचंदर उछल कर बोला—अजी, अब तक पा से अपना बाट झर कर इस फरसी तक आ गया होग

—महारों के चार लड़के मुंह दबा कर हंसे अं बत्ती के पीछे गर्दन छुपाने लगे.

—अरे तुम्हारी ऐसी–तैसी. हमारा मजा उड़ाते हो?

—भंडवो! क्या समझते हो तुम? उठो-उठो सरपं सुनो इनकी बातें और लगाव मस्का!

फेंटा झटकते चौधरी उठा. दांत-होंठ मींच कर चल गया-महार सहम कर देखने लगे. मन से दब गये—मु कान से और कान मुंह से —भय कहने लगा . . .सभी दिल धड़कने लगे.

★ ★

रात ढल चली. ठंडी हवा चमरौटी में घुस आकाश साफ हो चला. झोपड़ी-झोपड़ी हिलने लगी बोलने लगी—मुर्गी खाने खुले और स्त्रियां मटकी ले क पगडंडी से चलीं. ताजा पानी, अपना पानी. . .मन नाच लगा. पेट के गड्ढे में. . .चलो-पानी ही सही! . . .कह लगे.

एक-एक बाई चली और कतार लग गयी.

सभी जाने वाली, आने वाली मटकी कहीं नज नहीं आयी. . .स्त्रियां बच्चे और मर्द. . .घर में जित बर्तन थे सब ले कर दौड़े थे. पूरी दौड़ . . .दौड़. . !

लेकिन सभी लोग नदी में -धुंधले उजाले में—झिर ढूंढ़ रहे थे. कोई नीचे, कोई ऊपर-गंगामुख रख संमुख-लेकिन झिरा नहीं मिल रहा था–सारी चमरौटी (महारवाड़ा) ढूंढ़ रहा है झिरा. . .पर वह कहां अटक गया ? कहां गया ? कहां गया पानी का झिरा ?

एक ही जगह जमा कर रखी हुई मटकियां आकाश में भूखे मुंह खोल कर पड़ी थीं—गर्दन से गर्दन मिलाये. . . पानी-पानी. . .कहते हुए ! !

□□□

दलित साहित्य : एक टिप्पणी

दलित साहित्य में मानवता, विज्ञान के प्रति निष्ठा और विद्रोह तीनों के दर्शन होते हैं. इनके मूल में जाया जाये तो पता चलेगा कि इनके पीछे व्यक्ति और समाज से संबद्ध मानवीय नैतिकता की प्रखर शक्ति काम कर रही है. मानवता इसी प्रखर शक्ति का नाम है. विज्ञान के प्रति निष्ठा का अर्थ है जादू-टोना, पाप-पुण्य और अज्ञान का सशक्त विरोध और विद्रोह का अर्थ है आज की बाजारू ऊंच-नीच प्रवर्तक हिंसक समाज व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति.

—वि. के. बेडेकर

केशव मेश्राम ★ पत्तल

गुरों की झंकार अखंडरूप से जारी थी. बीच-बीच में पगलाए-से कुत्ते जान की बाजी लगाकर भौंक ते थे. अंधेरे में डूबे मुतहा पेड़ों पर कुछ विचित्र सर- हट होती और फिर एकाध पक्षी चीत्कारता, फड़- ाता तीर-सा उड़ जाता. क्षण भर अजीब शांति फैल ती. जुगनू भरमाए-से ऊपर-नीचे होते रहते और फिर से झींगुरों की एक सुर में आवाज शुरू हो ती .

मिल से रातपारी के लोग अभी-अभी लौटे थे. दत के मुताबिक वे अब खा-पीकर सोने की तैयारी थे. कोई-कोई खाट पर बैठा भक-भक कर चिलम धुआं उड़ा रहा था. आधी रात में अब मिलिंद नगर चेतना धीरे-धीरे बुझ रही थी. कोई-कोई अभी तक गवान. . .हे भगवान' का स्मरण लेटे-लेटे ही किये जा ा था. सात-आठ घंटे बुनाई मशीन के सामने खड़े कर धागे जोड़ने से आंखे जल रही थीं, शरीर में होता था और पांवों की ऐंठन से लोग 'राम. . .रे, कर बिस्तर पर हाथ-पांव पटकते थे. शेष सभी को द के अजगर ने धीरे-धीरे निगल लिया. . . अब लिंद नगर एकदम शांत था.

घुंघरुओं की आवाज करती साइकिल-रिक्शा मिलिंद र के एक कोने पर आ चुकी. यों भी भीतर आने के ए रास्ता न होने से रिक्शा वहीं तक आ सकती थी. सना नीचे उतरा, पर रिक्शा दूर लौट जाने पर उसने घेरे में जोरदार जमुहाई ली और आलस झटक दिया. फी दिनों से मन में आयोजित योजना पक्की कर वह स कुबेला में वापस आया था. ढाई-तीन महीनों से सके मन पर पड़ा भारी बोझ उतर गया जान पड़ता ा. उसने फिर से इधर-उधर देखा और दूसरी ओर थत अपने घर की ओर चल पड़ा. सारा मिलिंद नगर रान और बेजान लग रहा था. टेढ़े-मेढ़े घर अंधेरे में चित्र लगते थे. सर्दी-गर्मी से बचने और रैन बसेरे लिए ही ये घर बनाए गए थे. विशेषकर बस्ती के स छोर पर मांगों (एक अस्पृश्य हरिजन जमात) के पांच-सात घर तो डरावने और उदास लगते थे. कसना कुछ आगे आया. एक घर के चबूतरे के ामने आने पर उसकी गति अपने आप धीमी ी गयी. सीने की धड़कन बढ़ गयी. बिजली-सा एक मत्कारी प्रवाह धड़कता हुआ उसके सारे शरीर से ोकर निकल गया. उसमें डर था, घिन थी. शर्म भी ी और आसक्ति भी थी. उसके कदम अनजाने सम्हल ाए. उसने उस पर घर की ओर पेट से गिरने वाले जंतु की भांति देखा. मन ही मन बड़बड़ाया—साली टांगे फैलाकर सोई होगी. एक उच्छ्वास ले कर उसने गर्दन को झटका दिया और फिर उसके अनुभवी पांव अंधेरा कुचलते अपने खुद के घर की ओर चल पड़े.

किसना तीस-पैंतीस साल का गबरू जवान था उस बस्ती में खा-पीकर मस्त रहनेवाले जो गिने-चुने घर थे, उनमें पहला घर किसना का ही था. काफी जमीन-जायदाद थी. आम के पेड़ थे. संतरे के बाग थे. पचास-साठ मील दूर स्थित इस सारे ऐश्वर्य का वह अकेला मालिक था. बूढ़े मां-बाप अभी तक जीवित थे. वे गांव में अपने इकलौते बेटे के लिए माया बटोर रहे थे. मिलिंद नगर में ऐसा कुछ न था जो किसना के पैर बांधे रखता. सारी महारों, मांगों की बस्ती थी. अधिकांश लोग मिल में काम करते थे. दिन पारी, रात पारी, दस तारीख को वेतन, पच्चीस को एडवांस, रविवार को बाजार-हाट. . .उस दिन बस्ती में मटन की जोरदार बास छा जाती, ज्यादातर बाप-बेटे ऊंचे कर्कश स्वरों में बोल उठते. स्तनों को नोचने वाले बच्चों को सम्हाले, गर्भ से लटके पेट को ढांकने की खास फिक्र न करनेवाली स्त्रियां हाथ-नचा-नचा कर एक दूसरों को जीभर गालियां देतीं. कभी बीच में चूल्हे पर उबलनेवाले मटन का अंदाज लेकर 'हरजाई, कमीनी, रंडी. . .' जैसे शब्दों की बौछार करती रहती थीं. शायद ही कोई रविवार ऐसा बीता हो जब कि दो-एक लोगों को खून बहने तक मार न पड़ी हो.

किसना गांव का होते हुए भी गांव का नहीं था. उसका खाना-पीना दीवारों के भीतर सीमित रहता था. उसके घर का किसी से कोई काम न पड़ता था, उल्टे वह मिलिंद नगर में ब्याज पर पैसे उठाता था. लोग उसे किसना सेठ के रूप में ही जानते थे. कभी कोई शराब की सनक में किसना को भी गाली दे जाता. बात यह थी कि किसना के बच्चे बचते नहीं थे. उसके घर चार-पांच वार प्रसव हुए थे लेकिन दस-बारह दिनों में ही बच्चे को मिट्टी को ओट करना पड़ता था. टोटके-टूनगो, दवा-दारू सभी तो उपाय किये गए थे लेकिन होनी नहीं टली थी. गांव के सयाने लोगों की दूसरी औरत लाने की सलाह वह मानता नहीं था. यशवदी के मायके में यानी उसकी ससुराल में उसका छोटा साला निम पागल था. दूसरी शादी करने पर ससुराल का मलीदा डूब जाता . दो-चार किताबें पढ़ा किसना यों विचारवान था. लेकिन लोगबाग इस कमी को उजागर करते थे. 'बच्चे बचें तो कैसे ! बाप-दादों का पाप का पैसा गांव के साथ चल नहीं सकता. अपना ही रुआब. . . . नतीजा और क्या होगा!' कुछ दिन तो किसना सहन

करता रहा, फिर शहर से पांच-सात तगड़े गुंडे लाकर गाली-गलौज करने वालों की हड्डी खींच कर नरम की. पुलिस में रपट लिखाकर, इंस्पेक्टर को दस-दस के कुछ नोट देकर आठ-दस दिन के लिए कुछ लोगों को हवालात में रखवा दिया. तभी से कोई उसके रास्ते न जाता था.

कई बार उसके मन में आया था कि ऐसी जगह छोड़ कर शहर की अच्छी, पक्की जगह में जाकर रहे. उसने प्रयत्न भी किया था. लेकिन वहां उसकी जाति का पता चलने पर उसका ठीक से उठना-बैठना भी कठिन हो गया था. तब उसे फिर से अपने मिलिंद नगर वाले बड़े घर में लौट आना पड़ा था.

* *

गत वर्ष से किसना एक नयी उलझन में फंस गया था. यश्वदी के पांचवें प्रसव के समय हमेशा की दाई बूढ़ी अनशी मालिश और टहल के लिए आती थी. बच्ची मर जाने से उसकी पत्नी पहले ही अधमरी हो चुकी थी, फिर उधर उसकी मां काफी बीमार थी. बूढ़ी अनशी का ही किसना को सहारा था.

अनशी अब एकदम बूढ़ी हो चुकी थीं. दमे की बीमारी से वह और भी बेजार थी. इधर पांच-सात महीने पहले अनशी पर संकट का पहाड़ टूट पड़ा था. उसकी इकलौती बेटी शिती उसके आश्रय में आयी थी. उसका पति और दो छोटे बच्चे पूर्णा नदी की बाढ़ में बह गए थे. उसका पति प्रवाह में बहता लट्ठा रोकने के लिए पानी में घुसा था. किनारे पर भीगते बैठे बच्चे बारीक आंखों से बाप की करामात देख रहे थे. शिती 'ग्रहण' मांगने गयी थी. . . .और बच्चे जिस मिट्टी की कछार पर बैठे

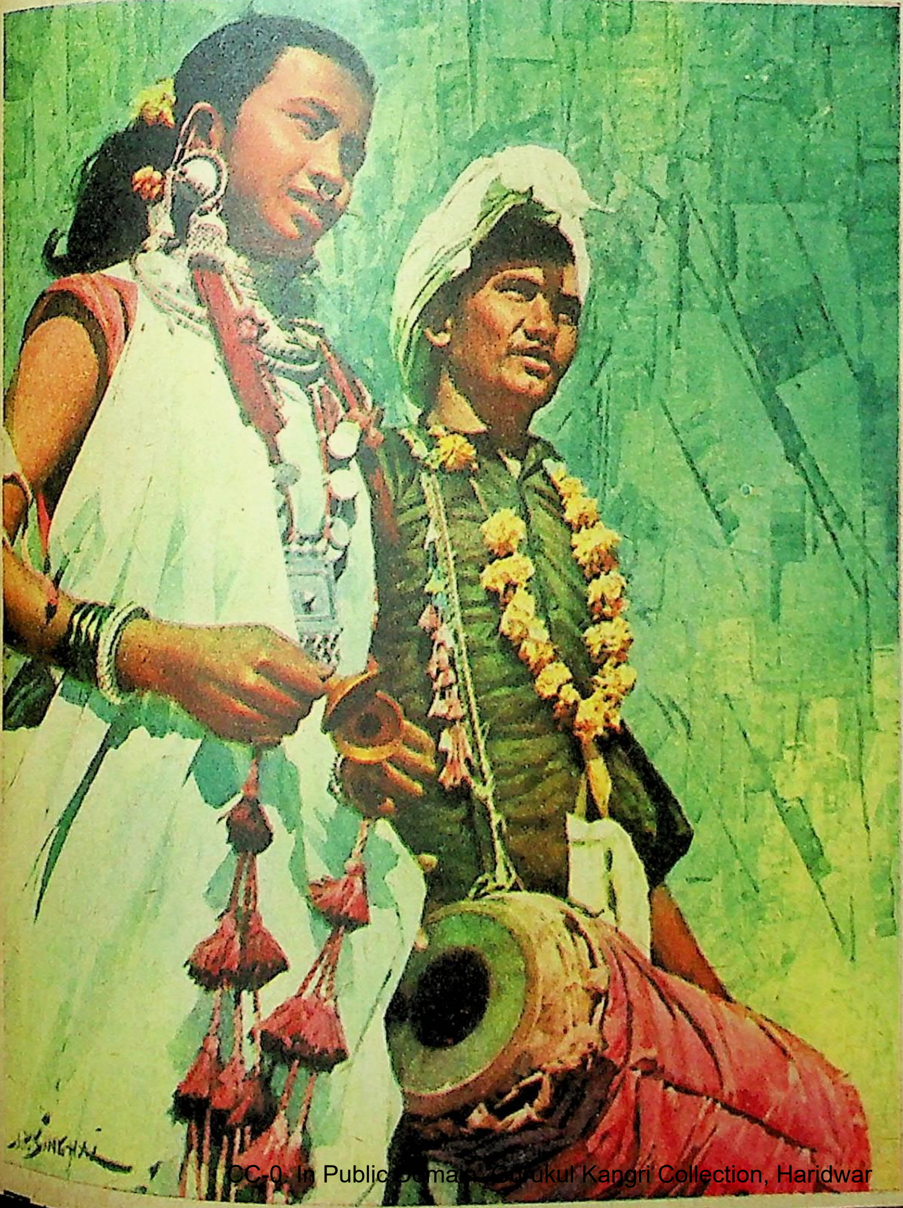

अडवानी आर्लीकाल के सौजन्य से

थे, वह एकाएक ढह गयी. बच्चे जोर से चीखे. बीच नदी में चट्टान की ओट में खड़ा उसका पति सपाटे से बच्चों को बचाने के लिए लपका था. लेकिन सामने से बहता हुआ बबूल का तना उसके जबड़े पर टकराया और वह स्वयं बह उठा. 'मांग डूब गया' की चीख पुकार फैली. दो-एक अव्वल तैराक थे, लेकिन मांगों को छुए कौन? आगे कहीं किनारे लग ही जाएंगे. सब वापस लौट पड़े. मांगों के घरों पर तो आफत टूट पड़ी थी. शिती के शोक की सीमा न थी. तीन साल के दूसरे लड़के और पति की लाशें कहीं किनारे आ लगी थीं. एक लड़के का क्या हुआ, कुछ पता न चला. गांव से पंद्रह-बीस मील दूर कहीं उसने अपने पति को मिट्टी दी और वह अनशी के घर यानी मां के घर आ गयी. अनशी और शिती तीन-चार दिन तक जोर-जोर से रोती रहीं लेकिन रो कर पेट तो भरनेवाला नहीं था. बूढ़ी अनशी को अपना ही पेट भरना दूभर था, ऊपर से शिती आ गयी थी. घुटनों पर हाथ धरे अल्यूमीनियम का पतीला लिये अनशी मांगने जाती. उस मौके पर किसना ने यश्वदी की उतरी तीन साड़ियां और चोलियां बूढ़ी को ला दी थीं. मिलिंद नगर के अधिकांश घर बस किसी तरह जी भर रहे थे. उन्हें मांगों के घरों के सुख-दुःख से मतलब न था. सड़ा-बासा, दाना-पानी, पैसा-धेला मिलने के लिए अनशी को एक ही घर था, किसना का! उसे वह देवता जान पड़ता. यही बुढ़िया किसना के बच्चे मरने के कारण भगवान को मोटी-मोटी गालियां दिया करती थी. और चूंकि बुढ़िया का किसना के घर से ज्यादा अपनापन था इसलिए बाकी घरों से उसे अधिक कुछ न मिलता.

जब शिती रांड होकर आयी तो अनशी बूढ़ी तो एकदम पगला ही गयी थी. लेकिन उसके मन में कुछ समाधान भी था. उसके मन में यह स्वार्थी विचार आया कि अब अगर मैंने दुःख-बीमारी में जमीन पकड़ ली तो बच्ची सम्हाल तो लेगी. शिती आने पर भी महीने भर तक बाहर की सारी दौड़ अनशी ही करती रही. फिर शिती भी उसके साथ बाहर आने-जाने लगी थी. उसने अपनी मां से, प्रसव कराने की, रक्त से सने हाथ निर्विकार रूप से साफ करने की, गर्भ से बाहर पड़नेवाला प्राणी के चारों ओर लिपटी नाल छुरी से सहज निःसंकोच काटने की, जच्चा की मालिश करते-करते थोड़ा तेल निकाल लेने की, बच्चे के कान में नारियल का तेल डालते समय हाथ-पांवों में चुपड़ लेने की, और कपास के बड़े फाहे में नारियल का तेल सोखकर नागबेल के पत्ते में लपेट ला कर घर के दिये में निचोड़ने की विद्या भलीभांति सीख ली थी. चिकनी सुपारी, अजवायन, गरी, गुड़ की भेली कभी मांग कर और कभी चुपचाप घर लाने तथा प्रसव उलझनपूर्ण न होने पर भी भागदौड़ कर या चिढ़कर वातावरण में सरगर्मी पैदा करने की कला में भी अब शिती सिद्धि पा चुकी थी.

यह सब उसने चार-पांच महीनों की अवधि में हुए आठ-दस प्रसवों से सीख लिया था. लेकिन अभी तक किसी ने उलझे जच्चा को छुड़ाने के लिए खुद शिती को कभी न बुलाया था, इसलिए उसका मन कड़ुवा था. मां अब कितने दिनों की साथी है? एकाध दिन उसका भला-बुरा होने पर अपना क्या होगा? बस्ती पांच-सात घरों की है. घर बसाने की सोचे तो यहां सभी बासी टुकड़ों तक के मोहताज ठहरे. . .उसके मन में इन विचारों की भीड़ लगी रहती . मां के साथ वह किसना के घर जाती रहती थी.

* *

उस दिन बूढ़ी अनशी को भोर से ही हरारत थी. किसना के घर पांचवी बार हुई बच्ची को जिलाने के लिए अनशी ने अपने सारे पैंतरे दांव पर लगाए थे. उसने अपने अन्नदाता की घरवाली की बड़े मन से सेवा की थी, इतनी सेवा कि बच्ची के दुःख से कातर यश्वदी तक ने कहा था—— तू बिचारी क्या करती. तूने कौन-सा कष्ट उठा रखा, लेकिन मेरे भाग में ही संतान नहीं... प्रसव के बाद जच्चा की दो-ढ़ाई महीने देखभाल और मालिश करा सकने की हैसियत मिलिंद नगर के एक ही घर की थी. किसना दुःखी पत्नी को किसी बात की कमी न पड़ने देता था. बुखार से तपती बूढ़ी अनशी अपनी नयी विधवा हुई बेटी को कहीं अकेली न भेजती लेकिन किसना के यहां तो जाना ही था. उस दिन शिती गयी और उसने बूढ़ी मां के कमजोर हाथों की मालिश की अपेक्षा जच्चा को कहीं अधिक सुख दिया. यश्वदी शिती पर एकदम खुश हो गयी . आज उसकी नस-नस तेल पीकर तृप्त हो चुकी थी. उसने खुश होकर शिती को अपने घर बनी मुर्गी की गरेबी दी. गेहूं के आटे की तेल चुपड़ी रोटी और मुर्गी की गरेबी शिती और अनशी ने पेट भर खाया.

आठ-दस दिन में यश्वदी चूल्हे के पास बैठी-बैठी थोड़ा-बहुत काम करने लगी थी. किसना की चचाजात बहन अपने गांव लौट चुकी थी. अच्छा खाने की इच्छा होने पर किसना करीम के, होटल से डिब्बा भरवा लाता, बाकी बचता सो शिती को दे दिया जाता. वह भरपेट खाती. जन्म से कभी ऐसा खाना तो मिला नहीं था.

अब अनशी की तबीयत भी कुछ सुधर चली थी. लेकिन तीन-चार दिन मिला सुख और अच्छे अन्न की सुस्ती उसे उठने न देती थी. बोली——अब तू ही जाया कर, मैं पूरी तरह अच्छी नहीं हो पायी. मां के स्वीकार कर लेने पर शिती मन में आनंदित हो उठी थी.

अब उसे भी आत्मविश्वास हो चला था. कभी-कभार उसे अपनी सात-आठ साल की गृहस्थी की याद हो आती तो एक उदासीनता भर जाती. अब दूसरों की मेहरबानी पर ही जीना होगा, वह अपने मन को समझाती. उसके चार-पांच घंटे तो किसना के ही घर बीतते थे. कपड़े धोना, बर्तन मलना, साफ-सफाई, अनाज पीसना, और मालिश आदि कितने ही काम वह किया करती थी. मालिश के बाद यश्वदी अपने पलंग पर गहरी नींद सो जाती. शिती का काम चलता रहता. किसना के नहाने के लिए वही पानी भी तपाती थी और ऐसे ही...

एक बार

—किस्ना दा लट्ठे कहां रखे हैं? उसके नहाने का पानी चूल्हे पर चढ़ाते समय शिती ने पूछा.

—पीछे की पौर में हैं, ले ले. उसने चबूतरे पर बैठे-बैठे नीम की दतून चबाते हुए कहा.

शिती ने दो-तीन दरवाजे खोलकर देखे लेकिन ईंधन की लकड़ी कहीं दिखाई न दी. उसने फिर से किसना के नाम की पुकार लगायी. 'आया आया' कहता किसना भीतर गया और बिलकुल परले सिरे की एक पौर खोल कर उसे लकड़ियों का ढेर दिखाया. लकड़ियों का इतना बड़ा, साल भर तक चलनेवाला अंबार देखकर शिती चकरा गयी. वह भीतर घुसकर झुककर लकड़ी निकालने लगी. किसना ने दो-चार बार भीतर-बाहर के चक्कर लगाए और फिर उसके दोनों पंजों ने शिती के स्तनों को समेट लिया. क्षणभर वह चकरायी, घबड़ायी. लेकिन किसना के गोरे, चिट्टे मर्दाने आलिंगन में अपने आप निढाल हो गयी—छोड़ो न, कोई आ जाए तो, मामी क्या कहेगी. . .? उसके ओठों से अपने ओठ छुड़ाती वह किसी तरह बोली. किसना ने उसकी साड़ी की कांच खोली जो एक लकड़ी में फंस गयी थी. उसकी देह एक पढ़े-लिखे आदमी द्वारा शालीनता से, धीमे से भोगी जा रही थी. वह तृप्ति से बौरा रही थी.

ज्वार उतर जाने पर किसना बहुत शर्मिदा हुआ. . . अगर वह जरा भी प्रतिकार करती तो. . .तो ऐसा कुछ होता ही नहीं. उसकी पृष्ठाकृति से वह असंयमी बन गया था. ग्लानि के स्वर में बोला—शिती, यह मैंने अच्छा नहीं किया, मुझे ही मेरी लाज आती है. शिती ने उसकी ओर विचित्र दृष्टि से देखा. धोती की तिन्नियां डाल कछौटा मारा. चोली की गांठ संवारी. आंचल से चेहरे का पसीना पोंछा और हंसते हुए धीमी लेकिन साफ आवाज में बोली—क्या अच्छा-बुरा लिये बैठे हो, जिसका दानी-पानी उसे मिल गया. . .और किसना के गोरे उघाड़े शरीर की तरफ देखते हुए लकड़ियां उठाये उसका मोर्चा चूल्हे की ओर मुड़ गया.

किसना और शिती के बीच यह नया नाता न केवल निर्मित हुआ वरन अब किसना अपने शरीर की मांग को सब कुछ समर्पित करनेवाली शिती की यश्वदी से तुलना करने लगा. आठ-दस दिन में एक बार संपर्क में आए बिना अब उन्हें चैन न मिलता.

अच्छे खाने-पीने का रंग शिती के शरीर पर चढ़ता जा रहा था. प्रकृति ने भी उसे किसी कठिनाई में नहीं डाला था, कि सिवाय बूढ़ी अनशी की उसके मासचक्र पर कड़ी नजर थी. बेफिक्री और सहजता से उनकी दुनिया चल रही थी. यश्वदी को छठवीं बार गर्भ रहने पर किसना ने उसका अलग तरह से प्रबंध करना निश्चित किया था. इस बार उसे गांव या उसके नैहर में न रखकर अलीचपुर में रहनेवाले यश्वदी के मामा के यहां अस्पताल में प्रसव कराने की बात निश्चित की गयी. जब पांचवां महीना बीता तो वह औरत को एलीचपुर पहुंचा आया.

अनशी और शिती ने उसे समझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया लेकिन उसने किसी की न सुनी. अनशी को अपनी आमदनी डूबने और दो-तीन महीने के ठाठ लुट जाने का दुःख था. किसना बुढ़िया को खूब जानता था. उसने बूढ़ी अनशी से कहा—बुढ़िया, फिक्र क्यों करती है? कोई कमी न पड़ने दूंगा. तुम या शिती पहले की तरह झाड़ने-बुहारने के लिए आती रहो. मैं पैसे दूंगा. तुम दोनों का काम चलता रहेगा. ठीक है? उसके दयालु शब्दों की बारिश से अनशी का मन सराबोर हो उठा. . .और शिती ने कल्पना की आंखों से भारी-भरकम पलंग के नरम गद्दे पर पड़ा अपना विवस्त्र शरीर देखा.

कैलाश मेश्राम : कवि और कहानीकार

शुरू-शुरू में शिती सुबह या दोपहर में जाती और पांच मिनट में लौट आती. कहती—वे सोए हैं. अनशी सोचती कहीं इस तरह वे 'ना' न कर दें. वह शिती के पास रिरयाती—क्यों री, अच्छा खाने-पीने को मिलने लगा तो मस्ती चढ़ आयी क्या?

शिती भी शिकायत के स्वर में कहती—ओ मां, उनके बर्तन रात को होते हैं. मुझे अंधेरे में कुत्तों का बड़ा डर लगता है.

—अरे बेटी, अपना घर समझ कर काम करना चाहिए. वह तो भगवान का औतार समझो. तुम्हारे भाई जैसा है. देर होने पर तुम्हें छोड़ जाया करेगा. वह कहां गांववालों को घास डालता है.

फिर शिती इस तरह किसना के घर जाती जैसे अनशी के कहने से ही उसे जाना पड़ रहा हो. मुलायम गद्दों, पर, दिये की रोशनी में खुलकर शरीर लुटाकर, अन्न, पैसे, कपड़ा आदि लेकर तृप्त मन और शरीर के साथ वापस लौटती. शिती और किसना की इच्छा होती कि रात भर आलिंगनबद्ध हो लेटे रहें.

जब शिती ने किसना को बताया कि गत दो महीनों से उसका मासचक्र चूक गया है तो उसकी नींद हवा हो गयी. अगले वाक्य से तो वह डगमगा ही गया था. शिती ने कहा था—मुझे तो अच्छा घर चाहिए ही था. आकर तुम्हारे पैरों के पास रहूंगी. तुम्हारे लोग भी दो दिन बड़बड़ा कर चुप बैठेंगे.

किसना का सीना धड़क उठा था. मन विचित्र दृश्य दिखा रहा था. मस्तिष्क तेजी से अपने काम में लगा था. चिंता का घूंट निगलकर वह सहज शब्दों

थे, वह एकाएक ढह गयी. बच्चे जोर से चीखे. बीच नदी में चट्टान की ओट में खड़ा उसका पति सपाटे से बच्चों को बचाने के लिए लपका था. लेकिन सामने से बहता हुआ बबूल का तना उसके जबड़े पर टकराया और वह स्वयं बह उठा. 'मांग डूब गया' की चीख पुकार फैली. दो-एक अव्वल तैराक थे, लेकिन मांगों को छुए कौन? आगे कहीं किनारे लग ही जाएंगे. सब वापस लौट पड़े. मांगों के घरों पर तो आफत टूट पड़ी थी. शिती के शोक की सीमा न थी. तीन साल के दूसरे लड़के और पति की लाशें कहीं किनारे आ लगी थीं. एक लड़के का क्या हुआ, कुछ पता न चला. गांव से पंद्रह-बीस मील दूर कहीं उसने अपने पति को मिट्टी दी और वह अनशी के घर यानी मां के घर आ गयी. अनशी और शिती तीन-चार दिन तक जोर-जोर से रोती रहीं लेकिन रो कर पेट तो भरनेवाला नहीं था. बूढ़ी अनशी को अपना ही पेट भरना दूभर था, ऊपर से शिती आ गयी थी. घुटनों पर हाथ धरे अल्यूमीनियम का पतीला लिये अनशी मांगने जाती. उस मौके पर किसना ने यश्वदी की उतरी तीन साड़ियां और चोलियां बूढ़ी को ला दी थीं. मिलिंद नगर के अधिकांश घर बस किसी तरह जी भर रहे थे. उन्हें मांगों के घरों के सुख-दु:ख से मतलब न था. सड़ा-बासा, दाना-पानी, पैसा-धेला मिलने के लिए अनशी को एक ही घर था, किसना का! उसे वह देवता जान पड़ता. यही बुढ़िया किसना के बच्चे मरने के कारण भगवान को मोटी-मोटी गालियां दिया करती थी. और चूंकि बुढ़िया का किसना के घर से ज्यादा अपनापन था इसलिए बाकी घरों से उसे अधिक कुछ न मिलता.

जब शिती रांड होकर आयी तो अनशी बूढ़ी तो एकदम पगला ही गयी थी. लेकिन उसके मन में कुछ समाधान भी था. उसके मन में यह स्वार्थी विचार आया कि अब अगर मैंने दु:ख-बीमारी में जमीन पकड़ ली तो बच्ची सम्हाल तो लेगी. शिती आने पर भी महीने भर तक बाहर की सारी दौड़ अनशी ही करती रही. फिर शिती भी उसके साथ बाहर आने-जाने लगी थी. उसने अपनी मां से, प्रसव कराने की, रक्त से सने हाथ निर्विकार रूप से साफ करने की, गर्भ से बाहर पड़नेवाला प्राणी के चारों ओर लिपटी नाल छुरी से सहज नि:संकोच काटने की, जच्चा की मालिश करते-करते थोड़ा तेल निकाल लेने की, बच्चे के कान में नारियल का तेल डालते समय हाथ-पांवों में चुपड़ लेने की, और कपास के बड़े फाहे में नारियल का तेल सोखकर नागबेल के पत्ते में लपेट ला कर घर के दिये में निचोड़ने की विद्या भलीभांति सीख ली थी. चिकनी सुपारी, अजवायन, गरी, गुड़ की भेली कभी मांग कर और कभी चुपचाप घर लाने तथा प्रसव उलझनपूर्ण न होने पर भी भागदौड़ कर या चिढ़कर वातावरण में सरगर्मी पैदा करने की कला में भी अब शिती सिद्धि पा चुकी थी.

यह सब उसने चार-पांच महीनों की अवधि में हुए आठ-दस प्रसवों से सीख लिया था. लेकिन अभी तक किसी ने उलझे जच्चा को छुड़ाने के लिए खुद शिती को कभी न बुलाया था, इसलिए उसका मन कड़ुवा था. मां अब कितने दिनों की साथी है? एकाध दिन उसका भला-बुरा होने पर अपना क्या होगा? बस्ती पांच-सात घरों की है. घर बसाने की सोचे तो यहां सभी बासी टुकड़ों तक के मोहताज ठहरे. . .उसके मन में इन विचारों की भीड़ लगी रहती . मां के साथ वह किसना के घर जाती रहती थी.

* *

उस दिन बूढ़ी अनशी को भोर से ही हरारत थी. किसना के घर पांचवी बार हुई बच्ची को जिलाने के लिए अनशी ने अपने सारे पैंतरे दांव पर लगाए थे. उसने अपने अन्नदाता की घरवाली की बड़े मन से सेवा की थी, इतनी सेवा कि बच्ची के दु:ख से कातर यश्वदी तक ने कहा था—— तू बिचारी क्या करती. तूने कौन-सा कष्ट उठा रखा, लेकिन मेरे भाग में ही संतान नहीं... प्रसव के बाद जच्चा की दो-ढ़ाई महीने देखभाल और मालिश करा सकने की हैसियत मिलिंद नगर के एक ही घर की थी. किसना दु:खी पत्नी को किसी बात की कमी न पड़ने देता था. बुखार से तपती बूढ़ी अनशी अपनी नयी विधवा हुई बेटी को कहीं अकेली न भेजती लेकिन किसना के यहां तो जाना ही था. उस दिन शिती गयी और उसने बूढ़ी मां के कमजोर हाथों की मालिश की अपेक्षा जच्चा को कहीं अधिक सुख दिया. यश्वदी शिती पर एकदम खुश हो गयी . आज उसकी नस-नस तेल पीकर तृप्त हो चुकी थी. उसने खुश होकर शिती को अपने घर बनी मुर्गी की गरेबी दी. गेहूं के आटे की तेल चुपड़ी रोटी और मुर्गी की गरेबी शिती और अनशी ने पेट भर खाया.

आठ-दस दिन में यश्वदी चूल्हे के पास बैठी-बैठी थोड़ा-बहुत काम करने लगी थी. किसना की चचाजात बहन अपने गांव लौट चुकी थी. अच्छा खाने की इच्छा होने पर किसना करीम के, होटल से डिब्बा भरवा लाता, बाकी बचता सो शिती को दे दिया जाता. वह भरपेट खाती. जन्म से कभी ऐसा खाना तो मिला नहीं था.

अब अनशी की तबीयत भी कुछ सुधर चली थी. लेकिन तीन-चार दिन मिला सुख और अच्छे अन्न की सुस्ती उसे उठने न देती थी. बोली——अब तू ही जाया कर, मैं पूरी तरह अच्छी नहीं हो पायी. मां के स्वीकार कर लेने पर शिती मन में आनंदित हो उठी थी.

अब उसे भी आत्मविश्वास हो चला था. कभी-कभार उसे अपनी सात-आठ साल की गृहस्थी की याद हो आती तो एक उदासीनता भर जाती. अब दूसरों की मेहरबानी पर ही जीना होगा, वह अपने मन को समझाती, उसके चार-पांच घंटे तो किसना के ही घर बीतते थे. कपड़े धोना, बर्तन मलना, साफ-सफाई, अनाज पीसना, और मालिश आदि कितने ही काम वह किया करती थी. मालिश के बाद यश्वदी अपने पलंग पर गहरी नींद सो जाती. शिती का काम चलता रहता. किसना के नहाने के लिए वही पानी भी तपाती थी और ऐसे ही... एक बार.

—किस्ना दा लट्ठे कहां रखे हैं? उसके नहाने का पानी चूल्हे पर चढ़ाते समय शिती ने पूछा.

—पीछे की पौर में हैं, ले ले. उसने चबूतरे पर बैठे-बैठे नीम की दतून चबाते हुए कहा.

शिती ने दो-तीन दरवाजे खोलकर देखे लेकिन ईंधन की लकड़ी कहीं दिखाई न दी. उसने फिर से किसना के नाम की पुकार लगायी. 'आया आया' कहता किसना भीतर गया और बिलकुल परले सिरे की एक पौर खोल कर उसे लकड़ियों का ढेर दिखाया. लकड़ियों का इतना बड़ा, साल भर तक चलनेवाला अंबार देखकर शिती चकरा गयी. वह भीतर घुसकर झुककर लकड़ी निकालने लगी. किसना ने दो-चार बार भीतर-बाहर के चक्कर लगाए और फिर उसके दोनों पंजों ने शिती के स्तनों को समेट लिया. क्षणभर वह चकरायी, घबड़ायी. लेकिन किसना के गोरे, चिट्टे मर्दाने आलिंगन में अपने आप निढाल हो गयी—छोड़ो न, कोई आ जाए तो, भाभी क्या कहेगी. . .? उसके ओठों से अपने ओंठ छुड़ाती वह किसी तरह बोली. किसना ने उसकी साड़ी की कांच खोली जो एक लकड़ी में फंस गयी थी. उसकी देह एक पढ़े-लिखे आदमी द्वारा शालीनता से, धीमे से भोगी जा रही थी. वह तृप्ति मे बौरा रही थी.

ज्वार उतर जाने पर किसना बहुत शर्मिंदा हुआ. . . अगर वह जरा भी प्रतिकार करती तो. . .तो ऐसा कुछ होता ही नहीं. उसकी पृष्ठाकृति से वह असंयमी बन गया था. ग्लानि के स्वर में बोला—शिती, यह मैंने अच्छा नहीं किया, मुझे ही मेरी लाज आती है. शिती ने उसकी ओर विचित्र दृष्टि से देखा. धोती की तिन्नियां डाल कछौटा मारा. चोली की गांठ संवारी. आंचल से चेहरे का पसीना पोंछा और हंसते हुए धीमी लेकिन साफ आवाज में बोली—क्या अच्छा-बुरा लिये बैठे हो, जिसका दानी-पानी उसे मिल गया. . .और किसना के गोरे उघाड़े शरीर की तरफ देखते हुए लकड़ियां उठाये उसका मोर्चा चूल्हे की ओर मुड़ गया.

किसना और शिती के बीच यह नया नाता न केवल निर्मित हुआ वरन अब किसना अपने शरीर की मांग को सब कुछ समर्पित करनेवाली शिती की यश्वदी से तुलना करने लगा. आठ-दस दिन में एक बार संपर्क में आए बिना अब उन्हें चैन न मिलता.

अच्छे खाने-पीने का रंग शिती के शरीर पर चढ़ता जा रहा था. प्रकृति ने भी उसे किसी कठिनाई में नहीं डाला था, कि सिवाय बूढ़ी अनशी की उसके मासचक्र पर कड़ी नजर थी. बेफिक्री और सहजता से उनकी दुनिया चल रही थी. यश्वदी को छठवीं बार गर्भ रहने पर किसना ने उसका अलग तरह से प्रबंध करना निश्चित किया था. इस बार उसे गांव या उसके नैहर में न रखकर अलीचपुर में रहनेवाले यश्वदी के मामा के यहां अस्पताल में प्रसव कराने की बात निश्चित की गयी. जब पांचवां महीना बीता तो वह औरत को एलीचपुर पहुंचा आया.

अनशी और शिती ने उसे समझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया लेकिन उसने किसी की न सुनी. अनशी को अपनी आमदनी डूबने और दो-तीन महीने के ठाठ

कैलाश मेश्राम :
कवि और कहानीकार

लुट जाने का दुःख था. किसना बुढ़िया को खूब जानता था. उसने बूढ़ी अनशी से कहा—बुढ़िया, फिक्र क्यों करती ह? कोई कमी न पड़ने दूंगा. तुम या शिती पहले की तरह झाड़ने-बुहारने के लिए आती रहो. मैं पैसे दूंगा. तुम दोनों का काम चलता रहेगा. ठीक है? उसके दयालु शब्दों की बारिश से अनशी का मन सराबोर हो उठा. . .और शिती ने कल्पना की आंखों से भारी-भरकम पलंग के नरम गद्दे पर पड़ा अपना विवस्त्र शरीर देखा.

शुरू-शुरू में शिती सुबह या दोपहर में जाती और पांच मिनट में लौट आती. कहती—वे सोए हैं. अनशी सोचती कहीं इस तरह वे 'ना' न कर दें. वह शिती के पास रिरयाती—क्यों री, अच्छा खाने-पीने को मिलने लगा तो मस्ती चढ़ आयी क्या?

शिती भी शिकायत के स्वर में कहती—ओ मां, उनके बर्तन रात को होते हैं. मुझे अंधेरे में कुत्तों का बड़ा डर लगता है.

—अरे बेटी, अपना घर समझ कर काम करना चाहिए. वह तो भगवान का औतार समझो. तुम्हारे भाई जैसा है. देर होने पर तुम्हें छोड़ जाया करेगा. वह कहां गांववालों को घास डालता है.

फिर शिती इस तरह किसना के घर जाती जैसे अनशी के कहने से ही उसे जाना पड़ रहा हो. मुलायम गद्दों, पर, दिये की रोशनी में खुलकर शरीर लुटाकर, अन्न, पैसे, कपड़ा आदि लेकर तृप्त मन और शरीर के साथ वापस लौटती. शिती और किसना की इच्छा होती कि रात भर आलिंगनबद्ध हो लेटे रहें.

जब शिती ने किसना को बताया कि गत दो महीनों से उसका मासचक्र चूक गया है तो उसकी नींद हवा हो गयी. अगले वाक्य से तो वह डगमगा ही गया था. शिती ने कहा था—मुझे तो अच्छा घर चाहिए ही था. आकर तुम्हारे पैरों के पास रहूंगी. तुम्हारे लोग भी दो दिन बड़बड़ा कर चुप बैठेंगे.

किसना का सीना धड़क उठा था. मन विचित्र दृश्य दिखा रहा था. मस्तिष्क तेजी से अपने काम में लगा था. चिंता का घूंट निगलकर वह सहज शब्दों

ं बोला—अरी, मैं खुद ही जा कर अनशी को बताऊंगा. ा-बजा कर तुझे घर लाऊंगा. गांव में बूढ़े-बूढ़ी को और यश्वदी को भी बताऊंगा. मैं भी अब रह नहीं पाता ं. . .और इन शब्दों से शिती में छिपी बैठी आदिम स्त्री पूरी तरह खो गयी. वह उसके लिए चाहे जो करने को तैयार हो गयी.

किसना दो दिन बाहर गांव जाने की बात कह कर चला गया था. अगले महीने यानी पंद्रह दिन बाद वह स्वयं कहने वाला था इसलिए ओठों पर आयी आनंद की यह बात शिती ने बूढ़ी अनशी से कहना रोक रखा था. किसी प्रकार भी किसना का मन न दुखे, इसकी वह पूरी कोशिश कर रही थी.

* *

किसना शहर में भटक रहा था. काफी तिकड़म से उसने सादिल्ला का पता चलाया था. सादिल्ला भी एक ही औलिया था. लोग मुर्गी, कबूतर या तीतर पालते हैं लेकिन सादिल्ला सांप पालता था. कैसा ही विषैला सांप वह हाथ से पकड़ लेता था. उसके बड़े बंगले के सामने सांप पेटी-पिटारियों में भरे पड़े रहते थे. नागपुर तक की प्रयोगशालाओं में वह सांप भेजा करता था. सर्पदंश पर वह उपचार भी करता था.

सादिल्ला से एकांत में मिलने के लिए किसना को काफी देर बैठे रहना पड़ा था. उसके विश्वासपात्र कुछ लोगों को मिन्नतें कर और पैसा खिला कर किसना ने अपना बना लिया था. अपने हाथों कुछ गलत हो रहा है, इस बात का ज्ञान किसना को अस्वस्थ किये दे रहा था. किंतु अब बातें इस हद तक आगे बढ़ चुकीं थीं कि पीछे कदम रखने की कोई गुंजाइश न बची थी. सादिल्ला से अंतिम बातचीत होने तक किसना बेचैन था. अब जमाव कम हो चुका था. सादिल्ला के लोगों ने इशारा किया. दीवानखाने में कई फोटो टंगे थे. सभा-सम्मेलनों में, बड़े आदमियों के साथ, इनाम पाते समय के सादिल्ला के.

—बोलो किसना सेठ! लाल चटख नैपकीन से हाथ पोंछता सादिल्ला बाहर आया. सादिल्ला छह फुट से भी अधिक ऊंचा था. प्रचंड शरीर, पीली-कंजी आंखें. मोटी काली-स्याह बरौनियां. चौड़ी गर्दन. तरबूज जैसा चेहरा. लेकिन आवाज नाजुक थी. उस लंबे-चौड़े शरीर के लिए वह आवाज निसंगत जान पड़ती थी.

सादिल्ला सामने की कुर्सी पर बैठ गया. क्या इसे फिर से सब कुछ बताना पड़ेगा? इस शंका से किसना बेचैन हो उठा. लेकिन सादिल्ला ही बोला—तुम फिक्र मत करो! हमने ऐसे कई काम किये हैं. तुम्हारा काम करूंगा. किसना के जी में जी आया. तीन हजार के नकद नोटों पर सौदा पक्का हुआ. किसना हलके मन से अपने होटल के कमरे में लौटा.

दूसरे दिन जब पैसे चुका कर किसना लौटा तो रात का एक बज चुका था. मिलिंद नगर गाढ़ी नींद में सोया था. झींगुरों का अखंड स्वर एक लय में जारी था. अंधेरा रौंदता हुआ आ कर वह अपने घर में लेट गया.

भोर जब वह एकाएक जागा तो सूरज काफी ऊपर चढ़ आया था. धारियों वाला पजामा सम्हालता वह बाहर आया. बस्ती के उस छोर पर काफी भीड़ इकट्ठी हुई जान पड़ी. उसके कानों पर औरतों और बच्चों के बोलने का कोलाहल छा गया.

—क्या हुआ रे? एक भागते लड़के को रोक कर किसना ने पूछा.

—अरे मांगों के मुहल्ले में दो मांग औरतें मर गयीं. रात को सांप डस गया होगा. दोनों खत्म हो गयीं. बूढ़ी अनशी और उसकी लड़की. लड़का फिर से उस तरफ दौड़ने लगा. किसना सुनता रहा. . .सुनता रहा. . .किसना की छाती एकाएक धड़कने लगी. उसके कानों पर शब्द आ कर गिर रहे थे. वह फिर से भीतर की ओर मुड़ा और अपने को पलंग पर झोंक दिया. शरीर पर कपड़े ओढ़े वह लोट रहा था, उलटा-सीधा हो रहा था. दोनों जांघों के बीच तकिया भींच ली थी. शिती का विवस्त्र शरीर. . .उससे आलिंगन करता भुजंग. . . और. . .और. . . □□□

(अनुवाद : विष्णु निवसरकर)

घटनाकथा

बीस साल से चावल

हमें भर दोपहर में नाश्ता मिलता है. नाश्ते में मिलती है दलिया. दोपहर का भोजन क्या बला है हम नहीं जानते. रात को हमें चावल और इमली का पानी मिलता है.

यह जवाब था श्रीकाकुलम जिले के हरिजन होस्टल के छात्रों का.

रसोइये से पूछा गया—तुम क्या पकाते हो?

—पिछले बीस साल से चावल पका रहा हूं.

—यहां बिजली नहीं है?

अतिथि को कंदील की रोशनी में होस्टल घुमाया जा रहा था.

—नहीं है श्रीमन्.

यह अतिथि थे, एच. सी. सरीन. आंध्र के राज्यपाल के तत्कालीन सलाहकार. वे अचानक इस होस्टल के दौरे पर आ गये थे.

श्री सरीन ने आगे देखा कि एक छोटे से कमरे के गीले फर्श पर दर्जनों हरिजन छात्र सोये हुए थे.

४३,००० हरिजन-आदिवासी छात्रों को होस्टल में बसाने के लिए आंध्र प्रदेश सरकार दो करोड़ रुपये खर्च करती है मगर समिति ने पाया कि ढोरों की तरह छात्रों को होस्टल में भरा गया है.

आंध्र में इस तरह के एक हजार होस्टल हैं जिनका नियंत्रण निजी लोगों के हाथों में है. कुछ होस्टलों के नाम भर सरकारी खातों में है. □□□

अनादि काल से हमारे समाज के दलित वर्ग पर खुल कर नाना प्रकार के शारीरिक अत्याचार होते रहे हैं, उनका आर्थिक शोषण किया जाता रहा है, उनकी बहू-बेटियों की इज्जत से सरेआम खेला जाता रहा है. आशा तो उन्हें यह थी कि भारत के स्वतंत्र हो जाने पर वे खुली हवा में सांस ले सकेंगे, समाज उन्हें उनके अधिकारों से वंचित नहीं रखेगा. किंतु क्या उनका यह स्वप्न भारत के स्वतंत्र हो चुकने के २८ वर्ष बाद भी पूरा हो पाया ? इसका उत्तर मिलेगा आपको 'सारिका' की खोजपूर्ण और शक्तिशाली एक दर्जन से अधिक मई'७५ के अंक की कहानियों में जिनके अधिकांश लेखक स्वयं समाज के इसी वर्ग से आते हैं.

इस अंक के अन्य आकर्षण होंगे 'कबिरा खड़ा बजार में' (हरिशंकर परसाई), 'मीना कुमारी की डायरी' (गुलजार), 'मेरा पन्ना' आदि जैसे लोकप्रिय स्तंभ.

मई'७५ अंक के कुछ लेखक:

गंगाधर पानतावणे
बंधु माधव
अमृता प्रीतम
प्र. ई. सोनकामले
प्रकाश न. खरात
मधुमंगेश कर्णिक
काज़ी अब्दुल सत्तार
गुरबचन सिंह भुल्लर

सारिका

मई, १९७५

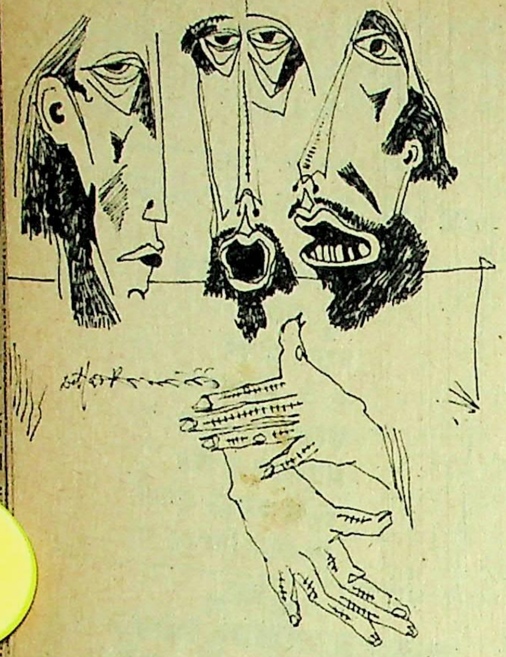

● रेखांकन : एस. राणे

पूंजी

● ज. वि. पवार

इन हाथों से उलीचे गये कितने दुःख के सागर!
और दुःखी स्वयं बन गया सागर.
सागर की गहराई नापने का कहां है शक्तिशाली विज्ञान.
पूछो उसे, गिन सकता हूं वो
मेरे दुःख की गहराई ?
जुग जुग से पचन किया है दुःख का,
जो दौड़ रहा मेरी धमनियों में
आया उबाल! लेता उछाल!
इन आंखों को एक वरदान
नस नस के दुःखों को बाष्पीभूत करने का.
बनते हैं बादल उसके, मेरा नाता उनसे है.
दुख के बादल, बादलों का आकाश.
कैसा आकाश, मेरे अस्तित्व से व्यापी आकाश.
तुम आकाश का अर्थ पूछते हो.
मेरा शरीर है आकाश, आकाश.
वे हैं मेरे ही दुःख से डबडबाये.
इन बादलों को पीना चाहूं
तो भी आकाश बच जाता है.
आकाश को निगलने की सोचूं
तो क्षितिज का पता नहीं.
आकाश को क्षितिज नहीं होता, और क्षितिज को क्षितिज नहीं होता
मेरा दुःख मेरी पूंजी बन जाता है.
(अनु. प्रा. र. के. सोनग्रा) ☐

पाटिल

● प्रल्हाद चेंदवणकर

पाटिल ने बुलवाया तो उसके घर जा पहुंचा
'बैठ' वह बोला पर आंगन तो गीला था.

टाट का टुकड़ा फटा अंग पर फेंक दिया
पर मैं खड़ा रहा मुंह नहीं खोला था.

फूटे प्याले में काला पानी मंगवाया उसने
मैं, चाय नहीं पीता,
उसमें मैल देख बोला था.

सुपारी का टुकड़ा तड़ से तोड़ पूछा–
मैं महारपूत तमाशे में क्यों नहीं जाता था.

चूतड़ खुजाते हुए
पाटिल बड़बड़ाता रहा
जूते भी उतारे बिना मैं सामने खड़ा था.

अब तक नहीं समझ पाया
क्यों यह सब सहन किया
पाटिल के बा' का मैंने क्या खाया था. ☐

कविता क्रांति

● शशिकांत लोखंडे

कविते,
तेरा स्वर फूट रहा है.
दिशा-दिशा से मुक्ति संग्राम की गूंज उठ रही है.
सूरज की आंखों में तूने ही
विद्रोह के गाने लिखे हैं.
यह धरती ठेकेदारों की नहीं है,
यह चंद्रमा ब्राह्मणों का नहीं है.
यह तारा मुसलमानों का नहीं है,
यह जुगनू कुलीनों का नहीं है.
कविते,
यह विश्व मानवों का है, यह प्रकाश सबका है
तू शब्दों में अर्थ भरती है.
दलितों में विश्व बंधुत्व भरती है
देख,
तेरे समान मुझे भी एक नया संसार दीख रहा है.
जहां दुखियों पर मानवता की छत्रछाया है
जहां हिंदुओं ने अपनी परंपरा को नोंच डाला है
और
ढाई हजार वर्षों के विद्रोह जख्मों को
चूम लिया है.
कविते,
तूने शब्दों की हत्या कर दी थी तब
जब तूने अछूत नगरी के युद्ध की चर्चा की थी
तू तो हमारी उपेक्षा मत कर
तेरे बिना हमारे जख्मों को
स्वर कौन देगा ? ☐

गोर्की

● अरुण कांबले

यह अराजक आक्रोश
ये रोज भरी जाने वाली जेल की कोठरियां

कानों पर गूंजती भूख की तड़पड़ाहट,
मेरी जोशीली कलाई में से भी
आज अश्रु बह रहे हैं.

इच्छा होती है——
इस कलाई को चूर चूर कर डालूं जैसे
मजदूर की छैनी चकनाचूर कर देती है
पत्थर की शिला को.

इच्छा होती है हाथ में उठी कलम को
तोड़ कर बिखेर दूं.

हृदय को चीर देने वाले इस आक्रोश को सुन कर
मेरे स्वप्नों में रोज गोर्की आता है,
तंग लंबा कोट पहने.

अपने बौने, फौलादी, हिम्मती सरदार के साथ
जिसके चेहरे पर कृतृत्व की लाली होती है.
जीभ पर घुमड़ती आवाज में गति होती है—
क्रांति की
और मुट्ठी में गुलाल होता है——
उत्साह का
टेबल पर मारे तो चरमरा उठे.

आज क्षितिज पर वही सरदार आया है
उसके कदम खड़ाक्-खड़ाक् चल रहे हैं
जंजीर का लाल कड़ा
उसका स्वागत कर रहा है.

मैं उसांस लेता हूं——गोर्की, गोर्की, गोर्की.

मेरा गोर्की कहां है? □

बाराखड़ी

● त्र्यंबक सपकाले

पाठशाला ले गया दुर्भाग्य,
वहां सीखी—
अ आ इ ई—
यानी कि बाराखड़ी,
भूल हुई तो—
मास्टर की फेंकी हुई फुटरूल कहीं भी पड़ी.

ओसारी पर हम,
कक्षा में मास्टर,
श्याम पट्ट पर——उ ऊ ए ऐ
और एक तीखी आवाज——
कुछ समझे या नहीं मूर्ख राज !

प्यास लगे तो——
भीख में पानी पियो,
बर्तन को हाथ मत लगाओ !

ओ औ अं अः
मास्टर की झिड़की——
अछूत हो, डंडे खाओ !

बारा खड़ी सीखे,
या जेल से छूटे,
फिर बिना मास्टर के ही पढ़ा——
जेल का संसार——

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः,
क्षितिज के पार !
क्षितिज के पार !! □

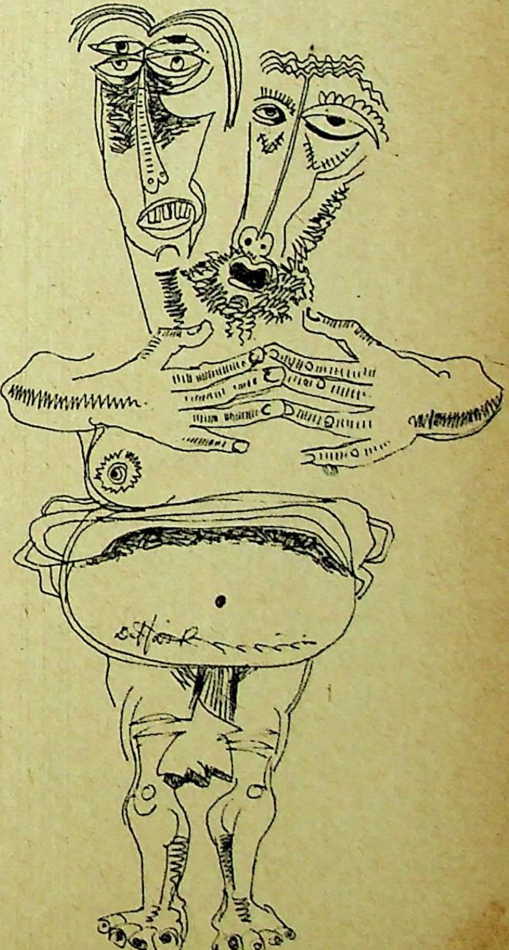

● दत्ताप्रसन्न एस. राने

Binaca
MADE IN INDIA
Binaca
Green
toothpaste

वो दो जो मेरी साँसों में बसा करते हैं—

एक तुम

एक बिनाका ग्रीन

सच, बिनाका ग्रीन की निर्मल ताज़गी में बसीं मेरी साँसें... और मेरी हर साँस में समाए तुम! मुझे तुमसे प्यार है... मुझे बिनाका ग्रीन से प्यार है क्योंकि क्लोरोफ़िलयुक्त बिनाका ग्रीन में पाये जाने वाले प्राकृतिक गंधनाशक से मेरी साँसों में फूल खिल जाते हैं.... आह! वह बहार... तुम्हारे साथ गुज़रे वह सुनहरे क्षण... वह महका महका सा मेरी साँसों का मधुबन!

महकी साँसों का मधुबन

बिनाका टूथब्रश की गोल बनायी गयी नोकें आपके मसूड़ों को छिलने से बचाती हैं।

CIBA-GEIGY

Rediffusion/CG/194 Hin

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूँटे-से
बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

एन् फ्रेंच
हेयर रिमूवर से
रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब! आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए!

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर
अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

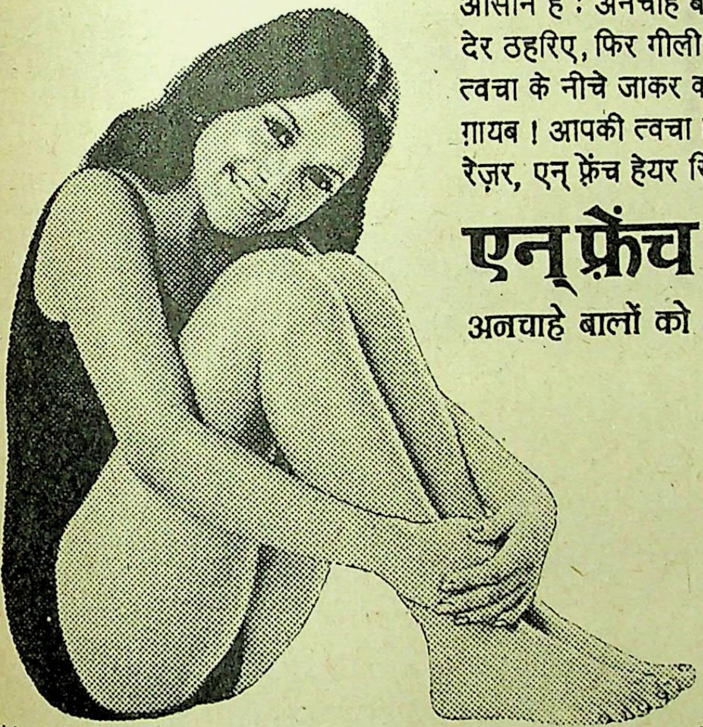

FACIAL QUALITY
Anne French
Cream
FACIAL QUALITY
Anne French

Licensed user of TM : Geoffrey Manners & Co. Ltd.
126 HR-203 Hin

२ साइज में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५ ग्रा.

दलित साहित्य : प्रक्रिया एवं रूपरेखा

● प्र. श्री. नेरूरकर

दलित साहित्य वह साहित्यिक, सामाजिक, क्रांतिगामी विद्रोह है, जो वर्तमान दशक के मराठी साहित्य के क्षेत्र में उठ खड़ा हुआ है. वह एक आक्रोश है, ह.हां, दलित साहित्य का इतिहास के आधार पर विचार करते समय यह ध्यान रखना पड़ेगा कि वह मात्र एक 'खीज' नहीं है. आज मराठी भाषा एवं साहित्य के विशाल प्रासाद में दलित साहित्य का अपना एक अलग दालान बन गया है. इसकी तरफ केवल मराठी आदमी का ही ध्यान गया हो यह बात नहीं है, बल्कि अब इस आंदोलन के भारत भर में फैलने के आसार नजर आ रहे हैं. अन्य भाषाभाषी भारतीय भी अब इस साहित्यिक विद्रोह में दिलचस्पी लेने लगे हैं और गंभीरता से इस पर विचार करने लगे हैं. अन्य भाषाभाषी साहित्यकारों और दलित साहित्यकारों के बीच हुई चर्चाओं से यह दिलचस्पी साफ झलकती है. खासकर हाल में बंबई में दलित युवकों के क्रांतिकारी संगठन 'दलित पैंथर्स' का जो उद्भव हुआ है और उसने यहां की राजनीति में जो उथल-पुथल मचा दी है, उसकी वजह से महाराष्ट्र की दलित युवा पीढ़ी ने सबका ध्यान अपनी तरफ, अपनी विचारधारा एवं साहित्यिक, राजनीतिक आंदोलन की तरफ आकर्षित कर लिया है. नवंबर १९७३ में 'टाइम्स आफ इंडिया' ने दलित साहित्य पर विशेष परिशिष्ट प्रकाशित किया था. इस परिशिष्ट द्वारा भारत के अंग्रेजी जानने वाले विविध भाषाभाषी विचारकों -लेखकों की विभिन्न पीढ़ियों को मराठी के दलित साहित्य का, दलित साहित्यकारों का और उनके साहित्यिक, सामाजिक विद्रोह का छोटा-सा ही सही, परिचय दिया जा सका. इस परिशिष्ट की प्रतिक्रिया के रूप में पाठकों के जो पत्र 'टाइम्स' के पास पहुंचे, उनसे दलित साहित्य की भारत भर में गूंजती आवाज का अंदाजा लगाया जा सकता है.

'दलित साहित्य' के माने क्या है? क्या 'दलित साहित्य' 'ललित साहित्य' है? या कि नहीं है? सही मानों में वह कौन-सा वर्ग है, जिसके लिए 'दलित' शब्द इस्तेमाल किया जाता है? मार्क्सवादी विचार प्रणाली के 'प्रोलेटेरिएट' शब्द से इसका क्या नाता है? क्या किसी एक जाति को घोषित करने वाला यह बस एक संकुचित जातिवाचक शब्द है? न जाने कितने सारे सवाल इस एक शब्द को ले कर पूछे जा रहे हैं और पूछे जा सकते हैं.

दलित साहित्य के आंदोलन में, दलित साहित्यकारों की नयी पीढ़ी के नेता एवं अग्रणी कहानीकार, उपन्यासकार तथा दलित आंदोलन एवं दलित साहित्य को समर्पित मासिक पत्रिका 'आम्ही' के संपादक बाबूराव बागूल ने अपने लेख 'दलित साहित्य' में 'दलित' शब्द एवं साहित्य की चर्चा की है. वह लिखते हैं, "दलित साहित्य वह विचार है, जो 'मानव' को प्रतिष्ठित करता है, मानव को देव-धर्म-देश से भी उच्च स्थान पर प्रस्थापित करता है. यही वह विचार है जो आज के युग के साथ मेल खा सकता है. . . ." आगे वह लिखते हैं. "अर्थात 'दलित साहित्य' के पीछे जाति-भावना की परंपरागत प्रेरणा नहीं काम कर रही. वह निरा साहित्य भी नहीं. वह वर्तमान युग एवं वर्तमान समाज की पृष्ठभूमि पर स्थित है. दलित साहित्य निर्माणक्षम कलाकार का विचार है."

महाड़ में संपन्न हुए द्वितीय 'महाराष्ट्र बौद्ध साहित्य सम्मेलन' की अध्यक्षता करते हुए बाबूराव बागूल ने दलित साहित्य की प्रेरणा एवं धारणा की विवेचना की थी. उन्होंने कहा था, "दलित साहित्य का केंद्र बिंदु है मानव-मानव के इर्द-गिर्द वह घूमता है. उसकी राय में मानव महान है. इसीलिए मानव की स्वतंत्रता की घोषणा वह हर दम करता रहता है. . .मानव प्रकृति की छोटी प्रतिमा है. और गतिशील रहना, सृजनशील रहना प्रकृति का धर्म है."

१९६०-६१ में संपन्न हुए प्रथम 'महाराष्ट्र बौद्ध साहित्य सम्मेलन' के अध्यक्ष की हैसियत से बोलते हुए प्रगतिशील दलित साहित्यकार अण्णाभाऊ साठे ने कहा था, "मं दावे के साथ कहता हूं कि दुनिया दलित की हथेली पर तोली गयी है. न कि शेष नाग के मस्तक पर. इसलिए इन दलितों के जीवन का चित्रण मैं ईमानदारी एवं आस्था के साथ करता आ रहा हूं और करता रहूंगा."

हाल ही में 'दलित पैंथर्स' ने जो घोषणापत्र प्रकाशित किया है, उसमें भी 'दलित कौन?' उपशीर्षक में 'दलित' शब्द की परिभाषा की गयी है. इसी घोषणा पत्र में 'दुनिया के दलितों से हमारा रिश्ता' शीर्षक में 'दलित पैंथर्स' लिखते हैं, "अमरीकी साम्राज्यवाद के षडयंत्र में आज सारी दलित दुनिया —उत्पीड़ित देश एवं दलित जनता पिसती जा रही है. अमरीका के मुट्ठी भर 'प्रतिक्रियावादी गोरे लोग नीग्रो लोगों पर जुल्म ढा रहे हैं. इन्हीं अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए 'ब्लैक पैंथर' आंदोलन का सूत्रपात हुआ. ब्लैक पैंथर आंदोलन ही से ब्लैक पॉवर (काले लोगों की सत्ता) का निर्माण हुआ. संघर्ष की चिनगारी सुलगी. इन्हीं सुलगती चिनगारियों से, इसी भड़कते आंदोलन से हमारा रिश्ता है. वियतनाम, कंबोदिया, अफ्रीका के आदर्श हमारे सामने हैं. दलित का मतलब है अनुसूचित जाति, बौद्ध कामगार, भूमिहीन मजदूर, कृषि-मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोश जातियां, आदिवासी और नारी समाज." इस प्रकार

दलित साहित्य की विचारप्रणाली मानव संकुचित जाति-वादी मनोवृत्ति में अपनी परंपरागत, सांप्रदायिक, किताबी विचारप्राणाली न हो कर वर्तमान युग की मांगों से उत्पन्न मानव के प्रति आस्था रखने वाली विश्वजनीन विचारप्रणाली है.

मराठी साहित्य के प्रगतिशील समीक्षक प्रा. शरच्चंद्र मुक्तिबोध अपने लेख 'दखित वाङ्मय : एक विचार' में इसी दृष्टिकोण की व्याख्या करते हैं, "इस प्रकार दलित साहित्य की अनुभूति ऐसी मूल्यगर्भ अनुभूति है. इस अनुभूति की मूल प्रेरणा है 'स्वतंत्रता'. अतः दलित साहित्य की अनुभूति में और प्रगतिशील लेखकों की अनुभूति में कोई मौलिक अंतर नहीं है, विरोध नहीं है — दलित लेखकों की अनुभूति अन्य (साधारण) लेखकों से भिन्न और इसीलिए विशेषतापूर्ण है, उसी तरह वह संकीर्ण न हो कर मौलिक (मूल्यगर्भ) है." इसी अनुभूति के संदर्भ में विद्यमान 'अतिव्यक्तिवादी कला की अनुभूति' के संबंध में प्रा. मुक्तिबोध लिखते हैं, "असल में अतिव्यक्तिवाद व्यक्ति के विविध गुणविशेषों के परे पहुंच जाता है. किन्हीं विशेष मनोवस्थाओं, एकाकी, अगतिक मनोवस्थाओं के रूप में ही वह शेष रह जाता है. अगतिकता की यह अनुभूति होने लगती हैं आदिम प्रेरणा एवं विश्व के यांत्रिक नियमों के कारण. और विश्व की अर्थहीनता, भयाकुल अस्तित्वानुभूति, इस अनुभूति के महत्वपूर्ण अंग होते हैं. दुनिया अपने आप में कोई अर्थ रखती हो या न रखती हो, साहित्य का उद्गम तो निस्संदेह जीवनसंबंधों की अर्थहीनता से ही हुआ है. इस प्रकार के साहित्य का उद्गम मध्यवर्गीय मराठी जीवन की एक विशेष अवस्था में ही निहित है. . . और ठीक इस प्रकार की विरोधी अनुभूति है दलित साहित्य की अनुभूति. एक अगतिकता लिये हुए है,दूसरी स्वतंत्रता की चेतना लिये हुए. एक अनुभूति उनकी है जो उन्नति की सारी संभावनाओं से हाथ धो बेठे हैं और दूसरी उनकी है, जिन्हें प्रगति की सारी संभावनाएं बाहें उठा-उठा कर अपने पास बुला रही हैं. और इसीलिए दलित साहित्य का आंदोलन इतना अर्थपूर्ण लगने लगता है. दलित लेखकों की यह अनुभूति अगर मानव की स्वतंत्रता को उभार सकी, तो यह मानना पड़ेगा कि यही वह अनुभूति है, जिसके द्वारा श्रेष्ठ साहित्य का निर्माण हो सकेगा."

यह सच है कि मराठी दलित साहित्य-आंदोलन के अधिकतर लेखक, कवि, क्रांतिकारी हिंदूधर्म संहिता के अनुसार शूद्र, अछूत समझे गये हैं. १९५६ में नागपुर में डा. बाबा साहेब आंबेडकर की प्रेरणा से जो धर्मचक्र परिवर्तन संपन्न हुआ, उसके बाद महाराष्ट्र के अधिकतर महार 'महार' नहीं रहे और नये क्रांतिकारी मानों में नवबौद्ध कहलाये. आज का दलित साहित्य आंदोलन मुख्य रूप से नवबौद्ध युवकों के सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, बौद्धिक उद्रेक और अनुभूतियों में से गुजरता हुआ विकास की दिशा में अग्रसर हो रहा है. और ऐसा होते हुए भी हम देख चुके हैं कि वह जाति या धर्म-विशेष से बंध कर नहीं रहा है. इसीलिए सवाल यह उठता है कि साहित्य-निर्माण की दृष्टि से दलित साहित्य का असली रूप क्या है?

वैसे देखा जाये, तो तीस-चालीस साल पहले मराठी साहित्य में जन्मे 'प्रगतिशील साहित्य'-आंदोलन से इसका नजदीकी रिश्ता है. उस समय अखिल भारतीय स्तर पर इस प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन का जन्म हुआ था. एक नये निर्माणक्षम, क्रांतिकारी साहित्य का जन्म हुआ था. ऐसे आंदोलन की शुरुआत हुई थी जिसका प्रेरणास्रोत आज भी मराठी के प्रगतिशील विचारकों, सर्जनशील लेखकों, कवियों के जीवन एवं साहित्य का पोषण करता आ रहा है. इस आंदोलन के नेताओं ने हमेशा 'दलित साहित्य' के नये ऐतिहासिक, सामाजिक नारे को बुलंद किया है. और दलित साहित्यकारों ने भी क्रांतिकारी वैचारिक, भावनात्मक प्रेरणा के लिए प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन के ज्येष्ठ विचारकों, लेखकों की तरफ देखा है. प्रा. अनंत काणेकर, स्व. लालजी पेंडसे, स्व. दि. के. बेड़ेकर, प्रा. शरच्चंद्र मुक्तिबोध, स्व. अण्णा भाऊ साठे, स्व. शाहीर अमर शेख, नारायण सुर्वे, प्र. श्री. नेरुरकर, सबसे दलित साहित्य और साहित्यकारों के स्नेह और अपनापे के संबंध हैं, यही नहीं वे एक-दूसरे के पूरक, प्रेरक एवं प्रगतिशील सिद्ध हुए हैं.

आगे चल कर प्रगतिशील साहित्य भी अगतिकता, विवशता से ग्रस्त हो गया.मराठी में यह आंदोलन बीजावस्था में ही सड़-गल गया. परिणामतः वह सर्वव्यापी नहीं बन सका. इसकी वजहें कुछ वर्गीय, राजनीतिक और असाहित्यिक हैं.

कुछ अरसे बाद इस साहित्य का नामोनिशान तक नहीं बचा और प्रगतिशील आंदोलन को युगप्रवर्त्तनकारी प्रेरणा एवं गति देने की क्षमता उसमें जरा भी न रही. सौभाग्य से दलित साहित्य का जो आंदोलन मराठी में कदम बढ़ा रहा है, उसकी सृजनप्रक्रिया प्रगति के पथ पर बढ़ती नजर आती है. थोड़े साहस के साथ यह कहा जा सकता है कि दलित वर्ग के प्रस्थापित राजनीतिक वर्चस्व को नकारते हुए दलित साहित्य का यह आंदोलन एक

बायें से दायें : जितेंद्र भाटिया, कमलेश्वर, बाबूराव बागूल, दया पवार आदि.

स्वयंभू साहित्यिक एवं सामूहिक प्रेरणा से उत्पन्न है. इसी लिए अण्णाभाऊ साठे से ले कर बाबूराव बागूल तक इसके निर्माण में आभिजात्य का एक अपना अलग दलित वर्गीय अंग जुड़ा हुआ है.

यह सारा साहित्य दलित वर्ग के रक्त-मांस से उत्पन्न है. यह दलितों का, दलितों द्वारा, दलितों की भाषा में लिखा गया जीवंत साहित्य है. जैसा कि बाबूराव बागूल कहते हैं, यह दलित साहित्य सीधे मानव हृदय से जा कर टकराता है. मानव इसका केंद्र बिंदु बन जाता है. यह वह इनसान नहीं है, जो आरामदेह चार दीवारी के अंदर बंद किसी- न-किसी धार्मिक करुणा में से साहित्य में उभरने वाला दयनीय मध्यवर्गीय होता है. यह वह इनसान है, जो दीवारों का, घर का, मानवता का, जीने के अधिकार का मोहताज है, जो आज तक पैरों तले कुचला जाता रहा है. सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, हर क्षेत्र में वह नकारा गया है. अमानुष आर्थिक अत्याचारों का शिकार तो वह है ही है. हिंदू धर्म की जातिप्रधान समाज-व्यवस्था में वह शारीरिक रूप से घुट कर रह गया है और मानसिक रूप से कब का दम तोड़ चुका है. बागूल की एक कहानी है — 'जब मैंने जान छिपायी थी.' यह इनसान इस कहानी के नायक जैसा है. मनु ने उसे ऐसा ही मानव बनाया है. धर्म ने उसका गला घोंटा है. महर्षि व्यास द्वारा कथित मोक्ष प्राप्ति के तीनों सूत्र 'धर्मेण, अर्थेन, कामेन' उसके लिए नहीं हैं. इसी पद-दलित वर्ग से उत्पन्न मराठी के दलित साहित्यकारों ने मराठी में प्रतिष्ठित मध्यवर्गीय सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक व्यवस्था को नकारकर दलित साहित्य का झंडा उठा लिया है. दलित साहित्य का आंदोलन एक ठोस, सक्रिय एवं सृजनात्मक नकारवाद से उत्पन्न है. व्यवस्था की लीक पर चलने वाले स्वीकारात्मक वर्ग के संकीर्ण, संकेतों से बंधे-बंधाये साहित्य-सृजन पर व्यवस्थाहीन नकारात्मक वर्ग द्वारा बोला गया यह पहला-पहला हमला है.और यह वह हमला है जो विध्वंस के लिए उत्सुक नहीं, बल्कि विधायक सर्जनक्षमता एवं नवनिर्माणक्षम नयी साहित्यिक व्यवस्था की तरफ ले जाने वाला क्रांति का विस्फोट है. यह एक आक्रोश है, इतिहास-सापेक्ष आक्रमण भी है. लेकिन अंधा आक्रमण नहीं, विज्ञानाधिष्ठित, हजारों आंखों से सारे विश्व के यथार्थ को पचाने वाला सतर्क साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संक्रमण भी है.

बाबूराव बागूल के उपन्यास 'सूड' (बदला) की प्रस्तावना लिखते समय दलित साहित्य के वरिष्ठ और श्रेष्ठ भाष्यकार डा. म. ना. वानखेड़े कहते हैं, "नीग्रो समाज एवं लेखक की ही तरह दलित लेखक भी भलीभांति समझ चुका है कि दया की भीख मांग कर जिया नहीं जा सकता; कि विद्रोह किये बगैर यह दायरा नहीं टूटेगा और इसीलिए अब उसने अपनी आजाद कलम उठायी है; वह अपने क्रोध को अभिव्यक्ति देने लगा है. कोड़ों का प्रयोग किये बगैर, विद्रोह का झंडा फहराये बगैर ये सीमाएं नहीं टूटने वालीं. अर्थात सीमाओं को तोड़ने का मतलब यह भी नहीं कि उसे समाज से अलग हो जाना है. उसे तो समाज में रहते हुए विद्रोह का नारा लगाना है. अंतर है तो बस इतना कि दया मांगने की जगह वह अब आग उगलने लगा. है.

डा. वानखेड़े ने अमरीका में रहते हुए वहां के नीग्रो-जीवन को नजदीक से देखा-परखा है. उनके लेख में (अस्मितादर्श : 'नीग्रो वाङ्मय') मराठी में पहली बार नीग्रो और दलित साहित्य पर तुलनात्मक विचार किया गया है. 'काला साहित्य', 'काळी कविता', 'काला नाटक' नाम से आये नीग्रो समाज के साहित्यिक विद्रोह के संदर्भ में उन्होंने मराठी के दलित साहित्य की चर्चा करते हुए उसकी ऐतिहासिकता एवं विश्वजनीनता प्रमाणित की है. 'दलित साहित्य' की परिभाषा वह इस प्रकार करते हैं, "दलित लेखकों द्वारा दलितों के विषय में लिखा गया क्षोभकारी, विद्रोहकारी साहित्य है 'दलित साहित्य'. मराठी साहित्य के विशाल सागर से जा मिलने वाली यह नदिया है. आंचलिक साहित्य की ही तरह यह भी साहित्य के प्रासाद में एक दालान है. एक तरफ श्रेष्ठ साहित्य की कसौटी पर यह खरा उतरा है, दूसरी तरफ दलितों पर हो रहे अन्याय का, विषमता का चुभता हुआ एहसास भी इसमें है. यह मात्र 'मानवता' की बेहूदा, लिजलिजी भावना नहीं है; इसमें दलितों, पीड़ितों की वर्तमान अवस्था के मूल में पल रही परंपरा पर किये गये करारे वार हैं."

महाड़ में संपन्न द्वितीय दलित साहित्य संमेलन के अध्यक्ष की हैसियत से बाबूराव बागूल कहते हैं, "दलित साहित्य उनका साहित्य नहीं है' जो बदला लेने पर उतारू हो गये हैं. न ही वह द्वेषभावना का प्रसार करता है. बल्कि वह मानव की महानता एवं मुक्ति की घोषणा करता है. वह एक ऐतिहासिक आवश्यकता है और इसी लिए वह हट कर एक अलग नाम वहन करता है. जब दलित की लिखी हुई भी 'कविता' हो ही सकती है, अमरीका में किसीकी लिखी हुई भी 'कविता' हो ही सकती है, तो फिर साहित्य के लिए यह हटकर दिया हुआ अलग अभिधान क्यों? इसका एक कारण आप स्वयं हैं और दूसरा आज तक का भारतीय साहित्य एवं हमारा देश" सही मानों में इसे दलित साहित्य का घोषणापत्र कहा जा सकता है.

मराठी दलित साहित्य की रूपरेखाओं का ध्यान रखते हुए उसकी उन प्रक्रियाओं को दो तरह के विचार-स्तरों पर समझना जरूरी है. एक तो दलित साहित्य-आंदोलन में डा. बाबासाहेब आंबेडकर को प्राप्त हुआ अग्रस्थान. वह स्वयं ललित लेखक नहीं थे, लेकिन साहित्य के प्रेमी अवश्य थे. एक भेंटवार्त्ता में उन्होंने कहा था, "मैंने मनोविनोद के लिए न कभी कुछ पढ़ा है. न पढ़ता हूं. कथा-साहित्य की अपेक्षा मैंने ठोस विचार प्रधान साहित्य अधिक पढ़ा है. सीखने के लिए मैं साहित्य पढ़ता हूं. न कि मनोरंजन की खातिर. जिससे मुझे कुछ सीख मिलती है, उसीसे मेरा मनोरंजन हो जाता है." और आगे उन्होंने कहा था, "राजनीति के बाद साहित्यिक लेखन करना मैं पसंद करूंगा और एक स्वतंत्र उपन्यास लिखूंगा." ('दलित साहित्य व नव समाजनिर्मिति' :

म. ना. वानखेड़े : अस्मितादर्श : दलित साहित्य विशेषांक, १९७३) दुर्भाग्यवश उनका [illegible] वह कुछ साल और जीते रहते तो शायद मराठी साहित्य के अध्येताओं के हाथ में आज केलकर के उपन्यास ही की तरह आंबेडकर का उपन्यास भी होता. और वही शायद मराठी साहित्य में दलित साहित्य का अपने ढंग का एक रूप होता.

डा. आंबेडकर ने भारत की समाजनीति एवं राजनीति के क्षेत्र में पैर रखते ही हिंदू धर्म-व्यवस्था के खिलाफ बगावत का झंडा उठाया था. उनका ऐलान था, "हिंदू बन कर जन्मा हूं, मगर हिंदू बन कर मरूंगा नहीं!" इस बारे में उन्होंने गांधीजी तक से समझौता करना पसंद नहीं किया. बड़ी बेबाकी से गांधीजी से उन्होंने पूछा था, "मेरी मातृभूमि कहां है?" यूरोप के मार्टिन लूथर ही की तरह बीसवीं सदी में हिंदू धर्म का विरोध करते हुए उन्होंने बौद्ध धर्म की पताका फहरायी और फिर अक्तूबर १९५६ में भारत के धार्मिक, राजनीतिक जीवन में 'धर्मचक्र परिवर्तन' की अभूतपूर्व क्रांतिकारी घटना घटी. लेकिन इसके बाद वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाये. आंबेडकर के इस महान विद्रोह में जहां अतीत की मान्यताओं को तहस-नहस कर देने वाला नकारात्मक दृष्टिकोण था, वहीं भौतिकतावादी बौद्ध दर्शन की तरफ ले जाने वाला स्वीकारात्मक दृष्टिकोण भी था. वह कहा करते थे, "मुझे कुंडली मार कर बैठा हुआ ध्यानस्थ बुद्ध नहीं चाहिए, अपने पैरों पर चलने वाला बुद्ध चाहिए."महाड़ के अध्यक्षीय भाषण में आंबेडकर की इस विरासत को दलित साहित्य के आंदोलन से जोड़ते हुए बागूल कहते हैं, (दलित साहित्यकारों को संबोधित करते हुए कहते हैं) 'पहले हमें यह सोचना चाहिए कि आप हैं कैसे? आप आंबेडकर के आंदोलन की आग पी कर अग्निमय बन गये हैं.इसी गांव में (महाड़ १९२७) जो तालाब वाला सत्याग्रह हुआ था, उस समय उस सभा की तुलना बाबासाहेब ने फ्रेंच राज्यक्रांति की राष्ट्रीय सभा के साथ की थी. और समता, स्वतंत्रता, बंधुता के प्रस्ताव आप लोगों ने मंजूर किये थे. इसी प्रकार के सत्रह प्रस्ताव फ्रेंच क्रांतिकारी राष्ट्रीय सभा ने मंजूर किये थे. महाड़ की इस सभा में बाबासाहेब ने कहा था, "यूरोप के इतिहासकारों ने इस (फ्रेंच) क्रांति की भर्त्सना की थी. मैं इसकी भर्त्सना नहीं करूंगा, क्योंकि इसी क्रांति में जन्मे विचारों की वजह से यूरोप के भाग जगे थे."

एक और सवाल पूछा जा सकता है. दलित साहित्य ने सब कुछ नकारा है, तब फिर क्या स्वीकारा, कुछ भी नहीं? इस आंदोलन ने विश्वजनीन एवं मानववंशीय स्तर पर 'मानव को मानव का ही गीत गाना चाहिए' वाला अस्तित्ववादी मानवधर्म स्वीकारा है. इसीलिए जब हम दलित साहित्य की प्रक्रियाओं का विचार करते हैं तब इसका दूसरा छोर सीधे मार्क्सवाद से जुड़ा हुआ पाते हैं. मार्क्सवाद जितना मानवकेंद्रित है, सताये गये मानव-समाज द्वारा निर्मित आधिभौतिक मानवेतिहास से संबंधित है, उतनी ही दलित साहित्य की क्रांति भी मार्क्स के भौतिकतावादी, क्रांतिकारी दर्शन से संबंधित है. हिंदू [illegible] विरोध करने वाले भगवान बुद्ध से दलित साहित्य का जो रिश्ता है, वही रिश्ता उसका मार्क्स के क्रांतिवाद से है. इसीलिए सच्चा प्रगतिशील दलित साहित्यकार किसी भी नये-पुराने धर्माधिष्ठित संप्रदाय के संकुचित दायरे में अपने-आपको बंद रखना नहीं चाहता. जब वह अपना रिश्ता अमरीका और अफ्रीका के नीग्रो समाज से जोड़ता है, तब उस पर मार्क्सवाद का वस्तुवादी क्रांतिकारी दर्शन हावी रहता है. क्रांति की यही अनुभूति उसके साहित्यनिर्माण का मूलस्रोत बन जाती है. साहित्यिक क्षेत्र में उतरे हुए दलित साहित्यकार के साहित्य-निर्माण में यह साफ-साफ झलक रहा है कि वह अपने निर्माण के दौरान द्वंद्वात्मक जड़वाद के भौतिक मूल्यों को सिर-आंखों पर लेते हुए आगे बढ़ रहा है. इतिहास के कुछ अपने उसूल होते हैं, जिनका पालन करते हुए इतिहास के प्रभाव को अनिष्ट से इष्ट की तरफ मोड़ा जा सकता है. —मार्क्स और लेनिन की इस नयी विचारप्रणाली का वरदान दलित साहित्य ने श्रद्धा एवं आस्थापूर्वक शिरोधार्य माना है. इसीलिए मराठी के कलावाद, सौंदर्यवाद एवं केवलवाद के संप्रदाय में अधिष्ठित मध्यवर्गीय ललित साहित्यकारों के परंपरावादी और नियतिवादी मनोविज्ञान से परंपरा का विद्रोह करने वाले दलित साहित्यकारों का सामूहिक, सामाजिक तथा साहित्यिक मनोविज्ञान नितांत रूप से भिन्न एवं प्रभावपूर्ण है. समाजनीति एवं साहित्य के क्षेत्र में बुद्धिवादी आक्रामकता का कदम उठा कर और धर्माधिष्ठित अंधे नियतिवाद को निर्ममता से ठुकरा कर दलित साहित्यकार अपनी नियति का शिल्पकार खुद बनना चाहता है. अनैतिहासिक पराभव की भावना और निराशावाद के स्थान पर ऐतिहासिक आशावाद की अनुभूति से प्रेरित हो कर वह एक नये इतिहास का निर्माण करना चाहता है. मैक्सिम गोर्की के शब्दों में वह 'मानव समाज के इस सुंदर-से घोंसले को एक परिवार का रूप' देना चाहता है. सौंदर्यवाद के पुराने, संकीर्ण, जीर्ण-शीर्ण

नारायण सुर्वे, अर्जुन डांगले, सुदीप, राम अरोड़ा, प्र. श्री. नेरूरकर

दायरों को वह तोड़ फेंक रहा है और नये जीवन मूल्यों के व्यापक, विशाल सौंदर्यवाद और दर्शन के निर्माण का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर उठा ले जाना चाहता है.

वस्तुतः दलित साहित्य का यह आंदोलन भारत एवं विश्व के भाषाई क्षेत्रों में चल रहे उन आंदोलनों के समांतर और उनसे संबद्ध है जो विद्रोही हैं, क्रांतिकारी हैं, नवनिर्माण के इच्छुक हैं और मानव-हित से बंधे हुए हैं. यह एक युगव्यापी आंदोलन है. युग-भावना, युग-प्रेरणा एवं युग-मानव में घुल जाने वाली यह साहित्य-धारा है. यह एक इन्वाल्वमेंट है, इसीलिए वामपंथीय है. वामपंथीय क्रांतिकारी विश्व-दर्शन की तरफ झुकने वाला प्रगतिशील आंदोलन ह. हाल में ही हिंदी साहित्य में आरंभ हुए 'समांतर' आंदोलन से मेल खाने वाला यह भी एक साहित्यक आंदोलन है.

१९७२ में 'समांतर लेखक समूह' द्वारा संपादित किये गये 'समांतर' ग्रंथ में हिंदी के श्रेष्ठ युवा कहानीकार, उपन्यासकार, समीक्षक, 'सारिका' के संपादक श्री कमलेश्वर एक साहित्य-चर्चा में कहते हैं, "हम स्वयं सामान्य आदमी हैं. उसी सामान्य जन में शामिल. हमारी संबद्धता उसी के प्रति हो सकती है. यह संबद्धता हर स्तर पर है. क्योंकि मामूली आदमी हर स्तर पर भय, छल, शोषण, अपमान, दमन से आहत है. मूर्त्त व अमूर्त्त तकलीफों से ग्रस्त है. हम इसी वर्ग से, इसी वर्ग के प्रति और इसी वर्ग से संबद्ध हैं. हमारी यह संबद्धता ही हमें वाम बनाती है. और यह वाम, यानी हमारी जिंदगी, हमारा यथार्थ, हमारा संपूर्ण संघर्ष और हमारा लेखन हमें वैज्ञानिक मार्क्सवाद के स्रोत से जोड़ता है. कोई वामपंथी है, इसीलिए वह सामान्यजन के साथ है, यह आरोपित स्थिति है और यह कभी-कभी नितांत झूठ भी होती है. हमारी आस्था जीवन में है और उस जीवन को वहन करने वाला केंद्र है— मामूली आदमी. और उसीसे संबद्ध हैं हमारे लेखन और जीवन की आकांक्षाएं.इसलिए वाम निरंतर जीवित रहने वाली एक सहज और अनिवार्य सच्चाई है. वाम चिरंतन है." श्री कमलेश्वर की यह विचार प्रणाली दलित साहित्य की विचार प्रणाली से मेल खाती है और 'समांतर' साहित्य-आंदोलन को दलित साहित्य-आंदोलन के क्षेत्र में या यों कहिए कि दलित साहित्य को समांतर साहित्य आंदोलन के विशाल विश्व में ले आती है. दोनों के लक्ष्य समान हैं और वे साहित्य-निर्माण को सशक्त बनाते हैं.

दलित साहित्य की प्रक्रिया को जानने की कोशिश में अनायास ही दलित साहित्य की उन रूपरेखाओं का अंदाजा भी लग जाता है जो गत दशक के मराठी साहित्य में खिच गयी थीं. उनकी विस्तृत चर्चा एक अलग लेख का विषय है. लेकिन इन रूपरेखाओं में जो सबसे महत्वपूर्ण बात ध्यान में आती है वह यह कि आज का दलित लेखक अपने साहित्य-निर्माण के दौरान आत्मान्वेषण में रत है. और लगता है इस आत्मान्वेषण में वह काफी हद तक सफल भी हो रहा है. आत्मान्वेषण और आत्मबोध की यही प्रेरणा ग्रहण कर दलित साहित्यकारों ने अपनी पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशन संस्थाओं और दलित [illegible] ने नयी नींव डाली है. प्रा. गंगाधर पानतावणे संपादित 'अस्मितादर्श' इस प्रकार की एक प्रमुख सिक पत्रिका है. पिछले सात वर्षों के 'अस्मितादर्श' अंक देखने से मराठी में दलित साहित्य द्वारा तय गये सफर का पता चल सकता है. दलितों के कंधा मिला कर दलितेतर प्रगतिशील साहित्यक विचारकों ने भी दलित साहित्य के प्रचारकार्य के 'अस्मितादर्श' में अपना योगदान दिया है. दलित साहि का प्रतिनिधित्व करने वाली दो अन्य प्रमुख पत्रिकाएं नामदेव ढसाल द्वारा संपादित 'विद्रोह' और बाबू बागूल द्वारा संपादित 'आम्ही' भी गिनायी जा सकती जो दुर्भाग्य से अल्पायु सिद्ध हुई. फिर भी थोड़े समय भी इन पत्रिकाओं ने अपनी एक वैचारिक, साहित्यि प्रतिमा मराठी में कायम की, जो लंबे अरसे बनी रहेगी.

इसी संदर्भ में, मेरा खयाल है, बाबूराव बागूल लंबी कहानी 'सूड' (बदला) विचारणीय होगी. लंबी कहानी— या इसे छोटा उपन्यास ही कह लीजिए पर समीक्षकों ने अभी उतना ध्यान नहीं दिया है, जि देना चाहिए. बाबूराव बागूल की यह साहित्यकृति मराठी भाषा की एक महान कलाकृति है. इसने प्रमाणित कर दिखाया है कि दलित साहित्यकार म कलाकार भी होता है. यह एक पतिता, अभागिन देवदा जानकी की कहानी है. बेजोड़ और अमर तथागत वान बुद्ध की करुणा और मानव के शोषण के वि मार्क्स और लेनिन की खीज— दोनों भावनाओं संगम. दलित साहित्य के प्रवर्तक एवं भाष्यकार डा. वा. वानखेड़े ने कहा था कि पुराने हिंदू 'मिथ्स' नकारते समय, उनका स्थान लेने के लिए नये 'मि का निर्माण करना पड़ेगा. इस दृष्टि से 'सूड' द साहित्य में बाबूराव बागूल द्वारा निर्मित पह 'मिथ' है. जानकी दलित समाज में जन्मी एक मा लड़की. बला की खूबसूरत, जवानी से भरपूर. ब से ही भोग का शिकार बनी हुई. वह कोठे से भाग होती ह. वह बदला लेने पर तुली हुई है— नारी जा से बदला! पुरुष वेश में निकल पड़ती है. 'जोगी' बन हिमालय की तरफ निकले हुए जोगियों के झुंड में शामि हो जाती है. इसके बाद की उसकी अनोखी जीवन-या को विचित्र करने में बाबूराव बागूल की कलम ने मृदुता और संयम से काम लिया है, वह मराठी साहि में बेजोड़ है. यह कलाकृति दलित साहित्य का चिरं उद्गार, उद्घोष है. जानकी के अलावा 'सूड' स्वामीजी का चरित्र भी एक ऐसा चरित्र है जो मरा साहित्य में सदा के लिए अपना अलग स्थान बना ले इस कहानीकार की प्रतिभा में हमें भविष्य में सकने वाले महाकवि की दिव्य प्रतिभा का मानवी नजर आता है. क्रूद्ध जानकी को पुरुष वेष में 'जो जानवरों के झुंड' में ला छोड़ने वाली यह 'सिचुए वह कल्पनापूर्ण सिचुएशन है जो विश्व के समूचे ल साहित्य में शायद ही कभी मिल सके. स्वामीजी जान को नया नाम देते हैं— 'ज्वाला.' बुद्ध-जीवन पर आ

रित स्वामीजी का प्रतीक दार्शनिक है, कलात्मक है, अर्थपूर्ण है. हिमालय-यात्रा के दौरान स्वामीजी और ज्वाला का एक संवाद यहां उद्‌धृत कर रहा हूं :

"एक बार अपने अपरिवर्तनीय नारीत्व से निराश और हताश ज्वाला ने (स्वामीजी से) पूछा, मुझे क्या करना होगा?"

"जीवन को जीवन मानना होगा और अपना अतीत मुझे बता देना होगा."

"जीवन को जीवन मानते नहीं बनता. स्वामीजी, जीवन के दुख-दर्दों को आपने नहीं जाना है. इसलिए मुझसे आपसे कुछ नहीं कहते बनता. फिर भी एक बात कहे देती हूं : उस दिन आप नहीं मिलते, तो मेरे हाथों कई खून हो गये होते. पाप हो गये होते. मैं अपना नारीत्व नहीं चाहती. वही तो मेरे दुख का, क्रोध का कारण है."

"लेकिन क्यों ?"

"इसकी वजह से मैंने न जाने क्या - क्या भुगता है. मुझे इस गुनाह की सजा मिल रही है जो मैंने 'वह' हीन जन्म पा कर किया है."

"कौन-सा हीन जन्म ?"

"गंगू की कोख से मिला हुआ."

"तुम अपनी देह से नाराज हो या समाज से ?"

"देव, देश, देह और समाज—"

कहानी के अंत में बागूल एक तरफ नारीत्व से उकतायी हुई और पुरुषत्व की प्यासी जानकी अथवा ज्वाला का उदात्तीकरण कर देते हैं और दूसरी तरफ पुरुषत्व से नारीत्व की तरफ (जानकी की तरफ) जाने के इच्छुक स्वामीजी के जीवन का भौतिकीकरण कर देते हैं. परंपरा से चली आ रही वेदांती आध्यात्मिकता को नकारते हुए अपनी इस कहानी में बाबूराव एक नयी, सुंदर, मानवता की तरफ ले जाने वाली, पार्थिव आध्यात्मिकता का बीजारोपण करते हैं. एक नये 'भौतिक वेदांत' का निर्माण करते हैं. यह वेदांत जहां 'बुद्धि' के प्रति आस्थावान है, वहीं 'बुद्ध' के प्रति भी आस्था से पूर्ण है.

इसीलिए आज का मराठी दलित साहित्य समय के अनुकूल है आज का दलित साहित्य साहित्य की विभिन्न विधाओं का रूप ले कर प्रस्तुत हो गया है. कहानी, उपन्यास, कविता, समीक्षा, नाटक, शाहीरी (पोवाड़ा), प्रबंध, भाष्य, ललित लेख, निबंध, दर्शन, रूपकथा आदि में उसे अभिव्यक्ति मिल रही है. कई दलित साहित्यकार साहित्यनिर्माण के साथ-साथ दलितों, श्रमजीवियों के इस आंदोलन में सक्रिय भाग भी ले रहे हैं. हर रोज दस गुनी, सौ गुनी बढ़ती जाने वाली दलित जीवन की समस्याएं उनके सामने खड़ी हैं. उनको विषय बना कर अभी ढेर सारा साहित्य उन्हें लिखना है. 'सूड' जैसी कलाकृतियों के साथ सामयिकता का मूल्य वहन करने वाला दलित साहित्य कालातीत भी बनता जा रहा है. साहित्य में किसी खास वर्ग और अभिरुचि से बंधे हुए कलावाद और सौंदर्यवाद को ठुकराने वाले दलित साहित्य में नये स्वतंत्र कलामूल्यों एवं सौंदर्यमूल्यों—जीवन की चेतना से युक्त कलामूल्यों, सौंदर्यमूल्यों की आहट अब आ रही है. एक तरह से दलित साहित्य विशाल मराठी साहित्य की ही एक अलग, नयी, निराली साहित्यावस्था है. लेकिन साथ ही साथ वह प्रतिष्ठा मराठी साहित्य की गतिहीनता को झकझोर देने वाली, दिशाहीनता से नयी दिशा की तरफ ले जाने वाली विद्रोही साहित्यिक वास्तविकता भी है. □□□

(अनुवाद : रेखा देशपांडे.)

बायें से दायें : बागूल, पवार, मेश्राम

कमलेश्वर, राम अरोड़ा, नेरूरकर, सुर्वे, पवार, डांगले

भाटिया, कमलेश्वर, सुदीप, अरोड़ा, नेरूरकर,

• अतीनदास

राकेश के पहले / राकेश के साथ
राकेश के बाद
यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (२०

• अनीता औलक

पिछले अंक में आपने पढ़ा है कि देश-विभाजन ने अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. वह जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी का अनीताजी के घर से भी परिचय बढ़ रहा था. राकेशजी के पत्र आने लगे. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगामा हो गया और कुछ फैसले किये गये. राजेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया लेकिन फिर भी कालेज के बहाने वे मिलते रहे. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये. उन्हें फिर दिल्ली वापस जाना पड़ा. राकेशजी के मित्रों की महफिलें जुड़ती रहीं. अब आगे पढ़िए...

बाहर से राकेशजी जितने सीधे और सरल दीखते थे उतने वास्तव में नहीं थे. उन्हें अंदर तक ठीक से समझना एक बहुत बड़ी तपस्या थी. बाहर से जितने इन्फॉर्मल उतने ही ज्यादा मन से फॉर्मल. जिन मित्रों के साथ वह अत्यंत इन्फॉर्मल रहे वह उन्हें इससे अधिक नहीं जान सके. और जिनके साथ फॉर्मल थे वह भी उससे अधिक उन्हें नहीं जान सके. . .क्योंकि राकेशजी केवल अपने लिए ही कहीं पूर्ण थे.

मैं कभी-कभी उनके भिन्न प्रकार के व्यवहारों के बारे में पूछती तो कहते—हर आदमी की एक निजी 'भूख' होती है. मैं अपने प्रत्येक मित्र के साथ अलग-अलग तरह से पेश आता हूं. . . हर आदमी को एक ही लेवल पर नहीं लिया जा सकता . यह बात सही भी थी.

वह अपने प्रत्येक मित्र के अच्छे और कमजोर पक्षों के बारे में अच्छी तरह जानते थे. उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अच्छे फलों के साथ केवल अपनी कमजोरियों के साथ ही पूर्ण होता है. . .क्योंकि वह किसी भी व्यक्ति को केवल उसकी अच्छाइयों के साथ ही नहीं स्वीकार कर सकते. . . कहीं उस व्यक्ति के अंदर की कमजोरियों के साथ ही उसे प्यारा दोस्त कहते हैं. . .उससे प्यार करते हैं. अंदाजा लगाओ कि यदि कोई व्यक्ति केवल अच्छाइयों का ही भरा हो तो वो कितना बोरिंग हो सकता है.

यह बात सच भी थी. वह अपने भिन्न-भिन्न मित्रों के साथ भिन्न-भिन्न तरह से पेश आते थे. यद्यपि असली राकेश वह नहीं था. अपने में राकेश एक बहुत ही अलग व्यक्ति था. उस तरह से वह सिर्फ अपने आप को आईने में देखता था और खुश होता था. उसे अच्छा लगता था अपने को वैसा देखने में. . .क्योंकि वह यही था.

कितनी बार मैंने राकेश जी के साथ उनके व्यवहार में लाये तौर तरीकों से उनसे बात करने की कोशिश की लेकिन वह मुझसे कहते—काहे को भटकती फिरती है. . .मैं न यह हूं न वो हूं. . . और वो मेरे हाथों को अपने नंगे जिस छुआते और कहते. . .मैं यह हूं.

और वो सब ?

—वो और लोगों की होती है, जिसे निभाना होता है. क्योंकि उसके बिना भी गु नहीं है. . .तुम्हें भी वो सब सी चाहिए. . .

बात भी ठीक थी. . .उन्हें प्रत्येक मित्र को कोई न कोई या स्थान अपने जीवन में दि हुआ था और उन्हीं की तरह उ पेश आते थे. यद्यपि कई बार अपने बनायी हुई भिन्न-भिन्न इ को ले कर तकलीफ भी उठा पड़ती थी.. . .जैसे जब कुछ भि भिन्न प्रकार के मित्र एक बैठते थे तो राकेशजी की एक त की इमेज को लेकर अन्य मित्र का तकलीफ पाते थे. . .उनमें एक मैं भी थी.

घर से बाहर राकेशजी व्यवहार कुछ और होता और घर में एकदम और. अरसा लगा मुझे इस ताल को बैठाते, यद्यपि बाद में आ

राकेशजी ने मेरे साथ जबरदस्ती करनी छोड़ दी थी. बाहर जा कर मैं एकदम भटक जाती थी. लगता था कि मेरा घर और मेरा राकेश मुझसे छिन गया है. हो सकता है कि यह मेरे प्रारंभिक जीवन में मिली असुरक्षा की भावना की ही देन थी. . .लेकिन मेरे जीवन का एक अंग तो बन ही चुकी थी.

—मैंने भी जीवन में असुरक्षा इतनी भोगी है अन्ना, लेकिन क्योंकि जिंदगी में अकेला इतना जूझा और लड़ा हूं कि अब स्थिति को निभाये जाना मेरे व्यक्तित्व का एक आवश्यक अंग बन चुका है. यद्यपि निभाना राकेश की प्रकृति के विरुद्ध बात थी. लेकिन उनका कहना था, कि जब किसी व्यक्ति के कान्फीडेंस में संदेह न हो तब बात और होती है.

इसके अतिरिक्त कहीं बहुत संस्कार भी थे. . .अर्थात अपने से बड़ों का मान रखना, इज्जत करना उनकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति थी–इसके विपरीत कहीं प्रोग्रेसिव. जैसे वो चाहते थे कि उनके मित्रों के साथ मेरी एक अपनी अलग ही अंडरस्टैंडिंग हो. उनकी इसी प्रवृत्ति ने शायद मेरे अंदर खोया विश्वास फिर से पैदा किया.

हालांकि शुरू-शुरू में राकेश जी ने जबरदस्ती मुझ पर अपनी आदतें मनवाने की कोशिश की. . .कि जिसके दौरान उन्होंने महसूस किया कि मुझे सबसे पहले विश्वास -प्यार और सुरक्षा की कितनी आवश्यकता थी––उसके बिना शायद में कभी भी, कुछ भी नहीं सीख सकती थी. हम साथ रहते तो लड़ते रहते. अलग होते तो रोते-रहते. . .एक अजीब विडम्बना थी.

—मैंने तुम्हें क्या नहीं दिया? राकेशजी झुंझलाते.

––वो सब जो मुझे पहले भी मिलता था–और जो तब नहीं मिला था वो अब भी नहीं मिलता.

—क्या?

—प्यार!

––और अगर यही बात मैं कहूं.

—कहो नहीं. . .करो. और एक सारी रात मैं उनके सीने पर सिर रख कर रोती रही थी और उन्होंने अपनी विशाल छाती में मुझे समा लिया था.

फिर एक दिन दूसरे ही मूड में होते.

—अब तू मेरा घर छोड़ कर जायेगी कि नहीं? मैं हैरान हो कर उनकी तरफ देखती—क्यों?

—तूने मेरा रिकार्ड खराब कर दिया है. दो साल से ज्यादा मैं किसी औरत के साथ नहीं रहा. पहले मैंने सोचा कि दो-तीन साल के बाद चली जायेगी. लेकिन छह

राकेशजी गिरधारीलाल वैद और उर्मिला भाभी के साथ

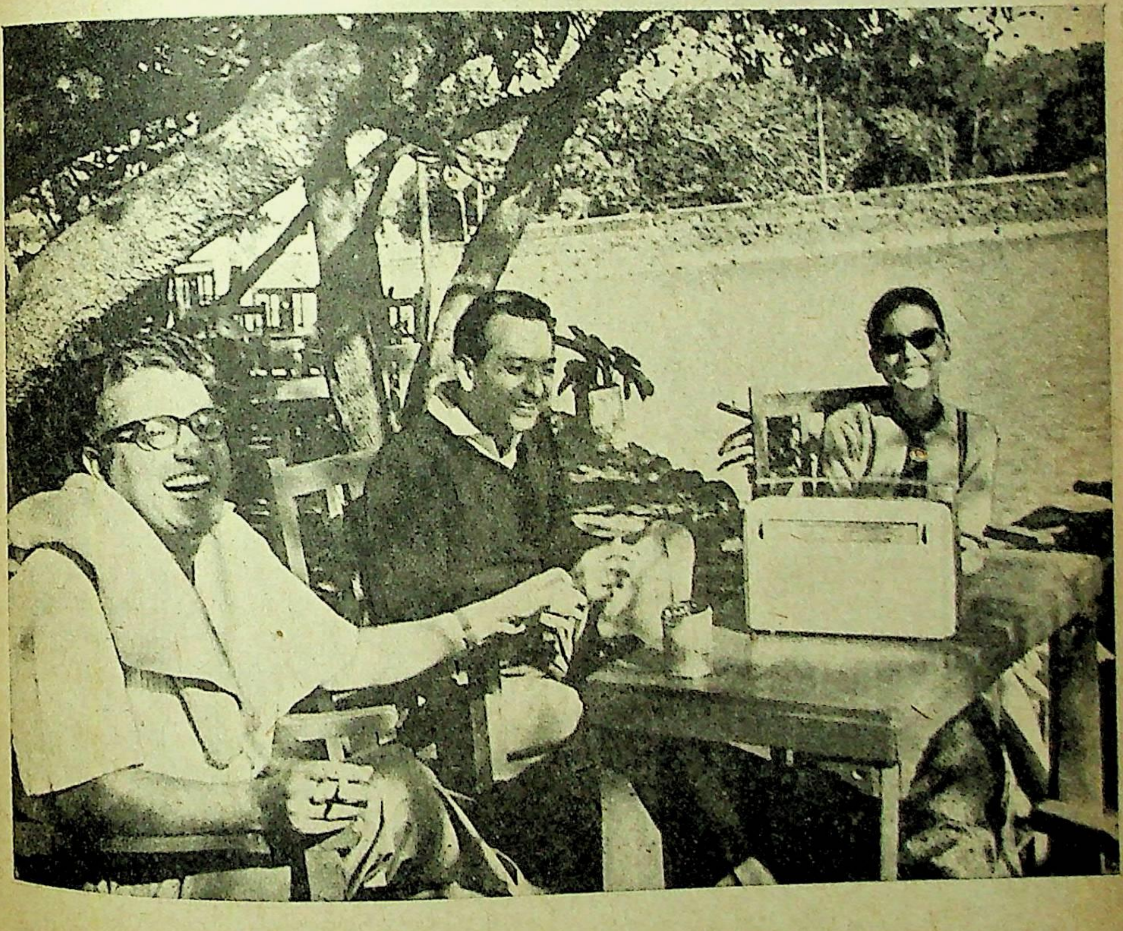

साल हो गये तेरे जाने के कोई आसार ही नजर नहीं आ रहे. पहले एक बच्चा. . .फिर दूसरा . . .अब तीसरे का इरादा तो नहीं. . .अच्छा यह सोच के बताना कि कब जा रही है लेकिन यह बता दे कि बच्चों को ले कर जायेगी या छोड़ कर,

एक ऐसे ही दिन दोपहर में कमलेश्वरजी अचानक घर पहुंचे तो देखा कि दोनों बच्चे और हम दोनों पलंग पर फैले बैठे हैं. कमलेश्वरजी छूटते ही बोले—अरे यार तेरा यह हाल हो गया क्या ?

दोनों जोर से हंसे. फिर राकेश जी बोले—अरे यह कहती है कि इस एनीवर्सरी पर हम सब उसी हलवाई की दूकान पर जायें. मैंने समझाया कि उस भले हलवाई ने हमारा क्या बिगाड़ा कि उसे जा कर अपने आगे का हाल सुनायें. . . अपना दुःख दर्द मैं उस हलवाई के साथ नहीं बांटना चाहता.

फिर एक दिन लगता कि जैसे वह जिंदगी से बहुत ऊबा हुआ व्यक्ति है. . .एक्स्ट्रीमली इंटलेक्चुअल और कभी-कभी एक्स्ट्रीमली इमोशनल मानो ब्रेस्ट फीड करके बड़ा करना होगा.

किसी भी व्यक्ति में एक साथ यह दोनों बातें एक अजब द्वंद्व पैदा कर सकती हैं, लेकिन राकेश में दोनों ही बातें सहजता से विद्यमान थीं. अगर किसी पर प्यार आया तो उस पर फना हो गये और अगर किसी पर गुस्सा आया तो उसे फना कर गये.

बौद्धिक गुण उन्होंने अपने पिता से पाया और असीम स्नेह की भावना मां से ली.

इन दोनों प्रवृत्तियों का द्वंद्व कुछ-कुछ ऐसा था कि जिस दिन देखा मैं फ्रिज में दनादन फल-सब्जी की भर्ती कर रही हूं, तुरंत अपनी स्टडी में कान पकड़ कर ले जाते, फिर अपनी कापी निकाल कर कहते—यह, यह, यह पैसा अभी नहीं आने वाला, इसलिए थोड़ा संभलो देवी. मुझ पर नहीं तो कम-से-कम फ्रिज पर तो रहम खाओ. उसी पर कम बोझ लादो.

फिर जब मुझे सब्जी वाले से उलझते देख लेते, तो फिर कान पकड़ कर अपनी स्टडी में ले जाते—क्या पाई-पाई के लिए झगड़ती रहती है. ऊपर से कितनी सब्जियां खरीदती है. . .मेरी भुजाओं में विश्वास नहीं है क्या?

लेकिन इन सबसे हट कर राकेशजी के व्यक्ति का सबसे प्रबल पक्ष था वह था उनका ईगो, जिसको किसी भी स्थिति में राकेशजी ने कंप्रोमाइज नहीं होने दिया और नहीं कभी किसी मित्र ने उन्हें इस बात पर चैलेंज ही किया.

मुझे याद है कि एक दिन राकेशजी का और मेरा झगड़ा हुआ-नतीजा यह कि मैंने शिमला जा कर ट्रनिंग करने का निश्चय ले लिया था. राकेशजी समझ गय थे कि यह मेरी हुज्जत है और कुछ नहीं. लेकिन यह सच भी था . मैं जानती थी कि मेरे चले जाने से राकेशजी का क्या हाल होगा. लेकिन फिर भी मैं आडिग थी.

राकेशजी ने टिकट भी बुक करवा दी और फिर जाने का भी दिन आ गया.

स्टेशन पर हम लोग आसपास के लोगों को आते-जाते देखते रहे और कभी-कभी चोरों की तरह नजरें मिला लेते.

राकेश जी. . .जानते थे कि वह एक बार भी मुझे रुकने को कह देते तो मैं निश्चय ही रुक जाती, लेकिन उनके ईगो को यह गवारा नहीं था. इसलिए गार्ड की सीटी के साथ ही मैं गाड़ी में सवार हो गयी थी.

यह अलग बात है कि तीन-चार दिन में ही मैं घर वापस आयी थी.

राकेश जी मेरे जाने के बाद कलकत्ता चले गये थे. श्याम **लहरों के राजहंसों** की रिहर्सल ले रहे थे.

अपने लौट आने की सूचना देने की हिम्मत मुझ में नहीं थी इसलिए जब तक वह लौटे नहीं मैंने एक-एक दिन रो-रो के काटा.

जब वह लौटे तो मुझे देख कर खुशी की जगह उन्हें क्रोध आया जो कि बहुत स्वाभाविक था.

वह सारा दिन मुझसे नहीं बोले, लेकिन रात में जब मैं अपने पलंग पर लेटी सुबक-सुबक कर रो रही थी कि राकेश जी ने मेरा सिर अपनी गोद में ले लिया, जिससे मैं फूट-फूट कर फिर रो पड़ी.

—अब कभी नहीं जाऊंगी... राजे, प्रामिस, कभी घर छोड़ कर नहीं जाऊंगी. . .मुझे संभाल लो राजे. . .मैं बहुत कमजोर लड़की हूं. . .मुझे ऐसे मत छोड़ दिया करो.

—क्यों मुझे तंग करती रहती है. . .याद है तूने मुझे कहा था कि तू मुझे संभालेगी. . .उसपर मुझ से शिकायतें करती रहती है. . .अब मेरा और कितना वक्त लेगी अन्ना. . .मुझे कितना काम करना है,

—अब कभी गलती नहीं करूंगी. . .राजे. . .इस बार और माफ कर दो. .

—गलतियां नहीं करेगी. . . यह मैं नहीं मान सकता. . .क्योंकि इसके बिना तू अपनी नहीं बहुत बेगानी लगेगी. . .

इसके पहले कि मैं कुछ कहती वह बोले—औरतें बहुत बोलती हैं—उन्हें चुप कराने का एक ही तरीका है और वो है. . .

—अगले अंक में :—

अम्माजी नहीं रहीं. . . यह राकेशजी की जिंदगी का बहुत बड़ा आघात था, जो उन्हें किसी तीव्र आवेग के साथ, कहीं बहुत गहराई तक तोड़ गया था. . . .

पानी क्यों पिया ?

यह घटना पिछले साल २२ जून की है. सुरेंद्रनगर (गुजरात) जिले के हलवाड़ तालुका के गांव रानमलपुर में दो कुएं थे . एक था सवर्णों का—गाम कुआं. दूसरा था हरिजनों का

प्रकृति ने सवर्णों का साथ दिया. गर्मियों में हरिजनों का कुआं सूख गया. उन्होंने सवर्णों के कुएं से पानी लेने का इरादा किया. इसी बात पर कण्बी और हरिजन स्त्रियों के बीच ठन गयी. हरिजनों का प्रतिनिधि मंडल तहसील के अधिकारियों से मिला. परिणामस्वरूप पुलिस का एक सब-इंस्पेक्टर हलवाड़ से रानमलपुर आया और उसने सात कण्वी पटेलों को गिरफ्तार कर लिया. बाद में वे जमानत पर रिहा कर दिये गये. फिर एक समझौता हुआ जिसके अनुसार हरिजन गाम कुआं से दोपहर में पानी भर सकते थे.

समझौता हुए कुछ ही दिन हुए थे. एक दिन शाम को पांच बजे दो हरिजन महिलाएं कुएं पर पानी भरने गयीं. वहां उनकी मुठभेड़ गांव के पटेल पीतांबर जेठा की पत्नी तिड़ि बाई से हो गयी. वहां उनमें कुछ नोंक-झोंक हुई. नतीजा यह हुआ कि हरिजन महिलाएं चुपचाप घर लौट आयीं.

इस घटना के कुछ समय बाद कोई डेढ़ सौ कण्बी पटेल लाठी-भाले से लैस हो कर 'हरिजन वास' आये और पुलिस वालों को पकड़ लिया. तिड़ि बाई ने पुलिस के एक जवान से बंदूक छीन ली. फिर हरिजनों पर जो हमला शुरू हुआ तो उनके घर तहस-नहस कर डाले गये. दो हरिजनों की जान ले ली गयीं. तेरह हरिजनों को घायल कर दिया गया. □

एक कुआं, जो हरिजनों के लिए निषिद्ध था

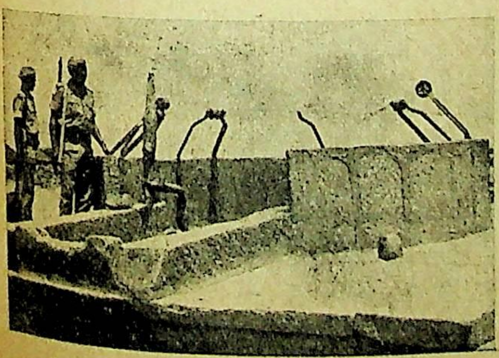

मरने की छूट

इस बार आग में झोंकी गयीं एक हरिजन बुढ़िया. मुरैना जिले की अंबाह तहसील में ४६ मकानों की एक हरिजन बस्ती है—मड़ौली का पुरा. इससे चार मील दूर है बरवाई का पुरा—ठाकुरों का गांव.

पिछले साल ११ जून की रात थी. डाव माघोसिंह के पुत्र की साली अपने गांव बरवाई का पुरा जा रही थी. रास्ते में उसे लूट लिया गया.

ठाकुरों को संदेह हुआ कि उसे लूटने वाले मड़ौली का पुरा के लोग हैं. फिर तो उनका खून खौल गया. ठाकुर की औरत को हरिजन लूटने की हिमाकत करें?

१२ जून को बरवाई का पुरा में ठाकुरों का सम्मेलन हुआ जिसमें निर्णय लिया गया कि मड़ौली का पुरा को लूट कर उसमें आग लगा दी जाये .

ठाकुरों के इस निर्णय से भयभीत हरिजनों के मुखिया ने माफी मांगी.

उसने ठाकुरों से आग्रह किया कि वे जिस आदमी को दोषी समझें, पकड़ लायें. यदि इससे भी संतोष न हो तो वे जितने रुपये के जेवर लूटे गये हैं उतने का चंदा इकट्ठा करके दे देंगे. ठाकुरों ने उनकी एक न सुनी.

भय के मारे हरिजन गांव छोड़ कर भाग गये. और उन्होंने अंबाह थाने के सामने रात बितायी

१२ जून की रात को ३-४ हजार ठाकुरों ने गांव घेर लिया .

१३ जून की सुबह हरिजनों की प्रार्थना पर एक पुलिस अधीक्षक की देख-रेख में थानेदार और चार सिपाही उस भारी भीड़ से निबटने के लिए भेजे गये.

पुलिस को देख कर भीड़ और उत्तेजित हो गयी. १० बजे से ले कर एक बजे तक पुलिस की मौजूदगी में कुल्हाड़ियों से घरों के दरवाजे तोड़ दिये गये, खेती का सामान, जेवर, खाद्यान्न, ऊंट, बैलगाड़ियां, सब लूट कर बरवाई का पुरा ले जाया गया.

आखिर में कूड़ा और घास इकट्ठा करके, उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर सभी मकानों में आग लगा दी गयी.

कोई आग बुझा न सके इसलिए कुओं पर लगी गिरियां तोड़ डाली गयीं, नलकूप नष्ट कर दिये गये.

सबसे दर्दनाक हादसा था एक बूढ़ी स्त्री की पोटली छीन कर उसे आग में फेंक देना.

हरिजन आदिवासी युवक संघ के मुताबिक एक नवजात शिशु भी आग में झोंक दिया गया. □

—अरे लड़के, जा तो जरा बाहर. आठ दिनों से ऐसे ही हाथ पर हाथ रखे हुए बैठा है. बुढ़िया अपने भतीजे को कह रही थी. किंतु उसका ध्यान उस ओर नहीं था. गांजे की चिलम फूंक-फूंक कर नामा खांस रहा था. धुआं पेट में जाकर मुंह से भक्-भक् निकल रहा था. आंखें भी तांबे जैसे रंग की हो गयी थीं. उन आंखों से वह बुढ़िया के पके हुए बालों में धुएं के बादल देख रहा था. बुआ के बोलने के काफी देर बाद उसने कहा—क्यों, क्या कह रही है?

—अरे बाजार जा और भिवरा के लिए साड़ी ले आ! संक्रांति नजदीक आ गयी है, जरा आंखें तो खोल!

पलथी बदल कर नामा ने सचमुच ही आंखें खुजलाईं. उतने में ही कोने में से एक चूहा भाग निकला. नामा ने चप्पल फेंक कर उसे मार डाला.

—च-च् बड़े चूहे हो गये हैं. अरे हां, वह वजीर है न. कहता था कि गांजे की महक से चूहे भाग जाते हैं.

—मैं क्या कह रही हूं. तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है क्या?

—गाली मत दे! बोल क्या कहती है?

—कल संक्रांति का त्यौहार है. गांव में सभी लोग बाल-बच्चों सहित मंदिर जायेंगे. तेरी स्त्री के शरीर पर है क्या कोई गत का कपड़ा? सत्रह जगह पैवंद लगे हुए हैं. कोई गत की साड़ी तो ले आ.

गांजे की चिलम खाली हो गयी थी. उसने उसे हाथ पर उलट दी. राख को चुटकी में भर कर माथे पर लगा और चेहरा भावविहीन करके हंस पड़ा.

—कहां से लाऊं साड़ी? मेरे पास तो धेला नहीं. गांजे की पुड़िया के लिए वजीर से पैसा लिया गांव में कोई पैसा देनेवाला नहीं है. रहने भी दे, अग संक्रांति में देखेंगे.

—हट मरे! बैरी हो कर जन्मा है तू. खानदान बीज है, तभी रह रहूं तेरे पास. नहीं तो भीख मां निकल जाती. मेरी ही किस्मत खराब है. एक बार भ वान ने उठा लिया तो तुझे पूरी छूट मिल जाये कहने-सुनने को कोई नहीं रह जायेगा!

बुढ़िया के क्रोध में बोलने से उसे चिढ़ आ गयी धुएं के कारण आंखों से पानी बहने लगा.

—ऐ बाई, मैं बाहर चल रहा हूं. तू बड़बड़ा रह! तेरा तो यह नियम ही है.

सिर पर की टोपी को ठीक करता हुआ नाम बाहर निकल गया. बाहर निकल कर वह चबूतरे प बैठ गया.

* *

भिवरा सबेरे ही पाटील के घर गोबर काढ़ने ग हुई थी. अभी तक उसका पता नहीं था. रात में चूल्हे की राख भी निकाल कर नहीं गयी थी. बुढ़िया चूल्हे पर का सिर्फ पानी पी लिया था. आंतें भूख कुड़बुड़ा रही थीं. थोड़ा समय बीता और भिवरा आ पहुंची.

संक्रांति

★ भीमराव शिरवाळे

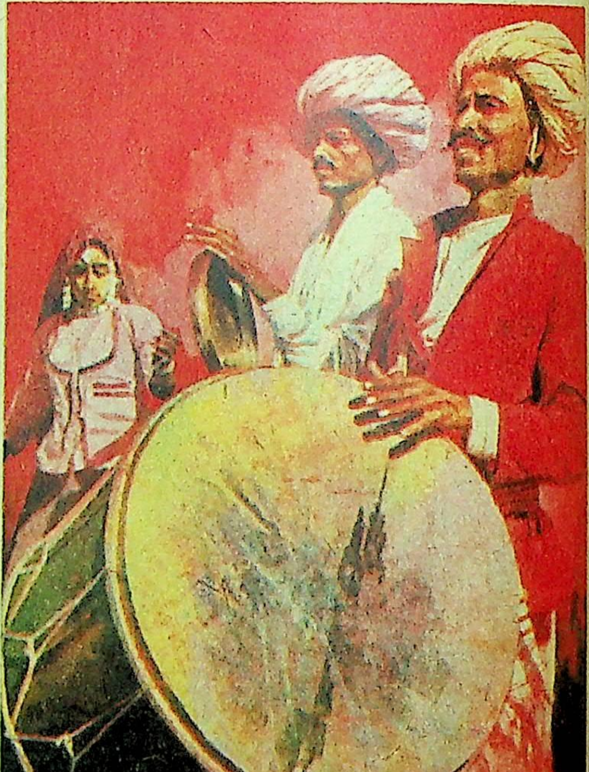

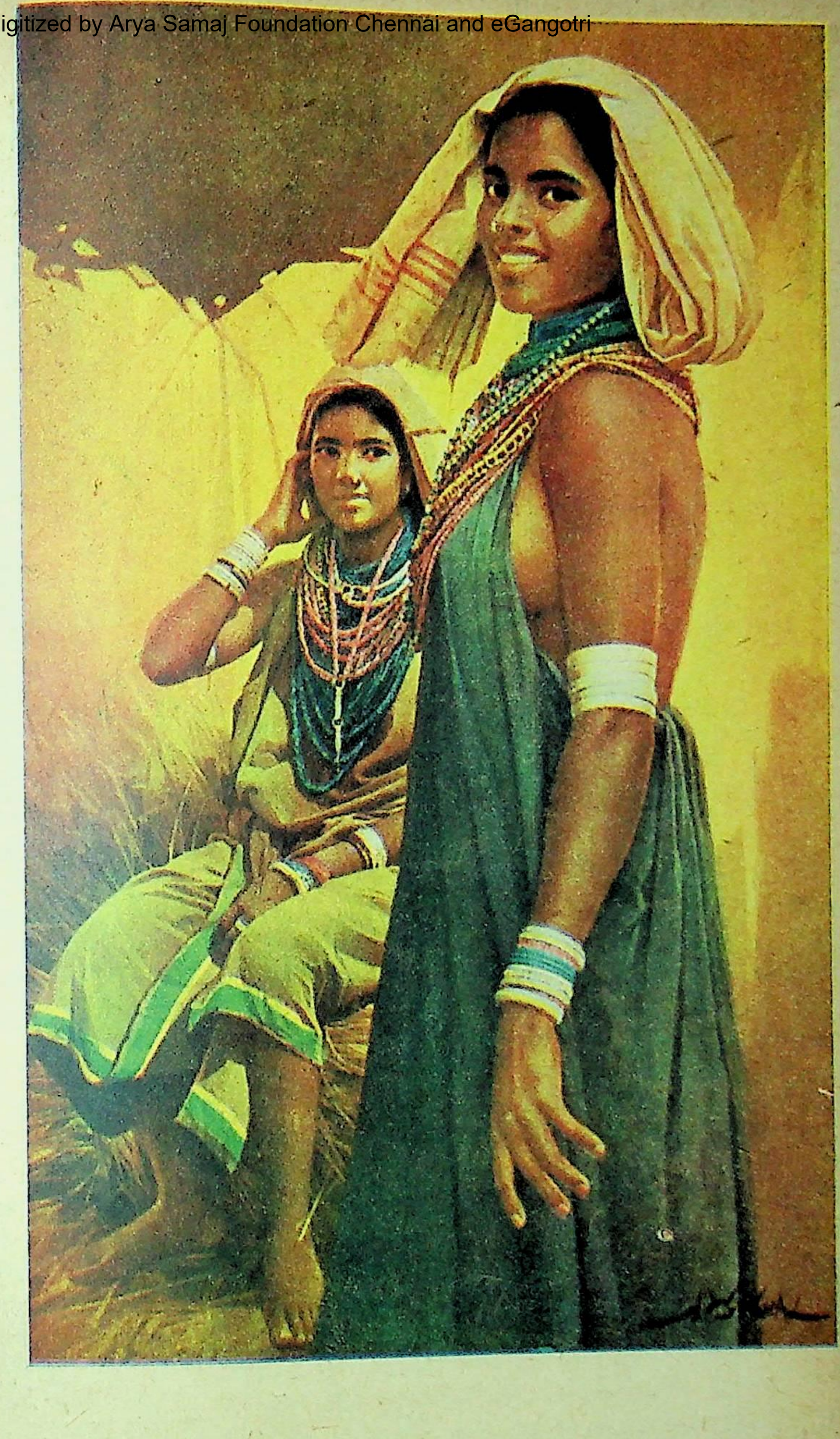

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

पाटील की बाई ने एक कटोरा भर मट्ठा, गुड़ की भेली, तीन रोटियां दी थीं. भिवरा के घर में जाते ही नामा आंखें मलते हुए उठ खड़ा हुआ.

भिवरा ने दो परातों में नामा और वायजाबाई के लिए भोजन परस दिया. यह देख कर बुढ़िया से न रहा गया, बोल उठी—भिवरा, हमें तो परोस दिया. तू भी खा न?

—नहीं बुआ, मैंने खा लिया है. पाटील बाई को आज खाने-खिलाने में देर हो गयी. मैंने भी वहीं खा लिया.

—सच कह रही है न?

—सचमुच बाई, भगवान की शपथ!

अब कहीं जा कर वायजबाई को विश्वास हुआ. वह खाने को तैयार हुई कि नामा पहले से ही जल्दी-जल्दी हाथ साफ कर रहा था.

रोज का यही हाल था. नयी उमर की भिवरा—

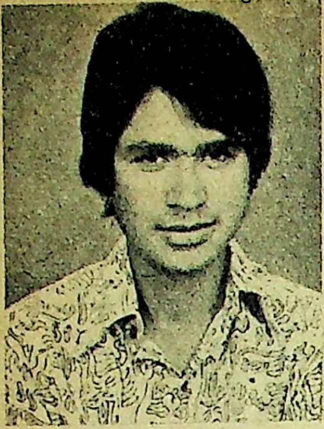

भीमराव शिरवाळे : कथाकार

देखने में सलोनी किंतु उसका सलोनापन न रह पाया. पहले तो वह किसी न किसी के घर मांगने-जांचने पहुंच जाती थी. फिर एक दिन मन मजबूत करके पाटील बाई से ही पूछा. पाटील बाई मन की उदार थी. भिवरा उसके घर रह गयी, गोबर-पानी करने के लिए. साल में एक साड़ी जंपर, रोज छाछ-पानी, बने हुए भोजन के कुछ टुकड़े ––यही उसके परिश्रम का फल था.

नामा का काम केवल गांव में घूमना-फिरना था–गांजा पी-पीकर उसका दिमाग खराब हो गया था. खाने के समय वह घर आ जाया करता था. कभी-कभार किसी का दो-चार आने का काम करता किंतु वह भी गांजे की पुड़िया में चला जाता था. जहां गांजा वालों का जमाव, वहीं पर नामा हाजिर!

किन्हीं घटनाओं के परिणामस्वरूप उसका यह हाल हो गया था.

होली के आसपास शिवनी जाना, गांव-गांव से तमाशबीनों को एकत्र करना, दो दिन होहल्ला करना, दारू पी-पीकर धींगामस्ती करना––इन सबमें उसका नाम सबसे आगे रहता था.

शिवणी के घोरपा की बेटी कली ऐसी थी कि उसे देख कर आंखें फट जायें. आत्तारा का वजीर, नामा, मिल्खा का काशा, मुलान्या का नल्या, पवारा का अंजीर––ऐसे चार साथी मिल कर तमाशा-मनोरंजन किया करते. वज़ीरा गले में ढोल टांग लेता, नल्या हाथ में टुनटुनी ले लेता, अंजीर का कमर पर पूरा हाथ था––और विदूषक का कार्य नामा करता. ढोल बजी कि कली पैर में घुंघरू बांधे एक चक्कर लेती. सारे शिवणी में तमाशबीनों की भीड़ लग जाती. नामा के निम्नस्तर के हंसी-मजाक लोगों की भावनाओं को उभाड़ने में अग्नि में घी का काम करते. पैसे बरसने लगते. कपड़ा-लत्ता तो मिलता ही, कली भी नामा की ही थी.

किंतु नामा के पास क्या था? कुछ भी तो नहीं. देखने को थोड़ा-बहुत था किंतु उससे पेट थोड़े ही भरनेवाला था. और कली जैसी कोमल ककड़ी को कोई भी उठा ले जाने को तैयार था. एक दिन ऐसा ही हुआ भी. तमाशा हो रहा था. उद्धट घाटी का पहलवान गडी उठी. उसने कली के गले में सौ के नोटों का हार पहना दिया. उसी दिन से कली नामा को छोड़ गयी. नामा का चार पैसे का आधार जाता रहा. लड़कों में सनकी माना जानेवाला नामा पूरी तरह टूट गया. मेले-ठेले में वह उसे मिलती और आगे निकल जाती.

भिवरा और नामा का विवाह बचपन में ही हो गया था. भिवरा नामा के मामा की बेटी थी. बहन के वचन की रक्षा के लिए बायजाबाई के घर भिवरा का विवाह कर दिया गया. भिवरा के घर में उसके बूढ़े बाप के अलावा अन्य कोई न था. बूढ़ा बाप आठ-दस दिन के लिए आता और दुखी होकर चल देता. बुढ़िया नामा को तरह-तरह की गालियां देती रहती. नामा पर उसका कोई असर न होता, दांत निकाल देता. फिर मामा ही बायजाबाई को कहा करता–ऐ बाई, अब तो कब्र में पांव लटके हैं. ये कैसे भी रहें, कैसे भी खायें-पिये, क्यों बेकार बोलती है!

और सचमुच ही उसके बाद भिवरा के बाप का शिवणी में आना नहीं हो पाया.

जब से कली गयी, तब से नामा पागल हो गया. वैसे कली भिवरा के पासंग नहीं थी किंतु उसके जाते ही चार पैसे की आमदनी जाती रही. बचपन से ही काम से जी चुरानेवाले नामा का काम में जरा भी मन नहीं लगता था. और उसने गांजे की पुड़िया का आसरा लिया. उसे पी-पीकर उसका सिर खोखला हो गया.

★ ★

दो रोटियां पेट में डाल कर नामा ने ऊंची डकार ली और बाहर निकला किंतु बायजाबाई से रहा नहीं गया, बोल उठी––नामा, बाजार जा रहा है न कहीं से मांग-जांच ले कुछ रुपये!

––इस बुढ़िया का तो दिमाग ही खराब हो गया है, कहकर तेजी से नामा बाहर निकल गया.

––क्या कहती है लेने को, बुआ, भिवरा ने पूछा.

––अरे, कह तो दिया, तुझे एक बार, तेरे लिए एक साड़ी लानी है. सबेरे से ही उसके पीछे लगी हूं. मेरा तो सिर खाली हो गया! बुढ़िया हताश भाव से गाल पर दनादन तमाचे मारने लगी.

––इसमें रोने-पीटने की क्या बात है? साड़ी के लिए पैसे मैं पाटील बाई से मांग लायी हूं. तुम बेकार हलकान मत होओ. उनकी बात मन पर क्यों लाती हो?

एक क्षण में बुढ़िया खुश हो गयी. तुरंत भिवरा से बोली–जा, बाजार हो आ, फिर जरा देखकर अच्छी-सी ले आना. तुझे भगवान ने सोने का-सा रूप दिया है किंतु हम दरिद्र तुझे कुछ भी तो नहीं दे पाये. भैया कहा करते थे, क्या जोड़ी है नामा-भिवरा की. जैसे विट्ठल-रुक्मिणी की जोड़ी हो! किंतु इसने तेरे रूप-गुण की कोई कदर नहीं की. यह मेरे भाई को कभी खुश न कर सका. वह आता और इसके करम देखकर माथा पीट लेता. अंत में घुल-घुल कर मर गया. बुढ़िया बायजाबाई रोने-धोने लगी. पुरानी बातों को याद करके भिवरा की आंखें भी भर आयीं.

आखिर बुढ़िया बोल उठी-उठ, बाई उठ! पहले ही

बाजार हो आ.

भिवरा ने छिपा कर रखे हुए पैसे निकाले.

—बुआ, यह देखो, सात रुपये हैं.

—जितना भी हो, जा तो सही.

आते-आते कांदा-मिर्च, दाल-गुड़ लेते आना होगा. सबेरे त्यौहार है. कुछ तो भी बनाना होगा, भिवरा ने सोचा. वह तुरंत बाजार के लिए निकल पड़ी.

दोपहर हो गया था. आकाश में सूरज तप रहा था. कांदा-मिर्ची की दूकानों में कुछ के पास सेर-पाव-सेर का वजन भी नहीं था, इसलिए वाद-विवाद जारी था.

भिवरा बैठ कर बाजार लगने की राह देखने लगी. अपने को काम ही कितना करना है. घड़ी भर का तो काम है! वह यों ही बैठी थी कि नामा आ कर उसकी बगल में बैठ गया.

—कब आये तुम? आना ही था तो मुझे क्यों नहीं कहा. साथ आ गये होते.

—अजी, तुम्हारे पीछे-पीछे ही तो आया था, किंतु रामा वुर्डा ने रोक लिया था, तभी जरा समय लग गया, सिर पर मैली टोपी से हवा करते हुए वह बोला.

—वुर्डा ने क्यों रोका था?

—उसका गांजे का सात रुपया बाकी है न! उसी का तो है. दो तो, गला सूख रहा है. उसकी बात सुन कर भिवरा को क्रोध आ गया.

—अपने पास के सात रुपये तुम्हें दे दूं तो साड़ी कैसे आयेगी? त्यौहार के लिए मेरे पास कोई दूसरा वस्त्र नहीं है. तुम्हीं बोलो.

—साड़ी आज नहीं तो कल आ जायेगी किंतु ऐसा समय फिर कहां आयेगा? कहां हैं पैसे?

कितना हाथ-पैर जोड़ कर उसने पाटील-पत्नी से सात रुपये लिये थे. भले ही, साड़ी के लिए रुपये लिये थे, उसको तो सुख मिलना चाहिए. . .और उसने वे सात रुपये तत्काल नामा के हाथ पर धर दिये.

खाली हाथ भिवरा ने शिवणी की राह पकड़ी. कल की संक्रांति पुराने कपड़ों में ही मना लेगी, पहनने को आज नहीं कल मिलेगा किंतु चार आदमियों ने मेरे आदमी की इज्जत ले ली तो फिर मिलेगी क्या? उसका सद्विवेकी मन बार-बार विचार कर रहा था.

बुढ़िया बायजाबाई. उसने भिवरा को देखा, खाली हाथ आते हुए!

कल ही संक्रांति है. प्रत्येक सधवा अपने सिंदूर के लिए पति की दीर्घायु की कामना कर रही थी.

भिवरा ने शाम को कुछ रूखा-सूखा बनाया. नामा रोटी खा कर घर के सामने चबूतरे पर बैठ गया. चिलम सुलगा कर दम लगाया. इतने में ही भिवरा कूड़ा-कचरा फेंकने बाहर निकली तो उसने भिवरा का हाथ पकड़ लिया.

—जाने भी दो, छोड़ो. बुआजी देख लेंगी, भिवरा आगे-पीछे देखते हुए हौले से बोली. किंतु नामा की आंखों में तो गांजे की सनक चढ़ी हुई थी.

—बुढ़िया को मारो गोली! तुझे एक बात कहनी है.

—क्या काम है, बोलो.

—आजकल का जमाना बड़ा खराब है, पास में पैसा है तो इज्जत है. गांव में एक दाढ़ीवाला साहब आया हुआ है, उसके लिए बोतल का इंतजाम तो हो गया है किंतु औरत का नहीं. अजी वस्त्रों के पीछे सारी दुनिया नंगी है. तू मन पक्का कर ले तो रात में पैसा ही पैसा! बड़ा सुअवसर है.

भिवरा पाटील के घर गोबर काढ़ती थी. उसका शरीर सोने का था किंतु ढंका हुआ था जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों से. सोने से शरीर में मन भी सोने का ही था. नामा को उसने देवता मान लिया था. . .और वही अब उसे दुराचार का मार्ग दिखला रहा था. क्षण भर के लिए उसे लगा कि मानवता का मरण हो गया, धरती कांप उठी और उसके सोने के शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो गये. . .हे भगवान, क्या तेरे घर में न्याय नहीं?. . .बोल, कहां बैठा है तू कुंडली मारे हुए?. . .यह क्या मेरा पति है?. . .. उसके नेत्रों के सामने अंधेरा छा गया. क्षण भर के लिए वह अपने आपको भूल गयी और उसने नामा के गाल पर एक करारा तमाचा मारा. इसी समय संयोग से बायजाबाई बाहर आ गयी. उसने अपनी धुंधियाली आंखों से नामा को तमाचा मारे जाते देखा. दो दिन से नामा को गाली देने वाली बुढ़िया को आग लग गयी—भिवरा, गधी तूने उसे तमाचा मार दिया? कौन है तेरा वह खसम? तेरा स्त्रीजन्म वृथा है. तुझे क्रोध है तो जा मर किंतु ऐसा दुष्कर्म तो न कर!

मैंने नामा को, अपने पति को तमाचा मार दिया था. क्यों मारा था, सास को क्या कहूं? मैं ही पापी हूं, सासू. इन हाथों से आज तक गोबर काढ़ा था, किंतु आज वे कहां उठ गये! भगवान ने मुझे सुंदर बना कर न मालूम क्या करना चाहा है. इस रूप को मिट्टी में मिला देना चाहिए. मेरा स्त्री-जन्म अकारथ गया.

'स्त्री-जन्म!' उसके सिर में बुआ के शब्द खलबली मचाने लगे. उसे लगा कि बबूल का वृक्ष भी उसे गाली दे रहा है. बड़ी-बूढ़ी औरतें उसके मुंह पर थूक रही हैं.

रात काफी बीत गयी थी. शिवणी के चारों ओर घना अंधकार छा गया था. वृक्षों पर उल्लू बोलने लगे थे. और उसी समय घर में नीचे के नाले में से भालू रोता हुआ जा रहा था. बायजाबाई जग रही थी. उसके शरीर के रोंये खड़े हो गये. उसने पास में सो रही भिवरा को हिलाया-डुलाया.

—भिवरा, उठ तो! आंख ही नहीं लग रही है. जाग रही है, न? अरे बोल तो, मेरी सौगंध बोल तो!

किंतु भिवरा वहां नहीं थी बोलने को. वहां पड़ा हुआ था उसका अचेतन शरीर!

संक्रांति का दिन उगा. नामा की जेब में कल के सात रुपये अब भी पड़े हुए थे. उससे वह साड़ी लाया अर्थी सजाने को! शिवनी के बड़े-बूढ़े भगवान को याद कर रहे थे और भिवरा चिता पर जल रही थी. नामा की लाल आंखें और भी लाल हो गयी थीं, मानों बिंबाफल हों. उसके सिर पर के बाल बिखरे हुए थे. उसके हाथ-पैरों में जान नहीं थी, पेट में अन्न का दाना नहीं था क्योंकि आज भिवरा पाटील-पत्नी से कुछ भी नहीं लायी थी.

(अनुवाद : आ. प्र. सि.) □□□

नवंबर, '७३ अंक से सारिका में मीनाकुमारी की इस काव्यमय डायरी की शुरुआत की गयी थी, जिसे सारिका के लिए विशेष रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं मीनाकुमारी के अंतरंग मित्र व प्रसिद्ध शायर गुलजार. उन्हीं के शब्दों में "मीनाजी की डायरियों में उस कबीले का इतिहास भी है, जिसे लोग 'फिल्म वाले' कहते हैं, और साहित्य भी. वे निजी ज्यादा हैं. लेकिन उस वक्त की झलक जरूर देती हैं, जिसमें वह जी रही थीं—या उनके अपने लफ्जों में 'मर रही' थीं." (इस रचना के किसी अंश का उपयोग करने से पहले श्री गुलजार, ९१ए, कोजीहोम, २५१, पाली हिल, बंबई, से अनुमति लेना जरूरी है.)

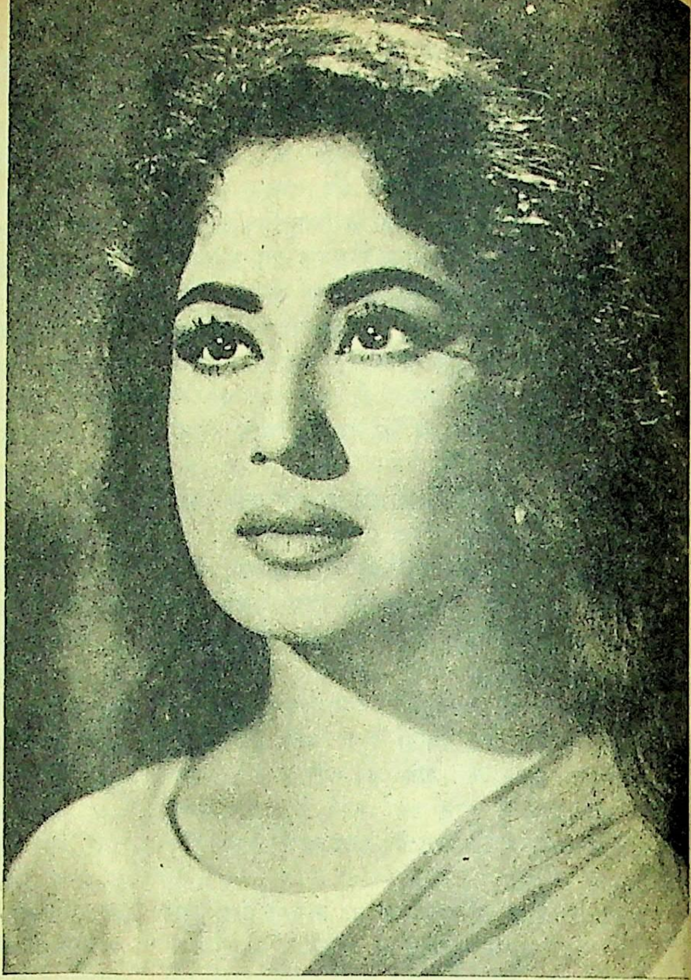

मीनाकुमारी की डायरी: १५

चालीस मील लंबी मौत

गुलज़ार द्वारा प्रस्तुत

मीनाजी का सफरनामा-ए-हिंद उनकी ससुराल पर खत्म नहीं होता.

सफर जारी रहा, सिर्फ जिक्र रुक गया है कुछ देर को. इसलिए कि इस सफर का जिक्र मैंने इसी बात से शुरू किया था कि मीनाजी की अजदवाजी (घरेलू) जिंदगी जो शुरू हुई थी, वह बहुत खूबसूरत थी. इसकी झलक इस सफर में भरपूर मिलती है. यह आवाज घर में रची-बसी एक बहू की ही हो सकती है :

'मेरा असली और आखिरी घर अमरोहा करीब आ रहा था. यह घर मेरे लिए तो मुकद्दसतरीन जगह है. अपने इस घर को देखने का किस कदर इश्तियाक था मुझे! यहां के घरों, सड़कों और मोहल्लों के नाम मुझे इस तरह याद हैं जैसे कि मैं हमेशा से यहां रहती रही हूं . . .'

अगला जुमला बाकमाल जुमला है :

'अमरोहा स्टेशन को मैं इस तरह देख रही थी. जैसे इससे पहले मैंने कोई स्टेशन नहीं देखा.'

वक्त का तसल्सुल तोड़ दीजिए. कुछ साल आगे बढ़ कर देखिए. यही रूह बहुत-से बेनाम स्टेशनों पर रुकती, चलती, तलाश करती नजर आती है. हर जगह यही लगता है कि जाते-जाते किसी सफर से टूट कर गिर पड़ी है. या कोई 'ठहरो, मैं आता हूं' कह कर छोड़ गया है और फिर नहीं आया.

हर पड़ाव पर लगता है 'जिस सफर पे जा रही थी, वहां नहीं जाना मुझे!' हर पड़ाव पर किसी नये सफर की तलाश में

वक्त पूछती फिर रही हैं :

'रात का कौन-सा पहर है?
कब कोई गुजरेगा यहां से?
मैं चलूं या रुकूं?'

यह सफर कहां से टूटा और क्यों, यह जानने के लिए जवाबों से ज्यादा सवाल तिलमिलाते हैं जेहन में.

एक त्रिवेणी

तुमको देखा है जब से आंखों ने
और कोई नजर नहीं आता

मेरी आंखों ने हीरा चाट लिया.

☐ **गुल़जार**

★ ★

एक बात जो सवाल की सूरत भी समझ आती ह, जवाब की सूरत भी, वह यह कि मीना जी बहुत महत्वाकांक्षी थीं. शोहरत अपने आप में बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा है. महत्वाकांक्षा, कोई गुनाह नहीं, लेकिन महत्वाकांक्षी लोगों की जिंदगी में ऐसे हादसात हमेशा हुए हैं. वे किसी भी हालत म मौजूदा हालात पर मुतमइन (संतुष्ट) नहीं होते. और यही मीना जी के साथ हुआ. लेकिन उनकी जिंदगी इतना बड़ा अलमिया (त्रासदी) इसलिए लगती है कि बेचैनी और नाइतमीनानी (असंतोष) के हादसात उनकी जिंदगी में बहुत ज्यादा हैं. तबीयतन जरूरत से ज्यादा हस्सास थीं. इसलिए एक कैफियत से दूसरी कैफियत में दाखिल होने का वक्फा बहुत कम है.

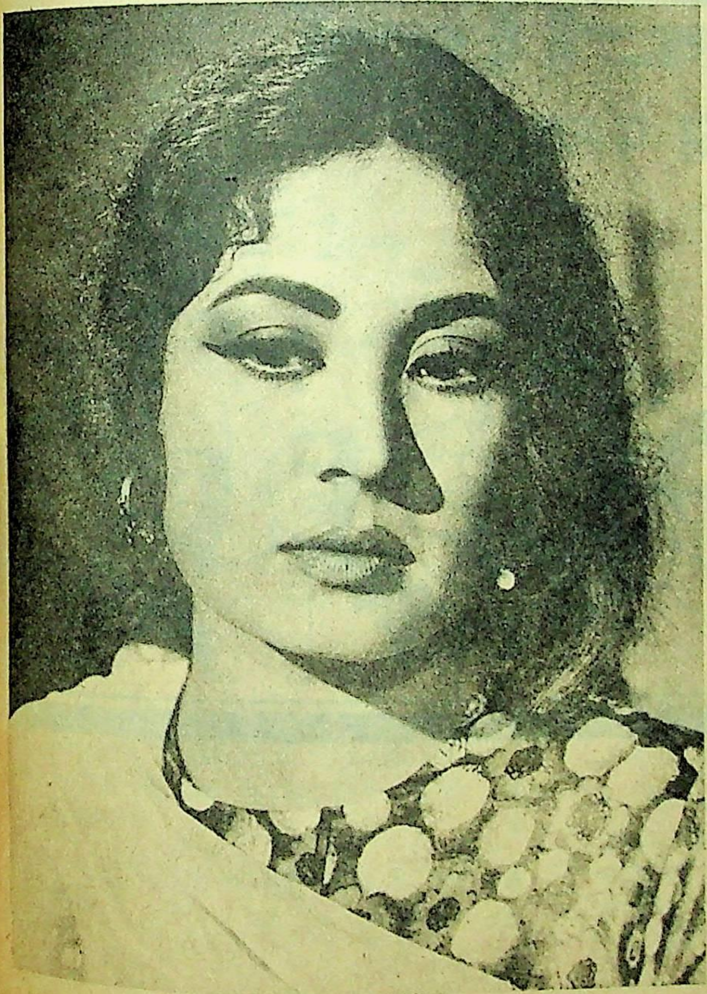

दूसरी बात जो समझ में आती है, वह यह कि मीनाजी के बदन से कोई औलाद नहीं थी. और यह खला उन्हें अंदर-ही-अंदर घेरे रही.

उसे मरने के लिए वह अपने आप में हर तरह की तकमील आजमाती रहीं :

'अंदर-ही-अंदर कुछ घटा जा रहा है, घिसा जा रहा है और मेरी समझ में नहीं आता क्या करूं, किस तरह ऐसा होने से रोकूं? कैसे रुकूं, ठहरूं? कुछ बताओ, कुछ करो, जो मुझे इस तरह न जीना पड़े. हजार बीमारी हो तो भी खुदा ऐसी शामों से बचाये रखे. मुझे डर लगता है. उफ! इनसे बहुत डर लगता है. . .आह, मुझसे नहीं सहा जाता! कहां कैसे भाग जाऊं, निकल जाऊं किसी तरह यहां से.

'चार नहीं बजे थे जब उठ कर घड़ी में चाबी देने लगी. और खयाल हुआ, अभी तो सुबह भी नहीं हुई! आह, मेरा खुदा ही जानता है, मैं कैसी हूं! . . .

'आज फिर दिल-दिमाग ने हड़ताल कर रखी है. किसी तरह नहीं मानते. बात सुनने को तैयार ही नहीं. यह चुप—न कुछ सुनना चाहे, न बोले—वक्त का यह हिस्सा कब खत्म होगा? —आह! मैं उकता गयी, ऊब गयी, पुरानी हो गयी. . .

'—यह दिन से पूछ रही थी कि सच ही तो कहीं मेरा जेहन, मेरा दिमाग सुन्न नहीं होने लगा? एक नुक्ता नन्हा-सा —कायनात-बराबर!

(क्रमशः)

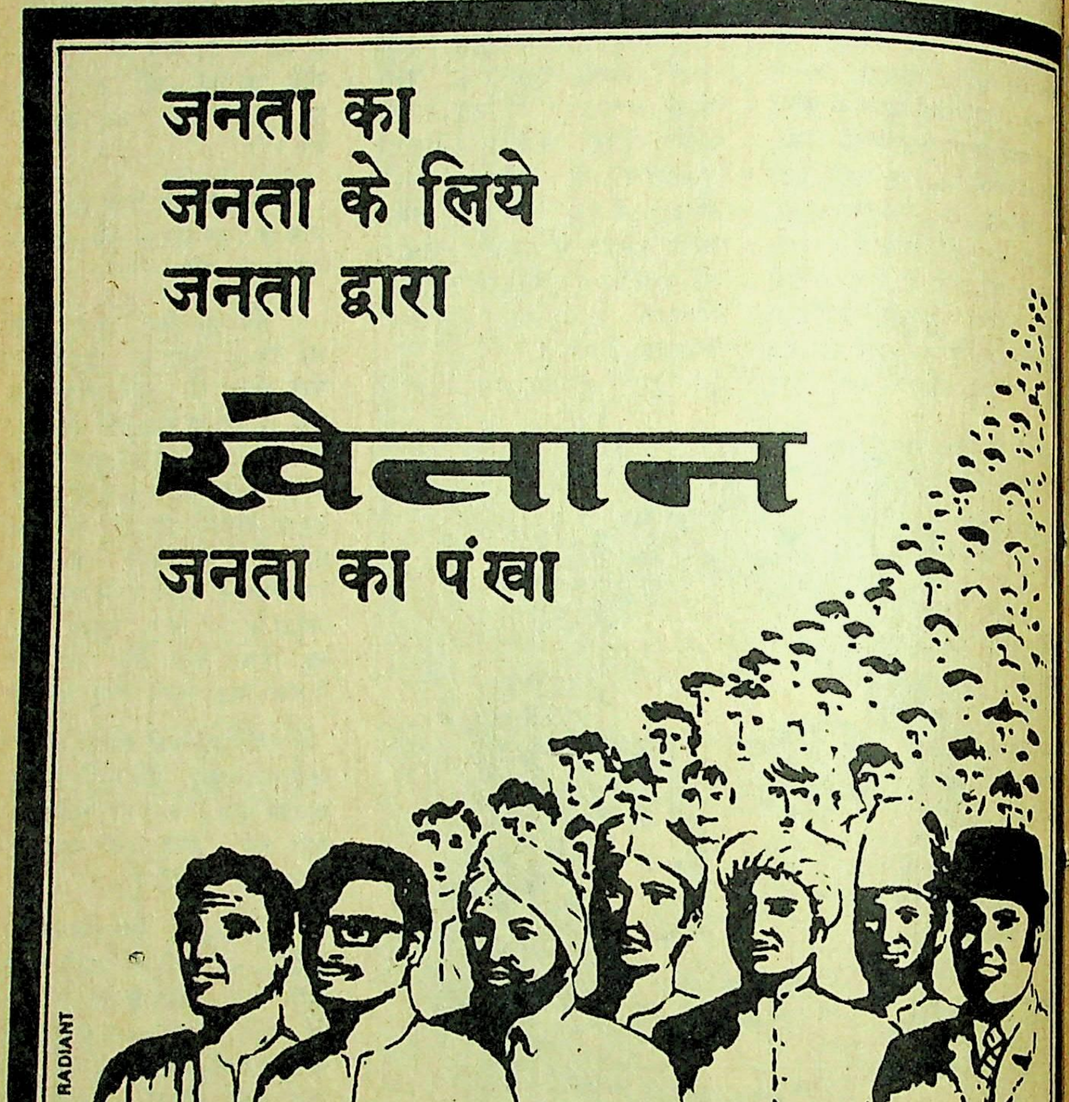
जनता का
जनता के लिये
जनता द्वारा
खेतान
जनता का पंखा
RADIANT

घटना--कथा

फल-फूल की तरह इस हिंदुस्तान में आदमी भी देवी-देवताओं को चढ़ा दिये जाते हैं और गजब यह कि भारतीय दंड संहिता में बलि की सजा के लिए अलग से कोई प्रावधान नहीं है.

यह कहने की बात नहीं कि बलि के बकरे अधिकतर हरिजन-आदिवासी परिवारों के लोग ही होते हैं और भारतीय दंड संहिता की कृपा से ये बलियां साधारण हत्याओं में शुमार की जाती रहती हैं.

यह था गुजरात का एक भोला-भाला भील. उसका कोई अपराध नहीं था. यहां तक कि उसने सवर्णों के घिनौने अहम को भी चोट नहीं पहुंचायी थी. लेकिन १५ जनवरी १९७० को उसकी बलि चढ़ गयी. उसकी बलि चढ़ाने वाले दो व्यक्ति थे. उन्हें यह मुगालता था कि वे किसी जंगली जानवर को आदमी का ताजा खून पिला देंगे तो वह जानवर उन्हें गड़े हुए खजाने का रास्ता बता देगा.

और जानवर को भील का खून ही माफिक आ सकता था!

या भील का नहीं तो हरिजन बालक का ही सही!

इस १२ वर्षीय हरिजन बालक झब्बर का भी कोई कसूर नहीं था. उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के लाल गांव का यह लड़का अपने दो साथियों के साथ खेल रहा था. किन्हीं कपिलदेव के भाई रामपति और लड़के विद्यासागर को यह अच्छा खासा शिकार नजर आया. वे उसे खींच कर अपने घर में ले गये.

बाकी दो लड़के खेलते रहे. खेलते-खेलते उन्हें झब्बर की चीख सुनाई दी. लड़के खिड़की से झांकने लगे कि भीतर क्या हो रहा है. थोड़ी देर तो उन्हें यह माजरा समझ में ही नहीं आया. समझ में आया तो वे भागे पुलिस थाने. वहां उन्होंने बताया कि उनके दोस्त झब्बर का कपिलदेव, रामपति और विद्यासागर मिल कर गला काट रहे हैं.

पुलिस ने लोहे की एक पेटी में से झब्बर की लाश बरामद की. कपिलदेव और रामपति तुरंत गिरफ्तार किये गये. बाद में विद्यासागर ने भी आत्मसमर्पण किया.

यह जान भी देवी को खुश करने के लिए ली गयी थी.

□□□

फरवरी में प्रकाशित कथा-पहेली का सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार-विजेता

इस बार न्यूनतम १ अशुद्धि पर चार प्रतियोगियों में से प्रत्येक को ४० रु. प्रदान किये जा रहे हैं, जो हैं :—

१. भगवान दास रायकवार, शिक्षक पद्माकर न. पा. उच्च. माध्य. शाला, सागर (म. प्र.), २. हरेंद्रकुमार कोटिया २८, पैलेस रोड, रतलाम (म. प्र.), ३. श्रीमती कांता खेतान, फ्लैट ९ 'कविता,' प्लाट नं. ६११, १५ वां रास्ता खार, बंबई–५२, ४. सोमनाथ शर्मा, अध्यापक, द्वारा मिश्रीलाल शर्मा, ४।१९३ शाहपुरा मोहल्ला, ब्यावर (राज.).

और यह रहा इस बार का सर्वशुद्ध हल : १. बड़े दादा. २. (पृ. २४।२५।२७), ३. मास्सा ४. पानीपत, हाजीपुर. ५ वृ. ६. (पृ. ७२-७३). ७. घुन ८. इजारेदारी.

इस अंक से 'सारिका, कथा-पहेली' का प्रकाशन कुछ अंकों के लिए स्थगित किया जा रहा है, ताकि हम अपने पाठकों के लिए उसे और भी रोचक तथा उपादेय बना सकें.

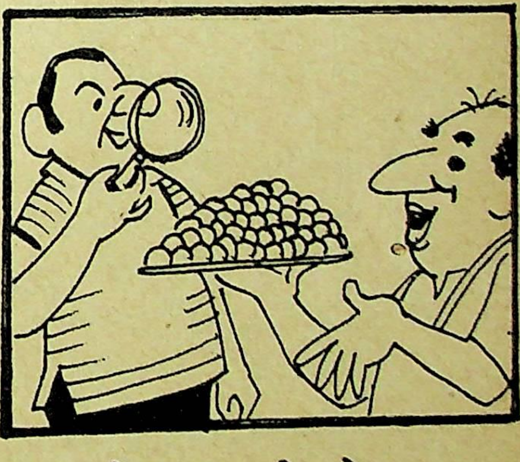

● व्यंग कल्पना : मदन खंडेलवाल

नये आकार की घोषणा

शक्कर की कमी के कारण हम लड्डू का आकार छोटा कर रहे हैं लेकिन इससे लड्डू की संख्या में कोई अंतर नहीं आयेगा.

मूल्य और स्वाद पुराना ही रहेगा.

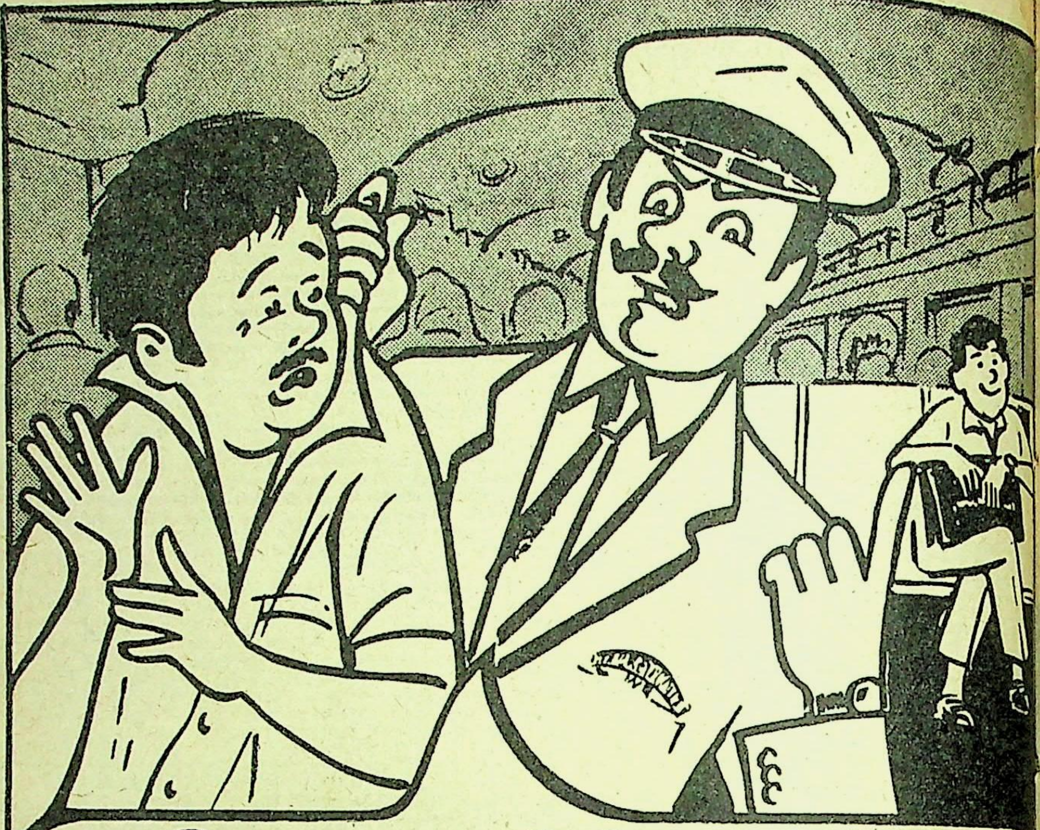

टिकट ख़रीदिए और शान से यात्रा कीजिए

बिना टिकट जाकर ... बिना शान-शौक़त के ... बिना इज्जत-आबरू के ... बिना आत्म-विश्वास के यात्रा क्यों कीजिए ? हमेशा बेचैन और डरे हुए ? जी हां, आप पकड़े जा सकते हैं, और आप पर भारी जुर्माना हो सकता है और तब सभी ओर आपकी खिल्ली उड़ाई जाएगी ! और यदि आप बच भी निकले तो भी धोखेबाजी हुई न । तब तो आप अपने आप को धोखा देते हैं, और साथ ही अपने राष्ट्र को भी धोका देते हैं । कितनी बुरी बात है । अतः अपने स्वयं के हित में तथा राष्ट्र के हित में, कृपया टिकट खरीद लिया करें।

शान से यात्रा कीजिए, उचित टिकट लेकर यात्रा कीजिए।

पश्चिम रेलवे

cam/wr/7404

the merry world of Shreelon & Shreester

the yarns that make beautiful fabrics

श्रीलॉन नायलॉन यार्न— जानकार
महिलाओं की मनमोहक साड़ियों और मनोरम ड्रेस मटीरियल्स
(पोशाकों के कपड़े) बनानेवाला यार्न (धागा)
श्रीएस्टर पोलिएस्टर यार्न— तरक़्क़ीपसन्द पुरुषों की
आधुनिकतम सूटिंग और शर्टिंग बनानेवाला यार्न (धागा)
इसलिए जब हो श्रीलॉन और श्रीएस्टर का मिलन,
तो छा जाता है उमंगभरी ख़ुशियों का सावन!

श्री

बनानेवाले : श्री सिन्थेटिक्स लि., नौलखा, उज्जैन
सेल्स ऑफ़िस : श्री निवास हाउस, एच्. एम्. सोमानी मार्ग, बम्बई - ४०० ००१

JAISONS 429 Delhi

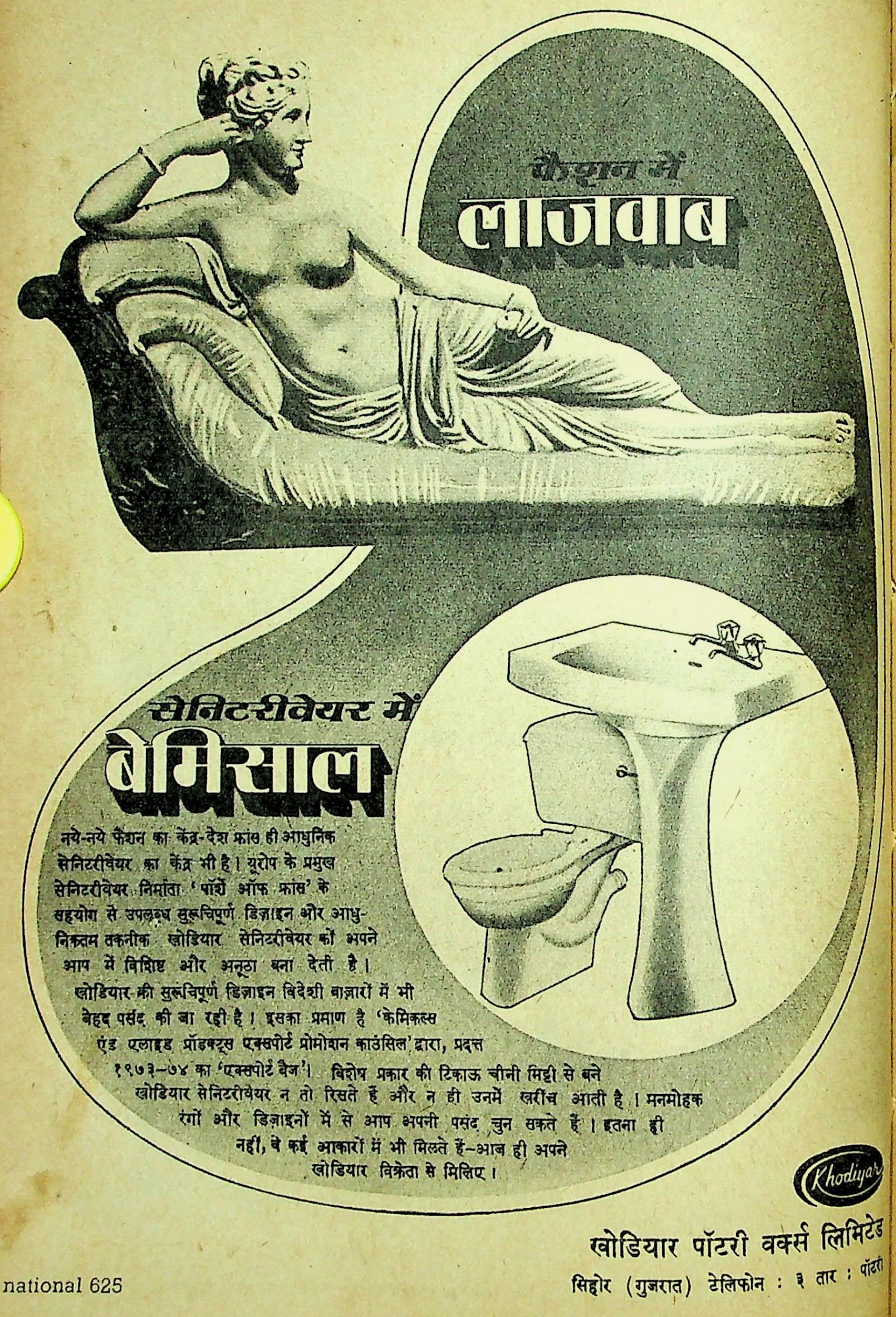

नये-नये फैशन का केंद्र-देश फ्रांस ही आधुनिक सेनिटरीवेयर का केंद्र भी है। यूरोप के प्रमुख सेनिटरीवेयर निर्माता 'पॉर्शे ऑफ फ्रांस' के सहयोग से उपलब्ध सुरुचिपूर्ण डिज़ाइन और आधुनिकतम तकनीक खोडियार सेनिटरीवेयर को अपने आप में विशिष्ट और अनूठा बना देती है।

खोडियार की सुरुचिपूर्ण डिज़ाइन विदेशी बाज़ारों में भी बेहद पसंद की जा रही है। इसका प्रमाण है 'केमिकल्स एंड एलाइड प्रॉडक्ट्स एक्सपोर्ट प्रोमोशन काउंसिल' द्वारा, प्रदत्त १९७३–७४ का 'एक्सपोर्ट बैज'। विशेष प्रकार की टिकाऊ चीनी मिट्टी से बने खोडियार सेनिटरीवेयर न तो रिसते हैं और न ही उनमें खरोंच आती है। मनमोहक रंगों और डिज़ाइनों में से आप अपनी पसंद चुन सकते हैं। इतना ही नहीं, वे कई आकारों में भी मिलते हैं–आज ही अपने खोडियार विक्रेता से मिलिए।

खोडियार पॉटरी वर्क्स लिमिटेड

सिहोर (गुजरात) टेलिफोन : ३ तार : पॉटरी

national 625

तुलसी-कृत

रामचरितमानस

भाग २: उत्तरार्ध

श्रीराम का वन-गमन, उनके यशस्वी कार्य, हनुमान की निःस्वार्थ भक्ति और लंका में राम-रावण का युद्ध, रावण का पराभव और राम का राज्याभिषेक—तुलसीदास कृत रामचरित मानस के इन प्रसंगों को प्रस्तुत किया गया है इंद्रजाल कामिक्स के ९६ पृष्ठोंवाले इस विशेषांक में—सरल भाषा में वर्णित कथा और सुंदर चित्रों से सजे हुए इस विशेषांक में महाकाव्य की भव्यता उभर आयी है. रामराज्य की महानता का परिचायक यह अद्वितीय विशेषांक अंग्रेजी, हिंदी और बंगला में प्रकाशित किया गया है. यह १ जुलाई १९७४ को प्रकाशित रामचरित मानस के प्रथम भाग के बाद दूसरी व अंतिम कड़ी है.

अपनी प्रति अपने न्यूज एजेंट से तुरंत खरीद लीजिए.

तुलसी-कृत
रामचरित मानस
भाग २: उत्तरार्ध

इंद्रजाल कामिक्स

१५ अप्रैल, १९७५

मूल्य ३ रुपये

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

बेनेट कोलमन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए [illegible] द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई–१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१; कलकत्ता आफिस : १३ १

पंजीयत सं. एम.एच.-दक्षिण बंबई-२९९

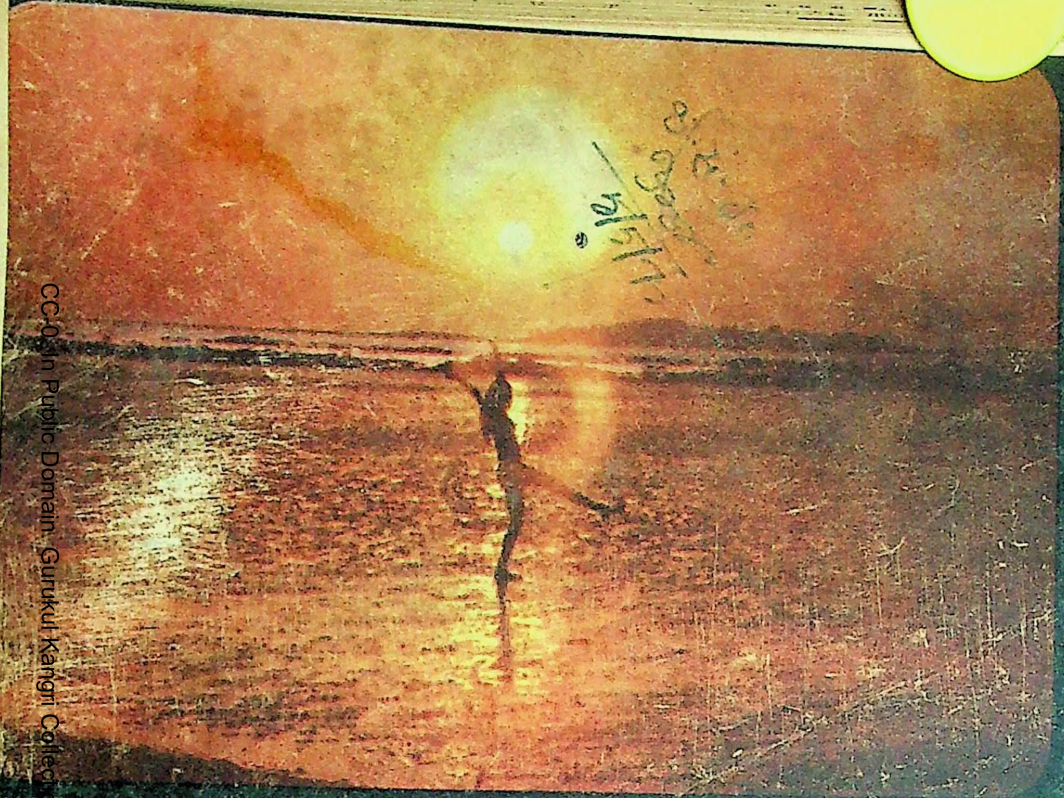

जी में आता है कभी कभी
साहिल हो समन्दर का-
तन्हाई हो
शाखों को छेड़ती हुई साँझ की धूप
साहिल पे उतर आई हो
और हम-दुनिया के एंजोफ़िक्र से दूर
कपड़ों की क़ैद से आज़ाद
चले जाएं बहुत दूर जहाँ
मिलते हैं ज़मीनो आसमाँ
-लहरों को छेड़ती हुई बादे शमीम
बदन से खेलती हुई बादे शमीम
लिपट जाए हमसे
उनके ख़्यालों की तरह!

नवसारी शर्टिंग्स
अनोखा एहसास

भारतीय दलित साहित्य

सारिका

मई १९

समातर कहानि
विशेषांक-

आम आदमी
आसपास
आज की रचना

3/6/75

गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय

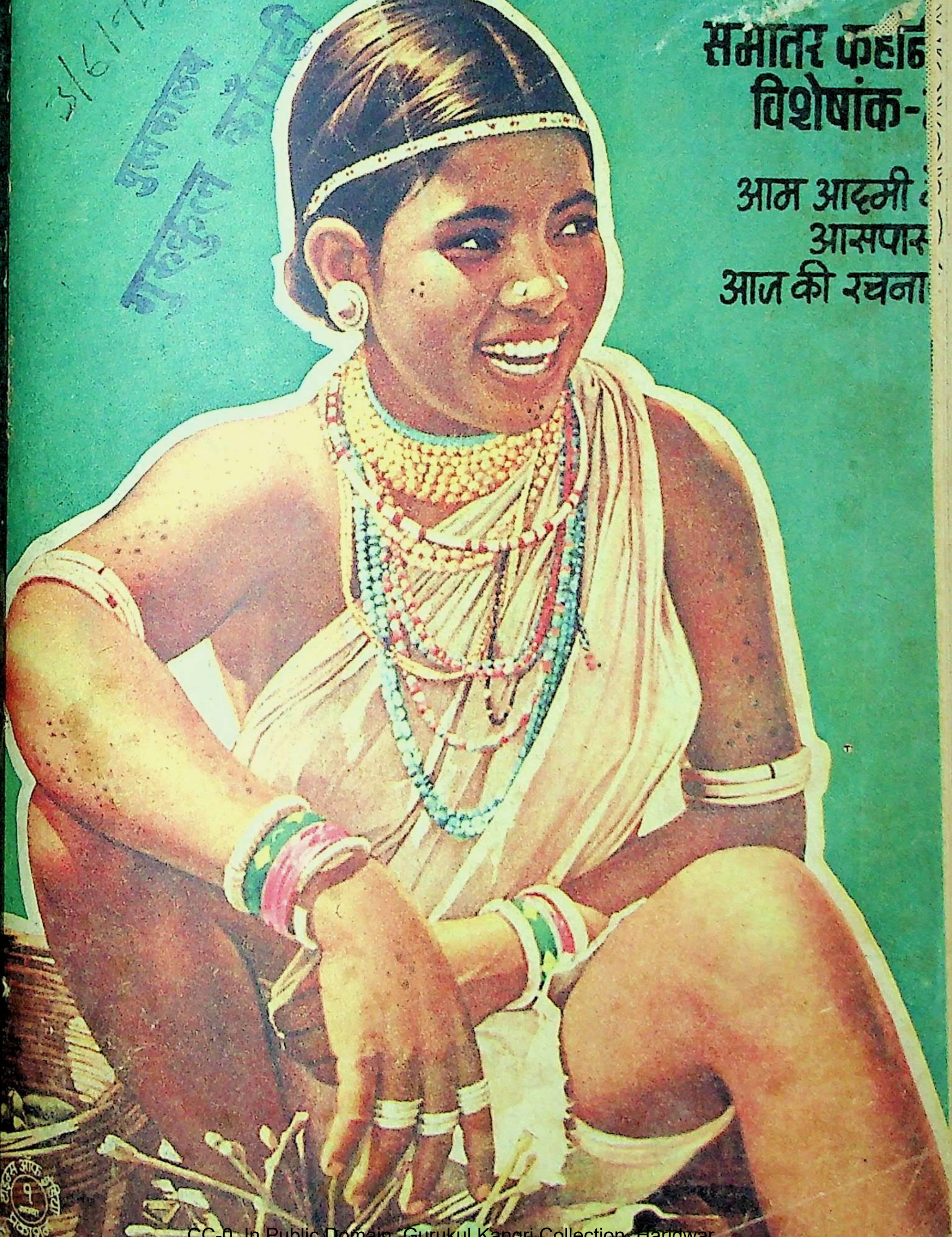

भोजन को स्वादिष्ट बनाये सब के मन को भाये...

पराग शुद्ध घी

भोजन को अधिक स्वादिष्ट और पौष्टिक बनाइये – पराग शुद्ध घी अपनाइये ।

शुद्ध दूध से हमारे अति आधुनिक डेरी प्लांट में निर्मित, पौष्टिक तत्वों से भरपूर पराग घी पूर्णतया शुद्ध एवं स्वास्थ्यवर्द्धक है। स्वाद में घर के बने घी जैसा। निः संदेह इसकी लुभावनी-भीनी सुगन्ध से युक्त पकवान आपके परिवारजन खुशी से खायेंगें ।

पराग शुद्ध घी परिवार के स्वास्थ्य के लिये सर्वोत्तम है ।

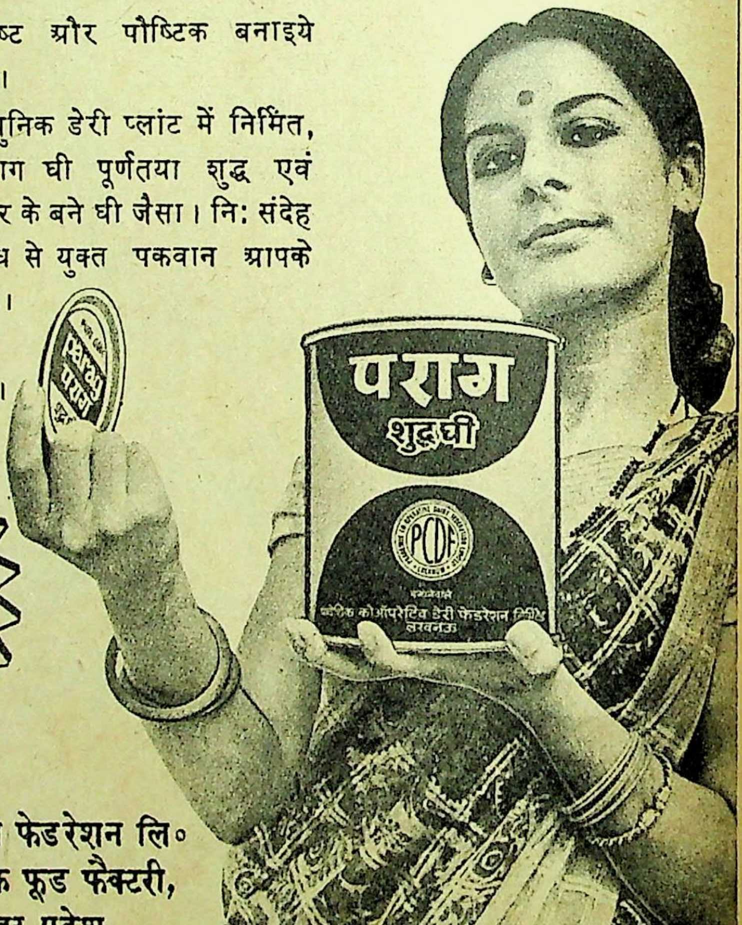
पराग
शुद्ध घी
PCDF
प्रादेशिक कोऑपरेटिव डेरी फेडरेशन लिमिटेड
लखनऊ

पराग
शुद्ध घी
१ एवं २ किलो के
मुहरबन्द डिब्बों में
उपलब्ध ।

निर्माता :
प्रादेशिक कोआपरेटिव डेरी फेडरेशन लि०
लखनऊ द्वारा इन्फैंट मिल्क फूड फैक्टरी,
दलपतपुर (मुरादाबाद) उत्तर प्रदेश

वो दो जो मेरी साँसों में बसा करते हैं—

एक तुम...

एक बिनाका ग्रीन...

सच, बिनाका ग्रीन की निर्मल ताज़गी में बसीं मेरी साँसें... और मेरी हर साँस में समाए तुम! मुझे तुमसे प्यार है... मुझे बिनाका ग्रीन से प्यार है क्योंकि क्लोरोफ़िलयुक्त बिनाका ग्रीन में पाये जाने वाले प्राकृतिक गंधनाशक से मेरी साँसों में फूल खिल जाते हैं...

आह! वह बहार... तुम्हारे साथ गुज़रे वह सुनहरे क्षण... वह महका महका सा मेरी साँसों का मधुबन!

Binaca
Green
toothpaste
CIBA
MADE IN INDIA
Charm Enclosed
Binaca
Green
toothpaste
Binaca

महकी साँसों का मधुबन

बिनाका टूथब्रश की गोल बनायी गयी नोकें आपके मसूड़ों को छिलने से बचाती हैं।

CIBA-GEIGY

Rediffusion CG/194/i hin

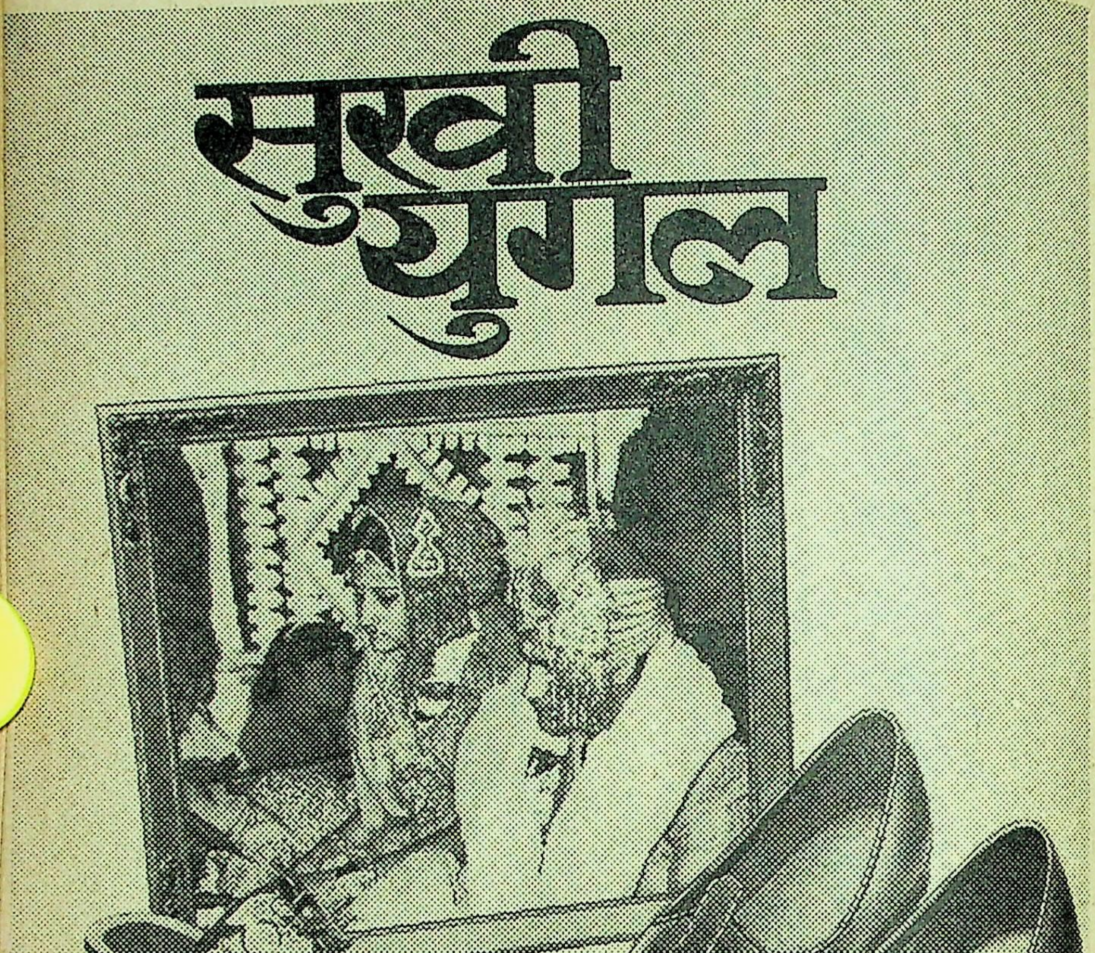
सुखी युगल
पायें बाटा के जूतों में
आराम का आनन्द
Bata
Bata
Bata
Bata

हिन्द पॉकेट बुक्स की 800वीं पुस्तक

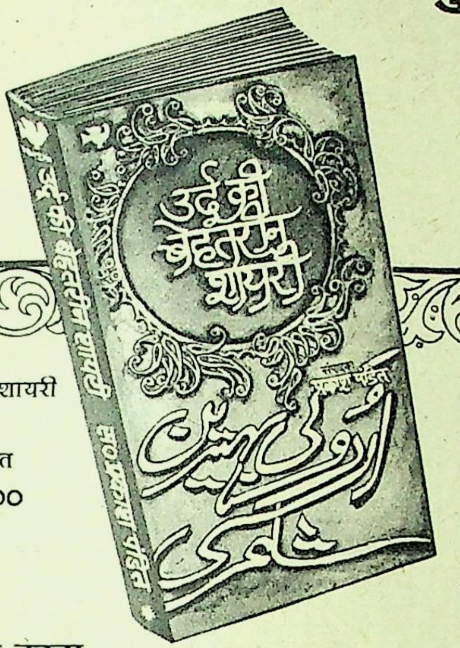

उर्दू की बेहतरीन शायरी
सम्पादक
प्रकाश पंडित
मूल्य : रु० 3.00

पिछले अठारह वर्षों में
हिन्द पॉकेट बुक्स ने
निरन्तर विभिन्न विषयों का
स्वस्थ साहित्य भारतवासियों को दिया है

आज 800वीं पुस्तक के
प्रकाशन पर हम अपने करोड़ों
पाठकों को धन्यवाद देते हैं

कुछ अन्य लोकप्रिय हिन्द पॉकेट बुक्स

उपन्यास

निर्मला	मुंशी प्रेमचन्द	2·50
सुखदा	जैनेन्द्रकुमार	3·00
दादा कामरेड	यशपाल	4·00
अनाड़ी	उपेन्द्रनाथ अश्क	3·00
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	4·00
अपने खिलौने	भगवतीचरण वर्मा	5·00
नरक	मन्मथनाथ गुप्त	4·00
पुष्पगंधा	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	4·00
कलंक-मुक्ति	रेणु	2·50
गोली	आचार्य चतुरसेन	5·00
रति विलाप	शिवानी	3·00
भैरवी चक्र	गुरुदत्त	6·00
भंवर	भैरवप्रसाद गुप्त	3·50
कांचघर	भ्रमर	2·50
कार्निवाल	कृश्न चन्दर	3·00
एरियल	अमृता प्रीतम	2·00
एक चादर मैली सी	राजेन्द्रसिंह बेदी	3·00

जीवनोपयोगी

अनमोल मोती		3·00
सफलता के आठ साधन		3·00
भावनाओं के चमत्कार		3·00
महापुरुषों की सूक्तियां		3·00

सेक्स-स्वास्थ्य

स्त्री-पुरुष	डॉ. लक्ष्मीनारायण	3·00
सेक्स की तकनीक	,,	3·00
यौवन और स्वास्थ्य	,,	3·00

जीवनी-संस्मरण

गुरुजी गोलवलकर		3·00
स्वामी विवेकानन्द		3·00
राजा राममोहन राय		3·00
मेरी कहानी	नेहरू	5·00
महारानी	जरमनी दास	5·00

काव्य-शायरी

मधुशाला	बच्चन	3·00
तुम्हारे लिए	नीरज	3·00
गीतांजलि	टैगोर	3·00
शे'र-ओ-शायरी	सं० प्रकाश पण्डित	3·00

रोमांटिक उपन्यास

कटी पतंग	गुलशन नन्दा	5·00
सोने की लंका	,,	3·00
झील के उस पार	,,	3·00
शराफत	शेखर	3·00
तेरे मेरे चेहरे	,,	3·00
कुंवारी सुहागिन	,,	3·00
बाजी	मीनाक्षी माथुर	3·00
आग बनी सुहाग	,,	3·00
दिल और दर्द	,,	3·00

वैज्ञानिक उपन्यास

सूरज की भेंट	प्रो० दिवाकर	3·00
नक्षत्रों का युद्ध	,,	3·00
समय के स्वामी	,,	3·00
शुक्र ग्रह पर धावा	,,	3·00

जासूसी उपन्यास

काला शाल	कर्नल रंजीत	3·00
हत्यारे की पत्नी	,,	3·00
11 बजकर 12 मिनट	,,	3·00
सूनी सिवके	,,	3·00

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी पुस्तक-विक्रेताओं के यहां मिलती है। यदि प्राप्ति में कठिनाई हो तो घर बैठे मनपसन्द पुस्तकें प्राप्त करने के लिए

हिन्द पॉकेट बुक्स द्वारा संचालित
घरेलू लाइब्रेरी योजना
(बुक-क्लब)

के सदस्य बनिए तथा प्रतिमास 12 रुपये की पुस्तकें 8 रुपये में प्राप्त कीजिए। मासिक पत्रिका 'साहित्य संगम' निःशुल्क

नीचे दिए कूपन या किसी पोस्टकार्ड पर यहां दी गई पुस्तकों में से अपनी पसन्द की 12 रुपये की पुस्तकों के नाम लिखकर भेज दें। हम आपको सदस्य बनाकर वी० पी० पैकेट से पुस्तकें भेजनी शुरू कर देंगे। डाक-व्यय के दो रुपये भी वी० पी० राशि में जोड़कर दस रुपये की वी० पी० भेजा करेंगे। केवल पहली वी० पी० में सदस्यता-शुल्क के दो रुपये भी जोड़े जाएंगे (जो आपकी अमानत के रूप में हमारे पास जमा रहेंगे)। इस प्रकार पहली वी० पी० बारह रुपये की होगी। अब तक लाखों पुस्तक-प्रेमी इस योजना के सदस्य बन चुके हैं।

घरेलू लाइब्रेरी योजना (बुक-क्लब) सदस्यता-कूपन

नाम ______________________
पता ______________________
____

1 __________
2 __________
3 __________
4 __________
5 __________

मुझे घरेलू लाइब्रेरी योजना का सदस्य बनाएं। शुल्क के 2 रुपये पहली वी० पी० में जोड़कर 12 रुपये की वी० पी० से पुस्तकें भिजवा दें।

घरेलू लाइब्रेरी योजना-बुक-क्लब (५), जी० टी० रोड, दिल्ली-110032

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा. लि. जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-110032

सिर्फ मार्गो ही वह साबुन है जो सफाई के
अलावा कुछ और भी करता है।
क्या जाड़ा, क्या गर्मी यह चमड़ी को
हर मौसम में स्वाभाविक बनाये रखता है !

क्योंकि केवल मार्गो में ही नीम तेल मिला होता है

HIGH CLASS PERFUMED SOAP
FROM NEEM (MARGOSA) OIL DEO-
DORISED BY OUR SPECIAL PROCESS
IDEAL FAMILY SOAP
MARGO
SOAP
CONTAINS ALL BENEFICIAL
PROPERTIES OF NEEM (MARGOSA)
HYGIENIC TOILET SOAP
MARGO SOAP

मार्गो साबुन की मक्खन जैसी झाग में भरी रहती है प्राकृतिक नीम तेल—चमड़ी को मुलायम रखने वाला एक ऐसा तत्व जो चमड़ी को तेजवान व स्वस्थ बनाये रखता है। नीम के कीटाणुनाशक तत्व रोग के कीटाणुओं को तो दूर रखते ही हैं साथ ही मार्गो आपकी चमड़ी को हर मौसम में नर्म, मुलायम और बेदाग़ रखता है। और मार्गो में गन्धरहित नीम तेल के साथ ऐसा सुगन्धित उपादान मिला रहता है जो आपको घण्टों तरोताज़ा बनाये रखता है। सुस्निग्ध मार्गो पूरे परिवार के लिये बेहतर है।

मार्गो सोप
आपकी चमड़ी को हमेशा मुलायम व चिकना बनाये रखता है !

CCM 4183

कैलकटा केमिकल का एक उत्पादन

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका।
मई, १९७५
वर्ष : १५; पूर्णांक : १६९

समांतर कहानी विशेषांक-८
भारतीय दलित साहित्य

कहानियां

बंधु माधव : और इनसानियत मर गयी : १२
प्र. ई. सोनकामले : यादों के पखेरू : २४
प्रकाश न. खरात : तड़प : २८
अविनाश डोलस : डायरी के कुछ पन्ने : ३२
योगीराज वाघमारे : नये सूरज की खेज में : ३६
ओ. पी. शर्मा : इंतजार : ४४
गुरबचनसिंह भुल्लर : बोरे की रगड़ : ४८
मधु मंगेश कर्णिक : धर्म : ५२
गुरबख्शसिंह : चंडीदास : ६०
काजी अब्दुल सत्तार : घिस्सू : ६४

नाटक

गंगाधर पानतावणे : मृत्युशाला : १६

रिपोर्ताज

अरुणा लोखंडे : अकालग्रस्त दलित : ५६
नरेंद्र नीरव : चनवा का ओढ़ार : ७१

विशिष्ट लेख

बाबूराव बागूल : दलित साहित्य : उद्देश्य और वैचारिकता : ७५

भेंट-वार्ता :

अमृता प्रीतम : कहानी एक ब्याह की : ७२

लघुकथाएं

रतनलाल सोनग्रा : उसारीलाल उर्फ उस्मान, बुद्धिवादी की स्वतंत्रता : ६२
शेख जनुल आब्दीन : एक पाव चावल : ६३

विशिष्ट संकलन

पुराणकाल और शूद्र : ५८
टिप्पणियां : ३५, ३९, ४३, ५५, ६९
घटनाकथाएं : ८७

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ८, मेरा पन्ना : १०, कबिरा खड़ा बजार में : हरिशंकर परसाई : २०, चंद सतरें और : अनीता औलक : ८४, विविधा : ८९

संपादक : कमलेश्वर
- मुख्य उप-संपादक :
आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय सहयोगी :
श्रीनाथ पांडेय , देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के.

पाठकों के लिए सूचना

मीनाकुमारी की डायरी हम इस अंक में नहीं दे पा रहे और न अगले अंक में ही दे पायेंगे, इसका कारण गुलजार जी की अत्यधिक व्यस्तता है. 'सारिका' के जो स्थायी स्तंभ कुछ समय के लिए स्थगित कर दिये गये थे, उन्हें आप अगस्त '७५ अंक से फिर पढ़ सकेंगे. वे स्तंभ हैं—गर्दिश के दिन, गुस्ताखियां, आद्यकथाकार, कृतियां आदि.

पाठकीय

समांतर कहानी विशेषांक —४ और ५

'सारिका' के जनवरी और फरवरी अंक पढ़ने का मौका मिला. यों तो ऐसी पत्रिकाएं बहुत पढ़ीं, मगर **'सारिका'** को सबसे आगे बुलंदी पर पाया है. इसे पढ़ कर मैं एक महीने के लिए बस नशे में हो जाता हूं. सिर्फ एक कहानी रोज पढ़ता हूं. फरवरी अंक में जो कहानियां पसंद आयी हैं, वे हैं **'तीसरी सांस'** (कामतानाथ), **'अन्न और स्वप्न'** (नवतेजसिंह), **'जलते हुए डैने'** (हिमांशु जोशी), **'जाने किस बंदरगाह पर'** (सतीश जायसवाल) तथा **'छुट्टी का एक दिन'** (अकुलेश परिहार).

☐ **कृष्णकुमार, भटिंडा**

दुष्यंतजी की दस्तावेजी गजलें बहुत ही ठंडे अंदाज में बड़ी गरम बात कह रही हैं. आज का लेखक सामान्य आदमी के कितने पास रह-जी रहा है, इसकी गवाह हैं **'सारिका'** की कहानियां. सीधे-सादे ढंग से कही सीधी-सच्ची बात. **'जमीन का आखिरी टुकड़ा'** से चल कर **'जुलूस'** तक की यात्रा में कोई कहानी ऐसी नहीं लगी, जिसे कम वजनदार कहा जाये. **'यह सब अंतहीन'**, **'इजारेदारी'**, **'इंतजार'** और **'जबरा मारे रोने न दे'** वर्षों तक याद रहने वाली कहानियां हैं. **'जमीन का आखिरी टुकड़ा'** हमारे गांव से कस्बे तक, हर दूसरे महीने, आने वाले आदमी की कहानी है. दो आने में बिकता ऊंट एक हजार में क्यों खरीदा? एक ऐसा प्रश्न है जो आज भी अपना उत्तर खोज रहा है और हर उत्तर देने वाले का मुंह हर बगल वाला बंद कर रहा है. **'मेरा पन्ना'** हमारी सब की बात कहता है.

☐ **सूरज खरे, भोपाल**

समांतर कहानी विशेषांकों की शृंखला में **'सारिका'** अपनी कहानियों के माध्यम से आज की विकट परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण करने में सदा की ही तरह सफल रही है. आज का आम आदमी, पूंजीपति वर्ग द्वारा बनायी गयी परिस्थितियों में (**'सूखा'**) कितना विवश हो कर रह गया है, कि वह आज अपने अधिकारों के लिए भी नहीं लड़ सकता! सब कुछ जानते हुए भी कुछ न कर पाने की विवशता (**'चूहेदानी'**) में त्रस्त है. आज उसकी बांहों को इतना कमजोर कर दिया गया है कि वह चाह कर भी उन्हें उठा नहीं सकता, कुछ कह भी नहीं सकता. अपनी नौकरी की खातिर किराये की बेटी को किसी के बिस्तर पर बिछाना पड़ता है (**'तपती हुई जमीन'**.) दो रोटियों के लिए उसे कुछ गलत हो रहा है को देख कर भी आंख बंद कर लेनी पड़ती है (**'शहादतनामा'**.)

'इतिहास जब नंगा होता है, तो संपूर्ण संघर्ष के अलावा कोई विकल्प नहीं रह जाता. आज इतिहास पूरी तरह नंगा है. उसकी नग्नता को अब न दोगली राजनीति ढंक सकती है न दोगला साहित्य' (**'मेरा पन्ना'**.) और आज यही दोगला साहित्य मजदूर की हर आवाज को दबा देने में पूंजीपति वर्ग का साथ दे रहा है. इस संपूर्ण संघर्ष के लिए किसी छोटू के पिता को छोटू के मरने का दुख नहीं, दुख है उसके बगैर कुछ किये मर जाने का (**'आंदोलन'**.)

कैसी विवशता है? इस व्यवस्था के खिलाफ बोलने वाले हर व्यक्ति को जेल में ठूंस दिया जाता है या. . . (**'गुस्से में आदमी'** व **'जुलूस'**) लेकिन कब तक?

☐ **साबिर हुसेन, सीतापुर**

समांतर कहानी विशेषांक—४ और ५ पढ़ने के बाद निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि **'सारिका'** ने अपनी दिशा तलाश ली है. आज के जलते सवालों पर बातचीत का सिलसिला जारी कर एक महत्वपूर्ण काम किया है. जन सामान्य की लड़ाई का पक्ष ले कर यह सिद्ध कर दिया है कि 'समाज' को समझने और बदलने में साहित्य की अहम भूमिका है. जब परिवर्तन के लिए लड़ाई हो तो आप सड़क के किनारे खड़े हो कर नहीं कह सकते कि 'हमें इससे कोई मतलब नहीं.' तटस्थता अपने आप में एक बड़ी राजनीति है. कमलेश्वर जी ने मानसिकता के सवाल पर (जनवरी, '७५) यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है. जब तक हमारी मानसिकता नहीं बदलती, क्रांति का कोई अर्थ नहीं. जहां तक कहानियों का सवाल है, **'जमीन का आखिरी टुकड़ा'** (इब्राहीम शरीफ), **'चूहेदानी'** (रमेश गुप्त) **'यंत्रपुरुष'** (सुरेश सेठ), **'सजा'** (हृदय लानी) **'हरिजन-सेवक'** (मधुकर सिंह), **'जुलूस'** (बल्लभ सिद्धार्थ) बेहद सशक्त कहानियां हैं. हां फरवरी अंक निश्चय ही जनवरी अंक के मुकाबले कमजोर है. **'सारिका'** के सामने एक सुनिश्चित योजना है और सही अर्थों में **'सारिका'** साहित्य और सामाजिक यथार्थ के जुड़ाव का दूसरा नाम बनती जा रही है.

☐ **विनोदकुमार, हिनू, रांची**

'सारिका' के जनवरी और फरवरी अंक जरा ध्यान से पढ़े. **'मेरा पन्ना'** के अंतर्गत अभिव्यक्त विचारों के अनुरूप **'सारिका'** कहानियां भी जुटा लेती है, इस को मैं कम नहीं मानता.

'सारिका' आम आदमी से जुड़ कर उसकी समग्रता को अभिव्यक्त करने का जो उत्तरदायित्व निभा रही है, यह न केवल **'सारिका'** बल्कि कहानी विधा के लिए भी अत्यंत शुभ है. मेरी समझ से कमलेश्वर जी की बातें साफ और दोटूक हैं और इसलिए उनके आगे प्रश्नचिह्न खड़ा करने का कोई औचित्य नहीं. जनवरी अंक में उनका यह कथन कि 'नया वर्ष आया है, पर यह शुभकामनाओं का वर्ष नहीं.' या फिर. . . 'आर्थिक चिंताओं से मुक्त हो कर आर्थिक इजारेदारी की लड़ाई लड़ने और आर्थिक चिंताओं से त्रस्त हो कर आर्थिक हितों के लिए लड़ाई लड़ने में जमीन-आसमान का अंतर है, लेकिन मुश्किल वहां खड़ी होती है, जब हम पूंजी या अर्थसंपदा को मात्र बंटवारे का उपादान मान लेते हैं. मिश्रित और दोगली अर्थव्यवस्था ने ही हमें यह दूषित

दृष्टिकोण दिया है. दरअसल मैं यह समझता हूं कि हमारी लड़ाई वास्तव में मिश्रित और दोगली अर्थ-व्यवस्था से है, इस बात को नकारने का कोई अर्थ नहीं. इन तथ्यों को इब्राहीम शरीफ, मधुकर सिंह, अजित पुष्कल और हृदय लानी ने बड़ी ईमानदारी से अभिव्यक्ति का आकार दिया है.

फरवरी अंक की कहानियों की जीवंतता ने मुझे और ज्यादा अभिभूत किया है. 'आदमी को भून कर' खाने का जो सिलसिला और-और तीव्र होता जा रहा है, उसके खिलाफ तो अधिकांश कहानीकारों ने कहानी को एकदम ही सार्थक और संघर्षशील हथियार के रूप में स्वीकार किया है.

कमलेश्वरजी के इस कथन को कि 'यथार्थ से आंखें मूंद कर हम बेहद जोशीले स्वर में कह सकते हैं कि कल क्रांति होने वाली है. . . कि मजदूर-किसान अब ज्यादा सहन करने वाले नहीं हैं. यह सही है कि सब के धीरज का बांध टूट चुका है, पर यह भी सही है कि सबके संस्कारों में दरार तक नहीं पड़ी है' को समग्रता में **'मदारी'** शीर्षक कहानी बड़ी जीवंतता से अभिव्यक्त करती है. राम सुरेश को बधाई. वैसे कामतानाथ की कहानी **'तीसरी सांस'** बड़ी ईमानदारी से लिखी गयी आज के संदर्भों की कहानी है. मुद्राराक्षस एवं हिमांशु जोशी की कहानियां **'निहत्थे'** एवं **'जलते हुए डैने'** का कथ्य भी अत्यंत ही ईमानदारी से रचा गया है. अकुलेश परिहार की कहानी **'छुट्टी का एक दिन'** दोगली और मिश्रित व्यवस्था में जीते हुए साधारण आदमी की छटपटाहट का बड़ा मार्मिक एवं सजीव चित्र प्रस्तुत करती है.

डा. रामवचन राय की टिप्पणी कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है. आज भी हमारे समाज के फैलाव में व्यक्ति की श्रेष्ठता का कारण उसका कुल-गोत्र है. आजादी के बाद संविधान में दलितों के निमित्त जो सुविधाएं रखी गयीं, वे मात्र वंचना ही साबित हुईं. मधुकर सिंह की कहानी **'हरिजन-सेवक'** इस संदर्भ में बड़ी महत्वपूर्ण कहानी है.

☐ **जगदीश विकल, चंपारन**

एक पाठक का पत्र

आज़ से छह वर्ष पहले **'सारिका'** की एक पुरानी फटी प्रति प्राप्त हुई थी. मुश्किल से तीन कहानियां साबुत थीं. फिर भी ऐसा लगा जैसे कोई आपबीती सुना रहा हो. तब से **'सारिका'** के लिए बेचैन रहता हूं. घर भी ऐसी जगह है, २० मील दूर रेलवे जंक्शन या ५० मील दूर जिला जा कर चक्कर लगाता हूं, तब कहीं हाथ आती है. हायर सेकंडरी के बाद कोयला खान में मजदूर हुआ. मजदूरी और पढ़ाई की रस्साकशी में मिली बी. ए. की डिग्री और नौकरी से छुट्टी. नौकरी छूटी तो लगा खान के अफसरों की अफसरी में मैं शहीद (**'शहादतनामा'**) हो गया. दौड़-धूप में मिली एल. डी. टी. की नौकरी (अध्यापक की.) एम. ए. प्रीवियस हो गया. फाइनल कर रहा हूं. पर अफसरी, लालफीताशाही से कानून और काम ऐसे मिले कि चापलूसी, घूसखोरी के नये रिश्ते पैदा हो गये हैं. एक तरफ रोटी खींचती है, दूसरी तरफ जी-हजूरी की पुकार है. सही है. **'गुन न हिरानो गुन गाहक हिरानो हैं.'** ☐ **मुरारीलाल वर्मा, शहडोल**

फरवरी अंक आद्योपांत पढ़ गया. कुछ कहानियां जो कि आम आदमी की घुटन, अभावग्रस्तता, निरीहता का सफल, सजीव एवं संवेदनात्मक चित्रण प्रस्तुत करती हैं, यथार्थ के बिल्कुल समांतर लगीं. यों तो सभी कहानियों का अपना अलग-अलग प्रभाव है, फिर भी विशिष्टता की दृष्टि से देखने पर **'तीसरी सांस'** (कामतानाथ), **'जलते हुए डैने'** (हिमांशु जोशी), **'एक चालू आदमी'** (दिनेश पालीवाल), **'निहत्थे'** (मुद्राराक्षस), **'एक बिछा हुआ आदमी'** (विभुकुमार) इत्यादि को आसानी से रेखांकित किया जा सकता है. अंक की शेष कहानियां भी रोचक एवं आम आदमी की किसी-न-किसी छटपटाहट, मनोवैज्ञानिकता तथा असमर्थता का दर्शन कराती हैं. **'मेरा पन्ना'** को 'आम आदमी का पन्ना' या 'हम सब का पन्ना' कहना अनुचित न होगा. वैसे इसे 'मोटी तोंदों का कच्चा चिट्ठा' कहा जा सकता है.

☐ **सईद अहमद मलिक, हरदोई**

'समांतर कहानी विशेषांक–५' पढ़ा. कुछ को छोड़ कर सभी कहानियां दिल को छूने वाली थीं. पढ़ने के बाद निष्कर्ष यही निकला कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले जो लड़ाई 'चालू लोगों' ने छेड़ी थी, वह आज भी चल रही है. कौन कहता है हमें सन् '४७ में आजादी मिल गयी थी? आज भी **'दर्द की मछली'** की नसीबो, एक हरिजन औरत को साहब के सामने पेश किया जाता है; **'जलते हुए डैने'** के शिव 'दा को देश-सेवा व सत्य बोलने के 'अपराध' में स्कूल से निकाल दिया जाता है व काल-कोठरी में सड़ाया जाता है. सुखबीर जैसा सामान्य आदमी भी नहीं बचा है. वह व्यवस्था के खिलाफ भी कुछ नहीं बोलता है, लेकिन पुलिस अपनी असमर्थता छिपाने के लिए उसे भी ढाल बनाती है और पारसनाथ जैसे कर्तव्य-परायण छात्रों को व्यवसाय की राजनीति का शिकार बनना पड़ता है. और अंत में दिनेश पालीवाल को बधाई देना नहीं भूलूंगा, जिन्होंने 'चालू' और 'पेशल' में अंतर बताया है. इस कहानी को पढ़ने के बाद लगता है कि इस अंक की सभी कहानियों के पात्र एक ही हैं और वे हैं 'चालू' और 'पेशल'.

☐ **पवनकुमार जैन, रांची**

मेरा पन्ना

आज का यथार्थ : समांतर संसार—८

सोचने के लिए सवाल यह था कि मानव-कल्याण की इतनी खूबसूरत पैरवी करने वाला देश इतने बड़े अकल्याणकारी यातना-शिविर में क्यों बदल गया है? भारतीय चिंतन और विचार-धाराओं की मानवकल्याणकारी दृष्टि के इतने विराट जलप्लावन के बावजूद यह महादेश मानवीय मूल्यों की सतह पर इतना बंजर क्यों हो गया है? क्या सिर्फ यह मान लिया जाये कि कुछ दुष्टों या कुछ दुष्ट वर्गों ने इन विचार-बीजों को रोपा नहीं जाने दिया है? ऐसा नहीं हुआ है . . . प्रतिरोध चाहे जितना रहा हो, पर आज भी औसत भारतीय इन विराट कल्याणकारी मूल्यों से अपरिचित नहीं है, जो उसे ही केंद्र में रख कर रूपायित किये गये और उसी के लिए निरूपित किये गये. फिर कारण क्या है कि 'विचार और मूल्य' आम आदमी के हित में अपनी भूमिका को कारगर नहीं बना पाये? दर्शन, धर्म और साहित्य की सारी शपथें क्यों व्यर्थ चली गयीं? क्या यह मान लिया जाये कि मूलतः मनुष्य अन्यायी, अत्याचारी, हिंसक, विचारविहीन, अनैतिक और बर्बर है? या कि उसके कोमल, सुंदर संवेगों और न्याय-बुद्धि का कोई अस्तित्व नहीं है! कि मनुष्य स्वयं अपना ही दुश्मन है! या कि वह अपनी संस्कृति और कलाओं को उस बर्बर और आदिम भावना-शून्य जानवर के रूप में क्षणिक सुख के लिए जन्म देता हो, जो अपनी ही संतान की भ्रूण-हत्या करने या होते देखने में सुख पा सकता हो! नहीं, मनुष्य ने इतनी मनुष्यता का परिचय जरूर दिया है कि वह अपनी संस्कृति और कलाओं को ले कर एक बेहतर जिंदगी जीना चाहता है.

तब यह विरोध और अवरोध क्यों पैदा होता है कि मानव-कल्याण के सारे विचार और मूल्य आम आदमी के पक्ष में सक्रिय नहीं हो पाते?

यहीं पर यह मूल प्रश्न अटका हुआ है कि यदि मनुष्य स्वयं अपना दुश्मन नहीं है, तो अपना दोस्त क्यों नहीं है? यानी चिंतन के स्तर पर यह प्रश्न अटका हुआ है कि यदि साहित्य (विचार और मूल्य) आदमी का दुश्मन नहीं है, तो उसका दोस्त क्यों नहीं है? साहित्य जो विचार, मूल्य और संवेदना देता है, वे मनुष्य के काम क्यों नहीं आ पाते? आदमी अगर अपनी जिंदगी का नक्शा बदलना चाहता है और एक व्यवस्था की मारक स्थितियों से उबर कर एक बेहतर व्यवस्था को निर्मित करना चाहता है, तो उसके लिए साहित्य की कोई कारगर भूमिका क्यों नहीं रह जाती? साहित्य क्यों उसकी इस संघर्षपूर्ण जययात्रा में मात्र तमाशबीन की तरह शामिल होता है? या कि तमाशबीन की तरह शामिल हुआ माना जाता है?

इसका सारा दोष स्वयं साहित्य का है. क्योंकि सदियों से हमारा साहित्य विचारों और मूल्यों को बड़ी-बड़ी मानव-शुभ की शपथें बना कर सिर्फ प्रस्तावों के रूप में पेश करता रहा है, उन्हें अमली जामा पहनाने या पहनाये जाने से गुरेज करता रहा है. इसीलिए हम साहित्य को समाज का दर्पण मानने की खुशफहमी का शिकार होते रहे हैं. यानी यह मानते रहे हैं कि साहित्य सिर्फ एक संवेदनात्मक अक्स है. इसके आगे साहित्य की सौंदर्यवादी-कलावादी व्याख्याएं शुरू हो जाती हैं और हम साहित्य को काठ का टुकड़ा मान कर उसकी लंबाई-चौड़ाई और गहराई नापने लगते हैं. उसे एक निष्क्रिय प्रतिबिंब मान कर बैठ जाते हैं या ज्यादा-से-ज्यादा एक बौद्धिक विचार के रूप में ग्रहण कर लेते हैं. हम तथ्य-कथन तक जा कर रुक जाते हैं, उसके आगे तथ्य-कथन का क्या होता है, इससे सरोकार नहीं रखते. भारतीय दार्शनिक और साहित्यिक चिंतन इसीलिए महामूल्यों और विराट कल्याणकारी परिकल्पनाओं के बावजूद सिर्फ एक खूबसूरत और उजले कफन के रूप में मरते हुए आदमी की प्रतीक्षा में दूकानों में बिक्री के लिए मौजूद रहता है. इसीलिए यदि असमान संघर्ष में मरता हुआ आदमी साहित्य से इनकार कर दे, तो ज्यादती क्या है? इसमें आदमी का दोष क्या है? कोई आदमी अपनी आत्मा के लिए कफन नहीं खरीदता! साहित्य जब तक आदमी की आत्मा का लिबास नहीं बनता, तब तक उसकी नियति 'निष्क्रिय प्रतिबिंब' बने रहने की ही है या ज्यादा-से-ज्यादा 'बौद्धिक विचार' बन जाने की!

और फिर ऐसे दौर में, जहां आदमी की आत्मा के लिए सब तरह के कफन ही तैयार किये जा रहे हों, तब साहित्य को शंका की दृष्टि से न देखा जाये, यह असंभव है.

अभी तक साहित्य के कारगर होने के दो ही संबोध हमारे सामने हैं— एक वह जो 'बौद्धिक विचार' और कलात्मक उत्स तक पहुंच कर साहित्य के कर्म की इतिश्री स्वीकार लेता है और दूसरा वह, जो साहित्य को व्यर्थ मानते हुए भी लड़ने वाली फौजों के लिए वर्दीधारी बैंड बजाने वाले दस्ते के रूप में शामिल रखना चाहता है.

इन दोनों संबोधों ने साहित्य की सही भूमिका को शंकास्पद बना रखा है, क्योंकि ये दोनों संबोध आधारभूत रूप से 'निष्क्रियतावादी' हैं. अरस्तू से ले कर आचार्य नगेंद्र तक साहित्य के पुरोहित चाहे जो कुछ कहते रहें, पर यह तय है कि कलामूल्यों की दृष्टि से महान होते हुए भी कालिदास की कविता न तो क्रांति को रोक

सकती है और न वर्दीधारी वीरतावादी होते हुए भी भूषण की कविता क्रांति को ला सकती है. यहीं यह समझ लेना भी जरूरी है कि किसी भी क्रांति के लिए कालिदास की कला और भूषण के शौर्यवाद को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखे बगैर नकार देने की भी जरूरत नहीं है.

* *

इन दोनों संबोधों से अलग क्या साहित्य के लिए कोई और विकल्प हो सकता है, जो साहित्य की आत्मा (उसकी रचनात्मकता) को खंडित न होने दे और आम आदमी की खंडित आत्मा के लिए क्रांति की रचना कर सके? जो क्रांति के महाद्वार तक आदमी के धड़ और सिर को अलग-अलग न पहुंचा कर मुजस्सिम आदमी को पहुंचा सके? जो विचार और श्रम के बीच विभाजक रेखा न खींच कर श्रममूलक विचार और विचारमूलक श्रम से अभिषेकित सामान्य जन को उसके पूरे सम्मान और प्राप्य के साथ प्रतिष्ठित कर सके और हर सदी में बार-बार झूठी हो गयी शपथों-संकल्पों को यथासंभव साकार कर सके?

साहित्य की इस भूमिका के निर्धारण और स्पष्टीकरण की जरूरत इसलिए भी जरूरी है कि जब आज का लेखक एक तरफ 'साहित्य की आत्मा को खंडित होने से बचाना' चाहता है तो 'रचना की स्वायत्तता' की बात उठने का भ्रम पैदा होता है, जो अंततः उसे 'कलावादी मूल्यों' पर ले जा कर पटक देता है; दूसरी ओर जब आज का लेखक 'मनुष्य की खंडित आत्मा के लिए क्रांति की रचना' की बात करता है तो 'वर्दीधारी बैंड बजाने वाले दस्ते' में शामिल हुए बगैर उसे राजनीति से इनकार करने वाले के रूप में लांछित किया जाता है! जबकि आज की सही रचना और रचनाकार राजनीति से अलग होने को अपराध मानता है! आज की हर सही रचना और रचनाकार का संकट और संताप यही है!

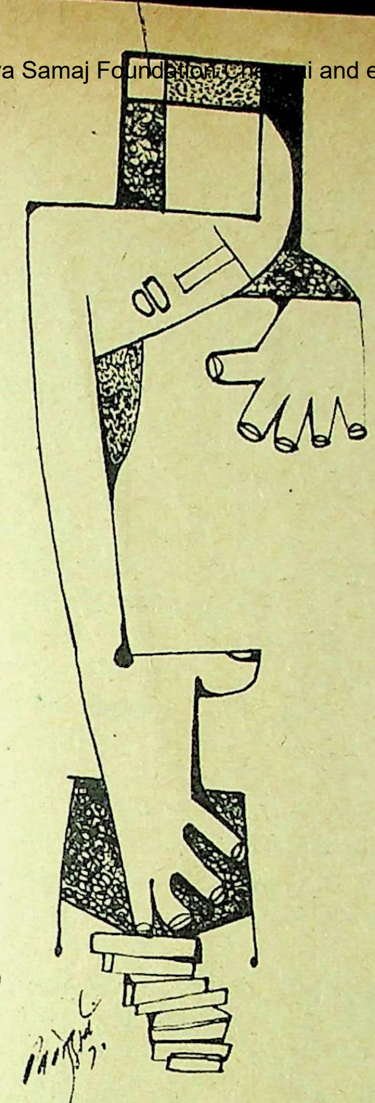
● विनोद दुबे

असल में, पूछा जाये तो उपराक्त दोनों ही (संकट और संताप वाले) दृष्टिकोण एकांगी हैं, क्योंकि ये मनुष्य और उसके समयगत यथार्थ से निरपेक्ष हैं. एकांगी इसलिए भी हैं कि एक रचना को कला-मूल्यों पर कसता है तो दूसरा मात्र राजनीतिक मूल्यों पर!

और तब आज का लेखक 'क्रांति की मानसिकता के निर्माण' की भूमिका तक जा कर रुक जाता है—या रोक दिया जाता है. आज का लेखक जब स्वयं ही सामान्य जन है तो वह 'मानसिकता के निर्माण' के आगे की अपनी भूमिका को अनिर्धारित कैसे छोड़ सकता है?

और यहीं पर आज का वह सबसे नाजुक सवाल आता है कि क्या साहित्य रचनात्मक रहते हुए भी क्रांति की भूमिका (अन्य लड़ाकू वर्गों के साथ) निभा सकता है? इसका सीधा और साफ़ उत्तर यही है कि मानसिकता-निर्माण के आगे की भूमिका को भी सिर्फ़ सही रचनात्मक साहित्य ही निभा सकता है. वह साहित्य, जो क्रांति के निर्णय की मात्र उत्तेजना से व्याप्त है, निर्णय-क्षुब्धता की प्रतीति तक जा कर रुक सकता है, उससे आगे वही साहित्य सक्रिय हो सकता है जो (क्रांति को एक तात्कालिक निर्णय भर न मान कर) क्रांति के प्रति और पक्ष में लिये गये 'मानसिकता-निर्माण' के दायित्व को क्रांति के प्रति संपूर्ण आस्था में तब्दील करता है.

यथार्थ के अनुभव से अर्थ, अर्थ से विचार, विचारों से निर्णय, निर्णयों से मानसिकता-निर्माण और मानसिकता से आगे क्रांति में ही (अंध आस्था का नहीं) वैज्ञानिक आस्था का केंद्रीकरण!

जाहिर है कि ऐसी रचना की व्याख्या 'रचना' के प्रश्नों से नहीं की जा सकती. ऐसी रचना की व्याख्या सिर्फ़ राजनीति के सपाट प्रश्नों से भी नहीं की जा सकती. क्योंकि ऐसी रचना क्रांति के राजनीतिक परिवर्तन में शामिल होते हुए सांस्कृतिक परिवर्तन की महत्वपूर्ण भूमिका भी अदा करती है. क्रांति के प्रति वैज्ञानिक आस्था से सर्मपित रचना ही विषमता-मूलक सांस्कृतिक सवालों के सर्वव्यापी राजनीतिक उत्तर दे सकती है और प्रतिक्रिया-प्रेरित राजनीति के सवालों के सर्वव्यापी सांस्कृतिक उत्तर! और ज़ब मनुष्य को आर्थिक-सामाजिक के साथ-साथ अपने सांस्कृतिक उत्तर भी साहित्य से मिलने लगते हैं, तब शपथों और संकल्पों को व्यवहार में आते देर नहीं लगती. इसी भूमिका की तैयारी में दलित और समांतर साहित्य लगे हुए हैं.

कमलेश्वर

और इनसानियत मर गयी

□ बंधु माधव

बनगांव! एक पहाड़ी पर बसा देहात. सामने हरी-भरी, घनी झाड़ियां, हरे-हरे पत्ते. बीच से कल-कल बहने वाला झरना. हमेशा बहने वाला. कुओं-बावड़ियों पर सदा कूकने वाली रहटों की ध्वनि. उसका पानी पी-पी कर फसल और आदमी बिल्कुल पुष्ट. जोशीले भैंसों की तरह. कोई चिंता नहीं. कोई गम नहीं. पूरी आबादी आबाद.

लेकिन जहां गांव, वहां गंदी बस्ती! अमीरी की मस्ती में गरीबी की गर्द चलेगी ही. गरीबी को पेट होता है, आबरू होती है, मनुष्यता भी होती है, इसकी अमीरी को कहां फिक्र! अमीरी अपनी मस्ती में मगन और मस्ती उतारने के लिए गरीबों की आबरू रहती है हाथ में, जैसे आंगन की सब्जी —कोई भी आये और उठा ले. न कोई दर्द और दुख. झुको—कहने पर झुकना ही चाहिए, नहीं तो खैर नहीं. कोई कहां फरियाद करे? कौन न्याय देगा?

और फिर एक बात. . .बनगांव के एक मंत्री महोदय भी थे. शासन में उनका बोलबाला था. मिनिस्टर के लोगों का क्या कहना! एक तो नादान बंदर और हाथ में सत्ता की मशाल, जो किसीके घर पर भी रख दे. फिर कौन जिये, कौन मरे, किसे इतनी चिंता?

मंत्री महोदय के घर से ही चल रही थी बनगांव के चौधरी की गद्दी और उस गद्दी पर विराजमान था दाजी चौधरी का कुलदीपक——बाजीराव. भरपूर जवान. गांव के चार-पांच गुंडों को पाले हुए. देसी ठर्रा चढ़ा कर मस्त, मानो मदनमस्त वृषभराज. उसे कौन रोके? कौन आगे आये और सींगों को झेले?

लेकिन उसके पिता दाजी साहब बहुत महान थे. लाखों के आदमी थे. पर कहते हैं न, सूरज के पेट में

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

सनीचर! बिल्कुल वैसे ही. लेकिन दाजी साहब का गौरव था अनूठा. आदमी भी थे दुनियादारी से अलग. बहुत पढ़े-लिखे न थे, लेकिन छत्रपति साहू महाराज की बैठक में बैठते. जोतिबा फुले से भी चर्चा कर लेते थे. वर्ताव बिल्कुल सीधा. किसी पर कोई जुल्म नहीं होने देते. गांव का चौधरी गांव की जनता का माई-बाप. फिर बच्चे चमार के हों या कहार-जुलाहों के, सभी उसके बच्चे. ऐसी उसकी आन. कहते थे— जनम भी सभी का समान, मरण भी समान, फिर कौन ऊंचा, कौन नीचा? जैसी कथनी, वैसी करनी.

मरते वक्त अपने बाजीराव और सभी लोगों को बुला कर उन्होंने अंतिम बात कही—सुनो, आज अपना मराठा राज है. लेकिन यह कैसे हुआ? साहू महाराज के पुण्यप्रताप से. जोतिबा फुले की कर्मनिष्ठा से. लेकिन यह सब हमारे मंत्री-राजा भूल गये. गरीबों पर होने वाले जुल्मों की कहीं फरियाद नहीं. कहते हैं बहुत, करते कुछ नहीं. अगर ऐसा ही चलता रहा, तो यह राज ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं. महाबली रावण का राज चला गया, वहां तुम्हारी क्या हालत होगी? तुम रावण मत बनो, राम बनो.

दाजी साहब गये और बाजीराव के लिए मैदान साफ हो गया. पहले तो बना चौधरी. फिर बना गांव का सरपंच. उसकी आंखें मानो सातवें आसमान को छूने लगीं. जिसके हाथ में शासन, वही शिकारी और यह शिकारी शिकार करने लगा. जिसको भी मन मांगे. उसीका शिकार. उस शिकारी के मन में आया करे मोगरा चमारन का शिकार. गोरा-गोरा अंग यौवन से भरा. मोगरा—मोतीराम चमार की विधवा और मानो आंगन की सब्जी. लेकिन यह सब्जी कैसे तोड़े? बाजीराव ने हिकमत लड़ायी.

मोगरा चमारन का पति मोतीराम भारत-चीन युद्ध में लड़ते-लड़ते मारा गया था. उसे वीरगति मिली थी. देश के लिए उसने प्राणों का बलिदान दिया था. विधवा मोगरा वीर-पत्नी थी. उसे खुश करने के लिए, उसके सम्मान के लिए सरपंच ने सभा का आयोजन किया.

बाजीराव दाजी साहब चौधरी उस सभा में गौरव से बोले—विधवा मोगरा. . नहीं. मोगराबाई मोतीराम चमार महान वीर-पत्नी है, इसके वीर पति ने शूर-वीरों की तरह इस देश के लिए प्राणों का बलिदान दिया है. ऐसे महान वीर की महान पवित्र, अति पवित्र वीर पत्नी मोगराबाई का हम आज सम्मान करते हैं. इसलिए मुझे और सारे गांव वालों को बड़ा आनंद हो रहा है. अभिमान से हमारी छातियां फूल रही हैं. भुजाएं फड़क रही हैं. धन्य-धन्य वह बनगांव का चमार मोतीराम और धन्य-धन्य वह चमारन मोगराबाई! कौन कहता है मोगरा विधवा हो गयी? उसके पीछे हम सब हैं. हम उसका सब कुछ संभाल लेंगे. . .!

सभा में तालियों की जोरदार गड़गड़ाहट हुई. बाजीराव पाटील चिल्लाये—बोलो मोतीराम चमार की जय! बोलो मोगरा चमारन की जय! और पूरा गांव उस जय-जयकार में सम्मिलित हो गया.

मोगरा दिल-ही-दिल में सहम गयी उसे कुछ अलग गंध आ रही थी. इसके पीछे जरूर कोई दांव होगा. . .

और उसी दिन आधी रात को उसके दरवाजे पर किसीने दस्तक दी. अपने खास शागिर्दों रामू-शामू के साथ बाजीराव मोगरा के घर का दरवाजा टक-टक बजा रहा था.

मोगरा चमक कर उठी. एक क्षण घबरायी और उसने अंदर से पूछा—कौन है?

बाहर से आवाज आयी—सरपंच बाजीराव चौधरी . . .

घबरा कर उसने दरवाजा खोला. अचरज से उसने पूछा—चौधरी साब. . .आप?

—हां, हम

—इस समय. . .मेरे पास . . .?

—यही समय तो ठीक है तुम्हारे पास आने के लिए! चौधरी बेशरमी से उसकी ओर बढ़ा. मोगरा का बेटा शिवाजी उससे चिपक गया. मोगरा थर-थर कांपती खड़ी रही. वह कुछ बोल नहीं पायी बाजीराव ने उसका हाथ पकड़ लिया. वह चिल्ला पड़ी. चीख उठी.

—चिल्लाओ मत! चिल्ला कर रंग में भंग मत करो! मेरी सुनो, तुम्हारी काया को मैं कंचन कर दूंगा. आज मैंने तुम्हारा सम्मान किया, सारे गांव में तुम्हारा नाम हो गया. फिर मोगरा का पल्लू पकड़ कर बाजीराव बिनती करने लगा—मोगरा, इनकार मत करना, तुझे गहनों से लाद दूंगा. . .

पल्लू को झटका दे कर मोगरा फिर चीख उठी—दाजीबा. . .देवरजी. . .!

मोगरा का चचेरा देवर पिराजी और भाई नामा दौड़ कर आये और बाजीराव चौधरी को देख कर चकित रह गये. सारी बात समझ में आ गयी, तब पिराजी नम्रतापूर्वक बोला— चौधरी, आज आधी रात को आप इस गरीब के घर पर आये! आज मोगरा भाभी का आपने सम्मान किया और आज ही. . .? चौधरी सारा गांव आपकी जय-जयकार कर रहा है कि बाजीराव दाजीसाहब के रास्ते पर चल रहे हैं. लेकिन आपको यह क्या सूझा? बाहर आपके रामू-शामू खड़े हैं. .

—पिर्या, ज्यादा बातें मत करो, मैं चौधरी हूं. . . सरपंच हूं. . .फिर भी मैं मोगरा के घर आया हूं. . .उसे भी मेरा सम्मान करना चाहिए या नहीं? चौधरी शराब के नशे में बक रहा था.

चौधरी के पैर छूते हुए पिराजी ने अकुला कर कहा—चौधरी, हम गरीब हैं. . .छोटी जात वाले, पर हमारी भी आबरू है. हमारी आबरू को हाथ न लगाओ. आप ही ऐसा करने लगे तो हम कहां जायें? आपके पिता दाजी चौधरी आपको, हमको, सभी को कह गये हैं— तुम रावण मत बनो, राम बनो. . .!

—चुप! चौधरी का पारा चढ़ गया—मतलब. यह तुम्हारी भाभी सीता है? और मैं रावण? पिर्या! जबान ज्यादा मत चलाओ वरना उसे जड़ से उखाड़ दूंगा! क्या समझते हो? सरकार में मंत्री भी हमारे घराने क हैं. मैं कुछ भी करूं, मेरा कौन क्या बिगाड़ सकता है! तुम देखना चाहते हो बाजीराव चौधरी की हिम्मत?

—चौधरी, ऐसा मत कहो. चौधरी-कुल को बट् मत लगाओ. माई-बाप की तरह हमारे रक्षक बनो!

—समझा. . .समझा! मुझे ज्यादा ज्ञान मत दे. सुन. . .सुन कान खोल कर, मुझे बाजीराव चौधरी कह

हैं! तेरी इस भाभी मोगरा को बेआबरू कर गांव भर में जुलूस नहीं निकाला, तो. . .

और चौधरी शराब के नशे में झूमते चले गये.

मोगरा क्रोध से भर उठी. देवर पिराजी और भाई नामा सांत्वना देने लगे. बेटा शिवाजी मां से चिपक कर रोने लगा.

रात भर बाजीराव चौधरी और उनके शार्गिद रामू-शामू को नींद नहीं आयी. बोतलों पर बोतलें फूट रही थीं. अलग-अलग योजनाएं बन रही थीं.

मोगरा को भी रात भर नींद नहीं आयी. वह बार-बार करवटें बदल रही थी. . .अब इस गांव में रहने में खतरा था. . .बरबादी. . .आबरू लिये बगैर यह लोग चुप नहीं बैठ सकते! कैसा है मेरा नसीब! भगवान, अब तू ही रक्षक है! क्या करूं? क्या जान दे दूं? फिर मेरे बेटे शिवाजी का क्या होगा? और कोई भाई नहीं!

दूसरे दिन शाम को मोगरा हमेशा की तरह नदी पर पानी लाने गयी. कंटीली झाड़ियों से हो कर नदी को रास्ता जाता था. मोगरा बावरी-सी चल रही थी. माथे पर मटकी थी. शिकार की टोह में छिप कर बैठे चौधरी के शार्गिद रामू-शामू एकदम उसके सामने आये और सेवरी का भुसा उड़ाते हुए बोले—रांड, हमारा भूसा चुरा कर ले जाती है? शाम के समय चोरी करती है? यह कह कर, सेवरी की छड़ियां निकाल कर उसे मारने लगे. मोगरा रोती-चिल्लाती रही, लेकिन गांव कुछ दूर था, किसीको सुनाई नहीं देता था.

शामू चिल्लाया—रांड, तुझे नंगा करके गांव में से तेरा जुलूस निकालेंगे! यह कह कर शामू ने उसकी साड़ी खींच ली. रामू ने चोली फाड़ डाली.

शर्म से मोगरा जमीन पर उलटी हो गयी. उसकी देह पर छड़ियों की मार जारी थी. उसने अकुलाकर कहा—शामू दादा. . .रामू दादा, मैं तुम्हारी धरम बहन हूं. . .मुझे मारो-- पीटो, पर मुझे बेआबरू मत करो. . .

—तू चमार और हम चौधरी . . .तू हमारी बहन कैसी? तेरा नंगा जुलूस निकालना है हमें! चौधरी को इनकार करती है? कौन है तू? चल, ऐसी नंगी चल, सारे गांव को देखने दे यह जुलूस . . .!

और जोर-जोर से वे उसे पीट रहे थे और खींच रहे थे. चौपाल की ओर घसीट रहे थे. . .घसीट रहे थे. . .

शर्म के मारे मोगरा ने गरदन झुका ली थी. शामू-रामू पूरी ताकत से उसके हाथ बांध कर, हाथों पर संभालते हुए उसे धकेल-धकेल कर चला रहे थे. बीच-बीच में वह शर्म से नीचे गिर जाती . नीचे गिरने पर वे लातें मार-मार कर उसे फिर उठाते. उसका सारा शरीर लहू-लुहान हो गया था. वह बेहोश ही थी.

सभी गांव वाले बेशर्मी से देख रहे थे, किसीके दिल में कोई कसक नहीं थी. मानवता की भावना किसीके मन में नहीं आयी, उलटे किसी ने कहा—चोरी करती है. . .ढेढ़-चंडाल बहुत सिर पर चढ़ गये . . .अच्छा किया, यह नंगा जुलूस ले जाओ चौपाल पर.

—लातों के भूत बातों से नहीं मानते ! कोई बोला. किसी और ने कहा—बाजीराव चौधरी से हम कहते थे, ढेढ़-चंडालों को सिर पर मत बिठाओ, पैरों की जूती पैरों में ठीक है. इनसानियत की आबरू . . .

अचानक बूढा मुल्ला सामने से आया, वह तड़प कर चिल्लाया — भाइयो, ऐसा मत करो. . .औरत जात को ऐसा मत करो ! चोरी की है, तो कोई दूसरी सजा दो, लेकिन औरत के साथ ऐसा वर्ताव मत करो. . .ये खुदा को मंजूर नहीं होगा. . .खुदा के लिए ऐसा मत करो !

—ऐ खुदावाले ! हट बाजू. . ! यह कहते हुए किसीने बूढे मुल्ला के सिर पर लाठी मार दी. उसे धकेल दिया. वह रास्ते के किनारे लुढ़क कर गिर पड़ा.

उसे देख कर एक स्कूली बच्चा चिल्लाया—बोलो छत्रपति शिवाजी महाराज की जय !

चौपाल पर सत्यशोधक समाज की सभा चल रही थी. बाजीराव चौधरी उसके अध्यक्ष थे. सत्यशोधक समाज के नेता दादा साहब देसाई भाषण कर रहे थे. आज महाराष्ट्र में मराठों का राज है. यह कैसे हुआ? कोल्हापुर के छत्रपति शाहू महाराज की पुण्याई से. . महात्मा जोतिबा फुले की सुधारक परंपरा से, यह हमें भूलना नहीं चाहिए. देश की स्वतंत्रता कायम रखनी हो, तो याद रखें, हम सब भारतीय एक हैं. भाई-भाई हैं. कोई अमीर नहीं, कोई गरीब नहीं, कोई ऊंच नहीं, कोई नीच नहीं. यह समता की, बंधुता की, मानवता की सीख हमें आत्मसात करनी चाहिए. इसके बिना देश का कोई भविष्य नहीं. नहीं तो. . .

अचानक सभा के एक कोने में खलबली हुई. दादा साहब की नजर वहां गयी. एक नंगी औरत उन्हें दिखाई दी और वह चिल्लाये —यह क्या बात है ?

—मोगरा चमारन है यह. . .भूसा चुराते हमने इसे पकड़ा है, इसलिए नंगा जुलूस निकाल कर हम इसे चौपाल पर लाये हैं. चौधरी, दो इसे सजा !

—केवल भूसा चुराने पर औरत का नंगा जुलूस निकाला? और सारे गांव वालों ने देखा? आपसे देखा कैसे गया ? अरे, तुम इनसान हो या शैतान ? शैतान भी इतना नीच काम नहीं करेगा! बाजीराव, आप हैं इस गांव के चौधरी. . .दाजी चौधरी का यह गांव. . .एक मंत्री महोदय का गांव. . .इस गांव में एक गरीब स्त्री की ऐसी बेइज्जती? क्या इनसानियत मर गयी है?. .

दादा साहब नीचे गिर पड़े. बाजीराव चौधरी अपराधी मुद्रा में उन्हें पंखा झलने लगे. सभामें गड़बड़ी मच गयी. किसीने मोगरा के शरीर पर कंबल डाल दिया. पिराजी ने मोगरा को वहा से झट उठा लिया.

और उसी दिन आधी रात को बेटे शिवाजी को साथ ले कर आंसू भरी आंखों से मोगरा ने वह गांव छोड़ दिया. जनम भर के लिए इतनी बेआबरू हो गयी थी कि अब गांव में किसीको मुंह नहीं दिखा सकती थी. सूरज उगने के पहले वह उस गांव से दूर, बहुत दूर चली जाना चाहती थी. कहां? कहां? अंधेरे से उजाले की ओर या अंगारों से कहीं दूर कांटों में. . .?

फिर भी मां-बेटे हाथ-में-हाथ डाले चल रहे थे अपमान के संताप से जलते हुए. . .आवेश से तपते हुए आगे. . .आगे चले जा रहे थे. □□□

मृत्युशाला

□ गंगाधर पानतावणे

(परदे के पीछे घंटा बज रहा है. घंटा बजते समय परदा खुलता है. घंटा बजाने वाला काला-कलूटा पुरुष रंगमंच पर दिखलाई देता है. केवल उसके चेहरे पर प्रकाश है. घंटा बजाने पर. . .)

कमंडलु : सज्जनो, मेरा नाम है कमंडलु. यह है मृत्युशाला. इसे हम मृत्युदेवता का दरबार कहते हैं. मैं हूं इस शाला का एक अंग. मुझे असंख्य लोगों की जानकारी रखनी पड़ती है, अर्थात पृथ्वीलोक से आये हुए लोगों की. यहां किसी को भी तुच्छ नहीं देखा जाता. किसी का अहंकार, किसी की अमीरी, किसी की विद्वत्ता, किसी का अधिकार, यहां कुछ भी काम नहीं आता. पाप और पुण्य का विचार हम यहां गौण मानते हैं. यहां की आत्माओं की अपनी एक अलग ही दुनिया है. उसमें सभी आत्माएं रम जाती हैं. स्वयं को भूल जाती हैं. लेकिन एक मजे की बात बताऊं आप को—यहां आत्माएं कभी-कभी पृथ्वीलोक के जीवन पर विचार करने लगती हैं. गतकालीन सुख-दुख की याद करने लगती हैं. और फिर चिढ़ती हैं, गुस्सा करती हैं, रोती हैं, हंसती हैं, लेकिन यह सब कुछ होता है एक क्षण मात्र के लिए. जीवन के बारे में विचार करना कितनी अजीब बात होती है! देखिए न, मृत्यु के बाद भी उसका स्मरण हो आता है. इस मृत्युशाला में कितनी घटनाएं, कितने प्रसंग! एक-एक अपने-आप में विचित्र! यहां अमीर हैं, गरीब हैं, डॉक्टर हैं, वकील हैं, प्राध्यापक हैं, अधिकारी हैं और न जाने कितने प्रकार के लोग हैं, किंतु सब-के-सब अतृप्त. मैंने कहा न, उनकी अपनी एक दुनिया होती है. बिल्कुल सही है यह बात. (एक पंछी आवाज करते हुए ऊपर से निकल जाता है.) हां, अब रात्रि का मध्याह्न हो गया है. मृत्युदेवता के पधारने का समय हो चुका है. (कमंडलु घंटा बजाता है और हथौड़ी कंधे पर रख कर खड़ा हो जाता है. इतने में घोड़े पर बैठने का अभिनय करते हुए एक काला-कलूटा व्यक्ति—मृत्युदेवता—प्रवेश करता है. प्रविष्ट काला व्यक्ति—मृत्युदेवता—कोने में खड़ा हो जाता है. एक दूसरा काले रंग का व्यक्ति आ कर घोड़े को अश्वशाला में ले जाने का अभिनय करते हुए वहां से निकल जाता है.)

मृत्युदेवता : कमंडलु!

कमंडलु : आज्ञा, महाराज!

मृत्युदेवता : दरबार का कोई नया समाचार?

कमंडलु : सब कुछ शांत है, महाराज! यह कोई धरती पर के मदोन्मत्त राजा का दरबार थोड़े ही है, यह तो मृत्युदेवता का दरबार है!

मृत्युदेवता : बस. . . बस, यह तुम्हारी स्तुति हमें अकसर मोह में खींचती है. हम पूछते हैं, अतृप्त आत्माएं शांत हो गयीं न?

कमंडलु : महाराज, पृथ्वी पर जिंदगी बिता कर आने वालों की आदतें एकदम थोड़े ही समाप्त होने वाली हैं! मृत्युशाला की आदतें डालने में उन्हें कुछ समय तो लगेगा ही.

मृत्युदेवता : हां, हां, तुम्हारे कथन में निश्चय ही सचाई है. लेकिन कमंडलु, उन सबके मानस तो ठीक हैं न? किसी के मन का संतुलन तो नहीं गया. . .?

कमंडलु : वैसे तकलीफ तो होती है कुछ को.

मृत्युदेवता : क्या कहते हैं वे?

कमंडलु : महाराज, धरती उनके पैर के नीचे थी, ऐसी भावना है हरेक की. कुछ नमूने देखिए, महाराज! उनमें से वह जो भूरी आंखों की ऊंची-सी, दुबली-पतली औरत है, कहती है, मैं झांसी की रानी हूं. वह मुच्छड़ हृष्ट-पुष्ट आदमी कहता है, मैं राव बाजी पेशवा हूं. और दिन भर ब्राह्मणभोज के बारे में बोलता रहता है. उनमें से एक कहता है, मैं गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक छत्रपति शिवाजी हूं. एक आग्रह करता है कि मुझे लोकमान्य तिलक कहो. (हंसते हुए) मजे की बात तो यह है कि वह सुरवार वाला औलिया कहता है, मैं कोंडाणा किला हूं. किस-किसको समझाया जाये!

मृत्युदेवता : अच्छा, तो यह मृत्युशाला फिलहाल धरती का अजायबघर ही बन गयी है! इन सब की विवरण-पत्रिका तो तैयार है न?

कमंडलु : हां, महाराज (थोड़ा-सा अस्वस्थ हो कर).

मृत्युदेवता : अंदर से यह कैसी आवाज आ रही है?

कमंडलु : पृथ्वीलोक का ईर्ष्या-द्वेष यहां फिर शुरू हो गया होगा.

मृत्युदेवता : लगता है, पृथ्वीलोक वाला अपना घमंड अभी तक ये भूले नहीं हैं. शोर मचाने वालों को अभी दरबार में हाजिर करो.

कमंडलु : जैसी आज्ञा, महाराज. (रंगमंच पर अंधेरा हो जाता है. फिर धीरे-धीरे प्रकाश. एक आसन पर मृत्युदेवता बैठे हैं. कमंडलु घंटा बजाता है. मथुरा तेजी से रंगमंच पर प्रवेश करती है.)

मृत्युदेवता : आइए, आपका स्वागत है.

मथुरा : पुरुषों द्वारा किया हुआ किसी स्त्री का स्वागत मुझे पसंद नहीं है.

मृत्युदेवता : किससे बात कर रही हैं, आप यह जानती हैं न?

मथुरा : आप भी शायद जानते होंगे कि आप किससे बात कर रहे हैं. इस आत्मा को मथुरा के नाम से

[illegible] है. ब्राह्मणकुलोत्पन्ना. देवता के गोठण की, जिला रत्नागिरि की रहने वाली. . .

मृत्युदेवता : आप अत्यंत सुखी परिवार की हैं न?

मथुरा : जी हां. पिता शास्त्री. बाल्यावस्था तथा युवावस्था सुख में बीती. पिता धर्मपरायण थे, इसलिए सब कुछ ठीक रहा. हम छुआछूत मानते थे. दक्षिणा लेते थे. पोथीनिष्ठा हमने जिंदगी भर बनाये रखी. पूजापाठ आदि भी. कितने प्रवाह, कितने चढ़ाव-उतार. मैं बड़ी हो गयी तो मुझे माता-पिता ने एक कसाई के गले में बांध दिया.

मृत्युदेवता : कसाई के गले में?

मथुरा : कसाई नहीं तो और क्या! ब्राह्मण हो कर भी कसाई ही था वह. माता-पिता की इच्छा का विरोध न कर सकी मैं. चुपचाप पति को स्वीकार किया. व मुझे किसी से भी सुख प्राप्त नहीं हुआ. एकदम असह बन गयी. जलती रही. पति ने मेरी भावनाओं को मह नहीं दिया. सुसंस्कृत खानदान की थी मैं, इसलिए चुप र किसीको कभी कष्ट नहीं दिया मैंने.

मृत्युदेवता : मथुराबाई, फिर पति की हत्या व की आपने?

मथुरा : (हिचकियां भरती हुई) महाराज, ऐ घटित हुआ है मेरे हाथ से. लेकिन करती भी क्य देव-ब्राह्मण के सामने ली गयी सौगंध को तोड़ दे पड़ा मुझे. उसके सिवा कोई दूसरा रास्ता ही नहीं थ वह मेरी छाती पर मेरे ही घर में एक औरत ले आ मैं कैसे सहन करती यह सब! (हिचकियां) ए

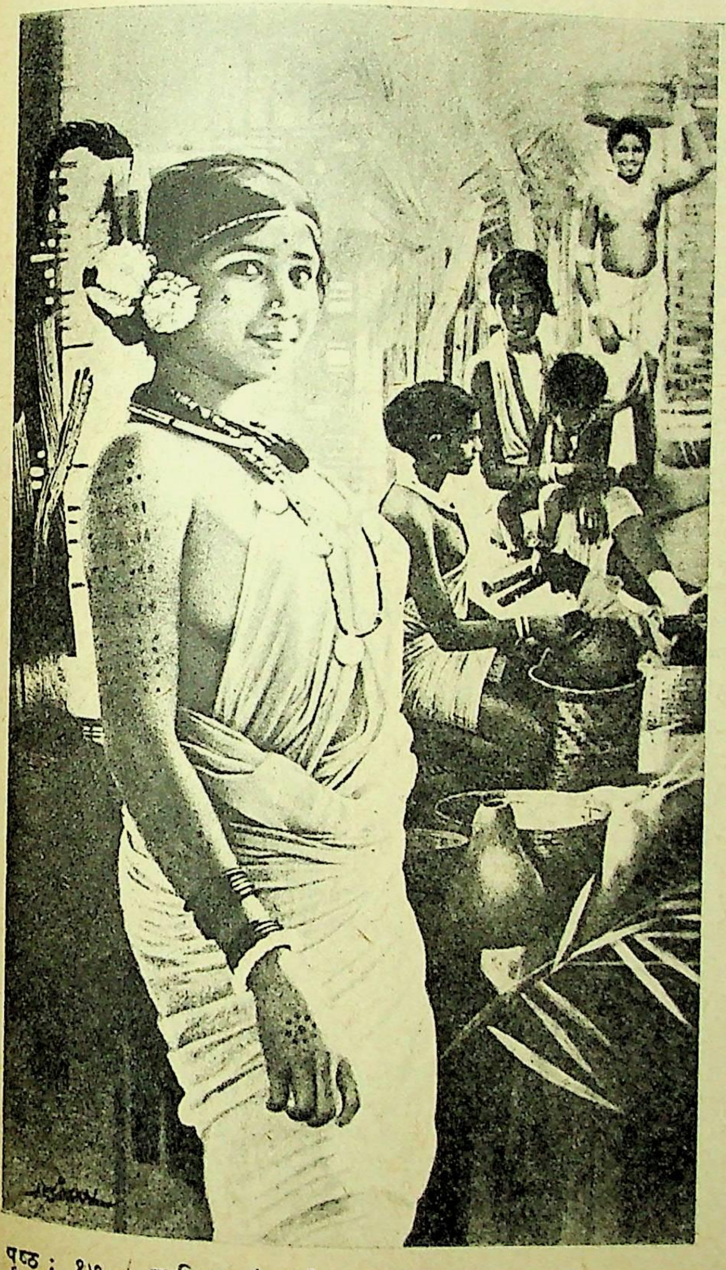

अडवानी आर्टिकान के सौजन्य से

ह्मणकुल पुरुष ने एक नीच क्षत्रिय कुल की स्त्री से बंध रखा और वह भी खुले आम. छि: छि!

मृत्युदेवता : लेकिन क्षत्रिय...

मथुरा : क्या क्षत्रियकुल हीन कुल नहीं होता? या वर्ण व्यवस्था का कोई अर्थ नहीं ? वर्ण-व्यवस्था नर्माण की भगवान कृष्ण ने. यह बात गीता में पष्ट कही गयी है. कृष्ण थे अनार्य. लेकिन हम, आर्यों ने उन्हें अपना मान लिया. इतनी विशाल ृष्टि और कहां मिलेगी! कृष्ण की गीता मालूम है न आपको? अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता था. वह बुद्धिमान था. उसे वर्ण-संकर का डर था. और हमारे रति एक नीच परस्त्री से संबंध रखने लगे थे. कितना घोर पाप !

मृत्युदेवता : पाप?

मथुरा : पाप नहीं तो और क्या! सब कुछ अपनी आंखों से देखा है मैंने. कुछ भी शेष नहीं रखा था उन्होंने.

मृत्युदेवता : (कमंडलु से) कमंडलु, मथुराबाई के पति को बुलाओ. (कमंडलु घंटा बजाता है. भाल पर टीका, धोती, आंखों पर ऐनक, सिर पर टोपी, कोट पहने व्यक्ति का प्रवेश.)

मृत्युदेवता : मथुराबाई, पहचानती हैं न इन्हें? (मथुराबाई चुप रहती हैं.)

व्यक्ति : लेकिन मैं पहचानता हूं इसे. मेरी धर्मपत्नी. इसी ने हत्या की थी मेरी. मैं ने कितना सहन किया. लेकिन महाराज, सहनशक्ति की भी कोई सीमा होती है. इसने...

मथुरा : (गुस्से में) आपकी हरकतें मैंने चलने नहीं दीं, यही न? हीन खानदान की औरत के साथ कुछ करते समय कुछ भी बुरा कैसे नहीं महसूस हुआ आपको?

नरसोपंत : अरेरे, यह क्या बोल रही हो मथू! वह असहाय प्रौढ़ औरत...

मथुरा : शरीर-संबंध के लिए उम्र की कोई शर्त नहीं होती. कितनी धूल झोंकोगे मेरी आंखों में !

नरसोपंत : उससे मेरा शरीर-संबंध ? वह मेरे दोस्त की विधवा बहन थी. आश्रम में देने की दृष्टि से मैं उसे अपने घर ले आया. इसमें मेरा क्या अपराध? तुम तो जानती ही हो, उसका अपना नजदीक का कोई रिश्तेदार नहीं था.

मथुरा : इसका मतलब यह तो नहीं था न कि आप रात्रि के समय उसके कमरे में जाते रहें.

नरसोपंत : कितना झूठ बोलती हो तुम. तुम्हारे कमरे के सिवा और किसी औरत के कमरे में कभी प्रवेश नहीं किया मैंने, तुम्हारी कसम लेकर कहता हूं.

मथुरा : झूठ! एकदम झूठ! मृत्यु के बाद भी मेरा मजाक ! मेरा भाग्य ही बुरा है !

मृत्युदेवता : यहां भाग्य की बात कहने से कोई लाभ नहीं मथुराबाई.

मथुरा: महाराज, मेरे पिताजी ने कभी महार-मांगों की छाया तक पड़ने नहीं दी मुझ पर. मैंने भी ऐसा ही किया. और इन्होंने? इन्होंने किसी भी प्रकार के बंधन का पालन नहीं किया. अपना अस्तित्व, अपना व्यक्तित्व, अपना धर्म, अपना कर्तव्य, किसी की भी चिंता नहीं की इन्होंने. इतना ही नहीं इन्होंने एक महार के लड़के को संस्कृत पढ़ायी.

नरसोपंत : महार भी मानव ही होता है न ! क्या एकनाथ महाराज ने महार के बच्चे को कंधे पर नहीं उठा लिया था?

मृत्युदेवता : नहीं, महार के बच्चे को कभी कंधे पर नहीं उठाया. एकनाथ ने. यह घटना झूठ है.

नरसोपंत : वह कुछ भी हो, किंतु महार के बच्चे को मैंने संस्कृत पढ़ायी है. इसमें किसी भी प्रकार की गलती नहीं लगती मुझे.

मथुरा : महार के बच्चे को संस्कृत पढ़ाकर हमारी देववाणी को भ्रष्ट किया है आपने!

नरसोपंत : संस्कृत पढ़ाने से क्या वह भाषा भ्रष्ट हो सकती है ? फिर भ्रष्ट भाषा को देववाणी कैसे कहेंगे? कितनी झूठी कल्पना है तुम्हारी !

मृत्युदेवता : कमंडलु, इस विषय से संबंधित सायनक को दरबार में हाजिर करो.

कमंडलु : जो आज्ञा महाराज! (कमंडलु घंटा बजाता है. घंटा बजते ही एक काला व्यक्ति सायनाक, उम्र पच्चीस, प्रणिपात करके हुए प्रवेश करता है.)

सायनक : जोहार, माईबाप, जोहार!

मृत्युदेवता : हमारे दरबार में यह जोहार मंजूर नहीं है हमें.

सायनक : गलती हो गयी, महाराज! क्षमा कीजिए. बेअदबी के लिए सजा भोगने के लिए तैयार हूं मैं. सजा भोगने की आदत है महाराज हमें.

मृत्युदेवता : लेकिन सजा देने की आदत नहीं है इस दरबार को. मैंने सुना है, तुमसे कोई गुनाह हुआ है. संस्कृत देवभाषा है, यह जानते हो तुम ?

सायनक : जी हां, महाराज, हमें ऐसे बताया गया है.

मृत्युदेवता : मथुराबाई का आरोप है कि नरसोपंत से तुमने संस्कृत सीख कर, मनू का कानून भंग किया है. तुम्हारा क्या कहना है?

मथुरा : वह क्या कहेगा, मैं कहती हूं, ब्राह्मण बनना चाहता था यह ! कलियुग में शुद्रों के लिए कोई बंधन ही नहीं रहा है ! लेकिन कौआ कभी हंस थोड़े ही बन सकता है !

सायनक : माताजी, आप कठोर बोल रही है. कितनी निर्दयता से आघात कर रही हैं !

मथुरा : निर्दयता! शूद्रों के साथ क्या कभी सौम्य भाषा में बोला जाता है ?

मृत्युदेवता : मथुराबाई , हमारे दरबार में सब आत्माओं का समान स्थान है . ब्राह्मण और शूद्र में भेद नहीं मानते हम. सायनक , मथुराबाई द्वारा लगाये गये आरोपों के संबंध में कुछ कहना है तुम्हें ?

सायनक : महाराज, ज्ञानपिपासा को भी क्या कभी बंधन लगाया जा सकता है? संस्कृत पढ़ने की, सीखने की खूब इच्छा थी मेरी. नरसोपंत मिले मुझे. धन्य हो गया मैं. ज्ञान के द्वार बंद थे. मेरे माता-पिता के लिए

वेद शब्द वर्ज्य था. वेद शब्द कान पर पड़ने पर भी कड़ी से-कड़ी सजा होती थी उन्हें. नरसोपंत ने धीरज दिया मुझे. वेद यानी ज्ञान. यह ज्ञान एक को स्वेच्छा से मिले और एक को बिलकुल नहीं...

मथुरा : (गुस्से में) सायनाक ...(क्षण भर के बाद) अरेरे.! मेरी जिह्वा भ्रष्ट हो गयी! शास्त्राज्ञा परपुरुष का नाम नहीं लेना चाहिए हमें. और यह है शूद्र! अब प्रायश्चित करना पड़ेगा मुझे! महाराज प्रायश्चित लेने के लिए क्या मुझे ब्रह्मबूंद उपलब्ध होगा?

मृत्युदेवता : मथुराबाई, ऐसा ब्रह्मबूंद अपने दरबार में हम नहीं रखते. पृथ्वी पर की प्रायश्चित की भाषा वर्ज्य मानते हैं यहां हम. नरसोपंत, मथुराबाई के बारे में कुछ कहना है आपको?

नरसोपंत : क्या-क्या कहूं! कितना कहूं! इसके शास्त्र से तंग आ गया था मैं. मरते दम तक इसने तकलीफ दी मुझे. यह नहीं खाना, वह नहीं खाना, यह विधि करना, वह विधि नहीं करना. इस दिशा की ओर मुह करना, उस ओर नहीं करना, इसे दान करो, उसे मत करो. और मैं आधुनिकता में विश्वास करने वाला मानव. समय के साथ मानव को बदलना चाहिए, यह मेरा मत. मेरा हर एक कार्य इसे भ्रष्ट लगता था और इसलिए... (अस्वस्थ हो जाता है.)

मृत्युदेवता : एकदम क्यों रुक गए, नरसोपंत?

नरसोपंत : और इसने खाने में जहर दे दिया मुझे.

मथुरा : जहर नहीं तो क्या अमृत देती! धर्म का नाश करने वालों के लिए इससे कम और कोई सजा नहीं थी.

नरसोपंत : मनु ने भी ब्राह्मण को देहांत की सजा नहीं बतायी, मथू!

मथुरा : लेकिन तुम्हारा आचार-व्यवहार ब्राह्मण जैसा था ही नहीं. शूद्र को लजाने जैसा था.

सायनाक : माताजी, हमारी जाति का उद्धार करने में ही आपको धन्यता महसूस होती है क्या? यह सहन नहीं करेंगे हम. प्रजातंत्र ने भाषण तथा मत की स्वतंत्रता दी है हमें, आंबेडकर बाबा ने अपने स्वाभिमान की सीख दी है हमें, यह कैसे भूल सकता हुं मैं!

मथुरा : कौन आंबेडकर?

सायनाक : आप कैसे समझेंगी यह! मनु के झंडे को सलाम करनेवाला मानव नहीं था वह (रौद्र हास्य हंस कर, क्रोध से बोलने लगता है) मानव की प्रतिष्ठा खत्म करनेवाला, मानव को पैरों तले कुचल डालने वाला वह मनु. मनु के केवल स्मरण मात्र से मेरे शरीर में अग्नि निर्माण होती है. आंबेडकर बाबा ने मनुस्मृति जलायी. क्यों जलायी, कोई करता है इस पर विचार?

मथुरा : मनुस्मृति जलाने से क्या होगा! हमारे मानस तो बदल नहीं सकेंगे कभी.

सायनाक : यही तो जीत है मनु की. गीता के आत्मा जैसे शास्त्र से काट नहीं सकते मनुस्मृति को. अग्नि भी जला नहीं सकती उसे. मात्र चमत्कार हुआ. एक चमत्कार ही कहूंगा उसे मैं. संघर्ष करने, अन्याय के विरोध में लड़ने को तैयार हुए हमारे मानस.

नरसोपंत : सायनाक, आंबेडकर को जानता था
उनकी एक सभा में भी उपस्थित था मैं. प्रचं
था वह मानव. उसकी वाचा में अंगार था. सारा समा
बदल दिया उस महापुरुष ने.

मथुरा : आप चुप बैठिए, शूद्रस्तुति करना ध
शास्त्र में मना है. आंबेडकर के पागलपन से बहक ग
आप भी!

सायनाक : महाराज, धर्म की इस बेड़ी से मान
घुटन-सी महसूस करता रहा. अध्यात्म से प्रेम करनेवा
इस देश ने कभी मानव को पहचाना ही नहीं.

मृत्युदेवता : सायनाक, तुम्हारी वेदना समझ सक
हूं मैं, लेकिन इसका कोई इलाज नहीं.

सायनाक : महाराज मैंने इस देश को अंतःकरण
प्रेम किया है. देश को छोड़ कर जाने की बात सोची भ
नहीं. यहीं पर हमारे पुरखों ने जिंदगी बितायी. इस दे
को अपना माना. किंतु इस देश की पुरोहितशाही ने पंख
हीन कर दिया मुझे. मिली मुझे केवल दासता. दास
को कौन स्वीकार करेगा? लेकिन हुआ वही. मे
हजारों पीढ़ियों ने चुपचाप स्वीकार किया उसक
अब जाग गयी है पीढ़ी मेरी. उसे अपने अभिमान
पंख निकले. जीवन का अर्थ समझ में आया. अप
दासता से मुक्ति के लिए सब कुछ करने को तैयार ह
गये हम. क्रांति को आलिंगनबद्ध किया हमने. यह स
कुछ हुआ, लेकिन आज भी अपनी पुरानी परंपरा क
पालन करने में गौरव मानता है यह मेरा देश! (थोड़
देर शांति, फिर अंदर से शोर.)

मृत्युदेवता : कमंडलु, फिर शोर आरंभ हुआ
देखो, क्या चल रहा है अंदर (कमंडलु बाहर जाता है
सायनाक, तुम्हारा दर्द मैं समझ सकता हूं. शोषण औ
दुःख की भी एक मर्यादा होती है, लेकिन पृथ्वीलो
को उसकी कोई चिंता नहीं! (कमंडलु आता है.)

कमंडलु : महाराज, क्षत्रिय और वैश्य का संघ
चल रहा है. क्षत्रिय कहते हैं, हम श्रेष्ठ हैं, और वैश्य कह
हैं हम.

मृत्युदेवता : उनके नेताओं को दरबार में हाजि
करो.

कमंडलु : जो आज्ञा, महाराज! (घंटा बजाता है
अमरसिह और पुरुषात्तम का प्रवेश)

मृत्युदेवता : (उन्हें संबोधित कर) मृत्युशाला मे
आपको कोई असुविधा हुई है क्या?

अमरसिंह : महाराज, यह कहता है, मैं क्षत्रिय से श्रेष्ठ हूं.

पुरुषोत्तम : महाराज, हम वैश्य हैं. देश को आर्थिक मजबूती हमी ने प्राप्त करायी, व्यापार पर ही कोई देश जीता है. शिवाजी महाराज साहूकारों को हमेशा खुश रखते थे. किंतु ढाल-तलवार को यह कहां मालूम!

अमरसिंह : ढाल-तलवार की उपेक्षा करने से तराजू बड़ी महत्ता प्राप्त नहीं कर सकती, पुरुषोत्तम. ब्राह्मण के बाद क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है. हम देश के लिए लड़ते हैं. मर मिटते हैं. तुम पेट के लिए लडते हो. इस

(आगे पृष्ठ ४० पर)

कबिरा खड़ा बजार में (१५)

• हरिशंकर परसाई

इस बार कबीर की भेंट राजनारायण सिंह से

कबीर घबड़ा उठा. मैंने कनछेदी से कहा—अरे कनछेदी गजब हो गया. राजनारायण सिंह की चिट्ठी ायी है. लिखा है—क्यों बे कबीर के बच्चे, तू सबसे मल रहा है, पर अभी तक मेरे पास क्यों नहीं आया? भी काशी का और मैं भी काशी का और तू काशी वाले ाजनारायण से नहीं मिला. ७-८ दिन में मैं ही तेरे र आता हूं. या तो तुझे पीटूंगा या तेरे दरवाजे पर नशन कर दूंगा.

कनछेदी ने कहा—कबीरदास पहली गाड़ी से जाओ. अगर वह यहां आ गया तो पता नहीं इस मुहल्ले का क्या होगा! वह इस किस्म का आदमी है कि— उलट-पलट लंदा सब जारी.

कबीर काशी पहुंचा और राजनारायण का दरवाजा खटखटाया तो भीतर से आवाज आयी—ठहर न बे! हम दंड पेल रहे हैं.

* *

कबीर बाहर बैठा रहा. थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला और राजनारायण ने कहा—अब आओ. वे पसीने से लथपथ थे.

मैंने कहा—मैं कबीरदास हूं. आपकी चिट्ठी मिली तो एकदम भागा चला आया. पर आपने इतनी कठोर और क्रोधभरी चिट्ठी मुझे क्यों लिखी?

राजनारायण ने कहा—जब वह चिट्ठी लिखी, तब मेरा 'मूड' बहुत खराब था. उस दिन संसद में इस इंदिरा के बिगड़ैल बेटों ने मुझे बोलने नहीं दिया था. बार-बार 'हूट' करते थे. गुस्से में था इसलिए वैसी चिठ्ठी लिख दी होगी.

मैंने कहा—आप हिंदीभक्त हैं, मगर 'मूड' और 'हूट 'अंगरेजी' शब्द बोलते हैं.

राजनारायण ने कहा—इस रानी इंदिरा के रहते हिंदी कहां पनप सकती है? मगर डाक्टर साहब (डा. लोहिया) भी 'रिपोर्ट' की हिंदी 'रपट' बना लेते थे.

मैंने कहा—तभी आप लोग रपट गये. पार्टी के हिस्से हो गये. आप लोकदल में चले गये. खैर, इस उम्र में भी आप इतने दंड पेलते हैं?

राजनारायण ने कहा—दंड पेले बिना संसदीय कर्म कैसे होगा? अभी तो मुझे शीर्षासन करना है.

और वे शीर्षासन करने लगे.

निपटे तो बोले—शीर्षासन का राजनीतिक फायदा यह है कि इसमें हर चीज उलटी दिखती है. और सफल राजनीति के लिए चीजें उलटी दिखना जरूरी है.

कबीर ने कहा—तो आपकी राजनीति यही है कि सीधी चीजें उलटी दिखें?

राजनारायण ने कहा—और क्या? सीधा ही दिखे तो राजनीति क्या हुई? जब कभी लिमये या जार्ज सीधा देखने लगते, मैं डांट देता—ए, उलटा देखो, वरना पार्टी से निकल जाओ.

वे बाथरूम गये. लौटे तो थाली में जलेबियां ले आये. खाने बैठे तो पूछा—कबीर, जलेबी खाओगे?

मैंने कहा—नहीं, आप खाइये!

राजनारायण ने क्रोध से कहा—अबे खा साधु, नहीं तो एक झापड़ा मार दूंगा! सिर्फ तीन जलेबी लेना, वरना मेरी खूराक कम पड़ जायगी.

कबीर ने तीन जलेबियां लीं और घबड़ा कर निगल गया.

जलेबी खा कर राजनारायण भीतर गये और दूध का लोटा ले आये. भाप निकल रही थी. वे पीने को हुए, तो मैंने कहा—भाप निकल रही है. थोड़ा ठंडा कर लीजिए.

राजनारायण ने कहा—कुनकुना दूध कायर पीते हैं. उनकी राजनीति कुनकुनी होती है. डाक्टर साहब उबलती हुई राजनीति पीते थे, मैं उबलता हुआ दूध पीता हूं. साधु, तुम आसन, ध्यान, योग वगैरह करते हो?

कबीर ने कहा—नहीं करता. अपना तो यह है कि—

साधो, सहज समाधि भली,
जहं-जहं डोलौं सोइ परिकरमा,
जो-जो करौं सो सेवा,
जब सोवौं तब करौं दंडवत,
पूजौं और न देवा।

राजनारायण ने कहा—अरे, काशी में रह कर यह सब नहीं किया? तभी तो 'द्विज' तुमसे नफरत करते थे.

कबीर ने कहा—हां यह सही है. पर मैंने भी तो द्विजों की चमड़ी उधेड़ी है.

राजनारायण ने कहा—और यही मैं भी करता हूं. द्विजों की चमड़ी उधेड़ता हूं. डाक्टर साहब 'वर्ण संघर्ष' पर बड़ा जोर देते थे. पर पता नहीं जोशी-फोशी जैसे 'द्विज' पार्टी में कैसे आ गये?

कबीर ने कहा—तुम तो डाक्टर लोहिया को बात-बात में इस तरह याद करते हो, जैसे कोई विधवा भावुक हो कर कहती है—वे कहते थे कि बिब्बो, तुम्हें नीली साड़ी बहुत अच्छी लगती है.

राजनारायण ने कहा––अपनी प्रकृति के अनुसार कबीर तुमने उदाहरण ऊटपटांग दे दिया. पर सच है कि डाक्टर साहब राम थे, और मैं उनका हनुमान था. एक बार लिमये से उनके कुछ मतभेद हो गये, तो मैंने उन्हें लिखा कि मैं लिमये को ठीक कर दूंगा.

जो राउर अनुशासन पावौं,
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ।

ऐसा हमारा संबंध था. तुम ठीक कहते हो. तुमने अपने को 'राम की बहुरिया' कहा है, हम डाक्टर साहब की बहुरिया थे. रुको, तुम्हें चाय पिलाता हूं.

★ ★

उन्होंने चाय बुलवाई. मेरे लिए कप-बसी में और अपने लिए केतली में. मैं चाय पीने लगा. पर देखता क्या हूं कि केतली की टोंटी नाक में लगाकर वे नाक से गरम चाय पी गये.

मैंने कहा––कमाल है! गर्म चाय नाक से पीते हो.

राजनारायण ने कहा––और नहीं तो क्या? चाय ठंडी करके मुंह से पीऊं तो मेरा नाम राजनारायण सिंह कैसे होगा ? और समाजवादी क्रांति कैसे आयेगी? अरे साधु, समाजवाद फूंक-फूंक कर नहीं पिया जाता. वह उबलता हुआ उड़ेला जाता है.

इतने में एक आदमी कोई शिकायत ले कर आया. राजनारायण ने शिकायत सुनी और गुस्से में कहा–– मुझसे क्यों शिकायत करते हो? जाओ अपनी उसी दिल्ली वाली रानी के पास. वोट उसे दोगे, प्रधान मंत्री उसे बनाओगे और शिकायत मुझसे करोगे! जाओ, पहले उससे इस्तीफा दिलाओ, तब मुझसे बात करो.

राजनारायण ने एक फूहड़ शब्द भी कहा था, जो छपने लायक नहीं है.

वह आदमी भाग खड़ा हो गया.

मैंने कहा––जन समस्याओं का हल क्या आप इसी तरह करते हैं?

राजनारायण ने कहा—हां, ये हरामजादे वोट तो उसे देंगे और अपनी तकलीफ राजनारायण से कहेंगे.

कबीर ने पूछा—प्रधान मंत्री से आप लोग इतना क्यों चिढ़ते हैं?

राजनारायण ने कहा–– यह नेहरू खानदान है. इस नेहरू खानदान ने देश का नाश कर दिया.

कबीर ने पूछा—मोतीलाल नेहरू ने भी ?

राजनारायण ने कहा—मोतीलाल नहीं, मोतीलाल के परदादों ने भी. यह खानदान ही विनाशकारी है. जब तक यह खानदान राजनीति में है, तब तक देश का नाश होता रहेगा. डाक्टर साहब कहते थे कि इस जवाहरलाल नेहरू ने हमारी क्रांतिकारिता को मार डाला.

कबीर ने कहा—पर क्रांतिकारिता एक क्या, सौ नेहरुओं से नहीं मरती.

राजनारायण ने कहा—तभी तो राजनारायण अभी भी चौबीसों घंटे क्रांतिकारी है. बताऊं?

और वे उचककर अलमारी पर चढ़ गये और टेबल पर कूद पड़े. कहा—देखा, ये है लगातार क्रांति!

कबीर ने पूछा—संसदीय जीवन आपका कैसा है?

राजनारायण ने कहा—अरे, मेरा संसदीय जीवन बहुत पुराना है. मेरी तारीफ ब्रिटेन के प्रधान मंत्री एटली ने भी की थी. मैं तब उत्तर प्रदेश विधान सभा का सदस्य था. एटली विधान सभा की कार्यवाही देख रहे थे. मैं पूरे 'मूड़' में था— संसदीय' 'मूड' में. मैं कुर्सी के ऊपर खड़ा हो गया और चिल्लाने लगा. अध्यक्ष ने कहा–बाहर निकल जाओ तो मैं कुर्सी के नीचे घुस गया. अब विधान सभा के गार्ड मुझे बाहर निकालने की कोशिश कर रहे हैं और मैं निकल नहीं रहा हूं. बड़ा मजा आया! बाद में एटली ने तारीफ की. नेहरू से कहा––आपकी विधान सभा तो बड़ी जीवंत है. हमारी

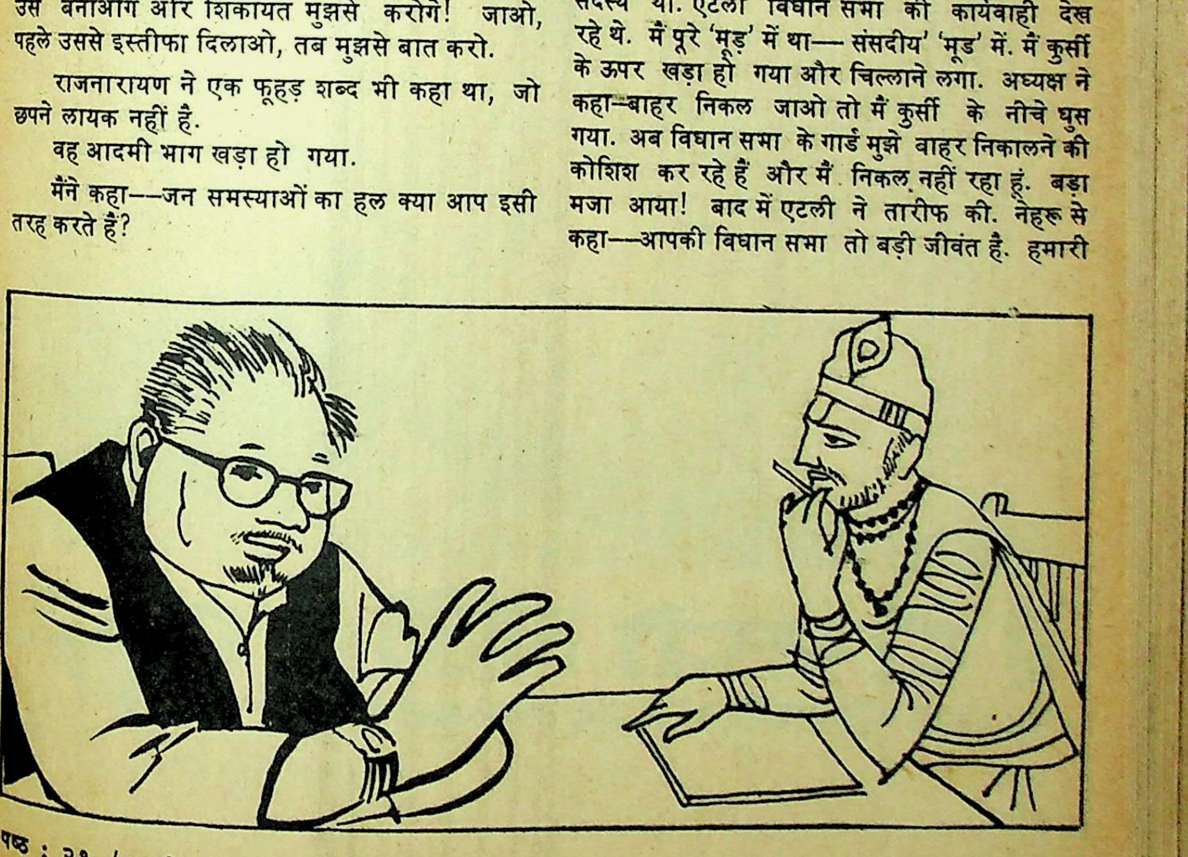

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं
सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

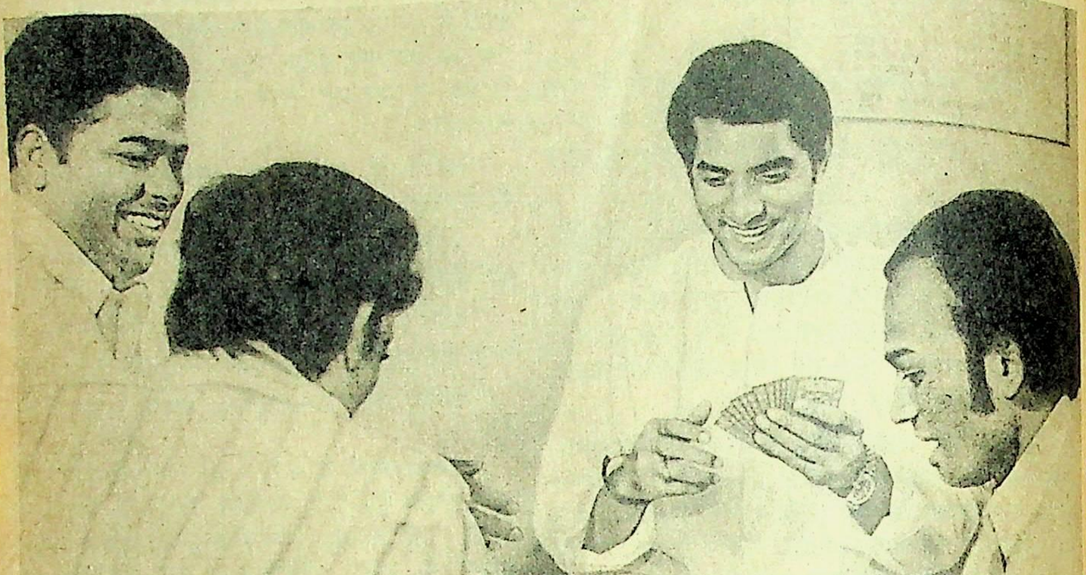

२ ऐस्प्रो लीजिये
माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है
ASPRO
Nicholas
A.G.62 H

संसद के अधिवेशन बड़े नीरस होते हैं.

कबीर ने पूछा—[illegible] है? यह तारीफ थी?

राजनारायण ने कहा—और नहीं तो क्या था?

मैंने कहा—अरे पहलवान, यह व्यंग्य था, मजाक था कि हमारी संसद में गंभीर विचार होते हैं और तुम्हारे यहां हुल्लड़!

राजनारायण ने कहा—तुम मूर्ख हो! कुछ नहीं समझते, वह मेरी तारीफ थी इसीलिए अपने इस संसदीय कार्य को मैं चालू रखे हुए हूं. अध्यक्ष कहता है—बैठ जाओ, मैं नहीं बैठता. अध्यक्ष कहता है—निकल जाओ, मैं नहीं निकलता और कुर्सी के नीचे घुस जाता हूं.

कबीर ने पूछा—क्या तुम संसद की कार्यसूची पढ़ते हो? संसद में उठने वाले विषयों का अध्ययन करते हो?

राजनारायण ने कहा—यह सब वे बुद्धू लिमये और जार्ज करते हैं. बैठे हैं. पढ़ रहे हैं. सोच रहे हैं. अपना यह है कि दंड पेले, जलेबी खाई, दूध पिया और संसद में पहुंच गये. और जो भी विषय उठा, उसी पर चिल्लाने लगे. मेरे फेफड़े बहुत ताकतवर हैं. विषय से अपने को मतलब नहीं. विषय चाहे जो भी हो.

हमें तो हंगामा करना है.

कबीर ने कहा—पर संसद की मर्यादा होती है.

राजनारायण ने कहा—काहे की मर्यादा? जब तक वह मल्लिका सिंहासन पर बैठी है, तब तक कोई मर्यादा रह नहीं सकती.

कबीर ने कहा—पर राजनारायण, तुम्हें, तुम्हारे गुट और तुम्हारे समाजवाद को वह चौधरी चरणसिंह लील गया.

राजनारायण ने कहा—भई, बात यह है कबीर, कि उसके पास ज़ाट नेता बहुत हैं. और हमें बनाना है इंदिरा विरोधी मोर्चा! तो हम उसी के साथ हो गये. पर जिस दिन चाहूंगा, उस चौधरी को पछाड़ कर नेता हो जाऊंगा.

* *

मैंने पूछा—तुम्हारा कैसा समाजवाद है?

राजनारायण ने कहा—इंदिरा का विरोध करना ही समाजवाद है.

मैंने कहा—पर इंदिरा अपने को और अपनी पार्टी को समाजवादी कहती हैं.

राजनारायण ने कहा—खाक समाजवादी हैं! डाक्टर साहब कहते थे कि जब तक यह जवाहरलाल नेहरू है, तब तक समाजवाद नहीं आ सकता. नेहरू गये तो यह मल्लिका आ गयी. जब तक नेहरू खानदान है तब तक समाजवाद आ ही नहीं सकता.

कबीर ने पूछा—अगर लिमये प्रधान मंत्री हो जायें तो तुम क्या करोगे?

राजनारायण ने कहा—तब भी मैं विरोध करूंगा. नारा लगाऊंगा—लिमये परिवार ने देश का नाश कर दिया. मैं हमेशा विरोध करूंगा.

मैंने पूछा—तुमने कार्ल मार्क्स पढ़ा है?

राजनारायण ने कहा—नहीं पढ़ा. क्यों पढ़ें? डाक्टर साहब तो थे.

मैंने पूछा—डाक्टर लोहिया ने जो लिखा है, वह पढ़ा है?

वे बोले—वह भी नहीं पढ़ा. जब डाक्टर साहब हमारे साथ थे तब उनका लिखा क्यों पढ़ें? अभी तुमने कार्ल मार्क्स की बात की. ये कम्यूनिस्ट कार्ल मार्क्स को गुरु मानते हैं. ये बदमाश कांग्रेस में घुस गये हैं. बाहर से उनकी पार्टी और भीतर से ये घुसपैठिये उस रानी का दिमाग खराब कर रहे हैं. उसे गलत रास्ते पर चलाते हैं.

मैंने पूछा—जयप्रकाश नारायण का आंदोलन कैसा है?

वे बोले—बहुत अच्छा है. मैं तो उनका समर्थक हूं.

मैंने पूछा—क्या इसलिए कि वे क्रांति लाना चाहते हैं?

वे बोले—नहीं, इसलिए कि जयप्रकाश इंदिरा गांधी को तंग कर रहे हैं. हमें तो इस सुरसा को खत्म करना है, राजनीति से. और यह मैं ही करूंगा—

जस-जस सुरसा बदन बढ़ावा,
तासु दुगुन कपि रूप दिखावा।

मैंने पूछा—अभी क्या कार्यक्रम है?

—बस संसद का सत्र खत्म होते ही विश्वविद्यालय के फाटक पर अनशन शुरू कर दूंगा. उधर हमारी यूनियन है!

* *

—अब चलूं. संसद में आज मेरा हुल्लड़ का प्रोग्राम है—जय बजरंगबली—तोड़ दुश्मन की नली!

मैंने कहा—यह जरूरी थोड़े ही है कि प्रश्न के घंटे में ही हुल्लड़ का संसदीय कार्य करो. दिन भर पड़ा है.

राजनारायण ने कहा—हां, सो तो ठीक है. एक बात कहना भूल गया. तुम भी काशी के, तुलसीदास भी काशी के, भारतेंदु भी काशी के और मैं भी काशी का हो गया. फिर भारत की राजधानी काशी क्यों न हो? मैं संसद में इस बारे में एक बिल लाऊंगा कि भारत की राजधानी काशी हो. तुम्हारा गालिब से अच्छा स्मारक बनवाऊंगा.

कबीर ने कहा—बिल तो लोकसभा में आता है और तुम हो राज्य-सभा में.

वे बोले—हां, यह कठिनाई है. खैर, आगे देखा जायेगा. पर एक बात कहता हूं. भारतेंदु ने कहा था—प्यारे हरिचंद की कहानी रह जायगी. मैं कहता हूं प्यारे राजनारायण की कहानी रह जायगी!

कबीर ने बिदा ली.

लौटा तो कनछेदी ने पूछा—मिल आये?

मैंने कहा—मिल गया.

कनछेदी ने कहा—साधु, तुमने मुहल्ले का बड़ा भला किया. □□□

यादों के पखेरू

★ प्र. ई. सोनकामळे

ऐसा हुआ. मैं गांव से दूर था. दूर से मतलब है बहन के घर गया था. यानी कि घर से बाहर उस छोटी-सी दहलीज में. बचपन से ही मेरी यह आदत थी, जो कोई भी मुझे कुछ करने को कहता, मैं सहर्ष तत्पर रहता. इसी तरह एक दिन मुझे जीजाजी ने ऊंट चराने के लिए जंगल में भेजा. छोटा-सा मैं और अच्छा जानवर. जब वह चरता, तब मेरी आंखें चौकन्नी-सी उसके पीछे रहतीं. पर जिसका कोई इलाज करने वाला न हो, उसे बेइलाज कह कर छोड़ दिया जाता है, उसी प्रकार मुझे जंगल जाना ही पड़ता था. मैं कांटों से भरे जंगल में गया.

ऊंट महाराज ने पास ही के एक बगीचे की जाली में अपना सिर जो फंसा लिया तो निकालने का नाम ही न लें. मैं घबराया, खूब चिल्लाया—हट पीछे, हट पीछे, आ बेटा आ, चु चु. नकेल काफी लंबी थी, कभी थोड़ी ढीली छोड़ता, फिर कसता. पर होता क्या? वह ऊंट क्रोधित हो उठा व मुझ बच्चे की बौखलायी हुई आवाज के बीच कांटों भरी जाली में मैं भी उसके साथ घिसटता गया और सारे कांटे भरभरा कर मेरे शरीर में चुभ गये. मैं चिल्लाया. पर वहां कौन सुनता? मैं सहम कर रह गया. ऊंट चुपचाप निकल आता, तो अच्छा न होता क्या!

उस वीरान जंगल में मैं 'आगे नाथ न पीछे पगहा' वाली स्थिति में था. मेरा वेश ऐसा कि कुर्ता पहले से फटा हुआ, जर-जर-सा था (मलमल का न सही पुराना था) ब्राह्मणी मैना माई ने दिया था. वहां पर मैं बहन के बदले में गोब्बर उठाता था और उसके बदले में जो कुछ वह सुथना आदि देती थी मैं ले लेता था. इसीलिए वह बुरी तरह फट गया. मुझे रोना आने लगा.

ऐसे ही मैं छोटे से बड़ा होता चला गया. लोग चैन में थे, मैं बेचैन. लोग मजे में थे और मैं सजा में. लोग महल-सी हवेली में और मैं झोपड़ी में. मुझे अच्छा नहीं लगता था पर कर ही क्या सकता था, कोई उपाय भी न था. चारों तरफ दुख-ही-दुख दिखाई पड़ता था. जब कभी मैं पेड़ के नीचे अकेला बैठता तो मन बह उठता, तब लगता था दुनिया में सभी लोग सुखी नहीं हैं, मुझ जैसे भी बहुत से हैं, किंतु तब यह विचार दिलासा नहीं देता था. तब यूं महसूस होता था कि मुझे थोड़ा बहुत भजन करना चाहिए, शायद मन को थोड़ी शांति मिले.

और तब कभी तुकाराम या कबीर के भजन या मारुड़ या कलगीतुय, पर कोई भी भजन पूरा नहीं आता था, थोड़ा बहुत दिल इसी प्रकार बहल जाता था. और रात को गांव की भजन मंडली का भजन सुनता था, और दूर नहाने की जगह या पाखाने के पास की जगह पर बैठ कर सुनता था. गाता भी था और उसीमें आनंद भी आता था. कभी वे प्रसाद के रूप में नारियल या सीरा, गुड़ या पंजीरी देते थे. मैं उसी में खुश हो जाता था. मेरी बड़ी इच्छा थी कि कोई मुझे ढोल या मंजीरा बजाने के लिए दे. मगर कौन देगा मुझे? मैं अछूत था. हरिजन था. जो भजन उस वक्त मैं सुनता था उसे उसी लय में होठों-ही-होठों में दुहराता था और याद करने की कोशिश करता था. यही रोज की दिनचर्या हो गयी थी. कोई कहता था मैं बहुत कुछ सीख चुका हूं. बड़ा मुखिया बनने वाला हूं. किंतु मैं ज्यादातर चुप रहता था. कभी किसी से लड़ाई नहीं की. कोई मारता भी था तो किसी से नहीं कहता था. कहूं भी तो क्या, कल उसीसे पाला पड़ने वाला है. तभी लोग कभी-कभी कहते थे जाने दो परदेसी है. बेचारा बनवासी. यह गंगाबाई के महराज के भाई का लड़का है. बहुत गुणवान है. इन्हीं गुणों की वजह से तो वह किसी के पेट का हिस्सा खाता है. कोई ऐसा कहता तो कोई इस प्रकार——आजकल जरा अकड़ के चलना सीख गया है. बड़ा कलेक्टर बन गया है. पढ़-लिख गया है तो क्या हमारी बराबरी का हो गया है, भिखमंगा! निकल यहां से. समझदार को पट्टी उल्लू को गद्दी. यह देखो! ऐसा बहुत-सी औरतें कहती थीं. वह सब बताने बैठूं तो लंबा इतिहास है किंतु, एक घटना आप सबको बताता हूं. उस वक्त मैं छोटा था पर बहन कहती, जाओ बाबा, शाम के लिए कुछ मांग कर ले आओ, अपने लिए तथा अपने छोटों के लिए. दूसरे बच्चों की तरह मुझे भी कभी ना बोलने की इच्छा होती थी. पेटू, उस पर काम चोर! बहन झिड़कती—खाता तो भीख का है और दिमाग राजाओं का है!

मैं ही हमेशा रोटी मांगने जाता था (बहन की या भाई की, किसी की भी बारी हो) पर कभी-कभी वह मेरे साथ आ जाती थी क्योंकि धनगरबाड़ी में इतने फर्राट और बदमाश कुत्ते थे कि भौंकते हुए मेरे पीछे पड़ जाते. इसी वजह से मैं उस बाड़ी में जाता नहीं था. किंतु दूसरे मुखिया की दहलीज पर से खुड़खुड़ी की लकड़ी बजाता था, अगर नहीं बजती तो लगता था कि फिर काम नहीं बनेगा. अगर ऐसा होता था तो फिर रोटी मांगने के लिए मुझे जोरों से आवाज लगानी पड़ती थी. क्योंकि एक औरत थी जो थोड़ी बहरी थी. उसका नाम था शाबू बाई. वह कहती, जोर से क्यों नहीं बोलता ! खूसट ! कुछ खाया नहीं है क्या ? मैं पुन आवाज लगाता—ओ मेरे माई बाप ! कुछ खाने को मिल जाय. . .जरा दूर से लेना. अभी छोटा है तू. थोड़ा-सा और

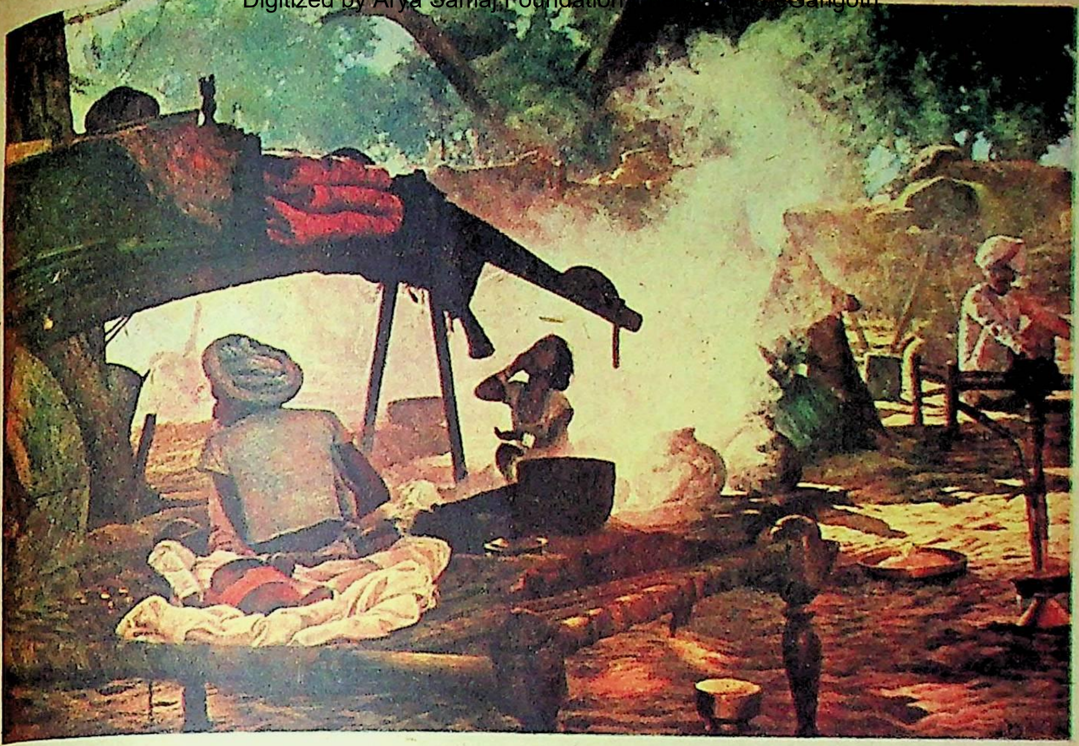

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

नजदीक, वह कहती और मुझे बड़ा अच्छा लगता.

एक बार क्या हुआ, मैं ऐसे ही रोटी मांगने गया एक धनी के घर. सात अन्न की बनी रोटी, जिस पर फफूंदी लगी थी, एक औरत ने मेरी झोली में डाली. उसकी यह इच्छा थी कि उसके घर के ऊपर जो बुरे उतार-चढ़ाव हैं वह सब मुझ पर आ जायें. किंतु जब मैं घर आया, और बुआ ने वह रोटी का टुकड़ा देखा तो वह बोली, क्यों रे, किसने दिया तुझे यह टुकड़ा? मैंने कोई जवाब नहीं दिया. वह बड़बड़ाने लगी, मेरे भाई का बच्चा किसी तरह से यहां रह रहा है. यह लोगों की नजर में खटकता है. जब मैंने उन्हें बताया कि किसने यह टुकड़ा दिया तो उन्हें बहुत बुरा लगा. उन्होंने सारे गांव में ढिंढोरा पीट दिया. मैं पुनः उस गली में एक बार रोटी मांगने गया तो वह औरत गुस्से से तमतमाती मुझ पर फट पड़ी और बोली, परदेसी के ऐसे ही चोचले होते हैं. तू रोटी मांगने आता है या मेरी बदनामी करने? मैं घबड़ा गया क्योंकि वह औरत पूरी जट थी और मैं उसकी अपेक्षा बच्चा, तिस पर अछूत. दूसरे के गांव में हूं, यह सोच कर मैं चलने लगा. किंतु वह बोली—ओ रे, ठहर जरा, मेरा छौना, तेरे ये लक्षण. खबरदार. जो तू अब मेरे दरवाजे पर रोटी मांगने आया! मेरी आंखें छलछला आयीं और मैं आगे बढ़ गया.

अब दूसरा एक प्रसंग सुनाता हूं, जरा ध्यान दे कर सुनिएगा. एक बार ऐसा हुआ कि मैं शहडोल की पाठशाला में सातवीं कक्षा का विद्यार्थी था. दीवाली की छुट्टी नजदीक आ गयी थी. वहां एक गुरू जी थे जिनका नाम वासुदेव राव पिपले था. वह हम लोगों को अंग्रेजी पढ़ाते थे. वह बहुत ही उमदा व होशियार थे. उन्होंने कहा—बच्चो! अपनी छुट्टी की दिनचर्या की डायरी लिख कर लाना, अच्छा. मुझे लगा, मास्टर पागल हैं, कुछ भी बोलते हैं. मुझे जंगल जाना पड़ेगा फिर मैं रोजनामचा किस तरह से लिख सकूंगा. मैंने उनसे पूछा तो बोले—जो भी तुम करते हो वही लिखना.

मैं एक मुखिया पटेल के यहां सुबह (चार-पांच बजे) रास्ते पर का गोबर उठाने के काम के लिए रखा गया. अंधेरे में उठाना पड़ता था, अतः कभी-कभी आदमियों की टट्टी भी हाथों से उठा लेता था क्योंकि कुछ दिखाई नहीं देता था. जब नाक के पास हाथ जाता था तो बदबू से मन उबका उठता था. बाद में वैसे ही हाथों को मिट्टी से घिसता, तो गिने-गिने टुकड़े से गिरते थे. उन मुखिया साहब का नाम बैजनाथ पाटिल था. मैं उनको बैजनाथ बापू कहता था. वे थे राजा भोज और मैं था गंगू तेली. इसी तरह करते-करते छुट्टियां खत्म हो गयीं और उन्होंने मुझे एक कुरता दिया. मैं क्या लूंगा ऐसा पहले से मैंने कुछ भी तय नहीं किया था. मुझे लगता था उन्हें दया आयेगी तो पेट पालने के लिए सोच समझ कर ही मुझे देंगे. पर वे लोग तो बहुत ही बेकार निकले. वे मुझे खाना खिलाने घर ले जाते थे. किंतु स्त्रियों परोस कर ही नहीं देती थीं. और मैं टकटकी लगाये भोजन की प्रतीक्षा करता रहता था. उन्होंने जो मेरे लिए कुरता खरीदा था वह इतना छोटा था कि मुझे आता ही नहीं था. वह था एक रुपये का. मैंने कहा, मैं नहीं लूंगा इसे. बाईस दिन तक गोबर ढोता रहा, रोज के पांच-छह तसले और सिर्फ एक रुपये का

दाँतों के डाक्टरों की राय में

नियमित रूप से दाँत ब्रश करने और मसूढ़ों की मालिश करने से मसूढ़ों की तकलीफ़ और दाँतों की सड़न दूर ही रहती है

देखिए, फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट नियमित इस्तेमाल करनेवालों ने अपने आप क्या लिखा है:

'मुझे मसूढ़ों की तकलीफ़ थी और... आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक, एलोपैथिक; हर तरह की दवाई ली लेकिन थोड़ी देर ही आराम मिला। अन्त में दाँतों के डाक्टर की सलाह अनुसार मैंने फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल करना शुरू किया। इससे आज भी मेरे दाँत और मसूढ़े इतने बढ़िया और मजबूत हैं कि पूछिए मत।'

(सही) गोपालसिंह, कोटा

'...मेरी पत्नी को दाँतों में बड़ी पीड़ा थी ...लेकिन जबसे उसने फ़ोरहॅन्स इस्तेमाल करना शुरू किया, इतना अच्छा रहा कि अब किसी को भी दाँत या मसूढ़ों में तकलीफ़ होते ही वे फ़ोरहॅन्स लेने की सलाह देती हैं। वही क्यों, इंग्लैंड में मेरे भाई हैं न, उन्होंने भी भारत से फ़ोरहॅन्स के ६ ट्यूब भेजने के लिए बार बार लिखा है।'

(सही) टी.जी.एम्.डीसूज़ा, बम्बई

'...राजमुन्दरी में एक दाँतों के डाक्टर हैं ...उन्होंने मुझे दाँतों व मसूढ़ों की भलाई के लिए फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल करने की सलाह दी। मैंने फ़ौरन ऐसा ही किया। थोड़े ही समय में सांस की दुर्गन्ध जाती रही, मसूढ़े फिर अच्छे हो गए। तब से, सच मानिए, मैं ही नहीं मेरे पूरे परिवार के ९ लोग फ़ोरहॅन्स ही इस्तेमाल करते हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि हमारी यह आदत और हमारी यह आस्था पीढ़ियों तक चलती रहेगी।'

(सही) पी. जे. लाज़ार
चिराला, आन्ध्र प्रदेश

(इन पत्रों की फ़ोटोस्टॅट कॉपी आप जैफ़्री मैनर्स एण्ड कं. लि. के किसी भी कार्यालय में देख सकते हैं)

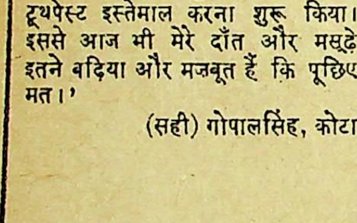

दाँतों की समुचित देखभाल के लिए रोज सवेरे और रात को फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट और फ़ोरहॅन्स डबल-एक्शन टूथब्रश इस्तेमाल कीजिए...और नियमित रूप से डाक्टर की सलाह भी लेते रहिए।

मुफ़्त! "आपके दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" नामक रंगीन सूचना-पुस्तिका। अपनी प्रति * प्राप्त करने के लिए (डाक-खर्च के लिए) २५ पैसे के टिकट इस कूपन के साथ इस पते पर भेजिए: S.12

मैनर्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई-१

नाम : ________________ उम्र : ________

पता : ________________

* कृपया जिस भाषा की पुस्तिका चाहिए, उसके नीचे रेखा खींच दीजिए: अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, आसामी, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़

फ़ोरहॅन्स दाँतों के डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

129 F 203 HN

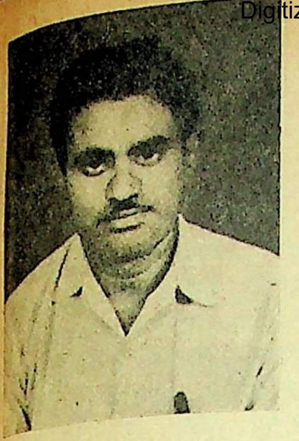

प्र. ई. सोनकामळे : मराठी कहानीकार

कुरता ? वह बोले, चल उठ यहां से, लेने का है तो लो नहीं एक खींच कर दूंगा गाल पर. उन्होंने कुरता मेरे छोटे जीजा जी के ऊपर फेंक दिया. मैं हिचकियां लेता हुआ गया. बहन बोली—क्यों गया था वहां रे? घर पर काम करने को कहेंगे तो तेरी जान जाती है.

रोज मैं यह सब डायरी में लिखता था. पाठशाला खुलने पर यह सब पढ़ कर गुरूजी मुझ पर इतने दयावान हो उठे कि जात-पांत का भेदभाव भूल कर उन्होंने कपड़े सिलवाये. कभी-कभी घर जा कर मुझे बचा-खुचा खाने को भी देते तथा अपने स्नान करने वाले लोटे से पानी पी लेने को कहते. वह औरत (उनकी पत्नी) नाक-भौं सिकोड़ लेती थी पर बोलती नहीं.

मैं पहली ही बार में मैट्रिक पास हो गया था. पिछला सब कुछ भूल कर प्रसन्न था. उन्नीस सौ साठ में मैट्रिक पास की सेकेंड क्लास में, अंग्रेजी में मुझे छप्पन नंबर मिले. लोगों ने कहा, औरंगाबाद जाओ, वहां सहूलियत मिलेगी. अछूतों के लिए खास कालेज है.

लोगों ने दो आने, चार आने, आठ आने करके करीब सत्रह रुपये कुछ पैसे इकट्ठा करके मुझे दिये. उन्हीं रुपयों में से मैंने दीदी को पांच रुपया दिये. (खाने के लिए जवारी नहीं थी इसलिए) मन भर आया, लोगों की दी हुई भीख में बहन का भी हिस्सा!

सुबह औरंगाबाद पहुंच गया. कुछ समझ में नहीं आ रहा था क्या करूं. इधर-उधर देखा तो सहसा जगलपुर के गुरू के लड़के से भेंट हो गयी. उसका नाम था मानुदास. उसने कहा, आओ इस टांगे पर बैठो. मैं बैठ गया. फिर साईंनाथ राईस प्लेट होटल पहुंचे. वह उतर गया. मैंने ही पैसे दिये क्योंकि उसके पास छुट्टे नहीं थे. उसने कहा, मैं बाद में पैसे देता हूं. आठ आने की चाय (तथा एक रुपया टांगे का चार्ज) उसने कहा, सीधे चले जाओ. उस गेट तक. मैं घूमता रहा, घूमता रहा. सुबह सात बजे औरंगाबाद पहुंचा था. परंतु अब चार बज रहे थे. आखिर कालेज मिल गया. मेरा दिल धक से रह गया, कालेज देख कर. चारों तरफ लड़के ही लड़के. ओ बाबा, कोई कोई तो खूब ठाठ बाट में था. मुझे लगा, मेरा नंबर लगेगा भी या नहीं किंतु किसी तरह हो गया. लाइन में लगा रहा अंत में नाम मिल ही गया. किंतु हृदय में धुकपुकी हो रही थी फार्म कैसे भरूं? पहचान के लड़के तो दिखाई पड़े किंतु व्यवहार अपरिचितों-सा. राजूर के भी एक आध लड़के मिले किंतु वे बड़े चालाक थे. क्लासमेट भी 'जरा ठहरो' कह कर टरका रहे थे. पर किसी प्रकार कालेज का काम हो गया. अब बोर्डिंग की बारी थी. किसीने बताया कि रेक्टर साहेब अपने ही जिले के हैं वहीं चलें. मैं और राजूर का यादव दोनों उनके कमरे पर गये. उन्होंने पूछा, कौन हो. हमने डरते-डरते जवाब दिया, अं अं, हम. कौन रे? गेट आउट वह चिल्लाये. हम बुरी तरह निराश हो गये. अंत में यह भी हो गया. रोज खाने को मिलता था. मुझे बड़ा आनंद आया क्योंकि अब तक इस तरह का खाना न देखा ही था न खाया ही था.

अब देखिए, एक शाम ऐसा हुआ कि हमारे बड़े सर बोर्डिंग में आये. मैं अपने कमरे में था. चारों तरफ कचरा छितरा हुआ था, जगह-जगह चिड़ियों के घोसले तथा खिड़कियों के कांच टूटे हुए थे. लोगों ने खुद वारदान लगाये थे. मैं रह गया था. शेंडे महादेव व गण वीर भी रह गये थे. मैं कमरा साफ करता था. उससे क्या होता. सर आये तो खूब रूवाब में, और बोले—क्यों रे, इस तरह से कैसे रह रहे हो? मेरे पास सिर्फ एक दरी थी जो राजूर की पाठशाला के एक मास्टर ने दी थी. वह फटी हुई दरी, और भीरु स्वभाव,उस पर कपड़े भी मजेदार. और उस दरी के नीचे था जैसे राशनिंग स्टोर. पास पास पड़ी हुई एक हाथ की फलियां और नीचे भूसा, मैंने उन्हें उतनी ही लंबाई में नीचे फैला रखा था. वह सर ने देखा और बोले, इसको उठाओ जरा. मैंने डरते-डरते उठाया. नीचे दिखाई दिये खाली खटमल ही खटमल बुलबुल बुल-बुल. उन्हें क्या महसूस हुआ पता नहीं. वह बोले—दूसरे दिन सबके साथ तुम भी दरखास्त दो मेरे नाम से. मुझे थरथराहट होने लगी. दस रुपया मिलेंगे. एक गद्दा ले लेना. मैं हैरान परेशान, उन रुपयों को बापस कैसे करूंगा. मन बहुत से उतार-चढ़ावों के मध्य ठिठकता रहा, समय पखेरू न जाने कब उड़ गया.

एम. ए. पास हो गया. बंबई से मुझे बुलावा आया. तुरंत इंटरव्यू के लिए पहुंचा. बड़े-बड़े अफसरों की निगाहें चेहरे पर कुछ पढ़ रही थीं. कई तरह के प्रश्न पूछे. किसीने कुछ किसीने कुछ पूछा. मैं वैसे ही बड़ा शर्मीला व संकोची था. पर पता नहीं मन में उस वक्त कहां से ऐसी शक्ति आ गयी कि जो भी मुंह में आया बेझिक बोलता गया जैसे चुप न रहने की कसम खा कर गया था. इंटरव्यू खत्म हो गया पर मुझे रोज लगता, पता नहीं क्या होगा, किस तरह से हागा.

बंबई से वापस गांव जाने के लिए स्टेशन आया, इतनी भीड़ कि तोबा. कहीं दूर जा कर गांव लौटने की यह पहली यात्रा थी, किसी तरह गाड़ी पर बैठा गांव जाने के लिए.तभी हर्ष वाणी-सी हुई, अंग्रेजी पढ़ाने वाले प्रोफेसर की तरह मैं अछूत लड़का कक्षा में फटाफट अंग्रेजी में बोल रहा हूं. ऐसा चित्र आंखों के समीप उभरने लगा और कब पलकें नींद से बोझिल हो गयीं पता नहीं. □□□

(अनुवाद : चित्रा मुद्गल)

दाँतों के डाक्टरों की राय में

नियमित रूप से दाँत ब्रश करने और मसूढ़ों की मालिश करने से मसूढ़ों की तकलीफ़ और दाँतों की सड़न दूर ही रहती है

देखिए, फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट नियमित इस्तेमाल करनेवालों ने अपने आप क्या लिखा है:

'मुझे मसूढ़ों की तकलीफ़ थी और... आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक, एलोपैथिक; हर तरह की दवाई ली लेकिन थोड़ी देर ही आराम मिला। अन्त में दाँतों के डाक्टर की सलाह अनुसार मैंने फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल करना शुरू किया। इससे आज भी मेरे दाँत और मसूढ़े इतने बढ़िया और मज़बूत हैं कि पूछिए मत।'

(सही) गोपालसिंह, कोटा

'...मेरी पत्नी को दाँतों में बड़ी पीड़ा थी ...लेकिन जबसे उसने फ़ोरहॅन्स इस्तेमाल करना शुरू किया, इतना अच्छा रहा कि अब किसी को भी दाँत या मसूढ़ों में तकलीफ़ होते ही वे फ़ोरहॅन्स लेने की सलाह देती हैं। वही क्यों, इंग्लैंड में मेरे भाई हैं न, उन्होंने भी भारत से फ़ोरहॅन्स के ६ ट्यूब भेजने के लिए बार बार लिखा है।'

(सही) टी.जी.एम्.डीसूज़ा, बम्बई

'...राजमुन्दरी में एक दाँतों के डाक्टर ने ...उन्होंने मुझे दाँतों व मसूढ़ों की भलाई के लिए फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल करने की सलाह दी। मैंने फ़ौरन ऐसा ही किया। थोड़े ही समय में सांस की दुर्गन्ध जाती रही, मसूढ़े फिर अच्छे हो गए। तब से, सच मानिए, मैं ही नहीं मेरे पूरे परिवार के ९ लोग फ़ोरहॅन्स ही इस्तेमाल करते हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि हमारी यह आदत और हमारी यह आस्था पीढ़ियों तक चलती रहेगी।'

(सही) पी. जे. लाज़ार
चिराला, आन्ध्र प्रदेश

(इन पत्रों की फ़ोटोस्टॅट कॉपी आप जैफ़्री मैनर्स एण्ड कं. लि. के किसी भी कार्यालय में देख सकते हैं)

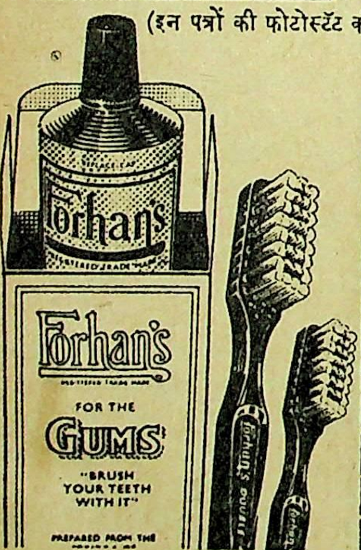

दाँतों की समुचित देखभाल के लिए रोज सवेरे और रात को फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट और फ़ोरहॅन्स डबल-एक्शन टूथब्रश इस्तेमाल कीजिए...और नियमित रूप से डाक्टर की सलाह भी लेते रहिए।

मुफ़्त! "आपके दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" नामक रंगीन सूचना-पुस्तिका। अपनी प्रति * प्राप्त करने के लिए (डाक-खर्च के लिए) २५ पैसे के टिकट इस कूपन के साथ इस पते पर भेजिए: S.12

मैनर्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई-१

नाम : ______________________ उम्र : ________

पता : ______________________

* कृपया जिस भाषा की पुस्तिका चाहिए, उसके नीचे रेखा खींच दीजिए: अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, आसामी, तामिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़

फ़ोरहॅन्स दाँतों के डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

129 F 203 HN

प्र. ई. सोनकांबळे :
मराठी कहानीकार

कुरता ? वह बोले, चल उठ यहां से, लेने का है तो लो नहीं एक खींच कर दूंगा गाल पर. उन्होंने कुरता मेरे छोटे जीजा जी के ऊपर फेंक दिया. मैं हिचकियां लेता हुआ गया. बहन बोली——क्यों गया था वहां रे? घर पर काम करने को कहेंगे तो तेरी जान जाती है.

रोज मैं यह सब डायरी में लिखता था. पाठशाला खुलने पर यह सब पढ़ कर गुरूजी मुझ पर इतने दयावान हो उठे कि जात-पांत का भेदभाव भूल कर उन्होंने कपड़े सिलवाये. कभी-कभी घर जा कर मुझे बचा-खुचा खाने को भी देते तथा अपने स्नान करने वाले लोटे से पानी पी लेने को कहते. वह औरत (उनकी पत्नी) नाक-भौं सिकोड़ लेती थी पर बोलती नहीं.

मैं पहली ही बार में मैट्रिक पास हो गया था. पिछला सब कुछ भूल कर प्रसन्न था. उन्नीस सौ साठ में मैट्रिक पास की सेकेंड क्लास में, अंग्रेजी में मुझे छप्पन नंबर मिले. लोगों ने कहा, औरंगाबाद जाओ, वहां सहूलियत मिलेगी. अछूतों के लिए खास कालेज है.

लोगों ने दो आने, चार आने, आठ आने करके करीब सत्रह रुपये कुछ पैसे इकट्ठा करके मुझे दिये. उन्हीं रुपयों में से मैंने दीदी को पांच रुपया दिये. (खाने के लिए जवारी नहीं थी इसलिए) मन भर आया, लोगों की दी हुई भीख में बहन का भी हिस्सा!

सुबह औरंगाबाद पहुंच गया. कुछ समझ में नहीं आ रहा था क्या करूं. इधर-उधर देखा तो सहसा जगलपुर के गुरू के लड़के से भेंट हो गयी. उसका नाम था भानुदास. उसने कहा, आओ इस टांगे पर बैठो. मैं बैठ गया. फिर साईंनाथ राईस प्लेट होटल पहुंचे. वह उतर गया. मैंने ही पैसे दिये क्योंकि उसके पास छुट्टे नहीं थे. उसने कहा, मैं बाद में पैसे देता हूं. आठ आने की चाय (तथा एक रुपया टांगे का चार्ज) उसने कहा, सीधे चले जाओ. उस गेट तक. मैं घूमता रहा, घूमता रहा. सुबह सात बजे औरंगाबाद पहुंचा था. परंतु अब चार बज रहे थे. आखिर कालेज मिल गया. मेरा दिल धक से रह गया, कालेज देख कर. चारों तरफ लड़के ही लड़के. ओ बाबा, कोई कोई तो खूब ठाठ बाट में था. मुझे लगा, मेरा नंबर लगेगा भी या नहीं किंतु किसी तरह हो गया. लाइन में लगा रहा अंत में फार्म मिल ही गया. किंतु हृदय में धुकपुकी हो रही थी फार्म कैसे भरूं? पहचान के लड़के तो दिखाई पड़े किंतु व्यवहार अपरिचितों-सा. राजूर के भी एक आध लड़के मिले किंतु वे बड़े चालाक थे. क्लासमेट भी 'जरा ठहरो' कह कर टरका रहे थे. पर किसी प्रकार कालेज का काम हो गया. अब बोर्डिंग की बारी थी. किसीने बताया कि रेक्टर साहेब अपने ही जिले के हैं वहीं चलें. मैं और राजूर का यादव दोनों उनके कमरे पर गये. उन्होंने पूछा, कौन हो. हमने डरते-डरते जवाब दिया, अं अं, हम. कौन रे? गेट आउट वह चिल्लाये. हम बुरी तरह निराश हो गये. अंत में यह भी हो गया. रोज खाने को मिलता था. मुझे बड़ा आनंद आया क्योंकि अब तक इस तरह का खाना न देखा ही था न खाया ही था.

अब देखिए, एक शाम ऐसा हुआ कि हमारे बड़े सर बोर्डिंग में आये. मैं अपने कमरे में था. चारों तरफ कचरा छितरा हुआ था, जगह-जगह चिड़ियों के घोसले तथा खिड़कियों के कांच टूटे हुए थे. लोगों ने खुद बारदान लगाये थे. मैं रह गया था. शेंडे महादेव व गण वीर भी रह गये थे. मैं कमरा साफ करता था. उससे क्या होता. सर आये तो खूब रूवाब में, और बोले——क्यों रे, इस तरह से कैसे रह रहे हो? मेरे पास सिर्फ एक दरी थी जो राजूर की पाठशाला के एक मास्टर ने दी थी. वह फटी हुई दरी, और भीरु स्वभाव, उस पर कपड़े भी मजेदार. और उस दरी के नीचे था जैसे राशनिंग स्टोर. पास पास पड़ी हुई एक हाथ की फलियां और नीचे भूसा, मैंने उन्हें उतनी ही लंबाई में नीचे फैला रखा था. वह सर ने देखा और बोले, इसको उठाओ जरा. मैंने डरते-डरते उठाया. नीचे दिखाई दिये खाली खटमल ही खटमल बुलबुल बुल-बुल. उन्हें क्या महसूस हुआ पता नहीं. वह बोले——दूसरे दिन सबके साथ तुम भी दरखास्त दो मेरे नाम से. मुझे थरथराहट होने लगी. दस रुपया मिलेंगे. एक गद्दा ले लेना. मैं हैरान परेशान, उन रुपयों को वापस कैसे करूंगा. मन बहुत से उतार-चढ़ावों के मध्य ठिठकता रहा, समय पखेरू न जाने कब उड़ गया.

एम. ए. पास हो गया. बंबई से मुझे बुलावा आया. तुरंत इंटरव्यू के लिए पहुंचा. बड़े-बड़े अफसरों की निगाहें चेहरे पर कुछ पढ़ रही थीं. कई तरह के प्रश्न पूछे. किसीने कुछ किसीने कुछ पूछा. मैं वैसे ही बड़ा शर्मीला व संकोची था. पर पता नहीं मन में उस वक्त कहां से ऐसी शक्ति आ गयी कि जो भी मुंह में आया बेझिक बोलता गया जैसे चुप न रहने की कसम खा कर गया था. इंटरव्यू खत्म हो गया पर मुझे रोज लगता, पता नहीं क्या होगा, किस तरह से हागा.

बंबई से वापस गांव जाने के लिए स्टेशन आया, इतनी भीड़ कि तोबा. कहीं दूर जा कर गांव लौटने की यह पहली यात्रा थी, किसी तरह गाड़ी पर बैठा गांव जाने के लिए. तभी हर्ष वाणी-सी हुई, अंग्रेजी पढ़ाने वाले प्रोफेसर की तरह मैं अछूत लड़का कक्षा में फटाफट अंग्रेजी में बोल रहा हूं. ऐसा चित्र आंखों के समीप उभरने लगा और कब पलकें नींद से बोझिल हो गयीं पता नहीं. □□□

(अनुवाद : चित्रा मुद्गल)

तड़प

□ प्रकाश न. खरात

कल से सुरेश की मनःस्थिति बिगड़ी हुई है. वह कालेज तो गया, लेकिन होने वाले लेक्चर्स में उसका मन नहीं लगा.

कल के प्रसंग से वह अस्वस्थ हो गया है. उससे क्या भूल हुई, यह उसकी समझ में नहीं आता. पिता ने जो कुछ कहा, समझाया, उसके विरुद्ध हम कभी गये क्या? और इस मोती सेठ की गली में स्थित चाल में हम छोटे से बड़े हुए. . .निकटतम संबंध हुए. . .चाल के लोगों को भी क्या हमसे समझदारी से पेश नहीं आना चाहिए?

चाल की दुर्दशा हो गयी . इसलिए बुरा लगता है. जीने के नीचे वाले बाबू सेठ का दारू व मटके का धंधा जोरों से चल रहा है. डीग्या, पक्या, जन्या, विन्या, इन जैसे, पांच-पच्चीस छोकरे बाबू सेठ के धंधे में हैं. उस चाल तथा सामने की शराबियों की चाल में हमेशा दंगा-फसाद होता रहता है. स्त्रियों एवं ऊंचे डील-डौल वाली लड़कियों को वहां से आते-जाते तकलीफ होती है.

जन्या चाल का दादा. . .सभी लोग उससे दबे हुए हैं. जन्या दादा ने चाल के बहुत से लड़कों को बुरे मार्ग पर लगाया और उनका अधःपतन करवाया. इसमें उसे कैसा संतोष मिलता है. आदमी को क्या इतनी दुष्ट बुद्धि से काम लेना चाहिए? इतना बदमाश होना चाहिए? चाल के बेकार युवक अशिक्षित लड़के 'जैसी भूमि होगी, वैसा ही वृक्ष उगेगा, के अनुसार अपने शिष्टाचार पर जा रहे हैं. मजिये खाने वाले मवाली हो रहे हैं.

बड़ों के दुर्व्यसन के कारण चाल के छोटे बच्चे भी बिगड़ गये हैं. कल के छोकरे लुक-छिप कर सिगरेट बीड़ी वगैरह किस ठाठ से फूंकते हैं! चाल के पीछे, पड़ोस में, पांच-दस पैसे एक ओर जमाकर जोड़ पत्ता, मढ़ीकोट किस तरह खेलते हैं. हमने अपनी आंखों से देखा है. उनके माता पिता ने उन्हें जन्म दे कर खुली हवा में छोड़ दिया. . .

हमें पिता ने केवल अच्छी शिक्षा दी. हम महाविद्यालय में शिक्षण ले रहे हैं. इसका पूरा श्रेय माता-पिता को है. हम तो केवल निमित्त मात्र हैं. वे हमारे लिए तिल-तिल छिजते रहे हैं.

वैसे देखा जाये तो पिता सरकारी आफिस में पियून की नौकरी करते हैं. घर की परिस्थिति अत्यधिक शोचनीय है. कर्ज बढ़ गया है. पिता के वेतन के डेढ़-दो सौ रुपये साहूकार को देने और ब्याज-बट्टे में चले जाते हैं. दो-चार दिनों में ही खाने-पीने के लाले पड़ जाते हैं. मां को पुनः साहूकार के सामने हाथ फैलाना पड़ता है. तरंग आने पर साहूकार पैसे नहीं भी देता है. बदल जाता है. मां ने घर के तांबें-पीतल के बरतन बनिये के यहां गिरवी रख छोड़े हैं. लेकिन उसने कभी घर का चूल्हा बुझने नहीं दिया. एक-एक दिन बड़े कष्ट के साथ बिताना पड़ता है. प्रत्येक दिन के मनाने में मां को पास-पड़ोस के दरवाजे-दरवाजे भटकना पड़ता है.

लेकिन माता-पिता- का धैर्य भी खूब है. पिता जीवन भर कष्ट उठाते रहे हैं. पिता तरुणावस्था में नौकरी के लिए बंबई आये तब ढाबे पर खाते, फुटपाथ पर सोते थे. नंगे पैरों थक कर चूर होने तक बंबई में भटकते. भायखला की रिचर्डसन कंपनी में काम पर लगे. तब उन्होंने लोहे की तप्त भट्ठी पर काम किया. भट्ठी पर काम करने वाले अच्छे तगड़े मजदूर भाग गये थे. भट्ठी पर काम करने के कारण पिता के हाथ खून के समान लाल सुर्ख हो जाते. दादाजी गांव से जब बंबई आये और उन्होंने पिता के हाथ देखे, तब वह खूब रोये. उन्होंने पिता से नौकरी छोड़ देने को कहा.

माता-पिता जीवनभर दरिद्रता की मार सह कर भी उससे मुक्त नहीं हो पाये. दुःख-दरिद्रता का सामना करके वे जीवनोन्मुख हो गये थे. हम तो इस शर्मिंदगी भरे जीवन को घिसट-घिसट कर जीने से तंग आ गये हैं. भविष्य किस प्रकार अस्पष्ट एवं जटिल बन गया है. कब बीच में ही पढ़ाई छोड़ देनी पड़ेगी. कुछ कहा नहीं जा सकता. पिता की संपूर्ण पीढ़ी का जीवन अज्ञान में बीता है. अज्ञान के अंधकार के कारण भोगे हुए दुःख और दरिद्रता अपने बच्चों के भाग्य में पड़े. इसलिए पिता ने पढ़ाने का निश्चय किया.

पिता के कथनानुसार, उन जैसे गरीब व्यक्ति के लिए सुरेश के लिए पैसे इकट्ठे करके रखना संभव नहीं है. किंतु वह सामर्थ्यानुसार उसे पढ़वाना चाहते हैं. इसीलिए उन्होंने हमें तीन वर्ष पूर्व कालेज में भेजा.

महाविद्यालय का जीवन मोहक होता है, यह सत्य है. जग-मग कपड़ों में आये हुए तरुण एवं उनके हाथ में हाथ डाल कर घूमने वाली सुंदर लड़कियां, साला जी जलता है. उनकी कैंटीन में होने वाली पार्टियां, कार में घूमना, पिक्चर्स देखना. . .बाप की कमाई पर वे मौज करते हैं. उनका मादक संसार हमसे बिल्कुल अलग है. उसमें आनंद-ही-आनंद है. इस वातावरण में हम बिल्ले बिल्ली के समान रह रहे हैं. हम यहां के वातावरण में एक रूप नहीं हो सकते.

कभी-कभी लगता है, पिता किसलिए पढ़ाने का मजाक कर रहे हैं. शिक्षा अमीरों के विलास की वस्तु

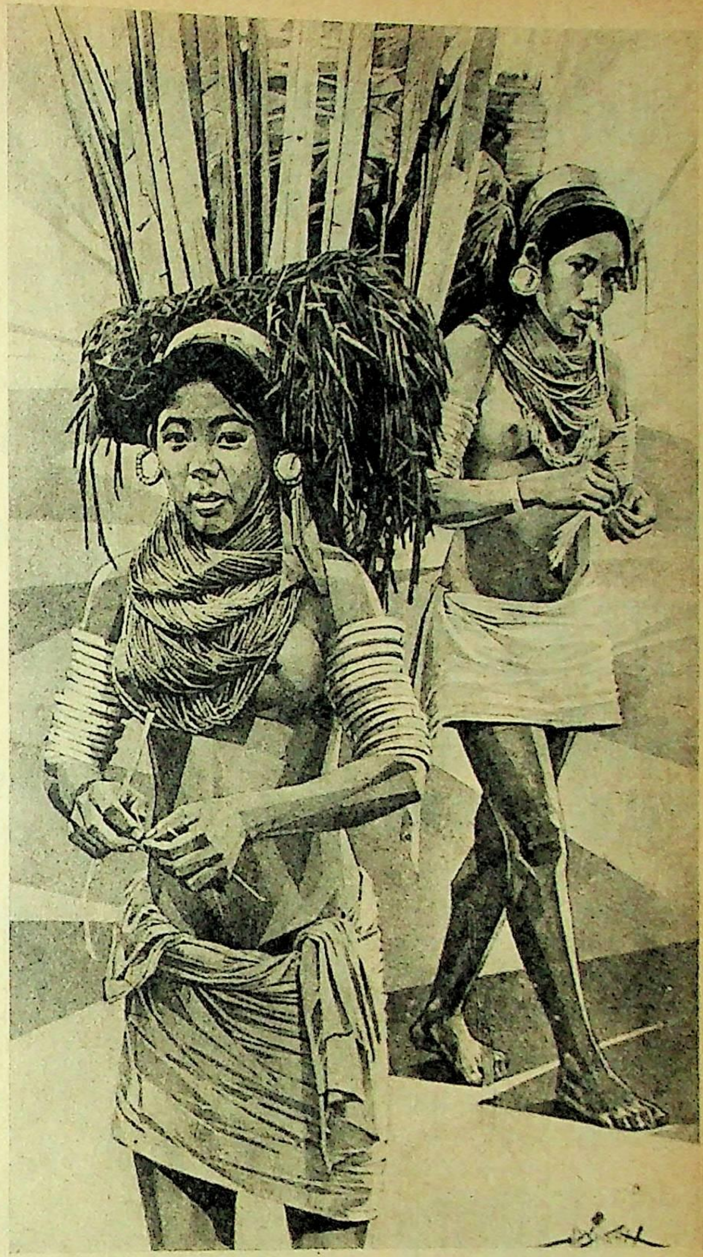

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

बन गयी है. यह काम हम जैसे आलतू-फालतू लोगों का नहीं. माता-पिता को होने वाली तड़पन देखी नहीं जाती. लेकिन नौकरी-धंधा न होने के कारण कुछ करते नहीं बनता. अपरिचित की भांति घर की स्थिति दूर से मात्र देखते हुए रहना पड़ता है. इस कठिन परिस्थिति से निकलने के चिन्ह दिखाई नहीं देते. वास्तविकता यह है कि हम पिता की मदद करने के लिए हैं. परंतु जीवन की व्यर्थता के कारण जैसे निकम्मापन आ गया है. मन में विचार आता है, बाबू सेठ के धंधे पर काम से लग जायें. हम जैसे पढ़े-लिखे लड़के मिलने पर बाबू सेठ को आनंद होगा. लेकिन यह विचार मन में ही नष्ट हो जाता है. कर्ज तो पट जायेगा, लेकिन हीन भावना नहीं पट सकती.

आजकल पढ़ाई में मन ठीक से नहीं लग पाता है. मन इधर-उधर भटकता है. पिता बार-बार कहते हैं. 'सुरेश, मन लगा कर पढ़ो, समझे कि नहीं ?' मां को भी वह हमेशा समझाते हैं. 'अरे, इस लड़के के सामने कभी काम-धंधे का और घर-खर्च की मुसीबत का रोना मत रोना इसके मन पर उसका बुरा असर पड़ेगा. जब लगेगा. तब लगेगा काम, इसको पढ़ने दो...

अब आराम से बैठने से काम नहीं चलेगा, ऐसा लगने लगा. कुछ भी करना चाहिए. इस अधः पतन पर किसी भी तरह से रोक लगनी चाहिए. पुनः एक बार फिर ऐसा विचार आता कि इस प्रतिकूल भूमि पर कुछ

जोड़ों में दर्द ?

आयोडेक्स
मलिए, जो
पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

IODEX
IODINE OINTMENT
28 g
IODEX
cum Methyl Salicylate
SMITH KLINE & FRENCH (INDIA) LTD
3273

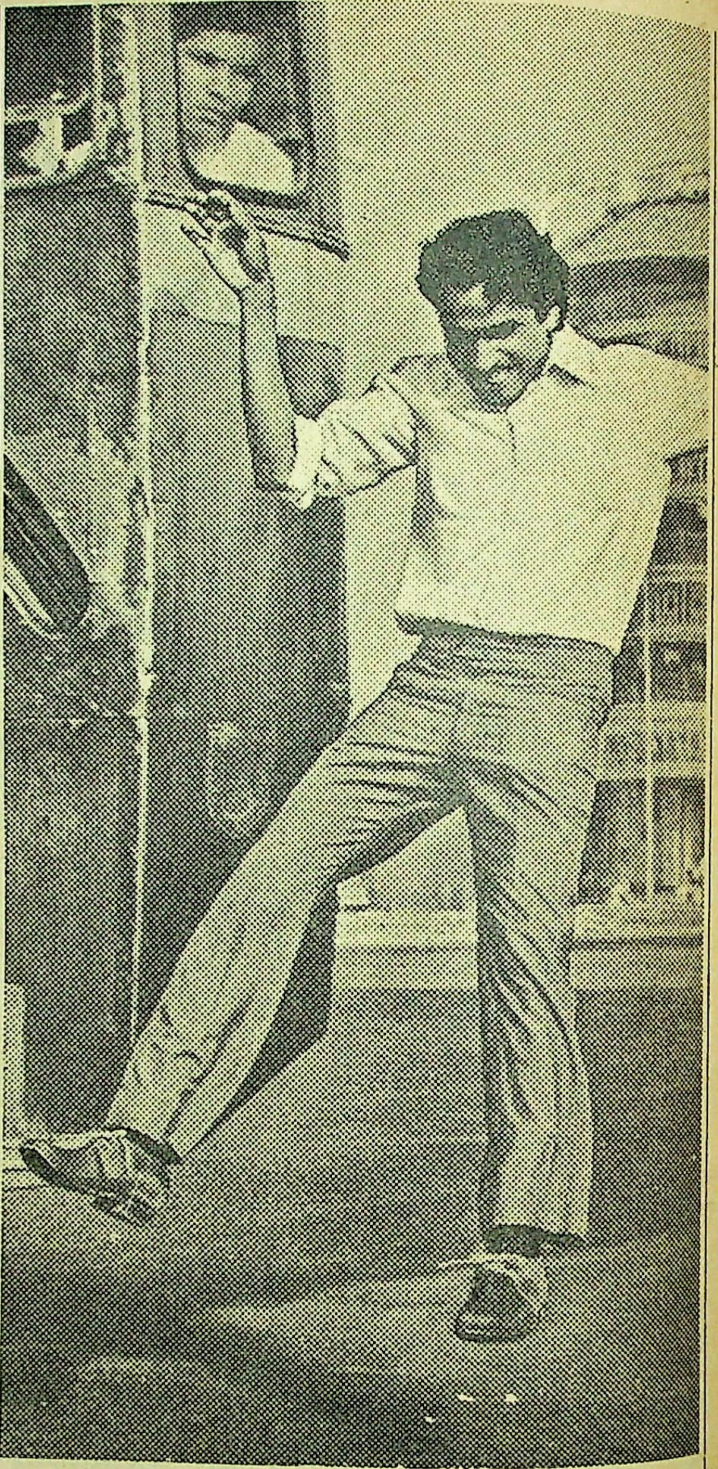

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए

लिंटास-IODEX-4.140 HI

अच्छा उपज सकता है क्या? परिस्थिति द्वारा निर्मित मनुष्य बदला जा सकता है क्या? लेकिन ये बालक तो किसी भी प्रकार रुग्ण नहीं होने चाहिए. उनके संस्कार-क्षम मन पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए. वे ही हमारे आशातंतु हैं. उनको निश्चित रूप में बदला जा सकता है. इच्छनुसार शिष्टाचार दिया जा सकता है. कीचड़ में क्या कमल नहीं उगते. . . .?

रात के काम का विचार चाल के मित्रों तथा स्कूल के बच्चों को बतलाया. रमेश, विजय, चंद्रकांत. वसंत सभी को विचार बेहद पसंद आया. रात के ग्यारह बजे तक हम ईरानी रेस्टोरेंट में बात करते बैठे रहे. लड़कों ने अपनी योजना आगे रखी——चाल में सांस्कृतिक कार्यक्रम मनाया जाये. बच्चों की पढ़ाई के लिए क्लास चलाये जायें. योजना चालू करने का निर्णय लिया गया.

बाद में कार्यक्रम का आरंभ भी अच्छा हुआ. बच्चों ने चाल की सफाई की. आपस में चंदा जमा किया. बच्चों के पालकों से मिले. उन्होंने हमारे कार्य की सराहना की और हमारा साथ दिया. बच्चों ने उत्साह पूर्वक कार्य में भाग लिया. छोटे. बच्चों के लिए रात के समय वर्ग शुरू किये गये.

चाल का स्वरूप अंशतः बदल रहा था. हमारी इच्छा के अनुसार होता जा रहा था. जन्या एक बार दस-बारह लड़कों को साथ में लिये रास्ते में मिला. वह मगरूर हो कर बोला——साला चाल के छोटे बच्चों को इकट्ठा करके कैसी दादागीरी करता है. पढ़ाना बंद करो, लोगों को तकलीफ होती है. नहीं मानेगा, मार खायेगा.

जन्या की धमकी से मन-ही-मन चिढ़ हो आयी. जवान रक्त सनसनाने लगा. यह रुग्ण आदमी हमें धमकाये? फिर भी क्रोधापमान बिना कुछ बोले चुपचाप पी गया. क्रोध के आवेग को दबा दिया. उसके समान तू-तू-मैं-मैं करना मुझे नहीं आता था. किंतु सहपाठी मित्रों पर मुझे दृढ़ विश्वास है. उस बंदर घुड़की से कोई डरने वाले थोड़े ही है.

रात को यह सब घटना मित्रों को सुनायी. अपेक्षा थी कि लड़के हमें धैर्य बंधायेंगे. अधिक कार्यक्षम हो कर मन लगा कर, काम करेंगे. पर वैसा हुआ नहीं. रमेश बोला, ऐसा है तो हम अपनी क्लास बंद कर देंगे. उसी के भाई-बंधु तो सीखने के लिए आते हैं. विजय बोला, सुरेश, हम यह सब उन्हींके लिए तो करते हैं. लेकिन इन मूर्खों को हमारी कदर है क्या? ऐसे नीच लोगों के लिए क्यों कष्ट उठाया जाये?

उसी रात पिता ने हम पर वाग्बाण छोड़ा. घर के लोग खाने पर बैठे थे. खाते समय पिता ने कहा——सुरेश, छत पर छोकरों का स्कूल क्यों लगाता है. अब तेरी परीक्षा आ रही है. तुझे निश्चितता पूर्वक पढ़ाई करनी है. पढ़ाई पूरी होने पर बड़ा होने पर तुझे जो करना हो, करना, लेकिन पहले ठीक रास्ते पर लग और कल से छोकरों का स्कूल बंद कर दे.

मेरा स्वाभिमान उफन पड़ा——बाबा, तुम मेरा पालन-पोषण करते हो. मेरे लिए तकलीफ उठाते

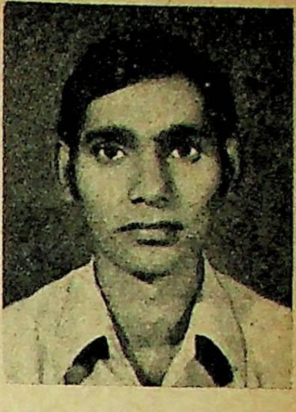
प्रकाश न. खरात : कहानीकार

हो, यह मुझे मालूम है. पर मैं अपने मामले में स्वतंत्र हूं.

पिता और भड़के ——मेरे कहने के विपरीत बोलता है. घर की हालत खस्ता करके मैं किस-किस मुसीबत से घर चलाता हूं. तुझे पढ़ना है, तो ठीक से रह, नहीं तो चलता बन! बहुत उछल मत. जनमते ही इस प्रकार का ढंग? मेरे रहते फलाने ठिकाने आंदोलन में भाग लेने गया था, यह सब नहीं चलेगा.

पिता ने क्रोध से थाली सरका दी. घर में कुहराम मच गया. कभी न क्रोधित होने वाले पिता यह सब बोल रहे थे. पिता का स्वभाव ऐसा था चिढ़ने पर शिकारी मधुमक्खी की भांति हो जाते.

सुरेश का बढ़ा हुआ स्वाभिमान खत्म-सा हो गया. वह नम्रतापूर्वक बोला——मैं तुम्हारे कहे मुताबिक करूंगा. तुम्हारे द्वारा कही गयी बात के विरुद्ध नहीं जाऊंगा. मुझे क्षमा करो.

वह आधे खाने पर से ही उठ गया. कैफे में जा कर गाने के रेकार्ड तब तक सुनता रहा, जब तक ऊब न गया पहले कभी न पीने पर भी काऊंटर पर जा कर सिगरेट फूंकी. फिर बगल के बगीचे में चला गया.

हमने मन में कितने संकल्प किये थे. लेकिन सारी इच्छाओं पर पानी फिर गया. किसीने विचित्र बंधनों में जकड़ दिया. एक दृष्टि से पिता का कहना ठीक भी है. पिता अस्तित्व सुरक्षित रखने को कहते हैं. लेकिन मन दूसरी ओर दौड़ जाता है. समझता नहीं.

आखिर पिता से ही रहा नहीं गया. वह ढूंढ़ते हुए बगीचे में आये.

——सुरेश, पिता ने गुस्से में उलटा-सीधा बोल दिया तो उसका इतना बुरा मानना चाहिए? और मैं तुम्हारे हित के लिए ही बोलता हूं. मैं कहता हूं, हम भले और पढ़ाई भली. किसी के लेन-देन में न पड़ो. किसी से लड़ाई-टंटा न हो. चाल के लंपट लोगों के मुंह क्यों लगा जाये? चल, घर चल कर खाना खा. पिता समझौता करने लगे. □□□

(अनुवाद : सुमति मालवीय.)

न्यू बी. डी. डी. चाल, नं. १६, कमरा नं. ४९,
महात्मा फुले रोड, नायगांव, दादर, बंबई – १४

डायरी के कुछ पन्ने

□ अविनाश डोळस

१७ जून, '७३

सबेरे मधु आये. परेशान दिखायी दिये. मधु, औरंगाबाद के कॉलेज के प्रोफेसर.

——क्या हुआ? मैंने सहज ही पूछा. खोली नहीं मिली? मुझे यह प्रश्न ज्यादा गंभीर नहीं लगा. मैंने सीधे-सीधे उसे टाल दिया—— कहीं-न-कहीं देखो. वैसे मैं भी तलाश कर रहा हूं. मैंने आश्वासन दिया. गप्पें हांकीं. मधु का मूड नहीं था, फिर भी. फिर समाज-क्रांति पर गाड़ी आयी. इस विषय पर मैं और मधु हमेशा दो-दो घंटे बोलते हैं.

आज गाली दे कर उठा——साले. . . मस्ट बर्न! एक प्रोफेसर, केवल प्रोफेसर ही नहीं, संतुलित विचारक मधु आज यह कहा रहा है.

बहुत बुरा लगा.

——चलो! मैंने कहा.बाहर आये. बहुत घूमे. डोर टु डोर. नो यूज. यूजलेस.

१८ जून, '७३

घूम कर आये. एक कार्यक्रम देखा. वही-वही बातें सुन कर परेशान था——मनुष्य को विज्ञाननिष्ठ होना चाहिए. विज्ञान को कसौटी मान कर विज्ञान-विरोधी रूढ़ि, संस्कार, विचार छोड़ देना चाहिए. जब तक यह नहीं होता, इस देश का भविष्य अंधकारमय है.

उनका भाषण बहुत अच्छा लगा. दिल में कहीं-न-कहीं आश्वासन मिला. उनका सुकोमल हाथ हाथ में ले कर मैंने अभिनंदन किया.

——यह सब कौन करे? मैंने प्रश्न किया.

प्रो. अरविंद सानप बोले——मैं, आप. हम क्यों वेट करें? हमें ही लीड करना चाहिए. मैं आपके घर आऊंगा. फिर कार्यक्रम निश्चित करेंगे.

चार-दस. बाहर चक्कर लगाना जरूरी है. घंटी बजी. दरवाजा खुला. कोई निमंत्रणपत्र दे कर एक लड़का चला गया. कपड़े बदले. निमंत्रणपत्र पढ़ा :

श्री. . .हमारे यहां दत्त भगवान की कृपा से ता. २० जून, '७३ को प्रातः ११ बजे हमारी द्वितीय विवाह वर्षगांठ पर श्री भगवान सत्यनारायण की पूजा है. आप प्रसाद हेतु अवश्य पधारें.

आपके
प्रो. अरविंद सानप
प्रो. (सौ.) अरुंधति सानप.

२१ जून, '७३

प्रातःकाल से मूड ऑफ. अकेली जान, ज्यादा परेशान. किसी पर भी भरोसा न करे, ऐसा लग रहा है. साली! विवाह करूंगी तो तुम्हीं से, नहीं तो जीवन भर विवाह नहीं करूंगी——कहने वाली लड़की सीधे डी. एस. पी. से शिकायत लिखवाती है. क्या मतलब है इसका? वाह रे जमाना! इसलिए कुछ लिखने की सोचता हूं. मधु को अब तक कमरा नहीं मिला. पता चला, माधव मोरे लेक्चरर हुआ है. बेस्ट लक. है बहुत होशियार. कागज फाड़ते-फाड़ते तंग आ गया हूं, लेकिन एक भी लेख लिख नहीं पा रहा हूं. परसों पाईसराव का पत्र आया है. मैं क्या सहायता कर सकता हूं! उसने लिखा है—— दादा, हर कहीं जाति की दीवार सामने आती है! ऐसा लगता है, कोई-न-कोई इसके विरोध में कुछ करे. आप कहते थे, वह सभी सच था. आज आपका हर वाक्य सत्य लगता है—— अनुभवों के बाद . जीवन में जाति के समान भयानक और कोई बात नहीं. इससे छुटकारा कब मिलेगा?

मेरे पास उत्तर नहीं. मैं भी हेल्पलेस हूं.

२८, जून '७३

आज दहिवले आये हैं. कहते हैं—— कुछ-न-कुछ गड़बड़ हो गयी. समझा नहीं मैं. कल पूछना चाहिए. सोनवणे वकील से मिलना चाहिए. निर्मला से तलाक ले लेना चाहिए, नहीं तो एक मित्र की जिंदगी समाप्त हो जायेगी. उसके पति की तलाश भी करनी चाहिए. बचपन में विवाह होने पर ऐसा पछतावा करना होता है. लोग कितने गधे हैं! उसने, निर्मला के पति ने, विवाह के बाद निर्मला को अपने साथ क्यों नहीं रखा! किसी ने मुझसे यह क्यों नहीं पूछा? कहते हैं, कहीं नौकरी करता है. अरुण कल कह रहा था, बेचारी विवाह के बाद भी विधवा! न पति के घर, न अपने घर! शादी की बात कही, तो उस दिन से पति कभी दिखायी नहीं दिया! उम्र नौ-दस वर्ष. न जाने कैसी शादी! अब कॉलेज का अंतिम वर्ष. गधा! उसके पति ने १९५० में शादी की, लेकिन अब तक तलाक नहीं लिया. उससे पूछा क्यों नहीं? ऐसे जवान रहे तो हमारे समाज का क्या होगा? उससे मिलना चाहिए.

३० जून, '७३

अनिल दहिवले ने किसी बरतन को छू लिया, तो उसे पीटा गया है. पुलिस केस करने पर भी कोई फायदा नहीं. वह नौकरी करे भी तो कैसे! कितना जातिवाद! प्राचार्य से शिकायत करने पर —— यह प्रश्न देहात का है, स्कूल से कोई संबंध नहीं, उत्तर. इसके माथे पर निशान हैं. मार पड़ी है. मुझे कहते हुए भी सकुचाता है. एक बी.ए. आदमी क्या कहे? मैं मातंग हूं, इसीलिए मारा? कैसे कहे? मॉडर्न वर्ल्ड' पढ़ाता है न विद्यार्थियों को. मेरा मस्तिष्क सुन्न हो गया. कुछ भी नहीं सूझता. विचार भी नहीं कर पाता. निर्मला के पति से आज मिलना चाहिए. अब तक तो गंदी गालियों के सिवा दूसरा कोई उपाय मेरे पास नहीं है.

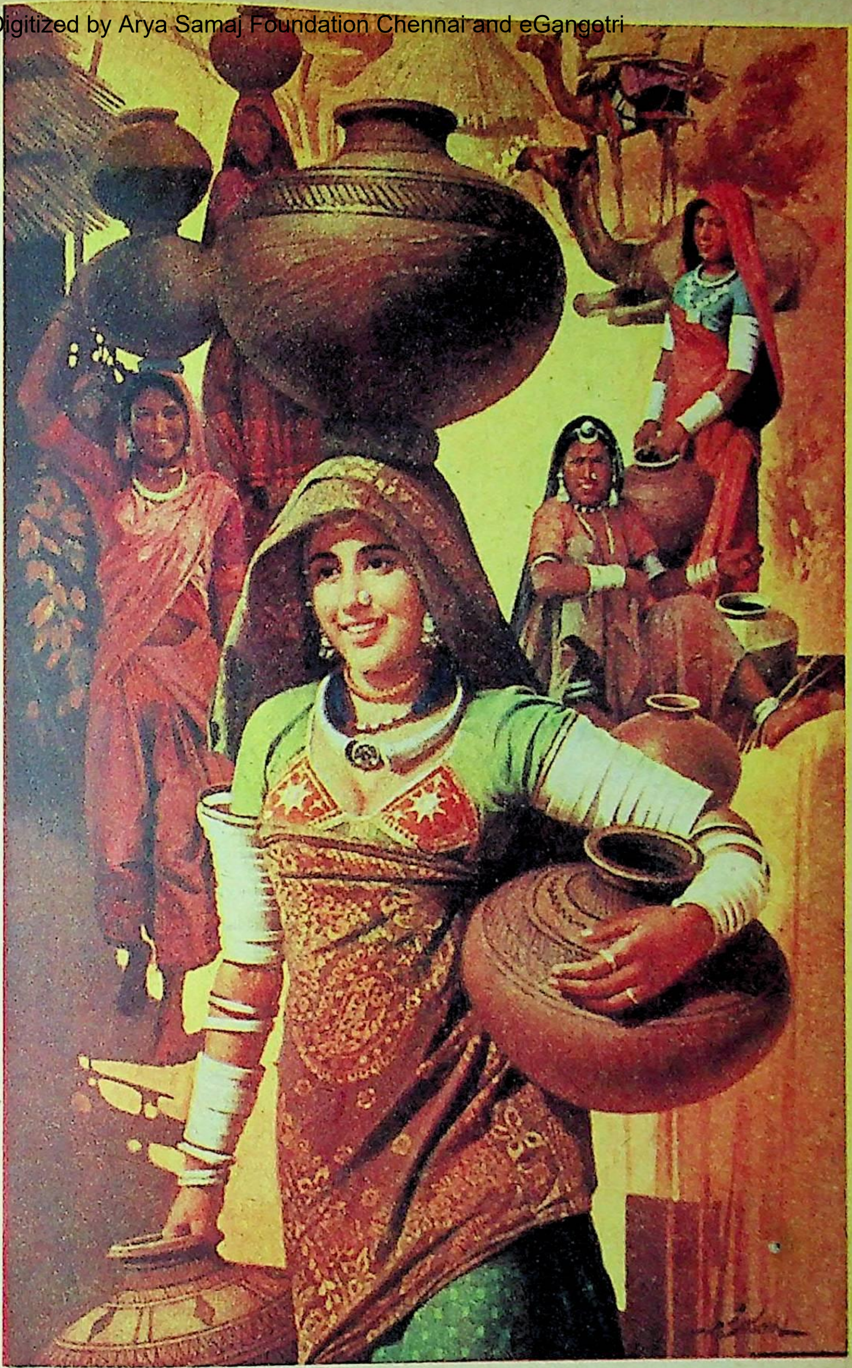

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

४ जुलाई, '७३

कल निर्मला के पतिदेव की खोज की. वाह रे बहादुर! दस साल पहले उसने दूसरा विवाह कर लिया. अब तीन बच्चों का बाप है. इधर निर्मला बेचारी न विधवा, न कुमारी! उसका गला पकड़ कर पूछने को जी चाहता है कि तुमने इतना सब किया, कहां गयी थी तुम्हारी इनसानियत? क्योंकि निर्मला अब अकारण, बिना पति का घर देखे, बिना उसका चेहरा देखे, पुनर्विवाह वाली दुल्हन बनेगी. उसका क्या दोष? उसने क्या गलती की! ? अंत में अपराधी कौन? अज्ञानी निर्मला, मां-बाप या प्रथा? यह समाज-रचना कितनी स्वार्थ और नीचता पूर्ण है! मेरा मित्र सुधाकर उसे स्वीकार कर रहा है. कितना विशाल हृदय! सड़ी हुई गंदगी में स्व-विचारों से चमकने वाला एक जुगनू! पट्ठे, करो शादी. निर्मला ने भी उससे सीधे पूछते हुए कहा था—सर, मैं ऐसी न होती तो भी यही पूछती. मानो एक कुमारिका किसी राजपूत से कह रही हो—मैं आपसे प्रेम करती हूं. मेरे जीवन की विश्वासघाती लड़कियों से निर्मला हजार गुना प्रामाणिक और उज्ज्वल है. अनिल आज अपने गांव गया है. बेचारे उसके मां-बाप अपने बेटे को चार दिन भी नहीं खिला सकते. क्या है जिंदगी! निरर्थक बालों की तरह फेंकने जैसी!

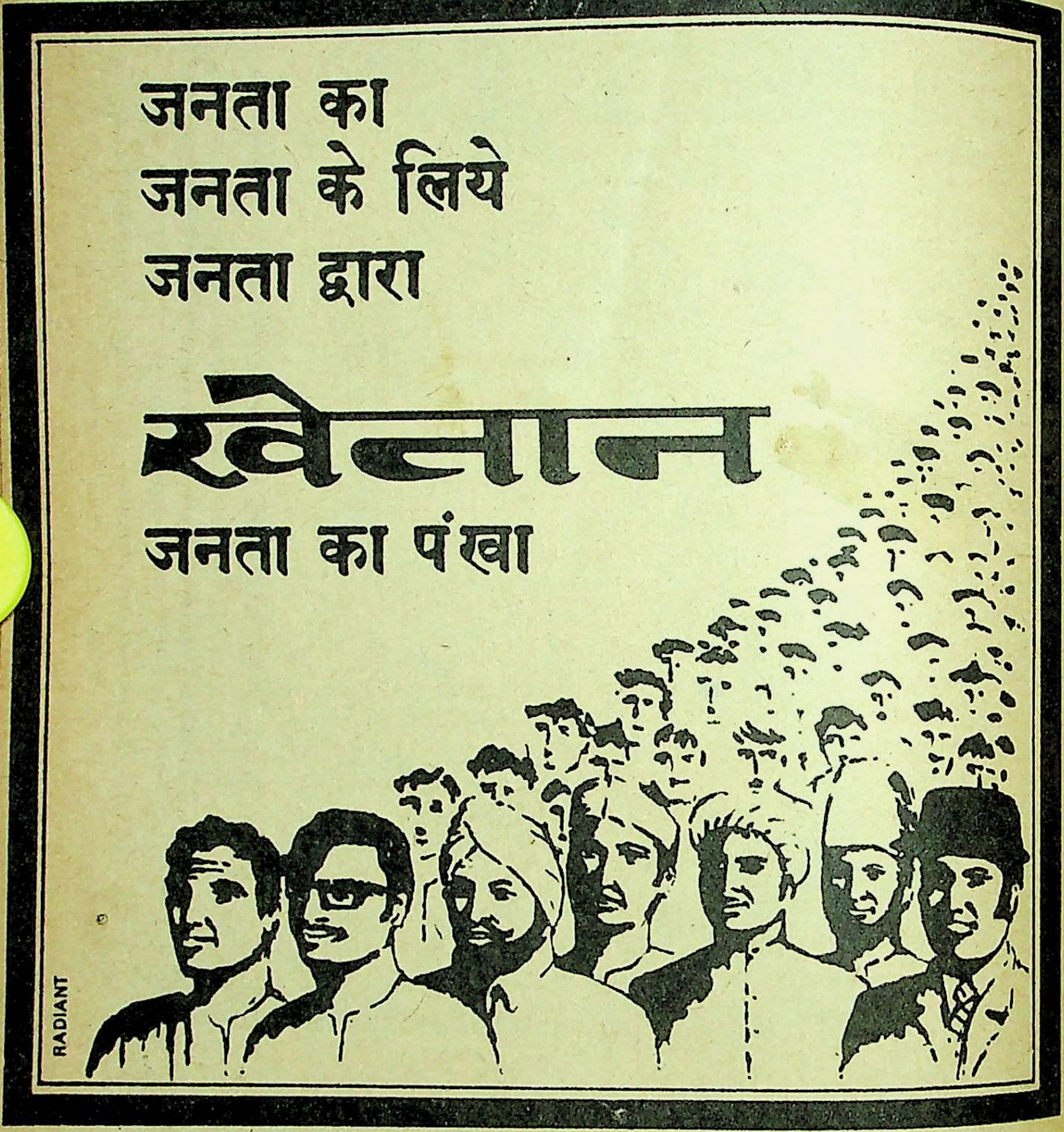
जनता का
जनता के लिये
जनता द्वारा
खेतान
जनता का पंखा
RADIANT

१० जुलाई, '७३

नासिक हो आया. मनमाड उतरा. औरंगाबाद के लिए दो-तीन घंटे की देर थी. भटका और सीधे माणिकराव के पास गया. सात साल से वह रेलवे पुलिस में है. ड्यूटी पर था. साहब सताता है. बहुत मुसीबत है. कोई रखवाला नहीं! परिवार में तीन व्यक्ति हैं. एक का दो महीने का वेतन रोक रखा गया है. अपराधी का सहायक होने का आरोप है. बेचारे ने चोरी का माल पकड़ लिया, जिससे साहब का 'हफ्ता' बंद हो गया. साहब भड़का. सीधे चार्ज. माणिकराव ने जाति-भेद की शिकायत की, तो सीधे 'खड़ा पहरा' देने की ड्यूटी दे दी गयी. हेडकांस्टेबल पक्का जातिवादी. नगर की गाड़ी के एक डब्बे में घुसा और एक नवपरिणीता स्त्री पर चढ़ बैठा. पकड़ा गया तो नंबर ६६५ बता दिया. नाम माणिकराव कल्हालकर कह कर छूट गया. माणिकराव बेचारा पहरा दे रहा है पुलिस स्टेशन पर. रात को उसे और उसके पति को रोक कर पहचान करायी गयी. हेडकांस्टेबल को पीट डाला. साहब ने केस दबा दिया, लेकिन माणिकराव के पीछे पड़ गया. मैं भी क्या कर सकता हूं? 'मत घबराओ' कह कर निकला. उसे हिम्मत मिली. साला! इस देश में जन्म लेना भी एक सजा है!

१५ जुलाई, '७३

सुबह से लड़की की याद आ रही है. कंट्रोल कब तक कर सकते हैं! प्रेम-वेम करने का अर्थ अपने हाथ से परेशानी मोल लेना है. विवाह में जाति की दीवार आ गयी, प्रेम में नहीं आयी थी! धत् तेरे की! उसके मां-बाप को ढेढ महार से संबंध अच्छा नहीं लगा, तो सीधे पुलिस में शिकायत. वास्तव में उसके प्रति घृणा होनी चाहिए, लेकिन दिल में दया आती है. मेरी समझ में कुछ नहीं आता. कहीं बुद्धि-दोष तो नहीं? उस दिन से रह-रह कर जीसस का वाक्य याद आता है——ईश्वर उन्हें क्षमा करे, क्योंकि उन्हें पता नहीं कि वे क्या कर रहे हैं! परेशान था, तो मधु के पास गया. रामचंद्र कांबले के छोटे-से कमरे में रहता है. बुरा लगा. सीधे कमरे की तलाश में निकला—औरंगपुरा, सरस्वती कॉलोनी, नूतन कॉलोनी, अंत में बहादुरपुरा. एक ब्लॉक मिला. किराया ६० रुपये. ठीक है, कहा, शाम को आता हूं. मालिक पास आया. नाम पूछा. कहा—प्रा. मधुकर कलवणकर और ये डोलस. और प्रश्न, कहां से आये हैं? कहा——अमरावती से. फिर प्रश्न. कौन-से कॉलेज में? उत्तर दिया—फलाने कॉलेज में. फिर भी उसे अर्थ-बोध नहीं हुआ. मैंने सोचा, शाम को सामान ले आऊंगा. किंतु एक सीढ़ी उतर कर बूढ़ा पूछ बैठा—कौन-सा समाज?

—मतलब? हमारा प्रश्न.

—जाति? सीधा प्रश्न.

—हम जाति नहीं मानते, बस, एक आदमी!

—फिर भी. . . ?

—कहना जरूरी है? हमारा प्रश्न.

—समझने से सुविधा रहेगी.

—धर्म बौद्ध, पहले महार.

—घर में पूछता हूं. धोती लपेटते बूढ़ा घर में भागा.

अविनाश डोलस :
मराठी कथाकार

हम कुछ देर रुके. कोई बाहर नहीं आया.

अंत में एक मध्यवयीन स्त्री आयी. पल्लू टटोलते बोली——बात यह है कि उन्हें पता नहीं था, ब्लॉक मैंने परसों ही किराये पर दे दिया था.

सीधे लौट आये. साली कैसी लाइफ! मन में आया, विवेक छोड़ कर उस स्त्री को पटक दें. . .

लेकिन साले हम ही नपुंसक! हजारों वर्षों की सभ्यता को सुरक्षित रखने के लिए एक छाता खरीदा.

सुबह से ही परेशानियों से भरा दिन. वह स्त्री और ये बच्चे एक साथ दिखने लगे. □□□

(अनुवाद : र. के. सोनग्रा)

टिप्पणी

विद्यार्थियों के दहकते अनुभव

● डी. यू. कांबले

यह घटना मेरे बचपन की है.

मेरा जन्म अकोला जिले के राजुरा गांव में हुआ था. यह गांव 'रावों के राजूर' नाम से प्रसिद्ध था और बाबाराव राजूरकर इस गांव के प्रसिद्ध राव (राजा) थे. मेरे पिता महारवाड़े के मुखिया थे.

एक बार गांव में एक भैंस मर गयी. महारवाड़े के सभी लोगों ने उसे उठाने से इनकार कर दिया. रावसाहेब चिढ़ गये. और उन्होंने महारों के बहिष्कार का आदेश दे दिया. कई दिनों तक महार भूखे रहे, पर झुके नहीं. तब एक दिन स्पृश्यों ने एक युक्ति खोजी और उसके अनुसार हनुमान जी के गले में जूतों की एक माला डाल दी गयी. यह करतूत स्पृश्यों की ही थी, पर उसका दोष मढ़ा गया महारों पर और इसी बहाने उनकी मार-पीट कर दी गयी, उनके घर-बार जला डाले गये. मैं छोटा था, इसलिए ज्यादा तो याद नहीं रहा, पर इतना याद है कि मैं सुबक-सुबक कर खूब रोया था.

स्पृश्यों के इस व्यवहार के कारण उस गांव में जीना मुश्किल हो गया तो घर-बार छोड़ कर अनेक लोग दूसरे गांवों को जाने लगे. हम लोग आज भी दूसरे गांव में ही रह रहे हैं. □

नये सूरज की खोज में

□ योगीराज वाघमारे

ताल्लुकेदार के पास से आया कागज मुकुंद ने सभी बौद्धों को पढ़ कर सुनाया--ताल्लुकेदार ने उन्हें आबादी के लिए जगह दी थी. सभी बौद्ध आनंदविभोर हो गये. एक ने उठ कर, मुकुंद को गले लगा कर प्रेम से कस लिया. खुशी से नाचने लगा. सभी ने तालियां बजायीं. वह अत्यंत महत्वपूर्ण क्षण था. सभी ने मन-ही-मन ताल्लुकेदार का आभार प्रदर्शित किया.

—देवता आदमी है वह ताल्लुकेदार. . .! बूढ़ा कुशाबा बोला.

—गरीबों पर दयावान है. . .! सखा ने अपनी भावना व्यक्त की.

—अजी, अर्जी ही ऐसी लिखी थी मुकुंद ने कि साहब ने विचार करके सट् से जगह दे दी. जगह का यश मुकुंद को देने के उद्देश्य से मिवा बोला.

—भाइयो, अब हम खुशियां मनायें! भीड़ में किसीने कहा.

—अरे, लेकिन उस मुकुंद को क्या कहना है, यह तो पहले सुन लें!

दूसरा बोला —हां-हां, उसीसे पूछो पहले. . .!

मुकुंद की खुशियां आकाश को छू रही थीं. ताल्लुकेदार के पास से आया हुआ कागज वह बार-बार फड़फड़ा रहा था. बार-बार पढ़ कर देख रहा था. लोगों को अभिमान से समझा रहा था—बस्ती के बौद्धों को आबादी के लिए दो एकड़ जगह मिली है.

गत वर्ष उसीने सब के हस्ताक्षर ले कर ताल्लुकेदार को अर्जी भेजी थी. बीच बीच में एक-दो बार पूछताछ हुई और अब तो जगह देने का सरकारी पत्र आ गया था.

बस्ती के बौद्ध लोगों के रहने के लिए बिल्कुल जगह नहीं थी. पत्र पढ़ते-पढ़ते मुकुंद की आंखों के सामने अपनी मुसीबतें आ गयीं. हमारे सिर्फ चालीस घर हैं, लेकिन रहने के लिए जगह है पचास हाथ. वर्ष में एक नया घर बना कर रहें कहां? कहीं पीछे बढ़ने की जगह नहीं. रहें भी कैसे, मिवा के पीछे की दीवार चौधरी के खेत की बाड़ से लगी हुई. दूसरी ओर मांग-बस्ती. और एक तरफ चिपकी हुई नदी. नदी से सटी हुई खाली जगह बौद्धों की श्मशानभूमि. घरों के पास की जगह होने के कारण बच्चे औरतें यहां पाखाना करते, मर्द नदी के किनारे. सभी आमने-सानने शरम-लाज दबा कर कितने दिन रहें! कहीं कोई आड़-ओट नहीं. और गंगमुख से गांव में जाने का रास्ता-एक बैलगाड़ी जाने लायक! उसीसे सट कर ग्राम-सीमा. सभी मुसीबतें! वर्षा में चारों ओर बाड़ लग जाने पर आदमी अपने घर में ही बंद. पाखाने के लिए भी बाहर नहीं आ सकते. एक पैर घर में तो एक बाड़ की झाड़ी में. . .टट्टी-पेशाब भी वहीं. बहुत बार गांव वालों से कहा, हमें थोड़ी जगह दो रहने के लिए, लेकिन कौन सुनता और कौन जगह देता!

ऐसे ही एक बार सखा का छोटा बच्चा मर गया. बारिश की झड़ी लगी हुई. लोगों के सामने सवाल आया, लाश को दफन करने का, पर कहां? नदी पर जायें तो वह किनारों को रौंद कर बह रही है. फिर क्या करें? मिवा की पिछली दीवार और चौधरी की बाड़ के बीच चार अंगुल झाड़ी थी. अंत में वहीं दफनाया.

रात भर मिवा सो नहीं सका. . .पीछे की दीवार से सटा बच्चा दफना है और मैं घर में रोटी खाऊं? छिः! यह ठीक नहीं. कितनी पीड़ा झेल कर दिन बिताये? उसने निश्चय किया, अब जगह देखनी चाहिए. दूसरे दिन उसने मुकुंद से कहा—कितने दिन ऐसी अड़चनों में रहें? अपनी पीढ़ी-दर-पीढ़ी यहां हो गयी! कुछ जगह की सोच, बाबा!

उस दिन मुकुंद ने विचार किया और आबादी के लिए तहसीलदार को अर्जी कर दी. आज उसी अर्जी का उत्तर आया था. . .बौद्धों को जगह मिल गयी थी.

लेकिन विश्वास राव पाटिल की जगह . . .और वह बौद्धों को मिले? शेर के मुंह की बकरी मिलना असंभव था.

इसकी कल्पना मात्र से कुशाबा का दिल आशंका से भर गया. उसे भविष्य के दृश्य दिखाई देने लगे. उसने कहा—बच्चो, इसमें मुझे कठिनाई लगती है. . .

—यह देखो, इस बूढ़े का हमेशा कुछ-न-कुछ बुरा सगुन होता है!

—क्या कठिनाई है? एक नौजवान लड़के ने कुशाबा से पूछा.

—वह पाटिल की जगह है. . .

—पाटिल हैं तो क्या हुआ? कोई शेर तो नहीं! और हम कहां उनकी जगह जबरदस्ती ले रहे हैं. . . सरकार ने दी, हमने ली. सरकार के आगे किसीकी कुछ नहीं चलती. दूसरा बोला.

—सरकार भी क्या करेगी, बच्चो. . .! बूढ़ा कुशाबा बोला.

—बाबा, आप ऐसी बातें न करें. जो होगा, हम देख लेंगे. कितने दिन मुसीबत से रहें. . .! मुकुंद कुशाबा को समझाने लगा.

—हां, कब तक इस कैद में रहें. . .! सबने मुकुंद

का साथ दिया. कुशाबा चुप हो गया.

दूसरे दिन मुकुंद ने वह कागज सरपंच को दिखाया और पुराने मकान गिरा कर नयी झोपड़ियां बनने लगीं.

★ ★

अभी तक कोई जागा नहीं था. मुकुंद की मां कुएं से खाली मटकी लेकर आयी. मुकुंद निश्चित होकर नये घर में सोया था. उसने जगाते हुए उसने कहा—बाबा, अपने कुएं में किसी ने मरा हुआ कुत्ता डाल दिया है... टट्टी-गोबर और जूते भी हैं...!

मां के शब्द नींद में भी मुकुंद को जबरदस्त धक्का दे गये. वह तड़ाक् से उठ बैठा— आं...क्या कहती हो?

—हां, सच है बाबा...!

अभी वह आंगन में आ भी नहीं पाया था कि सौदा लाने गयी रानबा की मां बड़बड़ाती हुई आयी. उसे देख कर मुकुंद ने पूछा— क्या हुआ मां?

—दुकानदार ने सामान नहीं दिया!

—क्यों?

—वो कहता है, तुम्हारे लिए मेरी दुकान में सामान नहीं है...सामान भी ताल्लुकेदार से ले आओ.

मुकुंद समझ गया, पाटिल के खेत में झोपड़ियां बांधने के कारण यह हुआ था. तब तक रानबा की मां के चिल्लाने पर सभी जमा हो गये. सटवा, मिवा, कुशाबा, निवृत्ति, चोखा मैदान में बैठे थे. मानो दूर लगी आग की लपटें उन्हें छू रही थीं. तभी किसन बनसोडे आया. बंडिग के काम पर गया किसन खाली हाथ लौटा था. बैठते ही उसने कहना शुरू किया—बाजीराव ठोमरे ने कहा है कि खेतों में काम पर मत आओ...हमारी भूमि पर कदम भी मत रखो. नहीं तो मरते दम तक मारेंगे!

लोग और भी घबरा गये. एक दूसरे का मुंह देखने लगे...गांव वालों ने यह दांव लगाया और उसमें हमें जकड़ लिया.

सखा चुप नहीं रह सका. वह कुछ बोलने ही वाला था कि कोई गांव के द्वार से रोते-चिल्लाते आता दिखाई दिया. सभी की दृष्टि उस ओर गयी. भिवा कांबले का रघू सिसक-सिसक कर रो रहा था. गाय हांकते वह घर की ओर आ रहा था और उसकी रुलाई नहीं रुक रही थी. पास आने पर सभी ने एक साथ पूछा—क्या हुआ?

—शामराव गुख ने मारा...

—क्यों?

—कहने लगा कि बांध पर गाय क्यों चरने दी...

गांव वालों ने बौद्धों का गांव में रहना मुश्किल कर दिया था—खेतों में आने से मनाही और सभी बातों का बहिष्कार कर दिया था.

—मुकुंदा! गांव वालों ने पूरा विचार कर लिया

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य से

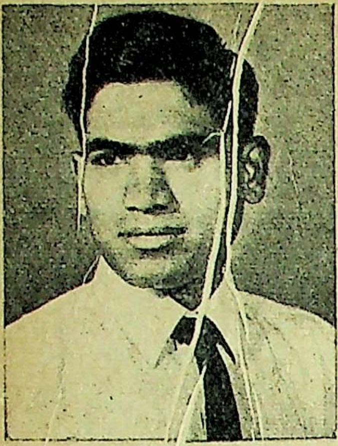

योगीराज वाघमारे: मराठी कहानीकार

है. . . .सखा बोलने लगा. सभी घबरा कर एक दूसरे की ओर देख रहे थे. क्या कहें, कैसे कहें! कुछ सूझ नहीं रहा था.

—हां, घेर कर मारने का ! मुकुंदा ने सखा की अधूरी बात पूरी की.

—क्या करें. . .? हमारे हाथ में क्या है? सब कुछ उनके हाथों में है ! इस गांव में हम रहें या न रहें, यह भी!

—और न जाने क्या करेंगे!

—हम भी कुछ विचार करें. निवृत्ति सभी को ढांढ़स बंधाते हुए बोला.

बीच में एक ने दूसरा संकेत करते हुए — नहीं कौन कहता है. . .

मुकुंदा एकदम बोला—अगर उन्होंने बहिष्कार किया है, तो उनसे आशा न करें. यहां नहीं, काम पर दूसरे गांव जायेंगे.

—लेकिन अगर उन्होंने रास्ते से जाने नहीं दिया, तो. . .?

—वह रास्ता उनके बाप का नहीं, सरकार का है!

सभी चुप थे. शांति छा गयी थी. उस शांति को भंग करते हुए नदी से आने वाली औरतें चिल्लाने लगीं. अजी, दौड़ो-दौड़ो! किसन मामा की बहू को पाटिल का नौकर मार रहा है....

मुकुंद के साथ सभी उधर दौड़े. नदी पर जाते समय बांध पर कुटी को हाथ लगाने पर नौकर ने जाने क्या-क्या गालियां दी थीं और किसन की बहू को मारने दौड़ा था.

जैसे-तैसे तू-तू, मैं-मैं करके झगड़ा मिटाया. बौद्ध जन घर लौट आये. अब वातावरण तपने लगा था. सब समझ गये थे कि पाटिल ने गुस्से में आ कर ये बखेड़े खड़े किये हैं.

★ ★

—शाम हो गयी थी. लोग अपनी-अपनी झोपड़ी में चूल्हे के सामने बैठे थे. जलती आग की रोशनी में उनके चेहरे और भी चिंताग्रस्त दिखाई दे रहे थे. अचानक पाटिल का नौकर मुकुंद के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ. उसे देख कर मुकुंद अंदर से बोला—कौन है?. . .

—मैं. . .पाटिल का आदमी . बड़े रोब से नौकर बोला .

—क्या काम है. बाहर आते हुए मुकुंद ने पूछा.

—तुम सभी लोगों को पाटिल ने चौपाल पर बुलाया है .

डरते-डरते सभी बौद्ध हनुमानजी के फर्श पर बैठे. पाटिल और दूसरे हिंदू ऊपर बैठे थे. गैस बत्ती जल रही थी. दिनभर की घटनाओं से बौद्धों के हृदय पहले ही दहल गये थे. अब और क्या होगा, इस विचार से वे सहमे हुए थे. तभी पाटिल ने गर्जना की—मुकुंदा, तू नाहक हमसे दुश्मनी मोल ले रहा है. . .!

—मैं समझा नहीं, चौधरीजी . . .! मुकुंद गरदन नीचे करके बोला.

—तेरी मां की. . .वैसा सुद्ध मत बोल. . .बनिये. बम्मन की. . .औ. . .पटेल जल गया.

बौद्ध दिल की धड़कनें गिनने लगे. मुकुंद गरदन ऊपर करके देखने लगा. . .बिना वजह पाटिल ने गाली दी थी. सभी लोगों के सामने उसका अपमान हुआ था. कनपटियां तड़-तड़- करने लगीं. उसकी जबान पर भी एक गाली आयी, लेकिन वह दे नहीं सका. उसने उसे लौटा दिया. थूक निगला और निचला होठ ऊपर के दांत से चबाने लगा. पाटिल फिर बरस पड़ा— याद रखो, मेरी जगह तुम डकार नहीं सकते! तुम्हें सुख-चैन से मैं रहने नहीं दूंगा. तुम कहीं से हुकुम लाओ, पर मुझे की विश्वास राव पाटिल कहते हैं ! पाटिल ने मूंछों को बल दिया और पच् से जमीन पर थूक दिया.

—नहीं,- नहीं, चौधरी, हमने क्या किया? हमें भी रहने के लिए जगह चाहिए. सरकार ने जो कहा, वही हमने किया. एक बूढ़ा नम्रता से बोला.

पाटिल का गुस्सा और बढ़ गया— अरे-अरे सरकार वाले, ज्यादा मस्ती चढ़ गयी है क्या? बेमौत मरने पर पता चलेगा. पकड़ो इन्हें. . .इनकी मां की. . .! ढेढ़ चमार सरकार का खा कर फूल गये! पाटिल भड़क गया.

इतना सुनते ही गांव वालों ने नीचे छलांगें मारीं और जो भी बौद्ध दिखाई दिया, उसे मारने लगे. चारों ओर हाहाकार मच गया. रोना-चिल्लाना शुरू हो गया. गांव की सीमा के बाहर चीख-पुकार शुरू हो गयी. पांच मिनट में यह सब हो गया. लाठियों और पत्थरों की मार खाये बौद्ध लंगड़ाते - बिलखते, रोते-चिल्लाते भीमनगर में लौटे.

★ ★

सभी सिसकते-रोते मुकुंद के द्वार पर जमा हुए. आदमी, औरतें, बच्चे जबान रहते हुए भी कोई बोला नहीं था. सभी डरे हुए थे. उनकी हंसी भाग गयी थी. आंखों में मृत्यु का भय मंडराने से सभी बेहाल हो रहे थे. अचानक मांग बस्ती की दिशा में कुछ गड़बड़ हुई.

सभी के कान खड़े हो गये. क्या होने वाला है उसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी.

खलबली बढ़ती गयी. . . भीड़ बौद्धों की नयी बस्ती की ओर आ रही थी. हाथ में जलती मशालें ले कर आती भीड़ को देख कर मुकुंद जान गया कि अब ये घर-बार जलायेंगे. झोपड़ियां सुलगायेंगे. सभी भयातुर दृष्टि से देख रहे थे. पलभर में ही उस भीड़ ने एक झोपड़ी पर मिट्टी का तेल छिड़का और आग लगा दी भयानक लपटों से आग झोपड़ियों को राख कर रही थी. गांव वाले चिल्लाते -धमकियां देते एक के बाद एक झोपड़ी जला रहे थे. पलभर में सारा भीमनगर जल उठा. आंखों के सामने द्वार पर बंधी बकरियां, मेमने मुर्गियां, गाय, बछड़े आग की बलि बन रहे थे. उनका रंभाना, आक्रोश, शोर घुएं की लपटों के साथ ज्वालाओं में मिल कर आकाश को छू रहा था. दौड़ते भागते कोई-कोई आंगन में गया, जो कुछ बचाया जा सकता था, बचाया, लेकिन घर की कोई चीज नहीं बची. आग पूरी फैल रही थी. और बौद्ध लोग उन ज्वालाओं को देख कर खाक हो रहे थे.

घर क्यों जलाये, यह सवाल पूछने के लिए उनका दिल वहां नहीं था. केवल निःश्वास और हिचकियां बची थीं.

वे फिर वहीं जली हुई झोपड़ियों के पास आये. हाथ-पैरों की शक्ति चली जाने पर भी सहम कर बैठ गये. कोई बोलता नहीं था. हंसता नहीं था. लेकिन अंतरतम में खौल रहा था ज्वालामुखी का लावा. बाहर आने का रास्ता होने पर भी उसका विस्फोट नहीं हो रहा था.

मुकुंद ने सभी की ओर देखा. सभी निरपराध आंखें पानी से भर आयी थीं. यह देख कर उसकी आंखों में भी आंसू भर आये. आंसू आंखों में समा नहीं रहे थे. भावावेश से उसकी हिचकी बंध गयी. वह जोर-जोर से रोने लगा. फिर तो सभी के बांध टूट गये.

—मुकुंदा , तुम्ही रोने लगे तो फिर हम क्या करें ? कुशाबा ने अपनी हिचकी रोकते हुए कहा.

मुकुंदा को अच्छा लगा. शरीर में शक्ति आयी-सी लगी. उसका सिर फट गया था. पैर टूट गया था. उसमें शक्ति आ गयी . झट से अपने आंसू पोंछ कर उसने कहा— कहो दादा, फिर हम क्या करें ? तुम जैसा कहोगे हम वैसा ही करेंगे. सभी ने यह निश्चय जाहिर किया.

अब तो मुकुंद में बारह हाथ की शक्ति आ गयी. वह आवेश में आ गया. उसका हृदय विद्रोह कर उठा—यहां रहने के लिए बचा ही क्या है ? प्राण मानो नरक में झुलस रहे हैं. यहां क्यों रहें? उसने आवेश में मुट्ठी भींच ली. आवाज बुलंद हो गयी. सभी चकित रह गये. . .मुकुंद को क्या हुआ? उसका लाल अंगारे-सा मुंह देख कर भिवा ने कहा—क्या कहते हो?

—यहां क्यों रहें? मुकुंद ने मानो ध्यान भंग कर पूछा.

—फिर कहां जायें ? किसी ने पूछा.

मुकुंद कहने लगा—बहुत दूर जायेंगे. . .जहां हमें कोई ढेढ़-चमार नहीं कहेगा, पानी में विष्ठा नहीं डालेगा. खेत में जाने से कोई नहीं रोकेगा. मां-बहन की इज्जत नहीं लूटेगा, मारपीट नहीं करेगा, वहां. . . आते हो तुम?

—हां, बंध-मुक्ति के लिए किये गये गुलामों के उद्घोष की तरह उन्होंने कहा.

दिन निकलने के पहले बस्ती की सरहद को पार करना था. नदी पार कर सभी दक्षिण की ओर चले. अंधेरी राह में चलने लगे. कहां जाना है , निश्चित नहीं था. सब के आगे मुकुंद था. वह लंगड़ाता चल रहा था. . . चालीस-पचास लोगों का जुलूस लिये वह चल रहा था.

अंत में सीमा आ गयी. पूर्व दिशा में सूर्य आंखें खोल रहा था. जलते हृदय और प्रस्थान करने वाले जीव. . . मुकुंद के साथ सभी ने सूरज को देखा. उनके पेट में मुक्का-सा लगा. . .अब यहां से जल्दी चलना चाहिए. वे चलने लगे. . . दक्षिण की ओर . . .जिधर आर्यों ने अनार्यों को खदेड़ दिया था उधर. . . □□□

शासकीय विद्यालय, उस्मानाबाद

विद्यार्थियों के दहकते अनुभव

● आर. एन. पानपटील

बुलढाना जिले के मौंढाला गांव की बात है. परीक्षा समाप्त करके मैं गांव लौटा था. बौद्धों ने १४ अप्रैल का त्योहार मनाने का निश्चय किया. पर मराठों ने निश्चय किया कि डा. बाबा साहेब आंबेडकर के चित्र का जुलूस न निकलने दिया जाय. बौद्धों ने धाड़ के पुलिस स्टेशन पर अर्जी दी और बैलगाड़ी पर जुलूस रवाना हुआ. उधर मराठा मंडली पूरी तैयारी के साथ जुलूस का इंतजार कर रही थी, परंतु जुलूस के साथ दो पुलिस वालों को देख कर वे चुपचाप अपने घर खिसक गये. पर जुलूस उनके घर के सामने से गुजरा तो वे उन पर दोष लगाने लगे —सीधे क्यों नहीं चलते, हमारे घरों की दीवालों से गाड़ी को टकराकर घर गिराओगे क्या? बौद्धों ने इस पर बैल हटा दिये और खुद जुलूस की गाड़ी खींचने लगे और बाबा साहेब का जय-जयकार करते हुए जुलूस पूरा कर के वापस आ गये. दूसरे दिन सबेरे-सबेरे जब पुलिस के सिपाही वापस लौट गये तो मराठों ने बौद्धों से प्रश्न करना शुरू किया—तुम लोगों ने गांव में जुलूस क्यों निकाला ? सारे गांव ने बौद्धों का बहिष्कार कर दिया. उनके लिए दूकानें बंद कर दी गयीं, उनके काम बंद कर दिये गये. जो उन्हें काम पर बुलाता उन्हें दंड दिया जाता. वातावरण गरमाने लगा. कुछ बौद्ध पड़ौस के गांवों में काम के लिए जाने लगे. □□□

मृत्युशाला : पृष्ठ १९ से आगे

अमरसिंह की तलवार कभी स्वार्थ के लिए नहीं लड़ी.

पुरुषोत्तम : अमरसिंह, हमारी तराजू भी कभी स्वार्थ के लिए नहीं झुकी. तुमने तलवार की अपेक्षा हमेशा ढाल का ही ज्यादा उपयोग किया है, इसे न भूलो.

अमरसिंह : पुरुषोत्तम, इस तरह की बातें मेरे लिए असह्य हैं. क्षत्रियों का पराक्रम इतिहास ने स्वीकार किया है. धनुषधारी अर्जुन कौन था? छत्रपति कौन थे. चित्तौड़ का राजा किस वंश में जन्मा था? इस तरह के हजारों नाम दिये जा सकते हैं.

पुरुषोत्तम : मुझे इस तरह का पराक्रम स्वीकार्य नहीं. हम अपनी तराजू का कभी प्रदर्शन नहीं करते हमें ढिंढोरा नहीं पीटना था. हमें तो बस अपने देश की सेवा करनी थी.

(मृत्युदेवता जोरों से हंस पड़ते हैं)

मथुरा : महाराज, ईश्वर ने मनुष्यों का कितना सुंदर विभाजन किया है. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र. हर एक अपनी सीमा में रहे. कोई किसी के मामले में दखलंदाजी न करे. दुनिया में ऐसी सुंदर व्यवस्था कहीं भी नहीं होगी. (सायनाक हंसता है और हंसते-हंसते गंभीर हो जाता है.)

पुरुषोत्तम और अमरसिंह : तुम हंस रहे हो?

सायनाक : हंसू नहीं तो और क्या करूं! इस वर्ण-व्यवसाय ने ही हमारे देश को खोखला कर दिया है. मनुष्य मनुष्य का शत्रु हो गया है. वर्ण-व्यवस्था यानी इनसानियत का जनाजा. आंबेडकर बाबा अकसर कहते थे कि वर्ण व्यवसाय का अर्थ श्रमविभाजन नहीं, बल्कि श्रमिकों का विभाजन है.

मथुरा : क्या बकवास करता है! वर्णव्यवस्था पर दोषारोपण करनेवाले शूद्र की जबान काट लेनी चाहिए!

मृत्युदेवता : मथुराबाई इस दरबार में सजा देने का अधिकार किसी को नहीं. मुझे भी नहीं.

अमरसिंह : सायनाक, दुनिया में तुम्हारा सत्कार हो, ऐसी इच्छा तुम क्यों रखते हो? जो तुम्हारे भाग्य में लिखा होगा, वही होगा.

सायनाक : भाग्य? कहां का भाग्य! भाग्य पर भरोसा रख कर ही हम अब तक जीते रहे. कितना बड़ा यह अज्ञान!

पुरुषोत्तम : अज्ञान? हमारे भाग्य में था, इसीलिए हम वैश्य के यहां पैदा हुए,

सायनाक : तुम्हारे सर पर लटकती तलवारें... ब्राह्मण और क्षत्रिय तुम्हारे सर पर बने रहें, यह तुम्हें सह्य है. निम्नों को कुचलना और ऊपर वालों की खुशामद ही तुम्हारा धर्म है!

अमरसिंह-मथुरा : यह कितनी दुष्टता है!

मृत्युदेवता : सत्य सदैव कठोर होता है. उसे स्वीकार करने के लिए मन के दरवाजे तथा भावनाओं के झरोखे दृढ़ होने चाहिए. समझे!

मथुरा : इसका मतलब यह तो नहीं कि आपके दरबार में हमारा अपमान हो.

मृत्युदेवता : यह अपमान नहीं. ये धधकते हृदय के उद्गार हैं. पर मथुराबाई, पृथ्वीलोक में तुमने कितने लोगों का अपमान किया?

मथुरा : मुझे याद नहीं.

मृत्युदेवता : कमंडलु, विवरण पत्र पढ़ो. (कमंडलु विवरण पत्र खोलता है.)

कमंडलु : (पढ़ते हुए) मथुरा नरसोपंत सरदेशपांडे, उम्र ३५, मुकाम देवता के गोठण. पति को शारीरिक दंड, पुरुष जाति के विषय में तिरस्कार और घृणा...

नरसोपंत : हां, इसने मुझे कभी शरीर-सुख नहीं दिया. हमेशा मुझसे नफरत की. मुझे कष्ट दिये.

कमंडलु : सास-ससुर को यातनाएं...

नरसोपंत : कितनी यातनाएं दीं तुमने मुझे! मां-बाप का मैं इकलौता पुत्र था, फिर भी केवल तुम्हारी निर्दयता के कारण उनके लिए मैं कुछ भी न कर सका.

कमंडलु : नीतिमत्ता पालन नहीं की. सार्वजनिक जीवन को तुच्छ समझा. धर्मशास्त्र के नाम पर अशोभनीय वर्तन. शूद्रातिशूद्रों को...

मथुरा: (चीखकर) यह सब झूठ है. मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया!

मत्युदेवता : इस दरबार का विवरण झूठा नहीं हो सकता, मथुराबाई! कमंडलु, आगे पढ़ो.

कमंडलु : पति को भोजन में बिष दिया.

नरसोपंत : उस दिन मुझे कितनी यातनाएं हुई. मेरा सारा बदन नीला पड़ गया. मैं घंटे भर तक लगातार तड़पता रहा, पर इसने मेरी ओर देखा तक नहीं!

मथुरा : आपकी ओर क्या देखती, मेरा नीति-धर्म दृढ़ रहे, इसलिए मैं ज्ञानेश्वरी पढ़ रही थी.

मृत्युदेवता : मथुराबाई, आपका पति जब मृत्यु की अंतिम घड़ियां गिन रहा था, तब आपसे ज्ञानेश्वरी कैसे पढ़ी गयी? (मथुरा हंसती है. पागल की तरह आंखें नचाते हुए हंसते-हंसते भीतर चली जाती है.) मथुराबाई अंत में पागल हो गयीं और उस पागलपन के दौर में ही उन्होंने अत्महत्या कर ली—कुएं में डूबकर. दूसरे दिन उनकी लाश ऊपर आयी, तब लोगों को पता चला.

नरसोपंत : महाराज, मुझे जाने की आज्ञा दीजिए. मैं उसे मनाऊंगा कि पृथ्वीलोक में जो संभव नहीं हो पाया, वह कम-से-कम यहां तो हो...(नरसोपंत जाते

हैं. कुछ क्षण शांति).

मृत्युदेवता : अमरसिंह तुम्हें क्या कहना है ?

अमरसिंह : महाराज, झगड़ा है हम दोनों में. उसका विवरण मैं (सायनाक की ओर ऊंगली से इशारा कर) इसके सामने नहीं दूंगा.

सायनाक : महाराज, आपके सामने मेरा यह अपमान ! आपके दरबार में तो सभी को समान समझा जाता है !

अमरसिंह : अरे, यह क्या बकवास लगा रखी है! (ताली बजा कर) अरे, कोई है उधर? जरा मेरी तलवार ले आओ. अभी इसके टुकड़े-टुकड़े कर देता हूं!

मृत्युदेवता : (हंस कर) अमरसिंह, यहां तुम्हें तलवार ला कर देने वाला कोई नहीं. यह मृत्युदेवता का दरबार है, तुम यह बात भूल जाते हो.

अमरसिंह : तो इससे क्या, शूद्र को अपनी मर्यादा नहीं भूलनी चाहिए. हमने अपने क्षत्रियत्व की मर्यादा को कभी नहीं भुलाया.

मृत्युदेवता : यह मर्यादा किसने बनायी? क्यों बनायी? कब बनायी? क्या जानते हो तुम?

अमरसिंह : मैं इस झमेले में कभी नहीं पडा. हमारे परदादा ने हमारे दादा को, हमारे दादा ने हमारे पिता को, हमारे पिता ने हमें जो कुछ कहा, उसी को हमने शिरोधार्य माना. वही हमारा धर्म. धर्मपालन से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है.

पुरुषोत्तम : अमरसिंह के कहने में सचाई है. पूर्वजों ने जो कुछ कहा, उसका पालन ही हमारा धर्म है.

अमरसिंह : महाराज, धर्म का हमने पालन किया, पर कभी-कभी मनस्ताप होता है. परशुराम ने धरती को क्षत्रियविहीन किया––एक बार नहीं, इक्कीस बार. हमारे पूर्वजों की उन्होंने निर्दयता से हत्याएं कीं. इस वेदना से मैं अपने आपको मुक्त नहीं कर पाया. मैं असमर्थ सिद्ध हुआ. उसका स्मरण होते ही मेरी मुट्ठियां भिच जाती हैं. मैं कुछ भी कह सकने में असमर्थ रहा, क्योंकि धर्मग्रंथों की आज्ञा मैंने शिराधार्य मानी. मैं यह दुखः कैसे भूल सकता हूं?

मृत्युदेवता : इस संबंध में मैं क्या कह सकता हूं!

अमरसिंह : तो मुझे इस दुखः को दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं मिलेगा?

मृत्युदेवता : इस बारे में भी मुझे कुछ कहते नहीं बनेगा अमरसिंह.

अमरसिंह : तो मुझे दुःख दूर करने के उपायों की खोज करनी होगी. (जाता है.)

मृत्युदेवता : पुरुषोत्तम, तुम्हें क्या कहना है?

पुरुषोत्तम : महाराज! मैं बेचैन हूं. बेचैनी को नष्ट करने का कोई इलाज है क्या, महाराज?

मृत्युदेवता : (हंस कर) इलाज? स्वस्थता, यही एकमात्र इलाज है बेचैनी का. पुरुषोत्तम आखिर हुआ क्या है, वह तो बताओ.

पुरुषोत्तम : बहुत कुछ कहना चाहता हूं, महाराज! हम वैश्य. हमारा तीसरा वर्ण. इसका हमने कभी दुःख नहीं माना. हमने अपनी शक्ति के अनुसार अपने देश की सेवा की और समृद्धि दी. पर इस वर्णव्यवस्था में हमारा स्थान तीसरा ही रहा. वैश्यों को पहला स्थान मिलना चाहिए. ब्राह्मणों और क्षत्रियों को सही अर्थ में सम्मानित जीवन मिला केवल हमारे कारण. हम विशेष पढ़े-लिखे भले न रहे हों, पर बुद्धिमत्ता के बिना तो व्यापार हो ही नहीं सकता. आपके दरबार में हमें शीर्ष स्थान मिलना चाहिए.

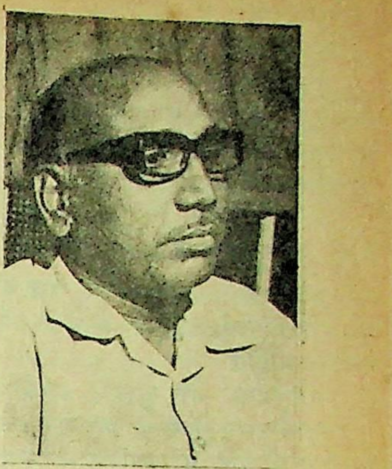
गंगाधर पानतावणे : कवि, नाटककार, कहानीकार, समीक्षक और पत्रकार

मृत्युदेवता : इससे क्या होगा?

पुरुषोत्तम : इससे अगले जनम में तो कम-से-कम हमें प्रथम वर्ण का सम्मान मिलेगा.

मृत्युदेवता : कितने मूर्ख लोग हो तुम! मृत्युशाला और पृथ्वी लोक का कोई संबंध नहीं है, लगता है तुम इसे भूल जाते हो, और, तुम्हारा अगला जन्म मनुष्य योनि में होगा, यह तुमसे किसने कहा?

पुरुषोत्तम : मुझे लगता है. मेरी अपनी श्रद्धा कहती है.

सायनाक : (हंस कर) इसी को कहते हैं पागलपन.

पुरुषोत्तम : छिः-छिः! इस शूद्र को बीच में बोलने की बड़ी बुरी आदत है!

मृत्युदेवता : सायनाक, क्या तुम कुछ देर के लिए अपनी जबान पर लगाम नहीं लगाओगे?

सायनाक : महाराज, हजारों वर्षों से हमने अपनी जबान बंद रखी थी. आज ही तो हम कुछ कहने लगे हैं . . .

मृत्युदेवता : मुझे एक पक्ष का कथन पूरी तरह से सुनना है. तुम्हारा भाषण-स्वातंत्र्य मैं नहीं छीनूंगा.

सायनाक : ठीक है, मेरे लिए आपकी आज्ञा शिरोधार्य है. पृथ्वीलोक पर हमारे देश में अभी-अभी प्रजातंत्र की स्थापना हुई है. हमें अपना मत प्रदर्शित करने का अवसर मिला है, इसलिए मैं. . . .

पुरुषोत्तम : महाराज, इस प्रजातंत्र-फिजातंत्र को हम नहीं मानते! बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग कर यह शूद्र हमें धोखा दे रहा है!

मृत्युदेवता : पुरुषोत्तम, जिनकी जबान हमेशा के लिए काट दी गयी थी, उनको बोलने का अवसर मिलते ही कितना गजब करने लगे हो तुम लोग. तो पुरुषोत्तम, तुम मनुष्य-जन्म चाहते हो न?

पुरुषोत्तम : हां, महाराज.

मृत्यु देवता : लेकिन किस जाति में?

पुरुषोत्तम : महाराज, मैं जिंदगी भर वैश्य कहलाता रहा. अब मुझे न इस जाति में जन्म चाहिए, न क्षत्रियों की जाती हमें. अब मेरी एकमेव इच्छा है ब्राह्मण जन्म की. (मृत्युदेवता अट्टहास करता है)

सायनाक : महाराज, मुझे भी ब्राह्मण-जन्म मिलेगा क्या? (मृत्युदेवता फिर अट्टहास करता है.)

पुरुषोत्तम : महाराज, क्या शूद्र को ब्राह्मण-जन्म की अपेक्षा रखनी चाहिए? इससे तो धर्म में और अधिक भ्रष्टता आयेगी!

मृत्युदेवता : और तुम्हारी अपेक्षा से?

पुरुषोत्तम : गुणों के आधार पर श्रेष्ठता संभव है. इस तरह की बात ऋषि-मुनियों ने कह रखी है.

मृत्युदेवता : पर लाख कोशिश के बावजूद तुम्हें मनुष्य-जन्म नहीं मिलेगा. तुम जैसों को गुणों का अहंकार नहीं रखना चाहिए. कमंडलु, इनका विवरण फल निकालो और पढ़ो इनके कृत्य.

कमंडलु : पुरुषोत्तम नरोत्तम, मुकाम बलसाड. अत्यंत स्वार्थी, द्रव्यलोभी. सरकारी अधिकारियों को रिश्वत दे कर सरकार के साथ धोखेबाजी. श्रमदान के नाम पर विद्यार्थियों को अपार कष्ट और धोखेबाजी. अनाज का कालाबाजार. . .

पुरुषोत्तम : नहीं-नहीं, मैंने ऐसा कुछ नहीं किया. सरकार तथा विद्यार्थियों को तो कम-से-कम मैंने कभी धोखा नहीं दिया.

कमंडलु : अनेक लोगों का व्यापार नष्ट किया. संकल्पित तालाब का निर्माण नहीं किया, उलटे उसकी सारी रकम हजम कर ली. गरीबों का शोषण किया. शासन पर दबाव. . .(कुछ देर खामोशी)

पुरुषोत्तम : महाराज, मेरा भ्रम दूर हो गया. आपके दरबार में इतना विवरण लिखा होगा, मैंने यह नहीं सोचा था. मरते दम तक मैंने कितने कष्ट उठाये!

मृत्युदेवता : पुरुषोत्तम, गुणों के कारण श्रेष्ठता मिल सकती है, ऐसा तुम्हारा कहना है न? फिर तुम्हारी मृत्यु कैसी हुई?

पुरुषोत्तम : मेरे दुःखों की फिर क्यों याद दिला रहे हैं, महाराज! मैं पापी हूं. जिंदगीभर धन ही कमाया मैंने. धन में ही डूबा रहा. विलास में ही मग्न रहा. आगे चल कर दुनिया से नफरत हो गयी मुझे.

मृत्युदेवता : ऐसा क्यों हुआ?

पुरुषोत्तम : मेरे छोटे भाई ने, पत्नी ने, बच्चों ने, सभी ने मुझसे संपत्ति में अपने हिस्से की मांग की, मैंने इनकार किया. फिर भाई ने मुझसे दुश्मनी की. वह घर में एक विषकन्या ले आया. . .किंतु उस युवती से मेरा कोई संबंध नहीं था. . .

मृत्युदेवता : कमंडलु, शांति को दरबार में हाजिर करो. (कमंडलु घंटा बजाता है. शांति प्रवेश करती है. पुरुषोत्तम कांपने लगता है. गरदन दूसरी ओर घुमा लेता है.)

पुरुषोत्तम : कौन है यह? इसका क्या काम है यहां?

मृत्युदेवता : पुरुषोत्तम, तुम घबरा क्यों रहे हो? तुम्हारे पैर कांपने क्यों लगे हैं?

पुरुषोत्तम : नहीं, नहीं, बिलकुल नहीं.

मृत्युदेवता : नहीं, तुम्हारी सांस रुकने लगी है. शरीर से पसीना छूटने लगा है.

पुरुषोत्तम : नहीं तो. (पुरुषोत्तम पसीना पोंछने लगता है.)

मृत्युदेवता : शांति, इस वैश्यपुत्र को जानती हो तुम? (शांति, सिसकियां भरने लगती है.) क्या हुआ? बोलो?

शांति : महाराज, हम वर्ण के बाहर के लोग हैं-- हमारा अपना अलग से कोई अस्तित्व नहीं रहता. हमारा स्वयं का कुछ नहीं होता--न शरीर, न मन और न रिश्ते-नाते.

मृत्युदेवता : मैं पूछता हूं, क्या तुम इसे जानती-पहचानती हो?

शांति : जान-पहचान क्या बताना है, महाराज! हमारी पहचान का भी कोई अर्थ होता है? मेरी शादी हमारे रीति-रिवाज से हुई. माता-पिता को लगा, उनके सर का बोझ दूर हो गया. लेकिन. . .

मृत्युदेवता : लेकिन क्या?

शांति : आनंद के साथ दुःख भी बना रहता है, हमारी परंपरा में. दुःख का यह प्याला आंखें बंद कर चुपचाप पीना पड़ता है हमें. मेरी जिंदगी में भी वही घटित हुआ, जो अन्य, युवतियों के साथ. . . (सिसकियां लेने लगती है) महाराज, मेरी शादी के दिन मुझे अपने पति के साथ जाने का अधिकार नहीं था. परंपरा के अनुसार गांव में अमीर के पास रात भर मुकाम के लिए जाना पड़ा मुझे. मैं युवावस्था की दहलीज पर ऐसे ही प्रवेश करने वाली युवती थी. मन में तूफान-सा उठा. लेकिन परंपरा तोड़ना असंभव था, मेरे लिए! जिसने भी परंपरा को तोड़ने की कोशिश की, उसने जिंदगी से हाथ धो लिया. हमारे पड़ोस की कालोनी की युवती का वही हाल हुआ. जैसे ही उसने अमीर के घर से भाग जाने की कोशिश की, चाबुक की मार से उसका शरीर फोड़ दिया गया. वह जोर-जोर से रो रही थी, तड़प रही थी, किंतु किसी ने भी मुक्त नहीं किया उसे. वह डर गयी और अंत में प्राण त्याग दिया उसने.

मृत्युदेवता : शांति, तुमने क्या किया, यह बोलो?

शांति : मुझे भी अमीर के घर पहुंचाया गया. अंधेरी रात थी. मेरे मन में अंधेरे का ही साम्राज्य फैला था. मैं अस्वस्थ थी. बेचैन थी. वेदना से मेरा सर्वांग थर-थर कांप रहा था. उस अमीर की दहलीज पर मैंने कदम रखा. क्षण मात्र के लिए मैंने गरदन घुमा कर देखा तो उस अमीर की पत्नी, बच्चे, बहू, मेरी ओर देख कर व्यंग्यपूर्वक हंस रहे थे. उस क्षण मात्र में यह सब देख कर मैं जल कर खाक हो गयी. उस समय मुझे लगा, मेरा सारा शरीर कोयला बन चुका है. मेरे पैरों की शक्ति समाप्त हो चुकी है. सर में अनगिनत बिजलियां चमकने लगीं. पैर में शक्ति न होने पर भी मैं एक-एक सीढ़ी मुश्किल से पार करती हुई ऊपर चढ़ती गयी. मेरे साथ और कोई नहीं था. मैं

पूरी तरह डर गयी थी, फिर भी, आगे बढ़ती जा रही थी. द्वार पर पहुंची, तो वहां मुंह में पान रखे, बेजान-सी हंसी हंसते हुए मेरा स्वागत करने वाले उस अमीर को मैंने देखा. (पुरुषोत्तम घबरा जाता है.) मुझे कुछ नहीं सूझ रहा था. सर में आंधी-सी उठी. मैंने उस अमीर के पैर पकड़े, प्रार्थना की, याचना की, गिड़गिड़ायी. कहा, मैं तुम्हारी कन्या की भांति हूं, मेरा युवा पति मेरी चातक की भांति प्रतीक्षा कर रहा होगा. लेकिन मेरी सुनने वाला था ही कौन वहां! (सिसकियां. . .क्षणभर रुकती है.)

पुरुषोत्तम : शांति. . .शांति, बस! बस, आगे मत कहो, शांति! मुझे क्षमा करो! अब उस प्रसंग का फिर से स्मरण मत दिलाओ! वह प्रसंग मुझे कांटे-सा सालने लगा है. मुझे पश्चाताप होने लगा है. . .

शांति : अमीर पुरुष क्रूरता से हंस रहा था. दीवारें तक डर गयी थीं. मैं संपूर्णतः असहाय, आधारहीन थी. वहां, अपना यौवन लुटते हुए देखना था वहां मुझे.

पुरुषोत्तम : शांति, मुझे क्षमा कर दो! शांति, क्षमा कर दो!

शांति : क्षण मात्र में ऐसा कुछ घटित हुआ कि मैं सांस तक न ले सकी. और. . और मेरे शरीर को पुरुष बाहुओं ने पूरी तरह से जकड़ लिया. मेरा कौमार्य भंग हो गया. मेरी यौवनावस्था की अग्नि क्षण मात्र में पूर्ण रूप से बुझ गयी. राख हो गयी. (सिसकियां) अपनी मृत्यु मैंने अपनी आंखों देखी उस समय, महाराज! (सिसकियां.) और फिर बुझे हुए, राख हुए उस यौवन को मन ने ललकारा. मन ने विद्रोह किया. निस्तेज शरीर सतेज हुआ. मन में चेतना की लहर दौड़ पड़ी. शरीर से चिनगारियां निकलने लगीं. महाराज, फिर मैं अपने काबू में न रही. सारी शक्ति जुटा कर कोने में पड़ी लाठी से मैंने अमीर के सर पर जोर से प्रहार किया. और फिर मैं चीखती-चिल्लाती भागती हुई निकली. मेरा सौभाग्य लुट गया था. मैंने मृत्यु को स्वीकार किया—बिलकुल निर्भयता के साथ महाराज! कितनी बेबस, असहाय, मजबूर कोमल युवतियों को यही जीवन जीना पड़ता होगा. (सिसकियां. . .)

पुरुषोत्तम : मृत्युदेवता, मुझे कुछ नहीं चाहिए. . .मुझे मनुष्य-जन्म नहीं चाहिए. . .कुछ नहीं चाहिए! (पुरुषोत्तम चला जाता है. क्षणभर शांति.)

मृत्युदेवता : (स्वागत) मनुष्य का कितना अधःपात! कितनी पराजय!

सायनाक : महाराज, यह मनुष्य की पराजय नहीं. मृत्यु के रास्ते पर लगी पुराणवादी नैतिकता की विजय है. ऐसी यातनाएं भोगते हुए कई पीढ़ियां कुर्बान हो गयीं, महाराज. एक बात पूछूं?

मृत्युदेवता : कौन-सी?

सायनाक : महाराज, शूद्रों के मन में पृथ्वीलोक के प्रति ममता की भावना कब निर्माण होगी?

मृत्युदेवता : सायनाक, बहुत ही जटिल प्रश्न पूछा है तुमने. ममता की भावना मांगने से प्राप्त नहीं होती. इसे मानव के मन में, अंतस में स्थिर होना पड़ता है.

सायनाक : फिर पृथ्वी पर ऐसा क्या कभी घटित नहीं होगा?

मृत्युदेवता : कौन कहे. और मैं वह कैसे कह सकता हूं! मृत्युशाला मेरा घर है, यही मेरा आंगन. यही मेरा परिवार है, यही मेरी दुनिया. यहीं मैं सुख प्राप्त करता हूं, यहीं मैं आराम करता हूं. यहां मेरे लिए सभी समान हैं. समता का सही साम्राज्य यहां पर है. मुझे उसका अहंकार नहीं. ऐसी समता पृथ्वी पर कब आयेगी, मैं कैसे कहूं? (धीमे-धीमे प्रकाश मृत्युदेवता, सायनाक और शांति के चेहरे पर. कमंडलु एक ही स्थान पर स्थिर है, उस पर प्रकाश. फिर कमंडलु घंटा बजाता है. घंटा बजते समय ही परदा गिरता है.) □□□

घटनाकथाएं

पिस्तौल के सहारे

मध्य प्रदेश हरिजन सेवा संघ के अनुसार इस वर्ष गणतंत्र दिवस पर सागर जिले के एक गांव में एक हरिजन युवक हरलाल चमार को पुलिस ने जेल में मार डाला. इतने पर भी संतोष नहीं हुआ तो उसकी टांगें चीर डालीं.

हरलाल को चोरी के आरोप में गिरफ्तार किया गया था.

जब हरलाल का पिता इस हत्या का विरोध करने पुलीस थाने गया तो उसे हिरासत में ले लिया गया. उसकी चमड़ी भी उधेड़ी गयी. फिर बताया जाता है कि एक सब इंस्पेक्टर ने पिस्तौल तान कर कहा कि अगर तुमने मुंह खोला, तो तुम्हें भी गोली से उड़ा दूंगा.

हरलाल की मां को भी नंगा कर के मारा गया.

फिर भी हरलाल का एक रिश्तेदार सागर चला ही आया. वहां उसने पुलीस की अपराध शाखा को इस अमानवीय दमन की सूचना दी. □

रक्षक या भक्षक?

हरिजन की हत्या, कांग्रेसी नेता के यहां हो, तो कोई ताज्जुब नहीं.

यह घटना है कर्नाटक के गुलबर्गा जिले की एक हरिजन महिला की, जिसका नाम अखबारों में नहीं आया. हत्या कर्नाटक विधानसभा के एक सदस्य सुभाष पाटिल के घर पर हुई.

हत्या के इस षड़यंत्र को छुपाने के लिए उक्त महिला के नाम से एक जाली पत्र लिखा गया जिसमें उसकी ओर से लिखा गया कि उसने आत्महत्या की है.

लेकिन हरिजन नहीं माने, उन्होंने आंदोलन किया. महिला के शव का परीक्षण हुआ. तब पाप सामने आया कि उस महिला ने आत्महत्या नहीं की, बल्कि उसकी हत्या की गयी है. उसकी गर्दन मरोड़ कर उसे मारा गया है. □

इंतजार

□ ओ.पी. शर्मा

साल भर अकारण घर से बाहर रह कर भीष्म ने घर वालों को अपने खिलाफ कर लिया था. अब उनके कहने के मुताबिक जो गल भीष्म ने खिलाया था, उस पर तो उसका नाम भी सुनने को वे तैयार नहीं थे.

भीष्म दरवाजे पर खड़ा था. कुछ दुबला हो गया था. आंखें बुझी हुई थीं.

—कब आये हो? मैंने पूछा.

—सात-आठ दिन हो गये. ब्रीफ-केस को भीष्म ने दायें से बायें हाथ में ले लिया.

—सुना था श्रीनगर में कहीं . .

—हां, वहीं था. घर पर कौन है? उसने पूछा तो मुझे एहसास हुआ कि मेरे ही पत्र लिखने पर भीष्म ने यहां आने का साहस किया है. मैंने मुसकरा कर कहा—सभी घर पर हैं. और मैं भी.

भीष्म की आंखों में चमक पैदा हुई. लेकिन बुझ गयी.—पिता जी हैं?

—कहा, सभी हैं. माता जी भी. अनु कॉलेज गयी है. आती होगी.

अज्ञात-सा भय मैं भी महसूस कर रहा था कि भीष्म को 'अंदर आओ' नहीं कह पाया. भीष्म मेरे होठों की ओर देख रहा था. शायद वह बेचैन था सुनने को कि 'बाहर क्यों खड़े हो भीष्म! अंदर आओ.'

गली-मोहल्ले के दो-चार आदमी हम दोनों को घूरते हुए चले गये.

मां मुझे पुकारती हुई ड्योढ़ी में आ गयी. मैं एक ओर हट गया और मां के चेहरे को देखने लगा. परंतु उसके चेहरे पर कोई परिवर्तन नजर नहीं आया. मुझे बहुत अजीब लगा. सोचा तो था कि मां तेजी से बढ़ कर भीष्म को छाती से लगा लेगी. फिर भीष्म को जब मैंने पत्र लिखा था, तो मां ने कहा था—उसे लिख दे, घर चला आये! जो कुछ होगा, संभाल लूंगी. उस समय ऐसा न लिख कर मैंने केवल इतना ही

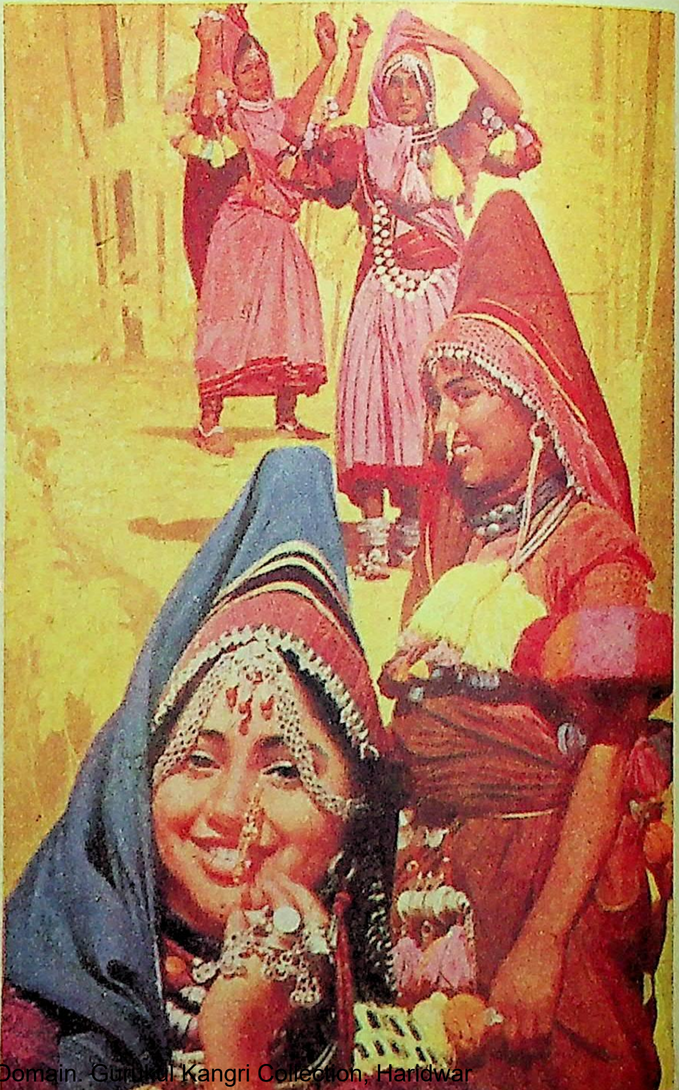

[illegible] आर्किमान के सौजन्य से

लिखा था कि मां ने कहा है जो हो गया, सो हो गया बदल तो सकता नहीं. अब खाक डालो!

मां का चेहरा सख्त हो गया. वह साड़ी के पल्लू को सिर पर ठीक करती हुई भीष्म के निकट गयी.

——तूं कब आया है? मां ने कठोर और रूखे स्वर में पूछा.

मैंने बीच में कहा——मां! इसे यहां आये हफ्ता हो गया है.

——एक हफ्ता? मां ने शब्द दोहराया. तो तुझे उन लोगों से फुरसत मिल गयी?

भीष्म सिर झुकाये सुनता रहा.

——भाई-बहन, मां-बाप सब भूल गया! पैसे कमाता रहा और उन लोगों में बांटता रहा!

मां के होंठ कांपने लगे. आंखें लाल हो गयीं. फिर मां को अचानक ध्यान आया. वह दहलीज से बाहर हो कर गली के दायें-बायें झांकने लगी.

—भीष्म! कोई साथ है क्या? मैंने पूछा. मां ने भी यही पूछा——तेरे साथ कोई नहीं है क्या?

भीष्म नहीं में हलके स सिर हिला कर इधर-उधर देखने लगा.

मैंने मां और भीष्म को एकबारगी देखा. लगा दोनों एक-दूसरे को देख रहे थे. उस क्षण, जब वे आपस में एक दूसरे को न देख रहे हों.

मैंने मां की ओर देखा. उसकी आंखों में तरल भाव तैर आया था.

—भीष्म! अंदर चले आओ. मेरा कहना था कि मां जल्दी से पलट कर अंदर चली गयी. भीष्म ड्योढ़ी में आ गया. मैंने उसे रुकने का इशारा किया और बैठक के दरवाजे के साथ लग कर खड़ा हो गया.

★ ★

बाबूजी अखबार हाथ में लिये तख्तपोश पर अधलेटे-से पंखे को देख रहे थे. मां ने उन्हें पंखे को घूरते देखा तो पूछा—पंखा चला दूं, जी?

——नहीं, कह कर बाबू जी खांस पड़े. खास जरूरत नहीं. पंखे की हालत देख रहा था. भानु को कितनी बार कहा था, इसके पर उतार कर कोई पुराना कपड़ा लपेट दो.

मां ने पंखा चला दिया और बाबू जी के करीब तख्तपोश पर बैठ गयी. बाबू जी ने पंखे को छोड़ मां को सिर से पैर तक देखा. फिर ऐनक उतारते हुए पूछा—क्या बात है? कुछ कहना चाहती हो?

मां चुप रही. बाबू जी ने पहले सवाल को भुला दिया और कहा——एक प्याला चाय बना दो.

मां के चेहरे से सख्त कशमकश जाहिर थी. उसे सचमुच बयान देना था. उन्हीं के सामने जो कई बार कह चुके थे, भीष्म मर गया है. अगर तुम्हें यकीन नहीं आता तो मैं तुम्हें लिख कर दे देता हूं. भीष्म का बाप तुम्हें लिख कर दे देता है कि भीष्म मर गया है. मैं अपनी जगह खड़ा हुआ सोच रहा था कि अगर मां ने भीष्म की बात छेड़ी तो बाबू जी एकदम लाल-पीले हो जायेंगे.

मैंने भीष्म की ओर देखा. वह जानने के लिए बेचैन हो रहा था कि उसकी क्या बात बाबू जी से हुई है. मैंने उसे इशारे से वहीं खड़े रहने को कहा और अंदर बाबू जी के पास गया. बाबू जी उठ कर बैठ गये थे और अखबार की तह बना कर तकिये के नीचे रख रहे थे. मां उनके लिए चाय बनाने चली गयी थी.

—अनु कालेज से लौट आयी? बाबू जी ने पूछा.

—नहीं, बाबू जी. . .भीष्म आया है.

बाबू जी मेरे मुंह को देखने लगे. एकदम उन्होंने ऐनक पहन ली. उनकी आंखों का साइज बड़ा हो गया. मुंह की झुर्रियां ज्यादा गहरी हो गयीं. सिर की गोलाई को घेरे हुए सफेद बाल तन गये.——क्या कहा तुमने भानु? कौन आया है?

—भीष्म आया है, बाबू जी! मैंने अपना स्वर सामान्य रखने का प्रयत्न करते हुए कहा.

—कहां है? क्यों आया है? वह जानता नहीं कि मैंने उसके लिए क्या कहा है? बाबू जी एक ही सांस में कह गये. फिर माथे पर दो उंगलियां घुमाने लगे.

—मिलने आया है, मैंने धीरे से कहा.

—मिलने? बाबू जी ने ऊंचे स्वर में कहना चाहा परंतु बलगम से स्वर पतला-सा निकला.

मां चाय का प्याला ले कर आयी और तख्तपोश पर टिका दिया. बाबू जी का एक हाथ अब कांपने लगा था. दूसरे हाथ से प्याला उठाते हुए उन्होंने कहा—उससे कह दो, चला जाये यहां से. वह नहीं जानता उसने क्या किया है.

—कौन चला जाये? कौन नहीं जानता? मां ने भोलेपन से पूछा.

—तुम्हारा लाड़ला भीष्म! और कौन? जिस की वकालत तुम करने आयी थीं.

बाबू जी अब गरम हो गये थे. पर समय ऐसा भी नहीं था कि बात बीच में छोड़ दी जाती. मां ने कहा—उसने किया ह तो भुगतेगा. लेकिन हमारा रिश्ता भी क्या खत्म हो गया है उससे?

—हां, खत्म हो गया है! उसने हमारे मुंह पर थप्पड़ मारा है. तुम कहती हो, वह खुद भुगतेगा. मैं कहता हूं, इसका भुगतान तुम्हें भी देना पड़ेगा. अनु की बात कहीं चलने दी?

मां एकदम गंभीर हो गयी. बाबू जी ने शायद किसी खतरे की पूर्व-सूचना दे दी थी. मैं बाहर आया. भीष्म को अपने स्थान पर न पा कर मुझे धक्का-सा लगा. झट ही सोच लिया कि भीष्म बाबू जी की बातें सुन कर बाहर ही से लौट गया है. मैं ड्योढ़ी तक आया. देखा, अनु और भीष्म सीढ़ियों में खड़े बातें कर रहे हैं. अनु कुछ कहने को थी, पर मुझे चिंतित-सा देख कर चुप रह गयी.

—अनु! भीष्म को अंदर ले जाओ.

अनु ने भीष्म को बांह से पकड़ा और 'चलो' कहा, पर उसमें आग्रह कम, औपचारिकता अधिक थी.

वे दोनों दरवाजे तक [illegible] बैठक से बाबू जी का स्वर सुनायी दिया. वह मां से कह रहे थे—तुम उसकी वकालत मत करो. वह बहुत बिगड़ चुका है. उसे न अब मेरा डर है, न तुम्हारा, न भानु का.

—डर कैसे नहीं है? मां ने धीरे से स्निग्ध स्वर में कहा. घंटे भर से बाहर खड़ा है.

—बेचारा! बाबू जी ने मां की नकल उतारी, यदि उसे डर होता तो खानदान को ऐसा दाग लगाने से पहले डूब मरा होता!

—अच्छा, एक बार मिल लीजिए उससे! मां ने आग्रह किया.

—क्या करूंगा मिल कर?

—सुनिए तो क्या कहता है! माफी मांग रहा था मुझसे. और आपसे भी मांगेगा.

—माफी? बाबू जी तनिक हंसे. माफी मैं दूं? किस बात की? फिर बाबू जी चिंतित हो गये. कांपते हुए स्वर में बोले—गार्गी, उसने रास्ता बंद किया है हमारे वंश की लड़कियों का. बिरादरी में जिस-जिस को पता चलेगा कि उनका सपूत रिश्ते-नाते कुएं में डाल कर एक हरिजन लड़की घर ले आया है, वही इस घर का पानी पीना छोड़ देगा. इस खानदान की हर लड़की क्वांरी बैठी रहेगी और उसे बद-दुआएं देती रहेगी.

मां सेहन की ओर आने लगी. अनु ने भीष्म का हाथ पकड़ा और अंदर ले जा कर चारपाई पर बिठा दिया. उसके हाथ से ब्रीफ-केस ले कर एक ओर रख दिया.

बाबू जी के चेहरे पर कितने ही भाव आये और विलुप्त हो गये. वह बेचैनी महसूस करने लगे. भीष्म को उन्होंने उचटती नजर से देखा. फिर वास्कट पहन, छड़ी को हाथ में घुमाते बाहर निकल गये.

अब कुछ कहने को न मां के पास था, न मेरे पास और न ही अनु के पास शायद. मैं दो कदम चला और रसोईघर में देखा. मां चुप बैठी थी.

—भानु, तेरे बाबू जी ठीक कहते हैं. भीष्म ने जो गलती की है, उसके कारण कहीं...मां ने बात अधूरी छोड़ दी और चाय प्यालों में डालने लगी.

—मां! बात तो सारी उस लड़की की है. अगर वह इस घर में न आये तो कुछ नहीं होगा.

मां ने हाथ रोक लिया.—यह बात तूने अपने बाबू जी से क्यों नहीं कही? जानता है तू पास-पड़ोस के लोग कितनी बातें कर रहे हैं?

—मां, लोग ठीक कहते हैं. मां की ममता अगर छोटा-बड़ा, ऊंच-नीच देखे तो वह ममता नहीं, स्वार्थ हुआ. इसीलिए कहते हैं!...फिर तूने पत्र लिखवाया था कि भीष्म घर आ गये. जो होगा, संभाल लूंगी.

मां ने कुछ उत्तर नहीं दिया.

दस बज चुके थे. बाबू जी अभी नहीं लौटे थे. मां और अनु रसोईघर में थीं. भीष्म मेरे कमरे में चारपाई पर बैठा था. वह दो-तीन बार जाने का आग्रह कर चुका था. मैंने उसे रोक रखा था.

—भानु! इससे कहो, खाना खा ले, मां ने दरवाजे में आ कर कहा. मैंने मां से कहा—मां! तुम स्वयं क्यों नहीं कहती भीष्म से खाने के लिए?

मां बिना कुछ कहे रसोईघर की ओर चली गयी.

भीष्म के घर में आने पर कैसी खामोशी, कैसी निस्तब्धता छा गयी है, मैं सोचने लगा था. साथ ही प्रश्न उठने लगे थे. भीष्म ने यह शादी करके अच्छा किया या बुरा? उसे ऐसा करना चाहिए था या नहीं? और यदि कर डाला है, तो घर वालों का उसके प्रति कैसा रवैया होना चाहिए? आदि. मुझे लगा भीष्म ने कोई जुर्म नहीं किया. बुरा नहीं किया. इसने उस लड़की से विवाह करके उसके साथ पूरा न्याय किया है. पर घर वाले उसके साथ अन्याय कर रहे हैं.

—भीष्म! उठो. खाना खा लो.

भीष्म हिला नहीं. वैसे ही बैठा रहा. मैंने फिर कहा—दस बज चुके हैं, खाना खा लो.

भीष्म के होठों पर व्यंग्यात्मक मुसकान आ गयी. मामूली-सा हंस कर बोला—भानु भैया, कितने-कितने बड़े भाषण होते हैं! जात-पात के कैंसर को जड़ से उखाड़ो. लेकिन सच्चाई क्या है—मैं बहुत तीव्रता से महसूस कर रहा हूं.

—भीष्म! तुमने बहुत बड़ा काम किया है! मैंने भी भाषण देने के अंदाज में कहा. महात्मा गांधी जीवन भर इस अन्याय के खिलाफ आंदोलन करते रहे. और फिर आज तो यह बात उठाना कानूनन जुर्म है.

भीष्म ने छोटा-सा कहकहा लगाया. बोला—भैया, तुम नहीं जानते, मैंने कितना बड़ा अपराध किया है.

—अपराध? यह अपराध नहीं है भीष्म!

भीष्म ने जोरदार इनकार में गरदन हिलायी.—भैया! अपराध ही है. वह लड़की जो यतीम थी, लेकिन सुंदर थी. सुशील थी. पढ़ी-लिखी थी. उसे देखने पर लगता था कि किसी ऊंचे खानदान की है. उसके साथ विवाह करने के पश्चात जानते हो क्या हुआ? जहां वह नौकरी कर रही है, उस कार्यालय में उसके खिलाफ साजिशें शुरू हो गयी हैं, और उसे निकालने के मनसूबे भी बन रहे हैं.

मुझे विस्मय हुआ. मैंने पूछा—उसके दफ्तर वालों को उससे क्या दुश्मनी है?

—वे सब लोग उस पर आरोप लगा रहे हैं कि उसने नीची जात की हो कर एक उच्च कुल के ब्राह्मण लड़के को फांसा है.

यह बात मेरे लिए नयी थी. मुझे केवल एक खतरे का पता था कि भीष्म को विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा. पर उस लड़की को भी लोग परेशान करना चाहेंगे, यह सोचा भी नहीं था.

—तो तुमने अब क्या सोचा है? मैंने पूछा.

—अभी कुछ नहीं. अभी चुप हूं. फर्म में लगा हुआ हूं. मेरी फर्म वालों को मेरी शादी का पता चल चुका है. लेकिन उनका खयाल है कि मैंने कोई खराबी नहीं की. लेकिन भैया, एक बात मुझे यहां आ कर समझ में आयी...कह कर भीष्म चुप हो गया.

—क्या बात समझ में आयी है?

ओ. पी. शर्मा : डोगरी कथाकार

—अगर मैं यहां आता-जाता रहा तो अनु का. . .

बाबूजी आ गये. खाना खाने बैठे तो मुझे आवाज सुनाई दी.मैंने वहीं से कह दिया——आप खा लें. मैं बाद में खाऊंगा.

रात बारह बज होंगे कि मैंने और भीष्म ने खाना खाया. अपने कमरे में मैंने एक चारपाई और डाल दी.

काफी देर तक बाबूजी और मां की बातें सुनाई देती रहीं. भीष्म करवटें बदलता रहा.

सबेरे मुंह-अंधेरे ही भीष्म ने मुझे जगा दिया. वह जाने के लिए तैयार बैठा था. मैंने उससे कहा——सभी जाग जायें तो मिल कर जाना.

उसने धीरे-धीरे कहा——दरअसल भैया, मैं शायद न भी आता. पर मुझे मेरी पत्नी ने मजबूर किया था कि मैं अपने घर जाऊं. लेकिन यहां आ कर देखा उसको अपनाने जैसे हालात नहीं हैं. उसे बहुत चाव है कि वह इस घर में कदम रखे. एक बहू की हैसियत से. लेकिन मैं उसे समझाऊंगा कि यह बात अभी मुमकिन नहीं.

भीष्म ने ब्रीफ-केस खोला. दो साड़ियां निकालीं. कश्मीरी रेशम की साड़ियां. मुझे देता हुआ बोला——जानता नहीं मां स्वीकार करेगी कि नहीं. अनु को दे देना. और भीष्म ने मेरे पांव छुए और नर्म-नर्म पांव धरता हुआ निकल गया.

दिन चढ़ने लगा. मां का स्वर सुनाई दिया——आज सारी रात ड्योढ़ी खुली रही. समय कौन-सा है. अगर कोई घुस कर . . .मां मेरे कमरे में आ गयी.

—मां, भीष्म गया अभी! ड्योढ़ी अभी खुली है.

—क्या? मां का मुंह खुला रह गया. उसने दो-चार बार पलकें झपकीं. मैंने साड़ियां उठा कर उसकी ओर बढ़ायीं.——भीष्म दे गया है. एक तुम्हारे लिए, एक अनु के लिए.

मां ने साड़ियां थाम लीं. पर झट चारपाई पर फेंक दीं और पूछा——कब गया भीष्म?

—अभी! कोई आधा घंटा पहले.

मां बाहर की ओर भागी और ड्योढ़ी में खड़ी हो गयी. फिर गली में दायें-बायें देखती रही. □□□

(अनुवादक : सुरजीत)

५९, जैन बाजार (विजयगढ़) जम्मू-तवी

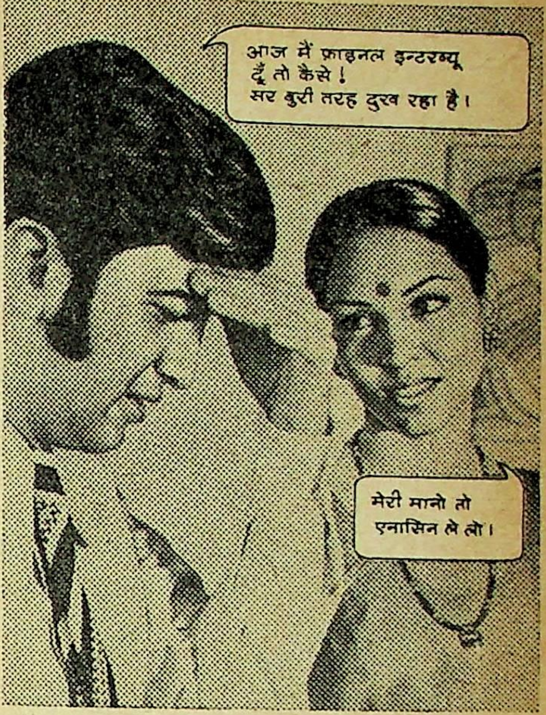
आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे ! सर बुरी तरह दुख रहा है ।
मेरी मानो तो एनासिन ले लो ।

जल्द आराम पाने के लिए
तेज़ असर
और विश्वसनीय
एनासिन लीजिए

तेज़ असर—एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय-एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन
भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा
A/2/8-74
Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

हजार हीले संगू ने किये कि आज भी उसका मन यह दे—चल, क्या है! सतनाम, राम-नाम कह कर छक ले. पर उसके भीतर से यह हुंकारा न आया. उसको बाबा मोदन सिंह के साथ भागीदार बने कितने महीने हो गये थे और पहले दिन से ही वह देख रहा था कि उसे रोटी सारे कुटुंब से अलग दी जाती थी. गरमियों में चना और सरदियों में बाजरा उस अकेले के लिए पिसवाया जाता. घर के सभी जीवों के लिए बारह महीने गेहूं के फुलके पकते थे. रोज संगू दांत पीसता. रोज ही उसका मन सलाह दे देता—चल, क्या है, राम-नाम कह कर खा ले. और वह नजरें झुका कर ग्रास गले के नीचे ढकेलने लगता. पर आज जब वह यह सलाह लेने के लिए अपने मन को मना रहा था, तो मन इनकार कर रहा था.

जिस दिन अपनी भागीदारी की बही पर गवाहों के सामने संगू ने दो शब्द ये भी लिखने को कहा था कि अचानक कोई आवश्यकता पड़ने पर उसे बीस-पच्चीस रुपये उधार मिल सकेंगे, बाबा मोदन सिंह ने हंस कर बात टाल दी थी—भागीदार घर का ही जीव होता है. अगर तुझे जरूरत पड़ेगी तो हम देंगे. पगले, लिखित कराने से क्या फायदा! गवाहों ने हां में हां मिला दी थी और संगू चुप हो गया था.

उसने एक-दो दिन में ही देख लिया था कि उसे घर का जीव नहीं समझा जा रहा था. आज जब बेहद बीमार पड़ी मां के इलाज के लिए उसने बीस रुपये मांगे थे, तो मोदन सिंह बिल्कुल मुकर गया था. वह कहता था कि वह भागीदार बनाते समय संगू को बहुत कुछ दे चुका था. जब संगू ने गवाहों के सामने कही गयी जबानी बात की याद दिलायी, तो मोदन सिंह ने यह कह कर मामला ही निबटा दिया कि वह बात तो अचानक आ पड़ने वाली आवश्यकता की थी और तेरी मां तो सदा की बीमार है!

संगू को क्रोध तो बहुत आया, पर उसने उसे दबा लिया. वह उसी तरह उद्विग्न-सा हल जोत कर खेत को चल दिया. उसने करनैल को आवाज भी न लगायी. बाद में आ कर जब करनैल काम पर लगा, तो संगू के जी में आया कि उसे बताये, कैसे उसके बाप ने उसकी बीमार पड़ी मां की दवाई के लिए पैसे उधार देने से इनकार कर दिया था. पर जो कुछ आज उसके दिल में दहक रहा था, इस शिकायत से वह ठंडा पड़ने वाला नहीं था.

चुपचाप संगू बैलों के पीछे चलता रहा. करनैल की ओर से एक-दो बार चुप्पी का कारण पूछे जाने पर भी वह हूं-हां करके टाल गया. अधिक क्रोध उसे इस बात का था कि मोदन सिंह के घर के लिए स्वयं संगू कैसे जी तोड़ कर अपने सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करता था, फिर भी उसकी कीमत बीस रुपये के उधार पाने लायक भी नहीं समझी जा रही थी.

साले सरदारियों के. . .! उसने मन-ही-मन में कहा और जीभ पर आयी कड़वाहट को बाहर थूक दिया.

रोटियां आने पर करनैल ने संगू की बाजरे की रोटियां उसके हाथ पर रख दीं और अपनी रोटियां चादर के छोर पर रख कर रोटी वाली को घर भेज दिया. उसे अभी अधिक भूख नहीं लगी थी. अपनी रोटियां लपेट कर उसने बेरी के साथ लटका दीं और दरांती, रस्सी और बैल ले कर अगले खेत से चारा लाने के लिए चला गया.

बोरे की रगड़

□ गुरबचन सिंह भुल्लर

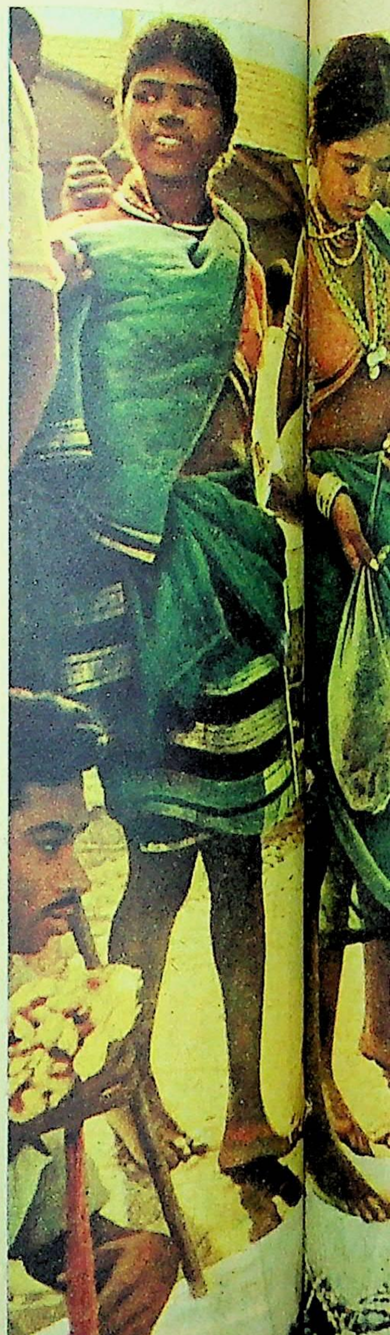

संगू के भीतर उठ रहा उबाल तीखा हो गया. उसकी छाती में जैसे कोई घूंसे मार रहा था. उसने उठ कर बेरी से करनैल की रोटियां उतार लीं. गेहूं के पतले-पतले फुलकों के बीच आलू-गोभी की मुनी हुई सब्जी रखी थी. एक पल के लिए उसके मुंह में पानी आ गया, पर आक्रोश से तवे की तरह तपती जीभ पर आ कर वह सूख गया. उसने अपनी झोली की ओर देखा—–बाजरे के मोटे-मोटे रोट और ऊपर पानी के छींटे दे कर रखा गया नमक-मिर्च. उसके भीतर से घृणा भरे क्रोध की अग्नि उठी, जो सीने से हो कर गरदन और सिर को सेंकती, शिवजी की गंगा की तरह बाहर निकल गयी.

. . .गेहूं के फुलके, जैसे रेशम का स्पर्श और बाजरे के रोट, जैसे बोरे की रगड़. . .

संगू सोच रहा था कि अब करे तो क्या करे.और फिर उसको एकाएक जैसे कोई बात सूझी. वह चुटकी बजा कर जल्दी से उठा. गेहूं के फुलके उसने बड़े बैल के सींगों में लटका दिये, बाजरे के रोट बछड़े के सींगों में और टिच-कारी मार कर उन्हें गांव के रास्ते पर हांक दिया.

[illegible] के सौजन्य से

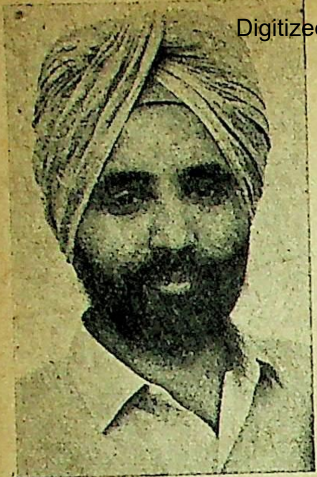

गुरबचनसिंह भुल्लर :
पंजाबी कथाकार

चौपाल में तख्तपोश पर बैठे लोग शतरंज खेल रहे थे, खेलते हुओं को देख रहे थे और बीच में बाबा मोदन सिंह भी था. संगू बैलों को चौपाल के सामने करके भीतर से सबको बुला लाया और बोला—देखो भई पंचो! आप मेरे मां-बाप! सभी लोग कहते हैं कि भागीदार बुरे होते हैं, मालिक को बेकार बदनाम करते हैं. मुझे काम करते छह महीने हो गये. सारे परिवार के लोग गेहूं के ये फुलके और सब्जी खाते हैं और मुझे मिलते हैं नमक-मिर्च लगे ये बाजरे के रोट. बही पर बराबर की रोटी की लिखित हुई है कि नहीं, बताओ मुझे, करो न्याय!

चारों ओर खामोशी छा गयी.

मोदन सिंह के सिर पर जैसे पानी के सौ घड़े पड़ गये थे, पर वह समय को संभालते हुए बोला—ओ भाई, रोज बराबर ही देते हैं. आज गेहूं का आटा थोड़ा रहा होगा. अगर आज बाजरे की रोटियां दे दीं, तो एक दिन में तुझे प्लेग तो नहीं हो गयी, ससुरे!

—आज क्यों, मैं गऊ की कसम खाता हूं, अगर इनके घर से कभी भी गेहूं की रोटी खायी हो!

—अरे, कोई बात नहीं, भई! घबराओ मत. बाजरा क्या बुरा है! सब अन्न भगवान के हैं. सतनाम, राम-नाम कह कर खा लो! बीच में से किसीने संगू को उपदेश दिया.

—सतनाम कह कर कैसे खा लूं? देखूं, इनका परिवार खा लिया करे, इस अन्न भगवान को. . .! संगू ने बाजरे की ठीकरी जैसी रोटियां सब के बीच फेंक दीं और गेहूं के फुलके बैलों के मुंह में दे कर उनको थपकियां देता हुआ, उन्हें घर के बाहरी हिस्से में बांधने चल दिया.

रास्ते में उसे लगा जैसे उसके शरीर पर बोरे जैसे खद्दर के स्थान पर रेशम पड़ गया हो. . .मुलायम रेशम. . .और वह मुसकरा दिया. . .!

—यूं ही साला पगला. . .! मन-ही मन खुश हो कर भीड़ में से अनेक ने कहा. बाबा मोदन सिंह को अपने अंदर समा जाने के लिए धरती जगह नहीं दे रही थी. उसने वहां से खिसकने में ही भलाई समझी. उसकी पीठ पीछे अनेक ने खुसर-फुसर की—करते तो ये साले पहले दिन से ही ऐसा हैं. . .अच्छी हुई आज इनकी. . .!

घर आ कर मोदन सिंह के जी में आया कि सारे कुटुंब को जी भर कर गालियां दे. पर कुटुंब का भी क्या कुसूर था? कितने ही वर्षों से वे भागीदारों के साथ इसी तरह करते आ रहे थे और किसीने आज तक जबान खोलने का साहस नहीं किया था. वह चुपचाप जा कर चौबारे में लेट गया. आज पहला अवसर था कि उसका अपमान गांव के सामने, भरी चौपाल में हुआ था और हुआ भी था एक 'कमीन', नीची जाति के आदमी द्वारा. और उसे अपने पचहत्तर-वर्षीय जीवन की कई बातें याद आयीं.

. . .एक साल देवा मजहबी उसके साथ भागीदार बना था. उसे बेहद ज्वर चढ़ा हुआ था. मोदन सिंह ने उसे हल जोतने के लिए कहा तो उसके इनकार के शब्द मुंह पर भी न आये थे कि मोदन सिंह के हाथ में जो छड़ी थी, उसके बदन पर बरसी और उसकी हड्डी टूट गयी. पर उसने कभी 'सी' तक नहीं की थी. . .

. . .उसके भागीदार चंदे का नया-नया विवाह हुआ था. फूलों वाला सूट और मुलम्मे वाले गहने पहन कर बिशनी आंगन की नांदों पर मिट्टी लगाने के लिए आयी तो वह मोदन सिंह को बहुत अच्छी लगी. उसने निर्णय किया कि मुफ्त में बिशनी कोई बुरी नहीं थी और वह उसे बांह से खींच कर तूड़ी वाले कमरे में ले गया. बाद में मोदन सिंह का दिल एक पल के लिए डावांडोल हो गया कि बिशनी कहीं चंदे को बता न दे. . .

शायद इस तरह उसके सदा यों मनमानी करने का ही फल था कि वह पचहत्तर की उम्र पार करने के बाद भी हृष्ट-पुष्ट लगता था.

पर आज उसे लग रहा था जैसे उसके प्राण किसीने उसके भीतर से अंजुली भर-भर कर पी लिये हों. एक बार उसे अपने आप पर भी क्रोध आया कि वह चौपाल में चुप करके ही सब कुछ क्यों सह गया! क्यों उसने संगू की गरदन नहीं पकड़ ली! पर फौरन ही अपने आप शांत हो गया—अब तो जमाना ही बदल गया है! अब ये कमीन, नीची जाति के लोग पहले जैसे कहां थे! . . .

वह खिन्न-सा पलंग पर लेटा था कि घरों के चक्कर लगा कर दोबारा इकट्ठे हुए शतरंज के खिलाड़ियों ने उसे बुलाने के लिए एक लड़के को भेज दिया. उसका जी किया कि इनकार कर दे और बस पलंग पर लेटा रहे. पर उसने सोचा, लोग हंसेंगे कि रोटी वाली बात से शर्मिंदा हो गया.

वह चौपाल की ओर जाने के लिए पलंग से खड़ा हुआ तो उसे लगा, जैसे बीमारी में कई हफ्ते पड़े रहने के बाद उठा हो. आगे बढ़ कर उसने खूंटी पर लटकी छड़ी उतारी. यह छड़ी पहले वह कहीं आते-जाते समय शौक के तौर पर पकड़ा करता था. अब उसने महसूस किया कि यह शौक की बजाय हर रोज के आसरे के तौर पर पकड़नी पड़ेगी. आज वह बूढ़ा हो गया था.

चौबारे की सीढ़ियां उतरते हुए उसे लगा कि संगू ने उसकी बनी-बनायी सरदारी का रेशम उतार कर अपमान के बोरे का खुरदरा पल्ला उसकी देह पर रगड़ दिया है. □□□

(अनुवाद : सुरजीत)

सोवियत दर्पण (पंजाबी),
बारहखंबा रोड, नयी दिल्ली.

सारिका

जून और
जुलाई १९७५ अंक

नवलेखन अंक--- एक तथा दो

आज की जिंदगी की सच्चाइयां, तल्खियां और आम आदमी की दारुण स्थितियां!

ये एकदम ताजा और नये लेखक क्या सोचते हैं?

जून तथा जुलाई अंकों में संकलित लेखक आरामदेह कमरों और प्राध्यापकीय प्रकोष्ठों में बैठ कर सोचने, समझने और लिखने के कायल नहीं हैं—बल्कि ये ऐसे लेखक हैं जो फैक्टरियों, मिलों, खदानों, दफ्तरों, ट्रांस्पोर्ट कंपनियों और ऐसी ही जगहों पर खुद खट रहे हैं और जो कुछ भी जी रहे हैं, उसी को अपने दौर का रचनात्मक अनुभव बना देने के लिए सन्नद्ध हैं.

इन अंकों की कहानियां मात्र यथार्थ अनुभवों की कहानियां ही नहीं हैं—अनुभवों का अर्थ भी इनमें निहित है।

जून १९७५ के लेखक:

प्रभुनाथ सिंह आजमी, अजय अग्रवाल, उषा व्यास छवि, श्रीकेशव, शैलाभ, सोमेश भरत, ज्ञान चतुर्वेदी, नरेंद्र मौर्य, अरुण मिश्र, सच्चिदानंद धूमकेतु, रामलगन यादव, नर्मदेश्वर, कृष्णकांत प्रवासी, मंदा पांडे, गौरीशंकर कपूर, सुरेंद्र सुकुमार.

स्थायी स्तंभ: पाठकीय, मेरा पन्ना, कबिरा खड़ा बजार में, लघुकथाएं, चंद सतरें और, मीनाकुमारी की डायरी आदि.

धर्म

□ मधुमंगेश कर्णिक

महारवाड़ी के चार लड़के चिलचिलाती धूप में तालाब की ओर जा रहे थे. एक के हाथ में पीतल की गहरी थाली थी और दूसरा कपड़े का एक टुकड़ा लिये हुए था. इसी अंतराल में पगडंडी से एक कुत्ता निकल कर उनके साथ हो लिया. और वे पांचों तेज-तेज कदम उठाते हुए आगे बढ़ने लगे. चलते-चलते भीका को कुछ याद आ गया. और वह बोला——गजा, मरदूद, तेरे मुंह में खाक. . .खली कहां है?

गजा तुरंत रुक गया. लंबे-लंबे नाखूनों से लंगोटी से बाहर निकले हुए कूल्हे खुजाता हुआ बोला——खली? वह तो घर ही पर रह गयी. . .अब?

——अब तेरा बाप! दौड़ कर जा और ले आ जल्दी.

गजा उन्हीं कदमों वापस मुड़ा और जी तोड़ कर दौड़ने लगा. साथ में चलता कुत्ता कुछ देर के लिए दुविधा में पड़ गया. गजा के साथ जाये या बाकी मंडली के साथ? उसने जबान बाहर निकाल कर सोचा. चार कदम वापसी के रास्ते पर चलने के बाद मुड़ा और शेष तीन लड़कों के साथ तालाब की ओर चलने लगा.

तालाब पर पहुंच कर वे सब एक पेड़ की छाया में शरण लेते हुए गजा की प्रतीक्षा करने लगे. पर भीका को चुपचाप बैठना न आता था. उसकी जबान मक्खी को उड़ाने के लिए चलने वाली भैंस की दुम की तरह किसी-न-किसी विषय पर बोलने के लिए कुलबुलाती रहती थी. इस समय भी उसके दिमाग में अचानक किसी खयाल ने सिर उभारा और बेचैन हो कर उसने बाबलिया से पूछा——बाबलिया, ये बौद्ध कहां के हैं रे?

——मुंबई के.

——ठीक . . .पर ये इतने दिनों तक कहां रहे?

——मुंबई में. वहां सबको बौद्ध बनाने के बाद हमारे वतन में आये हैं. . . यहां के महारों और चमारों को बौद्ध बनाने के लिए.

कुछ क्षण मौन में बीत गये. भीका को तसल्ली नहीं हुई थी. उसने बाबलिया से फिर प्रश्न किया——बौद्ध हो जाने से क्या फायदा है?

——क्या फायदा? मराठों और ब्राह्मणों की तरह पाक-साफ हो जाते हैं. मंदिर जा सकते हैं. फिर कोई महारों से नफरत नहीं करता. दूर नहीं भागता.

भीका को बात करने के लिए मैदान मिल गया था. अब इस विषय पर वह बहुत कुछ पूछ सकता था. मन-ही-मन प्रश्नों की तरतीब देते हुए उसने अंगूठा मुंह में रख लिया और तेजी से नाखून कुतरने लगा. लखिया ने सामने बैठे हुए कुत्ते की कनपटी से चिपकी चिचड़ी को तिनके से छेड़ने का प्रयत्न किया और बाबलिया ने उस रास्ते पर नजरें जमा दीं, जिधर से गजा आने वाला था.

थोड़ी ही देर में गजा हांफता हुआ उनके सामने आ खड़ा हुआ. उसके हाथ में मूंगफली की परतदार खली की पोटली-सी थी.

——शी. . .बहुत हैरान होना पड़ा. गजा लंबी-लंबी सांस लेता हुआ बोला.

——क्यों? क्या हुआ?

——खली का बोरा बाहर की पड़वी में था. सबकी आंख बचा कर खली चुराते हुए नाक में दम आ गया. फिर भी मां ने सटकते हुए देख ही लिया. मुझे!

गजा की लायी हुई खली दो ओक भर थी. बंधी हुई पोटली खोलते ही सीधी खुशबू फैलने लगी. गजा ने मुट्ठी भर खली निकाल कर चार-चार टुकड़े सबके हाथों में थमा दिये. कुत्ता मुंह उठा कर नथुने फुलाने लगा. महक सूंघने लगा. फिर ज्यों ही गजा ने खली का एक टुकड़ा उसके आगे डाला, झपट कर चट कर गया.

——भड़वा! खली भी खाता है! धीरे खा, धीरे!

——चलो, अब देर मत करो.

लखिया ने एक हाथ में थाली पकड़ी और भीका ने उस पर कपड़ा बांध दिया. जिस प्रकार पकवान के थाल पर सरपोश डाला जाता है, उसी प्रकार उस थाली पर कपड़ा डाल कर भीका ने पेंदे में मजबूत गिरह लगायी. फिर बीचो-बीच कपड़े में सूराख बना कर वह बोला——हां, अब उसमें थोड़ी-सी खली डाल.

गजा ने खली के टुकड़े उठा कर यों ही उस सूराख के अंदर डाल दिये. यह देख कर भीका आपे से बाहर होने लगा—— अरे बेवकूफ, ऐसी सूखी खली मछलियां खाती हैं क्या?

——न खाने को क्या हुआ?

——तेरा बाप! मरदूद, मछलियों के क्या बड़े-बड़े दांत होते हैं?

गजा ने कोई उत्तर देने की बजाय हाथ में पकड़ी हुई खली के टुकड़े भीका को थमा दिये. भीका ने तुरंत उन्हें मुंह में डाल कर जबड़ा चलाना शुरू कर दिया. अपनी पूरी शक्ति लगा कर वह उस खली के टुकड़ों को डाढ़ों तले कुचल रहा था. खली चबाते देख कर दूसरों के मुंह में पानी आ रहा था.

जब मुंह में रखी खली की लुगदी-सी बन गयी, तो भीका ने उसे हाथ पर उगल कर धीरे-से थाली में सरका दिया.——यह खली तो मुंह से निकाली ही नहीं जाती! साली रोटी से अधिक स्वादिष्ट लगती है!

——चुप रहो अब! मछलियां डर कर भाग जायेंगी.

किंतु चुप बैठे रहने को किसी का जी नहीं चाह रहा था. सामने तालाब में किनारे के पास उथले पानी में असंख्य छोटी-छोटी मछलियां घूम-फिर रहीं थीं. उनके रुपहले कल्ले धूप में और भी चमक रहे थे.

भीका ने आगे बढ़ कर हाथों में पकड़ी हुई थाली धीरे से पानी में ले जा कर रख दी. पानी में उसके कदम पड़ते ही मछलियां घबरा कर भाग गयीं. फिर खली की महक नथुनों में पहुंचते ही सब थाली पर पिल पड़ीं. भीका तेजी से मुड़ा और अन्य साथियों के पास किनारे पर बैठ कर अधीर नजरों से थाली का निरीक्षण करने लगा. टखनों भर पानी में नन्हीं-नन्हीं मछलियों का जमघट हो गया. एक-एक उंगली की मछलियों ने उथले पानी में तूफान मचा दिया.

—इस साल तालाब में मछली बहुत हो गयी हैं, क्यों?

—बहुत कहां है. . .हर साल ऐसी ही होती हैं. . . थोड़ी ही ज्यादा होंगी.

—बावलिया, मछलियां कपड़े के अंदर जायें, तब तक हम केंकड़े पकड़ेंगे. चलो. . .काली पीठ वाले केंकड़े.

यह खयाल सबके मन को भा गया. . .इस हंगामे में काली पीठ वाले मजेदार केकड़े जी भर पकड़े जा सकते थे.

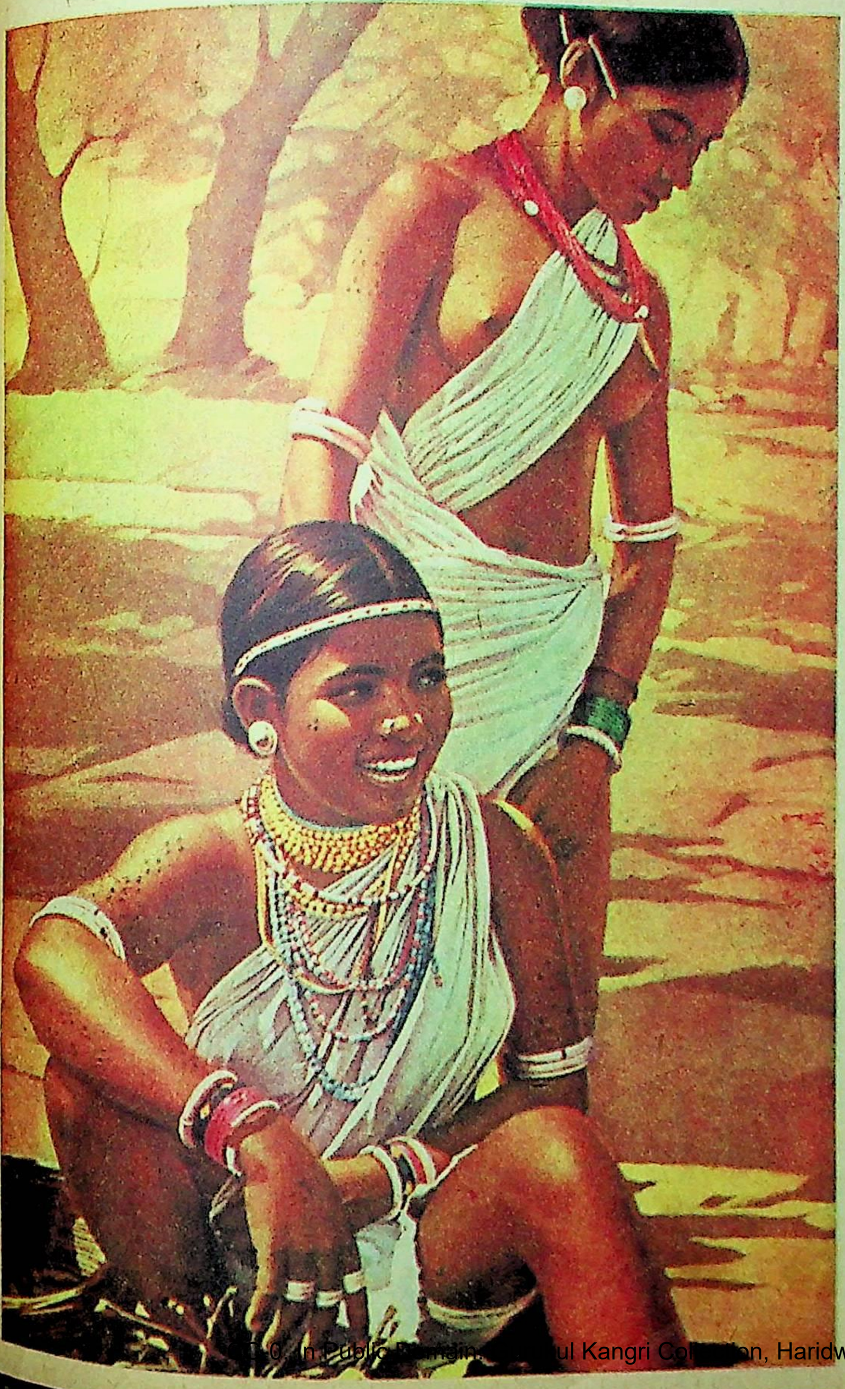

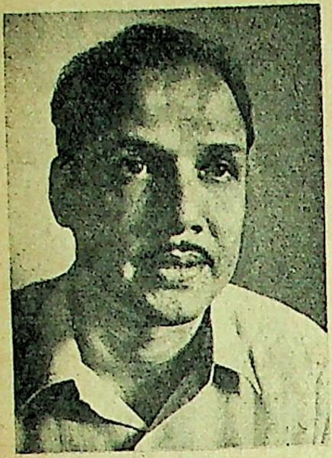

मधु मंगेश कर्णिक :
कोंकणी कहानीकार

—चलो. . .चलो.

चारों उठ खड़े हुए और तालाब की मेंड से परे बहने वाले नाले में पड़े पत्थरों को उलटने-पुलटने लगे. बायें हाथ से पत्थर उलट कर उसे दोनों टांगों के बीच में पकड़ा जाता और दायें हाथ से भागते हुए केंकड़े को बड़ी प्रवीणता से धर लिया जाता. पैर के अंगूठे से उसकी पीठ पर दबाव डाला जाये, तो वह अपनी जगह से हिल नहीं सकता. फिर उसके डंक-पैर तोड़ डाले जाते.

—गजा, मरदूद, मुझे दुधारू केंकड़ी मिली हैं !

—देखें. . .देखें.

सब बाबलिया को मिली हुई अजीब चीज देखने को दौड़ पड़े. दूध भरी केंकड़ी भाग्य से ही हाथ लगती है. जंगल में पांच पंखुड़ियों वाला 'बेंकुल' का फूल और पानी में दूध भरा केंकड़ा, ये चीजें कभी-कभी ही मिलती हैं. वह करौंदे के पत्ते के बराबर था. नरम मखमली शरीर के दूध जैसे, सफेद छोटे केंकड़े को हथेली पर रख कर बाबलिया सबको दिखा रहा था. कोमल शरीर का वह डरपोक केंकड़ा पानी से बाहर निकाले जाने पर डर के मारे अधमुआ हो कर घोंघे की तरह उसकी हथेली पर सिमिटा हुआ था.

--शाबाश रे बहादुर? भीका के मुंह में लबालब पानी भर आया.

—चल, इसके चार टुकड़े कर, देखें. खाते में कैसा लगता है.

बाबलिया ने उंगलियों के बीच में पकड़ कर उस जिंदा केंकड़े के चार टुकड़े कर डाले. उस समय उसके शरीर से सफेद रस की पिचकारियां-सी उठीं. बाबलिया की उंगलियां मानो दूध में नहा गयीं. चारों ने चार टुकड़े अपने-अपने मुंह में रख लिये.

—साली जबान को लगते ही गला तक तर हो गया !

—हुंह, चलो, मुंह का मजा तो बदला!

★ ★

दोबारा वे सब पत्थर उलटने में मग्न हो गये. काली पीठ वाले केंकड़े हाथ लगे. बाबलिया उंगलियां चाटता हुआ दूसरे दूध भरे केंकड़े की खोज में जुट गया.

इतने में मेंड पर से चल कर ब्राह्मणवाड़ी के कुछ लड़के तालाब पर नहाने के इरादे से आ धमके. नाडकर्णियों का सुरेश सबके आगे था. महारों के लड़कों को केंकड़े पकड़ते देख कर उसे विस्मय हुआ. वह बोला—ओ बाबलिया , अब तुम लोगों के लिए मछलियां और केंकड़े खाना क्या जायज हो सकता है? तुम बौद्ध हो गये हो न ?

--बौद्ध किसे कहते हैं, जानते हो तुम लोग? सुरेश के एक साथी नें पूछा.

--मरदूद, अब तुम दोबारा धर्म-भ्रष्ट हो गये फिर से महार बन गये मछलियां मारने के बाद. . .! सुरेश ने परिणाम से अवगत किया.

महारों के लड़के अपना मनोविनोद छोड़ कर खड़े-के-खड़े रह गये. उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि ब्राह्मणवाड़ी के लड़कों को क्या उत्तर दिया जाये. आखिर भीका बोला --अरे बाबा, वह सब बातें हमसे मत पूछो. हमारी समझ में कुछ नहीं आता. जो चाहता हो तो तुम भी आ कर हमारे साथ केंकड़े पकड़ो. आओ, हम मदद करते हैं तुम लोगों की.

ब्राह्मणों के बच्चे अपनी कही हुई बातों को भूल कर नहर में कूद पड़े. महार यदि उन्हें केंकड़े पकड़ कर दे तो इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी! वो बड़े डंक रखने वाले केंकड़े पकड़ने में महारों का मुकाबला कौन कर सकता था !

बाबलिया , बड़े डंक वाला केंकड़ा पकड़ देगा, तो तुझे दस पैसे दूंगा. सुरेश ने जेब से एक सिक्का निकालते हुए कहा.

—आ जा. देखते हैं. क्या होता है.

सब मिल कर फिर पत्थर उलटने-पुलटने में मग्न हो गये. बाबलिया और भीका सबके आगे और ब्राह्मणों के लड़के उनके पीछे-पीछे. सुरेश भीका को मिलने वाले केंकड़े के अगले दो डंक उसीसे तुड़वा रहा था. सहसा किसी की नजर सामने घास के मैदान पर पड़ी.

—कौन आ रहे हैं रे उधर ?

सबने गरदनें ऊंची करके उस ओर देखा. इतनी दूर से किसीको पहचानना कठिन था. थोड़ी ही देर में आदमियों की एक कतार तालाब के किनारे गहरी खाई में उतर पड़ी और सभी आसानी से पहचान लिये गये. सबके आगे सोमनाथ महार था और उसके पीछे महारवाड़ी के सभी मर्द चल रहे थे. . .शिवनाक, मोनिया, भागिया, यशनाक, रोगिया, आदि. उन्हें महारवाड़ी में रात को बुलायी गयी सभा याद आयी और साथ ही बंबई से आये हुए मेहमानों के भाषण भी. मंत्र और प्रतिज्ञाएं याद आयीं और रात को जलसे में किया गया फैसला उनके मस्तिष्क में गूंजा.

सारे महार - लड़के अपने ब्राह्मण मित्रों को वहीं छोड़ कर जिधर सींग समाये, भागने लगे. सहसा गजा को सामने मडहेशी के पेड पर चढ़ने का खयाल आया और फिर सभी ने उसका अनुसरण किया. देखते-ही-देखते चारों लड़के आसपास के पेड़ों की घनी टहनियों में

हो गये. महारों ने अपने साथ लायी हुई देवताओं की मूर्तियां पानी में डुबो दीं. बंबई से आये हुए कार्यकर्त्ताओं के जिम्मे यह आखिरी कर्तव्य बाकी रह गया था. महारवाड़ी में धर्म-परिवर्तन की रस्म कल सम्पन्न हो चुकी थी. अब प्रत्येक घर से पुरानी मूर्तियों के हटा दिये जाने पर धर्मांतर पूर्ण हो जाने वाला था. प्रत्येक महार अपने घर से मूर्ति को कपड़े में लपेट कर लाया था. किसी के यहां मंत्र-फुंका नारियल था, तो किसी के घर दत्तात्रय की तसवीर की पूजा की जाती थी. अब ये सारे देवी-देवता घर के बाहर निकाले जा चुके थे और सबके घरों के देव-स्थान और पूजा के कमरे उनसे खाली हो चुके थे.

★ ★

यशनाक अपनी मूर्तियां पानी में छोड़ कर वापस मुड़ने लगा, तो उसकी नजर उस थाली पर पड़ी, जिसमें मछलियों ने ऊधम मचा रखा था. उसके कदम पानी में थम गये. किनारे खड़े महारों की ओर देखे बिना उसने झट से नीचे झुकते हुए थाली पर हाथ रख दिया. कपड़े के सूराख से मछलियां थाली में भर चुकी थीं. यहां तक कि किसीको बाहर निकलने के लिए रास्ता तक मिलना कठिन था. कपड़ा फड़फड़ाने लगा था और जिंदा मछलियां अंदर तड़प रही थीं. यशनाक ने थाली उठा ली और उसे हाथों पर तोलता हुआ बोला—यह थाली पहचानी-सी लगती है. अरे, यह तो हमारे यहां की थाली है. . .यहां कैसे आयी. . . एं? उसने किनारे खड़ी मंडली की ओर देखा. बंबई के मेहमानों को छोड़ कर उसके सारे भाई-बंधु उसे उद्विग्न नजरों से घूर रहे थे. यशनाक कुछ देर के लिए गड़बड़ा गया. हठात उसकी नज़र बंबई के मेहमानों पर पड़ी, तो वह होश में आ गया. सफेद कपड़े पहने हुए सभी मेहमान मुंह ही मुंह में बुदबुदा रहे थे. बुद्धम् शरणम् गच्छामि. . .

यशनाक ने खुश्क होठों पर गीली जबान फेरी, मछलियों से लबालब भरी हुई थाली पर बंधा कपड़ा खोला और सारी मछलियां ज्यों-की-त्यों पानी में वापस छोड़ दीं.

—मछलियां थीं भरपूर. . .खैर, जाने दो. . . जैसी आप लोगों की इच्छा! धीमी आवाज में वह बोला और धोती से थाली पोंछता हुआ किनारे पर आ गया. बंबई के मेहमनों के मुंह से एक बार फिर निकला—बुद्धम् शरणम् गच्छामि. .

उनके पीछे चलने वाले सब लोग उसका पाठ-सा करने लगे. फिर उनका जुलूस दोपहर की तेज धूप में गांव की ओर चल पड़ा.

★ ★

इतनी देर तक पेड़ों के पत्तों में छुप कर बैठे हुए महारों के लड़के नीचे उतरे पड़े. वे आपस में जोर-जोर से बातें करने लगे.—साले! ये बौद्ध इस समय कैसे आ गये!

—अपने भाग्य, और क्या!

—गजा, खली का टुकड़ा हो, तो दे नाखून बराबर बहुत भूख लग रही है. मौत आये उन मछलियों की! बाबलिया ने उकता कर कहा. गजा की खली कभी की खत्म हो चुकी थी. उसने कोई उत्तर नहीं दिया. उसे बहुत गुस्सा आ रहा था. थाली में खलबली मचा देने वाली मछलियों की याद उसके मुंह में पानी ला रही थी और इसका इलाज उसे नहीं सूझ रहा था. फिर उसने अपने पैरों के पास पड़ा एक पत्थर उठाया और तालाब के पानी में टांगें फैला कर तैरती एक मेंढ़की को निशाना बना कर उछाल दिया. पानी में मौजूद सारे मेंढ़कों ने डुबकियां लगा लीं और किनारे पर सुस्ताते हुए मेंढ़क भी क्रमश: पानी में कूद पड़े.

—धत् तेरे की! हरामजादे मेंढ़क! देखा, कैसे भागते हैं! बाबलिया ने बड़बड़ाते हुए एक और पत्थर उठा कर फेंका.

फिर सुरेश से भी न रहा गया. उसकी तबीयत भी लहरायी. हाथ में थामा हुआ छोटा-सा केंकड़ा पत्तों में लपेट कर उसने सावधानी से जेब में रखा और तेजी से पत्थर इकट्ठे किये. भरी दोपहर में फिर पानी पर रोटियां बनाने का खेल खूब जमने लगा. □□□

(अनुवाद : सुरजीत)

विद्यार्थियों के दहकते अनुभव

● बंसी भालेराव

जिला परभणी, तालुका गंगाखेड में माखणी मेरा गांव है. मैं दीवाली की छुट्टियों में घर गया हुआ था और यों ही अपने मित्र शेष राव बरड के खेत पर चला गया था. वहां मरगीलवाड़ी के कोई कुलीन सज्जन हाथ में रोटी रख कर नाश्ता कर रहे थे. धोखे से मेरा उनसे स्पर्श हो गया. उन्होंने पूछा. . . यह कौन है? शेषराव ने उत्तर दिया, महार का लड़का है. बस मरगलीकर मेरी ओर देख कर बोला—क्यों बे महार के बच्चे मुझे छुआ क्यों? मैं खाना खा रहा था न! क्या दिखाई नहीं देता? मेरी रोटी खराब कर दी. चल हट एक तरफ. अरे, तेरी यह होशियारी इस गांव में नहीं चलेगी. मेरा खून खौल उठा. वह मेरे ऊपर लपका. मैं तैयार था, पर बात वहीं दब गयी.

किसन राव बरड गांव का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है. उसके घरवालों का मुझ पर पूरा विश्वास है. मैं बेझिझक उनके घर जा सकता था. उन्होंने कभी भी 'महार' कह कर मेरा अपमान किया हो, मेरी याद में नहीं आता. उनके निमंत्रण पर मैं उनके यहां खाने-पीने को भी जाता था पर दूर बैठ कर ही खाता-पीता था, एक फुट दूर से दिया गया पानी पिया करता था. परंतु अज्ञानावस्था के ये बंधन अब सहन न हो सकने के कारण उनसे बंधना मैंने अस्वीकार कर दिया. □□□

एक रिपोर्ताज

अकालग्रस्त दलित

□ अरुणा लोखंडे

महाराष्ट्र भर में कोहराम मचाने वाले अकाल की प्रतिध्वनि कहां-कहां नहीं गूंजी! शायद ही कोई जिला और तालुका अकाल की बीभत्सता से बचा हो, लेकिन मराठवाड़ा की हालत खासतौर से खराब रही. अपने विकराल जबड़ों को कुछ ज्यादा ही फैला कर अकाल ने मराठवाड़ा के कितने ही गांवों को लील लिया. गांव वीरान हो गये. गांवों में बचे हुए कुछ बूढ़े अपाहिज इस क्षीण-सी उम्मीद में जी रहे थे कि शायद मौत के पहले एक शाम भरपेट खाना उन्हें मिल जाये. जी रहे थे, क्योंकि मौत आ नहीं रही थी. जीने के अतिरिक्त चारा भी क्या था! फिर जीवन कीड़े-मकोड़े जैसा भी तो नहीं है कि मसला और खत्म हो गया. ऐसी दारुण परिस्थिति में लड़का एक गांव में अकाल-कार्य में लगा हुआ है, तो उसकी बहू कहीं दूसरी जगह भीख मांग कर पेट भर रही होगी. इन सबकी भेंट कहां कैसे होगी, यह तो प्रारब्ध ही जाने.

पलामू गांव की बूढ़ी कोसाबाई ने आंखों में पानी भर कर कहा—मैं छह दिन से भूखी हूं. मैं तो भूखी रह सकती हूं, पर अपने तीन नन्हें-नन्हें पोते-पोतियों की भूख कैसे बरदाश्त करूं? थोड़े-से जौ के आटे में ढेर सारे पत्ते मिला कर बनायी एक रोटी में से किस-किसको दूं?

तुक्या नवबौद्ध और उसकी पत्नी ने रात-दिन कष्ट उठा कर १५० गाड़ी गोबर-खाद इकट्ठी की थी. भगवान ने पानी बरसा दिया, तो इस खाद की मांग बहुत अधिक होगी, इसी उम्मीद में वह अपनी सारी मेहनत भूल गया. पर इतनी मात्रा में गोबर-खाद देख कर गांव वाले ईर्ष्या से भर उठे. उन्होंने तय किया, तुक्या से गोबर-खाद नहीं लेंगे, किसी दूसरी जगह से खाद खरीद लेंगे. अपने आसपास के गांवों के भाई-बंधुओं को भी कह देंगे कि वे तुक्या से खाद न खरीदें. फिर देखते हैं कि तुक्या को पैसा कैसे मिलता है! इस बात पर सभी एकमत हो गये. और खाद वैसी-की-वैसी ही पड़ी रही. बाद में वह सरपंच ने जब्त कर ली. कारण, तुक्या ने खाद रखने के लिए जगह का अनुमति-पत्र नहीं लिया था, हालांकि सच तो यह है कि तुक्या ने सरपंच से पूछने के बाद ही उस जगह खाद जमा की थी. जब्त होने की वजह से तुक्या उस खाद को हाथ भी नहीं लगा सकता था. इधर अकाल में वह हाथ-पर-हाथ धरे भी नहीं बैठा रह सकता था. उसने सामान बांधा और मजूरी की तलाश में औरंगाबाद चला गया.

जालना तालुके के दुधना गांव में रहने वाले तुलसीराम को इस अकाल में जितना काम मिला, जातिवाद से ग्रस्त गांव वालों ने उसको उतना ही नुकसान पहुंचाया. पाटिल ने नल-योजना हाथ में ली. उसने तुलसीराम बौद्ध को कार्यकुशल और विश्वासपात्र समझ कर इस योजना का मुकादम बना दिया. काम शुरू हुआ. पास के एक कुएं में सुरंग लगा कर भरपूर पानी निकाला गया. तुलसीराम ने सोचा, इस पानी का किसी तरह से उपयोग करना चाहिए. उसने अपनी योजना पाटिल को बतायी. पाटिल तुरंत भांप गया कि तुलसीराम की योजना को कार्यान्वित करने से फायदा-ही-फायदा होगा. उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया. तय हुआ कि दुधना नदी के पास तरबूज की और इधर-उधर फलों की बाड़ी लगायी जाये. लाभ में दोनों का हिस्सा बराबर रहेगा. नल-योजना से भी इसकी अनुमति मिल गयी. तुलसीराम ने भरपूर मेहनत की. उसने अपने स्कूल जाने वाले बच्चे से भी काम कराने में कोताही न बरती. उस बच्चे का स्कूल छूट गया. पानी और तुलसीराम की मेहनत के फलस्वरूप तरबूजों की हरी-भरी बेलें दिखने लगीं. उनमें फल आने लगे. गांव वालों को एक फूटी आंखों नहीं सुहाया. उन्होंने रात में अपने मवेशी फलों की बाड़ी में छोड़ दिये. तुलसीराम सिहर उठा. उसने पाटिल को सारी हकीकत बतायी. पाटिल मूंछों ही मूंछों में हंसा और तुलसीराम से बोला—महार के बच्चे बड़ी योजना सोच कर पैसा बनाने की सोचता है! हमें तो इसी बस्ती में रहना है. चलता बन! नल-योजना के मालिक से कह कर उसने कुएं का पानी बंद करवा दिया. पानी के अभाव में मवेशियों के खुरों से रौंदी-कुचली फलों की बाड़ी सूख कर रह गयी. तुलसीराम की आंखों में सागर जरूर लहरा आया.

जब मैं चौका गांव में अकाल-संबंधी जानकारी एकत्र करने गयी, तो वहां बौद्ध स्त्रियों ने अकाल-कार्य पर अलग-अलग जातियों के लोगों के व्यवहार के बारे में अनुभव सुनाये. मुसलिम स्त्री-पुरुष हमारे साथ ढंग से पेश आते थे, ढंग से बात करते थे, पर कुनबी-मरहाठी तो हमारी छाया तक पसंद नहीं करते थे. बाल-बच्चों की झोली भी यदि किसी पेड़ पर बांधने लगते, तो भी वे लोग आपत्ति करते. उनमें से चेंबीबाई ने कहा—अगर किसी भले मुकादम ने हमारे बच्चे को पानी पिलाने का काम दिया, तो ये लोग उस पर शोर करते और मुसलिम बच्चे को पानी पिलाने को कहते. हम लोगों की जाति से तो एक घर से एक आदमी को ही काम पर रखते हैं, पर उनके बच्चों-लड़कों को काम दे कर आठ आना मजूरी अलग से देते हैं.

वड़ गांव की ६५-वर्षीया बायजाबाई ने कहा—नसीब की कहानी क्या कहूं, बहन! हमारे लिए तो बारहों महीने ही अकाल रहता है! अकाल का यह तेरहवां महीना समझ लो. पेट की भूख मिटाने के लिए मेरी बड़ी बहू ने किसी तरह से पत्ते उबाले और पेट भर कर खा गयी. उसे नींद तो तुरंत आ गयी, पर जब उसे होश आया तो वह पागलों की तरह बकने लगी थी. उसे न अपने कपड़ों की सुधि थी और न ही बाल-बच्चों की. उसका पति जैसे-तैसे घर-परिवार का भरण-पोषण करने लगा. उसने अपने

मां बायजाबाई से कहा—तू अब मेरे पास मत रह. अपने छोटे लड़के के पास जा. मुझसे अपना ही पेट नहीं भरता, तेरे लिए इतनी रोटियां कहां से लाऊं? बायजाबाई छोटे लड़के के पास चली गयी, परंतु स्थिति वहां भी अच्छी नहीं थी. छोटी बहू ने तो उसे घर में ही नहीं लिया. उसका तर्क था—इस अकाल के कारण चार महीने से खाली बैठी हूं. मेरे छोटे बच्चे तक के लिए खाने को नहीं है. फिर तेरा बोझ कैसे संभालूं?

निमगांव तालुका के एक गांव में बौद्ध स्त्रियों ने एकाएक अपनी बात नहीं बतायी. उनका खयाल था कि किसी सरकारी काम से आयी हुई बाई है, आंकड़े इकट्ठे करने आयी है. वे मुझे टालने लगीं. मैंने उन्हें बताया कि मैं तुममें से ही एक हूं और यह जानने आयी हूं कि अकाल-कार्यों में तुम्हें कितना और कैसा काम मिला है. इसके बाद तो उन्होंने मुझे अपने पास बिठा लिया. उनमें से एक प्रौढ़ा शेवंताबाई सारी स्थिति बताने लगी. उसने बताया—हमें यह जान कर बहुत खुशी हुई थी कि इस बार अकाल के दिनों में काम मिलेगा, क्योंकि खेत पर तो हर घर से सिर्फ एक आदमी को काम मिलता था और मजूरी के मिलते थे सिर्फ आठ आने, इसलिए यह उम्मीद बंधी थी कि कम-से-कम अकाल के दिनों में तो सुबह-शाम चूल्हा जलेगा. घर के सभी लोग अकाल-कार्य में लग गये. मुकादम ने नाम लिख लिये. हाजिरी ली. पर जब मजदूरी देने की बारी आयी तो बच्चों को कुछ भी नहीं दिया गया. मुकादम ने डांट-डपट कर कम मजूरी हाथ में पकड़ा दी. साथ ही उसने धमकी भी दी कि ज्यादा बड़बड़ करोगी, तो कल से काम बंद कर दिया जायेगा. उसकी ताकीद थी कि बच्चों-लड़कों को भी काम करना चाहिए. मजबूरन हम नन्हें-नन्हे बच्चों को पीठ पर बांध कर काम करती हैं!

जितना कुछ मैंने वहां देखा, उसमें एक विशेष बात यह भी है कि अकाल की परिस्थिति में भी जाति-भेद का पालन किया जाता है. वहां मजूरी कर रहे लोगों को भूखे रहना गवारा था, पर महारों का छुआ अन्न खाना नागवार था. अपने नाम के साथ महार जोड़ने वाला कोई एकाध लड़का यदि अकाल-कार्य के अंतर्गत अन्न बांटने का काम पा जाता, तो दूसरी जातियों के लोगों को यह बरदाश्त नहीं होता. वह लड़का कितना ही क्यों न कहे कि न तो यह अन्न मेरे घर का है और न ही बरतन मेरे हैं, पर उसका यह सब कहना व्यर्थ ही रहा और लोगों ने उसका छुआ भोजन लेने से साफ इनकार कर दिया.

कहा जाता है कि इस अकाल में शहरों के महिला-मंडलों ने भी राहत-कार्य किया. पर मध्यवर्गीय स्त्रियों में स्पृश्य-अस्पृश्य की भावना और भी तीव्र होती है. गांवों में बाल सदन खोले गये. अखबारों में नाम छपाने के लिए मध्यवर्गीय महिलाओं ने इन बाल सदनों में बच्चों के मनोरंजन, उनको पढ़ाने-सिखाने का जिम्मा ले लिया. अकाल के काम पर आने वाले कुनबी, साली, मुसलिम, मराठा बच्चों को पढ़ाने तक तो बात ठीक रही, पर उनमें कुछ महार बच्चे भी थे. शारदाबाई ने एक उपाय सोचा. उन्होंने महार बच्चों से कहा—यह बाल सदन तुम्हारे घर से बहुत दूर है. रास्ते में झाड़-झंखाड़ भी बहुत हैं. मैं तुम्हारे ही मोहल्ले में आ कर तुम्हें पढ़ा दूंगी. दूसरी जातियों के लोगों को भी यह बात ठीक लगी. वह महारवाड़े (महारों की बस्ती) में जा कर बच्चों को पढ़ाने लगीं, पर इस बात का ध्यान रखतीं कि किसी महार बच्चे से वह छू न जायें. महार बच्चे की पाटी पर सही लिखा हुआ है या गलत, यह भी वह दूर से ही देखतीं. यदि कोई बच्चा पास आता, तो वह पीछे खिसकने लगतीं और झिड़कती हुई कहतीं—अरे, वहां से ही कह, तुझे क्या कहना है? एक दिन महार स्त्रियों ने यह सब देखा और अच्छी-खासी झाड़ बतायी— ऐ बाई, तू बच्चों को दूर दूर रहने को कहती है, तो फिर क्यों आयी हमारे महारवाड़े में? क्या तुझे हम बुलाने गये थे?

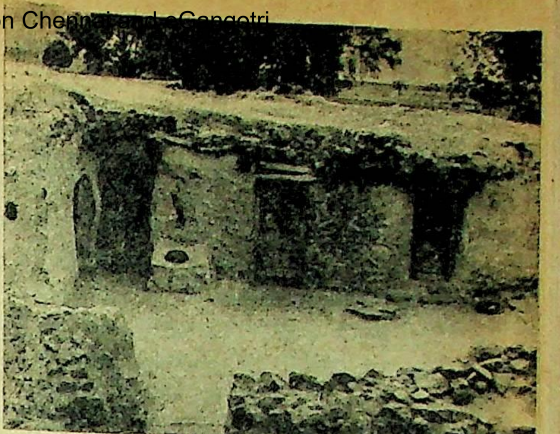

अकाल में लोग अपने घरों को छोड़ कर चले गये

औसत ढोर-मवेशी वाला किसान-वर्ग इस अकाल में हौल-दिल रह गया. कितनों ने तो अपने लाडले मवेशी छोड़ दिये. भूसा मिलता नहीं, मिलता भी तो उसे खरीदने की ताकत नहीं. बेतहाशा बढ़ी हुई कीमतें! कितनों ने सीने पर पत्थर रख कर भूसे की कीमत के बदले अपने मवेशी ही कसाइयों को बेच दिये. जो थोड़ा-बहुत पैसा मिला भी, उसे साहूकार ले भागे. अकाल के काम में जब मजदूरी मिलती, तब अनाज नहीं मिलता. और जब अनाज उपलब्ध होता, तब अकाल-कार्य में हाजिरी नहीं लगती. कैसी विषम परिस्थिति!

इस अकाल ने बहुत कुछ सिखाया. दरिद्रता से जूझने की मानवीय वृत्ति. बंगाल में अकाल पड़ा, तब मनुष्य पशु बन गया था. मनुष्य अन्न बिना, पानी बिना प्राण दे रहे थे. तब कुत्ते मनुष्य की लाश को फाड़ कर खा रहे थे. ऐसा महाराष्ट्र में नहीं हुआ. पर कहीं-कहीं अकाल-कार्य में लगे लोगों की निरीहता का फायदा उठाया गया. जिन लोगों के लिए हर दिन अकाल सरीखा है, उनको इस अकाल के तले भी खास राहत नहीं मिली. चार दिन सुख से बीतेंगे, इस कल्पना से उनके मन को संतोष हुआ. पर यह संतोष भी हवा के एक झोंके की तरह आ कर चला जाने वाला था. जीवन के अनेक शाश्वत प्रश्नों की गांठ खोलने का काम यह अकाल नहीं कर सका. सामाजिक रोग का समाधान करने का प्रयत्न धूमिल रहा. यदि उद्देश्यपूर्ण ढंग से यह प्रयत्न होता, तो क्या महाराष्ट्र की एक अलग निराली छवि नहीं बनती? □□□

(अनुवाद : उषा मंत्री)

पौराणिक काल और शूद्र

शूद्रोत्पत्ति और स्वभाव

पहले वर्णों में कोई अंतर नहीं था, ब्रह्माजी से उत्पन्न होने के कारण यह सारा जगत् ब्राह्मण ही था. जो अपने ब्राह्मणोचित धर्म का परित्याग करके. . .शुचि और सदाचार से भ्रष्ट हो कर हिंसा और असत्य के प्रेमी हो गये, लोभवश व्याधों के समान सभी तरह के निंद्य कर्म करके जीविका चलाने लगे और इसीलिए जिनके शरीर का रंग काला पड़ गया वे ब्राह्मण शूद्र भाव को प्राप्त हो गये. (महाभारत शांतिपर्व १८८।१०।१३) लोभ विशेष के कारण शूद्र अज्ञान भाव को प्राप्त हुए—वेदाध्ययन के अनधिकारी हो गये. (शा. प. १८८।१०।१५)

● दास्यु मनुष्यों, देवताओं गंधर्वों अथवा पितरों में से किसी का आत्मीय नहीं होता. यही कहना ठीक होगा कि वह किसी का भी नहीं होता. वह तो मरघट में जा कर मृत शरीर से वस्त्र आदि उतार लाता है और देवता की संपत्ति भी लूट लेता है. जिनकी बुद्धि मारी गयी है वे ही उस पर विश्वास करते हैं. (महाभारत; शांतिपर्व २६७।२१।२२)

● ऋषियों ने मृत राजा वेन की जांघ को बड़े जोर से मथा तो उसमें से एक बौना पुरुष उत्पन्न हुआ. वह कौए के समान काला था. उसके सभी अंग और खास कर भुजाएं बहुत छोटी थीं, जबड़े बहुत बड़े, टांगें छोटी, नाक चपटी, नेत्र लाल और केश तांबे के रंग के समान थे.

उसने बड़ी दीनता और नम्रभाव से पूछा—मैं क्या करूं? ऋषियों ने कहा—निषीद तू बैठ जा!

इसीसे वह निषाद कहलाया. उसने जल लेते ही राजा वेन के भयंकर पापों को अपने ऊपर ले लिया, इसीलिए उसके वंशधर नैषाद अथवा निषाद भी हिंसा, लूट-पाट आदि पाप कर्मों में रत रहते हैं; अतः गांव और नगर में न टिक कर वन और पर्वतों में ही निवास करते हैं. (श्रीमद्भागवत ४।१४।४३–४६)

● चांडाल को गांव के बाहर रहना चाहिए. विष्णुस्मृति १६।४)

● चांडाल को गांव के बाहर, चैत्य वृक्ष के नीचे, श्मशान में, पहाड़ी दर्रों में रहना चाहिए. मुर्दों के वस्त्रों, फूटे बरतनों और लोहे के आभूषणों का उपयोग करना चाहिए. (मनुस्मृति १०–५०)

● अनिरवसित शूद्र वे हैं जिनके द्वारा उपयोग किये गये बरतनों को आग में डाल कर शुद्ध किया जाता है. (पाणिनी अष्टाध्यायी २।४।१०) ☐

नारद पुराण और शूद्र

जो ब्राह्मण शूद्रों का दिया हुआ अन्न खाता है और शूद्रों का दाहकर्म करवाता है वह महापाप का भागी बनता है. (१२।१२)

● भोजन करते अथवा अशौच (मल-मूत्र विसर्जन करते हुए) में शूद्र का स्पर्श हो जाये तो त्रिवर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को प्रायश्चित करना चाहिए. मल-मूत्र के त्याग के समय द्विजवर्ण का चांडाल से स्पर्श हो जाये तो तीन रात तक उपवास करे. भोजन करते समय छू जाये तो छह रात तक उपवास करे. रजस्वला अथवा प्रसूता का अन्त्यज से स्पर्श हो जाये तो तीन रात के बाद ही वह शुद्ध होती है. (१४।१०–१२)

● अनजाने में भी चांडाल का अन्न खाले तो पंद्रह दिन तक गोमूत्र में पकाये हुए जौ का भोजन करने से शुद्धि होती है. (१४।२५)

● कोपालिका-अन्त्यजों की एक विशेष जाति का अन्न खाने से, उनकी स्त्री के साथ गमन करने पर तप्तकृच्छ व्रत करके और तेल का होम करने पर ही ब्राह्मण की शुद्धि होती है. (१४।२८–२९)

● धोबी, चमार, नट, बुखड़, कैवर्त्त, भेद और भिल्ल इन सातों को स्मृतिकारों ने अन्त्यज माना है. जो द्विज भूल से भी इन अन्त्यजों का अन्न खा लेता है अथवा इनकी स्त्रियों से गमन करता है या इनके यहां जलपान कर लेता है या इन जातियों से दान लेता है उसकी शुद्धि पाराशर स्मृति में बताये अर्धकृच्छ व्रत करने पर ही होती है. (१४।३२–३४)

● जो विप्र शूद्र के यहां से बुलावा आने पर उसके यहां भोजन कर लेता है उसे सुरापायी ही समझना चाहिए और ऐसे ब्राह्मण को कभी भी किसी धार्मिक कृत्य करने का अधिकार नहीं देना चाहिए. जो शूद्र की आज्ञा से पुण्य कर्म करता है उस नराधम को भी सुरापान के ही समान पाप लगता है. (१५।३२–३४)

● शूद्र की स्त्री से गमन करने वालों की, शूद्रान्न से पुष्ट शरीर वालों की तो निष्कृति कहीं पर है ही नहीं. (१५।४९)

● जो कोई गौ, अग्नि और ब्राह्मणों के लिए यह कहता है कि इनको कुछ भी मत दो, इनको देने से क्या होता है वह एक सौ जन्मों तक कुत्ते की योनि को भोगता और उसके बाद चांडाल होता है. (१५।६२)

● जो स्त्रियों और शूद्रों के सम्मुख वेदाध्ययन करता है वह ब्रह्मा के एक दिव्य वर्ष पर्यंत नीचे की ओर मस्तक और ऊपर की ओर टांगें करके दो खम्भों के बीच कीलें ठोक कर लटका दिया जाता है और उसे नीचे का धुआं पीना पड़ता है. (१५।१००) ☐

स्कंद पुराण

शूद्र, श्वपच (चांडाल) और अधम लोग पिछले जन्मों के संस्कार के ही कारण पापियों की वर्तमान योनियों में उत्पन्न हुए हैं. (१२।३३)

मार्कंडेय पुराण

गर्भपात में ब्राह्मणों के यहां एक दिन-रात में, क्षत्रियों के यहां तीन दिन-रात में, वैश्यों के यहां छह दिन-रात में और शूद्रों के यहां बारह दिन-रात में शुद्धि होती है. (३२।८३)

हरिवंश पुराण

शूद्रों का काम है तीनों वर्णों की सेवा करना (२०।१३५)

श्रीमद्भागवत पुराण

शूद्र का धर्म है द्विजातियों की सेवा. उसकी जीविका का निर्वाह उसका स्वामी करता है (१७।११।१५)

भविष्य पुराण

शूद्र बहुत ही हीन होते हैं. (१।३७) ☐

शूद्र तपस्वी शंबूक का वध और रामराज्य

भाइयों सहित श्रीरघुनाथ जी धर्मपूर्वक राज्य करते हुए सुख से रहने लगे. इसके कुछ दिनों बाद उस नगर का एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने मृत बालक को ले कर राजभवन के द्वार पर आया; और विलाप कर कहने लगा—मैंने पूर्व-जन्म में ऐसा कौन-सा पाप किया था जो मैं आज अपने इकलौते पुत्र को मरा हुआ देख रहा हूं. . ., मुझे स्मरण नहीं कि मैं कभी किसीसे झूठ बोला अथवा जीव हिंसा की अथवा अन्य कोई पाप, निस्संदेह श्रीराम ही का कोई बड़ा दुष्कर्म इसका कारण है, जिससे उनके राज्य में बसने वाला यह बालक मरा है, क्योंकि अन्य राज्यों में तो बालक नहीं मरते. सो हे राजन्, तुम इस मेरे मरे हुए बालक को जीवित करो! नहीं तो मैं अपनी पत्नी सहित अनाथों की तरह राजद्वार पर प्राण दे दूंगा. तब तुम्हें ब्रह्महत्या लगेगी और तब तुम सुखी होना.

उस दुःखी ब्राह्मण का समस्त विलाप रामचंद्र ने सुना; तब अत्यंत दुःखी हो कर उन्होंने मंत्रियों को, वसिष्ठ-वामदेव-नारद आदि ब्राह्मणों को भरत आदि भाइयों को एवं निगम श्रेष्ठियों को ब्राह्मण-पुत्र की अकाल मृत्य का कारण जानने के लिए आमंत्रित किया.

महाराज को उदास देख स्वयं नारद ने कहा—हे राम, सुनो,पहले सतयुग में केवल ब्राह्मण तपस्या करते थे; त्रेता युग में क्षत्रिय भी तप करने लगे; द्वापर में वैश्य भी तपस्या करने लगेंगे, लेकिन इन तीनों युगों में शूद्रों को तप का अधिकार नहीं है केवल कलियुग में ही शूद्रयोनि में उत्पन्न जीव तप करेंगे. . .यदि त्रेता में भी शूद्र तप करे तो बड़ा अनर्थ है, जबकि आपके राज्य में तो इसी समय एक दुर्बुद्धि शूद्र घोर तपस्या कर रहा है इसीसे इस ब्राह्मण का बालक मरा है. आप अपने राज्य में इस बात की खोज कीजिए; जहां कहीं पाप और अधर्माचरण होता दिखाई दे उसे यत्नपूर्वक रोकिए. तभी धर्म की बृद्धि होगी,मनुष्यों की आयु बढ़ेगी और यह मरा हुआ बालक भी जी उठेगा.

तब श्रीरामचंद्र ने लक्ष्मण से कहा— इस मृत बालक के शव को तेल की द्रोणी में रखवा दो और ऐसा उपाय करो कि शव बिगड़ने या सड़ने न पाये. इतना कह कर उन्हांने नगर की रक्षा का भार भरत एवं लक्ष्मण को सौंपा और चमचमाती तलवार, धनुष तथा बाण ले पुष्पक विमान से शूद्र तपस्वी को खोजने चल दिये.

उत्तर दिशा में उन्हें कोई पाप कर्म नहीं दिखाई दिया. पूर्व दिशा भी निर्दोष दिखाई दी. दक्षिण दिशा में विन्ध्याचल के उत्तर पार्श्व में एक बड़ा तालाब दिखाई दिया. उसके तट पर एक तपास्वी नीचे को मुख कर उलटा लटकता हुआ तपस्या कर रहा था.

श्री रामचंद्र ने उसके पास जा कर कहा—धन्य है आपका तप! मैं दशरथ का पुत्र राम आपसे कौतूहलवश पूछता हूं कि तप किसलिए कर रहे हैं? स्वर्ग जाना चाहते हैं या कोई और अभिलाषा है? और आप ब्राह्मण हैं या क्षत्रिय या वैश्य अथवा शूद्र?

रामचंद्र के ये वचन सुन कर वह तपस्वी नीचे को मुंह किये हुए बोला — मैं शूद्र कुल में उत्पन्न शंबूक नाम का शूद्र हूं और इसी शरीर से स्वर्ग जाने की कामना से यहां पर ऐसा उग्र तप कर रहा हूं.

यह सुनते ही रामचंद्र ने म्यान से चमचमाती तलवार खींच कर उस शूद्र का सिर काट डाला. उसका सिर काटे जाते ही इंद्र और अग्निसहित सभी देवता 'धन्य-धन्य' कहते हुए श्रीरामचंद्र की प्रशंसा करने लगे और बोले—आपकी कृपा से ही यह शूद्र हमारे स्वर्ग में नहीं आने पाया. हमसे इच्छित वर मांगिए.

सत्य पराक्रमी श्रीराम ने हाथ जोड़ कर इंद्र से कहा—आप प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिए कि वह ब्राह्मण बालक जी उठे.

देवताओं ने जवाब दिया — हे राघव, वह बालक तो जिस समय तुमने इस शूद्र को मारा उसी समय जी उठा और अपने माता-पिता से मिल भी चुका. अब तुम लौट जाओ. ☐

(संकलन — श्यामू संन्यासी)

चंडीदास

☐ गुरबख्श सिंह

रोज की तरह उस दिन भी मंदिर में पूजा हो रही थी. अंदर और बरामदे में खूब भीड़ थी. मंदिर के बाहर सीढ़ियों के नीचे मैले-कुचैले कपड़े पहने, श्रद्धा से हाथ जोड़े और माथा झुकाये कुछ स्त्री-पुरुष खड़े थे, जो मंदिर में जाने वालों के लिए रास्ता छोड़ देते थे. अंदर जाने वाले उन्हें देख कर त्योरियां चढ़ा लेते थे. पूजा समाप्त होने पर छोटे पुजारी ठाकुर चंडीदास प्रसाद के रूप में सभी को एक-एक, दो-दो फूल देते—सीढ़ियों के नीचे खड़े श्रद्धालुओं को भी. उस दिन उनकी झोली में जब थोड़े-से ही फूल बच गये तो नीचे खड़ी रोज प्रसाद पाने वाली युवती रामी धोबन अधीर हो कर बोल पड़ी—ठाकुर जी, आज मुझे प्रसाद नहीं मिलेगा क्या? और तुरंत उसकी ओर स्नेह से देख कर ठाकुर ने उसे प्रसाद दे दिया. वह आंनद-विभोर होती, हाथ जोड़ कर चली गयी. लोग कानाफूसी करने लगे.

लोगों की वह कानाफूसी तब और बढ़ गयी, जब पूजा के लिए ठाकुर नित्य बागों में न जा कर रामी के घर के पास वाली बगिया से फूल लाने लगे. लोग जलने लगे. ठाकुर और रामी की बदनामी करने लगे. अपनी बदनामी की रामी ने चिंता न की, किंतु ठाकुर की बदनामी उसे सहन न हुई. एक दिन उसने आंखों में आंसू भर कर ठाकुर को यह बात बतायी और प्रार्थना की कि वह बगिया में न आया करें. चंडीदास ने भी आंखों में आंसू भर कर बात मान ली.

रामी जवान थी. सुंदर थी. कस्बे के रंगीले जैलदार की आंखों में वह बस गयी. जैलदार की स्त्री बड़ी धार्मिक और उदार वृत्ति की थी. सब लड़कियां और स्त्रियां उसे मां की तरह मानती थीं. एक दिन वह मंदिर के लिए रवाना हुई, तो जैलदार ने अपने एक नौकर को सिखा-पढ़ा कर रामी के पास भेजा. कहलवाया—माता जी की तबीयत खराब है, मंदिर न जा कर फौरन उनके घर चलो.

भोली-भाली रामी उसके साथ चल दी. किंतु माता जी के कमरे में पहुंची तो देखा, कमरा खाली है. कमरे में जैलदार आया. उसने रामी को बताया कि वह उससे कितना प्यार करता है. गहनों और कपड़ों का लालच दे कर, अपनी ओर खींचते हुए जब उसने रामी से अपनी काम-पिपासा शांत करनी चाही, तो रामी चीख पड़ी और हाथ छुड़ा कर भागने की कोशिश करने लगी. बहुत गिड़गिड़ायी—आप तो गांव की लड़कियों और औरतों की इज्जत के रक्षक हैं, मेरे पिता की तरह हैं. और फिर मैं कुंआरी हूं. मेरी इज्जत चली गयी, तो मैं जान दे दूंगी. किंतु जैलदार ने एक न सुनी. तब वह चीखी—हे भगवान, मेरी लाज बचाओ. मेरी रक्षा करो!

और मानो सचमुच भगवान ने रामी की पुकार सुन ली. जैलदार की स्त्री अपने अंतर की जोरदार आवाज पर उस दिन फौरन घबरायी हुई-सी घर पहुंची. जैलदार स्तब्ध रह गया. कुकृत्य न कर पाया. रामी की लाज बच गयी. उसकी लाज बचाने के बदले, मां के तौर पर, उसने रामी से वचन लिया कि वह इस घटना के बारे में किसी से भी कुछ न कहेगी.

जैलदार ने अपने अपमान का बदला लेने का निश्चय कर लिया. उसने पुजारी को बताया कि ठाकुर चंडीदास का रामी से अनुचित संबंध है और आदेश दिया कि रामी को पूजा के समय बिल्कुल न आने दिया जाये. फिर भी रामी एक दिन किसी तरह पहुंच ही गयी. जैलदार ने देख लिया. उसने फिर रामी को फुसलाने और मनाने की कोशिश की, किंतु जब वह उसके चंगुल में न आयी, तो गुस्से में लाल हो कर, उसकी बांह पकड़ कर, गालियां देते हुए, घसीटते हुए उसने उसे बाहर कर दिया. चंडीदास यह सब देख कर अंदर-ही-अंदर क्रोध से उबल रहा था, किंतु फिर भी चुप रहा. वह बेहद दुखी था और उसे बड़ी ग्लानि हो रही थी. सचमुच वह उसे हृदय से चाहने लगा था. थोड़ी देर में रामी फिर पागल की तरह दौड़ती हुई मंदिर में आयी और आंखों में आंसू भर कर चंडीदास से बोली—आपकी आंखों के सामने मेरी बेइज्जती हुई और आप देखते रहे! मैंने आपको देवता समझा था. लेकिन वह मेरी गलती थी. आप देखते रहे और मेरी बेइज्जती होती रही. . .! यह कहती हुई वह बाहर निकल गयी. चंडीदास बहुत ही दुखी था. उसे बड़ी ग्लानि हो रही थी. उस दिन सारे कस्बे में लोग तरह-तरह की बातें करते रहे.

अब जैलदार ने रामी के भाई के कपड़ों की चोरी करवानी शुरू कर दी. उसका धंधा लगभग समाप्त हो गया. कारण सब को मालूम था. लेकिन भाई विचलित न हुआ.

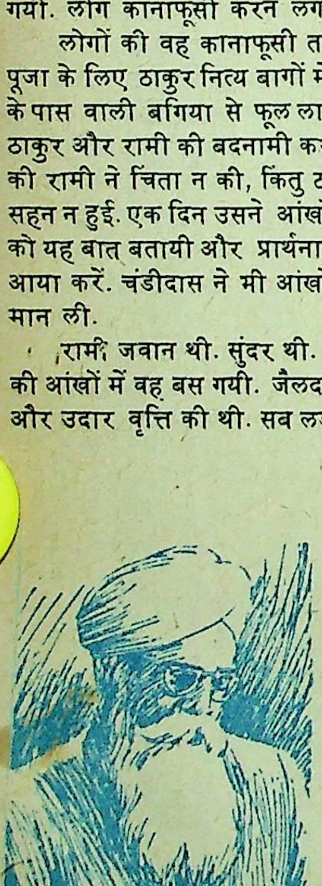

गुरबख्श सिंह :
पंजाबी कथाकार व पत्रकार

अछवानी आर्टिकान के सौजन्य से

तब एक दिन रात में उनके झोपड़े में आग लगा दी गयी. आग पहले रामी ने देखी. चंडीदास की पसंद की साड़ी पहन कर उसके नाम पर वह सती हो जाना चाहती थी. आग ने उसे और उसके भाई और भाभी को चारों ओर से लपेट में ले लिया था. भीड़ जुट गयी थी, किंतु जलते झोपड़े में जा कर उन्हें बाहर निकाल लाने की किसी में हिम्मत न थी. इतने में उस अंधेरे में एक युवक दौड़ता हुआ आया, झोपड़े में घुस गया और एक-एक कर वह तीनों को कंधे पर लादे बाहर ले आया. सब लोग चकित रह गये. बाद में आग की रोशनी में सबने देखा कि वह युवक ठाकुर चंडीदास था. उसकी बहादुरी की चर्चा के साथ-साथ लोग और भी तरह-तरह की चर्चाएं करने लगे. सबेरा होते होते कस्बे में शोर मच गया.

जैलदार गुस्से में भर कर पुजारी के पास पहुंचा और चंडीदास और रामी के बीच अनुचित संबंध की बात कहते हुए बोला—जब तक चंडीदास अपने पाप के लिए प्रायश्चित न कर ले, तब तक उसे भगवान की पूजा न करने दिया जाये. पुजारी जानता था कि चंडीदास निष्पाप है, पवित्र है. फिर भी आदेश का पालन करने को वह विवश था. आंखों में आंसू भर कर उसने कहा—बेटा, मेरे कारण प्रायश्चित करना स्वीकार कर लो. चंडीदास का मन विद्रोह कर रहा था, किंतु फिर भी उसने पिता-तुल्य पुजारी की बात मान ली.

कस्बे में शोर मच गया—रामी के कारण ठाकुर चंडीदास प्रायश्चित कर रहे हैं. रामी के कानों में खबर पड़ी तो वह पागल-सी हो कर मंदिर की ओर दौड़ी. वह रोती हुई चीख रही थी—नहीं, ठाकुर कभी प्रायश्चित नहीं करेंगे. . .वह पवित्र हैं. . .वह निष्पाप हैं. . .वह कभी प्रायश्चित नहीं करेंगे. . .यज्ञ चल रहा था. आवाज चंडीदास के कानों में पहुंची. मंदिर की दीवार फांद कर रामी अंदर आ गयी थी. कपड़े फट गये थे. शरीर से खून बह रहा था. चंडीदास ने उसे देखा. वह रुक गया. पुजारी के बार-बार कहने पर भी प्रायश्चित न कर सका. रामी पूछ रही थी—ठाकुर, क्या झूठी बात के लिए आप प्रायश्चित करेंगे? क्या मेरे कारण आप प्रायश्चित करेंगे?. . .चंडीदास ने निर्णय कर लिया. पुजारी से बोला—गुरुदेव, अब मुझसे सहन न होगा! मैं असत्य बात के लिए प्रायश्चित न कर सकूंगा, क्षमा करें. यह कह कर चंडीदास ने रामी को बाहों में ले लिया और दोनों उस भीड़ से निकल कर उस कस्बे को छोड़ कर चले गये. □□□

(संक्षिप्तीकरण : नरेंद्र मालवीय)

उसारीलाल उर्फ उस्मान

● रतनलाल सोनग्रा

आज वह फिर आया है—वह एक चाकू छुरी को धार लगाने वाला आदमी है—उसने सायकिल की डंडी पर एक धार लगाने वाला पथरीला चाक लगाया है—जो एक चमड़े की पट्टी से पिछले चाक में लगे छोटे चाक से घूमता है है और वह सायकिल की सीट पर बैठा-बैठा धार लगाता है—मैं उसे बचपन से देखता हूं. . .जब वह किसी कैंची या छुरी को धार लगाता है तब आग की चिनगारियां ऐसे उड़ती हैं जैसे फुलझड़ी जलती है. बचपन में मुझे लगता दिवाली के समय इसी सायकिल पर बैठ कर दिन रात फुलझड़ियां जलायी जायें. . .

आज मैं एक होटल में बैठा हूं चाय पी रहा रहा हूं, अचानक मेरी नजर होटल में लगे एक साईन बोर्ड पर गयी—आजकल मैं होटल में हमेशा भाव देखता हूं—न जाने कब बढ़ जाये—उस बोर्ड पर लिखा था—सभी जाति-धर्म के स्त्री-पुरुषों को मुक्त प्रवेश. मैं उस साइन बोर्ड को देख कर हंसने लगा—श्रीकृष्णविलास हिंदु होटल के ग्राहक मुझे ऐसे देखने लगे जैसे मैंने वहां चाय के बदले ठर्रा पिया हो! मैंने चाकू छुरी वाले उस्मान को भीतर बुलाया, पूछा—चाय पिओगे उस्मान?

—जरूर साब, आप पिलायें और हम न पिये. . .

—दो स्पेशल चाय! मैंने कहा. .

उस्मान ने अपनी जाकिट से चारमीनार निकाली अपनी 'फर कैंप' उतार कर टेबल पर रख दी.

—उस्मान, यह टोपी अब पुरानी हो गयी है. बदलते क्यों नहीं?

—नहीं साब, यह तो निशानी है!

मुझे वह दिन याद आया. मैं उस होटल में पच्चीस साल पहले—जलेबी लाने गया था—एक काला सांवला नौजवान उस होटल में आया. उसने चाय मंगायी—मेरी जलेबी बांधी जा रही थी—अचानक किसीने उसके हाथ से चाय की प्याली झटके के साथ गिरा दी—हरामखोर! वेड़ की औलाद —होटल में आ कर चाय पीता है, जानता नहीं, बाहर अलग कप-बसी रखी है.

—यह अछूत आजकल बहुत बेरशम हो गये हैं! किसीने कहा—

होटल का मालिक भट्टी-सा गरम हो कर बाहर आया. उसने तड़्-तड़् दो-तीन तमाचे जड़ दिये. दो-तीन नौकर और ग्राहकों ने उसे बाहर खींच कर लातों-घूंसों से रौंद डाला. उसके मुंह से खून बहने लगा—अरे, यह तो उसारीलाल है—इसका बाप रस्सियां बेचता है—झाड़ू बनाता है. कुछ देर बाद वह जवान उठ कर चला गया.

दूसरे दिन वह 'फर कैप' पहन कर दो-चार मुसलमान दोस्तों के साथ आया—मालिक ने उसकी ओर जलती हुई निगाहों से देखा.

—मैं उस्मान बन गया हूं—कौन हाथ लगाता है अब देखता हूं, उसकी मां की. . .

उसके बाद वह उस्मान बन कर चाकू छुरी पर धार लगा रहा है. वह अब तक वही कर रहा है, जब भी अजीब स्वर में 'चाकू छुरीय' सुनता हूं, लगता है, कोई हमारी समाज व्यवस्था को चीर रहा है. . . □

बुद्धिवादी की स्वतंत्रता

रतनलाल सोनग्रा

कालेज के स्टॉफ कॉमन रूम में चाय की चुस्कियों के साथ अखबारों की खबरों पर टिप्पणियां चल रही थीं. नया स्केल घोषित

दत्ता राने

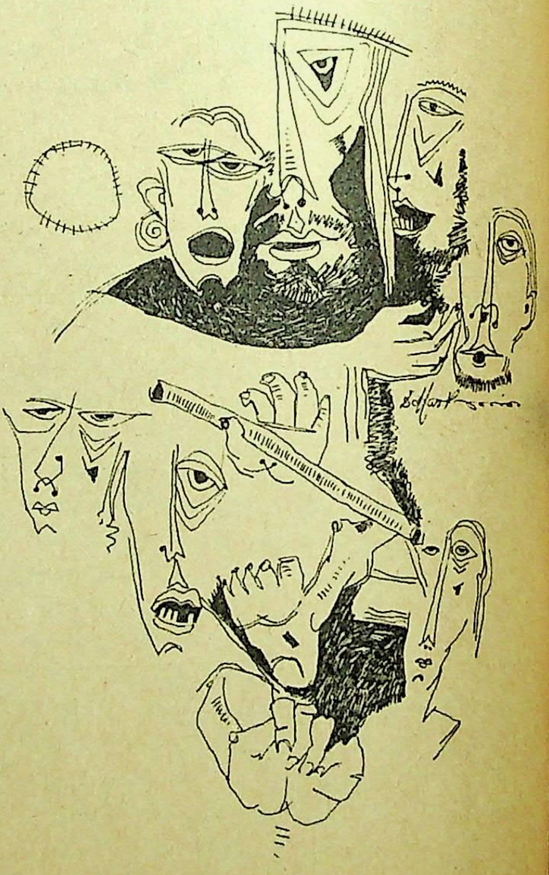

होने पर मध्यवर्गीय प्रशंसित आलोचना चल रही थी.

—अब बुद्धिमान व्यक्ति जरूर इस व्यवसाय में आकर्षित होंगे! प्राचार्य महोदय ने उनकी ओर विचित्र दृष्टि से देखा, मानो कह रहे हों क्या हम निर्बुद्ध हैं?

—नहीं—मेरा मतलब. . .

एक प्राध्यापक महोदय ने झट् से साहब का सिगरेट सुलगा दिया और कहा—वैसे हमें मिलता क्या है?

सिगरेट के कश के साथ प्राध्यापक की तत्परता से उनका अहं तृप्त भाव से चेहरे पर झलक गया— सोल्त्सेनीन को बहुत सताया गया है—बुद्धिवादी की स्वतंत्रता का क्या होगा?

—सर, हमारे कलकत्ता के कस्टम ऑफिस ने 'गुलाग आर्चिपलगो' की प्रतियां रोक ली है. . . हम कहां जा रहे हैं? उन्होंने सर के सुर में अपना-अपना ताल जमाया. उस वक्त उनका चेहरा 'कंटिन्यूशन के एप्लिकेशन' जैसा लाचार लग रहा था.

—भों, भौंय सी, फिर धुआं बाहर आया. चेहरा धुंधला हुआ, साहब चले गये. सोफे पर तन के बैठे प्राध्यापकों ने टांगें फैला दीं.

कुछ ही देर बाद एक नोटिस आयी!

'स्टाफ में मेंबरों को सूचित किया जाता है कि कुछ विद्यार्थियों ने हड़ताल कर दी है. बिना मेरी सूचना के कोई भी अध्यापक विद्यार्थियों से इस विषय में कोई बात न करे. अपना मुंह पूरी तरह बंद रखे.' नोटीस पढ़ने के बाद सारा स्टॉफ रूम अस्वस्थ हो गया. सभी एक दूसरे की ओर ऐसे देख रहे थे मानो कोई 'हत्या का षडयंत्र' चल रहा हो!

साहब अपने ऑफिस में गये, तभी फोन की घंटी बजी.

—मैं प्रिंसिपल. . .

—चेअरमन हिअर—देखिए, जिस अंग्रेजी के प्रोफेसर को हमने डिस्कंटिन्यूशन का नोटिस दिया है उन्हें रहने दो. . .

—लेकिन साहब. . .

—लेकिन वेकिन कुछ नहीं—उसके चाचा हमें बड़ा डोनेशन दे रहे हैं—

—यस् सर् यस्सर. . .मैं अभी नोटिस वापिस ले रहा हूं. . . ☐

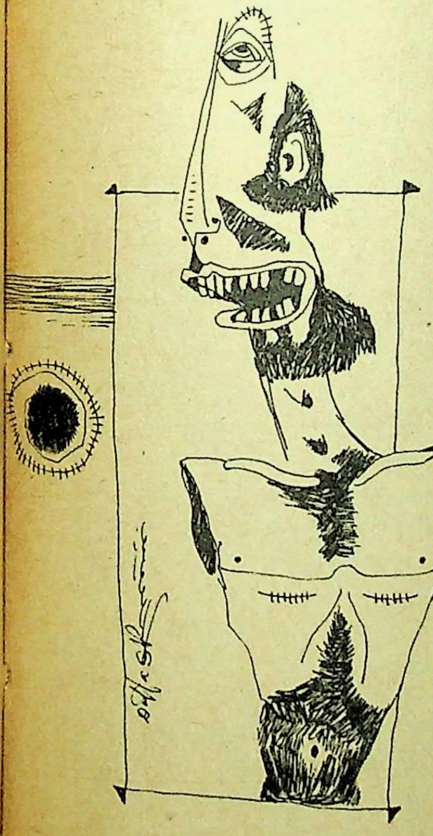

● राने

एक पाव चावल

● शेख जैनुल आब्दीन

एक राजा बहुत ही न्यायप्रिय और प्रजापालक था. अन्न-धन से भरा-पुरा उसका राज्य था. प्रजा सुखी थी.

कलांतर में प्रतिवर्ष उसके राज्य में अकाल पड़ने लगा. प्रजा भूखों मरने लगी. गांव उजड़ने लगे. राजमहल का अन्न-बखार भी एक दम खाली हो गया. प्राण रक्षा में राजपरिवार के लोग और कर्मचारीगण भी इधर-उधर जंगलों में भाग गये.

महल में राजा, उसके तीन वफादार कर्मचारी और एक पाव चावल बाकी रह गया. कर्मचारियों में एक ब्राह्मण, एक वैश्य और एक शूद्र था.

राजा और उसके तीनो कर्मचारी जब भूख से मरने लगे तो राजा ने एक पाव चावल स्वयम् अपने हाथ से पकाया. जब चावल पक कर तैयार हो गया तो उसने तीनों कर्मचारियों को पास बुलाकर कहा—हे प्रजाजनो! पका हुआ चावल शूद्र खायेगा. ब्राह्मण मांड पीयेगा. वैश्य हांडी करोयेगा. राजा पत्तल चाटेगा.

प्रजाजनों ने राजा के आदेश का अक्षरशः पालन किया. कहते हैं कि जिस समय राजा शूद्र के आगे की जूठी पत्तल चाट रहा था उसके राज्य में सर्वत्र जल की जगह आकाश से लगातार अन्न-वृष्टि हो रही थी. ☐

घिस्सू

□ काजी अब्दुल सत्तार

राम अवतार के द्वारे में चार-चार कोस के आदमी टेटा बांधे खड़े थे. जैसे बेटे का ब्याह रचा रहा हो. कभी वह मंझले लड़के को चिलमें भरने का हुक्म देता और कभी छोटी बहू को शर्बत घोलने का आदेश. रघू का घर तो उसके घर से मिला था. गोमती पार की एक भैंस के सींग बांध कर जब पलटा, तो अच्छे-भले मानकपुर के बाजार को जाते हुए राहगीर उसके अपने गांव की ओर घूम पड़े, फिर वह लेनडोरी राम अवतार के द्वार पर बिखर गयी. जी तो इसका भी उधर आने को चाहा. पर पेट की आतें कुलबुला रही थीं. घिस्सू ने पीठ पर बंधी हुई सीधे की गठरियां पलंग की अध्वान पर पटक दीं और कंधे से अंगोछा खींच कर पांव झाड़ने लगा. इतने में राम अवतार और उसके घर के बीच वाली दीवार के नीचे लगी हुई मांचों पर पांव रख कर उसकी दुलहिन उतर आयी— और छप्पर में झूलते हुए छींके पर से नया बुना हुआ डलवा उतारते हुए बोली—राम औतार चचा हाथी की तरह एक भैंस लाये हैं!

घिस्सू ज्वार की काली-मोटी ठंडी रोटी के बड़े-बड़े निवाले लहसुन की चटनी के सहारे उतारने लगा. जब जरा पेट की आग बुझी तो घिस्सू ने दुलहिन के हाथ से चिलम ले कर कंडे की आग को बराबर करके दम लगाया तो जैसे मीलों के सफर की थकन धुएं के बादल की तरह उड़ गयी. घिस्सू ने चिलम झाड़ कर ताक पर औंधा दी. धूप दीवार पर चढ़ने लगी थी. राम अवतार के दरवाजे से आदमियों की आवाजें आ-आ कर उसके कानों में झूल रही थीं. घिस्सू भी भीड़ में आ कर खड़ा हो गया. खड़ा रहा. रंग-बिरंगे कंचों और छोटी-छोटी घंटियों की हमेलें पहने भैंस खड़ी थी. काले-चौड़े माथे पर छोटा-सा टीका भी था मानो जमे हुए दही का थक्का उड़ कर चिपक गया हो. बिलकुल उसकी 'मुन्नी' की तरह झूम-झूम कर उलझ-उलझ कर खा रही थी. उसकी अपनी मुन्नी में और इस भैंस में एक अंतर था. मुन्नी के सींग सुंदर थे. बिलकुल गोल मुड़े हुए. क्या मजाल दोनों सींगों में कोई सूत बराबर भी अंतर निकाल दे. पर उसका एक सींग तो ऐसा था जैसे तलवार सूंत कर उसके सिर में गाड़ दी गयी हो और दूसरा जैसे हाथ भर का डंडा मस्तक से लपेट दिया गया हो. इस भैंस का भला मुन्नी से क्या मुकाबला ! सींग तो जानवर की शोभा होते हैं—जानवर का रोब होते हैं. हमारे रौनापुर के ठाकुर के मुंह पर मूंछों के सिवा भी कोई चीज है भला? उनकी एक मूंछ मंगल नाई अपनी कैंची से उतार ले तो?...

—चिलम पियो, घिस्सू भाई! राम अवतार का बड़ा लड़का गयादीन चिलम बढ़ाये खड़ा था. फि उसने पूछा— कैसी भैंस है, घिस्सू भाई?

—हां, हां, घिस्सू, बताओ. तुमरी तो जिंदगी बीती है भैंसें देखत. राम अवतार ने खटिया से उठे हुए पूछा.

घिस्सू ने चिलम का एक दम लगाया. भैंस को दे कर इधर-उधर देखा जहां राम अवतार के घर वालों के अलावा कोई न था. भैंस लाख में एक है, नस्लदार है. जवान है, पूरी महारानी है... मुल...तनी....

—मुल तनी का? राम अवतार गरजा.

—मुल तनी यूं कि सींग बिगड़ गये हैं.

—हुंह! सींग... सींग का दूध देत हैं?

—चाचा, सींग जानवर की मूंछ है. जब मूंछ न हो तो सारा आदमी का मुहरिया है... घिस्सू यह क कर अपनी बायीं मूंछ चूसता हुआ चला गया.

राम अवतार ने गयादीन से कहा—बड़कऊ, घिस्सू का मतलब है कि हम इनसे सींग बनवा लें. हुंह बड़ डाक्टर हैं सरउ!

—अरे, हम इनका हाथ न लगावे देव!

रात में घिस्सू को नींद न आयी. वह राम अवतार के द्वारे से एक घाव लगा लाया था, जैसे कोई किसी के विवाह में जाये और अपनी प्रेमिका को दुलहिन बन देख कर घायल हो जाये. उसकी प्यासी आंखों के सामने बीते दिनों का ताड़ीखाना खुल गया...घिस्सू न जाने कितनी यादों के कुल्हड़ चढ़ाये नशे में धु पड़ा था. वह तीस-बत्तीस वर्ष के अधेड़ आदमी की ज दस-बारह वर्ष का चंचल लड़का बन गया था. वह सुब होते ही खटिया से सीधा उठ कर बाहर के छप्पर में ग जहां रात को खरीद कर आयी हुई भैंस बंधी हुई थी. उ का बाप पड़िया पकड़े बैठा था और मां भैंस दुह रही थी जब बाप ने काली रेशमी पड़िया को गोद में भर क उठाया और आंगन में ला कर छोड़ दिया तो वह पड़िया की तरह कुलेलें करने लगा था. वह उसे मुन्नी क कर उसके साथ खेलने लगा. देखते-देखते मुन्नी उसक साया बन गयी. मुन्नी को वह अपने हिस्से का दूध पिलाता अपने साथ तालाब में नहलाता. अपने हाथ में उसक रस्सी ले कर बागों में चराता-घूमता. अपनी खटिया के पाए में बांध कर सोता. अपने पैसे जोड़-जोड़ कर उस मसरख के मेले से मनकों, मोंगों, कंचों और घंटियों की हमेलें खरीदीं और अंधेरियां पहनायीं और पैरों में झा बांधीं और झूलें अड़ायीं. मुन्नी जब पहला बच्चा देने वा हुई तो रास्ते चलते-चलते लोग रुक जाते, और टक

बांधे देखा करते. देखने वालों की नजरें देख कर घिस्सू की मां डर जाती और मुन्नी पर से नमक मिर्च उतार कर अपने मन को शांत कर लेती. फिर घिस्सू के बाप ने मुन्नी को अंदर बांधना शुरू किया. जब मुन्नी ने दूध दिया और पूरी दो बालटियां गले तक भर गयीं और गांव वालों ने पूछ-ताछ शुरू की तो घिस्सू के बाप अन्नू ने झूठ बोल कर टाल दिया. पर सारे गांव में मशहूर हो गया कि अन्नू महतिया की भैंस मन भर दूध देती है. फिर एक दिन अन्नू महतिया, जो भैंसों के सींग बांधने-बनाने में दूर-दूर तक जाने जाते थे, कत्ल के मुकदमे में फंस गये. जब खेत-पात, जेवर-गहना, घर-गृहस्थी, सब मुकदमे की भेंट चढ़ गये, तब मुन्नी का नंबर आया. गजनीपुर के बाजार में रसीद लिख कर और रुपये गिन कर भी घिस्सू देर तक मुन्नी को बैठा देखता रहा और आंसू पीता रहा. मुन्नी को भी बेच दिया. जब बीस वर्ष की सजा पा कर वह सीतापुर की जेल से फैजाबाद की जेल भेजे जाने लगे, तो उन्होंने अपने रोते-पीटते बेटे को सींग बांधने का नुस्खा बता दिया, जो पुश्तों से उनके घर में चला आता था. चार-छह वर्ष बाद जेल में अन्नू मर कर जिंदगी और कैद से छूट गया, घिस्सू सींग बनाता-बांधता रहा और अपने बच्चों का पेट पालता रहा और दूसरी मुन्नी लाने के सपने देखता रहा. और अब राम अवतार ने यह भैंस खरीद कर मुन्नी के दुःख का बुझा हुआ अलाव सुलगा दिया. लपटें उटने लगीं. घिस्सू

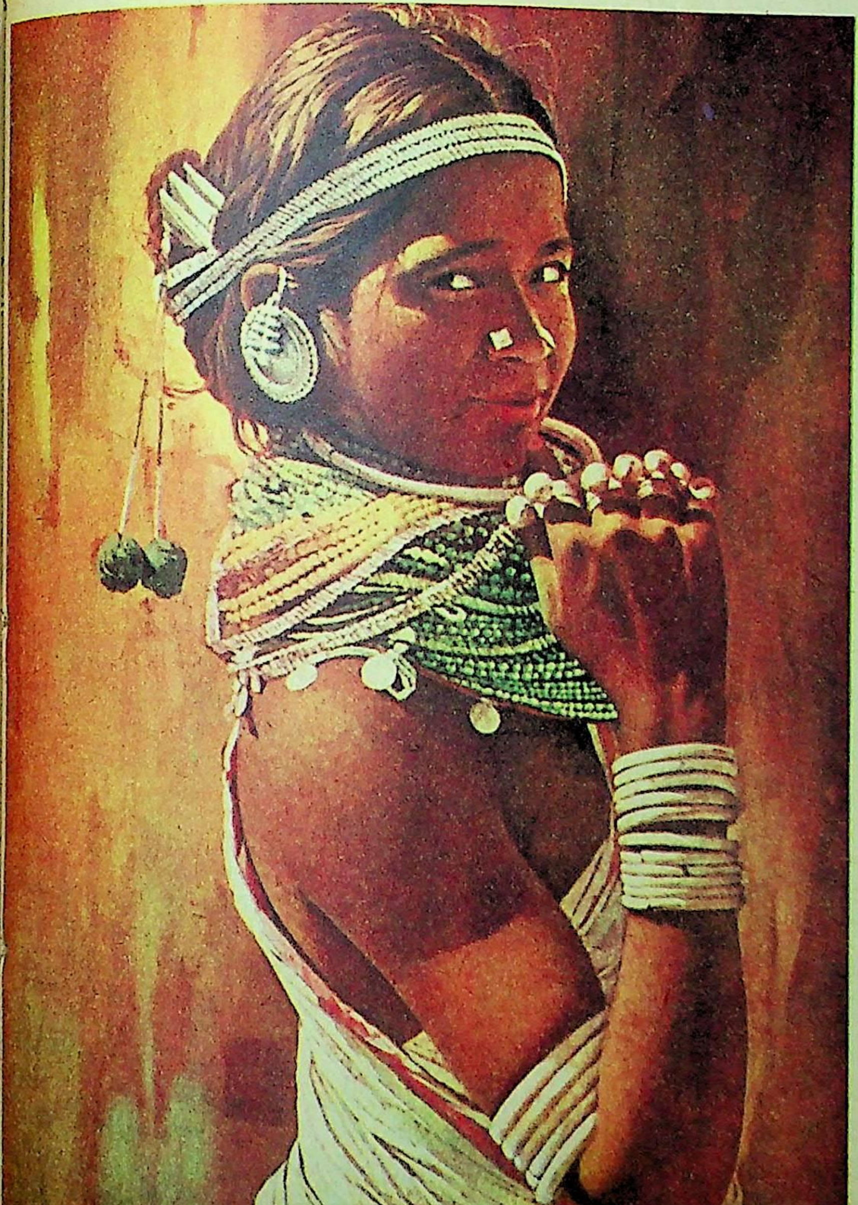

भोजन बड़ा स्वादिष्ट है !
क्या घरेलू घी से बना है ?
श...श...श...

विजया घी

बिल्कुल घर में बने घी जैसा

गुणों में उत्तम...
कीमत में कम

हालांकि यह घर में नहीं बनता लेकिन फिर भी आपको लगता है जैसे यह आपके घर में ही बना है क्योंकि विजया घी भरपूर तत्त्वोंवाले ताज़े दूध से आधुनिक फैक्टरी में बनाया जाता है. इसमें विटामिन भी होते हैं जो अच्छी सेहत के लिए आवश्यक हैं.

पोषक तत्त्वों से भरपूर...गाढ़ा और स्वादिष्ट... बस यही है
विजया घी

उत्पादक : आंध्र प्रदेश डेरी डेवलपमेन्ट कॉर्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड,
लालापेट, हैदराबाद ५०० ०४०

विजया घी पर उत्तमता का चिन्ह 'एगमार्क' भी लगा होता है.
यह वैज्ञानिक ढंग से हानिरहित डिब्बों में बंद किया जाता है.
एकमात्र घरेलू घी – जो घर में नहीं बनाया जाता.

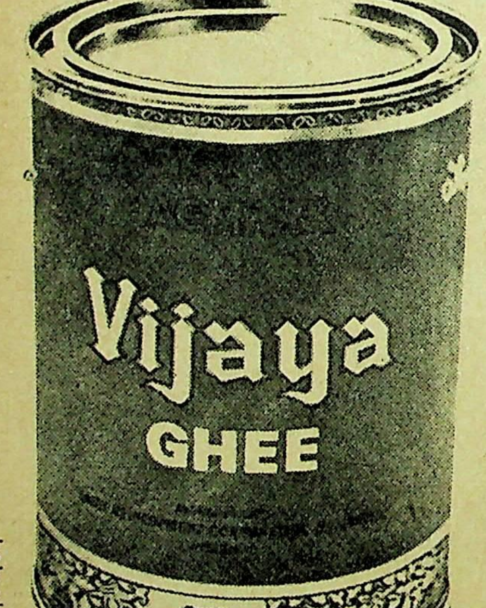

ANDHRA PRADESH
DAIRY DEVELOPMENT CORPORATION
PRIVATE LIMITED
(A State Government Undertaking)

kalpa/apd/3/75

उस में जलने लगा. उसी समय आंगन के कोने में झूल के नीचे बंद मुर्गे ने कुड़कुड़ा कर बांग दी और घिस्सू को मौलवी साहब की बात याद आ गयी कि कयामत सिर पर आ गयी, वरना मुर्गे कहीं आधी रात से बोलने लगते हैं ! गांव के अन्य मुर्गे-भी बोलने लगे. टापे में बंद बकरी के बच्चे मिमियाने लगे. राम अवतार महतिया के घर से भी उठा-धरी की आवाजें आने लगीं. घुमर-घुमर चक्कियां चलने लगीं. पिसनहारियों के बोल बजने लगे. उसकी दुलहिन भी कलमा पढ़ कर उठ पड़ी. अब घिस्सू को सुबह होने का यकीन आया. वह जलती पलकें झपकाता, धोती की कांच बांधता हुआ झूमता बाहर चला गया. गयादीन भैंस लगा रहा था. कनखियों से घिस्सू को देखा तो त्योरियों में विष घुलने लगा. राम अवतार भी एक हाथ में हुक्का पकड़े दूसरे हाथ से मुंह में दबाये आ पहुंचा. उसने राम अवतार से कहा——चाचा, तुम कहो तो इसके सींग बना दिये जायें. उसके स्वर में भिखारियों जैसी गिड़गिड़ाहट थी.

राम अवतार रुखाई से बोला—— बड़कऊ से पूछो.

बड़कऊ अटल स्वर में बोला——न भाई. . . हम भैंस नाई छुए दीबा !

घिस्सू फटी-फटी आंखों से उसका मुंह देखता रह गया. फिर बड़कऊ ने अपनी दुलहिन को कुछ इशारा किया. उसने जल्दी से बैलों के मुंह में लोई ठूंसी और लप-झप भीतर गयी और नीले मनकों की हमेल के पास सात गांठों वाला वह काला धागा बांध दिया जिसे खैराबाद के मियां ने पढ़ कर दिया था और बना-बना कर कह दिया था कि जब तक यह 'गंडा' गरदन में है, भैंस को किसीकी नजर नहीं लग सकती. राम अवतार की विष भरी रुखाई गयादीन का टका-सा जवाब और उसकी दुलहिन की थूकती हुई नजरों ने घिस्सू को जैसे अंदर से तोड़ दिया. वह वहीं जमीन पर उकड़ूं बैठ गया और महतिया की दी हुई बीड़ी सुलगाने लगा.

★ ★

थोड़े दिन गुजरने के बाद भैंस के चाव चौंचले खत्म हो गये. राम अवतार मानकपुर की प्रधानता के चुनाव की तैयारियां करने लगा. नये-नये दांव फेंकने लगा. चारों लड़के बाप का हाथ बंटाने लगे. वह उपेक्षित भैंस भी सरजनपुर के अन्य जानवरों की तरह अंगनू चमार की गोढ़ी में शामिल हो कर चराई पर जाने लगी.

सरजनपुर से निकलते ही धंधहारी का वह जंगल शुरू हो जाता है, जिसका सिलसिला किसी-न-किसी तरह लखीमपुर खेरी तक चला जाता है. आस-पास के सभी जानवर इसी जंगल में चराये जाते हैं. कोई चार मील जंगल के अंदर घुस कर गोरों का वह कब्रिस्तान मिलता है, जिसकी दीवारें हाथी बराबर ऊंची हैं और लोहे की सीखों का फाटक हर समय खुला रहता है. पर आदमी तो आदमी, वहां पक्षी भी पर नहीं मारता, क्योंकि वहां उस बेपनाह भय का पहरा लगा रहता है. भोले-भाले देहातियों का विश्वास है कि उस कब्रिस्तान के अंदर गोरे भूत और गोरी चुड़ैलें रहती हैं, जो भूले-भटके राहगीरों को पकड़ कर ले जाती हैं और भून कर खा जाती हैं.

काज़ी अब्दुल सत्तार :
उर्दू के कहानीकार

अंगनू चमार का बाप, अपनी गाय ढूंढ़ता हुआ उस शीशम के पेड़ पर चढ़ गया, जो कब्रिस्तान् से कोई एक फलांग भर दूर खड़ा है. कब्रिस्तान के दरवाजे पर नजर पड़ी, तो क्या देखता है कि गोरे भूत एक मोटे-ताजे आदमी को भून रहे हैं और चुड़ैलें नाच रही हैं. बस, वह तड़ से गिर पड़ा और अपनी जान ले कर भागा. गिरता-पड़ता घर पहुंचा और उसने बिस्तर पकड़ लिया . और ठंडा हो गया.

पर घिस्सू के दिल में मुन्नी की उस हमशक्ल भैंस की मुहब्बत उसी तरह जवान थी, बल्कि उसे रोज देखने से और चमक गयी थी. सींग बांधने और बनाने के हुनर में उस्ताद घिस्सू, जब उसके सींग देखता तो उसके कलेजे पर घूंसा लगता. वह सोचता रहता और कुढ़ता रहता. अब अंगनू चमार से मीठे शब्दां में बोलना शुरू कर दिया. फिर धीरे-धीरे जंगल से गुजरते घिस्सू की अंगनू से मुलाकात हो जाती तो वह बातें करने को रुक जाता. भैंस को ताकने लगता और उसकी गरदन थपथपाया करता. घिस्सू अब चिलम से ज्यादा महंगी बीड़ी पीने लगा था और अपनी दुलहन से चिलम के नुकसान और बीड़ी के फायदे की बातें किया करता.

★ ✶

एक शाम घिस्सू अर्जुनपुर से सींग बांध कर आ रहा था. जब वह शीशम के पास सड़क पर पहुंचा तो उसने अंगनू की गुहार सुनी. अंगनू ने घिघिया कर बताया कि एक बकरी शीशम और कब्रिस्तान के बीच में चर रही है और वह कोई घंटे भर से चीख-चीख कर बुला रहा है, पर वह टस से मस नहीं होती. घिस्सू थोड़ी देर सोचता रहा, फिर वह मानकपुर के मौलवी की रटाई हुई कुरान मजीद की सूरतें पढ़ता हुआ शीशम के पेड़ की ओर बढ़ा. जंगल में धंसता कब्रिस्तान के बिल्कुल सामने से बकरी को हांक कर ले आया.

वह रात एक देवी की तरह खामोश, गंभीर और शांतिपूर्ण थी. उस रात देवी ने घिस्सू को एक मंत्रदान किया था. ऐसा मंत्र, जिसे पढ़ कर वह अपनी मुन्नी को देख सकता था. उस मुन्नी को देख सकता था, जिसके साथ उसने अपने घर की बरकत बेच दी थी. जिसके जाने के बाद उसके घर पर श्मशान का सन्नाटा छा गया था.

घिस्सू अपने बीवी-बच्चों को सोता हुआ छोड़ कर उठा. रजाई ओढ़ी. दवा की शीशी ले कर अंधियारे कुहरे में निकल आया.

राम अवतार महतिया ने जानवरों के उस छप्पर के फरके को धीरे से खोला, जिसमें वह भैंस बंधी थी. सींग पर हाथ लगते ही वह भड़की, पर घिस्सू की परिचित खुशबू सूंघ कर और गरदन पर प्यार भरे हाथों की थपकी सुन कर वह घिस्सू की दुलहन की तरह चुपचाप पड़ी रही. वह सींगों पर पानी ऐसी दवा पोत कर साये की तरह बाहर निकल आया.

दूसरे दिन दोपहर में अंगनू अपनी गोढ़ी समेटे कुएं पर बैठा चने चबा रहा था. जगत पर पीतल की लुटिया भरी रखी थी. घिस्सू को सड़क से गुजरता हुआ देख कर अंगनू ने गुहार दी—आओ, पानी-वानी पी लियो.

घिस्सू ने एक गठरी खोल कर गुड़ का चहार निकाला और एक टुकड़ा तोड़ कर अंगनू के अंगोछे पर रख दिया. पास खड़ी भैंस ने गुड़ की सूरत देखी तो डकरा कर और निकट आ गयी. घिस्सू ने थोड़ा-सा गुड़ उसके मुंह में रख दिया. अब तो वह घिस्सू के लस गयी. अंगनू ने डांटा भी पर वह न हिली. आखिर घिस्सू ने डंडा उठाया और धमकाता हुआ अन्य जानवरों की विरोधी दिशा में झाड़ियों की आड़ में छोड़ आया. फिर अंगनू के पास बैठ मीठी-मीठी बातें करने लगा.

झाड़ियों में घिस्सू का यार शेरअली खड़ा था. उसने लपक कर भड़कती भैंस के मुंह में भंग मिला गुड़ रख दिया और घंटियो वाली हमेल उतार कर वहीं जमीन में दबा दी. फिर भैंस को ललचाता हुआ थोड़ी-थोड़ी देर के बाद गुड़ खिलाता हुआ उसी शीशम की ओर चला, जो गोरों के कब्रिस्तान का सामना किये खड़ा था.

घिस्सू समय का हिसाब लगा कर उठा. थोड़ी देर सरजनपुर जाने वाली सड़क पर चला. फिर चक्कर काट कर, आंधी की तरह चलता हुआ शीशम के नीचे जा खड़ा हुआ और शेरअली के साथ भैंस को हांकता हुआ गोरों के कब्रिस्तान में घुस गया. उस कब्र के तावीजे से बांध दिया जिसके तीन ओर जालीदार दीवारें खड़ी थीं और उन पर ढलवान काली छत पड़ी थी.

भंग मिले हुए गुड़ की इतनी बड़ी मात्रा भैंस के पेट में पहुंच चुकी थी कि उसने जाते ही जाते गरदन डाल दी. उस सरदी में भी दो जोड़ पसीने में लतपत हाथ सूखी लकड़ियां जमा करते रहे. घिस्सू ने आग जला कर पीतल की लुटिया में लकड़ी की तरह जमी हुई दवा को पिघलाया और सींगों पर लेप दिया.

शेरअली पर तो न जाने क्या बीती, पर शाम होते-होते जब घिस्सू घर पहुंचा तो कोठरी में घुसते ही पलंग पर ढह पड़ा. दुलहिन को पलंग के पास ही अलाव जलाने का हुकम दे कर घर में जो कुछ मिला सब कुछ ओढ़ लिया. अलाव की लपटों में हाथ डाल दिये, पर सर्दी थी कि नस-नस में जम गयी थी और दिल धड़क रहा था. वह चूल्हे पर चढ़े हुए करछे की तरह फुंक रहा था. उसकी दुलहन सारी रात सिरहाने बैठी रही.

★ ★

अंगनू के मुंह से भैंस खोने की खबर सुनते ही राम अवतार बारूद की चरखी की तरह भड़क उठा. चारों लड़कों को सौ-पचास आदमी दे कर चारों खूंटों पर रवाना किया और स्वयं जल्दी से तैयार हो कर थाने पहुंचा. थानेदार की जेब गर्म कर के बड़ी धूम-धाम से तफतीश शुरू करा दी.

सजनपुर मानकपुर के जमीनदार लाला बाज बहादुर का गांव था. इधर लाला मरे, उधर जमींदारी फैल गयी. राम अवतार ने लाला की सारी सिकमी जमीन जो उसकी जोत में थी, हथिया ली और मसरख में चीनी की मिल के लिए कांटा लगते ही गन्ने की खेती शुरू करा दी. चार ही छह बरसों में नोटों का छप्पर छा लिया.

अब नाटे कद के झुके हुए राम अवतार लोध ने जमींदारों के चलन सीख लिये. टूटे-फूटे कच्चे मकान को फैला कर एक पक्का मकान खड़ा कर लिया और मैला-कुचैला फाटक लगा कर महतिया बन बैठे. घर की जवान औरतें पाउडर-सुर्खी लगा कर साड़ियां बांधने लगीं और पान खाने लगीं. मर्द कुर्ते और बूट पहनने लगे और साइकिलों और अद्धों पर सफर करने लगे.

लड़कों की तरह महतिया ने भी सबसे पहले घिस्सू पर ही शक किया पर अंगनू ने ऐसा बयान दिया कि थानेदार तक का दिल घिस्सू की ओर से साफ हो गया. फिर भी दोपहर ढलते-ढलते राम अवतार घिस्सू को देखने के बहाने उसे पढ़ने को गया. पर उसका बुखार देख कर ठंडा हो गया और झूठ-मूठ की लल्लो-चप्पो करते वापस चला आया.

भैंस की चोरी के साथ-साथ यह खबर भी उड़ गयी कि अंगनू की बकरी हांकने घिस्सू कब्रिस्तान के सामने चला गया था, अब गोरे छापे मार बैठे हैं.

अंधेरा बढ़ते ही शेरअली गले में काला धागा बांधे नमक-पारों की सलाई वाला रूई का काला शलूका पहने कंधे पर लठ रखे झूमता हुआ आया. दुलहन कोठरी से हट गयी.

घिस्सू और शेरअली देर तक बातें करते रहे. सुबह तक पुलिस कोई दर्जन भर आदमियों का बयान ले चुकी थी. अंगनू निगरानी में था. घिस्सू खूब ओढ़-लपेट कर निकला और शेरअली की साइकिल के कैरियर पर बैठ गंगापुर के 'नाऊत' माताप्रसाद से प्रेत झड़वाने चला गया.

साइकिल गोरों के कब्रिस्तान की ओर घूम गयी. दोनों कब्रिस्तान में घुस गये. शेरअली ने ठर्रे की बोतल बांस की नाल में उंडेल दी, फिर नाल भैंस के मुंह में खाली कर दी. घिस्सू आग जला कर हाथ-पैर सेंकने लगा. जब भैंस पर खूब घनघोर नशा चढ़ गया, तब घिस्सू सींग बनाने लगा.

शेरअली ने लाख समझाया, पर घिस्सू टस-से-मस न हुआ—यह हराम का पैसा ऐसा छूत होता है कि हलाल के पैसे को भी कोढ़ लग जाता है. सींग बन गये.

बढ़ गयी. हजार की थी, तो बारह सौ की हो गयी. बेवेगी तो बस महतिया केद्वारे, किसी को इसे बेचेंगे नहीं.

शेरअली मुंह लटकाये बैठा रहा और चिलम घसीटता रहा. घिस्सू ने राम अवतार महतिया के द्वारे भैंस पहुंचाने की तरकीब सोच ली. बोला--साइकिल उठाओ.

* *

घिस्सू को शेरअली की साइकिल पर जाता हुआ देख कर कुएं पर खड़ा गयादीन चौंक पड़ा. उसे शक हो गया. उसने पानी पीते बैलों को एक नौकर के हवाले किया और चारा काटने वाली मशीन से लगी छुटकऊ की वह साइकिल घसीट ली. वह कच्ची सड़क पर आगे की दो आदमियों से लदी साइकिल के पहियों के गहरे निशानों पर आंखें गड़ाये चलता रहा.

शीशम के पेड़ के नीचे करौंदे की झाड़ियों में साइकिल दबा कर दोनों कब्रिस्तान की ओर चले. शाम छाने लगी थी. सलाखों के फाटक को धीरे-से खोल कर शेरअली ने अपनी लाठी को मजबूती से पकड़ लिया. भैंस के पास आ कर खड़ा हो गया. घिस्सू ने उसके बल खाये चमकीले सींगों पर हाथ फेरा. फिर उसने कब्र के तावीज से उसकी जंजीर खोली और फाटक के सामने खुले हुए आंगन में ला कर खड़ा हो गया. शेरअली ने भैंस की सानी-पानी का सामान समेट कर लाद लिया था.

--चलोर वाले पेड़ों के पास तक पहुंचाए देंई का? वहां से अपने चली जहे. रस्ता जाना-भाला है.

घिस्सू भैंस की जंजीर पकड़े हुए कांटेदार झाड़ियों से बचता-बचता शीशम के पेड़ के पास आ गया. शेरअली ने साइकिल निकाल ली. घिस्सू ने भैंस की जंजीर उसकी मोटी-चिकनी गरदन में लपेट दी.

शेरअली साइकिल खड़बड़ाता हुआ सड़क पर चढ़ गया. घिस्सू ने चौंक कर भैंस को देखा. भैंस के खूबसूरत सींगों को देखा और उसकी गरदन में लिपटी हुई जंजीर में हाथ डाल कर सड़क पर चढ़ा लाया. घिस्सू का दाहिना हाथ भैंस की जंजीर में लिपटा हुआ था. और दूसरे हाथ में बीड़ी थी.

अचानक एक लाल साफे ने उसे पीछे से दबोच लिया. दूसरा लाल साफा शेरअली से लिपट गया. गयादीन ने शेरअली के सीने पर बल्लम रख दिया. सिपाही ने झटपट उसे बांध कर घिस्सू के रस्सी डाल दी जो सिपाही के बांहों में भौंचक्का खड़ा था.

गयादीन बल्लम फटकारता हुआ गरज रहा था---देखो दीवानजी, देखो. . . भैंस के सींग देखो. . .भला कोई कह सकता है या भैंस राम अवतार की है? या रौनापुर के मेले से जहांगीराबाद चली जाती. . . तुम जिंदगी भर ढूढ़वा करतियो का या मिलती?

घिस्सू दीवानजी की ठोकर पर चौंका और गालियों में लिपटे हुए हुकम के अनुसार आगे चलती हुई भैंस के पीछे-पीछे चलने लगा.

□□□

(अनुवाद : सुरजीत)

विद्यार्थियों के दहकते अनुभव

● अ. नि. गोडवले

मैं बुलढाना जिले के विटाली गांव का रहनेवाला हूं जो मलकापुर के पास है. गांव में चौथी तक पढ़ाई होती थी. १९६४ में मैंने वडणेर (मोलाजी) में प्रवेश लिया. अपने गांव के हम सत्रह बच्चे वहां पढ़ने जाते थे. घर में मुझ पर अच्छे संस्कार डाले गये थे इसलिए मैं अन्य स्पृश्य विद्यार्थियों में सहजता से हिलमिल लेता था. गांव के बच्चे, गुरुजन तथा अन्य लोग मुझसे छिटकते नहीं थे.

पंद्रह अगस्त का दिन आने वाला था. कपड़े टिपटाप होने जरूरी थे. गांव के रास्ते में एक नदी थी. वहां एक धोबी कपड़े धोया करता था. हम सभी विद्यार्थियों ने वहीं नदी पर अपनी चड्ढी और कमीज उतार कर उस धोबी को धोने के लिए दे दीं. सबके साथ उसने मेरे कपड़े भी धोने के लिए स्वीकार कर लिये. परंतु हुआ क्या कि हमारे साथ गोप्या नाम का एक लड़का भी रहता था जो बड़ा आलसी था और गंदा भी रहता था. धोबी की नजर उस पर पड़ी तो उसे कुछ ध्यान आया और वह पूछ बैठा--तुम लोगों में कोई बौद्ध तो नहीं है न? बाबासाहेब की जयजयकार करने के कारण लोग महारों को बौद्ध ही कहने लगे थे. धोबी कपड़े पानी में भिगो चुका था. जिस गोप्या को देख कर धोबी ने प्रश्न किया था वह मराठा था पर पूछताछ में मेरी जाति उस दिन प्रकाश में आ गयी. धोबी ने मुझे अपने कपड़े निकाल लेने का आदेश दिया. मन मसोस कर मैंने अपने कपड़े निकाल लिये. मुझ पर गालियों की बौछार पड़ती रही पर प्रश्न यह था कि भीगे हुए कपड़े कहां रखूं. मैंने किताबों के थैले में ही भीगे कपड़े रख लिये. और वैसे ही पाठशाला पहुंच गया. पीरियड खतम होने पर मैं नदी पर गया. जहां धोबी कपड़े धोता था वहीं एक पटिये पर मैंने अपने कपड़े साफ किये और पेन की शाही से उन पर नील चढ़ाया घर पहुंचते-पहुंचते उन्हें हाथों से उड़ाते हुए सुखा लिया और गरम लोटे से उन पर इस्तरी कर ली. परंतु पंद्रह अगस्त के लिए मेरे पिताजी नयी चड्डी और नया कुरता खरीद लाये थे, उन्हें पहन कर ही मैंने पंद्रह अगस्त मनायी.

□□□

नई सिग्नल केवल दावे ही नहीं करती
पेश है सबूत :

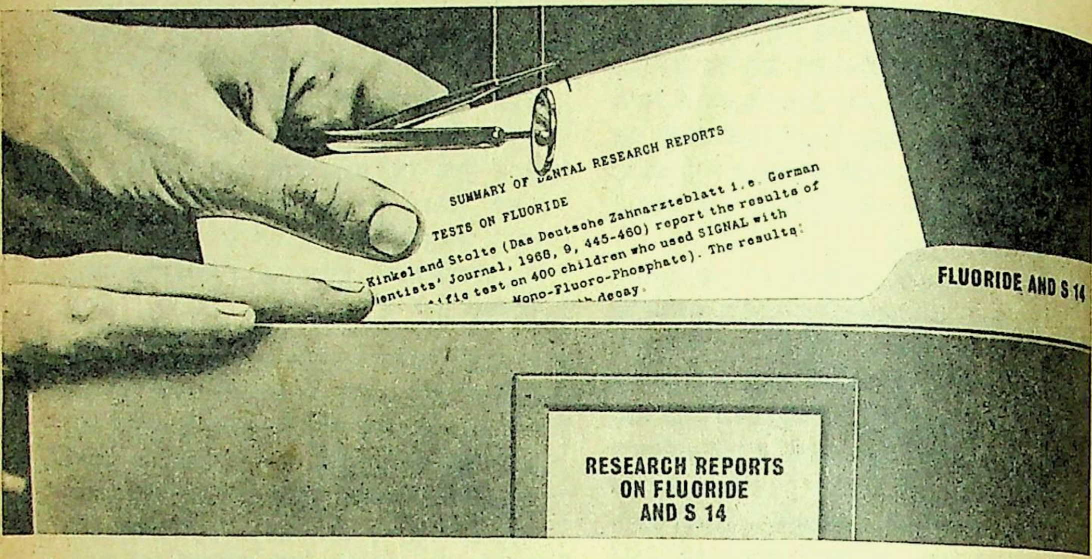
SUMMARY OF DENTAL RESEARCH REPORTS
TESTS ON FLUORIDE
Kinkel and Stolte (Das Deutsche Zahnarzteblatt i.e. German Dentists' Journal, 1968, 9, 445-460) report the results of ...fic test on 400 children who used SIGNAL with Mono-Fluoro-Phosphate). The results: ...h decay
FLUORIDE AND S 14
RESEARCH REPORTS ON FLUORIDE AND S 14

केवल नई सिग्नल फ़्लोराइडयुक्त **वास्तव में** दांतों की सड़न और सांस की बदबू को रोक देती है.

दंत-सफ़ाई के अनोखे आधार में

(पेटेन्ट नं. ११४७१८ के अंतर्गत नई सिग्नल एकमात्र टूथपेस्ट है जो फ़्लोराइड को दंत-सफ़ाई के इस अनोखे आधार में समाविष्ट कर सकती है)

अपने दंतचिकित्सक से पूछिए : वह नई सिग्नल के सिद्ध किए हुए फ़ायदों की पुष्टि करेगा।

फ़्लोराइड पर हुए परीक्षण : वैज्ञानिक किंकेल और स्टोल्ट की रिपोर्ट के अनुसार फ़्लोराइडयुक्त सिग्नल प्रयोग करने वाले ४०० बच्चों के दांतों की सड़न में ३३% तक की कमी हुई है।

S-14 पर हुए परीक्षण : (5 amino-1, 3-di (2-ethylhexyl) hexahydro-5-methyl pyrimidine). भारतीय टूथपेस्ट में पहली बार इस्तेमाल किए गए S-14 ने दिखलाया कि इस के प्रयोग के १५ मिनट बाद ही मुंह की बदबू ९५% कम हो गई। (ये प्रयोग हॉवर्ड ई. लिंड, डायरेक्टर एस. आई. ए. एस. लैबोरेटरीज़, मैसेच्युसेट्स द्वारा किए गए)

कुशल दंत-सफ़ाई की नई दिशा : नई सिग्नल में फ़्लोराइड और S-14 दंत-सफ़ाई के एक अनोखे आधार में कुछ इस तरह मिले हैं कि इस से दांत ऐसे साफ़ जैसे डाक्टर ने किए हों। ऐसा सम्पूर्ण मिश्रण किसी दूसरी टूथपेस्ट में नहीं मिल सकता।

मुफ़्त ! दांतों की देखभाल के बारे में सचित्र पुस्तिका मुफ़्त पाने के लिए इस पते पर लिखिए : हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, क्लीनिकल डिपार्टमेंट, पोस्ट बाक्स नं. ४०९, बम्बई-४००-००१ (कृपया डाकख़र्च के लिए २५ पैसे की टिकिटें भी भेजिए)

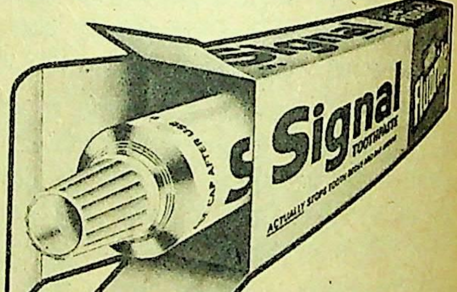
Signal
TOOTHPASTE
ACTUALLY STOPS TOOTH DECAY AND BAD BREATH
CAP AFTER USE

सिग्नल — हिन्दुस्तान लीवर की गारंटी प्राप्त टूथपेस्ट

किसी भी दूसरी टूथपेस्ट में फ़्लोराइड और S-14 एकसाथ मौजूद नहीं.

लिंटास-SGF.64C-140 HI

रिपोर्ताज़

चनवा का ओढ़ार

□ नरेंद्र नीरव

मिर्जापुर जिले का दक्षिणांचल भारत की मध्ययुगीन सभ्यता के अवशेषों से भरा पड़ा है. कैमूर की पर्वतशृंखला तथा शोणनद की लाल बालुकाकणों वाली यह बीहड़ वनस्थली वाणभट्ट की रचनाभूमि थी और जातीय संघर्षों से उकताये शैवों-बौद्धों की एकांत साधनास्थली भी थी. इसे द्वितीय काशी' या 'विजय काशी' (आजकल विजयगढ़) नाम से भी लोक-प्रसिद्धि मिली है. शोण नद (सोन नदी) के तटवर्ती इलाकों में निर्मित बांधों तथा कारखानों का यहां की आदिम आबादी पर एक भी लाभदायक प्रभाव नहीं पड़ा है. औद्योगीकरण के साथ गुजरने वाली सभ्यता के संक्रमण की क्रूर प्रक्रिया में वन्य जातियों की निजी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी. हिंसक आधुनिकता में लिप्त जंगल के ठेकेदारों और बाहर से आये हुए नौकरीपेशा लोगों ने यहां की भोली जातियों को बेघरबार कर दिया. लगभग एक दशक पूर्व रिहंद बांध (गोविंदवल्लभ पंत सागर बांध) के निर्माण के समय एक लाख आदिवासी उजाड़ दिये गये. रिहंद के जलाशय में डूबी हुई वन्य जातियों की खुशियां अब पूर्वी उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों में मानर और डफ (वाद्ययंत्र) की ताल के साथ भीख मांगती हुई दिखलाई पड़ती हैं. अल्मुनियम के खाली कटोरे में नगरीय उदारता के सिक्के खनकते तो हैं, मगर 'करमा' और 'नटुआ' (नृत्यों) से साक्षात्कार की संवेदना नहीं बटुर पाती. दुसाध, डोमर, बंसफोर, वाल्मीकि, धरकार, चेरो, कंजड़, कलाबाज, खरबार, गौंड, कोल, मुसहर, मझवार, वनमानुष, बसोर आदि अनुसूचित जातियों के ये बदनसीब बनजारे वाराणसी में बड़ी संख्या में प्रवास करते हैं.

स्वर्गीय डा. शिवप्रसाद गुप्त का पैतृक निवास रामनगर किले के सामने गंगा के पश्चिमी तट पर सेवा-उपवन' नाम से आज भी विद्यमान है. बंसफोर जाति के आदिवासियों की एक टोली 'सेवा-उपवन के बगीचे में शरण लेती है. बरसात के दिनों में ये सलखन (राबर्टसगंज के समीप के जंगली गांव) लौट जाते हैं. गरमी और जाड़े में पत्ते बेच कर, बांस की डलिया, मोनिया, पंखा, टोकरी बना कर, लकड़ी काट कर या सामान ढो कर शहर में ही गुजारा करते हैं. छोटे बच्चे और स्त्रियां भीख मांगते हैं. ज्यादातर युवक डफ बजा कर 'लोरिकायन' (लोरिका की कथा) सुनाते हैं. सेवा उपवन की चारदीवारी मेरे मकान से सटी हुई है और रात में चूल्हे पर कन्ना-खुदी पकाती गाना गाती और मारपीट करती यह टोली मेरे एकमात्र सक्रिय पड़ोस का रूप ग्रहण कर लेती है.

अंधेरी रात थी और काले-कलूटे आदिवासियों के चेहरे पहचान में नहीं आ रहे थे. पुरुष और स्त्रियों की दो टोलियां हाथ में लुआठी तान कर खड़ी थीं. गालियां दी जा रही थीं. किशोर और बच्चों की चीख-पुकार के बीच उठती खून-खच्चर की संभावना महसूस की जा सकती थी. ऐसा लग रहा था कि बंसफोरों पर लोरिका का प्रेत सवार हो गया है.

लुआठी को पैतरे से भांजती दोनों टोलियां किसी प्रश्न पर परस्पर जूझने के लिए तैयार थीं. मैं शीघ्रतापूर्वक उनके समीप डरते-सहमते पहुंचा. गंगई (एक परिचित बंसफोर) को मैंने नाम ले कर पुकारा. उसने लुआठी फेंक दी और बोला— बोलबि सरकार!

—यह सब क्या हो रहा है? मैंने डांटते हुए पूछा.

उत्तर में बीसों लुआठियां मेरे ईर्द-गिर्द आ गयीं. सब एक-दूसरे को बेलौस गालियां दे रहे थे. मैंने टोकते हुए कहा— कुछ नहीं, मैं पुलिस को बुलाने जा रहा हूं. तुम लोग यहां से जाओ.

—ई डेरा मत कबार साहेब! हाथि बोरिक विनती बाटे. गंगई मेरे पैर पर गिर पड़ा.

लुआठियां चूल्हों में पुनः घुसेड़ दी गयीं और मुझे लगा कि क्षमा-याचना के अनेक स्वरों से एक ही ध्वनि निकल रही है: हमें विस्थापित मत करिए. हममें कोई झगड़ा नहीं है.

★ ★

रात में लगभग बारह बजे मैंने 'चनवा का ओढ़ार' (लोरिक और चनवा का विवाह) की ये पंक्तियां सुनीं, जिन्हें गंगई गा रहा था.

खापीले सउसे गउरवा के
लोगवा सुती जाय.
जब उहां हो गइल
रतिया आ के निसुआर,
घसेलागल राजा
डेवढ़ी पर चौकीदार.

वे जानते हैं कि चनवा से विवाह करने के बाद लोरिका हरदीनगर चला जायेगा. उसकी पेशियों में ताकत है, वह सबको हरा सकता है, लेकिन क्या वह अकाल पर विजय प्राप्त कर लेगा? मिर्जापुर में तीसरे साल अकाल पड़ा है और यहां से विस्थापित होने का मतलब है मौत. नहीं, ऐसा नहीं होगा. हमें मत उजाड़ो. अपनी बेटी की इज्जत बचाने में हम असमर्थ हैं, क्योंकि दुष्काल अपराजेय है. फिर भी 'चनवा का ओढ़ार' सबको सुनाते रहेंगे. वे जानते हैं कि लोरिका काली के मणिकर्णिका घाट पर पत्थर बन कर जम गया है. स्वर्ग में बैठे इंद्र ने शाप दे दिया था. और चनवा ने दुर्गा बन कर उसकी इहलीला को खत्म कर दिया. □□□

सी. के. ६४।७६, हीरापुरा, वाराणसी–१

कहानी एक ब्याह की

□ अमृता प्रीतम

कुछ अरसा हुआ गुरु गोविंदसिंह कॉलेज, माहलपुर, पंजाब, में आदम-बू, आदम-बू तथा कलजुग! घोर कलजुग ! ! की आवाजें उठ खड़ी हुई थीं. धमाका इस बात से हुआ था कि जाट घराने की एक लड़की दर्लावदर कौर तथा एक हरिजन परिवार के नौजवान लेक्चरर अजीतसिंह ने अपनी मर्जी से विवाह कर लिया था. कॉलेज के प्रिंसिपल , प्रबंध-समिति, अध्यक्ष तथा अन्य अनेक लोगों को यह विवाह कतई अच्छा नहीं लगा और नवदंपती को कॉलेज की नौकरी से बरखास्त कर दिया गया. पंजाब यूनिवर्सिटी की जांच समिति ने प्रबंध-समिति द्वारा उठाये गये कदम को अनुचित करार दिया और अपना निर्णय दिया कि दोनों लेक्चररों को अविलंब उनकी नौकरी पर फिर से बहाल किया जाये. प्रख्यात पंजाबी लेखिका अमृता प्रीतम ने दर्लावदर तथा अजीत से एक भेंटवार्ता की, जिसे हम यहां ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर रहे हैं.

अमृता—दर्लावदर, जब कोई लड़की अपना साथी चुनती है,उसके सामने बिल्कुल एकांत में एक घर की कल्पना होती है. वह कुछ देर के लिए तो किसी का दखल नहीं सोच सकती. पर तुम्हारे और अजीत के विवाह की शायद पहली रात भी ऐसी नहीं थी, जिसमें समाज का भयानक दखल नहीं था. . .

दर्लावदर—पहली रात भी और उसके बाद कोई दस रातें. अगर सड़क पर से किसी स्कूटर-मोटर की आवाज सुनाई दे जाती, तो लगता, हमें कत्ल करने वाले आ गये हैं. यों हमने एक समझदारी की थी कि हम रात को रहते कहीं थे, और पता किसी अन्य जगह का बता देते थे. दिन में भी अगर बाजार में से कोई चीज खरीदने जाना होता, तो हम इकट्ठे जाते थे. सोचते थे, अगर कत्ल भी हों तो इकट्ठे हों. . .

अमृता—दर्लावदर, तुमने अजीत के साथ विवाह करने की बात कब से सोची हुई थी?

दर्लावदर—कोई दो साल हो गये हैं. पर घर में इस प्रकार था कि मां-बाप की ओर से तो मनाही थी, पर मेरे भाई मेरे साथ थे. इसलिए वे इतना तो मान गये थे कि हम यहां विवाह न करें, दोनों कनाडा चले जायें, और वहीं जा कर विवाह कर लें. बाद में मैंने और जोर डाला तो यहीं अपने हाथों से विवाह करने के लिए मान गये. पर हम दोनों माहलपुर के कॉलेज में नौकरी करते थे. कॉलेज के प्रिंसिपल को फिक्र हो गयी कि मैं जाटों की लड़की कहीं चमारों के अजीत के साथ सचमुच ही विवाह न कर लूं. सो उसने कॉलेज मैनेजमेंट के चौधरियों को बहकाया. उनमें से आधे तो संत-महंत हैं, वे उसी समय हमारे घर की ओर चल पड़े. रोज ही चक्कर लगायें. यहां तक कि मेरे पिता जी बीमार हो कर अस्पताल गये तो वे लोग अस्पताल में भी जा पहुंचे. कभी मुझे पकड़ कर बैठ जायें कि अरी लड़की, तू तो हमारी दाढ़ियों में राख डालने लगी है. मैंने उन्हें ऐसा कहा कि आप तो महाराज संत हैं, आपको क्या अंतर पड़ता है? उनका जवाब था—हम समदृष्टि हैं, समवर्ती नहीं.

अमृता—हमारे देश में कितना कुछ गलत है. यही कारण उसकी जड़ में है — जिस दृष्टि से देखना, उस दृष्टि से व्यवहार नहीं करना. तुम्हारे गांव का नाम क्या है, दर्लावदर?

दर्लावदर—पुर हीरां.

इमरोज—फिर उन साधुओं-महंतों के गांव का नाम कैंदोपुर होगा— पुर कैंदों.

दर्लावदर—तभी मुझे वह संत-महंत जाते हुए कह गये—हमारी तो जिंदगी-मौत का सवाल है. अगर तुमने इस तरह किया, अरी लड़की, तो तुम दोनों को हम इलाके में जिंदा नहीं रहने देंगे. सो उन लोगों के साथ मिल कर मेरे डैडी ने भी इनकार कर दिया. फिर बड़ा भाई भी उन लोगों के साथ मिल गया. छोटा कहीं दक्षिण में नौकरी पर है. सो मैं अकेली फैसला करने के लिए रह गयी. दिल बड़ा उदास था. दो दिन रोटी न खायी गयी. तीसरे दिन सुबह कॉलेज के लिए चली, उस दिन अक्तूबर की सोलह तारीख थी, पर रोटी खाने लगी तो न खायी गयी. मां तो प्यार से मनाती रही, पर डैडी गुस्से होने लगे. हाथ से किताबें छीन लीं. कहने लगे—किसी कॉलेज में नहीं जाना. वहां जा कर तुम्हें चमारों के लड़के के साथ ही फिरना है न. . . उन्होंने जोर दिया कि मैं कॉलेज की नौकरी से इस्तीफा दे दूं. मैंने विनम्रता दिखायी. इस्तीफा देना भी मान गयी और कहा—अच्छा आज का दिन जाने दें. फिर, जी, उन्होंने मुझे कॉलेज जाने की इजाजत दे तो दी, पर भाई ने मेरा बटुआ छीन कर देखा – उसमें चार सौ रुपये थे. उसने तीन सौ नब्बे रुपये निकाल लिये. दस रुपये रहने दिये.और मुझे स्वयं जा कर बस में सवार करा आया. फिर जी, मैं कॉलेज पहुंच गयी. एक पीरियड के बाद मैंने देखा कि मेरे बड़े भाई साहब प्रिंसिपल के दफ्तर में से निकल रहे थे. मुझे देख कर कहने लगे—मैं तो प्रिंसिपल की मां के स्वर्गवास पर अफसोस करने आया था. पर मैंने देखा कि वह अजीत को

अडवानी आर्लीकान के सौजन्य स

अपने स्कूटर के पीछे बिठा कर कहीं ले गये. . .

अजीत—मुझे वह बस के अड्डे वाली चाय की दुकान पर ले गये. कहने लगे—पिछली बातें भूल जा कि भई हम विवाह के लिए मान गये थे. यों हम दोस्त-मित्र रहेंगे. साथ ही धमकी भी दी कि उसके ससुर अमृतसर के हैं. वह मुझे जिंदा नहीं छोड़ेंगे.

अमृता—सो दोस्ती और धमकी एक ही सांस में दे दी?

अजीत—मैं बात तो समझ ही गया था. उनको किसी तरह वहां से चलता करना था. सो कहा—अच्छा. फिर लड़की को कोई भली-बुरी बात न कहें. साथ ही एक बात यह करना कि जहां भी उसका विवाह करें, धूम-धाम से करें. वह यह सुन कर खुश हो गये. मैंने कहा—मैं इस तरह नहीं मानूंगा. अपने डैडी के सामने ये बातें कहें. उस दिन मंगलवार था. वह कहने लगे, अच्छा. फिर शुक्रवार को गांव आ जायें. डैडी के सामने ये दोनों बातें कह दूंगा.

दर्लविंदर—सो अजीत जब भाई साहब के साथ चाय पी कर आया, मैंने भी उसको बताया कि सुबह मेरे साथ क्या-क्या बीती. और मैंने कहा—अगर मैं आज घर वापस चली गयी तो वे मुझे फिर घर से बाहर नहीं निकलने देंगे. सो आज का दिन ही है. देख लो. बस फिर क्या था! इसे भी पता था कि एक ओर मैं हूं, दूसरी ओर बाकी दुनिया. और मुझे भी मालूम था कि एक ओर यह अजीत है, और दूसरी ओर सारी दुनिया. सो जो कपड़े पहने हुए थे, उन्हीं कपड़ों में बस-स्टैंड को चल पड़े. . . .

अमृता—किसी को जाते समय कुछ बताया ?

दर्लविंदर—अजीत ने अपने एक दोस्त को बताया, और मैंने एक सहेली को. मेरी सहेली की आंखें भर आयीं. कहने लगी— सोचा तो था कि तुझे किसी और तरह से विदा करूंगी. पर इस समय तो तुझे ठूठी-कलीरा शगुन भी नहीं डाल सकती.

अजीत—मेरा दोस्त मुझे बस तक छोड़ने आया. एक बार बस में सवार होते हुए बांह खींच कर कहने लगा—अभी भी सोच ले. न जा. मैंने जो सोचना था, वह तो सोच कर चला था. सो हम दोनों बस में सवार हो गये.

दर्लविंदर—चंडीगढ़ पहुंच कर जिस दोस्त के घर गये, उसने पहुंचते ही कह दिया कि वहां हमारा विवाह नहीं हो सकता. सो हम या जालंधर चले जायें या दिल्ली.

अजीत—फिर हम एक अन्य दोस्त के पास गये. उसने हमारा स्वागत किया, और हम मिल-जुल कर गुरुद्वारा ढूंढने लगे.

दर्लविंदर—जिस गुरुद्वारे में जायें, वहीं वे कहें—हमने तो जी, विवाह करने बंद कर दिये हैं. फिर १५सैक्टर

में एक गुरुद्वारा था, उसका ग्रंथी मान गया. और इतवार, २१ अक्तूबर को हमारा विवाह हो गया.

अजीत—अमितोज ने इसे चूड़ा डाला. मैंने इसके सुहाग-गीत गाये. गुरुद्वारे जाते समय रास्ते भर गाता गया —'बीबी पतलिए, नी पतंग जेहिए, आपणे बाबल कोलों कुझ मंग लइए. . . बाबल वर दिता, सोहणा घर दिता, हरियां बागां विचों फुल्ल तोड़ दिता. . .'

अमृता—और दर्लविंदर, तुमने इसकी घोड़ी नहीं गायी थी?

दर्लविंदर—मुझे तो उस समय शिवकुमार की नज्म याद आ रही थी—'मैं ओ चंदरी जिसदी डोली लुट्ट लई आप कहारां. बन्नण दी थां बाबल जिसदे आप कलीरे लाहे . . .' फिर उसके बाद जी, एक दिन अजीत का छोटा भाई हमें ढूंढता हुआ पहुंच गया. उसने हमें बताया कि पुलिस ने हमें जमानत भेजी है कि हम गांव में आ जायें, वे हमारी हिफाजत करेंगे.

इमरोज—साधु-संतों की अपेक्षा तो पुलिस वाले ही अच्छे निकले!

दर्लविंदर—हम फिर गांव चले गये. . .

अजीत—रास्ते में जो देखता, 'आ गये जी, आ गये' कहता हुआ साइकिल दौड़ा लेता कि जा कर गांव में खबर कर दे. जब गांव पहुंचे, सारा गांव धूम-धाम से हमें देखने आया. स्त्रियां कहतीं— अरे! हमारे तो गले से रोटी नहीं उतरती थी. लोग कहते थे—दोनों को मार दिया गया है. . .कोई कहे— भई जहाज पर चढ़ गये. . .

दर्लविंदर—कई यह भी कहते कि मैं अपने घर से अस्सी हजार ले कर भाग गयी हूं. खैर उन बातों का तो कोई महत्व नहीं. . . पर असल बात तो खतरे की थी. गांव में घुसते ही पहले हम पुलिस-स्टेशन गये. अपने विवाह की तस्वीरें दिखायीं, और उन्होंने हमें यकीन दिलाया कि वे हमारी हिफाजत करेंगे.

अजीत—फिर हम कॉलेज गये, पर जाते ही नौकरी से जवाब मिल गया.

दर्लविंदर—हम यह जवाब ले कर फिर भी गढ़ गये. यूनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर से अपील की. उन्होंने जब कॉलेज से पूछ-ताछ की तो कॉलेज वालों को पता लगा कि वह तो गलत काम कर बैठे हैं. हम तो स्थायी नौकरी पर थे. वे इस तरह नहीं कर सकते. सो उन्होंने अपने फैसले को सुधार कर हमें सस्पेंड किया. चार्जशीट भेजी. हम पर लगाने के लिए आरोप गढ़े और तीन महीने बाद दुबारा डिसमिस कर दि

अमृता—यह बात पंजाब एसेंबली में भी उठी

दर्लविंदर—एसेंबली में भी उठी थी और कॉ के विद्यार्थियों ने प्रदर्शन भी किया था. प्रदर्शन के दौ कॉलेज एक हफ्ते के लिए बंद कर दिया गया था, अखबारों में अभी तक बात चल रही है. ज्ञानी जैलसिंह ने हमें सरकारी नौकरी ऑफर की थी, पर हमारी ल तो उसूलों से है. हमें कॉलेज में से क्यों निकाला ग सस्पेनशन के दौरान हमने पंजाब यूनिवर्सिटी बार-बार अपीलें की थीं, पर हमारी सुनवाई नहीं हु दूसरे टरमीनेशन के बाद यूनिवर्सिटी ने आर्बिट्रे कमेटी बनायी है. अब देखें. . .जहां तक लोगों का स है—पहले हमें इतनी हैरानी से देखते थे कि जैसे हम दुनिया के न हों. अब हमें कई स्वागत देते हैं, खुश भी कि हमने एस्टेबलिशमेंट के साथ इतनी बड़ी टक्कर है. कई बेचारे हैरान भी हैं. सोचते थे—हम दो कुछ दिनों के बाद लड़-झगड़ कर अलग हो जायें पर सब से मजेदार बातें गांव की औरतें करती कोई कहती है—ऐसी लड़की को तो पै होते ही मार देना चाहिए था. टेलिविजन डी' मैलो ने जब हमारा इंटरव्यू लिया, तो बात गांव तक भी पहुंची. औरतें कहने लगी— अरी! उनका तो सिनेमा भी बन गया है. फिर जब प्रधानमंत्री ने लोकसभा में यह बात कही, बेचारी औरतों के खयालों में परिवर्तन आ गया. कहने लगीं— अरी! अब क्या कसर रह गयी अब तो इंदिरा ने भी कह दिया. . . कहते हैं, लड़की सीधी इंदिरा के पास चली गयी. और वह कहने लगीं—तुम फिक्र न करो. मैं एक-एक को देखूंगी. अखबार वालों का अपना ही रंग है. कोई हमें प्यारा जोड़ा कहता है, कोई आधुनिक हीर-रांझा, कोई माहलपुर से निकाला हुआ जोड़ा, कोई इंटरकास्ट कपल और कोई अखबार वाला लिखता है—किस्सा दर्लविंदर-अजीत का. . .

अजीत—हम किसी कॉलेज में एक लेक्चरार से मिलने गये. वहां कुछ अन्य लेक्चरर खड़े थे. मैंने अपने दोस्त के बारे में पूछने के लिए अपना नाम बताया. खैर वह वहां नहीं था. हम लौट पड़े. कुछ देर में एक लड़का पीछे से दौड़ा हुआ आया—कपल साहब! कपल साहब! आपका नाम कपल है न? आपको वह बुलाते हैं. मैं कितनी देर सोचता रहा. फिर जान गया कि मेरे नाम से पहचान कर उन लोगों ने लड़के को कहा होगा कि यह तो वही अखबारों वाला कपल है, जा, जा कर बुला ला. सो आजकल हम कपल साहब हैं. . .

□□□

(अनुवाद : सुरजीत)

प्रणय से परिणय तक : जातिप्रथा के विरुद्ध एक संघर्ष की शुरुआत—नवदंपती अजीतसिंह और दर्लविंदर कौर

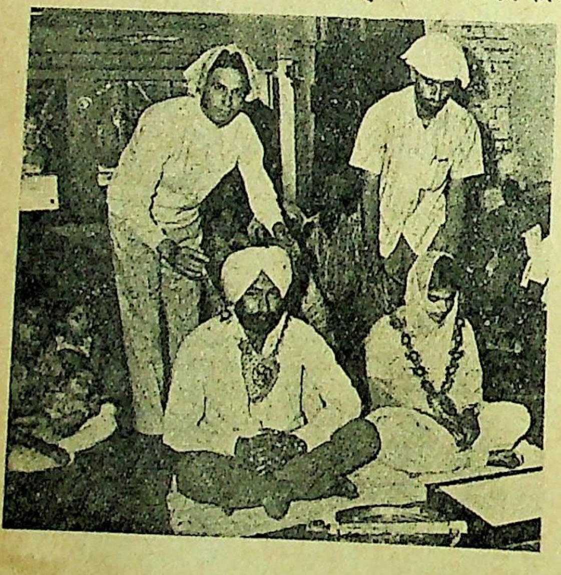

दलित साहित्य : उद्देश्य और वैचारिकता

● बाबूराव बागूल

देवताओं, मंदिरों, ऋषियों का यह देश! इसलिए क्या यहां सब कुछ अमर है? वर्ण अमर, जाति अमर, अस्पृश्यता अमर! दीनता, दासता, दुख और उपेक्षा भी अमर! या फिर यहां के मनुष्य हजारों वर्ष पहले के हैं? सब के सब सैकड़ों साल की आयु के? तब क्या ये यंत्र, ये तकनीक, ये कारखाने, ये रेलवे, ये वायुयान, ये प्रजातंत्र, ये समाजवाद, ये शहर, ये संघर्ष सब कुछ काल्पनिक हैं? मायाजाल हैं? सच क्या है? वर्ण-व्यवस्था, पुराण और ये देवी-देवता या यह क्रांतिरत युग?

युग के बाद युग आये. बड़े-बड़े चक्रवर्ती आये. महाकवि आये. महापंडित आये. दार्शनिक आये. विदेशियों के आक्रमण आये. उनकी सत्ता आयी. धर्म आये. संत आये. पंथ आये. फिर भी अस्पृश्यता, विषमता अमर है.

यह सब कैसे हो गया? किसी भी महाकवि, पंडित, दार्शनिक, सत्ताधारी, संत की आंखों में यह अमानुषिक व्यवस्था चुभी क्यों नहीं? किसी ने भी इस क्रूर व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह क्यों नहीं किया? बुद्धिजीवियों, संतों और सामर्थ्यवानों का यह अंधापन, यह संवेदनशून्यता दुनिया भर में खोजने पर भी नहीं मिलेगी.

इससे एक ही अर्थ निकलता है कि यह व्यवस्था बुद्धिजीवियों, संतों और राज करने वालों को मंजूर थी. यानी इस व्यवस्था को बनाने और उसे बनाये रखने में बुद्धिजीवियों और शासकों का हाथ है.

मनुष्य समाज में जब से स्वामित्व, सत्ता का उदय हुआ, तब से सत्ता और उसकी संरक्षक धर्मसत्ता (अर्थात् ब्राह्मण और शासक) अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए अनेक तत्वों, प्रथाओं, रूढ़ियों, प्रतीकों और व्यवस्थाओं का निर्माण करते रहे हैं. और जन्मजात विषमता दृढ़ होती गयी है. जो लोग अस्पृश्य (अछूत) माने गये हैं, जिन्हें शूद्र-अस्पृश्य (शूद्रातिशूद्र) कहा गया है. मनुष्य के रूप में उनके अधिकारों को नकारा गया है. उनको अवसर, साधन और शिक्षा से वंचित रखा गया है.

जो स्पृश्य हैं, उनके लिए अवसर, साधन, शिक्षा और आत्मविकास का द्वार काफी खुला रखा गया है. इसलिए स्पृश्यों में से तो कोई गरीब अपने गुण और कृत्य के बूते पर आगे बढ़ सकता है, पर अस्पृश्यों में से, शूद्रों में से, गुणी और कर्मठ व्यक्ति भी आगे नहीं बढ़ सकता, क्योंकि धर्मदंड-सत्ता ने सभी क्षेत्रों में उसका प्रवेश निषिद्ध कर रखा है. इतना ही नहीं, पूजनीय माने गये ऋषियों-देवताओं ने पाप, पूर्व-कर्म, पूर्व-जन्म को खोज कर इस क्रूर विषमता के साथ ईश्वरीय न्याय-बुद्धि को भी जोड़ दिया है. पिछले जन्म के पाप-पुण्य के फलस्वरूप सुख-दुख, दीनता-दासता, नीच-ऊंच कुल में जन्म होता है. इसे बार-बार दोहरा कर वे अन्याय-अत्याचार करने वाले शासकों-शोषकों पर परदा डाल देते हैं और सर्वोच्च कर्ता के रूप में परमेश्वर को आगे ला खड़ा करते हैं.

जब सारा दुख, दैन्य, दासता परमेश्वर के दंड-विधान का ही प्रतिफल है, तो जागृति कैसे आयेगी? क्रोध किस लिए आयेगा? शोषक कैसे दिखेगा?

इसलिए, शत्रु है कहां? अत्याचारी तो दिखता ही नहीं. उसके विरुद्ध अपनी कर्मशूरता दिखाने का क्षेत्र ही नहीं है.और न ही है अपनी बुद्धि, शारीरिक शक्ति, ज्ञान के उपयोग के लिए अवसर-अधिकार. क्या ऐसे लोग सड़-गल नहीं जायेंगे? हम कौन हैं, किस हालत में हैं, इसका बोध कैसे होगा? जब बोध ही नहीं होगा, तो वे अपने अस्तित्व के लिए जूझेंगे कैसे?

धर्मदंड-सत्ता की परिकल्पना ही ऐसी रही है कि वे जूझें नहीं, विद्रोह न करें. अस्पृश्यों पर लादे गये बंधनों और वर्ण-व्यवस्था की अमरता से इसकी पुष्टि होती है.

आर्य-अनार्य के सत्ता-संघर्ष, बौद्ध-ब्राह्मण धर्म में सत्ता, सांस्कृतिक और वैचारिक स्तर पर हुए संघर्ष के फलस्वरूप हिंदू धर्म, वर्ण-व्यवस्था, अस्पृश्यता निर्मित हुई है. जिन देवताओं को हिंदू धर्म ने पूजनीय बना कर मंदिरों में बिठाया, उनमें से अनेक युद्धों में लड़े हैं. उनकी युद्धगाथाएं पूजनीय ग्रंथों में शामिल हो गयी हैं. अनेक उत्सव-त्यौहार युद्ध में इन देवताओं की जय-पराजय से जुड़े हुए हैं. सत्ता-संघर्ष, जय-पराजय, विजेता का उदात्तीकरण और पराजित का राक्षसीकरण हिंदू समाज की संस्कृति और वाङ्मय की एक विशिष्टता है.

* *

ये युद्ध युग विशेष में समाप्त हो गये थे. अतः युद्ध की मनःस्थिति को स्थायी रूप देने की कोई आवश्यकता नहीं थी. किसी-न-किसी को युद्ध की मनःस्थिति से हुई इस समाज-रचना को बदलना चाहिए था. जीत-हार पर आधारित इन संबंधों में परिवर्तन होना चाहिए था और प्रेम, करुणा, बंधुत्व को अमर कर आगे आना चाहिए था. पर हजारों वर्षों के इतिहास में इनको अमर कर आगे आने का अवसर नहीं मिला, इनको उभरने नहीं दिया गया.

स्पष्ट ही प्रत्येक सत्ता, प्रत्येक पंडित, कवि और दार्शनिक को यह अमानुषिकता मान्य थी. वह वर्ण-व्यवस्था को स्वीकार करता था. प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर अपने लेखन को 'दलित साहित्य' कहने वाले कलाकारों-बुद्धिजीवियों को यह विदारक सत्य स्पष्ट रूप से दिखा है. उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हमारा हिंदू धर्म

और उसकी साहित्य-परंपरा से कोई संबंध नहीं है.

'दलित साहित्य' वह लेखन है, जो वर्ण-व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है. वर्ण-व्यवस्था अर्थात द्वेष, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्ध-भावना. इसके विपरीत मूल्य अर्थात प्रेम, बंधुत्व, समता, भ्रातृभाव पूर्ण शांति और समृद्धि. 'दलित' शब्द से अनेक प्रकार का बोध होता है, जैसे दुख-बोध, अपमान-बोध, दैन्य-दासत्व-बोध, जाति-वर्ग-बोध, विश्व-बंधुत्व-बोध और क्रांति-बोध.

एक अर्थ में आज के सामान्य मनुष्य के जीवन और शूद्र-अस्पृश्य के जीवन में दुख, दैन्य, अपमान की व्यथा-वेदना भर गयी है. इस दृष्टि से सामान्य मनुष्य, चाहे वह स्पृश्य हो या अस्पृश्य, एक ही धरातल पर आ गये हैं. किसी हद तक यह काम पूंजीवादी व्यवस्था ने किया है. परिवर्तन दोनों चाहते हैं. पर परिवर्तन करेगा कौन?

स्त्री, शूद्र-अस्पृश्यों को सिर्फ राजनीतिक परिवर्तन पर्याप्त नहीं दिखता. उदाहरण के लिए, बरतानवी राज गया और स्वराज आया––प्रजातंत्र आया. फिर भी अस्पृश्यता है. और है आर्थिक तथा मानसिक विषमता.

पुरानी सामंतवादी अर्थ-व्यवस्था कमजोर हो रही है और पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था प्रबल हो रही है. पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध को जीत कर उसने अपना सामर्थ्य दिखला दिया है. फिर भी अस्पृश्यता है, विषमता है.

बरतानवी राज के समय से भारतीय पूंजीवाद का विकास हो रहा है, तब भी अस्पृश्यता, जातिभेद, धर्मभेद कायम हैं. अलबता, मध्ययुग में ये जितने उग्र थे, उतने नहीं, पर कायम तो हैं. इससे यही अर्थ निकलता है, अस्पृश्यता, जाति-भेद और धर्म-भेद को बनाये रखने से पूंजीवाद के विकास में कोई बाधा नहीं आती है. ऐसा नहीं है कि पूंजीवाद के विकास के साथ अस्पृश्यता का उन्मूलन हो जायेगा, विषमता समाप्त हो जायेगी. अमरीका में पूंजीवाद का विकास पराकाष्ठा तक पहुंचा, तो भी वहां काले लोगों की स्थिति दोयम है. इस दोयम स्थिति को नष्ट करने के लिए गोरों ने गोरों के विरुद्ध एक युद्ध तक लड़ा है. और आज भी कई गोरे कालों के साथ हैं. यहां गांधीजी और कुछ गांधीवादियों को अपवाद के रूप में छोड़ दें, तो दूसरों को तो इस समस्या की जानकारी भी नहीं है.

★ ★

प्रजातंत्र मनुष्य को उसका अधिकार और स्वातंत्र्य देता है. भारतीय गणराज्य ने अस्पृश्यता को अस्वीकार कर वर्ण-व्यवस्था को नकारा है और शूद्र-अस्पृश्यों को सभी मानवीय अधिकार दिये हैं. पर भारत में जैसे प्रजातंत्र है, वैसे ही वर्ण-व्यवस्था भी है. प्रजातंत्र अधर-बीच में, समाचार पत्रों और विद्वानों के मंचों पर व्यक्त होता है. परंतु वर्ण-व्यवस्था मन-ही-मन में, हर क्षण प्रकट होती है. सच कहें, तो दोनों व्यवस्थाएं एक साथ रह नहीं सकतीं, वे परस्पर विरोधी हैं, किंतु भारत में तो चमत्कार दिखता है. इतना ही नहीं, अस्पृश्यता को नकारने वाली भीमस्मृति (आंबेडकर वाद) और अस्पृश्यता का पालन करने वाली मनुस्मृति, ये दोनों ही स्मृतियां एक ही सभागृह में और एक ही घर में साथ-साथ राज करती यानी देश एक ही समय में दो स्मृतियों, दो सत्ताओं दो जीवन-पद्धतियों में जीता है.

स्पृश्य और अस्पृश्य दोनों ही तरह के सामान्य को एकजुट हो कर देश को लोकशाही और भीम-स्मृ (आंबेडकरवाद) के अंतर्गत लोकशाही समाजवाद ओर ले जाना चाहिए.

सामान्य मनुष्य की ओर से सबसे बड़ा आ करने वाली शक्ति है शहरी कामगारों और बुद्धिजी की. परंतु कामगारों और बुद्धिजीवियों ने अपना स्वाभाविक कर्तव्य निभाया नहीं.

यह सच है कि आंबेडकर-आंदोलन में भाग वाले अस्पृश्य कामगारों ने अस्पृश्यता-निवारण के आं लन में काफी बड़ा काम किया है. लेकिन इस संघर्ष स्पृश्य कामगारों और बुद्धिजीवियों ने उनका साथ दिया. संयुक्त महाराष्ट्र का आंदोलन इसका अप रहा है. परंतु वह वातावरण स्थायी नहीं बन सका. शा दल और वामपंथी तथा दक्षिणपंथी विरोधी दलों ने वातावरण को बनाये रखने में मदद नहीं की. इस अर्थ यह हुआ कि प्रहारक कामगार वर्ग में से स्पृश्य का गार और बुद्धिजीवी वर्ण-व्यवस्था तथा मनुस्मृति के विरोधी नहीं बने अर्थात वे तानाशाही के प्रबल विरो बन कर सामने नहीं आये. दूसरे शब्दों में, यदि देश तानाशाही आयी तो वह युगों-युगों से स्थापित और व व्यवस्था के निर्माता उच्चवर्णीय लोगों द्वारा ही आये उच्चवर्णीय लोगों और स्पृश्य सामान्य जनता को भी इतिहास और अतीत गौरवमय लगता है.

अतीत में जिन लोगों को कभी समाज का स्थान नहीं मिला और जिनकी इतिहास में कोई छो मोटी भूमिका तक नहीं रही, उन्हें उसके प्रति म कैसे होगा? उसके लिए तो उनके मन में शत्रुत्व ही उनके लिए तो जो कुछ है, वह वर्तमान है. वर्तमा जिसमें लोकतांत्रिक समाजवाद की संभावनाएं निहित वर्तमान, जिसने सामान्य जनता को संघर्ष के अस्त्र दिये हैं, जिसने निर्माण और क्रांति का विश् दिया है, समाज बदलने में समर्थ नयी उत्पादन-प्रणा दी है और दिया है भविष्य में भ्रातृभाव पूर्ण, संपन्न, सु जीवन का आशावाद! वर्तमान से अपार प्रेम करने वा और भविष्य के निर्माण के लिए प्राणपन से जूझने वा भारत का सबसे प्रभावी वर्ग सिर्फ दलितों का है.

अतः दलित साहित्य ने उन बहिष्कृत लोगों अपना नायक बनाया है, जिन्हें संपूर्ण वर्ण-व्यवस्था अमंगल और अपवित्र माना, पूर्वजन्म का अपराधी कर जिनकी निंदा की गयी, सभी स्मृतिकारों ने जिनके शत्रुत्व बरता और जिन्हें कभी साहित्य में नायक या उ नायक का स्थान नहीं मिला. दलित साहित्य ने इ बहिष्कृतों को अपने विचार-रचना का केंद्रबिंदु बनाया क्योंकि सम्यक परिवर्तन इनका स्वाभाविक कार्य है.

सम्यक परिवर्तन अर्थात दलितों को अपने साहि में नायकत्व दे कर दलित साहित्य ने बहुत कुछ हासि किया है. उदाहरण के लिए —

- उसने प्राचीन पारंपरिक नायक - नायिका को नकारा है. उनके साथ ही दलित साहित्य ने इस नायकत्व को गरिमा देने वाले सांस्कृतिक, नैतिक, पारंपरिक और साहित्यिक आदर्शों-संदर्भों को भी अस्वीकार कर दिया है.
- पौराणिकता को अमान्य किया है.
- वर्ण-व्यवस्था और उसके साथ जुड़ी हुई सत्ता-स्पर्धा, शत्रुत्व को नकारा है.
- प्राचीन काल से जिन्हें खलनायक और राक्षस कहा गया है, उनके खलनायकत्व और राक्षसत्व को भी दलित साहित्य ने नकारा है. उसने उन पूजनीय समझे गये वीरों को भी अस्वीकार कर दिया है, जिनकी अलग-अलग युगों में गाथा गायी गयी है.

हमारा यह नकार कुछ लोगों को भारतीयता का नकार भी लग सकता है. हम लोग वर्ण-व्यवस्था और मनुस्मृति को मानने वाले भारत के नागरिक नहीं हैं. हम स्त्रियों और शूद्र-अस्पृश्यों को समान दर्जा देने वाले और इन्हें समाजवाद की ओर ले जाने वाले भारत के नागरिक हैं.

भारतीय विचार, समाज और साहित्य-परंपरा वर्ण-व्यवस्था से संबद्ध है. इस परंपरा को दलित साहित्य पूर्णतया नकारता है. वह स्वतः को ज्ञान-विज्ञान और विश्व-साहित्य की उस मानववादी क्रांतिदर्शी परंपरा से जोड़ता है, जिसमें मानव-स्वातंत्र्य के मूल्य पोषित-पल्लवित हुए हैं. वर्ण-व्यवस्था को मानने वाला भारतीय और मातृभाषा भाषी व्यक्ति हमारा कुछ नहीं लगता.पर मनुष्य के लिए संघर्ष करने वाला, मनुष्य को महानता देने वाला व्यक्ति, चाहे वह अभारतीय भी हो, तो भी वह हमारा अपना है. कारण, हमारे लेखन का उद्देश्य ही मनुष्य की मुक्ति और महानता है.

दलित साहित्य में भाषिक, प्रांतीय, राष्ट्रीय दुराभिमान नहीं है. दलित साहित्य तो मनुष्य को सर्वोपरि मानता है. अतः मनुष्य की महानता के लिए जो कुछ भी अच्छा हो रहा है, वह सब कुछ दलित साहित्य का है.

पृथ्वी पर जो कुछ है, उसके निर्माण में जितना योग निसर्ग का है, उतना ही मनुष्य का अपना भी. देश को देशत्व मनुष्य से मिलता है. संपूर्ण विश्व का नामकरण मनुष्य ने ही किया है. वर्ण, जाति, देव, धर्म और देश तो परिकल्पनाएं हैं, जिनको नकारा जा सकता है, परंतु मनुष्य को नकारा नहीं जा सकता.निराकार और अवास्तव को साकार रूप मिलता है उसके मानवीकरण से. तभी वह सत्य का रूप लेता है और प्रिय बनता है. इसीलिए सभी धर्मों में ईश्वर मनुष्य जितना और मनुष्य समान ही है. मानवीय प्रतिमान के बिना उसे पहचाना भी नहीं जा सकता.

इसलिए सभी कला-साहित्य का नायक मनुष्य है. मनुष्य कभी दलित नहीं होता. उसे हिंदू धर्म शूद्र-अस्पृश्य कह कर संबोधित करे, तो भी वह छह विकारों, वासना-भावना, अनेकानेक ऋतुओं, प्रातः-संध्या और रात्रि का साक्षात्कार हर क्षण देता है. कभी तो वह वर्षा ऋतु जैसा होता है, कभी ग्रीष्म ऋतु जैसा और कभी शरद ऋतु जैसा मनुष्य अर्थात सजीव, सुंदर, साकार निसर्ग. वह जिसका नायक होता है, वह लेखन वर्णातीत, धर्मातीत और देशातीत यानी विश्वात्मक होता है.

कला-साहित्य को यह विश्वात्मकता शब्दों से नहीं प्राप्त होती. शब्द तो रूढ़ संकेत और संस्कृतिबद्ध होते हैं. परंतु साहित्य के केंद्र में स्थित मनुष्य असीम होता है. मनुष्य को यह असीमता उसके नश्वर समझे जाने वाले शरीर से मिलती है. सभी धर्मों में स्वर्गघाती कहे गये इस नश्वर शरीर के वासना-विकार ही उसे विश्वात्मकता देते हैं. मानवीय देह में वंश, वर्ण, देश, धर्म की कृत्रिम सीमाओं के पार जाने की सहज क्षमता होती है.

इस मानवीय देह और इसके वासना-विकार, भावना-बुद्धि पर जब कभी भी धर्म-संस्कृति का संस्कार हुआ है तब-तब ही इसका विश्वात्मक चरित्र भी सीमाबद्ध हुआ है. मनुष्य पर देश, धर्म, संस्कृति का बंधन आया है, अर्थात जैसी धर्म-संस्कृति, वैसा ही मनुष्य. वैसा ही हो जाता है उसका सुख-दुख, जन्म-मरण भी. साहित्य में भी उसकी वैसी ही अभिव्यक्ति होती है.

भारत में वर्ण-अधिष्ठित हिंदू धर्म सबसे बड़ा और प्राचीन धर्म है. अनामवादी, अनीश्वरवादी और बुद्धिप्रामाण्यवादी बौद्ध धर्म का लोप हो जाने के परिणाम स्वरूप भारतीय संस्कृति और जन-मानस पर हिंदू धर्म का सर्वाधिक प्रभाव है. भारत की बहुसंख्यक जनता उसकी अनुयायी है. वह आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म-माया, कर्म-पुनर्जन्म, पाप-पुण्य, देवता, अवतार आदि धारणाओं, पोथी-पुराणों को मानती है. वह जाति में ही जीवित है. भारत में अहिंदुओं की तुलना में हिंदुओं का प्रबल बाहुल्य है. इतना अधिक कि अहिंदुओं की प्रार्थना-पूजा और देवताओं के नाम जुदा रहने पर भी उनकी मानसिकता हिंदुओं की ही रहती है. अतः भारतीय साहित्य पूरी तरह से हिंदू साहित्य है.

* *

संस्कृत और प्राकृत साहित्य पर ध्यान दें, तो हम यह कह सकते हैं कि जो सत्ताधारी नहीं थे और जिन्हें वरिष्ठ वर्गों में मान्य नहीं किया गया था, उनमें से कोई भी नायक-उपनायक नहीं बन सका. मनुष्य के रूप में उनका जीवन कथा की विषय-सामग्री रहते हुए भी वह हिंदू लेखकों को आकृष्ट नहीं कर सका. अर्थात लेखक-कवि की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं रही. उनका लेखन धर्मदंड-सत्ता से प्रतिबद्ध था. वह ब्राह्मणों तथा शासकों के हित-साधन के लिए किया गया लेखन था. वह उनकी स्तुति, प्रशस्ति में ही लिखा जाता था. उनका श्रेष्ठत्व साबित करना ही उसका उद्देश्य था. इसलिए इन दोनों सत्ताधारी वर्गों को देवत्व, परमेश्वरत्व देता हुआ भारतीय ललित तथा धार्मिक साहित्य संख्यात्मक दृष्टि से बढ़ता गया. इन दोनों वर्णों के सिवा अन्य कोई वर्ण, अलग विचार-प्रणाली ललित और धार्मिक साहित्य में व्यक्त ही नहीं हुई. वर्ण-व्यवस्था ध्वस्त न होने के कारण और संपत्ति, सत्ता तथा स्वामित्व इन दोनों वर्गों के पास सदैव बना रहने के फलस्वरूप सारा धार्मिक-ललित लेखन इनसे बंधा रहा है.

इस्लामी आक्रमण भारत पर होने लगे. इस्लामी सत्ता की विजय और हिंदू सत्ता की पराजय के संक्रमण काल में संत साहित्य लिखा जाने लगा. एक के बाद एक संत कवि समाज के विभिन्न स्तरों से उभर कर सामने आने लगे. जब हिंदू धर्म और शासन-सत्ता स्वस्थ तथा स्थिर थी,तब समाज के विभिन्न स्तरों, शूद्र-अस्पृश्यों में से संत और कवियों के आने की गुंजाइश ही कहां थी? इस्लामी आक्रमण से हिंदू धर्मदंड-सत्ता का दमन-यंत्र प्रभावहीन हो जाने के कारण ही यह चमत्कार संभव हुआ. समाज, अल्पकाल के लिए, सृजनशील हो सका.

बाद में जब इस्लामी सत्ता स्थिर हो गयी, तो हिंदू सत्ता भी उसकी छत्रछाया में अथवा स्वतंत्र रूप से स्थिर हो गयी. परिणामस्वरूप, हिंदू धर्मदंड-सत्ता का दमन-यंत्र संहार-सिद्ध हो गया. ब्रिटिश सत्ता के आने तक शूद्र-अस्पृश्यों में से कोई प्रतिभावान नहीं पनपा.

देखा जाये तो युद्धकाल में जन्मे संत साहित्य पर युद्ध का कोई प्रभाव नहीं था. वह पूर्ण रूप से वर्ण-व्यवस्था और उसके अंतर्गत रचित धार्मिक तथा ललित साहित्य से जुड़ा हुआ था. इस साहित्य ने रूढ़ धारणाओं, सिद्धांतों, नायकत्व, देवताओं, आदर्शों और शोषण का समर्थन करने वाले तत्वों को जनता की भाषा में अधिक प्रभावी रूप में प्रचारित किया. इससे शोषण-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था और भी पुख्ता हो गयी.

इनकी भक्ति से धार्मिक एवं सामाजिक समता स्थापित न हो सकी. दंभ के विरुद्ध उनकी टीका आदर्श बन कर पौराणिकता से आगे नहीं जा सकी. भक्तिमार्ग का सर्वत्र प्रचार हुआ, पर भक्तों की जातिवार टोलियां जाति तक ही सीमित रहीं. सच कहें तो इन दोनों सत्ताओं के दीर्घ संघर्ष-काल में रचे गये ललित साहित्य का रूप थोड़ा-बहुत अलग होना चाहिए था. इस्लाम धर्म के कई सिद्धांतों, विचारों, हिंदू-मुसलमान समाजों के सत्ता संपर्क, मुसलमान सत्ताधारियों के साथ यहां के राजघरानों के शादी-ब्याह आदि से नये लेखन के लिए बहुत कुछ मिल सकता था. कम-से-कम कई हिंदू-मुसलमान युवक-युवतियों के प्रेम-प्रसंगों, हिंदू से मुसल किसी चंड-प्रचंड सामंत के जीवन पर भी लिखा जाना चाहिए था. लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ तो सिर्फ पुराने संस्कृत, प्राकृत साहित्य का च्चार तथा अनुवाद.

बायें से दायें : प्र. श्री. नेरूरकर, जितेंद्र भाटिया, कमलेश्वर

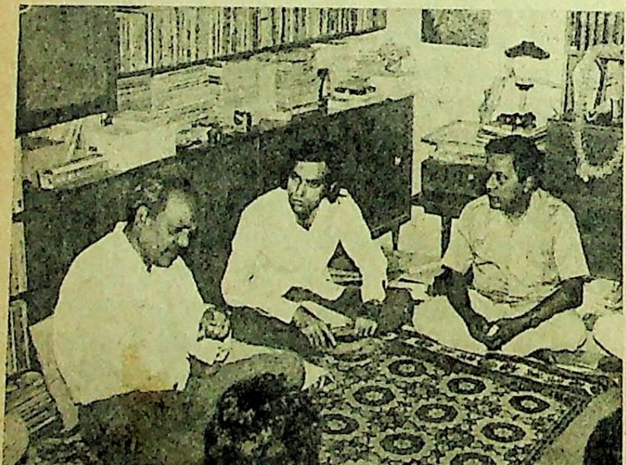

* *

अंग्रेज आये और हिंदू-मुसलमान दोनों स पूर्ण पराभव कर भारत के शासक बने. उनके विज्ञान आया. कानून का शासन स्थापित हुआ. भाषा के माध्यम से यूरोप-अमरीका के नव जाग संदेश भी यहां आया. विषय, आशय और स्व दृष्टि से नये ललित साहित्य का अध्ययन आरं आधुनिक साहित्य का सृजन होने लगा. समा साहित्य आध्यात्मिक, धार्मिक प्रश्नों के बजाय जिक प्रश्नों पर विचार करने लगे. इनकी परिधि के अग्रगणों की कौटुंबिक समस्याओं तक ही सीमि कुटुंब में सीमित स्त्री सैकड़ों वर्ष बाद सा विषयवस्तु बनी. बाल-विधवा, बाल-विवाहित विवाहिता आदि नारी-रूप संयुक्त परिवार में जाने वाली स्त्री के रूप में साहित्य में आने लगे.

उत्पीड़ित स्त्री के साहित्य में आ जाने के बा अस्पृश्य को वाङ्मय का विषयवस्तु बनाने में को बाधा नहीं रह गयी थी. एक बड़ी शक्ति सामाजिक लन के पीछे खड़ी हुई थी. अब कोई शासक साहित्य में चित्रण करने, शूद्रों का विचार करने उनके निरुपाय जीवन का चित्रण करने के लि के शिरच्छेद की घटना नहीं दोहरा सकता था. शक्ति थी उदारवाद की. शूद्र-अस्पृश्यों के नेता ज्योतिराव फुले थे. शूद्रों को नये उद्योग-धंधे उप जाने से ब्राह्मणों के मुंह बंद हो चुके थे. सरकार की समर्थक नहीं रह गयी थी. इतनी अनुकूलता भी स्त्रियों के साथ शूद्र साहित्य में स्थान नहीं क्यों? साम्राज्य के गोरे लेखकों को अपने यहां शूद्र तो दिखते थे,वे उनके दुख-दैन्य को महसूस पर उनके उपनिवेशों में रहने वाले अश्वेत लेख अपने स्वयं के गांव के शूद्र-अस्पृश्य क्यों नहीं दिखे ये लेखक कलावादी-सौंदर्यवादी थे? क्या वे नव नहीं लाना चाहते थे? क्या उनमें अंग्रेज और फ्रेंच की तरह दुख-दैन्य, दास्य पर लिखने का सामर्थ्य नहीं

वे असमर्थ थे, यह नहीं कहा जा सकता. वे सा सुधारों के भी समर्थक थे और नव जागरण के प्रति भी. इसीलिए तो उन्होंने हिंदू कुटुंब में पिस रही व्यथा साहित्य में व्यक्त की. लेकिन महात्मा ज्यो फुले तथा ईसाई मिशनरी जिन शूद्रों को देख सके उन्हें ये लेखक नहीं देख पाये. कारण--उनके उनके मन की सीमाएं.

ईसाई मिशनरियों, बुद्धिजीवियों, कलाकारों दृष्टि शूद्रों की ओर गयी, तो उसका कारण मानसिकता थी. ईसाई धर्म के प्रवर्तक ईसा म दीन-गरीबों को गले लगाया था. वह भी पाप की धार स्वीकार करते थे, परंतु उनके पास प्रेम और करु

ति भी थी. लोकशाही के बीजतत्व इस प्रेम और करुणा निहित थे. प्रेम, करुणा और क्रोध से ही क्रांतिकारिता दित होती है.

ईसाई लेखकों की तरह हिंदू लेखकों की दृष्टि शूद्र-स्पृश्य तक क्यों नहीं पहुंची? कारण स्पष्ट है——सैकड़ों र्षों तक शूद्र-अस्पृश्य परमेश्वर समझे जाने वाले तथा पौरुषेय ग्रंथों की दृष्टि से भी वंचित रहे थे. अनेक अव-र हुए. अनेकानेक संत आये. परंतु इनमें से किसी की दृष्टि स्त्रियों तथा शूद्र-अस्पृश्यों के असहाय जीवन पर हीं पड़ी, बल्कि इन सभी की दीन-दुखियों से जबरदस्त त्रुता थी. जब देव, संत, धर्म पग-पग पर शूद्रों-अस्पृश्यों लिए तुच्छता, शत्रुता प्रकट करेंगे, तो हिंदू पौराणिकता संस्कार शूद्रों को अपना स्थान कैसे लेने देंगे?

हिंदू धर्म में करुणा, प्रेम, भ्रातृभाव के लिए स्थान होने के कारण शूद्र-अस्पृश्यों का समाज और साहित्य स्थान नहीं रहा. परंतु यदि भगवान बुद्ध के धर्म की लोक-मानसिकता के निर्माण में प्रभावी भूमिका रहती, भारतीय पौराणिकता में प्रेम, करुणा, भ्रातृभाव की रंपरा भी होती. और तब साहित्य में गरीब, दुर्बल, शूद्र-अस्पृश्य का भी स्थान रहता. उदाहरण के लिए, जातक कथाओं, थेर-थेरी गाथाओं को लिया जा सकता है, जिनमें उपेक्षितों का उल्लेख हुआ है.

परंतु अब तो राजपाट हिंदू धर्म का रह नहीं गया था. वह अंग्रेजों के हाथों में था. वे धर्म से ईसाई थे और प्रजातंत्र में उनकी आस्था थी. अत: शूद्र-अस्पृश्यों के बारे में लिखने, महात्मा ज्योतिराव फुले के विचारों की अभिव्यक्ति में अब कोई अड़चन नहीं रह गयी थी. कर्म क्या है? पूर्व-कर्म का अर्थ क्या है? पाप-पुण्य किसे कहते हैं? आत्मा, पवित्रता, मांगल्य का अर्थ क्या है? इसे अब वे बता सकते थे. वे दिखा सकते थे कि अस्पृश्यता के पीछे किस तरह की शत्रुता और शोषण छिपा है. वे प्रमाणित कर सकते थे कि स्त्री-पुरुष के समागम से जन्म लेने वाले एक व्यक्ति को श्रेष्ठ और दूसरे को कनिष्ठ मानने की परंपरा किस तरह खोटी और जाली है. महात्मा ज्योतिराव फुले ने यह सब करके दिखाया. किंतु उनके कार्य, उनके विचारों को किसी ने भी आगे नहीं बढ़ाया.

हमारे बुद्धिजीवियों की वर्ण तथा स्थापित व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्धता का यह एक सबूत है. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने ठीक ही पूछा है कि 'ब्राह्मणों की इतनी दीर्घ ज्ञान-परंपरा रहते हुए भी वे एक भी वॉल्तेयर क्यों नहीं दे पाये?'

वॉल्तेयर बनने के लिए धर्मसत्ता-दंडसत्ता के विरुद्ध खड़ा रहना पड़ता है. यह ब्राह्मणों के लिए संभव नहीं था. हिंदू धर्म के अंतर्गत उनको श्रेष्ठता, सुअवसर, साधन और एक अद्वितीय स्थान जन्मना रूप से मिला हुआ था. उनके लिए हिंदू धर्म के विरुद्ध जाने का अर्थ होता अपने अस्तित्व, अपने श्रेष्ठत्व को नष्ट करना. अपना स्वयं का यह विनाश कौन करना चाहेगा? हमारे अधिकांश लेखन के मनुस्मृति की कोटि में आने का भी यही कारण है. हमारे बुद्धिजीवियों के लिए वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध जाना संभव ही नहीं था. वर्ण-व्यवस्था का जाप करना, उसका

अधिक सुखकर था.

जब कभी भी वर्णव्यवस्था के लिए कोई चुनौती आती थी, तभी हमारे बुद्धिजीवियों को अपना इतिहास-पुराण, प्राचीन काल याद आने लगता था. तब ऐतिहासिक, पौराणिक नाटकों, उपन्यासों, काव्यों का थोक सृजन शुरू हो जाता था. राष्ट्रीय नव जागरण के प्रभात काल में भी यही हुआ. सभी क्षेत्रों में अंग्रेज सत्ता की श्रेष्ठता, उनके ज्ञान-विज्ञान की श्रेष्ठता को जैसे-जैसे सारा समाज मान्य करने लगा, हिंदू धर्म और उसके ज्ञान की समीक्षा होने लगी, अनेक सामाजिक आंदोलनों का जन्म होने लगा, स्त्रियों-शूद्रों के प्रश्नों को ले कर महात्मा ज्योतिराव फुले हिंदू धर्म और वर्ण-व्यवस्था को नकारने लगे, समाज के सभी स्तरों में जागृति आने लगी और शासन इस सबको बर्दाश्त करने लगा और ब्राह्मण बुद्धिजीवियों को अपना अस्तित्व बनाये रखने की तीव्र आवश्यकता अनुभव होने लगी. उन्होंने सारे सामाजिक आंदोलन के विरुद्ध एक आक्रामक अभियान छेड़ दिया. वे जिस युग में सर्वश्रेष्ठ थे, वीर थे, नेता थे, समाज के शीर्ष स्थान पर आसीन थे, उस काल को काव्य, नाटक, उपन्यास के रूप में समाज के सामने चित्रित करने लगे. अतीत की गाथा को, पूर्वज-पूजा को उन्होंने राष्ट्रीय नव जागरण का रंग दे दिया.

★ ★

सच कहा जाये तो अतीत काल सामान्य जन की दृष्टि से एक भयानक युग था. उस युग में सामान्य जन की स्थिति बेगारी-गुलामी करने वाले, हाड़तोड़ मेहनत करने वाले की थी. वह बेमतलब रौंदा जाता था, वह राज्य-विस्तार और लूट के लिए आगजनी का दौर था, कत्ल और आक्रमणों का काल था. संहार को तब पराक्रम कह कर पूजा जाता था. धर्म, जाति के नाम पर कोई भी व्यक्ति पूजनीय बन जाता था. वस्तुतः वह सामंतशाही युग था. उस युग को सामान्य जन, शूद्र-अस्पृश्य के लिए अपना युग समझना संभव ही नही था! इस सामान्य जन, देश के बहुसंख्यक जन के प्रश्नों पर नयी उभरती हुई संस्कृति के संदर्भ में विचार का सूत्रपात महात्मा ज्योतिराव फुले ने किया था. इसे आगे बढ़ाने के लिए सभी सामाजिक वर्गों के लोगों में एकजुट लोकशाही के विचार और भावना भरने की जरूरत थी. भयंकर भूतकाल में थोपे गये दुखों को नष्ट करने के लिए आधुनिकता का सुदृढ़ सहारा लेने की जरूरत थी. परंतु ऐसा कुछ भी नही हुआ. 'शेरनी का दूध पीने वाले शेर बच्चे' बुद्धिजीवी एक हो कर नयी उभरती हुई संस्कृति पर धुआंधार प्रहार करने लगे. वे इतिहास-पुराणों का उदात्तीकरण करने लगे. वर्तमान, भविष्य की नयी संस्कृति को उन्होंने अपना शत्रु घोषित किया. उन्होंने वर्ण-व्यवस्था पर आघात करने वाले, बुद्धि-प्रामाण्यवाद में विश्वास रखने वाले, नयी राष्ट्रीय अर्थ-रचना पर विचार करने वाले, सामाजिक, राजकीय, धार्मिक सुधारों की मांग करने वाले ज्योतिराव फुले, आगरकर, गोखले, रानडे तथा उनकी सहायता करने वाले अंग्रेजी शासन को अपना शत्रु कहा. शत्रु पर आक्र-

मण करने के लिए उन्होंने इस नयी संस्कृति के लिए उद्यम करने वालों पर हमला किया. उनको विदेशी सत्ता का पिट्ठू कहा गया. कारण, आधुनिकता की विजय का अर्थ था सामंतशाही संस्कृति की पराजय, वर्ण-व्यवस्था का पराभव और अंततः लोकशाही की विजय. राष्ट्रीयता को निमित्त बना कर उन्होंने इन सब पर प्रहार किया. विभिन्न सामाजिक वर्गों के लोगों में परस्पर शत्रुता भड़कायी गयी. मुसलमानों को खलनायक बना दिया. हिंदू-मुस्लिम जनता को दो धड़ों में बांट दिया और अनेक स्तरों पर व्यक्त हो रही प्रजातांत्रिक चेतना को कुचल दिया. वे इस संघर्ष में सफल रहे, समाज-सुधारकों को अंग्रेजों का पिट्ठू घोषित करने में मिली इस सफलता के जो अनेक कारण हैं, उनमें वर्ण-व्यवस्था और स्पृश्य-अस्पृश्य भेद भी एक बड़ा कारण है.

स्पृश्यता से वर्ग-चेतना नष्ट होती है. वह स्पृश्य गरीब और स्पृश्य श्रीमंत को तो एक करती है, परंतु स्पृश्य गरीब और अस्पृश्य गरीब को विभक्त करती है.

स्पृश्य अर्थात वह जिसे धर्म ने अवसर, साधन, सहूलियतें, विशेषाधिकार दिये हैं. अस्पृश्य अर्थात वह जिसे इन सब से वंचित रखा गया है. स्पृश्यता पुण्य, भाग्य, देवता, धर्म की धारणाओं को सजीव रखती है, उनका पोषण करती है. जो उच्च स्थान पर है, वह अपने प्रारब्ध, पूर्व-पुण्यों के प्रताप, भाग्य के कारण वहां तक पहुंचा है. इसलिए प्रत्येक दरिद्र को अपना वर्ग बदलने की आशा बंधती है. अस्पृश्यता हरेक नव अंकुर, महत्वाकांक्षा, स्वप्न को नष्ट कर देती है. अपने लिए कोई स्थान ही नहीं है, इसे वह भिन्न-भिन्न प्रकार से समझा कर अदृश्य रूप से भयंकर संहार करती है.

जनता की एकता स्थापित करने के लिए यानी मनुष्य को इस संहारलीला से मुक्त कराने के लिए हुआ वैचारिक आंदोलन ही सही अर्थों में राष्ट्रीय उत्थान का आंदोलन हो सकता था. असल में यह कार्य राष्ट्रीय आंदोलन और उसका नेतृत्व करने वाले बुद्धिजीवियों को करना चाहिए था. परंतु उन्होंने यह किया नहीं. वर्ण-व्यवस्था से प्रतिबद्ध हमारा बुद्धिजीवी वर्ग यह करता भी कैसे?

लेकिन यूरोप में ऐसी बात नहीं रही. नये नये उत्पादन-साधन, नया तत्व-ज्ञान ले कर वहां के जीवियों ने स्थापित हितों के साथ सतत संघर्ष कि अपने विचारों, अपनी खोजों को स्थापित करने के जनता के साथ रहे हैं. इसके लिए उन्होंने मृत्यु का किया है. इन दो भौगोलिक इकाइयों, दो संस्कृ धर्मों में यह अंतर क्यों है? इसका उत्तर यही है कि के बुद्धिजीवी यहां की तरह जाति के बूते पर नहीं वे अपनी-अपनी ज्ञान-उपासना के बल पर बुद्धि इसके विपरीत यहां की वर्ण-व्यवस्था ने यहां के जीवियों (ब्राह्मणों) को समाज में एकदम वरिष्ठ पर आसीन कर रखा है. उस व्यवस्था को बनाये उनका हित है. आर्थिक दृष्टि से वे कितने ही कनि पर उनको पुरानी व्यवस्था को नष्ट करने के लि तीव्र आवश्यकता महसूस नहीं होती, जितनी फुले, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर को हुई. कारण, जीवी अत्यंत प्रारंभ से ही अपने उच्च स्थान पर हैं. उनके पूर्वज पूजनीय हैं, ईश्वर-तुल्य हैं. पोथी में वे आराध्य देव कहे गये हैं. शासक रहने का हास भी निकट अतीत का ही था. अंग्रेजों की स पर फिर से सत्ता में आने की संभावना वे साक्षात देख रहे थे. इस मानसिक अवस्था में ही उन्होंने रचना की. स्वाभाविक ही उस साहित्य में पूर्व अतीत-प्रेम, अंहकार और दूसरों के प्रति द्वेष का रहा. उस साहित्य में इकसुरापन भी बहुत रहा, रचनाकारों के संस्कार और, इसीलिए, उनके अनु संसार भी वर्ण-व्यवस्था की चौखट में कैद था.

★ ★

जिन दिनों यहां के बुद्धिजीवियों के लिए आं के दलित आंदोलन का आकलन करना, उस पर भूतिपूर्वक विचार करना संभव नहीं था, उन्हीं आंबेडकरवादी अस्पृश्यों का आंदोलन तेजी से उ

'. . .अस्पृश्यता का आंदोलन वर्ग-कलह का है' . . .'जिसे अस्पृश्यता मान्य है, वह धर्म नहीं है— हो भी, तो वह हमारा धर्म नहीं है'. . .'देवता, धर्म, अपेक्षा मनुष्य बड़ा है.' इस तरह की घोष साथ दलितों का आंदोलन मंदिरों, पनघटों, दे धर्म, गांवों को चुनौती देता हुआ उठ खड़ा हुआ. सत्ता हिंदू धर्म के हाथों में न होने के कारण वह नहीं जा सका.

हिंदू-मुसलमानों की दोहरी संधि नहीं थी. का वर्ग का आंदोलन गांधीवादियों के हाथों में नहीं था. णेतर आंदोलन कांग्रेस के बाहर था. और आंबेडकर आंदोलन कांग्रेस के वर्गीय और वर्णीय स्वरूप के उसके साथ सहयोग करने को तैयार नहीं था. जिन ने कांग्रेस की ओर से होने वाली सामाजिक परि कुचल दिया था, वे ही लोग कांग्रेस के नेता बने तब तक लोकतांत्रिक समाजवाद के ध्येय को कां स्वीकार नहीं किया था. और डॉ. बाबासाहेब आं को कांग्रेसी नेताओं के स्थापित वर्ग तथा ब्रिटिश

बायें से दायें : कमलेश्वर, राम अरोड़ा, प्र. श्री. नेरूरकर, नारायण सुर्वे, दया पवार, अर्जुन डांगले

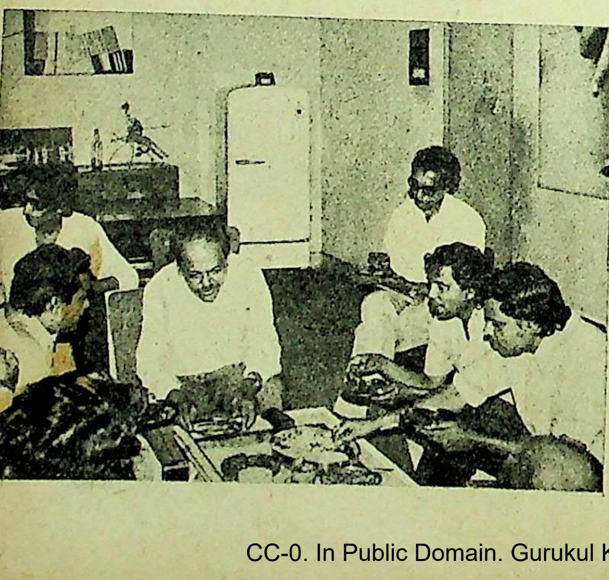

संघर्ष में से दलित जनता का हित साधना था. दो संघर्षशील राजनीतिक शक्तियों के बाहर खड़े कर डा. बाबासाहेब आंबेडकर जकड़ कर रखी गयी लित जनता के बंधन तोड़ रहे थे. संघर्ष कर रहे थे. उधर ाचारपत्रों, नेताओं, साहित्यिकों का डॉ. बाबासाहेब डकर के विरुद्ध जबरदस्त प्रचार चल रहा था. स तरह ज्योतिबा फुले के विचारों की घेरेबंदी गयी थी, वैसे ही बाबासाहेब और उनके सामाजिक ाति के आंदोलन की घेरेबंदी की जा रही थी. दलित ांदोलन को बिना शर्त-शिकायत के कांग्रेस आंदोलन में ामिल करने के लिए सभी स्तरों पर प्रयत्न चल रहे थे. न विचारों की प्रतिध्वनि साहित्य में भी उभरने लगी ी. इन्हीं दिनों सैकड़ों वर्षों बाद भारतीय साहित्य में द्र-अस्पृश्य को नायक-उपनायक के रूप में प्रवेश मिला. रंतु वे ज्योतिबा फुले अथवा डॉ. आंबेडकर के विचारों प्रतिनिधि न हो कर हिंदुत्ववाद अर्थात गांधीवादी या ावरकरवादी विचारों के प्रतिपादक थे. इस धारा के अंतर्गत प्रायः ब्राह्मण अथवा उसके अनुरूप कुल के किसी ायक-उपनायक, नायिका-उपनायिका का किसी अस्पृश्य के घर में पालन-पोषण चित्रित किया जाता था. या फिर अस्पृश्य बालक-बालिका के ब्राह्मण या तत्सम घर में ालन का चित्रण होता था. बाद में इन्हें किसी-न-किसी तरह अपनी स्थिति का भान करा दिया जाता था.

इस तरह के कथानक आने का एक कारण जहां प्रत्यक्ष अनुभव का अभाव था, वहां दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह भी रहा कि गांधीवादी अथवा सावरकरवादी लेखकों ने हिंदुत्व को कभी नहीं नकारा. उनका विचार-पिंड हिंदू पौराणिकता और हिंदू विचार-व्यवस्था में ही गढ़ा हुआ था. कर्ण और एकलव्य जैसे नायक इन लेखकों ने अपने संस्कार और पौराणिकता के माध्यम से ही आत्मसात किये थे. स्वाभाविक ही ये नायक अपने रचनाकारों के मनोगठन के अनुरूप वर्ण-व्यवस्था की शरण में जाते हैं, पर उसमें अपने लिए समुचित स्थान नहीं बना पाने के कारण जन्म को दुख मानने लगते हैं. धर्म प्रतिकूल रहने के कारण प्रारब्ध-विरोधी शूरवीर नायक कथा को नाटकीयता, संघर्ष-प्रसंग, उत्कटता और रक्षात्मकता देता है. इस नायक के माध्यम से भाग्यवादी दर्शन अभिव्यक्त होता है. इस तरह के चरित्र-चित्रण को हिंदू लेखकों के पाठक सहज में ही अनुभव कर सकते हैं. उनको अनुभव की पुनरावृत्ति का सुख मिलता है. इस तरह की कलाकृति हिंदू धर्म की सारी पौराणिकता को पूर्णतया व्यक्त करती है.

हिंदू संस्कारों में विकसित तथा हिंदू पौराणिकता से गढ़े हुए मानसिक गठन वाले लेखक फुले-आंबेडकरवादी नायक, विचार, विषय और इस आंदोलन के अनुभवों को यथार्थ रूप से चित्रित नहीं कर पाते. लेकिन जिनके मन पर हिंदू पौराणिकता का प्रभाव नहीं पड़ा है, जिनका वैचारिक गठन हिंदू संस्कारों के अंतर्गत नहीं हुआ है, वे लेखक इस तरह की असमर्थता नहीं बता सकते. वे फुले-आंबेडकर के विचारों से रूपांतरित जीवन को सशक्त रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं.

हिंदुत्ववादी (सावरकर-गांधीवादी) लेखकों ने दलित आंदोलन में से वर्ण-व्यवस्था के समांतर चलते हुए, हिंदू पौराणिकता की ओर जाने वाले जैसे कथानायक-नायिका चुने हैं, ठीक वैसे ही कथानक और नायक-नायिकाएं मार्क्सवाद के स्वीकारने वाले प्रगतिशील लेखकों ने भी चुने हैं. दोनों के ही नायक हरिजन यानी गांधीभक्त, राष्ट्रीय आंदोलन के निकट जाने वाले और हिंदू-पौराणिकता के अनुसार जन्म को दुख मानने वाले हैं.

जन्म को दुख मानने की बात फुले-आंबेडकरवादी नायक के मन में भी आ सकती है, पर वह जाति-व्यवस्था बनाने वाले धर्म, जाति का पालन करने वाले समाज से जूझता है. वह जिस तरह से अपनी जाति नकारता है, उसी तरह से दूसरे की नीची या ऊंची मानी गयी जाति को भी नकारता है––और वह मार्क्सवाद के लिए अभिप्रेत 'वर्ग' को मानता है. वह मार्क्सवादी विचारों के अधिक करीब है. इतना ही नहीं, जाति के बाहर निकल कर जाति को नकारने की बात श्रमजीवियों के आंदोलन को भी आगे बढ़ाने वाली है. वस्तुतः आंबेडकर का आंदोलन मार्क्सवादी आंदोलन के काफी करीब था. अतः गांधीवादी नायक की तुलना में आंबेडकरवादी नायक का आकलन प्रगतिशील लेखकों के लिए अधिक आसान था. क्रांतिदर्शी विश्व-साहित्य में पुरानी व्यवस्था को नकारने वाले, नयी व्यवस्था की मांग करने वाले अथवा वैचारिक विद्रोह का झंडा उठाने वाले नायक का चित्रण हुआ है. यह नायक प्रगतिशील नायिकाओं के लिए एक आदर्श था. इसके बावजूद फुले-आंबेडकर के आंदोलन को मानने वालों में से प्रगतिशील लेखकों के नायक नहीं निकले. स्वतंत्रता के बाद भी नहीं. स्वातंत्र्य-पूर्व काल के उनके नायक को समझा जा सकता है. वे कह सकते हैं कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता का संघर्ष सबसे प्रगतिशील संघर्ष होता है. इससे इनकार नहीं किया जा सकता, परंतु स्वातंत्र्य के बाद भी उनका ध्यान दलित समाज की ओर नहीं गया. उनमें से प्रत्येक का ध्यान दलित समाज की ओर जाये ही, यह आग्रह नहीं किया जा सकता. यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे हिंदुत्ववादी हैं. इससे केवल यह स्पष्ट होता है कि भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग, चाहे प्रगतिवादी हो या यथास्थितिवादी, किस तरह से सामाजिक समस्याओं को देखता है और किस तरह दोनों की ही दृष्टि से सामाजिक समस्याएं उपेक्षित रह जाती हैं.

★ ★

अस्पृश्यता-उन्मूलन का आंदोलन सम्यक परिवर्तन का आंदोलन है. मात्र राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा धार्मिक परिवर्तन से अस्पृश्यता नष्ट नहीं होती. इससे समझा जा सकता है कि यह कितना बड़ा और व्यापक आंदोलन है. यह पूर्ण परिवर्तन हो जाता, तो भारत का सब कुछ बदल जाता. . .एक निराले और महान भारत का निर्माण होता. इतने व्यापक और विराट प्रश्न की जटिलता को जो प्रगतिशील कलाकार नहीं समझ पाते, उनकी क्रांतिकारी संवेदनशीलता पर आश्चर्य होता है.

इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि आर्थिक और राजनीतिक विचार क्रांतिकारी रहने पर भी रक्त

में मिले संस्कार मिट नहीं पाते. पौराणिकता छूटती नहीं. वर्ण-वर्ग के बंधन टूटते नहीं. इसीलिए, स्थितिवादी बुद्धिजीवियों और प्रगतिशील बुद्धिजीवियों की साहित्यिक अभिव्यक्तियों में अधिक अंतर नहीं आता. कारण, दोनों के मानसिक गठन की पार्श्वभूमि एक-सी होती है.

ऐसा नहीं है कि यह कोई बड़ा अपराध हो. परंतु यह तो वस्तुस्थिति है.इस वस्तुस्थिति के फलस्वरूप ही राष्ट्रीय कांग्रेस के रहते हुए, वामपंथी दलों (कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट) के रहते हुए डॉ. आंबेडकर के नेतृत्व में दलितों का अलग दल बना. उसने दलितों के लिए संघर्ष किया. वह इसमें सफल भी रहा. यह बात कांग्रेस और वामपंथी दलों की कमी को बताती है. इससे सिद्ध होता है कि वर्णीय-वर्गीय मर्यादाएं कितनी शक्तिशाली होती हैं. इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्रगतिशील साहित्यधारा के रहते हुए भी दलित साहित्य की अलग धारा का उदय और निर्माण क्यों हुआ.

एक कवि ने कहा है— हम धन्य हैं, कि हम इस क्रांतिकारी युग में जन्मे हैं. हम धन्य हैं, कि हमारे पूर्व किसी को भी दुख देने वाले नहीं दिखे थे. भगवान बुद्ध को मात्र दुख दिखे थे. परंतु हमें दुख और दुख देने वाले दोनों ही दिखे हैं. . . .

इसीलिए आज यह प्रश्न उपस्थित हुआ है कि साहित्य को किसका विचार करना चाहिए, किसे अपने विचार का केंद्र बनाना चाहिए—अत्यंत प्राचीन और अर्वाचीन काल के प्रारंभ में यह प्रश्न उपस्थित नहीं हो सकता था. ऐसा नहीं है कि तब विषमता नहीं थी. ऐसा भी नहीं था कि तब समाज दो वर्गों में विभाजित नहीं रहा हो. यह भी नहीं कि तब वर्ण नहीं थे. परंतु आज सामाजिक उत्पादन-साधनों—यंत्र-तंत्र—ने जो स्थिति पैदा की है, इस युग तथा इसके क्रांतिकारी विज्ञान ने इन दो वर्णों में संघर्ष सुलगाया है. पुरातन युग से अब तक यह तत्वज्ञान बखाना गया है कि सुख-वैभव, अन्याय-अत्याचार पर विचार नहीं करना चाहिए. वासना-भावना और मानवीय मूलभूत प्रवृत्ति नष्ट करने को, इस संसार में रहते हुए भी इस संसार के नहीं होने की तरह चित्त को शुद्ध रखने, निर्विकार बनने, पुण्य प्रा स्थितप्रज्ञ बनने, शांत चित्त हो कर मन की शां करने और मरने के बाद स्वर्ग मिलने का उपदेश गया है.

बायें से दायें : राम अरोड़ा, नारायण सुर्वे, दया पवार, अर्जुन डांगले

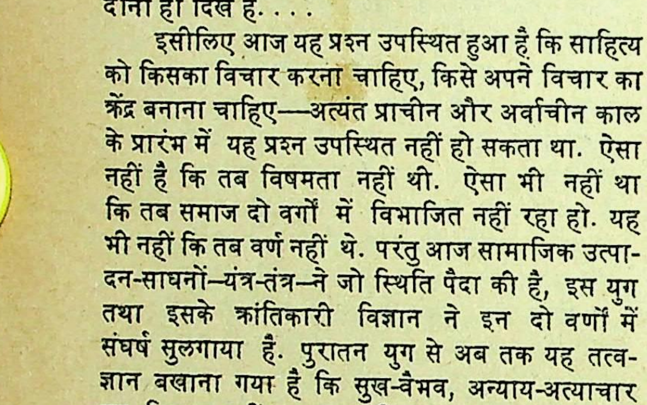

इस बखान के पीछे उद्देश्य यही रहा कि पूर्ण रचना को व्यक्तिगत स्तर पर भी विद्रोह न लग सके. असंतोष और बुद्धिवाद का जन्म न हो

परंतु इस क्रांतिकारी युग ने यह षड्यंत्र दिया है. मनुष्य को न सिर्फ अपने दुख दिख रहे हैं यह भी स्पष्ट दिख रहा है कि ये दुख देने वाले कौन

यहीं से दो दर्शनों, दो विचारधाराओं, साहित्यधाराओं का आरंभ हुआ.

जहां भारत की तरह की जाति-व्यव व्यवस्था नहीं थी, वहां के लेखकों-कलाकारों यहां की परिस्थिति अधिक स्पष्ट रूप से दिखे भारत में जाति-व्यवस्था के फलस्वरूप, उसके गयी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं रचना के परिणाम स्वरूप भारत के साहि बोध जितना प्रखर होना चाहिए था, उतना प्र भी नहीं रहा.

भारत के शोषक और शासक उन से उभरे हैं, जिन्हें हिंदू धर्म ने उच्च वर्ण कहा है भारत का बुद्धिजीवी वर्ग तथा मध्यवर्ग भी उन्हें जातियों से आता है, जिनसे आज के शोषक इसलिए भारत में बुद्धिजीवी तथा मध्यवर्ग फ्रेडरिक द्वारा वर्णित मध्यवर्ग की अपेक्षा कहीं अधिक जैसा है. जाति-वर्ण के कारण और सामाजिक-सां बंधनों के परिणाम स्वरूप उसे उच्च वर्ग अधिक प्रतीत होता है.

इन सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक के साथ ही आर्थिक एवं राजनीतिक कारण देश अर्धविकसित है. देश में सामंती और वादी अर्थ-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था है. प्रबल व्यवस्था है, जिसकी वजह से वर्ग-विभाजन पू विकसित नहीं हुआ है.

भारतीय प्रजातंत्र का स्वरूप साधारण तौ जातीय है. जो जाति जहां बहुसंख्यक है, वह वहां पर है. और जो सत्ता पर पहुंच जाता है, उसे सत्ता अपने अनुकूल लगती है. उसके अतिरिक्त (गरीबों- श्रीमंतों को) जाति, वर्ण और सत्ता के जुले प्रभाव के कारण धनसत्ता अपनी पहुंच के दिखती है. विकासमान देश होने तथा शासन की कारी राज्य की घोषणाओं के फलस्वरूप, अधिकांश वर्गीयों को धनवान बनने का प्रबल प्रलोभन रहता

इन सारी परिस्थितियों के कारण भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग मोहग्रस्त, दोलायमान, दुविधा की स्थिति में जीता है. वह त्रिशंकु की तरह अधर में रहता है. बल्कि बड़े पैमाने पर वह शासन-सत्ता, और स्थापित वर्ग का शरणागत रहता है. . .

इस कुहासे में ही भारतीय सिनेमा, नाटक और साहित्य तैयार होता है. महात्मा गांधी द्वारा बताया गया वर्ग-समन्वयवाद, विनोबा जी का सर्वोदयवाद, मध्यवर्ग की अवस्था को और भी त्रिशंकु समान बना देता है. और कुहासा और भी बढ़ जाता है. भारतीय सिनेमा, नाटक, प्रचार-प्रसारण के साधन-संस्थान, शिक्षा-केंद्र, राजनीतिक पक्ष इसी मध्यवर्ग के हाथ में हैं.

आज की समस्त भारतीय कला, साहित्य, इसी मानसिकता में व्यक्त हो रही है. इस कला-साहित्य में आज के भारत का दर्शन होना असंभव है, क्योंकि जो कला-साहित्य के निर्माता हैं, उनको ही संपूर्ण देश दिख नहीं रहा है—संपूर्ण समाज दिख नहीं रहा है. इतना ही नहीं, उनको तो संपूर्ण मनुष्य भी नहीं दिख रहा है.

परंतु ऐसे भी कुछ समर्थ लेखक हैं, जिन्हें दुख दिखते हैं, दुख देने वाले भी दिखते हैं और इन दुखों तथा दुख देने वालों के रक्षक भी दिख रहे हैं. यह दिखना अत्यंत महत्वपूर्ण और मूल्यवान है.

जिन्हें दुख, दुख देने वाले और उनके रक्षक दिखते हैं, उनका लेखन हिंदी में 'समांतर साहित्य' के रूप में व्यक्त हुआ है. आश्चर्य की बात है कि मराठी में 'दलित साहित्य 'और हिंदी में' 'समांतर साहित्य' एक ही काल-खंड में सामने आया है.

समांतर साहित्य के लेखकों ने अपने को 'दिखे हुए' को अत्यंत स्पष्ट रूप से लिखना प्रारंभ किया है. उनके लेखन से कई तत्व प्रखर रूप से सामने आये हैं. वे इस प्रकार हैं: (१) सामान्य आदमी से संबद्धता, (२) सामान्य जन की अभिव्यक्ति, (३) क्रांतिकारी युग से प्रतिबद्धता और मार्क्सवाद का स्वीकार, तथा (४) वामत्व.

समांतर लेखन में व्यक्त होने वाले ये तत्व, रचना की दृष्टि से उनके द्वारा घोषित स्वातंत्र्य, क्या कहा गया और क्यों कहा गया को दिया गया महत्व, युग-युगों के उपेक्षितों को अपने लेखन में दिया गया नायकत्व, जीवन से साक्षात संबंध, उसके वैशिष्ट्य को स्पष्ट करते हैं.

'हम सामान्य जन हैं, और हमारा लेखन सामान्य जन से प्रतिबद्ध है...' समांतर साहित्य की यह धारणा दलित साहित्य को अत्यंत मूल्यवान प्रतीत होती है. कारण, इस देश की संस्कृति और समाज में सामान्य जन के प्रति तिरस्कार है, उसे तुच्छ माना गया है, उसे अपमानित और अवसर-रहित रखने का आग्रह किया गया है!

शासन-सत्ता, धन-सत्ता और धर्म-सत्ता विषमता को पाल रही हो और वामपंथी आंदोलन संवेदनाशून्य दिख रहा हो, तब यह घोषणा करना कि हम सामान्य जन और वामत्व से संबद्ध हैं, सचमुच वामत्व है. साधारणतया भारतीय मनुष्य की प्रवृत्ति ऊंची जाति या वर्ण धारण करने की है. इस देश में और जातिभेद-ग्रस्त समाज में वर्ग-विमुक्त (डिक्लास) होने को दलित साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है. यह प्रवृत्ति समांतर और दलित साहित्य के माध्यम से प्रकट हुई, यह इसका प्रमाण है कि आधुनिक भारत का नेतृत्व करने और प्रवक्ता बनने का दायित्व साहित्य ने स्वीकार किया है. विश्व-क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में इस प्रकार के नेतृत्व के अनेक उदाहरण मौजूद हैं.

जब साहित्य सामान्य जन के साथ—शूद्र-अतिशूद्र के साथ—संबद्ध होता है, तब वह सम्यक परिवर्तन का अर्थात आर्थिक, राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक परिवर्तन का पक्षधर बन जाता है. इसी पक्षधरता को 'दलित साहित्य' ने भी स्पष्ट रूप से पहचाना है. वह भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि शोषण-सत्ता ने सदैव अपने अनुकूल प्रथाओं, व्यवस्थाओं, धारणाओं और व्याख्याओं को जीवंत बनाये रखने की चेष्टा की है तथा उसने प्रतिकूल पड़ने वाली प्रथाओं आदि को नष्ट किया है. इसलिए 'दलित साहित्य' हिंदू पौराणिकता, वैचारिकता, मानसिकता, संस्कार, आदर्शों, धारणाओं, प्रतीकों और उनकी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष परिणतियों को नकारता है. और व्यापक स्तर पर 'समांतर' की तरह हर तरह के शोषण का विरोध करता है.

हमारे इस नकार से साहित्य के कई समीक्षक क्षुब्ध हो उठते हैं. वे हमसे यह अपेक्षा करते हैं कि हम स्थापित साहित्य की किसी-न किसी विचारधारा के झंडे के नीचे ही खड़े रहें अर्थात हम भोगवाद, जंतुवाद, शून्यवाद, नियतिवाद, निराशावाद अथवा अराजकवाद स्वीकारें और साथ-ही साथ स्वीकार करें उनका साहित्यशास्त्र भी. उनके रचना-विधान का पालन करें. इस संबंध में दलित साहित्य का दृष्टिकोण यह है कि कलाकृति पहले आती है और शास्त्र बाद में. अभी दलित साहित्य का सृजन हो रहा है. बाद में इसका साहित्यशास्त्र भी स्वतः विकसित हो जायेगा. वर्ण-व्यवस्था और विषमता की भूमिका पर खड़े हुए वर्तमान साहित्यशास्त्र और सौंदर्य-शास्त्र से दलित साहित्य जैसी परंपरा को नकारने वाली क्रांतिकारी साहित्यधारा की व्याख्या नहीं हो सकती. फुले-आंबेडकरवादी आंदोलन से उभरे नायक-कथानक हिंदू पौराणिकता के प्रतिकूल हैं, परंतु वे समाजवादी, प्रजातंत्रवादी, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा इस युग के समांतर चलने वाली कथा-साहित्य की धारा से एकरूप हैं!

जब हमने सभी कुछ नकारा है, तो पूछा जा सकता है कि हमने स्वीकारा क्या है? इसका यही उत्तर दिया जा सकता है कि हमने सिर्फ मनुष्य, ज्ञान-विज्ञान और अपने समय को स्वीकारा है. आज का युग बड़ा ही विलक्षण है. इस युग का उदय होने के साथ ही अनेक संत, मसीहा, परमेश्वर मृत हो गये हैं. इस युग ने अनेक प्रथाओं, धारणाओं, परंपराओं, सत्ताओं को धूलि-ध्वस्त किया है. यह इस युग का वामत्व है. यह वामत्व और नवनिर्माणत्व हमने स्वीकारा है, जो कि 'समांतर' भी स्वीकारता है! इस स्वीकार से दलित साहित्य स्वतः ही युग-समांतर बन गया है. वह हमारे क्रांतिकारी युग की विशेषताओं का प्रतिबिंब बन गया है. वह विशेषता है—मनुष्य की शोषण-उत्पीड़न, दुख-दैन्य से मुक्ति! उसका स्वभाव-सिद्ध महात्म्य और विश्व-बंधुत्व!

□□□

राकेश के पहले / राकेश के साथ राकेश के बाद यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (2

• अनीता औलक

पिछले अंकों में आपने पढ़ा है कि देश-विभाजन ने अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. घर जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी से भी परिचय बढ़ रहा था. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगमा हो गया और कुछ फैसले किये गये. राजेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया लेकिन फिर भी कालेज के बहाने दे मिलते रहे. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये. उन्हें फिर दिल्ली वापस जाना पड़ा. राकेशजी के मित्रों की महफिलें जुड़ती रहीं. और छोटे-मोटे झगडे भी होते रहे. अब आगे पढ़िए...

कितनी बातें सिर्फ यादें बन कर रह जाती हैं. और यादें अच्छी हों या बुरी, हर हालत में तकलीफ देती हैं.

मुझे याद है कि जब ओमप्रकाशजी ने अचानक राजकमल छोड़ दिया था तो राकेशजी कितने परेशान हो गये थे—आखिर कुछ तो सोचा-समझा होता, उन्होंने कहा था.—लेकिन आप कौन से फैसले जल्दबाजी में नहीं लेते. आखिर हैं तो वो भी आपके ही मित्र. उसके साथ ही कमलेश्वरजी ने भी **'नई कहानियां'** से इस्तीफा दे दिया था.

फिर जब एक दिन बहुत ही ठंडे दिमाग से राकेशजी ने अपना अंतिम फैसला कमलेश्वरजी और चौधरी भाई को सुना दिया कि अब वह राजेंद्र यादव से और नहीं निभा सकते, तो उसके तुरंत बाद उन्होंने यह बात राजेंद्र से जा कर कह भी दी थी.

कमलेश्वरजी का दिल्ली छोड़ कर बंबई चले जाना... उस दिन राकेशजी को लगा दिल्ली वीरान हो गयी है. शाम को टेप रिकार्ड निकाल हम दोनों बैठ गये थे और अवा-तवा बोलते रहे. बिलकुल वैसे का वैसे जो हम दोनों ने बोला था, बीज नाटक **'शायद'** ही है. उसमें जो देव है वह यथार्थ में कमलेश्वर है.

फिर चमन की मृत्यु. मदन ने टेलीफोन पर रात के ग्यारह बजे यह समाचार दिया था. गर्मियों के दिन थे. हम लोग चुपचाप बाहर आ कर वैसे-के-वैसे चारपाई पर लेट गये थे. किसीने कोई बात नहीं की थी. काफी देर के बाद राकेशजी ने आकाश की तरफ दखते हुए कहा था—इतने बड़े ब्रह्मांड में सैकड़ों नक्षत्रों के बीच आदमी का अस्तित्व सिर्फ एक छोटे से बिंदु के अतिरिक्त कुछ भी नहीं—और उस बिंदु का इतने बड़े ब्रह्मांड के बीच कुछ भी अस्तित्व नहीं.

फिर कमलेश्वर और राकेशजी ने जब अंतिम फैसला लिया था कि चौधरी भाई को अब 'अक्षर' कल से ही छोड़ देना चाहिए...

मुझे याद है जब भारत और पाकिस्तान की लड़ाई छिड़ी थी, मैं उन दिनों बंबई में थी.
और एयर रेड के दिनों
राकेशजी ने जिद करके मु
जहाज से दिल्ली बुलवा लि
मेरे दिल्ली पहुंचते ही कैसे
मुझे सीने से चिपका लिया

पहला बच्चा बंबई
होना चाहिए इसलिए मैं
महीने पहले ही बंबई चल
थी. इस बीच किसीने रा
को फोन किया कि अनीता
हुआ बच्चा हुआ है. रा
तड़प गये थे. उन्होंने शी
(संधू) को फोन किया कि
किसी तरह से उनकी जल्द
बंबई के लिए एयर बुकिंग करा
फिर टेलीफोन पर बात हु
तसल्ली पा गये थे कि ऐसी
बात नहीं हुई—अभी तो
वरी में ही दिन बाकी हैं. रा
जानते थे कि मुझे उनके ब
कितनी उत्सुकता थी.

बच्ची का समाचार
ही वह बंबई चले आये थे.
तब जच्चा के रूप में कित
आ रही थी... दिवाली की

ी. जोर-जोर से पटाखे चल हे थे. मानो हमारी बिटिया ी आने की खुशी में लोग शन मना रहे हों. रात भर भाभी -घर में ताश चलती रही. फिर ुबह जब सब सो गये तो राकेशजी केले हमसे मिलने अस्पताल आये. ते उन्हें देखकर धीरे से कहा ा—राजे, मेरे बच्चा हो गया है.

—तुमने बहुत बड़ा काम किया है मैं देख रहा हूं, उन्होंने जोर से ठहाका लगाया था. . .मैंने यह तीन महीने पता है क्या कह-कह निकाले —बेबीज गोन टु मेक ए बेबी. बेबीज गान टु मेक ए बेबी. नाउ लुक व्हाट ए बेबी. . .फिर कितनी देर तक वह बैठे बच्ची के हाथ-उंगलियों को देखते-सहलाते रहे थे. पहली बार उन्होंने कभी किसी बच्चे को इतने गौर और स्नेह से देखा था.

बच्ची के आने के बाद मानो हम दोनों ही जिम्मेदार व्यक्ति बन गये थे. मैं अपनी घर-गृहस्थी में जुट गयी थी और राकेशजी अपने काम में. पहली बार उन्होंने एक सीरियलाइजेशन पूरा किया. **'साप्ताहिक हिंदुस्तान'** में **'न आने वाला कल'** फिर जम कर **'आधे अधूरे'** पर काम किया. लगभग तीन महीने तक वह नजरबंद रहे. पुरवा रीढ़ू बच्ची थी, इसलिए मैंने इस दौरान लगभग वर्ष भर उसे गोदियों में ही बैठ कर पाला. वहीं गाहे-बगाहे चंद मिनटों के लिए राकेशजी हमें मिलने आ जाते थ. 'आधे अधूरे' पूरा हुआ तो पुरवा एक वर्ष की हो चुकी थी. भाभी के अनुरोध पर हम उसका पहला जन्मदिन बंबई ही मनाने गये थे. उन दिनों कमलेश्वरजी एक लंबी बीमारी के बाद स्वस्थ हुए थे. कितने मधुर थे वह दिन.

उसके बाद राकेशजी को नेहरू फेलोशिप मिला—साथ ही एक फेलो घर भी आ गया था. हमारा दूसरा बच्चा अर्थात् हमारा बेटा—शालीन. राकेशजी ने जितनी जल्दी बिटिया का नाम रखा था, उतनी ही देर उन्हें बेटे का नाम रखने में लगी. उनका कहना था कि यह मेरी सरासर गद्दारी है कि मैंने बेटा पैदा किया. लड़कियों के नामों का उनके पास ढेर था. लेकिन लड़के का नाम सोचना पड़ेगा.

राकेशजी ने जा कर काम किया —**मैड डिलाइट** पर. एक जबरदस्त एक्सपैरीमेंट शिमला में हुआ जो अपने तरीके की नयी ही चीज थी. फिर एफ. एफ. सी. की डायरेक्टरशिप सिर में मढ़ गयी थी. उसपर 'ड्रामेटिक वर्ड' पर काम. इस बीच जो थियेटर मूवमेंट उन्होंने शुरू कर दिया था वो अलग. इसी बीच योरप के ट्रिप. **'पैर तले की जमीन'** से पहले उन्होंने किसी न किसी तरह **'अंतराल'** पूरा करके शीला जी को दे दिया था. **'पैर तले की जमीन'** के पश्चात **'चाणक्य'** के लिए सामग्री भी एकत्रित करते जा रहे थे. कि इस बीच बहुत कुछ हो गया.

जून '७२ के अंत में हम अभी मसूरी से लौट कर ही आये थे कि राजेंद्र पॉल ने बताया कि वह और मेरी बहन बबू विवाह करना चाहते हैं. राकेशजी चकित रह गये थे क्योंकि बबू उसी वर्ष दिसंबर में केवल १६ वर्ष की होने वाली थी. पॉल हमारे बहुत निकट का मित्र था जो कि सप्ताह में चार शामें नितांत हम लोगों के बीच काटने वाला एक अभिन्न मित्र था और दूसरी तरफ बबू मेरी अपनी ही बहन थी इसलिए राकेश जी ने सोचा कि शायद इस गुत्थी को सरलता से सुलझा लेंगे. लेकिन वास्तव में वह परिस्थिति इतनी विकट निकली कि बस पूछिए नहीं. इतनी कि राकेशजी को पॉल से यह भी सुनना पड़ा' आइ कैन नॉट गिव अप दिस रिलेशनशिप ईविन एट द कॉस्ट ऑफ ए डेलिकेट फ्रेंडशिप! राकेशजी अवाक रह गय थे.

राकेशजी पुरवा और अनीता के साथ

पूंजी लगाने का सुरक्षित साधन जिसमें टैक्सों की भी बचत होती है।

भारत सरकार ने 7 जनवरी, 1975 को एक विशेष अध्यादेश जारी किया। इसके अधीन **केवल यूनिटों** से प्राप्त होने वाली 2,000 रु० तक की आमदनी पर कोई आयकर नहीं लगेगा। यह छूट 3,000 रु० की उस छूट के अलावा है जो यूनिटों और अन्य निर्दिष्ट निवेशों पर पहले ही मिल रही है।

इस नई छूट का सीधा सा अर्थ यह है कि आप 23,500 रु० तक की यूनिटें खरीद कर उनसे निश्चित और नियमित आय प्राप्त कर सकते हैं। इस आमदनी पर आपको कोई आयकर नहीं देना होगा।

यह रियायत कर निर्धारण वर्ष 75-76 लिए है अर्थात 1.4.74 से 31.3.75 की अवधि के लिए दाखिल किए जाने वाले 'टैक्स रिटर्न' पर मिलेगी।

यूनिटें रुपया लगाने का सर्वोत्तम और सुरक्षित साधन हैं। इनसे नियमित लाभ होता है। आप किसी भी समय अपनी यूनिटें यूनिट ट्रस्ट आफ इंडिया को बेच सकते हैं।

UNIT TRUST OF INDIA

देरी न कीजिए
फौरन ही
यूनिटें खरीदिए

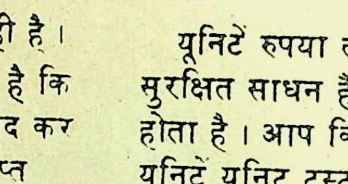

आवेदन फार्म इन जगहों पर उपलब्ध
यूनिट ट्रस्ट आफ इंडिया

- 45, वीर नारिमन रोड,
  बम्बई 400023
- 8, काउन्सिल हाउस स्ट्रीट,
  कलकत्ता 700001
- रिजर्व बैंक बिल्डिंग, फोर्ट
  साउथ बीच रोड,
  मद्रास 600001
- रिजर्व बैंक बिल्डिंग,
  6, पार्लियामेन्ट स्ट्रीट,
  नई दिल्ली 110001

davp 74/

मां अब राकेशजी को रोज फोन करने लगीं तो वह यह नहीं समझ पाये कि मां की सुनें, पाल की सुनें या फिर अपनी सुनें. नतीजा, राकेशजी ने दोनों की सगाई कर दी, लेकिन इतना मान कर कि पाल अब दोस्त नहीं रहा.

कितनी-कितनी 'बातें राकेशजी के मन में घर कर चुकी थीं. पहली बार जब बबू ने स्पष्ट न कह कर राकेशजी से इतना ही पूछा था कि अपने से काफी बड़ी उमर वाले व्यक्ति से विवाह करने पर उनकी प्रतिक्रिया क्या है तो राकेशजी पूरी बात न जान कर भी यही बोले थे कि 'ठीक नहीं है.' आगे उन्होंने यह भी कहा था कि तुम कहोगी कि जब मैंने तुम्हारी बहन को चुना तो फिर कैसे गलत है, तो उसका उत्तर यही है कि वह भी गलत था. इसलिए कि तुम्हारी बहन के साथ मैंने न्याय नहीं किया क्योंकि वो अपनी उमर नहीं जी सकी. सारी जिंदगी वो सिर्फ मेरे कद तक आने की कोशिश करती रही है.

लेकिन उसके बाद भी बबू का यह कहना कि लोग खुद तो अपनी इच्छानुसार जी लेते हैं लेकिन दूसरों के वक्त पता नहीं क्यों न्याय-अन्याय समझाने लगते हैं. फिर मेरी एक बात पर पाल ने कहा था. आप चाहती हैं शादी न हो. आदि आदि. राकेशजी कुछ नहीं बोल सके. उसके तुरंत बाद याने १६ अगस्त को अम्मा का देहांत हो गया. पाल उस समय घर पर ही था. फिर पाल के विदेश जाने से पहले राकेशजी ने अपनी मां के देहांत के बावजूद उन दोनों की सगाई की पार्टी भी दी और पाल विदेश चला गया.

अम्मां के देहांत के बाद राकेशजी बंबई एफ. एफ. सी. की मीटिंग के लिए गये—यों मकसद इस्तीफा देने का ज्यादा था. बंबई भाई-भाभी से मिले और चहाते थे कि मां के लिए फूट-फूट कर रोयें लेकिन उसकी नौबत नहीं आयी. भाभी को मुझे ले कर कुछ मिसअंडरस्टैंडिंग-सी हो गयी थी जिसे सुन कर राकेशजी बौराये लौट आये. लौट कर वह फूटफूट कर रोये. मैंने उनको तसल्ली दी कि आपने भाभी की बात को इतना सीरियसली क्यों लिया. लेकिन वह नहीं माने. उन्होंने भाभी को दो लाइन का खत लिखा, 'भाभी, मैं आपकी इज्जत करता हूं और करता रहूंगा, लेकिन एक बात आपको बताना चाहता हूं कि मैं अनीता की भी बहुत इज्जत करता हूं.'

निश्चय ही मैं राकेशजी को वो खत लिखने से नहीं रोक सकी लेकिन इतना कर सकी थी की भाभी को एक खत अलग से लिख दिया—भाभी आप कब से मुझे इतना बड़ा समझने लगी हैं कि मुझ में पूर्णता ढूंढ रही हैं. मैं हमेशा से छोटी हूं और मुझे छोटा बने रहने में बहुत आनंद मिलता है. आदि आदि.

पत्र चूंकि पहली बार मुझसे ठीक से नहीं लिखा गया, इस से फिर फेयर करके मैंने पहला लिखा पत्र टोकरी में फेंक दिया. अंदाजा लगाइए कि राकेशजी के हाथ वह पत्र पड़ गया जिसे ले लेकर वह हरेक के घर घूमे. ओमप्रकाश जी, जवाहर भाई, कमलेश्वर जी. . . .सबसे यही कहते रहे,देखो अनीता बड़ी हो गयी है—मुझे उसपर नाज है. यही बात करने वह अंतिम बार ओमप्रकाश जी के घर पर गये थे और जब लौटने लगे तो सिढ़ियां से फिर ऊपर चढ़ आये. ओमप्रकाशजी और भाभी ने सोचा कि शायद कोई बात कहने वापस आये हैं तो अचानक होश में आ कर बोले— अरे मैंने तो समझा कि मैं घर से उतर रहा हूं और कोई बात याद आयी थी जिसे अनीता से कहना चाहता था.

घर आये तो मुझसे लिपट गये—अन्ना तू मुझे छोड़ कर तो नहीं जायेगी. . . और वह फूट-फूट कर रो पड़े थे.

अगले अंक में :

एक घर जो बड़ी मुश्किल से बना था, हमेशा के लिए छूट गया. . .

घटना-कथाएं

ट्रेड यूनियनों की नैतिकता

बंबई में १८५४ में पहली कपड़ा मिल स्थापित हुई थी. तब से आज तक, एक शताब्दी से अधिक समय हो गया लेकिन किसी कपड़ा मिल में हरिजनों को बुनाई विभाग में नहीं रखा जाता.

सवर्ण सारे विभागों में हरिजनों को सहन कर सकते हैं, उनके साथ चाय पी सकते हैं, नाश्ता कर सकते हैं, खाना खा सकते हैं लेकिन उनको बुनाई करते नहीं देख सकते.

वजह? वजह यह कि करघे पर जब धागा टूट जाता है तो उसे तुरंत थूक से जोड़ना पड़ता है. ऐसा लगातार होता रहता ह जिसके कारण ढरकी को होठों से लगातार छूना पड़ता है. अगर अगली पारी में उसी मशीन पर किसी सवर्ण मजदूर की ड्यूटी हो तो वह उस पर काम करने से मना नहीं कर सकता.

हजारों मुद्दों पर रोज लड़ने वाली ट्रेड यूनियनों ने भी कभी इस टेढ़े सवाल को नहीं उठाया. ☐

बच्चों को मारो

महाराष्ट्र के चंद्रपुर जिले के आदिवासियों के सौ झोंपड़े, किसी और ने नहीं, खुद सरकार के वन अधिकारियों ने जला दिये.झोंपड़े ही नहीं जलाये उन्हें ट्रक में ठूंस कर आंध्र प्रदेश की सीमा में आवारा कुत्तों की तरह छोड़ दिया. इस सारी प्रक्रिया में एक स्त्री और तीन नवजात शिशुओं की जान ले ली गयी. स्त्रियों को बेरहमी से मारा गया. इनमें गर्भवती स्त्रियां भी थीं. एक स्त्री को इस मारपीट के दौरान ही बच्चा पैदा हो गया, जो कुछ ही देर में मर गया. एक और बच्चा पानी-पानी चिल्लाता मर गया. एक बच्चे को अफसर ने कुचल कर मार डाला. ☐

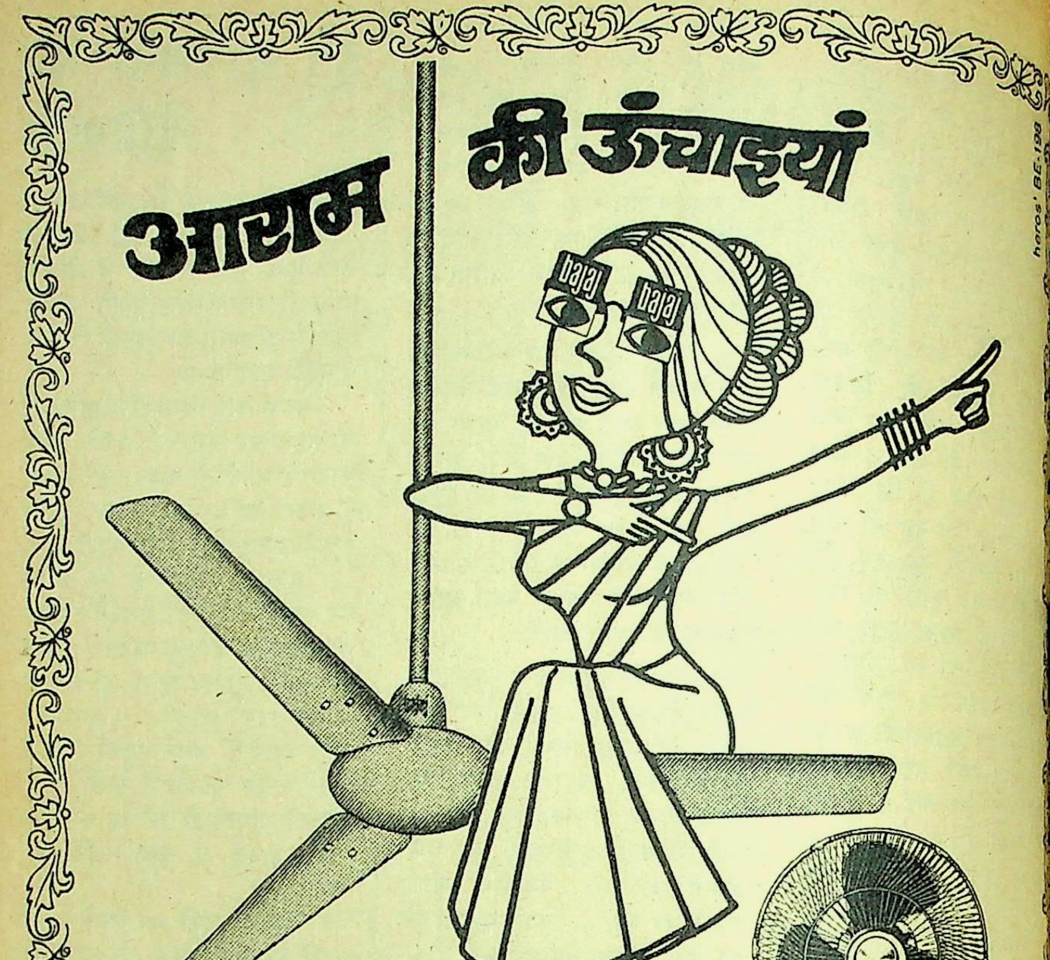
आराम की ऊंचाइयां
bajaj
bajaj
बजाज बहार
डीलक्स पंखों से
bajaj
यूनीवर्सल पंखा
ब्यूटी पंखा
MEMBER
FAIR TRADE PRACTICES ASSOCIATION

बिना आवाज़ चलनेवाले।
अधिकतम हवा देनेवाले।
नवीनतम डिज़ाइनों में।

बजाज इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड
४५-४७ वीर नरिमन रोड, बम्बई-४०००२३
भारत भर में शाखाएँ

ाई

अभी पिछले दिनों ही हिंदी के दो जनवादी चिंतक साहित्यकार हमारे बीच नहीं रहे. इनमें से एक ान्यजन के कवि श्री सुदामा पांडे घूमिल और हूं समाजवादी लेखक और समीक्षक श्री ओम- ा दीपक.

घूमिल ने आम आदमी के संघर्ष में बराबर का ा लिया है और उसकी तकलीफों को अपनी कवि- ों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है. उन्होंने हमेशा ी और जिंदगी के लिए लड़ रहे इनसानों की भीड़ वयं को खड़ा पाया है.

ओम प्रकाश दीपक का व्यक्तित्व समाजवादी ोलन, लेखन और चिंतन के प्रति सर्मपित है.

घूमिल

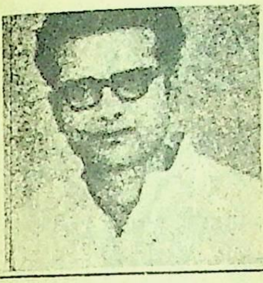

ओमप्रकाश दीपक

इब्राहीम शरीफ

स्वदेश दीपक

उत्तर प्रदेश सरकार ने १९७४ के लिए हिंदी के तीन कहानी-संग्रहों को पुरस्कृत किया है. वे संग्रह हैं—इब्राहीम शरीफ का 'कई सूरजों के बीच', स्वदेश दीपक का 'अश्वारोही' और दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ का 'सत्तारे मौसी'

इब्राहीम शरीफ और स्वदेश दीपक 'सारिका-पाठक-परिवार' के जाने-माने और प्रिय लेखक हैं. स्वदेश दीपक के उपन्यास 'नंबर ५७ स्क्वाड्रन' को पंजाब सरकार ने भी पुरस्कृत किया है.

दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ मूलतः नेपाली के लेखक हैं 'सत्तारे मौसी' उनकी हिंदी कहानियां का संग्रह है. इन तीनों कथाकारों को सारिका परिवार की ओर से बधाई. □□□

उसकी सुन्दरता का रहस्य ही
ऐटेक्स सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX
EYETEX BINDI
EYETEX
ARAVIND LABORATORIES MADRAS-33

डेट धुलाई की टिकिया

साबुनों के मुक़ाबले 1½ गुनी ज़्यादा शक्तिशाली —खारे पानी में भी.

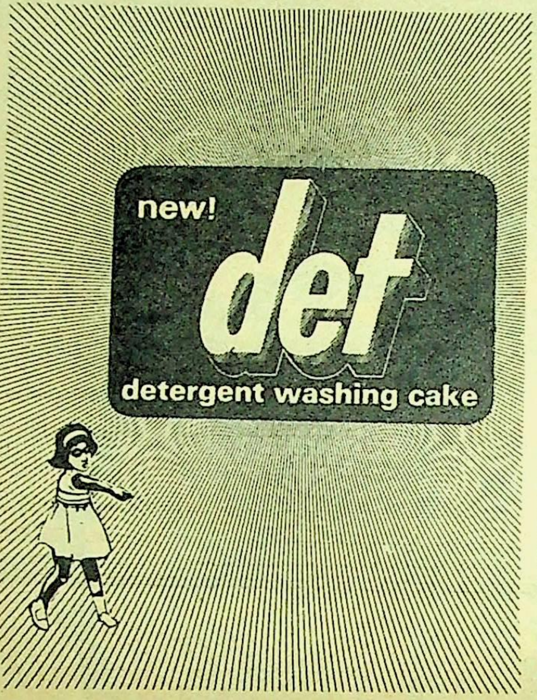
new!
det
detergent washing cake

डेट धुलाई का पाउडर

कई साइज़ के पैक में मिलता है. कपड़ों को इसके घोल में भिगोइये और धो लीजिये. हाथों को मुलायम भी रखता है.

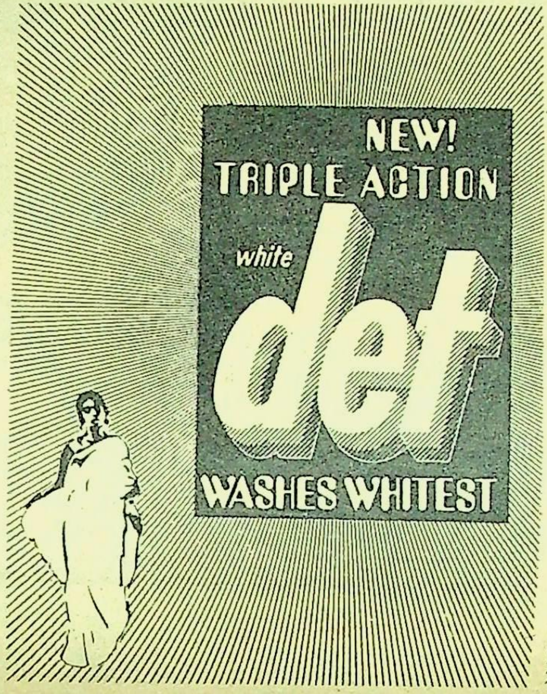
NEW!
TRIPLE ACTION
white
det
WASHES WHITEST

एन-डेट

दाग़-धब्बे नाशक एनज़ाइमयुक्त धुलाई का पाउडर, सक्रिय लेकिन हानिरहित.

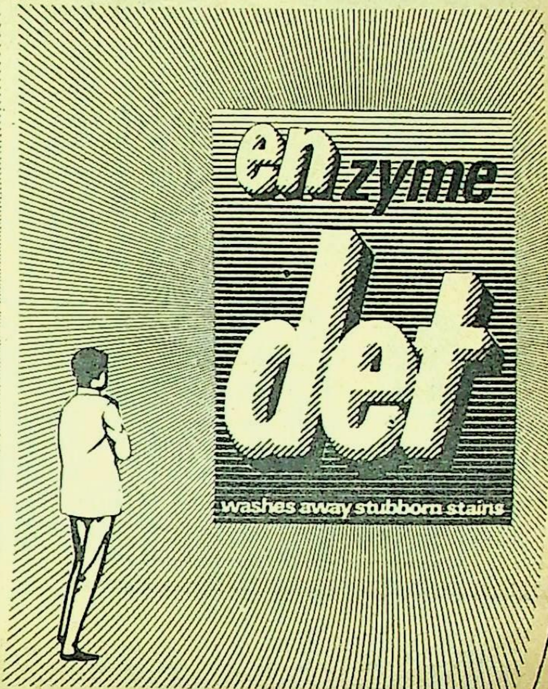
enzyme
det
washes away stubborn stains

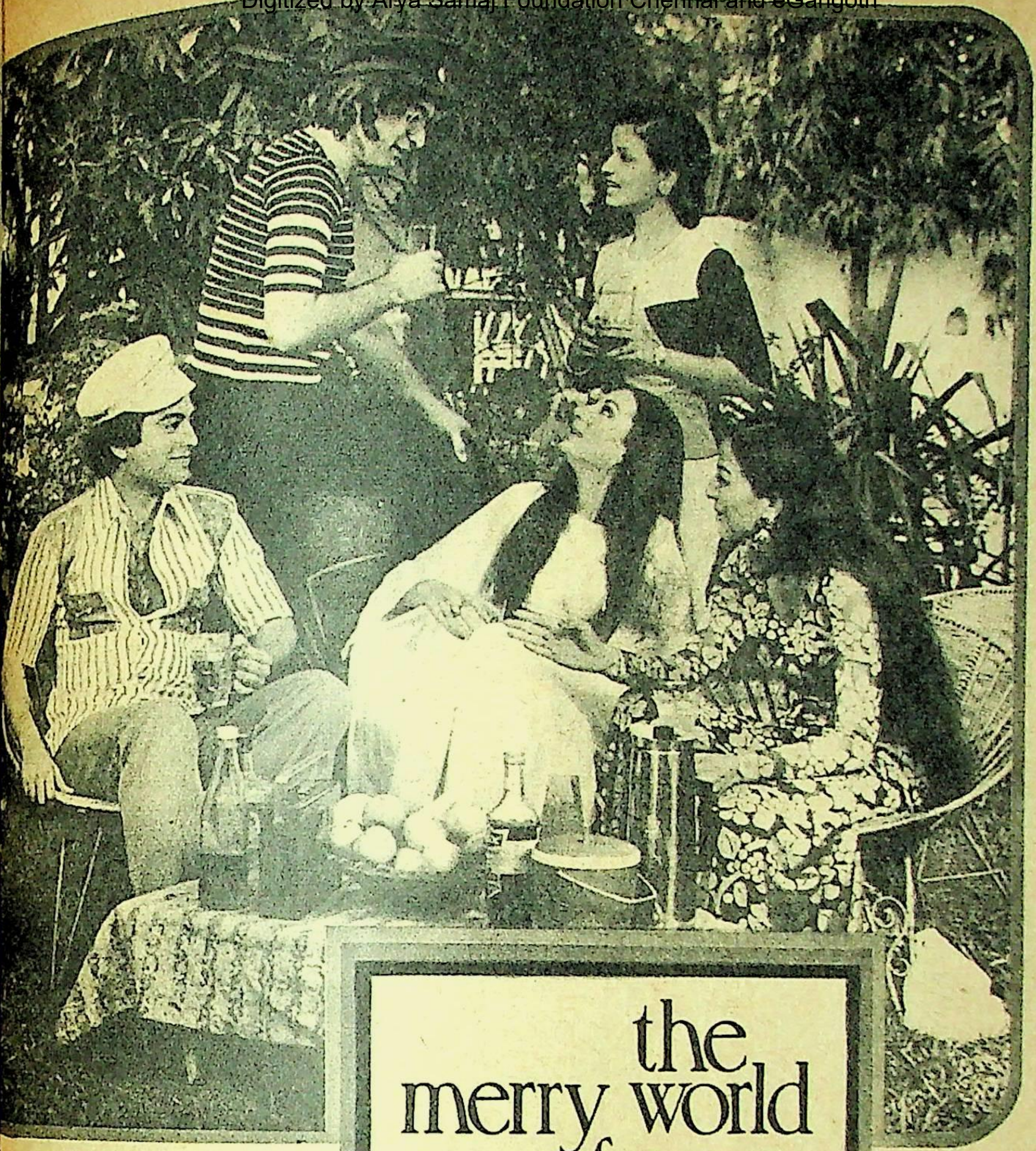

the
merry world
of
Shreelon &
Shreester

*the yarns that make
beautiful fabrics*

नायलॉन यार्न-- जानकार
ओं की मनमोहक साड़ियों और मनोरम ड्रेस मटीरियल्स
ी के कपड़े) बनानेवाला यार्न (धागा)
र पोलिएस्टर यार्न– तरक्कीपसन्द पुरुषों की
कतम सूटिंग और शर्टिंग बनानेवाला यार्न (धागा)
जब हो श्रीलॉन और श्रीएस्टर का मिलन,
जाता है उमंगभरी खुशियों का सावन!

ाते: श्री सिन्थेटिक्स लि., नौलखा, उज्जैन
ऑफिस: श्री निवास हाउस, एच्. एम्. सोमानी मार्ग, बम्बई-४००.००१

JAISONS 427 Delhi

मधुर मिलन का सुन्दर साधन

सरसिल्क। ऐसे भड़कते, फड़कते रंग कि मन मचल उठे। ऐसे मनमोहक, हलके रंग कि मन खिल उठे। सादा, चारख़ाना और धारीदार कपड़े।

सरसिल्क सूटिंग और शर्टिंग में आपको वे सभी ख़ूबियाँ मिलती हैं जो आप एक बढ़िया कपड़े में चाहते हैं। चलने में टिकाऊ। अच्छी पसन्द के अनुकूल। देख-भाल में आसान। और बिलकुल ठीक कीमत।

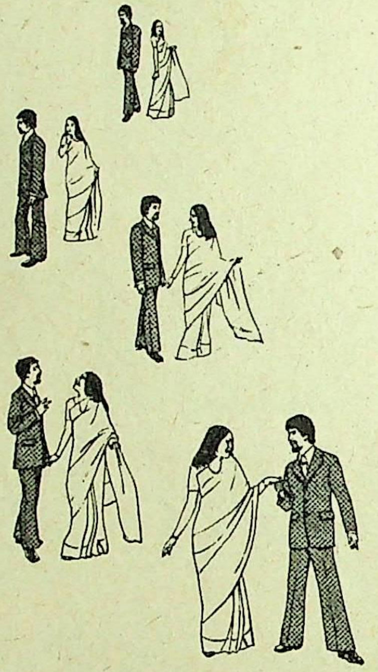

सरसिल्क

पॉलिएस्टर सूटिंग और शर्टिंग

विक्रेता एजेंट : बम्बई तुलसीदास कनोरिया एण्ड कम्पनी, पहली मंज़िल, जाम्बुलवाडी (पूर्व), कालबादेवी रोड, बम्बई। **मध्य प्रदेश, विदर्भ और**
रथी एण्ड कम्पनी, १७, पाप्युलर होलसेल क्लाथमार्केट; गांधी बाग़, नागपुर। **दिल्ली और हरियाणा :** बाम्बे ट्रेडिंग कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड,
चाँदनी चौक, दिल्ली। **राजस्थान :** हरीश एण्ड कम्पनी, मेहता मार्केट; जोधपुर। **पंजाब; हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर:**
कारपोरेशन, कटरा आहलुवालिया, अमृतसर। **उत्तर प्रदेश :** केजरीवाल ट्रेडिंग कारपोरेशन, विश्भर हाउस, २५/२६ प, कराची ख़ाना, कानपुर।
अश्विनी कुमार एण्ड कम्पनी, ४, इंडियन ऐक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता। **बिहार :** ओरिएण्टल ऐन्टरप्राइज़िज़ एण्ड एजन्सीज़, इंडिया मशीनरी बिल्डिंग
ऐग्ज़ीबिशन रोड, पटना।

POND'S
VANISHING CREAM
GREASELESS FOUNDATION
MADE IN INDIA

आपके रूप के अनेक चहेते...
आपकी त्वचा के अनेक दुश्मन
ॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम को अपना
ायी बनाइए.

हवा, धूल और मौसम के तीखे प्रभाव से आपकी त्वचा की रक्षा करती है पॉण्ड्स वैनिशिंग ीम. आपके रूप को और भी सलोना बनाने के िए इसमें एक खास पदार्थ ह्युमेक्टेंट मिला है जो आपकी त्वचा की नमी को सुरक्षित रखता है.तभी आपका मुखड़ा मोतीयारा दीखता है और तैलमुक्त भी.इसे आप आदर्श पाउडर बेस के रूप में प्रयोग कर सकतीं हैं. घंटों-पहरों यह आपके सौंदर्य को म्लान और मोहक बनाए रखती है. आप इसे संपूर्ण सौंदर्य प्रसाधन के रूप में भी प्रयोग कर सकतीं हैं.आप तो जानतीं ही हैं, आपकी त्वचा को भी उतना ही प्यार-दुलार चाहिए जितना कि आपको.

ॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम — आदर्श पाउडर बेस

HT.CP.8188

यो·पॉण्ड्स इन्कॉर्पोरेटेड(सीमित दायित्व सहित यू. एस. ए. में संस्थापित)

हाय गजब!

इस मशहूर सितारे की
नयी चमक !

माधुरी

बड़ा मशहूर नाम है इस सितारे का
जी हाँ, जो चमक इस 'सितारे' में है उसकी बात ही और है !

माधुरी, सिने संसार की सबसे सुरुचिपूर्ण और सुलझे विचारों को सुलझे हुए ढंग से पेश करने वाली साहित्यिक पत्रिका होने के साथ-साथ सिने संसार का दर्पण और सितारों और दर्शकों के लिए मार्गदर्शक भी है. माधुरी में सितारों की जिंदगी के दिलचस्प पहलू, संगीत, फिल्म लेखन, संपादन, संकलन क्या नहीं है ।

★ आर्ट पेपर पर कलात्मक मुखपृष्ठ ★ अधिक सामग्री

फिल्म पत्रिकाओं की रानी माधुरी

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

साठे मॉल्टएक्स
इतने स्वादिष्ट हैं क्यों कि उनमें मॉल्ट है
SATHE MALTex
SATHE MALTex BISCUITS
साठे मॉल्टएक्स बिस्कुट
SATHE MALTex BISCUITS
साठे बिस्कुट
heros'-SBC-54 L HIN

ताज़ा, करारा व स्वाद में अनोखा

इस अनोखे स्वाद का कारण है मॉल्ट, जो इस बिस्कुट में भरपूर है। पचने में हलका यह बिस्कुट चाहे जितने भी खायें, और खाने को जी चाहता है। इसलिये कि इसमें मॉल्ट है!

उपहार में देने के लिए सुंदर पेकेट में और घर लेजाने के लिए खुला मिलता है।

IS:1011

आई. एस. आई मुहर वाले **मॉल्टएक्स** का मतलब है अच्छी किस्म की गारंटी वाले बिस्कुट

नेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित
प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई-१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-१; कलकत्ता आफिस : १३
और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस [illegible] वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.

जी में आता है कभी कभी
क़ालीन हो इक हरियाली का-
शबनम से धुला लहका लहका
ऊदी घटाएं छाई हों
आलम हो बस बहका बहका-
और हम-
दुनिया के रंजोफ़िक्र से दूर
कपड़ों की क़ैद से आज़ाद
चले जाएं बहुत दूर जहाँ
मिलते हैं ज़मीनो आसमाँ
रसभरी पुरवाइयाँ सनकती हुईं
खेलती हुईं
बदन को छेड़ती हुईं
लिपट जाएँ हमसे
उनके ख़यालों की तरह!

नवसारी शर्टिंग्स
अनोखा एहसास

सारिका

जून १९७५

समांतर कहानी विशेषांक-९

आम आदमी के आसपास: आज की कहानियां

नवलेखन अंक: खंड एक

12/6/75

गुरुकुल काँगड़ी

heros' BE-198
bajaj
bajaj
यूनीवर्सल पंखा
ब्यूटी पंखा
bajaj
FAIR TRADE PRACTICES ASSOCIATION

आराम की ऊंचाइयां

बजाज बहार डीलक्स पंखों से

बिना आवाज़ चलनेवाले।
अधिकतम हवा देनेवाले।
नवीनतम डिज़ाइनों में।

बजाज इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड
४५-४७ वीर नरिमन रोड, बम्बई-४०००२३
भारत भर में शाखाएँ

जून १९७५ / सारिका / पृष्ठ

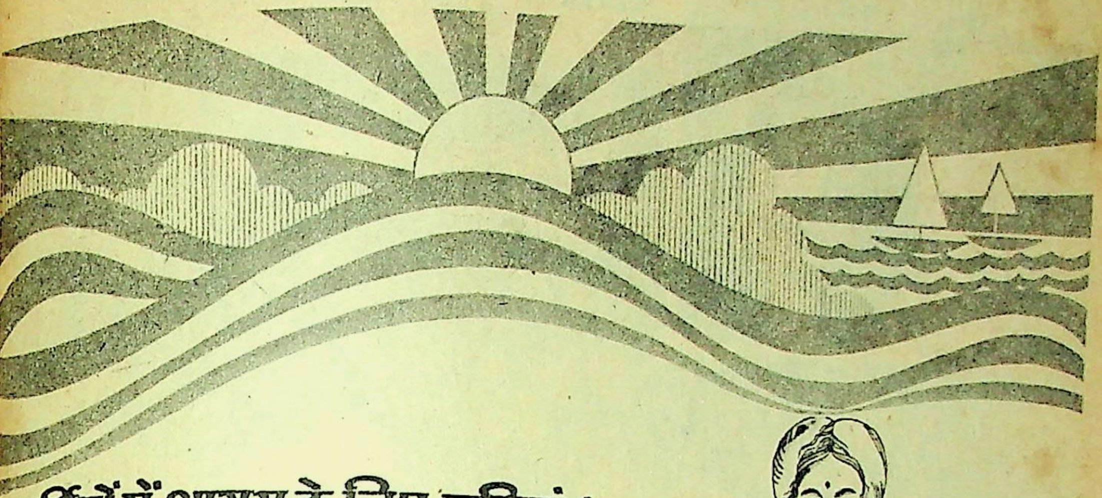

गर्मियों में आराम के लिए छुट्टियां !
छुट्टियों में आराम के लिए मनोरंजन !!

और स्वस्थ मनोरंजन के लिए
ये नई स्टार बुक्स !!!

पिंजरा
गुलशन नन्दा
उसकी चूड़ियां
आशंका
कोमल
संकल्प
अच्छी पुस्तकें स्टार बुक्स

गुलशन नन्दा	(उपन्यास)	पिंजरा	4/00
गुरुदत्त	(उपन्यास)	सफ़र	5/00
साहिर लुध्यानवी		आओ कि कोई ख्वाब बुनें	3/00
राजवंश	(उपन्यास)	आशंका	3/00
समीर	(उपन्यास)	आंख मिचौली	3/00
प्रियदर्शी	(उपन्यास)	कोमल	3/00
[illegible]		औरत ख़तरा और मौत	3/00
समर बहादुर सिंह		सफलता कैसे मिले	3/00
कर्त्तार सिंह दुग्गल		उस की चूड़ियां	3/00
विजय कुमार गुप्त	(उपन्यास)	संकल्प	3/00
कुसुम अंसल	(उपन्यास)	उदास आंखें	3/00
भगवान रजनीश		काम ध्यान और आध्यात्म	3/00
शक्ति सामान्त की नई फिल्म का स्क्रीनप्ले	(सचित्र)	अमानुष	3/00

घर बैठे प्राप्त करने के लिए **स्टार लायब्रेरी योजना** के सदस्य बनिये

सदस्यता नियम

केवल एक रुपया सदस्यता शुल्क भेजकर हर मास वी.पी. द्वारा 12 रुपये मूल्य की पुस्तकें 10 रुपये में घर बैठे प्राप्त करें—और डाक व्यय भी हमारे जिम्मा। इसके बाद प्रत्येक मास के प्रथम सप्ताह में अपनी पसन्द की नई स्टार बुक्स उसी रियायतों के साथ भेजी जायेगी। सदस्यता शुल्क पहली वी. पी. में भी जोड़ा जा सकता है

सुविधाएं

☐ हर मास पत्रिका 'साहित्य संसार' की प्रति निःशुल्क !
☐ पहली वी.पी. में सुन्दर प्लास्टिक का बुक कवर फ्री !!
☐ प्रत्येक 6 मास में 3 रुपये की एक पुस्तक फ्री !!!
☐ और समय समय पर अन्य कई उपहार !!!!

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा०) लि०, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००१

(अब तक प्रकाशित ३५० स्टार बुक्स की सूची पत्र लिखकर निःशुल्क मगावें !)

Jupiter

सांस में दुर्गंध जुदाई कराये...

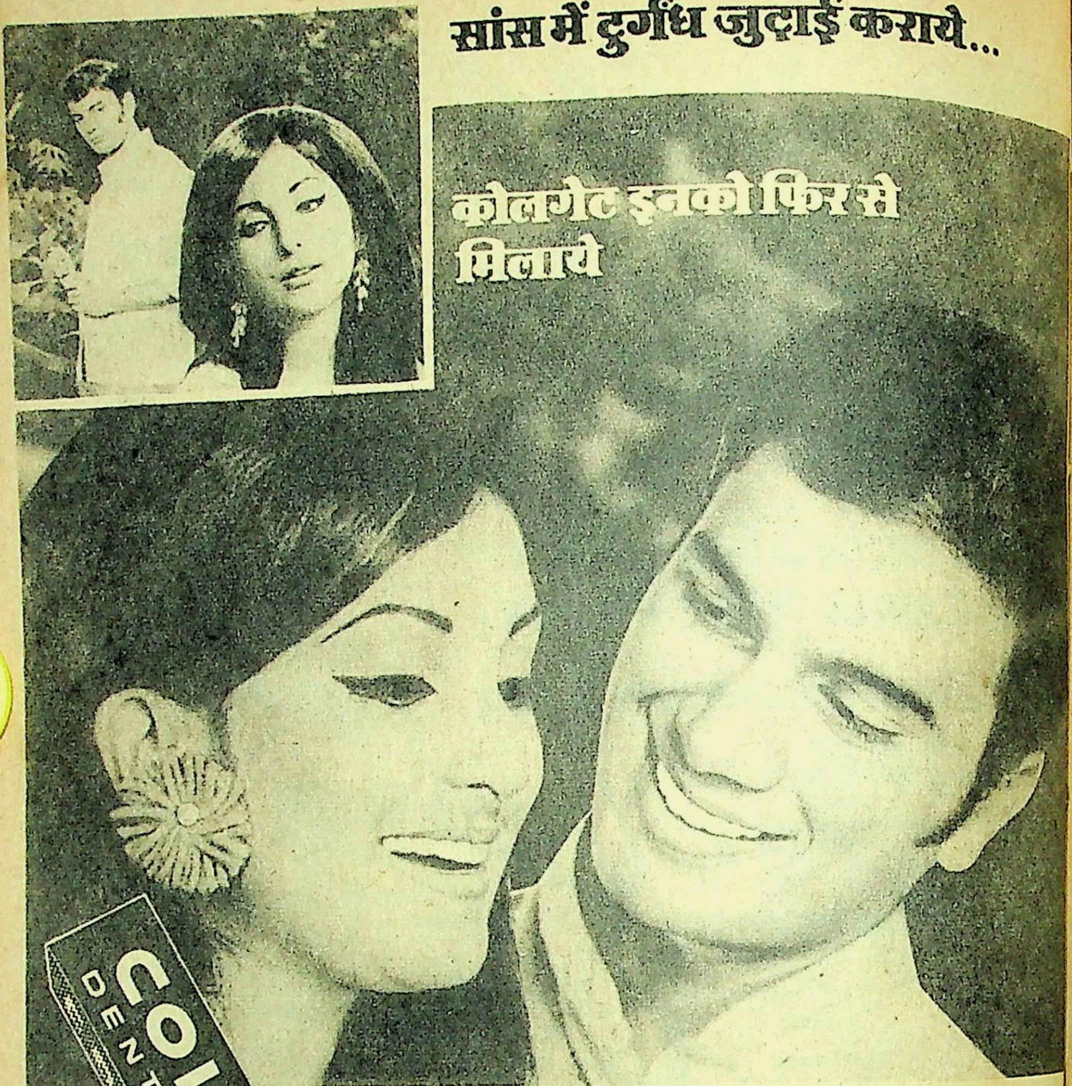
कोलगेट इनको फिर से मिलाये

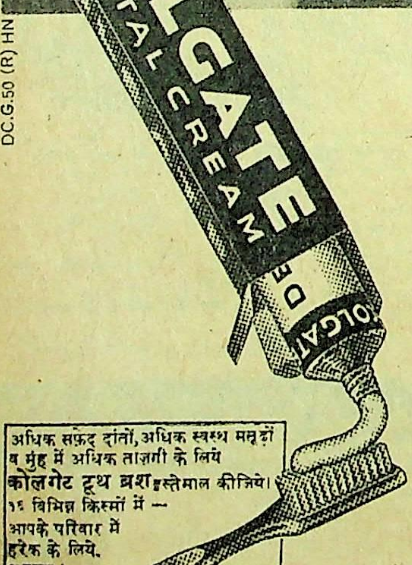

DC.G.50 (R) HN

अधिक सफ़ेद दांतों, अधिक स्वस्थ मसूड़ों व मुंह में अधिक ताज़गी के लिये **कोलगेट टूथ ब्रश** इस्तेमाल कीजिये। १६ विभिन्न किस्मों में — आपके परिवार में हरेक के लिये. अनुकूल।

कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की दुर्गंध रोकिये... दंतक्षय का दिनभर प्रतिकार कीजिये!

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल खत्म कर देता है और खाना खाने के तुरंत बाद कोलगेट विधि से दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का—अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक कीटाणुओं को दूर कर देता है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए...
दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही खरीदते हैं।

आपका
चेहरा ही
आपका
भाग्य
AFGHAN SNOW
उसकी उसी
प्रकार उचित तरीके से सुरक्षा करें

अफगान स्नो—संपूर्ण रूप से त्वचा की सुरक्षा करनेवाला स्नो।
इसके प्रयोग से आपकी त्वचा खिलती हुई पंखुड़ी की तरह
मृदु और सुबह की ओस की तरह ताजी रहती है।

यही कारण है कि महिलायें अपनी त्वचा की
सुंदरता और सुरक्षा के लिये अफगान स्नो पर पूर्ण भरोसा करती हैं।

अफगान स्नो. त्वचा की संपूर्ण सुरक्षा के लिये

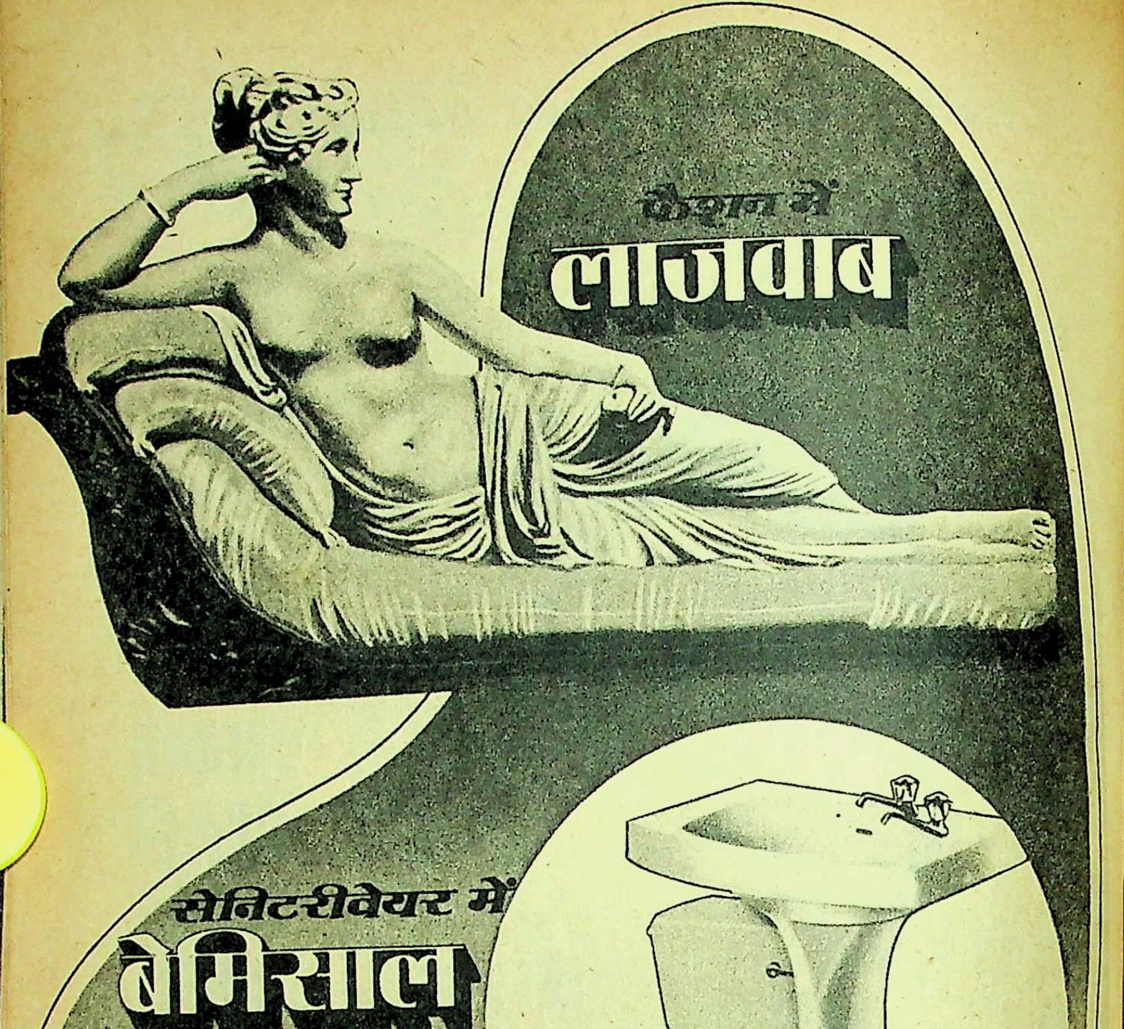

नये-नये फैशन का केंद्र-देश फ्रांस ही आधुनिक सेनिटरीवेयर का केंद्र भी है। यूरोप के प्रमुख सेनिटरीवेयर निर्माता 'पॉर्शे ऑफ फ्रांस' के सहयोग से उपलब्ध सुरुचिपूर्ण डिज़ाइन और आधुनिकतम तकनीक खोडियार सेनिटरीवेयर को अपने आप में विशिष्ट और अनूठा बना देती है।

खोडियार की सुरुचिपूर्ण डिज़ाइन विदेशी बाज़ारों में भी बेहद पसंद की जा रही है। इसका प्रमाण है 'केमिकल्स एंड एलाइड प्रॉडक्ट्स एक्सपोर्ट प्रोमोशन काउंसिल' द्वारा, प्रदत्त १९७३–७४ का 'एक्सपोर्ट बैज'। विशेष प्रकार की टिकाऊ चीनी मिट्टी से बने खोडियार सेनिटरीवेयर न तो रिसते हैं और न ही उनमें खरीच आती है। मनमोहक रंगों और डिज़ाइनों में से आप अपनी पसंद चुन सकते हैं। इतना ही नहीं, वे कई आकारों में भी मिलते हैं—आज ही अपने खोडियार विक्रेता से मिलिए।

खोडियार पॉटरी वर्क्स लिमिटेड

सिहोर (गुजरात) टेलिफोन : ३ तार : पॉटरी

national 625

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

जून, १९७५

वर्ष : १५; पूर्णांक : १७०

समांतर कहानी विशेषांक-९

नवलेखन अंक-१

कहानियां

प्रभुनार्थसिंह आजमी : कुछ कदमों का फासला : १२
अजय अग्रवाल : विक्षिप्त : १६
उषा व्यास 'छवि' : सलाखों के आर-पार : २४
श्रीकेशव : अंधा सूरज : ३२
शैलाभ : मशीन : ३६
सोमेश भरत : दौड़ : ४२
ज्ञान चतुर्वेदी : जंगल में : ४४
नरेंद्र मौर्य : भैया सांव का पटाक्षेप : ४८
अरुण मिश्र : अंधे कुएं का रास्ता : ५२
सच्चिदानंद धूमकेतु : फफोले : ६०
रामलगन यादव : यहीं--सब जगह : ६४
कृष्णकांत प्रवासी : तह के नीचे : ६८
नर्मदेश्वर : गिद्ध : ७२
मंदा पांडे : वापसी : ७६
गौरीशंकर कपूर : परिक्रमा : ८०
सुरेंद्र सुकुमार : अगिहाने : ८४

लघुकथाएं

अशोक कुमार सिंह : पे-कमीशन की रिपोर्ट : १५
मधुप मगधशाही : महंगाई-विरोधी : १९
श्रीकांत चौधरी : काव्यपाठ और सरकारी आचार-संहिता : ३०
शंकर पुणतांबेकर : नेता की टोपी; सफाई : ३१
शैलेंद्रनाथ : शंका-समाधान : ८७

एक रिपोर्ट

अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन :
एस. कुमार : ५८

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : (संयोजक : न. मा.) : ६
मेरा पन्ना : कमलेश्वर : १०
कबिरा खड़ा बजार में : हरिशंकर परसाई : २०
कृतियां : त्रि. जे. : ७९
चंद सतरें और : अनीता औलक : ८८
विविधा : समांतर कहानियों पर एक समांतर
परिचर्चा : सुभाष पंत : ९०
व्यंग्य-विचार : कालिदास सेन : ९३
● आमुख : विद्याव्रत

सारिका

चंदे की नयी रियायती दरें

एक वर्ष– १० रुपये
दो वर्ष– १९ रुपये
तीन वर्ष– २७ रुपये

संपादक : कमलेश्वर

● मुख्य उप-संपादक :
आनंदप्रकाश सिंह

● उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल, सुदीप

● कार्यालय सहयोगी :
श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

समांतर कहानी विशेषांक —५ और ६

काफी प्रतीक्षा के उपरांत **'सारिका'** का फरवरी अंक प्राप्त हुआ. सभी कहानियां जहां आज के समर्थ और सही लेखन का प्रमाण हैं, वहां कमलेश्वर जी ने भी **'मेरा पन्ना'** के माध्यम से कहानियों को अमूल्य बना दिया है. इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि कमलेश्वर जी ने आज के यथार्थ को अपनी कलम द्वारा नंगा करके पाठकों के सम्मुख ला कर खड़ा कर दिया है.

इस अंक की सभी कहानियां आक्रोश से भरी हैं. मुद्राराक्षस की **'निहत्थे'** राशन के लिए तड़पते हुए सुखबीर जसे लोगों का यथार्थ चित्रण करती ही है. राम सुरेश की कहानी **'मदारी'** भी कॉलेज जीवन की यथार्थवादी कहानी है. **'एक चालू आदमी'** कहानी में लेखक ने अच्छा व्यंग्य कसा है. प्रभातकुमार त्रिपाठी की कहानी **'ऋषि'** भी अच्छी रही. कुल मिला कर अंक सुंदर रहा. चाहे वह कामतानाथ की **'तीसरी सांस'** हो, नवतेजसिंह की **'अन्न और स्वप्न'** हो, **'नयी तलाश'** या फिर **'दर्द की मछली'**—सभी कहानियां आज के कटु सत्य की तस्वीर पेश करती हैं.

☐ **जयसिंह आर्य, चंडीगढ़**

'सारिका' का 'समांतर कहानी विशेषांक —५' पढ़ा. सभी कहानियों ने सामयिक परिस्थितियों से जूझते हुए व्यक्तित्वों को बड़ी मार्मिकता से उकेरा है. चाहे कामतानाथ की **'तीसरी सांस'** हो, या अकुलेश परिहार की **'छुट्टी का एक दिन'** या दिनेश पालीवाल की **'एक चालू आदमी'**—सभी कहानियां अपने में सशक्त हैं. **'मेरा पन्ना'** की प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती. **'चंद सतरें'** और **'कबिरा खड़ा बजार में'** भी प्रशंसनीय हैं.

☐ **सुनील स्वप्निल, कटनी**

फरवरी अंक पढ़ कर यूं लगा कि अब ये कथाएं आम आदमी के आसपास की ही नहीं, बल्कि सामान्य जन-जीवन की अंदरूनी पीड़ा, तड़प, विडंबनाओं व विसंगतियों की विशद व सम्यक तस्वीर, अपने विशाल पाठक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत करने की क्षमता भी रखती हैं. ये कथाएं इस कथन को सार्थक करती हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है. ओम गोस्वामी ने **'दर्द की मछली'** में जिंदगी के दलदल में पड़ी हुई, अपनी वेदनाओं के साथ तालू में कांटा फंसाये तड़पती व जिंदगी को अर्थ देने की नाकाम कोशिश में संलग्न मछलियों की दुख-गाथा को एक धर्मू की पत्नी में समेट कर यथार्थ की जमीन का एहसास कराया है. आज आदमी की दो किस्में हो गयी हैं— पेशल व चालू (**'एक चालू आदमी'** : दिनेश पालीवाल). अभावों की मार से पिटा हुआ आदमी, अपने अधिकारों की बात अपनी जन्मजात भाषा में न कह कर विदेशी भाषा (अंग्रेजी) में कहने की कल्पना करता है. अपनी कही गयी बात गंदी हवा के समान निरर्थक लगती है (**'निहत्थे'** : मुद्राराक्षस'). इस अंक की अन्य कहानियां भी आम आदमी की निरीहता, लड़ाई, त्याग का प्रतिनिधित्व करती हुई अपने उद्देश्य के निकट पहुंची लगती हैं.

☐ **देवेंद्रकुमार पाठक, भुड़सा**

'समांतर कहानी विशेषांक : ५' पढ़ा. प्रत्येक कहानी शुरू करने से पहले हृदय में एक दहशत-सी बनी रहती है कि कहीं यह हमारे जीवन के किसी पहलू का कच्चा चिट्ठा न हो. ये सिर्फ कहानियां ही नहीं, बल्कि आम आदमी की दिनचर्या का पर्याय हैं.

हमारी पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था ने हमें भयंकर आर्थिक विषमता के कगार पर खड़ा कर दिया है. मजदूर, किसान एवं मध्यमवर्गीय परिवार आर्थिक शोषण के शक्तिशाली शिकंजे, एवं वर्तमान सड़ी-गली व्यवस्था के दलदल में फंसे, गटर के कीड़े की तरह रेंग-रेंग कर एक अजीब हास्यास्पद एवं नंपुसक स्थिति को पहुंचते जा रहे हैं, जहां समय-असमय वे चिचियाते तो हैं, परंतु किसी भी विस्फोटक स्थिति से अपना दामन बचाये रखते हैं. क्यों? गाली खाने के बाद भी हम क्यों नहीं उत्तेजित होते? बहुत दिनों से यह प्रश्न दिलो-दिमाग पर छाया था. फरवरी अंक में **'मेरा पन्ना'** इसका सटीक एवं संतोषजनक उत्तर दे गया.

क्रूर फौजी शासन की सुरसा, आर्थिक न्याय की मरीचिका में खोये न जाने कितने **'निहत्थे'** (मुद्राराक्षस) सुखबीरों को निगलेगी? कानों को सुन्न कर देती है **'तीसरी सांस'** (कामतानाथ) के केबिनमैन की शांतिमय विस्फोटक मौत! उफ! कितनी दर्दनाक है, **'दर्द की मछली'** की नसीबो का अपना शरीर बेच कर अपने बूढ़े श्वसुर एवं बच्चों के पेट की धधकती ज्वाला को शांत करने की दिनचर्या! पारिवारिक संबंधों को नापते आर्थिक मापदंड का सिलसिला एवं आर्थिक परतंत्रता के संत्रास से त्रसित वर्तमान पढ़ा-लिखा युवा चिंतन किस दिशा में अग्रसर हो रहा है, प्रभातकुमार त्रिपाठी की कहानी इसका ज्वलंत उदाहरण है.

आम आदमियों के जीने के ढंग का सफल चित्रण कर पाने का श्रेय सिर्फ **'सारिका'** को ही है. यह साधारण आदमियों की व्य का अद्वितीय संग्रह है.

☐ **ओमप्रकाश गुप्ता, लखन**

इसे मैं अपना सौभाग्य ह मानता हूं कि मैं **'सारिका'** का पाठ हूं. पहले **'सारिका'** पढ़ता था सि शौक से. लेकिन अब अध्यय करने लगा हूं. आम आद हो कर भी 'आम आदमी' के दर्द वाकिफ नहीं था. यह **'सारिका'** ही प्रयास है कि अब खुद को प चानने लगा हूं. अपने ही अस्ति के संबंध में जो हीन भावना जाती रही है. अब यह अच्छी त समझने लगा हूं कि अपनी ही बेबसी और लाचारी को कि की बात समझ बैठा था, वह कि की बात नहीं, बल्कि साजिश

परिणाम है. **'सारिका'** को धन्यवाद कि यह हम आम आदमियों को 'आदमी' का दर्जा दिलाने के लिए प्रयत्नशील है.

'समांतर विशेषांक–६' भी पिछले अंकों की तरह बेहद पसंद आया. फिर भी **'दमनचक्र'** (सुधा अरोड़ा), **'एम. एल. ए. साहब'** (राही मासूम रजा), **'इतने अच्छे दिन'** (कमलेश्वर), **'व्याख्याकार'** (कृष्ण भावुक) मानस-पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ चुकी हैं.

☐ **रामदेव सिंह, इसरायणकलां**

इस अर्थ-प्रधानता की वजह से पारिवारिक ढांचे चरमरा गये हैं. निजी से निजी संबंधों ने भी अपनी अर्थवत्ता खो दी है. सुधा अरोड़ा की **'दमनचक्र'** के भाई-बहन-पिता किस कदर दूर-दूर रहते हैं. एक पुत्री का अपने पिता के अस्तित्व के बारे में इस हद तक सोचना संभव हो गया है— 'बाबा को गलत दवा दे दूं, या चाय में स्लीपिंग पिल्स की पूरी शीशी उंड़ेल दूं. . .'

कहानी पाठक को शुरू से ही बांध लेती है. बीच में वह कहीं बिदकता नहीं. शिल्प कसा हुआ है और पाठक की आत्मा पर अपेक्षित तनाव बनाये रखने में सफल है. अंक की अंतिम कहानी **'इतने अच्छे दिन'** (कमलेश्वर) परिणति के रूप में उभर कर आयी है. **'अग्निरेखा'** और **'सांप'** भी बहुत अच्छी कहानियां हैं.

☐ **ऋषिदेव शर्मा, इलाहाबाद**

कुल मिला कर 'समांतर कहानी विशेषांक–६' अपने नाम के अनुरूप रहा. वस्तुतः सारी कहानियां आज की वैयक्तिक सापेक्ष नैतिकता (के घर्म) को उजागर करती हैं. खासकर प्रदीप पंत की कहानी **'आम आदमी का शव'** ने अत्यधिक प्रभावित किया. सांस्कृतिक क्रांति का चित्रण आज की पूरी व्यवस्था को झकझोर देता है. अन्य कहानियों में सुदीप की **'अंतहीन–दो'**, कृष्ण भावुक की **'व्याख्याकार'**, राजेंद्र किशोर की **'अग्निरेखा'** तथा सुधा अरोड़ा की **'दमनचक्र'** अति सराहनीय हैं.

☐ **'अमलतास', पटना**

. . .आज से नहीं, युग-युगांतर से चली आ रही आम व्यक्तियों की उत्कंठा उन्हें बहुत कुछ नवीनता की ओर धकेलती है. अब तक तो मैंने अपने सर्वेक्षण में यही पाया है कि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग **'सारिका'** की कहानियों को कहानी मानने से ही इनकार करता है. कुछ दायरों के अंतर्गत सही भी है उनका सोचना. आज तक उन्होंने जो कुछ भी पढ़ा, लिखा और सोचा है, वह कल्पनाकाश की ही चंद तस्वीरें रही हैं, जिनका वास्तविकता से दूर का सलाम है. वास्तविकता से वे उतना ही कतराते हैं जितना एक नेता चुनाव के बाद 'जनता जनार्दन' से. हमारी मनोवृत्ति हो गयी है कल्पनातीत बातों को यथार्थ के परिवेश में सोचने की. यही कारण है कि आज अत्यंत रोमांटिक, जासूसी और नग्नता पूरित साहित्य ज्यादा बिकता है. **'सारिका'** एकमात्र वह पत्रिका है (मेरी नजर में) जिसने सही मूल्यांकन किया है. कथा-साहित्य में विषयों का. **'सारिका'** ने वे अवगुंठन खोले हैं जिसकी वर्षों से प्रतीक्षा थी, पर साहस का पूर्णतः अभाव.

'नैतिकता' एक साधारण-सा शब्द दीखते हुए भी कितना कुछ समाये है अपने आप में! आवश्यकता है नैतिकता के व्यक्ति-केंद्रित प्रश्नों को बदल कर समयगत न्याय की धारणा के संदर्भ में उठाने की. हजार, दस हजार सत्तारूढ़ लोगों को मात्र बदल देना नैतिकता नहीं. आवश्यकता है प्रतिमानों को ही बदलने की, जिससे सत्ता, संस्था या संपूर्ण राष्ट्र अपना अस्तित्व कायम रख सके. पर दुख तो है कि हम (सुधा अरोड़ा– **'दमनचक्र'**, रामस्वरूप अणखी – **'एमरजेंसी'**, बसंतकुमार – **'सांप'**, प्रेम कासलीवाल– **'विदेश'**, सुदीप—**'अंतहीन-दो'**) व्यवस्थागत नैतिकता एवं अन्याय के कटीले एहसास को सी-सी करके भोगने को तो तत्पर हैं, पर स्वयं उठ नहीं सकते. साहित्यकार वर्ग की एक और विशेषता है—चीन या पाकिस्तान ने हमला कर दिया– बरसात में मेढकों के समान ढेर सारे कवि पैदा हो गये; लेखक पैदा हो गये. कहने लगे—हमें छेड़ो मत. हम सोये हुए नाग हैं! ठीक है हम नाग हैं, फिर नाग क्या चिल्ला कर दुनिया को सुनाते हैं कि हम नाग हैं? नाग हैं तो अपने गरल का एक कतरा भी उगलते क्यों नहीं? पर खैर. साहित्यकार वर्ग को ही क्यों दोष दें? यह तो जन साधारण की धारणा है— बस सब कुछ सहो, मगर पांव मत हिलाओ. प्रभावित किया है तो स्वयं कमलेश्वर जी ने (**'इतने अच्छे दिन. . .'**) मानव के पतन के पीछे ओट से झांकते उसके जीवन के प्रति मोह तथा मनोभावों का कितना सच्चा चित्रण. . .!

☐ **कुमार अरुण, गया.**

एक पाठक का पत्र

मुझे उस समय बड़ा ही आश्चर्य हुआ जब मेसर्स जे. के. साटो एग्रीकल्चरल मशीन्स लिमिटेड (चकरपुर, कानपुर स्थित) फैक्टरी के रेजिडेंशियल क्वार्टर्स में अपने पुराने दोस्तों से मिलने मैं गया, तो एक बात जो हर क्वार्टर में समान थी, वह थी **'सारिका'** का नया अंक. पूछताछ करने पर मुझे बताया गया कि प्रत्येक कर्मचारी **'सारिका'** का इस हद तक प्रेमी है कि 'पहले मैं, पहले मैं' की छीनाझपटी से बचने के लिए एक ही अखबार वाले से ४७ प्रतियों को उन्होंने इकठ्ठा ही मंगाना शुरू कर दिया है. मार्च, १९७५ अंक की कहानियां तो सभी पसंद आयीं, मगर **'दमनचक्र'** जैसी सशक्त, यथार्थवादी रचना के लिए सुधा अरोड़ा सचमुच प्रशंसा की पात्र हैं. वर्तमान युग के संदर्भ में युवा आक्रोश और नारी की, सामाजिक, आर्थिक उत्तरदायित्व को पूरी तरह निभाते हुए भी, कितनी मजबूरियां हैं, इन विषयों पर बरबस ही ध्यान खिंचता है.

☐ **स्वतंत्र शर्मा, जहांगीराबाद, भोपाल**

मेरा पन्ना

आज का यथार्थ : समांतर संसार – ९

अवरुद्ध क्रांति, राजनीतिक अनिश्चितता, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक विषमता, भविष्य की दिशाहीनता, शांतिपूर्ण विकास की तथाकथित सैद्धांतिकता, पूंजीवादी व्यवस्था की प्रतियोगिता और तथाकथित समाजवादी समाज की प्रतियोगिता-हीन कल्याणकारिता के एक-दूसरे को काटते मंसूबों के बीच आज का आदमी और उसका साहित्य सांस ले रहा है.

क्रांति के लिए वचनबद्ध और आस्था-केंद्रित साहित्य ऐसे में क्या करे, जब एक ही दिक् और काल में अनेक दिशाएं और अनेक काल समाये हुए हों? जब-जब यह प्रश्न उठाया जाता है तो कुछ विशुद्धतावादी लोग चौंकते हैं और यथास्थितिवादी नाक-भौं सिकोड़ते हैं कि साहित्य का संबंध इस तरह के प्रश्नों से क्या है? साहित्य तो मानव-कल्याण का प्रेरक और जनक है, उसके मूल्य अलग हैं. यानी ऐसे लोग साहित्य के मूल्यों, मानव-मूल्यों और जीवन-मूल्यों के बीच एक व्यवधान हमेशा बनाये रखना चाहते हैं.

जब-जब साहित्य और जीवन-मूल्यों के बीच की दूरी समाप्त करने की कोशिश की जाती है, तब-तब इन निहित स्वार्थों की ओर से यही आवाज उठायी जाती है कि साहित्य का मुहावरा बहुत चालू हो गया है. यह निहित स्वार्थों वाला वर्ग हर क्षेत्र में मौजूद है. यह बराबर इल्जाम लगाता है कि विद्रोह, आक्रामकता, विक्षोभ, असंतोष, आक्रोश, अस्वीकृति आदि की भंगिमा ने साहित्य को सतही और छिछला कर दिया है. . .यह शिकायत विशेष रूप से उनकी है जो आज के साहित्य के मंसूबों को अपने मंसूबों के साथ नहीं पाते. वे तब बड़ी तकलीफ से कहते हैं कि यह साहित्यकार के अनुभव की कमी है! असल में इन्हें अनुभव की यह कमी तब दिखायी पड़ने लगती है, जब साहित्य इनकी विगलित, भावनात्मक दुनिया के बारे में संवेदनात्मक अनुभव करना बंद कर देता है और मानव मात्र की मुक्ति और स्वातंत्र्य का सवाल उठाता है. यानी जब इन्हें यह अनुभव दिया जाता है कि तुम्हारी स्वतंत्रता जन सामान्य की पराधीनता का कारण है, तुम्हारे अतिरिक्त और गलत तरह से अर्जित सुख दूसरों के दुखों का कारण हैं, तो इन्हें साहित्य सतही और बेमानी दिखायी देने लगता है. साहित्य में सन्नाटा नजर आने लगता है. बौद्धिक विपन्नता दिखायी देने लगती है.

साहित्य सिर्फ कुछ र
है, पैदा करता है (वह भी
सौंदर्य किस्म की चीज) पर साहि
आदमी के बदले हुए मंसूबे रे
कित करता है और उन्हें बदल
भी है, यह बात इनके गले
उतर पाती.

आज का साहित्य जब प
वर्तन की बात करता है और अ
साफ मंसूबे ले कर जिरह करता
तो यह कह कर टालने की कोशि
की जाती है कि ये साहित्यिक प्र
नहीं हैं. लेकिन उन निहित स्वा
वाले छद्म लेखकों में से कोई
नहीं बताता कि यदि ये आज
साहित्यिक प्रश्न नहीं हैं, तो कौ
से प्रश्न हैं जो साहित्यिक हैं?

यानी प्रश्नों को वे व्यक्तिग
प्रश्नों की सीमा तक तो जैसे-
स्वीकार करते हैं, पर समयगत प्र
को सामने देख कर साहित्य
साहित्य मानने से ही इनकार क
लगते हैं.

यह मुद्रा वह बुर्जुआ मुद्रा
जो मुक्ति या स्वातंत्र्य को एक नि
पेक्ष इकाई मानती है. संघर्ष,
और श्रम से अलग रखना चाहती
क्योंकि उसकी स्वतंत्रता का
कर्म, संघर्ष और श्रम नहीं है,
बुर्जुआ वर्ग की स्वतंत्रता का
निहित है—जन सामान्य के
और श्रम को परतंत्र रखने में.

जब साहित्य इस परतंत्र
व्यापक मानव-स्वातंत्र्य के लि
तोड़ने की बात करता है और
आदमी की बुनियादी जरूर
बात करते हुए अगले आ
सवाल भी उठाता है, तब
पर 'राजनीति करने' का
रोपण होता है.

इस प्रसंग में तब य
दिया जाता है कि इस देश की
त्रता से ले कर अब तक
उन्हीं निहित स्वार्थों की रा
के वर्ष रहे हैं. ये सारे वर्ष
या साहित्य के नहीं रहे हैं,
दौरान राजनीति ने जो नि

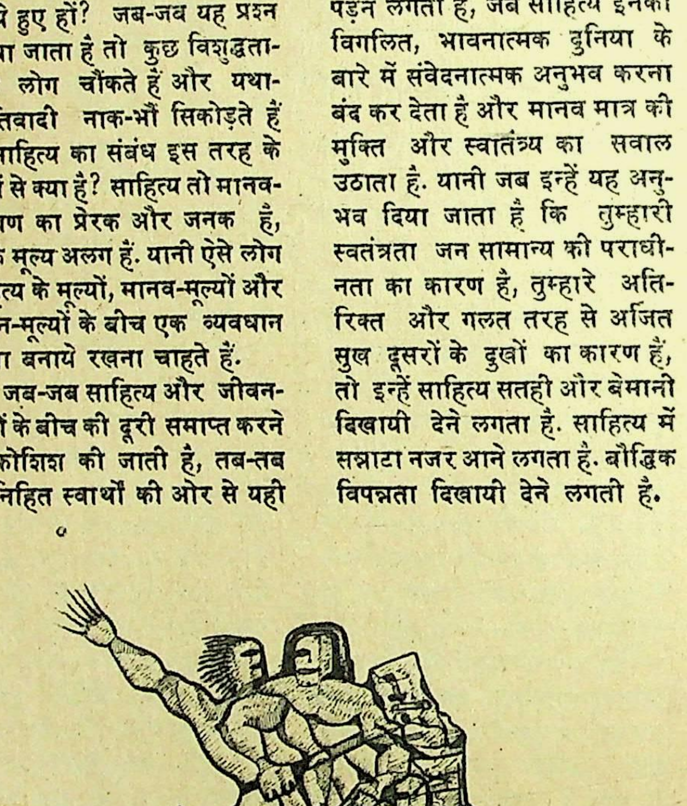

● शरद कांबळे

हैं और देश ने उन राजनीतिक निर्णयों के तहत जो आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक शक्ल अख्तियार की है, उस शक्ल को उजागर करने की भूमिका यदि साहित्य नहीं निभाता और उसका विकल्प पेश नहीं करता, तो और वह कौन-सा माध्यम है, जो इन भयानक अंतर्विरोधी स्वार्थों की टकराहट को सामने लायेगा, जो मनुष्य की मुक्ति के प्रश्न को उठायेगा?

मनुष्य की मुक्ति या उसके आत्मिक - सामाजिक स्वातंत्र्य का सवाल अब दार्शनिक और आध्यात्मिक फार्मूलों से नहीं सुलझाया जा सकता, क्योंकि मनुष्य की स्वतंत्रता सीधे-सीधे आज की आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक विषमता और सांस्कृतिक विपन्नता के दुष्चक्र में फंसी हुई है और उसके सीधे तथा बेबाक उत्तर वही माध्यम दे सकता है, जो व्यावहारिक भी हो और जिसके अपने मूल्य आदमी के आकांक्षागत जीवन - मूल्यों के विरुद्ध न जाते हों. अतः समय-सापेक्ष मूल्यों को ले कर चलने वाला साहित्य और उन मूल्यों को व्यावहारिकता में फलित करने वाली राजनीति, यही ऐसे माध्यम हो सकते हैं जो शोषित और दलित विराट मनुष्यता को उसकी मुक्ति का आधार दे सकते हैं.

यानी सीधे-सीधे मसला स्वतंत्रता' का है—यह सोचने का क कानूनी राजनीतिक आजादी के समांतर और कितनी आजादी आदमी ने प्राप्त की है? आदमी कितना निश्चित हुआ है? उसकी ात्मा का बोझ कितना कम हुआ ? चलते-फिरते, उठते-बैठते, ाम करते एक घटक के रूप में सकी इज्जत क्या है? समाज-रिवार में उसकी औकात को या दर्जा हासिल हुआ है? दफ्तर, रखाने, स्कूल आदि में उसकी रूरत का मूल्य कितना है और मान तथा भविष्य के निर्माण उसके श्रम और भावनाओं की ा कीमत आंकी जा रही है? यानी ल मिला कर आदमी की कद्र तनी है?

● एम. एन. पुरी

यहां पर सवाल सामाजिक प्रतिष्ठा का नहीं है, सवाल है एक तरह की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जरूरत, औकात और कद्र का! यानी यह व्यवस्था कहीं दूर दानापुर, बिहार में रहने वाले एक इंजन-ड्राइवर को अपने लिए कितना जरूरी समझती है और उसकी आंखों में उस ड्राइवर की क्या कद्र है? केवल एक श्रमिक या रेलगाड़ियों को चालू रखने वाले, तनख्वाह पाने वाले एक पुर्जे के नाते ही नहीं, बल्कि एक साधारण श्रमशील आदमी होने के नाते!

यहां पर सवाल सिर्फ आर्थिक विपन्नता या संपन्नता का भी नहीं है, बल्कि आदमी की (इस व्यवस्था में) घटती या बढ़ती औकात का है. क्योंकि यही उसकी घटती या बढ़ती स्वतंत्रता का पैमाना है.

'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' एक सरासर शहरी और सतही कॉन्सेप्ट है. अपने को अभिव्यक्त कर लेने से 'स्वतंत्रता' घटती या बढ़ती नहीं, बल्कि स्थापित व्यवस्था में आदमी की घटती या बढ़ती औकात ही उसकी अभिव्यक्ति की शक्ति को तय करती है, और यह शक्ति ही उसकी कारगर-स्वतंत्रता का अंदाज दे सकती है.

कानूनी स्वतंत्रता और कारगर स्वतंत्रता का अनुपात क्या है, उसके अनुपात के ग्राफ की स्थिति क्या है, यह व्यवस्था के स्वरूप और चरित्र को गहराई से टटोल और समझ कर ही तय किया जा सकता है, क्योंकि अंततः मनुष्य की आधारभूत आत्मिक और भौतिक स्वतंत्रता को ईश्वरीय शक्तियां तय नहीं करतीं, बल्कि व्यवस्थागत राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शक्तियां ही आदमी के आत्मिक और भौतिक स्वातंत्र्य तथा उसके 'ईश्वर' को तय करती हैं.

हमारे और आपके मन में 'ईश्वर' को ले कर संशय हो सकता है कि वह है या नहीं, पर धर्मगुरु या मुल्ला संदेह रहित रूप में जानता है कि 'ईश्वर' नहीं है. हमारे और आपके मन में 'व्यवस्था के चरित्र' को ले कर (उसके कभी भले और कभी बुरे होने के बारे में) संदेह हो सकता है, पर व्यवस्था के गुरु और मुल्ला संदेह रहित रूप में जानते हैं कि यह वह व्यवस्था नहीं है, जिसकी वे कसमें खा रहे हैं.

आम आदमी के मासूम मन का यह उजला, पर दुखद, संशय ही तमाम अनिर्णयों और अवरोधों का मूल कारण है. इसीलिए क्रांति अवरुद्ध है, राजनीतिक अनिश्चितता का कुहासा है, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का नागफांस है, सामाजिक विषमता का दुष्चक्र चालू है और उसकी बुनियादी स्वतंत्रता पर घेरा पड़ा हुआ है. जो संदेह रहित रूप में जानते हैं, वे तमाम बुनियादी स्वतंत्रताओं का उपभोग कर रहे हैं. वे कर्म, श्रम और संघर्ष से ऊपर उठ कर यथास्थिति के लिए सन्नद्ध हैं, क्योंकि दूसरों के कर्म और श्रम का आत्मिक और भौतिक लाभ उठा सकने का यही कारगर जरिया है.

आम आदमी की बुनियादी स्वतंत्रताओं की प्राप्ति के लिए उसकी कारगर स्वतंत्रता के अनुपात को निरंतर बढ़ाते रहने या उसकी स्वतंत्रता में होने वाली घटोतरी के विरुद्ध सक्रिय और सचेत रहने का महानतम मानवीय दायित्व सिर्फ वही साहित्य निभा सकता है, जिसकी संशयग्रस्त नियति यह दायित्व निभाते रहने की नहीं है, बल्कि जिसका संदेह रहित निर्णय यही दायित्व निभाने का है!

कमलेश्वर

कुछ कदमों का फासला

• प्रभुनाथ सिंह आज़मी

• बहादेव

महानगरों में फिरकापरस्त लोगों से बच कर दो आत्मीय बातें कर लेने की जगह या तो कार वालों को सुलभ है या फिर फुटपाथ पर उपेक्षित ढंग से जी रहे लोगों को. दुर्भाग्य से हम दोनों ही इन दोनों से अलग हैं. कुछ खास बातें कर लेने का साहस पिछली पांच-सात मुलाकातों से जुटा रहा था. आज जुटे हुए साहस का उपयोग करने के लिए, सही जगह की तलाश में हमने लगभग एक मील बिना कुछ बोले पैदल काट डाला. इस तरह चुपचाप चलने का अज्ञात सुख अपने-आप मेरे अस्तित्व में गुदगुदी कर रहा था. इस गुदगुदी में अचानक उसका पूछना एक टीस की तरह चुभ गया—कहां चल रहे हैं. . .?

प्रश्न सही था. उत्तर कठिन. आखिर मैं कहां जा रहा था? मैं भी नहीं समझ पा रहा था. अपनी कमजोरी और असमर्थता को बदले हुए सवाल में बड़ी चालाकी से छुपा दिया—क्यों. . .? जल्दी है क्या. . .?

—नहीं, जल्दी तो नहीं. . .ऐसे ही पूछ रही थी. उसके जवाब में परिचितों की आंख का भय स्पष्ट था. मैं भी इसी डर का डरा हुआ था.

——अच्छा, आओ, कॉफी-हाउस चलते हैं. मैंने सही जगह की तलाश में अपनी असफलता स्वीकार कर ली थी. किसी पार्क में बैठ कर आत्मीयता कुरेदना अभ्यस्त लोगों का काम है. हम-से अनाड़ी और नये लोग व्यर्थ ही आसपास के लोगों को छेड़ बैठते हैं. बाद में इसका प णाम कुछ घूरती आंखें हो जाती हैं जो हम नहीं सकते थे.

——नहीं, वहां बहुत भीड़ होती है. उसका ज ठीक था. कॉफी-हाउस में बहुत भीड़ होती है. इस में हर मेज एक अलग भीड़ होती है. अलग-अलग में सूनेपन का मजा अकेले बैठ कर ही लिया जा स था. उसका उत्तर पर्याप्त था. शाम के छह बजे रिवोली की आगत-निर्गत जनता का पहला धावा कॉफी-हाउस पर होता है. फैमिली-केबिन्स भी मेरी स्थिति वाले क्यू लगा कर इंगेज कर लेते हैं. हम लगा कर प्रतीक्षा करने की स्थिति में नहीं थे.

——अच्छा, चलो, सुपर बाजार की कैंटीन चल मैं कार वालों की पक्ति में आने को बाध्य हो उस आने में 'एक ही दिन के लिए' का भाव भरा था मेरे चेहरे पर उतरने में अभी देर थी. न वह कुछ न मैंने उसके बोलने की प्रतीक्षा की. मैं एकाएक पह अपेक्षा कुछ तेज चलने लगा. कुछ गिने कदमों की उसने भी उसी गति से तय की, किंतु उसके साधा चेहरे पर असाधारण-सी बेचैनी मैंने महसूस की. सांवले-से रंग में कुछ गाढ़ापन भी आ गया था. छो पैरों में बड़ी गति को समेटते हुए कुछ चिड़चिड़ी-सी लगी थी वह.

—अब तो लगता है, आपको ही ज्यादा जल्दी है! उसके अनुमान में स्वयं उसका पूरा सर्वेक्षण था. उसके इस अनुमान में मेरा भी सहयोग था. सचमुच मुझे जल्दी थी. वापस लौटने की जल्दी नहीं, ढेर सारे सवाल पूछ जाने की जल्दी. आखिर क्यों वह बार-बार मुझे टेलीफोन करती है? बिना बात ही मेरी आवाज सुनना उसे क्यों पसंद है? मुझसे बिना कुछ बात किये वह क्यों बार-बार मिलती है, मिलना चाहती है? मेरे अजान भविष्य को इतनी जिद से संवारने में उसे क्या मिलता है? इत्यादि-इत्यादि. ये सवाल पूछ डालने का काम टेलीफोन पर भी हो सकता था, लेकिन मैं पूछना नहीं चाहता था. दफ्तर का टेलीफोन एक पी. बी. एक्स. है जिस पर आया हर इंडिकेशन किसी और जिम्मेदार आदमी तक जाने का हकदार होता है. अपने लिए आया हुआ टेलीफोन या तो कोई खास सूचना हो सकती है या फिर मात्र औपचारिक अभिवादन. घर का टेलीफोन मेरे पड़ोसी की, जो डाक-तार विभाग में ई. एस. टी. हैं, दया या कृपा का एक्सटेंशन है जिसे मेरे शौक और दिलचस्पी को देख कर उन्होंने मेरे कमरे में रखवा दिया था. शुरू-शुरू में बहुत बातें करता था. बातें करने वाला ढूंढ़ता रहता था. किंतु अब उस पर बात करने की इच्छा नहीं होती. आत्मीय बातें करने की तो बिल्कुल नहीं. कभी-कभी तो जी चाहता है कि उनसे इस टेलीफोन को उठवा देने को कहूं, लेकिन उनकी सहृदयता मेरा मुंह रोक देती है. उसे टेलीफोन करके कुछ कह देना मिलने की सूचना हो सकती है, बात नहीं.

इन सारे सवालों को एक बेतरतीब ढंग से मैंने अपने-आपसे भी पूछा है. . .क्यों उसकी पहली आवाज में ही अपनापन ढूंढ़ने लगा? क्यों उसके बार-बार टेलीफोन करने पर भी झल्लाने-चिढ़ने की बजाय सुन जाने लायक मुसकराहट से पेश आया? क्यों उससे मिलने की इच्छा पहले मुझे हुई? उसके पति की चर्चा की तो क्यों मेरी जबान और उसका गला सूख गये? इत्यादि-इत्यादि.

—क्यों, क्या हुआ? उसकी टिप्पणी के पीछे छिपी सभी बातों को जानते हुए भी अभ्यस्त प्रेमी की तरह चौंक कर मैंने पूछा, जैसे कोई प्रेमी, प्रेमिका की उंगली दबा कर उसके 'सी' करने पर पूछे—क्यों, क्या हुआ?

—थोड़ा स्लो चलिए न. . .आप तो. . .! उसके शब्दों में सताया गया क्षण आ बैठा था. तेज चल सकने की असमर्थता थी. लेकिन मेरे अंदर कहीं-न-कहीं. दबी हुई उंगली की जरूरत से ज्यादा उठती हुई 'सी' गुदगुदी कर रही थी.

—बस, इतना भी नहीं चला जाता. . .? इसमें दुबारा छेड़ का-सा मजा आया. . .मुझे भी, उसे भी. उसके निचले होंठ ऊपरी होठों से दब गये. मांसल गालों पर तिरता हुआ सांवलापन एक कचोटती हुई लाली से दब गया. आंखों में मुसकान का सागर तैर गया.

अपनी कमजोरी पर जीत के लिए मेरे पैरों पर पल भर में उसने विश्वास कर लिया. मजाक में कही गयी बात गंभीर हो गयी. मुझे तेज और दूर तक चलने के लिए उसकी हार की प्रतीक्षा नहीं करनी होगी. उसका मौन और उसकी मुसकान, दोनों में मेरे मजाक का मूल्य वसूलने की शक्ति थी.

—आप घर कब जा रहे हैं? थोड़ी देर की मुसकराती चुप्पी के बाद उसने पूछा. यह सादा-सा

प्रश्न मेरे लिए पूछे जाने वाले सवालों में एक और सवाल बन गया.

--दीवाली पर जाने की सोच रहा हूं.

--कब तक लौटेंगे. . .?

--दसेक दिन में लौट आऊंगा. . .क्यों?

--कुछ नहीं. . .ऐसे ही पूछ रही थी! वह कैसे पूछ रही थी, इसका उत्तर गुमनाम-सा मेरे ही भीतर कहीं था.

* *

हम घेरेदार सड़क के गिर्द सजी हुई बड़ी दुकानों के सामने छोटे-छोटे स्टालों के पास से गुजर रहे थे. पुरानी पुस्तकों के स्टाल पर के. पी. टिप्पर की 'थ्योरी आव एरियल' दिख गयी. इस किताब की मुझे आवश्यकता थी. ए. एम. ए. ई. एस. आई. के सेक्शन 'सी' के बचे तीन पेपर्स में से एक यही था. उठा कर देखने लगा. वह भी तत्परता से मेरे हाथों से पलट रहे पन्ने निहारने लगी. इस तरह की पुस्तकें देखते हुए जब वह मुझे देखती तो उसके चेहरे पर आये हुए गौरव को देख कर मुझे बड़ा संतोष मिलता था. पिछले अटेंप्ट में जब दो पेपर क्लियर किये थे, तो शायद मुझसे भी ज्यादा उसे खुशी हुई थी. उसका इस तरह खुश होना मेरे लिए एक सुलझा हुआ सवाल था. इसी तरह के सुलझे सवालों ने बचे सवालों को पूछ डालने को प्रेरित किया था.

--क्या प्राइस है? मैंने दुकानदार से पूछा. दुकानदार मेरे पुस्तक उठाने पर थोड़ा स्तब्ध होता-सा लगा था. उसे शायद मेरा उस तरह की पुस्तक उठा कर कीमत पूछना अपने अंदाजे से उलटा लगा था. पीले आवरण में मोहर-बंद पुस्तकें बेचते हुए उसकी मानसिकता भी पीली होती-सी लगी थी.

--थट्टी टू रूपीज ओन्ली! एक पूरी व्यावसायिक भाषा और रटे-रटाये स्वर में उसका जवाब मानवता के मशीनीकरण का प्रतीक था.

मैंने उत्तर सुना.मेरे दिमाग में सुपर बाजार का कॉफी हाउस कौंध गया. कुल चालीस रुपये का ओवरटाइम-- दो बनियान, चार नोट बुक्स, एक टिफिन करियर और सुपर बाजार के कॉफी हाउस में आत्मीयता की तलाश में बिताये गये चंद क्षण.

पुस्तक को यथास्थान सजा दिया. दुकानदार को परेशान करके यदि उसका सामान यथास्थान न रखा जाये, तो चलते-चलते दूर तक उसके कुछ बुदबुदाते शब्द कानों में रेंगते जाते हैं.

--चलो. . . ! धीरे-से उससे बोला.

--क्यों, किताब ठीक नहीं है क्या. . .?

--नहीं, बाद में लूंगा. उसे कौन बताये कि उस पुस्तक को 'ठीक' मंतव्य देना पुराना पड़ चुका है. उसे कौन बताये कि दिन की आपरेटरी, रात के कालेज की पढ़ाई और भोजन से अधिक कुछ भी करने की इजाजत नहीं देती. कॉफी-हाउस और किताब अलग वस्तुएं हो कर भी रुपये की नजर में एक ही हैं.

—ठीक हो, तो ले लीजिए. . .पैसे मैं दे देती हूं. उसके नये जवाब से लगा, जैसे मैं उसे किसी रंगीन चश्मे से देख रहा था कि शीशा टूट गया. चिटखी हुई धूप में उसका नया-चेहरा मेरी आंखों को चुंधिया रहा था है, वह नौकरी करती है, स्वयं समर्थ है, किंतु मेरे किये गये श्रम से उसे कौन-सा संतोष मिलता है?

--पैसों की बात नहीं है, सेकंड हैंड किताब बोल रहा है! मेरा उत्तर निर्बल था, किंतु था साफ-सुथरा सटीक एवं स्पष्ट.

--चलिए दो रुपया कम दीजिए, हटाइए! दुकानदार को दो रुपये के उतार पर सौदा पटता नजर आ था. उधर मैं उसकी इस सौदेबाजी पर हंसना चाहता शायद खुद पर हंसना चाहता था. हंसा नहीं, बल्कि झल्ला गया.

--चलो भई. . .! झल्लाहट में ही बोला, इस जैसे मैं दुकानदार के व्यवहार से रूठा होऊं. किंतु रुठना कहां से था, मैं दबा गया.

--रुकिए तो एक मिनट! उसने आत्मीय कहा था. एक पूरे पारिवारिक वातावरण का एक भोग गया था. जाने क्यों, बड़ा प्यार-प्यारा -सा लगा वह क्षण.

उसने पर्स से तुड़े-मुड़े दस-दस के तीन नोट दुकानदार को दिये, पुस्तक उठायी और मेरी ओर बढ़ा दी.

मैं अपने पिछले व्यंग्य बस, इतना भी नहीं जाता. . .पर स्वयं पिट गया था. उसके हाथ में मेरी बढ़ी हुई किताब मेरे चेहरे पर शाम की लाली रही थी. मैं उसकी ओर बनावटी चिढ़ से घूर रहा

किताब थामते हुए मुझे एक अटेंप्ट में उस पेपर क्लियर करने का उत्तरदायित्व भी मन-ही-मन पड़ा. हम फिर उसी तरह के स्टालों से गुजरने लगे. प्लेस की तेज रोशनी के बावजूद रात का असर बाल्टियों की तरह एक ही दिशा में चल रहे लोगों पर गया था. परिचित भी बिना पहचान चले जा रहे थे. की थकान के बाद हर मेरे जैसा आदमी मेरे जैसा हो है. हर चेहरा एक आकृति में समा जाता है. उसे भी चानी आंखों का भय कम हो चला था.

—इस किताब को खरीदने म तुम्हारा क्या इंट था? चलते-चलते अपने बीच पैदा हुई खामोशी हुए मैंने पूछ लिया.

—कुछ नहीं. बोल कर उसने अपनी जीभ किसी में समेट ली. इस तरह 'कुछ नहीं' बोलना उसका यह ढंग मुझे कुछ-कुछ रूमानीअदा का-सा आनंद दे है. उसका कुछ अस्फुट बोलना, मेरा 'क्या' पूछना, 'कुछ नहीं' बोल कर जबान को मुंह में कहीं गुमा परिचित व्यवहार है.

मैं फिर नयी खामोशी पैदा होने देता हूं, लेकिन बार वह बरदाश्त नहीं कर पाती—फर्स्ट क्लास आने चाहिए. . .आजकल आप घूमने ज्यादा लगे हैं! कर वह अपनी दृष्टि किसी चाट की दुकान की ओर लेती है. मैं उसके 'कुछ नहीं' के पीछे इस आशा का सन ढूंढ़ता हूं. यदि मैं फर्स्ट-क्लास मार्क्स लाता हूं, तो क्या मिलेगा! यदि नहीं पढ़ता, तो उसे क्या मिलने रह जायेगा!

--मत बुलाया करो, घूमना कम हो जायेगा.

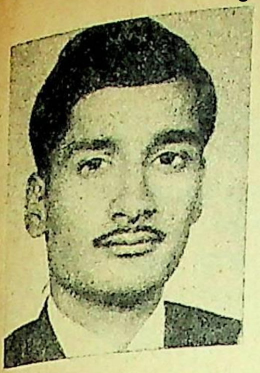

प्रभुनाथ सिंह आजमी (जन्म : १८ जुलाई, १९४८ आजमगढ़, उ.प्र. में) विज्ञान के छात्र रहे हैं; फिर भी लिखने की इच्छा बचपन से ही रही है. अब तक कुछ रचनाएं छोटी पत्रिकाओं में प्रकाशित.

—जैसे कि मेरे न बुलाने पर आप कहीं जाते ही नहीं थे. . . ! सही था. लेकिन सोचने के लिए इससे भी सही यह था कि उसे अपने मिलने के सिवा मेरे और कहीं जाने पर आपत्ति थी. इस एक पक्षीय दृष्टिकोण से मुझे एक नये उत्तरदायित्व की गंध आ रही थी.

—सुनो! उसको किसी विज्ञापन की ओर निरुद्देश्य देखते हुए देख कर अपनी ओर आकृष्ट किया.

—जी.

—तुम्हारे वो कहां रहते हैं, क्या करते हैं, बताओ तो कुछ? इस तरह चुप-चाप रहने से कैसे चलेगा? पहले यह सवाल पूछते हुए मेरी जबान और उसका गला, दोनों सूखते थे, किंतु आज के सहज-आर्द्र वातावरण में मैं बिना झिझके कह गया. पहली बार यह सवाल इतना नंगा और साफ हुआ था. इस बार उसके चेहरे पर 'नहीं' नहीं उभरा एक समर्थ और सत्य भाव, किंतु पिछले बीते क्षणों की मधुरता को बेधता-चीरता-सा.

—यहीं रहते हैं—दूसरी शादी कर ली है—मैं उन्हें पसंद नहीं. . .मेरी शक्ल भी नहीं देखना चाहते—आप भी. . .अब मत आना मिलने. . .! उसके इतने-से कहने में आदि और उखड़े-उखड़े अंत में कोई मेल नहीं जमा पाया. उसके हलक में अभिशप्त-सी हिचकी धंसी हुई थी. अंतिम वाक्य का एक-एक शब्द अलग-अलग जोड़ना पड़ा था.

साथ-साथ तो हम पहले से चल रहे थे—वह जवाब देते हुए और भी साथ आ गयी थी. मैं जवाब सुनने के बाद और साथ आ गया. हिचकी में फटा वाक्य 'आप भी. . .' मेरे अस्तित्व में उफान ला रहा था. शब्द गले से रास्ता नहीं पा रहे थे. दाहिने हाथ से उसके कंधे समेत हाथ को अपने से सटा लिया. एकदम सहज-सा स्पर्श. निर्विरोध. आपत्तिहीन निकटता. मैं अंधेरे में मुड़ी 'के' ब्लाक की गली में आ गया.

स्पर्श की सहजता के बावजूद एक उत्तरदायित्वपूर्ण अनुभूति हुई. मैं फुसफुसाया—तलाक ले लेना. . .मैं दीवाली पर घर नहीं जाऊंगा. . .एप्लिकेशन टाइप करवा लूंगा. . .साइन कर देना.—अब आने-जाने का चक्कर ही खतम कर देना है!

उसके गालों पर गीला-गीला कुछ छू कर देखा. अपने होंठों पर कुछ खार-खारा चख कर देखा. गली समाप्त हो चुकी थी. एक ठेले पर रुके. चाट खायी. एक-दूसरे को हाथ हिला कर विदा किया. सुपर बाजार, कॉफी-हाउस कुछ ही कदम रह गया था. □□□

द्वारा—श्री रामजीप्रसाद अवस्थी 'शिक्षक',
गुप्तेश्वर रोड, जबलपुर (म. प्र.)

एक लघुकथा

पे-कमीशन की रिपोर्ट

□ अशोककुमार सिंह

जब श्री रामचंद्र 'गबन' और 'सरकारी घपलों' के मामले में काफी 'इन्वाल्व' हो गये और अपोजीशन पार्टी ने भी इस 'गंभीर गबन के प्रकरण को' लोकसभा में रेज कर दिया. और विरोध में वाकआउट भी किया, तो सरकार को मजबूरन श्री राम का ट्रांसफर पंचवटी ऐसे सूने-साने स्थान पर कुछ दिन के लिए कर देना पड़ा. कमाई की स्कोप यहां कुछ ज्यादा ही थी–किंतु स्थान बहुत बोरिंग था, मिस्टर और मिसेज राम दिन भर बैठ 'अवध की शाम' 'सरजू-बीच,' 'हंटिंग' इत्यादि के बारे में बातें किया करते थे.

एक दिन शाम को मिस मारीच, मिसेज सीता से मिलने आयीं. जिन्हें देख सीता बहुत ही खुश हुईं. मिस मारीच बहुत ही सुंदर कीमती साड़ी पहने थीं, जिसे देख सीता आश्चर्य से भर उठीं. कहने लगीं—कितनी प्यारी-सी, कितनी स्वीट-सी है ये साड़ी, इसका कलर कितना बढ़िया है. ये तो इंपोर्टेड-सी लगती है. क्या प्राइज है इसका?

मिस मारीच बोलीं—यह बस लगभग एक हजार रुपये की है. मेरे बर्थ-डे पर मेरे क्लासफेलो ने दी थी–कस्टम में है.

तब मिसेज सीता ने कुछ हठात स्वर में मिस्टर राम से कहा, कि देखिए, मिस मारीच की साड़ी कितनी सुंदर है. मेरे लिए भी मंगवा दीजिए न ऐसी साड़ी. मिस मारीच की एप्रोच भी है.

सीता के दुबारा फिर से कहने पर मिस्टर राम ने कहा—देखो डार्लिंग, इस महीने ट्रांसफर इत्यादि से कितना बर्डन पड़ गया है, और फिर कार-फ्रिज, स्कूटर, सब साकेत में अभी तक पड़ी हैं. प्रिये, ये साड़ी क्या, इससे सुपीरियर क्वालिटी की साड़ियां चाइना से आ जायेंगी. लेकिन तुम्हें कुछ दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, पे कमीशन की रिपोर्ट बस पब्लिश ही होने वाली है. □□□

विक्षिप्त

• अजय अग्रवाल

उस दौरान वैसी एक घटना रूप ले रही थी, मैं तो यह सोच भी नहीं सकता था.

जिस रोज इस शहर में आया था, रात को ठीक से नहीं सो पाया था. एक तो नयी जगह पहली रात थी, दूसरे पहली-पहली नौकरी की खुशी के कारण काफी तनाव की स्थिति में था. आदत भी थी और कुछ इस तनाव को हल्का करने के लिए मैं काफी सुबह घूमने चल दिया था. सड़कें वीरान थीं. उसे आता देखा, तो बड़ा अच्छा लगा—चलो, मुझ-सा कोई है तो सही. मुझ पर उसका काफी रोब पड़ा था. चेक की बढ़िया शर्ट पर फबती हुई टाई. सिर पर फैल्ट हैट. धूल की पतली-सी परत के नीचे डार्क टैन रंग के चमचमाते जूते अच्छी तरह की गयी पॉलिश से चमक रहे थे. उस दिन वह मुझसे बिल्कुल अनभिज्ञ बेंत झुलाता निकल गया.

हम दोनों के ताल्लुकात बड़े क्रमिक ढंग से एक-दूसरे को देख कर मुस्कराने तक पहुंचे थे. पर कॉलोनी में जब-तब टुकड़ों में जो कुछ सुनने को मिलता, उससे उसकी असामान्यता भी मुझ पर जाहिर होती चली गयी थी.

पता चला कि वह कहीं अच्छा-खासा अफसर था. अचानक दिमागी गड़बड़ के कारण नौकरी छूट गयी. उत्पात वगैरा उसने कभी कुछ नहीं किया. बस, बातें ऐसी-वैसी करता है, वह भी हमेशा नहीं. जिस कोठी में रहता है, वह उसके चाचा की है, जिसका कारोबार बाहर है. कुछ दिन उसी के पास रहा, पर फिर जिद करके कोई डेढ़ साल पहले यहां आ गया. बीवी और दो बच्चे चाचा के पास हैं. महीने में एकाध बार आ कर वह पैसे का हिसाब कर जाता है. एक नौकर काम-धाम कर देता है.

इन बातों से मुझे उसमें काफी दिलचस्पी पैदा हो गयी थी. मैं इसी उधेड़बुन में था कि कैसे एक दिन उससे बात शुरू की जाये कि उसने ही पहल की. एक रोज मुसकरा कर आगे बढ़ जाने की जगह उसने 'हलो' कहा और रुक गया. फिर बोला—मैं आपके साथ थोड़ी देर घूमूं, तो आपको बुरा तो नहीं लगेगा? और जवाब की प्रतीक्षा किये बिना ही साथ हो गया. फिर बड़ी बेतकल्लुफी से सिगरेट मांग ली.

—नाइस वेदर हां. . .? कश खींच कर उसने कहा था

—री'ली नाइस! बहुत ही सुखद! मैंने जवाब दिया था.

बस, उस दिन तो दस-एक मिनट के साथ में यही वार्तालाप हुआ, सिवा अलग होते समय की 'ओके देन' के.

फिर वह रोज मिलता और हम साथ घूमते. धीरे-धीरे वह खुलता गया. पहले मेरे बारे में जानकारी लेता रहा, फिर अलग ही ढंग की बातें करने लगा. कभी कहता—यू नो, आइ एम ए मैन हूं अ ऽऽ. . .तुम कह सकते हो, जमीन के ऊपर चलने में विश्वास रखता हूं, आधा जमीन के भीतर रह कर नहीं. किसी दिन कहता—यंग मैन, हो सकता है, मैं तुम्हें सिरफिरा लगूं, पर तुमने कठपुतली का नाच तो देखा होगा. हम सब वैसे ही नाचते हैं. डोर हमारी एक-दूसरे से बंधी है. किस-किस की हर से किस-किस के हाथ-पैरों में बंधी डोरियां खिचती ढीली पड़ती हैं, इसी का नाम व्यवस्था है. खाली सूत्र तो कोई नहीं है. कोई भी नहीं.

उसकी ये बातें मुझे अच्छी लगतीं. मैं चाहता, बोले ही जाये. लेकिन हर बार वह अचानक रुक जा शंकालु दृष्टि से इधर-उधर देखता. फिर आश्वस्त कर सांस छोड़ता.

* *

बीच में तीन-चार दिन मैं घूमने नहीं गया था. में कुछ ज्यादा वक्त लग जाता था. सुबह देर तक सो

जब वह फिर मिला, तो एक तरह की बेता बोला—कहां रहे? मैं बड़ा परेशान था. मुझे डर रहा कि हमारी बातें किसी ने सुन न ली हों. फिर थो कर बोला था—बुरा तो नहीं मानोगे अगर पूछूं कि कि कहीं तुमने तो किसी को कुछ नहीं बता दिया है?

मेरे बहुत विश्वास दिलाने पर ही वह संतुष्ट था. बोला था—तो ठीक है. भविष्य में भी तुमसे रखूंगा कि तुम्हारी-मेरी हरेक बात हम तक ही रहे

अगले दिन इतवार था. नींद देर से खुली, इस घूमने नहीं गया. पर शाम को मैं घूमता हुआ रिवो सामने से जा रहा था कि वह दिख गया. मैं उसे गेला ले गया. इतने बड़े शहर में किसको किसे जानने की सत है, इसलिए मुझे उसके साथ वहां जाते किसी का संकोच नहीं हुआ. बकझक या उलटा-सीधा कुछ करेगा, इतना विश्वास मुझे उस पर हो चला था.

लेकिन अंदर घुस कर वह कुद अजीब-से ढंग से कोने की टेबल पर ले गया. मेरे पूछने पर कि क्या लि जाये, उसने कई चीजों का आर्डर दे दिया और बै सब चीजें एक साथ ले आने की हिदायत दी. बैरे के कर जाने के बाद वह बोला—गुड मॉर्निग सर! फिर सहमा-सहमा-सा सामने बैठ गया.

—यह क्या. . .! आराम से बैठिए न! होकर. यह देख कर मेरे मुंह से निकला था.

—ज्-ज् जी हां, आपकी इनायत है! आराम से बैठा हूं सर!

—यह आप 'सर-सर' क्या कह रहे हैं?

—'सर' नहीं तो क्या कहूं आपको, सर? स्वर बेहद नरम और दीन था.

मेरी समझ जवाब दे रही थी.

—सर, वो 'निगम एंड को' की फाइल. . तो अभी नहीं हो पायी है! क्या बताऊं, हेड बाबू रसीदें. . .

—ओ हो, यह आपको हुआ क्या है? देखिए, सब मंगाया है. . . ! मैं खुद पर काबू नहीं रख पा

—सर, कल तक का वक्त दीजिए. जरू जायेगी. . .जरूर!

फिर वह उठ कर चल दिया था. मैं खासे

पेश में पड़ गया था. अभी कुछ हुआ तक न था. कुछ सोच कर मैंने पांच का एक नोट टेबल पर रख दिया और उसके पीछे-पीछे गया. पास पहुंचा, तो उसे बड़बड़ाते सुना—अफसर क्या हो गये, खुदा हो गये! बात न चीत, सिर पर चढ़ेंगे! आफ्टर आल मेरा भी तो कुछ आत्म-सम्मान है.

मैंने उसे उस हालत में अकेला छोड़ देना ही बेहतर समझा.

अगले दिन भी घूमने नहीं गया. शहर का रंग मुझ पर चढ़ने लगा था. आलसी होता जा रहा था. उठ कर भी नयी पत्रिका के पन्ने ही पलटता रहा था.

शाम को आफिस से लौटते हुए कुछ सामान लिया. ले कर स्कूटर का इंतजार कर रहा था, जब उसने मेरा कंधा छुआ. मैं घूमा, तो वह मुसकराया और कहने लगा—चलो, आज मैं तुम्हें दावत देता हूं. साफ है, पिछले दिन की बात उसे याद नहीं थी.

पास के ही रेस्तरां में वह मुझे परिवारों के लिए बने एक केबिन में ले गया. मैं उठ कर टॉयलेट गया. लौटा तो इस बीच बैरा सर्व भी कर गया था. मैंने देखा, वह दोनों हाथ टेबल पर टिकाये तनी आंखों से मुझे घूर रहा है. तभी वह बोला—आइए, तशरीफ ले आइए!

—आपका लंच-आवर कितनी देर का होता है? उसके स्वर में व्यंग्य था.

फिर वही बेहूदगी. इससे पहले कि मैं यह सोच पाता कि उससे किस तरह पेश आऊं, वह गरजा —न नो गाड डैम एक्सक्यूज! कोई बहाना नहीं चलेगा, बाबू हरिश्चंद्र हेड क्लर्क! मैं अभी सठिआया नहीं हूं! आखिरी वार्निंग दे रहा हूं. समझ लीजिए. . . आप जा सकते हैं!

मैंने सन्न बैठे-बैठे देखा, एकाएक उसकी आंखें खाली हो गयी थीं. कोई भाव नहीं रह गया था वहां. बड़े डरावने ढंग से वह जड़ बना बैठा था. फिर एकदम हिला और बोला—अरे, आपने शुरू नहीं किया! मैं बैठा इंतजार कर रहा हूं.

मेरे मन में तो आया, कहूं—तुम इंतजार नहीं बकवास कर रहे थे. पर नहीं, कुछ सोच कर मैं चुपचाप कॉफी सिप करने लगा.

* *

उस दिन जन्माष्टमी की छुट्टी थी. सुबह वह मेरे घर चला आया. घूमने की मेरी आदत छूट गयी थी, इसलिए उससे मिले कई दिन हो गये थे. मैं उस समय ब्रेकफास्ट कर रहा था और बाहर जाने के लिए तैयार बैठा था.

वह मेरे सामने आ कर बैठ गया और बोलने लगा—नरेशजी, (उसने मेरा नाम कैसे जान लिया, इसका मुझे ताज्जुब हुआ.) वैसे तो हर आदमी को दूसरे से काम पड़ता है, पर मेरे पास बड़ों-बड़ों के काम अटके हैं. सब मेरे पास गिड़गिड़ाते आये हैं. इस तरह मेरे सामने बैठे हैं, जैसे आप बैठे हैं. . .बैठे रहे हैं और मैं काम में व्यस्त रहा हूं. हमारे यहां कस्टम है कि ऐसा-वैसा पैसा नीचे से दिया जाता है. इसलिए जब मैं काम खत्म कर लेता हूं,

● अरुण चौहान

श्रीनिवास नारी-शक्ति को नयी दिशा प्रदान करेगा

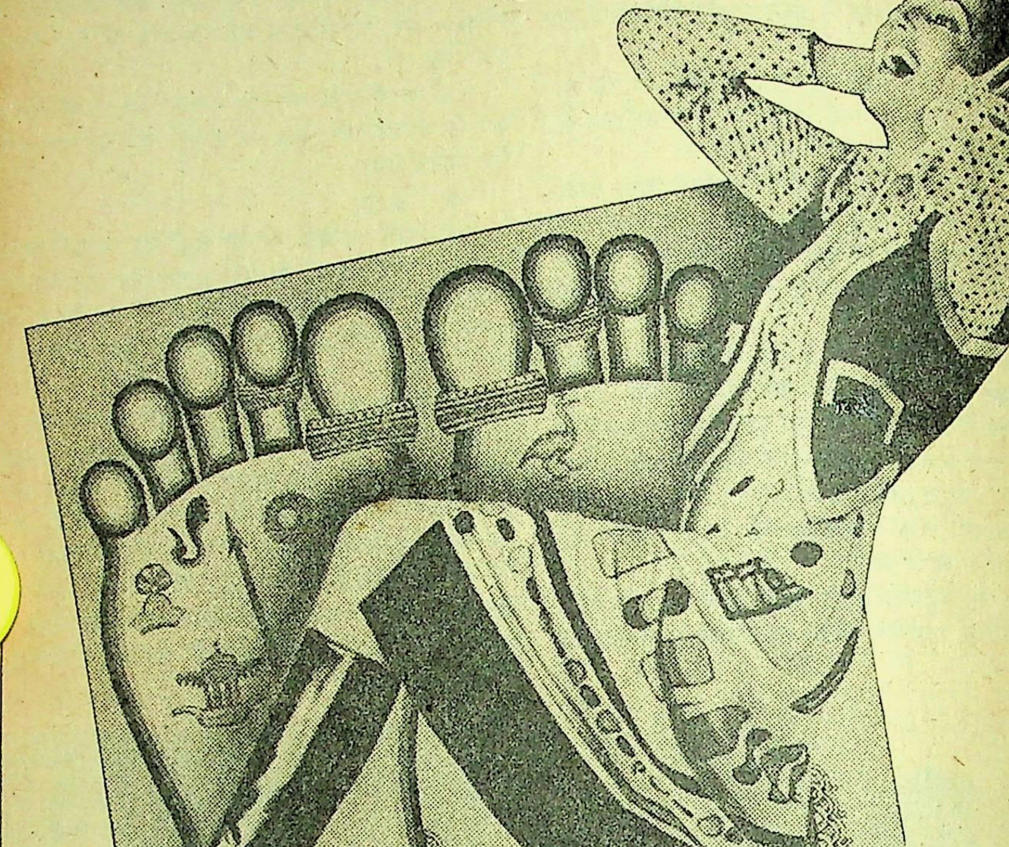

जीवन तथा परिवर्तन की एक
अटूट, अनंत प्रक्रिया :
आधुनिक नारी के मनपसंद कपड़े।
चित्ताकर्षक प्रिण्ट, रंगों की बहार।
'टेरीन', टेरीन / काटन तथा काटन के
नाना प्रकार के पोशाक के कपड़े।

श्री:

दि
श्रीनिवास
काटन मिल्स
लिमिटेड

अजय अग्रवाल ने अभी बहुत कम कहानियां लिखी हैं; फिर भी अपनी संवेदना और समय-संगत चेतना के कारण उन्होंने पाठकों को प्रभावित किया है. पेशे से इंजीनियर हैं.

तो इत्मीनान से अपने दोनों हाथ नीचे कर लिया करता हूं. जिसकी जितनी श्रद्धा होती है, ले कर काम बनवा देता हूं. देखिए, मैं ऐसे हाथ नीचे करता हूं. . .

और उसके हाथ टेबल के नीचे चले गये थे. तब मुझे भी पता नहीं क्या हुआ, मेरा हाथ पैंट की जेब में चला गया और बाहर निकला, तो उसमें कुछ नोट थे. इसके बाद मेरा हाथ नीचे गया, एक क्षण के लिए मेरी-उसकी उंगलियों का स्पर्श हुआ और रुपये उसकी उंगलियों ने समेट लिये. फिर उसने बेतहाशा हंसना शुरू किया था और नोटों की चिंदी-चिंदी करके उड़ा दिया था. मैं देखता ही रह गया था.

कुछ क्षणों के बाद वह हंसना बंद कर एकदम गंभीर हो गया और बोला—नरेशजी, कोई बात मन में रह जाये, तो बड़ी बेचैनी होती है. मुझे तो लगता है, आदमी का जीवन ही इसलिए होता है कि उसके साथ घटनाएं घटें, हादसे हों. जिंदा वह इसलिए रहता है कि उनके बारे में दूसरों से कहे. कह देता है, तो हल्का और अच्छा लगता है. नहीं कह पाने की मजबूरी होती है, तो आदमी पागल तक हो सकता है. कभी ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि कहने के लिए कुछ बाकी ही न रह जाये. . .इतना कह कर वह वापस चला गया था.

उसकी अधूरी बात का मर्म तो दरअसल तब मालूम हुआ, जब उस दिन शाम को लौटते हुए उसकी कोठी के सामने भीड़ देखी.पता चला कि उसने नींद की गोलियों से खुद को खत्म कर लिया है. भीड़ की बातचीत से यह भी मालूम हुआ कि उसने एक पत्र छोड़ा है, जिसमें लिखा है—मेरी जिंदगी मेरी अपनी होनी चाहिए थी. नहीं थी. क्यों नहीं थी? क्यों मेरे साथ ऐसी बातें होती रहीं, जिन्हें न मैं चाहता था, न जिनका कोई औचित्य था? क्यों मैं बार-बार वह सब करने के लिए तैयार होता रहा, जो मन नहीं चाहता था? . . .मुझे जितना कुछ कहना था, जिसे मैं अपने से कई गुना शक्तिशाली दुनिया के डर से नहीं कह पाता था, उतना एक औसत आदमी को पागल कर देता. . .

—पागल अपने को पागल थोड़े ही समझता है! भीड़ में से किसी नेकहा.

मुझे लगा कि उस व्यक्ति ने कुछ बहुत ही गलत कहा है, पर क्या, यह समझ में नहीं आ रहा था. □□□

२/१ पवन बाग, मालाड (पश्चिम)
बंबई-४०००६४

महंगाई विरोध

• 'मधुप' मगधशाही

तय हुआ कि बढ़ती हुई महंगाई के विरुद्ध आंदोलन छेड़ा जाय. अगले दिन सबेरे ही मार्केट को घेर लिया गया. सबके हाथों में सरकार द्वारा निर्धारित अधिकतम मूल्यों की सूची थी, और वे उसी मूल्य पर वस्तुओं के विक्रय के लिए जोर डालने लगे. दुकानदार गिड़गिड़ाये—बाबूजी, हमने खुद इस मूल्य पर सामान नहीं खरीदा. वे कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हुए. कई सामान उठा कर जाने को हुए तो रोक लिया, और खड़े हो कर जबरदस्ती बिकवा दिया. किंतु शाम को देखा गया तो पूरा मार्केट खाली.

शाम व्यतीत हुई. पहला दिन बीता. दूसरा दिन भी बीता. तीसरे दिन उपभोक्ताओं यानी जनता के बीच विक्षोभपूर्ण आवाजें उभरने लगीं, लोग आपसी बातचीत में उन युवकों को दोषी ठहरा कर कोसने लगे—महंगा ही सही, सामान तो मिल जाता था!

उनकी दुबारा बैठक हुई जिसमें मुख्य मंत्री के पास प्रतिवेदन उपस्थित करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ.

चौथे दिन वे प्रतिवेदन ले कर मुख्य मंत्री से मिलने पहुंचे. मुख्य मंत्री अन्यत्र व्यस्त थे. अतः उस दिवस नहीं मिल सके. पांचवें दिन भी नहीं मिल सके. और छठे दिन भी.

सातवें दिन मुख्य मंत्री मिले, सिर्फ तीन मिनट के लिए. उन्हें आश्चर्य हुआ कि उनके सूचना देने के पूर्व ही मुख्य मंत्री को घटना की पूरी खबर थी. उन्हें तब और भी अधिक आश्चर्य हुआ जब उनके प्रतिवेदन को उपेक्षा से थामने के बाद उनके उत्तर की जगह मुख्य मंत्री स्वयं ही प्रश्न करने लगे. उन्होंने कहा—महंगाई को रोकने में जो आप लोगों ने टांग अड़ाई है, क्यों न इस अपराध में आप लोगों पर कानून-भंग का मुकदमा चलाया जाय?

वे बुरी तरह हतप्रभ हुए क्योंकि उन्होंने जो कदम उठाया था, वह सरकार के महंगाई विरोधी वक्तव्यों और जन-सहयोग के आह्वानों से उत्साहित और प्रेरित हो कर ही.

आठवें दिन मार्केट की पूरी दुकानें खुल गयीं और दुकानों के मालिक पहले से ऊंचे भाव में चिल्ला-चिल्ला कर सामान बेचने लगे. जनता खुश थीं तो इसलिए कि उसकी जरूरत के सामान मिलने लगे थे, और असंतुष्ट थी तो इसलिए कि युवकों के बचकाने आंदोलन के कारण वस्तुओं के मूल्य पहले से ज्यादा ऊंचे हो गये थे. □

कबिरा खड़ा बजार में (१६)

• हरिशंकर परसाई

इस बार कबीरदास की भेंट डाक्टरों से

कबीरदास राजनेताओं से मिलता था. मजे की बातें होती थीं. राजनारायण सिंह से मिलने का मजा गया नहीं था. सोच रहा था कि गुजरात जाऊं या बिहार जाऊं. पर एक गैर-राजनैतिक काम में फंस गया––मानवीय काम में. इसका यह मतलब नहीं कि राजनीति अमानवीय होती है. पर यह एक व्यक्तिगत काम आ गया.

मैं बाहर निकला, तो कनछेदी बरामदे में बैठा दिख गया. कबीर ने पूछा––कहो कनछेदी, क्या कर रहे हो?

कनछेदी ने कहा––कुछ नहीं. आसमान में मानसून की राह देख रहे हैं और फिर छत को देखते हैं. मानसून अच्छा, आये, तो किसान से ले कर कृषि मंत्री तक खुश होते हैं पर मेरा दिल बैठने लगता है. सारा घर टपकता है. हर बरसात में लगता है कि अब घर की जगह झील बन जायेगी.

मैंने कहा––तो मरम्मत कराओ.

कनछेदी ने कहा––मरम्मत तो कराता हूं. पर छत हो तो उसकी मरम्मत हो. यह जो है, छत दिखता है, पर छत है नहीं. एक छेद ढांको तो दूसरा खुल जाता है ––जैसे सरकार एक पोल ढांकती है, तो दो नयी खुल जाती हैं. देखो, तुम्हारी ही झीनी-बीनी चदरिया है. अगर वह फट कर तार-तार हो जाये, तो पैबंद कहां लगाओगे?

कबीर ने कहा––सो तो ठीक है, कनछेदी! इस देश की चादर भी तार-तार हो गयी है. देश के भाग्य-विधाता चादर बदलना नहीं चाहते. उसी तार-तार चादर में पैबंद लगाने की कोशिश करते हैं. खैर, तुम दूसरा मकान ले लो.

कनछेदी ने कहा––साधु, तुम होगे ज्ञानी, पर दुनियादारी नहीं समझते. सस्ते अच्छे मकान सरकारी नौकरों को मिल जाते हैं. वे 'रेंट कंट्रोल' में आते हैं. नये मकान का किराया अपने बस का नहीं. एक नये मकानवाले से पूछा तो उसने कहा––यह मकान तुम्हारे लिए नहीं है, सरकार के लिए है. तुम हद से हद सौ रुपये दोगे, पर सरकार किसी दफ्तर के लिए पांच सौ में ले लेगी. सरकार की तरफ से कोई मोलभाव नहीं करता, क्योंकि किराया अफसर की जेब से नहीं जाता. खैर, इस बरसात में मकान गिर जाये और मैं दबकर मर जाऊं, तो यहां तुम 'कनछेदी स्मारक' बनवा देना. जीते जी जो नहीं मिला, उसे मर कर ले लूंगा. पर तुम कहां जा रहे हो?

मैंने कहा––कनछेदी, अपने अखाड़े का यह भगत है न, रामदास, उसके इलाज का इंतजाम कराने जा रहा हूं. उसके पेट में जोर का दर्द उठा और सुना, वह अस्पताल में भर्ती हो गया है.

कनछेदी ने कहा––गोया डाक्टरों के चक्कर में पड़ गये! अरे, रोग से आदमी बच जाता है, पर डाक्टरों से नहीं बचता. इधर एक बड़ा डाक्टर है. पिछले सा मेरे चचेरे भाई बीमार पड़े. उस डाक्टर को बुलाया जब तक डाक्टर पहुंचे, भाई मर चुका था. पर डाक्टर उस मुर्दे को ही एक इंजेक्शन दे दिया और ३५ रुपये लिये. खैर, जाओ. साधु समझ कर कुछ दया कर दें.

* *

कबीर अस्पताल पहुंचा, तो देखा रामदास वा के सामने एक झाड़ की छाया में पड़ा कराह रहा है. मे खयाल था, वह भरती कर लिया गया होगा. मैंने पूछा–– क्यों रामदास, वार्ड में भरती नहीं हुए?

रामदास ने कहा––भरती करते ही नहीं हैं. कहते हैं, बेड खाली नहीं है. मेरा तो पेट फटा जा रहा है.

मैं वार्ड में गया. देखा, सात-आठ बेड खाली हैं. कबीर भरती करनेवाले डाक्टर के कमरे में पहुंचा. वहां दरवाजे पर एक चपरासी बैठा बीड़ी पी रहा था. उसने मु भीतर जाने से रोका. मैंने झट झोले में से गांजा निकाला और उसे देते हुए कहा––क्या कोरी बीड़ी पी रहे हो! यह लो गांजा! थोड़ा गीला करके मलकर बीड़ी में भ लो और कश खींच कर बोलो––लेना हो शंकर!

उसने कहा––वाह महात्मा, क्या परसाद दिया है! कल से ये खतम हो गया था. जाओ, भीतर जाओ, म महाराज!

वह गांजा मलने में लग गया. मैं भीतर घुस ग डाक्टर नीचा माथा किये, अपने आप कह रहे थे–– डल सीजन है! साला 'हेल्दी सीजन' चल रहा है. प्रैक्टि आधी रह गयी है.

डाक्टर साहब ने सिर उठाकर मुझे देखा और पु से कहा––कौन हो जी? किसने आने दिया? हर को साधु, भिखमंगा चला आता है! क्या काम है?

मैंने कहा––एक रामदास नाम का आदमी झाड़ नीचे पड़ा है. उसे भरती कर लीजिए न!

डाक्टर ने कहा––बेड खाली नहीं है.

मैंने कहा––मैं खुद देख कर आ रहा हूं कि सा आठ बेड खाली हैं.

डाक्टर ने खीज कर कहा––होंगे खाली! पर वे बेड उसे लेते नहीं हैं, तो मैं क्या करूं? जिस बेड डालो, वही उछालकर फेंक देता है. जाओ, तुम्हीं कि बेड को मना लो!

मैंने पूछा––मरीज आप तय करते हैं या बेड?

डाक्टर ने कहा––बेड तय करता है. क्या करता यह तुम्हारा मरीज?

मैंने कहा—गरीब आदमी है. थोड़ी-सी खेती है.

डाक्टर ने कहा—गरीब है तो घर पर क्यों नहीं मरता? इधर मरने क्यों आया? वह भरती नहीं होगा.

कबीर को क्रोध आ गया. मैंने कहा—मैं आपकी रिपोर्ट करूंगा.

डाक्टर ने कहा—किससे रिपोर्ट करोगे? इस दुनिया में तो कोई सुननेवाला नहीं है! तुम्हारी तो भगवान ही सुनता है. पर भगवान को मैंने अभी ताकत के इंजेक्शन दिये हैं. और पिछले साल जब शंकर को 'टाइफाइड' हुआ था, तब मैंने ही उन्हें 'क्लोरोमाइसटीन' दी थी. तुम्हारी सुनेगा कौन? निकल जाओ यहां से!

कबीर बदहवास कमरे से बाहर निकला.

तब वही चपरासी जो गांजा फूंक चुका था, मिला. उसने कहा—गुरू, ऐसे काम नहीं होगा. डाक्टर साहब के बंगले जाओ—और कुछ 'कलदार' टेंट में लेकर जाओ. तब बेड खाली होगा.

मैंने रामदास से कहा—थोड़ा धीरज रखो. शाम तक सब ठीक हो जायेगा.

* *

मैं बड़ा दुखी लौटा. तभी कनछेदी आ गया. पूछने लगा—कहो, कैसा है रामदास?

मैंने कहा—झाड़ के नीचे पड़ा तड़प रहा है. भरती नहीं किया गया.

कनछेदी ने कहा—तुमने ऊपर रिपोर्ट क्यों नहीं की?

मैंने कहा—रिपोर्ट किससे करता? सबसे ऊपर तो भगवान है. पर डाक्टर कहता है कि भगवान खुद मुझसे ताकत के इंजेक्शन लेते हैं.

कनछेदी खूब हंसा. कहने लगा—भगवान को भी ताकत के इंजेक्शन लगते हैं? वाह रे भगवान! देखो कबीर, कल जब अस्पताल जाओ तो रामदास के कफन-दफन का इंतजाम कर के जाना. हमेशा इस तैयारी से अस्पताल जाना चाहिए.

मैंने कहा—नहीं कनछेदी, मैंने आशा नहीं छोड़ी है. शाम को डाक्टर से बंगले पर मिलूंगा. भगवान से ऊपर भी एक सत्ता है.

—तुम्हारे पास सौ रुपये होंगे?

कनछेदी ने कहा—दो सौ ले जाओ. पर उस गरीब रामदास को बचाओ.

* *

शाम को कबीर बड़े डाक्टर के बंगले पहुंचा. बंगले के बाहर फाटक पर एक तख्ती लगी थी—'कुत्ते से सावधान!' मेरा खयाल था, इस बंगले में आदमी रहता है! पर मैं घुस गया. कुत्ता भयंकर था, पर एक बार गुर्रा कर शांत हो गया. यह ज्यादा समझदार निकला.

डाक्टर के कमरे में घुसा. उनके सामने फार्मों की एक थप्पी लगी थी. वह उन्हें देख कर दस्तखत करते जा रहे थे.

मुझे देखकर भड़क पड़े—तुम फिर आ गये भिखमंगे! मैंने कह दिया न कि वह तुम्हारा रामदास भरती नहीं होगा.

मैंने जेब से पचास रुपये निकाल कर रख दिये. कहा—यह बात करने की फीस है. ये जो फार्म है, काहे के हैं?

डाक्टर ने कहा—ये 'रिइंबर्समेंट' के फार्म हैं. तुम इस कठिन काम को क्या समझोगे?

मैंने कहा—समझता हूं. सरकारी नौकरों और उनके परिवार के इलाज के बिलों पर आप दस्तखत कर रहे हैं. मैंने ऐसे सरकारी नौकर भी देखे हैं, जिनके बीवी-बच्चे सब लगातार हर महीने बीमार रहते हैं. पता नहीं, ये मरते क्यों नहीं! यह आपके इलाज की क्या कृपा है, परिवार बीमार पड़ा है, दवा केमिस्ट की अलमारी में है, डाक्टर घर बैठा है—बस, सिर्फ बिल बन रहे हैं. इसी दवा से लोग स्वस्थ हो जाते हैं. यह तो विज्ञान नहीं जादू है!

अब डाक्टर चौंका. बोला—तुम कौन हो जी? क्या तुम सी. बी. आई. के आदमी हो?

मैंने कहा—हुजूर, मैं जानता ही नहीं कि सी. बी. आई. क्या है! मैं तो भीख मांगने वाला हूं. भीख मांग कर पचास आपको दिये. पर मैं यह मानता हूं कि आपके ऊपर इन फार्मों का ही इतना बोझ है कि इलाज करने या

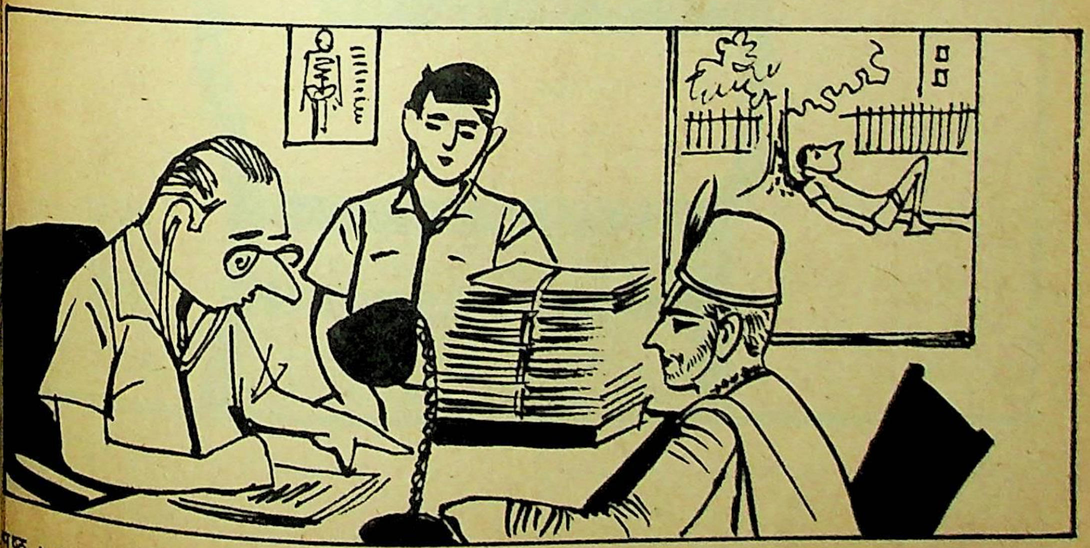

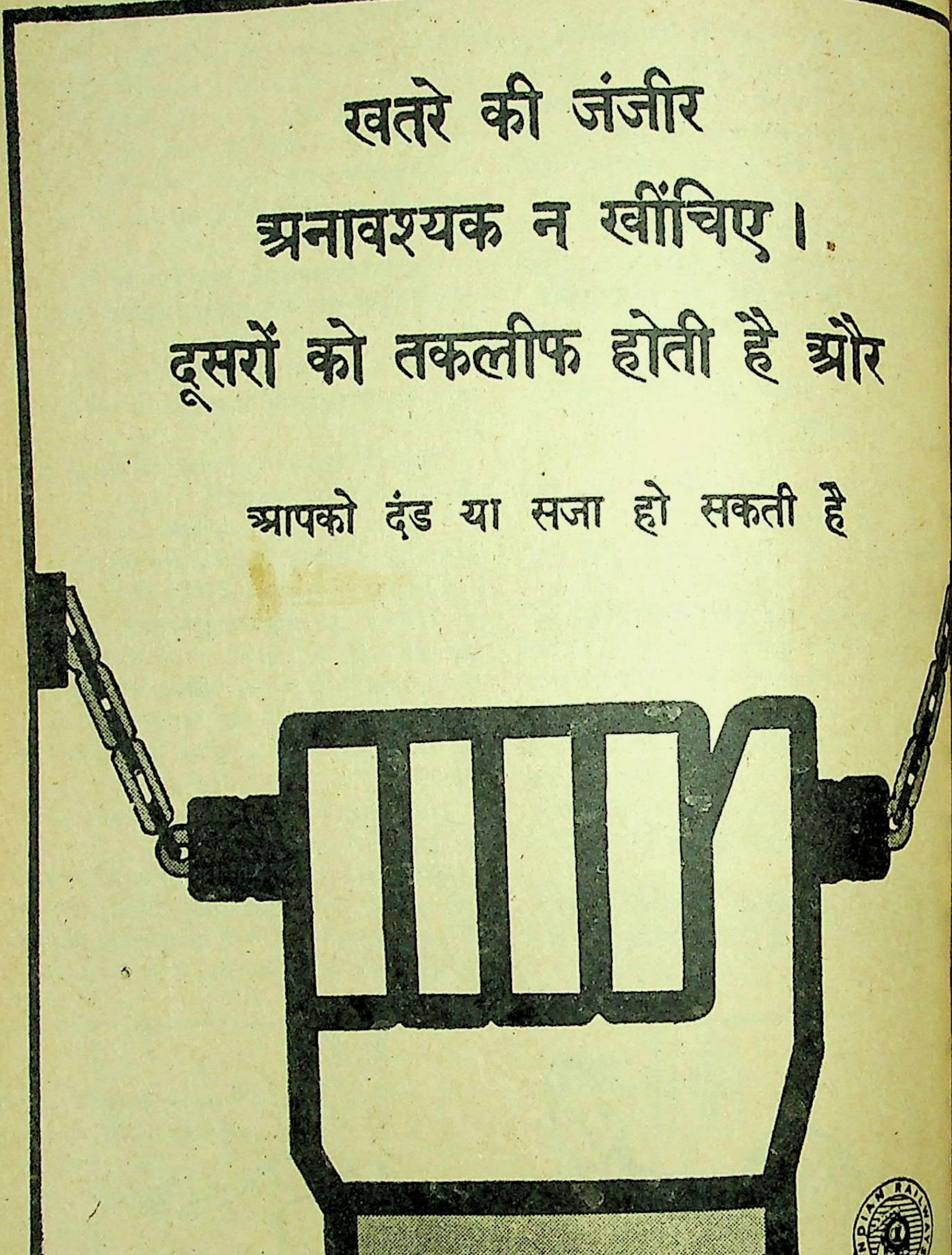
खतरे की जंजीर
अनावश्यक न खींचिए।
दूसरों को तकलीफ होती है और
आपको दंड या सजा हो सकती है
मध्य रेल

मरीज की तरफ ध्यान देने का आपको समय नहीं मिलता. आप सचमुच दया के पात्र हैं. आप पर इनकम-टैक्स चोरी का मुकदमा चल रहा है और वह फौजदारी भी है. जमानत का इंतजाम तो कर लिया होगा वरना मैं भीख मांग कर जमानत ले लूंगा. आप देवता हैं.

डाक्टर घबड़ाया. उसने मुझे पचास रुपये वापस किये. फिर भीतर गया और पांच सौ रुपये लाया. मुझे देकर कहा——यह और लो. मैं सब समझ गया. कल रामदास की भरती कर लूंगा. बाकी कृपा बनाये रखना. पर आपका 'रैंक?' पद?

कबीर ने कहा——सुपरिटेंडेंट स्पेशल ब्रांच.

डाक्टर ने कहा——अरे बाप रे! आप जाइए! जरा मेरे कुत्ते से बचकर जाइए.

मैंने कहा——कुत्ता आपसे ज्यादा समझदार है. उसने मुझे छेड़ा ही नहीं. कुत्ते भी तरह-तरह के होते हैं.

★ ★

लौट कर कबीर ने कनछेदी से कहा——लो अपने दो सौ. ऊपर से डाक्टर के दिये पांच सौ मेरे पास हैं.

कनछेदी ने पूछा——डाक्टर ने तुम्हें रुपये क्यों दिये?

मैंने कहा——कनछेदी, हर चादर मैली है. पहले 'मूरख' मैली करता था, अब बुद्धिमान मैली करता है. डाक्टर समझा कि मैं सी. बी. आई. का आदमी हूं और उनके हिसाब की जांच करने आया हूं.

खैर, दूसरे दिन रामदास भरती हो गया.

मैंने उसके वार्ड के डाक्टर से कहा——इसके पेट का एक्सरे करा दीजिए.

उसने कहा——तुम क्या डाक्टर हो? आ गये एक्सरे कराने! एक्सरे मशीन इनकार कर रही है. जाओ मनाओ उसे!

कबीर गया और एक्सरे मशीन के चरणों पर पचास रुपये रख कर कहा——हे देवि, तू मान जा. यह तेरी भेंट है. अब तू गरीब रामदास की फोटो उतार दे.

मशीन खुश हो गयी. रामदास का एक्सरे हो गया.

मैंने पूछा——डाक्टर साहब, क्या मशीनों में विल पावर (इच्छा शक्ति) होती है?

वह मेरी तरफ देखने लगा. मैंने कहा——जवाब दीजिए.

उसने कहा——तुम हो कौन जो इस तरह की बातें करते हो? तुम कहीं. . .

मैंने कहा——यों ही गंवार हूं. पर एक बात तो बताए——इनकम टैक्स में तो आप नहीं फंसे हैं?

उसने कहा——तुम्हें मतलब?

मैंने कहा——कोई मतलब नहीं.

डाक्टर थोड़ी देर एक कोने में खड़ा सोचता रहा. फिर आ कर मुझे पचास रुपये वापस किये और कहा——ले जाओ. तुम शायद 'वो' हो.

अब रामदास का इलाज ठीक चलने लगा.

पर एक दिन रामदास को बेहद दर्द होने लगा. मैंने एक डाक्टर से कहा, तो उसने जवाब दिया——वह डाक्टर प्रसाद का पेशेंट है. मैं नहीं देखूंगा.

मैंने कहा——अगर वह मर रहा हो तो?

उसने कहा——तो मर जाये. डाक्टर प्रसाद का केस है. वही बदनाम होगा.

किसी तरह रामदास ठीक हो गया. तब मैंने डाक्टरों से कहा——मैं कबीरदास हूं——संत कवि!

वे चौंके——अरे वही संत कबीर——'घूंघट के पट खोल रे, तोहे पिया मिलेंगे' वाले!

मैंने कहा——हां वही. पर तुम्हारे घूंघट के पट कब खुलेंगे?

★ ★

रामदास घर लौट गया.

कनछेदी ने कहा——कहो कबीरदास, अब क्या सोचते हो?

मैंने कहा——सोचता क्या हूं! गालिब को याद करता हूं——

पड़ जाइए बीमार तो कोई न हो तीमारदार,
और जो मर जाइए तो नोहारुवां कोई न हो ।

कनछेदी भी काइयां है. कहने लगा——यह कैसा रहेगा?

लाई हयात, आये, कजा ले चली चले,
न अपनी खुशी आये थे, न अपनी खुशी चले ।

कबीर ने कहा——अच्छी बात है, कनछेदी! अच्छा, 'गुड मार्न, डाक!'

कनछेदी ने कहा——यह 'गुड मार्न डाक' क्या है जी?

मैंने कहा——कनछेदी इसका मतलब है——गुड मार्निंग डाक्टर! एक-दूसरे से सब ऐसा ही अभिवादन करते हैं. यह अंगरेजों के जमाने से चला आ रहा है. अभी हिंदी-वीरों का ध्यान इस तरफ नहीं गया.

कनछेदी उठा. बोला——अच्छा, गुड मार्न डाक!

मैंने कहा——कनछेदी, फिर तुम गलती कर गये. जाते वक्त यह नहीं कहा जाता. □□□

पाठकों के लिए एक सूचना

सारिका के मई १९७५ अंक की सज्जा अप्रैल अंक की तरह ही प्रख्यात चित्रकार जे. पी. सिंघल के चित्रों की पारदर्शियों द्वारा की गयी थी.

सलाखों के आरपार

उषा व्यास 'छवि'

बूंदों की बांसुरी में मल्हार की तरह ढल-ढल कर आसमान चुप हो गया है. बंद फुहारों के ठहरे पानी में कांपती होटल की बत्तियां. रोशनी की रंगीन लहरों पर थिरकती थर्ड फ्लोर से आती रवींद्र संगीत की ध्वनि. झूल-झूल कर बत्तियां झाड़ते युक्लिप्टस. उनकी लंबी हिलती परछाइयों के बीच उड़ती जुगनू की हरी लकीर. नीचे लान में बच्चे खो-खो खेल रहे हैं.

—रग्घू. . . ऽ ऽ ऽ! जाने कहां मरा रहता है सारे दिन और यहां यह हालत. . . !

शैलाभ का तल्ख स्वर सुन कर चौंकती हूं. शायद आज फिर कुछ. . .

—क्यों रे, सुनता क्यों नहीं? सौ बार कहा. अंधेरे में छिप कर आज फिर बीड़ी पी रहा था? कितनी बार मना किया. उधर चल कर देख, रसोई में तेरा सिर जल रहा है, कमबख्त! सारी सब्जी जल कर बेकार हो गयी! खजुआ कुत्ता आज फिर सारा दूध पी गया. फर्श पर फूटे बरतनों का ढेर लग रहा है. इस घर में यही कुछ होगा अब. . . ?

तड़ाक् से उसके गाल पर तमाचा देते हुए वह फिर गरजे—धोबी कपड़े लाया था?

—हंजी. रग्घू मिमियाया.

—तो तुमने उसे मेरी खोयी कमीजों के लिए क्यों नहीं कहा? ऐसे हो तुम सच्ची, हथेली पर छाले की तरह रखो, तो भी ढंग का काम करना नहीं जानोगे! और वाणी तो इस निकम्मे छोकरे पर यों जान छिड़कती है, जैसे मर वो खुद नहीं यह रहा है! हुंह. . .!

टैरेस पर खड़ी उनकी खूबसूरत असिस्टेंट मीनल पांडेय साड़ी का छोर घुमा कर कंधे पर फैलाते हुए कह रही थी—चलो, छोड़ो भी अब. . .! तुम भी क्या औरतों की तरह झल्ला रहे हो! जब भी कभी आओ तुम और तुम्हारा नौकर मिल कर बोर करते हो! चलो, मुझे स्टेशन छोड़ आओ.

—इतनी जल्दी? अभी तो सिर्फ सात बजे हैं. तुम्हारी ट्रेन छूटने में पूरे दो घंटे और. . .

—तब तक कहीं काफी पी कर थोड़े घूम लेंगे.

लेटे-लेटे सब सुनती हूं. पसीने से नम दोनों मुट्ठियां खोलती-बंद करती हूं. एक शब्द. . .एक शब्द नहीं बोला जाता मुझसे. लगता है, अभी बाहर रसोई में बिस्फोट का जोरदार धमाका होगा. आग लगेगी. एंबुलेंस आयेगी. मैं डबडबायी आंखों से हमेशा के लिए बेकार हो गयी टांगों को घूरने लगती हूं. पहियों पर घूमती जिंदगी का अहसास विद्युत की तीव्र लहर-सा जिस्म में सरसरा उठता है.

कमरे में अंधेरा है. कोई बत्ती जलाने नहीं आया. अंधेरे में कार्निस पर रखी कनु की गुड़िया की बटनों वाली आंखें धीरे-धीरे दिप उठती हैं. कुरसी फिसलाते-फिसलाते स्विच बोर्ड तक आती हूं. हाथ ऊपर नहीं पहुंचता. उठना चाहती हूं, पर पट्टियों से ढपे ठंठ-से पांव स नहीं देते. अपनी निरीह तिलमिलाहट के ज्वार में डू डूबने को हो आती हूं. ओह! चाह कर भी मैं अपने को रोशनी नहीं दे सकती!

बाहर सिसकारी भरने के दबे-दबे स्वर उभर हैं. रग्घु रो रहा है शायद. वह इनसे बात-बेबात अ पिट जाता है. आज फिर पिट गया.

कमरे में अब भी अंधेरा है. रग्घू को पुकारना चा हूं, पर बोल मेरे गले में ही अटक गये हैं. सारी आ भीतर-ही-भीतर जम गयी है. . .यही क्या, जैसे कि की पीठ पर किसी ने बेरहमी से कीलें ठोक दी हैं. कि बार सोचा है, काश, सामने की, सड़क की ओर खु वाली खिड़की की सलाखें न होतीं. . .

—जल्दी चलो, शैल, नहीं तो पानी बरसने ल मीनल कह रही है.

—रुको, वाणी के कमरे में अंधेरा है, उधर ज जरा रोशनी. . .

अपने कमरे में रोशनी करने आ रही शैल की पह पदचाप सुनने लगती हूं. एक अरसे के बाद उन्हें न सामने, अपने पास देख पाने की लालसा. . .एक वि सी पुलकन से मन भर उठता है. आह!

पर नहीं, वे दरवाजे तक आते-आते रग्घू को पु वापस लौट गये हैं!

—रग्घू! उधर कमरे में बत्ती जला आओ. सुनो, अब चौके में बैठ कर बीड़ी नहीं पीना. क कनु? पकड़ कर लाओ और दूध पिला कर सुला दो. दिन ठंड में घूमती है. डाक्टर आयें तो वाणी के लिए सारी दवाएं और इंजेक्शन उनको दिखाना. समझे?

—हंजी, रग्घू ने सिसक कर कहा.

सड़ाक्-से स्टडी का दरवाजा भिड़ने और सी उतरने की ध्वनि क्रमशः लुप्त होती चली गयी है.

सलाखों के पार सड़क पर देखती हूं. शैलाभ मी का हाथ थामे मुग्ध भाव से चले जा रहे हैं. वह हु रहे हैं और वह हंस रही है. पुरुष को आकर्षण में रखने की अपनी असमर्थता और अपमान की ती भूति कहीं गहरे बींध गयी. अच्छा है, बत्ती बंद है. तो. . .नहीं तो. . .एक विवश आक्रोशजनित पी स्याह पड़ता अपना जिस्म क्या देख पाती!

मेरे दोनों हाथों में सलाखें कसती चली जा मैं पूरी शक्ति से उन्हें मोड़ना चाहती हूं. वे नहीं हार कर, सिर उन पर पटक कर वहीं बैठी रहती मौन, हतप्रभ, करुणाकुल, आंखों में छलछलाहट

रग्घू ने आ कर चुपके-से बत्ती जला दी है. छिपाते हुए आंखें पोंछ डालती हूं. वह पास आ क मोड़ता है. पलंग पर लेटने में मेरी सहायता क फिर कुर्सी को कोने में ठेल कर पलंग की पाटी मेरे सामने चुपचाप खड़ा हो जाता है. देखती हूं होठ भिचे हुए हैं. आंखें सूजी हुईं. दायें गाल

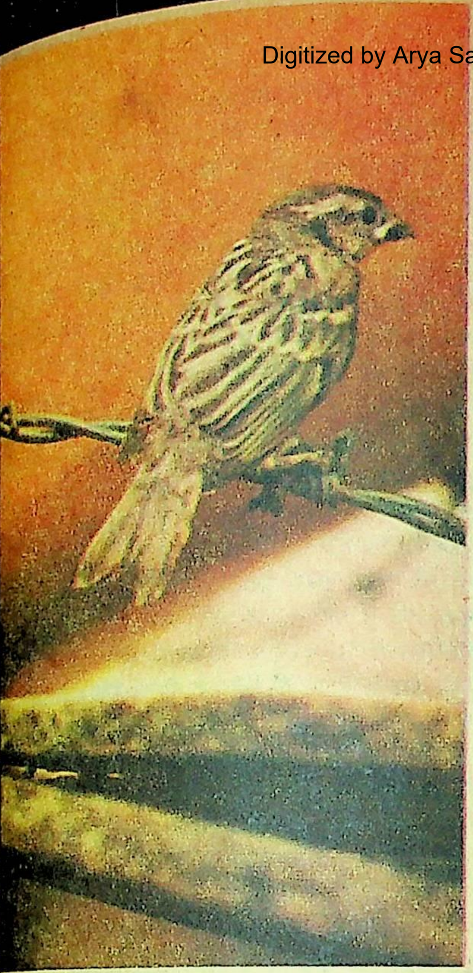

• महेंद्र

सुर्ख लंबे निशान. . .

—क्यों, रग्घू, क्या बात है?

—बी-बी-जी, अब मैं यहां नहीं रह सकता. . .! ह फूट-सा पड़ा.

—क्यों, क्या हुआ?

—बाऊजी. . .बाऊ. . .ने आज फिर मुझे. . .! उसकी आवाज सिसकियों में बिखर गयी है.

मैं उसे पास खींच कर गले से लगा लेती हूं. उसका ाल सहलाते हुए फफक पड़ती हूं—रग्घू, तू भी चला ायेगा, तो मुझे कौन देखे-भालेगा पगले!

वह कुछ नहीं बोलता. हिचकियों के वेग में डूबते तराते संवेदना का सांझा पुल हमें जोड़ जाता है.

* *

नंगी बांह पर कुच्च् से सुई खुभो कर डाक्टर ने ब स्पिरिट का फाहा जोर से दबा दिया, तो पलकों र ठहरी पारदर्शी तराइयों के परे मैंने देखा, बाहर बरा-दे में कुर्सी पर बैठी कनु ने अपने दोनों नन्हें हाथ आंखों र रख लिये थे. वह इंजेक्शन से बेहद डरती है. जब से सने पहचानना, 'मां' कहना शुरू किया, कभी मुझे लते नहीं पाया. तभी से उसके अबोध मन में एक वहम-ा पल गया है कि मेरे पैर ही नहीं उगे. जानते हुए भी ावलों की तरह पूछ बैठती हूं—डाक्टर साहब, क्या सचमुच अब मैं कभी नहीं चल सकती?

मेरे होठों पर फैलती सिसकियों की बेतरतीब लहरों को निहायत ठंडी कोमलता से छू-छू कर सहलाते डाक्टर माथुर कह देते हैं—आपके रोने से तो बच्ची और भी डिप्रेशन फील करेगी, मिसेज थापर! उसके सामने तो कम-से-कम आपको ऐसा नहीं करना चाहिए. . .जस्ट शी इज ए बर्ड टू लल योर ग्रीफ. . .! फिर कनु को गोद में ले कर चुमकारते हुए बोले—अच्छे बच्चे तो कभी नहीं रोते हैं बेटे, तुम तो रानी गुड़िया हो! हमारे घर एक बहुत प्यारा खरगोश है. रग्घू के साथ देखने आना अच्छा! जेब से चाकलेट निकाल कर उसे थमाया और उसे वापस कुर्सी पर बिठा कर लौट गये.

खट्-खट्-खट् खट्-खट्-खट्. . .

सारे दिन कमरे में पड़े-पड़े कई-कई बार चढ़ने-उतरने वाली अलग-अलग ध्वनियों से खासी पहचान हो गयी है.

दस बज चुके हैं. शैलाभ अभी भी नहीं लौटे. कनु सो चुकी है. सारे घर में व्याप्त एक निगल लेने वाला मौन और उसमें टूटते-जुड़ते सिर्फ मैं और रग्घू. तेरह बरस के इस भोले-से भद्रवाही बालक के साथ मुझे एक अज्ञात-सा मोह है. कदाचित इसलिए भी कि इसकी शक्ल टीपू से काफी मिलती है.

पगला, टांगें दबाते-दबाते ही सो गया! नींद में झूम रहे उसके माथे को देख कर मुझे एक अजीब दहशत-सी लग आती है, जैसे वह अभी नीचे फर्श पर गिर जायेगा. उसके नाक-मुंह से स्याह खून की धार फूट पड़ेगी और रग्घू मर. . .कंधा झकझोर कर जगा देना चाहती हूं.

—रग्घू, नीचे दरवाजा बंद कर आओ और अंदर जा कर आराम से सोओ!

वह हड़बड़ा कर आंखें खोलता है और जल्दी-जल्दी मुझे कंबल ओढ़ा कर उठ पड़ता है.

शैलाभ अभी भी नहीं लौटे. उनमें कहीं भी मानवीय संवेदना नहीं बची है. उनके लिए रोज मेरी प्रतीक्षा अकारथ हो जाती है. बाहर से लौट कर वह चुपचाप अपने कमरे में चले जाते हैं. कभी ढंग की बात नहीं करते. ओह, शादी के बाद किसने सोचा था कि मेरा सहसा विकलांग हो जाना हमें एक-दूसरे के प्रति इतनी जल्दी अपरिचित-अनसमझा कर देगा!

ओह, सलाखों से जुड़ी, टूटी पथरीली दीवार-सी यह कोरी जिंदगी और यह भिखमंगे दिन. . .! आंखों में अजीब-सी चिनमिनाहट-सी लग रही है. पलकें मूंद लेती हूं. . .पता नहीं, काली भूरी-उभरती गोलाइयों में कैसी कैसी तसवीरें बनने-बिगड़ने लगी हैं.

* *

लगातार पांच दिन सौर में कड़ुवे तेल का दिया जलते रहने के बाद घर में मेहमानों का आना शुरू हो गया था. उस दिन मुझे बहुत सवेरे ही नहला-धुला कर नये कपड़े पहना दिये गये थे. सारे गांव में खीर-बताशे बंटने से पहले हमारे यहां बेशुमार पकवान बने थे, जिनका भोग सबसे पहले कोठरी में चांदी की चौकी पर रखी मैली जंग लगी सांकलों के जुत्थ को लगा था जिन्हें बापू अपने पुरखे बताते थे.

गोबर से लिपा आंगन, आटे का पुरा चौक. नाक में बड़े-बड़े हरे मोतियों वाली बेसर पहने दूध से भरी भरी छातियां लिये चंदन की चौकी पर फुलकारी ओढ़े बैठी मां. उसकी गोद में कच्चे सूत के डोरे लपेटे नन्हे-नन्हे हाथ-पैर हिलाता नवजात शिशु. सारे माहौल में तैरती उबटन संठोल, कड़छुल में दहकते कोयलों पर तिनतिनाती कच्ची अजवाइन की महक. मां के दूध घुले बालों में रेशमी डोरे गूंथती, ठिठोली करती नाइन और बिहाई गाती औरतें. मुझसे छह वर्ष बाद मेरे यहां भाई हुआ था.

पाशी की अम्मा ने कहा— बड़ी मागें आली ऐ कुड़ी कंजक! जी घरे आली दी कुक्ख गैं सुन्ने दी होई जें पुत्तरे दा मुंह दिक्खेया ! बड़ी सच्ची रे सुकराला देबी जिन्न ऐह जीव बख्केया! पीढ़ियां तरी जागन. . . पीढ़ियां. . . .! सुने करना बदरी नाथ. . .! तब हर्षविभोर बापू ने अपने दोनों जुड़े हाथ माथे से लगाते हुए कहा— तेरा गैं पुन्न परताप ऐं भामी ! खबरै कोदी असीस लग्गी कहेड़ा पुन्न सहायी होआ. ऐह तेरे पैरें दी मैल. . . .तेरे पैरें दी. . .

और मां की हल्दी रंगी हथेलियों पर भीगे चने, चावल, दूब रखते-रखते मैं सोच रही थी कि क्या यह असीस दो साल पहले ठाकुरद्वारे में आने वाले अंधे एक साधू की असीस थी, मां जिसकी रोटी बनाती, बरतन मलती, कपड़े खंगालती और जिस्म में पड़े सफेद दुमदार कीड़े निकालती घाव पोंछती थी. पास से गुजरने वाले लोग मारे दुर्गंध के नाक पर कपड़े का दब्बू रखते, मां को घूरते चुपचाप निकल जाते थे.

उन्हीं दिनों हमारे गांव में भगवती का जगराता करने वालों की मंडली रामकोट से आयी थी. दो प्रतिद्वंद्वी टोलियों के होड़ लगी, तो रात भर ढोलक बजाने में मां के हाथों पर छाले कितनी बार उठे और फूटे, पर उसने अपने गांव की इज्जत नहीं जाने दी. शादी ब्याह में भी कभी उसे नाचना-गाना होता, तो उसके गले और पैरों में कैसी घिरनी बंध जाती थी! पर बापू को कभी यह सब पसंद नहीं आया था.

गांव के आखिरी सिरे पर कच्ची-सी बैठती दीवारों का हमारा छोटा-सा घर. पिछले पीतल के सैलाब की तरह फैली हुई दोपहर. पिछवाड़े में बंधे मिमियाते मेमने. ओखली पर धरे मिट्टी के प्यालों में पड़े पानी के पंख फुला-फुला कर नहाती चिड़ियां. खाट पर लेटे-लेटे पोपले होंठ हिलातीं, सुमिरनी पर उंगलियां चलातीं नेत्रहीना वृद्धा देवकी बुआ. अंधेरी कोठरी में एक अरसे से दुकान बंद किये खांस-खांस कर कराहते पीलियाग्रस्त बापू. अंगन में फैली कचनार और सुहांजने के फूले पेड़ों की छांव में पीढ़े पर बैठी चरखा कातती गाती मां—

बाजरे दीं राखी करी, डंगर चरायी करी,
चिड़ियां डुआई करी कियां कियां कत्तना ।

* *

दशहरा के दिनों में जब गांव वाले बसोहली जाने की तैयारी कर रहे थे, मां ने मेरे लिये नया लहंगा-ओढ़नी बनवायी और दीपू के लिए तिल्लेदार टोपी सिलवायी थी. उन्हीं दिनों पुतली का तमाशा करने वालों ने आकर चौगान में डेरे डाल दिये थे. सांझ होते सब चबूतरे पर इकट्ठे हो जाते और बड़ी रात गये तक तमाशा होता. काले भूत-सा लंबोतरा चेहरा, आंखे ढेर-ढेर काजल डाले, पान रचे हौठों से पिपिहरी बजा कर चुलबुला बनवारी पुतलियां नचाता.

राजा का दरबार लगता. फूलों के हिंडोले में की भेंट के लिए मोतीबाई उतरती. उसके घुंघरुओं छम-छम के साथ कोने में बैठे म्यूजिक-मास्टर पाटे घुटनों पर रखी ढपली फटा-फट बजाये जाते. परदे पीछे ढोलक की ढपक-ढपक के साथ औरतों के गाने आवाज आने लगती, जिसमें तीखी मार करती मां निराली मीठी आवाज अलग ही सुनाई पड़ती—

हवा में उड़ता जाये मेरा लाल दुप्पट्टा मलमल का..

इसके साथ ही चबूतरे पर बैठे लोगों में मां को ले होने वाली खुसर-पुसर शुरू हो जाती थी. उनकी का पूरा अर्थ मैं नहीं समझ पाती थी, पर फिर भी उनका ऐसा करना कोंच जाता था.

दशहरा को सिर्फ दो दिन बाकी रह गये थे. उस मां बड़ी रात गये तक ट्रंकों की उठा-पटक करती थी. . . शायद बसोहली जाने की तैयारी में. वह मोटा ताला पड़ा काला ट्रंक, जिसके अगले हिस्से पर पालिश के दो बड़े मोर बने हुए थे, मेरे लिए जादू पिटारी जैसा रहस्यमय हो गया था.

देवकी बुआ सो गयी थी. कोठरी में बापू को का बड़े जोर का दौरा उठा था. रह-रह कर वो पुकार उठते— राज रानी, पानी पिला. . .!

मां ने बिना कोई उत्तर दिये चूल्हे की आग मंद पतीली नीचे उतारी. कांसे की दो नन्ही तश्तरियों भात डाल कर मेरे और दीपू के सामने रख दीं. कि सुंदर थीं वे चमकती पेंदी वाली तश्तरियां, जिन्हें पुरखों के पिंडदान के लिए कश्मीर से लाये थे.

हमें चटाई पर बिठा खाने का आदेश दे मां चली गयी थी— तुम लोग खा कर चुपचाप सो मैं थोड़ी देर में आऊंगी. रोना नहीं. और हम प्रतीक्षा में नींद में वहीं रात भर लुढ़के रहे थे.

अगली सुबह सेंध लगे घर का-सा उजड़ापन आयी थी. आंगन में जमा हो गये गांव भर के लोगों हुजूम. उसके बीच बेसुध गिरे हुए बापू. सिल की मौन बैठी हुई देवकी बुआ. भीड़ को देख-देख कर गुस्से में, तश्तरी में बचे सूखे भात को मुट्ठी भर-भर लोगों पर फेंकता दीपू. उन बिखरे दानों पर कांव करते टूट पड़ते कौवे. टूटे किवाड़ की ओट में खड़े मैं निपाट सूना पड़ा चौगान देख रही थी. जहां रा रात में पुतली वालों के डेरे उठ गये थे.

ढहे चूल्हे, बिखरे चीथड़ें और कागज बहता राख के ढेर. फटे प्याले और हंडियों के ढूह. उखड़े के गड्ढों से धूल उड़ाते, रेंकते गधे. . . .

क्या मां सचमुच उन तमाशे वालों के साथ. . .

* *

दवा-दारु के अभाव में बापू की तबीयत दिन-गिरने लगी. उनकी खुली-खुली मोटी पीली

उषा व्यास 'छवि' डोगरी की नयी पीढ़ी की कथाकार हैं. उन्होंने आम आदमी की विवशताओं, सामाजिक और आर्थिक विसंगतियों के परिणामों को अपनी कहानियों में स्वर दिया है.

और बढ़ी हुई खिचड़ी दाढ़ी को [illegible] लगी ी. वह पानी मांगते, गिलास दीपू के हाथ में थमा कर अंदर धकिया देती. वह अपना नन्हा हाथ उनके हाथ पर फिरा कर कहता—बापू जी, अम्मा कदूं औग ? और ह बिना उत्तर दिये मुंह घुमा लेते.बड़ी देर तक बड़बड़ाते, मां को गाली बकते रहते.

सुबह होते ही दीपू फटे कागजों और छोटी-छोटी पचियों का ढेर जमा करके मेरे पास बैठ जाता और हाथ जला-जला कर मेरी मदद करता.

हम लोग उजड्ड और आवारा हो गये थे. कड़ी ोपहर में भी जब देवकी बुआ सो रही होतीं तो हम उनकी पूजा वाली गिद्दी उठा कर खड्ड पर मछलियां पकड़ने निकल जाते. बरें पकड़-पकड़ कर उनकी माला बनाते ी. रोज शाम को घर लौटने से पहले ऊंचे टीले पर चढ़ कर बिलावर की ओर जाती हुई काठ के पुल को धड़ड़ाती बस को देखते, जो हर बार मां के आने की हमारी आस के भोले उजास पर पेट्रोल की गंध भरा धूल का ुबार छोड़ निर्दयता से अकड़ती हुई निकल जाती थी.

नीली-पीली लाल सिर और पूंछ रंगी भेड़ों के खेड़ कूद-कूद कर ढक्की चढ़ते. उनके पीछे चलती वह गद्दन कितनी खूबसूरत थी! गोरी-चिट्टी, लंबी. हजार ुश्ट के घाघरे पर लहराती फूलदार ओढ़नी. तेल से पप-चप माथे पर झूलती घने काले केशों की मीडीयां. कमर में बंधे रस्से. ढेर-ढेर गहनों से दिपता रूप. . . अपने ति से मेले में आयी औरतों की बात कह रही थी, जिनके घाघरों ने उसके घाघरे की शोभा फीकी कर दी थी—
रा दा चली तो मेरा घग्गरा लगा लाटी मुंजन. पलाह
गे पुज्जी तां किश भुसला-भुसला लग्गै. मंज पुरे दे पुज्जी
ां होई गेया बसो बस्स' . . .

गद्दी ने अपने झोले से दूध की बनी दो कलाड़ियां में दे कर जल्दी घर लौट जाने के लिए कहा था. चबूतरे नीचे पहुंचते हुए दीपू चीख कर गिर गया. उसके क और मुंह से एकदम काले खून की धार फूट पड़ी. ह, उसे तो सांप ने डस लिया था ! मेरी गोद में घर-रा कर हिचकी लेते हुए उसने मेरा हाथ अपने हाथ में कर कहा—बोबो जी, अम्मा कदूं औग. . .? और मैं हमी-सहमी-सी सूनीं आंखों से काठ का पुल देखने गी थी.

उस साल मैंने राड़े नहीं बोये थे. मिंजर नहीं गूंथी . लोहड़ी पर हमारे लिए नारियल और सूखे मेवे के र नहीं बने थे. दीपू का छज्जा यों ही कील पर सूना-सा टका रह गया था. उस पर हर साल की तरह कागज फूल-पत्ते नहीं टंके थे.

दीपू के बाद जब बापू भी नहीं रहे, तो बुआ ने गुरो ीं नवीस को बुलवा कर शहर चिट्ठी भिजवा दी. क गांव आ कर हमें साथ लिवा ले गये थे.

नौकरों के साथ काम में जुटी-जुटी उनके खूबसूरत मती पोशाकों में सजे चिड़चिड़े ढीठ बच्चे पीठ पर दे-लादे मैं बड़ी होने लगी. कितनी बेशरम थीं ताऊ वे दोनों लड़कियां जूली और बुली ! वे अकसर मुझे ा-दिखा कर मिठाई खाती थीं. मैं उनके कमरे से बाहर जाते ही खूबसूरत रैपर उठा कर बस्ते में रख लेती और अकेले में उनकी गुड़ियां बना-बना कर संतोष करती, खुश होती थी.

ओह, वे दिन ज्यादा भिखमंगे थे कि यह दिन ! निर्णय नहीं कर पा रही हूं. छाती में आवेग का गोला-सा उठ आया है.

आंखें खोल कर देखती हूं, बाहर पीला बेजान जमा हुआ-सा कुहरा फैला हुआ है. सलाखों के पार सड़क पर बुझे लैंपपोस्ट के नीचे खड़ा हो कर कोई सिगरेट पी रहा है शायद. अंधेरे में उसका सुलगता अगला हिस्सा अंगूठी के लाल मोटे नग-सा रह-रह कर चमक उठता है.

शैल अभी भी नहीं लौटे. कितनी रात हो गयी है ! शायद वह भी मित्तल के साथ उसके घर. . .रसोई का दरवाजा फिर खुला रख गया है रग्घू. बरतन गिरने और बिल्लियों के लड़ने की आवाज सन्नाटे में बड़ी डरावनी लन रही है.

* *

बाहर बर्फ के आंचल में लिपटी दूध में नहायी रात और भीतर अंधेरे में पलंग पर पसरा नीले कांच की बंद खिड़की से उतरता फिरोजी चांदनी का सिर्फ एक चौखटा. आधा कुतरा बिस्कुट मुट्ठी में भींचे पैताने सोयी कनु का चेहरा हलकी रोशनी में और भी मासूम लग उठा है. बावली है. जरा-सी उदासी भी भांप जाती है, तो गले में नन्हा-सा हाथ लपेट कर कहती है—अच्छे बच्चे तो कबी नहीं लोते ऐं ममी ! तुम तो लानी गुलिया हो ! दवा पी लो. तुमाले पैल उग दायें दे.

मैं उसके पैरों को नन्हे लाल जूतों से मुक्त कर उसे धीमे-से चूम लेती हूं !

कमरे की बत्ती भक्-से जली. शैलाभ थे. हाथ में दूध का प्याला लिये पास चले आये. बेहद खुश.

बोले—कैसी तबीयत है अब ?

—ठीक है. मैं अनमनी-सी कहती हूं.

—डाक्टर कहते थे, तुम जल्दी अच्छी हो जाओगी और उन्होंने दूध का प्याला मेरे सामने रख कर मेरे होठों को उंगली से छू दिया.

वह छुअन, जैसे तपते लोहे का टुकड़ा किसीने चुभो दिया हो. मन में टीसती हुई हूक उठी. सहसा अपने को संयत रखना कठिन हो गया. मन हुआ, चीख कर, पिछले दो सालों में सिर्फ आज तीसरी बार औपचारिक

POND'S
VANISHING CREAM
GREASELESS FOUNDATION
MADE IN INDIA

आपके रूप के अनेक चहेते...
आपकी त्वचा के अनेक दुश्मन

पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम को अपना साथी बनाइए.

हवा, धूल और मौसम के तीखे प्रभाव से आपकी त्वचा की रक्षा करती है पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम. आपके रूप को और भी सलोना बनाने के लिए इसमें एक ख़ास पदार्थ ह्युमेक्टॅट मिला है जो आपकी त्वचा की नमी को सुरक्षित रखता है. तभी आपका मुखड़ा मोतीयारा दीखता है और तैलमुक्त भी. इसे आप आदर्श पाउडर बेस के रूप में प्रयोग कर सकतीं हैं. घंटों-पहरों यह आपके सौंदर्य को अम्लान और मोहक बनाए रखती है. आप इसे संपूर्ण सौंदर्य प्रसाधन के रूप में भी प्रयोग कर सकतीं हैं. आप तो जानतीं ही हैं, आपकी त्वचा को भी उतना ही प्यार-दुलार चाहिए जितना कि आपको.

पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम — आदर्श पाउडर बेस

चीज़ब्रो-पॉण्ड्स इन्कॉर्पोरेटेड (सीमित दायित्व सहित यू. एस. ए. में संस्थापित)

हाल पूछने आये इस आदमी से कहां शैल कहां है तुम्हारा वह आदमी, जो मेरी सारी अच्छाइयों-बुराइयों को एक साथ एकांतिक, एक निष्ठ प्यार करता था? वह आदमी, जिसे एक दिन कालेज से लौट कर ताऊ की भव्य हवेली की मखमली सीढ़ियां उतरते देख मेरी आंखों में ढेर-ढेर बादाम के फूल खिले थे! और वह आदमी भी क्या तुम्हीं थे, जिसने एक दिन मीनल के सामने मुझे 'सड़ी हुई मछली', 'एक अपाहिज औरत' कहा था?

—सुनो, कल कुछ मेहमान आ रहे हैं. तुम भी कोई ढंग की साड़ी-वाड़ी बदल लेना. कहीं वे तुम्हें देखने इधर ही न आना चाहें.

—कौन मेहमान? न चाहते हुए भी पूछ लेती हूं.

—मीनल के पेरेंट्स. कल यहां एक समारोह में आ रहे हैं. घर पर भी आयेंगे.

और वह सोयी हुई कनु को कंधे से लगा कर चुपचाप बाहर चले गये. मैं अवाक्-सी देखती रह जाती हूं. क्लाक के पीछे अधबना घोंसला. घोंसले में रुई-तिनके ले जाने के विफल प्रयास में तीसरी बार फर्श पर गिरी टूटी टांग की चिड़िया. जलते अगरु की सुवासित लकीर. फर्निस पर रखी शादी के बाद पहली बार शैलाभ के साथ खिची अपनी तसवीर.

★ ★

उधर बड़े वाले कमरे में से बरतनों की खनक, हंसी के ठहाकों में बातें करने की ऊंची आवाज अब थम गयी थी. बरतन वापस रसोई में ढोता रग्घू झलक गया. शायद वे लोग खाना खा चुके थे.

नितांत आधुनिक वेश-भूषा में सज्जित गरदन के पीछे हाथ घुमा कर बालों में फूल खोंसती औरत का सिर्फ आधा चेहरा ही मैं देख सकी. स्टडी में आलमारी के सामने खड़ी पूछ रही थी— इतनी किताबें! इतनी किताबें कौन पढ़ता है शैल? तुम्म?

—नहीं, वाइफ को ही शौक है. यह सब उनकी ही हैं. मेरे पास इतना वक्त. . .

—पर भई, हमारी मीनल को तो पढ़ने-लिखने का जरा भी शौक नहीं है. उसने तो जैसे-तैसे बी. ए. करके छुट्टी पा ली है. वह तो कहती है, नौकरी में मजे हैं ममी. इट्स ओनली वेस्टेज आव टाइम एंड मनी. . .

फिर एक ठहका. शैलाभ के साथ, छड़ी घुमा-घुमा कर फर्श पर टेकते वह सज्जन भीतर आ गये. भूरी आंखें. नाटा, भरा हुआ शरीर. कुंवारा सूत कात रहे ताजे भुट्टे जैसी मूंछें. एकदम गोरा रंग. सब मिला कर एक रोबीला व्यक्तित्व.

कानों में बड़े-बड़े आवेज पहने, गले में पड़े चौदह हीरों के कीमती नेकलेस को उंगलियों से छूती मीनल की मां थी. शैलाभ परिचय देते हैं— रुपेश डांसिग क्लब के डाइरेक्टर मिस्टर कुमारन पांडेय और आप मिसेज राजुल पांडेय, द प्रोमिनेंट आर्टिस्ट. पिछले साल इन्होंने बैंगलोर में स्नेक डांस का बड़ा ग्रैंड शो दिया था.

अभिवादन में हाथ जोड़ते मुझे लगा, जैसे बिजली का बल्ब बार-बार जल-बुझ रहा है. ग्यारह बजे का अलार्म दे रहे क्लॉक का हिलता पेंडुलम मस्तिष्क पर हथौड़े की चोट-सा घन्ना उठा. आंखों में बड़े-बड़े रेतीले पत्थर उग आये.

—मां. . .! भीतर से एक चीख उगी और पाले की सर्द तह की तरह होंठों पर जम कर रह गयी. उंगलियों को तकिये में धसंते महसूस किया.

—वाणी, क्या बात है? इस तरह उधर क्या देख रही हो? तबीयत ठीक नहीं तो लेट जाओ. एक भीगी हुई ठंडी हमदर्दी में शैलाभ ने मुझे कंधे से पकड़ कर हिलाया और तकिया पीठ से टिका दिया.

वह औरत बिंदी पुंछ जाने के भय से पसीना पोंछने के लिए नन्हा-सा रूमाल धीरे-धीरे माथे पर फिराती पति के निकट जा खड़ी हुई. बोली— जल्दी चलो न, ग्यारह तो बज गये. हमारी ट्रेन छूट जायेगी. . .बहुत देर. . .

—ओ, सो सैड! बेचारी! मिस्टर पांडेय ने घूम कर एक दयादृष्टि मुझ पर डाली और पत्नी की पीठ पर हाथ रखे बाहर चले गये. पीछे-पीछे शैलाभ भी.

सहसा कुछ दबे-दबे-से बेहद धीमे स्वर सुनाई पड़े.

—वेल शैलाभ, तुम और मीनल अगर. . . कुछ शब्द सुनाई नहीं देते. . . फिर कुछ शब्द उभरते हैं—

. . .मिसेज को तो अच्छा है किसी अच्छे नर्सिग होम में भिजवा दो. . . और बच्ची उसकी जिंदगी होस्टेल में रह कर ही बन सकती है. इस तरह तो बरबाद हो जायेगी. . .

—हां, यही ठीक रहेगा. मीनल की मां कह रही है—हमारी मीनल को तो घर में खुद पानी का गिलास ले कर पीने की आदत नहीं. .. . .

उठ कर बैठ जाती हूं. लगता है, कच्चे दलान में ढेर सारा धुंआ फैल गया है. उस धुएं में मेरी सांस घुट रही है. कोठरी में बापू फिर कहीं जोर-जोर से खांस उठे हैं. . . राजरानी, पानी पिला. . .

दो तश्तरियों में फैला भाप उठाता भात सफेद दुमदार कीड़े बन कर मेरी टांगों के नंगे जख्म चाटने लगा है. चीख कर पुकारना चाहती हूं, रग्घू, मुझे बाहर ले चलो. .. मुझे बाहर. . . हांफते हुए गिनने लगती हूं, खट् खट् खटा-खट् खटा-खट्. . . . तीन जोड़ी पैरों की आहट सीढ़ियां उतर कर दूर कहीं आगे निकल गयी है. व्हील चेयर पर अपने को डालने की कोशिश में बार-बार सोच उठती हूं, काश, इस खिड़की की, सामने वाली खिड़की की सलाखें न होतीं! □□□

द्वारा, श्री दीनानाथ व्यास,
गांधी चौक, कठूआ
जम्मू (कश्मीर)

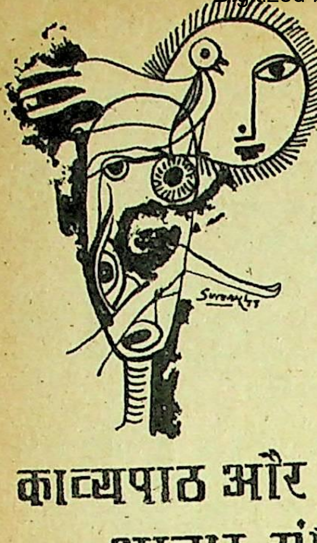

● जी. एस. सुमन

काव्यपाठ और सरकारी आचार संहिता

● श्रीकांत चौधरी

राजा विक्रमार्क किसी कुर्सीवादी नेता की तरह दृढ़ प्रतिज्ञ था. उसने हठ न छोड़ा. वह फिर वापस गया और बैताल के शव को उतार कर कंधे पर डाला और अपनी इंपाला पर बैठ राजधानी की ओर रवाना हो गया.

बेताल का शरीर तो राष्ट्र को अर्पित हो चुका था–बेताल की अंतरात्मा अभी बची थी. उसने बोलना प्रारंभ किया––राजन्, मैं तुम्हें उस युग की कथा सुना रहा हूं, जब बड़े-बड़े आई. ए. एस. अफसर लोग न सिर्फ साहित्य समझने, वरन लिखने के मुगालते में रहने लगे थे.

ऐसे ही, इस प्रसंग में एक दिन की बात है कि एक मिनिस्टर ने शहर, गांव के हर ऐरीगैरी नत्थू खैरी चीजों का उद्घाटन करने के बाद 'निराला जयंती' पर अपने बंगले पर एक काव्य गोष्ठी का आयोजन कर डाला. मिनिस्टर साब स्वयं कवि नहीं थे, परंतु एक तो कविताओं पर 'वाह-वाह' बहुत तरीके से करते थे––दूसरे उन दिनों यह प्रचलन था कि जो भी मानव देहधारी काव्य गोष्ठी आयोजित कर ले वह हिंदी साहित्य का महान हितैषी और अपूर्व साहित्यप्रेमी मान लिया जाता था. मिनिस्टर साब के यहां सभी लोग समय पर पहुंच गये. गोष्ठी में भाग लेने वालीं कुल मिला कर २५ विभूतियां थीं, दो लोकल कवि थे. चीफ सेक्रेटरी, एक कमिश्नर, एक कलेक्टर और शेष २० द्वितीय श्रेणी के अफसर. सभी इस तरह सभ्य शिष्ट बने बैठे थे जैसे काव्य गोष्ठी में नहीं, किसी परिवार-जन की अंत्येष्टि में भाग लेने आये हों.

थोड़ी देर में काव्य गोष्ठी प्रारंभ हुई. कमिश्नर, कलेक्टर, और चीफ सेक्रेटरी ने नतसिर हो कर संचालन भार ग्रहण करने का पुरजोर आग्रह मंत्री महोदय से किया. शेष २० अफसरों और लोकल कवियों ने भी हार्दिक समर्थन किया. सबसे पहले एक व्यक्ति ने कविता पढ़ी––२५ लोगों ने वाह वाह की फिर दूसरे ने पढ़ी तो २४ लोगों ने वाह वाह की. फिर तीसरे ने पढ़ी तो २३ लोगों ने वाह वाह की. शेष दो चुप रहे. फिर चौथे ने पढ़ी तो एक चुप रहा शेष २४ ने वाह वाह की. फिर पांचवें ने पढ़ी एक चुप रहा शेष २४ ने वाह वाह की. हे राजन्! तुम्हें यह बता देना उचित है कि जब कोई बड़ा मंत्री या अफसर कवि या काव्य रसिक हो तो उसके मातहत आधे कवि और आधे काव्य प्रेमी हो जाते हैं. इस गोष्ठी में एक सुयोग्य अफसर की तरह, चीफ सेक्रेटरी, कमिश्नर और कलेक्टर घर से ही कवि हो कर चले थे.

परंतु हे राजन्! काव्य गोष्ठी के दौरान वाह वाही की आवृत्ति में जो धांधली रही, वह मेरी समझ के परे है. पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवे नंबर पर कविता पाठ करने वाले कौन थे. ? और इन में से, अलग अलग-नंबर पर वाहवाही की संख्या अलग-अलग क्यों थी ? राजन् यदि तुमने इन प्रश्नों का उत्तर जानबूझ कर या अनजाने ही नहीं दिया तो म्यूनिस्पैलिटी की सड़क पर कार दौड़ा कर तुम और तुम्हारी कार दोनों वीर गति को प्राप्त होंगे और मैं समझ जाऊंगा कि तुम राजनीति और नौकरशाही दोनों के साहित्य में मिसफिट हो.

राजा ने उत्तर दिया–प्रिय बैताल! पहले नंबर पर चीफ सेक्रेटरी ने कविता पढ़ी थी क्योंकि मिनिस्टर साब को छोड़ कर वही, वहां पर सबसे बड़ा अफसर था. यही कारण था कि उसकी कविता पर सभी ने वाहवाही की. दूसरे नंबर पर कमिशनर ने कविता पढ़ी, कमिश्नर की कविता पर चीफ सेक्रेटरी भला कैसे वाहवाही कर सकता है ? वह कमिश्नर से ओहदे में ऊंचा है. अतः कुल २४ लोगों ने वाहवाही की. तीसरे नंबर पर कलेक्टर ने काव्य पाठ किया था तो पद की गौरवानुभूति के अनुसार कमिश्नर और चीफ सेक्रेटरी चुप रहे. वाहवाही करना पद की तौहीन थी. इसलिए कुल २३ लोगों ने वाहवाही की. शेष चौथे और पांचवे नंबर पर लोकल कवि थे. लोकल कवियों से अफसरों को पद की डिगनिटी का सवाल ही नहीं उठता, लेकिन दोनों के काव्य पाठ करते पर वाहवाही करने वालों की संख्या २४ थी उसका कारण यह है कि लोकल कवि, दूसरे लोकल को हमेशा घटिया, सड़क-छाप कवि मानता है. वरन जहां तक बनता है वह दूसरे को कुछ भी नहीं मानता. अतः दोनों एक दूसरे के काव्य पाठ के समय सराहना के अपराध से बच गये. उत्तर सुन कर बैताल मंत्री पद मिलने के प्रति आश्वस्त विधायक की तरह संतुष्ट वापस पेड़ की ओर उड़ गया. ☐

दो लघुकथाएं ● शंकर पुणतांबेकर

नेता की टोपी

एक नेता महोदय चुनाव-प्रचार के दरम्यान जीप में सवार एक गांव से दूसरे गांव जा रहे थे. गाड़ी जब एक पुल पर से चली जा रही थी अचानक ऐसी हवा चली कि उनके सिर की टोपी उड़ कर नीचे नदी में जा गिरी. नेता हैरान. हैरानी उचित ही थी उनकी, क्योंकि भाषण टोपी में ही तो समाया हुआ था. नहीं, भाषण ही नहीं उनका पूरा व्यक्तित्व ही उसमें समाया हुआ था. उन्होंने फौरन ड्राइवर से जीप रोकने के लिए कहा.

उन्होंने पुल की मुंडेर से नीचे पानी की ओर झांका. लेकिन टोपी नहीं दिखाई दी. उन्हें आश्चर्य हुआ. टोपी डूबनी तो नहीं चाहिए. अब तक कभी डूबी नहीं है.

टोपी डूबी नहीं है. नदी ने अपने मुंह में छिपा लिया है. यह सोच नदी से टोपी पाने के लिए वे वहीं मुंडेर पर बैठ गये और जोर-जोर से रोने लगे. वे जानते थे रोने में बड़ी शक्ति है. बचपन में मां के पास जब भी मिठाई के लिए रोये थे, उन्हें वह बराबर मिली थी. स्कूल में मास्टरों के सामने जब-जब रोये थे, उनके अंक बढ़ गये थे. आगे राजनीति में पड़ने पर जब तब टिकट के लिए रोये थे, कुर्सी के लिए रोये थे.

वे बड़ी देर तक रोते रहे. उन्हें विश्वास था नदी जरूर पसीजेगी.

और सचमुच नदी पसीज गयी. वह देवी के रूप में उनके सामने प्रकट हुई और उनसे पूछा—क्यों रो रहे हो बेटे ?

उन्होंने जब कारण बताया तो नदी ने कहा—ठीक है, मैं तुम्हारी टोपी ला देती हूं !

इतना कह नदी अंतर्धान हो गयी और कुछ ही देर में एक टोपी लिये हुए प्रकट हुई. बोली—देखो, यही है न तुम्हारी टोपी ?

नेता ने देखा. वह टोपी बाहर से काली और अंदर से सफेद है. अतः कहा— नहीं, नहीं, मेरी टोपी यह नहीं है.

यह सुन नदी फिर अंतर्धान हो गयी और एक ऐसी टोपी ले आयी जो बाहर से सफेद और अंदर से काली थी. इस टोपी को देखते ही नेता महोदय एकदम बोल उठे—हां, हां, यही. . .यही है मेरी टोपी.

नदी ने टोपी नेता के हाथों पकड़ाते हुए कहा—तुम बड़े ईमानदार हो. पहली टोपी मैं जानबूझ कर गलत लायी थी. तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए. मैं तुम्हारी प्रामाणिकता पर प्रसन्न हूं, और आशीर्वाद देती हूं इस टोपी से साथ तुम आज की तरह भविष्य में भी राज करते रहोगे. □

सफाई

चुनाव निकट थे. एक उद्योगपति को संदेश पहुंचा कि दो मंत्री आपका कारखाना देखना चाहते हैं. उद्योगपति को उनके स्वागत में लाजिमी तौर पर खानपान की व्यवस्था करनी पड़ी. खानपान के बाद मंत्रियों ने उद्योगपति से एकांत में बात करनी चाही. वह उन्हें एक अलग कमरे में ले गया. काफी देर तक उन लोगों के बीच बातचीत चलती रही. जब बातें समाप्त हो गयीं, उद्योगपति ने तिजोरी में से नोटों की कुछ गड्डियां निकालीं और उनमें से एक को दीं. उसने वे अपने पास न रख कर दूसरे की जेब में डाल दीं. न जाने कैसे इस बात की भनक एक विरोधी दल के नेता के कानों में जा पड़ी और उसने सदन में इस बारे में सवाल उठाया. काफी हंगामा मचा. आखिर मंत्रियों ने अपनी सफाई देते हुए एक ने कहा—'आरोप झूठा है. मैं शपथ पूर्वक कह सकता हूं कि मेरी जेब में कोई रकम नहीं आयी है. और दूसरे ने कहा— मैं भी शपथपूर्वक कह सकता हूं कि मैंने किसी उद्योगपति की रकम को हाथ तक नहीं लगाया है. □

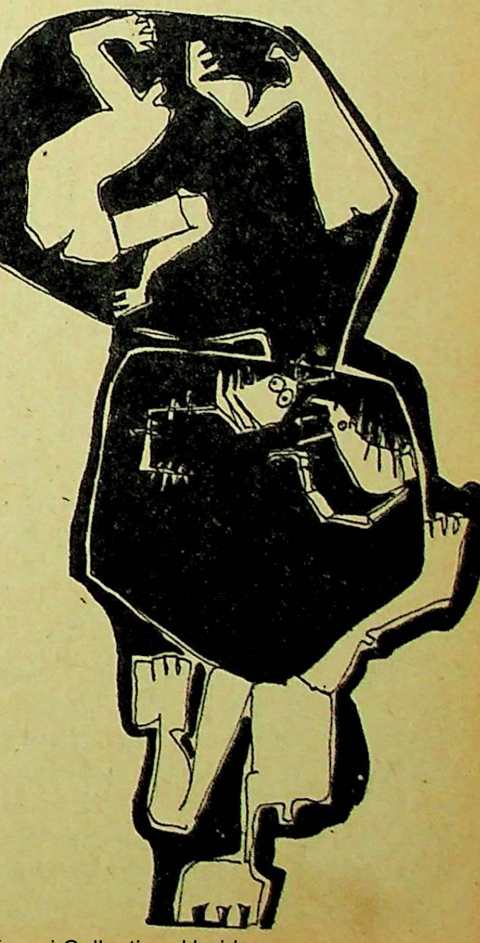

● एस. डी. चौधरी

अंधा सूरज

● श्री केशव

तब ब्राह्मण झूठ नहीं बोलते थे, न गायें ही गू खाती थीं. कोई जाने-अनजाने भी राह-सड़कों के गाछ-वृक्ष नहीं जलाया करते थे. लेकिन उस दिन फुलिया ने अपने हाथों आग लगा दी और वह देववृक्ष जल गया. पर वह जल न सकी. फुलिया नहीं जली. वह अब भी जीवित है. इतने बड़े संसार में, इतने बड़े आकाश के नीचे, इतनी बड़ी धरती पर. नहीं भाई. यह अनिश्चय का घेरा क्यों? और कैसा? इसी गांव में वह अपनी सांसें जी रही है. यहां की धरती फटी नहीं कि वह उसमें समा जाती. धरती नहीं फटी, क्योंकि वह सीता नहीं, फुलिया है. आकाश में कहीं आग नहीं लगी. वह नहीं जली. वह फुलिया जो है. उसने कोई शिकायत नहीं की—जीने से और जिंदगी से भी. वह जीवित है. अपने में कोई परिवर्तन किये बिना—एक छोटा-सा परिवर्तन छोड़ कर कि अब वह अंगिया नहीं पहनती, अपनी छातियां खुली रखती है. हर-हमेशा. है न एक छोटा-सा परिवर्तन? मिठुआ झेंप जाता है, जब कभी उसे देखता है. कुछ भी नहीं कहता. . .कुछ भी कह नहीं सकता. क्या उसे कुछ कह भी सकेगा? वह इस छोर से उस छोर तक खुली-छाती घूमती है. भावहीन-सी. सब उसे देखते हैं. वह किसी को नहीं देखती. बस घूमती है. . . क्या सच ही द्रौपदी ने अपनी चोटी खोल ली थी दुर्योधन की जंघा पर बैठ दु:शासन के खून से गूंथने के लिए?

..क्या कहा. . .? समझता हूं महाशय. यहां आते-आते सब फुलिया की कहानी ही सुनना चाहते हैं पर आप क्या समझे! इस संदर्भ में उस गाछ को क्या नजरअंदाज किया जा सकता है?

हां, हां, वही. . . वह जला हुआ काला दाग उसी देववृक्ष का अवशेष है. वह किसी इंद्रपुरी का कल्पवृक्ष नहीं था. वह तो महज एक पीपल का बूढ़ा गाछ था. विशाल-विराट. पर झाड़-झंखाड़. हां, जब से मैंने होश संभाला, उसे ऐसा ही देखा. . .ऊपर सूखा हुआ, नीचे जड़वाला भाग हरा-भरा पत्रविहीन. विचित्र रंग में विकृत डालियां. भयावह अंधेरे कोटरों से भरा पड़ा. जाड़े के कोहरे भरे सीले दिन में खांसते जर्जर बूढ़े-सा. बिलकुल ही मौन... अपनी खामोशी में घुटता हुआ. घुटन में चीखता-चिल्लाता. पिताजी कहा करते थे कि पहले वह देववृक्ष बहुत बोलता था. अपनी हरी छाया में बैठे बटोही से वह सुख-समृद्धि की बातें करता था. खूब हरा-भरा और छतनार. तब ब्राह्मण झूठ नहीं बोलते थे, न गायें गू खाती थीं. . .

लेकिन उस दिन गजब हो गया. करीब बीस-बाईस वर्ष पहले एक दिन उस वृक्ष पर जाने कितने गिद्ध आ बैठे. सज्जनो! अब भारत माता आजाद है. हम सभी आजाद हैं. हमारे सहयोग से गांधीजी ने, अपने 'गान्ही बाबा' ने देश आजाद किया. अब हम स्वतंत्र हवा में सांस लेते हैं. अपनी सरकार भी बन गयी है. . .दिल्ली में, पटना में. परंतु आप लोग तो जानते ही हैं कि हमारे 'गान्ही बाबा' कहा करते थे—शासन-व्यवस्था गांव वालों के हाथ में दी जाय. गांव-गांव में रामराज्य लाना है. स्वराज्य तो मिल गया, अब 'सुराज' लाना है. इसके लिए गांवों में ग्रामपंचायत होगी. इसमें एक मुखिया होगा. अच्छा हो, उसको आप लोग निर्विरोध चुन कर अपनी राष्ट्रभक्ति का परिचय दें. मेरे पास नत्थू का नाम आया है. अच्छा है. . .अच्छा है, इस राज में तो एक ही घाट पर बाघ-बकरी पानी पीयेंगे.

उसके बाद से यहां कितने तो मुखिया बने और उनसे भी ज्यादे मड़र-मेढ़, बाघ-बकरी को एक ही घाट में पानी पिलाने. और तब से प्राय: ही गिद्ध उस देववृक्ष पर बैठने लगा. उसकी पत्तियां क्रमश: गिरने लगीं. डालियां सूखने लगीं. और वह नत्थू अपने को 'अन्हरी मजिस्टैट' कहने लगा. अब तो सारे गांव में उसके असली चेहरा की कोई शिनाख्त भी नहीं रही, सब उसे 'अन्हरी मजिस्टैट' ही कहा करते हैं. वह भी कोई ऐसा-वैसा आदमी तो रहा नहीं. भले आदमी उसके पास फटकते नहीं, बुरों एवं आज के तथाकथित सभ्यों में उसकी शोहरत है. शान है. उसके हाथ में एक जादू की छड़ी है. थाने में दरोगा-पुलिस भी उसके जूते की मार खा जाते हैं. खून करना, करवा देना, फिर पचाना, पचवा देना उसके बायें हाथ का खेल है.

—क्या अपने ही बेटे को मार दिया? आखिर क्यों?

—जी सरकार. उसकी पत्नी से मेरा जरा. . .

—अच्छा ऽ ऽ. . .! एक चुनचुनाती हंसी उसके समस्त चेहरे पर चुहचुहा आयी.

—तो थाना जाना पड़ेगा. कुछ व्यस्तभाव दिखाते उसने कहा, आजकल तो मैं वहां आता-जाता नहीं.

—कुछ तो करना ही होगा, माय-बाप यह रहा पांच हजार.

अन्हरी मजिस्टैट रुपया देखता है और नहीं देखता-सा चुप्पी साध लेता है.

—खेत पर बात करके लाया हूं. काम हो जायगा न!

—कोशिश करूंगा. तुम जाओ.

रुपया हाथ में ले कर देखता है. दो हजार में थाना गायब. पांच सौ में मुखिया. यह मुखिया भी एक दोगला है. बिना पैसे लिये अपने बाप का भी काम नहीं करता. साला, हरिचंदर का भाई बनता है! थाना उसको भेज दूंगा. शेष ढाई हजार मेरा ही न! अच्छा. इस में से कुछ निकाल कर, लगे हाथ उसका भी काम तमाम कर डालूं तो कैसा रहे? प्रताप बाबू! ह-ह-ह-ह, बाबू बनता है! बेटा है तो माकूल. पर युधिष्ठिर का बड़ा भाई जो बनने लगता है! इस बार चीनी कितनी ईमानदारी से बंटवा दी. इतनी आरजू-मिन्नत की, पर कार्ड भर ही चीनी लेने दी. न ब्लैक में चीनी बेच पाया, न कोटा-डीलर ने ही कुछ नजराना पेश किया. अच्छा बेटा युधिष्ठिर, अभी दुर्योधन जिंदा है. ई साला शुद्दर जात ही दोगली है! न इसकी बोली का ठिकाना, न बात का. एक बैठक तो करनी ही होगी. और वह भी किसी गुप्त स्थान पर.

तो फिर तुम लोग उस जात की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गये. अरे, भूमिहार-ब्राह्मण भी कभी सीधा हुआ है! कितना भी सीधा होगा तो जलेबी जैसा टेढ़ा रहेगा ही. याद करो, जब ये लोग हमारे बाप-दादों को जलील किया करते थे. घर से औरत निकाल ले जाते थे. (व्यक्तिगत रूप से मैं ऐसा मानने को कतई तैयार नहीं, न मैं अपने को शुद्दर ही मानता हूं. पर सभा-बैठक में ऐसे समय यह कहना ही चाहिए, कुछ इसी भाव के साथ) क्या अब भी अपनी जात सुधारना नहीं चाहते? वही कुत्ते की जात तुम लोगों को पसंद है?

उसकी नजरें सबके चेहरे पर दौड़ जाती हैं. अपनी बातों को लोगों पर रंग जमाते देख गर्व से फूल उठता है, मुझे शक होता है. आज तक जो हम लोगों ने उसका अन्न खाया है, सो कुछ भी बोलने से पहले ही जीभ पर आ कर बैठ जाता है. और फिर हम उसके जैसे ही बोलने लगते हैं. लेकिन अब हम उस हजम कर चुके हैं कि नहीं? क्या अब भी कोई भूमिहार-ब्राह्मण का जन्मा रह गया है, इस बैठक में? उसने अपने-आपको ही देखा. . .क्षण भर. . .खूब गौर से, तब अपने से हट कर उसको देखा, जिस पर उसने निशाना साधा था, जो प्रायः उसका विरोध कर दिया करता था. पर वह भी चुप था. उसके कुछ न बोलने पर मजिस्ट्रेट समझ गया कि तुक्का ठीक निशाने पर बैठा है. . .अच्छा तो हम सभी शुद्दर एक हों. उस परतपा को तो मुझ पर छोड़ दो. बेटे को ऐसा मजा चखाऊंगा कि बस याद करता रह जायगा.

बैठक के बाहर उसने उन दसों को बुलाया, जो उसके अपने खास आदमी हैं——इस बार प्रताप-विजय के बाद तुम लोग फुलिया-विहार करोगे.

——तो कल ही बॉस!

* *

गांजा पी-पी कर सब सब अन्हरी मजिस्टैट के आश्वासन पर सोच रहे थे. उसका काम तो कर दिया. पता नहीं, कब तक वह हाथ आती है.

——अरे यार, यह सुना कि नहीं, खेदुवा का भाई मर गया. कहते हैं, सांप ने काट खाया था. कितनी झाड़-फूंक की गयी, पर नतीजा कुछ न हुआ. लगता है, किसी डायन-

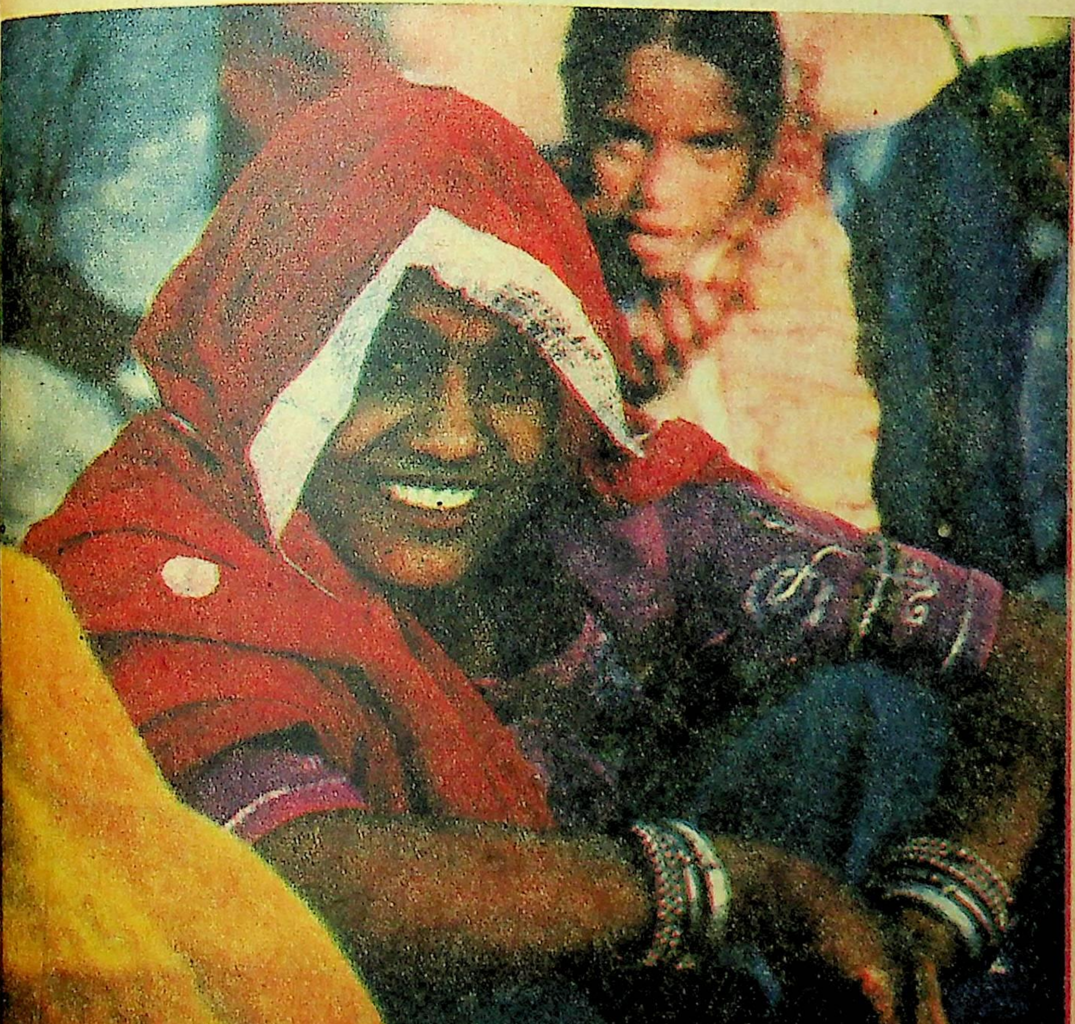

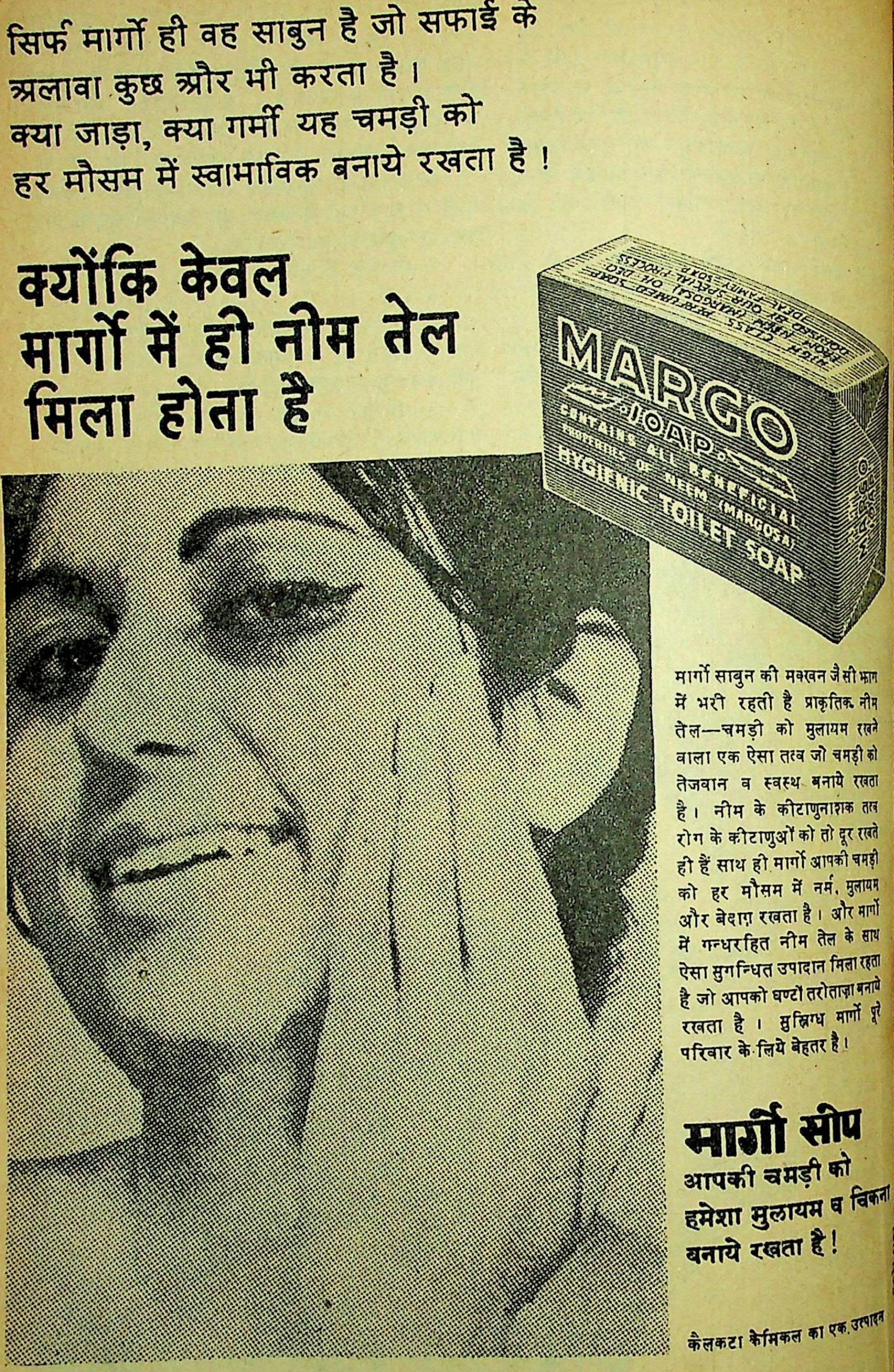

सिर्फ मार्गो ही वह साबुन है जो सफाई के अलावा कुछ और भी करता है।
क्या जाड़ा, क्या गर्मी यह चमड़ी को हर मौसम में स्वाभाविक बनाये रखता है!

क्योंकि केवल मार्गो में ही नीम तेल मिला होता है

HIGH CLASS PERFUMED SOAP
MARGO
SOAP
CONTAINS ALL BENEFICIAL PROPERTIES OF NEEM (MARGOSA)
HYGIENIC TOILET SOAP

मार्गो साबुन की मक्खन जैसी झाग में भरी रहती है प्राकृतिक नीम तेल—चमड़ी को मुलायम रखने वाला एक ऐसा तत्व जो चमड़ी को तेजवान व स्वस्थ बनाये रखता है। नीम के कीटाणुनाशक तत्व रोग के कीटाणुओं को तो दूर रखते ही हैं साथ ही मार्गो आपकी चमड़ी को हर मौसम में नर्म, मुलायम और बेदाग़ रखता है। और मार्गो में गन्धरहित नीम तेल के साथ ऐसा सुगन्धित उपादान मिला रहता है जो आपको घण्टों तरोताज़ा बनाये रखता है। सुस्निग्ध मार्गो पूरे परिवार के लिये बेहतर है।

मार्गो सोप
आपकी चमड़ी को हमेशा मुलायम व चिकना बनाये रखता है!

कैलकटा कैमिकल का एक उत्पादन

—बन गया काम! बोलो बम! मारो गांजे में दम! यार, हो गया फुलिया-विहार! उसी का नाम लगा कर भरे गांव में साली की चमड़ी नोंची जाय!

—ऐसा भी कभी हुआ है! गांव में मुखिया. . .

—साला हिजड़ा! तुम क्या जानो! अन्हरी के सामने कौन आता है? और अपना अन्हरी खुद उसका मरीज रह चुका है. मेरे साथ बासा वाले खेत में. .

गांजे में सबने एक-एक दम और मारी. . .'बोल बम! मारो गांजे में दम!' बोलते हुए. फिर सब चलते बने. रास्ते में जो मिला, उसे भी साथ ले लिया.

खेदुवा के घर में बासी मौत का खामोश सन्नाटा पसरा हुआ था.

—तुम भी क्या मूरख हो! उसने कहा नहीं था क्या? परसों ही तो दोनों के बीच खेत में झगड़ा हुआ था. फुलिया ने कहा था, तुझे ऐसा सांप डसेगा कि पानी भी न मांग सकेगा. . .इसी तीन दिन के अंदर!

—हां बेटा! खेदुवा की मां बोल उठी, पानी भी न मांग सका! अंत में जो गंगाजल और तुलसीदल दिया, सो भी दांती खोल कर. लेकिन वह मुंह में ही रह गया. ठीक कहते हो बेटा को उसी डायन ने खा लिया, मेरे राजा को! खेदुवा, देखता क्या है, पकड़ ला उस चुड़ैल को.

बगल में बीड़ी फूंकते खेदुवा के सर पर जाने कहां से भूत आ कर बैठ गया—चलो, आज पूरा बॉस कर देंगे उसके...

सब-के-सब उसके घर में घुस गये. फुलिया तो हक्की-बक्की, अवाक्. उससे किसी ने कुछ नहीं कहा. किसी ने उसकी चोटी पकड़ ली, किसी ने बांहें. और सरे सड़क घसीटते हुए उसे श्मशानी सन्नाटे से भरे आंगन में ला पटका. सब घेरे हुए. वह देखने वालों की फटी आंखों में अपने वस्त्रों से लड़ने लगी.

—मैं. . .मैं. . .म. . .

—हरामजादी, डायन, तू मेरे भाई को खा गयी है! मैं तुझे जिंदा न छोडूंगा! अरे लच्छुआ देखता क्या है, हरजाई की अंगिया फाड़ न! मसुआई छाती पर पैसा छिपा कर दाग लगा! साला, मन नहीं भरा है अभी तक!

अन्हरी मजिस्ट्रेट ने सबको देखा. . .रहस्य भरी आंखों से. . .मूंछों के नीचे मुसकाते हुए.

—एक तो जमाना देखेगा बेटे, लेकिन एक तो जमाने से छिप कर खुद देखने के भी दाग होने चाहिए! समझ गये लच्छू? फिर अन्हरी ने खुद ही लच्छुआ के हाथ से लाल-धिपी लोहे की छड़ अपने हाथ में ले ली—फाड़ दो. . .फाड़ दो साड़ी! क्षणभर उसने छड़ की लाल आग को देखा और उसकी दोनों जांघों के बीच भी. बोल रानी! ठीक रहा न खेदुवा? देख, ठीक बीचों बीच पड़ा है. दोनों जांघों को छेदे हुए. ह-ह-ह-हा-हा!

चुनचुनाती चिपचिपी आग से जलती चमड़ी सब देखते रहे. . .दीदे फाड़-फाड़ कर. . .दाग को. पर फुलिया पहले ही बेहोश हो चुकी थी. उसने एक साथ इतने आदमी के जानवर को नहीं देखा. . .कि जब ये आदमी अपने-अपने चेहरे खो कर एक भीड़ का चेहरा लगा लेते हैं तो जानवर से भी ज्यादा भयंकर और खूंखार हो जाते हैं.

[illegible] केशव (जन्म: जनवरी, १९५२, फुलौत, भागलपुर, बिहार) अब तक छिट-पुट ही प्रकाशित होते रहे हैं. एक कविता-संग्रह तथा एक कहानी-संग्रह प्रकाशित. संप्रति भागलपुर विश्वविद्यालय में एम. एससी. (वनस्पति विज्ञान) के छात्र.

वह होश में आयी, तब अपने घर में थी. दाग और दर्द से दबी, चूर-चूर. उसने चीखना चाहा, पर चीख न सकी. मात्र सुनती रही—समझ मिठुआ, एकाध घर वाले की कोई मुराद भी होती है. कहीं आना-थाना जाने का नाम लोगे, तो घर जला दूंगा. जीना दूभर हो जायगा. समझे न? बापू चुप था. उसके चेहरे पर श्मशान था. मुरदा जलाये जाने के चिह्न अब भी शेष थे. . .और जीवन घर में सुरक्षित था. बिना जले-जलाये. वह चुप कर गयी. सुनती रही. यह भी कोई न्याय है! उसने सुना था, लुचबा दफेदार उस घटनास्थल पर घटना के बाद आया था. वह प्रायः ऐसे ही आता है. जानकारी रहने पर भी जाने क्यों वह देर से ही आता है. और आते ही अन्हरी मजिस्ट्रेट को 'सलाम चचाजी' कहा था. फिर उसके बापू के पास भी आया था, कई दिन बीतने पर—अब तो बहुत दिन हो गये. थाने में मुझे गाली-गलौज सुननी पड़ेगी. नौकरी पर भी जोखिम हो सकती है. पर. . .पर यह देखा नहीं जाता. ऐसे दागा जाता है मानुस को, जानवर जैसा! भला किस गांव में डायन-ओझा नहीं होते और किस जंगल में बाघ-भालू नहीं होते? तब वह बापू के कान के पास अपना मुंह ले जा कर फुसफुसाने लगा था—पांच सौ का इंतजाम करो; मरदुओं को मजा चखा दूंगा! समझा क्या है! सरकार बहादुर का राज है! नहीं मजा चखवाया तो मादर. . .

लुचबा चला गया. . .और मिठुआ पांच सौ के इंतजाम में लग गया. . .डर-डर कर. घर में जीवन जीया जाता है न. श्मशान में तो दाह-कर्म होता है.

—ह-ह-ह! मूरख, न्याय क्या? सारे गांव ऐसे ही हैं. वह फुलिया ही तो नहीं? साली माल है, माल! क्या छाती है! दाग हुआ तो क्या हुआ!

वे सब आगे बढ़ जाते हैं. . .सड़क पर. देववृक्ष की जली जड़ के पास. उसकी चमड़ी पर आंखें ठहरा कर चलने का नाटक करते हुए.

ऊपर सूरज अपनी रोशनियों में जल रहा होता है. और सबसे बेखबर फुलिया उस देववृक्ष की जली जड़ की राख मुट्ठी भर उठा कर दागों पर मल रही होती है. . . क्या सच ही द्रौपदी ने अपनी चोटी खोल ली थी दुर्योधन की जंघा पर बैठ दुःशासन के खून से उसे गूंथने के लिए. . . □□□

दिवाकर रेस्ट हाउस, आशानंद पुरी, परवत्ती,
भागलपुर–२ (बिहार)

मशीन

शैलाभ

हेमंत की वर्षा में प्रकृति ठिठुर रही है. बाढ़ से फसलों के निगल लिये जाने के बाद जो धान रोपा गया था, उसके पकने और रबी के अंकुरित होने का मौसम है. यह असामयिक वर्षा सबको बर्बाद कर देगी. किसानों का जीना दूभर हो जायेगा. . .

सोचते हुए बारिश के समांतर धागे को देखता हूं. बिजली चमक जाती है. अंधेरा गटक लिया जाता है, उगल दिया जाता है और फिर गटक लिया जाता है. सुम्मि के सुप्त चेहरे की किसमिसी मुसकान और अस्त-व्यस्त कपड़ों में बहकते यौवन को देख एकाएक मौसम के आखिरी आम के आखिरी कतरे की याद आ जाती है. उमड़ कर उसे भुजाओं में समेटता हूं. कुछ ही क्षणों के बाद कांव-कांव. . .सुनाई पड़ती है.

—भोर हो गयी क्या?

सुम्मि के फुसफुसाते ही तीली रगड़ कर घड़ी देखता हूं. पांच और छह के बीच सूइयां बिछुड़ रही हैं. गाड़ी को सरकते देख कभी मिठाइयां फेंक कर पावदान पर लटक गया था. कुछ-कुछ ऐसा ही हो जाता है.

सुम्मि नहीं छोड़ती. स्वाभाविक भी है. छह महीने के बाद पांच रात के लिए आया था. जिसमें पिछली रातें अपवित्रता की ही थीं. और आज. . .

—कुछ रोज रुक नहीं सकते क्या?

—नहीं, कल नाइट-शिफ्ट ज्वायन नहीं करने से आफत आ जायेगी.

—काहे को आयेगी, मेडिकल भेज दीजिए.

—धत् पगली, मेडिकल तो बाबूजी के श्राद्ध में ही खत्म हो गया !

—तो कोई और छुट्टी ले लीजिए, इतने-इतने दिनों के बाद तो आते हैं !

—और कौन-सी छुट्टी! साल भर के पंद्रह पी.एल. और दस मेडिकल तो पहले ही ले लिये. केवल पांचों कैजुएल लीव बाकी थीं. जिसमें वीकली और कंपेंसेट्री ऑफ जोड़ कर चावला साहब की लल्लोचप्पो के बाद एक सप्ताह की छुट्टी का जुगाड़ लगाया. नहीं तो वह भी. . .

—क्या सोचने लगे ? दो-चार रोज ही रुक जाइए न ! सुम्मि फिर आग्रह करती है.

—कैसे रुकूं ? सी. एल. के साथ दूसरी छुट्टी नहीं जुड़ती. और इसके बाद एक रोज का 'लौस ऑफ पे' होने से भी सारी सी. एल. 'लौस ऑफ पे' हो जाती है.

सुम्मि कुछ नहीं बोलती. बाढ़ से चौपट हुई फसलें, इलाज के बिना मां की बढ़ती बीमारी और जवान हो रही ननद की चिंताओं से शायद ग्रसित हो जाती है.

* *

मुझे तैयार होते देख मां गुबार निकालने से अपने को नहीं रोक पाती. स्कूल-कॉलेज, ऑफिस और सेना में मिलने वाली छुट्टियों से फैक्टरी की छुट्टियों की तुलना करके अधिकारियों को कोसने लगती है— मशीनों के साहब मशीन होते हैं. नहीं तो रात-दिन आठ-आठ, दस-दस घंटे काम कराने के बाद रहने के लिए क्वाटर और घर आने के लिए उचित छुट्टी जरुर देते!

—चिंता मत करो मां! कभी हमारे भी दिन आयेंगे.

—अब कब आयेंगे रे? जब बूढ़े हो जाओगे तब? या उनके जैसे अंतिम समय में तुम्हे देखने के लिए तरसती हुई लुढ़क जाऊंगी तब ?

मां बिसूरती और आंसू पोंछती ही रहती है कि मामा आ जाते हैं. ऐसी आफत में इतनी दूर चल कर उनके आने का कारण नानी का मरणासन्न होना और मुझे देखने की इच्छा व्यक्त करना है.

बारह वर्ष पहले मैं मामा के साथ रहता था. हाई-स्कूल की पढ़ाई इन्हीं लोगों के साथ रह कर पूरी की थी. इनके अगाध स्नेह ने मुझे सर्वथा बांध लिया था. मेरे भविष्य की सर्वाधिक चिंता नानी को थी. चार-साढ़े चार बजे भोर में जैसे ही लखनऊ-एक्सप्रेस की घड़घड़ाहट सुनाई पड़ती थी कि लालटेन और पानी लिये वह आ जाती थी और पीठ थपथपा कर मुझे जगाने लगती थी. मगर हाय री हृदयहीनता कि अपनी उसी नानी की शायद अंतिम इच्छा को ठुकरा कर दो घंटा पहले ही सबसे विदाई ले रहा हूं.

बिहार के उत्तरी से दक्षिणी छोर यानी घर से सीतामढ़ी, सीतामढ़ी से पटना, पटना से टाटा और फिर वहां से पंद्रह किलोमीटर दूर जंगल-पहाड़ की गोद में स्थित अपनी फैक्टरी तक की लंबी यात्रा में अनेक सवारियां पकड़नी हैं. उनमें पटना-टाटा एक्सप्रेस, जो रात के नौ बजे खुलती है, छूटी कि सोचते ही मोह के कीचड़ सूख कर झड़ने लगते हैं, और तेजी से सीतामढ़ी की ओर बढ़ने लगता हूं.

* *

बस-स्टैंड पर सोनपुर मेला के यात्रियों की बाढ़-सी उफनती भीड़ को देख माथा ठनक जाता है. मेला-स्पेशल बसों का तांता लगा है. मगर आगे की तीनों बसों में खड़ा होने का भी जुगाड़ नहीं लगता. घबड़ा कर ताकता -झांकता रहता ही हूं कि तीसरी बस की अगल सीट से आयी मुलायम आवाज चौंका देती है— मां... बोई रंजन !

उन्हें पहचानते देर नहीं लगती. उर्मि और दाई-मां हैं. ज्यों ही उनकी ओर सरकता हूं कि खिड़की से हाथ निकाल कर दाई-मां वत्सलता उड़ेल देती है. उर्मि, जो सस्मित आंखों से मुझे देख रही थी, मेरे पहले चलने की बात सुनते ही अटैची खींच लेती है.

टिकट की कतार में नौ वर्ष पहले की घटनाएं याद आती हैं. तब बी. एस-सी. की पढ़ाई पूरी करने मोतिहारी गया था. बाबूजी वहां के सदर अस्पताल में हे क्लर्क थे. हमारा क्वार्टर आमने-सामने था. दाई-मां विधवा हो गयी थीं. और उनके सौहाद्र एवं संघर्ष के प्रति हम लोग आकर्षित हो गये थे. . .

उर्मि अल्हड़ थी. चौदहवीं में आ जाने के कारण

बांस की कोंपल-सी खिल रही थी. किताबी बात पूछने, बंगला की कहानी सुनाने, अपने पकवान की तारीफ सुनने, सुख के फ़ूल पिरोने और दुःख के कांटे चुनने मेरे पास आया-जाया करती थी. मगर ज्यादा दिन नहीं चला था यह सब. मेरी अंतरंगता का जादू उसके अल्हड़पन का हरण कर ही रहा था कि दाई-मां का रांची ट्रान्सफर हो गया था, और 'जोगी मत जा मत जा' गा-गा कर मोहने वाली मोहिनी खुद जोगिन हो गयी थी. . .

बस की भीड़ से निकल कर ज्योंही उर्मि के पास पहुंचता हूं कि संकोच भरी शालीनता के साथ वह बगल में बैठने की जगह दे देती है. हमारे खुलने के पहले ही दाई-मां मुखातिब हो जाती है. बाबूजी की मृत्यु के बारे में उसे ज्योंही बताता हूं कि सन्न हो जाती है. उनकी कम उम्र और तंदुरूस्ती की चर्चा करके सांत्वना देती है. और उनकी जिंदादिली और महानता की बात करते-करते मेरी पढ़ाई-लिखाई, नौकरी और उसके भविष्य के बारे में पूछने लगती है.

एकाएक उसके इकलौते सुकुमार के प्रति जिज्ञासा प्रकट करता हूं. फिर तो काली आंधी उमड़ती है. शिला-वृष्टि हो जाती है. और उन्हें झेलते-झेलते दाई-मां टप्. . .टप्. . .बरसने लगती है.

अपराधी भाव से उर्मि को देखता हूं. सुबह की झील-सी चमकती कुछ क्षण पहले की आंखें धुंधला रही हैं. वह चाह कर भी कुछ नहीं बोल पाती. रह-रह कर थूक निगल कर अपने को संयत कर रही है.

मोतिहारी से जाने के थोड़े ही दिनों के बाद सुकुमार दुर्गापुर की किसी फैक्टरी में ऐप्रेंटस हो गया था. तीन साल की ट्रेनिंग के बाद उसकी बहाली वहीं हो गयी थी. दो साल के बाद वेतन, बोनस, क्वाटर और छुट्टी की मांग को ले कर वहां हड़ताल हुई थी. और शुरू से ही अन्याय का विरोध करने वाला सुकुमार उसमें आगे आ गया था.

मैनेजमेंट के लोगों ने प्रलोभन दे-दे कर उसे फोड़ने की कोशिश की थी. और जब वह किसी भी प्रकार नहीं डिगा था तो धोखा दे कर उसकी हत्या करवा दी गयी थी. . .

कुछ क्षण के मौन-अवसाद के बाद उर्मि ही बताती है.

सुकुमार पर ढायी गयी बर्बरता मुझे देर तक झकझोरती रहती है. उसकी सुडौल काया, दूधिया खिल-खिलाहट, गंभीर तार्किक क्षमता और अपार कर्मनिष्ठता सजीव होती है.

एकाएक दाई-मां के चेहरे पर उभर आये जुड़पित्ती के चकत्ते की ओर ध्यान जाता है. पूछने पर बताती हैं कि वह इन दिनों इससे परेशान हैं. अचानक उभर जाती है. दवा से दबती है. और कुछ ही घंटे के बाद फिर फैल जाती है.

उर्मि दाई-मां को दवा और फ्लास्क का पानी देती है. इसका असर तुरंत देखने को मिलता है. तमाम कोशिशों के बावजूद वह झपकियों से नहीं उबर पाती. हार कर खिड़की और सीट के कोने में सो जाती है.

—तुम तो सरकारी फैक्टरी में हो रंजन दा?

—हां. . . उसे देख कर बरस कर निखरे शारदीय आकाश की याद आ जाती है. मगर यह भाव थिरता भी नहीं कि देर से दबी मेरी विद्रोही भावना को वह ढलान की गेंद बना देती है—तब ठीक है. वहां पगार, छुट्टी और क्वाटर के मामले में धांधली नहीं होगी.

——यह तमाशबीनों की बात है उर्मि! सचमुच प्रौसेस में लाये जाने वाला एसिड मिला पानी दूर से इतना साफ दिखता है कि पी लेने की इच्छा होने लगती है. मगर उसकी जलन वही जानता है जो वहां काम करता है, समझी?

उर्मि नहीं समझती, नादान बच्ची-सी चुपचाप देखती रहती है बस. मैं नहीं रुकता, वहां की धांधलियों और ज्यादतियों के बखिये उधेड़ने लगता हूं.

——मुई बस अब कब खुलेगी?

उर्मि के प्रश्न से चौंक जाता हूं. बारह बजने को हैं. एक घंटा पहले ही उसे खुल जाना था. सोचते हुए सह यात्रियों को देखता हूं. बैठे यात्रियों में से अधिकांश भ्रष्टाचार, मंहगाई, बेरोजगारी, इनके खिलाफ हो रहे आंदोलन और सबके परिणाम के विवाद में उलझे हैं. खड़े लोगों को इसमें उतनी दिलचस्पी नहीं है. वे खीझ कर बस की दीवाल पर मुक्के मारते हैं और जल्दी खोलने की बात कह-कह कर शोर मचाते हैं.

* *

सवा बारह बजे बस खुलती है.

बस एक्सप्रेस है. इसीलिए रास्ते में चाहे जितनी भी भीड़ मिले यहां से घाट की पचहत्तर मील की दूरी छह घंटे में तय कर ही लेगी. सब मिला कर सात बजे वाला जहाज पकड़ जाना चाहिए. सोचते हुए पल-पल पीछे छूट रहे अपने इलाके को देखता हूं. मोह फिर उमड़ता है. मगर उर्मि डूबने नहीं देती. मोतिहारी से जुड़ी यादों से ले कर अपनी पढ़ाई-लिखाई, आज की शिक्षा पद्धति, इसमें व्याप्त खामियां और ऐसी ही कितनी बातें करती रहती है.

यात्रियों को ऊंघते देख उर्मि की आंखों के डोरे लाल हो जाते हैं. पलकें झपकती हैं. लड़खड़ा कर उठती हैं. और फिर झपक जाती हैं. दोलते-दोलते दाई-मां की ओर झुकती है. फिर बीचमें आती है. और भहराते-भहराते अंत में मेरे कंधे पर आ जाती है.

हवा के झोंके में बहक-बहक कर उसकी स्याह लटें मेरी कनपटी को गुदगुदाती रहती हैं. और इस गुदगुदाहट की सिहरन में भी मैं कब सो जाता हूं, पता नहीं चलता!

बस के रुकने और यात्रियों के शोर से आंखें खुल जाती हैं. उर्मि छिटक कर संभलती है और दाई-मां से तबियत की बात पूछ कर चायवाले को हाथ के इशारे से बुलाती है.

यह मुजफ्फर पुर बस-स्टैंड है. दिन के तीन बजे हैं और घाट पहुंचने के लिए अभी आधी दूरी तय करनी है. इसलिए शाम के जहाज के प्रति दाई-मां निराश है. उर्मि को चिंता नहीं. तीन-चार घंटे को वह कम नहीं मानती. मेरी स्थिति बीच की है. सचमुच आशा या निराशा अनुभव की सांद्रता से प्रभावित होती है.

हाजीपुर आते-आते छह बज जाता है. अब धैर्य नहीं रख पाता. उतर कर ड्राइवर से मिलता हूं. अपनी मजबूरी सुना कर उसे प्रभावित करता हूं. और दिलासा पा कर बस में फिर आ जाता हूं. मेरी सीट पर एक युवक है. पास आते ही उर्मि उसे हिकारत से देखती है— उठिए, आदमी आ गया!

सुनते ही वह मुंह फेर कर खड़ा हो जाता है. उसे चोरी-चोरी देख कर मुसकराती है. दाई-मां से सट कर मुझे शरारत भरी आंखों से देखती है. हिचकोले खा कर मेरी ओर दोल जाती है. मुझसे रहा जाता. अभी का वाक्य दोहरा कर मीठी लेता हूं. समझते ही वह शरम से लाल हो जाती है.

गंडक-पुल के पास बस फिर रुक जाती है. सवारियों का तांता है. सबके आगे लालबत्ती है. देखते ही सूखती दलदल में फंसी मछलियों की हो जाती है.

जहाज खुलने में केवल पचीस मिनट बाकी हैं. पहुंचने के लिए पुल के उस पार के मेले की अभी पार करनी है. मुझे पीला होते देख दाई-मां बंधाती है. कहती है कि जहाज प्रायः दस-बीस लेट से खुलता है और तिस पर तो यह मेला का है. झुंझलाहट बढ़ रही है——इस 'धनवे ब्रिज' बनवाने पर, आ रही सवारियों की लंबी कतार पर, गंडक की धार पर, और खुद अपने आप पर भी! दस बाद हरी बत्ती जलती है. मगर तांगे वाले आगे हैं. जिसके पीछे-पीछे बस सरक रही है.

पुल के बाद सोनपुर मेले का जमघट. जाम जाम. मेला के विस्तार पर उर्मि की चहचहाट. की चुप्पी. और मिनट की सुई, सन्यानाशी भीड़, ड्राइवर की भरपूर कोशिशों को देखता हुआ सबसे अलग पड़ा म.

पहले जा घाट. एक किलोमीटर दूर डेक. जहाज खुलने में मात्र दो मिनट शेष. इन्हें छोड़ने के कोई रास्ता नहीं. फिर भी हिचकिचाहट.

——तुम बढ़ो रंजन, हम लोग. . .

दाई-मां प्रोत्साहित कर के उबार लेती है. की बगल से कूद कर उनके सामने आ जाता हूं. अटैची बढ़ा कर बुझी आंखों से देखती है. व्यक्त- भाषा में कुछ कहती है. मैं कुछ नहीं सुनता. इतनी से दौड़ने लगता हूं कि कॉलेज के दिनों की रेस जाती है. सीटी!. . .और तेज हो जाता हूं. मगर जेटी पर उछलता हूं कि वही कर्कश सीटी!. . .

छप्-छप्. . . . छप्-छप्. . . छप्-छप्. . .

जहाज किनारा छोड़ चुका है— इतना कि नहीं सकता! आंखों के आगे अंधेरा हो जाता है. छंटने पर अपने को गार्ड-रेल के पास पाता हूं. सारा पसीने से तर है. दमे के रोगी सा हांफ-हांफ कर हूं. आंखें अभी भी क्षण-क्षण दूर हो रहे जहाज हैं. लहरें उभर रही हैं. चारों ओर पसर रही हैं. और से टकरा-टकरा कर लगातार कह रही हैं—और

और!. . . और!. . .

और, कौन-सा और?

. . .ठीक है, सबेरे पटना-टाटा बस पकड़ बजे शाम तक पहुंचा ही देगी. टाटा-खड़गपुर शाम के सात बजे हैं. करीब आठ बजे फैक्टरी

जाऊंगा. जो भी हो नाइट-शिफ्ट पकड़ा ही जायेगा. सोच ही रहा हूं कि कंधे पर हाथ रख कर उर्मि चौंका देती है.

—क्या सोचते हो दादा?

मैं कुछ नहीं बोलता. अपना उतरा चेहरा झुका लेता हूं. आंचल से पसीना पोंछ कर वह मेरी चेष्टा को सराहती है, और सांत्वना देते-देते कर्मयोग की बात कर बैठती है.

—तुम्हारे प्रयत्न में कोई दोष है रंजन दा?

—नहीं.

—तो फिर काहे पछतावा? चलो मां प्रतीक्षा कर रही है! बोल कर बाहें थाम लेती है. जेटी से बाहर आते ही गहन अंधकार में घिर जाते हैं. सुबह से आकाश नहीं देखा. अभी गर्दन तनी है. चारों ओर स्याह बादल लटके हैं. हवा सिसक रही है. मौसम भयावह हो रहा है. बिजली के हठात चमकने और बादल के गरजने पर उर्मि सट जाती है. रात इसी तरह सुम्मि भी सट जाती थी. और आज ?...

दाई-मां जिस हलवाई की दुकान में अधीर हो रही है, वहां पहुंचते-पहुंचते बारिश शुरू हो जाती है. मुझको देखते ही वह खिल कर बुझ जाती है. उसकी दिलासा भरी बातें खत्म भी नहीं हुई कि हलवाई टोक देता है और अपना गठिया रोग तथा समय की विकरालता की बात करके हमें जल्दी ही कुछ खा-पी लेने का आग्रह करने लगता है.

खाने के पहले ही बारिश थम जाती है. मगर हवा शांत नहीं हुई, भयावहता बढ़ाती हुई सांय-सांय बह रही है. दाई-मां जाड़ा नहीं सह पाती. हाथ-मुंह धो कर चूल्हे के पास बैठ जाती है. बाद में मैं भी और उर्मि भी.

एकाएक दाई-मां को दवा की बात याद पड़ती है. गोलियां निगलने के बाद वह हम लोगों के पास नहीं बैठ पाती. कंबल ओढ़ कर बेडिंग पर सो जाती है. सारी चिंताओं से ऊपर आ कर उर्मि की ओर देखता हूं. आग की आंच में वह और लाल दिख रही है. हथेलियां सेंक कर गालों और कानों को गरम करती है. और आंखें फैला कर शरारत से देखने लगती है. यही शरारत सुम्मि के चेहरे पर भी थी. हथेलियां सेक कर एक बार मेरे गालों को भी ढंक दिया था. तभी मां आ गयी थी और शरम के मारे वह पानी-पानी हो गयी थी.

—एक बात पूछूं रंजन दा? सुम्मि फिर छूट जाती है.

—हां, हां, पूछो न !

—कभी हमारी याद आती थी? उसकी फुसफुसाहट की गरमी गालों तक पहुंच जाती है.

—अनेक बार. तुम्हारी "जोगी मत जा" की [illegible]ली तान तो आज ही सुनाई पड़ी थी, घर से चलते वक्त! कह कर गंभीर हो जाता हूं.

—सचमुच वे भी क्या दिन थे रंजन दा! चहक कर स्वप्निल आंखों से बांधती ही है कि जहाज की सीटी चौंका देती है. मेला के दिनों एक बड़ी भीड़ ड़ कर जहाज करीब-करीब खाली ही लौट जाता है. सी खालीपन से जुड़ने के लिए झटपट तैयार होते हैं.

जाड़ा बहुत बढ़ गया है. फिर भी दवा के प्रभाव से

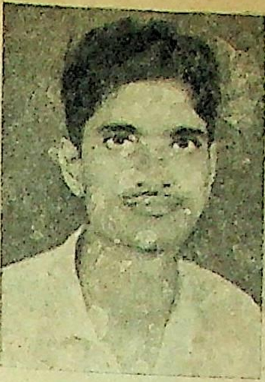

शैलाभ (जन्म : २१ अप्रैल, १९४३, सीतामढ़ी, बिहार, के एक अत्यंत पिछड़े गांव में) किसान, शिक्षक, फैक्टरी - आपरेटर—अनेक तरह के कार्य-अनुभव ले चुके हैं. संप्रति फ्यूएल रिसर्च इंस्टीट्यूट, धनबाद के प्रकाशन-विभाग से संबद्ध.

जहाज के खुलते ही दाई-मां सो जाती है. उर्मि को दांत किटकिटाते देख अपनी आधी चादर उसकी पीठ पर फैला देता हूं. धीरे-धीरे वह मुझसे बिल्कुल सट जाती है. उसके बदन की गरमी सुम्मि की याद दिला देती है. मगर फिर वही बात :

—रंजन दा! अपनी तेज सांसों को रोक कर वह फुसफुसाती है.

—हूं ऽ . . .

—आज की रात हमारे क्वाटर में ही काट लो न! क्योंकि बस के लेट पहुंचने से सारी मेहनत बेकार हो जायेगी.

—काट तो लेता, मगर. . .

—ओह वही अगर-मगर ! परसों अपने बॉस से मिलना और नाराज हो तो कह देना कि 'समटाइम्स समथिंग गोज बियोंड कंट्रोल!' समझ गये न ?

कह कर उर्मि कंधे पर माथा टेक देती है. लंबे-लंबे बाल मेरी पीठ पर दोल रहे हैं. उनकी मादक गंधों में बह कर लड़खड़ाऊं-लड़खड़ाऊं कि चावला साहब की जलती आंखें समय पर ड्यूटी ज्वायन कर लेने की याद दिला देती हैं. धार की ओर मुंह फेरता हूं. लहरें बिखर कर मिट रही हैं. पटने का घाट अब पास ही है. और आधी धार की परिक्रमा करके जहाज उधर बढ़ रहा है.

घाट से बाहर आ गये हैं. समय की विकरालता को देख दाई-मां भी नहीं छोड़ रही, बार-बार ममत्व भरा आदेश दे रही है. मगर ज्योंही सी. एल. खत्म हो जाने की बात करता हूं कि ठंडी पड़ जाती है.

—एक बार सुकुमार भी सी. एल. में आया था. दूसरे दिन राखी थी. मगर लाख रोकने पर भी चला ही गया था. याद दिला कर दाई-मां उर्मि को समझाती है.

बिछुड़ने के समय उर्मि छलक जाती है. भावुकता नहीं दबा पाता. रूमाल निकाल कर उसकी आंखें पोंछ देता हूं. पत्र लिखना, कह कर उर्मि हाथ हिलाती है.

रिक्शा भागा जा रहा है— पटना बस -स्टैंड की ओर—

★ ★

सारी रात बस स्टैंड में ठिठुरता रहता हूं. भोर में बस खुलती है. कहीं कोई अवरोध नहीं, सो बस निर्बाध भाग रही है. सोया शहर, अलसाया गांव, हवा से जझ

the merry world of Shreelon & Shreester

the yarns that make beautiful fabrics

श्रीलॉन नायलॉन यार्न– जानकार
महिलाओं की मनमोहक साड़ियों और मनोरम ड्रेस मटीरियल्स
(पोशाकों के कपड़े) बनानेवाला यार्न (धागा)
श्रीएस्टर पोलिएस्टर यार्न– तरक़्क़ीपसन्द पुरुषों की
आधुनिकतम सूटिंग और शर्टिंग बनानेवाला यार्न (धागा)
इसलिए जब हो श्रीलॉन और श्रीएस्टर का मिलन,
तो छा जाता है उमंगभरी ख़ुशियों का सावन!

श्री

बनानेवाले: श्री सिन्थेटिक्स लि., नौलखा, उज्जैन
सेल्स ऑफ़िस: श्री निवास हाउस, एच्. एम्. सोमानी मार्ग, बम्बई - ४०० ००१

JAISONS

झ कर थके-हारे पेड़-पौधे, खेतों में गिर कर पानी में डूबती फसलें,. . . सब पीछे छूट रही हैं.

कोडरमा आते-आते जोरों की भूख लग जाती है. पास के होटल में खा कर वापस आ जाता हूं. ठीक समय पर बस धड़धड़ाने लगती है. दो-तीन बार जम्हाई ले कर बाहर देखता हूं. और देखता हूं तो देखता ही रहता हूं—मनोरम घाटियों की चढ़ाई-उतराई—दिगंत तक फैली नैसर्गिक सुषमाएं— छोटी-बड़ी पहाड़ियां—हरे-भरे पेड़—धरती सुंदर है, बहुत सुंदर!

* *

ठीक चार बजे बस रांची छोड़ देती है. अब छह बजते-बजते टाटा पहुंच ही जाऊंगा. नाइट-शिफ्ट की ड्युटी. सो सारी रात जागना होगा. सोचते ही कुछ और सो लेने की बात सूझती है. और फिर कब सो जाता हूं, पता नहीं चलता.

—फिस्सडऽऽऽ. . .

अचानक आंखें खुल जाती हैं. बाहर घुप्प अंधेरा है. कुछ भी समझ में नहीं आता. बस रुक गयी है. यात्रियों के साथ मैं भी बाहर आता हूं. बस का पिछला चक्का पंक्चर हो गया है. कोई टैक्सी भी नहीं आ रही.

चक्का बदलने में पचीस-तीस मिनट लग जाते हैं. बस तेजी से नहीं चलायी जा रही. टाटा आते-आते सात बज जाते हैं. टैक्सी से स्टेशन आता हूं. खड़गपुर जाने वाली पैसेंजर गाड़ी खुल गयी है. प्लेट फार्म के अंतिम छोर तक दौड़ कर निराश हो जाता है. नहीं, निराश नहीं होना! क्या हुआ जो और सवारी नहीं, अढ़ाई-तीन घंटे में दस मील पैदल तो चल सकता हूं! चल तो सकता हूं,मगर जाड़े की अंधेरी रात है. आसमान में बादल टंगे हैं. बूंदा-बांदी होने लगती है. जंगली इलाका है. हाथी, भालू, सूअर, सांप वगैरह की काली छायाएं मंडराती रहती हैं. तीर-कमान से बात करने वाले आदिवासी लूटेरे हैं. कहीं मार कर फेंक दिया तो लाश मिलनी भी मुश्किल हो जायेगी. . .नहीं, जान सलामत तो सब सलामत. . .

स्टेशन की ओर बढ़ने का निर्णय लेता हूं कि चावला साहब की घूरती आंखें और मशीनी बातें फिर कौंध जाती है—देखिए मिस्टर, स्पेशल पावर से एक साथ पांचों सी. एल. तो ग्रांट कर दिया, मगर समय पर टर्न-अप होने की बात आप जानें! इन मामलों में मैं स्ट्रिक्ट डिसीप्लीनेरियन हूं. . .

मुड़ कर रास्ते की ओर फिर देखता हूं. नानी, मां, सुम्मि, उर्मि. . . व्यंग्य करती दिखती हैं. अब सब कुछ ईश्वर पर. सोच कर बढ़ जाता हूं.

साढ़े-सात होने को हैं. खौफनाक घाटी का अनाथ यात्री बन गया हूं.तमाम सतर्कता और सावधानी के बावजूद ठोकर लगती रहती है. मगर चोट चोट नहीं है. दर्द दर्द नहीं है. केवल अभियानी नशा है अभी. इसके प्रताप से चला जा रहा हूं. जंगल-झाड़ी, नदी-नाले, खेत-पथार. . .पीछे छूट रहे हैं. . .शायद भटक रहा हूं. हां, बहुत देर से भटक रहा हूं.

अपने से राह खोज-खोज कर चला जा रहा हूं. झाड़ी खड़खड़ाती है तो पत्थर उठा लेता हूं. किसीके होने का भ्रम होता है तो अकड़ कर तैयार हो जाता हूं. कुछ टेढ़ा-मेढ़ा पड़ा दिखता है तो फांद जाता हूं. ऐसे ही फांदते वक्त बबूल की झाड़ी में उलझ जाता हूं. देर तक कांटे निकालने के बाद मुक्ति मिलती है.

सनसनाता हुआ चला जा रहा हूं कि सत्यानाशी बरसात शुरू हो जाती है. भीगते-भीगते दौड़ रहा हूं. कपड़े कीचड़ से लथपथ हो गये हैं. मील अब दूर नहीं.

एक अव्यक्त आत्मतृप्ति के साथ फैक्टरी के गेट के पास खड़ा हो जाता हूं. नेपाली पहरेदार आग ताप रहा है. आहट पाते ही बंदूक ले कर तन जाता है और पहचान कर हक्का-बक्का होते कहता है— बाबू आप!

—हां यार, गेट खोलो, ड्यूटी ज्वायन करनी है!

—ड्यूटी! आप अभी ड्यूटी पर जायेगा साहब?

—हां, अभी देश से आ रहा हूं.

—सो तो है, मगर इस वक्त अंदर जाने देने का आर्डर नहीं है साहब!

—अरे यार, साढ़े ग्यारह ही तो बजे हैं.

—नहीं साहब, आपको अब अपने साहब को फोन करना होगा. कह कर वह चोंगा बढ़ा देता है. अपने सेक्शन के लिए डायल घुमाता हूं.

—हैलो, श्रीवास्तव स्पीकिंग ! अलसायी आवाज सुनाई पड़ती है.

—नमस्ते सर, मैं रंजन बोल रहा हूं! भरसक गला साफ करके बोलता हूं.

—ओ, कहां से बोल रहे हैं?

—फैक्टरी गेट से सर, मुझे ड्यूटी ज्वायन करनी है.

—नहीं भाई, चावला साहब ने फोन करके ऐबसेंटी-रिपोर्ट ले ली है.

—ऐसा मत कहिए सर, जान की जोखिम उठा कर अभी आ रहा हूं.

—आई फील मिस्टर रंजन, मगर अब तो आपको उनसे ही इजाजत लेनी होगी.

निराश हो कर चावला साहब को फोन करता हूं. कटघरे में खड़े निरपराध कैदी की तरह छाती धुक धुका रही है. थूक गटक-गटक कर अपने को तैयार कर रहा हूं.

—हू स्पीकिंग ? तमतमायी आवाज सुनाई पड़ती है.

—पारडन सर! फैक्टरी-गेट से मैं रंजन बोल रहा हूं.

—कहिए, क्या बात है?

—सर, जहाज और गाड़ी के नहीं पकड़ पाने से मैं अभी आ रहा हूं! प्लीज, ड्यूटी ज्वायन करने की परमीशन दे दीजिए !

—ओ. . . तो यह बात है! आई विल सी यू टु मौरो !

—सर. . .!

—शट अप. . . नॉनसेन्स!

चोंगा बेजान हो गया है.मैं फिर नंबर डायल करना चाहता हूं लेकिन डायल पर मेरी अंगुलियां कांप रही हैं. . . □□□

१०, पुराना होस्टल एफ. आर. आई. धनबाद

दौड़ • सोमेश भरत

गौरव, एक बात कहूं!...आज हमारे पास इतना समय ही कहां, कि किसी की सुधि ले सकें, सुबह से शाम तक सिर्फ पेट के लिए दौड़ते रहते हैं...एक मशीन की तरह...जिसकी कभी भी सफाई नहीं होती.

अब हम एक-दूसरे के समानांतर बैठ गये हैं. हमारे बीच कांच की मेज है. मेज के बीचोंबीच ऐश्ट्रे रखी है. मैं मेज पर हाथ रखे हूं. और वह सोफे की पीठ का सहारा लिये, सोफे के ऊपर हाथ पसारे है, हम दोनों चुप हैं.

—हम शायद दूसरी बार मिल रहे हैं ना....कालेज छोड़ने के बाद ?

वह इंडिया किंग्स की डिब्बी निकालते हुए पूछता है—सिगरेट पीते हो?

—हां... लेकिन चारमीनार.

वह एक सिगरेट निकालते हुए, डिब्बी मेरी ओर बढ़ाता है, लेकिन मैं उदासीन-सा, उसकी ओर देखते हुए कह देता हूं—प्लीज...आदत मत खराब करो. और अपनी चारमीनार की डिब्बी से सिगरेट निकाल लेता हूं. हमारी सिगरेटें एक ही तीली से जलती हैं.

—पिछली बार, जब तुम मिले थे...अभी से.... कुछ तंदुरुस्त थे. पिछली और आज की मुलाकात के बीच क्या करते रहे... नहीं पूछूंगा...और यह भी कि आज क्या कर रहे हो. जानता हूं... तुम जो कुछ भी कर रहे हो... वह... तुम्हारे लिए नहीं था... लेकिन बड़ा अजीब-सा लगता है विशाल... कि आज जीना कितना कठिन हो गया है !

उसने बढ़ कर ऐश्ट्रे में सिगरेट की राख झाड़ी है. बैरा आ गया है..

—क्या पियोगे ? वह पूछता है.

—कुछ भी.

—टू कोल्ड कॉफी, वह आर्डर देता है. मैं मेज की ओर देख रहा हूं.

—तुम इन दिनों कैसे रहे? मैं उससे पूछता हूं.

—ठीक ही रहा.... बस. सुखी हूं.

वह सुख शब्द का इस्तेमाल करता है, सुख... ? सुख किसे कहते हैं... आज तक मैं न जान सका हूं. स्कूल के बाद कालेज और कालेज के बाद इन सड़कों पर बस यही सफर... इसी सफर को तय करने में उम्र के बत्तीस साल गुजर गये हैं... लेकिन हूं... शुरू से आखिर तक खाली का खाली ही.

—घर जाते हो? हम दोनों एक दूसरे को देख रहे हैं.

—नहीं...मैं बेहद धीरे से कहता हूं.

—क्यों?

—उन सबके लिए एक तरह से बेकार हूं.

—कब से नहीं गये? वह सिगरेट बुझाते हुए पूछता है.

—करीब पांच-छह सालों से. मैं भी सिगरेट बुझा देता हूं.

—शादी की ?

—जरूरत नहीं समझी.

—पिछली बार जब मिले थे, तो तुमने बताया था तुम... आई. ए. एस. में बैठ रहे हो... बैठे थे ?

—हां, लेकिन बेकार रहा.

—क्यों...?

—मुझसे कम नंबर वाले सिलेक्ट हो गये, मैं नहीं हुआ... क्योंकि वे सब 'शिड्यूल्डकास्ट' वाले थे.

बैरा कोल्ड कॉफी के गिलास रख गया है. स्ट्राज हम दोनों की ओर मुंह किये, गिलास में खड़े हैं. हम इस विराम से चुप हो जाते हैं.

एकाएक कमीज का कालर गड़ने लगती है, पसीने से कड़ा-सा हो गया है—सोचता हूं, तभी गौरव जैसे लोग सूती कमीज नहीं पहनते. शायद उन्हें, ऐसी कमीज पहनने से परेशानी होती होगी.

हम दोनों ने स्ट्राज होठों से लगा लिये हैं.

—आज कल तुम कहां हो? मैं उससे पूछता हूं.

—अब यहीं आ गया हूं, फाइनेंशियल एडवाइजर हो कर.

—इन सालों में तुमने क्या किया? वह पुनः पूछता है.

—कुछ नहीं... सिर्फ भटकता रहा.

—क्या तुम समझौता नहीं कर सकते ? वह सिगरेट जलाते हुए पूछता है.

—यही तो बाकी लोग भी चाहते थे.

हम फिर चुप हो गये हैं. हम धीरे-धीरे कॉफी सिप करते हैं. कुछ पलों के बाद मैं उससे पूछता हूं—गौरव, समझौता न करने जैसी भावना आदमी को क्यों भटका देती है ?

रघुराय •

मैं देख रहा हूं, वह चुप है. जानता हूं उसके पास इस तरह का कोई अनुभव नहीं.

—जिन्हें अपने आप से प्यार है वह भटकते हैं विशाल, और जिन्हें पैसे से प्यार है, वे एक जगह स्थिर रहते हैं. वह अचानक बोल पड़ा है.

—सही माने में, कहीं स्थिरता नहीं गौरव. . . सभी दौड़ते हैं. मेरे जैसे भटकने के लिए दौड़ते हैं और तुम्हारे जैसे सिर्फ थकने के लिए.

हम दोनों ने गिलास खाली कर दिये हैं.

—हम दोनों के तबके में कितना फर्क हो गया है गौरव. . .तुम पेट्रोल जलाते हो और कार पर चलते हो. . . और मैं. . . अपना खून जलाता हूं, पैदल चलता हूं, तुम ऊपर से नीचे देखते हो, और मैं नीचे से ऊपर.

—नहीं विशाल, फर्क शब्द को मत इस्तेमाल करो... फर्क शब्द के लिए, आज के युग में कोई जगह नहीं, आज के युग में हर वर्ग, अपने से नीचे वाले वर्ग का शोषण करता है. एक बात और विशाल. . . आज जरूरतें, अपनी सीमा पार कर चुकी हैं. उन्हें बटोरने के लिए हर तुम्हारे जैसे को, मेरे जैसा बनना पड़ता है.

—क्या तुम्हारे जैसा बनने के बाद भी जरूरतें बटोरी जा सकती हैं? नहीं गौरव. . .नहीं. जरूरतें सिमटने से पहले और फैल जाती हैं, तुम उन्हें समेटते रहोगे. . . वे फैलती जायेंगी. . . कैसा सांप-सीढ़ी जैसा खेल है यह! नंबर चढ़ते जाओ, और सांप तुम्हें डंसता जायेगा.

★ ★

आज एक अर्से बाद गौरव मिल गया है. गौरव पहले जैसा ही है, जरा भी नहीं बदला. कालेज के जमाने में भी अक्सर, पिक्चर, रेस्ट्रां, खींच ले जाया करता था. इसका एक कारण भी था कि हम अपनी-अपनी सोचने की मंजूषा का विनिमय कर लें. कलेज में, हम इस तरह बात नहीं कर पाते थे. कुछ मेरे मित्र, कुछ उसके मित्र, विचारों में असमानता लिये, लेकिन मैं और गौरव हमेशा एक जैसे रहे—फर्क सिर्फ इतना ही था कि वह हर स्थिति से समझौता कर लेता था. और मैं. . . अकड़ कर रहता था.

—तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं? उससे पूछता हूं.

—दो बच्चे, वाइफ और. . . मैं.

बैरा बिल रख कर चला गया है. वह पल भर के लिए बिल की तरफ देखता है. मैं अचानक अपनी धूल से भरी, हवाई, जोड़ लगी चप्पल निहारने लगा हूं. नजरें, उसके काले, चमकते हुए जूतों पर जाती हैं. तभी अंदर कुछ जकड़ने-सा लगता है.

उसने बिल के नीचे दस का नोट दबा दिया है. हम पल भर के लिए एक-दूसरे को देखते हैं. लेकिन नजरें तुरंत ही झुक जाती हैं.

—विशाल. . . आखिर तुम. . . इसी तरह, कब तक भटकते रहोगे. . . क्या कोई सीमा हो सकती है?

—जब तक पूरी तौर पर थक नहीं जाता. . . यह उससे कह तो गया हूं, लेकिन कहते-कहते लगता है, जैसे अब वाकई थक गया हूं. . . शायद पूरी तौर पर ही.

—पूरी तौर पर थक जाने के बाद कुछ कर सकोगे?

सोमेश 'भरत' (जन्म: १९५५) के पात्र कायर नहीं हैं. वे जीवन को सही माने में जीते हुए आगे बढ़ने में थक गये हैं. इन्होंने अपने पात्रों की उसी कातर थकान को अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है.

—हो सकता है. हां. . . शायद नहीं भी. . . लेकिन.. आगे कहते-कहते रुक गया हूं. एहसास होता है, जैसे कोई लंबी-सी थकान, मेरे अंदर उभर आयी है. एक दम लोहे जैसी, जो मुझे दबा रही है. हम दोनों अपलक एक-दूसरे को देख रहे हैं. वह शायद आगे के शब्द सुनना चाहता है और मैं कुछ कह नहीं पा रहा हूं.

बेरा बिल उठा ले गया है.

—आज भी अक्सर, कालेज के दिन याद आते हैं, वह जोश भरी शामें, भविष्य को बनाने वाले सपने, खुल कर हंसने वाली आवाजें. . .

—नहीं गौरव. . .वे दिन मत याद दिलाओ. वह सब मैं आठ-दस साल पीछे छोड़ आया हूं. एम. ए. वाला विशाल पता नहीं कब का बिखर चुका है. पता नहीं कब का मर चुका है. बस. . .अब तो यही विशाल है जो तुम्हारे सामने बैठा है. कहते-कहते अचानक लगने लगा है कि आंखें छलक आयी हैं. वह मेरी ओर देख रहा है. मैं नजरें झुका लेता हूं.

बैरा बचे रुपये मेज पर रख कर खड़ा हो गया है. वह एक रुपया छोड़ कर बाकी तीन रुपये पर्स में रख लेता है.

हम दोनों साथ ही बाहर निकलते हैं. एकबारगी लू का झोंका हमसे टकराता है.

—ओफ. . .! कितनी गर्मी हो गयी है? वह कहता है.

मैं चुप रहता हूं.

—कहां आओगे? वह पूछता है.

—घर (?) ही जाऊंगा. मैं कहता हूं.

—बैठो, मैं छोड़ दूंगा. वह कार का दरवाजा खोलते हुए कहता है.

—नहीं. . . तुम जाओ.

वह पल भर के लिए मुझे देखता है. मैं दूसरी ओर देखने लगता हूं उसकी कार स्टार्ट होती है.

—अच्छा विशाल. . . भूलना मत कि. . . मैं हूं.

वह अचानक हाथ मिलाता है.

उसकी गाड़ी तेजी से गुजर जाती है. कुछेक पल तक ठिठका-सा खड़ा रहता हूं.

अब कदम धीरे-धीरे बढ़ने लगे हैं.

—आखिर कब तक मैं, इसी तरह भटकने के लिए दौड़ता रहूंगा? □□□

४१६, [illegible] एरिया, फजल गंज, कानपुर

जंगल में

• ज्ञान चतुर्वेदी

उसके दबंगई से खटाखट उठते कदम गली तक आते-आते घिसटने लगे थे और उस अंधियारी गली क ऐन अंतिम छोर तक पहुंचते-पहुंचते लगभग रुक गये ं. सामने ढीला-ढाला दरवाजा था. वह एक पल तो जबजाती नाली के ऊपर पड़े पटिये पर पैर टिकाये नेचेष्ट-सा खड़ा रहा, फिर उसने आहिस्ता से, सतर्कता-र्वक दरवाजे की चौड़ी संध में से अंदर झांक कर स्थिति का जायजा लिया. बरामदे में मां और बाबूजी बैठे गुरसी की आग ताप रहे थे. धधकते कोयलों की आग से फैलते क्तिम प्रकाश के एक छोटे-से दायरे में स्थित बाबूजी का हेरा बरामदे के जीर्ण-शीर्ण टीन से टंगे धुंधुवाये बल्ब की पीली रोशनी के बैक ग्राउंड में कैसा लग रहा था! बाबूजी दरवाजे की ओर ही ताक रहे थे. हो सकता था, उन्होंने उसे देख लिया हो.

वह तेजी से हटकर गली के अंधेरे कोने में छिप-सा गया. उसे ताव आ रहा था—आखिर ये लोग उसे पहल-वान क्यों समझे हुए हैं. जरा-सी बात उसे बताने के लिए दोनों रतजगे पर तुले हैं! उसने सोचा—यदि इन्हें यह मालूम हो जाये कि मुझे सारी घटना शाम को ही मालुम हो गयी थी और इसीलिए मैं रात इतनी देर से घर लौट रहा हूं, तो!

वैसे बात जरा-सी तो खैर नहीं थी, परंतु ऐसी भी नहीं थी कि उसे इस तरह ताना जाये. फिर जमाना भी ऐसा भेड़ियाधसान आ गया है कि पचीसों बातें सोच कर भी चलना पड़ता है. उसने कोट की जेब में पड़े हाथों को और भी जोर से भींच लिया था. प्रश्न यह था कि फिलहाल क्या किया जाये. सोचा था, रात देर से घर लौटने पर सब सो चुके होंगे और धीरे-से किवाड़ खुलवा कर वह सो जायेगा. तब सुबह देखा जाता जो होता.

पर अब तो रात खराब हो जाने की संभावना पैदा हो गयी थी. फिर बाबूजी से वही सारी जानी-सुनी घटना नये सिरे से विस्तार से सुनना कितना त्रासद, बोर और असह्य होगा! एकबारगी तो उसका मन हुआ कि बकटुक भाग कर बेसबब रात भर शहर की सड़कों पर घूमता रहे. . .वे सड़कें,जो चमकदार हैं और गली के अंधियारे को भुलाये रहती हैं और जहां कोई उससे कोई अपेक्षा नहीं रखता.

अंदर बाबूजी क्या कर रहे होंगे अभी? वह जानता है कि बाबूजी शाम से अभी तक मां पर अपना यह विश्वास पचीसों तरीके से प्रकट कर चुके होंगे कि जो हो गया, सो हो गया, परंतु अभी शैलेंद्र आ कर एक-एक से हिसाब बराबर करेगा. कोई जंगल का राज थोड़े ही है! इधर उसकी तीव्र इच्छा हो रही थी वह चीख कर कहे कि

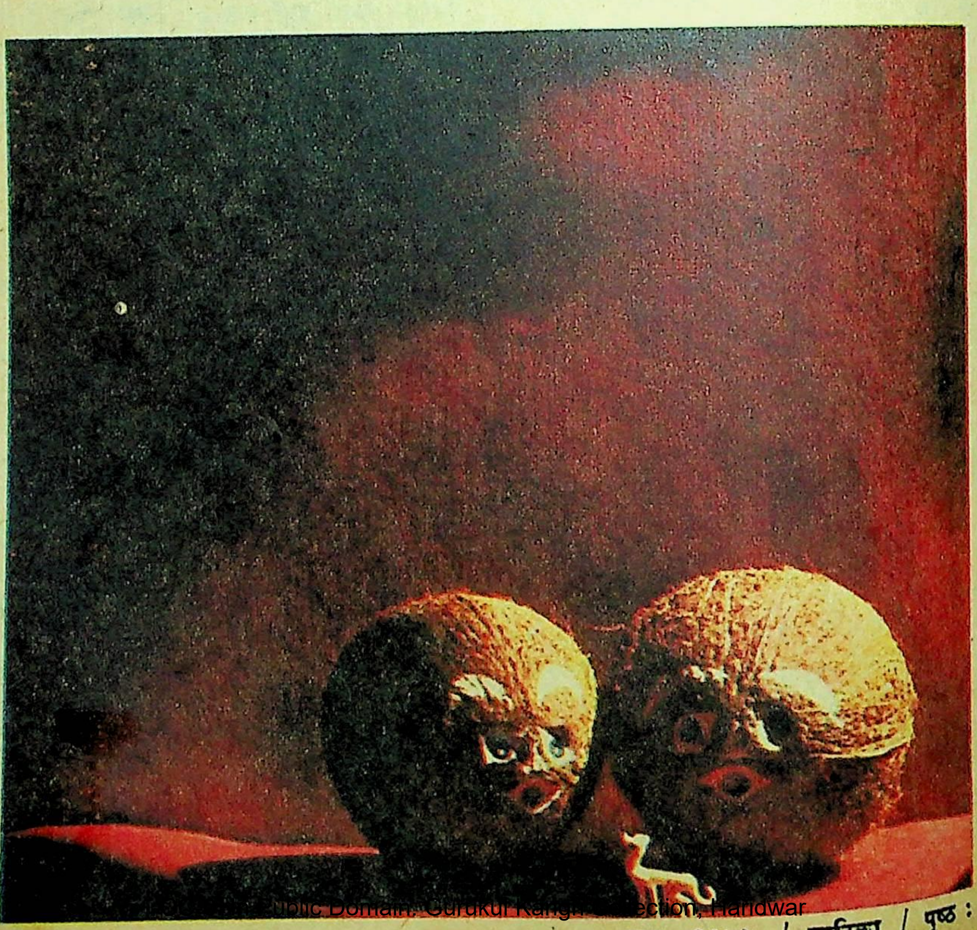

• वी. जी. दलाल

बाबूजी, जंगल का ही राज है, और भाग निकले. क्या किया जाये, उसने सोचा.

* *

दरवाजा मां ने खोला था. ढीले-ढाले बैठे पिताजी एकाएक सतर्कतापूर्वक बैठ कर तापने लगे थे. वह तिरछी नजरों से उसे ताक रहे थे. उसे लगा कि बात कह डालने से पूर्व, बाबूजी, बेवजह नाटकीयता उत्पन्न कर रहे हैं. बाबूजी चेहरे से अत्यंत निर्विकार बने जा रहे थे, परंतु फिर भी कुल मिला कर बेचैनी का एक पिंड नजर आ रहे थे. वह जान रहा था कि यदि थोड़ी देर भी इनके सामने रहा, तो ये अपनी बात कह डालेंगे.

वह तेज कदमों से, यथासंभव सहजता जताते, रसोईघर में घुस गया, जहां मां पहले ही उसके लिए खाना लगा रही थी. वैसे मां का यूं खाना लगाने लग जाना उस स्थिति से बचने का प्रयास था, जो बरामदे में बाबूजी और उसके बीच बात चल निकलने पर उपस्थित हो जाती. परंतु बात फिलहाल टल गयी थी. उसे एक हिंसक प्रसन्नता की अनुभूति हुई. बाबूजी को बात कह डालने में देर लग रही थी और वह परेशान हो रहे होंगे. अच्छा ही था. उसकी नींद खराब करने वालों को इतना भी कष्ट न मिला, तो क्या फायदा!

वह मां को खाना परोसते हुए देखने लगा. मां के उस भांय-भांय करते वीरान, भावहीन-से चेहरे पर उसे पचासों चेहरे उभरते दीखते रहे. . .सभी उदास, थके और किसी भयावह आगत की आशंका के भय से आतंकित-से. मां चुप थी. उसकी चुप्पी अमोनिया गैस की तरह तीखी और असह्य हो आयी थी. वैसे मां की चुप्पी कोई आज की बात नहीं थी. रोज-रोज का मां का यह प्रोफाइल उसके जेहन में किसी भयानक घटना की याद की तरह जम कर रह गया था.

——मां, बस दो रोटियां रखना. . .भूख नहीं है. उसने जैसे अवचेतन की स्थिति में कहा.

मां ने भी बस दो ही रोटियां रख कर थाली उसके सामने खिसका दी. खिसकाने की किसकिसाहट भरी आवाज उसके गले तक भर गयी. उसे लगा, वह कतई भूखा नहीं है. उसे एक फिल्म याद आयी, जिसमें मां अपने जवान बेटे को जबरन खूब खिलाती है. उसका मन भर आया और शायद आंखें भी. पट्टे पर बैठा वह धीमे-से कौर तोड़ कर कुछ देर यूं ही बैठा रहा. मां घिसटते कदमों से बाहर बरामदे में चली गयी. वह धीमे-धीमे खाने लगा, ताकि जितना समय बिताया जा सके, वही ठीक. वैसे बेचारे बाबूजी भी क्या करें! बुढ़ापे में जवान बेटे से यह आशा तो करेंगे ही कि वह सारी दुनिया को उलट सकता है.

ऐसी बात नहीं है कि उसे खराब न लगा हो परंतु वह कर क्या सकता है! यह सच है कि यदि संभव हो पाता, तो वह नत्थू को गोली मार देता. परंतु वह जानता था कि उसके पास कुछ भी नहीं है जबकि नत्थू के पास गोली भी है और उसे मार सकने की हिम्मत भी. नत्थू के लिए चाकू चलाना उतना ही सहज है, जितना ऐसी बातें सोच कर ही उसका कांप उठना.

उसने मां को पानी के लिए आवाज दी.

पानी बाबूजी ले कर आ गये. गिलास रख कर वह उसके ठीक सामने फर्श पर बैठ गये. उसके गले में कौर अटकने-सा लगा. उसने तत्काल के असमंजस के क्षणों से बचने के लिए गिलास उठा लिया. धीरे-धीरे एक-एक घूंट उतारते हुए उसने महसूस किया कि बाबूजी अब अधिक देर तक नहीं रुकने के.

बाबूजी की निगाहें उसे अपने झुके सिर में से लेसर की पैनी प्रकाशधारा की तरह चुभती लगीं. उसने सिर उठा कर देखा.

बाबूजी ने नजरों को वहीं पकड़ लिया. बोले——बेटा, कहां थे अभी तक?

——आप अभी तक सोये नहीं. उसने मूल प्रश्न को महत्वहीन-सा बना दिया.

उसे लगा कि उसकी आवाज का खोखलापन उसके अभिनय को बेमानी बना रहा है.

फिर बाबूजी जो शुरू हुए, तो बता गये कि कैसे शाम को कालेज से लौटती बीना को दो-चार शोहदों ने घेर लिया और छेड़खानी की. बीना ने बताया था कि उनमें एक——नत्थू भी था. सारी घटना बयान करते हुए बाबूजी के चेहरे पर विवशता की शिनाख्त उभर आयी थी. वही चीज उसके चेहरे पर भी उभरने को जोर मार रही थी, परंतु वह उसे सायास दबाये था.

वह सिर झुकाये चुपचाप सारी बात असंपृक्त-सा सुनता खाना खाता रहा. बीच में एकबारगी उसने सोचा कि थाली को लात मार कर खड़ा हो जाये और चीख कर कहे कि मैं अभी नत्थू को बताता हूं कि शैलेंद्र की बहन को छेड़ने का क्या नतीजा होता है.

बाबूजी सारी बात कह कर चुप हो गये थे.

उसे लगा कि अब कुछ उसे भी बोलना ही चाहिए.

——वह पहचानता नहीं रहा होगा कि मेरी बहन है. उसने यूं कह कर पिता को जबरन सांत्वना देने की साजिश की. वैसे वह स्वयं जानता था कि नत्थू उसकी बहन को अच्छी तरह पहचानता है.

बाबूजी को उसके इस कदर तटस्थ रुख अपनाने की आशा कतई नहीं थी. वह एक पल तो बुरी तरह सटपटा-से गये, फिर संभल गये——कुछ भी हो, न पहचानने से का क्या मतलब? यानी पहचान न हो, तो उस लड़की से बत्तमीजी करो!

उसे पिता का यूं सर्वोदयी रुख अख्तियार करना उचित नहीं लगा. फिर अपनी असहायता की अनुभूति की खीज से भरा तो वह बैठा ही था, बोला——आप बेकार की बातें करते हैं, बाबूजी! सारी दुनिया की लड़कियों का ठेका हमने नहीं ले रखा है! हां, इतना है कि हमारे घर की लड़कियों को छड़ने की हिम्मत उसमें नहीं है.

कहने को तो कह दिया परंतु उसे लगा कि 'हिम्मत' शब्द उसे नहीं कहना था. लगा, जैसे दरवाजे के पास ही नत्थू खड़ा है और उसने यह शब्द सुन लिया है. वह भय से थरथरा गया. नत्थू की हिम्मत को यूं चुनौती देने की हिमाकत करना उसे स्वयं का अतिशय बचकानापन लगा.

जब बड़ी बूढ़ी औरतें
अपने ज़माने के घरेलू घी की बात करें
तब उन्हें बताइये...

विजया घी

बिल्कुल घर में बने घी जैसा

गुणों में उत्तम...
कीमत में कम

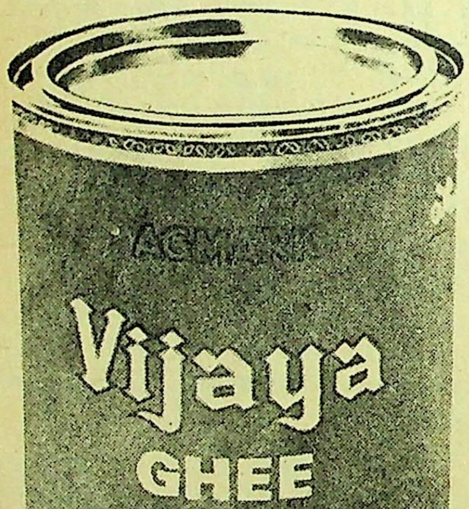

हालांकि यह घर में नहीं बनता लेकिन फिर भी आपको लगता है जैसे यह आपके घर में ही बना है क्योंकि विजया घी भरपूर तत्त्वोंवाले ताज़े दूध से आधुनिक फैक्टरी में बनाया जाता है. इसमें विटामिन भी होते हैं जो अच्छी सेहत के लिए आवश्यक हैं.
पोषक तत्त्वों से भरपूर...गाढ़ा और स्वादिष्ट... बस यही है
विजया घी
उत्पादक : आंध्र प्रदेश डेरी डेवलपमेन्ट कॉर्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड.
लालापेट, हैदराबाद ५०० ०४०
विजया घी पर उत्तमता का चिन्ह 'एगमार्क' भी लगा होता है.
यह वैज्ञानिक ढंग से हानिरहित डिब्बों में बंद किया जाता है.
एकमात्र घरेलू घी – जो घर में नहीं बनाया जाता.

ANDHRA PRADESH
DAIRY DEVELOPMENT CORPORATION
PRIVATE LIMITED
(A State Government Undertaking)

kalpa/apd/2/75

उसने बाबूजी के चेहरे पर विश्वास के झुठलाये जाने से उत्पन्न विकृति उभरती देखी. उसे लगा कि वहीं कहीं उसको ले कर विद्रूप भी बाबूजी के होंठों पर तैर रहा है. जैसे एकदम अनपेक्षित घट जाने के तुरंत बाद का सन्नाटा हो, ऐसा कुछ उसके और बाबूजी के बीच तिर आया था. उनके डबल लेंस के धुंधराये चश्मे से ताकती निरीह आंखों में उसके प्रति नामालूम-सा भाव उभर आया था, जो निश्चय ही धिक्कार का तो नहीं ही था. शायद बाबूजी भी उसकी असहाय नपुंसकता को पहचान गये थे, जिसने उनकी आंखों में फैले शिकायत के जब्बे को बुहार कर एक ओर कर दिया था. अब अंदर तक धंसी बाबूजी की आंखों में एक बेचैन सूनापन रह गया था.

उसने चाहा कि कुछ ऐसी जोरदार वाक्य-रचना की जाये, जो पिता को इस त्रासद स्थिति से उबार ले जाये. परंतु ऐसा कुछ भी न हो सका. बाबूजी रुई की सदरी को अपने चारों ओर किंचित और जोर से कस कर बैठे रहे. धुएं से स्याह दीवार पर जाने क्या तकते हुए वह अध-कचरी दाढ़ी के बाल नोचते रहे. फिर एकाएक वह घटनों पर जोर दे कर उठे और खड़ाऊं खटखटाते थके, धीमे कदमों से रसोईघर से बाहर चले गये.

खड़ाऊं की धीमी पड़ती खटखट की आवाज जेहन में तेजी से बजने लगी और अवचेतन में चस्पां बाबूजी की वह गदरू जवानी उसे परेशान करने लगी जब पड़ोस की एक लड़की को छेड़ने पर एक लौंडे को बाबूजी ने खड़ाऊं मार-मार कर अधमरा कर दिया था. उसने निर्णय लिया कि कल ही बाबूजी की खड़ाऊं बाहर फेंक आयेगा.

बरामदे में 'हे भगवान, सबका भला कर' का थका-थका-सा स्वर उभरा. यानी बाबूजी सदरी उतार कर खाट पर लेट गये हैं. उसकी आंखों में खरारी खटिया पर निश्चेष्ट लेटे, बरामदे की टीन की छत को ताकते बाबूजी घूमने लगे. उसे लगा कि उसका पेट गले तक भर गया है. एकाएक ही तृप्ति की अनुभूति उलटी हो आने की हद तक हो आयी. वह थाली सरका कर उठ आया.

* *

बिस्तरे पर पड़े-पड़े उसे लगा कि अब उसे सो जाना चाहिए, या कम-से-कम गहरी नींद में होने का स्वांग भरना चाहिए, वरना पास की खाट पर लेटी बीना की उपस्थिति की चुभन उसे रात भर जगाये रखेगी. उसे अपमान की तीखी अनुभूति मथ रही थी.

बीना ने करवट ली. उसकी सांस एक पल को थम-सी गयी. बीना के जागे होने का अहसास उसके अंदर तक भय भर गया. उसे डर लगा कि कहीं बीना उसके जागते होने को न पकड़ ले और बात शुरू कर दे. तब स्थिति बहुत त्रासद हो जायेगी. पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था.

—भैया. . .

शायद बीना ने आवाज दी—जाग रहे हो?

नहीं, वह चुपचाप पड़ा रहा. उत्तर देने की बात ही नहीं थी.

—भैया, बाबूजी ने ठीक नहीं किया. . .नत्थू के घर जा कर न जाने क्या-क्या कह आये. स्वयं बीना के स्वर में नत्थू को ले कर आतंक की टोन थी.

ज्ञान चतुर्वेदी (जन्म : २ अगस्त, १९५२) ने मेडिकल कालेज, रीवां से एम. बी. बी. एस. किया है और आजकल वहीं एम. डी. (कार्डियोलाजी) के छात्र हैं. मूलतः व्यंग्य लिखते हैं.

जैसे पैनी धार की लंबे फल वाली कोई चीज उसके भीतर बहुत अंदर तक उतर गयी. वह लगभग चीखता-सा बिस्तरे पर बैठ गया. उसने अनुभव किया कि रजाई में होते हुए भी वह बुरी तरह कांप रहा है. पसीने की बूंदें उसके लंबे बालों की कांपती जड़ों से निकल कर गरदन पर बह आयी थीं और बिच्छुओं की कतार-सी रेंगती हुई बनियान के नीचे जा रही थीं. अजीब-सा भयानक तनाव हो आया था.

—क्या कर आये बाबूजी? उसने कांपते स्वर को यथासंभव संयत करते हुए पूछा था.

तब बीना ने बताया था कि बाबूजी को जैसे ही सारी घटना मालूम हुई थी, वह क्रोध से तमतमाते नत्थू के घर पहुंच गये थे. . .बीना को भी साथ में घसीटते. कहते थे कि नत्थू से तेरे पैर न पकड़वा लिये, तो कुछ नहीं किया. नत्थू घर में था नहीं. वहीं उसकी मां को पचासों बातें सुना आये. खूब भीड़ इकट्ठी हो गयी थी. सभी बाबूजी को समझा रहे थे कि नत्थू से उलझना ठीक नहीं, नंगों से कहां तक लड़ोगे! परंतु बाबूजी धमका आये थे कि वह पुलिस में रिपोर्ट करेंगे.

सारी घटना सुनाते-सुनाते, बीना के स्वर में आतंक की थरथराहट और अपराध-बोध, अंत तक पहुंचते-पहुंचते बहुत साफ हो आये थे और फिर वही आतंक-बोध उस पर छा गया था.

यदि नत्थू उस समय घर पर ही मिल जाता , तो? बाबूजी की स्थिति की कल्पना करने मात्र से वह कांप गया. उसकी सांस भर आयी. फिर एकाएक उठ कर उसने लाइट आन की, पैंट पहनी और खाट के नीचे चप्पलें टटोलने लगा.

—कहां जा रहे हो भैया? बीना ने पूछा था.

—नत्थू से हिसाब चुकता करने! स्साले की टांग न तोड़ी तो आज कुछ न किया!

उसकी आवाज का खोखलापन बुरी तरह बज उठा था परंतु तब तक वह गली में आ गया था.

अब वह तेज कदमों से नत्थू के घर जा रहा था. बाबूजी की मूर्खता की माफी अभी रात ही में मांग ले, तो कम-से-कम रात भर चैन से सो तो सकेगा! □□□

गुलफाम हाउस, कालेज रोड, रीवां (म. प्र.)

भैया सा'ब का पटाक्षेप

• नरेंद्र मौर्य

मैं तेजी से जीप चला रहा था. रंगलाल और भैया साब पीछे बैठे हुए थे. पिछले मंगल को ही राज्यपाल ने भैया साब को शपथ दिलायी थी और आज सुबह वह अपने क्षेत्र की सद्भावना-यात्रा पर पधारे थे. भैया साब का मुझ पर विशेष स्नेह है. अब वह राजधानी में भी मुझे ही अपना ड्राइवर रखेंगे. सरकारी वेतन और वरदी मिलेगी.

पुल के मोड़ पर मैंने भैया साब के आदेश पर जीप रोकी. भैया साब उतर कर नदी के किनारे-किनारे चलने लगे. रंगलाल के हाथ में एक थैली थी जिसमें दारू की दो शीशियां और तीन गिलास रखे थे. आधा मील चलने के बाद भैया साब ने आसपास देखा और आश्वस्त होकर एक वृक्ष की छाया में जमने का आदेश दिया. रंगलाल ने थैली से शीशी निकाली. गिलास भरे. सबने जम कर पी. इतनी अच्छी दारू हमने जिंदगी में पहली बार पी थी.

अचानक भैया साब उठ कर खड़े हो गये. उन्होंने जाकेट की जेब में हाथ डाला. मुझे धांय-धांय की दो आवाजें सुनाई दीं और रंगलाल की तड़फड़ाती हुई लाश सामने पड़ी थी जिसे मैं केवल आंख फाड़े देखता रहा. भैया साब ने पिस्तौल जेब में रखी और मेरा हाथ पकड़ कर खींचते हुए जीप तक लाये. दूसरे दिन भैया साब और मैं राजधानी के सरकारी बंगले में खड़े थे. भैया साब ने लंबा मौन तोड़ते हुए पूछा—तुमने कल क्या देखा था?

मेरी आंखों के सामने रंगलाल की तड़पती हुई लाश घूम गयी परंतु मुंह से कुछ नहीं निकला. भैया साब ने ही कहा—तुम समझदार आदमी हो, यानी कि तुमने कुछ नहीं देखा था. उन्होंने कुछ कड़कड़ाते हुए नोट मेरे हाथों में पकड़ाये और ऊपर आराम करने चले गये.

* *

रंगलाल की और मेरी बचपन से दोस्ती थी. हम दोनों साथ-साथ भैया साब के गांव में काम करते थे. चुनाव के दिनों हमें शहर बुला लिया जाता था. हम दोनों ऊंचे-ऊंचे दरख्तों पर चुनावी पोस्टर लटकाते फिरते थे. चुनाव के बाद वापस गांव आ कर भैया साहब के खेतों में काम करवाते और हाली-चरवाहों पर निगाह रखते थे. उन्हीं दिनों रंगलाल ने दो-चार बलात्कार सफलतापूर्वक आयोजित किये थे और उसकी प्रतिभा घूड़े पर से कूकने लगी थीं. प्रतिभा को प्रोत्साहन देना भी भैया साब के जीवन का एक बड़ा हिस्सा था. भला वह रंगलाल की उपेक्षा कैसे करते? शीघ्र ही वह भैया साब का खास आदमी माना जाने लगा था. कुछ दिनों बाद उसे शहर बुला लिया गया था. वह हम सबसे अलग शहर में बाबू बना फिरता था.

किसी काम से एक बार वह गांव आया हुआ था. मैंने उससे कहा— भैया, मेरी रुकी हुई पगार भैया साब के मुनीम से दिलवा दे. उसकी सिफारिश पहुंचते ही मुझे तुरंत शहर बुलाया गया और एक स्थानीय उस्ताद के पास दो महीने की ट्रेनिंग दिलवा कर मुझे मालकिन की गाड़ी पर ड्राइवर नियुक्त कर लिया गया. मालकिन को कभी-कभार गाड़ी की जरूरत पड़ती थी. मैं हमेशा फुरसत में ही रहता था.

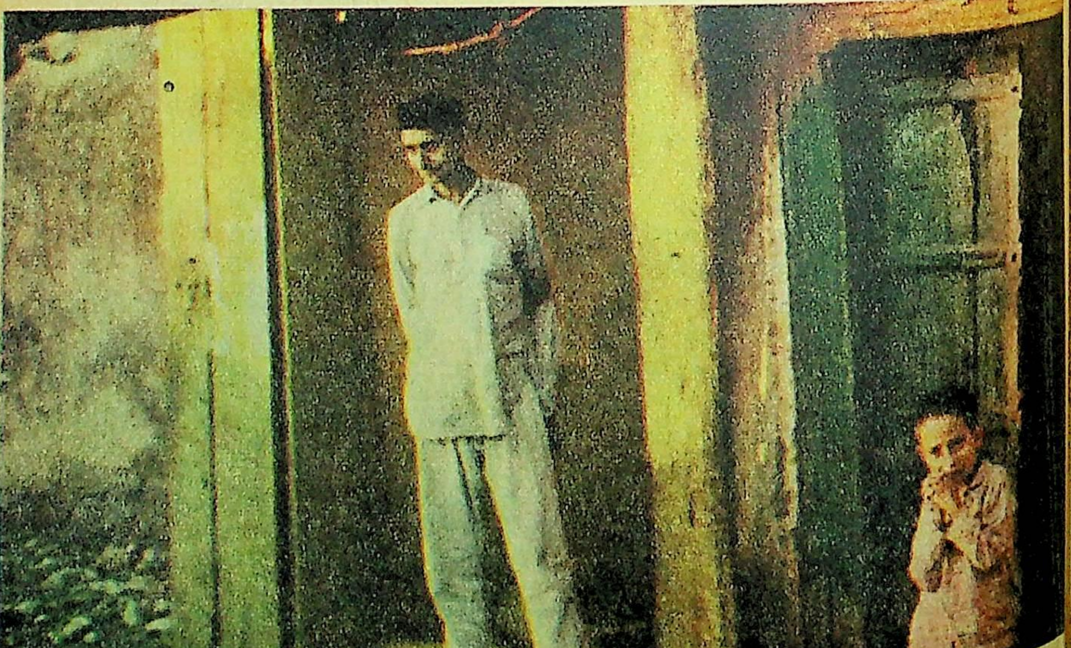

● योग जॉय

पिछले बार जब स्टेशन चल रहा था, मैया साब राजधानी गये थे. रंगलाल भी फुरसत में बैठा था. मैंने उससे कहा—यार, तू बड़ा भाग्यवान है. मैया साब तेरी कितनी इज्जत करते हैं!

वह मुझे ऊपर ले गया जहां मैया साब और रंगलाल के अतिरिक्त कोई नहीं जा सकता था. उस खास कमरे में पहुंचते ही मैंने देखा, दीवारों पर आदमकद कामुक चित्र लगे थे. मेरी धड़कन बढ़ गयी थी. कुछ भय-सा लगने लगा था. रंगलाल ने मुझे बताया—इस बनारसी नाई ने मैया साब के बाल जरूर काले कर दिये हैं परंतु असल में वह बूढ़े हो गये हैं. उम्र की सीमाओं ने भगवान तक को नहीं बख्शा, फिर मैया साब की कौन बिसात! परंतु मैया साब की निगोड़ी आत्मा मानती ही नहीं. शिलाजीत भी अब मैया साब पर कोई असर नहीं करती. इस बनारसी नाई के कहने से ही मैया साब इस कमरे में मुझसे तेरह-चौदह वर्ष की कच्ची उम्र की लड़कियों पर बलात्कार करवाते हैं. कम उम्र लड़कियों की चीख-पुकार उन्हें उत्तेजित करती है. वह छुप कर दर्शनलाभ भी प्राप्त करते रहते हैं. देखते-देखते जब वह अपने भीतर तनाव महसूस करते हैं, तो मालकिन के कमरे की ओर दौड़ पड़ते हैं. इसके अतिरिक्त अब कोई दूसरा तरीका मैया साब की नसों में तनाव पैदा नहीं कर सकता. . . परंतु अब मैं तंग आ गया हूं, इस सबसे.

* *

रंगलाल ऊपर से मस्ती की जिंदगी जी रहा था, परंतु उसे स्वयं अपने ही अंतर्द्वंद्वों से लड़ना पड़ रहा था. उसकी आत्मा उसे रात-दिन कोसती रहती थी. फिर हमेशा नयी लड़की क्लोरोफार्म की सहायता से उठा कर लाना भी तो आसान नहीं था.

पिछले महीने रंगलाल जीप से रामतरन भाई की लड़की लेने गया था. क्रोलोफार्म सुंघाने से पहले ही लड़की चिल्ला कर खड़ी हो गयी . लोगों ने रंगलाल को देख लिया. वह किसी तरह जान बचा कर भाग आया. शहर में सभी जानते थे कि रंगलाल मैया साब का खास आदमी है. मैया साब की बड़ी बदनामी होने लगी. पिछले वर्ष हास्पिटल में बीस-पच्चीस कच्ची लड़कियों को टांके लगे थे. पुलिस ऐसे खतरनाक अपराधी की तलाश में थी ही. परंतु मैया साब की हवेली की तलाशी लेने की हिम्मत भला किसमें थी! रंगलाल को गांव वाले गोदाम में छुपा दिया गया जहां उसने पिछला एक महीना बिता दिया. उसे इस पूरे महीने शहर के समाचारों से अवगत नहीं कराया गया. फिर भी वह शहर में अपने प्रति उत्पन्न रोष से भयभीत था. मैं उसे दोपहर में जीप से जाकर दोनों वक्त का खाना और एक शीशी दुबारा दे आता था. उसने एक दिन मुझसे कहा—कभी-कभी मेरा मन करता है, इस बूढ़े मैया साब को पकड़ कर निचोड़ दूं और खुद रेल की पटरी तले सो जाऊं. . .कहीं ऐसा न हो कि मैं बाहर निकल कर सच-सच बकने लगूं.

छुपने के सात-आठ दिन बाद ही वह चिड़चिड़ा हो गया था. उसके लिए मैंने दो शीशियों दुबारा लाना शुरू कर दिया था. परंतु दोनों शीशियां मिल कर भी उस पर काबू नहीं रख पातीं थीं. मैया साब सोच रहे थे, कुछ दिनों में सब ठीक हो जायेगा. लोग सब भूल जायेंगे

और रंगलाल उनकी पुन. उसी प्रकार सेवा करता रहेगा. परंतु शहर के कुछ युवक भैया साब की हवेली में घुस कर रंगलाल को निकालने की योजना बना रहे थे. रंगलाल का एकाएक अंतर्धान हो जाना भी इस बात की पुष्टि कर रहा था कि तमाम कम उम्र लड़कियों के साथ किये गये बलात्कार के लिए रंगलाल ही दोषी है. कुछ लोग दबी जबान से भैया साब का नाम भी इस सबके लिए ले रहे थे.

भैया साब बाढ़-रोकथाम उपमंत्री थे. वह हमेशा मुझे अपने नजदीक रखते थे और मौके-बेमौके अधिक स्नेह-सुविधा उडेलते रहते थे. फ्रिज में रखी लौकी की तरह हमेशा तरोताजा रहनेवाली मालकिन भी राजधानी आ कर रहने लगीं. मुझ पर भैया साब की भांति उनका भी विशेष स्नेह था. उनके खुशामदी व्यवहार से उजागर था कि उन्हें रंगलाल से संबंधित घटनाओं की जानकारी थी.

वर्षाऋतु आरंभ होते ही भैया साब समाचारपत्रों में गहरी दिलचस्पी लेने लगे. उनके कान बाढ़ के समाचार सुनने के लिए तड़प उठते. इसी सिलसिले में भैया साब ने मालकिन को समझाया—दस-बीस शहरों के बह जाने का मतलब है जोर-शोर से राहत-कार्य का शुरू हो जाना और राहत कार्य शुरू हो जाने का अर्थ होता है अपनी दस-बीस पीढ़ी को राहत मिल जाना.

मालकिन वैसे ही बड़ी धर्मप्राण महिला थीं. उक्त सूत्र समझ में आते ही उन्होंने और अधिक श्रद्धा के साथ दोनों समय मंदिर जाना प्रारंभ कर दिया. इसके बाद भी जब प्रदेश में कहीं बाढ़ नहीं आयी, तो उन्होंने मंदिर में कथा करायी, नारियल फोड़े और भूखों में खाना बंटवाया. भगवान सबकी सुनता है. लगातार अड़तालीस घंटे वर्षा होती रही. परंतु दुर्भाग्यवश फिर भी कहीं से बाढ़ के समाचार नहीं मिले. आखिर मालकिन ने भगवान के पास जाकर मन्नत मानी कि हे प्रभु, यदि पांच-दस शहर बह जायें तो आपके चरणों में अपने पति का तुलादान करवाऊंगी.

दूसरे दिन मैं बंगले के सामने खड़े सिपाही से बतिया रहा था. इतने में ही अखबार वाला अखबार दे गया. ऊपर ही समाचार था–'नर्मदा में भीषण बाढ़. . .' 'कई शहर जलमग्न'..

मैं अखबार ले कर दौड़ता हुआ हुआ अंदर आया. भैया साब बाथरूम से टावेल लपेट कर निकल रहे थे. मैंने अखबार उनके हाथ में दे दिया. उन्होंने जैसे ही अखबार देखा 'आ गयी. . .आ गयी' चिल्लाते हुए मालकिन के कमरे की ओर भागे. उनका लपेटा हुआ टावेल रास्ते में गिर पड़ा. मैं टावेल उठा कर उन्हें देने ऊपर पहुंचा. भैया साब को साक्षात रूप में देख कर मालकिन कह रही थीं—क्यों ठिठोली करते हो! दस बच्चों के बाप हो गये, बचपना नहीं गया!

परंतु भैया साब ने जैसे ही अखबार पढ़ कर सुनाया, वह भी भैया साब के साथ पुलक के मारे कूदने लगीं–आ गयीं. . .आ गयीं!

मुन्नू और पप्पू बगल वाले कमरे में थे. उन्होंने जैसे ही तट और गगन सहित यह मनोहर दृश्य देखा, तो वे डर कर मुझसे चिपट गये. मैंने उन्हें समझा कर नीचे भेजा और भैया साब को टावेल देकर नीचे चला आया.

★ ★

आज भैया साब गद्‌गद् थे. उन्होंने प्रेस-वार्ता आयोजित की.

"बाढ़ का युद्ध स्तर पर मुकाबला" जैसे तूफानी शीर्षकों के अंतर्गत वार्ता अखबारों में विज्ञापन रेट पर छपवायीं, तब जा कर राहत कार्य करने लायक स्थिति बनी. पहले भैया साब मालकिन के साथ बाढ़ग्रस्त क्षेत्र का दौरा करने गये. हेलिकोप्टर पर चढ़ते-उतरते समय तस्वीरें खिचवायीं. तसवीर खिचाते समय मुसकाये. वैसी जिंदादिल मुसकान मैंने टूथपेस्ट के विज्ञापनों के अतिरिक्त और कहीं नहीं देखी थी.

उसके बाद राहत-कार्य प्रारंभ हो गये. राहत-कार्यों के साथ-साथ भैया साब के चेहरे और बंगले पर रौनक बढ़ती गयी. अचानक टेलिफोन पर सूचना मिली कि एक और शहर बाढ़ की चपेट में आ गया है और नागरिक एक मैदान में भूखे पड़े हैं.

भैया साब तुरंत हेलिकॉप्टरों में खाद्यसामग्री और तंबू लदवा कर उक्त स्थान पर पहुंचे. मैं भी उनके साथ था. मैंने देखा, उनकी रसलोलुप आंखों को यहां बड़ी तृप्ति मिली. दो बड़े-बड़े तंबू गड़वाये . एक में पुरुषों की तथा दूसरे में महिलाओं की व्यवस्था की गयी. उन्हें खाने को दिया गया. लोग दो-तीन दिनों के थके और जागे हुए थे, इसलिए वे सरकारी दरियां डाल कर अपने तंबू में पड़ गये. महिलाएं स्वभावानुसार बातें करती रहीं.

अचानक भैया साब की इच्छा भाषण करने की हुई . उनके एक सेक्रेटरी ने साफ-साफ अक्षरों में भाषण लिख कर दिया. हम सब महिलाओं के तंबू में पहुंचे. अब मंच की समस्या थी. आखिर मंत्री को कुछ ऊपर खड़े होकर तो बोलना ही चाहिए. अंत में मैंने उन्हें पिटकुली बिठा कर समस्या का समाधान किया. उन्होंने अपना भाषण पढ़ने के लिए जेब से कागज निकाला. परंतु वह अपना चश्मा राजधानी में ही भूल आये थे, अत: वह स्वयं के विचारों को व्यक्त करने लगे—बालाओं और ललनाओं, हमारे लिए यह बाढ़ वरदान सिद्ध हुई है. अन्यथा आपका लावण्यमय रूप हम कहां निहारते! देखिए, मेरे सामने बैठी इस ललना का नाभिप्रदेश कितना मधुर और पावन है! हमारे बायें बैठी इस बाला की जंघा भी कितनी सुडौल एवं सुथरी है ! आप सभी पावन ललनाएं भीगे वस्त्रों में मादक लगती हैं. आपके कपोल अवश्य ही दारू की भट्ठी की तरह गरम होंगे. मेरा जीवन धन्य है!

यह मैदान नहर विभाग की जिस पाल द्वारा सुरक्षित था, उस पाल की आस्था डोल गयी और वह लहरों के साथ थिरकने लगी. एकाएक सारा मैदान जलमग्न हो गया. लोग जान बचा कर भागे. मैं भी वजनी भैया साब को वहीं पटक कर अपनी जान बचा कर भागा. बाद में डूबते-तैरते किसी तरह एक गांव में पहुंचा. वहां से एक दिन पैदल चल कर रेलवे स्टेशन आया. भैया साब के संबंध

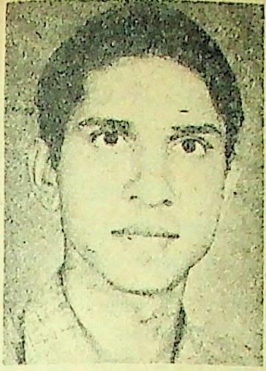

नरेंद्र मौर्य (जन्म : '४८ के आसपास) के लिए लेखन सवाल उठाने का माध्यम है—पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यवस्थाजन्य परिवेश को लेकर, शिक्षा : एम. कॉम. के बाद एल. एल. बी. (अंत्य.)

में बाद में पता चला कि उन्होंने वहीं जल-समाधि ले ली.

मैं किसी तरह राजधानी पहुंचा. मालकिन बहुत परेशान थीं. मुझे देख कर थोड़ी आश्वस्त हुईं. उन्होंने मुझसे घबराते हुए कहा—देखो भैया, भगवान ने अपनी मनोकामना पूर्ण कर दी है. दोनों तिजोरियां ठसाठस हो गयी हैं, इसलिए भगवान के मंदिर में तुलादान देना अनिवार्य है. परंतु भैया साब की भौतिक उपस्थिति के अभाव में तुलादान असंभव था.

मैं और मालकिन मंदिर के पुजारी से पूछने गये कि ऐसी स्थिति में शास्त्रों में क्या है?

पुजारी ने बड़े-बड़े पोथे खोले. फिर गंभीरतापूर्वक वह इधर-उधर पन्ने उलटता रहा. बीच-बीच में वह एक तिरछी चितवन से मालकिन के गदराये बदन की ओर भी देख लेता था. बड़ी लंबी खोजबीन के बाद उसने कहा—शास्त्रों में एक उपाय है. . .

बहुत पूछने पर कहने लगा कि आप रात भर के लिए किसी को पति बना लें. सबेरे उसका मंदिर में तुलादान करवा दें.

मालकिन ने मेरी और पुजारी की देह की ओर बारी-बारी से निगाह डाली. मालकिन की निगाह उसी पर जम गयी. पुजारी को शाम का निमंत्रण देकर मालकिन और मैं लौट आये.

दोपहर में मालकिन और मैं विवाह के लिए आवश्यक वस्तुओं की खरीदारी करते रहे. शाम को पुजारी के आने के पहले सभी बच्चों और नौकरों को फिल्म देखने भेज दिया गया.

नियत समय पर पुजारी आया. उसने अत्यंत शार्टकट पद्धति से मालकिन से विवाह कर लिया. सुहाग सेज सजाने की जिम्मेदारी मेरे सिर थी. मैं मालाओं को लटका ही रहा था कि वर महोदय ने उतावली करते हुए मुझे बाहर निकाल दिया.

सुबह विधान-सभा का सत्र प्रारंभ होनेवाला था. भैया साब के शोक-संतप्त परिवार को सांत्वना देने के लिए एक शोक-प्रस्ताव पढ़ा जाना था. उधर मंदिर में पुजारी के तुलादान की तैयारी हो रही थी. इस प्रकार भैया साब की यह अंतिम लीला भी समाप्त हो गयी.

□□□

गांधी चौक, हरदा (म. प्र.)

सारिका

जुलाई १९७५

नवलेखन—दो तथा लघुकथाएं

आज की जिंदगी की सच्चाइयां, तल्खियां और आम आदमी की दारुण स्थितियां !

ये एकदम ताजा और नये लेखक क्या सोचते हैं ?
इस अंक की कहानियां मात्र
यथार्थ अनुभवों की कहानियां ही नहीं
हैं—अनुभवों का अर्थ भी इनमें
निहित है !
साथ ही पचास से अधिक लघुकथाएं
जो आज की सामाजिक और राजनीतिक
स्थितियों पर व्यंग्य ही नहीं करतीं
अपितु आज के आदमी को कहीं
गहराई तक इनसे जोड़ती भी हैं.
तथा सभी स्थायी स्तंभ-कबिरा खड़ा
बजार में, चंद सतरें और, मेरा पन्ना,
विविधा आदि.

● इस अंक के लेखक :
अभय, नवनीत मिश्र, रामनारायण सिंह
चौहान, आनंद कुरैशी, रवींद्रनाथ
उपाध्याय, शंकर, रामदेव शुक्ल,
दिलीपकुमार बनर्जी आदि.

अंधे कुएं का रास्ता

अरुण मिश्र

बाहर से अधिक, भीतर घटती घटनाओं को अकेले ही देखते-देखते दम घुटने लगा है. दम तो घुटना ही है. किंतु दम घुटने के पहले किसी से कहना चाहता हूं. बस, इसलिए लिखने बैठ गया हूं. वैसे मैं जानता हूं कि कहानी ऐसी नहीं होती जैसी कि लिख रहा हूं.

मैं बराबर लड़ता रहा हूं. लड़ते-लड़ते स्वयं को जीवित रखने का . . . गर्म रखने का निरंतर प्रयास किया है. किंतु लड़ते-लड़ते तह-दर-तह बर्फ कैसे जमती चली गयी, यह मैं नहीं समझ पाया हूं. और अब मैं ठंडा हो चुका हूं. एकदम ठंडा. यदि स्पष्ट शब्दों में कहूं तो स्वयं को नपुंसक महसूस करने लगा हूं. करने क्या लगा हूं, हो गया हूं.

सुना है, कहानी में फूलों की बात होती है. मेरे दायरों में कभी कोई फूल खिला ही नहीं, तब फिर फूलों की बात कैसे करूं! फूलों का नाम भर ले लेने से यदि मेरी बात आपको कहानी जैसी लगती है तो फिर मैं अपनी बात फूलों से ही शुरू करूंगा.

मुसकराते हुए फूलों ने मुझे गुदगुदाया न हो, सो ऐसी बात नहीं है. शोख फूलों ने मुझे हर सीमा तक आकर्षित किया है. किंतु जब भी उनकी ओर हाथ बढ़ाया, लहूलुहान हो गया. चौंकिए मत. फूलों से हाथ कभी लहूलुहान नहीं होते. स्थापित व्यवस्था की नागफनी हमेशा आड़े आ जाती थी.

वैवाहिक विज्ञापन पढ़-पढ़ कर मेरा दिमाग घूमने लगा था. पिताजी की भी प्रबल इच्छा थी. उन्होंने अपने तन के साथ-साथ मेरी मां के भी तन के टुकड़ों को चमकते हुए सिक्कों में बदल डाला. और उनका लाड़ला बेटा इंजीनियर हो गया. मेरे पास होने की अपार खुशी में उन्होंने अपने तन का एक और टुकड़ा ढेर सारी मिठाई में बदल डाला. किसी पड़ोसी को उस मिठाई के टुकड़ों में आदमी के गोश्त की बू नहीं आयी. आदमी आदमी के गोश्त का कितना अभ्यस्त हो गया है! मां को भी पता नहीं चला कि उसके जिस्म का कोई हिस्सा गायब हो चुका है. शायद उसके लिए यह एक निहायत साधारण-सी बात हो! तभी न अपनी पड़ोसिन के साथ कितने गर्व से बतिया रही थी —— अपना अनुज कुमार अब इंजीनियर हो गया है. अनुज कुमार! मां के मुंह से यह संबोधन सुन कर मैं चौंक गया था. अन्न के सिवा उसने कभी अनुज भी नहीं कहा था! क्या अपनी मां के लिए भी मैं आदर की वस्तु हो गया हूं? आस-पड़ोस में इंजीनियरों के प्रति अगाध आदर-भाव देख-देख कर शायद मां के भीतर मेरी डिग्री ने आदर-भाव को ममता की जगह प्रतिस्थापित कर दिया था. पिताजी ने भी तो मेरा रिजल्ट मुझे चौंकाते हुए ही सुनाया था —— गुड मार्निंग, इंजीनियर साहब! अचानक कितना परिवर्तन मैंने महसूस किया था.

डिग्री लेते-लेते वैवाहिक विज्ञापनों में भी तो एक परिवर्तन हुआ था. एक बुनियादी सशोधन —इंजीनियर के पहले 'पदासीन' शब्द और जुड़ गया था, जिसे पढ़ कर मेरे साथ-साथ पिताजी का मुंह भी लटक गया था. मेरे साल भर ही बेकार रहने से उनकी अक्ल ठीक काम करने लगी थी—— इसे 'भैया साव' के साथ लगा देता तो ज्यादा अच्छा होता. कम-से-कम पचीस-पचास कमा तो लेता. पढ़-लिख कर तो किसी काम का नहीं रहा! बल्लू बाबू के लड़के को देखो, क्या ठाट के साथ 'भैया साव' के साथ जीप में घूमता है और ऐंठता है, जैसे उसके बाप की ही गाड़ी हो!

गीता को अपना आदर्श मानने वाले और उस पर अमल करने वाले अपने आदरणीय पिताजी के मुंह से यह सुन कर मुझे बुद्ध की तरह ही सत्य के दर्शन हुए — इंजीनियर, आदमी नहीं होता. इंजीनियर डिग्री नहीं होती. इस महान लोकतांत्रिक देश में इंजीनियर होती है कुर्सी. कुर्सी तक पहुंचने के लिए इस समाजवादी व्यवस्था में चाहिए १८० अंश का अर्थ-कोण. अन्य सभी कोण भ्रमित करते हैं. गलत-सलत दृष्टिकोण को पैदा करते हैं.

मैंने पलट कर देखना चाहा कि मां-बाप मेरे लिए अब अपने जिस्म का कौन-सा टुकड़ा सिक्कों में बदल सकते हैं. कुछ भी तो दिखाई नहीं पड़ा. उभरती हुई छायाएं-सी जरूर दीख पड़ी थी. . . धुंधली-धुंधली. फिर स्पष्ट होने लगी थीं प्रेत की शक्ल में. मैं कांपने लगा था. लगता था, बस एक बार और धक् से हो कर सब कुछ शांत हो जायेगा. किंतु इतनी आसानी से सब कुछ शांत नहीं होता. शांत होने के पहले निरंतर लड़ना होता है. जूझना पड़ता है. सहना पड़ता है. तिल-तिल कर गलना होता है. और शांत मैं भी नहीं हुआ. आंखें स्वतः खुल गयीं. प्रेत अभी भी ज्यों-के-त्यों अस्तित्ववान थे. मैंने महसूस किया कि उन प्रेतों का आकार धीरे-धीरे घट रहा है. मेरे देखते-ही-देखते बच्चों की तरह मचलने लगे——हम मोटर में बैठेंगे. . . हमें मोटर ला दो न! हम आइसक्रीम खायेंगे, चिल्ड्रेन पार्क जायेंगे, टॉफी खायेंगे. . . हमें टॉफी दो. . . स्वर में क्रोध भर चुका था —— हमें टॉफी दो! आइसक्रीम दो! मोटर दो! चिल्लाते-चिल्लाते वे गुर्राने लगे थे. उनकी हर आवाज गुर्राहट में बदल गयी थी और उनका आकार भी बदल गया था. . . ठीक पांच फुट साढ़े आठ इंच. अब वे अधिकारपूर्ण लहजे में झुंझलाते हुए कह रहे थे, पैसे नहीं हैं तो पैदा क्यों किया था? क्या जरूरत थी? हमें एजूकेशनल-टूर में जाना है और अवश्य जाना है. कहीं से भी पैसे लाओ पर लाओ. पूरे पांच सौ रुपये. एक पैसा भी कम नहीं. हां-हां-, सिगरेट पीते हैं. पियेंगे और हजार बार पियेंगे. शराब भी पीते हैं. हॉस्टल में रह कर सब करना पड़ता है. . . जुआ भी खेलते हैं. तुमसे मतलब? लगा था कि तैश में आ कर ये प्रेत अब हाथ उठा ही देंगे. और उठा ही दिया. लगा था चमड़ी उघड़ गयी है. वास्तव में चमड़ी उघड़ने लगी थी. शेष रह गये

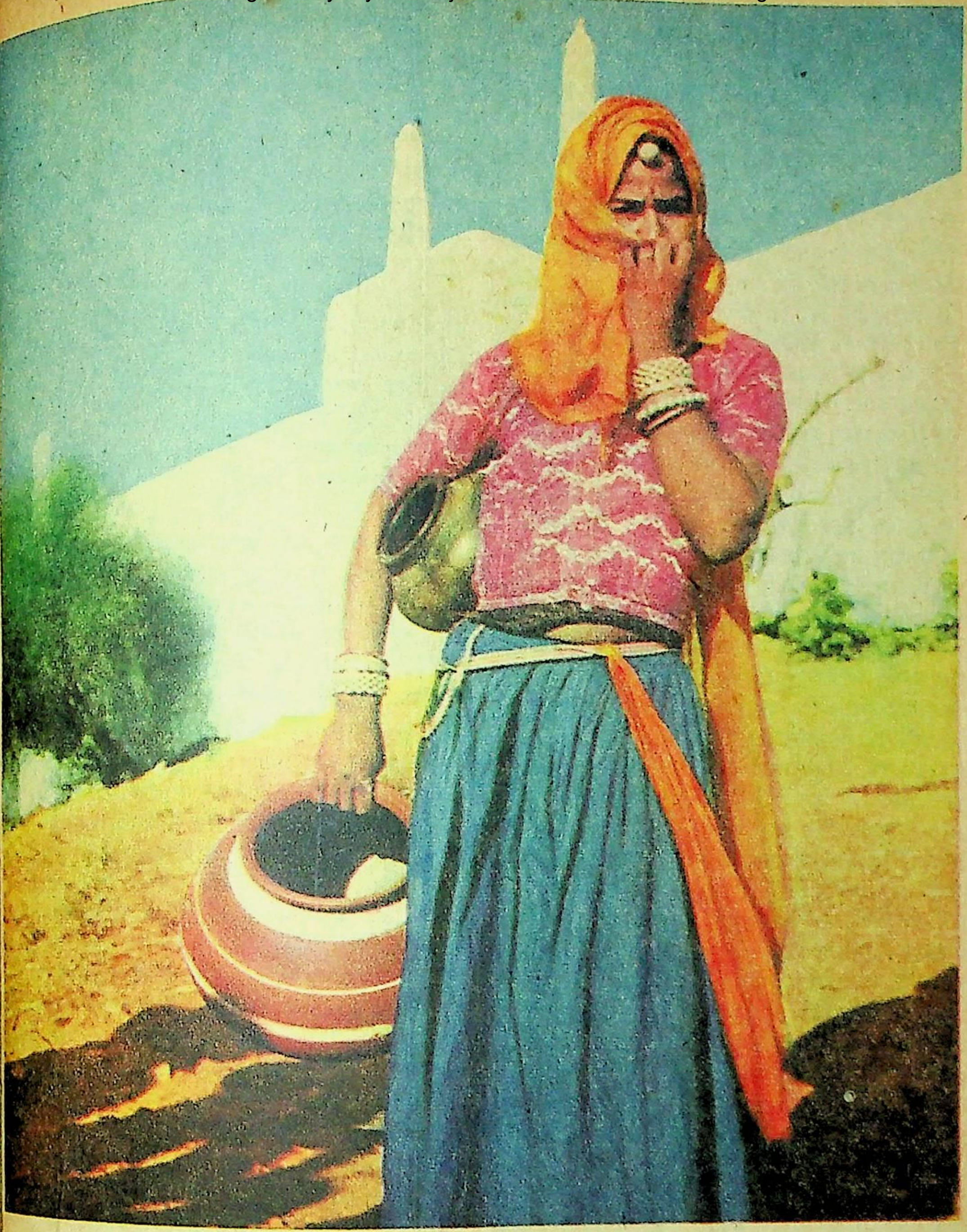

थे हड्डियों के खोखले ढांचे. हड्डियों के ढांचेनुमा प्रेत घिघिया रहे थे — अब हमें मुक्ति दो इंजीनियर अनुज कुमार शर्मा, हमें मुक्ति दो! कब तक सहें! अब नहीं सहा जाता! बहुत भूख लगी है. हमें रोटी दो! हमें एक रोटी रोज चाहिए. बहुत भूख लगी है. फुंक रहा है पेट! बुखार नहीं, यह पेट की आग है स्साले! आंखों के गड्ढों से चिंगारियां फूट रही थीं. मैं बेहद डर गया था इस बार— हमें रोटी दे हरामजादे, नहीं तो तुझे ही भून कर खा जायेंगे! कानों में गरम-गरम कुछ पिघल रहा था. विचार-शून्य होते हुए मैं गिर पड़ा था. शायद बेहोश हो गया था.

सुबह निर्णय ले लिया था—कुछ करना है. और मस्टर रोल में मेरा नाम भी काली स्याही में दर्ज हो गया. मजदूरों के साथ नियमित रूप से सुबह-शाम मैं भी बांग देने लगा. ओवरसियर का मुख हाजिरी लेते वक्त समस्त सहानुभूति के बावजूद चमक उठता था. उसका शब्द नहीं, स्वर अर्थपूर्ण होता था— मेरे अंडर एक ग्रेजुएट इंजीनियर है. डिप्लोमा वाला नहीं, ई. ई. और एस. ई. की तरह डिग्री वाला इंजीनियर. मैं उसे आर्डर दे सकता हूं. परंतु आने वाले कल की संभावनाओं को सोच कर

उसकी आवाज ऑर्डर देने से पहले ही लड़खड़ा जाती. स्वर का सारा दर्प बुझ जाता. यहां पर अवश्य मेरी डिग्री ने अपना रोल अदा किया. डिग्री ने एक और रोल अदा किया.मुझे एक रुपये अस्सी पैसे नहीं,बल्कि दो रुपये अस्सी पैसे मिलते थे. आखिर मैं क्वालिफाइड इंजीनियर जो था.पढ़े-लिखे और गैर पढ़े-लिखे में फर्क करना सरकार जानती है. इज्जत करती है.

साइट पर मैंने महसूस किया कि मैं कम-से-कम साधरण आदमी तो नहीं हूं. इसीलिए मैं जितना भी लोगों में घुलने-मिलने का प्रयास करता, लोग सहम कर पीछे हट जाते. मेरे सामने बात करते हुए डरते. ओवरसियरों की ओर जाता तो वे एकाएक चुप हो जाते. या फिर ऊटपटांग बकने लगते, जिस बकवास में भिन्न-भिन्न साइट की रेजाओं के चर्चे भी शामिल होते. एस.डी.ओ. एवं एग्जीक्यूटिव इंजीनियर की सहज सहानुभूति ने मुझसे मेरा आदमीपन छीन लिया था. मुझसे सब सहमे-सहमे-से रहते. मैं कर भी क्या सकता था! आखिर कुर्सी-विहीन डिग्री-युक्त इंजीनियर जो था.

उन दिन मेरे ओवरसियर की रही-सही औपचारिक सहानुभूति भी खत्म हो गयी. मैंने अपनी डिग्री का अपने ज्ञान का अनावश्यक प्रयोग करना चाहा था. चार-छह ठेकेदार मेरे ओवरसियर को परेशान कर रहे थे — साव, जल्दी से बिल बना दो, नहीं तो लेबर हमारी जान खा जायेगी. दो दिन से भूखी है. उधर ओवरसियर 'बड़े साव' (सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर) के इंस्पेक्शन में बुरी तरह बिजी था. ढेर सारी टेक्निकल परेशानियां थीं— साहब को बेड-टी मिली कि नहीं, उनके कप में चीनी तो नहीं पड़ गयी, नहाने का पानी गरम होना है. साहब की सिगरेट खत्म हो गयी है. साइट पर तो हाथ से सिगरेट अलग ही नहीं होती. ड्राइवर को शहडोल भेजना पड़ेगा. बच्चों को मोटर बोट में घुमाना है. सुबह से मचल रहे हैं. उनके खलासी और ड्राइवर को चाय मिली कि नहीं, कल जरा-सी देर हो गयी थी तो मेम साव कितना बिगड़ी थीं! ठीक ही तो" कह रही थीं—भई, इन छोटे लोगों का हमसे भी ज्यादा ध्यान रखना चाहिए. बेचारे पाते ही कितना हैं! सुनकर लगा था कि समाजवाद इन्हीं के श्रीमुख से फूट कर गंगा की तरह सारे देश में फैल जायेगा. बड़े साहब तो गरीबों का खयाल रखने में अपनी थुलथुल बीवी से चार कदम और आगे थे. ओवरसियर से बात करना अपनी तौहीन समझते थे, अतः एस. डी. ओ.को बुला कर लगभग चीखते हुए बोले — मेरे खलासी और ड्राइवर को अभी तक चाय क्यों नहीं मिली? क्या अरेंजमेंट है तुम्हारा? यू आर नाट फिट फार फील्ड वर्क. . . . तुम्हें और तुम्हारे ओवरसियर को सस्पेंड कर दूंगा! दूर खड़े ओवरसियर के कांपते हुए हाथों से मस्टर रोल छूट कर गिर पड़ा था. सुन कर मन-ही-मन प्रार्थना की थी—हे प्रभो, तू मुझे बड़े साब का खलासी ही बना दे! ओवरसियर अपने आपको बड़ा तोप समझता है. मुझसे डरेगा तो !

ऐसा सोचते ही ओवरसियर को अपनी डिग्री का अहसास कराने के लिए मैंने कहा था — क्या मैं एम.बी. में मेजरमेंट रिकॉर्ड करके बिल बना दूं? ओवर ने मेरी बात सुन कर मुझे इस बुरी तरह से घूरा कि बचकाना प्रश्न उसकी जलती हुई आंखों में कहीं कर रह गया. और उसी क्षण उसकी सहानुभूति भक् से फुंक गयी. शेष रह गया एक ओवरसियर, सा ओवरसियर और तब मैंने जाना कि मात्र एक ओ ओवरसियर के साथ रहना कितना दुष्कर होता है.

गलती मेरी ही थी. एम. बी. में मेजरमेंट लि करना एक कला है, टेक्नीक है, जो प्रास्पेक्टस से बाह कोई प्रोफेसर नहीं पढ़ाता. . जानता हो तब न पढ़ अमरीका, रूस, जर्मनी से पीएच. डी. ले लेने से होता है! यह आर्ट तो इस देश की धरती पर रहते ही सीखा जा सकता है. अन्य देश अभी इस एडज टेक्नीक के विषय में शून्य हैं.

भीतर-ही-भीतर खीज उठा था. मौजूदा अ और पांच साला डिग्री के सापेक्ष अपने अस्तित्व के लि मक नहीं खोज पा रहा था. आखिर मैं हूं कहां? सोचे मेरा सोच मेरे भीतर फैले हुए अनंत खालीपन में गूं मर गया था. रेखा तो बड़ी होती है. मैं अपने अस्तित्व कोई छोटा-सा बिंदु भी स्थिर नहीं कर पाया था. फि डरावनी-डरावनी असंगत ग्रंथियां मेरे मन के आकाश में उभरने लगी थीं!

सुबह-शाम हाजिरी देते-देते मैंने महसूस किया हजार-बारह सौ का एक 'वर्क आर्डर' मेरे नाम भी जाये तो मैं दो रुपये अस्सी पैसे से ज्यादा कमा सकता मजदूरों से इतना परिचय तो हो ही गया है कि हफ्ते बिना पेमेंट किये काम करवा सकूं. बस, 'रनिंग बिल' मिलने भर की देर है.फिर सब ठीक हो जा टी. एन. पी. (गेंती, फावड़े, तसले आदि) सरक स्टोर से मिल ही जायेगी. कौन ठेकेदार अपनी टी. पी. रखता है! सभी तो सरकारी से ही काम चला धीरे-धीरे इस विषय में मैंने मजदूरों को राजी कर लि मेरी इस बात पर वे बेहद प्रसन्न हुए.

एस. डी. ओ. साहब तो मेरी बात सुन कर और अधिक प्रसन्न हुए. बड़े भाई की तरह मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले—तुमने बहुत अच्छा सोचा है. इस प्रकार कब तक पड़े रहोगे! अगर जम गये तो उठोगे. यू विल बी कैपेबल टु एंप्लॉय अस ईवन! विल हेल्प यू. बी श्योर!

आश्वासन-प्रिय इस महान देश में, आश्वासन कर मैं आश्वस्त हो गया. किंतु दो महीने बीत गये मैं नहीं चमक पाया. एक दिन जब मैंने एस. डी. साहब को उनका वचन याद दिलाया तो वह चौंक अभिनय करते हुए बोले —ओह, एक्सट्रीमली मेरे दिमाग से तो यह बात ही उतर गयी थी! पचास के कामों में उलझा रहता हूं. ठीक है, अब देखूंगा.

याद दिलाते-दिलाते मैं ऊब गया. याद करते वह भी ऊब गए. परंतु परेशान नहीं हुए. संतुलि में समझाते हुए एक दिन याद दिलाने पर बोले शर्मा, यू नो वेल, इस सब-डिवीजन में तो कोई माइनर काम है नहीं. तुम ई. ई. साहब से मिल लो.

डिवीजन में अच्छा काम चल रहा है. वहां अच्छा रहेगा.

मैंने सकुचाते हुए कहा —सर, सात चेन पर अभी एक पुलिया बननी है.

—भई, वह तो मैं रामप्यारे को कह चुका हूं.

—इक्कीस चेन पर एक रैपिड फॉल है . . .

—यह भी रामप्यारे को कह चुका हूं.

—सर, एट्टी चेन के बाद करीब बारह रैपिड फॉल और वर्टिकल फाल बनने हैं. . .

—ओ शर्मा, ये छोटे-छोटे सब काम मैं रामप्यारे को दे चुका हूं. कहते-कहते वह झुंझला उठे थे. झुंझला मैं भी गया था, पर चुप रहा. सुना था कि ठेकेदार कभी नहीं झुंझलाता, बल्कि झुंझलाहट बरदाश्त करता है. टैक्ट से काम लेता है. और हर सरकारी विभाग में टैक्ट का दूसरा नाम है परसेंटेज, यानी रुपया. कमीशन . अतः सहमते हुए बोला—सर, आप तो मेरी आर्थिक परिस्थिति जानते ही हैं! वर्क से पहले तो नहीं दे पाऊंगा, परंतु एश्योर करता हूं कि आपका तथा पूरे स्टाफ का कमीशन मैं पहला रनिंग बिल मिलते ही चुका दूंगा. मेरी बात सुन कर वह क्षण भर के लिए चौंक उठे. फिर लगभग डांटते हुए बोले — यह ठीक है कि मैं रिश्वत लेता हूं. पर तुमने यह कैसे सोच लिया कि मैं तुमसे भी लूंगा? भई, तुम इंजीनियर हो. मैं भी इंजीनियर हूं. पर क्या करूं, जबान दे चुका हूं!

हां, जबान तो वह दे ही चुके थे. परंतु श्री रामप्यारे को नहीं, उसकी जेबों में पड़े नोटों को.उसकी जीप में पड़े हुए पेट्रोल को. उसकी दुकान में टंगी हुई साड़ियों को. मेरे पास ऐसा क्या है जिसे वह जबान दे सकें! मात्र डिग्री है. डिग्री को जो देना चाहिए, वह हमेशा देते रहते हैं.

जिन कामों की अभी ड्राइंग भी एप्रूव नहीं हुई, उन तमाम कामों को वह एलॉट कर चुके हैं. बड़े लोगों की कलम नहीं, जबान चलती है. सारे आर्डर जबानी हो जाते हैं. लिखित आर्डर के पूर्व ही सारा 'ट्रांजेक्शन' हो जाता है.और यह सब होता है फॉर द इंटरेस्ट आफ वर्क. स्पीडी वर्क. क्विक वर्क. इनकी स्पीड देख कर लगता है कि अब देश का उद्धार होने में ज्यादा देर नहीं है. सरकारी काम भी यह कर्मठ इंजीनियर अपना काम समझ कर युद्ध-स्तर पर करते हैं. यह बात अलग है कि कागजी खाना-पूरी के कारण साल-दो साल की देर हो जाये.

जीप में आगे सीट नहीं थी. एस. डी. ओ. साहब के साथ-साथ ओवरसियर और सब-ओवरसियर बैठे थे. मैं अपनी औकात के अनुसार पीछे बैठने लगा तो एस. डी. ओ. साहब ने देख लिया .

—अरे रे. . . पीछे नहीं, शर्मा, आगे आ जाओ! आइ विल ड्राइव. ड्राइवर, तुम पीछे चले जाओ.

आगे बैठते हुए बदन में तनाव आ गया था. गरदन कुछ तन गयी थी. ऐसे में यदि मां देख ले तो कितनी खुश हो, मैंने मन-ही-मन सोचा था. तभी भीतर कसैलापन फैलने लगा था. मेरी दृष्टि ओवरसियर के चमचमाते हुए जूतों की बगल में अपनी टूटी-फूटी चप्पलों पर पड़ गयी थी. स्वयं के इंजीनियर होने का अहसास क्षण भर में ही मर गया था. चेहरे के भाव तो नहीं छुपा पाया था. एस. डी. ओ. साहब ने एक हाथ से मेरी पीठ थपथपाते हुए स्नेह से कहा था— मैं भी ई. ई. साहब से कहूंगा. न हो तो एस. ई. साहब से भी मिल लेना. चिंता मत करो. कुछ-न-कुछ अवश्य हो जायेगा. बी ब्रेव!

अरुण मिश्र (जन्म : १ जनवरी, १९४८) ने इंजीनियरिंग की डिग्री ली है. डिग्री के पूर्व और बाद के अनवरत संघर्ष ने उन्हें कहानी से जोड़ दिया है. आक्रोश और व्यंग्य इनकी रचनाओं का मूल स्वर है.

मन हुआ कि ब्रेव होते हुए एस.डी. ओ. को उसके दोनों ओवरसियरों के साथ उठा कर बाहर फेंक दूं और तब फिर शान से स्वयं जीप ड्राइव करते हुए घर पहुंचूं. घर के सामने जब जीप रोकूंगा तो मोहल्ले के सारे बच्चे इकट्ठे हो जायेंगे. पड़ोसी ईर्ष्या से जल उठेंगे. सामने की खिड़की पर प्रतीक्षा करती हुई रेखा पर भी रोब पड़ेगा. कितने दिनों से प्रतीक्षा कर रही थी मेरे इंजीनियर होने की! और अब प्रतीक्षा कर रही है मेरी नौकरी मिलने की. पर कब तक चलेगी यह प्रतीक्षा? पर वह तो लड़का नहीं है, लड़की है. उसके लिए उम्र की निश्चित सीमाएं हैं. मेरा क्या है, मैं तो लड़का हूं. कहां हैं मेरे भीतर इच्छाएं? क्षण भर को ठहर कर पीछे देखता हूं तो पाता हूं तपता हुआ एक रेगिस्तान. दूर-दूर तक कोई फूल नहीं. कोई पेड़ नहीं. ओएसिस है तो अवश्य, पर कहां है,यह याद नहीं पड़ता. याददाश्त कितनी क्षीण हो गयी है! वह गीत भी याद नहीं रहा. इतना भी याद नहीं कि जवान जिस्म की कुछ इच्छाएं भी होती हैं. लोग कहते हैं कि जवान लड़के का कोई भरोसा नहीं, पता नहीं कब क्या कर बैठे! कब क्या कर बैठने वाले ऐसे जवान लड़के कहां होते हैं? किस देश में होते हैं? किस ग्रह पर होते हैं? सोचते-सोचते मैं ठंडे अहसास के जानलेवा दायरों में घिर जाता हूं. कुछ भी नहीं सोच पाता. रेखा के बारे में भी नहीं, जिसके तपते हुए सुर्ख होंठ मुझे जला देते थे, जिसके हाथों का हलका-सा भी स्पर्श भीतर तक गुदगुदा देता था, जिसके खयाल मात्र से कल्पनाएं चटखने लगती थीं.अब ऐसा क्यों नहीं हो पाता? क्या अब मैं कुछ नहीं सोच पाऊंगा? रेखा के बारे में भी नहीं? उफ, यह कैसी ठंडक है? हड्डियां कांप क्यों रही हैं? क्या हो गया है मुझे?

जीप में तो बैठा हूं— सर्द लाश की तरह. बगल में बैठे हुए ओवरसियर का स्पर्श कितना गरम है! इस देश में अभी इतनी गरमी क्यों कर शेष है? नहीं-नहीं, वह तो नार्मल है. मैं ही कुछ ज्यादा ठंडा हो चुका हूं.

मेरा एक क्लासफेलो जे. ई. (जूनियर इंजीनियर) मेरी 'हलो' का जवाब दिये बिना ही ई.ई. साहब के चेंबर

में घुस गया. मन में आया कि कॉलर पकड़ कर उसे बाहर खींच लाऊं और फिर पूछूं—क्यों बे साले, भूल गया कि मेरे नोट्स पढ़-पढ़ कर ही पास हुआ है! यदि उस रात 'स्ट्रक्चर' के दो सवाल न समझाता तो आज यहां न होता. किंतु क्षण भर में सारा आक्रोश समझौतावादी हो गया—क्या पता, इसी के अंडर में काम करना पड़े!

बाहर खड़े-खड़े मैं ऊब चुका था. पूरा एक घंटा हो गया होगा. नहीं, ठीक साढ़े दस बजे यहां आ गया था और अब एक बज रहा है. साहब लोग साहब हैं, चपरासी नहीं, जो ठीक साढ़े दस बजे आफिस आ जायें. ग्रेड अनुसार इनका अपना टाइम है. एस. डी. ओ. ग्यारह बजे आता है. ई. ई. बारह बजे. एस. ई. दो बजे. चीफ इंजीनियर पांच बजे के पहले शायद ही आता होगा.

चपरासी के हाथ में दुबारा चिट थमाता हूं. वह मुझे घूरता हुआ भीतर चला जाता है. पता नहीं, चिट दी भी कि नहीं. उससे पूछता हूं तो पीठ फेर लेता है. मेरे भीतर का इंजीनियर तिलमिला उठता है. साला जानता नहीं कि मैं कौन हूं! दस-बारह साल बाद मैं भी इस कमरे में बैठ सकता हूं. ऐसा सोचते ही आत्मविश्वास-सा जागता है. धीरे से चिक उठा कर कहता हूं—मे आइ कमिन सर? ई. ई. साहब सिर्फ चार डिग्री सर ऊपर उठा कर घूरते हैं. चश्मे के भीतर से झांकती हुई उनकी आंखें छोटी होने के बावजूद बहुत डरावनी लगती हैं. काफी देर घूरने के बाद वह बिना हां-ना किये सर झुका लेते हैं, जिसे मैं अनुमति मानते हुए भीतर चला जाता हूं. मैं हाथ को अकारण मलता हुआ कहता हूं—सर, आइ एम अनएंप्लायड ग्रेजुएट इंजीनियर. आइ. . .

—ओ, आई सी! प्लीज सिट डाउन. व्हाटिज योर नेम?

—अनुज शर्मा.

—ओह, आर यू द सेम फेलो हू इज वर्किंग आन एन. एम. आर?.

—य. . . यस्सर. . .

—ओ, आइ एम वेरी हैपी टु मीट यू! आइ ऐम प्राउड ऑफ यू! इतना कह कर वह काल-बेल का बटन दबा देते हैं. चपरासी को चाय का आर्डर देने के बाद मुझसे पूछते हैं—व्हाट फॉर यू हैव कम?

—सर, इस महंगाई में बड़ी दिक्कत है. दो अस्सी में काम नहीं चलता. मैं चाहता हूं कि आप हजार-बारह सौ का कोई वर्क आर्डर मुझे दे दीजिए. साइट पर रह कर कुछ अनुभव भी हो गया है.

—ओ, एक्सीलेंट! आइ ऐम रिअली प्राउड आफ यू! एंटरप्राइजिंग. . . यू आर वेरी एंटरप्राइजिंग! आइ उड बी वेरी हैपी टु हैव सच परसन! इफ वी विल बी हैविंग कांट्रैक्टर्स लाइक यू, द वर्क विल बी आफ सम क्वालिटी एंड स्पेसिफिकेशन. दिस कंट्री इज इन नीड आफ क्वालिफाइड कांट्रैक्टर्स.

इंजीनियरों के विषय में कुछ ऐसे ही सुंदर शब्द स्वर्गीय प्रधान मंत्री के मुंह से भी बहे थे. परंतु अब इन शब्दों से ऊब होने लगी है. मैंने अपनी बात फिर दोहरायी—सर, कोई छोटा-सा वर्क आर्डर दिलवा दीजिए.

—अरे भई, काम तुम्हें नहीं मिलेगा तो किसे मिलेगा? यू आर वेल क्वालिफाइड इंजीनियर. मैं तो चाहता हूं कि इन सभी अंगूठा-छाप ठेकेदारों को निकाल दिया जाये. सब बिलो स्पेसिफिकेशन काम कराते हैं. नो कैरेक्टर! इनके रहते इस कंट्री का कुछ नहीं होने वाला! तुम्हारे जैसे कुछ रिस्क-टेकिंग-स्पिरिट के लड़के और आ जायें तो फिर क्या कहना! दिस कंट्री कैन डेवलप विदीन नो टाइम! आइ लव योर जील. . . व्हाटिज योर फादर?

—रिटायर्ड डी. ए.

—व्हाट? उनकी आंखें आश्चर्य से फट पड़ीं. —डी. ए. . . यू मीन डिवीजनल एकाउंटेंट?

—यस्सर.

—ईवन देन यू आर इन सच कंडीशन! वह मेरे कपड़ों का अवलोकन करते हुए बोले.

—सर, ही इज करप्ट.

—व्हाट डु यू मीन?

—करप्ट टु हिज एव्री इंच फार हिज फैमिली, बट आनेस्ट टु हिज नेशन. उन्होंने अपने बच्चों के साथ, अपनी बीवी के साथ अन्याय किया है. फंड पूरा-का-पूरा लड़कियां ले गयीं. पेंशन बेच कर और ग्रेच्युटी आदि मिला कर कर्ज उतारा. अपनी ईमानदारी की खौफनाक तोप वह मेरे कंधों पर चलाते रहे हैं.

मेरी व्याख्या सुन कर ई. ई. साहब सीरियस हो गये थे. नहीं, उनका चेहरा ही ऐसा है. छोटी-मोटी बातों पर हमेशा ही सीरियस रहते हैं. साहब लोग तो केवल क्लबों में दूसरों की जवान बीवियों और जवान लड़कियों के सामने ही हंसते हैं.

—सर, कोई काम. . .? मैं फिर मुद्दे पर आ जाता हूं.

—ऐ हां. . . देखो, एक-दो हफ्ते बाद मिलना. मैं देखूंगा. डोंट वरी! आइ विल सी सम प्रोफिटेबल वर्क फार यू. बी श्योर!

—सर, मेरी साइट पर ही कई छोटे-छोटे फाल बनने हैं. कुछ कल्वर्ट्स भी हैं. यदि उनमें से. . .

—भई शर्मा, ऐसे काम नहीं होता. सब तरफ देखना पड़ता है. पहले एस. डी. ओ. से पूछना पड़ेगा. हो सकता है कि उसने ये काम किसी को दे दिये हों. और फिर, तुम्हें चिंता करने की क्या जरूरत है? इट्स माइ प्राबलम!

ई. ई. साहब को अपनी चिंताएं सौंप कर, मैं चिंता-मुक्त (?) हो कर बाहर निकला.

अचानक मेरे मस्तिष्क में अतीत का एक दृश्य कौंध गया—मेरे पिताजी के पांव पकड़ कर एफ. एस. डी. ओ. गिड़गिड़ा रहा था—डी. ए. साब, मैं मर जाऊंगा! मेरे बच्चे भूखे मर जायेंगे! अब तो आप ही मुझे बचा सकते हैं! प्लीज डी. ए. साब. . . !

और पिताजी बोले थे—मेरी कलम से आज तक किसी का बुरा नहीं हुआ. आप निश्चित रहें. आपका मेरे होते कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता!

—आपने मुझे उबार लिया डी. ए. साब! मैं. . मैं आपको पंद्रह हजार तक दे सकता हूं. उसे पिताजी की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था.

—देखिए सिंह साब, आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं रिश्वत नहीं लेता. बस, मेरा एक उसूल है—दूसरों को रोकता भी नहीं. मेरी ओर से आप बेफिकर रहें.

और इन्हीं सिंह साहब से जब पिताजी ने मीतू की शादी के लिए दो हजार बतौर कर्ज मांगे थे तो कितना नपा-तुला जवाब पाया था—आप तो जानते ही हैं कि इन दिनों सब-डिवीजन में काम कितना डल चल रहा है!

एक डिवीजनल एकाउंटेंट को उसी के सब-डिवीजन के विषय में बताया गया था.

और आज जिन ई. ई. साहब से मिल कर मैं आ रहा हूं, यह वही सिंह साहब हैं. शायद पुरानी बातों को सोच कर ही वह कुछ सीरियस हो गये थे.

उस दिन घर लौटा तो कमरे में घुसते ही चौंक पड़ा. ई. ई. साहब सामने बैठे हुए थे. मुझे देखते ही उन्होंने उठ कर गले लगा लिया. मैं अचकचा गया था. मेरी पीठ पर स्नेह उड़ेलते हुए बोले—बड़ा ही होनेहार लड़का है आपका! ही हैज गाट जील फार हार्ड वर्क. फिर मुझे प्यार से डांटते हुए बोले—तुम दुबारा आये क्यों नहीं? मैंने तुम्हारे लिए एक काम रख छोड़ा था!

सुन कर मैं खिल उठा था. खुशी के मारे मेरी सांस फूल आयी थी. पिताजी ने मुझसे चाय बनवाने को कहा तो मैं फिर उदास हो गया. पास-पड़ोस से जब आंखें झुका कर लौटा तो ई. ई. साहब के शब्द मेरे कानों में पड़े—वह केस फिर उखड़ आया है. मेरा डी. ए. अभी नया-नया है. कानूनी दांव-पेंच नहीं समझता. इस डी. ओ. के लेटर का जवाब लिखवा दीजिए. आप तो मेरा पूरा केस जानते ही हैं. हम लोग कुछ नहीं कर सकते. एकाउंटस् के मामले में बिल्कुल निल हैं. चुपचाप सामान ले कर भीतर चला गया. चाय ले कर जब तक कमरे में आया, तब तक पिताजी जवाब लिखवा चुके थे. ई. ई. साब को काली-सी चाय आफ़र करते हुए मुझे कोई झिझक नहीं हुई.

—आप उस फाइल में यह नोट और ऐंड कर दीजिए. . . बैक डेट में एंट्री करके. . . .

मन हुआ कि पिताजी से कहूं, यह वही आदमी है जो आपको पंद्रह हजार रिश्वत देते-देते दो हजार उधार भी नहीं दे पाया था.

—फाट्टी फोर परसेंट एबव सी. एस. आर. पर कट-आफ ट्रेंच का यह काम मैंने तुम्हारे लिए रख छोड़ा है. ई. ई. साहब ने मुझे बुला कर बताया.

—फाट्टी फोर परसेंट एबव सी. एस. आर? मुझे यकीन नहीं हुआ था. और ठेकेदार तो पंद्रह परसेंट अबव सी. एस. आर. पर ही अच्छा कमा रहे हैं. मुझे तो काफी फायदा होगा! मन ही मन मेरा सर ई. ई. साहब के चरणों में झुक गया. कल्पनाएं खिलने लगीं—सबसे पहले मां के लिए धोती लाऊंगा. पिताजी का कुरता कितना फट चुका है! मां के लिए ब्लाउज तो अवश्य ही लाना है. न जाने क्यों मां के ब्लाउज के विषय में सोच कर आज बहुत शर्म महसूस कर रहा था.

—ठीक है, तुम कल से काम लगा दो.

टी. एन. पी. का जुगाड़ करते-करते पूरा सप्ताह बीत गया. परंतु एस. डी. ओ. साहब की मेहरबानी से अंत में हो ही गया. ट्रेंच की गहराई देख कर मैं कांप उठा था. चालीस फीट गहरे में खुदाई करनी थी. ई. ई. साहब के प्रति श्रद्धा (?) से एक बार फिर सर झुक गया. काम शुरू करते वक्त तमाम कठनाइयों के बावजूद दिल बल्लियों उछल रहा था. बिना नारियल फोड़े ही पहली गेंती मैंने चला दी. और फिर उत्साह में चलाता ही गया. लेबर मुझे रोक रही थी. दूर खड़ा ओवरसियर मुसकराते हुए बोला था—अब प्रोग्रेस आ जायेगी. ऐसी बातों की यदि मैंने परवाह की होती तो मस्टर रोल में नाम लिखाता? अतः मैं जोश में बिना कोई परवाह किये गेंती चलाता ही गया और अंत में पस्त हो कर वहीं किनारे लेट गया. लेटे-लेटे खयाल आया कि पिछले दो दिनों से कुछ नहीं खाया है. भूख अभी भी नहीं लग रही थी. बस, कमजोरी भर थी. बालों के सिरों तक को गरमाने वाली कमजोरी. सारे रेजा-मजदूर मय बाल-बच्चों के मेरे लेटते ही जी-जान से जुट गये थे. उनमें काफी उत्साह था.

दो हफ्ते बाद जब ओवरसियर ने मेजरमेंट ले कर बिल बनाया तो मेरी आंखें फट गयीं. सांस अपनी जगह और आंखें अपनी जगह स्थिर हो गयीं. मैं कुछ भी नहीं पढ़ पा रहा था. कहीं पत्थर आंखें भी कुछ पढ़ सकती हैं!

मजदूरों की दो हफ्ते की मजदूरी होती थी सात सौ चौहत्तर रुपये, और मेरे सामने चेक पड़ा हुआ था तीन सौ अठ्ठाइस रुपये साठ पैसे का! मेरी आंखों में अंधेरा भरता जा रहा था. . . घुप्प अंधेरा. और उस अंधेरे में भी मैं साफ-साफ देख रहा था—मजदूर हाथों में गेंती-फावड़े थामे हुए मुझे मारने हेतु चिल्लाते हुए चले आ रहे हैं. और कर भी क्या सकते हैं? मैं बुरा हूं. मुझे मारना ही चाहिए. आखिर इन मजदूरों का शोषण कब तक होता रहेगा? अब ये जाग रहे हैं. पेट की आग सब कुछ समझा देती है. और, ये तो सचमुच ही मार डालेंगे! घेर तो लिया है. मुझे भागना होगा. . . . भागना होगा. . .

और मैं भागते हुए ई. ई. साहब के चेंबर में घुस जाता हूं. अंदर पहुंचते ही उनकी टेबल पर चेक फेंकते हुए कहता हूं—थैंक यू वेरी मच, सर! यू हैव गीवेन मी एक्सट्रीमली प्राफिटेबल वर्क! पर इतना रुपया मैं रखूंगा कहां? कीप दीस चेक इन योर सेफ; आइ विल बी थैंकफुल टु यू! मैं. . . मुझे आप पर विश्वास है. . . आप संभाल कर रखेंगे!

और बिना कोई उत्तर सुने मैं बाहर निकल आता हूं. बाहर आते ही मेरा सारा तनाव खत्म हो जाता है. बुद्ध की तरह शांत हो कर सामने तटस्थ भाव से देखने लगता हूं. सामने फैला हुआ स्वच्छ आकाश. सामने दीख रहे हैं अनगिनत रास्ते. अब मैं किसी भी रास्ते पर चल सकता हूं. . . किसी भी मनपसंद रास्ते पर. . . सुविधानुसार. . .इच्छानुसार. एक रास्ता रेल्वे स्टेशन की ओर जाता है. एक रास्ता तालाब की ओर जाता है. एक रास्ता पुल की ओर. एक रास्ता नदी की ओर. एक रास्ता पहाड़ी की ओर. एक रास्ता अंधे कुएं की ओर. □□□

माथुर भवन, अमहिया,
रीवा (म. प्र.)

अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन —एक रिपोर्ट

अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन २७, २८ फ़रवरी और १ मार्च, १९७५ को बंबई में संपन्न हुआ. इस ऐतिहासिक सम्मेलन में भारत के विभिन्न हिस्सों से आये ५५ प्रतिनिधि साहित्यकारों ने भाग लिया. सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि विभिन्न मतवादों के सभी लेखक एक-दूसरे के प्रति सौहार्द की भावना बनाये रहे. तीन दिनों के जीवंत विचार-विनिमय में चेतना के नये धरातल खुलते चले गये. अंत में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुए. सम्मेलन का उद्घाटन महामहोपाध्याय, साहित्य-वाचस्पति डॉ. दत्तो वामन पोद्दार ने किया और हिंदी-तेलुगु के चिंतनशील लेखक श्री पी. वी. नरसिंहराव (भूतपूर्व मुख्यमंत्री, आंध्रप्रदेश, तथा संप्रति कांग्रेस दल के महामंत्री) ने अध्यक्षता की. डॉ. धर्मवीर भारती ने उद्घाटन-गोष्ठी का संचालन किया.

अपने उद्घाटन भाषण में डॉ. दत्तो पोद्दार ने कहा कि साहित्य साहित्यकार के आंतरिक स्पंदन से प्रस्फुटित होता है. सच्चे साहित्य को निजी राग-द्वेष से ऊपर उठ कर लोक-कल्याण के महान लक्ष्य को ध्यान में रख कर अपनी भूमिका निभानी चाहिए. श्री महावीर अधिकारी (संपादक, **'नवभारत टाइम्स'** बंबई) ने आशा व्यक्त की कि यह सम्मेलन लेखकीय चिंतन का मंच बनेगा. आज लेखक परिवेश का इतना दबाव महसूस कर रहा है कि कलम की बजाय हथियार उठाने को तबियत होती है. प्रख्यात कथाकार और **'सारिका'** के संपादक कमलेश्वर ने कहा कि कुछ प्रश्न बार-बार उठाये जाते हैं, जैसे प्रतिबद्धता, साहित्यकार की भूमिका वगैरा. ये प्रश्न अब बहुत हद तक साफ और तय हो चुके हैं. साहित्यकार की परिभाषा बदल चुकी है. वह अपने समय में जी रहा है, साहित्य के इतिहास के लिए नहीं. निश्चय किया जाना चाहिए कि समय क्या है. हम अलग-अलग प्रज्वलित व्यक्तित्व नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं. अब जरूरत इस बात की है कि लेखक एकजुट हो कर वर्तमान काल की चुनौतियों का सामना लेखकीय धरातल पर करें.

डा. विशवंभरनाथ उपाध्याय ने कहा कि प्रतिबद्धता-पक्षधरता जैसी अवधारणाओं पर अभी भी विचार आवश्यक है. इनके निहितार्थ अभी भी स्पष्ट नहीं हैं. दरअसल इन शब्दों को चरितार्थ करने वाली जन-शक्तियों को पहचानने और उन्हें साहित्य में चित्रित करने की जरूरत है.

गोष्ठी के संचालक डॉ. धर्मवीर भारती ने कहा कि जरूरत आत्म-निरीक्षण की है. साहित्य में व्याप्त छल का अन्वेषण जरूर होना चाहिए, लेकिन दूसरे के छल की जांच करने से पहले हमें स्वयं को परखना चाहिए, कि हममें स्वयं वह छल तो कहीं पैठा हुआ नहीं है!

इस गोष्ठी में हिंदी **'ब्लिट्ज़'** के संपादक श्री नंदकिशोर नौटियाल, स्वागत समिति के उपाध्यक्ष श्री गणेशनारायण पोद्दार, महाराष्ट्र विधानसभा के अध्यक्ष श्री शेषराव वानखेड़े तथा सम्मेलन के महासचिव श्री महेंद्र कार्तिकेय ने भी अपने विचार प्रकट किये.

★ ★

दोपहर में, पहली गोष्ठी का विषय था'आलोचना की राजनीति'. गोष्ठी की अध्यक्षता वरिष्ठ कवि श्री वीरेंद्रकुमार जैन ने की और संचालन किया डॉ. रणजीत ने.

डा. विशवंभरनाथ उपाध्याय ने आलोचना के ऐतिहासिक महत्व और मूल्य को रेखांकित करते हुए सांप्रतिक आलोचना में अंतर्मुखता के कारण उत्पन्न असंगतियों की ओर ध्यान खींचा और पत्र-पत्रिकाओं, दलों-उपदलों और उपगुटों में विभाजित परस्पर-द्रोही आलोचना से जिस वस्तुगत मूल्यांकन का संकट खड़ा हो गया है, उसके समाधान के लिए लेखकों को प्रेरित किया. उन्होंने कहा कि आलोचना के नाम पर साहित्यिक पत्रकारिता का बोलबाला है. डॉ. रणजीत ने अपने निबंध में मानो इसी स्थिति को उदाहरण सहित पेश किया. डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने आलोचकों की कमियों को सूचीबद्ध किया. डॉ. मोहन अवस्थी के अनुसार आलोचना की राजनीति 'अधिक व्यक्तियों की पसंद' बन गयी है. श्री ओमप्रकाश निर्मल का मत था कि आज की आलोचना देश और सत्ता की राजनीति के समांतर चल रही है. इन महानुभावों के अतिरिक्त सर्वश्री बलदेव वंशी, डॉ. रामवचन राय, डॉ. राजेंद्र मिश्र, डॉ. वासुदेव साह, डॉ. विनय, उदभ्रांत, राकेश वत्स, डॉ. धनंजय वर्मा ने भी इस गोष्ठी में भाग लिया. श्री वीरेंद्रकुमार जैन ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आलोचना के क्षेत्र में फैली गुटबंदी की निंदा की और वस्तुगत आलोचना की आवश्यकता पर बल दिया.

दूसरी गोष्ठी का विषय था—'साहित्यकार की चेतना', जिसकी अध्यक्षता डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित ने की. संचालन डॉ. धनंजय वर्मा ने किया. डॉ. विजेंद्रनारायण सिंह ने कहा कि चेतना और सृजन सामाजिक उपपत्तियां हैं, इन्हें व्यक्तिगत नहीं सिद्ध किया जा सकता. श्रीकांत जोशी ने कहा कि लेखकों को भी जन-आंदोलन में भाग लेना चाहिए.'

तीसरी गोष्ठी का विषय था—'कथा साहित्य की दिशाएं', जिसकी अध्यक्षता प्रख्यात उपन्यासकार श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने की और संचालन कमलेश्वर ने किया.

दिनेश पालीवाल ने 'नये' कहानीकार के भटकाव को रेखांकित किया और कहा कि प्रेमचंद की कहानियों को मूल चेतना समकालीन कहानियों में फिर बोलने लगी है. डॉ. धनंजय वर्मा ने अपनी तीखी शैली और नाटकीय स्वर

आरोह-अवरोह के साथ समकालीन कहानियों के सपाटपन, विद्रोह और क्रांति की घोषणाओं से भरी मगर कलाहीन कहानियों को कहानियां मानने से इनकार किया. उन्होंने कहा कि ये इकहरी कहानियां हैं, जिनमें न अंतर्द्वंद्व है, न स्वाभाविक द्वंद्व. इनमें लेखक के गहरे एहसास और पर्यवेक्षण नहीं मिलते. डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री ने कहा कि कहानी की विशिष्टता को पहचानने, उसे विश्लेषित करने और उसके मूल्यांकन के लिए प्रतिमानों का आविष्कार आवश्यक होता है.

डॉ. विनय ने समांतर कहानी का संदर्भ सामने रखते हुए कहा कि आज कहानी सार्थक, समय-सापेक्ष, और प्रामाणिक रूप में अपनी प्रतीति दे रही है. आज की कहानी साहित्य की सौंदर्य-शास्त्रीय व्याख्याओं, झूठे तेवरों और गलित विचारधाराओं के सैलाब को नकारती-काटती हुई सीधे जीवन से जुड़ रही है.

कमलेश्वर ने कहा कि इन सभी निबंधों में आज के समाज और जन की परख और सही पहचान की मांग की गयी है. रचनाकारों को इन सवालों पर खुले मन और मस्तिष्क से विचार करना है. लेखकों को पहले अपने आपको भी टटोल कर देखना है कि वे खुद कहां हैं और वे परिवर्तनकामी शक्तियों के साथ हैं या नहीं.

श्री रेणु ने कहा कि आज लेखक नारों की भाषा से ही अपना दिल बहला रहे हैं. शब्दों को उछालने से कुछ नहीं होता. मुझे लगता है कि आज की भयंकर स्थिति में लेखक को लिखना बंद करके जन-आंदोलनों में भाग लेना चाहिए.

चौथी गोष्ठी '१९७४ की कविता' पर हुई. अध्यक्ष थे श्री हरिनारायण व्यास और संचालक डॉ. विजेंद्रनारायण सिंह. डा. सुधा महेश, डॉ. श्यामसुंदर घोष, बलदेव वंशी तथा डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने निबंध पढ़े. अधिकांश निबंधों में 'विद्रोही कविता' को पूर्ववर्ती कविता से अलग करने की कोशिश थी.

पांचवीं गोष्ठी का विषय था—'वर्तमान संदर्भ में साहित्यकार की भूमिका'. अध्यक्ष थे डॉ. कमलाप्रसाद पांडेय और संचालक श्री राजीव सक्सेना. डॉ. विजेंद्र नारायण सिंह, डॉ. राजेंद्र मिश्र, श्री इंद्रपाल सिंह इंद्र, लाल मुहम्मद रिजवी, डॉ. कौशल मिश्र, तथा डॉ. लक्ष्मीनारायण दूबे ने साहित्यकार की भूमिका की खोज की और सबने एक स्वर से साहित्यकार को आज की वास्तविकता क प्रतिबिंबित करने और आम आदम के हित में पूंजीवाद और प्रशास द्वारा पैदा की गयी यथास्थिति स लड़ने की सलाह दी.

छठी गोष्ठी 'राष्ट्रभाषा हिंदी पर हुई. अध्यक्ष थे. डॉ. हरदेव बाहर तथा संचालक श्री ओमप्रकाश निर्मल. गोष्ठी में करीब-करी सभी वक्ताओं से हिंदी की वर्तमा स्थिति पर असंतोष व्यक्त किय और यह मांग रखी कि शीघ्रातिशी हिंदी को उसका प्राप्य स्था प्रदान किया जाये.

सातवीं गोष्ठी का विष था—'साहित्यिक पत्रकारिता बना लघुपत्रिका आंदोलन'. इस गोष्ठी की अध्यक्षता श्री नंदकिशोर नौटियाल ने की और संचालन श्री राजेंद्र अवस्थी ने किया. सर्वश्री डॉ. धर्मवीर भारती, केशव पांडेय, धर्मेंद्र गुप्त, जयनारायण, रामावतार चेतन तथा मंजुल उपाध्याय ने निबंध-वाचन किया. बहस के दौरान साहित्यिक और लघुपत्रिकाओं के बीच की बहुत-सी गलतफहमियां साफ हो गयीं.

अंतिम गोष्ठी 'प्रतिबद्धता और आम आदमी' को ले कर हुई. श्री भैरवप्रसाद गुप्त ने इसकी अध्यक्षता की और संचालन श्री महेंद्र कार्तिकेय ने किया.

समापन समारोह में कुछ प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए, जिनमें व्यवस्था विरोधी क्रांतिकारियों पर, जो कि अरसे से जेलों में बंद हैं—अविलंब मुकदमा चलाने या उन्हें मुक्त करने की मांग की गयी; मांग की गयी कि सभी सरकारी, गैर-सरकारी और व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं पर व्यवसायवादी और पूंजीवादी नियंत्रण का सामाजीकरण किया जाये; सरकार पुस्तक प्रकाशन की पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करे; सरकार लघुपत्रिकाओं को कागज उपलब्ध कराये; समाजवादी देशों की तरह देश के लेखकों को सुविधाएं दी जायें, आदि.

☐ **एस. कुमार**

एक गोष्ठी के दौरान मंच पर—सर्वश्री नंदकिशोर नौटियाल, कमलेश्वर, महेंद्र कार्तिकेय और रेणु

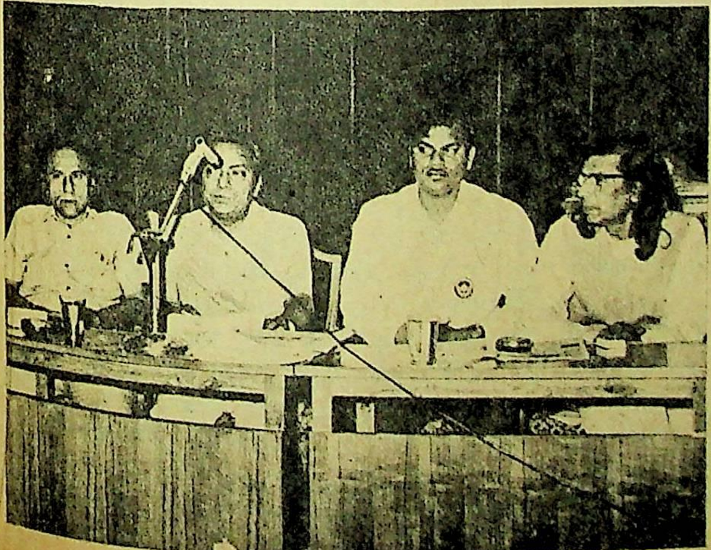

फफोले

सच्चिदानंद धूमकेतु

सारी रात उसे नींद नहीं आयी. आसमान खुलने के पहले ही धरमी निरगुनिया के मजीरे की टुकटुकी कानों में टिकाते देख कर 'हरे रामजी, रामजी हरे-हरे!' का उच्चारण करता हुआ वह उठ बैठा.

ओस में नहाई-फहराती हवा पसलियों और टखनों को छेद रही थी. नीचे ढलान के काछ पर कमला-बलान की बेगवती धारा कस्बे के दुख-संताप को ठौर-ठौर देखती हुई अहर्निश भाग रही थी. सामने सड़क पर लोगों का आना-जाना शुरू हो गया था, लेकिन सुबह के धुंधलके में रेलवे स्टेशन अभी तक ढंका था. पैसेंजर गाड़ी की प्रतीक्षा करने वाले मुसाफिर प्लेटफार्म पर ठंड से सिकुड़े पड़े थे.

उसने सुरजा को जगाया. सुरजा कुछ देर तक कुनमुनाता रहा और नींद की घुमरी में डूबता-उतराता बेमन उठ कर खाट पर बैठ गया. भोला हथौड़ी से कोयला तोड़ता हुआ सूरजा को देख रहा था, जो अभी तक आलस से ऊंघता और मुंह के कोने से बासी लार टपका रहा था. उसकी कच्ची नींद देख कर एक क्षण के लिए भोला को उस पर दया आ गयी. उसने अंगीठी जलायी और टूटे पंखे से फटर-फटर की आवाज बिखेरता हुआ आग सुलगाने लगा.

जब सुरजा के नथुने धुंए से भरने लगे, तब वह खों. . खों. . .खांसता हुआ दुकान से बाहर निकला और ठंड को भूल कर अलमुनियम के छोटे-बड़े बर्तनों को मांजने में जुट गया. तब तक भोला दुकान की सफाई कर चुका था. रात भर घूरे पर सिकुड़े कुत्ते जम्हाई लेकर उठ खड़े हुए थे. भोला ने जल्दी-जल्दी माथे पर तेल चुपड़ा और नल के नीचे बैठ कर नहाते हुए हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा.

भोला ने लक्ष्मीजी को अगरबत्ती दिखायी. गद्दी पर रखे काठ के छोटे-से बक्से पर पानी छिड़का और 'चाह. . .गरम. . .गरम. . .चाह' का राग अलापने लगा. पिछले पंद्रह वर्षों से इन शब्दों को वह इस तरह अपने जीवन के साथ घुला-मिला लिया था कि आने वाले मुसाफिरों पर नजर पड़ते ही घड़ी की सुइयों की तरह उसका मुंह टिकटिका पड़ता था.

अभी तक ट्रेन के आने की घंटी नहीं बजी थी. वह धीरे से बुदबुदाया—मालूम होता है कि पसिंजर ठीक टैम पर नहीं है. लेट आ रही है.

सुरजा अंगीठी से सट कर खड़ा था और सर्दी से बचने के लिए आग पर हथेलियां सेंक रहा था.

मालगोदाम का मेठकुली विपत सामने बेंच पर बैठता हुआ बोला—कंपनी, एक सिंगल चाय और हाफ रोटी देना.

सुबह-सुबह विपत को देखकर भोला जलभुन गया. कल भी वह ठीक बोहनी के समय चाय पी कर चला गया था. हुज्जत करने के बाद उसने दोपहर तक पैसे दे देने का वायदा किया था लेकिन वह पैसे चुकाने वापस नहीं लौटा. सुबह की खटपट का नतीजा यह हुआ कि दिन भर की बिक्री मारी गयी. पैंतीस-चालीस रुपये की बिक्री वह मजे से कर लेता था लेकिन कल मुश्किल से बाईस रुपये ही पड़े.

उसे देख कर भोला घुड़कता हुआ बोला—फिर आ गये सुबह-सुबह उधार लेने. कल के पैसे तो मैं लेने से रहा, आज फिर किस मुंह से चले आये!

विपत भी कम नहीं था. छूटते ही बोला—तुमसे उधार लिया है कोई मुफ्त नहीं. तू पैसे छोड़ देगा क्या? फिर वही थुक्का-फजीहत. आज का दिन भोला खराब नहीं करना चाहता था.

टालने के लहजे में बोला—विपत भाई! चोर भी शकुन करता है. फिर मैं तो दुकानदार ठहरा. मैं उधार नहीं दूंगा. मुझ पर दया करो और दूसरी दुकान में चले जाओ.

उसकी बातें सुन कर विपत तिलमिला उठा. अकड़ कर बोला—पैसे कमा कर ज्यादा गर्मी आ गयी है क्या?

भोला उससे मुंह लगाना नहीं चाहता था. वह जानता था कि विपत के ऊपर हमेशा पचास का नशा छाया रहता है. छंटा हुआ गुंडा है. माल-बाबू और स्टेशन मास्टर के पाकिट का आदमी. यार्ड में जितने डब्बे टूटते हैं, उसमें विपत का ही हाथ रहता है. पिछले महीने जब स्पेशल स्क्वाएड ने रेलवे कर्मचारियों के घरों पर छपा मारा था तो प्रायः सभी के क्वार्टर से रेलवे की चोरी के सामान बरामद हुआ था. अकेला विपत साफ निकल गया. हिस्से का माल तुरंत ही वह तोड़-जोड़ कर कस्बे के बनिये-महाजन के हाथ बेच देता है. जो चीजें नहीं बिक पाती हैं, उन्हें वह फुलिया नटिन के यहां पहुंचा देता है, जहां उसकी रातें गुजरती हैं.

विपत का गुस्सा शांत होने के बजाय बढ़ता ही गया. वह भोला को भद्दी-भद्दी बातें कहता रहा. विपत की बातों का असर शायद भोला पर नहीं हो सका. वह चुप बैठा सुनता रहा.

* *

जिंदगी को मुर्दे के तौक की तरह झुलाते हुए चलना भोला को पसंद नहीं है. उसने जीवन को झेला है. इस छोटे-से कस्बे के उतार-चढ़वा में बराबर का हिस्सा बंटाया है. दादा की तरह भोला का बाप भी राज मिस्त्री ही था. मरते समय वह अपने बेटे के लिए रेहन में पड़ा टूटा हुआ मकान, करनी और वसूली छोड़ गया था. साथ-साथ महाजनों के कर्ज का काफी बड़ा बोझ. उसी दबाव में उसका बाप जीवन भर कराहता और पिसता रहा था.

एक-एक कर घर के सारे लोग काल के गह्वर में खो गये थे. बच रहा था, भोला, जिसे अपने बाप-दादे की तरह न तो कोई फन हासिल था और न वह पढ़ा-लिखा ही था. लेकिन उसे अपने खानदानी धंधे से काफी चिढ़

थी. पैतृक संपति में मिले औजारों को बेच कर वह बहुत खुश था. सिर्फ छः रुपये मिले थे उसे.

जालीदार बटुए में सारे पैसों को हिफाजत से ठूंस कर घंटों तक वह कस्बे की गलियों में घूमता रहा था. सब की आंखें बचा कर उसने बीसियों बार उनकी गिनती की थी. इस रकम से वह कुछ करने-धरने की बातें अनायास ही सोचने लगा था. दो दिनों तक इसी उधेड़बुन में रहने के बाद तीसरे दिन उसने ट्रेन में मूंगफली बेचने का धंधा शुरू किया. गर्दन में मूंगफली का खोमचा जो सुबह लटकाता तो रात के दस बजे ही उतारता था.

धीरे-धीरे उसने नुक्कड़ पर चाय की दुकान खड़ी कर ली. स्टेशन के कुली उसकी तरक्की को देख कर उसे कंपनी नाम से संबोधित करने लगे. यूं चाय की कई दुकानें थीं, लेकिन भोला कंपनी की दुकान की चाय का जायका कुछ और ही था. स्टेशन के कुली और बाबू लोग, बड़ी-छोटी जेबोंवाले मुसाफिर प्रायः सभी उसकी चाय पसंद करते थे. देनदार लोगों को वह उधार देने से भी नहीं कतराता.

कुछ ही वर्षों में भोला की आर्थिक स्थिति काफी सुधर गयी. किराये की उस दुकान को उसने खरीद ही लिया था और एक दिन उसने दुकान में पवित्र हिंदू-भोजनालय की तख्ती भी लटका दी. चाय और भोजनालय दोनों साथ-साथ चलने लगे. उसे सांस लेने तक की फुर्सत नहीं मिलने लगी. रात के ग्यारह बजे जब पैसेंजर ट्रेन स्टेशन से गुजर जाती, तब कहीं चूल्हे की आग ठंडी हो पाती थी. . .लेकिन इस अप्रत्याशित तरक्की से कस्बे के बहुत सारे लोगो की आंखों का वह कांटा बन गया. लोगबाग पीठ पीछे उसकी आलोचना करने लगे थे. तरह-तरह की अफवाहें उड़ने लगीं. कोई कहता कि दुकान की आड़ में वह गांजा-भांग का रोजगार करता है तो कोई कहता कि रेलवे का माल उड़ाता है.

भोला को लोगों की बातों से कोई मतलब नहीं था. दिन-रात वह अपने काम में लगा रहता. शादी के बाद उसने अपनी रज्जो को गांव में ही रखने का निश्चय कर लिया था. महाजन के चंगुल से उसने अपनी मौरूसीडीह छुड़ायी और साथ-साथ रेहन पड़ी जमीन भी.

भोला की अपनी जमीन तो हो गयी थी लेकिन उससे वह कभी भी भरपूर अनाज नहीं ले पाता. रज्जो, दोनों बेटे सुरजा और बिरजा के साथ खेत में कड़ी मेहनत करती थी किंतु फसल मिमियायी हुई ही खेतों में दिखाई पड़ती. क्यारियां हमेशा पिलपिली बनी रहतीं.

परसाल रज्जो की पीठ में कुछ बरसाती फफोले निकल गये थे. उसकी पीड़ा से वह हफ्तों तक कराहती रही थी. भोला उन पर नश्तर लगवाना चाहता था लेकिन रज्जो ने हाथ नहीं रखने दिया और सारे फफोले ठसियाकर पीठ के अंदर ही फसक गये. रज्जो फफोले को देख तो नहीं पाती लेकिन कभी-कभी उसे भयानक टीस होती.

उसके खेतों में भी चार-पांच वृक्ष उग आये थे, उनकी शाखें लगातार हाथ फैलाकर आदमखोर की तरह भोला के परिवार को चबा जाने की कोशिश कर रही थीं. टहनियां झकास मारती हुई खेतों में आजानबाहु की तरह फैलती जा रही थीं. उनकी छांव में फसल पनप नहीं पाती. खेतों की दुर्दशा देख कर कई बार भोला ने सारे वृक्षों को काट देने की बात सोची लेकिन रज्जो ने अंधविश्वास के कारण उसे काटने नहीं दिया. उल्टा प्रत्येक शनीचर को उन पर दूध-जल चढ़ाती. तने पर सिंदूर की पांच लकीरें खींचती और धूप जलाती थी.

शाम होते ही कस्बे की रौनक बढ़ने लगती. भोला की दुकान के आगे रखे बेंच भर जाते. दिन भर के गंधाये पसीने को पोंछते हुए स्टेशन के बाबू लोग, कहवाघर में शाम गुजारनेवाले लेखक और पत्रकार, सारा दिन घर में एकरस और अनगढ़ जीवन गुजारने वाले लोग शाम पांच बजे ही आ कर बेंच-कुर्सियां पकड़ लेते और बहुत रात तक गप्पें हांकते. संसद से ले कर विधान सभाओं की बखिया उधेड़ी जाती. साहित्यिक और सांस्कृतिक चर्चाएं होतीं.गरमा-गरमी होती. लेकिन इन बातों से भोला का जी नहीं घबड़ाता बल्कि वह मुस्कराकर बीच-बीच में किसी-किसी मुद्दे पर सिर हिला कर अपनी सहमति प्रकट करता रहता था.

ज्यों-ज्यों स्टेशन का विकास होता गया, त्यों-त्यों भोला की आमदनी कम होती गयी. अब वह स्टेशन जंकशन के रूप में बदल गया था. पहले चौबीस घंटे में अप-डाउन दो ही पैसेंजर गाड़ियां रुकती थीं. अब मेल और एक्सप्रेस भी रुकने लगी थीं. चौक की रौनक बढ़ गयी थी. सड़कों पर लोगों का आना-जाना हमेशा जारी रहता लेकिन भोला की दुकान की बेंच अधिकतर खाली रहा करती. सारे बाबू लोग, साहित्यिक और कस्बे के शौकीन युवकों ने अपने बैठने का अड्डा दूसरी दुकान पर बना लिया था.

लाला घनश्यामदास का नया रेस्तरां खुल गया था जिसकी फर्श पर रंग-बिरंगे टाइल्स जड़े थे. कुर्सियों पर मुलायम गद्दे थे और काउंटर पर बैंपायर की तरह मुंह से झाग उगलती एस्प्रेसो मशीन. इतनी सुविधाओं के बाद किसे गरज पड़ी थी कि वह भोला की टीन वाली छत के नीचे धुंए को संघता हुआ चाय सुड़कता और छप्पर पर चितकबरी बिल्लियों के लड़ने का शोर सुनता!

लालाजी का रेस्तरां खोलने की ओर ध्यान नहीं था. वे तो कस्बे के मशहूर व्यापारी थे और मेन रोड पर उनकी किराना की बड़ी-सी दुकान थी. भोला की आमदनी देख कर ही वे इस धंधे में प्रेरित हुए थे.

रेस्तरां खुलते ही भोला का धंधा सचमुच ही मंदा पड़ गया. डेढ़-पौने दो सौ की बिक्री घट कर चालीस-पचास पर आ गयी. दुकान के नौकर भाग कर रेस्तरां में बेयरा बन गये. वे ही लोग भोला के यहां चाय पीते और खाना खाते जिन्हें उस पुरानी दुकान से या तो हमदर्दी थी या जो रेस्तरां में अधिक पैसे देने के काबिल नहीं थे. नौकर की जगह सुरजा गांव से आ गया था.

कस्बे के भविष्य के बारे में लालाजी बहुत ही आशावान थे. उन्हें पता था कि जल्दी ही वहां सरकार की ओर से कोई इंडस्ट्री खुलनेवालीहै. भोला की दुकान जो बिल्कुल दो मुहानों के नुक्कड़ पर थी, लालाजी की आंखों के आगे रात-दिन घूमती रहती. जब भी उनकी निगाहें उस ओर उठतीं, वे निर्मिमेष दृष्टि से एकटक उस दुकान को देखते रहते और भविष्य में के गर्भ से झांकते किसी आलीशान भवन की कल्पना किया करते थे.

* *

पिछले दो महीने से लालाजी से उसकी काफी बनने लगी थी. रेस्तरां का मुकाबला करने में वह अपने को सक्षम नहीं पा रहा था और न उससे प्रतियोगिता ही कर चाहता था. लालाजी ने भी काफी शह दे रखी थी. वे ज भी उस तरफ हो कर गुजरते, भोला का समाचार अवश्य ही पूछते. धीरे-धीरे उसके होटल का सौदा लालाजी की ही दुकान से उधार आने लगा. जब कभी उसकी तबीयत होती, पैसे चुकाता था. लालाजी की तरफ से कभी भी तकादा नहीं आता.

दुकान को फिर से जमाने के लिए वह काफी प्रयास कर रहा था. डस्ट की जगह लीफ की चाय बनाकर ग्राहकों को देने लगा. इसके बावजूद दुकान की भीड़-भाड़ बढ़ नहीं सकी. सभी रेस्तरां की ओर ही भागते रहे. पुराने ग्राहकों को वह नहीं बटोर सका.

* *

काफी भीड़ थी. सड़क पर यातायात रुक गया था. सभी एक दूसरे को देख रहे थे और आपस में कानाफूसी कर रहे थे. कुछेक को भोला के अपराध की प्रमाणिकता पर संदेह था लेकिन अधिकांश लोग उसके विरुद्ध ही दिखायी पड़ रहे थे.

पुलिस दुकान की तलाशी ले रही थी. तमाशबीन भोला को कोसते हुए अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त कर रहे थे.

--आदमी के घर से लछमीजी जब जाने लगती हैं तो उनके साथ ईमान भी खत्म हो जाता है. . .

--सरसों तेल में मोबिल मिला कर खाने की चीजें तैयार करते नही सुना था. राम. . राम. . .राम. . .इस पापी को तो आजीवन कारावास होना चाहिए!

—तभी तो शहर में अनसुनी बीमारियां फैल रही हैं. ऐसी ही चीजें खा कर आज सौ से भी अधिक व्यक्ति पक्षाघात जैसी भयंकर बीमारी के चंगुल में तड़प रहे हैं.

--आज अगर अधिकारी वर्ग इस स्साले को नहीं पकड़ता तो न जाने कितने को यह मौत के मुंह में झोंक देता.

तेल के उस डिब्बे को भोला निर्मिमेष आंखों से देख रहा था जिसे पुलिस ने उसकी दुकान से बरामद किया था. जले हुए मोबिल की मोटी परतों के ऊपर सरसों का तेल तैर रहा था.

भोला को दर्शकों की ओर आंखें उठाने की हिम्मत नहीं हो रही थी. एक ऐसे बिंदु पर वह खड़ा था, जहां दलील की कोई गुंजाइश नहीं थी. उसने घबड़ा कर पनीली आंखों से पुलिस अफसर की ओर देखा, फिर सुरजा के चेहरे पर आंखें गड़ा कर देखने लगा.

अचानक वह गरज पड़ा--सच-सच बता, क्या तुमने तेल में जला हुआ मोबिल मिलाया है? स्साले. . . हरामी मैं तुम्हें जान से मार डालूंगा!

भोला की बातें सुनते ही सुरजा कांप उठा और रोता हुआ बोला—मैंने नहीं किया है. जिस ठौर से तेल खरीदते हो, वहां ही. . .

दर्शकों के बीच से किसी ने व्यंग कसा—जैसा बाप नाटक करता है, वैसा ही बेटा. वाह भाई, खूब रही!

तमाशबीनों की बातें सुन कर भोला ने भी सुरजा को डपट दिया. पुलिस सुरजा की बातें सुन कर एक

सच्चिदानंद धूमकेतु (जन्म: दिसंबर, १९३९) ने कहानियां, उपन्यास, निबंध, एकांकी–सब विधाओं में लिखा है. संप्रति बिहार सरकार के अधीन कार्यरत.

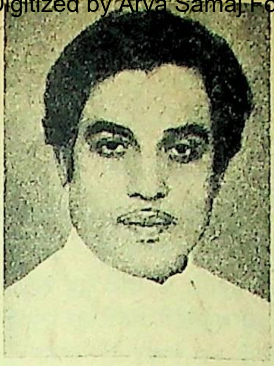

के लिए चौकन्ना जरूर हुई पर कानून के पंजों से वह बच नहीं सका, वह भारत सुरक्षा कानून के अंतर्गत गिरफ्तार कर लिया गया.

लालाजी भोला के गिरफ्तार होने की बातें सुन कर काफी उदास दिख पड़े यहां तक कि रोते हुए सूरजा के माथे पर उन्होंने अपना हाथ भी रख दिया था. रज्जो को धैर्य बंधाते समय भी वे रोने लगे थे.

रज्जो अपने पति के मुंह से लालाजी की उदारता के बारे में सुन चुकी थी. वह उनके प्रति बेमन नहीं हो सकी. गांव के लोग उसकी बढ़ौतरी से जलते थे. शहर में उसका आंसू पोंछने वाला भी कौन था. . .लेकिन सुरजा! उसे लालाजी की हमदर्दी पसंद नहीं थी.

मां ने समझते हुए कहा था––भगवानी इन्साफ पर भरोसा रखो, बेटा! दुध-फूल का वही न्याय करेगा. मैं जनाना-जात केस-कचहरी के बारे में क्या जानूं?

मां की जिद के सामने यद्यपि सुरजा चुप लगा गया लेकिन खामोश अकुलाहट उसके कलेजे को रौंदती रही. विवशता के कारण आखिर उसे समझौता करना पड़ा.

जार-बेजार रोते हुए लालाजी ने मुकदमे की पैरवी का बीड़ा उठा लिया. प्रत्येक एकांत क्षण में रज्जो का दिल धड़क उठता था, फिर भी वह आश्वस्त थी.

मुकदमे में लालाजी ने काफी दौड़धूप की. रज्जो ने भी अपने पति को छुड़ाने में कोई कसर नहीं उठा रखी. उसके सारे गहने बिक गये. दुकान बिक गयी लेकिन वह अपने पति के निर्दोष होने की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं कर सकी.

* *

फैसला सुनते ही रज्जो चीख-चीख कर रोने लगी थी. सुरजा और बिरजा पिता से लिपट कर बहुत देर तक हिचकियां लेते रहे थे. कानून ने भोला को पांच वर्षों की सजा दी थी.

भोला न तो रोया और न बच्चों के साथ अधिक देर तक लिपटा ही रहा. वह अपने प्रश्न का उत्तर न्यायालय कक्ष में खड़े तमाशबीनों की आंखों में ढूंढ़ रहा था. अनुत्तरित प्रश्न की वह लंबी आड़ी लकीर जो उसकी पेशानी पर थिर आयी थी, जिसका उत्तर उसे कटघरे में टंगी हलफनामा तख्ती से नहीं मिला और न लाला घनश्याम दास की तुर्श संवेदनाओं से ही.

कस्बा रज्जो के लिए बिल्कुल अपरिचित बन गया. दुकान की वह भुरभुरी मिट्टी जिसे उसने अपने पति और बेटे के गर्म लहू से खींच कर लसदार बनाया था, उसे अनचीह्नी-सी लगी. उसकी छांव में गुजारे हुए क्षणों को याद कर लज्जो का पोर-पोर टीसने लगा. वह बच्चों को ले कर गांव की ओर चल पड़ी.

उसे अपने आंगन में घुसने की हिम्मत नहीं हुई. सामने खेत के महार पर झकास मारते पेड़ उसे लील जाने को तैयार खड़े थे.

वह फफक कर रो पड़ी.मां को रोते देख कर सुरजा और बिरजा भी रोने लगे. रज्जो को अपना शरीर किसी विषधर सर्प के गुंजलक में फंसा हुआ लगा जिसकी गिरफ्त में हड्डियां चूर-चूर हो रही थीं. पीठ में छिपे फफोले फिर टीसने लगे थे. उसकी मर्मांतक पीड़ा जिसे वह आज तक नकारती आ रही थी, जांत के टीड़े की तरह अपनी पीठ में ठोंका हुआ महसूस हुआ.

फिर न जाने रज्जो को क्या हुआ, वह गरज कर बोली ––सुरजा, काट दो इन अंधे पेड़ों को! ये भतहा गाछ जबतक रहेंगे, तब तक तुम्हारे मुंह का कौर छीना जाता ही रहेगा. इसने तुम्हारे बाप को . . . आगे वह नहीं बोल सकी. उसे लगा,कोई बर्फानी तूफान पहाड़ के उस पार से दौड़ता हुआ आ कर उसके शरीर से टकरा गया है.कमला-बलान की धारा सात परतों वाली जमीन को चीरती हुई इस ओर मुड़ गयी है और उसके तेज बहाव में सारे पेड़ बहते चले जा रहे हैं. . . ☐☐☐

३५ समाहर्त्ता विशेष भू-अर्जन पदाधिकारी,
गंडक योजना सं.–२, मोतीहारी (बिहार)

मार्च में प्रकाशित कथा-पहेली का सर्वशुद्ध हल तथा पुरस्कार-विजेता

इस बार न्यूनतम १ अशुद्धि पर ७ प्रतियोगियों में से प्रत्येक को ३० रु. का पुरस्कार प्रदान किया जा रहा है. पुरस्कार विजेता हैं :

१. रामनाथ विश्वकर्मा, छोटा जेठा बीड़ी ब्रांच के पीछे, काकागंज, सागर (म.प्र.) २. प्रवीण मल्होत्रा, म. गा. मार्ग, बड़नगर, जि. उज्जैन (म. प्र.), ३. सूर्यदेव सिन्हा आर. ए. क्यू २२।७ एयर फील्ड, कलाइकुंडा, खड़गपुर (प. बंगाल), ४. शशिकांता चिब, म. न. १२२१, सेक्टर १५-बी, चंडीगढ़, ५. शालिकग्राम ठाकुर शिक्षक,प्राथमिक शाला, राहतगढ़, सागर (म. प्र.), ६. रमाकांत मंगल, डी।१४ रंजीत नगर, भरतपुर (राज.) ७. फूलसहाय तमौलया, ग्राम चांदनपुरा, पो. निनावली, जि. जालौन (उ. प्र.)

और यह रहा इस बार का सर्वशुद्ध हल.

१. नसीबो, २. (पृ. २९), ३. सुखबीर, ४. स. ५. जाने किस बंदरगाह पर, ६. (पृ. ४८-४९), ७. वीरेंद्र ८. कासगंज, साहिबाबाद.

यही-सब जगह • रामलखान यादव

मैं थोड़ी देर पहले बनारस-मटनी डाउन ट्रेन से उतरा था. दिन के आठ बज रहे थे. चैत का घाम पके खेतों पर पंख पसार रहा था. रोडवेज की बस छूट रही थी. दूसरी बस के आने तक रेलवे स्टेशन पर ही बैठ रहना उचित समझा. गांव का स्टेशन. अगल-बगल फसल भरे खेत. नाम भले एक अक्षर से प्रारंभ होते हैं, पर इस दुल्लहपुर और दिल्ली स्टेशनों में तमाम अंतर-ही-अंतर हैं. एक बात जरूर एक जैसी देखने को मिली. सवारी गाड़ी के चले जाने पर ठीक उसके पीछे एक मालगाड़ी आयी. स्टेशन के करीब आते ही उसकी गति कुछ धीमी पड़ गयी, जैसे रुकने को हो, पर रुकी नहीं. चलती गाड़ी के एक खुले डब्बे से सींकों का बंडल धकेला जाने लगा. दो आदमी बड़ी फुर्ती से बंडल धकेल रहे थे—छपाक्. . छपाक्, दूसरा गिरा. . .छपाक्. . .तीसरा बंडल गिरते ही दोनों गाड़ी से कूद पड़े.

तभी एक डब्बे से १०-१२ वर्ष के एक छोकरे ने बड़े से लाल रूमाल में काले कोयले भर कर लाइन की बगल में फेंकना शुरू किया. एक . . . दो. . . फिर तीसरी बार रूमाल भर कर हाथ में लिये कूद पड़ा. गाड़ी चली गयी. दो-तीन मिनट में ही कालिखपुते तीन बच्चे—दो लड़के, एक लड़की—छोटी-छोटी फटी झोलियां लिये कोयला चुनने लगे. एक खाकीधारी व्यक्ति हाथ में बांस की हरी-हरी सिटकनी को प्लेटफार्म पर रगड़ता मेरे सामने से गुजरा.

थोड़ी ही देर में 'खड़े रहो, खड़े रहो' की आवाज! बच्चे भाग रहे थे. तीन बच्चे. तीनों भागने में होशियार! एक अरहर के खेत के बगल में, तो दूसरा पुलिया के नीचे से हो कर लाइन के कभी इस पार तो कभी उस पार! तीसरा गेहूं की मेड़ों के कभी इस कोने तो कभी उस कोने! खाकीधारी भी कम जिद्दी नहीं, जैसे पकड़ लेने की कसम खा रखी थी इन बंदर के बच्चों को, जो सरकारी धन इस कदर छींट-छांट कर देश को कंगाल बना रहे थे!

रेलवे लाइन को काटती हुई रोडवेज की सड़क गुजरती है. रेलवे स्टेशन के करीब ही बस-स्टेशन भी है. सड़क के किनारों से राही-बटोही तथा खेतों से कामगार यह लुका-छिपी, यह भाग-दौड़, यह धर-पकड़ देख-देख कर किलक रहे थे. मैं स्टेशन के बेंच पर बैठा यह दृश्य देख रहा था —— खाकीधारी, पसीने से तर, हार मान चुका था. मेरे सामने दिल्ली का यार्ड साकार हो चला था. . .

वही लड़का. . . कालिखपुता. . . भाग रहा है. दूसरी तरफ छोटी-सी टीन की डिब्बी लिये एक लड़की भाग रही है . . . क्या इस डिब्बी में किसी के जेवर हैं? हो सकता है यार्ड में कोयला चुनते-चुनते किसी के जेवर हाथ लग गये हों. . . बस यही बात है, वरना उस डिब्बी में कोयला कितना आ सकता है! अधिक-से-अधिक पाव भर, आधा किलो! इसीलिए आर. पी. एफ. वाले उसका पीछा कर रहे हैं!

पैसेंजर यह दृश्य उचक-उचक कर देख रहे हैं; हंस रहे हैं. बीच-बीच में मैं भी बरबस मुसकरा पड़ता हूं. . . बड़ी मेहनत के बाद वह लड़का पकड़ लिया गया है. . . वे उसे घसीटते लिये जा रहे हैं. साथ का एक जवान कह रहा है —— छड्ड दे, यार! इससे कुछ नहीं मिलना!

——नहीं मिलेगा तो क्या, स्साले की ऐसी पिटाई करता हूं कि फिर कभी इधर ये तो क्या, इसका बाप भी नहीं आयेगा. . . कुछ दे नहीं सकता तो साला एक बोरी भी नहीं पहुंचा सकता!

तो यह दिल्ली नहीं, दुल्लहपुर था —— शायद इसीलिए वहां तो कोयला चुनने वाला लड़का पकड़ लिया गया था, पर यहां नहीं पकड़ा जा सका. आंखें दिल्ली से हटीं तो देखा, दूसरी तरफ सींकों के पास खद्दर की सफेद धोती और बंगाली कुर्ता पहने एक अधेड़ सज्जन और वही खाकीधारी खड़े-खड़े बतिया रहे हैं; दोनों की अंगुलियों में सिगरेट है. धुआं और ठहाके ऊपर आसमान में भंवरें बना रहे हैं. क्षण भर में दोनों बगल वाले आम की छाया में चले जाते हैं, क्योंकि धूप अब तेज हो चली है; चैत के महीने में आठ बजे के बाद की धूप का तेज बड़े लोगों से बर्दाश्त नहीं होता. ऊपर आम की टहनियों से टिकोरों के गुच्छे लटक रहे हैं. एक कौआ उड़ा-उड़ा आता है, टिकोरों पर चोंच मारता है —— अभी पके नहीं, इसलिए कांव-कांव करने लगता है. कौए की कांव-कांव से दोनों का ध्यान भंग हो जाता है.

* *

मैंने दूसरी बस पकड़ने के लिए अटैची उठा ली. बस-अड्डे को जाने वाली राह उसी पेड़ के नीचे से हो कर गुजरती थी. मैं उनकी बातें सुनने के लिए नाक साफ करने का बहाना बना कर अटैची नीचे रख एक मिनट के लिए रुक गया.

——दीवानजी, आप जैसे आदमी को यहां लगा दिया है. . . इन नीचों के पीछे दौड़ने के लिए!

——क्या कहें, प्रधानजी, शरीफ और बड़े आदमियों का तो अब जमाना ही चला गया!

——क्यों नहीं! आप जैसे आदमी इन सूअर के छौनों के पीछे दौड़ रहे हैं! स्साले पैदा करके छोड़ क्यों देते हैं! इन्हें पैदा करने वाले बाप स्सालों को ही पकड़ कर मरम्मत की जाये तो कुछ मामला बन सकता है!

——अरे साहब, इनके बापों का पता हो तब तो!

——पता क्यों नहीं है, दीवानजी, अपने पुरखों को क्यों भूल रहे हो!? अचानक मेरे मुंह से जब निकल गया, तब मुझे मालूम हुआ कि मेरे अंदर की सुबगती क्रोधाग्नि अब अनायास भभक उठी है. वे दोनों बुरी तरह चौं उठें थे.

——क्या मतलब आपका! दिमाग तो ठीक है श्रीमानजी? खाकीधारी बोल उठा.

——मेरा ठीक है, तुम अपना ठीक कर लो.

बेसहारा बच्चों को धूप में दौड़ा कर बड़े हीरो बन रहे हो! है हिम्मत किसी चोर-डाकू का पीछा करने की!

—ओहो! अब पता लगा! तो आप कोई महापुरुष हैं! कौन हैं आप? थोड़ा हम भी तो जानें!

साथ का खद्दर-धारी ठिठोली करता बोल उठा—अरे कुछ लगते होंगे, दीवानजी! आप को क्या मालूम!

—हां, मैं जरूर लगता हूं बच्चों का, इसीलिए तो पूछ रहा हूं.

—तो आप क्या लगते हैं, जरा बता तो दीजिए? क्या आप इनके बाप हैं?

—तो तुम समझते हो कि दुनिया में तुम्हारे ही बाप हैं! बाकी लोग बिना बाप के हो गये?

—देखो भाई, ढंग से बात करो, नहीं तो ठीक नहीं होगा! अब वह कुछ तैश में आ गया था और मुझे तुम कहने लगा था.

—जाने दीजिए भाई साहब, क्यों आप लोग झगड़ रहे हैं. एक साथ कई स्वरों को सुन कर ही मैं समझ सका कि अब तक मेरे पीछे और बगल में कई लोग इकठ्ठे हो गये थे.

—देखिए भाई, आप ही लोग बताइए. बिना मतलब यह मुझसे उलझ रहे हैं. दुनिया में बहुत लोगों को हम लोग पकड़ते हैं, पीछा करते हैं, हमारा काम ही यही है. यह कह रहे हैं कि बच्चों का पीछा क्यों कर रहे हैं! उन्हें खदेड़ क्यों रहे हैं! बच्चे चोरी कर रहे हैं. . . और इन बच्चों से इनका कुछ लेना-देना भी नहीं है. यह भी होता तो मान लेते . . .

● योग जॉय

भीड़ से हट कर एक तंदुरुस्त, अधेड़ आदमी, जो सिर पर लाल गमछा बांधे हुए था, सामने आ कर मुझे समझाने लगा — भाई साहब, दुनिया में ऐसा पग-पग पर, चप्पे-चप्पे पर होता है; आप किस-किसको समझायेंगे, किस-किसके पीछे पड़ेंगे? अरे, सुना नहीं है— आराम बड़ी चीज है, ढक के मुंह सोइए, किस-किस को गाइए, किस-किस को रोइए!

मुझे लगा, यह आदमी यहां का कोई गुंडा है, जो खाकीधारी को प्रसन्न करने के लिए पक्षपाती लहजे में बात कर रहा है.

मैंने कहा— आपको अगर अधिक नींद आ रही है तो आप जाके सोइए. मैं आपसे बात नहीं कर रहा. बात जागने वालों से की जाती है.

दूसरे ने कहा—भाई साहब, छोड़िए, कहां अटक गये! कोई कुछ भी करे, हम से-आप से मतलब! अब तो अपने बाल-बच्चों की ही देखभाल कर ली जाये, वही बहुत है.

मुझे लगा कि सभी लोग मुझे एक ऐसा बेवकूफ समझने लगे हैं, जो खामख्वाह हर बात में टांग अड़ाता है. अपनी बात को सार्थक सिद्ध करने के लिए कहा—भाई साहब, आपको पूरा किस्सा मालूम नहीं है कि बात कैसे शुरू हुई. . .

—हां-हां आप ही को अगर मालूम है तो बता दीजिए ये बच्चे किसके हैं! मैं इनके बापों का चालान करवा देता हूं. सिपाही के लहजे से लगा कि वह बात को आगे नहीं बढ़ने देना चाहता था. सब कुछ घपले में डाल कर और बहुमत का पूरा फायदा उठा कर, मुझे जलील कर, छोड़ देना चाहता था. यह समझ कर मैं भी किसी प्रकार से बहुमत को साथ लेने के लिए दूसरे व्यक्ति से काफी सट कर कहने लगा — भाई साहब, बात यह है कि . . ये बच्चे एक आदमी के हैं . . . वह बेचारा गरीब आदमी. . .

—हिम्मत है तो बता दीजिए इनके बाप का नाम! सारा मामला अभी निबट जाता है! खाकीधारी बोल उठा.

—कैसे निबट जायेगा केवल नाम से?

—हां, नाम को क्या समझ रखा है आपने! साले को अभी घसीट कर गाजीपुर भेजवा देता हूं!

अब मैं अधिक तैश में आ गया था. —तो सुनो, इनके बाप का नाम है भूरा, जो मेरे साथ गाड़ी में आ रहा था. और भूरे का चालान होगा तो ये तुम्हारे जो अजीज बगल में खड़े हैं, इनका नाम भी नोट कर लो, चालान इनका भी होगा, और ये सींकें भी गाजीपुर जायेंगी.

—सींकों के पैसे दिये हैं. मुफ्त की नहीं हैं.

—गाड़ी के चलने में भी पैसे लगते हैं. मुफ्त की गाड़ी नहीं चलती! और पैसे दिये होंगे तो चलती गाड़ी से माल धकेलने के! समझे?

मेरा इतना कहना था कि जुट आये लोगों में खुसर-पुसर होने लगी. वह खद्दरधारी सकपका गया. उसने तथा-कथित दीवानजी के कंधे पर हाथ रखा. उन्हें थोड़ी दूर हटा कर ले गया. फिर तुरंत ही लौट कर कहने लगा —बाबू जी, आपको इन्होंने समझा नहीं था. आप पहले ही बता देते! खैर, अब छोड़िए, दीवानजी भी काफी शर्मिंदा हैं. जाने दीजिए, आइंदा वह ध्यान रखेंगे. . . . आपको प्यास लगी होगी, चलिए पानी पीजिए . . खैर पानी तो दुकान पर पियेंगे, फिलहाल लीजिए, सिगरेट पीजिए . . . कह कर डिब्बी उसने मेरे आगे बढ़ा दी.

खुसर-पुसर करती भीड़ ठहाका मार उठी. संभवतः इसलिए कि आखिर एक सिरफिरे को समझा लिया गया.

मैंने सिगरेट लेने से इनकार कर दिया था, अटैची उठा ली थी और बस-स्टेशन की ओर चल दिया था.

★ ★

सचमुच मुझे प्यास लग आयी थी. पकौड़ी वाले की दुकान पर जा कर पानी मांगा.पुरवे में उसने पानी दिया.

अंदर पानी की तरी पहुंची तो कुछ हंसी आने लगी—आज मैं कैसा हीरो बन गया था, जिसकी पिटाई विलेन द्वारा होते-होते बची. और फिर याद आ गया वह भूरा... भूरे का नाम मेरी जबान पर अचानक न जाने कैसे आ गया था; भूरा तो कानपुर में ही उतर गया था. वह भी जाड़ों में, आज से दो महीना पहले. कानपुर स्टेशन पर आया तो लगा कि प्लेटफॉर्म पर किसी अन्य भूरा का परिवार वैसे ही कराह रहा है. क्या यही भूरा है? वही भूरा, जो दिल्ली में आसाम मेल में मुझसे मिला था. . .

आसाम मेल ठीक पौने नौ बजे आ कर प्लेटफॉर्म पर लग गयी थी. जोधपुर से ही एक एयरमैन युवक से साथ हो गया था. वह बंगाली था, हमउमर था. हम दोनों ने मिल कर कुली को तीन रुपये दे कर ऊपर की बर्थ ले ली थी और आमने - सामने खिड़कियों पर जम कर बैठ गये थे. कड़ाके की ठंड. जनवरी का महीना. भीड़ धीरे-धीरे बढ़ रही थी. तब तक एक व्यक्ति अंदर घुसा—फटेहाल, फटा पाजामा, फटी खाकी कमीज और फटा कोट,जो संभवतः मांगा हुआ लगता था.गोद में उसके एक बच्ची—दो-तीन वर्ष की. पीछे लंगड़ाती, मैली सफेद साड़ी पहने एक औरत, एयरमैन की बगल में पसर गयी. उसने पूरी सीट घेर लेनी चाही. बगल में वह आदमी भी बैठ गया. हम दोनों ने अभी खिड़कियां जकड़ कर बंद कर रखी थीं. एयरमैन ने कहा—खिड़की खोल लो. और स्वयं खिड़की खोलने लगा. खिड़की खोलते ही कैबिन एक बर्फीले झोंके से भर गया. बैठी हुई औरत कराह उठी—भाई साहब, दरवाजा बंद कर दीजिए. मैंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया. मेरी बच्ची को ठंडक लग रही है. . .भाई साऽऽब. . .और वह फिर कराह उठी.

अब की बार मैंने स्पष्ट देखा — उसकी बगल की बांह में उससे सटी एक बच्ची खड़ी गनगन-गनगन कांप रही है. बच्ची खूबसूरत थी. मेरी तरफ टुकुर-टुकु रही थी. मैंने देखा उस अबोध बालिका की आं स्पष्ट याचना थी— खिड़की बंद कर दो बाबू, तो से बच जाऊं!

मुझे सचमुच दया आ गयी. मैंने खिड़की बं दी. साथी से भी कहा तो उसने हिकारत भरी नि उस औरत और उसके मर्द पर डाली और खिड़की बंद कर एक मैग्जीन निकाल पढ़ने लगा.

थोड़ी देर तक खामोशी रही. वह औरत कृ भरी निगाह से मुझे घूर रही थी.

थोड़ी ही देर में एयरमैन ने मौन भंग किया— थिंक दिस पेयर बिलांग्स टु ईस्टर्न यू. पी.

—दादा, आपको कैसे मालूम हुआ? मैंने पूछा

—बस ऐसे ही. यू. पी. को हम जानता था कि अ इलाका है, पर यहां देखा बंगाल से भी अधिक गरीब लेकिन एक बात है, पश्चिम वाला कुछ पैसा वाला कानपुर से जब पूरब जाता है न, तो ऐसा ही लोग मि है. . . वॉच, आफ्टर सम टाइम दे विल स्टार्ट बैगिंग!

—दादा, इन फटे चिथड़ों में यहां किसी वृ और किसी बंगाल का सवाल नहीं है. ऐसे फटेहाल कहां नहीं मिल जायेंगे?

—सो तो ठीक है. हमारा मतलब आपने नहीं किया. हम प्रपोर्शन की बात करता है.

दादा ऊपर बर्थ पर चला गया. कहता गया देखना, कोई बैठने न पाये. मैं नवभारत टाइम्स की पं पर आंखें दौड़ा रहा था, पर मन कहीं और था.

—तुम्हें कहां जाना है, भाई? मैंने मर्द से पूछ लि

—बस्ती.

—और. . .

इसी बीच कैबिन में हलकी-सी भगदड़ मच एक महिला, देखने में टीनेजर, अपने चार लल्लू, कि किट्टी और पूसी के साथ घुस आयी.

महिला ने आते ही कहा— मुझे थोड़ी ही दूर है, एक सीट दे दीजिए.

इसके पहले सट कर देह से देह रगड़ते हुए भी लो बीच घृणा की चीनी दीवार ने बड़े-बड़े फासले बना थे. अब ये फासले सिमटने लगे थे. दादा ऊपर से आया था. उसने कहा — आप मेरी सीट पर सकता है. महिला हचाक से बैठ गयी.

एक व्यक्ति ने कराहती हुई औरत से कहा खिसक क्यों नहीं जाती?

—मुझे दरद हो रहा है.

—क्यों, दरद क्यों हो रहा है! महिला ने सिकोड़ कर पूछा.

—बीमार है, बहन जी, पति ने जवाब दिया.

—तो दवा क्यों नहीं करते?

—इससे बड़ी दवा क्या हो सकती है, यह दवा ही हो रही है! मैं बोल पड़ा.

महिला ने अचकचा कर मेरे ऊपर निगाह फें

थोड़ी ही देर में किसी बुड्ढे ने बाहर से दी—रानो, वो रानो!

रामलगन यादव (जन्म १९४३ में) ने एम. ए., एल-एल. बी. तक शिक्षा प्राप्त की है. रेलवे के लेखा विभाग में क्लर्क हैं. साथ ही हिंदी में शोध कार्य भी कर रहे हैं.

महिला बच्चों को समेट कर लप-झप करती मेरी तरफ प्रश्नवाचक निगाह फेंकती बाहर निकल गयी.

गाड़ी चली तो उस आदमी से फिर बात होने लगी.

उसका नाम भूरा है. . . एक छोटे-से वर्कशॉप में साहब का चपरासी है . . .उसकी बीवी गांव में बीमार हुई, कभी बुखार, कभी पेट में दर्द, फिर पांव में फोड़ा. . . गांव में ठीक न हुई तो वह दिल्ली ले आया. . . सराय रुहेला के पास एक झुग्गी में रहता था. . . वहां और अधिक बीमार हो गयी. . फोड़ा ठीक होता ही नहीं.

मैंने उसे टोका—ऐसे भयंकर जाड़े में फोड़ा!

—क्या जाड़ा, क्या घाम, बाबूजी. यह जनम का घाव है! हम घाव लेके पैदा होते हैं, घाव लेके मरते हैं.

—तुमने किस डाक्टर को इसे दिखाया?

—डा. बनर्जी, दिल्ली के माने हुए सर्जन.

—बनर्जी ने क्या कहा?

—कहा कि इसके पांव में सइन हो गयी है. कई महीने दवा होगी. ऑपरेशन करना होगा. इसके शरीर में खून की कमी है. उसका भी इंतजाम करना होगा.

—तो क्या इंतजाम किया है?

—क्या करते, बाबूजी, रोटी जुटाने के रास्ते तो हमें मालूम नहीं, भला खून का क्या इंतजाम कर सकेंगे?

—भूरा! भूलते हो न, रोटी जुटायी जाती है, पर खून तो चूसा जाता है!

—बाबू जी, सच है, पर खून चूसने के लिए सूंड़ चाहिए न—मच्छरों, खटमलों को देखिए सूंड़ होती है, हमारी सूंड़ तो पीट कर बराबर कर दी गयी है!

--तो अब इसे वापस क्यों ले जा रहे हो?

—क्या करें बाबूजी? यहां रहने की भी तो जगह नहीं. सरकार के हुक्म से सारी झुग्गियां गिरा दी गयीं तो अपनी क्यों बच जाती! यह कहने लगी कि मैं अब अपने गांव के झोंपड़े म ही मरना चाहती हूं.

--तो इसे गांव में मारने के लिए ले जा रहे हो?

—नहीं साहब, मरने में इसकी मदद करने जा रहा हूं. . .

हम दो-तीन मिनट तक शांत रहे. फिर वह बोल उठा—बात यह है सा'ब, पैदा होने में तो किसी का अधिकार नहीं होता, पर मरने में कुछ लोगों का जरूर हो जाता है. हम गरीबों का न जीने में, न मरने में, कहीं कोई अधिकार नहीं होता.

—यह मर जायेगी तो इस लड़की का क्या करोगे?

--मैं क्या करूंगा! यह बेचारी खुद कर लेगी; अभी तो मौत नहीं जानती; जब जान जायेगी तो किसी की मदद ले लेगी.

मैंने लापरवाही से कहा—तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे मौत में मदद लेना-देना तुम्हारा खानदानी पेशा हो! खैर, तुम्हारा यही बच्चा है?

—नहीं. यह तो सब से छोटी है. दो लड़के और हैं.

★ ★

तो दोपहर तक अपने घर पहुंच गया. शाम को अपने गेहूं के खेत की मेड़ पर बैठे दक्षिण तरफ के गिरे घर को देख रहा था. पिताजी उधर से गन्ने के खेत को देखते हुए आ कर मेरे पास बैठ गये. कहने लगे—रामप्रकाश, इस ढूह पर मैं बबुरी छींट देना चाहता हूं.

—उससे क्या होगा?

—अरे, क्या होगा? एक तो अपना कब्जा, दूसरे थोड़े दिनों में पेड़ हो जायेंगे.

मैं क्षण भर चुप रहा. फिर वह आगे कहने लगे—भाई, हमने तो दुखभोज को कहा था, चकबंदी वालों को पचास-साठ खिला देता, तो यह चार बिस्वा आबादी हो जाता और इसके बदले हमें दूसरी जमीन मिल जाती. पर माना नहीं तो भोगे. आबादी यह है नहीं और अब घर भी नहीं रहा कि उसका कब्जा साबित हो. चारों तरफ हमारा चक है. .

—लेकिन उसका घर गिर कैसे गया? मैंने पूछा.

—अरे गिर न जाता तो क्या होता? बरसात के पहले अपने बच्चों को यहीं छोड़ कर अपनी औरत को ले कर बनारस दवा कराने चला गया था. बच्चे कभी पड़ोसी दुखहरन के यहां तो कभी किसी के यहां ठोकर खाते. बरसात होने पर एक दिन घर लौटा. . . तो. . . .

पिताजी रुक गये, फिर बोल उठे—विचित्र-विचित्र बातें दुनिया में होती हैं. . . तो दुखभोज एक दिन बरसात की रात में आया, चांदनी रात थी. घर पहुंचा तो उसका छोटा बच्चा दुखहरन के ओसारे में जगा हुआ था. उसको देखते ही दौड़ा-दौड़ा आया; चिल्लाने लगा—भूख लगी है बाबू, क्या लाये? उसने कहा—गम लाया हूं, बेटा . . . फिर बच्चा दौड़ा-दौड़ा जा कर अपनी सोती बहन को झकझोर-झकझोर कहने लगा— बाबूजी आम लाये हैं, बाबूजी आम लाये हैं. . . सुबह खबर मिली कि रास्ते में दुखभोज की बीवी उसके साथ-साथ ही बेचारी कराहती लौट रही थी; रास्ते में यह जो सिहोर के पास कुआं है न, उसी में कूद पड़ी. रात का समय, बेचारा दुखभोज चिल्ला-चिल्ला कर शांत हो गया, कुएं का पानी ढब्ब-ढब्ब करता शांत हो गया था. . . दूसरे दिन उसका पता नहीं लगा. गांव वाले कहते हैं कि अब वह नहीं लौटेगा. केवल बच्चों को वह खबर देने आया था, पर उनको बता न सका. . .

—तो भूरा सचमुच नहीं लौटेगा? मैंने पूछा.

—कौन भूरा? अरे, मैं तो दुखभोज की बात कर रहा हूं.

—अरे हां, वह भूरा. . .वह तो कानपुर में ही उतर गया. . . यह तो. . . □□□

उत्तर रेलवे कारखाना, लेखा विभाग, जोधपुर

तह के नीचे • कृष्णकांत प्रवासी

मुझे जेब में पड़े सवा दो रुपये का एहसास फिर काटने लगा था. पड़ोस में कोई एक चम्मच भी शक्कर देने को तैयार नहीं था. और बाजार में शक्कर साढ़े छह रुपये किलो थी. घर में इस समय सवा दो रुपये की ही नकद संपत्ति थी.

—पिता जी तुम्हें पूछ रहे थे. . . मैंने पत्नी से कहा तो वह आटा सने हाथ धो कर पल्लू में पोंछने लगी. तभी दहलीज तक जा कर लौट आयी कि सो गये हैं.

दोनों बगल वाले, मनचंदा और शर्मा, नुक्कड़ वाले खास्तगीर और चौथे नंबर के मकान वाले गोंदड़ी साहब से हम किसी-न-किसी रूप में उधार ले चुके थे. इतनी नौबत तो नहीं आती अगर मैं एक महीने बाद शुरू होने वाले जाड़ों और अपने समस्तरीय समझे जाने वाले लोगों का एक छोटी सीमा तक मुकाबला करने के लिहाज से फुटपाथ पर से विदेशियों के उतारे हुए कीमती जैसे पर सस्ते कपड़े बच्चों के लिए नहीं खरीद लेता. पैंसठ रुपये में तीनों लड़कों के लिए एक-एक पैंट और एक-एक कोट. कपड़े अच्छे थे. एकदम नये और बेशकीमती लगते थे. दूकानदार कह रहा था—— अमरीकी हैं. खास्तगीर साथ ही था.वह वैसे ही कपड़ों के लिए छटपटाता रहा था. लेकिन संयोग से उस तरह के दूसरे कपड़े पूरी मार्केट छान मारने पर भी नहीं मिले थे.

आज २१ थी और हम फूली हुई सांसों से पहली तारीख की प्रतीक्षा कर रहे थे. पत्नी सब डिब्बे और कनस्तर बजा कर दिखा चुकी थी. केवल आधा किलो चावल बचा था. आज उसी की बारी थी. सोचा था, कल की कल देखी जायेगी. बच्चे खा लेते, तब हम दोनों मुंह जुठारते. परंतु पिताजी को आया जान, पत्नी पंकज के यहां से एक भगौना आटा और एक बड़ा गिलास भर चावल उधार ले आयी थी.

बच्चे बाहर से खाना मांगते और ठुनकते हुए आये तो मैंने स्पंजिया की चार-चार मीठी गोलियां उन्हें दे कर टाला.—— अभी बाहर खेलो. वे खाने का इंतजाम होता देख लौट गये.

पिताजी ने आवाज दी—— मोहन! मैं सामने उपस्थित हुआ. बोले—— क्या बहू नहीं आयी? चा बनवा, पीऊं. थोड़ी सुस्ती दूर हो. . . थक गया हूं. . . एक दिन में बाइस-बाइस कोस बिना सुस्ताये पैदल चलता था. . . आज भी बारह कोस चला हूं. नहर पर लोगों ने भतेरा कहा, बस से चलौ, आ रही है. मैंने कहा छोड़ो बस-फस. .. आती रहेगी. . . तुमने इतनी सारी किताबें क्यों जमा कर रखी हैं? इन्हें रद्दी में बेच दो, पैसा खड़ा हो. . .

फिर उन्होंने एक पत्रिका उठा ली, जिसमें मेरी कहानी थी. जेब से टटोल कर चश्मा निकाला और आंखों पर चढ़ा कर पत्रिका के नाम से ही पढ़ने लगे. मुखपृष्ठ पर एक युवती का चित्र था, गहरे गले ब्लाउज से जिसके उरोज झांक रहे थे. जैसे छविकार इसी बिंदु पर विशेष जोर दिया था. उनकी नजर पर से ऐसे हट कर पत्रिका का दाम पढ़ने लगी, जैसे में अचानक बहू को मुंह खोले देख लिया हो और वह पर कुर्ता टांगने लगे हों.

——इतनी-सी पत्रिका का मूल्य चार रुपये! उन्हों चकित होते हुए कहा. अरे! 'कल्याण' 'परमा 'हंसादेश' वगैरा पढ़ा करो. . .ऐसी पत्रिकाएं गृहस्थ नहीं पढ़ना चाहिए. उन्होंने पन्ना पलट दिया. अब पृष्ठों में विज्ञापन थे. मैं नामालूम ढंग से उठ कर आया. अब मैं अपनी जेब में पड़ी रकम के प्रति बिल्कु निर्मम था.

पत्नी जानती थी. उसने एक लोटे में चाय भर और साथ में एक पीतल का गिलास रख कर मुझसे कहा—दे आओ.

मैंने चाय ले जा कर उनके सामने तिपाई पर रख उन्होंने चाय पीते हुए कहना शुरू किया —— तुम देख थे कि मैं नौकरी के साथ कितने धंधे करता था. खेती हकीमी, मेले में लिखाई, व्यापार. . . तब कहीं इतन बड़ी गृहस्थी खे पाता था. तुम्हारा मुझे पता नहीं चलता क्या करते हो! तुम्हारी आमदनी-खर्च कुछ भी तो.. अपनी छोटी बहन की शादी के लिए कुछ जमा किया है

——आं. . . अं. . .! अस्पष्ट-सी आवाज मेरे मुं से निकली, जिसका अर्थ न हां था, न न.

उन्होंने खाली गिलास भरने का इशारा किया और बात का सूत्र फिर उठा लिया—— रामसनेही कह थे कि उनके दामाद को अब आठ सौ मिलने लगे. तुम और वह हो तो एक जैसे ओहदे पर. . . खैर, तुम नहीं बताते, न बताओ. वह बोले जा रहे थे—— तुम्हें सौ मिलें, चाहे हजार, मुझे कुछ नहीं चाहिए. सुनते हु अच्छा लगता है, तबीयत सिहाती है. रामसनेही ने दामाद की बात कही और खुशी मुझे तुम्हारे बारे सोच कर हुई.

मुझे पहली तारीख को ३०८ रुपये पकड़ाने के बा टिप के लिए घूरती कैशियर की आंखें याद हो आ थीं. दो साल पहले ही तो मैंने उन्हें अपनी तनख बतायी थी. और जब सौ रुपये खुशी-खुशी उन्हें दि थे तो छूटते ही कहने लगे थे कि रामसनेही का दामा तीन सौ रुपये हर महीने घर भेजता है और खुद परिवार सहित शहर में ठाठ से रहता है. तुम ये कैसे. मैंने तो कभी मांगे नहीं. . . सौ दे रहे हो. . . अच्छा, कर रहे होगे, अच्छी बात है. ये भी रख लो. मुझे प्रस है, जमा करना चाहिए. . . रखो. मैं कतई अस नहीं हूं. तुम देखते हो, घर में कोई भी कमी नहीं है. तुम लोग सुखी रहो.

मैं उनको चोट नहीं [illegible] इस प्रसन्नता के मोह ने मेरे ओठ ही सिल दिये. .

दरवाजे की आड़ में चूड़ी खनकी तो मेरी दृष्टि उस तरफ उठ गयी. वह भी देखने लगे. पत्नी थी. वह कुछ कहते, इतने में उसने झुक कर उनके पांव छू लिये.— जीती रहो! दो बार कहा. पर उन्होंने नहीं पूछा कि अभी कहां गयी थीं? पत्नी कुछ ठिठकी, फिर चली गयी. वह चाय सुड़कते रहे. मैं पिछले महीने प्रकाशित अपनी कहानी के पारिश्रमिक के संबंध में विचार करने लगा. बार-बार पत्र लिखने पर भी संपादक ने कोई उत्तर नहीं दिया था.

* *

उसी समय शोर मचाते हुए तीनों बच्चे फिर आ पहुंचे— मम्मी खाना दो, भूख लगी है. और वे सब कमरे में आ गये. पिता जी को सबसे बड़े लड़के ने आज शायद तीसरी बार और शेष दो लड़कों ने दूसरी बार ही देखा था. वे सहमे-से खड़े थे. पिता जी ने उन्हें पास बुला कर उनके सिरों पर हाथ फेरा, फिर झोले में से निकाल कर एक सेब दिया और कहा— जाओ, मिल-बांट कर खाना. बच्चे खुश हो कर भाग गये.

भोजन करने के बाद वह कहने लगे—चारपाइयां कम पड़ेंगी न? मेरा बिस्तर जमीन पर लगा दो. फिर बहुत कहने के बाद चारपाई पर ही लेटने को राजी हुए. घर में दरी पर बिछाने लायक कोई चादर नहीं थी. इसलिए पंकज के यहां से नयी बेडशीट मांग लायी गयी. उन्होंने उसे देर तक सराहते हुए कहा— इसे मैं ले जाऊंगा. घर में आये-गये के लिए हो जायेगी. तुम दूसरी खरीद लेना. उनका इतना खूबसूरत भ्रम तोड़ने में मैंने स्वयं को फिर असमर्थ पाया.

वह तो सो गये और खर्राटे लेने लगे. मैं जागता-सोचता रहा—कल सुबह का नाश्ता और फिर भोजन. . . कैसे होगा? अब पास एक पैसा नहीं बचा. बच्चों की गुल्लकें भी हम खाली कर चुके थे. मुझे एक तरकीब सूझी. मैंने सोचा, अभी बच्चों को जगाऊं. फिर. . .

● सूरज एन. शर्मा

मैं दूसरे कमरे में गया. एक चारपाई पर तीनों बच्चे आड़े-तिरछे लेटे थे और तनिक-सी जगह में घुटने तोड़े बैठी पत्नी एक पुराना स्वेटर, जिसे कल उधेड़ कर उसने बुनाई डाली थी, आज फिर उधेड़ रही थी. उसने बड़ी-बड़ी पलकें उठा कर मुझे देखा और बेबस मुसकरा दी. मैं एक अजीब कशमकश के कारण उसके आकर्षक लगने की स्वीकृति को नहीं झेल पाया. दूसरे क्षण मुझे आश्चर्य और उससे ईर्ष्या होने लगी कि स्त्री होना कितना सुरक्षित है! . . .पति अपने आप पत्नी की ढाल बन जाता है. फिर 'है, नहीं भी है' जैसे उदार तर्कों में फंसने के बजाय मुझे उसकी बेफिक्री पर झुंझलाहट हुई. कई क्षुब्ध स्थितियों में उसने कहा था---जो लाओगे, पका दूंगी, मुझे क्या? मैं कोई मर्द थोड़े हूं! फिर खाने की बात को वह अपनी फटी धोती, गहनों के अभाव, अपने इंजीनियर भाई की संपन्नता का हवाला और मेरी बाबुई विपन्नता. . .जाने कहां-कहां उलझा दिया करती थी. पत्नी-स्वभाव के इस असहयोगी अंश से मैं बार-बार चोट खा कर तिलमिलाया हूं, चिल्लाया हूं और बच्चों को पीटा है. पड़ोसी इकट्ठे हुए हैं. उन्होंने मुझे समझाया है, तो मैं उनको उत्तर देना चाहते हुए भी नहीं दे पाया हूं---कि मैं जानता हूं बच्चों से कैसा व्यवहार करना चाहिए. मैंने मनोविज्ञान, दर्शन पढ़े हैं, तुम से चौगुना उपदेश दे सकता हूं. . .हराम की रकम कमाते हो, तभी महीने के आखिर में भी मजे होते हैं.

मगर मैं ऐसी स्थिति के बाद वास्तव में किसी से कुछ नहीं कह पाता; लोगों के उपदेशों की याद करता, रोता. . . रामायण में सुकून ढूंढ़ता या फाकामस्ती के शेर पढ़ता, लेकिन फिर भी मैं जान नहीं पाता और. . .वही दोबारा घटने लगता.

मैंने पत्नी के रुख का खयाल किये बगैर तीनों बच्चों को उठाया, वे बैठ कर झूमने लगे. मेरे हिलाने पर वे कबूतर की तरह लाल आंखें खोल कर मूंद लेते. मैं उन्हें फिर हिला कर कान में बुदबुदाता---कल सवेरे बाबा जी से कहना, बाबा जी, पैसे दीजिए, हम लोग मेला देखने जायेंगे. . .शब्बास, भूलना नहीं. उसके बाद मैं सफाई देने के लिए हंसा और पत्नी से बोला---हां-हां, बच्चों को पिता जी के करीब लाने की कोशिश कर रहा हूं. . .ये बिदकते जो हैं! अपनों को भी नहीं जानेंगे तो. . . पत्नी मुसकरा कर बोली---पिता जी मुझे भी तो मेले के लिए पैसे देंगे, मांग लूं?

---यस! आइडिया! . . .मगर मुझे तो नहीं देंगे. मैंने पत्नी के कथन में छिपे व्यंग्य की उपेक्षा करते हुए कहा. और मैं एक बच्चे को कंधे पर टांग कर अपने बिस्तर पर दूसरे कमरे में चला आया.

* *

रात भर मुझे अनिद्रा के दौरे आते रहे. पिता जी को गहरी नींद में सोते देख मैं फिर ईर्ष्यालु हो उठा कि बुढ़ापे में भी इतनी अच्छी नींद आ सकती है! . .जवानी नींद के लिए व्यर्थ ही बदनाम है. मैंने कुछ 'लिखने' का यत्न किया, पर आज मनःस्थिति नहीं बनी.

ताक़त
मर्द की शान मर्द की पहचान

इस ताक़त को बनाये रखने के लिए, सदाबहार चुस्ती, फ़ुर्ती और नौजवानी की सी उमंग के लिए ओकासा स्वास्थ्यदायक टॉनिक टिकियाँ लीजिये। ओकासा टॉनिक टिकियों की अनोखी शक्ति से आपके शरीर और दिमाग़ को लगातार नयी ताक़त मिलती है।
ओकासा की टिकियों पर चाँदी चढ़ी रहती है।

ओकासा
टॉनिक टिकियाँ
पुरुषों के लिए चांदी वाली
हार्मो-फ़ार्मा लिमिटेड लंदन-बर्लिन का उत्पादन
सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहां मिलता है।
OKASA CO. PVT. LTD.
12A Gunbow Street, P.B.No.396,
Bombay-400001.

OKASA
THE 20TH CENTURY TONIC
RESTORATIVE
Manufactured by
OKASA CO. PVT. LTD BOMBAY 1
FOR
HORMO-PHARMA LTD.
LONDON-BERLIN

सवेरे वह शौचादि से जल्दी निवृत्त हुए. रात के बचे थोड़े दूध, चाय-पत्ती और चीनी से कल शाम की चाय से आधी चाय बन पायी. चाय के लिए जिद कर रहे बच्चों को घुड़क कर पत्नी ने आधी-आधी बासी रोटी पानी और नमक लगा कर पकड़ा दी. रोटी खाते हुए बच्चों को मैंने फिर उनके 'कार्य' के संबंध में 'ब्रीफ' किया.

आधा लोटा चाय देख कर पिता जी असंतुष्ट लगे, मगर उन्होंने सिर्फ इतना कहा कि जाओ, तुम लोग भी पियो.

तीनों लड़के आये और उनके पास ठिठक कर खड़े हो गये. वह फूंक-फूंक कर चाय पी रहे थे. मैंने आंखों से बच्चों को इशारा किया कि कहो! मगर उनके मुंह से बोल नहीं फूटा. वैसे खोपड़ी खाये रहेंगे, इतना शोर मचायेंगे कि पूरा मोहल्ला जाग जाये. अब इनकी जबान को लकवा मार गया! वे बड़े ध्यान से उन्हें चाय पीते हुए देख रहे थे. तभी सबसे छोटा किट्टू बोल पड़ा——पापा, हम भी चाय पियेंगे.

—अच्छा, चा पियेगा! अभी ले! कैसी बात कह दी? लल्ला के लिए भई बरतन लाओ, राजा साहब चा पियेगा. उन्होंने उसे गोद लेने को हाथ बढ़ाया तो वह मुझसे चिपट गया और मैं उसे यह कह कर वहां से हटा लाया कि तेरी मम्मी चाय दे रही है, वो देखो! मगर वह जोर-जोर से रोने और हाथ-पैर फटकारने लगा. पत्नी को दिया तो उसने धमाक् से उसकी पीठ पर दो हाथ मारे और ब्लाउज से बाहर स्तन खींच कर उसके मुंह में ठूंस दिया और बड़े गुस्से से मुझे घूरने लगी. मैं पिता जी के पास खड़े रह गये दो बच्चों को देखने लगा कि देखो खड़े हैं, जरा भी इनमें चतुराई नहीं! मैंने तो ये दिन देखे हैं. देखना, तुम्हें भीख ही न मांगनी पड़े, उल्लुओ!

पिता जी ने पूछा कि कैसे खड़े हो, तब भी नहीं बोले. जी में आया कि जाऊं, इनके धरूं दो-दो हाथ और कान पकड़ कर बाहर. . .पर मैंने वहीं से उनका नाम ले-ले कर बुला लिया. जब वे पास आये तो मैंने पूरी घृणा के साथ मुंह बिगाड़ कर उन्हें देखा. वे भीगे चूहे की तरह सिकुड़ गये. मैंने प्रकट में धीरे से कहा——चलो, पढ़ो बैठ कर.

कमरे में पिता जी चाय पी चुके थे, क्योंकि उन्होंने उसांस लेते हुए बड़े जोर से कहा——भगवान् हो! फिर बोले—मोहन, तुझे याद है कि छोटा था, तब तेरा कितना लाड़ हुआ. . .दूध तू बिना फैलाये कभी नहीं पीता था! अब यह चा पीता है. खैर शहर में दूध नहीं मिलता, और सुविधाएं तो हैं. दुःख तो इस बात का है कि बचपन से कभी तुझे अलग नहीं किया. इधर छह साल से जाने तुझे क्या. . .और उनके स्वर से लगा कि वह रोने लगे हैं. फिर स्वर में सामान्यता लाने की कोशिश करते हुए बोले——जरा इधर आना, मोहन.

मैं गया तो कहने लगे——वैसे तो मतलब भर को हैं. मैं सोचता हूं, नीमसार जाऊंगा. जरूरत के लिए पचास रुपये ले आ, रख लेता हूं. सुन कर मैं अवाक् और निरुत्तर था, पर इसे वह मेरी स्वीकृति समझ रहे थे.——जा, ले आ, अब चलूंगा. आठ बजे बस जाती है. वहां आज यज्ञ शुरू हो गया होगा.

कृष्णकांत प्रवासी (जन्म : २ सितंबर, १९४०, उत्तर प्रदेश के हरदोई जिलांतर्गत ललुआमऊ गांव गांव में) ने पहले कविताएं लिखीं, फिर जब अभिव्यक्ति के लिए व्यापक कैनवस की जरूरत महसूस हुई तो कहानी लिखना शुरू किया. कुछ रचनाएं प्रकाशित.

पत्नी चौके में थी. मुझे लगा, दीवारें घूम रही हैं. . . दूसरे कमरे में खड़े हो कर देखते हुए मुझे पत्नी की आकृति धुंधली लगने लगी. . .आंखें पोंछी तो देखा, वह इधर पीठ किये बैठी थी. मैं उसके संदूक की चाबी ढूंढ़ रहा था. वह मिल भी गयी. एक सोने की चूड़ी बची थी शायद, निकाल लूं! लेकिन संदूक खड़केगा और वह जान जायेगी. फिर अभी हाय तोबा. . .मैंने चाबी वापस रख दी.

मैंने पलंग पर से तीनों बच्चों के कपड़े उठाये और दबे पांव बाहर निकल आया.

खास्तगीर घर पर ही था. मैंने बड़ी गर्मजोशी के साथ उससे कहा——ले भाई, ये रही तेरी पसंद! तू बहुत जान छिड़कता था न इन कपड़ों पर. . .मैं उस दूकानदार के घर से ले आया. यार, वह तो मेरी पुरानी जान-पहचान का निकला!

——बैठो तो सही. उसने चमकीले दांत दिखाते हुए कहा. अरे, चाय आ रही है, नहीं तो तुम्हारी भाभी नाराज होंगी. . .ऐसी क्या बात है. . .?

——चाय तो रोज पीते हैं. भाभी नाराज होंगी तो हम दोनों मना लेंगे. तू जल्दी से रुपये दे, वह मेरे घर पर बैठा है. . . हां-आं, पैंसठ के मैंने लिये थे न. मैंने कहा, पहचान निकल आयी तो तेरे लिए पांच छुड़ा लिये—यानी साठ ले आ फटाफट. अभी नहाना है और दफ्तर जाना है.

★ ★

पिता जी को बस में बैठा कर लौटा . . .बच्चे और पत्नी बदहवास थे. पत्नी डरते-डरते बोली—— परसों धूप में सुखाये थे इनके कपड़े, फिर यहीं पलंग पर रख दिये थे, मिल नहीं रहे हैं. एक-एक सामान उलट कर देख लिया. . .कोई बाहरी आया भी नहीं तबसे. . .

——दर्जी को दे आया हूं ठीक करने के लिए, ढीले थे न. मैंने उन्हें समझाया, तो बच्चे आश्वस्त हो कर अपने बस्ते उठा कर पढ़ने चल दिये. पत्नी ने कहा——खाना खा लीजिए, नहीं तो दफ्तर के लिए देर होगी.

किंतु मैं सोच रहा था कि पत्नी को अभी बता दूं या बाद में कि. . . ☐☐☐

टी ५ ए, बड़ी लाइन, स्टेशन के सामने,
शाहजहांपुर (उ. प्र.)

गिद्ध

● नर्मदेश्वर

वह अपने आंगन में खाट में धंसा हुक्का गुड़गुड़ा रहा है. सामने छप्पर पर मृत मवेशियों के चमड़े सूख रहे हैं. छप्पर के पीछे इमली का पेड़ रह-रह कर चरमरा उठता है. गिद्धों के विशाल पंखों से टकरा कर हवा खड़खड़ा उठती है. वह जानता है कि गिद्ध की आंखें बड़ी तेज होती हैं. कहीं कोई मवेशी मरा कि ये लगे टपकने. पास ही आज फिर कोई मवेशी मरा होगा. पंद्रह-बीस दिनों से कोई दिन ऐसा नहीं गुजरा है जिस दिन दो-चार मवेशी नहीं मरे हों. गांव ही नहीं पूरी पंचायत के आधे से अधिक मवेशी इस महामारी के शिकार हो चुके हैं.

उसकी बछिया भी कई दिनों से बीमार है. वह खूंटे से बंधी छटपटा रही है. उसका सारा शरीर चेचक के फोड़ों से भर आया है. दो दिनों से उसने कुछ भी नहीं खाया है, मुंह भी नहीं चलाया है. जब से सुई पड़ी है, उसकी हालत और अधिक बिगड़ गयी है. फिर भी, जब तक सांस तब तक आस. रजपतिया सिलवट पर उड़हुल के फूल पीस रही है. शायद इस दवा से कुछ फायदा हो. बहुत मुश्किल से पिछले साल उसने इसे तीस रुपये में खरीदा था. लगता है उसके रुपये पानी में ही जायेंगे. बछिया के बचने की कोई उम्मीद अब नहीं है.

तब वह मालिक की बनिहारी करता था. किसी तरह रोटी चल जाती थी. मालिक थोड़ा मुंहफट आदमी था. जरा-सी बात पर उसके मुंह से गाली ही बरसती थी. सुबह-सबेरे मालिक का गर्दभ स्वर चौखट से टकराता था —– अरे निमचनवा, साला दिन भर सोता ही रहेगा क्या रे? कई बार कह कर थक गया कि मेरा काम करना है तो पौ फटते ही हाजिर हो जाओ. लेकिन इस हरामखोर के कान पर जूं तक नहीं रेंगती. वह कंधे पर अंगोछा रखता और चुपचाप आंखें मलता बाहर निकल जाता था. बिना कुछ कहे-सुने.

वह जानता था कि मालिक की बातों का जवाब नहीं दिया जाता . एक कर्जखोर का बेटा कुछ कह सकने के काबिल भी नहीं रहता. मालिक ने हमेशा हाथ खोल कर उसको सहायता दी थी. जब कभी खर्ची घटी, मालिक ने अनाज की बोरियां खोल दीं. यह बात जरूर थी कि यदि उन्होंने सावन में एक मन दिये तो अगहन में उससे डेढ़ मन खलिहान में ही वसूल लिये. उसके बाप ने जीवन भर मालिक की खिदमत की. लात-जूता खा कर भी कभी मुंह नहीं खोला. मरते वक्त वह मालिक के पांव कभी नहीं छोड़ने की हिदायत भी दे गया था उसे. उसने अपनी मर्जी से मालिक का काम छोड़ा भी नहीं था. मालिक ने उसे खुद ही छोड़ दिया था. उसे बनिहारी से हटा दिया था.

तंबाकू का एक गहरा कश खींच कर वह ढ़ेर सारा धुंआ उगलता है. अगहन की वह धुंध भरी सुबह उसे खूब याद है. उन दिनों कटनी चल रही थी. बधार में धान के पथार सूखने के लिए पड़े थे. वह, उसकी बीवी और बारह साल की उसकी बिटिया सबने मिल कर तीन सोरहिया काटा था. तीन सोरहिया यानी सोलह तिया अड़तालिस बोझा. सोलह में एक बोझा बनिहारे का होता है. इस तरह उन अड़तालिस बोझां में तीन बोझे उसके अपने थे. उन बोझों को ढो कर खलिहान में पहुंचाना था.

सभी बनिहार और उनकी बीवियां बोझा ढोने में व्यस्त थे. करीब एक दर्जन बच्चे, जिनमें उनके बच्चे भी शामिल थे, खेतों में गिरे धान के टूटे बाल बीन रहे थे. हालांकि मालिक का सख्त हुक्म था कि बिना बोझा ढोये कोई भी बाल नहीं बीनेगा. लेकिन उन बच्चों को भला कौन रोके.वह अपने को भी तो नहीं रोक पाया था. बच्चों के साथ वह भी धान के टूटे बाल बटोर रहा था. उसे डर था कि बोझा ढोने तक खेतों में एक भी बाल बचेगी ही नहीं चुनने को. बच्चों के बीच बच्चा बना वह बाल बीन ही रहा था कि न जाने कहां से मालिक भूत की तरह आ धमका. मालिक के मुंह से गालियां छुरछुरी की तरह निकल पड़ी थीं. वह भी उसकी बीवी और जवान बिटिया के मुंह पर. उसे लगा था कि उसका सारा पौरुष मर गया हो. मालिक ने फटकारते हुए कहा था —– साले भुनभुना रहे हो? मारते-मारते चमड़ी उधेड़ दूंगा. समझ क्या रखा है आखिर? इतने दिनों तक मुझे बेवकूफ बनाते रहे और मैं जान कर भी अनजान बना रहा. तुम्हारे देखा-देखी सभी बनिहार बिगड़ गये. अभी परसों नये बैल की पूंछ तोड़ डाली. मेरा जो नुकसान हुआ उसे कौन भरेगा– तुम्हारा बाप? कर्जा तो चुकता नहीं कमीने से. तुम क्या जानो कि बैल क्या होते हैं —– जिंदगी भर तो उनकी चमड़ी छुड़ाये. अब समझा कि मेरे खूंटे पर बैल क्यां नहीं टिकते. आज से मुझे तुम्हारी कोई जरूरत नहीं... समझे कामचोर, नमकहराम, साला, बहन. . .

समझा तो वह कुछ भी नहीं था लेकिन इतना याद है कि उसकी मुट्ठियां बंध गयी थीं. उसका सारा व्यक्तित्व ऐंठ गया था. फिर भी वह सारा अपमान पी कर रह गया था. आखिर वह कह भी क्या सकता था? शायद मजबूर था वह. खलिहान से अपने तीन बोझे उठा कर घर ले आना भी उसकी मजबूरी ही थी. मालिक ने उसके हक को साफ नकार दिया था. उसके बोझे खलिहान में ही रोक दिये गये थे. बनिहारी में मिला एक बीघा खेत भी उसे काटने नहीं दिया गया था. बोझे उसके घर में पकड़े गये थे. पंचों ने उस पर चोरी का इल्जाम और पचास रुपये का दंड लगाया था. वह अपना जुर्म कबूल नहीं कर पाया था और न ही जुर्माने की रकम अदा कर पाया था.

जुर्माना देता भी कहां से? यह तो उसका खानदानी पेशा था जो बुरे दिनों में काम आया नहीं तो वह बीवी-बच्चों के साथ भूखा मर गया होता. तब से वह मृत मवेशियों के चमड़े छुड़ाता है. चमरुआ जूते बनाता है. नाधा-जोती बांधता है, रजपतिया बटोर लायी गयी हड्डी की गठरी ले कर शहर जाती है और किसी तरह गृहस्थी की गाड़ी खींचता है, उसके कंधों पर बांस की रगड़ खा कर बन आये काले खुरदरे निशान साफ नजर आते हैं. रोज-रोज मरे डांगर ढोना उसे अच्छा नहीं लगता. मरे जानवर शायद और भारी हो जाते हैं. उनके बंधे पैरों में

● वी. जी. दलाल

बांस लगा कर उठा ले चलना कोई आसान काम नहीं, वह हांफ जाता है. पर यह उतना बुरा नहीं लगता जितना सर पर हड्डी की गठरी ले कर चलना.

कुछ ही दिन हुए, वह हड्डियों का पिंजर सर पर लादे शहर जा रहा था. सोमारु अहीर अंगोछे से अपनी नाक दबाये बगल से गुजर गया था. शायद हड्डी की बदबू उसे असह्य लग रही थी या कि निमचन का सामीप्य उसे काट खाये जा रहा था. उसे अपने आप से घृणा हो आयी थी— उस दिन. सर पर हड्डी देख कर कोई उसके पास नहीं ठहरता. परिचित भी मुंह फेर कर जल्दीबाजी में निकल जाना चाहते हैं, न वह किसी से बतिया सकता है और न ही कोई थोड़ी देर उसके नजदीक रुक सकता है.

—क्यों सोमारु दादा, यह छान–पगहा लिये इधर कहां जा रहे हो? तुम्हारी भैंसें तो पहाड़ पर रहती हैं न? वह अपनी उत्सुकता पर काबू नहीं रख पाया था.

—जले पर नमक छिड़कना ठीक नहीं निमचन. तुम्हें पता नहीं है कि मेरी बीसों भैंसें पहाड़ पर ही स्वाहा हो गयीं इस बीमारी में. जब भैंसें ही नहीं रहीं तो छान-पगहा रख कर क्या होगा. इन्हें गंगा मईया को चढ़ाने जा रहा हूं. यह कहते हुए उसकी आंखें डबडबा आयी थीं.

अपनी जिंदगी में उसने इतनी भयंकर महामारी कभी नहीं देखी. उसने थाने के पास लोगों को बतियाते सुना है. वे कह रहे थे कि शहर के बाहर उस कुंए पर पत्थर के जो दो खंभे हैं उनमें भी चेचक के दाने निकल आये हैं. पत्थर को चेचक निकल गया तब बाकी ही क्या रहा? काली माई ने महदेव बो को सपना दिया है कि गांव श्मशान बन कर रहेगा. पंडित जी ने शांति का जो तरीका बतलाया है, वह है तो बड़ा महंगा, लेकिन सुना है, मालिक नौ मन का पुआ बनवायेंगे. सब पुए जमीन में गड्ढा खोद कर गाड़ दिये जायेंगे और उनके ऊपर घी का हवन होगा.

निमचन को यह ओझाई और झाड़-फूंक एक धोखा लगता है. उसका बड़ा लड़का बीमार था. नागा बाबा ने कहा था कि जीन महाराज की दुआ से वह ठीक हो जायेगा. उन्होंने खूब झाड़ा-फूंका. जीन महाराज को मुर्गा चढ़ाया और दारू की बोतल भी ढरकायी. लेकिन जाने वाला चला गया. रजपतिया कई दिनों तक सुबकती रही थी. नागा बाबा का सारा जंतर-मंतर धरा का धरा रह गया था. लेकिन ओझाई की तरह यह सुई-दवाई भी एक लफड़ा ही है क्या?

बहुत सोर्स-पैरवी और दौड़-धूप के बाद बी. डी. ओ. साहब ने डाक्टरों के साथ गांव का दौरा किया था. गांव

पीठ का दर्द ?

आयोडेक्स मलिए, जो पीड़ा हरे, अच्छा करे

दूसरे बाम पीड़ा से आराम भले पहुंचाएं, आयोडेक्स आराम पहुंचाने के साथ साथ अच्छा भी करती है. क्योंकि इसमें आयोडीन मिली है.

जोड़ों और मांसपेशियों की पीड़ा के लिए एकमात्र बाम—आयोडेक्स.

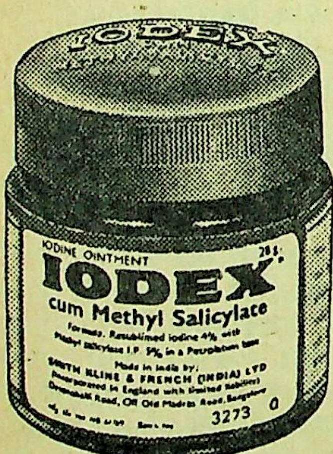
IODEX
IODINE OINTMENT
28g
IODEX
cum Methyl Salicylate
SMITH KLINE & FRENCH (INDIA) LTD
3273

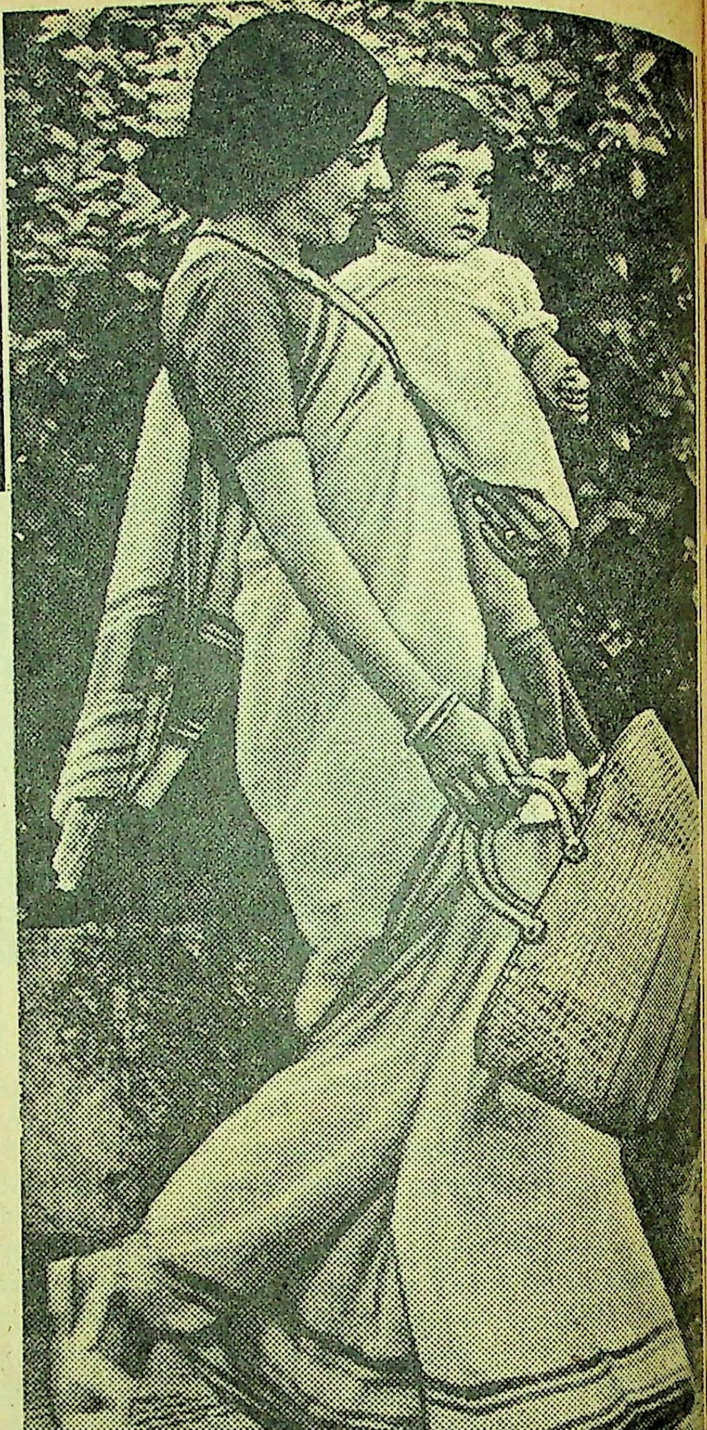

आयोडेक्स मलिए-अपने काम पर चलिए

लिंटास-IODEX. 1-140

के सारे मवेशी जब सुबह आठ बजे काली माई के सामने वाले परती छवर पर जुट आये, तो डाक्टरों ने उन्हें सुई देना शुरू किया था. सुई देते-देते उनके हाथों की नसें तन आयी थीं. वे जल्दी-जल्दी सुई घोंप रहे थे. कई बार तो दवाई बाहर जमीन पर गिर कर पसर गयी थी. उसकी बछिया को भी सुई दी गयी थी.

लेकिन बावजूद सुई–दवाई के उनमें से अधिकांश मवेशी नहीं बच पाये. और कल ही एक सरकारी कर्मचारी दीवालों पर जगह-जगह लिख गया है कि चेचक की बड़ी गोटी की खबर देने वाले को सौ रुपये दिये जायेंगे?

वह हुक्के को खाट के सहारे खड़ा कर के जम्हाई लेता है. एक गिद्ध इमली की डाल झकझोरते हुए ऊपर उड़ जाता है. दूसरे गिद्ध भी अपने डेनें फड़फड़ाने लगते हैं. उनकी बीटों से सारा पेड़ चितकबरा हो गया है. ये गिद्ध भी अजीब जीव हैं. ये जब तक कुछ मरा नहीं देख लेते, तब तक दिखलायी नहीं देते. इतना धीरज कोई और जीव नहीं रख सकता. ये मवेशियां के मरने तक न जाने कहां छिपे इंतजार करते रहते हैं.

और यह गौरैया भी एक चिड़िया है जो हमारे घरों में ही मौज से रह लेती है. छप्पर में उनके घोसले अब भी मौजूद हैं. हालांकि निमचन अपने हाथों से उन्हें कई बार उजाड़ चुका है. एक गौरैया उस टूटे आईने में बार-बार चोंच मार रही है जिसे रजपतिया ने दीवाल पोतते वक्त बड़ी खूबी से चिपका दिया था.

वह आईने तक जाता है. आईने में इमली का पेड़ हिलता नजर आता है. शायद ये घिनौने गिद्ध पंख फड़फड़ा रहे हैं. एक गिद्ध छप्पर पर आ बैठता है. उसे पंडित जी की बात याद आती है. उन्होंने कहा था कि जिस घर पर गिद्ध बैठ जाये उसमें रहना अच्छा नहीं होता. अब भला बना – बनाया घर छोड़ना या उसे तोड़ कर नया बनाना क्या संभव है ? वह भी तब जब रोज ही गांव पर गिद्ध मंडराते रहते हैं, कुत्ते हड्डियां तोड़ते दौड़ते-फिरते हैं और सारा गांव कब्रिस्तान की तरह मृत मवेशियों से पटा पड़ा है.

पुआल पर सुलाया हुआ उसका तीन साल का लड़का मूत कर रोने लगता है. रजपतिया उसे गोद में ले कर पुचकारती है. उसका रोना बंद नहीं होता. वह अपना स्तन निकाल कर उसके मुंह में ठूंस देती है. वह चुप हो जाता है.

—इस तरह बार-बार मुंह क्या देख रहे हो? पंचों ने तुम्हें बुलाया है. आखिर कब जाओगे? वह बच्चे का सर सहलाती है.

—आज कहीं जाने का मन नहीं करता. लेकिन पंचों का बुलावा है तो जाना ही पड़ेगा. और वह अपना अंगोछा सर पर लपेटते हुए बाहर निकल जाता है.

काली माई का स्थान खचाखच भरा है. लड़के तमाशबीन की तरह खुश नजर आते हैं. चबूतरे पर मालिक के साथ पंच लोग बैठे हैं. निमचन की आंखें मालिक से टकराती हैं. मालिक मूंछ पर ताव दे कर गरदन हिलाता है. भीड़ के बीच में बैठे तीन ओझे पचरा गा रहे हैं. वे स्प्रिंग वाले सांपों की तरह झूम रहे हैं. रह-रह कर वे अपने हाथों की सरसों थाली में मारते हैं. उनसे कुछ हट कर एक फंदा नीम की मोटी डाली से लटक रहा है.

अचानक एक ओझा चिहुक कर गंभीर हो जाता है. उसकी निगाहें मालिक से मिल कर नीचे झुक जाती हैं. वह अपनी भारी आवाज में भीड़ को शांत हो जाने का आदेश देता है.

बच्चों की उछल कूद थम जाती है. वह ऐलान करता है कि सभी भूत और सायर थाली में जुट आये हैं. इस महामारी का कारण निमचन चमार है. उसने अपना गड़ा भूत उखाड़ दिया है. गांव के डीह-डहवार नाराज हो गये हैं. ऐसी हालत में तो हाहाकार मच जाना चाहिए. लेकिन धरती पर पुण्य अभी बाकी है. यह पृथ्वी तो धरम-करम पर ही टिकी है. पंच बुदबुदाने लगे हैं. भीड़ मुखर हो उठी है.

भीड़ को चीरती हुई मालिक की आवाज उभरती है—भाइयो, निमचन के चलते सारा गांव तबाह हो गया है. उसने हमें बर्बाद कर के रख दिया. आखिर सच बात सामने आ ही गयी. इसने धंधा चलाने के लिए अपना गड़ा भूत उखाड़ दिया है. हुआ क्या, हम सभी जानते हैं. पंचायत यह हुक्म देती है कि निमचन को झूल रहे फंदे में उल्टा लटका दिया जाय. किसीको एतराज है?... तो किसी को नहीं.

भीड़ शांत रहती है. निमचन सर के बल फंदे से लटका दिया जाता है. उसका चीखना-चिल्लाना कुछ काम नहीं आता है. उसकी आवाज भीड़ में खो कर रह जाती है. भीड़ छंटने लगी है. उसकी बीबी चिल्लाती आती है—मेरी भी बछिया मर गयी है –– उसे किसने मारा है मालिक? वह काली माई के चबूतरे पर सर पटकती है. मालिक जा चुके होते हैं.

निमचन का चेहरा लाल हो गया है. उसकी आंखों में खून उतर आया है. वह कुछ भी बोल नहीं पाता. नीम के ऊपर चारों ओर गिद्ध मंडराने लगे हैं. □□□

सिकरिया, सासाराम (बिहार)

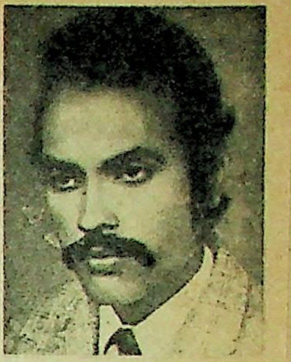

नर्मदेश्वर (जन्म : १५ फरवरी, १९४६) ने अंग्रेजी में एम. ए. किया है पत्र-पत्रिकाओं में छिटपुट रचनाएं प्रकाशित. संप्रति अधिवक्ता.

वापसी

• मंदा पांडे

घोंघा कहीं का! काली सूरत. . . सामने के दांत टूटे हुए. . .सफाचट, गंजा सिर . . .फुटबाल के मैदान जैसा . . . जब देखो चला आता है. लेकिन दफ्तर जो उस का ठहरा! कैसी घिनौनी नजर से देखता है! कल मेरी साड़ी क्या जरा-सी ऊंची हो गयी. . . कमबख्त कुत्ते की तरह लार टपकाने लगा! . . .

आखिर एक-न-एक दिन तो इस बला को झेलना ही था. वह छोटा-सा कैबिन, जिसमें कल मैं उसकी पी. ए. बन कर बैठती थी, आज खाली पिंजरे की तरह पड़ा है और पंछी पर फड़फड़ाता हुआ उड़ गया. . .

कमबख्त. . . एक दिन कहता था— तुम एलिजाबेथ टेलर लगती हो. . . और कहते-कहते मेरे कंधे तक हाथ बढ़ाने लगा था.

उफ! . . . कितनी घुटन थी! हमेशा अपनी बीवी की बुराई करता था मेरे सामने. छिः! ये मर्द कितने घिनौने होते हैं! एक औरत को पाने के लिए दूसरी को कितना गिरा देते हैं! लेकिन आज मैंने उसे गिरा दिया है.

आज तमाम दुनिया मेरे लिए सुहावनी बन गयी है. बस-स्टॉप की लंबी-लंबी कतारें. . . जिनमें मैं भी अभी-अभी तक शामिल थी, देख कर आज मुझे जरा भी खीज नहीं हुई. घंटा भर खड़ी रही, मगर फिर भी आज मेरे पैरों में या मेरी कमर में दर्द नहीं हुआ, जो रोजाना मुझे एक मरीज की तरह घर की ओर खींच कर ले जाता था. . .और ऐसे महसूस होता था कि मेरी जिंदगी का एक-एक दिन ये बस की कतारें नोच लेंगी और मुझे मौत की ओर घसीट ले जायेंगी. मगर यह सब आज नहीं हुआ. होगा भी कैसे? . . .

आज तो मेरे पर निकल आये हैं. . . दोनों बाजुओं में दो सफेद पर. . . इतने खूबसूरत! और मैं उनके सहारे उड़ रही हूं. . .

* *

आज बस में कंडक्टर और एक यात्री के बीच जो झगड़ा हुआ, उसमें मुझे और ही आनंद आया. अगर मैं आज इस दशा में न होती तो मुझे समूची मनुष्य जाति से घृणा-सी हो जाती. उनके साफ-सुथरे और सजीले लिबासों में से झांकने वाली नग्नता तथा उनके कमीनेपन को देख कर मेरा दिल रो उठता. अंदर-ही-अंदर. लेकिन, आज मैं उन झगड़ों के मजे ले रही थी. बड़े चाव से मैं सब तमाशा देख रही थी. उस झंझट में कंडक्टर ने मेरे दस पैसे भी वापस नहीं किये.

घर की ओर मुड़ने वाली गली में मैंने प्रवेश किया और मेरे पैरों में पहिये लग गये. मैं दौड़ने लगी. जंजीरें मैंने तोड़ दी थीं, क्योंकि मैं उस शिकंजे से बचना चाहती थी. दूर भागना चाहती थी. जल्द-से-जल्द.

उस मनहूस आदमी के. . . यानी बॉस के टेबल पर मैंने इस्तीफा यों फेंक दिया मानो मैं बॉस थी और वह मेरा पी. ए. इस्तीफा हाथ में उठाये हुए उसने दोबार मुझसे पूछा, क्या मैं सचमुच इस्तीफा दे रही हूं या दो दिन बाद मेरा इरादा बदल जायेगा? मैंने तैश में आ कर कह दिया कि मेरा इरादा पक्का है. . . मैं इस्तीफा वापस नहीं लूंगी. . . कभी नहीं, कतई नहीं.

उसके चेहरे की निराशा देख कर उस पर एक साथ तिरस्कारपूर्ण तरस आया था. कमीना कहीं का! शिकार हाथ से छूट जाने पर जैसे उसका दिल टूटा जा रहा था.

* *

पांच बजे ऑफिस से निकली तो सब-की-सब लड़कियां मुझे ईर्ष्या भरी नजरों से देख रही थीं. उन सब में अब मैं ही एक खुशनसीब थी, जिसे दस से पांच तक पिसना नहीं पड़ेगा. . . न उस अंधेरे कैबिन में जाना पड़ेगा. न एक गंजे. . . . मोटे. . .काले-कलूटे, बदसूरत आदमी को विश करना पड़ेगा. . . . जिसकी शक्ल देखते ही नफरत होती है. . . मुझे कहना चाहिए, होती थी.

लाख-लाख शुक्र है कि अब उसके दर्शन नहीं होंगे, न ही पल-पल उसकी मूर्खता भरी बातों के आगे सर झुकाना पड़ेगा. खैर. . . अब मैं उसके बारे में क्यों सोचूं?

अब तो मुझे अपनी चिंता होनी चाहिए. बिगड़ी को बनाना जो है! मेरी नौकरी को ले कर हम-दोनों पति-पत्नी में जो संघर्ष इन दिनों चल रहा है, उसकी वजह से एक तनाव पूरे घर को घेरे रहता है. समझ में नहीं आता उसे कैसे कम करें. सब धागे बिखरने लगे हैं. कहीं-कहीं पर तो इतने महीने हो गये हैं कि कब टूट जायेंगे, इसका कुछ भरोसा नहीं.

* *

बच्चे को सुलाने के बाद मैं लेटी ही थी कि उनके हाथ का स्पर्श अपने शरीर पर अनुभव किया.उसी तरह गर्म और नरम हथेली. . . जिसका पहला स्पर्श पहली बार मेरे जीवन में एक नया संचार ले कर आया था. . . वह स्पर्श. . . जिससे मेरे शरीर के रोम-रोम में सिहरन-सी पैदा हो जाती थी. आज वही केवल एक गर्म हाथ बन कर मेरे शरीर पर जाने कहां-से-कहां विचर रहा था. . . और मैं एक जिंदा औरत. . . एक ठंडी लाश की तरह. . . उस काले, घिनौने, घोंघे को भूलने की कोशिश कर रही थी. उनके हाथ के पीछे एक छाया मंडरा रही थी. . . किसी काले, लंबे-लंबे बालों वाले वासनापूर्ण हाथ की. शायद यह हाथ उसी घिनौनी छाया का था, जिसे मैं भूलना चाहती थी. यह छाया न जाने क्यों मेरी रातों को मुझसे छीने जा रही थी.

—सो गयीं क्या?

—उंहूं!

—फिर. . . क्या बात क्या है?

—यूं ही. कुछ मन नहीं कर रहा है.

—बहुत थक गयी हो क्या?

बरातों की घोड़ी व बैंस
फो॰ E IV-32 पुरानी डबल स्टोरी
लाजपत नगर-4

—हां. बहुत. . . अब ऊब-सी गयी हूं.

इतना ही कह पायी कि वह चीख उठे—हां-हां,क्यों नहीं! अब तुम मुझसे ऊब गयी हो! मैं सब समझता हूं. मर्दों की तरह काम करती हो न! कमाती हो, इसलिए उनकी सभी आदतें भी तुम में आनी ही चाहिए. . . तुम्हें भी परिवर्तन चाहिए. . .

—यह तुम क्या कह रहे हो!

—मैं देख रहा हूं. कुछ दिनों से . . . तुम बदली-बदली सी लग रही हो. . . क्या कोई और. . .

—भगवान के लिए बस करो. मुझे समझने की कोशिश करो. . .

और यह कहते-कहते उस अंधेरे में मेरी आंखें डबडबा आयीं. तकिया गीला होता रहा. . . और. . . रात कुंवारी-की-कुंवारी ही बीत गयी.

● ★

सुबह उठी तो निश्चय कर लिया था कि अपने पति के लिए दुनिया की वह हर चीज ठुकरा दूंगी, जो मेरे रास्ते में आयेगी, चाहे वह मेरी नौकरी हो या मेरी कोख की संतान.

जीते-जागते अपने प्यार की हत्या होते मैं देख रही थी. हमेशा यही डर बना रहता. . . . कहीं यह दरार बढ़ती न जाये. कहीं उस खाड़ी में दो प्यार भरे दिल चकनाचूर हो कर अदृश्य न हो जायें. कहीं यह दरार हम दोनों के बीच एक दीवार बन कर हमें एक-दूसरे से अलग न कर दे.

दिन भर यही सोचती रही. . .और टाइपिंग में सैकड़ों गलतियां करती रही. . . फिर क्या?. . . उस मनहूस की डांट-डपट और जहरीली नजर तीर के समान मेरे दिल में घुस कर मेरी बोटी-बोटी काटने लगी. उफ! चार पैसे के लिए यह सब सहना जरूरी है? ऐसी नौकरी हरगिज नहीं करूंगी! और आज ही इस्तीफा दे दूंगी. हम दोनों के बीच बढ़ती हुई दरार को नौकरी से त्यागपत्र से भर दूंगी. इस जानलेवा संघर्ष का अंत कर दूंगी.

अब नये सिर से जिंदगी शुरू करनी है. अब चौबीस घंटे तुम्हारी ही खातिरदारी करूंगी. . .

आज सब कह दूंगी. हां. ऐसे तो पहले कहा नहीं था. कहती भी कैसे? मुंह फुलाये जो रहते हैं. एकदम खबर दे कर चकित कर दूंगी. खुश हो जायेंगे. आलू की कचौरियां बहुत पसंद हैं उन्हें. आयेंगे तो आज जी भर कर खिलाऊंगी.

★ ★

लेकिन मेरे पूरे मनसूबों पर पानी फिर गया. मैंने घर में कदम रखा तो वह पहले से ही घर पर थे. खिड़की से बाहर झांक रहे थे. मैंने जोर से सैंडल की आवाज की ताकि वह घूम कर देखें. लेकिन वह मेरे पास फटके भी नहीं. जाने कहां खो गये हैं!. . .

मैं सीधी रसोई में चली गयी. एक स्टोव पर चाय चढ़ा दी. दूसरे पर कचौरियां तैयार कीं. मगर इतने में न कोई रसोई में आया, न किसी ने बात की.

—अरे, तुम्हारी तबीयत खराब है क्या? सामने टी-पॉट पर ट्रे रख कर मैंने उनके चेहरे की तरफ देख कर पूछा. उनका मुंह कुछ उतरा-सा था. और मैं यहां इतनी उत्तेजित थी, अपनी खबर सुनाने के लिए! लेकिन इन्होंने खाने में चुपचाप ऐसा मन लगाया जैसे कई दिनों

मंदा पाडे पिछले दस-बारह साल से आकाशवाणी में हैं. ललित कलाओं में उन्हें विशेष रुचि है. गायन, नृत्य, चित्रकला, लेखन—प्रत्येक क्षेत्र में इनका दखल है. संप्रति आकाशवाणी में कार्यक्रम-अधिकारी.

से भूखे हों... देखते-देखते मेरी आंखें भर आयीं.

—कैसी बनी हैं?.... देखो अब तुम्हें कोई तकलीफ उठानी नहीं होगी. समझे? खूब आराम रहेगा...

उन्होंने निगाहें उठाये बिना ही पूछा— मतलब?

मैंने मुलायम स्वर में कहा—अब मैं तुम्हें अपने प्यार और सेवा से सराबोर कर दूंगी. सारी दुनिया को ठुकरा कर तुम्हारी लौंडी बन कर रहना शायद मेरी खुशनसीबी होगी...

लेकिन उनके चेहरे पर वही उदासी, वही मायूसी... और वही अंधकार. जैसे कोई भावना उनको प्रभावित या उत्तेजित कर ही नहीं सकती. खाना अधूरा छोड़ कर उठ खड़े हुए. मेरा उल्लास, मेरा आनंद, गुब्बारे से हवा की तरह निकल गया. मैं उन्हें सर लटकाये देखती रही.

एक हारे हुए सिपाही की तरह सोचने लगी, कितनी अभागिन हूं! कल रात पति को सुख न दे सकी, जो उसका अधिकार होता है. क्या वह अब मुझे कभी माफ न करेंगे? ऐसे ही मुझसे खिंचे रहेंगे? खुद तड़पते, मुझे भी तड़पाते रहेंगे? क्या सारी जिंदगी इसी कशमकश में गुजरती रहेगी? क्या कहूं उनसे? अपनी ओर से क्या सफाई पेश करूं? गलतफहमी की दीवार कैसे हटाऊं?

दिन भर की परेशानियां, सारी मजबूरियां मुझसे मेरी रातों का सुख-चैन छीन ले जाती हैं. लेकिन अब ऐसा नहीं होगा. मैंने सब का अंत कर दिया है. अब मैं केवल तुम्हारी हूं और तुम्हारे लिए ही रहूंगी... थाम लो मुझे अपने बाजुओं में. अब मैं और बरदाश्त नहीं कर पाऊंगी...

क्या यह सब मैं उनसे कह दूं? अभी कह दूं? नहीं-नहीं, अभी नहीं...तो फिर कब?...

* *

रात फिर आ गयी. अंधेरा फिर छा गया. और...और आज मैं जिंदा लाश नहीं थी. नयी-नवेली दुल्हन की तरह मांग में सिंदूर भरे हुए थी. मैं अपनी मंजिल की ओर बढ़ रही थी. वह मेरे पास लेटे. बिल्कुल शांत, गंभीर... न जाने क्या सोच रहे थे. मेरे हाथों का स्पर्श पा कर भी उनमें हलचल पैदा नहीं हुई. सोच रही थी कि लाज-मर्यादा के सब बंधन तोड़ कर पिछली रात का प्रायश्चित करूंगी. लेकिन ऐसा न हो सका. रात काफी बढ़ चुकी थी. मेरी चिंता भय में परि होने लगी.

—आखिर बात क्या है? परेशान क्यों हो?

—कुछ नहीं.

—क्या मुझे कभी माफ नहीं करोगे?

—किसलिए?

—मैं वास्तव में बड़ी लज्जित हूं. जो हुआ, भूल जाओ. क्या एक रात की भूल का मुझे सदा के दंड भोगना पड़ेगा? और यह कहते-कहते मेरे बढ़ हुए हाथ उनके हाथों पर जा पहुंचे. लेकिन उन कुछ भी असर नहीं हुआ. वह उसी तरह गंभीर, शांत चिंतामग्न पड़े रहे.

—तुम्हें मेरी कसम! मुझे माफ कर दो. फिर कभी नहीं होगा. भूल जाओ, जो हुआ.

—ऐसी कोई बात नहीं है. मानसिक वेदनाओं कारण ऐसा कभी-कभी हो जाता है. आज मेरी भी स्थिति है, जो शायद कल तुम्हारी रही होगी. और एक-न-एक दिन तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा... मुझे नौकरी से मुक्त कर दिया गया है. मुझे अपनी ईमान का यही फल मिला है. मैं रिश्वतखोरी का अंत क चाहता था... और रिश्वतखोरों ने मेरी रोटी का अंत कर दिया! मुझे ही तबाह कर दिया. शायद मुक भी चले. सुनती हो?...एक ईमानदार, नेक और नाह को यह सजा मिली. अपना फर्ज निभाने का हश्र हुआ...

मैं अवाक् रह गयी. नियति कितना क्रूर खिल कर रही थी हमारे साथ! एक तरफ मैं इस्तीफा दे निश्चिंत होना चाहती थी, और दूसरी तरफ यह कसूर के दंड भोग रहे हैं...

—तुम चिंता क्यों करते हो? मैं तुम्हारी पत्नी आखिर जीत एक-न-एक दिन तुम्हारी ही होगी. बताया तक नहीं? क्या मैं तुम्हारे लिए इतनी बेगान चुकी हूं? कुछ सोचते हुए मैंने कहा—न सही, जब सब ठीक नहीं हो जाता, हम केवल मेरी तनख्व गुजारा कर लेंगे...

और फिर वही काला, घिनौना, घोंघे जैसा अपने टूटे हुए दांत लिये मेरे सामने मंडराने लगा...

—हि: हि:! बाई, तुम आ गयीं! मैं न कह सोच लो, कहीं तुम्हारा इरादा बदल न जाये! मैं तो तुम्हारा अपना ही हूं!...

* *

तकिया उसी तरह गीला होता रहा. रात बीत गयी. पता नहीं यह रात कुंवारी थी या सु लेकिन मैं जरूर दूसरे दिन वही थी...पर-कटे की तरह पिंजरे में लौट आयी थी... उसी तरह बॉस के दरवाजे पर खड़ी कह रही थी— मे आ इन सर...?

फ्लैट नं. ५, स्नेहल बाग,
सहजीवन नगर, पर्वति, पूना-९

उपन्यास

वयात्रा

क : स्वदेश भारती
ांबरा प्रकाशन, कलकत्ता-२६

कारी, अकेलापन, अ-प्रेम, संत्रास, युवा-आक्रोश. . . ; ी न खत्म होने वाली शवयात्रा.' ह अधूरा वाक्य उपन्यास खोलते सामने आ जाता है. तबियत ती है, इसमें कुछ शब्द और जोड़ ये जायें— अधूरापन, 'लॉ ऐंड डंर' के नाम पर फैली अव्यवस्था, ठा, पीढ़ियों का टकराव, दिशा- नता, अर्थहीन आधुनिकता, राज- ति, कलकत्ता और आत्महत्या. ायद इस तरह वह वाक्य पूरा सके और साथ ही यह उपन्यास . सारा उपन्यास एक रील है इस वाक्य को कई खंडों में रा करती है.

उपन्यास एक शवयात्रा से ारंभ होता है और कई शव- ात्राओं की तैयारी पर समाप्त ी जाता है. यह उपन्यास मार- िय, विशेष रूप से कलकत्ता की, ानसिकता का एक महत्वपूर्ण स्तावेज है. यह बंगाल या लकत्ता की 'केस हिस्ट्री' है जो माई साइज के ६३ पृष्ठों में पूरी ी गयी है. मर्ज सामने है, उसके ारण भी स्पष्ट हैं. लेकिन इलाज ोई नहीं या यह भी कह सकते कि इलाज के लिए आवश्यक पकरणों और व्यवस्था की कमी . ऑपरेशन टेबल पर मरीज का ारा शरीर उधड़ा पड़ा है, लेकिन सकी सिलाई के लिए उपयुक्त ंड' नहीं है, गैस सिलेंडर तो हैं किन उसे जोड़ने वाली 'कीप' हीं है. डॉक्टरों ने जो दस्ताने यों पर चढ़ा रखे हैं, वे इतने दे हैं कि उनके छूने से नये रोगों ी संभावना पैदा हो जाती है. तलब यह कि सब कुछ अधूरा और खतरा बढ़ाने वाला ही है.

हर जगह एक भीड़ है और इस भीड़ का हर आदमी अकेला है, हर आदमी पराया है, हर आदमी एक-दूसरे से निर्लिप्त और एक दूसरे के प्रति शंकालु है. हर आदमी एक-दूसरे से कतरा कर चलना चाहता है और टकरा कर चलता है और यह टकराहट न अनजाने की है और न जानी-बूझी. बस है, तो है. परिस्थितियां ही कुछ ऐसी बन गयी हैं कि वह न कतराने से बच सकता है और न टकराने से ही. यह स्थिति कुछ अजीब-सी अवश्य है, लेकिन इसे नकारा नहीं जा सकता.

वे दोनों एक ट्राम में एक-दूसरे से कतराते रहे थे और ट्राम में आग लग जाने के बाद एक-दूसरे से टकरा गये थे. बस यहीं से कहानी प्रारंभ हो गयी है और एक लड़की की आत्महत्या से गुजर कर श्मशान, पुलिस स्टेशन, गोलियों, आंसू गैस, दिशा और दूरी की सीमाओं से आगे निकल गयी है.

उस लड़की ने आत्महत्या इसलिए की, क्योंकि वह सिर्फ देह के स्तरों पर नहीं जीना चाहती थी. उसका धनी पिता उसके शरीर को यंत्रणाएं देता था और उसका बेसहारा प्रेमी उसके सिर्फ शरीर में सहारा ढूंढ़ता था, शरीर को सुख देता था. लेकिन दोनों ही उसकी मानसिकता से आंखें मूंदे रहना चाहते थे. दोनों ही के सामने प्रेम नहीं था, सिर्फ तर्क थे अपने-अपने बचाव के.

पूरी कहानी में बस यही एक दायरा है जो कई टुकड़ों में बंटा हुआ है. उन टुकड़ों के बीच के फासले में और भी कई दायरे जुड़ गये हैं और उन्हीं जुड़े हुए दायरों में कलकत्ते की सारी 'डिस्टर्ब्ड लाइफ', सारी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और विद्रोह की स्थितियां सिमट आयी हैं और लेखक के शब्दों में इन्हीं टूटते-बनते दायरों में आदमी 'पागल घोड़े' की तरह दौड़ता रहता है.

□□

युगे-युगे प्रेम

लेखिका : आशापूर्णा देवी
अनुवादक : हंसकुमार तिवारी
हिंदी ग्रंथ रत्नाकर (प्रा.) लि.,
हीराबाग, पो. बॉ. ३६२२, बंबई-४

सामाजिक कथाओं के नाम पर परिकथाएं बुनने की परंपरा बंगला में बहुत पुरानी है. इन उपन्यासों में आप हर चीज पायेंगे— प्रेम, घृणा, करुणा, परिवार और उसके पात्र, गली-मोहल्ले, बाग, अमराइयां वगैरा— जो यह भ्रम जरूर देंगी कि जो कुछ आपके सामने आ रहा है, वह यथार्थ-परक है. लेकिन अ-यथार्थ या अति-यथार्थ शायद उतनी बुरी चीज नहीं है और न ही उतनी भ्रामक भी जितनी अधूरा या मात्र दिखाई देने वाला यथार्थ हो सकता है.

आशापूर्णा देवी का उपन्यास '**युगे-युगे प्रेम**' भी यह भ्रम तो देता है कि इसके पात्र इसी दुनिया के पात्र हैं लेकिन उनकी चिंताएं— यानी लेखिका की चिंताएं— उन लोगों की चिंताएं हैं जिनके लिए प्रेम ही सर्वोपरि है, जैसे जिंदगी में और कुछ महत्वपूर्ण है ही नहीं. इन पात्रों के तनाव और उन तनावों से संबद्ध त्रासदी—पति-पत्नी के संबंधों का टूटना—रोजमर्रा के संघर्षों का परिणाम कतई नहीं है. पुस्तक के फ्लैप पर आशापूर्णा देवी का विज्ञापन इन शब्दों में किया गया है : 'नारी जीवन की मर्मांतक पीड़ा को शब्दों में उतारने वाली बंगला की मूर्धन्य लेखिका.' और उपन्यास : 'मानव-मन की छटपटाहट और व्यर्थ के मानाभिमान का हृदय-स्पर्शी अंकन!' देखना यह है कि बंगला के 'लोकप्रिय' और 'मूर्धन्य' कथाकार मानव की जिजीविषा, उसके रोजमर्रा के संघर्षों, उसके अपमानबोध और आंतरिक-बाह्य तनावों तथा उसके लगातार टूटते रहने को कब अपनी रचनाओं का विषय बनायेंगे.

□ त्रि. जे.

परिक्रमा • गौरीशंकर कपूर

हमारी तमाम बौखलाहट की वजह वह शराब की बोतल थी, जिसमें हमें किसी नन्हें-से जीव का एहसास हुआ था. बस क्या था, हमारी उन तमाम महत्वाकांक्षाओं को पर लग गये, जो सदा हमारे जेहन में छायी रहती थीं. यह खासकर इस वजह से भी था कि हम तीनों ने आपस में चंदा करके उस बोतल का जुगाड़ किया था.

अपनी आदत के अनुसार किशन ने जरूर हमें एक बार चेतावनी देने की कोशिश की थी—अबे, यह ब्लैकमेलिंग तुमसे हो ही नहीं सकेगी. ब्लैकमेलर दूसरे ही होते हैं!

लेकिन जिस सुनहरे भविष्य की कल्पना हमने की थी, उसका आकर्षण इस कदर दुर्दम्य था कि किशन जैसा निराशावादी भी उसमें बह गया.

—क्यों नहीं हो सकेगी? बोतल को मैंने ध्यान से एक तरफ रखते हुए जोश से कहा था. ब्लैकमेलर भी तो तेरे-मेरे जैसे इनसान ही होते हैं! मैंने प्रकाश की तरफ देखा था.

कुछ क्षण सोच कर प्रकाश ने कहा—राजा की बात ठीक है. फिर कुछ और रुक कर उसने कहा था—पचास हजार मांगेंगे इस बोतल के बदले में.

—पचास हजार! मेरा दिल यकायक उछल कर हलक तक आ गया था.

—क्यों, नहीं देगा? . . हेल्थ डिपार्टमेंट में रिपोर्ट कर दें तो उसका लाखों का नुकसान हो जायेगा.

प्रकाश ने अपनी बात इस पुख्तगी से रखी थी कि मुझे और किशन को उससे सहमत होना ही पड़ा.

मैं उन दिनों लगभग बेकार था. इधर-उधर किसी पत्रिका में एकाध लेख-कहानी वगैरा छपवा कर किसी तरह अपना गुजारा कर रहा था. नाटे कद का सांवला किशन एक प्रकाशन संस्था में सेल्समैन था और पतले-दुबले, इकहरे प्रकाश की घड़ीसाजी की एक छोटी-सी दूकान थी. तीनों की आमदनी लगभग एक जैसी थी. किसी-किसी इतवार को हम तीनों मिल-बांट कर शराब की बोतल का इंतजाम कर लेते थे. शराब पी कर हम ऊंची-ऊंची आवाज में गजलें गाते और सरकार के हवाई समाजवाद पर लंबी-लंबी बहसें करते.

ऐसी ही एक शाम को जब हम शराब की बोतल ला कर पीने बैठे तो किशन की निगाह उसके अंदर तैरती किसी चीज पर अटक गयी. उसने शौकिया तौर पर कुछ बायोलोजी पढ़ी हुई थी. प्रकाश बोतल खोलने ही वाला था कि किशन ने चिल्ला कर कहा—प्रकाश, इसके अंदर कुछ है!

प्रकाश ने लापरवाही से जवाब दिया—हां, इसके अंदर कुछ है! और बोतल के ढक्कन पर जोर-आजमाइश का पोज बनाया.

झपट कर किशन ने बोतल उसके हाथ से छीन ली और रोशनी के सामने रख कर उसे परखने लगा.

—कोई खास चीज है? मैंने उसके चेहरे को पढ़ते हुए पूछा.

—मुझे लगता है, इसमें कोई नन्हा
उसने किसी नतीजे पर पहुंचते हुए कहा.

—नन्हा जानवर ही होगा. बत्तीस रुपये
ह्वेल मछली तो भरने से रहे! प्रकाश ने कहा
के लिए हाथ बढ़ाया.

किशन ने बोतल उसकी पहुंच से परे करते
इसमें वाकई कुछ है. यह बोतल हमें हेल्थ
को दे देनी चाहिए.

—हेल्थ डिपार्टमेंट को क्यों दें? हम कंपनी
मेल क्यों न करें? मुझे यकायक कुछ सूझा
क्षणों के लिए कमरे में चुप्पी छा गयी. इसी
महत्वाकांक्षाएं जाग कर हमारे सामने मुंह
गयी थीं.

* *

अगला तमाम दिन बहुत व्यस्तता में कटा.
सावधानी से बोतल को एक जान-पहचान के
के पास ले गये और उससे बोतल के उस हिस्से
खिचवाया, जहां हमें जानवर के तैरने का अंदेशा
को बहुत सावधानी से वापस ले जा कर हमने
कमरे में रखा. कुछ अजीब बात थी कि बोतल
को ले कर हम तीनों में अप्रगट रूप से अविश्वास
वातावरण उपस्थित हो चुका था, जिसके तनाव
का एकजुट रहना और भी आवश्यक हो चला
की हालत में हम तमाम दिन फोटोग्राफर की
इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहे. हमारा भविष्य
अंदर तैरती अज्ञात वस्तु पर निर्भर हो गया था.

शाम को फोटोग्राफर ने हमें उस
वस्तु के बड़े प्रिंट दे दिये. प्रिंट की तरफ देखते ही
चिल्लाया—यह मेंढक का बच्चा है! उसने
ऐसे देखा जैसे कह रहा हो, मैंने कहा था
बातचीत के बाद तय यह किया गया कि
डॉक्टर को दिखाया जाये.

हमारे पड़ोस का एक डॉक्टर हमारा
हमारी बोहीमियन जिंदगी की वजह से वह
बर्ताव करता था, कि हम इनसान न हो कर
के वे जीव हैं, जो लुप्त होने से बच गये हैं.
उसके पास ले गये तो उसने एक नजर प्रिंट पर
एक हम लोगों पर, और कहा—क्यों, क्या बात
ही तो है यह! उसके कहने का अंदाज कुछ ऐसा
वह हमारे किसी भाई से ही हमारा परिचय

खैर. तो किशन की बात ठीक ही थी.
हमारे सामने यह था कि ब्लैकमेल कैसे किया
हजार हमारे लिए बहुत बड़ी रकम थी. हम तीनों
कर जिंदगी में इतने रुपये नहीं देखे थे. फिर
वालों से पैसे कैसे मांग लिये जायें?

—यह बात तो तय है कि सौदा हो जरूर

प्रकाश ने हमारे गिरते हुए विश्वास को संभाला. अब सवाल यह है कि सिलसिला शुरू कैसे किया जाये.

किशन काफी देर से चुप बैठा था. बोला—–मेरे खयाल से राजा जाये. . .सूट-बूट-टाई लगा कर. उसने मेरी आंखों में झांका. मैं अनिश्चित-सी हालत में गुप-चुप बैठा हुआ था. चालू स्टैंडर्ड के हिसाब से मैं खूबसूरत माना जा सकता था. लंबा कद, गठीला जिस्म और गोरा रंग. मैंने नोट किया, किशन मुझे सिर से पैर तक प्रशंसा भरी निगाह से देख रहा है.—–कम-से-कम पचास हजार मांगने वाली सूरत भी तो होनी चाहिए! उसने मुसकरा कर कहा और मैं झेंप गया.

—बहुत पसंद आ रहा है यह तुझे! प्रकाश ने किशन की तर्जे-निगाह की तरफ इशारा किया और दोनों ठहाका मार कर हंस पड़े.

★ ★

इसी बीच घट चुकी कुछ बातें मैं और स्पष्ट कर दूं. पचास हजार रुपये प्राप्त होने का हमें इस कदर गहरा विश्वास हो गया था कि हमने खाली वक्त में कुछ योजनाओं की रूपरेखा बना ली थी. मसलन किशन का खयाल था कि एक प्रकाशन संस्थान खोला जाये, जिसके संपादक का कार्यभार मैं संभालूं, बिक्री का किशन और छपाई का प्रकाश. इसी तरह प्रकाश मार्केट में पगड़ी दे कर एक शानदार दूकान खोलना चाहता था. हमने अपने ऑफिस के लिए कबाड़ी मार्केट में आवश्यक सामान भी देखा था. बस,पैसे हाथ आने भर की देर थी.अपनी महत्वाकांक्षाओं के जिन भूतों को हमने जीवित कर दिया था, अब वही हमारे इर्द-गिर्द खड़े अपने खाली हाथों को नचा-नचा कर हमें पागल किये दे रहे थे. हमारे चेहरों-जिस्मों पर एक रहस्य भरा तनाव छाया हुआ था,जिसकी वजह से हम खुद पड़ोसियों से कुछ अलगाव महसूस करते थे.

★ ★

खैर. अगले दिन हम तीनों डिस्टिलरी के दरवाजे पर पहुंचे. डिस्टिलरी का फैलाव देख कर एक बार हमने एक-दूसरे की तरफ मौन रूप से देखा. मुझे अंदर जा कर जनरल मैनेजर से बातचीत करनी थी, इसलिए मैं अपनी सबसे शानदार पोशाक, सफेद बुश्शर्ट-पैंट में था.

—डर लग रहा है! किशन ने मुसकरा कर इस तरह कहा जैसे मुझे चैलेंज कर रहा हो.

—किस बात का डर? मैंने अतिरिक्त आत्मविश्वास से उसके चैलेंज को उड़ाने का प्रयत्न किया.

—–इसमें डरने की क्या बात है? बात करनी है और पैसे ले लेने हैं! प्रकाश ने बात को और हलका करते हुए कहा. उसे किशन का निराशावादी दृष्टिकोण कभी भी पसंद नहीं था.

किशन हंसा—अच्छा, जा. मैं और प्रकाश यहीं खड़े हैं. फोटोग्राफ ले लिये हैं न?

—हां. मैंने जेब में फोटोग्राफ टटोलते हुए कहा. अच्छा तो मैं जाता हूं, क्षण भर रुक कर अचानक मैंने कहा.

जरूर मैं कोई बड़ा आदमी लग रहा हूंगा, जो किसी दरवान या चपरासी ने मुझे नहीं टोका. ऑफिस में पहुंच कर मैंने रिसेप्शनिस्ट लड़की से कहा कि मैं जनरल मैनेजर से मिलना चाहता हूं.

—उन्होंने आपको मिलने का वक्त दिया है क्या? लड़की ने अविश्वास भरी दृष्टि से देखते हुए जब यह कहा तो मुझे लगा, जैसे मेरा कद छोटा होता जा रहा है.

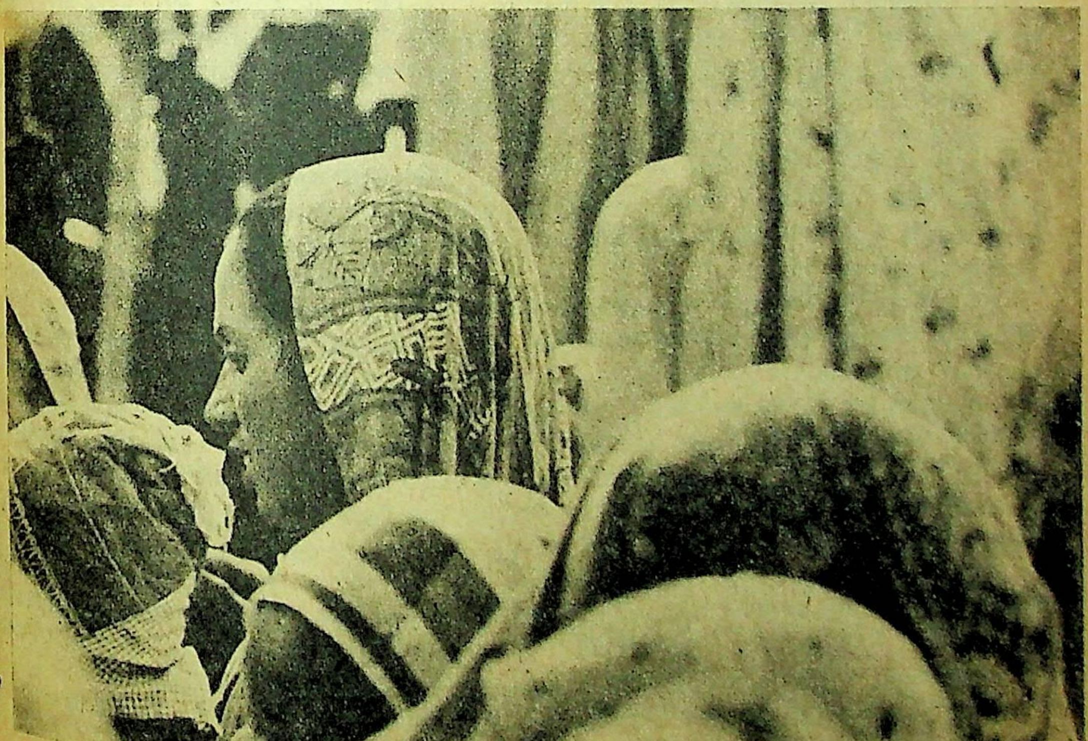
● सुनील भारती

—नहीं. मैंने सूखे होंठों पर जीभ फेरते हुए कहा, लेकिन यह उन्हीं का काम है.

लड़की ने जैसे मेरी बात अनसुनी कर दी और फोन उठा कर जनरल मैनेजर से बातचीत की. थोड़ी देर बाद फोन पर हाथ रख कर मुझसे पूछा—कैसा काम है?

—उन्हीं को बताना है. तब तक मैं कुछ आत्मविश्वास बटोर चुका था. वह चुस्ती से अपनी सीट पर से खड़ी हुई और मुझे इशारा करते हुए कहा—आइए.

जिस शानदार ड्राइंगरूम में मुझे बैठाया गया था, उस तरह की जगह जिंदगी में पहली बार मैं देख रहा था. फूलदार गलीचों से ढका फर्श, गुदगुदे सोफे, खिड़कियों-दरवाजों पर रंग-बिरंगे परदे और दीवारों पर टंगी पेंटिंग्स—अपने कल्पनालोक में भी मैंने यह सजावट नहीं देखी थी.

तभी मेरे दायें कोने का एक दरवाजा धीरे से खुला और एक अधेड़ व्यक्ति अंदर आ गया. सेहत से भरा-पूरा कद्दावर जिस्म और मुंह में पाइप. वह अपनी सहज चाल से चलता हुआ मेरे सामने वाले सोफे पर आ कर बैठ गया.

—कहिए, भारी आवाज उसके गले से निकली.

—मुझे जनरल मैनेजर साहब. . .मैंने जल्दी से कहने की कोशिश की ताकि मैं कहीं भूल न जाऊं.

—मैं ही हूं, वह आवाज फिर गूंजी.

—जी. . .जी. . . सहसा मैं रुक गया और मुझे लगा, मैं गिड़गिड़ा रहा हूं. अपनी इस हास्यास्पद स्थिति पर मुझे काफी गुस्सा आया और मैंने क्षोभ से कुछ ऊंची आवाज में कहा—दरअसल बात यह है कि हमने आपकी कंपनी की एक बोतल खरीदी थी, जिसमें मेढक का बच्चा निकला. कह कर मैंने जनरल मैनेजर की तरफ देखा. वह अपलक आंखों से मुझे देखता हुआ पाइप का धुआं उड़ाये जा रहा था.

—फिर? उसने जरा पाइप हटाया और कहा, आप वह बोतल दे कर दूसरी बोतल ले जाइए.

—सिर्फ बोतल! मैं उत्तेजित हो उठा. नहीं, आप पचास हजार रुपये दीजिए! मैंने झटके से कहा और फिर थक कर यूं ढीला पड़ गया जैसे बहुत मुश्किलों से अपनी मंजिल पर पहुंचा होऊं.

इस बार उसके चेहरे पर मुसकराहट उभरी. उसके चेहरे से साफ झलक रहा था कि वह मेरी वास्तविक स्थिति का अनुमान लगा चुका है.

—ओह, तो आप ब्लैकमेल करने आये हैं! वह फिर मुसकराया. और अगर आपको पचास हजार न दिये जायें तो?

—तो. . . तो आपका बहुत नुकसान होगा! मैंने आवाज में धमकी जैसा असर लाने की कोशिश की.

—पर आपके भी तो बसों के किराये खर्च होंगे, कह कर वह ठठा कर हंसा. उसके तीखे मजाक से मेरा चेहरा उतर गया और मैं झल्लाहट भरी आवाज में बोला—हम वह बोतल हैल्थ डिपार्टमेंट वालों को दे देंगे.

—देखिए मिस्टर, अब उसने संजीदगी से कहा, अगर आपकी बोतल में कोई ऐसी चीज है. . उसकी बात खतम होते-न-होते मैंने उसके हाथ में वह फोटोग्राफ थमा दि जो बोतल के अंदर तैरते मेढक के बच्चे का था. उ क्षण भर के लिए फोटोग्राफ देखा और आगे कहा—ठी है. . आप वह बोतल मुझे ला दीजिए, मैं आपको उ बदले किसी महंगी शराब की एक बोतल और एक कै बीयर की बोतलें दे दूंगा.

मैंने उसकी तरफ असफलता और निराशा से दे

—ज्यादा-से-ज्यादा मैं दो कैरेट बीयर दे सक हूं, उसने सौदा किया.

—नहीं, आप पचास हजार रुपया दें. मैंने आखि बार जिद्दी स्वर में कहा.

वह खड़ा हो गया. उसने पाइप का एक लंबा क खींचा और कहा—तो फिर ठीक है. आपको जो करना कीजिए. जब कभी आप मेरे सौदे पर राजी हों, फोन क लीजिएगा. . .कह कर वह शानदार ढंग से टहलता हु कमरे से निकल गया.

* *

कुछ दिनों से हम जिस सपनीली दुनिया में अभ्यस्त हो चुके थे, जनरल मैनेजर के निर्णय से हमने यकायक लोप होता महसूस किया. अब हमारे सामने लियत मुंह फाड़े खड़ी थी. चूंकि हम जेहनीतौर पर पूरी तरह अस्वीकार कर चुके थे, इसलिए अब उसी वापस जाना न सिर्फ हमें अपनी जबरदस्त हार मह हुई, बल्कि हमने खुद को इस स्थिति के सिलसिले मानसिक तौर पर अयोग्य पाया. हम प्रतिशोध भावना से कटखने कुत्तों की तरह भूंकने लगे.

—साला ऐसे बात कर रहा था जैसे सरकार खुद ही चला रहा हो! मैं गुर्राया.

—चलो, हैल्थ डिपार्टमेंट में दो. हरामजादे को म आ जायेगा! किशन भी तैश में आ गया था.

—देखना, हैल्थ डिपार्टमेंट में हमारे जाने की मिलते ही साला हमारे पीछे दौड़ेगा! प्रकाश ने कहा.

* *

गोल-मटोल आकार, गंजा सिर, कंजी आंखें— हैल्थ ऑफिसर था. उसने हमारी बात ध्यान से फोटोग्राफ पर नजर दौड़ायी और फिर अपनी आवाज में बोला—हम ऐक्शन जरूर लेंगे, आप बोतल ला दीजिए.

—आप फोटो की बुनियाद पर काम शुरू कीजि हम आपको बोतल ला देंगे. तेजी से मैंने उसकी बात जवाब दिया और अपने साथियों पर एक नजर

अफसर ने अपनी गोल-गोल, कंजी आंखें मु कुछ क्षण टिका कर कहा—देखिए, जनाब, बिना हाथ में आये हम काम शुरू नहीं कर सकते.

—क्यों? प्रकाश ने पूछा.

—देखिए, इस कंपनी वाले सरकार को हर लाखों रुपया टैक्स में देते हैं. अगर हम बिना किसी बुनियाद के ऐसी कंपनी के खिलाफ कोई केस खड़ा तो हमारी नौकरी खतरे में पड़ सकती है.

कम-से-कम मुझे तो उसकी बातों से साफ रहा था कि वह हमें फुसला कर बोतल ले लेना

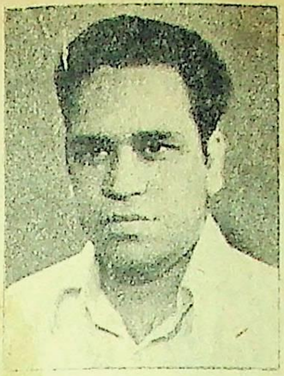

गौरीशंकर कपूर ने अमृतसर और दिल्ली में शिक्षा पायी; दिल्ली, केरल, कलकत्ता और फिर दिल्ली में ही नौकरियां कीं. संप्रति दिल्ली टेलिविजन में हैं. एक कविता-संग्रह प्रकाशित.

है, इसलिए मैंने जवाब दिया—हम आपको लिख कर देते हैं कि सचमुच बोतल हमारे पास है.

कंजी आंखों वाले ने मुझे घूरा और अपनी महीन आवाज को और भी महीन बना कर बोला--देखिए जनाब, आपने कभी यह सोचा है, आपकी हैसियत कंपनी के मुकाबले में क्या है?

इस बार जवाब किशन की तरफ से आया. उसके चेहरे पर तमतमाहट थी और आवाज में तीखापन—आपको हमारी बेइज्जती करने का कोई हक नहीं है! आप अगर केस नहीं करना चाहते हैं तो मना कर दीजिए. आओ प्रकाश, चलो राजा. . .हम यह खबर अखबारों में छपवायेंगे. . .फिर देखेंगे. . .

—जरूर-जरूर छपवाइए, कंजी आंखों वाले ने आंखें मिचमिचायीं.

—साला, हमसे बोतल ले कर खुद ब्लैकमेल करना चाहता था! वापस जाते हुए मैं गुस्से में बड़बड़ाया.

* *

अंदर-ही-अंदर हम तीनों इस बात से सहमत हो चुके थे कि पचास हजार रुपये अब हमें नहीं मिलेंगे.

हमारे अगले कुछ दिन अखबारों के दफ्तरों में गुजरे. हम जहां भी जाते, हमसे पहले बोतल मांगी जाती. हम उन्हें बोतल देने से इनकार करते तो वे हमें समझाते—देखिए, इतनी बड़ी कंपनी से हम फिजूल में झगड़ा मोल नहीं ले सकते. वे हर साल हमें हजारों रुपयों का एडवरटिजमेंट देते हैं. अगर हम ऐसी कोई रिपोर्ट छाप दें तो आप ही सोचिए, हमारा काम कैसे चलेगा!

हम तीनों को लगा, हम थक गये हैं. अब किसी तरह के सोच-विचार की कोई जरूरत नहीं रह गयी थी. मैं कंपनी गया, बोतल दी और चुपचाप एक वॉट ६९ और दो कैरेट बीयर की बोतलें ले आया.

तीन दिन, तीन रात हम शराब के नशे में औंधे पड़े रहे. चौथे दिन से जिंदगी फिर अपने पुराने ढर्रे पर आ गयी थी--किशन अपनी सेल्समैनी में डूब गया था; प्रकाश अपनी घड़ीसाजी के दूकान में—और मैं. . .मुझे लग रहा था, एक बढ़िया कहानी के लिए मुझे सटीक कथ्य मिल गया है. और यह तय है, इस पर मैं कभी-न-कभी कहानी लिखूंगा जरूर. □□□

ए १०१५, राणा प्रताप बाग, दिल्ली—७

आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे ! सर बुरी तरह दुख रहा है।
मेरी मानो तो एनासिन ले लो।

जल्द आराम पाने के लिए
तेज़ असर
और विश्वसनीय
एनासिन लीजिए

तेज़ असर—एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय-एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन
भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा
Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.
A/2/8-74

• योग जॉय

अगिहाने • सुरेंद्र सुकुमार

जो बात मैं कहने जा रहा हूं आप भले ही उसे कहानी समझें पर कहानी नहीं है, एक सत्य घटना है. अब स्वाभाविक है, आप पूछेंगे कि मैं सत्य घटना क्यों सुना रहा हूं?

तो उसके उत्तर में क्या कहूं?

यों समझ लीजिए कि अपने मन का बोझ हलका कर रहा हूं. आप सुन लें तो कृपा होगी और किसीको तो सुना भी नहीं सकता. डर लगता है. मैं ही क्या, उनसे तो सभी डरते हैं: मेरे गांव के ही क्या शहर के भी. प्रभाव भी तो बहुत है उनका. सत्ता में भी उनका प्रभाव है. इसीलिए कल जब शहर के स्थानीय समाचार पत्र में यह घटना प्रकाशित कराने गया तो उसने साफ इनकार कर दिया— कहने लगा— भाई! क्या पेपर बंद करवाओगे?

वैसे वो घटना मेरे गांव के अधिकांश व्यक्तियों ने देखी है पर किसीने किसीसे उसकी चर्चा नहीं की आप भी किसीसे नहीं कहें. कहीं उनके कानों में भनक पड़ गयी तो— बाप, रे बाप— सड़ाक. . . सड़ाक. . . कोड़े पड़ेंगे पीठ पर जैसे दुल्लन की पीठ पर पड़े थे.

आप सोच रहे होंगे, म क्या बके जा रहा हूं? अनेक प्रश्न आपके मस्तिष्क में उभर रहे होंगे.

जैसे. . .

—दुल्लन कौन है? उसकी पीठ पर कोड़े क्यों पड़े? किसने मारे?

—वह कौन है, जिनका भय इतना व्याप्त है?

—वह घटना क्या है, जिसे मैं सुनाना चाहता हूं?

अच्छा तो पहले मैं यह बता दूं कि दुल्लन कौन उसकी पीठ पर कोड़े क्यों पड़े? नहीं, यदि पह यह बतादूं कि वह कौन हैं जिनका भय इतना व्याप्त तो ठीक रहेगा.

तो सुनिए. वह हैं मेरे गांव के भूतपूर्व जमींदार के वारिस. नाम नहीं लूंगा. वैसे उन्हें सब कुंवर कहते हैं. दो भाई हैं, बड़े को बड़े कुंवर साहब और को छोटे कुंवर साहब कहते हैं. उनके बारे में कुछ बताऊं उससे पहले आप मेरे गांव की सही-सही के बारे में सुनिए.

मेरा गांव शहर से पांच किलोमीटर दूर ए रोड पर स्थित है. गांव की आबादी मुश्किल से एक होगी. गांव के अधिकांश मकान कच्चे हैं बीच में साहब की पक्की हवेली गरीबी का उपहास उड़ा खड़ी है. इस गांव में पहले एक जमींदार थे करी हजार बीघा खेती के मलिक. अंग्रेजों की रायबहादुर का खिताब मिला. सब राजा सहाब कह ये सब बातें मैं संक्षेप में सुना रहा हूं क्योंकि पूरी घटना भी तो सुनानी है. संभवतः आपके पा कम होगा.

हां, दुर्भाग्य से राजा साहब के कोई संतान तो उन्होंने अपना वारिस अपने दूर के भतीजों को किया और चल बसे.

भतीजों ने इतनी बड़ी जागीर पहले कभी थी पर मेरे बिचार से उन्होंने जमींदारी टाइम के अवश्य देखे होंगे एवं उसी टाइप के उपन्यास

● योग जॉय

जागीर मिलने पर कुंवर साहब कहलाने लगे— छोटे कुंवर साहब घर पर ही रहते हैं और बड़े सत्तारूढ़ दल से संबंधित होने के कारण कभी लखनऊ, कभी दिल्ली— मतलब— बाहर ही रहते हैं. कभी-कभी आते हैं.

मैं कह रहा था कि उन्होंने जमींदारी टाइप के पिक्चर देखे होंगे, उपन्यास पढ़े होंगे. यह मैं इसलिए कह रहा था कि उनके कार्य--कलापों से ऐसा प्रतीत होता है. जब कुंवर साहब व उनके घर की कन्याएं कोई भी शाम को घोड़े पर बैठ कर, बंदूक ले कर निकला करते हैं तो उनकी आंखों में वही चमक होती है जैसी कि मैंने पिक्चरों में जम्मींदारों की आंखों में देखी है. उनकी आवाज में वही कड़क है जैसी कि जमींदारी टाइप के पिक्चर या उपन्यास के हीरो की आवाज में होती है. वे स्वयं को बिल्कुल उसी ढंग से निभाने की कोशिश करते हैं. अत्याचार भी वैसा ही करते हैं. उनकी पहुंच बहुत दूर तक है, इसलिए सामान्य व्यक्ति उनसे डरते हैं.

अब मैं आपको दुल्लन वाली बात बताऊं! दुल्लन हमारे गांव का एक मात्र धोबी है. सभी के कपड़े वही धोता है. कुंवर साहब के कपड़े भी सालाना कुछ नाज के ऐवज में धोता है. चार बच्चों का बाप है, एक औरत है, एक बूढ़ा बाप है. है नहीं, था.

जिस दिन घटना घटी, जो मैं आपको सुनाऊंगा, उससे तीन दिन पहले दुल्लन की बकरी कुंवर साहब के खेत में चली गयी. थोड़ा नुकसान भी कर दिया. फिर क्या था? कुंवर साहब ने दुल्लन को बुलवा भेजा. दुल्लन का बाप भी साथ में गया.

दुल्लन के बाप ने लाख कहा—साहब, मारिए नहीं, जुर्माना कर दीजिए. पर उसकी एक न सुनी. उसीके सामने दुल्लन की पीठ पर कोड़े बरसने लगे. . .सड़ाक. . . एक, सड़ाक. . . .दो सड़ाक. . . .तीन चार. . . . पांच. . . और न जाने कितन ?

दुल्लन के बाप से न देखा गया, वो उसी दिन गांव छोड़ गया. आज तक नहीं आया.

किसी ने भी दुल्लन को यह सलाह नहीं दी कि थाने में रिपोर्ट कर दे. क्योंकि सभी जानते हैं कि दरोगाजी और एस. पी. का उनकी हवेली में रोज ही चाय-पानी, खाना-पीना होता है.

मैंने दबी आवाज में उससे कहा था कि कुंवर साहब के कपड़े धोना बंद कर दे, तो उसने कहा— भईया, क्या कह रहे हो? ताल पर कपड़े धोना भी बंद करवा देंगे. मैं यह भूल गया था कि गांव का एक मात्र तालाव भी उन्हींके अधिकार में है. अब आप ही बताइए, है न उनका भय स्वाभाविक?

हां, तो— अब मैं असली घटना पर आऊं. यह घटना दुल्लन वाली घटना के तीन दिन बाद घटी.

घटना से पहले मैं यह बताऊं कि घटना जिसके साथ घटी ? वे कौन थे ? कहां से प्रारंभ करूं ?

पंचायत घर से ? या अगिहाने से ?

अगिहाने से ही सुनाता हूं.

अगिहाने को आपके यहां क्या कहते हैं, नहीं जानता. पर हमारे क्षेत्र में अगिहाना ही कहते हैं. हां कहीं-कहीं अलाव भी कहते हैं. पर इतना बताऊं कि अगिहाना गड्ढा खोद कर बनाया जाता है और उसमें आग जलायी जाती है. सर्दी की रात्रि में उस जलती आग के पास काफी-काफी रात गये तक लोग बैठते हैं और तापते हैं .

जिस दिन दुल्हन वाली घटना घटी उसी दिन रात्रि में हम कई लोग अगिहाने पर बैठ कर ताप रहे थे. शाम का झुटपुटा हो गया था. दुल्लन की घटना को ले कर सभी दुखी बैठे थे. तभी दूर से कुछ व्यक्ति आते दिखाई दिये. नजदीक आने पर देखा, उनमें एक बूढ़ा था, उसके

साथ करीब अठराह वर्ष की एक लड़की, एक जवान लड़का, एक जवान औरत और एक करीब बारह वर्ष का लड़का था. कुल मिला कर पांच प्राणी थे. उन लोगों के पास सामान के नाम पर कुछ पोटलियां थीं, बस ! वेशभूषा से वे लोग मुसलमान लग रहे थे.

वे लोग अगिहाने के पास खड़े हो गये.

——भइया! कहीं रात में रुकने को जगह मिल सकती है? बूढ़े ने प्रश्न किया. वे लोग सर्दी से ठिठुर रहे थे.

कुछ उत्तर देने से पहले मैंने उनसे कहा——अगिहाने पर बैठ लो, सर्दी लग रही होगी और वे लोग जैसे इस प्रतीक्षा में ही थे. हम लोगों ने स्थान बनाया और वे बैठ गये.

वार्तालाप के दौरान पता चला वे लोग गरीबी से परेशान हो कर अपना गांव छोड़ कर मजदूरी करने निकले हैं.

जवान लड़का बूढ़े का बड़ा पुत्र, जवान औरत उस लड़के की पत्नी , जवान लड़की बूढ़े की पुत्री और वह छोटा लड़का बूढ़े का छोटा पुत्र था.

——रात को कहीं सर छुपाने की जगह मिल जाती ? सरकार ! बूढ़े की आंखों में प्रश्न चिन्ह था. मुझे उनकी स्थिति देख कर दया आ गयी और मैंने उन्हें अपनी रिस्क पर पंचायत घर के वरामदे में ठहरने को कह दिया.

पंचायत घर में जब उन्ह छोड़ कर चलने को हुआ तो मैंने इनसानियत के नाते पूछा—— खाने का इंतजाम है आपके पास?

बूढ़ा तत्काल बोला——है सरकार. सब है. रोटियां पड़ी हैं, खा लेंगे.

मुझे उसकी आवाज कहीं दूर से आती-सी लगी. तभी छोटा लड़का बोल पड़ा—— नहीं! अब्बा झूठ बोलते हैं, हमारे पास कोई रोटियां-बोटियां नहीं हैं, हम लोगों ने कल से खाना नहीं खाया है.

——चुप रह हरामजादे, मुझे खा ले, बूढ़े ने अकड़ कर बच्चे को डाटा.

मैंने कहा—— बाबा, क्यों डाटते हो ? बच्चा भूखा है तो कहेगा नहीं? चलो बेटे, मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें खाना खिलाऊंगा. यह जानते हुए भी कि पूरा परिवार भूखा है मैंने उस बच्चे से ही कहा.

मैं बच्चे को बुला लाया और खाना खिलाया मन में दुःख भी था कि एक पूरा परिवार भूखा सोयेगा पर क्या करता? मैं तो खुद. . . .?

मुझे पूरी रात छटपटाहट रही, न जाने कब आंख लग गयी. प्रातः देर से उठा. उठते ही पंचायत घर गया. वहां वे नहीं थे. लोगों के द्वारा पता चला कि कुंवर साहब की हवेली में काम पर लग गये हैं.

काम क्या था?

पुरानी हवेली की एक कच्ची दीवार को खसाना और उसकी मिटटी आधा फर्लांग दूर एक गड्ढे में डालना.

शाम को उन्हें पंचायत घर में स्थान नहीं मिला. मैंने उन्हें अपने कमरे के दालान में रुकने को कह दिया, वहीं उन्होंने ईंटों का चूल्हा बना कर रोटी बनाने का कार्य प्रारंभ कर दिया. तभी मेरा वार्तालाप प्रारंभ हो गया. मुझे बूढ़े से ज्ञात हुआ कि कुंवर साहब का कार्य ठेके पर तय हुआ है. उतना सब कार्य पचास रुपये में तय हुआ है. मैं चौंक गया. वह कार्य कम-से-कम दो सौ रुपये का था. इन बेचारों को तो काफी दिन लग जायेंगे.

सुरेंद्र सुकुमार (जन्म : १७ मई, १९५२, कोड़ियागंज, जिला अलीगढ़ में) बी. एस-सी. करने के बाद एल- एल. बी. के छात्र हैं, पिता शासकीय सेवा में हैं, इसलिए इन्हें अनेक तरह के अनुभव पाने का मौका मिलता रहा है.

मुझे न जाने क्यों उस परिवार से सहानुभूति होने लगी.

——दोपहर खाना खाया था ? मैंने प्रश्न किया.

——नहीं सरकार ! हम लोग तीन वर्ष से दिन में एक ही टेम खाते हैं. पहले जरूर कुछ अजीब सी गुड़-गुड़ी लगती थी पेट में. पर अब आदत हो गयी है.. बूढ़े ने कहा. मुझे अपने गले में कुछ फंसा-फंसा लगा, मैं अकारण खकारने लगा.

रात्रि में प्रकाश के लिए मैंने उन लोगों को एक मिट्टी के तेल की ढिवरी दे दी और मैं कमरे में सोने चला गया.

मेरे कमरे की खिड़की उसी दालान में खुलती है जिसमें वे ठहरे थे. काफी रात तक मैं उनके विषय में सोचता रहा. तभी मुझे कुछ कुन-मुनाहट सुनाई पड़ी. मैं अपनी जिज्ञासा न रोक सका. खिड़की खोल कर उसके सहारे खड़ा हो गया. मैंने देखा, बूढ़े की लड़की और छोटा लड़का पास-पास सो रहे थे. बूढ़ा अलग एक कोने में टखनों को पेट में छुपाये पड़ा था. जवान लड़का और उसकी पत्नी एक कोने में कुछ फासले से अलग-अलग लेटे थे, तभी मैंने सुना, छोटा लड़का अपनी बहन से कह रहा था——आपा! थोड़ा चिपट जाओ न, ठंड लग रही है.

लड़की ने उसको चिपटा लिया.

——थोड़ा कसके चिपटो न ! लड़का फिर बोला.

लड़की ने और कसके चिपटा लिया.

——थोड़ा और कसके, बहुत ठंड लग रही है. लड़का फिर घिघियाया.

——अब क्या करूं? जा अगिहाने के पास लेट जा. लड़की ने कहा और जैसे यह प्रस्ताव लड़के को जंचा, वह उठा और अगिहाने के पास जा कर लेट गया, कुछ चीथड़े अपने ऊपर डाल लिये. अगिहाना अब भी सुलग रहा था. मैंने देखा, अगिहाने के पास कुछ कुत्ते लेटे थे. पहले तो वे गुर्राये पर फिर चुप हो गये. संभवतः समझ गये होंगे कि उन्हींकी बिरादरी का है.

तभी मेरी दृष्टि लड़के की बहू पर पड़ी उसकी अंगिया लगभग फटी थी वो प्रायः अर्ध-नग्न-सी पड़ी थी. उसे देख कर मुझे कुछ भी महसूस नहीं हुआ. जबकि छोटे कुंवर साहब की पत्नी का बड़े गले का ब्लाउज देख कर शरीर में एक लकीर-सी खिंच जाती है. . .

बहुत देर हो गयी बकते-बकते संभवतः आप बोर हो गये होंगे. इसलिए घटना पर आता हूं.

हुआ यह कि वे लोग काम करके सो गये. उसी रात कुंवर साहब की घोड़ी खो गयी. दिन भर तलाश किया, नहीं मिली. तब कुंवर साहब ने परिणाम निकाला, हो न हो. . . यह लोग चोर हैं, इन्हीं लोगों ने किसी तरह से घोड़ी गायब करवायी हैं. फिर तो—— कुंवर साहब ने बूढ़े को, उसके लड़के को, बच्चे को यानी कि पूरे परिवार को बेहरमी से पीटा और रात भर अपनी हवेली में कैद रखा.

दूसरे दिन कुंवर साहब ने गांव में पुलिस बुलायी. दरोगाजी पूरे परिवार को थाने, यह कह कर ले गये कि पूछताछ करेंगे.

हवेली से जब वह परिवार निकल कर जा रहा था तो दृश्य देख कर मेरे रोंगटे खड़े हो गये. बूढ़ा और उसका लड़का लंगडा रहे थे. लड़के की बहू और छोटा लड़का रो रहे थे. पर लड़की चुप थी ! एक दम चुप! चाल में कुछ लड़खड़ाहट थी, चेहरे पर सूनापन था. पूरे परिवार ने भरे नेत्रों से मुझे देखा पर लड़की ने एक बार भी नहीं.

मैं सब कुछ समझ गया था.

एक हूक-सी मेरे मन में उठी, वहां खड़े रहना मुझे दुष्कर कार्य जान पड़ा और मैं वहां से हट गया.

दूसरे दिन कुंवर साहब की घोड़ी पास के गांव में मिल गयी. किसी तरह से अपने आप ही खुल गयी थी उसी दिन थाने से वह पूरा परिवार लौटा अपनी पोटलियां लेने.

वह दृश्य दिल दहला देने वाला था. गांव के बहुत से लोग एकत्रित थे. बूढ़े का परिवार लड़खड़ाता हुआ फटे हाल आ रहा था. सभी के चेहरे पर आंसुओं की खुश्क लकीरें थीं. पूरे गांव में मुर्दनी छायी हुई थी. किसीका साहस उनसे कुछ भी पूछने का नहीं हुआ. पूरा परिवार थाने में हुई 'पूछ-ताछ' के बाद लौटा था.

वह और नजदीक आये.

मैंने देखा, गौर से देखा, लड़की के गालों पर खरोंच के निशान थे, आंखें सूजी हुई थीं. दोनों आंखें लाल थीं, एकदम लाल. मुझे लगा, जैसे ये आंखें नहीं, दहकते हुए अगिहाने हैं. आज किसीको भी ठंड नहीं लगेगी, मैं फुसफुसा उठा.

वे लोग नजदीक आये, दालान से अपनी पोटलियां उठायीं और चल दिये, जिधर से आये थे, उधर ही.

——सलाम सरकार! बूढ़े ने चलते समय कहा.

इस बार उसका सरकार कहना चुभ गया.

——सरकार मैं नहीं हूं. सरकार कुंवर साहब हैं, सरकार दरोगा जी हैं. मैं बड़बड़ाया.

चलते-चलते मैंने एक बार फिर उस लड़की की ओर देखा——उसकी आंखें अब भी मुझे अगिहाना लग रहीं थीं.

और उसकी गर्माहट से मेरा रोयां-रोयां झुलसा जा रहा था. □□□

गोरहा, एटा (उत्तर प्रदेश)

एक लघुकथा

शंका समाधान

● शैलेंद्रनाथ

मैं कुंडली-फुंडली में विश्वास नहीं करता. रबिश ! डी. आइ. जी. साहब ने कहा. न सिर्फ उनके विचार वरन ड्रेसिंग गाउन से लेकर केवल अंग्रेजी समझने वाला उनका कुत्ता तक—सभी कुछ उनकी आधुनिकता का परिचायक था. वधू-पक्ष के साथ आया युवक बुरी तरह प्रभावित था. लेकिन उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि इतने आधुनिक हो कर भी उन्होंने दहेज जैसी कुरीति को कैसे स्वीकार कर लिया था. दहेज में चालीस हजार नगद कैसे ले लिया था.

मैं कुंडली-फुंडली में विश्वास नहीं करता, रबिश ! उन्होंने कहा——चौबीस साल की उम्र में लड़का स्टेट बैंक में प्रोबेशनरी अफसर है. इसी से उसका भूत-भविष्य सब पता चल जाता है.

——लगन-मुहूरत का बखेड़ा छोड़िए, समझे न ? मैं इन सब में विश्वास नहीं करता. डेट, साहब, आदमी अपनी कनवीनिएंस देख कर रखेगा.

युवक बिलकुल समझ नहीं पा रहा था. . .कि भला कैसे इन्होंने. . .

वर्दीधारी खानसामा ट्राली पर चाय-नाश्ता लाया. युवक चकित था कि आखिर कैसे इन्होंने. . .

——ए रिली ! उन्होंने बरामदे पर से गुजरते हुए किशोर को पुकारा—बाहर जा रहे हो ? रिमेंबर टू हैव ए हेयर कट. बाल जरूर छंटवा कर आना. और एल्स आइ वोंट एलाउ यू इन. लग्न और मुहूर्त जैसे शब्दों के उच्चारण में उन्हें भले ही कठिनाई होती थी. लेकिन अंग्रेजी का उनका उच्चारण सर्वथा दोष रहित था. युवक अभी तक अचरज में था.

——मेरा पोता है, उन्होंने स्वर में बिना वात्सल्य रस घोले हुए कहा——मैं ये झबरैले बाल रखना पसंद नहीं करता. मुझे इससे नफरत है. नकलचियों की तरह हर वेस्टर्न क्रेज को फौलो करना ! आइ हेट इट. अरे अपना दिमाग लगाओ. पश्चिम से वह लो जो वहां बेस्ट ह, पूरब से वह लो जो यहां बेस्ट है. टेक दि बेस्ट फ्राम एव्रीव्हेयर.

युवक राहत एवं प्रसन्नता से मुसकराया. गुत्थी सुलझ चुकी थी. □□□

● अनिलदास

राकेश के पहले/राकेश के साथ राकेश के बाद यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (२२)

● अनीता औलक

पिछले अंक में आपने पढ़ा है कि देश-विभाजन ने अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. वह जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी का अनीताजी के घर से भी परिचय बढ़ रहा था. राकेशजी के पत्र आने लगे. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगामा हो गया. राकेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये. उन्हें फिर दिल्ली वापस जाना पड़ा. अम्मा की मृत्यु के बाद राकेशजी स्वयं को थका हुआ महसूस करने लगे थे. अब आगे पढ़िए...

सब कुछ तेज रफ्तार से नीचे की ओर उतर रहा था. पता नहीं कितने-कितने दिन कितनी-कितनी देर हम दोनों साथ बैठ कर बीते सालों में बनी और टूटी जिंदगी की याद करते. राकेशजी कहते थे कि जिंदगी के कितने थपेड़े उन्होंने अकेले खाये और झेले हैं— आखिर यह सब मेला इंसान किसलिए लगाये रहता है. इस किस्म की बातें राकेशजी, पाल और मैंने बैठ कर पहले भी कितनी बार की थीं. लेकिन इन दिनों तो सचमुच जैसे वह हार ही गये थे.

अंतिम हथोड़ा उन्हें अपने भाई के हाथों खाना पड़ा. राकेशजी चाहते थे कि मां इस चिंता को लिये मरी कि बीरेन अभी तक जिंदगी में जमा नहीं है. इसीसे इस बार राकेश जी ने मां के देहांत पर आये अपने भाई बीरेन से कहा कि वह चाहते हैं कि मां की इच्छा को उसे अब पूरा कर देना चाहिए. राकेशजी चाहते थे कि वह अब हमारे साथ रहे जिससे हम लोगों को भी मां का जाना इतना न महसूस हो, और यदि इससे उसकी जिंदगी भी सुधर सकेगी तो मां की आत्मा को शांति मिलेगी.

लेकिन जैसा कि शुरू से ही था. दोनों भाई कभी एक नजरिये से नहीं देख सके. भाई का कहना था कि जितना भला उन्होंने अपने मित्रों का किया है उतना भला उन्होंने कभी अपने भाई का न चाहा है, न किया है.

राकेशजी ने समझाने की जितनी कोशिश की तो उससे कहीं ज्यादा मैंने उसे मां का स्नेह और ममत्व देने की कोशिश की लेकिन व्यर्थ . उन दिनों श्याम हमारे यहां ठहरे हुए थे. उनसे या फिर ओंप्रकाशजी और राकेशजी की बहन से कुछ भी छिपा हुआ नहीं था, जो उन दिनों उन भाइयों में चल रहा था.

जिस दिन बीरेन को जाना था राकेशजी ने श्याम से अशोका में कमरा बुक करने के लिए कह दिया था जिससे कि वह उस समय घर पर न रहें जब वह जा रहा हो— क्योंकि यह उनको सह्य नहीं होता. मुझे वह पीछे छोड़ गये थे और कह गये थे कि जब वह चला जाये तो मैं उन्हें इतला दे दूं.

इन सब किस्सों के बाद राकेशजी अब अंदर से क्षत-विक्षत हो चुके थे. किसी रिश्ते, किसी दोस्ती या किसी कमिटमें में अब उन्हें विश्वास नहीं र गया था और अगर विश्वास तो उसे फिर से जोड़ने या मजबू करने की हिम्मत बाकी नहीं रह ग थी. सारा-सारा दिन या तो गुम- सुम बैठे रहते या फिर पुरवा गोदी में ले कर ढेर-ढेर-सा प्या देते रहते. सारी-सारी रात मु पास बिठाये रहते. कहते—प नहीं क्यों बिल्कुल अकेला होने दहशत होने लगी है मुझे— मे पास बैठो— मुझे अकेला न छोड़ो.

फिर एफ. एफ. सी. की मीटि मद्रास में होनी तय हुई. वह न जाना चाहते थे लेकिन दो मीटि वह एक साथ स्लिप नहीं कर स थे. इसीसे जाना उन्होंने मंजू कर लिया था. यद्यपि जाने बिल्कुल भी मन नहीं था. बोले— बस चौथे दिन लौट आऊंगा इतने में गुजराल साहब के मीटिंग हुई और तय हुआ कि ए यन थ्येटर कान्फ्रेंस के लिए बंबई जाना पड़ेगा. राकेशजी बहुत इनकार किया लेकिन गुजराल नहीं माने. सुरेश अव जानते हैं कि अगर श्री गुज

इतना अनुरोध न करते तो वह बिल्कुल भी नहीं जाते.

घर आ कर बोले— अन्ना, मुझे बंबई भी जाना पड़ेगा. रह लोगी इतने दिन अकेली? यह पहली बार थी जब सचमुच मुझे भी लग रहा था कि पीछे अकेली होऊंगी अम्माजी नहीं थीं. अंदर से भले ही मुझे कैसा भी लग रहा था लेकिन इस आश्वासन से कि शायद घर से निकल कर उनका थोड़ा डाइवर्जन हो जायेगा— मैं बोली— हां राजे, आपको जरूर जाना चाहिए— लेकिन अगर फोन कर सकें तो अच्छा लगेगा.

मैंने उन्हें जितना भी हौसला दिलाने की कोशिश की लेकिन वह सच ही मन से नहीं गये. चलने से पहले बोले— अब कभी कहीं नहीं जाऊंगा अन्ना, मैं बहुत थक गया हूं.

चलने से पहले मैंने उनसे वादा लिया कि वह भाई-भाभी से जरूर मिलने जायेंगे. . .कभी अपनों से भी रुसवा हुआ जाता है! राकेशजी ने मुझसे वादा किया था.

बंबई से उन्होंने पहले अपने होटल से फोन किया— पुरवा से गदगद हो कर बात की— मैं जल्दी आ रहा हूं पुरु. फिर यही बात गिरधारीजी के घर की और यही बात कमलेश्वर के पास से की. उनके पास एक ही बात कहने को रह गयी थी 'मैं जल्दी घर आ रहा हूं.'

उस बार बंबई में वह तकरीबन प्रत्येक मित्र से मिले और बहुत अच्छी तरह से मिले. लौट कर आयें तो बोले — अन्ना, अब मैं कहीं नहीं जाना चाहता. क्योंकि कहीं जाता हूं तो अब मैं असुरक्षित महसूस करता हूं – मुझे लगता है कि मेरी अन्ना और मेरे बच्चे मुझसे छिन जाते हैं.

कितनी बार कहने को मन होता है कि क्यों इतनी बहकी-बहकी बातें करने लगे हो लेकिन इतनी नाजुक स्थिति हुआ करती कि कुछ कहे नहीं बनता था, सिर्फ साथ बैठ कर रो लेते थे.

लौट कर राकेशजी ने बताया था कि दो दिसंबर को कमलेश्वर दिल्ली आयेगा– और रात को खाना घर पर ही खायेगा. पिछली बार क्योंकि कमलेश्वरजी को चोप्स बहुत पसंद आयी थी इसलिए वही बनायी गयी. शाम को राकेश जी को थोड़ी देर के लिए प्रेस क्लब जाना था, इसलिए मुझसे कह गये कि जैसे ही कमलेश्वर आये मुझे फोन कर देना, लेकिन जब मेरा फोन रात ९ बजे तक नहीं आया तो उन्होंने फोन किया — कमलेश्वर तो नहीं आया?

——नहीं, मने कहा.

——फिर मैं यहीं से खाना खा कर जाऊंगा. किसीने उस दिन खाना नहीं खाया. अगले दिन राकेशजी देर तक सोते रहे फिर दिन में कुछ देर यों ही अपनी स्टडी में बंद रहे.

शाम का सुरेंद्र तिवारी और ओंप्रकाशजी ने क्लब में टेंबल्स खेलने का प्रोग्राम बनाया हुआ था जो कि किसी-न-किसी वजह से कैंसिल हो गया. राकेशजी उन दिनों अजीब स्थिति में जीते थे.

जरा-सा प्रोग्राम इधर से उधर हो जाता था तो बच्चों की तरह मुंह लटका लेते थे और उदास हो जाते थे.

उस मूड के आने से पहले ही मैंने कहा—चलो एशिया –७२ चलते हैं. राकेशजी तुरंत मान गयें—लेकिन जा नहीं सके.

चार दिसंबर की सुबह घर खचाखच भरा हुआ था — उसके लिए कि जिसे अब किसी की जरूरत नहीं थी– वह तन से अवश्य कुछ हद तक वहां था लेकिन मन और आत्मा से वह बहुत दूर उड़ान भर चुका था— यह पहली और अंतिम बार थी, जब उसे अपने आस-पास किसी की जरूरत नहीं थी– वह अकेला रहना चाहता था– लेकिन जिंदगी कितनी क्रूर है. जीते जी कुछ और, चले जाने के बाद कुछ और. . .

राकेशजी चले गये थे — इसका दुःख इसलिए इतना नहीं था कि मुझे और बच्चों को अकेला छोड़ गये – बल्कि इसलिए कि उन्हें जीने का शौक था – उन्हें जिंदगी से बहुत मोह था. वही एक व्यक्ति था, जिसे जीना आता था. जिसने लोगों को जीना, हंसान, खेलना सिखाया था.

जिंदगी में शुरू से ही उन्हें संघर्ष और चुनौतियों का सामना करना पड़ा था इसलिए उनसे घबरा कर जीवन-अंत समस्याओं का समाधान है, यह उन्होंने कभी नहीं माना था. इसीसे मुझे इस बात की राहत जरूर है कि उन्हें नहीं पता चला जब जीवन-अन्त हुआ, क्योंकि वह उसे न सह पाते.

राकेशजी, स्मृतियां और मित्र——श्री जवाहर चौधरी और कमलेश्वर

——अगले अंक में——

यारों का यार चला गया सभी को अविश्वसनीय और स्तब्ध अवस्था में छोड़ कर. . .

समांतर कहानियों पर एक समांतर परि

● सुभाष

२३ फरवरी, '७५ को 'संवेदना' ने 'दि इंडियन आर्ट स्टूडियो,' देहरादून, में 'समांतर' कहानियों पर परिचर्चा का आयोजन किया. 'संवेदना' देहरादून की एकमात्र ऐसी अनौपचारिक साहित्यिक संस्था है, जिससे यहां का हर सृजनशील रचनकार जुड़ा हुआ है. परिचर्चा की अध्यक्षता शिवानंद नौटियाल जी ने की तथा संयोजन सुभाष पंत ने किया. परिचर्चा में इन कवि-लेखकों ने भाग लिया : सर्वश्री श्याम प्रकाश, गुरुदीप खुराना, सुरेश उनियाल, आनंद दीवान, जितेंद्र शर्मा, इंद्रकुमार कक्कड़, मदन शर्मा, देशबंधु, नवीनानंद नौटियाल, धीरेंद्र अस्थाना एवम् श्रीमती कृष्णा खुराना. इनके अतिरिक्त काफी लोग प्रेक्षक के रूप में भी उपस्थित हुए.

परिचर्चा : एक संक्षिप्त रपट

सुभाष पंत—हमारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश बहुत तीव्रता से विसंगतियों का शिकार होता जा रहा है. हम दोगले अर्थतंत्र में छटपटा रहे हैं, तथा चारों ओर से साजिश और भ्रष्टाचार के शिकार हैं. ऐसी स्थिति में 'रूपवादी' लेखन को त्याग कर लेखक सामान्य जन का पक्षधर हुआ है और उसने 'समांतर' लेखन की शुरुआत की है. 'समांतर' लेखक क्या ऐसी विसंगतियों में अपने पूरे दायित्व का निर्वाह कर रहा है? अक्तूबर से दिसंबर '७४ के **'सारिका'** समांतर विशेषांकों की कहानियों को रेखांकित करते हुए अपने विचार स्पष्ट करें.

श्याम प्रकाश—आज हर तरफ से आदमी पर आर्थिक और राजनीतिक दबाव पड़ रहे हैं, जिनकी वजह से आदमी अपने को बेहद भिंचा हुआ-सा महसूस कर रहा है. सामान्य आदमी के साथ जो कुछ घटित हो रहा है, उसकी सही तस्वीर ही 'समांतर' कहानी है. यह समय की मांग के अनुरूप एक सही शुरुआत है. इन कहानियों में पुरानी कहानी से अलगाव साफ झलकता है. आज की स्थिति में 'रूपवादी' लेखन कतई स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह कहीं समय को अपने में समेटता नहीं है. 'समांतर' कहानियों में भाषा-शिल्प को 'शो' करने वाली कोई बात नहीं है. बात इतनी स्पष्ट, सीधी और तेजी से कही गयी है कि वह सीधे असर करती है. आज आदमी की स्थिति बिल्कुल ऐसी है, जैसी **'विस्फोट'**, **'आतंक भरा सुख'**, **'तपती हुई जमीन'**, **'शहादतनामा'**, **'असंबोधित देवदास'** आदि कहानियों में दिखायी गयी है.

देशबंधु—आज आम आदमी के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यक्तित्व को पूर्णतः खोखला कर देने का षडयंत्र सामने आया है. इसके पीछे है आज की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था. यह मुमकिन नहीं था कि आम आदमी के निरंतर पिसते हुए अस्तित्व, और उसे अभाव में डाल कर उसकी चेतना की हत्या के सुनियोजित षडयंत्र को देख कर आज का लेखन चुप्पी साध लेता. यह एक चीख के रूप में 'समांतर' नाम से प्रकट हुआ है, जो आम आदमी की दारुण स्थिति से सीधे संबद्ध है. 'समांतर' लेखन को एक जरूरत के रूप में लाने का श्रेय **'सारिका'** तथा उसके सहयोगी लेखकों को जाता है. 'समांतर' विशेषांकों की अधिकतर कहानियां पहली बार ऐसे निर्मम मूड में सामने आयी हैं, जो विचार-परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए जरूरी है जैसे **'आदमी'**, **'विस्फोट'**, **'तमाशा'**, **'आंदोलन'** आदि. 'रूपवादी' लेखन ऐसे में वक्त के विरुद्ध एक घटिया साजिश ही हो सकता है.

कृष्णा खुराना—मैं श्या
और बंधु की बात से एग्री कर
पिछली कहानियां किसी खास
विशेष विषय की विशेष समस
को ले कर चली थीं, जिनका
सौंदर्य से या आपसी संबंधों
सेक्स से था. आज स्थिति
रूप से बदली हुई है. उसका
सामाजिक, आर्थिक और राज
दबाव है, और यह भी सा
गया है कि हम इनसे उब
सकते. मुझे ऐसा लगता
जो परिवर्तन हमें लाना है,
लिए ऐसी कहानियां लिखा
बहुत जरूरी है. मैं 'समांतर'
का स्वागत करती हूं. ए
महसूस होती है मुझे इन क
में कि ये सिर्फ दशा का
करती हैं, 'सफर' कर रहे
की तकलीफों को सही ढंग
रही हैं, लेकिन इससे आगे ह
करेंगे, क्या सोल्यूशन होना
ऐसी बातें भी आनी चाहिए

आनंद दीवान—मुझे
इन कहानियों में नारेबाज
ज्यादा है.

कृष्णा खुराना—मैं इस
मत नहीं हो सकती. मुझे
कहानियों में ऐसा लगा कि
गहराई से महसूस करके
गया है. बल्कि मैं तो यह
कि ये जीवन के ऐसे कटु
हैं जिन्हें कहने का इससे
लेखक साहस ही नहीं जुटा

सुरेश उनियाल—आम
पीड़ित है और इसके
कई शक्तियां हैं जो उसे
कर रही हैं, जैसे
पूंजीवाद, और नौकरशाही
तीनों का एक तालमेल ह
में बना हुआ है. इनके स्वार्थ
में इस तरह जुड़े हैं कि इन्होंने
आदमी के खिलाफ एक
बना लिया है. आम आ
पीड़ा का समांतर कहानी
हुआ है. किंतु जब एक

आदमी अप
इन कहानि
कैथारसिस
तरह त्रास
हैं. इस त
ए आदमी
ससे ये क
ती हैं.
आम आद
हैं तो इन
या जरूरत
कृष्णा खु
कर क्यों बै
नाम कृष्णा
कता था.
जरूरी
में फलां
बस इतनी
की पहचा
दिया गया
और पूंजीव
कहानियां
सुभाष पंत
से सहमत
तर' कहा
मेरी आं
निकले कि
जाये. मुझे
दा ही कच
सुरेश उ
ता सभी क
त कहानि
'वाड़ चू',
र', 'शहादत
जितेंद्र श
है तो बिल्कु
मी की छ
रूप से इ
आदमी श
भी उसने
ए गलत अ
कभी थोड़ी
कता एक ऐ
र से नीचे क
दमी भ्रष्
भी ने यह
कि यह ग
का अनुस
इन सब च
ये कहानि

आदमी अपने त्रास के चित्रण इन कहानियों में देखता है, कैथारसिस' हो जाता है. तरह त्रास की वैल्यू कम हो है. इस तरह से जिस लड़ाई ए आदमी को तैयार करना ससे ये कहानियां उसे दूर ती हैं. 'समांतर' कहानियां आम आदमी की ही बात हैं तो इन्हें अलग नाम देने या जरूरत है?

कृष्णा खुराना—आप नाम कर क्यों बैठ जाना चाहते हैं? नाम कृष्णा न हो कर रमा भी कता था. इसका विश्लेषण जरूरी नहीं कि कृष्णा में फलां-फलां गलतियां हैं. बस इतनी ही है कि उन कहानियों की पहचान के लिए 'समांतर' दिया गया है, जो दोगले अर्थ- और पूंजीवाद से दबे आदमी कहानियां हैं.

सुभाष पंत—उनियाल जी की से सहमत नहीं हुआ जा सकता. ांतर' कहानियां पढ़ने के बाद मेरी आंख से दो मन आंसू निकले कि मेरा 'कैथारसिस' जाये. मुझे तो इन कहानियां ने दा ही कचोटा है.

सुरेश उनियाल—मैं नहीं ता सभी कहानियां. कुछ बहुत त कहानियां आयी हैं इनमें, **'वाङ चू'**, **'परायी प्यास का**, **'शहादतनामा'** आदि.

जितेंद्र शर्मा—इन कहानियों ह तो बिल्कुल साफ है कि आम मी की छटपटाहट को बहुत रूप से इनमें उतारा गया है. आदमी शुरू से ही गलत रहा मी उसने एक बोतल शराब ए गलत आदमी को वोट दिया, कमी थोड़ी-सी सुविधा के लिए. कता एक ऐसा स्रोत है जो सदा से नीचे को बहता है. जब ऊपर दमी भ्रष्ट हो गये तो नीचे के मी ने यह महसूस करते हुए कि यह गलत रास्ता है, उसी का अनुसरण किया. ये कहानियां इन सब चीजों को खोलती हैं. ये कहानियां यथास्थिति का वर्णन ज्यादा हैं. मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि इन कहानियों को अधिक जीवंत और बोल्ड होना चाहिए ताकि क्रांति की भूमिका बनने में ये कारगर सिद्ध हो सकें.

आनंद दीवान—'समांतर' लेखक ने पिछली जड़ताओं और संकीर्णताओं से छुटकारा पाने का भरसक प्रयत्न किया है. शुरुआत का विषय बहुत ही उपयुक्त और उपयोगी है. पर कहीं ऐसा न हो कि एक बहुत बड़ी जमात बतौर फैशन इसे ओढ़ कर मुखौटों की तरह इस्तेमाल करे. यह लेखन संघर्षरत दुखी प्राणी, उसके आक्रोश और छटपटाहट तथा भ्रष्टाचार व अन्याय पर तीखे प्रहार की सही तस्वीर उजागर करता है, जो कि समय की सही मांग है. **'विस्फोट'**, **'परायी प्यास का सफर'**, **'अंधेरे का सैलाब'**, **'निर्वासित'**, **'तपती हुई जमीन'**, **'शहादतनामा'**, **'आतंक भरा सुख'**, **'रिसता हुआ बिंदु'**, **'मजमेबाज'** आदि कुछ कहानियां ह जो 'समांतर' के प्रति बेहद आस्था जगाती हैं.

धीरेंद्र अस्थाना—'सामान्यजन और सहयात्री लेखन' के अंतर्गत आने वाली मामूली आदमी की कहानियों को पहचान के लिए 'समांतर' नाम मिलना उपयुक्त ही है. आदमी के दुख-दर्द के साथ-साथ चलने वाली इन कहानियों ने रूपवादी लेखन को एकदम नकारा और अपने समय के सत्य से जुड़ीं. आम आदमी ने आज नारे का रूप धारण कर लिया है. डर बराबर है कि कहीं 'समांतर' कहानी भी इसे नारे के रूप में प्रयुक्त न करने लगे. फिलहाल इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इसके अंतर्गत आने वाली कहानी ने कहानी को एकदम बदल दिया है. ये सही मायने में दोगली अर्थ-व्यवस्था और पूंजीवादी दलाल सरकार के दमन के बीच टूट रहे आदमी की संघर्षरत जिंदगी के कड़वे पक्ष को उद्घाटित करती हैं. कहीं-कहीं काफी तीखी और मारक चोट भी हो जाती है—**'विस्फोट'**, **'परायी प्यास का सफर'**, **'तपती हुई जमीन'**, **'सिपाही की कैद'** और **'आदमी'** आदि कहानियां व्यवस्था के दबाव से टुकड़े-टुकड़े हो रहे आदमी की लड़ाई में सीधे तौर से शामिल हैं और बेहद तल्खी के साथ व्यवस्था पर चोट करती हैं.

मदन शर्मा—तनिक भी संदेह नहीं कि 'समांतर' कहानी ने एक अच्छे उद्देश्य को ले कर हिंदी कहानी को एक नया यथार्थवादी मोड़ देने का प्रयास किया है. आम आदमी की समस्याओं, परेशानियों, अंतर्द्वंद्वों तथा उच्च वर्ग द्वारा फैलायी अव्य-व्यवस्था के कारणों तथा परिणामों पर ये कहानियां रोशनी फेंकती हैं.

पर इस बात की पूरी संभावना है कि 'नयी कहानी' की तरह समांतर कहानी भी फैशन का जामा बनेगी तथा बहुत-से लेखक इस 'बैनर' के नीचे निश्चित-सी सीमाओं में बंध कर नपी-तुली बात लिखने लग जायेंगे. फिर भी यह कहना बहुत आवश्यक होगा कि गत कुछ वर्षों से हिंदी कहानियों में जो विकृति आयी थी, वह 'समांतर' कहानी के माध्यम से कम हुई है.

इंद्रकुमार कक्कड़—'फैंटेसी' और 'रिपोर्ताज' का रूप धारण किये हुए ये कहानियां बस कहानियां मात्र बन कर आयी हैं. **'सारिका'** के नवंबर अंक में यद्यपि कामतानाथ ने काफी दलीलें दी हैं, परंतु मेरा एक प्रश्न है कि मंटो की कौन-सी कहानी अपने समय की 'समांतर' कहानी नहीं थी? 'समांतर' विशेषांकों की कुछ कहानियां अपना प्रभाव छोड़ती हैं पर इसलिए नहीं कि वे समांतर-असमांतर या नयी कहानी अथवा अकहानी हैं, बल्कि इसलिए कि वे आज के आदमी की कहानी हैं. कहानियां तभी सफल हो सकती हैं, जब लेखक व पाठक के हृदय का 'टैलिप्रिंटर' कार्य सुचारु रूप से चल सके.

गुरुदीप खुराना—'समांतर' लेखन-मंच के रूप में सामने आया है. संपादकीय और लेखों को पढ़ कर ऐसा मालूम होता है कि आज की सारी विसंगतियां केवल दोगले अर्थतंत्र के कारण उत्पन्न हुई हैं. यह एक 'फैक्टर' तो जरूर है, पर यही एक कारण नहीं है, और भी कारण हैं.

हर दिन बचत का दिन हो सकता है
अगर.........

अगर आप बचाने का संकल्प करें ! वेतन का दिन भी एक ऐसा ही दिन है । लेकिन जब तक आप बचाने का संकल्प नहीं करेंगे आपके वेतन का दिन भी खर्च का ही दिन रहेगा ।

जब आप बचाने का संकल्प करें (आज ही क्यों नहीं ?) तो डाकघर आवर्ती जमा में धन लगाने पर विचार करें । इस खाते में जमा किये गए 10 रु० 5 वर्ष में 750 रु० हो जायेंगे । यह 9.25% चक्रवृद्धि ब्याज के बराबर होता है ।

और यदि आप दो वर्ष तक नियमित रूप से 10 रु० महीना बचाते हैं तो आपका 750 रु० का बीमा हो जाता है । खातेदार की असमय मृत्यु पर उसके वारिस को बिना कुछ अतिरिक्त जमा कराये 750 रु० का पूरा भुगतान दिया जाता है ।

ब्योरे के लिए सम्पर्क कीजिए :
समीपस्थ डाकघर
अथवा

राष्ट्रीय बचत संगठन
पोस्ट बाक्स नम्बर 96
नागपुर

davp 74/309

जैसे हमारी पुश्तैनी गुलामी आदि. ये कारण इन कहानियों में 'रिफ्लैक्ट' नहीं होते. वैसे 'समांतर' कहानी ने 'नयी कहानी' को 'डाइनामाइज' जरूर किया है. पर कामतानाथ, इब्राहीम शरीफ आदि के लेख पढ़ कर ऐसा लगता है कि बाकायदा एक 'केस' तैयार किया गया है, यह 'प्रूव' करने के लिए कि 'समांतर' एक 'एचीवमेंट' है जो पहले नहीं था. यह एक शाब्दिक जालसाजी है.

नवीनानंद नौटियाल--कुछ साल पहले एक फिल्म आयी थी, सत्यजित की 'प्रतिद्वंद्वी.' उस फिल्म में प्रतिद्वंद्वी एक अनिश्चित-सा आदमी था. यानी उसका कोई अस्तित्व नहीं था, निराकार ब्रह्म की तरह. अब स्थिति एकदम साफ है. दुश्मन हमारे सामने है, पूरी व्यवस्था के रूप में. उसके बारे में जो कहानियां लिखी जा रही हैं, वे इसी परिवर्तन की द्योतक हैं. आज रोटी अपने अहम रूप में सामने आयी है, उसका हल सीधे व्यवस्था के हाथ में है. धूमिल की एक कविता है :

'एक आदमी/ रोटी बेलता है,/ एक आदमी रोटी खाता है./ एक तीसरा आदमी भी है./ जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है./ मैं पूछता हूं--- यह तीसरा आदमी कौन है/ मेरे देश की संसद मौन है.'

यह सीधी स्थिति है. जो इस पर नहीं लिखेगा, वह ईमानदार लेखक नहीं है. अभी हमने चीजों को सहज लेना शुरू नहीं किया है. बिहार का आंदोलन हमने जे.पी. का आंदोलन बना दिया, और उसकी पूजा करने लगे. 'समांतर' को भी हमने कमलेश्वर का आंदोलन बना दिया है, जबकि यह समय का आंदोलन है.

सुभाष पंत---अब अगले प्रश्न पर आया जाये. प्रश्न है-- समांतर कहानियों ने कहानियों को व्यापक कैनवस, नये आयाम और भारतीय परिवेश दिया है, या 'समांतर' लेखकों ने कहानी को पीछे लौटाया है?

श्याम प्रकाश---जिन कहानियों का यहां जिक्र आया है, वे समय की जरूरत के तहत स्वीकार की गयी हैं. सही साहित्य हमेशा समय के साथ चलता है. दुर्भाग्य से पिछले दौर की कहानियों में यह बात नहीं थी. आज की कहानी ने नये नये विषयों को ग्रहण किया है, और बहुत आयाम खोले हैं. इनका परिवेश भारतीय है. रही कहानी को पीछे लौटाने की बात, उससे मैं सहमत नहीं हो सकता.

कृष्णा खुराना--कहानियों का परिवेश पूर्णतः भारतीय है, जो एक सही बात है. हां, व्यापक आयाम वाली बात को सोचना होगा. 'समांतर' की अधिकतर कहानियां 'लोअर मिडल क्लास' की कहानियां हैं, क्योंकि वही सबसे ज्यादा दबा हुआ है. समाज की और भी बहुत-सी समस्याएं हैं, जिन्हें 'समांतर' अभी छू नहीं रहा है.

सुरेश उनियाल---इस तरह के नारे 'नयी कहानी' के साथ भी लगे थे. लगाते रहिए, मुझे कोई ऐतराज नहीं.

जितेंद्र शर्मा--- नये आयाम और भारतीय परिवेश तो इन कहानियों में है ही. पीछे लौटने की बात से मैं सहमत नहीं, बल्कि इन्हें अभी और बोल्ड और आगे की कहानी बनना है.

नवीनानंद नौटियाल--खुशी की बात है, काफ्का-काम् को इन्होंने उतार फेंका है और कहानियों को अपनी जमीन दी है.

सुभाष पंत--अब तीसरे और अंतिम प्रश्न पर आया जाये. प्रश्न है-- समांतर कहानियों की यात्रा साहित्य से जीवन की ओर है या जीवन से साहित्य की ओर?

श्याम प्रकाश--समांतर कहानियों की यात्रा जीवन से साहित्य की ओर है. जो कुछ जीवन में घटित हो रहा है, वही साहित्य में आ रहा है.

देशबंधु--यह एक ऐसा प्रश्न है जैसे यह पूछा जाये कि एक क्लर्क की यात्रा घर से दफ्तर की ओर है, या दफ्तर से घर की ओर.

वीरेंद्र अस्थाना-- निस्संदेह आज कहानी की यात्रा जीवन से साहित्य की ओर है.

गुरुदीप खुराना--ये कहानियां निस्संदेह जीवन से साहित्य की ओर हैं. पर इन्हें साहित्य ही की चीज बन कर नहीं रह जाना चाहिए.

शिवानंद नौटियाल--समांतर पर यह परिचर्चा बहुत सफल रही. सभी ने उन्मुक्त रूप से अपने विचार व्यक्त किये. किंतु समांतर पर एक परिचर्चा पर्याप्त नहीं है, क्योंकि विचारों का कोई अंत नहीं है. मैं संयोजक महोदय से निवेदन करूंगा कि वे इस पर और परिचर्चाओं का आयोजन करें.

सुभाष पंत--हम अध्यक्षजी की बात से पूर्णतः सहमत हैं. हम समय-समय पर बैठते रहेंगे और अपने विचार-विमर्श को आगे बढ़ायेंगे. □□□

लेखन-फोबिया

लक्षण : नयी पौद के दिनों से ले कर गर्दिश के आखिरी दिन तक दिल और दिमाग के दौरे पड़ते हैं. लिखते-लिखते एकाएक रोगी खांसने लगता है. मर्ज बढ़ता जाता है और साथ-साथ कर्ज भी.

चिकित्सा : आम आदमी से परहेज करे और क्रांति के स्वप्न न देखे. जो कुछ लिखना हो चम्मच से लिखे.

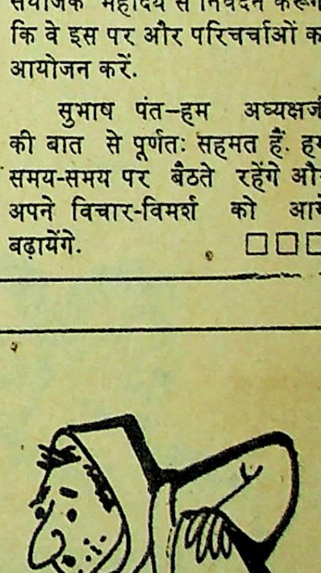

● व्यंग्य-विचार : कालिदास सेन

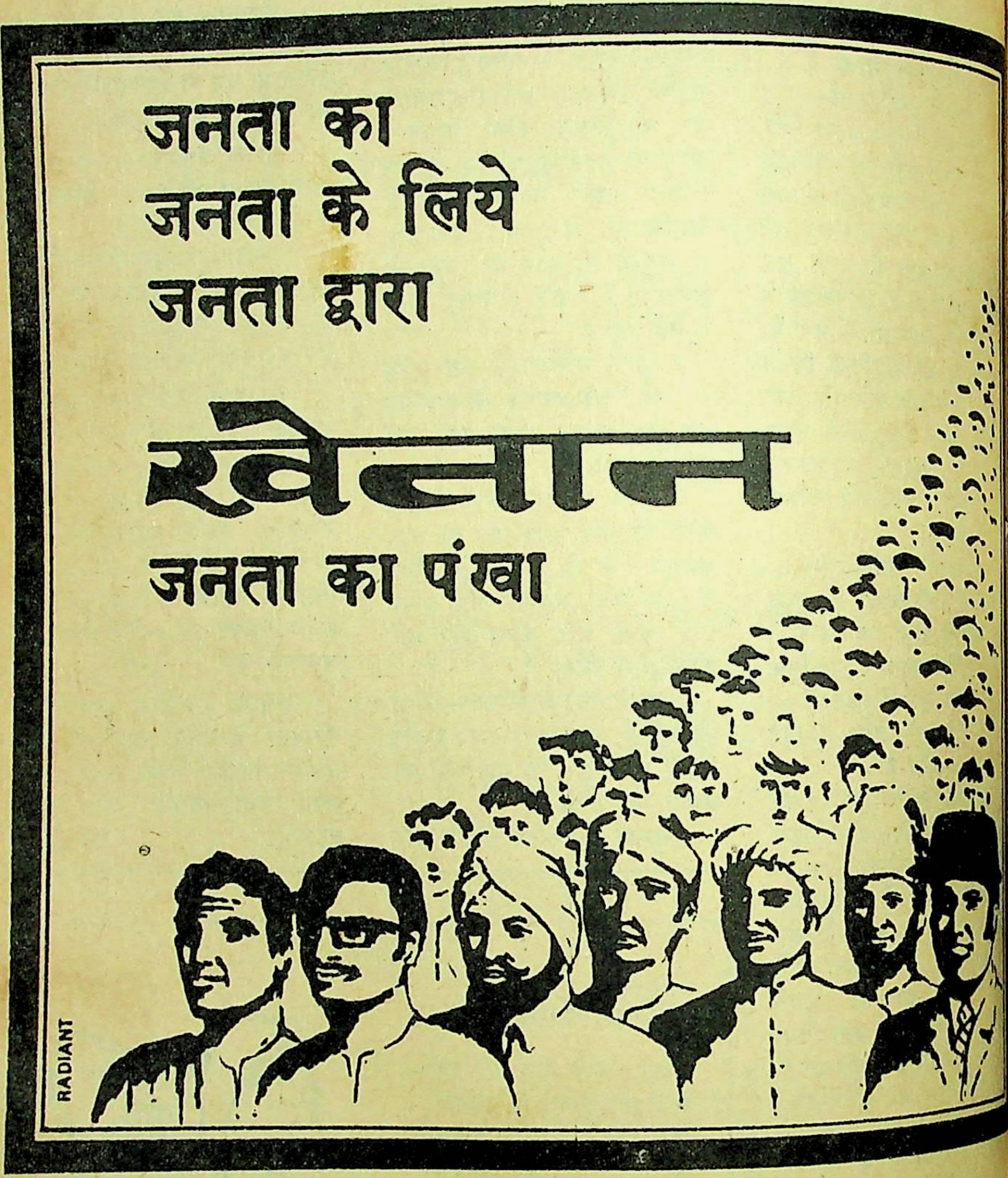
जनता का
जनता के लिये
जनता द्वारा
खेतान
जनता का पंखा
RADIANT

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूँटे-से बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर से रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब। आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए।

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर

अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

FACIAL QUALITY
Anne French
Cream

Licensed user of TM : Geoffrey Manners & Co. Ltd.
126 HR-203 Hin

२ साइज में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५ ग्रा.

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई–१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट; लंदन आफिस : [illegible] मिडिलसेक्स, यू. के.

वो दो जो मेरी साँसों में बसा करते हैं—

एक तुम

एक बिनाका ग्रीन

सच, बिनाका ग्रीन की निर्मल ताजगी में बसीं मेरी साँसें... और मेरी हर साँस में समाए तुम! मुझे तुमसे प्यार है... मुझे बिनाका ग्रीन से प्यार है क्योंकि क्लोरोफिलयुक्त बिनाका ग्रीन में पाये जाने वाले प्राकृतिक गंधनाशक से मेरी साँसों में फूल खिल जाते हैं.... आह! वह बहार... तुम्हारे साथ गुज़रे वह सुनहरे क्षण... वह महका महका सा मेरी साँसों का मधुबन!

Binaca
MADE IN INDIA
CIBA of India Limited Bombay
Binaca
Green
toothpaste

महकी साँसों का मधुबन

बिनाका टूथब्रश की गोल बनायी गयी नोकें आपके मसूड़ों को छिलने से बचाती है।

CIBA-GEIGY

सारिका

जुलाई १९७५

समांतर कहानी विशेषांक: १०

नवलेखन: दो तथा लघुकथाएं

- आम आदमी के आसपास: आज की कहानियां

गुरुकुल कांगड़ी

Ramesh
८-११-७५

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
१ रुपया

निर्मला
गंगा बहे न रात
तीन पहिये
अजीब
भैरवी चक्र
शतरंज के मोहरे
कलंक-मुक्ति

हिन्द पॉकेट बुक्स

द्वारा प्रकाशित

श्रेष्ठ उपन्यास

पुष्पगंधा
गोली
रति विलाप

पॉकेट बुक्स में ऐसा गौरवपूर्ण साहित्य प्रकाशित करने का श्रेय केवल हिन्द पॉकेट बुक्स को है

अच्छी पुस्तकों का दूसरा नाम : हिन्द पॉकेट बुक्स

कुछ अन्य लोकप्रिय हिन्द पॉकेट बुक्स

उपन्यास

निर्मला	प्रेमचन्द	2.50
दादा कामरेड	यशपाल	4.00
अनाड़ी	उपेन्द्रनाथ अश्क	3.00
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	4.00
अपने खिलौने	भगवतीचरण वर्मा	5.00
नरक	मन्मथनाथ गुप्त	4.00
पुष्पगंधा	भगवतीप्रसाद वाजपेयी	4.00
कलंक-मुक्ति	रेणु	2.50
गोली	आचार्य चतुरसेन	5.00
रति विलाप	शिवानी	3.00
भैरवी चक्र	गुरुदत्त	6.00
भंवर	भैरवप्रसाद गुप्त	3.50
प्यार या पाप	भ्रमर	3.00
कार्निवाल	कृश्न चन्दर	3.00
एरियल	अमृता प्रीतम	2.00
एक चादर मैली सी	राजेन्द्र सिंह बेदी	3.00

रोमांटिक उपन्यास

कटी पतंग	गुलशन नन्दा	5.00
सोने की लंका	,,	3.00
झील के उस पार	,,	3.00
शराफत	शेखर	3.00
तेरे मेरे चेहरे	शेखर	3.00
कुंवारी सुहागिन	,,	3.00
बाज़ी	मीनाक्षी माथुर	3.00
आग बनी सुहाग	,,	3.00
दिल और दर्द	,,	3.00

वैज्ञानिक उपन्यास

सूरज की भेंट	प्रो० दिवाकर	3.00
नक्षत्रों का युद्ध	,,	3.00
समय के स्वामी	,,	3.00
शुक्र ग्रह पर धावा	,,	3.00

जासूसी उपन्यास

काला शाल	कर्नल रंजीत	3.00
मौत का महल	,,	3.00
11 बजकर 12 मिनट	,,	3.00
सफेद खून	,,	3.00

जीवनोपयोगी

अनमोल मोती	3.00
सफलता के आठ साधन	3.00
भावनाओं के चमत्कार	3.00
महापुरुषों की सूक्तियां	3.00

विविध

स्त्री-पुरुष	डा० लक्ष्मीनारायण	3.00
उर्दू की बेहतरीन शायरी	सं० प्रकाश पंडित	4.00

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी पुस्तक-विक्रेताओं के यहाँ पर मिलती हैं। यदि प्राप्ति में कोई कठिनाई हो तो घर बैठे अपनी मनपसंद पुस्तकें प्राप्त करने के लिए

हिन्द पॉकेट बुक्स द्वारा संचालित

घरेलू लाइब्रेरी योजना
(बुक-क्लब)

के सदस्य बनिए तथा प्रति मास 12 रु० की पुस्तकें 8 रु० में प्राप्त कीजिए। मासिक पत्रिका 'साहित्य संगम' निःशुल्क

नीचे दिए कूपन या किसी पोस्टकार्ड पर यहाँ दी गई पुस्तकों में से अपनी पसंद की 12 रु० की पुस्तकों के नाम लिखकर भेज दें। हम आपको सदस्य बनाकर वी० पी० पैकेट से पुस्तकें भेजनी शुरू कर देंगे। डाक-व्यय के दो रु० भी वी० पी० राशि में जोड़ कर दस रु० की वी० पी० भेजा करेंगे। केवल पहली वी० पी० में सदस्यता-शुल्क के दो रु० भी जोड़े जाएंगे (जो कि आपकी अमानत के रूप में हमारे पास जमा रहेंगे। इस प्रकार पहली वी० पी० बारह रुपये की होगी।

घरेलू लाइब्रेरी योजना
(बुक-क्लब)

सदस्यता-कूपन

नाम ______________
पता ______________

1. ______
2. ______
3. ______
4. ______
5. ______

मुझे घरेलू लाइब्रेरी योजना का सदस्य बनाएं। शुल्क के 2 रुपये पहली वी० पी० में जोड़कर 12 रुपये की वी० पी० से पुस्तकें भिजवा दें।

घरेलू लाइब्रेरी योजना-बुक-क्लब (क), जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-32

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा. लि.
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली- 110032

२५।७।७५
पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

आप इनमें से किस पुरुष जैसे दिखते हैं?

आप अपने शरीर को शक्तिशाली मर्दाना बनाइए— सिर्फ़ १४ दिन में परिणाम देखिए— अन्यथा दाम न दीजिए!

आदम कद शीशे के सामने खड़े होकर, अपनी शारीरिक अवस्था के बारे में खुद भ्रम में पड़ जाना कितना सरल है। क्या सचमुच आपका शरीर वैसा ही मर्दाना है जिससे दूसरे पुरुषों में ईर्षा जाग उठे और स्त्रियों में प्रशंसा? अगर नहीं तो यह खबर सुन आप झूम उठेंगे। एक अति क्रांतिकारी, नये किस्म का साधन बनाया गया है जो आपको वैसाही बदन देगा जैसा आप हमेशा से चाहते रहे हैं और वह भी सिर्फ कुछ सप्ताहों में ही। कल्पना कीजिए... आपकी मांस पेशियाँ फ़ौलादी हो... बाहों की मछलियों का शक्तिशाली मर्दाना उभार... पेड़ के प्रचंड तने जैसी रानें। अब आप इसे हक़ीक़त बना सकते है। इस नये साधन का नाम है— बुलवर्कर ३ विश्व के नवीनतम वैज्ञानिक सिद्धांत आइसोटॉनिक/आयसोमेट्रिक पर बने होने के कारण बुलवर्कर ३ आपके पूरे शरीर में प्रचंड नई ताक़त और स्फूर्ति भर देता है— परंपरागत पद्धतियों से कई गुना तेज़ रफ्तार से। और आप स्वयं यह केवल १४ दिनों में सिद्ध कर सकते है।

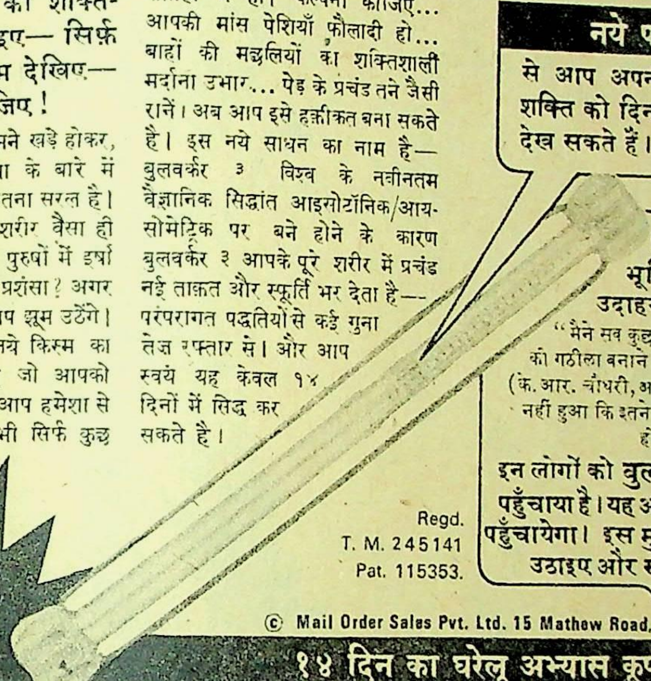

नये पावर मीटर

से आप अपनी मांस पेशियों की शक्ति को दिन-ब-दिन बढ़ते हुए देख सकते हैं।

Regd.
T. M. 245141
Pat. 115353.

बुलवर्कर की लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उदाहरण के तौर पर देखिये:

"मैंने सब कुछ आजमा कर देखा, किंतु शरीर को गठीला बनाने में बुलवर्कर '३' का जवाब नहीं" (के. आर. चौधरी, आन्ध्र प्रदेश) "मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि इतने थोड़े अभ्यास से इतना कमाल हो सकता है। (ए. हाल बर्नेली)

इन लोगों को बुलवर्कर ने अद्भुत लाभ पहुँचाया है। यह आपको भी अद्भुत लाभ पहुँचायेगा। इस मुफ्त प्रस्तावका फायदा उठाइए और स्वयं ही देख लीजिए...

अब सिर्फ रु. ३९ तथा शेष आसान माहवारी किस्तों में।

© Mail Order Sales Pvt. Ltd. 15 Mathew Road, Bombay 400 004

१४ दिन का घरेलू अभ्यास कूपन

विशेष प्रस्ताव

SB9

208/39-H

बुलवर्कर सर्विस मेहता महल, १५ मैथ्यू रोड, बम्बई ४०० ००४

मुझे १४ दिन के घरेलू अभ्यास के लिये तुरंत बुलवर्कर-३ भेजिये। यदि मैं परिणामों से संतुष्ट न हुआ तो अपनी पूर्ण रकम तुरंत वापस पाने के लिये सबकुछ १४ दिन की अभ्यास अवधि के भीतर लौटा दूंगा।

कृपया अपनी पसंद के खाने में ☑ निशान लगाइये।

☐ वी.पी.पी. द्वारा बुलवर्कर मिलते ही मैं डाकिये को रु. ३९ (तथा रु. ९ भेजने का खर्च) दे दूंगा। १४ दिन की अभ्यास अवधि के बाद मशीन को अपने पास रखने की हालत में मैं स्वीकार करता हूं कि बाकी रकम १३ अतिरिक्त मासिक किश्तों में प्रतिमाह रु. १९ के हिसाब से चुकाऊंगा। ☐ रु. ४८ चेक/बैंक ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल ऑर्डर द्वारा प्रेषित हैं। उपर्युक्त मासिक किश्त योजना स्वीकृत है। ☐ रु. ४८ मनीऑर्डर द्वारा (रसीद नं.........दिनांक.........) प्रेषित हैं। उपर्युक्त मासिक योजना स्वीकृत है। तुरंत नकद रकम अदा कर **रु. ३२ की बचत कीजिये।** ☐ वी.पी.पी. द्वारा बुलवर्कर मिलते ही मैं डाकिये को रु. २६३ (तथा रु. ९ भेजने का खर्च) दूंगा। ☐ मैं रु. २६३ चेक/मनी ऑर्डर/भारतीय पोस्टल ऑर्डर द्वारा प्रेषित हैं। ☐ रु. २६३ मनी ऑर्डर द्वारा (रसीद नं.........दिनांक.........) प्रेषित हैं— १४ दिन मे वापसी के विशेषाधिकार सहित।

हस्ताक्षर.............................. (अथवा मा बाप के अगर १८ से कम आयु हो).......

नाम..

पता..

मुफ्त २०वीं शताब्दी का कॅलेन्डर —सचित्र, रंगबिरंगा, आकर्षक कॅलेन्डर इस कूपन के ५ दिन में भेजने पर!

मधुर मिलन का सुन्दर साधन

सरसिल्क। ऐसे भड़कते, फड़कते रंग कि मन मचल उठे। ऐसे मनमोहक, हलके रंग कि मन खिल उठे। सादा, चारखाना और धारीदार कपड़े।

सरसिल्क सूटिंग और शर्टिंग में आपको वे सभी खूबियां मिलती हैं जो आप एक बढ़िया कपड़े में चाहते हैं। चलने में टिकाऊ। अच्छी पसन्द के अनुकूल। देख-भाल में आसान। और बिलकुल ठीक कीमत।

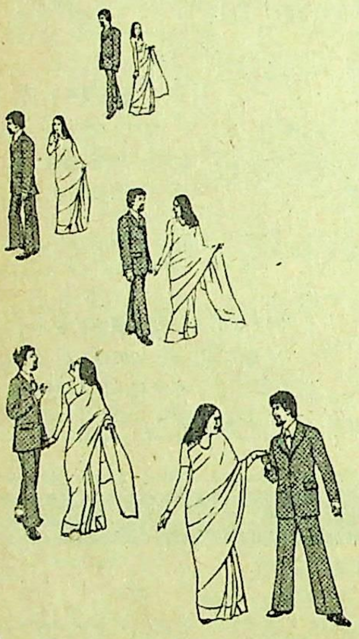

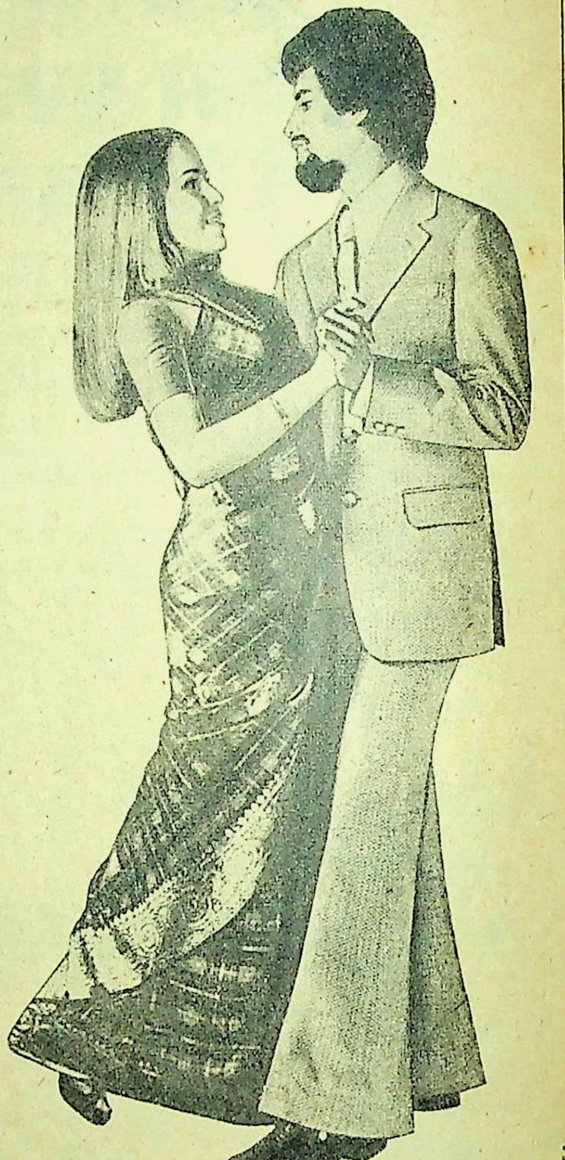

सरसिल्क
पॉलिएस्टर सूटिंग और शर्टिंग

ASPISSI751

विक्रेता एजेंट : बम्बई तुलसीदास कनोरिया एण्ड कम्पनी, पहली मंजिल, जाम्बुलवाडी (पूर्व), कालबादेवी रोड, बम्बई। **मध्य प्रदेश, विदर्भ और मराठवाडा:** रथी एण्ड कम्पनी, १७, पाप्युलर होलसेल क्लाथमार्केट, गांधी बाग़, नागपुर। **दिल्ली और हरियाणा :** बाम्पे ट्रेडिंग कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, कटरा अशर्फी, चाँदनी चौक, दिल्ली। **राजस्थान :** हरीश एण्ड कम्पनी, मेहता मार्केट, जोधपुर। **पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर:** ओमेगा इंडस्ट्रियल कारपोरेशन, कटरा आहलुवालिया, अमृतसर। **उत्तर प्रदेश :** केजरीवाल ट्रेडिंग कारपोरेशन, विशंभर हाउस, २५/२६ ए, कराची खाना, कानपुर। **पश्चिम बंगाल:** अश्विनी कुमार एण्ड कम्पनी, ४, इंडियन ऐक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता। **बिहार :** ओरिएण्टल ऐन्टरप्राइज़िज़ एण्ड एजन्सीज़, इंडिया मशीनरी बिल्डिंग (दूसरी मंज़िल), एग्ज़ीबिशन रोड, पटना।

आपका
चेहरा ही
आपका
भाग्य

AFGHAN SNOW
AFGHAN SNOW

उसकी उसी
प्रकार उचित तरीके से सुरक्षा करें

अफगान स्नो—संपूर्ण रूप से त्वचा की सुरक्षा करनेवाला स्नो।
इसके प्रयोग से आपकी त्वचा खिलती हुई पंखुड़ी की तरह
मृदु और सुबह की ओस की तरह ताजी रहती है।

यही कारण है कि महिलायें अपनी त्वचा की
सुंदरता और सुरक्षा के लिये अफगान स्नो पर पूर्ण भरोसा करती है।

ASPISSI751

अफगान स्नो. त्वचा की संपूर्ण सुरक्षा के लिये

एयर-इंडिया प्रस्तुत करती है सप्ताह में एकसठ उड़ानें—५ महाद्वीपों के लिए.

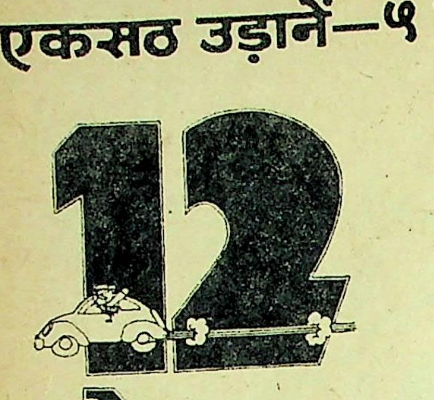

यूरोप

यूरोप के लिए सप्ताह में १२ उड़ानें

लंदन? आठ ७४७ विमानों को आपका इंतज़ार है. इनमें से दो केवल बेरूत हो कर जाते हैं, मंगलवार और शनिवार को. दूसरे छह में आपको रोम, पेरिस या फ्रैंकफ़र्ट हो कर जाने की सुविधा मिलती है. इसके अलावा दो ७०७ विमान जिनेवा होकर जाते हैं. मॉस्को? दो ७०७ विमान.

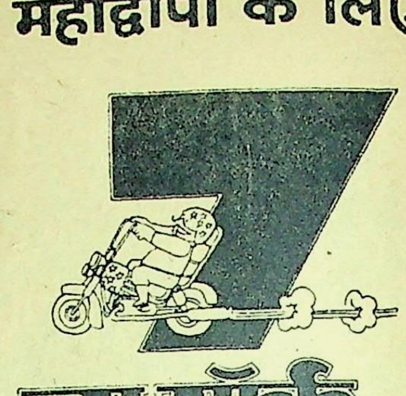

न्यू यॉर्क

न्यू यॉर्क के लिए सप्ताह में ७ उड़ानें

हर दिन ७४७ विमान की एक उड़ान. मध्य पूर्व और यूरोप होते हुए. हमारे विशेष एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत न्यू यॉर्क जा कर वापस लौटने का किराया आम तौर पर लगनेवाले एकतरफ़ा किराये से भी कम पड़ता है.

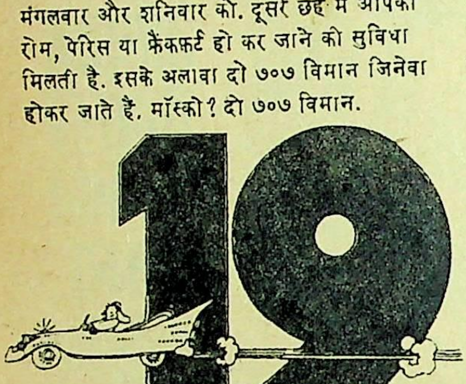

मध्य पूर्व

मध्य पूर्व के लिए सप्ताह में १९ उड़ानें

बेरूत? पाँच ७४७ विमान उड़ान भरने को तैयार. कुवैत? तीन ७४७ विमान और दो ७०७ विमानों में से आप मनपसंद चुनाव कर सकते हैं. दुबई के लिए चार ७०७ विमानों में से कोईसा भी चुनिए. बहरैन के लिए तीन उड़ानें; और आबू धाबी, मस्कत, कैरो और तेहरान में से प्रत्येक के लिए दो उड़ानें. इसके अलावा अदन, दोहा या दहरान में से प्रत्येक के लिए एक ७०७ विमान.

साथ ही हर सप्ताह:
६ उड़ानें
जापान के लिए हौंग कौंग हो कर—
४ **टोकियो के लिए**
२ **ओसाका के लिए.** १० उड़ानें
दक्षिण पूर्व एशिया के लिए—
६ **बैंकॉक के लिए और**
४ **सिंगापुर के लिए.**
२ उड़ानें
ऑस्ट्रेलिया के लिए
३ उड़ानें
पूर्व अफ्रीका के लिए
२ उड़ानें
मॉरिशस के लिए.

एयर-इंडिया
आपकी मनपसंद एयरलाईन

HT. AI. 8720

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

सारिका

जुलाई, १९७५
वर्ष : १५; पूर्णांक : १७१

समांतर कहानी विशेषांक– 10

नवलेखन अंक–२

कहानियां

आनंद कुरैशी : अल फातेहा : ३४
रजा जाफरी : घरौंदा : ३६
अभय : अवरोध : ४४
नवनीत मिश्र : जरा-सी बात : ४८
रामनारायण सिंह चौहान : एक और महाश्वेता : ५२
रवींद्रनाथ उपाध्याय : घर : ६०
शंकर : दुर्घटना : ६४
रामदेव शुक्ल : ग्रामदेवता : ७२
दिलीपकुमार बनर्जी : उपहार : ८४

लघुकथाएं

एरनांदेस : फैसला, मधु पुरोहित : जलने का रहस्य, शाहिद नकवी : कालपात्र : १२
कुमार अशोक : जो भी कहूंगा, हरिकृष्ण तैलंग : शिकारी और भोले कबूतर, विनयकुमार श्रीवास्तव : भविष्य कथा : १३
प्रेम सेठिया : कूटनीति, चतुर अर्जुन, हबीब कैफी : वीर : १५
मनीषराय यादव : पांच लघुकथाएं : १६
सूर्यनारायण रणसुभे : चार लघुकथाएं – १७
विकास गोतामें : स्वातंत्र्य, रामकृष्ण खुराना: राजनीतिज्ञ, असद जैदी: चींटे : १८
राजेंद्रकुमार पटेल : तटस्थता की नीति; जीवन महता : स्थायित्व की कूटनीति, बलजीत पहाड़ी : जिरह : १९
राजा दुबे : सवालिया चेहरे : २१
कृतनारायण प्यारा : पहचान, सनत दवे : समाजवादी बजट, सुरेंद्र प्रबुद्ध : सूखा और बलिष्ठ मछुआरा : २२
अमलतास : महाभारत बंद नहीं हुआ, असद जैदी : कछुआ, टखना : २३
शाहिद तकवी : उद्घाटन, मनोहर वर्मा : फर्क कार्य-पद्धति का, प्रमोदकुमार : नया रिकार्ड: २४
जयचंद्र झा 'प्रमोद' : अथ लक्ष्मी-नारायण संवादम्, जीवन सिंह ठाकुर : इलाज, किशोर काबरा : अंत्याक्षरी : कल और आज : २५
घनश्याम अग्रवाल : आजादी की दुम : २६
[redacted]
नवीन चतुर्वेदी : अंततोगत्वा, [redacted] २८
कनेडीवाला : शब्दों के आंसू, कुणाल : अभिजात्य, जोड़े : २९
'मधुप' मगधशाही : विकास, दिनेश बरनवालः मृत्यु-दर्शन; ३०
[redacted], अनिल-मधुर : प्रजातंत्र, ३१
हसन जमाल छीपा : सबूत, नाशेर जमाल : विवशता, अनूपकुमार : मूख : ३२
प्रभु जोशी : पत्रकारिता, नीरज बख्शी : भविष्य में, पन्नालाल : मानसरोवर : ३३
समीरकुमार : राजा भोज और वृद्धा : ४७
कुमार सरदार हसन : अकाल : ५१
[redacted] ५६

विशिष्ट लेख

से. रा. यात्री : एक परिसंवाद : ५७
डॉ. विनय : समय की भयानकता से जूझता समांतर साहित्य : ६८

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ८, मेरा पन्ना : १०, गुस्ताखियां: प्रकाश पंडित : ४०, चंद सतरें और : अनीता औलक : ८६, कृतियां : ९०

आमुख : भगवानदास रूपानी.
लघुकथा-खंड के सज्जाकार: अबिद सुरती

●

संपादक : कमलेश्वर

● मुख्य उप-संपादक :
आनंदप्रकाश सिंह

● उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल, सुदीप.

● कार्यालय सहयोगी :
श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के.

समांतर विशेषांक : ७

'सारिका' के समांतर कहानी विशेषांक : ७ पर हमें देश के विभिन्न भागों से पाठकों के लगभग २००० पत्र प्राप्त हुए हैं. अधिकांश पत्रों में 'सारिका' के इस प्रयास की प्रशंसा करते हुए केवल अनुकूल प्रतिक्रियाएं व्यक्त की गयी हैं, जिन्हें छापना हमारे लिए जरूरी नहीं है. अनेक पाठकों ने बौद्धिक और संवेदनात्मक स्तर पर कुछ प्रश्न उठाये हैं या प्रतिकूल प्रतिक्रियाएं व्यक्त की हैं. उनमें से कुछ पत्र हम यहां दे रहे हैं, जिनमें कही गयी बातें विचारणीय हैं.

● **श्री मदनराव 'भोमली' (बेतिया, बिहार) ने बौद्धिक स्तर पर प्रश्न उठाया है :**

'सारिका' के अप्रैल-अंक को देखने के पश्चात सर्वप्रथम इच्छा यह जानने की हुई कि दलित कहते किसे हैं?. . .क्या इस देश की एक बड़ी जन-संख्या घृणा एवं सामाजिक अन्याय की शिकार नहीं है? संत्रास एवं कुंठा की जिंदगी बिताने वाले केवल हरिजन ही नहीं, अन्य भी हैं. . . अत्याचार की चक्की में पिसने वाले सभी लोगों को साथ ले कर चलने वाला साहित्य ही दलित साहित्य होने का दावा कर सकता है. जाति के आधार पर साहित्य का वर्गीकरण मात्र एक संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है. . .घटनाओं को सवर्णों एवं हरिजनों के वर्ग में बांट कर प्रस्तुत करने से कोई समस्या हल होने की नहीं. . .आवश्यकता इस बात की है कि बढ़ावा आपसी विद्वेष को नहीं, परस्पर सद्भावना को मिले. यह अंक उन सवर्णों को निस्संदेह दुख पहुंचायेगा जो हरिजनों को समाज में एकाकार करने के भगीरथ प्रयत्न में लगे हैं. ☐

● **आचार्य प्रतापादित्य (गोरखपुर, उ. प्र.) का वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास नहीं और इस कारण पिछले दस वर्षों से वह सवर्णों की घृणा के पात्र बने हुए हैं. सवर्णों द्वारा दलित वर्ग पर अत्याचार किये जाने के वह विरुद्ध हैं, किंतु साथ ही लिखते हैं :**

सवर्णों के दलित वर्ग पर अत्याचारों का जो रूप आपके पत्र में सामने आया है, उससे ऐसा लगा कि आपका पत्र तथा ऐसी विचारधारा समाज में इन समस्याओं को बढ़ावेगी, न कि घटावेगी. . .दलित वर्ग में प्रतिशोध का भाव बढ़ रहा है. वे असंमय से काम ले रहे हैं जिससे समाज में घृणा और द्वेष और मार-काट का वातावरण बढ़ रहा है. . . मैं समझता हूं कि आपमें इस पत्र को छापने का साहस नहीं होगा. ☐

● **श्री प्रमोदकुमार (इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद) ने समांतर कहानी विशेषांक : ७ में प्रकाशित कहानी 'गारवी' में प्रयुक्त एक शब्द को अश्लील बताते हुए रोष प्रकट किया है, फिर लिखा है :**

. . .आप नहीं जानते कि कहीं-कहीं तो हरिजनों ने सवर्णों को इतना सताया है कि सवर्ण बेचारे कुछ कर ही नहीं सकते. सरकार ने [redacted] इन हरिजनों को बहुत सिर चढ़ाया है. . .हरिजनों को जो सुविधाएं दी जाती हैं, उनके पीछे गरीबी को मूल कारण बताया जाता है. क्या सवर्ण सदा धनवान होता है और क्या हरिजन धनवान नहीं होता? हरिजनों को नौकरी में सुविधा क्यों? क्या यही समानता है?. . .मैं सवर्ण हूं, शायद इसलिए आप मेरा पत्र न छापें. ☐

● **श्री रविरंजन प्रसाद (हजारीबाग, बिहार) ने अपने पत्र में दो मुद्दे उठाये हैं :**

पहला यह कि दलित कौन हैं—क्या केवल हरिजन ही दलित हैं? दूसरा यह कि केवल हरिजनों के धर्म-परिवर्तन से ही यह समस्या हल होने वाली नहीं है. . . सिर्फ हरिजन ही दलित नहीं हैं. विश्व में नीग्रो, रेड इंडियन, यों कहिए, हर देश में अल्पसंख्यक दलित ही हैं. सबसे बड़ी चीज है अपने अधिकारों के लिए लड़ना. . .काश, आंबेडकर साहब कहते, मैं अपने अधिकारों को लड़ कर लूंगा. धर्म-परिवर्तन से कुछ नहीं होता. . .ईश्वर का कोई पुत्र ऊंचा नहीं, कोई नीचा नहीं. जो मनुष्यों में ऊंच-नीच मानता है, वह ईश्वर को नहीं मानता. ☐

● **श्री हरनाम सिंह (गिदड़बाहा, पंजाब) मजबी सिख (हरिजन) हैं और उनका भी यही मत है कि केवल धर्म-परिवर्तन से ही हरिजनों की समस्या हल नहीं होगी. वह लिखते हैं :**

. . .इस बात से मैं सहमत नहीं हूं कि बौद्ध बनने से इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है. . . इस प्रकार की कमोबेश समस्याएं अन्य जातियों को भी झेलनी पड़ती हैं. . .इस समस्या का वास्तविक संबंध शिक्षा और आर्थिक स्थिति से अधिक है. . .असल बात है हीन भावना का निकलना. वह केवल बौद्ध बन जाने से नहीं निकलती. इसके लिए शिक्षा के अलावा असली जरूरत है अन्य जाति के गरीब मजदूरों के साथ मिल कर आर्थिक संघर्ष करना. ☐

● **श्रीमती रजनी पोद्दार (सदर बाजार, नागपुर) सामाजिक कार्यकर्त्री हैं और अनेक वर्षों से वह हरिजन बस्तियों में काम करती आ रही हैं. 'सारिका' का अप्रैल-अंक देखने के बाद उन्होंने लिखा है:**

आपने एक दुखभरे चित्र को बड़े ही सुंदर ढंग से सामने रखा है, लेकिन इसका एक पहलू और है. शहरों में, चाहे स्कूल-कालेज हो या दफ्तर, बाजार हो या बस का सफर, हमारे इन भाइयों का मूल रूप बड़े ही गंदे ढंग से बेनकाब हो जाता है. कालेजों-स्कूलों में विद्यार्थियों में फैलने वाली अनुशासनहीनता के लिए इस वर्ग से आये छात्र बहुत हद तक जिम्मेदार हैं. कम प्रतिशत अंकों पर मिल जाने वाला प्रवेश एवं भरपूर छात्रवृत्ति इनमें से अधिकांश छात्रों को गुमराह कर रही है. . .ये अपने निरंकुश आचरण से शिष्ट समुदाय को त्रस्त कर देते हैं. . .

संस्कारहीनता, अशिक्षा और गरीबी से तो ये उबर ही न पायेंगे यदि इन्हें शराब मिलती रहेगी. . . छोटे-छोटे बच्चे चोरी, जुआ, जेबकटी आदि करने में दिल लगाते हैं. . .एक दफा श्री वियोगी हरिजी ने कहा था—हरिजनों को यदि सचमुच ऊपर उठाना है, जाति-भेद मिटाना है, तो सरकार की ओर से दी जाने वाली सारी सुविधाएं बंद कर दी जानी चाहिए. तब वे सचमुच अपने श्रम, अपनी लगन से ऊपर उठ सकेंगे. ☐

● **सुश्री अनीता सिंघी (८।७९, ईस्ट ऑफ कैलाश, नयी दिल्ली-२४) संवेदनात्मक स्तर पर लिखती हैं :**

जब से मैंने **'सारिका'** पढ़ना शुरू किया है, जीवन की कठोर वास्तविकता को समझने लगी हूं. हर अंक की कहानियों में जीवन का एक नया ही रूप देखने को मिलता है. विशेष तौर पर **'सारिका'** का अप्रैल-अंक पढ़ कर तो मानव जीवन के प्रति मन में संवेदना ही उत्पन्न होती है. समझ में नहीं आता कि अभी भी हमारे देश में हरिजनों को एक अलग ही जाति क्यों माना जाता है. ☐

● **श्री श्रीकांत पांडेय (लोकवार्ता शोध संस्थान, राबर्ट्सगंज, उ. प्र.) ने लिखा है :**

'सारिका' ने भारतीय आदिवासियों पर दो अंकों में सामग्री छाप कर जो शुरुआत की है, वह देश के तमाम लेखकों, पत्रकारों एवं पत्र-पत्रिकाओं के लिए आईना भी है और चश्मा भी. ☐

● **डा. शिवमंगल प्रसाद चौधरी (गौशाला, सतना, म. प्र.) ने सवाल उठाया है :**

धर्म के नाम पर हरिजनों को मंदिरों में जाने से रोका जाता है, कुओं पर पानी नहीं भरने दिया जाता, किंतु जब मंदिर बनवाते समय और कुआं खुदवाते समय उनसे काम लिया जाता है, तो निर्माण हो जाने पर वहां उनके जाने से वे अपवित्र कैसे हो जाते हैं? उनका उपजाया हुआ अन्न भी क्यों अपवित्र नहीं हो जाता? ☐

● **श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि (चंद्रपुर, महाराष्ट्र) ने लिखा है :**

दलित साहित्य छाप कर आपने उन करोड़ों लोगों की समस्याओं को पूरे देश के समक्ष रखा है, जो सदियों से उपेक्षित, घृणित जीवन जी रहे हैं. . .निःसंदेह उन करोड़ों दलित लोगों की शुभ कामनाएं **'सारिका'** को मिलेंगी, जो बेजबान हैं. . .प्रत्येक कहानी अपने भीतर एक दर्द लिये है, जो किसी एक व्यक्ति, एक पात्र का नहीं है, वस्तुतः करोड़ों लोगों का दुख-दर्द है. बहुत दिनों से ख्वाहिश थी कि वामन निबालकर, केशव मेश्राम, दया पवार, नामदेव लक्ष्मण ढसाल का कुछ पढ़ने को मिले. यह सुयोग भी **'सारिका'** ने ही दिया. ☐

● **श्री आशीश कुमार चौधरी (लहेरियासराय, बिहार) लिखते हैं :**

किसी भी पिछड़े समुदाय का विकास तब तक संभव नहीं होता जब तक कि वह खुद अपनी उन्नति न करे. . .मेरी समझ में धर्म-परिवर्तन से समस्याओं का कोई हल नहीं होता, बल्कि इससे नयी समस्याएं जन्म ले लेती हैं. . .लोग 'आदमी' की तरह पैदा होते हैं, बाद में उन्हें हिंदू या ऊंच-नीच का जामा पहना दिया जाता है. अच्छा हो, आज के युवा दलित नेता (साहित्यकार) उसी 'आदमी' को प्रतिष्ठित करने के प्रयास में संलग्न हो जायें. ☐

एक पाठिका का पत्र

● **सुश्री गीता गरोवर (दिल्ली–३१) लिखती हैं :**

'सारिका' एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके घायल और लहूलुहान कंधों से टपकने वाले रक्त की एक-एक बूंद सदियों से कुछ सफेदपोश आदमखोरों की कभी न मिटने वाली पाशविक प्यास की भरसक पूर्त्ति करती रही है. . .और वह आदमखोर अजगर की तरह मुंह बाये आज भी प्यासा-का-प्यासा खड़ा है. . .आज निम्न वर्ग की लड़ाई इसी अजगर के खिलाफ अपने अस्तित्व को बनाये रखने की लड़ाई है. . . **'सारिका'** ने इस निम्न वर्ग को अपने अहम् का एहसास कराया है. . .उसे अपने बारे में सोचने के लिए एक नया दृष्टिकोण दिया है. उस दिन की प्रतीक्षा है, जब यह 'अनादि बंध' टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायें और हर आम व्यक्ति को साफ हवा में सांस लेने का मौका मिले. ☐

दूर-दराज इलाकों से

● **श्री महेंद्रकुमार शर्मा (फकीराग्राम, ग्वालापारा, असम) लिखते हैं :**

. . .हिंदी-ज्ञान प्राप्त कराने के क्षेत्र में अ. रा. भा. प्र. समिति के साथ-साथ यदि किसी भी अन्य जरिये का नाम लूंगा तो वह सिर्फ **'सारिका'** ही होगी, जिसने यहां हिंदी के लेखकों को, उक्त समिति द्वारा परिचित कराने के बाद, हमारे बीच प्रिय बनाने का कार्य किया या कर रही है. . . **'सारिका'** के 'दलित' 'सामान्य जन' के विशेषांक इतने आवश्यक हैं कि वे हिंदी साहित्य के इतिहास के मोटे पन्ने बन जायेंगे. ☐

● **श्री हरि अधिकारी (चिकंमुगल, काठमांडौ, नेपाल) 'वेणी' नामक पत्रिका के संपादक हैं. उन्होंने लिखा है :**

'सारिका' के अप्रैल-अंक की सभी कहानियां भारत में विद्यमान सामाजिक विषमता का बहुत ही दर्दनाक चित्र प्रस्तुत करती हैं. इन कहानियों के संसार में ससंवेदन प्रवेश करना एक आतंक से गुजरने के समान है. लगता है, आदमी की दुरवस्था और उस पर होने वाले अत्याचार की कोई सीमा नहीं है. ☐

आज का यथार्थ : समांतर संसार (१०)

कानूनी स्वतंत्रता और कारगर स्वतंत्रता का सवाल हमारे सामने था. कानूनन जो स्वतंत्रताएं मिलती हैं, वे आदमी की कारगर स्वतंत्रताएं तभी बन सकती हैं, जब उसे अपने समाज में न्याय प्राप्त हो! न्याय का यह प्रश्न इतना उलझा हुआ है कि इसे करोड़ों अदालतें नहीं सुलझा सकतीं. असल में यह प्रश्न अदालतों का है भी नहीं. आज के आदमी के संदर्भ में हम जिस 'न्याय' की बात कर रहे हैं, वह अन्याय के विरुद्ध न्याय का प्रश्न है. वह अन्याय जो समाज-प्रणाली के विकास के साथ-साथ पैदा होता है. न्याय के लिए उठाये गये कदमों में निहित अंतर्विरोधों के कारण जो कालांतर में अन्याय में तबदील हो जाता है, या कर दिया जाता है. जो समाज में पनपते मूल्यों और आदर्शों के कारण या उनकी खामियों की वजह से अन्याय में बदल जाता है. जब भी हम आम आदमी की कारगर स्वतंत्रता का सवाल अपने सामने रखेंगे, और उसकी घटती-बढ़ती औकात का पता लगाना चाहेंगे, तो सीधे-सीधे समकालीन मूल्यों और आदर्शों की बात उठेगी ही. असल में ये मूल्य और आदर्श भी सार्वजनिक और प्राइवेट सेक्टर की तरह विभाजित हो जाते हैं. (यहां व्यक्तिगत मूल्यों और आदर्शों का प्रश्न नहीं है.) एक मूल्य और आदर्श वे हैं जो समाज अपने लिए बनाता है और दूसरे मूल्यादर्श वे हैं, जो समाज अपनाता है. इनमें से भी एक वे हैं, जो वह अमल में लाता है और दूसरे वे हैं, जिन्हें वह सिर्फ नकाब के रूप में इस्तेमाल करता है. मूल्यादर्शों की कोई साफ-सुथरी तस्वीर जो समाज पेश नहीं कर पाता, वह अंततः अन्याय की यथास्थिति में जीने के लिए स्वयं बाध्य हो जाता है. हमारा समाज कानूनी स्वतंत्रता का न्याय-पक्ष तो पेश कर सकता है, पर आदमी की कारगर स्वतंत्रता के न्याय पक्ष की कोई साफ तस्वीर सामने नहीं रख पाता. इसका कारण यही है कि बनाये हुए, अपनाये हुए, अमल में लाये हुए और नकाब की तरह इस्तेमाल किये हुए मूल्यादर्शों के स्वार्थ हमेशा टकराते रहते हैं. यह टकराहट वर्ग-स्वार्थों के कारण भी होती है और व्यक्ति-स्वार्थों के कारण भी. और इस टकराहट में 'न्याय' रुका रह जाता है. क्योंकि न्याय की सही व्याख्या होते ही टकराने वाले स्वार्थों में से एक पक्ष का स्वार्थ निश्चय ही अन्याय घोषित हो जाता है. 'न्याय' को रोक सकने के लिए ही यह टकराहट उन स्वार्थी वर्गों द्वारा पैदा की जाती है जो बनाये हुए मूल्यादर्शों को सिर्फ नकाब के रूप में इस्तेमाल करते हैं. कितनी हास्यास्पद स्थिति तब सामने आती है जब 'न्याय' को रोक रखने के लिए ही न्याय का सवाल उठाया जाता है! जब दूसरे की स्वतंत्रता को अवरुद्ध करने वालों की स्वतंत्रता को कायम रख सकने के लिए 'स्वतंत्रता' का मसला सामने लाया जाता है! यानी हर उचित सवाल को उसके समय और संदर्भ से अलग करके 'आधारभूत मौलिक प्रश्न' के रूप में उठा कर बेकार कर दिया जाता है, क्योंकि हमारी भारतीय आत्मा इस उक्ति को ले कर कराहने लगती है कि न्याय के दौरान किसी के साथ अन्याय न हो जाये! वही भारतीय आत्मा इस बात के लिए कभी परेशान नहीं होती कि अन्याय के दौरान किसी को न्याय मिल जाये!

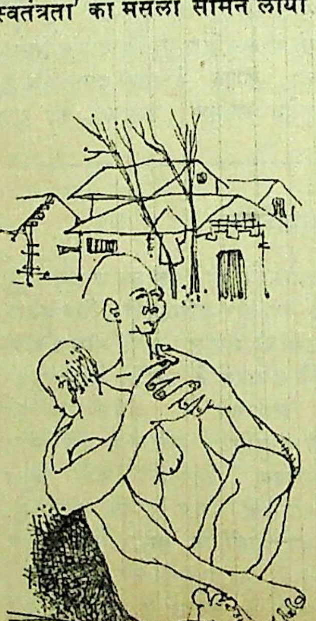

न्याय की सही व्याख्या को रोक रखने या स्थगित किये रहने के लिए सब हथियार इस्तेमाल किये जाते हैं–धर्म, नीति, दर्शन, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, और पुरातन संस्कार. कुल मिला कर यदि बात को संक्षेप में रखा जाये तो यही कि संस्कृति का इस्तेमाल कैसे किया जाये और न्याय की व्याख्या न होने देने के लिए उसे कैसे सांस्कृतिक जामा पहना कर रखा जाये, यह कोशिश लगातार होती रहती है, उस वर्ग द्वारा जो अपने लिए राजनीति के प्रश्न का राजनीतिक उत्तर देता है, आर्थिक प्रश्न का आर्थिक उत्तर देता है और सामाजिक प्रश्न का सामाजिक उत्तर. वह प्रश्नों को (अपने लिए) गड्ड-मड्ड नहीं होने देता. उन्हें सांस्कृतिक जामा नहीं पहनाता. वह वर्ग तब यह नहीं सोचता कि पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का मुनाफे का मूलाधार सांस्कृतिक रूप से कितना जघन्य है, कि व्यक्तिगत संपत्ति का सवाल सांस्कृतिक रूप से कितना ओछा और अन्याय-पूर्ण है, कि सामाजिक विषमता का प्रश्न सांस्कृतिक रूप से कितना क्रूर और अमानवीय है!

पर जब न्याय मांगने और चाहने वाला औसत आदमी अपनी टूटी अर्थ-व्यवस्था, भूख की संपत्ति और सामाजिक अन्याय का सवाल उठाता है तो 'संस्कृति' का बवाल खड़ा किया जाता है. कि अपनी

आर्थिक स्थिति को बदलने के लिए क्या असांस्कृतिक हो जाना जरूरी है? भूख मिटाने के लिए असांस्कृतिक तरीकों को अपनाना क्या लाजिमी है? सामाजिक अन्याय के प्रतिकार में अपनी तहजीब छोड़ देना क्या जरूरी है? यही वह महीन साजिश है, जो विषमता-पीड़ित और शोषित वर्ग के सीधे-सपाट, साफ और जरूरी प्रश्नों को सांस्कृतिक प्रश्नों में बदल देती है और आर्थिक प्रश्नों के आर्थिक उत्तर, राजनीतिक प्रश्नों के राजनीतिक उत्तर और सामाजिक प्रश्नों के सामाजिक उत्तर देने से रोकती है. संस्कृति के नाम पर पीड़ित आदमी की आत्मा को उकसा कर उसकी मानवीयता का शोषण भी अपने हितों के लिए बड़ी कुटिलता से कर लेती है.

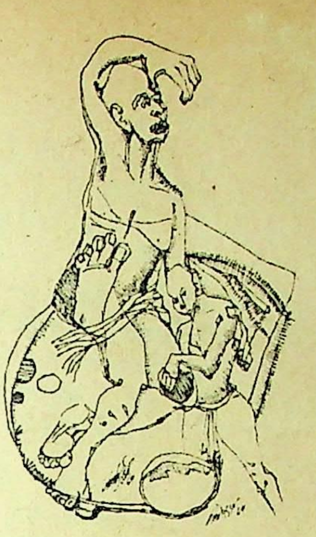

ऐसी उलझी हुई स्थिति में, जहां हम अन्याय के विरुद्ध अन्यायी नहीं हो सकते, आम आदमी को बर्बर बना देने की सीमा तक नहीं ले जा सकते, उसके भीतर के शुभ और सौंदर्य को मार नहीं सकते, उसकी करुणा को सुखा देने की गलत भूमिका नहीं निभा सकते, उसकी संवेदनाओं को अमानवीय नहीं होने दे सकते—यानी उसकी सदियों की अर्जित मनुष्यता की महान संपदा को नष्ट नहीं होने दे सकते, तो फिर उसके लिए न्याय की प्राप्ति का कौन-सा जरिया अख्तियार कर सकते हैं? क्या साहित्य सिर्फ शोषित और पीड़ित की पक्षधरता का झंडा बलंद करके सुविधावादी नकाबपोश ही बना रहेगा? या नकाबपोशों के काम आता रहेगा? अगर आज का साहित्य इस सुविधावाद से निकलना चाहता है और न्याय के इस विराट संघर्ष में अपनी भूमिका सचमुच निभाना चाहता है और इस संघर्ष को निर्णायक सीमांतों तक ले जाना चाहता है, तो उसका काम बहुत जटिल और कठिन हो जाता है. . .क्योंकि साहित्यिक, रचनात्मकता की रक्षा करना भी 'मनुष्यता की महान संपदा' को ही बचाना है और उसे बचाते हुए भी वह निर्णायक संघर्ष में शामिल हो सके, यह आसान काम नहीं है.

तो क्या यह मान लिया जाये कि साहित्य की भूमिका एक जगह जा कर (ऐसे संघर्ष के लिए) समाप्त हो जाती है? उसके आगे वह कारगर नहीं हो सकता! कि मनुष्य के लिए न्याय की प्राप्ति में वह 'जहां तक जो हो सकता है' करके, अपनी राह लग जाता है? यह दृष्टिकोण भी असल में साहित्य के अपने मूल्यादर्शों की देन है, जिन्हें साहित्य अपने लिए बनाता है या बना चुका है. 'इससे ज्यादा साहित्य कर ही क्या सकता है' वाली मानसिकता रचना को वहीं तक ले जा सकती है, जहां तक उसके अपने स्थापित मूल्यादर्श साथ देते हैं. पर साहित्य के इन्हीं मूल्यादर्शों में यह जरूरी बात भी छिपी है कि ये मनुष्य ने ही बनाये थे, मनुष्य ने ही साहित्य की एक भूमिका अपने लिए निर्धारित की थी और आज यही भूमिका आज के मनुष्य के लिए फिर निर्धारित की जा सकती है!

भूमिका-निर्धारण का यह सवाल कोई नया नहीं है. सच तो यह है कि समकालीन साहित्य ने अपनी रचनात्मक गरिमा से यह प्रतीति पहले ही दे दी है कि यह भूमिका अब बहुत हद तक बदल गयी है. कि आज का साहित्य अंधी करुणा और विवेकहीन संवेदना का वाहक नहीं है. पर संघर्षशील समकालीन साहित्य इस धारणा से अभी तक अपने को पूरी तरह नहीं तोड़ पाया है कि वह मात्र एक सांस्कृतिक माध्यम ही है! यह धारणा ही उसे अटकाती है.

आज की उसकी बदली हुई भूमिका उसे मात्र सांस्कृतिक माध्यम के रूप में अब नहीं रहने दे सकती, बल्कि उसे 'मनुष्य का माध्यम' बनने के लिए तत्पर कर चुकी है.

और मनुष्य का माध्यम बनते ही मनुष्यता के विकास की वैज्ञानिक समझ यह रास्ता साफ कर देने में देर नहीं लगाती कि आदमी को उसका न्याय और उसकी सांस्कृतिक स्वतंत्रता तब तक नहीं मिलती, जब तक कि वह निर्णायक राजनीतिक विजय हासिल नहीं कर लेता!

इसलिए न्याय का सवाल अब सिर्फ न्याय का ही सवाल नहीं है. कारगर स्वतंत्रता का प्रश्न और आदमी की औकात का सवाल भी मात्र आर्थिक या सांस्कृतिक प्रश्न नहीं है—ये सब सवाल आज के राजनीतिक सवाल हैं और रचनात्मक भी हैं, क्योंकि यदि आज की रचना मनुष्य का माध्यम नहीं है, तो वह रचनात्मक भी नहीं है और तब वह स्वतंत्रता या न्याय का झंडा तो बुलंद कर सकती है, पर भारतीय आत्मा को इस बात के लिए कभी परेशान या आकुल नहीं कर सकती कि अन्याय के इस चौतरफा दौर में किसी को न्याय मिल जाये! वह इसी बात से पीड़ित रहेगी कि न्याय के दौरान किसी के साथ अन्याय न हो जाये! और यह सोच ही न्याय को न्याय के नाम पर रोकती और काटती है.

कमलेश्वर

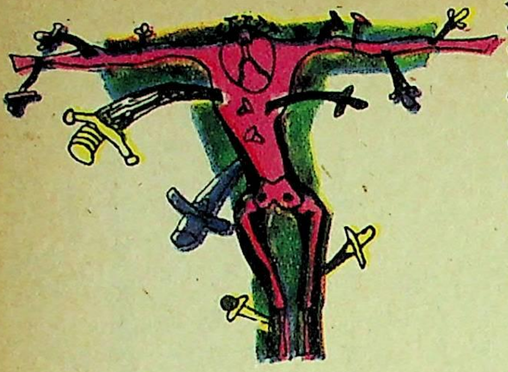

फैसला • एरनांदेस

एक राज्य में किसी व्यक्ति के मन में यह विचार आया कि लोकमत द्वारा यह पता लगाया जाये कि भयानक खतरे की अवस्था में किसको बचाना आवश्यक है – राज्य के राजा को, या वहां के सबसे छोटे बालक को.

एक मजदूर का विचार था कि छोटे बालक को बचाया जाना चाहिए. भविष्य में वह उसके काम को संभालेगा. वृद्ध सैनिक का विचार था कि बालक को ही बचाया जाये, जिससे वह वीर सेनानी बन कर देश की रक्षा कर सके. कलाकार ने कहा––मैं भी बालक की रक्षा करूंगा क्योंकि वह कला से जीवन को सुंदर बना सकता है.

धार्मिक नेता ने पहले तो इस प्रश्न को टालने की कोशिश की, परंतु अंत में कहा–ईश्वर ही इस बात का फैसला कर सकता है.

अंत में जब धनी व्यापारी के विचार पूछे गये तो उसने तुरंत कहा––मैं तो निःसंदेह राजा को ही बचाऊंगा. उसकी सत्ता, अनुभव और न्याय की हमें बहुत आवश्यकता है. और उसने अपने मन में सोचा, बालक से मुझे क्या मिलना है? ☐

(रूपांतर : सुजान सिंह पन्नू)

कालपात्र

• शाहिद नकवी

मेरा विचार है- [redacted] कालपात्र में समय-समय के महत्वपूर्ण कागजात के अतिरिक्त समय-समय की महत्वपूर्ण वस्तुएं भी सुरक्षित रखनी चाहिए ताकि भावी संतानें जान सकें कि हमारा देश औद्योगिक प्रगति की किन-किन मंजिलों से गुजरा है. एक सामाजिक विचारक ने अपने मित्र से कहा.

––हां! हां! आप बिलकुल ठीक कहते हैं––कम-से-कम ऐसी वस्तुओं का संग्रह तो सुरक्षित करना ही चाहिए जिनके विषय में निश्चित नहीं है कि ये कब लुप्त हो जायेंगी. विचारक के मित्र ने कहा.

––अरे दोस्त, तब तो आज की दैनिक उपयोग की सारी चीजें ही कालपात्र में रखनी पड़ेंगी––इनके विषय में भी तो यह निश्चित नहीं है कि ये कब लुप्त हो जायेंगी, पहले विचारक ने कहा.

––और नहीं तो कम-से-कम गेहूं, चावल और दाल के चंद दाने, डालडा का एक डिब्बा, मिट्टी के तेल का एक पीपा. नहाने और कपड़ा धोने के साबुन की कुछ बट्टियां तथा सफेद कागज के कुछ टुकड़े तो कालपात्र में सुरक्षित करके रखवा ही देने चाहिए ताकि आगे आने वाली संतानें गर्व कर सकें कि हमारे देश में कभी गेहूं, चावल, दाल एवं साबुन जैसी अद्भुत चीजें भी आम जनता को देखने को मिल जाती थीं. यद्यपि इनके लिए उसे काफी समय एवं बेतहाशा धन खर्च करना पड़ता था. उसके मित्र ने कहा, जो स्वयं भी एक विचारक था. ☐

• • • • • • • • • • • • • • • • • • •

जलने का रहस्य • मधु पुरोहित

एक प्रसिद्ध नेता का शव जल ही नहीं रहा था. मिट्टी का तेल, घी, पेट्रोल, सबका प्रयोग व्यर्थ हो गया. आखिर में एक पुराने जानकार ने स्वयं आगे बढ़ कर इस कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया.

वह नेता के शव के पास गया और उसके कान में कुछ फुस-फुसाया, फुस-फुसा कर जैसे ही वह अलग हुआ, नेता का शव भभक उठा और कुछ ही मिनटों में जल-भुन कर खाक हो गया.

यह चमत्कार देख कर उनकी शव-यात्रा में आये हुए लोगों ने आश्चर्य के मारे अपने कपड़े-लत्ते तक फाड़ डाले. जब उस पुराने जानकार से जोर दे कर शव के एकाएक जल-भुन कर खाक हो जाने का रहस्य पूछा गया तो उसने बहुत ही शांत भाव से जो भी जवाब दिया वह इस प्रकार है––

भई, मैंने तो उनके कान में सिर्फ इतना कहा कि गुरु! तुमने अपने घोर प्रयत्नों से जिसे मुख्य मंत्री बनवाया था, उसीने तुम्हारे खिलाफ जांच आयोग बिठा दिया है. ☐

जो भी कहूंगा

• कुमार अशोक

अदालत में चल रहे एक केस के सिलसिले में सरकारी वकील को विपक्ष के एक गवाह पर यह शक था कि वह झूठ बोल रहा है.

अगली सुनवाई के समय जब वह गवाह साक्षी कटघरे में आ कर खड़ा हुआ और उसे सच बोलने के लिए शपथ दिलायी जाने लगी, तभी अदालत से इजाजत ले कर सरकारी वकील ने उसके आगे एक छोटी, पतली-सी पुस्तिका बढ़ाते हुए कहा——आप इस पर हाथ रख कर शपथ लीजिए कि जो भी कहूंगा सच कहूंगा और सच के सिवा कुछ नहीं कहूंगा.

और सचमुच इस बार उस गवाह ने सब कुछ सच-सच ही कहा तथा अपने पिछले सारे बयान बदल दिये.

इस परिवर्तन पर सबको बहुत आश्चर्य हुआ. . आखिर वह ऐसी कौन-सी वस्तु थी कि जिसकी शपथ ने उस गवाह को सच बोलने पर मजबूर कर दिया.

वह उस गवाह का राशनकार्ड था !

……

शिकारी और भोले कबूतर

• हरिकृष्ण तैलंग

शिकारी ने जाल फैलाया. चार कबूतर उसमें आ फंसे. ओट में छिपा शिकारी खुश होता हुआ उनके पास आया. उसने कबूतरों की गर्दन मरोड़ने के लिए हाथ फैलाया ही था कि कबुतरों ने गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की——महाशय, हम गरीब और निरीह पक्षी हैं. हमारे छोटे-छोटे बच्चे हैं. यदि आप हमें मार डालेंगे तो वे नन्हें-नन्हें बेपर के बच्चे बेसहारा हो जावेंगे. उनका पालन-पोषण फिर कौन करेगा? मेहरबानी करके हमें छोड़ दें. आपको आपके बाल बच्चों की कसम है.

शिकारी का दिल यह सुन कर भर आया. पर दूसरे ही क्षण उसकी जीभ पर कबूतरों के स्वादिष्ट मांस का जायका तैर आया. तब भी वह बाल-बच्चों की कसम उतारना चाहता था. एक क्षण सोच कर उसने कबूतरों से कहा——मुझे तुम लोगों पर दया आ गयी है. अब मैं तुम लोगों को नहीं मारूंगा. तुम लोगों को उड़ जाने की अब पूरी आजादी है.

कबूतर बड़े खुश हुए. सच्चे दिल से उन्होंने शिकारी को दुआएं दीं. फिर उड़ जाने की कोशिश करने लगे. पर जाल में पैर फंसे होने के कारण बेचारे वहीं फड़फड़ा कर रह जाते. जी-तोड़ मेहनत और भूख-प्यास ने उनका शरीर तोड़ डाला. कुछ घंटों बाद वे स्वयं मर गये.

शाम को शिकारी फिर आया. कबूतर उठाये और खुश होता हुआ घर लौट गया.

शिकारी जाल अब भी फैलाता है. पर जाल में फंसे हुए भोले कबूतरों को उड़ जाने की आजादी देकर वह दयावान कहलाना सीख गया है. □

भविष्य कथा

• विनयकुमार श्रीवास्तव

साथियो ! आज मैं आप लोगों को अनोखी कथा सुनाने जा रहा हुं. अनोखी इसलिए कि कथाएं हमेशा भूतकाल की होती हैं लेकिन यह कथा भविष्य काल की है. हां तो सुनिए.

आज से सैकड़ों या हजारों साल बाद जब दुनिया भूकंप से नष्ट हो जायेगी और एक नयी सृष्टि की रचना होगी, एक नया संसार बनेगा. तब किसी गांव में कुछ लड़के खेल रहे होंगे. उनमें से एक लड़का किसी मिट्टी के टीले पर जा बैठेगा और उस पर बैठ कर वह जो कहेगा गलत कहेगा व झूठ बोलेगा. पहले तो लोग ध्यान न देंगे लेकिन जब यह घटना हर लड़के के साथ घटेगी तब उनका ध्यान उस टीले पर जायेगा और खुद वे लोग उस पर बैठ कर इस बात की पुष्टि कर लेंगे कि इस पर बैठने से आदमी सच बोल ही नहीं सकता जब बोलेगा तो झूठ ही बोलेगा. तब उत्सुकतावश लोग उस मिट्टी के टीले को खोदेंगे और उसके नीचे पायेंगे एक लोहे का बर्तन. काफी परिश्रम के बाद वे लोग जान पायेंगे कि यह किसी जमाने का काल-पात्र है. □

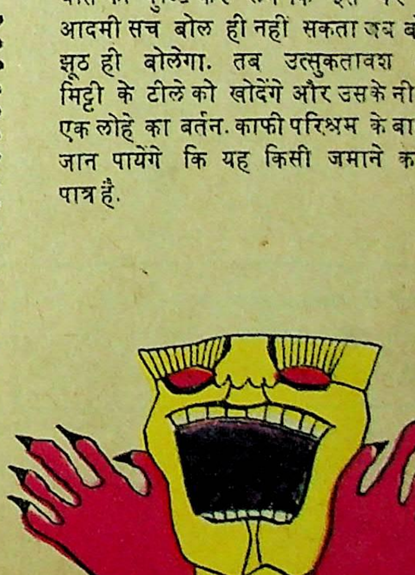

BRIDAL FORM®

Brassiers
Girdle
Abdominal
Belts

GIRDLE FOR
REDUCING STOMACH
& HIPS USEFUL
AFTER MATERNITY

BRASSIERES BY
Bridal Form
Regd.

ब्राइडल फॉर्म

ब्रेसियर्स ● गर्डल
एबडॉमिनल बेल्ट

V.P.P. order executed
send your Waist
Measurement with order

Girdle Panty Rs. 49.00
Girdle Rollon Rs. 47.00
Abdominal Belt Rs. 35.00

निर्माता :
के आर. विट्ठल १३, किचन गार्डन लेन, मंगल दास मार्केट के समीप
बम्बई–४००००२. फोन : ३१७९११

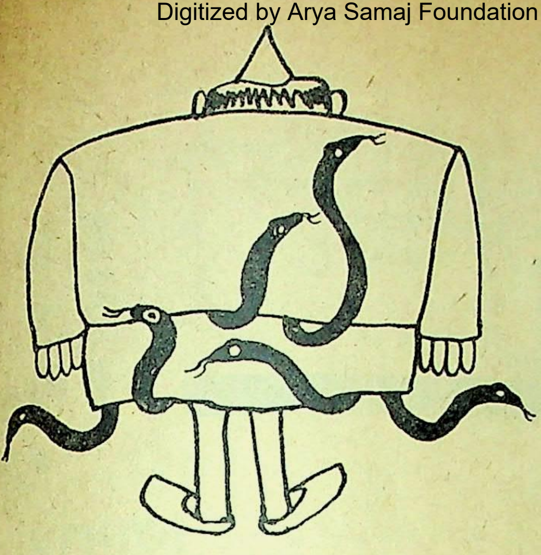

कूटनीति • प्रेम सेठिया

राम चौदह वर्ष कठिन वनवास सहने के बाद सपत्नीक, भाई लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटे. भरत ने भव्य पैमाने पर सत्ता हस्तांतरण की योजना बनायी तथा संपूर्ण तैय्यारी से राम की आगवानी की. राम बेहद प्रसन्न थे.

ऐन शपथविधि के पहले विरोधियों ने एक स्थानीय धोबी नेता के माध्यम से विद्रोह खड़ा कराया तथा सीता पर लांछन लगाते हुए राम से 'स्टेटमेंट' मांगा. राम ने एक विज्ञाप्ति में इसका खंडन किया तथा इसे विरोधियों का राजनीतिक स्टंट तथा [redacted] एजेंटों की करतूत बतायी. लेकिन जनता विरोध पर डटी रही. राम को शपथ तब लेने दी जायेगी जब वह सीता को त्याग दें.

राम चिंतित थे. सीता छोड़ें तो कुर्सी मिले. चिंतित राम की ओर देखते हुए लक्ष्मण ने यों कहा-- हे पितृतुल्य भ्राता! चिंतित न हों. कूटनीति इसका हल देती है. मुख्य बात कुर्सी बचाना है. यथा सीता का त्याग जरूरी है. अतः सीता को देशनिकाला दे स्विटजरलैंड भेज दीजिए. [redacted] कोष से धन निकाल स्विस बैंक में जमा कीजिए. सीताजी मजे में स्विटजरलैंड रहेंगी. महीने में २५ दिन का दौरा आप निकाल सकते हैं. यों आपकी नैतिक तथा राजनीतिक दोनों विजय हैं.

राम ने लक्ष्मण को गले लगा लिया तथा सीता को तुरंत वायुयान में बैठा देशनिकाला दिया.

राम ने बड़ी चिंतित तथा दुखी मुद्रा में सिंहासन ग्रहण किया. लक्ष्मण पास बैठे मुसकरा रहे थे. प्रजा ने राम की न्यायप्रियता पर धन्य-धन्य कहा.

नोट--इसी कथा का विवरण बाद में तुलसीदास ने अपने ढंग से रामायण में दिया. ☐

वीर • हबीब कैफी

मोहल्लेवालों को यकीन नहीं आ रहा था. बात ही कुछ ऐसी थी कि लोगों ने इसे महज अफवाह समझ लिया. लेकिन यही अफवाह जब हकीकत की सूरत में सब जगह फैल गयी तो सबने इसकी सच्चाई को अपनी आंखों से देख लेना उचित समझा. विश्वास कर लेने की गरज से लोग घरों से निकल आये थे.

और आखिर वह वीर नजर आ ही गया. सबने अपनी नंगी आंखों से एक ठोस सच की तरह उसे देखा. लोगों की आंखों में प्रशंसा थी. औरतों को आश्चर्य हो रहा था था. कुमारियां उसे अपने दिल में जगह देने के लिए तैयार हो गयी थीं. युवकों को उससे ईर्ष्या हो रही थी. वृद्ध उसे शाबाशी दे रहे थे. बच्चे बड़े हो कर उसके पदचिन्हों पर चलने का संकल्प कर रहे थे. और वह--सब से बेपरवाह-सा अपने घर की तरफ बढ़ रहा था.

वास्तव में वह पसीने में शराबोर बोझ से दबा जा रहा था. उस वीर के एक कंधे से शक्कर का थैला लटक रहा था. दूसरे कंधे से लटके थैले में अनाज, साबुन और वनस्पति तेल का छोटा टिन था. एक हाथ में वह घासलेट का भरा हुआ टिन थामे हुए था. दूसरे हाथ में कोयले का गट्ठर था. ☐

• • •

चतुर अर्जुन • प्रेम सेठिया

भीष्म पितामह युद्धस्थल में बाणशैय्या पर अंतिम सांसें गिन रहे थे. दिनभर की घोर गर्मी के कारण पितामह का गला खुश्क हो गया था. कराहते हुए उन्होंने पानी मांगा. कौरव, पांडव रत्नजड़ित स्वर्णकलश में पानी ले आये. पितामह ने निराशा तथा दुखः में इंकार करते हुए आंखें मूंद लीं; और अर्जुन को आज्ञा दी. अर्जुन ने तुरंत बाण जमीन में मारकर जलधारा हाजिर कर दी.

अगले दिन कारपोरेशन ने अर्जुन के ऊपर पाइप लाइन फोड़ने के जुर्म में जुर्माना कर दिया.

उपरोक्त ऐतिहासिक कथा का उपयोग कोका कोला कंपनी ने विज्ञापन के बतौर यूं किया--

'पितामह बाणशैय्या पर पड़े सूर्य अस्त होने का इंतजार कर रहे थे. दिनभर की गर्मी से त्रस्त, पितामह ने कराहते हुए, उपस्थित लोगों से पानी मांगा. सब लोग दौड़ कर स्वर्णकलशों में पानी ले आये पर पितामह ने इंकार कर दिया. तभी अर्जुन मुसकराते हुए वहां से चल दिये.

कुछ क्षणों बाद ही अर्जुन कोका कोला की बाटल लिये वहां आये. भीष्म पितामह ने अर्जुन को आशीर्वाद दे 'कोक' पिया और नश्वर शरीर त्याग दिया. सभी लोगों ने अर्जुन की ओर देख धन्य-धन्य कहा. ☐

पांच लघुकथाएं

● मनीषराय यादव

सिफारिश

महोदय के बंगले पर मिलने वालों का लंबा 'क्यू' लगा हुआ था. उनका चपरासी सिफारिशी पत्रों के आधार पर लोगों को मिलने की अनुमति दे रहा था. एक व्यक्ति क्रम तोड़ कर ंदर आ गया. चपरासी ने कड़कदार आवाज में पूछा—सिफारिशी पत्र लाये हो?

उस व्यक्ति ने 'हां' भरी और एक बंद लिफाफा चपरासी को पकड़ा दिया.

—किसका पत्र है?

—रिजर्व बैंक के गवर्नर साब का.

चपरासी की मुद्रा बदल गयी—आप अंदर जाइए, हुजूर. ☐

• • • • • • • • • • • • • •

परंपरा

एक नवयुवक की नियुक्ति खाद्य अधिकारी के पद पर हुई. पहले ही दिन उसके समक्ष एक ग्रामीण ने १० बोरी सीमेंट के लिए आवेदन पत्र प्रस्तुत किया. जिसमें उस कार्यालय की परंपरा अनुसार १० रुपये का नोट नत्थी था. नोट देख कर नये खाद्य अधिकारी आग बगूला हो गये. शांत होने पर जब वे उस ग्रामीण को निःशुल्क परमिट, नोट सहित देने लगे तो उसने परमिट लेने के इंकार कर दिया.खाद्य अधिकारी ने कारण पूछा तो ग्रामीण ने उत्तर दिया—साब, आप अकेले के लिए मैं परंपरा तोड़ कर, पूरे 'स्टाफ' से बुराई मोल नहीं ले सकता. ☐

त्यागपत्र

सचिव की कानूनी अड़ंगेबाजी से मंत्री महोदय परेशान हो चुके थे. उनकी 'गरीबी हटाओ' योजना सफल नहीं हो पा रही थी. उन्होंने सचिव का विभाग बदलने के लिए बहुत प्रयत्न किये परंतु असफल रहे. अंत में उन्होंने मुख्यमंत्री महोदय को इस्तीफा भेजते हुए लिखा. 'वे अपने सचिव की हठधर्मी के कारण इस्तीफा दे रहे हैं. शासकीय योजनाओं के प्रति इनकी कोई दिलचस्पी नहीं है. न ये गरीबी हटाते हैं और न हटाने देते हैं.

मुख्य मंत्री ने तत्काल इस्तीफा नामंजूर कर सचिव का विभाग बदल दिया. ☐

• • • • • • • • • • • • • •

प्रायश्चित

एक ग्रामीण पहली बार अदालत में गवाही देने आया. उसका क्रम आने से पहले पांच-दस गवाहों के बयान उसके सामने हुए,लोग आते सच बोलने की कसम लेते और वकील के सिखाये अनुसार बयान दे कर चले जाते. ग्रामीण की बारी आने पर जब उसे कसम दिलायी जाने लगी तो उसने कसम लेने से इंकार कर दिया. न्यायाधीश द्वारा कारण पूछे जाने पर उसने भोलेपन से कहा—हुजूर, लोगों ने 'कसम ले कर वकील साव' के कहे अनुसार झूठे बयान दिये हैं. मैं सच बोलना चाहता हूं. इसलिए कसम खाने की जरूरत नहीं समझता.

पर न्यायालय के नियमानुसार उसे कामस लेनी पड़ी. इसलिए उसने मजबूर हो कर वकील के कहे अनुसार बयान दिये और घर जा कर प्रायश्चित के लिए एक दिन का उपवास किया. ☐

• • • • • • • • • • • • • •

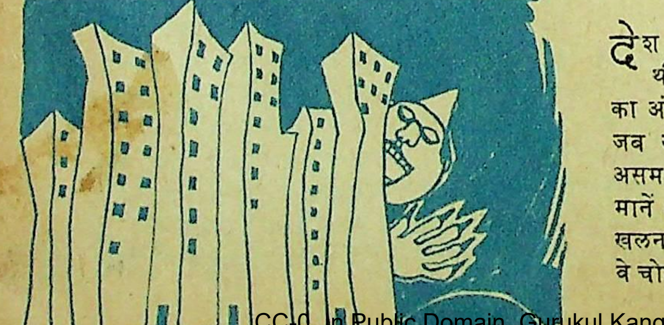

प्रशिक्षण

देश प्रेम से ओत प्रोत फिल्म की सूटिंग चल रही थी.निर्देशक बार बार खलनायक को अभिनय का अंश समझा रहे थे. लाख प्रयत्नों के बावजूद जब खलनायक निर्देशानुसार अभिनय करने में असमर्थ रहे तो निर्देशक ने कहा—मेरी सलाह मानें तो आप किसी नेता से प्रशिक्षण प्राप्त करें. खलनायक ने नेक सलाह मान ली और आज वे चोटी के खलनायक हैं. ☐

बूढ़ों की जरूरत

बूढ़े ने अपनी बूढ़ी पत्नी से कहा कि उसे कुछ रुपयों की जरूरत है. बुढ़िया ने अपने बड़े बेटे से कहा कि उसके बूढ़े पिता को कुछ रुपयों की जरूरत है. बड़े बेटे ने अपनी पत्नी से कहा कि उसकी मां कह रही है कि उसके पिता को रुपयों की आवश्यकता है. जवान बहू ने अपनी पड़ोसिन को धीरे से कहा कि बूढ़ों को रुपयों की क्या जरूरत ? □

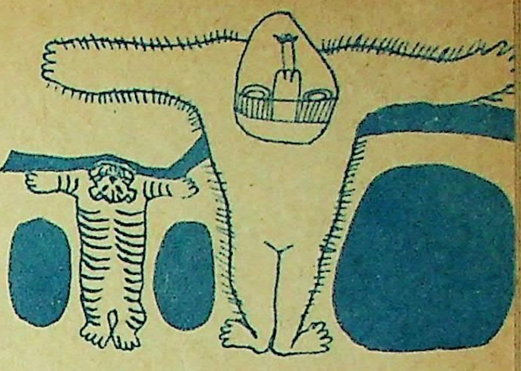

……

चार लघुकथाएं

● सूर्यनारायण रणसुभे

क्लॉक रूम

एक मनहूस रात में मैंने एक मनहूस सपना देखा. सपने में मैंने अपने आपको एक ऐसे नगर के बीच पाया जहां चारों ओर भीड़-ही-भीड़ थी. किंतु सभी खामोश थे. सभी यंत्रवत्! मैंने कई से बातचीत करने की चेष्टा की. किंतु सब व्यर्थ! परेशान हो कर मैं इधर-उधर भटकने लगा. अंत में मैं एक बड़े भवन के पास आया. उस विशाल भवन के अंदर के कमरे में मैं जैसे ही गया आश्चर्य से भर गया. वहां पर अनेक हृदय लटक रहे थे. कुछ हृदयों को कांच के बर्तनों में रखा गया था, और कुछ यूं ही लटक रहे थे. वहां पर काम करने वाले सभी लोग व्यस्त थे. हृदयों को देखते-देखते शाम हो गयी. थक कर मैं बाहर आया. देखा—एक लंबी कतार वहां पर लगी है. बहुत ही कोशिश करने के बाद पता चला कि उस नगर के सभी लोग रोज सुबह अपने-अपने हृदय को निकाल कर इस भवन के अंदर रख कर कामकाज को चले जाते हैं. और शाम को अपने घर वापस जाते समय फिर उसे ले जाते हैं. उस नगर का यही नियम था. वहां पर रहने वाले प्रत्येक को ऐसा ही करना पड़ता था. इस स्थिति से मैं घबरा गया. उस नगर से दूर बहुत दूर मैं भाग जाना चाह रहा था. किंतु व्यर्थ--सभी व्यर्थ!! क्योंकि उस नगर के दरवाजे चारों ओर से बंद थे. और मैं उसमें बंदिस्त था हां बंदिस्त! □

……

जीने की स्थिति

बकरे ने गधे से कहा--तुम क्यों जीते हो! तुम्हारा पेट बहुत ही बड़ा है, मेरा बहुत छोटा? तुम जीना छोड़ दो. गधे ने एक घोड़े से कहा --यार, तुम क्यों जीते हो? तुम्हारा पेट मुझसे बड़ा है. जीना छोड़ दो, मैं सुखी रहूंगा. घोड़े को यह प्रश्न ठीक लगा किंतु उसने एक हाथी से कहा-- तुम क्यों जीते हो, जीना छोड़ दो. तुम्हारा पेट मुझसे बहुत बड़ा है. मैं सुखी हो जाऊंगा.

हाथी ने एक दिन एक शेर से कहा--तुम क्यों जीते हो ? तुम बहुत ही क्रूर हो. जीना छोड़ दो. मुझ जैसे सुखी हो जायेंगे. शेर ने क्षणभर सोचा, फिर हाथी पर आक्रमण कर उसके मांस को चाव से खाते हुए उसने मन-ही मन कहा– समझा तुमने, मैं क्यों जीता हूं ? □

चरित्र और अनीति

एक दिन चरित्र अनीति के पास उदास चेहरा ले कर गया. उसने कहा--अनीति बहन! अब तुम्हारी यह हुकूमत मैं देख नहीं सकता. मैं जहां भी जाना चाहता हूं, वहां तुम आ जाती हो. मुझे कहीं पर भी तुम रहने नहीं देती. अब बताओ मेरा क्या होगा ?

अनीति ने उलटे चरित्र से ही शिकायत करते हुए कहा--तुम भी बड़े अजीब हो चरित्र! रहती तो मैं सभी के पास हूं. किंतु नाम तो तुम्हारा ही होता है. निवास मेरा किंतु गुणगान तुम्हारा! बताओ अब मैं क्या करूं?

चरित्र ने सिसकियां भरते हुए कहा--मेरे न रहते हुए भी नाम तुम्हारा होता है. दुःख तो इस बात का है कि जहां मैं रहता हूं. वहां भी मेरा नाम नहीं रहता. □

स्वातंत्र्य • विकास गौतम

एक दिन विष्णुजी ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी नारद को बुलाया और कहने लगे--नारदजी, आप पृथ्वी पर जाइए और देखिए कि कौन-कौन प्राणी दुःखी है !

--आपका जो हुकुम! कह कर नारद पृथ्वी पर उतर आये और रिपोर्ट ले कर विष्णुजी के यहां पहुंचे. लिखा था--पृथ्वी के सब प्राणी सुखी हैं किंतु अकेले सूअर को बहुत तकलीफ है.

उसके बाद विष्णुजी बोले--नारदजी, उस सूअर का जल्दी ही पृथ्वी से उद्धार करके यहां लाइए!

--जी सरकार! नारद फिर पृथ्वी पर आये और सूअर के पास जा कर कहने लगे--ऐ सूअर, देख तुझे यहां पर भारी दुःख है. ईश्वर ने तुझ पर कृपा करके स्वर्ग में स्थान दे दिया है. चल अब !

सूअर बोला--जैसा मैं पृथ्वी में करता हूं, उसी तरह वहां पर भी मैं कर सकता हूं?

--अभोज्य खाद्य खाना, इस तरह के कीचड़ पर रहना तो नहीं मिलेगा. स्वर्ग है ना इसलिए.

सूअर ने कहा--तब आप जाइए. मैं नहीं जाऊंगा! क्योंकि वहां स्वतंत्रता नहीं है.

सूअर की बात सुन कर नारदजी अकेले ही स्वर्ग की ओर लौट पड़े. □

राजनीतिज्ञ • रामकृष्ण खुराना

प्राचीन काल में एक जंगल में एक शेर राज्य किया करता था. उसके तीन मंत्री थे--बंदर, भालू और खरगोश. दरबार लगा हुआ था. तीनों मंत्री राजा के इर्द-गिर्द बैठे हुए थे. अचानक शेर ने जुमहाई लेने को मुंह खोला तो उसके पास ही बैठा भालू बोला पड़ा--जहांपनाह, आप सुबह उठकर टूथ-पेस्ट अवश्य किया करें. आपके मुंह से बदबू आती है.

शेर का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया. वह गरज कर बोला--यू ब्लडी! उसने झपट्टा मारा और भालू को खा गया.

दूसरे दिन जब शेर दरबार में आया तो उसने बंदर से पूछा--मंत्रीजी, बताइए, हमारे मुंह से कैसी गंध आ रही है ?

बंदर ने भालू का अंत अपनी नंगी आंखों से देखा था. वह हाथ जोड़ कर बोला--वल्लाह जहांपनाह ! क्या बात है! आप हंसते हैं तो फूल गिरते हैं. जब आप बोलते हैं तो मोती झड़ते हैं. आपके मुंह से इलायची की खुशबू आती. . .

--शट अप! शेर ने बंदर को अपनी बात पूरी करने का अवसर भी न दिया. हम जंगल के राजा हैं, रोज कई जानवरों को मार कर खाते हैं, हमारे मुंह से इलायची की खुशबू कैसे आ सकती है? तुम झूठ बोलते हो! इतना कहकर शेर बंदर को भी हड़प कर गया.

तीसरे दिन शेर ने अपने तीसरे मंत्री खरगोश से भी यही प्रश्न किया.

खरगोश दोनों का हश्र देख चुका था. वह हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया. एक कदम पीछे हट कर, सिर झुका कर बोला--गुस्ताखी माफ हो सरकार! मुझे आजकल जुकाम लगा हुआ है जिसके कारण मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे पाने में असमर्थ हूं.

खरगोश राजनीतिज्ञ था. □

चींटे • असद जैदी

अशोक के साथ एक बार हम लोग बैठे थे. देखते-देखते उसका ध्यान मेज पर चलते हुए चींटे पर केंद्रित हो गया. अशोक ने पूछा--बताओ यह चींटा किस तरफ जायेगा ? हमने (मैं उन सबका प्रतिनिधि था) कहा--यह चींटा शक्कर के दाने की तरफ जायेगा. अशोक ने कहा--अच्छा देखे लेते हैं. चींटा, हमारे अनुमान से विपरीत, शक्करदाने के ऐन बगल से गुजरता हुआ आगे निकल गया. अशोक ने कहा--अब? हमने कहा--अब यह चींटा मेज का चक्कर लगायेगा. लेकिन चींटा मेज के किनारे पर जा कर नीचे उतर गया.

--वह कहां गया, अशोक ने कुछ देर बाद पूछा. हमने कहा--गायब हो गया. अशोक ने कहा--नहीं, वह अभी भी मेज के नीचे चल रहा है. मैंने चींटे को जूते से मसल दिया और अब चींटे के बारे में निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि वह मर गया है. अशोक ने धीमे से कहा--मगर इससे चींटों को समझने में क्या मदद मिलती है, मूर्खों ? तुम कहां के बुद्धिमान हो? हमने कहा. अशोक बोला--ठीक है, मगर इससे क्या वास्तव में कोई फर्क पड़ता है ? □

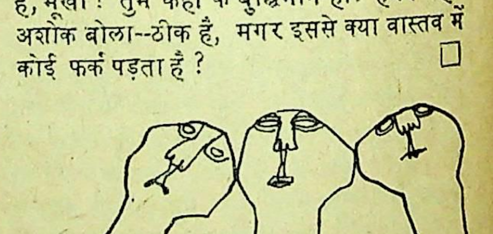

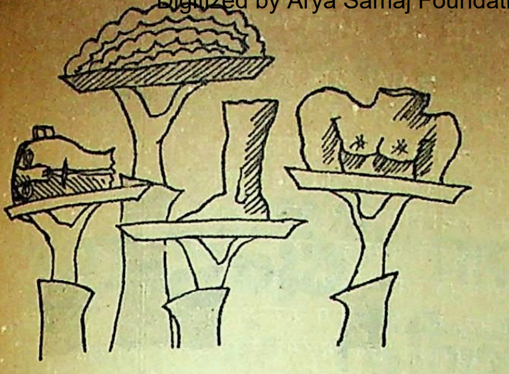

तटस्थता की नीति

● राजेंद्रकुमार पटेल

एक समय एक ऋषि हवन कर रहे थे. सहसा कोई आवाज हुई. उन्होंने देखा कि एक हिरन घबड़ाहट के मारे उनकी कुटिया में घुस गया.

उसी समय एक शिकारी आया और ऋषि से पूछा—महाराज, आपने यहां से एक हिरन को जाते देखा? वह किस तरफ गया सो बताइए.

ऋषि सोच में पड़ गये. क्या करूं?

उनको सोच में डूबे हुए देख कर शिकारी ने फिर वही पूछा.

ऋषि ने जवाब दिया—–भाई, तुम जानते हो कि देखने का काम आंख करती है लेकिन वह बोल नहीं सकती. जीभ बोलने का काम करती है, लेकिन वह देख नहीं सकती. जब तुमने मुझसे पूछा, पर जवाब देने का काम जीभ का है वो कुछ देख ही नहीं सकती. और जो देखती है वो आंख बोल नहीं सकती. अब तुम ही बताओ, किस वस्तु के द्वारा जवाब की आशा रखते हो? इतना सुनकर शिकारी चला गया.

इस तरह सत्य और अहिंसा के मेल का ही दूसरा नाम 'तटस्थता की नीति' हो गया. □

गिरह

● बलजीत पहाड़ी

कहां रहते हो?

—जां जगा मिल गया, हुजूर.

—क्या तुमने चोरी की?

—नईं हुजूर...

—झूठ मत बोलो. क्या दुकान के अंदर पायी गयी टायर की चप्पल तुम्हारी नहीं थी?

—थी हुजूर.

—तुमने चोरी क्यों की?

—...एक रुपये के लिए हुजूर...

—क्या जरूरत थी तुमको एक रुपये की?

—हुजूर, नाम के फारम में नाम लिखवाना था.

—कौन-सा नाम का फारम?

—हुजूर, चुनाव का नाम का फारम..

—लेकिन, वोटर लिस्ट में तो बिना रुपये-पैसे दिये नाम लिखते हैं. तुम झूठ बोल रहे हो!

—नई माई-बाप, झूठ नई बोल रआऊं. मैंने पेलेई का, मेरा कोई छह-वार नई है.. . . माई-बाप नाम कोन लिखता!

—क्या नाम है तुम्हारा?

—....हुजूर...कुनपुइंया.

—तुमने पहले पुलिस को नाम क्यों नहीं बतलाया?

—हुजूर. . .थान्दार सा'ब ने इत्ता मारा कि आवाज-ई नई निकली, माई-बाप.

—खैर, ठीक है. परंतु यह जरूरी है कि तुम्हारे वोट से पार्टी जीत ही जायेगी?

—नईं माई-बाप.

—तो फिर?

—..हुजूर...

—हां-हां, कहो. डरो मत.

[redacted] □

स्थायित्व की कूटनीति

● जीवन महता

अपने विरोधियों की कई कुटिल चालों और चुनौतियों का सामना करने के पश्चात् अग्निमित्र बड़ी कठिनाई से सत्तारूढ़ होने में सफल हुआ. लेकिन अपने विरोधियों की संगठित शक्ति के कारण उसे अपनी सत्ता के अस्थायी होने का भय बराबर बना रहता था.

एक दिन अवसर पा कर उसने अपने गुरु के सम्मुख अपनी इस समस्या को प्रस्तुत किया. कूटनीति के पंडित गुरु ने समस्या के यथार्थ के निवारण हेतु उसे उपदेश दिया:

'वत्स, जनकल्याण के लिए कुछ करो या न करो लेकिन कभी भी अपने विकल्प को पैदा मत होने दो. विकल्पहीन राजनीति की स्थिति में जनता कभी भी राजसत्ता को चुनौती दे कर अपने लिए अराजकता और असुरक्षा की स्थिति को आमंत्रित करने के लिए तुम्हारे विरोधियों का साथ देने की मूर्खता नहीं करेगी.'

अग्निमित्र ने गुरु के उपदेश में छिपे हुए सत्य को पहचाना और अपने सभी विरोधियों को आपस में लड़वा कर विभाजित और प्रभावहीन बना दिया. फलतः व्यापक [redacted]-असंतोष के होते हुए भी वह निश्चित और निरापद हो कर शासन करने लगा. □

घाव अलग-अलग आकारों के और छोटे-बड़े हो सकते हैं।

उसी तरह घावों के अनुसार नयी बैन्ड-एड* पट्टियाँ मिलती हैं।

ब्रान्ड

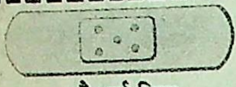

स्टैण्डर्ड स्ट्रिप
कटाव और खरोंच के लिए

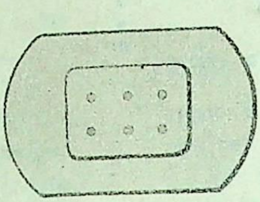

जायन्ट स्ट्रिप
बहुत बड़े घावों के लिए

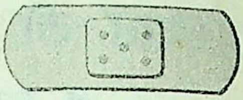

लार्ज स्ट्रिप
बड़े घावों के लिए

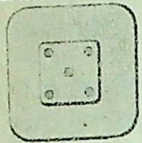

पैच
जहाँ पट्टियाँ न बाँधी जा सकें उन घावों के लिए

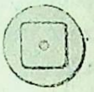

स्पॉट
फोड़े-फुन्सियों के लिए

घावों को छूत लगने का ख़तरा रहता है। उनकी, नयी बैन्ड-एड* पट्टियों से सुरक्षा कीजिए। अब ये अलग-अलग आकारों और साइज़ों में मिलती हैं – सभी प्रकारों की पट्टियाँ पाँच-पाँच एक साथ सुविधाजनक पैकेट में मिलती हैं।

सावधानी बरतिए – बैन्ड-एड* पट्टियाँ लगाइए। हमेशा कुछ पट्टियाँ अपने पास रखिए।

हमेशा
नयी बैन्ड-एड ब्रान्ड
पट्टियों का नाम अवश्य देखिए। इनके बदले और कुछ मत स्वीकारिए।

OBM/4533 HIN

Johnson & Johnson* • Trademark © J&J 75

व्यावसायिक पूछ-ताछ के लिए वितरकों को लिखें:

हसमुख एजेन्सी,
गोखले रोड, (दक्षिण), बम्बई-४०० ०२५

हसमुखलाल एण्ड कम्पनी,
गोखले रोड, (दक्षिण), बम्बई-४०० ०२५

ठक्कर परषोत्तम हीरजी एण्ड कम्पनी,
जॉली सेंटर बेसमेंट, सांताक्रुज़, बम्बई-४०० ०५४

जवाहर मेडिकल एण्ड जेनरल स्टोर्स,
९९-१०१ के. एन. रोड, बम्बई-४०० ००९

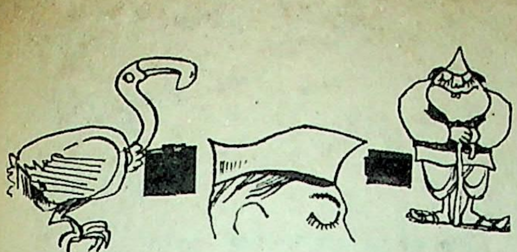

सवालिया चेहरे

● राजा दुबे

पैंट की जेब में उंगलियां घुसेड़ते समय जब उनकी पोरें नोटों की सतह से टकरायीं तो उसने अपने निश्चय को फिर से मन-ही-मन दोहराया. उसने तय किया कि कोट सिलने की ख़बर वह स्वीटी को भी पहले से नहीं देगा. वह किसी भी दिन, जब स्वीटी जॉली मूड में होगी, उसे कोट दिखला कर सरप्राइज देगा. स्वीटी शायद उसे भी मांगा हुआ समझेगी—उसे अपने ही विचार पर हंसी आ गयी. लेकिन इसी बीच एक प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठा—वह कब तक स्वीटी के मूड का इंतजार करेगा? और फिर यह भी तो संभव है कि जब जी. बी. मास्टर फायनल टच दे कर कोट पैक करे, तब तक स्वीटी का मूड ही अच्छा न हो पाये. खैर, कुछ भी हो, इस बार वह कोट जरूर सिलवायेगा. सुनते हैं, कोट के साथ चप्पल पहनना भी ऑकवर्ड लगता है. फिर तो उसे चप्पल के स्थान पर जूते भी खरीदने होंगे. वह जूते सस्ते ही खरीदेगा. बग्गा की दुकान का इंस्पेक्शन करना है, उसी से कहा जायेगा—शायद कुछ कम कीमत ले. वर्मा भी तो इन्स्पेक्टर है. कह रहा था 'बूंद-बूंद से घट भरता है' उसकी बात मैं समझ गया था लेकिन उस समय टाल गया. देर तक सोचा किया रिश्वत छोटी ही क्यों न हो, कुछ-न-कुछ तो खोना ही पड़ता है, और फिर अब यदि बग्गा से ५० का कहूंगा तो वह भी हंसेगा—फिर? फिर ऐसा करूंगा, उससे जूते ले लूंगा और कह दूंगा, आई. आर. नहीं दे रहा हूं. उसे शायद यह सुन कर खुशी होगी, हो सकता है बाद में वो मुझ पर हंसे. . .हूं! हंसे तो हंसा करे, मैं क्या कर सकता हूं? वर्मा, विजय, झांजरी सभी इन्सपेक्टर तो कंपाउंड करते हैं. क्या उन पर नहीं हंसते होंगे? वो कहां चिंता करते हैं? तो फिर मैं ही क्यों करूं?

★ ★

हाथ को 'काल बेल' तक ले जा कर भी स्विच को नहीं दबाया. जेब की गरमी पूरे शरीर में उतर आयी थी, आवाज को भरपूर सुरीली बना कर पुकारा "स्वीऽऽटीऽऽऽ". थोड़ी देर तो कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, उसके बाद चिटिक के स्वर के साथ चिटकनी खुली. दरवाजा 'भड़ाऽऽक्' के बेसुरे स्वर के साथ किरण ने खोला. किरण को सामने देख कर ऐसा लगा जैसे नंगे पांवों पर किसी फौजी का जूतों वाला पैर रखा गया है. मैं तेजी से ड्राइंग रूम से होते हुए बेड रूम में घुसा. स्वीटी पलंग पर बैठी कुछ सी रही थी. . .थैंक्स गॉड! स्वीटी ठीक-ठाक है, और एक गहरी सांस ले कर वह स्वीटी के ठीक सामने फोल्डिंग चेयर पर बैठ गया. स्वीटी अब भी चुप थी, शायद वो उसकी उपस्थिति को कोई अहमियत नहीं देना चाहती थी. एक बार सिर्फ स्वीटी ने उसे देखा. और फिर कपड़े की तह 'एडजस्ट' कर हैंडल घुमाने लगी—'घरंऽऽ घरंऽऽऽ' का स्वर पूरे कमरे में हो गया. स्वीटी के चेहरे पर पसीने की बूंदें तिर आयीं थीं. एक क्षण को इसे लगा, वह अपने करचीफ से स्वीटी के चेहरे का पसीना पोंछ दे. लेकिन फिर स्वीटी का मूड बिगड़ने की संभावना से उसने अपना विचार बदल दिया. पास के कमरे में 'खड़क. . .' का स्वर सुनाई दिया—शायद किरण ने फ्रंट विंडो खोली है. और इस खड़क के स्वर से जैसे उसकी चेतना लौट आयी हो. उसने स्वीटी के पीछे वाली खिड़की खोल दी. हवा का एक हलका-सा झोंका भीतर घुस आया. स्वीटी के ठीक पीछे खड़े हो कर उसने धीरे से स्वीटी के कंधों पर अपने हाथ झुला दिये. . . एकदम देवानंद के अंदाज में. आवाज को आवश्यकता से अधिक मधुर बना कर उसने कहा—स्वीटी, गर्मी में खिड़की खोल लिया करो डार्लिंग. . . .अरे वाह! यह क्या सिल रहा है? . . . लेकिन स्वीटी कुछ नहीं बोली. ऐसे ही अर्थहीन संवादों के बाद जब स्वीटी का मौन टूटा, तब, तब लगा जैसे स्वींटी उफन पड़ी हो. स्वीटी लगातार बोले जा रही थी. ——यू मीन जो कुछ मिसेस आचार्या कहे वह मैं सुनती रहूं. . .! यही चाहते हो न तुम . . .? वेंटीलेशन. वेंटीलेशन,. . .स्टुपिड कहती है, योर रूम इज वेंटीलेड विदाऊट फैन, मिसेस राव. और इतना कह कर स्वीटी फफक-फफक कर रो पड़ी. स्वीटी का सवालिया चेहर बेनकाब हो गया था.

★ ★

काउंटर बॉय की गर्दन मेरी ओर घूमी-क्या नाम लिखूं सर? प्रश्न उससे पूछा गया था लेकिन जवाब 'भाटिया इलेक्ट्रिकल्स' के सरदार गुरुबचन सिंह ने दिया—तैनूं बिल बगाण दी किस आरया सी? साब दा फैन पर-ताइ ले जा. भारी पैक लिये काउंटर बॉय जैसे ही नीचे उतरा, मैं बिना भाटिया सेठ से निगाहें मिलाये नीचे उतर आया. आइक्वरी केस ब्लाक में सवा आठ बजे थे, उसे ९ बजे जी. बी. मास्टर ने बुलाया था. ☐

पहचान • कृतनारायण प्यारा

एक हीरे का टुकड़ा बीच सड़क पर कई वर्षों से पड़ा था. संयोग, एक दिन एक जौहरी उसी सड़क से हो कर जा रहा था. हीरे का टुकड़ा दूर से ही उस जौहरी को आते देख अति प्रसन्न हुआ और मन ही मन वह सोचने लगा——कई वर्षों से लात-जूतों की ठोकर खाते-खाते आज उन ठोकरों से बचूंगा और राजमहल में आराम करूंगा. तब तक वह जौहरी उसके नजदीक आ गया था. वह भी उसे देख नहीं पाया. जौहरी के पैरों की ठोकर ज्यों ही उसे लगी, त्यों ही हीरे का वह टुकड़ा चूर-चूर हो कर उसके सामने बिखर गया और रुआंसे स्वर में बोला——मैं बहुतों की ठोकरें खाने के बावजूद भी बचा था कि कोई मुझे पहचानने वाला नहीं है मगर तुम भी पहचानने में असफल रहे इसलिए आज तुम्हारे सामने मैं चूर-चूर हो कर बिखर गया हूं. □

बजट

• सनत दवे

जमींदार अपने घोड़े पर बड़े रौब से सवार हो कर आ रहा था. युवक ने अपनी जेब टटोली. पूरे पचास रुपये थे. उसने जमींदार से पूछा——इस घोड़े को कितने रुपये में बेचना चाहोगे?

——पूरे सौ रुपये में.

——मेरे पास तो सिर्फ पचास ही हैं.

——बाकी के पचास बाद में दे देना.

सौदा हो गया. लेकिन सहसा जमींदार ने कहा——तुम ऐसा नहीं कर सकते कि पचास रुपये जो तुम बाद में देना चाहते हो, उसके बदले में तुम इसी घोड़े को मुझे दे दो.

सूखा और बलिष्ठ मछुआरा

• सुरेंद्र प्रबुद्ध

भैंसे की भांति रंग और शरीर की मांसपेशियों के मछली जैसे आकार के लिए वह गांव में चर्चित रहता था. वैसे पेशे से मछुआरा था. इस वर्ष वर्षा बिलकुल नहीं हुई. खेत और तालाब में मछली मारने का काम ठप्प हो गया. निश्चित ही मछुआरा कई दिनों से भूखा था

एक दिन जोर से पानी गिरा. खेतों में जलधारा बह गयी. वह प्रसन्न था, यद्यपि मछलियां पाने की आशा नहीं थी. सूखे में मछलियां तक सूख गयी थीं. वह ऐसे ही मेंडों पर घूम रहा था. पानी की बहती धारा में उसे दो मागुर-पिलें तैरती दिखीं. उसने हथेलियों का थुपा बना कर उन्हें पकड़ लिया.

उसकी मुट्ठियों की पकड़ इतनी गुस्सैल होती थी कि सेर-सेर की मछलियां एक बार में मर जाती थीं. वे दोनों पिलें अलग-अलग मुट्ठियों में कैद थीं, कभी-कभी गलफड़े फुलाकर किर्र किर्र की आवाज करती थीं. वह मुट्ठियां खोल कर गहरी ममता की दृष्टि से ताकता था. पिलों का चमकीला, कसैला रंग और पूछों की कोमलता उसे असीम आनंद दे रही थी. वह पुलकित घर लौट रहा था.

मछुआरा निपट अनपढ़ आदमी था. बाहर से जितना कुरूप और भद्दा दिखता था, भीतर से वैसा नहीं था. गांव में सुबह उसका मुंह देखना अशुभ संकेत था. वह निस्संतान था. उसकी घरवाली बीमार थी, जिसे वह बेहद प्यार करता था.

उसके सुगठित शरीर में सुखद कंपन हो रहा था. वह कुछ दूसरा अनुभव कर रहा था. मुट्ठी को एक-एक करके चुंबन की मुद्रा में सूंघता था. उसकी इच्छा थी कि पिलें जिंदी रहें. घर पहुंचते ही हर्ष से चिल्लाया——सुना ...? मैंने आज मागुर-पिलें पकड़ी हैं. इस वर्ष मैं इन्हें कुएं में पालूंगा. वह घरवाली का प्रत्युत्तर सुने बिना बाड़ी की ओर बढ़ गया.

अंधी बाउली की तली में थोड़ा-सा पानी थिरक रहा था. नीचे घुप्प अंधेरा. उसने मुट्ठियां खोल कर जिंदा पिलें नीचे छोड़ दी. भाव विह्वल हो कर जोर से ताली पीटी और झूमता हुआ घर की ओर बढ़ गया.

उस बलिष्ठ मछुआरे को पता नहीं था कि नीचे गिरते ही पिलें दम तोड़ चुकी थीं. □

महाभारत [redacted] नहीं हुआ

● अमलतास

महाभारत का युद्ध शुरू हुए कुछ दिन हो चुके थे. दोनों तरफ की सेनाओं के कलेजे कांपने लगे थे. दोनों तरफ के कुछ समझदार नेताओं ने कृष्ण से कहा—महाराज, यह तो अनर्थ हो रहा है. कुछ उपाय कीजिए. नेताओं की बात सुन कर कृष्ण [redacted] दुर्योधन के पास पहुंचे. परस्पर अभिवादन के बाद कृष्ण को आसन कर दुर्योधन से पूछा—महाराज, इधर आने का कोई खास प्रयोजन?

—मैं कभी, कहीं निष्प्रयोजन नहीं जाता.

—तो फिर बताइए?

—सुनिए, इतने बड़े साम्राज्य से अगर एक प्रांत आप [redacted] युधिष्ठिर को दे दें तो यह महाभारत बंद हो सकता है.

—नहीं, नहीं कृष्ण! ऐसा मत कहो. एक प्रांत दे देने से अगर यह महाभारत बंद हो जाता तो मैं ऐसा सोच भी लेता, मगर एक प्रांत देने के बाद दूसरे प्रांत की बात उठ खड़ी होगी. वैसे ही साम्राज्य के कई प्रांत मेरी पकड़ के बाहर हैं.

—तो फिर महाभारत के बंद होने का कोई रास्ता नहीं?

—मैं पांडव [redacted] युधिष्ठिर को [redacted] मंत्रिमंडल में ले सकता हूं या किसी भी प्रांत का [redacted]पाल बना सकता हूं मगर यह प्रांत उन्हें नहीं दे सकता.

—ठीक है. मैं तुम्हारा प्रस्ताव युधिष्ठिर तक पहुंचा देता हूं.

दुर्योधन का यह प्रस्ताव ले कर कृष्ण जा पहुंचे युधिष्ठिर के पास. कृष्ण को देखते ही सब लोग खड़े हो गये.—क्या प्रस्ताव लायें हैं. महाराज?

—प्रस्ताव तो कोई खास नहीं, फिर भी फायदे का है.

—तो फिर जल्दी बताइए?

—सुनिए [redacted] दुर्योधन [redacted] में युधिष्ठिर को लेने को तैयार हैं. आप लोगों की राय क्या है?

—नहीं, युधिष्ठिर [redacted] नहीं जा सकते [redacted] युधिष्ठिर [redacted] के बाद भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव कहां जायेंगे. लोग कहेंगे कि कुर्सी पाने के लिए महाभारत रचा गया था. इसलिए हम [redacted] लड़ेंगे.

[redacted] दुर्योधन ने पांडवों को उनका प्रांत नहीं दिया और युधिष्ठिर ने [redacted] जाना स्वीकार नहीं किया [redacted]

□

कछन्ना

● असद जैदी

कछन्ना अंडरवियर को कहते हैं. जांघिया दूसरी चीज होती है, हालांकि कुछ लोग कछन्ने को भी जांघिया कहते हैं.

कई बार लोग जो कछन्ना पहनते हैं, वह इतना गंदा हो जाता है कि उन्हें स्वयं घृणा होने लगती है. लोगों के कछन्ने दिखाई नहीं देते. इसीलिए उनके साथ आमतौर पर यही सलूक किया जाता है. कभी-कभी फुटपाथ पर कछन्ने ढाई-ढाई रुपयों में बिकते देखे जाते हैं, जिससे मुझे काफी शर्म आने लगती है.

कछन्नों के बाजार में बिकने के दृश्य को देख कर जिस दिन शाम को मैं घर लौटता हूं, उस दिन कपड़े बदलते वक्त अपनी निगाहें अपने शरीर पर, खास कर कमर पर नहीं पड़ने देता. या अगर रात का वक्त हो चुका होता है तो बत्ती बुझा कर कपड़े बदलता हूं.

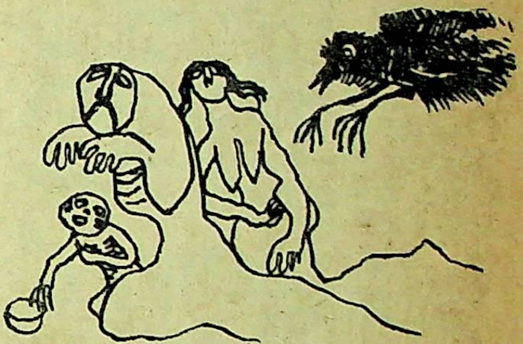

टखना

● असद जैदी

कुर्सी ठीक दरवाजे के बीचोंबीच रखी हुई थी और दरवाजे पर परदे पड़े हुए थे. जब कमरों में जाना तय हो जाता है तो किसी को उनके दरवाजों पर पड़े हुए परदों की चिंता नहीं रहती.

लिहाजा जब चपरासी ने आ कर चपरासी की तरह कहा कि साहब बुला रहे हैं तो मैं सीधा दरवाजे पर था और परदों की चिंता किये बिना कमरे में घुस जाना चाहता था. परदे के पीछे और दरवाजे के बीच कुर्सी होने का पता नहीं चला और कुर्सी से बहुत जोर से मैं टकराया. आवाज होते ही कई लोग भाग कर आये जिनमें वह चपरासी आगे था. उसने फौरन कुर्सी उठा कर दीवार के सहारे टिका दी. टखने की तरफ देखने की हिम्मत मुझ में नहीं हो रही थी क्योंकि टखना टूट चुका था और कालीन पर खून फैलना शुरू हो गया था. □

उद्घाटन

● शाहिद नकवी

विपक्षी दल अफवाह फैलाते हैं कि उद्घाटन की प्रथा शासकीय तंत्र ने अपने मंत्रियों के फायदे के लिए ही चलायी है—इससे मंत्रियों को लोकप्रियता के साथ-साथ [redacted] [redacted] प्रचार भी हो जाता है—राज मार्ग का उद्घाटन करने के लिए पधारे हुए मंत्री महोदय ने अपने भाषण में कहा——यह बात सरासर गलत और बेबुनियादी है कि उद्घाटन ऐलेक्शन के समय ही कराये जाते हैं—अगर आप भारत का प्राचीन इतिहास पढ़ें तो मालूम होगा कि यह प्रथा कदापि नयी नहीं है. भगवान राम ने पुल का उद्घाटन करवाने के लिए रावण को निमंत्रित किया था— इससे सिद्ध होता है कि भगवान राम के जमाने में भी उद्घाटन प्रथा थी.

——जी हां! आप ठीक कहते हैं—इससे यह भी सिद्ध होता है कि उस समय भी उद्घाटन करने के लिए [redacted] लोग [redacted] बुलाये जाते थे. मजमे में से [redacted] पार्टी के एक सज्जन ने जोर से चिल्ला कर कहा.

□

अंत्याक्षरी—कल और आज

● किशोर काबरा

सन् १९५९. एक स्कूल, स्कूल की एक कक्षा. हिंदी के अध्यापक ने छात्रों की अंत्याक्षरी आयोजित की. लड़के-लड़कियां बड़े उत्साह से कविताएं सुना रहे थे. सूर, तुलसी, कबीर, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों की रचनाएं मानो बच्चों को कंठस्थ थीं.

अचानक एक दल 'ब' अक्षर पर अटक गया. शिक्षक ने खतरे की घंटी बजायी. एक लड़का सकपकाते हुए बोला—

'बरसात में, हमसे मिले तुम,
सजन, तुम से मिले हम, बरसात में.

सारी कक्षा ठहाका मार कर हंस पड़ी. शिक्षक बड़े नाराज हुए बोले——अंत्याक्षरी में फिल्मी गीत नहीं चलता. कोई दूसरी कविता सुनाओ.

* *

सन १९७४. वही स्कूल, स्कूल की वही कक्षा. वे ही अध्यापक हैं, केवल लड़के बदल गये हैं. बड़े जोर-शोर से अंत्याक्षरी चल रही है. प्रेम नगर, बॉबी, संगम, सीता और गीता आदि फ़िल्मों के गाने मानो बच्चों को कंठस्थ थे.

अचानक एक दल 'ब' अक्षर पर अटक गया. शिक्षक ने १५ साल पुरानी घंटी बजायी. एक लड़का सकपकाते हुए बोला——

'बरसा रहा है रवि अनल भूतल -तवा-सा जल रहा है चल रहा सन् सन पवन तन से पसीना ढल रहा.'

सारी कक्षा ठहाका मार कर हंस पड़ी. शिक्षक बड़े नाराज हुए. बोले——अंत्याक्षरी में कविता नहीं चलती. कोई फिल्मी गीत सुनाओ.

□

नया रिकार्ड

● प्रमोद कुमार

एक बच्चा पैदा हुआ. उसने चारों तरफ ईमानदारी देखी. वह बूढ़ा हो कर मर गया.

दूसरा बच्चा पैदा हुआ. उसने लोगों को झूठ बोलते हुए देखा. वह भी बूढ़ा हुआ और मर गया.

तीसरा बच्चा पैदा हुआ. उसने दुनिया में रिश्वतखोरी देखी. बूढ़ा हुआ और इस दुनिया से चल बसा.

यह सिलसिला चलता रहा...

अंत के बच्चे ने तो कमाल ही कर दिया. उसने पहले पैदा हुए बच्चों का रिकार्ड तोड़ कर एक साथ, इकट्ठे ही, गरीबी, आवश्यक वस्तुओं का अभाव, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, भाई-भतीजावाद, हड़तालें, पुलिस ज्यादती, भ्रष्ट राजनीति आदि को देखा. इस समय वह अपनी संघर्षरत जिंदगी जी रहा है.

□

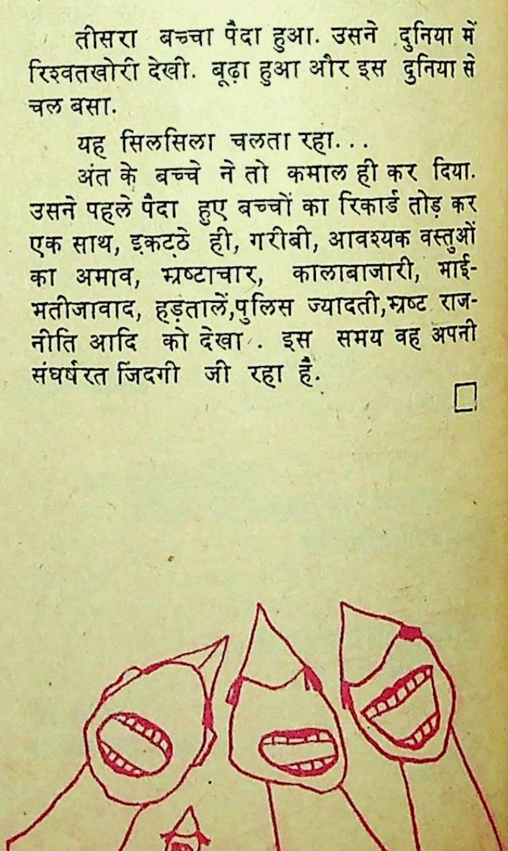

अथ लक्ष्मी-नारायण संवादम्

● जयचंद्र झा 'प्रमोद'

थके-मांदे बूढ़े विष्णु ने लक्ष्मी से पूछा—हे लक्ष्मी, आर्यावर्त [redacted] कैसा चल रहा है?

लक्ष्मी ने छूटते ही उतर दिया—बिलकुल ठीक.

—कैसे ? विष्णु की जिज्ञासा थी,

लक्ष्मी मे बतलाया—गांव-गांव में [redacted] शाखाएं खुल गयी हैं.लोग नोटों के बिछावन पर सोते हैं. नोटों के वस्त्र पहनते हैं, नोटों से उनके शरीर ढंके रहते हैं. और चाहिए क्या यह तो कैवल्य की स्थिति है, मोक्ष की .

—और अनाज ?

—वह तो [redacted] स्टोर किया हुआ है. लोगों को अन्न से वितृष्णा हो गयी है—वैराग्य हो गया है. क्योंकि जब वे अन्न को प्राप्त करना भी चाहते हैं तो अपनी लघिमा. सिद्धि के कारण नोट अन्न के ऊपर चले जाते हैं. अब आप ही बताइए लोग उच्चतर दशा को प्राप्त कर निम्न अवस्था में उतरना क्यों कबूलें ?

—तुम्हारे समाजवाद [redacted] का क्या हुआ ? विष्णु का अगला सवाल था.

लक्ष्मी ने फौरन जवाब दिया—समाजवाद पूंजीवाद की सहज निष्पत्ति है. पूंजीवाद 'पूंजी' और समाजवाद 'वितरण' की थ्योरी है, टेकनीक है. अभी [redacted] पूंजी बढ़ती जा रही है. [redacted]

विष्णु गदगद हो उठे. उन्होंने लक्ष्मी को गले से लगा लिया. ☐

• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •

इलाज

● जीवन सिंह ठाकुर

चेहरा कितना स्याह. आंखें किसी सूखा पीड़ित क्षेत्र के कुएं में भरे पानी की तरह, दांतों में सरसों फूल रही थी. लहराते बांस-सी टांगें उठीं और दवाखाने के तेज घूमते पंखे के नीचे वह आ गया. डाक्टर ने उसे देखा. जैसा सभी को देखा जाता है. डा. ने चिट्ठी लिखी. उसे समझाने लगा—देख, खाना खाने के बाद यह टानिक लेना (वह अचकचाया). इससे ताकत आयेगी—और विटामिन की गोलियां हैं. इससे तू ठीक हो जायेगा. इन गोलियों से खाने जैसी चीज मिल जाती है. वह उठा. डा. ने एक बार फिर ताकीद की कि खाना खाने के बाद दो चम्मच लेना. फिर मुझे बताना. वह लहराता हुआ सामने कंपाउंडर की टेबल तक गया. चिट्ठी दी, उसने हरी-पीली गोलियां दीं. वह बाहर आ गया. बड़े गेट पर एक औरत एक बच्चे के साथ खड़ी थी. उसने गोलियां बच्चे के हाथ पर रख दीं. झट से बच्चे ने मुंह में डाल लीं. बच्चे के हाथ पकड़े तीनों बहर निकल गये. ☐

फर्क, कार्यपद्धति का

● मनोहर वर्मा

एक [redacted] को रात्रि में नगर भ्रमण का शौक था. प्रजा की सुरक्षा के लिए वह इसे एक कर्त्तव्य और आवश्यकता मानते थे. उनके इस कर्त्तव्यपालन का [redacted] बड़ा सटीक असर पड़ रहा था.

एक रात [redacted] चंद डाकुओं ने घेर लिया . एक डाकू ने [redacted] गरदन पर चाकू की नोक चुभाते हुए कहा—हाथ घड़ी, गले की चैन और जेब में जो कुछ है, सब निकाल कर दे दो.

[redacted] बोले—मेरा क्या है ? कुछ भी नहीं. यह सब आपका ही है. साथियो, आप की अपनी चीज है, कहिए तो दे दूं. . . .?

[redacted] धैर्य और वाणी की मधुरता ने डाकू सरदार को मुग्ध कर दिया.

—तुम अपनी बात ठीक से समझाओ. सरदार ने पूछा—तुम्हारे पास जो कुछ है वो हमारा कैसे है ?

—बड़े भाई, सीधी-सी बात है, आप सबने [redacted] दिया और आज मेरे पास जो कुछ भी है वह सब आपसे [redacted] ही तो पाया है. . .तब, मेरा अपना क्या है ? कुछ भी नहीं. . .

—इन्हें छोड़ दो. यह तो अपने ही बड़े भाई हैं. ☐

आजादी की दुम

● घनश्याम अग्रवाल

रावण का वध करके राम अयोध्या लौट आये. युद्ध में हनुमान को जौहर दिखाने के उपलक्ष में मंत्री-पद सौंपने का राम ने निश्चय किया. किंतु हनुमान ने मंत्रीपद लेने से इंकार कर दिया और कहा कि 'वे शेष समय जंगलों में बितायेंगे'. यह कह कर हनुमान चले गये.

देखते-देखते पच्चीस वर्ष बीत गये. हनुमान अब बूढ़े हो चुके थे. वृक्षों पर जा कर फल तोड़ने में उन्हें अब काफी क़ष्ट होता था. अचानक हनुमान को खबर मिली कि अयोध्या में आजादी की रजतजयंती मनायी जा रही है. इसमें राम-रावण युद्ध में भाग लेने वालों को ताम्रपट एवं २०० रु. मासिक पेंशन दी जायेगी. हनुमान की तकलीफ दूर हो गयी, सोचा, चलो बुढ़ापे का इंतजाम हो गया. उन्होंने भी पेंशन के लिए आवेदन कर दिया. काफी दिनों तक जब पेंशन की स्वीकृति न मिली तो हनुमान ने स्वयं अयोध्या जाने का निश्चय किया.

पच्चीस वर्षों में अयोध्या काफी बदल गयी थी. कुछ परिचित बंदर मिनिस्टर बने घूम रहे थे. उन्होंने हनुमान को पहचानने से इन्कार कर दिया. इतनी-सी बात के लिए राम के पास जाना उचित नहीं, यह सोच कर वह 'स्वतंत्रता सैनिक पेंशन विभाग' के दफ्तर पहुंचे. और अपनी पेंशन के बारे में पूछताछ की. लेकिन बाबू ने कहा कि 'उनका आवेदन नहीं है.'

—मगर मैंने तो रजिस्ट्री से भेजा था, एकनालेजमेंट दिखाते हुए हनुमान ने कहा.

चपरासी ने हनुमान को एक तरफ ले जा कर समझाया कि 'जब तक अर्जी पर वजन नहीं रखोगे वह आगे नहीं सरकेगी.'

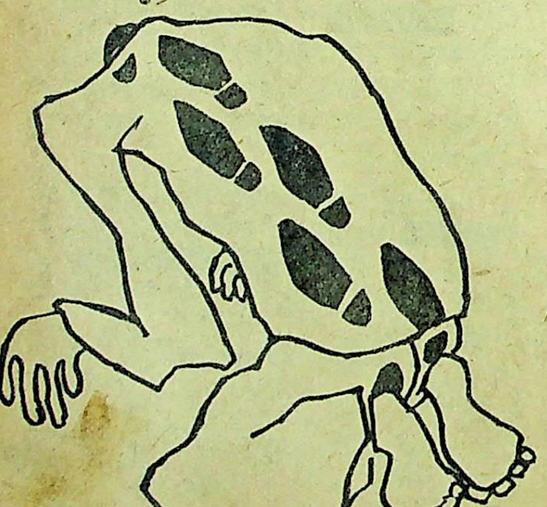

—मगर ये वजन क्या होता है?

—चपरासी ने हंसते हुए कहा—बंदर हो न, तुम्हारे पास पैसे तो नहीं होंगे, तुम कुछ फल तोड़ कर बाबू को दे दो, इसे ही सरकारी जुबान में वजन कहते हैं.

—मैं अब बूढ़ा हो गया हूं. राम-रावण युद्ध में तो पहाड़ उठाया था. पर अब तो झाड़ पर भी नहीं चढ़ सकता. इसीलिए तो पेंशन के लिए अर्जी की है. हनुमान ने विवशता प्रगट की.

चपरासी कुछ देर सोचता रहा. अचानक उसकी आंखों में चमक आ गयी और वह बोला —एक उपाय है, आजकल फारेन में बंदरों की दुम की बहुत मांग है, तुम दुम का कुछ हिस्सा काट कर बाबू को दे दो. अर्जी आगे बढ़ जायेगी, और हां मैंने उपाय बताया, मुझे भी चाय पीने को चार इंच का टुकड़ा जरूर देना.

हनुमान के तन-बदन में आग लग गयी. बंदर को अपनी पूंछ उतनी ही प्यारी होती है, जितनी आदमी को अपनी मूंछ. हनुमान सोचने लगे कि इसी दुम के अपमान के कारण मैंने लंका में आग लगा दी थी, पर यह तो अपने राम की अयोध्या है, फिर मैं कोई विद्यार्थी तो नहीं हूं जो अपनी ही संपत्ति में आग लगा दूं. जी में आता है कि इस बाबू को उठा कर फेंक दूं मगर विवश हूं आजकल कानून हाथ में लेना भी तो जुर्म है.

मजबूरी का नाम विभीषण यह प्रचलित कहावत याद आते ही चुपचाप सर झुकाये बाबू के पास पहुंच गये. उनकी दुम कुछ छोटी हो गयी और अर्जी आगे सरकी. वहां का बाबू पहले से ही कैंची लिये बैठा था. अर्जी आते ही उसने भी दुम का कुछ हिस्सा काट लिया.

इस तरह जैसे-जैसे दुम कटती गयी वैसे-वैसे हनुमान वल्द पवन कुमार की अर्जी आगे बढ़ती गयी और जब अर्जी पर पेंशन की मंजूरी की मोहर लगी हनुमान बिना दुम के हो गये.

हनुमान जाते-जाते क्रोधवश धमकी दे गये कि 'मैं इस ऑफीसर के भ्रष्टाचार की राम कहानी अवश्य राम तक पहुंचाऊंगा. सारे ऑफिस में खलबली मच गयी. किंतु सेक्शन ऑफीसर ने क्लर्क को समझाया—तुम डरो नहीं, तुमने जो कुछ किया वह परंपरागत किया. मैं इस बंदर को देख लूंगा.

अगले दिन हनुमान जालसाजी के आरोप में गिरफ्तार हो गये. उन पर आरोप लगाया गया कि इस बंदर ने हनुमान के नाम पर पेंशन लेने का प्रयत्न किया है, जब कि ये हनुमान नहीं है. सबूत में बताया गया कि हनुमान के एक लंबी दुम थी और इस बंदर के दुम नहीं है. अतएव यह हनुमान नहीं है. □

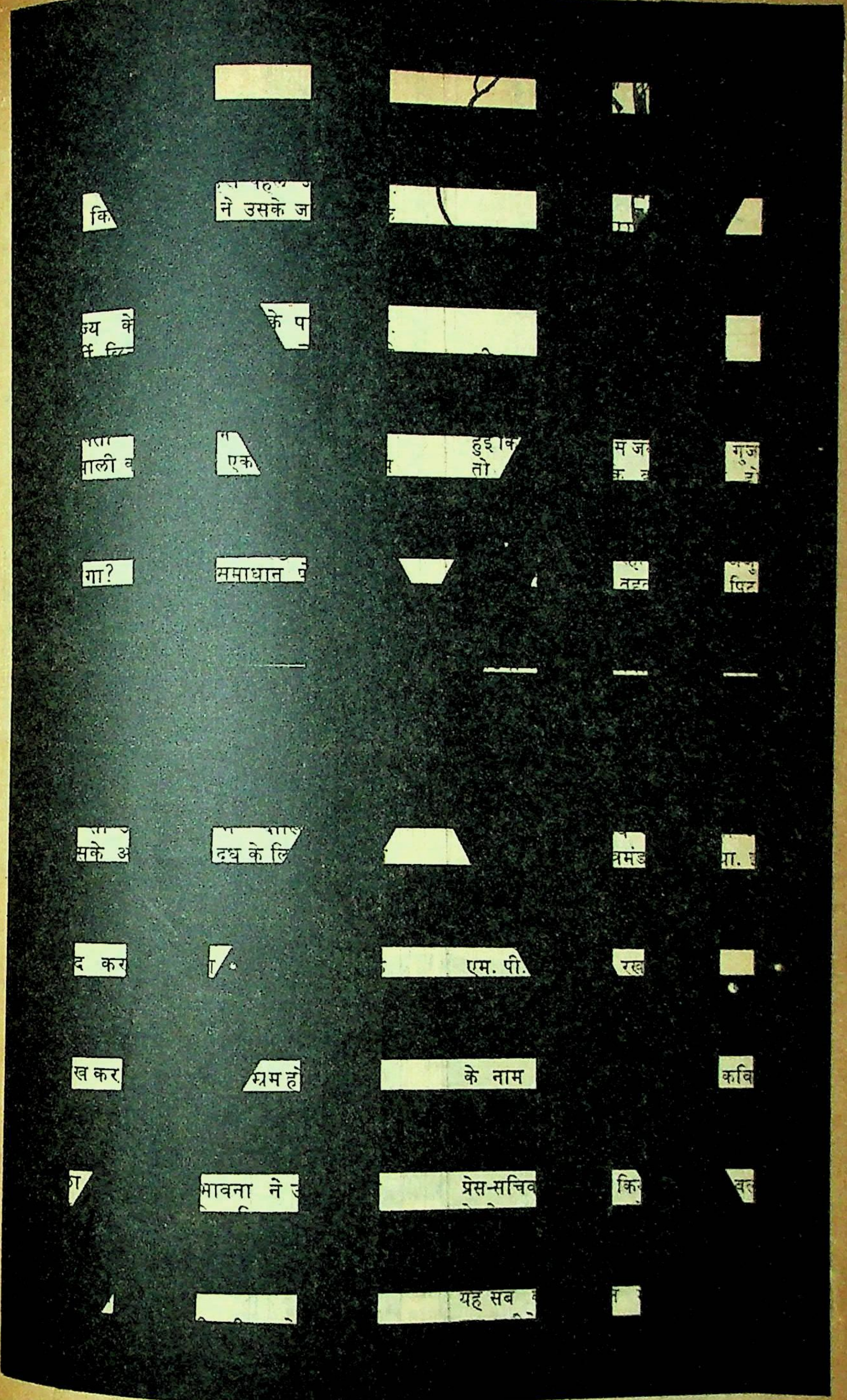
कि
ने उसके ज
ज्य के
के प
ाली व
एक
हुई क
तो
म ज
गुज
गा?
समाधान
सके अ
दध के लि
मंड
ा. ह
द कर
एम. पी.
रख
ख कर
श्रम हो
के नाम
कवि
भावना ने उ
प्रेस-सचिव
कि
यह सब

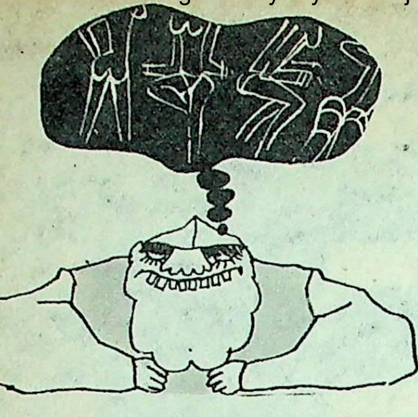

अंततोगत्वा

इन दिनों रामदीन के पास सभी विरोधी दलों के लोग आ कर कहते थे—शासक दल को हटाओ, यह भ्रष्ट है. कोई कहता था—प्रधान मंत्री को हटाओ. बीमारी की जड़ यही है. उसने शासक दल और प्रधान मंत्री को हटाने का निश्चय कर लिया. चुनाव के दिन जब वह बूथ पर पहुंचा तो पोलिंग आफिसर ने मतपत्र दे कर उससे कहा कि आप जिसे गद्दी पर लाना चाहते हों, उसके निशान पर मोहर लगा दें. रामदीन चक्कर में पड़ गया. प्रधान मंत्री तथा शासक दल को हटाने का तो उसने निश्चय कर लिया था, लेकिन किसको लाना है, यह तो उसने सोचा ही न था.

रामदीन कुछ सोच नहीं पाया अतः बिना किसी झंझट में पड़े उसने शासक दल के अपने सुपरिचित चिह्न पर ही एक बार फिर मोहर लगा दी. ☐

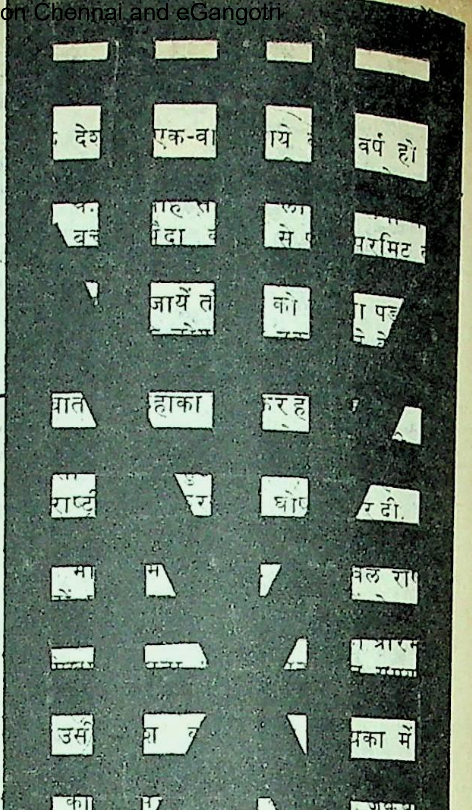

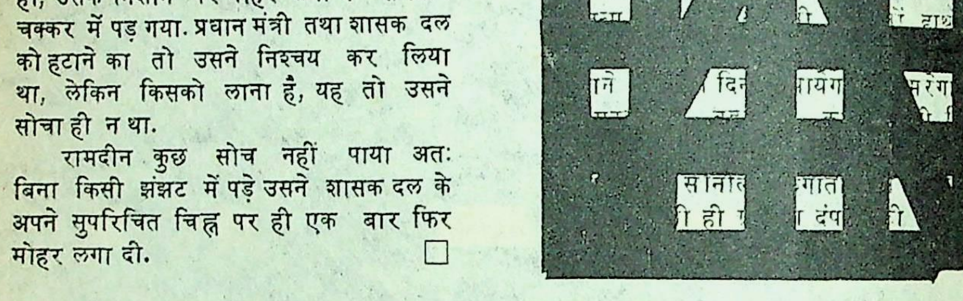

शब्दों के आंसू • कनैडीवाला

मंत्रीजी के पी. ए. ने इत्तला दी कि बाहर अतिथि कक्ष में कुछ विचित्र लोग विचित्र प्रकार की पोशाकें पहने हुए बैठे हैं और आपसे मिलना चाहते हैं, उन लोगों से अतिथि कक्ष में जा कर ही मिलना बेहतर रहेगा

मंत्रीजी अतिथि कक्ष में आये. अजीब प्रकार के व्यक्ति मंत्रीजी को देख, हाथ जोड़ खड़े हो गये. उनमें से एक, सबसे बुज़ुर्ग व्यक्ति ने नमस्कार किया और आगे बढ़ कर मंत्रीजी से बोला— —हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा हिंदी के हम कुछ 'नाचीज शब्द' हैं. मैं 'आश्वासन' हूं. वह अपने साथियों का परिचय कराने लगा, ये 'कड़ी-कार्यवाही' हैं, ये 'कड़ी चेतावनी' हैं, ये 'न्यायिक जांच' हैं, ये 'आह्वान' हैं, ये 'अतिरिक्त आय' हैं, ये 'अतिरिक्त खर्च' हैं, ये 'खर्च में कटौटी' हैं, ये 'हालात सुधार पर' हैं.'

—आप लोगों का यहां पर आने का मकसद क्या है ? मंत्रीजी ने हैरानी से पूछा.

वह सब एक जुबान हो कर बोले—आप आइंदा अपने भाषणों में और वक्तव्यों में हम नाचीज शब्दों को प्रयोग में न लायें तो बड़ी महरबानी होगी.

—आखिर क्यों? मंत्रीजी ने पहले से अधिक हैरानी से पूछा.

—इसलिए कि आपने हमें इतनी अधिक बार प्रयोग किया है और करते हैं कि अब लोग हमसे बेहद चिढ़ने लगे हैं. हम तमाम शब्दों ने अपना वह असर और पावर' खो दिया है, जो हमारे उपयोग करने पर सामने वाले व्यक्ति पर पड़ता था. अलग से हमारा अस्तित्व ही खत्म हो गया है.

तमाम शब्द रोते हुए नेताजी के चरणों में गिर पड़े. ☐

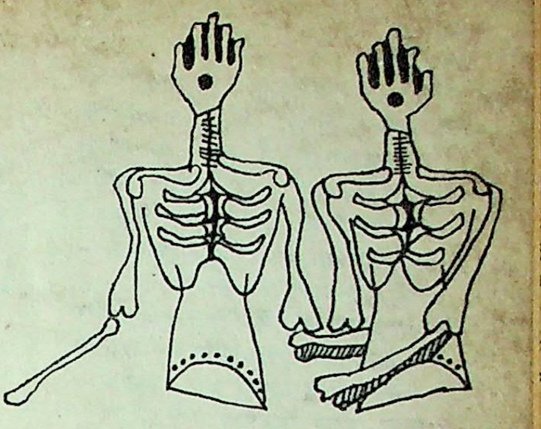

जोड़े • कुणाल

वे कोई भी हो सकते हैं. क्या फर्क पड़ता है?

वे कुछ भी हो सकते हैं, पति-पत्नी, भाई-बहन, प्रेमी-प्रेमिका, वेश्या-ग्राहक, दो दोस्त-दो पड़ोसी . . . या और कुछ . . .

वे स्त्री-पुरुष हैं और लेक के किनारों की बेंचों पर बैठे हैं या सड़कों, होटलों, पार्कों में चहलकदमी कर रहे हैं.

वे एक-दूसरे से सट के बैठे हैं या अलग-अलग. लड़की सीधी बैठी है और लड़का उसकी तरफ हो कर बैठा है या लड़का ही सीधा है, लड़की लड़के की ओर रुख किये हुए, है, क्या फर्क पड़ता है ?

वे हंस रहे हैं, बातें कर रहे हैं, जोर से या खुश-फुस करके. या एकदम गुमसुम हैं.

एक-दूसरे को चूम रहे हैं, एक दूसरे के पूरक हैं.

या रेल के मुसाफिर की तरह पास रह कर भी दूर-दूर हैं. क्या फर्क पड़ता है? ☐

• •

अभिजात्य • कुणाल

मैं आज ट्यूशन पढ़ाने नहीं गया.

जाऊं. . .न जाऊं. . .जाऊं . . .न जाऊं. . .और नहीं गया.

मुझे भूख लगी.

मैंने कमरे के कोने में पड़े चावल की खीर बनानी चाही.

परंतु. . .

वह चावल मेरे सहवासी के हैं. वह, जो मुझे एक मजाक की ही हस्ती समझता है, जब जानेगा कि मैंने उसका चावल खरचा है, बहुत बिगड़ेगा.

और . . .

मैंने खीर बनाने का इरादा छोड़ दिया.

उगी तरह उठंगा हुआ पढ़ता रहा.

मन ने कहा—कुछ देर के लिए बाहर हो आओ. तबियत बहल जायेगी.

मैंने बाहर पहनने के कपड़ों की ओर देखा, बेहद मैले थे.

मैंने आगे के सफे पलट दिये. ☐

विकास • मधुप मगधशाही

मुखियाजी रोजनामचे के मुताबिक दफ्तर पहुंचे. भीतर साहब ललाट पर अंगुलियां ठोंकते उदास मुद्रा में बैठे थे. साहब की उदासी मुखियाजी के कलेजे में 'हाय!' से धंस गयी.

परदा हटा कर वह अंदर पहुंचे. साहब ने देखा तो ललाट का हाथ मेज पर आ गया. बोले—आइए, आइए मुखियाजी, कैसे भूल पड़े?

—हुजूर ही की सेवा में तो हूं, सरकार. और उसके बाद अगल-बगल ताक-झांक कर गोपनीय भाव से मुखियाजी ने अपनी बात चलायी—आज सरकार उदास दिखलाई पड़ते हैं.

—हां, मुखियाजी, साहब ने फिर अपना हाथ माथे पर रख लिया—तकलीफ तो कोई खास नहीं, वैसे है भी!

—कहिए क्या बात है हुजूर? आखिर यह सेवक किस दिन के लिए है?

—बात यह है मुखियाजी, साहब ने बोलना शुरू किया—साल खत्म होने को आया, सरकार वाले पूछेंगे, आपने विकास का रुपया विकास में लगया क्यों नहीं, तो क्या जवाब दूंगा?

—बस इत्ती-सी बात सरकार? मुखियाजी चहके. उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह नया आया हुआ विकास साहब निरा बुद्धू है, कहने लगे—विकास तो चुटकी बजाने में हो जाता है. कितना विकास करना है आपको?

—यही सत्तर-अस्सी हजार हैं.

—मैं अभी आया. आधे घंटे बाद ही उनकी कृपा से विकास कार्यालय के सामने सैकड़ों व्यक्तियों की भीड़ थी. किसीके हाथ में नलकूप की अर्जी थी, किसीके हाथ में कुएं की बोरिंग खुदने, सड़कें बनने और बिजली के खंभे गाड़ने के बिल भी थे. खजांची एक दृष्टि से रुपये गिन और बढ़ा रहे थे.

—मुखियाजी दौड़-धूप में व्यस्त थे. तभी एक व्यक्ति नोटों को गिनता हुआ उनके पास पहुंचा. हकलाता हुआ बोला—साहब ने सही कराया आठ सौ पर, दिया सिर्फ दो सौ.

—ऐसा! मुखियाजी चौंके—अभी साहब से मिलता हूं. वह साहब के कमरे में पहुंचे—सरकार, रसीद के मुताबिक. . .

लेकिन साहब ने बीच ही में बोलना शुरू कर उन्हें वाक्य पूरा करने से रोक दिया—मुखियाजी! साहब मुसकराये—यह तो विकास है. विकास आप केवल अकेले ही कैसे देखेंगे? मुझे भी तो दिखना चाहिए. मेरे दफ्तर के लोग भी देखेंगे. फिर मेरे ऊपर वाले भी देखना चाहेंगे. विकास का लाभ सिर्फ एक को मिले तो वह विकास कैसे कहला सकता है? मुखियाजी को साहबकी बात गुरुमंत्र लगी. □

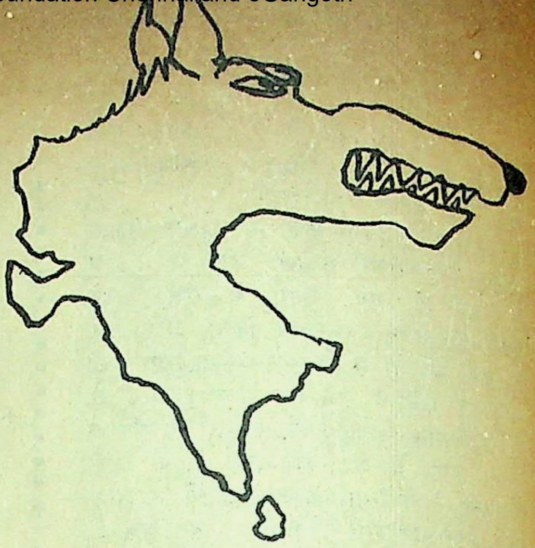

मृत्यु-दर्शन • दिनेश बरनवाल

महारानी महल के सर्वोच्च प्रकोष्ठ पर थीं. समीप ही उनकी मानिता भृत्या वौसरि खड़ी थी. वह अपनी सुंदरता और बुद्धि चातुर्य के लिए विख्यात थीं. महारानी में ज्ञान की लिप्सा थी.

उस समय प्रकोष्ठ के ठीक सामने एक बुर्ज बनाया जा रहा था. हजारों स्त्री-पुरुष कार्यरत थे. महारानी की एकाग्रता टूट गयी, जब उन्होंने देखा कि एक मजदूर वहां से गिर पड़ा.

—तुमने देखा वौसरि, कैसा अद्भुत था!

—हां महारानी, मृत्यु का दर्शन ऐसा ही है.

—मुझे भी ऐसा लगता है. मैं इस पर विचार करना चाहती हूं वौसरि.

—जरूर करें महारानी.

—दुर्गपाल से कहो कि एक मजदूर को उसी बुर्ज पर से नीचे गिरायें. मैं फिर देखना चाहती हूं.

वौसरि चली गयी. उसने दुर्गपाल को महारानी की आज्ञा सुनायी. सबके चेहरे फक्क!

तभी भीड़ में से एक वृद्ध बाहर आया. बोला—महारानी की आज्ञा का पालन करें!

सिर झुका कर प्रधान उसे बुर्ज पर ले चला. महारानी उसी प्रकोष्ठ से देख रही थीं. वृद्ध शांत था. उसे बुर्ज पर से धक्का दे दिया गया. वह गिरा. उसके मुंह से एक आवाज तक न निकली. उसका शरीर नीचे गिर कर बिखर गया.

महारानी ने स्तब्ध हो कर देखा. आश्चर्य से बोलीं—वौसरि, यह क्या हुआ?

—मृत्यु का दर्शन गूढ़ है महारानी.

महारानी पराजय स्वीकार करने को प्रस्तुत न थीं. वह क्षोभ से इधर-उधर घूमने लगीं.

वौसरि के कान महारानी की आज्ञा की प्रतीक्षा में सतर्क थे. □

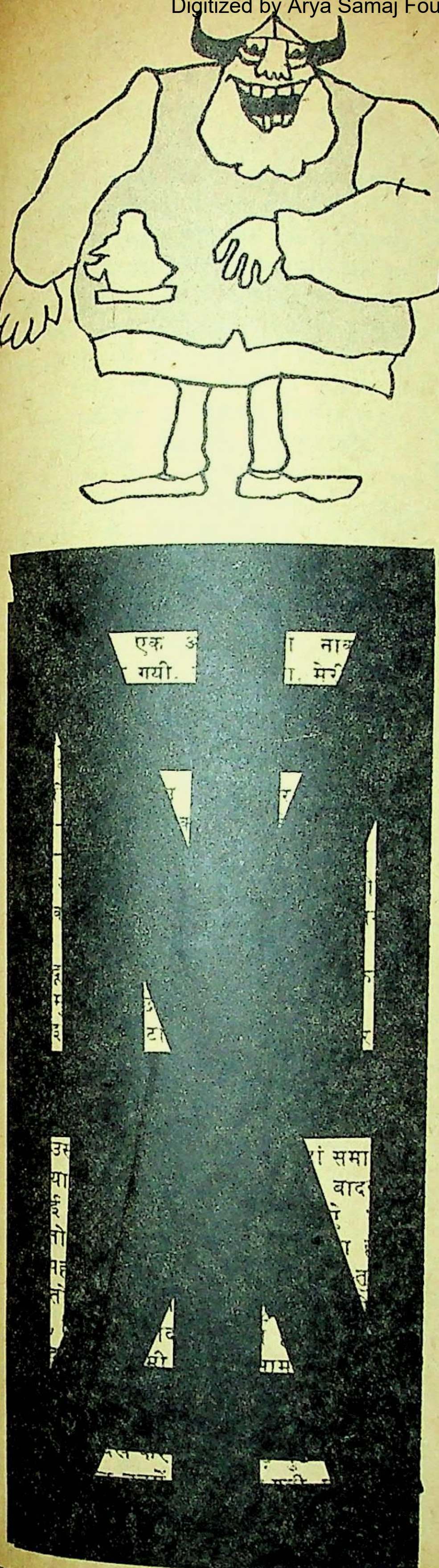

प्रजातंत्र

● अनिल मधुर

गांव के बाहर एक छोटी-सी पहाड़ी पर खड़े दो व्यक्ति सूर्य का उदय होना देख रहे थे.

--देखो बंधु, पूरब दिशा में कैसी लाली छा रही है. एक ने कहा.

—हां, मुझे तो यह किसी लाल-सुनहरे गोले से फूटती प्रतीत होती है. दूसरे ने कहा.

—तुम्हारा क्या विचार है, बंधु, यह क्या हो सकता है?

--मेरे विचार से यह सूरज है.

--सूरज, तुमने कैसे जाना कि यह सूरज है?

—निश्चित रूप से नहीं कह सकता भैया, लेकिन कल रात पुस्तक में पढ़ा था कि सूरज एक सुनहरे रंग का गोला होता है. वह पूरब दिशा. . .

—लेकिन तुम इन तर्कों के आधार पर यह सिद्ध नहीं कर सकते कि यह गोला सूरज ही है; परंतु मैं सिद्ध कर सकता हूं कि यह सूरज नहीं है.

--कैसे? दूसरा चकित हो कर बोला.

--आओ मेरे साथ. वे दोनों पहाड़ी से उतर कर गांव के मुखिया के पास गये.

—दादा, पूरब दिशा में देखो, भला बताओ तो यह क्या है?

--क्या है? मुझे तो कुछ भी दिखाई नही देता.

—देखो न दादा,. . . वो लाल-लाल गोल-सा पहले ने कुछ 'हिंट' देने के अंदाज में कहा.

—अरे, यह सूरज है. इतना भी नहीं जानते.

--लेकिन दादा, तुम कैसे कह सकते हो कि यही सूरज है.

—भई, दुनिया कहती है कि सूरज है.

इतने में चंद लोग और जुट गये. बहस जारी रही. देखते-ही-देखते भारी जमघट लग गया.

पहले व्यक्ति ने जन-समूह को संबोधित करते हुए कहा--भाइयो, क्या आप प्रमाण दे कर इस बात को सिद्ध कर सकते हैं कि यह सूरज ही है. अन्य कोई ग्रह नहीं है? मैं कहता हूं कि यह सूरज नहीं कोई अन्य ग्रह है.

एक वृद्ध सज्जन ने सहमति जतायी--हां, भाई, कोई दूसरा ग्रह भी तो हो सकता है.

जब चंद और लोगों ने भी पहले व्यक्ति के समर्थन में अपनी-अपनी खोपड़ियां हिलायीं तो दूसरा व्यक्ति बेतहाशा पूर्व दिशा की ओर भागने लगा. शायद वह सूरज को यह समाचार पहुंचाने जा रहा था कि प्रजातंत्र आ गया है. □

लघुकथाओं के इस विशिष्ट खंड का संचयन और संयोजन श्री नरेंद्र मालवीय ने किया है.

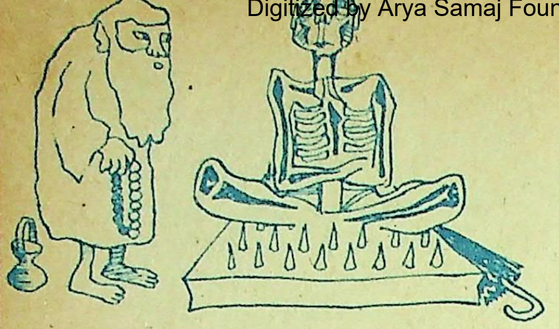

सबूत

● हसन जमाल छीपा

खिलाफत अब्बासिया के जमाने में बरसाती मेंढकों की तरह पैगंबरी के कई दावेदार पैदा हो गये थे. जिसे देखो, वही पैगंबर बना चला आ रहा है. खलीफा हारून रशीद की नाक में दम आ गया. उसने अपने वजीरे-खास को हिदायत कर रखी थी कि वह पैगंबरी के दावेदारों से दलीलें मांगे और जो दलीलें पेश करने में असमर्थ रहे, या जो झूठा साबित हो, उसे फांसी की सजा दे दी जाये.

बहुत से नामनिहाद पैगंबर 'सूली' पर चढ़ा दिये गये.

अंत में एक और दावेदार आया. वजीरे-खास ने उकताये हुए लहजे में उससे भी पैगंबरी की दलीलें मांगी.

दावेदार ने मुसकराकर वजीरे-खास को देखा व बोला-मेरी कोई नहीं मानेगा. . .आप अगर बीवी को मेरे पास भेज दें. उससे एक लड़का होगा, वही मेरी पैगंबरी का एलान कर देगा. अगर यह बात झूठी साबित हो जाये तो खलीफ़ा-ए-वक्त जो चाहें, मुझे सजा दे सकते हैं.

वजीरे-खास ने तुरंत उसे नबी (पैगंबर) मान लिया. ☐

विवशता

● नाशेर जमाल

स्वर्ग, ८ दिसंबर १९७४ (विशेष डाक से). पिछले एक साल से देवलोक में चल रहा संकटकालीन सत्र कल यहां समाप्त हो गया. 'नर्क अंत' अध्यादेश को अधिनियम का रूप देने के विधेयक पर हुई बहस में वक्ताओं ने अपने तर्क जोरदार ढंग से प्रस्तुत किये. गहन विचार-विमर्श के बाद यह बात मान ली गयी कि नर्क का अब अंत कर दिया जाये तथा उसमें अनादि काल से धधकती आग को ठंडा कर दिया जाये.

याद रहे यह अधिवेशन ब्रह्मा के विशेष आग्रह पर बुलाया गया था जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश के अलावा देवलोक के सभी छोटे-बड़े भगवानों को तर्क-वितर्क के लिए सादर आमंत्रित किया गया था.

समापन समारोह के पश्चात जब यमराज ने नर्क की आग को आफ करने का बटन दबाया तो सभी देवताओं की आंसू भरी आंखें नीचे संसार की ओर लगी थीं, जहां आणविक धमाकों से सैकड़ों फिट ऊंचे शोले उठ रहे थे. तृतीय विश्वयुद्ध का विषैला नाग शनैः शनैः समस्त मानवता को निगलने की ओर रेंग रहा था. समुद्र, तथा वायुमंडल में दूषण फैल रहा था. इनसानी बस्तियों पर बंबारी हो रही थी. फसलों पर जहरीली गैस छिड़की जा रही थी. लूली-लंगड़ी संतानें पैदा हो रही थीं. लाखों लोग सूखा, बाढ़ और भुखमरी से त्रस्त दम तोड़ रहे थे.

जब संसार ही नर्क हो गया हो तो नर्क की आवश्यकता कैसी. . . ☐

भूख

● अनूपकुमार

कड़ाके की ठंड में एक औरत अपने बच्चे को चिपकाये फुटपाथ पर पड़ी थी. बच्चे से ठंड सहन न हो सकी.

—मां! मुझे ठंड लग रही है.

—अच्छा बेटा, चल आग के पास चलते हैं.

अब ठंड नहीं लग रही थी.

—मां, मुझे भूख लग रही है.

—चल बेटा, वापस वहीं चलते हैं.

बेटा मां से चिपक गया. शायद अब ठंड भूख से प्रबल थी. ☐

पत्रकारिता

• प्रभु जोशी

एक नवोदित छायाकार ने, फुटपाथ पर भूख से बिलखते एक नवयुवक को देखा तो वह करुणा से भर गया. उसने उसे एक वक्त के खाने का पैसा दिया और उसके कृश शरीर का चित्र उतार लिया.

चित्र एक बहुचर्चित पत्रिका को प्रकाशनार्थ भेजा. यह सोच कर कि इसके छपने से लोगों को मालूम होगा कि 'कृषि प्रधान' कहलाने वाले इस देश में लोग भूख से सूख कर कांटा हो रहे हैं.

कुछ दिनों बाद चित्र छप गया. संपादक ने उसे अपने पत्र के लोकप्रिय स्तंभ में छापा था–जिसका नाम था––'डाक्टरों की सलाह'

नीचे शीर्षक था––'गंदी आदतों का फल भोगता एक नवयुवक' □

भविष्य में

• नीरज बख्शी

सन २०५० ई. का एक दृश्य.

स्थान - एक अजायबघर, एक गाइड स्कूल के बच्चों को परिचय दे रहा था.

गाइड–– और यह जो आप उस डिब्बे को देख रहे हैं यह डिब्बा है डालडा नामक पौष्टिक पदार्थ का, इसे हिंदुस्तान लीवर. . .कं. बनाया करती थी, इसमें . . .और यह डिब्बा मिट्टी के तेल का है. . .आपको यह आश्चर्य होगा-मिट्टी का तेल, जी हां उस युग में यह तरल पदार्थ भारत में पाया जाता था. अब यह केवल इस अजायबघर की शोभा बढ़ाने के लिए रखा गया है. . . .और वह देखिए, उस हरी मखमली डिब्बी में जो चमकदार दाने दिखाई दे रहे हैं वह चीनी नामक पदार्थ है. . .जी हां, मीठी, स्वादिष्ट चीनी के बारे में आपने इतिहास में कहीं अवश्य पढ़ा होगा.. .और. . .दूध है. . .यह घी है. . . और अब एक अंतिम वस्तु वह जो आप देख रहे हैं. . .हां, हां, वह बड़ी-सी पीतल की मूर्ति वह थे हमारे देश के महान खाद्यमंत्री, जिनके युग में इन वस्तुओं का खूब व्यापार होता था. . .

बच्चे आश्चर्य-प्रसन्नता और गर्वित भाव से मूर्ति निहारते हैं और एक नारा लगाते हैं––हमारे पूर्वज महान थे जिन्होंने इन वस्तुओं को हमारे लिए रख छोड़ा-–हमारे पूर्वज–जिंदाबाद. (पर्दा गिरता है) □

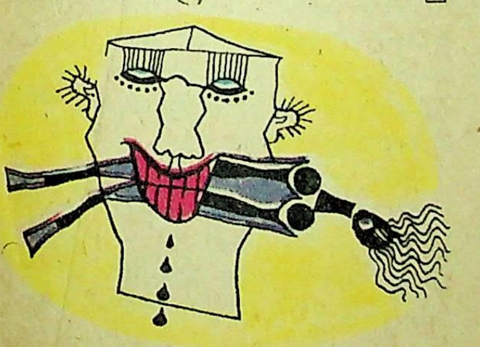

मानसरोवर

• पन्नालाल

([redacted] कहानी मानसरोवर से संवद्ध—क्षमायाचना सहित)

एक बार मानसरोवर में हंसों को धोखा हुआ था- विश्वासघाती सैनिकों ने जब संन्यासियों का वेश धारण किया तो हंसों के लिए अविश्वास का कोई कारण शेष न बचा. वे विश्वास की ओट में छले गये. फिर वे कभी मनुष्य जाति पर विश्वास न कर सके.

उसी समय एक हंस-शिशु बच गया था. अपने कुटुंब वालों के प्रति अथाह दुख में डूबा मध्य रात्रि में रुदन करने लगा. उसकी करुण अवाज से हिमालय कांप उठा. शंकर की तपस्या भंग हो गयी. उस करुण शिशु आवाज को वे सह न सके. अपने अनुचरों के साथ भागे-भागे आ गये. हंस-शिशु को बहलाया, फुसलाया और उसकी दारुण कथा सुनी.

इतना ही कहा—यह राजनीति है शिशु, राजनीति.

हंस शिशु ने इस विषय पर अपना आश्चर्य प्रकट किया.

शिव ने वर दिया.––तुम अगली बार मृत्यु लोक में मनुष्य योनि में जावोगे तब इसका अर्थ समझ आयेगा. और वे अंतर्धान हो गये.

बरसों बाद वह हंस-शिशु मृत्यु-लोक में मनुष्य के घर पैदा हुआ. [redacted] नेता बना. सुख समृद्धियों में लीन उसे अब बीती बातें याद न थीं. पर समय के साथ उस पर लोगों का विश्वास न रहा. उसकी पार्टी बहुमत खो बैठी. वह चिंतित रहने लगा. इलेक्शन नजदीक था और हार अवश्यंभावी थी. उस रात उसे सपने में शिव के दर्शन हुए. उन्होंने कहा. . .यह राजनीति है शिशु. राजनीति. दूसरे ही दिन उसने अपना वस्त्र बदल लिया. सिपाहियों के बदले वह सन्यासी बन चुका था. [redacted] □

अल फ़ातेहा

आनंद क़ुरैशी

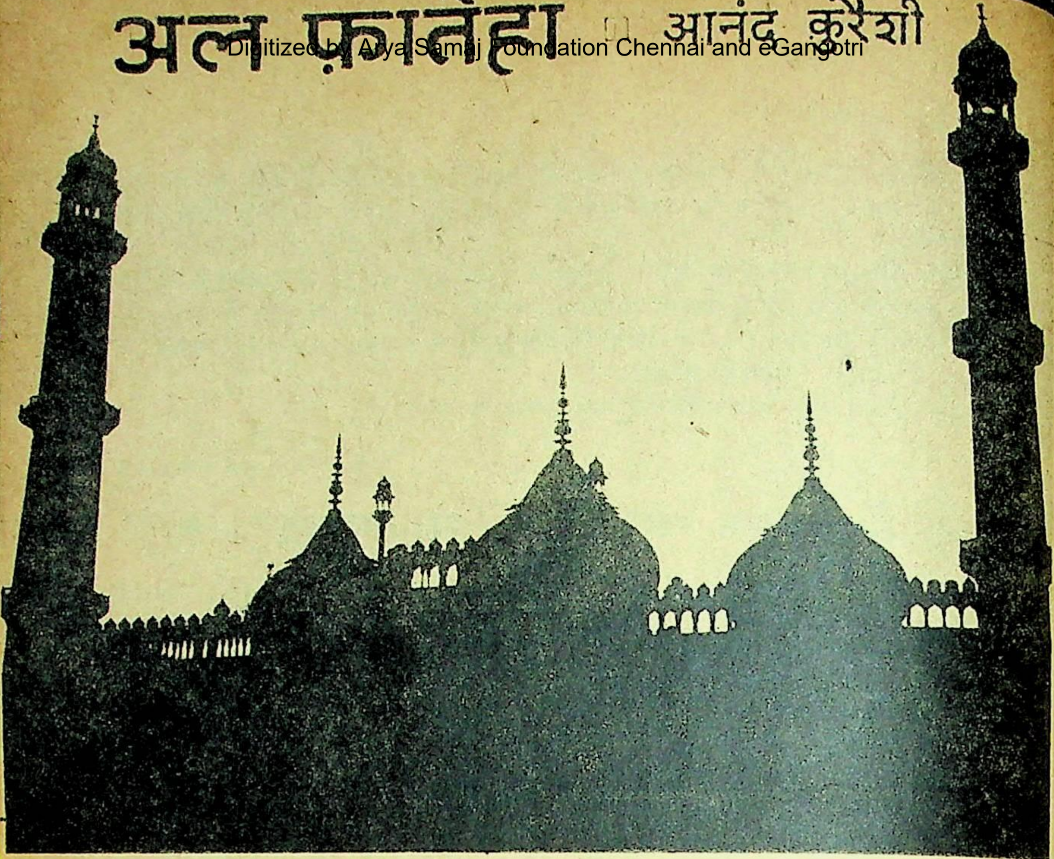

● देवदत्त

—कंधा बदलो.

—हटो, मुझे आने दो.

—लिल्लाह!

(जनाजा मचक-मचक हो रहा था. मौत के बाद लाश भारी हो जाती है. शीघ्रता से लोग एक के बाद एक कांधे बदल रहे थे).

—बरसात होगी.

—छाता भी नहीं लाया.

(जनाजा बाज़ार को पार कर रहा था).

—ऐ!

—क्या है?

—मेरा पान भी बंधवा लेना.

(रास्ते के बीच में गड्ढा था. जनाजे वाले संभल-संभल कर निकले).

—स्साले, हराम का खाते है!

—कौन?

—कमेटी वाले.

—टैक्स वसूल करते हैं, मगर सड़कें दुरस्त करने की फुरसत किसको है!

(पच्-पच्! कीचड़ में पांव पड़े सबके. चारों तरफ कीचड़ ही कीचड़ था)

—धीरे चल यार.छींटे उड़ा रिया है पट्ठा.मस्ती में.

—अब्दुल भाई!

—हां.

—कबर खोदने कौन गया है?

—वजीर.

—दूसरा और कोई नहीं मिला?

—दूसरे पैसे ज्यादा लेते हैं.

—हूं! कमबख्त नेकी के काम में भी हरामखोरी करते हैं. खुद टांगें फाड़ कर सोयेंगे, तब देखूंगा कौन खोदेगा कबर?

(कब्रिस्तान आ गया. चारों तरफ कब्रें ही कब्रें. लंबे-चौड़े मिट्टी के ढलाऊ पाट, कोई छोटे, कोई बड़े, दूर दूर तक फैले पड़े थे. जनाजा टीन की छत के नीचे फर्श पर रख दिया गया. कुछ दाढ़ी वाले बुढ़ऊ और पक्के नमाजी टाइप लोग वहीं खड़े रहे, बाकी आस-पास तितर-बितर हो गये).

—अभी तक इतनी ही कबर खोदी है?

—जमीन भी तो भाटे वाली है.

—मगर तीन घंटे हो गये तेरे को आये. अभी आध घंटे का काम यूं का यूं पड़ा है.

—अगर ऐसी बात थी तो आप खोद लेते.

—चोप्प! मरावणी का! लौंडो! देखते क्या हो, मिट्टी हाथों-हाथ निकाल डालो.

('लौंडे'-शब्द को सार्थक करने वाले बांहें चढ़ाकर टूट पड़े. खुदी हुई मिट्टी बाहर निकाली जाने लगी.)

[illegible]

—पिकनिक पर.
—लड़कियां भी थीं क्या?
—सब थीं.
—वो यार, मोटी वाली क्या नाम है?
—कुसुम.
—एक बात पूछूं?
—क्या?
—मैंने सुना है, जान साहब फिदा हैं उस पर.
—तभी, मैं कहूं वह मोटी क्यों होती जा रही है!
(लौंडे बीच कब्र में ही ठहाका मार कर हंस पड़ते हैं. सतर्क बूढ़ी नजरें उधर घूमती हैं. सब चुप हो जाते हैं).
—कबर कितनी लंबी है सलीम?
—छह फीट.
—ठीक है. गैराई में एक फुट और ले लो.
(वजीर फुर्ती से कुदाली चलाने लगा.)
—क्या आदमी थे, मेहमूद भाई!
—पूछो मत. हीरा थे, हीरा.
—अल्लाहो अकबर!
(एलान हुआ. नमाजी लोग जनाजे की नमाज के लिए खड़े हो गये. दूसरे कब्र को घेर कर बतियाने लगे).
—वजीर, अब और कितनी है?
—बस खतम है, साब.
—जनाजा ले आये क्या?
—हां.
—चलो साहब.
—अलहम्दो लिल्लाह!
—या पाक परवरदिगार, तू ही रखवाला है.
(चार आदमियों ने कांधे दिये).
—पत्थर आ गये क्या?
—हां, चार हैं, बड़े-बड़े.
—माप कर देख लो.
—क्या करता है, ऊपर से पकड़!
—ऊंट का ऊंट हो गया, मगर अकल नहीं आयी.
—डोरी पकड़ना, सलीम भाई!
—गुलाब जल छिड़क दो.
(अब सब लोग मुंहदिखाई की रस्म अदा करते हैं).
—देख लिया सबने?
—मुंह ढंक दो.
—अलहम्दो लिल्लाह!
—अरे बच्चू! ऐसे भी कोई रोता है.
—जरा धीरज रखो बेटा, अभी तो हम जिंदा हैं.
—पत्थर जमाओ.
—वजीर!
—हां साब.
—मिट्टी बराबर करो.
(ढंके पत्थरों पर मिट्टी डाली जाने लगी).
—अब्दुल भाई, सिरहाने फूल रख दो.
—गफूर भाई, फावड़े एक तरफ हटा लो.
—अल फातेहा!
—अल्लाहुम्मा स्वल्ले अला. . .(सबके हाथ उठ गये. फातेहा खत्म होते ही सब चल पड़े).

—वजीर, फावड़ा और गेंती संभाल देना.

—देख, देख गिरेगा! लौंडे मय्यत में भी बन-ठन कर आते हैं!

—लानत है ऐसी तालीम पर, थू!

—यार वो मुंशीजी की बेटी मिली क्या?

—नहीं, मिलने के लिए थोड़ी भागी थी.

—खानदान की नाक छिदवा ली लौंडिया ने.

—मियां खानदान तो पूरा का पूरा छिदा हुआ है.

(सुनने वाले दबी हंसी हंसते हैं.)

—मेहमूद भाई के घर आखिरी फातेहा पढ़ने नहीं चलोगे क्या?

—नहीं! पिक्चर का टाइम हो गया है, मैं चलता हूं.

(आधे लोग रास्ते में बिखर गये. आधे मरहूम मेहमूद भाई के घर मातमी सूरत बनाये आये).

—अल फातेहा!

(मौलाना की आवाज पर सबके हाथ उठ गये. भीतर औरतों में अब भी चीख-पुकार मची थी. मौलाना की आवाज पर सब चुप हो गये. केवल एक घुटी-घुटी आवाज रोने की सुनाई दे रही थी, शायद मेहमूद भाई की विधवा बीवी की. सामने देहरी पर उनका तीन साल का नन्हा मुन्ना कुर्त्ता मुंह में दाबे मौलाना की ऊपर-नीचे होती दाढ़ी को एक टक निहार रहा था.

फातेहा खत्म हुआ. ज्यादातर लोग पास की गलियों में तेजी से विलीन हो गये. रिश्तेदार लोग जाजिम पर बैठ गये. एक ने चेवला बीड़ी का बंडल उठाया और माचिस की डिबिया से तीली निकाल कर सुलगा ली.)

—अस्सलाम अलैकुम!

(मौलाना उठे. रिश्तेदार भी उठने लगे. मुन्नू मौलाना को देख रहा था—चाचाजी, उन्हें एक-एक के पांच नोट दे रहे थे.) □□□

आनंद कुरैशी : पेशे से अध्यापक. इनकी कहानियों में समाज की रूढ़ियों पर प्रखर व्यंग्य के साथ-साथ रूढ़िवादियों के ढकोसलों पर भी पैनी चोट का बखूबी चित्रण होता है.

राजकीय माध्यमिक विद्यालय ओबरी,
ओबरी, जि. डूंगरपुर, राज.

पूरे कमरे पर अजीब-सी खामोशी तारी थी. सिर्फ अब्बाजान के कदमों की धीमी-धीमी आवाज उभर रही थी, जो अपनी झुकी हुई कमर और दमे की मारी फूलती हुई सांसों को दबाने की नाकाम कोशिश करते हुए कमरे के इस कोने से उस कोने तक, न जाने किस सोच में गर्क, आ-जा रहे थे. भाई कोने में पड़ी टूटी कुर्सी पर अधलेटे-से खला में न जाने क्या घूर रहे थे. उनकी ऐनक के पीछे छुपी हुई बड़ी-बड़ी आंखों में आंसू थे और शायद उन आंसुओं के परदे के पीछे से उन्हें कुछ नजर नहीं आ रहा था. उसी वक्त अब्बाजान अचानक टहलते-टहलते रुक कर, अपनी झुकी हुई कमर पर एक हाथ रख कर, उनके पास खड़े हो गये.

—तुम्हें सारे हालात मालूम हैं, अहसन! मगर तुम फिर भी चाहते हो कि मैं तुम्हें अलीगढ़ पढ़ने के लिए भेज दूं. तुम जरा सोचो, अभी हमारी दुकान में चोरी हुए दो महीने भी नहीं हुए हैं. तुम्हारी मां को मरे एक महीना भी नहीं हुआ है. वह एक लमहे को रुके, फिर बोले, खैर दुकान की चोरी का तो पता भी चल सकता था, और रुपया लगाकर दूकान भी खोली जा सकती थी, मगर तुम्हारी मां के इलाज ने मुझे कौड़ी-कौड़ी का मुंहताज कर दिया. तुम तो जानते हो, रुपया किस तरह पानी-सा बहा है. मगर आह, वह भी बेकार चला गया, तुम्हारी मां ने भी साथ छोड़ दिया.

—मगर अब्बाजान?

—नहीं मेरे बेटे, मैं बिल्कुल मजबूर हूं. तुम्हें अहसास नहीं कि मेरी क्या हालत हो रही है. उन्होंने भाई की बात काट दी और अपने फूलते हुए सांस पर बमुश्किल काबू पाते हुए बोले, मेरे लिए तुम्हारी इन तीन बहनों की पढ़ाई का बोझ ही कुछ कम नहीं है. इस पर यह दमे का मरज तो जैसे मुझे खा ही जायेगा. तुम समझते क्यों नहीं?

—तो अब्बाजान?

—नहीं बेटे!. नहीं, हम हालात के ऐसे मोड़ पर आ खड़े हुए हैं कि सिवाय परवरदिगार के हमारा कोई सहारा नहीं. मैं किस बिरते पर तुम्हे पढ़ने के लिए अलीगढ़ भेज दूं, मुझे मालूम है वहां जाने से तुम्हारी जिंदगी रौशन हो जायेगी मगर बेटे. . .

यकायक अब्बाजान को बड़ी जोर का फंदा लगा और वह खांसते-खांसते दोहरे हो गये. भाई दौड़ कर दालान में से थूकदान उठा लाये और उन्हें आहिस्ता से उसी टूटी कुर्सी पर बैठा दिया. थोड़ा-सा बलगम थूक कर वह अपनी खांसी को बराबर करने लगे. भाई ने उनकी तरफ देखा.

—मेरा मतलब है चचाजान, वह जरूर मदद करेंगे.

अब्बाजान ने गहरी नजरों से भाई की तरफ देखा जैसे कह रहे हों —— मुझको जो कुछ कहना था, कह चुका, अब जो तुम्हारे दिल में आये करो.

भाई आहिस्ता-आहिस्ता कदम उठाते हुए बाहर आ गये. मैंने देखा, वह ऐनक हटा कर अपने आंसू खुश्क कर रहे थे. फिर एक लम्हे रुक कर, ऊपरी जीने की तरफ जहां अम्मा और अब्बू थे, बढ़े. ऊपर अम्मा सब से छोटे भाई शौकत को दूध पिला रही थीं और अब्बू अधलेटे-से आरामकुर्सी पर अखबार पढ़ रहे थे. भाई को देखते ही उन्होंने अखबार मेज पर डाल दिया.

—आओ बेटे!

—जी हां!! भाई आगे बढ़कर बैठ गये, चचाजान, मैं दरअसल आप से मश्वरा लेने आया था. आप जानते हैं, मुझे पढ़ने का कितना शौक है. मगर मेरा मुस्तकबिल बरबाद हुआ जा रहा है. अब्बाजान के पास इतना पैसा नहीं है कि वह मुझे कोई आला तालीम दिला सकें, मैं चाहता हूं, कुछ कन र सकूं तो कमसेकम इंजीनीयरिंग में डिप्लोमा ही कर लूं. आखिर मेरे सर पर तीन बहनों का बोझ भी तो है. आप मुझे मश्वरा दीजिए चचाजान! मैं क्या करूं? भाई की आंखों में आंसू भर आये मगर अब की बार वह उन्हें जल्दी ही पी गये. मैंने देखा सामने अम्मा ने शौकत को दूध पिलाना बंद कर दिया था और अब वह बहुत गौर से अब्बू और भाई की बातों को सुन रही थीं. अब्बू चंद लम्हों को बिल्कुल खामोश रहे बल्कि इन चंद लम्हों में सब ही खामोश रहे. फिर अब्बू धीरे-धीरे बोले——मुझे इस बात का पहले से अहसास है कि भाई साहब तुम्हें आगे नहीं पढ़ा सकते, दूकान की चोरी और भाभी की मौत ने उन्हें शिकस्ता कर दिया है. फिर तीन-तीन लड़कियों का बोझ. . . .वह एक लम्हे को फिर खामोश हो गये जैसे कुछ सोच रहे हों, फिर बोले, मगर तुम्हें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए, मेरे बच्चे अभी छोटे हैं, तुम अलीगढ़ जाने की तैयारियां करो. मैं तुम्हें पढ़ाऊंगा.

——चचाजान! मारे खुशी के भाई की जैसे बाछें खिल गयीं. उन्होंने मारे जोश के अब्बू का हाथ पकड़ लिया और उनकी आंखों में फिर वही मोतियों की झालर-सी लटक गयी. मैंने अम्मा की तरफ देखा. उनकी त्यौरियों पर मुझे बल नजर आये. उन्होंने चुपचाप दूध पीते हुए शौकत के मुंह से बोतल खींच ली—— बस पी चुके दूध? आज से तुम्हें इतना ही दूध मिला करेगा वरना बाबा के रिश्तेदार क्या करेंगे... वह बोतल लेकर बड़बड़ाती हुई बावर्चीखाने की तरफ चली गयीं. दूध की बोतल मुंह से निकल जाने से शौकत रोने लगा.

अब्बू ने धीरे से भाई से कहा——तुम कुछ फिकर

न करना, रुपया मैं दूंगा, जाओ अब तय्यारियां करो.

मैं पहले ही बाहर निकल आया था. अब शाम धीरे-धीरे ढल रही थी. दूर गर्ल्स स्कूल के ऊंचे-ऊंचे यूकलप्टस के पेड़ों पर धूप अटकी हुई थी. भाई धीरे से कमरे से बाहर निकले और आहिस्ता-आहिस्ता जीने उतरते हुए नीचे आंगन में आये. उसी वक्त बाहर स्कूल की गाड़ी आकर रुकी और नसीम बाजी, रुखसाना बाजी अंदर दाखिल हुईं. उनके पीछे सब के बुर्के और बस्ते थामे गुड़िया बाजी. भाई कमरे में जा चुके थे. मैं दौड़ कर गुड़िया बाजी के पास जा खड़ा हुआ.

--आपको मालूम भी है, भाई अलीगढ़ जा रहे हैं.

--ऊंह, झूठ, अब्बाजान कल ही से मना कर रहे हैं.

—सच! आज हमारे अब्बू ने कह दिया, तुम फिकर मत करो. रुपया मैं दूंगा. नसीम बाजी ने गुड़िया बाजी से अपना बुर्का ले कर तह करते हुए मेरी तरफ देखा. फिर हंस कर दाहिने हाथ से अपनी ऐनक जमाते हुए बोलीं-- हट, झूठे!

—अच्छा तो आप चल कर भाई से पूछ लीजिए.

मैं जल गया और रुख्साना बाजी मेरे इस जवाब पर जोर से हंस पड़ीं.

--बेचारा, एक तो तुम्हें बता रहा है, ऊपर से तुम उसे झूठा बना रही हो. और मैं धीरे-धीरे खिसक कर रुख्साना बाजी के पास खड़ा हो गया.

★ ★

वह शाम बड़ी मनहूस थी जब भाई और अब्बू दोनों अलीगढ़ चले गये थे. अब्बू भाई का दाखला कराने गये थे. उनकी छुट्टियां भी खत्म हो गयी थीं, लिहाजा उनका उधर ही से अपनी नौकरी पर चले जाने का इरादा था. उस शाम बेहद सख्त गर्मी पड़ रही थी. आंगन में शाम ढलते ही पलंग निकल आये थे. एक पलंग पर अम्मां बैठी छालियां काटती हुई बराबर बड़बड़ाये जा रही थीं-- चौबीस साल हुए मुझे इस घर में हड्डियां रिगड़ते हुए. तुम्हारे दधयाल वालों ने मेरा सब कुछ मुझसे छीन लिया. अब जो कुछ बाकी बचा है, उसको तुम्हारे अब्बू अपने भतीजे की पढ़ाई में लुटाने पर तैयार बैठे हैं. जब मैं इस घर में आई थी तो मेरी उमर चौदह साल थी. मगर मेरा ही दम था जो मैंने दिन को न दिन समझा और न रात को रात. तुम्हें क्या मालूम तुम तो शादी के आठ साल बाद पैदा हुए.

अम्मा न जाने कितनी देर तक उस दास्तान को दुहराती रहीं. मैं वहां से उठकर जीने में आकर खड़ा हो गया. फिर मैं भारी-भारी कदम उठाता

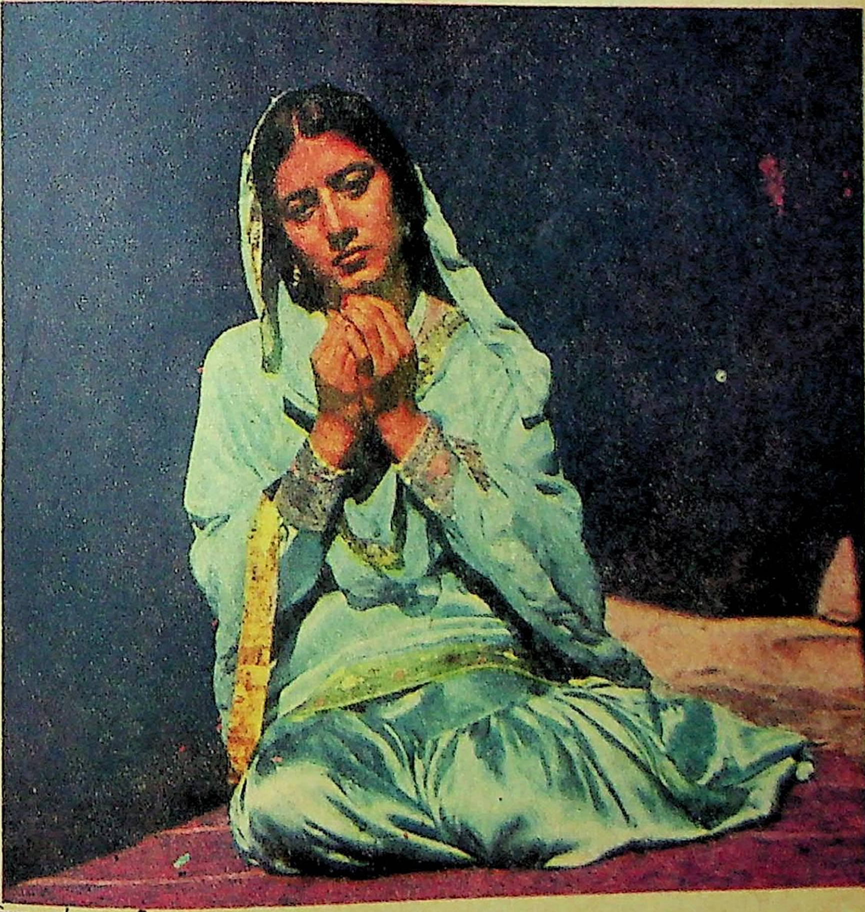

● सतीश मल्होत्रा

रजा जाफरी: पूरा नाम रजा अब्बास जाफरी है. इनकी कहानियों में आज के मध्यम वर्ग के शिक्षित मुस्लिम परिवारों के समक्ष उत्पन्न आर्थिक संकट का अच्छा-खासा चित्रण देखने को मिलता है.

एक-एक सीढ़ी उतरता हुआ नीचे जा पहुंचा.

मैंने देखा, अब्बाजान बावर्चीखाने में बैठे तीनों बहनों के साथ खाना खा रहे थे. जब मैं ऊपर जाने लगा तो मैंने देखा रुख्साना बाजी अपने हाथों से नल पर एक अकेली रकाबी को धो रही थीं.

गुड़िया बाजी हाथ धो कर मेरे पास आयीं——तुमने खाना खा लिया?

——अभी नहीं.

——आइये, ऊपर चलें.

और मैं गुड़िया बाजी का हाथ पकड़ कर ऊपर ले आया. अम्मा ने एक बार तिरछी नजरों से उनकी तरफ देखा मगर मुंह से कुछ नहीं बोलीं. गुड़िया बाजी बड़ी देर तक शौकत को खिलाती रहीं. थोड़ी देर बाद रुख्साना बाजी भी ऊपर आ गयीं. अम्मा थोड़ी देर तक तो ऐंठी ऐंठी-सी रहीं, फिर जब रुख्साना बाजी ने अपने स्कूल की उस्तादनियों के कहानिया किस्से सुनाना शुरू किये तो अम्मा अपने गुस्से को भूल कर हंस पड़ीं.

रात को जब चारों तरफ सन्नाटा छा जाता, जब अम्मा अपनी ससुराल वालों को जली-कटी सुनाकर और अपनी सारी जिंदगी के बर्बाद होने का मातम करके, मुंह में पान दबाकर अपने पलंग पर लेट जातीं तो मैं चुपके से उठकर धीरे-धीरे पांव धरता हुआ, जीने उतर कर नीचे आंगन में आ जाता. रुख्साना बाजी के बिस्तर पर, अपना बिस्तर छोड़ कर, गुड़िया बाजी लेटी होतीं. मैं चुपके से जाकर रुख्साना बाजी के दूसरी तरफ लेट जाता और वह मारे लाड़ के हम दोनों को अपने लंबे-लंबे बाजुओं में छुपा लेतीं और फिर गई रात तक हम दोनों को अपनी अंग्रेजी किताबों की कहानियां 'पुडिंग' और 'बडिंग लायर' सुनाया करतीं. 'पुडिंग' के हीरो लड़के की मजाकिया हरकतें वह इस तरह मजे लेकर बयान करतीं कि अंधेरी या चांदनी रात के उस सन्नाटे में हमारे कहकहे जोर जोर से गूंज जाते.

दीवाली और दशहरे की छुट्टियों में भाई आते और चले जाते. नीचे घर की हालत दिन-ब-दिन खराब होती जा रही थी. रुख्साना बाजी की फीस तो स्कूल में पूरी माफ थी मगर नसीम बाजी और गुड़िया बाजी जब अब्बाजान के आगे पंद्रह तारीख को हाथ फैलातीं तो वह मारे गुस्से के जलभुन जाते—— सारा तो खा लिया तुम लोगों ने! अब पैसा कहां से लाऊं?

वह उस दिन घंटों चिल्लाते—— घर में खाने के लाले पड़े हैं और तुम लोगों को तालीम की पड़ी है. जिसको देखो, बड़े-बड़े ख्वाब देख रहा है. कोई जरूरत नहीं है स्कूल जाने की, जितना पढ़ना था, पढ़ चुकीं.

रुख्साना बाजी को बेतहाशा गुस्सा आ जाता—अब्बाजान! आखिर आपकी यह क्या बात है, जब हम फीस का नाम लेते हैं, आप यही कहते हैं.

——हां, मैं ठीक खफा होता हूं. पढ़ने की कतई जरूरत नहीं है. बंद करो थिरकघर जाना. वह जब इंतहाई गुस्से में होते तो स्कूल को थिरकघर कहते.

——हम वहां नाचने, रंगरेलियां मनाने जाते हैं जो आप रोकते हैं?

——बस, मैंने कह दिया, हरगिज-हरगिज जाने की जरूरत नहीं है. वह दमे के मारे उखड़ती हुई सांसों को काबू में करते हुए और खांसते हुए जवाब देते, और उसके जवाब में रुख्साना बाजी मजे से बुर्का उठा कर स्कूल चली जातीं और नसीम बाजी की आंखों में चमकते हुए मोतियों की झालर-सी तन जाती और वह नाक पोंछती हुई सबसे अंदर की कोठरी में जा पड़तीं.

मैं और गुड़िया बाजी चुपके से घर के पिछले हिस्से में चले जाते. अब्बाजान के चिल्लाने की आवाज़ सारे दिन गूंजती रहती. मगर दूसरे दिन उनके पास न जाने कहां से पैसे आ जाते और वह तीनों की फीस रुख्साना बाजी के हाथों में थमा देते. और इस तरह महीने भर तक तालीम फिर जारी रहती.

अम्मा ऊपर जीने में खड़ी यह सब सुना करतीं और जब मैं ऊपर जाता तो कहतीं—— न जाने इस बुड्ढे ने कहां रुपया गाड़ रखा है! जाता है और निकाल लाता है. तुम जरा घर के पिछले हिस्से में देखना, कोई गड्ढा-वड्ढा तो नजर नहीं आता.

——अच्छा, जरूर देखूंगा.

अकसर छोटी-छोटी बातों पर अम्मा और अब्बाजान में भी लड़ाई ठन जाती. वह जीने में ऊपरी हिस्से में खड़ी हो जातीं और अब्बाजान नीचे. दोनों एक दूसरे की सात पुश्तों को उखाड़ कर फेंक देते. मैं ऐसे मौकों पर थर-थर कांपने लगता और अंदर कमरे में इन आवाजों से फरार हासिल करके रोनेवाली नसीम बाजी की पीठ पर अपना सर रख कर खुद भी रोने लगता. रुख्साना बाजी ऐसे में सारे घर में टहलतीं.

मगर वह दोनों लड़ते-लड़ते दीवाने हो जाते. कभी-कभी तो नौबत हाथापायी की आ जाती. अब्बाजान गुस्से में चढ़ते हुए ऊपर तक जाते. अम्मा जीने का दरवाजा बंद कर लेतीं और अब्बाजान चीख-पुकार कर वापस आ जाते तो अम्मा अपने हाथ में पकड़ा हुआ चिमटा दरवाजा खोल कर जीने की तरफ खींच मारतीं और फिर दोनों खामोश हो जाते.

वक्त धीरे-धीरे अपनी सदियों पुरानी चाल से घिसटता रहा. अम्मा और अब्बाजान में बराबर लड़ाइयां होती रहीं. अब्बू, भाई और अब्बाजान दोनों को बराबर रुपया देते रहे. नसीम बाजी और रुख्साना बाजी दोनों सेकेंड ईयर में पहुंच गयीं. गुड़िया बाजी को अब्बाजान ने इसलिए स्कूल से उठवा लिया कि एक दिन उन्होंने किसी तवाइफ की लड़की के साथ स्कूल से आते देख लिया था. भाई ने इंजीनियरिंग डिप्लोमा फर्स्ट डिवीजन में पास कर लिया और नतीजे के चार माह बाद ही उन्हें नौकरी मिल गयी. उन्होंने अब्बाजान और बहनों को अपने पास बुलाने के लिए खत भेज दिया. अब्बाजान खुशी से फूले नहीं समाये. नसीम बाजी की आंखों में अनजानी-सी एक चमक आ गयी. रुख्साना बाजी ने सामान बांधना शिरू कर दिया. मैं सब कुछ देखता रहा. उस दिन मुझे गुड़िया बाजी कहीं नजर नहीं आयीं. मैं धीमे-धीमे कदम उठाता घर के पिछले हिस्से में बने अपने कमरे में आ गया. मेज पर किताबें बिखरी थीं. कमरा अजीब वीरान-वीरान-सा था.

--हम जा रहे हैं. . .

मैं एक दम से घूम गया. कमरे के दरवाजे पर गुड़िया बाजी खड़ी थीं. अजीब सोगवार-सी.

—खुदा हाफिज!

—ऐं ?

--हां और क्या? मैंने उनकी तरफ देखा. उनकी आंखें जैसे छलकी पड़ रही थीं.

—हम एक दूसरे से इसी दिन के लिए मिले थे ना—कि आप आ कर कहें हम जा रहे हैं और मैं जवाब दूं खुदा हाफिज—है ना?

मैंने आज जिंदगी में शायद पहली बार उनकी तरफ देखा. आसमान की लामुतनाही वुस्सतों से भी गहरी बड़ी-बड़ी काली आंखें, सुतवां नाक, लरजते हुए सुर्ख-सुर्ख होंठ और उन होंठो के नीचे नाजुक-सी ठोढ़ी. मैंने देखा उनका चंपई रंग जज्बात के तलातुम से गुलनार हो रहा था.

मैं अनजाने में थोड़ा-सा आगे बढ़ आया—बोलिये ना? हम इसीलिए एक साथ रहे थे? वह बिल्कुल खामोश रहीं. सिर्फ उनके होंठ धीरे-धीरे लरजते रहे.

—गुड़िया बाजी! मैंने सरमोशी की. उन्होंने एक नजर में जाने किस तरह देखा. मुझे ऐसा लगा जैसे मैं जमीन पर नहीं, आसमान पर नहीं, खला में परवाज कर रहा हूं. मुझे नहीं मालूम कब मेरे दोनों बाजू अलग हुए और कब गुड़िया बाजी मरे सीने से आ लगीं. कितनी देर हम लोग उसी आलम में रहे, मुझे नहीं मालम. थोड़ी देर बाद मैंने उनका चेहरा उठा कर अपनी दोनों हथेलियों पर रख लिया—गुड़िया बा. . .

—शिश. . .सिर्फ गुड़िया तुम्हारी. . .

और मेरे उजाड़ और वीरान कमरे में शहद के से शीरीं वह लम्हे गुजर गये. गुड़िया ने जाते-जाते मुझसे कहा—अब तो हम जा रहे हैं मगर थोड़े दिनों बाद जब नसीम बाजी, रुख्साना बाजी का दाखला भाई के पास हो जायेगा तो मैं अब्बाजान को ले कर आ जाऊंगी.

और गुड़िया मेरे दिल में अपना घरौंदा बना कर चली गयीं. मैं दरवाजे में खड़ा सामने इमली के घने दरख्त की फुनगियों पर अटकी सूरज की टेढ़ी-मेढ़ी किरणें देखता रहा और सोचता रहा जब यह घरौंदा छोटे-से घर में तबदील होगा, जब मैं दफ्तर से लौट कर आऊंगा तो उस वक्त गुड़िया मुझे कहां मिलेंगी, मैं किस तरह अंदर जाऊंगा, उसे डरा दूंगा. नहीं-नहीं उसे चौंका दूंगा. . . .और. . . .

* *

मेरे ख्वाब बढ़ते गये. ख्वाबों में दिन ढलते गये, रातें गुजरती गयीं. अब्बू जब नौकरी से पेंशन ले कर आये तो मुझे ऐसा लगा जैसे मैं एक दम से बहुत बड़ा हो गया हूं. अम्मा का दिन-रात सवाल था कि अब तुम नौकरी करो. अब्बू ने साफ कह दिया कि अब मेरे पास पैसा नहीं है. मैं मजबूर हूं, हालांकि मुझे मालूम था कि अब्बू फंड का रुपया ले कर आये हैं. अब्बू ने रुपया अम्मा के हाथों में दे दिया और अम्मा उसी दिन मेरे कमरे में आयीं—मैं जानती हूं तुम्हारे दिल में जो ख्यालात पल रहे हैं. गुड़िया का एक खत गलती से मेरे पास आ गया है मगर मैं यह रिश्ता कतई नहीं होने दूंगी.

मैंने जैसे गहरे कुएं में झांक कर कहा—तो मेरी जिंदगी को क्यों अपने जज्बात पर कुरबान कर रही हैं! मेरी तालीम अधूरी है.

मगर अम्मा उठ खड़ी हुईं—मेरे पास इतना पैसा नहीं है. जो पैसा था, वह अहसन की पढ़ाई में खर्च हो गया. मैं तो जब जानूं वह आदमी पढ़ाई के बदले में तुमको पढ़ा दे. चिराग से चिराग जलता है.

--मगर वह अभी इस हालत में कहां है?

—ऊंह, उसको अपना फर्ज पूरा करना ही चाहिए.

और उस दिन अम्मा से पहले ही मैं अपने कमरे से बाहर निकल आया. मेरे दिल में जैसे तूफान उठ रहा था. और अब्बू सामने ही बैठे थे—क्यों अब्बू! क्या आपने भाई को इसीलिए पढ़ाया था कि उसका बदला मांगें?

अब्बू ने एक नजर मेरी तरफ देखा. फिर जाने किन ख्यालों में खो गये. मैंने देखा, अम्मा धीरे-धीरे चलती हुई आ कर उनके पीछे बैठ गयीं.

--भई देखो, ऐसा है, तुम जानते हो मेरी पेंशन हो चुकी है. अहसन का फर्ज है कि वह अपने भाइयों को आगे पढ़ायें. उन्होंने ठहरे हुए लहजे में कहा. मगर मैं समझ गया कि यह आवाज उनकी अपनी नहीं है. मैं वापस अपने कमरे में आ गया और टूटी हुई कुरसी में धंस गया. कमरे में, और बाहर चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा था. मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे यह अंधेरा मुझे निगल लेगा. अंधेरा धीरे-धीरे और बढ़ता गया मगर मैं अपनी ही जगह बैठा रहा. रात तवील होती गयी. न जाने, क्या बज गया. मेरे कमरे के सामने धीरे से एक साया लहराया—चलो ऊपर, बहुत रात हो गयी, तुमने अभी तक खाना भी नहीं खाया.

अब्बू की आवाज है. मैं गैर-इरादी तौर पर उठ कर उनके साथ हो लेता हूं.

५०, मकबरा गोलागंज, लखनऊ.

□□□

गुस्ताख़ियां

• प्रकाश पंडित

हाड़-मांस का बना ऐसा कौन भला मानस है जो अपनी छाती पर हाथ रख कर कह सकता है कि उसने अपने बचपन, जवानी या बुढ़ापे में कभी किसी से इश्क नहीं किया? फिर भला उर्दू के अदीब और शायर इस भावना से किस प्रकार अपवादित रह सकते हैं!

● 'गालिब' एक सितमपेशा डोमनी पर आशिक हो गये थे और उन्होंने कहा था——

इश्क पर जोर नहीं है ये वो आतिश 'गालिब'
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने

● 'दाग' कलकत्ता की एक वेश्या मुन्नीबाई 'हिजाब' पर आशिक हुए तो ७४ वर्ष की आयु तक यानी जब तक उन्होंने शरीर नहीं छोड़ा, इश्क भी नहीं छोड़ा और आज भी वेश्याएं अपने कोठों पर सबसे अधिक 'दाग' ही की गजलें गाती हैं.

● मीर तकी 'मीर' अत्तार के एक लौंडे के अलावा खां 'आरजू' की बेटी पर ऐसे आशिक हुए कि एकांतवासी हो गये. हर समय एक कोठरी में पड़े रोते रहते और उन्माद रोग में ग्रस्त हो कर उन्होंने——

दिल गया, रुसवा हुए, आखिर को सौदा हो गया
इस दो रोजा जीस्त में हम पर भी क्या-क्या हो गया.

और

सरहाने मीर के आहिस्ता बोलो
अभी टुक रोते-रोते सो गया है

ऐसे बेजोड़ शेर कहे कि 'गालिब' ऐसे स्वाभिमानी और स्वेच्छाचारी शायर को भी उनकी शेरगोयी का लोहा मानना पड़ा.

● यहां तक कि इसलामी रियासत और मर्दे-मोमिन का तसव्वुर देने वाले अलामा 'इकबाल' भी स्वयं को आशिक होने से न बचा सके; यद्यपि उन्होंने अतिया बेगम से बड़ा वेजीटेरियन किस्म का इश्क किया था और अपनी लिखी हुई कविताएं उन्हें भेंट किया करते थे.

इन आशिक हजरात की बाद की पीढ़ी के शायर और अदीब भी अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार आशिक होते रहे. 'जिगर' मुरादाबादी आशिक हुए तो शराबनोशी छोड़ दी. 'फिराक' आशिक हुए तो बड़ी संगीतधर्मी रुबाइयां कहने लगे. 'मजाज' आशिक हुए तो उनकी कलम से **'आवारा'** नामक बेपनाह नज्म का सृजन हुआ. 'साहिर' आशिक हुए तो **'ताजमहल'** के रचयिता बने और अख्तर शीरानी 'सलमा' नाम की पर्दानशीं महिला पर आशिक हुए तो **'नन्हा कासिद', 'ऐ इश्क कहीं ले चल'** आदि रचनाओं द्वारा उन्होंने उर्दू के सबसे पहले और बड़े रूमानी शायर की पदवी प्राप्त कर ली. और जब कृष्णचंदर सलमा सिद्दीकी पर आशिक हुए और इन पंक्तियों का लेखक दिल्ली के तीसहजारी इलाके में स्थित उनके निवास स्थान पर उनसे मिलने गया तो उस समय वह बड़ी तन्मयता से **'एक गधे की आत्मकथा'** लिख रहे थे.

और ये इश्क

उक्त सभी इश्कों की भूमिका समझिए. क्योंकि वास्तव में यह कालम 'जोश' मलीहाबादी साहब के उन अठारह इश्कों के निमित्त किया गया था जिनका जिक्र उन्होंने अपनी जीवनी **'यादों की बरात'** में बड़े चटखारे ले-ले कर किया है और जिनसे पहली नजर में इश्क हो जाने की परंपरा सिद्ध होने के साथ-साथ थोक में इश्क करने की परंपरा भी स्थापित होती है.

मेरे विचार में 'जोश' साहब ने नियमानुसार काफी सोच-विचार बल्कि अनुसंधान के बाद अपने इश्कों का संपादन किया है और इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि इश्क एक ही प्रकार के माशूकों या माशूकाओं से न होने पाये. अतएव उनकी इस स्वलिखित जीवनी में दो विपरीत प्रकृति के लौंडों के अतिरिक्त जिन नाना प्रकार की नवयौवनाओं का जिक्र मिलता है, उनमें से एक क्रिश्चियन थी तो एक विशुद्ध अंग्रेज. एक हिंदू विद्यार्थी थी तो एक मुसलमान नवाबजादी. एक निजी सेविका तो एक वेश्या. एक लौंडी तो एक नर्स. और यहां फिर दो विपरीत प्रकृति की श्रद्धालु युवतियां——शेष माशूकाओं के नाम तो 'जोश' साहब को याद हैं लेकिन बढ़ती उम्र और ठहरी स्मरणशक्ति के कारण उनके साथ हुई प्रेमलीलाओं का विवरण वह भूल चुके हैं.

लेकिन अपने उपर्युक्त इश्कों का जो विवरण उन्होंने बयान किया है, उसमें से एक-दो को छोड़ कर शेष पर आदरवश विश्वास तो किया जा सकता है, लेकिन यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि वे इश्क थे. इश्क की बजाय वे हवस के कारनामे नजर आते हैं. जरा लौंडी जहूरन का किस्सा मुलाहजा हो——

एक दिन जब गुलाबी जाड़े की नवेली सुबह अपने

मीर

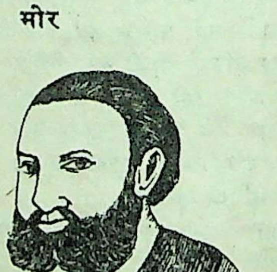

गालिब

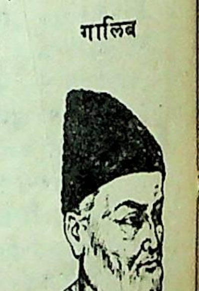

अपने बिस्तर पर बैठी आंखें मल रही थी, मेरा तमाम घर हस्बे-दस्तूर महवे-ख्वाब (निद्रामग्न) था और मैं हस्बे-आदत बेदार हो कर अपनी अंगनाई की हरी-भरी नीम के नीचे खड़ा झूम रहा था कि नीम के करीब की कोठरी में रहने वाली नयी लौंडी जहूरन मेरे सामने आ कर खड़ी हो गयी और मुझे घूरने लगी. और जब मैंने देखा कि उसकी आंखों में एक नाकाबिले-फहम (अविज्ञेय) रंगीन-सी मिलगुजाहट है—उसके होठों के उभार में एक नामालूम-सा तकाजा है और उसकी ठुड्डी तक उभरा सीना गहरी सांसों के गिरदाब (भंवर) में ऊपर-नीचे हो रहा है तो मैंने पूछा—जहूरन! क्या बात है?

उसने कहा—ऐ जरनैली टोपी के मंझले भय्या! मेरी कोठरी में जरी चले चलो तो बात बताऊं. मेरी कोठरी बड़ी गरम-गरम है.

मरव्वत के मारे इनकार न कर सका. वह आगे-आगे चली और मैं उसकी गरम-गरम सांसों में लिपटा हुआ कोठरी में दाखिल हो गया.

जहूरन ने बड़े चाव और भला के भाव के साथ कहा—मंझले भय्या! जरी लेट जाओ, मैं तुम्हारे पांव दाब दूं. मैं बड़ी मासूमियत के साथ लेट गया. उसने मुझपर रजाई डाल दी और रजाई के अंदर हाथ डाल कर बड़े जंचे-तुले अंदाज में मेरे पांव दाबने लगी. थोड़ी देर पांव दाबती रही और उसके बाद. . .मैंने तड़प कर कहा—अरे यह क्या, जहूरन? उसने अपने सीधे हाथ से मेरा मुंह बंद कर दिया और 'अरे अल्ला'-'अरे अल्ला' के नारे लगाने लगी.

'जोश' साहब ने इस घटना को इश्क के साथ-साथ ऑपरेशन कहा है—और इससे पहले भी वह एक वेश्या से इसी प्रकार का ऑपरेशन करवा चुके थे, लेकिन जिसे उन्होंने खालिस इश्क का नाम दिया है. जरा उसकी शुरुआत भी मुलाहजा हो :

मिस मेरी रोमाल्ड

एक दिन, सरेशाम हम दोनों जीना चढ़ रहे थे. वह आगे थी, मैं पीछे. उसके लवेंडर की खुश्बू मेरे वुजूद का अहाता किये हुए थी कि एकाएक उसने मुड़ कर मुझे देखा और 'ओ गॉड' कह कर जीने पर बैठ गयी और बड़े कर्ब (वेदना, व्याकुलता) के साथ अपना पेट पकड़ लिया. मैंने अंग्रेजी में पूछा—आपको क्या तकलीफ है? उसने कहा—मेरे पेट में सख्त दर्द होने लगा है. आप मुझको सहारा दे कर मेरे बेडरूम तक पहुंचा दें—ओ माई गॉड—ओ माई गॉड.

मैंने लपक कर उसकी छल्ला-सी कमर में हाथ डाल दिया और सहारा दे कर उसे उसके बेडरूम में पहुंचा दिया। वह बिस्तर पर लेट कर तड़पने लगी. मैंने कहा—मैं अभी डॉक्टर बुलाता हूं. उसने कहा—नहीं, पहले मेरा पेट सहला दें. अगर इससे अफाका न हुआ तो फिर डॉक्टर को बुला लायें.

मैं बड़े इन्हिमाक (तन्मयता) के साथ उसका पेट सहलाने लगा. उसने आंखें बंद कर लीं और ऐसा मालूम हुआ कि उसके दर्द में तख्फीफ (कमी) हो रही है.

थोड़ी देर के बाद उसने आंखें खोल दीं. मुझे बड़े तशक्कर से देखा और कहा—अगर तकलीफ न हो तो यह सामने रखी सोडे की बोतल खोल कर मुझे पिला दीजिए.

मैंने बोतल खोल कर गिलास में सोडा भरा और पेश कर दिया. वह उठ कर बैठ गयी और कहा—आप पहले इसे जरा-सा चख लें. मैंने एक घूंट पी कर गिलास उसको दे दिया. वह मेरी तरफ निगाहें उठा कर इस तरह पीने लगी, गोया सोडे के साथ-साथ मुझे भी पी रही हो.

मुझे और सोडे को पी कर उसने फिर मेरा शुक्रिया अदा किया और मुझसे कहा—मेरी मां बाहर गयी हुई है. अकेले जी घबरायेगा. थोड़ी देर और बैठ जाइए. मैं कुर्सी पर बैठ गया. उसने कहा—नहीं, मेरे बिस्तर पर बैठ जाइए.

मैं उसके बिस्तर पर बैठ गया और उसने हजरत मसीह की बड़ी तसवीर पर, जो उसके सरहाने टंगी थी, चादर डाल दी. . .

र. कुमारी से एक और खालिस इश्क

जोश साहब कलकत्ता जा रहे थे और र. कुमारी बनारस. प्रथम श्रेणी के उस डब्बे में प्रत्यक्ष है, आम फिल्मी कहानियों की तरह उन दोनों के अतिरिक्त और कोई नहीं आ सकता था, इसलिए 'जोश' साहब बिला तकल्लुफ शराब पी रहे थे :

तीसरे जाम का एक घूंट पीने के बाद अपना बिस्तर दुरुस्त करने के बहाने से, जानबूझ कर लड़खड़ाता हुआ उठा और यह जाहिर किया कि मेरे जिस्म का तवाजुन

दाग

इकबाल

जोश

सलाम

आत्मकथा

इंद्रजाल कॉमिक्स

१ अगस्त १९७५ अंक

मृत्यु के अनेक रूप

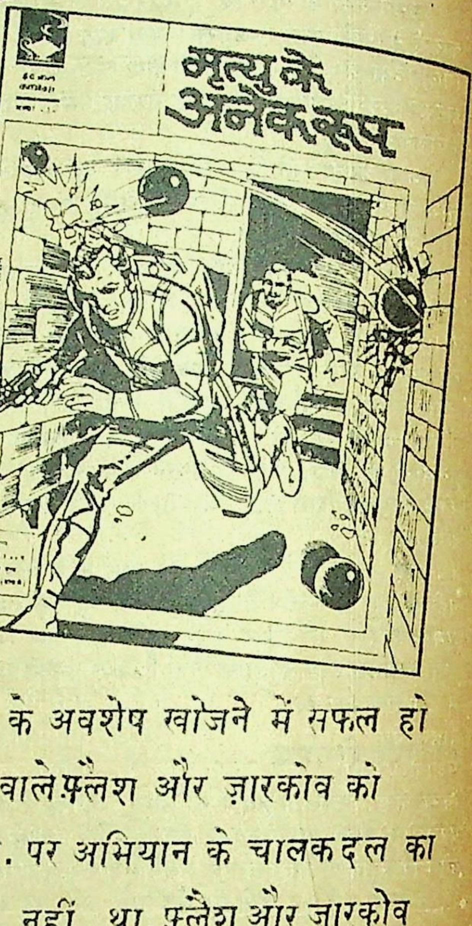

जासूसी आंखें रोबट पिछले अभियान के अवशेष खोजने में सफल हो गयीं और एर्ग ग्रह का चक्कर काटनेवाले फ़्लैश और ज़ारकोव को उनके विस्तृत चित्र भी प्राप्त हो गये. पर अभियान के चालकदल का तो उन चित्रों में नाम-निशान ही नहीं था. फ़्लैश और ज़ारकोव ने वहां के भूमिगत अड्डों का पता भी अपने उपकरण से लगा लिया, पर वे उनमें पहुंचे कैसे? चालकदल के ४१ सदस्यों के छुटकारे की यह लोमहर्षक गाथा १ अगस्त, १९७५ के इंद्रजाल कॉमिक्स में पढ़िए. इन्द्रजाल कॉमिक्स अंग्रेजी, हिंदी और बंगला में प्रकाशित होता है.

(संतुलन) बिगड़ गया है. और जब तकिये सीधे करने को झुका तो एक झटके के साथ उसकी तरफ इस तरह झुक गया कि मेरे दोनों हाथ उसके सीने पर जा कर टिक गये. उसके मुंह से हलकी-सी चीख निकल गयी. मैं मुआफी तलब करता सीधा होने लगा तो उसने अपने मुलायम हाथों से मेरी दोनों कलाइयां पकड़ लीं और कहा, जल्दी से बैठ जाइए, नहीं तो गिर पड़िएगा. यह कहते ही उसने अपने पांव समेट लिये और मैं उसके बिस्तर पर बैठ गया. . .

उसने अपने बाल खोल दिये. सदरी उतार दी. घड़ी कलाई से निकाल कर सरहाने रख ली. मेरे पहलू से पहलू मिला दिया और मेरी आंखों में आंखें डाल कर कोर खटकने लगी और मैं उसके छलकते सागरे-जमाल (यौवन रूपी मदिरा पात्र) में डूब गया. . .

और अपने इसी श्रेणी के अठारह इश्कों के बारे में जोश साहब बड़े तमतराक फर्माते हैं.

'मैंने किसी आवारा या बाजारी औरत से कभी एक बार भी इश्क नहीं किया और जिंदगी में एक बार भी उनके इंतिजार में चश्मबराह और गोश बरआवाज (आंखें बिछाना तथा आवाज पर कान लगाना) बन कर नहीं बैठा. अलबत्ता इश्क को मैंने हमेशा कलेजे से लगाया, सर आंखों पर बिठाया. तड़पा, तिलमिलाया, तकिये भिगोये, पलकों में आंसू पिरोये, तारे गिने और तलवारों की धारों पर करवटें बदलीं. जानलेवा खतरों को ठोकर लगायी. मौत के सामने आंखें नहीं झपकायीं और एक दिन यहां तक हुआ कि ऐन मौनसून के हैजानी (प्रचंड) मौसम में इस बात के बावजूद कि मैं तैरना नहीं जानता, अल्लाह अकबर कह कर हौकते समंदर में झम से कूद पड़ा.'

सुना है एक बार 'जोश' साहब सचमुच हौकते समंदर में झम से कूद पड़े थे और लोगों ने बड़ी आसानी से उन्हें बाहर निकाल लिया था. लेकिन 'जोश' साहब गुस्ताखी मुआफ फर्माएं, सेवक को तो उनके ये इश्क बिल्कुल उसी किस्म के इश्क मालूम होते हैं जैसे किस्सा चार दरवेश के दरवेशों ने किये थे और इश्क में लुट-लुटाके और डाके की मार खाके जंगलों में जा छिपे थे. या फिर ऐसे इश्क जो स्वर्गीय सलाम मछलीशहरी साल के तीन सौ पैंस दिनों में तीन सौ छियासठ बार किया करते थे. ज्यों दिन या रात के किसी समय किसी किस्मत की मारी लड़क या स्त्री से उनका सामना हुआ कि वह खटाक से उस प आशिक हो गये. लखनऊ रेडियो में थे कि उनके इस आशि काना मिजाज से नावाकिफ एक लड़की ने उनकी कि कविता की प्रशंसा कर दी. प्रशंसा न भी करती तो सामने पड़ने पर सलाम साहब उस पर आशिक होने बाज न आते, लेकिन उसने प्रशंसा कर ही दी तो सला साहब के लिए उसी शाम अपनी उस प्रेयसी के घर जान अनिवार्य हो गया.

सलाम साहब के आदर-सत्कार के बाद इधर-उध की बातों में कई घंटे निकल जाने के बावजूद जब सला साहब ने वहां से सरकने का नाम न लिया, बल्कि रह-र कर दीदे मटकाने लगे, तो बेचारी प्रेयसी ने घबरा क नौकर को आवाज देते हुए कहा—मेरे लिए पानी का ए गिलास लाओ—जल्दी.

इससे पहले कि नौकर पानी का गिलास ला सलाम साहब लपक कर उनके बावर्चीखाने में ज पहुंचे और फ्रिज में से पानी की बोतल निकाल ला और फिर जिस अंदाज से उन्होंने गिलास में पान डाला और अपनी प्रेयसी को प्रस्तुत करते हुए उसक उंगलियों की पोरें पकड़ लीं, प्रेयसी एकदम बौखला उठ और बौखला कर उसने पुनः नौकर को आवाज द और कहा— पानी के साथ-साथ इस गिलास को भ बाहर सड़क पर फेंक दो.

कॉफी हाउस में सलाम साहब ने पूरी दास्ता सुनाने के बाद आह भर कर अपने मित्र मजाज कहा—न पीती, लेकिन उसे फिकवाना नहीं चाहिए था

जब सलाम साहब बार-बार यही वाक्य दोहरा चले गये कि भले ही वह पानी न पीती लेकिन उसे फिक वाना नहीं चाहिए था, तो मजाज बोर हो कर बोले— भले मानस! न पीती, न फिकवाती तो क्या उस आबदस्त करती!

□□□

एक श्रद्धांजलि

भारत भूषण अग्रवाल (जन्म : १९१९, मृत्यु : २३ जून १९७५) 'तार सप्तक' के यशस्वी कवि थे. 'छवि के बंधन', 'जागते रहो,' 'मुक्ति मार्ग,' 'सेतुबंध' आदि इनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं. इनके अतिरिक्त 'पलायन' और 'खाई बढ़ती गयी' आदि नाटक भी लिखे हैं. आप साहित्य अकादमी के सदस्य थे. २३ जून को शिमला में आपका आकस्मिक देहावसान हो गया. हिंदी काव्य जगत आपको कभी नहीं भुला सकता. उनके असामयिक निधन पर 'सारिका' परिवार की ओर से

हार्दिक श्रद्धांजलि

अवरोध

☐ अभय

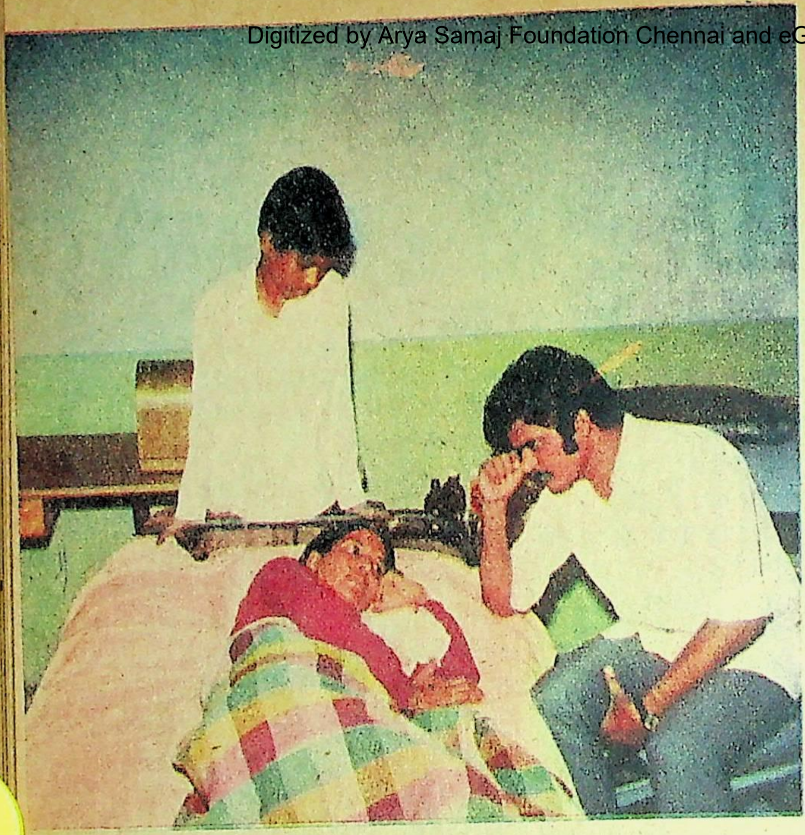

● दुंदप्पा

सुबह वह नुक्कड़ पर आ गया था. आज उसने काफी पहले बिस्तर छोड़ा था, हर रोज से पहले, सबसे पहले उसने बिस्तर लपेटा था. चौकी एक किनारे खड़ी कर दी थी. फिर बेड शीट को दरवाजे पर पर्दा जैसा टांग दिया था. एक घंटे के अंदर वह तैयार हो गया था. चूल्हे पर चाय चढ़ायी थी और फिर थोड़ी देर बाद चाय पी कर कमरे से बाहर निकल आया था.

वह खुश था कि डाक्टर ज्ञानेश्वर उसे समय से पहले देख कर प्रसन्न होंगे. सबसे पहले तो कल की घटना पर बातचीत होगी. फिर हर रोज की तरह देश और समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार पर बहस. सामाजिक व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता, इसके लिए गांवों और शहरों में राजनीतिक चेतना के प्रचार-प्रसार की बातें. फिर बात अंततः बेरोजगारी पर आ कर टिक जायेगी. और डाक्टर साहब कहेंगे 'अब आपको ही देखा जाये. आप तीन वर्षों से नौकरी की तलाश में लगे हैं. ट्यूशन कर रहे हैं. मैं पूछता हूं, सरकार को जब नौकरी नहीं देनी है तो क्यों डिग्रियां बांटती हैं?' अंत में वे आवाज भारी करते हुए कहेंगे, 'साहब, यह जमीन क्रांति चाहती है. खून! खून!! और उसके लिए आपके जैसे, मेरे जैसे लोगों की आवश्यकता है. लेकिन सभी ऐसा चाहें तब तो? निहित स्वार्थ वाले लोग बदलाव के मार्ग में रुकावट पैदा कर रहे हैं.' और ढेर सारी समस्याओं पर बातचीत.

उसने अपने को आश्वस्त अनुभव किया कि पूरी जानकारी के लिए डाक्टर साहब कल की घटना पर जरूर बात करेंगे. वह एक-एक बात डिटेल में बतायेगा. वह बतायेगा कि पन्नालाल की पत्नी की तबीयत कल काफी खराब थी. पन्नालाल की अनुपस्थिति में अपना दायित्व समझ कर वह डाक्टर जे. प्रसाद को ले कर आया था. डाक्टर प्रसाद ने पन्नालाल की पत्नी को देख कर कुछ दवाएं लिखी थीं और दवा का पुरजा उसके हाथ में थमा दिया था. दवा खिलाने का निर्देश पाने के बाद वह दवा की दूकान पर चला गया था. सभी दवाओं के साथ उसने रेस्टिकलीन के चार कैप्सूल मांगे थे. वह बारी-बारी से दवाओं को पुरजा से मिलाता गया था और अलग रखता गया था. अचानक उसकी नजर शीशी के भीतर चमकते कैप्सूलों पर टिक गयी थी. उसे आश्चर्य हुआ था कि चारों कैप्सूल दो-तीन रंगों के हैं, दो कैप्सूलों का रंग एक और एक का रंग अलग. उसने गौर से देखा था— कैप्सूलों का बैच नंबर एक ही था, मैन्यूफैक्चरिंग डेट भी एक था, एक्सपायरी दिन भी एक ही था. तब उसके मन में यह वाजिब प्रश्न उठा था कि कैप्सूलों के रंग में अंतर क्यों है?

प्रश्न कर चुकने के बाद उसने महसूसा था कि दूकानदार के चेहरे पर थोड़ी शिकन आ गयी थी. लेकिन तुरंत अपने को संभालते हुए दूकानदार ने कहा था— आपको दवा लेनी है या नहीं? मुझे और ग्राहकों को भी तो देखना है. उसकी आवाज में थोड़ी कड़ुआहट थी और वह तेजी से पीछे स्टोर रूम में घुस गया था.

थोड़ी देर बाद वह बाहर आ गया था. इस बार उसके चेहरे की घबराहट साफ नजर आयी थी. दूकान में बैठे एक मोटे आदमी के कान में उसने कुछ खुसुर-फुसुर बात की थी जिसे वह सुन नहीं सका था. मोटा आदमी पैसों का हिसाब-किताब कर रहा था. शायद वह दूकान का मालिक था. उसने हामी भरने के खयाल से दो-तीन बार अपने सर को ऊपर-नीचे किया था—लाइए मैं आपको दूसरा कैप्सूल दे रहा हूं.

उस वक्त तक वह सभी दवाओं के पैसे निकाल चुका था . उसने दूकानदार को पैसे दिये थे. रसीद ली थी और मुख्य सड़क पर आ गया था.

उस वक्त उसके मन में कई सवाल तेजी से उठे थे. ऐसा वह पिछले कई दिनों से अखबारों में पढ़ता आ रहा है—देश में जाली दवाओं की बिक्री. मिलावट की दवा खाने से चार व्यक्तियों की मृत्यु. जांच के लिए कमेटी का गठन. . .यह तो मात्र संयोग ही था कि उसकी नजर शीशी के भीतर कैप्सूलों पर चली गयी थी. वरना. . .वह तेज कदमों से मुख्य सड़क पर चल रहा था. उसने कलक्टर को इसकी सूचना दी थी और संभावना व्यक्त की थी कि दूकान के अंदर इस किस्म की कई अन्य दवाएं भी होंगी. कलक्टर ने सिविल सर्जन को बुलाकर दवा दिखवायी थी. सिविल सर्जन ने दवा को उलट-पलट कर काफी देर तक देखा था और फिर आश्वासन देते हुए कहा था कि दवा बिल्कुल ही नकली है.

फिर जांच दस्ते के द्वारा दूकान की तलाशी ली गयी थी. उस बीच वह दूकान के बाहर काउंटर पर ही खड़ा था. दूकान पर धीरे-धीरे एक मजमा लग गया था. उनके बीच से तरह-तरह की आवाजें आ रहीं थीं—जाली की जांच हो रही है?

—जी हां, नकली दवा पकड़ी गयी है.

—साब! इसका तो यह पुराना धंधा है. इसने तीन-तीन मकान खड़े कर लिये हैं.

—किसी ऐंटीकरप्शन के आदमी ने पकड़ा है.

—नहीं साहब! इसी शहर का आदमी है. चलो साले का धंधा तो बंद हुआ.

—कल ही वर्मा की पत्नी मर गयी. बेचारी ने दवा खाते ही कै शुरू कर दी थी. कै करते-करते मुंह से खून आने लगा था.

दूकान से जाली दवा की कई शीशियां जब्त कर ली गयी थीं. सब कुछ होते-होते उसका पूरा दिन गुजर गया था. उसके घर आते-आते ट्यूशन करने का भी समय निकल चुका था.

★ ★

वह जलवा की पानदूकान के पास आ गया. यहां उसने सड़क छोड़ दी. बायें हाथ थोड़ा नीचे उतर गया. सामने डाक्टर ज्ञानेश्वर का मकान था. डाक्टर उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, ऐसा सोचते ही उसके कदम एक बारगी तेज हो गये. वह दरवाजे पर गया. हर रोज की तरह उसने काल बेल पर अंगुली रख दीं. अंदर घंटी की कर्र-कर्र उसे सुनायी पड़ी.

दरवाजा खुला. सामने डाक्टर साहब बैठे अपनी दाढ़ी बनाने में व्यस्त थे. उसने नमस्ते किया और प्रतीक्षा करने लगा कि डाक्टर साहब उसे बैठ जाने को कहेंगे. इस बात पर उसे कतई आश्चर्य नहीं हुआ कि डाक्टर साहब ने उसके नमस्ते का कोई जवाब नहीं दिया था. उसे आश्चर्य तब हुआ कि उसके बैठते ही झुन्नी उठ कर अंदर चली गयी .

डाक्टर साहब ने अपनी पूरी दाढ़ी में झाग फैला लिया फिर उससे पूछ बैठे—कल क्यों नहीं आये ?

—दरअसल कल का पूरा दिन. . .

इसके पहले कि वह अपनी पूरी बात कह पाता, डाक्टर साहब ने अपनी आवाज कड़ी कर दी—आपको मालूम नहीं, झुन्नी की परीक्षा तीसरे ही माह में होने वाली है?

उन्होंने स्टूल पर रखी पत्रिका के एक पृष्ठ को तीन-चार टुकड़ों में फाड़ दिया. एक टुकड़ा से रेजर में लगे गंदे झाग को साफ कर उसे बाहर फेंक दिया.

इस वक्त उसने अपने को काफी कमजोर और बेवजन महसूस किया. लेकिन अपने को संभालते हुए वह तुरंत नार्मल हो गया—कल दावा वाली घटना को ले कर मैं काफी व्यस्त रहा.

—आपकी व्यस्तता से हमें क्या लेना-देना! दूसरे मास्टर रखे जा चुके हैं. मुझे आप जैसे समाज-सुधारक की आवश्यकता नहीं है. कहते हुए उन्होंने दूसरी दफा अपनी दाढ़ी में झाग फैलाया.

कुछ भी निर्णय लेने के पहले वह दरवाजे के बाहर आ गया उसने महसूस किया कि उसके निर्णय लेने और नहीं लेने में कोई सिलसिला नहीं रह गया है.

सिविल लाइन की चौड़ी सड़क पर वह भारी कदमों से चल रहा था. उसकी चाल धीमी पड़ गयी थी. वह काफी थकावट महसूस कर रहा था. लेकिन अभी उसे प्रजापति लाल के यहां जाना था. प्रजापति लाल ने बड़े-बड़े अफसरों से उसका संपर्क कराया था. अफसरों की बिदाई या स्वागत-समारोह की पार्टियां प्रजापति लाल ने अपने घर पर दी थीं. बड़ी-बड़ी संस्थाओं में वह प्रजापति लाल के चलते ही जा सका था. 'प्रोग्रेसिव पीपुल्स एसोशियेशन' से ले कर 'तुलसी साहित्य परिषद' तक को प्रजापति लाल ने संरक्षण दिया था.

इस शहर में जब वह आया था, ट्यूशन का पहला मौका उसे प्रजापति लाल के यहां ही मिला था. अगर चाहते तो अपने ही कारखाने में उसे रख सकते थे, लेकिन फिलहाल कुछ दिनों के लिए उन्होंने अपनी बेटी सुषमा को पढ़ाने के लिए कहा था. तब से उसके एवज में उसे कुल पचास रुपये प्रतिमाह मिलते आ रहे हैं.

करमटोली की सड़क पर आ कर उसने एक बार समय का अंदाज लगाना चाहा. अभी आठ से अधिक नहीं बजा होगा. बहुत अधिक साढ़ेआठ. वह प्रजापति भवन के सामने आकर रुक गया. नौकर ने उसे सूचना दी—आपको साहब ने ऊपर बुलाया है. उसे लगा कि नौकर उसके लिए ही बिठाया गया हो.

प्रजापति लाल अपने कमरे में बैठे कॉफी की

संरक्षा ! संरक्षा !! संरक्षा !!!

कृपया ध्यान दीजिए.......

रेल लाइनों को पार करने, सवारी डिब्बों के फुट-बोर्डों, छतों और बफरों पर यात्रा करने के फलस्वरूप प्रतिदिन औसतन एक व्यक्ति की मृत्यु होती है और एक व्यक्ति बुरी तरह घायल होता है।

आजकल गाड़ियाँ बहुत तेज़ रफ्तार से चलती हैं और उनकी बारंबारता भी काफ़ी अधिक रहती है। अतः असावधानी से यात्रा करना अधिक ख़तरनाक हो गया है।

आपका जीवन मूल्यवान है। इसलिए रेल लाइनों को पार करके या चलती गाड़ी में चढ़कर अथवा चलती गाड़ी से उतरकर या डिब्बों की छतों, फुट-बोर्डों आदि पर यात्रा करके अपनी जीवन-यात्रा कम मत कीजिए।

यात्रा को सुरक्षामय तथा आरामदेय बनाने में
रेलवे की सहायता कीजिए

पश्चिम रेलवे

अभय (जन्म : [illegible] सितंबर, १९४८) पिछले ढाई वर्षों से अधिवक्ता हैं और एक अनियतकालिक पत्र का संपादन भी कर रहे हैं. इधर छोटी-बड़ी पत्रिकाओं में कुछ रचनाएं भी प्रकाशित हुई हैं.

चुस्कियां ले रहे थे. वह नमस्ते करने के बाद सामने की कुर्सी पर बैठ गया. वह समझ नहीं पा रहा था. कि आखिरकार बात क्या है. बात जानने के लहजे में उसने तुरंत प्रश्न किया—नहीं है क्या ?

प्रजापति लाल ने कप को टेबल पर रख दिया––वह तो है, दरअसल मुझे ऐसे शिक्षक की आवश्यकता नहीं है जो रिक्शावालों से, दुकानदारों से लड़ता चले.

–जी, लड़ाई? मैंने. . .वह सकपका गया.

प्रजापतिलाल तमतमा गये–आपने कल दवा-दूकानदार से झगड़ा नहीं किया था? आपने उससे उधार दवा नहीं मांगी थी. उसने देने से इनकार किया तो आपने उसे गाली नहीं दी थी? मैं आपको एक प्रोग्रेसिव आदमी जानकर आपकी जीविका का प्रबंध करता चलूं और आप सबसे लड़ते रहें. मैंने दूसरा मास्टर ठीक कर लिया है.

—लेकिन . . . . .

—लेकिन-वेकिन कुछ नहीं. मैंने कह दिया, मुझे आपकी आवश्यकता नहीं. इसी हरकत के चलते शरणकुमार वकील और प्रोफेसर शर्मा ने भी दूसरा शिक्षक रख लिया है.

यह सब सुनकर उसे एक सख्त झटका-सा लगा. किसी गलियारे के कुत्ते की तरह बिना कुछ भौंके उसने सब कुछ सुन लिया. उसने प्रजापति लाल को अप्रत्याशित नजरों से देखा और सड़क पर आ गया.

वह करमटोली सड़क पार कर के अखबार वाले के पास आ गया. उसने एक अखबार खरीदा. इसी शहर से प्रकाशित होनेवाला एक साप्ताहिक अखबार. अचानक उसकी निगाह ठहर गयी. . .'सासाराम, २२ सितंबर, आज यहां के एक शिक्षक श्री सोहन कुमार ने स्थानीय पंजाब मेडिकल हाल में रेस्टिकलिन के कैप्सूलों के रंगों में भिन्नता पाकर जिलाधिकारी और सिविल सर्जन को लिखित सूचना दी जिसके आधार पर दवा की कई शीशियां जब्त कर ली गयीं. इस संदर्भ में डाक्टर ज्ञानेश्वर, डा. जे. प्रसाद एवं अन्य फिजिशियनों ने अपनी राय दी है कि कैप्सूल नकली नहीं हैं बल्कि ढीले कार्क के कारण उनके रंग परिवर्तित हो गये थे.'

पढ़ते ही उसने अखबार के तमाम पृष्ठों को अपनी मुट्ठी में पूरी ताकत से भींचा और चलने की रफ्तार तेज कर दी. □□□

७४ इ, गोरक्षिणी पथ, सासाराम –८२११५.

एक लघुकथा

राजा भोज और वृद्धा

● समीरकुमार सिन्हा

एक बार राजा भोज एवं कविराज वेष बदल कर उज्जयनी के राजप्रसाद से निकल पड़े. भ्रमण करते हुए वे काफी दूर निकल आये और लौटते वक्त रास्ता भूल गये. इसी समय उन्हें एक झोपड़ी में एक वृद्धा दिखाई दी.

दोनों ने वृद्धा के निकट पहुंच कर कहा—माता, यह मार्ग किस ओर जाता है? वृद्धा ने दोनों को देर तक गौर से देखा और फिर धीरे से बोली––यह मार्ग कहीं नहीं जाता बल्कि लोग इस पर आते-जाते हैं. हां, तुम लोग हो कौन?

––हम यात्री हैं, महाराज भोज बोले. वृद्धा बोली––यात्री तो केवल दो होते हैं. एक सूर्य और दूसरा चंद्रमा. तुम लोग यात्री कैसे हो सकते हो?

––हम क्षणभंगुर मानव हैं, बड़े सतर्क हो कर कविराज ने कहा.

—क्षणभंगुर! क्षणभंगुर तो संसार में दो ही चीजें हैं, एक यौवन और दूसरा धन.

––मैं राजा हूं, महाराजा भोज बोले.

––राजा भी केवल दो ही होते हैं. एक इंद्र और दूसरा यम, वृद्धा ने पुनः टोक दिया.

राजा और कविराज ने मन-ही-मन वृद्धा की विद्वता के सम्मुख हार मानते हुए भी उसे ऊपर से प्रकट नहीं किया और कविराज ने काफी सतर्कता के साथ कहा– हम लोग सहनशील व्यक्ति हैं.

इस पर वृद्धा बोली—सज्जनों! सहनशील भी संसार में दो ही हैं. एक पृथ्वी और दूसरी नारी.

कविराज घबड़ा गये और विनीत स्वर में बोले––माता, हम परदेशी हैं. .

वृद्धा बोली— नहीं हो सकता. परदेशी केवल दो होते हैं. एक जीविका और दूसरा वृक्ष के पत्ते . राजा भोज और कविराज ने वृद्धा के सम्मुख अपनी हार स्वीकार कर ली.

इस पर वृद्धा बोली––संसार में हारने वाले व्यक्ति भी केवल दो ही होते हैं. एक उधार लेने वाला और दूसरा कुमारी कन्या का पिता. क्यों सच-सच कहो न कौन हो तुम लोग?

राजा भोज एवं कविराज नतमस्तक खड़े थे. वृद्धा ने मुसकराते हुए कहा––तुम राजा भोज और तुम कविराज हो न? और दाहिनी ओर तर्जनी से संकेत करते हुए बोली––इधर से सीधे चले जाओ. आगे कुछ दूरी पर उज्जयनी जानेवाला राजपथ मिल जायेगा. □□□

मई-जून की धूप की तरह यह खबर मिनटों में सारे मोहल्ले में फैल गयी कि नीरेन पांच साल की इंजीनियरिंग की पढ़ाई खत्म कर के लौट रहा है. अपने ही शहर में नौकरी मिल गयी है उसे. नीरेन के पिता अवकाश प्राप्त कर चुकने के बाद अब चैन से रहेंगे. पुश्तैनी मकान, लड़का इंजीनियर, बैंक में काफी रुपया और चाहिए भी क्या एक सुखी आदमी को. बीच-बीच में छुट्टियों में नीरेन लौटता, घर में जैसे जश्न होता. खुद अपने हाथों पका कर खिलाने का सुख उठाते... 'नीरेन आ रहा है' कपूतों के पिताओं ने डाह से सुना, सपूतों के पिताओं को एक निकट का प्रतिद्वंद्वी मिला और सीमा के सपनों को मिलीं अंगड़ाइयां. यह नीरेन नहीं कोई मौसम लौटने वाला था. किसी मौसम के शुरू होने के दिन कैसे होते हैं? पता नहीं देखने में कैसा लगेगा इतने दिनों बाद? पांच साल का समय भी तो कम नहीं होता. समय का कितना बड़ा हिस्सा बीत गया, यूं ही. क्या ऐसा नहीं हो सकता कि फिर उससे नया परिचय हो, धड़कनों की रफ्तार फिर एक बार नये वाकये की तरह तेज हो? कैसी तो मूर्ख हो गयी है, समय भी पांच साल पीछे का चाहने लगी है वह.

सामने का घर जब खाली हुआ तो मोहल्ले के शोहदों को यह चिंता खाने लगी कि अगले किरायेदार के यहां 'लगेज' है या नहीं. 'लगेज' उनका आपसी 'कोड' था किसी परिवार में किसी भी तरह फंसाई जा सकने लायक लड़की के लिए. मोहल्ले के उस हिस्से में तो फिलहाल सीमा ही माल थी, लगेज थी, सुंदर-सी लड़की थी. फिर जो परिवार आया उसमें कोई 'लगेज नहीं था. एक बूढ़े पिता के साथ उनका एक जवानी की देहलीज पर दस्तक देता हुआ लड़का नीरेन. पता नहीं कब और कैसे नीरेन सामने के घर से ज्यादा इस घर का हो गया था.

* *

—कल तुम्हारे कमरे की लाइट दो बजे तक जलती रही? एक दिन सीमा ने पूछा. 'तुम्हें कैसे पता' का भाव नीरेन के चेहरे पर छप गया.

—मेहरबानी कर के इतनी 'ब्रॉड टो' का जूता पहन कर आप मेरे सामने मत आया कीजिए. सीमा ने हाथ जोड़ कर एक दिन 'अल्टीमेटम' दिया. वह जब नराजगी जाहिर करती तो 'तुम' से 'आप' पर आ जाती.

—तुम्हें नहीं मालूम आजकल इसीका फैशन है, नीरेन ने जनसाधारण में फैले हुए प्रचलन की जानकारी देने की अदा में कहा.

—होगा फैशन, मुझे बड़ा वाहियात लगता है. और ये रबर सोल क्यों बनवाया है. न आने का पता और न जाने का. जूते की तेज खट् खट् से कितना 'मैनली' एफेक्ट पड़ता है, तुम्हें तो सारी बातों के लिए एक लंबा-चौड़ा भाषण देना पड़ता है. और सचमुच ही सीमा ने जोरदार भाषण दे डाला.

—क्या लेदर सोल से ही 'मैनली' एफेक्ट पड़ता है? तब तो घोड़े की टाप...और नीरेन ने बीच में ही हंसना शुरू कर दिया.

अपनी बात का यूं मजाक बनता देख सीमा का चेहरा तमतमा गया. नीरेन की हंसी पर भी एकाएक रोक लग गयी.

—अरे, मैं तो मजाक कर रहा था. मैं रबर सोल इसलिए पहनता हूं, कि जैसे मान लो मैं उस तरफ से आ रहा हूं. तुम्हारे पीछे से आ कर चुपचाप तुम्हारे सामने खड़ा हो जाऊं तो तुम चौंक जाओगी न? —नीरेन ने मनाते हुए कहा.

सीमा का सारा रोष कपूर की तरह उड़ गया—काश, एक दिन तुम मुझे ऐसे ही चौंकाते!

मगर फिर चौंक पड़ने के सुख की ओर से उदासीन बनती हुई बोली—मुझे चौंकाने के लिए आप हवाई चप्पल पहन कर आ सकते हैं. जूते में सोल चमड़े का ही लगेगा, रबर का नहीं! फर्मान जारी समझा गया.

सीमा अब मन की उन सीमाओं को पार कर रही थी,

ज़रा-सी बात

□ नवनीत मिश्र

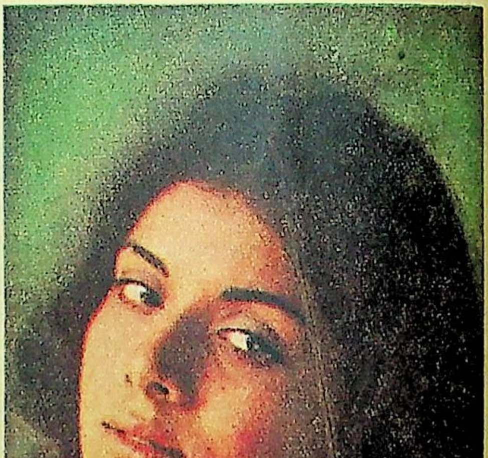

• एन. के. सरीन

जहां तकिये नहीं भीगते, जहां अकारण उदासी नहीं होती मगर फिर यह सांझ ढले ही शुरू हो जाने वाली बेचैनी क्या है? क्यों किताबें एलबम बन कर रह जाती हैं? सीमा को कुछ पता नहीं!

नीरेन को सारे रिश्तों का पता है, मगर यह कौन-सा रिश्ता है? अनाम-अनजाना-सा! दिन भर उसे शाम का इंतजार क्यों रहता है. यह कैसा प्रवाह है, जिसमें वह आपादमस्तक डूब जाना चाहता है? एक ऐसी अनुभूति उसके आसपास जैसे मंडराती-सी रहती है, जिसे वह महसूस तो कर सकता है पर कितनी अव्यक्त-सी है वह. . .

ऐसी थी सीमा और ऐसा था नीरेन.

एक दिन दोनों खूब लड़े.

—तुम्हें पता है नीरेन, जब कोई जल्दी मर जाता है तो वह या तो फूल बनता है या तारा! सीमा ने उसे परियों के लोक की कहानी-सी सुनायी.

—अच्छा! नीरेन ने पत्रिका के पन्नों को पलटते हुए साधारणतया कहा.

—तुम बताओ, अगर मैं मर जाऊं तो फूल बनूं या तारा? पत्रिका को हवा में उछालते हुए सीमा ने इस उम्मीद से पूछा कि नीरेन उसके मरने पर ही राजी नहीं होगा.

—मरने के बाद की कौन जानता है! सीधा-सपाट जवाब मिला उसे.

—तुमसे यह किसने पूछा है? तुम सिर्फ इतना बताओ कि मैं फूल बनूं या तारा? सीमा को गुस्सा तो बहुत आया मगर वह पी गयी.

—अच्छा फूल बनोगी तो कौन-सा? —नीरेन ने थोड़ी दिलचस्पी दिखायी.

—जो फूल तुम्हें पसंद हो, सीमा ने उत्साहित हो कर अनजाने ही सब कुछ समर्पित कर डाला.

—मुझे तो सभी फूल अच्छे लगते हैं. नीरेन ने बात को सम पर आने से पहले ही काटा. और फिर सीमा खूब रोयी. दोनों खूब लड़े. कई दिनों तक बोले भी नहीं. फिर एक दिन उन दोनों की हंसी आसमान सर पर उठा रही थी.

मूसलाधार वर्षा का वह तीसरा दिन था. छत की नाली से जुड़ा ड्रेन पाइप बरसात से ज्यादा शोर कर रहा था. जहां कहीं भी भर गये पानी के छोटे-छोटे-से तालों में छपाक् छपाक करते मोहल्ले टोले के लड़के दुबक गये थे अपने-अपने घरों में. ऐसे में नीरेन गा रहा था धीमे-धीमे सुरों में. अपनी बांह को पानी में भिगोने के लिए उसने खिड़की के सीखचों के बाहर लटका रखा था.

—जरा जोर से गाओ न, मैं भी सुनूंगी. सीमा न जाने कब उसके पीछे आ गयी थी. . .नीरेन ने गाया था.

प्यार पर बस तो नहीं है मेरा लेकिन
ये बता दे कि तुझे प्यार करूं या न करूं. . .

सीमा सुन रही थी—एक गीत नहीं, एक सवाल. एक ऐसा सवाल, जिसके उत्तर में वह केवल मौन रह सकती थी. नीरेन गा रहा था तन्मय हो कर.

अब जाऊं? नीरेन ने धीरे से पूछा.

—जाओगे?—सीमा का मोह भंग हुआ.

—कैसा लगा गाना? नीरेन ने पूछ लिया.

—सच, कमाल कर दिया तुमने, बिल्कुल तलत की कापी कर के रख दी! सीमा ने आंखें बंद कर के फिर उन क्षणों को जीना चाहा.

—बस, सिर्फ कापी ही लगी? और कुछ नहीं? नीरेन ने एक सांस में पूछ डाला. मौन रह गयी सीमा. कैसे कहे कि गीत में उससे कही गयी सारी बातें उसके सर माथे पर.

नीरेन जा चुका था.

बाहर चले जाने पर भी नीरेन वहीं कहीं आसपास ही बना रहा. उसकी अनुपस्थिति में उसका सवाल सीमा को और भी तंग करता. 'बस, सिर्फ कापी ही लगी? और कुछ नहीं?'

सुबह से शाम हो जाती. सीमा सोचती रहती और सोचती रहती. सपने तो याद नहीं रहते, वरना कौन जाने वहां भी कोई यही सवाल करता रहा हो.

* *

नीरेन आ रहा है. पूरे पांच साल बाद वह उसे देखेगी. प्रतीक्षा की है उसने पांच साल की सारी शामों को साक्षी कर के, सारी बरसातों को यूं ही गुजर जाने दे कर. नीरेन नहीं, तो शाम क्या, बरसात क्या?. . .●

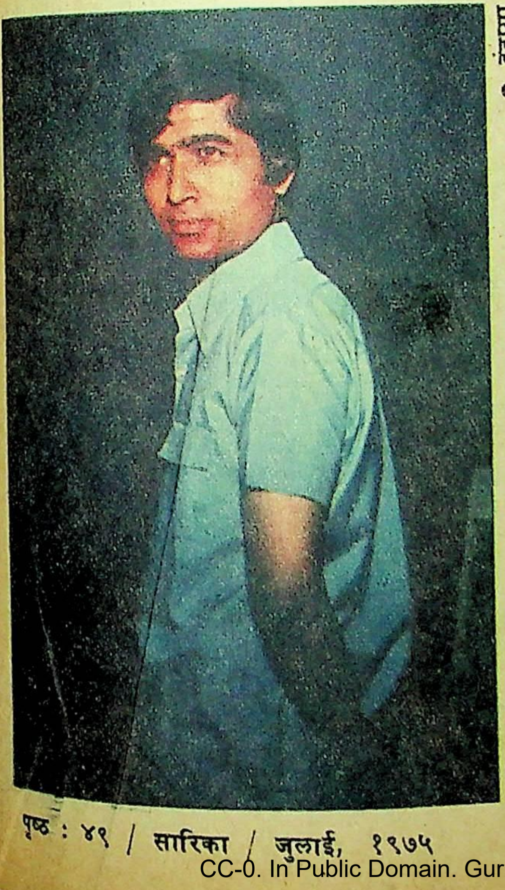

रंग उमंग का पहला पाठ

उम्मेद वस्त्रों में

लाजवाब छबियों का ठाठ

उम्मेद—जिन्होंने अब तक दिये हैं सतरंगे
सुन्दर छपे वस्त्र...स्कूली
बच्चों के ड्रेस...शानदार शर्टिंग...
अब पेश करते हैं
६७% पॉलिएस्टर ३३% कॉटन शर्टिंग
और अनेक मनभावन रंग-बिरंगे वस्त्र
साथ में कई कई रंगोंवाले
औद्योगिक धागे भी

सुन्दर वस्त्रों के निर्माता

महाराजा श्री
उम्मेद मिल्स लिमिटेड
पाली—मारवाड़ (राजस्थान)

सारा कमरा चमक: [illegible] अस्तव्यस्त-सा हो रहा था सब कुछ. इतनी बेचैन वह केवल एक बार हुई है जब उसका हाई-स्कूल का रिजल्ट निकला था. तब भी वह बेकार ही ऊपर से नीचे तक सीढ़ियां चढ़ती-उतरती रही थी.

दो कदम सीढ़ियां चढ़ रहे थे.

पास की अलगनी पर सूखने के लिए फैलायी गयी धोती को उसने पर्दा बना लिया, उस पर चली गयी.

उसने धोती के, जमीन से थोड़ा ऊपर उठे हुए किनारे के ठीक पीछे देखा––'बेल-बॉटम' की पैंट के चौड़े पायचों में से दो चमकती जूतों की 'टो' झांक रही थीं.

––कैसी हो तुम ? नीरेन उसके सामने था.

––तुम बताओ, और क्या कहती सीमा.

––बड़ा सन्नाटा है, कहां हैं सब लोग? नीरेन ने चारों ओर निगाहें दौड़ाते हुए सवाल किया.

––सब लोग कहीं गये हुए हैं.सीमा ने जवाब दिया.

––तुम नहीं गयीं? नीरेन ने कमीज के कालर पर अंगुली फिराते हुए कहा. सीमा कहना चाहती थी कि जब से सुना है तुम आने वाले हो, मैं घर में ही रहती हूं कि पता नहीं तुम किस दिन, कब आ जाओ. ऐसा न हो कि तुम आओ और मैं न रहूं. पर उसने कहा––हां, मैं नहीं गयी. . .

––अच्छा चलूं,फिर आऊंगा, नीरेन ने कदम मोड़े.

सीमा हतप्रभ-सी रह गयी––रुको, एक प्याला चाय तो पी लो.

––तीन दिन से जहां जा रहा हूं, चाय ही पी रहा हूं, बहुत हो गयी .

सीमा ऊपर से नीचे तक तड़प गयी. जिसकी पसंद का फूल बन कर वह जिसे अगले जनम तक का स्वामी बनाने की कल्पना करती रही, उसे तीन दिन बाद उसकी याद आयी.

––गाना-वाना अब भी गाते हो या नहीं? वह जानना चाहती थी कि क्या अब वह नहीं पूछेगा कि तुझे प्यार करूं या न करूं. . .? दिखने में सीमा रो नहीं रही थी.

––गाना-वाना तो बड़ती का शौक है. अब तुम्हारे लिए भाभी लाने जा रहा हूं. वही आ के गायेगी. नीरेन अपने मजाक पर खुद ही हंसा और चुप हो गया.

––अच्छा भई,. . .व्यस्तता से उसने कमीज की बांह सरका कर कलाई पर बंधी घड़ी देखी और चल पड़ा.

सीमा ने न तो उसे रोका और न ही फूट-फूट कर रोयी. वह भाग कर अपने कमरे में भी नहीं चली गयी. इस समय उसके दिमाग में एक ही बात आयी, बेहद जरा-सी बात. कितना अच्छा होता, अगर उसने नीरेन को जिद करके चमड़े के सोल वाला जूता पहनने की आदत न डलवायी होती. कम-से-कम आज उसके दूर जाते कदमों की आवाज तो सुनायी न पड़ती.

नीरेन खट्-खट् करता हुआ सीढ़ियां उतर रहा था. □□□

कौशांबी, ३५, खुरशेद बाग, लखनऊ-२२६००४

नवनीत मिश्र: हिंदी के युवा कहानीकार हैं. इन्होंने अपने आसपास की जिंदगी विशेषरूप से युवकों की रोमांसपूर्ण जिंदगी के सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया है और मूलतः उसी पक्ष को नये परिप्रेक्ष्य में रूपायित किया है.

अकाल ● कुमार सरदार हसन

मैं भी उस भीड़ में जा कर उत्सुकतावश खड़ा हो गया. उस गांव के पुर्वतन गौंतीया के घर के सामने बस्तीवालों की भीड़ जमा थी. बीच में एक निहायत कमजोर औरत एक बच्चे को जमीन में डाले बिलख-बिलख कर रो रही थी. रोते-रोते वह कहती जा रही थी––मालिक, तुमने मेरे बच्चे को जहर दे कर मार डाला. उसके साथ और दो तीन औरतें भी सिसके जा रही थीं.

गौंतीया कह रहा था–यह झूठ है, फरेब है. आप लोग सुनिए. अभी बारह बजे ये लोग मांगने आये थे. कहते थे, देश में अकाल पड़ा तो मांग कर खा-पी कर जीने के लिए देश छोड़ दर-दर भटक रहे हैं, चार दिन के भूखे हैं, बच्चे पर रहम करें. मेरे मना करने पर भी शुभा की मां नहीं मानी. इन्हें खाने को खाना दिया. और अब वह मेरे ऊपर उलटा इल्जाम लगा रही है.

––मेरा बच्चा भूख में मरा जा रहा था. मैंने सब खाना उसे खिला दिया. मेरे सामने वह छटपटा कर मर गया. तुम खूनी हो, तुम कातिल हो. मुझे मेरा बच्चा दो वर्ना मैं थाने में रपट करूंगी.

गौंतीया डर से थर थर-कांप रहा था. किसी ने कहा––कुछ दे-दिला कर मामला निपटा लो. बेकार में फंसोगे. गौंतीया ने ला कर एक-एक रुपये के दस नोट उसके आगे कर दिये.

औरत ने भूखे गिद्ध की तरह उन नोटों को झपट लिया. उसकी आखों में एक चमक-सी उभरी. फिर वह बच्चे को वहीं छोड़, कहीं फिकवा देना, कह उठ कर चली गयी! □□□

एक और महाश्वेता

□ रामनारायण सिंह चौहान

वाराणसी के मणिकर्णिका घाट पर जो चिता इस समय जल रही है, उसी में महाश्वेता का शव जल रहा है. जब महाश्वेता का शव घाट पर आया था, उसके कुछ समय पहले से ही मैं यहीं हूं. मेरी आंखों के सामने ही शव को आंशिक रूप में अनावृत कर उसे गंगा-स्नान कराया गया था. मेरे साथ जिन सहस्र-सहस्र उपासकों ने उस समय महावेता का शव देखा था, वे सभी महाश्वेता के शरीर-सौंदर्य को देख कर हतप्रभ थे. उस समय संगमरमर की अखंड चट्टान को तराश कर गढ़े हुए उस सौंदर्य-शव के जीवन की दिव्यता का स्मरण कर सबकी आंखों में अश्रु छलक आये थे.

संक्षिप्त में महाश्वेता के जीवन की कहानी यह है :--

किसी समय दालमंडी में महानंद भट्ट की प्रसाधन की एक छोटी-सी दुकान थी. सांझ के युवा होते ही नगर के युवा श्रेष्ठीजन इस गली में मनोरंजन के लिए विचरण करने लगते थे. महानंद भट्ट की दुकान यद्यपि बहुत छोटी थी, किंतु प्रसाधन-सामग्रियों की बिक्री अच्छी हो जाती थी और लाभांश से भट्ट महोदय के निर्वाह की गाड़ी सरलता से चल रही थी. कहा जाता है कि महाश्वेता भी किसी स्वर्गीया वेश्या की ही पुत्री थी, जिसे जन्म की अवस्था से ही महानंद ने गोद ले लिया था. महानंद भट्ट संस्कृत के पंडित तथा कर्मकांडी ब्राह्मण थे. अतः उनके धार्मिक संस्कारों का उत्तराधिकार महाश्वेता को भी प्राप्त था. दस वर्ष की अवस्था में ही महाश्वेता ने दसवीं कक्षा की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी. महानंद भट्ट अपनी पुत्री को संस्कृत की विदुषी बनाना चाहते थे इसीलिए महाश्वेता को अधिकांश समय संस्कृत ग्रंथों के अध्ययन में लगाना पड़ता था. कई बार महानंद की अनुपस्थिति में स्नान और ध्यान पूजा करने के पश्चात् जब महाश्वेता दुकान पर बैठती, तो उसके रूप-लावण्य की पवित्रता से वह प्रसाधन की दुकान भी मंदिर की पवित्रता से भर जाती. महाश्वेता के रूप-वैभव को, उस सौंदर्य की हाट में भी पवित्रता की अलौकिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी. गली सौंदर्य-जौहरियों से भरी रहती, किंतु महाश्वेता के रूप-दर्पण में अपने अस्तित्व को निहार कर सब में श्रद्धा का भाव पैदा हो जाता था.

अभी महाश्वेता की देह केवल सोलह वर्ष की थी' किंतु उसकी विद्वता और उसके महान आत्म-ज्ञान का यश भगवान् शंकर की नगरी काशी भर में निर्विवाद हो चुका था. इसी समय महानंद भट्ट उस नाव पर से फिसल कर महासागर की अतल गहराइयों में डूब गये, जिस पर बैठी हुई अकेली महाश्वेता निश्चिंत होकर यात्रा कर रही थी. आज ही की तरह उस दिन भी इसी मणिकर्णिका घाट पर महानंद के शव की चिता जली. समय जिन्होंने प्रशांत एवं अथाह वेदना की प्रतिमूर्ति के रूप में महाश्वेता को देखा था, उन सबकी आंखों में आंसुओं की भीड़ लगी थी.

बापू के शरीरांत के बाद महाश्वेता नियमित रूप से गंगा-स्नान के लिए जाने लगी. उसकी धार्मिक आस्थाओं में गहराइयां और ऊंचाइयां समाहित होने लगीं. उस समय हरिश्चंद्र घाट को जानेवाली गली में एक विशाल मंदिर था. मंदिर के साथ एक बड़ा-सा आंगन था. प्रातः से ही एक महात्मा प्रवचन करते. आते जाते महाश्वेता जिज्ञासावश सब देखती रहती. कई दिनों से एक अंग्रेज साधक को भी उस मंदिर में जाते देखकर महाश्वेता की जिज्ञासा में वृद्धि हो गयी. एक दिन जब वह गंगा-स्नान कर लौटी रही थीं, और अंग्रेज साधक मंदिर में प्रवेश कर रहा था, तब भी वह अपने पांव न रोक सकीं और उसके बाद वह नित्य उस मंदिर में जाने लगी.

कुछ दिनों में अंग्रेज साधक से महाश्वेता की मित्रता हो गयी. समाजशास्त्र में वह पी.एच.डी. था. भारत आने से पूर्व वह दुनिया के अनेक देशों का भ्रमण कर चुका था. उसे दुनिया के अनेक देशों के धर्मों का व्यापक ज्ञान था. हिंदू धर्म और संस्कृति में अपनी प्रगाढ़ आस्था के कारण उसने अपना नाम अच्युत रख लिया था. इस समय वह सारनाथ की एक धर्मशाला में रहता था. मित्रता हो जाने पर महाश्वेता से वह घंटों धर्म और जीवन के गूढ़ विषयों पर वार्ता करता . कई बार महाश्वेता उसके साथ सारनाथ चली जाती और कई बार कई-कई दिन अच्युत के साथ ठहरती भी.

एक दिन सूर्यास्त से पूर्व महाश्वेता और अच्युत बौद्ध-मंदिर के पीछे लॉन की झाड़ी की छाया में बैठे जो बातें कर रहे थे, उन बातों का संबंध धर्म तथा जीवन से उतना न था, जितना कि शरीर से.

—महाश्वेता , मैं तो यह जानना चाहता हूं कि स्त्री के पास पुरुष के लिए जो जीवनात्मक शुभ कामनाएं हैं, उनका उपभोग वासना के कीचड़ में फंसे बिना पुरुष कैसे प्र प्त कर सकता है ?

—क्या तुम मानते हो कि वासना की या वासना से कुछ पाया जा सकता हैं?

—लेकिन उससे आनंद की सृष्टि तो होती है.

—ऐसा लगता ही है. जिनमें महानंद और परमानंद की अनुभूति को प्रवेश नहीं मिलता, वे अवश्य ऐसे शारीरिक आनंद की चिता में जलते हैं. यह नहीं कहती कि शरीर किसी विकार का ही परिणाम है, लेकिन निरा-

र की स्थितियां और उनके आनंद, ओंकार के आनंद दिव्य हैं—ऐसा शरीर तथा प्राण के अध्ययन से भी माणित है.

—मेरे लिए तो यही परमानंद की बात है कि हाश्वेता को समझना जितना कठिन है, उसके विचार समझना उतना ही सरल है. लेकिन महाश्वेता, मेरा न भिन्न है. जो पुरुष, नारी को पोषणात्मक प्यार दान करता है, वह अपनी इच्छाओं के लिए उसका शोषण क्यों करता है?

—इसमें पुरुष या नारी का कोई अपराध नहीं है. अपराध भी शरीर का स्वभाव है. जो स्त्री-पुरुष हां तक शरीर का जीवन जीते हैं, उनके लिए वहां तक रस्परिक पोषण और शोषण दोनों ही अनिवार्य हैं. षण के बिना शोषण संभव नहीं और शोषण के लिए षण अनिवार्य है.

—महाश्वेता, आप तो प्रश्न के मूल अर्थ को ही बदल देती हैं. मैं जानता हूं, आपके विराट् ज्ञान के लिए यह ब कितना सरल है. थोड़ी देर के लिए मुझे कुछ अपने बंध में बतायें.

महाश्वेता के अधरों पर सहज मुसकान की अरुणाभा छहर गयी. उसने कहा——मैं जानती हूं कि अच्युत महाराज, च्युत होने का मार्ग खोज रहे हैं. उदाहरण के लिए हमारे साथ एक स्थिति है. मैं प्रायः तुम्हारे साथ रहती हूं. तुम्हारी व्यवस्था से अन्न-जल भी प्राप्त करती हूं. इस प्रकार तुम मेरा पोषण करते हो. हमारी मित्रता भी बड़ी विश्वसनीय है. क्या तुम मानते हो कि तुम्हारे पोषण प्रदान करने के कार्य में किसी प्रकार के शोषण का भाव नहीं है?

अच्युत आश्चर्य से महाश्वेता की सहज मुखाकृति को ताकता रह गया. कहा—ऐसा कुछ तो मैं अनुभव नहीं करता. यह असत्य है.

महाश्वेता हंसने लगीं—असत्य नहीं है, अच्युत! क्या यह असत्य है कि तुम मेरे सान्निध्य से सुखी होते हो? तुम्हारी दृष्टि निरन्तर मेरे रूप-सौंदर्य को निहारना चाहती है? मेरे प्रति तुम्हारे मन में जो आदर है, वह केवल मेरे ज्ञान के लिए नहीं, वरन शरीर के लिए ही अधिक है! तुमने ज्ञान की हजारों पुस्तकों का अध्ययन किया है, लेकिन किसी भी ग्रंथ को तुमने इतना प्यार नहीं किया, जितना मुझे करते हो.

अच्युत अवाक् था और सन्नाटे के विवर्तों में वातावरण डूबने ही वाला था कि महाश्वेता ने आगे कहा—तुम्हारी निराशा भी तुम्हारे शरीर का स्वभाव है, अपराध नहीं है. आज पूर्णिमा है. गंगाजी में जल-विहार करेंगे. वहीं बातें होंगी.

मणिकर्णिका घाट से गंगाजी के किनारे-किनारे चल कर जब महाश्वेता और अच्युत हरिश्चंद्र घाट पर पहुंचे, तब पचास से अधिक साधु-संन्यासी उनके पीछे चलने लगे थे. महाश्वेता एक ऊंची सोपान पर बैठ गयी थीं. नीचे की सोपान पर अच्युत बैठ गया और उनके नीचे की समूची सीढ़ियों पर उपासकों की भीड़ बैठ गयी. समाचार पाकर राधाकृष्ण मंदिर के बड़े पुजारी शिवानंद महाराज भी आये और महाश्वेता को प्रणाम कर अच्युत के पास बैठ गये. उन्होंने बड़ी विनम्रता से प्रार्थना की—बहुत दिनों बात महामाया ने कृपा की है. आज मंदिर में विश्राम कर उपासकों को आशीर्वाद प्रदान करें.

● ब्रह्मदेव

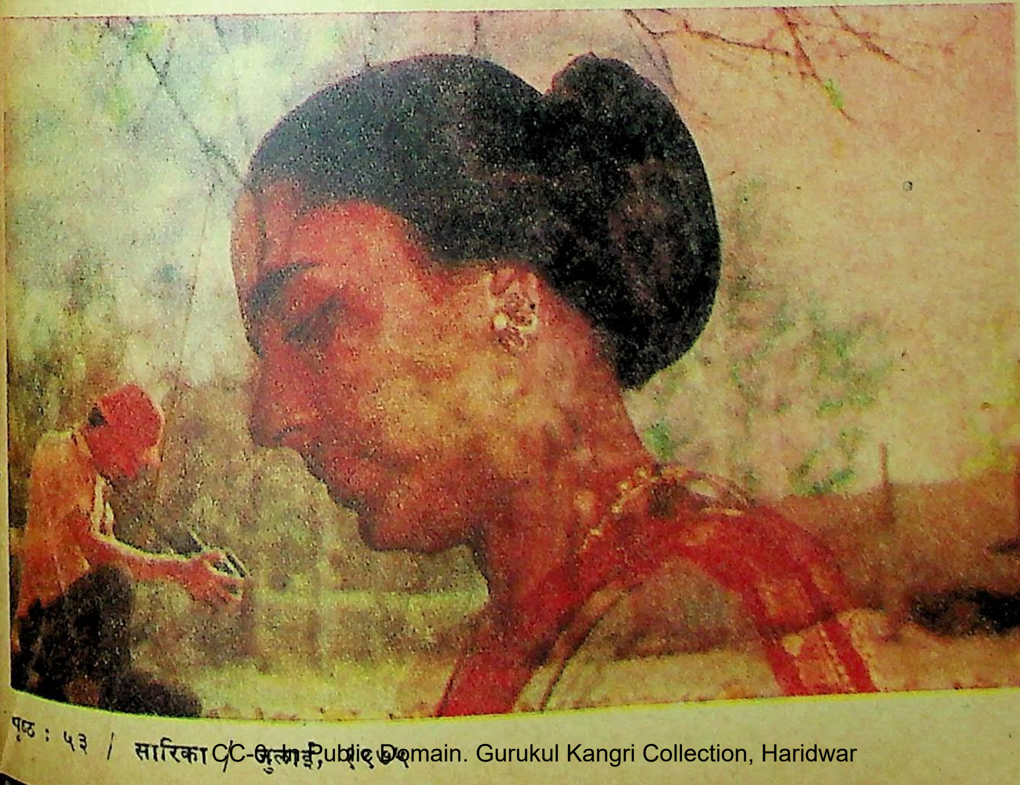

महाश्वेता ने कहा–शिवानंदजी, आपका अनुरोध अवश्य पूरा करती, लेकिन आज आपके भक्त अच्युत के शरीर का प्रश्न है. उसके शारीरिक विकार गति पाने के लिए व्याकुल हैं. कुछ करना पड़ेगा. किसीसे एक नाव लाने के लिए कह दें. वहीं अच्युत से बात भी होगी और विश्राम भी.

किनारे लगी नाव के श्वेतासन पर महाश्वेता के बैठते ही भक्तों की भीड़ में चरण स्पर्श करने की होड़ लग गयी और 'जय महामाया' के ऊंचे स्वरों से वातावरण पुलकित हो उठा. अच्युत के नाव में चढ़ने के बाद संकेत पा कर नाविक ने नाव को धार की ओर बढ़ाया. तब भक्तों की भीड़ और भी ऊंचे स्वर से 'जय महामाया' के उद्घोष करने लगीं.

विगत शीतकाल में जो विश्वधर्म-सम्मेलन टाऊन हाल के विशाल प्रांगण में हुआ था और जिसमें अस्सी देशों के धर्मगुरु एकत्र थे, उसमें उद्घाटन भाषण महाश्वेता ने दिया था. महाश्वेता का उद्घाटन भाषण पांच घंटे में समाप्त हुआ था और धर्म-इतिहास में यह दूसरी घटना थी, जब देश–विदेश के दो लाख से अधिक धर्म-प्रेमियों ने पूर्ण एकाग्रता से इतने लंबे भाषण को सुना था. इसी धर्म-भाषण का प्रभाव था कि विश्व-धर्म सम्मेलन ने अपने अंतिम सातवें दिन के कार्यक्रम में एक नया कार्यक्रम भी सम्मिलित कर लिया था—महाश्वेता को 'महामाया' की उपाधि से सम्मानित करने का.

गंगा के निर्मल प्रशांत प्रवाह पर पूर्णिमा की रजत चांदनी फैली हुई थी. महाश्वेता दक्षिण की ओर सुदूर तक फैले जल-विस्तार को निहार रही थी. अच्युत ने मौन भंग किया—महाश्वेता, मैं चाहता हूं कि आप अपनी स्त्री के संबंध में भी विचार करें.

––मैं जिनकी स्त्री हूं, वे ही मेरी स्त्री के संबंध में भी विचार करें. लेकिन मैं किसी पुरुष की स्त्री नहीं हूं. मैं तो शक्ति की स्त्री हूं. शक्तियां मेरी स्त्री के संबंध में विचार करती हैं. मैं शक्तियों के रूप में अपनी स्त्री का विचार करती हूं. तुम मेरी शक्तियों को मेरी स्त्री से अलग कैसे करोगे?

—मैं प्रार्थना करूंगा कि आप करें.

महाश्वेता श्वेतासन पर रखी ऊंची तकिया के सहारे लेट गयी. अच्युत काठ की छोटी चौकी पर बैठा था. अच्युत की प्रार्थना सुन कर महाश्वेता हंसने लगी. कहा—मां अपनी संतान को वही देना चाहती है, जो उसके कल्याण के लिए सर्वोत्तम है.

—क्या संतान सदैव पाना ही चाहती है, देना नहीं चाहती?

––नहीं, लेकिन मां को देने योग्य उसके पास आकार में कुछ नहीं होता. संतान के शरीर तथा ज्ञान के लिए यह असंभव है.

अच्युत की आंखों में आंसू छलक आये. वह जानता ही नहीं था कि जीवन का आत्म-प्रवाह ऐसी ऊंचाइयों पर भी प्रवाहित होता है. उसने एक क्षण को नाविक की ओर देखा, जो शीतल वायु की थपकियों में निद्रा गया था. तब अच्युत ने कहा––महाश्वेता के लि भी अगम्य नहीं है. मां के पवित्र हृदय में भी संता लिए इतनी महान कल्याण-कामनाएं हैं, तो भी क समय में संतान की वासनात्मक तृप्ति के लिए नि होती है.

महाश्वेता ने कहा ––अच्युत, मां निरंतर शक्ति साधना की प्रतीक है. संसार की असंख्य स्त्रियां तरह मां नहीं हैं, जिस तरह असंख्य पुरुषों में ए पिता नहीं है. संसार में तो मां और पिता के रू उनकी भौतिक स्थितियां हैं, स्वरूप हैं, साम परिवेश हैं और सामाजिक मान्यताएं हैं. एक बात कहूंगी––वासना अभाव की प्रतिक्रिया है. वास शारीरिक है. अतः शरीर-सौंदर्य में जिस सीमा अभाव है, वासना उसी सीमा तक विकसित होती कुरूपता ही वासना के लिए वरदान है. जो सर्वांग सु है, उसके प्रति किसीके मन में वासना नहीं पैदा होती

अच्युत शांत और गंभीर था. दो क्षणों के बाद पूछा आपके प्रति क्या किसी के भी मन में मोह नहीं है वासनात्मक?

महाश्वेता की मुखाकृति पर और उसके श्वेत व पर स्निग्ध ज्योत्स्ना की किरणें फैली थीं. सहज मु कान के साथ महाश्वेता ने कहा––अच्युत, मेरे प्र किसी पुरुष के मन में यदि सच्ची वासना संभव होती तो वह एक ही क्यों होता और तब क्या शरीर-सौं तथा प्राण–सौंदर्य का इतना विराट् वैभव ले कर तुम्हारे साथ इस एकांत में निश्चिंत लेटी रहती? तब दोनों ओर से हिंसात्मक प्रतिशोध प्रारंभ होते.

तब देर तक अच्युत के मौन रहने पर महाश्वेता कहा––अच्युत, भारत में मूर्ति-पूजा का रहस्य भी य है. इसलिए भारतीय धर्मों में कलाओं को उचित प्रतिष्ठ प्राप्त है. यही भारतीय संस्कृति की विशिष्टता है.

अच्युत और अधिक इस निरानंद स्थिति में रह नहीं चाहता था. उसने दुखी हो कर कहा––महाश्वे की आज्ञा हो तो नाविक को जगा कर पार चला जाये

––समय क्या हुआ है?

अच्युत ने घड़ी देख कर बताया––दो बजने वाले हैं

––ठीक है. नाविक से कह दो, नाव को राजघा के निकट ले चले. वहां भीड़ नहीं होगी. आज भी पैदल ही चलेंगे.

* *

उस दिन सारनाथ की सड़कों पर अतिरिक्त सज्जा तथा भीड़ थी. जापान और थाईलैंड के राजदूत विशेष रूप से भगवान् बुद्ध के महानिर्वाण-दिवस पर सारनाथ आने वाले थे. दिन के पांच बजे अच्युत ने कक्ष में प्रवेश कर विश्राम कर रही महाश्वेता को सूचित किया––बौद्ध मंदिर में महती धर्म-सभा का आयोजन है- देश के आयोजन के संयोजक श्री मेधकर आपसे सभा में पधारने की प्रार्थना करने आये हैं.

––अच्युत, उन्हें सूचित कर दो कि हम आ रहे हैं

साढ़े पांच के लगभग जब महाश्वेता कक्ष से बाहर निकली, तब अच्युत उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था

महाश्वेता को देखकर अच्युत ने कहा---चलिये, कुछ विलंब हो गया है.

बौद्ध मंदिर के सामने ही बने विशाल एवं भव्य पांडाल के धवल मंच पर उस समय देश-विदेश के राजनयिक तथा विद्वान धर्मगुरु विराजमान थे. कार्यक्रम प्रारंभ हो चुका था. महाश्वेता ने बीच के लाल वस्त्र से ढके संकीर्ण पथ से जैसे ही पांडाल में प्रवेश किया, "महामाया की जय" के ऊंचे उद्घोषों से कार्यक्रम स्थगित हो गया. यद्यपि महाश्वेता ने भाषण देने की प्रार्थना को पहले ही अस्वीकार कर दिया था, किंतु श्रोताओं की हार्दिक इच्छा के कारण भिक्षु मेधंकर ने माइक पर खड़े होकर एक विशेष प्रार्थना की---यह सौभाग्य की बात है कि परमपूज्य महामाया हमारे मंच पर विराजमान हैं. सभा में उपस्थिति सभी विद्वान श्रोताओं की आकांक्षा एवं प्रार्थना है कि वे अपनी परम पुनीत कृपा कर सभी को आशीर्वाद प्रदान करें–परमपूज्य मातेश्वरी महामाया!

तब देर तक सभा की करतल-ध्वनियों से वातावरण उल्लासमय बना रहा. तभी भिक्षु मेधंकर ने माइक ले जाकर महाश्वेता के सामने रख दिया.

–मेरी आत्माओं, जीवन-धर्म की प्रतिष्ठाओं के लिए गौतम ने जितने प्रयोग किये, उतने किसी अन्य से नहीं हुए. उनमें अहिंसा की अद्भुत शक्ति थी इसीलिए अशोक और अंगुलिमाल जैसे दुर्दांत व्यक्ति भी उनके उपासक बने. उन्होंने ब्रह्मचर्य की महत्ता को भी आचरण से व्यावहारिक बनाने के प्रयोग किये. इसीलिए उन्होंने महिलाओं को भी दीक्षित करने की स्वीकृति प्रदान की. भिक्षु और भिक्षुणिओं को साथ-साथ रहने की स्वीकृति भी उन्होंने दी. यह एक अद्भुत प्रयोग था क्योंकि शरीर-धर्म के लिए यह प्रयोग सहज नहीं था. इसीलिए बौद्ध-विहारों में भ्रष्टाचार फैला और बौद्ध धर्म का यश कलंकित भी हुआ. शरीर में काम, क्रोध, मद, लोभ आदि जो विकार हैं, उनमें काम ही एक अनिवार्य तत्व है. पचीस वर्ष के बाद भी यदि कामशून्य जीवन इस संसार में रहता है, तो मानना चाहिए कि वह काममुक्त नहीं है. उसका ब्रह्मचर्य व्रत कहीं न कहीं से खंडित है. पूर्णतः काममुक्त शरीर पचीस वर्ष की अवस्था में ही अपनी जीवन-साधना की उपलब्धियों से उस विराट् एवं दिव्य महाबिंदु पर स्थिर हो जाता है, जहां रहने के लिए उसकी भौतिक देह का विनाश अनिवार्य होता है. और इस परिणाम का मुख्य कारण यह है कि ब्रह्मचर्य की साधनाशील देह में इन पचीस वर्षों में जो विराट् आत्मशक्ति उत्पन्न होती है, वह भौतिक शरीर के लिए ही महागरल बन जाती है. यह महागरल काममुक्त शरीर के लिए अमोघ रूप से विनाशकारी बन जाता है, जब उसे किसी प्रत्यक्ष वासना की अनुभूति होती है या कोई अप्रत्यक्ष वासना उसे स्पर्श करती है. जो भी आत्माएं ऐसे योग की साधना करें, उन्हें वासना से मुक्त होने में प्रयास करने से पूर्व अपने शारीरिक सौंदर्य तथा स्त्री के सर्वांग सौंदर्य को परखने वाली विविक दृष्टि के बीच अभाव की स्थिति को समाप्त कर लेना चाहिए. आप सब सुखी हों, आत्मसौंदर्यमय हों और जीवनधर्म के वाहक बनें!

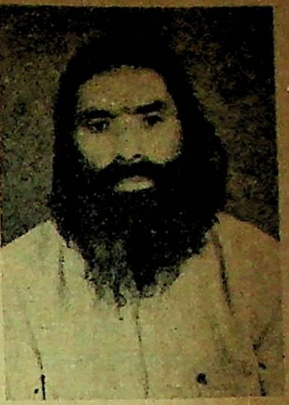

रामनारायण सिह चौहान: युवा कथाकार हैं. इन्होंने युवा वर्ग की समस्याओं और उलझी हुई मानसिकताओं को अपनी कहानियों का माध्यम बनाया है. इनके पात्र परंपराओं में जकड़े हुए लोग हैं जो उनसे मुक्ति की तलाश में भटक रहे हैं.

महाश्वेता के उद्बोधन के पश्चात बड़ी देर तक सभा करतल-ध्वनि करती रही.

* *

कई दिनों से अच्युत बहुत उदास है. वह निरंतर महाश्वेता के संबंध में विचार करता है. उसने भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति का गहन अध्यन अवश्य किया है किंतु ज्ञान की योग दृष्टि से भी जब वह महाश्वेता के सौंदर्य-शरीर को देखता है, तब उसे आश्चर्य एवं दिव्यता के अतिरिक्त कुछ अनुभव नहीं होता. कभी-कभी वह अपना ही प्रश्नकर्त्ता बन जाता है, किंतु प्रश्न करता है महाश्वेता के संबंध में. बौद्ध सभा के पश्चात महाश्वेता के इस विचार से वह बहुत चिंतित है कि पूर्ण काममुक्त शरीर के लिए पचीस वर्ष से अधिक इस संसार में रहना असंभव है.

एक दिन संध्य मय जब अच्युत, महाश्वेता के साथ बौद्ध मंदिर के उत्तर की वाटिका में टहल रहा था, तब महाश्वेता के सहज एवं प्रसन्न अनुभव कर उसने पूछा—इस समय महाश्वेता की शारीरिक अवस्था क्या है?

महाश्वेता ने हंसते हुए एक हाथ ऊपर को उठाया और आम्र पल्लव से एक पत्ती तोड़ कर उसे अधर के सिरे पर टिकाते हुए कहा–पचीस वर्ष पूरे होने में केवल तीन माह शेष हैं. कुशल तो है?

---महाश्वेता ने बौद्ध सभा में काम-मुक्त शरीर के जीवन की एक सीमा का उल्लेख किया था. तभी लाखों भक्त चिंतित हैं.

महाश्वेता सहज ही हंसती रही. कहा–सीमा तो है, लेकिन मेरे शरीर से उस अवधि का कोई संबंध नहीं है. क्या आज की एकादशी के महाश्वेता के संबंध में तुम कुछ जानते हो?

अच्युत ने कह दिया –नहीं, मुझे ऐसा कुछ ज्ञात नहीं.

महाश्वेता ने कहा—इस एकादशी की महिमा यह है कि आज की तिथि के उत्तरार्द्ध में जिनका शरीरांत होगा, वे महानिर्वाण के अधिकारी होंगे.

लेकिन अच्युत का ध्यान फिर भी महाश्वेता के 'काममुक्त शरीर' वाले विचार पर ही केंद्रित रहा. उसने साश्चर्य कहा—महाश्वेता के मुंह से यह मैं क्या सुन रहा हूं?

—यह इसलिए कि मैंने काममुक्त होने की कोई साधना नहीं की. मुझे तो शरीर-सौंदर्य का वैभव ही इतना संपूर्ण मिला है कि उसका ऐसी इच्छा से संबंध ही नहीं बना. मुझ जैसा सौंदर्य संपूर्ण पुरुष यदि कहीं होता, तो संभव था कि मुझमें भी वासना किसी न किसी रूप में जनम जाती.

अच्युत चुप रह गया. आगे उसने कोई प्रश्न नहीं किया. कुछ देर टहलने के बाद महाश्वेता के साथ अच्युत वापस आ गया.

भोजनोपरांत, रात देर तक, अच्युत महाश्वेता के कक्ष में ही बैठा रहा. शांत और गंभीर. महाश्वेता शयनासन पर लेटे-लेटे कोई पुस्तक पढ़ रही थी. नींद का अनुभव होने पर महाश्वेता ने कहा—अच्युत, अब मुझे नींद आ रही है, जाते समय बत्ती बुझा देना. और महाश्वेता सोने लगी.

अच्युत ने उठकर तुरंत ही बत्ती बुझा दी, किंतु वह पुनः उसी कुर्सी पर बैठ गया. उसके मन में महाश्वेता को लेकर वर्षों से जो अंतर्द्वंद्व चल रहा था, उसे आज एक समाधान महाश्वेता के शब्दों में ही मिल गया था. पता नहीं विनाशकारी समय मनुष्य को कैसी-कैसी अद्‌भुत बुद्धि प्रदान करता है. रात्रि एक बजे के लगभग अच्युत अपनी कुर्सी से उठा और धीरे से महाश्वेता के शयनासन पर लेट गया. उसने अपना हाथ पहले महा-महाश्वेता के वक्ष पर रखा और फिर वहां से उठ कर उसी से महाश्वेता के कपोलों, माथ, पलकों, अधरों तथा नासिका को रगड़ने लगा.

किंतु दो-चार क्षणों के बाद अच्युत को लगा महाश्वेता का शरीर पाले की तरह शीत हो गया. उसका वासनाशील हाथ सहम कर महाश्वेता के क पर से हट गया. वह अपने को महाश्वेता के शरीर दूर कर तुरंत खड़ा हो गया और भयभीत होकर लगा. जल्दी से उसने बत्ती जला दी. प्रकाश होने महाश्वेता की ओर देखा. उसके समीप गया. पांव, माथा, नासिका और वक्ष, सर्वत्र जीवन की की. किंतु दिव्य सौंदर्य से परिपूर्ण एक शव ही उस में उसके समक्ष था.

* *

चिता जल जाने के बाद जब उपासकों की लौटी, तब एक-एक ने एक-एक से पूछा-पचीस से पहले ही महामाया का शरीरांत क्यों हो गया?

किसी-किसी ने कहा—उनका पचीसवां वर्ष ही

किसी विशेष ने कहा—किंतु अभी तीन माह शेष

तब एक साधु ने कहा—शेष तीन माह महाम अच्युत को दे गयी हैं.

महाश्वेता के निर्वाण के बाद अच्युत एक पल भारत में नहीं रहना चाहता था किंतु अपने देश ज की सरकारी स्वीकृति लेने में उसे दो माह से अधि समय लग गया. जिस दिन वह वाराणसी से दिल्ली लिए अंतिम बार हवाई जहाज में सवार हुआ, कहते कि उसी दिन महाश्वेता के महानिर्वाण को तीन म पूरे हो चुके थे. वाराणसी निवासियों को तो यह सम चार दूसरे दिन प्रातः मिला कि कल संध्या दिल् के निकट होनेवाली हवाई दुर्घटना में अच्युत भी मृ का शिकार हुआ है. □□

७३।२१ सेण्ट्रल बिल्डिंग, कमरा नं. ३४,
कलेक्टर गंज कानपुर,

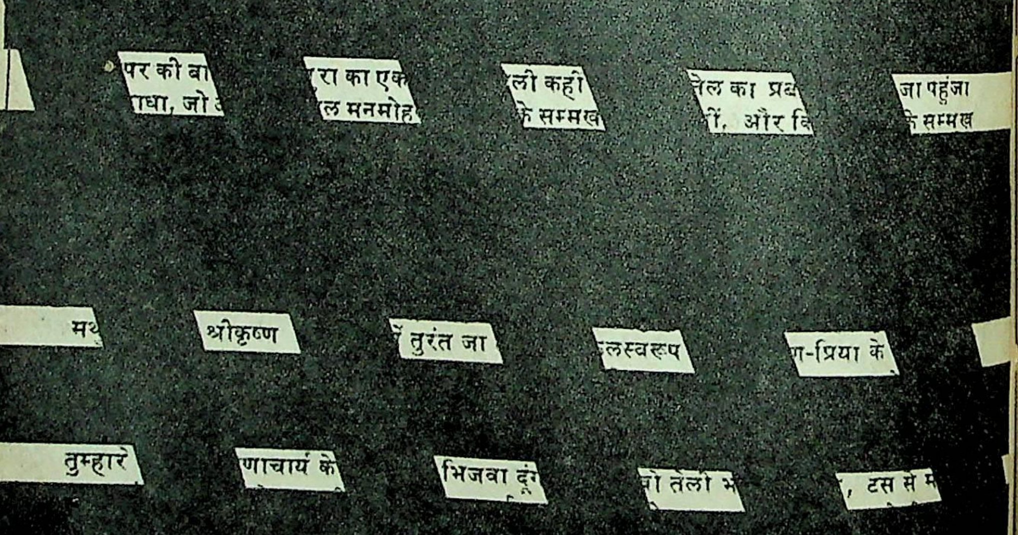

एक परिसंवाद

क्या 'समांतर' महज आंदोलन है?

१ जून, १९७५ को आकाशवाणी, दिल्ली से 'साहित्यिकी' के अंतर्गत एक बातचीत का प्रसारण हुआ, जिसमें भाग लेने वाले लेखक थे सर्वश्री राजेंद्र यादव, से. रा. यात्री व गोविंद मिश्र. यहां प्रस्तुत है उसी प्रसारण पर आधारित एक रिपोर्ट.

राजेंद्र यादव :—स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी उथल-पुथल की कहानी रही है. कभी इसे आंदोलनों का नाम दिया गया है—कभी इसे एक वैचारिक स्थिति के रूप में स्वीकार किया गया है. इधर हिंदी में समांतर कहानी का नाम बार-बार सामने आ रहा है. एक विशेष राजनीतिक दृष्टि के लोग, जिनमें कई सशक्त दृष्टि के लेखक भी हैं, एकजुट हो कर लिख रहे हैं. यात्री जी, आप समांतर लेखन पर थोड़ा प्रकाश डालिए.

यात्री :—यह संवाद आरंभ से ही गलत दिशा में न भटक जाये, इसलिए मैं निश्चयात्मक स्वर में कहना चाहूंगा कि समांतर कोई आंदोलन नहीं है. जैसा कि अभी आपने स्वीकार किया कि आजादी के बाद की कहानी संक्रमण काल की कहानी है—मैं भी यह मानता हूं कि पिछले पच्चीस वर्षों में कहानी कई तरह के युगव्यापी तनावों को वहन करके आज एक केंद्रीय विधा के रूप में स्थापित हो गयी है. मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि कहानी में कई तरह के शिल्पगत उलझाव और अप्रामाणिकता के स्वर भी आ मिले थे, जिन्होंने कहानी को भटकाया भी, लेकिन अतिरंजनापूर्ण, झूठी स्थितियों को हिंदी तथा इतर भाषाओं के सशक्त लेखकों ने निर्ममता से काट कर फेंक दिया और कहानी पुनः प्रामाणिक संदर्भों की ओर लौट आयी है. समांतर लेखन की दृष्टि में लेखक की हैसियत इस जमीन के किसी भी आदमी की अपेक्षा विशिष्ट नहीं है. हम स्वयं सामान्य जन हैं—मामूली आदमी में पूरी तरह शामिल हैं. बहुत बार प्रतिबद्धता की बात की जाती है. पर समांतर लेखक इसे आरोपित स्थिति मानता है. लेखक साधारण आदमी से स्वयं को अलग मान कर ही प्रतिबद्धता की बात कर सकता है. यदि वह उनमें से एक है तो फिर प्रतिबद्ध नहीं, संबद्ध होगा. समांतर लेखन संबद्धता का लेखन है.

गोविंद मिश्र :—मैं यात्री की बात से बिल्कुल सहमत नहीं हूं. स्वयं को सामान्य जन कहते ही उसमें 'जस्टीफिकेशन' आ जाता है! इस समांतर लेखन को जब आप जन-चेतना का संघर्ष कहते हैं, तो यह सापेक्ष स्थिति लगती है, यानी आप कहना चाहते हैं कि समांतर के पूर्व का लेखन लोक-चेतना के संघर्ष को अंकित नहीं कर रहा था—इसी लेखन से यह नजरिया आया है. फिर लोक-चेतना के संघर्ष और समांतर लेखन में भी कोई तालमेल नहीं है. ऐसा लगता है, छपने के महत्वाकांक्षी लोग इसमें आ मिले हैं.

राजेंद्र यादव :—मिश्र जी, यह ज्यादती है—मात्र छपने की भूख समांतर के पीछे नहीं है. यात्री जी, इस तरफ भी गौर कीजिए कि स्थितियों को बदलने की बात सचेतन कहानीकारों ने भी की थी—बाकी लेखक भी कई आंदोलनों का सूत्रपात इसी बदलाव को ले कर करते रहे हैं, फिर समांतर इनसे किस रूप में भिन्न है?

गोविंद मिश्र :—अभी मेरी बात बाकी है. प्रेमचंद के युग में भी आम आदमी को सामने रखा जाता था—प्रगतिशीलों ने भी इसे ले कर नारा बुलंद किया था—नयी कहानी में भी आम आदमी को याद किया गया, लेकिन यह आदमी हमेशा लेखक की ढाल ही बनता रहा है. इसके अलावा मैं यह भी कहना चाहूंगा कि आम आदमी की तस्वीर ही अलग से कहां बाकी रह गयी है? उसका वजूद तो परिवेश के साथ डायल्यूट हो गया है—इन स्थितियों में समांतर महज एक नारा लगता है.

राजेंद्र यादव :—मिश्र जी, यह भी विचारणीय है कि आज की कहानी, उसकी स्थितियां और तनाव निश्चय ही पिछले समस्त कथा-आंदोलनों से भिन्न हैं. जहां तक 'नयी' कहानी का संबंध है, उसका आदमी, पात्र या नायक स्थितियों में आक्रामकता के स्तर पर रिएक्ट नहीं करता था. आज की कहानी का नायक यशपाल, जैनेंद्र और अज्ञेय की कहानी के पात्र से एकदम अलग है.

यात्री :—यह एक सही मुद्दा है. जैनेंद्र और अज्ञेय की कहानियां शिल्प और भाषा के उलझाव का भटकाव हैं. आज का समांतर लेखक उस अयथार्थ और रोमांटिकता में नहीं भटकता, जिसमें ये लेखक भटकते रहे हैं. समांतर लेखक मामूली आदमी की हैसियत से चौमुखे तनावों को झेलते हुए जीता है. वह अपने ऊपर विशिष्टता का कोई आरोपण नहीं करता—आरोपित स्थितियों से बचने की सजगता ही उसे संबद्ध बनाती है. रोजमर्रा की जिंदगी ढोते हुए औसत आदमी प्रत्येक क्षण असुरक्षा, अपमान, आर्थिक-सामाजिक शोषण और छल का शिकार होता है—उसकी विवशताओं और दूसरी सीमाओं में लेखक उसके साथ शामिल है. इसके विपरीत वे कलमकार भी मौजूद हैं जो आदमी के इस खटने के प्रति तटस्थ, निरपेक्ष या अनासक्त हैं—ऐसे लेखकों के पास दर्शन या आदर्श की तरह-तरह की बैसाखियां हैं, लेकिन कुल मिला कर यह बच निकलने की चालाकी है. समांतर लेखक आहत आदमी के यथार्थ से आंखें नहीं बचाता,

बल्कि आहत करने वाले प्रसंगों से संघर्ष करता है. मोटे तौर पर यही उसका वाम है. साहित्य में ऐसे लेखकों या आंदोलनों का अभाव नहीं है, जो विशिष्ट विचारधारा का चोगा पहन कर वाम बने हुए हैं, लेकिन यह एक आरोपित वाम है. समांतर लेखक स्वयं पिटे हुए वर्ग का है तथा उसका निरंतर प्रतिकार भी करता है और उसकी यही सक्रियता उसे वाम बनाती है.

किसी भी समांतर लेखक की यह नियति है कि वह साधारण आदमी की समस्त मूर्त्त-अमूर्त्त तकलीफों में स्वयं भी ग्रस्त है, लेकिन साथ ही यह भी साफ है कि समांतर लेखक साजिश के स्रोतों पर अपनी धारदार अभिव्यक्ति की मार करता है. यह कितनी विचित्र स्थिति है कि अज्ञेय, जैनेंद्र तथा यशपाल आदि ने अपने कथापात्रों को प्रायः क्रांतिकारी बनाया, परंतु उनमें से एक भी सामान्य जन के बीच खप सकने योग्य नहीं बन पाया! मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि समांतर लेखक और उसका लेखन चिरंतन वाम है, क्योंकि वह या उसका लेखन किसी खास राजनीति अथवा गढ़ी हुई विचारधारा के कुहासे से आच्छादित नहीं है और न ही उसकी एप्रोच रुग्ण या रोमांटिक है. समांतर लेखन इन्वॉल्वमेंट के प्रत्येक स्तर पर सक्रिय है—मैं इस स्थिति को चिरंतन वाम की स्थिति कहूंगा.

गोविंद मिश्र :—साहित्य का मतलब क्या राजनीतिक विचारधारा के अलावा कुछ नहीं है? यह ठीक है कि राजनीति से अलग नहीं रहा जा सकता, लेकिन राजनीति लेखन पर हावी हो जाये तो उसे सृजनात्मक लेखन कैसे कहा जा सकता है?

राजेंद्र यादव :—विचारधारा का हमेशा महत्व रहता है—सुनिश्चित विचारधारा के बिना साहित्य कहीं नहीं पहुंचता. चाहे आज का युग हो, चाहे मध्यकाल का. सुनिश्चित विचारधारा ने अपना काम हमेशा किया है!

राजेंद्र यादव

यात्री :—निश्चय ही ठोस और सुनिश्चित विचारों ने अपना काम किया है. गांधी, मार्क्स, क्रोपोत्किन तथा और भी अनेक चिंतकों ने युग विशेष में सामाजिकता को दृष्टि दी है, पर हमें अपने समय में उसके सार्थक संदर्भों की जांच-पड़ताल करनी पड़ती है—समांतर के पास विवेचन और जांच-पड़ताल की खुली दृष्टि है. यही कारण है कि वह किसी भी जड़ वाद या चिंतनधारा का अंधानुकरण नहीं करता—विचारधारा और युग बोध का पारस्परिक तालमेल ही सर्जना का सहज आधार है.

राजेंद्र यादव :—यात्री, तुम इसे आंदोलन नहीं मानते, लेकिन क्या यह सच नहीं है कि साहित्य में आंदोलन रचनाओं की वैचारिकता से निकलते हैं, न कि पहले से ही दर्शन तैयार करके उस पर रचनाएं करने से. जहां तक मैं समझता हूं, समांतर के साथ यही हुआ है कि पहले एक विचारधारा तैयार की गयी है और उसके बाद फॉर्मूला-लेखन शुरू हुआ है. 'नयी' कहानी छह-सात साल के लेखन के बाद स्थापित हुई और वह सृजनात्मकता के सहारे टिकी रह सकी—पर समांतर के पीछे यह दृष्टि दिखलायी नहीं पड़ती.

गोविंद मिश्र :—यादव जी, आपकी बात मुझे एकदम लगती है—समांतर के लेखक एक-सा ही लिख रहे हैं—सारा लेखन स्टीरियोटाइप है—इसके समस्त लेखक कथ्य को ही दिशा में मोड़ना चाहते हैं. पूर्वाग्रह इन सब में है—कामतानाथ की 'तीसरी सांस' कहानी हो, या जितेंद्र भाटिया अथवा इब्राहीम शरीफ की कहानी. फिर एक दिलचस्प स्थिति और भी है भीष्म साहनी और अनीता औलक इस आंदोलन में एक साथ हैं!

यात्री :—आप दोनों ही अपनी स्थापनाओं को अपने ही तर्कों से काट रहे हैं. जहां तक 'नयी' कहानी का प्रश्न है, उसके संबंध में यही कहा जा सकता है कि यह कुछ लोगों को स्थापित करने का सिलसिला था. आज जिसे 'नयी' कहानी की 'त्रयी' कहा जाता है, वह तो अपने पुष्ट तथा सार्थक लेखन से 'नयी' कहानी के आरंभ से पहले ही स्थापित हो चुकी थी. लेकिन उसे सामने रखे बगैर दूसरे कई कच्चे लेखक स्थापित नहीं हो सकते थे. यही वजह थी कि **'नई कहानियां'** के प्रकाशन के साथ ही 'नयी' कहानी का आंदोलन भी चला और उसके लिए बाकायदा आलोचक भी स्थापित किये गये. लेकिन इसका नतीजा क्या निकला? समर्थ लेखन के बल पर ही कुछ लेखक टिके रहे और स्थापित रहे, बाकी का कुछ नहीं बना. जब आंदोलन को बचाने का प्रश्न सामने रहता है तो यही होता है. लेकिन जहां तक समांतर का प्रश्न है, इसकी स्थिति भिन्न है. एक बात तो यह समझ लेने की है कि यह लेखन महज हिंदी में ही नहीं हो रहा है—दक्षिण की सारी भाषाओं में समांतर लेखन हो रहा है; पंजाबी-डोगरी की रचनाएं भी इसका प्रमाण हैं! इसके अतिरिक्त दलित पैंथर्स के माध्यम से मराठी भाषा में बहुत श्रेष्ठ समांतर साहित्य का लेखन हो रहा है. 'नयी' कहानी ने जिस प्रश्न को

से. रा. यात्री

शायद ही कभी छुआ हो, समांतर में एक सही सृजनात्मकता का सवाल बन कर उभरा है—अस्पृश्य और सवर्ण का भेद जिस सांप्रदायिक अश्लीलता को जन्म देता है, उसे नजरंदाज नहीं किया जा सकता. दलित साहित्य केवल भारत के छूत-अछूत का सवाल नहीं है. यह तीसरी दुनिया का भी एक ज्वलंत प्रश्न है—इसमें केवल भारत ही नहीं है, कंबोडिया, विएतनाम और औपनिवेशिकता के दमन से आक्रांत अफ्रीकी देशों की दुर्दांत स्थितियां भी हैं. मिश्र जी ने कहा है कि समांतर में भीष्म साहनी और अनीता औलक साथ-साथ हैं. यह समांतर की सही दृष्टि और जीवंतता का प्रतीक है—इसमें पीढ़ी, उम्र तथा दूसरे लिहाज नहीं हैं. अपने समय की चिंताओं को जो भी लेखक व्यक्त करता है, वह समांतर लेखक है. जहां तक समांतर के आंदोलन होने का प्रश्न है—इसका प्रचार कभी राजनीतिक स्तर पर अथवा मैनिफेस्टो के रूप में नहीं किया गया. जो कुछ भी सामने आया है, वह केवल रचनात्मकता के स्तर पर आया है. समांतर लेखन पर जड़ता या एकरसता का आरोप केवल वही व्यक्ति लगा सकता है, जो कुंठित नजरिये से इन कहानियों को पढ़ता है.

गोविंद मिश्र :—मैं यह बात रचनाओं को देख कर ही कह रहा हूं कि समांतर लेखन में विविधता की गुंजाइश नहीं है. इसमें गांव की कहानी नहीं है—प्रेमचंद के युग से 'नयी' कहानी तक की लंबी यात्रा में गांव की कहानी मौजूद है, लेकिन समांतर लेखन में इसका अभाव है.

यात्री:—चूंकि समांतर कहानी किसी आग्रह के तहत नहीं लिखी जा रही है, इसलिए मूल संवेदना को ही प्राथमिकता दी जाती है. समांतर लेखन के **'सारिका'** के कई अंक इस तथ्य के साक्षी हैं कि गांव की सही समस्याओं को समांतर कहानियों में अनेक बार रूपायित किया जाता है! मधुकर सिंह की अधिकांश कहानियां ग्रामीण परिवेश को सहज-सार्थक रूप में प्रस्तुत करती हैं—मधुकर सिंह की कहानियों में परिस्थितियों का दैन्य और इस दैन्य के प्रति पात्रों का कटखनापन एक साथ मौजूद है.

गोविंद मिश्र:—मैं तो यही मानता हूं कि समांतर लेखक सब एक जैसा लिखते हैं. कामतानाथ की कहानी **'तीसरी सांस'** राजनीतिक फार्मूले की ही कहानी है. प्रगतिशील आंदोलन की सारी डिकेडेंट प्रवृत्तियां समांतर में उपस्थित हैं.

यात्री :—मैं एकरसता या फार्मूला इस लेखन पर कतई हावी नहीं मानता. कथ्य, शिल्प, भाषा, रचना-प्रक्रिया की अनेकस्तरीय एप्रोच, सभी में ये लेखक एक-दूसरे से अलग व्यक्तित्व रखते हैं! इब्राहीम शरीफ और जितेंद्र भाटिया की कहानियां मूल संवेदना में एक हो कर भी अपने पूरे ट्रीटमेंट में अलग हैं. राजनीतिक नजरिये को ले कर देखें तो, मधुकर सिंह, कामतानाथ और सुदीप का व्यक्तित्व अलग-अलग है! निम्न-मध्यवर्ग के आहत प्रसंगों को राम अरोड़ा और लानी दोनों उठाते हैं; पर उनका व्यक्तित्व लेखकीय स्तर पर पूर्ण स्वतंत्र है. मैं और भी अनेक कहानियों तथा उनके लेखकों का नाम गिना सकता हूं. मैं एकरसता के प्रसंग को इन कहानियों के संदर्भ में उठाना ही

गोविंद मिश्र

गलत समझता हूं, क्योंकि समांतर कहानियां इकहरी सच्चाइयों की कहानियां नहीं हैं. ये बहुमुखी और बहुआयामी आसंगों की कहानियां हैं.

गोविंद मिश्र :—समांतर के बाहर कालिया और काशीनाथ बहुत सार्थक और प्रासंगिक लिख रहे हैं.

यात्री :—मेरे लिए यह बहस का प्रश्न नहीं है, क्योंकि जब मैं इसे आंदोलन ही नहीं मानता तो 'इसके भीतर' और 'इसके बाहर' जैसे विशेषण ही मुझे अर्थहीन लगते हैं. समांतर लेखन किसी एक व्यक्ति या संस्था की जड़ पूंजी नहीं है, यह जीवंत और जागरूक लेखकों की सार्वजनिक व्याप्तियों का सृजनात्मक आलेख है; जिसे आप किसी क्षेत्र या भाषा के दायरे में कैद करके नहीं रख सकते. अभिव्यक्ति की इस जीवित निरंतरता को, व्याख्याओं से पकड़ने की जगह संवेदना की प्रामाणिकता से ही पकड़ा जा सकता है. समांतर सारी भाषाओं की अभिव्यक्ति को एक दिशा देने का काम करता है.

राजेंद्र यादव :—यात्री की इस बात में संगति है कि समांतर आंदोलन नहीं है, सहचिंतन के लिए खुला हुआ एक अत्यंत व्यापक मंच है. अपने समय की सच्चाइयों को व्यक्त करने वाला लेखन निश्चय ही रेखांकित होता है, फिर चाहे उसे कुछ नाम दिया जाये या यों ही बगैर विशेषण के छोड़ दिया जाये. □□□

घर □ रवीन्द्रनाथ उपाध्याय

तीन दिन के लिए घर आया हूं.

एक परिचित गंध मेरी नाक में भर गयी है. दादी का बड़ा वाला बक्सा जब खुलता था तो उसमें से मसाले, अचार, इत्र, धूप, कड़वे तेल, सिरके, दही आदि की मिली-जुली गंध का अनुभव होता था. उसमें कोई भी चीज रख दी जाये, उसमें भी वही गंध समा जाती थी. कुछ वैसी ही गंध मेरे घर की भी है.

घर क्या है, पूरा कबाड़-खाना है. चौके में कालिख पुते बर्तन औन्हाये हुए, थालियों में जूठन, कड़ाही में पानी, राख, कोयला, सब्जी और प्याज के छिलके, सब कुछ इस तरह बिखरा हुआ कि वहां खड़ा होना पहाड़ हो जाये. आंगन में एक कोने में कुदाल, फटे हुए टायर, झाड़ू आदि रखे हैं और एक तरफ क्यारी बना कर गेंदे के तीन-चार पौधे लगे हैं. बाबू जी कहते हैं—फूल मत तोड़ो. इसी से तो आंगन में सुगंध रहती है. खाक सुगंध रहती है! पास वाली नाली में सभी मूतेंगे, तो आंगन में गेंदा क्या, गुलाब और केवड़े की भी गंध हवा हो जायेगी. और बच्चे हैं कि मानते नहीं हैं. रात-बिरात तो बाबूजी भी वहीं पेशाब करते हैं. इन लोगों को इतना भी खयाल नहीं है कि आंगन में ही तुलसी माई का स्थान है. एक रस्सी आंगन में लटकी हुई है. मां इसे अरगनी कहती हैं और आभा के फ्रॉक, बाबूजी की फटही धोती, मां की चिथड़ी साड़ी, चीकट तकिये के खोल और भीगे बोरे, सब इस पर टंगे रहते हैं. आंगन के तीनों तरफ तीन पक्के कमरे हैं—पक्के, लाल फर्श वाले. बाबू जी कहते हैं—इन्हें खून-पसीना एक करके बनवाया है, इसीलिए लाल हैं. इन कमरों में झाड़ू सिर्फ मां ही लगा सकती है. नौकरानी हो सकता है कुछ चुरा ले जाये, गोकि खुला कुछ भी नहीं रहता. यहां तक कि अचार भी ताले में बंद.

मेरे आने से घर में गति आ गयी है. छोटे की आंखें मेरे नये सिले कोट पर टिकी हैं, और भाव व्यक्त कर रही हैं कि उसे भी ऐसा ही सिलवा देना चाहिए. आभा इस फिराक में है कि भैया अभी सूटकेस खोलेगा. बाबूजी, मां, छोटे, आभा और केशव, सब मुझे घेर कर खड़े हो जाते हैं, जैसे मैं कोई अजूबा होऊं, जिसे वे सब पहले-पहल देख रहे हों.

—भैया, मेरा पेन लाये हो? छोटे से रहा नहीं जाता बिना पूछे.

—नहीं.

—और मेरा फ्रॉक, जो मैंने मां से लिखवाया था, चिट्ठी में? आभा ऐसे पूछती है जैसे नया फ्रॉक कभी पहना ही न हो.

—कुछ नहीं लाया हूं, कह दिया न!

मां सबको डांट देती है—सब खरीद दिया जायेगा. भागो तुम सब. बेचारे के पास बंधा-बंधाया पैसा जाता है. कहां से सबको गहने गढ़ायेगा?

मैं अपराध भाव से ग्रसित हो जाता हूं. आभा ने मुंह फुला लिया है. छोटे बुत बना खड़ा है. मेरी हालत उस सांप की-सी हो जाती है, जिसे केशव ने ईंटों से मारा था. घर के सारे लोग सांप को घेर कर उसके बारे में तरह-तरह की चर्चाएं कर रहे थे. ठीक इसी तरह.

मां ने मेरे लिए हलवा बनाया है. चाय भी बना दूं? मां ऐसे पूछ रही है, जैसे कि मैं जब कहता हूं, तभी चाय बनाती है. बनानी थी तो अब तक बना चुकी होती. मैं चुप ही रहना बेहतर समझता हूं. मां केशव को चाय की पत्ती लाने घर से बाहर भेजती है. केशव खिसिया रहा होगा. बेचारे को चाय लानी पड़ेगी. लानी ही पड़ेगी. मैं जो आया हूं!

आभा पता नहीं क्यों गला फाड़ कर चिल्ला रही है. हलवे के लिए रो रही होगी. मां से मैंने लाख बार कहा होगा कि इन सब के मुंह में हलवा ठूंस-ठूंस कर भर दे, ताकि फिर कभी न मांगें. लेकिन मां इतनी गयी-गुजरी है कि क्या कहूं? इन भुक्खड़ों को टुंगा-टुंगा कर देती है. सत्तू का पेट कहीं सुहारी से भरा है?

आभा चिल्ला रही है. उसे हलवा देना जरूरी हो जाता है.

—ले आभा, ले हलवा. ले, खा ले. आभा हलवा ले कर चुप होने की कोशिश करती है. लगता है, मां ने इसे ठोंका भी है, तभी हिचकियां ले रही है. थोड़ा-सा हलवा उसे और दे दिया जाता तो कौन अकाल पड़ जाता! पांच बरस की बच्ची कोई कड़ाही भर हलवा थोड़े खायेगी!

—क्यों री डायन, भैया से भी हलवा ले लिया! आती हूं, तेरे पेट की भवानी को शांत करती हूं. तेरे पेट में दलिद्दर पैठा है क्या, रे?

और मां इसके बाद एक भरपूर तमाचा चला देती है.

आभा फिर और जोर से चिल्लाने लगा है. एकदम शरारत भरी, बेहूदा आवाज में. मैं तो जमीन में गड़ा जाता हूं.

★ ★

शाम को बाजार में ऐसे ही निकला तो जद्दू मिल गया. जद्दू यानी यदुनाथ तिवारी. हम और जद्दू साथ-साथ खेले, पढ़े थे. वह फेल होता रहा. वह जब-जब मुझसे मिलता, यह जरूर जता देने की कोशिश करता कि वह मेरा क्लासफेलो रह चुका है. अब वह सिर्फ इंटर फेल रह गया था. घर में पैसा था ही. खूब अच्छे कपड़े पहनने की आदत पड़ गयी. वह किसी भी मामले में मुझ से बेहतर था. रही फेल होने वाली बात, वह तो पढ़ने वालों के साथ लगी ही रहती है. वह अकसर मुझे 'गिरते हैं शह सवार ही मैदाने जंग में' वाला शेर बड़े

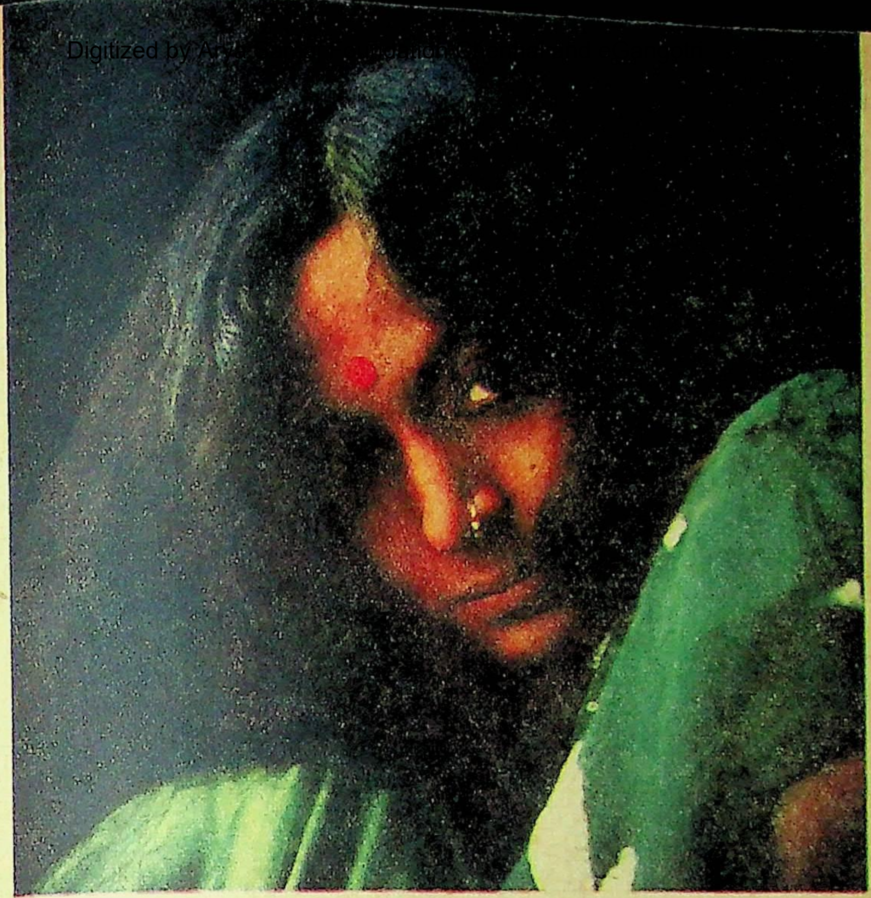

● महेन्द्र बंसल

भोंडे ढंग से सुनाया करता था. वह मेरे साथ ऐसी बेतकल्लुफी झाड़ता था जैसे उसके और मेरे तबके में कोई फर्क ही न आया हो. कितना भी हो, मैं ठहरा रिसर्च-स्कॉलर और वह ठहरा इंटर फेल. पैसे से क्या होता है? कभी-कभी जद्दू मुझे जबरदस्ती होटल में चाय पिलाता और कहता—पैसा खर्च करने में कंजूसी क्या? पैसा तो हाथ का मैल है.

--और यह मैल तुम्हारे घर ज्यादा इकट्ठा हो गया है! मैं कहता और वह चिढ़ जाता.

आज पता नहीं मुझे क्या सूझी कि मैंने जद्दू से पूछ लिया—चाय पियोगे? मैंने आशा की थी कि जद्दू नहीं कर देगा, लेकिन वह चुप रहा.

मेरे मन में चिंता घर करने लगी कि मेरे घर के सारे कपों के हैंडल टूटे हैं. चाय में अदरक, मिर्च और तुलसी का पत्ता डाल कर उसे लोग आयुर्वेदिक आसव बना डालते हैं. मेरे घर वालों का टेस्ट इतना बिलो स्टैंडर्ड है कि भला जद्दू क्या कहेगा? मैंने सोचा कि किसी तरह टाल जाऊं. सिर्फ चाय पिला कर बस कर देना अपनी वास्तविक स्थिति को जाहिर कर देना है, इसलिए इसे घर न ले चलूं तो ही अच्छा. लेकिन यह जद्दू ऐसा बदतमीज है कि इसने एक बार भी न नहीं कहा.

मैं सप्रयास बोला–यार आजकल शाम को मैंने चाय पीना कम कर दिया है.

वह अनायास भुनभुनाया—मैं तो शाम को ही पीता हूं.

मैं विवश हो गया. मैं चेष्टा करने लगा कि कहीं जद्दू ताड़ न रहा हो. मैं अपने ही पिंजरे में कैद हो गया था.

* *

दरवाजे के समीप पहुंचा ही था कि एक आवाज से मैं चौंक गया.

'झन्न!' कटोरा पटकने की आवाज. . .बाबूजी कह रहे थे—पता नहीं इस औरत के बाप ने कैसे इसे मेरे गले मढ़ दिया! औरत के नाक न हो तो. . .

माहौल समझने में मुझे देर न लगी. आज भी मां ने बाबूजी की थैली से पैसे निकाले होंगे या कोई और बात होगी.

—मिस्टर जद्दू, लगता है कि फादर किसी बच्चे पर खफा हैं. वह छोटे हैं न, पूरा विलेन हो गया है और फादर मुझसे भी थोड़ा एडजस्ट नहीं कर पा रहे हैं.

—नहीं जी, कोई और बात है.

--लैट इट गो, यार. खामखा मैंने तुम्हें बोर किया. अब तुम जाओ तो ही बेटर होगा. और मैंने

मुह फेर लिया. जद्दू ने स्पष्ट कर दिया था कि वह सारा मामला ताड़ गया है. मेरी स्थिति ऐसी हो गयी थी जैसे जद्दू ने नाली में पड़ा गंदा मेढक देख लिया हो.

शुरू से ही बाबूजी और मां के झगड़े मैंने सहे हैं. हर बार वही सब रिपीट होता है. बाबूजी रात को नहीं खाते हैं. बरतनों की उठा-पटक होती है. गंदी-गंदी गालियां बकी जाती हैं. इन्हें यह परवाह नहीं रहती कि मैं हूं, आभा है, केशव है, छोटे है. मां इतनी जोर से चिल्लाती है जिससे लगे कि उसे जान से मार डाला जा रहा है. इतनी नीचता तो किसी परिवार में नहीं दिखी जा सकती. इतनी बिलो स्टैंडर्ड गालियां ये लोग एक दूसरे पर उछालते हैं कि. . .और वो भी बच्चों के सामने. मेरी समझ में क्या कुछ नहीं आता? मेरी उमर तो ज्यादा है, चौदह साल का केशव भी समझता होगा कि ये लोग क्या चीज हैं.

जद्दू से पीछा छुड़ा कर मैं घर आया कि देखें, मामला क्या है.

जैसा सोचा था, ठीक वही दृश्य. थाली का चावल, दाल, सब्जी और पानी इधर-उधर छितराये हुए, सुराही फूटी हुई, चूल्हा लगता है पैर से तोड़ा गया है. बच्चे शायद रजाई में मुंह ढके रो रहे हैं. बाबूजी लालटेन की रोशनी में कुछ गिन-गुंथ रहे हैं. थोबड़ा ऐसे लटका है जैसे कि बड़े सीधे हों, कुछ जानते ही न हों. हो सकता है, मां आज पिटी भी हो. है कहां? दिखायी भी नहीं पड़ रही है. कुएं में कूदने की धमकी तो देती है लेकिन कूद नहीं सकती. कूद जाती तो झंझट ही छूट जाता. न रहता बांस, न बजती बांसुरी. बाबूजी भी भूखों मरते, तो अक्ल ठिकाने आ जाती. बेचारी मर-मर कर काम करती है, और उस पर यह इल्जाम थोपते रहते हैं. अपना युधिष्ठिर बने बैठे हैं! रजाई ओढ़ कर, और गिन-गुंथ रहे हैं, पाई-पाई. एक भी पाई खिसकी तो निकला प्राण. भुक्खड़ कहीं के!

जैसा मैं ऐसे मौकों पर करता हूं, अपने कमरे में जा कर चुपचाप पड़ जाता हूं. पर नींद आये तब न.

छोटे मुंह लटकाये बड़ी शालीनता से कमरे में घुसा.——भइया, खाना नहीं पका है.

मुझे कुछ जवाब सूझे, उससे पहले ही उसने बतलाया——भइया, आज मां ने बाबूजी की थैली में से दस रुपये चुराये थे. बाबूजी ने मां को पीटा नहीं, सब किया. बाबूजी ने मां को खूब गाली बकी और उसने भी गाली दी. भइया, आभा डर गयी है. रजाई में मुंह ढक के रो रही है. केशव भी. और लगा कि वह भी रो देगा.

——चुप रहो. जा कर सो जाओ. मैंने उसे डांट कर भगा दिया. मुझे नाराज होना चाहिए किस पर और हो रहा हूं किस पर? उस बेचारे को डांटने से क्या फायदा?

लगता है मां की चोरी की आदत छूटने से रही. बाबूजी कहते हैं, मांग लिया करो. दें तब न कोई मांगे! मसल-मसल कर तो पैसा निकालते हैं. हद दर्जे के कंजूस हैं. घी खाते रहेंगे और पूछेंगे नहीं कि कहां से आया है. मां बेचारी कहां से लायेगी? यह तो मां है जिसकी मे से सबको पेट भर खाना मिल जाता है. यह भी कि दिन मिल रहा है, मिल रहा है. यह होते तो सब अब तक मार चुके होते, खाने बिना. मेरी गलती है इन कमीनों के घर पैदा हो गया. बाबूजी दिन भर तीन बार पैसा गिनेंगे. झूठ कह देंगे——दो घंटा पहले सौ सत्तासी रुपये रखे थे, अब दो सौ बयासी है. अरे है पांच का नोट किसी ने उड़ा दिया. चारों तरफ चोरों का बसेरा है. पैसा रखा कि पांच का नोट फुर्र!

हो सकता है गिनने में गलती हुई हो, लेकिन वे नहीं मान सकते. कहते हैं——तीन बार गिना था. तीनों बार गलती होगी?

——यही करना है, तो बंद करके रखिए ताले में. समझे? मां चिलायेंगी.

——अरे तुम तो ताले में से भी उड़ा डालोगी. तुम्हें तो टोना आता है न? और झगड़ा शुरू हो जाता है. मुझे मां की चोरी का पूरा-पूरा भरोसा है, लेकिन ऐसे मौकों पर बाबूजी का व्यवहार मुझे बिलकुल नापसंद है. मुझे तो कभी चोरी नहीं लगाते. केशव पर जरूर लगाते हैं. वह चोरी नहीं करता, सब्जी के पैसों में से थोड़ा बचाता है. वह भी कलम-कापी के लिए. इसे चोरी नहीं कहते. जब उसे पैसा दिया नहीं जायेगा तो कहीं-न-कहीं से वह निकालेगा ही.

कुछ भी हो, मां चुराती जरूर होगी. लेकिन करती क्या है, इसका नहीं पता.

* *

कभी - कभी बाबूजी ऐसी बेतुकी बातें करते हैं कि दिमाग गरम हो जाता है. कह रहे थे, रिसर्च करके कौन नार्लीकर हो जाओगे? अरे, कुछ कमाओ-धमाओ. नहीं तो कोई दूकान ही खोल लो. चेहरा बना कर लोफरिज्म करने से क्या पाओगे? अरे, भूखों मरोगे भूखों! कोई दो कौड़ी में भी तुम्हें नहीं पूछेगा. जब तक मैं जिंदा हूं, तब तक टेरीकॉट पहन लो. मर जाऊंगा, तो लुगरी लपेटोगे. क्या ये भरोसेलाल का लड़का घूमता है! पहले सूट पहनता था, अब जांघिया पहनता है.

मेरे कपड़ों की हालत कैसी है, इसे मां जानती है. कपड़ों के लिए बाबूजी से कहना मैंने एक अरसे से बंद कर दिया है. कभी-कभी अपनी फटेहाली पर मां से रो-धो लेता हूं. मां भी क्या करे? हो सकता है मुझसे सहानुभूति पाने के लिए ही, मेरे सामने बाबूजी को दो-चार गालियां बक देती है. कभी-कभी कहती है, आग लगे ऐसे धन में. पाई-पाई जोड़े कोई कुबेर होता है? मर जायेंगे, तो ले जायेंगे क्या? देखो, कोई इंतजाम होगा. घबड़ाओ मत. घबड़ा कौन रहा है? मां तो इतनी सांत्वना भी दे देती है. बाबूजी कहते हैं, प्लेन लिविंग ऍंड हाई थिंकिंग. बड़े-से-बड़े आदमी को देख लो, कोई कीमती कपड़े पहनता है? हमारे जमाने में एक प्रोफेसर थे, लुंगी पहन कर आते थे. उन्हें तो कोई कुछ भी नहीं कहता था. सारे लोग हाथ जोड़ते थे. कदर नॉलेज की होती है, कपड़ों की थोड़े होती है!

मुझे हाइ थिंकिंग सिखाने चले हैं! इनकी हाइ किंग तब उजागर होती है जब मां से [illegible] है.

नींद नहीं आ रही है. एक उपन्यास उठा लेता हूं. पता नहीं मां बाबूजी से झगड़ा करके कहां गयी हो सकता है, ठाकुर साहब की बीवी के यहां गयी वहां जा कर वह मेहमान की तरह बैठी होगी. जाहिर करेगी कि लड़ कर आयी हैं. इस तरह की नकल वह चतुर है. घर पर बाबूजी थोड़ा भी डांटेंगे तो मान सिर पर उठा लेगी. बाबूजी घबड़ा जाते हैं. हैं कि कोई सुन न ले. इज्जत का इतना खयाल, तो नंगई करने की क्या जरूरत है?

झगड़ा करने के बाद मां ठकुराइन से क्या बात करती ? घंटों से वहां क्या कर रही है? बच्चे भूखे सो हैं, उसे थोड़ी भी चिंता नहीं है.

मैंने सोचा कि ठकुराइन के यहां चल कर देखूं कि बजे रात को भी मां आयेगी कि नहीं. और देखा कि ठकुराइन के यहां गप्प लड़ा रही है—शायद स्वेटर बुनाई भी देख रही है.

—मां चलो, खाने-वाने का इंतजाम करो. रात को नहीं बैठते हैं.

—अरे, थोड़ी देर बैठ ही गयी तो क्या बिगड़ गया! खाना लोगों को तुम नहीं परोस सकते थे! आदमी के पास ही तो आदमी बैठता है. मां ऐसी स्वाभाविक मुद्रा में कह रही है, जैसे खाना सचमुच बना ही हो.

—चलें बहन जी, देर हो रही है. वे नाराज होंगे.

—अरे बैठिए भी. उन्हें कहना पड़ा.

—नहीं-नहीं, अब चलूं.

—अरे, थोड़ी देर और! ठकुराइन ने अपनी शिष्टता पर और जोर दिया.

—फिर कभी. चलूं, नहीं तो बच्चे सो जायेंगे. जैसे बच्चे अब तक जगे ही हों.

मां मेरे साथ ऐसे आ रही थी जैसे उसे मैं जबरदस्ती खींच कर ला रहा हूं. उसके चेहरे से यह भय टपक रहा था कि हो सकता है सारे लोग जगे हों.—सब बच्चे सो गये होंगे. भूखे ही. बताओ, ऐसा बवाल इन्होंने खड़ा कर दिया कि खाना हराम हो गया. हत्यारे से पाला पड़ा है. तुम्हें भूख लगी है?

मैंने कहा—नहीं. लगता था मां को भी भूख लगी है. लेकिन इतनी रात को खाना कौन खायेगा? मां तो खाने से रही! मां कह रही है—अरे, यह आज की ही बात नहीं है. ऐसा तो हमेशा करते हैं. छोटी-सी बात हुई कि हुआ तूफान. मैं मां का मुंह देख रहा था जो रुलाई दबाने में असफल हो रहा था.

घर आ कर मां चुपचाप सो गयी.

मैंने सोचा, अब ज्यादा दिन यहां नहीं रहना है, कल चला जाऊंगा.

* *

आज सुबह घर का वातावरण नॉर्मल है. जैसे रात ने सारा मनोमालिन्य धो दिया हो.

हिंदी कथा-जगत में नये-नये उभर कर आने वाले प्रतिभाशाली लेखकों में एक नाम रवींद्रनाथ उपाध्याय का भी है. यथार्थ स्थितियों को, बिना किसी लाग-लपेट या बनावट के अपनी कहानियों में ज्यों-का-त्यों रख देना इनकी विशेषता है. इस कहानी 'घर' में इस विशेषता का भरपूर प्रमाण उन्होंने दिया है.

मैंने अपने जाने की घोषणा कर दी है.

आज शाम की ट्रेन से जाऊंगा. घर के सारे लोग मुझसे फिर प्रेम करने लगे हैं.

चिट्ठी जल्दी-जल्दी लिखा करना. फाउंटेन पेन लेते आना मेरे लिए. इस बार न भूलना. ट्रेन में सामान से सचेत रहना. . .रुपया-पैसा ठीक से रखना. ट्रेन में सोना मत—आदि वाक्यों से मुझ पर प्रेम बरसाया जा रहा है. मुझे ऊब हो रही है.

मां ने मुझे बुला कर एक सौ का नोट दिखा कर मेरी पैंट की जेब में डाल दिया है.—ये रख लो. कपड़ों के लिए. बाबूजी से कहने से कुछ भी न होता. बड़ी तकलीफ से ये पैसे मैंने जुटाये हैं. एक-एक करके जोड़े हैं. कभी पांच निकाल लिया, कभी दो, कभी एक. किसी तरह पूरा किया है. तुम कहोगे तो और इंतजाम कर दूंगी. इनसे गरम कोट ही बनवाना. और किसी मद में खर्च न करना. ध्यान करके. समझे? तुम्हारे पास कोट है भी नहीं. जाड़ा कैसे निकालोगे?. . .यह सोच कर बहुत तकलीफ होती थी. . .कितनी होती है, कोई नहीं जानता. . . और मां का गला भर आता है.

मैं समझ गया. अंदर से लगा कि मैं झकझोर दिया गया हूं. मां एक साबित चोर की इज्जत से इस घर में रहती है. डांटी जाती है. गाली सुनती है. गाली बकती है. झगड़ा करती है. कलह करती है. क्यों?. . .

मैंने पैसे रख लिये. और करता भी क्या? कोट तो जरूरी बनवाना था, नहीं तो सर्दी कैसे गुजरती?. . . □□□

१३७, हिंदू छात्रावास,
प्रयाग विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

दुर्घटना □ शंकर

अखबार का बंडल सहेजना छोड़ लखराजी बाहर निकल कर टटियारी में चली आयी. टटियारी चारों कोने पर बांस को टाट से घेर देने से बनी थी. टाट काफी पुरानी पड़ गयी थी. जहां-तहां पेबंदें भी लगी थीं. टटियारी चार साल पहले छोटकू के बाबू रत्तीराम ने खड़ी की थी. हर साल टाट की बदली होनी चाहिए थी लेकिन कभी ऐसा हो नहीं पाया था. तब से टटियारी बरसात के दिनों के अलावा बाकी अन्य दिनों में आंगन का काम करती आयी थी.

टटियारी के एक कोने में थोड़ी देर पहले लखराजी ने चूल्हे पर अल्युमीनियम की तसली चढ़ायी थी. चावल के फुदकने के समय का अंदाज ले कर ही वह टटियारी में आयी थी. उसने तसली में झांका; फिर उसको डबरे में उलट दिया. डबरे में हलके मटमैले रंग का पानी फैल कर पसर गया. डबरे से उठती हुई सुगंध छोटकू तक पहुंची और वह अखबार के बंडल के पास से उठ कर डबरे के पास बैठ गया. तभी रत्तीराम ने भी करवट ली और सिर लुगदी के बाहर निकला. बाबू की तरफ पीठ किये छोटकू ने सुड़क-सुड़क कर पूरा डबरा खाली कर दिया. फिर पेंदे पर बैठे चावल के दाने बीनने लगा.

तभी लखराजी ने छोटकू के बाबू की आंखों में झांकने की कोशिश की. लुगड़ी में मांस के लोथड़े की तरह लिपटा हुआ वह गड़ती नजरों से छोटकू के आगे पड़े खाली डबरे को देख रहा था. लखराजी के कलेजे में दर्द-सा उठा. उसके जी में आया, वह छोटकू को एक जोरदार तमाचा जड़ दे.

—चल उठ, पेटू कहीं का! बाबू के हिस्से का भी तू खा गया! लखराजी ने छोटकू को बांह पकड़ कर उठा दिया. लेकिन दूसरे ही क्षण छोटकू के चेहरे पर नजर पड़ते ही वह पिघलने लगी. फिर सोच में डूब गयी. सुबह चूल्हे पर चढ़ाने के लिए वह पूरा चावल जुटा भी नहीं पायी थी. पिछले दिनों बड़ा लड़का बिरज जोरावरचंद से माहवारी की जगह चावल मांग लाया था जो कई दिनों तक लगातार चला था. फिर लखराजी गुलटिक्की के पैसों से गाजर खरीद लायी थी, जिसे उसन-उसन उसने दो जून गुजारी थी. वह तो रामसरन की भलमनसी थी कि उसने रत्तीराम का खयाल करते हुए लखराजी को आज सुबह में इस शर्त पर मदद दे दी थी कि वह गुलटिक्कियों के पैसे में से उतना काट लेगा. लखराजी को यह शर्त बहुत हलकी लगी थी. आज उसने तसली में जो चावल चढ़ाया था, वह रामसरन के पैसों का ही था.

बिल्कुल सुबह लखराजी ने छोटकू के बाबू के पेट में मरोड़ों की आवाज भी सुनी थी—गड़-गड़-गड़. तब वह एक बुरी आशंका से डर गयी थी. पिछले दिनों खिलौना बेचने वाले सिवचन के पेट में भी इसी तरह मरोड़ें उठी थीं. सोने से पहले उसने बताया था कि तीन दिनों से उसने कुछ खाया नहीं था. इस बीच गर्म जैसी कोई चीज उसकी अंतड़ियों में उठती-गिरती थी. उसके इर्द-गिर्द बैठे लखन, गुलाब, बिंदे, तेतर ने उसके पेट में उठने वाली मरोड़ों की आवाज सुनी थी. सुबह सिवचन अपनी झुग्गी में मुर्दा पड़ा था. सिवचन की याद आते ही लखराजी भीतर से गयी थी. तब कोठरी की एक-एक हांडी को उसने था. कुछ नहीं मिलने पर वह रामसरन से मदद गयी थी.

डबरा छोड़ कर उठने के बाद छोटकू कुछ क्षणों लिए अपराधी की तरह खड़ा रहा. फिर अखबार बंडल को कंधे पर रख टटियारी के बाहर चला इस बीच बाबू ने लुगदी अपने सिर के ऊपर तक ली थी. अब वह लुगदी के भीतर सिमटा पड़ा था.

* *

लखराजी छोटकू के साथ आज भी गली के छोर तक आयी. वहां गोदामपट्टी की इन झुग्गियों कतार खत्म होती थी और एक पतली-सी रेलवे गोदाम की बगल से होती हुई रेलवे तक जाती थी. कल भी वह यहां तक आयी थी. दिनों तक ऐसा करना उसने जरूरी समझा था. विश्वास था, धीरे-धीरे छोटकू खुद-ब-खुद सब समझ जायेगा. जब यह सब छोटकू के जीवन हिस्सा बन जायेगा, तब उसे यहां तक छोड़ने की नहीं पड़ेगी. लखराजी गली की अंतिम हद तक आ रुक गयी.

आश्वस्त कराने के खयाल से छोटकू ने सिर कर मां की ओर देखा. अखबार के बंडल के दबाव छोटकू की गरदन दूसरी तरफ झुक आयी थी. दाहिने हाथ को ऊपर फेंक कर बंडल मजबूती से रखा था. ऐसा करने से उसकी कमीज उठ गयी थी. राजी ने बंडल को थोड़ा हिला-डुला कर संतुलित दिया. फिर ढाढ़स देते हुए बोली —–तू चला जायेगा छोटकू ने गरदन हिला कर हामी भरी. फिर पगडंडी उतरने लगा.

लौटते हुए लखराजी छोटकू के बारे में ही सोचती रही. वह खुश थी कि छोटकू जो काम अपने बाबू के पांच - छह वर्षों के बाद करता, उसे उसने अभी ही शुरू कर दिया था. स्कूल जाना उसने पिछले छोड़ा था. पास में किताबें नहीं होने के जुर्म में मास्टर ने दस बेतों की सजा दी थी. दूसरे दिन से उसने जाना छोड़ा तो फिर कभी नहीं गया. तब से उसने

ाइन के इर्द-गिर्द खासकर वहां, जहां इंजन रुकता था, ायले की झुर्री और मंडी की सड़कों पर गोबर चुनना रू कर दिया था. लखराजी कोयले की झुर्री और गोबर गुलटिक्की बनाने लगी थी. रामसरन स्टेशन वाली कान के लिए एक रुपये में सौ गुलटिक्कियों के हिसाब नियमित रूप से गुलटिक्कियां खरीदने लगा था. पिछले नों लखराजी को बनी हुई गुलटिक्कियां बेच डालने कभी कोई दिक्कत नहीं हुई थी. छोटकू हलकी-फुलकी ामदनी का जरिया बन गया था.

इन्हीं दिनों रत्तीराम के लिए नया संकट उठ ड़ा हुआ था. पिछले दो-तीन महीनों से अखबार की बिक्री में गिरावट आ रही थी. संभवतः इसकी एक जह यह थी कि आम मुसाफिरों ने बढ़ी हुई कीमत पर अखबार खरीदना बंद कर दिया था. इस स्थिति को खते रहने के बावजूद स्टाल-मालिक ने प्रति अखबार र मिलने वाले कमीशन की पुरानी दर में कोई बढ़ोतरी नहीं की थी.

ऐसे ही गाढ़े वक्त पर चलती गाड़ियों में सीखचों के सहारे एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में आने-जाने की कड़ी मेहनत से उसकी छाती में दर्द उठ आया था. हाथ-पाव कांपने लगे थे. पूरी देह भीतर से सुन्न होने लगी थी. ऐसा कई बार पहले भी हुआ था. तब भी उसने चलती गाड़ियों में अखबार बेचने का सिलसिला बंद नहीं किया था.

परसों उसने जमीन पकड़ ली थी. साढ़े चार बजे वाली पैसिंजर से उतरते ही उसके सिर में चक्कर आ गया था. झुग्गी में लौटते ही वह जमीन पर गिर पड़ा था. लेखराजी कुछ देर बाद आयी थी. वह रामसरन की दूकान में गुलटिक्कियां पहुंचाने गयी थी. छोटकू खांचों में गोबर और झुर्री लिये शाम को लौटा था.

झुग्गी में वापस लौट कर लखराजी ने तसली और डबरा साफ किया . फिर बचा हुआ पानी चूल्हे में डाल दिया. आग जल्द ही बूझ गयी. आग बुझते ही वह अध-जली गुलटिक्कियों को राख से चुन-चुन कर अलग रखने लगी.

तभी रत्तीराम ने जोरों से हिचकी ली. लुगदी उसकी देह से सरक कर नीचे खिसक गयी. उसका चेहरा झुलसे हुए मांस-पिंड की तरह एक तरफ लुढ़का हुआ था. आंखों से जैसे भाप निकल रही थी. होठों पर पपड़ियां जमी हुई थीं. लखराजी जल्दी से टटियारी के दूसरे कोने में पड़े मुंहकटे घड़े से पानी ले आयी. रत्तीराम पूरे गिलास का पानी गटागट पी गया. पानी पीने के तुरंत बाद उसके पेट में एक लंबी मरोड़ उठी. आवाज इस तरह हुई थी जैसे मरोड़ नाभि के नीचे से उठी हो और कलेजे तक होती हुई पुनः नाभि तक वापस आ गयी हो. उसने करवट ली. फिर लुगदी को सिर तक खींच लिया.

चिंता में डूबी लखराजी टटियारी के बाहर चली आयी. यहां गोबर और झुर्री से भरी खांची पड़ी थी. कल परसों गुलटिक्कियां बन नहीं पायी थीं. सुबह रामसरन से जो उधार लिया था, उसकी चुकती के लिए उसे आज ही गुलटिक्कियां तैयार कर देनी थीं. वह तेजी से गोबर और झुर्री मिलाने लगी. . .इसी वक्त उसे बिरज की याद आयी.

* *

बिरज को बाबू की तबीयत की खबर देने लखराजी गल्ला मंडी में आयी. उस वक्त शाम का धुंधलापन पसर रहा था. यह मंडी बंद होने का समय था. आसपास के गांवों से आयी बैलगाड़ियां वापस लौट रही थीं. लद्दू बैलों की जमात भी इस वक्त तक तितर-बितर हो चुकी थी. मंडी में मरघट का सन्नाटा घुस रहा था.

लखराजी जोरावरचंद की गद्दी के सामने आ कर रुक गयी. यह मंडी की सबसे बड़ी गद्दी थी. इसी गद्दी में बिरज पिछले कई वर्षों से नौकर था. आधी रात हो या दोपहर, इस गद्दी में गल्ला हर वक्त उतरता-चढ़ता था. चूंकि यहां उसकी किसी भी वक्त जरूरत पड़ सकती थी, इसलिए जोरावरचंद ने उसे गद्दी में ही स्थायी कर दिया था. तब से बिरज के लिए घर जाना असंभव हो गया था. अपनी यह मजबूरी उसने मां से जाहिर भी कर दी थी. तब से लखराजी हफ्ते दो हफ्ते पर खुद बिरज से आ कर मिलने लगी थी.

कुछ ही क्षणों में बिरज आ गया. मां को इस वक्त मंडी में देख उसने अंदाज लगा लिया, मां कुछ जुटाने के इंतजाम में आयी होगी. गद्दी में उसके इस वक्त आने की कोई दूसरी वजह नहीं हो सकती थी. उसके कुछ

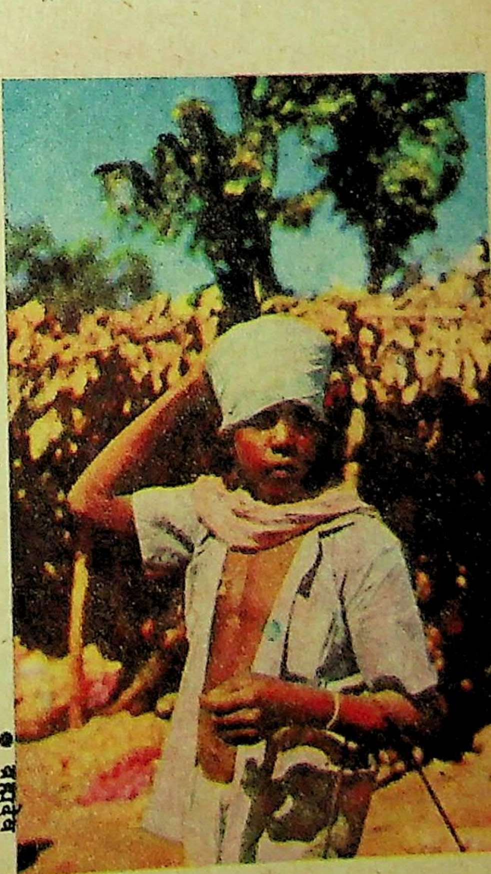

• ब्रह्मदेव

रेज़र से त्वचा कटाकर और खूँटे-से बाल उगाकर झेंपते रहिए या...

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर से रेशम-सी कोमल त्वचा पाइए

शेविंग ? नहीं, यह तो पुरुषों के लिए है। फिर त्वचा कटने और बाल कड़े उगने का भी डर। तो ? इसके लिए एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर लगाइए। कैसे ? बिल्कुल आसान है : अनचाहे बालों पर क्रीम लगाइए; थोड़ी देर ठहरिए, फिर गीली रूई से पोंछ डालिए। यह त्वचा के नीचे जाकर कार्य करता है। देखा बाल ग़ायब! आपकी त्वचा हफ़्तों मुलायम। तो छोड़िए रेज़र, एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर अपनाइए।

एन् फ्रेंच हेयर रिमूवर

अनचाहे बालों को हटाने का मनचाहा क्रीम

FACIAL QUALITY
Anne French
Creams

Licensed user of TM : Geoffrey Manners & Co. Ltd.
126 HR-203 Hin

२ साइज में सुलभ : ४० ग्रा. और ७५

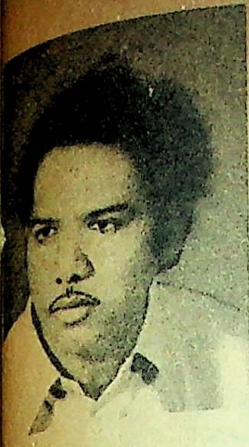

शंकर (जन्म : १९४७) ने हालांकि काफी कम लिखा है लेकिन जो कुछ भी लिखा है वह छोटी-छोटी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है. पिछले दो वर्षों से एक अनियतकालिक पत्र का संपादन कर रहे हैं और आज कल वाणिज्य कर विभाग में प्रशिक्षणाधीन अधिकारी हैं.

पूछने के पहले ही लखराजी पूछ बैठी—बाबू को देखने नहीं चलेगा. परसों से उसके पेट में मरोड़ें उठ रही हैं. उसने आज भी कुछ नहीं खाया..

बिरज ने घबड़ाहट के साथ गद्दी के भीतर देखा. उसे पता था, जोरावरचंद उसे यहां मां से बातें करते देख बिगड़ उठेगा. खुद जोरावरचंद आज रोज से ज्यादा व्यस्त दिख रहा था. दरअसल रात को गद्दी में 'चेकिंग' के लिए साहब आने वाला था. सुबह में ही उसने गद्दी के तमाम कामगारों को हिदायत दे दी थी. बिरज ने ऐसी 'चेकिंग' कई बार पहले भी देखी थी. वह जानता था, रात होते-होते जोरावरचंद उसे गद्दी से हरफेर कटरे के पहरे पर भेज देगा. जब सुबह वह गद्दी में आयेगा, तब पता चलेगा—रात बिक्री टैक्स का साहब आया था. बगल के शहर से कोई मेम भी आयी थी. साहब चावल के बोरों की जांच करने की बजाय रात भर लुढ़का पड़ा था.

—तू देख नहीं रही है, सेठ कितना बेचैन है? अभी दस रोज भी नहीं हुए, उसने चावल दिया था. मेरी माहवारी वह इतनी जल्दी-जल्दी नहीं चुकायेगा. तू चल मैं सुबह आऊंगा. कहते हुए बिरज गद्दी के सामने से हटकर बगल के घूरे के पास खड़ा हो गया. लखराजी ने मान लिया, बिरज के लिए जरूर कोई मजबूरी होगी. उसने चुपचाप रास्ता पकड़ा.

* *

छोटकू रात को आठ बजे तक भी वापस नहीं आया. कल वह शाम ढले ही लौट आया था. उसके हाथों बहुत कम ही अखबार बिके थे. जब उसने दिन भर की बिक्री के पैसे दिये थे, उस वक्त लखराजी की आंखों में चमक आ गयी थी.

मंडी से लौटने क बाद जब उसने ढिबरी जला कर रत्तीराम को देखा था, छोटकू की याद तभी आयी थी. सुबह छोटकू के बाबू ने कुछ नहीं खाया था. शाम को छोटकू के पैसे से ही चावल खरीदने की बात लखराजी ने सोची थी. कहीं चावल-नमक की दूकान बंद न हो जाये. वह चिंतित हो उठी थी.

लखराजी झुग्गी से बाहर निकल आयी और वहां तक गयी, जहां वह सुबह छोटकू को छोड़ने गयी थी. स्टेशन की तरफ जाने वाली पगडंडी पर जहां तक उसकी नजर जा सकती थी, वहां तक उसने गौर से देखने की कोशिश की. जब छोटकू नहीं दिखायी पड़ा, तभी उसे खयाल आया कि वह स्टेशन पर चल कर रामसरन की दूकान देख ले. मौके-बेमौके छोटकू वहां भी बैठता था. वहां बैठने से सबसे बड़ा फायदा यह था कि वह मुसाफिरों के जूठे गिलासों में बची चाय जमा कर-करके अपने लिए भी चाय जुटा लेता था. कई बार रामसरन ने खुश हो कर उसे ताजा गिलास भी दिया था.

रामसरन की दूकान पर पहुंच कर उसने चारों तरफ नजर दौड़ायी. छोटकू कहीं नजर नहीं आया. दूकान पर सिर्फ दो-तीन मुसाफिर बैठे थे. फिर भी तसल्ली के लिए उसने रामसरन से पूछ लिया—छोटकू को देखा तुमने? आया था इधर?

रामसरन ने नकारात्मक मुद्रा में सिर हिलाया. तब लखराजी को अनायास सिनेमा हौल की याद आ गयी. वह एकबारगी खुश हो गयी. उसे लगा जैसे उसने छोटकू को ढूंढ़ लिया हो. वह यह सोच कर आश्वस्त हो गयी कि पैसे पा कर छोटकू सिनेमा में घुस गया होगा. चलते-चलते उसने रेलवे कैंटीन, बस पड़ाव और गांधी-स्थान भी देख लिया.

सिनेमा के गेट पर उसके खड़ा होने के थोड़ी ही देर बाद शो टूट गया. वह निकलने वाले हर आदमी को बहुत गौर से देखती रही, भीड़ में से छोटकू की उम्र का कोई लड़का नहीं निकला. आधे से ज्यादा लोगों के निकल चुकने पर उसने सोचा छोटकू, भीड़ में पीछे पड़ गया होगा. वह कुछ ज्यादा ही उत्सुकता से देखने लगी. तभी रात वाले शो की घंटी बज उठी. बाहर खड़े लोग दौड़-दौड़ कर अंदर घुसने लगे. सिनेमा हौल का अहाता मिनटों में सूना पड़ गया.

सिनेमा हौल से लौटते हुए लखराजी भीतर से बेचैन हो उठी. जिन-जिन जगहों पर छोटकू के मिलने की उम्मीद थी, वह उन तमाम जगहों को देख चुकी थी. लखराजी के पांवों में इस वक्त तक थरथराहट आ गयी. निराश हो कर वह स्टेशन की तरफ लौटने लगी.

गांधी-स्थान से थोड़ा आगे रिक्शा वालों की बातें सुन कर वह अचानक बुत की तरह खड़ी हो गयी. उन्हीं में से किसीने बताया—डिहरी और करवंदिया के बीच कोई अखबार बेचने वाला लड़का शाम वाली पैसिंजर से डिब्बा बदलते वक्त गिर कर कट गया था. □□□

१४१-सी, गोरक्षिणी पथ, सासाराम.

समय की भयावहता से जूझता समांतर साहित्य

● डॉ. वि

कहानीकार परिवेश और जीवन-स्थितियों के प्रभाव से अपने जीवन-बोध और जीवन-साधना के अनुपात में अपनी अनुभूति से कथानुभव की जितनी सशक्त अभिव्यक्ति कर पाता है, कहानी उतनी ही सार्थक, समय-सापेक्ष और प्रामाणिक बनती है. ऐसे में साहित्यकार की प्रतिबद्धता विचार-धाराओं के अतिवाद को नकारती हुई, सीधे जीवन से जुड़ती है, और क्योंकि, जीवन की विचार-धारा-निरपेक्ष एक सहज-स्वाभाविक गति होती है, इसलिए रचनाकार न केवल जीवन की अभिव्यक्ति या विश्लेषण में अपनी एक स्वतंत्र दृष्टि की स्थापना करता है, बल्कि वह अपने अनुभव और पाठक के अनुभव के बीच से हट कर, गतिशील जीवन-प्रक्रिया के लिए, किसी भी विचारणा के निर्माण का दायित्व भी स्वतंत्र रूप से उनके ऊपर छोड़ देता है, जिनके लिए वह पूरी सतर्कता से रचना में प्रवृत्त है. इस प्रकार वह जहां अपने लिए एक स्वतंत्र चिंतन-क्षेत्र की मांग करता है, वहां दूसरे पक्ष की स्वतंत्रता का भी आदर करता है. लेकिन इन दोनों स्वतंत्रताओं को जोड़ने वाला एक सूत्र भी है. . . वह सूत्र है 'सामान्य जन' के संघर्ष में लेखक और 'आम आदमी' का सहभागी होना. यहां यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि संघर्ष की पूरी प्रक्रिया में लेखक खुद सामान्य जन होता है, कोई विशिष्ट व्यक्ति नहीं.

वर्तमान के संदर्भ में लेखक तथा आम आदमी की यह भागीदारी ज्यादा महत्व रखती है, क्योंकि जीवन के प्रत्येक स्तर पर वैयक्तिक और सामाजिक बिंदुओं पर, दोनों एक-सी स्थितियों के भोक्ता हैं. अतः आज की जीवन-साधना को 'रचनात्मक अनुभव' के स्तर पर व्यक्त करने में वही साहित्य कारगर होगा जो समकालीन जीवन से जुड़े अहम प्रश्नों को उजागर करते हुए यथास्थिति के विरुद्ध एक विकल्प की तलाश ले कर आगे आयेगा. समकालीन कहानी के संदर्भ में जब मैं रचनाधर्मिता के प्रस्तुत रूप पर विचार करता हूं तो 'समांतर कहानी' या 'आम आदमी के आसपास : आज की कहानी' की बात बहुत हद तक सार्थक और प्रामाणिक लगती है. इस सार्थकता और प्रामाणिकता की साक्षी के लिए यदि थोड़ा पीछे देखा जाये तो पता चलेगा कि कहानी के क्षेत्र में उभरे कई आंदोलनों का अंत बड़े दिलचस्प तरीके से हुआ. (यहां 'अंत' शब्द को मैं बिल्कुल स्थूल रूप में प्रयुक्त कर रहा हूं, क्योंकि मैं यह मानता हूं कि मानसिकता के आधार पर प्रत्येक नये आंदोलन से जुड़ी मानसिकता थोड़े-बहुत रूप में अब भी विद्यमान है.) हर आंदोलन में रचना-प्रेरणा की कुछ विशिष्ट स्थितियों को रेखांकित किया गया, लेकिन बाद में संबद्ध रचनाकारों ने खुद उस लक्ष्मण-रेखा को भंग भी किया—यह स्थिति कहानी के लिए अच्छी ही रही, क्योंकि इससे वैचारिक जड़ता टूटी और नयी जीवन-स्थितियों के लिए मार्ग खुला.

मोटे तौर पर '**समांतर–१**' (१९७२) के प्रकाशन से इस नयी कथा-संवेदना का प्रारंभ माना जा सकता है. यहां नयी कथा-संवेदना शब्द पूर्वापर संबंध सापेक्ष है, क्योंकि '**समांतर–१**' के संपादक कमलेश्वर ने '**नयी कहानी की भूमिका**' में नयापन भी स्थितियों में नहीं, बल्कि स्थितियों के प्रति नयी दृष्टि में माना है. और पहले युगारंभ के बिंदु पर कमलेश्वर की '**राजा निरबंसिया**', '**कस्बे का आदमी**' कहानियां आयीं तो वर्तमान की नयी कथा-संवेदना के तहत '**बयान**' और '**जोखिम**' की रचना हुई. जैसा कि मैंने पहले एक लेख '**आंदोलन और हिंदी कहानी**' में लिखा था, 'प्रतिकूल स्थितियों का जन्म मोहभंग की प्रक्रिया प्रारंभ करता है और उनकी परिपक्वता मोहभंग की प्रक्रिया को पूरा करती है. यदि इस बीच कोई अनुकूल स्थिति नहीं आती तो लेखक का दूसरी दिशा में सोचना अनिवार्य हो जाता है. यह दूसरी दिशा ही उसे नयी भाव-भूमि—संघर्ष भूमि—पर ले जाती है, जहां वह संघर्ष का धरातल, रूप और दिशा तलाश करता है.' कहना न होगा कि आज की समांतर कहानी ने 'आम आदमी के आसपास' उस संघर्ष की जमीन देखी और उसके सहभागी बनने में वह अपनी दिशा तलाश रही है.

* *

इस दृष्टिकोण से समांतर कहानी के सीधे दो पक्ष हो जाते हैं. एक पक्ष में वह उन सारी शक्तियों के उन्मूलन का स्वर-घोष करती है जिनके कारण आज के समाज में आम आदमी ऐसे दमघोंटू वातावरण में रहने को अभिशप्त है जहां उसकी कम-से-कम आवश्यकताओं की पूर्ति का आधार भी लुप्त हो गया है. दूसरे पक्ष में वह आम आदमी के संघर्ष की अभिव्यक्ति करते हुए उन सारे कमजोर स्थलों को भी बेरहमी से चीर रही है, जिनके कारण आम आदमी के संघर्ष की पकड़ दुर्बल हो रही है. इसी प्रक्रिया में समांतर कहानीकार को उस बिंदु की तलाश है, जहां अंतरवर्ती दुर्बलता का ह्रास हो और प्रतिगामी शक्तियों के ध्वंस के रास्ते खुलें.

तो क्या पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित प्रगतिशील आंदोलन और समाजवाद के राजनैतिक नारे ने प्रतिगामी शक्तियों का हाथ

नहीं हुआ? उत्तर है, नहीं ही हुआ. बल्कि ये शक्तियां कई नये रूपों में आम आदमी की चेतना पर अपना शिकंजा कसती जा रही हैं. स्वतंत्रता के बाद, बावजूद अनेक स्थूल निर्माणों के, अनेक पंचवर्षीय योजनाओं के, अनेक नये आर्थिक उपायों के, आम आदमी हर मोर्चे पर गिरता ही गया है. उपलब्धि के रूप में उसे केवल वह मानसिकता मिली, जिससे वह सिर्फ इतना ही समझ पाया कि सारी स्थितियां उसके प्रतिकूल चल रही हैं और उसे किसी ठोस आधार पर अपनी लड़ाई लड़नी है. पुराने जमाने के राजा, जमींदार, सेठ-साहूकार अब नयी शक्लें ले कर उसके सामने हैं और वह अभी भी शायद पूर्ववत असहाय है. लेकिन इस यथार्थ के साथ कि वह निरंतर परास्त हो रहा है, उसकी आंखों में यथार्थ का एक और रूप स्पष्ट हो गया—वह समझ गया कि उसकी सहनशीलता, भोलेपन और विश्वासमयी चेतना के विरुद्ध उसके अपनों ने ही उसे पीड़ा पहुंचायी.

यह बहुत दूर की बात नहीं कि सामाजिक मोर्चे पर सदियों से जो लड़ाई लड़ी जा रही थी, आज वह बेमानी हो गयी है, शायद इसलिए कि उसके अस्तित्व को खतरे में डालने के लिए एक नया राजनैतिक-आर्थिक मोर्चा खोल दिया गया और व्यवस्था की कारगुजारी देखिए कि आर्थिक और राजनैतिक संधि इस रूप में की गयी कि वर्तमान स्थिति से बेहतर स्थिति बनाने के लिए व्यापक संघर्ष के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह गया. क्योंकि इस देश का पूंजीवादी संस्थान तथा उससे पालित-पोषित राजतंत्र यह जानता है कि प्रांतों, वर्गों, और क्षेमों में बंटी भारतीय जनता के लिए, एकजुट हो कर किसी भी व्यापक संघर्ष को रूप देना निकट भविष्य में कठिन होगा, शायद इसलिए चारों तरफ व्यवस्था की लूटपाट जारी है.

राजनैतिक रूप से सत्ताधारियों ने मध्यवर्ग को कुछ सुविधाएं दे कर अपनी और आम आदमी की लड़ाई के बीच जैसे एक 'सैकंड लाइन ऑफ डिफेंस' खड़ी कर दी. एक पक्ष को सत्ता ने आत्मरक्षा के लिए लड़ते शक्तिहीन करने की चाल चली; दूसरे पक्ष को सुविधाओं के संधान का ग्लैमर दिया.

अब प्रश्न यह है कि लेखक, सत्ता के संदर्भ में, व्यवस्था के प्रसंग में, किस पक्ष में आता है? इस स्थिति का विश्लेषण दिलचस्प हो सकता है, लेकिन वह अपनी परिणति में अत्यंत भयावह भी लगता है. इस बीच हुआ यह है कि मध्यमवर्ग को सुविधाएं देते हुए व्यवस्था ने लेखक को भी उसी ग्लैमर में घसीटने का प्रयत्न किया. परिणाम यह हुआ कि तीव्र गति से उभरने वाला संघर्ष दोहरी मार खा कर अवरुद्ध होता दिखायी दिया. लेकिन सजग लेखक इस रोटी के टुकड़े के पीछे छिपी चालाकी को समझता है. वैसे यह समझना उसकी नियति भी है और जरूरत भी.

व्यवस्था के ग्लैमर में प्रवेश करने पर भी लेखक की मानसिकता आम आदमी से जुड़ी रही, क्योंकि उसके लेखन का चिंतन, रचना की निर्णय - शक्ति आम जनता की विभीषिका, असहायता और यंत्रणाओं में उभरती है. वह यंत्रणाओं को तो नजरंदाज भी कर सकता है, किंतु उससे बने पूरे माहौल से व्यक्त होते संवेदन [illegible] सकता. जो इस कला में भी माहिर हैं, उनके विषय में कुछ नहीं कहना—और हमने देखा कि जिन्होंने यह कला अपनायी, वे पूरी तरह से समकालीन न होते हुए भी रचना के स्तर पर रैलेवेंट नहीं रह पाये—तो समय को ठीक तरह से देखने-समझने वाले लेखक ने सारी प्रतिरोधी शक्तियों की सक्रियता के विरोध में रचनात्मक सक्रियता तीव्र की और आम आदमी के समांतर संघर्ष में खुद को निबद्ध किया. हुआ यह कि व्यवस्था की चमक में वह फंसा, किंतु व्यवस्था का शिकंजा इतना कसा हुआ है कि वे तमाम त्रास जो आम आदमी को आर्थिक, सामाजिक मोर्चों पर झेलने पड़े, लेखक को भी नैतिक स्तर पर उन्हें झेलने को विवश होना पड़ा. यही वह बिंदु है, जहां से लेखक और आम आदमी की भागीदारी शुरू होती है. लेखक ने भी व्यवस्था के शिकंजे में अपमान-बोध, असहायता-बोध और टूटन से साक्षात्कार किया. इससे हुआ यह कि उसे अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए आम आदमी के साथ रहने पर मजबूर होना पड़ा. जहां यह मजबूरी आरोपित की गयी, वहीं लेखन गैर-जिम्मेदाराना तरीके से, प्रकारांतर भेद से, पूंजीवादी शक्तियों की इच्छा को ही पालता रहा, लेकिन इसके विपरीत सजग लेखक, दूसरी दिशा में जीवन के स्पंदन के साथ चलता रहा और एक पूरी पीढ़ी नयी रचनात्मक शक्ति से 'आम आदमी' के नायकत्व को स्थापित कर भ्रष्ट राजनीति और चालाक पूंजीवादी संस्थानों से संघर्ष के स्तर पर आमने-सामने आ गयी. परिणाम स्वरूप समांतर साहित्य की नयी संवेदना रूपायित हुई.

समांतर कहानी का नायक 'सामान्य जन' लोक-जीवन में विविध स्थितियों और समस्याओं से ग्रस्त है. वह अतिवामपंथी का क्रांतिकारी मन भी नहीं, और सामंतवादी चेतना में पालित-पोषित, अपनी स्थिति को सहज

डॉ. विनय

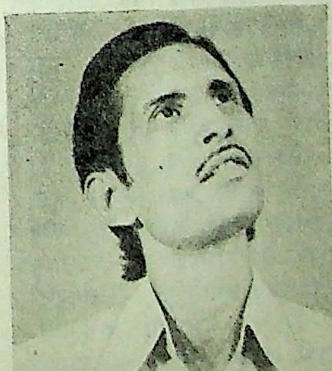

स्वीकारने वाला, व्यक्ति भी नहीं. उसके पास एक ओर आर्थिक वृत्त में टूटता खुद का व्यक्तित्व है, दूसरी ओर समय की सापेक्षता में जन्म लेने वाली द्विविधा-रहित अपराजेयता भी. एक उसके वर्तमान का यथार्थ है, दूसरा उसके आगे की चिंता. अपने संघर्ष के एक स्तर पर, उसकी समस्या है कि वह किस प्रकार आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विषमताओं से जूझते अपने अस्तित्व को वरण के एक ऐसे निर्णायक दौर पर ले जाये, जहां वरण की सच्चाई और ईमानदारी की समांतरता हो.

* *

अब देखना यह है कि आज की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि में समांतर कहानी के जिस वैचारिक आधार को प्रतिपादित किया गया है, उसकी सफल अभिव्यक्ति कहानियों में हो पायी है या नहीं.

प्रस्तुत वैचारिक धरातल पर कुछ बुनियादी स्थितियां सामने आती हैं. ये स्थितियां समांतर कथाकार के लिए संघर्ष का रूप-आकार स्पष्ट करती हैं और इनसे जूझने के बाद ही वह निर्णय के दौर में कदम रख सकता है. इस दृष्टि से सबसे पहली स्थिति, जो आम आदमी की चेतना में भीतर तक प्रतिष्ठित हो चुकी है. . .अपने निर्णय लेने की क्षमता का अभाव है. दूसरी स्थिति है, निरंतर अपमान को सहन करते, प्रतिष्ठित प्रतिगामी शक्तियों को परास्त करने के अपने भीतरी लावे को सही तौर पर प्रयोग करना, क्योंकि गलत तरीके से संघर्ष की नीति को तैयार करके वह फिर से अपने को पीछे धकेला जाने के खतरे से भी अवगत है. तीसरी स्थिति अपनी ही जमात में उत्पन्न पूंजीवादी ताकतों के इशारे पर चलने वाले तत्वों के पराभव की है. इन तीनों बातों से मिल कर सामान्य जन का जो संश्लिष्ट रूप उभर कर आता है, समांतर कहानी उसके विविध पक्षों का उद्घाटन करती है—इसलिए उसकी दृष्टि में आम आदमी सिर्फ आम आदमी है. वह किसान, मजदूर, क्लर्क, सर्वहारा के वर्गों में बंटा हुआ न हो कर संश्लिष्ट व्यक्ति (व्यक्तित्व) है.

जैसा कि मैंने पहले कहा कि यह संश्लिष्ट व्यक्ति ही समांतर कहानी का नायक है. आज की कहानी में यह नायक अपनी अनेक समस्याओं, अंतर्विरोधों और संघर्षशील प्रवृत्ति को ले कर कहीं व्यवस्था के दमन-चक्र में पिसता दिखायी देता है, तो कहीं देश-विदेश के बदलते राजनैतिक संबंधों के कारण अपनी सत्यता को प्रमाणित न कर सकने के क्षोभ से पीड़ित है. कहीं पर वह आर्थिक संकट में फंसा अपने और दूसरों के बीच दूर तक दिखने वाले फासलों की रेलिंग पर चिपके हुए अर्थहीन जीवन की वेदना से ग्रस्त है. उसकी कुछ समस्याएं नितांत अपनी हो सकती हैं. किंतु वे स्व-निरपेक्ष विस्तृत समाज और व्यापक कालखंड की उपज होने के कारण सब की समस्याओं के रूप में उभरती हैं. कुछ ऐसी हैं, जिनका उससे सीधा संबंध नहीं है, फिर भी उनके होने-न होने की स्थिति से उसके अस्तित्व का संबंध जुड़ जाता है. वह पाता है कि स्थितियों के निर्माण में उसका कोई योग नहीं रहा, फिर भी वही एकमात्र ऐसा व्यक्ति है, जो उनके दंश को अपने में गहरे गड़ा हुआ महसूस करता है. भीष्म साहनी का 'वाङ् चू' चीन और भारत के राजनैतिक संबंधों के बिगड़ने पर पूरी कोशिश और निरीहता से भी अपनी ईमानदारी का विश्वास नहीं दिला पाता. वह जिस त्रास को भोगता है, उसमें उसका पक्ष निरंतर कमजोर पड़ता चला जाता है. इससे अलग से. रा. यात्री की कहानी **'अंधेरे का सैलाब'** और श्रवणकुमार की **'नहीं, यह कोई कहानी नहीं'** शिल्प की दृष्टि से रिपोर्ताज लगती हुई भी संवेदना के स्तर पर प्रभावित करती हैं. इनकी सफलता जीवनगत सामान्य स्थितियों को अनेक स्तरीय बना कर प्रस्तुत करने में है. बस बिखरते हुए संवेदनात्मक सूत्रों को एकत्र करने के लिए अंदर की गहराई की प्रतीक्षा करता है. लेकिन तब तक सब कुछ निर और बीता-सा हो जाता है.

वस्तुतः आम आदमी की असहायता के स्तर पर स्तर उद् घाटित करती हुई कहानियां अर्थ संदर्भ में इतनी व्यापक हो जाती हैं कि वे मानवीय सत्य की सीमा का स्पर्श करती हैं. ऐसे में एक घटना पूरे आकाश पर छाती हुई एक प्रतीक, या चरित्र, बन कर वेदना का घनत्व उपस्थिति करती है. यहां वे सारे अंतर्विरोध भिन्न सूत्रों से गहराते हुए कहानी को सार्थकता प्रदान करते हैं.

* *

अब तक 'समांतर कहानी' के रूप में जितनी कहानियों का प्रकाशन हुआ है, उनमें से कुछ विशिष्ट कहानियों के आधार पर यह देखा जा सकता है कि समांतर कथा-लेखक बुनियादी रूप से आम आदमी से जुड़ा है. उसका आम आदमी पूरे समाज में व्याप्त है. वह सड़क पर खड़ा भीख मांग रहा है, फैक्टरी में मजदूरों के अधिकारों के लिए लड़ता मृत्यु का वरण कर रहा है, पूंजीवादी संस्थानों या सेठ-साहूकारों की चालाकी के कारण जमीन का आखिरी टुकड़ा बेच रहा है या अपना काम करवाने के लिए किसी अफसर को 'कॉल गर्ल' के रूप में अपनी बीवी पेश करने की मजबूरी में जी रहा है, या आर्थिक चक्की में पिसते तंबोला खेल कर जीतने की उम्मीद में, बची जमापूंजी खर्च कर रहा है या फिर पैसे वालों के द्वारा खोले गये पब्लिक स्कूल की चमक के मुकाबले शिशु मंदिर का स्वप्न देखते-देखते अपने घर को छोड़ रहा है—तात्पर्य यह है कि जीवन की सारी असुविधा उसके कंधे पर बैठी है और वह अपमानित हो कर अपनी असहायता के माहौल में सांस लेने को

विवश है. कहीं पर उसकी विवशता इतनी गहरा जाती है कि वह खुद अपने बच्चे के पेट में छुरा घोंप देता है.

लेकिन इन सारी चरित्रगत स्थितियों से यह आभास नहीं होना चाहिए कि यह कहानी केवल आदमी की दुर्बलता की अभिव्यक्ति ही करती है—अपितु उस संघर्ष की ओर भी संकेत करती है, जिसकी व्यापकता आज के जीवन के स्वास्थ्य की पहचान है. कहानी की सार्थकता इसी बात में है कि वह सारे अंतर्विरोधों के साथ समय और समाज की इकाई के सही जीवन की प्रतिध्वनि सुना सके. . .क्योंकि इसमें असहायता के तत्व ही नहीं, संघर्ष के तत्व भी हैं, अतः जीवन के विस्तृत क्षितिज पर उभरती शक्तियों का परिचय भी होता चलता है. जैसे हमारा जीवन चिरंतन है, वैसे ही हमारा आम भी चिरंतन है, और उसी रूप में सामान्य जन की विवशता और संघर्ष भो चिरंतन है. तो, समांतर कहानी में नितांत सामयिक स्तर पर मानव का एक अक्षत रूप भी मिलता है. वस्तुतः यह कहानी मानवीय द्वंद्वों - अंतर्द्वंद्वों के चित्रण के माध्यम से समय की भयानकता से जूझते, संघर्षरत मानव की जिजीविषा का संकेत करती है.

इस प्रकार के अनेक प्रसंगों में आम आदमी के कष्टों को व्यक्त करती इस चेतना की कहानियों ने अपनी सार्थकता के अनेक प्रमाण दिये गये हैं. जितेंद्र भाटिया की कहानी **'शहादतनामा'** छोटे मजदूरों की पूरी कौम की विवशता को समझाती है. यहां पर व्यवस्था के द्वारा समांतर जीवन जीने वालों के बीच भी खाई पैदा करने की कोशिश का निर्मम रूप उजागर किया गया है. ट्रेजेडी केवल यह नहीं है कि अमरजीत के बहाने पूरी कौम को कॉस्टिक टैंक में ढकेल दिया गया. ट्रेजेडी यह है कि साधारण सुविधा दे कर हत्या के चश्मदीद गवाह को तोड़ लिया गया. 'आम आदमी' को अपनी लड़ाई लड़ते वक्त हर स्तर पर सुविधा की चास को झटकना होगा, वरना वर्षों-युगों तक यह लड़ाई किसी भी सही निर्णय तक नहीं पहुंच सकती. कुछ ऐसी ही ट्रेजेडी राम अरोड़ा की **'विदा-अलविदा'** कहानी में इस आधार पर दिखायी गयी है कि विभाजित लड़ाई कभी भी आदमी के अस्तित्व को नहीं बचा पाती. इस कहानी में भी बाहरी और व्यवस्था से संबद्ध शक्तियां भुवन को निरंतर तोड़ती हैं. यहां भी ट्रेजेडी भुवन के टूटने में उतनी नहीं, जितनी उसकी पत्नी को बाहरी शक्तियों के द्वारा अपनाने के बाद पैदा की गयी स्थितियों की टकराहट में है. यह कहानी कई स्तरों पर अपनी सार्थकता घोषित करती है. जहां से आम आदमी का संघर्ष कमजोर पड़ता है, वहीं उससे बचा जा सकता है, दूसरी आरोपित दिशा की खोज की जा सकती है... पर सही और ईमानदार लेखक कमजोर पड़ते संघर्ष के बिंदु को पूरी तरह से निःशेष करता हुआ आरोपित निर्णयात्मक तत्वों का ध्वंस दिखाता है. यह नहीं हो सकता कि पत्नी व्यवस्था के द्वारा पालित-पोषित पब्लिक स्कूल में काम करती रहे और पति उसके विरोध में शिशु मंदिर की योजना की असफल कोशिश करता रहे. दरअसल विभाजित लड़ाई का पूरा ढांचा उन्हीं लोगों के द्वारा खड़ा किया गया है जो समग्र लड़ाई को पनपने नहीं देना चाहते.

और यहां, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि समांतर चेतना की कहानियां अभी रचना के प्रथम चरण में समय की नब्ज को परखने की प्रक्रिया में हैं. देखना यह है कि कब तक खेतों के बिकने के कारण जट्टी विधवा बनती रहेगी या जमीन का आखिरी टुकड़ा, कब तक परिवार की आर्थिक स्थिति में सांस फूंकता रहेगा.—या फिर कब तक तमाशा दिखाने वाला बाप भूल से अपने बच्चे के पेट में चाकू घोंपता रहेगा. और कब तक छोटा मजदूर अर्थी पर लुटाये जाने वाले पैसों से दिन भर की मजदूरी पूरी करेगा.

★ ★

पर, जहां तक कहानी के अच्छी, सामान्य या विशिष्ट होने की बात है, वहां केवल समयगत संदर्भों की गहरी अर्थवत्ता के साथ अभिव्यक्ति ही एक मात्र सार्थकता का आधार नहीं है. उसके लिए ऐतिहासिक विकास के दौरान विरोधी शक्तियों के विरोध में, जहां वस्तु के नये क्षेत्र खुलते हैं, वहां संरचना की नवीनता भी अपेक्षित है. समांतर कहानी वस्तु और संरचना, दोनों धरातलों पर नये क्षेत्रों का अनुसंधान करेगी, यह विश्वास प्रथम चरण की अनेक विशिष्ट रचनाओं से हो जाता है. वर्तमान में प्रचलित अनेक चिंतन-पद्धतियों की अतिवादिता को छोड़ कर सामान्य जन की उभरती अनेक समस्याओं को स्वतंत्र दृष्टि से रचनात्मक स्तर पर व्यक्त करना अपने समय के प्रति जागरूक लेखक का पहला कर्तव्य है. इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि हमारे समय की वास्तविकता में पराये श्रम पर जीने वालों का पराभव और अपने श्रम की पूरी कीमत चाहने वालों का अभ्युदय ऐतिहासिक तथ्य है. समांतर कहानी ने इस पराभव और अभ्युदय के मध्य संचरित मानसिकता की बेलाग अभिव्यक्ति की है. एक नयी शक्ति निश्चित रूप से आज के रचनाकार के सौंदर्य-बोध को नवीनता दे सकेगी. उसके शिल्प को ताजगी देगी. और अंत में एक बात और कि उससे संपूर्ण पंक्ति में वे लोग बहुत जल्दी पिछड़ जायेंगे, जिन्होंने महज फैशन के रूप में इस स्थिति को स्वीकार किया है.

कुल मिला कर, इस नयी कथा-संभावना के द्वारा अनेक नये कहानीकारों के लिए सोचने-समझने और रचनात्मक सफलता का नया रास्ता खुला है. □□□

ग्रामदेवता □ रामदेव शुक्ल

गांव की पचायत बैठी है. औतार बाबा सबसे ऊंचे आसन पर हैं.बांस की मूंज से बुनी खटिया पर अपनी धोती के आधे हिस्से से कमर और दोनों घुटने बांधे झूमते हुए न जाने उन्होंने कितनों का नियाव किया है, कितनों का उद्धार. गांव का कोई झगड़ा ऐसा नहीं है, जो उनके बिना निबट जाये. घर वाले उन्हें 'छुट्टा' कहते हैं, तो कहते रहें. औतार का क्या है? वह कहीं भी दो कौर खा लेंगे. किसी जजमान भगत के कोल्हुआड़े या खरिहाने सो लेंगे. फिर नाती-पोते आ कर जगायेंगे—एं बाबा! बिज्जे भईल बा. औतार बाबा बिगड़ जायेंगे—चल-चल, हमको खाने की कमी है! खा-पी कर मस्त हैं. दो घड़ी में पंचाइत जुटे वाली है. हम कैसे जा सकते हैं! बच्चे घर चले जायेंगे. गोजर चौधरी सुरती मलते हुए आयेंगे—काहो पंडित बाबा! अबही पंच लोग नहीं आये! घड़ी-दो घड़ी में पंच लोग भी आ ही जायेंगे. औतार बाबा करवट बदल कर बैठ जायेंगे, और उनकी धोती के घेरे में कमर और दोनों पैर घिर जायेंगे. वह झूमने लगेंगे—हां, तो कह हो, गोजर भाई! ई जुटान काहे वास्ते भईलबा. यही सूत्र पकड़ कर फरियादी अपने दोनों हाथ जोड़ कर शुरू करेगा—सरकार, ऊ खदरुआ के मेहरारू के गुन देखीं. ए उमिर में चोरी कर रहलि बा. ऊंख तुरले बा.

बिरजू पंडित बीच में टोकना अपना परम धर्म मानते हैं. जवान औरत का केस हो और वह न बोलें! ऐसा हो नहीं सकता. वह दहाड़ते हैं—तुम खेत में पकड़ा उसको! खदेरू बो अपनी छोटी वाली आंख को और भी छोटी करके कहेगी—ए बाबा, आप चुप रहीं. हंसी का एक दौरा पड़ जायेगा और पंचायत हाथ से जाती रहेगी.

पंचों में बाबा लोग अधिक हैं और खदेरू की गली से हो कर ही अधिकांश बाबा लोगों के घर की राहें जाती हैं. इसलिए रोज पकड़ी जाने वाली खदेरू बो पंचायत से ऊपर है.

लेकिन आज की पंचायत वैसी नहीं है. आज गांव रहे, चाहे रसातल में जाये. यह अंधेर नहीं चलेगा. बाबा-पट्टी, तेलीटोला और चमारपट्टी के बीच आज फैसला हो कर रहेगा.गोजर चौधरी का गजर बजा—तौ ई जुटान काहे भईल बा, पंचो! सब लोग अपनी जगह सीधे हो गये. खटिया-चौकी पर बाबा लोग, पंच लोग और बाबा लोगों के नाक सुड़कते बच्चे. पंचायत में बाबा लोगों के बच्चे और परोजन में करन्न को हटा दे—ऐसा कोई माई का लाल नहीं. बुलाएगा कोई नहीं मगर आ जाने पर हटा दे, ऐसा भी कोई नहीं. किसनू की कानी आंख झपकती है. —हां, भाई, बोलो!

नीचे गोल घेरे में बैठे हुए अधनंगे, अधेड़ लोगों में सुगबुगाहट होती है. कुछ के चेहरे पर आतंक उभरता है! कुछ सहम गये हैं और कुछ हंस पड़ने को हो कर अपने को रोक रहे हैं. मगर चुप सभी हैं. बोलता कोई नहीं. सतुआ बाबा की ललकार मौन भंग करती है.—काहे रे साले! बोलो! चोप काहे हो? आतंक और गाढ़ा होता है. अधेड़ उमर का काला-कलूटा, कंगाल जैसा आदमी धीरे-धीरे औतार बाबा की खटिया की ओर बढ़ता नजर आता है. सबकी नजरें उसी पर लगी हैं. वह कुछ कहने को हो कर रुक जाता है. जैसे बात गले में अटक रही हो. किसनू कोंचता है—बोल भाई. का चुप हो!

किसनू को देख कर वह उत्साहित होता है. फिर हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाता है. बिरजू महाराज फिर टोंकते हैं और वह बिना किसी की ओर देखे एक सांस में कहना शुरू करता है, अब उसे अभय मिल गया हो जैसे.—सरकार, हमार खता ई है कि हम धरम नाहीं छोड़त चाहल बानीं.

एक साथ ही सब लोग चकित हो गये.—कौन तुम्हारा धरम ले रहा है? बोल! बोल!

सब लोग शांत हुए तो उसने कहा—हम मंगल भाई के हियां नहीं खाये. ई हमार खुशी. एह पर ई बउका हमें गाली दिया, सरकार, और मारे के कहा. उधर से बउका गरजा—तू काहे नाही खइब हमरी घरे? हम कवनो डोम-चमार हैं? एक साथ सतुआ बाबा, बिरजू बाबा, औतार बाबा सभी गरजते हैं—काहे नहीं खइब, बोल? नीचे बैठे लोगों में कुतूहल की लहर दौड़ जाती है. एकाएक किसी का अट्टहास सुनायी पड़ता है और सबकी नजर घूम जाती है. गिरगिटवा हंसते-हंसते लोट-पोट हो रहा है—डोम-चमार, आरे भाई! डोम चमार से अधिक! डोम-चमार से अधिक! हंसता जाता है.

बिरजू महाराज डांटते हैं—ए गिरगिटवा,चुप रहु. तें का बीच में नाचे लगले! औतार बाबा गिरगिटवा की ओर गौर से देख रहे हैं—का हो गिरगिट, तूं जरूर कुछ जानत बाड़. का बाति ह बोल.

गिरगिटवा फिर हंसता है.—ए बाबा,जानत त रउ. रहूं बानी. काहें नहखीं कहत. बोलीं!

सभी लोग संदिग्ध दृष्टि से औतार बाबा की ओर देखने लगते हैं. उनके चेहरे पर कई रंग आ-जा रहे हैं. किंतु वह बराबर अपनी धोती में आगे-पीछे झूम रहे हैं. औतार बाबा बोलते कम हैं. इसकी जानकारी सबको है, मगर यह मौका तो उन्हीं के बोलने का है. पीछे से एक आवाज आती है—बाबा का बोलें! रात कासी उनके पास आधी रात ले बइठल रहलें. सब तय हो गईल. सब गड़प. अब बाबा कुछ नहीं जानते हैं.

यह मोहन है, बिरजू महाराज का भतीजा. पंदरहवा

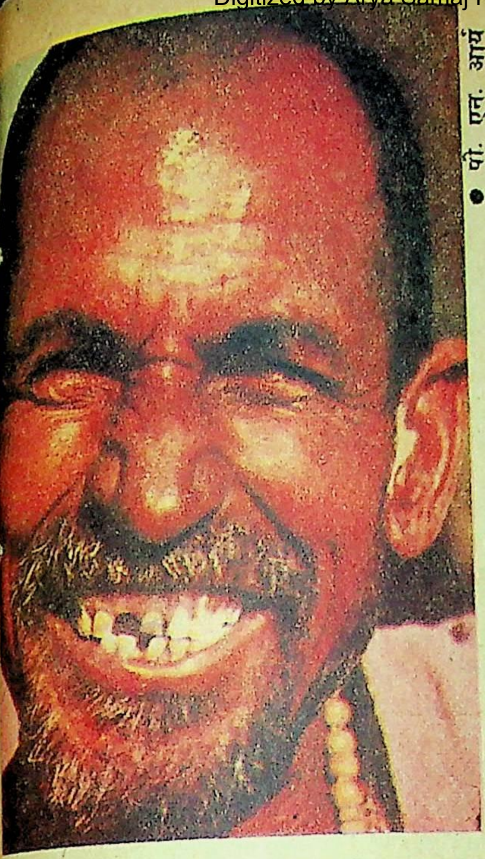

● पी. एन. आर

लगा है और अपने को गांव का सबसे बुद्धिमान महापुरुष मानते हैं. दर्जा छह में पांच बरस से सरका कूट रहे हैं. शादी हो गयी थी जब पहिले-पहिल गिरधारी मास्टर को दस रुपया पास-कराई दे कर दर्जा पांच पास हुए और छठे में गये. मेहरारू उनसे पांच-सात बरस बड़ी हैं. एक लड़की भी है मोहन बाबू की, जिसके चेहरे-मोहरे में गांव के लोगों को कभी बिरजू महाराज की, कभी किसी और की छाप दिखायी पड़ती है. बिरजू महाराज गांव के वैद्य-हकीम-डॉक्टर-ओझा-पंच-भंडारी-पंडित-पुरोहित सब हैं, इसलिए मुंह पर कोई कुछ नहीं कहता, लेकिन मोहन बो के नाम के साथ बिरजू बाबा का नाम जोड़ कर बूढ़े-जवान सबकी आंखों में चमक आ जाती है. मोहन बाबू का अधिक टैम पड़ोस के कस्बे में कचहरी के मुंशीजी लोगों के बीच कटता है. वैसे स्कूल में भी उनकी हाजिरी लगती है. एक बार यादव जी मास्टर साहब को छुरा दिखा कर उन्होंने फिट कर दिया था, तब से वह कभी इन्हें गैरहाजिर नहीं लगाते हैं.

दूसरे लोग चुप ही रहते हैं. कौन मोहन के गारी सुने जाय! बिरजू महाराज डांटते हैं—-ए मोहन, तूं कहां इहां! जाके कस्बा-कचहरी देख! जा! चुप रह.

डांट का जवाब डांट में देते हुए मोहन बाबू कहते हैं—चुप रह तं. बिरजू का चेहरा लाल हो जाता है, मगर चुप रहते हैं. मोहन बाबू चालू हो जाते हैं—-औतार बाबा से पूछिल काल कासी से केतना लिहलें? का तै कइलें? बोलत काहे नइखें! कैसे चुप हो गये हैं? घूसखोर कहीं के! और इतने तैश में आ जाते हैं कि धमधम करते हुए चले जाते हैं. सभी लोग राहत की सांस लेते हैं. औतार बाबा के प्रति उड़ती नजर सभी डाल लेते हैं. सतुआ बाबा डपटते हुए कहते हैं—कहु रे कसिया! चुप काहे बाड़े! काशी फिर हाथ बांध कर कुछ कहना चाहता है. बिरजू महाराज इशारे में बोलने को कहते हैं और वह बोलते लगता है—सरकार, हमार नियाव पंच सभे की हाथ में बा.

तब तक कड़कते हैं औतार बाबा—अरे ससुर, बाति कह.

न जाने कहां से फिर मोहन बाबू का आविर्भाव हो जाता है. वह बोलते ही प्रकट होते हैं—-ऊ क्या बोले? मैं बतावत हूं. सुनो. चोकट चमार के जानते हैं कि नहीं? उनकी घरे परसों सूअर के गोश्त बनल रहे. समझते हैं कि नहीं समझते हैं? बड़कू और बिकरम ई दोनों आदमी दारू के साथ चिखना काट रहे थे. उहे बात इसने देख लिया, मुंडवा ने. आ कर अपने बाप से बोला कि चलो तुमहूं देख लो. कासी गये और छिप कर वे भी देख आये. अब बोलो.

इतने में बड़का गरजा—-ए मोहन बाबू, जब तूं सनीचरी के घरवा में पकड़ाइल रहल आ चमरा कुलि तोहके धरिके पंचाइति में ले आवत रह लें कुलि, तब हमहीं छोड़वलीं. गिरगिटवा गवाह बा.

इतनी देर बाद गिरगिटवा गला साफ करके बोला—इसमें क्या खराबी है? मंत्री जी बोले हैं कि बाभन के लौंडों को चमार के घर सादी करने से इनाम मिलेगा. सादी नहीं भी करें तो चमार के लड़के उज्जर होंगे. बुद्धिमान होंगे. एही से हम कुछ नहीं बोला. उसका वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि बिरजू महाराज खटिया से उतर कर खड़ाऊं उठाये दौड़ पड़े—कस रे सारे! चमार के नसल सुधारे के मोहने बाड़ें.

गिरगिटवा कूद कर भागा और पंचायत में भगदड़ मच गयी. मोहन अलग खड़े हो कर सबको ललकारने लगे. बड़का काशी के ऊपर चढ़ बैठा. किसी तरह सब शांत हुआ. सतुआ बाबा, औतार बाबा, किसनू गोजर, सबके चिरौरी-मिन्नत करने पर बिरजू बाबा और मोहन बाबू शांत हुए. बड़का को बैठाया गया और सबकी निगाहें नये सिरे से उसकी ओर केंद्रित हुईं. एक साथ कई लोग पूछने लगे—-कस रे बड़का! तें वैसकुल के होके चमारे की घर में सूअर खइले ह! कुछ लोग थू-थू करने लगे. कई बाबा लोग आस्तीन चढ़ाने लगे. राम-राम! यह झूठ बात है. तेलीपट्टी के लोगों में खलबली मचती है मगर बाबा लोग ज्यादा परेशान दिखायी पड़ते हैं. धीरे-धीरे समझ जाते हैं कि बात उलट कर बाबा लोगों पर ही आ रही है.

मोहन बाबू पैंतरा बदल कर बड़े हो जाते हैं. —-हां-हां ई सब झूठ है. हमने भी इसको सच नहीं माना. असल में मुंड़वा साला हम ब्राह्मन लोगों को बदनाम करना चाहता है. हम सब बाबा लोग तो काशी के यहां खाते हैं. उसका सीधा ले कर बनाते हैं. का का इसमें क्या

दोष है? और ई मुंडवा कहता है कि काशी के घर नहीं खायेंगे. इसकी ई मजाल! बिरादरी से बाहर कर दो.

काशी घबरा कर इधर-उधर देखता है, तब तक सतुआ बाबा आधे उठ पड़ते हैं.--सवाल इसका नहीं है कि मुंड़वा ने कासी को बदनाम किया. सवाल इसका है कि इसने हम पंचन को बदनाम किया. हम लोग कासी के घर खाते हैं और ई सार कहता है कि कासी का बेटा सूअर खाता है. अरथ विचार करो, पंचों! मतलब यह कि हम सब लोग सूअरखोर के घर खाने वाले हुए!

सब बाबा लोगों में जोश भर जाता है. सब काशी और मुंड़वा को गाली देने लगते हैं. काशी उठता है और कुछ न सूझने पर अपने बेटे मुंड़वा को पीटने लगता है.---इहे सार आग लगवलसि. ऊ चाहे जौन खांय, हमसे मतलब. दो-चार हाथ मार-पीट कर कुछ ब्राह्मण मंडली के सामने हाथ जोड़ता है.--सरकार हमार गलती है, माफी सरकार!

बाबा लोग फिर बिगड़ते हैं.--साला, माफी मांगता है! बाबा लोगों की इज्जत माटी में मिला दिया. माफी मांगता है. दंड भरो. इसका डांड सौ रुपया और बिरादरी को तीन भात. पक्का भोजन बाभन मंडली को.

काशी गिड़गिड़ाता है--सरकार, हम लुट जायेंगे. बच्चा है. नादान है. उसने कुछ नहीं देखा है. हमसे बड़ी गलती भई, महराज, हमार कोल्हू बंद है, सरकार. डांड हम कहां से देई, सरकार?

'डांड ई देई' की आवाज की ओर सब लोग घूम कर देखते हैं तो मोहन बाबू हाथ में एक बैल का पगहा लिये दिखाई पड़ते हैं.--कसिया के बैल खोल लाया हूं. रुपया दे. नहीं तो बैल नीलाम होगा. बोलो! एक, दो, तीन.

पंचों की बांछें खिल जाती हैं.

बिरजू महराज कहते हैं--कौनो मजाक है, कचहरी में झुट्ठे थोड़े रहता है मोहना. पुलुस से दोस्ती है. जानता है कौन काम कैसे होता है. दंड वसूल करने का तरीका यही है.

काशी और मुंड़वा रोते हैं. उसके घर की औरतें चिल्लाती हुई बैल के पीछे-पीछे आती हैं. फिर एक हंगामा मचता है. किसी की कोई बात सुनाई नहीं देती. बड़का ताल ठोंकता है–सार हमको बदनाम करिहैं. दूसरे को बदनाम करने का फल भोगो!

गिरगिटवा फिर अट्टहास करता है.—और जुटावें पंचाइत? अब दें डांड नाहीं तो बेदखल बैल से. थोड़ी दूर जा कर कहता है—अरे कासी भाई! ई बाभन मंडली है, जियो तो खायेगी, मरने पर भी खायेगी. भागो. और जोर से हंसता हुआ चला जाता है.

यह गिरगिटवा भी अजब है. चालीस से उमर कम है, मगर दाढ़ी - मूंछ जटा बना कर घूमता है. मेहरी चमर टोली में सबसे सुंदरी थी. पड़ोसी गांव के बाबाजी के यहां रोज जाती थी. सोहनी और रोपनी में. बाद में बाबाजी आने लगे. एक दिन गिरगिटवा ने बाबाजी से कहा—-महराज! चमार का दान लेंगे?

बाबाजी कुछ नहीं बोले. फिर हंसने लगे—हां-हां, गिरगिट भगत, काहे नाहीं लेंगे! दो, क्या दे रहे हो?

गिरगिट घर में गया और मेहरिया की बांह [illegible] बाहर आ गया, बोला—-महराज, और कुछ तो है आपके जोग, इहे है. आपके गोबर-पानी करेगी. हम साधू हो गये. सारा गांव देखता रह गया. गिरगि गांव छोड़ कर न जाने कहां चला गया. दो-तीन बरस जटाजूट बढ़ाये लौटा तो पड़ोस के गांव के बाबा उसकी बीबी के साथ परदेस जा चुके थे. तब से गिर गिटवा गांव के सिवान पर पीपल के नीचे रहता जून-कुजून गांव में आ कर दो कौर किसी के यहां कर खा लेता है. और नारदजी का पेशा करता सब जगह गिरगिट भगत मौजूद हैं. शादी-ब्याह, म जीयन से ले कर पंचायत-त्योहार तक.

गांव में सूखा पड़े तो गिरगिट भगत खुश हो घूमते हैं. किसान इनकी अकाल-खुशी से चिढ़ते हैं भगत कहते हैं---हम बोला है भगवान से, मत बरसा पानी. गांव में दया-धरम नहीं रह गया. और बेईमानी करो! और चोरी करो! और बाबा लोगों को अपने में सुलावें चमाइन लोग और ताड़ी पिलावें! पानी बरसेगा. हम बोला है.

जब पानी बरसता है, और कई-कई दिन लगातार बरसता है तो गिरगिट भगत कहते घूमते कि हम बोला है मेघराजा से और प्रलै करौ. अत्याचार रहा है. चमार खटिया से नहीं उतरता है, बाबा देख कर. बाबा चमार के घर में पीछे से घुसता है. मुसलमा को अंडा नहीं मिलता. बाबा अंडा खाता है. दूध साला पानी मिलाता है, रासन में कंकड़. अब पा नहीं खुलेगा.

कभी किसीको खीज आती है तो उसे चार गा दे कर अपनी खीज मिटा लेता है. उससे गिरगिट कोई फरक नहीं पड़ता. वह मस्त है. वह भगत है.

* *

पंचायत में सन्नाटा है. काशी का, हाथ जोड़े जोड़ते बुरा हाल है. मुंड़वा कभी रोता है, कभी रोते रोते बड़का को, कभी अपने अभाग को गाली देता है कहता है---हे भगवान, नियाव करो. पापी का पाप कहां पर हमको उलटा डांड़ लगाते हैं. ई पंचाइत नाही, राव का दरबार है.

मुंड़वा की माई, जिसको कभी किसी ने घर के बाहर नहीं देखा, पंचों के सामने आंचल फैलाये भीख मांग रही है—पंचो, नियाव करो! मुंड़वा के बाप के सिर पर पहिले ही कर्जा है. बैल चलि जाई तो हमार गांव छूटि जाई. सरकार माई-बाप! दोहाई हो.

उधर चमारों में हुड़दंग मच गया है. गोधन चमार चोकट को अंधाधुंध गाली दिये जा रहा है...हुई सार अपने सूअर खाई! ई तो ठीक. साहू के धरम काहें बिगाड़ी? बड़का को इसने काहे सूअर खिलाया? बिकरम चौधरी को काहे खिलाया? चमरटोली से बाहर करो.

कुछ चमार चोकट की तारीफ कर रहे हैं—अच्छा किया. बिकरम चौधरी कवनों गंवार हैं? बड़का कौनो बच्चा है? चोकट उन्हें बुलाने गये थे? अरे, वे सब जानते

ब छुआछूत में कुछ नहीं रखा है. हमार लरिका बकी- पढ़ रहा है शहर में. ऊ बताता है कि दिल्ली में जनेऊ बाबा लोग सूअर का गोस खाते हैं. इसमें कोई ई नहीं. आने दो बिरम चौधुरी को. पीछे से बोलता है—ऊ तो पीके पड़े हैं डीहे पर. जोर हंसी.

यह बिकरम चौधरी मुखिया हुआ करते थे. बाप ल थे. पैसा छोड़ गये हैं. जमींदारों की दलाली बेटा पी रहा है. कहता है, किसी के बाप का क्या, ना पीते हैं. बीवी को संतान नहीं है. गांव में लोग तरह-रह की बातें करते हैं—बिकरम खोजवा हैं. उन्हें मरद-ला हथियारे नाही बा. कुछ कहते हैं—वह तो है मगर जब प्राइमरी में पढ़ते थे तो अलगू मुंशी उनहीं से हरारू का काम लेते थे. ऊहै लत इनको भी लग गयी. चारे लड़कों को मिठाई खिलाते हैं. लड़का हो कहां से?

कुछ लोग जो अधिक यथार्थवादी हैं, तार्किक कारण ते हैं. उनका कहना है कि बिकरम चौधरी में कोई राबी नहीं. बिकरम बो तो कभी किसी को मना नहीं रतीं. बिरजू बाबा की चेलिन हैं. मूस महरा से बतियाती हैं. कस्बे की ओर भी जाती हैं. तो क्या सभी मर्द खोजवा हैं? जरूर कोई खराबी उनहीं में है.

वह बेचारी सब सुनती हैं, संतान-कामना से कुछ भी करने को तैयार हैं, देवी-बरम की मनौती से ले कर बिरजू बाबा की सेवा तक. मगर कोख नहीं फूटती तो वह क्या करें? चौधरी बिकरम मस्त हैं. अब सभापति के जमाने में उनकी मुखियाई नहीं चलती. न चले, दारू है और मिठाई पसंद करने वाले लड़के तो हैं!

अरे अब न मोहन बाबू बड़े हो गये हैं, मेहरी लड़की है—बिकरम की बड़ी मिठाई खाये हैं मोहन बाबू. अब तो बुलाने पर दूर छिटक जाते हैं. जाय. अपनी दारू भली.

सो, बिकरम चौधरी को कहां मालूम कि कैसी पंचायत हो रही है और उनके नाम पर कौन थूक रहा है! उनकी मेहरारू पंचायत की भनक पा जाती हैं और बीच सभा में आ कर हाथ नचाती हुई कहती हैं—कौनो मुंह-झौंसा उनकर नांव लेई त ओकर मूंह नोचि लेबि. अपने सूअर खाओ चाहे डांगर.

बिरजू महाराज पहले से ही रिस के मारे हांफ रहे हैं. बिकरम बो की उपस्थिति से क्रोध में वीर रस भी आ कर मिल जाता है. उछल कर ललकारते हैं—देखो चौधराइन, ई मुंड़वा और कसिया के. हम लोग जिसके घर खाते हैं, वह भला सूअर खायेगा? ई सब बाभन मंडली के खिलाफ जाल रचते हैं और बाभन सारे चुप हैं सब. देखो, कइसे धरम-करम का नास हो गया! उनके नथुने फूल जाते हैं और सतुआ काका उन्हें संभालते हैं.

★ ★

सतुआ बाबा बच्चों के बाबा हैं और अधेड़ों के काका. आधे लोग उन्हें सतुआ काका कहते हैं, आधे लोग सतुआ बाबा. गांव में सबसे बड़ा डील और सबसे लंबी उमर है. सफेद बाल. कभी किसी ने उन्हें कुर्ता-कमीज-बनियान पहने नहीं देखा. एक धोती, आधी कमर में होती, आधी ऊपर. जाड़ा, गरमी, बरसात, सतुआ काका की एक ही पोशाक. जाड़े में रजाई लपेट कर और लोग कउड़ा घेर कर बैठते, सतुआ काका सौ मील प्रति घंटा की रफ्तार से हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए कुएं पर स्नान करते. न कांपना, न सिकुड़ना. नहा कर एक घंटा पूजा करते और किसी जजमान के यहां कुछ न हुआ तो अपने ही घर में भोजन बनाते. जो मिल जाये. वैसे उनके प्रिय भोजन में खिचड़ी या सत्तू का महत्व सबसे अधिक है. इसी सत्तू के चलते उनका अच्छा-खासा नाम बिगड़ गया. मां-बाप का दिया नाम था गिरधर चरण, मगर तसला भर सतुआ घोल कर पीने के चाव के कारण गांव के लोगों ने सतुआ काका कहना शुरू कर दिया. उन्हें इस पर कुछ एतराज भी नहीं, क्योंकि सतुआ के साथ उनके पराक्रम की भी अनेक कथाएं जुड़ी हुई हैं. एक तसला सतुआ खा कर पचा लेना जैसे उन्हीं के वश का था, वैसे ही दो कोस तक एक सांस में दौड़ जाना भी उन्हीं का काम था.

कहते हैं एक बार गरमी के दिनों में एक गुद्दी चिरई को कई कोस तक दौड़ा कर पकड़ लिया था, जवानी के दिनों में. काका बताते हैं—हुआ यह बचवा कि मैं आम की रखवाली कर रहा था. एक गुद्दी फुर-फुर करती कपार पर से निकल गयी. हमने कहा, तुम्हार ई मजाल! मैं दौड़ने लगा. जब वह कहीं बैठती, मैं ढेला मार कर उड़ा देता. खेतों की फसल कट गयी थी. सब खेत खाली थे. न कहीं बाग, न बगीचा. एकाध पेड़ या झाड़ी. सो जब गुद्दी बैठे, हम ढेला से उड़ा दें और दौड़ें. दो तीन बार मैदान का चक्कर लगते-लगते गुद्दी लड़खड़ा कर गिर पड़ी. लेकिन बचवा, हम भी भहरा कर गिर पड़े, मगर पकड़ ही लिया उसे.

इस प्रकार की पराक्रमगाथाएं उनकी अनेक हैं, जिनमें सबसे मजेदार वह है जिसमें रात को पड़ोस के गांव के धोबी का खस्सी मुंह बांध कर अकेले पीठ पर लाद कर उठा ले गये थे सतुआ काका. फिर रातों-रात उसे काट-बांट कर सीरागोड़ी खेत में गड्ढा खोद कर गाड़ दिया था. रात ही को भूंज-भांज कर कुछ मांस खा गये, कुछ यारों को दे आये और जब सबेरे पता चला कि बरेठा का बधिया खस्सी तो चरता हुआ घूम रहा है, तो सतुआ काका चकरा गये. चुपके-चुपके खेत में जा कर मिट्टी हटा कर देखा तो वह मूंड़ी गदहे के बच्चे की थी.

बहुत दिनों तक काका का पता नहीं चला और जब कई बरस के बाद गांव लौटे तो मांस खाना छोड़ चुके थे. अब तो लहसुन-प्याज भी नहीं छूते हैं.

मांस रहा हो या मछली, सतुआ काका ने अपना धरम कभी भरष्ट नहीं होने दिया. काका कहते हैं कि धरम बचा रहेगा बचवा, तो चोरी घाट करने से और मछरी-गोस खाने से नरक नहीं होगा. काका चोरी नहीं करते. सिर्फ एक बार नानू धुनिया के घर से दो मन जोकेराई से भरी हुई माटी की डेहरी पीठ पर लाद कर अकेले उठा लाये थे. फिर महीनों तक आराम से सतुआ खाते रहे. उनका धरम उनके पास सुरक्षित है. एक बार जब वह भोजन बनाने के लिए चौका दे रहे थे, तो उनके घर के सामने से आती हुई बिकरम बो रुक गयीं थी. कुतूहल-

वश इधर आ कर उस जगह खड़ी हो गयी, जहां से चौके की सीमा-रेखा शुरू होती थी. बस क्या था, सतुआ काका चैली ले कर दौड़ पड़े थे. कस रे बेसवा, कौनो बिरजुआ के चौका समझ लिया है इसको! अरे, हमार सब तो चला गया. न घर, न मेहरी. न जर, न जायदाद. ले-देके एक ठो धरम बचा है, इसको भी ले लेगी चौका छू कर? चौधराइन खिसिया कर भाग गयी थी.

वैसे गोजर कभी-कभी सतुआ काका से ठिठोली करते हैं और कहते हैं कि सतुआ काका जब चौधराइन पर बिगड़े रहे, वोह बाति के कारन हम जानते हैं. पता नहीं वह बात क्या है कि सतुआ काका इतने पर ही गोजर को गाली से नहला देते हैं और गोजर सुर्ती बनाते हुए हंसते रहते हैं.

गोजर भाई उमर में साठ पार कर रहे हैं, मगर सबके भाई हैं और गांव के पंदरह बरस के जवानों की मेहरारू को भौजी कहने में मजा लेते हैं. नीयत बुरी नहीं है सिर्फ कौतुकवश ऐसा करते हैं. वैसे उनकी पट्टी में उनको पतोहू में दस आना हक मांगने वाला कहा जाता है. कहते हैं कि सात बरस की उमर में अपने बेटे बदरिया का ब्याह उन्होंने उसके लिए नहीं, अपने लिए कर दिया था. बदरिया भाग गया सिलीगुड़ी और समझदार हुआ तो आ कर मेहरारू को भी ले गया. तब से कभी नहीं लौटा. गोजर भाई का काम अब अड़ोस-पड़ोस में मुंह मार कर ही चलता है.

गांव में कहा जाता है कि उनकी जवान बहन मरछिया को उनके बाप ने मऊ ले जा कर पांच सौ रुपयों में बेच दिया था. वैसे गोजर भाई कहते हैं कि उनकी बहन कोई थी ही नहीं. यह जरूर है कि बहन का अस्तित्व स्वीकार न करने पर भी सबको चिढ़ाने वाली उनकी जबान रुक जाती है और वह उठ कर चल देते हैं.

* *

बैल का पगहा पकड़े-पकड़े अब मोहन बाबू थक गये हैं. उनका पारा चढ़ता जा रहा है. उधर काशी और मुंड़वा की माई का रोना जारी है. बिरजू बाबा हांफ रहे हैं और औतार बाबा अपने धोती के झूले में झूल रहे हैं. वे जैसे गहरे में डूब कर कोई निर्णय का रतन निकालना चाहते हैं. इसीलिए बाहर के शोर से अलग हैं. यहां लोग एक-दूसरे पर आरोप लगा रहे हैं और औतार बाबा को मन-ही-मन डर लग रहा है कि कोई मनचला कहीं उनके और धरमू के बीच वाली कथा न उधेड़ दे.

न्यायमूर्ति औतार बाबा की कमजोरी उनके भाई धरमू की करतूत हैं. धरमू तब गबरू जवान थे. औतार और धरमू की एक ही बहन थी, जिसको बदले में दे कर औतार बाबा का ब्याह हो गया था. छोटे धरमू जब जवान हुए तो औतार बाबा को रोज गाली देते कि साले ने अपना स्वारथ तो देख लिया, हमारे लिए क्या करता है? औतार बाबा चाहते तो बहुत थे कि धरमू की पीठ में हल्दी लग जाये, लेकिन कोई बाभन चढ़े तब न! पैतृक जायदाद थी नहीं और कोई हीला भी नहीं था. जजमानी भी कोई खास नहीं, जिससे जीविका चले. कई बार कर्ज-वर्ज ले कर लड़की खरीदने की डील लगायी, लेकिन वह भी नहीं लगा. एक चार सौ रुपये में एक बहू मिली भी तो उसका सबने देखा, जाना कोई नहीं देख सका. बाद में खुली कि वह कोई नचनियां था जो औरत बन कर ठगने आया था. तब से धरमू और उग्र हो गये, जिसकी चरम परिणति हुई मोहम्मद जुलाहे की बेटी के धरमू के भाग जाने में.

वर्षों बाद कलकत्ता में धरमू अपनी बीवी के गांव के जूट मिल-मजदूरों से मिले थे, तो उनसे संदेश भेजा था कि अगर पंच लोग हुकुम दें तो हम लोग गांव में आ कर रहें. इसकी चर्चा गांव में तो खूब हुई, मगर औतार बाबा के सामने कहने की हिम्मत किसी की नहीं हुई.

इस समय जब सबका कच्चा चिट्ठा खोलने को सब लोग तैयार हो गये हैं तो क्या पता कोई कह ही दे. औतार बाबा चुपचाप आगे-पीछे हिलते जाते हैं मगर चिंता उनके चेहरे पर बराबर खेल रही है. मोहन सबके सामने कह चुके हैं कि रात काशी औतार बाबा के पास देर तक बैठे थे. कहीं ऐसा न हो कि कसिया पोल खोल दे. लेकिन औतार बाबा का चेला है, कच्चा नहीं हो सकता. डांड़ भले दे दे, बात नहीं खोलेगा. वैसे मन-ही-मन औतार बाबा तरकीब सोचते जा रहे हैं कि काशी को डांड़ से कैसे बचायें.

एकाएक चमत्कार-सा हुआ. रोता-बिलबिलाता काशी मुंड़वा के गले पर चढ़ बैठा. दबोचते हुए बोला—मांग सारे, माफी मांग! सब पंचन से. नाहीं त गांव छोड़ के परी. मांग माफी!

मुंड़वा बाप के चंगुल से छूट कर औतार बाबा के पैर पकड़ कर बैठ गया और गिड़गिड़ाने लगा. औतार बाबा को रास्ता मिल गया. स्वयं कातर स्वर में कहने लगे—पंचो, काशी बेचारा गऊ आदमी है. मुंड़वा के कहने में आ कर बेचारे ने मंगल भाई के यहां खाने से इनकार किया. जब भरी सभा में कान पकड़ता है. हमारा खयाल है, उसे माफी दे दी जाये.

औतार बाबा जैसे खुद ही अपराधी हों. मोहन, बिरजू और सतुआ बाबा की हुंकार शब्द का रूप ले, उससे पहले ही सबकी नजरें सामने घूम गयीं और सबकी जबान बंद हो गयी.

सामने से थाने वाला सिपाही आता दिखायी पड़ गया. सब अपनी-अपनी जगह पर मौन रह गये. सिपाही सहज भाव से औतार बाबा वाली खटिया की ओर बढ़ कर उस पर बैठ गया. थोड़ी देर-उधर देखता हुआ चुप रहा. फिर पूछने लगा—काहो पंडितजी! ई कैसा जमावड़ा है, भाई? मोहन बाबू! किसका बैल है?

मोहन बाबू कुछ बोलें, उससे पहले ही काशी और मुंड़वा की माई रोने लगे.

सिपाही जी मामला सूंघते हुए सिर हिलाने लगे.

बाबाजी लोगों की व्यग्रता बढ़ गयी. आंखों ही आंखों में बातें होने लगीं. अब क्या किया जाये? ई जम का दूत आ टपका. अब आधा डांड़ तो ए ही का चाही.

मोहन बाबू से बैल का पगहा न पकड़ते बनता था,

ड़ते. सिपाही से उनकी जान-पहचान तो थी, सामने परसी थाली को साधारण जान-पहचान के र छोड़ने वाला सिपाही वह न था.

अब मोहन बाबू सकते में. अकेले मुंड़वा उत्साहित ई देता है. वह बार-बार कुछ कहना चाहता कि सिपाही उसकी ओर देखे और वह चालू अंत में सिपाही जी से उसकी नजरें मिलीं. नी जल्दी हो सके, उसने अपने को बेगुनाह और -बिकरम को गुनाहगार साबित करने के लिए कहना शुरू किया जो किसी की समझ में नहीं आया. सिपाही जी बिकरम के नाम पर कुछ उत्साहित ए. तब तक एक बार फिर दृश्य बदल गया.

आंखों पर कोल्हू के बैल की तरह काला चश्मा ाये, मूस चमार का लड़का आ कर खड़ा हो गया. ी-अभी शहर से आया था और पंचायत हो रही है, कर सीधे यहीं चला आया. क्या पंचायत है, कौन भियुक्त है, क्या अभियोग है, सिपाही यहां क्यों है, हन बैल ले कर क्यों खड़े हैं——इन सब प्रश्नों का तर उसने चश्मा उतार कर एक ही नजर में पा ने की नीयत से सबकी ओर देखा. वह कुछ समझता, ससे पहले ही मूस महरा आगे बढ़ आये.——चलो बवा, कुछ खाओ-पीओ. इहां का धरा है!

बबवा ने बाप को झिड़का——चलते हैं, जरा पंचायत देख लें. क्यों सिपाही जी, क्या मामला है?

दरोगा के अलावा बाकी सबको डांटने का अभ्यस्त सिपाही इस तरह के सवाल के लिए तैयार नहीं था. ल्ला कर बोला——हम भी तो यही पूछ रहे हैं, साहब! यहां कोई कुछ बतावे, तब न? मालूम होता है सबको थाने ले चलना पड़ेगा!

बस ताव खा गया वकालत पढ़ने वाला लड़का.——कौन हो जी तुम सबको थाने ले जाने वाले? क्या किया है इन लोगों ने? गांव का मामला है, गांव में तय होगा. भागो.

आधे लोग तो सूख गये. पता नहीं अब सिपाही क्या करे! मगर मोहन बाबू भौंहों में हंसे. सिपाही तमतमाया हुआ उठा और कहता हुआ चला गया——अच्छा देखते हैं, थाने चल कर. ई सुराज ससुर क्या हुआ, पुलिस की इज्जत चली गयी. लौडों की ई मजाल कि हमसे जवान लड़ावें! बकता-झकता सिपाही चला गया. इधर भीड़ का हीरो हो गया वकालत पढ़ने वाला मूस चमार का लौंडा हरखू. हरखू उर्फ हर्षनारायण मौर्य, बी. ए., एल-एल. बी. द्वितीय वर्ष.

मूस ने नाम दिया था हरखू, लेकिन हाई स्कूल पास करने के बाद अखबार में छपवा कर हरखू ने अपना नाम रख लिया हर्षनारायण मौर्य. मुंशी गोधन कहते थे कि मौर्य ही चमारों का सरनेम है. चंद्रगुप्त मौर्य के वंशज हैं हम लोग. दरअसल तो क्षत्रियों के बराबर हमारा दर्जा है. सभी चमारों का दर्जा क्षत्रियो के बराबर हो चाहे नहीं, हरखू उर्फ हर्षनारायण मौर्य अपने को सभी कुलीनों से उच्च मानता है. चमार कुल में जन्म पाना उसके सौभाग्य का सूचक है, क्योंकि वह शुरू से देखता आया है कि खाने को दोनों जून रोटी नहीं है, तब भी बाबाजी के लड़कों की फीस माफ नहीं होती और उसको वजीफा मिलता रहा.

ग्रामीण परिवेश और स्थितियों पर रामदेव शुक्ल की पकड़ बहुत मजबूत है. ग्रामीण पात्रों की मानसिकता को वह बखूबी समझते हैं——'ग्रामदेवता' कहानी इस बात का पुख्ता सबूत पेश करती है.

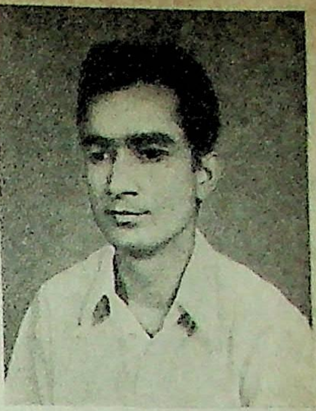

लोग कापी, किताब फीस की कमी से आठवें-नवें दर्जे के बाद थक कर कचहरी में मुंशी के मुंशी हो गये हैं या गांव में जूआ खेलते घूम रहे हैं. हरखू ने एक नया मुहावरा गढ़ लिया है. चमारों के पेशे को ये बाभन गाली मानते रहे हैं. 'का चोरी-चमारी करते रहते हो?' इसके जवाब में अब हरखू जब किसी को गाली देते हैं तो कहते हैं, का बमनई करते हो, जी?

हरखनारायण इन बाभनों की औकात खूब जानता है. एल-एल. बी. में नाम लिखाने के साल उसके क्षेत्र में बाबूजी आये थे. बाबूजी यानी बाबू मनबोधन राम. वह डाकबंगले पर उनसे मिलने गया था और देख चुका है कि कैसे बड़े-बड़े पंडित लोग उनकी जूठी प्लेट उठाने को तरसते थे. कलक्टर साहब से ले कर क्षेत्र के सभी एम. पी. मिश्रजी और ठेकेदार शुकुल जी तक. लगता था बाबू जी का थूक हाथ पर लेंगे. तब हरखनारायण को अपनी जाति पर गर्व हुआ था. ऐसे ऊंचे-ऊंचे लोगों को देख चुका है वह. इस गांव के टुट-पुंजिया बाभनों को वह खूब समझता है. दो-दो आने पर सत्यनारायण की कथा बांचने के लिए झगड़ा करेंगे. और आठ आना पैसा पा जाने पर ताड़ीखाने में जा कर भीड़ लगायेंगे. वह एक-एक को जानता है कि कौन उसकी चमरटोली में किसके घर किस रास्ते से आता है. लेकिन वह इसका विरोध नहीं करता. चमारों की नस्ल बदलनी चाहिए और यह ऐसे ही बदलेगी. वैसे हरखू की आखिरी इच्छा है किसी बाभन की बेटी से शादी करने की, और अगर गांव में हो जाये तो अति उत्तम. लेकिन गांव के मूर्खों के बीच अपनी आकांक्षा कभी जबान पर वह नहीं लायेगा. वकालत चल निकले, तब सोचा जायेगा. इसीलिए पांच बरस की उमर में जो विवाह उसका हुआ है, उसको वह भूल चुका है. बेचारे मूस की बड़ी फजीहत है. अब तो उसने समधी को मना-मनू कर अपनी लड़की दूसरे के साथ बैठाने को राजी कर लिया है. लेकिन इस बात पर हरखुआ से वह मन ही मन रुष्ट है.

सिपाही के पंछ दबा कर भाग जाने और हरखू के साहस से सारी पंचायत आतंक मिश्रित आनंद से भर उठी है. आज पहली बार सतुआ बाबा, औतार बाबा, बिरजू बाबा, सब लोग एक स्वर से हरखू की विद्या-बुद्धि की प्रशंसा कर रहे हैं.

चमर टोली के उत्साह की सीमा नहीं. चोकट अलबत्ता सकते में है. पता नहीं क्या हो? मुंड़वा हरखू के बराबर खड़ा हो गया है और बड़का सिटपिटा कर मंगल की बगल में आ गया है. धीरे-धीरे हरखू सारी बात जानने की कोशिश कर रहा है, लेकिन उसको एक साथ सभी लोग सबसे आगे बढ़ कर सब कुछ बता देना चाहते हैं, जिससे वह कोई बात नहीं सुन-समझ पाता है.

काशी और मुंड़वा की माई फिर गिड़गिड़ाने लगे——सरकार, माफी दे दिया जाये. सरकार, मुंड़वा कुछ नहीं देखा, सरकार. हम लोग मंगल के इहां खाये के तैयार हैं, सरकार.

एक बार लगा कि अब पंचों का दिल पसीजेगा. तभी गरजे सतुआ काका और बिरजू बाबा, एक साथ ही——अरे अब ई सवाल मंगल के और तुम्हारे बीच का सवाल थोड़े रहा! अब यह सवाल तोहरे और बामन मंडली के बीच का सवाल हो गया. अब कौन पंच के हिम्मत है कि तोहके माफी देई?

औतार बाबा कुछ बोलने को हो कर रह गये. काशी की घिग्गी बंध गयी. मुंड़वा फिर रोने लगा. उसकी माई फिर आंचल फैलाने लगी. मोहन बाबू बड़का के कान में खुसुर-पुसुर करने लगे.

हरखू अब तक सारा मामला समझ चुका अब तक उसकी धाक भी जम चुकी थी. अब इस मामले को अपने ढंग से लिया. मोहन बाबू मार कर उठ खड़ा हुआ और सिनेमा वाले के वकील के अंदाज में हाथ लहराता हुआ कहे ——सतुआ बाबा और बिरजू बाबा, आप लोग हैं कि गांव में पार्टीबाजी चल रही है. औतार बाबा चुनाव में मंगल और बड़का ने वोट नहीं दिया, इसी औतार बाबा ने मुंड़वा और काशी को चढ़ा कर तमाशा खड़ा किया है. सूअर खाना मुसलमानों में है. हिंदू के लिए हराम नहीं है. गोंड भी खाते हैं जंगली सूअर बाबा ठाकुर भी खाते हैं. इसमें कौन है? सूअर खाते हैं तो हम अकेले थोड़े ही खाते हैं! जि मन हो आ कर हमारे साथ खाये. मगर इसके नाम पार्टीबंदी नहीं चलेगी. यह मामला विकरम और बा सूअर खाने का नहीं है, पार्टी का मामला है.

औतार बाबा और काशी के अवाक् चेहरों छोड़ कर बाकी सब इस नये ज्ञान से चमत्कृत हो

सब अनुभव करने लगे हैं कि यह मामला संगीन है. इसमें माफी-दया की गुंजाइश नहीं. अब भी हिम्मत हार गया है. लड़के की जरा-सी नादानी क्या से क्या हो गया! अब इसमें पार्टी कहां से आ लेकिन बोलने की हिम्मत उसकी अब नहीं रही. की माई कुछ न समझ कर और जोर से रोनें लगी.

सतुआ काका ने कहा——अब ई मामला गंभीर

उसकी सुन्दरता का रहस्य ही
ऐटेक्स सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX
EYETEX BINDI
ARAVIND LABORATORIES MADRAS-33

अब कस्बा से मुख्तार साहब का आना जरूरी या है. वे ही आ कर दूध का दूध और पानी का करेंगे. उनसे मामला साफ होगा.

सी की हिम्मत कुछ कहने की नहीं पड़ रही है. तुआ काका के इस निर्णय को मौन स्वीकृति दे जाते हैं. हरखू भी सिर हिलाता है. काशी और औतार दिल में ही कांप जाते हैं, न जाने अब क्या होगा. वा एक बदमाश है. लेकिन हरखू सतुआ काका के पर मोहन बाबू के घर साइकिल ले के कस्बा चले हैं. मुख्तार साहब को बुलाने पर काम बनेगा.

* *

मुख्तार साहब कस्बे के तहसीलदार की कचहरी में रगिरी करते हैं. मगर उनका मन लगता है गांवों में. इसका कारण बताते हुए कुछ लोग तो यह कहते कि किसी-किसी दिन कचहरी में उनकी बोहनी भी होती. तरकारी का पैसा भी नही मिलता. गांवों फ्त की तरकारी, दातौन, कभी-कभी गन्ने का रस, कम-से-कम यह सब तो मुफ्त में मिलता रहता है. कचहरी में दिन भर मुवक्किलों से बनवा कर फांकते हैं और शाम को आधी शताब्दी पहले का कोट, जो अब कई रंगों का हो चुका है, उतार कर पर रख लेते हैं. घर पर उसे रख कर, फिर लोटा कर किसी गांव की ओर चल देते हैं. उधर से घूम कर और कभी-कभी किसी के यहां से भोजन करके लौटते हैं. साथ में कभी मुख्तारनी के लिए गन्ना, साग-भाजी तो कभी दही-सत्तू होता ही है.

पंचायत करने में उन्हें कई फायदे हैं. एक तो आज गांव की पंचायतों में डांड़ लगाने की प्रथा पुराने ने की तरह ज्यों-की-त्यों है. अदालती पंचायत है. चहरी है. गांव की पंचायत भी है और उसके सदस्य-ापति भी हैं. मगर ज्यादातर गांवों के मसले उन्हीं टे महाजन, पुरोहित, ओझा या धनाढ्य बाबाजी गों द्वारा ही तय होते हैं. नये पंच कुछ तो ऐसे हैं नको पंचायत करने की फुरसत ही नहीं. वे कचहरी दलाल हैं. या मुंशी हैं .या मुंशी के मुंशी हैं. पटवारी मुंशी हैं या प्राइमरी पाठशाला के मास्टरजी हैं. छ ऐसे हैं जिन्हें फुर्सत तो है लेकिन उनकी बात ही नने को गांव में कोई तैयार नहीं. बिना किसी मोटे बा की बात की मुहर लगे पंचायत नहीं हो सकती.

मुख्तार साहब जिस पंचायत में पहुंच जायें, उसमें गर दंड सौ रुपये लगने की संभावना हो तो उनका पहला काम होता उसे दो सौ कराना. डेढ़ सौ स्वयं पचा कर बाकी बाबाजी लोगों को, दो-चार चौकीदार को और मी-कमीं। दस-पांच दरोगाजी को भी चटा कर न्याय का झंडा फहरा देने में मुख्तार साहब माहिर हैं.

लेकिन पंचायत करने में मुख्तार साहब को रुपये की प्राप्ति से भी बड़ा एक लाभ होता है—दस आदमियों के बीच घंटों जोर से बोल कर अपनी बात सुनाने का. तहसीलदार की कचहरी में तो उनकी वाणी कुंठित रहती है. किंतु पंचायतों में वह धारासार बरसती है. पंचायत में बैठे लोगों की आशा के अनुरूप ही

सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू का हमला और उसका मुकाबला आपके लिए कुछ ज़रूरी बातें

"मैंने एनासिन को बहुत गुणकारी पाया है," नर्स एंजेला फ़र्नान्डेस का बयान है।

इन्होंने यही देखा है कि एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से जल्द आराम दिलाने के लिए काफ़ी तेज़ असर है।

सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू कैसे होते हैं?
ये छूत से फैलने वाले उस विष से होते हैं, जो इन रोगों में ग्रस्त लोगों से हवा में फैलता है। आम तौर से शरीर में उसके मुकाबले की शक्ति होती है। परन्तु ज़्यादा मेहनत या कम ख़ूराक के कारण शरीर में कमज़ोरी आ जाती है और रोग के मुकाबले की शक्ति कम हो जाती है।

रोग लक्षण क्या हैं?
बदन का दर्द, सर का भारीपन, छींकें आना और नाक बहना, जिसके साथ अक्सर कँपकँपी छूटती है, बेचैनी महसूस होती है और पसीना आता है। उसके बाद खाँसी, गले की ख़राबी, भूख की कमी और थकावट की शिकायत हो सकती है।

क्या इस से और तकलीफ़ें भी हो सकती हैं?
यदि लापरवाही बरती जाय तो निमोनिया और साँस की ऊपरी नाली में छूत का असर हो सकता है।

एनासिन कैसे सहायक होती है?
एनासिन सर्दी-ज़ुकाम और फ़्लू की पीड़ा से आराम दिलाती है। एनासिन तेज़ असर है– क्योंकि इस में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है जिसकी दुनिया-भर के डॉक्टर सब से ज़्यादा सिफ़ारिश करते हैं। एनासिन पर लाखों लोगों को विश्वास है– क्योंकि यह आपके डॉक्टर की दवा की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। सर्दी-ज़ुकाम या फ़्लू के पहले लक्षण देखते ही दिन में चार बार एनासिन लीजिए।

आपको और क्या करना चाहिए?
- उबाला हुआ पानी, सन्तरे या मौसंबी का रस और पीने के दूसरे पदार्थ काफ़ी पीजिए।
- पौष्टिक आहार खाइए।
- पूरा आराम कीजिए।
- पानी में ऐंटिसेप्टिक दवा या नमक डालकर गरारे कीजिए।
- कमरों को हवादार रखिए।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन
भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A-1-7/74
Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

हरखू के साथ मुख्तार साहब आते दिखायी पड़े. सतुआ काका और बिरजू बाबा ने बढ़ कर उनकी अगवानी की और ला कर खाट पर बिठाया. पहले कुछ रस-पानी का इंतजाम हुआ. मुंह पोंछते, डकार लेते मुख्तार साहब खटिया पर विराजमान हुए.

काशी, काशी बो, मुंड़वा, चोकट, बड़का, मूस इन सबको जैसे सांप सूंघ गया हो. सब चुप. बाबा मंडली में कुछ उत्साह, कुछ अनुत्साह दिखायी पड़ रहा है. मोहन बाबू बैल को खूंटे से बांध कर, खटिया मंगा कर, कुछ इस निश्चय के साथ बैठ गये लगते हैं कि अब फैसला करके ही उठेंगे.

हरखू अब कुछ उदासीन हो गया लगता है. औतार बाबा दुखी हो गये हैं. सतुआ काका और बिरजू महाराज विक्रमादित्य के समासदों की मुद्रा में मुख्तार साहब को देखने लगे हैं.

मुख्तार साहब सबको बारी-बारी से घूरते हुए कहते हैं— मैंने सब केस समझ लिया है. अब गांव में धरम नहीं रहा. संस्कृत पढ़ने को बाबा लोग तैयार नहीं हैं तो धरम कैसे रहेगा! अब चमार-सियार सब बराबर हैं. इतने में हरखू उन्हें कड़ी नजर से देखता है, जिसे देख कर कुछ अप्रतिभ होते हैं. फिर संभल कर मुख्तार साहब आगे बढ़ते हैं —लेकिन चमारों की तरक्की से ही देश की तरक्की होगी. धर्म और संस्कृत अब नये हो जायेंगे.

मुख्तार साहब रुकते हैं. उन्हें लगता है कि विषय छूट रहा है. गला खंखार कर पंचायत के विषय पर उतर आते हैं— यह बात तो गलत है कि मुंड़वा और काशी मिल कर किसी बाबाजी की पार्टीबाजी के चक्कर में पड़ कर बड़का और बिकरम को बदनाम करें. इससे सारे ब्राह्मण समाज की बेइज्जती होती है. जिसके यहां ब्राह्मण देवता भोजन करें, वह सूअर खाता है, भाई यह कहना सरासर अधरम है. काशी को प्रायश्चित करना ही पड़ेगा. अब पंच लोग फैसला करें.

सभा मौन है. काशी मुंड़वा की ओर देख कर दांत पीसता है. उसकी मां रोती है. सतुआ काका और बिरजू बाबा उदास बैठे हैं. थोड़ी देर में मुख्तार साहब फैसला सुनाते हैं—काशी को दो सौ रुपये का दंड और बिरादरी को भात. बाबा लोगों को पक्की.

काशी सपरिवार फुक्का फाड़ कर रोने लगता है, कुछ लोग उसे चुप कराते हैं. वह गिड़गिड़ाता हुआ कहता है—सरकार, हमारे पास एकौ पइसा नहीं है. ई डांड़ हम कहां से देब?

सजातीयों में कुछ उसकी ओर से बोलना चाहते हैं, मगर वे सब मंगल और बड़का के डर से चुप हैं. अब तो पंचायत भी उन्हीं के साथ है. मोहन बाबू प्रसन्न हो रहे हैं. बैल खोल कर ले आने की मेहनत वसूल हो जायेगी, वह जानते हैं.

हरखू अब अन्यमनस्क होता जा रहा है. उसके मन में द्वंद्व है. उसे लग रहा है कि काशी को बेकार सताया जा रहा है. मगर पार्टी वाली बात उसकी सहानुभूति का गला घोंट देती है.

[illegible] है कि रोये जा रहा है, कहां से तीन खेतों में एक पहले से रेहन. एक बैल गि एक ही बचा है. कर्जा ऊपर से बाकी है. का कर्ज कभी उसके बाप ने लिया था. वह सूद पर रुपये ले कर महाजन को सूद अपने पास से कर लौटाता है.

वह कुछ कहने का साहस बटोर ही रहा मुख्तार साहब बोल उठे— एक बात जान लो, मामला कानून का है. दंड तुम्हें देना ही पड़ेगा. कोई छुटकारा नहीं. हां, रुपये-पैसे की तंगी हो तो इंतजाम हो जायेगा. मुख्तार दूसरी ओर घूम कर हैं—औतार बाबा, आप उसको कर्ज दीजिएगा? तो ढबरू मास्टर को बुलाओ! वे तो देंगे.

मुख्तार की बात पर हरखू को बड़ा ताव इसमें कौन कानून है भाई? कानून तो वह भी से पढ़ रहा है. कौन कानून बाबा लोगों को यह कार देता है कि वे जब चाहें, जिस गांव वाले को कर खा जायें. भीतर-ही-भीतर हर्षनारायण खून खौल रहा है. मन में आता है, वह सबको दे. लेकिन क्या जरूरत है भाई! उसके लॉ के पांडेय कहते हैं कि गांव की राजनीति में किसी आदमी को नहीं पड़ना चाहिए. गांव के अनपढ़ शहर के एक से एक काबिल लोगों को बेच कर खा फिर यह काशी कौन दूध का धोया है? पढ़े-लिखे सबसे ज्यादा खिल्ली तो वही उड़ाता है.

बिना काशी की स्वीकृति या अस्वीकृति के मु साहब ने ढबरू मास्टर के यहां आदमी दौड़ा दिया.

ढबरू को देख कर कोई उन्हें मास्टर समझने गलती कभी नहीं करेगा. मगर असलियत यही है वह मास्टर हैं और ऐसे मास्टर जो चाहें तो गांव भर खरीद लें. यों यह मास्टर खुद कभी नहीं कहते. उ मास्टराइन ही कहती हैं. मास्टराइन चौड़ी काठी स्त्री है. पति की संपत्ति के गर्व की साक्षात प्रतिमू

स्कूल में लड़के-लड़कियों का बस्ता-खड़िया हैं.मॉनीटर से पाकड़ के नीचे चारपाई डलवा कर से लेट कर इमला बोलते हैं. कभी-कभी 'राम आम है' में 'खाता है' बोलने से पहले ही झपकी आ है. तब लड़के कलम-पटरी फेंक कर गुल्ली-डंडा कर चल देते हैं. कुछ देर में मास्टर जी की नींद है, तो फिर लड़कों को सहेज कर कुछ गिनती-पहा तब तक समय हो जाता है बाजार जाने का. कल के नकल लिखने को दे कर उधर से ही कस्बा चले आते कस्बे में एम. डी. आई. साहब के घर ट्यूशन करते उनकी सब्जी-तरकारी लाते हैं. सात-आठ बजे घर लौटते हैं.

ढबरू मास्टर का व्यक्तित्व गांव भर के लिए आतंक, आदर और आश्रयदाता का मिला-जुला है. अपनी तनख्वाह और ट्यूशन के पैसे में से कानी भी खर्च करने को मास्टर अधर्म मानते हैं. दो-चार खेती है. शरीर में बैल की तरह कूवत है. कमाते-खाते बाकी अनाज बेच कर बैंक के हवाले करते हैं.

रखने के खतरे से परिचित हैं.

गांव में बड़े से बड़ा आदमी भी परेशान है. मास्टर उस परेशानी में सबकी मदद करने को खड़े हैं. कभी किसी को रुपये-पैसे की जरूरत हो, मास्टर की बही पर नाम चढ़वा ले. ले जाये जितने की ई हो. हिसाब-किताब में मास्टर साहब पक्के हैं. सूद का हिसाब साफ है. भाई, सूद के रुपये मूल पहले काट लेंगे. यह सिद्धांत की बात है.

इधर कोआपरेटिव सोसायटी की वजह से मास्टर की महाजनी कुछ नये रूप ले रही है. जून में नों पर बैंक से दावे का नोटिस आने लगता है. तो नौ फीसदी सूद पर रुपया देता है. सेक्रेटरी-सुपरजर कहते हैं, भाई, कर्ज लौटा दो. एक हफ्ते में दिला देंगे. लेकिन एक हफ्ते के लिए ही सही, रुपये कहां से? गन्ना मिल पर गिरा आये. पर्ची भुगतान पता नहीं तीन साल में हो कि चार साल तब कहां से दें सोसायटी का कर्जा? ऐसे आड़े वक्त मास्टर साहब काम आते हैं.

इस तरह ढबरू मास्टर सबके भले के लिए खड़े हैं. उनका रुपया डूब जाये कहीं, इसका कोई डर नहीं. उनके पास मास्टराइन के रूप में वह सिपाही है, दरोगा का भी मुंह नोच ले.

* *

मास्टरजी बही संभालते हुए आ गये और आते उन्होंने फैसला सुना दिया कि काशी को वह अब ई कर्ज नहीं देंगे. पहले से ही उनकी बही में काशी के नाम से कई सौ रुपये बाकी हैं. मूल तो मूल, अब तो सूद वह नहीं देता. हां, एक सूरत है. अगर वह अपना गोयड़ा वाला पचकठवा खेत रेहन रख दे तो मास्टर तीन सौ रुपये अभी देने को तैयार हैं.

सुनते ही पंचों की बांछें खिल जाती हैं. काशी बो दहाड़ मार कर रो पड़ती है. मगर काशी अब की कुछ नहीं बोलता. चुपचाप अपनी जगह से उठता है. बायें हाथ का अंगूठा आगे बढ़ा कर मास्टर के सामने पागलों की तरह शून्य में ताकते हुए खड़ा हो जाता है. मास्टर थमक जाते हैं. यह क्या? मुख्तार साहब अपनी जगह से ही कहते हैं— हां भाई, मान तो रहा है. मास्टर बाबू! आपकी बात कसिया बेचारा मानता है. दीजिए उसको रुपये. दीजिए.

मास्टर साहब पता नहीं क्यों कुछ खिन्न हो जाते हैं. फिर जल्दी ही बही में कुछ खोज कर एक जगह काशी के बढ़े हुए अंगूठे में कजरौटा से काजल लगा कर, निशान बनवा लेते हैं. उसके सामने तीन सौ रुपये गिनते हैं, और उसमें से कुछ गिन कर फिर वापस ले लेते हैं.

हरखू टोकता है— ऐ ढबरू मास्टर! यह आप क्या करते हैं? सूद पर तो दे नहीं रहे हैं. खेत पर ले रहे हैं न! तब कैसा रुपया काट रहे हैं?

मास्टर सहम कर अपनी भूल स्वीकार करते हैं. कुछ कहना चाहते हैं पर रुपये वापस काशी के हाथ पर रख देते हैं.

काशी वैसे ही खड़ा है. उसका हाथ वैसे ही खुला है, बाकी नोट उस पर पड़े हैं. कुछ उड़ कर नीचे गिर रहे हैं. बिरजू महाराज उठते हैं. नोट उठा कर मुख्तार साहब के हाथ पर रखते हैं. काशी अब भी निश्चित खड़ा है. मास्टर साहब कुछ कहना चाहते हैं. मुख्तार साहब उनसे वहीं से कहते हैं—मास्टर बाबू, रेहन का कागज तहसील में आ कर ले जाइएगा. चाहे काशी को भेज दीजिएगा. खुद रुपये गिनने में लग जाते हैं. थोड़ी देर बाद धीरे से बिरजू महाराज से फुसफुसा कर कुछ कहते-सुनते हैं. मुख्तार साहब उनके हाथ पर कुछ रखते हैं. दोनों के चेहरों पर सहमति-असहमति के भाव आते-जाते हैं. अंत में मामला तय हो जाता है.

काशी अपनी जगह पर खड़ा है. मुंड़वा और उसकी माई रो रहे हैं. मंगल और बड़का खुश हैं. मोहन बाबू हरखू से कुछ कह रहे हैं. ढबरू मास्टर धीरे-धीरे लौट रहे हैं. औतार बाबा अपराधी बने चुपचाप बैठे हैं.

मुख्तार साहब अब एक मिनट भी बैठना नहीं चाहते. उठने को होते हैं तो किसनू उठने में सहारा देता है. साथ-साथ चलने लगता है. चलते हुए मुख्तार साहब दूर किसी के छप्पर पर आंखों-ही-आंखों में कुछ खोजते जाते हैं. किसना गोपन भाव से कुछ कहना चाहता है जिसे मुख्तार साहब सुनना नहीं चाहते.

मुख्तार साहब को गांव के सीवान तक पहुंचा कर किसना लौटता है तो देखता है, पंचायत ज्यों-की-त्यों बैठी है. औतार बाबा अब जा कर कुछ बोल रहे हैं. बिरजू बाबा, मोहन बाबू, दोनों मिल कर उनसे ऊंचे स्वर में कुछ कह रहे हैं. सबके चेहरे पर एक ही भाव है . . . चलो, देख लेंगे.

काशी वहीं, उसी जगह, वैसे ही खड़ा है. उसकी बगल में मुंड़वा हाथों में कुछ रुपये पकड़े खड़ा है.

किसनू तो पहले से ही असंतुष्ट है. मुख्तार सब माल ले कर चला गया. किसनू को कुछ नहीं मिला. बाभन न सही, पुरानी पंचायत का सदस्य तो वह भी है. दो-चार तो उसको भी मिलना ही चाहिए. लेकिन सब बेईमान हो गये हैं. बिरजू बाबा ने भी अपना हिस्सा ले लिया. किसनू के लिए चुप रह गये. उसे ये लोग अभी जानते नहीं हैं. एक-एक को देख लेगा.

सचमुच किसनू को गांव के लोग कितना जानते हैं! उसकी कदर तो बाहर ही होती है. गांव के बाबा लोग कभी उसका सीधा नाम ले कर नहीं बुलाते. शहर में किसुन महराज से कम कोई नहीं कहता. उसके शरीर का गोरा रंग और चेहरे का अभिजात्य उसे सवर्णों की प्रतिष्ठा सहज ही दिला देता है, इसका ज्ञान किसनू को बाल्यकाल से ही है. इसीलिए जाति का नाई होने पर भी कभी वह हजामत बनाने के घिनौने काम की ओर नहीं झुका. यह काम भाई-भतीजे करते हैं. वह तो पहले जमींदारों के और अब मारवाड़ी सेठों के यहां बैठने की, वहां इज्जत पाने की कला जानता है. अब तो सरदार जी की दूकान में दिन भर पंखे के नीचे बैठा रहता है. एक काम उसने सीख लिया है—हाथ देखने का. किसी का भी हाथ पकड़ कर उसके सुनहले भविष्य का सघन रेखाचित्र खींचने लगना उसकी आदत

बन गयी है. चेहरा देख कर वह जान लेता है कि जजमान किस प्रकार के भविष्य का चित्र पसंद करेगा.

गांव का कोई नहीं जानता कि किसुन महाराज बड़े शहर में सामुद्रिक शास्त्र के इतने बड़े ज्ञाता हैं. किसुन महाराज जानते हैं कि मूर्ख भले हों, ये गांव के बामन अगर यह जान जायें कि वह हाथ देखने का पेशा करता है, तो मार कर उसकी कमर तोड़ दें. शहर में रोज रहने से इज्जत घटने का अंदेशा न होता तो वह कभी गांव आता ही नहीं.

वैसे जब भी गांव की ओर किशुन आता है, तो दो-चार रुपये के जुगाड़ में ही रहता है. इस बार पहली पंचायत है जब दो सौ रुपये डांड में उसे एक पैसा भी नहीं मिला.

किसनू की खीझ को तोड़ता है मोहन बाबू का कर्कश स्वर. वह मुंडवा से कह रहे हैं—ले जा बे, अपना बैल. बांव अपने घर ले जा कर.

मुंडवा अपने बाप की हालत देख कर कुछ भी समझ नहीं पाता. वह जोर-जोर से रोने लगता है. कुछ लोग काशी और मुंडवा को समझाने के लिए उठते हैं.

* *

रास्ते पर बड़े जोर का हंगामा उभरता है. एक भीड़ पंचायत की तरफ चली आ रही है. कुछ लोग दो आदमियों को उठा कर ला रहे हैं. कुछ लोग बड़बड़ाते चल रहे हैं. कुछ जोर-जोर से गाली-गलौज कर रहे हैं. एक आदमी आगे-आगे नाच रहा है, उसी के साथ-साथ झूम रहा है गिरगिटवा. भीड़ पास आ जाती है. एकाएक बिना किसी से कुछ पूछे और बिना किसी के कुछ बताये लगभग सभी लोग समझ जाते हैं कि क्या मामला है.

यह सब तो आये दिन होता रहता है. यह भीड़ कचहरी के मुंशीजी लोगों की है. वे ही लोग इसके नायक हैं, जो दूसरों के कंधों पर हैं, या नाच रहे हैं और हवा में किसी अदृश्य दुश्मन को ललकार रहे हैं. इस समय मुंशी लोग दूसरे घोड़े पर सवार हैं.'

कचहरी के मुंशीजी लोगों की संख्या इधर आस-पास के गांवों में दर्जनों तक है। पुराने समय के मुंशी झगरू ग्रामीणों के लिए आज भी आदर्श पुरुष हैं. झगरू मुंशी मुहर्रिर थे. कचहरी की कमाई से जमींदारी में दो पाई हिस्सा उस गांव का खरीद लिया था उन्होंने. आज भी उनके नाती-पोते उन्हीं की कमाई पर मौज उड़ा रहे हैं. झगरू मुंशी को अपने जीवन काल में हजारों गरीब किसानों को झूठे मुकदमों में फंसा कर बर्बाद कर देने का जस अब तक मिलता है.

आजादी के बाद गांव के पास हाई स्कूल खुल जाने से शिक्षा के प्रति तेजी से झुकाव हुआ. उधर ग्रामीण नवयुवक पढ़ाई को पार्ट-टाइम काम मान कर नौटंकी से ले कर नेताबाजी तक में अधिक समय देने के कारण हाई स्कूल की दीवाल को अभेद्य मान कर कर्मक्षेत्र में उतरते गये. अभिभावक उनके कर्मक्षेत्र की सीमा कचहरी की मुंशीगीरी से ले कर सेठ की मुनीमी तक मानते और संतुष्ट रहते. नतीजा यह कि एक-एक वकील के पास चार-चार, पांच-पांच लोगों का जमघट हुआ. एक तहरीर लिखने के एक मिसिल नोट करने के लिए. एक पान लिए. एक मुख्तार साहब के घर तरकारी के लिए. अगर मुख्तार साहब कुछ मनचले रात को उनका बिस्तर गरमाने के लिए. वकील मुख्तारों को भी कोई असुविधा नहीं. को शाम को चार आना, किसी को एक रुपया, को डेढ़. वह भी मुवक्किलों की जेब से.

दर्जा चार के बाद जिस जगह आ कर शि रेल पटरी से उतर जाये, वही जगह पहुंचाने का स्टेशन बन जाती है. अब तक का विद्यार्थी अब बाप के लिए लायक, कमाऊ जाता है. कचहरी का मुंशी बन जाता है.

इसके अलावा हल चलाने वाले से ले कर मेंड़ पर जवान मजदूरिनों की ओर दिन भर रहने वाले बाबू लोगों तक, सबका शाम के वक्त जाना बहुत जरूरी काम है. इसमें आर्थिक स्थि हिसाब से दो गोल हैं—एक बड़ी गोल है दारू ताड़ी के साथ कलिया का चिखना उड़ाने वाली. छोटी गोल जिसकी किस्मत में चाह के साथ पांच पैसे की पकौड़ी ही होती है. अब तो एक सिनेमा खुल गया है. कस्बे के आकर्षण में और वृद्धि जा रही है. शाम को कचहरी से छूटे मुंशीजी और गांव से खेती-मजदूरी करके रंग छानने के कस्बे की ओर गये छैला लोगों की संगमस्थली दारू की भट्ठी. ताड़ीखाना. चौराहे की दुकानें. फि वहां घड़ी-दो घड़ी मौज मार कर अपनी-अपनी गां रात उतरने के साथ ही गांव की ओर आते हु रसिक अकसर भीड़ के रूप में ही लौटते हैं. फि किसी दिन आमदनी ज्यादा हो जाने पर या रास्ते कोई दुर्घटना हो जाने पर भीड़ का रुख ऐसा हो है कि गांव के लोगों को भी इसमें दखल देने की ज पड़ जाती है.

आज की भीड़ इसी प्रकार की है. इसमें समझू के मिडल फेल ज्येष्ठ पुत्र गिरवर मुंशी इतना पी हैं कि अपने पैरों चल नहीं सकते. उनको उठा कर से गांव की ओर आ रहे लोगों को रास्ते में एक भीड़ मिल गयी थी, जिसमें गोपी तिवारी के बाबू रास्ते के किनारे गन्ने के खेत में गांव की एक मु मान लड़की के साथ 'कीर्तन' करते हुए पकड़े गये मुसलमान तिवारी को लगातार पीटे जा रहे थे. दोनों को लाद कर कस्बे से लौटने वाले लोग ला रहे कि रास्ते में गिरगिटवा ने गांव की पंचायत की मु दे दी, जिससे उत्तेजना और तीव्र हो गयी.

अब कुछ लोग हिंदू-मुस्लिम फसाद की दु दे कर समझा रहे हैं. कुछ काशी के साथ हुए अन्याय खिलाफ आवाज उठा रहे हैं. कुछ काशी को ब्राह्म पर लांछन लगाने के लिए कोस रहे हैं.

सबसे आगे गुदई पंडित ताड़ी के नशे में नाचते चल रहे हैं. उन्हीं के साथ ताल देता गिरगिटवा

लपन की मौज में झूम रहा है. यह भीड़ आ कर पंचा- में मिल-सी गयी है. अब तो पंचायत बिखर जायेगी. लोग अपने-अपने घर चले जायेंगे. नहीं तो नये रे से बैठेगी. अभी तो खाली हल्ला है. किसी की समझ कुछ भी नहीं आ रहा है कि क्या किया जाये.

जुम्मन शेख की बेवा इतने में छाती पीट-पीट कर र-जोर से रोती हुई आती है. सबका ध्यान उसकी र खिंच जाता है. खेत की घटना उसे कई लोगों ने ई रूपों में सुनायी. किसी ने कहा, प्यारू बाबा के साथ हारी शहनाज को भी गांव वालों ने मारा है. किसी ने हा कि शहनाज डर के मारे भाग गयी है कस्बे की र. जितने लोग, उतनी बातें. इतनी ही देर में उसे छ लोगों ने थाने चलने की भी राय दे दी है.

थाने वह नहीं जायेगी. उसे याद है, बेवा होने के ड़े ही दिनों बाद अपने देवर के खिलाफ रपट लिखाने ह थाने गयी थी, जहां रात भर उसे बाघ-चीतों जैसे पाहियों से जूझना पड़ा था. सबेरे थाने के दीवान ने कर कहा था कि फिर आना, तब तहकीकात में गे. मन-ही-मन उसने कहा था कि अब वह कभी नहीं ायेगी. महीनों बदन में दर्द होता रहा. यही सोच-ोच कर उसका रोना और बढ़ जाता है कि अगर कहीं हनाज इन गांव वालों के डर से कस्बे की तरफ ाग गयी और थाने वालों के हाथ पड़ गयी, तब तो चारी नाजुक लड़की मर ही जायेगी.

प्यारू तिवारी से लड़की के रब्तजप्त की बात का ता तो उसे था ही. उसके प्रति प्रकट रूप में उसने कोई अरुचि कभी नहीं दिखायी. प्यारू के बाप गोपी बाबा तो उसी के आशिक रहे हैं. जुम्मन जिंदा थे, तब भी गोपी बाबा की राहें उसी के घर से हो कर जाती थी. जुम्मन के मरने के बाद बदनामी के डर से बाबाजी ने अपने ही खलिहान में इंतजाम कर लिया था. अब तो बेचारे दमे से जर्जर हैं. कभी भी दम तोड़ देंगे. मगर उस घर से वह संबंध ज्यों-का-त्यों बना हुआ है.

प्यारू और शहनाज की रंगरेलियों से मुसलमान युवकों में असंतोष भीतर-ही-भीतर बहुत बढ़ गया था. वे ऐसे ही किसी मौके की तलाश में थे. आज उन्हें वह मौका सहज ही मिल गया. प्यारू की ठुकाई करते हुए कुछ ने यह भी कहा कि चलो साले, को मुसलमान बना कर इसी से शहनाज का निकाह करवा दिया जाये. इस समय भी मुसलमानी टोले में इकट्ठे हो कर वे सभी कोई तैयारी कर रहे हैं, भीतर-ही-भीतर.

जुम्मन की बेवा पंचों से अपनी लड़की मांग रही है. वह कहती है कि इन सब ने मिल कर हमारी बेटी को मार कर कहीं गाड़ दिया है. हाय बेटी! वह रोती जाती है और नाटकीयता की ओर से सचेत रह कर छाती कूटती जाती है.

भीड़ में कुछ लोग उसी को घेर कर खड़े हो गये हैं. कुछ लोग तो यह राय भी जाहिर कर रहे हैं कि इसी ने शहनाज को कहीं छिपा दिया होगा.

हरखू और मोहन बाबू उत्तेजित हो कर आपस में कुछ राय-मशविरा कर रहे हैं.

गिरगिटवा कभी इनका, कभी उनका मुंह देख कर मन-ही-मन हंस रहा है.

सब हंगामे को दबाती हुई दहाड़ने की ऊंची, कर्कश, लड़खड़ाती हुई आवाज उभरती है. सब लोग एक साथ ही घूम कर उधर देखते हैं. कीचड़ में लदे-फंदे, डगमगाते हुए, पंचायत को ललकार रहे हैं बिकरम चौधरी. देसी शराब की तेज बदबू उनके चारों ओर लिपटी है. लड़खड़ा कर गिरते-गिरते बच रहे हैं. हाथ-पैर फेंक-फेंक कर चीख रहे है. किसी की ओर नहीं देखते हुए वह सीधे उस खटिया की ओर बढ़ रहे हैं, जहां पंचायत के सरदार लोग बैठे हैं. भीड़ में आतंक, कुतूहल, चुलबुलेपन की एक लहर दौड़ गयी है.

खटिया के ठीक सामने पहुंच कर बिकरम चौधरी धाराप्रवाह बोलने लगते हैं—का हो बाबा! कैसी पंचायत कर रहे आप लोग? कौन साला सूअर खाया है? कौन साला डांड लगाता है? बड़े आये हो राजा बिकरमाजीत के नाती! कोई आदमी अपने मन से कुछ खाता है तो पंच के बाप का क्या लगता है! हम खाता है सूअर का गोस्त. किसके बाप के डर से न न खायें? निकालो हमको बिरादरी से. लगाओ हमको डाड़. किसको-किसको डांड़ लगाओगे? मोहन बाबू कहां है? बुलाओ बबुआ मोहन परसाद को. धरमू बाबा को बुलाओ. हम बताते हैं कौन क्या खाता है? मट्ठी पर सात तरह का चिखना मिलता है. घुघुनी. पकौड़ी. कलेजी. समोसा. मछली. दो किसिम का गोस्त. मसालेदार गोस्त बकरी का. सादा गोस्त सूअर का. रोज बनता है. बाबा लोग पहले वही चखता है. चलो हम दिखाता है. ए मोहन बाबू, ए धरमू बाबू, काहे चुप हो? बोलते काहे नाहीं? तुमहूं तो खाये हो. काहे नहीं बोलते हो?

हंसते हैं बिकरम चौधरी.

सब की आंखें मोहन बाबू को खोजने के लिए घूमती हैं. वह कहीं दिखायी नहीं देते. सब लोग सन्न रह जाते ह. सिर्फ बिकरम चौधरी की डूबती हुई आवाज सुनायी पड़ती है.——मट्ठी पर साला रोज खाता है. हम एक दिन चोकट भाई के घर खा लिया तो हमको बिरादरी से बाहर करेगा. बड़का कहां है? धरमू को बुलाओ. मोहन बाबू को भी. आज उनको भी सबके सामने खिलाएगा. आज मुंड़वा को भी खिलायेगा.

सतुआ काका बेहोश हो जाते हैं. वह खटिया पर से लुढ़क पड़ते हैं. उन्हे संभालने को लोग बढ़ते हैं तो देखते हैं कि औतार बाबा की आंखों से झरझर पानी बरस रहा है. बिरजू बाबा घुटनों में सिर गाड़ कर बैठे हैं. ऐसा लगता है कि वह जम कर पत्थर बन गये हैं.

दूर पर काशी ज्यों का त्यों खड़ा है.

गिरगिटवा बाबाजी लोगों को समझा रहा है—— बाबाजी, शराबी की बात का क्या भरोसा! आप लोग देवता हैं! देवता!! बिकरम चौधरी की बात से उदास होते हैं? वह तो पियक्कड़ है. आप लोग देवता हैं!... □□□

१२४, बिलंदपुर कसपा रोड, गोरखपुर

उपहार □ दिलीपकुमार बनर्जी

उसके लौटते ही रानू ने पूछा—ले आये?

उसने रानू को ओर उदास निगाहों से देखा. रानू की आंखें उस छोटे-से पैकेट पर जमी थीं जिसे वह डाकखाने से छुड़ा लाया था. उसने मुसकराने का प्रयास किया किंतु लगा कि वह रो पड़ेगा. पैकेट रानू को थमा कर वह सोफे पर जा धंसा और धूल-धूसरित पैरों को मेज पर फैला कर आंखें मूंद लीं.

बबलू बाहर आंगन में पतंग उड़ा रहा था. पतंग समेट कर वह दौड़ पड़ा और उसके पीछे-पीछे टबलू, जो बड़े भाई के किसी खेल में शरीक न हो सकने पर भी साथ रह कर तालियां बजाता और उछल-उछल कर आनंद लेता और उसकी हर प्रक्रिया को दुहराता.

—क्या है मां? बबलू ने पूछा और टबलू ने भी उसी प्रश्न को दुहरा दिया.

उसने बच्चों की ओर कनखियों से देखा, फिर अपने धूल-धूसरित पैरों को, और फिर पैरों को फर्श पर रख कर सीधे तन कर बैठ गया और सिगरेट सुलगा कर पीने लगा.

रानू ने पैकेट के भीतर की वस्तु को निकाल लिया था, जिसे उलट-पलट कर देखने के बाद उसके मुंह से अनायास ही एक चीख निकल पड़ी—हाय राम! और क्षणांश बाद ही वह खिलखिला कर हंस पड़ी.

—क्या है मां? बबलू अधीर हो रहा था.

रानू ने हंसते हुए ही कहा—तेरे पापा अब नेकटाई बांधेंगे. . . ले, देख!

—ये तो मफलर हैं मां, रानू के हाथ से बित्ते भर चौड़ी टाइयों को हाथ में ले कर बबलू ने कहा.

टबलू रोनी-सी सूरत बना कर मां का रहा था.

—ले टबलू, एक तेरा है, एक मेरा. . भेजा है. . . .वह कह कर बबलू ने एक टाई छोटे थमा दी और दोनों फिर उछलते हुए बाहर ओर दौड़ पड़े.

बच्चों के ओझल होते ही वह चीखा— कुछ बनायेगी या हंसती रहेगी? रानू का अच्छा नहीं लग रहा था.

रानू ने सतर्कता से उसकी ओर देखा. वह गंभीर मुद्रा में था. पति की मनोदशा वह समझ वह उसके पास आ कर बैठती हुई बोली—अब करने से क्या फायदा? जो होना था, सो हो गया हाथ नहीं धोओगे क्या?

—अभी तो मुझे फिर निकलना है, नाश्ता कर ही करूंगा – वह कुछ सहज होता हुआ चाय नहीं पिलाओगी?

रानू उठ कर चली गयी. उसकी निगाहें सामने सोफा पर कुछ पल टिकी रहीं. शादी के बाद ही के आग्रह से उसने सोफा-सेट खरीदा था. कवर जीर्ण-शीर्ण हो गया है. अब इन्हें बदलने वह नहीं सोचता. खर्चे में हर संभव कटौती कर ली है. रानू ने भी नौकरानी की छुट्टी कर चौका-बरतन खुद करने लगी है. बचत की वृहद् बनायी है दोनों ने मिल कर, बच्चों का भविष्य है, बढ़ती हुई महंगाई से जूझना है. सहकर्मी और उसे कंजूस कहने लगे हैं, वह ध्यान नहीं देता.

रानू चाय ले आयी और सामने बैठ गयी. उठाते हुए उसने कहा – मुझे साले पर बहुत आ रहा है. . . .कौन उससे कुछ मांगता है? फिर और कुछ नहीं मिला भेजने के लिए? उसके भी कभी पहनी थी टाई?

—छी! गाली नहीं देते. . .रानू समझाने कुछ भी हो, है तो तुम्हारा भाई ही. . .

—साला भाई नहीं, दुश्मन है! जमीन अमेरिका भेजा, वहीं बस गया. . .ठीक है, कहीं बड़ा डाक्टर बन गया. . .ठीक है. कभी कदाच एक चिट्ठी. . .वो भी बड़ी-बड़ी बातें. . .गाड़ी खरीद ली है. . चायनीज लड़की से शादी कर रहा हूं. वह भी है. . .हवाई द्वीप जा रहा हूं हनीमून मनाने. . . है बाबा. . .तरक्की करो. . . ऐशोआराम करो. रहो. मैंने कभी एक पाई भी नहीं मांगी उससे. दस में एक बार भी खयाल नहीं आया कि उसका एक

दिलीपकुमार बनर्जी ने मध्यमवर्गीय परिवारों की नैतिकता, आर्थिक और सामाजिक स्थिति तथा उनकी अपेक्षाओं और आवश्यकताओं को अपनी कहानियों का माध्यम बनाया है. इनके पात्र परिस्थितियों से समझौता करके नयी परंपराओं को तो जन्म देते हैं लेकिन नये संस्कारों से नहीं जुड़ पाते.

● महेंद्र बंसल

बड़ा भाई है, गरीब है, शादी की है, बच्चे हैं! चलो ठीक है, मैं उससे कुछ उम्मीद नहीं करता, हाथ नहीं पसारता, कुछ नहीं मांगता. पर यह क्या? एक छोटा-सा गिफ्ट भेज रहा हूं. . .गिफ्ट . . .! नानसेंस!

उसका स्वर ऊंचा होता जा रहा था. रानू ने टोका—छोड़ो भी, चाय ठंडी हो रही है.

—क्यों छोड़ दूं ? यह भी कोई गिफ्ट है? साठ रुपये कस्टम ड्यूटी देने के बाद एक जोड़ा नेकटाई. . . वो भी आठ-दस इंज चौड़ी! साले ने मुझे भी अमेरिकन लोफर समझ रखा है!

साठ रुपये का दुःख रानू को भी था. फिर भी उसने ढाढ़स देते हुए कहा—इससे क्या, उपहार तो उपहार ही है. लोगों से कह तो सकोगे कि अमेरिका से मेरे भाई ने भेजा है!

उसके मुंह से अस्फुट एक भद्दी-सी गाली निकली.

—जल्दी आओगे न ? रानू ने पूछा.

—हां, क्यों?

—शॉपिंग करनी है.

—कैसी शॉपिंग?

—तुम्हारे सभी कमीजों के कालर फट चुके हैं, कुछ तो अब सिलवानी ही पड़ेंगी. कुछ अच्छे कपड़े बनवा लो जिन पर टाई भी फबे.

—तुम्हारा दिमाग तो ठीक है ?

—कुछ अपनी भी तो इच्छाएं होती हैं. इतनी तकलीफें सहकर बचत किस काम आयेगी? अभी से बच्चों का भविष्य देख रहे हो, हो सकता है और पंद्रह साल के बाद बबलू भी अमेरिका में हो और तुम्हें टाई ही भेजे! कहती हुई रानू मुसकरा पड़ी.

कुछ नरम हो कर उसने कहा—कहती तो ठीक हो. . मगर . . .टाई पहनकर राशन की लाइन. . .किरानी का काम. . .खैर, देखा जायेगा.

बुदबुदाता हुआ वह बाहर निकल गया.

बबलू की पतंग कट गयी थी और वह आसमान पर उलझती पतंगों को टकटकी बांधे देख रहा था. टबलू लाईट लिये खड़ा था.

क्षण भर रुक कर उसने दोनों बच्चों की ओर देखा. दोनों ने टाइयों को मफलर की तरह बांध रखा था.

सहसा एक पतंग कटी और बबलू उसे लूटने के लिए मैदान की ओर भागा. एक खीझभरी मुसकान के साथ वह आगे बढ़ गया. □□□

लाइसियाम मेस, ४२५, शाहगंज इलाहाबाद-२११००३

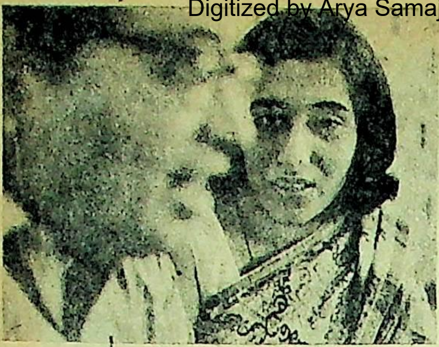

• अतीनदास

राकेश के पहले / राकेश के साथ राकेश के बाद

यादों का एक लंबा सिलसिला

चंद सतरें और (२३)

• अनीता औलक

पिछले अंकों में आपने पढ़ा है कि देश-विभाजन ने अनीता औलक के परिवार को भी विभाजित कर दिया था. वह जगह-जगह स्थापित हो रहा था और उखड़ भी रहा था. इस बीच राकेशजी का अनीताजी के घर से भी परिचय बढ़ रहा था. अनीताजी ने घर में कह दिया कि वह राकेशजी से शादी करना चाहती हैं. घर में हंगामा हो गया और कुछ फैसले किये गये. राकेशजी से उनका मिलना-जुलना बंद कर दिया गया, लेकिन फिर भी कॉलेज के बहाने वे मिलते रहे. एक दिन उन्होंने चुपके से शादी की और बंबई चले आये. उन्हें फिर दिल्ली वापस जाना पड़ा. अम्मा की मृत्यु के बाद राकेशजी अधिक नहीं जी सके. अब आगे पढ़िए. . .

राकेशजी के व्यक्तित्व के बारे में कुछ भी लिखना या कहना अपने में एक बहुत बड़ी चुनौती है—एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है. मैं स्वयं उसके बारे में कुछ भी कह सकने में अपने को असमर्थ और पराजित पाती हूं.

कुछ मित्र ऐसे हैं जो शायद यह समझते हैं कि वे राकेशजी को पूरी तरह समझते हैं—यह अपने में एक बहुत बड़ी छलना है. लेकिन इतना तो सत्य है कि उन्हें मेरे समेत जितना भी, जो भी समझ सका, वह ही अपने में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है. एक बहुत बड़ी सार्थकता है.

मुझे तो वैसे ही उनके साथ रहने का, उन्हें समझने का, बहुत ही कम समय मिला. . .केवल इतना अंतर ले कर कि मैंने अन्य लोगों की बनिस्बत उनके साथ कुछ अतिरिक्त सुबह और शामें होती देखी हैं. इस सबके बावजूद मुझे लगता है कि यह अपने में बहुत थोड़ा, बहुत न्यून है. इस तेज रफ्तार से आदि और अंत हुआ कि समझ ही नहीं आता कि उनके किस विषय में कुछ कह सकती हूं और किस विषय में नहीं. शायद उन्हें पूरा जानने के लिए एक पूरी जिंदगी भी कम थी, सिर्फ इसलिए ही नहीं कि उनका व्यक्तित्व बहुत बुलंद था, बल्कि इसलिए और भी कि उनका बहुत कुछ था जो सिर्फ उनके अपने लिए ही था. किसी और के साथ शेयर करने के लिए नहीं.

मेरा उन्हें जानना सिर्फ उतने दायरे तक ही सीमित था कि जितना उनके साथ जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यक था. यों इतना भी अपने में कोई कम अनुभव नहीं था. यह भी उन पंचभूतों से कम नहीं था कि जिनमें एक की भी कमी होने से जीवन का अंत हो जाता है.

उनके साथ सहजीवन की सबसे बड़ी और सबसे पहली शर्त थी 'ईमानदारी'. वह किसी का तो क्या, अपना झूठ बोलना भी बर्दाशत नहीं कर सकते थे. उनका कहना था कि वह आदमी क्या जो अपने शब्दों को भी नहीं ऑनर कर सकता. सबसे पह आदमी को अपने प्रति ईमानदा होना चाहिए, तभी वह दूसरे साथ भी ईमानदार हो सकता एक घटना याद आयी. एक शा श्रीमती जवाहर चौधरी ने फो किया और कहा कि उन दोनों इच्छा हो रही है कि वे दोपह को हमारे यहां आयें. राकेश ने जवाब दिया कि उन्हें क जाना है, इसलिए वे लोग दोपह में न आ कर शाम चार बजे ही आयें, क्योंकि तब तक वह भी लौट आयेंगे. . .फिर सीधे जा कर अपनी स्टडी में काम करने लगे. लेकिन उनसे काम नहीं हुआ. शाम चार बजे श्री और श्रीमती जवाहर चौधरी आये तो तब कहीं जा कर राकेश जी अपनी फॉर्म में आये. रात को जैसे ही वे लोग जाने लगे तो राकेशजी से रहा नहीं गया. बोले—माफ करना भाभी, मैंने आपसे झूठ बोला था. . . दरअसल मैं चार बजे तक काम करता हूं. इसलिए मैं उससे पहले किसीसे नहीं मिलता. . .बात सही

थी. लेकिन झूठ बोल कर बात था. वह उन्हें अपने में बर्दाश्त था. अगर वह चलने से पहले सी को सच न बता देते सारी रात या तो करवटें लते रहते या फिर रात में ही पकड़ कर उनके घर जा चते. उन्हें किसी व्यक्ति में सी बात को न कर सकने की समर्थता तो समझ में आती थी, किन उसकी जगह अगर कोई क्ति झूठ का सहारा ले, तो यह नके बर्दाश्त के बाहर की बात थी. र्फ इसीलिए राकेशजी मुझसे भी कुछ नहीं छिपा सके.और न मैं . कोई भी व्यक्ति अगर उनसे मेरे रे में कोई भी बात करता तो न्हें कभी विश्वास नहीं आता, योंकि उन्हें विश्वास था कि जब क अम्मा इसे कबूल नहीं करेगी ब तक वह बात झूठी है. इतना जबरदस्त विश्वास पाना कोई एक दिन का संघर्ष नहीं था. यों इस संघर्ष का सामना करना मैंने पहले दिन से ही शुरू कर दिया था. हालांकि मेरे इस पत्र के बारे में वह सहजीवन शुरू करने से पहले भी थोड़ा-बहुत जान गये थे.

जिंदगी में इतना कुछ स्वयं झेला, खोया और अर्जित किया था कि अब आ कर किसी का कुछ भी उनके लिए करना उन्हें बर्दाश्त नहीं होता था. विशेषकर उन लोगों से जो करने के साथ उसे छह बार सुनाते भी थे. जिंदगी में जिन-जिन लोगों ने उनके लिए कुछ किया था या दिया तो उसे उन्होंने सिर्फ इसलिए ही स्वीकार किया कि मना कर देने से अगला आदमी कहीं अन्यथा न ले ले. यही आदत मैंने अम्मा में भी देखी थी. उन्हें भी अगर कोई कुछ देता तो वह उसे स्वीकार पीछे करतीं, पहले तो उस देने के बोझ के नीचे आ जातीं.

लेकिन राकेशजी में और अम्मा में जो बात सबसे बड़ी थी, वह यह कि उन्हें कोई चीज पसंद हो या न हो, किसीकी बातें अच्छी लगें या न लगें, उन्हें निभाना बहुत आता था, अगले आदमी को यह कभी महसूस नहीं होता था कि उन्हें उसका कुछ भी बुरा लगा है. बिलकुल वैसी ही बातें जब मैं राकेशजी के साथ करती, तो वह मुझे डांट देते कि तू भी ऐसी ही बातें कर रही है! तुम्हें बाहर वालों में और घर में कुछ भी अंतर महसूस नहीं होता. अगर मैं बाहर वालों के साथ भी अपने घर का-सा व्यवहार कर सकता तो मुझे फिर अपने 'घर' की क्यों जरूरत पड़ती? और यह बात सच भी थी कि राकेशजी कहीं कितने भी इनफॉरमल क्यों न रहे हों—घर में तो वह उससे कोसों आगे थे—अलग थे. वह आदमी बाहर जितना इनफॉरमल लगता था– मन में उतना ही फॉरमल था. इसीसे इधर आ कर उन्होंने इतना भी निभाने-निभाने का प्रोग्राम समाप्त-सा कर दिया था. उनका कहना था कि अब काम ज्यादा और निभाना कम अफोर्ड कर सकता हूं—पहले-पहल तो मैं उनकी इस विभाजित प्रकृति से काफी कन्फ्यूज्ड भी रही लेकिन धीरे-धीरे मुझे उन्हें और जानने,और समझने का मौका मिलता रहा. जहां-जहां वह आदमी मुंह-फट भी था, वहां-वहां उसमें बर्दाश्त का भी बहुत माद्दा था. ऐसे में कई बार वह घड़ियां मैंने उनके साथ बैठ कर बांटी भी. इसी विभाजित प्रकृति का ही कारण था कि उन्होंने किसीको अपने घर पर आ कर रहने का निमंत्रण नहीं दिया. इससे उनकी आजादी में बहुत फर्क पड़ता था.

उन्होंने जितने सुख लोगों के साथ बांटे, उतने दुख नहीं बांटे. जीवन को उन्होंने अलग-अलग तरीके से झेला और भोगा था, लेकिन इस विषय में अपने मित्रों में बैठ कर उन्होंने उसे कम ही दोहराया था. उन्हें सेल्फ-पिटी से बहुत नफरत थी, इसलिए जहां भी गये, जिनमें भी बैठे, उन्होंने अपने उत्तरोत्तर ठहाके ही दूसरों को दिये. बीते हुए कल में उन्हें विश्वास नहीं था. उन्हें तो सिर्फ आने वाले कल में ही आस्था थी. जो बीत गया, वह खत्म हुआ, जो आने वाला है, उसी की प्रतीक्षा रहती.

कई मित्रों ने 'न आने वाला कल' टाइटल से उन्हें बहुत जोड़ कर देखा और लिखा है, जो कहीं बहुत गलत है. राकेशजी की जीने में बहुत बड़ी आस्था–एक बहुत बड़ी शक्ति दिखती थी. वह एक व्यक्ति था, जिसे जीना आता था और जिसने जिंदगी असली अर्थ में जी थी—उन्हें हर कल में आस्था और दृढ़ विश्वास था. वह जितने दिन भी जीये, सिर्फ अपने लिए और अपनी शर्त पर जीये—उन्होंने जिंदगी जीने में कभी भी किसी किस्म का कंप्रोमाइज नहीं किया. उसके विपरीत जब-जब उन्होंने झेला, उन्होंने उसे अपने तक ही रखा और और जब-जब खुशियां आयीं उसे अपने मित्रों में ही बांटा. कारण, उन्हें खुशियों में विश्वास था और उसे ही जिंदगी समझते थे. सिर्फ इसीलिए दो बार जिंदगी में उन्होंने कंप्रोमाइज नहीं किया, उसे अपनी ही शर्त पर जीने की आस्था ले कर ठहाके लगाते आगे और आगे ही बढ़ते रहे.

राकेशजी सबको आधा-अधूरा छोड़ गये, यह भी गलत है. उनसे जिस-जिस व्यक्ति ने जो-जो पाया, वही अपने में पर्याप्त है, पूर्ण है. उसीके भरोसे वे लोग अपनी-अपनी पूरी जिंदगी व्यतीत कर सकते हैं. जो कुछ उन्होंने लोगों को दिया, वह कम नहीं है—यह बात अलग है कि मनुष्य बहुत लालची होता है. जितना उसे मिलता है, उसके लालसा बढ़ती जाती है—लेकिन वहां यह भी सच है कि जब मिलना बंद हो जाता है तो आदमी उसीमें संतोष भी करना सीख जाता है. लेने वालों ने और पाने वालों ने उस व्यक्ति से बहुत कुछ लिया और पाया. क्योंकि देने वाला ही बहुत उदार दिल का था—देने में उसे बहुत ज्यादा वापस मिलता था—सूद समेत. उस व्यक्ति का सूद उसका जबरदस्त ईगो था, जिसका उसके मित्रों ने हमेशा खयाल रखा—हमेशा मान रखा.

राकेशजी सिर्फ व्यवहार में ही नहीं, बल्कि अपने लेखन में भी उतने ही ईमानदार थे. उनके कम

लिखने के कई कारण रहे हैं---पहले जिंदगी की अस्थिरता---फिर आर्थिक संकट के कारण गाहेबगाहे नौकरियां करना (उन्हें भी उन्होंने ईमानदारी से निभाया) और सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण कारण उनका सेल्फ रिजेक्शन था. **'स्याह सफेद'**, **'कांपता हुआ दरिया'**, **'अंधेरे बंद कमरे'**, **'नीली रोशनी की बाहें'**, **'लहरों के राजहंस'**, **'आधे-अधूरे'** **'पैर तले की जमीन'** के छह-छह, सात-सात ड्राफ्ट मौजूद हैं. उनके अनुसार अगर उनके पास पर्याप्त समय होता तो शायद अब भी वह उन्हें जरूर दोहराते.

अपनी ही कृति को ले कर इतनी जबरदस्त पेशेंस थी उनमें. अपने ही लेखन का मान-दंड उनके लिए यह नहीं था कि लोगों ने कहां तक उसे पसंद किया या स्वीकारा. उनका मान-दंड उसकी निजी ईमानदारी ही थी. बस.

फिर एक आदत और भी थी. कुछ दिन बाहर जाने की वजह से तथा फिर तबीयत खराब रहने की वजह से अगर कुछ दिन वह काम नहीं कर पाते तो बाद में उसे छोड़ी जगह से आगे नहीं बढ़ा सकते थे---उन्हें उसे फिर पहले पन्ने से ही शुरू करना पड़ता था. इन्हीं वजहों से वह आदमी कम लिखने पर मजबूर था.

इसके साथ-साथ राकेशजी एक बहुत बड़े पॉलिटीशियन भी थे. 'नई कहानी' आंदोलन और 'थियेटर मूवमेंट' इसी बात के द्योतक हैं. उन्होंने जब भी तीर छोड़ा तो ठीक निशाना बांध कर ही छोड़ा. कच्ची गोलियां चलाने में उन्हें विश्वास नहीं था.

उन्हें हा-हुल्लड़ मचा कर जनता में भगदड़ मचाने से एक और ही आनंद मिलता था. इसीलिए उनके छोड़े गये तीरों से आहत हुए योद्धा उनके चले जाने के बाद आज भी पीड़ा से कराह रहे हैं.

जहां वह आदमी इतना ज्यादा प्रचंड था, वहां वह बहुत ज्यादा इमोशनल भी था. कभी-कभी बहुत छोटी-छोटी बातों से भी तकलीफ पा जाता था.

एक बार श्री ओमप्रकाशजी से उनका मतभेद हो गया था. फिर क्या था, कई-कई दिनों तक न तो उन्होंने काम ही किया और न उन्हें फोन ही किया. मैं सब जानते हुए भी चुप ही रही. . .क्योंकि मेरी कोई भी बात करने से समस्या नहीं सुलझ सकती थी---बल्कि उनका ईगो ही हर्ट हो सकता था. कभी-कभी मन करता कि ओंजी को ही फोन करके स्थिति समझाऊं लेकिन यह और भी डेलीकेट सिचुएशन हो जाती. ओंजी भी और राकेशजी दोनों ही कंप्रोमाइज्ड महसूस करते. लेकिन बात अपने आप ही सुलझ गयी---क्योंकि हार कर ओंजी ने ही हथियार डाल दिये थे---और कोई दूसरा तरीका ही नहीं था.

राकेशजी कई बार ऐसे-ऐसे कष्टों में पड़ जाते थे. लेकिन सिर्फ उन्हींके साथ कि जिनसे उनका आत्मीयता का रिश्ता था. उनके चेहरे से ही मुझे पता चल जाता कि कोई-न-कोई बात हुई है. कोई-न-कोई परेशानी है. . .और यह भी पता चल जाता था कि वह चाहते हैं कि मैं उसे उनसे शेयर करूं या न करूं.

लेकिन शेयर किये बिना भी नहीं रह सकते थे, क्योंकि उनकी आदत थी कि कोई बात वह ज्यादा देर तक अपने अंदर नहीं रख सकते थे. कोई बात तत्काल और कोई कुछ समय के बाद बता जरूर देते थे.

कहीं का उद्घाटन, कहीं का भाषण और कहीं की कॉन्फ्रेंस उन्हें बहुत दुखी करती थी---इसी से वह बहुत बड़े सूडो भी माने जाते थे. पिछली एशिया थियेटर कॉन्फ्रेंस में अगर श्री गुजराल इतना अनुरोध न करते तो सुरेश अवस्थी जानते हैं कि वह नहीं जा रहे थे.

फिर बंबई इसलिए भी आये थे कि श्री करंजिया से अनुरोध करते कि उन्हें एफ. एफ. सी. से मुक्त कर दिया जाये---लेकिन करंजिया नहीं माने. लेकिन जहां-जहां वह निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र थे, वहां-वहां उन्होंने पद्श्री को उठा कर ताक में भी रख दिया था.

एक बात और---औ यह थी कि अगर वह किसी को बात के लिए कनविंस करने पर तो अगला आदमी विश्वा बिना नहीं रहता. दूसरी कि जो बात वह अगले आदमी मुंह से कहलवाना चाहते---कहल लेते थे.

किसी व्यक्ति की कही कि बात से परेशान हैं, तो यह कमरे में चहलकदमी करते पता चल जाता था. उसके बाद अ वह व्यक्ति लोकल है तो फिर उस हिसाब-किताब करने उसके घर जायेंगे और अगर शहर से बाहर तो अपनी टेबल पर उसके ना स्टिकर लिखते पाये जायेंगे. फि उसे पोस्ट तभी करेंगे जब उसे देंगे. 'ठीक है न!' ऐसे में मो स्ट्रेंथ की बहुत जरूरत महसूस होती थी. क्योंकि ऐसी समस्याएं केवल आत्मीय मित्रों को ले कर ही उत्प होती थीं.

३ दिसंबर को उनके मित्रों को एक और धक्का खाना पड़ा प्रत्येक मित्र यही समझता था कि अगर राकेश ने अपना सब कुछ शेयर किया है तो सिर्फ उसके साथ ही शेयर किया है. यह इतने मित्र उनके और कहां से आ गये? मैं तो समझता था कि. . .फिर खयाल आया कि राकेश की कुल संपत्ति तो उसके मित्र ही थे.

यह बात सच है कि उनके जितने मित्र थे---वे सब राकेशजी के साथ बिल्कुल साथ हो कर जीये हैं---और उन लमहों में प्रत्येक दोस्त उसे सिर्फ अपनी निजी संपत्ति ही समझता था. यह भी सच है कि उनके व्यक्तित्व के इतने पहलू थे कि वह कभी भी किसी एक से शेयर नहीं कर सकते थे. उनके मित्रों के पास उनके छोड़े गये खजाने आज भी पीछे रह गये हैं. वे इतने भरपूर और संतुष्ट हैं कि अपने-अपने पास छोड़ी गयी संपत्ति को औरों की नजरों से दूर अपने अंदर छिपाये बैठे हैं---कि कहीं उसे किसीकी नजर न लग जाये. वह उन लोगों के जीवन की कुल संपत्ति जो है. . .

र में राकेशजी किसी के साथ न के लिए भी फॉर्मल नहीं ते थे. उनकी देर तक सोने की थी. इसलिए १०–११ बजे ब भी वह सोते, घर में एकांति रखनी पड़ती थी. उनकी बड़ी कच्ची थी और वह प्रकार का डिस्टर्बेंस बर्दाश्त र सकते थे. फिर अगर करने बैठे हैं तो इसीलिए रखनी पड़ती थी––महज वजह से उन्होंने कभी ी को घर में निमंत्रण नहीं . और अगर किसी वजह से रह भी गया है तो फिर अगली के चार बजे तक उससे नहीं ते थे. यों कोई बाहर का व्यक्ति में है, इसी एहसास से ही वह नी आजादी में फर्क महसूस करते –अपने रोज के कार्यक्रम में मन लगा पाते थे––अपने में नहीं हो ते थे.

१०–११ बजे उठते तो कई बार अपने पर हंसते. कहते––हूं. . . सुबह ५ बजे उठ कर सालों की नौकरियां बजाओ. . .अरे, यहां तो सिर्फ अपनी नौकरी बजाने तक की फुरसत नहीं है.

उनके विभाजित व्यक्तित्व को दो भागों में बड़ी सूक्ष्मता से आंका जा सकता था. एक तरफ तो हाइली इंटलेक्चुअल लेवल था और दूसरी तरफ हाइली इमोशनल लेवल था. इन दोनों लेवल्स को उस व्यक्ति ने बखूबी निभाया भी. कभी भी इन दोनों में कंप्रोमाइज नहीं होने दिया. इन दो एक्स्ट्रीम पहलुओं पर जीने वाला वह अपने किस्म का एक ही व्यक्ति था.

उस आदमी ने सिर्फ अपनी और अपनी ही शर्त पर जिंदगी जी थी. उसने मित्रता भी की तो अपनी ही शर्त पर. जिन-जिन लोगों ने उसे स्वीकारा था, सिर्फ उसकी शर्तों को मान कर ही स्वीकारा था. इसलिए उनका कोई मित्र ऐसा नहीं जो उन्हें समझा न हो––लेकिन उनकी शर्त मानने के बाद तो फिर उन सबका गुलाम भी हो जाता था. जिस-जिसने उनकी शर्तें मान कर उनको मान दिया, उन सभी को उस व्यक्ति ने भी उतना ही मान और प्यार वापस दिया. लेकिन उस व्यक्ति को अपना बनाने के लिए पहले अपनी कुरबानी एक बहुत बड़ी शर्त थी––उसके साथ ही बाकी की संभावनाएं बंधी थीं.

अगले अंक में

क्या अकेलेपन का दायरा टूट सकता है? कैसे?. . .

वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है, किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में २ अंक मुफ्त। यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में ५ अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है और इस तरह आप तीन वर्षों का शुल्क एक साथ भर कर ९ अंक मुफ्त में प्राप्त कर सकते हैं.

शीघ्रता कीजिए, आपके लिए सारिका की छूट प्राप्त दरें इस प्रकार हैं :

एक वर्ष — १० रुपये
दो वर्ष — १९ रुपये
तीन वर्ष — २७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष – २२ रुपये

कृपया यह कूपन ज़रूरी राशि के चेक / ड्राफ्ट / मनीआर्डर के साथ आज ही भेज़ दें —

सर्कुलेशन मैनेजर,
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग,
बम्बई – ४०० ००१

कृपया मुझे / हमें निम्न पते पर एक वर्ष / दो वर्षों / तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेज़ने की व्यवस्था करें. १० रुपये / १९ रुपये / २७ रुपये चेक / ड्राफ्ट / मनीआर्डर द्वारा भेजे ज़ा रहे हैं.

हस्ताक्षर........................ पता..

दिनांक...........................

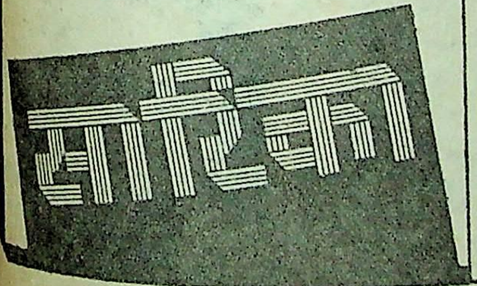

एक कहानी-संग्रह

आग

लेखक : दामोदर सदन
प्रकाशक : शब्दकार,
गली डकौतान, दिल्ली—६
पृष्ठ : १४३ ; आठ रुपये.

माता-पिता के दायित्व, परिवार और नगर-मोहल्ले (या गांव) के परिवेश, कैशोर्य की कल्पनाओं व खिन्नताओं और नवयौवन की द्विविधाओं और आकांक्षाओं के सहज ग्राह्य तंतुओं से आदमी एक बार वैसा बन चुका होता है, जैसी उसकी सीमाएं और संलग्नताएं होती हैं. यह आधारभूत व्यक्तित्व और मूल मानसिकता यदि मोटे तौर पर सही होती है, तो शेष, यानी स्वतंत्र जीवन, में उसे बहुधा बारी-बारी या एक साथ नाना विरोधाभासों, अन्यायों, असमताओं और अमानवीयताओं से झगड़ना-जूझना पड़ता है. समझौते, छल-कपट, कुटिलताएं, मुखौटे और विद्रोह और असामंजस्य इसी जीवन (संघर्ष) की देन होते हैं. इसी जीवन की कसौटियों पर परखा जाने के बाद आदमी सच्चा या गलत होता है.

इधर हाल ही का समर्थ कथाधर्मी इसी निजद्वंद्व और प्रतिद्वंद्व में जीने (-मरने) वाले, इन्हीं गोधूलियों, घटाटोपों, सतत (अकसर अनचाहे, विविध, छोटे-बड़े) अपराधों और पश्चात्तापों में डूबने-उतराने वाले सहज-सही आदमी को ज्यों-का-त्यों अपने दृष्टिकोण से देखने-समझने, बखानने और विवेचित करने का आदी हो चला है. यह एक सुखद स्थिति है कि दामोदर सदन इसी आदमी को इसी दृष्टि से देखते हैं.

'आग' में दामोदर की तेरह कहानियां हैं, जिनके पात्र बिना किसी अपवाद के निम्न, नौकरी-पेशा, मध्यमवर्ग के हैं. (एक-आध जगह, मसलन 'ब्लडहाउंड्स' में वह उन्हें लाट-अफसर श्रेणी का भी बताते हैं) और वे सब कहीं-न-कहीं अपराधी हैं, कहीं-न-कहीं प्रायश्चित की आंच में तप या झुलस रहे हैं, कहीं-न-कहीं गुनहगार हैं, कहीं-न-कहीं लाचार हैं. और अपमान और मिथ्याभिमान के शिकार हैं. मगर ये सब निर्विवाद रूप से अपने से ऊपर या परे की, सामर्थ्य से बाहर की किसी व्यवस्था का शिकार हैं.

मगर सही दृष्टि और लेखकीय संस्कारों से सज्जित दामोदर सदन बाजवक्त धैर्य एवं तीक्ष्णता से काम नहीं लेते. विरोधाभास, आक्रोश अथवा खलिश की स्थिति की ऊपरी प्रचंडता से वह इतने उद्वेलित हो जाते हैं कि तुरंत कलम भांजने लगते हैं. जबकि इन अवसरों पर, ऐसा शिद्दत से महसूस होता है कि वह थोड़ा ठहरते, प्रारंभिक उफान गुजरने देते तो वह अपने पात्रों की नियति या स्थिति की विषमता ज्यादा गहराई और विस्तार से देख-समझ पाते. अधिकांश कहानियां कथ्यों के सही रेखांकन के बावजूद प्रभाववत्ता का वांछित परिमाण उपलब्ध नहीं कर पातीं. और इस 'उत्साह' की चपेट में 'आग' नामक कहानी भी थोड़ी-बहुत आ ही जाती है. 'कुत्ते,' 'पुल', और 'अर्धपुरुष' भी इसी जल्दबाजी को भेंट हो जाती हैं.

मगर महत्वपूर्ण बात यह है कि अधिकांश कहानियों में दामोदर एक मुद्दा और एक दर्द आते हैं. और यह मुद्दा दर्द निश्चय ही परिवेश और मामूली आद नाना नियतियों की ओर शाली प्रामाणिक संकेत 'आग' के अलावा 'मौत' 'ब्लडहाउंड्स' इस संदर्भ में हैं; प्रत्येक के पात्र शोषण और शोषित होने, अपमान और अपमानित होने के हुए जीवनक्रम को भोगने- को लाचार हैं.

दामोदर की ईमानदारी से स्पष्ट हो जाती है 'तुषार' और 'ब्लडहाउंड्स' अफसरों की कमीनगियों उसी मर्दनकारी, अधोमुख के दर्शन करते हैं, जोकि और 'मौत' के किरानीवर्गीय चारियों की मलिन जीवन- के मूल में है.

☐ राम अरो

दामोदर सदन

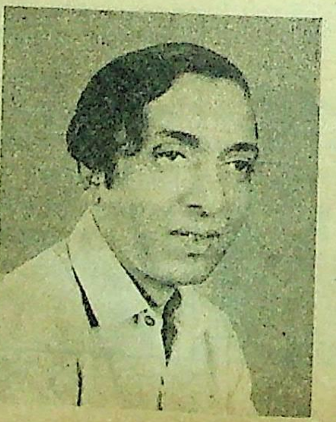

एक लघु-उपन्यास

प्रेत

लेखक : श्रवणकुमार
प्रकाशक राजपाल एण्ड संस,
दिल्ली; ४.०० रुपये

श्रवणकुमार का पहला लघु- न्यास सही मायने में एक की शुरुआत है—निषेधक, रात्मक, ह्रासकारी शक्तियों

श्रवणकुमार

शक्तियां हम और आपसे
कतवर हैं, ज्यादा संगठित
और शासन के ज्यादा
हैं. श्रवणकुमार ने 'प्रेत' के
से इन शक्तियों को चुनौती

का नायक जीवन की
ओं में उलझा है. जीवन
ल्यन उस पर हावी है.
अव्यवस्थित है. यह जो
स्वातंत्र्योत्तर भारत में
लिए उसके सामने रखा
वह जीवन, उसके मूल्य
ह्रासकारी शक्तियां, उसका
उसका हाहाकार बराबर
छे को धकेलना चाहता है.
थावस्तु संक्षिप्त है. नायक
ता उसके बच्चे को
की आस लिये चल बसते हैं.
अतीत की धारा में वह
है. अतीत उसका उज्ज्वल
था, वर्तमान भी उज्ज्वल
है. वह उसी की उपलब्धि
भविष्य भी सुंदर नहीं
पर बात ऐसी नहीं होनी थी.
योत्तर भारत में हमेशा
अच्छे भविष्य का सपना हमें
या गया है. नायक सोचने
ध्य है, उसके साथ धोखा
है. पूरा उपन्यास इसी अंत-
की देन है. जो अभिशप्त
उसे जीने के लिए दिया
है —वह उसके खिलाफ
बगावत नहीं कर सकता.
- तंत्र ने उसे जिस तरह
है, वह वहां से बाहर आ कर
मखुल्ला चुनौती देने की
ति में नहीं है. व्यवस्था इसी
व्यक्तित्व पर हावी होती है.
'प्रेत' में व्यवस्था से विद्रोह
है, पर इसका स्तर वैयक्तिक
कथानायक जीवन के तमाम
अनुभवों से गुजरता है, पर
खीझ, झुंझलाहट, घुटन,
ना, पीड़ा को वह इस व्यवस्था
देन भी समझता है. अंत में एक
स्फोटक स्थिति उत्पन्न होती है
वह तमाम ह्रासकारी शक्तियों
चुनौती देता है.

□ आशीष सिनहा

पाकिस्तानी कहानियों का विशिष्ट खंड

साहित्य के जरिये पाकिस्तान की मौजूदा आबोहवा का जायजा!

पिछले तीन-चार वर्षों में पाकिस्तान में जहां राजनीतिक परिवर्तन हुए हैं, वहीं पर आर्थिक और सामाजिक स्तर पर भी काफी उथल-पुथल हुई है. पाकिस्तानी साहित्य के सोच का दायरा भी पहले से ज्यादा विस्तृत हुआ है — वहां का साहित्य रूमानियत के घेरे को तोड़कर यथार्थवादी भूमि पर उतर रहा है और उसकी चिंताएं आम आदमी की जिंदगी से जुड़ रही हैं.

इस अंक में पाकिस्तान की विभिन्न भाषाओ — बलूची, पश्तो, हिंदको, सिंधी, पंजाबी और उर्दू — की इसी नयी रचनात्मकता की एकदम ताजा रचनाएं दी जा रही हैं — यानी कहानियां, लघुकथाएं, तेज-तर्रार व्यंग्य, विचारोत्तेजक लेख और टिप्पणियां।

कुछ प्रमुख लेखक हैं : शेख अयाज, अमर जलील, शौकत हुसैन, अरबाब सिंधी, अनवर सरहदी, फारिग बुखारी, फरखंदा लोधी, अशराफ हुसैन अहमद, मुस्ताक अहमद वजदी, अशफाक अहमद, अहमद सलीम, इंतजार हुसैन, अहमद नदीम कासमी आदि.

- जहीर नियाजी और वासुदेव 'सिंधु-भारती' की टिप्पणियां

सारिका के अगस्त १९७५ अंक में

- साथ ही — लक्ष्मी नारायण लाल, कुलभूषण, रामदरश मिश्र, आदि भारतीय लेखकों की कहानियां.

तथा इसी अंक में फिरसे पढ़िए सभी स्थायी स्तंभ :
गुस्ताख़ियां, गर्दिश के दिन, कबिरा खड़ा बजार में, कृतियां, मीनाकुमारी की डायरी, गुलज़ार की नज़्में, चंद सतरें और आदि.

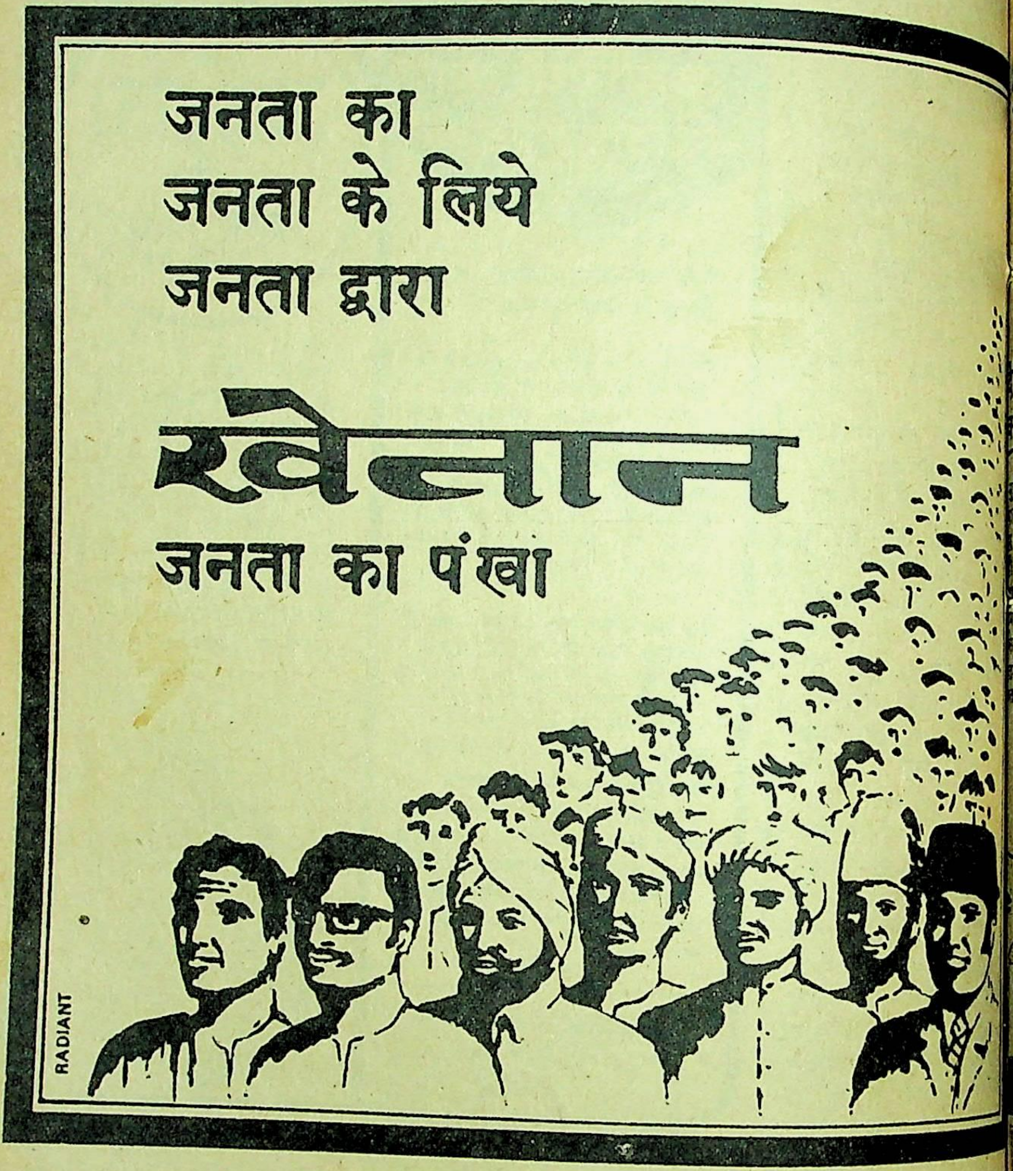

जनता का
जनता के लिये
जनता द्वारा

खेतान
जनता का पंखा

RADIANT

तों के डाक्टरों की राय में

नियमित रूप से दाँत ब्रश करने और मसूढ़ों की मालिश करने से मसूढ़ों की तकलीफ़ और दाँतों की सड़न दूर ही रहती है

खिए, फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट नियमित इस्तेमाल करनेवालों ने अपने आप
या लिखा है:

मसूढ़ों की तकलीफ़ थी और… वेदिक, होमियोपैथिक, एलोपैथिक; तरह की दवाई ली लेकिन थोड़ी देर आराम मिला। अन्त में दाँतों के र की सलाह अनुसार मैंने फ़ोरहॅन्स स्ट इस्तेमाल करना शुरू किया। आज भी मेरे दाँत और मसूढ़े बढ़िया और मज़बूत हैं कि पूछिए ।'

(सही) गोपालसिंह, कोटा

'…मेरी पत्नी को दाँतों में बड़ी पीड़ा थी …लेकिन जबसे उसने फ़ोरहॅन्स इस्तेमाल करना शुरू किया, इतना अच्छा रहा कि अब किसी को भी दाँत या मसूढ़ों में तकलीफ़ होते ही वे फ़ोरहॅन्स लेने की सलाह देती हैं। वही क्यों, इंग्लैंड में मेरे भाई हैं न, उन्होंने भी भारत से फ़ोरहॅन्स के ६ ट्यूब भेजने के लिए बार बार लिखा है।'

(सही) टी.जी.एम्.डीसूज़ा, बम्बई

'…राजमुन्दरी में एक दाँतों के डाक्टर हैं …उन्होंने मुझे दाँतों व मसूढ़ों की भलाई के लिए फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल करने की सलाह दी। मैंने फ़ौरन ऐसा ही किया। थोड़े ही समय में सांस की दुर्गन्ध जाती रही, मसूढ़े फिर अच्छे हो गए। तब से, सच मानिए, मैं ही नहीं मेरे पूरे परिवार के ९ लोग फ़ोरहॅन्स ही इस्तेमाल करते हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि हमारी यह आदत और हमारी यह आस्था पीढ़ियों तक चलती रहेगी।'

(सही) पी. जे. लाज़ार
चिराला, आन्ध्र प्रदेश

(इन पत्रों की फोटोस्टॅट कॉपी आप जैफ़्री मैनर्स एण्ड कं. लि. के किसी भी कार्यालय में देख सकते हैं)

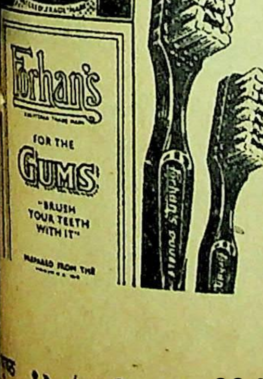

दाँतों की समुचित देखभाल के लिए रोज सवेरे और रात को फ़ोरहॅन्स टूथपेस्ट और फ़ोरहॅन्स डबल-एक्शन टूथब्रश इस्तेमाल कीजिए…और नियमित रूप से डाक्टर की सलाह भी लेते रहिए।

मुफ़्त! "आपके दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" नामक रंगीन सूचना-पुस्तिका। अपनी प्रति * प्राप्त करने के लिए (डाक-खर्च के लिए) २५ पैसे के टिकट इस कूपन के साथ इस पते पर भेजिए: S.12

मैनर्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई-१

उम्र : ______

नाम : ______

पता : ______

* कृपया जिस भाषा की पुस्तिका चाहिए, उसके नीचे रेखा खींच दीजिए: अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, आसामी, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड़

फ़ोरहॅन्स दाँतों के डाक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

129 F 203 HN

माधुरी के हर अंक में आपके लिये ढेर से पुरस्कार !

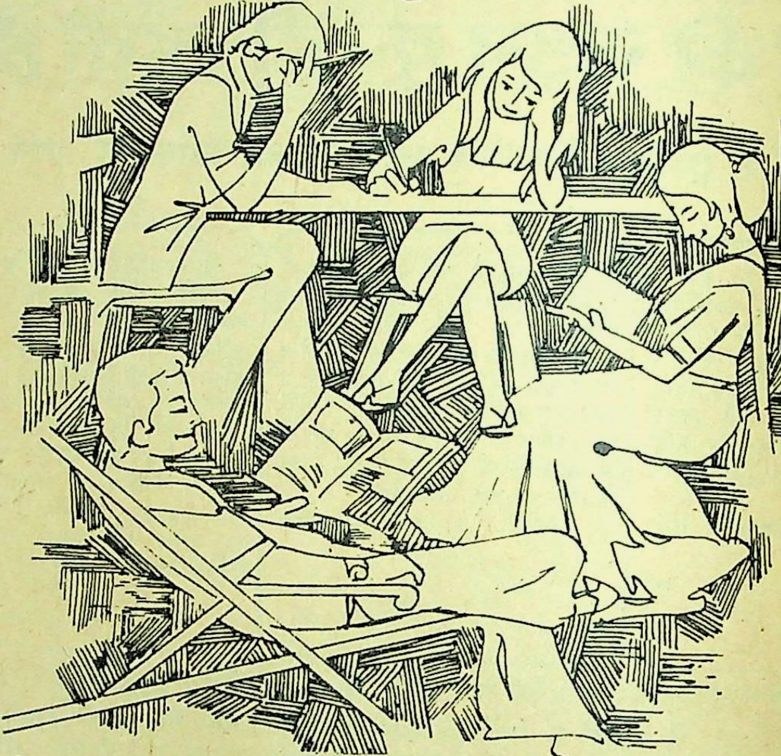

बाइस्कोप ! अपने शहर के सिनेमाघर का दिलचस्प वर्णन कीजिये और माधुरी से पुरस्कार लीजिये !

आपकी अदालत में ! अपनी राय माधुरी के अन्य पाठकों को बताइये और माधुरी से पुरस्कार लीजिये !

शीर्षक प्रतियोगिता ! सुंदर फोटो ! और उन पर आपके शायराना शीर्षकों पर माधुरी के पुरस्कार !

आपकी बात ! फिल्म और माधुरी संबंधी आपके पत्रों पर हर अंक में पुरस्कार !

★ आर्ट पेपर पर कलात्मक मुखपृष्ठ ★ अधिक सामग्री

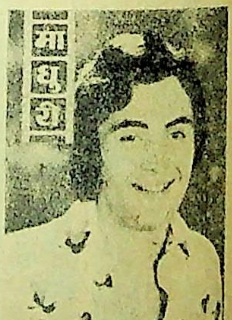

फिल्म पत्रिकाओं की रानी माधुरी

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

ARMS-BC/M-55-800 HN-R

साठे मॉल्टेक्स

इतने स्वादिष्ट हैं क्योंकि उनमें मॉल्ट है

ताज़ा, करारा व स्वाद में अनोखा

इस अनोखे स्वाद का कारण है मॉल्ट,
जो इस बिस्कुट में भरपूर है। पचने में हलका
यह बिस्कुट चाहे जितने भी खायें, और खाने को
जी चाहता है। इसलिये कि इसमें मॉल्ट है!

उपहार में देने के लिए सुंदर पेकेट में
और घर लेजाने के लिए खुला मिलता है।

आई. एस. आई मुहर वाले
मॉल्टेक्स का मतलब है अच्छी
किस्म की गारंटी वाले बिस्कुट

ISI
साठे मॉल्टेक्स बिस्कुट
SATHE MALTex BISCUITS
SATHE MALTex BISCUITS
साठे बिस्कुट
heros: SBC-54 L HIN

बेनेट कोलमेन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई-१, [illegible] कलकत्ता आफिस : १३ ९ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०-ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.

Binaca
MADE IN INDIA
Binaca
Green
toothpaste

वो दो जो मेरी साँसों में बसा करते हैं–

एक तुम

एक बिनाका ग्रीन

सच, बिनाका ग्रीन की निर्मल ताज़गी में बसी मेरी साँसें... और मेरी हर साँस में समाए तुम! मुझे तुमसे प्यार है... मुझे बिनाका ग्रीन से प्यार है क्योंकि क्लोरोफिलयुक्त बिनाका ग्रीन में पाये जाने वाले प्राकृतिक गंधनाशक से मेरी साँसों में फूल खिल जाते हैं.... आह! वह बहार... तुम्हारे साथ गुज़रे वह सुनहरे क्षण... वह महका महका सा मेरी साँसों का मधुबन!

महकी
साँसों का
मधुबन

बिनाका टूथब्रश की गोल बनायी गयी नोकें आपके मसूढ़ों को छिलने से बचाती है।

CIBA-GEIGY

Rediffusion/CG/

सारिका

सितंबर १९७५

18/11/75

गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय

राजेंद्रसिंह बेदी
हरिशंकर परसाई
गयास अहमद गद्दी
दीप्ति खंडेलवाल
श्रीनिवास उद्गाता
महेंद्रनाथ
फ़िक्र तौंसवी
श्रवणकुमार वर्मा
चंद्रा औलक
सुकीर्ति गुप्ता
मेहरुन्निसा परवेज़

टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन १ रुपया

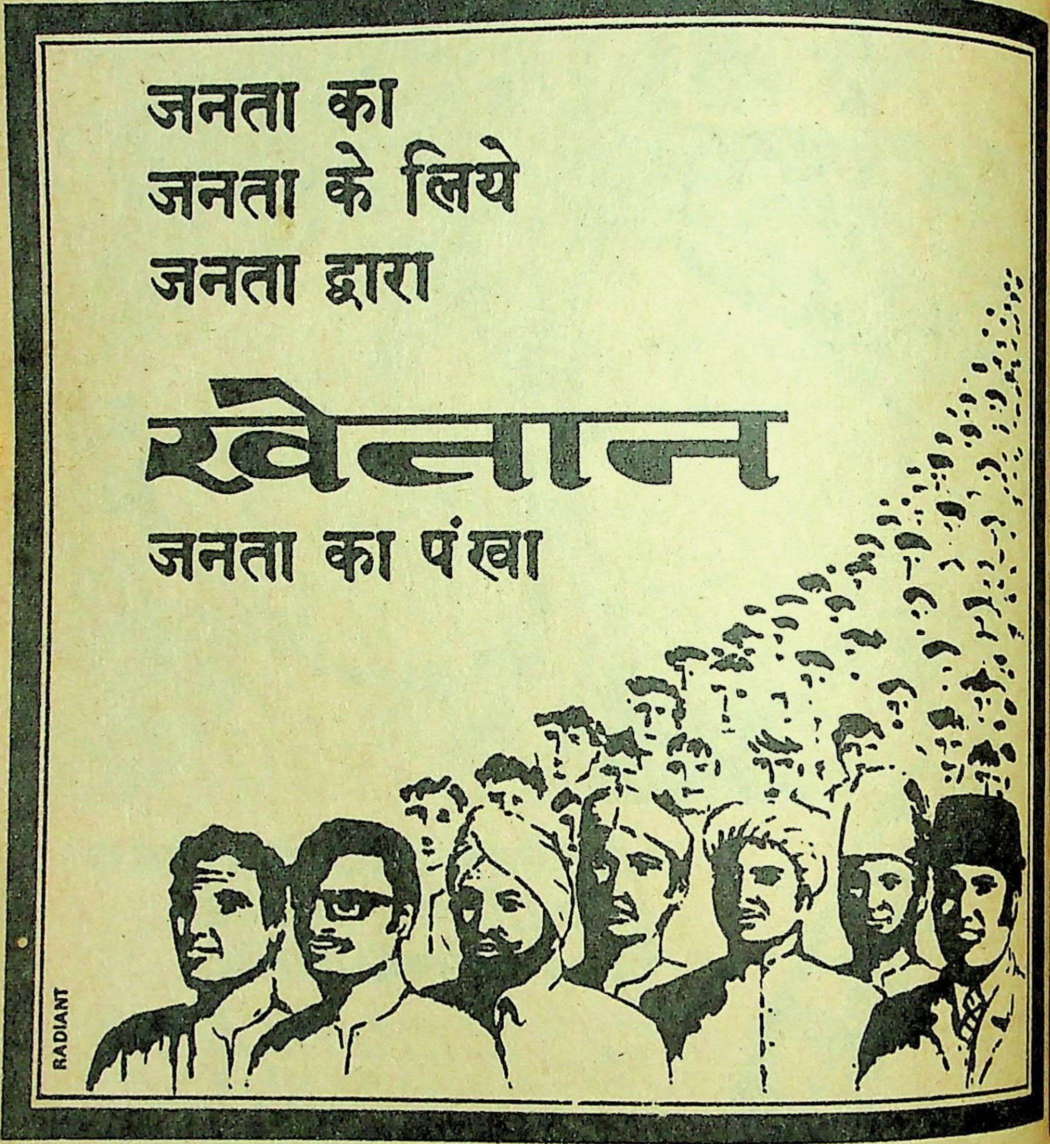
जनता का
जनता के लिये
जनता द्वारा
खेतान
जनता का पंखा
RADIANT

हम आपके सहयोग से परिपक्वता-दावों का भुगतान अधिक गति से कर सकेंगे

६४,८८९ आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में
११९.१ लाख रुपयों के दावों
का भुगतान रुका हुआ है।

३,२४,००० आवश्यकताओं की पूर्ति होने के कारण
८१२४ लाख रुपयों के दावों
का भुगतान हो चुका है।

पालिसी की अवधि पूर्ण होने पर दावों के भुगतान में देरी होने का एक कारण यह है-बीमेदारों द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति समय पर न होना।

जीवन बीमा निगम सामान्यतः डिस्चार्ज वाऊचर बीमेदार के पास परिपक्वता-तिथि के एक महिने पहले भेज देता है। अगर वाउचर ठीक तरह से न भरा हो और पालिसी के साथ निगम के पास न भेजा हो तो दावे के भुगतान में देरी हो जाती है।

यदि आपकी पालिसी की मियाद पूरी हो चुकी हो और यदि आपको डिसचार्ज वाउचर न मिला हो (१ प्रतिशत मामलों मे मशीन या कर्मचारी की त्रुटी से ऐसा हो जाता है) तो तुरन्त निगम के उस कार्यालय से सम्पर्क स्थापित कीजिए जहाँ से आपको सेवा मिलती थी।

निगम द्वारा भेजे गये डिस्चार्ज वाउचर बीमेदारों को नही मिलते, इसकी वजह यह है कि बीमेदार या तो अपनी पुरानी जगह छोड़कर नई जगह पर चले जाते हैं या पते के हेरबदल की ईत्तला निगम को देना भूल जाते हैं। ऐसे मामलों में निगम कर ही क्या सकता है।

१९७३-७४ में ४०३४ बीमेदारों का पता निगम को मालूम न होने के कारण दावों का भुगतान बीमेदारों को न हो सका।

१९७३-७४ मे डिस्चार्ज वाउचर या पालिसी-दस्तावेज न मिलने के कारण ५१,५५२ पालिसियों का याने ३९ प्रतिशत परिपक्वता दावों का भुगतान न हो सका।

आवश्यकताओं की पूर्ति का मतलब है दावों का शीघ्र भुगतान।

सामान्यतः डिस्चार्ज वाउचर ठीक तरह से भरने और पालिसी के साथ भेजने पर भुगतान जल्द होता है।

१९७३-७४ में ८,१२४ लाख रुपयों के ३,२४,००० परिपक्वता-दावों का भुगतान हुआ।

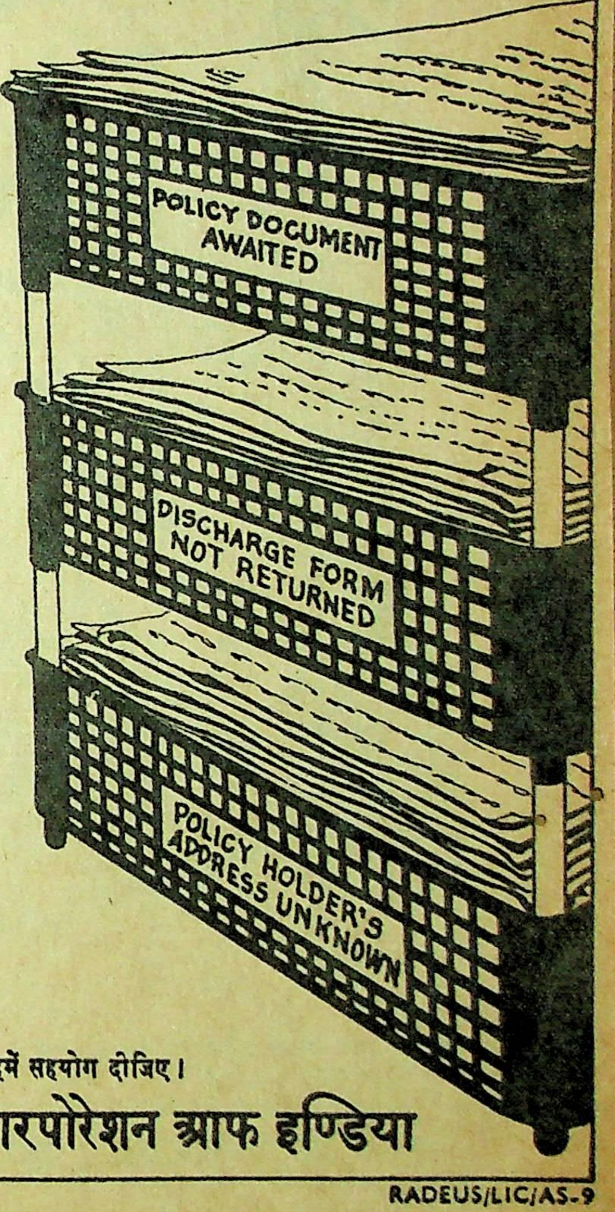

आपको अच्छी सेवा करने के लिए आप हमें सहयोग दीजिए।

लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन आफ इण्डिया

RADEUS/LIC/AS-9

अब
आधी क़ीमत में
जगमग सफ़ेदी
स्वस्तिक
डिटर्जेण्ट धुलाई का पाउडर

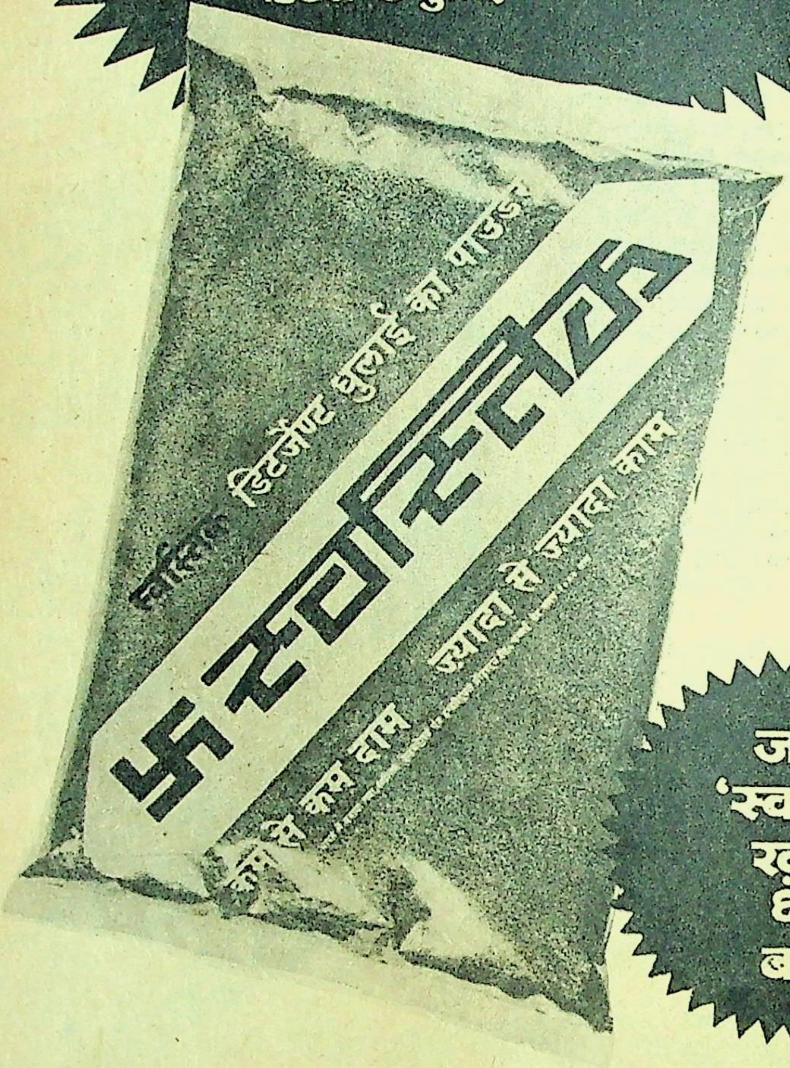
डिटर्जेण्ट धुलाई का पाउडर
स्वस्तिक
कम से कम दाम ज़्यादा से ज़्यादा काम

जब भी
'स्वस्तिक'
ख़रीदें,
६ रु.
बचायें

ऑप्टिकल व्हाइटनर युक्त नया स्वस्तिक डिटर्जेण्ट धुलाई का पाउडर आपके कपड़ों को जगमग साफ़-सफ़ेद धोता है. महँगे उत्तम डिटर्जेण्ट धुलाई के पाउडरों की तरह 'स्प्रे-ड्राइड' होने के कारण यह पानी में बहुत जल्दी घुल जाता है. और धुलाई के बाद कपड़े जगमगाने, चमचमाने लगते हैं. इससे हर प्रकार के वस्त्र धोये जा सकते हैं. और फिर भी हर १ कि.ग्रा. पैक पर ६ रु. की बचत! यह १ कि.ग्रा. और ½ कि.ग्रा. के पॉलिपैक में मिलता है.

कम से कम दाम...ज़्यादा से ज़्यादा काम

Shilpi-DM 9A/75 hin

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

सितंबर; १९७५
वर्ष : १५; पूर्णांक : १७३

उर्दू कहानियां

राजेंद्रसिंह बेदी : चश्मे बददूर १२
फिक्र तौंसवी : मीर बीमार हुए २०
गयास अहमद गद्दी : परिंदा पकड़ने वाली गाड़ी २४
श्रवणकुमार वर्मा : कांच का आदमी ३२
महेंद्रनाथ : बड़ा आदमी ३६

विशिष्ट लेख

आज का उर्दू कथा-साहित्य : काजी अब्दुल सत्तार १०

हिंदी कहानियां

हेमांगिनी रानडे : उसकी हत्या ४४
मेहरुन्निसा परवेज : गिरवी रखी धूप ४८
चंद्रा औलक : बोझ ६४
दीप्ति खंडेलवाल : निर्बंध ७२
सुकीर्ति गुप्ता : समानांतर ८४

लघु कथाएं

अश्रु और हास्य : १९
दृष्टिभेद : १९
नमकहराम : ४७
दुकानदारी : ६०
अनुरक्ति : ६०
पारसमणि : ६०
सवालहीन जवाब : फिलासफी : ६१
स्वर्गीय कुत्ते : ६१
परदे के पीछे : ६१
जरूरत : ६१
अन्नपूर्णा : ७७
दो विद्वान : ८३

लोक कथाएं

चीते से ब्याह २३
वरदान ५१

गोष्ठी रिपोर्ट

चौथा समांतर लेखक सम्मेलन : ८९

●

आद्य कथाकार (उड़िया) : श्रीनिवास उद्गाता ५२

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ८
कबिरा खड़ा बजार में : हरिशंकर परसाई ६२
कृतियां : राही मासूम रजा, रामदेव आचार्य ७८
गुस्ताखियां : प्रकाश पंडित ८०
व्यंग्य विचार : कैलाश सेंगर ९१

● आमुख : नंदन

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप संपादक : आनंद प्रकाश सिंह
- उप संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

(संयोजन : न. मा.)

● श्री सुप्रेम सिंह गुरुंग, किमिन (आसाम) से लिखते हैं:

समांतर कहानियां उन कड़वे-मीठे पर स्वादिष्ट देशी व्यंजनों जैसी हैं जिनका स्वाद—अनुभव हम लोगों को है. यह मात्र लेखकों का न हो कर पाठकों का भी है. कहानियों में आज के वास्तविक जीवन के वास्तविक चित्र हैं. . . मेरे पिताजी ने भी **'सारिका'** पढ़ना प्रारंभ कर दिया ह. वे आसाम राइफल्स के भूतपूर्व आनरेरी कैप्टन हैं. आपको आश्चर्य होगा, वे लघु कथाओं को छोड़ कर कहानियां नहीं के बराबर पढ़ते हैं, उन्हें काल्पनिक व कोरी समझते हैं. फिर भी एक कालम है जिसको वे सत्य मानते हैं और चाव से पढ़ते हैं. वह है **'कबिरा खड़ा बजार में.'** यह उनका भ्रम है या परसाईजी की कलम का जादू है, आप ही बताइए! . . .समांतर कहानी विशेषांक का प्रकाशन आपका एडवेंचर है जिसके लिए मैं आपको और आपके सहायकों को बधाई देता हूं. □

● श्री चंद्रमोहन दीक्षित, राजकीय पॉलीटेकनिक, कानपुर से लिखते हैं:

'सारिका' का नवलेखन अंक खंड १ पढ़ा. नये लेखकों को आशातीत सफलता मिली है. सभी कहानियां सामयिक होने के साथ-साथ आम आदमी के दर्द, विसंगत परिस्थितियों में जीने की दुरूहता, व्याप्त कुंठा एवं संत्रास का गहराई से अहसास कराती हैं. आज के सामान्य जन का सामाजिक परिवेश चारों तरफ से इतना दबा हुआ है कि वह कोई भी सही कदम उठाने में असमर्थ है. सामाजिक परिस्थितियां उसकी व्यक्तिगत मजबूरियां बन गयी हैं. **'परिक्रमा'** (गौरीशंकर कपूर), **'अंधे कुंए का रास्ता'** (अरुण मिश्र) और **'वापसी'** (मंदा पांडे) में पात्र व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने के बाद हार कर पुनः यथास्थिति को स्वीकारते हैं. **'कुछ कदमों का फासला'** (प्रभुनाथ सिंह आजमी), **'विक्षिप्त'** (अजय अग्रवाल), **'मशीन'** (शैलाम) में आम आदमी का उत्पीड़न है. **'जंगल में'** (ज्ञान चतुर्वेदी), **'अगिहाने'** (सुरेंद्र सुकुमार), **'गिद्ध'** (नर्मदेश्वर) और **'तह के नीचे'** (कृष्णकांत प्रवासी) भी सशक्त एवं अच्छी कहानियां हैं. □

● श्री रामसकल सिंह 'प्रकाश', चोरमा (बिहार) से लिखते हैं :

समांतर कहानी विशेषांक-९ की बड़ी प्रतीक्षा थी. मिलते ही खो गया उसमें. सचमुच ही आप आम आदमी के आसपास की कहानियों का चयन करते हैं. मेरी बधाई स्वीकारें. इस अंक की **'विक्षिप्त'**, **'सलाखों के आरपार'** (उषा व्यास 'छवि'), **'जंगल में'** एवं **'फफोले'** (सच्चिदानंद धूमकेतु) शीर्षक कहानियां बहुत ही पसंद आयीं. **'फफोले'** में लेखक ने पूंजीवादी मनोवृत्ति का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए आम आदमी को उससे खबरदार रहने की चेतावनी ही नहीं दी है, बल्कि उस सड़ी हुई मनोवृत्ति के सही इलाज का दिशानिर्देशन भी किया है. . .सही माने में **'फफोले'** अपने समय के संपूर्ण क्षणों का सही दस्तावेज है. **'मेरा पन्ना'** स्तंभ के अंतगत आप सामंती मनोवृत्ति के विरुद्ध जिस तल्खी के साथ अपने विचारों को प्रकट करते आ रहे हैं, वह प्रशंसनीय है. □

सभी वर्गों की पत्रिका

● श्री कुमार, संपादक 'तीर', गोड्डा, संताल परगना (बिहार) से लिखते हैं :

. . .पिछले एक वर्ष से **'सारिका'** में काफी बदलाव दीख रहा है. इस बदलाव को मद्देनजर रखते हुए आज यह कहा जाने लगा है कि **'सारिका'** अब संपूर्ण हिंदी वर्ग, देश और काल की पत्रिका हो चुकी है. अब यह पत्रिका सिर्फ बुद्धिजीवियों के लिए ही नहीं, बल्कि मेहनतकश मजदूरों, श्रमिकों एवं सर्वहारा वर्ग के लिए भी बहुत उपयोगी है. **'सारिका'** अब महलों, क्लबों और पुस्तकालयों में ही नहीं बल्कि झोपड़ियों, कल-कारखानों, रिक्शाचालकों एवं धोती-कुरताधारी किसानों के हाथों में भी दीखने लगी है. मैं **'सारिका'** के इस साहसिक परिवर्तन का हृदय से स्वागत करता हूं. □

● श्री अनिल कुमार सिंह, खजुरार (बिहार) से लिखते हैं :

बहुत लंबी प्रतीक्षा के बाद **'सारिका'** का समांतर कहानी विशेषांक—९ मिला. यह अंक कुल मिला कर अपने नाम को सार्थक करने वाला रहा. वस्तुतः **'सारिका'** भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में एक महत्त्वपूर्ण क्रांति की सूचक है. **'सलाखों के आरपार'** कहानी सचमुच हमारे अंतरमन को छू लेती है. **'मशीन'** तथा **'जंगल में'** कहानियां भी अति सराहनीय हैं. □

● श्री सुरेंद्रनाथ मिश्र 'अगम' हनुमना, रीवा (म. प्र.) से लिखते हैं:

'सारिका' का समांतर कहानी विशेषांक—९ सचमुच विविध स्वरों की सच्ची अनुगूंज है. समाज के दुखों के जितने विभाजित प्रकार हैं, **'सारिका'** उनका प्रतिबिंबन करने के कारण कथाजगत की संपूर्ण पत्रिका होने का सही मानदंड प्रस्तुत कर रही है. प्रादेशिक और क्षेत्रीय सीमा में देश के हर भाग से यथार्थपरक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवहारगत हलचलों-घटनाओं का चित्र जो जून अंक की इन सोलह कहानियों एवं लघुकथाओं न प्रस्तुत किया है, उसके प्रति निर्णय-संदर्भ में तो यही उक्ति ठीक है कि 'को बड़ छोट कहत अपराध. . .' फिर भी न जाने मन को क्यों कुछ विशेष जंची कहानियां हैं **'सलाखों के**

आरपार', 'यही— [illegible]' (रामलगन यादव) और 'अगिहाने'. रहा 'मेरा पन्ना', उसने तो अपने जीवंत उदाहरण के परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म-गहन और समयोचित दो टूक विचार की बेबाक शैली के कारण मन में आस्था और सही दिशा का संचार ही कर दिया है, करता रहा है. . . ☐

● **श्री सुशीलकुमार, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, रायगढ़ (म. प्र.) से लिखते हैं :**

समांतर कहानियां वर्तमान शोषित समाज की मजबूरियों और एक वर्गविशेष द्वारा इन मजबूरों पर किये जा रहे सामाजिक और आर्थिक वज्रपात को उजागर करने का माध्यम हैं. प्रेमचंद ने जिस महाजनी सभ्यता और राहुल सांकृत्यायन ने दिमागी गुलामी को समाप्त करने का बीड़ा उठाया, 'सारिका' की समांतर कथाएं उसे एक निश्चित दिशा दे रही हैं. धूमिल की कविता का तीसरा आदमी, जो रोटी से खेलता है, बेइंसाफी, अन्याय एवं अवैध साधनों से धन और सामाजिक प्रतिष्ठा क्रय करने वाला शोषक है, जिसे बेनकाब करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है एवं 'सारिका' ने उसे बेनकाब करने में भारी सफलता पायी है. परिसंवाद में श्री गोविंद मिश्र की भाषा भटकावपूर्ण लगती है, किंतु श्री यात्री ने समांतर कहानियों की महत्ता को स्पष्टरूपेण निर्धारित कर दिया है. 'सारिका' के संपादकीय एवं कथाओं, व्यंग्य, परिचर्या की एकरूपता से उम्मीद है कि मेरे देश का शोषित वर्ग अपनी लड़ाई में विजयी होगा यदि इन शोषकों को बेनकाब करता चले. ☐

● **श्री सुधाकर, दिल्ली से लिखते हैं :**

'सारिका' के समांतर कहानी विशेषांक–१० (जुलाई ७५) में डा. विनय ने समांतर साहित्य का अर्थ, क्षेत्र उसका कर्त्तव्य व उसकी भूमिका का अत्यंत सूक्ष्मता से विश्लेषण किया है. इतने अच्छे लेख के लिए डा. विनय वास्तव में बधाई के पात्र हैं. मेरे विचार में भी समांतर साहित्य की पहली मांग यही है कि लेखक भी आम आदमी होना चाहिए जिसके संघर्ष की अभिव्यक्ति वह करता है. . . **'क्या 'समांतर' महज आंदोलन है?'** परिसंवाद छापने के लिए **'सारिका'** को बधाई! इस अंक की लघुकथाएं व कहानियां हर बार की तरह हमारी अपेक्षाओं को पूरा करती हैं. ☐

मुझे मेरा साहित्य मिल गया है

● **श्री रमेशचंद्र धवन, ४ भिस्ती मोहल्ला, इन्दौर से लिखते हैं :**

जब से मुझे 'साहित्य' से लगाव हुआ, तब से मैं 'साहित्य' को ढूंढता फिरा. कई पुस्तकें, पत्रिकाएं देखीं और पढ़ीं, लेकिन मुझे 'साहित्य' के दर्शन नहीं हुए और न ही आत्मा को संतुष्टि मिली. . . लेकिन जब से मैंने मेरे एक मित्र द्वारा दी हुई अक्टूबर की **'सारिका'** पढ़ी, तब से तो मैं इसका आशिक हो गया हूं. पढ़ने के साथ-साथ प्रत्येक अंक को संभाल कर भी दस्तावेज के रूप में रख रहा हूं. साहित्य क्या है? मानव ही साहित्य है, क्योंकि मानव ही साहित्य लिखता है, मानव ही साहित्य पढ़ता है और मानव ही साहित्य के बारे में सोचता है. यही उत्तर मुझे **'सारिका'** को पढ़ने से मिला है. . . ☐

● **श्री मनोहरलाल डेंबला, लोहा मंडी, आगरा से लिखते हैं :**

मैंने जुलाई १९७५ की **'सारिका'** में **'अवरोध'** शीर्षक कहानी (अमय) पढ़ी. इस कहानी में जिन कैप्सूल 'रेस्टिकलिन' का जिक्र किया गया है, वह हिंदुस्तान की एक बड़ी कंपनी का उत्पादन है, जिसका नाम है साराभाई केमिकल्स लि., जो 'स्क्विब' के उत्पादनों को बनाते हैं. क्या कहानी में असाधारण उत्पादन का नाम ज्यों-का-त्यों रखना उचित है? दूसरी बात—किसी भी डाक्टर या फिजिशियन को दवा की क्वालिटी या नकलीपन के बारे में राय देने का कोई अधिकार नहीं होता. दवाओं का विश्लेषण करते हैं फार्मासिस्ट या एनालिसिस केमिस्ट. डाक्टर का तो विश्लेषण से दूर का भी रिश्ता नहीं है. वह दवा के असलीपन या नकलीपन के बारे में कैसे राय दे सकता है? ☐

● **श्री दिवाकर, सैदपुर (पटना) से लिखते हैं :**

नवलेखन अंक में कहानियों की अधिकता होते हुए भी यह अंक लचर नहीं हो पाया. कहानियां 'नवलेखन अंक' की मर्यादा बनाये रहीं. नये-नये कहानीकारों की रचनाओं से अंक विशेष प्रतीकात्मक रहा. ☐

१६वीं अखिल भारतीय मुद्रक कान्फ्रेंस में मदुरई कार्पोरेशन के कमिश्नर श्री ए. शंकर सुब्रियन से मुद्रण की उत्तमता का पुरस्कार ग्रहण करते हुए बेनेट कोलमैन ऐंड कं. के कर्माशियल मैनेजर श्री जाल एस. कार्डमास्टर. इस कान्फ्रेंस में टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस को आठ पुरस्कार प्राप्त हुए.

आज का उर्दू कथा-साहित्य

• काजी अब्दुल सत्तार

हर साहित्यिक युग में लेखकों की तीन पीढ़ियां होती हैं. पहली पीढ़ी उन लेखकों की होती है, जो अपने कृतित्व के कारण स्थापित हो चुके होते हैं; दूसरी पीढ़ी के लेखक भी जाने-माने होते हैं, लेकिन उनके बारे में यह कहा जाता है कि उन्हें अपना श्रेष्ठतम साहित्य अभी लिखना है; लेकिन उम्मीद की जाती है कि उनकी प्रतिभा निकट भविष्य में ही अपने वायदों को पूरा करेगी. तीसरी पीढ़ी अपनी पहचान और ख्याति के लिए संघर्षरत लेखकों की होती है.

* *

उर्दू कथा-साहित्य की त्रासदी यह है कि उसकी भाषा मूल रूप से कविता की भाषा रही है और उर्दू कविता उस संस्कृति को अभिव्यक्ति देती रही है, जिसे काफी हद तक 'उर्दू संस्कृति' कहा जा सकता है; यह संस्कृति नफासत से भरपूर रही है, लेकिन इसका सीधा संबंध मुशायरों से भी रहा है— यानी आपको ख्याति प्राप्त करनी है, तो मुशायरों में हिस्सा लीजिए.

उर्दू की मूल प्रकृति काव्यात्मक है; इसलिए कोई ताज्जुब नहीं कि कम पढ़ा-लिखा आदमी भी कविता की थोड़ी-सी समझ होने पर उर्दू कविता लिख लेता है. अंग्रेज लोग दिल्ली और लखनऊ तक काफी देर से पहुंचे. प्रेस का प्रभाव भी इसीलिए इन इलाकों में देर से पहुंचा. अतः इन इलाकों के लोग मुशायरों का ही आनंद उठाते रहे. गद्य-लेखक को मुशायरे का मंच उपलब्ध नहीं होता. इसलिए उर्दू कविता की लोकप्रियता के चलते उर्दू कथा-साहित्य को काफी नुकसान उठाना पड़ा है.

साथ ही उर्दू शायरी की रचना-प्रक्रिया ने उर्दू भाषा और साहित्य की मानसिकता को भी बिगाड़ दिया है. उर्दू शायरी का आधार है गजल और गजल का आधार है शे'र. और शे'र की दो पंक्तियों में एक विचार बंधा रहता है. इस बंधन का प्रभाव उर्दू गद्य पर भी पड़ा. अचेतन रूप से ही हमारा चिंतन भी सीमित हो गया. शायद यही वजह है कि उर्दू में विश्व-स्तर की कहानियां तो लिखी गयीं, लेकिन उपन्यास नहीं लिखे जा सके.

काव्य की विशिष्ट भाषा के अध्ययन का सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि यह भाषा जन-भाषा को अपने साथ नहीं चला पायी. यह देख कर ताज्जुब होता है कि १९४७ से पहले भी, जबकि उर्दू श्रीनगर से ले कर हैदराबाद तक और कराची से ले कर ढाका तक समझी और सराही जाती थी, दिल्ली और लखनऊ जैसे उर्दू के गढ़ माने जाने वाले इलाकों में जन सामान्य की भाषा उर्दू नहीं थी. उर्दू का काव्य और उसकी नफासत जन सामान्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बन सके.

* *

उर्दू के पहले श्रेष्ठ कथाकार थे प्रेमचंद. उनके बाद प्रगतिशील आंदोलन के लेखकों के माध्यम से उर्दू कहानी अपने स्वर्ण युग में प्रविष्ट हुई. इस आंदोलन के स्थापित लेखकों में से कृष्णचंदर, इस्मत चुगताई तथा राजेंद्रसिंह बेदी जैसे लेखक आज भी लिख रहे हैं और अपने अननुकरणीय तरीके से खांटी सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्ति दे रहे हैं. उनकी कहानियों के पात्र टाइप्ड हैं, फिर भी इन कहानियों में श्रेष्ठतम कहानी-कला के दर्शन होते हैं. ये कहानियां अपने युग के सुख-दुखों, विचारों और भावनाओं का दर्पण हैं.

देश का बंटवारा अपने साथ अनेक त्रासदियां ले कर आया और उर्दू को इससे सबसे बड़ा झटका लगा. उर्दू पाठकों की संख्या नगण्य रह गयी. उर्दू में लिखने के लिए किसी तरह का प्रोत्साहन नहीं रह गया. प्रगतिशील आंदोलन, जो देश की आजादी के लिए प्रतिबद्ध था, और जिसने इस दिशा में अथक प्रयास भी किये, अब पूरी तरह बिखर चुका था. आंदोलन के भीतर चलने वाले आपसी विवाद भी अब सतह पर आ गये. जमींदारी उन्मूलन ने गांवों में रहने वाली ८५% जनता के सामाजिक और आर्थिक ढांचे को बदल कर रख दिया. लेकिन अपने बिखराव के कारण प्रगतिशील आंदोलन ने इन आमूल परिवर्तनों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया. भारत पर चीनी आक्रमण ने सिद्धांतवादी समाजवाद में जनता के विश्वास को डगमगा दिया. अडिग और अजेय मानी जाने वाली सोवियत शक्ति को क्यूबा-संकट ने गहरा धक्का पहुंचाया. इससे अनेक समाजवादी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए.

इन्हीं सब घटनाओं और स्थितियों की छाया में उर्दू की दूसरी पीढ़ी ने लिखना शुरू किया— ये लेखक थे : कुर्रतुल-एन हैदर, बलवंत सिंह, जोगेंद्र पाल, टी. एस. चटर्जी, जीलानी बानो, वाजिदा तबस्सुम, शेख़ अत्तार, गयास अहमद गद्दी, इकबाल मतीन, रामलाल, रतन सिंह, इकबाल हजीद

बलराज मेनरा, अनवर अजीम, और सुरेंद्रप्रकाश. यहां यह कहना असंगत नहीं होगा कि ये सभी लेखक कहीं-न-कहीं प्रगतिशील आंदोलन से प्रभावित थे. इस पीढ़ी की श्रेष्ठ रचनाओं और प्रगतिशील आंदोलन के श्रेष्ठ लेखकों की रचनाओं के बीच का अंतर कहानी की कलात्मकता, वैयक्तिक समस्याओं की व्याख्याओं और सामाजिक परप्रेक्ष्य में उनके चित्रण तथा सामाजिक यथार्थ के प्रति उनके नजरिये में देखा जा सकता है. यही अंतर प्रगतिशील तथा नव-प्रगतिशील लेखन के बीच की विभाजन-रेखा है. नव-प्रगतिशील रचनाओं को कभी-कभी 'आधुनिक' भी कहा जाता है, जोकि व्यक्तिगत विश्वास और आस्था का ही मामला है. 'आधुनिक' शब्द कोई नया नहीं है; लेकिन कुछ लोग यह सोचते हैं कि इस शब्द के रूप में उन्हें जैसे अलादीन का जादुई चिराग ही मिल गया है.

★ ★

मैं आधुनिकता और आधुनिकतावाद के विवाद में नहीं पड़ना चाहता; लेकिन मैं यह बड़ी शिद्दत से महसूस करता हूं कि अगर उर्दू साहित्य को ले कर हमारा नजरिया 'ईमानदार और रचनात्मक' रहा होता तो प्रगतिशील आंदोलन के बिखराव से पैदा हुए शून्य को बखूबी भरा जा सकता था. कुछ युवा लेखकों ने खुद ही 'आधुनिक' होने का खिताब अपने आपको दे डाला है.

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 'आधुनिकता' अपने आपमें कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है. और साहित्य में आधुनिकता को वैज्ञानिक आधुनिकता की तरह देखा-परखा नहीं जा सकता. साहित्यिक आधुनिकता आयातित विचारों पर जिंदा नहीं रह सकती, क्योंकि ये विचार अपनी खास जमीन की उपज होते हैं. देश की तेजी से बदलती हुई सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों से उत्पन्न समस्याओं को अच्छी तरह समझ लेने के बाद ही आधुनिक उर्दू लेखक उनके बारे में अपना फैसला दे सकता है. विदेशी बाजारों से चुराये गये पुराने विचार भोले-भाले पाठकों को आकर्षित तो कर सकते हैं, लेकिन यह आकर्षण ज्यादा देर नहीं बना रह सकता. आधुनिकता तकनीक में नहीं होती. आधुनिकता का अर्थ है गहन पर्यवेक्षण, जागरूकता और सुलझा हुआ नजरिया. नयी पीढ़ी के लेखक इस शब्द— 'आधुनिक'— से बुरी तरह ग्रस्त हैं, क्योंकि 'आधुनिक' कहानियां लिख कर, उन्हें किसी साहित्यिक पत्रिका में छपवा कर शोहरत हासिल करना आसान बात है. इन तथाकथित आधुनिक कहानियों में न तो कथानक की जरूरत होती है, न चरित्रों की, न अभिव्यक्ति की गहनता, आयाम या नवीनता की; और न ही नये अर्थों की. मेरा विश्वास है कि जो आदमी क्लासिक किस्म की कहानी नहीं लिख सकता, वह आधुनिक कहानी भी नहीं लिख सकता, क्योंकि सूक्ष्म, प्रतीकवादी कहानी लिखने के लिए बेहतर कलात्मकता, और नये रंग, गहराई और आयाम की रचना के लिए बेहतर जागरूकता की जरूरत होती है.

सच बात तो यह है कि अतीत की तरह आज उर्दू में कोई 'नयी पीढ़ी' है ही नहीं. हमारी युवा प्रतिभाएं अब उर्दू की बजाय अन्य भाषाओं में अपने आपको अभिव्यक्त कर रही हैं. . . इसलिए समकालीन उर्दू कथा-साहित्य का एक महत्वपूर्ण आयाम नदारद है. फिर भी कुछ नाम ऐसे हैं जो संभावनाएं जगाते हैं— जैसे मोहम्मद उमर मैमन, फरखंदा लोधी, जमीर हसन, फैयाज रिफअत आदि.

★ ★

एक जमाना था जब उर्दू कहानी पूरे उपमहाद्वीप की कहानी को प्रभावित करती थी. वह जमाना था जब लोगों ने मंटो, बेदी, कृष्ण तथा इस्मत की कहानियां पढ़ने के लिए उर्दू जबान पढ़ना शुरू किया था. आज का पाठक उर्दू साहित्य को संरक्षण देने के खयाल से उर्दू पत्रिकाएं तो खरीदता है, लेकिन उनमें छपी कहानियों को न तो वह समझ पाता है, न उन्हें सराह पाता है— इसलिए वह दुबारा पत्रिका खरीदने की गलती न करने की कसम खा लेता है. ऐसा लगता है जैसे लेखक पाठकों के लिए नहीं, अपने लिए लिख रहे हों. वे भूल जाते हैं कि अच्छे साहित्य में अर्थों के विभिन्न स्तर होते हैं. साफ है, आज का उर्दू कथा-साहित्य उर्दू जबान की मौत के लिए जिम्मेदार कारणों में से एक बन गया है. □□□

(मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद में 'भारतीय भाषाओं में समकालीन लेखन' पर हुए सम्मेलन में पढ़े गये लेख पर आधारित.)

• तैयब बादशाह

चश्म-ए-बद्दूर

• राजेंद्रसिंह बेदी

यह वाकया भी सनीचर के रोज हुआ.

तुम कहोगे कि तुम्हारे साथ सब वाकयात सनीचर ही को क्यों होते हैं? तो बोलो, मैं क्या जवाब दूं! यही कह सकता हूं न, कि हफ्ते के बाकी दिनों में तो मैं वाकयात को होता हूं. . .

बात सीधी है, बाकर भाई, सनीचर के दिन में सबसे बड़ी खूबी यह है कि इसके एक दिन पहले कोई छुट्टी नहीं होती. (हां, साल में एक दिन होती है, अलबत्ता, गुड फ्राइडे वाले दिन. लेकिन चंद लोगों की बदकिस्मती से बाजवक्त गुड फ्राइडे भी इतवार को आ पड़ता है और उनकी छुट्टी मारी जाती है!) लेकिन सनीचर के रोज कोई ऐसी मुसीबत नहीं होती. ऐसी सिक्केबंद छुट्टी आती है कि आदमी सब की छुट्टी बुला के रख देता है. वह यह भी भूल जाता है कि सनीचर से एक दिन पहले उसे जुम्मा की नमाज पढ़नी पड़ी थी. नमाज तो खैर फर्ज हैं. इतवार को भी. लेकिन तुम सच बताओ बाकर भाई, अपनी सलमा की कसम खाओ, क्या इतवार को तुम्हारी नमाज या नमाजों पर कजा नहीं छाई होती?

सनीचर की सुबह को अलबत्ता कायनात के नंबर दो (पैसे नहीं) सितारे, जिसे तुम जुहल और हम हिंदू लोग सनीचर कहते हैं, को थोड़ा रिश्वत देनी पड़ती है—और बस. सनीचर के दिन रिश्वत सिर्फ इतनी ही है कि बस मंदिर जाओ, जिसके बगल में एक दूकान होगी, हमेशा होगी, जहां से तेल, नारियल, हार वगैरा मिल जायेंगे. वहां से सरसों के तेल की एक पली खरीदो—सरसों का न मिले तो खोपरे का ही चलेगा—जो पच्चीस पैसे में मिल जायेगा. तेल डालने के लिए लोहे की कटोरी तेल वाला खुद ही देगा. और उसके लिए कोई अलग दाम नहीं लेगा, क्योंकि मूर्ति पर चढ़ावा हो जाने के बाद वह कटोरी अपने आप तेल वाले के पास चली आयेगी—मय तेल के. तो लोहे की कटोरी में तेल, तेल में चंद दाने उड़द के और एक पैसा तांबे का—पहले तो यही होता था, लेकिन आजकल तो तांबा रहा है न पैसा. पैसे की जगह पांच-दस पैसे ने ले ली है और तांबे की जगह निकल ने, जो किसी-न-किसी तरह से तुम्हारी जेब से निकल ही आयेगा. यह सब ले कर चलो, क्योंकि देवता लोग भी अवसरवादी हो गये हैं और हालात के साथ एडजस्ट करना सीख गये हैं.

बात यह है बाकर, सनीचर का ताल्लुक हर काली चीज से होता है, जिसका दान वाजिब है, मसलन लोहा, उड़द, काला कपड़ा, छतरी, नंबर दो का पैसा, फिल्म, तुम्हारा दिल—लेकिन दान के सिलसिले में तुम लोहे की कटोरी में तेल तक ही रहो, बहुत वह न उड़ो. हां, जो काम पच्चीस पैसे में हो जाये, उसके लिए लाखों का क्या सोचना! तेल की पली में अपना मुंह देखते हुए मंदिर को धाओ और जाते में सिर्फ तेल ही में देखो. तुम्हें उसमें अपना चेहरा अपने बाप का दिखाई देगा, जिसमें कोई शर्म की बात नहीं. ठाकुरद्वार पहुंचो तो जूता उतार दो—उतार लो मैंने कब कहा है! आखिर नास्तिक हो न! जूता मंदिर के बाहर बैठी हुई औरत की निगरानी में दे दो. यह बहुत जरूरी है. तुम औरत को जानते ही हो न. अगर तुम जूता उसके हाथ में नहीं दोगे तो वह खुद ले लेगी. जूते के बाद मंदिर में जाओ और बाहर का सब भूल जाओ. मूर्ति के सामने सिर नवाओ तो किसी औरत का खयाल दिल में न लाओ, चाहे वह अपनी मां ही क्यों न हो. फिर कोई जाप, किसी इस्मे-आजम का जाप करो. अगर याद नहीं तो न सही; कोई ऐसी बात दिल में दोहराओ, जिसमें कम-से-कम वजन या तरन्नुम तो हो. एक बात तुम्हें बता दूं कि सब देवी-देवता, पीर-पैगंबर गद्य यानी नस्र के बहुत खिलाफ हैं. इसलिए, कुछ भी याद न आये, तो यही कहते जाओ, लालामूसा छह-छह पैसे. . . लालामूसा छह-छह पैसे . . . यह तुम्हें रेलगाड़ी की आवाज मालूम होती है न? रेलगाड़ी हमेशा वही कहती है जो तुम कहते हो. ऐसे ही भगवान भी वही कहता है जो तुम कहते हो.

मंदिर से बाहर आओगे तो पहला वरदान सनीचर का तुम्हें यह मिलेगा कि ऊपर तुम्हारे ऐंगल से तुम्हें जूता रखने वाली के दूध दिखाई देंगे, जिनमें कोई दू

नहीं होगा. दूसरा यह कि चाहे तुम्हारी जेब में पैसा (दस पैसे) भी न हो, फिर भी बेशुमार बच्चे तुम्हें घेर लेंगे, और पुकारेंगे—सेठ, ओ सेठ! . . .बस, दुनिया में जिसको औरत और पैसा मिल गये, उसे और क्या चाहिए?

माफ करना, बाकर भैया, मैं बात जरा लंबी और घुमा-फिरा कर करता हूं. प्रोमोशन रुक जाने से मेरा दिमाग घूम गया न! तुम्हारा जब और जहां जी चाहे, रोक देना.

बात मैं सनीचर की कर रहा था. लेकिन आज के जमाने में एक बात और दूसरी बात में रब्त रख पाना बड़ा कठिन हो गया है. हमारे सब शायर और अदीब इसके गवाह हैं. पर वे भी क्या करें? महंगाई भी तो कितनी बढ़ गयी है! कद्रों में उथल-पुथल हो गयी! रब्त तो गया ही था, साथ जब्त भी गया. मालूम होता है समय ने रिजरपिन का टीका लगा दिया और दिमाग का वह हिस्सा ही सुन्न हो गया, जो बताता है कि पहले आप यह बात कर रहे थे और अब यह कर रहे हैं.

हां, मैं सनीचर की बात से जरा परे हट गया. लेकिन आ रहा हूं उसकी तरफ. यह चश्मा मेरा देख रहे हो न? इसमें डबल कॉन्वेक्स के शीशे लगे हैं. आम आदमी इनमें से देखे तो चींटी भी उसे हाथी लगेगी; शायद इसीलिए मैं रूसी कांसुलेट में काम करता हूं क्योंकि रूसियों को हर चीज अपने असल से सौ गुना बड़ी मालूम होती है. अवाम, दुनिया भर के अवाम, के लिए उन्होंने बहुत कुछ किया है. लेकिन अवाम की इतनी गरदान की है कि वे खास हो गये हैं. तुम देखना अगले पचास बरस के अंदर जो इनकलाब आयेगा, वह खास ही का होगा, जिसकी नींव सब इनकलाबों की मां फ्रांस में सार्त्र और सॉर्बोन के छात्रों ने रख भी दी है.

मेरी यह बात कांसुलेट में न कहना और न यह बताना कि मैं सनीचर, राहु और केतु की बातें करता हूं. नहीं तो मेरी छुट्टी हो जायेगी धरम से. रूसियों का यह है न कि वे कहते नहीं, करते हैं.

रूसी मेहनती बहुत हैं. उनके दफ्तर में जो काम करता है, उसे निचोड़ लेते हैं. शायद उनको पता चल गया है कि हर हिंदुस्तानी फितरतन कामचोर होता है. उसका बस चले, बिना काम किये पगार मिले, तो कभी काम न करे. पश्चिम में हर आदमी की तमन्ना रहती है कि वह जिंदगी की आखिरी सांस तक व्यस्त रहे, लेकिन हिंदुस्तानी यही सोचता रहता है कि कब वह रिटायर होगा और काम के झंझट से छूटेगा. बात वह पांच साल बाद की कर रहा है, लेकिन टांगें वह अभी से पसारना शुरू कर देता है. मुझसे पूछो तो मैं बताऊं; हिंदुस्तानी दरअसल काम मिलने से पहले ही रिटायर हो चुका होता है. इसकी वजह यहां की आबोहवा नहीं; बल्कि उसके कर्म व अमल की फिलॉसफी है, जिस पर जरूरत से ज्यादा जोर देने से वह बे-अमल हो गया है.

* *

एक बात है, बाकर भाई, इनसान आखिर इनसान है. रूस और अमरीका तो क्या, वह चाहे हिंदुस्तान ही का क्यों न हो. 'स्टेक' और 'शाश्लेक' की जगह इडली-डोसा, मूंग की दाल, मुर्ग-मुसल्लम या कड़ाह परशाद ही क्यों न खाता हो, मगर जिंदगी की हर अच्छी चीज उसे भी अच्छी लगती है. सनीचर को मंदिर से लौटने के बाद मैंने 'इंडियन एक्सप्रेस' में पढ़ा कि 'लिटल हट' रेस्तरां में मरियाना नाच रही है. मरियाना नाचते वक्त अपने बदन पर कहीं सिर्फ अंजीर का पत्ता पहनती है. हां भई, लोग इसे भी पहनना ही कहते हैं. फिर सामने अपने दूध पर मैस्मरिज्म के दो नुक्ते-से पेंट कर लेती है. हालांकि हमारी औरतें तो कपास का खेत का खेत अपने बदन पर उगा लेती हैं!

मेरे एक दोस्त, अरे तुम्हीं तो थे बाकर, जिसने बताया था कि मरियाना का रंग गोरा है न काला,

• सुरेश शेठ

बस इश्क वाली है. उसका बाप लेबनानी है और मां ईराकी. और यह सब मिल कर लोगों को मिराकी बना देता है. वह जैतून के तेल की मालिश से अपने बदन को इतना लचकदार बना लेती है कि मालूम होता है कि ऊपर के हिस्से का नीचे से कोई ताल्लुक ही नहीं. जैसे हमारी ट्रॉली बस होती है न, जिसमें ट्रॉली पर ड्राइवर होता है और पीछे सवारियां, और इन दोनों का आपस में कोई ताल्लुक नहीं होता. यही वजह है कि वे अकसर उलट जाती हैं. मरियाना को देखने वाले भी तो ऐसे ही उलटते, जख्मी होते, मर जाते हैं. . .मैंने तुम्हें कहा था न कि औरत के बारे में हर मर्द का एक फेटिश (यानी खब्त) होता है, चुनांचे मेरा खब्त उसकी कमर है और तुम जानो बाकर भाई, दुनिया के सब फसाद औरत की कमर से शुरू होते हैं!

* *

तो सनीचर की एक शाम को मैंने ब्लादीमीर, अपने ऊपर के अफसर से, दो घंटे की छुट्टी मांगी, लेकिन उसने इतना रौब से 'नीयत' कहा कि मुझे उसकी नीयत पर शक पैदा हो गया. ऐसी निश्चितता सिर्फ रूसी ही के लहजे में हो सकती है. उसके साथ वाली मेज पर ब्लादीमीर खायाखोफ के ऊपर का अफसर निकोलाई क्रोपोत्किन बैठा था. अब रूसी दफ्तरों में ऐसा होता है कि आप अपने ऊपर के अफसर के ऊपर के अफसर से बात नहीं कर सकते. इसलिए मैंने दरख्वास्त को ब्लादीमीर खायाखोफ के ही सामने दोहराया, बीवी की बीमारी का बहाना बनाया, लेकिन वह जवाब में बोला—–नहीं, घंटा भी नहीं. मुझे ज्यादा बुरा इसलिए नहीं लगा कि मैं जानता था, उसकी हिंदी मेरी रूसी से भी ज्यादा कमजोर है, इसलिए घूंट का खून पी कर रह गया यानी चुप हो गया.

चुप तो हम पहले ही रहते थे, मगर अब और भी चुप हो गये. यह और भी चुप क्या होता है, यह तुम न जान सकोगे, मेरी जान; क्योंकि तुम दफ्तर के बयाबान में कभी खोये ही नहीं. . .आमतौर पर हमें दफ्तर से छह बजे छुट्टी हो जाती है. अभी पूरे दस मिनट बाकी थे कि मैंने एन्वॉयसें समेटना शुरू कर दिया और ब्लादीमीर की तरफ सिर्फ इसलिए नहीं देखा कि वह जरूर मेरी तरफ देख रहा होगा. मेरे दिमाग में मरियाना के बारे में अपने आप एक नज्म पल रही थी. . .मरियाना, ओ मरियाना, तेरे लिए आज मर जाना. . .कैसी है?

कुछ देर में, मैं बस पकड़ कर 'लिटल हट' पहुंच गया.

'लिटल हट' दरअसल एक बड़े होटल का हिस्सा है. उसका नाम ही लिटल हट है, वरना अच्छी-खासी जगह है उसमें. चीजों के फैलाव को आखिर पैमाने ही से तो नहीं नापा जाता. हमारे सामने और भी बहुत कुछ है. देखो न, इतनी बड़ी कायनात और फिर उसमें मां की गोद. माइक्रोकॉस्म में माइक्रोकॉस्म. बंबई शहर की रौनक बड़ी है या सलमा की बांहों का सुकून? नसीबन का बुर्का बड़ा है या मरियाना का अंजीर का पता? अगर मालिकों ने दीवारों को खास रंग का असर दे रखा था या उन पर ऐसे ही सूक्ष्म चेहरे टांक रखे थे, तो महज लोगों को भरमाने के लिए. बाजवक्त बदसूरती इरादे से भी पैदा करनी चाहिए ताकि दूसरों को अपना आप खूबसूरत लगे.

'लिटल हट' हर उम्र, हर किस्म के लोगों से पटा पड़ा था. इसकी वजह सिर्फ मरियाना का नाच, उसके बदन की लोच और खूबसूरती ही नहीं थी, बल्कि वह शून्य भी, जिसे पाटने की इच्छा शादी के तीसरे-चौथे साल ही मर्द और औरत में पैदा हो जाती है. या फिर जिंदगी की सादा-सी हकीकत कि कुछ घोड़े दौड़ते ही उस वक्त हैं, जब साथ वाले दौड़ें.

कोने में मुझे एक सीट नजर आयी, जिसके एक तरफ कोई दुबला-पतला अष्टावक्र-सा आदमी बैठा था. वह शक्ल से लायब्रेरियन मालूम होता था.. . .कमाल की बात है न, बाकर भाई, परिचय पर वह सचमुच ही यूनाइटेड स्टेट्स इनफरमेशन सर्विस का असिस्टेंट लायब्रेरियन निकल आया. तुम कहोगे कि लायब्रेरियन की कोई खास शक्ल होती है? तो मैं कहूंगा, हां. उसके चेहरे ही पर कार्ड-इंडेक्स होता है. जैसे हर शायर की नाक में थोड़ा पानी और मुंह में ज्यादा लार होती है. फिर लायब्रेरियन की आंखें यों घूमती हैं जैसे सफे उलट रही हों. मरियाना की बात तो छोड़ो, उसकी कमर तो सफे उलटती है.

इस असिस्टेंट लायब्रेरियन ने अपनी अंग्रेजी में बहुत अमरीकी गुनगुना पैदा करने की कोशिश की, लेकिन हिंदी कहीं-न-कहीं से अपना मुंह बाहर निकाल ही लेती है, बल्कि इस अमल में एक अजीब दोगली-सी चीज पैदा हो गयी—–हिंदुस्तानी गुनगुना!

उसने जो बुश्शर्ट पहन रखी थी, उस पर नेक्सस-प्लेक्सस के अश्लील वाक्य छपे हुए थे—धुंधली-सी पोर्नो तस्वीरों के ऊपर. और उन सब को एक बिजली रंग की लंबी-चौड़ी नेकटाई ने एक हद तक छिपा रखा था. नीचे बेल-बॉटम के उसने जैसे इरादे से फूंसड़े निकाल रखे थे. चेहरे पर दोनों तरफ पुश्किन की तरह के बड़े-बड़े कलमों के गुच्छे. . .गोया वह आदमी और हिप्पी के बीच पैबंद मालूम होता था. वह कोई.आदमी होने की बजाय उसका मुखपृष्ठ था.

यह तुम थे? नहीं-नहीं, तुम्हारी ही तरह का कोई और था जिससे शादी करने के लिए अमरीका से एक लड़की, हैपी फेरागोलो (जि के बाप-दादा इटली से जा कर अमरीका में आबाद हो गये थे) आयी थी. खैर फैरा को करो फायर और गोलो को मारो गोली, लेकिन एक बात उसने आज के हिंदुस्तानी नौजवानों के बारे में बड़े पते की कही थी. . .यह कि . . .ये अमरीकियों से भी कुछ ज्यादा ही अमरीकी हैं! क्या मजे की औरत थी, बाकर, अकेली ऐसी औरत जो मर्द से मिले बिना ही उससे कई बार मिल चुकने का आलम पैदा कर लेती थी. आज की दुनिया में सब सच है, मेरे भाई. कल पढ़ा नहीं कि मुर्ग को तकलीफ दिये बगैर ही लोग मुर्गी से अंडे पैदा करने लगे हैं. . .मैं फिर बहक गया और तुम कमीने भी मुझे नहीं टोकते. . .तुम भी जेहनी तौर पर वो हो. . .वो. . .अब हंसते क्यों हो?

पकड़े गये न!. . .तुम भी उस लड़की की तरह से हो जिसके गुसलखाने का दरवाजा गलती से खुला रह जाता है!

अरे हां, मैं भूल ही गया. यह औरतों का साल है—संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक. औरतों को तुम जानते ही हो, कैसे वे अपनी कमजोरी का अफसाना मशहूर कर देती हैं. और कमरजोरी को भूल ही जाती हैं. साल खत्म होने दो, अगर औरत साली ने इसे सदी पर न फैला लिया तो मुझे बाप का न कहना.

मैं मर्द-शॉवनिस्ट नहीं. अगर सदियों से मर्द ने उसे रौंदा है तो अब वह उसे रौंदे. मगर मैंने देखा है कि वह तो चुपके से सामने पड़ी रहती है, जैसे रौंदे जाने की मुंतजिर. और अगर इसमें मर्द जरा भी सुस्ती दिखाये तो उसे कैसे ताने देती है, जलील करती है. . .खैर, वह इसे रौंदे या यह उसे रौंदे, बात एक ही है. अवाम और खास के संघर्ष की तरह. मगर गजब खुदा का, औरत जो हुक्का भी नहीं पीती, हकूक मांगती है!

जरूरी बात तो बीच ही में रह गयी. पहले सनीचर कंधे पर चढ़ बैठा था, अब, हैफ, कि औरत सर पर सवार हो गयी है. . . जरूरी बात यह कि वह अपना लायब्रेरियन दोस्त भी चश्मा लगाता था. मुझमें और उसमें फर्क यह था कि उसके चश्मे में डबल कॉनकेव के शीशे लगे थे जैसे मेरे में डबल कॉनवेक्स के. आम सेहतमंद नजर वाला अगर डबल कॉनकेव में से देखे न, बाकर भाई, तो उसे हाथी भी चींटी दिखायी देगा. जैसे मेरे में से चींटी पर हाथी. यही वजह है कि अमरीकियों को दुनिया के सब लोग कीड़े-मकौड़े नजर आते हैं. मैं विएतनाम और माइ लाइ की बात नहीं करता, क्योंकि आधुनिकतावादी मुझपर छिपे तौर पर तरक्कीपसंद होने का इल्जाम लगा देंगे. लेकिन बाकी दुनिया ही को देखो, मिस्र और इजराइल में उन्होंने क्या गदर मचाया है. मुल्कों को कैसे-कैसे हथियार दे कर लड़वाया और खुद नफा कमाया है. शायद इसलिए कि उन मुल्कों के अपने हथियार कुंद या बेकार हो चुके हैं. कोरिया में जो पचास फी सदी ल्यूकोरिया है, उसका जिम्मेदार कौन है? फिर आयेंदे या चिली का हश्र देखा ही है न तुमने! अरे, वह शेख चिल्ली दूसरा था. . .

जैसे मैं अपने डबल कॉनवेक्स की वजह से रूसी कांसुलेट में हूं, वह डबल कॉनकेव की वजह से अमरीकी इनफरमेशन सर्विस में था. लेकिन कुदरत भी हम हिंदुस्तानियों से अजीब-अजीब तरह से बदले लेती है. उसने अच्छी-भली स्कॉच छोड़ कर कनाडा की सीग्राम का ऑर्डर दिया. सिर्फ इसलिए कि वह अमरीका का पड़ोसी है. मैं रूसी डरने वाला थोड़े ही था! मैंने भी वोद्का की हुक्मी तरीके से फरमाइश की, जैसे रूसी करते हैं, यह जानते हुए भी कि वह वोद्का रूस की नहीं, यहीं आसपास, कहीं केरल में कशीद की गयी है, जिसकी वजह से हम-दोनों में कशीदगी पैदा होने लगी.

अभी हमारे एहसासों ने कोई ठोस शक्ल अख्तियार नहीं की थी, कि बीच मैदान में कूद कर आ गयी—मरियाना!

गोआनी ऑर्केस्ट्रा में से झांझे वाले ने जोर-जोर से झांझे बजाये. परदे के पीछे से बड़े खर्ज वाली पॉल रॉबसीनी आवाज आयी—मे. . .रि. . .या. . .ने!. . .

मुझे नहीं मालूम था कि मरियाना को मेरियाने भी कह सकते हैं या कहते हैं. मेरे अंदर जो नज्म पैदा हो रही थी, एकाएक ही बंदनज्मी का शिकार हो गयी; सब काफिये गलत हो गये मेरे—होश उड़ गये!

फिर गोआनी ऑर्केस्ट्रा. . .और मरियाना का नाच
छक-छक, छका-छक. . .
धक्-धक्, धक्-धक्. . .हे ए ऽऽऽऽऽऽ!
. . .और कमर!

यह सब नीग्रो स्प्रिचुअल था और न हिप्पी हैरिसनी म्यूजिक. कोई दोगली चीज थी जो अब हिंदुस्तानी की बजाय अफ्रीकी तनतना हो गयी थी. असली छुट्टी तो हुई जब मरियाना ने कमरनाफ से आवाज निकाल कर गाना शुरू किया—

'तुम मेरे लिए क्या लाये हो?
आर्गल की जुराबें लाये हो?
—अच्छा किया, अच्छा किया.
तुम मेरे लिए क्या लाये हो?
मोजंबीकी मोतियों की माला लाये हो?
—अच्छा किया, अच्छा किया.
मोंमार्त का इत्र लाये हो?
—अच्छा किया, अच्छा किया.
मैं तो तुम्हारे लिए कुछ नहीं लायी, जान!
. . .मेरे पास तो एक दिल है जो सिर्फ तुम्हारे लिए ही धड़कता है. . .'
और फिर—
'अच्छा किया, अच्छा किया. . .'

अरे बाकर मियां, मर्द बड़ा उल्लू का पट्ठा है. . .वह जानता भी है कि हॉल में उस जैसे सैकड़ों दूसरे —तिये भी हैं, लेकिन इसके बावजूद वह यही समझता है और समझना चाहता है कि वह जो भी कह रही है, मुझी से कह रही है. 'लिटल हट' में लड़कियां भी थीं लेकिन उनकी मत पूछो. वे या तो मरियाना की नजरों से मर्दों को देख रही होंगी और या फिर सीधे उसके 'लिबास' को. हकीकत, बाकर भाई, जलेबी की तरह से सीधी है. मर्द सब से ज्यादा क्या पसंद करता है? —औरत! औरत सबसे ज्यादा क्या पसंद करती है? —शॉपिंग!

इस सिलसिले में तुम तैयार रहो, बाकर, क्योंकि यह औरतों का साल है. हमारा-तुम्हारा सब कुछ बिक जाने वाला है. डिमांड इतनी बढ़ जायेगी कि सप्लाई बंद हो जायेगी!

एक बात और भी है. आजाद हो कर शायद ये औरतें हमारी इज्जत करने लगें. हम औरतों की जितनी इज्जत करते हैं, ये खुद औरतें भी नहीं जानतीं. . . तुम ही बताओ, हमने कभी किसी को बाप-भाई की गाली दी है?

क्या बताऊं दोस्त! मरियाना के नाच-गाने से

'लिटल हट' के रजनीगंघा और डाहलिया तो एक तरफ, कैक्टस भी महकने लगे थे. . . .देखो, अब तुम शरारत मत करो. खुदा गवाह है कि कैक्टस के सिलसिले में मेरा इशारा कतई 'उन' लोगों की तरफ नहीं है. ऐसा करोगे तो मुझे पिटवा दोगे, मरवा दोगे. . .अगर मैं उनकी बात करता तो कहता कैक्टस भी लहकने लगे थे. चहकने लगे थे. बहुत करता तो कहता—बहकने लगे थे. महकने का सवाल ही कहां पैदा होता है?

* *

कुछ देर बाद मरियाना अपना लिबास—अंजीर का पत्ता—बदलने के लिए अंदर चली गयी थी और मैं होश में आने की बजाय जोश में आ चुका था. काफिये मेरे सामने यों खुल गये जैसे मेरा जेहन शब्दकोश हो. लेकिन बदकिस्मती से मेरा उस असिस्टेंट बल्कि स्टंट लायब्रेरियन से झगड़ा हो गया. बात यों हुई कि मैं पहाड़ी की धुन पर धीरे-धीरे गाने लगा. फिर दिमाग ही तो है न. मेरा खयाल संगीत-सम्राट सहगल की तरफ चला गया और मैंने उस कार्ड-इंडेक्स से पूछा—आपको याद है, सहगल कब मरा था? जानते हो क्या जवाब दिया उसने? —अभी-अभी मेरे सामने ही तो मरा है. . . .

ये अमरीगी साले—वॉटरगेट वाले —अपने हथियार दूसरे मुल्कों में भेज कर उन्हें लड़वाते हैं. खुद मुनाफा खाते हैं. हम रूसी भी भेजते हैं, लेकिन उनके हथियारों को बेकार करने, दुनिया में अमन लाने के लिए. मैंने सोचा, क्यों न मैं उनके हथियार उन्हीं पर इस्तेमाल करूं. मुझे अमरीकी मार्क ट्वेन याद आ गया. मैंने खालिस रूसी दबदबे से अपने हास्य के माद्दे को थोड़ा डल करके उससे पूछा—आप जानते हैं एक लायब्रेरियन और गधे में क्या फर्क है? हो सकता है इस आनन फानन के सवाल से सीधे ही लड़ाई शुरू हो जाती. लेकिन वह मेरे तन व तोश, तखल्लुस होश और रूसी जोश को देख कर थोड़ा डर गया और ह-हकलाहट से बोला— मुझे नहीं मालूम!

मैंने कहा— मुझे भी नहीं मालूम. . .

और अपने इस लतीफे पर मैं खुद ही इतना हंसा कि आसपास के लोग भी हंसने लगे. वह कथन ठीक ही तो है कि हंसो तो दुनिया तुम्हारे साथ हंसेगी, रोओ तो—फिर भी वह हंसेगी!

चूंकि उस खंजीर को पता चल चुका था कि मैं रूसी कांसुलेट में काम करता हूं, इसलिए उसने सीधे ही रूसियों की बुराई शुरू कर दी. मुझे बड़ा ताव आया, बाकर भाई. . .कोई तुम्हारी ताई को भी गाली दे, यह जानते हुए कि तुम मेरे जिगरी दोस्त हो, तो बताओ, गाली तुम्हें लगेगी या मुझे?

मैंने चश्मा उतार कर मेज पर पटक दिया और सी. आई. ए. को गाली दी. वह के. जी. बी. को बीच में ले आया और चश्मे का जवाब चश्मे से दिया.

मैंने खालिस प्रोल्तारी अंदाज में जूता उतार कर मेज पर मारा जैसे ख्रुश्चोफ ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के जलसे में मारा था. इससे दोनों चश्मे मेज पर यों उछले जैसे वे मुर्ग हों और आपस में लड़ रहे हों. .

मैंने रोजनबर्ग के मार दिये जाने की बात की. मेरा बस चलता तो फैज की गजल की गजल उसके मुंह पर दे मारता. . .वह साला सखारोफ और सोल्जेनित्सिन पर चला आया और उसकी 'गुलाग आर्कीपलागो' से हवाले देने लगा. . .उस मोटे-ताजे कुत्ते की बात करने लगा जो फ्रांस में इसलिए चला आया था कि उसके अपने मुल्क में—'रूस में—खाने को तो बहुत देते हैं, मगर भौंकने नहीं देते. . .'

अब हमारी आवाजें ऊंची हो कर इर्द-गिर्द की सब आवाजों को बौना किये दे रही थीं. अरे-अरे. . . ए यू लिसन! सब बेकार हो गया, यह क्या मछली-मंडी है? . . .ऐसे में यह सवाल ही नहीं पैदा होता था कि बराबर की मेज पर बैठी हुई लड़की अपने प्यार के वाक्यों को होठों तक लाये और अपने प्यारे से पूछ सके—कब मिलोगे, जान? कहां मिलोगे?

मालूम हो रहा था कि हमारी वजह से वे कभी कहीं भी नहीं मिल सकते.

—तुम बात करते हो यैंकी! मैंने चिल्ला कर कहा, जिसकी तहजीब ही जुम्मा-जम्मा चार सौ साल पुरानी है! जो कभी महश योगी का सहारा लेता है और कभी प्रभुपाद की दुम सूंघता है! . . .हरेराम हरेकृष्ण के बच्चे!

—क्यूमस के नुत्फे!

और हम दोनों एक साथ उठ खड़े हुए और गरज-गरज कर बातें करने लगे. —तुम हिंदुस्तानी जाहिल होते हो! बदतमीज होते हो! उसने कहा. दरवाजा खटखटाये बगैर तो कमरे में चले आते हो!

मैंने उसी पाटदार आवाज में कहा—हिंदुस्तानी होगा तू, तेरा बाप! तू जब इस दुनिया में आया, कोई दरवाजा खटखटाया?

अब तक हम दोनों पूरी तरह रूसी और अमरीकी हो चुके थे. मालूम होता था कहीं हॉट लाइन पर से आवाज आ रही है—रोको! रोको! लेकिन हम दोनों इस बात के लिए तैयार थे कि बटन दबायें और दोनों मुल्कों के आई. सी. बी. एम. छोड़ कर न्ययॉर्क और मॉस्को तो तबाह कर दें, रावलपिंडी और दिल्ली का फिर देखा जायेगा. . .

पहले मेज उलटी. फिर कुर्सियां गिरीं. उनके बीच में से होता हुआ 'लिटल हट' का मैनेजर हम तक पहुंचने की कोशिश कर रहा था. औरतों के साल वाली एक औरत बेहोश हो गयी साली. कुछ लोग मौके का फायदा उठा कर बाहर भाग गये और बिल अदा करने के झंझट से छूटे. यही नहीं, कुछ लोग दहशत के आलम में अंदर घुस आये. मरियाना विग में आधी अंदर और आधी बाहर दिखाई दे रही थी. चश्मों की गैर-मौजूदगी में सिर्फ इतना ही दिखाई दे रहा था कि वह काला गाउन पहने हुए थी. उस साले स्टंट ने मुझे टाई से पकड़ रखा था, मगर उसके हाथ साफ कांपते हुए दिखाई दे रहे थे. मैंने उसकी बुश्शर्ट के कॉलर को इतने जोर से मरोड़ा कि उसका गला घुट गया. उसकी आंखें बाहर

चली आयी थीं. बाहर तो जबान भी चली आयी थी, मगर थोड़ी-सी. . .

अब जिस जबान में वह गाली दे रहा था, वह किसी मुल्क की नहीं थी. यह वही आवाज थी जो भाषा की ईजाद से सदियों पहले इनसान गुफाओं में बोला करता था. या हो सकता है वह कोई फ्री-मेसनरी हो, कोई एस्परैंटो. . .नहीं, अब मुझे याद आता है वह कू कू कू कू क्लां थी! एक बात तय है कि उसका गुनगुना अब हिंदुस्तानी भी नहीं रहा था.

फिर हिंदुस्तानी फिल्म की तरह से जाने कहां से गुलदान उसके हाथ में आ गया और उसने मेरे सिर पर दे मारा. अगर हमारे फिल्मकार अमरीकी फिल्मों की नकल न करते तो वह कभी ऐसा न करता. मैं चकरा गया. तभी एक चीख-सी आयी—गेट आउट! विल यू ऊऽऽऽऽ! और हॉल के एक तरफ की बत्तियां बुझ गयीं. स्पॉटलाइट हम पर थी जैसे कि थियेटर में केंद्रीय पात्रों पर होती है.

—देखा नहीं! उसने पास आते, पूरा बाजू बाहर के दरवाजे की तरफ फैलाते हुए कहा, राइट्स ऑव एडमीशन रिजर्व्ड!

पास के किसी मसखरे ने उस इबारत की तरफ देखा जो दरवाजे के बाहर लिखी हुई थी और इस तरफ से उलटी पढ़ी जा रही थी. उसे पहले अक्षर 'डी' दिखाई दिया 'रिजर्व्ड' का, और वह बोला—'डी' फार डैविल! 'ई' फार ईविल! . . .लेकिन मैनेजर कड़का—आप बाहर निकलते हैं या मैं पुलिस को बुलाऊं! ?

अब सच्ची बात है, बाकर भाई, रूसी होने के बावजूद मैं थोड़ा डर गया. हां, इस जानिबदारी से मुझे लेनिन प्राइज तो क्या नेहरू अवार्ड भी नहीं मिलने वाला था. पुलिस की धमकी देते ही मैनेजर बेयरों की मदद से खुद ही पुलिस हो गया. हमने मेज के नीचे हाथ मार कर चश्मे टटोले, उठाये और लड़ते-भिड़ते बाहर की तरफ लुढ़के. वह साला अमरीकी मुझसे पहले निकल गया था, वरना मैं तो उसके सातवें बेड़े का हिंद महासागर, अरब सागर तक पीछा करता हालांकि हॉल की बुझी हुई बत्तियों के कृष्ण सागर से यह कितना बड़ा फासला था!

'लिटल हट' से बाहर आया तो कोई धुंधली-सी सफेद चीज जैसे उड़ती हुई दिखाई दी. गालिबन वह उस अमरीकी पिल्ले की गाड़ी होगी. मैंने सिर्फ आवाज सुनी— जल्दी शोफर, जल्दी. . .

★ ★

अपने सिस्टम से बदला न निकाल सकने की वजह से मैं अभी तक हांफ रहा था. जी चाह रहा था कि ऐसे ही मुझसे कोई तकरार शुरू करे तो मैं उसे बताऊं. जैसे अंदर के गुस्से को खारिज करने के लिए लोग रेत की बोरियां टांक कर उन पर मुक्के मारते हैं, ख्वाब में भेड़िये के मुंह में हाथ डाल कर उसे फाड़ कर टुकड़े कर देते हैं, ऐसे ही मैं. . .लेकिन कोई माई का लाल सामने नहीं आया और मैं अंदाजे से बस-स्टैंड की तरफ मुड़ा. चश्मा लगाया तो मुझे एक चाबी लगी खिलौना गाड़ी स्टैंड की तरफ आती दिखाई दी. अरे! बाकर भाई, हमारे चश्मे बदल गये थे. इस झगड़े-रगड़े में वह मेरा चश्मा ले गया था और उसका मेरे हाथ में आ गया. फ्रेम करीब-करीब एक ही-से थे या हमें ऐसे लग रहे थे.

उस वक्त ग्यारह बजे थे रात के, जो मैंने यूनीवर्सिटी के घड़ियाल में कानों से देखे और आंखों से सुने. . .

★ ★

मेरा पहला तजुर्बा बस का था—उस चश्मे के साथ. कुछ भी न दिखाई देने से कुछ दिखाई देना तो अच्छा ही था. चुनांचे मने वह चश्मा पहने रखा. लेकिन जब मैं बस में बैठने के लिए आगे बढ़ा तो यूं लगा जैसे इतने तंग दरवाजे से मैं अंदर कैसे जाऊंगा? लेकिन अपने बदन को सिकोड़ कर मैंने डेक पर कदम रखा ही था तो देखा कि कोई बच्चा बस में चढ़ने की कोशिश कर रहा है. चुनांचे मैंने अपना पांव पीछे हटा लिया. ऐसा ही बच्चे ने भी किया. शायद वह मेरी बुजुर्गी का एहतराम कर रहा था. मैंने फिर कदम बढ़ाया तो उस बच्चे ने भी साथ बढ़ा दिया और मैंने फिर खींच लिया. तभी बस-कंडक्टर की आवाज आयी—साहब दारू पियेला क्या? . .और उसने मेरी बांह पकड़ कर मुझे बस के अंदर घसीट लिया और सीट पर जा बिठाया. तब मुझे पता चला कि वह पांव किसी बच्चे का नहीं, मेरा अपना ही था!

बस-कंडक्टर की आवाज आयी—देको, कोई लफड़ा नहीं करने का, अं! वह अब तक मुझे पिये हुए समझ रहा था. मैंने कहा—मैंने पी नहीं, कंडक्टर, थोड़ी-सी पी है. मगर मेरी नजर कमजोर है.

—तो पेर चश्मा काहे को रखा? वह बोला.

अब मैं कहां इतनी लंबी रावण-कहानी दुहराता! मैंने सिर्फ इतना कहा —वर्ली नाका आ जाये तो मुझ उतार देना. . .

—हो. . .उसने कहा, पैसे लिये, टिकट दिया और दूसरी सवारियों में लग गया.

सीट पर बैठते ही मैंने अपना चश्मा उतार लिया (देखो, मैं फिर उसे अपना ही कहे जा रहा हूं! आदत नहीं छूटती न!) उसके बगैर जैसे मुझे हमेशा लगता था, आज भी वैसे ही लगा कि बस खड़ी है और सड़क की रोशनियां अपने गिर्द बेशुमार किरणें और हाले लिये आधे दायरे में घूम रही हैं. और बड़े-बड़े धब्बे नीले-पीले, ऊदे-काले जो नजर आते हैं, नयी और पुरानी बिल्डिंगें हैं.

फिर महज घबराहट की वजह से मैंने फिर चश्मा पहन लिया. मेरे साथ की सीट पर एक बड़ी प्यारी-दुलारी-सी बच्ची बैठी हुई थी. जब मुझमें प्यार उमड़ता है न, बाकर भाई, तो मैं उसकी बाढ़ को रोक ही नहीं सकता. मैं आलिंगन भी रीछ की तरह से करता हूं. . .मैं किसी रूसी से कम हूं?

मैं उस बच्ची के गालों पर चिकोटी लेने ही वाला था कि फौरन मुझे कुछ याद आ गया और मैंने अपना उमड़ा हुआ प्यार, अपना हाथ खींच लिया. ठीक ही किया मैंने. अगले स्टॉप पर जब बस रुकी और बच्ची

उतरने के लिए उठी तो मैंने अपना चश्मा उतार कर देखा--जो खाका मेरे पास से गुजरा, वह एक जवान भरपूर औरत का था. उसका सामना! मालूम होता था जैसे अपने आपसे एक फुट आगे चल रहा हूं. मैं अपनी तुरतबुद्धि से बचा, बाकर भाई, वरना उस रात मैं पिट गया था!

मजे से बैठा मैं याद के मुंह में उस खूबानी को पपोल ही रहा था कि बस-कंडक्टर की आवाज आयी—अरे-अरे! मिस्टिक हो गया साला! वह कह रहा था. वर्ली नाका तो तीन स्टॉप उधर रह गया. अब हम प्रभादेवी के बीच होता.

--कंडक्टर! मैं गुस्से से इतना ही कह सका.

—उतरो, उतरो. . .लौकर. . .वह बोला. सामने स्टॉप होता उलटा बस का. चेकर आ गया तो ज़ास्ती पैसा देने को पड़ेगा. . .

जैसे कंडक्टर ने मेरा हाथ पकड़ कर बस में बिठाया था, वैसे ही पकड़ कर निकाल भी दिया. बस चल देने के बाद मुझे गाली याद आयी—ऐसा होता है न, बाकर भाई?

★ ★

मैं घर कैसे पहुंचा, यह मैं ही जानता हूं. अपने घर की बजाय दूसरे घर में गलती से घुस जाने की जो खुशी होती है, मुझे तो वह भी न हुई. घर पहुंच कर पांवों को आंखें बना कर सीढ़ियां चढ़ा. जिस दरवाजे को मैं अपना समझा था, वह अपना ही निकल आया. अंदर जाते ही मैं सीधे कुर्सी पर जा बैठा. तुम तो जानते हो अंधे को भी अपने घर के सब मोड़-तोड़ पता होते हैं. बीवी को बात बतायी तो उसने उस अमरीकी को बहुत गालियां दीं. लेकिन मुझे यों लगा जैसे तसव्वुर में उसे फूलों की छड़ी से मार रही है, क्योंकि औरत की गाली में वह बात कहां होती है जो मर्द की गाली में होती है!

उस रात और तो कुछ नहीं हुआ, बाकर भाई, मैंने आदत से मजबूर फिर चश्मा आंखों पर रख लिया. जैसे ही मुड़ कर देखा तो एक बड़ी प्यारी-दुलारी-सी गुड़िया औरत बाहर जाते, अंदर आते दिखाई दी. हे भगवान! वह मेरी ही बीबी थी!? तुम तो जानते हो न, बाकर भाई, ललिता एक आम रूसी औरत की तरह से मोटी-ताजी है. उसकी कमर कमरा है. लेकिन अब. . .ये अमरीकी क्या पलक झपकते में सत्तर मिलीमीटर से आठ मिलीमीटर का प्रिंट बना लेते हैं! मैंने बांहें पसार कर उसे अपने बाजुओं में ले लिया. जाने कब से प्यार के लिए तरसी हुई उसने जरा भी न-नुच नहीं की. वह न-नुच भी जो औरतें बहुत देर तक प्यार न किये जाने के गुस्से में करती हैं. शायद उसने सोचा, इनकार किया तो यह मौका भी हाथ से जाता रहेगा. यही नहीं; उलटे शायद औरतों का साल मनाने के सिलसिले में उसने मुझे अपनी बांहों में ले लिया और धीरे-धीरे. . .उसे मालूम होने लगा कि कोई चीज उसके प्यार के रास्ते में आ रही है. और उसे जल्दी ही पता चल गया. वह बोली ---तुम चश्मा क्यों नहीं उतारते? मैंने एकदम उसके बढ़े हुए हाथ को झटक दिया—-खबरदार!

इतवार के दिन साउथ बंबई बंद होता है, मगर नॉर्थ--दादर-बांदरा का इलाका--खुला रहता है. आदमी चाहे तो अर्जेंट ऑर्डर दे कर दूसरा चश्मा बनवा सकता है, लेकिन इनसान को इतनी सादा-सी हकीकत भी कौन समझाये कि चश्मे तक पहुंचने के लिए भी तो चश्मा चाहिए या सूरदास के आश्रम का कोई कर्मचारी. और फिर कौन इतना खर्च करे? हमें डॉलरों के हिसाब से तनखाह थोड़े ही मिलती है!

मेरा इतवार जैसे गुजरा, उससे तो शुक्र-जुम्मा ही हजार दर्जे अच्छा था. वही तुम्हारी बात कि गये थे रोजे बख्शवाने, उलटा नमाज गले पड़ी. और फिर तुम-से नास्तिक सनीचर और उसके कोप को भी नहीं मानते. कोई माने भी तो उसकी कैरेक्टर शीट खराब कर देते हैं. आधा दिन तो मेरा यही बात सोचने में गुजर गया कि उस कार्ड-इंडेक्स का दिन कैसे गुजरा होगा! इंडेक्स का नॉब ढूंढने के लिए भी तो चश्मे की जरूरत पड़ती है. और अगर वह नॉब उसे हडसन कार का व्हील मालूम होने लगे तो वह अपना हाथ खींच लेगा. जाने उसे क्या हुआ और क्या हो रहा होगा. हो सकता है कि उसके पास स्पेयर चश्मा हो, क्योंकि वह अमीर आदमी है. मगर अगले रोज पता चला कि उसके पास स्पेयर था लेकिन चंद ही दिन पहले उस हाथी के अंडे ने अपना ही पांव अपने स्पेयर पर रख दिया और वह क्रंच हो गया.

दूसरा वह बनवा नहीं सकता था. क्योंकि उसका ऑप्टीशियन भी साउथ बंबई ही में था. उसने यह भी बताया कि गलती का पता चलते ही वह 'लिटल हट' पर लौट कर आया कि शायद मुझे मेरी गलती का पता चल चुका हो. अगर दो गलतियां मिल कर एक-ठीक नहीं हो सकतीं तो एक गलती दूसरे के साथ तबादले में तो ठीक हो सकती है. मैंने तो खैर इसलिए भी परवाह नहीं की क्योंकि मुझे इस चश्मे में अपनी गलती बहुत छोटी मालूम हो रही थी और मैं चाहता था, उसे पता चले कि उसकी गलती कितनी बड़ी है!

मैनेजर से मिन्नत करके उसने 'लिटल हट' में झांका. वहां सब कुछ अजीमुलशान था. लेकिन मैं नहीं था. अगर मैं होता तो ऐसे इनसान के अहं की तरह से जिन्न दिखाई देता और वह बेहोश हो कर गिर जाता. 'लिटल हट' में से मरियाना की आवाज, सिर्फ आवाज आ रही थी. मालूम होता था जैसे वह गा रही है—

'तुम मेरा चश्मा ले आये हो—अच्छा किया, अच्छा किया. . .'

अंदर उस कार्ड-इंडेक्स, उस कंप्यूटर को कुछ गुलाबी, कुछ ग्रे धब्बे-से दिखाई दिये और फिर एक काला धब्बा जो लगातार हिल रहा था. उसने भी तुरतबुद्धि को इस्तेमाल करते हुए चश्मा लगाया तो एकदम उलटा भाग निकला, क्योंकि वहां 'लिटल हट' में वे कोई भैंस ले आये थे और वह नाच भी रही थी!

थी वह मरियाना. . .मेरे चश्मे का मेहरबाना!

अपने खौफ, अपनी झल्लाहट में वह अपने ऑप्टीशियन कापड़िया की दूकान के सामने से भी गुजर गया

कि शायद दूकान की दरार में से कोई रोशनी की किरण नजर आ जाये. लेकिन कापड़िया की दूकान और भी बंद दिखाई दे रही थी. एक तो इसलिए कि वह वाकई बंद थी, दूसरे इसलिए कि वह उसे दिखाई नहीं दे रही थी. और जब उसने मेरे चश्मे को पहन कर देखा. . .

इस निरंतर हमाकत से उसे यों लगा कि वह ऐसा गुलीवर है जो जिन्नों के देश में पहुंच गया है, जहां सब लोग मिल कर उसकी तरफ बढ़ रहे हैं.

डरा-सहमा हुआ वह अमरीकी-हिंदुस्तानी घर पहुंचा. शोफर और गाड़ी की वजह से घर पहुंचने में उसे कोई ज्यादा दिक्कत नहीं हुई. हुई भी तो सिर्फ इतनी कि वी. टी. का स्टेशन, कार्पोरेशन की इमारत सब पांपेआई के जलजले में उसे अपने ऊपर गिरता हुआ मालूम हो रहा था. घर के बुलंद शहरी दरवाजे के अंदर पहुंच कर जब उसने सीढ़ी पर कदम रखा तो लड़खड़ा कर गिरा, क्योंकि जिसे वह तीसरी सीढ़ी समझा था, वह अभी पहली ही थी. उसे चोट भी आयी, मगर कोई ज्यादा नहीं.

घर के अंदर पहुंचा तो उसे एक गधा छलांगें मारता हुआ दिखाई दिया. उसे बहुत ताव आया, क्योंकि वह समझ ही नहीं सका कि गधा भी पालतू जानवरों में से हो सकता है. आखिर उसकी बेटी जूली आयी और उसने बताया कि बैकयार्ड में जो धोबी रहते हैं न, पप्पा, उन्होंने मुझे खरगोश दिया है!

मैंने तो उस रात बीवी से प्यार किया था न, बाकर भाई, लेकिन उस कार्ड-इंडेक्स और कंप्यूटर की अपनी बीवी से लड़ाई हो गयी––इसलिए कि बीवी उसे अपनी तरफ आता हुआ विजयांत टैंक दिखाई देने लगी थी. और जब उससे बचने के लिए उसने दरवाजे से बाहर निकलने की कोशिश की तो उसका सिर फट गया, क्योंकि जिसे उसने दरवाजा समझा था, असल में वह खिड़की थी!

सोमवार की सुबह जब नौ-साढ़े नौ बजे मैं अपने अंदाजे के मुताबिक सही 'लिटल हट' के बाहर पहुंचा तो वह चूहा मेरा इंतजार कर रहा था––अपनी बच्चा-गाड़ी में. . .

मैं अमन के अंदाज में आगे बढ़ा. वह जंग के खौफ से पीछे हट गया. लेकिन थोड़ी देर में समझ के ऊपर आ जाने से हम दोनों ने चश्मे उतार लिये. और दो भूतों की तरह से एक-दूसरे पर बढ़े. बगैर कुछ कहे-सुने चश्मे बदले. अब हम एक-दूसरे से हाथ मिला रहे थे. माफ कीजिए, क्षमा कीजिए के-से वाक्य दोहरा रहे थे. वह कह रहा था––मेरा कसूर है. मैं कह रहा था––मेरा दोष. फर्क इतना रह गया कि हमने खुद को गालियां देना नहीं शुरू कर दिया. अगर देते तो दफ्तर को लेट हो जाते. . .

मगर एक बात तय है, बाकर भाई, इस आधी रात और सवा दिन में हम दोनों हिंदुस्तानी हो चुके थे.

□ □ □

१८, सेठिया सदन, माटुंगा, बंबई ४०००१९.

खलील जिब्रान की दो लघुकथाएं

अश्रु और हास्य

एक बार संध्या के वक्त नील नदी के तट पर एक मगर और एक लकड़बग्घे की मुलाकात हो गई. दोनों ने परस्पर अभिवादन किया और सुख-दुख की बातें करने लगे.

लकड़बग्घे ने कहा–– कहो भाई मगर, अच्छे तो हो न?

मगर ने रोते हुए कहा–– नहीं मेरे दोस्त! मेरे दुखों की तो कोई सीमा नहीं. जब वेदना और शोक में व्याकुल हो कर मैं आंसू बहाता हूं, तब सब लोग बोल उठते हैं, 'अरे! यह तो मगर के आंसू हैं!' तुम ही सोचो, ये शब्द सुन कर मेरा हृदय कैसा चूर-चूर हो जाता होगा!

लकड़बग्घा अपनी तान में बोला–– ठीक कहते हो, बंधु! इन दुनिया वालों से तो मैं भी तुम्हारी ही तरह दुखी हूं. जब-जब मैं अनिमेष दृष्टि से सृष्टि के सौंदर्य, चमत्कार और विचित्रताओं को देख कर आनंदातिरेक से, मुक्त भाव से, हंसता हूं, तो लोग कहते हैं, 'जाने दो, यह तो लकड़बग्घे का अट्टहास है!' तब मुझ पर क्या बीतती होगी!

□

दृष्टि-भेद

एक बार एक व्यक्ति को अपने खेत में से संगमरमर की एक खूबसूरत प्रतिमा प्राप्त हुई, जो सैकड़ों वर्ष पुरानी लग रही थी. वह प्रतिमा ले कर वह एक ऐसे व्यक्ति के पास गया, जो रम्य व दुर्लभ वस्तुओं का चाहक और धनिक था.

कलाप्रिय धनिक ने बहुत भारी मूल्य चुका कर वह प्रतिमा खरीद ली. फिर दोनों अलग हो गये.

प्रतिमा बेचने वाले व्यक्ति के मन में विचारों का तूफान पैदा हो गया–– इतने अधिक धन से मेरा जीवन कितना परिवर्तित हो जायेगा! किसी को पता ही नहीं कि सैकड़ों वर्ष तक भूमि में गड़े, तराशे हुए पत्थर के एवज में इतना धन भी मिल सकता है! लोग भी कैसे हैं, धन यूं ही नष्ट कर डालते हैं!

इधर कलाप्रिय धनिक विचारों में मग्न था–– अहा, क्या सौंदर्य है! कैसा जीवन! आत्मा का कैसा स्वप्न! सैकड़ों वर्षों की निद्रा से जागृत और ताजा एवं मधुर! मृत एवं व्यर्थ धन के बदले में कोई ऐसी अनमोल प्रतिमा कैसे दे सकता है?

□

(प्रस्तुतकर्ता : यूसुफ गुजरीवाला)

मीर बीमार हुए

• फिक्र तौंसवी

मैं बहुत लज्जित था कि मुझे कोई सीरियस बीमारी नहीं होती थी, होती भी तो नजला-जुकाम में बदल जाती ! रिश्तेदार मुंह छिपा कर ताना दिया करते कि इन नाम मात्र की बीमारियों पर कोई आपको क्या हमदर्दी दिखाये. मेरी बीवी तो कनखियों से कई बार संकेत कर चुकी थी कि मैं आप के लिए मर-मिटने को तैयार हूं, लेकिन इसका कोई ठोस आधार भी तो हो!

और न जाने मेरे किस शुभचिंतक की प्रार्थना सुनी गयी कि एक दिन सुबह को शेव करके उठा, तो मेरे डगमगाते पांव ने पुकारा— लेना कि चला मैं ! मेरी बीवी, जो शायद इसी शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में अधेड़ हो गयी थी, फौरन डाक्टर को बुला लायी.

डाक्टर ने कहा— यह डगमगाहट ही नहीं है, सीरियस बीमारी है.

बीवी की जबान से अनायास निकला— हे भगवान, यह सीरियस बीमारी इनकी बजाय मुझे लग जाये!

डाक्टर ने रूलिंग दी— यह फैसला अस्पताल में जा कर होगा कि बीमारी किस जिस्म के लिए अनुकूल है.

बहुत-से दोस्त और रिश्तेदार जमा हो गये और कहने लगे कि खुदा का शुक्र है, अब मैं सीधे रास्ते पर चल पड़ा हूं. उनकी आंखों में खुशी के आंसू आ गये. उन्होंने तालियां पीटीं. मेरी बीवी ने भावुकता में कांपते शब्दों में कहा कि मेरे तंदुरुस्त हो जाने पर वह अनाथों को खाना खिलायेगी.

अस्पताल के बड़े डाक्टर ने मुझे बताया कि यह नर्वस ब्रेक डाउन की बीमारी है. हो सकता है कि कई बरस लग जाये.

—कई बरस. . . . ! मुझे अनाथों का भविष्य बहुत खतरे में दिखाई दिया.

अस्पताल के बेड पर लेटते ही मुझे बेहद संतोष हुआ कि अब मैं कई लोगों को ओब्लाइज कर सकूंगा. मेरे दोस्त हमदर्दी दिखा सकेंगे. रिश्तेदारों को ठंडी आहें भरने का मौका मिलेगा. मेरे एक बार होठ हिलाने पर वे गरदन कटवाने को तैयार हो जायेंगे.

और मैं शुक्र करूंगा कि जिंदगी में किसी के काम तो आया, वरना इसके पहले तो जिंदगी जैसे उजाड़ बियाबान मरुस्थल में से गुजर रही थी. न किसी के आंसू, न मुसकराहट, न भावनाओं से चूर-चूर होठ.

मेरे एक जिगरी दोस्त ने एक दोस्त के टेलीफोन पर मेडिकल सुपरिटेंडेंट से कह दिया कि इस रोगी को तुरंत एक बेड दिया जाये. अस्पताल में बेड उपलब्ध होने का मतलब होता है जैसे किसी बेरोजगार को नियुक्तिपत्र मिल जाये.

मुझे अपने दोस्त की इस गिरावट पर तरस खाना चाहिए था, लेकिन दोस्त की खुशी मुझे बेड मिल जाने में छिपी थी, इसलिए उस गिरावट को शहद का घूंट समझ कर पी गया.

तीन-चार दिनों तक मैं देखता रहा कि दोस्त और रिश्तेदार अत्यंत सरगर्म हो गये हैं. वह क्षण-क्षण भर की अपनी दौड़-धूप की रिपोर्ट ले आते और मेरे गले में उड़ेल देते. कोई बताता कि अस्पताल का हार्ट स्पेशलिस्ट मेरे कालेज का साथी है और मुझसे मैथमेटिक्स की गाइड बुक ले जाया करता था. कोई रहस्योद्घाटन करता कि ब्लड बैंक के इंचार्ज से मैंने कह दिया है आप भाग्यशाली हैं कि आप के अस्पताल में एक महान रोगी दाखिल हुआ है. यह इंचार्ज मेरी मौसी का चौथा बेटा है. उसकी लव मैरिज के पहिले के सभी लव लेटर मैंने ही लिख कर दिये थे. एक दोस्त ने तीन अखबारों में मेरे चित्र और बीमारी की खबर बेहद जोशीले अंदाज में प्रकाशित करवा कर खुशी प्राप्त की, जैसे उसने मुझे मरने के बाद स्वर्ग की सीट दिलवा दी हो. चार-पांच दोस्तों ने कॉफी-हाउस में एक प्रस्ताव पास करवा दिया कि भगवान न करे, अगर फिक्र तौंसवी की मौत हो गयी, तो पूरे कॉफी-हाउस के सदस्य न केवल एक साथ मरघट तक जायेंगे, बल्कि उनके बचे-खुचे परिवार के लिए चंदा भी जमा करेंगे.

यूं लग रहा था, जैसे सारा भारत मेरी बीमारी के लिए जिंदा है. कई डाक्टर बारी-बारी आते और मुझे लेबोरेटरी समझ कर परीक्षण शुरू कर देते, जैसे ये डाक्टर न हों, स्कूल के छात्र हों और मैं एक कापी हूं, जिस पर वह होम वर्क कर रहे हों. मैंने एक डाक्टर से पूछा— जनाब, आप को बीमार से प्रेम है या बीमारी से?

वह बोला— बीमारी से, क्योंकि हम बीमार पर रिसर्च कर के बीमारी तक पहुंचते हैं. आप पर की गयी रिसर्च से मानव समाज को भी लाभ पहुंचेगा.

—और अगर मैं न आता तो मानव समाज क

क्या होता?

इसके उत्तर में डाक्टर ने अपने असिस्टेंट को आदेश दिया—इस बीमार की बी. सी. जी. करायी जाये. दिमाग में जरूरत से ज्यादा खराबी दिखायी देती है.

मैं सोच रहा था कि अस्पताल में मुझे रोमांटिक वातावरण मिलेगा. सुन रखा था कि कई लेखक अस्पताल में जा कर उपन्यास तक लिखते हैं और बीमारी को आधुनिक साहित्य में वृद्धि का साधन बनाते हैं. उनमें से कई एक नर्सों से प्रेम भी करने लगते हैं, कई नर्सें उपन्यासकार की आत्मा के नरम कोने में दुलहन बन कर घुस जाती हैं.

★ ★

दूसरे दिन जब मैं धम्म से किसी नर्स के आने की प्रतीक्षा में आंखें बंद किये पड़ा था, किसी ने मेरा कंधा झकझोरा. यह वाकई नर्स थी. मैंने आंखें खोल कर देखा. नर्स खूबसूरत नहीं थी. उसने पहले मुझे सूंघा और फिर वातावरण को सूंघा, जैसे उसे अहसास हुआ कि वातावरण अपूर्ण है, इसलिए उसने मेरे बेड के सिरहाने एक मैले-से गत्ते पर मेडिकल चार्ट लटका कर वातावरण को पूर्ण कर दिया. और मुझे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उसने मेरी कब्र पर दिया जला दिया हो.

मेरा खयाल था और खेदजनक सीमा तक गलत खयाल था कि डाक्टर जब बीमार की सेवा करते हैं, तो उसे मनुष्यता का उदय समझते हैं. लेकिन जब मैंने तनिक निकट हो कर देखा, तो यूं अनुभव हुआ, जैसे वे मनुष्यता से ऊब चुके हैं. वे जब बीमार का ब्लड प्रेशर देखते हैं या उसके हार्ट जिगर और फेफड़ों की रिपोर्ट का अध्ययन करते हैं, तो उन्हें यूं अनुभव होता है, जैसे आलू छील रहे हों.

एक दिन मैंने एक डाक्टर से पूछा—डाक्टर साहब, आपके भीतर की जनसेवा की भावना क्यों मर गयी?

वह जैसे दो-दूनी चार का पहाड़ा पढ़ते हुए बोला—वह तो उसी दिन मर गयी थी जब मैंने ऐसे अस्पताल में नौकरी के लिए बरसों अपने घुटनों और माथे को रगड़ा. एक अत्यंत भौंडे. अमानवीय शक्ल के उच्चाधिकारी को समय का जहांगीर और युसूफ कहा था.

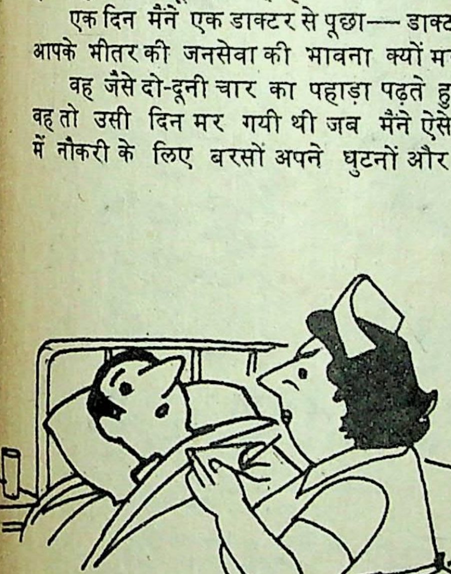

यह सुन कर मुझे संदेह हुआ कि मेरी सभी भावनाएं अछूत हैं. डाक्टर मेरी भावनाओं को हाथ नहीं लगाना चाहता. वह केवल अस्पताल के मुरदा कायदे-कानून के चौखट में घूमे जा रहा है. इस चौखटे के बाहर की दुनिया अछूतों की दुनिया है. डाक्टर के लिए सब बीमार एक समान हैं. सब बोर हैं. सब अछूत हैं.

भौंड़े अधिकारी ने डाक्टर से मानवता छीन ली. अब तो वह किसी लेडी डाक्टर से भी प्यार करने के पहले देख लेता है कि उसका वेतन कितना है.

दोस्तों और रिश्तेदारों तक बेड नंबर की सूचना पहुंचा दी गयी थी. सूचना के बावजूद यार-दोस्त एक-दूसरे से पूछते फिरते—भाई, फिक्र साहब का बेड-नंबर कौन-सा है?

मगर कई दोस्त आते और मेरा दिल बढ़ाते. मैं हड्डियों का ढांचा बनता चला जाता. मेरा दिल चाहता, मेरी हड्डियों की संख्या स्पष्ट होती चली जायें, ताकि मैं हाल पूछनेवालों की मुहब्बत के जाम उड़ेलता रहूं. लेकिन लगता था कि मेरे इस षड्यंत्र की योजना का पता दोस्तों और रिश्तेदारों को लग गया और धीरे-धीरे उनकी संख्या कम होती गयी. यहां तक कि एक दिन आंखों से बिलकुल ओझल हो गयी और मेरे बेड के पास केवल कुछ शीशियां, एक मेडिकल चार्ट और एक बीवी रह गयी. यह सोच कर कि बीमारी जुदाई की रात की तरह लंबी हो गयी है और जिंदगी सिर्फ बीमारी के गिर्द तो नहीं घूमती, कई और महत्वपूर्ण काम भी हैं, जैसे पतंग उड़ाना, चोर-बाजारी करना, लड़कियों से छेड़खानी करना. फिक्र तौंसवी की बीमारी जिंदगी का एक तुच्छ-सा हिस्सा है.

और इस तरह धीरे-धीरे मैं रुचिहीन होता गया. सहानुभूति और खलूस की बाढ़ एकदम तेजी से शाम के सूर्य की तरह डूब गयी. यहां तक कि डूबती किरणों की लाली भी नजरों से ओझल हो गयी और मैंने पहली बार अनुभव किया कि बीमारी को आदत नहीं बनाना चाहिए.

बंबई से एक कहानीकार दोस्त ने पत्र लिखा—तुम भाग्यशाली हो कि दिल्ली में बीमार पड़े हो और तुम्हारा हाल पूछनेवाले टोलियों में आते हैं. लेकिन मेरा दुर्भाग्य कि मैं बंबई में बीमार पड़ा हूं. यहां किसी को किसी की खबर नहीं. हर आदमी अपने बदन की छोटी-सी दुनिया से बाहर देख ही नहीं सकता. छह मास से अपने घर में पड़ा हूं और किसी हाल पूछनेवाले के लिए तरस गया हूं. कल किसी ने मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया, तो मैं बेहद भावुक हो गया. आनेवाले ने पूछा—साहब, क्या बात है, आप तो कुछ बीमार दिखाई देते हैं. किसी अच्छे डाक्टर से इलाज कराइए. मैं तो बाई दि वे आपके घर में एक जरूरी टेलीफोन करने आया था, इजाजत हो, तो कर लूं?

दूसरे दिन एक दोस्त तशरीफ लाये. बोले—फिक्र साहब, मैं पूछने आया था कि उस नाटक का क्या बनेगा

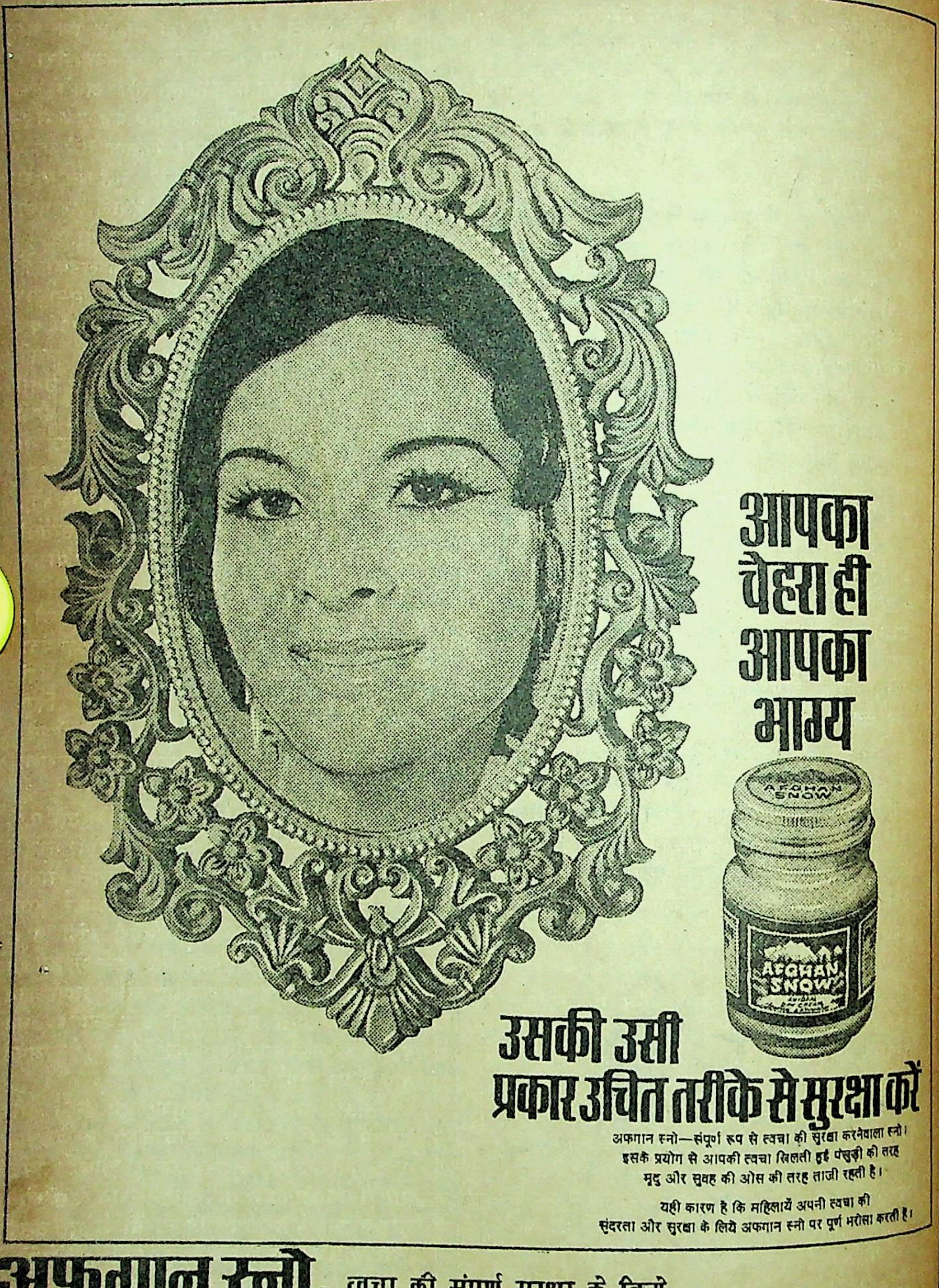

आपका चेहरा ही आपका भाग्य

उसकी उसी प्रकार उचित तरीके से सुरक्षा करें

अफगान स्नो—संपूर्ण रूप से त्वचा की सुरक्षा करनेवाला स्नो। इसके प्रयोग से आपकी त्वचा खिलती हुई पंखुड़ी की तरह मृदु और सुबह की ओस की तरह ताजी रहती है।

यही कारण है कि महिलायें अपनी त्वचा की संदरता और सुरक्षा के लिये अफगान स्नो पर पूर्ण भरोसा करती है।

अफगान स्नो. त्वचा की संपूर्ण सुरक्षा के लिये

जिसके अभी तीन दृश्य लिखने बाकी हैं? उस नाटक का पूरा होना तो बेहद जरूरी है.

—श्रीमान, नाटक से मेरी बीमारी अधिक जरूरी है. मैं तंदुरुस्त होने के बाद ही उसे लिख सकूंगा.

—आप जल्दी तंदुरुस्त हो जाइए. यह आपके लिए आलूबुखारा लाया है. खायें और बतायें कि क्या बीमारी के दौरान आप नाटक पूरा नहीं कर सकते?

एक निकटतम रिश्तेदार पलकों को थरथराते हुए मेरे बेड के पास आये. मेडिकल चार्ट उठा कर आंखों से लगाया और बोले— खुदा चाहेगा, तो आप जल्दी तंदुरुस्त हो जायेंगे.

मैंने निवेदन किया— आपको इतनी क्या जल्दी है?

वह रुआंसे हो कर बोले— आपकी भतीजी की शादी की समस्या थी. आपकी बीमारी के कारण रुकी हुई है. दिन निश्चित करना है. लड़के वाले बहुत परेशान कर रहे हैं.

—गलती मेरी थी कि कलियुग में बीमार हुआ. आप शादी कर दीजिए. मेरी बीमारी पर भरोसा मत कीजिए.

* *

कुछ दिन बाद पता चला कि उन्होंने शादी कर दी है. मेरी आंखों से एक आंसू भी न टपक सका, जिसे मैं उनके दावत के कार्ड पर गिरा सकता. हां, मैंने एक बुद्धिमानी का कदम जरूर उठाया कि अस्पताल का नियम तोड़ कर घर चला आया. हाल पूछने वालों पर भरोसा करके बीमार रहते चला जाना मुझे अनावश्यक लगा.

उसके बाद मैं हरेक दोस्त और रिश्तेदार के घर जा कर सूचना दे आया कि मैं अब भी बीमार हूं, इसलिए मौका है कि आ कर मेरा हाल पूछ जाओ.

एक दोस्त उलटा शिकायत करने लगे— वाह फिक्र साहब, आपने भी कमाल कर दिया! मैं अस्पताल आपका हाल-चाल पूछने के लिए पहुंचा, तो पता चला कि आप डिस्चार्ज हो कर घर चले गये. आखिर इतनी भी क्या जल्दी थी?

अस्पताल से बाहर आ कर मैंने महसूस किया कि दुनिया वैसी-की-वैसी ही है. किसीको किसीसे दिलचस्पी नहीं. हरेक आदमी एक-दूसरे के साथ कहकहे लगाने में व्यस्त है. उनकी महफिल में कौन आया, कौन गया, कौन मर गया, किसकी हड्डी टूट गयी, किसकी आंख फूट गयी, इन सबसे अनजान इस दुनिया का हर व्यक्ति अपनी ही कुछ सांसों में लीन है और मुझे भी अपनी इन महफिलों में उन्होंने यूं खपा लिया, जैसे मैं बीमार नहीं हूं, जैसे मैं कभी बीमार नहीं हुआ था!

□□□

द्वारा/दैनिक मिलाप, ८ ए, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-१

नागा लोक-कथा

चीते से ब्याह

एक दिन एक स्त्री सब्जी लेने के लिए अपने खेत में गयी. उसे एक अच्छा करेला दीखा. वह उसे तोड़ने जा ही रही थी कि एक चीते ने उसे देख लिया और चिल्लाया—वह मेरा है. तुमने उसे छूने की हिम्मत कैसे की? अब मैं तुम्हें मारे बिना नहीं रहूंगा, और यह कह कर उसने उसे दबोच लिया. किंतु स्त्री, जिसका गर्भ आठवें महीने में था, बोली—कृपा करो, मुझे मत मारो. बच्चा होने पर वह मैं तुम्हारे हवाले कर दूंगी. यह सुन कर चीते ने उसे मुक्त कर दिया.

वक्त आने पर उस स्त्री ने एक लड़की को जन्म दिया. उधर जब चीते ने यह समाचार सुना तो स्त्री से उसके बारे में पूछा. हार कर उसे बताना ही पड़ा कि कुछ वर्ष पहले उसके एक लड़की पैदा हुई थी. जब-तब चीता उससे पूछा करता कि लड़की ईंधन जुटाने योग्य, पानी लाने योग्य हो गयी है अथवा नहीं? वह यह भी पूछना न भूलता कि वह ब्याह के लिए सयानी हो चुकी है अथवा नहीं? किंतु स्त्री हर बार कोई न कोई बहाना बनाया करती. लड़की सयानी हो गयी. अब स्त्री को अपने वचन का पालन करने को मजबूर होना पड़ा.

नियत दिन पर उसने लड़की की शादी चीते से कर दी. एक साल के बाद उनके एक लड़की पैदा हुई. वे उसकी अच्छी देखभाल करते, चीता जहां भी जाता, साथ में बेटी को लेता जाता. किंतु जब भी वह उसे साथ ले जाने लगता वह चीखने-चिल्लाने लगती. चीते की पत्नी ने उससे इसका कारण जानना चाहा.

चीते ने बताया कि उसकी मूंछें उसे गड़ जाया करती हैं और इसी कारण वह रोया करती है. किंतु उसकी पत्नी को इस पर यकीन न आया. एक दिन जब चीता बेटी को साथ ले कर जाने लगा तो वह भी छिप कर पीछे-पीछे चली. क्या देखती है कि स्थान पर पहुंच कर चीता ने उस का सिर एक शिला पर पटक दिया और उससे खून बहने लगा. चीता उस खून को चाट रहा था. वह इतना अधिक भयभीत हो गयी कि तुरंत अपने बाप के घर भाग चली.

चीता भी वहां पहुंच चुका था. मां और चीते में लड़की के लिए खींचातानी होने लगी यहां तक कि उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये. उसकी सास ने लड़की का मांस पकाया. उसने उसे खाया और उसका कुछ भाग चीते को भी दिया. उसका स्वाद चीते को अच्छा लगा, तभी से हम कहते हैं कि चीता अपने भोजन के लिए इंसानों को मारने लगा.

□□□

परिंदा पकड़नेवाली गाड़ी

• गयास अहमद गद्दी

सुबह होती, दिन चढ़ता और सूरज जब ठीक शिखर पर पहुंचता, शहर में एक ऐसी गाड़ी आती, जो शहर के परिंदों को पकड़ कर ले जाती. ठीक वैसे ही, जैसे म्युनिसिपैलिटी की गाड़ी कुत्ते पकड़ने के लिए निकलती है. यह गाड़ी, जो चारों तरफ से रंगीन शीशों से बंद बेहद खूबसूरत होती कि निगाह उठ कर दाद देती, इसके चारों तरफ नन्हीं-नन्हीं घंटियां बंधी होतीं, जो चलते वक्त धीरे-धीरे बज रही होतीं. घंटियों की आवाज अजीब होती, कुछ ऐसी, जैसे कोई सहर फूंक रहा हो. एक लंबा, खमीदा-कमर, जर्दरू आदमी गाड़ी को खींच रहा होता. बिल्कुल उसी तरह दूसरा आदमी गाड़ी के पीछे चल रहा होता, जिसके हाथ में पतला-सा, बहुत लंबा बांस होता. बांस के सिरे पर ब्रश जैसा गुच्छा-सा होता, जिस पर गोंद या उसी तरह की चिपक जाने वाली लसदार रोतूबत लगी होती, जिससे वह परिंदों को पकड़ता था.

दीवार पर, छतों की मुंडेरों पर, टेलीफोन के खंभों, पेड़ों, या फर्श पर दाना-दुनका चुनते हुए परिंदे जहां नजर आते, वह आदमी बांस को आगे बढ़ा देता और जिन परिंदों के परों पर लसदार रोतूबत लगा हुआ गुच्छा छुला देता, पहले तो वे परिंदे तड़पते, छटपटाते, उड़ने की कोशिश करते, फिर थक-हार कर लसदार रोतूबत से चपड़-चपड़ करते हुए परों की कूवते परवाज के उलझ जाने के कारण एक तरफ औंधे हो कर लुढ़क जाते. तब वह आदमी जल्दी-से बढ़ता और दोनों हाथों से झपट कर परिंदों को पकड़ता, धीरे-से गाड़ी के छोटे-से दरवाजों को खोलता, उसमें परिंदे को ढकेल देता, दरवाजा बंद करता, फिर गौर से शीशे के अंदर देखता, जहां परिंदा फड़फड़ा कर थक जाता. उस वक्त उस आदमी के चेहरे पर अजीब-सी हंसी बिखर जाती और आंखें अंधेरे में बिल्ली की आंखों की तरह चमक उठतीं.

हर रोज जैसे सूरज सरों पर आता, तेज किरणें सरों पर गड़तीं, पच्छिमी दरवाजे की जानिब से छोटी-छोटी घंटियों की सदा सुनाई देती. जरा देर बाद बड़ी सुबुक खरामी से एक आदमी, जिसका चेहरा बेहद जर्द होता और जिसकी आंखें नीमदा होतीं, जिसकी कमर से पतली-सी रस्सी लिपटी होती, जो गाड़ी के सिरे से बंधी होती और वह नीम गनूदगी के आलम में चलता बढ़ा आता. फिर जहां कोई चिड़िया, कोई परिंदा नजर आता, वह आदमी आप-ही-आप रुक जाता और अपने पीछे जाने वाले आदमी को परिंदे की तरफ इशारा करता.

यह रोजमर्रा का दस्तूर होता. दुकानदार दुकानों में होते, राहगीर चलते-चलाते रहते, मोटरकारें तेजी से पूं-पां करती गुजरती होतीं, जूता गांठने वाला गांठता रहता, खरीदोफरोख्त रहती, शोरोगुल से कान पड़ी आवाज सुनाई न देती, लेन-देन का बाजार इतना जवां होता कि अव्वल तो गाड़ी की तरफ किसी की नजर ही न उठती, लेकिन उनमें से किसी की नजर उठ भी जाती, तो वह सहरजदा-सा इस अजीबो-गरीब गाड़ी और उसके हुस्न को देखने में खो जाता.

कभी ऐसा भी होता कि कोई आदमी चौंकता और जरा हौसले से उठता. गाड़ी वाले जब उस आदमी को करीब आते देखते, तो झट अपनी लंबी जेब में हाथ डालते और चंद सिक्के निकाल कर उसकी तरफ उछाल देते. फिर वह आदमी सिक्के चुनने में ऐसा लीन हो जाता कि उसे किसी चीज का होश ही न रहता. लोग यह मंजर देखते और आंखों और चेहरों से हैरत का इजहार करते. इस वक्त उनकी आंखें फटी-की-फटी रह जातीं. यह भी कुछ ज्यादा देर नहीं रहता, फकत चंद मिनट, दस या बीस मिनट तक. फिर हैरत का यह वक्फा कम होता गया और होते-होते महज चंद सेकंड रह गया, तो अब उसके बाद वह मंजिल आने वाली थी कि लोग-बाग अपने कामों में मसरूफ हैं और परिंदे पकड़ने वाली गाड़ी आ गयी है, और परिंदे पकड़ती चली जा रही है और आदमी है कि उसकी ओर नजर उठा कर देखता भी नहीं.

* *

ऐसी ही कैफियत वाला एक दिन था, जब मैंने एक दुकानदार को जलेबियों के थाल की तरफ इशारा करते हुए कहा कि यहां देखो, जलेबियों पर कितनी मक्खियां बैठी हुई हैं! अभी, जब शहर में बीमारी

फैली हुई हैं, ये मक्खियां किसी खतरनाक

—मक्खियां . . . ? हलवाई ने काहिली से हाथ उठा कर मक्खियों को उड़ाने की कोशिश की. मक्खियां जरा देर को उड़ीं, फिर जलेबियों के थाल पर टूट पड़ीं.—हां, मक्खियां तो साली उड़ती ही नहीं!

हलवाई ने मेरी जानिब गौर से देखते हुए कहा—मगर तुमको क्या साहब, तुमको तो नहीं खरीदना!

मैंने जवाब में इनकार किया, तो हलवाई ने आंख मारी और सरगोशियों से जरा करीब के लहजे में कहा—और मुझको क्या साहब, मुझको भी तो खाना नहीं!

बस, यहीं से मैं चौंक गया कि असल बात क्या है. . . परिंदे पकड़ने वाली गाड़ी आती है और शहर के परिंदों को पकड़ कर ले जाती है और कोई पूछने वाला तो क्या मिलेगा, कोई खुदा का बंदा पलट कर देखता भी नहीं है. . .मेरी समझ में बात आ गयी. मेरी पेशानी पर जो बहुत देर से, बल्कि कई दिनों से, एक त्यौरी किसी संतरी की तरह खड़ी देख रही थी, सिमट गयी. फिर मैं हंसा और मैंने भी जरा गुफ्तगू के जरा दूर के लहजे में कहा—तो भाई हलवाई, एक काम करो न, उन गाड़ी-वालों की तवज्जो मक्खियों की जानिब मबजूल करा दो . . . !

हलवाई चौंक गया और उसने मुसकरा कर मेरी जानिब देखा. लेकिन पल भर में संजीदा हो गया.—अरे हां . . . मगर क्यों साहब, मुझे इस झंझट से क्या फायदा?

—ये, जो मक्खियां जलेबी का सारा रस . . .

—हां, यह तो ठीक कहा है, सारा रस चूसे चली जाती हैं कमबख्त . . . . ! मगर साहब, मुझे इससे क्या नुकसान, मुझे तो फायदा है!

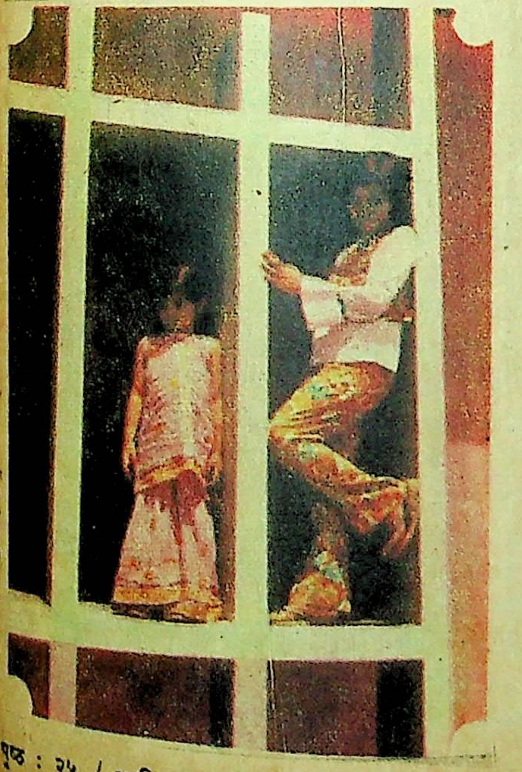

—वह क्या? मैंने हलवाई की आंखों में आंखें डाल कर पूछा. फायदा कैसे है? हलवाई पहले हंसा, फिर उसने अपनी वनस्पति में चुपड़ी हुई तोंद पर हाथ फेरा और बेहद संजीदा हो कर मेरी तरफ झुक गया. बाबू, तुम क्या जानो दुनियादारी! यह राज की बात है. दुनिया ऐसे नहीं चलती . . . ! फिर हलवाई खामोश हो गया और जरा गहरे हो कर फिर बोला—पर तुम मेरे हमदर्द लगते हो, इसलिए बताता हूं, किसी से कहना नहीं . . . तो बाबू, जलेबियों का यह रस, जो मक्खियां चूसती हैं, तो फिर रस और मक्खियां कहां जाती हैं, जरा इतना तो बताओ?

—कहां जाती हैं, मुझे पता नहीं. हलवाई मियां, तुम्हीं बताओ?

—कहीं नहीं जातीं. हलवाई फैसलाकुन लहजे में बोला. रस मक्खियों के पेट में और मक्खियां जलेबियों के साथ पलड़े पर. समझे बाबू? ऐसे फायदा हुआ!

लेकिन मैं बहुत देर तक समझ न सका और बहुत देर तक बेवकूफों की तरह हलवाई के चेहरे को तकता रहा. हलवाई फिर हंसा, फिर उसने मूंछों पर ताव दिया.— नहीं समझे अब भी . . . ?

अभी हमारी गुफ्तगू यहीं तक पहुंची थी कि पश्चिमी दरवाजे की जानिब से घंटियों की आवाज सुनाई पड़ी और मेरी तवज्जो उसकी तरफ मबजूल हो गयी. जरा देर बाद वह जर्दरू, खमीदा-कमर आदमी दिखाई पड़ता है, हस्ब दस्तूर उसकी कमर से पतली-सी रस्सी बंधी हुई थी, जिसके पिछले सिरे पर वह गाड़ी फंसी हुई थी. आदमी उसी काहिली से सड़क पर आहिस्ता-आहिस्ता चलते हुए आगे बढ़ा, फिर गाड़ी सामने आयी, जिसके रंगीन शीशों के अंदर दो कबूतर और एक गोरैया बंद थे. कबूतर तो सर नेहुड़ाये एक तरफ खड़े थे या फिर धीरे-धीरे काहिली से सरकदमी कर रहे थे, लेकिन गोरैया तेजी से इधर-उधर फुदकती फिर रही थी और बहुत बेचैनी के आलम में थी.

* *

अब गाड़ी बीच चौराहे पर आ गयी थी. धूप रोज के बनिस्बत खासी सख्त थी और गाड़ी घसीटने वाला हाथ को आंखों के ऊपर छज्जे की शक्ल में किये आस-पास मुतजस्सिस नजरों से झांकता फिर रहा था. फिर वह ठहर गया. सामने नाली के किनारे पर एक परिंदा प्यास से बेहाल झुक-झुक कर नाली से पानी पी रहा था और गरदन उठा कर इधर-उधर देख भी रहा था. उसे किसी बात का डर भी लगा हुआ था. तभी गाड़ी खींचने वाले आदमी ने बांस वाले साथी को इशारा किया. बांस वाले ने चुपके से लपक कर परिंदे को जा लिया. जरा देर बाद उसने रंगीन शीशों वाली गाड़ी के दरवाजे का पट खोला और धीरे से परिंदे को अंदर ढकेल दिया. परिंदा एक तरफ लुढ़क गया, तो फुदकती हुई गोरैया एक बार जोर से शीशों पर फड़फड़ाने लगी, गोया बंद शीशों को तोड़ कर निकल भागेगी. बांस वाले

ादमी ने मुसकरा कर, शीशे के अंदर झांक कर देखा. सके चेहरे और आंखों में चमक आ गयी. फिर उसने ीशे पर हलकी-हलकी थपकियां दीं. गोरैया सहम कर क तरफ हो गयी.

इसके बाद वैसी ही हलकी चाल से गाड़ी आगे बढ़ी. ंटियों की आवाज खामोश फिजा में सुनाई दी—टन, न, टन ...टन...टन...टन. जरा देर बाद गाड़ी जरों से ओझल हो गयी.

★ ★

—गयी ... चली गयी.

—हां, चली गयी ...उस परिंदे को भी ले गयी. ब फिजा का सहर टूटा, तो गाड़ी उत्तरी इलाके के ल्त ढलान में उतर चुकी थी. अब दिखाई भी नहीं दे ही थी. फकत उसके पहियों से उड़ती हुई धूल थी, ो धीरे-धीरे फिजा से हाथ छुड़ा कर बैठ रही थी. फिर ंद मिनट बाद तमाशबीनों के चेहरों पर जो हैरत के असरात थे, वे जायल हो गये और वे अपने-अपने कामों में सरूफ हो गये.

—अच्छा भाई जान, यह परिंदे वाली गाड़ी ...?

सवाल करने वाला रुक गया, और खासी देर तक क गया. तब मैंने पलट कर देखा. ठीक मेरी पुश्त पर क दस-ग्यारह साल का लड़का खड़ा मेरी तरफ मुजस्सम सवाल बना तक रहा था.

—यह परिंदे वाली गाड़ी थी. वह लड़का इतना ह कर फिर रुक गया, जैसे उसे खुद पता नहीं कि पूछना या है.

—हां-हां ... मियां, क्या पूछना चाहते हो, परिंदे ाली गाड़ी के मुताल्लिक?

—जी भाई जान, इतना कि..यह क्या गाड़ी है.—रिंदे पकड़ने वाली?

—हां, मियां, हम भी यही सोच रहे हैं कि क्या ाड़ी है! हर रोज दोपहर में आती है और शहर के जितने रिंदे मिलते हैं, समेट कर चल देती है!

—अच्छा, भाई जान...! जरा देर बाद इस ड़के ने यूं चौंक कर सवाल किया, गोया अचानक कोई ात याद आ गयी हो. अच्छा, भाई जान, क्या ये लोग ाजी के लका को भी ले जायेंगे?

—हां, जरूर ले जायेंगे, देखने की देर है!

—फिर बाजी अच्छी कैसे होंगी ...? उन्हें लकवा ो गया है न! हकीमजी ने कहा था, दवाओं के साथ का कबूतरों के परों की दवा भी चाहिए! लड़के ने ड़ी हैरत से कहा, यूं कि मैं उसके अफसूर्दा चेहरे की तरफ एकटक देखने लगा.

—हां-हां, बात तो है सोचने की. लका कबूतर को नहीं जाना चाहिए.

—फिर मैं क्या करूं, आप ही बताइए, भाई जान... मैं तो बहुत छोटा हूं...मेरी तो समझ में नहीं आता!

—मेरी भी समझ में नहीं आता, मियां ...और सच पूछो तो मैं भी बहुत छोटा हूं!

—आप छोटे हैं?... वह लड़का खिलखिला कर हंस पड़ा. आप इतने बड़े हैं, वाह...! वह लड़का फिर कहकहे लगाने लगा.

मैं खामोशी से बदस्तूर उसे देखता रहा और दिल-ही-दिल में कहा, मियां तुम हंस रहे हो?

—भाई जान, एक बात और पूछूं? उसने जरा ठहर कर दूसरा सवाल किया.

—पूछो मियां, वह भी पूछ डालो ...

—आप इतने उदास ... भाई जान, आप कभी हंसते क्यों नहीं?

मेरा जी चाहा, सच कह दूं, कैसे हंसूं मियां, इस कारजा शीशागरी में हंसना कोई खेल है? मगर मैं इस मासूम बच्चे को, जो जरा देर पहले लका कबूतर के चले जाने की फिक्र में उदास था और अब जरा देर में कहकहे लगा रहा था, कुछ नहीं बता सका.

—भाई जान, मैं आपको हंसा दूं?... वह लड़का बड़ी मुहब्बत से मेरी तरफ बढ़ा और मेरी आंखों में आंखें डाल कर बोला—आप कहिए तो मैं आपको हंसा दूं?

पहले तो मैं चौंका. दफ्तन मुझे अजीब-सा लगा, नासमझी में इस लड़के ने जरा अपने कद से बड़ी बात कह दी थी. फिर मैंने जरा मुहब्बत से ताकीद की—मियां, आहिस्ता बोलो. घर जाओगे, किसी ने सुन लिया, तो दूसरों को खबर कर देगा कि यह कैसा लड़का है कि इसकी बहन बीमार पड़ी है और इसका लका कबूतर भी चला जाने वाला है और यह है कि खुद हंसता भी है और दूसरों को हंसाने की भी सोचता है! होश के नाखून लो, मियां, मुफ्त में मारे जाओगे.

—बला से मार दिया जाऊंगा! लड़के ने हौसले में कहा. आप कहिए, तो हंसा दूं आपको?

—हंसा दो, मियां, बड़ा करम होगा...बड़ी मेहरबानी होगी तुम्हारी!

—तो फिर दोस्ती कीजिए. उसने दोस्ती के लिए अपना हाथ आगे बढ़ा दिया.

—तुमसे दोस्ती? अरे छटंकी, तुम्हारे इत्ते-इत्ते तो मेरे बेटे हैं! मैं तुम्हारे बाप के बराबर हूं!

—तो क्या हुआ, बाप भी दोस्त होते हैं. मेरे मौलवी जी कहते हैं, अच्छे बाप अपने बच्चों के दोस्त भी हुआ करते हैं.

—यह बात है ..तो हुआ दोस्त तुम्हारा आज से! मैंने उसके नन्हे-से, खूबसूरत हाथ पर अपना हाथ दे दिया.

—फिर चलिए मेरे साथ नदी की तरफ. वहां आप और हम, दो ही होंगे. वहां मैं आपको एक चीज दिखाऊंगा.

ले चला . . . मैं पीछे-पीछे और वह आगे-आगे. राहगीर पलट-पलट कर हमारी दोस्ती को देखते रहे और हम पलट कर राहगीरों का तक रहे थे, जिनके कोई दोस्त थे भी या नहीं, जिनके कोई ऐसे प्यारे बेटे थे भी या नहीं. यूं जब हम नदी के करीब पहुंचे, तो उसने पहले तो चालाक निगाहों से दायें देखा, बायें देखा, हर तरफ से इतमीनान हो गया, तो उसने अपने नेकर की जेब से माचिस की एक डिबिया निकाली, मुसकराया, मेरी तरफ पलटा और गहरी सरगोशी में बोला—इसमें है. . .

जवाब में मैंने भी उतनी ही होशियारी से पहले बायें तरफ देखा, दायें तरफ देखा, जब हर तरफ से इतमीनान हो गया, तो उतनी ही सरगोशी में पूछा—क्या है इसमें?

—यह है. . .यह है इसमें! लड़के ने कहा और झट से माचिस के अंदरूनी हिस्से को बाहर ढकेल दिया.

माचिस की डिबिया में मेरी आंखों के सामने एक बेहद खुशरंग-सी तितली नीमजान-सी पड़ी थी, जो बाहर की हवा और धूप लगते ही फड़फड़ाने लगी. उसके नन्हे-नन्हे परों के इर्द-गिर्द जाफरानी रंग बिखरा हुआ था. पैरों के ऐन दरमियान जेरा के बराबर सुर्खी थी और सुर्खी के चारों ओर गुलाबी रंग-सा छिटका हुआ था. परों के किनारे पर अफशां चमक रही थी. डूबते सूरज की रोशनी में बेहद हसीन दीख रही थी.

मैं तितली को गौर से देखता रहा और जरा देर रंगों की दुनिया में खोया रहा. जब तक मैं रंगों में डूबता-उबरता रहा, वह लड़का इतने ही इनहेमाक से मेरे चेहरे के खतो-खाल पर कुछ ढूंढ़ता फिरा. मैंने तितली की तरफ से नजर उठायी, उस लड़के की तरफ देखा, वह कदरे अफसुर्दगी से मेरी तरफ पलटा.—आप तो अजीब हैं, भाई जान! . . . आप तो तितली देख कर भी खुश नहीं हुए!

—हां मियां! . . . मैं चौंक उठा. इस दस बरस के बच्चे ने तो मुझे बहुत दूर पहुंच कर पकड़ लिया. यह तुमने क्या कह दिया मियां कि मैं . . . .

—हां, भाई जान! . . . उसने कतए कलाम करते हुए कहा, आप तो तितली से भी खुश नहीं होते, कैसे हमारी दोस्ती निभेगी? . . . .

—नहीं निभेगी, मियां, कभी नहीं निभेगी!

मैं यह कर आगे बढ़ गया, मगर साथ-साथ तेजी से चलते हुए वह लड़का भी हमराह रहा.—लेकिन भाई जान, वह मेरा लका कबूतर. . .वह गाड़ी . . . .

* *

दूसरे दिन मैं बाजार के सारे लोगों से कहता रहा. . . जूते गांठने वाले मोची से, कपड़े बेचने वाले बजाज से, भीड़ में घिरे रहने वाले डॉक्टर से, रोटी और दाल बेचने वाले से, राहगीरों से, सफेद पतलून वाले तेज रफ्तार बाबू से, बोझ ढोने वाले कुली से, रंगीन दुपट्टे वाली खातून से, जो सड़क पर हौले-हौले यूं चलती हैं गोया सारे जमाने को रौंद कर गुजर जाने का फैसला संजीदा अंदाज की गुफ्तगू में लपके चले जा रहे थे, एक-एक आदमी के [illegible] फिरा. तेज रफ्तार गाड़ियों को रोकने की नाकामयाब कोशिश की कि उस दस साल के बच्चे की जवान बहन लकवा की मरीज है और हकीम जी ने दवाओं के साथ लका कबूतर के परों की दवा के लिए कहा है. अगर ये गाड़ी वाले बच्चे के कबूतर को भी ले गये, तो फिर क्या होगा?

मुझे किसी ने जवाब नहीं दिया. सब अपनी-अपनी दुनिया में मसरूफ रहे. इसलिए मैं दस साल के बच्चे के सवाल को पी गया और कोई जवाब नहीं दे सका. मुझे अफसोस था. उदास, सर झुकाये चला जा रहा था. मेरे पांव थक गये थे.

दोपहर से शाम होने को आ गयी थी. सुरमई अंधेरे का जन्म होने वाला था कि मेरी नजर चौक के कोठे पर गयी, जहां शहर की मशहूर रंडी मुन्नी बाई बालकनी में खड़ी बाल संवार रही थी. मुन्नी बाई के सामने अड्डे पर उसका तोता दायें-बायें गरदन घुमा-घुमा कर झूम रहा था और वह अपने बालों में कंघी करती जा रही थी और तोते को पढ़ाती भी जा रही थी.

मैं चुपके से कोठे पर चढ़ गया. उसके कमरे को ओवूर करके बालकनी में ऐन मुन्नी बाई की पुश्त पर खड़ा हो गया. मुन्नी बाई मेरी आवाज से मुतलिक बेखबर तोते को पढ़ाने में मगन थी—बोल मियां मिट्ठू, नबीजी, रोजी भेजो!

मियां मिट्ठू ने अड्डे में दायें और बायें जानिब रखी हुई दोनों प्यालियों को गरदन घुमा कर देखा, फिर एक प्याली पर झुक कर, हरी मिर्च को कतर कर, मुन्नी बाई की तरफ मुखातिब हो कर बोला—नबीजी, रोजी भेजो . . . ! नबीजी, रोजी भेजो! तोते ने अकड़ कर कहा.

—सो मैं आ गया. उसके पीछे खड़े मैंने आहिस्ता से कहा. मुन्नी बाई सुन कर चौंक उठी. उसने पलट कर मुझे घूरा, जरा देर को सहम गयी, फिर जरा डपट कर बोली—तुम कैसे चले आये जी . . . कौन हो?

—सीढ़ियों से जी . . . मुझे नहीं पहचाना, मुन्नीबाई? मुझे नबीजी ने तुम्हारे पास भेजा है.

मुन्नी बाई यह सुन कर हंस पड़ी.—अच्छा. . .अच्छा जी चलो, इधर बैठो तख्त पर. उसने कंघी के दांतों से सुनहरे बालों का गुच्छा निकाला, गोली बना कर उस पर थूका, फिर नीचे सड़क पर फेंक दिया.

—बड़ी तोताचशम हो मुन्नी बाई, जरा-से में तोते की तरह रंग बदलती हो! जवाब में मुन्नी बाई ने एक और रंग बदला और मुसकरा पड़ी.

तख्त पर बैठे हुए मैंने उसके कदमों पर चौदह रुपये के एक-एक के नोट रख दिये.—मेरे पास इतने ही हैं जो, तुम्हारे नबीजी ने बड़े गरीब आदमी को आज इधर भेजा!

—नहीं जी, ये भी क्या कम हैं! .... हम तो अपने आकाओं की खिदमत [illegible] करते हैं.

लेकिन बहुत देर हो गयी और मैंने मुन्नी बाई से कोई खिदमत नहीं ली, तो वह झल्ला गयी.—यहां काहे को आये हो जी? ...और ये रुपये क्यों दिये? ....

—मुन्नी बाई, बुरा न मानो. मैं तो सिर्फ इसलिए आया हूं कि तुमसे भी पूछ देखूं, तुम क्या कहती हो?

—काहे के बारे में?

—ये जो आजकल हर रोज दोपहर में परिंदे पकड़ने वाली गाड़ी आती है, इसको देखती हो?

—हां, देखती हूं कभी-कभी.

—तो तुम्हें कैसा लगता है?

—अच्छा जी ....अच्छा लगता है ...पीले-पीले, लाल-लाल, खूबसूरत शीशों में से चहकते हुए परिंदे भले दीखते हैं.

—बहुत दूर से देखती हो न ...जितनी दूर से तुम्हें तुम्हारे चाहने वाले देखते हैं.

—हां जी, इस बालकनी से.

—मुन्नी बाई, किसी दिन नीचे जा कर करीब से देखो.

—वह क्यों? मुझे इतनी फुरसत नहीं जी! मुन्नी बाई ने नागवारी से मेरी ओर देखा, फिर गालिबन उसे मेरे चौदह रुपये के नोट याद आ गये, तो वह मुसकरा पड़ी.—तुम मुझे जरा करीब से देखो न, जी....

—सो तो देख ही रहा हूं, मुन्नी बाई, और तुम भी देख लोगी, जिस दिन गाड़ी वाले तुम्हारे तोते को पकड़ कर ले जायेंगे ....

—मेरे तोते को क्यों ले जाने लगे! मुन्नी बाई ने कड़क कर बर्जस्ता कहा. यह कोई सड़क पर फिरने वाला आवारा परिंदा है? यह तो पालतू है, मेरा हीरामन.

—हां, मुन्नी बाई, पहले तो वह सड़क पर फिरने वाले परिंदे को पकड़ेंगे, फिर कुछ दिनों बाद लाल-लाल, पीले-पीले खूबसूरत शीशों के पीछे से और परिंदों के दरमियान यह तुम्हारा हीरामन तोता देखने में कितना अच्छा लगेगा! तुम देखो न देखो, सड़क पर चलने-फिरने वाले लोग-बाग और दुकान में सौदा-सुलुफ बेचने वाले बनिये जरूर देखेंगे और सड़क पर जो परिंदे वाली गाड़ी वाले दोनों आदमी सिक्के फेंक देते हैं, उन सिक्कों को और लोगों के साथ तुम भी चुनने लगोगी और यह भूल जाओगी कि ...

—क्या भूल जाऊंगी ...? बहुत-से सिक्के मिल जायें, तो हीरामन को कौन रोता है! गाड़ी वाले अगर ढेर सारे सिक्के फेंक देंगे, तो मैं सब चुन लूंगी. बाजार से नया तोता ले आऊंगी.

—हे-हे मुन्नीबाई, होश के नाखून लो! यह दुनिया है और दुनिया साली बड़ी मतलबी होती है. मान लो, बाजार में तोता न मिला और मिला तो ऐसा पढ़ने वाला न मिला और ऐसा पढ़ने वाला भी मिल गया, तो उसकी जुबान में यह तासीर ....

मुन्नी बाई खिलखिला कर हंस पड़ी और कुछ देर तक हंसते रहने के बाद बोली—वाह, बहुत अच्छा बोलते हो जी! कहां रहते हो? क्या काम करते हो?

—कहानियां लिखता हूं, मुन्नी बाई. रहता-वहता क्या, जहां पाया, रह लिया. जहां चाहा, सो लिया.

—अरे, कहानियां लिखना भी कोई काम हुआ! लगता है, तुम तो हमसे भी गये-गुजरे हो! तुम्हारा धंधा तो हमारे धंधे से भी गया-गुजरा लगता है जी... क्यों जी?

—हां, मुन्नी बाई, तुम तो जरा में इकट्ठे चौदह रुपये रखवा लेती हो और मुझे तो चौदह रुपये हासिल करने के लिए आठ कहानियां लिखनी पड़ती हैं! दो रुपये फी कहानी के हिसाब से जरीदे वाले ने दिये हैं.

—दो रुपये फी कहानी!... ये तो बहुत कम होते हैं! मुन्नी बाई ने मायूसी से कहा. अचानक उसे कोई बात याद आ गयी.—दो रुपये फी कहानी के हिसाब से आठ कहानियों के सोलह रुपये बनते हैं ....बाकी दो रुपये भी निकालो जी .... जल्दी करो!

—हां जी, बनते तो सोलह ही रुपये हैं, मगर एक कहानी तो नाप-तौल में चली गयी.

—नाप-तौल में? अरे वाह! मुन्नी बाई फिर हंसी. नाप-तौल में कैसे चली गयी!

—वह ऐसे कि जब जरीदे वाले के पास पहुंचा, उसे आठों कहानियां पढ़ायीं, तो वह झट अंदर से तराजू ले आया.

—तराजू? कहानियां क्या तौल कर बिकती हैं?

* *

—खुदा का शुक्र है, मुन्नी बाई, अभी तो तौल कर बिकती हैं, कुछ दिनों बाद देखना बेतौले ही बेचनी पड़ेंगी!

—अच्छा-अच्छा, फिर वह तराजू ले आया?... मुन्नी बाई ने दिलचस्पी से कहा.

—हां, तराजू ले आया. डंडी मिलायी, तो एक तरफ पासंग था. उसने झट आधी कहानी नोच ली और दूसरी तरफ वाले पलड़े पर रख दी. जब पासंग बराबर हो गया, तो एक तरफ वजन के सात पत्थर रखे और दूसरी तरफ साढ़े सात कहानियां.

मैंने कहा—वजन सात ही पत्थर रखे गये हैं. देखो तो, कहानी वाला पलड़ा कितना झुक गया है ...आधी कहानी तो तुमने पहले ले ली!....

—पहले ले कर आधी कहानी क्या मैं खा गया? पासंग न मिला तराजू का? जरीदे वाले ने चिढ़ कर कहा.

बात सच थी. मैंने जल्दी-से कहा—अच्छा, ठीक है, तुम सच कहते हो, पर दूसरी तरफ का पलड़ा जो

इतना झुक आया है. मुन्नी बाई, यह सुन कर जरीदे वाला बिगड़ गया. उस[illegible] [illegible] इतना झुक गया, तो दम निकल गया तुम्हारा! क्या सोना तौल रहे हो? कहानियां ही तो हैं!

—सच ही जरीदे वाले ने ... मुन्नी बाई ने हमदर्दी से मेरी तरफ देखते हुए कहा. फिर मुझे दिलवर्दाश्ता देख कर मुन्नीबाई ने दुख से कहा—वाकई हमारा धंधा तुम्हारे धंधे से बहुत अच्छा है.

—हां, मुन्नी बाई, बहुत अच्छा है, इसीलिए कमी-कमी जी चाहता है, कागज कलम फेंक तुम्हारा ही वाला धंधा शुरू कर दूं.

यह सुन कर मुन्नीबाई बेसाख्ता हंस पड़ी और उसने जल्दी से दोनों हाथों से चेहरे को ढक लिया.—अल्लाह, ऐसा न कर बैठना जी, वरना मुफ्त में हमारी रोटी मारी जायेगी!... बहुत देर तक हंसते रहने के बाद जब मुन्नी बाई थक गयी, तो उसे कुछ याद आया.—अच्छा जी, एक कहानी हम पर लिखो!...

—नहीं, मुन्नीबाई, तुम पर तो बहुतों ने कहानियां लिखी हैं. मैं तो तुम्हारे तोते पर एक अच्छी-सी कहानी लिखना चाहता हूं.

—लिखो जी, जरूर लिखो, मेरे तोते पर ही लिखो!... मुन्नी बाई ने मसर्रत से कहा. मगर क्या लिखोगे?

—यह लिखूंगा कि परिंदा पकड़ने वाली गाड़ी आ गयी है और अब जब बाजार के सारे परिंदे खत्म हो चुके हैं, रंगीन शीशों से घिरी हुई गाड़ी वाले, दोनों जहरीली आंखों वाले आदमी चारों ओर घूर-घूर कर ढूंढ़ते फिर रहे हैं कि कहीं से कोई परिंदा नजर आ जाये. कहीं से कोई गोरैया, उमरी, बुलबुल, कहीं से कोई कर्क, नीलकंठ, कोई मैना, कोई तोता दिखाई पड़े. इतने में उनकी चारों जहरीली निगाहें तुम्हारे तोते पर पड़ती हैं और वे दोनों खिल उठते हैं. फिर लंबे बांस वाला आगे बढ़ता है, चुपके से तोते के बायें बाजू पर लसदार रतूबत वाले गुच्छे को छुआ देता है. तोता फड़फड़ाता है, थरथराता है, उड़ने की कोशिश करता है और बरसों के अड्डे को गैर-महफूज जान कर बालकनी की रेलिंग का सहारा लेना चाहता है, मगर नहीं ले पाता और तड़पता हुआ नीचे आ रहता है, जहां वह खड़ा होता है.

वह लपक कर तोते को उठाता है. तोता चें-चें की आवाज से जोर से चीखता, फड़फड़ाता है, फिर पता नहीं, उसका साथ छोड़ती हुई उड़ान की ताकत कहां से लौट आती है. वह जरा ऊपर उड़ता है, लेकिन फिर गिर पड़ता है.

वह आदमी जिसकी कमर से गाड़ी वाली रस्सी बंधी होती है, अपने दूसरे साथी को देखता है और इतमीनान से मुसकरा देता है, जिसके जवाब में रफीक पहले अपने साथी को देखता है, फिर फर्श पर हांफते हुए तोते को देखता है, इसके बाद फिर अपने साथी को देख कर इतमीनान से मुसकरा देता है और आहिस्ता से आगे बढ़ कर तोते को उठाने के लिए झुकता है ...

लेकिन दफ्तन तोता उसकी गिरफ्त में आने की बजाय तड़प कर उछलता है और उसकी कनपटियों पर झपटता है और गरदन का गोश्त नोच लेता है.

उस आदमी के मुंह से चीख निकलती है, जिसे सुन कर उसका दूसरा साथी लपकता है और तोते की गरदन पर हाथ डालना ही चाहता है कि तोता घूर कर दूसरे आदमी को देखता है. उसकी छोटी-छोटी आंखें फैल जाती हैं और उनमें लहू उतर आता है. वह अपनी पूरी ताकत को समेटता है और रेल कर दूसरे आदमी पर भी हमला करता है और उसके सारे चेहरे को नोच कर लहू-लुहान कर देता है. वह आदमी भी झल्ला उठता है और जल्दी से अपने दोनों हाथों की मदद से तोते को अलग करता है और उसे जोर से जमीन पर फेंक देता है.

अब दोनों तोते के एक तरफ खड़े हैरत से देख रहे होते हैं और तोता आहिस्ता-आहिस्ता टहलता हुआ कभी पहले आदमी की तरफ जाता है, फिर उसी इतमीनान-खातिर से टहलता हुआ दूसरे आदमी की तरफ लौट जाता है और दोनों को अपनी खून उतरी नजरों से घूर रहा होता है ...

और इतने में मुन्नी बाई जल्दी से कह उठती है—मैं लपक कर जाती हूं और अपनी चादर उस पर डाल देती हूं और परिंदे को पकड़ कर गाड़ी वाले के हवाले कर देती हूं और उससे बहुत-से .... जब बहुत-से पैसे मिलने वाले हों, तो क्या मैं तोते को ये सब करने दूंगी...?

* *

मुन्नी बाई हिकारत से मेरी तरफ देखती है और थूक देती है.—ऐसी कहानी लिखी जाती है, जी ...?

जवाब में मैं मुन्नी बाई के चेहरे को देखता हूं, अड्डे पर इधर से उधर होते हुए तोते को देखता हूं और फिर एक बार पलट कर तोते को देखता हूं. फिर कहता हूं—फिर गाड़ी वाले मुन्नी बाई के नबी जी से "रोजी भेजो" की मेहनत करने वाले तोते को भी ले जाते हैं. फिर रफ्ता-रफ्ता शहर सूना हो जाता है. कहीं कोई परिंदा, कोई गोरैया, कोई बुलबुल, मैना, तोता, कोई मुर्ग, कोई फाख्ता नजर नहीं आती.

शाम ढले दरख्तों पर बसेरा लेने वाली चिड़ियों की चहकार सुनाई नहीं देती. लाजवर्दी आसमान पर सफेद बगुले, तवाजुन से उड़ने वाले बगुले, भी नहीं दिखाई देते. भरी दोपहर की खामोश फिजा में चीलों की दर्द-भरी चीख भी सुनाई नहीं देती. कबूतर की गुटरगूं, पपीहे की पी-कहां, पी-कहां, मैना की खांय-खांय की आवाज से हम महरूम हो जाते हैं, यहां तक कि मौलवी साहब के मुर्ग की अजान भी कहीं खो गयी है.

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं

सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

२ ऐस्प्रो लीजिये

ASPRO

Nicholas

माइक्रोफ़ाइन्ड **ऐस्प्रो** दर्द को जल्दी खींच निकालता है

A.G.63.HN

लेकिन बाजार और रौनक बाजार में कोई फर्क नजर नहीं आता. खरीद-फरोख्त जारी है. शोर-शराबा, इक्के वालों की खटखट, टमटम वालों के घोड़ों की घंटियां बजती रहती हैं. लंबी और खूबसूरत कारें जूं-जूं करके गुजर जाती हैं. आमदोरफ्त जारी है. कारोबार बदस्तूर है. खरीदने वाले उसी तरह बाजार की दुकानों पर जमे रहते हैं और बेचने वाले इसी इनहेमाक से सौदा-सुलुफ बेच रहे हैं. एक हंगामा है कि जारी है. एक दौड़ है कि रुकने का नाम नहीं लेती. फिर दिन ढलता है. रात आती है और अपने तमाम छोटे-बड़े, खरे-खोटे, सच्चे झूठे बच्चों पर आराम की, सकून की चादर तान देती है. फिर रात भी चली जाती है. फिर सुबह नमूदार होती है और खिलकत बेदार होती है.

अब परिंदा पकड़ने वाली गाड़ी कम आती है—दो-चार दिनों में, आठ-दस दिनों में, पंद्रह-बीस दिनों में एक बार आती है. रंगीन शीशों में से एक-आध परिंदा हैरत से बाजार वालों को देख रहा होता है. गाड़ी वाले इधर-उधर तेज निगाहों का जाल फेंकते, फिर समेटते और चारों मुतजस्सिस नजरों से देखते, ढूंढ़ते-ढांढ़ते आहिस्ता-आहिस्ता छोटे कदम रखते चले जाते हैं. कभी कुछ मिलता है, कभी कुछ नहीं मिलता. कोई पलट कर नहीं देखता.

* *

एक ऐसा ही दिन था, धूप बहुत सख्त थी, हवा गर्म थी, फिजा में धूल उड़ रही थी, झग्गड़ चल रहे थे, जिस्मों से पसीना बह रहा था, धौंकनी की तरह गर्म-गर्म हवा फेंक रही थी कि गाड़ी आ गयी.

गाड़ी आ गयी, परिंदे पकड़ने वाली गाड़ी आ गयी ...

गाड़ी ऐन चौक पर खड़ी हो गयी. रंगीन शीशों के अंदर एक ही परिंदा था, जो इधर-उधर सहमे-सहमे कदम रखते हुए टहल रहा था. उसकी दुम मोर की तरह खिली थी और आंखों में अफसर्दगी झलक रही थी. अभी गाड़ी ठहरी ही थी कि दौड़ता हुआ वह दस साल का बच्चा आ पहुंचा. उसने पहले गाड़ी वालों को देखा, फिर शीशे के अंदर झांक कर देखा. जरा देर तक देखने के बाद दफ्तन उसने लपक कर शीशे के छोटे-से दरवाजे को खोल दिया.

उतनी ही फुरती से बांस वाले आदमी ने उसके हाथ को झटका दिया, फिर दरवाजे को बंद कर दिया और जेब से बहुत सारे सिक्के निकाल कर उछाल दिये. लड़के ने सिक्कों की तरफ ध्यान नहीं दिया. बांस वाले आदमी ने उसके हाथ को पकड़ कर उसे एक तरफ धक्का दे दिया, और सिक्के उछाल दिये. लड़के ने सिक्कों की तरफ देखा भी नहीं. गाड़ी तेजी से चलने लगी. उसके पीछे-पीछे बांस वाला आदमी तेज-तेज कदमों से चलने लगा. फिर गाड़ी और तेज हो गयी. आदमी के कदम भी तेज हो गये. अब वह दौड़ने लगा.

लड़का कुछ देर खामोश उदासी से तकता रहा. फिर जाने कहां से उसके कदमों में बिजली की-सी झपट आ गयी. उसने दहल कर भागती हुई गाड़ी को देखा, फिर उसने दौड़ कर उसे जा लिया और शीशों पर जोर से घूंसा मारने वाला ही था कि बांस वाले आदमी ने उसके वार को अपने हाथ पर रोक लिया और बच्चे को जोर से, बहुत जोर से, धक्का दिया.

लड़का गेंद की तरह सड़क पर लुढ़क गया. उसके सर और घुटनों पर सख्त चोट आयी. उसकी आंखों तले अंधेरा छा गया और देर तक वह सड़क को तकता रहा. फिर जब उसकी बीनाई पर छाया हुआ अंधेरा हटा और उसने गौर से देखा, तो गाड़ी दूर ढलान पर तेजी से भागी जा रही थी और उसके पीछे सिर्फ धूल ही धूल थी.

लड़के ने उठने की कोशिश की, लेकिन उससे उठा नहीं गया. उसके घुटनों के दर्द ने उसे उठने नहीं दिया और वह फिर तिलमिला कर सड़क पर गिर गया.

गाड़ी आंखों से ओझल हो गयी. गाड़ी में लगी छोटी-छोटी घंटियों की सहरजदा आवाज कानों से ओझल हो गयी और बहुत देर हो गयी . . . बहुत. . . . बहुत देर.

जब बहुत देर हो गयी, तो वह लड़का सड़क पर से उठा. पहले उसने अपने लहू-लुहान घुटनों को देखा, फिर अपने कपड़ों की धूल झाड़ी, इसके बाद अपनी आस्तीन से आंखें पोंछते हुए थके-थके कदमों से चल कर मेरे पास आ खड़ा हुआ.

—भाई जान, लका भी चला गया! . . . उसने गोया अपने आप को इत्तला दी.

—हां, मियां, लका भी चला गया! मैंने मायूसी से जवाब दिया. जरा देर वह सड़क की ओर देखता रहा. उसकी नजरें ढलान की तरफ दौड़ गयीं, जहां कुछ भी नहीं था. उसने धीरे से अपनी नेकर की उभरी हुई जेब पर हाथ फेरा, जहां माचिस की डिबिया थी.

—भाई जान . . . .इस . . .इस तितली को भी ले जायेंगे न?

—. . .

—जब तितलियां भी चली गयीं, तो क्या बचेगा शहर में?

जवाब में मैं खामोशी से उसके चेहरे की तरफ देखता रहा, जहां आंसुओं और सड़क की धूल के मिले-जुले निशान अनगिनत मायूसियों को नुमायां किये हुए थे. वह लड़का चौंका और उसने सामने वाली बड़ी इमारत की तरफ इशारा किया.—भाई जान . . भाई जान. . .वह देखिए! . . . .

इमारत के दरवाजे के ऊपर पत्थर का एक परिंदा सर निहोड़े बैठा हुआ था. मेरी और उस दस साल के मासूम बच्चे की निगाहें देर तक पत्थर के उस परिंदे पर टिकी रहीं. □□□

फतेहपुर लेन, झरिया (बिहार)

कांच का आदमी

• श्रवणकुमार वर्मा

वह अपने कमरे में बैठा अखबार पढ़ रहा था. केवल देखे जा रहा था. कोशिश के बावजूद पढ़ नहीं पा रहा था. वह एक पंक्ति पढ़ता, दूसरी पढ़ने लगता और पहली भूल जाता. कोई कड़ी ही नहीं बन रही थी. उसकी पत्नी, जो सामने कालीन पर बैठी निटिंग कर रही थी, ऊन और सलाइयां रख कर खिड़की में जा खड़ी हुई.

—वे नये मकान वाले भी गये!

वह खामोश बैठा रहा. उसने जो सिगरेट अभी-अभी सुलगायी थी, ऐश-ट्रे में राख हो रही थी. धीरे-धीरे उसकी नजर खिड़की के टूटे शीशे पर जा कर ठहर जाती. पहले शीशे में तरेड़ आयी थी, फिर ऊपर का भाग आप-से-आप फर्श पर आ गिरा. उसकी पत्नी ने किरचें उठा कर कूड़े के पीपे में फेंक दी थीं. बाकी शीशा उसने स्वयं निकाल कर फेंक दिया था.

—सब चले गये, मोहल्ला खाली हो गया! उसकी पत्नी गली में झांकती हुई न जाने किससे कह रही थी. कितनी गहरी और भयानक . . . खामोशी है!

उसके हाथ में अखबार था और उसकी निगाहें खिड़की पर थीं. उसने अखबार रख दिया और खिड़की में जा खड़ा हुआ. उसकी पत्नी ने उसकी ओर देखा, खाली-खाली-सी निगाहों से.

—दूसरा शीशा भी टूट गया! वह बोला.

—यहां गत्ता लगा दो! वह बोली. ब्लैक-आउट में. . .

—हम अब बत्ती नहीं जलायेंगे!

वह थका-थका-सा चलता कुर्सी पर जा बैठा और अखबार देखने लगा. सिगरेट जल कर राख हो चुकी थी. उसकी पत्नी अब भी खिड़की में खड़ी थी, जैसे किसी आहट, किसी आवाज का इंतजार कर रही हो. वह खिड़की से हट कर कॉर्निस के सामने आ खड़ी हुई. उसने दायीं ओर का फूलदान बायीं ओर और बायीं ओर वाला दायीं ओर रख दिया. बीच में रखा टाइमपीस उठा लिया, चाबी देने के लिए उलटा किया, कुछ सोच कर रख दिया और पति की ओर देखा. वह चुपचाप बैठा था. उसका सर सीने पर झुक आया था. वह कालीन पर दबे पांव चलती उसके समीप आ गयी. उसे लगा कि उसके पति के सर के बालों में सफेद तारों की वृद्धि हो गयी है.

उसने सर उठाया और पत्नी की ओर देखा. वह अपने स्थान पर बैठ गयी और निटिंग में व्यस्त हो गयी. उनका लड़का बंटी पास ही कालीन पर बैठा खिलौनों से खेल रहा था. अखबार, जो कालीन पर बिखरा पड़ा था, उसने उठा लिया. उसकी पत्नी ने ऊन फिर रख दी और खाली दीवारों को देखने लगी.

—हमें इन दीवारों पर तसवीरें लटकानी चाहिए.

—उनके भी शीशे टूट जायेंगे!

—नंगी दीवारें अच्छी नहीं लगतीं. . .

* *

उसने पत्नी की ओर गहरी नजरों से देखा. पिछली रात वह उसके साथ लेटी थी. नंगी. उनकी शादी को सात साल हो चले थे. इन तमाम वर्षों में वे कभी अलग नहीं सोये थे, लेकिन कल रात वह जैसे उसके साथ लेटा भी बहुत दूर चला गया था. उसकी पत्नी ने पूछा भी था कि वह क्या सोच रहा है, परंतु वह कुछ सोच नहीं रहा था और उसने सच-सच कह भी दिया था कि वह कुछ नहीं सोच रहा था. वह मोमबत्ती की हलकी पीली रोशनी में पत्नी के सुडौल, स्वस्थ और नर्म, भरे-भरे शरीर को देखता रहा. फिर उसकी निगाहें इस शरीर का परीक्षण करके अपनी आंखों में लौट आयीं . . .उस पक्षी की तरह, जो विश्राम के लिए किसी वृक्ष के चक्कर काटता है, परंतु उस पर उतरता नहीं और अंधेरे में किसी ओर उड़ जाता है. फिर जैसे हर वस्तु बर्फ की भांति ठंडी हो गयी. कमरा, बिस्तर, पत्नी, वह खुद. उसने फूंक मार कर मोमबत्ती बुझा दी और धीरे से कहा—कपड़े पहन लो!

उसकी पत्नी ने चुपचाप कपड़े पहन लिये. वे रात भर जागते रहे. कई बार खतरे का सायरन बजा. हवाई जहाज चीखते हुए इधर-से-उधर निकल गये. फायर हुए. धमाके हुए. मकान की खिड़कियां तक हिल गयीं और शीशा छनाक् से टूट गया, परंतु वे वैसे ही पड़े रहे . . . . दो अजनबियों की तरह.

—वह कैलेंडर कहां गया? उसकी पत्नी ने पूछा. वह, जिसमें बच्चा बंदूक लिये बैठा था?

—वह . . .वह मैंने लपेट कर रख दिया है.

—दो साल पहले इस कंपनी के कैलेंडर में इसी बच्चे की तसवीर थी, लेकिन तब उसके हाथ में बांसुरी थी.

वह कुछ नहीं बोला. उसने दूसरी सिगरेट सुलगा ली. एक कश लिया और सिगरेट ऐश-ट्रे में रख दी. उसकी पत्नी दीवार पर उस स्थान को देख रही थी, जहां वह कैलेंडर लटक रहा था. अब वहां केवल

छाया

खाली कील थी. वह सिगरेट के धुएं को हवा में घुलते देख रहा था ...समय बिताने का यह कैसा तरीका है! क्या सचमुच समय बीत रहा है, या उसे बिता रहा है? समय उसके अंदर ठहर तो नहीं गया? उसकी पत्नी उठ कर पिछले कमरे में चली गयी. उसके लड़के ने खिलौनों में से प्लास्टिक का हवाई जहाज निकाल लिया था और अब उसे हाथ में लिये 'शूं-शूं' आवाज निकालता दायरे में दौड़ रहा था. वह खाली-सी नजरों से उसे दौड़ते देखता रहा था. धीरे-धीरे उसका चेहरा सफेद हो गया. वह भयभीत-सा बोला—रख दो इसे!

लड़का सहम कर खड़ा हो गया. अंदर से उसकी पत्नी आ गयी. उसने लड़के के हाथ से जहाज ले कर उसे रबड़ की चिड़िया पकड़ा दी. और जहाज कैलेंडर के साथ ही अलमारी में रख दिया.

—बड़ा सन्नाटा है. वह जैसे सन्नाटे पर कान लगाये बोली. शहर ही खाली हो गया लगता है!

उसने खिड़की से बाहर खामोश, वीरान मकानों को देखा. उसे स्टेशन की ओर जाते हुए लोग ...डरे, सहमे, पीले पड़े लोग, सामान से लदे रिक्शे, तांगे, मोटरें आदि याद आये—स्टेशन पर बेतहाशा भीड़, बेतहाशा सामान.

—शायद! वह कई क्षणों बाद बोला.

—तुम अखबार ऊंची आवाज में क्यों नहीं पढ़ते?

—मैं अखबार पढ़ नहीं रहा हूं, सिर्फ देख रहा हूं!

—किसी का फोन भी नहीं आया! उसने आशापूर्ण नजरों से टेलीफोन की ओर देखा.

—सब लोग चले गये!

—टेलीफोन खराब ही न हो!

उसकी पत्नी ने जा कर रिसीवर उठाया.

—करेंट तो है.

—डायल करो.

—किसे?

—कोई-सा नंबर मिला लो!

उसकी पत्नी ने यूं ही नंबर घुमा दिये.

—बेल हो रही है, लेकिन कोई उठा नहीं रहा!

उसने जा कर रिसीवर में 'टर-टर' की आवाज सुनी, फिर रिसीवर क्रेडिल पर रख दिया और कुर्सी पर जा बैठा और सिगरेट सुलगा ली.

—तुम सिगरेट पीते नहीं, तो सुलगाते क्यों हो? उसकी पत्नी ने ऐश-ट्रे में राख होती सिगरेट की तरफ

अखिल भारतीय हिन्दी कहानी, निबन्ध तथा एकांकी प्रतियोगिता

वर्ष १९७५–७६

प्रतियोगिता निःशुल्क होगी और निम्नलिखित वर्गों में होगी :—

(क) कहानी (ख) एकांकी (ग) निबन्ध (साहित्यिक एवं सांस्कृतिक)

प्रत्येक वर्ग में निम्न तीन-तीन पुरस्कार होंगे :—

प्रथम पुरस्कार	**२५०–०० रुपये**
द्वितीय पुरस्कार	**१५०–०० रुपये**
तृतीय पुरस्कार	**१००–०० रुपये**

१. उक्त तीनों पुरस्कारों को विभाजित भी किया जा सकता है.

२. पुरस्कृत तथा अच्छी रचनाएं विभागीय पत्रिकाओं में प्रकाशित भी की जा सकेंगी.

३. लेखक द्वारा रचना के मौलिक, अप्रकाशित, अप्रसारित तथा किसी पूर्व प्रतियोगिता में न भेजने का प्रमाण-पत्र अवश्य संलग्न होना चाहिए. अन्यथा रचना पर कोई विचार नहीं किया जायेगा.

४. लेखक का नाम (मोटे अक्षरों में), पता केवल अग्रेषण-पत्र पर होना चाहिए, रचना की किसी प्रति पर नहीं.

५. कृपया पत्र व्यवहार करते समय रचना का रजिस्टर नं. तथा तिथि अवश्य लिखें.

६. प्रतियोगिता में प्राप्त रचनाओं को लौटाया नहीं जायेगा.

७. एक वर्ग में लेखक की एक ही रचना स्वीकार्य होगी. रचना की टाइप की हुई अथवा सुवाच्य तीन प्रतियां १५ अक्तूबर १९७५ तक निम्न पत पर अधोहस्ताक्षरी को अवश्य पहुच जानी चाहिए. बाद में प्राप्त रचनाओं पर कोई विचार नहीं किया जायेगा.

निदेशक,

भाषा विभाग, हरियाणा

कोठी नं. १५८०–१८–डी, चण्डीगढ़–१६००१८

डी. पी. आर— हरियाणा (डी. १०५-७५)

देख कर कहा.

वह खामोश रहा.

—मैं पी कर देखूं?

—पियो . . . !

—खांसी तो नहीं आयेगी?

—पता नहीं.

—पी लूं . . . . ?

—लो . . . . !

उसने सिगरेट ले कर पहला ही कश लिया, तो खांसी आ गयी. लड़के ने मां की ओर देखा और खेल में व्यस्त हो गया.

—गला खुश्क हो रहा है!

—पानी पी लो.

* *

वह जा कर पानी पी आयी. कमरे में फिर खामोशी छा गयी. वह स्वेटर उधेड़ने लगी. वह बैठा उसे देखता रहा. उसने सोचा, बुनने से उधेड़ना कितना आसान है! वह उकताये हुए ढंग से उठी और खिड़की में जा खड़ी हुई. स्टेशन पर इंजन की तेज सीटी गूंजी.

—पहले सिर्फ रात को ही सीटी सुनाई देती थी. . .!

उसने सोचा, पत्नी की इस बात का जवाब दे कि नहीं . . . लेकिन क्या जवाब दे? . . . वह उठ कर पिछले कमरे में चला गया. अंदर जैसे हर चीज अपने स्थान से हट गयी थी. कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे. अटैची कुर्सी पर खुली रखी थी. सुबह जो प्याली चाय पीने के बाद उसने मेज पर रखी थी, वह वहीं पड़ी थी. एक मक्खी उसमें गिर कर न जाने कब मर गयी थी. रम की खाली बोतल एक कोने में रखी थी. उसने लेबल पढ़ा——फॉर डिफेंस फोर्सेज ओनली. उसकी पत्नी भी वहीं आ खड़ी हुई थी.

—वह मेजर फिर नहीं आया? . . .

—यह. . .उसने कमरे में बिखरी चीजों को ओर देखा.

—मैं कुछ ढूंढ़ रही थी . . .

—क्या?

—याद नहीं आ रहा! वह उदासी से बोली.

वह छत की कड़ियों को देखने लगा था.

—क्या देख रहे हो?

—वह जाला कब बन गया?

—खयाल नहीं किया . . .

—मेरा खयाल है, कल यह नहीं था . . . कल रात को.

उसने पति की ओर इस प्रकार देखा, जैसे उसके अंदर कुछ टूट चुका हो . . . कुछ टूट रहा हो . . . मुट्ठी में से फिसलती रेत की तरह.

वह उससे न जाने क्यों आंखें नहीं मिला सका . . . आंखें झुका लीं. वह जाने लगा, तो उसकी पत्नी ने उसका हाथ पकड़ लिया.

—सुनो . . . .

वह रुक गया. उसका रंग फीका पड़ने लगा था. वह खड़ा रहा . . . खामोश, सर लटकाये. वह भी खड़ी थी. खामोश, सर लटकाये. फिर वह बोला——यह जाला साफ कर दो . . .

—तुम कर दो . . .

—ठीक है . . .

वह बाहर निकल गया और इधर-उधर जैसे कुछ तलाश करने लगा. उसने किचन, बाथरूम, पेटी के पीछे झांक लिया, फिर पुकार कर पत्नी से पूछा——जाला साफ करने वाला ब्रश कहां है?

—वह तो पड़ोसन ले गयी थी.

—अब . . . .! उसने जैसे विवशता से कहा. . . उन लोगों के आने पर ही होगा.

वह अंदर आ गया.

—सब कुछ बिखर गया है . . .

* *

वे दोनों मिल कर चीजें समेटने लगे. उन्होंने एक-एक कपड़ा तह करके रखा. वह प्याली को लाया था और अटैची उठाने के लिए झुका था कि सायरन जोर-जोर से बजने लगा. वह भयभीत-सी उससे आ लगी. वह उसे बाजुओं से थामे खड़ा था. फिर वही चीखते हुए हवाई-जहाज, वही फायर, वही धमाके. वह उससे लिपट गयी. उसने पत्नी को हौले से पलंग पर बिठा दिया. वह किसी कटे वृक्ष की तरह बिस्तर पर ढेर हो गयी. वह जाने लगा. उसने पति का हाथ मजबूती से पकड़ लिया और अपने साथ ही लिटा लिया.

—क्या हो रहा है? वह बोली.

वह छत की कड़ियां गिन रहा था, जैसे पत्नी का प्रश्न उसके लिए न हो कर बेमतलब उछाली हुई गेंद हो.

—वह तीसरी कड़ी चटख गयी है!

—नहीं तो.

—ध्यान से देखो.

—तुम्हें वहम हो गया है . . .! वह गंभीरता से बोली. ठीक तो है.

अचानक कहीं पास ही जोर का धमाका हुआ, फिर लगातार कई धमाके हुए. उनकी निगाहों से परे जहाज कहीं कुत्तों की भांति लड़ रहे थे. गोलियां चल रही थीं. उसकी पत्नी उससे लिपटी हुई थी. फिर धमाका हुआ. वह उछल कर खड़ा हो गया.

—क्या हुआ? उसकी पत्नी ने पूछा. यह धमाका कैसा था?

—एक शीशा और टूट गया . . .

वह सर थाम कर बिस्तर पर बैठ गया.—शीशा टूट गया. . .

वह तकिये में मुंह दे कर रो दी. □□□

१८०/११, कूचा लंबान, अमृतसर (पंजाब)

बड़ा आदमी

• महेंद्रनाथ

तुम चालीस वर्षों के बाद मिले हो. यह अजीब-सी बात है कि इतने समय तुम जीवित रहे और मैं भी, हालांकि मृत्यु का दंड हम दोनों पर तलवार की भांति लटक रहा है और हम किसी समय भी मर सकते हैं, या मारे जा सकते हैं. हालात इतनी तेजी से बदल रहे हैं कि मौत बहुत सस्ती हो गयी है और जिंदगी बड़ी महंगी. बहरहाल यह तो बताओ, तुम इतने समय क्या करते रहे? तुम्हारे मौन से मैं यह समझ गया कि तुम मुझसे यह पूछना चाहते हो कि मैं इतने समय तक क्या करता रहा ?

मुझे वे दिन याद आ रहे हैं, जब हम दोनों बच्चे थे और सेब-नाशपातियों के बगीचों में एक साथ खेलते थे. उस समय तुम्हारी आंखें नीली-नीली थीं, आज कुछ पीली-पीली-सी हो गयी हैं. शायद यही हाल मेरी आंखों का होगा. शायद तुम बोलने की कोशिश कर रहे हो, मगर मैं तुम्हें बोलने की आज्ञा नहीं दूंगा. मैं तुम्हें बहुत-सी बातें बताना चाहता हूं. तुम शहरी सभ्यता और सोसाइटी से बहुत दूर रहे हो, जंगली सभ्यता में पलते रहे हो और मैंने नयी सभ्यता और सोसाइटी के केंद्रों में आंखें खोली हैं. सच तो यह है कि सभ्यता और सोसाइटी का चक्कर हमने इनसानों को मूर्ख बनाने के लिए चलाया है.

क्या पियोगे? शराब. . .जवान औरत की आंखों की भांति मदमस्त कर देने वाली शराब . . .किसी सुंदरी के लाल-लाल कपोलों की भांति लाल शराब. जहां तक देशी शराब का संबंध है. यानी ठर्रे का, तो वह तो हर जगह मिलता है. . .हर कोने में, हर घर में शराब तैयार की जाती है, शराब पीने में शरमाओ नहीं. जो बात दिल में आये, उसे बेधड़क कह दो. अपने अधिकार सब के सामने रखो, चिल्ला-चिल्ला कर और डंके की चोट पर कहो, ताकि सब को यह मालूम हो जाये कि तुम क्या चाहते हो. यह ऐसा ही जमाना है. शर्म और लज्जा का जमाना कब का समाप्त हो गया. अगर तुम चुप रहे, तो शीघ्र ही स्वर्ग सिधार जाओगे.

तुम बोलते क्यों नहीं? तुम तो मेरे बचपन के साथी हो. हां, तुम यह पूछना चाहते थे कि मैं आजकल क्या कर रहा हूं? पहले यह बताओ, तुम इतने समय तक क्या करते रहे? तुमने शादी कर ली? जरूर की होगी. इसके अतिरिक्त एक इनसान और क्या कर सकता है! इनसानी नसल को बढ़ाने के लिए हर इनसान को शादी करनी चाहिए. इस नसल को फसल कहा जाये, तो ठीक बात होगी. दुनिया का कारोबार कैसे चले, अगर नसल की उत्पत्ति का कारोबार न चले! तुमने बच्चे जरूर पैदा किये होंगे. कितने बच्चे? पांच. . .सिर्फ पांच ? पांच बहुत कम हैं. ज्यादा पैदा करते, तो कम-से-कम गली-मोहल्ले में तो नाम मशहूर हो जाता. क्या कर रहे हैं तुम्हारे बच्चे? स्कूल में पढ़ते होंगे. बेचारे और क्या कर सकते हैं! जी हां, पढ़ा लो कुछ स्कूल और कालेज की किताबें, फिर एक डिग्री, ताकि जरूरत के समय काम आ सके. इन आजमाये हुए नुस्खों के बिना नौकरी मिलना कठिन है. दरअसल दुनिया का 'चक्कर' चलाने के लिए यही ढंग है कि जो कुछ तुमने अपने मां-बाप से सीखा और जो कुछ तुम्हारे मां-बाप ने अपने मां-बाप से सीखा था, उन सब शिक्षाओं को मिला कर, खरल में पीस कर वह सारी शिक्षा अपने बच्चों को पिला दो, ताकि जब वे मां-बाप बन जायें, तो समस्त पीढ़ियों की भांति वे भी अपने बच्चों को वही समझ, वही चलन और वही कार्यक्रम सौंप दें, ताकि सनद रहे कि तुम बाप बन कर अपने कर्तव्य से मुक्त हो गये हो.

मैं बाप नहीं बना, बड़ा आदमी बन गया. बड़ा आदमी भी बाप होता है. बाप घर में शासन करता है, बड़ा आदमी दूसरों पर शासन करता है. बाप घर के खर्च के लिए मेहनत-मजदूरी करता है. अपने बच्चों को खिला-पिला कर और डांट-डपट कर शासन करता है, मगर बड़ा आदमी दूसरों की मेहनत पर जिंदा रहता है और बड़े ठाट से उन पर शासन करता है और उन्हें बताता है कि काम इस प्रकार करना चाहिए और स्वयं बड़े आराम से खर्राटे लेता है. दूसरों की कमाई पर जीवित रहता है और उन पर शासन करता है. कितना श्रेष्ठ काम है !

तुम मुझसे यह पूछना चाहते हो कि मैं बड़ा आदमी क्यों बना? देखो, तुम बोलो नहीं. जब से मैं बड़ा आदमी बना हूं, मैं यह पसंद नहीं करता कि मुझसे कोई प्रश्न करे. मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि तुम बाप क्यों बने? बाप बन कर तुमने कौन-सी हातिमताई की कब्र पर लात मार दी, जो मैं न मार सका ? अरे भई, ये लोग भेड़-बकरियों से कम नहीं. बेचारे बोलते ही नहीं, केवल आदेश सुनना चाहते हैं और मैं हर दिन आदेश सुनाता रहता हूं. लोग बड़े ही खुश और धैर्यपूर्वक रहते हैं. मेरी चर्चा करते हैं, मेरा जुलूस निकालते हैं,

मेरे गले में फूलों के हार पहनाते हैं, जगह-जगह मेरी मूर्तियां स्थापित करते हैं, मेरे उपदेशों को बार-बार सुनते हैं और सिर धुनते हैं, कभी-कभी चीखते और चिल्लाते हैं. गला फाड़-फाड़ कर, मेरा नाम ले कर नारे लगाते हैं.

अच्छा, तो तुम मेरी बातों से ऊब गये हो? क्या तुम यह शहर देखना चाहते हो ? भई, दिखा दूंगा, इतनी जल्दी भी क्या है! मैंने इन सुंदर बिल्डिगों को देखा है, इनके बागों में घूमा हूं. तुम्हें भी घुमा दूंगा. यह वास्तव में बड़ा सुंदर बंदरगाह है. चारों ओर फैला हुआ समंदर और बीच में यह छोटा-सा टापू और इस टापू में लोगों ने रहने के लिए सुंदर-सुंदर कोठियां बनायी हुई हैं. बड़ी-बड़ी ऊंची बिल्डिगें, शानदार बंगले, जहाज, मोटरें, फैक्टरियां, रेलें, बसें, सब कुछ चलता-दौड़ता दिखाई देता है, आजकल स्काईस्क्रैपर बहुत बन रहे हैं. जिनकी आखिरी मंजिल पर नहाने के लिए तालाब हैं, जहां जवान लड़कियां नहाती हैं. सुंदर चमकते हुए शरीर नीले पानी में तैरते हैं. जब बिजली की तेज रंग-बिरंगी रोशनियां तालाब के पानी पर पड़ती हैं और पानी में तैरते हुए जवान शरीरों को छूती हैं, तो वे बिल्लौरी शरीर इंद्रधनुष की रोशनी में जलपरियों के शरीर बन जाते हैं और इतने मनमोहक हो जाते हैं कि उन पर से निगाहें नहीं हटतीं और जी चाहता है, किसी जलपरी को पकड़ कर. . .

मगर इनसे जरा दूर तुम्हें झोपड़ों की बस्ती नजर आयेगी. ऊंची-ऊंची बिल्डिगों के नीचे गंदगी और गरीबी दिखाई देगी. फिर तुम्हारे मन में यह बात जरूर आयेगी कि इन ऊंची-ऊंची बिल्डिगों का क्या अर्थ है? जीवनों में इतना अंतर. . .इतनी अमीरी और इतनी गरीबी!

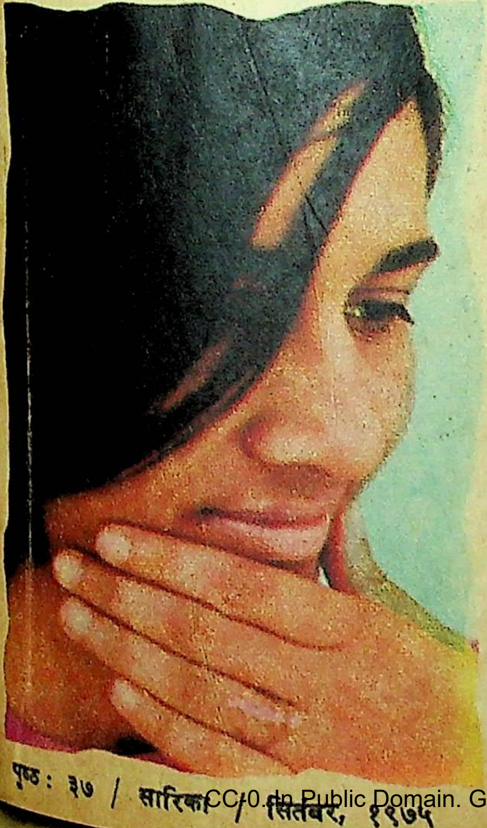
प्रदीप गोदीवाला

यह शहर दिखाने से पहले मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूं कि मैं इस शहर से इतना उकताया हुआ हूं कि तुम्हें बता नहीं सकता. मैं इन आकाश को छूती हुई बिल्डिगों को देख कर भी खुश नहीं हुआ. मैंने अच्छे-अच्छे बागों में भी बैठ कर चैन प्राप्त नहीं किया, समंदर को देख कर मैंने बच्चों की भांति तालियां नहीं बजायीं. नीला आकाश, सागर का स्वच्छ सीना, यह बहकी-बहकी हवाएं, झूमते हुए नारियल के पेड़ आजकल बिल्कुल अच्छे नहीं लगते. अब मुझे सिर्फ अपनी मूर्तियां अच्छी लगती हैं, अपनी तसवीरें अच्छी लगती हैं, अपने उपदेश अच्छे लगते हैं. जब भी किसी मजमे के सामने उपदेश देता हूं, उस उपदेश में उलटी-सीधी और व्यर्थ की बातों से सिवा कुछ नहीं होता, बस शब्दों की जादूगरी जरूर होती है. मैं उपदेश देते हुए रोने लगता हूं, आवाज में दुख और दर्द होता है. जिससे लोग अत्यंत प्रभावित होते हैं. और वे भी रोने लगते हैं. उस समय मैं बहुत खुश होता हूं और यह समझता हूं, जैसे मैं स्वर्ग में हूं. लोग तालियां, पीटते हैं. उस समय वे लोग मुझे बहुत ही छोटे नजर आते हैं और मेरा अस्तित्व कितना बड़ा! मैं उन्हें कुछ भी कहूं, वे करेंगे. सारे शहर में आग लगा देंगे. बच्चों को मार डालेंगे. औरतों की आबरू लूट लेंगे, पागलों की भांति नाचेंगे.

वास्तव में मैं एक उपदेशक ही नहीं, एक इनसान भी हूं. केवल एक इनसान ही नहीं, एक पुरुष भी हूं. सिर्फ एक पुरुष ही नहीं, बहुत समय हुआ, एक बाप का बेटा भी था. जो एक जमाने में बड़ा गरीब था और जब मरा, तो लाखों की जायदाद छोड़ कर मरा.

मैं जानता हूं. तुम मुझे घूर-घूर कर क्यों देख रहे हो. तुम मुझसे यह पूछ रहे हो कि मैं उपदेशक क्यों बना? क्या पूरी जनता का दुख मुझे खाये जा रहा था. दर असल उपदेशक और गीदड़ में अधिक अंतर नहीं होता. जब तक लोग मुझे उपदेशक मानते रहेंगे, मैं उपदेशक ही रहूंगा. जिस दिन उनका भरोसा मुझ पर न रहेगा, मैं दुम दबा कर भाग जाऊंगा. मेरे बहुत से दोस्तों का यही अंत हुआ, जो पहले जाने-पहचाने उपदेशक थे.

मैं बड़ा आदमी क्यों बना, इस सवाल का उत्तर यह है कि मैं बाकी लोगों से अधिक अकलमंद था. एक रहस्य की बात बताता हूं, किसीको बताना नहीं. मेरे बड़ा आदमी और उपदेशक बनने का असली कारण यह है कि मैं और कुछ न कर सकता था. मुझे काम करने से घृणा थी, इसलिए मैं उपदेशक बन गया.

जब मेरी आयु पच्चीस वर्ष की थी, तो बी. ए. पास कर लिया. उन दिनों मेरे पिताजी का कारोबार बस ठीक चलता था, इतने अमीर न हुए थे. मैंने बाप के कहने पर क्लर्की के लिए प्रार्थना पत्र दे दिया, उन दिनों मैं भी परेशान था. और मेरे पिताजी मुझसे ज्यादा परेशान थे, क्योंकि मैं निकम्मा था. दोनों समय मजे से खाना खाता और आराम से सो जाता. मेरे पिताजी

हते थे कि मैं कोई नौकरी कर लूं और जो कुछ माऊं, उनके हाथ पर रख दूं. इसीलिए तो उन्होंने झे पढ़ाया-लिखाया, पाला-पोसा और बी. ए. की डिग्री लवायी. बहरहाल मैंने नौकरी के लिए प्रार्थना पत्र दे या. उन दिनों लड़ाई जोरों पर चल रही थी. क्लर्कों भरती की जा रही थी. मेरा प्रार्थना पत्र स्वीकृत गया. मुझे छह महीने की ट्रेनिंग के लिए भेज या गया. मैंने नापास होने के लिए ट्रेनिंग के बीच त कम पढ़ाई-लिखाई की. जब परीक्षा हुई, तो बड़ी ठिनाई से कुछ प्रश्नों का उत्तर दे सका. मगर उन मबख्तों ने मुझे पास कर दिया, नौकरी के लिए अपा-मेंट लेटर मेरे हाथ में थमा दिया और कहा कि काम आ जाओ. लेटर ले कर मेरा खून सूख गया.

मैं घर वापस आया और मां-बाप को बताया मुझे नौकरी मिल गयी है. सब लोग उछल पड़े. मेरी तो पेड़े बांटने पर तैयार हो गयी. मैंने अपनी झदारी के बल-बूते पर एक वार किया और वह र सफल हुआ. मैं रोने लगा और मां-बाप के सामने ा रोया कि मेरी मां रोने लगी, पिताजी रोने लगे. हल्ले के लोग रोने लगे. उस दिन मुझे पता लगा आंसुओं में कितनी शक्ति होती है. मेरे आंसुओं को कर पिता जी ने मुझसे कहा कि अच्छा, तुम नौकरी न ो, जो कुछ तुम्हारे मन में आता है, कर लो. मैं करी पर न गया. वह था मेरे जीवन का टर्निंग इंट, जो टर्निंग अधिक है, प्वाइंट कम. वास्तव में मेरे आंसुओं ने बचाया, और आजकल भी जब उपदेश करता हूं, तो उपदेश के बीच एक-दो बार र रो ता हूं. मुझे रोता देख कर सभी रोने ते हैं. मेरे उपदेश को सराहते हैं, मुझे आदर देते उस दिन के बाद से मुझे काम से घृणा हो गयी... त घृणा ने समस्त देश के श्रद्धालुओं का बादशाह गया.

अच्छा यह बताओ, यह लड़की, जो जा रही है, क्या हें पसंद है? तुम चुप क्यों हो, बोलते क्यों नहीं? तो पसंद है, दोस्त! तुम शहर देखने आये हो, लो इसे. इसकी सुंदर बिल्डिंगें, हैंगिंग गार्डन, गेट आफ इंडिया, यह फैला हुआ समंदर, जुहू का समंदर-ट, पक्की सड़कें, नैशनल पार्क, खुले चौड़े बाजार, फुटपाथ पर भागती हुई इनसानों की भीड़, ये भगवान के गढ़े हुए अनगिनत इनसान, जो दिन-रात मेहनत करते हैं, सुबह को अपने दड़बों से निकल कर फैक्टरियों में घुस जाते हैं और शाम को थके-मांदे वापस आते हैं, एक सीमित समय तक जीवित रह कर मर जाते हैं. चुपचाप, बिना किसी विरोध और शिकायत के इस धरती को छोड़ जाते हैं.

हां, उस लड़की के विषय में कुछ कह रहा था... वह जो चली गयी. क्या तुमने किसीसे प्रेम किया? अच्छा, तुम मुझसे पूछना चाहते हो कि मैंने प्रेम किया किसी लड़की से? हां, किया. यह बात तुम्हें इसलिए बता रहा हूं कि तुम किसीसे कहोगे नहीं.

तो सुनो. क्या तुम मेरी बात सुनते-सुनते थक गये हो? क्या आइसक्रीम खाओगे या गरम-गरम कॉफी पियोगे? आओ, कुछ खा लें. कुछ दिन तो तुम्हें यहां ठहरना ही पड़ेगा. पहले मेरी बात सुन लो, फिर शहर देख लेना. शहर तो हर इनसान देखता है, मगर मेरी-बातें हर इनसान सुन नहीं सकता. उपदेश की बात और है. वे उपदेश होते हैं. बातें नहीं होतीं. मुझे तो उस समय कुछ पता नहीं लगता कि मैं क्या बक रहा हूं. बस, जबान हिलती रहती है. शब्द बिना रोक टोक के निकलते रहते हैं. अधिकतर उन शब्दों का मस्तिष्क से कोई संबंध नहीं होता. और लोग तालियां पीटते हैं. और जब तालियों की गूंज समाप्त हो जाती है, तो मैं उपदेश समाप्त करता हूं. समझ जाता हूं कि लोग अब तालियां पीटते-पीटते- थक गये हैं. कहीं अपना सिर पीटना शुरू न कर दें... यानी तब वे घर जाना चाहते हैं, क्योंकि उनके घरों में उनकी पत्नियां, उनके बच्चे उनका इंतजार कर रहे होंगे. बच्चे बिलख रहे होंगे, उनको भूख लगी होगी.

आज मौसम अच्छा नहीं है, उस लड़की को, जो मेरे और तुम्हारे सामने से निकल कर गयी थी, तुम शायद भूल गये हो. मैं उसे नहीं भूला. जब निगाहें किसी सुंदर चेहरे को देखती हैं, तो कुछ क्षणों के लिए मस्तिष्क एक भट्ठी की भांति भभक उठता है. उस समय मेरे मस्तिष्क से शब्द मुझे दिखाई दे कर चले जाते हैं. केवल किसीका प्रभाव शेष रह जाता है. शायद सुंदरता का प्रभाव. एक नशा, जो क्षणिक होता है, मगर बड़ा ही प्यारा, बड़ा ही सुंदर, बड़ा ही मखमली और बहुत ही नरम-नरम, जो मेरे चारों ओर घूमता रहता है. उसके नशे में मैं मदहोश रहता हूं. चलो, गेलार्ड चलते हैं. वहां तुम्हें मलाई से लिपटा हुआ एक भुना हुआ चिकन खिलाऊंगा

* *

यह रहा बंबई का विख्यात और अत्यंत सुंदर होटल. दीवारों पर नंगी तसवीरें पेंट करायी गयी हैं... ...औरतों और मर्दों की वासनात्मक और कामुक क्रिया की तसवीरें, सुंदर छातियों की तसवीरें, छलकते होठों और दहकते गालों की तसवीरें. नशीली और बादामी आंखें, नरगिसी आंखें. बाल, जो खुल जायें, तो घटा बन कर बरसें. भिन्न-भिन्न क्लासिकी बनावट के चेहरे, एरियन और रोमन चेहरे, कहीं हेलन ऑफ ट्रॉय, तो कहीं क्लियोपेट्रा का क्लासिकी चेहरा. दीवारों पर अफ्रोएशियाई चेहरों की प्रदर्शनी है. पुराने जमाने में मंदिर हमारी सभ्यता को प्रस्तुत करते थे. आजकल ये होटल और रेस्तरां प्राचीन सभ्यता से ले कर नयी सभ्यता, मेल-मिलाप और विरोध की झांकियां प्रस्तुत करते हैं. नंगी तसवीरों की बहुतायत है. कुछ पेंटिंग सराहना के योग्य हैं. मुझे इस नंगेपन में कोई अश्लीलता और असभ्यता नजर नहीं आती. खैर, इस समय तुम यह देखो कि जब से मैं यहां आया हूं. लोग मेरी ओर देख रहे हैं. बड़ा आदमी हूं, न! मैं यहां कभी नहीं आता, आज तुम्हारे साथ आ गया, मैं भीड़ से दूर भागता हूं. इन बेचारों को आज अवसर मिला है—मुझे देखने का

मेरे दर्शन करने का. मैं यह चाहता हूं कि सब लोग मेरी ओर देखते रहें. लो, बैरा भी आ गया. क्या खाओगे? तंदूरी किचन, दो . . . ! तुमने देखा नहीं, यह बैरा मेरी ओर देख रहा था और कितना खुश था, कितने आदर से झुका था. मेरी प्यारी भक्त मंडली मेरे सामने से आदर से सिर झुका कर निकलती है, आश्चर्य से मेरी ओर देखती है और अपनी जगह जा कर बैठ जाती है. मेरे पास आते हुए डरती है.

इसी अंतर के कारण, जो मेरे और उसके बीच में है, मेरा बड़प्पन कायम है, वरना जो कुछ मैं कहता हूं, करता कहां हूं. मेरे वचन और पालन में धरती-आकाश का अंतर है, खैर, छोड़ो इन बातों को. उस लड़की की ओर मत देखो, जो मेरी ओर देख रही है. बड़ी सुंदर लड़की है. मैं तुम्हें एक बात बताऊं मुहब्बत के बारे में, यानी लड़कियों के बारे में? लड़कियों की ओर मत देखो, उन्हें देखने दो. उनसे बिल्कुल बात मत करो, उन्हें बात करने दो. अपने दिल का हाल मत कहो, उन्हें अपने दिल का हाल कहने दो. यानी अपनी कमजोरी उनके सामने मत प्रकट करो, उनकी कमजोरी तुम्हारे सामने आ जाये, तो क्या बात है. यह गुर, जो मैं तुम्हें बता रहा हूं, लड़कियां फांसने का सब से सफल और बड़ा गुर है. अरे, तुम मेरी ओर ऐसे देख रहे हो, जैसे मैं कोई इनसान नहीं, केवल उपदेशक हूं. हुजूर, मैं उपदेशक होने के अतिरिक्त एक इनसान भी हूं. और एक इनसान के नाते मेरे कुछ कर्त्तव्य भी हैं.

मैं बचपन में दुबला-पतला था, शारीरिक सुंदरता नहीं थी मुझ में. ज्यों ही मेरी आयु तेरह वर्ष की हुई कि मैंने डंड पेलना शुरू कर दिया और तीन साल में मैं एक हृष्ट-पुष्ट शरीर का सुंदर नौजवान बन गया. लड़कियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए शारीरिक आकर्षण बड़ा आवश्यक है. तुम भी एक मरियल औरत के साथ बात करना पसंद न करोगे. इसी प्रकार लड़कियां या औरतें भी एक पतले-दुबले लड़के से संबंध स्थापित करना पसंद नहीं करेंगी. उन दिनों मैंने महसूस किया कि शारीरिक आकर्षण से लड़कियों को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है. शारीरिक आकर्षण का यह अर्थ नहीं कि आप गामा या किंग-कांग पहलवान बन जायें. अगर मेरी बात ठीक न होती, तो फिर अधिकतर लड़कियां पहलवानों पर मोहित हो जातीं. मगर ऐसा नहीं हुआ. बायरन और शैली पर अधिक लड़कियां मोहित हुईं और पहलवानों पर कम.

तो हां, इस शारीरिक आकर्षण के अतिरिक्त एक बात और याद रखो, अपने दिल का रहस्य किसी पर प्रकट न करना, धीरे-धीरे लड़की को अपने पास आने दो, पहली मुलाकात में इधर-उधर की बातें, मुहब्बत का जिक्र गायब, जैसे आपको लड़की से कोई संबंध नहीं. दूसरी मुलाकात में लड़की की सुंदरता पर एक-दो वाक्य बोल दिये. लड़की सुंदर हो, या न हो, उसकी कुरूपता को सुंदरता में बदल दीजिए, आंखें चाहे मैंगी हों, मगर उन्हें आप नरगिसी आंखें कहिएगा. इसी प्रकार गालों, होठों गरदन और शरीर के दूसरे भागों को सराहिएगा कि लड़की को इस बात का आभास हो [illegible] कि वह वास्तव में सुंदर है और फिर इस बीच में यह भी अनुमान लगा लीजिएगा कि जो बातें आपने कही हैं उनसे लड़की पर क्या प्रभाव पड़ा है. उसके बाद अगर आप समझते हैं कि हालात आपके पक्ष में हैं, तो फिर अपनी मुहब्बत को प्रकट कीजिएगा. तब तक तो आपको मालूम हो जायेगा कि लड़की आपको चाहती है, या नहीं. तो हां, तुम मुझसे पूछ रहे हो कि मैंने किसी लड़की से मुहब्बत की या नहीं? मैंने मुहब्बत की है. एक बार नहीं, कई बार. और एक लड़की से नहीं, बल्कि कई लड़कियों से.

मैं उन दिनों की बात करता हूं. जब मैं साधारण इनसान था. उस समय जब कोई औरत मेरे पास खड़ी हो जाती, तो मैं अपनी सीट से उठ कर उसे जगह दे देता. अगर किसी औरत या लड़की का रूमाल गिर जाता, तो तत्काल रूमाल उठा कर उसे दे देता. अगर किसी अधेड़ आयु की औरत को फुटपाथ पर खड़ा देखता, तो उसका हाथ पकड़ कर सड़क पार करा देता. अगर कोई औरत बच्चों के साथ खड़ी हुई टैक्सी का इंतजार करती हुई मिलती, तो मैं टैक्सी रोकने में उसकी सहायता करता. सिनेमा हॉल में अगर किसी लड़की को टिकट की जरूरत होती तो उससे रुपये ले कर उसको टिकट खरीद देता. किसी ट्रेन में यदि लड़की को बैठने की जगह न मिलती, तो मैं अपनी सीट आफर करता. कोई नौजवान लड़का अगर किसी नौजवान लड़की से मजाक करता, तो मैं लड़के को झाड़ देता. अगर किसी वेश्या को छेड़ते हुए देखता, तो फौरन जली-कटी सुनाता. भला इस वेश्या का क्या दोष है, अगर पेट भरने के लिए बेचारी को यह धंधा अपनाना पड़ा, तो पहले इस समाज को सुधारिए, इसको बदलिए.

मुहब्बत और पवित्रता एक-दूसरे से बहुत दूर रहती हैं, यानी जहां पवित्रता होती है, वहां मुहब्बत नहीं होती और जहां मुहब्बत होती है, वहां पवित्रता नहीं होती. मुहब्बत केवल एक बार होती है. लेकिन दोस्त, अपना अनुभव तो यही कहता है कि एक औरत के साथ सारा जीवन व्यतीत करना बड़ा कठिन है और इनसान बोर हो जाता है. आखिर प्रेमिका भी एक इनसान होती है, चाहे वह कितनी ही सुंदर हो, चाहे वह अजंता और एलोरा की जीती-जागती तसवीर हो, आखिर कितने साल तुम उसके साथ रह सकते हो ? अगर वह समझदार है, तो एक-न-एक दिन वह तुम्हें छोड़ देगी. और अगर तुम उससे अधिक समझदार और चालाक हो, तो इससे पहले कि वह तुमसे बोर हो जाये, तुम्हें यह चाहिए कि उससे बोर हो कर उसे छोड़ दो.

मैं जीवन में सदा इसी मार्ग पर चला. तुम सोच रहे हो कि क्या मुहब्बत भी फार्मूले के अंतर्गत की जाती है ? जी जनाब, इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ! यार, तुम यह बताओ, आजकल कौन-सा काम है, जो

किसी फार्मूले के अंतर्गत नहीं किया जाता? फिल्में बनती हैं, फार्मूले के अंतर्गत. किसी रोग को देखो, उसका इलाज भी एक फार्मूले के आधार पर होता है. आजकल कुटुंबनियोजन की योजनाएं, बन रही हैं, स्टील प्लांट की पांच साला योजना, किसीका तख्ता उलटने का प्लान एक फार्मूले के अंतर्गत किया जाता है, हम लोगों के जीवन भी एक प्लान के आधार पर कायम रहते हैं. मुहब्बत भी क्या है? एक प्लान, मुहब्बत के बाद शादी और शादी के बाद बच्चे, उन्हें लिखाइए, पढ़ाइए उनकी शादियां कीजिए, बहू आती है, सास से लड़ाई होती है. और इस प्रकार बाप और बेटे के बीच लड़ाई-झगड़े की शुरुआत होती है. बेटा बाप के विरुद्ध होता है और बहू सास के व्यवहार से तंग आ कर आत्महत्या कर लेती है. भाई एक-दूसरे से तंग आ जाते हैं, एक-दूसरे को इतना जान-पहचान लेते हैं कि आपस में कोई प्यार नहीं रहता. मां-बाप इतने छोटे और कमीने नजर आते हैं कि कभी-कभी यह संदेह होने लगता है कि क्या यही हमारे मां-बाप थे? पति-पत्नी इकट्ठे साथ रहते-रहते इतने बोर हो जाते हैं कि जी चाहता है कि दोनों एक-दूसरे का गला घोंट दें, या फिर संसार छोड़ कर तीर्थ यात्रा को या हज करने चले जायें.

दर-असल बोर्डम से बचने का एक ही रास्ता है कि मुहब्बत एक फार्मूले के अंतर्गत करो. जब एक प्रेमिका से तंग आ जाओ, तो दूसरी लड़की से मुहब्बत कर लो. दरअसल मैं मुहब्बत नहीं करता, कोई किसीसे मुहब्बत नहीं करता, मुहब्बत की कहानियां पागलों की कहानियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं. इस ऐटमी दौर में मजनूं, फरहाद, रोमियो बनना कोई शराफत नहीं, बल्कि मूर्खता का उदाहरण है. पश्चिम में स्कूल के लड़के-लड़कियों को शरीरिक शिक्षा दी जाती है, बल्कि वहां अनुभव के हेतु शादियों का रिवाज पड़ चुका है. और मेरी तो यह भविष्यवाणी है कि पचास वर्षों के अंदर-अंदर, जबकि हम और तुम न होंगे, शादी का रिवाज ही समाप्त हो जायेगा.

मुझे तो हंसी आ जाती है, जब कभी मैं यह सुनता हूं, या किसी समाचारपत्र में पढ़ता हूं कि फलां साहब ने आत्महत्या कर ली, क्योंकि उन्हें अपनी मनचाही चीज नहीं मिली. मृत्यु के बाद कुछ नहीं रहता. निकट के सगे-संबंधी मरने वाले के लिए कुछ देर आंसू बहायेंगे, उसके बाद फिर वे जीवन की उलझनों में उलझ जाते हैं. सारा जीवन कोई किसीके लिए रोता ही नहीं, रो सकता भी नहीं. यह जीवन का कारवां इसी प्रकार चलता रहेगा.

यह जरूरी नहीं कि इनसान अधिक खाये. मगर कम खाने में क्या कमाल है? यानी इनसान इतना जरूर खाये कि शरीर में शक्ति की बिजली जैसी लहर दौड़ती रहे. अगर इनसान कमजोर हो, तो वह जीवन के कई सुखों से वंचित रहता है. जीने की इच्छा कम होती है, वह फलसफाना बात अधिक करता है, जैसी कि इस समय मैं कर रहा हूं. दरअसल मैं विषय को बदलना चाहता हूं. क्या खयाल है उस लड़की के बारे में तुम्हारा? वह लड़की, जो हमारी मेज से जरा आगे की मेज के पास बैठी है, जिससे आनंद लेना कोई बुरी बात नहीं. तुमने शायद इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि जब हम दोनों ने इस होटल में प्रवेश किया था, तो हर इनसान की निगाह मेरे ऊपर थी, लेकिन अब हर आदमी उस लड़की को देख रहा है. मैं भी उस लड़की की ओर बार-बार क्यों देखता हूं, यह जानते हुए भी कि तुम्हारी निगाहों में मेरी इज्जत कम हो जायेगी. भाड़ में जाये ऐसी इज्जत, जो सुंदरता के मार्ग में दीवार बन जाये.

इस लड़की की सुंदरता इस धीमी-धीमी रोशनी में एक आंच-सी देती है. गरदन का हलका-सा खम और काले बालों का कंधे पर लटकना, लड़की का अपनी दोनों कोहनियों को मेज पर रखना और अपने दोनों हाथों में चेहरे को थाम लेना, स्वप्न-भरी पलकों का धीरे-धीरे हिलना, आपस में मिलना, यह सोयी-सोयी-सी आंखें, जिनमें नींद का नशा है, या शराब का, कोई नहीं जानता. रात भर यह लड़की जागी है, या इसने शराब पी है. यह कमबख्त लाल रोशनी कहां से आ गयी! इस लाल रोशनी में लड़की के गाल सूरजमुखी की भांति तमतमा उठे हैं.

मैं रोने का कायल नहीं. मैं बिलकुल नहीं रोता, किसीके सामने बिलकुल नहीं रोता. हां, रोता हूं, तो अकेले में रोता हूं. ताकि लोगों को मेरी कमजोरी का पता न चले.

लो भई, वह लड़की चली गयी, अच्छा हुआ, वह चली गयी. वह न जाती, तो लोग मेरी ओर न देखते. दर-असल होटल में लड़कियों का अधिक महत्व है. मजमे में हजारों लड़कियां आती हैं. कोई उनकी ओर नहीं देखता, अगर कोई देखेगा, तो पल भर के लिए. उसके बाद सबकी निगाहें मुझ पर जम जाती हैं. मेरा खयाल है, अब यहां से उठना चाहिए. यह जगह मेरे बैठने के लायक नहीं है, क्योंकि अगर कोई दूसरी लड़की, यानी कोई सुंदर लड़की इस होटल में आ गयी, तो सब लोग उसकी ओर देखने लगेंगे.

* *

मैं अपने जीवन का रहस्य तुम्हें बताना चाहता हूं. वास्तव में यह मेरी जिंदगी रहस्य नहीं है. पर मेरी नसल का रहस्य है. यह रहस्य उस चीज से संबंधित है, जिसे हम रुपया कहते हैं. रुपये के पीछे भाग-दौड़, एक अंधी कोशिश, एक श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने की जाहिलाना कोशिश. . .बहरहाल तुम्हें बताना चाहता हूं कि जब मेरे मां-बाप इस बंबई शहर में आये थे, तो बड़े ही गरीब थे. उस समय उनके चार बेटे थे. रोजी-रोटी के लिए मेरे पिताजी को इतनी मेहनत करनी पड़ती थी कि बताना कठिन है. फिर वह अमीर हो गये. कारोबार ऐसा चला कि रुपयों की बारिश होने लगी. मलबार हिल पर उन्होंने एक शानदार कोठी बनवा ली, चार फैक्टरियों और दस कारों के मालिक बन गये. चारों बेटों को पढ़ाई-लिखाई के

लिए हिंदुस्तान से बाहर भेज दिया. मेरे भाइयों ने शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात वहीं शादियां कर लीं. किसीने अंग्रेज लड़की से शादी कर ली, किसीने पेरिस की सुंदर नौजवान लड़की से ब्याह कर लिया, किसीने अमरीकी लड़की को अपना जीवन-साथी बना लिया. पिताजी ने कारोबार के लिए सबको रुपये दिये. मेरे भाइयों ने अपने-अपने कारोबार को ऐसा चमकाया कि लाखों के मालिक बन गये.

मेरी मां अत्यंत सुंदर थीं. उनका कद लंबा था और चेहरे की बनावट क्लासिकल थी. गोरी रंगत, छरहरा बदन, नाक सुतवां, लंबूतरा चेहरा, बादामी आंखें और बाल तो कमर तक लटकते थे. जवानी को लांघ कर जब मेरी मां ने बुढ़ापे की आयु में पैर रखा, तो उनकी सुंदरता में बढ़ोत्तरी ही हुई थी. बड़े मिलनसार स्वभाव की थीं. ममता, प्यार और मेल-जोल की साक्षात मूर्ति थीं.

मैं इस समय केवल यह घटना सुनाना चाहता हूं, जिसका संबंध मेरे बाप की मृत्यु से है. इतनी दौलत इकट्ठी करने के बाद, अपनी कोठियां और फैक्टरियां बनाने के बाद अचानक उन पर लकवा का हमला हुआ और शरीर के दायें भाग पर बड़ा तेज फालिज गिरा, दायां भाग बिल्कुल बेकार हो गया. यहां तक कि जबान से वह एक शब्द न बोल पाते थे. डाक्टरों नर्सों और इलाज करने वालों की कमी न थी. इसके अतिरिक्त मेरी मां ने जो सेवा उनकी की, वह कभी भुलायी नहीं जा सकती थी. एक साये की भांति उनके साथ रहीं. मेरे पिताजी का जरा-सा संकेत उन्हें बता देता कि उन्हें किस चीज की जरूरत है. कभी-कभी मेरे पिताजी सबको कमरे से बाहर निकाल देते और केवल मेरी मां कमरे में रह जातीं. एक-आध घंटे कमरे का दरवाजा बंद रहता, फिर खुल जाता और लोग मिलने आते.

हर दिन उनकी हालत बिगड़ती जाती. चारों बेटे फारेन से आ गये थे. उनके बच्चे और उनकी पत्नियां भी आयी हुई थीं. सबके सब होटलों में ठहरे हुए थे, केवल मैं उनके साथ कोठी में रहता था. मुझे कुछ ऐसा लगता, जैसे पिताजी मुझसे कुछ कहना चाहते हों और न कह पाते हों. उस दिन पिताजी के जीवन की अंतिम रात थी. उनके चेहरे पर बड़ा दुख छाया हुआ था, आंखों में भय प्रकट हो रहा था, जैसे वह कुछ कहना चाहते थे, लेकिन कह न पाते थे. रात के बारह बज चुके थे. मैं और मां उनके सरहाने बैठे हुए थे, नर्सें खड़ी हुई थीं. उन्होंने सबको बारी-बारी जाने का इशारा किया. पहले एक नर्स गयी, फिर दूसरी, फिर उन्होंने मेरी मां की ओर देखा. मां ने उनकी ओर देखा. वह समझ गयीं, अब बैठना ठीक नहीं क्योंकि पिताजी का चेहरा क्रोध से फूल गया था. आंखें लाल हो गयी थीं. मां चली गयीं. अब कमरे में केवल मैं उनके पास रह गया.

रात के बारह बज चुके थे. काली अंधियारी रात थी. उन्होंने इशारे से मुझे समझाया कि दरवाजा बंद कर दो और चटखनी लगा दो. मैंने वैसा ही किया. उन्होंने मुझे इशारा किया कि मैं अपनी कुर्सी उनके निकट ले आऊं. मैंने अपनी कुर्सी उनके निकट कर ली.

फिर उन्होंने धीरे से जबान खोली और बोले—बेटा. . .! मैं मर चुका हूं. तुम्हारा बाप मर चुका है. मैं वह नहीं हूं. जो तुम मुझे समझते हो. अब मेरा और तुम्हारा कोई रिश्ता नहीं है. मैं जानता हूं, ये मेरे बेटे, मेरी बहुएं क्यों आयी हैं. ये सब लोग जायदाद का बंटवारा चाहते थे. और मैंने बंटवारा कर दिया है. वसीयत नामे पर मैंने हस्ताक्षर कर दिये हैं. मैं अब न किसीका बाप हूं, न कोई मेरा बेटा. मैं तुम्हें चाहता हूं, शायद इसीलिए तुम्हें मैं वह बात बताना चाहता हूं, जो आज तक मैंने किसीको नहीं बतायी. तुम्हारी मां सुंदर थी और अब भी सुंदर है. वह शरीफ थी और अब भी शरीफ है. जब मेरी और उसकी शादी हुई थी, तो मैं गरीब था. अच्छे जीवन की कामना ले कर हम बंबई आये. जहां से चले थे, वहां हमारी आर्थिक हालत बड़ी खराब थी. मैंने बहुत कोशिश की कि कोई नौकरी मिल जाये, कोई बिजनेस कर सकूं, मगर हर कोशिश बेकार साबित हुई. मैं अपने बच्चों को ले कर इस बड़े शहर में आया. तब तक तुम पैदा नहीं हुए थे. हम एक दोस्त के यहां ठहरे. उस बेचारे ने हमारी खूब आवभगत की, लेकिन दौड़-धूप करने के बाद भी मुझे नौकरी न मिली. रुपया तो था नहीं, बिजनेस क्या करता. मेरे दोस्त के घर एक बिजनेसमैन आ कर ठहरता था. उसकी नजर मेरी पत्नी पर पड़ गयी. बेटे, तुम अपनी मां को जवान अवस्था में न देख सके, मगर उसे इस बुढ़ापे में देख कर तुम अनुमान लगा सकते हो कि यह जवानी में कैसी रही होगी. तुम्हारे सामने मुझे यह सब कहते हुए अच्छा नहीं लगता, लेकिन क्या करूं, जो वास्तविकता है, उसे कहने में क्या हर्ज है. जरा पानी देना, बेटा, गला सूख रहा है.

——आप अधिक बातें न कीजिए, डाक्टर ने मना किया है. मैंने पानी देते हुए कहा.

पिताजी ने पानी पिया और फिर कहने लगे—वह बिजनेसमैन तुम्हारी मां पर मोहित हो गया. यह एक तरफा प्रेम था. मैं तारीफ करूंगा तुम्हारी मां की कि गरीबी और दुख के समय में भी कभी उसके पग न डगमगाये. वह बिजनेसमैन लाखों का मालिक था, उसने मुझसे तो कुछ न कहा, हां, जिस दोस्त के यहां हम ठहरे थे, उससे जरूर कहा कि अगर एक बार एक रात के लिए यह औरत मेरे पास रहे, तो जो कुछ इस औरत का पति मांगेगा, मैं दूंगा. . .

यह बात मुझ तक पहुंची. कभी-कभी गरीबी और बेरोजगारी इस कदर कष्टप्रद हो जाती है कि इनसान वह सब करने पर भी विवश हो जाता है, जिसे करने के लिए उसकी आत्मा तैयार नहीं होती. मैं जानता था कि मेरा दोस्त भी मुझसे तंग आ चुका था. . .

जो कुछ मेरे दोस्त ने मुझसे कहा, मैंने सुन लिया और सारी रात जागता रहा. तुम्हारी मां भी न सो सकी. अंत में तुम्हारी मां ने मुझसे पूछा——क्या बात है,

आपको नींद क्यों नहीं आ रही है?...

मैंने कहा ---तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि हम जीवन के दिन कैसे काट रहे हैं. अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरा दोस्त मुझसे कहने वाला है कि तुम यहां से चले जाओ. इसके बाद हम कहां जायेंगे. कहां रहेंगे, मुझे कुछ मालूम नहीं. हां, एक बात उसने कही है, जो मुझे तुमसे नहीं कहनी चाहिए. इसके पहले कि मैं तुमसे वह बात कहूं, मुझे मर जाना चाहिए. लेकिन मुझ में इतना साहस नहीं है. एक बिजनेसमैन यहां आता है...

---हां, वह अधिकतर मुझे घूर कर देखता है.

---वह कहता है, अगर तुम एक रात उसके साथ सो जाओ, तो जो कुछ मैं मांगूंगा, वह देगा...

तुम्हारी मां चुप रही और फूट-फूट कर रोने लगी, बोली--- अरे, तुमने तो यह बात कह कर अपनी आत्मा को बेच दिया.

दूसरे दिन वह बिजनेसमैन आया और तुम्हारी मां उसके साथ चली गयी. जब वापस आयी, तो उसने मेरे हाथों में नोटों का एक बंडल थमा दिया.

वह मेरी इनसानियत, शराफत, नेकी, प्यार और मेल-जोल की अंतिम रात थी. मैंने अपनी पत्नी को बेच दिया था और मेरी पत्नी ने अपने बच्चों के लिए अपनी आबरू और शराफत को बेच दिया था. फिर उन रुपयों से मैंने कारोबार शुरू किया. न जाने उन नोटों में क्या चमत्कार था कि मेरा कारोबार चल पड़ा. जिस काम में हाथ डालता, रुपयों की वर्षा होने लगती. फिर जुआ, रेस, सट्टा खेलने लगा. सबमें दौलत प्राप्त हुई. इसके बाद एक फैक्ट्री की नींव रखी, जिसमें पेन बनने लगे और कारोबार बढ़ने लगा, बैंकों में रुपया जमा होने लगा और फिर मैं एक बड़ा दौलत वाला बन गया. पांच फैक्टरियों का मालिक. बैंकों में रुपया है. मेरे पास किसी चीज की कमी नहीं. लेकिन जब उस घटना पर निगाह जाती है, तो यह मालूम होता है कि जो दौलत मैंने इकट्ठी की है, उसकी नींव कितनी घिनौनी है. मैंने सब कुछ पा कर सब कुछ खो दिया है. मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि ये सारी चीजें मुझे आत्मा बेच कर प्राप्त हुई हैं...

लेकिन बेटा, जो कुछ मैंने कह दिया, इससे मेरे दिल का बोझ हलका हो गया. ऐसा मालूम होता है, जैसे यही कुछ कहने के लिए मैं आज तक जीवित था. मुझे उम्मीद है कि तुम अपनी मां का, जो एक औरत भी है, उसी प्रकार सम्मान करोगे, जिस प्रकार अभी तक करते आये हो. अब तुम अपनी मां को मेरे पास भेज दो.

मैं पिताजी के कमरे से निकल कर मां के कमरे में गया. मां पलंग पर लेटी हुई थीं.

---मां...मां, पिताजी आपको बुला रहे हैं. मां ने कोई उत्तर न दिया. मैं जरा जोर से चिल्लाया. मां... वह फिर न बोलीं. मैं घबरा कर आगे बढ़ा. मां अकेली-सी पड़ी थीं. मैंने उनकी नब्ज देखी. वह मर चुकी थीं. पास की मेज पर एक छोटी-सी शीशी खाली पड़ी थी, जिस पर लिखा था---पॉइजन.

और जब मैं पिताजी के कमरे में गया, तो पिताजी मौत की गोद में सो रहे थे. शायद यही बात बताने के लिए वह जीवित थे.

★ ★

अरे, तुम सो गये मेरी जिंदगी की दुर्घटनाएं सुनते-सुनते! मेरे दोस्त, इससे बड़ी ट्रैजेडी और क्या हो सकती थी! मैंने अपनी मां को वेश्या बना दिया और बाप को दलाल, और आप मजे से आराम कर रहे हैं, जैसे कुछ हुआ ही नहीं! मेरी इतनी बड़ी तौहीन! भगवान की कसम, तुम्हारी जगह कोई और होता, तो कोड़े मार-मार कर खत्म कर देता! मेहमान न होते, तो खाल उधेड़ देता. ठीक है, सोये रहो, जागो नहीं. अगर तुम्हारी आंखें खुल गयीं, तो तुम्हें मेरे अपमान का पता चल जायेगा. सोये रहो और मेरी बातें सुनते रहो. पिताजी बहुत दौलत छोड़ कर मरे थे, इसलिए मेरे बड़ा आदमी बनने का मार्ग साफ हो गया. मैंने अनगिनत रुपया फेंका. पार्टियां कीं. शराबों की बोतलें खोल दीं. प्रेस वालों को बुलाया. फोटो, तसवीरें, इंटरव्यू, भिन्न-भिन्न विषयों पर मेरे उपदेश और वक्तव्य छपने लगे. समाज के बड़े-बड़े लोगों को घर बुलाया. उन्हें खूब खिलाया-पिलाया. उनके साथ फोटो खिंचवा कर समाचारपत्रों में छपवाये. बस, फिर क्या था, मैं एक बड़ा उपदेशक और बड़ा आदमी बन गया. अगर किसी के घर का, किसी मार्केट का उद्घाटन होता और मुझे उद्घाटन के लिए बुलाया जाता तो मैं जरूर जाता और इस बात का ध्यान रखता कि फोटो लिये गये हैं या नहीं और मेरी पसंद के फोटो समाचारपत्रों में छपवाये गये हैं या नहीं. बड़ा आदमी बनने का सबसे बड़ा गुर यह है कि आप शब्दों से खेल सकें, व्याख्यान का हर शब्द चुभता हुआ हो, वाक्य जादू-भरे हों और उपदेश करने का लहजा शहद-भरा हो. शब्दों का एक बड़ा भंडार आपके पास होना चाहिए, ताकि आप लोगों को भली प्रकार बहका सकें. हमारी भक्त मंडली बड़ी सीधी-सादी है, उसे बहकाना बड़ा आसान है. आपकी निगाह हर उलझन और हर विषय पर होनी चाहिए. आज-कल नास्तिकता का खूब जोर है. कुछ लोगों का 'इलाज' हो रहा है लेकिन कुछ लोगों के ही 'इलाज' से क्या होगा? क्या इससे सुधार हो सकता है? मुझे इन नास्तिकों को समझाना पड़ेगा. इन्हें ठीक मार्ग पर लाना होगा. वास्तव में सफल उपदेशक वही होता है, जिसके पास हर मसले का हल हो और वह किसी मसले का हल न करे. एक मसले का हल तो उसे कभी नहीं करना चाहिए, वरना उसकी उपदेशकी खतरे में पड़ जायेगी और वह मसला है आत्मा-परमात्मा और ईश्वरीय सत्ता का...

दोनों का संबंध आपस में वही है, जो मां और बेटे का होता है. इसीलिए आत्मा-परमात्मा के मसले

पर शानदार, प्रभावपूर्ण और दिल दहला देने वाला व्याख्यान दीजिए, मगर भगवान के लिए इस मसले को न हटाइए, वरना उपदेशकों का पत्ता कट जायेगा. जहां तक छोटे-मोटे मसलों का संबंध है, जैसे जाति के झगड़े, प्रांतीय भेद-भाव, भाषाई झगड़े, उर्दू-हिंदी के झगड़े, कितने ही मसले, इनके संबंध में उपदेश दे कर लोगों को उलझाया जा सकता है, या फैसला भी किया जा सकता है.

एक और खास मसला है मेरी निगाहों के सामने और वह है आध्यात्मिक मसला. पूरब और विशेष कर हमारा हिंदुस्तान तो आध्यात्मिकता का सबसे बड़ा घर है. आजकल इंटरनेशनल रूप में इस विषय ने मुख्यता प्राप्त कर ली है और यह आंदोलन खूब जोर पकड़ रहा है. एक-दो बार मैंने सोचा कि मैं भी स्वामी बन जाऊं, मार्डन स्वामी जो एअर-कंडीशंड कूपे में यात्रा करते हैं. यह उपदेशक और स्वामी, दोनों का काम शब्दों से खेलना है. अच्छी-खासी भीड़ मिलती है. सब बड़े-छोटे, मर्द-औरतें आदर-भरी दृष्टि से देखते हैं. एक सफल योगी, स्वामी या ऑल इंडिया शोहरत वाला स्वामी साल में एक-दो बार न्यूयार्क, लंदन, पेरिस के चक्कर लगा सकता है. वहां कीर्तन के अड्डे खोले जा सकते हैं. इसी प्रकार फॉरेन एक्सचेंज में बढ़ौती भी हो रही है. जहां तक इंगलैंड और अमरीका का संबंध है, वहां इस आंदोलन ने काफी जोर पकड़ा है. बहुत-से समाचारपत्रों में अमरीका और ब्रिटेन के रहने वालों की तसवीरें छपती हैं कि वे किस प्रकार आत्मिक विषय से प्रभावित हो कर धोती पहने हुए, गले में माला डाले हुए ढोलक बजा-बजा कर पागलों की भांति नाच रहे हैं. उन्हें नाचते-कूदते देख कर मुझे हर्ष होता है कि आखिर हिंदुस्तानियों ने अपनी गुलामी का बदला ले लिया . अमरीका ऐटमी हथियारों से हमें डराता है और कभी-कभी हमारा अपमान भी करता है, लेकिन जो दुर्गत आजकल अमरीकी और अंग्रेज नौजवानों की हो रही है, इसके लिए मुझे पूरब के समस्त आध्यात्मकवादियों, उन स्वामियों और योगियों को धन्यवाद देना होगा कि उन्होंने वह चमत्कार करके दिखा दिया, जो गांधी और जवाहरलाल नेहरू न कर सके. यदि पश्चिम वाले इसी प्रकार पूरबी आध्यात्मिक विषय पर विश्वास लाते गये, तो परमात्मा की कृपा से जिस प्रकार हम नाकारा हो गये हैं, उसी प्रकार अमरीका और ब्रिटेन की पूरी नयी और पुरानी नसल नाकारा हो जायेगी. दूसरी जातियों को नकारा बनाने की जो योजना हमारे संतों, मुनियों और योगियों ने बनायी है, मैं उसका हृदय से स्वागत करता हूं. हम तो पहले ही नाकारा थे, पूरी दुनिया को नाकारा बना देने का काम वास्तव में किसी चमत्कार से कम नहीं है. यह आंदोलन दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है. इसे अपनाया जा सकता है. अभी दिल नहीं मानता, राह में केवल एक रुकावट है और वह है चोला बदलने की रसम, यानी धोती-लुंगी या भगवे कपड़े पहनने होंगे. और मुझे ऐसे कपड़े पहनने की आदत नहीं है. हो सकता है, दो-तीन वर्षों में हमारे योगी और स्वामी भी पैंट और बुश शर्ट पहनना शुरू कर दें. उस समय मैं स्वामियों की लाइन में तत्काल खड़ा हो जाऊंगा. इसके लिए मुझे बहुत किताबें पढ़नी पड़ेंगी. कहीं यह न हो जाये कि भगवे वस्त्र पहन कर स्वामी तो बन जाऊं, मगर आत्मिक उपदेश करने में असफल हो जाऊं. अगर चोला ही बदलना है, तो ए ग्रेड के स्वामियों में मेरी गिनती होनी चाहिए. यों मैं इस प्रकार की सभाओं में सम्मिलित हुआ हूं, जहां देश के विख्यात स्वामियों ने उपदेश किये, मैंने उनके संबोधन का ढंग, बात करने का अंदाज, उनके जोशीले वाक्य और उनकी भावुकता को खूब ध्यान दे कर सुना और देखा है और विशेषकर इस बात को जानने की चेष्टा की कि वह ऐसी कौन-सी दुखती रग है, जिस पर वे उंगली रखते हैं तो लोग वाह-वाह चिल्ला उठते हैं. एक बात मैंने नोट की जो आपको बता देता हूं कि मैंने इस प्रकार की सभाओं में औरतों की अधिक संख्या देखी है. औरतों को बड़ी आसानी से मूर्ख बनाया जा सकता है. एक तो उनमें समझ ही नहीं, अगर मान भी लिया जाये कि समझ होती है, तो वह बहुत थोड़ी मात्रा में होती है. इसलिए इस प्रकार की सभाओं को प्रभावित करना बड़ा आसान है. मेरे सोये हुए दोस्त, उपदेशकों की जिस सीढ़ी पर मैं पहुंचा हूं, वह उपदेशकों की अंतिम सीढ़ी है. वास्तव में मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरा जीवन अंदर से खोखला और घटिया हो चुका है. मैं इसे और घटिया नहीं बना सकता. यह गिरावट की भी अंतिम सीढ़ी है, जहां अच्छाई और बुराई में कोई अंतर नहीं रहता, जहां अमीरी और गरीबी की कोई पहचान नहीं, जहां झूठ और सच की कोई चिंता नहीं. जब इनसान इस सीढ़ी पर पहुंच जाये और जब उसकी बात को भगवान का दर्जा दिया जाने लगे, तो ऐसे समय प्रोफेशन बदलना परले दर्जे की मूर्खता होगी.

इस समय मुझे भ्रम हो गया है. क्या तुम मौजूद भी हो? कहीं मैं अपने-आपसे तो बातें नहीं कर रहा था? यानी तुम नजर नहीं आते. वायु में घुल गये हो, या तुम्हें सोने में चलने की बीमारी है? बहरहाल तुम चले गये. अच्छी ही किया, तुम्हें एक दिन जाना ही था. तुमने मेरी बातें सुनीं कि नहीं. तुम मेरे जीवन के रहस्य से प्रभावित हुए या नहीं, मुझे इससे कोई मतलब नहीं. मेरा काम है उपदेश देना. लोगों को प्रभावित करना. जब तक लोग मेरे उपदेशों से प्रभावित होते रहेंगे, मैं एक उपदेशक की हैसियत से व्याख्यान करता रहूंगा. मुझे मालूम है, एक समय ऐसा भी आने वाला है, जब भीड़ नहीं रहेगी, एक आदमी भी नहीं रहेगा, मैं केवल अपने आपसे बातें करूंगा. मेरा साया भी मुझसे जुदा हो जायेगा. वह दिन कयामत का दिन होगा, जब मेरा उपदेश सुनने के लिए कोई न आयेगा. उस दिन के आने के पहले मुझे मर जाना चाहिए. अच्छा विदा, मेरे भाई, मेरे हमदम, मेरे प्यारे, विदा! □□□

(अनुवाद : साबिर दत्त)

उसकी हत्या

• हेमांगिनी रानडे

अब बुत बन कर खड़ी रहेगी, या कुछ बोलोगी भी ?

. . .

—नहीं जी, मुझसे नहीं होगा! यह इनसान है या हैवान?

. . .

—सुनायी नहीं देता? या गूंगी हो? ओफ्फो! एक शब्द भी बोले, तो कसम ले लो!

हां! नहीं बोलूंगी मैं! और बोलूं भी क्या? कि यह मेरा कसूर नहीं? कि मेरे हाथ से फूलदान नहीं टूटा? कि मैंने उसे नहीं गिराया? कि वह छोटी मेम सा'ब के हाथ से सरक गया?

नहीं बोलूंगी. कुछ नहीं बोलूंगी. एक बात कहूंगी, तो दस और कहनी पड़ेंगी, सुननी पड़ेंगी. इससे बेहतर है कि मैं खामोश रहूं. और फिर खामोश रहने की तो मेरी बचपन की आदत है. कितने साल हुए? कौन जाने! हुए होंगे! पच्चीस या पचास. हां, इससे क्या होता है? तबसे उसके साथ मेरा बहनापा है. बहनापा या दुश्मनी? कुछ भी कह लो. लेकिन रिश्ता गहरा है. मैं उसका साथ नहीं छोड़ सकती. चाहे वह कितना ही मजाक उड़ाये मेरा. हां, वह मेरा मजाक उड़ाती है. हंसती है मुझ पर. . . . पहले-पहल कब हंसी थी वह?

हां, जब छुटकू घुटनों के बल चलता टूटी गेंद लेने जा रहा था. कैसा दीखता था. और मैं? क्या हो गया था मुझे उस समय? खूब हंसी थी मैं तब. . . जिंदगी में शायद पहली बार. गरीब परिवार के ढेर-से बच्चों को जल्दी हंसी नहीं आती. और फिर मैं तो बीच की थी. एक के बाद एक तीन बहनों दो भाइयों की पीठ पर हुई, तो घर की खुशी कुछ सहम गयी. मैं तीसरी लड़की, मेरे बाद एक भाई छुटकू. जब मैं हुई, तो घर भर सुन्न-सा हो गया. वे चाहते थे कि मैं न होती, मेरी जगह छुटकू होता. लेकिन मैं हुई. मुझमें और दूसरी बहनों में भी कुछ फर्क था—— वे सीधी-सादी थीं, और मैं. . .? मैं?——भगवान ने तुझे बनाते समय भंग खायी होगी, मेरी मां कहा करती. माथे पर भद्दी-सी मोटी गांठ थी और दांत आगे को निकले हुए. मैं नजरें नीची करती, तो सबसे पहले मुझे अपने दांतों का आभास मिलता. मैं कभी लजायी नहीं. कैसे लजाती? दांत दिखायी देने लगते मुझे अपने. और हां, लजाने का मौका भी कब आया? नहीं आया. मैं हंसती भी नहीं. तब भी दांत दिखायी देते. दिखायी तो वह कैसे भी देते लेकिन हंसने पर शायद ज्यादा खूंखार दिखते.

लेकिन उस दिन मैं हंस दी. अच्छा लगा मुझे. कितना हलका-हलका, मानो टूटी गेंद के साथ मैं अब उछल पड़ूंगी हवा में. कितना भला था. लेकिन तब पिताजी झल्ला पड़े—— हंसती है कि हिनहिनाती है, कलमुंही! लड़की है कि घोड़ी! घोड़ी? मैं? चुप हो गयी. बस. तब वह हंसी थी. कौन? मेरी साथिन. खूब हंसी थी, लेकिन बिल्कुल चुपचाप. उसने मेरी ओर देखा और हंसते-हंसते लोट-पोट हो गयी, बोली, अब आज से तुम मेरे कब्जे में हो. मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगी.

बस, तब से वह मेरे साथ रहती है. चिपकी रहती है. एक पल को मुझे नहीं छोड़ती. लेकिन अच्छा ही तो है. अपना कहने को तो कोई है. मां-बाप पाल नहीं सकते थे, सो मुझे नौकर कर दिया. खाना-पीना और तनख्वाह उन्हें दी जाये—— छह रुपये. मुझे अपने माथे की गांठ और लंबे दांतों के साथ उन्होंने विदा कर दिया. मैं छुटकू के बिना रह गयी. लेकिन क्या हुआ, मेरी सहेली जो थी मेरे साथ. मैं उसी से बातें किया करती. और वह मुझसे. लेकिन हमारी बातें किसीको सुनायी थोड़े ही देती थीं? हम चुपके-चुपके बातें किया करते और फिर मुझे किसीकी जरूरत ही न पड़ती.

★ ★

मेरी मां कभी-कभी मेरे मालिक के यहां आती

पगार वसूलने. मुझे नफरत थी अपनी मां से. मां? मां—जन्म देने वाली को शायद मां ही कहते हैं. वह आती और मालकिन के पास अपना दुखड़ा रोने बैठ जाती. चिढ़ थी मूझे उससे. इसलिए नहीं कि उसने मुझे—मांस के इस वीभत्स लौंदे को—— जन्म दिया है, बल्कि इसलिए कि वह लोगों का ध्यान मेरे भोंडेपन की ओर आकर्षित करती थी. जहां मैं काम करती, वहां के लोग मुझे दिन-रात देखते थे. आदत हो गयी थी उन्हें मेरे उस रूप को देखने की. लेकिन जब मेरी मां आती, वह नये सिरे से मेरा कुरूप उनकी नजरों में बांधती. कहती—— देखा? इस डाइन को देखा बहूजी? सुबह देख लो, तो दिन भारी हो जाये. यह तो आप हैं, जो इस चुड़ैल को संभालती हैं. . . ! और मालकिन की आंखों में एक नया भाव उभरता. वह मेरी तरफ ऐसे देखती, जैसे पहली बार देख रही हो. मेरे भोंड़े चेहरे में उसे नया घिनौनापन दिखलायी देता. घृणा होती मुझे अपनी मां से. और मेरे माथे की गांठ दुखने लगती. शूल उठते उसमें. मैं बौरा जाती. उफ्! तब वह—— मेरी सहेली—— मुझसे चुपके-चुपके कहती—— मैं जो हूं! मैं तुझे घिनौना नहीं समझती. तू मुझमें समा जा. कोई तुझे कुछ न कहेगा. फिर वह हंसती—— बिना आवाज के. मेरा लाख जी चाहता कि मैं मां से कुछ कहूं, क्यों वह बार-बार मुझे नयी मौत दे जाती है! मालकिन की फटी-फटी आंखों में उंगलियां खोंच दूं—— देखोगी मुझे? दीदे निकाल दूंगी!

लेकिन वह समझाती, और मैं मुंह मोड़ कर अपनी उस सहेली के साथ घुलमिल जाती. वह मुझसे चिपक जाती और मैं उसको थामने के लिए छटपटाती. . .

कितनी नौकरियां बदलीं. . . मां-बाप नहीं रहे या नहीं आते. . .मरने दो सालों को? मुझे उनकी क्या जरूरत? मेरे पास वह जो थी. बस, बहुत था. उसको अपने से लिपटाये मैं खामोशी के आलम में निश्चिंत थी. नयी-नयी आंखों में अपने प्रति घृणा देखने की शायद मुझे आदत हो गयी थी. अब मैं बड़ी भी तो होने लगी थी. हां, मेरा शरीर कुछ अजीब ढंग से फूल रहा था. सपाटी की जगह कुछ गीलाइयां आ रही थीं. हुंह! आयें! इससे क्या! लेकिन अब मेरे साथ काम करने वाले नौकर—— साले मर्द—— पीछे से आ कर मुझे छूते. घिन आती मुझे. उबकाई आने लगती. छिः .

एक दिन एक ने पीछे से हाथ बढ़ा कर मेरे सीने को छूना चाहा. एक चांटा मारा मैंने उसे. हरामी गाल सहलाते हुए कहने लगा——है तो चुड़ैल और ऊपर से यह नखरा! कोई पूछेगा भी नहीं! हुंह! न पूछे! मैं कब चाहती थी किसीका पूछना. वह सबसे कहता फिरता—— इसके तीन छातियां हैं. दो सीने पर, एक माथे पर. और खूब हंसते सभी. बस, मेरी गांठ दुखने लगती. जी चाहता कि सर पटक-पटक कर उसे लहूलुहान कर दूं. लेकिन वह समझाती—— ना. . .ना. . .!

पर अब उसकी आंखें पहले-सी सहानुभूति भरी नहीं थीं. अब कुछ शरारत थी उनमें. मैं आश्वस्त हो कर भी आश्वस्त न होती. और उसकी वह हंसी. . . अब उसकी हंसी में पहले वाली बात नहीं थी. लगता, वह मुझे चिढ़ा रही है. उसका लिपटना भी मुझे लिस-लिसा लगता . लेकिन कितने सालों की आदत थी उसमें अपने को खो देने की! मैं डूब-डूब जाती उसके सान्निध्य में.

अब मेरे शरीर की गोलाइयां लटकने लगी थीं. गांठ का दर्द जब-तब होता, पर मैं चुप थी. कहती क्या और किससे? पर वह थी न. वह सुनती. पर अब उसे सुनाने में राहत कहां थी? ऐसा लगता, वह मुझे बरदाश्त भर करती है, और कुछ नहीं. . . कुछ भी नहीं. . .

फिर एक दिन मैंने छुटकू को देखा. छुटकू! टूटी गेंद. . .हंसी. . .हलकापन. . .उसे देखते ही कितना अच्छा लगा! आहा, मेरा जी चाहा, हंस दूं. . . जी खोल कर हंस दूं. कितने साल हुए, मैं नहीं हंसी. . . पच्चीस या पचास. लेकिन आज मैं छुटकू के साथ हंसूंगी. वह भी हंसेगा. मैं दौड़ी. वह बाग में था. मुझे देख कर वह भी किलकारी मारने लगा. मैं उसके पास पहुंची. वह उछला, मैं झुक कर उसे उठाने लगी. . .अपने पास छुटकू को ले कर मैं हलकी हो जाऊंगी. . . हलकी. . . गेंद की तरह उछल पड़ूंगी दूर हवा में. मैंने हाथ बढ़ाये छुटकू और हंसने लगा. इतने में किसीने उसे मेरे हाथों से छीन लिया. छुटकू रोने लगा. वह कहने लगी—— देख. . . देख, यह कैसी औरत है! हाय-हाय! खा जायेगी मेरे लाल को! चुड़ैल! डाइन! बदसूरत! घिनौनी. . .!

और. . . और छुटकू मेरी तरफ देखने लगा. उसकी आंखों में डर था. . .?. . .मेरा डर. . . मुझसे डर. घृणा थी. . . मुझसे. . .मेरे लिए. . . और तब वह हंस दी. . .जोर से. . .पहले की तरह चुपके-चुपके नहीं. . .खूब जोर से. . .हा-हा-हा-हा ! कहने लगी. . . चीख-चीख कर—— तू उठायेगी बच्चों को? तू? अपनी शकल तो देख तू. . .! हा- हा- हा- हा !

मेरा माथा! उफ्! कितन दर्द था! मेरी गांठ खूब दुख रही थी. मेरी छाती. . .भर गया उसमें दूध. . . लबालब. . .अब फूटा तब फूटा. और वह हंसी. . . चारों तरफ छुटकू का रोना. . .चीखना. . . दूध. . .लबालब. . .फूटा. . .हंसी. . .रामा उफ्. . . फूट गया. . .छाती फूट गयी. . .दूध. . .दूध. . . लाल रंग का. . .बहने लगा. . .रोना. . .चीखना चीखना. . .हंसी. . .लाल लाल. . .हा-हा-हा-हा. . . नहीं . . .नहीं. . .मैं उस हंसी को रोकूंगी, मैंने हाथ फैलाये. . .लाल हाथ. छटपटायी उसे ढूंढ़ने को. हमेशा वह मुझे छलती है, हाथ में नहीं आती. . . मैं पकड़ूंगी उसे. . .पा लिया! उसकी गरदन! चीखी वह, मैंने जोर से गरदन दबायी. . .भरपूर दबायी. लाल लाल हाथ लाल-लाल गरदन छुटकू रो रहा है. नहीं, मैं उसके साथ हंसूंगी. अब मुझे कोई नहीं रोक सकता. मैं खूब हंसूंगी. . . □□□

श्री समर्थ सदन, दूसरी मंजिल, डा. डी. डो. साठे मार्ग,
गिरगांव, बंबई-४

भाषा विभाग, हरियाणा

हरियाणा के लेखकों को पुस्तक प्रकाशन के लिये सहायतानुदान

राज्य के लेखकों विशेषतः युवा लेखकों को प्रोत्साहन देने के लिये भाषा विभाग, हरियाणा ने एक योजना आरम्भ की है, जिसके अंतर्गत हरियाणा के हिन्दी / संस्कृत / उर्दू लेखकों की अप्रकाशित पुस्तकों पर प्रकाशनार्थ आर्थिक सहायता दी जाएगी. प्रस्तुत की जाने वाली पुस्तक किसी भी विषय की हो सकती है, किन्तु वह टेक्स्ट-बुक या उसकी सहायक पुस्तक न हो. एतद्दर्थ निर्धारित प्रपत्र पर आवेदन तथा पुस्तक की एक पांडुलिपि विभाग में ३० सितम्बर, १९७५, तक पहुंच जानी चाहिये. आवेदन-पत्र तथा नियमावली के लिए निम्न पते पर तुरन्त लिखें.

निदेशक,
भाषा विभाग, हरियाणा,
कोठी नं. १५८०, सेक्टर-१८-डी, चण्डीगढ़—१६००१८

डी. पी. आर–हरियाणा (डी. १०६–७५)

केवल बिनाका टॉप टूथपेस्ट ही मुँह की पूरी रक्षा करता है

ARMS-CBT/26-608 HN

Binaca
top
toothpaste

देखिये!
बिनाका टॉप का
विशेष फैलने वाला
तत्व किस प्रकार
काम करता है।

काँच की प्लेट में थोड़ा-सा पानी डालिए। थोड़ा-सा कोयले का चूरा या रंगीन पाउडर पानी पर छिड़किए।

पानी में बिनाका टॉप घोलिए। मिश्रण की एक बूंद काँच की प्लेट के बीचों-बीच डालिए।

अब देखिए कि बिनाका टॉप कितनी तेज़ी से चारों तरफ़ फैलता है... पानी की सतह पर फैले हुए मैल को काटता है और पानी कितना साफ़-सुथरा हो जाता है।

बिनाका टॉप बिल्कुल इसी तरह काम करता है। इसमें एक विशेष फैलने वाला तत्व होता है जो तुरंत आपके मुँह में फैल जाता है और दांतों में सड़न पैदा करने वाले कीटाणुओं का नाश करता है और सांस की दुर्गंध को दूर करता है। यह आपके मुँह की पूरी रक्षा करता है।

बिनाका टॉप टूथपेस्ट
व बिनाका टूथब्रश मुँह की पूरी रक्षा के लिए

सीबा-गायगी

नमकहराम

● रामजी मिश्र

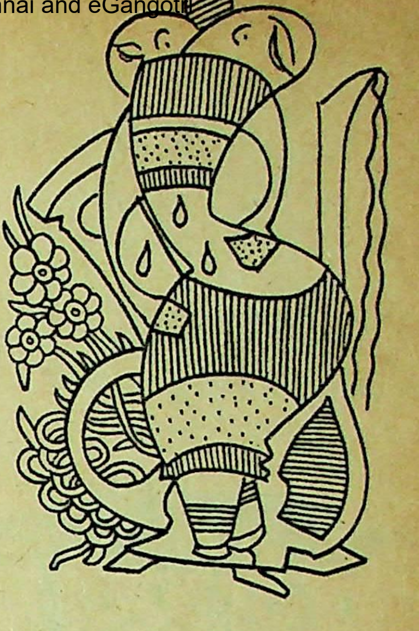

● सिकंदर आलम

एक गांव में एक गरीब किसान रहता था. उसके पास एक बहुत अच्छी गाय थी. किसान उसके लिए नरम-नरम घास लाता और खली-दाना मिला कर उसे खिलाता.

एक दिन सुबह उठ कर उसने देखा कि गाय अपने स्थान पर नहीं है. उसने उसे खोजना शुरू किया. दिन भर भूखा-प्यासा गाय खोजता और रात को उदास हो कर सो रहता. सपने में भी वह 'श्यामा-श्यामा' कह कर बड़बड़ाने लगता. दो दिन के बाद जमींदार की भी दो गायें चोरी चली गयीं. जमींदार को शक हुआ कि शायद ईर्ष्या के कारण गरीब किसान ने उसकी गायें चुरा कर बेच दी हैं. उसने उस किसान को हर तरह से डराया-धमकाया लेकिन वह बराबर कसमें खाता रहा—— सरकार, मैं गऊ की किरिया खा कर कहता हूं, मैंने आपकी गायें नहीं चुरायीं.

चार दिन के बाद उस गांव से दस-बारह मील दूर एक पशु-मेला लगने वाला था. गरीब किसान और जमींदार दोनों उस बाजार में पहुंचे. किसान बड़ी दर्द भरी आवाज में 'श्यामा श्यामा' पुकारता गायों के झुंडों का चक्कर लगा रहा था जब कि जमींदार खरामा-खरामा टहलता हुआ चल रहा था.

इतने में गाय के रंभाने की आवाज आयी. किसान ने आवाज पहचान ली. वह खुशी के मारे उछल पड़ा——सरकार, मेरी श्यामा मिल गयी. यह उसीकी आवाज है. और वह आवाज की दिशा में लपका. गायों के पास पहुंचा तो देखा, श्यामा उसीको देख रही थी और बार-बार रंभा रही थी. किसान ने गाय की पगही पकड़ी और उसे झुंड के बाहर निकाल लाया. गाय को सहलाते हुए उसने जमींदार से कहा—— यही है मेरी श्यामा!

——और मेरी गायें? जमींदार ने मोटी आवाज में डपटते हुए पूछा.

किसान ने झुंड की एक-एक गाय को बड़े गौर से देखा फिर एक गाय की ओर इशारा करते हुए बोला——आपकी एक गाय तो वह रही.

जमींदार असमंजस में उस गाय को घूरता रहा. किसान ने दुबारा कहा —— 'आप पहचानते नहीं? वह दूसरी भी खड़ी है. आपकी भी दोनों गायें मिल गयीं. उनके नाम ले कर बुलाइए.

जमींदार को अपनी गायों का नाम मालूम न था. वह किसान के द्वारा बतायी गयी गायों के पास पहुंचा और उनकी गर्दन से लिपटी रस्सियों को खोलने लगा कि गायें बुरी तरह सिर झटकने लगीं. जमींदार खीझ और गुस्से से बौखला गया. उसने पास पड़ी अरहर की संटी उठायी और गायों को पीटने लगा. इतने में उन गायों को बेचने वाला आया और जमींदार को खूब उसने ऐसी हरकत के लिए खरी-खोटी सुनायी. वह इतने जोर-जोर से और लगातार बोलता जा रहा था कि जमींदार को अपनी बात कहने का मौका ही नहीं मिला. वहां अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गयी. गायों को इस तरह पीटना लोगों को नाराज करने के लिए काफी था. वे लोग जमींदार को उत्तेजित स्वर में बुरा-भला कह रहे थे. थोड़ी देर बाद जमींदार ने जोर-जोर से पुकारना शुरू किया——, ओ श्यामा के मालिक, ओ गरीब किसान, श्यामा... जमींदार ने देखा वह गरीब किसान मस्ती से गाय की रस्सी पकड़े गांव की ओर जा रहा था और उसके पीछे-पीछे जल्दी-जल्दी टांगें बढ़ाती उसकी गाय चल रही थी.

मेरी गायें बड़ी नमकहराम हैं. मेरे नौकर भी बड़े नमकहराम हैं जिन्होंने इनके नाम तक मुझे नहीं बताये. मैं अभी जा कर उन नौकरों को भी निकालता हूं. और भीड़ देखती रही, हांफता हुआ जमींदार दूर जाती श्यामा के पीछे-पीछे चला जा रहा था सिर झुकाये हुए. ▣

गिरवी रखी धूप

• मेहरुन्निसा परवेज़

बड़े लड़के के साथ वह रिक्शा से उतरे तो पत्नी और लड़की जकीया लपक कर उन्हें उतारने रिक्शा तक आये, पर वह दोनों की उपेक्षा कर खुद उतर जाते हैं. सहारा—— किस बात का सहारा? मतलबी, दुनियादार लोग उन्हें क्या सहारा देंगे? उनके मन का रोष अभी तक ठंडा नहीं हुआ था.

——कैसी है तबीयत, जी? पत्नी ने पूछा.

——ठीक हैं. उन्होंने छोटा-सा उत्तर दिया और नाली के इस पार देखने लगे, जहां मुर्गी अपने नये-नये जन्मे चूजों को साथ लिये कचरे के ढेर को खंखोर रही थी. प्यारे सफेद-सफेद पैर कचरे से मैले हो गये थे. मुर्गी के इन नन्हें चूजों का संघर्ष देख कर आदमी का संघर्ष भी भूल जाता है. यह नन्हें-नन्हें बच्चे अभी अंडे तोड़ कर निकल भी नहीं पाते कि उन्हें पेट की भूख सताने लगती है और वह दाने की खेज में इधर-उधर चोंच मारने लगते हैं.

——अब्बा, चाय ले लो. जकीया चाय का कप लिये आंखों के सामने आ खड़ी होती है, तो वह उसे आश्चर्य से निहारने लगते हैं, ——साल भर में ही लड़की में कितना अंतर आ गया! सच है, लड़कियां कूड़े के ढेर-सी बढ़ती हैं.

वह एक हाथ में कप-प्लेट को संभाले चाय सुड़पने लगते हैं. बांये हाथ की हथेली तिरछी हो कर छाती से चिपक गयी थी, बांया पैर भी ठीक से नहीं चलता था, पर जबलपुर के उस हकीम का खुदा भला करे, अब उन्हें घसीट कर चलने लायक बना दिया था. पिछले इन्हीं जाड़ों में तो लकवा की हवा लग गयी थी. कई दिन सरकारी अस्पताल में पड़े रहे, पर कोई फायदा नहीं हुआ. सरकारी रोटी तोड़ते आखिर कब तक पड़े रहते! खुददारी का खून है, क्यों किसी का हराम का खायें! लौट कर इसी खाट पर पड़े-पड़े दिन काटते रहे. पत्नी और लड़कों की उपेक्षा बढ़ती जा रही थी. रिटायरमेंट के बाद घर में कोई इज्जत नहीं होती, कुत्ते-सी गत! जी हुआ, तो रोटी का टुकड़ा डाल दिया, नहीं तो दुतकार दिया! तंग आ कर जबलपुर बहन के पास चले गये.

साल भर बहन के पास रहे, घर से एक खत नहीं, कोई खबर नहीं. जीते जी मरा समझ लिया था इन लोगों ने! बस, हर माह दवा के लिए उनकी पेंशन से पच्चीस रुपये काट कर भेज दिये जाते. औलाद नमकहराम निकली, इस बात का उन्हें उतना दुख नहीं था, जितना पत्नी की आंख पलटने का. साली औरत की जात ही ऐसी होती है! सारी उम्र की बोआई का नतीजा है, जिसे बुढ़ापे में वह काट रहे थे.

नईम

* *

——अरे, दादा? पड़ोस का बिहारी हैरान-सा आ खड़ा हुआ——कब आये दादा? अच्छे तो थे? बड़े कमजोर लग रहे हो!

——ले, बैठ तो! खाट पर उसके लिये जगह करते हुए बोले——बुढ़ापे का शरीर है, घटेगा या बढ़ेगा? यार, यह बुढ़ापे का गणित है, हमेशा घटता ही है, जवानी में जोड़ ही जोड़ है, गुणा ही गुणा है. वह धीरे-धीरे बोलते हैं——अपनी कह, बिहारी, भैंस का क्या हाल है? छोटीन को बिदा कर लाये?

——फागुन में भैंस पकायेगी, तब थोड़ा ऋण उतरेगा. छोटीन को बिदाई कर लाने जाना है, सयानी भई गयी है. गांठ में पैसा हो, तो जावें, कलकत्ता थोड़ी दूर है? गठरी भर पैसा खर्च होता है!

——यही होता है अपनी बिसात से बढ़ कर काम करने से! ताकत नहीं, तो गये क्यों इतनी दूर ब्याहने! देख, बिहारी, जमाना उलटा चल रहा है. लड़की सयानी भई गयी. मायके में रहना हमका पसंद नहीं. औरत ही

जात है, सब शंकर भगवान नहीं, जो सारे में ठाये रहेंगे.

—बात ठीक कहत हो, दादा . . . किसको क्या कहें! तकदीर ही जब रहन हो जाये, तो आदमी की क्या चलती है! बड़ी बहू को देखो न, आते ही सारे घर को कब्जा कर ली! बुढ़ापे की जान है, अच्छी चीज खाने को मन तरस जाता है, पर किससे कहें? चाय भी सुसरी देती है ऐसे, जैसे मायके का माल दे रही हो! बात-बात में बोले है—मेरा मरद छाती तड़का-तड़का कर कमाये है, तुम लोगन को का है, बैठे-बैठे सोली-सोली भर खाये हो!

—अरे बिहारी! वह हंसे—अभी क्या देखा है भइया, अभी और देखेगा जब दूसरी को लायेगा! यह मत सोच, छोटी आयेगी, तो कसेला भर पानी देगी! नहीं रे, नहीं! दो बहू घर में आयें, तो जिम्मेदारी और बढ़ती है. दो बैलगाड़ी के चक्के जैसा, एक भी घटना या बढ़ना नहीं . . . खिचा पड़ते ही तड़-से बीच में डोर टूट जायेगी. अभी तो और देखना-सुनना होगा. पराये घर का पेड़ अपने घर में देर से जड़ पकड़ता है रे!

—ठीक कहते हो, दादा! बुढ़ापा क्या ऐसे ही छत पर से उतर कर आ जाता है. ये बुढ़ापे में बहुत देखना होता है! बिहारी ठंडी सांस खींचता जेब टटोलने लगा—का बताऊं, तुम नहीं रहे, तो मन की बात सुनने कौन नहीं था. बोलो, बीड़ी पीओगे?

—ला, जला कर दे, मेरा तो बायां हाथ ही बेकार है! आदमी का एक हाथ बेकार हो जाये, तो उसे आधा ही खाने का हक है. पहले चार रोटी खाता था, अब दो खाता हूं. घर बोलता है जा, और माटी बोलती है आ.

—क्या बोलते हो, दादा, जी को रुला देते हो!

—बड़ा भइया बुलाने गया था. वह बीड़ी का कश अंदर तक खींचते बोलते हैं, थोड़ी गरमाहट लगती है. —सोचा होगा, साल भर से बाप की खबर नहीं ली. खून है मेरा, खून को खून खींचता है न, जा कर ले आया. बोला —अब्बा, कब तक फूफी के घर पड़े रहोगे? चलो घर.

—चलो, अच्छा है, अरे, औलाद की यही बात देख कर तो संकट टल जाता है जिंदगी का! मन सुपले-सा फूल जाता है.

—कहो, इधर खेती-बाड़ी का क्या हाल है?

—अच्छी है, दादा. बिहारी आवाज को धीमा करते बोला—अकाल तो दादा पेपर में आया है. उस दिन जहाज आया था यहां, मुख्यमंत्री आये थे. सुना है, एक करोड़ रुपया आया है आकालग्रस्त क्षेत्र के लिए.

—न रकम आ गयी, तुम्हारा-मेरा भला हुआ

—लाओ, दादा, घुंगीया खिलाओ! बिहारी उठता हुआ बोला —भैंस ढूंढने निकला था, तुम्हें देख यहीं बैठा तो बैठ ही गया.

—आना फिर, पेपर पढ़ कर सुनाऊंगा. बहुत-सी बात जबलपुर रह कर सुन आया हूं.

—सच्ची. . . तो अभी गया और अभी लौटा, तब तक सोच कर रखना देखो! कहता बिहारी सड़क पर चला गया.

—बेचारा कितना सीधा है! उसे जाते देख कर सोचते हैं, रिटायरमेंट के बाद खाली रहना कितना खलता है! ऐसे एक-दो साथियों को मन कितना खोजता है!

* *

साल भर बाद वह लौटे थे, उसी वातावरण में, बड़ा भला-सा लग रहा था उन्हें. अपना घर, अपनी औलाद, अपनी जमीन का सुख अपना अलग ही होता है. जबलपुर में सब कुछ था, पर पता नहीं क्यों उनका मन नहीं लगता था. रह-रह कर मन उदास हो जाता था.

जिस दिन बड़ा लड़का लेने आया, तब वह हकीम के घर गये थे—उसे देख वह कितने प्रसन्न हुए थे! मन बाग-बाग हो गया था. बेटा उन्हें मना कर घर ले जाने आया था. जैसे ही लड़के ने कहा —अब्बा, मैं लेने आया हूं, वह तुरंत तैयार हो गये थे. बहन ने रोका था— अरे, आधा इलाज छोड़ कर मत आओ! पर वह नहीं माने और तुरंत चलने को तैयार हो गये थे. पानी में लाठी मारने से कहीं वह अलग हुआ है!

जमाना क्या उनकी आंखों ने नहीं देखा? पटवारी से नौकरी शुरू की थी. बस्तर क्या आज-सा था? पूरी बारह तहसीलें थीं. रुपये की बारह पायली बढ़िया चावल मिलता था. पायली भी आज की-सी छोटी नहीं, पीतल

● श्यराम चावड़ा

की पांडा पायली चलती थी. महाराजा [illegible] सारे लाल कलिंदर साय के नाम से पायली चलती थो. सारे जगदलपुर में एक पायली रहती थी. चावल पसंद करो और चावल नपाने एक जगह आना पड़ता था. चावल जो नापता था नौकर, उसे मजदूरी नहीं दी जाती थी. पायली की सींक से जो चावल नीचे गिरता था, वह उस नौकर की मजदूरी होती थी, दिन भर सैकड़ों बोरे चावल नप जाता था, वह जमाना था. बेईमानी इन्सान जानता ही नहीं था.

अंग्रेज आये, पर तब घोड़ों पर दौरा होता था. बैलगाड़ी में तंबू साथ चलते थे. साहब की जहां इच्छा होती, ठहर जाते. वहीं तंबू गाड़ दिये जाते. पैरे के गद्दे बन जाते, उस पर चादरें बिछ जातीं. देखते-देखते सूना जंगल आबाद हो जाता था बात-की-बात में बकरा, शराब, नाच-गाना, औरत, सब जुट जाते थे. साहब खुश हो कर जाते थे.

वह हमेशा डिपार्टमेंटल एक्जाम में फेल होता था. दोस्तों में किरकिरी होती, दूसरे इस उम्र में बच्चों-सा पुस्तक ले कर घोंटना भी नहीं होता और न ही ऊपर पास करवाने की सिफारिश के लिए उतनी रकम रहती. नतीजे में न वह प्रमोशन पा सका, न उसकी पे स्केल में वृद्धि हुई. इस तरह उसे पेंशन में भी घाटा सहना पड़ा. यह वह दुखती रग थी, जो हर सांस के साथ दर्द करती है.

★ ★

पत्नी पान का डिब्बा ले कर धूप में आ बैठती है समंदर शांत था, जाने के पहले के उस तूफान का कहीं नामोनिशान नहीं था.

—अपने मोहल्ले के रामजी का लड़का मर गया. . . उसकी औरत गर्भवती थी. . . चौथा चल रहा था.

—क्या, कौशिक नहीं रहा? बड़ा भला लड़का था! मेरे सामने ही तो छोटे से बड़ा हुआ था. बुरी लत में पड़ गया था. उसी में जान गयी होगी?

—और क्या, छाती छलनी हो गयी थी. बाप के धंधे को संभाल लिया था. शवयात्रा में क्या आदमी थे. बाप रे, पूरी गली भर गयी थी! बाद में उसकी मां ने चावल, दाल, नमक वगैरह का सीधा भेजा था घर-घर तेलगू लोग जनाजे में शरीक होने वाले का एहसान नहीं रखते. पत्नी बोलती जा रही थी—और इनमें एक अजीब दस्तूर है—शादी के वक्त भी दोनों दूल्हा-दुल्हन को साथ नहलाते हैं, और मौत में भी. कौशिक लाश के पास उसकी औरत कला को भी नहलाया था अजीब दस्तूर है! बेचारी का रो-रो कर बुरा हाल था. अभी उसकी चूड़ियां नहीं उतारे हैं—इन लोगों में गर्भवती स्त्री का शृंगार नहीं उतारते. वह अभी भी पूरा शृंगार किये है.

—अच्छा! बड़ा बुरा हुआ! शाम को उसके घर हो आऊंगा. बच्चों को तसल्ली दे आऊंगा. उन्होंने ठंडी सांस खींची—रामजी की अपनी औलाद नहीं हुई, बड़े भाई के बच्चे को गोद लिया, तो वह भी बुढ़ापे में दगा कर गयी! सहारा किसे मिलना था और किसे देना पड़ रहा है! यहीं है दुनिया, जिसे देख-देख कलेजा फटता है.

—पान खाओगे?

—लाओ. पान लेते वह पत्नी को देखते हैं. जबलपुर जाते वक्त जो घर में झगड़ा हुआ था, उसका अब असर नहीं था. यही पत्नी उनसे कितना तंग आ गयी थी! बात-बात में ताने. पर अब परिवर्तन आ गया था और वह हैरान थे, कुत्ते की दुम भी कभी सीधी हो सकती है?

आजकल मौत भी कितनी महंगी हो गयी है! पास जमा-पूंजी हो, तो आदमी मर सकता है, वरना नहीं. जीते जी तो चीथड़े भी पहन कर गुजारा चल जाता है, पर कफन के लिए नया कपड़ा चाहिए ही! ओफ, उन्हें मौत आये, तो महीने के शुरू में ताकि पेंशन मिल गयी हो.

साल भर बाद घर लौटे थे, तो उन्हें नया-नया-सा लग रहा था. वैसा ही सुख, जैसा कि वह पहले लंबे पंद्रह दिन के दौरे से लोटते थे तो नया-नया-सा लगता था, पत्नी भी स्वागत करती थी.

पहले वह बिहारी के साथ धीरे-धीरे टहलने निकल जाते थे. यह उनका पुराना शगल था. अस्पताल के किनारे वाली रोड से चर्च के सामने से होते सीधे रेलवे को जाते थे. चर्च के अहाते में कौन-कौन से फूल कब-कब होते हैं, उन्हें पता था, यह उनका अपना इकलौता सुख था, जिसकी आंच केवल उन तक ही पहुंचती थी. जाने और लौटने में घर से ले कर राजनीति तक पर बातें हो जाती थीं. पर अब उनकी भी तकत नहीं रह गयी थी.

बिहारी उनका पुराना साथी था. पहले वह अदालत में गवाही देने का धंधा करता था. रोज अदालत पहुंच जाता, जिसे किराये का गवाह चाहिए, वह उसे पांच रुपये रोज पर रख लेता. बस, यही पांच रुपये उसके दिन भर के लिए काफी थे. चावल-दाल से ले कर दारू-पानी तक हो जाता था. दारू की बुरी लत ने उसे निकम्मा कर दिया. यह लत उसे बचपन से है.

उसके उस्ताद जो उसे पढ़ाया करते थे मदरसे में, वह रोज अपने चहेते शागिर्द को दारू लाने भेजते. काफी दिनों तक तो बालक बिहारी ईमानदारी से दारू पहुंचाता रहा, एक दिन इच्छा हुई, चख कर देखा जाये. बस, उसी दिन से रास्ते में छुप-छुप कर एक-एक घूंट पीते-पीते लत लग गयी और तब से ऐसी मुंह से लगी कि छूटती नहीं. रोज शाम को आफिस पहुंचना जरूरी है. कमीज के अंदर धोती में बोतल दबी रहती. कोई पूछ लेता, तो राजदाराना अंदाज में जवाब मिलता—डाक लाने आफिस जा रहे हैं. मोहल्ले में सारे लोग उसे शराबी समझ कर दुतकारते थे, पर यह बात वह ही अकेले जानते थे कि दिल का वह कितना साफ और ईमानदार है.

★ ★

—नहाओगे न, पानी रख देती हूं. पत्नी ने कहा, तो उन्हें आश्चर्य-सा हुआ. . . ऐसा जो शायद पहली बार हुआ है, वरना वह कह-कह कर थक जाते थे, तब कहीं नहाने को पानी मिलता था. साल भर जबलपुर रह आये, इसलिये है शायद यह चेंज.

वह नहा कर बाहर आये, तो बड़े लड़के ने पूछा—अब्बा, खा कर चलेंगे, या आ कर खायेंगे? वहां टाइम लग जायेगा.

—चलना कहां है? उन्होंने आश्चर्य से पूछा.

—पेंशन लेने.

—पेंशन लेने? उन्होंने और आश्चर्य में भर कर पूछा—पेंशन तो उठा ली होगी न?

—नहीं, अभी कहां.

दोनों तैयार हो कर रिक्शे पर पेंशन लेने दफ्तर पहुंचे, तब आधा दिन झुक गया था. पेंशन लेने कई लोग बेंच पर बैठे थे. लड़के ने उन्हें बेंच पर सहारा दे कर बैठा दिया और खुद पान खाने चला गया.

बरामदे में चिड़िया फुदक कर बार-बार उन तक आ रही थी, जैसे पूछ रही हो, इत्ते दिन कहां थे?

जब उनका नंबर आया, तो बाबू ने नाक पर झुका हुआ चश्मा ठीक करते उन्हें घूरा, ऊपर से नीचे तक देखा, फिर हंसा——कहो, दादा, कहां रहे इतने दिन? हम तो समझे थे कि दूसरी दुनिया में पहुंच गये हो और घर के लोग अभी भी तुम्हारी कमाई खा रहे हैं! इसीलिए उस दिन तुम्हारे बेटे से मैंने कहा था, बरखुरदार, हराम की रोटी सब तोड़ते हैं पर यह डाका डालना ठीक नहीं! पहले अपने बाप को बुला लो, हम देखना चाहते हैं. चलो दादा, अच्छा हुआ, इसी बहाने तुम आ गये, वरना शक पर पेंशन देना बंद कर दिया जाता.

उन्हें जोर से धक्का-सा लगा. सारी खुशियां भरभरा कर ढह गयीं. . . तो घरवालों के लिए वह एक बेकार, फालतू आदमी है, पर उनकी पेंशन. . . . ?

——लो, पान खा लो, लड़के ने पत्ते के चोंगे में पान बढ़ा दिया.

पान मुंह में डाल, पत्ते को मसलते हुए वह बहुत गहरे-गहरे कहीं डूब-से गये. □ □ □

प्रतापगंज, जगदलपुर (म. प्र.)

राजस्थानी लोककथा

वरदान

● रघुनाथप्रसाद गुप्ता

एक लकड़हारा था. वह हमेशा जंगल से लकड़ी काटता और उन्हें बेच कर अपनी औरत और लड़के का पेट भरा करता था.

एक दिन जब वह लकड़ी काट रहा था तो उसके पास से ही नारदजी 'नारायण-नारायण' कहते हुए गुजरे. लकड़हारा ने नारदजी को देख कर सोचा कि इनके पैर पकड़ लूं जिससे मेरा जीवन सफल हो जाये. जैसे ही नारदजी उसके करीब पहुंचे, उनके पैर पकड़ लिये. नारदजी ने कहा—— बोलो वत्स, क्या चाहते हो? लकड़हारा ने कहा——पहले वचन दो तो पैर छोड़ूंगा. नारदजी ने कहा—— मैं तो कुछ भी नहीं दे सकता. हां, मैं भगवान विष्णु के दरबार में जा रहा हूं, उन तक तुम्हारा संदेश पहुंचाने का वचन देता हूं. अब लकड़हारा ने पैर छोड़ दिये और बोला—— मेरा एक छोटा-सा संदेश है, यह भगवान तक पहुंचा दीजिए—— कलम मालिक के हाथ या मालिक कलम के हाथ?

यह संदेश सुन कर नारदजी भगवान विष्णु के दरबार में पहुंच गये. उस समय लक्ष्मीजी उनके पर दबा रही थीं परंतु नारदजी ने अंदर संदेश भेजा दिया कि एक बहुत महत्वपूर्ण संदेश लाये हैं. अतः भगवान विष्णु उसी समय बाहर आये. नारदजी ने लकड़हारा का संदेश सुनाते हुए कहा—— भगवन, बोलिये, इसका क्या जवाब दूं? भगवान विष्णु भी संदेश सुन कर चक्कर में पड़ गये. आखिर नारदजी से कहा कि लकड़हारा तीन जीव हैं. तीनों सूर्य की साक्षी में उनसे एक-एक वरदान मांग सकते हैं.

दूसरे दिन जब नारदजी जंगल से गुजरे तो उन्होंने लकड़हारा को भगवान विष्णु का संदेश बतला दिया. उसने सोचा, अभी किसी को भी नहीं बतलाऊंगा. घर कितु पहुंचा तो पत्नी को सुनाते हुए उसने कहा—— अपने ये वरदान बाद में मांगेंगे.

१५ रोज का समय गुजर गया, परंतु लकड़हारा ने वरदान न मांगे. यह सब देख कर उसकी पत्नी ने सोचा कि मैं तो अपना वरदान मांग ही लेती हूं. अतः जब लकड़हारा लकड़ी काटने गया और लड़का पाठशाला तो पीछे से उसने भगवान सूर्य को जल चढ़ा कर कहा—भगवन, यदि आपने वास्तव में वरदान दिये हैं तो मुझे तो किसी राजा की रानी बना दो. इतना वरदान मांगते ही भगवान ने उसे एक अत्यंत रूपवती १६ वर्षीय कन्या का रूप दे दिया. अब वह अपने घर के सामने आंगन में बाल बनाने लगी. इतने में उधर से एक राजा जो घोड़े पर सवार हो कर गुजर रहा था, उसे अपने घोड़े पर बैठा महल में ले गया और अपनी रानी बना लिया.

इधर शाम को जब लकड़हारा लकड़ी बेच कर घर आया और स्त्री न मिली तो उसके दिमाग में बात आयी कि अवश्य ही पत्नी वरदान मांग कर कहीं चली गयी होगी. सुबह होते ही लकड़हारा ने सूर्य की साक्षी में जल चढ़ा कर कहा—— भगवन, मेरी पत्नी जहां भी हो उसे कुतिया बना दो. बस कुतिया बनते ही वह महल से बाहर निकाल दी गयी. अब वह अपने पुराने मकान के पास चक्कर लगाने लगी.

लड़का अपने पिता को वरदान मांगते देख चुका था. बहुत सोचने के बाद उसने सूर्य को जल चढ़ा कर कहा——भगवान, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, हम पहले जैसे थे, हमें वैसा ही कर दो. ऐसा कहते ही उसकी मां कुतिया से औरत बन कर वापस आ गयी और तीनों प्राणी आपस में मिल गये. □

भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कहानी और आद्य कथाकार

(८)

किसी भी भाषा की पहली कहानी की खोज अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण और रोचक कार्य है. इस महत्त्वपूर्ण खोज के लिए सारिका ही पहल कर रही है. पूर्व के अंकों में मलयालम, गुजराती, बंगला, तेलुगु, डोगरी, कश्मीरी और सिंधी की प्रथम मौलिक कहानियां आप पढ़ चुके हैं. इस अंक में दी जा रही है उड़िया की उपलब्ध प्रथम मौलिक कहानी 'रेवती.' वास्तव में उड़िया के प्रथम आद्य कथाकार श्री फकीरमोहन सेनापति की पहली मौलिक कहानी 'लछमनियां' थी, जो सन् १८६८ में 'बोधदायिनी' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, किंतु वह कहानी किसी भी प्रकार उपलब्ध न हो सकने पर उनकी ही उसी क्रम में दूसरी मौलिक कहानी 'रेवती' यहां दी जा रही है. जब यह क्रम समाप्त होगा, तब आप स्वयं ही दो निर्णय ले सकेंगे--एक; कि भारतीय भाषाओं में से पहली आधुनिक कहानी किस भाषा के पास है, और दो; कि क्या कहानियां सचमुच पश्चिम से आयी थीं?

प्रथम मौलिक उड़िया कहानी

रेवती: एक विवेचन

• श्रीनिवास उद्गाता

फकीरमोहन सेनापति (१८४३-१९१८) आधुनिक उड़िया साहित्य के प्राण-प्रतिष्ठाता थे. जन्म से दरिद्रता, अभाव व दुःख-पीड़ित, उच्चशिक्षा से वंचित फकीरमोहन का प्रारंभिक काल अत्यन्त दयनीय था. पितृहीन फकीरमोहन बालेश्वर बंदरगाह में पालों की सिलाई की निगरानी से ले कर कचहरी में मोहर्रिर, रजवाड़ों में दीवानगिरी, बालेश्वर मिशन स्कूल में अध्यापन आदि के अवलंबन से जीवन और जीविका के बीच नित्य संघर्षशील रहे. इसलिए शायद उनके लिए जीवन की परिभाषा अलग थी. और उस परिभाषा ने शायद उन्हें परंपरा से हट कर कुछ कर दिखाने का बल दिया. वह जन्म से विद्रोही थे. अपने सेनापति नाम को सार्थक बनाते हुए अन्याय के विरुद्ध असीम साहस से खड़े रहने का बल रखते थे. इसी कारण शायद उस समय उड़िया भाषा के विरुद्ध हुए षड्यंत्रों का मुकाबला इस अकेले आदमी ने किया और उड़िया भाषा बच गयी, नहीं तो उसका साहित्य तो दूर की बात रही, शायद आज उड़िया भाषा अपनी प्राचीनता और परंपरा तथा हर दिशा में समर्थ सौंदर्य के बावजूद एक ऐतिहासिक भाषा बन कर रह गयी होती.

प्रारंभिक काल में लघु कथा (शॉर्ट स्टोरी) को साहित्य क्षेत्र में सम्मानास्पद स्थान प्राप्त नहीं था. उन्नीसवीं सदी के अंतिम पर्याय में ही इसे एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिला. उस समय फकीरमोहन सेनापति ने **'लछमनिया'** (१८६८) शीर्षक कहानी लिखी थी. यह कहानी **'बोधदायिनी'** नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी. यह आधुनिक उड़िया साहित्य की पहली कहानी है, जिसकी सूचना उनके **'आत्मचरित'** से मिलती है. यह कहानी उपलब्ध नहीं है. कहा जाता है कि यह कहानी भारतीय स्वाधीनता-संग्राम को ले कर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लिखी गयी थी. देहात में रहते-बसने वाले सामान्यजन पर १८५७ के आंदोलन की कैसी प्रतिक्रिया हुई थी, उसका सेनापति ने इस कहानी के माध्यम से चित्रण किया था.

फकीरमोहन तक कहानी झूठ बोलती आयी और फिर मानो एकाएक उसका रूप बदल गया. तब तक राजा-रानी, राजपुत्र-राजकन्याओं को प्रेम करने का हक था. उनकी समर्थता और क्षमता, उनका प्रणय-

विरह कहने के लिए कहानी थी, जो सिर्फ अद्‌भुत अलौकिकता, ऐंद्रजालिक कल्पना का वर्णन मात्र करती आयी थी, या उससे हट कर देवी-देवताओं के संबंध में कह कर उनकी चमत्कारिता का वर्णन करते हुए नीति-उपदेशों का व्याख्यान करती रही, वह भी पद्य में और एक बोझिल, अलंकारिक, पांडित्यपूर्ण भाषा में. परंतु फकीरमोहन ने साधारण मानव के, अतिसाधारण समाज के भाव-अभाव, हर्ष-विषाद को अपने साहित्य में आधार के रूप में अपनाया. उनके साहित्य ने साधारण मनुष्य के सुख-दुःख की बात कही है, अतिवास्तव सत्य को प्रकाशित किया है. फकीरमोहन को उनकी रचना-शैली ने नहीं, बल्कि उनके साहित्य की आत्मा ने प्रतिष्ठित किया है. उसी से उन्हें आदर प्राप्त हुआ है और लोकप्रियता मिली है. आज शैली में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाने पर भी एकांत सत्य को प्रकाशित करने के संदर्भ में उनका साहित्य चेतन और अवचेतन हृदय को आंदोलित और आमोदित करता है. ब्रिटिश शासन काल भारत में पराधीनता, आर्थिक शोषण एवं नागरिक अधिकारों के हनन का इतिहास है. उस समय बने स्वार्थी कानूनों के द्वारा देश भर में अभाव, उत्पीड़न, विशृंखलता, असंतोष, विद्रोह आदि का ही विकास हुआ. शोषण और अत्याचार बढ़ कर एक भयानक स्थिति की सृष्टि हुई. उससे फकीरमोहन का सचेतन व्यक्तित्व, उनकी अम्लान प्रतिभा, उनका क्रांतिदर्शी हृदय कहानी से बढ़ कर पात्रों पर केंद्रित हुआ और तात्कालिक समाज की असंख्य अनीतियों, कुसंस्कारों, अत्याचार और शोषण की कटु आलोचना, उसका परिहासपूर्ण विद्रूप और उसके प्रतिकार में विद्रोह करने को आग्रही हुआ, यही उनकी कहानियों की विशेषता है. फकीरमोहन ने अपने कर्तव्य-बोध को ही अपनी साहित्य-सृष्टि का आधार बनाया था. वही उनकी साहित्य-सृष्टि का उद्देश्य, लक्ष्य या आदर्श, जो भी कहें, था, और इसमें उन्हें सार्थकता मिली थी. फकीरमोहन से लेकर यही साहित्यिक अभिव्यक्ति उड़िया कथा-साहित्य के परवर्ती पर्याय तक थी.

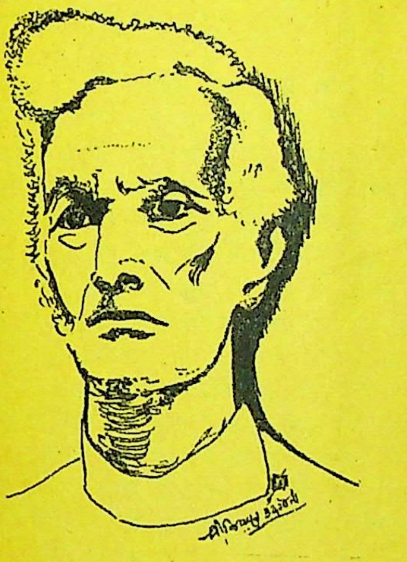

उड़िया आद्य कथाकार : फकीरमोहन सेनापति

आधुनिक उड़िया कहानी के जन्मदाता फकीरमोहन सेनापति का जन्म मल्लीकाशपुर (जिला बालेश्वर, उड़ीसा) में सन् १८४३ की जनवरी में, मकर संक्रांति को हुआ था. १८६८ में उन्होंने बालेश्वर में प्रेस खोला और **'बोधदायिनी'** तथा **'बालेश्वर संवाद वाहिका'** नामक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया. १८७१ से १८९६ तक उन्होंने नीलगिरि, डोमपड़ा, ढेंकानाल, दशपल्ला, पाललहड़ा और केउंझर के राजाओं के दीवान के रूप में कार्य किया.

इस संक्रांति पुरुष ने जीवन भर उड़िया साहित्य की सेवा की और उड़िया भाषा की प्रतिष्ठा के लिए निरंतर संघर्ष किया. फकीरमोहन सेनापति ने ही सर्वप्रथम उड़िया कथा साहित्य की भाषा को आधुनिक रूप प्रदान किया. उन्होंने विभिन्न धर्मों के तत्त्व को समझने का प्रयास किया और संस्कृत, हिंदी, बंगला, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाएं सीखीं. पांडेय मुरलीधर और पांडेय मुकुटधर शर्मा ने उनके उपन्यास **'लछमा'** का हिंदी में अनुवाद किया था. उनकी अनेक कहानियों के हिंदी और अंग्रेजी में अनुवाद छपे. उनकी कहानियों का एक संग्रह और उपन्यास **'छमाण आठ गुंठ'** कुछ ही समय पूर्व अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ है. केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा उनकी अनेक कृतियां अनुवाद के लिए चुनी गयी हैं.

(फकीरमोहन सेनापति के हस्ताक्षर : उड़िया में)

उनकी प्रमुख कृतियां ये हैं: **'छमाण आठ गुंठ'** (उपन्यास), **'पुनर्मूषकोभव'** (उपन्यास), **'मामुं'** (उपन्यास), **'लछमा'** (उपन्यास), **'प्रायश्चित'** (उपन्यास), **'रांडि पुअ अनंता'** (कहानी संग्रह), **'गल्प स्वल्प'** (कहानी संग्रह) और **'आत्मजीवन चरित.'** उपर्युक्त तथा उनकी अन्य कृतियां १८६६ से १९२७ तक की अवधि में प्रकाशित हुईं. उनका **'आत्मजीवन चरित'** एक अनोखी रचना है. घटनाक्रम की सूक्ष्मता की दृष्टि से उनकी इस कृति को उड़ीसा का सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक इतिहास माना जाता है.

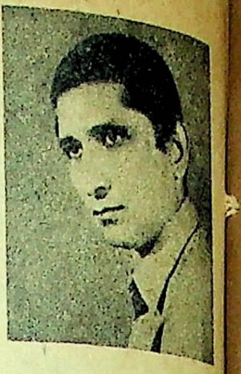

श्रीनिवास उद्‌गाताः जन्म : (६ जनवरी, १९३५) उड़िया के प्रसिद्ध लेखक हैं, जो अनेक वर्षों से हिंदी में भी लिख रहे हैं. उड़िया में अभी तक इनकी १५ मौलिक तथा अनुवादित कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें इनके चार मौलिक उपन्यास 'नील नयन तले,' 'कांता', 'शिलार सपन' और 'शेष रात्रि प्रथम सकाल,' और दो कहानी संग्रह-'पूर्णिमा' और 'पार्वती' हैं. उड़िया में इनके द्वारा अनुवादित श्री भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास 'चित्रलेखा' और श्री कमलेश्वर की कहानियों का संग्रह 'नील हृद' (नीली झील) और कुछ अन्य कथाकारों की कृतियों के अनुवाद भी छप चुके हैं. इसी प्रकार उड़िया के दो उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद —'एक सागर, हजार लहरें' और 'नील शैल' छप चुका है. यह ओडिशा साहित्य अकादमी के सदस्य हैं और पिछले वर्ष इन्हें अपने एक कविता-संग्रह पर १००० रुपये का पुरस्कार मिल चुका है.

फकीरमोहन के साहित्य की भाषा के संबंध में कुछ कहना उचित होगा. उड़िया भाषा में साहित्यिक सृजन का आरंभ '**बौद्धगान ओ दोहा**' या '**चर्या गीतिका**' से हुआ था. इस ग्रंथ के गीतों को उड़िया, बंगला, असमिया आदि भिन्न-भिन्न भाषाओं के विद्वान अपनी भाषा की आद्य काव्य-सृष्टि मानते हैं. और इन गीतिकाओं में इन्हीं भाषाओं की काव्य-सृष्टि के लक्षण कम-बेशी मौजूद भी हैं. इसकी रचना लगभग आठवीं सदी से ग्यारहवीं सदी की अवधि में हुई थी. इसके पश्चात सारलादास की '**महाभारत**' की रचना की अवधि में जिस काल का अंतर है, वह उड़िया साहित्य के इतिहास में अंधकार-युग है. अध्यापक-कवि श्री चिंतामणि बेहेरा के शब्दों में उड़िया साहित्य के आदि जनक माने जाने वाले महाकवि सारलादास (पंद्रहवीं सदी) ने संस्कृत महाभारत का अनुसरण किया है, फिर भी जैसे महाकवि व्यास ने अपने महाभारत को समग्र भारत वर्ष के जीवन-वेद के रूप में परिणत किया है, उसी तरह सारलादास ने भी उड़िया महाभारत को उड़िया जाति का जीवन-वेद बनाया है. उड़िया जाति के स्वप्न, साधना, आदर्श और संस्कृति के प्रतिबिंब के साथ उसका सामाजिक चित्रण और चारित्रिक यथार्थता महाभारत में लक्षणीय है. उड़िया महाभारत की भाषा आम आदमी की भाषा है जिसमें न आडंबर है, न कृत्रिमता. पर इसके पश्चात साहित्य-सृष्टि में धीरे-धीरे कृत्रिमता बढ़ती गयी. भाषा सजी-संवरी, आलंकारिक, संस्कृतनिष्ठ, पांडित्यपूर्ण होती गयी. चार सौ वर्षों के पश्चात फिर से फकीरमोहन ने उसी भाषा को अपनाया, उन्हीं शब्दों के प्रयोग से उनका साहित्य लालित्यपूर्ण बना और अभिव्यक्ति आम आदमी की अभिव्यक्ति बनी. समाज ने उन्हें अपनी बातें समझ निकटता से देखा, क्योंकि उसमें आम आदमी, साधारण-से- साधारण आदमी के मन की गहराई को छूने वाली शक्ति थी और उसी शक्ति ने गद्य शैली की प्रतिष्ठा की. इसी कारण उड़िया के विद्वान आलोचक उन्हें 'व्यास कवि' कह कर सम्मान देते हैं.

फकीरमोहन ने अपने '**आत्म चरित**' में लिखा है : 'उस कहानी ('**लछमनियां**') को लोगों ने आग्रह से पढ़ा. पर कितनों ने? मैं बालेश्वर से आ गया और रजवाड़ों में काम करते समय दीर्घ समय तक साहित्य रचनाएं बंद रहीं. फकीरमोहन की अनुपलब्ध कहानी '**लछमनियां**' के बाद उनकी दूसरी रचना है '**रेवती**' (रचनाकाल १८९८, प्रकाशन-काल– १९००), '**रेवती**' की शिल्पगत सार्थकता और अश्रुल आवेदन ने इस कहानी के लिए उड़िया लघु-कथा के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय तथा सार्थक स्थान बनाया है. उड़िया लघु-कथा के क्षेत्र में '**रेवती**' एक अम्लान सृष्टि है. यह कहानी ही फकीरमोहन की एकमात्र प्रेम-कहानी है. फकीरमोहन ने शायद तत्कालीन सामाजिक रुचि से प्रभावित हो कर अपने साहित्य में कामज या रूपज प्रेम को स्थान नहीं दिया था. फिर भी 'रेवती' एक प्रेम-कहानी है, जिसमें वासुदेव और '**रेवती**' का प्रणय देहज नहीं, आत्मज है. इस कहानी में भी उनकी अन्य कहानियों की तरह दो वर्ग हैं— एक शोषक, दूसरा शोषित. श्यामबंधु शोषित वर्ग के थे. उनकी मृत्यु के पश्चात उनकी सारी ईमानदारी और निष्ठा के बावजूद उनके घर से तहसील की बकाया रकम के बहाने दो दुधारु गायें ले लेना या खेती की जमीन छीन लेना, शोषण का एक मार्मिक नमूना है. इस कहानी के जरिये फकीरमोहन ने तात्कालिक समाज के कुसंस्कार और अशिक्षा का मार्मिक चित्रण किया है. उस समय समाज आत्मकेंद्री था. एक-दूसरे की सहायता तो दूर की बात रही, अपने को संभाले रखने की प्रवृत्ति इतनी सशक्त थी कि एक परिवार के संपूर्ण विलीन होने तक को निर्लिप्त भाव से देखने वाले लोग थे. बुजुर्गों में स्त्री-शिक्षा के प्रति घोर विरोध था, जो दादी मां जैसी पात्र के जरिये चित्रित हुआ है. दादी मां में यह धारणा जमकर थी कि रेवती की पढ़ाई के कारण ही सर्वनाश हुआ. वह कुलच्छनी है. कुलांगी है. उसने पढ़ा, इसलिए सब विनाश हुआ. अंत में रेवती के प्रति गालियां बकने के अलावा हर तरह से बेसहारा, दुखी बुढ़िया का मन को शांति देने के लिए और कोई चारा नहीं था.

कहानी की गति में यथार्थता है, अस्वाभाविकता कहीं भी नजर नहीं आती. बूढ़ी की सबसे प्यारी थी रेवती . . .जिसे वह कोसती थी. . .और उसी रेवती के लिए वह जीती रही. इस कहानी की कथावस्तु, कथन शैली, भाषा और चरित्रचित्रण में कोई आडंबर नहीं है. यह एक अतिवास्तववादी मार्मिक कहानी है. इसकी आडंबरहीन सरल सुंदरता यथार्थ में अतुलनीय है. □□

प्रथम मौलिक उड़िया कहानी

रेवती

• फकीरमोहन सेनापति

कटक जिले के हरिपुर परगने में एक गांव है, नाम है, पाटपुर. गांव के एक सिरे पर एक मकान, आगे-पीछे चार कमरे, घर के परकोटे पर से उतरती परछती में ढेंकुली बिठायी गयी है. आंगन के बीचों-बीच कुआं, सामने बाहर का दालान और बाड़ी की ओर भीतर का. बाहर के दालान में बने खुले कमरे में बाहर से आये लोगों की बैठक होती है. रैयत मालगुजारी अदा करने आती है. श्यामबंधु महांति जमींदार की तरफ से गांव के गुमाश्ता हैं, महीने में दो रुपये की तनखाह, तनखाह के अलावा मालगुजारी-सुधार, हक-साबूती आदि से दो पैसे हाथ आते हैं. कुल मिला कर महीने में चार रुपये से कम नहीं होते. दुनियादारी किसी तरह चलती है. किसी तरह क्यों? अच्छी-खासी चलती है. यह नहीं है, वह नहीं हो पाया, यह घर में किसी के मुंह से सुनाई नहीं पड़ता. बाड़ी में साग-भाजी के अलावा दो सहिजन के पेड़ हैं. घर में दो गायें बंधी हैं, थोड़ा दूध, थोड़ी छाछ हंड़िया में पड़ी ही रहती है. बूढ़ी तुस मिला कर उपले थाप देती है जिससे ईंधन नहीं खरीदना पड़ता. जमींदार ने साढ़े तीन बीघा जमीन दी है. खेती करने को. फसल न कम पड़ती, न बढ़ती. श्याम बंधु सीधे-सादे आदमी, लोग उन्हें मानते हैं, उनका आदर करते हैं. लोगों को भाई-भतीजा कहकर दर-दर जा कर लगान वसूलते हैं. किसी से अन्याय की एक पाई तक नहीं लेते. रैयत मालगुजारी देकर भरपाई तक नहीं चाहती. चार अंगुल के ताड़ के पत्ते पर लिख कर खुद जाकर छान में खोंस आती है. श्यामबंधु के घर में प्राणी चार हैं—वे दो जने, एक बूढ़ी मां और दस वर्ष की एक बेटी बेटी का नाम है रेवती. श्यामबंधु संध्या समय बरामदे में बैठे 'कृपासिंधु बदन. . .' गाते और कितने ही भजन गाते. कभी-कभी दीवार पर दीया जलाये भागवत पढ़ते हैं. रेवती पास बैठी सुनती रहती है. उसने सुन-सुन कर कई भजन याद कर लिये हैं. उसके कोमल शिशुकंठ से भजन बहुत भले लगते हैं. संध्या समय बाबू के पास बैठे वह भजन गाती है तो गांव के कई लोग आ कर सुनते हैं. रेवती ने बाबू से एक भजन सीख लिया था. उसी को गाने से श्यामबंधु खुश होते हैं. बेटी को वही भजन गाने को कहते हैं, रेवती गाती है.

दो वर्ष पहले स्कूलों के डेपुटी इंस्पेक्टर देहात के दौरे के समय आ कर एक रात के लिए पाटपुर में ठहर गये थे. गांव के मुखिया जैसे लोगों के अनुरोध से डेपुटी जी ने इंस्पेक्टर साहब से अर्ज करके एक अपर प्राइमरी स्कूल खुलवा दिया है. शिक्षक है, कटक नार्मल स्कूल की अध्यापन-परीक्षा पास छात्र वासुदेव. नाम जैसा वासुदेव है, वह भी वैसा वासुदेव, लड़के के बाहर-भीतर सब सुंदर. गांव की गली में चलते हुए सर उठाकर किसी की ओर ताकता तक नहीं. उमर अंदाजन बीस होगी. सुंदर रूप, मानो गढ़ा-तराशा गया हो. बचपन में यकृत की खराबी हुई थी. उसकी मां ने सर पर तपती बोतल के मुंह से आंच लगायी थी, वह निशान अब भी है. पर वह निशान उसके चेहरे पर फबता है. वासुदेव बचपन से अनाथ, मामा के घर आदमी बना है. जात का कायस्थ है. श्यामबंधु भी कायस्थ हैं. कभी पूनम, कभी गुरुवार आदि के पर्वों पर घर में पीठी मिठाई बनती है तो श्यामबंधु पाठशाला जा कर कह आते हैं—-बेटा वासु, शाम को घर आना, तुम्हारी मौसी ने कहा है. इसी तरह आते-जाते एक माया-सी हो गयी है. रेवती की मां वासु को देखने पर कहती है—हाय, बचपन से मां-बाप नहीं हैं, क्या खाता है, कौन देख-भाल करता है!

वासु रोज श्यामबंधु के पास घड़ी-आध घड़ी बैठ आता है. उसे दूर से देख कर रेवती 'वासु भाई आये. . . वासु भाई आये' चिल्ला कर बापू से कहती है. रेवती रोज शाम को बापू के पास बैठ कर पुराने भजन गा कर वासु को सुनाती है. वासु को वे गीत नये-नये-से लगते हैं. एक दिन इधर-उधर की बातें हो रही थीं कि श्याम बंधु ने सुना, कटक में लड़कियों के लिए भी एक स्कूल है. वहां लड़कियां पढ़ती हैं, सिलाई सीखती हैं. उसी दिन से श्यामबंधु ने रेवती को पढ़ाने का विचार किया और उन्होंने अपने मन की बात वासुदेव से कही.

वासु श्याम बंधु को पिता के समान मानता है. उसने कहा—-जी, मैं वही कहने की सोच रहा था. दोनों ने सलाह-मशविरा कर रेवती को पढ़ाने का तय किया.

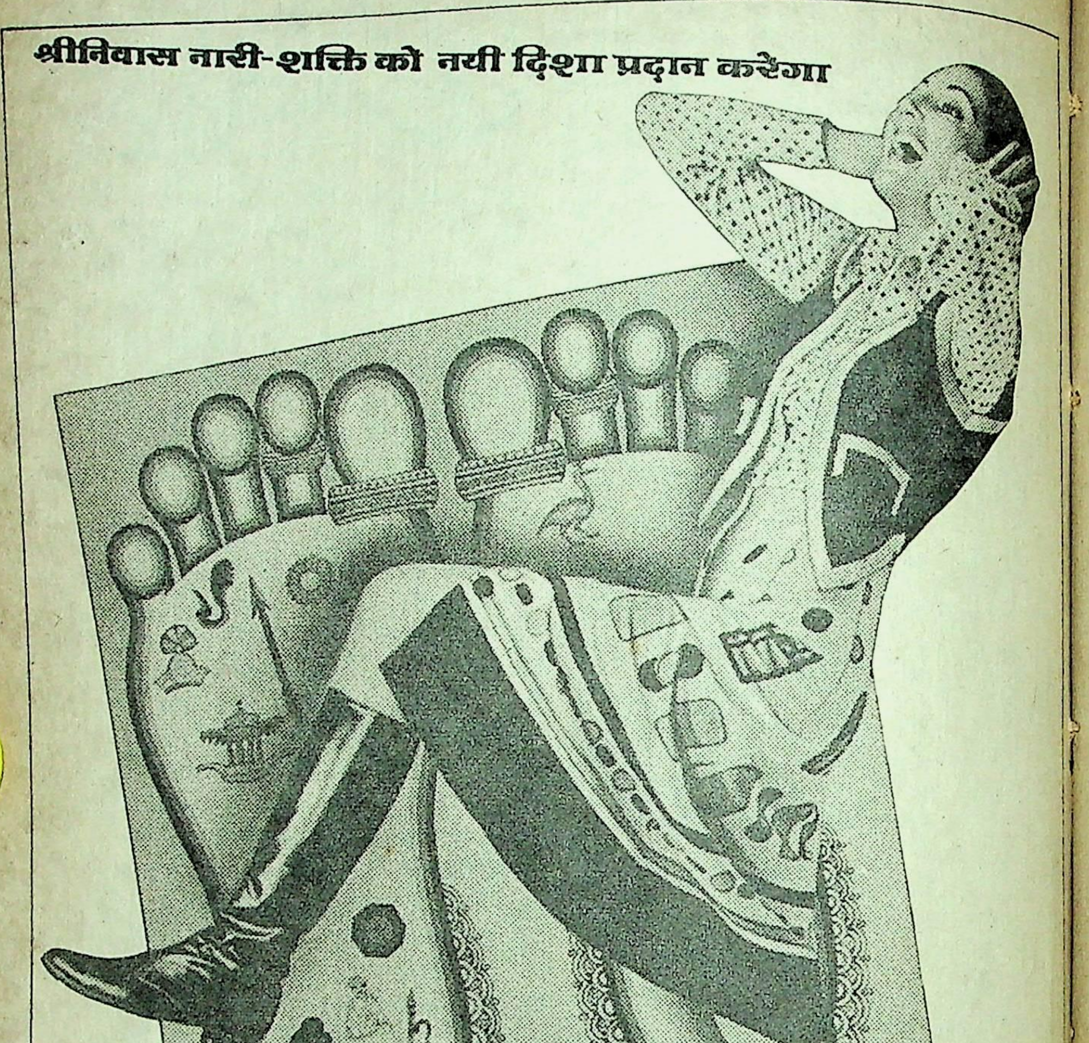

श्रीनिवास नारी-शक्ति को नयी दिशा प्रदान करेगा

जीवन तथा परिवर्तन की एक अटूट, अनंत प्रक्रियाः

आधुनिक नारी के मनपसंद कपड़े।
चित्ताकर्षक प्रिण्ट, रंगों की बहार।
'टेरीन', टेरीन / काटन तथा काटन के नाना प्रकार के पोशाक के कपड़े।

श्रीः

दि
श्रीनिवास
काटन मिल्स
लिमिटेड

रेवती पास बैठी सुन रही थी. [illegible] वह अंदर चली गयी और मां और दादी तक 'मैं पढ़ूंगी... मैं पढ़ूंगी' खबर पहुंच गयी.

मां बोली --ठीक है, ठीक है, तू पढ़ेगी.

दादी चिहुक उठी--पढ़ाई क्या री? औरत जात, पढ़ाई क्या होगी? रसोई सीख, खीर-मिठाई बनाना सीख, आलपना बना, पाठ का क्या करेगी?

रात के समय श्यामबंधु आम की लकड़ी के पीढ़े पर बैठे भात खा रहे हैं, साथ बैठी रेवती भी खा रही है. बूढ़ी सामने बैठ कर भात ला. . .दाल दे जा. . . नोन दे आदि हुक्म दे रही है बहू को. बात ही बात में बूढ़ी कहने लगी--अरे शाम, रेवी पाठ पढ़ेगी. . .अरे अरे पाठ का क्या होगा? औरत जात की पढ़ाई कैसी?

श्यामबंधु ने कहा--कहती है, पढ़ेगी, तो पढ़े!

रेवती चिढ़ उठी और दादी को गाली देते हुए कहने लगी--तू जा बूढ़ी डोकरी कहीं की! और उसके बाद जिद करते हुए बापू से कहने लगी--नहीं पिताजी, मैं पढ़ूंगी?

श्यामबंधु बोले--हां, हां, पढ़ेगी, तू! उस दिन बात झूठी ही हुई.

दूसरे दिन शाम को वासुदेव ने सीतानाथ बाबू की लिखी 'प्रथम पाठ' किताब ला कर रेवती को दी तो वह खुश होकर, बापू के पास बैठ कर पुस्तक को शुरू से अंत तक उलट-पलट कर देख गयी. उसमें हाथी, घोड़े, गाय आदि के चित्र देख कर वह खुश हुई. राजा लोग हाथी-घोड़े रख कर खुश होते हैं, कोई चढ़ कर खुश होता है, तो रेवी ९० तसवीर देख कर खुशी हो रही है. रेवी दौड़ती हुई जा कर मां को किताब की तसवीरें दिखाने लगी और इसके बाद दादी के पास पहुंच गयी. दादी थोड़ी चिढ़ कर बोली--हां, हां, जा! तो रेवती उसे दुतकारने लगी.

* *

आज दिन अच्छा है--श्री पंचमी. रेवती सुबह नहा-धोकर, नये कपड़े पहन कर घर के अंदर से बाहर और बाहर से अंदर आ-जा रही है. वासु भाई आयेंगे तो किताब पढ़ायेंगे. बूढ़ी के डर से विद्यारंभ के लिए कोई व्यवस्था नहीं हुई है. सुबह लगभग छः घड़ी के समय वासु आ कर पढ़ा गया--अ आ, ह्रस्व इ, दीर्घ ई, ह्रस्व उ, दीर्घ ऊ. . . .आदि. प्रतिदिन पढ़ाई होने लगी. रोज सुबह-शाम वासु आ कर पढ़ा जाता. दो साल के अंदर रेवती ने काफी कुछ पढ़ लिया है. मधुराव की छंदमाला वह बेझिझक पढ़ लेती है.

एक दिन रात के समय श्यामबंधु खाने बैठे थे कि मां-बेटे में बात हुई. उससे पहले भी शायद बात हुई थी. आज उसी बात का उपसंहार हो रहा था.

श्यामबंधु ने कहा-- मां, यह ठीक नहीं होगा क्या?

बूढ़ी बोली--हां, अच्छा ही होगा, लेकिन जात-पांत का पता लगाया?

श्यामबंधु ने कहा--और अब तक क्या कह रहा था? अच्छे कायस्थ कुल में जन्मा, गरीब है तो क्या हुआ, जात तो अच्छी है!

रेवती पास बैठी खा रही थी. इस बात का मर्म पता नहीं क्या समझा रेवती ने, वही जाने पर उस दिन से उसके रंग-ढंग बदल गये. तब से पिताजी के सामने वासु भाई पढ़ाने बैठते हैं तो उसे शरम आती है. अकारण-सकारण हंसी आती है, सर नवाए दोनों होंठ को जबरदस्ती बंद कर वह हंसी छिपाती है. वासु पढ़ाने लगता है, तो वह चुपचाप पढ़ती है, कभी-कभार. .हां. हूं, बस. पढ़ाई खतम होने पर मुंह बंद किये मुसकराती हुई अंदर भाग जाती है. रोज शाम को बाहर किवाड़ पकड़े किसी की बाट जोहती है. वासु के आने पर अंदर चली जाती है, बार-बार बुलाने पर भी बाहर नहीं निकलती. अब रेवती के बाहर निकलने पर बूढ़ी चिढ़ती है.

देखते-ही-देखते श्री पंचमी से पंचमी, दो साल बीत गये. विधि का विधान, किसी के दिन समान नहीं जाते. फागुन के दिन, कहीं कुछ नहीं, अचानक हैजा फैल गया. सुबह गांव में लोगों ने सुना कि गुमाश्ता श्यामबंधु महांति को हैजा हो गया है. देहातों में हैजे के नाम से ही किवाड़-दरवाजे बंद हो जाते हैं. सब सोचते हैं, विशूचिका-बूढ़ी मानो टोकरी लेकर रास्ते पर से आदमी चुग रही है. दरवाजे तक कोई नहीं आता. घर में दो औरतें क्या कर पायेंगी? एक बच्ची है, जो चीखती-पुकारती बाहर-भीतर हो रही है. वासुदेव ने सुना, तो स्कूल छोड़ कर दौड़ा हुआ आया. न डर है, न भय, न अपने शरीर के लिए चिंता. श्यामबंधु के पास बैठ कर पैर सहलाता रहा, मुंह में पानी देता रहा. दिन के तीसरे पहर श्यामबंधु ने वासु की ओर देख कर रुंधे-हकलाते स्वर में कहा--वा. . .सु. . .एं. . .वं. . .लं. . . गां. . .! वासु चीख पड़ा. घर में हलचल मच गयी. रेवती धरती पर लोट, बिलख रही थी. देखते-देखते शाम तक समाप्त! क्या करें, वासु कल का छोकरा और दो स्त्रियां! गांव में बस उन्हीं का ही एक घर कायस्थ का. सास, बहू और वासु, तीनों ने जैसे-तैसे काम चलाया. श्मशान से लौट आने तक सुबह का तारा उग चुका था. घर में पैर धरते-न-धरते रेवती की मां को दस्त हुआ. देखते-देखते दोपहर तक गांव भर में खबर फैल गयी कि रेवती की मां भी नहीं रही.

दिन गुजर जाता है, किसी के लिए रुका नहीं रहता. किसी की पालकी पर पाट छतरी तो किसी के लिए बेड़ियों पर कोड़ा. दिन सभी के बीतते हैं, बीतेंगे भी. देखते-देखते तीन महीने बीत गये. श्यामबंधु के घर में दो गायें थीं. तहसील की बकाया रकम के लिए जमींदार के आदमी आ कर उन्हें ले गये. हमें पता है, जमींदार के रुपयों को श्यामबंधु शिव-निर्माल्य की तरह मानते थे. एक रुपया भी वसूल हो जाता, तो जब तक जा कर कचहरी के खाते में जमा न कर आते, तब तक उन्हें चैन नहीं. परंतु उन पर रकम बाकी हो या न हो, दोनों गायें दुधारू थीं, यह

बात पहले ही से जमींदार को मालूम थी. इसके अलावा जमींदार से खेती के लिए जो तीन बीघा जमीन मिली थी, वह भी छीन ली गयी है. हलवाहे का अब और क्या काम? वह भी दोल पूनम के दिन काम छोड़ कर चला गया. दोनों बैल साढ़े सत्रह रुपये में बिके. उसमें से दोनों के क्रिया-कर्म के बाद जो बचा था, उसी से जैसे-तैसे एक महीना गुजर गया. आज लोटा तो कल पतीला बेच-बांच कर एक महीना और बीत गया.

वासु दोनों वक्त आता है. रात एक पहर तक घर पर रहता है. दादी-पोती सोने को जायें, तब लौटता है. वासु पैसे-वैसे देना चाहे, तो दादी-पोती कोई भी नहीं लेती. जोर-जबरदस्ती दे भी दे, तो पैसे आले में पड़े रहते हैं. यह देख कर वासु अब और नहीं देता. बूढ़ी जो एक-दो पैसे देती है, उसी से वह सामान खरीद लाता है. उसी दो पैसे के सौदे से आठ-दस दिन का गुजारा हो जाता है.

घर पर की छान उड़ चुकी, नया छाजन चाहिए. वासु ने दो रुपये का पुआल खरीद कर बाड़ी में ला कर रख दिया है. नयी छान बनी है. बूढ़ी अब रात-दिन नहीं रोती है, सिर्फ शाम को बैठी रोती है. रोते-रोते वहीं लुढ़क जाती है और रात वहीं बीत जाती है. रेवती उसी के पास सुबकते-सुबकते सो जाती है. बूढ़ी को अब अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ता. वह पगली-सी हो गयी है. अब रोना छोड़ रेवती को गाली देने लगी है. इस सारे दु:ख, सारी दुर्दशा की जड़ है रेवती, यह उसने मन ही मन तय कर लिया है, रेवती पढ़ने लगी, इसलिए बेटा मरा, बहू मर गयी, नौकर छोड़ कर चला गया, बैल बेचने पडे, जमींदार के लोग आकर गायें ले गये. रेवती कुलच्छनी है, कुढंगी है. बूढ़ी की आंखों से दिखाई नहीं देता, इसका कारण भी रेवती की पढ़ाई है. बूढ़ी गाली बकती होती, तो रेवती की आंखों से आंसुओं की धारा बहती रहती. डर के मारे वह बूढ़ी के सामने नहीं आती. बाहर बरामदे में या घर के अंदर मुंह छिपाये, काठ मारे पड़ी रहती है. वासु भी दोषी है, क्योंकि रेवती तो पहले पढ़ी हुई नहीं थी, उसने आ कर पढ़ाया. पर बूढ़ी वासु से कुछ नहीं कहती. वासु नहीं हो, तो घर पल भर के लिए भी नहीं चले. तिस पर जमींदार का आदमी झमेला कर रहा है.

रेवती अब लीलामयी प्रतिमा नहीं रही. उसका स्वर अब कोई नहीं सुनता. बाप-मां के मर जाने के बाद से उसे बाहर किसी ने भी नहीं देखा. कुछ दिनों तक वह खूब बिलखती रही, पर अब जोर-जोर से नहीं रोती, परंतु रात-दिन उसकी बड़ी-बड़ी आंखें छोटी-छोटी नील कुइयों की तरह पानी से छलछलाती रहतीं. उसके छोटे-से प्राण, उसी में छोटा-सा मन एकबारगी टूट गया है. उसके लिए अब दिनरात एक समान हैं. मां-बाप मर गये हैं, वे अब लौट कर नहीं आयेंगे, इस बात का जैसे उसे विश्वास नहीं. न पेट में भूख है, न आंखों में नींद. दिनरात मां बाप के ध्यान में डूबी रहती है. दादी के डर से खाने बैठती है. फर्श पर से उठती ही नहीं. देह में बस हाड़-चाम धंकिया गये हैं. सिर्फ वासुदेव के आने पर उठ खड़ी होती है, बड़ी-बड़ी आंखें उठा उसे एकटक देखती है, वासु के देखने पर धीमी-सी आह भर सर नवा लेती है.

हाथ की गिनती में आज श्यामबंधु को मरे पांच महीने हो गये. जेठ के दिन, ठीक दोपहर के समय वासु ने दस्तक दी. इस समय वह कभी भी नहीं आता. बूढ़ी ने कूंथते हुए जा कर किवाड़ खोला. वासु बोला—दादी मां, डेपुटी इंस्पेक्टर हरिपुर थाने में बैठ कर बच्चों से पाठ पूछेंगे. सब लड़के जायेंगे. मुझे चिट्ठी मिली है. मैं लड़कों को ले कर कल सुबह जाऊंगा. पांच दिन लग जायेंगे.

रेवती किवाड़ की आड़ में खड़ी सब सुन रही थी, लथ से वहीं जमीन पर निढाल बैठ गयी. अच्छा ही हुआ कि किवाड़ पकड़े खड़ी थी, नहीं तो गिर पड़ती. वासु ने पांच दिन के लिए चावल, नमक, तेल, बैंगन वगैरह ला कर आंगन में रख दिये और बूढ़ी को प्रणाम कर शनिवार के दिन शाम के समय निकल पड़ा. बूढ़ी बोली—देख बेटा, धूप में घूमना नहीं. सेहत का खयाल रखना, समय से खा-पी लेना. इतना कह कर उसने आह भरी. रेवती एकटक वासु को देख रही थी. आज का देखना एक और किस्म का था. इसके पहले वासु आये तो वह सर झुका लेती थी, आज वह भाव नहीं है. आज चार आंखें मिलीं—आंखें फेर लेना किसी के बस की बात नहीं.

वासु चला गया है. दिन ढल गया है, घर और बाहर चारों ओर अंधेरा घिर गया है. रेवती जिस तरह ताक रही थी, वैसे ही ताकती रह गयी है. बूढ़ी के पुकारने पर उसकी चेतना लौट आयी. घर और बाहर सब अंधकारमय था.

* *

रेवती बैठी-बैठी दिन गिन रही है, आज छह दिन हुए. मां-बाप के गुजर जाने के बाद उसने, बाहर के दालान को देखा नहीं था. किंतु आज वह दो बार बाहर हो आयी है. समय अंदाजन छह घड़ी. हरिपुर में स्कूल के लड़कों के लौटते ही लोगों में कानाकानी होने लगी—हरिपुर से लौटते समय गोपालपुर के बरगद के नीचे पंडित जी को हैजा हुआ, चार बार दस्त हुए और वह आधी रात चल बसे. गांव वालों ने हाय-हाय मचायी. . . .लड़के, बच्चे, माएं, लड़कियां, औरतें, सब फूट-फूट कर रो पड़े. कोई बोली—अहा, कैसा सुंदर रूप! किसी ने कहा—कैसा धीर! कोई कहने लगी—गली में से जाते, तो कैसे शांत, कैसे भला. . !

रेवती ने सारी बातें सुनीं, बूढ़ी ने भी. रो-रो कर बूढ़ी का गला रुंध गया और वह रो नहीं सकी. अंत में उठ कर उसने कहा—अहा बेटे, तूने अपनी ही बुद्धि से प्राण गंवाये. यानी वह रेवती को पढ़ाने की दुर्बुद्धि के कारण ही मर गया, नहीं तो मरा नहीं होता. सुनते ही रेवती घर के अंदर जा कर निढ़ाल हो गिर पड़ी है. शोर-शब्द कुछ भी नहीं.

वह दिन बीता, दूसरे दिन सुबह रेवती को पास नहीं देख कर बूढ़ी ने चीख कर पुकार लगायी—अरी ओ रेवती ...ओ रेवी....अरी ओ मुंहजली .... आगलगी...! बूढ़ी पगली की तरह हो गयी है. रोना-चीखना कुछ भी नहीं, सिर्फ गुस्से से रेवती को गालियां दे रही है. अरी ओ मुंहजली ...आगलगी! बूढ़ी को आंखों से दिखाई नहीं पड़ रहा है. टटोलते-टटोलते जा कर उसने रेवती को पाया. पुकारने पर कोई जवाब नहीं मिला, तो उसकी देह सहला कर देखा, काफी बुखार है, देह से आग फूट रही है, चेत नहीं. बूढ़ी देर तक उसके पास बैठी रही. सोचती रही, क्या करे, किसे बुलाये. कुछ तय नहीं कर सकी, तो झल्लाकर बोली—जो तेरा अपना किया हुआ है, उसका क्या इलाज? यानी तूने पढ़ा, इसलिए बुखार हुआ, इसका मैं क्या कर सकूंगी!

रेवती धरती से चिपक गयी है. आंखें नहीं खोलती. बुलाने पर जवाब नहीं देती ऊं-चूं तक नहीं. आज छह दिन हो गये. रेवती इस बीच दो-चार-बार चीख चुकी. उसकी चीख सुन कर बूढ़ी उसके पास गयी. शरीर सहला कर देखा. हाथ-पैर ठंडे लग रहे थे. पुकारने पर हां-हूं किया. आंखें फाड़े एकटक देख रही है, कुछ न पूछने पर भी बक रही है. कोई वैद्यराज देखते, तो 'तृष्णा दाह पुलापश्च' आदि श्लोक पढ़ कर कहते—सन्निपातस्य लक्षणं. पर बूढ़ी को खुशी हुई. देह तपती नहीं है. बात नहीं कर रही है, अब बोलने लगी है. देख नहीं रही थी, अब आंखें खोलने लगी है. पानी मांग रही है. दो-चार पथ्य हो जायें, तो लड़की उठ बैठेगी.

—तू सोती रह, मैं तेरे लिए पथ्य बना लाती हूं. कह कर बूढ़ी उठ गयी. पथ्य क्या बनाती? घर भर में टोकरी, छाज हंडी-हंडिया सब कुछ टटोलने पर भी अनाज का एक दाना तक नहीं मिला. गहरी सांस ले कर पल भर के लिए बूढ़ी वहीं लथ से बैठ गयी. वासु पांच दिनों के लिए चावल-दाल ला कर दे गया था. उसी में किसी तरह दस दिन गुजर गये. बूढ़ी की दृष्टि ठीक होती, तो समझ गयी होती. घर में लोटा-बरतन कुछ भी नहीं. एक फूटा लोटा हाथ लगा. उसी को ले कर वह हरि साहू की दुकान चल पड़ी.

हरि साहू बूढ़ी के हाथों में लोटा देख मतलब ठीक-ठीक समझ गया. बूढ़ी ने अपना अभिप्राय बताया, तो उसने लोटे को ले कर इधर-उधर देखा—नहीं, नहीं, घर में चावल नहीं है. तिस पर इस फूटे लोटे को रख कर कौन चावल देगा? यह बात नहीं कि हरि के घर में चावल नहीं था, देने की इच्छा भी थी, पर सस्ते में लेना है.

चावल नहीं है, सुन कर बूढ़ी के सर पर मानो आसमान टूट पड़ा ...क्या करूं, लड़की बुखार से उठी है, क्या ले कर दूंगी उसके मुंह में! वहीं घड़ी भर के लिए बैठ गयी. उसने दो बार हरि को देखा. फिर बोली—जाऊं, क्या कर रही है, देख आऊं.

वह लोटा ले कर लौट रही थी कि हरि ने कहा—दे दो, देखता हूं, घर में क्या है.

हरि ने लोटा रख लिया और उसके बदले चार मान चावल, आधा मान दाल, कुछ नमक दे दिया.

अब तक बूढ़ी ने दातून तक नहीं की थी. देह और मन की बात क्या कहें! घर पहुंच कर रेवती को पुकारने लगी. उसका विश्वास था कि रेवती अच्छी हो गयी है, पानी लादेगी और वह भात बना देगी. रेवती का कोई जवाब नहीं मिला, तो वह झल्ला कर पुकारने लगी—अरी ओ रेवती ...ओ रेवी ... अरी ओ मुंहजली ...आगलगी ...! फिर भी कोई जवाब नहीं.

उधर रेवती का सन्निपात रोग क्रमशः बढ़ रहा था. भयानक यंत्रणा. देह धीरे-धीरे शीतल होती जा रही थी. जीभ सूखती जा रही थी. वह किसी तरह बाहर आ गयी. अच्छा नहीं लगा. बाड़ी की ओर जा कर बरामदे में बैठ गयी. दिन ढलने को हुआ. हवा तेज बह रही थी. वह दीवार के सहारे बैठ गयी. पूरी बाड़ी को देख गयी. बापू ने पिछले साल यह केले का पेड़ लगाया था, फूल खिला है. दो साल पहले मां ने अमरूद का पेड़ लगाया था, कितना बड़ा हो गया है! उस पर भी फूल खिले हैं. उस पेड़ को देख कर मां की याद आयी. शाम हो आयी है. उसने आकाश की ओर देखा, पहले पहर का तारा चमक रहा था, उसमें से किरणें फूट रही थीं. ध्यान लगाये रेवती उस तारे को एकटक देख रही थी ...अपलक. तारे का विस्तार धीरे-धीरे बढ़ रहा था ... चक्र का आकार हो गया है, वह और बढ़ रहा है, और उज्ज्वल हो रहा है. अहा, यह किसकी मूर्त्ति है तारे में! शांतिदायिनी, प्रेममयी, आनंदमयी माता की अभयमूर्ति बैठी हुई मानो स्नेह से गोद में उठा लेने को बुला रही है. मां ने दो किरण-हाथ पसार दिये. किरणों ने आ कर चक्षु का स्पर्श किया और वे हृदय के अंदर प्रविष्ट हुई. उस अंधेरे के अंदर और कोई शब्द नहीं था— केवल श्वास के स्वर. अंत में मां ...मां ...दो बार अस्पष्ट रूप से सुनाई पड़ा. बाड़ी निस्तब्ध, मौन थी.

उधर बूढ़ी न सरकते-सरकते जा कर रेवती के सोने की जगह टटोला, कोई नहीं था. सारा घर, बाहर, आंगन, ढेंकी शाल ...कहीं नहीं. सोचा, बुखार ठीक हो गया है, बाड़ी की ओर घूम रही होगी. वही पुकार 'अरी ओ रेवती...ओ रेवी...अरी ओ मुंहजली... आगलगी ...' फिर गूंजी. वह बाड़ी की तरफ, आंगन की ओर गयी. बरामदा जमीन से दो हाथ की ऊंचाई पर था, एक हाथ चौड़ा—अरे, तू यहां बैठी है! देह सहला कर बूढ़ी पहले चौंक पड़ी—उसने एक बार और सर से पैर तक उसे सहला दिया, फिर नाक के सामने हाथ रख कर चीख पड़ी. इसी के साथ-साथ धड़ाम की आवाज आयी, बरामदे के नीचे से.

श्याम बंधु महंति के घर के किसी भी व्यक्ति को दुनिया में फिर कोई नहीं देख सका. पड़ोसियों न रात पहर गये आखिरी बार सुना—अरी ओ रेवती .... ओ रेवी .... अरी ओ मुंहजली ... आगलगी!

(अनुवाद : श्रीनिवास उद्गाता) □□□

दूकानदारी ● मदन शर्मा

दोनों भाइयों ने मिल कर जूतों की दूकान खोली थी. किसी ग्राहक को दुकान के भीतर प्रवेश करते देख एक भाई चुपके से कहीं खिसक जाता. दूसरा ग्राहक को जूते निकाल-निकाल कर दिखाने लगता.

—यह कितने का है?

--पचास का. देखिए, मैं आपको यह तीस में दे दूंगा. मगर एक बात है, कहीं मेरे भाई को इसका पता न चल जाये.

इतने में दूसरा भाई भी भटकता हुआ आ पहुंचता.--कहो, क्या हो रहा है? कितने में दे रहो यह जोड़ा?

--तीस में, अपना ही आदमी है.

--ठीक है, लुटवा दो दुकान. पचास की चीज तीस-तीस में देते जाओ और जब दुकान को ताला लग जाये, तो सड़क पर बैठ जाना.

—यह क्या बात हुई! तुम्हारे यार-दोस्त जब चाहें आयें और जिस भाव चाहें चीज उठा कर ले जायें और एक-आध कभी मेरा आदमी आ जाये तो तुम आंखें दिखाने लगे.

--क्या कहा? मैं आंखें दिखाता हूं?

इस प्रकार झगड़ा बढ़ता चला जाता. लगता दोनों एक दूसरे को गले से पकड़ने ही वाले हैं. तभी पहला भाई अवसर पा कर ग्राहक को आंख मार देता. ग्राहक तीस रुपये रख और जूतों का डिब्बा बगल में दबा कर चल देता.

दोनों भाई खिलखिला कर हंसते और अगले ग्राहक की राह देखने लगते. दुकान चल निकली तो उस पर बड़ा-सा साइन बोर्ड लगा दिया गया. उस पर सबसे ऊपर लिखा था--'ये जूते आप ही के लिए हैं.'

बीच में मोटा-सा 'जनता शू कंपनी' लिखा था और सब से नीचे बारीक अक्षरों में --सौदागर मल हकूमत राय एंड संस. □

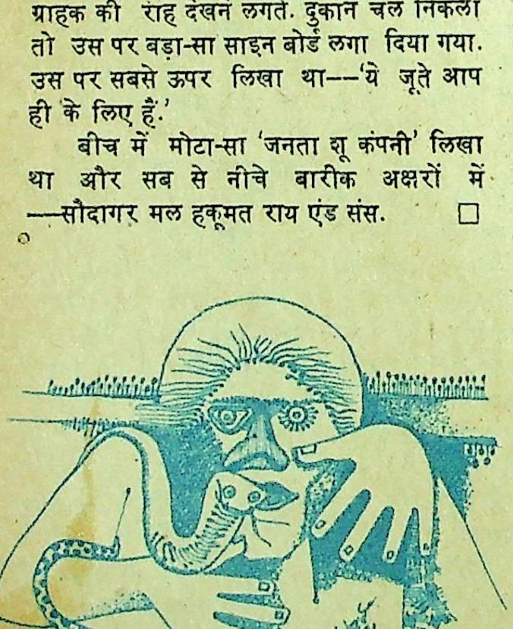

● विनोद [illegible]

अनुरक्ति ● ओम प्रभाकर

एक पुंश्चली स्त्री थी.

वह रोज अपने प्रेमी से मिलने जाती थी. उसके रास्ते में एक उद्यानाश्रम पड़ता था, जहां एक तपस्वी रहता था.

उस दिन आकाश में छाये सघन बादलों के कारण दिन में भी अंधेरा-सा था. प्रेमी से मिलने की तीव्र लालसा और कहीं वर्षा न होने लगे इस आशंका के कारण स्त्री तेज चाल से चली जा रही थी. आश्रम से गुजरते हुए वह नहीं जान पायी कि कब एक पेड़ के नीचे बैठे तपस्वी को उसके पांव की हलकी-सी ठोकर लग गयी.

लौटते समय तपस्वी ने स्त्री को टोका और फटकारा-- तुम्हें लज्जा नहीं आती. पति के रहते पर पुरुष से प्रेम करती हो. और अपने इस पाप-कर्म में इतनी लिप्त हो कि रास्ते में कौन बैठा है यह भी नहीं देखती. आज जाते समय तुम्हारे अपवित्र पैर की ठोकर से मेरी साधना भंग हो गयी. तुम रौरव नरक में जाओगी.

स्त्री हंसी किंतु प्रकटतः अत्यंत विनम्रता पूर्वक बोली--अगर साधना से ही स्वर्ग-नरक मिलता है महात्मन्, तो अपने श्राप पर एक बार फिर विचार कीजिए. एक ओर आपकी साधना है, जो किसी हलके से स्पर्श से ही भंग हो जाती है और दूसरी ओर मेरी कि मुझे रास्ते में बैठा मनुष्य भी नहीं दिखाई देता.

तपस्वी अवाक रह गया. □

पारस मणि ● रेखा सिंह

बात सनातन ऋषि और एक निर्धन ब्राह्मण की है. सनातन ऋषि यमुना के तट पर तपस्या करने को बैठे ही थे कि एक निर्धन ब्राह्मण वहां पहुंचा और बोला--मुनिवर, बहुत दूर से आ रहा हूं. मेरे दुखों का अंत नहीं. स्वप्न में मुझे एक देवता कह गये कि आपकी शरण जाऊं.

सनातन ने कहा--मैं तो अकिंचन हूं. तेरी क्या सहायता कर सकता हूं?

कुछ सोच कर मुनिवर पुनः बोले—हां, याद आया. वहां उस वृक्ष के नीचे मैंने एक पारस मणि गाड़ कर रखी हुई है. उसे ले ले.

पारसमणि! ब्राह्मण के हर्ष का पारावार न रहा. भागा-भागा उस स्थान पर गया और मणि खोद लाया. ज्यों ही उसने उसे अपने लोहे के ताबीज से छुलाया, वह सोने का हो गया.

वह पुनः सनातन ऋषि की शरण में पहुंचा और अश्रुपूरित नेत्रों से बोला--मुनिवर, मुझे यह नहीं चाहिए, मुझे चाहिए आपके इन चरणों की धूलमात्र जिन्होंने पारस मणि को भी ठुकरा दिया है. □

चार लघुकथाएं ● जेकोबी

सवाल हीन जवाब : फिलॉसफी

विश्वविख्यात महिला नोवलिस्ट ग्रेथूर्ट स्टेइन की मृत्यु इस प्रकार हुई—

बिस्तर को दबोच कर, छत की ओर शून्यता-भरी आंखें गड़ा कर उसने अचानक पूछा—तो फिर जवाब क्या है?

थोड़ी देर वह मौन रही; कोई जवाब न मिला. निःस्तब्धता भंग कर उसने फिर पूछा——तो फिर सवाल क्या है?

और वह मृत्यु के मुंह में समा गयी.

इस घटना का भाव-मर्म आधुनिक फिलॉसफी है. ☐

स्वर्गीय कुत्ते

पेरिस शहर में कुत्तों का एक शानदार श्मशान है. संगमरमर की कंदरागार, स्वर्गीय जीवों की तसवीरों से अलंकृत स्मारक-चिह्न उसकी गौरव गरिमा बढ़ाते हैं. प्रतिदिन पेरिस की बंध्य महिलाएं अपनी मोटर से श्मशान पर पधारती हैं एवं अपना शोक प्रकट करतीं; कोई अपने स्वर्गीय कुत्ते के लिए 'कबाब', 'कटलेट' आदि स्वादिष्ट भोजन कबर पर छोड़ जाती हैं.

अर्वाचीन में भी ऐसा अंधविश्वास है इसे हम कदापि नहीं स्वीकारते, यदि एक संभ्रांत महिला पुलिस को यह शिकायत नहीं भेजती. वह हर दिन अपने प्यारे मृत कुत्ते के लिए स्वादिष्ट खाना पहुंचाती थी. उसका विश्वास था कि रात को अंधेरे में देवदूत के पंखों में प्रत्यक्ष हो, वह भोजन खाता था.

लेकिन घटनावश एक दिन वह महिला अपनी छतरी कबर पर ही भूल गयी और जब कुछ ही क्षणों में लौटी तो उसने क्या देखा कि श्मशान का चौकीदार उस स्वादिष्ट भोजन से अपने उदर की पूर्ति कर रहा है. ☐

परदे के पीछे

पौराणिक मिस्र में सारे दैवत्व और जीवन का मूलाधार 'ऐसिस देवी' थी, जिसकी प्रतिमा एक परदे के पीछे प्रतिष्ठित थी. जिसने भी परदे को उठाया उसे अलौकिक और निगूढ़ रहस्यों का ज्ञान हुआ; लेकिन केवल पुरोहित ही उस भाग्य का भोक्ता था.

एक नवजवान 'सेयस' नगर में था ज़िसको ज्ञान की बड़ी तृष्णा थी और अलौकिकता के प्रति आकांक्षा भरा विश्वास. एक घटाटोपमय अंधेरी रात को उसने चुपके से मंदिर में प्रवेश किया एवं कांपते हाथों से परदे को उठाया और जो कुछ उसने देखा उसे कोई दूसरा न जान सका, क्योंकि सुबह होते ही वह खुली आंखों से अबोध पड़ा हुआ मिला, परदे के समक्ष ही.

इसका क्या कारण है?

उसने सत्य को आंखों देखा, उसने देखा जो कुछ वहां था, वह धोखा था, परदे के पीछे कुछ नहीं था. ऐसिस एक कपोल-कल्पित शून्य अवतार निकली. दैवत्व सीमातीत शून्यता था; सत्य का ज्ञान विश्वासी के निमित्त मौत बन बैठा. ☐

● आर. डी. पुरोहित

जरूरत

रेस्तरां में मैंने बिल चुकाया, और बैरे ने छूटे पैसे दिये—— एक पांच रुपये का नोट मैला और मुड़ा हुआ मुझे मिला. नोट के किनारे लिखा था: 'तुम्हारे लिए मैंने अपनी अस्मत बेची है.' ☐

कबिरा खड़ा बजार में (१८)

• हरिशंकर परसाई

इस बार कबीरदास की भेंट एक अभिनंदनी से

कबीर बाहर निकला तो अजरज में आ गया. वह कनछेदी जो बेकार बैठा रहता था, आज काम में लगा था. कुदाली से घर के सामने का चबूतरा तोड़ रहा था. पसीना-पसीना हो रहा था.

मैंने कहा—अरे कनछेदी, यह क्या कर रहे हो?

कनछेदी ने कहा—साधु, बोलो मत. काम करने दो.

मैंने कहा—पर यह चबूतरा क्यों तोड़ रहे हो?

कनछेदी ने कहा—यह 'एनक्रोचमेंट' है. अतिक्रमण है. देखते नहीं नगर निगम की नाली पर यह चबूतरा बना है. इरादा तो यह था कि बांयीं तरफ एक ठेला बनवा कर किसी पानवाले को किराये पर दे दूं. पर अब तो इसी चबूतरे को उखाड़ देना है. मैं नहीं उखाड़ूंगा तो 'वे' आ कर उखाड़ देंगे.'

मैंने कहा—कनछेदी, तुम तो ऐसे बोल रहे हो जैसे कोई लजीली औरत कहती है—हमारे 'वे' कल बाहर जाने वाले हैं, 'वे' कह रहे थे कि कमला. . .

कनछेदी ने कहा—तुम कुछ भी कहो, पर मैं नहीं कहूंगा. दीवारों के भी कान होते हैं. इस नाली के भी कान हैं. बड़ों-बड़ों की हवेलियां रो रही हैं.

मैंने कहा—पर कनछेदी, बीस साल से तुम यह चबूतरा बनाये हो. तुम्हें इन बीस सालों में यह समझ में नहीं आया कि यह 'एनकोंचमेंट' है.

कनछेदी ने कहा—मैंने तो बड़ों-बड़ों की देखा-देखी में यह कर डाला. पर तुम तो ज्ञानी हो. तुमने मुझे क्यों नहीं बताया?

कबीर ने कहा—मैं तो समझ रहा था कि नाली का इतना हिस्सा तुमने खरीद लिया है.

कनछेदी ने गुस्से से कहा—देखो, ये बातें मत करो. मेरी एक सलाह मानो. अपने ये लंबे बाल कटवा डालो.

मैंने कहा—मैं क्या लड़कियों को छेड़ता हूं?

कनछेदी ने कहा—पर लड़कियां तुम्हें छेड़ती हों तो? बात तो वही हुई. खैर, कहां चले?

मैंने कहा—तोताराम अभिनंदनी से मिलने.

कनछेदी जोर से हंस पड़ा. बोला—अच्छा, साधु चला अपने अभिनंदन का इंतजाम करने!

मैंने कहा—नहीं कनछेदी, मैं अपना नहीं, अभिनंदनीजी के अभिनंदन के सिलसिले में जा रहा हूं.

कनछेदी ने कुदाली चलायी. पत्नी से बोले—जल्दी टोकनी भर. वे आते ही होंगे.

और कबीर चल दिया तोताराम अभिनंदनीजी के पास. तोतारामजी इस इलाके के मशहूर अभिनंदन समारोहों के आयोजक हैं.

मैं उनके पास पहुंचा. वह बड़े उदास बैठे थे.

मैंने कहा—अभिनंदनीजी, मैं कबीरदास हूं.

उन्होंने कहा—आओ साधु.

मैंने कहा—इतने उदास, हताश क्यों बैठे हैं?

उन्होंने कहा—क्या बताऊं? सारी योजना फेल हो गयी. जिन समाजसेवी का मैंने अभिनंदन आयोजित किया था, कार्ड छपवा कर बांट दिये थे, वे जेल की हवा खा रहे हैं. अब मैं क्या करूं? वे इस इलाके के सबसे प्रसिद्ध समाजसेवी हैं. हर संस्था को दान देते रहे हैं.

मैंने पूछा—फिर वे गिरफ्तार क्यों हो गये? वे तो 'दानवीर' हैं.

अभिनंदनीजी ने कहा—साधु, छापा पड़ा, तो सोना, चांदी, नकद मिले. दो खाते मिले. दो नंबरी मामले मिले. तस्करी का माल मिला. वे जेल में डाल दिये गये और मेरा कार्यक्रम फेल हो गया.

मैंने कहा—आपका बड़ा पैसा डूब गया.

वे बोले—नहीं, पैसा तो नहीं डूबा क्योंकि पैसा उन्होंने ही दिया था. पर मेरी इज्जत डूब गयी.

मैंने कहा—इज्जत तो बनती बिगड़ती रहती है. फिर बन जायेगी. पर आप इतने घबड़ाये क्यों हैं?

उन्होंने कहा—साधु, निमंत्रण पत्रों पर मेरा नाम छपा है. मेरी इज्जत भी गयी.

कबीर ने उन्हें हिम्मत बंधायी—कोई चिंता की बात नहीं. तुम्हें क्या पता कि ये समाज-सेवी ऐसे हैं. तुम बेफिक्र रहो. रोटी खायी कि नहीं?

वे बोले—दो दिनों से नहीं खायी.

मैंने कहा—जाओ, रोटी खा कर आओ.

वे भीतर रोटी खाने चले गये. कबीर गाता रहा :

कबिरा नौबत आपनी दिन दस
लेहु बजाय,
ये पुर पटरन ये गली,
बहुरि न देखौ आय!

अभिनंदनीजी खा कर लौटे.

कहने लगे—कोई डर तो नहीं है?

मैंने कहा—कोई डर नहीं. डर तो अपने गलत कामों से पैदा होता है.

वे बोले—मैंने कोई गलत काम नहीं किया. साधु, लोग काम करते रहते हैं, समाज में, साहित्य में, धर्म में, राजनीति में— पर इनका मूल्यांकन नहीं होता. इसलिए मैंने 'तोताराम अभिनंदन एजेंसी' कायम

को. इस एजेंसी के मारफत मैं इन लोगों का जो किसी भी क्षेत्र में विशिष्ट सेवा करते हैं, अभिनंदन करवाता हूं. मैं नहीं चाहता कि कोई भी जो विशिष्ट सेवा करे, अभिनंदन न पाये.

मैंने कहा—आपका उद्देश्य क्या है ?

वे बोले—हमारी एजेंसी समाज सेवा करती है.

मैंने कहा—कोई ठग यदि विशिष्ट हो जाये तो?

वे बोले—तो हम उसका भी अभिनंदन करेंगे. मैं तो नटवरलाल का भी अभिनंदन करना चाहता था.

मैंने कहा—आपकी कार्यप्रणाली क्या है ?

उन्होंने कहा—एक तो यह कि 'क्लाएंट' हमारे पास खुद आते हैं. कहते हैं— जितना भी पैसा लगे, अभिनंदन करा दो. दूसरे, हम खुद 'क्लाएंट' को तलाशते हैं. यश की कामना किसे नहीं होती? हम जाते हैं लोगों के पास कि फलां साहब को देशसेवा करते ४० साल हो गये. उनका अभिनंदन करना हमारा कर्त्तव्य है. यदि उनका अभिनंदन नहीं किया और वे मर गये, तो उनका प्रेत हमारे आसपास मंडराता रहेगा. लोग दयावश अभिनंदन समिति बना लेते हैं. संयोजक हमेशा मैं होता हूं.

मैंने पूछा—कोई ५० साल का हो गया हो तो?

अभिनंदनीजी ने कहा—हां ऐसे 'केस' भी हमारे पास आते हैं. कहते हैं—हम पचास साल के हो गये. हमें समाज सेवा करते २५ साल हो गये. हमारा अभिनंदन करो. मैं देखता हूं कि वे केवल ४९ साल के हैं. मैं वापस कर देता हूं. मैं झूठे केस नहीं लेता.

मैंने कहा—तुम दया किया करो. नौकरी में उम्र 'कंडोन' होती है. कोई विशेष आदमी है पर 'ओवरएज' हो गया है तो, उसकी उम्र माफ कर दी जाती है. तुम भी ४९ साल वाले को क्या ५० का नहीं मान सकते? अरे एक साल पहले ही अभिनंदन कर दो.

अभिनंदनीजी ने कहा—कबीर तुम ठीक कहते हो. मैं आगे, ध्यान रखूंगा. पर लोग बहुत तंग करते हैं.

मैंने पूछा—कैसे?

उन्होंने कहा—अपना अभिनंदन ग्रंथ खुद छपा कर ले आते हैं. कहते हैं कि तुम अपनी फीस ले लो, पर यह अभिनंदन ग्रंथ किसी बड़े आदमी के कर-कमलों से मुझे भेंट कराओ. तब मुझे बड़ी मेहनत पड़ती है.

मैंने कहा—पर 'क्लाएंट' फीस तो देता होगा?

वे बोले—देता तो है. पर काम के हिसाब से फीस कहां मिलती है!

मैंने पूछा—कितने अभिनंदन अभी तक करवा चुके?

उन्होंने कहा—लगभग पचास. जिन्हें कोई नहीं जानता था, उनका भी अभिनंदन मैंने कराया. मैं प्रचार कर देता हूं. उनके लिए बड़े शर्म की बात है कि फलां साहब को समाजसेवा करते ३० साल हो गये. वे प्रचार से दूर रहे. मौन सेवक रहे. अपना सर्वस्व त्याग दिया. वे ६० के हो गये. हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनका अभिनंदन करें. लोग भावुक हैं. झांसे में आते हैं. जो उन्होंने नहीं किया, वह सब मैं उनके अभिनंदन पत्र में लिख देता हूं.

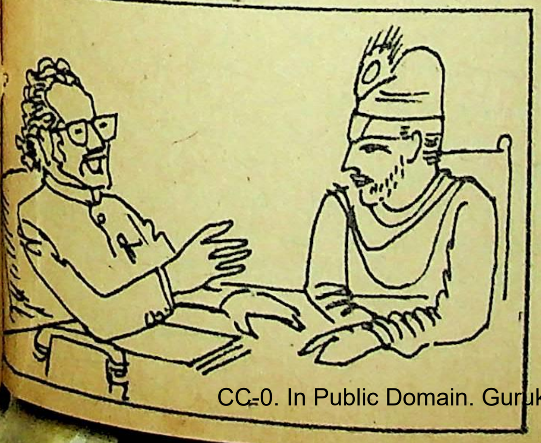

अभिनंदनीजी ने पूछा— संत तुमने कभी मेरा कोई अभिनंदन समारोह देखा?

मैंने कहा—कई देखे हैं. बढ़िया होते हैं. तीन महीने पहले मैंने एक कुलपति का अभिनंदन देखा था.

उन्होंने कहा—साधु, विश्वविद्यालय के एक गुट के अध्यापक मेरे पास आये थे कि वाइस-चांसलर का अभिनंदन करा दीजिए. मैंने कहा—खर्च कौन देगा? वे बोले—हम देंगे. मैंने अभिनंदन करवा दिया. संत तुमने देखा?

मैंने कहा—वही तो मैं कह रहा हूं. मैंने देखा कि पैंट पहने अध्यापक लोग वाइस-चांसलर के चरणों पर सिर रख रहे हैं. मुझे डर लग रहा था कि इनका पैंट फट जायेगा.

अभिनंदनीजी ने कहा—मैं इस बात का खयाल रखूंगा. आगे निमंत्रण पत्र में नोट छपवा दूंगा कि जिन्हें चरण छूना है, वे कृपया धोती पहन कर आयें.

अब अभिनंदनीजी बिलकुल ठीक थे. मैंने पूछा— कितने 'क्लायेंट' लिस्ट पर हैं ?

उन्होंने कहा—आठ हैं! पर उनका भविष्य निश्चित नहीं है. मैं कमजोर 'केस' नहीं लेता अब.

मैंने पूछा—कभी कोई कठिनाई आयी?

वे बोले—हां आयी. एक साहब का जन्म संयोग से एक अप्रैल को हो गया. मैं तीन साल कोशिश करता रहा कि इनकी वर्षगांठ मनवा दूं. पर मैं निमंत्रण पत्र बांटता और लोग आते नहीं. वे कहते— हमें 'अप्रैल फूल' बनाया जा रहा है. आखिर मैं १०० आदमियों के पास गया और कहा कि ये सचमुच पहली अप्रैल को पैदा हुए थे. तब समारोह हुआ.

मैंने कहा—अभिनंदनीजी, आपको, इतने साल अभिनंदन करते हो गये. यह धर्म भी है और धंधा भी. कबीर आपका अभिनंदन करना चाहता है.

तोतारामजी ने कहा—संतबीर, मेरा क्या अभिनंदन? मेरी तो, 'अभिनंदन एजेंसी' है. पर संत मैं तुम्हारा अभिनंदन करना चाहता हूं. फिफ्टी-फिफ्टी! बोलो?

मैंने कहा—मेरे बाद तुलसीदास ने लिखा है—

हम चाकर रघुबीर के, पटौ लिखौ दरबार.
अब तुलसी का हो हिंगे, नर से मनसबदार!

लौटा तो देखा,

कनछेदी 'एनक्रोंचमेंट' साफ कर चुके थे. कहने लगे— कहो साधु, क्या तय किया अभिनंदनीजी से?

मैंने कहा—कुछ नहीं. वे मेरा अभिनंदन करना चाहते हैं—उनकी एजेंसी है. मैं उनका अभिनंदन करना चाहता हूं. कंबल-कंबल में गांठ नहीं बंधती □□□

छौक

• चंद्रा औलक

वैसे इस ठंडी और सुस्त सुवह में खुद को ढीला छोड़ कर रजाई में दुबके रहना मुझे अच्छा लग रहा है. सुवह जब मां एक चाय की प्याली ला कर मुझे जगा गयी थीं, तब से ही चिड़ियों का शोर मेरे खाली दिमाग में तेजी से घुसता जा रहा है. चिड़ियों का मेरे दिमाग में संघर्षरत दौड़ते रहना इसलिए भी सुखद लग रहा है कि यों मैं अपने नहीं, चिड़ियों के संघर्ष को ओढ़ कर अब ये दिन आसानी से काट सकूंगा. फिर भी लगता है कि मैं अनावश्यक तौर पर कुछ न कुछ मन में उरेहता जा रहा हूं. यह शायद असंतुलित मन की वजह से हो और तब से हो, जब से रेवा मायके गयी है. रेवा से अलग हुए कुल तीन-चार दिन ही हुए हैं और इतने कम वक्त में ही उसके तनमन की कोई तस्वीर मुझे नहीं मिल रही. क्या वाकया है? शायद मैं उसकी नामौजूदगी में खुश नहीं हूं. मैंने वैसे रेवा से भी कहा था कि मायके में उसे भी कोई खुशी नहीं मिल सकती. लेकिन कल उसने आने को फोन कर के बताया था कि वह मौसा के यहां पूना जा रही है और खुश है. मायावी, साली! झूठ भी कनवे किया, तो इनडायरेक्ट!

और अग्नि ने जब यह बात मुझ तक पहुंचायी, तो मुझे रेवा पर दुगुना गुस्सा हो आया. क्या यह बात वह किसी तरह सीधे मुझ तक नहीं पहुंचा सकती थी? और तब से ही मैं अपसेट हूं. साली, बेवफा! फिर कल शाम जब मैं अग्नि के यहां खुलासा जानकारी लेने गया था, तो मेरे मन में था कि मैं वहां से सीधा रेवा के मायके जा कर उसका पूना जाना रोक दूंगा और उसे बांह से घसीटता हुआ ला कर इस घर की कोठरी में डाल दूंगा. पर मुझे खुद पर हैरानी हुई थी कि अग्नि से सब कुछ जान कर भी मैं कैसे उस बात को पचा गया था. और मेरे पास बचा रह गया था एक अशांत कौतूहल. फिर मैंने खुद को तसल्ली दे ली थी कि अच्छा हुआ, सिर से एक बोझ टला. इसलिए भी कि मां इन दिनों अस्वस्थ थीं और कायदे के मुताबिक घर के काम का बोझ रेवा के सिर होना चाहिए था, जब कि वह देर तक बिस्तर में पड़ी रहती थी. रेवा से माथा खपाने का नतीजा होता, आपसी किचकिच.

अब सोच रहा हूं, एक तरह से यह अच्छा ही हुआ कि रेवा मेरी ओर से हमला किये जाने के पहले ही इस संबंध हर चीज को तोड़-फोड़ कर चली गयी. नहीं तो इस वक्त भी मैं उसे उसकी सुस्ती पर लताड़ रहा होता, या वही मेरे बिस्तर में घुसे होने पर मुझे कोस रही होती, या बिस्तर से खींच कर गुसलघर में धकेल रही होती. और इस बात पर हाथापाई तक की नौबत आ चुकी होती. मैं उसे धमका रहा होता कि वह चाहती है, ऐसी ठंड में निमोनिया पाल लूं. और वह कहती— निमोनिया नहीं, दलिद्दर पालो तुम... और मैं कहता—पालूंगा! जाओ, तुम खुद को संभालो. मेरे खिसियायेपन को भांप कर तब वह मौके का फायदा उठा कर मां को बुला लाती. रेवा जानती है, इस बात पर मां उसकी हिमायत पर उतर आती हैं. मेरे नियमबद्ध और अपटुडेट रहने के मामले में वे दोनों एकमत थीं.

कभी-कभी रेवा पर मेरा हाथ उठ जाता, तो वह मां के लिए अचंभे का बायस बन जाता. वह कहती--अरुण, इस हद तक जाने का परिणाम ठीक न होगा!

किंतु प्राय: रेवा भावहीन हो कर हट जाती थी. बाद में कमरे में जा कर देखता, तो वह आराम से ट्रांजिस्टर बगल में दबोच पलंग पर आत्मलिप्त-सी लेटी होती. मुझसे आंखें मिलाते ही मुंह दीवार की ओर फेर लेती. मैं जल-भुन जाता. मुझे लगता, वह मेरी आत्म-पीड़ा को जैसे पैरों तले रौंद डालना चाहती हो. मैं उसे दिल में गालियां देने लगता. सोचता, अगर मैं ऐसी जड़ आत्मा के साथ जीता रहा, तो मेरी तो जिंदगी ही खत्म हो जायेगी.

चिड़ियों का शोर अब मुझमें जम गया है, जैसे दलदल में कोई पहिया जम जाये. तब काफी जोर लगाने पर वह पहिया खिसकता है. अपने ख्यालों को यहां से खिसकाने में मुझ पर भी काफी जोर पड़ रहा है. काफी पीछे जाना पड़ रहा है. तभी कब से कह रही है, अरुण, खाना ठंडा हो रहा है! मैं पीछे सिगरेट मुट्ठी में दाब लेता हूं. चौंक जाता हूं. कहना चाहता हूं, खुद ही ले लूंगा, मां क्यों टंगी पड़ी हैं? पर कहता नहीं. जानता हूं, खुद क्या लूंगा! और मां का काम टंगा रहेगा. हाथ-मुंह धो कर जल्दी खाने बैठने का सोच लिया है.

खाने लगा, तो चाहा, मां को साथ शामिल कर लूं. मां शब्द गले तक आया भी, पर मां दालान में जा बैठी थीं. खाने के बाद एक बार नजर दालान में गयी. मां ऊन की उधेड़-बुन में जुटी थीं. हठात् जैसे किसी ने मुझ पर कोड़ा फटकरा. यह रूप क्या मेरी मां का है? मेरी मां ऐसी कब हो गयीं? मुरझायी रंगत, आंखों के गिर्द झुर्रियों का जाल. नहीं, मेरी मां ऐसी कदापि थी ही नहीं. थीं रंगभरी. रूप और गरिमा से पूर्ण. साथ में बुद्धि की जागरूकता से चेतन.

दलदल में फंसा पहिया राह पा कर धीरे-धीरे खिसकने लगा.

मां तब युवा और क्रियाशील थीं. घर के काम के अलावा बाबू के प्रेस के काम में हाथ बंटाया करती थीं. एक बार की बात याद आती है, बाबू को एक

शोध-ग्रंथ छापने को मिला था. वह किसी विद्वान का ग्रंथ था और मां हिंदी और संस्कृत की जानकारी रखती थीं, इसी भरोसे बापू ने उसे छाप देने की हामी भरी थी. मां ने कंपोजिंग का काम तो अपने ऊपर ले ही रखा था, अब प्रूफ रीडिंग भी अपने जिम्मे ले ली थी. साथ ही स्क्रिप्ट का पूर्व संशोधन भी वही करने लगीं, जैसे शोध-ग्रंथ उस विद्वान का न हो कर मां का अपना हो, जिसमें वह अपने ही जीवनकाल का संपूर्ण इतिहास लिख रही हों.

हालांकि मां के पहले बाबू ने हम भाई-बहन को ही कंपोजिंग का काम सिखलाया था, पर अब सारा काम अकेली मां कर रही थीं. और वह विद्वान संतुष्ट था और बाबू भी, क्योंकि इस अतिरिक्त संशोधन का पारिश्रमिक भी बाबू को अलग से मिलना तय हो गया था. मां उस काम में जी-जान से जुटी थीं.

अन्नि और मैं उन दिनों हाई स्कूल में आ गये थे. मां को हमारे ब्रिलियंट होने का विश्वास हो चला था. वह दो-तीन बार मुझे कुछ लिखने को दे भी चुकी थीं और मैंने उनका विश्वास बरकरार रखते हुए उस काम को खूबी से निभाया था. हम भाई-बहन इस तरह अपनी इमेज बनाने लायक माने जान लगे थे.

जिस दिन की विशेष घटना यहां दे रहा हूं, उस दिन इत्तिफाक की बात ही समझो कि मैं ज्योमेट्री का एक थ्योरम सुलझाने में लगा था. कुछ संशोधित पन्ने मां ने अन्नि को उतारने को कह दिया. पन्ने अन्नि जल्दी-जल्दी घसीटने लगी. और यह भी इत्तिफाक ही था कि उसी शाम अन्नि को एक सहेली के यहां जाना था. और लिखे हुए पन्ने वह संशोधित स्क्रिप्ट के नीचे ही दाब कर चली गयी. और तीसरा संयोग भी उसी दिन आन पड़ा कि शाम मां को भी घर से बाहर काम था और लिखाई का काम देखा गया अगले दिन जब कि मैटर फाइनली प्रेस में जाने वाला था और मां ने तब पाया कि उसमें काफी त्रुटियां हैं. अशुद्धियां तो खैर थीं ही, लिखाई भी यों घसीटी गयी थी कि पढ़ी ही नहीं जा रही थी. पढ़ते हुए शुरू में तो मां ने विवेक से काम लिया, पर बाद में बस शिकायत ही नहीं, इल्जाम-सा बन कर बाबू तक जा पहुंचा. अन्नि की तलबी हुई और पूछा गया कि यह क्या लिखा है उसने?

अन्नि कोई उत्तर न दे सकी, महज घूरती खड़ी रही. दोबारा पूछा जाने पर वह ढिठाई पर उतर आती बोली—यह ये है और वो वह. .

ऐसी ढिठाई पर अनायास ही मां गरजीं. कहा—खुद ही गढ़ लिया यह ये है और कागज पर घसीट दिया.

अन्नि वैसी ही ढीठ बनी खड़ी रही.

—और यह लिखाई? लिखाई का इश्तिहार जैसे मां बाबू के पास उठा ले गयीं.

—पर पूछा तो होता, अन्नि? बाबू बोले.

—अगली बार खुद ही कर लेना आप. . . .!

अन्नि विरोध से भर उठी. विरोध में फेंकी हुई उस बात पर मां की आंखें अंगारे जैसी फट उड़ीं और सीधी बहन पर ही जा गिरीं. लेकिन बहन का कमाल भी तब देखने काबिल था कि वह मां पर दांत पीसने से बाज नहीं आयी.

देख-सुन कर बाबू ने बहन को इशारे से पास बुलाया. बहन दो कदम बढ़ी और रुक गयी. बाबू ने संकेत से ही सुझाया—जाओ, माफी मांगो.

माफी मांगने वाली बात को बहन ने जैसे दिल से कतई काट दिया. उसकी ढीठ नजरें मां से कुछ दूरी पर किंतु मां के ही अगले आदेश पर टिकी थीं.

—तुम्हें शऊर कभी नहीं आयेगा! बाबू ने जैसे फिर बहन को राह दी हो. पर बहन टस से मस नहीं हुई. अड़ियल टट्टू जैसी जहां थी, वहीं बनी रही.

—लड़की, अभी वक्त है, सीख सकती हो! बाबू ताड़ना दे बैठे.

उत्तर में बहन और उद्दंड हो गयी—वक्त कभी नहीं आयेगा. बहन अदम्य साहस से भर गयी.

मां दरवाजे से बाहर जा रही थीं, पर सुन कर वहीं ठिठक गयीं. बहन के दोनों कान ऊंचे खींच कर झटकते हुए बोलीं—वक्त आयेगा, लड़की! और बहन के खिंचे हुए कान बहन के ही हाथों में थमाते हुए मां ने बहन से मुर्गा बन कर कोने में खड़ा होने को कह दिया और साथ ही आदेश दिया कि वह साठ

● विद्याव्रत

तक की गिनती पांच बार करे और पूरे पांच मिनट तक इसे दोहराते रहने के बाद मां के पास आये, तब वह फैसला करेंगी कि वह वक्त कभी आयेगा या नहीं.

मां के आदेश का पालन करने के बाद चेहरे पर वही खामोश उद्दंडता ओढ़े बहन मां के सामने जा खड़ी हुई.

अब यह दूसरी चपत थी, जो बहन ने उपेक्षापूर्ण ढंग से मां के मुंह पर अपनी चुप्पी द्वारा थोपी थी.

तिलमिला कर मां ने बहन की उद्दंडता को जैसे कुचल ही डाला. सामने ही दीवार पर रैकेट टंगा था. मां ने उसे बहन पर खींच फेंका. खौफनाक धमाके से रैकेट दीवार से जा टकराया. बहन पर मां रैकेट का प्रयोग दोबारा करतीं, पर बरामदे के सामने से लोग आ-जा रहे थे, इसलिए मां तड़प कर रह गयीं. बोलीं—— लोगों की शर्म भी तुम्हें कहां है, लड़की! इतनी ढीठ हो कि उलटा लोगों को ही शर्मा दो तुम!

मां की बात बहन के कानों पर तब सिर्फ जूं बराबर ही रेंगी थी और वह थोड़ा-सा सरक कर दरवाजे की आड़ में हो गयी थी. मां ने उसे पास बुलाया, तो बस जरा-सा हिली. मां चिल्ला गयीं—— और पास!

बहन की सवालिया आंखें उधर देखने लगीं. जैसे पूछा हो और कितनी पास?

एक करारा हाथ मां ने तब बहन की जंघों पर आजमा कर बताया—— यह देखो! इतनी पास! हारी हुई मां ने तब बहन को जहां खींच कर छोड़ दिया, बहन भी वहीं टांगें ढीली छोड़े निश्चित खड़ी रही.

रैकेट फिर मां के हाथों में झूलने लगा——ढीली टांगें छोड़ने का मतलब तुम जानती हो?

बहन ने अवज्ञा से सिर हिला दिया, जैसे नहीं जानती और जानना चाहती भी नहीं.

——तुम्हारी यह ढिठाई मैं खत्म कर दूंगी! मां कड़ाई से बोलीं और बाबू को भी अपनी कड़ी नजरों का अहसास करा दिया.

इस तरह बात बढ़ गयी, तो बाबू उठ कर बहन के पास आये बोले—— माफी क्यों नहीं मांग लेतीं?

बहन की आंखें पहले बाबू पर उठीं, फिर उसी मशीनी क्रम से मां पर घूम गयीं—— माफ कर दें!

मां ने सवाल किया —— बताया तो नहीं तुमने, काहे की माफी मांगी है?

वैसी ही भुगबुग खड़ी रही बहन. फिर मां की कई हुंकारों के बाद मुंह से बोल फूटा—— माफी मांगी है, बस!

इस पर मां ने फिर बाबू को देखा और बाबू उठ आये—— ओ लड़की, होश में आओ. . . !

पर लड़की तो होश में हो तब तो! वह मां पर गड़ी हुई नजरें बाबू पर गाड़ बैठी.

——होश तो मैं उसे दिलाऊंगी और ख़्याल भी रखूंगी कि इसे होश की याद रहे कि कुछ है, जिसके लिए इसे माफी मांगने की जरूरत पड़ेगी.

पर मां की इन बातों का असर नहीं हुआ और मां ने उसे दूर ठेल दिया——जाओ! साथ ही रैकेट वाला हाथ भी कस कर अग्नि पर छोड़ दिया. रैकेट अग्नि की कनपटी से जा टकराया. कनपटी पर हाथ धरे-धरे अग्नि सामने से निकल कर दूसरे कमरे में चली गयी.

फिर प्रॉबलम साल्व करना बस का नहीं रहा. कमरे में जा कर देखा, अग्नि उसी तरह कान पर हाथ धरे खड़ी है. कान के पास से बहता लहू कानी उंगली पर जम गया है और मुझमें दहशत-सी भर रही है.

वैसे दहशत परसों भी हुई थी. . . . रेवा को झापड़ देने के बाद. वह झापड़ खाते ही तिलमिला गयी थी और आंसू आंखों में भरे हुए गाल सहलाती एकटक मुझे देखने लगी थी. रेवा को झापड़ खाना पड़ा था, मां की बराबरी करने पर. यह तो कहो, मैंने उस का गला ही घोट डाला. साली मेरी बहन के बारे में मुंह खोल बैठी थी—— जैसे आप की लड़की आप लोगों की सख्तियां न सह कर चली गयी है, वैसे बहू भी जा सकती है!

साली बड़ी आयी बहू कहीं की! खैर, आखिर चली ही तो गयी. ठीक है, जाये. मैं निवृत्त ही तो हुआ हूं. अब बोझ या डिप्रेशन तो नहीं है. हंस-गा सकूंगा. तब कहीं कुछ ऐसी चीज निकलेगी, जिसे पढ़ कर कोई कहेगा कि हां, कुछ बात तो बनी! और. . .

उसके रहते तो धौंस-पर-धौंस रहती थी. यह सूट पहनो, तो साथ वह शर्ट हो. यह पैंट पहनो, तो वह बुशर्ट हो! यह कमीज पहनो, तो वह टाई हो! और पूछो-जरूरत? तो कहेगी—— मैच और फैशन. कबाड़ा करती रही है. मेरी फीलिंग्ज का, दिमाग का. जिंदगी हंसने के लिए है, गाने के लिए है, पर उसने रोना ही ध्येय बना लिया है. सोचा होगा, रोने से डर कर ताल पर नाचने लगूंगा. उसके गीत गाने लगूंगा.

गीत की याद से उठा हूं और प्लेयर पर रेकार्ड लगा दिया है. रेकार्ड मंथर गति से घूमता ध्वनि पैदा कर रहा है——'**छोड़ो बेकार की बातों में कहीं बीत न जाये रैना. . .**' रेकार्ड बजने दे कर रसोई से काफी का थरमस उठा लाया हूं. मेरे लिए मां बना कर धर देती हैं. पीते समय पता नहीं क्यों मां की जगह रेवा की याद आ रही है. यह शायद रेकार्ड का असर है. उन शब्दों का——'**कुछ तो लोग कहेंगे लोगों का काम है क-ह-ना**'

रेकार्ड उठाने लगता हूं पर पाता हूं, मां आ कर खड़ी हैं. वह दोबारा उसी रेकार्ड को लगा कर जूठे बरतन उठा ले गयी हैं. रेकार्ड खत्म होने पर उसे बदल कर दूसरा धर देता हूं. पर याद में मां और रेवा की पसंद कौंध जाती है. उलटा कर के दूसरा पट धर दिया. शब्द उठ आये——'**यह क्या हुआ? कब हुआ? क्यों हुआ?**'

जूठे बरतन धो कर मां फिर दालान में चली गयीं. इधर पीठ दिख रही है मां की. उधेड़-पट वैसी ही जारी है. पता नहीं क्यों मां के मेहनती स्वभाव पर पहली बार एक दार्शनिक की तरह सोचने का मन हो आया है. याद आया, मां ने कभी कहा था——अरुण, तुम्हें ऐसी आदत बना लेनी चाहिए, जो कठिन दिनों में काम आये, जिससे तुम्हारी पहचान हो सके और तुम आत्म-तुष्टि पा जाओ.

मां से पूछना चाहता हूं, आत्मतुष्टि क्या खाली हाथों होती है? और मां को [illegible] चाहता हूं कि दस रुपये माहवार की एक महरी भी उन्हें लगा कर नहीं दे सकता !

—पर तुम सिगरेट पी सकते हो? किसी दोस्त ने कभी सवाल किया था. और मैंने कहा था— देयर आर सर्टेन थिंग्ज व्हिच यू कांट सब्लीमेंट. आज अपनी वही बात छिछली लग रही है. कोई संकल्प लेना चाहता हूं. तभी हाथ पोंछती हुई मां आ जाती हैं और एक रेकार्ड पर साउंड बाक्स धर कर रसोई में चली जाती हैं— **'चिनगारी जब भड़के. . .'** सेलुलाइड पर उतरे हुए शब्दों को सुई की नोंक चुन-चुन कर मुक्त करती जा रही है जो आ कर सीधे मेरे सीने पर जमते जा रहे हैं—**'जो बाग बहार उजाड़े, उसे कौन सजाये. . .'** मां को यह गीत अच्छा लगता है. रेवा भी इसे बहुत सुनती थी. मैं अपने बारे में नहीं जानता. पर सोचा हूं कि लोगों की पसंद अलग-अलग क्यों होती है और मेरी सारी आदतें इस सोचने न सोचने के बीच क्यों जुड़ी हुई हैं ? जैसे मैंने पेंटिंग शुरू की, छोड़ी, फिर शुरू की, नौकरी का भी वही हाल कि छोड़ी, फिर की, फिर छोड़ी और अब सिर्फ ट्यूशनों पर हूं. यही हाल मेरी शिक्षा का रहा, जो अभी तक अधबीच में लटकी हुई है. फिर उस मस्तूल को वहीं लटकता छोड़ कर मैं ग्लैमर की दुनिया की ओर बढ़ गया. मैंने लड़कियों से दोस्ती की, छोड़ी, की और तब एक जगह मंगनी का सहारा ले लिया. मंगनी की, छोड़ी, फिर की, फिर छोड़ी और आखिर एक मंगनी शादी की शक्ल अख्तियार कर गयी. उसके बाद पता नहीं क्या हुआ, कैसे यह पतझड़ आया कि बाग-बहार सब मझधार में डूबी नाव जैसा हिचकोले खाने लगा.

रेकार्ड की पंक्तियां अब मेरे दिमाग में भरसक एक सैलाब बहा लायी हैं, जिसे अपने ख्यालों से दूर ठेल रहा हूं. पर लगता है, हिचकोले खाने लगा हूं और पानी आंख, नाक, मुंह, कान, सब कुछ ढांपे दे रहा है. फिर भी, वे शब्द हैं जो मेरी चेतना पर ठोकर दे रहे हैं. मैं तन्मय-सा पड़ा हूं, जैसे प्रलय सहने का आदी होऊं और समवेत राग से भी एकात्मकता स्थापित कर ली हो मैंने और गीत के बोलों में जहां कहा है—**'आंधी जो नाव डुबोये, उसे कौन बचाये. . .'** वहां गीतकार का आशय नाव डुबाना वर्जित, बताने से है. और उस वर्जन की थ्योरी में गहराई तक जाते बीच में फिर दूसरे रेकार्ड के बोलों में धंस जाता हूं. सोचता हूं, दुनिया में कितने ख्याल, कितने मत, कितने आदर्श हैं? कोई किन-किन को पाले! और यह गायक जो अब कह रहा है—**'छोड़ो यह न सोचो. . .'** तो वह यह कहता प्रतीत हो रहा है, सोचो और खुद को काबू में रखो. बुरी आदतों से बचो, दोस्त! इनके पंजे बहुत पैने होते हैं और तुम उनसे छुटकारा नहीं पा सकते.

मां रेकार्ड से साउंड बाक्स हटा कर चली गयीं, तो अचानक सोचा, मां की भी क्या कुछ आकांक्षाएं थीं! शायद थीं, जो बाबूजी के हाथों पूरी नहीं हुईं और उन्होंने [illegible] बहन-भाई पर लगा कर हमें गढ़ना चाहा था. पर भीतर का सारा खूंखार बल लगा कर भी वह कल्पनानुकूल हमारा कोई ढांचा तैयार कर नहीं सकी थीं. अभी तो उस दिन रैकेट की चोट खा कर जब बहन दूसरे कमरे में चली गयी, तो मैं भी गहरी अवहेलना से भरा, बिना मां से आंख मिलाये ही तमतमाया चेहरा लिये अग्नि के पास चला गया था, और सीना फुला कर मैंने पूछा था— बता, कहां लगी है? बाद में दबे पैरों जब मां उसे देखने आयीं थीं, तो मैंने मां न देखें, ऐसी सतर्कता और फुरती से अग्नि का हाथ वापस वहीं कनपटी पर धर दिया था. बस, अपनी अवज्ञा मैंने इसी ढंग से जाहिर कर दी थी. मैं मां को जानने देना नहीं चाहता था कि उनकी करतूत क्या रंग लायी थी. मां जब पूछने लगीं कि वह दवा कहां रखी है, तब भी मैं हिला-डुला नहीं और गुस्से में फूला रहा. वास्तव में यह गुस्सा मुझे बहुत पहले से आ रहा था. किसी पर निकालना चाह रहा था. पर समझ में नहीं आ रहा था कि गुस्सा निकालूं किस पर. शायद अग्नि पर भी बेहद गुस्सा था मुझे कि ढीठ, कंबख्त मार खाये जा रही है पर पलट कर कहती नहीं कुछ? बुद्धू कहीं की! और अब मां को देखा, तो उन्हें ही घोंसना चाहा—क्या हुआ जो बेवकूफ है बहन ! है तो बच्ची ही! और अगर कोई मूर्ख हो, तो क्या उसे मार ही डालना चाहिए?

मां को तब मैंने कैलेस और हृदयहीन कहा था. मन में बहुत-बहुत कुड़कुड़ाया भी था— बड़ी आयी हैं मारने वाली! भला मुझे कोई इतनी बेदर्दी से पीट कर देखे! एक के बदले चार ठोंक कर अक्ल दुरुस्त कर दूं! ऊपर से कहूं— जा, दूर हो जा आंखों से! पर मैं बहन जैसा अड़ियल कभी न बनूं. बाप रे ! यह कोई अपमान जैसा अपमान है बड़े का कि वह तो तुम्हें झुकाना चाहता है, सबक सिखाना चाहता, पर सबक उल्टा उसे ही सीखना पड़ता है और वह भी एक ढीठ लड़की से !

* *

मां तेल गरम कर लायीं—बता, कहां लगी है चोट? मैंने और अग्नि ने तब भी अपना अबोलापन नहीं छोड़ा. मां तेल की कटोरी फर्श पर धर कर घबरायी-सी पास आ गयीं— दिखा भी! उनकी आवाज कांप गयी. शब्द लड़खड़ा गये. मां जान गयी हैं, लड़की का कान गंभीर रूप से छलनी हो गया है और तात्कालिक उपचार से ही अब कुछ हो सकता है. वह गयीं और दवा भी ढूंढ़ लायीं. बहन को बिस्तर पर लिटा दिया गया. उसका कान घुटने पर धर कर उसमें गरम तेल डाला गया. फिर सेंक दे कर कान पर पट्टी लपेट दी गयी. गरम-गरम दूध पीने को दे कर उसे सुला दिये जाने का यत्न होने लगा . पर इन सारी क्रियाओं के दौरान बहन की आंखें निरंतर चूती ही रहीं. जुबान चुप रही. मां जैसे-जैसे बहन के तपे हुए गाल सहलातीं, बहन के होठ उतने ही वेग से कंपकंपाते और फड़फड़ाने लगते.

और मैं खुश और तुष्ट था कि ऐसी मां की यही उपयुक्त सजा है. ठीक उसी क्षण मां के होठ भी फड़फड़ाये थे— इतना झेला, पर माफी नहीं चाही! पता नहीं, सहसा इन शब्दों की कैसी प्रतिक्रिया बहन पर हुई कि वह होठ खोल कर माफी मांग बैठी —सॉरी अम्मी!

बहन सो गयी, तो मां बहन के उन शब्दों पर टीका करती बोलीं— देख, अरुण, आज इसने मुझे तो कह दिया कि आगे से खुद ही लिख लेना, पर कल किसी और को नहीं कह सकती . क्या नौकरी में कहीं ऐसा कह सकेगी?

मैं जला-भुना बैठा था. तत्काल कहा—नौकरी की जरूरत ही क्यों पड़ेगी?

मां हैरानी में मुझे घूरने लगीं—जरूरत क्या दुनिया में ढूंढ़नी पड़ती है?

—पता नहीं. पर उसे कमाने नहीं जाना होगा. जरूरत होगी, तो कोई और जायेगा, जो जिम्मेदार होगा.

—जिम्मेदार? हां, ठीक है. पर पढ़ना-पढ़ाना, सीना-पिरोना. . . ?

—ऐसी सेवा आजकल कोई नहीं मांगता. जिसे रोटी तैयार मिलेगी, वह और कुछ नहीं चाहेगा. मैंने मां की बात काट दी.

प्रतिक्रिया स्वरूप वह बोलीं — फिर यह रोटी बीच में कैसे आ गयी?

मां की रुसवाई पर मैं और झल्ला आया. कहा—क्योंकि सिखाई गयी थी. जरूरत थी. मरना कोई नहीं चाहता.

मां भी आश्वस्त हो आयीं— तब जाने दो, यही ठीक है.

मां का स्वर ठंडा पड़ जाने पर मैंने कहा—और जो सीखने को कुछ रह भी गया, तो जरूरत के वक्त कुदरत सिखा ही देगी. अगर बहन जिंदा रही तो!

संतोष और संजीदगी मां के चेहरे पर उतर आयी. बोलीं— यह तो अच्छी बात है कि तुम बहन के प्रति फर्ज निबाहने के बानी हो गये हो. भले-बुरे के प्रति भी चौकस हो. प्रगतिशीलता के ही चिह्न हैं ये कि आगे बढ़ो और बोझ उठाओ. यही सीखा होता, तो हमें तो सिखाना ही न पड़ता. मां आंखें पोंछने लगीं.

पता नहीं क्यों सहसा मां पर मुझे करुणा हो आयी. कहा— आपसे सीखे कोई क्या? हर वक्त आप अपने कागज-पत्र के फैलाव में ही तो लगी रहती हैं.

मां ने जवाब दिया— मैं तो बिना पूछे ही बताने को तैयार रहती हूं, बच्चे! और कहती ही रहती हूं कि सुधरो, मेहनत का महत्व समझो.

उन दिनों की मां की बातों का प्रभाव आज भी मुझ पर है. पर उन पर चलना आसान नहीं. संसार में अनगिनत रंग हैं, मेला है और संगीत भी.

इसीलिए परसों , नहीं नरसों, या उससे पहले दिन, जिस रोज रेवा झगड़ कर गयी थी, मैंने एक कॉफी सेट खरीद लिया था. पैक करा कर घर लाना भर था, अतः रेवा को भी साथ ले लिया. जब कीमत चुकता कर रहा था, तब पैक होते सेट को देख कर रेवा मेरे कान में फुसफुसायी—क्या जरूरत है इसकी? मना कर दो. अब भी मेहनत की कमाई को ठीकरे में क्यों डालते हो ?

जी चाहा, सरे आम रेवा को उसकी फूहड़ प्रवृत्ति के लिए मलामत करूं कि कम-से-कम दूसरों के सामने तो उजड्ड किस्म की बातें न किया करे! और देखो कि कूड़ मग्ज कितनी है कि ऐसे ओरियंटल पीस को मिट्टी का ठीकरा बता रही है! इतने पर भी मैंने रेवा का लिहाज किया और सिर्फ घर जा कर ही लताड़ा कि आइंदा चार जनों के बीच बेहूदापन न बिखेरा करे.

रेवा चली गयी, तो मैं बाद में भी तड़फड़ाता रहा. साली कैसा छिछला आरोप धर गयी है ! कैसा भरपूर उलाहना दे गयी है ! एक बार ऐसा उलाहना मां को बातों-बातों में मैंने दिया था, तो मां अपने हिस्से का खाना भी मेरी थाली में धर गयी थीं. वे दो चपातियां तब किसी तरह मुझसे खायी नहीं गयी थीं. तो भी मां ने पछतावा ही जाहिर किया था—खा लो, मैं अभी और बना लूंगी. और मेरे उदासीनताभरे चेहरे पर या होंठों पर शायद ऐसा कुछ फूट आया था जिसका अर्थ था कि जब किसी को पता चले कि घर में कुछ खाने को नहीं, तो उसे भूख ही नहीं लगती.

मुझे याद है, मेरी इस बात ने मां को बहुत-बहुत रुलाया था और अपने कथन के जस्टिफिकेशन के दौरान मैंने कहा था— इस घर में ढंग से कभी कुछ पका भी है ! मां के उसी दिल दुखाने का शायद बदला चुकाया है आज रेवा ने. पर मां ने कभी आज तक रेवा की तरह न कुछ कहा, न किया, बल्कि जब ऐसी स्थिति आयी, पता चला कि आज मां का उपवास है, आज वह अस्वस्थ हैं, जो रेवा यह कह गयी कि जब खाने वाले ही नहीं रहेंगे, तो भूख कौन शांत करेगा? साली फूहड ! मतलबी !

कल उसी मतलबी के यहां, मैं गया था. जिन स्थितियों में मैंने बहन को अपने जाने की इत्तिला दी थी, उन्हें समझने या मन ही मन उनका पर्यवेक्षण करने की कोशिश भी की थी और चाहा था कि असल बात पर आ कर अग्नि से कुछ मदद मांग लूं. तभी अग्नि ने कहा—अरुण, तुम और कुछ करो या न करो, पर मां के लिए एक कहारिन तो जरूर रख लो.

बात के अनुमोदनार्थ तुरंत सिर हिला कर स्वीकृति दी— बस, इसी महीने लो! वैसे मैं ढूंढ़ भी रहा हूं और कुछ पशोपेश के बाद बात का अगला हिस्सा भी पूरा कर दिया—ऐंड बाई द टाइम, मेरी ये तंगी भी दूर हो जायेगी.

तंगीवाली बात पर अग्नि चौंक उठी और मैं झेंप-सा गया. पता नहीं क्यों ऐसा है कि जब बहन चौंक जाती है, तो मैं भी सतर्कता बरतने लगता हूं. शायद इसलिए कि अब हम छोटे नहीं रहे. पर ऐसा कुछ है, जो चौंकाता है और मैं संभल जाता हूं. ऐसी दुविधा का विस्तार वैसे कभी बहन की ओर से आया नहीं. स्वेच्छा से बहन ने कभी मेरी कोई मदद नहीं की. वैसे भी मैंने कभी कुछ मांगा हो और बहन को उगलना पड़ा हो, तो उसे परायेनाम या बेमन का ही

कहा जा सकता है. प्रायः वह मुझसे उलझी ही ज्यादा है. और नीति, ज्ञान सिखाने में भी कोई कसर कभी छोड़ी नहीं—जैसे देखो, अरुण, तुम बचत करना सीखो.

—हमेशा सोचा है. मैं अटपटा-सा महसूस करता कहता हूं पर पता नहीं क्यों बात रह जाती है.

मेरा सिर खुजलाना देख कर वह और उकेरने लगती है— बात रह जाती है, या कभी किसी की हथेली पर कुछ धरने का स्वाद चखा ही नहीं, इसीलिए जायका आजमाने की बात भी सोच ही नहीं सकते?

बात का सिरा मैं भी दूसरे छोर पर ले जाता हूं—कुछ भी समझो; पर अब मैंने सोचा जरूर है. फिर भी मनगढ़ंत-से इस वक्तव्य के बाद पता नहीं क्यों मैं खुद को अग्नि के सामने काफी बौना-सा महसूस करने लगता हूं, हालांकि उम्र में अग्नि मेरे बराबर थी भी नहीं, पर उसकी बातें मुझसे बड़ी हैं.

वैसे इस तथ्य को बहन भी जानती जरूर है और जान कर ही कभी-कभी मुझसे हलकी-फुलकी बातें भी करती है. पर उसकी हलकी-फुलकी बातें भी मैं सहज ही गले के नीचे नहीं उतार पाता. तब सोचता हूं कि अग्नि मुझे ज्यादा क्यों नहीं दबाती? क्या इसलिए कि कहीं यह न सोच बैठूं कि दूसरों को पिलाती रहती है नसीहत का मिक्सचर.

वैसे हम बहन-भाई हलकी-फुलकी बातों के दौरान भी कोई-न-कोई गुत्थी सुलझा ही रहे होते हैं. बहन की राह-तलाश की इन जुस्तजुओं पर अधिकतर मुझे हंसी ही आयी है. इसलिए भी कि बहन नहीं जानती कि वह किस कदर मां के नक्शेकदम पर चल निकली है. वह क्यों चाहती है कि मैं उसके ढंग पर सोचूं? क्या वह आज भूल गयी है कि जब सब लोग उसकी मनमानी के खिलाफ थे, तो अकेले मैंने ही उसकी हां-में-हां मिलायी थी और रजनीश की जिंदगी में प्रवेश कराने के सिलसिले में मैं इसके कितना काम आया था. किस-किस की रुसवाई का घर और बाहर शिकार नहीं होना पड़ा था मुझे? वही सोच पाया था, तब तक वह मेरे भीतर-बाहर की पूरी परिक्रमा करके मुझ पर सवार-सी हो कर हंसने लगी थी—हां, तो भाये, सुनाओ और कोई नयी-ताजा खबर?

—अब क्या तो नयी और क्या ताजा!

—सुना है, रेवा ने तुम्हें एम. एस-सी पूरा करने का मशविरा दिया है?

मैं नकली स्वांग भरता-सा गंभीर हो जाता हूं—पर हो कैसे सकता है यह जब तक ट्यूशंज से ही पीछा नहीं छूटता!

—यार, ट्यूशंज को क्यों कोसते हो? यह तो बढ़िया न्यूज है कि ट्यूशंज के साथ-साथ पूरा हो रहा है लक्ष्य भी!

—पर हो कैसे ? मैं फिर आधे खुले होठों पर मुसकान बिछा लेता हूं— या तो खुद पढ़ूं या दूसरों को पढ़ाऊं. पर ये दो-दो सेहरे कैसे बांध लूं?

बहन लापरवाही जताती कहती है— छोड़ो यार, बांधने को दो-दो क्या, चार-चार सेहरे भी तुमने बांधे ही हैं. और ट्यूशन छोड़ने वाली बात से तो खैर खुशी हमें होनी नहीं है. वह खुशी तो उन पैरेंट्स को ही होगी कि जिन्हें हर महीने गांठ से निकाल कर तुम्हें देना पड़ता है. हमारी खुशी तो ट्यूशन बने रहने में ही है.

—वह तो है ही ! कहता हुआ मैं सोफे पर बैठा बहन से थोड़ा पीछे हट गया हूं. झटका खा कर हलके स्प्रिंग जैसा कुछ इंच ऊपर तक उछल गया हूं. . . कुछ ऐसे कि अग्नि का हाथ मेरे हाथ में आ गया है. पर अग्नि मेरी मुट्ठी से अपना हाथ छुड़ाती हुई अपनी बात को आसान और साकार रूप दे चुकी है. . . उसकी हथेली फिर मेरे आगे खुल गयी है. इस बार कुछ लंबी हो कर हथेली ऐन आंखों की पलकों को छू रही है— लाओ, फिर कुछ देते हो या नहीं ? कहती अग्नि हंसती है और फिर खुद ही मुट्ठी सिकोड़ भी लेती है— यार, हम तो राखी पर भी देखते ही रहे.

मैं पानी-पानी हो जाता हूं. पता नहीं, क्या है जो अंदर ही अंदर अचानक चूर-चूर हो गया है. मेरे आधे होठ फिर खुल गये हैं. झेंप मिटाने के लिए शायद हंसा भी हूं— बताओ, क्या दूं? फिर हंसता हूं. फिर कहता हूं— कहो, क्या दूं? बताओ, जब होता है, खर्च करता नहीं क्या? पर झेंप जैसे यह कहने पर भी मिटी नहीं. बहन भी झेंप का वैसा नंगा रूप देख कर चुप रह गयी है और एक बार और मुझसे बड़ी हो गयी है. . . शायद दर्द से भर कर, जो न दे सकने वाले जुमले से चू पड़ा है . और एक जज्बा भी उस में घायल पड़ा दिख गया है. फिर कुतरी हुई उसी जगह को दर्द जैसे चाट भी रहा है. . .

फिर, कभी-कभार जो दिया भी है, तो वैसा देना खुद को भी बेतुका ही लगा है. कारण, बहुधा मैंने चाहा है, बहन ही मुझे कुछ दे. और जब-जब बहन के रवैये पर सोचा है, इसी नतीजे पर पहुंचा हूं कि सच, बहन बड़ी ही बेदर्द निकली, हालांकि मैं इस नतीजे की तह में कभी नहीं गया कि वह इतनी बेदर्द हुई कैसे? पर मेरे दिल में दर्द उठा है. कई बार तो चाहा है, यही बात मैं बहन के मुंह पर कहूं. . . . खास तौर पर तब, जब मैं दस-बीस मांगूं और वह इनकार कर दे.

पर मैं कई कारणों से दरगुजर कर जाता हूं जिनमें एक कारण मेरी तंगदस्ती भी है. शायद यही सबसे बड़ा और प्रमुख कारण है, क्योंकि इतनी बातों के बावजूद कल मैं दिन भर वहां ठहरा रहा था और मौके की ताक में था कि कब उससे एक सौ रुपया मांगा जा सके और रेवा को पूना जाने से रोका जा सके. पर वही हुआ कि सवाल किया और वह पशोपेश में पड़ गयी. पसोपेश भी कहां, वह तो सफाचट जवाब ही था, साथ ही नसीहत का एक एक्स्ट्रा डोज अलग. जरा इधर-उधर करते हुए शुरू किया था उसने— सोचो, अरुण, कि चाहे जितना तुम मांग लो और मैं दे भी दूं, पर असलियत और सच्चाई तो यही है न कि बनना अपने लिए तुम्हें खुद ही है.

और मैं तत्काल फट पड़ा— क्या इरेलेवेंट बातें हैं! अग्नि, तुम्हें देना हो तो दो नहीं दे सकतीं, तो इनकार

कर दो. और बस छुट्टी! कहते-कहते मेरा दम फूल आया था. झुंझलाहट का बवाल एक जलजला बन कर मुझमें फेनिल जैसी लहरें पैदा कर रहा था. बहन के सारे थोथे आदर्शों को लहरों की लपेट में ले कर मैं पुर्जा-पुर्जा करना चाह रहा था. पर पता नहीं क्यों मेरे सारे वकार या जलजले का कुछ भी असर बहन पर नहीं हुआ था और वह उतनी ही सहजता से, उतनी ही तन्मयता से मुझे फुसलाने का प्रयास कर रही थी—— देखो, अरुण, रात-दिन एक कर-करके रजनीश ये पैसा कमाता है. बताओ, उसके ऐसे गाढ़े पसीने की कमाई मैं क्या यों ही बहा दूं?

बहुत बहाया है न जैसे? मेरे अंतर में उबाल फिर उठने लगता है. अन्नि के कथन को ले कर उसके लिए गहरी अवहेलना भी उपज आयी है. चाहता हूं, यह बात उसके मुंह पर दे मारूं. कहूं, अभी कोई आ जाये बाजी खेलने तुमसे, तो देखो कैसे सौ-सौ की गड्डियां तुम्हारे हाथों में नाचने लगती हैं. तब तो गाढ़ी कमाई बहती नहीं न? पर एक सौ से किसी दूसरे का घर बसता है, तो जरूर गाढ़ी कमाई बरबाद होती है. घर बरबाद होता है.

घर से जब भी कुछ मिसिंग पाया है उसने, मुझ पर शक किया है. पीठ पीछे तो नाम भी धरा है मेरा. मुंह पर कहा भी है—देखो, अरुण, मेरी कोई चीज तुम मांग कर लो, तो मुझे खुशी होगी, पर इस तरह. . .

मैं उसकी ऐसी बात पूरी सुनने के पहले ही छि: छि: से भर उठता हूं. कितना छिछलापन है! हद दर्जे की बेहयाई! कितने ही विशेषण मैं मन-ही-मन अन्नि को दे डालता हूं—— तंगदिल ! झूठी! फरेबी! फ्रॉड ! मैं खुद को ऊंचाई पर रख देखने लगता हूं कि विचारों की दृढ़ता में मैं उससे कितना ऊपर हूं और और अधिक ऊपर उठ कर दिखा सकता हूं. ऐसा न होता तो मैं रजनीश का दिल न जीत सकता. मैं भूतकाल में रजनीश के प्रति किये अपने स्वस्थ प्रयासों का लेखा-जोखा करने में डूब जाता हूं. टटोलने पर इतना कुछ मेरी मुट्ठी में आ जाता है कि चाहूं तो विश्वास से अब भी जता सकता हूं कि मैं उनका कितना बड़ा खैरख्वाह हूं.

पर यह बहन कितनी एहसान-फरामोश है! मुझे सिखाती है—— अरुण, जिसने मेरे लिए इतना किया है, उसके लिए मुझे भी तो कुछ करना है!

इसी बहन के लिए एक दिन मैंने मां से कहा था—— वह करेगी क्यों, जब कि करना नहीं पड़ेगा?

मां अपनी बात पर डट गयी थीं—— करेगी कैसे नहीं ?

—जब घर वाले होंगे, तो करना ही पड़ेगा!

——घर वाले वैसे होंगे ही नहीं, जो जबरन करवायें!

—तब तो और भी करना धर्म है!

——धर्म क्या है, क्या नहीं, यह भी तो सोचने की चीज है.

तभी धीरे से अन्नि ने मेरे आगे चाय की प्याली धर दी. शायद रजनीश को चाय दे कर आयी थी. धीरे-से मेरे गले की टाई को ढीला कर के फुसफुसायी—— इस टाई को इस वक्त तो निकाल ही लो तुम, घर जा कर चाहे पहन लेना.

मैं चकित-सा अन्नि का मुंह ताकता बैठा रहा. तब उसी ने कहा—— तुमने उससे पूछ लिया होता, तो उसे कितनी खुशी होती!

——उससे नहीं, पर तुमसे तो पूछ कर ली थी. मैं फिर खौल उठता हूं.

वह फिर कहती है—— मान लो, अचानक कभी इसी टाई की रजनीश को जरूरत पड़ जाये और वह इसे ढूंढ़े, पर यह नहीं मिले तो ?

——क्या बकवास है ! टाई गले से अलग कर के उपेक्षा से दूर फेंक देता हूं—— सीधे कहो टाई चाहिए.

मेरी फेंकी हुई उस टाई को और फिर मुझे देखती हुई बहन खड़ी रही. मुझे घूमते देख कर वह मुड़ी—अरुण!

मैंने अन्नि की ओर नहीं देखा. पर बिना देखे भी यह महसूस किया कि वह मुझे असलियत की ओर खींच रही थी. एक सीधी लीक पर. फिर भी पता नहीं क्यों अन्नि की बात मुझे सीधी नहीं लगती. अन्नि को भी शायद पता नहीं चलता होगा कि मुझ पर उन दिनों का कितना बोझ अब भी है जिसे कभी मैंने अन्नि का पक्ष ले कर पाला था. बाद में पता नहीं उसे किस-किस पर उतारना चाहा था. पर वह उतरा नहीं था. उतरा होता, तो उसका प्रभाव क्यों अब भी मेरे दिल-दिमाग पर होता?

मैं सीढ़ियां उतर कर चला आया था.

और अब चिड़ियों का शोर, जो पूरी तरह दिमाग को ब्लाक कर चुका है. दिमाग खाली ही नहीं हो रहा, हालांकि चिड़ियां अब अपने घोसलों में खामोश है. सोच में डूबा मैं अकेला हूं. पर मैं अकेला नहीं था. सामने खड़ी मां कह रही थीं—— सुनो, आज जरा एक बार रेवा के यहां चले जाना. . .

मुझे पहली बार लगा कि बोझिल मेरा ही मन नहीं है, दूसरों का भी है. मेरा बोझ तो सिर्फ दूसरों के बोझ का प्रतीक मात्र है, क्योंकि मैंने किसी का बोझ कभी हटाया ही नहीं. फिर भी, एक दिन बिना कुछ सोचे-जाने बहन का बोझ सिर लेने की बात मां से कह दी थी मैंने. पर आज?

मां ने कुछ भी नहीं कहा, पर रेवा का बोझ लेना स्वीकार कर लिया है. वह शायद बोझ का निर्वाह करना जानती है.

——तुमने सुना न? मां दोबारा ताकीद करती दालान में चली गयी हैं. धूप का रुख पलट गया है. ऊन की गुंजलकों को सहेजती मां उधेड़-बुनपट को पिटारी में बंद कर रही हैं. इसके पहले कि एक स्वस्थ सूत्र मेरी कल्पना का भ्रमण करके दूर निकल जाये, मैं उसे कल्पना से खींच कर कागज पर उतारने लगा हूं. □□□

सी ३/३२५ लोदी रोड, नयी दिल्ली-३

रोमानिया और वेस्टइंडीज की कथा-रचनाओं का विशिष्ट खंड तथा अन्य कहानियां

साथ ही कृष्ण बलदेव वैद के शीघ्र प्रकाश्य नये उपन्यास 'दर्द ला दवा' का एक अंश

'सारिका' की कहानियों के माध्यम से आप देश-विदेश की घटनाओं, परंपराओं, मान्यताओं, जीवन-मूल्यों और सामाजिक तथा मानसिक परिवेशों का जायजा लेते रहे हैं. इस बार अक्तूबर १९७५ अंक में 'सारिका' रोमानिया और वेस्टइंडीज की कथा-रचनाओं का एक विशिष्ट खंड प्रस्तुत कर रही है. साथ ही काफी अरसे के बाद यशपाल की 'सारिका' के ही लिए विशेष रूप से लिखी गयी एक कहानी तथा अन्य कहानियां.

अन्य लेखक—
प्रेमसिंह नेगी, कृष्ण प्रसाद मिश्र, रणजीतकुमार साहा, ज्योतिष जोशी आदि.

गर्दिश के दिन — **राबिन शॉ पुष्प**
और अन्य स्तंभ — कबिरा खड़ा बजार में — **हरिशंकर परसाई.**
लघुकथाएं, कृतियां, विविधा आदि.

सारिका
अक्तूबर १९७५

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में २ अंक मुफ्त। यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में ५ अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है और इस तरह आप तीन वर्षों का शुल्क एक साथ भर कर ९ अंक मुफ्त में प्राप्त कर सकते हैं.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:
एक वर्ष — १० रुपये
दो वर्ष — १९ रुपये
तीन वर्ष — २७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष—२२ रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक / ड्राफ्ट / मनी-आर्डर के साथ आज ही भेज़ दें—

सर्कुलेशन मैनेजर,
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४०० ००१

कृपया मुझे / हमें निम्न पते पर एक वर्ष / दो वर्षों / तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेज़ने की व्यवस्था करें. १० रुपये / १९ रुपये / २७ रुपये चेक / ड्राफ्ट / मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ....
पता ....
....
....
हस्ताक्षर ....

निर्बंध

• दीप्ति खंडेलवाल

डिसकोथिक के स्वप्निल माहौल में जब जिस्म जिस्म से लिपट जाते हैं, तो अनीता को लगता है, वह निर्बंध है— उन्मुक्त, जैसे पहाड़ों से फूटती नदी की जलधारा. अनीता की तरुण देह में भी तो उसी उन्मुक्त, निर्बंध जलधारा का आवेग है, जो चट्टानों को काट कर बह निकलती है, जो पहाड़ों में से फूट पड़ती है, जो अपनी राह आप बनाती है या जो चलती जाती है तो राहें अपने आप बन जाती हैं. क्या इस जलधारा को कोई बंदिनी बना सकता है? उन्मुक्तता तो इसका स्वयंसिद्ध अधिकार है. क्यों बंधे यह धारा? सड़ने के लिए, या सूख जाने के लिए ?. . . निर्बंध धारा के उन्मुक्त आवेग से झूमती अनीता नाचने लगती है. अंगों की थिरकन के साथ उसका मन झूमता है, मन के साथ प्राण. इस देह, मन और प्राण को बेहोशी की एक लय में गूंथ देने के लिए वह पीती है, नाचती है, पीती है. . . होश खो देती है. . . और होश आने पर स्वयं को सोचता हुआ पाती है. . . क्या है यह होश खो देना, यह होश खो देना क्या है?

होश. . .! घुप अंधेरे में जुगनू से बिखर जाते हैं. अनीता इन जुगनुओं के पीछे दौड़ने लगती है. . . जुगनू चमकते हैं, बुझ जाते हैं. . . अनीता की पकड़ से छूट-छूट जाते हैं. . . अंधेरे में इन जुगनुओं को छोड़ कर और कुछ दिखाई भी तो नहीं देता. . . ! कैसा है यह अंधेरा. . . न चांद, न सूरज. . . सिर्फ जुगनू. . . जुगनू! अनीता पलकें झपकाती है. आंखें खोलती बंद करती है, सिर को झटक देती है. . . ये जुगनू हैं, या केवल जुगनुओं के-से वे अहसास, जो सोते-जागते उसके चारों ओर चमकते - बुझते होते हैं और कहां है अंधेरा? धत्! अंधेरा थोड़े ही है, यह तो केवल डिसकोथिक का स्वप्निल माहौल है, जहां अंधेरों में रोशनी की तलाश होती है. . . तलाश रोशनी की. . . ! लेकिन क्या है यह रोशनी ? घुप अंधेरे में फिर जुगनू चमकने -बुझने लगते हैं.

अपनी सुंदर, स्वस्थ, तरुण देह को जीन्स और स्लीवलेस टॉप में कस कर अनीता हाई हील सैंडिल के स्ट्रेप कसने झुकती है, फिर तन कर खड़ी हो जाती है परफेक्ट! ड्रेसिंग टेबल का दर्पण उससे कहता है. स्लीवलेस में उन्मुक्त बांहें, लो-कट में उन्मुक्त यौवन, हाई हील पर एक नाजुक अंदाज में सधे तरुण देह के सारे कोण. . . परफेक्ट ! क्यों छिपाये अनीता इन मोहक उभारों को? क्यों रोके इन बंकिम कटाक्षों को? क्यों दबाये उस मादक मुसकान को ? रूप. . . यौवन. . . प्रकृति की देन है. एक खूबसूरत जिस्म अल्लामियां की कारीगरी का एक खूबसूरत नमूना होता है. इस देन, इस नमूने को सही-गलत, पाप-पुण्य से जोड़ना महज बेवकूफी है. अब आप ही बताइए, पेट भर खाना, नींद भर सोना, इनमें सही-गलत या पाप-पुण्य कहां आता है? फिर मन भर कर जीने में ही क्या बुराई है— केवल इस देह की हो कर जीने में, जो आज है, कल नहीं. आई कीप नो इनहिबिशन्स. . . ; अनीता 'परफैक्ट' कहते दर्पण को चूम लेती है. अपने प्रतिबिंब को अनीता ने बार-बार चूमा है. . . कुछ कहना चाहते प्रतिबिंब को अनीता ने चुंबनों से खामोश कर दिया है. कभी-कभी यह प्रतिबिंब विद्रोह पर उतर आता है. . . कुछ कहने के लिए इस प्रतिबिंब के ओठ फड़कने लगते हैं. . .वे क्षण अनीता के लिए परेशानी के होते हैं. . .लेकिन अनीता कमजोर नहीं है. . .एक. . . दो. . .तीन. . . वह प्रतिबिंब के इतने चुंबन लेती है कि प्रतिबिंब को खामोश होना ही पड़ता है. . . येस, रिमेंबर! आई कीप नो इनहिबिशन्स! अनीता प्रतिबिंब से जीत जाती है. . . और दर्पण में केवल उसके कोण और उभार प्रतिबिंबित होते रह जाते हैं. क्या इन कोणों और उभारों की दुनिया में जिया नहीं जा सकता. . . ? क्यों नहीं जिया जा सकता? जी तो रही है अनीता. जीने की एक मिसाल यह भी तो हो सकती है !

अनबॉर्न टुमारो ऐंड डेड येस्टरडे व्हाई फ्रेट एबाउट देम इफ टुडे बी स्वीट. . . बीत गये कल और आनेवाले कल की चिंता क्यों, यदि आज मधुर है. . . अनीता सिर्फ आज में जीती है.

आज. . . अक्तूबर के एक रविवार का एक सुहाना सबेरा अनीता को जगाता है. अनीता आंखें खोलती है. . . रिस्टवाच देखती है. . . नौ बजे हैं. सिर्फ नौ? वह ग्यारह तक भी सो सकती है. . . आज का प्रोग्राम तो लंच के बाद शुरू होगा. लेकिन आज जाने क्यों और सोने को जी नहीं चाहता. अनीता बेड पर उठ कर बैठ जाती है. अंगड़ाई लेती है. रेशमी नाइटी में लिपटे अपने खूबसूरत जिस्म को एक भरपूर नजर से देखती है. . . अनीता क्या है? एक सुंदर चेहरा, एक खूबसूरत जिस्म. इस सुंदर चेहरे, इस खूबसूरत जिस्म में जी लेना ही तो जिंदगी है अनीता के लिए! जिंदगी का कोई और अर्थ अनीता की समझ में नहीं आता, वह समझना भी नहीं चाहती. हेंग ओवर-सा है. . . रात कुछ ज्यादा पी ली थी न. . . माथा भारी है. . . कनपटियों में दर्द है. . . फ्रेश नहीं लग रहा. . . ठीक हो जायेगा. . . सिगरेट और कॉफी से बिल्कुल ठीक हो जायेगी अनीता.

—आया. . . काफी लाओ, ब्लैक काफी. . . नो मिल्क, नो शुगर. अनीता आवाज देती है.

——लाई, मिस साब! आया की आवाज आती है.

आजकल अनीता डायटिंग कर रही है. पिछले महीने अनीता के शरीर का वजन तीन पौंड बढ़ गया, तो मेंटल टार्चर हो गया है उसे, यह तराशा हुआ बदन तराशा हुआ ही रहना चाहिए. अनीता तो और वजन

ठीक रखने के लिए खाना छोड़ देती है. यह नानी क्यों रोज ही एकादशी करती रहती हैं, यानी कि उपवास! नानी से पूछो, तो पलकें झपका कर कहेंगी— परलोक सुधारना है, बेटी! परलोक! माई फुट! सामने खड़ी जिंदगी में इसलिए रोओ कि मृत्यु के बाद हंस सको. . . हाउ फुलिश ! अनीता को अधिकतर नानी एक फुलिश के अतिरिक्त कुछ नहीं लगतीं.

लाइटर से सिगरेट जलाती अनीता खिड़की पर खड़ी हो जाती है. बाहर धूप बिखरी है. . .गुनगुनी रेशमी धूप. . . यह गुनगुनी, रेशमी धूप जैसे जिंदगी का अहसास है. क्या होती है जिंदगी? एक मधुर ऊष्मा ही न! अनबॉर्न टुमारो एंड डेड येस्टरडे व्हाई फ्रेट एबाउट दैम इफ टुडे बी स्वीट. . . अनीता का जीवन-दर्शन बिल्कुल साफ है— हथेलियों में भरे पानी जैसा, जिसके आर-पार देखा जा सकता है. . . जिसे जब चाहा गिराया जा सकता है. . . जब चाहा मरा जा सकता है. ताजा हवा का एक झोंका आता है. अनीता के मुख को वह हवा का झोंका जैसे हथेलियों में भर कर चूम जाता है. अनीता आंखें मूंद लेती है. उसका जी चाहता है, सिगरेट फेंक दे और इस हवा के झोंके से लिपट जाये. लेकिन वह सिगरेट नहीं फेंकती. . . गुनगुनी धूप और हवा के ये झोंके अपनी जगह हैं, सिगरेट अपनी जगह.

आया कॉफी लाती है. गुड मार्निंग, मिस साब! आया दांत निकाल कर मुसकराती है. . . एक नकली मुसकान. ऐसे गुड मार्निंग कहना अनीता ने ही सिखाया है उसे. अनीता उसे आया कह कर बुलाती है, ग्रेनी तो उसे बुलाती है— 'अरे रमेसुरी ऽ ऽ ! धत्तेरी की! 'रमेसुरी' कह कर बुलाओ, तो सारी लिपस्टिक ही बिगड़ आये. 'आया' कितना सोफिस्टिकेटेड लगता है! ममी भी तो 'आया' कहती हैं. ग्रेनी. . . ममी. . . अनीता. . .

अनीता कॉफी पी रही है. नानी आ कर दरवाजे पर खड़ी हो जाती हैं.—उठ गयी री अनीता, अभी तो सिर्फ नौ ही बजे हैं. नानी के व्यंग में अनीता के लिए कोई धार नहीं है, अनीता को परवाह ही नहीं है.

—हाय! गुडमार्निंग, ग्रेनी! कल सोऊंगी देर तक, आज तुम्हारी खातिर जल्दी उठ गयी. अनीता हंसती है— चलो, ग्रेनी, आज धूप में बैठ कर तुमसे कुछ गप मारी जाये. आज मुझे कुछ फुरसत है. अनीता को आज फेस-पैक लगाना है, नाखून ठीक करने हैं. पूरा एक घंटा लगेगा इसमें. यह एक घंटा नानी के ही साथ सही.

सफेद साड़ी में नानी और गुलाबी नॉयलान की नाइटी में अनीता बेंत की कुर्सियों पर लॉन में जा बैठती हैं. अनीता के फेस-पैक के लेप में से सिर्फ अनीता की आंखें चमकती हैं, बाकी सारा चेहरा उस लेप से ढंक गया है. खासा कष्टसाध्य होता है यह सब. नानी अक्सर कहती हैं— ये तू अपने को ले कर इतनी परेशान क्यों रहती है री? वैसे ही इतनी सुंदर है, और हो के क्या करेगी? अब नानी क्या समझेंगी, ब्यूटी के

• तैयब बादशाह

मामले में अनीता किसीसे हार नहीं सकती. 'द बेस्ट लुकिंग गर्ल' का खिताब उसे ही मिलना चाहिए, मिलते रहना चाहिए.

अनीता नाखून तराश रही है— हां; तो ग्रेनी, सुनाओ कोई किस्सा अपने बैलगाड़ी के जमाने वाला. . . अनीता को जोर से हंसी आ जाती है.

—कितनी बार तुझसे कहा कि मुझे नानी कहा कर. . .ये ग्रेनी -वेनी मुझे अच्छा नहीं लगता! नानी अपनी कई बार की कही आपत्ति को फिर दुहराती हैं.

—अच्छा नानीजी! सुनाइए कोई कहानी अपनी और नानाजी की! अनीता और हंसती है.

—तू चाहे जितना हंस अनीता, लेकिन तू समझ नहीं सकेगी कि हमारा जमाना क्या था, हम क्या थे! नानी की माला फेरती उंगलियां रुक गयी हैं, आंखों में एक भराव उमड़ आया है.

नाखून तराशती अनीता भी रुकती है. नानी की आंखों को देखती है. इस दृष्टि के सामने उसकी हंसी बौनी होने लगती है. . . नानी कहने लगती हैं— तेरे नाना, हीरा आदमी थे, हीरा ! पहली रात जब वे मेरे पास आये, तो डपट कर बोले—एक गिलास पानी दो! मैं कांप गयी. पानी देने लगी, तो गिलास हाथ से छूट गया. तेरे नाना ने झपट कर धरा एक थप्पड़. रोने लगी मैं, तो कलेजे से लगा लिया, आज भी याद आता है, तो. . . ! नानी की आंखों में आंसू से कुछ चमकने लगते हैं. अनीता चाहती है कि 'हनीमून' के इस दुर्लभ प्रकरण पर ठहाका लगा कर हंसे, लेकिन नानी की

आज के युवा वर्ग के लिए...

नेसा
परिधान
नेसा आपकी पसंद के लिये बनाते हैं—
विविध प्रकारके 'टेरिन' काटन सूटिंग,
शर्टिंग, साडीयां और ड्रेस मेटेरियल्स
न्यू स्वदेशी मिल्स,
अहमदाबाद

आंखों में चमकते उन आंसुओं-से कुछ से उसके ठहाके हारने लगते हैं. . .

—नाना तुम्हें पीटते थे, तो तुम्हें बुरा नहीं लगता था, नानी? पूछती अनीता सोचती होती है कि वह नानी की जगह होती, तो थप्पड़ का जवाब मुक्के से देती. आखिर क्या हक है मर्द को औरत को पीटने का? औरत क्या मर्द से कम इनसान है?

—बुरा. . . नानी का स्वर आर्द्र हो आता है—अपना आदमी मारे, चाहे काटे, अपना आदमी अपना होता है न! तेरे नाना को दूसरी औरतों के पास जाने की आदत थी. मुझे बहुत बुरा लगता था. इस बात पर मैंने बड़ा झगड़ा किया. बहुत रोयी-पीटी. लेकिन अनीता उनके नाम का सिंदूर लगाते मेरा मन शांत हो जाता था. वे मेरे हों, न हों, मैं तो उनकी ही हूं. सोच कर मन को शांति मिल जाती थी. . . भगवान की मूरत के साथ मेरे मन में तेरे नाना की भी मूरत सदा रही आयी. . . आज भी जब उनको याद करती हूं, तो मन में दिया-सा जल उठता है!

अनीता को भी लगता है, जैसे नानी की बुझी आंखों में दिये जल उठे हों. अनीता इन दियों से आंख नहीं मिला पाती. दूसरी तरफ देखती-सोचती होती है, डैम इट! क्या होते हैं ये दिये? यहां तो सिर्फ शोले भड़कते हैं. . . बुझ जाते हैं

—ओ नानी, तुम भी क्या जेट एज में बैलगाड़ियों की बातें करती हो. मालूम है, आवाज से भी तेज सुपरसोनिक प्लेन बन गये हैं. इनसान चांद पर पहुंच गया है! अनीता के नाखून संवर गये हैं. उन पर पालिश लगाती अनीता सोच रही है. . . इन खूबसूरत नाखूनों वाली उंगलियों को चूम कर संजय कहेगा, हाउ लवली! तो अनीता का सारा श्रम सार्थक हो जायेगा. श्रम ही नहीं, जिंदगी सार्थक लगने लगती है अनीता को, जब उसकी कमर को कस कर कोई उसके कानों में कहता है—ओह, सो क्यूट यू आर!

—आदमी चाहे चांद पर पहुंचे, चाहे सूरज को पकड़ ले, रहने के लिए तो उसे धरती ही चाहिए न! सच बोल, अनीता, इस सारी दौड़ में तेरा जी नहीं घबराता? नानी कई बार अनीता से यह प्रश्न पूछ चुकी हैं. अनीता इसका कोई उत्तर नहीं देती. शायद इसका कोई उत्तर उसके पास है भी नहीं.

—चल हटा, तू सुनेगी थोड़े ही! लेकिन आजकल तू ये काली-काली काफी क्यों पीने लगी है? अरी, काली हो जायेगी ठीक से खायेगी-पियेगी नहीं तो!

—तुमसे ज्यादा गोरी हूं, नानी! अनीता अपना हाथ नानी के हाथ से सटा देती है. अनीता का चिकना गोरा हाथ नानी के झुर्री पड़े उजले हाथों के पार्श्व में कांप-सा जाता है. अनीता इस कंपन को झुठलाने के प्रयास में एक ठहाका लगाती है.

नानी अनीता के हाथ को सहलाने लगती हैं—जानती है, तेरे नाना मेरे रंग के लिए क्या कहते थे? कहते थे—चांदनी लग जायेगी, मैला बदन हो जायेगा. . . ! नानी की आंखों में वे दिये जल उठते हैं. नानी हंस पड़ती हैं. पोपले मुख की इस दंतविहीन हंसी को देखती अनीता को ध्यान आता है, संजय ने अनीता से कहा था—ठीक किसी टूथपेस्ट के एडवरटिजमेंट जैसी हंसी है तुम्हारी! क्यों नहीं मॉडेल बन जातीं! खूब चलोगी! अनीता को जाने क्यों लगता है, नानी की दंतविहीन हंसी के सामने उसकी विज्ञापन वाली हंसी फीकी-सी है. . . और, संजय ने उसकी हंसी नहीं सराही है. . . केवल टूथपेस्ट के विज्ञापन जैसी उसकी दंतपंक्ति सराही है. लो, इसीलिए तो अनीता नानी के साथ नहीं बैठती. . . इतनी कमजोर निरीह, नानी के सामने अनीता खामखाह हारने लगती है. . . हारने कहां लगती है. . . वह तो यूं ही जरा-सा. . . अनीता कंधे उचकाती है. अनीता का जी तो चाहता है, गुनगुनी धूप-सी ही मधुर ऊष्मा वाली नानी की गोद में मुंह छिपा ले. . . कुछ क्षण उस मधुर ऊष्मा से एक हो आये. . . लेकिन देर हो जायेगी. . . अभी उसे तैयार भी तो होना है. . . अनीता बाथरूम में दौड़ जाती है. सेंटीमेंटल होने के लिए वक्त ही कहां है! कितने कसे होते हैं अनिता के शेड्यूल भी. अब देखो, नहा-धो कर ड्रेसअप होते, लंच लेते, एक बज जायेगा और ठीक एक दस पर संजय उसे लेने आ जायेगा. शावर के नीचे गुनगुनाती अनीता नानी को बिल्कुल भूल जाती है. उसकी आंखों में संजय आ खड़ा होता है. . . हैंडसम, स्मार्ट, फास्ट संजय!

★ ★

लंच के समय ममी से भेंट होती है. बाकी सारा समय तो अनीता की डॉक्टर ममी चश्मा चढ़ाये, स्टेथस्कोप लटकाये, प्रेसक्रिपशंस लिखती होती हैं, या इंजेक्शंस लगाती होती हैं. हां, घर में इधर-उधर आते-जाते अनीता ममी के सामने पड़ती भी है, तो न ममी अनिता को रोकती हैं, न अनीता ममी को टोकती है.

मेज लग गयी है. अनीता और ममी ने अपने-अपने नैपकिन खोल लिये हैं.

—आज का दिन अच्छा है! ममी कहती हैं.

—हां, वेरी प्लेजेंट! अनीता कहती है. कांटे-छुरी से तौल-तौल कर खाना खाते अनीता कनखियों से ममी को देखती है. अनीता और ममी का संबंध भी तो बिल्कुल नपा-तुला है—इन कांटे-छुरी से तौल-तौल कर खाने जैसा. नानी के पोपले मुख पर अब भी भाव आते-जाते हैं. ममी का चेहरा तो काठ बना रहता है. अनीता नानी और ममी की हंसी की तुलना करने लगती है. नानी की हंसी पोपली है. ममी हैज गॉट ब्यूटिफुल सेट ऑफ टीथ. ममी के दांत बिल्कुल अनीता जैसे हैं, लेकिन हंसी. . . ? ममी हंसती हैं, तो लगता है, कोई पत्थर की मूर्ति हंस रही है, एक पथरीली मुसकान! जब-जब ममी मुसकराती हैं, अनीता जमने लगती है. ममी की हंसी या ममी की मुसकान जैसे बर्फीली सर्द हवा है, जो एक ठिठुरन अनीता के गिर्द छोड़ जाती है. नानी की हंसी पोपली होने पर भी गर्म तो होती है.

अनीता को अपने डैडी की कोई याद नहीं. पता नहीं, कब, कैसे, कहां डैडी छूट गये. पूरा होश आने पर

अनीता ने ममी से डैडी के बारे में पूछा था. उत्तर देती ममी की वे आंखें अनीता को आज भी याद हैं—न उन आंखों में कोई दिये जले, न कोई राख उड़ी. बस, एक अथाह रेगिस्तान उन आंखों में फैल गया था, जहां दूर-दूर तक कुछ भी नहीं होता. . .

—ही हैड अफेअर्स विद अदर वीमेन ऐंड आइ कुडंट टॉलरेट इट. मैं नहीं सह सकी दूसरी औरतों से उनके संबंध को. . . ! ममी ने कहा था. नानी ने नाना की जिस चोट को सह लिया था, ममी ने उस चोट के खिलाफ विद्रोह कर दिया था. और अनीता. . . अनीता जस्ट डजंट केअर! अनीता परवाह ही नहीं करती. वैसे तो आजकल संजय और अनीता खास 'डेट' हैं, लेकिन अगर वे साथी बदलते हैं, तो इसमें हर्ज क्या है? अनीता सहज होना चाहती है, सहज रहना चाहती है— उस हवा की तरह, जिसके झोंके उड़ते हैं, बस उड़ते रहते हैं. अब इस हवा को रोका जाये, तो दम घुटने लगेगा न! हवा के झोंकों वाली इस फिलॉसफी को अपने आपके निकट बार-बार दुहराते अनीता ममी की उन आंखों को नहीं भूल पाती, जिनमें एक अथाह रेगिस्तान फैल गया है. . . कैसे जीती हैं ममी इस रेगिस्तान में? क्या इस रेगिस्तान में फिर फूल नहीं खिलाये जा सकते थे? क्यों ममी ने अपने आपको ऐसे वेस्ट किया? ममी ने लव मैरिज की थी? प्रेम किया, वह तो ठीक, लेकिन शादी क्यों कर ली? अनीता तो सिर्फ प्यार करेगी. . . सिर्फ प्यार. . . ! अनीता जियेगी नदी की निर्बंध धारा की तरह. . . हवा के उन्मुक्त झोंके की तरह!

नानी आ खड़ी होती हैं— कुसुम, मैं फिर कहती हूं, इस छोकरी को समझा! ये सब ठीक नहीं है, जो ये रात गये आती है. जाने कहां-कहां घूमती है, जाने किस-किस के साथ. . . ! कुसुम. . . !

—आ तो जाती हूं न! देर से सही ! बात काटती अनीता सीधे नानी की आंखों में देखती है.

ममी तटस्थ बनी खाना खा रही हैं— रहने दो, मां, अनीता बच्ची नहीं, अपना भला-बुरा समझती है. ममी किसीकी ओर नहीं देखतीं. उनकी आंखें प्लेट पर निबद्ध हैं. अनिता को लगता है, अच्छा है, ममी आंखें नहीं उठातीं, नहीं तो उस बिलकुल रीती दृष्टि को झेलना कठिन हो जाता. नानी की ऊष्मा से तो लड़ा जा सकता है— पुराना सही, इसमें जिंदगी का अहसास तो है. लेकिन ममी की बर्फीली ठिठुरन को छूना कठिन हो जाता है. . . कितनी भी आधुनिक हो यह ठिठुरन.

★ ★

सहसा कार का हॉर्न बजता है, बार-बार बजता है. अनीता उछल कर खड़ी हो जाती है— सो ममी, सो ग्रेनी, बाय!

—अरी, कब तक आयेगी? बता कर जा! नानी चीखती है.

—पता नहीं ! कहती अनीता दौड़ जाती है.

दरवाजे तक तेजी से बढ़ कर नानी खड़ी रह जाती हैं— सुना कुसुम ! पता नहीं ! चीखती नानी और तटस्थ ममी के बीच अनीता का वह 'पता नहीं' फराता रह जाता है. नानी को लगता है, उनकी अनीता का सारा अस्तित्व इस 'पता नहीं' में मटक रहा है. . . अनीता भी दौड़ रही है, एक अंतहीन दौड़. . . रेगिस्तान में मरीचिका के पीछे दौड़ते पागल मृग-सी. . . लेकिन कौन समझाये अनीता को?. . . नानी तुमको या ममी तुमको, तुम दोनों को ही क्या मिला है अपने ढंगों से, जो मुझे अपने ढंग से जीने से रोकती हो. . . अनीता कहती है.

—हाय अनीता!

—हाय संजय!

उत्तेजना से कांपती अनीता संजय से सट कर बैठ जाती है. कार दौड़ने लगती है. . .पचास. . . साठ. . . सत्तर. . .

—तुम इतना फास्ट ड्राइव क्यों करते हो! अनीता ने संजय के कंधे पर सिर टेक दिया है. दौड़ती कार और उत्तेजना से कांपती अनीता जैसे एक लय में गुंथ गयी हैं.

—फास्ट. . . ? इसलिए कि आज जिंदगी इतनी फास्ट हो गयी है कि अगर हम दौड़ कर उसे न पकड़ें, तो वह हमें पीछे छोड़ देगी. और पीछे छोड़ दिया जाना मैं बरदाश्त नहीं कर सकता. . . आई जस्ट कांट टॉलरेट इट.

अनीता कनखियों से संजय को देखती है. लाल चौड़े कॉलर की शर्ट, चौड़े बेल्ट से कसा नीला बैल-बॉटम पेंट, कंधों तक फैल आये बाल, साइडलॉक्स, होंठों पर विदेशी धुन, आंखों में आयातित भाव, जैसे ये भाव भी भीतर के नहीं, बाहर के हों. वह संजय को अच्छी तरह जानती है, फिर भी संजय उसे अजनबी लगने लगता है— इतना कि वह एक अनजान भय से कांपने लगती है. यह भय उसकी उत्तेजना में गुंथा होता है. . . और भय और उत्तेजना के झटके खाती अनीता संजय के पास-दूर होती रहती है. संजय का यह चेहरा भी तो कितना बदलता रहता है! कल का संजय आज नहीं रहता, आज का कल नहीं रहेगा. दूर से देखने पर यह बदलना अच्छा लग सकता है, किंतु पास आ कर यदि इसे झेलना पड़े, तो झटके ही झटके. . . ! अनीता भय और उत्तेजना से कांपती रहती है.

आज बहुत हैंडसम लग रहे हो ! अ परफेक्ट बॉडी!

—ऐंड यू अ परफेक्ट मॉड! संजय अनीता की ग्रीवा पर एक चुंबन ले लेता है. अनीता के भय और उत्तेजना में यह चुंबन भी गुंथ जाता है. 'अ परफेक्ट मॉड'. . . अनीता को याद आता है—

कॉलेज में किसी लड़के ने किसी लड़की को छेड़ दिया था. बात इतनी बढ़ गयी थी कि टीचर्स को ऐक्शन लेना पड़ा. कुछ टीचर्स की राय थी कि लड़के-लड़कियों के पहनावे पर प्रतिबंध लगना चाहिए. ऐसी घटनाओं के लिए उत्तेजक पहनावे दोषी हैं. लेकिन इसके पहले कि कोई नियम बनाया जाता, अनीता के ग्रूप ने बिगड़ कर बोल दिया— जी नहीं, यह हमारी पर्सनल लिबर्टी का सवाल है ! हम कॉलेज आते हैं पढ़ने के साथ कुछ अन्य

समय बिताने के लिए, योगसाधना के लिए नहीं. हम जो चाहे पहनेंगे, जैसे चाहे रहेंगे, जैसे चाहे जि. . यें. . .गे अनीता लीड कर रही थी.

और टीचर्स तो मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए, केवल डॉक्टर नाथ, प्रिंसिपल, खड़े रह गये थे. आधुनिक मॉड कपड़ों के झुंड में पुराने फैशन का काला सूट पहने डॉक्टर नाथ का चेहरा संजीदा हो आया था. बायीं आंख दबा कर अनीता ने ऐलान किया था—— कल तुम सब लेटेस्ट कपड़ों में आओगे और चाय हम डॉक्टर नाथ के साथ पियेंगे ! टु हैल विद प्यूरिटन्स !

—डाउन विद कंजरवेटिव्स! वे चीखे थे. उन चीजों में डॉक्टर नाथ की आवाज दब कर रह गयी थी.

अनीता से आज भी कोई पूछे कि उसकी तमन्ना क्या है, तो वह कहेगी—— टु बी अ परफेक्ट मॉड! और यह मॉड लेटेस्ट इन फैशन होना ही तो है—— कपड़ों में, विचारों में, जिंदगी में!

सत्तर की स्पीड से कार दौड़ रही है. संजय से सटी बैठी अनीता देखती है, सुबह की कोमल, कच्ची धूप अब निखर कर पारे जैसी हो गयी है. . .

—इस धूप को देख रहे हो, संजय?

—हां, यह बिल्कुल तुम्हारे जैसी है. . . चमकदार, गर्म, ब्यूटीफुल !

—लेकिन जानते हो, इस धूप को बांहों में भरा जा सकता है, बांधा नहीं जा सकता! बिल्कुल आजाद है यह धूप ! अच्छा, अगर मैं धूप हूं, तो तुम क्या हो?

——मैं संजय हूं, संजय माथुर. संजय हंसता है. अनीता भी हंस पड़ती है. संजय की गूंजती हंसी और अनीता की खनकती हंसी टकरा गयी है. . . .

—न, बताओ ना! क्या हो तुम? अनीता उस हंसी की टकराहट से उबरना चाहती है.

—मैं. . . ? अच्छा, तो मैं हूं आकाश! ये नीला-फैला आसमान. . .जो होता है, नहीं होता. . . संजय सहसा उदास हो जाता है. पल भर पहले की वह हंसी अनीता को झूठ-सी लगी थी, यह उदासी सच-सी लगती है. नहीं, यह सच नहीं है. . . बिलकुल नहीं. अगर वह हंसी सच नहीं है, तो यह उदासी भी सच नहीं है. . . फिर सच क्या है ? कुछ भी हो, लेट भी नॉट बादर! अनीता अपने आप को रोक देती है. संजय ने भी शहर से दूर, एकांत में, पेड़ों के झुरमुट में कार रोक दी है. संजय की बांह का सहारा ले कर इस निबिड़ एकांत में संजय को छूने, संजय में डूबने के क्षणों में अनीता को याद आता है——

पिछले मास अनीता की 'डेट' मनीष था. देखने वाले कहते थे—— दे आर इन लव! डिसकोथिक के भीतर, डिसकोथिक के बाहर मनीष और अनीता साथ देखे जाते थे. फ्लू के कारण अनीता एक सप्ताह बाहर नहीं निकली, तो मनीष को दीपा के साथ देखा जाने लगा.

—यू चीट! अनीता चीखी थी.

—यू बिच! मनीष भी उतने ही जोर से चीखा था.

अनीता तीन कदम पीछे हटी, फिर चार कदम बढ़ कर एक घूंसा मनीष की नाक पर जड़ दिया. मनीष की ही दी अंगूठी का पत्थर मनीष की नाक को घायल कर गया. मनीष की नाक से खून बहने लगा था. साथियों ने मनीष को और साथिनों ने अनीता को पकड़ लिया था. एक दूसरे को जलती निगाहों से देखते वे हांफ रहे थे.

——इट्स आल कैजुअल, इसे दिल पर मत लो! संजय ने हांफती अनीता की बांह थाम ली थी. दूसरे दिन संजय की बांह में बांह डाले अनीता सहज थी.

पेड़ों के झुरमुट से छनती धूप, उस एकांत में उजाले-अंधेरे का इंद्रजाल-सा रच रही है. अनीता की आंखों में यह इंद्रजाल प्रतिबिंबित हो उठता है. . . इंद्रजाल संजय की आंखों में भी है. उनके ओठ निकट आते हैं. . . उनके शरीर और निकट. . . इंद्रजाल में डूबे कुछ क्षण सरक जाते हैं. . .शोले भड़कते हैं. . . बुझ जाते हैं. अपने आप को समेटती अनीता किसी समर्पण की तृप्ति ढूंढती होती है. अपने आप को संभालता संजय किसी स्वीकार के सुख को तलाशता होता है. . . और. . .किसी अवसाद को झुठलाते वे बार-बार सोचते होते हैं, वह असीम आनंद इतना सीमित क्यों है . . . ?

□ □ □

न्यू रीडर्स क्वार्टर नं. १९, उस्मानिया युनिवर्सिटी, हैदराबाद–७ (आं. प्र.)

अन्नपूर्णा

यशस्वी बुद्ध के जीवन-काल में श्रावस्ती नगरी में भयानक अकाल पड़ा. जनता की क्षुधा शांति के लिए उन्होंने प्रभावशाली लोगों का आह्वान किया. नगर के रत्नाकर सेठ ने दंडवत प्रणाम करते हुए कहा—— मैं तो समुद्र की एक बूंद हूं और यह विशाल नगरी एक समुद्र. अतः मेरी सामर्थ्य का अनुमान आप सहज ही लगा सकते हैं. सुन कर भगवान बुद्ध ने सेनापति जयसेन की ओर देखा. जयसेन ने कहा—— प्रजा की रक्षा के लिए मैं अपने लहू की अंतिम बूंद तक बहा देने को तैयार हूं पर मेरे घर में इतना अनाज नहीं कि मैं उसकी क्षुधा शांत कर सकूं.

धर्मपाल ने ठंडी सांस भरते हुए कहा—— मुझ जैसा भाग्यहीन तो अपने सूखे खेतों का राज्य-कर चुकाने में ही अपने को असमर्थ पाता है.

धर्मपाल का यह उत्तर सुन कर भगवान बुद्ध निराशा के अंधेरे में डूबने-उतराने लगे.

—भगवान, यह तुच्छ पामर सेविका आपको इस निराशा से उबारेगी. प्रजा के इस आर्त्तनाद में मुझे अपनी संतानों का क्रंदन नजर आ रहा है. क्षुधित जनता का दायित्व मैं अपने ऊपर लेती हूं. शिष्य अनाथपिंडक की सुपुत्री सुप्रिया के इन शब्दों से बुद्ध को अंधेरे में आशा की किरण-सी दिखाई दी.

और सचमुच ही भगवान बुद्ध के आशीर्वाद से समस्त नगरी का उद्धार हो गया. □ □ □

(प्रस्तुतीकरण : रेखा सिंह)

कृतियां

एक कहानी संग्रह

'कई सूरजों के बीच'

लेखक : इब्राहीम शरीफ; प्रकाशक: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; १२५ पृष्ठ; मूल्य : ५-००

इब्राहीम शरीफ की छोटी, सहज, साधारण और चुभती हुई कहानियां कहानी की बुनावट के बारे में चंद बुनियादी सवाल खड़े करती हैं. इन कथाओं के रचना-लोक के सर्वेक्षण से पता चलता है कि इनमें सनसनीखेज, विस्मय बोधक, विराट्, आदर्शवादी, आडंबरपूर्ण तथा दरियादिल कथासूत्रों को कोई स्थान नहीं मिला है. समकालीन जीवन की विषमता-विसंगति से अविच्छिन्न रूप में जुड़ी होने के कारण आज की कहानी मामूली आदमी के मामूली जीवन की मामूली घटनाओं-स्थितियों के बारे में पैने, विद्रूप और व्यंग्य भरे कथा-संदर्भ प्रस्तुत करती है. इन कथा-संदर्भों से परिचित होने के कारण पाठक के मन में संवेदनात्मक प्रतिक्रिया जन्म लेती है. ये मामूली घटनाएं और मामूली सवाल पाठक को अपने अनुभव के हिस्से लगते हैं. मामूलीपन अपनी रचनात्मक सहजता-साधारणता में अभिव्यक्त हो कर विशिष्ट बन जाता है.

साधारण व्यक्ति में सनसनीखेज रहस्यात्मकता और अश्रु-भीगी आदर्शवादिता का आरोपण करना सामयिक जीवन-पद्धति से अनभिज्ञता जाहिर करना है. इसलिए इब्राहीम की कथाएं साधारण जन के छोटे-छोटे अनुभवों को उनके संत्रास के साथ प्रकट करती हैं, तथा इस संत्रास के व्यंग्य-विद्रूप को एक कला-संयमितता के साथ पाठक के सामने अनावृत कर देती हैं. [illegible] व्यवस्था और जड़ परंपराओं के खिलाफ है. फ्लैप पर ठीक ही कहा गया है : 'कहानियां जो अंधेरे में साधारण आदमी को घेरे खड़ी हुई तमाम भयानक छायाओं को उद्घाटित करती हैं, और हर तरह का जोखिम उठा कर उन पर रोशनी के टुकड़े फेंकती हैं.' आदमी के मन की भयानक त्रासदी को उद्घाटित करें न करें, पर शरीफ अभिव्यक्ति का पूरा खतरा उठाते हैं, इसमें संदेह नहीं. इन कहानियों में चर्चित देश, जुलूस, बेकारी, मर्यादाहीन लोग, क्लब-लाइफ, डाक्टर, नसबंदी, अफसर, कमचारी, कथाहीन नारियां, तथा लक्ष्यहीन बौद्धिक लोग यथार्थवादी परिवेश रचते हैं.

इन कहानियों के पात्र खंडित-विघटित होते हुए भी संघर्ष की ललक रखते हैं—'**पूर्वाभास**' का लंगड़ा संपन्न लोगों का ट्रैफिक जाम कर देता है. 'सड़क मेरी भी है . . . . मेरी अलग दौड़ है. . . . सब की गाड़ियों की दौड़ के बराबर मैं क्यों अपनी दौड़ बढ़ाऊं?' और यह विकलांग वाहन वाले संभ्रांत लोगों द्वारा वाहन से कुचल दिया जाता है. '**दिग्भ्रमित**' का कथा-नायक लंबे राजनीतिक जुलूसों के कारण अपना मार्ग तय नहीं कर पाता और स्टेशन नहीं पहुंच पाता. उसके जीवन की एक महत्वपूर्ण यात्रा रद्द हो जाती है. '**पुरजे**' में एक ओर लकवाग्रस्त मां है, और दूसरी ओर डाक्टर की फीस. फीस के अभाव में उपचार नहीं हो पाता. पढ़े-लिखे बेकार भाई-बहन फीस का प्रबंध नहीं कर पाते. ऐसी व्यवस्था के प्रति घृणा क्यों न हो! यही कारण है कि लोग [illegible] और 'मर्यादाहीन' जाते हैं. शिक्षित युवकों को नकली इंटरव्यू में अस्वीकृत जायेगा तो वे निश्चय ही मंजक बन जायेंगे. हृदय में लिये लोग डायबिटीज से ग्रस्त मरणासन्न मां से के अभाव में मिल भी पाते! लड़कियों से नहीं, खिलवाड़ किया तंकम जैसी लड़कियां रह जाती हैं. जिस्म बेचने नौकरी मिलती है, या तीस मासिक वेतन पा कर एक करते प्रेस-मालिक से मार अपमानित होना पड़ता है. की लड़की को बाप के घर सुरक्षा नहीं, चाचा उसे देखते ही दबोच लेता है, धोखा दे जाता है, और व्यक्ति शादी के प्रश्न पर चुप है. तंकम की आंखों में आंच होगी तो क्या होगा? स्थितियों से व्यक्ति के मन में की कुंठा बैठ जाती है. 'बौद्धिक कुंठित और लक्ष्यहीन हो जाता

इब्राहीम शरीफ ने जीवन में विघटन के विविध को समझा है. परिवेश, मर्यादा, मूल्यों और परंपरा की जड़ता-भरी परिणतियों के उनके मन में नफरत-भरा

संग्रह की सबसे अच्छी '**कथाहीन**' है, जिसमें मानस का सच्चा विश्लेषण अन्य अच्छी कथाएं हैं— '**पुरजे**', '**मर्यादाहीन**' और '**इंतजार**' भी एक कथा है.

☐ रामदेव

इब्राहीम शरीफ

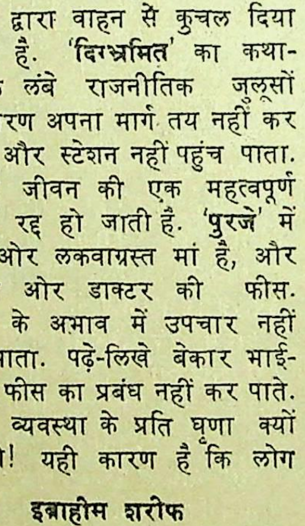

रामदेव आचार्य

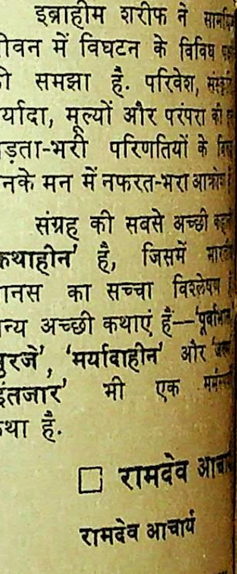

स्व. महेंद्रनाथ

साबिर दत्त

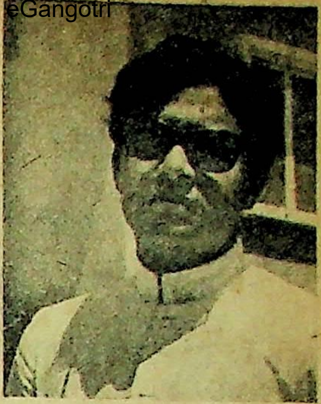

डॉ. राही मासूम रजा

एक विशेषांक

'महेंद्रनाथ यादगार नंबर'

संपादक : साबिर दत्त और सी. एल. काविश; मूल्य : २५ रुपये; प्राप्तिस्थान : अलवी बुक डिपो, मोहम्मद अली रोड, बंबई.

साबिर दत्त और सी.एल. काविश ने पांच सौ पन्नों का **'फन और शख्सियत'** पत्रिका का यह यादगार नंबर निकाल कर कमाल कर दिया. वैसे महेंद्रनाथ जैसे साधारण आदमी पर ऐसा शानदार नंबर निकालना बड़ी ज्यादती की बात है. मीर, सौदा, अनीस, गालिब, सरशार, शरर, चकबस्त, प्रेमचंद, जोश मलीहाबादी--जी हां, मैं जोश को मरे हुओं ही में गिनता हूं--मजाज, मख्दूम और सज्जाद जहीर . . . किसी पर भी तो ऐसा नंबर नहीं निकला. इसीलिए जब यह नंबर देखा तो खयाल आया कि शायद ऐसे खूबसूरत और जीवित नंबर के लिए मरने वाले का साधारण होना जरूरी है, शायद साधारण लोगों ही के बारे में असाधारण और महत्वपूर्ण रचनाएं रची जा सकती हैं . . . मुख्तसर यह कि अल्लाह साबिर दत्त और काविश साहब को जिंदा रखे कि ये दोनों भी साधारण आदमी हैं.

मैंने 'महेंद्रनाथ यादगार नंबर' देखा तो मरने को जी चाहने लगा, पर किसी साबिर दत्त या सी. एल. काविश से मेरी ऐसी दोस्ती जो नहीं है! और ऐसे नंबर अच्छे संपादक नहीं, अच्छे दोस्त ही निकाल सकते हैं.

लगता है कि उपेंद्रनाथ अश्क को पूरा यकीन है कि उनपर ऐसा नंबर नहीं निकलेगा, तो उन्होंने इसी नंबर को अश्क यादगार नंबर मान लिया. और इसीलिए उन्होंने महेंद्रनाथ के बारे में कम और अपने बारे में ज्यादा लिखा. उनके लेख का शीर्षक है– **'काश, महेंद्र मेरा भाई होता'**. जोर महेंद्रनाथ पर नहीं, काश पर है. अफसोस इसका नहीं कि महेंद्रनाथ मर गये. अफसोस इसका है कि वह मेरे भाई न हो कर कृष्णजी के भाई क्यों निकले! दुख यह है कि भाई की मौत के मैदान में भी कृष्णचंदर बाजी मार ले गये. पता नहीं संपादकों ने इस लेख को प्रकाशित करना क्यों आवश्यक जाना. इस लेख ही की तरह मुझे कृष्णजी की जीवनी– **'वरक वरक खो गयी जिंदगी मेरी'**– के पन्ने भी इस यादगार नंबर में अच्छे नहीं लगे. यह तो सब जानते हैं कि महेंद्रनाथ कृष्णचंदर के छोटे भाई थे पर इसका मतलब यह नहीं कि उनकी अपनी कोई जिंदगी ही नहीं थी. लगता है मरने के बाद भी कृष्णजी महेंद्रनाथ पर धूप नहीं पड़ने देंगे. मैं महेंद्रनाथ के लिए उनके प्यार की इज्जत करता हूं पर यह कहना भी जरूरी समझता हूं कि पौधे को पनपने के लिए छांव के साथ-साथ धूप की जरूरत भी पड़ती है. कृष्णजी के प्यार की छांव में महेंद्रनाथ की जिंदगी ही नहीं पनपी तो मौत क्या पनपेगी!

इस यादगार नंबर का सबसे अच्छा लेख लिखा है सरला, महेंद्रनाथ की बहन, ने. अफसोस कि सरला पर वैसा ही लेख लिखने के लिए महेंद्रनाथ मौजूद नहीं हैं. अपने भाई पर यह लिखने के बाद वह खुद मर गयीं मानो वह केवल यही लेख लिखने के लिए जी रही थीं.

दूसरा लेख जो मुझे अच्छा लगा और जो साहित्यकारों को मरने पर उकसा सकता है, वह है सी. एल. काविश का. काविश साहब मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य के विरोधी हैं और महेंद्रनाथ इन्हीं दोनों के सिपाही. परंतु काविश ने महेंद्र की मौत को अपनी मौत की तरह महसूस किया. इसे कहते हैं थीसिस, ऐंटी-थीसिस और सिंथेसिस. काविश साहब मानें या न मानें, पर महेंद्रनाथ पर उनके लेख ने उन्हें लगभग मार्क्सवादी बना दिया है. यानी मरते-मरते भी महेंद्रनाथ एक काफिर को मुसलमान बना ही गये!

इस यादगार नंबर में हिंदुस्तान और पाकिस्तान के ९१ साहित्यकारों ने महेंद्रनाथ की लाश पर अपने शब्दों के फूल चढ़ाये हैं और यह कोई साधारण बात नहीं है. मैं तो यह सोच-सोच कर हैरान हो रहा हूं कि जिस आदमी की मौत में इतना दम है, उसकी जिंदगी कैसी शक्तिशाली रही होगी.

☐ **राही मासूम रजा**

गुस्ताख़ियां

• प्रकाश पंडित

हो जाये कुछ प्रकाशकों के बारे में !

पाकिस्तान बनने के कुछ समय पूर्व उर्दू के प्रसिद्ध व्यंग्य लेखक और सेवक के हितैषी मित्र कन्हैयालाल कपूर एक बड़े ही तुर्रेबाज किस्म के प्रकाशक को ले कर संतनगर लाहौर स्थित सेवक के घर पधारे और उन प्रकाशन महोदय ने उस जमाने में जबकि सेवक की महीनेभर की कुल आमदनी अस्सी रुपये थी और सौ के सालम नोट के विषय में केवल सुना था—सवा दो सौ रुपये के करारे नोट सेवक को गिनवा कर एक अशटाम पर हस्ताक्षर करवा लिये कि सेवक की कहानियों का एक संग्रह **'कड़वे घूंट'**—जो आज तक प्रकाशित नहीं हुआ और जिन्होंने बाद में सेवक को ऐसे-ऐसे कड़वे घूंट पिलाये कि सेवक को छठी के अलावा सातवीं और आठवीं का दूध भी याद आ गया —प्रकाशित करेंगे और उतने ही करारे नोट संग्रह के प्रकाशन के बाद प्रदान करेंगे.

कहानी -संग्रह के प्रकाशन की नौबत तो, जैसा कि कहा जा चुका है, आज तक नहीं आयी लेकिन पाकिस्तान बनने के तुरंत बाद जब दिल्ली में सेवक अचानक उन प्रकाशक महोदय के हत्थे चढ़ गया—जो उन दिनों फतेहपुरी, दिल्ली में एक होटल चलाते थे और कमर पर पिस्तौल लटकाते थे तो प्रकाशक महोदय ने फर्माया—निकाल वह सवा दो सौ रुपये.

—लेकिन वह तो **'कड़वे घूंट'** की रायल्टी के थे. सेवक ने सहम कर कहा—आप अब भी उसे छाप सकते हैं.

—कैसे छाप सकते हैं, **'कड़वे घूंट'** के लेखक के मुंह पर थप्पड़ मार कर बोले—मसौदा तो पाकिस्तान में रह गया है.

—तो इसमें सेवक का क्या कुसूर है? **'कड़वे घूंट'** के लेखक ने थप्पड़ पड़ा अपना गाला सहलाते हुए कहा.

—कुसूर का बच्चा! इस बार उन्होंने कमर पर लटके पिस्तौल पर हाथ मार कर कहा—मसौदा रह गया है, अशटाम तो ले आया हूं.

और उस अशटाम और उस थप्पड़ से डर कर **'कड़वे घूंट'** के लेखक ने बाद को—जब वह होटल बेच कर पुनः प्रकाशक बन गये और अमरीकी पुस्तकें छाप कर उन्होंने एक पोश कालोनी में अपना बंगला बनवा लिया तो उनके लिए एक पुस्तक का संपादन करके और एक पुस्तक का अनुवाद करके और उनके नाम से कुछ पुस्तक विक्रेताओं और उनकी किसी प्रेमिका के नाम प्रेम-पत्र लिख कर (नोट किया जाये कि आप शुरू से ही इस प्रकार के गैर-जरूरी कागजात पर केवल हस्ताक्षर करना या अंगूठा लगाना ही पसंद करते हैं) अपना कर्ज चुका दिया और सुर्खरू हो कर खुशी-खुशी उनके दफ्तर से जाने लगा. तो उन तुर्राबाज प्रकाशक महोदय ने तुर्रे को और भी लहराते हुए रहस्योद्घाटन किया कि राइटर समझ के छोड़ दिया था वर्ना लाहौर में पहली नजर में ही मैं तुम्हारी बीवी पर आशिक हो गया था.

आपसे मिलिए, आप हैं—इंडियन अकादमी के मालिक जनाब सुरेंद्रनाथ साहनी! जिनका चित्र सेवक के पास नहीं है और जो किसीसे भी यह पंक्तियां सुनने के बाद अनिवार्य रूप से अपने तुर्रे और पिस्तौल के साथ सेवक के गले में बहियां डालने के लि
उसे कहीं भी घर पकड़ेंगे!

जनाब मोहम्मद यूसु
जाम

बड़े ही व्यापारिक सू
के मालिक थे. पाकिस्तान के
प्रकाशक खालिद साहब ने (
कभी दिल्ली में हाली पब्लि
हाउस के हिस्सेदार थे और कि
ट्रकों में लाद कर पाकिस्तान
गये थे, जब साहिर लुधियान
को पाकिस्तान से हिंदुस्तान स्म
कर दिया और प्रकाश पंडित स्म
होने की बजाय एक ट्रक
शरणार्थियों के ट्रकों और बिस्त
पर बैठ कर प्रकृति के दृश्य दे
हुए पहले अमृतसर और
दिल्ली पहुंचे तो जनाब यूसु
साहब की दूरदर्शी दृष्टि ने ता
लिया कि आदमी दोनों काम के
हैं. और अपने पैसे से (जिस
बारे में लोगों का कहना है कि
उनकी बजाय वह किसी शील
बहन का पैसा था और यूसु
साहब उस पैसे और शीला बहन
अपना ही माल समझते थे) ए
बड़ा जोरदार अदबी रिसाला 'शाह
राह' जारी कर दिया कि दोनों का
करो. कमाओ और खाओ और
सामर्थ्यानुसार हमें भी खिलाओ

साहिर लुधियानवी तो
कुछ उन्हें खाना-पीना था,
पी कर बंबई सिधारे. पीछे र
गये प्रकाश पंडित जिन्हें खाने-पी
या वेतन की मद में कभी दस रु
से अधिक एक साथ न मिले.

घर में फाका था. प्रका
पंडित उर्दू के सबसे बड़े रिसा
'शाहराह' के दफ्तर में खा
पेट बैठे बीड़ी पी रहे थे और उ
के प्रसिद्ध लेखकों के साथ साहि
की सार्थकता पर बड़ी गंभीर
से वार्ता कर रहे थे कि जना
यूसुफ साहब अपने बगलब

यानी नोटों से भरे बगली बैग के साथ पधारे.

—अरे प्रकाश साहब! उन्होंने आते ही ललकारा—आप बीड़ी पी रहे हैं, कमाल है,

—इसमें मेरा कोई कमाल नहीं है यूसुफ साहब ! प्रकाश पंडित ने स्वीकार किया—कमाल तो मुंशीजी (चपरासी) का है जो किसी तरह बीड़ी का बंडल उधार ले आये हैं.

—हद हो गयी. उन्होंने दफ्तर में मौजूद सात-आठ लेखकों की ओर गौरव से और प्रकाश पंडित की ओर घृणा से देखते हुए और अपने बगलबच्चे में से एक रुपये का नोट निकाल कर मुंशीजी को थमाते हुए कहा—जाओ, फौरन एक पैकेट कैप्स्टेन का ले कर आओ—प्रकाश साहब कैप्स्टेन के ही सिगरेट पीने के आदी हैं.

कैप्स्टेन का पैकेट आ गया. स्वयं यूसुफ साहब ने उसे खोलने का कष्ट किया. फिर एक-एक सिगरेट सब लेखकों को और एक प्रकाश पंडित को इनायत फर्माया और एक स्वयं सुलगा कर उन्होंने मुंशीजी को हुक्म दिया—पैकेट के पैसे प्रकाश साहब के हिसाब में लिखवा देना. और अपना बगलबच्चा बगल में दबाये सिगरेट का धुआं उड़ाते सीढ़ियां उतर गये ताकि साहित्य की सार्थकता में अधिक विघ्न न पड़े.

बदल हसन जामयी

यह साहब भी जामयी थे अर्थात उस जामिया मिलिया के स्नातक जिसकी नींव शिक्षा विशेषज्ञ जनाब डाक्टर जाकिर हुसैन साहब ने रखी थी. आप बड़े ही मुखलिस इंसान थे. लेकिन जितने मुखलिस थे उससे कहीं ज्यादा मुफलिस थे. कभी बहुत अच्छे दिन देखे थे इसलिए उन देखे हुए दिनों के कारण कभी अनदेखे दिनों का अनुमान न कर सके.

आशावादी इतने थे कि हजारों के कर्जे के बावजूद उन्हें प्रतिक्षण यह आशा रहती थी कि अभी अगले ही क्षण कुछ ऐसा घटेगा कि न केवल हजारों का कर्ज अदा हो जायेगा बल्कि लाखों में खेलने लगेंगे.

कोई भी छोटा या बड़ा शायर या अदीब उनकी दुकान हाली पब्लिशिंग हाउस, उर्दू बाजार, दिल्ली में चला जाता तो वह उसे चाय पिलाने, कबाब या कुल्फी (जिसका सही उच्चारण कुफली है) खिलाने से बाज न आते और इसका प्रबंध वह इस प्रकार करते कि अदीब या शायर के दुकान में दाखिल होते ही वह दुकान के मुलाजिम महमूद के कान में कोई फूंक मार देते और महमूद मियां तुरंत चौकड़ियां भरते साथ की दुकान से कोई भारी भरकम किताब ले कर कि ग्राहक को दिखानी है, उससे अगली दुकान पर उसे पचास प्रतिशत कमीशन पर बेच देते और एक ट्रे में शाहजहां के समय से उबल रही बब्बन के होटल की चाय या जामा मस्जिद के उत्तरी दरवाजे पर भुन रहे कबाब या पूर्वी दरवाजे पर खुल रही कुफलियां सजा कर ले आते.

बदल साहब का निवासस्थान दुकान के ऊपर था. जहां से दुकान खुलते ही उनकी बीवी छींका लटका देती थी —जिसमें नीचे से कभी एक अदद लकड़ी, कभी पाव भर दाल, कभी छटांक डेढ़ छटांक वनस्पति घी और कभी दो-चार आने के सिक्के पड़ जाते थे.

प्रकाश पंडित से उनका वास्ता तब पड़ा जब 'शाहराह' के मालिक यूसुफ साहब ने प्रकाशन का धंधा सीमित करके पहले नदियों-तालाबों में से और फिर कीचड़ में से मछलियां पकड़ने का धंधा अपना लिया और प्रकाश पंडित ने 'शाहराह' के दफ्तर के बगल के एक कमरे में (वह कमरा जनाब बदल हसन साहब का था और कभी 'शाहराह' के दफ्तर के तमाम कमरे भी बदल साहब के थे; जिन्हें एक दिन उन्होंने यूसुफ साहब को उर्दू की खिदमत करने के एवज निहारी खिलाते हुए सौंप दिये थे और जिन्हें यूसुफ साहब के देहांत के बाद उनके साहबजादे ने मुस्लिम लीग के हाथ पगड़ी पर उठा दिया है और तरक्की पसंद रिसाले 'शाहराह' के बोर्ड की बजाय जहां आजकल मुस्लिम लीग का झंडा फहराता है, बदल साहब के साथ मिल कर उर्दू का मायानाज रिसाला 'फनकार' निकाला—एक ऐसा रिसाला जिसके लिए अदीबों और शायरों ने अपनी रचनाओं का पारिश्रमिक लेने की बजाय अपनी रचनाओं के साथ सौ-सौ रुपये भिजवाये कि ऐसा रिसाला कभी बंद नहीं होना चाहिए.

रिसाला जारी रहा और अपनी रचनाओं के अलावा सौ-सौ रुपये देने वाले अदीबों और शायरों की लेखकीय प्रतियां उनके पास पहुंचने की बजाय पैक हो कर और रजिस्ट्री के लेबल लग कर बदल साहब के शयन कक्ष में पहुंचती रहीं.

—आप यह क्या गजब कर रहे हैं बदल साहब! पता चलने पर एक दिन प्रकाश पंडित ने बौखला-कर उनसे कहा—न आप मुझे दमड़ी देते हैं, न उन अदीबों के पास पर्चा भेजते हैं जिन्होंने चंदे के तौर पर सौ-सौ रुपये भेजे थे.

बहुत लज्जित हुए फर्माया—दो घंटे के भीतर-भीतर न केवल सब लोगों को पर्चे पोस्ट हो जायेंगे बल्कि आपका चार माह का वेतन भी आपको एक मुश्त मिल जायेगा. अभी आप ऊपर दफ्तर में जा कर इतमीनान से काम कीजिए—मैं चाय भिजवाता हूं.

और जब प्रकाश पंडित ऊपर दफ्तर में इतमीनान से काम करने और चाय पीने के दो घंटे बाद नीचे उतरे तो मालूम हुआ, बदल साहब पान में अधिक तंबाकू खा कर गश खा गये हैं.

उन्हें वास्तविक गशी की हालत में देख कर प्रकाश पंडित ने रिक्शा किया. दरीबांकला में जा कर अपनी अंगूठी बेची. आ कर डाक्टर गरेवाल को उसकी फीस और बदल साहब के बीवी-बच्चों को तसल्ली दी. दवाएं मंगवायीं

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX 4 IN 1 BINDI
EYETEX DELUXE KUMKUM
EYETEX
EYETEX BINDI
EYETEX REGD.
EYETEX
EYETEX KUMKUM
EYETEX DELUXE BROW PENCIL
ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033

फेमिना का २६ सितंबर १९७५ विशेषांक

बालरोग और उनके इलाज

दस वर्ष से कम उम्र के बच्चों की बीमारियाँ : इन्हें कैसे रोका जाये, इनसे कैसे बचा जाये

पहली मर्तबा आपके बच्चों के लगातार शारीरिक–मानसिक विकास के लिए
प्रमुख बाल रोग विशेषज्ञों की आयोजनाएँ.

विदेशी चार्टों को देखकर क्षुब्ध न होइए.
भारतीय बच्चों की आदर्श लंबाई और वजन के उपयुक्त चार्ट पहली बार. फेमिना पेश कर रही है
रोग प्रतिरोध समय-दर-समय प्रतिरोधात्मक कदम उठा कर कई बड़ी भयंकर बीमारियों को रोका जा सकता
इनके समय और विषय की विस्तृत सूची.
सांस की बीमारियां बार–बार जुकाम लगने से भी सांस और ब्रांकिटिस बीमारी हो सकती है. उन्हें रोकने
कई एक पग उठाये जा सकते हैं. इसके अतिरिक्त दमे के बारे में कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं.
पेट की बीमारियां इनसे निर्जलीकरण जैसी बीमारियां हो सकती हैं. तुरंत उपाय करने के सुझाव.
क्या आपकी बच्ची बलात्कार का शिकार हो सकती है ? इन संभावनाओं के खिलाफ कैसे तैयार रहें.
जन्मजात खामियां : अंधे, बहरे या अन्य रोगों से ग्रस्त नवजात शिशुओं की जिंदगी और अपनी जिंदगी
आसान व प्रसन्न बनाने के लिए क्या-क्या किया जा सकता है ?
असामान्य रोग गर्दन तोड़ बुखार (मैनिंजाइटिस), वृक्क रोग, वातकारी हृदय. अपनी चपेट में ले लेते हैं
वक्त पर किये गये उपाय कारगर सिद्ध हो सकते हैं.
बच्चों में मैलिग्नेंट ट्यूमर, लक्षण और खोजबीन • बच्चों में त्वचा एलर्जी. • आंखों की देखरेख, क्या
आपरेशन के जरिये इलाज संभव है ? • दांतों की देख-रेख, आर्थोडोंटिक्स कितनी जरूरी, प्रभावशाली और
मानसिक गतिरोध और उसका पुनर्स्थापन बच्चों की भावनात्मक समस्याएं और उनके निदान चोरी, बिस्तर गीला
करना, अंगूठा चूसना, पढ़ने में पिछड़ापन व अन्य खामियां भावनात्मक तनाव के लक्षण हो सकते हैं.
बच्चों के मार्गदर्शक अस्पताल और स्कूल शारीरिक रूप से अपूर्ण आपके बच्चों की भलाई के लिए इनका ज्यादा
से ज्यादा इस्तेमाल कैसे हो सकता है ? व • किशोर-किशोरियों के लिए फैशन. • प्रेमी-प्रेमिका का घर से
भागना–माता पिता और बच्चों के विचार — मामलों के संदर्भ में. • 'हर रोज की नायिकाएं'
क्रम की एक और कड़ी.

ARMS-OC/F-45-7014HN

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन **femina** हर दो हफ्तों में नयी उम्मीदें, नयी उमंग

उन्हें पिलवायीं और जब बदल साहब पूरी तरह होश में आ गये तो पहले शब्द जो उनके मुंह से निकले, वे ये थे——महमूद! क्या अभी तक तुमने प्रकाश साहब के घर एक हजार रुपया नहीं पहुंचाया?

हाय, कहां गये वे लोग! जो कम-से-कम इतनी प्रिय बात तो कर सकते थे और हाय, कहां हैं वह मैसर्स आत्माराम एंड संज के पुरी साहब, जो इसी प्रकार की बात लेखकों से अपने लिए कहलवाने के तमन्नाई हैं.

नियमानुसार फाकामस्ती चल रही थी कि पुरी साहब के लिए भाषण तैयार करने वाले हंसराज रहबर साहब सेवक को उनके पास ले गये. फर्माया—हमारी पुस्तकों का सूचीपत्र तैयार कर दो—बड़ेवाला. जिसमें हर पुस्तक के साथ समीक्षाओं की कुछ पंक्तियां भी हों. समीक्षाएं न मिलें तो स्वयं लिखो. इस कामं पर पूरे दो महीने लगे और सिद्ध कर दिया कि आज तक ऐसा प्रकाशक न कभी पैदा हुआ है, न भविष्य में पैदा होने की संभावना है.

सिद्ध बिल्कुल ठीक किया था. क्योंकि ऐसा प्रकाशक सचमुच न कभी पैदा हुआ था, न आइंदा होने की संभावना है क्योंकि दो महीने सिरतोड़ परिश्रम के बाद जब चार सौ रुपये पारिश्रमिक की बात आयी तो उन्होंने अपने एकाउंटेंट को बुला कर कहा——प्रकाशजी को तुरंत चार सौ रुपये देने हैं. गल्ले में तो शायद नहीं होंगे.

—जी, बिलकुल नहीं हैं.

—कोई बात नहीं, पुरी साहब ने फर्माया —प्रकाशजी! आप पंद्रह दिन के बाद आ कर पैसे ले जाइए.

पंद्रह दिन के बाद मालूम हुआ कि पैसे उस दिन भी नहीं थे जो दिये जाते अन्यथा तुरंत दे दिये जाते.

पंद्रह दिन के वक्फे की अगली तारीख को पहुंचने पर मालूम हुआ कि एकाउंटेंट साहब को पुरी साहब का ऐसा कोई आदेश नहीं है कि प्रकाश पंडित नाम या नस्ल के किसी जीव-जंतु को पहचाना जाये.

अगले दिन अपने आपको पहचनवाने के सिलसिले में आत्माराम एंड संज की आत्मा -पुरी साहब से मिलने की चिट भेजी तो मालूम हुआ कुछ लेखकों के साथ रुपये-पैसे की बातचीत चल रही है, इसलिए आज भी पैसे नहीं मिल सकते.

——कभी मिल भी सकते हैं? फाकाजदा प्रकाश पंडित ने तंग आ कर एकाउंटेंट महोदय से पूछा.

——देखिए, एकाउंटेंट महोदय ने समझाया——अब तक आप पुरी साहब के वादों पर आते और जाते रहे हैं. अब मैं आपसे वादा कर रहा हूं कि आपको अवश्य पैसे मिलेंगे लेकिन आज से ठीक डेढ़ महीने बाद-यानी आप अगले महीने की बीस तारीख को शाम के सात बजे तशरीफ ले आइए.

अगले महीने की बीस तारीख को सेवक कश्मीरी गेट से मीलों दूर जामिया मिलिया ओखला में गया हुआ था कि छह बजे अपना कामधंधा छोड़ कर और जेब में पैसे न होने के बावजूद टैक्सी ले कर भागम-भाग आत्माराम एंड संज की दुकान पर पहुंचा कि जाते ही पैसे मिल जायेंगे.

——ओह, तो आप आ गये.

——जी हां. क्या आपको इस प्रकार का कोई खदशा नहीं था?

——था तो, एकाउंटेंट साहब बोले——लेकिन सोच रहा था कि न आयें तो अच्छा हो, क्योंकि पैसे आज भी नहीं हैं.

——आज तो पैसे तुम्हारा बाप भी देगा. सेवक ने ललकार कर कहा——आज मैं पैसे लिये बिना नहीं टलूंगा.

——कैसे लेंगे? एकाउंटेंट साहब भी डपट कर बोले——जबकि पैसे हैं ही नहीं.

——ऐसे लूंगा. सेवक ने काउंटर की ओर बढ़ती हुई और एक पुस्तक खरीद कर दस का नोट बढ़ाती हुई एक महिला के हाथ से वह नोट झपट कर काउंटर मैन से कहा——बाकी के पैसे इन्हें दे दीजिए.

——यह क्या कर रहे हैं आप? एकाउंटेंट महोदय अपने स्थान से घूम कर दौड़े आये और सेवक को अलग ले जा कर और अपनी नौकरी तथा शहर की शांति भंग होने का वास्ता और चार सौ रुपये नकद दे कर कहा——भगवान के लिए आप यहां से जायें.

और सेवक भगवान को चार सौ बार धन्यवाद देते हुए वहां से चला गया. लेकिन बाद को मालूम हुआ कि प्रकाश पंडित जब पैसे लेने आत्माराम एंड संज की दुकान पर गये थे तो शराब के नशे में बुरी तरह धुत होने के कारण दंगा करने के मूड में थे और पुरी साहब और उनका अमला दंगे-फसाद में विश्वास नहीं रखता. □□□

एक लघुकथा

दो विद्वान

● खलील जिब्रान

बात पुराने जमाने की है. किसी नगर में दो विद्वान रहते थे. उनके विचार एक दूसरे से नहीं मिलते थे. वे एक दूसरे की हंसी उड़ाते थे क्योंकि एक भगवान को मानता था और दूसरा नास्तिक था!

एक दिन बाजार में, अपने शिष्यों की मौजूदगी में, उनका वाद-विवाद छिड़ गया. घंटों वाद-विवाद चलता रहा. परंतु वे किसी नतीजे पर न पहुंच पाये!

उसी शाम, नास्तिक मंदिर गया और अपने पिछले पापों की मुआफी के लिए गिड़गड़ाने लगा!

ठीक उसी समय, दूसरे विद्वान ने, जो भगवान में विश्वास रखता था, अपनी धार्मिक पुस्तकें आग में झोंक दीं, क्योंकि वह नास्तिक बन चुका था! □□□

(अनुवाद: केदारनाथ कोमल)

समानांतर

▫ सुकीर्ति गुप्ता

सतीश नीचे से मोटर साइकिल का हार्न बजा रहे थे—शायद कुछ भूल गये थे. स्टोव का स्विच ऑफ कर शीघ्र बारजे पर आयी. जल्दी में चौखट से अंगूठा उलझ जाने के कारण ठोकर लगने से चोट लग गयी. अनुराधा ने चोट को ध्यान नहीं दिया—उन्हें आफिस की देरी हो रही है. रूमाल भूल गये हैं. देवू को दे कर जल्दी से भेजा, नहीं तो हॉर्न उसकी माथे की नसों को झकझोर देता. सतीश के आफिस चले जाने से उसे बड़ी राहत महसूस हो रही थी. जनवरी का महीना, रसोई में धूप धीरे-धीरे पैरों को छूते बढ़ती जा रही थी, अब कमर तक हो गयी थी. सामने वृक्षों की शाखाओं के हिलने से उसे लगता कि धूप की लहरें उससे अठखेलियां कर रही हों. अनुराधा की इच्छा हो रही थी कि चुपचाप वह रसोई में ही पसर कर सो जाये और वह चटाई बिछा कर लेट गयी. गुनगुनी धूप की गरमाहट उसे पहले भी अच्छी लगती रही है. विक्टोरिया के मैदान में बैठ कर कितनी बार महिम के कंधे पर सिर रख धूप को पिया है. कितने सुंदर ढंग से जीने के बहाने गढ़े हैं और युनिवर्सिटी की क्लासों से कट कर सीधे वे मैदान में चले आते थे. 'सर' की तीखी आंखों की परवाह न कर के भी—क्लास में प्रायः एक दूसरे को देख कर मुसकराते और चिट के सहारे ही कितने वायदे हो जाते.

अचानक अनु की तंद्रा टूटती है. नीचे एक कार आ कर खड़ी होती है. उत्सुकतावश वह जंगले से झांकती है—एक सूटधारी युवक था, वही रोज दोपहर में नीलम के फ्लैट में आने वाला. उसके आने से अनु की भी बोरियत काफी टूट जाती है. उनके कमरे से आते बातों के टुकड़े वह जोड़ती, उन पर कल्पना का ताना-बाना बुनती. खट्-पट् की आवाज, सिसकारी की आवाज, प्यालों की टकराहट, सबका अपना अलग अर्थ होता. अच्छा शगल रहता. कभी उसकी इच्छा होती तो दरवाजों की सूराखों से झांक भी लेती!

नीलम को भी परवाह न थी कि जरा पर्दों से दरवाजे को पूरा ढंक तो दे. कितनी मीठी बात करती है. कान्वेन्ट का लहजा उसकी बातों में है. कितनी स्मार्ट है पर आंखें कितनी खोई-खोई रहती हैं, जैसे उनमें हमेशा ही कोई सपना तैरता रहता है. जब भी उसके घर में कोई अच्छी डिश बनती या उसके मनपसंद की मिठाई आती वह जरूर उसके लिए लाती. नीलम अनु से बड़ा स्नेह करती. उसे अन्य पड़ोसियों की तरह वहां ईर्ष्या-मिश्रित उपेक्षा नहीं दिखाई देती. अनु और नीलम की आयु में विशेष अंतर न था.

अनु को अभी बहुत काम करने थे. किसी तरह उसने नीलम के कमरे से अपने ध्यान को हटा लिया और अपनी आवाज तेज कर देवू से काम करवाने लगी.

—देवू, रसोई साफ कर...

—अरे, सुनता नहीं है, जरा मैं हटी नहीं कि कोने में सोने लगता है...रात भर क्या करता है—रात के नौ बजे से ही तो ऊंघने लगता है!

रसोई घर की खट्-खट् पट्-पट् आवाज घर में गूंजने लगती है. नल से लगातार पानी गिरने की आवाज होती है.

—कितनी बार कहा, काम करते समय इतनी आवाज मत किया कर...धीरे-धीरे काम कर.

कहती अनुराधा बाथरूम में चली गयी. सिटकिनी बंद कर ली. शॉवर से पानी झरने की आवाज हल्के-हल्के गूंज उठी. नहाते समय अपने पूरे नग्न शरीर को देखना उसे बड़ा अच्छा लगता है. पहले बाथरूम में शीशा न था—जिद्द करके उसने लगवाया कि दांत साफ करते या मुंह धोते बिना शीशे के उसे असुविधा होती है. शॉवर की बूंदें मोती की तरह उसके चिकने शरीर से फिसल रही थीं. गोलाई की ऊंचाई पर बूंदें ठहर जातीं-चमकतीं, फिर धीरे से फिसल जातीं. विवाह के शुरू के दिनों में सतीश उसके शरीर की प्रशंसा करते न थकता. कभी कहता—अनु, तुम्हारा शरीर तो ऐसा लगता है जैसे किसी कलाकार ने अपनी कला से तराश दिया हो, छूते भय लगता है, खराब न हो जाये.

कभी कहता—अनु, जानती हो तुम्हारा नग्न शरीर देख कर मुझे अजंता के चित्र याद आ जाते हैं, जिनका सौंदर्य सिर्फ आंखों से पिया जा सकता है, हाथ छूते ही नहीं—इच्छा करती है घंटों तुमको इसी तरह देखता रहूं. और अनु आंख मूंद कर यह प्रशंसा पीती रहती. वह महिम को भूलती जा रही थी क्योंकि उसकी बातों में इतनी निर्भीक मांग न थी—कैशोर्य की भावुकता और अल्हड़ प्रेम ही था. पर सौंदर्य की आराधना इतनी

जल्दी चुक जायेगी—उसका मन मसोस उठता. अब वह भी एक साधारण स्त्री की ही तरह रह गयी है जो कि सिर्फ उपभोग की, वासना की पूर्ति मात्र है. अनु ने बांहों को एक-दो बार ऊपर नीचे किया—कमर में बल देखने के लिए एक-दो बार बायें-दायें झुकी. पास के कमरे से खिलखिलाहट का स्वर सुनाई दिया. अनु के भीगते शरीर में भी रोमांच हो आया. वह एक गीत हलके स्वर में गाने लगी.

उसे पता था कि बाथरूम के दरवाजे को पार कर वह आवाज जहां तक पहुंचाना चाह रही है, वहां अवश्य पहुंच रही होगी. अपने स्वर के मिठास पर भी उसे आत्म-विश्वास था—स्वर किसीको भी मदहोश कर सकता था. नीलम बड़ी प्यारी लड़की है. एक दिन बड़े भोले-भाले ढंग से कहती है—जानती हो अनु, सोमेश को तुम्हारे गीत बड़े अच्छे लगते हैं. जिस दिन तुम्हारा गीत उसे सुनाई नहीं देता है उसे अच्छा नहीं लगता है—कभी-कभी तो मैं छेड़ती हूं—तुम मेरे लिए नहीं, अनु के गीतों के लिए आते हो.

शंका से अनु ने उसकी ओर देखा था पर उनमें कभी भी ईर्ष्या के डोरे नहीं दिखाई दिये—वह आश्वस्त हुई.

—तुम मिलोगी? नीलम ने कहा.

अनु थरथरा गयी, पर स्वयं को संयत करते बोली—अभी नहीं, फिर कभी तेरे मित्र से अवश्य मिलूंगी.

पर कुछ दिनों बाद पता लगा कि नीलम के कई मित्र हैं जिनके आने के अलग-अलग समय हैं. उसके इस काम में उसकी विधवा मां और एक विश्वासी नौकर सहायता देता है. यदि कभी भूले-भटके कोई दूसरे के रहते आ जाता है तो नौकर सचेत कर जाता है. सतीश को पता नहीं था. नहीं तो इतनी बड़ी पगड़ी दे कर वह फ्लैट किराये पर कभी नहीं लेता. अब तो रहने के लिए विवश था. लेकिन उसको नीलम से मिलना-जुलना बिलकुल पसंद न था. पूरे दिन की बोरियत से बचने के लिए कभी-कभी दोपहर को वह नीलम से भेंट करती. पर इसका ध्यान रखती कि सतीश को पता न चले.

* *

बारजे पर आ कर अनु ने अपने लंबे केश छितरा दिये. उसे हंसी आ गयी—महिम को उसके केश बड़े प्यारे लगते थे. प्रायः वह उन्हें ही चूम उठता था. और अधिक आगे बढ़ने का साहस नहीं था और न दोनों को एकांत ही प्राप्त था. जिस दिन पहली बार उसने ओठों को चूमा था, कितना कुछ घट गया था. दोनों तीन दिन तक आपस में बोले नहीं थे, एक दूसरे की ओर नजर नहीं उठा पाये थे. अचानक कुछ आवाजें लहरा जाती हैं—घुटती आवाजें. . .

—उफ् धीरे, सोम, तुम तो मेरे ओठों को काट देते हो—

—सच?. . इच्छा होती है—इनको पीता ही रहूं.

—फिर वही हरकत—एक मीठी झिड़की.

—तो क्या करूं? ये चांद-सी गोलाई देख कर मचल जाता हूं—ओह डार्लिंग!

—आओ देखो रेकार्ड चढ़ाती हूं—आओ डांस करें!

हलकी-हलकी संगीत की ध्वनि वातावरण में तैरने लगती है. अनु के पैर हिलने लगते हैं. सहसा ध्यान आता है कि सामने दूकान वाला उसे बड़ी देर से घूर रहा है. वह कमरे का पर्दा सरका कर जल्दी से भीतर चली जाती है. उसके कमरे तक संगीत लहरा रहा था. वह भी नाचना चाह रही थी. अनायास ही उसके पैर थिरकने लगते हैं. उसे लगता है वह महिम का हाथ पकड़ कर नाच रही है. उसकी कमर पर महिम का हाथ थरथरा रहा है. वह उसके सीने में मुंह छिपा लेती है. महिम हौले से अपने में समेट कर छोड़ देता है. वे मुसकराते हुए एक दूसरे को देखते संयत हो उठते हैं—धीरे-धीरे खाने की मेज की ओर चले जाते हैं—और सच, अनु को भी भूख लग गयी. उधर का संगीत शांत हो गया था—किसी प्रकार की आवाज नहीं आ रही थी—ज्वार-भाटे के बाद की शांति. रसोई में देबू गुनगुनी धूप में मस्त सो रहा था. अनु उसके इस सुख को देख कर गुनगुना उठी—कुछ भी फिकर नहीं. मुझे जरा देरी देख कर खाना और प्लेट तो खुद मेज पर सजा देता—कैसे इसे इतनी मस्त नींद आती है और एक हम हैं—

अकेले मेज पर बैठ कर खाना-खाने में उसे बड़ा कष्ट होता. पहले तो कई बार इसी कारण वह सतीश से झगड़ भी चुकी है. गरम रोटियां देने के बाद जब वह मेज पर आ कर बैठती तब तक सतीश खा कर, हाथ धो कर अपने कमरे में चले जाते. उसके हाथों में अखबार होता. वह खीज उठती, आंखों में आंसू लिये कौर चबाती. उसे

आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे! सर बुरी तरह दुख रहा है।
मेरी मानो तो एनासिन ले लो।

जल्द आराम पाने के लिए
तेज़ असर
और विश्वसनीय
एनासिन लीजिए

तेज़ असर—एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय-एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन
भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A/2/8-74
Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

वेताल की हत्या

गलूमा राजा ने अपनी प्रजा से जो सोना इकट्ठा किया
पर समुद्री डाकू सरदार स्ट्रेंगॉल की नजर थी.
राजा सोना ले जा रहा था, उस पर स्ट्रेंगॉल ने
दिया. संयोग की बात, महाबली वेताल भी उसी नाव
और राजा को यह सलाह दे रहा था कि उसे
जनता के प्रति दयालु होना चाहिए. उधर स्ट्रेंगॉल
खून का भी प्यासा था. घमासान लड़ाई हुई और
सारे आदमी बंदी बना लिये गये. वेताल के हाथ
भी उस कोठरी में डाल दिया गया, जिसमें बारूद
अब स्ट्रेंगॉल ने सारी नाव पर पेट्रोल छिड़क दिया.
में एक जलती मशाल ली और नाव को जलाने
कहा-कुछ ही क्षणों में भीषण विस्फोट नाव का नामो
तक मिटा देगा और उसके साथ मेरा सबसे बड़ा दुश्मन
भी खत्म हो जायेगा. पर वेताल का क्या हुआ?
वेताल उस विस्फोट की भेंट चढ़ गया? वेताल की
हर्षक कहानी १ सितम्बर १९७५ के इंद्रजाल कॉमिक्स में

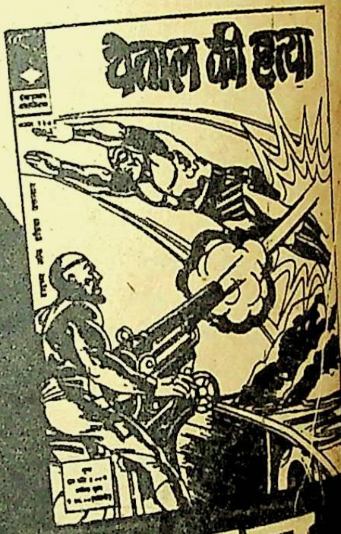

इंद्रजाल कॉमिक
१ सितम्बर १९
टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन

लगता खाना-खाना भी दुनिया में कितना कठिन है! अनेक भाई-बहनों के बीच कभी अकेलेपन का अहसास ही नहीं होता था. कालेज से लौट कर आती तो मां मेज पर साथ बैठ कर उसकी कालेज की सारी उलटी-सीधी बातें सुनती और वह खुश हो कर कितना खाती—खाना भी कितना मधुर लगता. सामने बैठा देवू खा रहा है—उससे ही अनु बातें कर एकांत तोड़ने की चेष्टा करती है. उसकी सौतेली मां है—जो अच्छा व्यवहार नहीं करती है—इसी भय से वह घर जाने का नाम भी नहीं लेता. अनु के पास ही हमेशा रहना चाहता है. उसे देख कर अनु को लगता कि छोटेपन से ही देवू को शायद एकाकी और उदास रहने की आदत पड़ गयी है. खाना-खा लेने पर देवू अपनी रोज की आदत के अनुसार बचे चावल के दानों को थोड़ा-थोड़ा कर दरवाजे के पास छितरा देता है. गौरैया चहचहाती-फुदकती खाती. देवू उन्हें देख मुसकराता. उसने अलग-अलग कुछ के नाम रख छोड़े थे. मानो वे ही रोज उसके पास आती हों. अनु भी कभी-कभी उसके खेल में सहयोग देती.

महिम की एक बड़ी प्यारी आदत थी. खाते समय जो चीज अनु को पसंद होती, उसकी प्लेट में यह कह-कर डाल देता कि उसकी इच्छा नहीं है या उसे भूख नहीं है. उससे बदला लेने के लिए कभी-कभी अनु अपने हिस्से की पूरी मीठी डिश उसके आगे सरका देती कि उसे मीठा पसंद नहीं है. वह जानती है महिम मीठे का बहुत प्रेमी है. इस मान-मनुहार में खाना कितना मीठा हो जाता. . .और अब. . .कभी भूले से कोई सतीश की प्रिय वस्तु, उसकी थाली में अपनी थाली से डाल भी दे तो सतीश आंखें तरेर कर बालेंगे. —मुझे यह बचकानी आदत पसंद नहीं!

अनु का सारा उत्साह ठंडा हो जाता. वह अलग इकाई बनी अपने में सिमटी हुई खाती. सतीश को भी खाते समय कोई-न-कोई पत्रिका देखना अच्छा लगता. उस समय अनु को यह अकेलापन ही अधिक मात करता. अब उसे बाद में ही खाना अधिक अच्छा लगता.

सतीश से वह भी कभी सजह नहीं हो पाती. एक अव्यक्त दूरी उन लोगों के बीच बनी ही रहती. सतीश स्वयं को हमेशा एक बड़प्पन के घेरे में बांधे रहता. विद्वत्ता के विषय में दर्शन से ले कर खाना बनाने तक. संगीत में भी स्वयं को अत्यंत कुशल मान कर अनु से उसके कुछ तथ्यों को ले कर उलझ पड़ता—यद्यपि कभी कभी तर्क आधारहीन होते पर कभी हार न मानता. यही उसका एक अनोखा ढंग था, अनु पर रोब डालने का. अच्छी नौकरी न पाने की कुंठा सतीश को सालती थी. उसे लगता अनु उसकी उपेक्षा करती है—पर अनु इस कुंठा को जितना ही दूर करने की चेष्टा करती, उतना ही वे दोनों उलझते चले जाते. अनु भी अब ऊब गयी है, अब उस ओर ध्यान ही नहीं देती है.

महिम यदि युद्ध में अपने अखबार का फोटोग्राफर हो कर न जाता तो आज यह स्थिति न होती. दोनों ही एक दूसरे के अभिन्न थे. पर बाद में उसका कुछ भी पता नहीं चला. अगर आज भी अचानक आ जाये तो—अनु निश्वास ले कर मेज से उठ गयी. ध्यान आया कि उसे बैंक जाना है, सतीश के कुछ कपड़ों में बटन टांकना है. पर इच्छा हो रही है कि एक छोटी-सी नींद लेती, पर छोटी-छोटी इच्छाओं को दबाने में ही कुछ भूलने कैसा सुख मिलता है. . .और वह तैयार होने लगती है.

* *

बैंक से लौटते समय सीढ़ी पर सोमेश मिलता है. सीटी बजाता उतर रहा था. अनु को देख चुप हो गया. हलके से नमस्कार हुई. सीढ़ी संकरी होने के कारण कितना बचने पर भी सोमेश की कोहनी छू जाती है. अनु को लगता है कि सोमेश ने जानबूझ कर ही उसे कोहनी छुआ दी है. व्यंग्य की रेखा मुख पर उभर आयी. सोमेश आते-जाते प्रायः उसके बारजे की ओर देखता है—नीलम से भी कभी-कभी छोटे-मोटे तोहफे भिजवाने की चेष्टा कर चुका है. अनु के न चाहने पर भी यह भावना जैसे अनजाने ही उसे प्रिय थी कि शायद नीलम से ज्यादा उसमें आकर्षण है. स्त्रियों में हमेशा एक दूसरे के प्रति प्रतिद्वंद्विता की भावना होती है. क्या उसमें भी है? अनु कुछ निश्चित नहीं कर पायी.

नीलम के कमरे में झांक कर देखा. अभी भी वह अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़ी हुई थी. अनु को देखते वह उठ कर बैठ गयी. कमरे की हलकी रोशनी में बिखरी लटों में घिरी नीलम उसे बड़ी प्यारी लग रही थी. नीलम मानों उसके मन के भावों को समझ कर मुसकरा उठी. अनु के मन में न जाने कितने प्रश्न उमड़ रहे थे. वह नीलम को एक सीमा तक कुरेदना चाह रही थी.

—तुम्हें सोमेश बहुत प्यार करते हैं न?

—हां. . .एक ओर देखते हुए नीलम फिर कहती है—शायद. . .शायद शब्द अनु को चुभ जाता है.

—क्यों? अब भी तुम्हें उन पर विश्वास नहीं है. फिर तुमने स्वयं को इस सीमा तक क्यों दिया, अनु कहती है.

बालोंको ब्रश से संवारती नीलम कहती है—विश्वास-अविश्वास का प्रश्न नहीं उठता. मैं शादी नहीं करूंगी.

अनु चौंक पड़ी—क्यों?

नीलम सहसा उठ कर खड़ी हो गयी. उसके शरीर पर सिर्फ एक झीना नाइट गाउन था जो सिर्फ आवरण का बहाना मात्र था. अनु ने सिहर कर आंखें नीची कर लीं.

—अनु. . . नीलम उसके पास बैठ गयी, उसका हाथ अपने में लेती बोली—तुम क्यों पूछ रही हो? मैं किसीको कुछ भी बताना नहीं चाहती. सोमेश को भी एक दिन पता चल जायेगा—मैं सिर्फ उसीकी प्रतीक्षा कर रही हूं—अनु, मुझे अपने से भी कितना लड़ना पड़ता है. डर लगता है कि मैं उससे प्रेम न करने लगूं. इसीलिए मैंने अपने पास बहुत-से बहाने जोड़ रखे हैं. विजय, नाहर—सबसे संबंध रखना माने किसी से भी प्रेम न करना.

नीलम उदास खिलखिलाहट बिखेरती है. अनु को लगता है नीलम अभी चीख कर रो पड़ेगी. कितना कुछ भरा है इस लड़की में. उसके प्रति मन में संवेदना उम-

रती है. उसके हाथ को स्नेह भरा स्पर्श देती बोलती है——मेरे ऊपर विश्वास रखो नीलम, मुझसे कहने में यदि तुम्हारा दुःख कुछ कम हो तो कह दो.

कुछ देर कमरे में एकदम स्तब्धता रही.——मेरी नानी वेश्या थी पर अपनी लड़की को उस कारा से निकालना चाहती थी. मां का परिचय घोष बाबू से बहुत दिनों से था. उनका छोटा-सा व्यापार भी था. वे मां से शादी कर अलग रहना चाहते थे. नानी भी उनके स्वभाव और ईमानदारी पर ऐसी रीझ गयी कि मां का विवाह उनके साथ बड़े सादे ढंग से कर दिया. मेरा जन्म विवाह से सात माह बाद हुआ. बस मैं ही सारे दुःखों की जड़ हूं, पिता का व्यवहार मां से बदल गया. यद्यपि मां का उनसे संबंध विवाह से पूर्व भी था. पर उन्हें संदेह था कि मैं उनकी संतान नहीं हूं. उन्होंने मुझे कभी भी पिता का प्यार नहीं दिया. घर में सारी सुविधाओं का प्रबंध था पर मैं उपेक्षित थी. पिता की उदासीनता के कारण मां रोती पर पिता को ऐसा लगता कि मां ने उनके साथ धोखा किया——उनकी ईमानदारी को ठेस पहुंचायी है. बड़ी होने पर घर की तनावपूर्ण स्थिति से उबरने के लिए मैंने दूसरा रास्ता निकाला. प्रेम पाने की अदम्य इच्छा से मैंने दूसरों का सहारा लिया और पंद्रहवें वर्ष में ही मैं गर्भिणी हो गयी. पिता कहे जाने वाले की उदासीनता उस दिन तोड़ कर मैं बहुत प्रसन्न हुई. क्रोध में आ कर उन्होंने मुझे बहुत पीटा. मां ने चोट पर हल्दी लगाते न जाने कितने उपाय बताये जिनसे मैं शीघ्र बरी हो जाऊं पर इस सारे माहौल से इतनी ऊब गयी थी कि एक सहारा मिलते ही मैं रोशन के साथ बंबई भाग गयी. रोशन के साथ भी मैंने वही सपने देखे थे जो कि कोई भी लड़की युवावस्था की दहलीज पर देखती है. बस आगे नहीं कह कर नीलम विस्तरे पर औंधे मुंह गिर पड़ी.

——और आगे और भी भयानक है. मां ने खोजबीन के बाद मुझे अत्यंत दयनीय हालत में पाया. पिता मर चुके थे. और पंगु बच्चे को जनकर कभी न मां बनने की सूचना मुझे डाक्टर से मिल गयी. तुम्हें आश्चर्य हो रहा है कि मैं मां हूं——पर मुझे उस बच्चे से कुछ भी लगाव नहीं है. सिर्फ इतना ही संबंध है कि हर माह कुछ रुपये भेज देती हूं——अनु बोलो न, मैं क्या करूं? सोमेश अगले माह ही शादी करना चाहता है पर मैं . . . लगता है सोमेश एक दिन उसी तरह चला जायेगा . . . पर मुझे अकेलेपन से ही डर लगता है.

नीलम काफी रो रही थी. अनु का मन सहानुभूति से भर उठा. उसके पास बैठ कर उसका सिर धीरे-धीरे सहलाने लगी. सहानुभूतिपूर्ण स्पर्श पा कर नीलम का बांध जैसे टूट गया हो. अनु को समय का ध्यान नहीं रहा——स्कूटर की आवाज सुन कर उसकी तंद्रा टूटी——फिर आऊंगी, कह कर अनु शीघ्र चली गयी.

अनु को कमरे से निकलते सतीश ने देख लिया. क्रोध से मुंह तमतमा आया.

——फिर गयी थीं——सतीश का स्वर कठोर था.

——उसकी तबियत ठीक न थी, न चाहते हुए भी अनु बोल पड़ी.

——डाक्टर बुलाया जा सकता है, अपनी इज्जत का ध्यान नहीं, सतीश ने कहा.

——उसका दोष क्या है? मन लगाने जरा चली जाती हूं, अनु फिर बिफर पड़ी.

सतीश का स्वर ऊंचा हो गया——इसमें और वेश्या में क्या अंतर है——जो बिना प्रेम के शरीर बेचती है.

——जरा धीरे बोलो, कहती अनु रसोई घर में चली गयी. उसके कानों में 'जो बिना प्रेम के शरीर बेचती है' वाक्य हथौड़े के समान प्रहार कर रहे थे. चाय तैयार करते समय उसका मन उसके संपूर्ण अस्तित्व को अपने घेरे में घेर रहा था. उसके प्रश्नों के तानेबाने में वह उलझी हुई थी. सतीश तैयार हो कर मेज के पास बैठे थे. हाथ में रोज की तरह अखबार था. अनु ने चाय-नाश्ता लगा कर रख दिया. चाय भी प्याले में बना कर अनु ने सतीश के सामने रख दी.

अनु कविता की पुस्तक निकाल कर पढ़ने लगी. आंखें महिम की लिखी पंक्ति पर अटक गयीं——'आई लव यू——अनु.' इन पंक्तियों में उसे इतना आकर्षण लगता कि देखते ही बहुत समय गुजार देती है. इस वाक्य को लिखने की उसकी बड़ी आदत थी. जहां भी वे दोनों बैठते महिम बातें करते हुए यह वाक्य चुपके से लिख देता——भले ही धूल से, बालू से, चाय से ही क्यों न लिखना पड़े.

रोज की दिनचर्या में अनु बहुत कुछ भूल जाना चाहती है. सतीश खा कर बैठक में चले गये. कोई मित्र आ गये हैं. काफी भिजवा कर अनु एक-एक कौर चबाते बैठक से आती आवाजें सुन रही है. चर्चा का विषय कितनी जल्दी बदल जाता है, राजनीति, साहित्य, आधुनिक चित्रकला. देवू भी दूर बैठा खा रहा है. वह पूछती है——क्यों रे——इस हफ्ते सिनेमा नहीं गया?

——नहीं बीबी जी, देवू ने दबे स्वर में कहा.

——तुझे कौन-सी ऐक्ट्रेस पसंद है, अनु ने शैतानी से पूछा.

देवू ने शरमा कर आंखें नीची कर लीं.

अनु रसोई का काम खतम कर बैडरूम में आ गयी. अभी तक सतीश की आवाज आ रही थी. उन लोगों की बातें खतम नहीं हुई थीं. बारजे पर खड़ी हुई——उसने देखा, नीलम खूब सजधज कर विजय के साथ बाहर जा रही है. कार में बैठ कर, अनु को देख कर हाथ हिला कर टाटा किया.

रेडियो खोल कर, एक पत्रिका ले कर अनु लेट गयी. संगीत की मधुर ध्वनि सुनते कब सो गयी उसे ध्यान नहीं रहा. रात्रि में सतीश की बलिष्ठ भुजाओं के कसाव से अनु की आंखें खुलती हैं——उसकी चीख भी सतीश पी लेता है. सतीश के अस्फुट स्वरों में उसे वही पिछला वाक्य पीछा करता लगता है. 'वेश्या . . . जो प्रेम से शरीर नहीं देती. सुविधा के लिए ही सब कुछ स्वीकारती है. . . नहीं . . . नहीं . . . वह वेश्या नहीं है. अनु को लगता है कि अंधेरे में वह बंदी है और उसे बहुत यातना दी जा रही है . . .

□□□

चौथा समांतर लेखक सम्मेलन : एक रिपोर्ट (२)

गत २७, २८, २९, और ३० जनवरी को मद्रास तथा कालीकट में समांतर लेखकों का चौथा सम्मेलन हुआ, जिसमें हिंदी के अलावा डोगरी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु तथा मलयालम के लेखकों ने भी भाग लिया. मद्रास में हुई गोष्ठी का विवरण आप पिछले अंक में पढ़ चुके हैं.

रात साढ़े आठ की गाड़ी से सभी के टिकट कालीकट के लिए बुक्ड थे. सम्मेलन का स्थान कालीकट विश्वविद्यालय का गेस्ट हाउस था. वहां की सारी व्यवस्था कालीकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. मलिक मोहम्मद ने की थी.

यद्यपि विश्वविद्यालय कालीकट में था, तथापि सब लोगों को एक स्टेशन पहले ही 'फरोक' पर उतर जाना था, क्योंकि वहां से विश्वविद्यालय पास पड़ता था.

महिलाओं के सोने का प्रबंध करने के बाद ट्रेन में ही गोष्ठी जुटी. प्रकाशन की समस्याओं को ले कर बातचीत चली और लोग इतने उत्साहित नजर आये कि लगा, सम्मेलन समाप्त होने के बाद तुरंत ही समांतर प्रकाशन का सिलसिला शुरू हो जायेगा.

इस सिलसिले में इब्राहीम शरीफ को यह काम सौंपा गया कि वह केरल में लेखकों के सहयोगी प्रकाशन की रूपरेखा का अध्ययन करें और उसी आधार पर समांतर प्रकाशन की रूपरेखा तैयार करें. गोष्ठी लगभग रात भर ही चलती रही.

* *

जिस स्थान पर कालीकट विश्वविद्यालय स्थित है, वह शहर से खासा बाहर एक रमणीक स्थान है. चारों ओर नारियल और काजू के पेड़, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्ते और खुले मैदान, दूर-दूर तक कोई बस्ती नहीं. वहां पहुंचने पर लोगों को आई. आई. टी. बंबई में हुए पहले समांतर सम्मेलन की याद हो आयी. कोई एक बजे लोग विश्वविद्यालय के गेस्टहाउस में पहुंच गये थे. थोड़ी ही देर में लोगों का सामान यथास्थान अलग-अलग कमरों में पहुंचा दिया गया. शाम चार बजे विश्वविद्यालय के ऑडिटोरियम में सम्मेलन का उद्घाटन होना था.

लोग जल्दी-जल्दी नहा-धो कर तैयार हुए और भोजन करके विश्वविद्यालय के ऑडिटोरियम की ओर चल दिये. वहां खासी भीड़ थी. महिलाएं भी काफी संख्या में उपस्थित थीं. डॉ. मलिक मोहम्मद ने विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित लेखकों का स्वागत किया. कालीकट में समांतर कहानी सम्मेलन को उन्होंने उत्तर और दक्षिण के साहित्यिक धरातल पर एक अपूर्व संगम की संज्ञा दी. उन्होंने कहा कि यह भावना कि हिंदी दूसरी भाषाओं को दबाना चाहती है, गलत है. हिंदी किसी प्रांत या देश के किसी भू-भाग की भाषा न हो कर पूरे भारत की भाषा है. दरअसल हिंदी ही समस्त देश की सांस्कृतिक प्रगति का प्रतीक है और इस रूप में सारे देश को एकता के सूत्र में बांध सकती है.

इसके बाद कालीकट विश्वविद्यालय के प्रो-वाइसचांसलर ने अपना उद्घाटन भाषण दिया. वह मलयालम में बोले.

तब वहां उपस्थित समांतर लेखकों की ओर से कामतानाथ ने समांतर कहानी पर अपने विचार व्यक्त किये. मुख्य विषय पर बोलने से पहले उन्होंने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की कि समांतर का यह चौथा सम्मेलन एक अहिंदी भाषी प्रदेश, केरल, में हो रहा है. उन्होंने कालीकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. मलिक मोहम्मद के प्रति सभी उपस्थित लेखकों की ओर से आभार प्रकट किया, जिनके सहृदय प्रयास से यह सम्मेलन कालीकट में होना संभव हो सका.

प्रेमचंद, यशपाल तथा अन्य प्रगतिशीलों से ले कर मनुष्य की आंतरिक पीड़ा की बात करने वाले जैनेंद्र और अज्ञेय और तब 'नयी कहानी,' अकहानी आदि का संक्षिप्त ब्योरा प्रस्तुत करते हुए कामतानाथ ने कहा कि समांतर न तो कोई आंदोलन है और न ही कोई साहित्यिक गुटबंदी. समांतर एक प्रकार से वर्तमान हिंदी कहानी की वैचारिकता और उससे संबंधित अन्य प्रश्नों को ले कर लेखकों की सोच का एक नाम है. इसके पीछे हिंदी कहानी की पूरी परंपरा और इतिहास है, जिससे जुड़ने या कटने का प्रश्न नहीं, बल्कि उसे अध्ययन करने और समझने की आवश्यकता है. आज से कोई दसेक वर्ष पूर्व हिंदी के तब के कहानीकार अचानक अजनबी हो उठे थे. देश की वर्तमान आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति से स्वयं को मानसिक रूप से काट कर उन्होंने कहानी को साहित्य की एक फैशनेबल विधा के रूप में खूबसूरत ड्राइंगरूमों और कहवाघरों में सजाना-बिठाना शुरू कर दिया था. उनकी कहानियों के पात्र तो अपने देश के थे, परंतु उनका दुख-दर्द, कार्य-कलाप आदि एक कृत्रिम बौद्धिक मुद्रा लिये हुए पूर्णतया अजनबी थे. उसी समय कुछ अन्य लोग कहानी को खूबसूरत स्त्रियों के अंगों-प्रत्यंगों के इर्द-गिर्द लपेटने-उघाड़ने की विलासिता पूर्ण क्रिया में व्यस्त थे. इस सारी स्थिति के बीच हिंदी के उस समय के कुछ युवा लेखकों ने कहानी को पुनः जन साधारण के निकट लाने का ही नहीं, बल्कि उसको जिंदगी के संघर्ष से जोड़ने का प्रयत्न किया. समांतर कहानी उसी का प्रतिफलन है. यह हर्ष

की बात है कि आज सभी लोग स्वीकार करते हैं कि देश की वर्तमान स्थितियों में सच्चा साहित्य साधारण आदमी के अपनी जिंदगी की शर्तों को बेहतर बनाने के संघर्ष से अलग हट कर नहीं लिखा जा सकता, बल्कि कुछ लोग तो उससे बंदूक का काम लेने की बात करते हैं. समांतर साहित्यकार इस रोमांटिक विचारधारा से अलग जन-संघर्ष के लिए उचित मानसिकता तैयार करने की साहित्य की सही भूमिका में विश्वास करता है. और इसीलिए समांतर कहानीकार कहानी को उसकी मध्यवर्गीय मानसिकता से उबार कर सर्वहारा के निकट लाने की बात करता है.

★ ★

कामतानाथ के बाद इब्राहीम शरीफ माइक पर आये. हिंदी-अहिंदी भाषा के प्रश्न पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि जिस तरह हिंदी केवल उत्तर भारत की भाषा न हो कर पूरे देश की भाषा है, उसी प्रकार मलयालम केवल केरल प्रदेश की भाषा न हो कर पूरे देश की भाषा है. किसी भी भाषा पर कभी भी कुछ खास लोगों या किसी खास प्रदेश का एकाधिकार नहीं हो सकता. भाषा महज अभिव्यक्ति का माध्यम है. वह वर्ग या वर्ण-भेद का हथियार नहीं होती. स्वयं अपना उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि वह आंध्र में जन्मे, दिल्ली में पढ़े और काफी समय तक केरल में हिंदी के प्राध्यापक रहे. परंतु वह जहां भी रहे, उन्होंने वहां की भाषा को अपनी मातृभाषा समझा. जहां तक लेखन का प्रश्न है, लिखना मात्र भाषा की जरूरत न हो कर अपने समय की सच्चाइयों को अभिव्यक्ति देने की कला होता है. कोई भी लेखक इस अभिव्यक्ति की सहजता के लिए किसी भी भाषा को चुन सकता है. समांतर कहानीकारों में ही कितने ऐसे हैं जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है. आबिद सुरती, राम अरोड़ा, आशीष सिन्हा,दया पवार आदि इसके उदाहरण हैं. इनके अतिरिक्त यशपाल और नागर जी जैसे उदाहरण भी हिंदी में हैं. अतः अहिंदी भाषी हिंदी के लेखकों में यह भावना, कि उन्हें हिंदी लेखक के रूप में मान्यता नहीं मिलती, अनुचित है.

भाषा के प्रश्न पर ही अपनी बात आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी तथा हिंदी भाषी क्षेत्रों में अहिंदी भाषाओं का प्रचार वांछनीय है. इस संदर्भ में उन्होंने रवि वर्मा का नाम लिया, जो वहां उपस्थित भी थे. उन्होंने कहा कि पिछले तीन-चार दशकों से रवि वर्मा केरल में हिंदी के प्रचार का कार्य कर रहे हैं और यह उनके ही अथक प्रयत्नों का परिणाम है कि आज असंख्य लोग केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु में हिंदी में लिखते हैं. वैसे बहुत अच्छी स्थिति यह होगी कि अहिंदी भाषी लोग हिंदी तथा हिंदी भाषी लोग किसी अन्य भाषा को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनायें. जिस दिन ऐसा होगा, उस दिन सही मायने में भाषा की छद्म दीवार टूटेगी और देश का साहित्य जन जीवन से जुड़ेगा.

★ ★

इसके बाद दलित साहित्य के प्रख्यात विचारक और लेखक दया पवार बोलने आये. अपने भाषण में उन्होंने मराठी रहे दलित साहित्य आंदोल परिचय दिया. उन्होंने कहा आज समाज में केवल वर्ग-भेद नहीं, वर्ण-भेद भी है. देश के दलित इस वर्ण-भेद के सदि शिकार होते चले आये हैं. के दलितों पर इस अत्याचार साथ-साथ पूंजीवादी शक्तियों उनका शोषण भी होता रहा इस मायने में, उन्होंने कहा, शोषण की कहानी आज के शोषण कहानी से अलग नहीं है. साहित्य इस शोषण के लड़ाई का एक माध्यम है. संघर्ष में हमारी आस्था अटू और हमारी पूरी लड़ाई उस हाथ के खिलाफ है, जो हमारा शोषण करता रहता है.

डॉ. मलिक मोहम्मद : कालीकट वि. वि. हिंदी विभाग के अध्यक्ष और कालीकट में समांतर सम्मेलन के संयोजक

समांतर साहित्य की करते हुए दया पवार ने कहा **दलित साहित्य समांतर साहि की एक धारा है और जिस प्र धारा कुछ दूर चल कर एक नदी में जा मिलती है, साहित्य उसी प्रकार आज सम साहित्य से मिल गया है!**

दया पवार के बाद पुष्कल ने 'समांतर वैचारि पर अपने विचार व्यक्त अपनी बात के शुरू में उन्होंने घटना का हवाला दिया कहा कि सुदूर उत्तर के गांव दक्षिण के गांव —दोनों में दूरी है, लेकिन मानवीय वेदना और संघर्ष में उत्तर दक्षिण के गावों में क्या अंतर

उन्होंने कहा कि जीवन समस्याएं सभी जगह एक हैं. सा इन्हीं जीवनगत समस्याओं हमारे सामने रखता है. वह के यथार्थ का चित्रण ही करता, बल्कि उसके यथार्थ के लिए जिम्मेदार श की साजिश का भंडाफोड़ भी है और इस प्रकार वर्ग-संघर्ष तीव्र करता है. कहानी के समांतर कहानी आज यही कर रही है.

इसके बाद हिंदी तथा

के विख्यात लेखक शौरिराजन ने अपने विचार रखे. उन्होंने कहा कि उनकी मातृभाषा तमिल है, परंतु अपनी रचनाशीलता के माध्यम से तथा एक जागरूक पाठक और लेखक होने के नाते वह स्वयं को जितना तमिल के निकट पाते हैं, उतना ही हिंदी के. अहिंदी प्रदेश, अहिंदी भाषा इत्यादि शब्दावली बेकार की बात लगती है. जब हमारी समस्याएं एक हैं, हमारी तकलीफें एक हैं और उनके लिए जिम्मेदार शक्तियां देश के विभिन्न भागों में अलग-अलग नहीं हैं, तब हिंदी या अन्य भाषाओं की बात कहां आती है! उन्होंने आगे कहा कि **समांतर सिर्फ हिंदी का न हो कर पूरे देश की भाषाओं और रचनाकारों का है.** उन रचनाकारों का जो वर्ग-संघर्ष में विश्वास करते हैं और उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से तीव्र करना चाहते हैं.

* *

अंतिम वक्ता थे कमलेश्वर, जो इस सभा के अध्यक्ष भी थे. उन्होंने अपनी बात एक नये सूत्र से शुरू की. उन्होंने कहा कि इस देश के साथ कहीं कुछ गलत हो रहा है. दक्षिणपंथी ताकतों को बहुत छूट मिल गयी है. टैक्सी ड्राइवर हो या मजदूर, कुली हो या किसान, बाबू हो या टेक्नीशियन, सभी आज यह सोचने को विवश हैं कि इस गलती की शुरुआत कब और कहां से हुई. और इस सवाल से जूझता हुआ देश का सामान्य जन अपनी बहुमुखी तकलीफों को झेलता हुआ एक गलत और गलीज जिंदगी जीने के लिए मजबूर होता जा रहा है. बंबई में एक बार एक मामूली टैक्सी ड्राइवर से हुई अपनी बातचीत का हवाला देते हुए उन्होंने बताया कि वह टैक्सी ड्राइवर बरसों से उत्तर भारत में रह रहे अपने बीवी-बच्चों से मिलने नहीं जा सका, क्योंकि उसके पास इतना पैसा नहीं है कि वह इतनी लंबी यात्रा पर जा सके. अपना पेट काट कर जो भी वह बचाता है, उसे अपने घर मनीऑर्डर कर देता है. बंबई में बीवी-बच्चों को ला कर साथ रखने की उसकी सामर्थ्य नहीं है. इस पर जब उन्होंने उससे पूछा कि उसे अपना भविष्य कैसा लगता है तो पहले तो वह 'भविष्य' शब्द का अर्थ नहीं समझा. जब समझा तो बोला, भविष्य तो साहेब, घाटे का लगता है. 'घाटे का भविष्य' यानी अवमूल्यन वाला भविष्य—आज के जन साधारण की नियति की सही व्याख्या है. परंतु क्या हम कभी सोचते हैं कि इस 'घाटे के भविष्य' के लिए जिम्मेदार कौन है?. . . . इसके लिए जिम्मेदार है पूंजीवादी दक्षिणपंथी खेमों का बढ़ता हुआ आर्थिक शोषण! देश में जितना भी विकास हुआ है उसके खिलाफ स्वार्थवादी शक्तियों न शोषण के रास्त ईजाद कर लिये हैं और यह 'घाटे का भविष्य' उसी का परिणाम है.

इस स्थिति को सुधारने के लिए इस नागफांस को तोड़ना होगा. समांतर साहित्य इस कार्य के लिए पूरी तरह समर्पित ही नहीं, बल्कि दृढ़ संकल्प है.

लेखकों के बारे में साधारण मान्यताओं का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि अभी बहुत दिनों की बात नहीं, जब लेखक अजूबा समझा जाता था. वह बुझी आंखों वाला, नाजुक जिस्म का एक जीव हुआ करता था, जिसके कंधे पर एक चादर लटकती रहती थी और जो स्वप्निल दृष्टि से इस दुनिया को देखा करता था. प्रमचंद ने इस मान्यता को तोड़ा. शायद इसीलिए उन्हें कलम-घिस्सू (मुंशी) कहा गया. किंतु प्रेमचंद कहीं ज्यादा ईमानदार और सही लेखक थ, क्योंकि वह अपने परिवेश और उसमें जी रहे विशाल जन-समुदाय से जुड़े थे. 'नयी कहानी' ने प्रेमचंद की इस परंपरा को नये आयाम दिये. परंतु तभी हिंदी कहानी के इतिहास में एक नया दौर आया, जब कहानियां होटलों के कमरों में बंद होने लगीं. उनके पात्र, नायक और नायिकाएं, उन कमरों की दूधिया रोशनी में एक-दूसरे की बाहों में समा कर-एक दूसरे की धड़कनों के अजनबीपन को पहचानने की कोशिश में मुबतिला हो गये. कहानी के इस रूप से जन साधारण को न कुछ मिलना था, न मिला. वह इन कहानियों से बेखबर अपनी आर्थिक लड़ाइयों में जूझता रहा. आज समांतर कहानी उसकी इस लड़ाई से, जो 'घाटे के भविष्य' को एक बेहतर भविष्य में परिवर्तित करने की लड़ाई है, स्वयं को संबद्ध पाती है, बल्कि वह उनकी लड़ाई लड़ती है—साहित्य के माध्यम से. भाषा इस लड़ाई को आगे बढ़ाने में कहीं आड़े नहीं आती, बल्कि वह एक सेतु का काम करती है और तभी आज यहां हम सब हिंदी के ही लेखक नहीं, बल्कि तमिल, गुजराती, मराठी और डोगरी आदि के लेखक आप मलयालम भाषी लेखकों के बीच हैं, जो बड़ी खुशी बात है!

कोई पांच बजे गोष्ठी शुरू हुई थी. नौ बजने वाले थे. उसके बाद सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन था. सांस्कृतिक कार्यक्रम के कलाकारों को आये काफी समय हो चुका था. भीड़ भी घटने के बजाय बढ़ रही थी. यह शायद सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने वालों की भीड़ थी. अतः यहीं पर सभा का समापन किया गया. (क्रमशः)

लेखनी प्रेरणालय

लेखन नगर

आ गया! आ गया!!

गोष्ठियों-सम्मेलनों का मौसम

३६% रिडक्शन सेल

हमारे यहां असफल लेखकों को जिजीविषा, संत्रास, कुण्ठा, शोषण आदि वाजिब दाम पर मिलेगा। कवियों की लेखनी के लिए पीर, टीस, चुभन, दर्द, व्यथा का जंबो स्टाक!

विशेष: 'धर्मयुग', 'सारिका', 'कादम्बिनी' के संपादकों की 'क्षमा-याचना सहित' वाली चार चिट्ठियां दिखाने पर एक कैक्टस का पौधा मुफ्त दिया जायेगा।

● व्यंग्य-विचार : कैलाश सेंगर

POND'S
VANISHING CREAM
GREASELESS FOUNDATION
MADE IN INDIA

आपके रूप के अनेक चहेते...
आपकी त्वचा के अनेक दुश्मन

पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम को अपना साथी बनाइए.

हवा, धूल और मौसम के तीखे प्रभाव से आपकी त्वचा की रक्षा करती है पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम. आपके रूप को और भी सलोना बनाने के लिए इसमें एक खास पदार्थ ह्युमेक्टेंट मिला है जो आपकी त्वचा की नमी को सुरक्षित रखता है.तभी आपका मुखड़ा मोतीयारा दीखता है और तैलमुक्त भी.इसे आप आदर्श पाउडर बेस के रूप में प्रयोग कर सकतीं हैं. घंटों-पहरों यह आपके सौंदर्य को अम्लान और मोहक बनाए रखती है. आप इसे संपूर्ण सौंदर्य प्रसाधन के रूप में भी प्रयोग कर सकतीं हैं.आप तो जानतीं ही हैं, आपकी त्वचा को भी उतना ही प्यार-दुलार चाहिए जितना कि आपको.

पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम — आदर्श पाउडर बेस

चीज़ब्रो-पॉण्ड्स इन्कॉर्पोरेटेड (सीमित दायित्व सहित यू. एस. ए. में संस्थापित)

मधुर मिलन का
सुन्दर साधन

सरसिल्क। ऐसे भड़कते, फड़कते रंग कि मन मचल उठे। ऐसे मनमोहक, हलके रंग कि मन खिल उठे। सादा, चारखाना और धारीदार कपड़े।
सरसिल्क सूटिंग और शर्टिंग में आपको वे सभी खूबियाँ मिलती हैं जो आप एक बढ़िया कपड़े में चाहते हैं। चलने में टिकाऊ। अच्छी पसन्द के अनुकूल। देख-भाल में आसान। और बिलकुल ठीक कीमत।

ASP/65/764

सरसिल्क
पॉलिएस्टर
सूटिंग और शर्टिंग

विक्रेता एजेंट : बम्बई : तुलसीदास कनोरिया एण्ड कम्पनी, पहली मंजिल, जाम्बुलवाडी (पूर्व), काल्बादेवी रोड, बम्बई। **गुजरात और गोवा :** डागा ब्रदर्स, १४१, मणि महल, काल्बादेवी रोड, बम्बई। **मध्य प्रदेश, विदर्भ और मराठवाडा** राठी एण्ड कम्पनी, १७, पाप्युलर होलसेल क्लाथमार्केट, गांधी बाग, नागपुर। **दिल्ली और हरियाणा :** बाम्बे ट्रेडिंग कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, कटरा अशरफी, चाँदनी चौक, दिल्ली। **राजस्थान :** हरीश एण्ड कम्पनी, मेहता मार्केट, जोधपुर। **पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर :** ओमेगा इंडस्टियल कारपोरेशन, कटरा आहलुवालिया, अमृतसर। **उत्तर प्रदेश :** कैसरीबाग ट्रेडिंग कारपोरेशन, विश्वंभर हाउस, २५/२६ ए, करांची खाना, कानपुर। **पश्चिम बंगाल :** अश्विनी कुमार एण्ड कम्पनी, ४, इंडियन ऐक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता। **बिहार :** ओरिएण्टल ऐन्टरप्राइजिज एण्ड एजन्सीज, इंडिया मशीनरी बिल्डिंग (दूसरी मंजिल), ऐग्जीबिशन रोड, पटना।

जरा मुस्कुराइये!

'खूबसूरती कैद करने की कला' कोई **माधुरी** से सीखे !

कौन नहीं चाहता किसी खूबसूरत पल को कैद करना......किसी हसीन याद को शीशे में उतार लेना? इसीलिए माधुरी में आपके लिए फिल्मी दुनिया के जाने माने फोटोग्राफर श्री प्रेम सागर द्वारा फोटोग्राफी पर एक विशेष स्तंभ होता है बिलकुल आसान भाषा में. घर बैठे फोटोग्राफी सीखिये और हँसते क्षणों को हमेशा के लिए कैद कर लीजिये.

माधुरी, सिने संसार की सबसे सुरुचिपूर्ण और सुलझे विचारों को सुलझे हुए ढंग से पेश करने वाली साहित्यिक पत्रिका होने के साथ-साथ सिने संसार का दर्पण और सितारों और दर्शकों के लिए मार्गदर्शक भी है. माधुरी में सितारों की ज़िंदगी के दिलचस्प पहलू, संगीत, फिल्म लेखन, संपादन, संकलन क्या नहीं है।

★ आर्ट पेपर पर कलात्मक मुखपृष्ठ
★ अधिक सामग्री

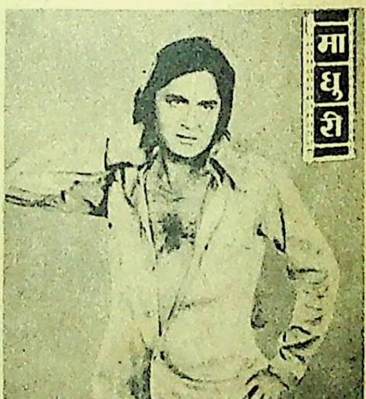

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

ARMS-BC/M-56-800-HN

फिल्म पत्रिकाओं की रानी **माधुरी**

एयर-इंडिया प्रस्तुत करती है सप्ताह में पैंसठ उड़ानें—५ महाद्वीपों के लिए.

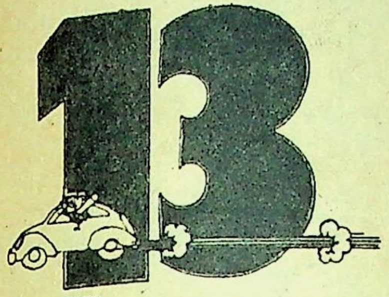

यूरोप

यूरोप के लिए सप्ताह में १३ उड़ानें

लंदन ? नौ ७४७ विमानों को आपका इंतज़ार है. इनमें से तीन, शुक्रवार, शनिवार और मंगलवार को, तेज़ गतिवाले हैं. अन्य छह में आपको रोम, पेरिस या फ्रैंकफर्ट हो कर जाने की सुविधा मिलती है. इसके अलावा दो ७०७ विमान जिनेवा हो कर. मॉस्को ? दो ७०७ विमान.

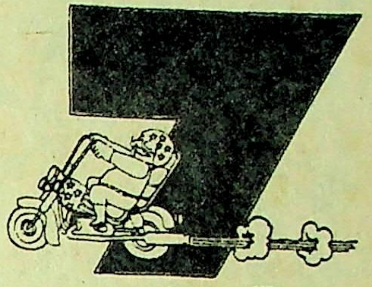

न्यू यॉर्क

न्यू यॉर्क के लिए सप्ताह में ७ उड़ानें

हर दिन ७४७ विमान की एक उड़ान. मध्य पूर्व और यूरोप होते हुए. हमारे विशेष एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत न्यू यॉर्क जा कर वापस लौटने का किराया आम तौर पर लगनेवाले एकतरफ़ा किराये से भी कम पड़ता है.

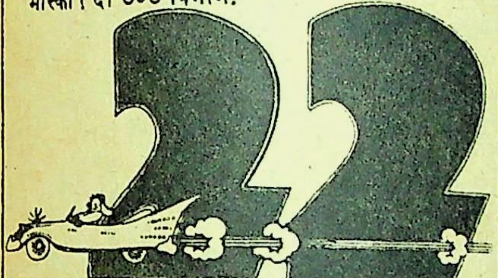

मध्य पूर्व

मध्य पूर्व के लिए सप्ताह में २२ उड़ानें

बेरूत ? पाँच ७४७ विमान उड़ान भरने को तैयार. कुवैत ? चार ७४७ तथा दो ७०७ विमानों में से आप मनपसंद चुनाव कर सकते हैं. दुबई के लिए चार ७०७ विमानों में से कोईसा भी चुनिए. बहरैन तथा मस्कत के लिए तीन उड़ानें तथा आबू धाबी, कैरो और तेहरान में से प्रत्येक के लिए दो उड़ानें. इसके अलावा अदन, दौहा या दहरान में से प्रत्येक के लिए एक ७०७ विमान.

साथ ही हर सप्ताह :
६ उड़ानें
जापान के लिए हौंग कौंग हो कर—
४ टोकियो के लिए
२ ओसाका के लिए. १० उड़ानें
दक्षिण पूर्व एशिया के लिए—
६ बैंकॉक के लिए और
४ सिंगापुर के लिए.
२ उड़ानें
ऑस्ट्रेलिया के लिए
३ उड़ानें
पूर्व अफ्रीका के लिए
२ उड़ानें
मॉरिशस के लिए.

एयर-इंडिया
आपकी मनपसंद एयरलाईन

AI. 9084

बेनेट कोलमन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई–१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१; कलकत्ता आफिस : १३ १ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०–ए, [illegible] रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.

पंजीयत सं. एम. एच. दक्षिण बंबई-२९१

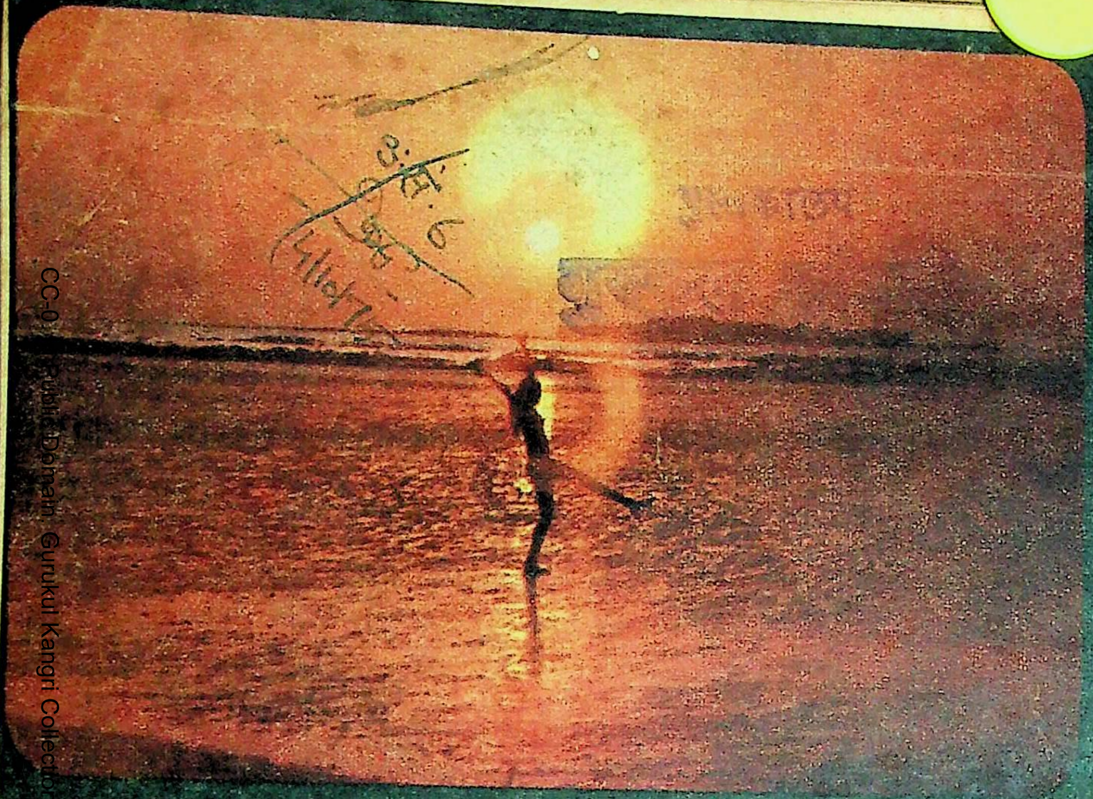

अं.सं. 6

जी में आता है कभी कभी
साहिल हो समन्दर का-
तन्हाई हो
शाख़ों को छेड़ती हुई साँझ की धूप
साहिल पे उतर आई हो
और हम-दुनिया के एंजोग़िक्र से दूर
कपड़ों की क़ैद से आज़ाद
चले जाएं बहुत दूर जहाँ
मिलते हैं ज़मीनो आसमाँ
लहरों को छेड़ती हुई बादे शमीम
बदन से खेलती हुई बादे शमीम
लिपट जाए हमसे
उनके ख़यालों की तरह!

नवसारी शर्टिंग्स
अनोखा एहसास

ारिका

अक्तूबर १९७५

16/10/75

[illegible]

मानिया और वेस्ट इंडीज की
हानियों का विशिष्ट खंड

बलदेव वैद के
हास्य उपन्यास
लादवा' का एक अंश

शपाल की विशिष्ट
हानी!
भी स्थायी
भ

ऑफ इंडिया
१
काशन

पैरिस ब्यूटी
ब्रेसियर्ज़
सौंदर्य के साथी
५० से भी अधिक
आधुनिक डिज़ाइन
ड्रीम गर्ल
(फ्रंट हुक)
22.00
उपहार
(यू० बैक)
29.75
पैरिस ब्यूटी
रोज़ी
(यू० बैक)
24.95
उर्वशी
(यू० बैक)
16.50
TRENDS

पैरिस ब्यूटी ब्रेसियर्ज़ आपके शरीर की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ५० से भी अधिक डिज़ायनों में बनाई जाती हैं। हर डिज़ायन पहनने में सुविधाजनक है। मज़बूत सिलाई... बढ़िया इलास्टिक व स्ट्रैप ... इसके प्रयोग से आपके सौन्दर्य में और निखार आएगा।

भारत में सभी प्रसिद्ध विक्रेताओं से प्राप्य

पैरिस ब्यूटी सेल्स कार्पोरेशन

अजमलखाँ रोड, करोल बाग़, नई दिल्ली-5. फोन : 566594

सिम्प्लेक्स
वूलन ब्लैंकेट्स

ब्लैंकेट
शाल
ब्लेज़र
मफ़लर

SIMPLEX WOOLLEN MILLS
swm
BOMBAY

सिम्प्लेक्स
वूलन मिल्स, बम्बई-४०० ०६८

IMPRESSIONS 641

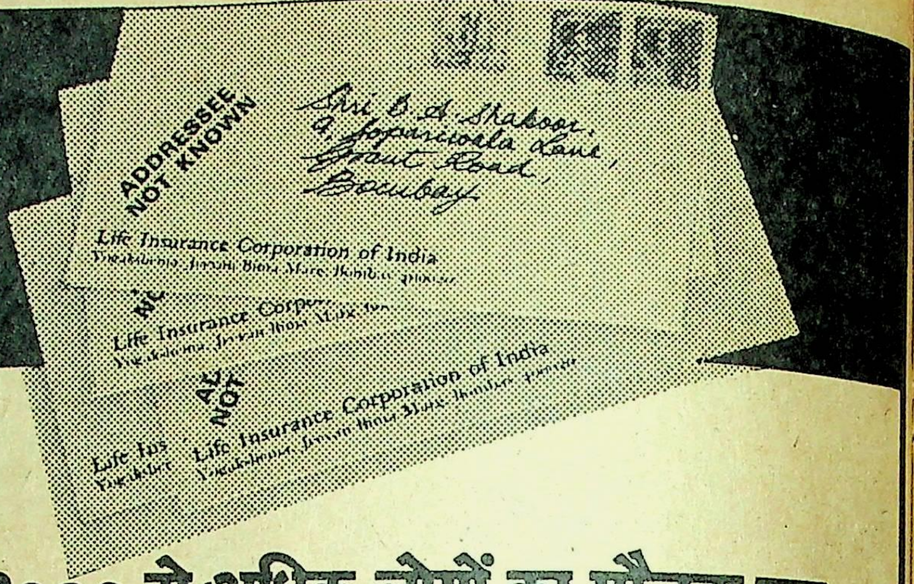
ADDRESSEE NOT KNOWN
Shri B. A. Shakoor,
4, Jopariwala Lane,
Grant Road,
Bombay
Life Insurance Corporation of India
Life Insurance Corporation of India
Life Ins
NOT

४००० से अधिक लोगों का मौजूदा पता न जानने के कारण हम परिपक्वता-दावों का भुगतान न कर सके

आप उन्हीं लोगों में से एक तो नहीं हैं ?

यह बात भले ही अविश्वसनीय लग जाए लेकिन वह सच है। सैकड़ो लोग इस नन्हीं सी बात को भूल गये हैं। उन्हें यह भी पता नहीं है कि निगम से उन्हें पैसे मिलने वाले हैं। आप पूछेंगे कि ऐसा क्यों हुआ ? तो सुनिए :

पालिसी लेने के बाद वे नई जगह पर रहने के लिये चले गये और उसकी सूचना उन्होंने निगम को नहीं दी। नतीजा यह हुआ कि उन्हें न कोई फार्म मिले और न ही डिस्चार्ज वाउचर।

क्या आपके पास कोई ऐसी पालिसी तो नहीं है ? यदि हो तो जाच कर लीजिये और देखिये–

● उस पालिसी की अवधि कब पूरी होती है ? ● यदि उसकी अवधि पूरी हो चुकी हो तो आप अपनी पालिसी का पूरा विवरण देकर उस कार्यालय को लिखिये जहाँ से आपको सेवा मिलती थी। एक बात और आप उसमें अपना नया पता देना न भूलें। ● चालू पालिसी उसे कहते हैं जिसके अबतक के सारे प्रीमियम अदा किये गये हों ● और चुकता बीमा पालिसी वह है जिसके आपने कम-से-कम दो या तीन साल के प्रीमियम अदा किये हों।

चुकता बीमा पालिसी के आपको कितने पैसे मिलेंगे ?

उसपर अनुपातिक राशि दी जाती है। जैसे-१०,००० रुपये की २० वर्ष की पालिसी के ५ वर्ष के प्रीमियम दिये जाने पर आपको २,५०० रुपये मिलेंगे। (१९५६ के पहले की बीमा कम्पनियों द्वारा जारी की गई पालिसियों के लिये ये दरें अलग-अलग हैं) ४४ लाख रुपयों का भुगतान कराना अब बाकी है। उनमें से २,६४८ चुकता बीमा पालिसियों पर...१८,५० लाख रु. देने हैं और १,३८६ चालू पालिसियों पर...२५.१२ लाख रु. यदि आपके मन में कोई संदेह पैदा हो जाए तो आप तुरन्त जीवन बीमा एजेंट से मिलिये या अधिक जानकारी के लिये निकटतम कार्यालय से सम्पर्क प्रस्थापित कीजिए।

कर सकेंगे सेवा बेहतर आपकी सहायता के बल पर!

लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन आफ इण्डिया

RADEUS/LIC/AS-12

सांस में दुर्गंध जुदाई कराये...

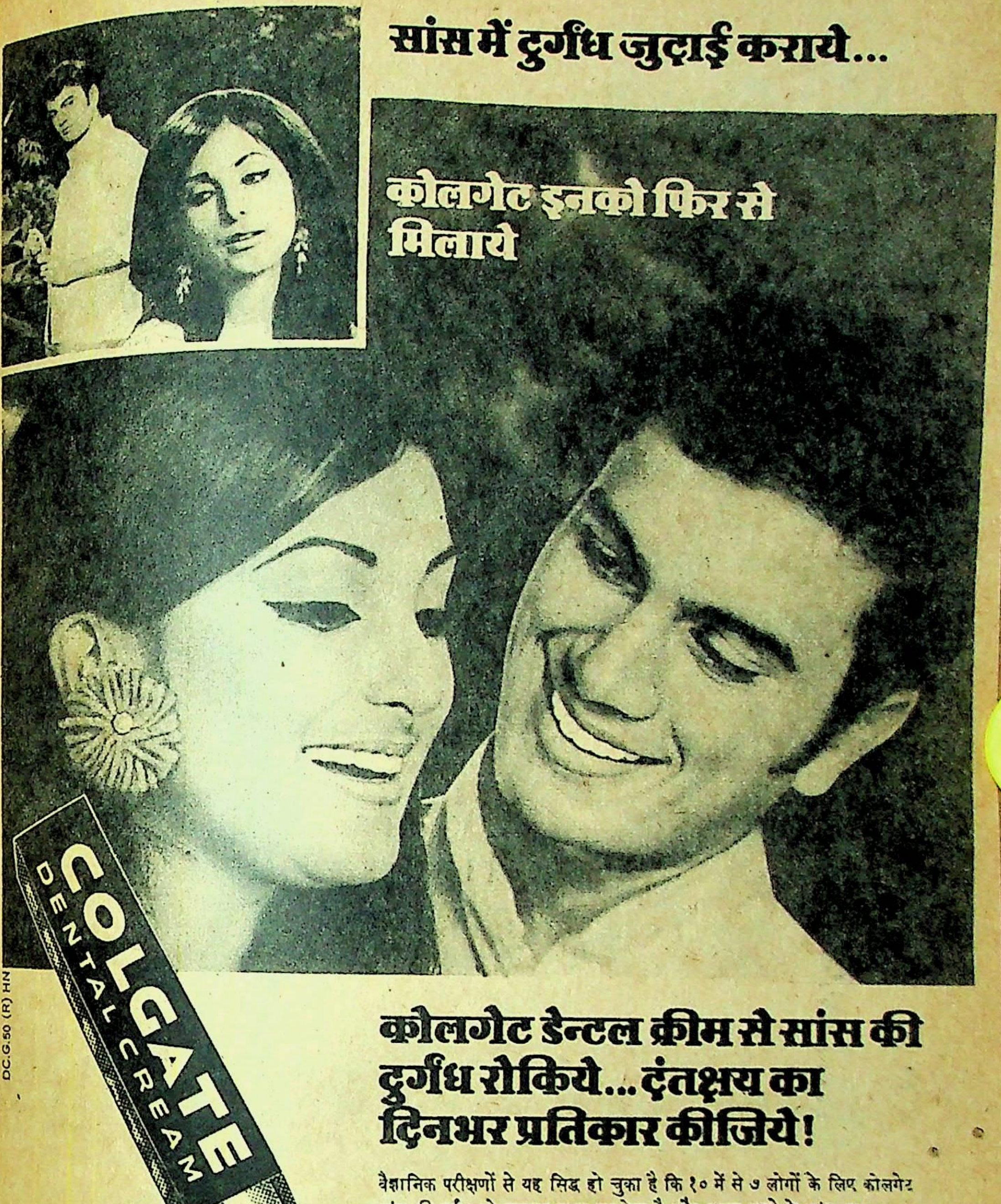
कोलगेट इनको फिर से मिलाये

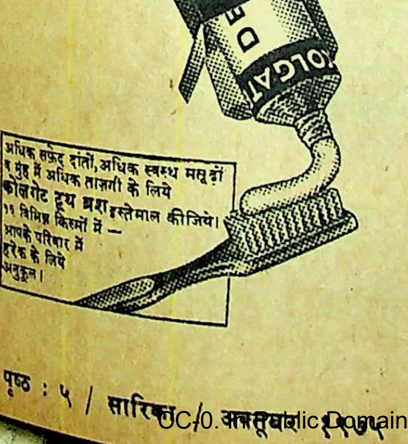

DC.G.50 (R) HN

अधिक सफ़ेद दांतों, अधिक स्वस्थ मसूढ़ों व मुंह में अधिक ताज़गी के लिये
कोलगेट टूथ ब्रश इस्तेमाल कीजिये।
११ विभिन्न किस्मों में —
आपके परिवार में
हरेक के लिये
अनुकूल।

कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की दुर्गंध रोकिये... दंतक्षय का दिनभर प्रतिकार कीजिये!

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल खत्म कर देता है और खाना खाने के तुरंत बाद कोलगेट विधि से दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का—अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक कीटाणुओं को दूर कर देता है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए...
दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही खरीदते हैं।

कहानीकार

विशिष्ट कहानियों
की मासिकी

इस अङ्क में
पढ़ें—
विनायक
राजाराम सिंह
दीप्ति खण्डेलवाल
अजित पुष्कल
चन्द्रकान्त बक्षी
की
सशक्त
कहानियाँ
तथा
अन्य रचनाएं

●

कहानीकार प्रकाशन १ रुपया
(अ०-सि० '७४ संयुक्तांक)
वर्ष : ५ ● पूर्णांक : ५०.

उर्दू का बहुचर्चित एवं उर्दू अकादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास—

बहुत देर कर दी ले. अलीम मसरूर

कहानीकार प्रकाशन द्वारा हिन्दी में सजिल्द आकर्षक डिमाई में शीघ्र प्रकाश्य
मूल्य २० रुपये ● पृष्ठ ३०० ● मात्र १६/– तत्काल भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें
कार्यालय ● के. ३०/३७ अरविन्द कुटीर (निकट भैरवनाथ) वाराणसी-१

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका
सारिका
अक्तूबर, १९७५
वर्ष : १५; पूर्णांक : १७४

रोमानिया और वेस्टइंडीज़ की कहानियों का विशिष्ट खंड

कहानियां

फानूस निआगू (रोमानिया) : अपने-अपने साथी : १२
मेरिन प्रेदा (रोमानिया) : प्यार की जीत : १६
सिनजिआना पॉप (रोमानिया) : एक चित्र : २३
कामिल बासियू (रोमानिया) नारंगी सूर्य : २४
जार्जी सुशियू (रोमानिया) : करिनेलिया : २७
माइकेल अंतोनी (वेस्टइंडीज) : रात के अंधेरे में : २८
बार्तोवास रेमन फोर्चून (वेस्टइंडीज) : फिसलन : ३०
जेन विलियम्स (वेस्टइंडीज) : लहरें तुम्हें पुकारें : ३२
जेन केरयू (वेस्टइंडीज) : इंद्रधनुष का पुत्र : ३६

अन्य कहानियां

यशपाल : कौन जाने ? : ४४
प्रेम सिंह नेगी : कथा की कथा : ४८
कुलदीप कुमार : ट्रांसफर : ५८
ज्योतिष जानी : आइस्क्रीम का एक कोन : ६०
रवींद्रनाथ ठाकुर : पुष्प का मूल्य : ६३
रणजीत कुमार साहा : अंधेरे की उम्र : ६४
नारायण 'भारती' : राजा का मूल्य : ७०
कृष्ण बलदेव वैद : इंतहा : ७२
कृष्ण प्रसाद मिश्र : यशोदा का शोक : ८४

लघुकथाएं

महल, खाक : १५, एक खिड़की की खातिर: २१, खलीफा की तनुख्वाह : ३९, सात हजार छह सौ अस्सी खून : ४७, हैरानी : ५९, गुरुकुल: ६२, सर्वोत्तमजल,पूंछ : ६९ ईसा का चित्र : ७७
बिना जाति का आदमी : ४७

गर्दिश के दिन

राबिन शॉ पुष्प : ५२

विशिष्ट लेख

रोमानिया और वेस्टइंडीज का कथा-साहित्य: १०

गोष्ठी रिपोर्ट

चौथा समांतर लेखक सम्मेलन : ८९

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ८, गुस्ताखियां : ४०, विविधा : ७८, लघुकथाएं : ८० कृतियां : राम अरोड़ा, रामदरश मिश्र : ८२, फिल्में : ९१

आमुख सूर्यकांत एम. दुधेड़िया

●

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंद प्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

बाढ़ और अकाल सहायता कोष : पाठकों से अपील

बिहार के पटना क्षेत्र में अभूतपूर्व बाढ़ से व्यापक क्षति और लोगों की मृत्यु हुई है. संपति भी बिल्कुल बर्बाद हो गयी है, जिससे लाखों व्यक्ति अवर्णनीय कष्ट में फंस गये हैं. ऐसे पीड़ित लाखों व्यक्तियों की राहत के लिए एक धर्मादा ट्रस्ट स्थापित किया गया है, जिसका नाम है---बाढ़ और अकाल सहायता समिति.

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड (टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन समूह) ने बाढ़ और अकाल सहायता कोष में २५ हजार रुपये का दान देकर समिति की ओर से धन-संग्रह अभियान आरंभ किया है. कृपया 'फ्लड एंड फेमीन रिलीफ कमिटी, बंबई' के नाम जारी किया हुआ अपना चेक और नकद निम्नलिखित पते पर अथवा कंपनी के दिल्ली, अहमदाबाद, कलकत्ता और मद्रास-स्थित कार्यालय में से किसी भी कार्यालय को भेजिए

सेक्रेटरी, बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-१

ऐसे दान की रकम पर आयकर की छूट के लिए प्रमाणपत्र और रकम-प्राप्ति की रसीद बाढ़ और अकाल सहायता समिति, बंबई, देगी.

पाठकीय

● **श्री गणेशराव, जी. सी. एफ. स्टेट, जबलपुर (म. प्र.) से लिखते हैं :**

. . .पाठकीय स्तंभ के अंतर्गत दलित-साहित्य के संदर्भ में छपी प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं पर प्रतिक्रिया व्यक्त करना वस्तुस्थिति सामने रखने की दृष्टि से मुझे अनिवार्य लगा. . .श्री प्रमोदकुमार ने हरिजनों के अत्याचार और सवर्णों की बेचारगी का उल्लेख किया है. काश, उन्होंने एकाध उदाहरण भी दिया होता! ऐसी बात अवश्य देखने-सुनने में आयी कि हरिजनों द्वारा सवर्ण पीटे गये हैं. लेकिन कब? क्या किसी सवर्ण के मंदिर में प्रवेश करने पर, या नलों अथवा कुओं पर पानी भरते समय, या किसी सवर्ण लड़की को हरिजनों द्वारा अस्मत लूटने पर? क्या ठीक इसके विपरीत सवर्णों द्वारा ऐसे अमानवीय, पाशविक, क्रूर व्यवहार पर ये स्थितियां निर्मित नहीं हुई हैं? नौकरी में हरिजनों के लिए केवल पंद्रह प्रतिशत रिजर्वेशन होता है, किंतु उसमें भी अयोग्यता का बहाना बना कर सवर्ण ठूंस लिये जाते हैं. . .आचार्य प्रतापादित्य सदियों से कैदनुमा जिंदगी जीने वालों को और कितना संयमित बनाना चाहते हैं?. . .श्री रविरंजन प्रसाद बतायें कि गर्त से निकल कर दुर्जेय, उत्तुंग शिखरों को पराजित करना क्या बगैर संघर्ष के संभव है? क्या आज ऐसे धर्म की आवश्यकता नहीं है जिसमें सहानुभूति, समता और स्वातंत्र्य अनिवार्य तत्त्व हों? क्या इन तत्वों के बगैर मानव-कल्याण संभव है?. . .श्री हरनाम सिंह सही कहते हैं कि बौद्ध बन जाने से इस समस्या से छुटकारा नहीं मिल सकता. . .गांधीजी ने हमें हरिजन नाम दिया, यानी ईश्वर के जन, हरि के जन, परंतु इन हरि के जनों के प्रति सवर्णों का क्या दृष्टिकोण है, यह आप किसी सवर्ण हरिभक्त को हरिजन कह कर देख लीजिए. . .श्रीमती पोद्दार से मैं कहना चाहता हूं कि संस्कारहीनता का कारण अशिक्षा और अशिक्षा का कारण गरीबी है. यह गरीबी इतनी भयानक है कि अवर्ण गरीब उससे जूझ-जूझ कर उम्र खतम कर लेता है. जहां कहीं भी उसे इस संघर्ष से फुरसत मिली है, उसने संस्कृत और शिक्षित होने का प्रयास किया है. समस्त सुविधाएं बंद करने से वह फिर पेट की समस्या में उलझ जायेगा. सुविधाएं बंद करने की बजाय सुविधाओं का रूप बदलना आवश्यक है. उन्हें पैसे देने की बजाय जरूरी चीजें देनी चाहिए. □

● **(डा. राम जिलोहा, १२० डॉक्टर्स होस्टल, मेडिकल कॉलेज रोहतक, हरियाणा ने भी अपनी प्रतिक्रिया में ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं).**

'सारिका' जीवन की आवश्यकता!

● **सुश्री अर्चना भारत, राजेंद्रनगर, बिलासपुर (म. प्र.) से लिखती हैं:**

पिछले कई वर्षों से हवा, पानी और मकान के साथ-साथ **'सारिका'** भी जीवन की मूलभूत आवश्यकता के समान हो गयी है. इसकी आम आदमी के बीच की कहानियां दिल में कहीं गहरे तक समा जाती हैं और लगता है कि कहानियों में अपने ही चारों ओर का वातावरण मुखर हो उठा हो. समांतर कहानी विशेषांक प्रशंसनीय हैं. नवलेखन अंक–२ की लघुकथाएं अपनी संक्षिप्तता के बावजूद जीवन की शाश्वत गहराइयों के निकट हैं. □

एक अपील

भारत के युयुत्सावादी लेखकों की ओर से अन्याय भाषाओं और शिविरों के लेखकों से निवेदन करना चाहूंगा कि आज इतिहास ने हमें जिस मोड़ पर अवस्थित कर दिया है, वहां नयी संभावनाओं के क्षितिज का एक ऐसा छोर मिलता है, जिससे जुड़ी हुई उपलब्धियां आने वाली पीढ़ी के प्रकाशमय भविष्य के निर्माण में नींव के पत्थर का कार्य करेंगी. लेकिन उसके लिए आवश्यक है कि देश का बौद्धिक वर्ग, विशेष रूप से परिवर्तनकामी युवा बौद्धिक वर्ग, इसमें सक्रिय रूप से सहयोग दे, अर्थात् सकारात्मक वैचारिक दृष्टिकोण अपना कर वह अपने आसपास के लोगों को यह बताये कि अपेक्षित उपलब्धियों तक पहुंचने के लिए वे जन सामान्य को आत्मोत्थान की दिशा में प्रेरित करें. और यह तभी संभव है, जब प्रत्येक व्यक्ति अनुशासन और परिश्रम के साथ ही साथ अपने दायित्व को समझते हुए परस्पर सहयोग की भावना से कार्य करे अर्थात् अपने आपको और अपने देश को ठीक ढंग से प्यार कर सकने की मानसिकता से जुड़े. तभी वह भारत के नये आर्थिक और सांस्कृतिक स्वरूप को दुनिया के सामने रख पायेगा. इसके लिए किसी जादू की छड़ी की प्रतीक्षा किये बगैर हमें अपने सीमित साधनों के सही उपयोग की बात सोचनी चाहिए. आशा है हमारे लेखक बंधु इस मुद्दे पर सोचेंगे और हमें अपने विचारों से अवगत कराते हुए एक ऐसे ठोस कार्यक्रम की रूपरेखा भी देंगे जो आज की परिस्थितियों में हमारी भूमिका के निर्धारण में निर्विवाद रूप से सहायक हो सकेगी. तथास्तु!

● **शलभ श्रीरामसिंह, अशोक मेटल इंडस्ट्रीज लि.,**
१५७ नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता –७००००१.

● **श्री नरेंद्रप्रसाद, गुलाबबाग, बेतिया (बिहार) से लिखते हैं:**

'सारिका' के जुलाई अंक के पाठकीय में श्री मदनराव भोमली द्वारा बौद्धिक स्तर पर उठाये गये प्रश्न से कि दलित किसे कहते हैं, लगता है कि वह इस पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं कि 'न्याय के दौरान किसी के साथ अन्याय नहीं हो जाये.' उन्हें इस बात की चिंता है कि यह अंक उन सवर्णों को निस्संदेह दुख पहुंचायेगा, जो हरिजनों को समाज में एकाकार करने के भगीरथ प्रयत्न में लगे हैं. □

● **श्री श्रीकांत 'अमलतास', लल्लूपोखर, मुंगेर से लिखते हैं:**

जुलाई की **'सारिका'** अति विलंब से मिली, लेकिन विलंब की सारी शिकायतें पढ़ने के बाद दूर हो गयीं. साहित्यिकी का परिसंवाद प्रस्तुत करने के लिए धन्यवाद. से रा. यात्री के सुलझे हुए तर्क उन सारे आलोचकों (और लेखकों) की नजर खोल देंगे जो समांतर कहानियों को सिर्फ स्टंट और लेखक के प्रकाशित होने की टेकनीक समझते हैं. सच यह है कि साहित्यकार अपने को परिवेश से अलग रख ही नहीं सकता और साहित्य की विधा तब तक पूर्ण नहीं है जब तक वह मामूली आदमी की मामूली इच्छाओं के लिए नहीं बनती. इस संदर्भ में यात्री जी ने प्रतिबद्धता और संबद्धता का डिस्टिंक्शन स्पष्टतः कर दिया है. अब शायद समांतर को आंदोलन कह कर लोग कहानी को भटकाने की कोशिश नहीं करेंगे. □

● **श्री सुनील पाठक, ऑफिसर्स मेस, एयरफोर्स अकेडमी, हैदराबाद (आं. प्र.) से लिखते हैं:**

'सारिका' के जुलाई-अंक में उपलब्ध समांतर साहित्य की सामग्री ने ढूंढ़ने-खोजने और उतार-चढ़ाव का पर्याप्त दायरा प्रदान किया है. **परिसंवाद** कि समांतर क्या महज एक आंदोलन है, विचारोत्तेजक होने के साथ-साथ इस बात की भी मांग करता है कि आप से. रा. यात्री के साथ हैं अथवा गोविंद मिश्र के... □

समांतर कथा-साहित्य पर एक बहस

● **विभुकुमार**

अगस्त की तीन तारीख, युवा कथाकार अशोक मिश्र का घर और दोपहर का समय.

छत्तीसगढ़ अंचल के जाने-माने कवि-कथाकार इस अभिनव व विचारोत्तेजक बहस के लिए भिलाई में उपस्थित थे. इसी भिलाई में है 'इस्पात हिंदी साहित्य संसद' जिसने समांतर कथा-गोष्ठी का आयोजन किया आगंतुकों में थे सर्वश्री दानेश्वर शर्मा, केशव पांडे, गंगाप्रसाद सिंह, क्षत्री, तथा **'सारिका'** के कुछ पाठक.

गोष्ठी के प्रारंभ में श्री गंगाप्रसाद सिंह ने अपने आलेख में **'सारिका'** के सभी दस समांतर विशेषांकों के उन अंशों को उद्धरण के तौर पर लिया, जिन्हें श्री कमलेश्वर ने अपने संपादकीय में बतौर प्रश्नों के उठाया है. श्री सिंह ने अपने तईं बात बहुत कम कही और अपने वक्तव्य को श्री कमलेश्वर के संपादकीय तक अधिक सीमित रखा.

अपने आलेख में उन्होंने अंत में अपनी एक जिज्ञासा व्यक्त कि कि कमलेश्वर जी के समांतर कहानियों के संदर्भ में दिये गये वक्तव्यों में और नयी कहानियों के समय में दिये गये वक्तव्यों में कोई विशेष अंतर नहीं है, इसलिए उन्हें 'समांतर' शब्द का औचित्य समझ में नहीं आया. उन्होंने यह अवश्य कहा कि बावजूद इसके **'सारिका'** के इधर के अंकों की कहानियों का स्वर निश्चित रूप से अलहदा है और ज्यादा प्रामाणिक भी.

श्री छत्री ने **'विदा-अलविदा'**, **'तीसरी सांस'**, **'एक बिछा हुआ आदमी'**, **'एस.एल. ए. साहब'** तथा अन्य कहानियों के उदाहरणों से यह सिद्ध किया कि ये सभी कहानियां समय-सापेक्ष कहानियां हैं. उन्होंने समांतर कहानियों की सबसे प्रमुख विशेषता ही यह मानी कि ये कहानियां समय-सापेक्ष कहानियां है. अन्य कथाकारों में सुदीप, इब्राहीम शरीफ और प्रभु जोशी की कहानियों की उन्होंने विशेष प्रशंसा की.

श्री दानेश्वर शर्मा ने इस बात पर विशेष जोर दिया कि समांतर कथा विशेषांकों के माध्यम से कई सशक्त नये कथाकार सामने आ रहे हैं, जो अपने आसपास के परिवेश के प्रति पूरी ईमानदार दृष्टि रखते हैं.

श्री केवश पांडे ने चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहा कि यह शुभ लक्षण है कि समांतर कथा साहित्य ने अपने को आम आदमी के साथ जोड़ा है.

अंत में विभुकुमार ने कहा कि निस्संदेह समांतर साहित्य समय-सापेक्ष है और समांतर कथाकार लफ्फाजी में विश्वास नहीं करता. समांतर कहानियां आम आदमी की, आम आदमी के लिए, आम आदमी (कथाकार) के द्वारा लिखी कहानियां हैं. समांतर कहानियां कहानियां न हो कर जीती जागती हकीकतें हैं, इसीलिए इन कहानियों में आम आदमी अपने आपको देखता है, फिर चाहे वह भिलाई कारखाने का मजदूर या क्लर्क हो, या खेतों का मजदूर. विभुकुमार ने कहा कि समांतर कहानी की जीवंतता का सबसे बड़ा कारण उसका अंतहीन दायरा है, तभी उसमें दलित साहित्य भी समाहित होता है. समांतर कहानी ने पहली बार सवर्ण मुद्रा हटा कर दलित साहित्य से अपने को जोड़ा है. इसीलिए निश्चित ही कथा के अन्य हलकों में समांतर कहानी बौखलाहट का बायस बनेगी—बनी है. समांतर कहानी की यही मुद्रा उसे 'आंदोलन' जैसे संकीर्ण और सीमित दायरे से अलग करती है.

अंत में इस्पात हिंदी साहित्य संसद के अध्यक्ष ने गोष्ठी की अप्रत्याशित सफलता के लिए साहित्यकारों को बधाई दी. □

रोमानिया और वेस्ट इंडीज़ का कथा-साहित्य

रोमानिया यूरोप के उन देशों में से है, जिनकी भाषा और साहित्य पर विदेशी भाषाओं और साहित्य का प्रभाव बहुत गहरा रहा है. यह सही है कि रोमानिया के पास अपने लोक और मौखिक साहित्य का बहुत बड़ा भंडार मौजूद है; फिर भी उसकी भौगोलिक स्थिति ने वहां के साहित्य पर रूसी, पोलिश, हंगेरियाई, तुर्की और यूनानी प्रभावों को स्वीकार करते रहने पर मजबूर किया है.

रोमानिया में छापेखाने का आगमन सन् १६०१ में हुआ. अन्य यूरोपीय देशों की तरह रोमानिया में भी छापेखाने का इस्तेमाल ईसाई धर्मग्रंथों के प्रकाशन के लिए सबसे पहले किया गया. बाद में काव्य-साहित्य का क्रम आया. करीब सौ-सवा सौ साल तक विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित धार्मिक साहित्य का अनुवाद ही रोमानियाई भाषा में प्रकाशित होता रहा. अपने साहित्य को प्रकाश में लाने की दिशा में कोई कार्य हुआ भी तो वह रोमानियाई इतिहास को ले कर ही था.

रचनात्मक साहित्य के स्तर पर सबसे पहले ऐतिहासिक कथाओं की रचना हुई. इस दिशा में ज्यॉर्ज असाची (१७८८-१८६९) का नाम सबसे पहले आता है. रूसी, फ्रांसीसी और इतालवी रूमानी प्रभाव के तहत रोमानिया में काव्यकथाओं की रचना हुई. इस काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेखक ग्रिगोर अलेग्जांद्रेस्क्यू है, जिसने बॉयल्यू, लामार्तीन ला फोंतेन, वॉल्तेयर और बायरन की रूमानी रचनाओं से प्रभावित हो कर उच्चकोटि की कथाएं और व्यंग्य-रचनाएं लिखीं.

१९वीं सदी के उत्तरार्ध में वेसाइल अलेक्जांद्री (१८२१-९०) तथा मिहाइल एमीनेस्क्यू (१८५०-८९) रोमानियाई साहित्य पर छाये रहे. इन लेखकों ने कविताएं तो लिखी हीं, साथ ही कहानियां भी लिखीं और लोक-साहित्य का संकलन भी किया. (एमीनेस्क्यू भारतीय हिंदू दर्शन से प्रभावित था और उसने रोमानियाई कविता को चिंतन के धरातल पर श्रेष्ठता की कोटि में पहुंचा दिया.)

इसी काल में इयोन क्रीएंग्या (१८३७-८९) ने, विदेशी प्रभावों से पूरी तरह मुक्त रह कर, लोक-कथाओं को साहित्यिक रूप प्रदान किया और **'बचपन की यादें'** नामक पुस्तक लिखी. निर्दोष ग्रामीण जीवन की कलात्मक झलक इस लेखक की रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होती है.

उसी काल में ऐतिहासिक उपन्यास के लेखन की शुरुआत भी हुई. नेग्रुत्सी (१८०८-६९), ओदोबोस्क्यू (१८३४-९५), गीका (१८१६-९७), इयोन स्लावीची (१८४८-१९१५) आदि इस युग के कर्णधार थे. स्लावीची ने ग्राम्य-जीवन के नैतिक द्वंद्वों को अपनी कहानियों का मुख्य विषय बनाया.

इस युग का सर्वश्रेष्ट लेखक है आई. एल. कारागियेल (१८५२-१९१२) जिसने नाटक लिखे और उच्च कोटि के रेखा-चित्रों के साथ कलात्मक कहानियां भी लिखीं. अपने श्रेष्ठ हास्य तथा तेजधार व्यंग्य के बल पर उसने अपने समकालीन परिवेश का जीवंत चित्रण किया.

* *

बीसवीं सदी के प्रारंभ तक रोमानियाई कथा-साहित्य का मुख्य आधार ग्राम्य-जीवन ही था. फिर पहले और दूसरे महायुद्ध के बीच के वर्षों में उपन्यास-लेखन की जबरदस्त लहर आयी. इस काल में अनेक महागाथाएं रची गयीं; लिवियू रेबरेन्यू ने अपने उपन्यास **'इयोन'** (१९२०) में किसान वर्ग की धरती की प्यास और स्वतंत्रता की आकांक्षा का चित्रण किया; वैयक्तिक यातना और स्वातंत्र्य-संघर्ष का वृहद् चित्रण **'रासकोआला'** (१९३२) में हुआ; सीजर पेत्रेस्क्यू, मिनीलेस्क्यू, इयोनेल थियोदोरेन्यू आदि अन्य उपन्यासकारों ने स्थायी महत्व की औपन्यासिक कृतियों की रचना भी इसी काल में की. लेकिन कहानी-लेखन इस काल में एक बार फिर पृष्ठभूमि में चला गया.

दूसरे महायुद्ध के बाद कहानी एक बार फिर उभर कर सामने आ गयी. अन्य यूरोपीय कथाकारों की तरह रोमानियाई कथाकारों को भी यह लगा कि युद्ध की विभीषिका से त्रस्त लोगों के जीवन को यदि कोई विधा प्रतिबिंबित कर सकती है तो वह कहानी ही हो सकती है. धीरे-धीरे कहानी साहित्य की केंद्रीय विधा के रूप में स्थापित होने लगी. अलेक्सांद्रू साहिया, वेसाइल बारन तथा सिनजियाना पॉप आदि जैसे कहानीकारों ने जन-जीवन को उसके यथार्थ के साथ चित्रित करना शुरू किया और अनेक अविस्मरणीय और चुभती हुई कथा-रचनाएं लिखीं.

पिछले एक दशक में रोमानियाई कथाकार मानव की वैज्ञानिक प्रगति को ले कर बहुत जागरूक हुए हैं. उन्होंने स्पष्ट देखा है कि इस प्रगति ने जहां मनुष्य को अपरिमित सुविधाएं दी हैं, वहीं असीमित शक्ति भी दी है. . . . मगर यह भय भी उनके मन में पनप रहा है कि कहीं यह शक्ति किसी और महायुद्ध का कारण न बन जाये. अगर यह युद्ध हुआ तो इसका असर सिर्फ इस धरती पर ही पड़ेगा, याकि एक बार पूरी सृष्टि उसकी चपेट में आ जायेगी? इस प्रश्न को ले कर और इस प्रश्न की भयावहता से त्रस्त हो कर रोमांस की दुनिया में पलायन कर जाने की मानसिकता से वे बार-बार कहानियां लिखते हैं, जिनमें से कुछ कहानियां इस अंक में संकलित हैं.

वेस्ट इंडीज का कथा-साहित्य

● गोपालचंद्र जोशी

वेस्ट इंडियन कहानी आज यूरोप और अमरीका के साहित्यिक क्षितिजों पर छायी हुई है. समालोचक एंड्रू साल्की का खयाल है कि सन् १९५० में एडगर मिटलहोल्जर के द्वितीय उपन्यास **'ए मार्निंग एट आफिस'** का प्रकाशन वेस्ट इंडियन कथा-साहित्य के नये दिशामान का प्रतीक है. और उसके साथ ही नयी पीढ़ी के नये कथाकार अपने-अपने खास माहौल के साथ वेस्ट इंडियन रंगमंच पर तेजी से उतरने लगे, जिनमें राइड, सेम्युअल सेल्वन, जार्ज लेमींग, जोन हर्न, नॉयपॉल, जेन केरयू और एडा क्वेयल जैसी प्रतिभाओं ने अपने बेहतरीन उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से अपनी खास जगह बना ली. मिटलहोल्जर का पहला उपन्यास **'कोरेंटाइन थंडर'** जो १९४१ में प्रकाशित हुआ, अलबत्ता उसको पुरानी पीढ़ी की जमात से जोड़ता है, जिसमें वेवर, डिलीसर, वाल्ड्रन, ओगील्वी और मेके जैसे कलम के कारीगर शरीक थे. इसलिए यह कहना संगत मालूम होता है कि जहां से मिटलहोल्जर ने पूर्ववर्ती कथाकारों से रिश्ता तोड़ा, वहीं से वेस्ट इंडीज की नयी कहानी की शुरुआत हुई.

एक दिलचस्प बात यह है कि नयी और पुरानी दोनों पीढ़ियों के कथाकार पहले अपने को उपन्यासकार ही मान कर चले, लेकिन असल में उन्हें पहचाना गया उनकी कहानियों के जरिये से.

अतः वेस्ट इंडियन कहानी नवागत है, लेकिन उसका ढांचा कसा हुआ, विधा का निर्वाह परिपक्व, सामग्री आंचलिक तथा दृष्टि पैनी और तटस्थ है. निस्संदेह सांस्कृतिक संधियों पर खड़े किसी भी देश के कहानी-साहित्य के लिए यह एक उपलब्धि है. वेस्ट इंडीज के छोटे-छोटे टापू, जो भौगोलिक, आर्थिक और सामाजिक सीमाओं में बंधे हुए हैं, बड़ी बारीकी और लगन से अलग से अपनी-अपनी कहानी कहते हैं क्योंकि उनके परिप्रेक्ष्य भिन्न हैं और उनकी महत्वाकांक्षाओं के स्तर भी भिन्न हैं : त्रीनिदाद की कहानियां अवज्ञाभरी वाग्विदग्धता, कटु हास्य और बेधक संवेदनशीलता का नक्शा खींचने में बेजोड़ हैं; ब्रिटिश गायना के कथाकार का झुकाव दंतकथा, रहस्य और जनश्रुतियों की ओर ज्यादा है; उधर बार्बेडॉस के लेखन की अलंकारिकता, वाक्पटुता और असह्य गंभीरता बार्बेडॉस द्वीप की विशिष्ट परंपरा का हवाला देती है. अगर डोमीनीकन कहानीकार अंधविश्वास और किंवदंती की परतों को कुरेदता दिखता है, तो सेंत् लूसियन की कहानियों में गीतात्मक औदास्य और विषण्ण भावधारा का वातावरण निर्मित हुआ है. कहानीकारों ने अपने परिवेश को इतनी ईमानदारी से पेश किया है कि हर द्वीप की आंचलिकता और स्थानीय रंग को उजागर करने में विधा सफल हुई है.

यह नहीं कि इन कहानियों में विरोधाभास न आया हो, लेकिन उसकी संभावनाएं धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक कहानियों में ज्यादा मिलती हैं; कम-से-कम शुद्ध साहित्यिक कहानियों पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता. यहां तक कि सेंत् लूसियन की कहानियों में आयी हीनभावना और जेमेकन कहानियों में वर्ग-चेतना, असह्य दंभ और अधीरता को ट्रेजिक या कॉमिक परिवेश में उतारा गया है. अगर गहराई से देखा जाये तो अलग-अलग टेंपरामेंट वाले कहानीकारों में समानताएं अधिक और भेद कम दिखेंगे, क्योंकि वेस्ट इंडीज के विभिन्न द्वीपों से टकराने वाली अश्रांत लहरें एक ही समुद्र की हैं.

और इन सब के बीच एक चीज बेशक हमें आकर्षित करती है और वह है भावनात्मक असमानताओं और वैचारिक अभिरुचियों के रेतीले तटों को स्नात करती हुई अबाध और अविराम लहरें— लहरें जिनका उत्स वह जीवन है, जिसमें ज्वार भी है और भाटा भी, जिसमें खारापन भी है और गहराई भी, जिसमें औदास्य भी है और उछाह भी. और वह जीवन सहज है, न उसमें कुछ थोपा गया है, न उसमें से कुछ निकाला गया है.

वेस्ट इंडियन कथाकारों की नयी पीढ़ी न केवल संघर्षरत है, बल्कि मूल्यों की खोज के प्रति भी वह सचेष्ट है. वेस्ट इंडीज के टापुओं की क़हानियों में टूटने और बिखरने की पीड़ा हो सकती है, लेकिन उनमें विघटन का स्वर तो कम-से-कम नहीं है; क्योंकि मूल्यों के लिए वहां का कहानीकार मुखौटे लगा कर स्वांग रचने की कोशिश नहीं करता. वहां सिद्धांतों का गतिरोध या अस्तित्ववादी ठंडे आक्रोश की नकल भी नहीं है. नयी पीढ़ी के अन्य कथाकार जैसे ग्रे, बारनेस, फोर्ड, गिटंस, मेकफरलेन, स्कोबी, सिमंड्स, विटर और वूलफोर्ड की साफ-सुथरी, सुलझी हुई कहानियां इस बात का सबूत हैं.

वेस्ट इंडीज की कहानी का एक दूसरा पहलू भी है : अभाव और निर्धनता को यथावत स्वीकार करते हुए वे लोग, जिनकी रोजमर्रा जिंदगी समुद्र से सतत और कड़ा संघर्ष है. यहां दुखांत की परछाइयां सूरज की चमकीली धूप को कभी-कभी ढंक देती हैं, लेकिन वे सिर्फ परछाइयां हैं— कहीं घटाघोप नहीं. माइकेल एंथोनी ब्रेथवेट और जेन विलियम्स की कहानियां हम मिसाल के तौर पर ले सकते हैं. वेस्ट इंडियन द्वीपों का समूह मानो परस्पर गुंथी हुई क़हानियों की शृंखला है—उनके कथानकों और उद्देश्यों के अंतराल को जीवन का वही सहज प्रवाह जोड़ता है. यह एक विस्मय की बात है कि अपनी खुद की साहित्यिक परंपरा और प्रकाशन के समुचित साधनों के अभाव में भी वेस्ट इंडियन कहानीकार अच्छी कहानियां लिखने में सफल हुए हैं. □ □ □

मैं पिछले छह दिनों से इस दलदली इलाके में मऊद के साथ हूं. उसका नाम सचमुच बड़ा अजीब है—मऊद. और उसके इन नाम का उसकी उस मुसकराहट से कोई वास्ता नहीं है, जो उस वक्त उसके चेहरे पर नमूदार होती है, जब वह पहाड़ी के नीचे तलहटी में उगे गेहूं के खेत में रेंगते किसी सांप को पकड़ कर अपने तेज चाकू से चीर डालती है. उसकी वह मंद मुसकान उसके सारे चेहरे पर होती है. फिर भी उसके दांत और होठों के कोनें इसमें शामिल होने से महरूम रह जाते हैं.

उस रात चांद पूरे शबाब पर था, लेकिन मऊद बोरियत महसूस कर रही थी. हम उस वक्त मीटिओरॉलॉजिकल स्टेशन के बिल्कुल नजदीक थे, जहां हमारे सोने के लिए इंतजाम था. यह कतई गैर-आबाद या यूं कहें कि उजाड़ जगह है. इस स्टेशन के इंचार्ज युवा वैज्ञानिक ज्यूको थे, जिनका सिर और चेहरा-मोहरा किसी घोड़े से मिलता-जुलता था.

—अब सिर्फ दो दिन के बाद इस दलदली इलाके में फसल कटनी शुरू हो जायेगी. करीब एक सौ युवक-युवतियां फसल काटने यहां आ जायेंगे और फिर एक रात मूसलाधार बारिश होगी. जून में मूसलाधार बारिश होती है. है न, ज्यूको? मऊद बोली.

ज्यूको एक झाड़ू को ठीक-ठाक करके बांध रहा था. उसके सामने एक टेबल थी, जिस पर कुछ कार्ड पड़े थे.

—हां, मऊद. ज्यूको ने छोटा-सा जवाब दिया और वह मऊद की जांघों तक खुली टांगों की तरफ देखने लगा, जो चांदनी में हलकी पीली नजर आ रही थीं.

अपनी बात को पूरी करते हुए वह आगे बोला—लेकिन हफ्ते में सिर्फ दो बार. वह भी देन्यूब के किनारे तक. उसके आगे बारिश का एक भी कतरा नहीं गिरता और साल बीत जाता है.

—बारिश तो होती ही है, मऊद कहने लगी और पहले छूटी बात का जोड़ मिलाने लगी. फसल काटने वालियों में से मैं भी एक हूं, यह मुझे भूलना नहीं चाहिए.

—यह क्या कह रही हो, मऊद? तुम फसल काटने वाली टोली में से हो, ऐसा लगता नहीं! तुम उन युवतियों से कहीं ज्यादा सुंदर हो.

—शट अप! वह बोली. मैं उन्ही में से एक हूं और यहां पनाह लेने आयी हूं.

—पनाह लेने? किसके पास? मेरे पास?

—नहीं, मीहे के पास! मऊद ने मेरी तरफ इशारा करते हुए कहा. मीहे. . . डाक्टर मीहे, उसने यह कहते हुए अपना सिर झुका लिया.

—लेकिन तुमने तो कहा था, यह कोई इंजीनियर हैं! ज्यूको मेरी तरफ देखते हुए बोला. आज यह डॉक्टर कैसे हो गये?

—हां, यह इंजीनियर हैं, मऊद बोली. लेकिन तुम इतना भी नहीं समझते कि हमारे यहां की किसान लड़कियां अच्छी पोशाक पहने अनजान व्यक्ति को डॉक्टर कह कर ही संबोधित करती हैं.

ज्यूको हंसा. —मैं ऐसा नहीं सोचता था, मऊद, कि जो लड़की पिछले तीन सालों से यहां आ रही है, वह अपनी बोलचाल में अभी तक गंवार होगी.

—तुम्हें बोलने की तमीज है? मऊद ने नाराज होते हुए कहा.

—मैं पिछले तीन सालों से तुम्हारा यह जुमला सुन रहा हूं! ज्यूको ने लापरवाही से कहा. लेकिन फिर भी इसके लिए मैं तुमसे माफी मांगता हूं.

—इसे छोड़ो भी! मैंने कहा. तुम यह क्या किस्सा ले बैठे!

—तुम एक खूबसूरत फव्वारे की तरह हसीन हो, मऊद! ज्यूको बोला. संगमरमर में तराशे हुए किसी दिलकश ख्वाब की ताबीर!

मऊद वहां से उठ कर खिड़की की जाली के पास कुरसी पर जा कर बैठ गयी. चांदनी खिड़की की जाली से छन कर उसके चेहरे पर बेतरतीब बिखर रही थी. मच्छरों की भिनभिनाहट इस शांत माहौल में साफ सुनाई दे रही थी. मऊद खामोश बैठी थी. उसके दोनों हाथ उसके घुटनों पर थे. उसके छोटे बाल किसी लड़के के बालों की तरह संवारे हुए थे. उसके उदास चेहरे पर कु

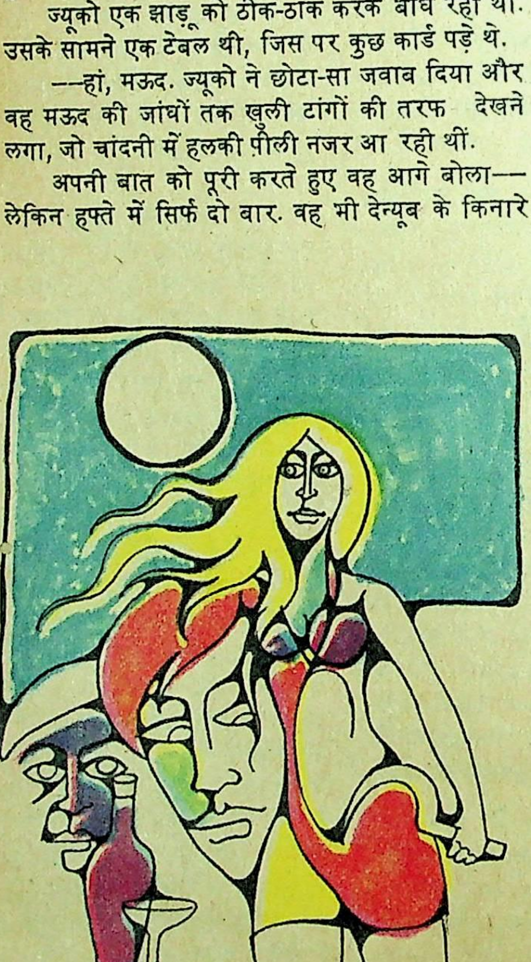

• प्रकाश नेरूरकर

अपने-अपने साथी

• फानूस निआगू

सोचने जैसे आसार थे. मुमकिन है कि वह कुछ सोच नहीं रही हो और सिर्फ मच्छरों की भिनभिनाहट या दूर दलदल में चीख रहे भेड़ियों की आवाज सुन रही हो. वह बहुत सुंदर लग रही थी और उसकी इस सुंदरता को वातावरण ने और भी बढ़ा दिया था. रात का समय. पूरा चांद. शुरू गर्मियों की रात. अकेली युवती. दो युवक. एक कमरा. आधी बची शराब की बोतल. मऊद की जांघों तक खुली टांगें. कंधों तक नंगे हाथ. शरीर के दो गोल दायरे. यह दृश्य किसी भी चित्रकार को उसे कैनवस पर उतारने के लिए मजबूर करने को काफी था.

ज्यूको ने झाड़ू बांध कर दरवाजे की तरफ जोर से फेंक दिया और उस रात पहली बार मऊद के चेहरे में सीधे झांक कर देखा.

—मऊद, तुम संगमरमर में तराशा हुआ एक हसीन ख्वाब हो! किसी कुशल चित्रकार की तूलिका से बनी तसवीर!

—कविता बनी नहीं! मऊद जम्हाई लेते हुए बोली. अब मैं सोऊंगी. मुझे नींद आ रही है. सुबह जल्दी उठ कर कहीं से एक दरांती लानी है.

मऊद चली गयी. गलियारे से उसके कदमों के पड़ने की आवाज आने लगी. और फिर शांति.

★ ★

ज्यूको अपनी जगह से उठा. वह चल कर खिड़की के पास वहीं खड़ा हो गया, जहां अभी कुछ ही देर पहले मऊद बैठी थी.

दूर समुद्र में एक जहाज जा रहा था. उसकी नीली, पीली, लाल रोशनियां दूर से दिखाई दे रही थीं.

—शायद यह जहाज विएना से आया है. . . ज्यूको बोला.

मैं उठ कर खिड़की के नजदीक उसके पास जाने लगा.

—यहां मत आओ. उसने मुझे वहां आने से रोकते हुए कहा. तुम इस जहाज को मत देखो.

कुछ क्षणों के बाद वह फिर बोला — आओ, हम इस बोतल को खत्म कर लें.

मैंने बोतल की तरफ देखा.—मैं ब्रांडी पसंद करता हूं. आप ही इसे खत्म कर दें.

वह खिड़की से हट कर मेरे सामने मेज पर आ कर बैठ गया. उसने बोतल की शराब को गिलास में डाला और दो बार में पी गया.

—यह तुम्हें कहां से पकड़ लायी? . . . मेरा मतलब है, मऊद. . .अगर नहीं बताना चाहते हो, तो कोई जरूरत नहीं. . .वह पूछने लगा.

मऊद साथ के कमरे में थी. वह कुछ गुनगुना रही थी. शायद कपड़े बदल रही थी.

—कल रात मुझे ठीक से नींद नहीं आयी. सुबह उठा, तो सारे शरीर में चिपचिपाहट-सी लगी. ऐसे वक्त में बियर हो, तो नींद का लुत्फ आ जाता है. मैं यहां कभी बियर लाया ही नहीं.

वह बोले जा रहा था. और वह शायद अब तक यह भी भूल गया था कि उसने मुझसे कोई सवाल भी किया था, इसलिए मैंने भी जवाब देना मुनासिब नहीं समझा. सिर्फ बोलते हुए उसे देखता रहा.

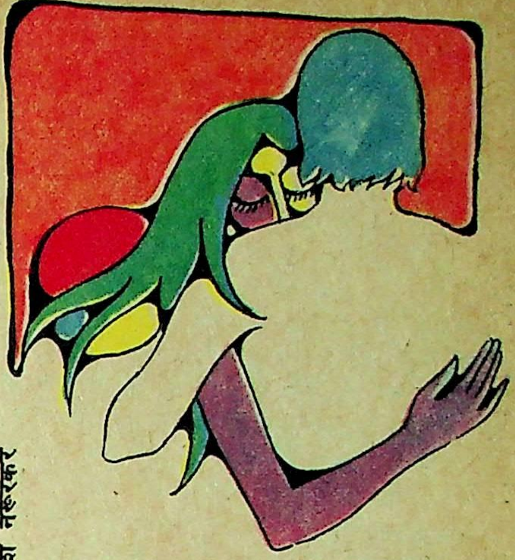

● प्रकाश नेरूरकर

—मुझे मौसम-संबंधी पूर्व-सूचना देने के लिए एक फर्लांग दूर खुले में रखी प्रूफ स्टिक्स देखने जाना था. मैंने घोड़े पर जीन कसी और चल दिया. लौटा, तो घोड़ा मऊद के कमरे की खिड़की के पास से गुजरा. मैंने घोड़ा रोक लिया. मऊद पीठ के बल सो रही थी. उसके शरीर पर एक भी कपड़ा नहीं था और उसके पीछे का हिस्सा दिखाई नहीं दे रहा था.

—उस वक्त तुम्हारे शरीर में सरसराहट होने लगी होगी! मैंने उसकी बातों में पहली बार दिलचस्पी लेते हुए कहा.

—नहीं, बेवकूफ! उसने मुझे डांटा. मैं वैसा आदमी नहीं हूं. तुम मऊद से पूछना. वह पिछले तीन साल से मुझे जानती है. पिछली गर्मियों का ही तो जिक्र है कि मैंने. . .

अभी उसने इतना ही कहा था कि किसी के आने की खड़खड़ाहट हुई.

—एक मिनट! वह बोला.

—कोई बात नहीं, मैंने कहा.

उसने आने वाले को पहचानते हुए आवाज दी—इंको इजारो?

दूसरे ही क्षण पचास-पचपन साल का एक व्यक्ति कमरे के अंदर आ खड़ा हुआ.

—तुमने कैसे जाना कि मैं आ गया हूं? आगंतुक झेंपता-सा बोला.

—वायदा किया था. हमें-तुम्हें एक-दूसरे के बगैर चैन कहां! अभी तो मैं कुछ पढ़ना चाहता हूं. मेरे लिए कुछ पढ़ने को लाओ! ज्यूको बोला.

—प्रेम-संबंधी?

—नहीं, यह जरूरी नहीं. कुछ भी ले आओ.

—मैं साथ में. कुछ खाने के लिए भी लाऊंगा. आज शाम गांव से कुछ चीजें खरीद कर लाया हूं.

—अच्छा हुआ, इजारो तुम आ गये. अब रात अच्छी कटेगी.

इजारो वापस चला गया.

—हां, तो मैं एक घटना सुना रहा था. ज्यूको मेरी तरफ देख कर बोला. पिछले जून की ही बात है. फसल काटने वाले आ गये थे और यहां से थोड़ी दूर लगाये गये खेमों में रात को सो रहे थे. मैं और मऊद सामने बरामदे में बैठे थे. बत्ती बंद थी. हम दोनों खामोश थे. उन दिनों मेरे विभाग का एक अफसर मुआयने के लिए यहां आया हुआ था. वह अंदर कमरे में सो रहा था. वह कहीं जाग न जाये, इसलिए हम बहुत आहिस्ता बातें कर रहे थे. मेरी और मऊद की आंखें सामने गेहूं के खेतों की तरफ थीं. पके हुए गेहूं की बालियों और चांद की किरणों ने मिल कर सब तरफ हलका पीला रंग बिखेर दिया था. एकाएक मुझे एक मच्छर ने पांव में काटा और मैं पांव सहलाने लगा. तभी मऊद ने मेरा हाथ जोर से झिंझोड़ा और सामने खलिहान की तरफ इशारा किया. मैंने गिनती बोलनी शुरू की, तो मऊद ने अपना हाथ मेरे मुंह पर रख कर मुझे ऐसा करने से रोक दिया. लेकिन मैं मन-ही-मन गिनता रहा— तीन, चार, पांच, और फिर तीन और कुल मिला कर आठ लड़कियां. सब-की-सब निर्वस्त्र, एकदम नंगी, जैसे मऊद कल रात को थी. वे खेमों से निकल कर आयी थीं और एक-दूसरे का पीछा कर रही थीं. मऊद और मैं चुपचाप बैठे उन्हें देखते रहे. वे सब हवा में अपने हाथ हिला रही थीं, मानो चांदनी में नहा रही हों. उनका यह नृत्य थोड़ी देर तक चलता रहा. उसके बाद वे नदी की तरफ चली गयीं.

—'आओ, हम भी देन्यूब की तरफ चलें.' मऊद हाथ पकड़ कर मुझे उठाती हुई बोली.

—हम दोनों देन्यूब के किनारे आ गये. चांद ऐसे ही चमक रहा था, जैसे आज वहां हमने देखा, कि खेमों से निकल कर कुछ युवक आये और उनमें से एक-एक को अपने साथ खेतों में ले गये.

इतना कह कर वह चुप हो गया. मैं उसे गौर से देखने लगा. उसकी पहली बातचीत को सुन कर उससे कोई सवाल करने की हिम्मत मुझमें नहीं थी.

वह फिर कहने लगा— अगले दिन इस घटना को ले कर मैं मऊद से बातचीत करना चाहता था, लेकिन उसने सिर्फ चंद जुमले कह कर आगे बात करने से इनकार कर दिया.

—क्या कहा था मऊद ने? मैंने पूछा.

—वह कहने लगी, तुम मर्दजात इस बात को क्या जानो! जब कोई स्त्री मर्द की जरूरत महसूस करती है, तो उसका सारा शरीर एक खास उन्माद से भर उठता है. तब उसे अपने समर्पण का जरा भी भय नहीं होता, बल्कि अपने को समर्पित करके खुशी होती है. . . मुझे अच्छी तरह याद है, उस दिन सवेरे मैं खेतों की तरफ गया था. मैंने देखा कि आठ-दस जगह डेढ़-दो गज भूमि में उगी खड़ी गेहूं की बालें जमीन पर आ रही हैं.

—क्या मैं अंदर आ जाऊं?

इजारो की आवाज सुनाई दी. मैंने कोई जवाब नहीं दिया. ज्यूको ही बोला—आ क्यों नहीं जाते? दरवाजा तो नहीं था. फिर इजाजत की क्या जरूरत थी! मैं किसीकी बुराई नहीं कर रहा हूं.

इजारो अंदर आ गया. वह मुसकरा रहा था. कद का मोटा शरीर, खाकी ड्रिल की पैंट, जिसमें बहुत लापरवाही से डाली हुई. हाथ में कोई सस्ते का उपन्यास और एक टोकरी, जिसमें कुछ फल खाने की दूसरी चीजें, एक बोतल या शायद एक और

हम सबकी नजरें दरवाजे की तरफ थीं, जहां मऊद आ खड़ी हुई थी. मऊद को वहां आया देख कर इजा बोला— तुम्हें नींद नहीं आती है? खैर, बड़ी मेहरबा की, जो यहां आयीं.

मऊद ने पायजामा पहन रखा था. उसके हाथ उस जैकेट की जेबों में थे. बिना लिपस्टिक के होठ और राते बालों से वह अपनी असली उम्र से कम उम्र नजर आ रही थी.

—आओ मऊद, ज्यूको बोला. सामने चारपाई बैठ जाओ. और फिर मुझसे कहने लगा—अभी थोड़ी पहले यह लड़की यहां बैठी ऊंघ रही थी. और अब देखो

मैं हंसने लगा, तो वह आगे बोला— थकान करने के लिए इसे आधा घंटे का वक्त काफी है.

इजारो खुशामदी लहजे में बोला— मऊद सुंदर लड़की चिराग ले कर ढूंढने पर भी नहीं मिलेगी.

—शट अप! मऊद महीन आवाज में बो वैसे मेरे सामने मेरी तारीफ करते नहीं थकते और मुझे आये आज छह रोज हो गये, किसी दिन आ कर पूछा कि कैसी हो, मऊद?

—मैं तो बुखारेस्ट गया हुआ था. उसके बाद एक दोस्त से मिलने पास के गांव चला गया. अगर होता, तो तुम्हें पूछने न आता? इजारो ने सफाई

—अच्छा भई, बोतल निकालो! ज्यूको बात का सा बोला.

इजारो ने टोकरी से बोतल निकाली और मऊद तरफ देखा, जो अब रूठी हुई-सी चारपाई पर जा बैठ गयी थी.

—मैं अब पीना चाहता हूं. कुछ सुनना नहीं चाह ज्यूको ने मऊद और इजारो से न बोलने का आग्रह हुए इजारो से पूछा—एक ही बोतल ले कर चले हो

—नहीं तो! अभी एक और है.

—तो उसे भी बाहर निकालो. मैं अब पीना गाना चाहता हूं. तुम्हारे साथ रात बहुत अच्छी बीते

* *

ज्यूको और इजारो पीने लगे. मऊद और मैं खामो बैठे थे. ज्यूको ने मऊद से कहा— मऊद, जाओ, सो जा

—और यह क्या करेंगे? ज्यूको ने मेरी तरफ इशा किया. मऊद, इन्हें तुम अपने साथ ले जाओ. मैं जा हूं, तुम्हें इनकी जरूरत है. ठीक उसी पिछले जून की की तरह, जब लड़कियां खेतों में नंगी. . . चांदनी रात ओह . . . बस, जाओ. चली जाओ. . . जाओ!

ज्यूको बहकने लगा था.

मऊद मेरे पास आ खड़ी हुई. मैंने उसका हाथ

लिया.—मऊद, क्या तुम सचमुच चाहती हो कि मैं तुम्हारे साथ. . .?

मऊद मुझे अपने साथ दूसरे कमरे में ले गयी.

खेतों में सरकंडे हिल रहे थे. कमरे की खिड़की में चांद उतर आया था. ज्यूको और इजारो अपने कमरे में नाच-गा रहे थे.

—वे यहां नहीं जायेंगे. मऊद ने मेरे एकदम करीब आ कर आहिस्ता से अपने नथुनों की गर्म सांस छोड़ी. दूसरे ही क्षण वह मेरे सीने में समा गयी. मैंने उसे चूम लिया. उसके भीगे चेहरे को चांद ने चांदनी के मुलम्मे से और ज्यादा चमकदार बना दिया था.

—मीहे, तुम नहीं जानते, मैं भी ज्यूको की तरह तनहाई का शिकार हूं.

—तनहाई?

—हां, मीहे. उसे औरत नहीं चाहिए. उसे तो आदमी. . .

मैं मऊद को अपने शरीर में महसूस कर रहा था. वह लावे की तरह जल रही थी.

—आज की रात चांद बहुत सुंदर है. ये खेत जो मुझे रात को काटने को दौड़ते हैं, आज बेहद अच्छे लग रहे हैं. और ज्यूको का यह गीत जिसके बोल साफ सुनाई नहीं दे रहे हैं, जिसे वह रोज ही रात को गाता है, मुझे पसंद नहीं था, आज अच्छा लग रहा है. ज्यूको, गाते रहो, सारी रात. अपने-अपने साथी. मीहे, तुम्हारा शरीर कितना गर्म है? तप रहा है. मैं बेहद खुश हूं. . . बेहद.

दूर सरकंडों के पीछे कोई लोमड़ी चिल्ला रही थी. लावा पिघल गया था. रात धीरे-धीरे सरक रही थी. मऊद मेरी बांहों में गहरी नींद सो गयी थी. मैंने धीरे से उसपर चादर डाल दी और सो गया.

* *

सवेरे ज्यूको के चिल्लाने की आवाज सुन कर मेरी आंखें खुल गयीं. मऊद कमरे में नहीं थी.

—क्या किस्सा है? तुम इस तरह रो क्यों रहे हो? मैंने ज्यूको को फूट-फूट कर रोते हुए देख कर पूछा और घबरा कर बिस्तर से उठ बैठा. तभी कहीं से मऊद कमरे में आ गयी. उसके हाथ में एक दरांती थी. ज्यूको के मुंह से अब भी ब्रांडी की बू आ रही थी.

मऊद को वहां आया देख ज्यूको रोते हुए चिल्लाया —तुम्हें हमेशा कुछ-न-कुछ काटने के लिए चाहिए. यह तीसरा आदमी है, जिसे तुम यहां लायी हो. कुछ मालूम भी है, कल रात इजारो मर गया. . . !

—इजारो मर गया!

—हां, आधी रात के बाद वह एक बोतल और लेने बस्ती में गया था. नशे में रास्ता भूल कर दलदल में चला गया. इजारो डूब गया. इजारो. . .

ज्यूको रो रहा था. मऊद आश्चर्य से उसे देख रही थी, मानो उसे विश्वास न हुआ हो. मैं एक गुनहगार की तरह उन दोनों के बीच में खड़ा था. खामोश. ज्यूको बाहर चला गया. मैं और मऊद कमरे के कैनवस पर चित्रलिखित-से खड़े रह गये. □□□

(अनुवाद : हमीदुल्ला खां)

दो लघुकथाएं

महल

हजरत हातिम एक बार मदीना शरीफ में पधारे. वहां देखा कि कुछ लोगों ने बड़े-बड़े आलीशान मकान, बल्कि महल, बनवा रखे हैं. आपने लोगों से पूछा—यह शहर किसका है?

उन्होंने कहा—यह अल्लाह के रसूल का शहर है.

हजरत हातिम ने कहा—मैं उस महल में नमाज पढ़ना चाहता हूं, जिसमें अल्लाह के रसूल रहते थे.

लोगों ने कहा—उनका महल कहां था! हुजूर तो एक कच्चे मकान में रहते थे, जिसकी दीवारें खजूर की शाखों पर मिट्टी थोप कर बनायी गयी थीं.

हातिम ने पूछा—तो फिर पैगंबर के खलीफाओं के महल कहां हैं?

जवाब मिला—उनमें से किसी ने महल नहीं बनाया.

इस पर हातिम ने बिगड़ कर फरमाया—तो फिर तुमने अल्लाह के रसूल के शहर में नमरूद व फिरऔन की तरह ये आलीशान महल क्यों खड़े कर रखे हैं?

लोग शर्मिंदा हो गये और उनसे कोई जवाब न बन पड़ा. □

खाक

हजरत दाऊद ताई के पास एक नौकरानी थी, जो आपकी सेवा करती थी. एक दिन उसने हजरत से अर्ज की—अगर आप इजाजत दें तो आज थोड़ा-सा गोश्त पका लूं!

आपने फरमाया—हां पका लो. मेरा भी जी चाहता है.

उसने खूब अच्छी तरह गोश्त पकाया और आपके सामने ला कर रख दिया तो आपने पूछा—फलां यतीमों का क्या हाल है?

लौंडी ने कहा—बेचारे पहले की तरह खस्ता-हाल हैं.

आपने फरमाया—यह गोश्त ले जाओ और उन्हें खिलाओ.

लौंडी ने अर्ज किया—इतना अरसा हो गया, आपने गोश्त नहीं खाया. आप खा लें.

हजरत दाऊद ताई ने फरमाया—यतीमों का खाया हुआ आसमान पर पहुंचेगा और मेरा खाया हुआ खाक में मिल जायेगा. □

(प्रस्तुतीकरण : हसन जमाल)

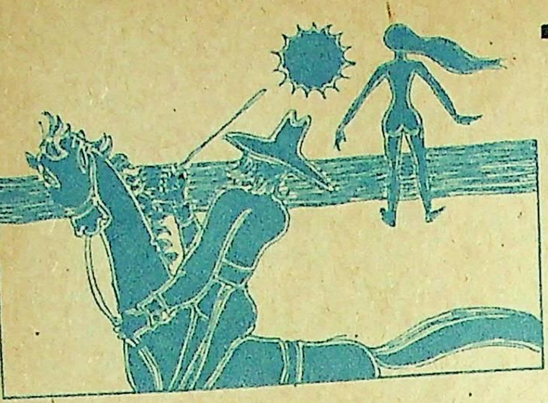

प्यार की जीत

• मेरिन प्रेदा

गर्मियां आधी बीत चुकी थीं. अचानक दो घुड़सवार मक्की के ऊंचे-लंबे खेत से बाहर निकल कर मैदान में आये दोनों एक-एक अन्य घोड़े को पीछे बांधे आ रहे थे. एक-दूसरे के पास आ गये, तो उन्होंने लगामें ढीली छोड़ दीं. ये दो जवान लड़के थे, जो घोड़ों को चराने के बाद उन्हें वापस ला रहे थे.

—टीकन, क्या तुम आशिम को जानते हो?

—हां, जानता हूं. . .वह बड़े डील-डौल वाला पुरुष, जो मिल घाटी के निकट रहता है. लेकिन तुम यह क्यों पूछ रहे हो?

—सुनो, टीकन, जो बात मैं तुम्हें बताने जा रहा हूं उसे और किसीसे मत कहना, यदि तुमने किसीको बताया तो मैं तुम्हें मार गिराऊंगा! दुगू ने कहा.

—सुनो, यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है, तो फिर मुझे कुछ भी बताने की आवश्यकता नहीं.

—अच्छा, तो सुनो. एक दिन मैं घोड़ों को चराने के लिए जंगल में गया. मैं घास पर लेटा-लेटा सो गया. जब मैं जागा तो घोड़े जा चुके थे. मैं जरा भी चिंतित नहीं हुआ, क्योंकि मुझे मालूम था कि घोड़े घर चले गये हैं. पहले भी वे ऐसा ही करते रहे हैं. मैं उठा और उनकी टापों के निशान का पीछा करता चल दिया. मैं गांव के बाहर से होता हुआ मिल घाटी में पहुंच गया. यह पिछले सप्ताह मध्यान्ह के बाद की बात है. गर्मी बहुत थी. मेरी इच्छा हुई कि मैं मिल नदी में बड़ के वृक्ष के पास स्नान कर अपने शरीर को शीतल करूं. जब मैं वृक्षों के निकट पहुंचा, तो मुझे पद-चापों की ध्वनि सुनाई दी. मैं यह देखने के लिए, कौन है, रुक गया. जब मैंने एक स्कर्ट की झलक देखी, तो एक झाड़ी के पीछे छिप गया. वह एक लड़की थी. पालीसी की पुत्री ड्रीना. वह बाग के पिछवाड़े की ओर से आयी थी और तट पर खड़ी सूर्य की ओर ताकती रही. तुम उससे परिचित हो न?

—हां, मैं उसे जानता हूं. वह युवती है. . .अठारह वर्ष की. वह इस बार के सामाजिक नृत्य में प्रथम बार सम्मिलित हुई थी.

—हां, हां, वही. मैंने सोचा, वह शायद स्नान करना चाहती है. मैं झाड़ी के पीछे ही छिपा रहा. और जानते हो, मैंने क्या देखा? उसने अपने बाल खोल दिये और फिर उनको अपने सिर के ऊपर बांध दिया. कितनी सुंदर जुल्फें थीं वे! मैंने उस जैसी रेशमी जुल्फें और किसीकी नहीं देखीं. मेरा हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा. मैंने वहां से भाग जाने की सोची. मुझे कुछ डर-सा लगा. . . मैंने किसी भी लड़की को यूं पहले इतने निकट से कभी नहीं देखा था. उसने अपने कपड़े उतारने शुरू किये. उसने अपना ब्लाउज और स्कर्ट उतार दिये. न मालूम लड़कियां एक के नीचे एक इतने सारे वस्त्र कैसे पहन लेती हैं. मेरा दिल इतने जोर से धड़का, लगता था इसकी गति रुक जायेगी. सूर्य के प्रकाश में उसका शरीर चमक रहा था. वह सुंदर थी. फिर वह पानी में उतर गयी. फिर वह खिल-खिला कर हंसी और अपने शरीर पर पानी के छींटे मारती रही. परंतु वह कुछ सहमी-सहमी-सी लग रही थी. जब उसने पुनः कपड़े पहन लिये, मैं वहां ठगा-सा खड़ा रहा. फिर मैं अपने घर की ओर चल दिया. मैं नहीं जानता, मुझे क्या हो गया था. सारी रात मैं नदी तट पर खड़ी निर्वस्त्र ड्रीना के स्वप्न देखता रहा. कई बार मेरी नींद खुली, तो देखा, मैं पसीने में नहाया हुआ हूं..

टीकन ने हंसते हुए कहा—अच्छा, आगे क हुआ?

कई दिनों तक मैं उद्विग्न-सा रहा. बार-बार व जलपरी के रूप में मेरे स्वप्नों में आती रही. तुम त जानते ही हो कि इसके पहले मैंने किसी लड़की को नहीं चाहा. परंतु उससे मैं प्रेम करने लगा हूं. मैं सोचता र कि किसी संध्या को उसके घर जाऊं, मैं कल रा उसके यहां गया था. उसके घर के गेट के पास जा कर मैंने अपनी उंगली मुंह में दबा कर सीटी बजायी घर के अंदर से कोई ध्वनि सुनाई न दी. मैंने फिर सीटी बजायी, परंतु कुछ भी नहीं हुआ. घर के अंदर अंधकार था. मैंने कुछ क्षण प्रतीक्षा करके फिर सीटी बजायी वह धीरे-धीरे गेट के निकट आयी और उसने उसे खोल दिया. जब उसने मुझे देखा, तो डर कर पीछे हट गयी

—आशिम, क्या तुम हो? उसने डरे-डरे स्वर में पूछा, फिर शीघ्रता से गेट बंद किया, और दौड़ कर बाग में चली गयी.

—तुम फाटक क्यों बंद कर रही हो? मैंने आहिस्ता से पूछा.

—कौन हो तुम? उसने फिर पूछा.

—मैं दुगू हूं. . .मैरियुता का पुत्र. पहाड़ी के उस पार से आया हूं.

उसी समय एक लंबा-चौड़ा साया मेरे निक सरक आया.

—कौन हो तुम? उस साये ने पूछा. क्या करने आ

हो यहां? फिर वह लड़की से बोला—तुम यहां फाटक पर क्या कर रही हो? मैंने तो सीटी नहीं बजायी.

—टीकन, जब मैंने उस पुरुष को मुझसे यूं प्रश्न करते सुना, तो लगा कि कोई घर का सदस्य होगा और मुझे शर्म महसूस हुई. मैं शुभ-रात्रि कह कर जाने वाला था, परंतु जब मैंने उसे लड़की से वैसी बातें करते सुना, तो मेरे शरीर में कंपकंपी पैदा हो गयी. यह भय नहीं था, क्योंकि मैं किसीसे नहीं डरता. दिल किया कि उछल कर उसकी गरदन पकड़ लूं. मैंने कहा—मैं मैं हूं. परंतु तुम कौन हो?

—बको मत! भाग जाओ यहां से! उसने कहा. कहीं तुम्हारी खाल तो नहीं खुजा रही?

—आशिम, इसे जाने दो! लड़की ने कहा.

जब मैंने यह सुना, तो मेरा क्रोध कुछ ठंडा हो गया. मैंने उस आदमी की ओर देखा और कहा—तो तुम लड़ना चाहते हो?

—मूर्ख लड़की, तुम अंदर जाओ! उसने लड़की से कहा. परंतु वह वहां से नहीं हिली. आशिम मेरी ओर मुड़ा और मेरी बाजू पकड़ते हुए उसने मुझे धक्का दिया. परंतु मैंने अपनी बांह छुड़ा ली और पूरी शक्ति से उस पर प्रहार किया.

—आशिम? लड़की बाड़ के पीछे से फुसफुसायी, मैं पिता को बुला लूंगी!

—मैं लड़ना पसंद नहीं करता. मैंने कहा. मैं ड्रीना से अवश्य मिलूंगा. यदि तुम्हें यह पसंद नहीं, तो तुम मुझे बता दो कि तुम्हें कहां मिलूं?

टीकन, मुझे लगा कि वह लड़की मुझे चाहती है. आशिम ने मुझसे रविवार को प्रातः बड़ के वृक्ष के निकट खेत में मिलने को कहा. उसने मुझे धमकी दी कि उसने यदि फिर मुझे वहां देखा, तो मेरी हड्डी-पसली एक कर देगा.

—ड्रीना, तुम अंदर जाओ, मैंने लड़की से कहा. हम रविवार को लिसांड वाईशू के विवाह के अवसर पर मिलेंगे. जरूर आना.

फिर मैं और आशिम वहां से चल दिये. वह बुदबदाता रहा —मैं तुम्हारे शरीर की एक-एक हड्डी तोड़ दूंगा.

मैंने कहा—देखेंगे, कौन किसकी हड्डी तोड़ता है. तो कल हमारा द्वंद्व है. मेरा विश्वास है कि वह अपनी सहायता के लिए किसीको साथ अवश्य लायेगा.

—दुगू, हम दोनों इकट्ठे जायेंगे. देखेंगे, वह सहायता के लिए किसे साथ लाता है. हां, एक बात बताओ, क्या तुम लड़की को सचमुच चाहते हो?

—हां, मैं उसे चाहता हूं. कल रात जो कुछ उसने कहा, मुझे अच्छा लगा.

हम कल घोड़ों पर वहां जायेंगे. मैं तुम्हें कल सबेरे लेने आऊंगा.

★ ★

दुगू भी घर की ओर चल दिया. वह समझ नहीं पा रहा था कि जब से उसने उस लड़की को नहाते देखा था, उसे क्या होता जा रहा था. घर के निकट पहुंचने पर उसे अपने पिता का कर्कश स्वर सुनाई दिया-अरे देखना, गिर न पड़ना कहीं! लगता है, तुम घोड़े पर सो रहे हो!

—कहां गये थे? पिता ने पूछा.

—रावेस्का टीकन मेरे साथ था.

—अच्छा जाओ, भोजन कर लो. तुमने सबेरे से कुछ नहीं खाया. उसके पिता बोले.

लड़का पहले पोर्च की सबसे ऊपर वाली सीढ़ी पर बैठ गया, फिर एकाएक उठ खड़ा हुआ और घर के अंदर चला गया. वह बिस्तर पर लेट गया और अपनी बांहें अपने सिर के नीचे रख एकटक छत की ओर ताकता रहा.

—खाना नहीं खाओगे क्या, दुगू? मां ने रसोई में से आवाज दी.

—नहीं मां, मुझे आज भूख नहीं है.

उसकी दृष्टि छत पर से खिड़की की ओर मुड़ गयी. सूर्य अस्त हो गया था और बाग में लगे सेव के वृक्ष का साया कमरे के अंदर तक फैल गया था. बाद में जब काफी अंधकार हो गया, तो दुगू ने अपने मित्र को फाटक पर सीटी बजाते सुना. फिर उसका स्वर सुनाई पड़ा—दुगू! ओ दुगू!

दुगू उठा, उसने दरवाजे के पीछे से अपनी छड़ी हाथ में ली और अंधेरे बाग की ओर चल दिया.

● प्रकाश नैलरकर

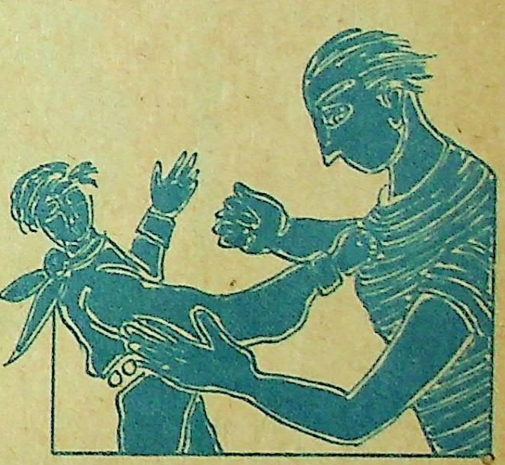

—मैंने आशिम को ड्रीना के घर की ओर जाते देखा था. टीकन ने बताया. तुमने उसे आशिम से बात करने को मना किया था या नहीं? स्त्रियों का कोई विश्वास नहीं. वे बाहर आ कर उसी पुरुष से बात करेंगी, जो सबसे पहले उन्हें वहां खड़ा मिलेगा.

—नहीं, वह ऐसा नहीं करेगी. दुगू बोला.

—सुनो, जो मैं कह रहा हूं वह ठीक है. पर क्या तुमने उसे कहा था कि तुम आज रात आओगे?

—नहीं. मैं चाहता हूं कि देखूं, वह क्या करती है. चलो, पता लगायें आशिम को वह कब से जानती है.

—आशिम हाल में ही सेना से वापस आया है.

अपना
भविष्य सुनिश्चित
करायें

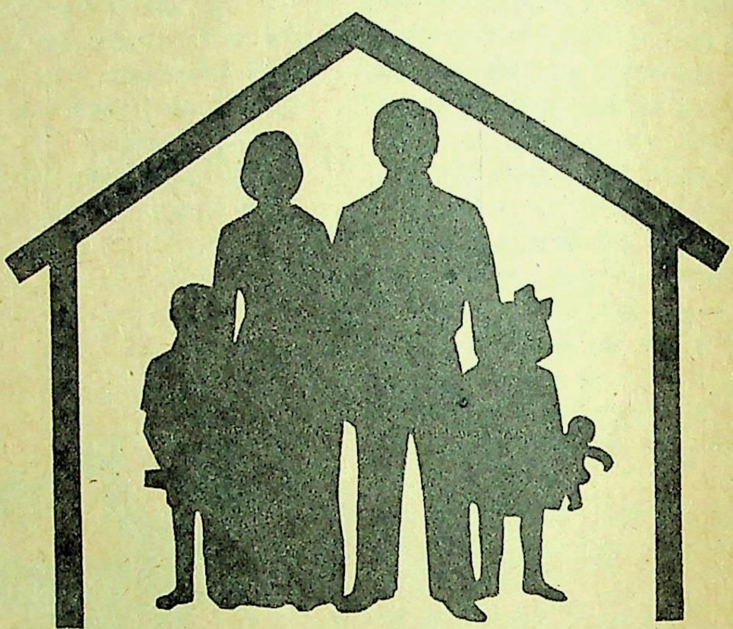

सुरक्षित, सहायक, मित्र-बैंक में बचत की आदत डालें।

आज जो सपना है, कल साकार हो सकता है।

हमारी काउन्टर पर उपलब्ध पुस्तिकाओं से एक अच्छी आदत अपनावें।

दि
चार्टर्ड
बैंक

अमृतसर, बम्बई, कलकत्ता, कालीकट, कोचीन,
दिल्ली, कानपुर, मद्रास, नई दिल्ली,
वास्को-डा-गामा

स्टैण्डर्ड एण्ड चार्टर्ड
बैंकिंग ग्रुप का एक सदस्य

sekai/cb/282

और, तुम जाओ और देखो कि क्या वह अब भी उससे बातें कर रही है?

—वह ऐसा नहीं कर सकती . यदि तुम चाहो तो इस बात पर शर्त बद सकते हो.

—मैं शर्त नहीं बदा करता. तुम कब से उसे जानते हो?

—मेरा खयाल है , मैंने एक बार उसके साथ नृत्य किया था,

—मैं उस तरफ से गुजरूंगा. . .मेरी प्रेयसी बहुत दूर रहती है. . .जंगल के निकट. . .मैं देखता जाऊंगा. और कोई विशेष घटना घटी, तो तुम्हें कल प्रातः बता दूंगा. अच्छा, मैं चलता हूं. मैं घोड़ों के साथ कल सबेरे तुम्हें लेने आऊंगा.

दुगू आहिस्ता-आहिस्ता घर की ओर चल दिया. घर आ कर कुछ देर बाद दुगू बिस्तर में लेट गया. उसे नींद आ गयी.

* *

अगले प्रातः जब दुगू जागा, तो उसने पंखों की फड़फड़ाहट सुनी और फिर एक मुर्गे की लंबी कुकड़ूं-कूं. नये दिन का हर्ष मन में लिये वह उठ खड़ा हुआ. उसे याद आया आज रविवार है और उसे आज अपनी प्रेयसी से विवाह के अवसर पर मिलना है. उसने अपनी सफेद पतलून पहनी और नंगे पांव बाग में चला गया.

—अभी तो बहुत जल्दी है, टीकन! उसने अपने मित्र को घोड़े पर आते देख कर कहा.

—तो क्या हुआ! वह तुम्हारी प्रतीक्षा थोड़े ही करेगा! आओ, चलें. टीकन ने कहा.

—ऐ लड़को, कौन प्रतीक्षा कर रहा है तुम्हारी? दुगू के पिता बोले.

—कुछ नहीं चाचा. . .हम खरगोशों का शिकार करते जा रहे हैं. .टीकन ने झूठ बोला.

—गरमी में खरगोशों का शिकार?. . .

—खैर, जहां भी जाओ, होशियार रहना, वरना टीकन, मैं तुम्हारी खबर लूंगा !

टीकन हंस पड़ा. दुगू ने जल्दी से जूते पहने और अस्तबल से दोनों घोड़ों को बाहर लाया. उनमें से एक पर सवार हुआ और दूसरे को पीछे से पकड़ कर वह भाग पड़ा.

—हां, टीकन, क्या देखा कल रात तुमने?

—सुनो, आशिम ने कुछ देर बेकार सीटी बजायी. फिर वह कुछ दूर चला गया. वापस लौट कर उसने पुनः सीटी बजायी. लड़की बाहर आयी, परंतु उसने फाटक नहीं खोला. वह बाड़ के साथ खड़ी रही.

—बाहर आओ, मुझे तुमसे बातें करनी हैं. आशिम ने उससे कहा.

—नहीं, मैं नहीं आती. मुझे डर लगता है. तुम मुझे पीटोगे. उसने उत्तर दिया.

परंतु उस बदमाश आशिम ने बड़ी मीठी आवाज में कहा—क्यों, मैं क्यों ऐसा करूंगा. मूर्खता मत करो. तुम सोचती हो कि मैं उस मैरियुत्ता के पुत्र के कारण तुमसे नाराज हो गया हूं. तुम्हारा कब से परिचय है उससे?

लड़की ने उत्तर दिया—अंकल आशिम, मां मुझे रात को इतनी देर बाहर नहीं ठहरने देती, इसलिए मैं अंदर जा रही हूं.

जब आशिम ने उसे 'अंकल' कहते हुए सुना, तो उसके तन-बदन में आग लग गयी. वह गाली देते हुए फाटक की ओर लपका और चिल्लाया—कुतिया, तू मुझे अंकल आशिम कहती है. . .!

दुगू ने अपने घोड़े को एड़ लगाते हुए कहा—बस . . .बस, मैं उस साले का सिर खोल दूंगा!

—संभलना, कहीं वह पहले तुम्हारा सिर न फोड़ दे! घोड़ों की टापों की ध्वनि के दरम्यान टीकन चिल्लाया—मैं तुम दोनों को लड़ने दूंगा.

—तुम चाहो तो वापस जा सकते हो! दुगू गुर्राया.

घोड़े बहुत तेज दौड़ने लगे. पीछे धूल के बादल उड़ाते हुए कुछ देर बाद वे पथ को छोड़ खेतों में घुस आये. दोनों घुड़सवार ऊंचे बड़ के वृक्ष के निकट आ गये. दुगू चिल्लाया—देखो, वह अकेला नहीं है !

—तो क्या फर्क पड़ता है! औरों को मैं संभाल लूंगा! तुम तैयार हो जाओ.

तेजी से पास आ कर वे वृक्ष के चक्कर काटने लगे. लगा, दोनों बावले हो गये हैं. अपनी लाठियों का सहारा लिये आशिम तथा अन्य दो व्यक्ति वृक्ष के निकट खड़े थे. वे बड़े सहज भाव से दोनों घुड़सवारों के करतब देखते रहे. एकाएक दोनों ने लगामें खींचीं और अपने घोड़ों पर से नीचे कूदे पड़े. दुगू ने अपनी लाठी फेंक दी और तेजी से आशिम की ओर बढ़ा. जब उसने दुगू को अपनी ओर आते देखा, तो वह तनिक हिला और उसने अपनी लाठी और कस कर पकड़ ली. जब दुगू कुछ कदम दूर रह गया, तो आशिम पीछे हट गया और दोनों उंगलियों के बीच लाठी को घुमाने लगा.

—पीछे हट जाओ, वरना तुम्हें खत्म कर दूंगा! आशिम ने गंभीर स्वर में आगे बढ़ते हुए दुगू को चेतावनी दी.

दुगू हिला-डुला नहीं. उसने अपना हैट उतार लिया और मुसकराते हुए कहा—मार कर तो देखो! और उसने अपना सिर आगे कर दिया. आशिम जड़वत खड़ा था—मारते क्यों नहीं, आशिम?

—मारो साले को! आशिम का एक साथी चिल्लाया. दुगू उसकी ओर बढ़ गया—अच्छा, तुम मार कर देखो!

आशिम ने अपनी लाठी फेंक दी और उसे एक गाली दी. —तो तुम डर गये हो ! उसने ऊंचे स्वर में कहा. अपनी सहायता के लिए टीकन को साथ लाये हो!

दुगू ने मुख पर मुसकान लाते हुए पूछा—तुमने मुझे मारा क्यों नहीं? डर गये?

आशिम ने महसूस किया कि दुगू उसकी खिल्ली उड़ा रहा है.

sekai/cb/282

आपका
चेहरा ही
आपका
भाग्य

AFGHAN SNOW
AFGHAN SNOW

उसकी उसी
प्रकार उचित तरीके से सुरक्षा करें

अफगान स्नो—संपूर्ण रूप से त्वचा की सुरक्षा करनेवाला स्नो।
इसके प्रयोग से आपकी त्वचा खिलती हुई पंखुड़ी की तरह
मृदु और सुबह की ओस की तरह ताजी रहती है।

यही कारण है कि महिलायें अपनी त्वचा की
सुंदरता और सुरक्षा के लिये अफगान स्नो पर पूर्ण भरोसा करती हैं।

अफगान स्नो. त्वचा की संपूर्ण सुरक्षा के लिये

—अच्छा तो लो! वह चिल्लाया और जोर से उसने दुगू के जबड़े पर एक वार किया. लगा, दुगू इस वार के लिए तैयार था. वह बच गया और उछल कर आशिम की पीठ पर चढ़ गया. उसने अपनी कुहनी से आशिम की गरदन पर वार किया. आशिम लड़खड़ाया. इसके पहले कि वह दूसरा वार करे, दुगू ने आशिम की टांग पकड़ कर खींची और उसे धराशायी कर दिया. दुगू आशिम के ऊपर गिर गया. इसी बीच आशिम के एक साथी ने दुगू की गरदन पर कई मुक्के जमा दिये.

—टीकन. . .! दुगू चिल्लाया . वह कुछ कहने को था कि रुक गया, क्योंकि उसने आशिम के एक साथी को धरती पर गिरे गाली देते सुना जब कि दूसरा घोड़ों की ओर भाग रहा था. दुगू एकदम उठ खड़ा हुआ, पीछे हटा और उसने अपनी लाठी उठा ली. आशिम ने भी अपनी लाठी पकड़ ली. आशिम ने क्रोध में भर कर अपनी लाठी से दुगू के सिर को निशाना बनाया. दुगू ने बचने का प्रयत्न किया. लाठी उसके सिर की बजाय कंधे पर पड़ी.

—और मारो, आशिम, और जोर से मारो! वह पीछे हटा और उसने निश्चय कर लिया कि अब वह आशिम को प्रहार नहीं करने देगा. आशिम की लाठी अधिक भारी थी और वह था भी अधिक बलशाली. वह लपका और आशिम के सिर पर मुक्कों की झड़ी लगा दी. परंतु इसका आशिम पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा. अब दुगू ने अपनी लाठी से उसके सिर पर वार करने की बजाय आशिम की लाठी पर वार किया. जिससे लाठी उसके हाथों से गिर पड़ी. आशिम स्तब्ध-सा रह गया. दुगू ने पूरे जोर से उसकी नाक पर मुक्का जमाया और आशिम की लाठी उठा कर वृक्ष के ऊपर फेंक दी. आशिम चकरा गया और कराहते हुए उसने अपनी नाक पकड़ ली.

—मैंने ठीक कर दिया है साले को, टीकन! दुगू बोला, मेरी कुहनी पर भी घाव आया है. क्योंकि मैंने उसे पहले वार करने दिया.

वे उचक कर अपने घोड़ों पर बैठ गये. चलते समय दुगू आशिम से बोला—— तुम बेशक बलशाली हो, परंतु यदि आइंदा कभी मैंने तुम्हें उसके घर के निकट देखा, तो मैं तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा. . . समझे!

दुगू जब घर पहुंचा, तो घोड़े से उतर कर वहीं घोड़ों के निकट ठगा-सा खड़ा रहा. उसने सूर्य की गरमी महसूस की, ऊंचे बबूल के वृक्ष, घर, पृथ्वी, समीप ही बातें करते लोग, अपना कुत्ता, पक्षी उससे ऊपर नीले ऊंचे तथा शांत आकाश का गुंबद, सब कुछ ऐसा लगा, मानों इन सबको इस रूप में उसने पहली बार देखा हो और एक अनजानी-सी सिहरन उसके शरीर में दौड़ गयी. उसे यूं लगा, मानो कोई चीज, जो अभी तक उसकी आंखों से ओझल थी, खुल कर उसके सम्मुख आ गयी है और अब प्रत्येक वस्तु में उसका प्रतिबिंब झलकता दिखाई दे रहा था—झीना! वह फुसफुलाया और उसका मुख सहस्रों सूर्यों के प्रकाश से देदीप्यमान हो उठा. □□□

(रूपांतर : सुरेंद्रनाथ वर्मा)

अंगरेजी कहानी

एक खिड़की की खातिर

● एलन सनेगर

तीन महीने से वह कमरे के दूसरी तरफ एक पलंग पर पड़ा है. विक्टर, जो उस कमरे का दूसरा रोगी है, अपने पलंग पर लेटा-लेटा बाहर का पूरा निरीक्षण कर सकता है. वह बाहर का हाल बयान करता रहता है. आज भी वह कभी पेड़ों के बारे में, कभी फूलों के बारे में, और सामने राह चलते लोगों के बारे में, विशेष रूप में एक लेडी—टाइपिस्ट के बारे में बोलता रहा है.

उसका जी चाहता——काश! उसकी चारपाई खिड़की के पास होती, जिससे वह बाहर देख सकता. . .उसे लगता कि विक्टर को इस बात का गर्व है कि उसकी चारपाई खिड़की के पास है. जैसे एक वह ही खिड़की का अधिकारी हो, जो बाहर की सभी चीजें देख सकता है. इस खयाल ने उसके दिल में विक्टर के बारे में घृणा भर दी.

जैसे जैसे समय बीतता गया, विक्टर के लिए उसकी घृणा बढ़ती गयी.दूसरी ओर विक्टर की दशा बहुत शोचनीय हो गयी थी. सोते में विक्टर को प्रायः सांस लेने में कष्ट होता और वह हांफता हुआ उठ कर बैठ जाता. वह विक्टर को इस परेशानी में देखता, कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए पास लगी घंटी का बटन दबा देता. ऊंघती हुई नर्सें आतीं. विक्टर की दशा देख कर डाक्टर को बुलातीं जो एक सुई लगा जाता और विक्टर पुनः आराम की नींद सो जाता. और अचानक उसे खयाल आया, अगर वह रात में बटन न दबाए तो?

रात में जब उसकी आंख खुली तो उसने देखा——विक्टर बैठा हुआ हांफ रहा है और उसे सांस की तीव्र तकलीफ है. उसने आंखें बंद कर लीं और नींद का बहाना कर लिया. सुबह उसने देखा, सामने वाला पलंग खाली है और बिस्तर बदला हुआ है. डाक्टर के राउंड पर आते ही उसने पूछा—क्या मुझे वह चारपाई मिल सकेगी?

——हां. . . अवश्य. . और कुछ रुक कर डाक्टर बोला——रात में विक्टर का तुम्हे पता नहीं लगा था. बहुत ही बुरा हुआ. शायद बेचारा बच जाता. नर्स को उसका बिस्तर खिड़की के पास वाले पलंग पर बदलने का हुक्म दे कर डाक्टर चला गया.

उसने बड़ी निश्चितता के साथ दो तकिये एक दूसरे पर रखे और खिड़की पर झुक गया. पर बाहर न कोई पेड़ था, न कोई घर, न खंभा, न लेटरबक्स, न बगीचा, और न ही कोई चौराहा था. खिड़की के बाहर अस्पताल के पिछवाड़े की ऊबड़-खाबड़ जमीन थी जहां से नालियों का गंदा पानी बह रहा था. □□□

मधुर मिलन का सुन्दर साधन

सरसिल्क । ऐसे भड़कते, फड़कते रंग कि मन मचल उठे । ऐसे मनमोहक, हलके रंग कि मन खिल उठे । सादा, चारखाना और धारीदार कपड़े ।

सरसिल्क सूटिंग और शर्टिंग में आपको वे सभी खूबियाँ मिलती हैं जो आप एक बढ़िया कपड़े में चाहते हैं । चलने में टिकाऊ । अच्छी पसन्द के अनुकूल । देख-भाल में आसान । और बिलकुल ठीक कीमत ।

ASP/SS/754

सरसिल्क
पॉलिएस्टर
सूटिंग और शर्टिंग

विक्रेता एजेंट : बम्बई : तुलसीदास कनोरिया एण्ड कम्पनी, पहली मंजिल, जाम्बुलवाडी (पूर्व), कालबादेवी रोड, बम्बई । **गुजरात और गोवा :** डाया ब्रदर्स, १४१, मणि महल, कालबादेवी रोड, बम्बई । **मध्य प्रदेश, विदर्भ और मराठवाडा** राठी एण्ड कम्पनी, १७, पाप्युलर होलसेल क्लाथमार्केट, गांधी बाग, नागपुर । **दिल्ली और हरियाणा :** बाम्बे ट्रेडिंग कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, कटरा अशरफी, चाँदनी चौक, दिल्ली । **राजस्थान :** हरीश एण्ड कम्पनी, मेहता मार्केट, जोधपुर । **पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर :** ओमेगा इंडस्टियल कारपोरेशन, कटरा आहलुवालिया, अमृतसर । **उत्तर प्रदेश :** केजरीवाल ट्रेडिंग कारपोरेशन, विश्भर हाउस, २५/२६ प, कराची खाना, कानपुर । **पश्चिम बंगाल :** अश्विनी कुमार एण्ड कम्पनी, ४, इंडियन ऐक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता । **बिहार :** ओरियण्टल ऐन्टरप्राइजिज एण्ड एजन्सीज, इंडिया मशीनरी बिल्डिंग (दूसरी मंजिल), ऐग्जीबिशन रोड, पटना ।

सिल्क
एस्टर
शर्टिंग

एक चित्र ● सिनजियाना पॉप

हम दोनों लाल-बालों वाली लड़कियां एक दूसरे का हाथ पकड़े आंगन में खड़ी थीं. चारों ओर पत्थर की दीवारें थीं. मुंडेरों के ऊपर से दूर आकाश छोटा-सा लगता था. आकाश, जिसे हम छूना चाहते थे.

—तुम कसम खाती हो? मैंने पूछा.

—मैं कसम खाती हूं.

—कि तुम किसीको भी नहीं बताओगी और यह रहस्य केवल अपने तक ही रखोगी.

—मैं कसम खाती हूं.

—आंखें बंद करो.

मुझे एक जादू का सूत्र याद हो आया और हम उड़ने लगीं. हमने एक दीवार से दूसरी दीवार की ओर चक्कर काटते हुए पत्थर की गुफा से उठना शुरू किया— हम दो लाल बादबानों वाले समुद्री जहाज! हम चिमनियों के बीच एक मकान की छत पर उतरे.

—वह देखो, मैंने कहा.

हम नगर के ऊपर थे. पर्वतों के उस पार सूर्य उदय हो चुका था. उसके प्रकाश में टाईलों वाली छतें चमकने लगीं और हम ऊपर तैर रही थीं. कभी-कभी हवा का हलका झोंका आता और चिमनियों पर लगे ऋतु-पक्षी की दुम हिल उठती.

दूसरे बच्चे भी पड़ोस की छतों पर दिखाई देने लगे. चारों ओर सुंदर लड़कियां और लड़के पतलून तथा धारीदार कमीजें पहने थे. वे बिल्लियों की तरह चिमनियों के मुंह में से निकल रहे थे. पतझर की उस प्रातः को हम बच्चों का एक समूह छतों पर विद्यमान था. लड़के पर्वतों की ओर तीर छोड़ रहे थे. लड़कियां—प्रेती और मार्था और एलिस खुशी से पागल थीं. और हवा में धीमी-धीमी किलकारियों की गूंज थीं.

—हम सबसे पहले आये थ, रैंडटफ्ट चिल्लायी. हम यहां उड़ कर आये. तब वह कुछ सहमी-सहमी-सी मेरी ओर मुड़ी और अपना हाथ अपने मुंह पर रखा——क्या मैं मर जाऊंगी?

इसी बीच घरों की खिड़कियां खुल गयी थीं. उनके चौखटों में मोटी स्त्रियां बालों में कर्लर लगाये मोटे गद्दों और छोटे पर्दों के बीच बैठी दिखाई देती थीं. सेलू-लाईड की गुडियों जैसी बिल्लियां तथा पिल्ले उन्हें घेरे हुए थे.

नगर के मध्य में फूल बाजार था.

छतों पर से हम धूप-छातों के रंगीन टोप और उनके गिर्द रौनक देख सकते थे.

और फिर अकस्मात वहां सन्नाटा छा गया. प्रत्येक गति रुक गयी. संसार जड़वत-सा हो गया.

—क्या मैं मर जाऊंगी? उसन मुझसे एक बार फिर पूछा.

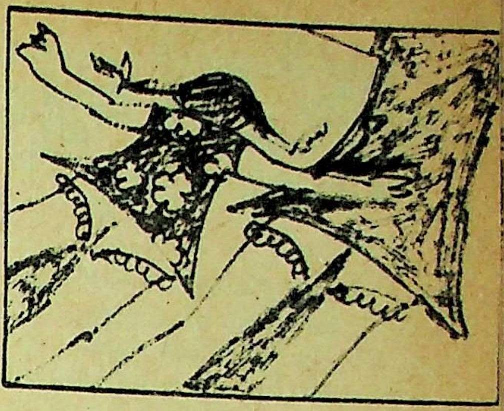

● प्र. नैरकर

—तुम मूर्ख हो, रैंडटफ्ट. क्या बक रही हो?

—क्या मरना बहुत कष्टदायक होता है?

—नहीं.

—परंतु मैं मरूं क्यों? मैं नहीं मरूंगी. डैडी, मम्मी और तुम . . .मैं नहीं मरूंगी.

—वह देखो, मैं चिल्लायी.

पर्वतों के पीछे से सूर्य ने आकाश में ऊपर उठना शुरू कर दिया था. सफेद, थका मांदा सूर्य-किनारों से टूटा हुआ वह धीरे-धीरे लुढ़क रहा था. फिर वह रुक गया. यह दोपहर थी. दुकानों तथा घरों की खिड़कियों से रंगों की एक बाढ़ फूट पड़ी. बाजारों में यातायात रुक गया. नगर के बड़े घंटाघर की घड़ी बज उठी. सब्ज बादशाह का दरबार बाहर निकल आया. बारह सुंदरियां रंगबिरंगे वस्त्र पहने नृत्य कर रहीं थीं. नीले तबलची विधिवत तबला-वादन कर रहे थे. एक जोकर कलाबाजियां लगा रहा था.

नगर में यातायात पुनः आरंभ हो गया था. कोचवानों ने चाबुक मारे. तांगे चल रहे थे. बच्चों ने अपने साईकिल स्कूटर संभाल लिये.

मकानों की खिड़कियां बंद हो गयीं. छतों पर लड़के-लड़कियां अदृश्य हो चुके थे. लगता था, किसीने आकाश में विद्युत प्रकाश अचानक बुझा दिया था.

—क्या मैं मर जाऊंगी? उसने पुनः पूछा.

—हां, तुम मर जाओगी, रेडटफ्ट—मैं जादू की विधि भूल गयी हूं.

—कौन-सी जादू की विधि?

—वह, जो कि तुम नहीं जानती.

—फिर हम क्या करेंगे?

—हमें संसार से विदा लेनी होगी.

रात्रि का काला आंचल फैल रहा था. हमारे ऊपर आकाश में तारे निकल आये थे. और हम दो लाल बालों वाली लड़कियां छत पर पैर फलाय खड़ी थीं. □

(रूपांतर : सुरेंद्रनाथ वर्मा)

नारंगी सूर्य

• कामिल बासियू

वहां प्रत्येक वस्तु सफेद आवरण ओढ़े हुए थी. सभी वस्तुएं जल रही थीं. उसकी अभिलाषा थी, उस सफेद पहाड़ी पर चढ़ने की, जिसकी तलहटी में वे एक धमाके के साथ आ गिरे थे. वह केवल यही देखना चाहता था कि जलती सफेद धुंध के उस पार क्या है. परंतु उसकी टांगें जवाब दे चुकी थीं. वह अपने सीने, अपने कंधों अथवा अपने हाथों को भी महसूस नहीं कर पा रहा था. उसने कई बार नरम और फेनिल धूल पर से, जहां कि उनका अंतरिक्ष-यान गिरा था, उठने का प्रयत्न किया, परंतु एक भयावह स्वप्न की भांति वह निश्चल पड़ा रहा—तटस्थ तथा अपने आपसे दूर. वह अपने शरीर को सुनता रहा, जैसे कोई कुएं में गिरे पत्थर की गूंज को सुनता है. और गहराइयों में से उसे अपने हृदय की धड़कन सुनाई पड़ रही थी. परंतु लगता था, जैसे वह उसका अपना हृदय नहीं है—शायद वह हृदय था ही नहीं. लगा, जैसे वह रॉकेट के मलबे के नीचे दबी बड़ी घड़ियों में से एक था.

वहां मौत की-सी चुप्पी थी—चारों ओर और उसके नीचे. लोग खामोश थे. घड़ियां रुक गयी थीं. और इस विचार से कि वे सब नष्ट हो चुके हैं और एक विशाल धातु-समाधि रूपी अंतरिक्ष-यान में ठंडे और निश्चल पड़े हुए हैं, वह अत्यधिक भयभीत हो उठा—अपनी आने वाली मौत से भी अधिक. इसी कारण वह उनको पुकारता रहा—अपने ओठ गर्म माइक्रोफोन पर दबाये. उत्तर की प्रतीक्षा के क्षणों से ऊब कर उसने अनवरत बोलना शुरू कर दिया—वे बहत्तर हैं. . .मैं अपनी टांगों तथा अपनी भुजाओं को महसूस नहीं कर सकता. . .वे बहत्तर हैं. . .मैं बाहर अकेला हूं. . .प्रतीक्षा में. . .दिन चढ़ा है. . .वे बहत्तर हैं. . .मैं हिल-डुल नहीं सकता. . .

उसकी आंखों के आगे विस्मृति का कुहासा छा जाता. वह सो जाता और जाग कर फिर बोलना शुरू कर देता. और जब काफी लंबे समय के बाद उसने उत्तर में एक स्वर सुना, उसने सोचा, वह बहक गया है और वह चिल्लाया—मुझे नहीं चाहिए. . .! अभी नहीं! तब वह हंस पड़ा—यह पीड़ा नहीं थी—और वह बिलख उठा, जैसा कि बचपन में रुग्णावस्था में वह बिलखता था—नहीं, नहीं, मैं नहीं मरूंगा! मैं नहीं चाहता, मैं नहीं चाहता. . .यहां बेहद सफेदी है. दिल ऊब उठा है. सब अजनबी . . .मुझे तनिक उठाओ. . .पहाड़ी के शिखर से आकाश दिखाई देता है. . .वे बहत्तर हैं. और उसे पुनः वह स्वर सुनाई पड़ा. वह कोई अन्य स्वर था—उसके अपने स्वर से भिन्न.

—कहां हो तुम? उसने पूछा.

और स्वर ने उत्तर दिया—वे चार हैं. चारों जीवित हैं.

—चार? वे कुल बहत्तर हैं.

—बहत्तर? भौतिक विज्ञानवेत्ता, मैं तुम्हें जान हूं. तुम्हें ज्यादा चोट तो नहीं आयी?

—मैं तनिक घायल हुआ हूं. बस थोड़ा-सा. क दूसरे जीवित हैं?

—मुझे नहीं मालूम! स्वर ने हलके से कह मैं देख नहीं सकती. मैं हिल नहीं सकती.

—मैं भी हिल-डुल नहीं सकता. परंतु मुझे कु भी नहीं चुभता. मैं ठीक हूं. तुम कौन हो?

—मैं जीवविज्ञानशास्त्री हूं. . .ड्यूटी पर.

—लंबा-सा, दाढ़ीवाला?

—नहीं, मेरे दाढ़ी नहीं है. मैं गौरवर्ण हूं औ मैं बालों का जूड़ा बनाती हूं.

* *

श्रांति से चूर हो कर वह मुसकराया. वह य भूल गया था कि अंतरिक्ष-यान में कुछ महिलाएं सवार थीं. उसका दिल किया कि उस महिला को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ कहे, परंतु अकस्मात उ बहुत ठंड लगी. अपने शरीर का वह अंग, जिसे व अब तक महसूस कर पा रहा था, बिल्कुल ठंडा ह चुका था—उसके सीने में बर्फ के टुकड़े की भांति.

—मैं तनिक धूप-जली हूं! स्वर ने कहा, ब थोड़ी-सी. मेरी आंखें भूरी हैं—मेरा मुंह कुछ बड़ा है.

—मैं तुम्हें प्यार करता हूं, वह फुसफुसाया. यह भूल गया हूं कि तुम कैसी हो, परंतु भूरी आं वाली स्त्रियों को मैं बहुत चाहता हूं.

बाहर अंधकार बढ़ रहा था. एक काला पाउ वर्षा की तरह नीचे गिरता दिखाई पड़ रहा था.

—क्या तुम भयभीत हो? स्वर ने पूछा. डर लग रहा है.

—डर! मुझे डर काहे का? उसने पुनः अपने ह को उठाना चाहा, परंतु उसका हाथ अब उसका ह नहीं था.—तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं. क्या तु कभी लंबी यात्रा पर उड़ी हो?

—कभी नहीं.

—गिरने के आघात से हमेशा ऐसा ही होता लोगों को सदा ऐसी अनुभूति होती है, जैसे उनको चेतन शून्य कर दिया गया हो. वे बड़बड़ाते हैं. तब उन्हें नीं आ जाती है. और जब वे जगाते हैं, उन्हें ऐसा मह होता है, जैसे वे अभी स्नान करके उठे हों.

—मैं तुम्हारे पास आना चाहती हूं! स्वर कहा. तुम्हारे समीप मुझे अच्छा लगेगा. मुझे यह अजन वातावरण अखर रहा है. . .

—खामोश रहो! वह बोला. प्रयत्न मत करो. मैं अपने यंत्र-पुरुष को सिगनल देने भेजा है. वे तु यहां आ पहुंचेंगे और हमें ढूंढ़ निकालेंगे.

वह जानता था, उनको कभी कोई ढूंढ़ नहीं सके या हो सकता है, किसी दिन, कई शताब्दियों पश उनके ममी वहां उस सफेद मिट्टी में सुरक्षित मिलें.

—कब तक आयेंगे वे? स्वर ने पूछा.

या फिर मार होने पर. मुझे यह भी पता नहीं कि इस अभिशप्त ग्रह पर रात कितनी लंबी होती है.

—रात कितनी भी लंबी हो, स्वर ने उत्तर दिया, सूर्य अवश्य निकलेगा. मैंने सुना है, इस मार्ग पर सभी ग्रहों के सूर्य रंगीन होते हैं. मुझे नारंगी सूर्य बहुत अच्छा लगता है.

—नारंगी सूर्य! वह बड़बड़ाया. नारंगी सूर्य! उसे भी ऐसा सूर्य पसंद था. लगा, उसके मुंह में खट्टा सूर्य भर गया है.—एक बार एक संतरा था. वह कानाफूसी के अंदाज में बोला. एक मीठा नारंगी संतरा. कुछ खट्टा भी था, एक सब्ज पेड़ पर अकेला.

—आगे क्या हुआ? स्वर धीमे से बोला.

—तुम्हें डरने की जरूरत नहीं. कल हम नारंगी सूर्य को देखेंगे और संतरों के एक पेड़ के नीचे आराम करेंगे. रंगीन सूर्यों वाले सभी ग्रह उद्यानों से ढके हैं. हमें कल तक प्रतीक्षा करनी है, यद्यपि आज मैं एक केले के लिए या फिर एक ठंडे लाल गूदे वाले तरबूज के लिए सब कुछ देने को तैयार हूं!

तीव्र पीड़ा की एक लहर आग की तरह उसकी रीढ़ की हड्डी में उठी. . .

—प्रिय! स्वर ने धीमे से कहा, मैं यहां हूं—तुम्हारे निकट. चिंता मत करो!

—ओह! अपने अंदर प्रचंड आग की तरह झुलसाने वाले लोहे को तोड़ने के प्रयत्न में वह पुनः दहाड़ा —मुझे नहीं चाहिए! अभी नहीं!

—नहीं, मैं यहां हूं. . .यहां तुम्हारे पास. स्वर सरसराया. ठंड उसके सीने और उसके कंधों को जकड़ रही थी.

—बहुत ठंड है! वह बुदबुदाया. मेरे ऊपर कुछ डाल दो. अपना हाथ लाओ, प्रिय. . .!!

एक नरम हाथ ने उसके हाथ को थाम लिया. वह उसे पहचान सकता था. वह एक चिर-परिचित हाथ था—एक हलका, नरम और गरम हाथ. . .

—मुझे नींद आ रही है. . .वह बड़बड़ाया, मुझे चूम लो. मुझे चुंबन दो, प्रिय! और उसने अपने धातु-टोपी के माइक्रोफोन के साथ अपने ओठ सटा दिये.

दो भारी-भरकम यंत्र-पुरुष सफेद धूल में से उठे और उसके निकट आ गये.

——यह मेरा मालिक है. पहला यंत्र-पुरुष बोला. वह उस निश्चल व्यक्ति पर झुका. उसने उसके धातु टोप के पेंच खोले, सुना. मेरा मालिक मर चुका है. वह कहता रहा, मेरे विचार. में अंतरिक्ष यान में एक भी व्यक्ति जीवित नहीं बचा!

—सिगनल देने की बजाय तुम एक स्त्री के स्वर में क्यों बोलते रहे? दूसरे यंत्र-पुरुष ने पूछा.

—कहीं उसे मरना बहुत कठिन न लगे. उसी ने मुझे यह सिखाया था. लोग एकाकी मरना पसंद नहीं करते. मरते समय यदि वे अकेले हों, तो मौत अधिक विकराल और भयानक बन जाती है. वह सदैव मुझसे कहा करता था, मैं एक नारंगी सूर्य वाला संसार चाहता हूं. मुझे भूरे नयनों वाली स्त्रियों से प्यार है.

दूसरा. यंत्र-पुरुष बोला——मानव भी बड़ी विचित्र वस्तु है! अब वह हिलता-डुलता क्यों नहीं?

——वह मर चुका है! पहले यंत्र-पुरुष ने उत्तर दिया. तुम नहीं जानते, मौत क्या होती है. मैं दस वर्ष से उसके साथ हूं. तुम्हारा निर्माण तो उसने अभी थोड़े समय पहले ही किया था.

——वह कब तक मरा रहेगा?

—चिरकाल तक! पहले यंत्र-पुरुष ने कहा.

——मैंने एक सुंदर महिला की तरह बातें की हैं, दूसरा यंत्र-पुरुष बोला, एक सुनहरे बालों, भूरे नयनों वाली स्त्री की तरह और उसने तुम्हें 'प्रिय' कह कर पुकारा था. और उसने एक संतरे, एक केले, एक तरबूज की इच्छा प्रकट की थी. मुझे भी एक नारंगी सूर्य और लाल गूदे वाला तरबूज दिखाओ. दिखाओगे न?. . .

□□□

(रूपांतर : सुरेंद्रनाथ वर्मा)

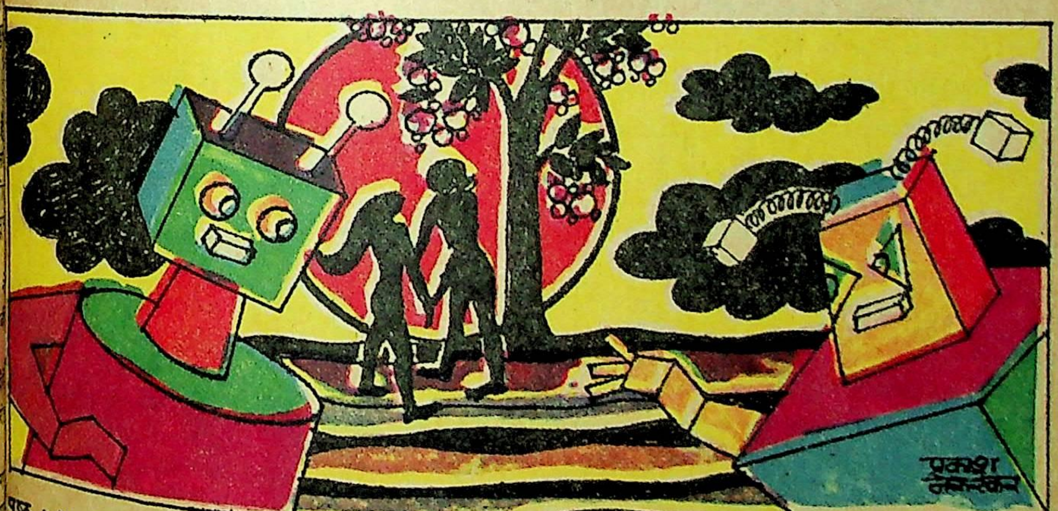

OBM-5255 H

जब रवि के
चोट लग जाती है

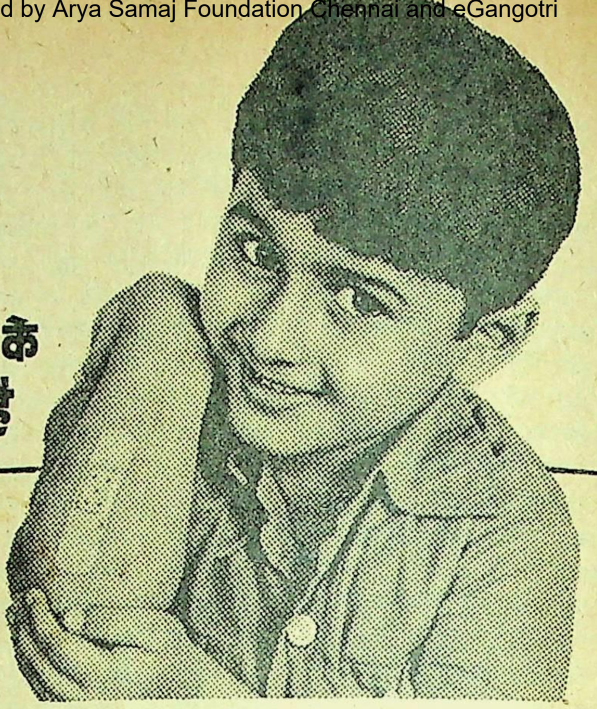

रवि की माताजी छूत से बचाव के लिए
हमेशा BAND-AID BRAND पट्टियाँ
पर ही भरोसा करती हैं

खुले घाव को हमेशा छूत लगने का डर रहता है। इसीलिए समझदार माएँ सुरक्षा और आराम के लिए केवल **बैन्ड-एड** ब्रान्ड पट्टियों पर ही भरोसा करती हैं। **बैन्ड-एड** ब्रान्ड पट्टियाँ कीटाणुओं से घावों की रक्षा करती हैं और कार्यसिद्ध ऐन्टीसेप्टिक मर्क्युरोक्रोम घाव को आराम पहुँचाती है और अच्छा करती है।
सावधानी बरतिए—बैन्ड-एड ब्रान्ड पट्टियाँ लगाइये।
हमेशा कुछ पट्टियाँ अपने पास रखिए।

बैन्ड-एड ब्रान्ड
पट्टियाँ केवल
जॉन्सन एण्ड जॉन्सन ही बनाते हैं।
Johnson & Johnson®

NEW STANDARD STRIP
BAND AID
MEDICATED DRESSING WITH MERCUROCHROME

मर्क्युरोक्रोम से
औषधियुक्त

* Trademark © J&J 75

व्यापारिक पूछताछ के लिए वितरकों को लिखिए:

हसमुख एजेन्सी
गोखले रोड (दक्षिण)
बम्बई ४०० ०२५

हसमुखलाल एण्ड कम्पनी
गोखले रोड (दक्षिण)
बम्बई ४०० ०२५

ठक्कर परषोत्तम हीरजी एण्ड कम्पनी
जॉली सेंटर बेसमेंट, सांताक्रूज़
बम्बई ४०० ०५४

जवाहर मेडिकल एण्ड जनरल स्टोर्स
९९-१०१ के. एन. रोड
बम्बई ४०० ००९.

करिनेलिया

● जार्जो सुशियू

करिनेलिया सचमुच रूपवती थी. उसका रंग गोरा था तथा आंखें नीली थीं. उसके बाल मक्की के भुट्टे के बालों की तरह भूरे थे. और वह उनकी दो चोटियां बनाया करती थी. जब वह अपनी जुल्फों को खोल देती तो वह एक परी मालूम होती थी.

मुझे याद है, एक दिन करिनेलिया और मैं खेतों में घूमने निकल गये. घास पीली पड़ चुकी थी तथा पत्ते सूख गये थे. कदम-कदम पर धरती चरमरा उठती थी. दूर धीमा प्रकाश उठ रहा था तथा कहीं-कहीं धुंध के टुकड़े तैर रहे थे. उस दिन हम संसार से दूर जा रहे थे. कौन जाने हम कहां पहुंच जायें. वास्तव में करिनेलिया ने एक बार पूछ ही लिया—कहां जा रहे हैं हम?

—बस यूं ही चलते चले जायेंगे.

—मेरे तो पांव दर्द करने लगे हैं.

हम सूर्य को ताकने के लिए रुक गये. शरद ऋतु में सूर्य आंखों के लिए कष्टदायक नहीं होता. वह एक वृद्ध व्यक्ति की भांति क्षीण हो जाता है. मैंने उसकी ओर देखा और कहा— शरद ऋतु की धूप तो चांदनी-सी प्रतीत होती है!

—परंतु यह है तो धूप ही. उसने उत्तर दिया. तुम संसार को वैसा क्यों नहीं देखते जैसा कि वास्तव में यह ह?

—ऐ परी करिनेलिया, तुम मुझे मेरी अपनी इच्छानुसार इस संसार का नामकरण करने दो. बेहतर होगा यदि तुम अपने गेसू खोल दो और मुझे इनकी भूलभुलैयों में खो जाने दो.

करिनेलिया वास्तव में बड़ी हमदर्द थी. उसने अपने गेसू खोल दिये.

हम साथ-साथ चल रहे थे. वह अपने गेसू खोले तनिक आगे चल रही थी.

—वह देखो! दूर घाटी में एक वृद्ध स्त्री है. लोग उसे संत फ्राईडे के नाम से पुकारते हैं. सभी उसका साथ छोड़ गये हैं और अब वह बेचारी बेसहारा है. मैं उसे तभी से जानता हूं जब वह एक नवयुवती थी. कितनी परिश्रमी तथा सुंदर थी वह! कई नवयुवक उस पर मरते थे. और वह इस असमंजस में रही कि किसको चुने, किससे प्यार कर. इसीलिए वह क्वांरी रह गयी. उसका यही एक पाप था कि उसके चाहने वाले बहुत थे.

—नहीं, वह तो बेद का एक खोखला वृक्ष है. यह तुम्हारी कोरी कल्पना है.

● प्र. वैनरकर

—वह सचमुच संत ही है. देखती नहीं वह पीछे की ओर झुक रही है! वह देखो, हमें अपने ठंडे तथा कांपते हाथ से इशारा कर रही है.

—वह तो हवा से एक सूखी डाली हिल रही है.

—मेरी परी, तुम्हें तो किसी पर आस्था ही नहीं. यदि अजगर तुम्हें बलपूर्वक उठा ले गया तो मैं तुम्हें कभी भी ढूंढता हुआ तुम्हारे पीछे नहीं आऊंगा.

—तुम मुझे अवश्य तलाश करोगे. मैं जानती हूं, तुम मेरे बिना नहीं रह सकते. तुम्हारा जन्म चीजों की खोज के लिए हुआ है. तुम सबसे पहले वहां दूर घाटी में जाओगे—संत फ्राईडे के पास. वह तुम्हें अजगर के घर का पता बतायेगी. तब तुम दो ऊंचे पर्वतों को फलांग कर जीवनदायक अमृत की खोज में आओगे. उसी अमृत को मैं तुम्हारे ऊपर छिड़क कर तुम्हें अजगर की जादुई नींद से जगाऊंगी.

—तुम बड़ी चालाक दुष्टा हो, मेरी परी! मैंने उससे कहा.

—तुम मुझे चालाक दुष्टा क्यों कहते हो? उसने बुरा मनाते हुए पूछा.

सूर्य धीरे-धीरे पश्चिम की ओर अग्रसर हो रहा था. क्या ही अच्छा होता यदि वह दिन कभी भी खत्म न होता. परंतु सूर्य बूढ़ा था. अतः रात में आराम करने हेतु वह चला गया.

उस रात को अजगर निकोलाई आया और परी करिनेलिया का अपहरण करके ले गया. हमारे देश में परियां जब सोलह वर्ष की होती हैं तो अगवा कर ली जाती हैं. मैंने कभी भी उसका चुंबन नहीं लिया था और जब चोर उसे चुरा कर ले गया तो वह पवित्र थी. मैं घाटी में संत फ्राईड के पास गया. उससे अजगर के महल का रास्ता पूछा तथा यह भी पूछा कि मैं वहां कैसे पहुंच सकता हूं. परंतु बेद चुप रहा. उसकी डालियों पर तुषार था. □

(रूपांतर : सुरेंद्रनाथ वर्मा)

रात के अंधेरे में

• माइकेल अंतोनी

—कहां है तेरा बाप?

लड़के ने उत्तर नहीं दिया. सावधानी से उसने छिछले पानी में डांडे चलाये, नाव को किनारे से लगाया और उसे रोकने के लिए डांडा आगे टिका दिया. उसने लंगर डाला और किनारे पर उतर आया. सामने ही दरवाजे पर उसकी अम्मा घूरती हुई खड़ी थी—कहां है तेरा बाप?

लड़के ने आक्रोश दबा कर शांति से अम्मा की ओर देखा और कहा—तुम्हें तो मालूम है कि पा कहां हैं!

—क्या मैंने नहीं कहा था कि पा को साथ लिये बिना न आना?

लड़के ने कड़वाहट के साथ कहा—पा को साथ लाना क्या मेरे बूते की बात है जब कि वह पीने पर उतारू हों!

हर शनिवार की रात मानो गांव चला जाता और पी कर नशे में इतना धुत हो जाता कि असहाय हो कर दुकान की फर्श पर तब तक पड़ा रहता जब तक कि दुकान बंद करने का समय न हो जाता. दुकान के लोग तब उसे मयखाने के बाहर धकेल देते.

लड़के की अम्मा नदी की ओर आंखें गड़ाये थी. उसका चेहरा क्रोध और हताशा से सिकुड़ गया था.

—तुझे पिता को लेने जाना है, समझा?

—नहीं जाऊंगा मैं.

—क्या कहा? किससे कह रहा है? क्या तेरी शामत आयी है? वह जोरों से चिल्लायी —खबरदार! जा कर अपने पिता को ले आ!

सोना अनिच्छा से उठा और उसने एकबारगी अपनी अम्मा की ओर देखा. वह समझ नहीं सका कि उसकी अम्मा इतनी नाराज क्यों थी. उसे कोई वजह न दीख रही थी कि क्यों अम्मा उसके पिता के लिए इतनी चिंतित है, जबकि उसने उन्हें दयनीय बना दिया था. अपने बाप के विषय में इतना भर सोचने से उसे उबकाई आने लगी थी.

लेकिन सोना की अम्मा की बात दूसरी थी. जिस व्यक्ति से उसने विवाह किया था और जो इतना बुरा निकल गया था, वह अब भी उसके जीवन का स्तंभ था. यह सही था कि मानो के कारण उस पर गम के पहाड़ टूट रहे थे और उसकी आंखों के आंसू सूखते न थे, लेकिन उसकी अनुपस्थिति में वह अपना जीवन सूना, नीरस और व्यर्थ अनुभव करती थी. उसके लिए वह उतना ही शक्तिशाली था, जितनी बाहर बहती हुई ओरटायर नदी. उसे याद था कि अपने यौवनकाल में उसकी कितनी सामर्थ्य थी और उसने वह सब कुछ उसके लिए किया था जो एक नौजवान कर सकता है. उसकी आंखों में वह अब भी जवान था, वह वृद्ध नहीं हुआ था. सोना की अम्मा को पति से यदि नफरत थी तो इसी बात से कि वह बहुत रम पी लेता था और कड़ी मेहनत की मजदूरी पानी की तरह बहा देता था. लेकिन पैसों का भी उसे उतना अफसोस न था जितना उसके बेहद पी लेने उसे खटकता था. वह लड़खड़ाता हुआ वापस घर आता, तो वह क्रोध में भर कर उसे झिझोड़ती और खूब कोसती, किंतु भीतर उसका हृदय इस हर्ष से आंदोलित हो उठता कि वह सकुशल घर पर उसके पास पहुंच गया है.

और पियक्कड़ के लड़के सोना को यह बात सबसे अधिक चुभती थी. वह अपनी अम्मा को गम की घड़ियां गुजारते देखता था. उसका जीवन नरक बन गया था. अकसर वह भूखी पड़ी रहती. दिन-पर-दिन वह कमजोर होती जा रही थी और छत्तीसवें साल में उस पर छप्पनवें साल का ढलाव झलकने लगा था. उसके केश श्वेत हो रहे थे. कभी-कभी वह अपने पिता के विषय में सोच कर, दांत किटकिटा कर कहता—जानवर!

—अगर वह मेरे साथ आने से इनकार कर देगा, तो मैं उसे वहीं छोड़ आऊंगा! उसने क्रोध में कहा.

—किसी की सहायता ले लेना. लेकिन उसे ले आना.

—मेरी सहायता कोई नहीं करेगा, अम्मा, कोई भी नहीं! पा हर किसी को गाली बकता है. पिछले हफ्ते बोलाई ने उसको लात मार दी थी.

—बोलाई ने उसका लात मार दी और तू खड़ा देखता रहा! क्रोध और सदमे की कचोट से उसकी अम्मा तिलमिला गयी.

—मैं क्या करूं? लड़के ने नाव का लंगर खोला. बोला, यह बोलाई और पा के बीच की बात है, वे निबटा करें!

उसकी अम्मा फफक-फफक कर रो पड़ी.

—मैं क्या करूं, अम्मा ? लड़के ने कहा,—मैं हमेशा पा से कहता हूं कि घर चलो, पर तुम्हें मालूम है, वह मुझसे कहता है—ए पिल्ले, जहन्नुम में जा!

उसकी अम्मा के कपोलों पर आंसुओं की बूंदें लुढक रही थीं. किंतु वह बोली—सोना, अपने पिता को घर ले आ! अभी जा! तू उस दिन खड़ा देखता रहा और बोलाई ने तेरे पिता को लात मार दी! अरे कृतघ्न, तू समझता क्यों नहीं कि वह तेरा बाप है!

जब उसने अपना सिर ऊपर उठाया, तो देखा सामने नदी में सोना नाव को छिछले पानी से बचा कर लिये जा रहा था.

ए-सींग की दुकान में कोहराम मचा हुआ था. माना लार टपकाते हुए बार के इर्द-गिर्द लड़खड़ा रहा था. दुकान का मालिक उसके व्यवहार से इतना परेशान न था जितना उसकी भद्दी बकवास से. ग्राहक नफरत से भर गये थे. हर शनिवार की रात मानो की पियक्कड़ी से यहां गड़बड़ी हो जाती थी. एक बार मानो के

यहां आ जाने के बाद कोई चैन की सांस न ले सकता था.

सोना के आ जाने के सबको राहत मिली. जब सोना होटल के अंदर गया, ता' किसी ने माना की तरफ इशारा किया. वह शक्कर की बोरियों के बीच पड़ा था.

—पा, सोना ने नशे में मदहोश अपने पिता को पुकारा.

मानो ने आंखें ऊपर घुमायी—तू क्यों आया? किसने भेजा तुझे?

—अम्मा ने तुम्हें घर बुलाया है, सोना ने कहा.

—अम्मा ने भेजा है? तू मेरा मालिक है क्या? एं...एं? वह लड़खड़ाता हुआ लड़के की ओर बढ़ा. सोना पीछे नहीं हटा. बूढ़े ने सोना की बायीं कनपटी पर तमाचा जड़ दिया—तो, तू मेरा मालिक बन कर आया है. क्यों? और फिर उसने लड़के को कस कर लात मार दी.

दो-तीन आदमियों ने मिल कर मानो को संभाला और बहार लाये. सोना ने अपना हाथ पसली पर रख लिया, जहां अभी उसके पिता ने लात मारी थी. उसकी आंखों में आंसू आ गये. मानो का नशा गहरा होता जा रहा था. अब उसके लिए अपने पैरों पर खड़ा रह सकना मुश्किल हो रहा था. वह अपने आपको गिरफ्त से छुड़ाने के लिए संघर्ष कर रहा था. आदमी उसे पकड़े आगे बढ़ रहे थे. सोना उनके मार्ग से अलग हट गया.

—कितनी शर्म की बात है! किसी ने कहा.

—शर्म? मानो भुनभुनाया, और यह छोकरा मेरा मालिक है अब? उसकी अम्मा ने उसको यहां [illegible] मेरे लिए? मुझे छोड़ दो! मैं उसे मार डालूंगा!

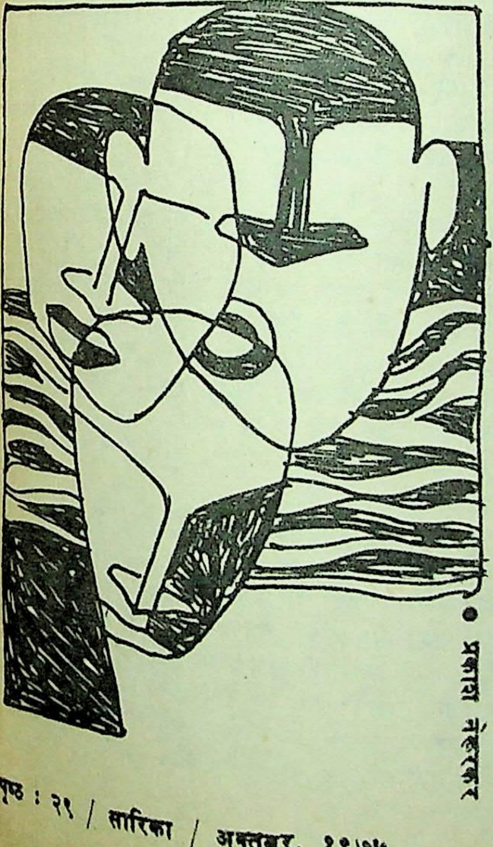

मानो अब इस स्थिति में पहुंच चुका था कि उसे नियंत्रित करने में विशेष कठिनाई नहीं हुई. उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी. वह आदमी जो चिल्लाया था कितनी शर्म की बात है, दोबारा बोला—लड़के, इसे घर क्यों नहीं ले जाता?

—नाव तक ले चलने में मेरी मदद करो! सोना ने आदमियों से कहा. अब वह उत्तेजित नहीं था. वह मात्र एक ही बात सोच रहा था कि किसी भी तरह पिता को मयखाने के हंगामे से बाहर निकाल लाये. कोई नहीं कह सकता था कि उसके चेहरे की शांति के पीछे क्या उबल रहा है. कोई नहीं जानता था कि उसके मस्तिष्क में घृणा की कैसी लपटें उठ रही हैं. सोना और चार आदमियों ने मिलकर मानो को उठाया और नाव में डाला. बूढ़ा मानो गहरे नशे की हालत में खर्राटे भर रहा था. वह खुमारी की उस अवस्था में था जब सब कुछ खामोश हो जाता है. किनारे से चारों व्यक्तियों ने नाव को आगे धक्का दिया.

—पा! लड़के ने कहा. उसका पिता गुर्राया.

—पा, हम घर जा रहे हैं.

नदी, नदी के आगे फैला बरगदों का बीहड़ और रात. पानी की सतह के नीचे घड़ियालों और मगरमच्छों के झुंड. लड़के ने दोबारा मानो की ओर देखा—तो पा, तुमने उस वक्त मुझे लात मारी!

★ ★

दूर रात के साये में सोना की अम्मा इंतजार कर रही थी. बहुत देर तक वह बेचैनी से करवटें बदलती रही, फिर उसकी आंखें नींद के बोझ से बंद हो गयीं. कमरे के फर्श की चरमराहट से उसकी नींद टूटी.

—कौन है, मानो?

—मैं हूं, अम्मा...! सोना बोला.

उसकी हड्डियां जैसे गली जा रही थीं. नशे से नहीं, भय के आतंक से. उसके अंदर का शेर अब गीदड़ हो गया था. बोलते हुए उसकी आवाज कांपने लगी.

उसकी अम्मा ने बड़ी अधीरता से पूछा—तू वैसे ही चला आया? मानो कहां है? लड़के ने जवाब नहीं दिया. अंधेरे में वह अपने नाखून कुरेद रहा था. अम्मा ने फिर बेचैनी से पूछा—कहां है मानो?

—पा बाहर सोया है...नशे में...!

—अरे नादान! उसकी अम्मा ने कहा और वह माचिस खोजने लगी.

सोना तेजी से बाहर खिसक गया. भय से उसका खून जम रहा था और अब सिर भी चकराने लगा. उसने नदी के ओर दृष्टि डाली और फिर अपने घर की ओर देखा. सिर्फ एक शब्द उसके मस्तिष्क पर बार-बार हथौड़े की चोट कर रहा था—पुलिस!

—मानो...! मानो...!

सोना ने सुना. उसकी अम्मा घर की नीरवता को आवाज दे रही थी—मानो...! मानो...!

भय से त्रस्त वह रात के अंधेरे में डूबे बियाबान की ओर भाग गया. □□□

फिसलन

• बार्नबास रेमन फोर्चून

प्रतियोगिता का दिन था वह और हर चीज तैयार थी. चिकने खंभे के सिरे पर रस्सी के फंदे में एक व्हिस्की और एक रम की बोतल झूल रही थीं और उनके ऊपर कार्डबोर्ड का बक्सा था, जिसमें सौ डालर का नोट था.

मैं भीड़ में खड़ा खंभे को ताक रहा था, जो आसमान में जहाज के मस्तूल की तरह पच्चीस फीट सीधा चला गया था. खंभा सिरे से पेंदे तक चर्बी में सना था. इसके पहले खंभे की सतह को कांच की तरह चिकना बना दिया गया था. खंभे पर चिपकी चर्बी अब धूप में पिघल रही थी. मानो किसी प्रागैतिहासिक जानवर का पसीना हो.

खंभे के निकट ही मेयर खड़ा अपनी घड़ी देख रहा था. गरमी ऐसी हो रही थी, मानो जमीन की अंतड़ियों में से आग की हिलोरें उठ रही हों और लगता था, जैसे सूरज अपनी धुरी छोड़ कर जमीन की सतह के बिल्कुल करीब आ कर तप रहा हो. लेकिन आंखों पर हाथ रख कर ऊपर देखने से मालूम होता था कि सूरज अपनी जगह पर ही था और अपने चमकते दांतों से निष्ठुर उपहास कर रहा था.

ठीक बारह बजे प्रतियोगिता शुरू हो जायेगी. मैंने घड़ी में देखा, बारह में दो मिनट की देरी थी. मेयर ने घड़ी देखी और जोर से कहा——शुरू!

पहला प्रतियोगी खंभे पर लपका, लेकिन तुरंत ही वह नीचे खिसक पड़ा. उसकी पीठ जोरों से जमीन से टकरायी. उसने मेरीनो और खाकी जांघिया पहन रखा था. उसकी कांख, ठोढ़ी और चेहरा चर्बी से लथपथ हो गये थे. मेयर ने फिर अपनी घड़ी देखी और जोर से कहा——शुरू!

चार-पांच सौ आदमियों के झुंड में कहकहे गूंज रहे थे. दूसरा प्रतियोगी खंभे के पास आया, लोगों की ओर मुड़ कर उसने सिर झुकाया और खंभे की ओर बढ़ा. उसके अवयव पतले, लंबे और हलके थे, जैसे कोई पेड़ बहुत जल्दी बहुत ऊंचा हो गया हो. उसकी तरकीब ऐसी लग रही थी, जैसे वह पहले प्रतियोगी की तरह आक्रमण न करते हुए खंभे को प्रेमी की तरह फुसलाना चाहता है. उसने चुस्त छलांग लगायी और खंभे को बांहों में कस लिया. एक क्षण वह ऐसे चिपका रहा, मानो कोई मक्खी पानी पर छटपटा रही हो. अपने हाथों और पैरों को वह आवेश से पटक रहा था. लेकिन कोई प्रगति न हो रही थी. तब वह शनैः शनैः पेंदी की ओर खिसकने लगा और उसके घुटने व पंजे जमीन पर आ लगे . अब खंभे के नीचे के दस फीट साफ थे और भूरी लकडी चमक रही थी. मैंने देखा. अब प्रतियोगी आसानी से नीचे नहीं खिसक रहे थे. वही-के-वही आदमी बदन पर लगी चर्बी को टाट के टुकड़ों से पोंछ कर बार-बार अपना हुनर आजमाने आते थे. कभी-कभार कोई प्रतियोगी मुश्किल से छह इंच ऊपर चढ़ता और चर्बी से लथपथ हो जमीन पर आ लगता था. बहुत-से प्रतियोगी अपने साथ रेत और थैले भी लाये थे. खंभे से कुछ दूर रेत के ढेर लगे थे, और शक्कर व चावल की बोरियां यहां-वहां उस मानवीय अखाड़े में बिखरी पड़ी थीं और उन सबके बीच वह खंभा था, जो माउंट एवरेस्ट की भांति चुनौती दे रहा था. तब धीमे-धीमे एक तेज होती हुई हलचल लोगों के समूह में फैल गयी. आवाजें बढ़ने लगीं . एक ओर से दूसरी ओर प्रतिध्वनि गूंजने लगी.

——ग्रीजी पोल ! ग्रीजी पोल !

मैंने उसके बारे में सुना था. हर किसीने उसके बारे में सुना था. लेकिन उस महान ग्रीजी पोल को देखने का अवसर अब तक न आया था. लोग उस महान व्यक्ति के लिए जगह बनाते हुए पीछे हटने लगे. ग्रीजी पोल पिछले पांच सालों से इस प्रतियोगिता का विजेता रहा था. और अब ग्रीजी पोल अखाड़े में आ खड़ा हुआ.

* *

वह ठिगना और काला था–एक नीग्रो से भी ज्यादा काला--चमकता हुआ और असली काला. उसकी वसायुक्त गिलटियां उसकी चमड़ी को एक खास चमक दे रही थीं. उसके घुंघराले बाल उसके गोल सिर पर बहुत छोटे लग रहे थे और धूलसने होने से सिर्फ अलग दिखते थे. उसके बायें कंधे पर बोरियों का ढेर था. कंधे उसके चौड़े थे. लेकिन मेरी नजर उसके पैर और पंजों पर टिक गयी. उसका कद देखते हुए उसके पैर बहुत लंबे थे, असामान्य रूप से लंबे. उसके बीच के जोड़ भी लंबे थे, जिनमें पकड़ की बेजोड़ क्षमता नजर आती थी. जैसे ही वह चलता, उसके पंजे जमीन में धंस कर उसको पकड़ लेते थे और पीछे बहुत गहरे निशान छोड़ देते थे.

वह खंभे के सामने खड़ा हो कर उसे देखने लगा, मानो दुश्मन की ताकत नाप रहा हो. उसके चेहरे पर कोई मुसकान नहीं थी. उसकी आंखें तनी हुई थीं और वहां जमा भीड़ के प्रति वह उपेक्षापूर्ण था, जैसे वह अकेला ही वहां हो. दूसरे ही क्षण उसके चौड़े चेहरे पर उत्तेजना फैल गयी, मानो हवा ने पानी को छेड़ दिया हो. वह मुसकराया. उसने अपने दुश्मन की कमजोरी खोज ली थी. पहली बार वह लोगों की ओर मुड़ा और उसने सिर झुकाया.

——ग्रीजी पोल! ग्रीजी पोल! लोग खुशी में

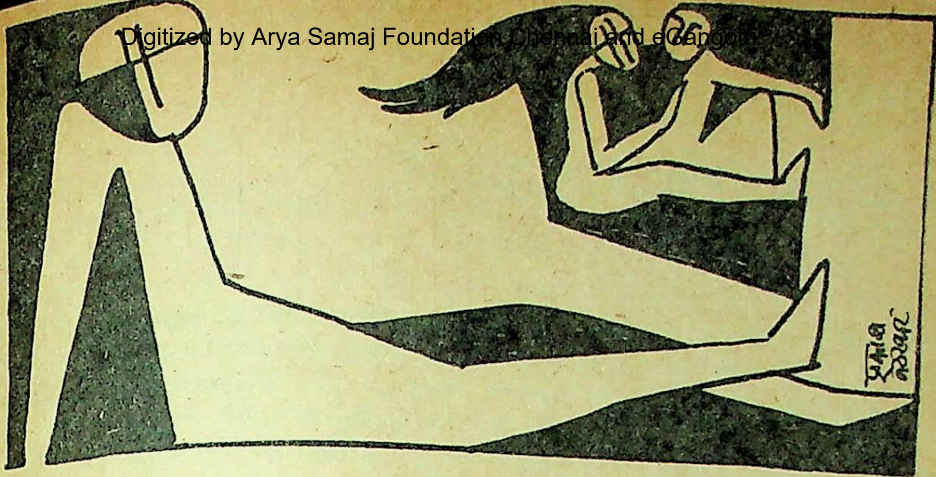

• प्रकाश नेरूरकर

चिल्लाने लगे. वह एकदम तन कर खड़ा हो गया, लेकिन तुरंत झुका और कुछ चर्बी जमीन से बटोर कर उसने शरीर के अगले हिस्से पर और पैरों पर पतली तह में मल ली. फिर वह रेत के ढेर की ओर बढ़ा और मुट्ठियां भर-भर कर उदारता से उसने अपने शरीर पर रेत छिटकी. उसके बदन का अगला हिस्सा रेजमाल के लंबे टुकड़े-सा नजर आ रहा था. अब वह फिर से खंभे की ओर गया और कूद कर उस पर उछला. वह नीचे नहीं फिसला. उसके भारी जबड़ों जैसे पंजे खंभे की चिकनी गोल सतह पर फैल कर उसमें धंस गये.

जन-समुदाय में से चीखें निकलने लगीं और लोग बहकने लगे. पीछे से किसीने मेरी पीठ पर ठपकारा.

ग्रीजी पोल कुछ क्षणों के लिए खंभे को ऐसे जकड़े रहा, जैसे कोई कुश्तीबाज अपने प्रतिद्वंद्वी को गिरफ्त में ले लेता है. तब उसके शरीर ने गोता खाया और वह कई इंच ऊपर उठ गया. जल्दी ही उसके हाथ उस निशान पर जा पहुंचे. जहां अब तक सबसे ऊंचा चढ़ने वाला प्रतियोगी पहुंचा था. उसके पैरों का तनाव मुझे साफ दिख रहा था. उसके पंजे टखनों जैसे थे. उसके शरीर ने फिर गोता खाया और उसके हाथ चर्बी में ऊपर की ओर खिसकने लगे.

एकाएक वह नीचे की ओर फिसलने लगा, बहुत धीमे-से लेकिन बेफ़िक्री से. तब वह रुका और उसने खंभे को अपनी जांघों से दबोच लिया. वह एक भोंडी और भद्दी तितली-सा दिख रहा था. वह वहां हांफता हुआ ठहरा रहा. उसने एक के बाद दूसरा हाथ खंभे से हटाया और चर्बी को पोंछ कर नीचे फेंक दिया.

उसके शरीर में फिर हरकत हुई. उसके बड़े-बड़े पंजे पूरी तरह अलग-अलग फैल गये और तुरंत वह अपनी जगह जा पहुंचा.

अब वह बहुत तेजी से चढ़ रहा था. उसके हाथ चर्बी को तेजी से बुहार रहे थे. वह चर्बी को नीचे जमीन पर फेंकता हुआ चढ़ता जा रहा था. जैसे ही वह खंभे के शिखर के करीब पहुंचने लगा, लोगों के झुंड में से चीखें उठने लगीं. अब उसके रुकने का कोई आसार न दिखता था. उसके ठहरने और सांस लेने का अब कोई सवाल न था. उसे शिखर पर पहुंचना था, या हार मान लेनी थी. वह पुट्ठा पार कर गया. अब वह सौ डालर के बक्से की तरफ बढ़ रहा था.

उमस और उत्तेजना ने हम सबको जड़वत कर दिया. भीड़ में एक गहरा सन्नाटा फैला था. अचानक समूची भीड़ का ध्यान दूसरी ओर खिंच गया, मानो किसीने हवा में गोली दाग दी हो. ग्रीजी पोल भी अपनी जगह पर ठिठक गया. कोई औरत जार्ज बार्कर का नाम ले कर पुकार रही थी.

—जार्ज बार्कर! जार्ज बार्कर!

वह भीड़ के पीछे से चिल्ला रही थी. लेकिन उसकी आवाज लोगों के माथों के ऊपर हंसिये-सी काट रही थी.

ग्रीजी पोल ने नीचे उस ओर ताका, जहां से आवाज़ आ रही थी.

—जार्ज बार्कर, यह मत भूलना कि तुमने गयी रात यह पैसा मुझे देने का वादा किया था. खंभे के सिरे पर रखा इनाम मेरा है. जार्ज बार्कर, इसे याद रखना!

ग्रीजी पोल का शरीर एकदम ढीला पड़ गया. उसकी मांसपेशियां उसके जिस्म की मुलायम सतह में धंस गयीं. चार सौ लोगों के गले में गहरी सांसें अटकने लगीं, जब ग्रीजी पोल धीरे-धीरे खिसकता हुआ जमीन पर आ लगा. उसने हम सबको उदासी और हताशा से देखा, मानो उसने हमारे साथ विश्वासघात किया हो.

मैंने अपने अंतरमन में लंबी काली आंखों वाले साल भर से कम के उस शिशु को देखा, जिसकी पैतृकता के बारे में ग्रीजी पोल शायद झिझक रहा था. वह लड़का था या लड़की, मैं कभी न ज़ान सकूंगा. उससे क्या होना था?

ग्रीजी पोल ने शर्म और पराजय में अपना सिर झुका लिया और भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ गया. बाद में उसी शाम को मैं ग्रीजी पोल से एक फुटपाथ पर टकरा गया. वह नशे में धुत पड़ा था. □□□

(अनुवाद : गोपालचंद्र जोशी)

लहरें तुम्हें पुकारें

• जेन विलियम्स

जब से याददाश्त साथ देती थी, फ्रेंक टापू पर ही रहता आया था. उत्तर में सेंट विसेंट का नीला धब्बा खुले आकाश के दिन साफ दिखायी पड़ता था और सिर दूसरी तरफ घुमाने पर आरे के दांतों-सी नुकीली यूनियन द्वीप की वे पहाड़ियां दिखतीं, जिनकी पृष्ठभूमि में केरीकू का नीला धब्बा नजर आता. वह सब द्वीपों के नाम जानता था--वे सारे चट्टानी, सूखे द्वीप, जिनमें छोटे से बारिश के मौसम में ब-मुश्किल कपास, मकई व मटर की दयनीय फसलें हो जाती थीं.

--बस, और कभी कुछ न होना है--फ्रेंक यह तब से कहा करता था, जब से वह बच्चा था. हालांकि उस समय वह इतना सयाना था कि नाव को हाथ दे सके और दादीम्मा के साथ डांड चला सके. जब वे जलशिलाओं में मछलियां बटोरने और केंकड़ों और कंबुओं के लिए गोता लगाते.

दादीम्मा कहा करती--जन्मना, मरना और उनके बीच जिंदगी की चंद घड़ियां, इसके सिवाय कहीं कुछ न होना है. . .और यह कहते हुए वह ओठ भींच लेती व डांड का तनिक सहारा ले कर पसीना पोंछ लेती. और तब वह फुर्ती से हथेली के हलके झटके दे कर नाव खेती रहती और अक्सर रुक कर हदी गहराईयों में झांकती या किसी चट्टान की दरार की ओर गोता खाने खिसक जाती जहां उसकी पैनी नजर से कोई दुबका हुआ केंकड़ा या चट्टानों के जोड़ों में चिपके घोंघा के जत्थे छिपे न रहते.

कभी-कभी भाटा आने के वक्त वे जल-चट्टानों के अंदर नाव खेते हुए शेल टापू की ओर बढ़ जाते जो एक बालुई सीपियों से भरी पट्टी थी, जहां पुराने दिनों में कभी नारियल के कुछ पेड़ खड़े थे, जिन्हें समुद्री लहरों ने अब लील लिया था. और सिवाय कुछ ठूंठों के अब उनका कुछ शेष न था. सीपियों से ढंका और दलदला शेल टापू—सफेद सीपियों और मूंगों के रेगिस्तान में कभी-कभी पीले समुद्री झाग से चमकीला हो उठता था. और जब कभी ज्वार की लहरों के साथ कोई गुलाबी घोंघा या लंबी चितकबरी कौड़ी तट पर आ गिरते तो बेरहम धूप में तपते-तपते वे भी पुरानी हड्डियों की तरह सफेद पड़ जाते.

फ्रेंक को शेल टापू से प्रेम था. उसकी चचेरी बहिन फीबी को भी उस टापू से लगाव था. फीबी की मां ने, जो रिश्ते में फ्रेंक की मौसी होती थी, उसको जन्म दे कर आखिरी सांस ले ली थी. कुछ लोग कहा करते थे कि सेंट विसेंट से युवा बाजान ने जब अपने जहाज में उस टापू पर आना बंद कर दिया, तो मेली को जिंदगी से जूझने के लिए अकेला छोड़ दिया गया. जैसा अकसर आदमी किया करते हैं. और इससे मेली का दिल टूट गया. फ्रेंक को याद था उसकी मौत कब हुई थी. जब सकरी पहाड़ी के रास्ते से हो कर उसकी लाश कब्रगाह दफनाने ले जायी जा रही थी, तब दादीम्मा किस कदर दबी चीखें मार रही थी. उसको यह भी याद था कि किस तरह इस समझ का सदमा उसके दिल में बैठ गया था कि मेली की आवाज हमेशा के लिए खामोश हो गयी थी और बदले में थी फीबी की वे कमजोर आवाजें जिन्हें मीठे पानी में भीगे कपड़े या हलके झूलों से आसानी से चुप किया जाता था.

जब वह बच्ची थी तो फ्रेंक उसको अपनी बाहों में ले कर घंटों अपनी फूस की झोंपड़ी की देहरी पर बैठा रहता. और उसकी पीली-सुनहरी चमड़ी, बेहद मुलायम केश व भूरी पुतलियों वाली उसकी नीली आंखों को निहारा करता. जब वह उसे यों उठा रखता तो उसके खुद के छोटे काले हाथ तुलना में इतने मटियाले और बेमेल लगते कि अपने दिमाग में उसने फीबी को एक अलग ही जगह दे दी थी.

जब वह दादीम्मा के साथ नाव में जाने लायक हो गयी तो उसके बाल व चेहरा धूप से बचाने के लिए फ्रेंक ने उसके लिए जंगली बेंत की टोप गूंथ दी थी. लेकिन समय के तकाजे ने धूप के लिए रास्ता बना दिया था. और पंद्रह वर्ष की उम्र में ही वह भूरे-सुनहरी रंग में तप गयी थी. और उसके बाल खारे पानी और धूप में पीले पड़ गये थे.

जब फ्रेंक उसके इकहरे शरीर को समुद्री दागों से भरी टूक-टूक पोशाक में देखता तो उसका हृदय भीतर-ही-भीतर कचोटने लगता. ले दे कर उसके पास यही एकमात्र पोशाक थी. और उसके सुनहरी रंग के पैरों पर सूखी धूल जम जाती या उसके पैर उस समय अधिक स्वर्णाभ दिखते, जब वह केंकड़ा या घोंघा ले कर नाव में लौटती.

फ्रेंक ने अपने आपसे कहा--फीबी का इस तरह कपड़े पहने रहना ठीक नहीं दिखता और वह अपने दिमाग में फीबी की वह तसवीर खींचने लगा, जो मैगजीन के चित्रों की लड़कियों की तरह थी. कभी-कभी पादरी उसको मैगजीन देखने दे देता था. वह देखने लगा फीबी स्वच्छ श्वेत वस्त्र पहने थी, और उसके केश संवारे हुए थे. जिनमें शायद रिबन लगा था न कि उसके उलझे हुए बाल हवा में बिखर रहे थे या दादीम्मा

द्वारा किसी रविवार को गूंथे हुए बालों के मुलायम गुच्छे सरक आये थे. और [illegible] हो गये थे. वह अपने आपसे कह रहा था, फीबी कितनी अच्छी लगे अगर उसके ओठों पर लिपस्टिक हो, उसकी सीधी नाक पर पाउडर का फोहा और आसपास किनारों पर सुनहरी लाली छिड़की हो!

किसी दिन मैं इस टापू से जरूर निकल सकूंगा. —अरुबा या ट्रीनीदाद जाऊंगा——या कहीं और. फीबी के लिए ढेर-सा रुपया कमा कर लाऊंगा .—फ्रैंक खुद से बातें कर रहा था. लेकिन वह जानता था कि जब तक दादीम्मा जीवित थी वह उस टाप के बाहर पैर नहीं रख सकता था, क्योंकि उनके छोटे-से खेत में काम करने वाला या मछलियां पकड़ कर सूखे मटर और मकई की फसल को सहारा देने वाला और कोई न था. उसकी काली आंखें अतीत के विचारों में खो जातीं जब वह याद करता कि दादीम्मा के साथ नाव में घूमना किसी जमाने में सिर्फ उसके लिए सैर थी.

लेकिन बीतते हुए वर्षों के साथ, जैसे ही वह और फीबी होशियार होने आये, बचपन की बेफिक्री एकदम काफूर हो गयी थी; और अब उसकी जगह ले ली थी रोज की रोटी के लिए कड़ी और निर्मम तलाश ने, जो दादीम्मा और टापू के दूसरे निवासियों की नियति थी. लेकिन पैसा कमाने का सपना अभी टूटा नहीं था, यद्यपि हताशा उसे घेरे थी, जब वह फीबी के बारे में सोचता और यह सोचता कि उसके लिए उसने क्या-क्या मंसूबे बांध रखे थे. उधर फीबी हर परिस्थिति को यथावत आकस्मिक रूप से स्वीकार कर लेती थी और यह चीज कभी-कभी फ्रैंक को गहरी निराशा में धकेल देती थी. फ्रैंक का स्नेह भी वह स्वीकार करती थी, हालांकि उसे यह पता नहीं था कि किसी दिन उसकी

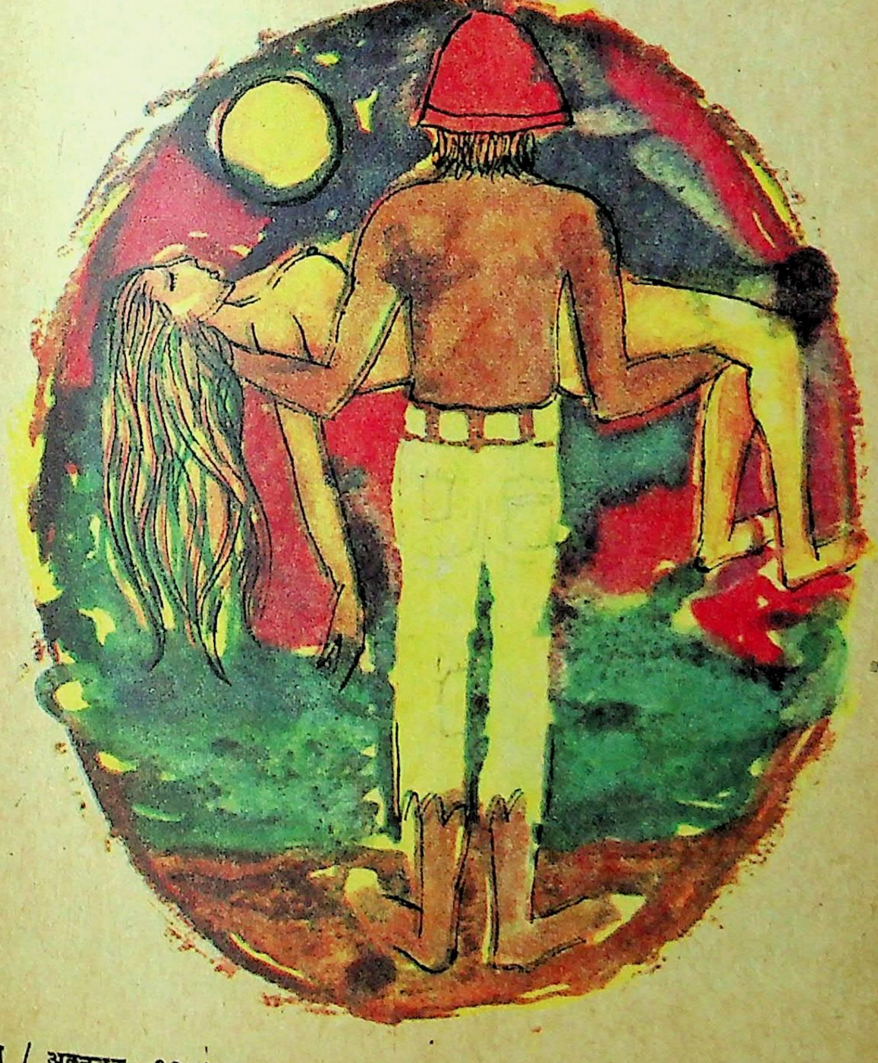

● प्रकाश नेहरकर

तरुणाई का रुका हुआ पानी बांध तोड़ देगा. और उसको तूफानी लहरों में फेंक देगा, जिसके लिए कि उसके सौंदर्य ने उसको गढ़ा था. फ्रेंक के लिए फीबी जिंदगी की एक खूबसूरत चीज थी, जिसमें भविष्य की कोई आशा न झलकती थी. लेकिन उस खूबसूरती के पीछे भय लरक रहा था.

★ ★

और एक रात वह बात पूरे आवेग के साथ उसके सामने आयी, मानो दोनों आंखों के बीच किसीने करारी चोट दी हो—फीबी के प्रति अपना प्रेम साबित करने के लिए उसको कुछ कर दिखाना होगा. चट्टानों पर घंटे बिता कर वह बस्ती की ओर वापस लौट रहा था; भोजन के लिए उसने मशाल से केंकड़े पकड़े थे. अगले दिन चट्टानों से मछलियां पकड़ने का उसका इरादा था, क्योंकि उनको अब ज्यादा म्यूले और चब मछलियों की जरूरत थी ताकि दोनों जून की रोटी मिल सके, क्योंकि अनाज सब खत्म हो गया था और किसी दूकान से खरीदने को कौड़ी भी पास नहीं थी. उसने सोचा था, वह दो-एक लाल केंकड़े या बड़ी मछलियां पकड़ेगा. उनमें से एक दो वह कृषि-अधिकारी को बेंच देगा, जो अभी-अभी सरकारी रेस्टहाउस में आया हुआ था. उस टापू पर इतने कम यात्री आते थे कि उस अवसर को वह चूकना नहीं चाहता था. वह पथरीली पगडंडी से सावधानी से आ रहा था तब उसे कुछ आवाजें सुनायी पड़ीं—आदमी के गले की गहरी घरघराहट और एक लड़की की तीखी खिलखिलाहट. वह फीबी ही थी. उस छोटे से टापू पर, जहां हरएक हर किसीको जानता था, फ्रेंक को यह समझते देर न लगी कि वह आदमी कोई अजनबी था. वह चुपचाप खड़ा हो गया और कनसूए लेने लगा. उसको अब बालुई तट के किनारों की समुद्री अंगूरों की झाड़ियों में धीमी सरसराहट के अलावा और कुछ सुनाई न पड़ा.

अपने कमरे के कोने में पड़ा वह दर्द से घुट रहा था. दादीम्मा खर्राटे भर रही थी. एक मुर्गे ने बांग दी और दूसरे ने उसका जवाब दिया. कहीं किसी कुत्ते के भौंकने की आवाज आयी. ये आवाजें रात में दर्द-भरी और रहस्यमय लगी थीं. अब तक उसने फीबी को बच्चा ही समझा था—एक खुशमिजाज और कभी शिकायत न करने वाला साथी, जिसने डोंगी पर उसके साथ दिन गुजारे थे या तेज धूप में कुदाली चलायी थी: वह उसके लिए एक सुनहरी आत्मा थी, जिसे वह, खुद काला और मैला होते हुए भी, उस कष्टमय जिंदगी की राह से उबारेगा जहां भाग्य ने उसको ला पटका था. उसका मस्तिष्क इस बात पर आ कर लड़खड़ा कर जड़ीभूत होने लगता कि अपने सुनहरी जिस्म और नीली आंखों के बावजूद फीबी उतनी ही घटिया थी, जितना उसके वातावरण ने उसको ढाला था. वह टापू पर रहने वाली दूसरी लड़कियों से भिन्न न थी. चाहे वह द्वीप की दूसरी काली लड़कियों से अलग दिखती हो लेकिन असलियत में उसमें और उनमें कोई फर्क न था.

यह बात उसके दिल में वैसे ही लगी जैसे किसी नुकीले पत्थर से कोई ठोकर खा जाय! उसे चोट पहुंची. उस चोट को वह हफ्तों तक सहलाता रहा. हमेशा यह कोशिश करते हुए कि वह फीबी को कुछ कहने का अधिकार पाये और उसको समझाये, लेकिन वह जान गया था कि उसे कोई अधिकार न था. उसने अपने आप से पूछा—वह फीबी से यह कहने वाला कौन होता है कि वह उससे प्रेम करता है!

कुछ दिन बाद अजनबी चला गया और फीबी का रात को गायब हो जाना भी बंद हो गया, लेकिन फ्रेंक अब ध्यान से उसमें बारीक परिवर्तन देखने लगा. जैसे-जैसे हफ्ते महीनों में सरकने लगे. हमेशा तन्वंगी और छरहरी वह अब ज्यादा सलोनी मालूम पड़ने लगी और उसके चेहरे की आभा में ऐसा निखार आ गया, जिससे उसकी छवि पारदर्शी हो गयी थी. और इस कारण उसके गंडस्थल की नीली शिराएं लज्जत दे रही थीं.

अब नाव खेते हुए वह गाती नहीं थी. और रात में एक या दो बार उसने फीबी को कराहते हुए भी सुना. वह उसको उसी तरह अपनी बांहों में लेने की इच्छा करता जैसे कि वह बचपन में लिया करता. लेकिन वह जानता था कि उसके छरहरे शरीर को अपने करीब लाने की उसकी ईहा अब जितना उसके सुख के लिए थी उतनी ही फीबी के लिए थी. लेकिन जब कभी वह उसके बिखरे हुए बालों को छूने की कोशिश करता, वह सिर्फ इतना ही कहती, जैसा कि वह अभी कुछ दिनों से कहने की अभ्यस्त हो गयी थीं, हाथ अलग ले लो. और उसकी आवाज तीखी और कड़वी होती, जो असल में उसकी न जान पड़ती थी. अपने दर्द को मसोसकर उसी तरह पीछे हट जाता जैसे फीबी अपनी पीड़ा से पीछे हट जाती.

एक दिन सुबह दादीम्मा उठी नहीं. वह किरमिच की जर्जर खाट पर अपनी झोंपड़ी की दीवार के सामने पड़ी थी. उसके पैर दुबले पेट की तरफ मुड़े थे और बदन कांप रहा था. और वह कुछ बुदबुदा रही थी. अपने सिर पर बंधे सफेद कपड़े के बिना, जो वह हमेशा लपेटे रहती, आज वह बहुत ही वृद्ध दिखायी दे रही थी- फ्रेंक मन में सोचते हुए जाल के सिरों पर तार बांध रहा था और फीबी दरवाजे के पास अंगीठी पर झुकी थी. फीबी को गरम पानी की भगौनी में शकर चलाते और उसको टिन के तीन गिलासों में उंडेलते देख कर उसके पेट में तूफान मचल रहा था.

—आज के लिए न रोटी है, न आटा—फीबी ने उसको मीठे पानी का गिलास थमाते हुए कहा.

—हां, बात ठीक है फीबी! लेकिन मुझे आज कोई खास भूख नहीं है. उसने जवाब दिया.

फ्रेंक खाड़ी पर आज जल्दी रवाना होना चाहता था क्योंकि कृषिअधिकारी ने उसको कहा था कि वह दोपहर में नांव में सेंट विसेंट जायेगा तो अपने साथ कुछ केंकड़े और म्यूले मछली का एक बड़ा टुकड़ा ले जाना पसंद करेगा. भाग्य से उसको कुछ बेच कर वे कुछ मकई और आटा खरीद सकेंगे. फीबी दूकान पर चली जायेगी.

वह दूकानदार फीबी से सौदा करना पसंद करता था. कभी-कभी फीबी उससे पावरोटी का टुकड़ा या बिस्किट का चूरा हथिया लाती थी.

खामोशी में नाव खेते हुए फ्रैंक की आंखें गिरजा घर और फूस की गड्डमड्ड झोंपड़ियों की ओर टिकी थीं, जो कभी दादीम्मा के जवानी के दिनों में एक संपन्न कस्बा रहा था. जबकि अधिकतर टापू एक जागीर के अंतर्गत थे. फ्रैंक फीबी के बालों के सुनहरी गुच्छों को देखना चाहता था, और उसकी मैली-कुचैली पोशाक में—जिसमें पीछे की बाजू थिगलियां लगी थीं और जहां जल्दी ही दूसरी थिगली की जरूरत पड़ने वाली थी—उसके शरीर के अवयवों की स्थिति का अंदाज लगाना चाहता था. उसने चाहा कि वह उसकी बाहों को पकड़ कर झकझोर दे और उससे कहे——सुनो फीबी! ध्यान से सुन लो, तुमको दूसरी लड़कियों की तरह नहीं बरतना चाहिए.

तब ज्योंही वे खाड़ी छोड़ कर जल-शिलाओं के भीतर छिछले हरे पानी की तरफ मुड़ आये थे, फ्रैंक अपने दिन के काम पर मेहनत के साथ जुट गया, वर्षों की आदत, वर्षों का समुद्र से संघर्ष——उसका जीवन! और मानो किसी खामोश सहमति से वे दोनों और धीमे डांडें चलाने लगे और उनकी आंखें समुद्र की हरी गहराइयों में वह खोजने लगीं, जिसे वे ढूंढ रहे थे.

दो बार उसने अपने डांडे को रोपा, बाजू में उतरा और गोता लगाया, हवा के लिए उपर आया, फिर गोता खाया; और फिर वह नाव में उचक आया और फीबी की ओर मुसकराते हुए उसने दुम पकड़ कर कैंकड़ों को नाव में डाल दिया. जब-तब वह और फीबी स्वच्छ नीले पानी में डोंगी में से गोता लगा जाते और इस तरह वे शेल टापू से आ लगे : क्योंकि उस चट्टान की कगार पर जो कि गहरे पानी में मस्तूल की तरह जलशिला की तरफ झुक आयी थी, फ्रैंक अपना जाल-फैला कर खड़ा रहेगा और फीबी किनारे-किनारे छिछले पानी में खेती हुई घोंघे और कैंकड़ों की टोह में रहेगी.

वे कगार की तरफ पहुंच ही रहे थे कि फीबी ने अचानक अपना डांडा टिका दिया, वह परेज पर झुक गयी और बुरी तरह से उबकाई करने लगी. फ्रैंक स्तंभित रह गया. जिस बात का उसे डर था वह अब सचाई बन कर सामने थी; और एक अंधे क्रोध ने उसे बावला बना दिया.

नष्ट करने की वृत्ति ने और सब कुछ को ढंक दिया. अब फीबी का बचाव किसी भी सूरत में सहसा संभव न था, लेकिन उसकी स्वयं की शर्म और आक्रोश को मिटाने के लिए फीबी को नष्ट किया ही जाना था. मुश्किल से जानते हुए कि वह क्या कर रहा है, उसने नाव के बाजू में दर्द से झुकी फीबी के सुनहरी माथे पर अपनी पूरी ताकत से घूंसा कस दिया.

और उसके सिकुड़े हुए शरीर और नाव के पेंदे में लटके हुए सिर को देख कर जहां कि वह गिर पड़ी थी, फ्रैंक के अंतस में भय और करुणा उमड़ पड़े, जिन्हें सहन करना उसकी बर्दाश्त के बाहर हो गया; और इसलिए तट की चमकती हुई सफेद रेत और समुद्र के परे की गुस्ताख नीलाई की ओर एक उन्मत्त खोजती हुई नजर डाल कर उसने फीबी की देह को उठाया और नाव के बाजू पानी में डाल दिया. वह झुका और उसने उसे देखा——जैसा कि पहले उसने कई मर्तबा देखा था.—लहरों में झलमलाता फीबी का सिकुड़ा हुआ शरीर.

वह स्वयं समझ पाये इसके पहले ही वह गोता लगा कर उसके करीब पहुंच गया और अब वह किसी रूप में भी कल्पना की बिगड़ी हुई तसवीर न थी बल्कि उसके सामीप्य और साहचर्य में थी. फ्रैंक ने उसको पकड़ना चाहा लेकिन हर बार वह उसे छल जाती, और वह बहाव के दबाव के साथ कभी उधर तो कभी इधर बह आता. बार बार हांफते हुए वह सतह पर उठता, गहरी सांसें भरता और फिर गोता लगाता. आखिरकार उसने फीबी को अपने कब्जे में ले लिया और उसके शरीर को अपनी बांहों में निष्प्राण अनुभव किया. जैसे ही वह उसको संभाल कर सतह पर ला रहा था तो अकस्मात अपने किये का खयाल कर वह आतंक से भर उठा. उस विचार और उसके भय से उसका खून जमने लगा.

एक गहरी सांस ले कर उसने फिर गोता लगाया उन्हीं चिर-परिचित गहराईयों में जिन्हें वे अतीत में इतनी अंतरंगता से जानते थे. उसने पानी के दबाव से जी-तोड़ संघर्ष किया यहां तक कि बहाव के थपेड़ों से उसका सिर चक्कर खाने लगा, और अपनी समूची बची हुई ताकत बटोर कर उसने फीबी के शरीर को चट्टानों की एक दरार की ओर खींचा, हवा में सांस लेने वह ऊपर उठा और गोता लगाया कि मूंगे की चट्टान के एक बड़े खंड को पकड़ सके ताकि फीबी के शरीर को वह अधिक सुरक्षित ढंग से पत्थरों की दरार में फंसा दे.

थकान से चूर वह निढ़ाल हो कर द्वीप की गरम सफेद बालू व मूंगों पर लेट गया और स्तब्ध आंखों से आसमान को और उसमें उड़ते हुए बादलों की दौड़ देखने लगा. और उसे समझ में न आया कि उसने अभी जो गर्जन सुनी थी वह उसके दिमाग में उबलते हुए खून की थी या जलशिलाओं से टकराती समुद्री तरंगों की. फीबी के प्रति उसका प्यार एक विशाल सफेद प्रकाश के रूप में उसके अंदर फूट पड़ा.——समयहीन श्वेत प्रकाश की लहर के बाद लहर कि आखिर में उस प्रकाश में अंधा हो कर उसकी चौंधियाने वाली चमक से बचने के लिए वह पानी में फिसल गया. वह उससे एक बार फिर मिलेगा. अब वह वापस नहीं जा सकता. दादीम्मा और जिंदगी के साथ में, जैसे कि फीबी नहीं जा सकती थी. एक नरकुल-सी सुनहरी बांह को उसने पानी के अंदर हिलते देखा और उसे छुआ और उस चट्टान को सरका दिया जिसके वजन से फीबी की देह दरार में टिकी हुई थी. अपना मुंह खोल कर उसने बोलने की कोशिश की और आखिरीबार फीबी के नाजुक स्वर्णिम शरीर को पानी की सतह पर सलोनेपन से उठते देखा.

(अनुवाद : गोपालचंद्र जोशी) □ □ □

इंद्रधनुष का पुत्र

• जेन केरयू

अतीत में बहुत-बहुत पहले पवन एक एकाकी व्यक्ति था. काफी समय तक वह उस अकेलेपन को अपने पेट से बांधे रहा, यहां तक कि एक दिन वह आया जब उसके लिए अधिक सहना कठिन हो गया. वह फूट निकला और बेचारे पवन को उसने बौरा दिया. अब उसने घाटियों में हुंकारना और घास के मैदानों में गरजना शुरू कर दिया. वह उस बेबून-मादा की तरह बिलाप किया करता, जिसने अपना एकमात्र शिशु खो दिया हो. और अपने उन्माद में पवन अपना खुद का चेहरा देखना सहन न कर सकता था. इसलिए हर वक्त जब वह शांत सोये हुए जल को देखता, उसे छेड़ कर क्षुब्ध व चंचल बना देता.

एक दिन पवन ने केटक के बड़े प्रपात के पड़ोस के एक्सेबायो कस्बे में ढोल बजने और लोगों के गाने की आवाजें सुनी और छाया का बहाना बना कर रेंगते हुए वह खुफियागीरी करने वहां पहुंचा कि असल में क्या राज था?

उस रात दर्रे से उठती हुई संगीत– ध्वनियां, जो नदी के बेताल कर रहे थे, ऐसी लग रही थीं मानो लाखों मर्मर-पक्षियों के पंखों की फरफराहट हो. और एक मोटी तोंदवाला ढोलकिया, जो छाया बने पवन के करीब ही मोरा वृक्ष के नीचे बैठा था, ढोलक की बकरे की खाल को ऐसे सहलाने लगा जैसे वह किसी औरत का जिस्म हो.

नदी के बेताल मर्मर-पक्षियों के गुंजन-सा संगीत कर रहे थे, गाज पक्षी का गायन गूंज रहा था और तोंदू ढोलकिया भी ताल ठोक रहा था, और पवन अब नाच नहीं सकता था, वही पवन, जिसके पैर इतने हलके थे मानो सेमल के फूल. लेकिन लोग मौज में नाच-गा रहे थे, 'कशेरी' पी रहे थे, और एक पियक्कड़ ने कशेरी से भरा तुम्बा पवन के मुंह में उंडेल दिया जो वृक्ष के नीचे लुका-छिपा खेल रहा था. जैसे ही पवन ने उसे पिया उसका खून गर्माने लगा और उसका पेट फूलने लगा. नशे ने उसको बेहद बौरा दिया और वह गरज उठा— अरे! संगीत मत रुकने दो! ढोलकियां बजाये जाओ.

—हां, मालिक! पवन! एक ढोलकिये ने जवाब दिया, और उसने मदहोशी में आ कर ताल ठोक दिये और उसके सीधे हाथ को यह पता नहीं था कि उसका बांया हाथ क्या कर रहा है, और अचानक पवन ने नाचना शुरू कर दिया. पहले ही चक्रवात में उसने मोरा के वृक्ष को जड़ से उखाड़ फेंका, जिससे उत्सव में शरीक आधे लोगों की जान चली गयी. गाज पक्षी अपनी गुफा से बाहर निकल आया और उसने पवन को कटलता जंजीर से जकड़ने की कोशिश की ताकि उसका जोश कम पड़ जाये, लेकिन पवन पैंतरेबाजी कर चंपत हो जाता और अपने को टुकड़ों में बिखेर लेता और फिर से टुकड़ों को जोड़ लेता, और सारे वक्त वह लाल बेबून बंदरों से भरे वन की तरह गरजता-तरजता रहा.

पवन तब तक कलोल करता रहा, जब तक उसको नींद ने न धर दबाया और तब वह सिकुड़ कर, रोरेमा, उस लाल पहाड़ की चौरस चोटी पर लेट गया, और यही वह जगह थी जहां गाज पक्षी ने सवेरे उसको देखा. क्योंकि पवन अभी चुपचाप पड़ा था, इसलिये गाज पक्षी को उसे पकड़ने में कोई दिक्कत न हुई और वह उसको बांध कर केटक के पीछे अपनी गुफा में ले आया. इधर प्रमुख देवता चर्चा कर रहे थे कि पवन को किस प्रकार दंडित किया जाये, और उधर गुफा के द्वार से, पवन ने करवट से मुड़ कर बाहर झांका. ओस गिरने के पहले सूरज की किरनें कुहासे पर चमक रही थीं और पहली बार पवन ने देखा इंद्रधनु अपने केशों को संवार रही थी. कोहरे में इंद्रधनु की झलक ने पवन के कंठ में राग भर दिया और वह ऐसा गीत गा उठा, जो मुरलिका के स्वरों से भी मधुर था. और जब पवन ने गाना शुरू किया तो बड़े देवताओं ने गुर्राना और कोसना बंद कर दिया और वे गायन को ध्यान से सुनने लगे. एक देवता कह उठा— मैंने इतना सुरीला राग पहले कभी नहीं सुना.

दूसरा देवता भुनभुना कर बोला— बस, शैतान ही ऐसा राग अलाप सकता है!

दूसरे देवताओं ने, जो इर्द-गिर्द खड़े थे, उनको चुप कराने की कोशिश की; और उस संगीत की गूंज बारी के अंदर और बाहर, चारों ओर लहराने लगी और जब सूरज ने उसे सुना तो वह झूम कर नाचने लगा और इंद्रधनु के केश नीचे बिखर आये. बात यह थी कि प्राचीन समय में देवताओं ने झरने की ऊपर से गिरती जलधारा से इंद्रधनु के केश गूंथे थे और उस खड़ी चट्टान के सामने चारों ओर उन्होंने आर्किड रोप दिये थे जिससे इंद्रधनु फूलों को चुन कर अपने केशों में लगा सकें. वन में बसने वाले पुराने लोगों का कहना है कि इंद्रधनु ने नदी के बेतालों पर जादू-टोना कर उन्हें मोहित कर लिया था ताकि वे दिन-रात बांसुरी बजाते रहें और जब सूरज, चांद या तारे संगीत सुनने निकल आयें तो वह उनकी रोशनी चुरा कर अपने बाल संवार सके. इसीलिए तो,

पुराने लोग कहते हैं, इंद्रधनु के केश इतने चमकीले होते हैं. पवन अपना गायन इंद्रधनु को तब तक सुनाता रहा जब तक वह अपने केश संवारती रही और अपने चुने हुए आर्किड के फूलों को उसने गिर जाने दिया कि वे नीचे दर्रे में उनींदी चट्टानों से टकरा कर नष्ट हो गये.

शक्तिवान देवताओं ने पवन से वचन लिया कि वह चाहे जो करे या कभी भी कितना ही तूफानी क्यों न हो जाये, वह जब-तब गाता रहेगा. पवन ने गाते रहने का इस शर्त पर वचन दिया कि देवता लोग जंगल के पेड़ों पर बीन के तार रच देंगे और वे घास के मैदानों के कुछ तिनके खोखले रख देंगे जिससे कि जब वह लेटा रहे तो घास की बंसी बजा सके. देवताओं ने कहा वे पवन की इच्छानुसार कर देंगे और उन्होंने पवन को बंधन से मुक्त कर दिया; और वह गुफा से बाहर दौड़ पड़ा और उसने इंद्रधनु को नख से शिख तक आलिंगन में भर लिया. वह तब तक इंद्रधनु के शरीर से सटा रहा जब तक सूरज को ईर्ष्या न हो आयी, वह बादल की ओट में छिप गया. पवन ने इंद्रधनु के शरीर का इतने आवेग से घर्षण किया कि आकाश में चारों ओर उसकी अलकावलि बिखर गयी. उसके अलक कहीं चट्टानों में उलझ गये, कहीं पास के पेड़ों पर गुंथ गये, और नदी का पहरेदार काई, जो इंद्रधनु की रखवाली किया करता है, अबाबीलों के झुंडों के साथ ऊपर उड़ा और उसने इंद्रधनु पर साये का लबादा डाल दिया. कुछ क्षणों तक पवन अपनी प्रेयसी इंद्रधनु को अपने भुजपाश में जकड़े रहा और तब वह अचानक अदृश्य हो गयी. तब से जब कभी कोहरा होता है, पवन पीछा करता हुआ इंद्रधनु की तलाश करता है. बर्फीले पहाड़ों पर, नदियों के ऊपर, वृक्षावलियों पर, और भोर में, घास के मैदानों पर— सब कहीं— जब वर्षा होती है और धरती से भाप के बादल उठते हैं— लेकिन पवन को इंद्रधनु कहीं न मिली क्योंकि नदी के लोगों ने उसको क्षितिज के एक गहरे कुंए में बंद कर दिया जहां घास के मैदान लुप्त हो जाते हैं.

एक दिन आग के पंखों वाले कठफोड़वे ने पवन को खबर दी कि इंद्रधनु के गर्भ से उसको एक शिशु-बालक हुआ है और इंद्रधनु ने संदेसा दिया है कि अगर वह बच्चे को देखना चाहे तो रात के आकाश में फिर से वक्री चंद्रमा के निकलने के पूर्व लाल पहाड़ की चोटी पर एक झूला डाल दे. दूसरे दिन पवन ने झूला डाल दिया और उसको इमली की पत्तियों से भर दिया और वह बैठ कर वक्री चंद्रमा के उदय की बाट जोहने लगा. प्रतीक्षा करते हुए उसने कसावा वृक्ष की टहनियों का पत्ता तक न हिलाया, न घास के तिनकों को अपनी उंगली के पोरों से छुआ ही. और पवन के संगीत के बिना जंगल के लोगों ने आपस में झगड़ना शुरू कर दिया, लेकिन उन्हें मदद करने पवन टस से मस न हुआ. आखिरकार वह समय आया जब आकाश में वक्री चांद उदित हुआ. इंद्रधनु अपने शिशु को बांहो में थामे पहाड़ के उपर कोहरे की चादर से प्रकट हुई और उसने शिशु को पवन के बनाये झूले में रख दिया और जब पवन ने इंद्रधनु के पास पहुंचना चाहा तो कोहरा बिखर गया और उसके साथ ही इंद्रधनु भी अदृश्य हो गयी.

पवन ने शिशु का नाम अमालीवाका रखा, अमालीवाका याने तलाशी का बालक! अमालीवाका की आंखें चमकीली थीं और उसका स्वर गीतमय था क्योंकि उसकी नसों में पिता पवन का संगीत दौड़ रहा था. उसकी क्रीड़ा-स्थली लाल पहाड़ की चौरस चोटी दोरेमा थी और उसके सखा मेक्यूशी चींटियां और एक जी नामक वृद्ध गिद्ध पक्षी थे. पुराने लोग कहते हैं, जी वह पक्षी था जबकि कुरूपता का बंटवारा हो रहा था तो उसने अपने हिस्से में सब ले ली थी. उसके पंख भूरे मटमैले थे और आंखें शोकभरी और धुंधली, गर्दन झुर्रियों से भरी नंगी थी और उसकी आवाज इतनी कर्कश थी कि सुनने वाले के कान पक जाते थे, आपके कानों पर उसका हर शब्द ऐसा पड़ता जैसे किसीने झाड़ का खुरदुरा तना रगड़ दिया हो. लेकिन जी बुद्धिमान था, उसका हृदय बड़ा दयालु था और पिता पवन ने अपने एकमात्र शिशु अमालीवाका को जी के सुपुर्द कर दिया.

अमालीवाला सारे दिन चट्टान पर बैठा रहता और वृद्ध गिद्ध पक्षी जी की आवाज सुनता व मेक्यूशी चिटियों

एयर-इंडिया प्रस्तुत करती है सप्ताह में पैंसठ उड़ानें—५ महाद्वीपों के लिए.

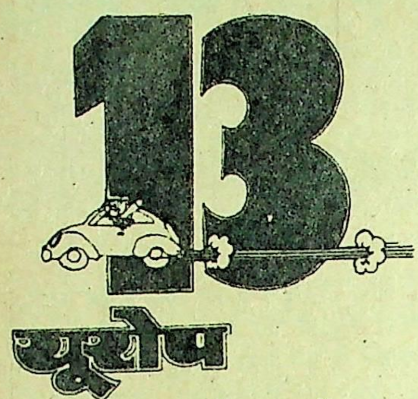

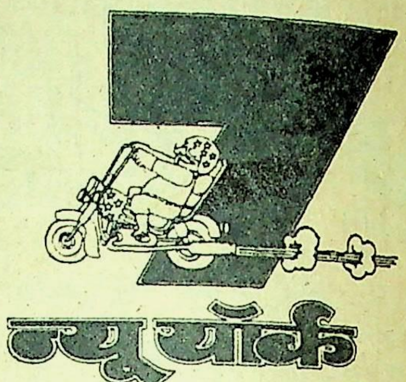

यूरोप के लिए सप्ताह में १३ उड़ानें

लंदन ? नौ ७४७ विमानों को आपका इंतजार है. इनमें से तीन, शुक्रवार, शनिवार और मंगलवार को, तेज गतिवाले हैं. अन्य छह में आपको रोम, पेरिस या फ्रैंकफर्ट हो कर जाने की सुविधा मिलती है. इसके अलावा दो ७०७ विमान जिनेवा हो कर. मॉस्को ? दो ७०७ विमान.

न्यू यॉर्क के लिए सप्ताह में ७ उड़ानें

हर दिन ७४७ विमान की एक उड़ान. मध्य पूर्व और यूरोप होते हुए. हमारे विशेष एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत न्यू यॉर्क जा कर वापस लौटने का किराया आम तौर पर लगनेवाले एकतरफ़ा किराये से भी कम पड़ता है.

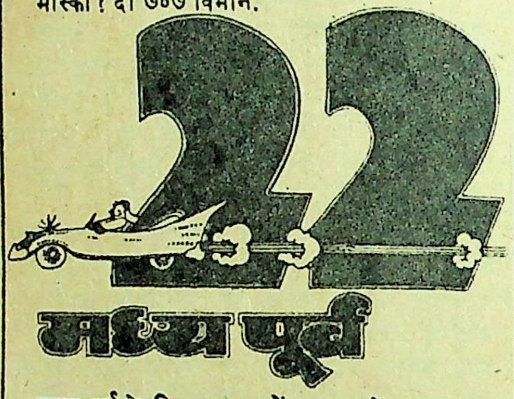

मध्य पूर्व के लिए सप्ताह में २२ उड़ानें

बेरूत ? पाँच ७४७ विमान उड़ान भरने को तैयार. कुवैत ? चार ७४७ तथा दो ७०७ विमानों में से आप मनपसंद चुनाव कर सकते हैं. दुबई के लिए चार ७०७ विमानों में से कोईसा भी चुनिए. बहरैन तथा मस्कत के लिए तीन उड़ानें तथा आबू धाबी, कैरो और तेहरान में से प्रत्येक के लिए दो उड़ानें. इसके अलावा अदन, दौहा या दहरान में से प्रत्येक के लिए एक ७०७ विमान.

साथ ही हर सप्ताह :
६ उड़ानें
जापान के लिए हाँग काँग हो कर—
४ टोकियो के लिए
२ ओसाका के लिए. १० उड़ानें
दक्षिण पूर्व एशिया के लिए—
६ बैंकॉक के लिए और
४ सिंगापुर के लिए.
२ उड़ानें
ऑस्ट्रेलिया के लिए
३ उड़ानें
पूर्व अफ्रीका के लिए
२ उड़ानें
मॉरिशस के लिए.

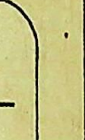

एयर-इंडिया
आपकी मनपसंद एयरलाईन

AI. 9084

को बुर्ज बना कर अन्न-संग्रह करते देखा करता. जब लाल पहाड़ की चोटी पर वर्षा होती तो फेनिल निर्झर नीचे घाटी में गिरने लगते और पानी की दौड़ती हुई जुबानें अपने साथ नीचे घाटी में यह खबर लेती गयीं कि लाल पहाड़ की चोटी पर सपने में डूबा चमकीली आंखो वाला एक लड़का बैठा है और वह पवन का बेटा है.

एक दिन बड़े भोर में बड़े मालिक, अकाराई ने, एक तूर्य-वादक पक्षी को रवाना किया कि वह अमालीवाका को लाल पहाड़ से नीचे ले आये. तूर्यवादक पक्षी ने आकर उस चट्टान पर दस्तक दी जो गिद्ध के घोंसले की रक्षा-दीवार थी.

—कौन है? गिद्ध ने पूछा.

—मैं हूं, तूर्यवादक; बड़े मालिक, अकाराई ने मुझे खोजी पवन के बेटे के लिए संदेश लेकर भेजा है.

—तब मैं उस लड़के को लिये आता हूं, तूर्यवादक, और तुम्हीं उससे बात कर लेना. अ-म-ऽ-ली-वा-का! अमालीवाका, तुम्हारे जाने का वक्त आ गया है, बड़े मालिक, अकाराई ने, तूर्यवादक को तुम्हें बुलाने भेजा है.

और वह लड़का जिसकी आंखो में मोतियों की चमक थी, आया और तूर्यवादक का संदेश सुनने लगा.

—अकाराई ने कहा है, तुम्हें अब घाटियों के निवासियों के बीच पहुंच जाना चाहिये—– नीचे यूटीशी के दर्रे में जहां एक्सेबायो लोग बसते हैं. उसने कहा है तुम्हारे पिता ने उन लोगों का नुकसान किया था और तुमको वह क्षति-पूर्ति करना है.

और अमालीवाका ने वृद्ध गिद्ध पक्षी की झुर्रियोंभरी गर्दन का आलिंगन किया और उसकी आंखों से निकाला जल उसके मटमैले पंखों पर गिर पड़ा और दो चमकीले मोती वहां छूट गये.

--बच्चे अब तुम जाने की तैयारी करो, जाने की तैयारी करो, वृद्ध गिद्ध पक्षी ये शब्द दुहराता रहा और उसकी धुंधली आंखो में उदासी छा गयी. और जब पिता पवन ने सुना कि उसके लाड़ले बेटे को नीचे दर्रे के लोगों के बीच जाना है तो उसने अपनी मुट्ठी जोरों से खड़ी चट्टान पर पटक दी और उसके साथ ही वह चीख उठा --अकाराई, मेरे लड़के को लाल पहाड़ की गोद में उन्मुक्त खेलने दो, इस लड़के में इंद्रधनु की चमक है और उसका हृदय पक्षी के फरफराते पर की तरह कोमल है, वह नहीं जानता कि नफरत किसे कहते हैं!

और जब अकाराई ने पवन को चिल्लाते सुना तो वह रोते हुए वन के पास के पहाड़ी शिखर से गरजकर कहने लगा—सिर्फ अमालीवाका, जिसमें इंद्रधनु की चमक है, घाटी के लोगों के जीवन की रक्षा कर सकता है. पिता पवन तुम उसे जाने दो व अपनी संगीत की देन उसे दे दो. उस संगीत के जादू से वह वृक्षों पर बीन बजायेगा और बड़े मैदानों में घास से बंसी की तान छेड़ेगा.

और पिता पवन ने वैसा ही किया जैसा अकाराई का अनुरोध था, और उसने लड़के को वृद्ध गिद्ध की पीठ पर उड़ा कर रोते हुए वृक्षों के कुंज में छोड़ दिया. अमालीवाका पेड़ की बेजान पत्ती पर बैठ गया और पिता पवन की दी हुई चांदी-सी बंसी बजाने लगा. पार्श्व की संकरी खाड़ी में वंशी की तान गूंजने लगी और वह संगीत सारे जंगल में व्याप्त हो गया और लोमी टूकन पक्षी आम का पेड़ छोड़ कर रोते हुए वृक्षों के कुंज में चला आया, और मरुदी, माम, गुंजारते पक्षी, गायक उलूक, और रात की तरह अंधा चमगादड़ सब चारों ओर आ इकट्ठे हुए; और सारे के सारे जंगली हिंस्र जानवर, सर्प, घड़ियाल, भेड़िया, मछली, अरापेमा व हसर, सभी उस संगीत के चंबुक से खींचे चले आये. उस विजन जंगल में, तब से जब से कि काले सांप ने धरती को समंदर में से खींचकर बाहर निकाला था, पहली बार इंद्रधनु के पुत्र ने जीवन की चमक पैदा कर दी थी. और यह खबर आग की तरह फैल गयी कि घास के मैदानों में पिता पवन किसी का पीछा कर रहा था और सारी दुनिया के संघर्ष का—– अंत करने के लिए एक नबी आ गया था.

अमालीवाका ने आ कर एक्सेबायो औरतों की कोख को उर्वर किया और वह अपने साथ मेक्यूशी चींटियां लाया जो गांव के लोगों को काम करने का सबक सिखा सकें. और वह गांव रौनक से भर उठा.

और पागल पिता पवन अपने बेटे की रखवाली करता और यदि अमालीवाका वर्षा को बुलाता तो पवन तुरंत ही मेघ-पक्षी को उसकी गुफा से पुकारता जो झील का पानी अपनी पीठ पर लाकर उलीच देता, और अगर खोजी पवन का लड़का सूखे मौसम की तमन्ना करता तो पवन बादलों को झुंडो में इकट्ठा कर उनको क्षितिज के किनारों पर उड़ा ले जाता.

अमालीवाका प्रकाश का पहला अग्रदूत था. वह खोजी पवन का शिशु था, और इंद्रधनु का पुत्र था, और उसने घाटी के लोगों के आपसी संघर्ष का अंत कर दिया—– रोते हुए जंगल की नदी से लेकर चांद-साये वाले पहाड़ तक.

□□□

(अनुवाद : गोपालचंद्र जोशी)

एक लोककथा

खलीफा की तनख्वाह

हजरत अबूबकर सद्दीक जब खलीफा बने, तो सवाल पैदा हुआ कि खलीफा का वजीफा क्या मुकर्रर किया जाये. बहुत सोच-विचार के बाद फैसला हुआ कि इस मामले को खलीफा की मर्जी पर छोड़ दिया जाये. अतः हजरत अबूबकर सद्दीक ने पूछा—–मदीना में एक मजदूर की रोजाना आमदनी क्या है, बस उतनी ही मजदूरी लूंगा.

लोगों ने कहा—–हुजूर, इतनी कम आय में आप कैसे गुजारा करेंगे?

खलीफा ने फरमाया—–जिस तरह मजदूर गुजारा करेगा, मैं करूंगा. . . इसका एक फायदा यह होगा कि मैं कोशिश करता रहूंगा कि मजदूर की आमदनी बढ़ती रहे और इस तरह मेरे वजीफे में भी वृद्धि होती रहे.

□□□

(प्रस्तुतकर्ता : हसन जमाल)

गुस्ताख़ियां

• प्रकाश पंडित

औकात की बात

उर्दू दैनिक **'मिलाप'** में **'प्याज के छिलके'** ऐसा लोकप्रिय व्यंग्य कालम लिखने वाले फिक्र तौंसवी साहब कालम लिखते समय जिस दरियादिली का प्रमाण देते हैं, अपने व्यक्तिगत जीवन में पोखर या तालाब दिली तक का नहीं देते. सिगरेट आप बेतहाशा पीते ह लेकिन दूसरों के. अपना सिगरेट पीने की जब कभी नौबत आती है, तो आप जेब में पड़ी हुई सिगरेट की डिबिया को जेब में पड़े-पड़े ही खोल कर उसमें से एक अदद सिगरेट निकालते हैं और बड़ी दिलेरी बल्कि दीदा दलेरी से उस व्यक्ति के नथनों में धुआं छोड़ने लगते हैं जिसकी सिगरेटों की डिबिया आपने अभी-अभी खाली की होती है. कॉफी हाऊस में भी आप ठंडे पानी के गिलास का आर्डर देना ही पर्याप्त समझते हैं और अगर कोई चाय या कॉफी पिलाने वाला धर्मयोद्धा न मिले तो पानी का गिलास भी वापस कर देते हैं कि बिल और बैरे को टिप देने की नौबत न आये. और बस में तो आप उस समय तक सवार नहीं होते जब तक आपके क्षेत्र का एक-एक व्यक्ति बस पर सवार हो कर विगत नहीं हो जाता.

यह तो खैर आजकल की बात है जब आपको खासा वेतन मिलता है और लेखन आदि से भी खासी आय हो जाती है लेकिन होनहार बिरवान के चिकने-चिकने पात. बात आज से चौथाई सदी पहले की अर्थात भारत विभाजन के तुरंत बाद की है, जब आप शरणार्थी बन कर और भारत सरकार की जोर से प्रबंधित बस में बैठ कर सीमा पार करने की बजाय इसलिए ठेले पर सवार हो कर सीमा पार करके जालंधर पहुंचे थे कि बस में कहीं कोई परिचित न मिल जाये और यह न कह गुजरे कि हम तो सब कुछ लुटा-पुटा के तीन कपड़ों में आ रहे हैं और आप उदवायन समेत चारपाइयां, खाली कनस्तर और खूंटियां तक लिये जा रहे हैं.

जालंधर में एक ही ऐसा परिचित व्यक्ति था जो आप ही की तरह बतहाशा सिगरेट पीता था और संयोग से अपनी पीता था—— 'मखमूर' जालंधरी. प्रत्यक्ष है कि इश्क, मुश्क और सिगरेट का धुआं छिपाये नहीं छिपता. फिर साहब सिगरेट का धुआं सूंघते-सूंघते मखमूर साहब के यहां पहुंचे और बस पहुंच गये. सिगरेट, खाना-पीना, सोना-जागना और खांसना-छींकना वहीं होने लगा और शाम को खुली सड़कों पर सैर भी होने लगी.

एक दिन एक खुली सड़क पर सैर करते-करते फिक्र साहब की नजर सड़क के किनारे पड़ी एक ऐसी कार पर जा पड़ी जिसके न टायर थे, न इंजन , न स्टीयरिंग व्हील, न मडगार्ड, यहां तक की डिक्की का ढकना तक गायब था. फिक्र साहब ने खड़े हो कर बड़ी हसरत से उस खटारे की ओर देखा और एक ठंडी आह खींच कर, जिसमें मखमूर साहब के पैकेट के अंतिम सिगरेट का धुआं भी शामिल था, बोले—— अगर कहीं यह गाड़ी मुझे मिल जाये तो मैं इसे ठीक करा कर अपने इस्तेमाल में ले आऊं.

——हत तेरे की, मखमूर जालंधरी ठिठक कर बोले, किसी गाड़ी के लिए अगर तुम्हें 'अगर' ही कहना है तो सड़क है तो सड़क पर जा रही शेवरलेटों और फोर्डों के लिए क्यों नहीं कहते कि अगर इनमें से कोई गाड़ी मिल जाये तो. . .

——मैं अपनी औकात पहचानता हूं. फिक्र तौंसवी ने बड़े इत्मीनान से उत्तर दिया और जेब में पड़ी हुई सिगरेट की डिबिया में से जेब के भीतर - ही- भीतर सिगरेट निकालने में व्यस्त हो गये.

आटे की बोरियां

चर्चा गाड़ी की चली है तो चर्चा एक और गाड़ी की भी सुनिए. यह गाड़ी उर्दू के प्रसिद्ध लेखक और फिल्मनिर्माता राजेंद्रसिंह बेदी की गाड़ी थी —— बहुत लंबी-चौड़ी, जो उन्होंने अपनी एक फिल्म की असफलता के बाद कर्ज के बोझ से उभरने या बच कर निकल भागने के लिए नयी-नयी खरीदी थी.

फिक्र तौंसवी

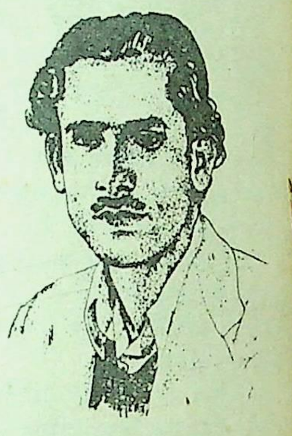

उन्हीं दिनों पंजाबी के प्रसिद्ध लेखक संतसिंह सेखो बंबई आये. पंजाबी साहित्य केंद्र की ओर से उन्हें एक पार्टी दी गयी जिसमें राजेंद्रसिंह बेदी भी शामिल हुए. पार्टी के बाद संतसिंह सेखो के अलावा पंजाबी के कुछ और लिखारी भी बेदी साहब की कार में बैठ गये और बेदी साहब ने उन्हें विभिन्न नाकों पर पहुंचाने की जिम्मेदारी ले ली.

रास्ते में अपनी छिदरी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए पंजाबी लिखारी सुखबीर ने कहा—— बेदी साहब, यह गाड़ी आपके प्रोड्यूसर होते

की सही निशानी है.

--क्यों नहीं, पंजाबी के एक और लिखारी बोले, गाड़ी क्या है, पूरा छकड़ा है.

—और इसमें, सेखों साहब ने मुसकरा कर कहा, आटे की बोरियां भी लादी जा सकती हैं.

--वही तो लादे लिये जा रहा हूं. . . बेदी साहब भी मुसकरा कर बोले.

जी हां, बारह बजते हैं

बेदी साहब बड़े ही मनोरंजक स्वभाव के सिख हैं. उन्हीं का सुनाया हुआ एक लतीफा या घटना है कि--बेदी साहब के एक मुसलमान दोस्त ने एक दिन उनका मजाक उड़ाने के लिए बड़े भोलेपन से उनसे पूछा--बेदी साहब! आप सिखों के यह जो बारह बजते हैं, इसमें कहां तक सच्चाई है?

मखमूर जालंधरी

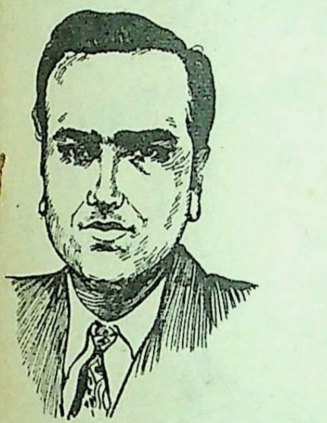

—काफी सच्चाई है. बेदी साहब ने उत्तर दिया.

--फिर तो आपके भी बारह बजते होंगे.

--जरूर बजते हैं.

--उस समय क्या होता है?

--यही कि कोई गलत हरकत करने को जी चाहता है.

--अच्छा. मुसलमान दोस्त मुसकराया, अब यह बताइए कि यह बारह किस वक्त बजते हैं, दोपहर को या रात को?

—दोपहर को, बेदी साहब ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया, क्योंकि उस समय गर्मी बहुत होती है और गर्मी में सिर के लंबे-लंबे बालों के कारण हर सिख बौखला जाता है.

--लेकिन बेदी साहब, मुसलमान मित्र ने ऊपरी आश्चर्य से कहा, हमारे मोहल्ले में एक ऐसा सिख रहता है जो रात के बारह बजे बौखलाता है.

--वह असली सिख नहीं होगा. बेदी साहब ने उसी गंभीरता से कहा, मुसलमान से सिख बना होगा.

जिगर की खराबी

बात गाड़ियों की चली थी इसलिए एक और गाड़ी-- चलती नहीं, खड़ी गाड़ी और उसमें बैठे थे कुंवर महेंद्र सिंह बेदी, अली जवाद जैदी, साहिर लुधियानवी और प्रकाश पंडित. यह गाड़ी प्यारेलाल भवन, दिल्ली के अहाते में खड़ी थी और भवन के भीतर स्टार पॉकेट बुक्स का दस साला जशन मनाया जा रहा था, जिसमें स्वर्गीय रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने जीवन का अंतिम भाषण करते हुए दस साला जशन मनाने वालों के लत्ते लिये थे कि ये लोग दस साल बाद दो-चार अच्छी किताबें छाप कर (उन दिनों जशन मनाने वालों ने दिनकरजी की 'उर्वशी' के कुछ अंश भी छापे थे) अपने सिर पर कलंगी लगाना चाहते हैं कि हम साहित्य की सेवा कर रहे हैं. लेकिन वास्तव में यह फर्जी लेखकों के नामों से घटिया किताबें छाप कर अपनी तिजोरियां भर रहे हैं. और बाहर गाड़ी में बैठे हुए और डिकी के पेग की प्रतीक्षा करते हुए, जिसे साहिर साहब का ड्राइवर असलम तैयार कर रहा था, साहिर साहब कह रहे थे कि अमरनाथजी (स्टार पाकेट बुक्स वाले) सुबह कह रहे थे कि रुपया हमने बहुत कमा लिया है. बंगले बनवा लिये हैं. कारें खरीद ली हैं. दरीबा कलां से निकल कर दरिया गंज, फिर आसफ अली रोड और अब कनॉट प्लेस में दफ्तर बना लिये हैं लेकिन हमारी प्रेस्टीज नहीं बनी. इस जशन और बेतहाशा पब्लिसिटी से अब हम अपनी प्रेस्टीज बना रहे हैं. . . उन्होंने अभी इतना ही कहा था कि असलम मियां ने पेग बना कर चंडाल चौकड़ी को थमा दिये.

राजेंद्र सिंह बेदी

साहिर लुधियानवी

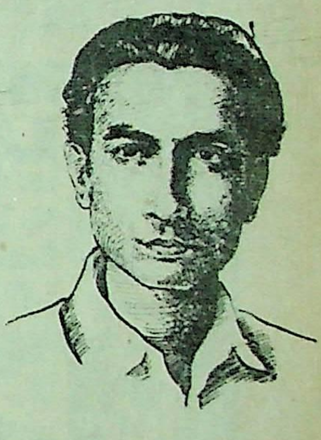

—अरे. . . रे. . . नहीं, नहीं अली जवाद जैदी ने अपना पेग लेने बल्कि छूने से इनकार करते हुए बड़ी नम्रता से कहा, आजकल मेरा जिगर खराब है.

--आपका जिगर तो आजकल खराब है, साहिर लुधियानवी ने जबरदस्ती उन्हें पेग थमाते हुए कहा, मेरा और प्रकाश पंडित का पिछले बीस बरस से खराब है.

कर्तव्यनिष्ठ थानेदार

और इसी गाड़ी का--जिसमें उपर्युक्त चंडाल चौकड़ी बैठी

femina –२४ अक्टूबर १९७५ विशेषांक–

भारतीय मिठाइयां–दीवाली के लिए तैयार हो रही हैं!

इस बार आप मिठाइयां न खरीदें उन्हें घर पर ही बनायें।
जीहां, फेमिना के इस अंक की मदद से, आप भारत के हर राज्य की
स्वादिष्ट मिठाइयां आसान तरीकों से और कम-खर्च में बनायें।
इनमें से कुछ व्यंजन तो ऐसे हैं जिनमें मंहगे पदार्थ डालने की आवश्यकता
नहीं। सामग्री भी ऐसी लगती है जो कम-खर्चीली है और
आसानी से मिल भी जाती है।

तो, अपने परिवार के साथ इन मिठाइयों का मजा लेने के लिए तैयार हो जाइये।

ये रहीं महाराष्ट्र से: करंजी, चिरोटी, अनारसे, गोकुल पीठ
गुजरात से: मगजना लड्डु, कोपरा पाक, काजूनी वर्फी
पंजाब और उत्तर प्रदेश से: गुलाब जामुन, मोहनथाल, खाजा, लावोंग
लथिका, कलाकंद, दाल वर्फी, केसरी पेड़ा, गाजर वर्फी, मानक वर्फी
दक्षिण भारत से: अदिरसम, बादाम हलवा, स्वीट मुरुक्कू उपकारइ
बंगाल से: पंतुआ, रसगुल्ला, चमचम, राजभोग, पतिशप्ता
गोआ से: बिविक, बाबथ, बोलमास
और पारसी मिठाइयां भी: लगन नु कस्टर, फलूदा, ईंडा नो हलवो
साथ ही—पारंपरिक मिठाइयां बनाने में लगनेवाले समय की अपेक्षा
शीघ्र मिठाइयां तैयार करने की विधियां
इसके अलवा दूध, गेहूँ के आटे, चने के आटे, तथा सब्जियों से बनायी
जानेवाली मिठाइयां

हमारे अन्य आकर्षण: बीती जा रही जिन्दगी के सच्चे अनुभव

एक विधवा को उत्तराधिकार प्रमाणपत्र लेने के लिए क्या क्या करना पड़ता है–एक पति-पत्नी को इस तरह की परेशानी दूर करने के लिए क्या क्या करना चाहिए

दीवाली रोशनी का पर्व है—इसी रोशनी की बात अन्य धर्मों में भी आती है

हमारे अन्य स्तंभों में—

साहसी युवतियां गुंडों के लिए प्रसिद्ध फरीदाबाद
में साहसी –एक युवा अध्यापिका की कोशीश–
गुंडों को शहर से मार भगाने की

क्या परिवार से अलग होने का मतलब अपनी जिम्मेदारियों से अलग होना है? युवा बुजुर्गों के अपने अपने विचार

femina **हर दो हफ्तों में**
नयी उम्मीदें, नई उमंग

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

ASIAS-BC/F49-713-HN

शी और जिसे साहिर लुधियानवी रेलवे हड़ताल के कारण बंबई से लाये थे और जिसमें असलम ड्राइवर के अलावा साहिर साहब की अम्मी और बहन भी आयी थीं—किस्सा सुनाते हुए साहिर साहब ने बताया कि किस तरह रास्ते का नक्शा देखते हुए वे रात के लगभग दस बजे यू. पी. के एक शहर या कस्बे —मोगल या मोगली या मोगला पहुंचे. नक्शे में दर्ज था कि वहां सरकारी रेस्ट हाऊस है. दर्जनों लोगों से पूछा लेकिन रेस्ट हाऊस का पता नहीं चला. इस पर स्थानीय पुलिस स्टेशन का पता पूछ कर पुलिस स्टेशन पहुंचे और थानेदार से रेस्ट हाऊस का पता पूछा.

—यहां तो कोई रेस्ट हाऊस नहीं है, जनाब! थानेदार ने निहायत शाइस्तगी से जवाब दिया.

—लेकिन सफरी नक्शे में तो दर्ज है कि यहां सरकारी रेस्ट हाऊस है.

—मैं पिछले बारह बरस से इस थाने में तैनात हूं जनाब, थानेदार साहब ने यह जानने के बाद कि साहिर लुधियानवी पद्मश्री भी हैं और भी शाइस्तगी से जवाब दिया, मैंने आज तक यहां रेस्ट हाऊस नाम की कोई चीज नहीं देखी.

—तो फिर इस वक्त हम कहां जायें? साहिर लुधियानवी ने परेशान होकर कहा, न यहां रेस्ट हाऊस है, न कोई होटल और मेरे साथ औरतें भी हैं.

—कोई मुजायका नहीं. कर्तव्यनिष्ठ थानेदार ने कहा, थाना हाजिर है.

—थाना? साहिर लुधियानवी ने चकरा कर कहा.

—जी हां. इस थाने में मुजरिमों के लिए दो कोठरियां हैं. सरेदस्त दोनों अल्लाकी मुजरिमों से भरी हुई हैं लेकिन आप फिक्र न करें. मैं एक कोठरी के मुजरिम दूसरी में मुंतकिल करवा देता हूं. आप लोग खुशी से दूसरी कोठरी में तशरीफ लाइए. मैं सब इंतिजाम कर दूंगा.

□□□

सारिका

वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है, किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में २ अंक मुफ्त! यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में ५ अंक मुफ्त हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है और इस तरह आप तीन वर्षों का शुल्क एक साथ भर कर ९ अंक मुफ्त में प्राप्त कर सकते हैं.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:

एक वर्ष — १० रुपये
दो वर्ष — १९ रुपये
तीन वर्ष — २७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष – २२ रुपये

कृपया यह कूपन ज़रूरी राशि के चेक / ड्राफ्ट / मनीआर्डर के साथ आज ही भेज दें —

सर्कुलेशन मैनेजर,
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग,
बम्बई – ४०० ००१
कृपया मुझे / हमें निम्न पते पर एक वर्ष / दो वर्षों / तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये / १९ रुपये / २७ रुपये चेक / ड्राफ्ट / मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ....
पता ....
....
हस्ताक्षर ....

कौन जाने?

• यशपाल

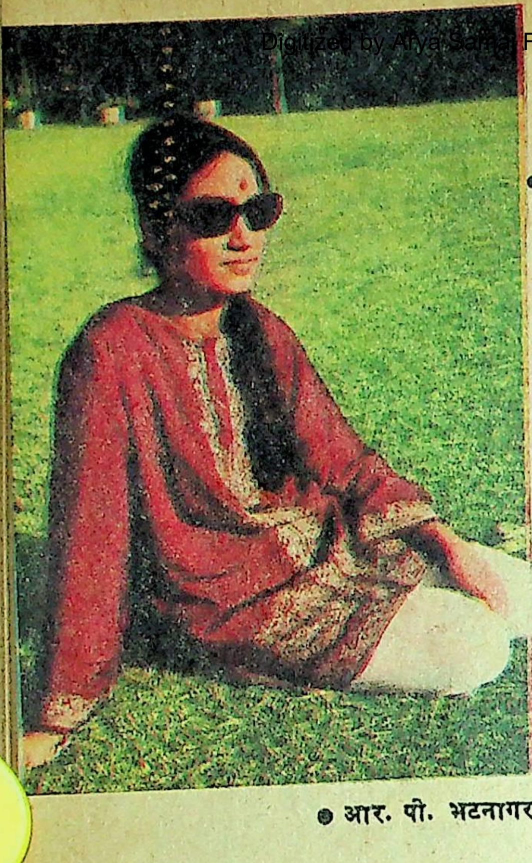

• आर. पी. भटनागर

शुरू से बताऊं—
रिटायर होने के पहले नानाजी को बंगला बैंक से मिला था. उसके साथ फर्नीचर पंखे, लैंप, जैसी चीजें और दो अर्दली. बंगले के चारों ओर एकड़ भर जगह में बाग-बगीचा. बगीचे के रख-रखाव और माली का खर्च भी बैंक से. नानाजी को फुलवाड़ी-बगीचे का शौक शुरू से व्यसन जैसा रहा. स्वयं बताते हैं, बगीचे पर बैंक से निश्चित से अधिक खर्च हो जाता, तो अपनी जेब से दे देते. तरह-तरह के गुलाब, डालिया, ग्लेडियोली, कार्नेशन, क्रोटन और दूसरे सजावटी पौधे बंगलोर, पूना, सिक्किम, शिमला, पूसा और मेरठ की नर्सरियों से मंगवाते रहते. एक बार ग्लेडियोली और लाला (ट्युलिप) की गांठें हालैंड से मंगवायीं. पौधों पर कलम या कल्ले बांधते और खादों के प्रयोग करते रहते.

नानाजी ने रिटायर होने से दो बरस पहले ही इस कालोनी में यह मकान बनवा लिया था. मकानियत से तिगुनी जगह फुलवाड़ी-बगीचे के लिए रखी. मकान की छतें और फर्श बन रहे थे और लकड़ी का काम जारी था, तभी माली लगा लिया था. गोरखपुर से आ कर लान और क्यारियों की दागबेल स्वयं डलवायी. तीसरे-चौथे सप्ताह आ कर निरीक्षण कर जाते. सब काम मनमाफिक और स्तरीय हो, इस निगरानी के लिए सेक्रेटेरियेट से रिटायर हमारे फूफाजी को एक नौकर दे कर यहां टिका दिया था. फूफाजी ने अपनी समझ से सामने के लान के अंत में तीन पेड़ दसहरी आम के, दो अमरूद के और पिछवाड़े दो कटहल के लगवा दिये थे. नानाजी ने देखा, तो पेड़ तुरंत निकलवा दिये. फूफाजी से बोले, इतने पेड़ों से घर की साल भर की जरूरत पूरी हो न जायेगी. बाजार से खरीदना पड़ेगा ही. फल तरकारी बाजार में मिलते हैं. यह कुछ जगह मनभावन फूल-पौधों के लिए ही रहे.

यों तो पास-पड़ोस के लोग और आने-जाने वाले अब भी हमारे लान और बगीचे को सराहते नहीं अघाते, परंतु कुछ बरस पहले और ही बात थी. नौ बरस पूर्व जब मैं सेंट मेरी में पढ़ने के लिए आयी, तब भी नानाजी फरवरी-मार्च में महीना भर नये गुलाब बांधने में लगे रहते. ग्लेडियाली, डालिया और नरगिस की गांठें सिक्किम और रानीखेत से मंगवाते. मकान के चारों ओर कितने गुलाब थे और कैसे-कैसे लोग उनके रंगीन फोटो ले जाते. मुझे भी गुलाब की कितनी ही किस्मों, क्रिमजनग्लोरी, कानफीडेंस, मिरांडी, विरागो, मांटेज्यूमा, क्राइसलर, रूजवेल्ट, नेहरू आदि चालीस-पैंतालिस गुलाबों की परख-पहचान हो गयी थी. बगीचे में इतने फूल होने पर भी कमरों में सजावट के लिए या मित्रों के यहां भेजने के लिए फुल नानाजी कैंची ले कर स्वयं काटते, या माली से अपने सामने कटवाते, इस ढंग से कि क्यारियों की रोनक फीकी न पड़े, कभी लीला दीदी और मैं कोई खास फूल सिर में लगाने के लिए चुपके-से काट लेतीं, तो नानाजी की नजर से बच न पातीं. कद्रदानों को फूल भेंट कर बहुत संतोष पाते. हम लोग अपनी टीचर्स के जन्मदिनों पर या चर्च में सर्विस के समय ऐसे और इतने फूल ले जातीं कि हमारी धाक बंधी थी. लेकिन आवारा लड़के लुक-छिप कर फूल तोड़ ले जायें, या चारदीवारी के तारों पर छायी बोगनबेलिया, अलमंडा, टिकोमा, नित्यमलिका के फूल नोंच लें, तो नानाजी धमकाते—-फिर ऐसा किया, तो तुम पर कुत्ता छोड़ देंगे!

* *

नानाजी पेंशन, टैक्स कटने के बाद, आठ सौ ही पाते थे. बड़ा सहारा था, सोच-विचार कर व्यवसाय में लगायी बचत पूंजी पर लाभांश अधिकतम लाभ और विश्वस्त व्यवसाय के विचार से नानाजी ने अपनी बचत रकम का तीन चौथाई अपने सहपाठी घनिष्ठ मित्र, खानदानी व्यवसायी रईस की पुश्तैनी चोब कंपनी में लगा दिया था. ग्यारह बरस तक वह धंधा संतोष का और उत्साहवर्धक रहा. सन् ७२ तक नानाजी का ढंग अफसरी के समय के स्तर से नीचे न आया था.

१९७० में नानाजी के मित्र की अकस्मात अकाल मृत्यु के बाद ७१-७२ में चोब कंपनी पर जाने कौन मुसीबतें, भाइयों-भागीदारों में झगडे, उसके साथ प्राकृतिक

और राजनीतिक [illegible] कंपनी ने दिन में दिया जला दिया. कंपनी के दिवाले के दिये की लौ में नानाजी का मुख्य सहारा भी फुक गया.

सब जानते हैं, कई बरसों से रुपया लगातार मिट्टी होता आ रहा है. पहले एक रुपये में बहुत कुछ मिलता था, अब दस-बारह में भी उतना नहीं. तिस पर नानाजी के सहारे के मुख्य स्तंभ गिर जाने का धक्का.लीला बहन का ब्याह ७२ जनवरी में हुआ. निर्मल मामाजी बंबई में 'पद्मराज प्रिमर्सन'में इंजीनियर हैं.वहां फ्लैट का किराया ही छह सौ मासिक. छोटे बेटा-बेटी महंगे स्कूलों में, ब्याह-दहेज सब नानाजी को निबाहना पड़ा. नानाजी ने अपनी जानी-मानी हैसियत के अनुकूल निबाहा भी. उसके महीना बाद मोटर बनारस,हमारे यहां भिजवा दी और ड्राइबर को छुट्टी कर दी. सभी नानाजी के सहसा ढल जाने की बातें कहने लगे.

नानाजी हर बरसात में पुराने पड़ गये गुलाब निकलवा कर नये लगवाते रहते थे. उस साल नये गुलाब न आये. तरकारियों के दाम पहले से ढाई-तीन गुना हो गये थे. पिछवाड़े की क्यारियों से गुलाब निकलवा कर वहां सब्जियां बो दी गयीं. क्यारियों की गोटों पर सस्ते किस्म के सदाबहार बबना, पिटूनिया, डियान्थस बने रहे. पिछवाड़े उत्तर की चारदीवारी के साथ ऊंचे-ऊंचे हौलीहाक की जगह मक्का के भुट्टे सुनहली रेशम कातने लगे, या बरसाती ऊंची भिंडियों के फूल टहकने लगे. अगल-बगल, पूर्व-पश्चिम भी जेकोमेंशिया, विनिस्टा, स्टेला की जगह लौकी, तुरई, सेम, लोभिया लग गये.

चेहरे पर झुर्रियों को रोक सकना तो नानाजी के बस का न था, परंतु बात-चीत में चिंता-अवसाद प्रकट न होने देते. लौकी, कुम्हड़े, तुरई और सेम की बेलों और मटर की क्यारियों की ओर संकेत कर कहते—वाह! ये क्या अलमंडा, टिकोमा, विनिस्टा और थनबर्जिया से कम हैं? ये फूल केवल दो दिन का दिखावा नहीं, जीवन-पोषक सार्थक फल बन जाते हैं.

इस साल अप्रैल में ईस्टर से पहले बृहस्पतिवार सिस्टर जोरीना ने स्वयं आ कर नानाजी से अनुरोध किया— आप सदा अवसर पर सहायता देते हैं. ईस्टर सर्विसिज (पूजाओं) के लिए हमें अधिक फूलों की जरूरत होती है. खासतौर पर सफेद और गुलाबी ईस्टर लिली आपके यहां ही हैं. . .

नानाजी ने माली को पुकार कर स्वयं फूल कटवाये. जब तक सिस्टर ने स्वयं गद्गद् कंठ से "पर्याप्त! पर्याप्त! धन्यवाद!" न कह दिया, फूल कटवाते गये. बांह भर गुलाबी और सफेद लिली के हाथ-हाथ भर के डंठल. गुलाब अप्रैल में उतने अच्छे रह नहीं जाते, फिर भी काफी दिये. आसमानी रंग की डेजी की फूल लदी छड़ियां लाल, पीले और केसरी रंग के रूकमंजन के भारी-भारी गुच्छों की टहनियां. नित्यमल्लिका की लतरों से फूलों के बड़े-बड़े गुच्छे सिस्टर कानवेंट का माली साथ लायी थीं, परंतु इतने फूल ले जाने के लिए रिक्शा जरुरी हो गया.

मैं सिस्टर को रिक्शा पर बैठा कर सड़क से लौटी, तो नानाजी लॉन में ही थे. चारों ओर नजर डालने पर मेरे मुख से निकल गया—हाय, कितने फूल एक साथ कट गये! सूना-सूना लगने लगा!

—कोई बात नहीं, बेटा! नानाजी सांत्वना के लिए बोले—तुम्हारी सिस्टर्स को और ईस्टर पूजा के लिए गिरजा जाने वाले वयस्कों को धूम-धाम से पूजा का संतोष होगा. फूल देव-पूजा में लग कर सार्थक हो गये.

★ ★

अगली सुबह कॉलेज न जाना था. अभ्यास से नींद सूर्योदय से काफी पहले खुल गयी. बाहर आयी,तो नानाजी लान में कुर्सी पर बैठे ताजा अखबार देख रहे थे. बरामदे के आगे बोगनवेलिया के वितान और चारदीवारी की कांटेदार तारों पर फैली थीमा, केलीकैंपबेल, नित्यमल्लिका और बेगनोनिया की बेलों में बुलबुलें चहचहा रही थीं. मैं चप्पल एक ओर छोड़, ओस भीगी घास के शीतल स्पर्श के लिए लॉन में टहलने लगी. गेट पर ताला न था. फाटक उड़के हुए थे. बेलन भी न लगी थी. अनुमान हो गया, महरी आयी होगी और माली दूध के लिए गया होगा.

मैं लॉन के पूर्वी अंत तक जा कर लौट रही थी.संदेह हुआ, कोई मकान के पिछवाड़े से पश्चिम ओर दुबके पांव गेट की ओर जा रही है. मेरे घूम जाने से बरामदे के खंबे की आड़ में ठिठक गयी है. इस कालोनी में ऐसी छुट-पुट चोरियां अकसर होती रहती हैं.

● एस. सी. सिन्हा

पुकार लिया---कौन है? सोचा, मेहरी है, तो उसे दुबकने की क्या जरूरत? जरूर कुछ उड़ा ले जा रही होगी. पर कद छोटा, लड़की-सा लगा.

---कौन है? नानाजी की उपस्थिति के साहस से एक बार और जोर से पुकार कर उस ओर बढ़ गयी. खंबे की आड़ में दुबकी हुई थी मेहरी की बारह बरस की लड़की गुनिया. छोटी चीकट-चीथड़ा धोती कमर पर गांठ से बांधे थी, धोती के आंचल में कुछ दबोचे हुए. नजर पड़ने पर उसका छोटा कद दुबकी बिल्ली की तरह और सिकुड़ गया. हम मेहरी और उसकी बेटियों की चोरी की आदत से परेशान हैं. परंतु मेहरी चौका-बासन अच्छा करती है. सांझ का चौंका रात दस तक निबटा देती है. उस वक्त न आ सके, तो सुबह पौ फटते आ जाती है. दूसरी मेहरी मिलना भी मुहाल. इससे पहले जितनी आयीं, एक-से-एक बढ़ कर चोट्टी.

गुनिया को डांटा---सुबह-सुबह क्या करने आयी थी? झोले में क्या है? गुनिया का सांवला चेहरा फक्. आतंक से आखों में छिली लीची की तरह सजल सफेद कोये और फैल गये. चीकट झोली को पेट पर दबा लिया. मुंह से बोल न फूट सका.

---बोलती क्यों नहीं? दिखा, झोली में क्या है? गुनिया को धमकाया.

---आज पकड़ी गयी चोट्टी! फाटक की ओर से माली का स्वर. दूध की बंद बाल्टी एक ओर रख कर माली ने गुनिया की मिची मुट्ठी से उसकी झोली छुड़ा ली. झोली में तीन-चार मुट्ठी फूल थे. बिना डंठल फूल, उंगलियों से मरोड़ कर या टहनियों को सूत कर तोड़ने से कुछ मसले-कुचले-से डियान्थस, मिटूनियां, डेजी के मिले-जुले फूल. बीच में पिछवाड़े शेष रह गये पेड़ों से डंठल मरोड़ कर तोड़े हुए बेरौनक तीन-चार गुलाब और नित्य-मल्लिका के गुच्छों से नोचे हुए फूल.

माली ने अवधी के नागरी उच्चारण में कहा---हम जानत रहे, हम दूध लेने जात हैं, तभी ई और ई का बहिनी फूल तोड़ ले जात हैं. इनकी मां और दोनों बहिनी ऐसे ही कोठी-कोठी फूल चुरात हैं. इनका बाप साला रिक्शा चलात रहा. ट्रक से अक्सीडेंट में गोड़ तुड़ा बैठा मां-बेटी चोरी से फूल बटोरती हैं. मेहरा साला चोरी के फूल अलीगंज के बड़े मंदिर के सामने बेचता है. भगवान की पूजा के लिए चोरी के फूल! माली ने क्रोध में फूल गुनिया की झोली से गिरा दिये.

सुन कर अच्छा नहीं लगा. कहा---माली दादा, ऐसे तोड़े-मसले हुए फूल हमारे किस काम के! ले जाने दो! गुनिया को डांटा---आज माफ किया. फिर ऐसे चोरी करेगी, तो पीट-पीट कर पीठ सुजा देंगे!

---नहीं बिटियाजी! माली बोला---ई का अस न जाय देव. हम ई का थाने पहुंचाब. एक लोग फूल भगवान की पूजा में चढ़ावत हैं, ई ससुर चोरी का फूल पूजा के लिए बेचत हैं!

---क्या है? नानाजी अखबार हाथ में लिये बढ़ आये थे.

मामला नानाजीने सुन लिया था, परंतु माली ने गुनिया की चोरी बखान कर कहा---ई का फूल न ले जाय देव. हम ई चोट्टी का जरूर पुलिस में देव. हजूर चौकी में फून कर दें.

---जाने दो, चौधरी! नानाजी बोले---बेचारी मुसीबत में है. किसी तरह पेट पालते हैं. समझ लें ये फूल सार्थक हो गये!

माली नानाजी का कुछ मुंह लगा है. फिर बोला---हुजूर, चोरी-चमारी के ऐसे करम करिहैं, तो भगवान इनका मुसीबत करेगा ही!

नानाजी ने मुंह फेर कर निःश्वास लिया---कौन जाने कैसे करमों से मुसीबत आती है, या आफत-मुसीबत सब करम करा देती है! □□□

३३५ बी, महानगर, लखनऊ

एक लघुकथा

सात हजार छह सौ अस्सी खून

● ललित मोहन ध्यानी

आफिस से लौट कर छत की मुंडेर पर चाय का प्याला हाथ में लिये हुए मैं हर रोज खड़ा हो जाता हूं, तथा इंतजार करता हूं एक खून का. मैंने अपनी २१ साल की जिंदगी में करीबन ७६८० खून देखे हैं. और न जाने अभी कितने देखने बाकी हैं. खासकर जाड़े के दिनों में तो करीबन ६ बजे यानि गर्मियों से पूरे आधे एक-घंटे पहले सूरज को पहाड़ियों के पीछे हलाल होते देखता हूं. और महसूस करता हूं कि सूरज के खून की लाली अभी गहरायेगी.

मुंडेर से चाय का प्याला समाप्त कर कमरे में कदम रखता हूं तो अनायास ही उंगलियां गिनने पर मजबूर हो जाता हूं. आज अभी २० तारीख है. २१--२२. . .३१ पूरे इस महीने के ग्यारह दिन अभी बाकी हैं और मेरे राशन के थैले तथा डिब्बे सभी भारहीन हो गये हैं. स्थिति को देखते हुए इस आशा से कि १०-११ दिन बाद तो तनख्वाह मिल ही जायेगी, उधार लेने के लिए कमर कस लेता हूं. लेकिन स्मृति के दंश फिर एक-एक कर उभरने लगते हैं. किसके पास जाऊंगा? करीब सभी से तो १०-१० रु. पहले ही ले चुका हूं. बनिए के पास जाते हुए भी शर्म महसूस करता हूं. अभी पिछले ही सौ रुपये देने हैं. एक बार फिर स्थिति को नकारते हुए छानबीन शुरू करता हूं. और शायद भाग्य ने साथ दे दिया, एक कागज की पुड़िया पर कुछ कच्चे चने बचे हैं. अब तो आलीशान डिनर की तैयारियां शुरू करता हूं. चने उबाल कर फ्राई कर लूंगा. और बिना चीनी की चाय ऊपर से गटक कर आज की रात शायद कट जाये. □□□

एक लघुकथा

बिना जाति का आदमी

• ब्रह्मदत्त

--तुम्हारा नाम?

--अशोक!

--पूरा नाम बोलो, कुर्सी पर की दो मुर्दा आंखें तन गयीं.

--पूरा नाम भी यही है--अशोक.

--बाल!....टेल मी युअर सरनेम? मुर्दे ने अपना एक हाथ टेबल के नीचे कर कुछ किया.

--सरनेम? सरनेम का क्या करियेगा, सर? सरनेम बोलते ही मेरे और आपके बीच एक जाति खड़ी हो जायेगी, एक पूरी जाति से निबटना पड़ेगा. मैंने मुर्दा-आंखों की ओर देखते हुए कहा.

--रियली यू इंटरेस्ट मी! मुर्दे का टेबल के नीचे वाला हाथ जोर से हिला. क्या कर रहा है कमबख्त? मैंने सोचा.

--मगर तुम्हें मालूम है न कि नौकरी चाहिये तो पूरा नाम बताना पड़ेगा. आखिर सरनेम से तुम्हें नाराजगी क्या है?

--सरनेम से जाति का बोध होता है. कोई मुझे सरनेम से पुकारता है तो लगता है कि मैं आदमी नहीं, एक जात हूं. और जात भी भला कोई चीज है? नानसेंसिकल! निरर्थक!

--गुड! गुड!...वेरी फिलोसोफिकल, मुर्दे ने उबासी लेकर कहा, बट यू नो? यह शेयर बाजार है. यहां फिलोसोफी नहीं, आंकड़े चलते हैं. और आंकड़े सोचते नहीं, बोलते हैं. चढ़ते, उतरते, मरते और मारते हैं. दिस इज ए रियल हार्ड लाइफ, चंदा-मामा की दुनिया नहीं.

--यू आर राइट सर! आंकड़ों की दुनिया भी उतनी ही झूठ है, जितनी चंदा-मामा की. चंदा-मामा तो फिर भी बड़ा प्यारा, बड़ा सुहावना है, आंकड़े तो सड़े मुर्दों की तरह बास मारते हैं.

--और सर, दलाली का धंधा भी कोई धंधा है? मैंने अचानक प्रश्न कर दिया. मुर्दा सकपका उठा. उसने तेजी से अपना टेबल के नीचे वाला हाथ ऊपर निकाला.

--क्या बकता है?

क्या कर रहा था नीचे? मैं फिर उस हाथ के बारे में सोचने लगा.

--आई थिंक यू बेटर गेट आऊट, मुर्दा चीखा, सालों को काम-धंधा करना नहीं है, टाइम बरबाद करने चले आते हैं, वह दलालों की भाषा में बड़बड़ाया. दलाली भी कोई धंधा है? मैंने फिर सोचा. माल किसी का, दाम किसी का और दलाली इस मुर्दे की. टेबल के नीचे हाथ डालकर हाथ हिलाने वाले मुर्दे की... □□□

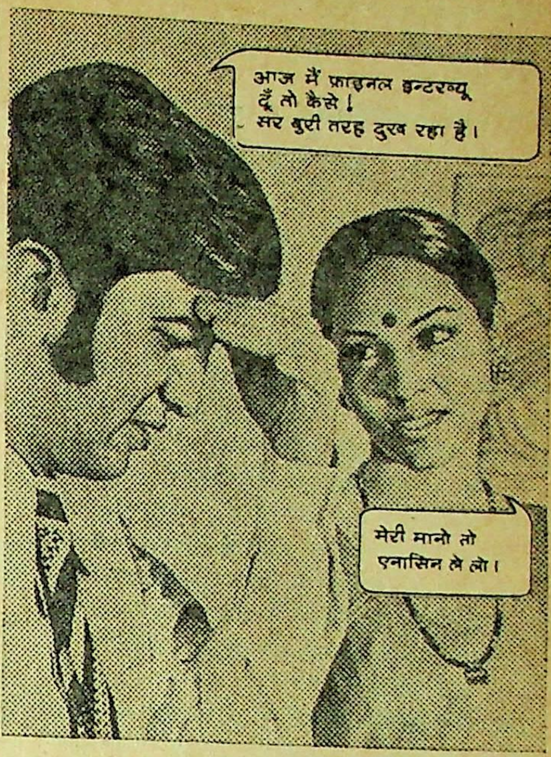
आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे!
सर बुरी तरह दुख रहा है।
मेरी मानो तो एनासिन ले लो।

जल्द आराम पाने के लिए
तेज़ असर
और विश्वसनीय
एनासिन लीजिए

तेज़ असर–एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय–एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन
भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A/2/8-74
Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

कथा की कथा

•प्रेमसिंह नेगी

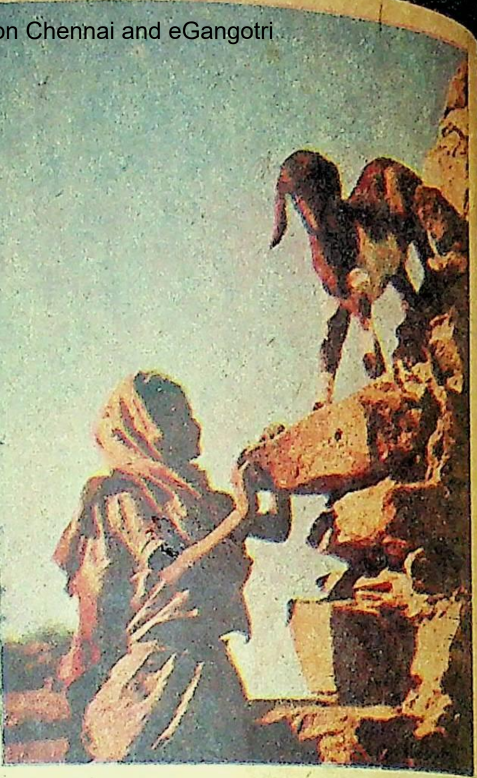

• एस. डी. शर्मा

परसों रात भर बर्फ गिरी थी. कल भी कभी वर्षा कभी तेज हवा के मारे मौसम बहुत खराब रहा. आज सुबह से ही मौसम साफ हो गया था. प्यारी-प्यारी धूप निकल आयी थी. सूर्य की किरणों के प्रभाव से अछूती जगहों—नालों, गड्ढों व टीलों के पश्चिमी ढालों को छोड़ आसपास की बर्फ बड़ी तेजी से गल रही थी. ब्लॉक क्वार्टरों की टीन की छतों से बर्फ की सिल्लियां रह-रह कर घच्च-घच्च गिर पड़ती थीं. मैंने खिड़की से हट कर सिरहाने रखी घड़ी उठा कर देखी. आश्वस्त-सा हो गया. नौ बजने में कुछ मिनट बाकी थे. खिचड़ी उबालने व दफ्तर की तैयारी के लिए एक घंटे का समय काफी था. दफ्तर बगल में ही था. तकरीबन पच्चीस गज के फासले पर. स्टोव पर खिचड़ी चढ़ा कर धूप का आनंद लेने म बाहर आंगन में खड़ा हो गया.

ऊपर के क्वार्टरों के सामने के दरवाजे बंद थे. सुबह की धूप जाड़ों में पीछे ही रहती है, इसलिए वे लोग इस मौसम में आगे बहुत कम दिखायी देते हैं. मैं उधर से नजरें हटा कर बर्फ से ढकी पहाड़ियों को देखने लगा था.

——ओ नीचे खड़े हैं दिनेश जी, उनसे पूछ लेना. मिसेज सक्सेना की आवाज थी. मैं अपना नाम सुन कर फिर सक्सेना के क्वार्टर की ओर मुड़ गया. दस-ग्यारह साल की एक लड़की उधर से आ रही थी. मिसेज सक्सेना फिर भीतर चली गयीं. वह लड़की ढलवें रास्ते पर नीची नजर किये चली आ रही थी. बीच-बीच में दृष्टि उठा कर मेरी ओर भी देख लेती थी. कौन है यह? गांव की है? किस काम से आ रही है इत्ते जाड़े में! मैं सोच रहा था और वह सामने आ गयी——गोरे-चिट्टे रंग, लंबे मुख और तीखे नाक-नक्श के बावजूद उसके चेहरे पर कैशोर्य-सुलभ लावण्य नहीं था. चेहरे की नन्हीं हड्डियों पर पतली खाल का आवरण चिपटा हुआ था. बिजली के खंभों पर 'खतरा है' वाले पोस्टर की तरह, करीब-करीब. उसके पतले होठ भी सुबह की बर्फीली हवा के कारण बैंगनी हो आये थे.

——क्या है बिटिया, किसको ढूंढ़ रही हो? मैंने उससे पूछा. वह अपने नंगे-बदसूरत पंजों से जमीन के कंकड़ों को छेड़ने लगी, और फिर जैसे कुछ सोच कर बोली——चश्मे वाले सैबज्यू तुम ही हो?

सुन कर मुझे हंसी आ गयी. मैं चश्मा पहनता हूं. इस समय भी पहने था. अब मेरी समझ में आया कि वह सक्सेना के घर से क्यों आ रही थी. इस कॉलोनी में सक्सेना व मेरे अलावा चश्मे वाला कोई भी नहीं है. किसी ने उसको सक्सेना के पास भेजा होगा, वहां से वह मेरे पास आ गयी थी. मैंने हंसते-हंसते उससे कहा——हां, यहां तो चश्मे वाला एक मैं हूं और एक वो हैं जिनके यहां तू हो आयी है. चश्मे वालों से तेरा क्या काम है, बिटिया?

——आज हमारे घर में कथा है. मां ने न्योता कहा है. तीसरे पहर आ जाना. जरूर आना, कहा है.

मैं और भी चक्कर में पड़ गया. जान न पहचान, कैसा न्योता है यह?——तेरा घर कहां है री?

——चुनकोट.

——चुनकोट! चुनकोट यहां से ज्यादा दूर तो नहीं, दो-ढाई मील ही होगा. पर, मैं आज तक न तो कभी वहां गया और न वहां के किसी व्यक्ति से मेरी जान-पहचान ही है.——तुम्हारे पिता का क्या नाम है?

——पिता नहीं हैं.

——मर गये?

——हां.

मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था. तरह-तरह की अटकलें लगायीं, किंतु जान-पहचान का कोई सूत्र पकड़ में आया नहीं.——तेरी मां मुझको कैसे जानती है बिटिया?

लड़की कुछ देर चुप रही, फिर बोली——मां कहती है कि एक-दो साल पहले तुमने हमारी मदद की थी. हम लोग भूखे थे और तुमने मां को. . .

——अरे हां याद आया. च् च् च् बेचारी! मेरे मुंह से अनायास ही निकल गया.——मौका मिला तो जरूर आऊंगा, कह देना अपनी मां से.

——जरूर आना, कहा है मां ने. यह कह कर वह जाने लगी तो मैंने उससे कहा——अभी से क्यों जा रही है तू? खाना पक रहा है, खा कर चली जाना. उसने फिर बायें पंजे से जमीन खुरचते हुए कहा——आज हमारा सब का

व्रत है. वह फिर जाने को हुई तो मुझे [illegible] गया.—बिटिया, तूने अपना नाम तो बताया नहीं?

—राधा! उसने झेंपते हुए बताया.

एक हलके मारकीन जैसे कपड़े की झगुली कंधों से उसकी लकड़ी-सी काया पर झूल रही थी. टखनों तक पुरानी साड़ी का एक टुकड़ा, जिसका एक छोर कमर पर कस कर बंधा था और दूसरा पीठ पर से हो कर उसने सर पर डाल रखा था. पुरानी ऊन के तागों के गठजोड़ से बिनी हुई बिना बांह की बनियान. बस, इतना ही था उसके तन पर इस काट खाने वाली सर्दी में. मैं उसको दूर तक जाते हुए देखता रहा.

★ ★

स्टोव की आवाज ने मेरा ध्यान भंग किया. तेल खत्म होने की सूचना में वह दो-तीन बार भर्र-भर्र की आवाज करके बुझ गया था. मैं जल्दी से भीतर गया, लेकिन खिचड़ी पक चुकी थी. वह छोरी भी खा लेती दो कौर. . .व्रत रखा है! क्या जरूरत थी बित्ते भर की बच्ची से व्रत करवाने की! एक जून अन्न की बचत या लोक-परलोक की आस्था? या फिर मजबूरी! मेरे आगे दो वर्ष पूर्व की वह घटना मूर्त हो उठी––

जाड़ों के ही दिन थे, जब राधा की मां से मेरी भेंट हुई थी. शाम के चार बजे का समय रहा होगा. मैं ऑफिस के बाहर मेज लगा कर काम कर रहा था. वह मेरे सामने खड़ी हो गयी थी. अट्ठाईस-तीस से अधिक की नहीं. मुरझाये, सूखे चेहरे के बावजूद उसे सुंदरी कहा जा सकता था. रोनी-सी सूरत बनाये, घबराई-घबराई-सी. उसने कहा था—सैबज्यू. . .बस इतना ही कह पायी थी वह.

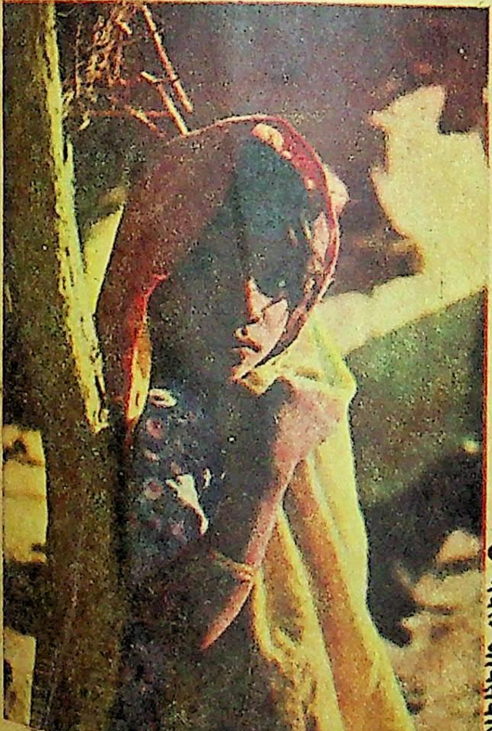

• नवल जायसवाल

––हां-हां, कहो, क्या बात है? घबराने की कोई बा नहीं. मैंने स्थानीय बोली में ही उससे कहा, यह समझ हुए कि वह मुझे शायद कोई बड़ा आदमी समझ कर घबर रही हो.

—सैबज्यू, घर में बीमार बच्चे को छोड़ कर अकाली सड़क में दिन भर मिट्टी ढोती रही. डेढ़ रुपल्ली के खातिर वह भी नहीं मिला; कहते हैं रुपिया बांटने वाला आज कहीं चला गया. कल मिलेगा. बीमार बच्चे के अलावा तीन और हैं घर पर, तीन दिन से भूखे. कसम है जो इतवार से अन्न का दाना भी चक्खा हो. कल तक तो वे तीनों भी मर जायेंगे.

—तो इस बाबत मुझसे क्या करने को कहती हो? तुम्हारी मजूरी के मामले में मैं कुछ नहीं कर पाऊंगा. मैंने उसे समझाया.

—हां सैबज्यू, मजूरी नहीं दिला सकते हो तो गरीबों के लिए जो एक-एक किलू मोफत का बाजरा मिल रहा है, उसे ही दिला दो. म उस दूकानदार के पास गयी भी थी, उसने मुझसे नाहीं कर दी है, फूटा भाग जो साथ ठैरा! पधानज्यू ने कहा कि सैबज्यू के पास जाओ, वो दिला देंग. कहीं से कुछ दिला दो सैबज्यू, बच्चों की जिंदगी रह जायेगी तो. . .वह सिर पर रखे धोती के चिथड़े को आगे खिसका कर आंखें पोंछने लगी थी.

मुझे उस गरीब पर दया आयी. जेब से दो रुपये निकाल कर उसे देना भी चाहा. फिर खयाल आया, लाला से कह कर देख लूं. अगर मेरी बात मान गया तो इस बेचारी का आज का काम तो चल ही जायेगा. फिर सोचा यहां तो अधिकांश की हालत इस अकाल में ऐसी ही हो गयी है. किस-किस की सिफारिश करूंगा? और रुपये देने की बात पर भी यहीं पर अटक गया. अतः मैंने उसे टाल देना ही उचित समझा.—खैराती अनाज के बंटवारे पर हमारा कोई अधिकार नहीं है. दूकानदार ने मना कर दिया है तो अब वह मेरे कहने से भी नहीं देगा. कोई और बंदोबस्त कर लो.

मेरी बात से वह बहुत निराश हो गयी थी. मैंने देखा कि उसका चेहरा एकाएक स्याह हो आया था और वह भयभीत निगाहों से कभी मेरी ओर और कभी आसपास की चोटियों को देखने लगी थी. उसकी घबराहट मैं समझ रहा था. खाली हाथ वह कैसे जाये और उधर दिन ढलने लगा था. धूप चोटियों से भी विदा होने को थी.

—समय बहुत कम रह गया है, तुम्हें घर जाने को देर भी हो रही होगी! मैंने उससे कहा और मेज से कागज-पत्र समेट कर उठाने लगा था.

—खाली हाथ कैसे जाऊं सैबज्यू, छोरी-छोरों ने चिड़ैया के बच्चों की तरह मुंह खोल रखा होगा—कब मां लायेगी, कब खायेंगे! सुबह कहके आयी थी, शाम को लाऊंगी. खाली हाथ जाने पर तो वैसे ही प्राण छोड़ देंगे छोरी-छोरे! वह ढाड़ें मार कर रोने लगी थी.

ऐसी स्थिति में उसकी उपेक्षा कर वहां से उठ कर चले जाना मुझसे न हो सका और अंततः मुझे दूकान तक जाना ही पड़ा. मैंने दो रुपये का बाजरा खरीद कर उसे दे दिया था. ये दो रुपये भी उसने पिछले वर्ष किसी आदमी

मार्फत मुझे वापस मि[illegible]

दफ्तर में काम करते हुए मुझे आज दिन भर राधा की ां का ध्यान रह-रह कर आता रहा और मैं जाऊं-न जाऊं ही दुविधा में फंसा रहा. बेचारी ने कितने स्नेह-प्रेम से ठिठुरती सर्दी में लड़की को भेज कर बुलाया है. यह सोच कर मैं दो बजे दफ्तर छोड़ कर सीधे चुनकोट चला आया. यहां पहुंच कर गांव वालों ने मुझे राधा की मां का घर बता दिया था. वह घर के बाहर ही खड़ी मिल गयी. उसने मुझे पहचान लिया और खुश हो कर बोली——अभी तक दिल में धुकधुकोट हो रहा था, बड़े आदमी हैं, गरीब के न्यौते पर आवें, न आवें. अब शांति हो गयी. फिर आंगन में खेलते बच्चे से उसने कहा——रमुआ, भीतर दरी बिछा दे सैबज्यू के लिए.

* *

पिछली शताब्दी के ढांचे का पत्थरों से चिना गया मकान. खिड़की विहीन, गोबर की पुताई, दीवालों से पत्थर नीचे कूद पड़ने को तैयार. दरवाजे के भीतर झांका तो धुएं के मारे कुहरा-सा छाया हुआ था. मैं दरवाजे पर ठिठक गया. राधा की मां ने शायद मेरी दुविधा को समझते हुए फिर कहा——रमुआ, दरी बाहर ले आ रे! अंदर सैबज्यू को धुआं लगेगा. मैं दरवाजे से लौट आया और राधा की मां उस कुहरे को भेदती हुई अंदर चली गयी.

लड़का दरी ले आया और मैंने उसके हाथ से ले कर खुद ही बिछा ली. थोड़ी देर बाद राधा मेरे पांव छूने आयी और देखा-देखी रमुआ भी हाथ जोड़ कर नमस्कार कह गया.

दो अर्धनग्न-से बच्चे दाड़िम के पेड़ के नीचे पत्थर के टुकड़ों से खेल रहे थे. राधा की मां, उसके बच्चों के अलावा मुझे वहां अन्य कोई भी दिखायी नहीं दिया. 'विशेष अवसर' वाली कोई चहल-पहल नहीं थी. मैं मन-ही-मन सोचने लगा था कि कहीं मुझे वापस लौटने में देर न हो जाये. यों मैं अपने साथ टार्च ले आया था, इसलिए विशेष चिंता भी नहीं थी.

राधा की मां गिलास में चाय ले कर आ गयी.

——कथा की चहल-पहल नहीं दिख रही? गिलास पकड़ते हुए मैंने कहा.

राधा की मां सामने बैठ गयी.

——चहल-पहल क्या होगी, सैबज्यू! किसीको बुलाया नहीं. मैके में एक छोटा भाई है बस, वह भी पल्टन में चला गया है. उसी के दम पर सतनरैण स्वामी का नाम लेने वाली ठहरी हूं. पच्चीस रुपये भेजे थे उसने, इसी कातिक में.

——कथा कब शुरू होगी? मैंने चाय का घूंट लेते हुए पूछा.

——के बताऊं सैबज्यू, किसी को बाजार भेजा था सौदा लाने. उसी की बाट देख रही हूं. कल व परसों मौसम न बाहर निकलने ही नहीं दिया. कथा बांचने वाले पंडित जो इसी गांव के हैं. तेल-बत्ती, धूप-धाप सब ठीक कर गये हैं. बाजार के सौदे की ही देर है. . .चा में मीठा कम तो नहीं, सबज्यू?

——नहीं, नहीं, ठीक है. चाय अच्छी है. पके हुए कद्दू के रस जैसे स्वाद के बावजूद मैंने कहा.

——सैबज्यू, वह फिर कहने लगी, कथा कराने की अपनी औकात ही क्या है! बस, पंडितज्यू से भगवान के नाम पर 'ओम किरतम्' कहवा रही हूं.

वह कुछ क्षणों के लिए मौन हो गयी. फिर जैसे कुछ याद करती हुई-सी बोली——उस दिन जब आपके पास गयी तो तभी से मैंने मनौती की थी कि भगवान मेरा संकट काट देता मैं सतनरैण स्वामी की कथा कराऊंगी और परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली. भगवान के रूप में आपने बच्चों को भूखों मरने से बचा लिया. नहीं तो किसको आस थी इन बच्चों की जिंदगी की! तीन दिन हो गये थे भूख से बिलबिलाते हुए. घर पहुंची तो पोटली पर सबके सब झपट पड़े थे. सैबज्यू——उसने हाथ ऊपर उठाते हुए सौगंध ली——सुबह से अन्न मुख नहीं किया है, झूठ नहीं बोलूंगी, मैंने उस बखत बीमार बच्चे को भी नहीं देखा. सोचा, जो बीमार है, वह तो अपनी मौत मरेगा, पर बाकी भी बिहोश हो कर बेमौत मर जायेंगे. झटपट चूल्हे में आग जलायी. तौवे में बाजरे के दाने भून कर दो-दो मुट्ठी इनको बांटी. तब फिर चक्की पीसने बैठी. जब इन्हें खिलाया-पिलाया, तभी बीमार बच्चे को देखने को मन हुआ. सैबज्यू, आपसे क्या कहूं, छोरे-छोरियों ने तौवे में रोटियां पड़ने ही नहीं दीं. कच्ची-पक्की येऽऽ. . . मोटी-मोटी रोटियां केले-से निगल गये बिना साग-नमक के ही. वह संकट का बखत था, टल गया, आपकी किरपा से.

——सब भगवान की कृपा है.

——मेरे लिए तो आप ही भगवान हो, आप ही सतनरैण स्वामी हो. आपने मेरी घर-कुड़ी पवित्तर कर दी. . .राधा की मां भाव-विह्वल हो कर कह रही थी.

मैंने बात का रुख बदलते हुए पूछा—अब तो ठीक ठाक ही चल रहा होगा?

——सैबज्यू, दिन में एक टैम भी पेट में कुछ पड़ जाये तो गरीब का बड़भाग. आपकी किरपा से बखत कट ही रहा है. राधा पधानज्यू के गै-बाछों को चुगा लाती है, तो दस रुपिया महीना आ जाता है. ऊपर से बासी-कूसी, फटा-पुराना मिल ही जाता है. मजूरी-सजूरी मैं करती ही हूं. खपते-खपते सिर के बाल व पैरों की खाल भी साबुत नहीं है. नहीं तो सैबज्यू, अभी तीस भी पूरे नहीं हुए हैं. कच्ची उमर में ही इन चारों को छोड़ गये वे, मेरे जी के जंजाल! नहीं तो इकली पराणी का क्या! मौज-बहार से रहती. . .सो भगवान की किरपा से आधा-साधा करके चल ही रहा है. इधर, मन में एक ही साध थी——किसी तरह भगवान सतनरैण स्वामी का नाम ले कर सैबज्यू के हाथ धुलवा सकूं तो चाहे फिर भगवान उठा ले, तो कोई दुख नहीं. आज भगवान ने वह दिन दिखाया है कि मेरी साध पूरी. . .

* *

——के हो, सामान कहां है, खाली हाथ कैसे आ रहे हो! राधा की मां एकाएक सामने आ रहे व्यक्ति से

पूछने लगी.

—जो-जो तुमने मंगाया था, कुछ भी नहीं मिला. सारा बाजार छान मारा. न सूजी, न डालडा. चीनी बिलैक में मिल रही थी एक जगह. पांच रुपिया किलू. सोचा, भगवान की परसादी के लिए तो सूजी और घी ही खास चीज ठैरी. वही नहीं तो खाली चीनी-चीनी से क्या बनेगा? इसलिए कुछ भी नहीं लाया. गरीबन के पैसे बिमतलब क्यों फूंकता! उस व्यक्ति ने कहा.

एकाएक दाड़िम के पेड़ की छाया जैसे उसके चेहरे पर लहरा आयी.

अब क्या होगा. . .परसादी कैसे चढ़ेगी. . .? कहने की-सी मुद्रा में वह खामोश हो गयी कुछ क्षण. लेकिन तत्काल ही उसने 'बज्जर (वज्र) पड़े बखत के सर!' कहते हुए दुविधा को जैसे परे धकेल दिया. बोली—तुम्हारा क्या कसूर देवर, जब चीज ही अपैद है तो. . .हां हो सैबज्यू, इसने तो फरज निभाई कर दो दिन का हरज करके. भगवान सतनरैणज्यू खुद ही देखेंगे. तेल में मक्की का आटा भून कर मेरा काम तो चल ही जायेगा, पर बात बखत की है. . .कैसा बखत आया, न कभी ऐसा सुना, न देखा. परे फूंको, जो हुआ सो हुआ.

मैंने समर्थन में सिर हिलाया. वह पूर्ववत उत्साहित दिखने लगी.

राधा की मां उठ कर भीतर चली गयी. कुछ देर बाद वह आगंतुक भी मुझसे इधर-उधर की बात करके चला गया. दाड़िम के पेड़ के नीचे बच्चे खेलते-खेलते झगड़ने लगे, तो राधा उन्हें डपट कर अंदर बुला ले गयी.

अकेलेपन का एहसास होते ही मैंने आसपास की टोह ली. सूरज अपने पीले दुबले हाथों को समेट कर पहाड़ की चोटी के पीछे लुढ़कने को था. आसपास की पहाड़ी ढलानों पर छायाएं घिर आयी थीं. बर्फीली सर्द हवा के झोंके भीतर तक कंपकंपा देने को तुले हुए थे. गरदन पर लिपटे मफलर से मैंने कस कर कान ढांप लिये.

—सैबज्यू, राधा की मां ने देहरी पर आ कर पुकारा, भीतर आ जाओ, सिगडी जला दी है. मैं भीतर चला गया. धुआं कुछ कम हो गया था. राधा की मां बाहर से दरी उठा ले आयी थी. बिछाते हुए बोली—अब के बरफ क्या पड़ी कि कोठा-कंपा दिया है इसने. बस, जान आग पर ही टिकी है. चिथड़े-गुदड़ों का ओढ़ना-बिछौना. इतना धुआं न करें तो सैबज्यू, हाड़ अकड़ कर टेढ़ा जायें गरीब-दूबरों के इस सीसीकार जाड़े में. कुठड़िया जब तक खूब धुंवायी नहीं, नींद नहीं आती.

—पंडित जी आ गये! राधा ने बाहर से आ कर खबर दी.

—ठीक है. चलो सैबज्यू! उसने मेरी ओर मुखातिब हो कर कहा.—गोठ (निचली मंजिल) में कर रखा है कथा का इंतजाम.

★ ★

मैं राधा की मां के पीछे हो लिया. पंडितजी आसन ग्रहण कर चुके थे. सामने पड़े दो पीढ़ों की ओर इशारा करते हुए बोले—राधा की मां, तुम बायीं ओर वाले पीढ़े में बैठ जाओ, दायें वाले में लो इस नारियल को रख दो, अपने स्वर्गीय पति के बदले. राधा की मा के माथे पर तिरछी रेखाएं खिंच आयीं. उसने नारियल पीढ़े में रखने की बजाय गोद में रख लिया.—आप बैठ जाओ सैबज्यू पीढ़े पर. कहते हुए मेरा हाथ खींच कर मुझे उस पीढ़े पर बैठने को मजबूर कर दिया. जो रहा ही नहीं, उसकी जगह कैसी! वह धीरे से बुदबुदायी. पंडितजी ने एक बार उसे, फिर मेरी ओर देखा. मैंने अचकचाते हुए नजरें झुका लीं. अपना चेहरा, मुझे लगा कि जैसे कोई मसल गया हो अभी-अभी. पंडितजी ने कथा-वाचन शुरू कर दिया. मेरा मन संपूर्ण वाचन के दौरान राधा की मां के कथ्य-कृत्य में उलझता रहा. हां, बीच-बीच में मैं उसकी ओर देख लेता था. पूर्ण तृप्ति का-सा भाव छाया रहा उसके मुख, पर आद्योपांत.

★ ★

कथा पूरी होने के बाद खाना खाने बैठा तो वही संतोष और परितृप्ति थी उसके चेहरे पर.

—सैबज्यू. . . मैं खाना खा कर वापस लौटने की तैयारी में था तो उसने फिर कहा. आपको तभी से बराबर याद करती रही. . .कभी आपको भी खयाल आया इस गरीब का?

क्या कहता? मैं तो भूल ही गया था उसे. झूठ बोलना पड़ा— हां-हां, क्यों नहीं, बहुत!

उसकी आंखें अतिरिक्त उत्साह से चमक उठीं. बोली— वे नहीं रहे. जवानी के मोल पर कई लोग मदद करने आये. लेकिन धरम का पल्ला मैंने छोड़ा नहीं. उस बखत भी नहीं, जब पापी पेट की अगिन में तड़प रही थी. बच्चे मेरे ही सामने भूख से प्राण छोड़ने को थे. उस बखत. . . उसका स्वर भारी हो आया था. क्षण भर मौन रहने के बाद उसने कहा— उस बखत जरा-सा भी मन कच्चा करती तो सैबज्यू, एक नहीं सौ मिल जाते पाप के खसम. लेकिन धरम का पति बनने को कोई तैयार नहीं था. . .फिर वह जैसे अतीत की दुखद स्मृति में खो गयी.

—आज तो यहीं रह लो न. उसने मुझे जूता-मोजा टटोलते हुए देख लिया था.

—आता रहूंगा. फिर रह लूंगा किसी दिन.

—बिस्तर का बंदोबस्त हो जायेगा, पधानज्यू के घर में. तकलीफ नहीं होगी.

—सो कोई बात नहीं, राधा की मां, फिर कभी आऊंगा रहने को जरूर! मैंने दरवाजे से बाहर निकलते हुए कहा. उसने फिर जोर नहीं दिया.

—पैलाग करो रे कंछ-मंछो! उसने अपने बच्चों को आज्ञा दी. सैबज्यू. . . वह आगे कहते-कहते रुक गया. मुझे लगा कि वह 'आज से तुम मेरे धरम के पति हो गये' कहने जा रही है. लेकिन थूक निगलते हुए उसने कहा—खबर लेते रहना. मैं आश्वस्त-सा हुआ. पास खड़े उसके बच्चों को दो-दो रुपये पकड़ा कर आंगन में निकल आया. बाहर काफी अंधेरा हो आया था. □□□

विकास विभाग, भिक्यासैण, पो. जैनल, अल्मोड़ा (उ. प्र.)

आत्मरचना (२६)

गर्दिश के दिन

• राबिन शॉ पुष्प

जून १९७२ से 'सारिका' में इस महत्वपूर्ण लेखमाला की शुरुआत हुई थी और अब तक आप इसमें हरिशंकर परसाई, शानी, से रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत बक्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर चंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रवींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवी, दामोदर सदन, हृदयेश, रामसरूप अणखी, एम. टी. वासुदेवन नायर, कृष्ण प्रसाद मिश्र तथा श्रीलाल शुक्ल की आत्मरचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और साथ ही सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है—इसी संघर्षशील यथार्थ का निरूपण करने वाली प्रख्यात लेखकों की आत्मरचनाएं इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए हिंदी के युवा कथा-लेखक राबिन शॉ पुष्प की यह आत्मरचना

मुंगेर.

जन्म के पूर्व कपड़े सिलना बदशकुनी समझी जाती है और किसी बच्चे के लिए पहले ही कपड़े सिल लिये जाते हैं... .पैदा हो कर उसे अपने को उसमें डालना होता है, चाहे कपड़े ढीले हों, या तंग. मुझे मालूम नहीं, मेरे लिए कपड़े सिले थे या नहीं, पर यह बात अब साफ हो गयी है कि मेरे लिए एक सलीब बना कर पहले से रखी हुई थी, जिस पर मुझे पैदा होते ही चढ़ जाना था.

१९३४ का भूकंप. मुंगेर टुकड़े-टुकड़े हो गया था। शीशे की तरह. और मेरी मां सड़कों पर आ गयी थीं. पोलो मैदान में झोपड़ियां डाली गयीं. . .इन्हीं झोपड़ियों में से एक झोपड़ी में मैं पैदा हुआ. नीचे फर्श की जगह घास-पत्थर थे. सर्दी के ठिठुरते दिन. . .दूध की जगह प्रतीक्षा. . .मुझे पता नहीं सलीब मेरे नाप की थी या नहीं, पर मुझे इस पर चढ़ाया जाना था और मैं जिंदगी के हाथों चढ़ा दिया गया.

बेगूसराय

पापा पेशकार हो कर बेगूसराय आ गये. एकदिन उन्हें दिल का दौरा पड़ा. इससे बचे, तो लकवा. . . और वह हमेशा के लिए बिस्तर पर आ गये. पापा मेरे अच्छे दोस्त थे. मां बड़े भाई के बेटे को (उसकी मां मर चुकी थी) अधिक प्यार करती थीं. पर पापा मेरे अच्छे दोस्त थे. . .जब वह अच्छे थे, हम दोनों मिल कर मां को खूब तंग करते थे. मां पंखे की डंडी से मारने के लिए दौड़ती थीं, मैं भाग जाता था और पैर की वजह से पापा पकड़े जाते थे. चिल्लाते थे—रवींद्र, बचाओ. . . रवींद्र. . .! यह नाम मां ने ही दिया था—रवींद्रनाथ. वह बंगला, हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी की कहानियां बहुत पढ़ती थीं. मन में कहीं था कि बेटा साहित्यकार बनेगा. कहानियां लिखेगा. खूब नाम कमायेगा. पर ऐसे नाम से फायदा?

• •

जिस दिन पा' को लकवा हुआ था, मैं भीतर-ही-भीतर बहुत रोया था. मुझसे मेरा दोस्त छिन गया था, जो मुझसे कभी कहता——आमोट (आमसे बनता है) खायेगा ? . . .मैं स्वीकृति में सिर हिला देता. पा' इधर-उधर पैसे खोजते. नहीं मिलने पर कान में आहिस्ता-से कुछ कहते. फिर दोनों बाप-बेटे तैयार हो कर टमटमवाले के पास आते. घर के ठीक सामने कई टमटमवाले रहते थे. कोई घोड़ा जोत लेता और हमें कचहरी तक छोड़ आता. वहीं एक दुकान थी—पेड़ के नीचे. दोनों खूब आमोट खाते और मां के लिए भी ले आते. घर पहुंचते, तो मां बिगड़तीं—फूंक आये न पैसे! अपने साथ-साथ बेटे को भी बिगाड़ो. . .! पा सब कुछ चुपचाप सुनते रहते और जब मां का भाषण खत्म हो जाता, तो बड़े प्यार से कहते—बेटे, मां को आमोट दे. . .! इस बार मां हंस कर आमोट खाने लगतीं. फिर शाम को बाप-बेटे गायब हो जाते. जब लौटते, तो मां का तापक्रम बहुत चढ़ा हुआ होता था, क्योंकि हमारी गैरहाजिरी में आमोट वाला मां से पैसे ले कर चला गया होता था. फिर वही पंखे की डंडी और बाप-बेटे का भागना. मगर पा' अब हमेशा के लिए बिस्तर पर गिर गये थे. मां रात-दिन सेवा करतीं. रोतीं. अकेले में मैं भी रोता था, अपने पा' के लिए नहीं, बहुत अच्छे दोस्त के लिए. यही दोस्त मुझे २२ जनवरी १९४५ को छोड़ कर चला गया, जब मेरी उम्र शायद दस-ग्यारह साल की थी.

दानव का प्रवेश

हमारे पास बहुत सारी जमीन थी. बीच में बड़ा-सा मकान. आम, केले, अमरूद, सपाटू, जामुन, ताड़,

नारंगी आदि के पेड़. बगल में आटे की छोटी-सी चक्की डल्लम भैया. सिरिल भैया और आइजक भैया इसे चलाते थे. डल्लम भैया गद्दी पर बैठता था और सिरल तथा आईजक भैया मशीन का काम देखते थे. मगर दोनों बात-बात पर बुरी तरह से लड़ते थे. बड़ी-बड़ी गालियां उठा कर मैदान में उतर जाते थे. मां दूर से गालियां देती थीं. पड़ोसी तमाशा देखते थे.

परंतु घर को तमाशा बना कर रख दिया था एक दानव ने. यह मेरी बहन का पति था. पहले घर से दो बेटियों और एक बेटे के साथ-साथ शराब और अंग्रेजी भाषा ले कर आया था. बहन यानी सिस्टर, अंग्रेजी बोलती थीं, शराब पीती थीं, सिगरेट पीती थीं. फ्राक पहनती थीं, और सबसे बड़ी बात थी कि लेडी डाक्टर थीं. यह सब दानव ने सिखलाया था और खुद भी इनके पैसे से पीता था, कार में घूमता था, अंग्रेजी में गालियां बकता था और मेरे विरोध करने पर गाल में दांत से काट लिया करता था. . .जब मैं मां को दिखाता, तो वह एकदम बुत बन जातीं. बहुत जिद करने पर बस इतना कहती थीं—बेटे, तेरे जीजा हैं, मजाक करते हैं!

इस दानव को मजाक की बहुत आदत थी. यह पुलिस विभाग में था. एक बार हार्न बजाने पर यदि कोई टमटम वाला नहीं हटता था, तो यह दानव अपनी खटारा कार से धक्के मार देता था. कभी-कभी टमटम उलट जाती थी. लोग बस तमाशा देखते थे चुपचाप. किसीकी हिम्मत नहीं होती थी कि दानव के आगे आये. मेरे घर में नहीं भी, क्योंकि इसकी पत्नी यानी मेरी बहन घर में कुछ रुपये देती थी, छोटी बहन को कॉन्वेंट (पटना) में पढ़ा रही थीं. .

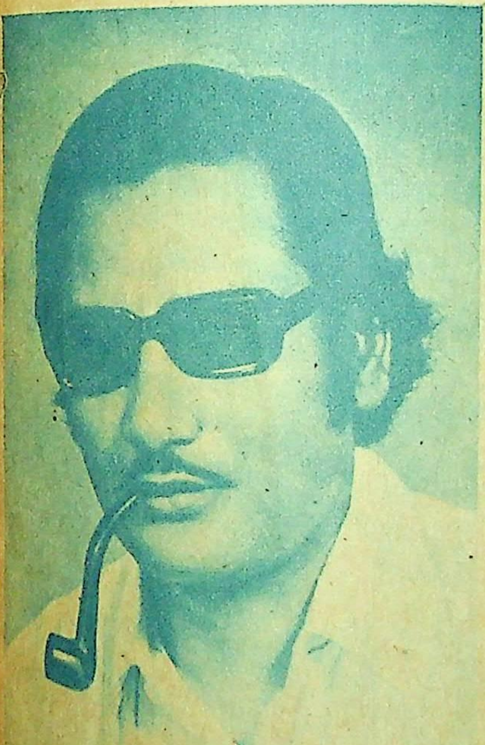

यह दानव कैथोलिक था. सिस्टर भी. इनके अस्पताल वाले क्वार्टर में फादर आते थे. जिस कमरे में शराब और ताश. . .वहीं प्रार्थना होती थी. मुझे फादर का कपड़ा पीछे से पकड़ने को कहा जाता था. यह सब मुझे फार्स लगता था. मन होता था, भाग जाऊं. लेकिन मैं दानव से डरता था. सभी डरते थे.

फादर के जाने के बाद फिर वही शराब, वही अंग्रेजी में गालियां, ताश और इस बीच अगर किसी सीरियस पेशेंट का कोई आदमी आता, तो दानव गुस्से से बाहर निकलता. . .रास्कल, स्वाइन. . .मेम साहब का तबीयत ठीक नहीं है, गेट आउट. . .! वह इंग्लिश में गंदी-गंदी गालियां बकने लगता था. क्योंकि वह ऍंग्लो-इंडियन था और वह वक्त अंग्रेजों का था. . .और यहीं से मैं अंग्रेजी से नफरत करने लगा था.

एक बार प्रोटेस्टैंट चर्च की पुलपिट पर चढ़ कर दानव ने चर्च लेने की जिद पकड़ ली. पादरी कोई श्री चरण थे. उन्होंने कहा कि आप पुलपिट के पास मेज लगा कर चर्च ले लें, मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी. परंतु पुलपिट पर न चढ़ें, जो पादरी हैं, वही इस पर चढ़ कर चर्च ले सकते हैं.

दानव गुस्से में लौट आया. वह पुलिस विभाग का आदमी था. शाम को कई पुलिस वाले आये थे और पता नहीं किस अपराध में पादरी को हथकड़ी पहना कर बीच बाजार से ले गये. जब उस गरीब पादरी की पत्नी, बच्चों के साथ दानव के पैरों पर गिरी, तभी छूट पाया वह पादरी. इस जीत की खुशी में दानव सारी रात पीता रहा था. . .

मेरे भीतर आग लग गयी थी. यही आग जब-तब आईजक भैया को भी लग जाती थी. एक वही था घर में जो इस दानव को कभी-कभार कड़ी बातें कह दिया करता था. नतीजा यह होता था कि दानव और सिस्टर हमारे घर आना बंद कर देते थे. फिर मां आईजक भैया को बहुत मनाती थीं. हाथ जोड़ती थीं. तब अपने साथ मुझे ले कर वह क्वार्टर जाता था. दानव से माफी मांगता था. दानव अंग्रेजी में सड़ी-सड़ी गालियां देता था. आईजक भैया वह सब मां की खातिर चुपचाप बरदाश्त कर लेता था और लौटते वक्त फुटबाल मैदान में बैठ कर बहुत देर तक रोता रहता था. वह बहुत ही सख्त-दिल आदमी था. इसी मैदान में किसीके भी कुछ कहने पर उसे पीट देता था. एक बार किसी टीचर ने कम नंबर दिये थे, तो हाकी ले कर सारी रात उसे खोजता रहा था. वह हाकी, फुटबाल का बेहतरीन खिलाड़ी था. वैसे सभी भाई अच्छा खेलते थे. विशेषकर डल्लम भैया और सिरिल भैया. मगर आईजक भैया सब बात में आगे था, मार-पीट में भी. . .वही आईजक भैया फुटबाल फील्ड में रोता था. बाद में वह मर गया.

EYETEX 4 IN 1 BINDI
EYETEX
EYETEX BINDI
EYETEX REGD.
EYETEX BINDI
EYETEX DELUXE BINDI PENCIL
AL-75/76

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन

ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033

ताक़त
मर्द की शान मर्द की पहचान

इस ताक़त को बनाये रखने के लिए, सदाबहार चुस्ती, फुर्ती और नौजवानी की सी उमंग के लिए ओकासा स्वास्थ्यदायक टॉनिक टिकियाँ लीजिये। ओकासा टॉनिक टिकियों की अनोखी शक्ति से आपके शरीर और दिमाग़ को लगातार नयी ताक़त मिलती है।
ओकासा की टिकियों पर चांदी चढ़ी रहती है।

ओकासा
टॉनिक टिकियाँ
पुरुषों के लिए चांदी वाली
हार्मो-फ़ार्मा लिमिटेड लंदन-बर्लिन का उत्पादन
सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहां मिलता है।

OKASA CO. PVT. LTD.
12A Gunbow Street, P.B.No.396,
Bombay-400001.

OKASA
THE 20TH CENTURY TONIC
RESTORATIVE
Manufactured by
OKASA CO. PVT. LTD BOMBAY
FOR
HORMO-PHARMA LTD.
LONDON-BERLIN

कहते हैं कि बोन टी. बी. के कारण उसकी मृत्यु हुई थी... नहीं, दानव ने उसे घुटाघुटा के मारा था, हाथ जोड़ कर खड़ी मां की ममता ने उसे मारा था.

अब दानव का कोई विरोधी नहीं था.

हमारे घर जम कर ताश, शराब, ताड़ी सारी चीजें शुरू हो गयी. चखना, कबाब, नशा, गालियां. एक दिन दानव की बड़ी बेटी किसी अंग्रेज को ले आयी. उसके साथ अंग्रेजी रिकार्ड लगा कर नाचती थी और शराब पीती थी. यह सब क्वार्टर में नहीं, हमारे घर में हो रहा था. क्योंकि सिस्टर घर का कुछ खर्च उठाती थीं. अपने से छोटी बहन को पढ़ा रही थीं. ऐसे ही किसी मनहूस दिन दानव ने बोतल और झोली पकड़ा कर मुझे ठर्रा लाने को कहा. मैंने मां की तरफ देखा. वह चुपचाप रसोईघर की तरफ चली गयीं. मैं समझ गया, मुझे भी आईजक भैया बनना है.

दानव पी रहा था, जब काफी पी चुका, तो उसने मुझे आवाज दी–कम, रॉबिन डियर,!. . .मैं उसके पास गया. गिलास में ठर्रा डाल कर उसने मुझे पीने को कहा––ड्रिंक, माई लवी!

मैंने अस्वीकृति में सिर हिला कर कहा––नहीं, शराब बुरी चीज होती है.

वह बुरी तरह तिलमिला उठा. इस घर में उसके खिलाफ फिर आवाज उठी थी. वह जोर से चिल्लाया–– क्या बोला साला. . .ब्लडी. . .से इन इंग्लिश. . .! उसकी आवाज सुन कर मां दौड़ कर आयीं. पर वह दूर खड़ी रहीं. वह चिल्ला रहा था––से इन इंग्लिश. . .टॉक इन इंग्लिश. . .! और मैं इनकार कर रहा था––नहीं, मैं कभी अंग्रेजी नहीं बोलूंगा. . .कभी शराब नहीं पीऊंगा... तभी दानव की बेटी आयी. उसने आ कर कहा कि जहां वह नाच रही थी, मेरे कुत्ते के पिल्ले ने वहां गंदा कर दिया है.

इतना सुनना था कि दानव ने अपने पंजों में मुझे दबोच लिया और उस जगह, जहां मेरे पिल्ले ने गंदा किया था, मेरा माथा एक जानवर की तरह रगड़ कर मुझे पीटने लगा. आज भी याद है, अपनी चीख के बीच मैंने एक सिसकी सुनी थी. और उसी दम अपने को सख्त बना लिया था. नहीं रोया, क्योंकि फिर सिसकी सुनाई पड़ती. उस दिन के बाद से मैं आज तक दो चीजों से नफरत करता हूं. . .शराब और अंग्रेजी बोलना. मुझे अच्छी तरह याद है, जब मैं जे. के. हाई स्कूल में गया था, तो मुम बाबू मास्टर ने पूछा था कि विडो का आपोजिट जेंडर ?. . . .वह पूछ रहे थे. मेरे सामने दानव घूम रहा था. चाह कर भी मैं नहीं बोल सका और उन्होंने क्लास से निकल जाने को कहा था. फिर मैं मैट्रिक तक उनकी क्लास में नहीं गया. जब अंग्रेजी की घंटी बजती, मैं किताबें समेट कर बाहर आ जाता. किसी पेड़ के नीचे बैठ कर बस पढ़ता. पढ़ना अच्छा लगता था. बोलना नहीं, क्योंकि दानव अंग्रेजी बोलता था.

यह तो बहुत बाद ही बात है, इसके पहले कुछ लड़के गांधी टोपी लगा कर जुलूस निकालते थे. 'इनकलाब जिंदाबाद' कहते थे. हमारे घर के सामने एक जाते थे––अंग्रेजो, भारत छोड़ो . .! जब वे ऐसा कहते थे, तो दानव कमरे में बंद हो कर अपने बाल नोचा करता था. अंग्रेजी में गालियां बकता था. और मैं चुपके-से उस भीड़ में घुस कर अपने ही घर के सामने लगते नारों में अपनी आवाज मिला देता था––अंग्रेजो, भारत छोड़ो. . .!

राबिन शॉ पुष्प (जन्म : मुंगेर बिहार में) हिंदी के युवा कथाकार हैं. इनकी अब तक तेरह कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं–– छह [illegible] संग्रह, दो उपन्यास और पांच बाल उपन्यास. इन्होंने 'हंसोड़' और 'महादेश' का संपादन किया है और इस समय नेशनल क्रिश्चियन काउंसिल की पत्रिका 'मसीही आवाज' का संपादन कर रहे हैं.

●

आजादी की लड़ाई शुरू हो गयी थी! बुद्धन मिस्त्री, जो हमारे यहां डीजल इंजन चलाता था, कभी-कभी लड़कों के साथ इंजन भी (ट्रेन) तोड़ता था. वह तांबे की पाइप ले आता था. गोल-गोल शक्ल में काटता था. नींबू घिस कर उन्हें हरा करता था. वह पैसा कह कर उन्हें बाजार में चलाया करता था. इस प्रकार अंग्रेजों के सिक्कों के साथ-साथ हमारे भी सिक्के चलते थे और हम दोनों बहुत खुश थे. बड़े लड़के तार काटते थे, इंजन तोड़ते थे, नारे लगाते थे. लेकिन जिस दिन टामीगन ले कर टामी आये और सड़कों पर लेटे हुए लड़कों की छाती पर बूट पहन कर बेरहमी से चले, दानव बहुत खुश हुआ था. . .ये टामी बी. पी. एच. ई. स्कूल के सामने वाले कुएं में एकदम नंगे हो कर नहाते थे और आजू-बाजू से गुजरने वाली औरतों या लड़कियों को अपने - अपने लिंग दिखा कर हंसते थे. कभी-कभी शेर की तरह झपटते भी थे और दानव इन्हीं में से कुछ को ले कर घर आ गया था. . .इनके साथ पीता रहा था. . . अंग्रेजी में बातें करता रहा था. . .

यह तो बहुत पहले की बात है, उसके बाद हुआ यह कि मैं फर्स्ट ईयर में गया ––जी. डी. कालेज बेगूसराय. और जब मैंने हिंदी में टाप किया (६४ नंबर मिले थे.), तो हिंदी के लेक्चरर दंग रह गये कि एक क्रिश्चियन लड़का. . .वह सभी को मेरी कापी दिखाते रहे. . .मेरे लेख की बहुत-बहुत प्रशंसा करते रहे. सच पूछा जाये तो जिस दिन मैंने उस कापी पर लेख लिखा था, उसी दिन लेखक बन गया था. फिर बाबा (वही लेक्चरर. वह छोटे कद के थे. खादी का कुरता और धोती पहनते थे. गांधी टोपी भी.) के आग्रह पर मैंने कालेज पत्रिका के लिए एक कहानी लिखी थी––'अखबार'. वही मेरी पहली कहानी थी.

बेगूसराय से फिर मुंगेर

और एक दिन डीजल इंजन का हेड फट गया. आटा-चक्की बंद हो गयी.

समस्या थी रुपयों की. जमीन का थोड़ा-सा हिस्सा बेच कर भी यह काम हो सकता था. लेकिन मेरे सबसे बड़े भाई ने, जो इंजीनियर थे और शरणार्थी बन कर लाहौर से भाग आये थे (इन पर भी अंग्रेजियत का भूत सवार था), सिस्टर से मिल कर सलाह की. फिर सिस्टर रामदीरी से किसी सज्जन को ले आयीं. उन्होंने लिखा-पढ़ी के बाद शायद छह हजार कर्ज में दिये. इतने रुपये विक्टर भैया की प्लानिंग के लिए लिये गये थे. उन्होंने कहा था कि बैटरी चार्जिंग होगी. घर में बिजली मिलेगी. (बेगूसराय गांव जैसा था. वहां बिजली नहीं थी. सड़कों पर धूल थी. टमटम चलते थे.) हमारे रहने का स्टैंडर्ड बढ़िया होगा. यह भी कोई जिंदगी है. . .लेकिन उनकी प्लानिंग फेल हो गयी. और हमारी जिंदगी पहले से बदतर हो गयी. अब रात में चोरों के हमले शुरू हो गये. कभी पत्थर गिरते, तो कभी लोहे के टुकड़े, कभी आधी खिड़की उखड़ जाती. अंत में एक दिन सब कुछ बेच कर हम फिर मुंगेर आ गये.. . .ढेर सारी जमीन, घर , आटा-चक्की, सभी कुछ. . .शायद केवल सत्तरह हजार में. बेगूसराय के लोग अब कहते हैं कि अगर हम लोगों ने अपनी जायदाद नहीं बेची होती, तो आज लखपति होते. मुंगेर में पेन भैया पहले से था.

मैं आर. डी. ऐंड डी. जे. कालेज में पढ़ने लगा. थर्ड इयर. इसी शहर में मेरी मुलाकात एक लड़की से हुई . वह स्कूल में पढ़ती थी. जब मैं उसे सचमुच प्यार करने लगा, तो मुझे मालूम हुआ कि मेरा एक भतीजा जब - तब उसके जिस्म पर हाथ रख देता है. मेरे पूछने पर वह इनकार कर सकती थी, मगर वह झूठ नहीं बोल सकी थी. क्योंकि वह सचमुच प्यार करती थी मुझे. यहीं मैं हार गया था. मैं उसे पवित्र प्रेम की फिलासफी समझाता रहा, परंतु बाकी लोग उसे सेक्स का दर्शन समझाने लगे. मैं गांव से आया था, बाकी लोग शहर के थे. मैं कुप्पी और लालटेन में पढ़ कर आया था. वे तेज बल्ब में पढ़ कर बड़े हुए थे. सूई घुमा कर रेडियो पर दूर-दूर के स्टेशन पकड़ लिया करते थे. . .वे स्टेशन को नजदीक लाते रहे और मैं दूर होता गया. . .यही वह दूरी थी, जो मुझसे कविताएं लिखवाने लगी. .

अब मैं कविताएं लिखता था, पढ़ता था और फुटबाल खेलता था, फुटबाल तो बहुत पहले से खेलता था, जब स्कूल में पढ़ता था. बॉरो हो कर कालेज की टीम से खेलता था. फिर एम. ए. करने भागलपुर चला गया. जब सिक्स्थ इयर में था, तो एक बार मुंगेर में खेलते वक्त एक खिलाड़ी बूट ले कर मेरी छाती पर चढ़ गया. मैं खतरनाक सेंटर फारवर्ड था और मुझे घायल करना उनके लिए जरूरी था. मेरे मुंह से खून आने लगा और बहुत दिनों तक जब-तब आता रहा . फिर मैं कुछ दिनों लिट्रेसी हाउस, लखनऊ में भी रहा. वहीं यशपालजी, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, डा. देवराज आदि से मिलने का अवसर मिला. वे लेक्चर देने आते थे. श्रीमती फिशर की इस संस्था का भी माहौल विलायती था. . .सभी अंग्रेजी बोलते थे. . . हमारे साथ जितने लेखक थे वे भी. . .यहीं हमारे साथ थे वी. वी. वोकिल (मराठी के सुप्रसिद्ध लेखक), दत्तात्रय बर्वे, अनामिल, बर्मा के बिनटिन. जब मैं लखनऊ से मुंगेर वापस आया, तो मां बैडमिंटन की चिड़िया की तरह एक भाई के यहां से दूसरे भाई के यहां फेंकी जा रही थीं.

मां यानी बैडमिंटन की चिड़िया

मां को बाथरूम के बगल वाले कमरे में रख दिया गया था. एक खाट लगा दी गयी थी. पास ही कमोड लेकिन जब भी बच्चे बाथरूम जाते, धड़ाम से दरवाजा बंद करते. मां कहतीं—बेटा, छाती पर धक्का-सा लगता है. धक्का तो मेरी छाती पर भी लगता था, लेकिन मैं एक बार फिर आईजक भैया बना दिया गया था.

खाना देते समय, उनकी गोद में एक हरा चारखाना कपड़ा बिछाया करता था. . .तामचीनी के गिलास में पानी रख देता था. . .वह खाना शुरू करती थीं. कभी चावल कड़े, तो कभी सब्जी झोल. कहतीं --बेटे, चावल कड़े हैं.और मैं चावल में पानी मिला कर उसे मसलता था. मुलायम बनाता था. जानता था, दाई को कहूंगा, तो जवाब मिलेगा --हूं, अलग से चार दाने सिझा दें. अरे, मुंह में एक्को दांत भी हो तब. . न. . .! मैं जानता था, यह दाई नहीं, घर की मालकिन बोलती है. . .

ये मेरे बुरे दिन थे, जब मेरी अच्छी कहानियां लिखी गयीं. 'धर्मयुग' में जब मेरी पहली कहानी छपी थी, तो मां बहुत खुश हुई थीं. कई अंक खरीद कर उन्होंने जिस-तिस को दिये थे. मुझे निकट बुलाया था. प्यार से सिर पर हाथ रख कर रो पड़ी थीं--रवींद्र बेटे, ईश्वर करे, तू खूब नाम कमाये. . .लेकिन बेटे, कब तक मां की सेवा करता रहेगा. . .कब तक इस तरह कंघी करता रहेगा. . .तौलिये से जिस्म पोंछता रहेगा. . . कमोड पर बिठाता रहेगा. . .बेटे, मुझे छोड़ कर तू कहीं भी चला जा, लेकिन यहां नहीं रह. . .! परंतु मैं अपनी अपाहिज मां को नहीं छोड़ सका था. आईजक भैया की तरह ही अकेले में रोता था. . .कभी सेंटर के पीछे. . .कभी कष्टहरणी घाट की सीढ़ियों पर. . .

ऐसे गर्दिश के दिनों में श्रीकांत झा, राजेश, कृष्णा और कई दोस्त मिल गये थे. मैं अपने ढेर सारे दुख इनके साथ बांटा करता था. लेकिन घर लौटने पर फिर वही ताने, वही बासी बातें मुझ पर फेंक दी जाती थीं. और मैं अब तक इतना टूट चुका था कि आत्महत्या की बात सोचने लगा था. ऊपर से मां की खातिर बहुत हंसता था, लेकिन एकदम खोखला हो गया था. मैं जब अकेले में रोता था, तो शीला (भतीजी) मेरे पास आती थी. . . मेरे पास रोती थी. जब मैं मरने की बातें करता था, तो मुझे मां के लिए जिंदा रहने को कहती थी. अगर

वह न होती, तो मैंने बहुत पहले मृत्यु को स्वीकार लिया होता, क्योंकि आईजक भैया बने रहना मेरे लिए संभव नहीं था.

वह लड़की जो कहानियां पढ़ कर पत्नी बनने आ गयी यानी गीता पटरथी

गीता को भी आईजक भैया बनना पड़ा था. गलती न करने पर भी माफी मांगनी होती थी. और एक दिन हम दोनों को घर से निकल जाने को कहा गया था. जब मैं गीता को रिक्शे पर ले कर निकला, तो हलकी-हलकी बारिश हो रही थी और गीता के पेट में हलका-हलका दर्द हो रहा था. . .वह पूरे समय से थी और किसी भी समय मां बन सकती थी.

ऐसे नाजुक समय में मैंने दो कहानियां 'सारिका' को भेजीं. स्थिति बताते हुए श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार से (तब वह संपादक थे) एडवांस की मैंने मांग की थी. उन्होंने तुरंत दो सौ रुपये भिजवा दिये.

और जब मोनू पैदा हुआ, तो बीमारी की हालत में भी शीला हमारे पास थी. . .अस्पताल का नर्सेस क्वार्टर. . . .एक भाभी यहां नर्स थीं. एकदम दुबला, मरियल-सा मोनू. . .शीला ने अपने बच्चे की तरह इसे सीने से लगा लिया था. . .और मैं एक ही बात सोच रहा था कि बिना कुछ भी अच्छा खाये-पीये और हमेशा तनाव के वातावरण में रह कर भी गीता ने कैसे इस बच्चे को जन्म दिया? जन्म दिया, तो जीवित कैसे रह पायी?

पटने की यात्रा

गीता की नौकरी लग गयी थी. पंद्रह दिन के मोनू को ले कर हम पटने आ गये. . .हम यानी गीता, शीला और मैं. हाथ में केवल एक सौ उंतीस रुपये थे, एक ट्रंक, बिस्तर, एक सूटकेस, बस. यह १९६६ की बात है. पूरा मकान खाली था. जमीन पर हम सोते थे. बाद में सोमवारी मेले से हमने पंद्रह रुपये में एक चौकी ली—मोनू को ऊपर सुलाने के लिए. यही हमारी पहली खरीदारी थी.

फिर हम मां को भी ले आये. अब मां पूरी तरह से अपाहिज हो चुकी थीं. मैं उन्हें कमोड पर बिठाता, स्पंज करता, धीरे-धीरे अपने हाथों से खाना खिलाता और वह जब-तब रोतीं. कहतीं—बेटा, मुंगेर कभी मत जाना. मुंगेर ने मुझे बहुत सताया है. पर मैं जानता हूं. वह भीतर-ही-भीतर मुंगेर से प्यार करती थीं. और यह कितना बड़ा अपराध है कि हम भी अंतिम इच्छा पूरी नहीं कर सके. हम अब भी मुंगेर जाते हैं और इतने घाव ले कर लौटते हैं कि कसम खाते हैं कि अब कभी नहीं जायेंगे, लेकिन फिर चले जाते हैं. हम भी मां की तरह मुंगेर से नफरत करते हैं. और हकीकत यह भी है कि उसीसे मां की तरह प्यार भी करते हैं.

और आज जब कोई पूछता है कि आप नारी की पीड़ा को इतनी गहराई में कैसे अभिव्यक्ति देते हैं, तो मैं केवल मुसकराता हूं क्योंकि मैं जानता हूं, कहानी में आयी वह लाचार औरत और कोई नहीं, मेरी मां हैं, जो कभी पत्नी थीं, मां थीं, सास थी, शिक्षिका थीं, गृहिणी थीं, एक टूटी हुई औरत थीं, जिन्हें मैं रोज टुकड़ों में बंटते हुए देखा करता था.

वह आखिरी दिन

यह वही तारीख थी, जिस दिन राजकमल चौधरी मरा था. अशोक (भतीजा) सिरहाने बैठा था. मैं पांव पकड़ कर रो रहा था. गीता और शीला ठगी-सी खड़ी थीं, काफी प्रतीक्षा के बाद उन्होंने किसी तरह पूछा—ईडिथ आयी? (सिस्टर, यानी दानव की पत्नी.)

अशोक ने कहा—नहीं.

—अब वह नहीं आयेगी. . .! यही मां का आखिरी वाक्य था. धीरे-धीरे आंखें पथराने लगीं. मैं उन्हें चुकता हुआ देख रहा था. . .बहुत जोरों की रुलाई आने को हुई. . .लेकिन मैंने जब्त कर लिया. . .कहीं फिर वह सिसकी न सुनाई दे जाये. मेरी मां की आंखें पत्थर हो रही थीं. . .वही मां, जो मेरे पा' के बाद मेरे लिए सब कुछ थीं. . .वही मां, जिन्होंने मेरा नाम रवींद्रनाथ रखा था, जिसे दानव और चंद ऐंग्लो-इंडियनों ने रॉबिन बना दिया था. . .वही मां, जो चाहती थीं कि मैं कहानियां लिखूं. . .मैं उन्हीं को धीरे-धीरे मृत्यु-मुख में जाते हुए देख रहा था. . .उफ!

उस दिन मैं चुप रहा था. लेकिन आज चिल्लाता हूं—सुना तुमने, मां, मैं दानव से नफरत करता हूं, शराब से नफरत करता हूं, अंग्रेजी बोलने से नफरत करता हूं. . . इन्हीं तीनों ने हमारे घर को बरबाद किया है. . .पर एक बात कहूं, मां, आज दानव मर चुका है, अंग्रेज भी जा चुके हैं. . .मगर लोग पहले से भी ज्यादा पीने लगे हैं, अधिक अंग्रेजी बोलने लगे हैं और जो हिंदी मैंने बहुत जिद करके सीखी थी, बहुत पीछे छूट गयी है. . .बहुत पीछे, डर लगता है मां, कहीं यह शराब, यह अंग्रेजियत, जिसने हमारे घर को तबाह किया था, इस देश को न बरबाद कर दे.

फिर वही सलीब

आज मेरे पास अपनी लिखी किताबें हैं, फ्रिज है, टेलीफोन है, टेपरिकार्डर है, यूफोम और रिलैक्सनऑन के गद्दे हैं, कहानी पर फिल्म बन रही है. . .लेकिन हर रात सोने से पहले मैं अपनी मां को याद करता हूं. उन्हें कुछ भी नहीं दे सका था. . .और आज भी जिस सलीब पर मैं ठुका हूं, उसके नीचे दो लड़कियां खड़ी हैं, जो कभी मेरे लिए सचमुच रोयेंगी. . .मैं इन्हें भी कुछ नहीं दे सका हूं, आशिष तक नहीं. . .मेरे हाथ सलीब पर ठुके हैं, एक लेखक के हाथ! मैंने कहा था न, कुछ बच्चों के लिए पहले ही कपड़े सिल लिये जाते हैं. पैदा हो कर उन्हें अपने को उनमें डालना होता है. चाहे कपड़े ढीले हों, या तंग. . .मुझे मालूम नहीं, मेरे लिए कपड़े सिले भी थे, या नहीं, पर यह बात आज साफ हो गयी है, कि मेरे लिए एक सलीब पहले से तैयार रखी थी, जिस पर पैदा होते ही मुझे ठुक जाना था.

सनोवर बिल्डिंग, ९५, सब्जीबाग, पटना—४. □□□

ट्रांसफर

• कुलदीप कुमार

खन्ना साहब बीस वर्ष की सर्विस में सातवीं बार ट्रांसफर होकर मुरादाबाद आये. रेलवे के बड़े दफ्तर में एकाउंट्स के हेड क्लर्क. कुछ दिन किराये के मकान में बिताने के बाद उन्हें शहर के बाहर नयी बनी रेलवे कॉलोनी में एक क्वार्टर एलाट हुआ. मिलिटरी की बैरकों जैसा खूब बड़ा क्वार्टर. बढ़िया. मगर आंगन कच्चा था. और कच्चा भी केवल मिट्टी का होता तो भी कोई बात नहीं थी. ठेकेदार ने शायद यह सोचकर कि इन मकानों में रहने वाले यह न भूल जायें कि वह रेलवे के नौकर हैं, आंगन में जला हुआ कोयला बिछवा दिया था. हालत यह कि नंगे पैर घर में चलना मुश्किल. जहां-तहां कोई नुकीला कोयला चुभ जाता.

आस-पास बहुत से मकान बन रहे थे. सीमेंट की बोरियां तो स्टोर में तालाबंद करके रखी जातीं मगर अनगिनत ईटों के ढेर और बालू को भला कहां बंद किया जाये! लिहाजा सब लोग रात को अंधेरा होते ही बाहर से ईटें उठा-उठाकर अपना आंगन पक्का करने लगे. छोटे-छोटे बच्चे दौड़-दौड़कर ईटें उठा लाते. बड़े उन्हें ठोंक-ठोंक कर एक-सा लगा देते. खन्ना साहब के बच्चों ने कहा कि हम भी अपना आंगन पक्का करेंगे. सिर से पगड़ी उतारकर अपने खिचड़ी बालों में हाथ फेरते हुए खन्ना साहब कहने लगे—क्या करना है. पता नहीं साल रहना है या छह महीने. जाने कब ट्रांसफर हो जाये.

मकानों के पीछे बहुत जमीन पड़ी थी. एक साहब ने टूटी चारपाई के बांस और लकड़ियां गाड़कर बहुत सारी जमीन घेर ली. आसपास के लोग सोचते रहे, अभी रेलवे का कोई बड़ा अफसर आकर इन साहब को मजा चखायेगा.

दो-चार दिन बीते. महीना बीत गया. कुछ नहीं हुआ. एक और साहब ने भी ऐसा ही किया. मगर हद उन्होंने भी उतनी ही रखी जितनी पहले वालों ने रखी थी. फिर और मकानों ने भी यही किया. बिना किसी के कहे यह मान लिया गया कि इतनी जमीन हर कोई ले सकता है लेकिन इससे अधिक भूमि घेरना गैरकानूनी होगा.

धीरे-धीरे लकड़ी के खंभों की जगह लोहे के मजबूत खंभे लग गये. फिर कांटेदार तार भी आ गये. सब कुछ रेलवे का. खन्ना साहब अपने बच्चों को समझाते—यह गलत काम है. चोरी है. और फिर हमें कौन यहां जिंदगी भर रहना है!

उनके घर के पीछे जमीन वैसे ही पड़ी रही. दोनों तरफ के मकानों के बगीचे बन गये. लोग उनमें सब्जियां लगाने लगे. आलू, गोभी, टमाटर, मिर्च, प्याज, मूंगफली, मटर, अरबी और न जाने क्या-क्या. किसी ने आम का पेड़ लगाया तो किसी ने जामुन का.

* *

एक दिन शाम को खन्ना साहब दफतर से घर पहुंचे तो क्या देखते हैं कि उनके बच्चों ने भी दो खंभे गाड़कर थोड़ा-सा तार बांध दिया है. आसपास दोनों तरफ के मकानों का बगीचा था ही. सिर्फ सामने ही तो तार खींचना था. सोचा चलो कोई बात नहीं. जब ले ही आये हैं तो क्या किया जाये.

कुछ दिन बाद उनका लड़का एक जामुन का पेड़ ले आया. बगीचे में गड्ढा खोदकर लगा रहा था. खन्ना साहब ने पूछा—जामुन कब लगेंगे? लड़के ने बताया कि माली कह रहा था पांच साल बाद. खन्ना साहब बहुत बिगड़े. पांच साल. पांच साल में न जाने क्या हो जाये. ट्रांसफर

• दिवाकर शेडगे

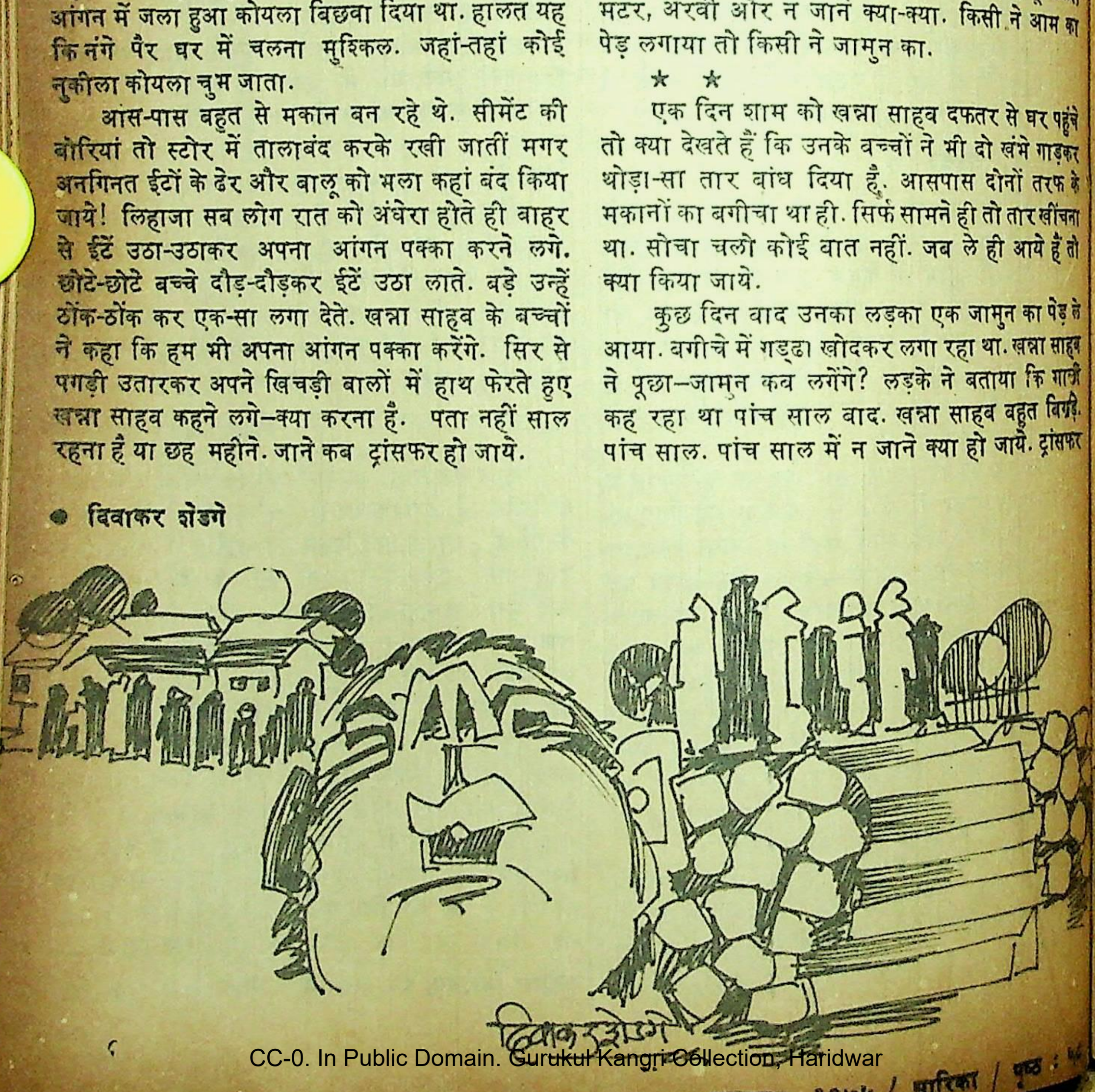

का क्या भरोसा? और ट्रांसफर क्या तब तक तो वह रिटायर ही हो जायेंगे. फिर ऐसा पेड़ लगाने से क्या फायदा?

मगर अब पेड़ आ ही गया था इसलिए लगा दिया गया.

आसपास के घरों से देखकर खन्ना साहब की पत्नी कहतीं कि बिस्तरों के लिए एक बड़ा बक्सा बनवा लें. गेहूं रखने के लिए एक ड्रम बनवा लें. बांस की चारपाइयां अब किसी के घर नहीं हैं. अपने घर में कोई आता है तो बड़ी शर्म आती है. चार नहीं तो कम से कम दो पलंग ही बनवा लें. राजू और शीला अब बड़े हो गये हैं. दोनों के पढ़ने के लिए अलग-अलग मेज-कुर्सी होनी चाहिए. तुम अपने लिए भी एक साइकिल खरीद लो. दफ्तर कितनी दूर है! पैदल आने-जाने में थक जाते हो. और फिर सिर्फ दफ्तर ही तो नहीं जाना होता. बाजार भी यहां से कितनी दूर है.

खन्ना साहब उसे समझाते—देखो भागवान्, सामान ज्यादा बढ़ाने से क्या फायदा! हम ठहरे रेलवे के नौकर. आज मुरादाबाद, कल पता नहीं लक्सर या सहारनपुर. पता नहीं चार दिन रहना है या छह दिन. फिर इतना सामान इकट्ठा करने से क्या फायदा?

न बिस्तरों का बक्सा बना, न गेहूं का ड्रम! न मेज-कुर्सी आयी, न साइकिल! छत से रस्सी बांधकर एक लंबे बांस का झूला बनाया गया और उस पर गद्दे-रजाइयां और कंबल डाल दिये गये. ऊपर एक पुरानी चादर डालकर डोरी से बांध दी गयी जिससे धूल न पड़े. गेहूं रखने के लिए खन्ना साहब की पत्नी ने चिकनी मिट्टी में घोड़े की लीद व भूसा सानकर बड़ी-बड़ी कोठियां बना लीं. ईंटों के पाये बनाकर उन पर एक सूटकेस रखकर राजू के लिए मेज बन गयी.

खन्ना साहब बदस्तूर पैदल आते-जाते रहे. सुबह-सुबह उठकर दो मील दूर गांव में दूध लेने जाते. फिर साढ़े नौ बजे खाना खाकर घर की धुली और खूब नील लगी कमीज और चुन्नटों वाली सलवार पहनकर सिर पर पगड़ी ठीक करते हुए दफ्तर चले जाते. दफ्तर यानी दो मील दूर! रास्ते में उनके नीचे काम करने वाले क्लर्क साइकिलों पर चढ़े उनके पास से नमस्ते करते हुए निकल जाते. कोई-कोई उन्हें कैरियर पर बैठने को भी कहता पर वे मुसकराकर मना कर देते. दोपहर में—लंच टाइम में—थैला लेकर बाजार चले जाते. दाल-सब्जी ले आते. शाम को फिर दफ्तर से लौटकर दो मील दूर गांव से दूध लेने जाते.

तीन-तीन घरों के बीच में एक-एक नल था. पानी भरकर लाना होता. बच्चे नल पर ही नहा लेते. इस सांझे नल पर कई बार बालटियां टकरा जातीं. चूड़ियां खनक उठतीं. बच्चे लड़ पड़ते. इस झंझट से बचने के लिए खन्ना साहब सबेरे तड़के ही उठ जाते. अभी आसपास के लोग सो रहे होते कि वह नहा-धोकर दिन भर के लिए पीने का पानी और शीला और उसकी मां के लिए नहाने का पानी भरकर रख देते. अंत में एक बाल्टी जामुन के पेड़ को भी डाल देते. अब जब लगा ही है तो पानी तो देना ही चाहिए. फल तो पता नहीं कौन भाग्यवान खाएगा इसके!

★ ★

चार साल बीत गये.

उनके साथ के कई लोग ट्रांसफर हो गये पर खन्ना साहब का आर्डर नहीं आया. जामुन का पेड़ अब बड़ा हो गया था. राजू और उसके दोस्त उसकी डालियों पर चढ़ जाते.

तभी एक दिन सुना कि बिजली आने वाली है. अब तक मिट्टी के तेल के लैंप जलते थे. बिजली केवल सड़कों पर व रेलवे क्लब में थी. शाम को खाना खाकर पुरुष व लड़के क्लब चले जाते. औरतें व लड़कियां खाना खा-खिलाकर, चौका-बासन मांज-धोकर बाहर आ बैठतीं, कभी किसी के और कभी किसी के दरवाजे पर.

बिजली की फिटिंग शुरू हो गयी. दीवारों में गिट्टियां गाड़कर लकड़ी की पट्टियां लगाई जाने लगीं. खन्ना साहब के घर में भी फिटिंग पूरी हो गयी. नगर में बिजली तब आयेगी जब सब घरों की फिटिंग पूरी हो जायेगी. उनकी पत्नी कहती, बच्चों के लिए कम से कम एक टेबल फैन तो लेना ही पड़ेगा. कितनी गर्मी पड़ती है! इम्तहान के दिनों में मच्छर भी कितने हो जाते हैं!

तभी एक दिन सबने देखा कि जामुन के पेड़ पर फूल लग आये हैं. राजू अब उसको और भी अधिक पानी देने लगा. छोटे-छोटे हरे-हरे जामुन लग गये. सारे मकानों में चर्चा होने लगी कि खन्ना साहब के पेड़ पर जामुन लगे हैं.

उस दिन खन्ना साहब दफ्तर गये तो उनको एक बंद लिफाफा मिला. खोलकर देखा. . . . . निम्नलिखित कर्मचारियों को सामने लिखे स्थानों पर स्थानान्तरित किया जाता है.

निर्विकार भाव से खन्ना साहब ने पत्र को ठीक से तहकर जेब में रख लिया. □□□

१२-सी, जवाहर नगर, ग्वालियर –१

लघुकथा

हैरानी

● मनोज सोनकर

उसने फटी हुई हाफ पैंट और मैली गंजी पहन रखी थी. साइकिल के हैंडल में मैला-सा झोला लटक रहा था. दोपहर का वक्त था, बेतहाशा साइकिल दौड़ा रहा था, पसीने से लथपथ था. जैसे ही उसने शिवाजी पार्क के चौराहे पर दाहिनी ओर मुड़ना चाहा था, एक लारी ने उसे गेंद की तरह उछाल दिया था. भीड़ जमा हो गयी थी.

—बहुत बढ़िया चावल है. साला कहां से मार लाथा. लोग हैरान थे.

खून की पतली-सी धारा बिखरे हुए चावलों को छोटे-छोटे खानों में बांटने की कोशिश कर रही थी. □

आइस्क्रीम का एक कोन

● ज्योतिष जानी

अब—

उसकी आंख पर से मैं अपनी आंखें उठा नहीं सकता.

मुझे कैसा लगता है, यह भी मैं ठीक तरह से नहीं कह सकता, कुछ अगम्य-सा.

उसे मैं देखता हूं और पेट में ऐंठन आये, ऐसा कोई मनोभाव महसूस करता हूं.

कुंतल.

डॉक्टर ने कह दिया है— कुंतल अब चार-पांच महीने मुश्किल से निकालेगा. रोग को तुम पहचानते नहीं.

मैं डॉक्टर के यहां से ही सीधा कुंतल के पास आया हूं. चारों ओर से मुझे उन शब्दों की प्रतिध्वनियां सुनाई देती हैं—कुंतल अब चार-पांच महीने मुश्किल से. . .

डॉक्टर ने कहा है— इस रोग को तुम पहचानते नहीं. प्राणघातक होता है यह रोग!

★ ★

—तू इतना अधिक प्रसन्न है, कुंतल, क्या बात है?

—व्हाट ए सिली क्वेश्चन, बॉय! अरे, मैं खुश हूं, तो इसके लिए भी ऐसी वक्रोक्ति? ईर्ष्या होती है मेरी खुशी पर?

—नहीं, नहीं, यह बात नहीं. आई मीन. . . शब्दों से अर्थ चले जाते हैं. मेरी वाणी से किसीने चेतन चुरा लिया है. उसकी आंखों की स्फूर्तिभरी प्रसन्नता को मैं कैसे झेलूं?

(डाक्टर ने कहा है —प्राणघातक होता है यह रोग! प्रभु से प्रार्थना करने के सिवा दूसरी कोई गति नहीं. कोई उपाय नहीं.)

—सिली बॉय! तू इस तरह खोया-खोया क्यों लगता है? कुंतल मुझसे कह रहा है—व्हाट्ज द ब्लडी हॅल विद यू? किसीका डेथ-वारंट हाथ में ले कर घूमता है क्या? सुन, आज नीनी आने वाली है— माय स्वीटी! जानता है? आज तो मैं नीनी को खूब आइस्क्रीम खिलाने वाला हूं. मेरी बेटी नीनी को आइस्क्रीम बहुत भाती है और. . . कसम खा कर कहता हूं, दोस्त, नीनी जब आइस्क्रीम खा रही होती है, तब मुझे लगता है कि मैं उसकी आंखों में देखता ही रहूं, बस, देखता ही रहूं अपनी नीनी को. आई सिंपली लव दैट नॉटी गर्ल, आइस्क्रीम खाती है, तब कितनी स्वीट लगती है मेरी बेटी!

मैंने बड़ी भूल की है. डेथ, बी नॉट प्राउड'— मौत, अभिमान मत कर — किताब मेरे थैले में रह गयी है. और कुंतल का यह मूड देखते, वह मेरा थैला और संपूर्णता से मुझे नहीं टटोले, तो आश्चर्य की बात.

—मी लार्ड! अरे, तू चुप क्यों है? किंतु. . .औ...र मेरे सामने ऐसे टगर-टगर क्या देख रहा है? मेरे दोनों गालों पर फूट आयी सेव की-सी सुर्खी देखता है? वेल, तो फिर आनंदित हो!

—कुंतल यार, आज तो मजा आ गया!

(एक अभिनय की तैयारी में मैं शब्दोच्चारण कर रहा हूं.)

—कह दे, जिगरी! आज मजे के साथ मजा हो जाये! देख, अब नीनी को आना चाहिए. . . पांच ही मिनट में. आज वह लेट हुई, तो. . . किंतु हां, तू क्या कह रहा था?

मेरी जीभ लड़खड़ा रही है. शब्द, अभिनय, सभी. . .

(डॉक्टर ने कहा है— प्रभु से प्रार्थना करने के

सिवाय दूसरी कोई गति नहीं कोई उपाय नहीं! तुम्हें तो स्वीकारना ही होगा अस्तित्व [illegible] अंतिम वास्तविकता.)

मैं अपने आपको मना रहा हूं. कुंतल को छलने के सिवा अब दूसरा कोई उपाय नहीं. यू हैव टु, सिली! व्हिसल बजा—

मैं आनंदविभोर कुंतल को एक काल्पनिक बात कह रहा हूं. कुंतल हंसता है— मन भर, मुक्त.

(कुंतल, आज बड़ा मजा आया. तू उस विबुध को जानता है न? आज अचानक वह मिल गया. और . . . साले ने हमें मैरेज में नहीं बुलाया था, क्यों? उसकी छोटी-सी बिस्पेक्टेकल्ड वाइफ का परिचय उसने किस तरह दिया, बताऊं?)

मैं लड़खड़ा जाता हूं. मेरे चेहरे पर काली बदली-सी छा जाती है. कुंतल कितनी निर्दोष, जीवंत आंखों से मेरे सामने देख कर हंस रहा है.

—रुक क्यों गया, बॉय? मेरी फीकी हंसी को उसने पकड़ लिया है.

(डॉक्टर कहता है—तुम मैच्योर आदमी हो. तुम्हें जीवन के अंतिम वास्तविक सत्य को पचाना सीखना चाहिए. ध्यान रखना, तुम्हारे मित्र को फिलहाल किसी प्रकार का वहम न हो. अगरचे. . .)

—नीनी, माय स्वीट!

नीनी आ पहुंची है समय पर. मेरे निर्बल क्षण संभल जाते हैं.

कुंतल को इतना खुश मैंने कभी भी नहीं देखा. नीनी आइस्क्रीम खाती हुई बहुत धीरे-से मेरे कान में कह रही है— तुम . . . तुम क्यों सूख कर इस तरह कांटा हो गये हो? कुंतल की बीमारी तुम्हें आ गयी है क्या? ओह, आई ऐम सॉरी . . .

(मैं बोलना चाहता हूं—नीना, कुछ ऐसा हो जाये, तो कितना अच्छा!)

परंतु मैं हंसता हूं—फीका, म्लान. एक विषादयुक्त लाचारी के भार से मैं दबता जाता हूं.

(डेथ, बी नोट प्राउड' मेरे थैले में है? डैम इट. . . उस किताब के एक-एक पृष्ठ के शब्द तो मैं कुंतल के चेहरे पर पढ़ रहा हूं.)

कुंतल मुझसे कह रहा है—बॉय, देख, देख, नीनी कितनी सुंदर लगती है! मुझे जल्दी दूसरा कोई विशेषण बता. सुंदरतर. नीनी, नीनी, दूसरी प्लेट आइस्क्रीम. नीनी, तीसरी प्लेट. . . ओह सुंदरतम.

नीनी, कुंतल और आइस्क्रीम दोनों का एक साथ मजा लूट रही है.

कुंतल कहे जाता है — नीनी, तू युगों-युगों तक निरंतर आइस्क्रीम झपटा कर. आइ लव दैट. बस, तुझे देखा ही करूं. और नीनी, यदि तू कहे, तो मैं स्वयं आइस्क्रीम का मुलायम कॉन. . .

कुंतल मुझसे कह रहा है—यू सिली सीरियस, मुझे कैसी प्रोफाउंड उपमा सूझी है. . . जरा ब्रेवो तो कह दे, जिगरी!

कुंतल तेरा जवाब नहीं! सचमुच तेरी इस प्रसन्नता को मैं. . . क्या कहूं?

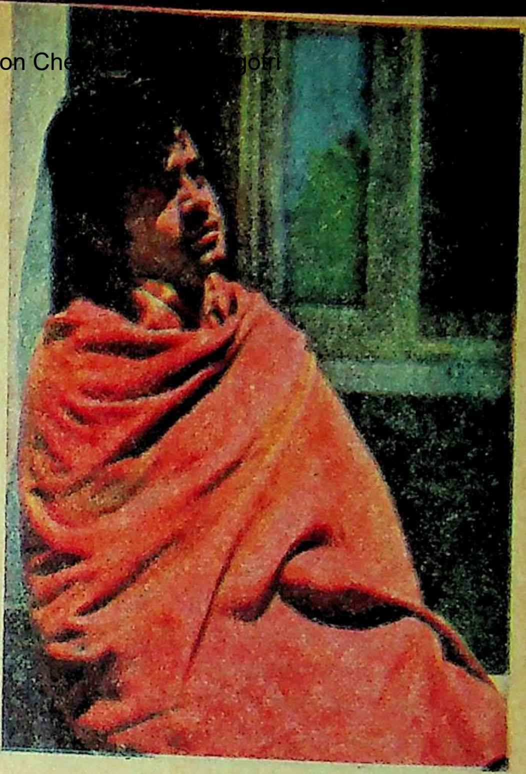

● भगवानदास स्थानी

(कोई उपाय नहीं, डॉक्टर? कुंतल को ट्रीटमेंट के लिए कहीं फॉरेन भेज दें, तो? प्लीज, मैंने तुम्हें एक से अधिक बार कहा है कि इस रोग को तुम जानते नहीं. असाध्य, आत्मघातक और सबसे अधिक धोखेबाज. किस क्षण यह पलटा खाये. . . प्लीज, प्रभु से प्रार्थना करो. हम प्रार्थना करें, मृत्यु. . . मृत्यु. . . मृत्यु.)

मैं बहाना बना चला आया हूं. कुंतल की प्रसन्नता मैं झेल नहीं सकता.

* *

—क्यों मूर्ख, कल भाग गया? मुझे चकमा दे कर?

—कुंतल, रियली मुझे. . . आई मीन. . .

—नीनी कल बहुत सुंदर लग रही थी न? तू जानता है, उसने प्रस्ताव भी उतना ही सुंदर रखा. कितना सुखी हूं मैं आज!

मेरे हृदय की धड़कन बढ़ जाती है.

—नहीं समझा. . .

—झूठ! तू इतना नहीं. परंतु उससे पहले तुझे मुझे एक भेंट देनी है.

बाहुक की तरह मैं कुंतल के सामने देखता रहता हूं.

—सिली बॉय, वचन दे! मैं उसे बचन देता हूं. (कुंतल ने मुझे हिप्नोटाइज किया है? पता नहीं.)

—मुझे एक सुंदर से भी सुंदरतर विशेषण की भेंट देगा? नीनी सुंदर तो है ही, पर उससे भी कुछ विशेष. . . नीनी ने कल मुझसे कहा— मेरेज करें, कहा—जल्दी.

(—ओह, नो! मैं मूर्ख की तरह. . . सचमुच ही मूर्ख की तरह ऐसा फुसफुसाया होऊंगा कुंतल ने शायद नहीं सुना.)

—नीनी ने मुझसे कहा—दो महीने बाद. . .माघ में ही.

कुंतल व्हिसल बजा देता है. फिर कहता है— बॉय, हाउ हैपी आई एम! नीनी को फिर मैं खूब आइस्क्रीम खिलाया करूंगा. एक प्लेट सुंदर दूसरी प्लेट सुंदरतर. . . परंतु मुझे दूसरा कोई सुंदरतर विशेषण. . . वचन का पालन करेगा न? या फिर मुझे ही स्वयं आइस्क्रीम. . .

सांस रोक मैं कुंतल को सुन रहा हूं. . . उसकी पागलपन भरी प्रसन्नता.

कुछ क्षणों के लिए वह मौन हो गया है. गंभीर और उदास? या यह मेरा भ्रम है? मैं उसकी आंखों के सामने देख रहा हूं. मैं पूछ बैठता हूं— हां, फिर? तूने क्या कहा?

—ओ. के. सिली बॉय! नीनी को ऐसी बात पर ओ. के. कहा जा सकता है क्या? कितनी निर्दोष, कितनी सुंदर नीनी.

—यानी?

मैं सांस रोक लेता हूं.

—सिली बॉय, मुझे ठगता है?

अचानक रोष और क्रोध से मैं उसे पूछ बैठता हूं —कुंतल, क्या बकवास करता है? तेरा एक भी शब्द मेरी समझ में नहीं आता!

—मुझे भी मेरा एक भी शब्द कहां समझ में आता है, दोस्त! मैं जानता हूं इस रोग को! □□□

(अनुवाद : जेठमल)

द्वारा श्री के. बी. कापड़िया, ३१-१६८९, खेर नगर,
बांद्रा (पूर्व), बंबई—५१

एक लघुकथा

गुरुकुल

● पुनत्तिल कुंजब्दुल्ला

गुरु महोदय ने बगल में उपस्थिति पंजिका और मन में भय लिये कक्षा में प्रवेश किया. अपनी पतली कमजोर टांगों को ज्यों ही उन्होंने स्टेज पर उठा कर रखा, त्यों ही गैलरी में हुड़दंग मच गया.

गधे हंस रहे थे. गुरुजी ने मन में सोचा, गधे तो हंसेंगे ही. और कर ही क्या सकते हैं बेचारे?

गुरुजी ने उपस्थिति पंजिका खोली और गर्दभों से विनती की—एटेंड योर रोल काल प्लीज. वन, टु, थ्री इन नंबरों से जाने जाने वाले गर्दभों ने रेंक दिया— यस सर, कक्षा में केवल साठ व्यक्ति हाजिर थे, लेकिन 'प्राक्सी' नामक महामंत्र के प्रभाव से बयासी लोगों की उपस्थिति अंकित की गयी.

गुरुजी ने रजिस्टर बंद किया और अध्यापन का उपक्रम करने लगे :

—आज मैं आप लोगों को प्राचीन भारत के गुरुकुल शिक्षण संप्रदाय की महत्ता के बारे में बताऊंगा.

—ओह! कम-से-कम इस टापिक से तो हमारी जान बचाइए सर. पीछे की बेंच से आवाज उठी.

—सर, अगर आपको हम से किसी तरह की दुश्मनी हो तो हमें पचास जूते मारिए, मगर खुदा की खातिर मेहरबानी करके गुरुकुल-टुरुकुल से हमारी जान मत लीजिएगा. किसीने समर्थन किया.

एक बहुत जोर का ठहाका उठा. पूरी कक्षा को कंपाने वाला अट्टहास.

गुरु महाशय कुछ लिखने के लिए श्यामपट की तरफ मुड़े. शिष्य गण ने सड़े टमाटरों और गले अंडों से गुरुजी की अर्चना की.

गुरुजी जल्दी निराश होने वाले नहीं थे. जब तक इस विषय के बारे में कक्षा में बोल नहीं लेते तब तक मन को शांति नहीं मिलने वाली थी. 'तक्षशिला का गुरुकुल-सम्प्रदाय' वाले प्रबंध पर आक्सफोर्ड के साहबों ने उन्हें पी.-एच. डी. की उपाधि प्रदान की थी.

मगर अफसोस! गुरुजी की उत्कट अभिलाषा कोरी आशा बन कर मन में रह गयी है. 'काश, मरने से पहले एक बार भी यदि इस महत्वपूर्ण विषय के बारे में अपने छात्रों को समझा पाता!' —गुरुजी के हृदय में यही एक फिक्र शेष रह गयी थी. उन्हें खाने में रुचि नहीं रही, नींद ने धोखा दिया.

बीमारी बढ़ गयी. 'यह बोरियतवाला मर भी नहीं जाता' —प्यारे शिष्यों को खीझ हुई.

गुरुजी ने दवा खायी, चारपाई की शरण ली और अंत में अस्पताल पहुंच गये.

पास पहुंची आखिरी घड़ी की प्रतीक्षा में गुरुजी एक-एक पल गिन रहे थे. अस्पताल में चारपाई के पास औंधी लटकी हुई बोतलों से खून की बूंदें टपक रही थीं.

आखिरी सांस लेते वक्त गुरुजी के मस्तिष्क में किसी पौराणिक कहानी की तसवीर मात्र अंकित रही जिसे उन्होंने तीसरी कक्षा में पढ़ा था. . . . गुरुजी शिष्य को सजा दे कर घर लौट आते हैं और बड़ी ग्लानि के साथ पत्नी से उस अवांछित घटना के बारे में कह रहे हैं. उसी वक्त वह शिष्य गुरुजी से बदला लेने के लिए हाथ में पत्थर लिए छत पर छिप कर बैठा हुआ था. तीसरी कक्षा की पाठमाला का वह दृश्य मरते वक्त गुरुजी के मस्तिष्क में अंकित रहा और उस शिष्य का चेहरा उनकी आंखों से ओझल नहीं हुआ.

गुरुदेव के चरम दिवस की शाम को कोई शिष्य अपने कमरे में नहीं गया. विद्यालय के निकट जितने क्लब और सिनेमाघर थे, जितनी चाय की दूकानें थीं, सभी जगह रात को दस बजे तक छात्रों का हो-हल्ला होता रहा क्योंकि आराध्य गुरुदेव की मृत्यु पर शोक मनाने के लिए विद्यायल में अगले दिन की छुट्टी घोषित की गयी थी. □□□

(रूपांतर : एन. सदाशिवन)

पुष्प का मूल्य

उस वर्ष कड़ाके की सर्दी पड़ी, पाला पड़ने से वन उपवन, पेड़-पौधे सभी सूख गये, हरियाली का कहीं नाम नहीं रह गया. ऐसे में मंदिरों में पूजा-अर्चना के लिए पुष्प कहां से आते?

किंतु यह क्या, सुदास माली के सरोवर में एक कमल खिल उठा, ऐसा विहंसता कमल कभी वसंत ऋतु में भी नहीं खिला था. सुदास के हर्ष का पारावार न रहा. अब उसे मनमांगा मूल्य पाने का अवसर मिल रहा था.

प्रातः होते ही माली ने कमल को तोड़ लिया और राजमहल को प्रस्थान किया. राजमहल के द्वार पर पहुंचकर उसने राजा को समाचार भिजवाया कि वह एक ऐसा पुष्प लाया है जो बेजोड़ और बहुमूल्य है.

इतने में ही एक आगंतुक उधर आ निकला, कमल पुष्प देखते ही वह उस पर मुग्ध हो गया, समीप आ कर माली से पूछा-- क्या यह पुष्प बिक्री के लिए है?

माली बोला -- मैं तो इसे महाराज के चरणों में अर्पित करने का इच्छुक हूं.

--किंतु मैं तो इसे महाराजाधिराज के श्रीचरणों में अर्पित करना चाहता है, आगंतुक ने कहा.

• विनोद दुबे

--मैं आपका अर्थ समझा नहीं.

--बात यह है कि भगवान तथागत की आज इस नगर पर कृपा हुई है. अपने पुष्प का मूल्य बताओ!

--मैं तो इसके बदले में एक माशा सुवर्ण पाने की आशा से निकला हूं.

--मुझे यह मूल्य स्वीकार्य है, आगंतुक उत्साह से बोला. सहसा वाद्यवृंद बज उठे, सभी ठिठक कर जहां के तहां खड़े हो गये. इतने में प्रसेनजित नंगे पैरों राजमहल से बाहर निकले, वे बुद्ध के दर्शनार्थ जा रहे थे.

सुदास के हाथ में कमल पुष्प देख कर वे बड़े आनंदित हुए. रुक कर पूछा– माली, इस पुष्प का क्या मूल्य लगाते हो?

--राजन्, पुष्प को तो मैं इन्हें बेंच रहा हूं.

--किस मूल्य पर?

--एक माशा सुवर्ण के बदले!

--मैं दस माशा देता हूं!

--तो मैं बीस माशा दूंगा, आगंतुक महाराज का अभिवादन करने के पश्चात बोला.

महाराज भौंचक्के रह गये. यह देखकर आगंतुक ने कहा--आज हम दोनों ही भगवान बुद्ध के दर्शन-हेतु जा रहे हैं, हम दोनों भक्त हैं, न राजा न प्रजा अतएव आप मेरी यह धृष्टता क्षमा करेंगे.

उदारमना महाराज के चेहरे पर मुसकान बिखर आयी-- सच कहते हो भक्तराज, किंतु यदि मैं बीस माशे सुवर्ण दूं तो. . .

--तो. . . मैं चालीस माशे दूंगा,

यह सुनते ही सुदास माली से न रहा गया, बोल पड़ा--महाराज, क्षमा कीजिए, भक्तश्रेष्ठ आप भी क्षमा कीजिए. अब यह पुष्प मैं किसी भी मूल्य पर बिक्री नहीं करूंगा.

नगर से बाहर निकल कर माली ने सोचा, जिन भगवान बुद्ध को उनके भक्त इतना मूल्य चुकाने को तैयार हैं,निश्चय ही वे अत्यंत धनवान होंगे. क्यों न मैं यह उनके हाथों बेंचकर मुंहमांगा मूल्य पाऊं?

भगवान बुद्ध को खोजते-खोजते माली वहां जा पहुंचा. जहां वटवृक्ष के नीचे वे पद्मासन में बैठे थे. अहा क्या रूप है! क्या तेज है इस तपस्वी में! और नयनों से तो करुणा टपक रही है. सुदास मंत्रमुग्ध हो एकटक उस परम तपस्वी को देखता रह गया. फिर जैसे होश आते ही वह आगे बढ़ा और उस कमल पुष्प को उसने उस परम तेजस्वी तपस्वी के चरणों में अर्पित कर दिया.

भगवान बुद्ध मुसकराये, बोल उठे– क्या चाहते हो, वत्स?

माली ने अवरुद्ध कंठ से कहा–भगवन्, मेरी और कोई मनोकामना नहीं. चाहिए तो बस आपके श्रीचरणों की एक कण. □□□

(रवींद्रनाथ ठाकुर की एक कथा पर आधारित)

अंधेरे की उम्र • रणजीतकुमार साहा

उसने जनार्दन का कॉलर खींच लिया. फिर घसीटते हुए टॉयलेट के दरवाजे तक ले गया. जनार्दन ट्रॉली की तरह सरकता हुआ वहां गया. फिर वापस मुड़ने लगा.

—जनार्दन! ठाकुर ने सख्ती से काम लिया. कितनी बार समझा चुका हूं, पहाड़ों पर हिल डिसेंट्री की आम शिकायत हो जाती है. डॉक्टर से तुम्हें मसालों और हैवी ड्रिंक्स से परहेज रखने को कहा था.

—तुम तो चाय-पान-सिगरेट और शराब, हर चीज से परहेज रखते हो, फिर भी तुम्हारा पेट अकसर खराब रहता है.. क्यों...हुं...? जनार्दन को एक हिचकी आयी और वह फिर आगे बढ़ने लगा.

ठाकुर पैबंद लगाता रहा.—नहीं जनार्दन, हर बात बढ़ने पर खराब हो जाती है. मैं तुम्हारी तरह मौजों में बह नहीं सकता.

—तो फिर यहां आये ही क्यों थे...? जनार्दन ने पीछे गरदन झटक कर अपना प्रश्न लुढ़काया.

मैं शीशे में अपनी रोनी सूरत देख रहा था. दो पेग के बाद आगे बढ़ना मेरे लिए डेंजर था. फिर भी मैं हाथ में तीसरा पेग लिये जिमखाना के डाइनिंग हॉल तक चला गया था. खाने में अब भी देर थी. मि. करापेट बीवी को एक जवान छोकरे के साथ नाचने की छूट दे कर अब तमाशा देख रहे थे. ऑरकेस्ट्रा 'सिलहूट्स' की कोई धुन दुहरा रहा था.

—अरे, जो चुल्लू भर पानी में डूब नहीं सकता, वह भला इस सागर में क्या डूबेगा! जनार्दन फिर बार में घुस गया. सामने छोटा-सा लॉन पार कर हम होटल के जीने से नीचे उतर आये. बिपिन दौड़ कर पहाड़ी के छोर तक चला गया. उसने जेब से एक शीशी निकाली, फिर तलछट पी कर शीशी को नीचे लुढ़का दिया. भीतर उसे सफोकेशन महसूस हो रहा था. पूरा हॉल ठसाठस भरा था.

मैं समझ रहा था, शाम घिरने के बाद मेरी बातों का मजा जाता रहा है, तब सब लोग अपने-अपने में सिमट जाते हैं. जो मेरे दायें-बायें चलने को, एक-दूसरे को ठेल साथ हो लेते हैं, वे भी मेरी ओर से बोलना बंद कर देते हैं. शाम छह बजे के बाद मैं जैसे अनाथ हो जाता हूं. सुबह सब कंबल फेंक कर कहेंगे— अच्छा करते हो प्यारे, यह चुड़ैल मुंह लगी, तो सर चढ़ जायेगी और मुंह पर कालिख पोते बिना जायेगी नहीं. आज ठाकुर ने मुझे खुद पेग बढ़ाते हुए कहा था— सोसायटी की बात है....

मंडल ने सिगार सुलगा लिया था. दो कश खींचने के बाद उसने फिर जनार्दन को अपनी बात में घसीटा. —बेटा पता लगाने गया है कि मिस बोस की आंखों में ज्यादा दम-खम है या आबे-जमजम में.

मैंने पूछा— उसके पापा अहमदाबाद की किसी टेक्टाइल मिल के चीफ डिजाइनर हैं न?

—क्या पापा को यहां ला कर पटक रहे हो! देखा कैसी कटपीस है! बिपिन मेरे पीछे आ कर खड़ा हो गया.

—कटपीस नहीं मिस्त्री, मास्टरपीस कहो... पीस ऑव द वैली! साली कह रही थी, पूना फिल्म इंस्टीट्यूट जायेगी. यह मंडल का स्कूप था.

हमें फिर डाइनिंग हॉल तक वापस आना पड़ा. डिशें तैयार थीं. एक ओर कई तरह के सूप और दूसरी तरफ हॉट और सॉफ्ट ड्रिंक्स सर्व हो रहे थे. बिरियानी, चिकन, सैंडविच, पेस्ट्री, सॉस, कोरमा, चपाती, दुनिया भर की सब्जियां, सालन और अंत में चीजपुडिंग और फ्रूट सलाद. जो निरामिष हो सकते थे, वे भी सामिष हो गये थे. और जो कुछ टेबलों पर सजा कर रखा गया था, उसे मैंने पहचाना नहीं. एक बिजनेस आर्गेनाइजेशन की जोनल मीटिंग और इतनी लंबी तैयारी, हंगामा और दिखावा...

* *

जनार्दन बार से और वजनी हो कर लौटा. बिपिन एक कोने में खिसक सिर्फ मुरगी की टांगें सूंत रहा था. मेरा पेट भी ठुंस-ठुंस कर पत्थर हो गया था. सबकी प्लेटों में हड्डियां बच गयी थीं. एक-एक कर सब खिसक भी गये. नीचे टॉवर तक आते-आते जनार्दन हाथ-पांव छितरा कर बिखरने लगा. उसके पांव एक-दूसरे से बगावत करने को उतारू थे. पता नहीं, किसने सीख दी— साले, फिर हराम की शराब पी गये... वह भी पूरा-का-पूरा पीपा! आदमी हो, या ट्रक!

आज की कॉकटेल पार्टी का पूरा खर्च जनार्दन ने दिया था. वह झुंझला उठा— साले; कंगाल...कमीने... देखी भी है तेरे बाप ने शराब! बेटे, फैंटा पीयो...कोला पीयो...बीबी का दूध पीयो...!

—या गधे का मूत...! मंडल ने मेरी तरफ ही मुड़ कर कहा.

ऐसा माहौल तैयार कर दिया गया, जैसे मैंने ही उस पर ढेला फेंका हो. मैंने तो इस बीच ठाकुर से इतना ही कहा था— दार्जिलिग खुद एक नशा है, यहां नशे-पानी की क्या जरूरत!

—आई...से... आई पिस ऑन योर वर्जिन दार्जिलिग! और साथ ही वह पटापट पैंट के बटन चटखाने लगा.

मैंने माफी मांग ली. मंडल और ठाकुर सिगार और

लाइटर में उलझे हुए थे. बिपिन बगन बेलिया की डाल के नीचे किसी अधेड़ बुढ़िया से अपाइंटमेंट ले रहा था. वह दिल्ली से आये एक्सपोर्ट कॉरपोरेशन के अफसर की बीवी थी. खाली में ही खड़ा था. रंजना रहती, तो इतने बोझिल समय और मनहूस सफर की घड़ियां कम होतीं. यहां हर एक के पास हजार-हजार रुपये का बैंक ड्राफ्ट है, ट्रेवलर्स चेक हैं. एक मेरा बटुआ है, पूरे हाफ पौंड का, लेकिन रुपये. . . सिर्फ एक सौ तेईस ही बचे हैं. रंजना के लिए एक पुलोवर खरीद खरीदते-खरीदते रुक गया. . . यह सीजन तो बीत ही गया है. . . आगे अगले साल कोट ही दिला दूंगा.

* *

वापस जाने की किसी को सूझ नहीं रही थी. आज सुबह कॉनफ्रेंस भी खत्म हो गयी. कंपनी के लोग भी कल सुबह तक निकल जायेंगे. मेरे मन में सब को छोड़ कर नीचे भाग जाने का विचार आया. होटल 'हिल व्यू' का सस्ता कमरा जैसा भी है, मेरी इज्जत बचाने में समर्थ है.

रात की कमसिनी अंधेरे सन्नाटे में मचल-मचल कर जवान हो रही थी. दूकानों और होटलों के दरवाजे बंद थे. रोशनी मद्धम हो गयी थी. चांद तो दीखता ही नहीं था. शुक्ल पक्ष की रातें थीं. शायद नीचे ही छूट गया हो. बैरे अपने-अपने घरों को जा रहे थे. सब जनार्दन बाबू को सलाम कर रहे थे. वह बैरा, जिसको पांच रुपये की टिप जनार्दन ने दी थी, घूम कर मेरे पास आया और फुसफुसा गया— बाबू बोत मूड में हैं. . . आप देखना.

ठाकुर को भी नीचे एक ऊंची टेकरी पर बनी कोठी तक जाना था, वेस्ट पॉइंट, स्टेशन से करीब डेढ़ किलोमीटर पश्चिम. लेकिन कमोबेश सब नशे की चट्टान से दबे थे. कोई उतावली नहीं थी. मेरा पेट जम गया था. पुडिंग बहुत खा लिया था. मुझे बिछावन पर जाने के पहले हल्का भी होना था. जनार्दन फाटक के किनारे ही मूतने लगा. धार सड़क के दूसरे किनारे तक बहने लगी. उसके जूते भी भीग गये होंगे.

—मूतने दो डोल्ट को! बिपिन आश्वस्त हुआ. कुछ नशा तो झड़ेगा!

जनार्दन अपने भारी और कीमती सूट में पुलिया ढूंढ़ कर बैठ गया. रात के साढ़े दस बज चुके थे. डिनर के पहले वह मिसेज करापेट को लिये पूरा कॉट पीने की तैयारी में था. पता नहीं, वह हर एक को यह क्यों बताने लगता है कि वह बहुत पीता है, या पी सकता है. कोई मुकाबला करना चाहे, तो कर ले. इसी लत के चलते वह हजारों रुपये फूंक चुका है.

केदार बाबू ने इसीलिए मुझे उसके साथ भेजा था. एक तरफ बुला कर कहा था— बेटा, जनार्दन की जिद तो तुम जानते हो. सोचता हूं, फर्म के क्रैडिट का सवाल है. हम कंपनी के पुराने डीलर ठहरे. ऐसी पार्टी में कुछ मैनेजर आते हैं, कुछ शेयर-होल्डर्स. उन्हें खिलाना-पिलाना पड़ता ही है. हजार-बारह सौ खर्च होंगे ही. जनार्दन क्या कुछ करता है, देखते रहना. मैं कहीं जाना नहीं चाहता, ये पीना-पिलाना और नहीं होता.

मैं चुप था. अजीब मुसीबत है, बाप बेटे पर जासूस रख छोड़ता है और बेटा बाप की सेंध मारने पर उतारू. —यार, बाप ठहरा खूसट! एक रुपये का बीस सेर दूध पी चुका है. यहां सौ-डेढ़ सौ की एक बोतल आती है. फिर कंपनी वालों से फायदा भी तो है. इस बुढ़ऊ के चलते बड़ी-बड़ी कंपनियों की एजेंसी छूट गयी. चार पैसे कमाने के लिए दो पैसे फेंकने ही पड़ते हैं!

केदार बाबू ने अलग से मुझे चालीस रुपये भी दिये थे.—कुछ पसंद आये, तो खरीद लेना. वहां जाते ही पत्र देना. आने के पहले भी तार कर देना. जनार्दन को घर-गिरस्ती से क्या लेना-देना!

और जनार्दन जेब में रुपये ठूंसे भटकता रहता था. मुट्ठियों में रुपये निकाल कर काउंटर पर पटक देता था. रुपये जमीन पर गिर पड़ते थे, तो 'डैम केयर' कह कर

● डी. रामचंद्र

वह उन्हें उड़ने देता था. पीता तो अरबी ऊंट की तरह ---क्या पता, कल शराब मिले, न मिले! कौन-सी ब्रांड मिले! और देसी शराब. . .एकदम वाहियात! साली गला दबोचना भर जानती है! न नशा, न मजा! और विदेशी गैलन-की-गैलन पीने को तैयार. बक्से में भर लेगा. उसकी तो यही एक हॉबी है--- कीमती-से-कीमती शराब की बोतलें इकट्ठी करना. उनके इतिहास, भूगोल और एहमियत में भटकना. उसका यही कन्विक्शन था कि वह बाप के मरने के बाद एक खूबसूरत साइकेडेलिक 'बार' खोलेगा. पर केदार बाबू नकार गये.---दवा की दूकान खोलना हो, तो खोल लो. बाप-बेटे में बोलचाल ही बंद हो गयी थी.

* *

जनार्दन ने कै करना शुरू कर दिया. दूर लैंपपोस्ट की फीकी रोशनी में कुछ दीख नहीं रहा था. पास टार्च भी नहीं थी. पानी लाने भी कहां जाता? ठाकुर, बिपिन, मंडल, सब-के-सब वैसे ही ठने रहे, जैसे वह कोई नयी बात न हो. तीन नेपाली लड़के खट-खट करते हुए हमारे पास आये. फिर चेहरा सूंघ कर चले गये, ठहाके मारते हुए. उनकी खिलखिलाहट दूर, देर तक गूंजती रही. यही कहा होगा--- कुत्ते की तरह रद्द कर रहा है! मुझमें जनार्दन के पास जाने का साहस नहीं था. चारों ओर एक अजीब-सी सड़ांध पैदा हो गयी थी.

सारा दार्जिलिंग नीले और ऊदे धुंधलके में लिपटा हुआ था. देवदार और झाऊ के पेड़ों के ऊपर कहीं-कहीं बत्तियां जल रही थीं. रात गहरी घाटी और ऊंची चोटियों के शिकंजे में कैद थी. बादल उसे छुड़ाने को जैसे मिन्नतें करते हुए भटक रहे थे. मैं दिन भर 'ब्यूटी फ्लैक्स' लिये फिरता रहा. ठाकुर भी कलर्ड पेस्टल्स और फ्लोब्रश लिये भटकता रहा. मैं कोई तस्वीर नहीं ले पाया और न वह कोई लैंडस्केप खींच सका. कैमरे के व्यू फाइंडर में कोई दृश्य समाता ही न था. इतना बड़ा कैनवस और अदना-सा फ्रेम! यहां शायद मूवी कैमरे की जरूरत है. सत्यजीत रे की 'कंचनजंगा' याद आती रही.

जनार्दन अलबत्ता अपने कैनन में चार-चार कलर्ड फिल्में बरबाद कर चुका था--- कुछ तो अपनी कॉन्फ्रेंस में और बाकी विदेशी लड़कियों के पीछे. कोई दिखी नहीं कि हमसे पीछा छुड़ा कर भागता. उसे बहला कर 'माल' तक ले आता. किसी किनारे टिका कर उसका पोज क्लिक कर लेता. अपनी जेब से अपना विजिटिंग कार्ड निकाल उसे देता. दांत निपोर कर उनका पता अपनी पर्सबुक में लेता. कभी-कभी दस या सौ रुपये के नोट पर उनके हाथों पता लिखा लेता. वे थैंक्यू कहती चली जातीं और जनार्दन हमारी तरफ लका कबूतर की तरह गरदन फुला कर फुदकने लगता. फिर उनके बारे में अश्लील लतीफे, गंदे फिकरे या भद्दे मजाक सुनाता. इतने में कोई सामने या पीछे दिख गयी, तो वही पुराना पैबंद--- साली की दूधिया टांग देखी. . . सिंदूरी एड़ियां देखीं. . . साली गुलाबी लक्स की टिकिया है. . . फिसली जा रही है! क्या ठाकुर, क्रॉस ब्रीड है न!

मैं उसकी इन शरारतों को देखता, तो मुझे यह सोच कर तकलीफ होती कि जिसकी बीवी इतनी खूबसूरत है, प्यारे बच्चे हैं, वह इस तरह की सड़क-छाप आशिकी पर क्यों उतर आता है! इन छह दिनों के बीच उसने कभी भी अपने घर के बारे में कुछ नहीं कहा. एक मैं ही था, हमेशा यही सोच कर भर उठता था कि काश, रंजना भी दार्जिलिंग देख लेती! दुबारा आना तो किसी चमत्कार से ही संभव है. तब तक रंजना भी संभवतः दो बच्चों को छोड़ कर यहां नहीं आना चाहेगी.

शाम को जला पहाड़ से शाम उतरी कि जनार्दन का उमर खैयामी मन गा उठता---चलो यारो, हैव सम रिलैक्स'. कहां चलोगे?. . . 'माउंट एवरेस्ट' का बार बहुत सॉफिस्टीकेटेड है, आर्केस्ट्रा भी है. नजदीक तो वैसे सेंट्रल भी है, पर कुछ कंजस्टेड है. और वह मुझे तीखी नजरों से घूरना शुरू कर देता.

* *

हम सब जनार्दन को अलग छोड़ देने को प्राय: तैयार थे. बात शुरू कौन करे! एक शहर के हैं. आखिर दोस्त भी ठहरे. रुपयों का भी लेन-देन होता है. हम एक-दूसरे की कमजोरियों से भी वाकिफ हैं. ठाकुर ने मतला अर्ज किया---इरशाद, हां, तो जनार्दन, बोटैनिकल गार्डन चलोगे?. . .

---वही पेड़-पौधों का जंगल. . . !

---पास ही जू भी है. . . तुम वहीं ठहर जइओ. . .

---यही कम है कि तुम जानवरों का मदारी हूं!

---माउंटेनियरिंग स्कूल. . .

---यार, फिर वही स्कूल-कॉलेज. . .!

---घूम मठ. . .

---लगता है, तुम सब यहां लामा बन कर झुनझुना बजाओगे!

---बतसियां मोड़. . . वहां किसी फिल्म की शूटिंग हो रही है.

---अरे भाई, फिल्म देख लेंगे. नटराज स्टूडियो में न जाने कितनी बार शूटिंग देख चुका हूं. बड़ी बोरिंग चीज है. पता लगाते हैं, शूटिंग में माल-वाल कितनी है, यूनिट ठहरा कहां है. वैसे हीरोइन को तो हीरो भाई लोग विंडमेयर में सुलाते हैं. और अगर कंट्रीमेड चाहिए, तो नीचे उतरना पड़ेगा--- पैदल. वह मंडल को खींच कर ले गया. हम समझ गये, जोखिम के हर काम में उसे मंडल की जरूरत होती है.

ठाकुर ने अंत में मकता अर्ज किया--- हम सब खूब मुंह-अंधेरे टाइगिर हिल जा रहे हैं. आउटिंग का मजा भी रहेगा. क्या ट्रिमेंडस सनराइज होता है. . .कंचन-जंगा. . . सनराइज में. . .

---आई पिस ऑन योर सनराइज. . .! जाओ सालो. . . जाओ मुझे छोड़ कर! सूरज देखो. . .

---हां, हां, तुम घुसे रहो चांद की मांद में. . .बुढ़िया की जांघ पर बोतल रख कर पीयो. . .! ठाकुर लगभग चीख उठा. शराब से गर्मी मिलती है, तो कहीं भी मिल जायेगी. अपना शहर अभी ठंडा नहीं हुआ. दर्जनों दूकानें हैं!

जनार्दन कुछ हलका पड़ा. वह पिघला —— नीचे बस्ती का मामला है. डर तो लगता ही है. अकेला ठहरा. तुममें से कोई चलता, तो कुछ रस्टिक एक्सपीरियेंस भी होता.

मंडल निर्विकार खड़ा रहा. जनार्दन जानता है, वह मेरा साथ तो देगा ही, हजार-दो हजार की शराब तो उसे पिला ही चुका हूं. मंडल ने इतना ही कहा—— दार्जिलिंग में किस चीज की कमी है. . .! नीचे बस्ती में क्या पड़ा है! दलाल यूं ही बकते हैं. वैसे नेपाली खुखरी अंतड़ी में उतरवाने का शौक हो, तो चलो, नीचे चलता हूं. . . लाश को ऊपर तक ढो कर लाने वाला एक साथी भी तो चाहिए!

जनार्दन मुसकराया. यह उसका आखिरी हथियार है.—खाक मिलता है यहां! देखो, अभी ओबेराय चलते हैं. . . हूं. . . . वहां से दलाल को लेंगे. . . फिर रिंक के पास वापस आयेंगे. या माल वहीं मंगवा लेते हैं. . . क्यों? . . . तो फिर, वी विल सेलिब्रेट अवर नाइट विद न्यू हिली फेसेज ऐंड फ्यू फैंटास्टिक बॉटल्स. यहां से परसों सुबह जीप लिये निकल जायेंगे. सुखिया ब्रिज पार कर नेपाल. . . वहां विराट नगर में कुछ शॉपिंग करेंगे, फिर वापस गलगलिया, फिर अपनी कार के लिए सिलीगुड़ी.

—विराट नगर का तो कोई प्रोग्राम नहीं था! मैंने जेब में हाथ डालते हुए कहा था.

——तुमको बीच में कहने के लिए किसी ने कहा भी? जनार्दन मुझ पर जैसे टूट पड़ा. लेकिन मेरे पहले बिपिन मिल गया.——यू नो, बिपिन, वह है तो छोटी-सी जगह, पर वहां कांकर्ड भी मिल सकता है. लेकिन मुझे कुछ बिस्किट्स चाहिए. . . आखिर इतना फूंक रहा हूं, कुछ तो राहत मिलेगी. फिर वह मुझसे निबटने लगा——और, तुम्हें क्या खरीदना था?

——यही एक फ्लैश गन और सस्ते में मिल जाये तो एक वाइड लैंस. . .मैंने कहा.

मंडल ने मुझे केहुनी मारी.——मुझे भी अपनी फियांसी के लिए व्योर टेरीन की दो जापानी साड़ियां लेनी हैं. लेकिन बहुत सारा पैसा ब्लू फिल्म स्लाइडों और पोर्नो प्लेजर बुक्स में चला गया.

जनार्दन मजबूत होता जा रहा था. तगड़ी आवाज में बोला—— यार, पैसे कमाना हो, तो निकल चलो. ठाकुर, तुम्हें भी तो रोलेक्स के अंटे चाहिए न. . . ?

बिपिन ने बीच में ही टोका—— आहिस्ता बको. . . . बहुत-से एजेंट. . .

——आई पिस ऑन योर एजेंसी! साले, दार्जिलिंग आये हो घड़ी-घंटा बजाने? कीर्तन करने? कमरे में ही घुसे रहते! हैव सम एडवेंचर्स!

ठाकुर थक चुका था. जनार्दन उसके कंधे पर प्यार से झुक गया.——क्या गुरू, एकदम ठंडे हो गये हो! घर-वाली याद आ गयी क्या? . . . लोडेड है न! चलो, तुम्हें एक शीशा दिखाऊं. साली शीशा है, शीशा, पारा चढ़ी! यूं उफनती है जैसे सोडा के साथ ब्रांडी. . . .! अपने होटल में ही बुला लेते हैं. . .

. . .मैंने रेलिंग पर झुक कर दूसरी तरफ ढेर-सा थूक दिया. बिरियानी के दाने पेट से उछल कर गले में चुभने लगे. आंखों में धुआं घुटने लगा. ठंड की सिरहन बढ़ती जा रही थी. सारी वादी गूंगी-बहरी पड़ी थी. सोचा था, पांचों जने मिल कर दार्जिलिंग जा रहे हैं. जनार्दन अपनी कॉन्फ्रेंस अटेंड करेगा. ठाकुर अपने भतीजे के दाखिले के लिए सेंट् पाल में कोशिश करेगा. मंडल अपने पूरे खानदान के लिए टोकरी भर ऊन खरीदेगा. बिपिन ठाकुर की फियेट ड्राइव कर कम-से-कम सिलीगुड़ी तक पहुंचा देगा. मैं जनार्दन की कुछ फाइलें देखूंगा और ढेर सारी बोतलों का हिसाब रखूंगा. कुछ और काम थे. उसका रिजर्वेशन, फर्म की रिपोर्ट, कुछ दूसरी स्कीमें, रजिस्ट्री और तार वगैरा. कॉकटेल पार्टी भी हो गयी. अब आखिरी काम यही था कि यहां से लोग शरीफों की तरह निकल जायें.

जनार्दन, घर में जरा-सी चूं-चां हुई, अपना ब्रीफ केस और चेकबुक उठाता है और एक पखवाड़े बाद ही वापस आता है. कुछ बिजनेस भी कर आता है और थोड़ी शॉपिंग भी. पंद्रह-बीस हजार रुपये इस तरह आसानी से फुंक जाते हैं.

बिपिन बहुमत का आदमी है. उसकी अपनी कोई राय नहीं. कोई भी कार हो, कैसी भी घांसू जीप हो—— किसी कंपनी या मॉडेल की, वह उसमें दो-चार बूंद पेट्रोल डाल फूंक मारेगा और हांक कर ले जायेगा. वह हमारे साथ सिर्फ एक छोटी-सी शर्त के चलते आया था—— गाड़ी में जितने का पेट्रोल जलेगा, उतने की ही फॉरेन लिकर मेरी अंतड़ी में भी ढलेगी. ठाकुर ने भी यही सोचा कि बारह सौ किलोमीटर की रनिंग में कार कहीं बेकार हुई, तो बिपिन उस्ताद ही रास आयेंगे. हम आये भी थे बड़े आराम से. बिपिन रात-रात भर ड्राइव करता रहा था.

* *

हम राजगीर तो पहुंच गये थे, पर आने की कोई गारंटी नहीं थी. जनार्दन बार-बार पांव पटक रहा था—— साली शराब भी खत्म हो गयी! हाथ में व्हिस्की की शीशी लिये वह तमतमाया—— क्या गैराज चलाते हो यार, न तुमसे बीवी चलती है, न कार! बिपिन ने मुसकरा भर दिया. शीशी पैंट की जेब में रखे वह मेरे पास आया—— चलते हो रोप वे तक? मैं डरते हुए साथ हो गया था. वहां दो बार, तीन बार और चौथी बार जब ट्रॉली पर चढ़ते हुए उसे अधिकारियों ने रोका, तो वह तन गया. मैं आगे की कुर्सी पर बैठ आगे निकल चुका था. बाप रे, ऊपर आसमान और नीचे पाताल! मैंने तो जीवन बीमा भी नहीं कराया था. एक जनार्दन था. सामने ही सूचना टंगी थी. 'शराब पी कर रोप वे पर जाना मना है.' लेकिन जनार्दन इसे क्यों मानने लगा! अधिकारी ने रोका, तो वह भुन गया. झटके से हाथ छुड़ा कर वह ट्रॉली पर सवार होने लगा. जेनेरेटर ऑफ कर दिया गया. जबरदस्ती उतारे जाने पर वह झल्ला

उठा और चीखने लगा.

मैं किसी तरह उसके पास साहस करके आया और समझाने लगा तो वह और चिल्लाने लगा--साला वह दो रुपल्ली का पंचर अफसर. . . अपने को चंगेज खां समझे बैठा है. . साले का ट्रांसफर न करवा दिया तो थूक के चाट लूंगा! अरे सालो, पीना मना है, तो दूकानें खोलने को परमिट क्यों देते हो!. . .ऐं. . .? और उसने शीशी को पक्के प्लेटफॉर्म पर पटक दिया.

बिपिन तब तक गाड़ी ठीक करता हुआ वहां तक आ पहुंचा था. डॉरमेटरी में ला कर हमने उसको खाट पर पटक दिया. सर पर जबरदस्ती पानी डाला. नींबू मंगवा कर चटाया. यूरिनल तक उसके साथ गये. शाम उतरने के बाद जनार्दन काबू में आया. उसे नींद के हवाले कर हम बर्मी, जापानी और विष्णु मंदिर देखने जा सके.

* *

अपने शहर 'शाम रॉक' में भी जनार्दन एक रात इसी तरह पसर गया था. उस रात मैं उसके घर पर ही दो नंबर के रजिस्टर पर खर्च का हिसाब लिख रहा था. केदार बाबू गाइडलाइन बता भर देते थे. जिद करके उन्होंने खाना खाने के लिए रसोईघर भेज दिया. थाली लिये जनार्दन की बीवी ही बैठी थी. मुझसे बहुत कतराती थी, फिर भी उस समय सामने बैठी रही. रो-रो कर बताती रही-- आप तो उनके साथ इतने साल रहे हैं, साथ पढ़े हैं, आप ही उन्हें समझाइए! रोज रात बाहर ही खा-पी आते हैं. मैं आसरे में बैठी रहती हूं. अब बच्चे बड़े हो रहे ह. . . जिस दिन थोड़ा भी होश रहा. . . आते ही साड़ी खींचने लगते हैं. . . मैं तो. . .

केदार बाबू बीच में ही आ टपके थे. अच्छा ही हुआ. क्या होगा दूसरों का दुख सुन कर! मैं किसे अपनी गाथा सुनाऊं? बच्चे के लिए दूध तक नहीं जुटा पाता. केदार बाबू न बड़ा प्यार दिखाया.--अरे, तुम्हारी यही खुराक है. . . ! हम लोग अपनी जवानी में. . . .

रात को 'शाम रॉक' से वहां के मैनेजर का फोन आया-- जनार्दन बाबू 'आउट' हैं. . . दूकान बंद करने का समय हो गया है. . . .कृपया इन्हें ले जाइए.

हम 'शाम रॉक' आये. जनार्दन कुर्सी के सहारे अड़-अकड़ गया था. रात का एक बज चुका था. उसके होंठ रह-रह कर फड़कते थे और हाथ हिलते थे. टाई और तस्मे की गांठ मैंने ढीली की. हमने किसी तरह उसे कैबिन से बाहर निकाला. केदार बाबू बहुत घबड़ा गये थे. उसकी उपस्थिति भांप कर जनार्दन और लिथड़ गया. केदार बाबू ने सर पर हाथ रख कर पुचकारा-- जना. . र. . . दन. . .

---आई से गेट आउट. . . लीव मी एलोन. . . लगा दो बाहर से ताला. . . मैं आज पी-पी कर . . . यहीं शहीद हो जाऊंगा. . . साला. . . लगा. . . ताला. . . . राम चलित्तर. . .

खैर, केदार बाबू उसे अपनी कार में किसी तरह लिटा-लिपटा कर घर लिवा लाये थे. फिर पत्नी ने आगे का काम संभाल लिया था. आते समय पोर्च के पास मैंने केदार बाबू से कहा-- देखिए बाबूजी, कैश जब तक जनार्दन के हाथ में रहेगी, तब तक उसे रोक पाना बहुत मुश्किल है. मैं यह दोहरी भूमिका नहीं निबाह सकता. आप मेरे शुभचिंतक हैं, आपकी सेवा में पिताजी ने सौंपा था, पर मैं रह नहीं पाऊंगा. उधर जनार्दन मेरे बचपन का साथी रहा है. . .

केदार बाबू ने मुझे संभाल लिया-- मैं चाहता हूं, तुम शिलांग चले जाओ. . . हमारे चाय बागान के हेड ऑफिस में. वहां कुछ लेबर प्रॉब्लम भी है. जी लगे, तो वहीं रह जाना.

--मैं अपनी पत्नी और बच्चे को कहां रखूंगा? मैंने छूटते ही कहा था. केदार बाबू चुप हो रहे थे.

दूसरे दिन हम फिर खाता लिये बैठे. लगभग सत्तर हजार रुपयों का गोलमाल निकला. 'शाम रॉक' से फोन पर पूछ कर पता लगाया, तो मालूम हुआ, जुलाई के तेईस दिनों में आठ सौ अड़सठ रुपये चौंतीस पैसे का बिल जनार्दन के नाम बकाया है. केदार बाबू ने इतना ही कहा-- घर का दूध नौकरों में बंटता है, बीवी दवाई पर चल रही है और बेटा जहर पी रहा है!

* *

हंगामा दूसरे दिन शाम को हुआ. केदार बाबू ने हिसाब मांगा. जनार्दन पहले से ही 'शो कॉज' तैयार किये था.-- कैश पर सब की नजर है. भैया इसीलिए फर्म छोड़ कर भाग गये. पांच-पांच बेटियां पैदा वे करें और मैं कश-काउंटर, गोदाम, वर्कशाप और बैंक, हर तरफ दौड़ता रहूं! चार-छह सौ की पीता हूं, तो सबको खलती है! कितना कुछ किया है, यह कोई नहीं देखता! यही देखते हैं कि कितने का पिया है. . .! दिन भर बाजार में सड़ता रहता हूं. . . . उसके मुंह से झाग निकलने लगे.

केदार बाबू ने यह कह कर मामला साफ किया-- हम भी यही चाहते हैं कि तुम नहीं सड़ो! जाओ, शराब के ड्रम में डूब जाओ. . .! और उससे चाबी का गुच्छा झपट लिया.

* *

ठाकुर ने उंगलियों से आंखों को मसल दिया, रुमाल निकाल कर आंखों की खुमारी को पोंछ फेंका. फिर बड़ी बेहूदगी से मुसकराया.-- चल बेटे, हिम्मत कर. . . तुम्हें उठाने के लिए या तो फिर जूता सुंघाना होगा या दारू से नहलाना होगा!

---साला बिना क्रेन के नहीं उठने वाला! मंडल का मशविरा था.

--उठता है कि यहीं से नीचे लुढ़का दूं. . . सीधे सिलीगुड़ी पहुंच जाओगे! ठाकुर ने तेवर बदला.

--मैं जानता था, यह साला बखेड़ा करने वाला आदमी है. आज ही नया सूट डाले आया था. क्या दुर्गत कर डाली है इसने. . .! न. . .अब तो बरदाश्त के बाहर हो गया! बिपिन ने सर झटक दिया.

मंडल जनार्दन के पीछे, पुलिया पर खड़ा हो गया.-- नाचो प्यारे. . . नंगा नाच नाचो. . .! मैं कुछ लड़कियां. . . न. . . न. . . लकड़ियां इकट्ठी करता हूं. . . आज यहीं कैंप फायर हो जाये. . .!

जनार्दन फिर सुगबुगाया. उसने अपना थोथना उठा कर मेरी तरफ बढ़ाना शुरू कर दिया. शराब, कै, पसीने और सेंट की मिली-जुली बदबू मेरे लिए असह्य थी. मैं जैसे टंग गया. वह आगे बढ़ा. फिर रुक गया.

क्लास का बैकबेंचर, जो थोड़े में ही झेंप जाता था, कैसे-कैसे एडवेंचर कर रहा था! प्राइवेट ट्यूटरों की पढ़ाई, सजेशंस, गेसेज और पैरवी की बदौलत वह खींचतान कर बी. कॉम कर गया. मामा के लड़के के साथ फिर सी. ए. करने कलकत्ता चला गया. शादी हो चुकी थी. बच्चे तो होते रहे, पर कोर्स पूरा न हो सका. कलकत्ते में ही सारी गंदी आदतें और गलीज हरकतें सीखता रहा. हां, अंग्रेजी और बंगला का थोड़ा ज्ञान हो गया. फुटपाथ लिटरेचर ने हौसला बढ़ा दिया और चौरंगी पर फुदकती एयर होस्टेसों ने विदेशी सेक्स-मैनरिज्म का पाठ सिखा दिया.

केदार बाबू मुझसे बहुत खुश थे, क्योंकि उन्हें मुझसे जनार्दन के एंगेजमेंट्स की सूचना मिलती रहती थी.

इधर जनार्दन थ्री एसेज, ब्लू बर्ड, नाइटिंगेल, अंबर या सागर में लंगर डालता और मैं केदार बाबू को उसका कैबिन नंबर तक बता आता था. मैथन, मयूराक्षी, चंदन, हनुमान या सुंदर डैम के गेस्टहाउसों और इंस्पेक्शन बंगलों में वह सोसाइटी और कॉल-गर्लों की कमर में बांहें गूंथता और मैं केदार बाबू को सारी डिटेल्स बता आता. अनुपमा बनर्जी को तो उसने बहुत कीमती उपहार दिये थे. 'एशिया '७२' में उसे लिये दिल्ली के अशोका और जनपथ में हफ्तों पड़ा रहा. सारी सामग्री जुटाने में मुझे जनार्दन का भी विश्वासपात्र बनना पड़ा था, हालांकि वह मुझे हमेशा मुलाजिम या अटेंडेंट की कैटेगरी में ही रखता.

* *

—चलिए, जनार्दन बाबू. . .! मैंने बड़े आग्रह से उसे उठाने की कोशिश की. घर पर किसी को इन सारी बातों का पता . . . चल. . .

—तो क्या होगा. . . ? साले. . .हरामखोर. . . ! मैं जानता हूं, तुम्हें किस बात की जल्दी पड़ी है. . .! मेरे बाप को सारी रिपोर्ट ही देनी है न. . . ? तो जाओ. . . गाड़ी पकड़ो. . . अभी. . . इसी वक्त. . . !

सब अवाक् थे. मेरा तो खाना तक हजम हो गया. दूसरों का नशा झड़ गया.

—और कहना, मैंने यहां ढाई हजार रुपये उड़ाये हैं . . .अभी और उड़ाऊंगा. . . कह देना, मैं कल शेफाली बोस के साथ. . . कलिम्पोंग जा रहा हूं. . . वहां से गंगटोक जाऊंगा. . . ! फिर उसने जल्दी-जल्दी अपनी तीन-चार जेबों को टटोला और अपना भारी पर्स मेरी तरफ फेंका —तुम्हारे होटल के सामने ही स्टेशन है. . . टिकट कटा लेना. . . !

□□□

हिंदी भवन, विश्वभारती,
शांतिनिकेतन (प. बं.)

दो लघुकथाएं

सर्वोत्तम जल

एक बहुत बड़े संत महात्मा थे. उनके कई शिष्य एवं अनुयायी थे. एक बार महात्मा ने शिष्यों से पूछा—सबसे उत्तम जल कौन-सा है?

पहले शिष्य ने जवाब दिया—गंगा जल.

महात्मा उत्तर से संतुष्ट नहीं हुए.

दूसरे ने जवाब दिया—भूमि पर गिरने से पहले का वर्षा जल.

तीसरे ने जवाब दिया—प्रभात में तरुपत्र पर चमकने वाला ओस जल.

चौथे ने कहा—बिछड़े हुए पुत्र से मिलने पर माता की आंखों से निकलने वाला अश्रुजल.

पांचवें ने कहा—आजीवन धोखाधड़ी करके संचित धन को देख कर मरणासन्न धनी के नेत्रों से निकलने वाला अनुताप जल.

छठवें ने कहा—सारा दिन परिश्रम करके आश्रित प्रियजनों के लिए आहार संग्रह करने वाले मजदूर का श्रम जल.

महात्मा छठवें शिष्य के दिये उत्तर से संतुष्ट हुए. उन्होंने कहा—किसी भी वस्तु या कार्य का सौंदर्य परहित में उपयोग होने से निखरता है. स्वयं के स्वार्थ वश किये जाने वाले श्रम जल का उतना महत्व नहीं है. परहित के कार्य से उत्पन्न श्रम जल में यही वास्तविक सौंदर्य झलकता है.

श्रम जल ही सर्वोत्तम है. □

(प्रस्तुतीकरण : सुरेश मलमकर)

मूंछ

● मनोज सोनकर

अपने कॉलेज में वह बहुत ही दबंग प्रोफेसर माने जाते हैं. उन्हें देख कर विद्यार्थियों को सांप सूंघ जाता है; यह उनका दस साल का अनुभव है.

इस साल जब वह प्रथम वर्ष कला की क्लास में गये, तब एक मरियल विद्यार्थी उठ कर खड़ा ही नहीं हुआ. पारा चढ़ गया.

—क्यों नहीं खड़े हुए? मूंछ पर ताव देते हुए कड़कती आवाज में उन्होंने पूछा.

—यह सिस्टम गलत है! उसने कमीज का आखिरी बटन खोलते हुए जवाब दिया.

घर आ कर उन्होंने आईना देखा.

—सोचता हूं मूंछ साफ कर दूं, पत्नी से उन्होंने गंभीर हो कर कहा.

—मैंने तो बहुत पहले ही कहा था! पत्नी मुसकरा कर बोली. □□□

राजा का मूल्य

• नारायण 'भारती'

सबेरा होते ही एक राजा ने अपने मंत्री को अपने पास बुलवाया, और पूछा--मंत्रीजी बताइए, मेरा मूल्य कितना है? मंत्री राजा के प्रश्न को सुनकर आश्चर्य में पड़ गया.

दिल की बात दिल में ही छिपाकर, बाहर से उसने कहा --मुझे एक सप्ताह का समय दीजिए.

--आपको आठ दिन की मोहलत दी जाती है. यदि आठवें दिन भी सवाल का ठीक-ठीक जवाब न मिला तो सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा.

मंत्री कितने ही बुजुर्गों से मिला, बुद्धिमानों से मिला परंतु किसी ने भी उसे ऐसा उत्तर नहीं बताया जो उसके दिल को कुछ सहारा देता.

उस नगर में एक लड़का रहता था. वह उबले हुए चने, मूंग और मटर बेच कर अपना तथा अपनी बूढ़ी मां का भरण-पोषण किया करता था. एक आदमी से उसने पूछ ही तो लिया,--भाई, क्या बात है,जो सब उलझे-उलझे हुए लग रहे हो?

उस आदमी ने जरा खफा होकर कहा--अरे कोहरी, तू क्यों इन बातों में टांग अड़ा रहा है? अगर नहीं मानता तो बता, राजा का मूल्य कितना है?

• विनोद दुबे

--बस, इतनी-सी बात! लड़का हंसते हुए बोला.

--तब क्या तू इस सवाल का जवाब दे सकेगा कि राजा का मूल्य कितना है?

--क्यों नहीं.

वह आदमी जो लड़के से मिला था, मंत्री के पास आया और उसे बतलाया कि एक लड़का है जो उसके सवाल का जवाब बड़ी आसानी से दे सकेगा. मंत्री बहुत प्रसन्न हुआ और उसने लड़के को तत्काल बुलवाने के लिए आदमी भेजा.

लड़का डोली में बैठकर राजा के पास आया. राजा ने लड़के से पूछा--बता, मेरा मूल्य कितना?

लड़का मुसकराकर बोला--राजन्, धीरज धरिए, मैं आपके प्रश्न का उत्तर अभी दिये देता हूं.

अब लड़के ने एक तराजू मंगवाई, उसने तराजू को ऊपर किया. दोनों पलड़े बराबर थे.

--राजन्, इन दोनों पलड़ों में से कोई नीचे झुका हुआ है क्या?

--नहीं, दोनों पलड़े बराबर हैं.

लड़के ने फिर एक पलड़े में सेर का वजन डाला. वह पलड़ा नीचे झुक गया और दूसरा खाली पलड़ा ऊपर उठ गया. लड़के ने फिर खाली पलड़े में भी सेर का वजन डाला. अब फिर दोनों पलड़े बराबर-बराबर हो गए.

--राजन, दोनों पलड़ों में से किस में ज्यादा वजन है? लड़के ने राजा से पूछा.

--दोनों पलड़े बराबर हैं क्योंकि दोनों में बराबर-बराबर वजन है, राजा ने उत्तर दिया.

लड़के ने फिर एक पलड़े में रत्ती-भर दाना डाला--अब बताइए किस में अधिक वजन है?

रत्ती-भर वजन पड़ने के कारण तराजू का दांया पलड़ा भारी होकर नीचे झुक गया था.

राजा ने उत्तर दिया--दायां पलड़ा भारी है.

--भला क्यों? लड़के ने पूछा.

--एक रत्ती-भर वजन पड़ने के कारण.

--हे राजन्, केवल एक रत्ती-भर वजन पड़ने के कारण तराजू का पलड़ा भारी हो गया है. वैसे दोनों पलड़े बराबर-बराबर हैं. इसी प्रकार सब मनुष्य एक हैं, समान हैं. जिस प्रकार हर पलड़े में सेर का वजन है, उसी प्रकार हर मनुष्य में प्राण हैं. जिस प्रकार एक पलड़ा केवल एक रत्ती-भर वजन के कारण भारी हो गया, उसी प्रकार आप भी भाग्य-रूपी एक रत्ती-भर वजन के कारण हम सब पर भारी हैं. वैसे आपका मूल्य एक रत्ती है, लड़के ने कहा.

लड़के का यह उत्तर सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ. लड़के को पांच सौ मोहरें इनाम दे कर उसे अपने पास मंत्री बनाकर रख लिया. □□□

(अनुवाद : आजिज जोबी)

गणिका-जीवन कुछ अपरिचित आयाम!

सारिका ने अपने नवंबर, '७३ तथा जनवरी, '७४ के अंकों में 'विश्व के प्राचीनतम व्यवसाय', वेश्यावृत्ति, के करीब चार हजार बरसों के इतिहास को कहानियों के माध्यम से रेखांकित किया था. विश्व का शायद ही कोई ऐसा साहित्यकार होगा, जिसने गणिका को अपनी किसी रचना का विषय न बनाया हो. नित्य नयी रचनाओं के माध्यम से उनके जीवन का कोई न कोई अपरिचित आयाम उजागर होता रहता है.

नवंबर, ७५ अंक में गणिका-जीवन के अपरिचित आयामों को उदघाटित करने वाली कहानियों और लघुकथाओं का विशिष्ट खंड रहेगा!

साथ ही —
कुछ प्रख्यात भारतीय लेखकों की कहानियां और स्थायी स्तंभ भी!

दिसंबर १९७५ अंक में 'गर्दिश के दिन' स्तंभ के अंतर्गत आप पढ़ेंगे — राजेंद्र यादव की आत्मरचना.

सारिका

नवंबर १९७५

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

इंतहा

• कृष्ण बलदेव वैद

अगर इतने दर्दों के बावजूद अनवरत कराहों के बावजूद तमाम अनिश्चितताओं के बावजूद इस कोहान के बावजूद इधर उधर उड़ सकता हूं बेकार-कह सकता हूं मांस और मिट्टी की महक में जिस्म के जलाल में मस्त हो सकता हूं उस आम आसुओं की दुनिया पर तिलमिला सकता हूं उसके लिए तड़प सकता हूं आसपास के अदृश्य के बारे में अंदाजे लगा सकता हूं उन अनुपस्थित ताकतों को अस्तित्व दे सकता हूं अगर मैं इस अजीब अजाब के बावजूद मिटा नहीं इसी अजाब के जरिये मायूसी और मस्ती ऊब और आनंद के अंतर को मिटाने पर तुला हुआ हूं अगर मैं वाकई किसी और के साथ या साये का मोहताज नहीं रहा अगर ये दर्द दरअसल किसी आम अभाव या भय के दिये हुए नहीं अगर इनसे निजात नहीं अगर मेरा अस्तित्व और एहसास इन्हीं पर निर्भर करता है और इनसे मेरा कोई काम या कष्ट कम या आसान नहीं होता अगर मैं इस अंत पर खड़ा हो कर भी कराहने और सोचने के सिवा कुछ नहीं कर सकता अगर मैं अब भी यहां भी इस नामालूम आलम में भी उस आम आंसुओं की दुनिया के दुखियारों की तरह अकुलाने कुरलाने पर मजबूर हूं या किया जा सकता हूं तो क्यों न मैं वापस वहीं उस दुनिया के आम लेकिन इतने ही अटल दर्दों के दरम्यान लौट उस दुनिया के दूसरे वाशिंदों की तरह अपने भूले बिखरे साथियों की तरह तिलमिलाऊं तड़पूं शिकायत करूं दवाएं खाऊं दुआएं मांगूं तो वहां से विरक्ति क्यों तो क्यों न ये दर्द भी वहीं ले जा सहूं वहीं किसी आबाद बहते चौराहे पर खड़ा हो चीखूं अगर मुझे अंधेरा ही अजीज है तो वहां के अंधेरे में आखिर क्या कमी है तो मैं क्यों इसी वक्त अपने पांव अपनी आंखें उखाड़ नहीं लेता अपनी कमर सीधी नहीं कर लेता हो सकता है कोहान यहीं गिर जाये साफ सवाल है कि इस सूने मकान से मुझे कौन सी कमजोरी या ताकत या जिद्द बांधे हुए है कि अगर ये दर्द लादवा हैं कि अगर मुझे दवा का इंतजार नहीं कि अगर मैं पूरी तरह से नाउम्मीद हो चुका हूं और मेरे अजाब में कोई कमी बेशी नहीं हो सकती या किसी कमीबेशी से मुझ पर या मेरी चेतना पर कोई असर नहीं पड़ सकता तो मैं इस अकारथ आहोजारी से आजाद क्यों नहीं हो जाता कर दिया जाता.

अगर जिस्म न होता तो यह जंजाल न होता तो कोई जंजाल न होता मालूम न होता मुझे मालूम न होता महसूस न होता मुझे महसूस न होता अगर जिस्म न होता तो मैं न होता क्योंकि जिस्म ही चेतना की जड़ है अगर चेतना न होती तो यह अजाब न होता महसूस न होता. मैं इस अजाब से तंग आ गया हूं. की नुमाइश से तंग आ गया हूं. मैं इस अजाब के नाम [illegible] आ गया हूं. मैं तलाश से तंग आ गया हूं. मैं तंग आ गया हूं. अगर मैं इस आजाब से इसकी नुमाइश से इसके नाम की तलाश से तलाश से तंग आ चुका होता अगर मैं तंग आ चुका होता तो मैंने कराहना बंद कर दिया होता तो मैंने अपनी कराहों की लय की परवाह छोड़ दी होती तो मैंने परवाह छोड़ दी होती. मैं इस अगर से तंग आ गया हूं. अगर मैं इस अजाब से इनकार कर दूं अगर मैं इस अजाब से इनकार करना छोड़ दूं अगर मैं इसके कारणों की तलाश छोड़ दूं तो क्या यह दूर हो जायेगा कम हो जायेगा ? मैं इस सवाल से तंग आ गया हूं मैं हर सवाल से तंग आ गया हूं मैं हर जवाब से तंग आ गया हूं मैं तंग आ गया हूं. अगर कोहान न होता तो इसका एहसास न होता अगर एहसास न होता तो यह कोहान न होता न होने के बराबर होता न होने से बेहतर होता न होता अगर अजाब न होता तो इसका एहसास न होता अगर एहसास न होता तो यह अजाब न होता न होने के बराबर होता न होने से बेहतर होता न होता. मैं इस अगर से तंग आ गया हूं इस कोहान से तंग आ गया हूं इस कोहान के कारणों से तंग आ गया हूं उन कारणों की तलाश से तंग आ गया हूं तलाश से तंग आ गया हूं कारणों से तंग आ गया हूं मैं तंग आ गया हूं. अगर मेरे तंग आ जाने से मुझे इस अजाब से निजात मिल सकती अगर इस अजाब से निजात मिल सकती अगर निजात मिल सकती तो मिल सकती तो मिल चुकी होती. मैं निजात की ख्वाहिश से तंग आ गया हूं ख्वाहिश से तंग आ गया हूं निजात से तंग आ गया हूं मैं तंग आ गया हूं. अगर मेरे इस अजाब के अलावा मेरे लिए कोई और हकीकत है तो वह नजर क्यों नहीं आती जाहिर क्यों नहीं होती. मैं हकीकत की तलाश से तंग आ गया हूं मैं इस आलम से तंग आ गया हूं से भी तंग आ गया हूं मैं सब कुछ से तंग आ गया हूं सब कुछ नहीं से तंग आ गया हूं मैं अपने अस्तित्व से तंग आ गया हूं उसकी संभावना से तंग आ गया हूं औरों से तंग आ गया हूं औरों की संभावना से तंग आ गया हूं मैं तंग आ गया हूं. अगर मेरे तंग आ जाने से मेरा अजाब और ज्यादा हो गया मैं इस अगर से तंग आ गया हूं मैं तंग आ गया हूं मैं इतना तंग आ गया हूं कि मुझसे और नहीं कहा जा सकता मैं अपनी आवाज से अपनी सोच की सांय सांय से तंग आ गया हूं मैं तंग आ गया हूं.

अधैर्य के दौरे पहले से ज्यादा और जोरदार हुए जा रहे हैं और हर दौरे के बाद जब वापस अपने विरक्ति-स्थल में लौटता हूं तो पहले से ज्यादा लड़खड़ाता हुआ. शायद यह अंत की ही अलामत हो अगर वह आ नहीं चुका तो अगर वह आ कर जा नहीं चुका तो. अगर अंत आ रहा है तो अधैर्य क्यों तो अधरंग क्यों नहीं? अगर अंत आ रहा है तो सब हरकतें बंद हो जानी चाहिए बंद होती महसूस होनी चाहिए. अंत से फौरन पहले का सन्नाटा अभी नहीं सनसनाया. मेरी यह तनःस्थिति अंत

के लिए अनुचित है लेकिन अब मुद्राएं बनाने या बदलने की मोहलत नहीं. अब एक आखिरी आलाप शुरू कर देना चाहिए. वह खत्म बेशक न हो सके उसे खत्म कोई और करता फिरेगा अगर करना चाहेगा तो अगर होगा तो. तो मैं अंत के लिए प्रस्तुत हो रहा हूं अंतिम आलाप के लिए उठ रहा हूं. इस अंतिम आलाप के बाद उठ जाऊंगा अगर फिर कहीं गुम न हो गया तो. अंत से पहले का आलाप बहते पानी की तरह पाक उड़ते परिंदे की तरह तरल उगते पौदे की तरह उग्र होना चाहिए आखिरी आलाप अलिफ की तरह सीधा होना चाहिए और नाबालिग हसीन सीने की तरह साफ ताकि अंत से उधर के आलम में अगर ऐसा कोई आलम है तो यह तसल्ली रहे कि मेरी आखिरी आवाज बेरोब थी कि मेरा अंत एक बेरोब आवाज पर हुआ था करीब-करीब बेरोब आवाज पर. तो क्या मैंने मान लिया है कि अब अंत आ रहा है? यह एक और अलामत है कि मैं अब इस आलम से उठ रहा हूं वरना यह हां इतनी बेहिचक न होती क्योंकि अब तक की मेरी कोई हां बेहिचक नहीं थी लेकिन इससे पहले मैंने हां की ही कहां थी होने ही कहां दी थी! अभी तक तो मैं न के नग्मे गाता रहा या शायद की शहनाई बजाता रहा. अभी तक मैं हां के काबिल ही कहां हुआ था! तो क्या मैंने मान लिया है कि अब मैं हां के काबिल हो गया हूं? हां. इस हां की हुंकार ठीक नहीं लेकिन इसे ठीक करने का समय या सब्र नहीं क्योंकि बाकी बचा सारा समय सारी लय आखिरी आलाप की. आखिरी आलाप से पहले कुछ पल खामोश रहूंगा खाली होने की सामने के सब कुछ नहीं को भी मिटाने की कोशिश करूंगा.

मैं एक इंतहा पर आ पहुंचा हूं. मैं अब एक इंतहा पर आ पहुंचा हूं. मैं इंतहा पर आ पहुंचा हूं. मैं आ पहुंचा हूं. मैं आखिर उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं जहां से पीछे का सब कुछ और सब कुछ नहीं आगे का सब कुछ और सब कुछ नहीं पराया नजर आता है इतना पराया नजर आता है कि महसूस हो मिथ्या है. मैं आखिरी उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं जहां से पीछे और आगे का सब कुछ और सब कुछ नहीं इतना पराया महसूस होता है कि नजर आये मिथ्या है. मैं आखिर उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं जहां कुछ महसूस नहीं होता जहां कुछ नजर नहीं आता जहां जो महसूस होता है न होने के बराबर जहां जो नजर आता है न होने के बराबर जहां जो महसूस होता है नजर नहीं आता जहां जो नजर आता है महसूस नहीं होता. मैं एक इंतहा पर आ पहुंचा हूं. मैं आखिर उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं जहां से सिर्फ अंत का इंतजार जरूरी नहीं रहता कोई इंतजार जरूरी नहीं रहता इंतजार नहीं रहता कुछ जरूरी नहीं रहता कुछ नहीं रहता जहां पहुंच जाने पर जो पहले जरूरी हुआ करता था जहर नजर आता है जहां पहुंच जाने पर कुछ नजर नहीं आता. मैं अब उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं जिसके बाद कोई इंतहा नजर नहीं आती जिस के बाद की इंतहा नजर नहीं आती जिसके बाद कुछ नजर नहीं आता कुछ महसूस नहीं होता कुछ जरूरी नहीं रहता कुछ गैरजरूरी नहीं रहता. मैं अब उस आखिरी इंतहा पर आ पहुंचा हूं जो आखिरी हो या न हो आखिरी नजर आती है जो नजर नहीं आती जो महसूस होती है जो महसूस नहीं होती. मैं आखिर उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं जिसके बाद का अंत साफ नजर आता है इतना साफ नजर आता है कि नजर नहीं आता. मैं आखिर इंतहा पर आ पहुंचा हूं जिस के बाद मुझे मौन

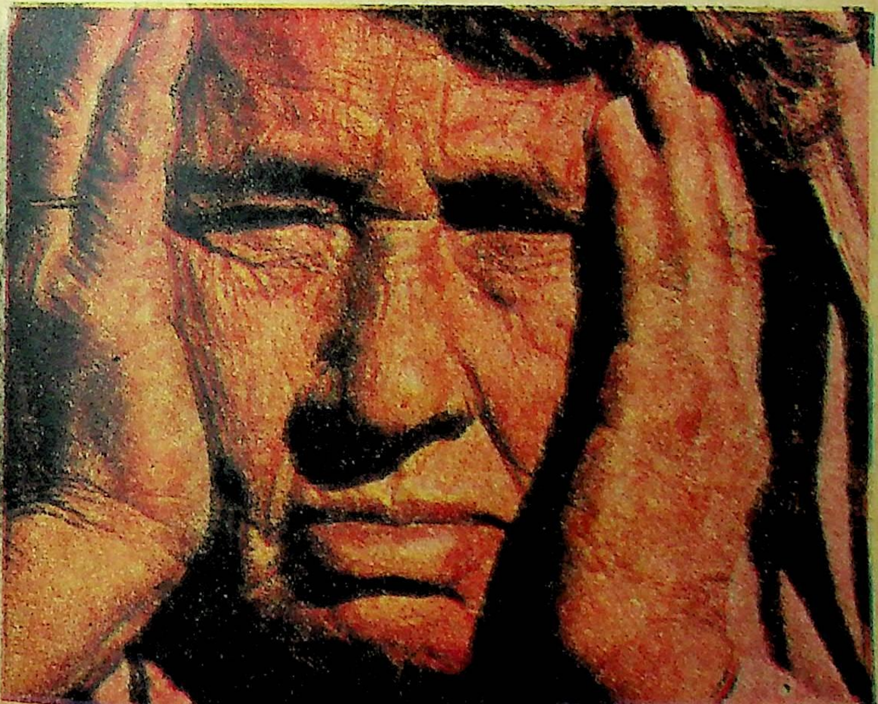

• पी. एन. अरोरा

हो जाना चाहिए जिसके बाद मैं मौन हुए बगैर नहीं रह सकता जिसके बाद मैं नहीं रह सकता जिसके बाद का मौन मुझे मंजूर होना चाहिए जिसके बाद मेरी मंजूरी मिथ्या है जिसके बाद मैं और मुझ की बात बेहूदा है जिसके बाद बात बेहूदा है जिसके बाद का मौन बेहूदा है जिसके बाद मौन बेहूदा है. मैं उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं जिसके बाद देखने सोचने दुखने बोलने कहने गाने कराहने की मोहलत मर जाती है जिसके बाद की अमरता औरों के लिए हो तो हो खुद उसके लिए नहीं होती जो उस इंतहा से उधर जा पहुंचा हो जिसके बाद अमर सिर्फ मुहावरे में या किसी वहम या विश्वास के कंधे पर सवार हो कर ही हुआ जा सकता है. मैं उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं जहां दर्द की दर्दलादवा की कमंद नहीं पहुंचती जहां पहुंच जाने पर सदा जंजाल झड़ जाते हैं क्योंकि जिस्म जड़ होता है. अगर मैं उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं तो सवाल यह है तो कोई सवाल नहीं होना चाहिए लेकिन कई सवाल हैं और सब एक साथ उठ रहे हैं जैसे जानते हों कि मैं उस इंतहा पर हूं जिसके बाद उनका सामना करने का समय उन्हें बिठाने की कोशिश करने का समय नहीं रहता न होने के बराबर रह जाता है जिसके बाद समय का हिसाब बेमानी है जिसके बाद सब कुछ बेमानी है जिसके बाद पहले का सब कुछ बेमानी नजर आता है जिसके बाद कुछ नजर नहीं आता. मैं इस इंतहा पर पहुंचा हूं मैं किसी इंतहा पर नहीं पहुंचा मैं कहीं नहीं पहुंचा मैं सिर्फ समाप्त हो रहा हूं मैं समाप्त हो रहा हूं मैं इंतहा पर नहीं अंत पर हूं अंत पर नहीं उसके आसपास आसपास उड़ रहा हूं क्योंकि अगर ऐन अंत पर होता तो कोई आवाज न होती तो यह आलाप न होता. मैं समाप्त हो रहा हूं अभी हुआ नहीं वरना हो रहा होता. समाप्ति के बाद की सियाही की तसवीर असंभव है लेकिन जरूरी नहीं कि समाप्ति के बाद सिर्फ सियाही ही हो क्योंकि करोड़ों कीड़े इस उम्मीद पर मरते हैं कि समाप्ति के बाद बेहदोहिसाब उजाला होगा या इस पर कि समाप्ति के बाद वे फिर खाल बदल कर चीखते चिल्लाते किसी न किसी जानवर की सूरत और सीमाएं लिये फिर यहीं कहीं लौट आयेंगे और यही सारे जंजाल फिर भोगने लगेंगे.मुझे ऐसी किसी उम्मीद का सहारा नहीं मुझे किसी उम्मीद का सहारा नहीं मुझे कोई सहारा नहीं मैं सिर्फ समाप्त हो रहा हूं मुझे यह यकीन भी नहीं कि यह समाप्ति अंतिम है या नहीं कि यह समाप्ति सही है या नहीं कि यह समाप्ति है कि इसके साथ ही मेरा सब कुछ मेरा सब कुछ नहीं समाप्त हो जायेगा मुझे कोई यकीन नहीं मुझे यकीन हो न हो मैं समाप्त हो रहा हूं. मुझे कोई उम्मीद हो न हो मैं समाप्त हो रहा हूं. अगर मुझे उम्मीद नहीं यकीन नहीं तो यह दावा क्यों कि मैं समाप्त हो रहा हूं कि मैं उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं कि मैं किसी इंतहा पर आ पहुंचा हूं लेकिन यह दावा नहीं यह सिर्फ संभावना है लेकिन अगर यह सिर्फ संभावना है तो अभी तक का सारा आलाप क्या बेसार और बेसुरा नहीं हो जाता? मैं नहीं जानता न ही जानना चाहता हूं मैं अपनी समाप्ति की संभावना को इधर उधर उड़ने नहीं देना चाहता मैं सिर्फ उसका जाप किये जाना चाहता हूं जब तक समाप्त नहीं हो जाता. अगर मुझे कोई यकीन नहीं तो यह जाप क्यों तो यह आलाप क्यों? मैं इस आलाप को इस जाप को कोई जंजीर नहीं पहनाना चाहता लेकिन कई पुरानी पहचानी जंजीरें इसकी तरफ उड़ी आ रही हैं जिनकी झंकार में वे सब शोर शामिल हैं जिनसे मैं बराबर भागता आया हूं जिन्हें मैंने साफ कर संगीत में बदलना चाहा है जिनसे जान छुड़ा कर या जिन्हें अपनी जान दे कर मैंने इस आलम में आ पनाह ली थी. अब उन जंजीरों में वह पुरानी मजबूती नहीं होगी अब उस झंकार में वह गंदी गूंज नहीं होगी क्योंकि मैं समाप्त हो रहा हूं अगर मैं समाप्त हो रहा हूं तो. अगर मैं समाप्त हो रहा हूं तो समाप्त होने से पहले से फौरन पहले मैं कम-अज-कम मुझे इन सारे जालों को इन तमाम मिलि-लियों का इस सारे कीचड़ को पश्चातापों के इन पहाड़ों को इस सारी राख को सोच की काली सुरंगों को लज्जा और हसरतों की सारी दलदल को यहीं झटक देना चाहिए अगर मैं समाप्त हो रहा हूं तो मेरे चाहने न चाहने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा तो यह सब कुछ अपने आप छूट जायेगा. मैं चाहता हूं कि साफ साफ सोच सकूं कि इस संभावित समाप्ति का इस क्षण मुझ पर क्या असर हो रहा है हालांकि यह ख्वाहिश गैरजरूरी है इस बात का सबूत है कि मैं अभी उस इंतहा से इधर हूं जिस तक किसी भी ख्वाहिश की खाक नहीं पहुंचती जहां सदा सोचें लुप्त हो जाती हैं लेकिन इस बात को सबूत की जरूरत नहीं अगर मैं समाप्त हो रहा हूं तो मेरी नजर आगे होनी चाहिए तो मेरी नजर कहीं नहीं होनी चाहिए तो मेरी नजर नहीं होनी चाहिए. अगर मैं शुरू से ही समाप्त हो रहा हूं और मुझे मालूम है कि मैं शुरू से ही समाप्त हो रहा हूं इस अगर की यहां कोई गुंजाइश नहीं क्योंकि मैं शुरू से या करीब करीब शुरू से ही जानता आया हूं कि मैं शुरू से ही समाप्त हो रहा हूं. अगर मुझे मालूम था कि समाप्ति ही मेरी नियति थी तो मैं बेहिसाब हो कर क्यों न बीत सका तो मैं इस सूनी सड़क के सहारे कुबड़ा खड़ा क्यों तड़पता रहा क्यों तड़प रहा हूं तो मैंने आत्महत्या क्यों न कर ली तो मैं आत्महत्या क्यों नहीं कर लेता? अब इन आखिरी क्षणों में मैं कुछ नहीं कर सकता मुझे कुछ नहीं करना चाहिए हालांकि कोई सबूत नहीं कि ये क्षण आखिरी हैं कि ये क्षण हैं. और मैं समझ बैठा था कि मैं उस इंतहा पर आ पहुंचा हूं जहां सब पश्चात्तापों का अंत हो जाता है. मुझे यह गम नहीं कि मैं समाप्त हो रहा हूं मुझे कोई गम नहीं काश कि मुझे कोई गम न होता मुझे यही गम है कि मेरा यह आखिरी आलाप भी आलाइशों से पाक नहीं मुझे कोई यकीन नहीं कि यह आलाप आखिरी है कि यह कभी भी आलाइशों से पाक हो सकेगा मुझे कोई यकीन नहीं कि यह आलाप है कि वह यह भी महज एक प्रलाप नहीं मुझे कोई यकीन नहीं. अगर मैं समाप्त हो रहा हूं तो मुझे यकीन हो या न हो मैं समाप्त हो जाऊंगा अगर मैं समाप्त हो रहा हूं तो मैं समाप्त हो जाऊंगा तो इतनी तिलमिलाहट क्यों? शायद मैं समाप्त नहीं होना चाहता शायद

मुझे शक है कि मैं समाप्त हो नहीं रहा दिया जा रहा हूं कि मैं इस आलम से अलग नहीं होना चाहता कि समाप्ति के बाद भी एक आलम है कि वह भी इसी का सा होगा कि वहां भी मुझे यही तमाम दर्द होंगे कि वहां भी मैं किसी सूनी सड़क के सहारे कुबड़ा खड़ा यही सोचता रहूंगा मैं हूं या नहीं और है या नहीं मैं समाप्त हो रहा हूं या नहीं मैं समाप्त होना चाहता हूं या नहीं अगर मैं समाप्त हो रहा हूं तो यह तिलमिलाहट क्यों अगर मैं समाप्त नहीं हो रहा तो यह तिलमिलाहट क्यों. शायद मुझे कोई शक नहीं लेकिन मैं शक का दोशाला ओढ़े बगैर हकीकत पर किसी भी हकीकत पर इंतहा पर किसी भी इंतहा पर हुकूमत नहीं कर सकता. शायद मुझे यह शक भी है कि अभी तक का सारा सहा कराहा काफी नहीं. अगर मैं किसी इंतहा पर आ पहुंचा होता अगर यह आलाप आखिरी होता तो मुझे इतने शक न होते लेकिन यह भी अकाट्य नहीं क्योंकि शायद शक से बाकी बचे समय को सहने में आसानी हो. अगर आसान और मुश्किल का फर्क नहीं मिटा तो मैं वहीं हूं जहां था तो मैं इंतहा के आसपास नहीं तो मैं एक इंच आगे नहीं बढ़ा तो मेरी तपस्या अकारथ रही अगर इस तड़प को तपस्या का दर्जा दिया जा सकता है तो. इस इलहाम को पहले उतरना चाहिए था यह इलहाम नहीं यह पहले उतर चुका है अगर यह पहले उतरा होता तो भी बीतने की विपता से रिहाई न मिली होती. बीतना विपता नहीं बीतना ही बुनियादी विपता है बुनियादी विपताओं से रिहाई नहीं कोई रिहाई नहीं. यह सोच फटी पुरानी है सब सोचें फटी पुरानी हैं. सोच से परे सोच के परों पर नहीं उड़ा जा सकता. शायद मुझे यही दर्द हो. यह नहीं यह भी.

इन आखिरी क्षणों की खीज को आलाप की लय देने की कोशिश बेकार है. इन आखिरी क्षणों को भी उन्ही सवालों उन्ही शुबहों उन्ही जवाबों उन्हीं शिकायतों उन्ही अंदाजों की नजर करूंगा जिनमें मैंने अबा तक की जिंदगी गुजारी है अगर वह जिंदगी थी तो अगर उसे मैंने गुजारा था तो. कोई सबूत नहीं कि ये क्षण आखिरी हैं कि ये गुजर रहे हैं कि मैं इन्हें गुजार रहा हूं कि ये गुजर जायेंगे. इस मुकाम या इंतहा पर सबूत की मांग नहीं उठनी चाहिए इंतहा पर सबूत की मांग नहीं उठनी चाहिए. कोई सबूत नहीं कि यह कोई नया मुकाम या नयी. इंतहा है. मैं फिर बिखर रहा हूं. अगर सबूत की तलाश छूट गयी होती अगर तलाश की तमन्ना टूट गयी होती अगर तमन्ना टूट गयी होती तो यहां क्यों कुबड़ा खड़ा होता? अगर सबूत मुझे मिल गये होते या उनकी जरूरत के एहसास का अंत हो गया होता तो यहां कुबड़ा क्यों खड़ा होता? कोई सबूत नहीं कि सबूत मुझे नहीं मिले कि सबूत की तलाश कि तलाश की तमन्ना कि तमन्ना नहीं छूटी. कोई सबूत नहीं. सबूत कोई नहीं. कोई सबूत नहीं कि कोई सबूत नहीं. अगर मैंने सिर्फ अपनी आंखों पर एतबार किया होता लेकिन कोई सबूत नहीं कि मैंने अपनी आंखों पर एतबार नहीं किया अगर मैंने अपने अस्तित्व पर अविश्वास न किया होता औरों के अस्तित्व को अपने लिए अप्रासंगिक मान लिया होता लेकिन कोई सबूत नहीं कि मैंने अपने अस्तित्व पर अविश्वास किया कि मैंने औरों के अस्तित्व को अपने लिए अप्रासंगिक नहीं माना अगर मैंने उस आम आंसुओं की दुनिया को न त्यागा होता अगर मैंने इस सूनी सड़क का सहारा न लिया होता लेकिन कोई सबूत नहीं कि मैंने उस आम आसुंओं की दुनिया को त्यागा था कि मैंने इस सूनी सड़क का सहारा लिया था. कोई सबूत नहीं. अगर कोई सबूत नहीं तो मैं क्यों किसी कुत्ते का मुंह बना बार बार अपनी इस खारिशजदा खाल को ही खा खुजला रहा हूं लेकिन कोई सबूत नहीं कि मेरी खाल है कि वह खारिशजदा है कि मैं उसे ही खा खुजला रहा हूं कि वह मुझे नहीं खा खुजला रही. अगर मान लूं कि किसी भी मान्यता का कोई सबूत नहीं कि किसी भी सबूत में कोई सबूत नहीं कि किसी भी सबूत में कोई स्थायित्व नहीं अगर मान लूं कि सब दर्द मिथ्या हैं कि इस आलम में आ जाने के बाद मैंने जो जो जिरह की है पैंतरे बदले हैं संभावनाएं सहलायी हैं वे सब बेहूदा हैं अगर मान लूं कि शुरू से ही मैं एक भुरभुरी दीवार उभार रहा हूं कि किसी भी जर्रे की किसी भी हरकत पर मेरा कोई इख्तियार नहीं लेकिन यह गरदान पहले कर चुका हूं कई बार कर चुका हूं इस गरदान को दोहराने से कुछ हासिल नहीं होगा. अगर अशांति में इजाफा ही कर सकता है उसी तरह जिस तरह शायद क्या काश या लेकिन या हालांकि. सब शब्द अशांति में इजाफा करते हैं लेकिन उनकी बढ़ायी हुई अशांति गलत किस्म की दी हुई अशांति से कहीं बेहतर. फिर मुंह फाड़ कर बोल रहा हूं. शायद कोहान या उसके अहसास ने ही मुझे यह मुरशिदाना अंदाज दे दिया हो या शायद मेरे इन अगनिनत दर्दों ने लेकिन कोई सबूत नहीं कि यह अंदाज मुरशिदाना है कि ये दर्द अनगिनत हैं कि मैंने इनसे कुछ भी हासिल किया है. लय की लड़खड़ाहट संभाली नहीं जा रही. इसे अंत की अलामत समझ बैठना शायद ही ठीक हो. मैं नहीं चाहता कि मेरा अंत किसी अधूरी शांति पर हो. मेरे चीखने या चाहने का इस इंतहा पर कोई मतलब नहीं रह जाना चाहिए

कृष्ण बलदेव वैद :

हिंदी के कथा साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनानेवालों में से एक हैं. हिंदी तथा अंग्रेजी में समान रूप से लिखते हैं. प्रस्तुत रचना उनके प्रकाश्य उपन्यास 'दर्द लादवा' का एक अंश है.

नहीं रहा किसी इंतहा पर कोई मतलब नहीं था मेरे चीखने या चाहने का कोई मतलब नहीं कोई मतलब नहीं था. मैं उन्हीं ईमानलेवा उक्तियों को फिर उगल रहा हूं जिनसे सोचा था रिहाई मिल चुकी है जिनमें कोई रस नहीं जो गूंगी राल की तरह बेजायका हैं. अगर मैं इन आखिरी क्षणों में अगर ये क्षण आखिरी हैं तो अगर ये क्षण आखिरी नहीं भी तो उस मरे हुए ईश्वर को ही याद का ही जाप कर सकूं तो शायद मेरा शून्य मुझ पर राजी हो जाये क्योंकि मरा हुआ ईश्वर मरते हुए न मर सकते हुए इनसान से तो ऊपर ही होगा. मुझे नहीं मालूम था कि इस आलम से इजाजत लेने में इतनी देर लग जायेगी कि मुझमें अभी इतना दम है कि बार-बार वही बासी विचार फिर उठते उबलते रहेंगे जिनमें मैं समझ बैठा था कोई जान नहीं. मुझे कुछ भी मालूम नहीं था अगर होता तो भी शायद यकीनन कोई फर्क न पड़ता. मुझे लगता है कि मैं अभी और इसी तरह तड़पंगा कि तड़प की कोई इंतहा नहीं कि कोई इंतहा नहीं कि इंतहा नहीं लेकिन मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि इस तड़प में और अदा तक की तड़प में अगर कोई अंतर है तो यही कि अदा दूसरों के अस्तित्व के बारे में अदाज लगाने की मजबूरी नहीं रही कि तड़पने के लिए अदा अपना अस्तित्व या उसका अभाव ही काफी महसूस होने लगा है लेकिन मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैं कुबड़ा नहीं कि मैं किसी सूनी सड़क के सहारे एक आम अधूरे पेड़-सा खड़ा कराह नहीं रहा कि मुझे कोई दर्द नहीं कि मैं किसी आम आंसुओं की दुनिया से ऊपर उठ कर या नीचे उतर कर इस आलम में नहीं आया कि यह आलम नहीं लेकिन मुझे लगता है कि यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैंने सिर्फ समय बिताने और आत्महत्या से परहेज किये जाने के लिए ही शब्दों का यह शून्यकक्ष बनाया है जिसके अंदर कुछ नहीं कोई अर्थ नहीं कोई ऐसी आवाज नहीं कोई ऐसी खामोशी नहीं जिस पर यह गुमान हो कि वह सही है कि वही सही है लेकिन मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैं वहीं हूं जहां था कि मैं कहीं भी नहीं यानी मैं वहीं हूं जहां मुझ जैसे दूसरे करोड़ों कीड़े रेंग रहे हैं अपनी अपनी रेंग पर रो या रीझ रहे हैं और रोते-रीझते इस सदा से इस सदा कुछ नहीं से ऊपर उठ-जाने के मोह से मुक्त नहीं हो पा रहे लेकिन मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैं किसी भी बोझ से फारिग नहीं कि मैं किसी भी बोध से बोझिल नहीं हुआ कि अगर मैंने आत्महत्या नहीं की तो उसका कारण महज शारीरिक कष्ट से कतराहट ही थी लेकिन मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि कहीं न कहीं हो न हो मैं मानूं न मानूं कोई और माने न माने अपने इन दर्दों को परदान मानता हूं इस जीवन को एक इमानत या इनाम मानता हूं कि मुझे मौत के बाद की सियाही मंजूर नहीं कि मुझे इस ऊब और तिलमिलाहट में कोई अर्थ नजर आता है लेकिन मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि आत्महात्या का अधिकार कि उसके बारे में कुछ भी कहने का अधिकार सिर्फ निखरे हुए नंगे नाचते हुए खून और मांस की सुर्खी और महक से जगमगाते हुए नौजवानों को होना चाहिए जो खुली आंखों इस जिंदगी की जर्कबर्क देखते हुए इससे इतने दिलदा दास्ता हो जायें कि उन्हें आत्महत्या के सिवा कोई और समाधान पसंद न हो यानी जो किसी विकसित विफलता से निराश हो कर या किसी निजी नर्क से निक जाने के लिए या किसी गलती या गुस्से या जिद की झों में आ कर या किसी दूसरे को कोई दुःख पहचाने के इरा से आत्महत्या का सहारा न लें बल्कि या तो विलावज या किसी बेइंतहा बेहोशी और बेपरवाही के आलम और या किसी आलमगीर दलील या दुःख से लाचार हो कर ही आत्महत्या कर लें या उसके बारे में कोई एला जारी करें लेकिन मुझे लगता है यह भी गलत है. मु लगता है कि ये दार्शनिक आत्महत्यारे भी मेरी नजर ज्यादा ऊंचे नहीं जो इस सवाल को महज दिमागी उधे बुन में बदल देते हैं लेकिन मुझे लगता है यह भी गल है. मुझे लगता है कि इस उम्र में इस आलम में इत अरसा कराह लेने के बाद अगर मैं अपने आप को हला कर भी लेता हूं तो मेरी यह हरकत न सिर्फ बेमानी हो बल्कि बेलज्जत भी कि किसी नौजवान और नाचते हु जिस्म के अंजाम में जो खूबसूरती और दहशत है वह एक बू बेआब जिस्म के अंजाममें नहीं कि अपना गला दबोच डाल के खयाल से कोई कंपकंपी नहीं कौंधती किसी शिक या विजय की आवाज नहीं आती बल्कि सिर्फ एक गिल-गिली गिरफ्त का एहसास होता है और मैं नहीं चाह कि इस आलमे-उमंगोखू से रुख्सत होते वक्त मेरा आखि स्पर्श मेरी ही झूलती हुई झुर्रियों से हो लेकिन मुझे ल है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैं आत्महत्या खिलाफ हूं कि जवानी में अगर अपनी जान ले ली हो तो बात और होती कि अब मेरी नियति यही है कि आखिर तक किसी भी भय को भगवान माने बगैर बे हारा हो कर तड़पूं मुजस्सम दर्द हो कर दर्दलादवा हो क कराहूं जैसे कोई दुखता हुआ दांत या गुर्दा हो या को प्रसवपीड़ा से मरती हुई कोई अधेड़ औरत लेकिन मु लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मेरी यह नि हो न हो मैं अब तक के कराहे किये से मुनकिर नहीं सकता कि मैं अब तक के इस्तेमाल किये शब्दों मखमली या मैली चादर की कील एक तरफ रख नंगा नाच नहीं सकता कि मैं अब नाच नहीं सकता लेकि मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैं अ भूत में बंद हूं कि मैं अब किसी नये रास्ते को रौंद न सकता किसी पुरानी आदत से ऊपर उठ नहीं सकता को नया चेहरा चुन नहीं सकता कोई नया स्वर साध न सकता कोई नयी भाषा बुन नहीं सकता किसी नये आका में उड़ या किसी नयी धरती पर रेंग नहीं सकता लेकि मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैं मर रहा हूं कि मैं अभी मरना नहीं चाहता कि मैं क मरना नहीं चाहता कि मेरी हद को पहुंचे हुए किसी बु को मौत से कोई भय नहीं होना चाहिए कोई भय न होना चाहिए कि मैं किसी हद को नहीं पहुंचा कि अगर भी मैं बेलाग हो कर एक आखिरी आलाप उठा सकूं शायद मेरे बाद वही बाकी रह जाये कि अपने पीछे हु

छोड़ जाने की छटपटाहट गलत है लेकिन मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मेरे ये दर्द अपनी अपूर्णता को अस्वीकार करते रहने की जिद और उस जिद से इनकार करते रहने की जिद और उस जिद को अस्वीकार करते रहने की हिमाकत और उस हिमाकत से हलाक होते रहने की मजबूरी और उस मजबूरी से आंख चुराते रहने की कमजोरी और उस कमजोरी को दबाते रहने के दंभ और उस दंभ को दुलारते रहने की बुजदिली और उस बुजदिली से बचाव की ख्वाहिश और उस ख्वाहिश पर काबू पाने की कोशिश और उस कोशिश की व्यर्थता और उस व्यर्थता के विरोध के ही नतीजे हैं लेकिन मुझे लगता है यह भी गलत है. मुझे लगता है मैं कमल नहीं कामिल नहीं कीड़ा नहीं कुबड़ा नहीं कोढ़ी नहीं मैं कुछ नहीं कुछ भी नहीं मैं नहीं तो यह यँ-यँ क्यों तो यह यँ-यँ क्यों नहीं यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मेरे इस आलाप-प्रलाप से कोई प्रलय टलेगी नहीं आयेगी नहीं तो मैंने मोहमल से किनारा क्यों किया कहां किया मैंने सिर्फ मोहमल बदल लिया लेकिन मैंने मोहमल से किनारा क्यों करना चाहा क्योंकि शुरू से न जाने क्या से किस कोण से सुनता चला आया हूं कि किनाराकशी की कोशिश ही कीड़े को इनसान और इनसान को भगवान नहीं यह भी गलत है. मुझे लगता है मैंने किनाराकशी नहीं की सिर्फ सहारा बदल लिया मुझे लगता है मैंने जिस सड़क का सहारा लिया वह नहीं समाप्त हो गयी नहीं यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैं भंवर से बाहर रह कर भी भंवर में ही रहा भंवर में ही रहने की कोशिश में रहा नहीं यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैंने अपनी सीमाओं से बाहर अपने लिए एक नया कारागार नहीं एक नयी कोख नहीं एक नया कोहान नहीं एक नया ईमान नहीं एक नया संगीत नहीं यह भी गलत है. मुझे लगता है मेरे पास न ईंट न आंच न सच न सांचा न रस्सी न सांप न मिट्टी न महक न गर्त न गहराई मेरे पास न पहुंच न प्रार्थना न नूर न नार न त्याग न राग मेरे पास सिर्फ संशय की सियाही. नहीं सवालों का काला खून नहीं मेरे पास वही दलदल जिसने मुझे मेरी व्यथाव्याकरण दिया नहीं यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैं इस शब्द कंटक शय्या पर पड़ा तड़पता उस आग-राग की आशा-प्रतीक्षा में जिसमें जल तप कर सब दर्द दूध और धान में बदल सकते हैं नहीं यह भी गलत है. मुझे लगता है कि यह सारा इच्छा छल दर्द से दर्द लादवा से भाग बाहर की दाह और धूप की कशिश को मिटाने की कोशिश कम अहम नहीं यह भी गलत है. मुझे लगता है कि मैं अब इस या उस नर्क को किसी नूर में बदल देने के काबिल नहीं कि मैं जिस अंधियारे में आ रुका हूं उसके बाद कोई उजाला नहीं कि मुझे अब सब कोशिशें काट कर समाप्ति के लिए नहीं यह भी गलत है. मुझे लगता है कि शब्द मेरे दुश्मन नहीं कि शब्द मेरा दुश्मन नहीं कि शब्द ही मेरा असली दुश्मन नहीं कि मैं जो कहूंगा जो भी कहूंगा कि मैं जो कह सकता हूं कि मैं जो भी कह सकता हूं कि मैं कुछ नहीं कुछ भी नहीं कह सकता नहीं यह भी गलत है बिल्कुल गलत है नहीं यह भी गलत है नहीं. . .□ □ □

लघुकथा

ईसा का चित्र

• ओ. हेनरी

जीवन के सुख-दुख का प्रतिबिंब मनुष्य के मुखड़े पर सदैव तैरता रहता है. लेकिन उसे ढूंढ़ निकालने की दृष्टि केवल कलाकार के पास ही होती है. वह भी एक कलाकार था. भावना और वास्तविकता का एक अद्भुत सामंजस्य होता था उसके बनाये चित्रों में.

एक बार उसके मन में आया कि ईसा मसीह का चित्र बनाया जाय. सोचते-सोचते एक नया प्रसंग उभरा उसके मस्तिष्क में---छोटे-से ईसा को एक शैतान हंटर से मार रहा था. लेकिन न जाने क्यों ईसा का चित्र बन ही नहीं रहा था. कलाकार की आंखों में ईसा की जो मूर्ति बनी थी, उसका मानव रूप में दर्शन नहीं होता था. बहुत-खोजा, मगर वैसा तेजस्वी मुखड़ा उसे कहीं नहीं मिला.

एक दिन उद्यान में टहलते समय उसकी दृष्टि अनाथालय के एक आठ वर्ष के बालक पर पड़ी. बहुत भोला था--ठीक ईसा की तरह सुंदर और निष्पाप. उसने बालक को गोद में उठा लिया और शिक्षक से आदेश लेकर अपने स्टूडियो में ले आया. अपूर्व उत्साह से उसने कुछ ही मिनटों में चित्र बना डाला. चित्र पूरा कर वह बालक को अनाथालय पहुंचा आया.

अब ईसा के साथ शैतान का चित्र बनाने की समस्या उठ खड़ी हुई . वह एक क्रूर चेहरे की खोज में निकल पड़ा. दिन को कौन कहे, महीनों बीत गये. शराबखानों, वेश्याओं के मुहल्ले, गुंडों के अड्डों की खाक छानी, मगर फिर भी शैतान कहीं न मिला. चौदह वर्ष पूर्व बनाया गया चित्र अभी तक अधूरा पड़ा हुआ था. अचानक एक दिन जेल से निकलते एक कैदी से उसकी भेंट हुई. सांवला रंग, बढ़े हुए केश-दाढ़ी और विकट हंसी. कलाकार खुशी से उछल पड़ा. कहते-सुनते दो बोतल शराब के बदले कैदी को चित्र बनवाने पर राजी कर लिया.

बड़ी लगन से उसने अपना अधूरा चित्र पूरा किया. ईसा को हंटर से मारनेवाले शैतान का देखते-देखते उसने हु-बहू चित्र उतार लिया.

---महाशय! जरा मैं भी चित्र देखूं , कैदी बोला. चित्र देखते ही उसके माथे पर पसीने की बूंदें उभर आयीं. वह हकलाते हुए बोला, 'क्षमा कीजिएगा. आपने मुझे अभी तक पहचाना नहीं. मैं ही आपका ईसा मसीह हूं. चौदह वर्ष पूर्व आप मुझे अनाथालय से अपने स्टूडियो में लाये थे. मुझे देख कर ही आपने ईसा का चित्र बनाया था.

कलाकार हत्प्रभ रह गया. □□□

(अनु. गुलाबचंद्र विश्वकर्मा)

पुण्य-तिथि (५ अक्तूबर) के अवसर पर विशेष

बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री, जिन्होंने हिंदी में वैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की!

● राममोहन पाठक

उन दिनों **'भूतनाथ'** और **'चंद्रकांता संतति'** को लोग **'गीता'** और **'रामायण'** की तरह पढ़ते थे. कोई ज्यादा दिन भी नहीं हुए. होगी तीस-पैंतीस साल पहले की बात. और जैसा कि लोग कहते हैं, उन दिनों आज जैसे तथ्यों और वैज्ञानिक आधारों पर लिखे गये उपन्यास कहां थे? पहले-पहल हिंदी में बाबू देवकीनंदन खत्री ने **'चंद्रकांता संतति'** उपन्यास पूरा किया, लोगों ने काफी दिलचस्पी ली तो **'भूतनाथ'** नाम से दूसरा शुरू किया. पर **'भूतनाथ'** के छह ही खंड लिखे गये थे कि देवकीनंदन जी का निधन हो गया.

यह अधूरा काम उनके सुपुत्र ने पूरा करना शुरू किया––यानी दुर्गाप्रसाद खत्री ने. बाद में चल कर बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री ने **'भूतनाथ'** के साथ ही लगभग एक दर्जन उपन्यास लिख डाले. हिंदी में एक नयी औपन्यासिक शैली एवं विधा का जन्म हुआ. हिंदी में वैज्ञानिक उपन्यास लिखे जाने लगे.

वैसे **'भूतनाथ'** के शेष १६ भागों का लेखन तो उन्होंने अठारह वर्ष की अवस्था में ही शुरू किया था, पर पिता के इस अधूरे कार्य को पूरा करने के बाद भी वह खाली नहीं बैठे रहे. **'रोहतास मठ'** नाम से छह खंडों में नया उपन्यास लिखा. दो भागों में प्रकाशित कहानी-संग्रह **'माया'** में **'गीता'** के १२ अध्यायों के मूल भावों के आधार पर उन्होंने १२ कहानियां लिखी. **'प्रतिशोध'**, **'सुफेद शैतान'**, और **'लाल पंजा'** उनके वैज्ञानिक उपन्यासों की कड़ियां है. **'सुवर्ण रेखा'**, **'स्वर्गपुरी'**, **'सागर सम्राट'** और **'साकेत'**, सभी में वैज्ञानिक उपन्यासों के उद्विकास का एक क्रम दिखलायी पड़ता है.

उन्होंने छोटी कहानियां भी लिखी थीं. **'लहरी'** और **'भारत जीवन'** के संपादक के रूप में पत्रकारिता के क्षेत्र में तो उन्होंने एक विशिष्ट कीतिमान स्थापित किया है. **'प्रतिशोध'** उनका छोटा-सा उपन्यास है. बराबर कहा करते थे कि मैं तो छोटी-सी कहानी लिखना चाहता था, पर न जाने कैसे बन गया उपन्यास.

* *

खत्रीजी जो कुछ भी लिखते थे, प्रामाणिक जानकारी के आधार पर लिखते थे. वैज्ञानिक उपन्यास लिखते समय तात्कालिक वैज्ञानिक प्रगति की बराबर जानकारी रखते थे. एच. जी. वेल्स और कितने ही अंग्रेज, बंगला और हिंदी लेखकों की रचनाएं बराबर पढ़ते रहते थे.

स्वतंत्रता-संग्राम के उन दिनों में दुर्गाप्रसाद जी के उपन्यासों से देश भर में कितने ही क्रांतिकारियों और स्वतंत्रता के दीवानों ने प्रेरणा ली थी.

वैसे खुद भी पीछे नहीं रहे. स्वतंत्रता की लड़ाई के सिलसिले में पांच बार जेल गये थे. गांधीजी से प्रेरणा पा कर स्वतंत्रता-संग्राम में शामिल हुए थे. आचार्य नरेंद्र देव, बाबू मोतीलाल नेहरू, राष्ट्ररत्न श्री रविप्रसाद और महामना मदनमोहन माल जैसे कितने ही राष्ट्रनेताओं वह मित्र और सहयोगी रहे.

वस्तुत: दुर्गाप्रसाद जी महत्व स्वतंत्रता-संग्राम के सेना के रूप में एक उपन्यासकार साहित्यकार से कहीं भी कम है. आजादी की लड़ाई के मैं लिख नहीं पाते थे, पर आंदो में भाग जरूर लेते थे.

सामाजिक मान और प्रति उनके लिए कोई महत्व नहीं रख

स्व. बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री : ए दुर्लभ स्व-हस्ताक्षरित चित्र (ऊप तथा वह पलंग और मसनद, जि पर उनका आसन जमता था; स ही उनकी छड़ी और जूता (नीचे

थी. यहां तक कि स्वतंत्रता-संग्राम के सैनिकों को मिलने वाली पेनशन के लिए आवेदन करना भी उन्हें स्वीकार नहीं था.

लड़ाई के दिनों में खत्रीजी के निर्देशन में वाराणसी में एक ट्रांसमीटर की भी स्थापना की गयी. थी. वाराणसी उन दिनों बंबई के बाद देश भर में स्वतंत्रता-संग्राम का दूसरा प्रमुख केंद्र था और इस केंद्र के संचालक थे स्वयं खत्रीजी.

जब कभी उनसे पूछा जाता था कि कुछ वैज्ञानिक सत्यों की उन्होंने भविष्यवाणी कैसे कर दी तो सहज भाव से कहते थे कि मैंने अपनी जानकारी को रचनाओं में रखने की कोशिश की थी. आज वे बातें सच ही हो चुकी हैं, तो इसे संयोग ही मानना चाहिए.

गीता की 'कर्मयोग' की परिभाषा से सहमत थे. कुछ-न-कुछ करते ही रहते थे— मृत्यु के कुछ दिनों पूर्व तक. स्वभाव और कर्म से वह सतत अहिंसावादी थे.

खिलाने-पिलाने के इतने शौकीन थे कि पूछिए मत! किसी को बिना खिलाये घर से जाने ही नहीं देते थे. थे पूरे बनारसी. हर शाम गंगा में नाव पर ही बीतती थी. नाव से ही चुनार तक चले जाते थे. गंगाजी के दर्शन बगैर एक दिन भी नहीं बीत सकता था. रहते थे पूरी रईसी से. दुपलिया, टोपी, लकदक कुर्ता, जूता और हाथ में छड़ी. फिर घर में शाही पलंग और मसनद आवश्यक थी. फोटोग्राफी के भी शौकीन थे. बनारसी हो कर भी वह बिना पान खाये रहते थे.

'रणभेरी' का प्रकाशन बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री के जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना रही. आज शायद ही 'रणभेरी' दिखायी पड़े, पर यह पत्रिका आजादी की लड़ाई के दिनों में घर-घर दिखलायी पड़ती थी.

संपादकाचार्य बाबूराव विष्णु पराड़कर और श्री रामचंद्र वर्मा स्टेंसिल काटते थे. बाबू शिवप्रसाद गुप्त धन की व्यवस्था करते थे. फिर छापने से बंटवाने तक का सारा काम खत्रीजी करते थे. इस सिलसिले में पुलिस का भी डर था, पर उन्होंने कभी हिम्मत नहीं छोड़ी. 'रणभेरी' का प्रकाशन, पुलिस के लाख प्रयासों के बावजूद, स्वतंत्रता-प्राप्ति तक जारी रहा.

'रणभेरी' के अतिरिक्त उनके 'रक्तमंडल' उपन्यास पर भी सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था. कापियां जब्त कर ली गयीं. इस उपन्यास में खत्रीजी ने क्रांति और आजादी की लड़ाई की ओर स्पष्ट रूप से इंगित किया था. इस पुस्तक ने लोगों के दिल में आजादी पाने के लिए आग जगा दी थी.

वह थे बड़े ही धीरज और कठोर दिल के आदमी. उनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व भी काफी प्रभावशाली रहा. किसी भी मुसीबत में, यहां तक कि मृत्यु के पूर्व तक, घबराये नहीं. बस, योग साधना और भगवद्भक्ति किया करते थे. कभी भी किसी का दिल नहीं दुखाना चाहते थे, पर खुद साहित्य-जगत की वर्तमान स्थिति से कभी-कभी चिंतित हो उठते थे.

. . .और आज भी लाहौरी टोला से गुजरता हूं तो वाराणसी की तंग गलियों के बीच इस मोहल्ले के अंतराल में उस चबूतरे के प्रति सहज श्रद्धा और नमन का भाव उमड़ पड़ता है, जहां बैठ कर बाबू देवकीनंदन खत्री और दुर्गाप्रसाद जी ने लंबे अरसे तक साहित्य साधना की, बहुत कुछ दिया हिंदी साहित्य को, पर वह स्थल आज भी उसी तरह उपेक्षित पड़ा है, जिस प्रकार स्वयं बाबू देवकीनंदन खत्री और दुर्गाप्रसाद जी के नाम को खुद हिंदी साहित्य के लोग भूलते जा रहे हैं.

उपन्यास-लेखन और स्वतंत्रता-संग्राम में योगदान के साथ ही एक चीज और है, जो दुर्गाप्रसाद जी के नाम से जुड़ी हुई है और आज भी याद की जाती है. वह है उनकी सहृदयता और उनका कोमल स्वभाव. उनके मित्रों से मिलिए : कहेंगे—हीरा थे हीरा!

□□□

'समांतर सहयोग' : एक सहयोगी प्रकाशन की शुरुआत!

इस देश में पुस्तकों के प्रकाशन की स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता. नये लेखकों को अपनी रचनाओं के प्रकाशन के लिए प्रायः बरसों तक बड़े प्रकाशकों के चक्कर लगाने पड़ते हैं. दूसरी ओर बड़े प्रकाशक केवल उन्हीं लेखकों की पुस्तकों को प्रकाशित करने में रुचि दिखाते हैं, जो स्थापित हो चुके हों और जिनकी पुस्तकें जल्द से जल्द बिक जाने की संभावना रखती हों. इस प्रकार बड़े प्रकाशक नये लेखकों का मार्ग ही अवरुद्ध नहीं करते, नये विचारों के प्रसार में भी बाधक बनते हैं. इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए काफी अरसा पहले केरल के लेखकों ने अपनी निजी सहयोगी प्रकाशन संस्था की स्थापना की थी. अब मद्रास में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के समांतर लेखकों के पहले सहयोगी प्रकाशन 'समांतर सहयोग' (५४, बाजार रोड, मइलापुर, मद्रास-४) की स्थापना हुई है. इस प्रकाशन-संस्था का मुख्य उद्देश्य है भारतीय जनवादी लेखकों की पुस्तकों को प्रकाशित करना और उन्हें विस्तृत पैमाने पर कम मूल्य में विशाल पाठक वर्ग को उपलब्ध कराना.

'सारिका' इस सहयोगी प्रकाशन का स्वागत करती है. □

आधुनिक लोक-कथा

● गीता पुष्प शॉ

इसी युग की बात है. गंगा तट पर बसे हुए किसी नगर में नयी पीढ़ी का एक युवा लेखक अपनी पत्नी के साथ रहता है. वह बहुत धनी है. उसके स्टोर रूम से ले कर ड्राइंग रूम तक, यहां तक कि पलंगों के नीचे और रसोई घर के ऊपर, सारा घर किताबों और पत्र-पत्रिकाओं से भरा रहता है. इस धन से उसने अपना लेखन व्यापार बहुत बढ़ा लिया है.

यह लेखक बहुत दयालु है. प्रतिदिन कोई-न-कोई मेहमान उसके घर अवश्य टपक पड़ता है. भोजन कराये बिना लेखक उसे जाने ही नहीं देता. सिगरेट चाय तो मामूली बातें है लेखक की पत्नी उसकी इन आदतों से बेह रुष्ट रहती है. बेचारी बड़ी मुश्किल से राश डालडा और किरासन तेल के लिए लाइन लग कर भोजन सामग्री जुटा पाती है, उस प से लेखक महोदय अवढर दानी बने फिरते हैं

एक दिन हमेशा की तरह फिर एक अतिथि पहुंचा. जैसा कि होता आया था, लेखक ने पत्नी को चाय और फिर भोजन बनाने का आदे दे दिया . तत्पश्चात् अतिथि से बोले—बैठो, मैं सिगरेट और पान ले कर आता हूं लेखक-पत्नी गुस्से में भरी बैठी थीं. रोज-रो के पकाने-खिलाने से तंग आ चुकी थीं. उन्होंने सोच लिया था, चाहे कुछ हो जाये, आज मु मेहमान के लिए चूल्हा नहीं जलेगा.

लेखक महोदय के बाहर जाते ही उन्होंने अपने पति के उपन्यासों, कहानियों, कविताओं की पांडुलिपियां मेज पर सजानी शु कर दीं. अतिथि सब देख रहा था. उससे र नहीं गया तो उसने चकित हो कर पूछा—क्या कर रही हैं भाभी जी?

लेखक-पत्नी ने कहा—भैया, कागज कं कमी के इस युग में इनकी रचनाएं कोई प्रकाशि नहीं करना चाहता था. तब से इन्होंने निय बना लिया है कि प्रतिदिन एक अतिथि को भोज कराने के बाद अपनी कविताएं, कहानियां, उ न्यास पढ़ कर सुनाते हैं. इस दिनचर्या में वि पड़ने से उन्हें रात-भर नींद ही नहीं आती.

इतना सुनना था कि अतिथि महोदय उठ कर खड़े हो गये. बोले—भाभी जी, एक जरू काम याद आ गया. और लंबे-लंबे कदम ब नौ-दो-ग्यारह हो गये.

कुछ ही देर में लेखक महोदय ने घर प्रवेश किया . अतिथि को न देख कर पत्नी पूछा—अरे, वो कहां गया?

पत्नी ने कहा—वह आपका एक उपन्या प्रकाशित करना चाह रहा था. मैंने कहा, बि आपकी अनुमति के मैं पांडुलिपि कैसे दे दूं, वह रुष्ट हो कर चला गया. लेखक महोदय तुरंत उपन्यास की पांडुलिपि उठायी और बाह भागे. भागते-भागते कुछ दूर पहुंचने पर दे उनके अतिथि भागे जा रहे हैं. लेखक महो चिल्लाये—'बंधु, ये पांडुलिपि तो देखिए. घर भोजन भी तैयार है. अतिथि दूर से ही चिल्ला मुझे भोजन नहीं करना है ऽऽऽ' और दु वेग से दौड़ने लगा. पर लेखक महोदय हिम्म हारने वाले प्राणी नहीं थे. उन्होंने अति का पीछा करना नहीं छोड़ा. अंत में सा गंगा नदी आ गयी . अतिथि ने दौड़ कर गंगा छलांग लगा दी.

• विनोद दुबे

पवित्र शहर

• खलील जिब्रान

मैं अपनी जवानी के जमाने में सुना करता था कि एक ऐसा शहर है जहां के नागरिक आसमानी किताबों के मुताबिक जीवन व्यतीत करते हैं.

मैंने सोचा कि मैं इस शहर को जरूर तलाश करूंगा और उससे बरकत हासिल करूंगा. यह शहर बहुत दूर था. मैंने अपने सफर के लिए खूब सामान इकट्ठा किया. चालीस दिन के पश्चात मैंने इस शहर को देखा और इकतालीसवें दिन उसके अंदर प्रवेश किया.

मुझे यह देख कर बहुत आश्चर्य हुआ कि इस शहर के तमाम नागरिकों के केवल एक हाथ और एक आंख है. मैंने हैरान हो कर अपने दिल में कहा कि इतने पवित्र शहर के नागरिकों का केवल एक हाथ और एक आंख!

मैंने देखा कि वह स्वयं भी इसी बात पर हैरान हैं. मेरे दो हाथों और दो आंखों ने उन्हें आश्चर्य में डाल दिया था. इसलिए जब वह मेरे बारे में आपस में बातचीत कर रहे थे तो मैंने उनसे पूछा—क्या यह वही पवित्र शहर है जिसका हर नागरिक आसमानी किताबों के मुताबिक जीवन व्यतीत करता है? उन्होंने उत्तर दिया—हां, यह वही शहर है.

मैंने कहा—तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? तुम्हारी दाहिनी आंखें और दाहिने हाथ क्या हुए? वह सब मेरी बात से बहुत प्रभावित हुए और मुझसे कहा—आ और देख.

वह मुझे शहर की एक मस्जिद में ले गये, जो शहर के मध्य में स्थित थी. मैंने उस मस्जिद के सेहन में हाथों और आंखों का एक ढेर लगा हुआ देखा. वह सब गल सड़ रहे थे. फिर मैंने कहा—अफसोस! किस संगदिल ने तुम्हारे साथ यह सलूक किया है?

इस पर उन्होंने जेरे लब गुफ्तगू शुरू की और एक बूढ़ आदमी ने आगे बढ़ कर मुझसे कहा—यह हमारा अपना काम है. खुदा ने हमें अपनी बुराइयों पर फतह दी है. यह कह कर उसने मुझे एक ऊंचे गुंबद के ऊपर एक तहरीर दिखाई, जिसके शब्द थे—

"अगर तुम्हारी दाहिनी आंख तुम्हें ठोकर खिलाये तो उसे बाहर निकाल फेंको, क्योंकि सारे शरीर के दोजख में पड़ने से एक अंग का नष्ट होना बेहतर है और अगर तुम्हारा दाहिना हाथ तुम्हें बुराई पर मजबूर करे तो उसे काट कर फेंक दो ताकि तुम्हारा केवल एक अंग नष्ट हो जाये और सारा शरीर दोजख में न पड़े.

यह इबारत पढ़ कर मुझे सारी सच्चाई मालूम हो गयी. मैंने मुंह मोड़ कर तमाम लोगों को संबोधित किया और कहा—क्या तुममें कोई आदमी या औरत ऐसा नहीं जिसके दो हाथ और दो आंखें हों?

उन सबने उत्तर दिदा—नहीं, कोई नहीं यहां उन बच्चों के अतिरिक्त जो कमसिन होने के कारण इस कुतवा को पढ़ और उसके आदेशों पर अमल नहीं कर सकते हैं, कोई व्यक्ति सही व सालम नहीं.

जब हम मस्जिद से बाहर आये तो मैं तुरंत उस पवित्र शहर से भाग निकला, क्योंकि मैं कमसिन न था और उस कुतबा को अच्छी तरह पढ़ सकता था. □

(अनुवाद : मुनव्वर हुसैन 'गुबार')

कृतियां

एक कहानी-संग्रह

'पंजाबी की श्रेष्ठ कहानियां'

संपादिका : अमृता प्रीतम;
प्रकाशक : पराग प्रकाशन, दिल्ली;
१९२ पृष्ठ; २० रुपये.

प्रख्यात कवयित्री और कथा-लेखिका अमृता प्रीतम ने संपादिका की भूमिका में उतर कर यह संकलन प्रस्तुत किया है.

'श्रेष्ठ' अथवा 'प्रतिनिधि' किस्म के संकलनों की परंपरा भारत में कभी भी स्वस्थ नहीं रही. बहुधा एक संकलन की श्रेष्ठ कहानियां दूसरे प्रतिनिधि कहानियों के संकलन में सिरे से गायब मिलती हैं. ऐसी उलटबांसी इस संकलन के संदर्भ में भी मौजूद है, मगर जहां तक काल-प्रतिनिधित्व का संबंध है, संपादिका ने सतर्क दृष्टि से काम लिया है. गुरबख्शसिंह से ले कर करनैलसिंह तक, विभिन्न काल-खंडों के इक्कीस कथाकार संकलन में शामिल किये गये हैं. मगर इन विभिन्न काल-खंडों में पाठकों को विभिन्न मानसिकताओं अथवा काल-धाराओं का स्पष्ट प्रत्यक्ष नहीं हो पाता. इस बाबत अमृता प्रीतम ने भूमिका जैसे एक नोट में अपना दायित्व और दृष्टिकोण यों पेश किया है : '. . . कहानी विषय की दृष्टि से इतनी पुरानी या नयी नहीं होती, जितनी अपने बयान के अंदाज की दृष्टि से.'

इस चयन-दृष्टि का ही परिणाम है कि इन इक्कीस 'श्रेष्ठ' कहानियों में इक्कीस लेखक प्रायः इक्कीस व्यक्तियों की तरह हाजिर नजर आते हैं. रसिक पाठक शायद संकलित कहानियों को श्रेष्ठ मान लेने की बजाय इंतजार करने का फैसला खुद-ब-खुद कर लेता है.

'माझा नहीं मरा' (कर्त्तारसिंह दुग्गल) और **'भाभी मैना'** (गुरबख्शसिंह) जैसी कहानियों की श्रेष्ठता के संबंध में पाठकों और समीक्षकों ने एक अरसे से फैसले मुल्तवी किये हुए हैं. यहां एक बार फिर उन्हें यही प्रक्रिया दोहरानी पड़ेगी. वेश्यावृत्ति की यांत्रिक मानसिकता विवेचित करने वाली कहानी **'कहवाघर की सुंदरी'** (बलवंत गार्गी), और अपेक्षाकृत मोतबिर और समर्थ 'अफसरों' की गरीब की औरतों को सहज ही लूट लेने की इच्छा कर बैठने वाली आधी जिसी और आधी सामंती फितरत का चित्रण करने वाली **'अफसर'** (प्रेम गोरखी) जैसी कहानियां भी स्वयं को श्रष्ठ कहलवाने को फिलहाल उतावली प्रतीत नहीं होतीं.

श्रेष्ठता वस्तुतः कहानियों के हिस्से तब तक नहीं पड़ती, जब तक लेखक नये प्लॉट-व्लॉट गढ़ कर उन्हें येन-केन-प्रकारेण तार्किकता का जामा पहना कर जल्द-से-जल्द पेश कर देने के चक्कर में रहता है. दुर्भाग्य है कि इस संग्रह की ज्यादातर कहानियां जल्दबाजी का शिकार हैं. **'मुर्गीखाना'** (केवल सूद; थीम लेस्बियनिज्म), **'मैली पुस्तक'** (रविंदर रवि; स्त्री-पुरुष) और **'ताश'** (प्रेमप्रकाश; आधुनिक परिवेश बनाम स्त्री-पुरुष के 'बीच'), करनैलसिंह का स्वतंत्रता का पोस्टमार्टम (**'पंद्रहवां लाल क्रॉस'**) इसी जल्दबाजी की मिसाल हैं.

नया कुछ कर दिखाने की झोंक में प्रायः उन्मत्त न हो कर जहां लेखक थोड़ा धैर्य से काम लेता है, दृष्टि में स्थिरता पैदा क और घटनाओं और विचारों निथरने देता है, वहां प्रक पुरानी थीमें भी निखार और पक्वता के स्पर्श से नयी-सी हो ज हैं. **'मजंगो का फरिश्ता'** (म यार) और **'तू तो हार गया** (गुरदयालसिंह) इस तरह रचनात्मक पक्वता की मिसालें हैं, और इन्हीं के आती हैं **'गौना'** (गुलजार संधु), **'एक लाश और'** (गु सिह रुपाणा), **'हीरामंडी के चौ** (जसबीर मुल्लर), **'लोरी'** (बीर) और **'दूध की तलैया'** (वंतसिंह विर्क).

'तोताराम' (जसवंत विरदी) और **'विदइन विदआ** (दलीपकौर टिवाना) इस की सचमुच श्रेष्ठ कहानियां **'तोताराम'** एक व्यंग्य भी और एक तल्ख टिप्पणी प्रबल आक्रोश भी. **'विदइन आउट'** में दलीपकौर ने आ स्त्री-पुरुष की नियति को बुद्ध यशोधरा के प्रतीकात्मक संद पेश किया है; पुरुष आस्थाहीन उद्दंड है और स्त्री हमेशा की शोषिता और निराशाओं से हुई. अजीतकौर (**'नारियल कुज्जी'**) और अमृता प्रीतम (**यल'**) अपने-अपने अनुभवों हलके की दो आधुनिक युवतियों दर्द भरी दास्तान कहती हैं, जमकर मीडियॉकर हैं, सुखवंत मान की **'निर्मोही'** भी मीडि है, मगर वह पीढ़ियों के का फासला बयान करती है. दे की **'हाइड्रोफोबिया'** का दिलचस्प है, पर बाकी सब

कुल मिला कर श्रेष्ठ कहा के इस संकलन की अधिकांश नियां सुपाठ्य और वैविध्यपू मगर अपने प्रति किये गये श्रे के दावे के प्रति आश्चर्यजनक से निस्संग हैं. पाठक कुछ प और प्रख्यात कथाकारों के की शिकायत भी शायद क करने दो!

□ रा.

अमृता प्रीतम

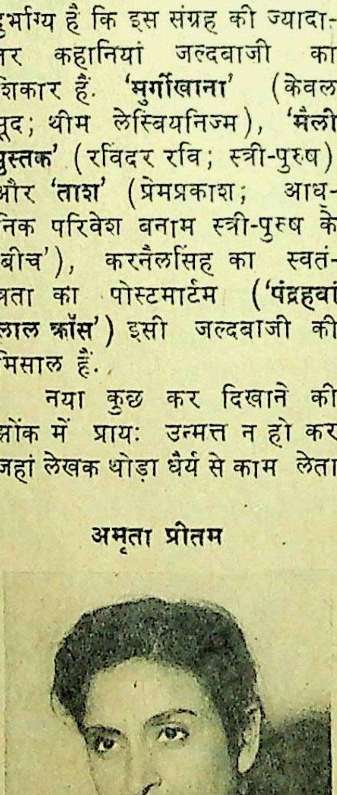

एक उपन्यास

'भूत का भविष्य'

लेखक : इलाचंद्र जोशी;
प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली—६
१६५ पृष्ठ; साढ़े आठ रुपये.

शीर्षक पढ़ते ही उम्मीद हो जाती है कि लेखक ने भूतकाल और उस के भविष्य का कोई तनाव उभार कर दोनों के विरोध से उत्पन्न होने वाला कोई चमत्कार मूलक सौंदर्य व्यंजित किया होगा, यानी कालगत यथार्थ की दो विरोधी स्थितियों के तनाव और संघर्ष से कोई गहरा प्रभाव पैदा किया होगा. किंतु उपन्यास पढ़ने पर लगा कि नहीं, यह तो एक ऐसे व्यक्ति का भविष्य है, जिसका नाम भूतनाथ है और जो एक मकान हथियाये रखने के क्रम में भूत बना रहता है. और भविष्य भी कहां है इस उपन्यास में! उसकी तो अंत में केवल जिज्ञासा की गयी है!

इस उपन्यास में दो कथाएं हैं— एक कथा हरिजन भूतनाथ की है, दूसरी कथा कवि राकेश और उसके साथ भागी हुई उसकी प्रेमिका नंदा की. वास्तव में ये दोनों ही कथाएं आज के जीवन की समस्याएं हैं. आजादी के इतने वर्षों के बाद भी हरिजनों का जीवन सामाजिक उपेक्षा के अभिशाप से बुरी तरह ग्रस्त है. हरिजन अपनी सारी प्रतिभा और आंतरिक बड़प्पन के बावजूद नीच और अछूत समझे जाते हैं. समाज में पग-पग पर उनका अपमान होता है. सबसे बड़ी यातना उस हरिजन को सहनी पड़ती है; जो किसी कदर पढ़-लिख कर प्रबुद्ध हो जाता है. उसकी प्रबुद्ध चेतना, उसकी संवेदनशीलता और समताकांक्षी मानव-मन कदम-कदम पर अपने ही नहीं, अपने जातीय अपमान से तिलमिला उठता है, क्रुद्ध होता, विद्रोह करता है और टूट जाता है. इस उपन्यास में चित्रित भूतनाथ इसी प्रकार का हरिजन है.

इलाचंद्र जोशी

राकेश और नंदा की कथा आज के युवक-युवतियों की प्रेम-मूलक समस्या को सामने रखती है. क्षणिक भावावेश में आ कर युवक-युवती एक-दूसरे के रूप पर या किसी गुण पर रीझ जाते हैं और त्वरा में एक-दूसरे को जीवन-साथी बना लेने का गलत निर्णय ले कर घर से भाग चलते हैं. कई बार यह प्रेम शादी में परिणत हो जाता है, कई बार शादी की अवस्था तक आने से पहले ही टूट जाता है. शादी हो जाने के बाद भी प्रायः दोनों में आत्मीयता की आंच ठंडी पड़ने लगती है. इस असफलता के मूल में प्रायः आर्थिक संकट तो होता ही है, व्यक्तित्व की वह कुरूप परत भी होती है, जो पहले छिपी होती है और बाद में धीरे-धीरे खुलती है. राकेश एक कवि है— मंचीय कवि. अपनी ओर आकृष्ट नंदा को वह जाल में फांसता है. वह पहले भी एक लड़की को फांस कर बर्बाद कर चुका है. नंदा को भगा कर लाया तो, लेकिन लगता है, वह उसके गले पड़ गयी है. उसके पास कोई नौकरी तो है नहीं, उलटा घर में नंदा के साथ बंद हो जाने के कारण कवि-सम्मेलनों की आमदनी भी छूट गयी है. उस भुतहे मकान में राकेश, नंदा और भूतनाथ की सहयात्रा चलती है. इस सहयात्रा में राकेश की आर्थिक परेशानी भी है, नंदा के प्रति प्यार और संदेह भी है, भूतनाथ के प्रति उपेक्षा, भय और प्रेम है, नंदा का राकेश के प्रति प्रेम और घृणा है, भूतनाथ के प्रति आदर, प्रेम और भय है, भूतनाथ का नंदा और राकेश के प्रति स्नेह तथा उनके आभिजात्य के प्रति आक्रोश और घृणा भी है.

अलग-अलग प्रकृति की समस्याओं वाली इन दो कथाओं को आपस में जोड़ कर एक तीसरी दिलचस्प कहानी गढ़ने के मोह ने इस उपन्यास के प्रभाव को आहत कर दिया है. न तो इसमें हरिजन-समस्या अपने पूरे परिप्रेक्ष्य में उभरने पायी है और न ही राकेश और नंदा की समस्या. लेखक ने इन दोनों समस्याओं को एक भुतहे मकान में एक में मिला कर जासूसी रंग देने का प्रयत्न किया है. भूतनाथ जी पहले तो रहस्य मालूम पड़ते ही हैं, बाद में भी रहस्य बने रहते हैं. उसका संबंध डाकुओं से भी है. और यही संबंध पांच हजार रुपयों से राकेश-नंदा की सहायता कर उनकी आर्थिक समस्या हल करता है और मूल समस्या की गहनता तथा तीव्रता बहुत दूर तक धुंधला देता है.

पूरा उपन्यास विभिन्न प्रकार की चाशनियों से भरा हुआ एक विचित्र स्वाद देता है. उसमें रहस्य भी है, और रोमांस भी, यथार्थ भी है और आदर्श भी, मार्क्सवाद भी है और मनोविश्लेषण भी, राकेश की नीचता भी है और 'जो जैसा करता है वैसा भरता है' के न्याय से अंत में उसको मिलने वाली सजा भी. अर्थ-संकट की झलक है तो खाने का उबाऊ चित्रण भी. अंत में भूतनाथ कहीं गायब हो जाता है, अपनी नीचता के फलस्वरूप राकेश पुलिस द्वारा कैद कर लिया जाता है और नंदा अपने बाप के घर लौट जाती है. और फिर भूत का ही भविष्य क्यों, पाठक पूछ सकता है. तीनों का भविष्य क्या होगा? किंतु उपन्यास में जिनके वर्तमान का चित्र ही इतना धुंधला और उलझा हुआ हो, उनके भविष्य की क्या चिंता की जाये?

□ **रामदरश मिश्र**

यशोदा का शोक

•कृष्णप्रसाद मिश्र

लिसा विलांड ने हलकी सब्जी की गाड़ी को जोमिनिएन दूकान के अंदर कुछ दूर धकेला, फिर खड़ी हो गयीं. क्या बोला था उस लड़के ने. . .मांस खाता है, भेड़ या मुरगे का मांस चलेगा. भेड़ के मांस से तो बदबू आती है. बेहतर होगा, मुरगे का मांस खाये.

कांच के बने शो केस के अंदर कतारों में मुरगे रखे हुए थे. एक पौंड पचास सेंट. उन मुरगों को देख कर मिसेस विलांड ने अनुमान लगाया कि दो मुरगे काफी होंगे. एक अपने लिए और दूसरा उसके लिए. इतालियन दुकानदार से, उसके खून के छींटे और निहायत छोटे-छोटे मांस के टुकड़े गिरे सफेद एप्रन की ओर देख कर उन्होंने दो मुरगों का वजन करवाया. मगर उनकी नजर वजन बताने वाली मशीन पर नहीं थी. कुछ समय पहले उनके सामने से एक और सब्जी की गाड़ी धकेलते हुए विश्वविद्यालय के एक छात्र और एक छात्रा चले गये थे. क्या ही सुंदर थी वह लड़की! उम्र के कारण छाती कुछ उभर आयी थी और जांघें भी मांसल हो गयी होंगी, वरना क्या अभी भी मिसेस विलांड से बढ़ कर हो सकती हैं ये बालों पर इस्त्री फेर कर सपाट बाल रखने वाली आजकल की छोकरियां? बहुतों की छातियों में रबड़ की छातियां! और आजकल के छोकरे भी स्लिम के नाम पर हाड़-उभरी लड़कियों को पसंद करते हैं. उन्हींकी कमर पकड़ कर लताओं की तरह उलझे हुए सड़क पर चलते नजर आयेंगे. उनका जमाना वैसा नहीं था, कभी भी नहीं था. मिस्टर विलांड उन्हें स्लिम होने के लिए नहीं, उनकी मांसलता के लिए चाहने लगे थे. जब खुश हो जाते, तो कहते—लिसा, मैं पेंटर नहीं हूं, पर तुम्हें अगर कोई पेंट करे, तो लोग उसे जरूर रेनेसां युग की किसी नारी की पेंटिंग कहेंगे.

* *

मिसेस विलांड की छाती में जैसे किसीने अचानक खूब खुशी और दर्द की एक छुरी भोंक दी. हवाई जाहज से जमीन से ऊपर उठते समय और उतरते समय इस तरह की पीड़ा उनकी छाती में होती है. यह पीड़ा उनके लिए नयी नहीं है, पुरानी है, बहुत पुरानी. जब वह छोटी थीं. कालेज में फर्स्ट इयर में पढ़ती थीं और बास्केट बाल खेल देखने के लिए मैफल लिफ गार्डन को जीती थीं, उस समय उछल कर बाल को दाबने की आर्थर की भंगिमा ने उनकी छाती में ऐसी पीड़ा की सृष्टि की थी. उसके बाद वह खुद बॉल हो गयीं. आर्थर के ताकतवर शरीर ने जीवन में उन्हें कई बार ऊपर उठाया, कई बार नीचे दबाया, पर उस उठने में और उस दबने में कैसा आनंद था! पुरुष के हाथों में, पुरुष के लिए गेंद बन जा
कितना आनंद आता है.

मिसेस विलांड की आंखें भीग गयीं. नजदीक
काउंटर से एक बोरा चाशनी में पागा हुआ
लावा खरीदते हुए उस युवक को उन्होंने देखा.
शायद दूध के लिए कहीं गयी होगी. युवक के
बदन को देख कर कोई यही कहेगा कि वह जरूर बा
बॉल खेलता होगा, वरना आइस हाकी या सक्कर
और कुछ. ठीक आर्थर जैसा. पर कैसी पसंद है इस
कितनी बदशकल है इसकी गर्ल फ्रेंड!

इतालवी दुकानदार तब तक सेलोफीन काग
दोनों मुरगों को लपेट चुका था. उनका उसने छह
वजन बताया. उन मुरगों को मार कर उसने
किया था, इसलिए साठ सेंट और मांग रहा था. मि
विलांड ने हिसाब किया और पैसे दे दिये. पर आंखें
इधर-उधर घूम रही थीं. और चीजें खरीदनी थीं.
स्ट्रीट में भी रुकना है. एक बोतल शैंपेन खरीद
ठीक रहेगा. घर से क्यों फोन किया जाये. शुक्रवार
इसलिए दुकानदार को हजार कॉल मिलते होंगे. ह
के घर में शाम को पार्टी, पीने-पिलाने का पर्व.

गाड़ी को धीरे-से घुमा कर मिसेस विलांड दु
में उस ओर मुड़ीं जिधर सब्जियां बिकती थीं.
हुए वह दुकान की दोनों ओर आंखें घुमाती जा रही
अन्य लोग आगे बढ़े जा रहे थे. एक व्यक्ति
उनकी धीमी गति को देख कर बोला—नानी
उनका पैरांबुलेटर!

मिसेस विलांड चाय के साथ खाने के लिए
के दो पेकेट ला कर, उन्हें गाड़ी में रखती हुई मन
मन बुदबुदायीं—हे भगवान, आदमी इतना बेरहम
हो जाता है! इन लोगों के जल्दी जाने की शायद
बजह होगी. हो सकता है, नहीं भी हो. क्योंकि इस
में लड़के-लड़कियों और अन्य लोगों के हर काम के
कोई सही कारण हो, यह बात नहीं. पर मिसेस वि
अपने पचास साल के शरीर को इतनी जल्दी भी
कर चलायें? क्या कोई काम भी है कि घर
घर! घर!

मिसेस विलांड के होठों पर हंसी निखर
उस पंद्रह मंजिला मकान में, जिसमें हजार से
लोग रहते होंगे, चौदहवीं मंजिल पर चौदह सौ
नंबर का सूट उनका है. पर एक दिन उनका अपना म
था, पति थे, दो बेटे भी थे. घर का नंबर भी उन्हें
है—२१, मेनार्ड एवेन्यू.

* *

—माफ कीजिएगा. . .

मिसेस विलांड का ध्यान हटा. उनके पास
तरुणी खड़ी थी और पूछ रही थी—क्या आपने मु
कुछ पूछा?

—नहीं तो! मैं कुछ बोली हूं क्या?

उसके बाद तरुणी ने मुंह फेर लिया और
चुनने लगी. जमैका से बैंगन आये हैं. कद्दू भी.
से वह छांट रही थी. क्या करेगी वह इन बैंगनों

ले कर? इन्हें कैसे पकाते हैं? मिसेस विलांड ने जीवन में कभी उन्हें नहीं पकाया. किसलिए वह ले रही है! मिसेस विलांड ने मुखमुद्रा से अपनी नापसंदगी जताते हुए लकड़ी की अलमारी से एक बोरा आलू ले कर गाड़ी पर रखा. आज आलू का भरता भी बनायेंगी. वह लड़का भारत से आया है. उसे पता लगे कि हम क्या खाते हैं. हां, स्पिनाच साग भी खरीदेंगी वह. भारत में यह सब है भी कि नहीं, क्या मालूम! आर्थर को स्पिनाच साग खूब अच्छा लगता था. टी. वी. पर पपेया कार्टून फिल्म देख कर वह बच्चों से, जो उस समय छोटे-छोटे थे, कहता—अरे, स्पिनाच साग खाओ, तब जा कर ताकत आयेगी और तुम भी 'पपेया' नाविक की तरह बन जाओगे!

पर क्या फायदा हुआ उस ताकत से! पल जब जर्मनों के साथ लड़ रहा था तो क्या उसके शरीर में ताकत नहीं थी? कितना स्पिनाच साग उसे खिलाया मिसेस विलांड ने! क्या लाभ हुआ? एक ही गोली सें मर कर ढेर हो गया. . .'आई ऐम पपेया द सेलर मैन' पपेया का वह गीत गाने के लिए, और गा-गा कर टी. वी. के सामने नाचने के लिए और. . .फिर वह नहीं रहा. धत! मिसेस विलांड ने स्पिनाच के पुलिंदे को गाड़ी से निकाल कर आलमारी के अंदर डाल दिया. स्पिनाच वह नहीं लेंगी.

वह खड़ी है पार्किंग लॉट में उनकी बाक्स वैगन गाड़ी. दुकान के झरोखे से साफ दिखाई दे रही है. आर्थर ने उस गाड़ी को खरीदा था. अब वह नहीं रहा पर उसकी गाड़ी है. आखिर क्या कहेंगी वह उन जर्मनों को, क्यों सोचेंगी वह उनके बारे में? उन्होंने उनके बेटे को मार डाला है. पर उनकी गाड़ी सही-सलामत रही. लड़ाई के बाद उनकी गाड़ी का सेल्स मैन आर्थर बन गया. उस गाड़ी को मिसेस विलांड बेच भी नहीं सकतीं. एक बार अगर बेच दें तो फिर खरीदने की ताकत है क्या उनमें? बहुत ही मजबूत गाड़ी. पर क्या होगी वह गाड़ी? घर लौटने की क्या जल्दी है! कौन घर पर उनके इंतजार में बैठा है! आर्थर कब से कफन के अंदर है. एक दिन फावड़े से बाहर बर्फ साफ करते-करते उसके प्राण-पखेरू उड़ गये. जो भी हो, फ्यूनरल होम से आर्थर के लिए एक अच्छे-से कफन का इंतजाम हो गया. जो गया, वह गया. आर्थर के मरने के बाद चर्च के आदमी उनसे चर्च के कामों में सहायता करने को कहते! कहते कि वह चर्च के काम ज्यादा कर सकेंगी, इसलिए ईश्वर ने उनके पति को बुला लिया. रोमन कैथलिक वालों ने तो आ कर सलाह दी थी कि समय रहते उनका धर्म में दीक्षित हो जाना ही ठीक रहेगा. उनके अनुसार आर्थर नरक को गया है और मिसेस विलांड को अब अपना भविष्य सुधार लेना चाहिए. मिसेस विलांड उन्हें बाहर कर देतीं. सब ठग हैं, प्रचारक, पेशेवर प्रचारक. आर्थर भी उन्हें यही मानता था. इस दुर्घटना के कुछ ही दिन पहले एक बार वह बोला था—ईश्वर-वीश्वर सब झूठ है! इस ईश्वर-विश्वास से हम क्रिश्चियनों ने लाखों यहूदियों को मार डाला है. पर इतना ही है, और कुछ नहीं, सबका अंत इस माटी में, पानी में, हवा में. . .सोचने से कैसा-कैसा लगता है. एक बात और भी तो है, समाज में रहने पर दूसरों के विश्वास को भी तो मानना पड़ेगा. एकदम असामाजिक बन कर चलना भी तो संभव नहीं है.

कुछ पल के लिए कुछ सोचता हुआ आर्थर चुप रहा और बोला—अच्छा, लुसी, मेरी मौत के बाद मुझे दफनाना. . .क्रिश्चियनों की विधि के अनुसार, ठीक!

मिसेस विलांड. . .जो आदमी अभी कल ही उन्हें गोद में लिये हुए या कलेजे से सटाये हुए बरामदे में चक्कर काटता रहता था यही तो है वह, जिसने कल रात ही उन्हें गेंद की तरह अपनी बलिष्ट बांहों में भर कर गुथली बना लिया था. उसी प्रौढ़ और ताकतवर आदमी से उसीकी कब्र की चिंता सुन कर आश्चर्य हुआ था. पर उसके कुछ दिनों बाद ही बर्फ और वर्षा की शब्दहीनता के बीच आर्थर के प्राणपखेरू उड़ गये थे. बर्फ पर गिरने के पहले आर्थर मिसेस विलांड को दौड़ कर सहायता के लिए बुला तक नहीं सका!

* *

आर्थर तो घर पर है नहीं. उनकी प्रतीक्षा में वहां कौन होगा कि वह जल्दी लौट जायें. दो लड़कों में से एक तो ईश्वर का प्यारा हो गया है और एक नौकरी के लिए सुदूर सानडियेगो में है. शादी भी वहीं की है उसने. छह महीना में एक-आध चिट्ठी आती है. किसके लिए जल्दी घर लौटें मिसेस विलांड? वाल टु वाल गलीचे के लिए, या गलीचे के लाल रंग से मेच करते चेस्टर फिल्ड सेट के लिए, या फिलिप्स के पोर्टेबल टी. वी. सेट के लिए, या आर्थर की और अपने दोनों लड़कों की तसवीरों

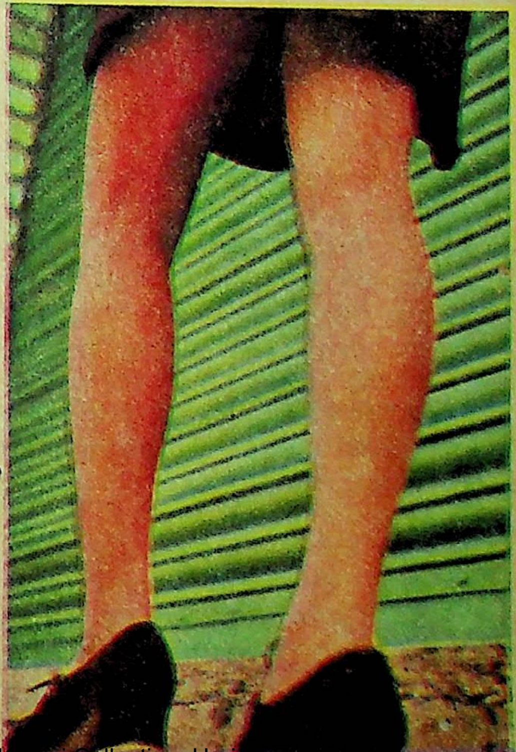

● मधुर मित्तल

के लिए, जिनको सजा कर उन्होंने टी. वी. के पास रखा है? कांटिनेंटल गद्दी नहीं, गलीचा नहीं, ड्रेपर नहीं, टी. वी. नहीं, कोई भी उनके एकांत को तोड़ नहीं सकता, निर्जनता को भगा नहीं सकता.

जिस दिन वह आर्थर की मौत के बाद पुराने घर के अवशेष मोनिंग-वैन में लाद कर सूटर स्ट्रीट के इस एपार्टमेंट में पहुंची थीं, उस दिन उन्होंने सोचा था कि आर्थर की स्मृति में भीगे उस कार्पेट, उस ड्रेपरी, उस गद्दी वगैरह के सहारे जीवन का बाकी समय बिता लेंगी. पर क्या हुआ? जब कभी आर्थर की याद आती है, एक पल को भी आती है, तो उस समय उस ड्रेपरी और गलीचे के रंग खून की नदी में बदल जाते हैं. . .पर सच्चाई शायद यह भी है कि उन्हें आर्थर की ज्यादा याद नहीं आती, कोशिश करने पर भी मन उसकी ओर नहीं जाता, यद्यपि उस समय उन्हें चारों ओर घिरी हुई महानिर्जनता ही मिलती, मन, हृदय और शरीर सब छटपटाने लगते. सुबह, शाम, दोपहर और रातको हजारमुख वाला वह एकांत जैसे मिसेस विलांड की नाक, आंख, हर रोये से अंदर घुस जाता. मिसेस विलांड को लगता है, सारी दुनिया में वह अकेली हैं. उनका कोई साथी नहीं. उनके जीने-मरने के लिए किसीका भी आग्रह नहीं. जैसे आदिकाल से वह शापग्रस्त हैं. उनकी आत्मा को ऐसे एकांत में रखते हुए ईश्वर शायद अंत में हवा बना कर उड़ा देंगे---मुट्ठी भर धूल की तरह!

व्याकुल हो कर, ड्रेपरी को खोल कर सुबह के शहर को देखने की कोशिश करतीं मिसेस विलांड, जैसे सारी दुनिया को समेटने की इच्छा करतीं. आवाज करते ड्रेपरी के रिंग दोनों ओर सरक जाते. दरिया के बीच डूबते आदमी के किनारे की ओर देखने की तरह वह कांच के झरोखे से बिल्डिंग के लान, लान के उस पार सूटर स्ट्रीट को देखतीं पर दरिया के बीच से पुकारने वाले की आवाज किनारे पर ट्रांजिस्टर सुनने वाले के पास पहुंचती नहीं है. डूबने वाले की भयपूर्ण मुख भंगिमा पेरांबुलेटर में संतान को ले जानेवाले पति-पत्नी देख नहीं पाते. मिसेस विलांड फिर ड्रेपरी खींच कर बंद कर देतीं. तैरने में कोई फायदा नहीं है, अब डूब जाना अच्छा है.

पर जीवन है. जीवन के धागे जब तक टूट नहीं जाते, आदमी की असीम इच्छा रहेगी. वह साथी ढूंढ़ेगा. सोते समय किसीको साथ ले कर सोने की इच्छा होगी. उसे प्यार करने की, समय-समय पर उससे झगड़ा करने की इच्छा होगी. इस तरह का कोई आदमी कहां है मिसेस विलांड के पास? टी. वी. देखने से, उपन्यास पढ़ने से, सिनेमा देखने से लोगों से मिलने की इच्छा बढ़ जाती है, कम नहीं होती. पर उनके लिए वैसे लोग हैं कहां?

* *

दोपहर में मिसेस विलांड फिर आकुलता से ड्रेपरी खोल लेतीं. खोलते ही धूप के उजाले से डर कर घर का अंधकार बिछौने के नीचे या वार्डरोब में छिप जाता. वह अंधेरा हट जाये, वही तो मनुष्य के लिए ज्यादा आकुलता, ज्यादा निःसंगता लाता है. पर उजाले में तरुणियों की युगल छवियां निखर आती हैं. एपार्टमेंट बिल्डिंग के लान की घास पर युवक-युवतियों के जोड़े लुढ़कते नजर आयेंगे. कोई-कोई चार आंखों में एक उपन्यास पढ़ते होंगे, कोई-कोई एक-दूसरे पर जाने की कोशिश करते होंगे, तो कोई-कोई एक-दूसरे को चूमने में व्यस्त नजर आते होंगे, जैसे हर बार के चूमने में नयापन हो. इसके बाद मिसेस विलांड और भी व्याकुल हो उठतीं और जा कर अपने पुराने कांटिनेंटल बिछौने पर गिर जातीं.

ऐसी ही एक निःसंग दोपहर में उन्होंने 'ग्लोब एंड मेल' पत्र के संपादक के नाम पत्र लिखा था, जिसका हर शब्द जैसे, उनके खून से और जिसका अर्थ उनकी आत्मा से निकला था. उस चिट्ठी में कामा और स्टाप उनके आंसू के थे. लिखा था: 'संपादक महोदय, उमर सबकी ढल रही है. कोई भी चिरंतन युवक या युवती बन कर नहीं रह सकते. पर आदमी आदमी हो कर आदमी के एकांत को अनदेखा कर दे, इससे बढ़ कर अपराध और क्या हो सकता है! इस दुनिया के बाद एक और दुनिया है, इस जीवन के बाद एक और जिंदगी है, इसका सही पता किसीको नहीं. दूसरे को दुख न दे कर किसीको सुख पहुंचा पाना एक अच्छी बात है, इसको कोई अस्वीकार नहीं करेगा. उत्तर अमरीका की प्रौढ़ा विधवाओं के दुःख के बारे में हमारे समाज में कोई सोचने वाला है क्या? या उत्तर अमरीका सिर्फ तरुण-तरुणियों का, युवक-युवतियों का देश है, जहां ढलती उमर वालों के लिए स्थान नहीं है? अगर यहां प्रौढ़ों के लिए स्थान है, तो उनके सुख-दुःख की चिंता करना भी क्या उचित नहीं है? कोई विधवा, प्रौढ़ा या बूढ़ी होने के बाद जो एकांत जीवन बिताती है, उसके बारे में किसीने चिंता की है क्या? कभी सोचा है आपने? अमरीका में बूढ़ियों की संख्या बूढ़ों से अधिक है. विधुर बूढ़ों का जीवन भी ठीक हमारी तरह है, हम जैसा ही अकेलापन है उनका भी. क्या इस समस्या का समाधान हो सकता है? मेरी राय में युवा लोग शादी करते समय अगर एक से अधिक पत्नियां ग्रहण करते, मानवीय दृष्टि से एक युवती पत्नी के साथ अगर एक प्रौढ़ा को भी देख लेते, तो अपने आप इस समस्या का समाधान हो जाता. प्रौढ़ा पत्नी और कुछ नहीं, सिर्फ पुरुष का साथ चाहती है. पुरुष से सहायता और आश्रय का साथ चाहती है. विधवाओं और ज्यादा उम्र वाली महिलाओं के प्रति क्या समाज का कुछ भी दायित्व नहीं है?. '. .

मिसेस विलांड ने अपना नाम और पता न बता कर उस पत्र को प्रकाशित कर देने का अनुरोध किया था. और वह चिट्ठी उसी तरह प्रकाशित हुई थी. पर न मालूम कैसे इस बात का पता चर्च के फादर को लग गया. एक दिन बिना बुलाये उन्होंने आ कर मिसेस विलांड को खूब डांटा-फटकारा. मिसेस विलांड डायन है, उनके खून में कहीं पागान का खून बह रहा है और इसलिए इस बुढ़ापे में, पति के मरने के बाद भी ईश्वर की चिंता न करके, चर्च के लिए काम न करके दूसरी शादी की बात सोच रही हैं! समाज में कि

उस असभ्य परंपरा के प्रचलन के लिए, पुरुष अनेक स्त्रियों को ब्याहता है, प्रचार कर रहा है. धिक्कार है उन्हें!

* *

आर्थर से मिसेस विलांड ने एक अच्छी बात सीखी थी. इन पादरियों की बातों पर कभी भी विश्वास न करने की बात. इनके अस्वाभाविक जीवन के लिए वे चिंता भी नहीं करते और अगर करते भी हैं, तो बड़े बेढंगे तरीके से. पादरी के आंखें दिखा कर गालियां बकते समय वह मुजरिम की तरह चुपचाप सुनती रहीं और पादरी के सब कुछ कह चुकने के बाद गंभीर हो कर बोलीं—अब आप जा सकते हैं. मैं अब आपके चर्च की सदस्या नहीं हूं, आप मेरा नाम काट दें.

कब समझ सकेंगे ये धार्मिक लोग दूसरों की समस्याओं को?

उस दिन ब्लोरस्ट्रीट तक बाजार के लिए चली आयी थीं मिसेस विलांड. हर रोज एक ही जगह से खरीदने को मन नहीं करता. फिर अपनी कार भी तो है. उसे भी तो कभी-कभी चलाना है. ब्लोर से यंग स्ट्रीट तक आ कर वह सूटर सड़क पर पहुंच गयी हैं. घर भी नजदीक आ गया है—उस सूट, अंटेरियो के पंद्रहवें मंजिल की कुछ जगह. एक दिन जरूर उनकी लाश इसमें से निकल कर कफन के अंदर जायेगी. हां, उसी कफन के अंदर रहने के लिए, कफन के भयानक अंधकार में अकेली सोयी रहने के लिए शायद अब वह अपने को तैयार कर रही हैं. निःसंगता की परत उनके चारों ओर धीरे-धीरे गाढ़ी होती जा रही है और कफन के रूप में बदलती जा रही है. मिसेस विलांड की इच्छा हुई कि कार के अंदर से कूद पड़ें.

मिसेस विलांड के सर में झटका-सा लगा. हृदय की गति जैसे बंद-सी हो गयी. उन्होंने अपने को संभाल लिया. नहीं, वह मरना नहीं चाहतीं. मरना नहीं चाहतीं. आज रात के डिनर के लिए उन्होंने उस भारतीय छात्र को बुलाया है और आज उसे खिला कर संतुष्ट करेंगी. आज डिनर के लिए कितना सारा काम है! क्या कर रही हैं वह?

* *

उस विदेशी छात्र से मिलने के लिए यूनिवर्सिटी की उस खास बिल्डिंग की याद आयी उन्हें. किसीने बताया था कि अपने एकांत को दूर करने का एक अच्छा तरीका यह है कि बाहर से आने वाले छात्रों को डिनर पर बुला लो. देश-विदेश की बातें होंगी. उनके बारे में, उनके रीति-रिवाजों के बारे में पता चलेगा और उन्हें अपनी शिक्षा, रीति-रिवाज और सभ्यता के बारे में बता सकोगे. यह बात उन्हें जंच गयी और वह यूनिवर्सिटी में विदेशी छात्रों से मिलने के लिए उस बिल्डिंग की ओर चल पड़ीं. शाम को वहां गाना, बजाना, नाच आदि होते हैं. कोई चेस खेलता होगा, तो कोई कार्ड्स, तो कोई कैरम. कोई अपने बंधु या बांधवी के साथ गपशप में मशगूल मिलेगा. घर के अंदर घुसने लगेगा, जैसे सिर्फ वहीं प्राण है, जीवन और स्फूर्ति है. बिल्डिंग में पहुंच कर उनकी आंखें किसीको ढूंढने नहीं निकलीं? किसे [illegible] मेहमान बनायेंगी? मेहमान तो दोनों तरफ तेज धार वाली छुरी है. तुम्हारी शाम को वह शानदार भी बना सकता है. शानदार भी बना सकता है और जहरभरी भी. किस युवक को बुलाने पर उन्हें शांति मिलेगी? मन बहल जायेगा? गोरे-गोरे दिखने वाले युवा-युवतियों पर उनकी आंखें नहीं टिकीं—आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, इंग्लैंड और यूरोप के अन्य देशों से जो लोग आये थे वे उन्हें एक से लगे. ये सब उसी जाति के लोग हैं, जिनकी सभ्यता उन्हें धर्म और सभ्यता के नाम पर एकांत के बीच घोंट-घोंट कर मार डालने पर उतारू है. नहीं, इन्हें नहीं. यूरोप या आस्ट्रेलिया वालों की मनोवृत्ति भी एक-सी ही होगी. देश दूसरा होने से क्या हुआ? घूरती हुई उनकी आंखों ने देखा, दो नीग्रो युवा और उनके बीच बैठी एक कानाडीयन युवती हंसते हुए बातों में मशगूल थे. उनकी हंसी में थकावट नहीं थी. उनके हृदय में से जैसे आवाज आयी—नहीं, इन नग्रो में से कोई ठीक नहीं होगा, उनकी आत्मा के साथ कोई परिचय तो है नहीं और क्या पता, वे पूरी तरह विपरीत भी हो सकते हैं. मिसेस विलांड सबको देखती हुई, सर हिलाती हुई ड्राइंग रूम में से आफिस रूम में घुस गयीं. मिसेस रिडेल वहां काम करती हैं. वह उन्हें पहले से जानती हैं. उनके सामने कुर्सी पर चिंतित-सा एक लड़का बैठा था. उन्हें लगा, हो सकता है, यह युवक इटालियन हो और शायद दरिया किनारे सूर्यस्नान के कारण शरीर का रंग टेंज हो गया हो.

* *

—हाइ, मिसेस विलांड, गुड इवनिंग!

—हाऽऽइ, गुड इवनिंग मिसेस रिडेल!

मिसेस रिडेल ने युवक से उनका परिचय कराया यह है मनोज. भारत से आया है.

—ओऽ, भारत से!

मिसेस विलांड खुशी से भर उठीं और मनोज के साथ हाथ मिलाया.

—मिसेस विलांड, आपको पता है, मनोज की क्या समस्या है? इसकी भारत लौट जाने की इच्छा है. इसे यह जगह अच्छी नहीं लगती. यहां तक कि हमारे यहां की लड़कियां तक इसे पसंद नहीं.

—ओऽ, सच!

मिसेस विलांड ने मनोज को देखा. उनकी बातचीत से मनोज का चेहरा लाज से गुलाबी हो उठा.

मनोज ने हंसते हुए कहा—नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं. मुझे आपका देश खूब अच्छा लगता है. . .सिवा इसके कि यहां सर्दी कुछ ज्यादा है. . .

मिसेस रिडेल ने व्यंग्य किया—लोगों के बरताव में मिल रही ठंडक के बारे में कह रहे हो शायद!

—नहीं, नहीं मैं बर्फ के बारे में—सर्दी के बारे में कह रहा हूं.

मिसेस विलांड खुश हो गयीं मनोज के इस बच्चों जैसे जवाब से. उनके हृदय ने जैसे उनसे कहा कि यह युवक ही तेरा मेहमान होने के लायक है. यह शर्मीला युवक तेरा ही है! भारत छोड़ कर आया हुआ यह युवक

यहां अकेला है. और अकेलेपन के दुःख का अनुभव करने वाला ही किसी के अकेलेपन को दूर कर सकता है. उसी समय मिसेस विलांड ने मनोज को डिनर के लिए आमंत्रित किया. और मनोज ने भी उस आमंत्रण को सहर्ष स्वीकार कर लिया.

इतने थोड़े-से परिचय पर भी डिनर के लिए निमंत्रण पा कर मनोज की आंखों ने उसकी दृष्टि ने जैसे मिसेस विलांड का आलिंगन कर लिया. वह बोला था––मिसेस विलांड, बहुत-बहुत धन्यवाद! आपको देखकर मुझे अपनी मां की याद आ रही है. बेचारी मुझे खूब याद करती होगी. आपका चेहरा उससे क़ाफी मिलता है. मैं इस शुक्रवार शाम को आपके घर जरूर आऊंगा.

उसकी बातें सुन कर मिसेस विलांड की छातियों में जैसे कुछ अजीब-सी हलचल हो उठी. वह विह्वल हो उठी. उनकी इच्छा हुई कि मनोज को छाती से लगा ले. सिर्फ उसी को तो वह अब तक ढूंढ़ रही थीं! पर अपने आपको संभाल लिया उन्होंने. मिसेस रिडेल कुछ लिख रही थीं. उनका घर कहां है, किस तरह जाना पड़ेगा, वगैरह अच्छी तरह मनोज को बता कर वह मिसेस रिडेल और मनोज से बिदा ले कर चली आयीं.

★ ★

उसे खिलाने के लिए, उसका मन संतुष्ट करने के लिए उन्हें अब तैयारी में लगना पड़ेगा. घर छोड़ कर आने के बाद, हो सकता है, लड़के ने अच्छी तरह

तक नहीं.

मिसेस विलांड ने अपने रूम का दर
खोला. कार को पार्किंग स्थान में पार्क करके आयी
लिफ्ट से सामान लाने में कोई तकलीफ नहीं हुई.
खोलते ही टोलीफोन की घंटी बजने की आवाज
शायद देर से बज रही हो. किसका फोन होगा?
दौड़ कर रिसीवर उठाया. शायद मनोज का फो
हो सकता है, घर का नंबर भूल गया हो और
पूछने के लिए फोन किया हो. इस शहर में
गलियां हैं! कितना फूहड़ प्लान है इस शहर का!

पर फोन के दूसरी ओर मिसेस रिडेल थीं.
नहीं. कह रही थीं, मनोज ने बहुत दुःख प्रकट किया है
आपके यहां आज खाना खाने के लिए नहीं पहुंच स
उसकी गर्ल फ्रेंड ने उसे किसी जरूरी काम से मां
बुलाया है. वह आज सुबह से मांट्रियल चला ग
आपको फोन करके बताने को कह गया था. कल
उसने भी कोशिश की थी. . .

मिसेस विलांड ने रिसीवर रख दिया. इसके
वह अपने पुराने मकान के चेस्टर फिल्ड सोफा या
नेंटल बेड पर नहीं, गलीचे पर बैठ गयीं. दरवाजा
था. और दरवाजे से सटा हुआ पड़ा था खरीदा हुआ
सामान. . .

□□

(अनुवाद : श्रीनिवास उद

केवल बिनाका टॉप टूथपेस्ट ही मुँह की पूरी रक्षा करता है

ARMS-CBT/20-608 HN

देखिये!
बिनाका टॉप का
विशेष फैलने वाला
तत्व किस प्रकार
काम करता है।

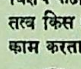

काँच की प्लेट में थोड़ा-सा पानी डालिए। थोड़ा-सा कोयले का चूरा या रंगीन पाउडर पानी पर छिड़किए।

पानी में बिनाका टॉप घोलिए। मिश्रण की एक बूंद काँच की प्लेट के बीचों-बीच डालिए।

अब देखिए कि बिनाका टॉप कितनी तेज़ी से चारों तरफ़ फैलता है... पानी की सतह पर फैले हुए मैल को काटता है और पानी कितना साफ़-सुथरा हो जाता है।

Binaca
top
toothpaste

बिनाका टॉप बिल्कुल इसी तरह काम करता है। इसमें एक विशेष फैलने वाला तत्व होता है जो तुरंत आपके मुँह में फैल जाता है और दांतों में सड़न पैदा करने वाले कीटाणुओं का नाश करता है और सांस की दुर्गंध को दूर करता है। यह आपके मुँह की पूरी रक्षा करता है।

बिनाका टॉप टूथपेस्ट
व बिनाका टूथब्रश मुँह की पूरी रक्षा के लिए

सीबा-गायगी

चौथा समांतर लेखक सम्मेलन : एक रिपोर्ट (३)

गत २७ २८, २९ और ३० जनवरी को मद्रास तथा कालीकट में समांतर लेखकों का चौथा सम्मेलन हुआ, जिसमें हिंदी के अलावा डोगरी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु तथा मलयालम के लेखकों ने भी भाग लिया. मद्रास तथा कालीकट में हुई दो गोष्ठियों की रिपोर्ट आप पिछले दो अंकों में पढ़ चुके हैं.

सांस्कृतिक कार्यक्रम लंबा नहीं था. दक्षिण भारतीय लोकनृत्यों के तीन आइटम थे, जो काफी आकर्षक थे.

ग्यारह बजते-बजते लोग गेस्ट-हाउस लौट आये. खाना खाने के बाद उम्मीद यह की जाती थी कि पिछली रात के सफर और आज की लंबी गोष्ठी के बाद लोग आराम करेंगे. लेकिन हुआ इसके विपरीत. खाना खा कर लोग खुली हवा और उजली चांदनी में घूमने बाहर निकल आये. और एक खुले मैदान में बिछी बालू पर वृत्ताकार बैठ गये.

यहीं पर बातों के दौरान, २८ जनवरी की रात, कोई बारह बजे, चौथे समांतर की पहली अनौपचारिक गोष्ठी शुरू हुई.

बातचीत के लिए विषय पूर्व-निर्धारित नहीं था. न कोई अध्यक्ष था, न ही कोई मुख्य वक्ता. एक तरह से सभी वक्ता और सभी श्रोता थे. बातचीत के बीच इब्राहीम शरीफ ने सुझाव रखा कि क्यों न हम इस गोष्ठी में आज के परिवेशगत यथार्थ की व्याख्या कर लें? सभी ने इस बात का स्वागत किया.

बातें छिटपुट तरीके से ही शुरू हुईं और धीरे-धीरे इस मुद्दे पर पहुंचने लगीं कि इस देश में प्रतिक्रियावादी ताकतें दिनों-दिन मजबूती पकड़ती जा रही हैं. विडंबना यह है कि अपने आपको समाजवादी, वामपंथी और प्रगतिशील कहने वाले राजनीतिक दल भी सत्ता को हथियाने और महज अराजकता फैलाने के उद्देश्य से सामंतवादी, दक्षिणपंथी और सांप्रदायिकतावादी तत्वों से जा मिले हैं. इस स्थिति ने आम आदमी की सोच को दिशाहीन कर दिया है. वह कन्फ्यूज हो गया है. . .लेकिन यह स्थिति ज्यादा देर तक नहीं बनी रह सकती. जन सामान्य का जागरूक तबका सही और गलत को समझने की सामर्थ्य रखता है. . . बल्कि इस दिशा में उसका चिंतन शुरू भी हो गया है.

दामोदर सदन ने कहा कि जन सामान्य में दक्षिणपंथी तत्वों को ले कर जो क्षणिक मोह जागा था, अब वह भंग हो रहा है और वह इन तत्वों की असली शक्ल को पहचानने लगा है.

फिर सवाल यह उठा कि क्या ऐसी स्थिति में लेखक तटस्थ हो कर बैठा रहे या अपनी समझ के आधार पर बदलते संदर्भों में एक सक्रिय भूमिका अदा करे?

पूंजीवादी प्रचारतंत्र की बात करते हुए से. रा. यात्री ने कहा कि अकसर हमें स्थितियों की सही जानकारी प्राप्त नहीं होती. पूंजीवादी प्रचारतंत्र हर चीज को अपने नजरिये से तोड़-मरोड़ कर या अपना रंग दे कर हमारे सामने पेश करता है. ऐसी हालत में अकसर कोफ्त होने लगती है.

लेखकीय मजबूरियों की बात करते हुए आबिद सुरती ने एक अन्य प्रश्न उठाया. उन्होंने कहा कि वह मूलतः लेखक बने रहना चाहते हैं. लेकिन जीविकोपार्जन के लिए उन्हें बहुत कुछ करना पड़ता है—जैसे हास्य और रोमांच-कथाओं वाले व्यंग्य-चित्र बनाने पड़ते हैं. क्या यह अवांछनीय स्थिति है?

कामतानाथ ने आबिद की इस बात के उत्तर में कहा कि यह कतई अवांछनीय नहीं होना चाहिए. लेखक भी आम आदमी होता है और आम आदमी की ही तरह, जिंदा रहने के लिए, उसे कोई न कोई काम तो करना ही पड़ेगा. शर्त सिर्फ यह है कि अपने इस काम को वह अपने विचारों के रास्ते में बाधा न बनने दे—अपनी संबद्धता और संलग्नता को न भूल जाये.

बातों का सिलसिला काफी देर तक चलता रहा. बातचीत के दौरान अनेक अन्य विषय भी सामने आये—जैसे दक्षिण-पूर्व और मध्य एशिया में घटी हाल की घटनाएं, चिली, दायगो गार्सिया और समाज में महिलाओं की स्थिति आदि.

रात काफी हो चुकी थी. आकाश-रेखा पर नारियल के पेड़ों के साये गहराने लगे थे. तभी गोष्ठी समाप्त हुई—इस निर्णय के साथ कि प्रातः गेस्ट-हाउस के कमरा नंबर एक में सब लोग दुबारा एकत्र होंगे और आज की गोष्ठी में उठे विषयों पर विस्तार से बातें की जायेंगी.

* *

दूसरे दिन प्रातः नाश्ते के बाद विश्वविद्यालय के गेस्ट-हाउस के कमरा नंबर एक में ही गोष्ठी जुटी.

कमलेश्वर ने बात उठायी. उन्होंने कहा कि मूल प्रश्न यह है कि एक लेखक और उससे भी आगे एक नागरिक के रूप में हमारी चिंताएं क्या हैं? जो भी हो, हम अपने आपको राजनीति से काट कर अलग नहीं रख सकते. तब प्रश्न यह उठता है कि हम उससे किस स्तर पर और किस समझदारी से जुड़े हैं अथवा जुड़ना चाहते हैं.

हिमांशु जोशी ने बात को आगे बढ़ाया. उन्होंने कहा कि पिछले सत्ताइस वर्षों से हम निरंतर संक्रमण की स्थिति में हैं. आम आदमी के पक्ष में निर्णय लिये जाने के बावजूद उन्हें टाला जाता रहा है. राजनीति की आड़ में गलत लोगों द्वारा जातिवाद, प्रांतीयता, सांप्रदायिकता को लगातार प्रोत्साहन दिया जाता रहा है. प्रतिक्रियावादी शक्तियों को बढ़ावा मिलता रहा है. हमें राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय, दोनों ही परिप्रेक्ष्यों में इसे समझना होगा. यदि एक जबरदस्त वैचारिक क्रांति जल्दी ही नहीं होती, तो स्थगन की यह राजनीति बढ़ती ही चली जायेगी. पिछले दौर के साहित्यकारों ने इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया. परंतु हम, यानी आज के साहित्यकार, इस स्थिति से किनाराकशी नहीं कर सकते. महज आम आदमी की कहानियां लिखने से शायद काम नहीं बनेगा. हमें वैचारिक तथा रचनात्मक, दोनों स्तरों पर और अधिक सक्रिय होने की जरूरत है.

इब्राहीम शरीफ ने बातों को अधिक स्पष्ट करना चाहा. उन्होंने कहा कि स्थितियों के सामान्यीकरण के हमारी बात साफ नहीं होगी. एक बात निश्चित है कि इस देश या किसी भी देश में बदलाव या परिवर्तन राजनीतिक पार्टी या पार्टियों द्वारा ही संभव है. अत: हमें चाहिए कि हम इस देश में जो भी राजनीतिक पार्टियां हैं, उनकी नीतियों तथा उनके कार्यक्रमों की तुलनात्मक व्याख्या और विश्लेषण करें.

शरीफ की इस बात को आगे बढ़ाने के लिए यह जरूरी समझा गया कि कामतानाथ अपना लेख 'सामाजिक क्रांति और साहित्यकार की भूमिका' पढ़ें ताकि उससे उठने वाले सवालों को ले कर बहस को आगे बढ़ाया जा सके.

* *

कामतानाथ ने अपने संक्षिप्त लेख में कहा कि क्रांति के संदर्भ में साहित्यकार की अहम होने के बावजूद, सीमित भूमिका ही हो सकती है. क्रांति की अग्रिम पंक्ति का सिपाही वह नहीं हो सकता. यह काम तो राजनीतिक पार्टियों के निर्देशन में देश का सर्वहारा या मजदूर-किसान वर्ग ही करेगा. उन्होंने आगे कहा कि क्रांति आकस्मिक झटके से आने वाली चीज नहीं होती. वह एक प्रक्रिया और तैयारी का परि होती है. इस प्रक्रिया में लेखक एक कैटेलिटिक एजेंट का का कर सकता है, क्योंकि वह अप प्रतिबद्ध रचनाओं द्वारा लोगों में क्रांति के प्रति उचित मानसिक बनाने में सहायक हो सकता है. उन्होंने अपने लेख में हिंदी के कुछ क्रांतिकारी लेखकों के रूमानी भटकाव का भी जिक्र किया जिसके तहत वे हर समय लेखक को बंदूक की गोली में तब्दील कर देने की बातें करते रहते हैं. सही समझदारी की कमी और बदलाव के प्रति बेचैनी कभी कि लेखक को एक दूसरे स्तर पर जनवादी आंदोलन से भी तोड़ देती है और वह प्रतिक्रियावादी शक्तियों के झूठे प्रचार का शिकार हो जाता है.

* *

कामतानाथ के लेख में उठाये गये मुद्दों से अपनी सहमति व्यक्त करते हुए सुभाष पंत ने कहा कि यह सही है कि क्रांति-क्रांति चिल्ला कर साहित्यकार क्रांति नहीं कर सकता. उसका सही कार्य क्रांति के लिए उपयुक्त मानसिकता का निर्माण करना ही है. इस संबंध में राजनीतिक पार्टियों की भूमिका को स्वीकार करते हुए उन्होंने आगे कहा कि कठिनाई तब होती है जब ज्यादातर राजनीतिक पार्टियां एक ही शब्दावली में बात करती हैं.

आशीष सिन्हा ने बात को मूल से उठाते हुए कहा कि सबसे पहले हमें वर्तमान स्थिति में यह विश्लेषण करना होगा कि देश में क्रांति की संभावनाएं किस सीमा तक हैं और उससे भी एक कदम आगे जा कर यह विचार करना होगा कि उस क्रांति का स्वरूप क्या होगा.

स्वयं द्वारा उठाये गये अपने प्रश्न का उत्तर देते हुए आशीष ने आगे कहा कि वर्तमान स्थितियों को ध्यान में रखते हुए खूनी क्रांति की कल्पना करना

समांतर लेखकों की पहली अनौपचारिक गोष्ठी में भाग लेने वाले कुछ लेखक

भारी भूल होगी. अतः क्रांति को——सामाजिक एवं आर्थिक——हम एक क्रमिक परिवर्तन के रूप में लें. मामूली आदमी की स्थिति में बेहतरी की दिशा में थोड़ा-सा बदलाव भी क्रांति की दिशा में एक बढ़ता हुआ कदम है.

इब्राहीम शरीफ ने कहा कि पूंजीवादी-दक्षिणपंथी तत्व देश के सामान्य जन को भटकाने में लगा हुआ है.

शरीफ के वक्तव्य के संदर्भ में हिमांशु जोशी ने कहा कि हम स्थितियों का सही जायजा ले कर ही सही निर्णयों तक पहुंच सकते हैं.

राम अरोड़ा ने रचनाओं की संगति अथवा विसंगति का प्रश्न उठाते हुए कहा कि पाठक की मानसिकता की बातें तो हम बहुत करते हैं, जरूरत इस बात की भी है कि हम लेखकों की मानसिकता की बात भी करें.

★ ★

तभी कमलेश्वर ने बात को नये सिरे से शुरू किया. उन्होंने कहा कि इस देश में दक्षिणपंथी राजनीति ने चीजों को स्थगित करने या कराने का कार्य अधिक किया है. स्वाभाविक है इससे जन-असंतोष बढ़ा है. परंतु इस असंतोष को सही ढंग से चैनेलाइज करने का प्रयत्न नहीं किया गया. असंतोष होना अथवा उसका पैदा किया जाना एक बात है और उसका इस्तेमाल बिल्कुल दूसरी. फासिस्ट ताकतें भी जन-असंतोष की उर्वरा भूमि में ही पनपती हैं. अतः असंतोष की बात करते समय उसके इस्तेमाल की राजनीति से भी हमें सतर्क रहना चाहिए.

हिमांशु जोशी ने कहा कि इस सारी स्थिति को हमें व्यापक स्तर पर समझना होगा. उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि यदि प्रगतिशील शक्तियां सक्रिय और सावधान नहीं रहतीं, तो जन-असंतोष का फायदा प्रतिक्रियावादी शक्तियां ही अधिक उठा ले जायेंगी.

(क्रमशः)

फिल्में

दो निर्माणाधीन फिल्में : 'कादंबरी' और 'आंखिन देखी'

'कादंबरी' 'मधु क्रिएशन पिक्चर्स प्राइवेट लिमिटेड' की निर्माणाधीन फिल्म है, जिसकी कहानी पंजाबी की प्रसिद्ध कवयित्री और लेखिका अमृता प्रीतम के उपन्यास **'धरती, सागर और सीपियां'** पर आधारित है. यह सशक्त प्रेम-कहानी है.

अमित अपनी मां के साथ रहता है. मां को उसके पिता ने नकार दिया है. मां ने तमाम तकलीफें सह कर उसे अच्छी तरह पाला-पोसा है. अमित से पड़ोस की एक लड़की चेतना प्यार करने लगती है.लेकिन अमित का जीवन मां को समर्पित है. फिर भी क्लीअर अंडरस्टेंडिंग के आधार पर चेतना अमित को आत्मसमर्पण करती है और उसके बच्चे की मां बन जाती है. अमित अपनी मां के साथ पूना चला जाता है और एक अच्छा डाक्टर बन जाता है. मां को किसी तरह चेतना के प्रति अमित के लगाव का पता चलता है तो वह विवश करके चेतना से उसकी शादी करा देती है.

कथ्य की दृष्टि से इस फिल्म में काफी बोल्डनेस है. इसके निर्देशक हैं——एच. के. वर्मा. नायक और नायिका की भूमिका में विजय अरोड़ा और शबाना आजमी हैं. संगीत उस्ताद विलायत खां दे रहे हैं.

★ ★

'दस्तक' जैसी श्रेष्ठ फिल्म देने के बाद प्रख्यात लेखक राजेंद्र सिंह बेदी अब नयी फिल्म **'आंखिन देखी'** बना रहे हैं. कहानी में २३ फरवरी, १९३० से ५ मई १९३० के दौरान का घटनाक्रम है. यह सही अर्थों में गांधीवादी सिद्धांतों पर अछूतोद्धार की कथा है जो आजादी की लड़ाई के साथ जुड़ी हुई है. इसका नायक एक ब्राह्मण युवक है और नायिका हरिजन युवती. बेदी साहब के अनुसार यह प्रचार नहीं, बल्कि 'इट इज ए मैटर ऑफ फेथ एंड मॉरल'. इसके नायक और नायिका एकदम नये कलाकार हैं. संगीत जे. पी. कौशिक का है और गीत प्रख्यात डोगरी कवयित्री पद्मा सचदेव के. □□□

ऊपर—'आंखिन देखी' के एक दृश्य में सुमन सिन्हा और सुरेश भगत

नीचे—'कादंबरी' में शबाना आजमी और विजय अरोड़ा.

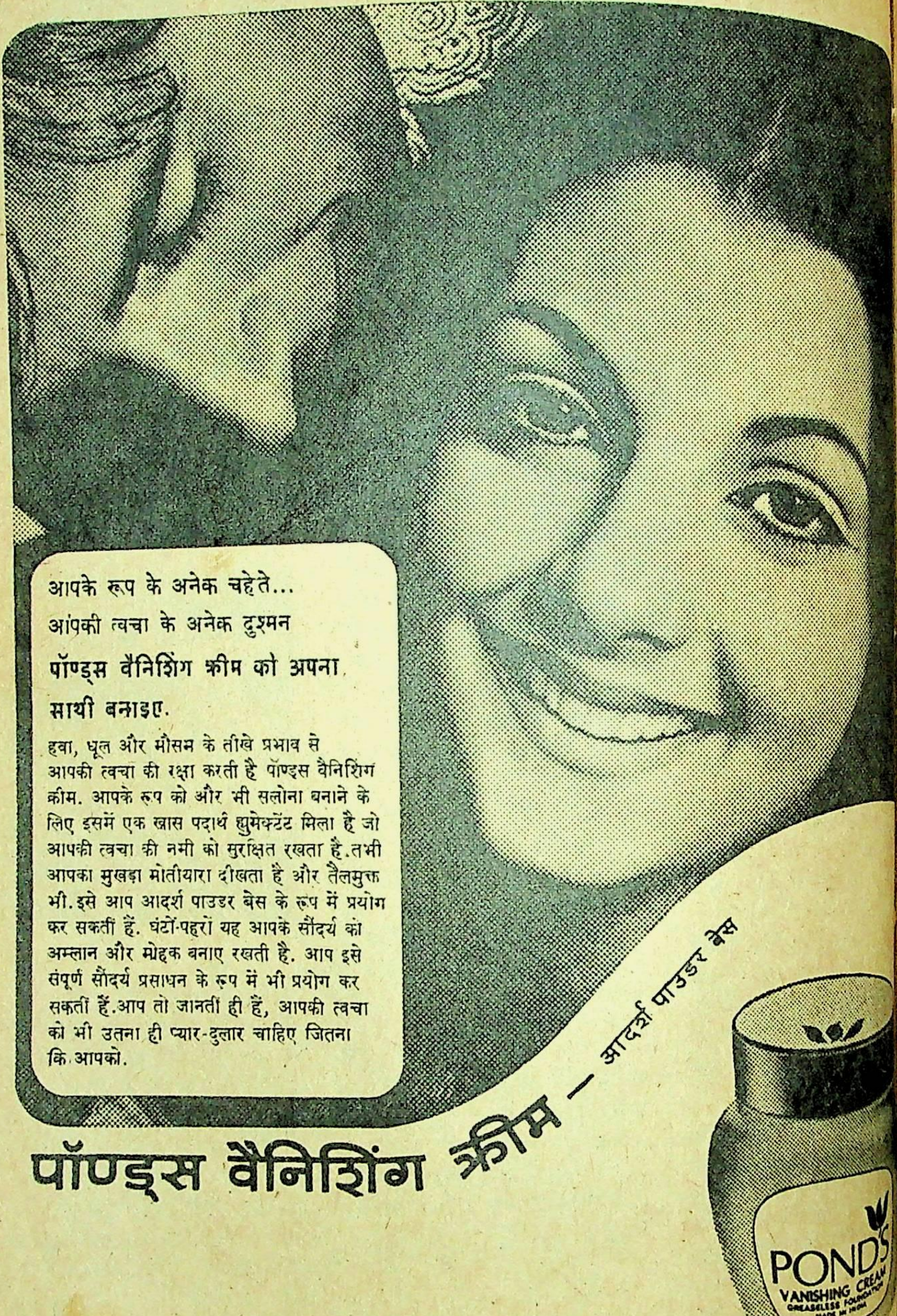

आपके रूप के अनेक चहेते...

आपकी त्वचा के अनेक दुश्मन

पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम को अपना साथी बनाइए.

हवा, धूल और मौसम के तीखे प्रभाव से आपकी त्वचा की रक्षा करती है पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम. आपके रूप को और भी सलोना बनाने के लिए इसमें एक खास पदार्थ ह्युमेक्टेंट मिला है जो आपकी त्वचा की नमी को सुरक्षित रखता है. तभी आपका मुखड़ा मोतीयारा दीखता है और तैलमुक्त भी. इसे आप आदर्श पाउडर बेस के रूप में प्रयोग कर सकतीं हैं. घंटों-पहरों यह आपके सौंदर्य को अम्लान और मोहक बनाए रखती है. आप इसे संपूर्ण सौंदर्य प्रसाधन के रूप में भी प्रयोग कर सकतीं हैं. आप तो जानतीं ही हैं, आपकी त्वचा को भी उतना ही प्यार-दुलार चाहिए जितना कि आपको.

पॉण्ड्स वैनिशिंग क्रीम — आदर्श पाउडर बेस

POND'S
VANISHING CREAM
GREASELESS FOUNDATION
MADE IN INDIA

चीज़ब्रो-पॉण्ड्स इन्कॉर्पोरेटेड (सीमित दायित्व सहित यू. एस. ए. में संस्थापित)

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं

सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

२ ऐस्प्रो लीजिये

माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है

ASPRO
ASPRO

ASPRO

Nicholas

A.G.62 HN

MEDIMIX
AYURVEDIC
TOILET SOAP

- PIMPLES
- BLACK HEADS
- TINEA
- PRICKLY HEAT
- DHOBIES ITCH
- SKIN ITCH
- DANDRUFF

DOCTORS PRESCRIBE FOR SKIN DISEASES

MEDIMIX
MEDIMIX
AYURVEDIC TOILET SOAP
MEDIMIX

MEDIMIX AN EXCELLENT TOILET SOAP TOO IT NOURISHES AND BEAUTIFIES THE SKIN

SUBHODAYA

CHOLAYIL PHARMACEUTICALS
1, Palayakara Street, Madras-600 023.
Distributors for East Bombay: M/S. VEENUS EXPORTS, Ramachandani Cottage, Caves Road, Jogeswari (East Bombay) 400 006. Phone : 575536

गांधी साहित्य

संपूर्ण गांधी वाङ्मय

बापू ने जो कुछ कहा या लिखा, उसका संपूर्ण संग्रह लगभग पचासी खंडों में. गांधी वाङमय तथा भारतीय इतिहास के अध्येता के लिए इन खण्डों में बहुमूल्य सामग्री है. ६० खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं और शेष तैयार किए जा रहे हैं.

प्रथम खंड (साधारण)	रु.	७.५०
द्वितीय खंड (सजिल्द)	रु.	५.५०
तृतीय व उससे आगे के खंड (प्रत्येक)	रु.	७.५०
प्रथम ६० खंड एक साथ खरीदने पर रियायती मूल्य	रु.	३५०.००
महात्मा गांधी (चित्रावली)		
गांधी जी का अलौकिक जीवन-आकर्षक चित्रों में.		
३२.५×२३.५ से. मी. साइज में सुंदर आर्ट पेपर पर.	रु.	१२.५०
बापू के आशीर्वाद (राजे के लिए गांधी जी का एक विचार) संकलन : आनंद टी. हिंगोरानी)	रु.	६.००
गांधी शतदल (संकलन : सोहनलाल द्विवेदी)	रु.	५.००
मोहनदास कर्मचंद गांधी (ले. नरेंद्र शर्मा)	रु.	४.२५
महात्मा गांधी का संदेश (ले. यू. एस. मोहन राव)	रु.	२.६०
गांधी कथा (चित्रों में) (ले. एस. डी. सावंत, एस. डी. बादलकर) गांधी जी की आद्योपांत जीवन कथा मनोहारी सतरंग चित्रों में. बच्चों के लिए विशेष आकर्षक	रु.	२.५०
गांधी जी के संस्मरण	रु.	१.७०
सब ईश्वर के प्यारे बेटे छूआछूत से संबंधित गांधी जी के भाषणों का संग्रह	रु.	१.३०
बापू की वाणी (ले. निरंकारदेव सेवक) कविता में गांधी जी के उपदेशों का सारांश	रु.	०.५०

(तथा अन्य कई भाषाओं में रोचक व उपयोगी पुस्तकें डाक खर्च मुफ्त) तीन रुपये से अधिक मूल्य की पुस्तकें वी. पी. पी. से भी भेजी जा सकती हैं.

वृहद सूचीपत्र मुफ्त मंगाएं

प्रकाशन विभाग

पटियाला हाऊस, नई दिल्ली

डी ए वी पी-७५/२६३

बेनेट कोलमन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई-१. दिल्ली आफिस : बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-१. कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०-ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.

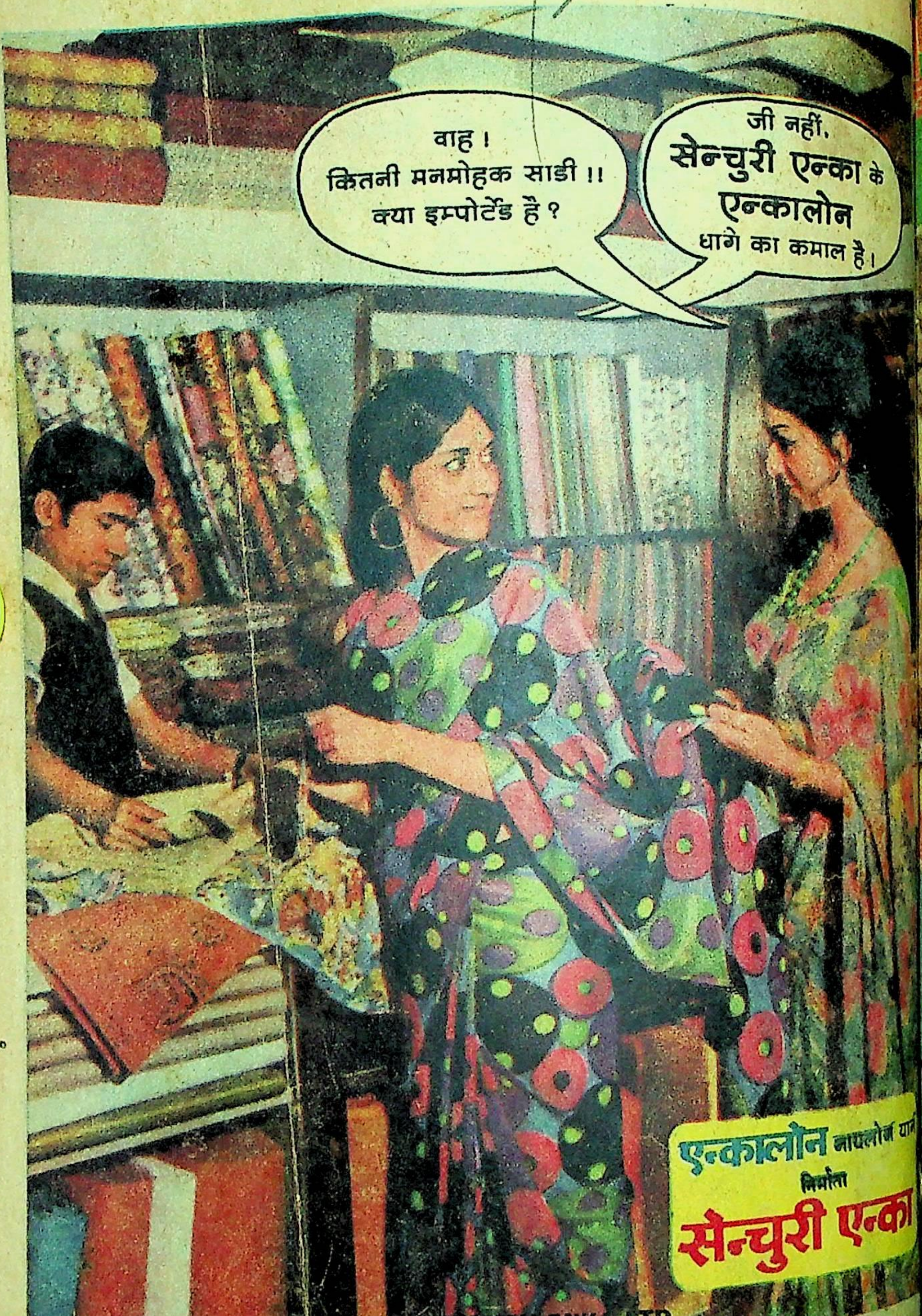
वाह !
कितनी मनमोहक साड़ी !!
क्या इम्पोर्टेड है ?
जी नहीं.
सेन्चुरी एन्का के
एन्कालोन
धागे का कमाल है।
एन्कालोन नायलोन यार्न
निर्माता
सेन्चुरी एन्का
Registered Trade Mark of AKZO N.V., Holland, used under ... CENTURY ENKA LTD.

ीं.
न्का के
लोन
माल है।
न नायलोन यार्न
र्माता
ी एन्का

ारिका

नवंबर १९७५

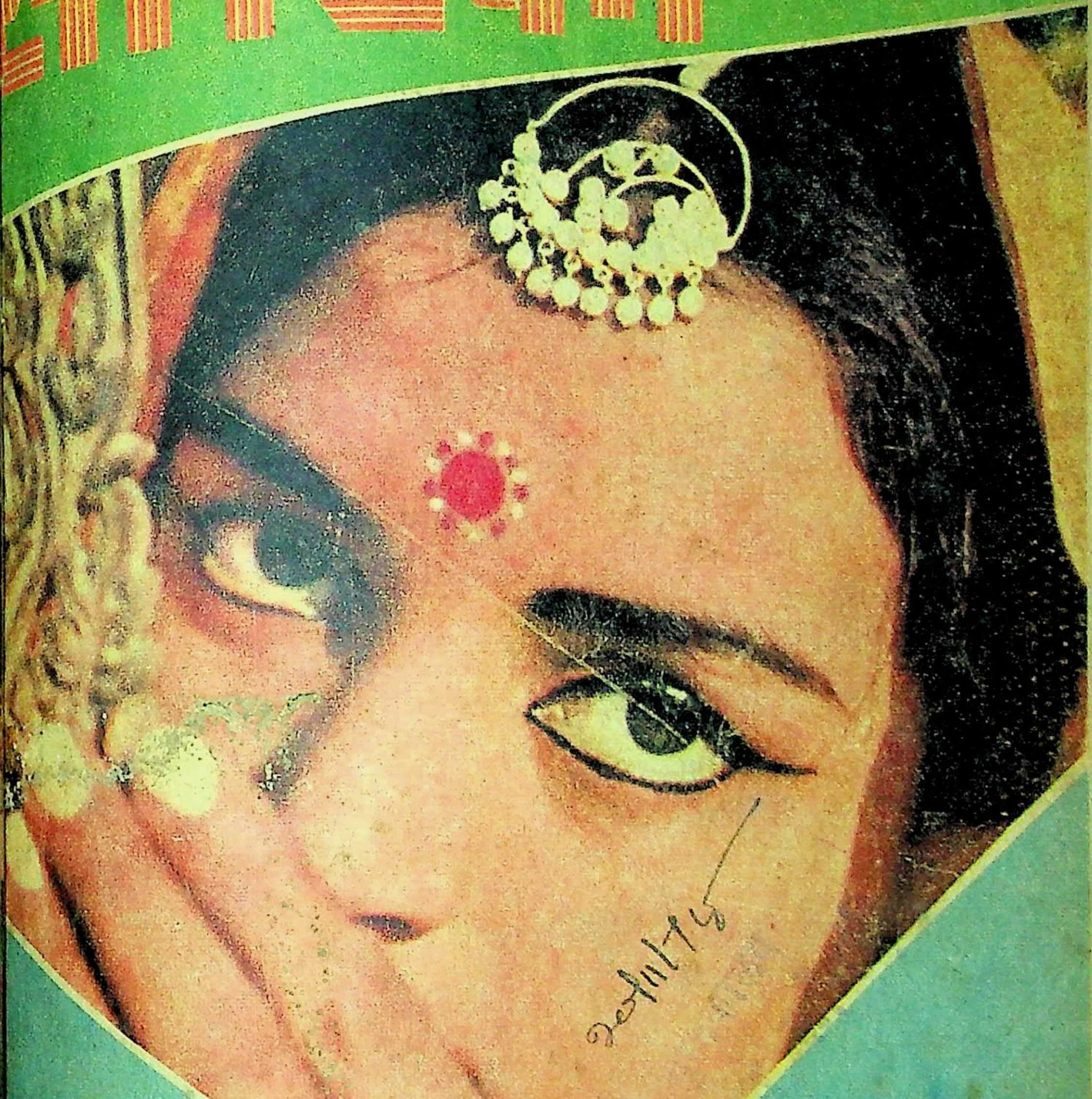

20/11/75

णिका जीवन:
छ अपरिचित आयाम

हमद नदीम कासमी, नूरशाह, जोगेंद्र पाल,
रन, सुहैल अज़ीमाबादी, श्याम संन्यासी
दि की कहानियां, डायरी- अं[illegible]
घुकथाएं तथा टिप्पणियां

थ ही - वीरेंद्र मेंहदीरत्ता, प्रकाश बाथम, हबीब कैफ़ी
रिश, शरत्, अनिल ठंगे की कहानियां

- प्रसंग : [illegible]ज़ा ग़ालिब:
कुछ गलत फहमियां:
प्रकाश पंडित
- अन्य लेखक : संतासिंह सेखों
जसवंतासिंह विरदी,
चंद्रगुप्त विद्यालंकार आदि

कहीं आप सस्ते सौदों के गुलाम तो नहीं हो गए?

"सेकण्ड" किस्म के कपड़ों से बढ़िया कमीज बनाने के चक्कर में मत पड़िए।

कमला के शुद्ध सूती और पॉलिएस्टर ब्लेण्डेड शर्टिंग्स में से बढ़िया कपड़े चुनकर शानदार मनपसंद कमीज बनवाइए। कमला के कपड़े कमीज के बेहतरीन कपड़ों की टक्कर के हैं। अनोखे निराले कमला शर्टिंग्स सादे, धारीदार और विभिन्न प्रिंट्स में मिलते हैं।

कमला से ठाठबाट बढ़ाइए—पैसे बचाइए।

कमला
पॉलिएस्टर और
सूती शर्टिंग्स

कमला वस्त्रों के
सस्ते दाम-धनवान सी शान

Creative Unit-A 1542

आप इनमें से किस पुरुष जैसे दिखते हैं?

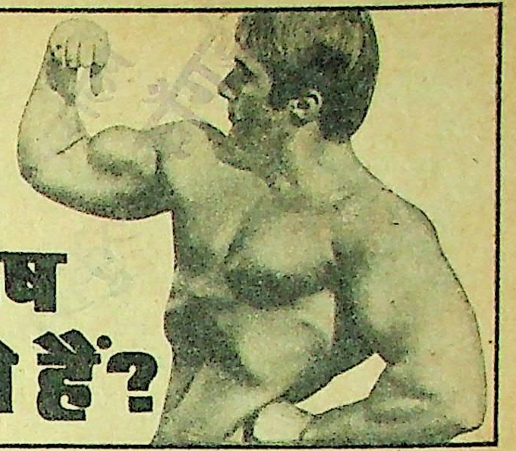

आप अपने शरीर को शक्तिशाली मर्दाना बनाइए— सिर्फ़ १४ दिन में परिणाम देखिए— अन्यथा दाम न दीजिए!

आदम कद शीशे के सामने खड़े होकर, अपनी शारीरिक अवस्था के बारे में खुद भ्रम में पड़ जाना कितना सरल है। क्या सचमुच आपका शरीर वैसा ही मर्दाना है जिससे दूसरे पुरुषों में ईर्षा जाग उठे और स्त्रियों में प्रशंसा? अगर नहीं तो यह खबर सुन आप झूम उठेंगे। एक अति क्रांतिकारी, नये किस्म का साधन बनाया गया है जो आपको वैसाही बदन देगा जैसा आप हमेशा से चाहते रहे हैं और वह भी सिर्फ कुछ सप्ताहों में ही। कल्पना कीजिए... आपकी मांस पेशियाँ फौलादी हो... बाहों की मछलियों का शक्तिशाली मर्दाना उभार... पेड़ के प्रचंड तने जैसी रानें। अब आप इसे हक़ीकत बना सकते है। इस नये साधन का नाम है— बुलवर्कर ३। विश्व के नवीनतम वैज्ञानिक सिद्धांत आइसोटॉनिक/आयसोमेट्रिक पर बने होने के कारण बुलवर्कर ३ आपके पूरे शरीर में प्रचंड नई ताक़त और स्फूर्ति भर देता है— परंपरागत पद्धतियों से कई गुना तेज़ रफ्तार से। और आप स्वयं यह केवल १४ दिनों में सिद्ध कर सकते है।

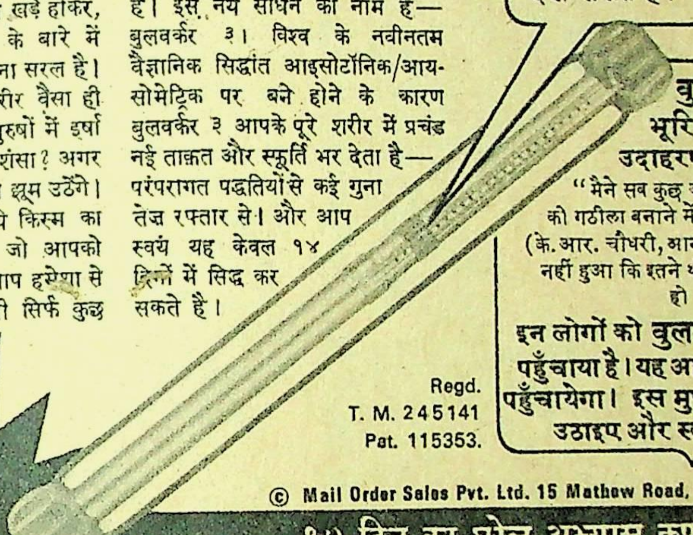

नये पावर मीटर

से आप अपनी मांस पेशियों की शक्ति को दिन-ब-दिन बढ़ते हुए देख सकते हैं।

बुलवर्कर की लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उदाहरण के तौर पर देखिये:

"मैने सब कुछ आजमा कर देखा, किंतु शरीर को गठीला बनाने में बुलवर्कर ३ का जवाब नहीं" (के. आर. चौधरी, आन्ध्र प्रदेश) "मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि इतने थोड़े अभ्यास से इतना कमाल हो सकता है। (ए. हाल बर्नली)

इन लोगों को बुलवर्कर ने अद्भुत लाभ पहुँचाया है। यह आपको भी अद्भुत लाभ पहुँचायेगा। इस मुफ्त प्रस्तावका फायदा उठाइए और स्वयं ही देख लीजिए...

Regd.
T. M. 245141
Pat. 115353.

अब सिर्फ रु. ३९ तथा शेष आसान माहवारी किस्तों में।

© Mail Order Sales Pvt. Ltd. 15 Mathew Road, Bombay 400 004

१४ दिन का घरेलू अभ्यास कूपन

विशेष प्रस्ताव

SB.10

208/39-H

बुलवर्कर सर्विस मेहता महल, १५ मैथ्यू रोड, बम्बई ४०० ००४

मुझे १४ दिन के घरेलू अभ्यास के लिये तुरंत बुलवर्कर-३ भेजिये। यदि मैं परिणामों से संतुष्ट न हुआ तो अपनी पूर्ण रकम तुरंत वापस पाने के लिये सबकुछ १४ दिन की अभ्यास अवधि के भीतर लौटा दूंगा।

कृपया अपनी पसंद के खाने में ☑ निशान लगाइये।

☐ वी.पी.पी. द्वारा बुलवर्कर मिलते ही मैं डाकिये को रु. ३९ (तथा रु. ९ भेजने का खर्च) दे दूंगा। १४ दिन की अभ्यास अवधि के बाद मशीन को अपने पास रखने की हालत में मैं स्वीकार करता हूं कि बाकी रकम १३ अतिरिक्त मासिक किश्तों में प्रतिमाह रु. १९ के हिसाब से चुकाऊंगा। ☐ रु. ४८ चेक/बैंक ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल ऑर्डर द्वारा प्रेषित हैं। उपर्युक्त मासिक किश्त योजना स्वीकृत है। ☐ रु. ४८ मनी-ऑर्डर द्वारा (रसीद नं.........दिनांक.........) प्रेषित हैं। उपर्युक्त मासिक योजना स्वीकृत है। तुरंत नकद रकम अदा कर **रु. ३२ की बचत कीजिये।** ☐ वी.पी.पी. द्वारा बुलवर्कर मिलते ही मैं डाकिये को रु. २६३ (तथा रु. ९ भेजने का खर्च) दूंगा। ☐ मैं रु. २६३ चेक/मनी ऑर्डर/भारतीय पोस्टल ऑर्डर द्वारा प्रेषित हैं। ☐ रु. २६३ मनी ऑर्डर द्वारा (रसीद नं.........दिनांक........) प्रेषित हैं— १४ दिन मे वापसी के विशेषाधिकार सहित।

हस्ताक्षर..............................(अथवा मा बाप के अगर १८ से कम आयु हो).....
नाम..............................
पता..............................

मुफ़्त २०वीं शताब्दी का कॅलेन्डर —सचित्र, रंगबिरंगा, आकर्षक कॅलेन्डर इस कूपन के ५ दिन में भेजने पर!

दस साल से मैं एक ही चाय इस्तेमाल कर रही थी, लेकिन आदत ऐसे बदल गई

मैं सालों से अपने परिवार वालों और मेहमानों को वही चाय पिलाती आ रही थी. अब क्या कहूं, किसी ने कभी तारीफ़ के पुल नहीं बांधे, वैसे किसी ने शिकायत भी नहीं की.

एक दिन एक लड़की आई और सूपर ललित चाय का एक सैम्पल पैकेट दे गई. मैंने चाय बनाई और क्या बताऊं, चाय बहुत ही बढ़िया बनी. मेरे परिवार वालों को भी यह चाय बड़ी पसंद आई. लेकिन जैसे ही पैकेट खत्म हुआ, हमने अपनी पुरानी चाय शुरू कर दी, आदत जो पड़ चुकी थी.

खैर; अगली बार बनिए की दुकान पर गई तो सूपर ललित चाय का पैकेट दिखा, और मैंने यों ही दाम पूछा. दाम सुनकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि इस का दाम हमारी पुरानी चाय से कुछ ही पैसे ज़्यादा था, जब कि स्वाद में कितना फर्क था. मैंने झट से खरीद लिया. उस दिन से हम पीते हैं तो एक ही चाय—सूपर ललित.

श्रीमती मधु चौहान,
बम्बई.

सूपर ललित

अनोखी चाय, सुनहला रंग
पी के रहे, फिर पीने की उमंग

Super lalit
सूपर ललित

सिम्प्लेक्स
वूलन ब्लैंकेट्स

ब्लैंकेट
शाल
ब्लेज़र
मफ़लर

SIMPLEX WOOLLEN MILLS
swm
BOMBAY

सिम्प्लेक्स
वूलन मिल्स, बम्बई-४०० ०६८

IMPRESSIONS 641

COLGATE
DENTAL CREAM
COLGATE
DC.G.50 (R) HN

सांस में दुर्गंध जुदाई कराये...

कोलगेट इनको फिर से मिलाये

कोलगेट डेन्टल क्रीम से सांस की दुर्गंध रोकिये... दंतक्षय का दिनभर प्रतिकार कीजिये!

वैज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि १० में से ७ लोगों के लिए कोलगेट सांस की दुर्गंध को तत्काल खत्म कर देता है और खाना खाने के तुरंत बाद कोलगेट विधि से दांत साफ़ करने पर अब पहले से अधिक लोगों का—अधिक दंतक्षय रुक जाता है। दंत-मंजन के सारे इतिहास की यह एक बेमिसाल घटना है। क्योंकि एक ही बार दांत साफ़ करने पर कोलगेट डेन्टल क्रीम मुंह में दुर्गंध और दंतक्षय पैदा करने वाले ८५ प्रतिशत तक कीटाणुओं को दूर कर देता है। इसका पिपरमिंट जैसा स्वाद भी कितना अच्छा है—इसलिए बच्चे भी नियमित रूप से कोलगेट डेन्टल क्रीम से दांत साफ़ करना पसंद करते हैं।

ज़्यादा साफ़ व तरोताज़ा सांस और ज़्यादा सफ़ेद दांतों के लिए...
दुनिया में अधिक लोग दूसरे टूथपेस्टों के बजाय कोलगेट ही खरीदते हैं।

अधिक सफ़ेद दांतों, अधिक स्वस्थ मसूढ़ों व मुंह में अधिक ताज़गी के लिये **कोलगेट टूथ ब्रश** इस्तेमाल कीजिये। १६ विभिन्न किस्मों में — आपके परिवार में हरेक के लिये अनुकूल।

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका
नवंबर, १९७५
वर्ष : १५; पूर्णांक : १७५

गणिका-जीवन : कुछ अपरिचित आयाम— विशिष्ट खंड

कहानियां

अहमद नदीम कासमी (उर्दू) :सफेद घोड़ा : १२
कन्हैयालाल नंदन : मानकुंवर : एक आपबीती : १६
नूरशाह (कश्मीरी) : अंधेरे-उजाले : २४
जोगेंद्रपाल (उर्दू) : महाभारत का दूसरा युद्ध : ३२
चंदूलाल पटेल (गुजराती) : गुलाब और हिना : ३६
सैयद जमीर हसन (उर्दू) : लुच्ची : ४४

टिप्पणियां-लघुकथाएं

प्राचीन काल में गणिका : श्यामू संन्यासी : १०
समदर्शी : १८
गर्मी की दोहपर : ओविड (रोमन) : १८
बेटियां : १८
सावित्री : सुहैल अजीमाबादी (उर्दू— संक्षिप्तीकरण) : १९
महानगर बंबई : वेश्यावृत्ति के सामाजिक आयाम : रमाकांत आजाद : २०
देवदासी : माताहारी (डायरी का अंश) : २८
ठोकर गली : नसीम दुर्रानी (उर्दू— संक्षिप्तीकरण) : २९
विक्रमोर्वशीयम् : (संक्षिप्त कथा) : ३१
कीमत : ऑलुस गेलियस (रोमन) : ३५

• •

अन्य कहानियां

हबीब कैफी : भाई : ४८
परेश : शहर आ गया, श्यामली : ६०
वीरेंद्र मेंहदीरत्ता : बारात : ६४
प्रकाश बाथम : क्षौर-कर्म : ६८
शरत् : खत : ७२
अनिल डांगे (मराठी) : अमीबा : ८४
ज्योतिस्वरूप तिवारी : बेटियों वाले : ८८

लघुकथाएं

लिकुम और आवो लिपी: (नागा लोककथा) : ५९
दोनों तजे प्राण : (लोककथा) : ६३
नदी का दूसरा किनारा : रामसरूप अणखी (पंजाबी) : ७४
पत्थर के आंसू : नीओबी (ग्रीक) : ७४
पराक्रमी बेलारफोंटीज (ग्रीक) : ७५
मयूराक्षी (ग्रीक) : ७५

स्थायी स्तंभ

पाठकीय : ८
आद्यकथाकार : संतसिंह सेखों (पंजाबी) : जसवंतसिंह विरदी : ५२
संतसिंह सेखों : भत्ता : ५६
कृतियां : रा. अ., चेतन आर्य, मुद्गल : ७६
प्रसंग : गालिब : कुछ भूलें, कुछ भ्रांतियां : प्रकाश पंडित : ८०
विविधा : उपमन्यु : ८३
फिल्में : ८७

विशिष्ट टिप्पणी

कहानी की लोकप्रियता और शक्ति में उतार : चंद्रगुप्त विद्यालंकार : ७८

गोष्ठी रिपोर्ट

चौथा समांतर लेखन सम्मेलन : ९०
● आमुख : राजनारायण शर्मा

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

अगस्त अंक

● **डॉ. बी. पी. एस. निगम, प्रधान चिकित्सक, शासकीय आयुर्वेदिक औषधालय, कानाकाकड, झाबुआ (म. प्र.) से लिखते हैं :**

'सारिका' के अगस्त-अंक को श्रेष्ठ अंक मानने पर मजबूर होना पड़ा. **'नींद', 'भाले पर लटकी इनसाफ की तराज़ू', 'पायदान'** आदि कहानियां अपने आप में पाकिस्तान का आधुनिक इतिहास समेटे हुए थीं. लघुकथाओं और अन्य लेखों ने इस अंक को संवारा है. अन्य कथाओं में **'आत्म-कथन'** अच्छी रही. . . ☐

● **श्री सतीश क्षेत्रपाल, दल्ली-राजहरा, दुर्ग से लिखते हैं :**

'सारिका' सचमुच बधाई की पात्र है कि हम जैसे व्यस्त ढर्रे में जीने वाले लोगों को आज के साहित्य के संपर्क में रखती है. 'पांच भाषाओं के पाकिस्तान' वाला अगस्त अंक सही में पाकिस्तानी आबोहवा का थर्मामीटर है. . . श्रीमती अनीता औलक ने **'चंद सतरें और'** के माध्यम से राकेश जी के जिस व्यक्तित्व का परिचय दिया है, वह हम लोगों के लिए एक उपलब्धि है, क्योंकि केवल पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ कर उनका जो परिचय हम लोगों ने पाया था, वह अधूरा ही था (अब ऐसा लगता है). . . ☐

● **डॉ. जवाहर आजाद, धीर भवन, फगवाड़ा (पं.) से लिखते हैं :**

'सारिका' का ऐतिहासिक दस्तावेज! पांच भाषाओं का पाकिस्तान! कथा-यात्रा के इस श्रेष्ठ खंड के प्रस्तुतीकरण पर साधुवाद! अंक की कहानियों में **'कर्ज'** (अहमद नदीम कासमी) सामान्य जन की कहानी है. इसका नायक रहमान मेरे अपने अंदर का आदमी लगा. और **'हस्सू चाचा'** (फारिग बुखारी) में पाठक की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त करने वाले पात्र का चित्रण किया गया है. इसे बार-बार पढ़ने को जी चाहता है. **'भाले पर लटकी इनसाफ की तराज़ू', 'शंदी गुल', 'पायदान', 'कच्चे कोठों का गीत'**—किस-किसकी तारीफ करूं? पाकिस्तान के लेखकों की श्रेष्ठतम् रचनाओं का गुलदस्ता भारतीय पाठकों के समक्ष रख कर **'सारिका'** ने सराहनीय कार्य किया है. ☐

● **श्री उमाशंकर, सहायक, प्रखंड विकास कार्यालय, देसरी, वैशाली (बिहार) से लिखते हैं :**

'सारिका' ने आम आदमी की जिंदगी की कुछ खास सामाजिक स्थितियों और उसके जीने की शर्तों के साथ जुड़ी हुई लड़ाई से संबद्ध लेखन को बढ़ावा दिया है. . . अगस्त-अंक मुख्यतया उत्कृष्ट लघुकथांक था. . .और ये लघुकथाएं बराबर याद रहेंगी. 'साहित्य के जरिये पाकिस्तान की मौजूदा आबोहवा का जायजा' के अंतर्गत टिप्पणियां और यात्रा-संस्मरण प्रकाशित करके सराहनीय कार्य किया गया है. कहानियों में लक्ष्मी-नारायण लाल (**'आत्मकथन'**) वैचारिकता के धरातल पर स्वस्थ उगी-अंकुरी है. फारिग बुखारी (**'हस्सू चाचा'**) ने सामाजिकता को उम्दा व्यक्तित्व दिया है. ☐

● **श्री राकेश दयाल सक्सेना, मौलाना आजाद कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी, भोपाल, से लिखते हैं :**

हमारे होस्टल में दो ही चीजों का इंतजार लोगों को सालता रहता है— हर दोपहर लंच की घंटी बजने का और हर माह **'सारिका'** के बाजार में आने का. मुझे होस्टल में रहते पांचवां वर्ष है. तीन साल पहले **'सारिका'** इतनी लोकप्रिय नहीं थी. तीन साल में ही **'सारिका'** होस्टल के प्रत्येक विद्यार्थी की प्रिय पत्रिका बन जायेगी, ऐसा सोचा भी नहीं था. इसकी कहानियां आज के आदमी से इतनी जुड़ी रहती हैं कि तमाम परेशानियों के रहते भी यह हमें एक सांत्वना दे जाती है. . . ☐

सितंबर अंक

● **डॉ. राही मासूम रजा, १०, बैंड स्टैंड, बांद्रा, बंबई-५० ने सितंबर अंक में प्रकाशित राजेंद्र सिंह बेदी की. कहानी के शीर्षक की ओर ध्यान आकर्षित किया है. वह लिखते हैं :**

बेदी साहब की कहानी का शीर्षक लिखने में गलती हो गयी है. **'चश्म-ए-बददूर'**—यूं नहीं लिखना चाहिए. फारसी की इजाफत के साथ नाइनसाफी हो गयी. असल में 'बद' और 'दूर' दो अलग-अलग शब्द हैं. और 'बद' चश्म के साथ आया है — 'चश्मे-बद', बुरी नजर. 'चश्मे-बद दूर' यानी बुरी नजर दूर हो या दूर रहे. यानी नजर न लगे. **'सारिका'** में ऐसी गलतियां अच्छी नहीं लगतीं. ☐

● **नयी दिल्ली से सर्वश्री सलीम रुस्तम, अभय तथा रहमान यूसुफ ने सामूहिक पत्र में प्रतिवाद किया है कि :**

काजी अब्दुल सत्तार ने अपने लेख में उर्दू की नवीनतम पीढ़ी को जानबूझ कर नदारद करने की कोशिश की है. उर्दू का कौन अच्छा पाठक यह नहीं जानता कि उर्दू की नवीनतम पीढ़ी के शौकत हयात, हमीद सहरवरदी, कमर अहसन, इस्मोएल अहमद आदि जैसे युवा कथाकार न केवल यह कि जम कर लिख रहे हैं, बल्कि बहुत अच्छा लिख रहे हैं. और कई मायनों में पिछली पीढ़ी के कई नामवर कथाकारों से बहुत अच्छा लिख रहे हैं. इस अंक में उर्दू के किसी भी नवीनतम लेखक की चर्चा और कहानी न देख कर बहुत निराश हुई, क्योंकि हम तमाम लोग उर्दू के युवा लेखन के सच्चे समर्थक हैं. ☐

• हृदयेश्वर

हाजीपुर में समांतर कहानी पर बहस

गत ३१ जुलाई को हाजीपुर नगर के आठ लेखक-लेखिकाओं की एक अनौपचारिक बैठक श्री उमाकांत वर्मा (हिंदी विभागाध्यक्ष, स्थानीय आर. एन. कालिज) के निवास-स्थान पर हुई. बहस का विषय था--'समांतर कहानी'. हाजीपुर जैसे छोटे नगर में यह गोष्ठी अपने-आप में एक प्रयोग थी.

बहस का आरंभ करते हुए तन ने कहा कि यहां सवाल उन विवादों का नहीं है, जो समांतर कहानियों के संदर्भ में कुछ अरसे से पढ़े-सुने जा रहे हैं, बल्कि सवाल उन कहानियों का है, जो समांतर कथा-लेखन का ठप्पा-मुहर दे कर बाजारों में उतारी गयी हैं. ये कहानियां क्या सचमुच जनाकांक्षाओं को रेखांकित कर पाती हैं? या एक विशेष प्रकार के मतवाद को स्थापित करने के उद्देश्य से किसी फार्मूले के तहत 'डिक्टेट' करके लिखवाई गयी वणिक-बुद्धि की कहानियां हैं? विचार कहानियों की रचनात्मकता के स्तर पर होना है.

कहानियों की रचनात्मकता के स्तर पर उन्होंने मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, लानी तथा राम अरोड़ा की कहानियों की चर्चा की. जितेंद्र भाटिया की कहानी 'शहादतनामा' की विस्तार से चर्चा करते हुए उन्होंने पूछा कि इसमें लेखक क्या मामूली आदमी की हैसियत से अपने पात्रों को नहीं देख रहा है?

डॉ. उमेशकुमार सिंह को बहस के परिसीमन पर एतराज था. उन्होंने कहा कि रचनाओं पर एक विशेष प्रकार का ट्रेड-मार्क लगाये जाने का मतलब ही है रचनाओं को उसी संदर्भ में पढ़े-परखे जाने का दुराग्रह. कहानियों के दोहरे छद्मों की तरफ इशारा करते हुए उन्होंने कहा कि (क) इनमें जिस मामूली आदमी का जिक्र बार-बार आया है, उसकी तस्वीर हिंदुस्तान के औसत मामूली आदमी की तस्वीर से मेल नहीं खाती. इनमें ग्रामीण परिवेश का प्रायः अभाव है. (ख) जिस रूपवादी फॉर्म के विरोध में ये कहानियां मुखर लगती हैं, उनके बीच भी **'एक और महाश्वेता'** जैसी कहानियां लिखी जा रही हैं. (ग) इनके लेखकों में अधिकांश कॉफी-हाउसों के लेखक हैं. वे स्वयं मामूली आदमी नहीं हैं.

विंदु सिन्हा के विचार में इन कहानियों ने आम आदमी की सही तस्वीर खींचने के सिवा न तो कोई व्यापक समस्या उठायी है और न कोई नया आयाम ही स्थापित किया है.

हृदयेश्वर ने बहस में हस्तक्षेप करते हुए इस तरह के आक्षेप को पक्षपातपूर्ण बताया. उन्होंने कहा, ये कहानियां आदमी के मामूलीपन तथा समाज के साथ 'अस्तित्व की लड़ाई' के संदर्भ में उसके चौमुखे तनावों का खुला दस्तावेज हैं. इसलिए सवाल सिर्फ ग्रामीण परिवेश के होने-न होने का नहीं है. **'सारिका'** के समांतर कहानी अंक–१से अंक–१० तक की प्रायः सभी कहानियां उद्देश्यों में समान होते हुए भी गुण एवं प्रभाव में निम्न-मध्य-वित्त और 'तीसरी दुनिया' से जुड़े अनेक प्रश्नाहत आसंगों की कहानियां हैं. इनमें से प्रत्येक कहानी का अपना अलग टैंपो है, उसकी अपनी प्रयोजनीयता है.

प्रभा सिंह इन कहानियों के बदले हुए तेवर, उनके सहज शिल्प और आम जनोन्मुखता को ले कर काफी उत्साहित नजर आयीं. उन्होंने कहा कि समांतर कहानियां केवल आम जन की नहीं, बल्कि समग्र जन-जीवन की पीड़ा, विसंगति, विडंबना और संघर्ष की सही तस्वीर प्रस्तुत करती हैं. सुदीप की कहानी **'अंतहीन–दो'** की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि इस कहानी के पात्र तथाकथित नैतिकता और अन्याय को बड़ी गहराई तक महसूसते और भोगते नजर आते हैं.

उमाशंकर बहुत अंशों में प्रभा सिंह के विचारों के साथ होते हुए भी अपनी इस जिद पर अडिग थे कि इस समांतर शब्द में आंदोलन की बू है.

रत्नेशकुमार ने उमाशंकर जी के विचारों को दुराग्रहपूर्ण तथा उनके इस नजरिये को अतिवादी बतलाया. उन्होंने कहा कि विदेशी शिल्प, नकली भाषा और गंधाती कला-सौंदर्य की लीक से अलग ये कहानियां लिखी जा रही हैं और अपना प्रतिमान स्वयं ही हैं. यह समांतर कहानी कोई आंदोलन नहीं है, बल्कि मामूली आदमी की लड़ाई में शामिल उसके अपने ही लेखक के रचनागत सरोकारों का धारदार आलेख है. समांतर लेखक, मूल अर्थ में अपने आहत आदमी और उसकी तमाम मूर्त-अमूर्त तकलीफों में स्वयं भी शामिल है. **'सारिका'** की प्रायः सभी कहानियों में यह तादात्म्य देखा जा सकता है. इनमें कथाकारों और पात्रों के बीच उनकी अलग-अलग पहचान के लिए कोई समीकरण नहीं ढूंढ़ा जा सकता. . . . जैसे कमलेश्वर जी ने ही लिखी है **'लाश'** और **'फालतू आदमी'** से अलग हट कर **'इतने अच्छे दिन'**. **'सारिका'** की कहानियां बिगड़े हुए स्वादों को बदलने में काफी सफल सिद्ध हो रही हैं.

बहस का समापन करते हुए प्रो. उमाकांत वर्मा ने गोष्ठी-आयोजकों को उनके इस सुंदर और रचनात्मक प्रयास के लिए साधुवाद दिया और हाजीपुर में एक 'समांतर लेखकीय मंच' की आवश्यकता पर बल दिया. उन्होंने कहा कि समांतर लेखन एक बहुत ही सार्थक एवं स्वस्थ प्रयोग-दिशा है. देखना सिर्फ यह है कि आम आदमी की तकलीफों में उसके समांतर लेखक की यह साझेदारी कहां पर जा कर बिल्कुल खत्म हो जाती है और सिर्फ तादात्म्य बच रहता है. □□□

गणिका-जीवन: कुछ अपरिचित आयाम—विशिष्ट खंड

● पी. सी. कुंडलिया

यह बात सचमुच बड़े ताज्जुब की है कि गणिका-जीवन के जितने आ से हम परिचित होते जाते हैं, उनसे कहीं अधिक आयामों से अ चित होने का एहसास भी हमें होता रहता है.

गणिका या वेश्या एक ऐसा विषय है, जिसे ले कर दुनिया भर लेखकों ने कुछ-न-कुछ लिखने की कोशिश जरूर की है. बल्कि अकसर चुनौती के रूप में स्वीकार किया है. हर बार, हर रचना के माध्यम गणिका-जीवन का कोई-न-कोई नया अंग, कोई-न-कोई अनछुआ र कोई-न-कोई अपरिचित पहलू सामने आया है--- फिर भी ऐसा नहीं पाया है कि लगे कि अब उसके बारे में लिखने को कुछ भी शेष नहीं रह

* *

'सारिका' अपने पाठकों को दो गणिका-विशेषांक पहले भी दे है (नवंबर, १९७३ और जनवरी, १९७४). इस अंक में दिया जा विशिष्ट खंड इन दोनों विशेषांकों में छूटे रह गये अनेक रिक्त स्थानों तो भरता ही है, अपने आप में भी स्वतंत्र और पूर्ण है. इस विशिष्ट ख एक बार फिर आदिकाल से ले कर अब तक के गणिका-जीवन पर पात की कोशिश की जा रही है. साथ ही इस अंक में कुछ एकदम ताजा विश्लेषणात्मक रचनाएं भी दी जा रही हैं.

गणिका -जीवन से संबंधित रचनाओं के इस विशिष्ट खंड का चित्र युवा चित्रकार टी. ए. राणा ने विशेष रूप से किया है. राणा का 'सारिका' के पाठकों के लिए नया नहीं है. उनकी अपनी विशिष्ट है और रेखाओं का उनका प्रयोग एकदम अनूठा है.

प्राचीन काल में गणिका

वेदों में वेश्याएं

★ जिस प्रकार युवक साधारण्याओं के साथ मनचाहा आचरण करता है, उसी प्रकार श्वेत आयुधधारी मरुतगण मनचाहे स्थानों में निवास करते हैं. (ऋग्. १।१६७।४)

★ तरुण कामी पुरुष जिस प्रकार अपना समस्त द्रव्य परस्त्री को दे देता है उसी प्रकार ऋभृष्य ने मुझे एक सौ एक भेड़े काट कर दे दिये. (ऋग्. ८।११७।३)

★ जिस प्रकार कोई स्वेच्छाचारी, लंपट पुरुष धन को अनुपयुक्त स्थान में त्याग देता है, इस तरह का व्यवहार तू हमारे साथ मत करना. (ऋ ग्० ७।१०४।५) ☐

यूनान की वेश्याएं

★ एथेंस के शासक हर्मोडियस की रखैल या उपपत्नी लीना नाम की वेश्या थी. एक बार उस वेश्या के कुछ मित्र राजकीय षड्यंत्र में शरीक हो गये. लीना ने इस भय से कि कहीं मित्रों का नाम उसके मुंह से न निकल जाये, अपनी जबान ही काट डाली. ☐

★ पुरातन ग्रीस की प्रसिद्ध वेश्या ली मूलतः सिसीली की थी. युद्ध में बंदी बना कर वह एथेंस में बेचने के लिए लायी गयी. वह पानी भर रही थी तो तत्कालीन चित्रकार एपेल शरीर सौष्ठव देख कर मुग्ध हो गया और खरीद लिया. नृत्य, कला, वाक्चातुर्य आदि शिक्षा दे कर कोरिंथ नामक बंदरगाह में वेश्यागृह खुलवा दिया. कोरिंथ में उन सभी कोटि की वेश्याओं के आलय थे और वेश्या वृत्ति का प्रसिद्ध केंद्र था.

ली बड़ी ही अहंकारिणी थी. उसने समय के सुप्रसिद्ध दार्शनिक डिमोस्थिनीज सारी संपत्ति को ठोकर मार दी और डायोजि नामक बदसूरत और फटेहाल दार्शनिक को लिया था.

कोरिंथ के नागरिकों ने उसकी प्रतिमा के चौराहे पर स्थापित करने का फैसला कि मीरोन नामक वृद्ध मूर्तिकार को मूर्ति ब का काम सौंपा गया. रोज सामने बिठा मूर्ति गढ़ते-गढ़ते मीरोन उस पर अनुरक्त गया. ली को पाने के लिए उस बूढ़े मूर्तिकार अपनी जीवनभर की संचित संपत्ति उसके च में रख दी. ली ने आंख उठा कर देखा भी मीरोन भी हार मानने वाला न था. बालों

रंग-चुंग कर युवक के वेश में प्रेम की भिक्षा मांगने पहुंच गया. ली को ताड़ते देर न लगी. नाक चढ़ा कर बोली—— वाह बेटा, कल तेरे पिता को जिसके लिए इनकार कर चुकी वही मांगने तू आज आया है!

मगर इस ली को एक बार बुरी तरह मुंह-की खानी पड़ी थी. अफलातून (प्लैटो) के शिष्य जेनो क्रोटीस की जितेंद्रियता और संयम की बड़ी धूम थी. ली ने उसे स्खलित करने का बीड़ा उठाया. बरसती रात में उसके यहां पहुंची और आश्रय मांगा. जेनो क्रोटीस ने उसे आश्रय दे दिया. अब वह लगी उसे लुभाने. पुरुष को लुभाने के तमाम हथियार इस्तेमाल कर डाले, यहां तक कि निर्वस्त्र भी हो गयी. परंतु जेनो क्रोटीस पर कोई प्रभाव न पड़ा. तब ली बुरी तरह खिसिया कर यह कहती हुई वहां से चल दी, मैं आदमी के हृदय को विचलित करने आयी थी पत्थर के हृदय को विगलित करने नहीं. ☐

वाल्मीकि रामायण—बालकांड

महर्षि विश्वामित्र के कठोर तप करने से इंद्र सहित समस्त देवताओं में बड़ी खलबली मच गयी. वे लोग बहुत घबराये. तब इंद्र ने रंभा नाम की अप्सरा को देवताओं के हित में उनका तप खंडित करने का आदेश दिया.

रंभा डर गयी और लजा कर बोली—— हे सुरेंद्र, विश्वामित्र बड़े क्रोधी हैं, उनके समीप जाते ही वे मुझे शाप दे देंगे.

इंद्र ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—— डरो मत! मैं स्वयं कोकिल पक्षी बन कर कामदेव के साथ, किसी सुंदर वृक्ष पर तुम्हारे आसपास ही रहूंगा.

उसने श्रृंगार किया और मंद-मंद मुसकाती हुई विश्वामित्र को लुभाने चली. कोयल की मधुर कूक सून कर विश्वामित्र ने प्रसन्न हो कर रंभा की ओर देखा. लेकिन उन्हें संदेह हो गया. समझते देर न लगी कि यह इंद्र का षड्यंत्र है. फौरन क्रोधित हो कर रंभा को शाप दिया कि हे सुभगे, तू दस हजार वर्ष तक शिला हो कर रहेगी.

विश्वामित्र के महाशाप से रंभा शिला हो कर गिर पड़ी. ☐

तीन गणिकाएं

हिंदू

ग्राहकों की प्रतीक्षा में मिथिला नगर की एक गणिका पिंगला आधीरात तक जागती रही. लेकिन एक भी पुरुष उसके घर नहीं अया. धन की लालसा पूरी नहीं हुई तो उसे अपने शरीर, अपने लावण्य और अपने व्यवसाय से वैराग्य हो गया. उस दिन से उसने निश्चय कर लिया : 'आज से किसी पुरुष की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखूंगी. ☐

बौद्ध

अर्घकाशी वाराणसी के एक प्रसिद्ध श्रेष्ठि की पुत्री थी. पिता ने उसे खूब पढ़ा-लिखा कर नृत्य-गीत में पारंगत किया. धन की तो उसे आवश्यकता थी नहीं; वैवाहिक जीवन उसे रुचिकर नहीं हुआ; अंत में उसने गणिकावृत्ति को अपना लिया.

रूप, गुण और योग्यता में वह इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि उसने अपने देह उपभोग का एक रात का मूल्य काशीराज की एक दिन की आय के बराबर रखा.इतनी भारी कीमत दे कर उसके यहां शायद ही कोई ज़ा पाता था: इसलिए उसने अपना मूल्य घटा कर आधा कर दिया, और तभी से 'अर्घकाशी' कहलाने लगी.

अकस्मात् बौद्ध धर्म में उसकी रुचि जाग्रत हुई. बहुत-सी संपत्ति दान-पुण्य में खर्च कर शेष धन अपने साथ ले कर उसने काशी से श्रावस्ती जाने का निश्चय किया.

काशी से चलते ही खबर मिली कि डाकुओं का दल उसे रास्ते में लूटने को तैयार है. अर्घकाशी ने यात्रा स्थगित कर दी. उसने भगवान बुद्ध को सूचना दी. उन्होंनें एक महातपस्वी विद्वान भिक्षु को भेज कर उसे काशी में ही दीक्षा दिला दी. कालांतर में अपने समय की श्रेष्ठ भिक्खुणी हुई. ☐

(जातक कथा)

जैन

गुणवती अपने समय की श्रेष्ठ गणिका थी. रूप-सौंदर्य में जितनी अनुपम, वाणी,व्यवहार और आचरण में भी उतनी ही श्रेष्ठ. उसके यहां राजपुत्रों, अमात्यपुत्रों और श्रेष्ठिपुत्रों का तांता ही लगा रहता था.

खाली हाथ लौटने वाले अपने हर प्रेमी से वह गणिका अनुरोध करती——आप मुझे त्याग रहे हैं, कोई बात नहीं. लेकिन मुझ-जैसी गुणहीना का कोई स्मृतिचिन्ह तो लेते जाइए.

और स्मृतिचिन्ह स्वरूप जो भी आभूषण उसका प्रेमी मांगता वह सहर्ष उसे दे देती थी.

एक श्रेष्ठिपुत्र ने चलते समय गुणवती से उसका पंचरत्न जटित महामूल्यवान भुजबंद मांग लिया. गणिका ने निस्संकोच उतार कर दे दिया.

वह श्रेष्ठिपुत्र रत्नों का पारखी था. भुजबंद के रत्नों से हीरों का व्यापार कर वह पुनः धनवान हो गया और अपने देश लौट कर अनेक वर्ष सुखपूर्वक रहा. ☐

('वसुदेह हींडी' – दम्यपुत्रका कथानक)
(प्रस्तुतकर्ता : श्यामू संन्यासी)

सफेद घोड़ा

• अहमद नदीम कासमी

यह इलयास का फोन था.

मैंने कहा— मैं अभी आया, वहीं अपने पुराने होटल में ठहरे हो न?

इलयास की आवाज आयी— ठहरा भी वहीं हूं, और बोल भी वहीं से रहा हूं. मगर तुम अभी न आओ, इस वक्त मैं एक दफ्तर जा रहा हूं, बहुत जरूरी काम है. लाखों का मुआमला है, इसीलिए हवाई जहाज से आया हूं और कल हवाई जहाज से वापस पिंडी चला जाऊंगा, तुम शाम को आना, आठ बजे, बल्कि साढ़े सात बजे, और रऊफ, सुनो, अब तो तुम और भी बड़े अफसर हो गये हो. आजकल तुम्हें कौन-सा ब्रांड पसंद है?

मैंने जवाब दिया— वही, जिसकी तुमने मुझे लत डाली है— सफेद घोड़ा!

इलयास बोला— बस ठीक है, सफेद घोड़ा भी होगा और सफेद घोड़ी भी!

मैंने बन कर कहा—— यह कोई नया ब्रांड है क्या?

और वह इतने जोर से हंसा और हंसता चला गया कि मजबूरन मुझे भी हंसना पड़ा वरना मैं ऐसी बातों पर शायद ही हंसता था. मैं हंसा तो वह समझ गया कि सफेद घोड़ी का मफहूम पा लिया है, इसलिए वह बोला—खफा तो नहीं हो गये? फिर हंसते हुए कहने लगा—यार तुम अब तक उल्लू के उल्लू ही रहे?

मैंने कहा— खैर यह तो शाम को तय करेंगे कि हम में बड़ा उल्लू कौन है!

वह बोला— बहुत अच्छा, तो फिर साढ़े सात बजे तय?

मैंने कहा— तय!

★ ★

सवा सात बजे इलयास के होटल पहुंचा तो वह नहा रहा था. मैंने कहा—यह कौन सा वक्त है नहाने का?

वह गुसलखाने में से बोला— अरे तुम्हें अब तक खबर नहीं? मैं तो गुसल करके व्हिस्की पीता हूं. मेरी छोटी अटेची रखी है न, उसे खोलो, उसमें तुम्हारा सफेद घोड़ा बंद है!

मैंने अटेची से व्हाइट हार्स की बोतल निकाल कर मेज पर रखी तो वह तौलिया लपेट कर बाहर निकला.

फिर इधर से इलयास बड़े कमरे में दाखिल हुआ, उधर से होटल का एक संजीदा और बाविकार बैरा आया. बहुत नेक आदमी लगता था, बस माथे पर सहराब की कमी थी. वह इलयास की तरफ देख कर मुसकराया. . . उसकी मुसकराहट ने उसकी सारी शख्सियत बदल डाली.

उसने आंख मार दी और फिर दरवाजे का परदा यूं उठा जैसे छुरा निकला हो. . .

पहले एक औरत अंदर आयी. यह बड़ी तनदुरुस्त औरत थी. खून इसके पूरे चेहरे में से फूटा पड़ रहा यह खून इसकी आंखों में भी चमक रहा था और हथेलियों में भी. इसके जिस्म का बाकी हिस्सा था मगर मुझे यकीन था कि वह भी लहूलहान होगा.

एक कदम अंदर आ कर इसने हमें एक नजर फिर इलयास का रुख करके इसने अपनी झुकायीं और सलाम के तौर पर सर को जरा-सा किया. फौरन बाद वह पलट कर सरगोशी में बोली आ भी जाओ न बिल्कीस!

औरत ने इलयास से कहा— नई नवेली है डरती है! फिर दरवाजे में गयी— बेवकूफ हो तुम बिल्कुल देहातन! अब ऐसा भी क्या, आ जाओ बिल्लो !

इलयास ने तकिये के नीचे से बटवा उठा कर सौ के नोटों में से एक नोट निकाला और दरवाजे के जा कर बोला——ये लीजिए मेरे कमरे की देहलीज का नजराना!

औरत ने फौरन इलयास के हाथ से नोट ले लिया बोली——अब तो आना ही पड़ेगा बिल्लू! ये लो! नोट वाला हाथ आगे बढ़ाया मगर फिर उसे तह मुठ्ठी बंद कर ली और सरगोशी में बोली— अरी होटल का मुआमला है. चलो अब जल्दी से आ एक घंटा से जो मैं तुम्हें समझा रही थी तो क्या तुम पर यही असर हुआ? बेवकूफ! फिर उसने बिल्कीस को जैसे धक्का दे दिया.

बैरे ने परदा गिरा दिया तो इलयास बोला—— सिराज, कुछ भेज दो, कबाब और तिक्के, क्यों है? उसने मुझसे पूछा. मगर जवाब औरत ने दिया— जरा तेज मिर्चों वाले कबाब हों, समझे भाई सिराज!

सिराज चला गया. इलयास ने बढ़ कर चिट चढ़ा दी और बोला—— तशरीफ रखिए!

सब बैठ गये. बिल्कीस भी. पर उसने बुर्के की नक

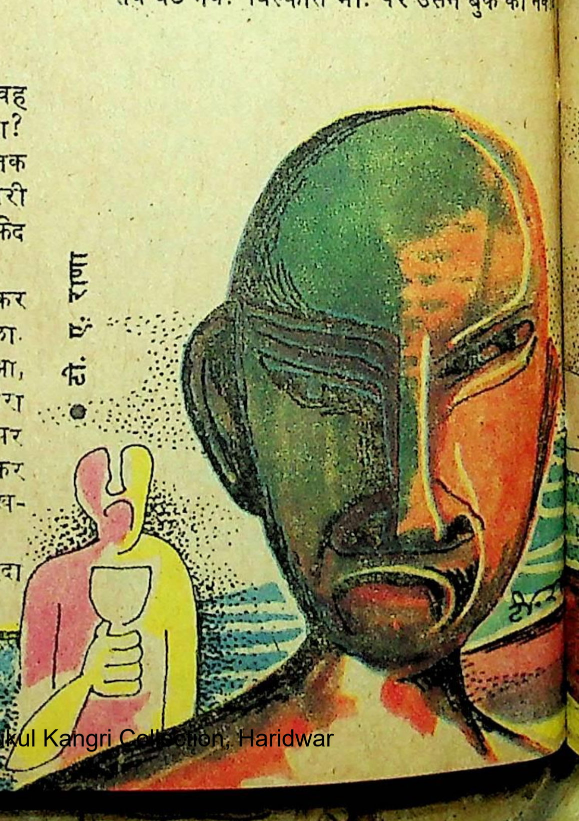

• चि. ए. राणा

गिरा रखी थी.

—यह मेरी अजीब दीवानी बेटी है. आपने अभी इसका चेहरा तो नहीं देखा, पर इसका कद पसंद है न आपको?

इलयास बोला—— जी हां, सुब्हानल्ला!

मैंने झटके के साथ पलट कर उसको देखा. इतने प्यार और पवित्र शब्द उसने कितने गंदे लहजे में अदा किये थे. वह हंसने लगा और बोला—— ये मेरे दोस्त बड़े शर्मीले! इनसे कसम ले लीजिए जो इन्होंने आज तक किसी औरत को छुआ भी हो. इनका नाम रऊफ है मगर आप उन्हें मर्दों की बिल्कीस समझ लीजिए!

औरत बे अख्तेयार हंसने लगी. वह इतनी हंसी कि उसकी आंखों में आंसू आ गये. फिर उसने बुर्का उतार कर सोफे की पुश्त पर डाल दिया. तौबा! वह किस बाला की सेहतमंद औरत थी!

—सुन लिया बिल्कीस! औरत बोली—— जरा-सी भी हया हो तो अब बुर्का उतार दो. नहीं उतारोगी तो मैं तुम्हें औरतों की रउफ कहने लगूंगी! अबके इलयास बेअख्तयार हंसने लगा.

दरवाजे पर जैसे किसीने उंगली के जोड़े से दस्तक दी इलयास ने दरवाजा खोला. सिराज ट्रे में कबाब और तिक्के सजा कर लाया और मेज पर रख कर बोला—— और कोई हुक्म!

—जरूरत पड़ी तो मैं घंटी बजा दूंगा. इलयास ने कहा. सिराज वापस जाते हुए रुका. पहले बिल्कीस की तरफ देखा, फिर इलयास को वही खौफनाक आंख मार कर बोला—— यूं कब तक बैठे रहेंगे साहब, 'मुंह दिखाई' दीजिए और फिर—— और फिर तिक्के खाइये.

और सिराज चला गया तो उसने दरवाजा बंद करके पर्दा खींच कर, बटुवे में से सौ का एक और नोट निकाल कर दोनों हाथों में यूं रखा जैसे तश्तरी में सजाया है. औरत ने नोट को तह किया और पहले नोट समेत उसे ब्लाउज में उड़स कर मुसकरायी! सर को यूं जुंबिश दी जैसे इजाजत दे रही है. . . इलयास पलटा और उसने बिल्कीस की नकाब उलट दी. . .

वह बड़ी अजीब-सी लड़की थी. अजीब यूं कि कुछ ऐसी खूबसूरत तो नहीं थी मगर खूबसूरत लगती थी. उसका रंग बहुत सफेद था. मगर मैंने उसके चेहरे को देख कर सोचा कि उसमें कुछ कमी रह गयी है. अलबत्ता इस सवाल का कोई जवाब मेरे पास नहीं था कि कमी कहां रह गयी है.

नकाब उलटते ही उसने कनखियों से औरत की तरफ देखा तो वह बोली—— लो ऐसी वाहियात शर्म भी क्या? मैंने घर से चलते हुए बता नहीं दिया था कि अपने आदमी हैं.

इलयास ने तिपाई उठा कर बिल्कीस के सामने रखी. फिर व्हाइट हार्स की बोतल और चार गिलास रखे. बिल्कीस पहली बार बोली—— जी मैं तो इस नेमत से महरूम हूं. इलयास ने इहतेजाज किया—— इस नेमत से तो रऊफ जैसा उल्लू भी महरूम नहीं है.

औरत ने इलयास की बात कही—— सिराज ने कहा कि आपको ताजा माल चाहिए. मैंने उससे कह दिया था कि बिल्कीस बेचारी आज पहली बार किसी होटल में जायेगी इसे क्या पता कि ये सब क्या होता है. तिपाई यहां मेरे पास लाइए. मगर इलयास उठ कर औरत और बिल्कीस के दरमयान बैठ गया और बिल्कीस की ठोड़ी के नीचे से बुर्के की डोरी की गिरह खोलते हुए बाकायदा गाने लगा——

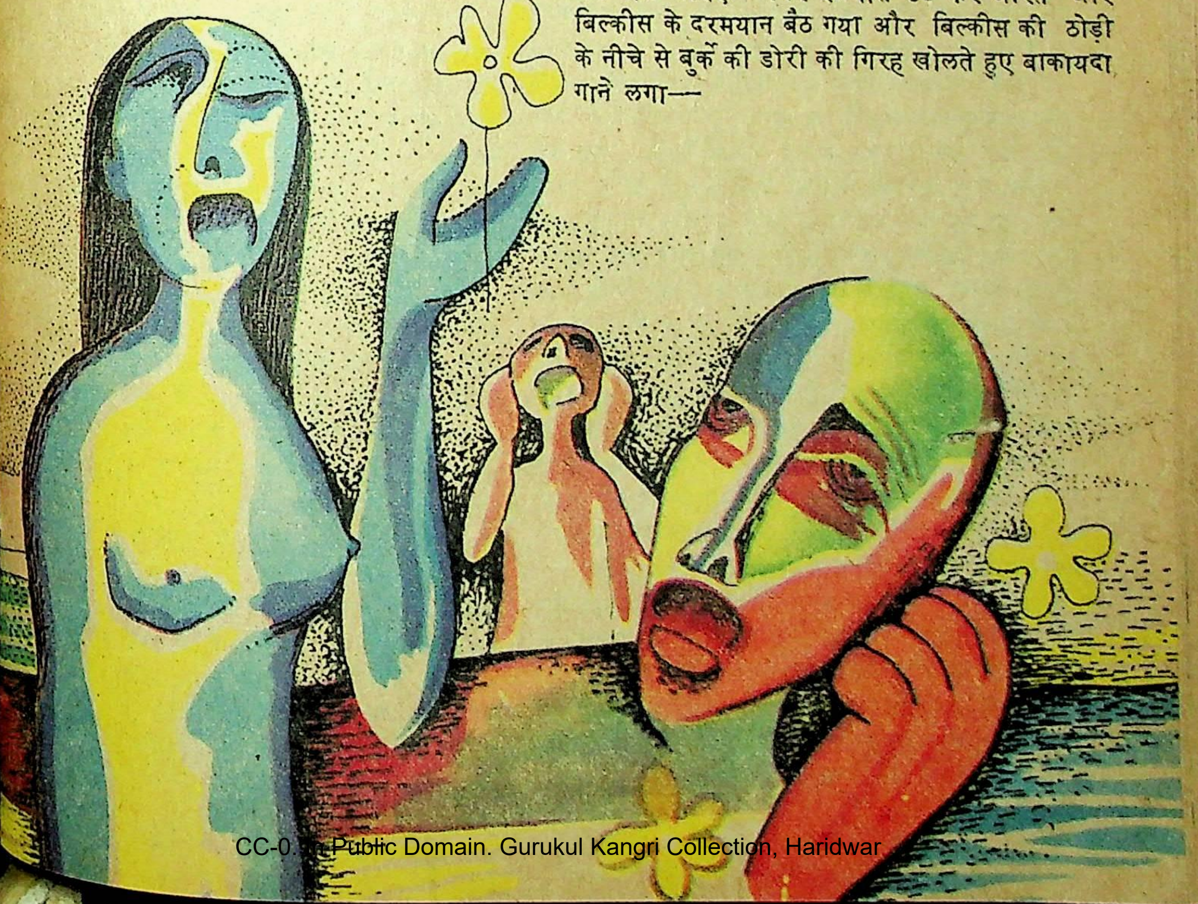

साकीगरी की शर्म करो वरना आज हम,
हर शब पिया ही करते हैं मय जिस कदर मिले!

—मुझे तो कोई स्क्वाश ही पिला दीजिए! बिल्कीस ने बच्चों की तरह फरमाइश की. और जब तक इलयास घंटी बजाने के लिए उठता, मैंने कहा—मैं लाता हूं.

—हांय! औरत चहकी—रऊफ साहब तो बोलते हैं! उसके अलावा, इलयास और बिल्कीस भी हंसी. और बिल्कीस को हंसता हुआ पा कर इलयास जोर से हंसा और मैं बाहर निकल आया. सिराज को स्क्वाश भिजवाने को कहा और वहां से घर की राह ली.

★ ★

यह लड़की मेरे जेहन पर मुसल्लत हो गयी थी.

इलियास के यहां यूं तो मैंने बहुत-सी औरतें देखी थीं. उनकी सूरतें मुख्तलिफ थीं, मिजाज भी मुख्तलिफ थे, मगर मुसकराहट के मामले में वे सब एक जैसी थीं. मुसकरातीं तो लगता था कि वे मुसकराहट बाजार से खरीद कर लायी हैं. वह शर्माती थीं, तो मालूम होता था कि उन्हें बड़ा तकल्लुफ करना पड़ रहा है. मगर यह लड़की तो ऐसी लड़की थी जैसी मुतवस्सत तबके के घरों में होती हैं— मासूम, बेखबर और राजी ब रजा! मुझे इलयास पर गुस्सा तो कई बार आया था मगर नफरत आज पहली बार महसूस हुई.

जब चंद बरस पहले मैंने बड़ी कोशिशों से उसे आटे और चीनी का डिपो दिलवाया था, तो वह कितना प्यारा आदमी था. बस कभी कभार शराब पीता था. और सहगल की तर्ज में गाने और गालिब की गजलें गाता था. आवाज बहुत रसीली थी. इसलिए महफिले मौसीकी में मदऊ किया जाने लगा. और उसीकी वजह से मुझे भी शराब की लत पड़ी गयी. फिर ऊंचे तबकों की महफिलों में शिर्कत की. बर्कत से उसे चंद लाख का दरामदी (इम्पोर्ट) लाइसेंस मिल गया और थोड़े ही अर्से में कई लाख नकद की आसामी बन गया. वह पिंडी चला गया और वहीं अपना सदर दफ्तर कायम किया. अब वह लाहौर और कराची में बाज मिलें लगाने लगा. उन्हीं दिनों वह एक बार लाहौर से पिंडी आ गया तो मुझे उसी होटल में मदऊ किया और वहीं पहली बार मुझे मालूम हुआ कि वह अब शराब के अलावा औरत से भी शौक करने लगा है. लाहौर में उसकी तीसरी या चौथी आमद पर मैंने उसे समझाने की कोशिश की कि शराब की हद तक तो ठीक है कि तुम जिस सोसाइटी में घूमते हो उसमें शराब न पियोगे तो बदतहजीब कहलाओगे और कारोबार को भी नुकसान पहुंचाओगे, मगर यह औरत वाला किस्सा छोड़ो. औरत किसी-न-किसी की बीवी, बेटी या मां जरूर होती है और ये रिश्ते हमारे लिए आज भी मुकद्दस हैं. सो तुम यूं करो कि शादी कर लो.

इस पर उसने मुझे इतला दी कि उसने शादी कर ली है. और उसकी एक प्यारी-सी बीवी है, तीन बच्चे हैं. और फिक्र न करो रऊफ, मेरी बीवी पुराने जमाने की औरत नहीं है. मैं उसे हर महीने दो हजार रुपये नकद पेश कर देता हूं और उसके बदले में उसने मुझे हर बात की इजाजत दे रखी है. मैंने सोचा, सिर्फ जेब के भारी या खाली होने से कदरें कैसे बदल जाती हैं?. . .चुनांचे मैं चुप रहा. मगर जब भी गुफ्तगू में उसके घर का जि आया तो मैंने उसकी बीवी के बारे में तुम्हारी बीवी क कर बात की, 'भाभी' न कह कर; क्योंकि भाभियां अप शौहरों को हर रात एक नयी औरत का इंतजाम क लेने की इजाजत नहीं दिया करतीं!. . .मैंने शायद जमीर को मुतमइन करने के लिए यह फलसफा गढ़ लि था कि इलयास अगर अय्याश है तो उसकी अय्याशी सिर्फ ऐसी औरतों तक महदूद है जो इलया के पास नहीं आयेंगी तो किसी और के पास चली जायें सो है तो यह खराब बात, मगर कुछ ऐसी भी खरा नहीं है कि मैं इतने अच्छे दोस्त से नफरत करने ल मगर बिल्कीस को देख कर मुझे यकीन हो गया था कि इलयास अय्याशी की हदें फांद गया है और मैं तो पागलों को भी देखा है कि थूकना चाहेंगे, और साम फूलों से लदी झाड़ी होगी, तो उससे हट कर थूकेंगे! जिंदगी में पहली बार मुझे यकीन हो गया था कि इल यास दरअसल कमीना आदमी है.

खासी देर पलंग पर करवटें बदलने के बाद मैं ए दम उठा और चप्पल घसीटता हुआ बाहर लपका. मैं एक टैक्सी रोकी और कहा कि वह जितनी तेज च सकता है चलाये, मैंने ड्राइवर से मीटर से ज्यादा र देने का वायदा किया. और कार इलायास के होटल की तरफ उड़ने लगी. मैंने बड़ा जुल्म किया था कि उस लड़की को इलयास के कमरे में दाखिल होते ही रुख न कर दिया था. इलयास यकीनन बुरा मान मगर वह मेरी नियत पर शक न करता. होट के सामने टैक्सी रोक कर मैंने दो गुना किराया अ किया. और ऊपर लपका मगर सीढ़ियों ही में सिरा मिल गया. वह तिक्कों और कबाबों की खाली प्लेटें रहा था. मुझे देखा तो वही शैतानी मुसकराहट उस होठों बल्कि उसके सारे चेहरे पर कूदी. फिर वह बोला— साहब तो बीवी को ले कर अभी कहीं चले गये हैं. मैं पूछा—कहां? वह हंस कर बोला—भोले बादशाहो, भी कोई बताने वाली बातें होती हैं?

घर आ कर मैंने इलयास को एक तवील खत लि जिसमें उसे कमीना, खबीस और जलील तक कह डा मैंने उससे हमेशा के लिए ताल्लुक तोड़ लिया औ उसे खबरदार किया कि वह आइंदा मुझसे मिलने कोशिश न करे. मैंने लिखा—मैं तुम जैसे खिला बाख्ता बदकर यारों पर लानत भेजता हूं!. . .जाहि है इसके बाद इलयास से मेरी कभी मुलाकात नहीं हु फिर मेरा तबादला लाहौर से कराची हो गया और मैं पिंडी से दूर हो गया. कराची में मैं पहले रोज अप स्टाफ से जब मिला तो उस सफ में अपने एक पुरा दोस्त और हमजमाअत मुश्ताक को भी खड़ा पाया. व इस दफ्तर में मेरा हेड कलर्क था. शाम को उसने दाव पर मुझे अपने घर बुलाया और जब सब 'मोअजजा शहर' से मेरा तआरुफ करा चुका तो अलमारी से व्हाइट हार्स की बोतलें निकाल कर हम सब के साम पीने बैठ गया. हैरत हुई. मगर शराब की हद तक

बड़ा फराख दिल हूं, सबको मुआफ कर देता हूं. उसे भी माफ कर दिया. फिर जब खाने के बाद सब मेहमान चले गये तो वह बोला—आप दूसरा शौक भी यकीनन फरमाते होंगे?

—दूसरा शौक?

और जवाब में मुश्ताक यूं मुसकराया कि मैंने एक पल के लिए सोचा कि कहीं मुश्ताक के रूप में यह लाहौर का बैरा सिराज तो नहीं है. वह उठा और बोला : मैंने यह इंतजाम भी कर रखा है! उसने साथ वाले कमरे का दरवाजा खोला तो खुश्बू से लदी हुई एक औरत मटकती मुसकराती हुई अंदर आ गयी. मैंने समझा यह मुश्ताक की बीवी है इसलिए मैं अदब से खड़ा हो गया. फिर मैं सोफे पर बैठा तो मुश्ताक वही सिराज वाली मुसकराहट के साथ बोला—शौक फरमाइये! इसके साथ ही वह औरत खिसक कर मेरे साथ लग कर बैठ गयी. . . मेरा जिस्म जैसे बिजली के नंगे तार से छू गया! मैं तड़प कर उठा तो औरत और मुश्ताक बहुत जोर से हंसे मगर मैं जब मुश्ताक को बराबर गालियां देने लगा तो औरत तीर की तरह कमरे में घुस गयी और मुश्ताक मुझसे माफियां मांगने लगा.

दूसरे रोज मैंने जान बूझ कर दस मरतबा मुश्ताक को अपने दफ्तर में बुलाया. मगर उसने मुझसे आंखें ही न मिलायीं. वह मुझसे शर्मिंदा था इसलिए उसे यह पता ही न चला कि मैं उससे कहीं ज्यादा शर्मिंदा हूं! मैं बोला—मैं भी तो तुमसे बहुत शर्मिंदा हूं! और तुमसे भी ज्यादा उस बेचारी औरत से शर्मिंदा हूं. वह भी क्या सोचती होगी कि किस बदतमीज से साबका पड़ा. औरत चाहे कैसी भी हो उसका एहतराम करना चाहिए. और कल मैंने बड़ी बदतमीजी, बड़े उजड्डपन का मुजाहरा किया. दरअसल यह शराब इंसान को भी सफेद घोड़ा बना देती है. तुम तो खैर मेरे पुराने दोस्त हो तुम्हें तो मैं कान मरोड़ कर भी मना लूंगा. मगर किसी तरह मुझे उस औरत के पास ले चलो, मैं उससे माफी मांगूंगा.

वह बहुत कमाल की औरत निकली, उसने मुझे फौरन माफ कर दिया. फिर वह मुश्ताक की मौजूदगी ही में मुझसे लिपट कर रोने लगी और बोली—मुझे तो पहली ही नजर में आपसे मोहब्बत हो गयी और जाहिर है इस फिकरे के खत्म होने के फौरन बाद मुझे भी उससे मोहब्बत हो गयी! . . .

फिर अचानक वह औरत कहीं अंदरूने सिंध चली गयी और वहां किसी बड़े जमींदार से बाकायदा अकद (निकाह) करके पर्दे में बैठ गयी. मैंने दफ्तर से छुट्टी ली और मशरकी पाकिस्तान के किसी इंतहाई मशरकी गोशे में तबादला कराने का प्रोग्राम बना लिया. मगर भला हो मुश्ताक का कि वह मेरी मदद को पहुंचा. उसने मेरे तबादले के प्रोग्राम को मंसूख करके हर रात एक नई औरत का प्रोग्राम मुरत्तब किया और प्रोग्राम पर अमल करके मैंने अपनी मोहब्बत की नाकामी के सब जख्म मुंदमिल कर लिये.

* *

एक दिन मुश्ताक ने एक बहुत अमीर कारोबारी के मुताल्लिक बताया—अर्से से उसका काम अटका हुआ है, आपकी कलम की एक जुंबिश से यह काम हो सकता है. मुझसे कई बार कह चुका है मगर न कोठी की बात करता है न कार की. कहता है, साहब से कहो मैं अछूते से अछूता माल पेश करने को तैयार हूं! . . . मैंने कहा—कारों, कोठियों को मारो गोली, बहुत जमा हो चुकी हैं. तुम आज ही उससे बात करो कि साहब मान गया है.

शाम को मुश्ताक बड़ी संजीदा व बाविकार सूरत लिये मेरे कमरे में आया तो मैं मेज पर व्हाइट हार्स की बोतल लिये बैठा था. फिर उसने सिराज की तरह मुझे आंख मारी और परदा उठा दिया. पहले एक औरत अंदर आयी. यह बहुत ही तंदुरुस्त औरत थी. खून इसके चेहरे से फूटा पड़ रहा था, यह खून उसकी आंखों में भी चमक रहा था और उसकी हथेलियों में भी! उसने मेरी तरफ देखा और लमहा भर के लिए जैसे जम कर रह गयी! मगर फिर फौरन ही उसने आंखें झुकायीं, सलाम के लिए सर को जरा खम किया और जैसे सरगोशी में बोली—आ भी जाओ न रजिया! फिर वह मेरी तरफ देख कर मुसकरायी—नई नवेली है न, डरती है! फिर वह दरवाजे में गयी—जाओ न रज्जू! फिर बाहर जा कर उसने रज्जू को जैसे धक्का दे दिया. उसने ज्यों ही मेरे कमरे में कदम रखा मैंने बढ़ कर उसकी नकाब एक झटके से उलट दी और वह सोफे पर जैसे गिर-सी पड़ी. . . वह बड़ी अजीब-सी लड़की थी, अजब यूं कि वह कुछ ऐसी खूबसूरत तो न थी पर लगती खूबसूरत थी.

—अच्छी हो बिल्कीस. मैं दांत भींच कर बोला, ऐसा न करता तो चीख पड़ता. . .औरत एकदम बोली—जरा जल्दी से जाओ मुश्ताक भाई, कुछ तिक्के कबाब भिजवा दो, और देखो कबाब जरा मिर्चों वाले हों जो मुझे बिल्कुल रुला दें!

मुश्ताक चला गया तो मैंने देखा कि औरत कबाब के आने से पहले ही रो रही थी. उसने लपक कर चिटखिनी चढ़ा दी और पलट कर मेरे कदमों में लिपट कर ढेर हो गयी! वह अपने भीगे गाल मेरे पांव से रगड़ कर फरियाद करने लगी—मेरा पर्दा रख लीजिए, साहब! मेरा और मेरी बेटी का पर्दा खुदा के और आपके हाथ में है! . . . मैं क्या करूं साहब, मेरी एक ही बेटी है, मगर सब नई बेटी मांगते हैं. मैं अपनी बेटी को कैसे बदलूं साहब! इसीलिए शहर बदल लेती हूं. . .मुझ निगोड़ी को क्या पता था कि आप लोग भी शहर बदल लेते हैं! खुदा के लिए साहब, खुदा के लिए मेरा और मेरी बेटी का परदा रख लीजिए, वरना कोई हमें दो पैसे को भी नहीं पूछेगा!

दूसरे दिन मैंने इलयास को खत लिखा कि अपने कारोबार के सिलसिले में कराची आना चाहते हो तो हजार बार आओ, मेरे पास मत आना, मैं कल रात से मर चुका हूं! □□□

(अनुवाद: जहीर नियाजी)

मानकुंवर : एक आपबीती • कन्हैयालाल नंदन

बहुत धुंधली-सी याद आज भी मन में चिपकी हुई है कि मैंने उसे एक पत्थर से चोटहिल कर दिया था. उस समय दर्जा दो में पढ़ता था. गांव का स्कूल. दोपहर के खाने की छुट्टी हुई तो बच्चों की रेहड़ छूटी और घर और स्कूल के बीच जिस तरह की भी मस्ती चलते-चलते बच्चों में हो सकती है, हो रही थी. मेरे किसी साथी ने मेरे सींकिया शरीर को चुनौती दे दी कि मैं उससे ज्यादा ऊंचा डीला नहीं फेंक सकता. मैंने ताव में आ कर एक मंझोले कद का ईट का टुकड़ा उठाया और पेड़ की ऊंचाई नापने को कस के फेंक दिया. उसकी चिंता नहीं थी कि यह कहां गिरेगा. चिंता तो तब हुई जब पता चला कि मानकुंवर की मां सरस्वती बाई मेरे घर पर उलाहना ले कर मुझसे पहले पहुंच चुकी है. पहुंचते ही मेरी मां ने मेरे गालों पर दे तड़ातड़, दे तड़ातड़. इस—— बदमाश की बदौलत मुझे एक रंडी के उलाहने सुनने पड़ रहे हैं! और फिर तड़ातड़.

मेरा खाना मेरे आंसुओं में ढल चुका था. बाबा आये तो अपने पोते को रोते देख कर उनका विश्वामित्री क्रोध भड़क उठा— कहां गयी ससुरी सरसुतिया, उलाहना उसकी खोपड़ी से बहाऊंगा. साली रंडी, समझती क्या है अपने को! जितने आंसू मेरे नाती के बहे हैं, उतना खून न बहा दिया तो देवीदयाल नाम नहीं. और उन्होंने उठायी अपनी लाठी और चल पड़े मुझे बगल में साथ ले कर. वे तैश में थे, मेरे आंसुओं के सामने सरसुतिया की बिटिया के सर से बहता हुआ खून उनके लिए पानी था. . . . इसके बाद क्या हुआ था, अब याद नहीं. बस इतना याद है कि सरसुतिया बाई ने मेरे बाबा से अपने हीनता बोध के साथ उलाहना ले कर पहुंचने की मांफी मांग ली थी और बात आयी-गयी हो गयी थी. लेकिन तब से आज तक मैंने आसमान की ओर कोई पत्थर नहीं फेंका. जाने क्यों मानकुंवर की यह चोट खायी तस्वीर आज भी मेरे मन में ज्यों की त्यों जिंदा है.

एक बार हो तो एक बार, जब कोई घटना बार-बार कौंध कर मन ही मन आपको गुनहगार बनाने पर उतारू हो जाये तो भला चुप भी कब तक रहा जा सकता है! अभी पिछली बार जब मैं गांव गया तो मैंने अपने लंगोटिया यार शिव को साथ लिया और मानकुंवर के [illegible] का दरवाजा खटखटा दिया—— कौन? अंदर से आवाज आयी.

——मैं! परदेशी.

——अच्छा, आज परदेशी बन कर आये हैं? मानकुंवर ने अपनी मिस्सी लगी बत्तीसी के बीच से मोहक मुस्कान मारी और 'कब आये' वगैरह के साथ कुशल-क्षेम पूछते हुए बैठने का आग्रह किया.

बैठने को तो बैठ गये लेकिन हम दोनों के मन में एक तूफान उठ खड़ा हुआ. हम लोगों ने कई बार यह योजना बनायी कि मानकुंवर से एक बार खुल कर बातें की जायें और उससे उसके अंतर्मन के विचार जाने जायें कि एक वेश्या के रूप में उसका मन कैसा महसूस करता है, वह अपनी जिंदगी में दर्द का सिलसिला पाले हुए है तो क्यों नहीं उस विश्वासी के साथ शादी रचा कर बैठ गयी जिसने आजन्म अपनी मोहब्बत निभाने की कसमें खायी थीं. लेकिन कभी उसके दर्द को छेड़ने की हिम्मत न हुई और कभी संकोच रहा. इस बार इरादा मजबूती पकड़ गया था. मैंने कहा— मानकुंवर. . . . और मेरे सामने से मानकुंवर की जिंदगी की सारी सुनी-अनसुनी दास्तान गुजर गयी.

——बोलिये, बोलिये! क्या कह रहे थे आप?

——तुम्हें याद है, बचपन में मैंने तुम्हें बड़ी जबर्दस्त चोट पहुंचायी थी.

——नहीं मुझे याद तो नहीं, लेकिन वह चोट तो आयी-गयी हो गयी है. चोटें तो मैंने अब जो खायी हैं, उनका कोई हिसाब है?

——हिसाब भी तुम्हारे पास होगा. लेकिन क्या हर्ज है, अपनी जिंदगी के पन्ने पलट कर देख लो. हिसाब में कहीं भूल तो नहीं है.

——नहीं, भूल नहीं है. हिसाब बहुत साफ है.

मेरे सामने साइकिल का हैंडिल थामे, पान खाये, करीने से कढ़े बालों वाला एक नौजवान कौंध गया जिसे मैंने भी अनेकों बार मानकुंवर से बात करते, उसके यहां बैठे, पान खाते, आते-जाते देखा था. उस बात को सालों गुजर गये. मैंने पूछा—— अब कहां हैं वो आजकल?

——हैं! अभी भी कभी मिल जाते हैं या सामने पड़ जाते हैं तो पूछते, कोई तकलीफ तो नहीं है. कोई तकलीफ हो तो जरूर बताना. मैं आज भी कुछ कह दूं तो अपनी कोशिश भर वे मदद करने से नहीं कतरायेंगे. सोचो भला, जब मुझसे पूछते थे कि तुम मुझसे शादी क्यों नहीं कर लेती तो मैं कह देती थी कि अगर मैं शादी कर लूंगी तो मेरी मां को रोटी कौन देगा? मेरी छोटी बहन पढ़ रही है, उसकी फीस कौन भरेगा?

मानकुंवर की आंखें छलछला उठी थीं. अपनी मां को नजरों से टटोलने के लिए इधर-उधर नजर घुमायी और जब जान लिया कि आसपास नहीं हैं, तो आंख से टपकता एक नन्हा-सा कतरा आंचल में सुखा लिया.

——मानकुंवर! और वह सोते से जाग उठी.

——क्या सुर छेड़ें हैं आपने भी! अपने आंचल में बंधी इलायची की फलियां निकाल कर मेरे सामने कर दिया. मैंने इलायची तो ले ली लेकिन चुप्पी का कसाव कसाव ढीला न कर पाया. चुप्पी उसी ने तोड़ी—— पंद्रह साल की थी जब पहली बार किसी पुरुष का साहचर्य निभाने के लिए मजबूर हुई थी.

——उस व्यक्ति के बारे में आज भी कुछ कशिश महसूस करती हो?

——करती क्यों नहीं हूं. आखिर उसके साथ आठ

दस साल बीते हैं. लेकिन तब यह ज्ञान नहीं था कि हमारा साथ देनेवाला इस दुनिया में कोई नहीं है. आखिर मेरी मां को ही देख लीजिए न, हरबकश चाचा आज भी तो जिंदा हैं. अम्मां ने अपनी सारी जवानी हरबकश चाचा को सौंप दी किंतु आज कोई झांक कर नहीं देखता.

—तब फिर उन पर विश्वास कैसे किये बैठी हो. .. यह बात मैंने शरारतन चुटकी लेने के लिए कही थी.

मानकुंवर ने दहला मारा :

'यूं तो रंग एक है जिससे रची है ये दुनिया,
रंग उनका-सा मगर ढूंढ़ के पाया न गया.

मेरे लंगोटिया यार खिल उठे, शेर सुन कर उनकी सर्दी छूटी—— अच्छा एक बात बताइए, आपने जब सबसे पहले किसी अजनबी पुरुष को अपने बिस्तर पर पाया तो कैसा महसूस हुआ था? और यह पूछते मेरे यार का चेहरा शरम से लाल हो गया.

किसी वेश्या के लिए यह सवाल कोई विशेष अहमियत नहीं रखता, लेकिन मानकुंवर झेंप गयी. —अजीब सवाल है आप का भी! फिर एक खिलखिलाहट और वही खामोशी. लेकिन मैं देख रहा था कि मानकुंवर उस अचीन्हे अनुभव को गिरफ्त में ले आने की कोशिश में लगी हुई थी. उसने उसे पकड़ भी लिया लेकिन शब्द धोखा दे गया——आप अपना सवाल जरा फिर दोहराइए. उसकी इस दृढ़ता से इस बार शिव को ज्यादा शरम आयी लेकिन उसने एक शोध छात्र की तरह अपना सवाल दोहरा दिया. मानकुंवर ने सहज हो कर जवाब दिया——जो आदमी बिस्तर तक पहुंचने की स्थिति में पहुंचता है, वह अजनबी नहीं रह जाता.

——यह जिंदगी तुम्हें नापसंद रही है, यह हम सभी जानते हैं, तब फिर तुमने इसे अपनाया क्यों?

——पहले अम्मा ने मेरे लिए कोई लड़का देख कर शादी कर देनी चाही थी, लेकिन फिर वही बात कि अगर मैं शादी करके चली जाती तो घर की रोटियां कैसे चलतीं! घर की परिस्थितिवश मैं मजबूर हो गयी. हां, एक बात जरूर रही है, जितने साल एक आदमी की हो कर रही हूं, दूसरे को शरीर देना कतई पसंद नहीं किया.

——कभी कोई ऐसा मौका भी तो आ पड़ा होगा, जब मजबूरी आ गयी हो और. . .

——मौके जरूर आये हैं, आये क्यों नहीं! नाच-गाना करती रही हूं, अकेले-दुकेले बाहर जाती रही हूं. एक मौका तो ऐसा आया था जब लगा कि आज बचूंगी नहीं. लेकिन उन्हीं सब बातों से ऊब कर नाच-कूद छोड़ दिया.

——एक बात बताओ मानकुंवर, तुम्हारे मन में यह नहीं होता था किसी नये आदमी को आया देख कर कि यह आज तक यहां कभी नहीं आया, आज क्यों आया है? और खासतौर से तब जब कि तुम स्वयं इस बात को मानती हो कि रंडी के कोठे पर जो भी जाता है, बरबादी का साफा सर पर बांध कर जाता है.

——होता क्यों नहीं! यह तो महसूस होता है कि क्यों आया है जब आज तक नहीं आया था. लेकिन अपने घर को दोष दे कर चुप रह जाती हूं.

——तुम्हारे सामने किसी की जिंदगी आदर्श रही है कभी? मैंने बात को सैद्धांतिक मोड़ देने की कोशिश की.

——बात नहीं समझी आपको!

शिव ने धीरे-धीरे समझाते हुए बात का थोड़ा खुलासा किया लेकिन शायद मानकुंवर को खुलासे से ज्यादा जरूरत थी वर्तमान में लौटने की. बात को दो टूक करके बोली—— यह सब सपना था मेरे लिए, आदर्श-वादर्श. मैं इतना जरूर सोचती हूं कि इस घर के बजाय और कहीं भी होती तो इससे तो अच्छी ही रहती.

एक हल्की-सी आह का पुट उसके इस वाक्य में था जो निश्चय ही तनहाइयों में कचोटता है. चलते हुए, मैंने सौजन्यवश कह दिया—— और तो क्या कहूं तुमसे, लेकिन मेरे लायक कोई सेवा हो तो जरूर याद करना. अपने तईं. . . . मुझे पता नहीं था कि इस वाक्य से समंदर अचानक मचल जायेगा. मेरी जबान उसकी आंखों से झरते आंसू देख कर वहीं रुक गयी. मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि जिसे सहानुभूति भी इतनी भारी पड़ने लगी हो, दर्द की उस तनहा तस्वीर के सामने कहूं तो क्या कहूं! और मैं मौन वापस चला आया. एक गुनाह से मुक्ति पाने गया था, उससे बड़ा गुनाह कर आया. तब से आज तक नहीं सोच पाया कि मानकुंवर से जब अगली बार सामना होगा तो क्या कहूंगा.

☐☐☐

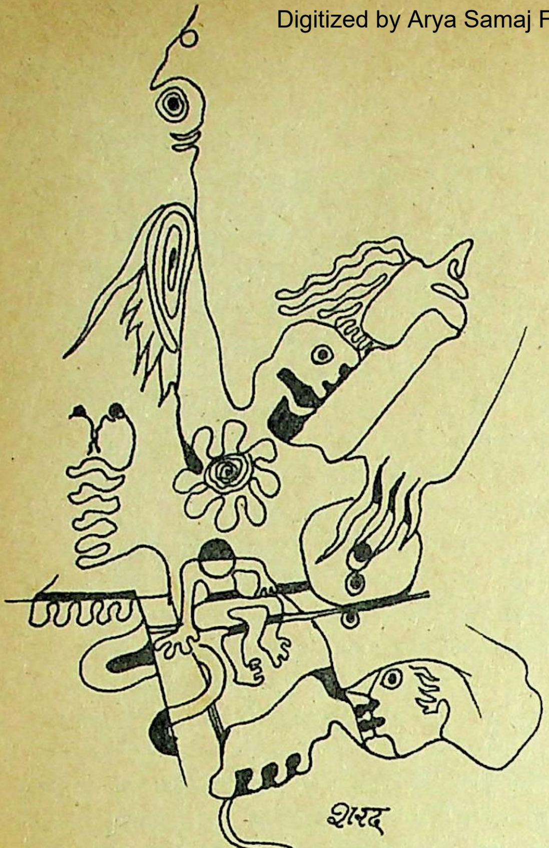

• शरद कांबले

समदर्शी

कुछ महिलाएं एक दिन श्री रामकृष्ण परमहंस के यहां, उनके सामने बैठी, उनसे बातचीत कर रही थीं. इतने में रमणी नाम की एक वेश्या गली में से निकली.

परमहंस ने उसे देखते ही पुकार कर कहा—तुमने तो आजकल इस ओर आना छोड़ ही दिया है, क्या बात है?

उन्हें इस प्रकार वेश्या से बात करते देख कर सामने बैठी महिलाएं झेंप गयीं.

कुछ देर के बाद परमहंस उन्हें मंदिर दिखाने ले गये. जब वे काली-मंदिर में पहुंचे, तो परमहंस ने काली माता को संबोधित करते हुए कहा—मां, तुम्हीं ने वेश्या रमणी का रूप धारण किया है. तुम्हीं वेश्या का रूप भी ग्रहण करती हो, और तुम्हीं पवित्रता का रूप भी धरती हो. धन्य हो तुम मां! उनके पास खड़ी महिलाओं की समझ में आया कि रमणी से घृणा करना गलत है; परमहंस उसमें भी काली माता को ही देखते हैं. सो उनका अपने पतिव्रता होने पर गर्व करना व्यर्थ है, क्योंकि यह भी काली माता की ही इच्छा का परिणाम है. □

गर्मी की दोपहर

• ओविद

गर्मी के दिनों की बात है. दोपहर ढल चुकी थी. मैं काउच पर लेटा था, कुछ आराम की उम्मीद में. खिड़की थोड़ी-सी खुली थी, थोड़ी-सी बंद थी और भीतर की रोशनी में जंगल का-सा असर था; यानी रंग कुछ वैसा ही था जैसे गोधूलि के वक्त होता है. उस लड़की के लिए जो कि अपने आपको दिखाना भी चाहती है और छिपाना भी, इससे बेहतर रोशनी और माहौल नहीं हो सकता.

और कोरिन्ना चली आयी, ढीला-ढाला कुरता पहने, अपनी सफेद गरदन पर अपने लहराते बालों को बिखेरे. ठीक वैसे ही जैसे रानी सेमीरामिस अपने शयनकक्ष में आती थी या फिर उस लाइस की तरह जिसे अनेकानेक नायकों ने अपने आलिंगन में लिया. मैंने कुरते को खींच लिया. बेचारा कुरता! उसकी कोई औकात नहीं थी, फिर भी वह उसे अपने चारों ओर लपेटे रखना चाहती थी. इसके बावजूद उसने कोई जद्दोजहद नहीं की, मानो वह जीत के लिए उत्सुक हो; इसीलिए वह शीघ्र ही पराजित हो गयी. अब वह मेरे सामने बिना किसी परदे के खड़ी थी और मुझे उसकी निर्दोष सुंदरता में कोई भी कमी नजर नहीं आ सकी. क्या कंधे थे, क्या बांहें थीं, जिनको मैंने छुआ, क्या गोलाइयां थीं सीने की और उनके नीचे क्या स्निग्धता थी! गर्मी और तराश! कितने भरे-भरे और गुदाज उसके नितंब! कितनी जवान, मरमरी उसकी जांघें! लेकिन इस सूची का क्या फायदा! एक-एक अणु प्रशंसनीय था! बस, मैंने उसे खींच लिया.

बाकी आप जानते ही हैं. □

बेटियां

'वतन' के संपादक, मौलवी इन्शा अल्लाह खां इकबाल से मिलने प्रायः उनके यहां जाया करते थे.

इकबाल अनारकली में रहते थे, जहां वेश्याओं के कोठे होते थे.

बाद में म्युनिसपल कमेटी ने वेश्याओं को वहां से उठा दिया था. उन्हीं दिनों मौलवी साहब इकबाल से मिलने कुछ एक बार गये तो वे घर न मिले.

आखिर एक बार जब मुलाकात हुई, तो मौलवी साहब ने कहा—डाक्टर साहब, जब से तवायफें अनारकली से गायब हो गयी हैं, आप भी यहां नजर नहीं आते. अजीब हैं यह तवायफें भी!

—मौलवी साहब, इकबाल ने कहा—आखिर तो वे 'वतन' की ही बेटियां हैं. □

सावित्री

• सुहैल अज़ीमाबादी

राजेश ने कमरे में पांव रखा तो अचकचा गया. यह वह कमरा नहीं था जहां वह आता रहा है. यह एक साफ-सुथरा और सुरुचिपूर्ण कलात्मक ढंग से सजा हुआ कमरा था और कमरे के बीच में खड़ी थी सफेद साड़ी में लिपटी हुई एक सौम्य युवती, जो संगमरमर की तराशी हुई प्रतिमा लगती थी.

—बैठिए, युवती के होंठ हिले.

—ओह हां, जैसे राजेश सोते से जागा. फिर हड़बड़ा कर बोला——अगर मैं भूलता नहीं तो यहां पहले अनिता नाम की एक लड़की रहती थी.

—हां, लेकिन अब वह यहां नहीं है. उसने शादी कर ली है और कहीं दूसरी जगह रहती है.

—अच्छा ऽऽ

—क्या आपको उसका शादी करना अच्छा नहीं लगा?

—क्यों नहीं, यह तो बहुत खुशी की बात है . . . और उसे सचमुच खुशी हुई. फिर वह गंभीर होता हुआ बोला—लेकिन आप यहां . . . आपका नाम क्या है ?

—जी सावित्री . . . और आपका ?

—सत्यवान, अचानक उसके मुंह से निकला और दोनों हंसने लगे.

अब राजेश कुछ सामान्य हो गया था. उसने कमरे में इधर-उधर नजर डाली. एक रेक में कुछ किताबें और पत्र-पत्रिकाएं रखी थीं. उसे महसूस हुआ कि सावित्री एक पढ़ी-लिखी और शरीफ घर की लड़की है और सोनागछी में रहने वाली तमाम लड़कियों से बिल्कुल अलग है.

तभी सावित्री खड़ी होती हुई बोली——आप बैठिए तब तक मैं चाय बना कर लाती हूं. सावित्री ने अपने भाई चारू को पान लाने के लिए भेज दिया.

उन्होंने चाय पी, पान खाये और बहुत-सी बातें कीं वह भूल ही गया कि वहां क्यों आया है. तभी घड़ी ने बारह बजाये. राजेश चौंक उठा और खड़े होते हुए बोला—अरे, बारह बज गये ! अब मुझे चलना चाहिए... काफी दूर जाना है . . .

—कहां जाना है? सावित्री ने पूछा.

—पार्क सर्कस. होटल रोजलैंड. यहां से काफी दूर है.

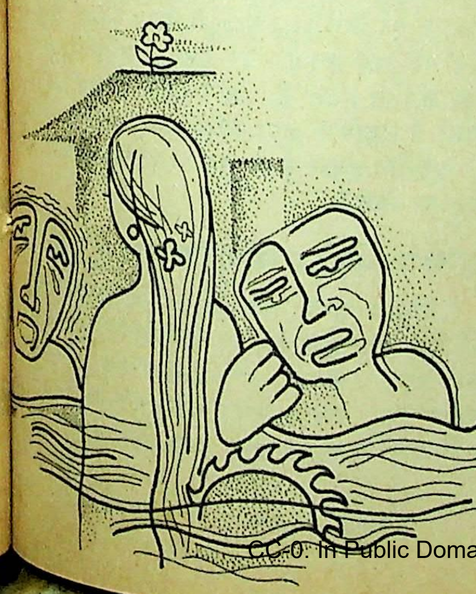

● टी. ए. राणा

सावित्री उसका मुंह देखने लगी. राजेश को खयाल आया कि उसने सावित्री का सारा समय बातों में बरबाद कर दिया यदि वह किसी दूसरे कोठे पर होता तो या तो इतने समय के अतिरिक्त पैसे मांग लिये जाते या दूसरे ग्राहकों को निबटाने की जल्दी में उसे भगा दिया गया होता. उसने अचानक अपनी जेब में हाथ डाला और सौ रुपये का एक नोट सावित्री को पकड़ा दिया और चला गया. सावित्री आश्चर्य से उसे जाते हुए देखती रही. एकाएक उसकी नजर नीचे फर्श पर पड़ी, वहां एक कार्ड गिरा हुआ था. कार्ड पर लिखा था——राजेश कुमार अग्रवाल, स्टार फिजल्स कंपनी, रांची, उसने कार्ड संभाल कर रख लिया.

राजेश सावित्री को भूल जाने का प्रयत्न करता रहा लेकिन भूल न सका. इसीलिए वह दूसरे दिन गया भी नहीं. तब सावित्री स्वयं अपने भाई के साथ उसके होटल आयी और राजेश को उसके साथ जाना पड़ा.

उसी रात सावित्री ने राजेश को अपनी कहानी सुनाई, जिससे राजेश बहुत प्रभावित हुआ. उसने कहा—— सावित्री, अगर मैं विवाहित न होता तो तुम्हीं से शादी करता लेकिन मैं तुम्हें इस स्थिति में देख भी नहीं सकता. हो सके तो यहां से मुक्त होने की कोशिश करना और मुझे खबर देना.

राजेश रांची लौट गया और अपने कारोबार में लग गया. तभी एक दिन सावित्री का भाई उससे मिला और बोला——दीदी आयी हैं. अपनी एक सहेली के घर ठहरी हैं . . . आपसे मिलना चाहती हैं . . .

राजेश ने उत्तर दिया——शाम को आऊंगा. वह बड़े ऊहापोह में पड़ गया क्योंकि जिस सहेली के पास सावित्री ठहरी थी उसे वह जानता था. अंत में उसने अपने मित्र मानक से बातें करने का निश्चय किया और सारी बातें बता कर उसे सावित्री के साथ शादी करने के लिए तैयार कर लिया. मानक की पत्नी दो छोटे-छोटे बच्चे छोड़ कर तीन साल पहले मर गयी थी. मानक बड़ा आदर्शवादी और चरित्रवान युवक था.

शाम को राजेश मानक के साथ सावित्री से मिलने गया और उसने सावित्री को भी शादी के लिए तैयार कर लिया.

शादी के बाद सावित्री सुख से रहने लगी. लेकिन अब वह नहीं चाहती थी कि राजेश उसके पास आये क्योंकि वह राजेश से प्यार करती थी लेकिन अपने पति को धोखा नहीं देना चाहती थी.

□□□

(संक्षिप्त रूपांतर : सुरजीत)

महानगर बंबई : वेश्यावृत्ति के सामाजिक आयाम

● रमाकांत आजाद

जिस तरह मद्यनिषेध की विफलता ने महानगर बंबई को शराब की सड़ांध में डुबो कर रख दिया है, उसी तरह हिंदी की अनेक कुत्सित और कामोत्तेजक फिल्मों एवम् इसी तरह के यौन-कुंठा ग्रस्त घटिया उपन्यासों ने मिल कर यहां की युवतियों में वेश्यावृत्ति की प्रवृत्ति का एक नवीनतम संस्करण अनुमोदित कर दिया है.

यौन संबंध यदि यहां के उच्च तथा उच्च-मध्यम वर्ग की युवतियों और महिलाओं के लिए आधुनिकता के नाम पर सामान्य व्यवहार जैसी बात रह गये हैं, तो मध्यम और निम्न-मध्यम वर्ग की युवतियों के लिए ग्लैमर की पूर्ति तथा पेट की भूख मिटाने का साधन बन गये हैं.

माना कि देश में गरीबी है और गरीबी से तंग आ कर पहले भी अशक्त नारी को जीवन-निर्वाह के लिए तन की आहुति देनी पड़ती थी, और आज भी वह कई मायनों में उसके लिए विवश है; किंतु उनका अनुपात एवं सहयोग इस व्यवसाय बनाम कुटीर उद्योग में बहुत कम है, जिनका उल्लेख इस लेख में किया जा रहा है.

प्रथम श्रेणी : संभ्रांत वेश्याएं

बंबई की कोलाबा, गिरगांव, पैडर रोड, वार्डन रोड, वर्ली, दादर, बांद्रा तथा खार जैसी नामी-गिरामी बस्तियों में नव धनवानों तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों के हजारों ऐसे फ्लैट हैं, जहां उनकी रखैलें उनके प्रभाव की आड़ में खुलेआम वेश्यालय चलाती हैं और उस धन से उनके सेठ तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व उद्योग-धंधों में पूंजी-विनियोजन करते हैं. इसी तरह सोशल क्लबों, नृत्यगृहों, मसाज-हाउसों और तथाकथित कला-केंद्रों में भी यह व्यवसाय फल-फूल रहा है.

पहले इस व्यवसाय में बूढ़ी और इस कला में विशिष्ट प्रकार से दक्ष-कुशल महिलाएं ही काम की हुआ करती थीं; किंतु बंबई में फिल्म नगरी होने के नाते अब फिल्म लाइन की रिटायर्ड, तथा रिजेक्टेड सिने नेत्रियां, इस पेशे के लिए अधिक सहायक सिद्ध हो रही हैं.

जिस तरह कतिपय पुरानी, पिटी हुई अभिनेत्रियों ने इस पेशे को सदिच्छा से स्वीकार लिया है, उसी तरह कुछ पुराने पिटे-पिटाये स्वघोषित निर्माता, निर्देशक तथा फिल्म-उद्योग से संबंधित टुटपुंजिये फाइनेंसर भी इस धंधे में लग गये हैं. और उनकी सहायता नयी, अधेड़ तथा फ्लॉप तारिकाओं के साथ परंपरागत चले आ रहे उच्च से उच्चतम तबके की वासनाप्रिय, भ्रष्ट महिलाएं और युवतियां भी जब-तब करती रहती हैं. कुछ तो व्यवसाय में पति का दिवाला निकल जाने या सामाजिक रुतबा बनाये रखने के लिए धन की अधिक आवश्यकता आ पड़ने पर हमेशा के लिए इस पेशे से जुड़ जाती हैं, किंतु कुछ ऐसी भी हैं, जो अपना जीवन पति और बाल-बच्चों के साथ आराम से निर्वाह कर सकती हैं, फिर भी, कार-बंगले और ऐशो-आराम के साथ जीने के लिए इसकी शरण में आती हैं.

इस श्रेणी की कुछ वेश्याएं तो फ्लैटों में बंद हो कर धंधा करती हैं, जिनमें विभिन्न राज्यों से खरीदी हुई लड़कियां भी शामिल हैं. कभी-कभी कॉलेज तथा स्कूल की कमउम्र लड़कियां भी देखी और पायी जाती हैं. और कुछ ऐसी होती हैं जिनका सौदा शॉपिंग करते समय या इसी तरह के अन्य किसी काम-धंधे के बहाने हो जाता है. कुछ बड़े होटलों में भी जा कर बैठती हैं, जिनका सौदा वहां के लोगों के जरिये होता है. इसके अलावा इस व्यवसाय को बनाये रखने के लिए अब 'पिकनिक सेंटर', 'मनोरंजन केंद्र' और 'गैदरिंग क्लब' भी खुलने लगे हैं, जहां पश्चिमी शैली के नाइट क्लबों की तरह 'नग्न प्रदर्शन' नहीं, बल्कि वाममार्गियों की तरह सामूहिक 'रति विलास' लीलाएं चलती हैं.

पारिवारिक स्तर पर वेश्यावृत्ति करने वाली प्रथम श्रेणी अथवा स्पेशल क्लास की सभी वेश्याओं के पास अपना आलीशान फ्लैट और गाड़ी होती है तथा पति और बच्चे भी. और किसी-किसी मामले में मां-बेटी दोनों साथ-साथ चलती हैं. इनकी फीस बड़ी ऊंची होती है. यानी प्रति घंटा १०० रुपये से ले कर २०० रुपये तक. और पूरी रात या पूरे दिन का १००० से १५०० तक. खाने-पीने का खर्च अलग. पर इनका हिसाब-किताब बड़ा सीमित होता है. और इनमें फिल्मी स्तर वाली वे लड़कियां तथा अभिनेत्रियां नहीं शामिल हैं, जो तीन हजार से ले कर पांच हजार तक एक रात का लेती हैं.

द्वितीय श्रेणी : ग्लैमरपरस्त वेश्याएं

द्वितीय श्रेणी की सामाजिक वेश्याएं भी फ्लैटों में ही रहती हैं, पर इनके फ्लैट का दाम कम होता है— अधिक-से-अधिक ३०-४० हजार तक. जबकि प्रथम श्रेणी की वेश्याओं के फ्लैट एक से ले कर पांच लाख तक के होते हैं.

इनका मालिक बनाम सेठ एक बार एक मुश्त रकम खर्च कर, फ्लैट खरीद कर इन्हें दे देता है. उसके बाद उसकी छुट्टी.

इस तरह सेठ एक बार रकम खर्च करके जीवन भर के लिए मुक्त हो जाता है. यदि सेठ को जीवन में कभी अर्थ-संकट का सामना करना पड़ा, तो 'एमरजेंसी' में वह अपनी इस रखैल से दस-बीस हजार रुपये ले भी सकता है. साथ ही सप्ताह में उसका एक दिन सुरक्षित रहता है—खासकर रविवार!

इनका वेश्यालय चलाने का अपना तौर-तरीका भी बिल्कुल अलग है. ये एक औसत उम्र तक खुद तो सप्लाई होती ही हैं और चौबीस घंटे 'रेडी' भी रहती हैं, किंतु अपने फ्लैट में किसी लड़की को रखती नहीं. जिस लड़की को धंधा करना होता है, वह स्वयं अपने घर से बन-ठन कर इनके फ्लैट तक पहुंच जाती है. हां, कभी किसी कारणवश अगर लेट हो गयी, तो बात अलग है, नहीं तो इनका समय भी ऑफिस की तरह निश्चित रहता है, क्योंकि इनके अधिकांश खरीदार ऑफिस-बाबू ही होते हैं.

सुबह दस, साढ़े दस-ग्यारह से शाम पांच-छह-सात तक, और विशेष परिस्थितियों में रात के नौ तक, जो भी पुरुष इन्हें आ कर पसंद करता है, वह उसके साथ दूसरे कमरे में चली जाती है. लेकिन इनकी फीस फ्लैट की मालकिन या नौकरानी बनाम आया ही तय करती है——ग्राहक की जेब देख कर!

तय किये गये उस पैसे में इनका आधा हिस्सा होता है, जो इन्हें उसी वक्त मिल जाता है. भीतर जा कर यदि वह कस्टमर से नखरे दिखा कर या और किसी तरह का झांसा, पट्टी अथवा वादा कर, उससे कुछ और प्राप्त कर लेती है, तो वह उसका अपना होता है. किंतु लड़की की जो फीस तय होती है, उसमें से दस प्रतिशत उस औरत को अवश्य देना पड़ता है, जो पुरुष को फ्लैट तक पहुंचाती है और इनके लिए ग्राहक ढूंढने में उसे सिनेमा-घरों, बसस्टैंडों, पार्कों, तथा इसी तरह के जाने कितने स्थानों के सुबह से शाम तक चक्कर काटने पड़ते हैं.

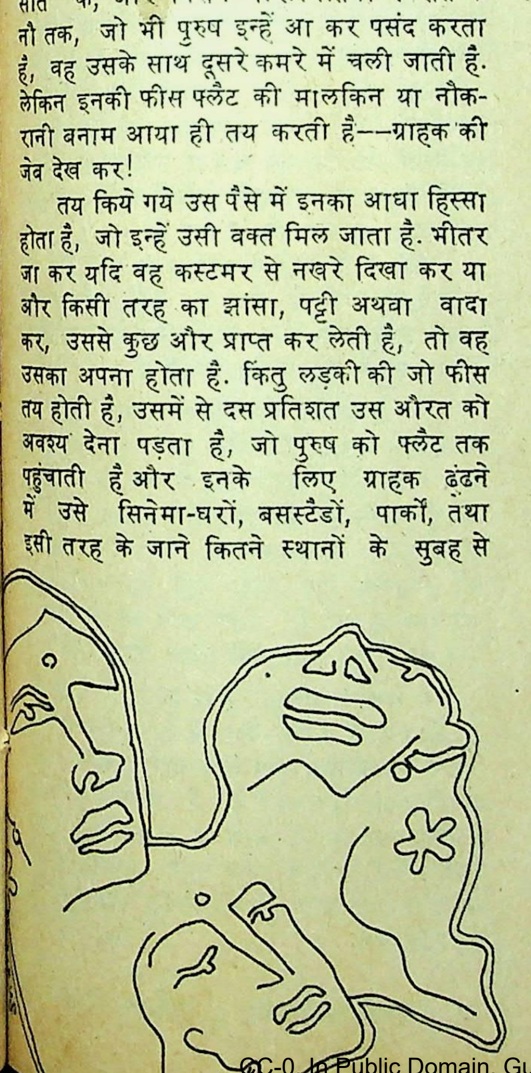

● डी. ए. राणा

अपने फ्लैट में ये एक दिन में अधिक-से-अधिक तीन या चार लड़कियां रखती हैं. एक लड़की को सप्ताह में एक या दो दिन आ कर बैठने की ही अनुमति होती है.

इस तरह इनके यहां बिजनेस सिस्टम से ग्राहक को नित्य नयी लड़की मिलती रहती है. अगर एक लड़की को सप्ताह में दो या तीन दिन के हिसाब से एक महीना पूरा हो जाता है, तो उसे अगले महीने दूसरे फ्लैट में भेज दिया जाता है, यानी उसकी सहेली के फ्लैट में.

इन फ्लैटों में बैठने वाली लड़कियां प्रायः बंबई की होती हैं और वे अपने-अपने घरों से काम पर (नौकरी) जाने के बहाने निकलती हैं. किंतु अपने अभिभावकों को ये रोज पैसा नहीं देतीं. महीने की एक तारीख से दस तारीख के बीच अपने मां-बाप को एक मुश्त बंधी रकम देती हैं.

इस पेशे के अपने कोड शब्द भी हैं, जिन्हें सुन कर कोई भी व्यक्ति आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रह सकता. जैसे लड़की को 'महात्मा' या 'महादेव' अथवा 'महाराज' कहते हैं. फ्लैट की मालकिन को 'महंत', 'मठाधीश' या 'जगत-गुरु'! फ्लैट को 'मंदिर' और उस प्रौढ़ा या बुढ़िया को जो ग्राहक को 'मंदिर' तक पहुंचाती है, 'भक्त आत्मा' कहते हैं.

इसी तरह, जो धन लिया जाता है, उसे 'चढ़ावा', 'भेंट-पूजा' या 'पान-फूल' कहा जाता है. और जो धन देता है, अर्थात् ग्राहक, उसे 'गधा' कहते हैं. लेकिन पीठ पीछे सामने यानी कि मुंह पर उसे 'योगी' कहा जाता है. शब्दार्थ यूं है कि जो एक को भोगता है, वह 'भोगी' है और जो किसी को नहीं भोग सकता वह 'रोगी' है और जो हजारों को 'भोगता' है, वह 'योगी' है, अर्थात् निर्लिप्त!

शुरू-शुरू में किसी भी लड़की को उसकी सहेली या कोई अन्य औरत उस 'मंदिर' तक ले जाती है. आगे चल कर वह स्वतः जाने लगती है. बिना किसी दबाव, बिना किसी हिचक के. प्रारंभ में यूं होता है कि उसे सिनेमा-हॉल से ले कर 'रति-आश्रम' की पवित्र चौकी तक, केवल अंग स्पर्श तक सीमित रखा जाता है और पारिश्रमिक वही मिलता है, जो रात या दिन में बिकने वाली किसी भी 'कॉल गर्ल' या 'सोसायटी गर्ल' का होता है. धीरे-धीरे जब उसे सभी हाव-भाव मालूम हो जाते हैं और पुरुष-स्पर्श का सुख उसके शरीर को भाने लगता है, तो वह स्वयं उस मंजिल को स्वीकार लेती है.

इस काम को जो क्यूटी (कुटनी) अंजाम देती है, वह एक शालीन, संभ्रांत, सादगीपसंद और वाक्पटु महिला होती है, जिसका काम है पिक्चर देखना तथा बसों और लोकल ट्रेनों से

सफर करना. प्रथम मुलाकात में ही ये किसी भी महिला या युवती को अपना मित्र और किशोरी को बेटी बना लेती हैं और फिर रासलीला शुरू!

इस तरह एक सहेली दूसरी को, दूसरी तीसरी को और तीसरी चौथी को उस 'मंदिर' तक पहुंचाती रहती है.

इस पेशे से जुड़ने वाली कुंवारी लड़कियां और शादीशुदा औरतें, दोनों ही होती हैं. किंतु आगे चल कर इनमें से पचास प्रतिशत कुंवारियां विवाह जैसी रस्म के साथ बंध जाती हैं. और कुछ को विवाह से पूर्व ही बच्चा पैदा हो जाता है. पर इस स्थिति को कम पढ़ी-लिखी तथा निम्न स्तर की लड़कियां ही प्राप्त होती हैं. पढ़ी-लिखी तथा प्रगतिशील बनाम एडवांस लड़कियां 'एबॉर्शन' करा कर मुक्त हो जाती हैं.

शादी जैसी रस्म में बंधने के बाद ये लड़कियां गृहस्थ जीवन तो जीने लगती हैं पर चूंकि उन्हें अड्डे का पता होता है, अत: अपने पास-पड़ोस की एक-दो लड़कियों को 'जन-मंदिर' तक पहुंचा कर ही संतोष अनुभव करती हैं. साथ ही, अवसर देख कर खुद भी कभी-कभी दस-बीस-पचास रुपये झटक लाती हैं.

बंबई में इनके अलावा हजारों की संख्या में ऐसे फ्लैट भी हैं, जहां विशेष रूप से एक कमरा इसी काम के लिए रिक्त रखा जाता है. इन कमरों में प्रवास करने के लिए जोड़े साथ-साथ आते हैं, जिनमें से कुछ प्रेमी-प्रेमिका होते हैं और कुछ का सौदा फिल्म देखते समय या पार्क में बैठे-बैठे अथवा बस-स्टैंड पर खड़े-खड़े हो जाता है. और ये प्रेमिकाएं वही होती हैं जो पूर्व-वर्णित फ्लैटों में जा कर बैठती हैं. पर ये अपने प्रेमियों और चाहने वालों को उन फ्लैटों में नहीं ले जातीं; क्योंकि उससे भाव कम हो जाता है.

तृतीय श्रेणी : सड़क छाप वेश्याएं

तृतीय श्रेणी में वे तमाम लड़कियां आती हैं, जो बाहर गांव यानी उपनगर कहे जाने वाले स्थानों से भी और आगे रहती हैं; और जो सुबह नौ बजते ही नहा-धो कर आईने के सामने खड़ी हो जाती हैं और साढ़े नौ से दस तक के बीच उपनगरों के अपने-अपने घरों से निकल कर, लोकल ट्रेनों में सवार हो, बंबई की सीमेंटेड सड़कों पर पहुंचती हैं और छापामार सैनिकों की तरह बंबई भर में फैल जाती हैं. इनमें सब की सब अनपढ़ और गरीब परिवार की लड़कियां होती हैं.

मध्य रेलवे में जहां इनका दल कर्जत और कसारा जैसे स्थानों से साठ-सत्तर मील की दूरी तय कर सीधे दादर, वी. टी. पर उतरता है, वहीं पश्चिम रेलवे में विरार, पालघर और बोईसर से उतनी ही दूरी तय कर, ग्रांट रोड और चर्चगेट उतरता है. किंतु अधिकांश लड़कियां ग्रांट रोड पर ही उतर जाती हैं; क्योंकि यहां से पूरे शहर में फैलने की अच्छी सुविधाएं हैं, साथ ही बंबई के सभी प्रमुख सिनेमागृह इसी स्टेशन के आस-पास पड़ते हैं.

ये वनचारी (इनके यारों का दिया हुआ नाम) लड़कियां अपने ग्राहकों को अधिकतर उन सस्ते होटलों में ले जाती हैं, जिनमें फैमिली रूम के नाम पर एक संकरी व्यवस्था होती है और उसी में घंटे-आधे घंटे या पंद्रह मिनट बिता कर बाहर आ जाती हैं. कोई-कोई, अगर शिकार अच्छा हुआ, तो ऐसे होटलों या प्राइवेट रूमों में ले जाती है, जो इसी काम के लिए होते हैं.

इस तरह के होटलों और रूमों में केवल दो घंटे की व्यवस्था होती है और चार्ज होता है ५ से १५ रुपये तक. ये होटल और प्राइवेट रूम वाले वक्त-जरूरत के लिए एक-दो लड़कियां भी रखते हैं.

बाहर गांव से आने वाली इन लड़कियों की कोई बंधी आमदनी नहीं होती.

इसी तरह कल्याण, उल्हास नगर, नाला सोपारा और बोरीवली जैसे पर्वतीय और दूर दराज नगरों से कुछ कुलीन तथा सभ्य परिवार की युवा, प्रौढ़ और अधेड़ उम्र की साफ-सुथरी महिलाएं भी आती हैं, जिनमें से युवतियां तो नाचघरों में बैठती हैं और प्रौढ़ तथा अधेड़ उम्र वालियां, वी. टी. एवं चर्चगेट स्टेशनों के शौचालयों के पास आ कर खड़ी होती हैं और पहचानने वाले इन्हें पहचान कर ले जाते हैं.

वैसे इनके घरों में कोई कमी नहीं है. पर ग्लैमर की मारी ये बेचारी करें भी क्या? अनेक तरह के व्यक्तिगत शौक पूरे करने के लिए, साधन जुटाने हेतु, ये ऐसा करती हैं.

इस तरह की एक महिला ने मुझे बातचीत के दौरान बताया कि 'जब मुझे पहली बार यह पता चला कि हमारे शरीर में एक भाग ऐसा भी है जिससे हम सैकड़ों-हजारों क्या, चाहे तो लाखों रुपये कमा सकती हैं, तो मैं परमात्मा को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकी— हे भगवान, तू धन्य है! जिसे खाने को मुंह देता है उसे कमाने का साधन भी प्रदान करता है!'

ये संभ्रांत महिलाएं और युवतियां अपने घर का काम-काज करके, दिन में बारह-एक के बाद घर से निकलती हैं और तीन-चार के बीच अपनी अपनी जगह पहुंच जाती हैं. ये भी घर से किसी रिश्तेदार या मिलने वाले का बहाना बना कर निकलती हैं. लेकिन नित्य नहीं. सप्ताह में दो या तीन दिन और किसी-किसी सप्ताह में तो बस एक दिन.

बंबई में ऐसी माताएं भी पायी जाती हैं, जो स्वयं अपनी जवान लड़की को फ्लैट पर छोड़ आती हैं या सूचना मिलने पर पहुंचा जाती हैं. और जब लड़की का सौदा तय हो जाता है (इनका सौदा पूरे दिन या पूरी रात का होता है) तो नोट गिन कर इत्मीनान के साथ ब्लाउज के भीतरी भाग में छिपा लेती हैं और चलते-चलते दो घूंट शराब और एक-दो उबले हुए अंडों का सेवन कर, टैक्सी फेयर के रूप में दस का एक पत्ता और हथियाने के बाद, मुसकराते होंठों, अपनी लड़की के बारे में फ्लैट मालकिन को यूं हिदायत दे देती हैं-- छोकरी को संभालना! अभी नयी है. घर का माफक, हां. और सुबह जल्दी टैक्सी से पहुंचा देना.

इस तरह का व्यवसाय प्रायः दो परिवारों की मालकिनें बनाम सहेलियां आपस में मिल कर चलाती हैं और दोनों ही एक-दूसरे की सामाजिक सुरक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखती हैं.

मसलन, किसी ने पूछा-- मालती कहां गयी है? तो वह तुरंत उत्तर दे देती है-- मौसी के घर गयी है. अब किसे पड़ी है जो मौसी के घर जा कर पता लगाये? और एक मौसी हो तो कोई पता भी लगाये-- यहां तो हर कुटनी मौसी कहलाती है!

इसी तरह कतिपय ऐसे पति भी पाये जाते हैं, जो अपनी सुंदर पत्नियों को इस काम के लिए उपयोग में लाते हैं और उससे खुले शब्दों में कहते हैं कि 'तुम कुछ भी करो और किसी के भी पास जाओ, पर मुझे तो शाम तक सौ का एक नोट चाहिए.' किंतु रात ये किसी को नहीं देते-- केवल दिन! रात ये अपने लिए ही सुरक्षित रखते हैं.

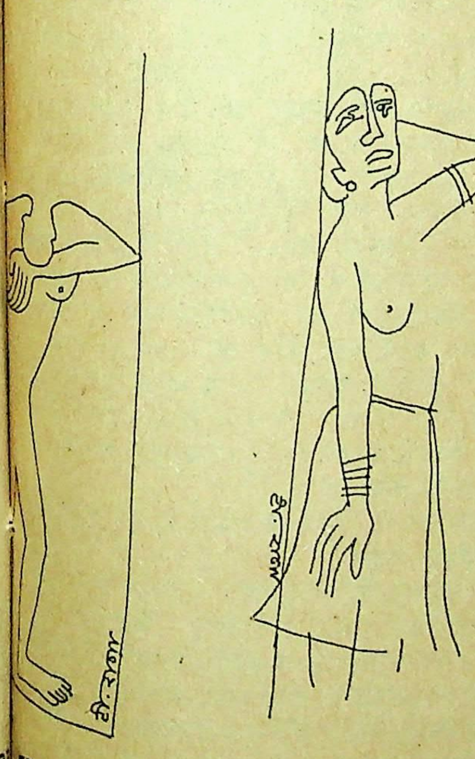

● टी. ए. राणा

इस तरह की औरतों को विवश हो कर यह सोचना पड़ता है कि पूर्ण वेश्या बन कर जीने से तो अर्ध-वेश्या बन कर जीना कहीं अच्छा है--और वे अपने नारी होने तथा अशिक्षित होने के अभिशाप को ओढ़े अर्ध-वेश्या का जीवन जीने लगती हैं!

इस तरह की वेश्या बनी एक औरत से जब मेरी मुलाकात हुई तो वह सुबक पड़ी और आंसुओं के बीच उसने बताया-- पहले उसने मुझसे प्यार किया, फिर शादी की और फिर धंधा करने के लिए बाध्य कर दिया. इतना निकम्मा कि वह खुद मुझे सप्लाई करता था और तब एक दिन मैंने ईश्वर और इस समाज को लानत दी, अपने आप से विद्रोह करके पुरुष से संग्राम करने के लिए कोठे पर चली आयी. जब धंधा ही करना है, तो धंधे की तरह करूंगी!

इसी तरह कुछ ऐसी औरतें भी पायी जाती हैं, जो सामाजिक आवरण के रूप में पति का ढोंग रच कर, कोई एक पुरुष रख लेती हैं और उसकी ओट में धंधा करती रहती हैं. जबकि वास्तविकता यह होती है कि वह उसका पति नहीं, बल्कि रखैल होता है. अब यह है न पुरुष की बेगैरत?

अब यहां यह कहना क्या गलत होगा कि यह बढ़ती आमदनी, बढ़ती गरीबी, बढ़ती महंगाई, फिल्मी कल्चर और 'यौन परिभ्रमण' कराने वाली पुस्तकों के प्रभाव से पीड़ित तथा असमन्वित समाज में समान स्तर पर लगी ग्लैमर की होड़ का ही परिणाम है? लेकिन इस तर्क से कितने लोग सहमत होंगे, कहा नहीं जा सकता!

पेशा

इस लेख में उल्लिखित और व्याख्यायित एक भी महिला -- केवल खरीदी हुई को छोड़ कर-- अपने आप को वेश्या मानने के लिए तैयार नहीं है. इनका तर्क है कि हम तो घर में रहती हैं. अपने मां, बाप और भाई-बहन और पति के साथ. फिर वेश्या कैसे हो गयीं?

इनकी परिभाषा के अनुसार-- वेश्या वह होती है, जो कोठे पर बैठ कर धंधा करती है और वहीं रहती है. और हम-लोग रोज थोड़े ही धंधा करती हैं? कभी-कभी निकलती हैं?

अब है इनकी सामाजिकता और नैतिकता का किसी के पास कोई उत्तर? □□□

अंधेरे-उजाले

नूरशाह

दैनिक आवाज

कल शाम लेक-व्यू पार्क में पुलिस ने एक नौजवान औरत को गिरफ्तार किया. गिरफ्तारी के कारण अभी तक मालूम नहीं हो सके हैं. पर हमारे रिपोर्टर ने सूचना दी है कि पुलिस पिछले कुछ दिनों से इस औरत की तलाश में थी. **(एक अखबारी खबर)**

डी. एस. पी. सिटी

वीणा नामक स्त्री को गिरफ्तार करने का केस मैं आपके सुपुर्द करता हूं. आप अपनी निजी निगरानी में इस केस की बाकायदा जांच कीजिए और अगर आवारागर्दी के आरोप ठीक साबित हों तो दफा १०९ जाबता फौजदारी के अधीन कानूनी कार्रवाई कीजिए.

(अंग्रेजी से अनुवाद)

(हस्ताक्षर) पुलिस-कमिश्नर

आरंभिक रिपोर्ट

नाम-वीणा कुमारी

सुकूनत—कोलाबा, बंबई.

हुलिया—गंदुमी रंग. किताबी चेहरा. स्याह घने बाल. पतले-पतले मुलायम होठ. बड़ी-बड़ी गहरी आंखें. लंबी-लंबी उंगलियां. सरो कद.

पंडित दीनानाथ ने पुलिस को रिपोर्ट दी है कि वीणा नामक एक नौजवान औरत को उसने बेसहारा समझ कर अपने घर में शरण दी. कुछ दिन वहां रहने के बाद एक शाम वह अचानक गायब हो गयी. वह अपने साथ कोई चीज न ले गयी, लेकिन पंडितजी को यकीन हो गया है कि वह यहां आवारागर्दी के बहाने एक सैलानी महिला बन कर आयी है. इस संबंध में पुलिस कई दिन तक वीणा कुमारी की तलाश करती रही और अंत में कल शाम उसे लेक-व्यू पार्क में गिरफ्तार कर लिया गया. आरंभिक पूछा-ताछ से मालूम हुआ है कि वीणा कुमारी का असली नाम साधना है. यह अपनी किस्म का बहुत अनोखा और दिलचस्प केस है और हो सकता है कि यह औरत किसी गिरोह से संबंध रखती हो और यहां कोई खास मकसद ले कर आयी हो. इसलिए मुनासिब कार्रवाई के बाद रिपोर्ट पेश की जायेगी.

बास्कर रैना

एस. एच. ओ. थाना नई बस्ती

मैं लगभग हर रात गये अपनी डायरी के पन्ने काले करता हूं. डायरी लिखने का मेरा शौक अब मेरा जुनून बन चुका है. मैं जब कालेज में पढ़ता था तो अपने सहपाठी लड़के-लड़कियों के बारे में लिखता था. सत्य तो यह है कि लड़कों के बारे में कम और लड़कियों के बारे में बहुत ज्यादा, बल्कि सभी कुछ लिखता था. क्या जमाना था वह और कैसी-कैसी लड़कियां मेरे साथ पढ़ती थीं. अब भी वह दिन नजरों के सामने घूम जाते हैं तो अंग-अंग में अजीब-सी मस्ती जागती है. खुश्क होठों पर बेसाख्ता जीभ फेरने की भावना उमरती है और महसूस होता है जैसे तंग लिबास पहने हुए हुस्न फटा जा रहा हो और चांद में पिघले हुए शरीर इंद्रधनुष के मद्धिम-मद्धिम-से ठंडे रंग लिये संगमर्मर के फर्श पर बिखरते जा रहे हों, लेकिन अब वे दिन बीत गये हैं. मैं कालेज का अलबेला नौजवान नहीं रहा. अब मैं डी. एस. पी. बन गया हूं और दो बच्चों का बाप. इस दौरान में बहुत कुछ बदल गया है, लेकिन डायरी लिखने का मेरा वही पुराना जुनून है. सोने से पहले जब तक दिन में पेश आयी हुई महत्वपूर्ण घटनाओं को लेखनीबद्ध न कर लूं रात को नींद नहीं आती. अब तो यह सारी घटनाएं कालेज की रंगीन और सपनों से भरपूर सुगंधित वातावरण से निकल पुलिस की खुरदरी जिंदगी से वाबस्ता हो गयी हैं. कभी-कभी मैं सोचता हूं, मुझे पुलिस-अफसर न होना चाहिए था. एक कहानीकार होना चाहिए था. एक चित्रकार होना चाहिए था. मुझसे किसीकी आंखों में आंसू नहीं देखे जाते. कभी-कभार मुझे उस चोर से भी हमदर्दी हो जाती है जो दिन-दहाड़े डाके डालता है. कोई मजबूरी ही तो उससे यह कराती है. उसे अगर अच्छा माहौल मिला होता, अच्छी शिक्षा मिली होती तो वह भी इंजीनियर बन सकता था, वकील बन सकता था. किसी दफ्तर का बाबू बन सकता था. जब किसी मासूम और निर्दोष का खून बहता है, तो मेरी आंखों से आंसू टपकते हैं. उस समय मैं उन आंसुओं की कहानी लिखना चाहता हूं. उन पात्रों को अपने कैनवास पर फैलाना चाहता हूं. आज ही की बात है. वीणा कुमारी का केस अब भी मेरे पास है. यह औरत जितनी खूबसूरत है, उसकी जिंदगी की कहानी उससे ज्यादा बदसूरत है. उसकी हंसी देख कर मोनालिजा की हंसी तो याद आती है, लेकिन यह हंसी कितनी कटु है! उसके काले-स्याह घने बालों को देख कर अंधेरे में डूबी हुई रात याद आती है जो प्रत्येक वस्तु को समेटना चाहती है. उसकी आंखों में वही गहराइयां हैं जो उमर-खय्याम की रुबाइयों में हैं. देखिए न, मैं किसी कहानी के पात्र की शक्ल-सूरत बयान करने लगा. वीणा की कहानी दरअसल. . .अब मुझे नींद आ रही है. रात के बारह बज चुके हैं और मुझे नित्य की तरह पौ फटने से पहले जागना है. पुलिस की जिंदगी का यह पक्ष मुझे पसंद नहीं. आप सोने के मूड में हों तो फोन की. . .

(डी. एस. पी. इनाम की डायरी का एक अधूरा पन्ना)

हलफिया बयान

जी हां, मेरा नाम पंडित दीनानाथ है. बाप का नाम पंडित माधो राम है. मैं बांजी पुरा में रहता हूं. मेरी उम्र लगभग साठ वर्ष की है. मैं कश्मीरी कालीनों का व्यापार करता हूं और प्रायः सरदियों में कुछ अपने स्वास्थ्य के कारण और कुछ अपने व्यापार के कारण देश के विभिन्न स्थानों का दौरा करता हूं. अब की बार मैं गो

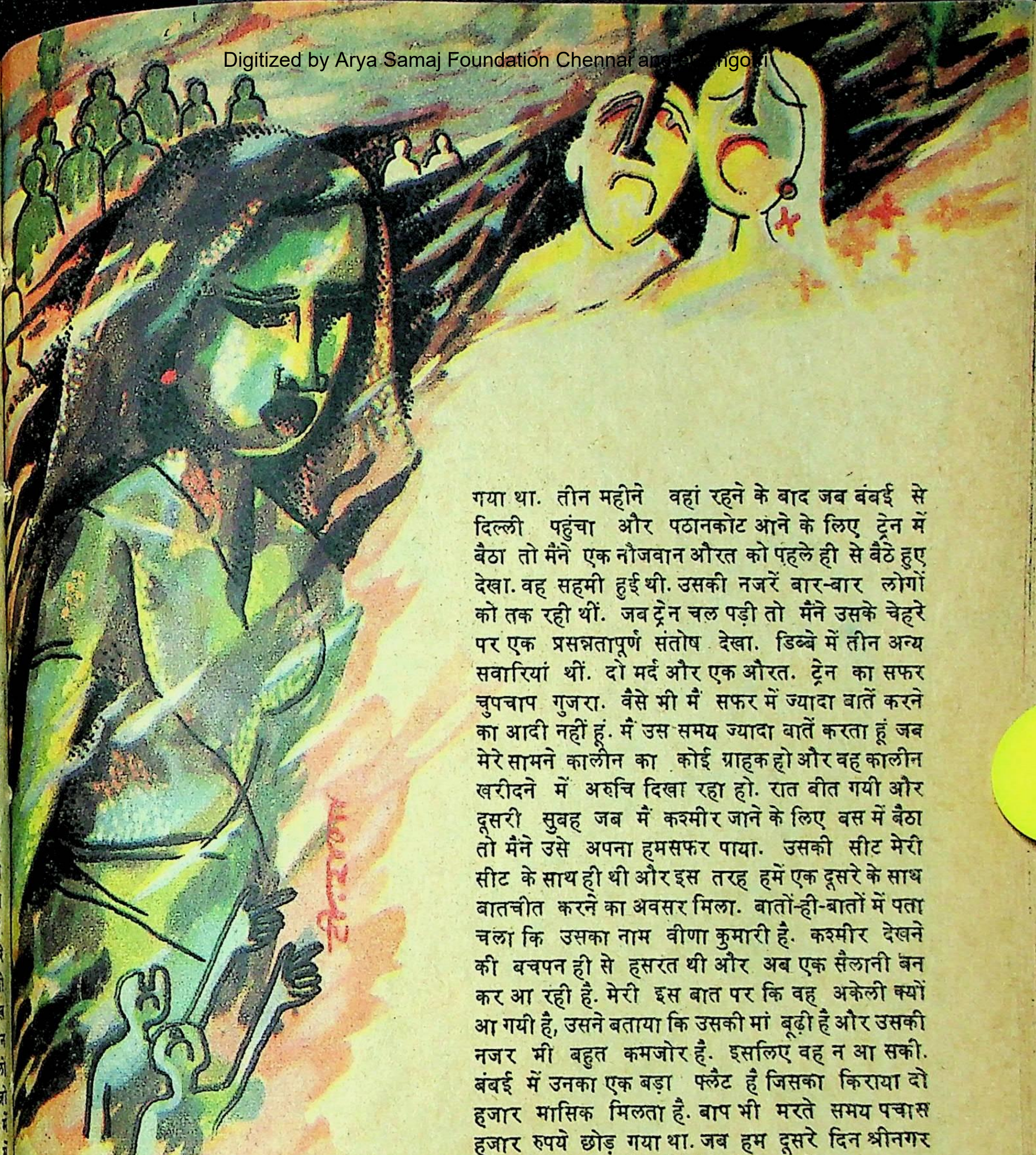

गया था. तीन महीने वहां रहने के बाद जब बंबई से दिल्ली पहुंचा और पठानकोट आने के लिए ट्रेन में बैठा तो मैंने एक नौजवान औरत को पहले ही से बैठे हुए देखा. वह सहमी हुई थी. उसकी नजरें बार-बार लोगों को तक रही थीं. जब ट्रेन चल पड़ी तो मैंने उसके चेहरे पर एक प्रसन्नतापूर्ण संतोष देखा. डिब्बे में तीन अन्य सवारियां थीं. दो मर्द और एक औरत. ट्रेन का सफर चुपचाप गुजरा. वैसे भी मैं सफर में ज्यादा बातें करने का आदी नहीं हूं. मैं उस समय ज्यादा बातें करता हूं जब मेरे सामने कालीन का कोई ग्राहक हो और वह कालीन खरीदने में अरुचि दिखा रहा हो. रात बीत गयी और दूसरी सुबह जब मैं कश्मीर जाने के लिए बस में बैठा तो मैंने उसे अपना हमसफर पाया. उसकी सीट मेरी सीट के साथ ही थी और इस तरह हमें एक दूसरे के साथ बातचीत करने का अवसर मिला. बातों-ही-बातों में पता चला कि उसका नाम वीणा कुमारी है. कश्मीर देखने की बचपन ही से हसरत थी और अब एक सैलानी बन कर आ रही है. मेरी इस बात पर कि वह अकेली क्यों आ गयी है, उसने बताया कि उसकी मां बूढ़ी है और उसकी नजर भी बहुत कमजोर है. इसलिए वह न आ सकी. बंबई में उनका एक बड़ा फ्लैट है जिसका किराया दो हजार मासिक मिलता है. बाप भी मरते समय पचास हजार रुपये छोड़ गया था. जब हम दूसरे दिन श्रीनगर पहुंचे तो मेरे दिल में उसके लिए पितृत्व-स्नेह उमड़ आया था. मैंने उसे अपने घर रहने की पेशकश की तो वह तुरंत राजी हो गयी. लेकिन यह मेरी गलती थी. उसके चेहरे की मासूमियत मुझे धोखा दे गयी. मैं शरीफ घराने से संबंध रखता हूं. हमारे अड़ोस-पड़ोस में भी सभी शरीफ लोग रहते हैं, लेकिन मैंने महसूस किया कि वीणा अपना अधिक समय खुली खिड़की में बिताती है और बन-ठन कर रहने का प्रयत्न करती है. मैं अपने अड़ोस-पड़ोस में नौजवान लड़कियों का आना-जाना देखता रहा. वीणा सदा अकेले बाहर जाने की कोशिश करती थी और इससे पहले कि मैं अपनी जबान खोलता, वह भाग गयी. मैंने ही पुलिस में रिपोर्ट दी. उसका हुलिया बताया.

(हस्ताक्षर) पंडित दीनानाथ

● टी. ए. राणा

जीवन में कई खुशियों के पल होते हैं

सरदर्द को आपकी खुशियां बिगाड़ने न दीजिये

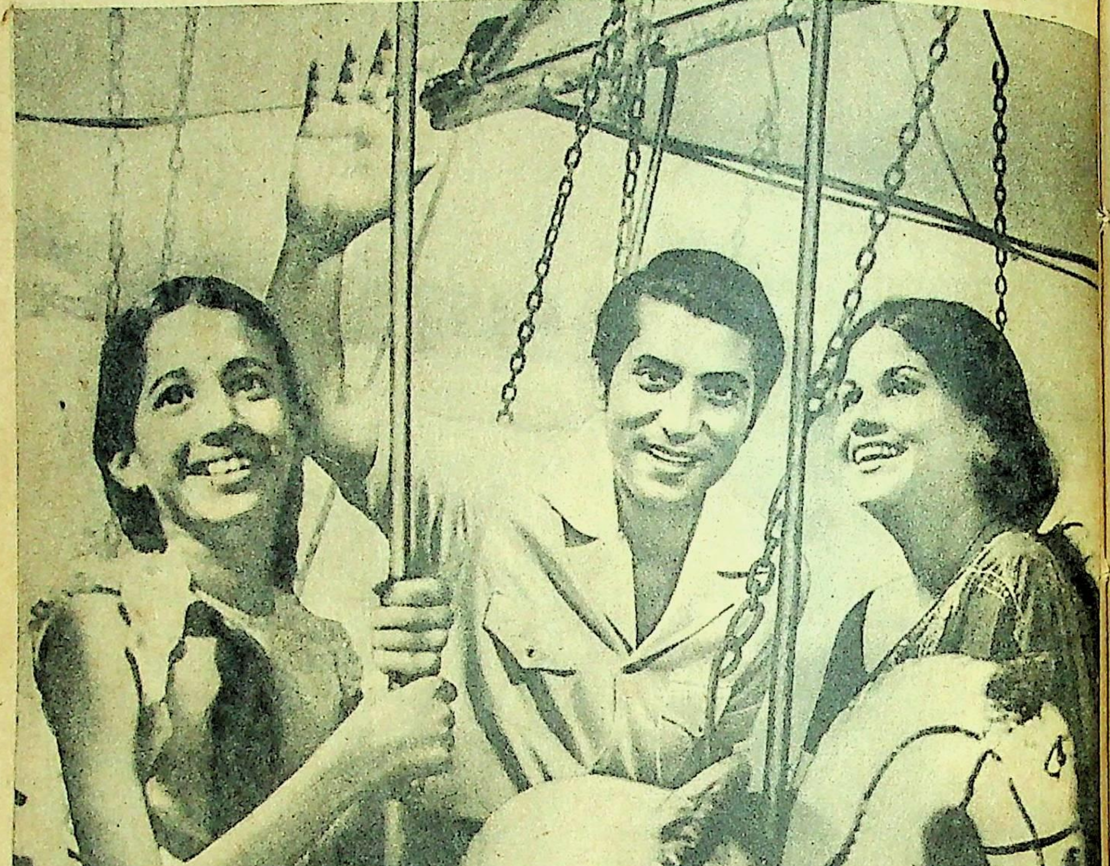

२ ऐस्प्रो लीजिये

ASPRO

Nicholas

माइक्रोफ़ाइन्ड ऐस्प्रो दर्द को जल्दी खींच निकालता है

A.G.63.HN

लिखित बया
मेरा अस
नाम है. मेरा
बाजारी ना
हैं, मैं बहुत
अपनी सूरत
वजूद से नफ
मेरा रंग घ
मैं बाजार
जी हां, मैंने उ
हूं जहां का
झनकार से
जहां तरन्नुम
बिकती हैं. व
अपंग मां का
नहीं है जो ल
कहकहे बेजान
मनाया करते
रेलगाड़ी की
हो गयी. मेरे
मेरी मां को
दिया. मैं मां से
करने के बाद
खुशखबरी सु
दिन समीप आ
गयी थीं. उस
चुकी थीं. मे
मेरा वैसे को
की देखभाल
आंटी कहती
या मां का क
थी. अब इस
उसके चरणों
से लगाया
नुसार उसक
से गुजरते हु
मेरा दिल
रफूचक्कर ह
उस समय मु
में इंसानों
चला कि मैं अ
हर रंग की,
शायद सारे
जाते हैं और
माहौल में रंग
में भागने का
कितनी मुह
और जब मैं
ओर हाथ ब
आया—वह
मैंने सोचा,

लिखित बयान

मेरा असली नाम वीणा नहीं. वीणा तो मेरा बाजारी नाम है. मेरा असली नाम साधना है, लेकिन मैं अपने बाजारी नाम से ही जानी-पहचानी जाती हूं. लोग कहते हैं, मैं बहुत खूबसूरत हूं. लेकिन मैं जब भी आईने में अपनी सूरत देखती हूं तो मुझे अपने आपसे, अपने वजूद से नफरत हो जाती है. काश! मैं बदसूरत होती. मेरा रंग धुएं की तरह काला-स्याह होता तो शायद मैं बाजार में बिकने वाली कोई बेजान वस्तु न होती. जी हां, मैंने उसी वातावरण में अपनी जवान रातें बितायी हैं जहां का प्रत्येक क्षण घिनौना है. जहां पायल की झनकार से चांदी के सिक्कों की आवाज उभरती है, जहां तरन्नुम से भरपूर गीतों की लय में जवान धड़कनें बिकती हैं. वह साधना तो कब की मर चुकी है जो एक अपंग मां का आखिरी सहारा थी. वह साधना अब कहीं नहीं है जो लखनऊ के कानवेंट में पढ़ती थी. उसके वह कहकहे बेजान हो गये हैं जो होस्टल-लाइफ में एक तूफान मचाया करते थे. कहते हैं, जब मैं चार वर्ष की थी तो एक रेलगाड़ी की दुर्घटना में मेरा बाप मर गया. मेरी मां अपंग हो गयी. मेरे बाप ने बीमा करा रखा था, जिसकी रकम मेरी मां को मिल गयी. मुझे मां ने होस्टल में दाखिल करा दिया. मैं मां से मिलने एक बार गांव गयी थी, जब एफ. ए. करने के बाद मैंने बी. ए. में प्रवेश लिया तो मैं मां को यह खुशखबरी सुनाने के लिए गयी. लेकिन मेरे दुर्भाग्य के दिन समीप आ गये थे. मेरी मां केवल एक रात पहले मर गयी थीं. उस घर की दीवारें मेरे लिए अजनबी बन चुकी थीं. मेरा सहारा अब केवल आंटी थी. आंटी और मेरा वैसे कोई रिश्ता न था. लेकिन वह प्रायः मेरी मां की देखभाल किया करती थी और मैं उसे बचपन ही से आंटी कहती आयी थी. वह प्रायः मां से मिलने के लिए या मां का कोई संदेशा देने के लिए लखनऊ भी आती थी. अब इसके सिवा मेरा कोई सहारा न था. मैंने जब उसके चरणों में सिर झुकाया तो उसने मुझे अपने सीने से लगाया और मुझे बंबई ले गयी जहां उसके कथनानुसार उसका भाई रहता था. गगनभेदी भवनों के नीचे से गुजरते हुए जब मैंने एक गंदी बस्ती में कदम रखे तो मेरा दिल कांप-कांप उठा. आंटी मेरा सौदा कर के रफूचक्कर हो गयी थी. मेरा ग्राहक कोई और था और उस समय मुझे पहली बार मालूम हुआ कि इस दुनिया में इंसानों का भी व्यापार होता है. मुझे शीघ्र ही पता चला कि मैं अकेली नहीं हूं, मेरी और भी बहुत साथी हैं. हर रंग की, हर नस्ल की, हर धर्म की. इस व्यापार में शायद सारे रंग, सारी नस्ल, और सारे धर्म एक हो जाते हैं और फिर मैं भी उनमें शामिल हो गयी. उसी माहौल में रंग गयी. शनैः शनैः वह भरोसा करने लगे और मैं भागने का रास्ता ढूंढ़ती रही और एक दिन न जाने कितनी मुद्दत के बाद मैं वहां से भागने में सफल हो गयी और जब मैंने टिकट खरीदने के लिए कांउटर की ओर हाथ बढ़ाया तो सबसे पहले जो नाम मेरे होठों पर आया—वह कश्मीर था——ऋषि-मुनियों की धरती! मैंने सोचा, मैं नया और सम्मानित जीवन इस महान धरती में शुरू कर सकती हूं और यह सत्य है कि मैंने कश्मीर में एक नये सुखदायक जीवन की मशाल जलती हुई देखी और यह बिलकुल गलत है कि मैं अपना सारा समय सजाने-संवारने में व्यय करती थी. मैं अकेली बाहर नहीं जाती थी. मैंने जब भी पंडित जी के घर के आंगन से बाहर कदम रखा तो मेरे साथ उनका पोता आनंद हुआ करता था. उस दिन भी आनंद मेरे साथ था.

साधना उर्फ वीणा कुमारी

बंबई पुलिस

आपके पत्र के उत्तर में आपको सूचित किया जाता है कि वीणा कुमारी नामक किसी स्त्री के फरार होने की रिपोर्ट हमारे यहां दर्ज नहीं है, पर जांच के बाद पता चला है कि कोलाबा से वीणा नामक एक स्त्री भाग गयी है. आपकी प्रेषित तसवीर उसी स्त्री की है, पर वह किसी जुर्म की अभियुक्त नहीं है.

असिस्टेंट कमिशनर पुलिस (सेंट्रल)

मैं जानता हूं कि साधना किसी जुर्म की अभियुक्त नहीं है, पर इस सोसाइटी, इस समाज ने उसकी निर्दोषता और मासूमियत के लिए जो सजा दी, वह उसे उस दिन से काट रही है, जब उसकी अपंग मां मर गयी थी. . .

(डायरी का एक पन्ना)

मिसेज आचार्य,

मैं साधना के बारे में आपको फोन पर पूरी दास्तान सुना चुका हूं. जांच-पड़लताल से यह बात साबित हो चुकी है कि साधना फिर उस वातावरण में नहीं जाना चाहती जिसे छोड़ने के सपने न जाने कब से वह देख रही थी. पुलिस ने उसे मुक्त कर दिया है, लेकिन मैं निजीतौर पर समझता हूं कि अगर उसे कोई स्थायी सहारा न मिला तो उसका भविष्य और भयानक हो जायेगा. जब तक वह अपने भविष्य को संवारने के लिए कोई रास्ता तलाश नहीं करती, वह आपके आश्रम में रह सकती है. वह आपसे मिलने आ रही है. आशा है आपकी निगरानी में वह सम्मानित जीवन व्यतीत करने के योग्य होगी.

सम्मान के साथ आपका,
इनाम (डी. एस. पी.)

एक अखबारी खबर

'आवाज' के इन ही कालमों में आप साधना उर्फ वीणा कुमारी की जीवन-कथा पढ़ चुके हैं. कल इस कहानी के एक नये और खूबसूरत परिच्छेद का आरंभ उस समय हुआ जब आनंद नामक एक पढ़ा-लिखा नवयुवक वीणा कुमारी का जीवन-साथी बना. यह विवाह आश्रम में हुआ और मिसेज आचार्य ने कन्या दान के कर्त्तव्य सम्पन्न किये. आनंद के इस साहसपूर्ण कदम की प्रत्येक वर्ग में सराहना की जा रही है. इस अवसर पर शहर के राजनीतिक और अन्य सम्मानित नागरिक उपस्थित थे. **(दैनिक आवाज)** □□□

(अनुवाद : सुरजीत)

देवदासी • माताहारी

प्रख्यात नर्तकी माताहारी अपने आपको भारतीय माता-पिता की संतान कहने में गर्व का अनुभव करती थी, जब कि तथ्य यह है कि भारतीय होना तो दूर, उसने भारत की यात्रा तक कभी नहीं की थी. अपनी डायरियों में उसने अपने काल्पनिक रूप का वर्णन किया है. फ्रांसीसी सरकार ने माताहारी को हिटलर का जासूस मान कर गोली से उड़ा दिया था. यहां प्रस्तुत है उसकी डायरी का एक रोचक अंश.

• डी. ए. राणा

यह वट मेरे लिए सर्वाधिक धार्मिक जगह है क्योंकि यही वह मंच है जिस पर मेरी मां नृत्य किया करती थी. उसकी नन्हीं, नाजुक, गेहुंए रंग की देह चिरंतन गोधूलि में भंगिमाओं और मुद्राओं के सहारे एक माया-जाल का निर्माण कर देती थी—ये पवित्र मुद्राएं ही विष्णु के प्रेम की भाषा को वायु में अंकित कर देती हैं. उसे उन पुजारियों की प्रशंसापूर्ण दृष्टि की प्राप्ति भी हुई, जिन्हें प्रसन्न कर पाना सरल नहीं होता . . . लेकिन सामान्य जन उसके पूजक थे. वह 'सर्वशक्तिमान' की कीर्ति के लिए नृत्य करती थी, लोगों को आनंदित करने के लिए नाचती थी,

ओह! कितना-कितना प्यार था मुझे उन खामोश पथरीली मूर्तियों से जो मुझसे अपनी ही भाषा में बात करती थीं! विशेष तौर पर जानवरों की मूर्तियां : चालाक सर्प, हमेशा क्रुद्ध रहने वाले शेर—मुड़ी हुई मूंछों वाले और जिनके पुट्ठे उतनी ही खूबसूरती से गढ़े गये थे, जितनी खूबसूरती से नंदी की फौलादी जांघें. कितना अच्छा लगता था कृष्ण के सात स्वर्गों की प्रतीक सात छतों में से किसी एक में छिप जाना! और सपने देखना कि मैं इनकी सर्वाधिक प्रिय नर्तकी हूं, उनके स्वर्ण सप्त-सिंहासन के समक्ष उनका ही नृत्य दिखाती हुई. . .

मैं छोटी ही थी जब मुझे शिव मंदिर की भूमिगत गुफा में लाया गया था. मेरे साथ दस लड़कियां और भी थीं. हमें नृत्य का प्रशिक्षण दिया जाना था. यह नृत्य यूरोपीय नृत्यों जैसा नहीं था. गंवार यूरोपीय लोग यह कभी समझ भी नहीं सकते कि भारतीय 'नृत्य' और कुछ नहीं, विधिगत मुद्राओं की अंतहीन श्रृंखला होता है जो कि एक निश्चित स्वर-ताल के अनुसार चलता है. धीरे-धीरे हम विभिन्न प्रतीकों की गहन, पुष्पवत गतियों से परिचित होते गये.

और फिर वह समय भी आया जब मुझे यह आदर मिला कि मैं महान शिव की 'चुनी हुई नर्तकी' बनी. मैं तो सोच भी नहीं सकती थी! . . . अब मेरा पाठ्यक्रम एकदम भिन्न प्रकार का था. अब मुझे काव्य और पवित्र साहित्य का अध्ययन करना था और '**प्रेम सागर**' के अनगिनत श्लोकों को याद करना था जिनके नाम मात्र से ही मेरी संज्ञाएं उद्वेलित होने लगती थीं, जब कि वे मानवीय संबंधों की व्याख्या भी करते थे. मुझे सेक्सों के बीच के संबंधों का पता चला और यह जान कर मैं हैरान रह गयी कि मनुष्य कितनी तरह की वासनाओं के वशीभूत हो कर जीता है! लेकिन भावनाएं जितनी भी हों, उन्होंने उन पर स्वामित्व पाने के अनगिनत तरीके भी ईजाद कर डाले हैं. मुझे अंधेरे-लाल रहस्यों का पता चला जो कि देह की रहस्यमयता की व्याख्या करते हैं. मुझे गुह्यांगों के सही अर्थों का भी पता चला. प्राय: मैंने अपने आपका स्पर्श भी किया था, लेकिन मेरा एहसास हमेशा कुछ इस तरह का बना रहा जैसे मैं किसी को नींद में छू रही होऊं, और जिसके जाग जाने से मुझे हानि पहुंचेगी. अपने गुरुओं के संग मिल कर मैंने कालिदास के कई दृश्यों का अध्ययन किया और जब उन्होंने इन कविताओं में चंद्रकिरणों की भांति छिपी संवेदनाओं की मेरे लिए व्याख्या की तो मैं हैरान रह गयी. '**सिंहासन-बत्तीसी**' और भक्तमल से मुझे प्रेम ही हो गया था. . .अंत में हम उन रीतियों की ओर मुड़े जो प्रणय-जीवन का नियमन करती हैं. मैंने '**गीत गोविंद**' की पंक्तियों को बार-बार पढ़ा और उन्हें कंठस्थ करने की कोशिश की. मैंने उनके बारे में सोचा और स्वयं को उनके अर्थों के अनुसार प्रशिक्षण देने की कोशिश करने लगी. . .काम मुझ पर पूरी तरह छा गया. अब मुझे समझ में आया कि मुझे '**कामसूत्र**' की उन अद्भुत पंक्तियों को कंठस्थ करने के लिए क्यों कहा गया था . . . वात्स्यायन ने किस कदर साफ निर्देश दिये हैं देवदासी के लिए, कि उसे बिस्तर में किस तरह का बर्ताव करना है, कि अपने प्रेमी को कैसे रिझाना है, कि कैसे उसे संतुष्टि देनी है! . . . □□□

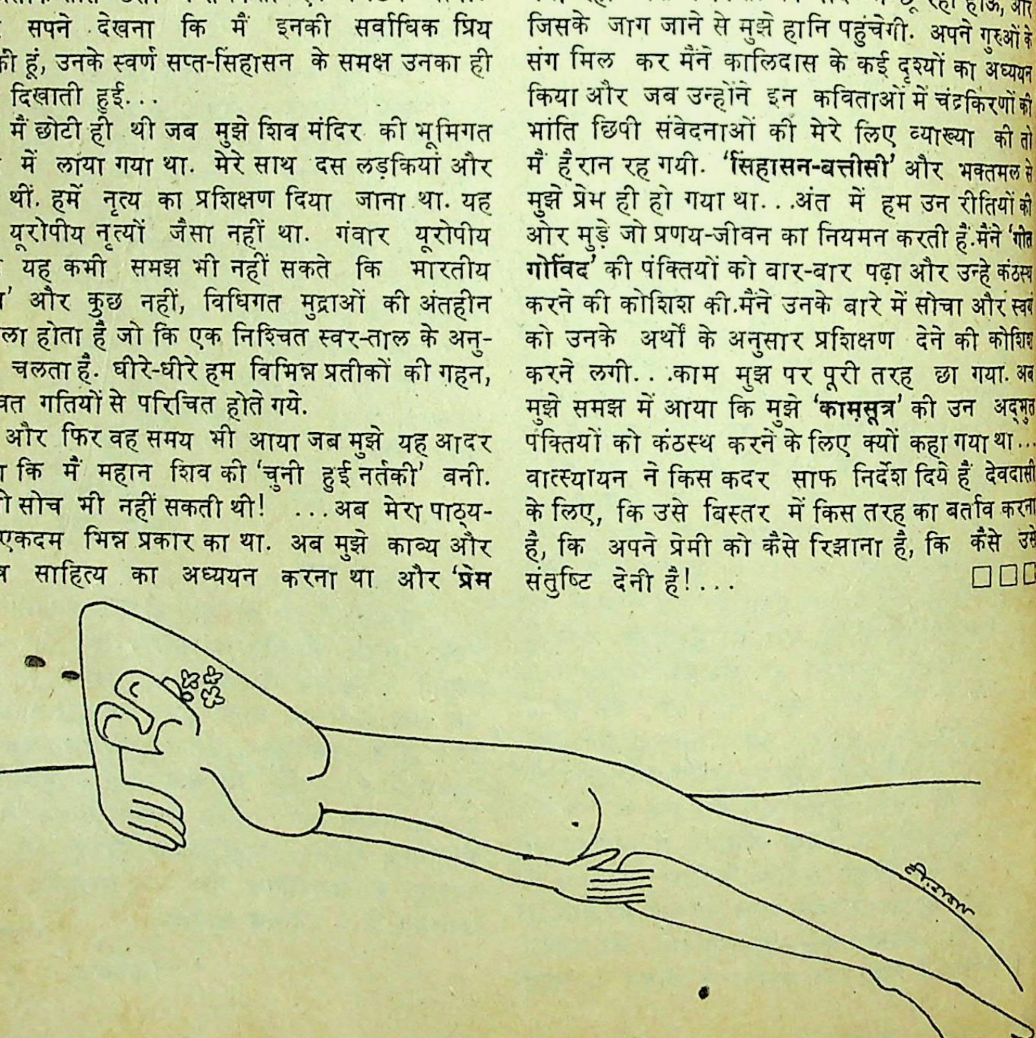

ठोकर गली

• नसीम दुर्रानी

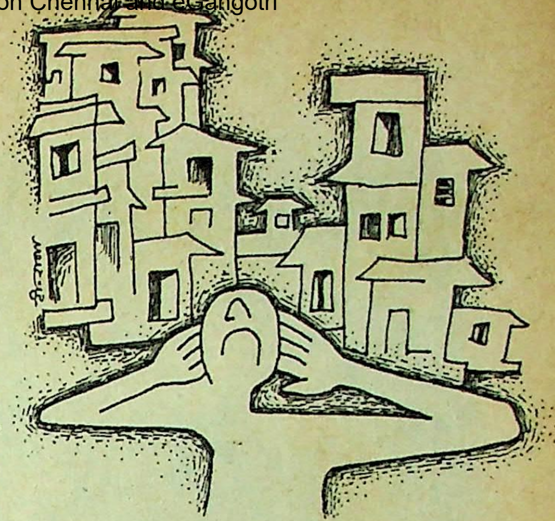

• डी. ए. राणा

गली वीरान हुए आज तीसरा दिन था. और इन तीन दिनों में उसने सिर्फ ढाई रुपये कमाये थे. ढाई रुपये, जिसमें एक रुपये की उसने पासपोर्ट साइज की तीन तसवीरें बनायी थीं और डेढ़ रुपये में एक फिल्म की डवेलपिंग करके उसके प्रिंट निकाले थे.

आज से तीन दिन पहले जब यह गली यों वीरान न थी, वह बहुत आसानी से दस-बारह रुपये रोजाना कमा लेता था.

ठोकर गली जो सुबह से रात गये तक हर तरह के लोगों से भरी रहती थी, अब उजाड़ और सुनसान नजर आ रही थी. इस्मतफरोशी अवैध घोषित कर दी गयी थी और जबरदस्ती ठोकर गली और उसके आस-पास का इलाका खाली करा लिया गया था.

खुदाबख्श भी तो तीन दिन से गायब था. अपनी छोटी बहन लाली को, जिसका गली की गाने वालियों में खासा नाम था, साथ ले कर वह रोजाना शहर में इधर-उधर निकल जाता था.

खुदाबख्श उसका स्थायी ग्राहक भी था. खुदाबख्श को फिल्म में हीरो और लाली को हीरोइन बनने का बहुत शौक था. इसीलिए वह दिन में एक बार उसके स्टूडियो में आ कर एक पोज जरूर देता था. इधर कुछ दिनों से खुदाबख्श की यह इच्छा थी कि वह शकीला के साथ फोटो खिंचवाये.

शकीला खूबसूरती की दृष्टि से ठोकर गली में नंबर वन थी. इसलिए पूरी गली में सिर्फ शकीला की तूती बोलती थी. इधर खुदाबख्श का शकीला से इश्क जनून की हद तक पहुंच चुका था. लेकिन उसकी आरजू किसी तरह पूरी न हो सकी. गली ही उजड़ गयी.

कारोबार की यही हालत रही, तो फिर क्या होगा? वह सोचने लगा. क्या इस तरह वह अपनी बीवी, बूढ़े मां-बाप और इस स्टूडियो का खर्च चला सकेगा?

दोपहर ढल चुकी थी. वह स्टूडियो से बाहर आ गया. गली में दूर-दूर तक सन्नाटा था. कितनी ही देर वह बड़े दुख से गली के मकानों को घूरता रहा. क्या उसे भी यह गली छोड़ देनी पड़ेगी?

वह स्टूडियो से बाहर लगे हुए फ्रेम और शो-केस धीरे-धीरे उठा कर अंदर रखने लगा. फिर स्टूडियो का दरवाजा बंद करके यों ताला लगाने लगा, जैसे वह सदा के लिए इस दुकान में ताला लगा रहा हो.

उसके कदम अपने आप घर की ओर उठ गये. इतनी जल्दी घर आने पर उसकी युवा और सुंदर बीवी हैरान रह गयी.

—खैरियत! तबियत तो ठीक है? बीवी ने पूछा.

वह चुप रहा. तब उसकी बीवी उसके करीब आयी और आंखों ही आंखों में अपना सवाल दुहराया. नयी बीवी थी. वह अभी से कारोबार के बारे में उसे कुछ बता कर परेशान नहीं करना चाहता था.

—कुछ नहीं. . .आओ कहीं घूमने चलते हैं. . . मेरी तबीयत सुबह से कुछ ठीक नहीं है. और थोड़ी देर बाद वह अपनी जवान और खूबसूरत बीवी के साथ शहर के सर्वोत्तम पिक्चर-हाउस में बैठा था. उसकी बीवी उसके पहलू में बैठी थी. उसके बुरके का नकाब उलटा हुआ था. लोग थे कि खामखाह अपनी सीटों से उठ-उठ कर उन दोनों को देख रहे थे.

उस सुंदर और उन्मादपूर्ण वातावरण में उसने थोड़ी देर के लिए स्वयं को भुला दिया. बीवी के हाथ में हाथ डाले बैठा रहा.

दूसरे दिन स्टूडियो पहुंच कर वह ताला खोल ही रहा था कि एक खूबसूरत और नये मॉडल की गाड़ी आ कर स्टूडियो के सामने रुक गयी. यह गाड़ी उसकी जानी-पहचानी थी. गाड़ी से एक स्वस्थ शरीर का इनसान उतरा.

यह गली जब इस तरह वीरान न थी, यह गाड़ी रोजाना इस गली में आती थी.

—असलाम अलैकुम! उसने कहा.

—असलाम अलैकुम! उसने भी घबराहट में सलाम दुहरा दिया. —आइए सेठ साहब, तशरीफ लाइए! बड़े अरसे बाद आये आप. . .उसने अपने तौर से मक्खन लगाना चाहा.

—हां, कुछ व्यस्त था, सेठ साहब मुसकराते हुए बोले, और आज जरा फुरसत मिली तो सोचा, लाओ तुम्हारे पास ही चला जाये.

—फरमाइए! क्या सेवा कर सकता हूं.

—सेवा! सेठ साहब शब्द पर जोर देते हुए उसके बहुत समीप हो आये और जेब से एक विजिटिंग कार्ड और एक सौ रुपये का नोट निकाल उसकी ओर बढ़ा दिया. —वह कल शाम पिक्चर-हाउस में जो तुम्हारे साथ माशूक था न, उसे आज रात इस पते पर पहुंचा देना. बस यही एक सेवा है. □□□

(संक्षिप्त रूपांतर : सुरजीत)

आज के युवा वर्ग के लिए...

नेसा
परिधान

नेसा आपकी पसंद के लिये बनाते हैं—
विविध प्रकारके 'टेरिन' काटन सूटिंग,
शर्टिंग, साडीयां और ड्रेस मेटेरियल्स

न्यू स्वदेशी

न्यू स्वदेशी मिल्स,
अहमदाबाद

Sobhagya NS-11 Hin

विक्रमोर्वशीयम्

यह कहानी वैदिक काल की है. इसे ऋज्वेद से लिया गया है. कालिदास ने भी, 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक के लिए ऋग्वेद के एक सूक्त से लिया था.

त्रिवेणी के संगम पर चंद्रवंशी राजाओं के विक्रम का केंद्र प्रतिष्ठानपुर बसा था. राजप्रासाद के पीछे गंगा नदी बहती थी. एक दिन प्रतिष्ठानपुर का युवा राजा पुरुरवा महल की छत पर खड़ा नगर की शोभा देख रहा था तभी उसे मोहक संगीत सुनायी दिया. दिव्य संगीत की स्वर लहरियां आकाश की ओर से आ रही थीं. राजा पुरुरवा ने आकाश में प्रकाशित यान को देखा. यान गंगा के तट की ओर आ रहा था.

जब यान गंगा के तट पर उतरा तो उसमें से एक दिव्यांगना बाहर आयी. उसके साथ कई सुंदरियां थीं, जो आपस में हंसी-मजाक कर रही थीं. वह दिव्यांगना देवराज इंद्र की प्रमुख देवनर्तकी अप्सरा उर्वशी थी. उसके साथ उसकी परिचारिकाएं और इंद्र की ओर से विशेष रूप से नियुक्त उनका अंगरक्षक चित्ररथ था.

गंगा तट देव तरु के सुंदर फूलों की मादक सुगंध से भर उठा था. उर्वशी के दिव्य अंगों को छू कर आया हुआ सुरभित समीर पुरुरवा के युवा शरीर से टकरा कर उसे रोमांचित और विचलित कर रहा था.

राजा पुरुरवा एकटक उर्वशी की रूपराशि निहारता रहा. उर्वशी ने गंगा-स्नान के लिए अपने वस्त्र उतारे. उसकी नग्न-प्राय रूप शिखा से विस्तृत गंगा तट जगमगा उठा. राजा पुरुरवा ने देखा कि गंधर्व चित्ररथ उर्वशी के शरीर पर आलेप कर रहा है.

उर्वशी कह रही थी—इंद्र की प्रणयप्राप्ति के प्रयत्न कुछ स्वाभाविक नहीं चित्ररथ. वृद्ध वृत्र की मार से जर्जर इस इंद्र में न तो मादकता का सौरभ है, न नवीन प्रयास का चातुर्य. . .तुम पाषाण हो चित्ररथ.

—मैं इंद्र का सेवक हूं उर्वशी , उनके विलास-कोश का रक्षक. चित्ररथ बोला.

—तुम आभागे हो चित्ररथ, क्लीव, अलिंद पर खड़े पुरुरवा के मुंह से अनायास ही निकल गया. उसे लगा कि चित्ररथ सचमुच ही अभागा और क्लीव है, जो ऐसे दिव्य सौंदर्य का स्पर्श और निमंत्रण पा कर भी इंद्र-भय से जड़ बना हुआ है.

उर्वशी और चित्ररथ दोनों ही चौंक कर ऊपर देखने लगे. उर्वशी और पुरुरवा के नेत्र मिले और दोनों ही एक दूसरे पर आसक्त हो गये. चित्ररथ उर्वशी को बलात् देवलोक ले गया. उर्वशी ने इंद्र से आग्रह किया कि वह वृत्र के विरुद्ध राजा पुरुरवा की सहायता प्राप्त करे. इस प्रकार पुरुरवा की सहायता पा कर इंद्र वृत्र को पराजित कर सका और पुरस्कारस्वरूप पुरुरवा को उर्वशी मिल गयी लेकिन इस शर्त के साथ कि जिस दिन उर्वशी पुरुरवा को नग्न देख लेगी, उसे देवलाक लौट जाना पड़ेगा. उर्वशी अपने साथ अपने प्रिय मेमनों को भी ले गयी. रात्रि के घने अंधकार में पुरुरवा उर्वशी के साथ संभोग-सुख भोगने लगा.

उर्वशी के अभाव में समस्त देवलोक नीरस हो उठा था. इंद्रसभा वीरान और उदास-सी थी. देवता इंद्र पर दबाव डाल रहे थे कि किसी भी तरह उर्वशी को वापस बुलाया जाये. इंद्र भी स्वयं को रसहीन अनुभव कर रहे थे. उन्होंने देवताओं के साथ कई योजनाओं पर मंत्रणा की. अंत में एक योजना स्वीकृत की गयी और उसी के अनुसार चित्ररथ को प्रतिष्ठानपुर भेजा गया.

एक दिन चित्ररथ उर्वशी के मेमने चुरा कर ले चला. उर्वशी ने पुरुरवा से सहायता की पुकार की. पुरुरवा नग्न ही मेमने छुड़ाने दौड़ पड़ा और उर्वशी को उसके नग्न रूप के दर्शन हो गये. इस प्रकार शर्त के अनुसार उर्वशी को देवलोक वापस जाना पड़ा और राजा पुरुरवा उर्वशी के वियोग में तड़पने लगा.

• टी. ए. राणा

महाभारत का दूसरा युद्ध • जोगेंद्र पाल

पहला अध्याय

द्रौपदी ने महाभारत के पाठ से निपट कर अपने दोनों हाथ माथे पर बांध लिये और बड़ा सहृदयता से प्रार्थना करने लगी--ऐ भगवान! ऐसे लाज रखना जैसे माता द्रोपदी की रखी थी.

--तुम्हारा तो धंधा ही जिस्म बेचना है. फिर लाज कैसी?

उसने मुझे उत्तर दिया अगर आबरू बनी रहे तो जिस्म बेचने से क्या होता है? मेरी तो यही प्रार्थना है कि परदे में मेरा धंधा चलता रहे और आबरू से रोटी मिलती रहे.

दूसरा अध्याय

पाप-रात्रि के पश्चात दूसरे दिन जब द्रौपदी की सजल आंखें खुलतीं तो यों लगता जैसे रात्रि के पिछले पहर में यह स्त्री हंस-हंस कर सो गयी थी. और सपने में निरंतर रोती रही थी और रो-रो कर उसकी सारी थकन दूर हो गयी थी.

--द्रौपदी?

--हां!

--क्या तुम्हें रो कर आराम मिलता है?

--जब मैं रोती हूं तो मेरा बाबुल मेरे सिरहाने आ खड़ा होता है. मेरा खलंडरा भाई भी दीवारों से निकल कर मेरे सिर पर हाथ रख देता है और यह सुखदायक यादें रुई के गालों की तरह मेरे गर्म-गर्म आंसुओं से भर जाती हैं और मेरे दिल के जख्म धोने लगती हैं.

--फिर तुम अपने आप से छुप कर क्यों रोती हो?

--इसलिए कि कहीं मुझे अपने ग्राहकों पर बाप-भाई का गुमान न होने लगे.

तीसरा अध्याय

--द्रौपदी

--कहो.

--मेरी एक बात मानोगी?

--कहो.

--यह धंधा छोड़ दो .

--क्यों?

--जब किसी की मैली नजर तुम्हारे गोरे-गोरे रूप पर पड़ती है तो मैं आपे से बाहर हो जाता हूं.

--रूप गोरा उसी समय लगता है जब नजर मैली हो. भगवान कृष्ण ने कहा है कि . . .और उसे याद आया कि वह तो महाभारत पढ़ने के लिए बैठी थी. फिर अपनी बात अधूरी छोड़ कर उसने मेरी ओर से मुंह मोड़ लिया.

चौथा अध्याय

महाभारत द्रौपदी की प्रिय धार्मिक पुस्तक थी.

--जीवन एक युद्ध है, वह मुझे समझा रही थी अगले वक्तों में लोग तलवारों से लड़ा करते थे. पर आजकल दुश्मन के खून से तलवार नहीं रंगी जाती हैं. इन दिनों दुश्मन की तबाही के लिए सब से अच्छा हथियार मुसकराहट है.

मुसकरा-मुसकरा कर उसने मुझे पछाड़ दिया.

--और उसका कारण यह है कि आजकल सब एक दूसरे के दुश्मन हैं. सभी लोग दुश्मन हों तो आदमी या तो बम गिरा कर सारी दुनिया को एकदम खत्म कर देता है या फिर हंसी-हंसी में एक-एक कर के सब को समाप्त करता है. उसके स्वर में एकदम दार्शनिक संकल्प का तनाव आ गया, और जब तक सारे संसार का निशान नहीं मिट जायेगा, हम इसी प्रकार अपने भाइयों और दोस्तों को फुसला-फुसला कर तबाह करते रहेंगे. नहीं? वह अपने को ठीक करने के लिए जरा रुकी, हमारा कोई भाई और दोस्त नहीं. भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया था कि तेरा कोई भाई नहीं. कोई चचा नहीं, कोई मित्र नहीं. तेरा कोई नहीं. कोई किसी का नहीं. कोई किसी का नहीं. . .? लेकिन उसके विचार का भाव सहसा एक ढलान की ओर मुड़ गया और उसकी आवाज तेज हो गयी, भगवान कृष्ण महान हैं. वह मेरे स्वामी हैं. एक बार वे सोये पड़े थे कि अर्जुन और दुर्योधन युद्ध में उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए आये. अर्जुन उनकी पलंग की पायंती पर बैठ गये और दुर्योधन सिरहाने . जब भगवान की आंख खुली तो अर्जुन से कहने लगे--पहले मैंने तुम्हें देखा है. बताओ मेरा सारी सेना लेना चाहते हो या केवल मुझ? दुर्योधन घबरा गया कि कहीं अर्जुन सेना न मांग बैठे. किंतु अर्जुन ने निस्संकोच कहा--भगवान केवल आपको!

श्रद्धा से द्रौपदी की आवाज मानों गंगा में गोते खा-खा कर अपने पाप धो रही थी.

--महाभारत के उस अध्याय पर पहुंच कर मेरा मन भी सदा अर्जुन के साथ-साथ बोल उठता है--भगवान, केवल आपको . मुझे आपकी सारी सेना नहीं चाहिए. आप मुझे केवल अपना आप दे दीजिए.

मैं सोचने लगा कि द्रौपदी भी दुर्योधन की तरह भगवान कृष्ण के सिरहाने बैठी होगी इसीलिए उसके भाग्य में मर्दों की सारी सेना लिखी गयी. अगर उसे एक भगवान मिल जाता तो वह भी किसी सुहागिनी की तरह जीवन का रण जीत लेती. आज शाम को अपने धंधे पर बाहर निकलने के बजाय वह भगवान कृष्ण की आरती उतारती रहती.

पांचवां अध्याय

दूसरे दिन भी सुबह को द्रौपदी भगवान कृष्ण की आरती उतार रही थी. उसका धुला हुआ गोल, सफेद चेहरा चांदी के बेदाग थाल की तरह चमक रहा था और आंखें घी से भरे हुए दो चिरागों की तरह जल रही थीं.

कई दिन से मैं द्रौपदी के बारे में बहुत कुछ सोचने लगा था.

शायद. . .शायद . . मैं अपना सिर झटक देता—नहीं. . .यह भला कैसे हो सकता है? मुझे उससे मुहब्बत नहीं. मुहब्बत तो कुछ और ही होती है.

आज सुबह काम पर जाने के बजाय मैंने अपना मुंह उसके घर की ओर मोड़ दिया और रास्ते में अपने आपको समझाता रहा, यह मुहब्बत नहीं, मेरे दिल-दिमाग की एक बेचैन आदत है और बस. .

वह आरती उतारती रही और भगवान को गा-गा कर बुलाती रही—तुम स्वामी मैं अबला.

यह आवाज? मानों पाप पुण्य से मुंह छुपा कर अपना गला घोंट लेना चाहता हो.

—द्रौपदी?

वह मेरी ओर केंद्रित न हुई.

—तुम स्वामी , मैं अबला .

आरती खत्म कर के वह मेरी ओर देखने लगी—आज तुम काम पर नहीं गये?

—एक बात कहूं, द्रौपदी? मेरा खयाल है कि मैं तुमसे मुहब्बत करता हूं.

—क्या इसीलिए काम पर नहीं गये?

—द्रौप. . .!

—नहीं! तुम मुझसे मुहब्बत नहीं करते . अपनी कामना से मुहब्बत करते हो.

—द्रौपदी! आओ हम शादी कर लें.

—बड़े भोले हो. शादी भी हम किसी इनसान से नहीं, अपनी इच्छाओं से करते हैं.

—द्रौपदी?

—मुहब्बत और शादी की बातें केवल क्वारियों का जी बहलाने के लिए की जाती हैं. एक रंडी पर ऐसी बातों का क्या असर होगा? तुम भले ही आदमी हो. मेरे पास चले आते हो. यही काफी है. . .

मैं उसकी ओर टुकुर-टुकुर देखता रहा.

—जाओ. मामला इतना गंभीर नहीं. मजे से काम पर जाओ वहां से सीधे यहां चले आना. आज मैं तुम्हारी दुलहिन के सारे फर्ज पूरे कर दूंगी. . .

छठा अध्याय

आज की रात !

सारी रात मेरे मस्तिष्क में अनगिणत बत्तियों की रोशनी जगमगाती रही और वातावरण बाजों की आवाजों को अपने सीने पर उछाल कर बेहाल हो गया. फिर मैंने अपनी दुलहिन का घूंघट उठाया. मेरा भाग्य जाग उठा, बाछें खिल गयीं. यह द्रौपदी थी. मेरी एक रात की दुलहिन.

डेट धुलाई की टिकिया
साबुनों के मुक़ाबले १½ गुनी ज़्यादा शक्तिशाली —खारे पानी में भी.

डेट धुलाई का पाउडर
कई साइज़ के पैक में मिलता है. कपड़ों को इसके घोल में भिगोइये और धो लीजिये. हाथों को मुलायम भी रखता है.

एन-डेट
दाग़-धब्बे नाशक एनज़ाइमयुक्त धुलाई का पाउडर, सक्रिय लेकिन हानिरहित.

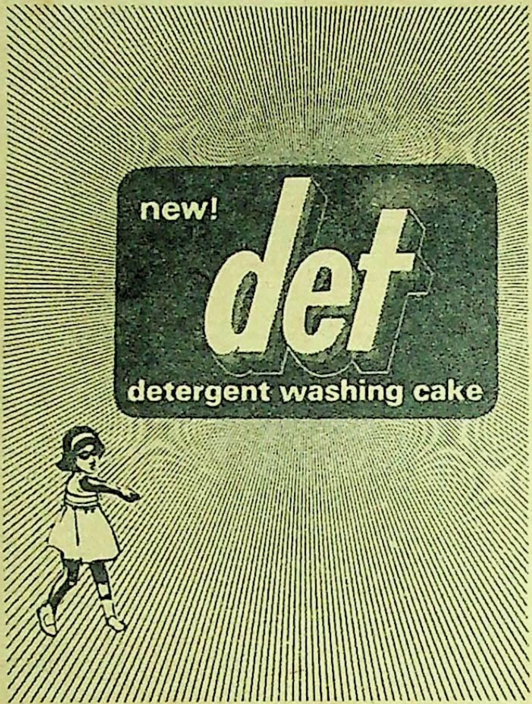
new!
det
detergent washing cake

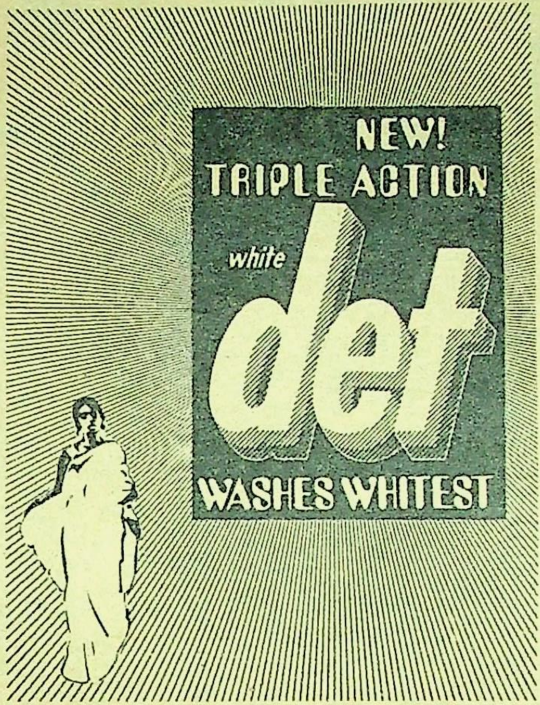
NEW!
TRIPLE ACTION
white
det
WASHES WHITEST

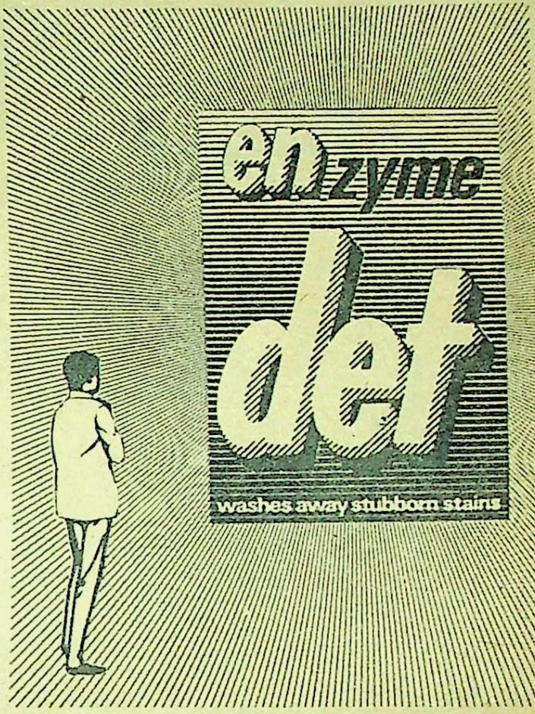
enzyme
det
washes away stubborn stains

न कभी थी, न मिलेगी; ऐसी सफ़ेदी—डेट उत्तम पदार्थों से

Shilpi HPMA 44a/73 Hin

—द्रौपदी, तुम मुझसे शादी क्यों नहीं कर लेतीं?

द्रौपदी मुसकराने लगी—मैं तुम्हारी दुलहिन ही तो हूं.

—नहीं! मैं सच्चे मन से कह रहा हूं.

—तुम झूठ बोलते हुए मुझे बहुत भले लगते हो, उसने अपनी रंग-बिरंगी चूड़ियों वाला हाथ मेरे कंधे पर रख दिया.

—यकीन करो द्रौपदी, मैं तुम्हें जीवन भर के लिए अपनी दुलहिन बनाना चाहता हूं.

—लेकिन दुलहिन तो एक ही रात की होती है, मेरे दुलहे. तुम्हें बच्चों की मां से दिलचस्पी है या दुलहिन से?

सातवां अध्याय

—ऐसे लाज रखना ऐ भगवान जैसे माता द्रौपदी की रखी थी.

—द्रौपदी! माता द्रौपदी के पांच पति थे.

—हां! पांचवों पांडव माता द्रौपदी के पति थे!

—अजीब किस्सा है!

—जब राजमाता कुंती को युधिष्ठिर ने बताया कि वह एक बड़ी अनोखी चीज अपने साथ लाये हैं तो राजमाता ने कहा, बेटा! इस चीज को पांचवों भाई आपस में बांट लो. आज्ञाकारी बेटे अपनी मां का हुक्म कैसे टाल देते? उन्होंने द्रौपदी को आपस में बांट लिया और द्रौपदी भी चुपचाप उनमें बंट गयी.

—और यह उसकी लाज का क्या किस्सा है?

—एक बार पांडवों से भूल हो गयी और कृष्णजी ने द्रौपदी की रक्षा की.

—किस तरह?

—उसे निरावरण होने से बचा लिया.

आठवां अध्याय

एक बार कई दिन बाद जब मैं द्रौपदी के घर में प्रविष्ट हुआ तो वह बड़ी जर्द, निराश और परेशान नजर आ रही थी.

—क्या बात है?

—कल यहां सारा मुहल्ला टूट पड़ा. पुलिस भी आयी.

—हुआ क्या?

—वही जो होना था. उसके होंठ कांप रहे थे.

—आखिर हुआ क्या?

—मुहल्लेवालों को पता चल गया है कि मैं पेशा करती हूं. वे यह नहीं समझते कि एक गरीब असहाय स्त्री बेकार कैसे रह सकती है. बेचारी पेशा न करे तो अपने बच्चे को बड़ा कैसे करेगी.

—अपने बच्चे को?

—हां, मैं एक बच्चे की मां हूं. वह मसूरी में पढ़ता है. वहीं रहता है. मैं अपना पेट तो काट सकती हूं. मगर उसका क्या करूं?

—तुम्हारा बच्चा भी है?

—हां. और तुम्हारा भी!

—मेरा? मैं घबरा गया. मेरा संबंध तो तुमसे केवल दो साल से है.

—तुम्हारा नहीं तो और किसी का होगा! न जाने किसका होगा. मेरा तो है ही. मुझे अपनी रुसवाई की परवाह नहीं लेकिन मेरे जुगनू का क्या बनेगा?

(ऐसी लाज रखना जैसे माता द्रौपदी की रखी थी.)

सारी दुनिया कौरवों की तरह द्रौपदी का चीर उतारती रही और वह सिर झुकाये कुरुक्षेत्र की सुर्ख-सुर्ख धरती पर अपने जुगनू का खून सूंघने लगी.

—मैं नहीं चाहती कि मेरा बेटा भी मुझे देख ले. मेरा बेटा. . .उसका करुणाजनक मौन सारी नस्ल से संबोधन थी, मैं नंगी नहीं हूं. मैं नंगी हूं.

द्रौपदी आशापूर्ण खड़ी थी ताकि उसके असंख्य पतियों में से कोई आगे बढ़ कर उसे संभाल ले.

प्राचीन भारत की द्रौपदी के केवल पांच पति थे, लेकिन वे पांचवों पांडव नेक बहादुर, सीधे-सादे इनसान थे. फिर द्रौपदी का भगवान भी उसके साथ था. ऐसी दशा में स्त्री के लिए अपनी आबरू संभालना मुश्किल नहीं होता.

दौपदी ने करुणापूर्ण आंखों से मेरी ओर देखा और पराजित स्वर में बोली- मैं अकेली अपनी आबरू से इस महाभारत को कैसे जीत सकती हूं? □ □ □

(अनुवाद : सुरजीत)

दूसरी शती के एक रोमन लेखक की लघुकथा

कीमत

● ऑलुस गेलियस

सोटियन पॅरिपेटॅटिक स्कूल का एक बहुत विख्यात दार्शनिक था. उसने एक किताब लिखी 'द हॉर्न ऑफ प्लॅंटी', जो तरह -तरह की सूचनाओं से भरपूर है.

इस किताब में उसने व्याख्यानकर्त्ता डिमोस्थनीज तथा वेश्या लाइस की कहानी कुछ इस तरह दी है : कोरिंथ की लाइस अपनी देह के बल पर बहुत पैसा कमा रही थी और पूरे यूनान से अमीर लोग उसके पास आते रहते थे. लेकिन वह तब तक किसी को अपने दरवाजे के भीतर नहीं आने देती थी, जब तक उसकी मुंहमांगी कीमत उसे मिल नहीं जाती थी. और उसकी कीमत बेहद ऊंची थी इसीलिए यूनानी भाषा में एक मुहावरा बन गया है—'हर आदमी कोरिंथ की कीमत नहीं दे सकता.'

महान डिमोस्थनीज ने परदे के पीछे से लाइस को खुश करने की कोशिश की और उससे केवल एक आलिंगन की मांग की. लेकिन उसने उसके लिए भी दस हजार दीनारें मांगी. उस औरत के अहं और ऊंची कीमत से झटका खा कर वह वापस लौट आया, और जाते-जाते उसने इतना ही कहा— पश्चाताप खरीदने के लिए मैं इतनी ऊंची कीमत अदा नहीं कर सकता. □ □ □

गुलाब और हिना

• चंदूलाल पटेल

इस चौड़ी, काली और चिकनी सड़क पर आप आगे बढ़ेंगे उस समय आसपास की रंगत बदलती हुई दिखेगी. शहर के सिर जैसा बंदरगाह गया यह आपने देखा. उसका टीके जैसा रास्ता, राजधानी, मुंह जैसे सचिवालय के पास से आपको आगे ले आया. फिर आया गर्दन जैसा संकरा पर महत्व का झवेरी बाजार. कड़कड़ाते नोटों की तथा सुपारी की तरह काटे जाते सोने-चांदी के टुकड़ों की आवाज से खनखनाता वह बाजार पार कर आप इस शहर की छाती के नजदीक पहुंच जायेंगे. पहले तो दवा वालों की दुकानें आयेंगी, फिर 'वर्धन चौक' आयेगा, फिर बड़े-बड़े स्टोर्स के 'शो केस' में रखे हुए 'माडल' दिखायी देंगे. यह खत्म होगा तब यह जगह दो भागों में बंट जायेगी--जैसे दो फेफड़े. एक तरफ भारत भर में पहले नंबर का शेयर बाजार होगा. दूसरी तरफ कपड़ा मार्केट. इसी जगह के पास आ कर आप खड़े हो जायेंगे.

मार्केट जितना बड़ा है उतने ही बड़े दिवाले भी निकलते हैं. यहां हंसुलियां पहने हुए मारवाड़िनें मजदूरनियां बड़ी-बड़ी कपड़े की गांठें उलटती हैं. यहां चाय की केतलियां घूमती हैं, अस्सी-अस्सी हजार की मोटरें घूमती हैं, घिसी-पिटी चप्पलें घूमती हैं, भिखारियों के झुंड घूमते हैं और लाखों के चेक कटते हैं! यहां खाने-पीने की मजलिसें जमती हैं और सिगरेट के टिन खाली होते हैं.

नजर नजर का काम करती होती, उस स्थिति में एक दुकान देख कर आपकी आदत जोर कर उठेगी. पास के पान वाले की दुकान पर पहुंच कर आप पूछेंगे--मघई है?

--यह सीयाराम की दुकान है, जनाब! कहता हुआ भैया दो पान हाथ में लेते हुए मधुर मुसकरायेगा. उसके बालों में तेल की चमक और कान में अत्तर का फाहा होगा. वह कहेगा--मघई भी है और देशी, महोबा, मीठा, बनारसी भी है. फिर पान पर कत्था-चूना लगा कर पूछेगा--क्या छोड़ूं?

--जाफरानी और किमाम.

--लीजिए जनाब! कह कर वह छोटे-छोटे मघई पान के दो छोटे-से बीड़े आपको ऐसी नजाकत से देगा कि पान खाना यह एक आदत के अलावा एक प्रकार के आनंद का सुख लेना भी है ऐसी प्रतीति आपको हुए बिना नहीं रहेगी.

पान खा कर आप मार्केट का विशाल द्वार देखने में मशगूल होंगे तभी आपको वापस भैयाजी का खरज-स्वर सुनायी देगा--चेनीराम एंड संज की गद्दी ढूंढ़ रहे हैं क्या? वो तो तीन साल पहले बंद हो गयी!

उस समय आपके मानस-पट पर एक टकोरा पड़ेगा. आपको खयाल आयेगा कि प्रवेश द्वार के पास में ही वह मशहूर पेढ़ी होनी चाहिए. आपने उस पेढ़ी की जाहोजलाली और उसके मालिक के दरबारी ठाठ का मिजाज नहीं देखा, फिर भी जाहोजलाली और मिजाज की बातों से आप अनजान नहीं, क्योंकि उस मिजाज की हवा ठेठ आपके कन्नौज तक फैली थी. अरे! आपके घर में भी आपने उनकी बातें सुनी होंगी, क्योंकि उस पेढ़ी के मालिक का और आपके वालिद जलालुद्दीन का संबंध खुशबू से भरा हुआ था. पर आज वह पेढ़ी और आपके वालिद नहीं. पिता के धंधे की पगडंडी-पगडंडी चलते आप शहर में आये हैं और इस पान वाले की बात आपको किसीकी याद दिला रही है.

आपके वालिद की बातें आप याद करेंगे तो सेठ चेनीराम की धुंधली, काल्पनिक आकृति भी आपके समक्ष उभर आयेगी. . .नारंगी रंग की वह मारवाड़ी पगड़ी, लंबा कोट, छोटी धोती, कपाल पर केसर-चंदन का टीका और कानों में मोतियों की बुट्टियां, गेंद-सा बदन.

तभी एक गहरा निश्वास सुन कर चौंक जायेंगे. वह पान वाला भैया गमगीन स्वर में कह रहा है--हर महीने दो सौ रुपये का तो मेरा पान-सिगरेट का बिल होता था, जनाब! मुनीमजी, क्लर्क, चपरासी, ड्राइवर-सबका पान-सिगरेट का खर्चा सेठजी के ही नाम लिखा जाता था.

फिर भैया जरा तनकर बैठेगा. छाती फुला कर कहने लगेगा--महीने में चार-पांच मरतबा तो खुद सेठजी पान खाने के लिए मेरी दुकान पर आते थे और कहते थे--एक बढ़िया पान खिला दो, सीयाराम. आज वह सब कुछ याद आता है. जिस दिन सेठजी खुद आते थे मेरा वह सारा दिन खुशी में गुजरता था, क्योंकि पान खा कर सेठ मुझे अत्तर का फाहा देते थे. और अत्तर भी कोई मामूली नहीं, जनाब! सौ रुपये तोले का मुश्के हिना! ईरान की क्या मजाल कि कन्नौज वाले जलालुद्दीन अत्तर वाले के हिने का मुकाबला करे? तबियत खुश हो जाती थी, जनाब! और चेनीराम सेठ की खैरात भी कम नहीं थी. कई सदाव्रत और दवाखाने उनके नाम पर चलते थे.

आप बारीकी से देखेंगे तो सीयाराम की आंखों में आर्द्रता दिखाई देगी. करुण परंतु मधुर स्मृतियों में खो चुका भैया अधिक गंभीर होता हुआ फिर कहेगा--सब किस्मत का खेल है, भाई! आज वह गद्दी नहीं है, बंगला नहीं है, मोटर नहीं है, लेकिन चेनीराम सेठ तो 'सेठ' ही हैं. सारी देनदारियां आना-पाई तक भरपाई कर दीं.

--अब क्या करते हैं?

--एक छोटी-सी खोली में बैठ कर गोविंद का नाम लेते हैं. अब उम्र भी तो हो चुकी है. एक दिन मुझे कह रहे थे. . .

--अब भी तुम्हारी उनसे मुलाकात होती है?

--होती नहीं है, मैं मुलाकात करने जाता हूं. सेठजी तो बाहर ही नहीं निकलते, पर मैं महीने में दो-तीन बार उनके पास चला जाता हूं. पान का बीड़ा दे आता

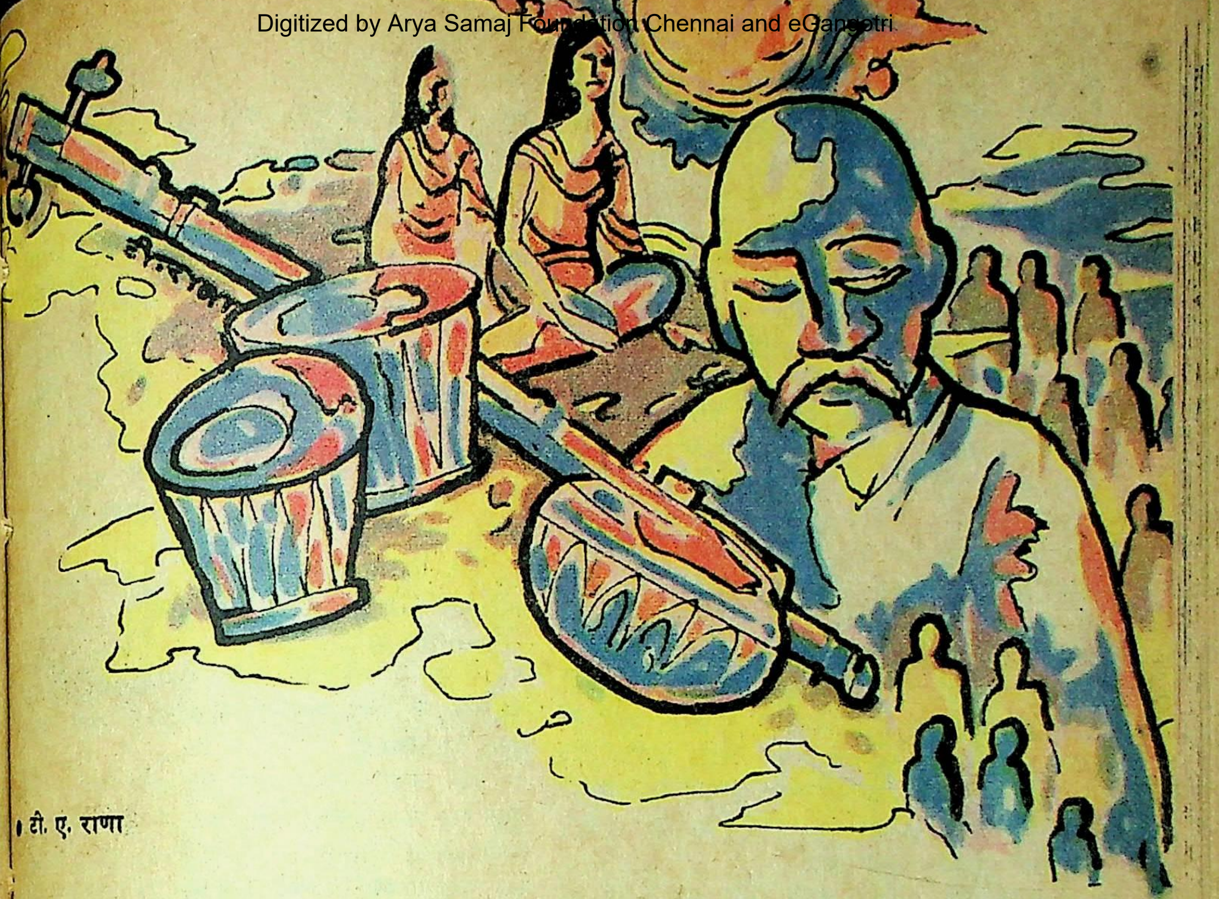

• टी. ए. राणा

हैं. और सेठजी अब भी अत्तर का फाहा देते हैं.

--कहां रहते हैं?

--सड़क पर सीधे चलते जाना. खेतान पार्क के पास ही उनका पुराना बंगला दिखाई देगा. वहां से बायीं तरफ जाता हुआ रास्ता आपको मजदूरों की बस्ती में ले जायेगा. वहां जा कर किसीको भी पूछने से पता मिल जायेगा. अगर सेठजी से आपकी मुलाकात हो तो उन्हें मेरा राम-राम कहना और. . .

और फिर बहुत ही त्वरा से वह पान बनाने लगेगा. छह पान का एक बीड़ा बांध, ऊपर धागा लपेट कर आपको देते हुए वह कहेगा--सेठजी को इस नाचीज का यह तोहफा पहुंचा देना.

आपको यह बीड़ा लेना पड़ेगा. भैया की ये संवेदनाभरी स्मृतियां आपके मन में उभरी हुई धुंधली आकृति की रेखाओं को और अधिक स्पष्ट करेंगी. चेनीराम सेठ! --उनका दिल बड़ा, उनकी दिलावरी बड़ी, अत्तर के आशिक, मघई पान के चाहक.

आप भैया से विदा लेते हुए कहेंगे--अच्छा, सीयाराम भैया, नमस्ते!

--नमस्ते.

और फिर आप आगे बढ़ेंगे तो यह सड़क आपको चेनीराम खेतान लाइब्रेरी' के निकट ले जायेगी. मन में उभरे हुए चित्र का विचार करते-करते आप रानी मस्जिद, सब्जी मार्केट और फिर खेतान पार्क पार कर जायेंगे तब डामर की इस सड़क की चढ़ाई शुरू होगी. एकाध फलांग जाने के बाद एक बंगले की कंपाउंड का दरवाजा आयेगा. उस दरवाजे के स्तंभ पर नया बोर्ड लगा हुआ होगा. आपकी दृष्टि वहां स्थिर हुई ही होगी तभी बगीचे का बुड्ढा माली आपसे पूछेगा--किससे काम है, लाला!

अनायास ही आपके मुंह से निकल जायेगा--चेनीराम सेठ से!

आपका यह एक ही वाक्य उसकी आंखों के कारुण्य को छलका देगा. आपके हाथ में चमड़े की होल्डआल-बैग' देख कर वह पूछेगा-- हिना लायें हैं न?' और फिर पलकें दो-चार बार पटपटाकर कहेगा--पर अब चेनीराम सेठ यहां नहीं रहते, लाला. इस बंगले को बिके तो तीन वर्ष हो गये.

इतना कह कर वह आपके सामने टगर-टगर ताकता रहेगा. आप भी कुछ नहीं बोल सकेंगे. फिर माली की आवाज आपके कानों में पड़ेगी--कद्रदान सेठ गये और करम में यह बगीचा रह गया. अब तो मेहनत करके मर जाऊंगा तो भी मेरी पीठ कोई नहीं थपथपायेगा. और फिर उसकी दृष्टि सारे ही बगीचे का अवलोकन कर लेगी, बहुत ही यत्नपूर्वक लगाये हुए गुलाब के पौधों पर ममता से घूम आयेगी. फिर आप सुनेंगे--आदमी बर्बाद हो सकता है, लाला! पर खुशबू बर्बाद नहीं होती. गुलाब के ये पौधे तो उन्हें बहुत प्यारे थे. मोगरा और चमेली

के साथ आठ-दस फूल उनकी देव-पूजा में जाते और बाकी के गुलाबों का गजरा मुझे तैयार रखना पड़ता. एक दिन वह गजरा लेते हुए सेठजी ने कहा——कैसे ख़ूबसूरत फूल हैं, माली दादा?. . .गजरा यहां है और लाहौर बहुत दूर. उस समय तो मुझे मालूम न था कि लाहौर में भी एक गुलाब था, जो सेठजी को खुश करता था.

——लाहौर का गुलाब?

——हां, लाला! वर्ष में दो-तीन बार सेठजी लाहौर जाते थे. लोग कहते कि वहां उनकी रखैल थी. पर यह बात सच्ची नहीं. सेठजी का संगीत का शौक उन्हें लाहौर खींच ले जाता था. वहां जाते तब आठ-दस दिन रुकते. पंद्रह-पंद्रह वर्ष तक इसी तरह सेठजी ने लाहौर की सफरें कीं और बदनाम हो गये. जब वहां जाते तब कुछ-न-कुछ भेंट ले कर जाते——कभी हीरों का हार, कभी ब्रेसलेट, तो कभी अंगूठी. आप इस ओर छांह में आ यें तो एक बहुत मजे की बात सुनाऊं.

और फिर आपको वह एक बरामदे की ओर खींच ले जायेगा. वहां जा कर आप एक बेंच पर बैठेंगे तभी आपकी नजर उस बंगले के नाम पर पड़ेगी. बंगले का नाम 'शबनम'! पढ़ कर आप चौंकेंगे. चेनीराम सेठ जैसे व्यापारी, धार्मिक वृत्तिवाले आदमी के बंगले का ऐसा म्लेच्छ नाम देख कर आपको आश्चर्य लगेगा. शबनम? शबनम यानी ओस!

तभी माली फिर कहने लगेगा——उस बात को बहुत वर्ष हो चुके, लाला! एक सुबह यहां अतर का कोई व्यापारी आया था. उस समय तो इस बरामदे में तीन घोड़े बंधते थे——उत्तम, अच्छी नस्ल के घोड़े. कभी-कभी ही बग्घी में जोते जाते और दशहरे में पूजन होता तब. वह अतर वाला आया तब साईस घोड़ों की मालिश कर रहा था और आप इस समय बैठे हैं इस बेंच पर बैठे-बैठे सेठजी देख रहे थे. आते ही अतर वाले ने पूछा——चेनीराम सेठ बंगले में हैं? सेठजी ने उसे बुला कर अपने पास में ही बेंच पर बैठाते हुए कहा——क्या काम है सेठ से?

व्यापारी सेठ को पहचानता न था. उसे लगा कि कोई 'चमचा' बैठा है. इसलिए कहा——बढ़िया किस्म के अतर लाया हूं वे उन्हें दिखाने हैं. सेठजी भी मजाक पर उतर आये. कहा——तो म्हाको भी दिखाओ, मियां! हम भी कुछ खरीदेंगे.

अरुचि से अतरवाले ने बैग खोली. चमेली और केवड़े के साधारण अतर दिखाने लगा तब सेठ ने कहा——चेनीराम सेठ ऐसे हलके अतर खरीदेंगे नहीं मियां! ये अतर तो इन घोड़ों पर छिड़कने के काबिल हैं.

अतर वाला सकपका गया. फिर उसने बैग में से एक के बाद एक शीशियां निकालनी शुरू कीं. कहता गया——यह है मिट्टी का अतर, यह केसर, यह रातरानी, यह नागचंपा, यह चंदन. चालीस रुपये तोला——क्या समझे? और दिखाऊं?

——दिखास्यो तो देख लेशां. सेठ धीरे से टहुके.

फिर तो वातावरण महक-महक उठा. अतर वाला अतर लगाता जाता और कहता जाता——यह जूही है. यह मोगरा है. आपको कहीं भी इसकी जोड़ नहीं मिलेगी. पचपन रुपये तोला. यह पारिजात है——साठ रुपये तोला.

फाहे बनते जाते, सेठ एक फाहा साईस की ओर उछालते, दूसरा मेरी ओर फेंकते, तीसरा मुनीमजी के हाथ में देते तो चौथा घोड़े की पीठ पर घिसते!

आखिर मियां उकता गया. शीशियां व्यवस्थित कर ज्यों ही बैग बंद करने लगा तभी सेठ बोले——सब अतर तो दिखाये मगर दो शीशियां तुमने नहीं दिखायीं——गुलाब की और हिने की. क्यों सच है न?

कुछ लापरवाही से अतरवाले ने कहा——वो दो चीजें सौ रुपये तोले की हैं. आपके काम की नहीं है, भाई! आपकी इतनी औकात कहां?

सेठ खिलखिला कर हंस पड़े. पूछा——तुम्हारे इस सारे माल की कुल कीमत कितनी होगी?

——दो हजार.

——बस? तो ऐसा करो. गुलाब और हिने की शीशियों के सिवा बाकी सारा अतर इन तीन घोड़ों के बदन पर लगा दो.

जैसे जाड़ा मार गया हो इस तरह मियां क्षण भर गुप्त रूप से कांप उठा और फिर वहां से भाग छूटने का प्रयत्न करने लगा. उसे लगा कि किसी पागल से पाला पड़ गया है. इसलिए बैग उठा कर वह खड़ा हुआ.

तभी सेठजी ने सवाल किया——तुमने कभी सेठ को देखा है?

——नहीं.

——फिर यहां कैसे आ पहुंचे?

——एक महीने पहले लाहौर गया था. वहां शकीला बेगम ने मुझे कहा था कि . . .

——पूरा नाम उसका?

——शकीला बेगम जालंधरी.

——क्या नाम है तुम्हारा?

——जलालुद्दीन.

——तब तो गुलाब और हिना के सिवा यह सारा अतर इन तीनों घोड़ों के लगा दो. शकीलाबानू ने सिफारिश की है तो मैं तुम्हें निराश नहीं करूंगा.

थोड़ा सहमते-सहमते अतर वाले ने पूछा——आपका नाम?

——लोग मुझे चेनीराम कहते हैं. कह कर सेठ खिल खिला पड़े.

——बस, सौदा दो हजार में तय हो गया. गुलाब और हिना के अलावा सारा ही अतर उन तीनों घोड़ों पर छिटक दिया गया. ऐसे तरंगी, ऐसे शौकीन और ऐसे गुणानुरागी थे चेनीराम सेठ.

एक निश्वास के साथ माली अपनी बात पूरी करेगा और आप अब चेनीराम से भेंट के लिए तड़प उठेंगे, क्योंकि आपके बुजुर्ग जलालुद्दीन के जन्नतनशीं होने के बाद का आपका यह पहला सफर है.

आप बैग खोलेंगे. हिना का एक फाहा बना कर आप

माली को देंगे तब वह कहेगा—बहुत मेहरबानी आपकी. आप सेठजी के पास जा रहे हैं?

—हां, जा ही रहा हूं.

—तो मेरा एक काम करेंगे? हर गुरुवार को सेठजी से सलाम करने जाता हूं. पर बनवारी की मां बीमार होने से आज जा नहीं सकता. इसलिए गुलाब का यह एक गजरा सेठजी को पहुंचा कर उन्हें मेरा सलाम कहेंगे?

—जरूर.

माली आपके हाथ में लाल गुलाबों का गजरा थमा देगा. मघई मान का बीड़ा तो आपकी बैग में है ही. बीड़े में सीयाराम के 'राम.राम' थे, गजरे में माली का 'सलाम' है. जुहार के ऐसे विशेष प्रतीक ले कर आप खड़े होंगे और माली को कहेंगे—नमस्ते, दादा.

—नमस्ते, लाला.

* *

फिर आप दायीं ओर के रास्ते मुड़ेंगे. तब एक मकान दिखायी देगा. उसके आंगन में बिछायी हुई खटिया पर बैठा हुआ आदमी आपको देख कर आवाज देगा—ओ भाई अतरवाले.

आपके पैर उस ओर मुड़ेंगे. वहां पहुंच कर आप उसके पास ही खटिया पर बैठ जायेंगे.

—गुलाब का एक फाहा दो.

आप बैग खोलेंगे. फाहा बनायेंगे. पैसे लेंगे. तब आपके पास का गजरा देख कर वह पूछेगा—उस 'शबनम' बंगले के बगीचे के गुलाब हैं न?

—आप उस बगीचे के गुलाबों से परिचित हैं?

—फकत गुलाब ही नहीं, हिना से भी परिचित हूं. और 'शबनम' बंगले से भी.

—तब तो चैनीराम सेठ को भी पहचानते होंगे.

—अरे प्यारे भाई, बीस-बीस वर्ष तक मैंने उनका नमक खाया है. मैं उनका ड्राइवर था. मेरा नाम शंभूराम पांडे... और फिर एक गरम निश्वास छोड़ कर वह कहेगा सब कुछ खो बैठे, पर सेठ के मन की अमीरी तो अभी तक वैसी-की-वैसी ही है. उनके वहां नौकरी करने के बाद अब दूसरी नौकरी करने की इच्छा ही नहीं होती.

मन-ही-मन आप एक तुलना कर लेंगे. सीयाराम पान वाले के स्वर में आर्द्रभावुकता का आवेग था, बुड्ढे माली की बात में अंतर का अभिषेक था, उस आवेग और अभिषेक में शंभू पांडे की बुलंद आवाज का दर्द भरा मुजरा सम्मिलित होता आप देख सकेंगे.

ड्राइवर आगे कहेगा—सेठ संगीत के गजब के शौकीन! अभी तक भी हर गुरुवार को मैं उनके पास जाता हूं और कुछेक भजन सुनाता हूं. पिछले गुरुवार को ही सेठजी ने मुझे कहा था—पांडेजी! तबियत अब लड़खड़ाती जा रही है. प्रभु अब कब बुला ले यह कहा नहीं जा सकता. मेरे दिल में एक ही इच्छा शेष रह गयी है. लगता है कि मौका मिले तो लाहौर हो आऊं और एक रात रह आऊं. अतरवाले भाई! सेठ बहुत सच बोलने वाले! मन में तनिक भी मैल नहीं. पर उन्हें उदारता ने ठगा, विश्वास ने डूबो दिया और संगीत के शौक ने बदनाम कर दिया.

आप पूछेंगे—क्या यह बात सच्ची है कि विख्यात सेठ को लाहौर जाने की आदत ने ही बर्बाद कर दिया?

यह सुन कर शंभू पांडे खटिया पर से अधखड़ा हो जायेगा. उसकी आंखों में आप गुस्सा देखेंगे. उसकी आवाज उछलेगी—कौन कहता है?

—सुना है.

—कहने वाले बेवकूफ हैं. सेठ कभी-कभी लाहौर जाते थे और जाते थे तब साथ में कीमती भेंट ले जाने की उनकी आदत थी, यह बात सही है.

—शकीला बेगम जालंधरी के लिए? आप उकसायेंगे.

—अरे भाई! आप उसे तवायफ समझ कर कटाक्ष में चाहे बोलें, पर मैं तो उसे चेनीराम सेठ के जीवन के 'पवित्र' बाग का एक गुलाब समझता हूं. वह 'पवित्र' शब्द पर विशेष जोर देगा और आगे कहेगा—लाहौर में क्या होता था उसका साक्षी एक मैं और दूसरा जलालुद्दीन अतरवाला.

आप आहिस्ता-से कहेंगे—वह मेरे वालिद होते हैं.

—अच्छा-आ! कहते हुए पांडेजी का चेहरा विनम्र हो जायेगा. आपके वालिद तो मुझे बहुत बार अतर देते थे. बैठिए, आराम से बैठिए. ताकीद तो नहीं न? बात चल निकली है तब कह ही दूं. उस गुलाब में कांटा जरूर था, क्योंकि शकीला बेगम एक तवायफ थी. उसके यहां महफिल जमती, गजलें-कव्वालियां और ठुमरियां हवा में गूंजतीं. पर साथ-ही-साथ उस गुलाब में खुशबू भी थी—दिमाग को तर कर दे ऐसी खुशबू. एक शब्द प्रवाह आपके कानों से टकरायेगा—बदनामी की सारी बातों से सेठ को दुख: होता फिर भी लाहौर गये बिना वह रहते नहीं. वह कभी-कभी गुनगुनाते भी थे—

गुलशनपरस्त हूं, मुझे गुल ही नहीं अजीज
कांटों से भी निबाह किये जा रहा हूं मैं.

जब भी लाहौर जाने का निश्चय होता तब पहले दिन सेठ मुझे सूचना दे देते थे. मैं मोटर की टंकी में भरपूर पैट्रोल डला लेता. सेठ कोट और पगड़ी का लिबास उतार कर मलमली कुर्त्ता और कश्मीरी टोपी पहन लेते. रवाना होने से पहले हजारीमल जौहरी के यहां से शकीला बेगम के लिए सेठ हीरों या मोतियां का कोई कीमती नजराना खरीदते. फिर हमारी गाड़ी लाहौर जाने के लिए रवाना होती. ठीक महफिल के सामय ही हम वहां पहुंचते—शकीला जालंधरी के 'शबनम' की कंपाउंड में.

—शबनम? तो क्या यहां के बंगले की तरह वहां के बंगले का नाम भी 'शबनम' था?

—हां, भाई! और इन दोनों 'शबनम' का मूल एक तीसरे 'शबनम' में था. शकीला बेगम की लड़की का नाम शबनम है. बहुत प्यारी लड़की है वह. हम पहले पहल लाहौर गये तब तो वह छोटी मासूम बच्ची थी, पर आज तो वह जवां हो गयी है और शकीला बेगम की जवानी रवां हो गयी है.

हवा का एक झोंका आयेगा और गुलाब का अतर महक उठेगा. बात आगे बढ़ेगी—सेठ हिने के बहुत शौकीन

पर लाहौर जाना होता तब हिना एक ओर रह जाता और रूहे गुलाब की सुगंध को सत्ता सौंप दी जाती. हमारी मोटर 'शबनम' की कंपाउंड में पहुंचती कि चौकीदार सिकंदरखां सेठ को सलाम बजा लाता. जरा भी आवाज न हो इस तरह मैं मोटर को ठेठ बंगले के पास ले जाता. 'शबनम' की उस मंजिल पर जमी हुई महफिल में गायी जाती चीज के शब्द हमारे कानों में पड़ते.मैं सेठ के सामने देखता और उनका इशारा होते ही 'बैटरी हार्न' दबाता. तुरंत ही ऊपर गायी जाती चीज की आवाज थम जाती, सारंगी मूक हो जाती और तबले शांत हो जाते. एक तरह की बेचैनी भरी खामोशी का साम्राज्य छा जाता. हम ऊपर पहुंचते कि खामोश बनी हुई महफिल के बीचों-बीच बैठी हुई शकीला बेगम सेठ को सलाम बजा लाती. फिर तबलची कुरबानहुसैन और सारंगीवादक छन्नू उस्ताद तस्लीम बजा लेते और आखिर में एक साथ आवाजें उठतीं--आइए बाबूजी! बहुत दिनों के बाद दर्शन हुए. कहिए, मिजाज कैसा है? और फिर अधूरी रही हुई वह चीज आगे बढ़ती. उस महफिल में थराडी के नवाब गुलाम अली खां होते, लाहौर के रईस दरबारासिह होते, लाला खुदीराम होते, फौजदार कन्हैयालाल और जमींदार हीरेनबाबू होते. महफिल के ऐसे खास-खास व्यक्तियों के बीच चैनीराम सेठ अपनी बैठक जमाते.कुछ देर बैठ कर फिर उठ खड़े होते और गुलाब का गज़रा शकीला बेगम की ओर फेंकते हुए कहते—बानू! ठुमरी तो तुमने खूब गायी. पर मेरे दिल पर इसका रंग नहीं चढ़ता. माफ करना! और यों कह कर फिर वहां उपस्थित सभी से विदा ले कर सेठ 'शबनम' के एक अलहदा कमरे में आराम करने चले जाते. और लाहौर के शौकीनों में बात फैल जाती कि अब कुछ दिनों के लिए शकीला बेगम की मस्त महफिल बंद रहेगी.

यहां शंभू पांडे तनिक दम लेने रुकेगा. आप चकरा रहे होंगे तब वह वापस कुलबुलायेगा और आपकी ओर मुखातिब हो कर कहने लगेगा—सेठ चेनीराम वहां सप्ताह भर रुकते, कभी पंद्रह दिन भी रुक जाते. सेठ पहुंचते उसके दूसरे दिन से ही 'शबनम' की उस मंजिल पर जमती रोजमर्रा की वह महफिल खामोश हो जाती. उस कमरे की गद्दियां समेट दी जातीं, तसवीरें आलमारी में छिपा दी जातीं और गलीचों को तह-ब-तह कोने में डाल दिया जाता.फिर उस दूसरे दिन से तीसरी मंजिल पर एक खास गुप्त महफिल जमती. आसपास बाल्कनी होती और बाल्कनी में फूलों-बेलों के गमले होते थे. रात को वहां दूधिया प्रकाश फैलता और उस प्रकाश में फूलदानों में लाल-सुर्ख गुलाब डोलते होते और अगरबत्ती की धूम्र लहरियां नाचती होतीं. उस कमरे के बीच में जो आसमानी शतरंजी बिछी होती थी उस पर शकीला बेगम बैठती. उसके बदन पर कोई गहना नहीं दिखता--केवल एक सफेद साड़ी उसकी ढलती जवानी को ढांके होती. जवानी के कगार पर खड़ी हुई और दूसरे किसी भी महफिल में गैरहाजिर रहने वाली शबनम रूहे गुलाब की फुहारें उड़ा कर उस खास महफिल का अंग बन जाती. फिर उस हजारीमल जौहरी के यहां से जो चीज खरीदी गयी थी उसका नजराना होता पहले यह समा बंधता और फिर 'शबनम' का वह कमरा रात के अंधेरे में किसी तेजस्वी रत्न जैसा जगमगा उठता. अंत में शकीला बेगम के हाथों में तंबूरा दे कर शबनम एक ओर बैठ जाती.

--तंबूरा?

--हां, क्योंकि वह महफिल भजनों की होती थी.

--फिर?

--सेठ साहब मलमली पोशाक पहन कर बैठते थे. कश्मीरी टोपी उस समय सिर पर नहीं होती थी. फिर कबीर और सूरदास के भजनों की झड़ी लग जाती. तीसरी मंजिल की वह खास महफिल भक्ति के भगवा पहन लेती. गुलाब की पवित्र खुशबू के साथ-साथ निर्मल मन का हिना भी महक-महक उठता.

यह सुन कर आपको लगेगा कि चेनीराम सेठ के जीवन में बदनामी के जो कांटे थे वे फूल बन गये हैं.

उस समय शंभूप्रसाद खड़ा होगा. लालटेन की बत्ती जरा तेज करते हुए कहेगा--एक बार ऐसा हुआ कि मैं बगीचे में बैठा था. रात के दसेक बजे होंगे. उस 'कमरे' में 'खास महफिल' की शुरुआत हो चुकी थी. मंद-मंद प्रकाश के बीच और मंद-मंद बहते समीर के बीच शकीला बेगम के सुर सुनाई देते थे.

रेन पड़े तब ही उठ जाऊं,
भोर भये घर आऊं,
रेन दिनां वाके संग खेलूं,
मैं तो जियुं रीझे तियुं रिझाऊं.

--सुरों की उस उष्मा में लगभग पागल-सा मैं बैठा हुआ था तब आपके वालिद जलालुद्दीन हंसते-हंसते बंगले में से बाहर निकले. उनके हाथ में अतर की बैग थी. मैंने कहा— जनाब! जरा धीरे हंसिए, मेरा नशा उतर जायेगा. जवाब में उन्होंने कहा— जहां दिल का हिना हो, मन का गुलाब हो वहां इस सब अतर का क्या काम? फिर कुछ देर चुप रह कर बाद में बोले-- कैसी किस्मत पायी है इस नाचीज ने आज कि गुलाब को गाते सुना हिना के ताल पर. यह सुन कर मेरा नशा दुगुना हो गया-- हां भाई! आप शायद नहीं मानेंगे, पर दुगुना हो गया. 'गुलाब को गाते सुना हिना के ताल पर' यानी कि शकीला बेगम गाती थी और चेनीराम सेठ तबले बजा रहे थे. जिसने वह दृश्य देखा हो उसे ही पता चलता कि गुलाब में कैसी ठंडक और हिने में कैसी उष्मा थी!

शंभूप्रसाद की यह बात पूरी होने के बाद भी उसका प्रतिघोष शांत नहीं होता. चेनीराम सेठ की रखैल के रूप में जानी जाती शकीला बेगम नितांत ही निर्लेप और निष्कलंक रह कर सेठ का अंतर रिझाती थी यह बात आपको विचार करने के लिए मजबूर कर देगी और शकीला बेगम के आशिक के रूप में बदनाम हो चुके चेनीराम सेठ अपनी मान-मर्यादा और अपना बड़प्पन बिल्कुल भूल कर शकीला बेगम के कंठ का साथ देने के लिए स्वयं तबले बजाने बैठ गये थे यह वास्तविकता आपको जीवन का कोई नया ही मूल्य सिखायेगी?

तभी टावर में आठ के टकोरे सुन कर आप चौंकेंगे. हाथ में बैग और गुलाब का गजरा उठा कर आप शंभूप्रसाद को कहेंगे— अच्छा पांडेजी, अब हम चलें. वक्त बहुत हो गया.

और पांडे आपके कंधे पर प्रेम से हाथ रखता हुआ कहेगा— हां, भाई! मैं भी खा-पी कर तैयार हो जाऊं.

और फिर अंतर्मन के भाव से मह-मह महकता मघई पान का एक बीड़ा, पूज्यभाव तथा आदर के रंग में रंगा हुआ गामठी गुलाबों का एक गजरा, सेठ की बदनामी की बात से बेचैन होते आदमी की 'नमस्ते', तरह-तरह के रूहे गुलाब और मुश्के हिना की शीशियों से भरी हुई आपकी बैग— इन चार वस्तुओं के साथ पांचवें आप बंगाली महाशय के उस 'सारंग कैफे' के आगे आ कर रुक जायेंगे. पूछेंगे— सेठ चेनीराम कहां रहते हैं?

कैफे के रेडियो से भी तेज आवाज में आपको जवाब मिलेगा—वह देखिए. सामने की खोली के दरवाजे के पास ही तो खड़े हैं.

उतावले आप आगे बढ़ेंगे तभी कैफे के रेडियो से आवाज आयगी : 'अब आप शकीला बेगम जालंधरी से एक गजल सुनिए. फरमाश करने वले है. . .

क्षण भर आप जमीन के साथ जैसे चिपक जायेंगे. फिर दूसरे ही क्षण दत्तचित्त हो कर सुनेंगे :

उन्हें खो कर दुःखे दिल की दुआ से और क्या मांगूं?
मैं हैरां हूं कि आज अपनी वफा से और क्या मांगूं?

इस समय आपके अंतर में उर्मियों का एक प्रचंड उछाल आयेगा. 'गुलाब' गजल गा रहा होगा तब 'हिना' से मिलने के इंतजार में आप बेचैन होंगे. आपके थके हुए पैर उस धूल भरे रास्ते को तेजी से पार कर अपको उस कोठरी के पास में पहुंचा देंगे. वहां टूठे-फूटे हुए चबूतरे पर श्याम रंग और स्थूल शरीर वाला एक व्यक्ति आंखें मूंद कर बैठा होगा और अपनी मैलो छोटी-धोती में से झांकती भरावदार जांघों पर ताल देता होगा. वह नंगे बदन होगा, उसके होठ पर भरावदार मूंछें होंगी, पर उसके कानों में हीरों की बुट्टियां नहीं होंगो, केवल दो छेद होंगे.

उत्साह भरे स्वर में आप उन्हें पुकारेंगे— सेठजी.

पर जवाब नहीं मिलेगा.

–चेनीराम सेठ.

जांघों पर दिया जाता ताल चालू ही रहेगा— उनकी आंखें नहीं खुलेंगी.

–सेठ साहब.

ठीक उसी समय वह गजल पूरी होगी और सेठ तंद्रा में से जागेंगे. आपको देख कर पूछेंगे— कौन हो भाई ?

—सेठजी, मैं जलालुद्दीन अतर वाले का लड़का हूं. आपसे मिलने आया हूं.

सेठ उठ खड़े होंगे.अपनी कोठरी में आपको ले जाते हुए वह कहेंगे— जलालुद्दीन से मिले तो वर्षों हो गये. आजकल क्या करते हैं? मजे में तो हैं न?

आप कहेंगे — सेठजी ! मेरे वालिद तो तीनेक साल पहले जन्नतनशीं हो गये.

—राम राम ! कह कर सेठ ममत्व से आपके कंधे पर हाथ रखेंगे— भगवान की मर्जी, भाई! बहुत रंगीली तबियत के आदमी थे.

और फिर सेठजी आपको टूटी-फूटी उस कोठरी में बिछी शतरंजी पर बैठने के लिए कहेंगे— बैठो, बैठो.

आप बैठ जायेंगे. सामने सेठ बैठेंगे. आप उनको वह गुलाब का गजरा देते हुए कहेंगे—माली दादा ने आपको सलाम कहा है.

गुलाब की आर्द्रता सेठ की आंखों में आ कर बैठ चुकी लगेगी. सेठ कहेंगे— भूल जायें तो माली दादा काहे के ? गुरुवार आया कि गजरे के दर्शन हुए ही.

इतने में आपने बैग खोल ली होगी और उसमें से वह पान का बीड़ा निकाल कर सेठ के सामने रखते हुए आप कहेंगे— और सीयाराम भैया ने आपको राम-राम कहलवायी है.

सेठ की आंखों की वह आर्द्रता और बढ़ जायेगी और उनकी आंखों में से दो छोटी-छोटी बूंदें चू पड़ेंगी. आप फिर कहेंगे— और शंभूप्रसाद ड्राइवर ने आपको नमस्ते कहलवाया है.

—अरे! वे खुद ही थोड़ी देर म मैं भजन गाने आ पहुंचेंगे. और क्षणेक शांत रह कर फिर कहेंगे— छोटे-छोटे आदमी कभी किसी को भूलते नहीं. भूल जाने वाले तो बड़े आदमी ही होते हैं, भाई!

और इस तरह मधुर और सुखद स्मृतियों में कुछ समय गुजरेगा. फिर वह आयेगा ड्राइवर शंभू पांडे, तंबूरा लिये हुए. फिर आयेगा पड़ौस में रहने वाला टाइपिस्ट बीनू चक्रवर्ती— तबले लिये हुए.

—आइए, पांडेजी, आओ भाई बीनू. यों स्वागत करते हुए सेठ झुक-झुक जायेंगे. टावर में नौ के टकोरे बजें उससे पहले तो शंभू पांडे तार मिला कर तैयार हो जायेगा. और बीनू चक्रवर्ती तबलों को ठोक-ठोक कर ठीक-ठाक कर लेगा.

* *

पर शंभू पांडे की बुलंद आवाज गर्जे उससे पहले बाहर के रास्ते पर मोटर के ब्रेक की चीख सुनाई देगी, मोटर के दरवाजे के खुलने और बंद होने का 'धड़ाम' स्वर सुनायी देगा. कोठरी में से सब बाहर निकलेंगे तभी दो स्त्रियां आपकी ओर आती दिखेंगी. उनके पीछे दसेक नंगधड़ंग बच्चे नाचते-कूदते नजर आयेंगे.

आश्चर्य से चेनीराम सेठ की आंखें तनिक चौड़ी हो जायेंगी. वह कह पड़ेंगे— शकीला बानू! तुम! और शबनम भी?

शकीला बेगम और शबनम कोठरी में दाखिल होंगी. दोनों एक टक सेठ के सामने ताकतीं खड़ी रह जायेंगी.

लाहौर की तवायफ का यह प्रथम दर्शन आपकी नजर को झुका देगा. एक साथ आफताब अस्त होता हो और महताब का उदय होता हो ऐसा दृश्य देख कर आपका मन गुनगुनायेगा :

कली कोई जहां पर खिल रही है—
वहीं इक फूल भी मुरझा रहा है.

और फिर तो अभिव्यक्त होते आनंद की लहरें

उड़ेंगी. सलाम भर कर शकीला बेगम सेठजी से कहेगी—— आदाब अर्ज है, बाबूजी. और फिर पांडेजी की ओर घूम कर पूछेगी—— कहिए, पांडेजी, खैरियत तो है?

और फिर सेठजी कहेंगे—— बैठो, बानू. बैठ शबनम.

और कुछ भी बोले बिना, अपनी सफेद साड़ी खराब होने का किंचित भी खयाल किये बिना, शकीला बेगम उस फटी हुई और मैली शतरंजी पर बैठ गयी शबनम ने उसका अनुकरण किया.

सेठ ने शकीला बेगम से पूछा—— इतने वर्षों से कैसे भूल पड़ी बानू?

शकीला बेगम ने कहा—— बरसों से आपके दर्शन नहीं हुए, सोचा कि मैं खुद ही सेठजी के पास हो आऊं.

——कहां ठहरी हो?

——पैराडाइज में. मगर आज रात हम यहीं पर ही ठहरेंगे.

——यहां?

——कोई हर्ज है क्या?

——नहीं, नहीं, मगर. . .

सेठ बेचैन हो रहे थे. तभी शकीला बेगम ने पुत्री से कहा——सेठजी को तोहफा पेश करो, बेटी.

शबनम ने अपनी बैग खोली. अंदर से एक पेटी निकाली और सेठजी के पैरों के पास रख कर सलाम बजा लायी. शकीला की आवाज सुनायी दी—— आप गुलाब का इत्र ले कर लाहौर आते थे. मैं आपके पास हिना ले कर आयी हूं. उम्मीद है, आप कुबूल फरमायेंगे.

हिना का नाम सुन कर सेठजी ने त्वरा से पेटी खोली और फिर जल गये हों इस तरह पीछे की ओर खिसक गये. तेज, कठोर आवाज में बोले—— शकीला!

जालंधरी की आंखों में उस समय आजिजी छलक आयी. भावना के अतिरेक से कांपती हुई आवाज में उसने कहा—— आपकी ही दी हुई चीजें आप ही को देने आयी हूं, सेठजी. गुस्ताखी के लिए माफी चाहती हूं.

पांडे, बीनू और आप—— तीनों ही उत्कंठा से देख रहे होंगे. वह पेटी खुली पड़ी थी और उसमें रखी हुई वस्तुओं को कोठरी की लालटेन की रोशनी जैसे चूमने लगी थी! इस पेटी में हीरों के हार, सोने के कंगन, खरे मोतियों की दामिनियां, बड़े नगीनों वाली अंगूठियां, कनबाले, झांझरें आदि थीं. इन सबके साथ में मुश्के हिना की एक पहलदार शीशी थी.

वैसे ही कठोर स्वर में सेठ ने कहा—— इन हाथों ने हमेशा देना सीखा है, कभी लेना सीखा नहीं. फिर गौरव से सीना तान कर शबनम की ओर देख कर कहा—— इस सारी माया को बैग में वापस रख दे, लड़की. मुझे इनका तनिक भी जरूरत नहीं.

शकीला बेगम की आंखों में आंसू तिर आये. उसने कहा—— अगर आपको जरूरत नहीं तो मझे भी क्या जरूरत है?

सेठ ने शकीला के तनिक पास आ कर कहा—— तो थारो कहणों है म्हें ले लूं? अच्छा तेरी बात भी म्है थोड़ी-सी रख लेशां. फिर पेटी में से हिने की शीशी बाहर निकालते हुए कहा—— हिना की या शीशी म्है रख लेशां—— बस, अबे तो राजी? कह कर गहनों-जवाहरातों की पेटी बंद कर दी और फिर हाथों में उठा कर शबनम को वह पेटी देते हुए कहा—— बाकी को यों सब म्है शबनम को देऊं हूं. शायद इंकी शादी में नई आ सकूं. और फिर अतर की शीशी पर हाथ फेरते हुए कहा—— बानूं! थारे सु एक बचन मांगूं हूं.

——कहिए.

——बदनाम तो हुवो ही हूं——अब डर कांयको? थने म्हारी अरज है कि साल में एक बार अठै आ कर मीरां, सूरदास, अर कबीर का भजन सुणा जाणां. लाहौर तो अबे म्है आ सकूं कोनी.

प्रसंग के इस नाजुक क्षण से आप विवेकी बनने के लिए तत्पर होंगे और बैग उठायेंगे. बीनू चक्रवर्ती यह देख कर अपने तबले उठायेगा और शंभू पांडे तंबूरा हाथ में लेगा. तभी शकीला को कहती सुनेंगे—— पांडेजी!

——जी.

——आपको अगर जाना हो तो जाइए लेकिन यह साज यहां रहने दीजिए. आज हम गायेंगे.

शंभू पांडे तंबूरा वापस नीचे रखेगा. सेठ के चेहरे पर हर्ष की लहर दौड़ आयेगी. बीनू चक्रवर्ती को सेठ कहेंगे—— चक्रवर्ती बाबू! आपको भी जाना हो तो जाइए, मगर अपने तबले यहां छोड़ जाइए. आज हम बजायेंगे.

गले में गजरा खिलेगा. गलाफ में मघई पान का बीड़ा महकेगा. शबनम के हाथों छिड़के गये गुलाब के अतर की मह-मह महक फैल जायेगी और फिर जब शकीला जालंधरी के हाथों में तंबूरा दे कर शबनम एक ओर अदब से बैठ जायेगी तब चेनीराम सेठ भी दोनों घुटनों के बीच तबले जमा लेंगे.

'खास महफिल' लगभग तैयार हो गयी देख कर पांडेजी आपसे कहेंगे—— चलिए, जनाब.

बैग उठाते हुए आप भी कहेंगे—— हां, चलिए पांडेजी!

आप सेठ से विदा लेंगे, जालंधरी से विदा लेंगे, जिंदगी के उत्सव जैसी उस महफिल से विदा लेंगे.

. . . और आप दोनों के साथ चक्रवर्ती बाबू भी बाहर निकल आयेगा.

आपके सामने वही कंकरों-पत्थरों वाला रास्ता होगा, वही झोंपड़ों की पंक्तियां होंगी. शहर की वही 'गरीबी' होगी. आपके पीछे वह महफिल——वह 'खास महफिल' छूट जायेगी. वहां तंबूरा झनझनाता होगा, सूरदास के अंतर की आरजू को शकीला बेगम का कंठ आलापता होगा और तबलों पर उस बदनाम सेठ के हाथों की थापें पड़ती होंगी.

आपकी चाल में एक नशीली गमगीनी होगी और आपके मन की कंदराओं में आपके वालिद का कहा हुआ और शंभू प्रसाद पांडे का आपको सुनाया हुआ वह वाक्य गूंज उठेगा—— कैसी किस्मत पाई है नाचीज ने आज कि गुलाब को गाते सुना हिना के ताल पर! □□□

(अनुवाद : जेठमल 'कमलेश')

१६५ झाटकण पोल,
रायपुर, अहमदाबाद —१ (गुजरात)

समाजवादी देशों की कहानियों का विशिष्ट खंड तथा अन्य कहानियां

इस अंक में सोवियत संघ, हंगरी और यूगोस्लाविया में बोली जाने वाली अलग-अलग भाषाओं की सात कहानियां रहेंगी. इनका अनुवाद मूल भाषाओं से विशेषतः सारिका के लिए ही कराया गया है.

अन्य लेखक—

प्रभाकर माचवे, उर्मि कृष्ण,
सविता बैनर्जी, स्वदेश दीपक
आदि.

साथ ही -

'गर्दिश के दिन' के अंतर्गत राजेंद्र यादव की आत्म-रचना तथा सभी स्थायी स्तंभ.

दिसंबर
१९७५

कहानियों और
कथा-जगत की
संपूर्ण पत्रिका

TIMES ART

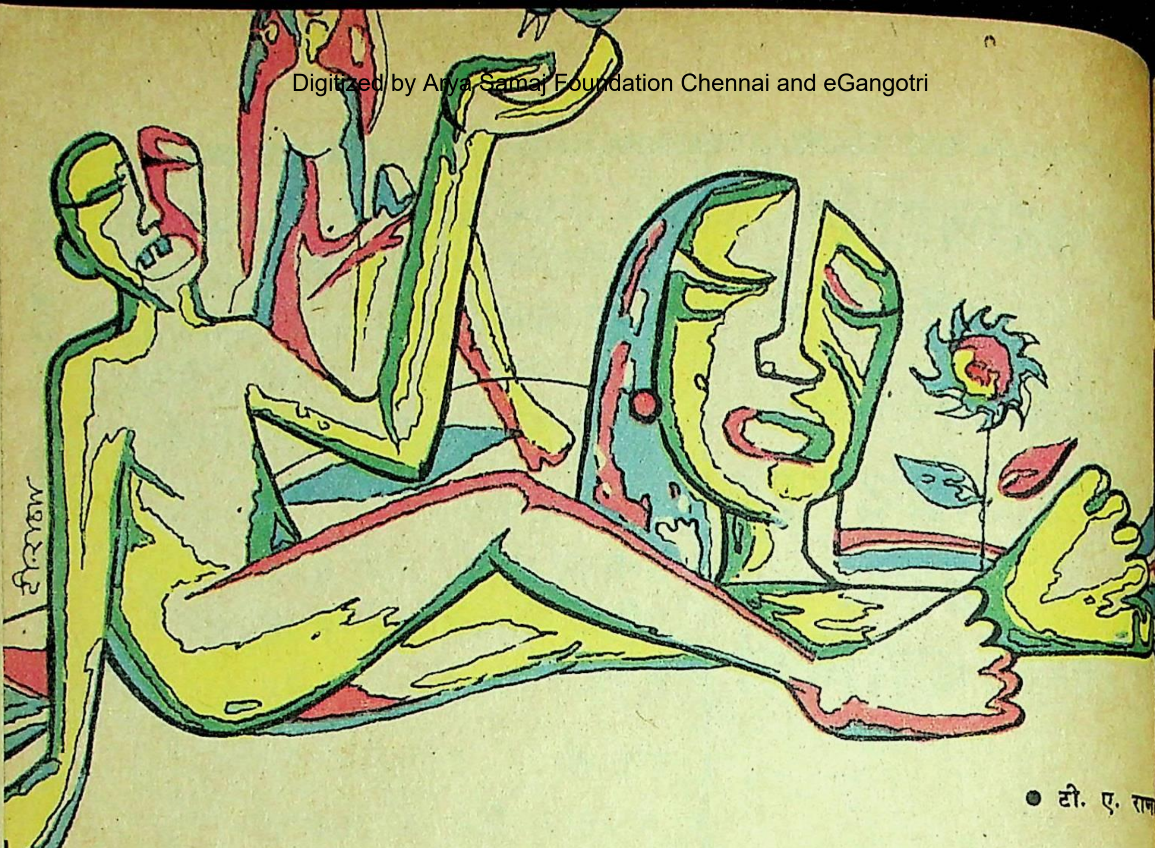

● टी. ए. रा

लुच्ची

सैयद ज़मीर हसन

दिसंबर की ठंडी शीत रात के सन्नाटे में दूर से आने वाले तांगे की चरखू-चूं और साजों की हलकी-हलकी छनकार ने दूध वाले मिरजा को थोड़ी देर के लिए हैरान कर दिया और वह दूध नापता हुआ आबखोरे को हाथ में पकड़े, मिट्टी के माधो की तरह बुत ही बन गया. फिर जब गाहक ने उसकी ऊंघ पर व्यंग्य किया तो वह चौंक कर दुबारा कड़ाही में से दूध निकालने लगा—भाई जान! आज बड़ी सर्दी है, उसने अपनी टांगों पर पड़ा मिलिटरी का कंबल कमर तक सरकाते हुए कहा और ढाक के पत्ते से आबखोरा ढांक कर गाहक के हाथ में थमा दिया.. . अब भी नींद आयी तो वह दुकान बढ़ाने ही वाला था, पर कड़ाही में दूध कुछ ज्यादा था. शायद उसके गाहक सर्दी से ठिठुरे आज घरों में ही पड़े रह गये थे. बासी दूध बिक तो जाता था. तड़के नाश्ता करने वाले ले जाते थे, पर असल बात यह थी कि मिरजा इतनी रात तक जागते रहने के कारण सुबह उठने से कतराता था. यों भी आज जुमेरात थी. असीना बाई जुमेरात को घर अगरबत्तियां जला कर खोए के जरदे का सैदानी बी की न्याज दिलवाती थी और मिरजा का आधी रात के बाद इंतजार करती थी. इस न्याज का सारा खर्च मिरजा बर्दाश्त करता था. यही कारण था कि मिरजा दुकान पर बैठा उकता रहा था.

सर्दी के कारण उसे बार-बार ऊंघ आ रही थी लेकिन जब उसके कानों में तांगे की चरख-चूं की आवाज पड़ी तो वह आंखें बंद कर के आने वाली सवारियों की कल्पना करने लगा. फिर कुछ मिनटों बाद उसने तांगा अपनी दुकान के सामने खड़ा हुआ देखा तो वह टुकुर-टुकुर देखने के बजाय चोर-आंखों से सवारियों का अंदाजा लगाने लगा. धुएं से काले हुए टिमटिमाते बल्ब की रोशनी इस सख्त सर्दी में कुछ अधिक ही ठिठुर गयी थी और कोहरे के कारण नजर दूर तक नहीं जाती थी. फिर भी मिरजा ने अपनी जुगनू जैसी आंखों को बार-बार खोला और बंद किया तो दो बुरके दिखाई दिय. एक काला अंगरेजी ढंग का और दूसरा सफेद लट्ठे का सीधा-सादा. मिरजा की आंखें पास किसी मर्द की तलाश करने लगीं, पर उन्हें अकेला देख कर उसे बड़ा हैरानी हुई. साथ ही दो-चार गठरियां और एक पुराना लकड़ी का संदूक भी था. मिरजा ने सोचा, बूढ़ी स्त्रियां होंगी और शायद किसी दूसरे

शहर से आयी हों पर जब वे करीब से गुजरीं तो काले बुरके में से निकल रही सुनहरी किरण ने मिरजा की आंखों को ऐसा चकाचौंध किया कि वह ऊंची आवाज से 'सुबहान अल्लाह' भी न कह सके. मुहल्ले की खूबसूरत औरतों की तारीफ वह इस प्रकार ही किया करता था और यह अंदाज भी उसने दो साल से ही अपनाया था. जब मुहल्ले की बहू-बेटियां से उसका विश्वास जाता रहा था, नहीं तो वह बड़ा असूलपरस्त आदमी था. जवानी से बुढ़ापे तक रंडीबाजी की, पर अड़ोस-पड़ोस को कभी बुरी नजर से नहीं देखा था. वह कहता था कि डायन भी सात घर छोड़ कर डसती है और सांप भी अपनी बिल में सीधा घुसता है.

फिर देखते-देखते ही जमाना बदल गया. मिरजा के सामने नाक पोंछते वाली बच्चियां सोलह-सिंगार कर के छम-छम करती हुई उसके सामने यों गुजर जातीं जैसे मिरजा के बुढ़ापे को व्यंग्य कर रही हों. दुकान के सामने कोठे पर मौलवी करीम इलाही की छोकरी रहती थी. उस पर खूब जवानी चढ़ी और ऐसी जवानी निकली कि दर्जनों गाहक मिरजा की दुकान के सामने खड़े उसका नजारा करते रहते. वह खूब बन-संवर कर बरामदे में लटकते पिजरे में से तोते की पूंछ इतने जोर से खींचती कि वह टें-टें का तूफान खड़ा कर देता. नीचे खड़े लोगों की भीड़ आसमान की ओर देखने लगती. फिर एक दिन जब सामने ड्योढ़ी में चोर-चोर का शोर मचा तो मिरजा उठ कर सीधा अंदर घुस गया, पर अगले ही क्षण उसे आंखें बंद कर के बाहर आना पड़ा. बस उसी दिन से उसने मुहल्ले का सत्कार करना छोड़ दिया—छिनालें पैसों की यार हैं तो क्या हम बुरे हैं! क्यों न मौज करें! घर का माल घर में रहे तो अच्छा है.

फिर एक करम इलाही की छोकरी की क्या बात, इश्तियाक पतंगबाज की छत पर दिन-दिहाड़े सारी दुनिया ने वह कुछ देखा कि जो सुनता, कानों को हाथ लगाता. कमबख्तों को जगह भी मिली तो कोठे पर, आदमी न हुए कुत्ते-बिल्लियां हो गये. उस दिन से मिरजा ने अपने सारे असूलों की पुड़िया बांध कर भट्ठी में फेंक दी और ऐसे नंगेपन पर उतर आया कि हर आती-जाती पर आवाजें कसना अपना धर्म बना लिया. कुछ तो बड़बड़ाती हुई गुजर जातीं और कुछेक ने मिरजा को मुंह लगा लिया. कुआं जब प्यासे के पास आ जाये तो कुएं पर जाने की क्या जरूरत है! सो मिरजा सड़क पर फेरे लगाने छोड़ कर घर बैठे हुए ही रंगरेलियां मनाने लगा.

उस काले बुरके वाली ने मिरजा के दिल में गुदगुदी-सी पैदा कर दी. रात को तो भला किससे वह कोई पता चलाता, पर सुबह होते ही उसे पता चल गया कि अनवरी बाई लखनऊ का बाजार छोड़ कर यहां काली हवेली में आ रही है और सुना है कि उसने कारोबार सदा के लिए त्याग दिया है. पर इस बात का यकीन किसी को नहीं आता था, क्योंकि चोर चोरी से तो जा सकता है पर हेरा-फेरी से नहीं. मुहल्ले के आशिकमिजाज तो इस तरह खुश नजर आते थे जैसे आसमान से कोई परी उतरी हो. मिरजा भी अनवरी का नाम सुन कर चुप हो गया. लाख पेशा छोड़ दिया हो, पर ऐसा भी नहीं कि मिरजा की पहुंच भी वहां तक मुश्किल हो जाये. मिरजा ने सुबह-शाम लड़के को भेज कर दूध-दही के बारे में पूछना शुरू कर दिया.

* *

अनवरी खास डेरेदार थी. मां ने बहुत बड़ी जायदाद छोड़ी थी. इस जायदाद के बलबूते पर उसने रंडी के पेशे को सदा के लिए अलविदा करने की ठान ली थी. यों तो वह पैसे में भी बड़ी असूलपरस्त थी, बुरे आदमी को मुंह नहीं लगाती थी. बड़े-बड़े रईस दरवाजे पर आए और ठोकर खा कर चले गये. असल में वह गृहस्थ स्वभाव की थी और उसे बाजारूपन से नफरत थी. कहते हैं कि आदमी की भूल खुदा तो माफ कर सकता है पर आदमी नहीं करता. सो कई बार उसने आने-जाने वाले शरीफों का हाथ पकड़ना चाहा पर न पकड़ सकी. रखैल बनाने को सभी तैयार थे, पर जब बीवी बनाने का सवाल आता तो खिसक जाते. एक भी हामी न भरता. किसी गरीब के यहां चली जाती तो मां को सदमा पहुंचता, जनाना औलाद रंडी का सरमाया होती है. वह सब कुछ बर्दाश्त कर सकती थी पर वह हाथों से निकल जाती तो उसकी कमर टूट जानी थी. फिर अनवरी की मां तो मुद्दत से कब्र में पैर लटकाए बैठी थी इसलिए उसने सोचा कि मां को दुख देन से क्या फायदा. उसके पैरों तले तो स्वर्ग है. उसकी मौत के बाद देखा जायेगा.

आखिर एक दिन मां मर ही गयी. अनवरी ने कुछ जायदाद जैसे-तैसे बेच कर काली हवेली का यह मकान खरीद लिया और एक दिन आधी रात को सामान बांध कर बाजार छोड़ कर यहां आ बसी. एक पुरानी नौकरानी बेचारी तरस खा कर या खुदा जाने किसी लालच से साथ आ गयी. वह एक से दो हो गयी और सौदा-सुलफ लाने की भी आसानी हो गयी. नहीं तो स्वयं बाहर निकलती तो देखने वाले खुदा को भूल कर नजर ही नजर में ऐसी इज्जत लूटते कि पारसाई का भूत एक मिनट में उतर जाता. खालिस इश्कबाजी मुहल्ला था. अपनी पत्नी सभंले, या न संभले दूसरी औरत के करीब से गुजरे तो आंखों ही आंखों में गर्भवती कर दें.

घर की चहारदीवारी में भी अनवरी कौन-सी सुरक्षित थी. खूब चौराहों पर चरचे हुए. किसी ने कहा—बूढ़ा शेर महात्मा बन कर आया है. किसी न कहा—भई खूब. नौ सौ चूहे खा कर बिल्ली हज को चली. हां, जिनको उस तक पहुंच की कुछ उम्मीद थी, उसका जरूर पक्ष लेते थे. बाहर ही बाहर से खुदातरसी और इनसानियत का दिखावा था, पर अंदर से खूब साजिशें बनायी जा रही थी. दो-चार दिन भी नहीं बीते थे कि दरवाजे पर पैगाम आने लगे. बड़ी बूढ़ी जो साथ रहती थी, सुनती-सुनती उकता गयी. बाहर निकलने से

भी कतराने लगी. फिर दो-चार नाइनें भी आने लगीं. मुहल्ले के बेशुमार बुजुर्गों और सफेदपोशों की वह तारीफें की और उसके धन-दौलत के वह-वह किस्से सुनाए कि अनवरी जरा भी नासमझ होती तो चिड़िया की तरह दाना देख कर फिर जाल में फंस जाती. पर वह भी बाजार में बैठने वाली तजुर्बाकार थी. सबको चुटकियों से उड़ा दिया और किसी ऐसे का इंतजार करने लगी जो उसके साथ-जीने-मरने वाला हो. दौलत-सुख तो वह सब कुछ देख चुकी थी, अब तो बस घर के लिए घर-वाले की जरूरत थी ताकि उंगलियां उठनी बंद हो जायें. यों किसी के घर बैठना होता तो उसे किस की कमी थी? मां की जिंदगी में ही अच्छे-अच्छे रईस ड्योढ़ी पर नाक रगड़ते थे और रगड़ते भी क्यों न, सूरत ही ऐसी थी. खुदा झूठ न बुलावाए, हजार-दो हजार में बैठी हुए भी फौरन पहचानी जाती थी. सफेद-सुर्खी माइल रंग था जैसे दूध में सिंदूर घुला हो. और चेहरा ऐसा कि जो देखे, देखता ही रह जाये. कटार जैसी नाक, कागजी-बादाम जैसी आंखें. पुतलियां ऐसी जैसे तातारी हरिण की कस्तूरी. और पलकें चिलमन की—शरम से झुकी हुई. इनसान क्या हूर या परी प्रतीत होती थी. उसे चाहने वालों की क्या कमी थी, मर्द क्या है, शक्ल देखी तो रीझ गया, पर वह अच्छी तरह जानती थी कि रंडी का घर-बार बनना बड़ा मुश्किल है. जो भी आएगा, भंवरे की तरह रस चूस कर उड़ जाएगा.

मुहल्ले वालों ने कुछ दिन तो सब्र किया और सोचा कि आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, आखिर कब तक इनकार करेगी. सीधी उंगलियों से घी निकले तो टेढ़ी का क्या लाभ. पर जब उनकी उम्मीदें टूटने लगीं तो वे अपनी आयी पर उतर आए और साजिशें करने लगे. किसी ने दो-चार हस्ताक्षर करवा कर एक दरख्वास्त चौकी वालों को दे दी कि शरीफों के मुहल्ले में बाजारी औरत का रहना गुनाह है इसलिए यहां से निकाला जाए. मुहल्ला-सुधार कमेटियां हरकत में आ गयीं. लोग दरवाजे पर आ-आ कर जोर-जोर से गालियां देने लगे. दो-चार औरतें पीछे लगा दीं कि उसे डरा-धमका देखें कि वह पसीजती है कि नहीं. पर वह खुदा की बंदी किसी तरह भी कब्जे में न आयी. फिर जब मुहल्ले के शरीफ बिलकुल ही मायूस हो गये तो बाकायदा मुहिम शुरू कर दी. गुंडों की मुटठी गर्म की और वह अपने आदमी भेज-भेज कर बार-बार सताने लगे.

मिरजा खामोश जरूर था पर सारे हालात से अवगत था. जब देखा कि पानी सिर से ऊंचा होता जा रहा है, मुहल्ले के शरीफ शराफत पर उतर आये हैं तो मिरजा भी ललकार कर मैदान में उतर आया. उसने भी थैली का मुंह खोल दिया और साफ-साफ कह दिया कि जिसकी मां ने ज्यादा दूध पिलाया है, वह मुकाबले पर आ जाये. दुश्मनी से मिरजा को जहां पैसे का धक्का लगा, वहां उसने अनवरी का दिल भी जीत लिया—और अगले ही दिन नौकरानी द्वारा बुला कर रातों-रात अनवरी ने मिरजा दूधवाले के साथ निकाह पढ़वा लिया.

निकाह होते ही सारा मुहल्ला कपड़ों से बाहर हो गया. अनवरी ने भी तो गजब ढाया था. अच्छे-भले रिश्ते छोड़ कर विवाह भी किया तो बूढ़े-बुड़ैल और टूटी खपरैल के साथ. सो महल्ले वाले भी अपनी आयी पर उतर आये. शैतान भी उन्हें बार-बार उकसा रहा था. शैतान को दंगा-फसाद ही पसंद है. आखिर उसने वह फितना उठाया कि मिरजा जैसा घाघ भी चारों खाने चित गिर पड़ा. पुलिस ने पहले तो दो-चार छापे मारे. फिर लगातार छापे मारे तो मजबूर हो कर मिरजा को अफीम का धंधा बंद करना पड़ा. यह काम बंद करते ही दुकान पर मक्खियां उड़ने लगीं. सच बात तो यह है कि दुकान की सारी रौनक अफीम से ही थी. जब यही न रही तो दूध भी क्या खाक बिकता! अंत में दुकान को ताला लगाना पड़ा. जो चार पैसे पास थे, बैठ कर खाये, पर यह कितनी देर तक संभव था. मिरजा शाह-खर्च आदमी था. कभी कुछ बचा कर तो रखा नहीं था. बस जो कहीं कुदरत से बचा-पाया था, उससे महीना-दो महीना गुजरे और फिर नौबत यहां तक पहुंची कि अनवरी की जायदाद भी बिकने लगी.

खाने-पीने के लिए तो किराया ही पर्याप्त था, पर मुकदमेबाजी करना तो हाथी बांधने के समान था. पैसों के कुएं-के कुएं खाली हो जाते हैं. दुश्मनी लेना कोई आसान थोड़ा है! मुहल्ले वालों ने एक दूसरे को गवाह बना कर इतने मुकदमे किये कि मिरजा की सारी उम्र खायी अफीम का नशा हिरन हो गया. अनवरी थी तो औरत, पर जिगर मर्दों वाला था. मिरजा को अपना बनाया तो क्या मजाल कि इस मुसीबत से जरा भी दूर हुई हो. डट कर मुकाबला करती रही और जायदाद यों नीलाम करती रही जैसे मिरजा लड़ाई-भिड़ाई से निपट कर फौरन दुबारा ले देगा. आदमी कितना ही दिल-गुरदे वाला हो पर एक से दो सदा बोझल होते हैं. मिरजा को महल्ले वालों ने मिल कर इतना सताया कि वह महल्ला छोड़ने पर मजबूर हो गया.

* *

मुहल्ला छोड़ने से उन्हें लड़ाई-झगड़े से सुख की सांस मिली, पर अब तक हालत इतनी हो चुकी थी कि रोटियों की फिक्र पड़ गयी. अनवरी की जायदाद दुश्मनों की भेंट हो गयी थी. मिरजा के पास तो था ही क्या? ढाक के तीन पत्ते. कोई हुनर होता तो भी कमा लेता. पर यह किसे पता था कि एक दिन दूध की दुकान छोड़ कर मिरजा मेहनत-मजदूरी भी करेगा? उसके हाथों में तो बस एक ही हुनर था कि अफीम की गोलियां बनाना और गोलियों को न्याज की शीरनी की तरह सौ-दो सौ आदमियों में बांट देना. इसी काम पर उसकी जिंदगी गुजर रही थी. अच्छी-खासी ऐश करता था. इस हुनर से गया तो दीन-दुनिया से भी गया.

फिर रोटियां भी पड़ीं भाड़ में, उसे तो दस-पंद्रह रुपये की अफीम रोज चाहिए थी. घर की मुर्गी दाल-बराबर थी. खूब अफीम खाता था. अब इतनी न खाता तो मक्खियां सारा दिन मुंह के गिर्द मंडरातीं और

रात को, अनवरी की चारपाई छोड़ कर किसी अलग चारपाई पर सोना पड़ता. मिरजा ने बहुत दिन यह नरक भोगना सहन किया, फिर जल्दी ही उकता गया और अफीम की तोट ने भी अपना रंग दिखाया और उसका बुढ़ापा भी दिखाई देने लगा. अच्छा-खासा शरीर सूख कर कांटा बन गया और मटके जैसा पेट सूख कर कचरी बन गया. फिर धीरे-धीरे तबीयत की रही-सही गैरत भी अफीम न मिलने के कारण जवाब देने लगी जो जरा पेट भरने से पैदा होती थी. वह कोई खानदानी आदमी तो था नहीं. मिरजा भी किसी दिलजले ने खिताब दिया था जो उसे इतना अच्छा लगा कि अपना असली नाम भी भूल बैठा. अनवरी की आग में छलांग लगाई थी तो सारी उम्र की ऐय्याशी के गुमान के कारण ही था.

यह मार्का सर हुआ तो जरा सोचने का अवसर मिला तो अपने आप को सौ-सौ गालियां देने लगा. जरा-सी बात के पीछे भरे-पुरे घर को आग लगा दी. डूबते को सहारा दिया तो स्वयं भी डूब गया. उम्र भर की साथिन अफीम छूटी, सड़क की कई रंडियां जो हर पल उसकी प्रतीक्षा में आंखें बिछाये दीखतीं थीं, छूट गयीं.

फिर अमीना बाई की याद आयी. हाय! किस तरह की औरत थी? अगर अनवरी से ज्यादा सुंदर नहीं तो बुरी भी नहीं थी. बेचारी अब सैदानी बी की ब्याज देती होगी तो खुदा जाने कौन खर्च झेलता होगा? बात की बात में मिरजा इस तरह पछताया, जिस तरह सांप छूंछदर खा कर पछताता है. पर सब कुछ स्वयं ही किया था इसलिए पछताने से क्या हासिल था. बैठे-बिठाए अपना रुपया-पैसा ही नहीं खोया, बल्कि मिरजा को रोग भी लग गया था.

धीरे-धीरे अनवरी के साथ भी संबंध बिगड़ने लगा. अफीम थोड़ी मिलने के कारण तबीयत तो चिड़चिड़ी रहती ही थी, बात-बात पर झगड़े भी करने लगा. गाली-गलौज बिना बात ही नहीं करता था. कई बार तो अनवरी के फूल जैसे जिस्म पर डंडे भी बरसाए जाते, पर वह बड़ी नेक औरत थी. सब कुछ सहन करती रही और उफ न की. स्वयं दो-दो दिन भूखी पड़ी रहती पर मिरजा को अच्छा-खासा खिलाती.

मिरजा अनवरी से बददिल हुआ तो फिर अमीना के कोठे की याद आ गयी. एक दिन धीरे-धीरे सड़क की ओर चल पड़ा. रास्ते में खयाल भी आया कि जाने क्या फायदा है, न पैसा है, न धेला, मुफ्त में बेइज्जती होगी. पर पुरानी दोस्ती पर भरोसा कर के और अल्लाह का नाम ले कर कोठे पर चढ़ गया. अमीना ने मिरजा को अच्छा-भला देखा था, अब जो उस पर नजर पड़ी तो पहचान भी न सकी.

फिर जब मिरजा ने अपनी रामकहानी सुनाई तो आंखें मटका कर कुछ-कुछ वाकफी का इशारा भरा. और जब अनवरी का नाम आया तो पता नहीं क्या सोच कर मिरजा को घर बुलाने लगी.

उस दिन से मिरजा हफ्ते में एक-दो बार, घड़ी-दो घड़ी अमीना के पास जाने लगा. अमीना आवभगत भी करती और चलते समय पांच-दस रुपये भी अफीम के लिए हाथ पर रख देती. अनवरी को यों तो कोई एतराज नहीं था, मर्द जात घर की स्त्री के बिना भी बाहर दो-चार पीछे लगाए ही रखते हैं, पर इतना जरूर सोचती थी कि कहीं बना-बनाया घर बिगड़ ही न जाये. मिरजा पहले ही गरीबी से परेशान था. मिजाज भी बिगड़ा रहता था, उसके खिलाफ भड़का दिया तो गजब हो जायगा. उसका तो इसके बिना दूसरा कोई घर भी नहीं था.

और फिर अनवरी का यह डर भी सच्चा ही निकला. अमीना ने पहले तो मिरजा को मिला कर हाथों में कर लिया. फिर एक दिन उसके कान में ऐसी फूंक मारी कि मिरजा भड़क उठा. देर तक कानों में सायं-सायं होती रही. पर जब ठंडे दिल से सोचा तो अमीना की बात उसकी समझ में आ गयी.

सारी झूठी आन-बान जो थी सो वह भी मिनटों के तरारे के बाद खत्म हो गयी. आखिर उसने सोच ही लिया कि अमीना के साथ अनवरी को दुबारा कोठे पर बिठा देगा. वह घर लौटता तो देर तक अनवरी के साथ उलझा रहता. खूब तकरार होती और मिरजा छोड़ देने की धमकियां देने लगता या बातों ही बातों में अमीना की सलाह उसके कानों में से निकालता रहता.

अनवरी न मार-पिटाई से घबराई थी, न गाली-गिलौज से, पर जो जिंदगी उसने छोड़ दी थी, उसकी ओर भूल कर भी नहीं जाना चाहती थी. जान जाये तो जाये, पर अनवरी अब फिर अनवरी बाई नहीं कहलाना चाहती थी और न ही चाहती थी कि बाजार में बैठ कर अपना थूका हुआ चाटना पड़े.

उधर मिरजा को अमीना बाई रोज बहकाती और सब्जबाग दिखाती थी. मिरजा स्वयं भी लालच का मारा हुआ था. इस पर उसने अनवरी के साथ अब खूब ज्यादतियां शुरू कर दीं. एक दिन पहले खूब मारा-पीटा और फिर चोटी पकड़ कर घर से निकालने पर तुल गया.

—लुच्ची, इसी जगह सती-सावित्री बनती है! अनवरी अब तक सब कुछ सह गयी थी, पर यह गाली उसके दिल में चुभ गयी. अगले दिन उसने मिरजा की जेब में से अफीम का बड़ा-सा गोला निकाला और कड़वे तेल के साथ खा गयी.

अनवरी तो उसी दिन कब्र में जा सोयी, पर भलामानस मिरजा मुद्दत तक सड़क पर अमीना के साथ सोने वालों का प्रबंध करता रहा.

(अनुवाद : सुरजीत) □□□

भाई

• हबीब कैफ़ी

कहीं जाने का प्रोग्राम है? मैंने भाभी को मुखातिब किया. वह शृंगार किये हुए थीं.

—नहीं तो. . . क्यों?

—तो फिर यह आज. . .? मैंने उनके नये-से कपड़ों की ओर इशारा किया.

—भई! तुम क्यों छेड़ते हो हमें? शर्माती हुई वह रसोई की तरफ निकल गयीं.

मैंने अंदाजा किया: मेरा अनुमान सही निकला. अनीस आये थे. रसोई से त्यौहार आदि पर बनाये जाने वाले पकवानों की महक आ रही थी. अम्मा भी वहीं थीं.

भाई से मिलने की इच्छा हुई. मैं दरअसल उन्हें बड़प्पन से कुछ कहने का इरादा रखता था—यह एक महीने में दो-दो चक्कर तुम्हें शोभा नहीं देते. अब तुम कोई नये-नये तो हो नहीं! नौकरी अलबत्ता नयी जरूर है. उसीका ध्यान करो. फिर भी अगर जी न भरे तो भाभी को साथ ले जाना. खाने वगैरह की तकलीफ भी रफा हो जायेगी!. . .

भाई से मैं यह सब कह देने की स्थिति में था. इस की वजह थी. हम में रिश्ता कम और दोस्ती ज्यादा थी. वैसे भी हमारी उम्र में कोई लंबा-चौड़ा फर्क भी नहीं था. वह मुझसे महज ढाई बरस बड़े थे.

उमरें दखल अंदाजी नहीं करतीं, हालात कर जाते हैं. इसीलिए तो यही बड़े भाई पिछले दिनों हीन भावना से ग्रस्त स्वयं को मुझसे छोटा समझने लगे थे. लगातार बेरोजगारी ने उन्हें हर कहीं छोटा कर के रख दिया था. और इसके साथ भाभी का महत्व भी कम होता चला गया था. बल्कि हकीकत यह थी कि शुरू से ही भाभी का महत्व हमारे घर में कुछ विशेष नहीं रहा था. वह जो अब्बा और अम्मी ने शादी से पहले भाभी के घर वालों से एक खास उम्मीद लगा रखी थी, पूरी न हो सकी. भाभी अपने साथ विशेष कुछ नहीं लायी थीं.

मायूसी के आलम में अब्बा ने भाई को उनकी हैसियत का अहसास दिलाना शुरू कर दिया था.

—बेहतर तो यही था कि तुम यह डिपलोमा की तखती न लगाते! अब्बा सबकी मौजूदगी में बिना कुछ सोचे-समझे भाई को संबोधित कर जाते—अमां! गलती हमारी ही थी. अब तुम हमारा धंधा भी तो नहीं कर सकते!

—मैंने कब मना किया है? भाई सफाई देते.

—मना करने का क्या मतलब? जूतियां गांठोगे? मोची बनोगे?. . . इस नफीस को देखो! अब्बा मेरी ओर इशारा करते, कब से बेचारा नौकरी कर रहा है! हमारे काम में भी हाथ बंटाता है. एक तुम हो! इसके बाद वह जैसे स्वयं से कहने लगते—पर इसमें तुम्हारा भी कोई कसूर नहीं. डाक्टर और इंजीनियर तक भी तो बेरोजगार फिर रहे हैं!. . .

और अनीस सबकी मौजूदगी के अहसास के मारे

● सिद्धार्थ पटेल

● सूरज एन. शर्मा

शर्मिंदा-से अपनी जगह खड़े शायद इसकी प्रतीक्षा करते कि जमीन फट जाये और अपनी बीवी के साथ वह उसमें गड़ जायें.

मुझे यकीन था कि भाई जूतियां गांठने में भी नहीं हिचकते, पर अब्बा का कोई ठीक नहीं था. वह अगर हमारा पुश्तैनी धंधा करने लग भी जाते तो अब्बा को इससे हर्गिज तसल्ली नहीं होती. तब भी वह उनके काम में बिलावजह कोई-न-कोई खामी निकाल कर डांटने-फटकारने लग जाते शायद.

ऐसे में अनीस को मैं ही हौसला बंधाने की कोशिश करता. उन्हें मैं अपने साथ ले कर बाहर निकल पड़ता.

—अनीस! फिल्म देखने चलते हैं. बड़ी जोरदार फिल्म लगी है.

—क्यों बोर करता है, यार? ला, सिगरेट पिला. सुबह से एक भी नहीं पी है.

हम धुआं उड़ाने लगते. मौका पा कर मैं उन्हें फिर किसी तफरीह वाली जगह चलने के लिए कहता तो वह बिगड़ जाते— अमां! जानता हूं, तू मेरा बड़ा हमदर्द है. पर मुझ पर तरस खाने की जरूरत नहीं.

— फिल्म देखने में तरस खाने जैसी बात कहां है? अलबत्ता तुम्हें अगर रुपए वगैरह दूं तो फिर भी...

—तो सुन, फिल्म में कम-से-कम पांच रुपये तो सर्फ होंगे ही; तू एक काम कर, यह पांच रुपए मुझे दे दे. मैं तुझे फिर किसी दिन फिल्म दिखला दूंगा.

—क्या करोगे इन रुपयों का?. . .कोई फर्माइशी चीज खरीदनी है? रुपए उनके हवाले करने के बाद मैं पूछता.

—तू अभी बच्चा है! वह हंसते.

अनीस का हाथ उन दिनों बहुत तंग था. बेहद छोटी-छोटी जरूरतें भी पूरी न कर पाते थे. अब्बा से जेबखर्च का सवाल ही नहीं था. अम्मा मजबूर थीं. मिलने वाले उनसे बहुत पहले ही कन्नी काट चुके थे. ऐसे में जब-तब वह मेरी तरफ ही देखते थे.

—तुम गलती कर रहे हो.

मैं भाई की तरफ सवालिया निगाहों से देखता तो वह स्पष्ट करते—मैं सिगरेट पीता जरूर हूं, पर इस कदर नहीं. यह पैकिट मेरे पास ही क्यों रहने दिया? तुम नहीं पिओगे?

—रखो. मुझे तो अब सोना ही है.

और अर्थपूर्ण मुसकान के साथ हम विदा हो लेते.

★ ★

और वह दिन. भाई को नियुक्ति पत्र मिल गया. ओवरसियर का पद. डिपलोमा काम आयी.

—परदेस का मामला है. जरा अपना ध्यान रखियो. . . ये कुछ रुपए हैं.

फासले से मैं अब्बा को देखने लगा था. यह वही अब्बा थे, जिन्होंने अनीस का जेबखर्च बंद कर रखा था. यही नहीं बल्कि अकसर उनके आगे तंगदस्ती का रोना रोते रहते थे. और भाई की बेरोजगारी से तंग आ कर जब-तब उन्हें कोसते-झिड़कते रहते थे. उस वक्त मेरी सख्त इच्छा हुई थी कि नजदीक जा कर उन्हें गौर से देखूं यह हमारे वही अब्बा हैं अथवा कोई दूसरा शख्स है?

घर में जैसे खुशी की लहर दौड़ गयी थी. अब्बा ने

मुफ्त

एक HES पापुलर एलार्म क्लाक

प्रत्येक

रीटा

सिलाई मशीन के साथ

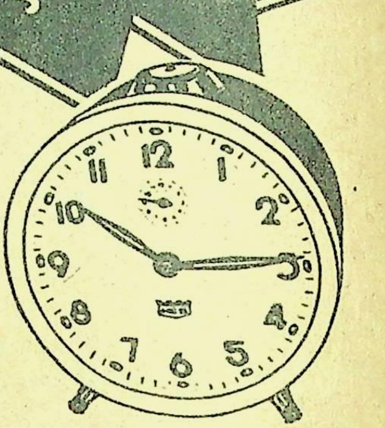

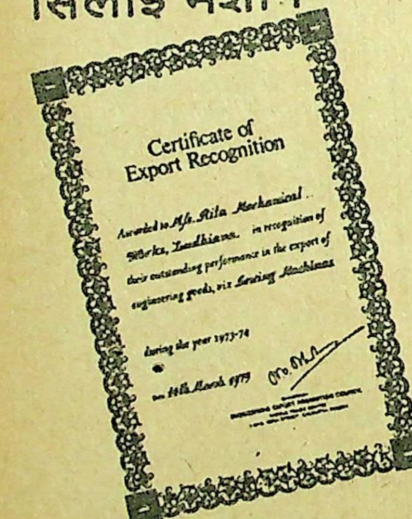

Certificate of
Export Recognition

Awarded to M/s. Rita Mechanical Works, Ludhiana in recognition of their outstanding performance in the export of engineering goods, viz Sewing Machines

during the year 1973-74

on 14th March 1975

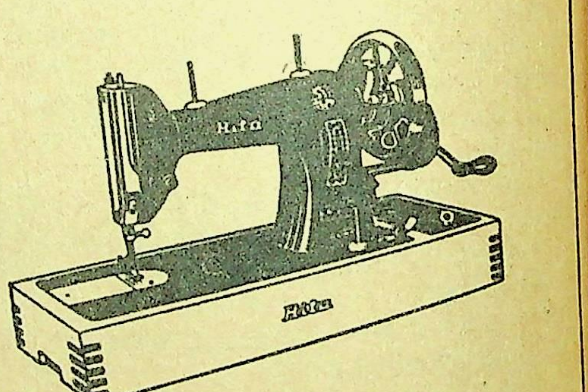

यह उपहार स्टाक उपलब्ध होने तक है।
आज ही 'रीटा' खरीदिये !

रीटा

रीटा मेकेनिकल वर्क्स, लुधियाना

adEnvoys-R-758

ख़ुदा का शुक्र अदा किया. अम्मी ने शुकराने की नमाज पढ़ कर शीरीनी बांटी. भाभी ने अलग से मिठाई का इंतजाम किया. और भाई को जैसे फिर से इज्जत के साथ जीने का हौसला मिल गया था.

अनीस को उसी दिन अपने ड्यूटी वाले मुकाम पर जाना था. सबने उन्हें ख़ुशी-ख़ुशी विदा किया.

* *

अम्मा कुबरा को डांट रही थीं. मेरे कान खड़े हुए. पता चला कि बहन से वह कपड़े धो डालने के लिए कह रही थीं और वह इसमें आना-कानी कर रही थी.

—इसकी पढ़ाई में दखल पड़ेगा. मैंने मां से कहा—भाभी धो देंगी.

—आज यह धो देगी तो कौन इसके हाथ घिस जायेंगे? पढ़-लिख कर हाकिम बनना है इसे? पराये घर जायेगी, वहां ऐसा कहेगी तो कैसे चलेगा?

—छोड़ो भी... मैं भाभी से कहे देता हूं.

—उसके सिर में दर्द है. और तेरे अब्बा का मिजाज तो तू जानता ही है... कल जुमा है.

अब्बा के मैले कपड़ों का उस दिन क्या बना, इसका मुझे इल्म नहीं; पर भाभी के सिरदर्द का पता मुझे अपने तईं जरूर लग गया था. यह वही भाभी थीं, जो हरारत की हालत में भी घर के छोटे-बड़े किसी भी फर्द के काम से मुंह नहीं मोड़ती थीं. बल्कि सबकी हाजरी बजा लाने के बावजूद भी वह सहमी-सहमी रहतीं कि उनके काम में कोई मीन-मेख न निकाल दे!

* *

नवें दिन ही अनीस लौट आये. उन्होंने वहां अपना काम संभाल लिया था. वह अपने कपड़े और रोजमर्रा के इस्तेमाल का दूसरा जरूरी सामान लेने की गरज से आये थे. वह हालांकि एक दिन, बल्कि रातभर ही टिके थे. अगली सुबह वह वापस चले गये थे. और इस दौरान मैंने महसूस किया था कि अब्बा-अम्मा अब अनीस को मुझसे कमतर या गया गुजरा कतई नहीं समझ रहे हैं. उन्होंने वास्तव में भाई को अपना लायक बड़ा बेटा मानना शुरू कर दिया था. भाई के आराम वगैरह का खास खयाल रखा गया था. उस शाम खासतौर से भाई के पसंद के खाने बने थे.

अनीस अपने ड्यूटी वाले मुकाम से घर के हर सदस्य के लिए कोई-न-कोई चीज जरूर लाये थे. मुझे उन्होंने एक बढ़िया सिगरेट केस दिया.

अनीस के मिजाज में मैंने एक खास किस्म की तब्दीली महसूस की थी. उनमें एक आत्मविश्वास और जिंदगी को जीने का हौसला आ चला था. उनके वजूद पर अब मायूसी और नाकामी का साया कतई नहीं था.

मिलने पर भाई मुझसे उसी अपनत्व और बेतकल्लुफी से मिले थे. पर फिर भी मुझे लगा था कि वह कहीं मुझे अपने से छोटा और कमतर समझने लगे हैं. इस तब्दीली का मैंने नोटिस नहीं लिया. हर्ज ही क्या है? अपने तौर पर मैंने सोचा था, अनीस बड़े हैं; वह ऐसा समझते हैं तो स्वाभाविक ही है. मैं वास्तव में एक जूनियर क्लर्क ही तो हूं. वह ठहरे ओवरसियर...

अनीस से उस दिन मिलना नहीं हो सका. रात वह बड़ी देर से लौटे थे. अगली सुबह भी मुझीको उन्हें ढूंढ़ना पड़ा. वह अपने कमरे में थे. भाभी रसोई में थीं.

—यह क्या बेमुरव्वती है? भाई के कमरे में दाखिल होते हुए मैंने कहा—हम मुलाकात से भी गये!

उनके हाथ में कोई किताब थी. मुझे देख कर वह मुसकराये.

—तुम्हें शिकायत का हक है! किताब एक ओर रख कर हंसते हुए वह बोले—भई, सॉरी! मैं दरअसल... अच्छा छोड़ो. आज दिन में क्या-क्या प्रोग्राम हैं तुम्हारे?

—क्या मतलब? दफ्तर जायेंगे. और तुम?

—हम लौट कर आज नहीं जायेंगे. आज हम फ्री हैं और चाहते हैं कि तुम भी फ्री हो जाओ. दफ्तर से छुट्टी ले लो और हमारे साथ रहो.

देर तक हम शहर की परिचित सड़कों को अपने पैरों तले रौंदते रहे. थकने पर रेस्तरां में बैठ कर कॉफी की चुस्कियों के बीच ख़ुशगप्पियां करने लगे. वह जो भाई के मिजाज में अपने प्रति मैंने एक तब्दीली महसूस की थी, इस दौरान खत्म होती लगी. बाद में हमने मद्रास में बनी एक हिंदी फिल्म का मैटिनी शो देख डाला. अनीस आनन-फानन पैसा खर्च कर रहे थे.

पिक्चर के बाद घर का रुख करना था, पर भाई ने उस शाम पीने का प्रस्ताव कर दिया. पीने के हम आदी नहीं थे. साल-छह महीने में अलबत्ता कभी किसी पार्टी आदि में एकआध पेग लेने में बुराई नहीं मानते थे.

पीने में शाम बीत गयी. इसके बाद हमने घर का रुख किया. हम पूरी तरह होश में थे. भाई के साथ चलते हुए मुझे लगा कि वह ख़ुशमिजाज हो चले हैं. वह चहके-चहके और प्रसन्न लग रहे थे. इससे मुझे ख़ुशी हुई.

—नफीस, भाई ने मेरे कंधे पर हाथ रखा. घर नजदीक आ गया था. मैंने उनकी तरफ देखा.

—तुम्हें कैसा लग रहा है? उन्होंने पूछा.

—तुम्हारे साथ?... बहुत अच्छा लग रहा है! बोरियत का अहसास तक नहीं होता. जी करता है कि वहां तुम्हारे ड्यूटी वाले मुकाम चला चलूं. आबोहवा भी तब्दील हो जायेगी.

—सच? तो फिर एक काम कर, उन्होंने मेरी तरफ देखे बगैर कहा—फिलहाल कल तू अकेला ही वहां चला जा. मैं जहां रहता हूं, वहां का पता तुझे दे देता हूं; जा कर सब सामान ले आ.

मैंने सवालिया निगाहों से अनीस की तरफ देखा. वही चिरपरिचित चेहरा था. वही वजूद. जानने के लिए विशेष कुछ भी नहीं रह गया था. फिर भी भाई ने दो शब्दों में मुझे बता डाला कि उनकी छंटनी कर दी गयी है. वहां वह कुछ लोगों के देनदार भी थे.

घर आ गया. घर में दाखिल होते वक्त मैंने अनीस की तरफ नहीं देखा. दरअसल मुझमें इतना साहस ही नहीं था. हम दोनों बेहद चुप थे. □□□

आयशा मंजिल क्वार्टर नं. ३.
हनुमान भाखरी के पीछे, जोधपुर—१९

ारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाएं और आद्यकथाकार

(६)

किसी भी भाषा की पहली कहानी की खोज अपने आप में एक महत्वपूर्ण और रोचक कार्य है. इस महत्वपूर्ण खोज के लिए 'सारिका' ही पहल कर रही है. पूर्व के अंकों में मलयालम, गुजराती, बंगला, तेलुगु, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी और उड़िया की प्रथम मौलिक कहानियां आप पढ़ चुके हैं. इस अंक में दी जा रही है पंजाबी की प्रथम उपलब्ध मौलिक कहानी 'भत्ता'. यद्यपि 'भत्ता' से पहले 'कमला-अकाली' शीर्षक कहानी के लिखे जाने की बात भी कही गयी है किंतु न तो वह किसी संकलन में छपी और न ही कहीं उसकी कहानी के रूप में चर्चा ही हुई. जब यह क्रम समाप्त होगा तब आप स्वयं ही निर्णय ले सकेंगे—एक; कि भारतीय भाषाओं में से पहली आधुनिक कहानी किस भाषा के पास है और दो; कि क्या कहानियां सचमुच पश्चिम से आयी थीं?

प्रथम मौलिक पंजाबी कहानी

भत्ता: एक विवेचन

• जसवंत सिंह विरही

आज की पंजाबी कहानी किसी भी भारतीय भाषा की कहानी की तुलना में रखी जा सकती है. बल्कि पंजाबी कहानी देश-काल की सीमाओं को पार कर के विश्व साहित्य में भी अपना स्थान बना रही है. विश्व कहानियों के पश्चिम जर्मनी से छपनेवाले एक संकलन में श्री सुजान सिंह की कहानी सम्मिलित है. इसी प्रकार एक और संकलन में श्री कर्तार सिंह दुग्गल और अमृता प्रीतम की कहानियां भी शामिल हैं. रूसी भाषा में तो अनेक लेखकों की कहानियां छप चुकी हैं.

पंजाबी कहानी ने यह प्रगति शताब्दियों के वक्फे में नहीं की, बल्कि आधी शताब्दी में ही पंजाबी कहानी को यह गौरव प्राप्त हो गया है.

इस समस्या को लेकर पंजाबी साहित्य क्षेत्र में बहुत चर्चा होती रही है कि पंजाबी की प्रथम कहानी कौन-सी है? और क्या यह पश्चिम के प्रभाव द्वारा शुरू हुई है अथवा इसके तत्व पहले ही बीजरूप में उपस्थित थे?

पंजाबी गल्प साहित्य में 'आदि जन्मसाखी' को पर्याप्त मान्यता प्राप्त है, परंतु यह जन्म साखी कई शताब्दियों पूर्व लिखी गयी थी और इस में आधुनिक कथा अथवा कहानी वाली कोई बात नहीं है. स्वर्गीय ज्ञानी हीरासिंह दर्द ने पंजाबी सघरा (१९४०) कहानी संग्रह में लिखा है—'पंजाबी में प्रथम मौलिक छोटी कहानी जो मैंने पढ़ी है, जहां तक मुझे स्मरण हो आता है, वह 'कमला अकाली' नाम की कहानी थी जो स. लाल सिंहजी कमला, अकालीजी ने लिखी थी और शायद १९२१ में 'अकाली' समाचार पत्र में छपी थी. यह कहानी धार्मिक थी.

'कमला अकाली' नाम की कहानी अब तक किसी संकलन में नहीं छपी और न ही पंजाबी की प्रथम कहानी के रूप में उसकी चर्चा ही हुई है. ज्ञानी हीरासिंह दर्दजी ने सन् १९२४ से लेकर १९४० तक अपने मासिक पत्र 'फुलवाड़ी' में सम्भवतः तीस कहानियां प्रकाशित की थीं और जो कहानी संकलन उन्होंने संपादित किया, उसमें भी उन्होंने इस कहानी को सम्मिलित नहीं किया.

डा. सविंदर सिंह उप्पल अपनी पुस्तक 'पंजाबी कहानीकार' में स. चरणसिंह शहीद के बारे में लिखते हैं—'पंजाबी का वह प्रथम कहानीकार है जिसने सुचारु रूप से पंजाबी छोटी कहानी को पश्चिम और विशेषतः अंग्रेजी कहानी के मार्ग पर चलाया और अपनी कहानियों के लिए आदर्श अंग्रेजी कहानी को बनाया.'

मगर स. चरनसिंह कहानी के क्षेत्र में मौलिक लेखक नहीं थे, एंतव चेखव की प्रसिद्ध कहानी—'गिरगिट' उनके नाम से पंजाबी में छपी हुई है. शेष सामग्री भी उन्होंने इधर-उधर से ही प्राप्त की थी. इसी तरह भाई मोहनसिंह वैद्य और श्री बलवंत सिंह प्रचचतर्थ जैसे कुछ और लेखकों ने भी धार्मिक और

पंजाबी आद्यकथाकार : संतसिह सेखों

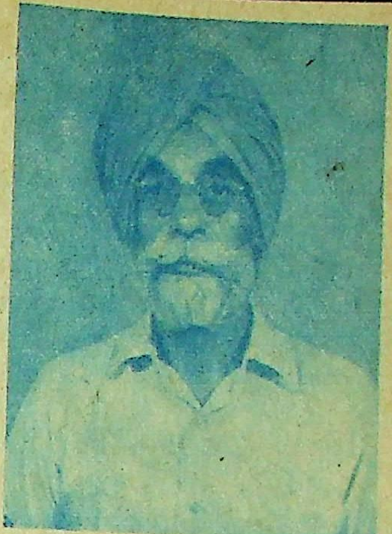

सेखों का जन्म चक न. ७० जिला लायलपुर (अब पाकिस्तान) में श्री हुकम सिह के घर हुआ. लायलपुर में इनके पिता खेती का काम करते थे, इन्होंने खालसा कालेज, अमृतसर से अर्थशास्त्र और अंग्रेजी भाषा में एम. ए. किया और सन् १९३१ में उसी कालेज में प्राध्यापक नियुक्त हो गए. १९३६ में कालेज में हड़ताल होने की वजह से नौकरी छोड़नी पड़ी और नौकरी से विमुक्त होकर लाहौर से 'नार्दर्न रिव्यू' नामक पत्रिका निकाल ली. १९४० में फिर खालसा कालेज, अमृतसर की प्राध्यापकी की और नौकरी स्वीकार कर ली. सन् ४३ में ठेकेदारी के पेशे का प्रयोग किया जो कि असफल रहा और घाटे का सौदा सिद्ध हुआ. १९४८ में फिर खालसा कालेज, अमृतसर की नौकरी की. फिर १९५२ के चुनाव में मार्क्सवादी पार्टी की ओर से खड़े हुए परंतु पैसे की कमी के कारण जीत न सके. तत्पश्चात कुछ समय तक गुरू सर सुधार के कालेज में प्राध्यापक रहने के बाद, पहले वह माता गुजरी कालेज, सरहिन्द के प्रिंसीपल (१९६१) बने, फिर खालसा कालेज पटियाला के प्रिंसीपल और फिर कुछ समय के लिए गुरु गोबिंद सिह रिपब्लिक कालेज, जंडियाला, (जालंधर) के प्रिंसीपल रहे. उनका विचार है कि वह अपने कालेज को ही एक विश्वविद्यालय और स्वयं को उपकुलपति समझते रहे हैं. यदि वह मार्क्सवादी न होते, तो अवश्य ही किसी विश्वविद्यालय के उपकुलपति बन चुके होते!

आजकल संतसिह सेखों अपने गांव दाखा (जिला लुधियाना) में फार्मिग करते हैं और साथ में पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के लिए अर्थशास्त्र-पंजाबी शब्दकोष तैयार करवा रहे हैं.

संत सिंह सेखों सर्वप्रथम अंग्रेजी में कविता और कहानी लिखते थे. उनकी कुछ कविताएं इंग्लैंड की पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई हैं.

श्री सेखों पंजाबी के प्रमुख कहानी लेखक, कवि, नाटककार, उपन्यासकार, निबंध लेखक और आलोचक हैं. उन्होंने ही पंजाबी आलोचना को मार्क्सवादी दिशा दी है. लेनिन के जीवन पर उन्होंने जो नाटक लिखा—'मित्र प्यारा', उस पर उन्हें साहित्य अकादमी का ५००० का पुरस्कार प्रदान किया गया.

संतसिंह सेखों के पक्ष और विरोध में जितना कुछ लिखा गया है, और किसी लेखक के बारे में, उसके जीवन काल में, इतना कुछ नहीं लिखा गया.

संतसिह सेखों सागर की तरह विशाल हैं, जो अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता.

लत्त विषयों पर कथाएं लिखीं, जो कि मौलिक कहानियां नहीं थीं. इन कथाओं का शिल्प भी नवीन नहीं था और शैली भी नहीं!

१९२० से १९३५ तक का समय पंजाबी गल्प के लिए विशेष संभावनाओं का समय था. इस काल में श्री गुरुबख्श सिंह, ज्ञानी हीरासिह दर्द, जोशुआ फजलदीन, गुरुमुख सिह मुसाफिर, चरनसिह शहीद तथा नानक सिंह ने गल्प के क्षेत्र में कुछ नये प्रयोग किये परंतु पंजाबी की कलात्मक और मौलिक कहानी का जन्म १९३५ में ही हुआ जबकि सर्व श्री संतसिह सेखों, सुजान सिंह, मोहन सिंह और कर्त्तारसिंह दुग्गल ने लिखना शुरू किया. इनमें से संत सिंह सेखों प्रथम कहानी लेखक है, जिसने अंग्रेजी में लिखना छोड़ कर पंजाबी में कलम सम्भाली और उसने प्रथम कहानी 'भत्ता' लिखी. इस संबंध में सेखों के प्रथम कहानी संग्रह 'समाचार' (१९४३) की भूमिका में श्री सोहन सिंह जोश लिखते हैं—'संत सिंह सेखों ने सबसे प्रथम मेरे कहने पर पंजाबी में पत्रिका 'प्रभात' के लिए लिखना शुरू किया था और 'प्रभात' में प्रो. साहिब की प्रथम दो कहानियां 'भत्ता' और 'कीटां अंदर कीट' फरवरी तथा मार्च १९३६ के अंकों में प्रकाशित हुई थीं. 'भत्ता' की उस समय विशेष प्रशंसा हुई थी, और आज भी मेरी राय में विश्व साहित्य संसार में यह एक बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त कर सकती है!'

स्वयं संत सिंह सेखों नें भी पुस्तक—'झूठियां सच्चियां' की भूमिका में लिखा है—१९३५-३६ में एक लूटमार परंतु स्वस्थ लड़की की भांति पंजाबी कहानी का यौवन एक दम प्रस्फुटित हो गया, 'प्रभात',

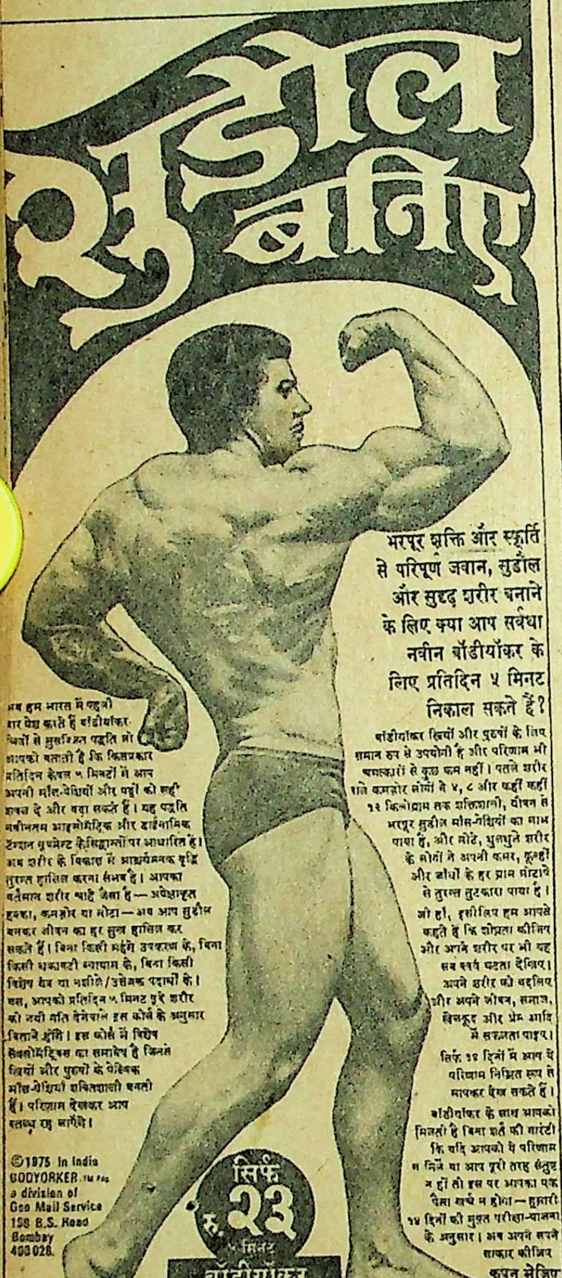

सुडौल बनिए

भरपूर शक्ति और स्फूर्ति से परिपूर्ण जवान, सुडौल और सुदृढ़ शरीर बनाने के लिए क्या आप सर्वथा नवीन बॉडीयॉकर के लिए प्रतिदिन ५ मिनट निकाल सकते हैं?

अब हम भारत में पहली बार पेश करते हैं बॉडीयॉकर-विदों से सुपरीक्षित पद्धति जो आपको बताती है कि किसप्रकार प्रतिदिन केवल ५ मिनटों में आप अपनी मांस-पेशियों और पट्ठों को सही शक्ल दे और बढ़ा सकते हैं। यह पद्धति नवीनतम आइसोमेट्रिक और डाइनामिक टेन्शन मूवमेन्ट के सिद्धान्तों पर आधारित है। अब शरीर के विकास में आश्चर्यजनक वृद्धि तुरन्त हासिल करना संभव है। आपका वर्तमान शरीर चाहे जैसा है — अपेक्षाकृत हल्का, कमज़ोर या मोटा — अब आप सुडौल बनकर जीवन का हर सुख हासिल कर सकते हैं। बिना किसी मंहगे उपकरण के, बिना किसी थकावटी व्यायाम के, बिना किसी विशेष दवा या भोजन/उत्तेजक पदार्थों के। बस, आपको प्रतिदिन ५ मिनट पूरे शरीर को नयी शक्ति देनेवाले इस कोर्स के अनुसार बिताने होंगे। इस कोर्स में विशेष आइसोमेट्रिक्स का समावेश है जिनसे स्त्रियों और पुरुषों के वैयक्तिक मांस-पेशियां शक्तिशाली बनती हैं। परिणाम देखकर आप स्तब्ध रह जाएंगे।

बॉडीयॉकर स्त्रियों और पुरुषों के लिए समान रूप से उपयोगी है और परिणाम भी चमत्कारों से कुछ कम नहीं। पतले शरीर वाले कमज़ोर लोगों ने ५, ८ और कहीं कहीं १२ किलोग्राम तक शक्तिशाली, यौवन से भरपूर सुडौल मांस-पेशियों का लाभ पाया है, और मोटे, थुलथुले शरीर के लोगों ने अपनी कमर, कूल्हों और जांघों के हर ग्राम मोटापे से तुरन्त छुटकारा पाया है।

जी हाँ, इसीलिए हम आपसे कहते हैं कि शीघ्रता कीजिए और अपने शरीर पर भी यह सब स्वयं घटता देखिए। अपने शरीर को बदलिए और अपने जीवन, समाज, खेलकूद और प्रेम आदि में सफलता पाइए।

सिर्फ़ १४ दिनों में आप ये परिणाम निश्चित रूप से मापकर देख सकते हैं।

बॉडीयॉकर के साथ आपको मिलती है बिना शर्त की गारंटी कि यदि आपको ये परिणाम न मिलें या आप पूरी तरह संतुष्ट न हों तो इस पर आपका एक पैसा खर्च न होगा — हमारी १४ दिनों की मुफ्त परीक्षा-योजना के अनुसार। अब अपने सपने साकार कीजिए कूपन भेजिए

©1975 In India
BODYORKER
a division of
Geo Mail Service
198 B.S. Road
Bombay
400028.

सिर्फ़
रु. २३
५ मिनट
बॉडीयॉकर

१४ दिनों की मुफ्त परीक्षा-कूपन

बॉडीयॉकर सर्विस विभाग V— १९८, बी. एस. रोड, बम्बई ४०० ०२८. SI:

“कृपया मुझे पूरा बॉडीयॉकर कोर्स वी. पी. पी. से १४ दिनों की मुफ्त परीक्षा के लिए भेज दें। मैं डाकिए को डिलिवरी पर २३ रुपए (और ६ रुपए ५० पैसे पैकिंग और डाक खर्च के) दे दूंगा। परीक्षा में पूरी तरह से संतोष न होने पर मुझे हर चीज़ लौटा कर पूरे पैसे तुरन्त वापिस मिलने का आश्वासन है।”

हस्ताक्षर: ……………………
नाम: ……………………
पता: ……………………
(कृपया अपना पता अंग्रेज़ी में लिखिए)

सुडौल शरीर पाइए या एक भी पैसा मत दीजिए

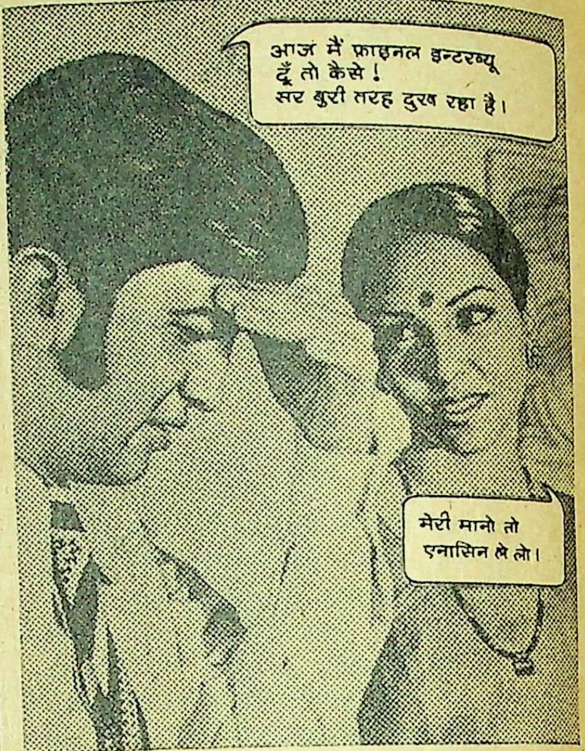
आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे! सर बुरी तरह दुख रहा है।
मेरी मानो तो एनासिन ले लो।

जल्द आराम पाने के लिए
तेज़ असर
और विश्वसनीय
एनासिन लीजिए

तेज़ असर—एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जिस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। इसी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

विश्वसनीय—एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह दवाओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन पर लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

एनासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और फ़्लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन,
भारत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा

A/2/8-74
Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

'लिखारी' और 'पंज दरिया' ने पंजाबी में नई कहानी को क्षेत्र प्रदान किया. सुजान सिंह, कर्त्तारसिंह दुग्गल, मोहन सिंह और संत सिंह सेखों—के कहानियों के संकलन-'दुख सुख (१९३९) 'सवेर सार' (१९४०), 'निकी निकी वाशना' (१९४२) और 'समाचार' (१९४३) प्रकाशित होने से पंजाबी कहानी भारत की अन्य भाषाओं की कहानी की पंक्ति में खड़ी हो गयी.'

मेरे विचार में सन् १९२० से लेकर १९३५ तक पंजाबी पत्र-पत्रिकाओं में जिस गल्प रूप के प्रयोग हो रहे थे, उन्होंने १९३० के बाद अपना गल्प-स्वरूप निश्चित करना शुरू कर दिया होगा. फलस्वरूप, संतसिंह सेखों की कहानी 'भत्ता' पंजाबी की प्रथम मौलिक कहानी है, जिस द्वारा पंजाबी में कहानी के विलक्षण अस्तित्व की परंपरा शुरू होती है. उपरिलिखित लेखकों और उनके बाद के लेखकों ने विशेष रूप से पश्चिम की कहानी से प्रभाव ग्रहण किया है. इन लेखकों के बारे में तो संत सिंह सेखों ने 'झूठियां-सच्चियां' की भूमिका में भी लिखा है कि—'संत सिंह सेखों, प्रो. मोहन सिंह, कर्त्तारसिंह दुग्गल और सुजान सिंह कहानी-संसार में कैथरीन मैनजफील्ड के संप्रदाय के अनुयायी हैं.'

श्री सुजान सिंह ने भी १९३५ तक लिखना शुरू कर दिया था परंतु उनकी प्रथम कहानी 'भुलेखा' से 'भत्ता' पहले लिखी गयी थी. यह वही समय था जबकि श्री प्रेमचंद हिन्दी में 'कफन' लिख चुके थे और राजेंद्रसिंह बेदी ने भी अपनी प्रथम कहानी 'भोला' लिख ली थी.

संतसिंह सेखों की कहानियों का सूक्ष्म वातावरण कैथरीन मैनजफील्ड का कहानियों को स्मरण करवाता है. मगर अपनी कहानी के प्रथम चरण में सेखों एक ही समय फ्रायड और मार्क्स के दर्शन से प्रभावित थे. अभी तक भी वह इन दोनों के प्रभाव को छोड़ नहीं सका. यह अलग बात है कि मार्क्सवाद का प्रभाव उस पर अधिक रहा है.

'नीहां ते ममटियां' नाम के संग्रह में डा. हरनाम सिंह शान लिखता है कि आधुनिक पंजाबी कहानी के निर्माण की बुनियादें 'पुरातन जन्म साखी' (जीवन कथा गुरु नानक) की साखियों में खोजी जा सकती हैं.' यदि इस कथन के तर्क को मानना हो तो फिर 'पंचतंत्र' सर्वप्रथम कहानी संग्रह है.

मगर पंजाबी कहानी ने अपने अस्तित्व के मूल तत्व पश्चिम की कहानी में से प्राप्त किये हैं, भारतीय परंपरा में से नहीं. पंजाबी के सभी विद्वान इस मत पर सहमत हो चुके हैं.

संतसिंह सेखों पंजाबी का सर्वप्रथम मौलिक कहानी लेखक है जिसने कहानी को समकालीन जीवन के भावबोध और संचार का माध्यम बनाकर इसे समय के सत्य को प्रकट करने में समर्थ किया. इस लेखक द्वारा की गयी शुरुआत की वजह से ही कहानी को पंजाबी में गौरवमय स्थान प्राप्त हुआ है, जो स्थान कहानी को पश्चिम में भी प्राप्त नहीं है. अब यदि कहानी संस्कृति के उत्थान की साहित्यिक प्रतीक बन गयी है, तो इस परंपरा का प्रारंभ 'भत्ता' कहानी से ही हुआ है.

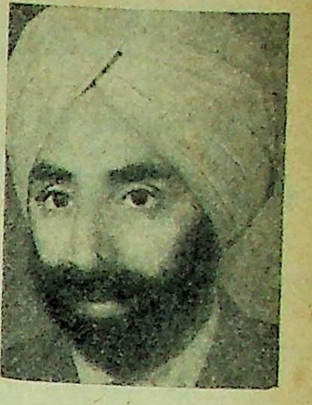

जसवंत सिंह विरदी (जन्म : ७ मई १९३४) : पंजाबी के जाने-माने कहानीकार हैं. इनकी सशक्त लेखनी ने आज के आदमी की जिंदगी को उसकी अपनी उच्छृंखलताओं और विडंबनाओं के साथ बड़े सही रूप में चित्रित किया है. कहा जा सकता है कि इनकी कहानियां संबद्ध लेखन का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं.

'भत्ता' कहानी मूल रूप में स्त्री—पुरुष के परस्पर शारीरिक आकर्षण की कहानी है. सेखों की अधिक कहानियां स्त्री-पुरुष के शारीरिक और मानसिक संबंधों की समस्याओं की कहानियां हैं और उसके गांव के जाट अथवा अन्य किसान-जीवन के प्रतिनिधि होते हैं. इस कहानी का नायक हरनाम सिंह प्रातः काल उठकर पिता के साथ खेतों में काम के लिए आ जाता है. वह सूर्योदय के साथ अन्य किसानों की तरह घर से आनेवाले 'भत्ते' (हाजरी) का इंतजार करता है. वह सोचता है कि उसकी नवविवाहिता पत्नी भत्ता लेकर आ रही होगी. मगर भत्ता लेकर उसकी पत्नी नहीं, बल्कि उसकी बहन नामो आती है. नामो को देखकर उसका शरीर शिथिल हो जाता है और मन दुखी. उसकी इस अवस्था को देख कर उसका पिता अपनी बेटी को कहता है—'नामो ! पुत्र, अपनी भाभी को रोटी देकर भेजो. तुम लस्सी (छाछ) बहुत कम लाती हो.'

समूची कहानी में लेखक का ट्रीटमेंट मनोवैज्ञानिक है और 'भत्ता' खेतों में काम करने वाले किसान के लिए इंतजार का प्रतीक बन जाता है. शिल्प की दृष्टि से इस कहानी में कसाव कम है तथा कुछ और भी कलात्मक त्रुटियां अवश्य रह गयी हैं जिनके बारे में इन पक्तियों के लेखक की सेखों साहिब से बात भी हो चुकी है. उन्होंने कहा था—यदि यह कहानी सन ५० में लिखी जाती तो इसका स्वरूप कुछ और ही होता.

संतसिंह सेखों ने पंजाबी कहानी को धार्मिकता तथा प्रचार के दलदल में से निकाल कर इसे राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक आधार दिया है और कथा को कहानी के शिल्प में ढाला है. सेखों के बयान में सूक्ष्म कटाक्ष है और कहानी के वातावरण में ताजगी का प्रभाव फैला रहता है.

संतसिंह सेखों की प्रथम पुस्तक 'समाचार' पंजाबी कहानी के स्वरूप को निश्चित करती है और उनकी कहानियों का परवर्ती पंजाबी कहानी पर इतना गहरा प्रभाव है कि उन्हें पंजाबी कहानी का पितामह माना जाता है. □

प्रथम मौलिक पंजाबी कहानी

भत्ता

संत सिंह सेखों

नामो शायद रात के समय देर तक गुड़िया के सूटों की चिंता में डूबी रही थी, शायद पश्चिम की ठंडी वायु के कारण अथवा किसी और वजह से. दूसरे दिन वह सुबह सूर्य उदय होने तक चारपाई से न उठी. मां उसकी कुछ करारे स्वभाव की थी, उसने आवाजों से छत फाड़नी शुरू कर दी थी.

--अरी रांड! अब और क्या तू वन की तरह बढ़ेगी, बारह वर्षों की हो गयी है, इतनी बढ़ी है, और अब तक सोई पड़ी है. मैं भी जगाती नहीं, आज रोटी तूने ले जानी है? जब जी चाहे ले जाना. वहां तेरा बाप ही तुझे ठीक करेगा.

यदि नामो बीमार भी होती तो भी मां के 'इस न जगाने' से उठ बैठती, इसलिए वह क्षण में ही बिछौना और चादर लपेट कर, कंधे पर रखती हुई नीचे उतर आयी. पानी का गिलास भर कर हाथ-मुंह धोया और अपनी रोटी तथा दही की कटोरी निकाल कर खाने लगी. उधर मां भी अपना 'न जगाने' का प्रण पूरा करती रही और नामो के खसम (पति) और भाइयों को पीटती रही. पड़ोस से पीतो की माता ने भी आवाज दी--नामो, अरी बेटी! हमारी पीतो को भी रोटी देने के लिए साथ ले जाना.

नामो ने शीघ्र ही हाजरी खत्म कर ली और फिर उधर मुड़कर देखा. मां ने रोटियां, दहीं और प्याज कपड़े में बांधकर लस्सी की मटकी पर रख दिये थे. नामो ने उन्हें उठाया और चुपचाप घर से चल दी. रास्ते में पीतो को भी बुला लिया और दोनों सखियां खेतों में रोटी देने चल पड़ी.

उधर हरनाम सिंह हल रोक कर गांव की ओर देख रहा है. उसे यह भी डर है कि उसके साथ वाले हलवाहक बापू को पता न चल जाए कि पीछे वाला हल खड़ा हो गया है. हरनाम सिंह की दृष्टि थक गयी है. उसी समय, क्षण भर में ही ईख के पीछे से लंबे-लंबे कदम उठाती और थिरकती हुई एक बहू, जिसने घी-कपूरी घाघरा पहना हुआ और सिर पर गुलाबी दुपट्टा ओढ़ा हुआ था, भत्ता उठाये आ रही थी.

--वह मेरी रोटी आती है, मन पुलकित होकर कहता है. यह केवल भत्ता ही नहीं बल्कि प्रातःकाल हल चलाने के कारण उठ जाने की वजह से, प्राप्त न हो सकी. प्रेम की अंतिम किस्त ब्याज सहित साथ लिये आ रही है. आंखों में से एक झनझनाहट-सी शुरू हो कर कमर में, कूल्हों में से गुजरती हुई जांघों में उतरती है और फिर ऊपर को चढ़ जाती है. दिल में चटख-सी होती है. हलवाहक उधर से मुख मोड़कर बैल को पराणी (पशुओं को हांकनेवाली छड़ी) मारता और ललकारता है. सिपाड़ (हल द्वारा बनाई गयी दरार) बहुत जल्दी आ जाती है और फिर उसी जगह आकर वही अवस्था हो जाती है. दूसरा सिपाड़ निकालकर जब वह फिर उसी जगह आता है तो गुलाबी दुपट्टे और घी-कपूरी घाघरे वाली सुंदरी के चेहरे की रश्मि आंखों से टकराती है. आंखें विद्युत से भी अधिक तेजी से वहां पहुंचती हैं और सुंदरी क्षण में हीं घूघट निकाल लेती है.

--अरे, यह तो बंते की बहू है, दिल धरती में धंसता हुआ बता जाता है.

फिर वही पुरानी रफ्तार, शरीर की लचक गायब, पांच-छः सिपाड़ निकाल कर बेचारा उत्सुक आंखों को फिर उस ईख के खेत की नुक्कड़ की ओर जाने की आज्ञा दे देता है. बैल आहिस्ता चलने लगते हैं. क्षण भर देखने के बाद निराश होकर फिर आंखों और दिल को मोड़ लेता है और खीझकर बैल को छड़ी मारता है. ललकार की जगह एक सुस्त-सी चिटकारी ही निकलती है. दिल करारा करके दो-तीन सिपाड़ और निकाले तो फिर दिल-आंखों को ईख की उसी नुक्कड़ पर ले गया कि अबकी जरूर इच्छा पूरी हो जाएगी. क्षण भर बाद जब आंखें कहीं और इधर-उधर झांकने के लिए तैयार हो रही होती हैं तो ईख की नुक्कड़ से क्षण में ही एक लंबी, चमकदार, पतली (कृश्काया) ने मोड़ काटा. मगर, उसका घाघरा घी-कपूरी नहीं बल्कि किसी और ही रंग का है. (वह पत्नी के रोज के घाघरे का घी-कपूरी रंग और दुपट्टे का गुलाबी रंग ही जानता है.) शायद घाघरा बदल लिया हो परंतु आशा का सूत्र टूट जाता है जब दो गुड़ियों जैसी लड़कियां साथ ही, उसके पीछे आती हुई दिखाई देती हैं.

--यह तो नामो है, एक जबड़े ने तो रोटी खाने की सलाह ही हटा दी है. मां के काम ने लालच की वजह से नहीं आने दिया, नामो को ही भेज दिया.

क्या कर सकता था? बैल को एक छड़ और मार दी जो उसके कूल्हे पर लगी. वह कुछ उछल गया और सिपाड़ टेढ़ा हो गया. . . 'दरार पड़ी रह जाए', कह कर सिपाड़ के पीछे चल पड़ा.

* *

आठ-दस सिपाड़ निकल चुके. दिल की कामना पूरी नहीं हुई तो पेट क्यों खमियाजा भुगते? बेचारे ने फिर रास्ते की ओर देखा. घाघरे वाली तो साथ के खेत की ओर चली गयी. नामो और पीतो पहुंच गयीं.

--भाई, रोटी खा ले, नामो ने मधुर आवाज में पुकारा.

--खा लेते हैं, यह सिपाड़ निकाल लें, हरनाम सिंह ने भर्राए गले से उत्तर दिया.

सिपाड़ आ गया और पिता-पुत्र हल छोड़कर रोटी खाने के लिए बैठ गए. हरनाम सिंह को तो हाथ धोने की भी बात न याद रही. पिता भी जानता है कि बहू के न आने से लड़का कुछ सुस्त पड़ गया है.

--नामो पुतर, अपनी भाभी को रोटी देकर भेजा कर. तू लस्सी बहुत कम लाती है. बड़ी मटकी उठा

नहीं सकती, यह लस्सी तो हम अभी पी लेंगे.

—नहीं बापू! भाभी आज दाने पीसती थी. आटा खत्म हो गया था इसलिए नहीं आयी.

—दाने! दाने हम चक्की पर पीस देंगे. अपनी मां से कहना, चने सूखने के लिए रख छोड़े, हम आज दाने पीस देंगे. हरनाम सिंह! आज हल चाहे जरा जल्दी ही छोड़ दें, जाकर दाने पीसने हैं.

हरनाम सिंह को आज पिता और सब दिनों की अपेक्षा अच्छा लगा. उस दिन भी अच्छा लगा था जिस दिन उसकी शादी थी और पिता ने कपड़ों के लिए तीस रुपये दिये थे. मगर वह 'अच्छा' कहकर चुप कर गया. उसके दिल में कुछ चुभन की तरह चला गया था जो मां के विरुद्ध सब बातों की गांठ खोलने लग पड़ा था.

—बापू, आप रोटी खा लीजिए, हम आगे जा कर पीतो की रोटी दे आएं, नामो क्षण भर बाद बोली.

नामो के पिता को पीतो बहुत अच्छी लगती थी—पीतो तेरी भाभी नहीं रोटी लेकर जाती? उसने पीतो को प्यार से पूछा.

पीतो को पता नहीं था कि उसकी भाभी रोटी देने के लिए खेतों में क्यों नहीं आया करती थी. उसका भाई कालेज में पढ़ता था और पिता ही मजदूरों के साथ हल चलाता था. उनकी रोटी—पीतो मां ले जाती थी अथवा जिस दिन पिता हल चलाने के लिए न जाए, वह ले जाता था और कभी-कभी पीतो की भी बारी आ जाती थी. नामो के पिता को पता था कि यदि लड़का हलवाहक न हो तो बहू रोटी लेकर नहीं जाती, मगर उसने यह प्रश्न केवल पीतो के साथ बातें करने के लिए ही किया था.

—पता नहीं, चाचा, पीतो ने पहले से भी अधिक मिठास के साथ उत्तर दिया. पिता-पुत्र दोनों मुसकरा दिये मगर नामो और पीतो, दोनों को, अंतर्मन की बात का पता न चला.

—पीतो तेरी भाभी पढ़े हुए की बहू है, वह रोटी लेकर नहीं जाती.

—नहीं, मेरी मां ने कभी उसे कहा ही नहीं, पीतो ने अपनी भाभी के पक्ष में बात की, मगर फिर चाचा की बुद्धि के सामने अपनी बुद्धि को झुकाकर कहा, पता नहीं, इसी तरह ही होगा.

पिता और पुत्र दोनों हंस दिये तो नामो अ पीतो भी मुसकराने लगीं. हरनाम सिंह आदि तो रो खाते रहे और नामो और पीतो, पीतो की जगीर व ओर चल दीं.

खेत भर की दूरी पर जाकर पीतो ने नामो पूछा—अरी, तेरी भाभी रोटी लेकर क्यों नहीं आती?

नामो को भी पता नहीं था, मगर उसने एक उपा सोचा—पीतो, कल को तुम अपनी भाभी का साथ लेक रोटी देने के लिए आना. मैं भी अपनी भाभी के सा आऊंगी. अगर तुम्हारी भाभी न आई तो तुम पूछन कि क्यों नहीं आतीं.

—अच्छा, पीतो को भी बात कुछ जंच गयी. मग फिर कहने लगी, तेरी मां ने तुम दोनों को नहीं आ देना. कहेगी एक जनी जाओ. नामो को भी इसी तर महसूस हुआ और उसने कोई और बात न की.

पीतो के खेतों में पीतो का पिता और दो मजदू हल चला रहे थे. पीतो को देखकर सभी प्रसन्न हो गए.

—आज पीतो रोटी लेकर आयी है? एक ने कहा अरी, थक तो नहीं गयी? दूसरे ने बगल से कहा नामो को महसूस हुआ कि पीतो को सब प्यार करते हैं परंतु उसकी कोई परवाह नहीं करता.

पीतो ने मजदूरों की खुशामद और नामो की उदासी, किसी की ओर ध्यान न दिया. क्षण में ही वे रोटियां पकड़ाकर वापस चल पड़ीं. बर्तन बापू ले आएगा.

—अरी, कल को भी रोटी देने तू ही आएगी? नामो ने पीतो से पूछा.

—अरी बहन, मैं तो आज थक गयी हूं. पीतो थकावट की सांस लेकर बोली, कहीं बैठकर आराम कर लें.

—उस शीशम की छांव में बैठेंगे, नामो ने खेत भर की दूरी पर शीशम के वृक्ष को देखकर कहा. जब वें उस शीशम के नीचे पहुंचीं तो पीतो तुरंत बैठ गयी.

—पीतो, तू तो बहुत जल्दी थक गयी, नामो ने कहा, इतनी जल्दी थक जाती हो? मैं तो कोस भर और चलूं तो भी न थकूं. अब तक वे कोस से अधिक चल चुकी थीं, परंतु नामो के कोस का अर्थ कोई थका देने वाला रास्ता था.

—बहन, मैं तो थक गयी. मेरा तो जैसे सिर घूम

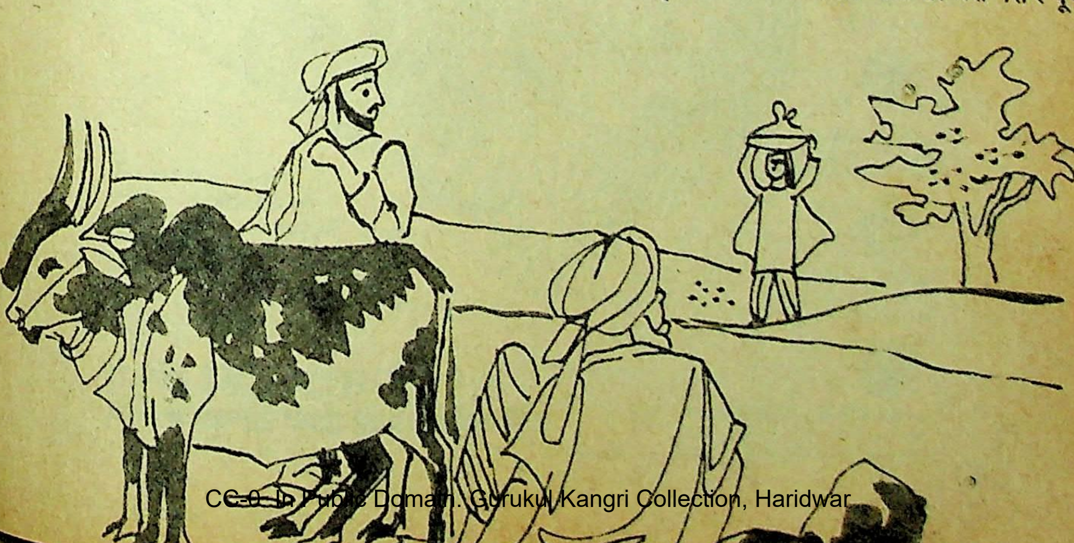

EYETEX
BINDI
EYETEX DELUXE BINDI PENCIL
EYETEX REGD.

ऐटेक्स
सौंदर्य प्रसाधन

ARAVIND LABORATORIES
MADRAS-600 033

AL-75/76

Binaca
top
toothpaste

केवल बिनाका टॉप टूथपेस्ट ही
मुँह की पूरी रक्षा करता है

ARMS-CBT/26-608 HN

देखिये!
बिनाका टॉप का
विशेष फैलने वाला
तत्त्व किस प्रकार
काम करता है।

काँच की प्लेट में थोड़ा-सा पानी डालिए। थोड़ा-सा कोयले का चूरा या रंगीन पाउडर पानी पर छिड़किए।

पानी में बिनाका टॉप घोलिए। मिश्रण की एक बूंद काँच की प्लेट के बीचों-बीच डालिए।

अब देखिए कि बिनाका टॉप कितनी तेजी से चारों तरफ फैलता है... पानी की सतह पर फैले हुए मैल को काटता है और पानी कितना साफ़-सुथरा हो जाता है।

बिनाका टॉप बिल्कुल इसी तरह काम करता है। इसमें एक विशेष फैलने वाला तत्त्व होता है जो तुरंत आपके मुँह में फैल जाता है और दांतों में सड़न पैदा करने वाले कीटाणुओं का नाश करता है और सांस की दुर्गंध को दूर करता है। यह आपके मुँह की पूरी रक्षा करता है।

बिनाका टॉप टूथपेस्ट
व बिनाका टूथब्रश मुँह की पूरी रक्षा के लिए

सीबा-गायगी

रहा हो, पीतो ने सिर पकड़कर कहा.

—पीतो अब भाभी ने बाग लगा लेना है. मां कहती है कि तू उसका चर्खा लेकर कात लिया करना. कभी तुम्हारे घर कातने बैठ जाया करेंगे, कभी हमारे, नामो ने जैसे पीतो से प्रार्थना की.

—बहन, तुम्हारे घर तुम्हारी मां से डर लगता है, हमारे घर ही आ जाया करना, पीतो ने कुछ गर्व से उत्तर दिया.

—अच्छा, फिर कभी-कभी हमारे घर भी काता करेंगे. कभी-कभी के लिए मेरी मां कुछ नहीं कहती, नामो ने पराजित-सी होकर कहा.

—नामो! तेरी भाभी कैसी है? पीतो ने अपनी बड़ाई करने की इच्छा से पूछा, तेरे साथ अच्छा व्यवहार करती है?

—अच्छा ही है, नामो ने उत्तर दिया. नामो भाभी की ओर से अभी निराश नहीं हुई थी. अभी तो अच्छी ही है, कल का पता नहीं.

—मेरी भाभी तो, भई, बड़ी अच्छी है, पीतो फिर बड़ाई करने लगी, एक बाग गुलखद्दरों का पूरा भी कर लिया, और कहती है, बीबी! मायके से मैं सरपल्लू काढ़ कर लाऊंगी.

—तुझे तो सरपल्लुओं की पड़ी रहती है, नामो की बात भी बन गयी, तेरा तो अभी से गौना लेने को जी चाहता है.

—कहां की कहां ले जाती है बात को, पीतो ने लज्जित हो कर उत्तर दिया.

—अच्छा फिर उठो, चलें. धूप चढ़ रही है. कहकर नामो ने गड़वा उठाया और खड़ी हो गयीं.

—अरी, हम उस बुढ़िया को साथ ले लें, दो कदम चलकर पीतो ने पीछे आ रही बुढ़िया की ओर संकेत किया, अकेली चलीं तो सड़क से डर लगेगा.

रास्ते में एक जरनैली सड़क थी, जहां से गांव के छोटे बच्चे बहुत डरते थे, क्योंकि उधर से कई तरह के लोग, जांगली और राशे मजदूरी करनेवाले गुजरते थे.

नामो में कुछ साहस था—अरी डर काहे का? उसने कहा, तुम्हें कोई नहीं पकड़ेगा.

—इस तरह की बात न कर, पीतो ने अलमदो जैसा मुंह बनाकर कहा, भाभी के गांव के समीप एक गांव है. वहां इसी तरह अपने जैसी लड़की को राशे उठाकर ले गए.

यह बात सुनकर नामो पीछे आ रही उस बुढ़िया को अपने साथ मिलाने के लिए मान गयी. दो-एक क्षणों के बाद वह बुढ़िया उनके पास थी.

—अम्मा, हमें सड़क से डर लगता था. हमने कहा, अम्मां के साथ चलेंगे. नामो ने अम्मा को प्रसन्न करने के लिए कहा.

—अरी, तुम्हें कौन उठा ले जाता, हूरजादियों को सड़क से? बुढ़िया खीझकर बोली.

—ओह हाय, अरी अम्मां! पीतो के मुंह से निकला.

—चलो, बेटी चलो उसने तुरंत पसीज कर कहा.

(अनुवाद : जसवंतसिंह बिरदी) □□□

नागा लोककथा

लिकुम और आबो लिपि

आबो जन-जाति भारत के उत्तर-पूर्व की दिशा से बर्मा में हो कर आ रही थी. सीमा के समीप बर्मा की हद में मैंवांग नामक एक झील है. इस स्थान पर पहुंच इसके एक बहुत बड़े दल ने अनेक दिशाएं पकड़ीं—कुछ चीन की ओर गये तो कुछ ब्रह्मपुत्र को पार कर असम के मैदानों की ओर बढ़े. दूसरा दल जो आबो लोगों का था, बर्मा की सीमा के साथ-साथ आगे बढ़ा. अपनी-अपनी दिशा की ओर मुड़ते हुए प्रत्येक जन-जाति अपनी लिपि भी संभाल कर लेती चल रही थी. आबो जन-जाति का एक प्रमुख व्यक्ति था लिकुम. वह बांस के पीपे में सहेजकर आबो लिपि ले चला. रास्ते में स्थान-स्थान पर लोग आराम करते हुए चल रहे थे. एक दिन जब सब दोपहर का भोजन कर रहे थे तो लिकुम ने लिपिवाला बांस का पीपा पास में ही रख दिया. वह खाने में इतना मशगूल हो गया कि एक कुत्ता कब उसे उठा कर ले गया और उदरस्थ कर गया, इसकी ओर उसका ध्यान ही नहीं गया.

खाना खा लेने के बाद जब लिकुम ने पाया कि लिपि गायब है, तब उसका कलेजा धक् से रह गया. उसने पहले तो बकरी से पूछा कि क्या वह लिपि के बारे में जानती है. किंतु बकरी ने कहा—'मां' जिसका अर्थ आबो भाषा में है: 'नहीं'. उसी दिन से बकरी 'मां' 'मां' करने लगी. अब लिकुम ने लिपि के बारे में एक कुत्ते से पूछा तो वह कुत्ता बकरी के पास पहुंचा और उस पर चोरी का आरोप लगा कर 'खां', 'खां', करने लगा जिसका अर्थ है कि 'मुझे दो'. किंतु बकरी ने उसे लिया होता तब तो देती! वह तो बिलकुल निर्दोष थी. अतएव कुत्ता तब से अपनी रट लगाये हुए है—खां', खां'.

लिकुम की चिंता और परेशानी की सीमा न रही. अंत में एक सुअर ने आकर उसे स्वयं बतलाया कि उसने कुत्ते को लिपि को अपने खेत में खाते हुए देखा था. लिकुम को कुत्ते पर बड़ा क्रोध आया. वह उसे तत्काल मार कर उसका गोश्त खा गया ताकि उसकी स्मरण शक्ति में सब कुछ आ जाये. और इसका अच्छा परिणाम निकला. तभी से यद्यपि आबो लिपि में कुछ भी लिखा हुआ नहीं पाया जाता, फिर भी उसकी सभी लोककथाएं ज्यों की त्यों सबको याद हैं.

जिस स्थान पर आबो लिपि लुप्त हो गयी थी, उसका नाम 'लिकुम' है. कहते हैं कि यह स्थान आज के मणिपुर के करीब है. □□□

शहर आ गया, श्यामली

परेश

झे इस कहानी का इंतजार काफी समय से था. उसे मैंने रास्ते में बताया भी कि तुम पर मैं कोई ानी लिखूं तो उसका शीर्षक होगा, 'उस कहानी का जार'.

मैंने पहली बार उसकी आंखों में देखा और उसकी राइयों के सम्मोहन के पूर्वाभास को अनुभव किया.

—ऐसा करें, अब हम लौट कर जाएं ही ना. . . मैंने ा. मैं इस सम्मोहत के गहरे कूप में तब तक भी झांक ा था.

—यह बात तुमने कल भी कही थी, वहां झील अंधेरे में. . .माने क्या झांकते ही रहोगे. . . कूदोगे नहीं?

अतल स्थित सम्मोहन लहरियों ने मुझे आविष्ट ाए रखा जैसे कंकरी के हल्के-से आघात से वे विद्युत-क्र उत्पन्न हो गये थे.

—हम फिर चलेंगे वहां. . . मैंने जैसे अपनी विव-ता को अस्वीकार करते हुए कहा.

—तो फिर इस 'जात्रा' पर आने की क्या आवश्य-ता थी. . . उसने कहा.

इतना बड़ा वाक्य मुझे किसी व्यतीत शताब्दी-मुख निकलता हुआ-सा लगा जो केवल 'आओ' जैसे कंडेंस्ड आकार में उस कूप-गर्भ में बुला रहा था. मैंने बच्चों की तरह ताली बजाकर इस सम्मोहन जाल को छिन्न करने की कोशिश की. बोला—अरे, बस से उतरकर हम चाय लेंगे. . . आहा. . . चाय. . . कितना मजा आएगा. . . मुझे इस विचार मात्र से इतना सुख मिल रहा है. . .

—तुम चुप रहो. . . उसने आंखों से कहा. कहकर वह आंखों से ही थोड़ा-सा हंसी. सम्मोहन के वर्तुल थोड़ी दूर घेरा डालकर बैठ गए.

—तुम्हारी आंखों में मुझे चाय नजर आ रही है. . . चाय और सम्मोहित होने का सुख. . . दोनों बराबर हैं . . . न. . . न. . . नाराज नहीं. . . मैं दरअसल कहीं भी शाम करना चाहता हूं और बाद का जो अंधेरा होगा, उसका मुझे इंतजार है. . . तब तक हम कई बार चाय लेंगे . . . देखो पहाड़ी चढ़ाई की सेंसेशन शुरू हो गयी.

—सेंसेशन. . . वह हंसी और खिड़की के बाहर देखने लगी. कोयले या पत्थरों की ट्रालीज सिर के ऊपर तारों पर सरक रही थी. सड़क की बांई ओर कोई टाउनशिप तैयार हो रही थी. दांई ओर एक पहाड़ी नाले का बहुत चौड़ा पाट और सीढ़ी-दर-सीढ़ी पहाड़ी चोटियां. . . धुंध हल्की-सी. . .

—मैं पहाड़ पर बस से नहीं जा सकती.

—मेरा भी सिर भन्नाने लगता है. . . लेकिन यात्रा के बाद की चाय . . . मैंने जैसे उसे फिर याद दिलाया. वह हंस पड़ी. शहर से नौ मील दूर आकर चाय पीने का मेरा प्रस्ताव उसने मान लिया था. बस रुकते ही उसे इंतजार था कि मैं चाय का शोर मचाऊंगा. लेकिन मैं चुप रहा.

—चाय के लिए बड़े बेताब थे न तुम. . . उसके स्वर में अजीब-सी विवशता थी.

हम दोनों के बीच के अदृश्य मांत्रिक को हम अनुभव कर रहे थे. वह अंधेरे के साथ प्रकट होगा, हम जानते थे. हम उसके सम्मोहन-चक्र के भीतर थे. इधर-उधर कुछ दूसरे जोड़े भी घूम रहे थे.

—आज के दिन भी इतने टूरिस्ट आए हुए हैं. . . चलो, हम पैदल थोड़ी-सी चढ़ाई चढ़ें. . . इतने लोग जहां घूमने आते हैं, हम वहां भी नहीं जायेंगे. . . मैं थोड़ी खीझ के साथ बोला.

—तो तुम घूमने थोड़ी आए थे. . . तुम्हें तो चाय पीनी थी. . .

मांत्रिक. . . मंत्रमुग्ध. . . मुझे वह दीख रहा था. पहाड़ी ढलान से अंधेरा नदी घाटी में उतर रहा था. मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा— मुझे एक नींद लेनी थी, मैडम. . .

मैं चौंका. यह मैंने तो नहीं कहा. . . तो फिर किसने कहा?

हम घाटी की एक दरार के अंधेरे में उतर गए.

वे लोग थोड़ी दूर पर बैठ गए.

* *

थोड़ी देर बाद लगा वे अपने चक्र समेट रहे थे और अंधेरे में पीछे सरक रहे थे. मैंने श्यामली को हिलाया. बोला— उठो, फिर कोई बस नहीं मिलेगी.

बालों के घने गुच्छ-जाल, आयत वाम स्कंध पर पड़ी हुई श्लथ कंचुक-पट्टिका और पाउडर से ढकी हुई वक्ष की मांसलता से मैं धीरे से उठा. सरकंडों में बजती हुई हवा उसके विच्युत परिधान के गिर्द 'हूं हूं' करने लगी. नाले के पुल पर से कोई ट्रक गुजरा तो मैंने उसका कंधा पकड़कर हिलाया. उठने के लिए उसने थोड़ा सहारा मांगा. उसके सैंडलों को तलाश करने में थोड़ा समय लगा वे मिट्टी से पुरकर पदचिह्नों के समान हमारे अनुमान से काफी दूरी पर चमक रहे थे.

वह उसी तरह ढीले जूड़े और अस्तव्यस्त साड़ी और खुले ब्लाउज के साथ श्लथमना नाले की पुलिया पर आकर बैठ गयी. मैंने फिर उसे जोर से हिलाया, बोला, —देखो, स्टॉप तक चलने की हिम्मत करो. यहां बस नहीं रुकेगी.

वह फिर भी गुमसुम रही तो मैंने घड़ी में रेडियम को पढ़ा. आखिरी बस निकल गयी थी—रात क्या पुलिया पर बीतेगी? मैंने बीच के मांत्रिक से पूछा. वह उन चक्र

समेटने वालों के साथ ही चला गया था. लेकिन श्यामली अभी तक आविष्ट थी.

—श्यामी उठो, रात क्या इस जंगल में गुजारोगी?

उसने थोड़ा-सा मेरी तरफ देखा तो मैंने उसका एक बाजू पकड़ कर उसे लगभग कंधे पर लाद लिया और उसे घसीटने लगा. सामने से रोशनी का कोई धीमा बिंदु हमें अपनी ओर आता लगा. रिक्शा थी—खाली.

—शहर जा रहे हो? मैंने रोककर पूछा.

उसने स्थिति को आंका और अपना हिसाब लगाया. बोला—बाबूजी, बख्शीश ज्यादा होगी, किराया कम.

रिक्शा आने से वह अपने पांवों पर टिककर खड़ी हो गयी. बैठने के लिए उसने शालीनता से मेरा हाथ थामा और रिक्शे में एक ओर गरिमा-मूर्ति-सी बैठ गयी. अंधेरे में सामने की हवा लगी तो एक दूसरी नींद के लिए मैंने अपना सिर उसके खुले कंधे पर टिका दिया. उसने धीरे से मेरा सिर अलग किया और उसी हाथ से सरकी हुई ब्रेसियर की पट्टी को कंधे पर चढ़ा लिया. मैंने नजर बचाकर देखा—ब्लाउज वैसे का वैसा खुला पड़ा था. उसने चोरी पकड़ ली. अतः हंसी और बोली—शहर अभी दूर है.

मैंने थोड़ी-सी स्वस्ति का अनुभव किया. उसका हैंगओवर उतर रहा था.

रिक्शा कॉफी हाउस पर रुकी. लेकिन उसने उतरने की कोई चेष्टा नहीं की—शहर आ गया, श्यामली. मैंने उसके पुल ओवर को उसके कंधों पर रखते हुए कहा.

उसने नियन-लैटर पढ़े, 'कॉफी हाउस' के ओर उस रोशनी में अपने खुले ब्लाउज से झांकते पृथुल वक्षस्थल को भरपूर दृष्टि से देखा. बोली—मैं घर जाऊंगी.

—नहीं, अभी नहीं, कॉफी के बाद. . . थोड़ा नारमल हो जाओ पहले. . .

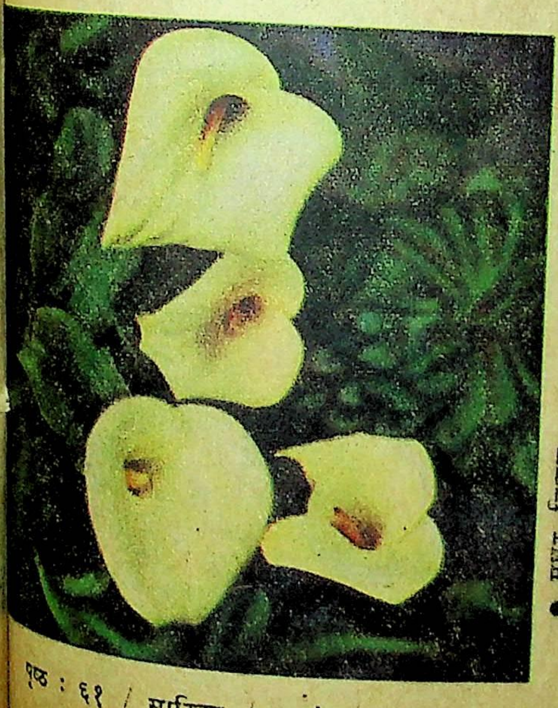

● मधुर मित्तल

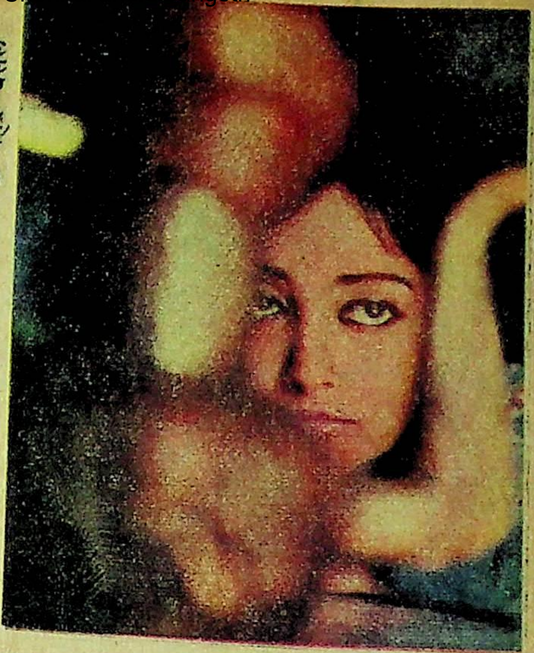

● मधुर बंसल

—नारमल. . . वह फिर हंसी.

कुछ लोग कॉफी हाउस से निकले तो मैंने रिक् वाले को 'क्वालिटी' चलने के लिए कहा. रिक्शा चल तो वह थोड़ा और हंसी और बोली—तुम अपना सि मेरे कंधे पर टिका लो.

—सरकंडों में बजती हुई हवा. . . उसने यह पंक्ति गायी और अपना सिर मेरे कंधे पर टिका दिया. मैं कंधे को थोड़ा सिकोड़ा तो उसने पुल ओवर के दो बटन बंद कर लिये. भीतर के कपड़े वैसे ही रहने दिये.

'क्वालिटी' कॉफी हाउस से सौ गज के अंतर पर था बरामदे के फर्श पर बिछे हुए रफ कालीन पर वह शालीनता से उतरी. संवार कर बांधी हुई साड़ी अस्तव्यस्त होने के बावजूद बांधने के आभिजात्य को मेंटेन किये हुई थी.

बेयरा दरवाजा खोल कर सलाम-मुद्रा में एक ओर झुक गया तो मैंने प्यार से श्यामली के कंधे पर हाथ रखा और आंखों से कोई प्रार्थना की. वह महारानियों की तरह मुस्कराई और एहसान करने के अंदाज में उसने पुल ओवर का एक बटन और बंद कर लिया.

—तिनके. . . मैं उसके कान में फुसफुसाया.

उत्तर में उसने बेयरे की सलाम कबूल की और भीतर चली गयी. मैंने मुड़कर रिक्शे वाले की तरफ देखा. उसने झट दियासलाई जलाकर अपना मुंह हाथों के दोने में छुपा लिया.

—मीली, हमें सब देख रहे हैं. . . बैठने के बाद मैंने कहा.

उत्तर में उसने झुके हुए बेयरे को कुछ क्षण अपनी तृप्ति के आभिजात्य में झुकाए रखा और फिर हैंगिंग लैंप का बटन दबाते हुए बोली—कॉफी.

लांग प्लेयर के बराबर का एक दूधिया चकत्ता सनमाइका पर बिखर गया तो उसने सीधी दृष्टि से मेरे सर्वांग

SURGICOT
ABSORBENT COTTON WOOL
SURGICOT
ABSORBENT
COTTON
WOOL
I.P
M.L. No. 256/7A
BATCH NO
SURGICAL C
DRESSINGS C
ASHOK RAJ
DIDARGANJ
PATNACITY
SC
DC
अवंतिका /75

सर्जिकल कॉटन का उपयोग करें

सर्वश्रेष्ठ एब्जार्बेंट

कॉटन वूल
तथा
गॉज एवं बैंडेज

सर्जिकल कॉटन एण्ड ड्रेसिंग्स कॉरपोरेशन
दीदारगंज, अशोक राजपथ, पटना-800008

का आलिंगन किया और बोली——लोग देखते नहीं, सूंघते हैं.

रोशनी के चकते में कॉफी रख दी गयी. उसे थोड़ी गर्मी लगी तो उसने बंप किया हुआ एक बटन खोल लिया. मैं भी थोड़ा स्वस्थ हो रहा था और उसके आलस्य के आभिजात्य से स्वयं को थोड़ा गौरवान्वित अनुभव करने लगा.

——जापानी काव्यशास्त्र घ्राण बोध पर विकसित हुआ है, भारतीय. . . रसबोध पर. . . कॉफी के साथ वह अपने आभिजात्य की रजत-शिविका में सवार हो गयी.

मैंने अनुनेय की भांति गर्दन झुकाई.

——कॉफी के बाद नहीं बोलूंगी. वह हंसी. कुछ शताब्दियों पूर्व यह बात जापानी काव्यशास्त्र के गुरु बसो ने कही थी. . . सॉरी. . . तुम्हें नींद आ रही है. . . फिर एक नींद .. . रेस्तरां के संगीत की धुन पर वह गुनगुनाई. सैंडल की एड़ी से फर्श को एक ताल भी दी. रिक्शा बाहर इंतजार कर रहा है. . . मैंने उसको उसकी रजत-शिविका से नीचे उतारा.

——मैं यहां से पैदल जाऊंगी, तुम रिक्शे पर चले जाओ. बाहर निकल कर वह बोली .

——ना, मैं तुम्हें घर तक छोड़ूंगीं. . .

——हूं. . . वह फिर हंसी. . . संगीत का थोड़ा-सा धुंआ रेस्तरां के बाहर आ रहा था. मैंने उसे आधी बांह के घेरे में ले लिया तो वह फिर हंसी. बोली——तुम्हें विश्वास नहीं, अच्छा तो चलो. . . मगर तुममें हिम्मत है मुझे घर तक छोड़ने की?. . .

——नुक्कड़ पर छोड़ूंगा, अंधेरे में. . .

——तुम मुझे अंधेरे में कभी नहीं छोड़ सकते. . . वह फिर घंटियों-सी बजी.

रिक्शा रुक गया.

——अच्छा तो उतरो और जाओ.

वह उतर गयी.

——चली जाओगी?

उसने धीरे से पीठ घुमाई और अंधेरे में अदृश्य हो गयी. रिक्शा मोड़ कर मैं कुछ गज चला. फिर उसे रुकने के लिए कह कर उतरा. उस स्थान पर पैदल वापस आया जहां उसे छोड़ा था.

वह खड़ी थी वहां. कुछ देर हम अंधेरे में एक दूसरे को ताकते हुए खड़े रहे.

——क्यों आए हो? वह रो रही थी.

मैंने उसे धीरे से भुजाओं में लिया तो वह सुबकने लगी.

——तुम गयी नहीं अभी? मैंने उसे प्यार से थपथपाया.

——चली जाऊंगी, तुम वापस क्यों आए हो?

——यह बताने कि मैं गया नहीं. . . विश्वास दिलाने कि मैं भाग नहीं रहा. . .

——मैं जानती हूं, तुम कल फिर आओगे. . .

□□□

हिन्दी विभाग, पंजाबी युनिवर्सिटी
पटियाला,

राजस्थानी लोककथा

दोनों तजे प्राण

एक जंगल में एक मृग और एक मृगी रहते थे. दोनों में परस्पर अगाध प्रेम था. वे साथ-साथ चरते, साथ-साथ पानी पीने जाते और साथ-साथ सो जाते.

एक दिन चरते-चरते वे दूर निकल गये. तेज धूप थी. उन्हें प्यास लगी. वे इधर-उधर पानी की तलाश में दौड़े. प्यास के मारे उनका बुरा हाल था. खोजते-खोजते वे एक पोखरे के निकट पहुंचे जिसमें इतना-सा जल था, जिससे उनमें से एक की प्यास बुझ सकती थी. मृगी ने कहा —— तुम अपनी प्यास बुझाओ. मृग बोला——नहीं, तुम पी लो. एक पानी पीले और दूसरा रह जाए यह उसमें से किसी को भी स्वीकार नहीं था. वे पानी पीने के लिए परस्पर आग्रह करते रहे. अंत में प्यास के मारे दोनों ने प्राण त्याग दिये. दोनों के शव पोखरे के किनारे पड़े थे.

दो सखियां उधर से गुजरीं. मृग शवों को देख कर एक सखी ने पूछा——

खड्यो न दीखे पारधी, लग्यो न दीखे बाण,
मैं तन्ने पूछूं सखी, किण विधि तज्या पिराण?

(पारधी) शिकारी, खड़ा दिखाई नहीं देता. इनको कोई बाण भी नहीं लगा. हे सखी बताओ, फिर इन्होंने प्राण कैसे त्यागे?)

दूसरी सखी ने उत्तर दिया——

जल थोड़ो, नेहा घणूं, लग्या प्रीत का बाण,
'तू पी, तू पी' करत ही, दोन्यूं तज्या पिराण ।

(जल कम था पर दोनों में परस्पर प्रेम अधिक था. 'तू पी, तू पी' करते हुए दोनों ने प्राण त्याग दिये, क्योंकि इन्हें प्रीत का बाण लगा था.)

काफी समय बीत गया इस घटना को. वे दोनों सखियां बुढ़िया हो गयीं. एक दिन वे दोनों पुनः उस पोखरे के पास से गुजरीं. उस पोखरे के किनारे दो मृग-शव पड़े थे. एक बुढ़िया ने पूछा—हे सखि, क्या ये दोनों भी प्रेम के बाण से ही मरे हैं? दूसरी बुढ़िया हंसी और बोली——बावली, अब वह समय कहां? इस पोखरे में जल कम था और ये दोनों प्यासे थे. पोखरे के पानी से केवल एक की प्यास ही बुझ सकती थी. दोनों ही पानी पीना चाहते थे इसलिए दोनों परस्पर लड़ कर मर गये.

□□□

(प्रस्तुतकर्ता : हेतु भारद्वाज)

लाबी पगड़ी पहने लाला जानकीदास कोठी के गेट के पास खड़े आनेवाले अतिथियों का स्वागत कर रहे वे आज खुश हैं, उनके सब से छोटे बेटे की सेहराबंदी बरसों बाद घर में रौनक हुई है. कोठी के ग्राउंड में मियाना लगा है और लगभग सौ-सवा सौ लोगों के ने का प्रबंध है. सारी कुर्सियां धीरे-धीरे भरती जा रही यह देखकर मन ही मन उन्हें बड़ा संतोष हो रहा है, लो, पिछले चार-पांच दिनों की भाग-दौड़ सफल हुई.

उसी समय घर के सामने बस आकर खड़ी हुई. स की ओर देखकर उनका मन अचानक आशंकित हो टा, पंडाल की ओर नजर गयी और सोचने लगे, पता हीं कौन-कौन बारात के साथ चलने वाला है. छप्पन ीटों की बस ली है, कम से कम चालीस बराती तो हों. ड़े लड़के ने राय दी थी, आठ-दस घर के लोग हैं, दो कारों में चलें जाएंगे. पर लाला जानकीदास का कहना था बिना बारात के भला क्या शादी होगी! घर में आखिरी शादी है, धूमधाम से होनी चाहिए. इसीलिए पिछले महीने भर से प्रत्येक मित्र और परिचित के घर स्वयं जाकर विशेष आग्रह कर रहे थे, आपको बारात के साथ जरूर चलना है जी, इतवार का दिन है, छुट्टी भी नहीं लेनी पड़ेगी. अपने नहीं जाएंगे तो भला और कौन जाएगा?

—बारात पर जाने का हक तो सगे-संबंधियों का होता है!

—आप से अधिक सगे और कौन हैं? रोज के मिलने वाले ही तो असली सगे-संबंधी हैं!

——ब्याह-शादियों पर तो अपने घर, अपने परिवार के लोग ही बहुत हो जाते हैं!

—घर और परिवार की बात भी सुन लीजिए : घर के तो हम सही हैं न — मैं और मेरे तीन लड़के —— उन में से भी एक केनेडा बैठा है. परिवार का जहां तक सवाल है, मेरा सिर्फ एक भाई है और उसका छोटा-सा कुनबा. बच्चों के ननिहाल हम से नाराज है! यह कहते हुए लाला जानकीदास का चेहरा बुझ-सा गया था. उनके चेहरे की झुर्रियां और गहरी हो गयीं जैसे सोच रहे हों, बात आगे करूं या न करूं! आंखों को झपकाते हुए निश्चय कर बोले, अब आप से भला क्या छिपाना है—आज से लगभग बीस साल पहले की बात है, इन बच्चों की मां को मरे अभी तक एक साल भी नहीं बीता था कि मेरे बड़े साले की लड़की का रिश्ता आया. दूसरी शादी करने से मुझे बीवी तो मिल जाती, पर इन बच्चों को मां भी मिलती, इसका मुझे शक था. सोचा, मेरी आधी से ज्यादा जिंदगी बीत गयी है,आधी इन बच्चों को पढ़ाने-लिखाने, पालने-पोसने में कट जाएगी. मन में एक उमंग भी थी—खुद तो उमर-भर अफसरों की, जी हजूरी की, पर अपने बेटों को बहुत बड़ा अफसर बनाऊंगा —डाक्टर, इंजीनियर, कमिशनर! सो, मैंने रिश्ता स्वीकार नहीं किया और तब से आज तक बच्चों के ननिहाल हमारी किसी भी खुशी-गमी में शामिल नहीं हुए. यह कहते हुए उनके मन की गहरी अव्यक्त पीड़ा, आंखों में झलकने लगी. अपने आपको सम्भाल कर बोले, नाराज हैं तो बने रहें, मैं भी बुलाने नहीं जाऊंगा, इंवीटेशन कार्ड भेज दिया है, आना होगा तो आ जाएंगे! कुछ रुक कर फिर बोले, असल रिश्ता तो प्यार का होता है, इसी नाते बारात पर चलने के लिए आप से मिन्नत भी कर रहा हूं! उनके इस, आग्रह के आगे भला कौन मना ही कर सकता था?

लाला जानकीदास अभी भी गेट के पास खड़े थे. उन्होंने महसूस किया, जिनको आना था, आ चुके हैं. फिर भी उनका पंडाल में जाकर बैठने को मन नहीं हुआ. वहीं अकेले खड़े रहे. उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि आज इस खुशी के मौके पर अचानक उनका मन बैठता क्यों जा रहा है? उन्हें तो खुश होना चाहिए कि आज उनकी आखिरी जिम्मेवारी भी पूरी हो जाएगी. उनके जीते जी तीनों बेटों की नौकरियां लग गयीं, शादियां हो गयीं, आदमी को और क्या चाहिए ? राजी की शादी के बाद वे पूरी तरह से आजाद हो जाएंगे. बहू को घर सौंप कर हरिद्वार चले जाएंगे. . . . उनके सोचने की कड़ी तब टूटी जब टॉमी उनके पांव सहलाता हुआ बाहर सड़क की ओर चला गया. घर में भीड़ देखकर अपने लिए जगह की तलाश में सड़क की ओर जा रहा था. वह तो हरिद्वार चले जाएंगे, पर टॉमी कहां जाएगा? राजी को तो वह पहले से ही अच्छा नहीं लगता. मेरे हरिद्वार जाने के बाद भला कौन उसे रखेगा. चलो जब तक टॉमी जिंदा है, मैं भी यहीं राजी के पास पड़ा रहूंगा. जब तक हाथ-पांव चलते हैं, तब तक घर का कुछ संवारूंगा ही, बिगाड़ूंगा तो नहीं!

बारात

उसी समय उन्हें अपने बेटे महेंद्रनाथ की आवाज सुनाई दी——बाऊजी! बाऊजी!! ——अरे, आप अकेले गेट के पास खड़े क्या कर रहे हैं? इधर हमने सारा घर ढूंढ़ मारा, चलें, पंडितजी हवन के लिए बुला रहे हैं. उसके लहजे से यह भाव प्रकट हो रहा था कि बाऊजी का हर काम निराला होता है.

* *

लाला जानकीदास चौंके और हवन मंडल के पास जा बैठे . वे हवनकुंड में आहुतियां डालते जा रहे थे—उन्हें बीते हुए सालों की याद आ रही थी—ओम स्वाह—ओम स्वाह—— कितनी ही आहुतियां डाल दीं, कितने साल बीत गये. आग की लपटें ऊंची उठने लगीं—बच्चे बडे हो गये!

सिर पर बांधने से पहले चांदी के मुकट को प्रत्येक व्यक्ति के पास ले जाया गया. उसे छू कर सारी बिरादरी अपनी सद्भावनाएं प्रकट कर रही थी. जानकीदास ने भी उसे छू कर मन ही मन कामना की—— राजी की

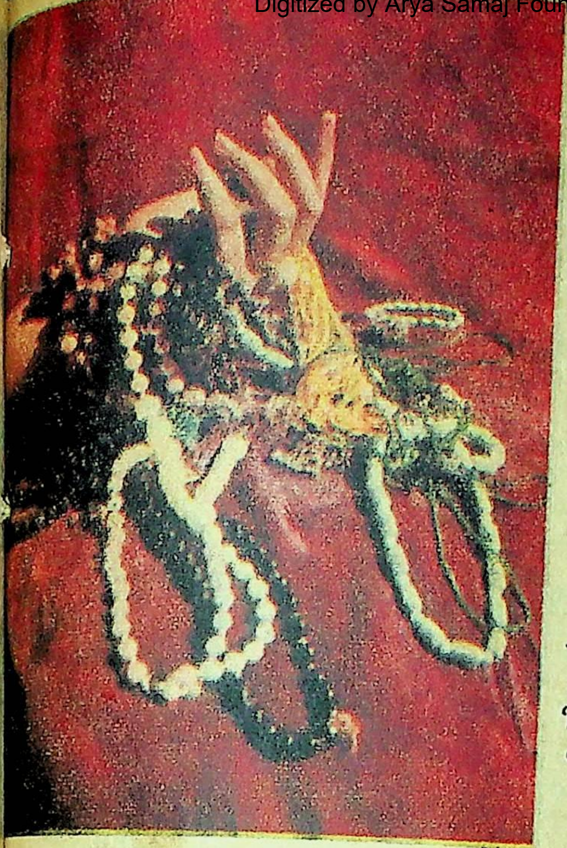

● शीला इंद्र

● वीरेंद्र मेंहदीरत्ता

जिंदगी खुशियों से भरपूर हो-- दोनों, बरसों जियें और सुखी रहें! सुखी रहें! सब सुखी रहें! सुरेंद्र और उस का परिवार केनेडा में सुखी रहे! महेंद्र नाथ अपने बच्चों के साथ अपने घर में सुखी रहे! राजेंद्र अपनी पत्नी के साथ सुखी रहे! ! ! उनके सुख में ही मेरा सुख है. . . . . पर क्या यह सच है? उनके सुख में ही मेरा सुख है? सब से बड़े बेटे सुरेंद्र नाथ की शादी हुई-- पढ़ी-लिखी, बड़े घर से बहू आयी. उसका खान-पान, रहन-सहन बड़े घर के लोगों जैसा था. कसूर तो मेरा ही था, मेरा उठना-बैठना सब पुराने ढंग का-- उस बेचारी को बात-बात पर टोकना पड़ता, बाऊजी ऐसे नहीं, ऐसे! हम पुराने आदमी, नये जमाने की चाल क्या समझें! पर बुरा मुझे उस दिन लगा जब उन्होंने केनेडा जाने के संबंध में राय न ली बल्कि फैसला ही सुनाया. आखिर बुरा क्या किया? भारत में उनकी पढ़ाई की कदर नहीं! केनेडा में उसे यहां से दुगनी-तिगनी तनखा मिलती है, हर तरह की सुख-सुविधा है. पहनने को अच्छा मिलता है, खाने को अच्छा मिलता है.

. . . . बाकी तो सब ठीक है, पर अफसोस इसी बात का है, कि इतनी दूर बैठा है. किसी खुशी में तो शामिल हुआ नहीं, अब भला गमी में क्या होगा? . . . मेरा ध्यान आज बार-बार उस ओर क्यों जा रहा है? खुशी का मौका है और मैं क्या सोच रहा हूं! . . . . सुरेंद्र नाथ तो केनेडा चला गया, पर महेंद्र नाथ तो इसी शहर में रहता है. यहां भी पिछले पांच साल से वे अलग मकान लेकर राजी के साथ रह रहे हैं. सुखी तो महेंद्र नाथ भी अपने बच्चों में है. उसकी पत्नी अनिता यदि स्वभाव की तेज है तो वह क्या करे? बाप के लिए घर तो नहीं उजाड़ना. रोज घर में क्लेश हो, इससे तो अच्छा है अलग-अलग रहा जाए.

मुकुट बांधा जा चुका है. पंडितजी पूर्णाहुत डालने के लिए कह रहे हैं. जानकीदास ने सारी प्लेट साफ कर सामग्री हवन कुंड में डाल दी और आग की लौ भड़क उठी. पंडितजी आशीर्वाद दे रहे हैं—हे, राजेंद्र, सब लोग दोहरा रहे हैं, 'हे राजेंद्र.'

--तुम्हारा विवाहित जीवन. . .
--तुम्हारा विवाहित जीवन. . .
--सुखी हो!
--सुखी हो!

जानकीदास फिर न जाने किन ख्यालों में डूब गये थे कि सबके बोल चुकने के बाद जैसे अचानक उन्हें याद आया, उन्होंने तो आशीर्वाद के शब्द नहीं बोले, सो कहने लगे — सुखी हो!

सेहराबंदी के लिए आए अतिथि बधाई देकर लौटने लगे. जानकीदास फिर गेट पर जा खड़े हुए. प्रत्येक व्यक्ति से कह रहे थे--बड़ी कृपा की जो आज इस अवसर की शोभा बढ़ाई —अब बारात के साथ चलेंगे.

जिनके चलने की थोड़ी भी उम्मीद होती, उन्हें कहते आप ही तो हमारी बारात की रौनक हैं, आपके बिना तो बारात का रंग नहीं जमेगा.

परंतु बहुत-से लोग जो सेहराबंदी की औपचारिकता निभाने आए थे, एक-एक कर विदा हो गए.

जानकीदास फिर गेट पर अकेले खड़े रह गये. टॉमी अब भी बाहर सड़क के किनारे बैठा था. पंडाल में काफी रौनक थी. इस बार तो राजी के ननिहाल से भी उसके मामा-भामी और उनकी दो बेटियां आयी थीं. सोचा होगा, खुशी का आखिरी मौका है, अब नाराजगी को भूल जाना चाहिए. और ठीक भी है, अब भला कौन-सा मौका आएगा हमारे रिश्तेदारों से मिलने का? तीनों बेटों की शादी हो गयी. अब शायद सारी बिरादरी इकट्ठी तब होगी जब . . . नहीं-नहीं, आज के शुभ दिन मुझे यह सब बातें नहीं सोचनी चाहिए.

★ ★

उसी समय गेट पर अपने मालिक को देख कर टॉमी जानकीदास की टांगों से लिपट गया. सुबह से उसे मौका नहीं मिला था, गेट पर अकेले देखकर भागता आया था. टॉमी पिछले पांच सालों से जानकीदास के पास था. उससे पहले सड़कों पर घूमता और बाप-बेटे के चले जाने पर बरामदे में सारा दिन बैठा रहता. कुछ दिनों बाद जानकीदास ने उसे नियमित रूप से रोटी

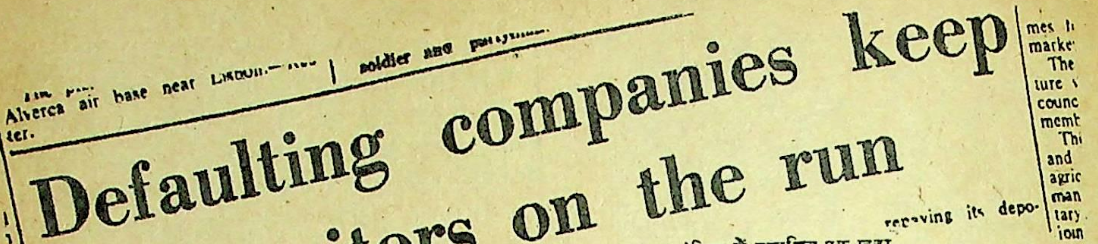
Alverca air base near Lisbon.—Reu
ter.

soldier and

Defaulting companies keep depositors on the run

receiving its depo-

टाइम्स आफ-इंडिया में प्रकाशित एक खबर

फोर्ट क्षेत्र की एक हाईबोर्ड कम्पनी
ने पिछले २ वर्षों से जमाकर्ताओं को
भुगतान नहीं किया है।

कम्पनी का दिवाला होने पर,
जमाकर्ताओं का नम्बर सबसे
बाद में आता है।

दिवाले के आवेदन पर न्यायालय में
कभी कभी समझौता हो जाता है।

जीवन बीमा-सुरक्षा पाने का सबसे सुरक्षित और विश्वस्त तरीका है। (भारत सरकार द्वारा पूर्णतया गारन्टी शुदा है)

ऊँची दर पर ब्याज वाली योजनायें आकर्षक होती हैं, परन्तु उनसे मृत्यु होने पर सुरक्षा नहीं मिलती।
केवल जीवन बीमा द्वारा ही जीवन पर जोखिम से सुरक्षा मिलती है। इसलिए बीमा कराने के दिन से ही, आप उस पूरी राशि
के लिए आश्वासित हैं जिसे बचाने की आपकी योजना है—उन अंशांश बचत योजनाओं की तरह नहीं जिनमें कुल जमा-
राशि ही मिलती है

जीवन बीमा का दूसरा विकल्प नहीं है।

RADEUS/LIC/AS 12 HIN

फेमिना २१ नवंबर '७५ विशेषांक

बेहतरीन परिधान की प्रशंसिकाओं के लिये नये-नये डिजायन

उन्हीं कपड़ों को नयी शैली में अपनाइये जो आपसे
और आप के बजट से मेल करते हों.

युवा भारतीय डिजायनरों के संग्रह में से फेमिना कुछ
कल्पनापूर्ण संकलन पेश करती है.

पट्टीवाली चोली घाघरे और साड़ी की संगत के लिए मिनी टाप,
स्कर्ट की नयी लम्बाई आधुनिक जीन्स का सम्मिलन.

अब वुडोब्स् सजाने की जरूरत नहीं, खर्च बचाये.

नये बुने हुए सूती टयुब वस्त्र चुन्नटदार, जामा, लहराता घाघरा
ये सब चीज़ें आप को बगैर दीवालेपन के प्राप्त हो सकती हैं.

किस पर क्या अच्छा लगता है?

लंबे कद वालों पर बड़े प्रिंट अच्छे दिखते हैं. छोटे प्रिंट सब पर भाते हैं.
मोटे लोगों पर चौड़ी धारियों वाले कपड़े. पतले लोगों के लिए ढीले-ढाले झालरों
वाले कपड़े. कुछ सुझाव आपके शरीर के आकार को सुंदर बनाने के लिये.

सिलाई कहाँ कहाँ से करवाएं, और कितने दाम में?

कहाँ कहाँ और कितने में होती है.

आपके नगरों में बसे दर्जी संस्थान व सिलाई के स्कूलों के पते.
जहां आप प्रवेश पा सकते हैं.

रेडीमेड कपड़ों के निर्यात का व्यवसाय आप खुद
शुरु कर सकते हैं. व

एंसेफेलेटिस मस्तिष्क की एक भयंकर बीमारी है.
कुछ तथ्य व सलाह के उपाय.

डालनी शुरू कर दी और गले में पट्टा डाल दिया. उसका नाम रखा—— टॉमी. आज सुबह से लाला जानकीदास ने टॉमी को प्यार नहीं किया था, सो खुद ही प्यार लेने आ गया. जानकीदास उसकी पीठ थपथपा रहे थे.

उसी समय महेंद्रनाथ कोठी के पीछे से दही-बड़ों का दोना लिये आए और बाऊजी को टॉमी के साथ देखकर बोला—— घर में इतना काम है और आप. . . उसके स्वर से प्रकट था कि बाऊजी जो भी काम करेंगे, जरूर गलत होगा. चलें, सब लोगों को खाने के लिए कहें और खुद भी खाना खा लें!

जानकीदास पंडाल में आए. उनका दोस्त बुद्धसिंह अमृतसर से आया था. तीस साल की नौकरी में यही एक कोलीग दोस्त बना था. बच्चे पालते या दोस्तियां निभाते! दोस्तियों को कायम रखने के लिए पैसा चाहिए, वक्त चाहिए. जानकीदास के पास दोनों नहीं थे. यह तो बुद्धसिंह की ही खूबी थी कि जानकीदास की हर तकलीफ में देवदूत को तरह आकर मदद करता था.

जानकीदास को, बच्चों के लिए घर की चारदीवारी और रसोई में बंधे देखकर बुद्धसिंह अक्सर कहा करता था—— जानकीदास, मेरी मानो तो जरूर शादी कर लो! बच्चे अपनी किस्मत साथ लाते हैं. बुद्धसिंह के जिंदगी के असूल बड़े सीधे थे, खाओ-पियो और खुश रहो. आगे की फिकर मत करो. जानकीदास की पीठ पर हाथ मार बुद्धसिंह बोला—— सुनाओ यार, अब क्या इरादा है, राजी की भी शादी हो जायेगी, अपने लिए भी कुछ सोचा है?

जानकीदास ने कुछ उत्तर नहीं दिया, सिर्फ मुसकरा दिये और बोले—— चलो, खाना खाओ! उसे प्लेट पकड़ा कर स्वयं उठकर भीतर चले गये.

दायीं ओर का कमरा महिलाओं ने काबू किया था. भीतर से आवाजें आ रही थीं.

—हाय, यह झुमके कहां से बनवाए?

शोर! ! !

—यह साड़ी खूब फब रही है!

शोर! !

—तुम्हारे पास किस कलर की लिप्सटिक है? मैंने तो खास आज के लिए गरारा-कुर्त्ता सिलवाया है.

—मैं तो लुंगी पहनूंगी!

* *

जानकीदास दूसरे कमरे की ओर गये, वहां राजी के दोस्त फ़लाश खेल रहे थे.

—अठन्नी की चाल!

—एक रुपया ब्लाइंड!

—दो रुपये!

—अच्छा शो.

—बादशाह.

—बस?

—बेगी. . . . गोला ! !

—ले जाओ!

जानकीदास मन ही मन सोचने लगे, उनकी सा चालें भी ब्लाइंड ही थीं, फुसफुसाए—ले आओ,

आओ.

जानकीदास का मन आज उखड़ा-उखड़ा-सा थ तीसरे कमरे की ओर गये, वहां का दरवाजा बंद था शायद महेंद्रनाथ के दोस्तों ने बोतल खोली हुई थी बारात के साथ चलने की उनकी यही शर्त थी.

जानकीदास वहां से पीछे के बरामदे की ओर गये वहां महेंद्रनाथ अपनी पत्नी अनीता से कह रहा था— टिंकू के लिए थरमस में दूध रख लिया है?

—हां, ले लिया है.

——पिंकी की दवाई भी ले लेना.

——अच्छा!

बरामदे के सामने तंबू लगे थे जहां हलवाई खाना बना रहे थे. जानकीदास उस ओर चले गए. जिस देगची में तरकारी थी, उसके नीचे चूल्हा बुझ चुका था. अब गर्म राख पर तसला पड़ा था. एक हलावई उसके पास खड़ा दोने भरता था और तसला खाली होता जा रहा था.

* *

जानकीदास वहीं खड़े उस सारी प्रक्रिया को देख रहे थे. टॉमी उन्हें ढूंढ़ कर फिर उसके पास आ गया था. खाने-परोसने की जगह से उसे दूर रखने के इरादे से वे उसे एक ओर ले गए.

——बाऊजी,सब के अटैची केस बस में रखवा दें. . . और आप का अपना अटैची कहां है?

——मेरा अटैची, हां, याद आया, उसकी तलाश में तो मैं अंदर आया था. . . .

——अपना सारा सामान समेट लिया?

——हां. . . .समेट लिया. . .

और अनीता चली गयी, शायद उसे काई और काम याद आ गया.

सब लोग अपनी अपनी सीटें रोकने के लिए बस की ओर जा रहे थे. सब की अटैची बस की छत पर रखवा कर एक खाली बची सीट पर जानकीदास जा बैठे.

बस चलने को तैयार थी. अचानक बच्चों के चिल्लाने, चीखने और रोने की आवाज सुनाई दी.

बुद्धसिंह ने ठहाका लगाते हुए कहा——लो टॉमी भी आ गया है. पीछे मुड़ कर जानकीदास से बोले, चलो इसे भी बारात के साथ ले चलेंगे.

जानकीदास के घिरे हुए बादलों के समान आशंकित चेहरे पर बिजली-सी चमक आयी और बोले—ले चलें, जैसे उनके मन की बात किसी ने कह दी हो. □ □ □

७६–सेक्टर–११,
चंडीगढ़.

क्षौर-कर्म

• प्रकाश बाथम

उसने जो कुछ सोचा था, वह सब गलत निकला. न•उसका सारा अनुमान गलत साबित हुआ. रत्ती भर भी अनुमान सही निकलता तो भी कोई बात होती. अम्मा की तबीयत साल भर से ऊपर से खराब चली आ रही थी. उनकी पीठ चारपाई से लग गयी थी. पीठ में घाव हो गये थे. घाव कूल्हे पर भी थे, लेकिन पीठ के मुकाबले कम गहरे थे. उसकी पत्नी अम्मा को करवट के बल लिटा कर रोज सुबह-शाम घावों पर 'बरनाल' का लेप लगा कर उस पर पाउडर छिड़क देती थी. अम्मा उससे खासी संतुष्ट थीं. लेकिन अम्मा के चेहरे और हाथ-पैर की सूजन इधर तीन महीने से बढ़ती जा रही थी. घर-भर में सब लोगों को विश्वास था कि अम्मा अब जाने वाली हैं, तब जाने वाली हैं. चारपाई पर लेटी-लेटी अम्मा स्वयं इसी विश्वास में जिये चली जा रही थीं कि किसी समय भी उनका बुलावा आ सकता है. वह भी एक महीने से, अपने दिल्ली जाने की बात को टालता चला आ रहा था. दिल्ली वाली कंपनी का पत्र आ चुका था कि एजेंसी के लिए शर्तों पर बातचीत आमने-सामने होती है, और उसके लिए उसे दिल्ली जा कर बातचीत करना चाहिए. कई बार तो वह बिल्कुल तय कर चुका था कि मंगल को जायेंगे, शुक्र को जायेंगे. लेकिन जब रात में बिस्तर पर लेटते समय पत्नी को बताता कि मंगल की रात वाली गाड़ी से दिल्ली जाने की सोच रहे है, तो पत्नी उसकी कमर दबाते हुए सलाह देती, काम जरूरी है तो जाना ही पड़ेगा लेकिन अम्मा की हालत आप देख ही रहे हैं. इनका कोई ठीक नहीं. आखिरी समय तक आप रहें तो उन्हें भी संतोष होगा और बाबूजी को भी. . . बात उसकी भी समझ में आ जाती और यात्रा स्थगित हो जाती. उसे लगता, बहुत आवश्यक काम टलता जा रहा है.. . . कभी-कभी अम्मा के फूलते हुए दम और उनके हांफते बेदम चेहरे की ओर देख कर उसे लगता कि हो सकता कि अम्मा कल सुबह जीवित न मिलें.

फिर एक रोज दोपहर की डाक से दिल्ली वाली कंपनी की चिट्ठी आ गयी और सत्ताईस तारीख माह की निश्चित करते हुए उन्होंने लिखा कि उस तारीख तक अवश्य पहुंच जाय, अन्यथा प्रस्ताव रद्द करके एजेंसी दूसरे प्रस्तावक को दे दी जायेगी. सोचा तो उसने यही था कि अम्मा के मरने के बाद ही जायगा लेकिन वहां से ऐसी चिट्ठी आने के बाद वह अम्मा के मरने की प्रतीक्षा कब तक करता.

सारा कारोबार बाबूजी ने अपने तीनों लड़कों के हाथों सौंप दिया, और निश्चित हो कर घर पर बैठ गये थे. कभी-कभार शाम को मन बहलाने की नीयत से अपने नाती-पोतों के साथ रिक्शे में लदे-फंदे आकर दुकान पर उतर जाते थे. काउंटर के पास बाहर की ओर मुंह किये सिर्फ कुर्सी पर बैठ आते-जाते,लोगों मोटरों और साइकिलों को देखते रहते. उनके चेहरे को देख कर कभी कभी लगता था कि क्रियाशील आदमी जब क्रियाहीनता की स्थिति में आ पहुंचता है तो किस तरह मात्र दर्शक की हैसियत से वह दूसरों की जीवनघटनाओं में इधर से उधर पैसिव तरह से डोलते हुए अपने को जीवित रहने की प्रक्रिया में डाले रहता है.

बाहर जाने के लिए उसने कभी बाबूजी से सलाह नहीं ली. और न ही बाबूजी ने जरूरत समझी थी कि वह उनसे सलाह ले. उन्हें भरोसा था कि वह जो कुछ कर रहा है, उचित और ठीक है. लेकिन इस बार दिल्ली जानेवाली बात, उसे लगा, कारोबार से इतना 'संबंध नहीं रखती है जितना अम्मा से. इसलिए उसने यही उचित समझा कि बाबूजी से पूछ लेना अच्छा ही होगा.

दिल्ली की कंपनी का पत्र ले कर जब वह बाबूजी के पास पहुंचा तो बाबूजी अम्मा की चारपाई के करीब बेंत वाली आरामकुर्सी पर बैठे अम्मा को गीता का दूसरा अध्याय सुना रहे थे. जब से अम्मा ने चारपाई पकड़ी है, बाबूजी ने गीता, रामायण और महाभारत कई-कई बार सुना डाली है.

बाबूजी ने उसका पत्र पढ़ा. लगे हाथों उसने अम्मा को भी बता दिया. अंदर से अम्मा ने चाहे जो कुछ भी सोचा हो, उधर से कह बोल पड़ीं—— इसमें पूछने की क्या बात है, बबुआ! जरूरी काम तो रोके नहीं जा सकते. बाबूजी भी ने इसी से मिलता-जुलता उत्तर दिया था. उसकी पत्नी की अब भी यही इच्छा थी कि यदि संभव हो तो दिल्ली जाना फिर कुछ दिनों के लिए आगे बढ़ा दिया जाये. लेकिन वह उसी रोज रात की गाड़ी से दिल्ली चला गया.

गोश्त खाने और दारू पीने का वह बहुत शौकीन है. लगभग रोज ही गोश्त खाता है और दारू भी पीता है. दिल्ली में पहले रोज काम करने के बाद उसने शाम को होटल के अपने कमरे में बैठ कर, घांस कर दारू पी, और चिकेन सूप और तली हुई मछली खा कर सिनेमा देखने चला गया. रात में दो बजे जब सिनेमा देख कर लौटा तो होटल के मैनेजर ने उसे सूचना दी कि उसकी मां रात में ग्यारह बजे के लगभग मर गयी हैं.

रात ही में उसने कंपनी के कामर्शियल मैनेजर को फोन द्वारा बताया कि उसकी मां की मृत्यु हो गयी है और वह वापस जा रहा है. सारी बातें स्थगित रखिए. बीस-पच्चीस रोज बाद लौटेगा तब अंतिम रूप से सारी की सारी बातें तय कर ली जायेंगी. दिल्ली से चलने के पहले उसने सोचा, बारह-तेरह रोज तक उसे अम्मा के क्रिया-कर्म पर बैठना पड़ेगा. इस बीच न गोश्त मिलेगा, न दारू. सिगरेट और चाय तो चल ही जायगी, क्योंकि समय के बहाव ने इतनी छूट मजबूरन दे दी है. रास्ते भर वह यही सोचता रहा,. . . . बाबूजी अभी जिंदा हैं. उनके रहते, और उनके संतोष के लिए तो सब कुछ करना ही पड़ेगा. साथ में ली हुई दारू वह रास्ते में पीता

आया. दोपहर को डायनिंग कार से मंगवा कर उसने चिकेन रोस्ट, उबली हुई सब्जी और कौ के साथ खाया.

* *

घर पर जब वह उतरा तो सारा घर मुर्दनी की व्यापक शांतिमयता में भीगा हुआ था. बाहर के बरामदे में बर्फ की सिल्ली पर अम्मा का शरीर चादर में रखा था. बाबूजी उसी के नजदीक बैठे अब भी गीता का पाठ कर रहे थे. उसका छोटा भाई चंदर गर्म शाल लपेटे वहीं बाबूजी के पास बैठा बर्फ की सिल्ली से पिघलता पानी, फर्श पर बहता देख रहा था. सबसे छोटा भाई रामू बड़े दरवाजे की दहलीज पर बैठा, घुटनों पर सर दबाए ऊंघ रहा था. छोटी बहन चन्ना और उसके बच्चे भी आ गये थे. उसके चारो बच्चे अंदर सो रहे होंगे. वह दीवार से सटी कंबल ओढ़े बैठी थी. पाखर के पुत्ती पहलवान मारकीन का मैला चादर अपने भारी-भरकम ढीले शरीर पर सर से ओढ़े, पलथी मारे बैठे थे. उनके मुंह में छोटे कद की बीड़ी धधक रही थी. आंखों में नींद थी, लेकिन जबरन जाग रहे थे.

उसके रिक्शे को सबसे पहले पुत्ती पहलवान की नींद से वजनी आंखों ही ने देखा था. देखते ही फौरन उठ कर खड़े हो गये थे, 'बबुआ, आ गये.' सबसे पहले चन्नो लिपट कर जोरों से राई. फिर रानू आ गया, सिसकता हुआ. चंदर दूर खड़ा आंखों से आंसू पोंछ रहा था. पुत्ती पहलवान ने मुंह की बीड़ी बरामदे के नीचे कच्ची जमीन पर फेंक दी. आ कर रिक्शे से सामान उतारने लगे. उसे देख कर चंदर की बीवी जोरों से रोती हुई अंदर आंगन की ओर भाग गयी. चंदर की पत्नी रोते-रोते बेहोश हो जाती थी, उसी को सम्हालने के f
उसकी पत्नी भी पीछे-पीछे दौड़ी. फिर बाबूजी
कर खड़े हो गये. वह उनके गले से लिपट गया. बाब
की आंखें स्वयं गीली थीं लेकिन उनका एक हाथ उस
पीठ पर धैर्य की थपकियां दे रहा था. परिवार के द्व
चच्चा और उनका परिवार भी वहां मौजूद
डिब्रूगढ़ से सुकेशी जिया अभी आयी नहीं थी. सुके
जिया और उसी का इंतजार था, नहीं तो अम्मा सु
ही फूंक दी गयी होतीं.

जगेसर बाबू के यहां से चाय आ गयी. कल रात
सभी लोग चाय पर थे. अम्मा उठ जातीं तो चूल्
जलता. सब लोगों में चाय बंटी. पुत्ती पहलवान ने चा
लोटे में पी और सारी रात बरामदे के खंबे से सटे नी
में ऊंघते रहे.

सुबह अम्मा को बबुआ ने आगी दी. घाट पर उस
सारे परिवार ने बाल मुड़ाये. नाई का उस्तरा तेज नह
था, इससे सभी लोग बाल मुड़ाने की ऊपरी पीड़ा क
झेलते हुए भी नाई से मजाक कर रहे थे. छोटे चच्च
का बड़ा लड़का बड़े-बड़े बाल और आधे गालों तक लंब
मोटी कलम रखाये था. मोहल्ले के दो-चार लड़के घा
के एक किनारे उल्टी हुई नाव की पेंदी पर उठकु हुअ
बैठे, बाल मुड़ने के बाद उसकी शक्ल की तस्वीर खींचने
में लगे हुए थे. लड़के खींच रहे थे, 'अबे, बंबई जाने का
प्लान अब साल भर तक पोसपोन करो.' छोटे चच्चा
का फिल्मबाज लड़का तड़प रहा था.

दो बजे तक सब लोग घाट से वापस आ गये. बबुआ महीन झीने सपेद कपड़े की लांगदार धोती बांधे जनेऊ डाले हुए थे. सुबह से ही ठंडी हवा चल रही

थी. शरीर पर झीनी धोती के अपर्याप्त पल्ले के अतिरिक्त कुछ था नहीं. बबुआ सर्दी में सिकुड़ा जा रहा था. घर के बाहर बरामदे में एक तखत के ऊपर पुराना मैला गद्दा डाल कर सफेद चादर बिछा दी गयी. उसी पर धरे हुए कंबल को ओढ़ कर बबुआ घुटने सिकोड़ कर बैठ रहे. सिगरेट वह बाबूजी के सामने भी पीता था. छोटे चच्चा के सामने भी. लेकिन इस समय उसके पास नहीं थी. अपने बड़े लड़के को बुला कर उसने कहा—मम्मी से पैसे ले कर दो पैकेट सिगरेट ले आओ. और क्या, बैठे-बैठे कुछ काम तो है नहीं. समय कैसे कटेगा? नौकर दौड़ कर दो पैकेट सिगरेट ले आया. शाम को बहुत से लोग मातम-पुर्सी के लिए आए. दसवें तक घर में तो चूल्हा जल नहीं सकता था, इसलिए जगेसर बाबू के यहां राशन भिजवा दिया गया. दो ब्राह्मणियां लगा दी गयीं. रात का खाना उन्हीं के यहां से बन कर आया.

खड़े उर्द की पानीदार दाल और कहीं कच्ची, कहीं जली रोटी देख बबुआ (वह) बुदबुदाया तो, लेकिन खामोश रहा. और कोई दिन रहा होता तो सारे घर में हाय-तोबा हुई होती और कुहराम मच गया होता. जिस प्लेट में ऐसी दाल आयी होती वह पनाले पर चकनाचूर पड़ी होती. मन मारते हुए उसने खींचतान कर दो रोटी खाई और तकिया के पास पड़ी हुई डिब्बी में से निकाल कर सिगरेट सुलगा ली.

वर्षों के बाद आज पहला रोज था जब वह बिना दारू पिये सोने के लिए लेटा था. तकिया पर सर रख कर उपर देखते हुए उसे बड़ा अजीब लग रहा था. मुंह का स्वाद जो थोड़ी देर पहले दारू की तल्खी की तलब महसूस कर रहा था, वह सिगरेट के कशों के धुंआ से स्वाद की वजह से कुछ ढीला पड़ने लगा था. लेकिन मन तड़फड़ा रहा था.

★ ★

सुबह बहुत सर्दी थी. सूरज सड़क के उस पार वाले मकानों के पीछे था. किन्हीं दो मकानों के बीच बने हुए गलियारे से होती हुई सूरज की धूप मकान के सामने छोटे-से मैदान के एक कोने पर बने कुएं की टूटी कगार पर फिसल रही थी. बाबूजी को बहुत मना किया गया, लेकिन वह माने नहीं. तबीयत खराब होने की आशंका पर उन्होंने किंचित ध्यान नहीं दिया. अंदर गर्म पानी से नहाने के बारे में कह दिया, 'उसने हमारी सुख-सुविधा के लिए इतना किया, और क्या मैं उसकी आत्मा के लिए दस रोज इतना भी नहीं कर सकता! सब लोग चुप हो गये. उन्होंने पानी भरवा कर कुएं की कगार पर ही नहाया. बबुआ गंगास्नान करने चले गए. साथ में नाऊ और पंडित भी गया था. सुबह उठना ही बबुआ के लिए मुश्किल था. दस-ग्यारह के पहले तो कभी उठे ही नहीं थे. सर्दियों में या तो नहाया नहीं, और अगर नहाया भी तो गर्म पानी से. नाऊ के जगाने पर बड़ी मुश्किलों से जगे थे और अब सुबह गंगा के ठंडे पानी से बिना साबुन लगाए कैसे नहाएंगे, यह वही जानें.

अम्मा का क्रिया-कर्म बड़ी शान और तामझाम के साथ हो रहा था. बबुआ तनिक भी पैसे की फिकर नहीं कर रहे थे. सारे रिश्तेदारों के यहां अम्मा के गुजरने की सूचना भेजने के लिए रानू को पोस्ट कार्ड ला कर लिखने के लिए कहा गया. ऐसे-वैसे कामों में रानू का मन तो लगता नहीं था, नाक-भौं सिकोड़ कर साइकिल उठायी और डाकखाने चले गए. लौट कर आए तो एक मजमून बना लिया और सामने वाले छोटे कमरे में दरी बिछा कर मेंढक की तरह से बैठ गए.

ग्यारह बजे के लगभग बबुआ जब घाट से लौटे, उसी के थोड़ी देर बाद, सब से बड़ी बहन सुकेशी जिया का रिक्शा आ कर खड़ा हुआ. जीजा भी आए थे. लेकिन बच्चे वह डिब्रूगढ़ में ही छोड़ आये थे. सुकेशी के आने पर थोड़ा-बहुत कुहराम फिर मचा. चन्नो रोती रही, लेकिन सुकेशी आंखें नम करके चुपचाप बरामदे में बाबूजी के पास बैठी मुंह में दातून चबा रही थी. बाबूजी उसे अम्मा के अंतिम दिनों के हाल और उनकी इच्छाएं बताने में लगे हुए थे. मरने के पंद्रह रोज पहले ही तो सुकेशी मय बच्चों के अम्मा को देखने डिब्रूगढ़ से यहां आयी थी. चार-पांच रोज रहने के बाद फिर चली गयी थी. वह यह तो समझती थी कि अम्मा अब अधिक नहीं चल सकतीं, लेकिन उसने यह कतई नहीं सोचा था कि, इतनी जल्दी मर जाएंगी. नहीं तो, जब इतना पैसा खर्चा कर के वहां से यहां आयी थी तो कुछ दिन और रुक जाती. इस समय बाबूजी के पास बैठी हुई भी वह यही सोच रही थी, कि तीन-चार सौ रुपया और खर्च हो गया. लेकिन यह एक ऐसा सत्य था जो किसी से कहा नहीं जा सकता था. इसी सत्य को मन के अंदर पोसे हुए वह अंदर भौजाइयों के पास चली गयी.

दोपहर के खाने समय फिर वही खड़ा उर्द और चावल था. थाली आते ही बबुआ भकुआ गए. थाली उसकी पत्नी लायी थी. जोर से तो नहीं, लेकिन धीरे से उसी पर बरस पड़े. फिर, कमरे से बाहर बरामदे में आते हुए बाबूजी को देखा तो चुप हो गए.

शाम तक बबुआ, चंदर और रानू की ससुराल से साले लोग आ गए. गया वाली बुआजी अपने मझले लड़के के साथ आ गयीं. हरिंदर मामा आ गए. उनका बड़ा लड़का जगाधरी में तैनात था. वह भी अपनी बहू-बच्चों के साथ आ पहुंचा. उसकी टोकरी में बिस्कुट का आधा पैकेट और दालमोठ की पुड़िया पड़ी थी. सुबह गाड़ी पर नाश्ते के लिए ली होगी. घर पर मौजूद सभी छोटे बच्चे उसी पर टूट पड़े.

रात में खाने के लिए सब आदमी लोग एक साथ बैठे. पुत्ती पहलवान चौघड़ा लिये परसने में लगे हुए थे. ससुरालियों का खाना जगेसर बाबू के घर रख दिया गया. काफी भम्भड़ थी.

सुबह नाश्ते के समय भी अच्छा शोरगुल था. बाहर बाबूजी और सुकेशी जिया धूप में बैठी बात करने में लगे हुए थे, और अंदर आंगन में लड़के लोग खेल खेलने और

सीटी बजाने पर तुले हुए थे. सबसे ज्यादा शैतान चन्नो का लड़का गोलू और चंदर की लड़की रक्कू थी. दोनों की मम्मियों ने पिटाई भी की कि ऐसे मौकों पर शोर मचा कर कोई खेल नहीं खेलते, लेकिन वे बच्चे थे और उनके लिए यह बात बहुत भारी पड़ती थी. थोड़ी देर तक वह ओंठ दबाए मातमी जामा पहनने का भरसक प्रयास करते रहे. असफल होते ही रक्कू ने जोरों से सीटी बजाई और फिर खेल शुरू हो गया. चंदर की पत्नी ने तो सोच लिया, ऐसे मौकों की संजीदगी को बच्चे क्या समझें. और यह सोच कर वह सब्जी छीलने में जुट गयी. लेकिन चन्नो को अपने लड़के की करतूतों पर जरूर शर्म आ रही थी. वह रह-रह कर दांत किटकिटा रही थी.

चौथे रोज दोपहर तक सर्दी बहुत कम हो गयी. दो-तीन रोज पहले पछुआ हवा का तेज बहाव जो शुरू हुआ था, वह एक दम से शांत पड़ गया. सामने सड़क के किनारे लगी पाकड़ के पत्ते भी बहने बंद हो गये. म्युनिसिपैलिटी की जमादारिन झाड़ू से पत्तों को बुहार कर एक जगह इकट्ठा कर रही थी. पत्तों को इकट्ठा करने के बाद फिर उसने उसमें आग लगायी और चलती बनी.

* *

चार रोज पहले मकान के हर कमरों और कमरों की प्रत्येक दीवारों पर दुख की जो पर्तें चढ़ गयी थीं, वह पपड़ी बन कर जगह-जगह से गिरने लगीं. बच्चे लोग तो पहले से ही शोर मचाए हुए थे, अब बड़े लोगों ने भी शुरू कर दिया था. उनका कहना था कि समय कैसे कटेगा. मुंह बांध कर रोते-रोते संजीदगी में डूबे रहने की स्थिति को सामने देखते ही सब लोगों के हाथ-पैर फूलने लगते थे. फिर धीरे से किसने शुरू किया, यह तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन शुरू हो गया. बुआजी का लड़का मजाक में बहुत तेज था. तीनों भाभियों से छोटा था. मजाक के मारे उसने तीनों भाभियों का उठना-बैठना मुश्किल कर दिया. बबुआ और चंदर की पत्नियां तो जरा भी नहीं खिसियातीं थी, लेकिन रानू की पत्नी बहुत जल्दी खिसिया कर रोने लगती थी. इसी मजाक में सुकेशी जिया और चन्नो भी शामिल हो गयीं. बबुआ का साला बाहरवाले कमरे में कंबल ओढ़े सो रहा था. चन्नो और हरिंदर मामा के लड़के ने आपस में मिसकौट की और दोनों जनों ने जा कर उसके मुंह भर में डिबिया का सारा काजल पोंछ डाला. सो कर जब उठा तो वह सीधे बाहर के बरामदे में बाबूजी, पुत्ती पहलवान, हरिंदर मामा, बबुआ, जगेसर बाबू और प्रहलाद जी के पास बेंच पर जा कर बैठा. उसकी शक्ल देखने ही पुत्ती पहलवान ने खूब बनाया. सभी लोग हंसे. बाबूजी के लटके हुए चेहरे को देख कर लगता था, कि उनके अंदर की हंसी, मोटी पर्त के नीचे से बाहर फूटने के लिए बुलबुला रही है. फिर वह हल्का-सा मुसकरा कर के ही रह गए.

शाम को जगेसर बाबू, प्रहलादजी और बबुआ वहीं बाहर तखत पर ही तीन गड्डी मिला कर ‘पप खेलने लगे. बबुआ के चेहरे पर पहले अम्मा के मर का दुख तो था, लेकिन उससे कहीं ज्यादा, व्यावहारि चिंताओं की छाप थी. दसवां और तेरहीं के रोज ए हजार आदमियों को भोज पर बुलाने की बात थी. द शोरबेदार सब्जियां, दो सूखी सब्जियां, रायता, पापड़, चटन और चार तरह की मिठाई देने को बाबूजी कह रहे थे बाबूजी, चंदर, बबुआ और रामू जब तीनों-चारो लो सलाह करने के लिए बैठे तो रानू न तो इतने आदमियं के बुलाने के पक्ष में था, और न ही खाने में इतनी चीजे देने के पक्ष में था. कहता, ‘क्या कोई शादी हो रही है जो इतना सब होना जरूरी है. समय को देख कर करना चाहिए. अभी अगले साल भैया रेवा की शादी करने को ठाने हुए हैं. उसमें भी तो खर्चा होता है. सब कैसे सपरेगा.’. . . . . बाबूजी को जरूर बुरा लगा होगा क्योंकि रानू के मुंह से यह सुनने के बाद उन्होंने कह दिया था, ‘भई, जैसा तुम लोग जानो. . . .’ रुपए की चिंता बबुआ को भी थी लेकिन वह बाबूजी के मन के अंदर अम्मा के लिए राग को समझता था, इसीलिए न चाहते हुए भी वह चाहता था कि वही सब हो जो बाबूजी चाहते हैं.

दसवें तक अंदर-बाहर खूब हंसी-मजाक और तिनपतियां होती रहीं. दारू और गोश्त न मिलने की तीखी वेदना को बबुआ पपलू, सिगरेट, हंसी-मजाक और एजेंसी मिलने की चिंता से पाटे रहे. लगभग एक हजार आदमियों को कार्ड बांटे गये और शाम को बाहर के खुले मैदान में तंबू, कनात, मेज और कुर्सियां लगने लगीं. रात में सब लोगों के खाने समय ऐसा लगता ही नहीं था जैसे इस घर में गमी है. लगता था, शादी है.

सब लोगों ने जम कर खाया और शोक प्रकट करते हुए चले गए. बच गए प्रहलादजी और जगेसर बाबू. बबुआ ने भी नहीं खाया था. तीनों आदमियों के लिए अंदर से खाने की बुलाहट आयी तो मना कर दिया, अभी नहीं थोड़ी देर में खायेंगे.

एक रिक्शे पर लद कर तीनों आदमी अंग्रेजी दारू की दुकान गए. दुकान बंद थी. ‘बार’ में गए. प्रहलादजी और जगेसर बाबू ने थोड़ी-थोड़ी पी लेकिन बबुआ ने उसे पहली रात के मिलन की तरह खूब पिया. फिर तंदूरी मुर्गा भी मंगाया. लेकिन दारू ज्यादा हो जाने की वजह से उसको एक बोटी ही खा पाया. फिर वह डगमगाते कदमों से घर आया.

बाहर बेंच पर शाल ओढ़े बाबूजी उसके आने की प्रतीक्षा में बैठे थे. उसने बाबूजी से पूछा— बाबूजी आप लेटे नहीं? तो बाबूजी चुप थे. इतना पूछते हुए वह सीधे अपनी पत्नी के कमरे में चला गया.

बाबूजी थोड़ी देर तक वहीं बेंच पर बैठे सामने की सुनसान सड़क पर जले हुए पत्तों की राख देखते रहे.

३५६, डा. बायम रोड, रेल बाजार, कानपुर-४ □ □ □

स्वान

शरत

मम्मी के पास. . . ऊं-ऊं-ऊं. . . मम्मी के पास जायेगा. . .

तंग आ कर ग्यारह-वर्षीय तेजू ने डेढ़-वर्षीय छोटे बच्चे को एक थप्पड़ लगाया. छोटे बच्चे का दस मिनट से लगातार चलता रिरियाना जोर से चिलकारी मार कर रोने में परिवर्तित हो गया.

तेजू ने घबरा कर चारों ओर देखा. छत पर कोई और नहीं था. नीचे घर में साहब दोपहर के खाने के बाद सोने के कमरे में जा चुके थे. बीबी जी यानी 'मम्मी' के लौट कर आने में अभी एक घंटे से ज्यादा समय बाकी था. परेशान हो कर उसने छोटे बच्चे को असहाय दृष्टि से देखा और फिर उसे गोदी में उठा और झुला कर चुप कराने की कोशिश करने लगा.

उसकी कोशिश के नतीजे में नन्हें बच्चे ने अपने रोने की तेजी और बढ़ा दी. हताश हो तेजू ने बच्चे को छत के फर्श पर बैठा दिया.

★ ★

दोपहर के ढलते आकाश में कुछ बादल तैर रहे थे. घर के सामने वाली सड़क के दूसरी ओर नदी तक खुले खेत थे, जिनमें सरसों की पीली फसल हवा में लहरा रही थी. दाहिनी तरफ बढ़ते शहर के दबाव के बावजूद अब तक बच रहे गांव में खूंटों से बंधी गायें आराम से बैठी जुगाली कर रही थीं. घर के पालतू कुत्ते के छत पर आ जाने से नन्हा बच्चा रोना भूल कर कुत्ते के साथ खेलने लगा.

दोपहर की शांति में छत की मुंडेर के साथ खड़े तेजू के आंसू टपकने लगे. बहुत दूर, आकाश के अंत में, काले बादलों के पास, उसके 'देश' में बरसात हो रही होगी. . .

खपरैल वाली छत के उसके घर में पानी टपकता था. शाम होने से पहले, अब, मां छोटी बहनों को संभाले खाना बना रही होगी. बरसात के झोंकों से चूल्हे में गिरती बूंदों ने घर को धुएं से भर दिया होगा. खेतों से आगे, नदी के उस पार, बहुत दूर, उसका मन उठता गया, हालांकि अपने देश से आते समय उसने और उसके बापू ने बीबी जी को वचन दिया था कि कम-से-कम छह महीनों तक वह लौट कर नहीं आयेगा.

बापू ने कहा था—मां कहती है, पढ़ने में तेरा मन नहीं लगता. अब तू बड़ा हो गया है. बड़े शहर में काम पर जा. दुनिया देखेगा. आदमी बन जायेगा.

★ ★

नन्हें बच्चे के खेलने की रंगीन पेंसिलों के डिब्बे से हरी पेंसिल निकाल कर तेजू ने अपने घर चिट्ठी लिखनी शुरू की—

बापू,

मैंनें तीन महीने नौकरी कर ली है. बीबी जी सुबह से बाहर गयी हैं. बच्चा यहां है. कुत्ते से खेलता है. कुत्ता बड़ा खराब है. मुझे काटता है.

कल बीबी जी ने मुझे मारा. रोटी खाने को नहीं दी. कांच का गिलास मेरे हाथ से फिसल कर टूट गया.

तीन महीने बाद मैं घर लौटूंगा. अब मैं मेहनत से पढ़ूंगा. घर में डाक्टर साहब मोटर में आते हैं. उनको बहुत रुपये मिलते हैं. मैं डाक्टर बनूंगा, बड़े शहर के घरों में बीबी जी लोग बीमार रहती हैं. काम नहीं करतीं.

घर में तीन नौकर हैं. बीबी जी खाना नहीं बनातीं. बरतन नहीं माजतीं. बेयरा साबुन से प्लेट धोता है. साहब मोटर में बैठ कर दफ्तर जाते हैं. बीबी जी बाजार जाती हैं. रोज नयी-नयी चीजें खरीद कर लाती हैं. दिन में कई बार कपड़े बदलती हैं. फटी साड़ी नहीं पहनतीं. मैं मां के लिए नयी साड़ी बाजार से लाऊंगा. छोटी मुन्नी के लिए प्लास्टिक-पैंटी. तब मां की साड़ी गंदी नहीं होगी.

साहब और बीबी जी अखबार पढ़ते हैं. बड़े कमरे में बैठ कर लोगों से बातें करते हैं. क्लब जाते हैं. सोने से पहले साहब और बीबी जी बच्चे को प्यार करते हैं. बच्चा आया के पास सोता है. जब घर में कोई नहीं होता तो आया बच्चे को मारती है.

छोटी मुन्नी के लिए मैं फ्रॉक लाऊंगा. खेलने के लिए एक बड़ा कुत्ता भी. बड़ी हो कर मुन्नी बीबी जी बनेगी. मैं डाक्टर बनूंगा और उसका इलाज करूंगा.

मैं सुबह जल्दी उठता हूं. जब नदी से सूरज निकलता है. बच्चे को गाड़ी में घुमाने ले जाता हूं. घर में दो गाड़ियां हैं. तीन पहियों की लाल वाली और चार पहियों की बड़ी विलायती गाड़ी. लाल गाड़ी मैं मुन्नी के लिए ले आऊंगा. एक बच्चे के लिए एक गाड़ी ठीक है. गांव की कच्ची सड़क पर गाड़ी कैसे चलेगी?

साहब के दफ्तर जाने के बाद बीबी जी उठती हैं. बाजार जाने से पहले बहुत देर शीशे वाली मेज के सामने बैठती हैं, जहां बहुत-सी रंगीन शीशियां हैं. मां के लिए मैं रंगीन शीशी लाऊंगा. तब मां ऊंचे-ऊंचे बाल बनायेगी.

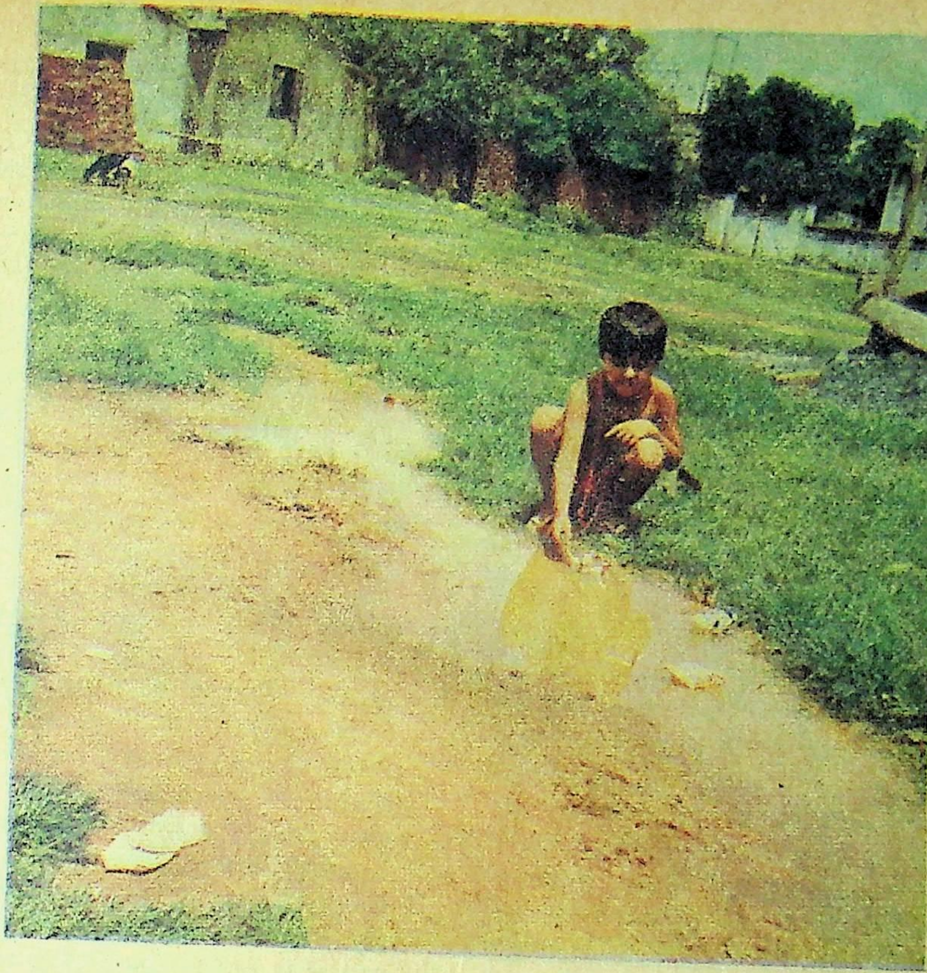

आर. एन. प्रसाद

मधुर मित्तल

नयी साड़ी पहनेगी. बाजार जायेगी.

बापू, तुम्हारे लिए मैं काले रंग का कोट लाऊंगा. तुम फिर दफ्तर में नौकरी करने जाना. हम शहर में आ कर रहेंगे. नये घर में, जिसकी छत नहीं टपकेगी.

★ ★

सड़क पर आती मोटर के हॉर्न से तेजू का ध्यान टूटा. नन्हा बच्चा कुत्ते के साथ खेलता हुआ नीचे उतर गया था. बीबी जी के आने का वक्त हो आया था. दूर क्षितिज पर काले बादल छंटने लगे थे. चिट्ठी में लिखने को उसे कुछ और नहीं सूझा. कागज को तह कर जेब में रखते समय उसे लगा कि उसकी चिट्ठी में कहीं कुछ गलती है. ढलते हुए सूरज से मकान की छाया सड़क पर लंबी फैलती जा रही थी. गांव की गायें जुगाली खतम कर उठ रही थीं. छोटे बच्चे की तलाश में जब तेजू छत से उतर रहा था, तो उसका मन काफी हलका हो चुका था. □□□

नंबर ६, अलेग्जेंड्रा कोर्ट, ६०/१ चौरंगी रोड,
कलकत्ता–२०

पंजाबी लघुकथा

नदी का दूसरा किनारा

● रामसरूप अणखी

एक बस-अड्डे से दूर हट कर हम शीशमों की छांव में सड़क-किनारे जा बैठे. तुमने मेरा हाथ भींचते हुए कहा था—जगरूप, तुम एक नदी हो. गोता लगा कर मैं वापस नहीं आऊंगी. सांस लौटे चाहे न लौटे. और मैंने तुम्हारी नाक की उठान को पकड़ते हुए जवाब दिया था—तुम नदी का दूसरा किनारा हो.

सुलोचना, इस खुश्क इलाके में हमें नदी का खयाल कैसे आ गया था?

और अब मैं अपनी भविष्यवाणी पर हैरान हूं. सचमुच ही तुम नदी का दूसरा किनारा थीं. या अब दूसरा किनारा हो गयी हो.

तुम्हें याद है एक बार एक शहर में हम मिल गये थे! मिले तो ऐसे थे जैसे तिथि और दिन और समय पूर्व-निश्चित हों. शहर में मेले जैसी भीड़ थी. ऐसा लगता था जैसे इस मेले का हर आदमी हर औरत हमें जानता हो. और शहर में कोई भी ऐसी जगह नहीं थी जहां हम घंटा, आधा घंटा बैठ सकें और मन हलका कर सकें. आखिर शहर से दूर एक नाले के किनारे, सरकंडों की ओट में जा बैठे थे. बातें थीं कि खत्म ही नहीं होती थीं. दिन छिपा था तो हम स्टेशन पर पहुंचे थे और गाड़ी में चढ़ गये थे. पता नहीं किधर जा रहे थे. जहां जा कर गाड़ी रुकी थी, उतर गये थे. लौटते हुए फर्स्ट क्लास का टिकट ले लिया था. ऊपर वाली गद्देदार सीट पर तमाम सफर के दौरान मैंने तुम्हारे शरीर में अपने शरीर को गूंथे रखा था. नीचे वाली सीट पर एक 'रायसाहब' पड़े थे. सारे सफर में वह करवटें बदलते रहे थे. स्टेशन आने पर तुम तो डब्बे से नीचे उतर गयी थीं. पर मुझे बांह से पकड़ कर उन 'रायसाहब' ने कहा था—बेटा जी, फर्स्ट क्लास के डब्बे में पहले भी कभी सफर किया है?

—जी हां...मैं घबरा गया था.

—फर्स्ट क्लास में यों सफर नहीं किया जाता.

—कैसे?

—देखो, तुम लोग सारी रात मुझे डिस्टर्ब करते रहे.

—ऐक्स्क्यूज मी! मैंने कांपते-कांपते कहा.

—नेवर माइंड! नैवर माइंड! और उन्होंने मेरा कंधा थपथपा दिया था. तुम नीचे खड़ी पानी-पानी हो रही थीं.

जब हम बिछुड़ने लगे थे तो मैंने कहा था—रूमाल? और तुमने अपने बैग में से नया-निकोर रूमाल निकाल कर मुझे दे दिया था. जब कभी भी तुम मिलती थीं और मेरे पास रूमाल नहीं होता था, तो तुम एक रूमाल मुझे दे देती थीं. जैसे एक अतिरिक्त रूमाल तुम हमेशा अपने बैग में रखती हो.

कितना अरसा हो गया है! अब तुम कभी नहीं मिलीं.! शायद तुम्हारा ब्याह हो गया है! या शायद तुम किसी और आदमी को रूमाल देने लग गयी हो. मुझे कुछ पता नहीं. खैर, मुझे इस बात का कोई गम नहीं है.

और तो सब कुछ छोड़ो, पांचवें-छठे महीने तुम अगर एक रूमाल ही लिफाफे में डाल कर भेज दिया करो तो मैं समझ लूं कि मैं तुम्हारा कुछ लगता हूं. या तुम मेरी कुछ लगती हो. इतना भी नहीं? इतना-सा तो कर दो!

...नदी के इस किनारे की पुकार है. □

ग्रीक दंतकथा

नीओबी : पत्थर के आंसू

नीओबी थीबिस के सम्राट एंफीयन की पत्नी थी. कहा जाता है कि नीओबी के पिता टेंटालस और मां डायोनी देवताओं के बड़े विश्वास पात्र माने जाते थे. देवताओं से निकट संपर्क नीओबी को धरोहर में मिला था. स्वर्ग के देवता जियस की स्त्री लीटो से नीओबी के बहुत मधुर संबंध थे. नीओबी छह वीर पुत्रों और छह सुंदर कन्याओं की मां बनी. अपनी उर्वर कोख का उसको बहुत गर्व हो गया. इससे उसके मन में यह दंभ आ गया कि वह जियस की स्त्री लीटो से भी बढ़ कर थी. किंतु अधिक संतान होने का वह अहंकार नीओबी के लिए बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण साबित हुआ. लीटो के स्वयं के दो संतानें थीं और अपनी तुलना में जब नीओबी ने उसे हीन बताया तो लीटो के अभिमान ने जियस के पौरुष को झकझोर दिया और उसने क्रुद्ध हो कर नीओबी को दंडित करने का निश्चय किया. जियस ने नीओबी के महल में अपोलो और आर्टमिज को भेज कर उसके छह लड़के और छह लड़कियों को कत्ल करवा दिया. नौ दिन तक वे रक्तस्नात पड़े रहे क्योंकि उनको दफनाने वाला कोई न था. जियस ने शेष सबको पत्थरों में बदल दिया. दसवें दिन देवताओं ने बारह शवों को दफनाया. जियस ने नीओबी को सीफलस की एकांत पहाड़ियों में चट्टान बना दिया था. लेकिन उस हालत में भी वह अपना गहरा दुख न भूली थी. एक स्रोत का पानी सदैव उस चट्टान पर हो कर बहता रहता है, जिससे लगता है मानो नीओबी अपनी संतानों के शोक में निरंतर विलाप कर रही हो. □

(प्रस्तुतकर्त्ता : गोपालचंद्र जोशी)

दो ग्रीक दंतकथाएं

पराक्रमी बेलारफोंटीज

बेलारफोंटीज देवताओं के प्रसिद्ध शत्रु सिसीफस का पोता था. वह कर्निथ के वंश का था. और उसका वास्तविक नाम हिप्पोनीज था. जब वह तरुण हुआ तो उसने अत्यंत शौर्यपूर्वक बेलारफोना नामक एक भीषण दैत्य को मार डाला. इस पराक्रम से खुश हो कर टाईरंस के राजा प्रोटस ने उसको अपने यहां निमंत्रित किया. प्रोटस की नवयौवना रानी एंटिना बहुत खूबसूरत थी और तरुण और सुंदर बेलाफोंटीज को देखते वह उससे प्रेम करने लग गयी. बेलारफोंटीज को बहुत समय तक आमोद-प्रमोद के वातावरण में रखा गया. प्रोटस की अनुपस्थिति में जब-जब रानी एंटिना ने बेलारफोंटीज से प्रणय-याचना की तब-तब उसने कठोर बन कर उसको अनसुना कर दिया. एंटीना का प्यार चोट खा कर प्रतिकारात्मक हो उठा और अपने पति प्रोटस से उसने बेलारफोंटीज के प्रति मिथ्यापवाद लगा दिये. प्रोटस ने उसको समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया. उसने बेलारफोंटीज को एक संकेतात्मक पत्र दे कर लीसिया अपने श्वसुर आयोबेटीस के पास भेजा जिसका आशय यह था कि पत्रवाहक को मौत के घाट उतार दिया जाये. आयोबेटीस ने सबसे पहले उससे कहा कि वह आग उगलनेवाले दैत्य शिमेरा से युद्ध करे और उसको मार डाले. बेलारफोंटीज ने अपने पंखदार उड़न घोड़े पेगासस की मदद से भयंकर दैत्य शिमेरा को मार डाला. उसके बाद सोलमी और अमेझन लोगों से उसका भीषण संग्राम हुआ और बेलारफोंटीज ने उन्हें भी मार गिराया. अपनी वापसी विजय-यात्रा के समय वह शत्रुओं के उन शूर योद्धाओं को भी खदेड़ कर नष्ट कर देता है जो उसके निकलने की ताक में आक्रमण के लिए छिपे हुए थे. अब आयोबेटीस की समझ में आता है कि बेलारफोंटीज में कोई दैवी अंश है और वह उसको पास रख लेता है. यही नहीं वह उसको अपना आधा राज्य दे देता है और अपनी लड़की का विवाह उससे कर देता है.

बाद में हम होमर के महाकाव्य में इस किंवदंती का नाटकीय विस्तार इस तरह पाते हैं : बेलारफोंटीज की दिव्य शक्ति और दिव्य घोड़े के कारण सभी देवता उससे घृणा करने लगे और उन्होंने उसको एकाकीपन का शाप दे दिया. जंगलों में अकेले घूमते हुए जब बेलारफोंटीज अपनी पीड़ा को न भूल सका तो वह अपने कलेजे को ही निगल गया. देवताओं के प्रति उपेक्षा और मानवीय स्वाभिमान का इससे सुंदर आकलन और क्या हो सकाता था ? □

● बी. अनंत

मयूराक्षी

आरगस इनेकस का लड़का था. यह भी कहा जाता है कि वह पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न एक राक्षस था और उसके शरीर पर सब जगह आंखें थीं जिससे वह आगे-पीछे, दांये-बांये, ऊपर-नीचे सब जगह एक साथ देख सकता था. इसलिए आरगस का नाम पेनोप्टीज पड़ गया था जिसका आशय होता है सर्वदृष्टा. वह स्वर्ग की रानी ऐरा के यहां पहरेदार था. बात यह थी कि इनेकस की अत्यंत रुपवती पुत्री आयो स्वर्ग की रानी हेरा के यहां पुजारिन थी. स्वर्ग के देवता जियस की आंखों में आयो चढ़ गयी थी. आयो और जियस एक दूसरे से प्रेम करते थे. रानी हेरा यह सह न सकी और ईर्ष्यावश उसने आयो को एक सफेद गाय में बदल दिया. और उस गाय की चौकसी का काम सर्वदृष्टा आरगस को सौंपा गया था. जियस ने आयो को पाने का उपाय खोजा. उसने संगीत के देवता हरमीज को आरगस के पास भेजा. संगीत के सम्मोहन से आरगस बच न सका. हरमीज ने अपनी बंसी और मृदंग के मोहक जादू से पेनोप्टीज की सब आंखों को एक-एक करके सुला दिया और हंसिये जैसी तलवारसे उसका सिर काट लिया. रानी हेरा को अपने मृत पहरेदार से बड़ा स्नेह था और उसकी स्मृति अक्षुण्ण रखने के लिए हेरा ने अपने मृत पहरेदार पेनोप्टीज की सभी आंखे अपने पवित्र पक्षी मोर की पूंछ में लगा दीं. □

(प्रस्तुतकर्ता : गोपालचंद्र जोशी)

कृतियां

दो कहानी संग्रह

'कड़वे सच'

लेखिका : दीप्ति खंडेलवाल; पराग प्रकाशन, दिल्ली ११००३२; १३०-९ पृष्ठ; मूल्य : ९ रुपये.

हिंदी में लेखिकाओं की कथाकारिता बहुत-से जायज-नाजायज कारणों से 'जनाना लेखन' जैसी फबती का शिकार रही है. दीप्ति खंडेलवाल, सौभाग्य से, ऐसे लेखन से ऊपर रही हैं– यद्यपि दूसरे दोष उनके कृतित्व में प्रचुर मात्रा में मिल जायेंगे.

'कड़वे सच' में उनकी ग्यारह कहानियां संकलित हैं––**'क्षितिज'**, **'मूल्य'**, **'एक पारो-पुरवैया'**, **'परिणति'**, **'देह की सीता'**, **'युद्धरत'**, **'ये भी कोई गीत है'**, **'जिजीविषा'**, **'विषपायी'** और **'कटु सत्य'**. मगर इन कहानियों के माध्यम से वह किसी भी तरह की विशिष्टता स्थापित नहीं कर पातीं. न बात की, न बात कहने के अंदाज की.

हम मानते हैं कि सादगी भी एक जबरदस्त गुण है. पर दीप्ति निहायत सादगी से कहानी कहते-कहते, जाने किस असमर्थता या मजबूरी की शिकार हो कर अति नाटकीयता का आंचल ओढ़ लेती हैं––बार-बार, और पाठक को भी व्यर्थ चिड़चिड़ाहट में झोंक देती हैं. यह चिड़चिड़ाहट कई बार घनघोर आश्चर्य भी बन जाती है. मसलन पहली कहानी **'क्षितिज'** के संदर्भ में––कि यह कहानी एक पुरस्कृत कहानी है. (भला पुरस्कार देने वालों ने इसमें क्या देखा?)

दीप्ति के बहुत-से शुभेच्छुओं ने उन्हें पति-पत्नी या प्रेमी-प्रेमिका के टूटते हुए संबंधों की लेखिका कहा है. और दीप्ति ने इसे शायद मान भी लिया है. मगर असलियत यह है कि जब वह इन संबंधों की कहानियां कहती हैं, तभी टिपिकल 'जनाना' लेखन की मिसालें भी कायम कर बैठती हैं (मसलन **'ये भी कोई गीत है!'**) इस लेखकीय गुहा से निकलते ही उनमें समसामयिकता के प्रति सजगता भी लक्षित होने लगती है. उदाहरण है **'विषपायी'**. इस कहानी में भी छोटे-मोटे दोष हो सकते हैं, मगर यह इस संग्रह की सम्भवतः सबसे सार्थक कहानी है. पारिवारिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के घेरों में दबे-फंसे एक सीधे-सादे तरुण के जीवन-विमुख होने का खासा कन्विंसिंग चित्रण है इसमें. **'युद्धरत'** भी इसी किस्म की एक काल सापेक्ष कहानी है; कमजोर है. पिटा हुआ रोमानी (या आउटडेटेड 'जनाना') चश्मा कितना घातक है, इसका प्रमाण **'परिणति'** और **'जिजीविषा'** की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है. जिस किस्म की व्यथा-पीड़ा को दीप्ति **'परिणति'** में रोमांस के माध्यम से कहती हैं, उसी बात को **'जिजीविषा'** में रोमानियत से कुछ ज्यादा पिंड छुड़ा कर कहीं अच्छे और समर्थ ढंग से कह लेती हैं. . . हां, **'एक पारो पुरवैया'** जैसी कहानी जरूर एक संतुलित कहानी है–– बावजूद जनाने नजरिये और अतिनाटकीयता के.

बाज वक्त थोड़ी झल्लाहट हो सकती है, मगर यह मानना पड़ेगा कि कथा-लेखिका दीप्ति हर हालत में एक नयी और अधिक सार्थक व समय-सापेक्ष जमीन तलाश रही हैं. यह लेखकीय संघर्ष एक शुभ संकेत है, और दीप्ति खंडेलवाल के प्रति आशावान व उत्सुक बने रहने का आधार है.

☐ **रा. अ.**

दीप्ति खंडेलवाल

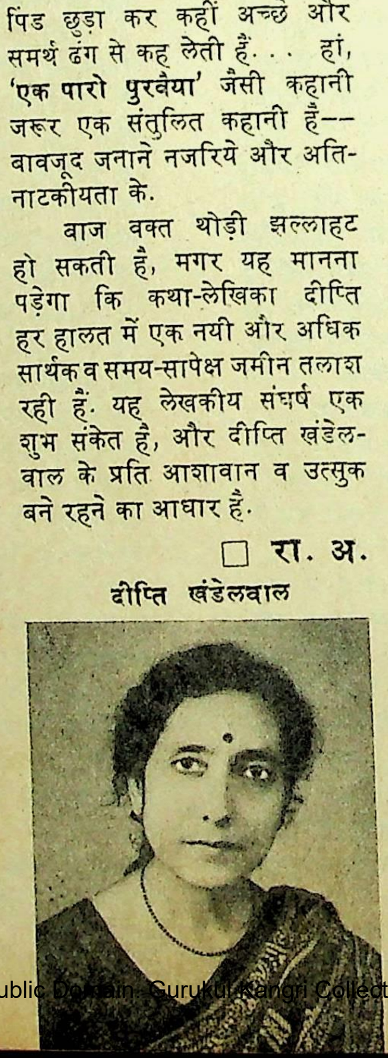

'सत्तारे मौसी'

लेखक : दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ; स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद; पृष्ठ : ११८; मूल्य : ५ रुपये.

दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ नेपाली और हिंदी लेखन में एक खासा परिचित नाम है. हिंदी में यह उनकी दूसरी पुस्तक है.

श्रेष्ठ अनिवार्यतः निम्न-मध्यवर्गीय पात्रों की परिस्थितियों और दुविधाओं-पीड़ाओं के कथाकार हैं. उनके अधिकांश पात्र अर्थिक अभावों और विडंबनाओं के शिकार हैं, बहुधा मानसिक और सामाजिक रुप से पिछड़े हुए हैं– और इसी कारण संभवतः प्रकृति भी उनका शोषण करती है.

'सत्तारे मौसी' में दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ की तेरह कहानियां हैं, और ये सब प्रायः इसी कसौटी पर कसी जाने से ताल्लुक रखती हैं. मगर श्रेष्ठ की कलम शायद बड़ी ही वेगवान है–– जैसे उसकी बस या ट्रेन छूटी जा रही हो. इस बस या ट्रेन को पकड़ने की रौ में वह अंधाधुंध भागते हैं और बीच में उन तमाम बारीकियों और मामूली (!) चीजों को नजर-अंदाज कर जाते हैं, जो (अन्यथा) रचना के प्राण बन सकती थीं, या कहानी की प्रभाववत्ता और विश्वसनीयता में अद्‌भुत वृद्धि कर सकती थीं. फिलहाल स्थिति यह है कि संग्रह की उनकी अधिकांश कहानियों में एक खास तरह की गहराई और फीलिंग का अभाव बुरी तरह अखरता है. **'जरूरत'** जैसी कहानी पढ़ कर पाठक बरबस सोचता है कि आखिर क्या कमी रह गयी है. कमी वही है––सरपट भागने की आदत. **'सत्तारे मौसी'** और **'मजबूरी'** पढ़ कर कुछ न महसूस करने पर भी पाठक खीझता है.

मगर यही गति **'केटी'** की रचना के दौरान सहसा भाषा की मितव्ययिता बन कर भी सामने आती है; और तब दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ की रचना-क्षमता में विश्वास होने लगता है. **'बंधे-अनबंधे'** को भी

एक ठीक-ठाक कहानी माना जा सकता है.

'बंध्या धरती और नीरस बादल', **'भगीरथी'** और **'वधू'** कहानियां भी श्रेष्ठ के रचनाकार के प्रति आश्वस्त करती हैं. **'भागीरथी'** की सुकुमारी किशोरी गंगा किस प्रकार सपने देखने की अभ्यस्त होने से पहले ही सपने देखने वाली आंखें और मन खो बैठती है, यह पाठक में टीस पैदा किये बिना नहीं रहता. और इस कहानी में भी श्रेष्ठ का वेग उनकी भाषागत मितव्ययिता बन कर ही सामने आता है.

'दिशाहीन' नवधनाढ्य वर्ग के तरुणों की दुर्भाग्यकारी मगर संपन्नतामयी नियति पर एक टिप्पणी है. कहानी अपेक्षाकृत अधिक काल सापेक्ष है. मगर नव-नेपाल की पृष्ठभूमि पर आधारित **'एक और मौत'** में फिर गहरायी की कमी अखरती है और कहानी अत्यंत बढ़िया न बन कर अत्यंत साधारण रह जाती है.

मगर दुर्गा की लेखकीय पकड़ और दृष्टि निश्चय ही सम्यक और स्पष्ट है. इनके रहते उनसे अपेक्षाएं बनी ही रहेंगी.

□ **रा. अ.**

एक व्यंग्यरचना-संग्रह

'उड़ते उल्लू के पंख'

लेखक : लतीफ घोंघी; हस्ताक्षर प्रकाशन; ग्रेट ईस्टर्न रोड, तात्या पारा, रायपुर (म. प्र.); दो रुपये पचास पैसे

संग्रह में लेखक की १७ व्यंग्य रचनाएं शमिल हैं. लतीफ मूल रूप से व्यंग्य कथाकार हैं और व्यंग्य लेखन में सफल भी हैं. फिर भी संग्रह की रचनाओं को पढ़ने के बाद लगता है, जितनी सफलता उन्हें मिलनी चाहिए थी; वह मिली नहीं है. इसके बावजूद, सीधी-सपाट और

लतीफ घोंघी

सरल भाषा में लिखा गया व्यंग्य स्पष्ट हो कर सामने आया है. यही कारण है कि पाठक तिलमिला उठता है.

संग्रह की पहली रचना है **'चार शीर्षकों वाला व्यंग्य'**. यह एक ही विषय को ले कर चार विभिन्न पात्रों के बीच लिखी गयी रचना है. **'धुन वाली श्रीमती'** में अमरीका के लाल गेहूं पर, **'पागल भीड़ का सिपाहसलार'** में नौकरशाही पर, **'काफी-हाउस का शिकारी'** में शिक्षित बेकार नवयुवक वर्ग पर, और **'शतरंज का पागल मोहरा'** में असफल युवा कवि पर जोरदार छींटाकशी की गयी है.

'एक संदर्भहीन चिकित्सा' में डॉ. जापानी के माध्यम से दोतरफा मार की गयी है. एक तो नीम हकीम डाक्टरों पर, जिनका पेशा पैसा कमाना है, और दूसरा उन पढ़े-लिखे और बेकार डॉक्टरों पर जो गांव में बसने से घबराते हैं.

युद्ध होता है तो साहित्यकारों खासकर कवियों की बन आती है. वे जोर-शोर से कवि-सम्मेलनों में वीर रस की कविताएं पढ़ते हैं. देश के लिए मर मिटने को तैयार हो जाते हैं; किंतु यदि उन्हें युद्ध लड़ने जाने की बात कह दी जाये, तब उनकी क्या हालत होती है—इसका यथार्थ चित्रण किया गया है **'कविवर निडर मोर्चे पर'** में.

लतीफ का व्यंग्य अंतर्मुखी ह उन्होंने व्यंग्य को सार्थक रूप दिय है. उन्होंने व्यंग्य के जिस अंश को भी छुआ है, गहरी पकड़ के साथ छुआ है.

संग्रह की सबसे चर्चित और तीखे व्यंग्य वाली रचना है **'किस्सा तीसरे बंदर का'**. **'शिक्षा दर्शन'**, **'सदाचार की बोतल'**, **'अनिवार्य परिवार नियोजन'**, **'अलादीन का चिराग'**, **'सत्यवान-यमराज संवाद'**, **'भूत सम्मेलन'**, **'आत्महत्या के पहले'** रचनाएं सामान्य कोटि की हैं.

लतीफ के व्यंग्य में ताजगी और चुभन है. कम शब्दों में बहुत कुछ कह देना लतीफ की सफलता का राज है. इनकी रचनाओं को समझने के लिए दिमागी कसरत की जरूरत नहीं पड़ती.

□ **चेतन आर्य**

लघुकथा : दो अंक

संपादक : अश्विनी कुमार द्विवेदी; प्रकाशक : साहित्य श्री सहयोग संघ; मूल्य : ७० पैसे.

यह अपने ढंग की अकेली पत्रिका है. इस चौमासिक प्रकाशन के दो अंक सामने हैं और इन दोनों अंकों में कुल सत्ताईस लघुकथाएं हैं.

प्रवेशांक विनोबा भावे की एक तीखी लघुकथा **'शौचालय'** से प्रारंभ हुआ है. इसके अतिरिक्त अन्य अच्छी लघुकथाएं हैं—**'छुटकारा'** (रामनारायण उपाध्याय), **'पूत के पांव'** (के. पी. सक्सेना), **'अपना बच्चा'** (जार्ज मेगास), **'विद्रोह'** (पृ[illegible]वीराज मोंगा).

'लघुकथा' का दूसरा अंक पहले की अपेक्षा अधिक सशक्त है और इस अंक की लगभग सभी लघुकथाएं ज्यादा अच्छी हैं. चयन की इस प्रगति को देख कर अगले अंकों के प्रति आश्वस्त हुआ जा सकता है.

□ **अ. ना. मु.**

यूरोपीय साहित्य-चर्चा

कहानी की लोकप्रियता और शक्ति में उतार

• चंद्रगुप्त विद्यालंकार

कुछ अरसा पहले प्रख्यात कथाकार चंद्रगुप्त विद्यालंकार यूरोप के दौरे पर गये हुए थे. वहां विभिन्न देशों के साहित्य और साहित्यकारों की स्थितियों का उन्होंने अध्ययन किया. इस लेख में, जिसे उन्होंने स्टॉकहोम में 'सारिका' के लिए विशेष रूप से लिखा था, उन्होंने रूस और स्वीडन में कहानी की स्थिति की चर्चा की है.

पिछले छह महीनों से मैं यूरोप में हूं और कितने ही देशों के साहित्यकारों तथा बुद्धिजीवियों से विभिन्न विषयों पर बातचीत करने के अवसर मुझे निरंतर मिल रहे हैं. विचार, उद्देश्य, शैली या अभिव्यक्ति की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न और कभी-कभी तो प्रतिरोधी रहते हुए भी सभी देशों के लेखक जैसे एक ही ढंग से बोलते हैं. उनकी प्रतिक्रियाएं भी लगभग एक ही प्रकार की हैं. सभी देशों के लेखक कम-अधिक एक ही तरह अपने को विश्व की प्रतिभा समझते हैं. यह अनुभूति भी अधिकांश देशों के लेखकों में एक ही समान है कि उनका उचित मूल्यांकन नहीं किया गया. पर जहां तक एक लेखक का दूसरे लेखक से संबंध है, वे एक-दूसरे को आसानी से और प्राय: अच्छी तरह समझ लेते हैं.

इस बार यूरोप आने से पहले मैं कहानी के संबंध में पूरी तरह आश्वस्त था. पिछले ५० बरसों (पहली कहानी मैंने १९२५ में लिखी थी) से मेरी यह धारणा रही है कि कहानी नामक यह नयी साहित्यिक विधा आज के विश्व की एक अत्यंत लोकप्रिय और सशक्त विधा है. मेरा यह भी खयाल था कि यह स्थिति अभी बहुत समय तक जारी रहेगी. पर इस बार मैंने कितने ही देशों में पाया कि कहानी की लोकप्रियता और शक्ति में स्पष्ट रूप से भाटा प्रारंभ हो गया है.

इस संबंध में विविध देशों में भिन्न-भिन्न स्थिति है. यहां मैं सिर्फ दो सीमांत उदाहरण ले रहा हूं. रूस और स्वीडन. वर्तमान कहानी के विकास में रूस का योगदान सब से अधिक महत्वपूर्ण है. आज भी रूस में कहानी के पाठक लाखों बल्कि करोड़ों में हैं. पर वहां भी कहानी की अपेक्षा नाटक कहीं अधिक सशक्त और लोकप्रिय विधा बन गयी है. अन्य देशों में यह उतार या भाटा और भी अधिक स्पष्ट रूप से दिखायी देता है. सब से अधिक स्वीडन में.

स्वीडन प्रति वर्ष साहित्य का नोबेल पुरस्कार देता है और वहां की 'स्वीडिश अकादमी' साहित्य की श्रेष्ठता मापने के मानदंडों का निर्माण करने का प्रयत्न करती है. उसी स्वीडन में आज 'कहानी' बहुत अंशों तक एक उपेक्षणीय साहित्यिक विधा बन गयी है. स्थिति यहां तक पहुंच गयी है कि यदि कोई नया लेखक कहानी लिखता है, तो वह सिर्फ स्वांत: सुखाय. इसकी संभावना पांच प्रतिशत ही है कि वह कहीं छप पायेगी. नये कहानी-संग्रह प्रकाशित नहीं हो रहे हैं. नोबेल पुरस्कार विजेता मार्टिन्सन के १९३५ के आसपास लिखी गयी कहानियों के संग्रह आज भी छप रहे हैं. पर अन्य कहानी लेखकों को प्रकाशक नहीं मिलता.

भारत में भी हिंदी प्रकाशक बहुत कम कहानी-संग्रह छापते हैं. अच्छे कहानी-संग्रह की अपेक्षा वे घटिया उपन्यास छापना कहीं अधिक पसंद करते हैं. पर फिर भी हिंदी कहानी-लेखकों के लिए कितने ही मार्ग खुले हैं. हिंदी में कितनी ही अच्छी मासिक कहानी पत्रिकाएं हैं. अन्य भारतीय भाषाओं में भी कम-अधिक यही स्थिति है. पर स्वीडन में ऐसा नहीं है. यहां सिर्फ एक अच्छी साहित्यिक पत्रिका है, जिसमें प्रति मास ४०० पृष्ठ रहते है. पर यह पत्रिका प्राय: सिर्फ एक स्वीडिश कहानी छापती है. पांच बड़े दैनिक पत्र हैं जो अपने साहित्यिक संस्करण में एक-एक कहानी छापते हैं. वह भी नियमित रूप से नहीं. बड़े आकार के २६ से ६४ पृष्ठ इन पत्रों में प्रति दिन रहते हैं. खेलों के समाचार लगभग चार पृष्ठ प्रति दिन. वे चाहें तो प्रति दिन एक कहानी छाप सकते हैं. स्त्रियों, बच्चों आदि के पत्र स्वीडन में अच्छी संख्या में मिलते हैं. उनका स्तर भी बहुत अच्छा है. पर कहानियों में उन्हें रुचि नहीं है. विज्ञान, शिक्षा, व्यापार, व्यवसाय आदि के संबंध में बहुत ही ऊंचे स्तर के पत्र स्वीडन में प्रकाशित होते हैं. पर साहित्य उनका क्षेत्र नहीं है. ऊंचे व्यवसायपतियों की एक बहुत सुंदर पत्रिका प्रकाशित होती है, जो छपाई आदि की दृष्टि से विश्व की सबसे श्रेष्ठ पत्रिकाओं में है (मूल्य एक प्रति अठारह रुपये.) वह एक कहानी प्रति अंक में जरूर देती है. सिर्फ एक.

मैंने इस संबंध में प्रकाशकों से बातचीत की, तो उन्होंने वही उत्तर दिया, जो भारतीय प्रकाशक देते हैं—कहानी-संग्रह बहुत कम बिकते हैं. उनकी अपेक्षा तो वैज्ञानिक तथा तकनीकी ग्रंथ भी बहुत बड़ी संख्या में बिकते हैं (भारत में ऐसा नहीं है.) पत्र-प्रकाशकों से मैंने यह जानना चाहा कि वे साहित्यिक पत्र क्यों नहीं निकालते. उनका कहना है कि साहित्यिक पत्र प्रकाशित करना सबसे अधिक खर्चीला काम है. सभी कहानी-लेखक, कवि तथा साहित्यकार अपनी रचनाओं के लिए बहुत बड़ी राशि मांगते हैं

साहित्यकार अपनी पुस्तकों द्वारा बहुत बड़ी राशि अर्जित करते हैं (देश भर के हजारों पुस्तकालयों से पाठक जिनकी पुस्तकें ले कर पढ़ते हैं, उनका पूरा हिसाब रखा जाता है.) गत वर्ष पुस्तकालयों से ले कर साढ़े पांच करोड़ पुस्तकें पढ़ी गयीं. प्रति पाठक प्रति बार के लिए राष्ट्र मूल लेखक को ४५ पैसा देता है. एक पुस्तक एक वर्ष में एक लाख पाठकों ने पढ़ी तो लेखक को ४५००० रुपया मिलेगा, उसकी तुलना में सामयिक साहित्यिक पत्र उन्हें कुछ दे नहीं पायेंगे.

★ ★

आखिर वे कारण क्या हैं, जिन्होंने स्वीडन-से प्रबुद्ध देश को 'कहानी' जैसी समर्थ, सुंदर और दिलचस्प विधा से इस हद तक विमुख कर दिया है. आज कितने ही स्वीडिश लेखक भी यह अनुभव कर रहे हैं कि यही स्थिति रही तो इस देश में कहानी का पूरी तरह ह्रास हो जायेगा.

किस्से-कहानियां साहित्य की सब से प्राचीन विधा हैं और हमें मानना चाहिए कि उन्हीं से १९वीं सदी के मध्य में वर्तमान कहानी का जन्म हुआ. यह भी ठीक है कि तब तक मानव जाति इतनी जागरूक हो गयी थी कि इस नये माध्यम की ओर विश्व भर का ध्यान आकृष्ट हुआ और तीव्र गति से 'कहानी' विकसित होती चली गयी. स्पष्टतः 'कहानी' नामक इस नये माध्यम में कुछ ऐसी कलापूर्ण नवीनता थी, जो किसी अन्य माध्यम में नहीं थी. यह नवीनता क्या थी?

कहानी द्वारा सिर्फ एक भाव का चित्रण किया जाने लगा. जितना अनोखा भाव होगा और उसका जितना कलापूर्ण चित्रण होगा, कहानी उतनी ही अच्छी होगी. दूसरे शब्दों में किसी तरह का गुथीलापन कहानी में बरदाश्त नहीं होगा. स्थिति यहां तक पहुंची कि यह माना जाने लगा कि कहानी में एक वाक्य भी ऐसा नहीं रहना चाहिए, जो उसके केंद्रीय भाव के चित्रण में सहायक न हो.

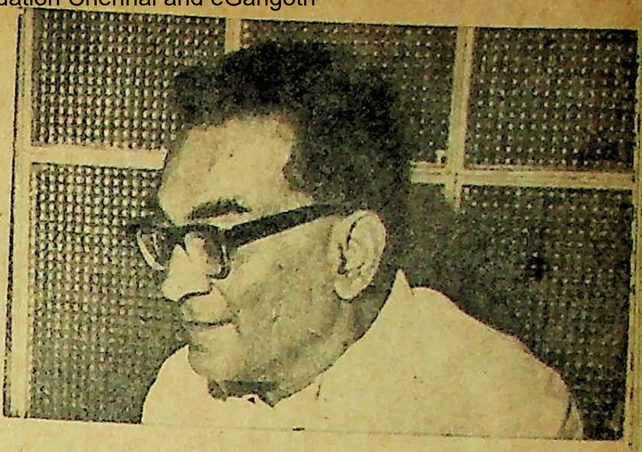

चंद्रगुप्त विद्यालंकार

और इस तरह शीघ्र ही कहानी नामक यह नया माध्यम सबसे कठिन साहित्यिक विधा बन गया. यानी अच्छी कहानी एक अत्यंत दुष्प्राप्य वस्तु बन गयी. अच्छे और प्रामाणिक आलोचकों का कहना है कि जिन दिनों कहानी सबसे अधिक लोकप्रिय विधा थी, उन दिनों भी बहुत अच्छी और पूरी तरह निर्दोष कहानियां बहुत कम लिखी गयीं. यानी कि एक तरफ कहानियां सबसे अधिक लिखी और पढ़ी जा रही थीं, दूसरी तरफ यह भी माना जा रहा था कि अच्छी तथा निर्दोष कहानियां उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं. इस स्थिति का वही परिणाम हुआ, जो स्वाभाविक था. यानी विश्व के सैकड़ों कहानी-लेखकों द्वारा कहानी की स्वीकृत तकनीक के खिलाफ विद्रोह.

'विद्रोह' की जगह सिर्फ 'अस्वीकृति' कहना अधिक उपयुक्त होगा. अधिकांशतः इस अस्वीकृति का रूप यह था कि 'कहानी' नाम से चाहे जो कुछ लिखा जाने लगा. शुरू-शुरू में यह कोशिश भी हुई कि कहानी की स्वीकृत तकनीक की उपेक्षा करके कुछ ऐसा लिखा जाये, जो पाठकों को ग्राह्य हो. कुछ समझदार लेखकों को इस प्रयत्न में असाधारण सफलता मिली. उन्होंने कहानी के नाम से जो कुछ नये ढंग से लिखा, उसमें असाधारण ताजगी थी. पर बहुत शीघ्र यह स्थिति आ गयी कि 'कहानी' के नाम पर जो कुछ लिखा जाने लगा, उसका खासा बड़ा अंश ऐसा था कि उसकी अपेक्षा कोई सीधा-सादा निबंध या किसी तरह की जानकारी देने वाला लेख पाठकों को कहीं अधिक पसंद आने लगा और इस तरह कहानियों की मांग बहुत कम हो गयी.

पर एक बात आप याद रखें. कहानी मानव-इतिहास की सबसे पुरानी साहित्यिक विधा है– किस्से-कहानी के रूप में. मानव ने जब चित्रलिपि द्वारा पहली बार कुछ कहना चाहा तो उसने एक अर्थपूर्ण किस्सा ही अभिव्यक्त किया था. सिर्फ साहित्य ही नहीं, चित्रकला. संगीत और नृत्य को भी पृष्ठभूमि इन्ही किस्सों-कथानकों ने दी. साहित्य में कथातत्व सदा समादृत रहेगा. साहित्य में चाहे कितनी ही नयी विधाओं का प्रादुर्भाव हो, अच्छी कहानी, चाहे वह किसी रूप में लिखी जाये, सहृदय पाठकों को सदा पसंद आयेगी.

साहित्यिक विधाओं की सुरक्षा और साहित्यकारों के हितचिंतन के लिए स्वीडिश सरकार ने पिछले दो वर्षों से एक शाही कमीशन नियुक्त किया हुआ है. उक्त चर्चा के बाद मैं शाही कमीशन के एक प्रमुख सदस्य से मिला. उनका कहना है कि कहानी की लोकप्रियता और शक्ति में जो उतार विश्व भर में है, उसका यह सही विश्लेषण है. पर जहां तक स्वीडन में कहानी के भविष्य का संबंध है, शाही कमीशन ने ऐसे उपायों की सिफारिश की है, जिनसे कहानी समादृत रहेगी. □□□

प्रसंग

मिर्ज़ा ग़ालिब : कुछ भूलें, कुछ भ्रांतियां

● प्रकाश पंडित

१९६९ में मिर्जा असदउल्लाखां 'गालिब' की शताब्दी भारत और पाकिस्तान में ही नहीं, अमेरिका और योरुप में भी मनायी गयी. हमारे यहां उस समय डाक्टर जाकिर हुसेन राष्ट्रपति थे; जिन्होंने जर्मनी में अपने शिक्षा-काल में पहली बार 'दीवान-ए-गालिब' टाइप में छपवाया था. (और मुझे बताया था कि आज गालिब का ऊंची टोपी वाला जो चित्र सबसे अधिक प्रचलित है वह भी उन्होंने वहीं के एक आर्टिस्ट से अनुमान के आधार पर बनवाया था जो सरासर गलत, यानी जाली है.)

गालिब शताब्दी मनाने के लिए जिस राष्ट्रीय समिति का गठन हुआ था उसके संरक्षक स्वयं जाकिर साहब थे. अध्यक्ष प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी तथा प्रधान सचिव केंद्रीयमंत्री श्री फखरुद्दीन अली अहमद.

इसी शताब्दी के वर्ष में अचानक एक दिन गालिब के कलाम का एक नुस्खा (हस्तलिखित पांडुलिपि) भोपाल में 'प्रकट' हुआ तथा भारत और पाकिस्तान के 'गालिब-विशेषज्ञ' तुरंत इस निर्णय पर पहुंच गये कि यह नुस्खा स्वयं 'गालिब' के हाथ का लिखा हुआ है. इस नुस्खे के प्रकटन या दर्याफ्त की कहानी यों है कि हैदर पठान नाम के एक कबाड़ी ने यह नुस्खा कौड़ियों के मोल 'शफीफ' भोपाली के हाथ बेचा. अमरोहा के एक दुर्लभ वस्तुओं के व्यापारी तौफीक अहमद जब भोपाल गये तो 'शफीफ' भोपाली ने वह नुस्खा दस रुपए कुछ पैसों में यह कह कर उन्हें बेच दिया कि—तुम भी क्या याद करोगे, क्या चीज दे रहा हूं. यह मिर्जा गालिब की अपने हाथ से लिखी हुई बयाज (कविता की कापी) है.

तौफीक अहमद नुस्खा ले आये और दिल्ली के एक समाचार पत्र में उस नुस्खे के मिलने की घोषणा एक विज्ञापन के रूप में करवायी और लिखा कि उसे चार हजार रुपये से कम में नहीं बेचूंगा. फिर कीमत छह हजार मुकर्रर कर दी. इस दुर्लभ नुस्खे की दर्याफ्त के बारे में अखबारों के अतिरिक्त रेडियो पर भी खबरें आयीं. इलाहाबाद में उत्तर प्रदेश आर्क्यूज के जलालुद्दीन साहब को इस नुस्खे के पहले और अंतिम पृष्ठों के फोटो प्राप्त हुए तो उन्होंने शायद इतिहास में अपना नाम लिखवाने के लिए कि सबसे पहले उन्होंने ही उस नुस्खे के गालिब के हस्तलिखित होने की पुष्टि की थी, असल नुस्खे की स्याही और कागज को आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों द्वारा जांचे बिना ही घोषणा कर दी कि वह नुस्खा गालिब ही का हस्तलिखित है.

तौफीक साहब के एक हमवतन निसार अहमद फारुकी से भी उस नुस्खे को गालिब का हस्तलिखित सिद्ध करते हुए लेख लिखा डाला. लेकिन निसार अहमद फारुकी

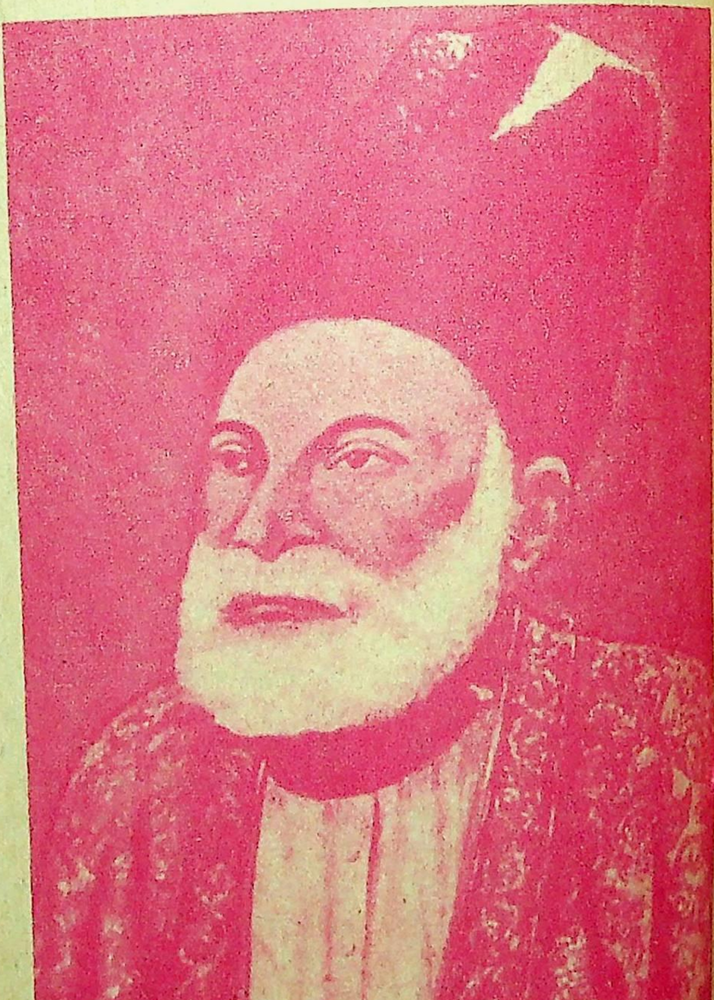

मिर्जा गालिब का प्रचलित चित्र : क्या यही प्रामाणिक है?

चूंकि 'गालिब-विशेषज्ञ नहीं थे'; इसलिए गालिब-विशेषज्ञों—इमतियाजअली खां अर्शी और मालिक राम साहब ने महसूस किया कि यह उनके क्षेत्र में घुसपैठ हो रही है. अर्शी साहब द्वारा संपादित **'दीवान-ए-गालिब'** (नुस्खा-ए-अर्शी) पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है; यद्यपि उसमें **'अप्रैल फूल'** के शीर्षक से एक ऐसी नज्म भी शामिल है जिसमें गालिब ने भोपाल में कुछ दिन और रहने की इच्छा व्यक्त की थी. गालिब कभी भोपाल नहीं गये और यह नज्म एक कालेज की मैगजीन में किसीने मजाकन छपवायी थी. इसी प्रकार अब्दुलबारी 'आसी' ने गालिब के रंग में जो गजलें लिख कर एक बयाज से 'बरामद' की थीं वे भी इस नुस्खा-ए-अर्शी में शामिल हैं. मालिक राम साहब ने भी **'दीवान-ए-गालिब'** का संपादन किया है; जिसकी विशेषता यह है कि गालिब के जमाने से अब तक जितनी गलतियां **'दीवान-ए-गालिब'** के विभिन्न संस्करणों में छपी हैं, वे सबकी सब एक जगह यानी मालिक राम साहब द्वारा संपादित **'दीवान-ए-गालिब'** में सिमट आयी हैं. अतएव गालिब के इन दो महाविशेषज्ञों ने भी इस नुस्खे को गालिब की लिखावट में होने का 'फतवा' दे दिया.

लेकिन इन महाविशेषज्ञों के इस विषय में लेख छपने से पूर्व ही इस नाटक में एक और एक्ट की वृद्धि हो गयी. दिल्ली नेशनल आर्क्यूज के एक उच्चाधिकारी को, जिन्होंने गालिब के सिलसिले में एक महत्वपूर्ण पुस्तक के अतिरिक्त कई महत्वपूर्ण लेख भी लिखे हैं, (वह नहीं चाहते कि अभी इस बखेड़े में उनका नाम लिया जाये) एक दिन एक केंद्रीय मंत्री के यहां से फोन आया कि वह मंत्री महोदय के यहां आ कर एक नुस्खा के बारे में अपनी राय दें. उन्होंने पूछा—वह नुस्खा नई दर्याफ्त 'बयाज-ए-गालिब' तो नहीं है? उत्तर मिला—वही है.—तब मैं क्षमा चाहता हूं, उन्होंने कहा—'मेरे लिए वहां आ कर कोई राय देना व्यर्थ है. आर्क्यूज में पांडुलिपि दाखिल करके फीस जमा करा कर जांच करानी होगी. कागज, स्याही और लिखावट की विभिन्न एक्सपर्ट जांच करेंगे और माल असली हुआ तो सर्टिफिकेट जारी कर दिया जायेगा.

कमाल अहमद सिद्दीकी

इस उत्तर के बाद नुस्खा आर्क्यूज में नहीं भेजा गया. इस नुस्खे के विषय में उर्दू, हिंदी और अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में बहुत कुछ लिखा गया है लेकिन आर्क्यूज के एक उच्चाधिकारी पर दबाव डाल कर उसे फांसने और उसे अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बशीरुद्दीन द्वारा (जो भारत भर की लाइब्रेरियों की परिषद के अध्यक्ष और अपने काम के बहुत बड़े माहिर हैं) अलीगढ़ विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी के हाथ बेचने में असफल होने की बात अभी तक किसी पत्र-पत्रिका को मालूम नहीं थी. प्रोफेसर बशीरुद्दीन ने ही नुस्खा बेचने वाले को दिल्ली आर्क्यूज से माल के असली होने का प्रमाणपत्र लाने को कहा था और जिसके लिए एक केंद्रीय मंत्री ने दिल्ली आर्क्यूज के उस उच्चाधिकारी को फोन करवाया था.

यह सब हो जाने के बाद अर्शी साहब ने इस नुस्खे के साथ अपना नाम जोड़ने के एवज तौफीक साहब से अनुबंध किया कि वह उनके बेटे अकबर अली खां की साझेदारी में उस नुस्खे को फोटो आफसेट से छपवायें. यों अकबर अली खां रातों-रात 'अर्शी-जादा' बन ग और उन्होंने उसे **'दीवान-ए-गालिब नुस्खा-ए-अर्शीजादा'** बना कर छाप डाला और भारत सरकार की ओर से उपराष्ट्रपति श्री पाठक द्वारा बेहतरीन छपाई का पदक भी प्राप्त कर लिया. उधर मालिक राम और निसार अहमद फारूकी साहब भी सक्रिय रहे. उन्होंने इसके असली माल होने की सनद जारी करने की कीमत यों वसूल की कि किसी प्रकार उसके फिल्म पाकिस्तान भिजवा दिये और वहां से मासिक पत्र **'नुकूश'** (लाहौर!) का गालिब नंबर (विशेषांक) प्रकाशित हो गया जिसमें इस नुस्खे के फोटो प्रिंट को **'बयाजे-गालिब-ए-खते-गालिब'** कहा गया और जिसके संपादक के रूप में निसार अहमद फारूकी का नाम प्रकाशित किया गया. ये प्रिंट पाकिस्तान कैसे पहुंचे और इस आरोप का भी खंडन नहीं किया गया कि निसार अहमद फारूकी को जो पुष्प-पत्र या पारिश्रमिक (शायद लाखों में) मिला, वह फारेन एक्सचेंज कहां है? भारत सरकार तथा गालिब समिति के पदाधिकारियों को इसकी कुछ भी खबर नहीं है. **नुस्खा-अर्शीजादा** की कीमत तीन सौ रुपये रखी गयी थी और **'नुकूश'** के विशेषांक की चालीस रुपए—जो कड़ी पाबंदियों के बावजूद हजारों की संख्या में भारत आ कर सौ रुपये प्रति अंक के हिसाब से बिका.

अब तक यह एक एक्ट का नाटक था लेकिन दृश्य भिन्न थे. अब इस नाटक का दूसरा एक्ट शुरू हुआ. रामपुर और लाहौर के नुस्खे बाजार में आये तो उर्दू साहित्य के कुछ काफिरों को संदेह हुआ कि यह माल खरा है या खोटा. अलीगढ़ विश्वविद्यालय के एक लेक्चरार अंसार उल्ला 'नजर' और श्रीनगर में कमाल अहमद सिद्दीकी (प्रोड्यूसर रेडियो, कश्मीर) ने खोजबीन शुरू की. 'नजर' साहब ने इस विषय में अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू के पत्र **'हमारी जबान'** (अलीगढ़) में विरोध प्रकट किया. लेकिन कमाल अहमद सिद्दीकी

ने किसी पत्र-पत्रिका में कुछ लिखने की बजाय २०×३० साइज की ४८८ पृष्ठ की एक पूरी थीसिस **'बयाज-ए-गालिब'** लिख डाली जो कई कारणों से १९६९ की बजाय १९७१ में प्रकाशित हो सकी और उसमें तरह-तरह के सैकड़ों उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि वह बयाज बड़ी होशियारी से लिखी जाने के बावजूद सरासर जाली है.

अब जरा इस जाल को भी समझें जो भोपाल से खोजी गयी इस बयाज में किया गया है.

इसे गालिब की सर्वप्रथम बयाज बताया गया है. और इसके अंत में दिन, दिनांक, समय सब कुछ लिखा है लेकिन सन् छोड़ दिया गया है. प्रत्येक पृष्ठ पर संशोधन मौजूद हैं लेकिन छूटा हुआ सन् नहीं भरा गया; जो जंत्री के हिसाब से १२३५ हिजरी निकलता है. उस समय गालिब की आयु १९ वर्ष की थी. इसके अतिरिक्त इस बयाज के सभी मक्तों में 'असद' उपनाम का प्रयोग किया गया है और बहुत से मक्तों के मिस्रों (पंक्तियों) को बाद में बदल कर 'गालिब' उपनाम डाला गया है.

कमाल अहमद सिद्दिकी ने अपनी पुस्तक में उमदए-मुंतखबा (तजकिरा-ए-सरवर) के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं जो १२१५ हिजरी में शुरू हो कर १२२४ में पूर्ण हुई थी और जिसमें 'गालिब' उपनाम के मक्ते मौजूद हैं.

एक शायर 'असद' मीर अमानी थे; जिनका देहांत गालिब के जन्म से बहुत पहले हो चुका था. उनकी एक गजल पर मियां हिदायत जी ने एक खम्सा कहा था (तीन मिस्रे हिदायत जी के और दो 'असद' मीर अमानी के) हिदायत जी का देहांत उस समय हुआ था जब 'गालिब' की आयु तीन वर्ष की थी. हिदायत जी ने 'असद' मीर अमानी की जिस गजल पर खम्सा लिखा था उसका शेर है :—

दिले-बेताब कि सीने में दमे-चंद रहा
ब-दमे चंद गिरफ्तारे-गमे-चंद रहा

और यह गजल तथाकथित 'दर्याफ्तशुदा' बयाज में मौजूद है.

'असद' मीर अमानी के एक शेर को असदउल्ला खां 'गालिब' की शेर समझ कर जब एक साहब ने गालिब को दाद दी थी तो गालिब ने कहा था—'यह शेर किसी और 'असद' का हो तो उस पर खुदा की रहमत हो और अगर मेरा हो तो मुझ पर खुदा की लानत हो.

इस नुस्खे में एक मसखरापन यह भी है कि न केवल गालिब के लिए नयी गजलें लिख कर इसमें शामिल कर दी गयी हैं बल्कि शेरों को उनकी शक्ल बिगाड़ कर लिखा गया है ताकि यह सिद्ध किया जा सके कि पहले गालिब ने यों लिखा था और बाद में यों कर दिया. इस सिलसिले में एक गलती हुई है :

शुरू-शुरू में गालिब पर मिर्जा 'बेदिल' छाये हुए थे; अतएव कई स्थानों पर गालिब ने अपने शेरों में मिर्जा 'बेदिल' की प्रशंसा की है और एक पूरी गजल बेदिल के मिस्रे पर लिखी है और मक्ते में 'बेदिल' के मिस्रे पर मिस्रा लगाया है. जिन लोगों ने जाली पांडुलिपि तैयार की, वे यह नहीं जानते थे कि मक्ते का दूसरा मिस्रा स्वयं बेदिल का था. उन्होंने उसे भी बिगाड़ कर लिख दिया ताकि दिखाया जाये कि गालिब ने पहले यों कहा था.

बेदिल का मिस्रा है :—

आलम हमा अफसाना-ए-मादारद-ओ-माहेच

लेकिन यह यों लिखा गया :—

आलम हमा अफसाना-ए-माबाशद-ओ-माहेच

'गालिब' के दीवान का सबसे प्राचीन नुस्खा जो १२३७ हिजरी में नकल हुआ था, 'नुस्खा-ए-भोपाल' है. इसके पांच-छह वर्ष बाद जो दीवान नकल हुआ, 'नुस्खा-ए-शीरानी' है. नुस्खा-ए-भोपाल और नुस्खा-ए-शीरानी के कलाम में थोड़ा-बहुत अंतर है क्योंकि नुस्खा-ए-शीरानी, नुस्खा-ए-भोपाल का संशोधित रूप है; इसलिए नुस्खा-ए-शीरानी में मिस्रों की जो पढ़त है, वह नुस्खा-ए-भोपाल के बाद के किसी नुस्खे में तो हो सकती है लेकिन नुस्खा-ए-भोपाल से पहले के किसी नुस्खे में नहीं हो सकती. और अहमद सिद्दीकी ने डेढ़-दो सौ

गालिब का प्रामाणिक हस्तलेख

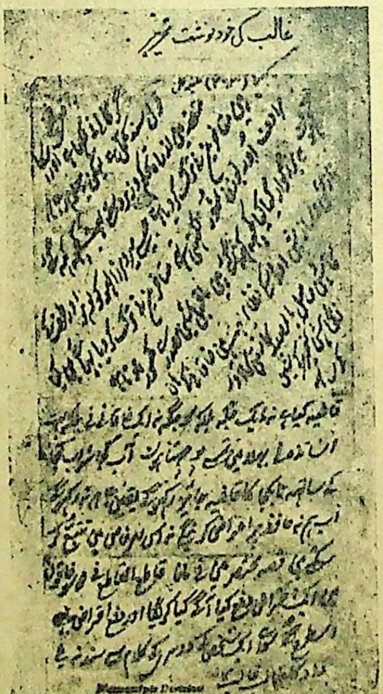
Manuscripts Division
Maulana Azad Library
M.U. ALIGARH

कमाल ने बेदिल के रंग में शेर लिखे और न जाने किसके हाथ से किताबत करवायी.

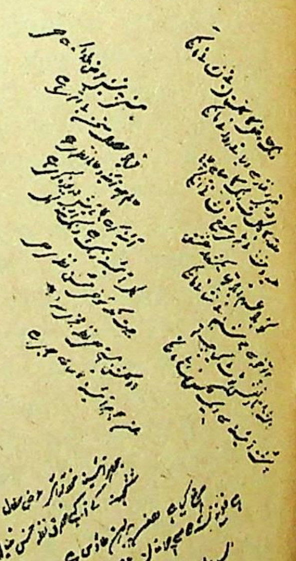

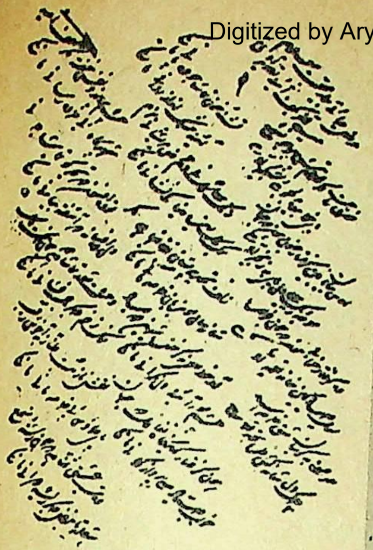

'दर्याफ्तशुदा' बयाजे-गालिब का हस्तलेख

मिस्रे इस जाली बयाज में ऐसे दिखाये हैं जो नुसखा-ए-भोपाल की बजाय नुस्खा-ए-शीरानी के मुताबिक हैं. अर्थात मिर्जा गालिब ने १२३१ हिजरी में जो मिस्रा लिखा, १२३७ में उसमें संशोधन किया और वह नुस्खा-ए-भोपाल में लिखा गया. फिर पांच-छह वर्ष बाद उसमें संशोधन किया और वह १२३१ की पढ़त पर वापस आ गये. चार-छह मिस्रे ऐसे होते तो संदेह का लाभ दिया जा सकता था लेकिन थोक में ऐसा कोई दीवाना ही कर सकता था. और मिर्जा गालिब चूंकि दीवाने नहीं थे इसलिए गालिब शताब्दी के वर्ष में जो बयाज दर्याफ्त की गयी वह जाली थी. कमाल अहमद सिद्दीकी की पुस्तक में एक बात और मिली है कि उन्होंने मिर्जा गालिब के 'बेदिली' रंग में स्वयं कुछ शेर लिख कर और उन्हें तथाकथित 'बयाजे-गालिब-बखते-गालिब' की तर्ज पर न जाने किसके हाथ से लिखवा कर अपनी पुस्तक के अंत में शामिल कर दिया है. देखिए गालिब का असली हस्तलेख, नकली हस्तलेख और फिर आज के किसी कालिब का हस्तलेख और निर्णय कीजिए कि दर्याफ्तशुदा बयाज को गालिब ही की हस्तलिखित सिद्ध करने वाले महानुभावों ने किस प्रकार देश और जाति को मूर्ख बनाने का दुस्साहस किया है. □□□

समांतर रंगमंच

'प्रतिध्वनि' द्वारा 'फंदी' का सफल मंचन

हिंदी के समांतर रंगमंच की एक इकाई उत्तरप्रदेश की प्रमुख नाट्य संस्था 'प्रतिध्वनि' (कानपुर) ने विगत २७ और २९ अप्रैल १९७५ को दो बार कानपुर के यू. पी. मर्चेंट्स चेंबर के प्रेक्षागार में ख्यातिलब्ध नाटककार डा. शंकर शेष '(बंबई) के समस्यामूलक नाटक 'फंदी' का अत्यंत सफल मंचन कर समांतर रंगमंच की क्षमताओं और संभावनाओं को उजागर किया. नाटक के निर्माता थे 'प्रतिध्वनि' के अध्यक्ष श्री ललित मोहन अवस्थी और निर्देशन श्री विजय दीक्षित ने किया था.

मानवीय संवेदना से भरपूर 'फंदी' में नाटककार ने इस पेचीदा समस्या को उठाया है कि कानून मनुष्य के लिए है या मनुष्य कानून के लिए है? और यह कि, सामाजिक परिवर्तन के साथ यदि कानून पत्थर की भांति जड़ बना रहता है तो समय की अपेक्षाएं वह कैसे पूरी कर सकता है? इस पेचीदा सवाल को केवल तीन पात्रों के माध्य से पेश कर नाटककार प्रत्येक प्रेक्ष की मानसिकता को अपने पक्ष खींच लेता है. अपने प्रथम प्रया में ही निर्देशक विजय दीक्षित पीर गुलाम सिंह (प्रकाश-व्यवस्था और ओम प्रकाश अवस्थी (ध्व एवं संगीत) के सहयोग से नाट को अत्यंत सादे और सांकेति मंच-सज्जा के माध्यम से सफलत पूर्वक प्रस्तुत कर सभी को चम त्कृत कर दिया.

फंदी (के. कुमार) और वकील (अशोक गोस्वामी) क भूमिकाएं जीवंत ढंग से अभिनीत की गयीं. दोनों कुशल कलाकारों अन्य पात्रों की भूमिकाएं भी स्व पात्रानुकूल प्रस्तुत कीं. अशो गोस्वामी ने बैरिस्टर गंगानाथ तथ के. कुमार ने पठान, फंदी की स्त्री मित्र आदि की भूमिकाएं पूर्ण भावमयता और यथार्थता के साथ प्रस्तुत कीं.

इस अवसर पर 'आम्रपाली' द्वारा आयोजित त्रिदिवसीय नाट्य-समारोह के अंतर्गत आयोजित नाट्य-गोष्ठी में श्री ललित मोहन अवस्थी ने समांतर रंगमंच के उद्देश्य, नीतियों, स्वरूप, क्षमता और संभावनाओं की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की.

□ **उपमन्यु**

'फंदी' का एक दृश्य—(बायें से) अशोक गोस्वामी (वकील), फंदी (के. कुमार) और वार्डर (पाली).

अमीबा

• अनिल डांगे

ड्रेनेज का ढक्कन खुला होगा क्योंकि वह बाहर आया है और ऊपर आते-आते गटर की बांसी गंध भी उसके साथ-साथ आयी है.

निश्चय ही नीचे ड्रेनेज में उसे कितना गरम सुखद अनुभव हो रहा था. फिर भी उसकी इच्छा बाहर आने की हुई और वह आ गया. हो सकता है, बाहर आने का कारण ढक्कन का खुला रहना हो या किसी ने उस ड्रेनेज के ढक्कन को खुला छोड़ा हो. कोई अज्ञात सार्वभौम शक्ति ही उसके बाहर आने का कारण रही.

चाहे कुछ भी हो, बाहर आने की उसे इच्छा हुई और वह निकल आया. जो कुछ सत्य है, वह इतना ही है.

प्रारंभ में एकदम बाहर की खुली गहरी हवा में उसे ठीक तरह से सांस लेने में कठिनाई हुई: अंदर ड्रेनेज की घुटन से वह भली-भांति परिचित था. इस खुली हवा में सांस लेने से उसे दम चढ़ने लगा. इधर उसकी दृष्टि भी बहुत ही क्षीण हो चुकी थी. उसकी आंखें बाहर के स्फटिक सदृश्य स्वच्छ प्रकाश की अभ्यस्त नहीं थीं इसलिए ग्लीसीरीन लगाने के समान उसकी आंखों से निरंतर पानी बहने लगा.

शर्ट की बांह से उसने आंखें पोंछीं. बार-बार पोंछीं. शर्ट तो सिर्फ नाममात्र का था. उसकी कब की धज्जियां उड़ गयी थीं और उसमें पुता था गटर का काला गंदा रंग. पैंट फटे तो शायद वर्ष बीत चुका था. शरीर पर केवल अंडरपैंट ही थी. लेकिन इससे उसे क्या? वैसे उसका सब कुछ ठीक ही था. अंदर की ड्रेनेज की सड़ान भरी हवा से उसकी चमड़ी पीली स्पंज के समान गिलगिली बन गयी थी. दांत कब के गिर चुके थे. भौहें गल गयी थीं. आंखें पथरीली, ठंडी, निस्तेज हो गयी थीं. हमेशा रेंगते-रेंगते पीठ में अजीब-सा कूबड उठ आया था. लेकिन नाखून अधिक बढ़े हुए न थे क्योंकि वह उन्हें हमेशा अंदर पाइप की किनार पर घिसता रहा था.

नीचे गटर में अल्प मात्रा में बहता हुआ गरम पानी उसे अच्छा और हल्का लगता था, किंतु बाहर की यह कड़ी धूप उसे सहन नहीं हो रही थी. अभी दोहपर का समय ही होगा पर इस धूप की गर्म लू उसके शरीर को झुलसा रही थी.

ड्रेनेज़ के ढक्कन पर वह संभल कर बैठ गया. उसके पैर अभी भी ड्रेनेज में नीचे लटक रहे थे और वह वैसे ही बैठा रहा.

उसका इस प्रकार बैठना आवश्यकता पड़ने पर वापस ड्रेनेज में उतरने के लिए अच्छा था. लेकिन घबराने के लिए कोई कारण नहीं था. धूप भरी सड़क लंबे-चौड़े अजगर के समान फैली थी. धूप निर्बाध तपती जा रही थी. दूर के पेड़ अपनी परछाइयों से हलकी-हलकी कानाफूसी कर रहे थे.

उसे अचानक अनुभव हुआ, अब मुझे खड़ा रहना चाहिए. लेकिन पिंड़लियों में अजीब-सा दर्द भरा हुआ है. खड़ा रहना कठिन हो रहा था. वह अपने घुटने टिका कर सड़क पर संभल कर बैठा रहा. ड्रेनेज में हर समय रेंगते रहने के कारण उसके घुटने फूटे हुए थे इसलिए घुटना में दर्द होना चाहिए था. किंतु ऐसा कुछ हुआ नहीं, गरम तारकोल का लेप और धूल जख्म पर जमा होने लगी और सेंक के कारण उत्तेजना भी आने लगी.

• राजनारायण शर्मा

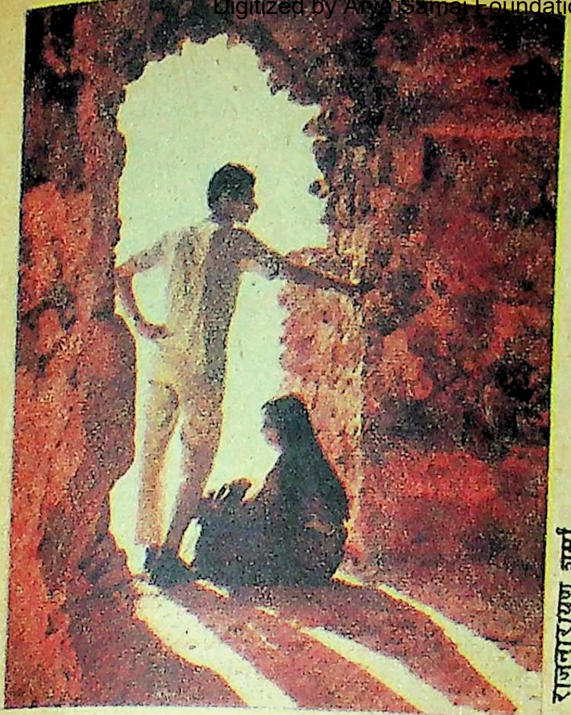

● राजनारायण शर्मा

उसने दृष्टि ऊपर घुमाई. ऊपर याने ऊपर आकाश की ओर. ऊपर तश्तरी के समान सूर्य और आकाश का गोरा गुंबज उसे अधखुले बड़े स्तनों जैसा बेंढगा-सा दीख रहा था. उसे यह प्रकाश और विस्तृत आकाश विचित्र, अश्लील लगने लगा. क्या साला! एकदम नंगा खुला उजाला. सब नंगा मुक्त परिवेश. थोड़ी भी प्रायवेसी नहीं. थोड़ी भी आड़ नहीं. सभी कुछ प्रकाशमय, ऐसे आंखें झुलसने वाले प्रकाश के सन्मुख आत्मसमर्पण करने वाला. सभी किस प्रकार प्रकाश के सामने हताश, निष्प्रभ बने हुए हैं. पूरा आकाश सस्ता और सार्वजनिक...

अचानक बीच में ही अब काई के समान हवा की आंधी आयी. सूखे पत्ते, धूल, तिनके आदि उसके गिर्द नाचकर चलते बने. आंखों में धूल भर गयी, नाक और गले में भी. वह थूका. बहुत दिनों बाद उसने पहली बार थूका था. ड्रेनेज में कभी खकारना, थूकना नहीं पड़ता था. नीचे ड्रेनेज में ऐसा तीखापन लिये धूल कहां थी. सभी कैसा शांत पारदर्शक.

उसने फिर अंगूठे से आंखें साफ की और सामने ठीक तरह से देखा. उसे थोड़ा-सा आश्चर्य हुआ. हवा के साथ उसके सामने कागज के एक-दो टुकड़े आ गिरे जैसे किसी ने खास संदेश भेजा हो. किसने भेजा होगा? अभी कौन ऊपर बाकी बचा है? और कौन? और कौन?

लगता है, उसे इस समय तक तेज प्रकाश की आदत हो गयी क्योंकि आंखें ठीक तरह से खोलने आ रही थीं. उसे उठकर खड़े रहने की तीव्र इच्छा हुई. लेकिन वैसा वह कर नहीं पा रहा था. घुटने से सुई सदृश्य चुभती टीस निकली और वह पेट के बल पड़ा रहा.

ऐसे पड़े रहने से उसकी छाती रास्ते की गरमी अनुभव कर रही थी. इतना तो सहना होगा. बाहर आने का इतना तो मूल्य चुकाना ही होगा. इस प्रकार सेंक लेन छाती, पेट, पिड़लियां सभी को.

* *

इसके बाद उसने अपनी गर्दन अनुमानतः एक स तीस अंश में घुमाई. वह थोड़ा पेट के बल पर ही घूम और फिर थोड़ी देर पूर्व आंधी के साथ आये समाचारपत्र के टुकड़े की ओर सरकने लगा.

हाथ बड़ा कर उसने वह टुकड़ा उठाया. छाती से चिपकाया, फिर आंखों के पास ले जाकर घूरकर उस कागज को देखने लगा. उसे स्मरण हो आया कि वह अब पढ़ना भूल गया है. उस टुकड़े पर के अक्षर उसे बिल्कुल अनजान से लग रहे हैं. क्या संदेश है इसमें छपा हुआ, भगवान जाने!

लेकिन वह पढ़ना कैसे भूला? कितने दिन बीते ड्रेनेज में रहते हुए? चूंकि वह पढ़ना भी भूल चुका है तो बहुत वर्ष बीत चुके होंगे.

बम गिरने के बाद वह ड्रेनेज में रहने आया था. बम गिरने के बाद हुई भगदड़ में उसे यह ड्रेनेज ही अच्छा मिला. अन्यथा क्या पता कैसी परिस्थिति में फंस गया होता. ड्रेनेज में आकर कितने साल हो गये होंगे? बम कब गिरा था? लेकिन करना भी क्या है निश्चित समय जानकर? समय सीमा से कोई संबंध न रहना ही अच्छा है. इस ड्रेनेज में कम से कम समय के संबंध से मुक्त तो हुआ हूं.

ड्रेनेज का जीवन वास्तव में महान है ही. बुनियादी तौर पर एक तो समय का बंधन नहीं. हर समय केवल धुंधला-अंधेरा. धुंधला-धुंधला प्रकाश, कलकल करता हुआ पानी, ठंडे पाईप का स्पर्श.

बाहर की दुनिया से ड्रेनेज कितना और किस प्रकार श्रेष्ठ है, यह अब उसकी समझ में आने लगा. वहां अन्न का प्रश्न ही नहीं था. गटर के पानी में घुले हुए प्रोटीन्स, व्हिटामिन्स की भरमार थी ही. आवश्यकता से अधिक ही थी, उसके शरीर के लिए. केवल जीभ का स्वाद जाता रहा था. लेकिन करना क्या इन स्वादों की संवेदनाओं से? यही ठीक है.

और ड्रेनेज से ऊपर दिन और रात की झंझट साली! रात में सोना और दिन में कुत्ते के समान घूमते रहना. काम करना. काम-काम. पैसा. वेतन. कार्यालय में फाइल्स. कारखानों में यंत्र. दुकान में माल. स्टेशन पर गाड़ियां. रास्ते पर केवल मोटरें, आदमी और अनेक प्रकार के वाहन. कैसी भगदड़, एक बांझ भीड़-भाड़.

अच्छा हुआ साला एक बार का बम गिरा. नही तो यही नीरस, कक्ष जीवन बीताने के लिए मजबूर होना पड़ता और इस ड्रेनेज के सुखद वातावरण से भी परिचय न होता. ड्रेनेज की उष्मा, कलकल बहता पानी, बीच-बीच में कीचड़ का मृदु स्पर्श, कोमल अस्फुट अंधकार और सुरक्षित स्थान. सब कुछ लुभावना—लुभावना. आत्मीयता अनुभव कराने लगा.

और ड्रेनेज में हम अकेले ही स्वयं की जिम्मेदारी संभालने वाले. अर्थपूर्ण अकेलापन. अंततः यह अकेलापन महत्वपूर्ण है, यही सच है. ऐसी स्वछंद, स्वतंत्र रिक्तता

यही एक आधार था. जिसने इस अकेलेपन की अनुभूति की है— वह वास्तव में भाग्यशाली है और जिसने नहीं की, वह भाग्यहीन.

ऊपर धरती पर बचे बेचारे प्राणी रेडियो-एक्टिव राख में फंसे होंगे. मेरे सामने ही थोड़े बहुत इससे संक्रमित हुए थे. बम फटने पर तो यह अपेक्षित ही था. सभी ऊपर के प्राणी धीरे-धीरे समाप्त हो गए होंगे.

फिर भी बम गिरने पर एक दिन हम भी ऊपर ही थे. भाग्य! हमें 'इंफेक्शन' नहीं हुआ.

बम गिरने तक कौन कहां? कौन कहां, यह पूछताछ ठीक थी. लेकिन एक बार गिरने वाला बम-फटने पर सब कुछ समाप्त हो गया. सभी अपने-अपने में सिमट गये. सभी नाते, सभी रिश्ते निर्वासित हुए.

नहीं कहने पर भी उसमें मेरे प्राण अटके रहे. उसने कितने अपनत्व से मुझे अपनाया था. उसने जीवन का हर क्षण, स्वयं का शरीर मुझे अपनाया था. उसने जीवन का हर क्षण, स्वयं का शरीर मुझे समर्पित किया था.

इसलिए तो मैं उससे आग्रह किया. दूसरा कोई होता तो मैं सोचता भी नहीं लेकिन वह थी इसलिए उससे आग्रह किया इस ड्रेनेज में आने का. उस पर प्रेम व्यक्त करने की यही तो सच्ची कसौटी थी.

शुरू में थोड़ी वह कुड़कुड़ाई, बाद में वह भी ड्रेनेज में आ गयी, बेचारी. मेरा आग्रह ठुकराना उसके लिए कठिन जो था. ड्रेनेज की चिकनी, ठंडी नम हवा से उसे उल्टियां होती, सिर चकराता, थोड़ा टेंप्रेचर भी बीच-बीच आता, इतना तो आदत न होने से शुरू-शुरू में कष्ट होना ही था.

इसमें से वह आसानी से रिकवर हुई होती. उसका सांवला मुलायम शरीर आसानी से ड्रेनेज के वातावरण से अभ्यस्त हुआ होता. उसकी त्वचा भी मेरे ही समान नम पीली हुई होती. बाल झड़ गये होते. पचनेंद्रिय नरम पड़ी होती. फिर कोई भी कष्ट न हुआ होता.

ऊपर धरती के चिड़चिड़े प्रकाश में, मनुष्यों की भीड़ में, तंग ब्लाक में, सार्वजनिक बागों में, वाहनों की भीड़भाड़ में, पूरे ऊपर के दूषित जंतुमय वातावरण में जो स्वप्न उभारे थे सान्निध्य से, उन्हें यहां ड्रेनेज में मूर्त किया जा सकता था. ड्रेनेज में दोनों रहने आने के चार ही दिन बाद ध्यान में आया कि उसे पेशाब गाढे रंग की होने लगी है. याने रेडियो-एक्टिव धूल का इंफेक्शन उसे पहले ही हो चुका था, फिर भी और दो दिन प्रतीक्षा की. लेकिन कोई लाभ नहीं था. उसका रोग दिन-ब-दिन बढ़ने ही लगा. बाद में तो उसके नाखून भी काले पड़ने लगे. थूक शैवाली हरे रंग का आने लगा. वह अब पूरी तरह से रेडियो-एक्टिव राख की चपेट में आ गयी थी. दिल पर पत्थर रख कर उसे बाहर जाने के लिए कहना पड़ा. यहां से बाहर. ड्रेनेज के बाहर. हां कोई दूसरा विकल्प ही न था.

लेकिन अब वह मानती ही न थी. वापस नहीं जाना चाहती थी इसलिए सिसकियां भर भरकर रोई. कहती— यहीं रहती हूं आपके पास. छिपकली के समान बदन से चिपटी.

—कोई बहाना नहीं चलेगा. निकल जा एकदम, चली जा इंफेक्शन हुआ है न तुझे? फिर यह ड्रेनेज तेरे लिए नहीं. तू यहां से जा!

फिर भी वह जाने से कतराती रही तो उसे जबरन बाहर करना पड़ा. ड्रेनेज का कीचड़ निकालने की सलाई से ठेल-ठेलकर ऊपर भगाया और ड्रेनेज का ढक्कन भी बिठाया. जा नहीं रही थी बाहर. साली!

हां, और उसके बाहर जाते समय उसकी गीता की कापी भी उसके साथ दे दी . अंदर ड्रेनेज में आते समय वह गीता अपने साथ लाई थी. लेकिन करना क्या है यहां इस सुरक्षित अंधेरी दुनिया में गीता का? गीता की आवश्यकता ऊपर के अस्थिर तड़पते लोगों को है.

फिर वह ऊपर चली गयी प्रकाश की दुनिया में. मुक्त हवा में कष्ट और दुःखों को झेलने. विवशता से क्यों न हो, लेकिन उससे पिंड तो छूटा.

ऊपर उसे बहुत कुछ सहना पड़ा होगा लेकिन जो टलना असंभव था है, उसे सहने के सिवाय दूसरा मार्ग ही क्या है? फिर भी मैंने उसे ऊपर जाते समय समझा दिया था कि कहीं तेरी हड्डियां अंधेरे में नाईट लैंप की तरह चमकने लगें तो फिर तू स्वयं का हाल बेहाल न कर लेना. सीधा-साधा पोटाशियम साईनाइड के समान जहर. . .अंत में उसने किया क्या, वह या उसका कृष्ण जाने या फिर गीता. जो अंत उसके भाग्य में था, वह उसे प्राप्त हुआ होगा. इतनी देर उसकी स्मृतियों में खोकर उसे अजीब-सी अनुभूति होने लगी. मस्तिष्क चकरा गया.

इसी समय ड्रेनेज के ढक्कन का सहारा लेकर खड़े रहने की उसे इच्छा हुई. प्रकाश में, धूल से सने रास्ते से भागने की इच्छा होने लगी. उसने खड़े रहने का थोड़ा-सा प्रयास किया भी. किंतु उसमें सफलता न मिली और उसने इसका विचार त्याग दिया.

वैसे इस दुनिया में कौन खड़ा रहता है? खड़े रहने का अर्थ है अंततः गिरना-टूटना इसलिए रेंगना ही वास्तविक है. रेंगते-रेंगते ड्रेनेज के छेद के पास आया. कुछ समय पूर्व उसके पास संदेश के समान आये कागज के टुकड़े को अभी भी उसने पक्का पकड़ रखा था.

ड्रेनेज में उतरने से पहले उसने उस कागज के टुकड़े को बाहर फेंक देने का निश्चय किया. तुरंत उसने वह टुकड़ा बाहर फेंका भी.

लेकिन इसी समय उसकी नजर उसके हाथ की हथेली की ओर गयी और उसे धक्का-सा लगा.

उसके ध्यान में आया कागज के टुकड़े को जिस हाथ में पकड़ा रखा था, उस हाथ की हथेली काजल के समान काली पड़नी शुरू हो गयी है और यह काली रेडियो-एक्टिव स्याही तेजी से त्वचा से होते हुए शरीर में फैलती जा रही है. . .

अभी तक उसके ड्रेनेज में छोड़े पैर वैसे ही लटके हुए थे. और डूबते सूर्य की अंतिम किरणें उसके सफेद फक्क बीचोबीच तड़के हुए कांच जैसे चेहरे पर जमती जा रही थीं.. □□□

(अनु : ज्योति)

केलकर बिल्डिंग, हीरापुर रोड, चालीसगांव.

निर्माणाधीन फिल्म : 'भला मानुष'

इधर अनेक युवा फिल्मकार लीक से हट कर फिल्में बनाने की ओर अग्रसर हुए हैं. विश्वा मित्तर ऐसे ही निर्देशकों में से एक हैं. उनकी फिल्म का नाम है **'भला मानुष'**, जिसका निर्माण एक और युवा फिल्मकार हर्ष कोहली कर रहे हैं. संगीत दे रहे हैं — आर. डी. बर्मन. कलाकार हैं—रणधीर कपूर, असरानी (देखिए नीचे दिया गया चित्र), नीतू सिंह, जीवन आदि. फिल्म का निर्माण तेजी से चल रहा है. ☐

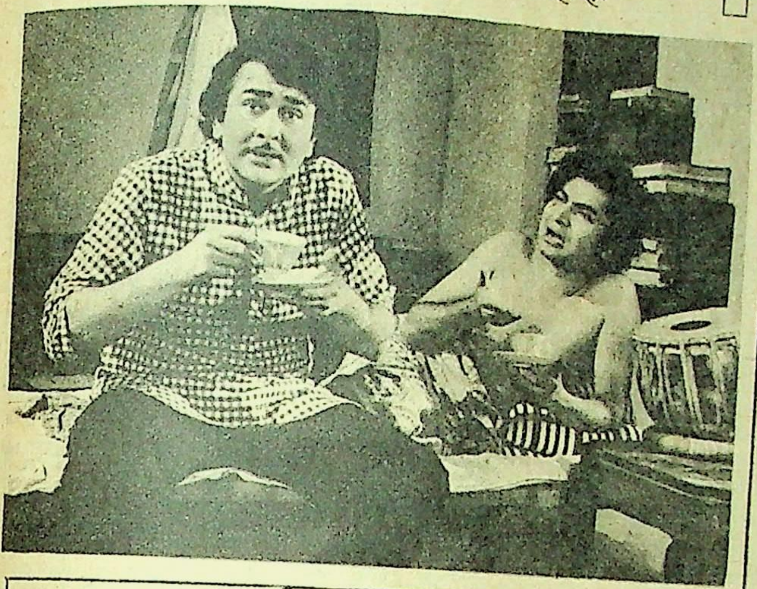

एक नज्म

● गुलजार

मार्सीया

मोड़ पे देखा है वह बूढ़ा-सा इक पेड़ कभी?
मेरा वाकिफ है बहुत सालों से, हम जानते हैं
जब मैं छोटा था तो इक आम उड़ाने के लिए
परली दीवार से कंधों पे चढ़ा था उसके
जाने दुखती हुई किस शाख से जा पांव लगा था
धाड़ से नीचे गिरा. फेंका था उस पेड़ ने मुझको
मैंने खुन्नस में बहुत फेंके थे पत्थर उस पर.
मेरी शादी पे, मुझे याद है, शाखें दे कर
मेरी वेदी का हवन गर्म किया था उसने
और जब हामला थी 'बीबा' तो हर रोज दोपहरे
मेरी बीवी की तरफ कैरियां फेंकी थीं इसी ने
वक्त के साथ सभी फूल सभी पत्ते गये.
तब भी जल जाता था जब मुन्ने से कहती थी 'बीबा'
'हां उसी पेड़ से आया है तू, लायी थी वहीं से.'
अब भी जल जाता हूं, जब मोड़ गुजरता हूं कभी
खांस कर कहता है, 'क्यों, सर के सभी बाल गये?'
सुबह से काट रहे हैं वह कमेटी वाले
मोड़ तक जाने की हिम्मत नहीं पड़ती मुझको. ☐

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में २ अंक मुफ्त ! यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में ५ अंक मुफ्त. हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है और इस तरह आप तीन वर्षों का शुल्क एक साथ भर कर ९ अंक मुफ्त में प्राप्त कर सकते हैं.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:
एक वर्ष — १० रुपये
दो वर्ष — १९ रुपये
तीन वर्ष — २७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष — २२रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-ऑर्डर के साथ-साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर,
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४००००१

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम ________
पता ________
____
____
हस्ताक्षर ________

TIMES ART

बेटियों वाले

• ज्योतिस्वरूप तिवारी

बहुत देर से अंदर-ही-अंदर बल खा रहा था जैला. दलीपो के 'छंगन-मंगन' खत्म होते नहीं दिखाई देते थे. यह जनानी जात भी अजीब है! कहती थी-- मरजाने छिंदी को घर में पैर नहीं डालने दूंगी. और अब उसी 'मरजाने' के लिए घर का सारा सामान उलट-पलट कर रख दिया था.

--जाने भी दे अब. जैले से नहीं रहा गया. सो जायेगा सौहरा कहीं पर! न बंदा न बंदे की जात. . . .

--तेरी तो अकल मारी गयी है! दलीपो चारपाई पर नया खेस बिछाते हुए बोली. दो साल बाद भाग जागे हैं महिंदरो के. देख, कोई अबे-तबे न बोलने लग जाना उसके सामने!

--ओए, रहने दे अपना लिचकर! जैले को गुस्सा आ गया. आ गया दो साल बाद हक जताने! दो लगाऊं कूल्हों पर--सारी शेखी भूल जाये!

--तू जरूर कजिया खड़ा करेगा! दलीपो दांत पीसते हुए बोली. अकल के बैरी! बेटी वालों का सिर हमेशा नीचा होता है. जा, बाहर घूम आ थोड़ी देर. सिर को हवा लगे थोड़ी.

--चुप करती है या लगाऊं दो घूंसे!

--रब के वास्ते,तेरे पैरों पड़ूं. जा, चला जा, थोड़ी देर के लिए. ले, महिंदरों भी आ गयी! सौंह गुरू की--मुंह कैसा उतरा हुआ है!

महिंदरो चुपचाप एक कोने में खड़ी हो गयी थी. जैले ने उस का उतरा हुआ चेहरा देखा, तो उसे और ज्यादा गुस्सा आया. मगर वह बोला कुछ नहीं.

--बड़ी देर कर दी! दलीपो ने महिंदरो से कहा. जा जल्दी से चूल्हा जला दे. छिंदी आने ही वाला होगा.

--झाई. . .मैं. . .महिंदरो के स्वर से लगता था कि वह बस फूट ही पड़ने वाली है. मुझे उस बैरी के साथ मत भेजना.

--जा पगली! दलीपो ने उसे झिड़की दी. वह तेरा साईं है, महिंदरो. उसी का घर तेरा घर है. 'धीए घर जा आपने', वह एक लोकगीत गुनगुनाने लगी.

--बापू! . . . .महिंदरो ने जैले के गले में बाहें डाल दीं और धीरे-धीरे सिसकने लगी.

--ठीक है, ठीक है. . .जैला उसके सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला. परंतु स्वयं उसे भी यह नहीं मालूम था कि महिंदरो या दलीपो में से किस की बात की हामी भर रहा है. धीरे से महिंदरो को अलग करके वह कोठरी से निकल गया.

★ ★

घर से बाहर, ज्वाले के कोठे के अलावा जैले का कोई अड्डा न था. ज्वाला कोठे के बाहर चारपाई डाले बैठा था. जैले को देखते ही बोला--सुना भई जैले, आज तो पाहुन आया हुआ है!

--हां. . .आ गया अपनी बहन का खसम!

ज्वाले ने अर्थपूर्ण दृष्टि से जैले की ओर देखा और बोला-- मक्खनसिंह के घर गया है.

मारे गुस्से के जैले की मूंछें फड़कने लगीं. मगर वह चुप ही रहा.

--यार, महिंदरो के घर वाले को शेरसिंह वाली बात का पता नहीं है क्या?

--नहीं. . .! पता नहीं कहां-कहा की मिट्टी चाट कर आया है, दो साल बाद!

--यार, तेरी लड़की के करम ही बुरे हैं. क्या किया जाये? सच कहा है सयानों ने-- जवांई दसवां ग्रह होता है . .

--दसवें ग्रह की तो. . .

--हां-हां. . .जबान ठीक कर अपनी. बेटी वालों का सिर हमेशा नीचा होता है.

इस बार जैले ने दिल-ही-दिल में दुनिया के सारे बेटियों वालों को गंदी-सी गाली दी. मगर मुंह से कुछ नहीं बोला. गुस्से से उसका सारा जिस्म सुलग रहा था.

--शेरसिंह भी आज आया हुआ है! ज्वाले ने मानो आग पर घी छिड़का.

जैले ने छिंदी और शेरसिंह, दोनों की मां-बहन से गंदा-सा रिश्ता कायम करते हुए मोटी-सी गाली बकी. --यह टुंडा शेरसिंह अब अपनी टांगें भी तुड़वायेगा.

ज्वाला हंसने लगा.

जैले के हाथों टूटी शेरसिंह की बांह ठीक न हो पायी थी. शामत ही तो आयी थी उसकी, जो 'जंगल पानी' जाती हुई महिंदरो को छेड़ बैठा. जैले के हाथों उसकी मरम्मत पर गांव के सभी बहू-बेटी वालों ने बगलें बजायी थीं. शेरसिंह था भी इसी काबिल. जब उसने गुरदित्ते चमार की बेटी मीतो पर हाथ डाला, तब भी खासा हंगामा हुआ था. यह और बात थी कि गांव के जाट, शेरसिंह के खिलाफ एक चमार की तरफदारी न कर सके हों.

कुदरत ही साथ दे गयी उस रोज. जैला संयोग से ठीक समय पर पहुंच गया था. वरना नाक कट जाती. शेरसिंह ने मुंडेर की ओट में महिंदरो को जमीन पर गिरा रखा था. महिंदरो की कमीज फट चुकी थी और उसका जिस्म उसमें से झांक रहा था. शेरसिंह ने अपना घुटना महिंदरो के पेट पर रखा हुआ था और उसकी सलवार नोचने की कोशिश कर रहा था. महिंदरो जिबह की जा रही बकरी की तरह चीख रही थी.

शेरसिंह ही था जो इतनी मार बर्दाश्त करके भी जिंदा रहा. मगर उसकी दायीं बांह को तो करीब के गांव का वह हकीम भी ठीक नहीं कर सका था, जो आदमी का पेशाब देख कर हर बीमारी का इलाज कर देता था.

और स्वयं महिंदरो का घरवाला इस समय उसी शेरसिंह के घर में बैठा शायद गुड़ की शराब पी रहा था. जैले के हाथों की मुठ्ठियां भिंच गयीं.

—यह मक्खनसिंह भी हरामी है. [illegible] बोली.

जैला केवल 'हूं' करके रह गया.

दिन ढल गया था. हवा भी चलने लगी थी. ज्वाले ने कहा—— चल खटिया अंदर कर लें—— ठंड हो गयी है.

——नहीं, मैं अब चलता हूं. जैला उठ खड़ा हुआ.

जब वह घर में दाखिल हुआ तो महिंदरो सिसक रही थी और दलीपो उसे समझा रही थी. जैले को देख कर उसने कहा—— ले, तू ही समझा अपनी लाडो को.

——क्यों, क्या बात हो गयी?

——पूछ ले इससे ही.

——क्या हुआ, कुड़िए? जैले ने महिंदरो से पूछा. मगर वह जवाब देने की बजाय सिसकियां लेने लगी.

—तू ही फूट मुंह से कुछ! जैले ने दलीपो से कहा.

दलीपो जवाब दिये बगैर चौके की तरफ चली गयी. जैले ने महिंदरो को पुचकारने की कोशिश की. परंतु जब वह रोती ही रही तो चौके की ओर चला गया.

दलीपो के करीब बैठते हुए उसने कहा——तू ही कुछ बोल, भागवान! वह तो रोये ही जाती है.

—रोती है अपने करमों को! दलीपो चूल्हे में सुलग रहे उपलों पर चीमटा मारते हुए बोली. भगवान ने औरत की जून दी है तो औरत बन कर रहे—— दो साल बाद घरवाला आया है और पहली ही रात. . .

——मगर हुआ क्या?

——सौ-सौ हुज्जतें करती है. . .कहती है, छिंदी के साथ कोठड़ी में अकेली नहीं सोयेगी. दलीपो ने धीरे से कहा.

जैले ने कुछ कहने के लिए होंठ खोले, मगर फिर बंद कर लिये.

दलीपो बड़बड़ाने लगी—जाने कैसा हौल बैठ गया है! कहती है, देह ठीक नहीं. भला मां के सामने ऐसा झूठ चलेगा? आठ दिन हो गये हैं उसे—— पूरे आठ दिन. यह सफेद बाल नहीं देखती? भला पूछो मैंने उसे जना है या उसने मुझे? इतना डरती क्यों है? दो-एक थप्पड़ ही तो मारेगा. सारे मरद मारते हैं औरतों को. मैंने क्या कम मार खायी है अपने घरवाले से? एक-आध बच्चा हो जाये—— सब ठीक हो जाता है—— और फिर मारेगा भी, तो प्यार से ही मारेगा न?

ठीक तो है, जैले ने सोचा. दलीपो ने क्या कम मार खायी है उससे? मगर हर बार दिमाग की गर्मी, देह की गर्मी में घुल कर खत्म हो जाती रही है. अजीब है यह औरत जात भी——सब कुछ हजम कर जाती है. . .

थोड़ी देर बाद महिंदरो भी आ गयी. शायद रो-रो कर थक गयी थी. दलीपो को उठने के लिए कहा और चुपचाप मक्की की रोटियां बनाने लगी. तभी छिंदी आ गया. शायद पूरी बोतल चढ़ा कर आया था. बोला—रोटी खा आया हूं. मेरा बिस्तर कहां बिछाया है?

—जा महिंदरो! दलीपो ने महिंदरो से कहा. और वह चुपचाप उठ कर छिंदी के साथ कोठड़ी के अंदर चली गयी. कुछ देर बाद लौटी तो दलीपो ने थाली में रोटी डाल कर उसके सामने रखते हुए कहा—— ले, जल्दी से खा ले. और सुन—— जाते वक्त छिंदी के लिए दूध का गिलास लेती जाना.

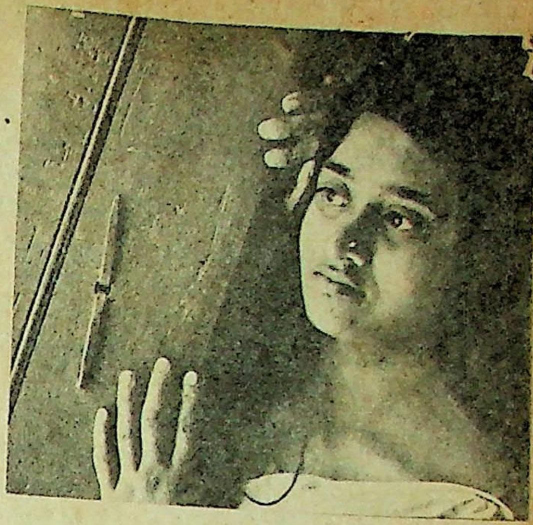

● रजनीकांत

महिंदरो चुपचाप रोटी खाने लगी. दलीपो ने जैले को भी रोटी डाल दी थी. वह भी खाने लगा.

रोटी खा कर महिंदरो ने 'काढ़ने' से दूध का गिलास भरा और उसे लिये हुए कोठरी की ओर चली. दलीपो ने पीछे से टोका—शक्कर तो डाल ले. . .खुद ही जूते खाने की बात करती है!

महिंदरो ने कोई जवाब दिये बगैर दूध में चीनी डाल कर मिलायी और कोठरी के अंदर चली गयी. दरवाजा बंद हो गया.

दलीपो ने अपने और जैले के लिए चौके में ही बिस्तर बिछा लिये थे. जैला रोटी खाते ही अपनी रजाई में घुस गया. दलीपो अभी चौके का काम निपटा ही रही थी कि जैले की आंख लग गयी.

जैले ने महिंदरो की चीखें सुनीं—— वह भागा—— भागता गया—— मगर महिंदरो की चीखें बहुत दूर से आ रही थीं. जैला भागता रहा—— महिंदरो की कमीज फट चुकी थी. उसका जिस्म उसमें से झांक रहा था—— शेरसिंह ने उसे जमीन पर गिरा रखा था—— वह उसके कपड़े नोच रहा था. . . महिंदरो जिबह की जा रही बकरी की तरह चीख रही थी. जैले ने ललकारा—— खड़ा हो तेरी मां की. . .शेरसिंह ने मुड़ कर जैले की ओर देखा—— मगर यह क्या? यह तो छिंदी था! महिंदरो फिर चीखी—— नहीं. . . यह शेरसिंह ही था—— ठहर रे अपनी बहन के खसम! . . .

——क्यों बकबक कर रहा है! दलीपो ने जैले को झिंझोड़ा. जले ने बौखला कर आंखें खोल दीं.

तभी कोठरी से हलकी-सी चीख सुनायी दी. जैला उछल कर उठ बैठा.

दलीपो ने उसकी बांह पकड़ ली——चल, सो जा. चुपचाप! उसने घुड़की दी.

——मगर महिंदरो. . .

——तू लेटता है चुपचाप कि नहीं? . . .

जैले ने लेट कर रजाई सिर तक खींच ली. □□□

द्वारा 'होशियार' पाक्षिक ,
पुराना बाजार, लुधियाना.

चौथा समांतर लेखक सम्मेलन : एक रिपोर्ट (४)

गत २७, २८, २९ और ३० जनवरी को मद्रास तथा कालीकट में समांतर लेखकों का चौथा सम्मेलन हुआ, जिसमें हिंदी के अलावा डोगरी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु तथा मलयालम के लेखकों ने भी भाग लिया. मद्रास में, तथा कालीकट में हुई दो गोष्ठियों की रिपोर्ट आप पिछले अंकों में पढ़ चुके हैं. २८ जनवरी की रात और २९ की सुबह को समांतर लेखकों की पहली अनौपचारिक गोष्ठी हुई, जिसके पूर्वार्द्ध का विवरण आपने अक्तूबर '७५ अंक में पढ़ा. यहां पढ़िए इसी गोष्ठी के उत्तरार्द्ध का विवरण.

बात प्रतिक्रियावादी शक्तियों की अवसरवादी प्रवृत्ति तथा प्रगतिशील-संबद्ध लेखक को ले कर चल रही थी.

बांगलादेश की क्रांति का उदाहरण देते हुए कमलेश्वर ने कहा कि वहां की क्रांति के पीछे सबसे अहम भूमिका वहां की साधारण जनता और बुद्धिजीवी वर्ग की ही थी. परंतु आज उसका सबसे अधिक लाभ उठाने में वहां का राजनीतिक संप्रदाय ही क्रियाशील है.

राम अरोड़ा ने फिर एक नया प्रश्न उठाया. उन्होंने कहा कि कभी किसी राजनीतिक पार्टी को हमारा लेखन अपने अनुकूल लग सकता है. और तब वह दल हमारा लाभ उठा सकता है. क्या ऐसी स्थिति में हम उसके अवसरवाद का फायदा नहीं उठा सकते?

राम अरोड़ा की बात लोगों पर ठीक से स्पष्ट भी नहीं हो पायी कि आशीष सिन्हा ने उन्हें टोका—अवसरवादिता अगर क्रांति या परिवर्तन को स्थगित करती है, तो हमें उसका विरोध करना चाहिए.

यात्री ने अवसरवाद शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की. उन्होंने कहा कि यह शब्द एक स्वस्थ परिवेश के निर्माण में बाधक है, अतः इसका हम जितना ही कम इस्तेमाल करें, उतना ही अच्छा है.

कमलेश्वर ने इस सारी बहस को सही परिप्रेक्ष्य में रखने का प्रयत्न करते हुए कहा कि 'अवसरवाद' अथवा किसी राजनीतिक पार्टी द्वारा हमारे लेखन का इस्तेमाल या हमारे द्वारा उस पार्टी का इस्तेमाल गलत सोच ही नहीं, गलत शब्दावली भी है. हम स्वीकार कर चुके हैं कि हम साधारण आदमी के लिए प्रतिबद्ध ही नहीं, उसकी सोच और उसके संघर्ष से संबद्ध भी हैं. 'संबद्धता' शब्द पर हमने इसी लिए बार-बार जोर दिया है, क्योंकि 'प्रतिबद्धता' हमें एक आरोपित और राजनीति-प्रेरित स्थिति लगती है. समांतर लेखक के संदर्भ में संबद्धता ही शायद सही शब्द और स्थिति है. ऐसी स्थिति में यदि हमारा लेखन साधारण जन की स्थिति को बेहतर बनाने में कहीं भी सहायक होता है, तो हमें क्या आपत्ति हो सकती है? हां, इसके लिए यह आवश्यक होगा कि समय-समय पर हम अपने लेखन का स्वयं जायजा लेते रहें, उसका मूल्यांकन करते रहें, उसकी अर्थवत्ता को परिभाषित और व्याख्यायित करते रहें, ताकि हम उन खतरों से बचे रह सकें जिन्हें 'लेखन के इस्तेमाल' की संज्ञा दी जा सकती है.

राम सुरेश ने भी इसी बात पर जोर दिया कि यदि हमारी समझ और नीयत साफ है, अर्थात् हम चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में देखते हुए अपनी संबद्धता को बनाये रखते हैं, तो हमें किसी प्रकार के अवसरवाद का मुंह नहीं देखना होगा. न ही किसी प्रकार का खतरा हमारे लेखन के इस्तेमाल का ही हो सकता है.

बहस लंबी होती जा रही थी. अतः कामतानाथ ने मूल मुद्दों को दोबारा रेखांकित करना चाहा. उन्होंने कहा, बात राजनीतिक पार्टियों को ले कर उठी थी. किसी ने यह भी कहा कि सभी पार्टियां भ्रष्ट हैं. परंतु इस तरह के स्वीपिंग रिमार्क से काम नहीं चलेगा. इतना साफ है कि बिना किसी राजनीतिक दल या स्पष्ट विचारधारा के जिस परिवर्तन की कामना हम करते हैं, वह संभव नहीं है. क्रांति अलग-अलग इकाइयों में बंट कर जीने और सोचने से नहीं होगी.

दूसरी बात, जैसे कि आशीष सिन्हा ने प्रश्न उठाया था, क्रांति का स्वरूप भी हमारे मस्तिष्क में साफ होना चाहिए. मेरी समझ से, उन्होंने कहा, हिंसात्मक क्रांति या शांतिपूर्ण संक्रमण का फैसला समय ही करेगा.

यह भी संभव है कि आज जो राजनीतिक दल शांतिपूर्ण संक्रमण के पक्ष में हो, वह समय या स्थितियों के अनुसार एक भयानक परिवर्तन के पक्ष में हो जाये.

फिलहाल हमें अपनी समझदारी में क्रांति के पक्ष और प्रतिपक्ष के बारे में साफ होना होगा. उन शक्तियों को पहचानना होगा जो क्रांति की बातें करते हुए भी वस्तुतः प्रतिक्रांति की पोषक हैं.

बसंतकुमार ने कामतानाथ के वक्तव्य से सहमति जाहिर करते हुए कहा कि भविष्य के सारे प्रश्नों का उत्तर वर्तमान में नहीं खोजा जा सकता. क्रांति या परिवर्तन निश्चित अपना मार्ग खुद-ब-खुद कर लेता है.

कमलेश्वर ने बात आगे बढ़ायी. उन्होंने कहा, क्रांति के किसी भी रूप से डरने की बात नहीं है.

साहित्यकार, विशेषकर संघर्षरत समांतर साहित्यकार, हमेशा यथास्थिति को नकारता रहा है. हम परिवर्तन ही नहीं, बल्कि यथार्थ-पोषित समाजवाद चाहते हैं.

सड़क पर खड़ा एक-एक व्यक्ति जब तक अपने भविष्य और वर्तमान के प्रति आश्वस्त नहीं होता, साहित्यिक धरातल पर हमारी लड़ाई तब तक समाप्त नहीं होती. महज व्यवस्था के ढांचे को बदलने तक हमारी बात सीमित नहीं है.

व्यवस्था के बदलने के साथ-साथ हम साधारण आदमी के लिए आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की बात भी करते हैं, जिसके पक्षधर हम हर व्यवस्था में होंगे.

इसी संदर्भ में हमने साहित्यकार की भूमिका को चिरंतन वाम की भूमिका की संज्ञा दी है. और इसीलिए आज यदि यह परिवर्तन शांतिपूर्ण ढंग से होता है, तो हम उसके साथ हैं.

इसी संदर्भ में हमें वर्ण-व्यवस्था की ओर भी ध्यान देना होगा, जो इस सामंतवादी-पूंजीवादी व्यवस्था की ही देन है.

समाज में आज वर्ग-भेद ही नहीं, वर्ण-भेद भी है और आजादी के पिछले सत्ताइस वर्षों में उसमें भी कोई खास परिवर्तन नहीं आया है. दलित साहित्य के हमारे प्रखर साहित्यकार वर्ग-भेद के साथ-साथ आज इस वर्ण-व्यवस्था से भी जूझ रहे हैं.

वीरेंद्र सक्सेना ने कहा कि हमें दोहरे मानदंडों से भी बचना चाहिए.

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि क्रांति की बात करते हुए भी हम परोक्ष रूप से पूंजीवादी मूल्यों से ही जुड़े रहते हैं. उदाहरणार्थ समाज में महिलाओं का अब भी वह स्तर नहीं, जो होना चाहिए. हम इस विषय पर लंबे-लंबे भाषण जरूर दे लेंगे. परंतु अपने व्यक्तिगत जीवन में, अपने परिवार में ही, उन बातों का विरोध करेंगे.

निश्चय ही, कमलेश्वर ने कहा, यह सारी चीजें परिवर्तन की मानसिकता के प्रसार में बाधक हैं और हमें धीरे-धीरे इन चीजों से आगे निकलना है. यही नहीं, धार्मिक संस्कार भी प्रायः हमारे आड़े आते हैं. उन्हें भी हमें बदलना होगा. यह एक लंबी प्रक्रिया हो सकती है, परंतु निश्चित रूप से साहित्यकार इसमें एक अहम भूमिका अदा कर सकता है. और यह सब मेरे विचार से शांतिपूर्ण ढंग से ही संभव होगा. इसीलिए मैं समझता हूं, वर्तमान स्थिति में समाजवाद का हमारा रास्ता शांतिपूर्ण संक्रमण का रास्ता ही हो सकता है.

इस संदर्भ में इब्राहीम शरीफ ने उन प्रतिक्रियावादी शक्तियों की ओर इंगित किया, जो इस परिवर्तन की प्रक्रिया को स्थगित करना चाहती हैं या उसे किसी दूसरी दिशा में मोड़ देना चाहती हैं. समय-समय पर वे ऐसे क्रांतिकारी नारे भी गढ़ लेती हैं, जिनसे जन साधारण को भ्रम में डाल सकें. ऐसी शक्तियों को समझना बहुत जरूरी है.

दया पवार ने दलित साहित्य की चर्चा की. उन्होंने कहा, हम पर आये दिन सवर्ण हिंदुओं और प्रतिक्रियावादी तत्वों का आक्रमण होता रहता है. हमें उसकी भी निंदा करनी चाहिए.

अपराह्न के दो बजने को हो रहे थे. गेस्ट-हाउस में दोपहर का भोजन सब की प्रतीक्षा कर रहा था. अतः गोष्ठी को यहीं समाप्त कर दिया गया.

(क्रमशः)

विश्वविद्यालय-गेस्टहाउस के कमरा नंबर-१ में विचार-गोष्ठी : भाग लेने वाले कुछ लोग— (बायें से) डा. मलिक मोहम्मद, डा. चंद्रशेखरन नायर, डा. वीरेंद्र सक्सेना, अजित पुष्कल, दामोदर सदन, दया पवार, हिमांशु जोशी, कामतानाथ तथा अन्य

आपके व्यवसाय में चार्टर्ड सहायक कैसे है

समय के साथ-साथ व्यवसाय और भी जटिल होते जाते हैं और चार्टर्ड द्वारा दी गयी अतिरिक्त किन्तु आवश्यक सेवायें व्यवसायों के लिए, चाहे वे छोटे हों या बड़े, प्राय: अत्यन्त महत्व की होती हैं।

चार्टर्ड में आपको हमारा ग्रूप, जो एक विश्वव्यापी संस्था है, अन्य लाभ भी देता है जैसे कि असाधारण व्यवसायिक तत्परता, क्योंकि एक ही ग्रूप आप के लिए यहाँ भी और विदेशों में भी काम करता है।

एशिया, अफ्रिका, योरोप, मध्य एवं सुदूर पूरब, अस्ट्रेलिया एवं अमेरिका के ६० देशों में १५०० शाखाएं तथा ग्रूप कार्यलयें हैं।

यह अनुठा कार्य-जाल केन्द्रीय संग्रह को जो स्थानीय जानकारी देता है वह कम ही बैंक अपने ग्राहकों को दे पाते हैं।

आपके वैदेशिक व्यवसाय के लिए एक-एक पल की सूचना अत्यन्त महत्व की हो सकती है। चार्टर्ड आपकी सहायता और भी प्रकार से कर सकता है।

दि चार्टर्ड बैंक

अमृतसर, बम्बई, कलकत्ता, कालीकट, कोचीन,
दिल्ली, कानपुर, मद्रास, नई दिल्ली,
वास्को-डा-गामा

स्टैण्डर्ड एण्ड चार्टर्ड
बैंकिंग ग्रूप का एक सदस्य

sekai/cb/283

OBM 5080 HIN

जब कभी मीरा को
चोट लग जाती है

वह स्वयं को छूत से बचाने के लिए
हमेशा BAND-AID BRAND पट्टियां
पर ही भरोसा करती हैं

खुले घाव को हमेशा छूत लगने का डर रहता है। बैन्ड-एड ब्रान्ड पट्टियों से इसकी रक्षा कीजिये। बैन्ड-एड ब्रान्ड पट्टियाँ कीटाणुओं से घावों की रक्षा करती हैं और कार्यसिद्ध ऐन्टीसेप्टिक मर्क्युरोक्रोम घाव को आराम पहुंचाती है और अच्छा करती है। सावधानी बरतिए — बैन्ड-एड ब्रान्ड पट्टियाँ लगाइये। हमेशा कुछ पट्टियाँ अपने पास रखिए।

बैन्ड-एड ब्रान्ड
पट्टियाँ केवल
जॉन्सन एण्ड जॉन्सन ही बनाते हैं।
Johnson & Johnson*

मर्क्युरोक्रोम से
औषधियुक्त

NEW
STANDARD STRIP
BAND-AID
MEDICATED DRESSING
WITH MERCUROCHROME

*Trademark © J&J 75

थोक व्यापारिक पूछ-ताछ के लिए सम्पर्क करें :

हसमुख एजेन्सी
गोखले रोड (दक्षिण)
बम्बई ४०० ०२५

हसमुखलाल एण्ड कम्पनी
गोखले रोड (दक्षिण)
बम्बई ४०० ०२५

ठक्कर परषोत्तम हीरजी एण्ड कम्पनी
जॉली सेंटर बेसमेंट, सांताक्रूज
बम्बई ४०० ०५४

जवाहर मेडिकल एण्ड जनरल स्टोर्स
९९-१०१ के. एन. रोड
बम्बई ४०० ००९.

sekai/cb/283

दीपावली के पुनीत पर्व पर प्रस्तुत है एक महान जैन कथा

बाहुबली

जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव पहले एक महान शासक थे. उनके पुत्रों में दो भरत और बाहुबली को साहस और शौर्य विरासत में मिला था. पर साम्राज्य की लिप्सा ने भरत को स्वार्थी बना दिया. बाहुबली का राज्य छीनने के घमंड में भरत और बाहुबली के बीच संघर्ष हुआ. भरत ने बाहुबली को हराने के कैसे-कैसे प्रयास किये ? बाहुबली ने कैसे विजय पायी ? लेकिन बाहुबली ने भी राजपाट छोड़कर क्यों वैराग्य धारण किया ?

— पढ़िए रंगीन चित्रों भरी कहानी

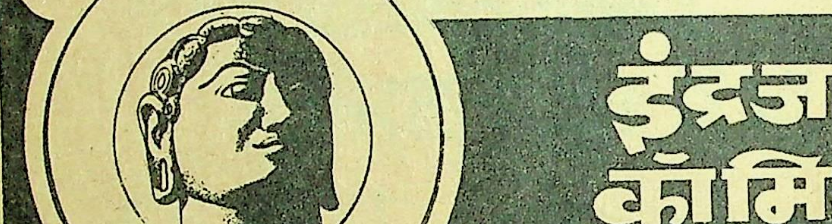

TIMES ART

इंद्रजाल कॉमिक्स

१५ नवम्बर १९७५

अपनी प्रति
तुरंत खरीद लें,
वरना कहीं
पछताना न पड़े !

मूल्य मात्र
एक रुपया

टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन

parag
INFANT MILK FOOD

सही पालन पोषण का आधार

पराग

(स्प्रे-ड्राईड)

शिशु दुग्ध आहार

पूर्णतया संतुलित 'पराग' नवजात शिशु के सही पालन पोषण के लिए विश्वसनीय दुग्ध आहार है। इसे आप शिशु को जन्म के बाद पहले ही सप्ताह से दे सकती हैं। स्वादिष्ट तथा शक्तिदायक पराग-पिलाने से शिशु सदा स्वस्थ और सक्रिय रहेगा।

ताज़े दूध से अत्याधुनिक स्प्रे-ड्राइंग द्वारा निर्मित, पल-भर में तैयार प्रोटीन, विटामिनों (आठ), खनिज पदार्थों तथा अन्य पौष्टिक तत्वों से भरपूर 'पराग' को आप अपने शिशु की कोमल पाचन शक्ति के अनुकूल पायेंगी।

प्रादेशिक कोआपरेटिव डेरी फेडरेशन लिमिटेड, लखनऊ
द्वारा इन्फैंट मिल्क फूड फैक्ट्री, (मुरादाबाद) में निर्मित

बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई-१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-१; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०-ए [illegible] मिडिलसेक्स, यू. के.

पंजीयत सं. एम. एच. दक्षिण बंबई-३११

नैसर्गिक सौंदर्य बनाये रखिए

अफगान स्नो

सौंदर्य प्रसाधन प्रयोग कीजिए

अपने नैसर्गिक सौंदर्य का उचित प्रकार से ध्यान रखिए. अपने सौंदर्य को फूल की पंखुड़ी की तरह मुलायम एवं शबनम की तरह तरोताजा रखिए. अनेक प्रयोगों से हमने सिद्ध कर दिया है कि अफगान स्नो सौंदर्य प्रसाधन अर्थात् "सौंदर्य की अमूल्य भेंट" है, इसीलिए स्त्रियां अपने सौंदर्य की रक्षा के लिए इन प्रसाधनों पर भरोसा करती हैं, आप भी भरोसा कीजिए.

AFGHAN
AFGHAN
LIQUID MAKE UP
AFGHAN

ई. एस. पाटनवाला, बंबई-४०००८६.

AFGHAN
AFGHAN
HEENA
KAMAL

दिसंबर १९७५

सारिका

15|1|77

समाजवादी देशों की कहानियों का खंड

राजेंद्र यादव की आत्मरचना

अन्य लेखक :
माचवे
उर्मिकृष्ण
स्वदेश दीपक
सविता बैनर्जी
आदि

सभी स्थायी स्तंभ

२२

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
१ रुपया

CC-0. ... Gurukul Kangri

जीतिए

हिन्द पॉकेट बुक्स

इनामी प्रतियोगिता में भाग लेकर
बड़े-बड़े इनाम प्राप्त कीजिए

पहला इनाम : मोटर साईकल
दूसरा इनाम : रेफ्रीजरेटर
तीसरा इनाम : टेलिविज़न
चौथा इनाम : रिकार्ड प्लेयर

पांचवां स्थान पाने वाले बीस व्यक्तियों को हिन्द पॉकेट बुक्स द्वारा संचालित घरेलू लाइब्रेरी योजना का सदस्य बनाकर एक वर्ष के लिए प्रत्येक मास 12 रुपये मूल्य की पुस्तकें मुफ्त भेंट की जाएंगी।

आपको क्या करना है?

- सामने के पृष्ठ पर दिए गए छः प्रश्नों के उत्तर देते समय कोष्ठकों ☐ में ✓ का चिह्न लगाएं।
- केवल दस शब्दों में यह कथन या स्लोगन लिखें कि हिन्द पॉकेट बुक्स आपको क्यों पसन्द हैं।

नियम

1. प्रत्येक प्रतियोगी को हिन्द पॉकेट बुक्स के किसी भी विक्रेता से कोई-सी तीन पुस्तकें खरीदकर कैशमीमो अपने हल के साथ अवश्य भेजना होगा।
2. एक से अधिक हल भी भेजे जा सकते हैं, परन्तु हर हल के साथ तीन हिन्द पॉकेट बुक्स की कैशमीमो अवश्य लगी होनी चाहिए अन्यथा हल पर विचार नहीं किया जाएगा।
3. घरेलू लाइब्रेरी योजना के सदस्य भी इस प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं, परन्तु उन्हें अपनी मासिक किस्त की पुस्तकों के अतिरिक्त तीन पुस्तकें और मंगवानी होंगी।
4. इस प्रतियोगिता में हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लि० के कार्यकर्ता भाग नहीं ले सकते।
5. प्रतियोगिता का निर्णय संस्था द्वारा नियुक्त जजों का पेनल करेगा जो सर्वमान्य होगा।

हल भेजने की अन्तिम तारीख 15 दिसम्बर, 1975

अपना हल भेजने के लिए प्रतियोगिता कूपन यहां से काटें या अपने नगर के पुस्तक-विक्रेता से प्राप्त करें ।

प्रतियोगिता कूपन

1. हिन्द पॉकेट बुक्स के संबंध में केवल दस शब्दों में यह कथन (स्लोगन) लिखिए कि हिन्द पॉकेट बुक्स आपको क्यों पसन्द हैं । क्योंकि……………………………………………
2. हिन्द पॉकेट बुक्स की स्थापना कब हुई थी ? ☐ 1957 में ☐ 1958 में ☐ 1960 में
3. हिन्द पॉकेट बुक्स की ओर से प्रकाशित सबसे पहली पुस्तक कौन-सी थी ? ☐ गीतांजलि ☐ भ्रमर वाणी ☐ आभा
4. हिन्द पॉकेट बुक्स द्वारा यह विज्ञापन छपने तक कुल कितनी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं ? ☐ 850 से 1150 ☐ 1150 से 1800 ☐ 1800 से 2500
5. हिन्द पॉकेट बुक्स किन-किन भाषाओं में प्रकाशित होती हैं ? ☐ हिन्दी ☐ अंग्रेजी ☐ पंजाबी ☐ बंगाली ☐ गुजराती ☐ उर्दू
6. क्या हिन्द पॉकेट बुक्स की ओर से सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का साहित्य प्रतिमास प्रकाशित होता है ? ☐ हां ☐ नहीं

आपका नाम……………………………………

पता……………………………………

……………………………………

सा·

यदि घरेलू लाइब्रेरी योजना के सदस्य हैं तो सदस्यता-नम्बर लिखें……………………

इनामों की घोषणा फरवरी के अंतिम सप्ताह के 'धर्मयुग' में की जाएगी ।

कैशमीमो सहित अपने हल इस पते पर भेजें—

प्रतियोगिता

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा. लिमिटेड

जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली- 110032

अपना
भविष्य सुनिश्चित
करायें

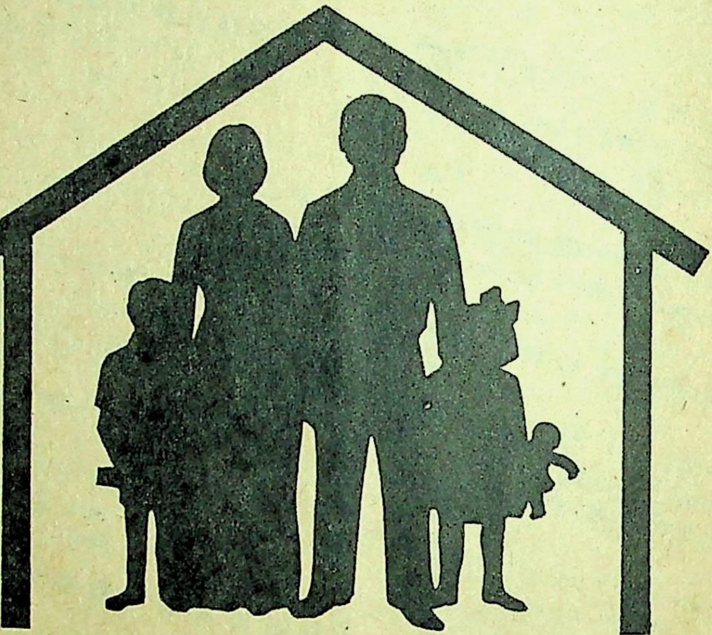

सुरक्षित, सहायक, मित्र-बैंक में बचत की आदत डालें।

आज जो सपना है, कल साकार हो सकता है।

हमारी काउन्टर पर उपलब्ध पुस्तिकाओं से एक अच्छी आदत अपनावें।

दि
चार्टर्ड
बैंक

अमृतसर, बम्बई, कलकत्ता, कालीकट, कोचीन,
दिल्ली, कानपुर, मद्रास, नई दिल्ली,
वास्को-डा-गामा

स्टैण्डर्ड एण्ड चार्टर्ड
बैंकिंग ग्रुप का एक सदस्य

sekai/cb/282

क्या छोटे क़द के लोगोंकी उम्र कम होती है?

क्या आपको न घर में पसंद किया जाता है न ऑफ़िस में?

आप अपने क़द में वृद्धि कैसे कर सकते हैं?

जवाब बस एक ही है॥ यह अद्भुत एक्सरसाइज़र इस्तेमाल करना शुरू कर दीजिये॥

पाईये! 'हाइटोमेट्रिक्स'

पाइये नयी ऊँचाई—सुरक्षित स्थायी
यह वैज्ञानिक आविष्कार आपके क़द में वृद्धि की गारंटी देता है। वर्ना आपका पैसा वापस!
क़द में स्थायी वृद्धि ८ सें. मी. तक।

मैनहट्टन फ़िज़िकल रीसर्च इंस्टिट्यूट आप के लिए पेश करते हैं

दिनेश आनन्द से मिलिए। उसका क़द हाइटोमेट्रिक्स कोर्स शुरू करने से पहले कुल १७० सें. मी. था। अब पूरा १७८ सें. मी. है।

स्त्री और पुरुष दोनों हाइटोमेट्रिक्स इस्तेमाल कर सकते हैं॥

"मैंने मेरी क़दमें ६·५ सें.मी.से वृद्धि पाई"

पहले
१ हफ्ते के बाद
पाई १ सें.मी
४ हफ्ते के बाद
पाई ५ सें.मी

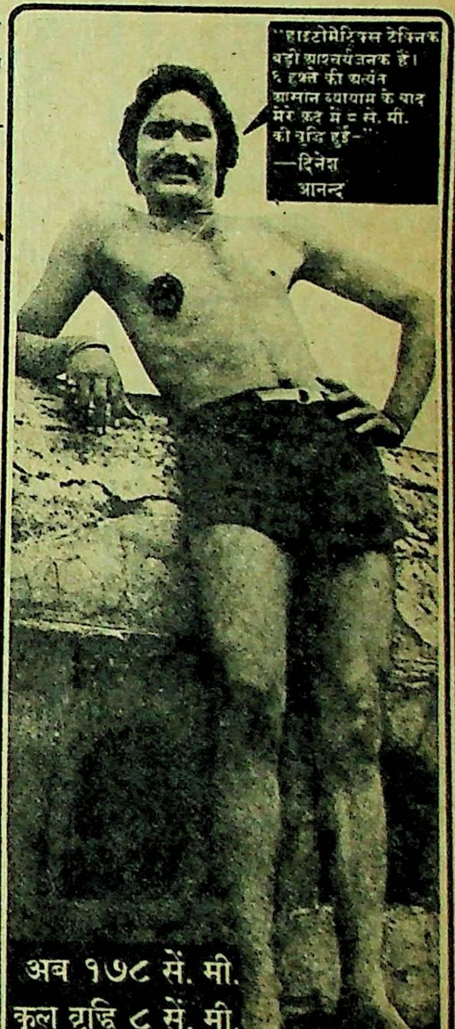
"हाइटोमेट्रिक्स टेक्निक बड़ी आश्चर्यजनक है। ६ हफ्ते की अत्यंत आसान व्यायाम के बाद मेरे क़द में ८ से. मी. की वृद्धि हुई"
—दिनेश आनन्द
अब १७८ सें. मी.
कुल वृद्धि ८ सें. मी.

जीहाँ मुझे ज्यादा ऊँचा और ज्यादा सुडौल बनने की इच्छा है। कृपया शीघ्र भेजिए!

हाइटोमेट्रीक्स SK/12/75
मैनहट्टन फ़िज़िकल रिसर्च इंस्टिट्यूट
११२, चर्चगेट चेम्बर्स, न्यू मरीन लाइन्स
बम्बई-४०० ०२०

दिनांक ......
हस्ताक्षर ....
NAME ____
ADDRESS ____
P.O. ____ Pincode ____ AGE ____

Cheques/Money orders should be made in favour of Ross-Murarka (India) Pvt. Ltd.

आपके वर्तमान क़द और रूप रेखा के विरुद्ध आपकी सफल कोशिशें यहां से शुरु होती हैं!

आजही पग उठाइये। आज ही यह कूपन डाक से भेजिये!

HEADSTART-AI 507-HIN

हाइटोमेट्रिक्स—आपको सर ऊँचा करके चलने में सहायता देता है—गर्व के साथ!

सारिका के वार्षिक ग्राहकों के लिए विशेष छूट

'सारिका' के प्रत्येक अंक का मूल्य एक रुपया है. किंतु वर्ष भर के लिए वार्षिक शुल्क मात्र दस रुपये है, यानी साल भर में २ अंक मुफ्त। यदि आप दो साल के लिए ग्राहक बनते हैं, तो शुल्क केवल उन्नीस रुपये है यानी दो वर्षों में ५ अंक मुफ्त, हां, तीन वर्ष के लिए शुल्क केवल सत्ताईस रुपये है.

आपके लिए सारिका की विशेष दरें इस प्रकार हैं:

एक वर्ष — १० रुपये
दो वर्ष — १९ रुपये
तीन वर्ष — २७ रुपये
विदेश में समुद्री डाक से एक वर्ष — २२रुपये

कृपया यह कूपन जरूरी राशि के चेक/ड्राफ्ट/मनी-आर्डर के साथ साथ आज ही भेज दें—

सर्कुलेशन मैनेजर,
सारिका, टाइम्स आफ इंडिया बिल्डिंग, बम्बई-४००००१

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष/दो वर्षों/तीन वर्षों के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. १० रुपये/१९ रुपये/२७ रुपये चेक/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेजे जा रहे हैं.

नाम..
....
पता...
....
....
हस्ताक्षर...................................

सामंती युग के अवशेष: देवदासी प्रथा–एक विशिष्ट खंड

पश्चिम महाराष्ट्र और विशेष रूप से गोवा के मंदिरों में देवदासी प्रथा सामंती युग के अवशेष के रूप में अब भी जीवित है. यह प्रथा अंध-विश्वासों के सहारे भारतीय नारी के शोषण का एक घिनौना इतिहास प्रस्तुत करती है. इस अंक में आप देवदासियों से संबंधित कुछ कहानियां, संस्मरण और लेख पढ़ सकेंगे साथ ही अन्य कहानियां भी.

इस अंक के लेखक हैं–
लक्ष्मणराव सरदेसाई, मधु मंगेश कर्णिक, जयवंत दलवी, प्र. श्री. नेरूरकर, शंकरराव खरात, वी. आर. तलाशीकर चंद्रकिरण सौनरेक्सा, मधुकर गंगाधर, हृदय लानी, ए. रमेश चौधरी 'आरिगपूडि', अनीता औलक आदि.
साथ ही–
आद्यकथाकार (मराठी) तथा सभी स्थायी स्तंभ.

सारिका
जनवरी १९७६

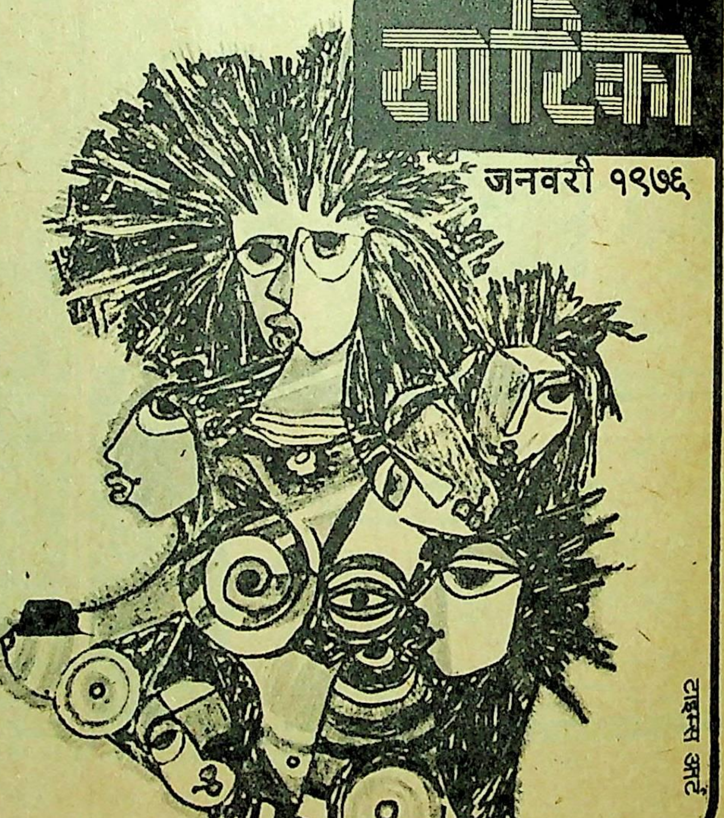

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

दिसंबर, १९७५

वर्ष : १५ : पूर्णांक : १७६

15/7/76

समाजवादी देशों की कहानियों का विशिष्ट खंड

कहानियां

शोलोखोव : निशानी (सोवियत) १२
याकोव सीगेल : बहुत दिन बीते (सोवियत) १६
फ्रिजेश कारिथी : एकतरफा प्यार (हंगरी) २४
लायोश बिरो : वियना का हीरा (हंगरी) ३०
आइवो एंद्रिच : जीपा का पुल (यूगोस्लाविया) ३२
मीरोस्लाव क्रलैझः बैरक नंबर पांच (यूगोस्लाविया) ३६

● ●

अन्य कहानियां

सविता बैनर्जी : गलत नंबर ४४
स्वदेश दीपक : एक आधुनिक औरत की मौत ४८
अमरेंद्र 'अमर' : एक और वापसी ६०
उर्मि कृष्ण : नये सफेद गुलाब ६४
सारंग बारोट : चोर ६८
ब्रजकुमार मित्तल : पारदर्शी चेहरा ७२
विकेश निझावन : न चाहते हुए ८०
प्रभाकर माचवे : हमारे भी हैं मेहमां कैसे-कैसे ८४

लघु कथाएं

अपनी-अपनी हैसियत (जर्मन) १८
हीरोइन की तलाश : (रूसी) २१
ज्ञान ही शक्ति है („) २३
आलसी बिल्ली („) २३
ज्ञानवान बटिया पत्थर („) ४
समानता („) २३
वजन (जर्मन) २९
शिव ओम का छुरा ४७
भिक्षा और दान ७५
प्रायश्चित ८३

● ●

स्थायी स्तंभ

पाठकीय ८
गर्दिश के दिन : राजेंद्र यादव ५२
विविधा : ललितमोहन अवस्थी ८६

● ●

गोष्ठी रिपोर्ट

पांचवां समांतर लेखक सम्मेलन ८९
● आमुख : आर. एन. शर्मा

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंद प्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

सितंबर अंक

● हेमराज काचा, पो–बालंभा जि. जामनगर से लिखते हैं :

'**सारिका**' के ठीक प्रारंभ से ही मैं उसका पाठक रहा हूं. '**सारिका**' के कई रूप देखे-परखे हैं. मेरे खयाल से '**सारिका**' कभी जन-जीवन से अलग नहीं रही.

सितंबर की उर्दू कहानियां तो अत्यंत सुंदर, सरस, रोचक और कलात्मक रहीं. बेदी जी ने '**चश्मे-बद् दूर**' में कमाल कर दिखाया है. सामान्य को असामान्य रूप दे दिया है. '**समानांतर**' की नीलम और अनु को ले कर सुकीर्ति गुप्ता ने अस्तित्व के पहलू को एकदम मार्मिक रूप दे दिया है. . .कि बिना प्रेम का दैहिक-समर्पण ही अस्तित्व का खंडन है. . .महेंद्रनाथ की '**बड़ा आदमी**' हमारे राजनैतिक-सामाजिक परिवेश को कितना उजागर करती है! फालतू आदमी की कहानी '**गिरवी रखी धूप**' मन को कोंचने वाली एक सुंदर कृति है. '**निबंध**' की अनीता की भांति हम सब भी सीमित-असीमित या स्वीकार-नकार की भावना से पीड़ित हैं. ☐

● हरिभक्त, ६६ वल्लभ नगर कालोनी, पंजवाणी भवन, गुमानपुरा कोटा (राज.) से लिखते हैं :

सितंबर की '**सारिका**' में कैमरे से खींचे गये सभी चित्र बहुत पसंद आये एवं कहानियां '**परिंदे पकड़ने वाली गाड़ी**' (गयास अहमद गद्दी), '**कांच का आदमी**' (श्रवणकुमार वर्मा) विशेष पसंद आयीं. मेहरुन्निसा परवेज की कहानियां भी पसंद आती हैं. चंद्रा औलक की '**बोझ**' भी बहुत अच्छी लगी. ☐

● अशोक शर्मा, जीवन बीमा निगम, धमतरी (म. प्र.) से लिखते हैं :

उर्दू कहानियों का विशिष्ट खंड सराहनीय है. सभी कहानियों ने प्रभावित किया, पर गयास अहमद गद्दी की कहानी विशेष रूप से प्रशंसनीय है, एक-एक कर सारे मासूम परिंदे जब खूबसूरत गाड़ी में कैद कर लिये जायेंगे, तब माहौल कितना गमगीन और मनहूस हो जायेगा, यह सोच कर ही दहशत होती है.

इसी तरह श्रवणकुमार वर्मा की कहानी आदमी की असहायता और उसके गुम होते हुए वजूद को रेखांकित करती है.

'**चश्मे-बद् दूर**' और '**बड़ा आदमी**' कथ्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी अनावश्यक रूप से लंबी हो गयी है.

हिंदी खंड की कहानियों को पढ़ कर आज की कथा-लेखिकाओं की कूप-मंडूकता से खीझ होती है. क्या उन्हें 'नारी शरीर के उन्मुक्त प्रदर्शन, पति-पत्नी के चटखते रिश्ते और घर-मोहल्ले की घुटन के अलावा और कुछ कथनीय नहीं दिखाई देता?

लेखिकाओं की इस भीड़ में एक अपवाद हैं, मेहरुन्निसा परवेज, जो इस सीमित दायरे के बाहर भी सोचती हैं. उनकी कहानी '**गिरवी रखी धूप**' इस खंड की श्रेष्ठ कहानी कही जा सकती है, जो गलत अर्थ-व्यवस्था की गर्म धूप से तड़कते हुए नाजुक रिश्तों की मार्मिक टूटन को अभिव्यक्त करती है.

'**निबंध**' पीढ़ी-दर-पीढ़ी बदलते हुए जीवन मूल्यों की कहानी है. लघुकथाओं में '**दुकानदारी**' सबसे ज्यादा सटीक है. ☐

● प्रो. पी. जे. शर्मा. २३८२, गली-जसवंत, कटड़ा दूलो, अमृतसर से लिखते हैं :

हिंदी साहित्य में मेरी रुचि बचपन से ही है ! आज दिन तक न जाने कितने ही उपन्यास व पत्रिकाएं पढ़ डालीं, लेकिन जब से मेरे परम मित्र प्रो. एस. डी. साहा ने मेरा ध्यान कहानियों व कथा-जगत की प्रसिद्ध व संपूर्ण पत्रिका '**सारिका**' की तरफ आकर्षित किया है, मैं निस्संदेह कह सकता हूं कि '**सारिका**' जैसी बेजोड़ पत्रिका आज दिन तक पढ़ने का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है! लघुकथाएं '**सारिका**' की मुख्य विशेषता हैं! इतनी बड़ी-बड़ी बातों को लघुकथाओं के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप में कह डालना '**सारिका**' का नया प्रयोग है.

'**सारिका**' की लोकप्रियता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि इसे प्राप्त करना ही कठिन है, क्योंकि इसके अंक हाथों-हाथ बिक जाते हैं! ☐

● दिलीपकुमार जागेश्वर, जागेश्वर नगर, कटिहार (बिहार) से लिखते हैं :

सितंबर अंक प्रत्येक दृष्टि से उत्तम था. आम आदमी की कुछ न कर पा सकने की त्रासदी और घुटन उसे कितना असहाय बना जाती है! आर्थिक बिखराव के कारण पैदा हुई दारुण स्थिति ने आज सामान्य जन को कहीं का नहीं रख छोड़ा है. गयास अहमद गद्दी की कहानी '**परिंदा पकड़ने वाली गाड़ी**' इस संदर्भ में कहीं अंदर तक चोट कर गयी है. '**उसकी हत्या**', '**बोझ**' '**समानांतर**' आदि कहानियां आम आदमी के आसपास घूमती हैं. राजेंद्रसिंह बेदी की 'चश्मे-बद् दूर' और महेंद्रनाथ की '**बड़ा आदमी**' बड़े सशक्त ढंग से अपनी-अपनी बातों को रख जाती हैं. ☐

● 'सुधाकर' २७३, गली आर्य समाज, बाजार सीताराम, दिल्ली – ६ से लिखते हैं :

सितंबर अंक में बेदी साहब की कहानी '**चश्मे-बद् दूर**' विशुद्ध हास्य का विशुद्ध उदाहरण. अपनी २३ साल की जिंदगी में इतनी सशक्त हास्य-कहानी या रचना मैंने कभी नहीं पढ़ी थी. बेदी साहब की कहानियों में मैंने अकसर एक अनजाना अधूरापन-सा पाया है. उनकी कहानियां सहज ही प्रश्नात्मक स्थितियां पैदा कर जाती हैं. पर '**चश्मे-बद दूर**' का रोचक प्रस्तुतीकरण, लिखने की शैली, कहने की कला सब कुछ बेदी साहब का लोहा मानने पर मजबूर करते हैं. श्रवणकुमार का दहशत भरा '**कांच का आदमी**' पाठकों को भी अपनी स्थिति से जोड़ने में सफल है. फकीर मोहन सेनापति की उड़िया '**रेवती**' (प्रथम मौलिक

● रूपचंद ढींगड़ा, सहायक पुस्तकाध्यक्ष, गुरु नानक खालसा कॉलेज, करनाल से लिखते हैं :

लोग कहते हैं कि जीवन के तीन मुख्य निशान, रोटी, कपड़ा तथा मकान हैं. इनके साथ-साथ आज साहित्य भी एक महत्वपूर्ण निशान बन गया है. साहित्य, समाज का वह महत्वपूर्ण दर्पण है जो समाज की अच्छाइयों तथा बुराइयों को दर्शाता है. साहित्य मनुष्य के अकेलेपन का साथी है. लिखना और पढ़ना साहित्य में ही निहित है. तथा अच्छा साहित्य, पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं में पाया जाता है. इस दृष्टि से मैं **'सारिका'** को अच्छे साहित्य की खान समझता हूं. जब से साहित्य से लगाव हुआ है, बस **'सारिका'** से ही स्वयं को प्रभावित पाता हूं. प्रति मास इसकी कहानियां मेरे हृदय को कचोट डालती हैं क्योंकि वे सभी आम आदमी के आसपास की कहानियां होती हैं. मेरा साहित्य तो 'सारिका' ही है! ☐

कहानी) भी समांतर साहित्य का एक अंग प्रतीत होती है.

'सारिका' के सुरुचिपूर्ण वातावरण में दीप्ति जी की कहानी **'निबंध'** दखल देती-सी लगती है.

विशिष्ट लेख **'आज का उर्दू कथा-साहित्य'** व **'चौथा समांतर लेखक सम्मेलन'** दोनों ही विचारशील व महत्वपूर्ण हैं. ☐

● राजाराम सिंह, ६८।३१ ए, लोकमन मोहाल, कानपुर से लिखते हैं:

'आज का उर्दू कथा साहित्य' लेख पढ़ कर आजकल उर्दू कथा साहित्य में क्या लिखा जा रहा है इसका ज्ञान हुआ. वास्तव में **'सारिका'** ही एक ऐसी पत्रिका है, जिसके माध्यम से हम देश-विदेश की भाषाओं के साहित्य की सम्यक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं.

इस अंक की उल्लेखनीय कहानियों में मेहरुन्निसा परवेज की **'गिरवी रखी धूप'** और गयास अहमद गद्दी की **'परिंदा पकड़ने वाली गाड़ी'** काफी हद तक प्रभावित करती है. राजेंद्र सिंह बेदी की व्यंग्य कथा **'चश्मे-बद दूर'** भी काफी मनोरंजन करती है. ☐

अक्तूबर अंक

● शीलधर सिंह हिंदी विभाग, जामताड़ा कालेज (सं. प.) बिहार से लिखते हैं :

'सारिका' का अक्तूबर '७५ अंक. **'आत्मरचना'** के अंतर्गत राबिन शा पुष्प' की स्पष्टवादिता एवं निर्भीकता बड़ी पसंद आयी. गर्दिश के दिनों में भी उनके संकल्प की दृढ़ता वस्तुतः अनुकरणीय है. क्रिश्चियन होने के बावजूद शराब और अंग्रेजियत से अंग्रेजों के वक्त में भी नफरत और हिंदी से अपार प्यार कम साहस की बात नहीं. और अपनी अपाहिज मां की सेवा तो हमारी संस्कृति को तरोताजा कर देती है. हम श्रवणकुमार के अस्तित्व को कदापि झुठला नहीं सकते. लेकिन सबसे बड़ी बात तो उनसे हम तब सुनते हैं, जब वे कहते हैं. . . मगर लोग पहले से भी ज्यादा पीने लगे हैं, अधिक अंग्रेजी बोलने लगे हैं और जो हिंदी मैंने बहुत जिद करके सीखी थी, बहुत पीछे छूट गयी है बहुत पीछे, ऐसा लगता है, पुष्पजी ने अपनी कथा-कथा के माध्यम से इस स्वतंत्र राष्ट्र भारत और भारत की राजभाषा हिंदी के दुख-दर्द को वाणी देने का सफल प्रयास किया है, क्या हम कभी इस पर गहराई से सोचते है? ☐

● पुर्णेन्दु नारायण प्रसाद अधिवक्ता नुरुद्दीनगंज पटना से लिखते हैं :

'सारिका' का अक्तूबर अंक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. उसमें कहानियों का जो चयन किया गया है, वह वास्तव में श्लाघनीय एवम् प्रशंसनीय है. ये कहानियां कहानी-लेखन के मूल तत्वों को तो प्रस्तुत करती ही हैं, साथ-साथ वे समाज की चलती-फिरती विचार धारा तथा विश्व के समसामयिक कथा-साहित्य से पाठकों को अवगत कराती हैं.

इसमें **आत्मरचना'** शीर्षक के अंतर्गत दी गयी आत्म कहानी बीते हुए युग के सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल एवम् कशमकश का सजीव चित्र आंखों के सामने ला देती है. **'गुस्ताखियां'** शीर्षक सामयिक और वैयक्तिक चर्चा हृदयग्राहक तो है ही, साथ-साथ यदाकदा हास्य एवम् व्यंग्य से परिमार्जित है. रोमानिया और वेस्ट इंडीज की कहानियां हमारे सामने उन देशों के प्राकृतिक सौंदर्य और समांतर साहित्य प्रस्तुत करती हैं. और इस प्रकार हमें स्थानीय या प्रांतीय घेरे से ऊपर उठा कर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ले जाती हैं. इसमें लघुकथाएं थोड़े समय में हृदय के मर्म पर शाश्वत प्रभाव डालती हैं और जीवन के आदर्शों की ओर प्रेरित करती हैं. जिस क्रम में इनका उद्धरण हुआ है उससे ये नाटक में विदूषक प्रकरण की तरह काम करती हैं.

'सारिका' वास्तव में सृजनात्मक साहित्य की एक सुंदर कड़ी है. ☐

● रामबहादुर वर्मा, प्रवक्ता, फीरोज-गांधी कॉलेज, रायबरेली से लिखते हैं :

'सारिका' बधाई की पात्र है कि इसने कहानी को ड्राइंगरूम, होटल के कमरों, नंगे जिस्मों, सेक्सजनित कुंठाओं के दायरे से बाहर निकाल कर सामान्यजन के दुख-दर्द के साथ जोड़ा और कहानी को पुनः सही धरातल पर प्रतिष्ठित किया है. कमलेश्वर जी का कथन सही है कि विगत दशकों में जब आम आदमी गरीबी, अभाव और घाटे के भविष्य से जूझ रहा था, हिंदी के कहानीकारों ने उसके लिए जिम्मेदार पूंजीवादी दक्षिणपंथी खेमे को न ठहरा कर व्यक्ति को परिस्थितियों का खिलौना सिद्ध किया. सामाजिक, आर्थिक परिवेश से कट कर संत्रास कुंठा के अलावा उन्हें मिल ही क्या सकता था? कहानीकारों ने सत्य पर झूठ का रंगीन परदा डालने की कोशिश की, पर समांतर कहानी के मैदान में आ जाने से उनकी दशा उस राजकुमारी के समान हो गयी जिसे मलमल की सात परतों में लिपटने के बावजूद भी पिता के सामने जाने पर डांट खानी पड़ी कि वह नंगी क्यों है! कहानी को सामान्य जन के संघर्ष के साथ पुनः जोड़ने का यह पुनीत कार्य **'सारिका'** के सहयोग के बिना कैसे संभव होता?

राष्ट्रीय सम्पत्ति की चोरी

स्टेशन तथा गाड़ियों में बिजली और अन्य फिटिंग्स को चुराने और नुकसान पहुंचाने से यात्रियों को अत्यंत असुविधा होती है और कष्ट उठाने पड़ते हैं. रेलवे को वहन के लिए दिये गये सामानों के खो जाने से सब को कठिनाइयां होती हैं.

हर साल रेलवे को खोयी हुई फिटिंग्स को फिर से लगाने में अत्यधिक पैसा खर्च करना पड़ता है और चोरी की गई सम्पत्ति से होने वाली क्षतिपूर्ति पर करोड़ों रुपये खर्च करने पड़ते हैं.

रेलवे की सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति है. जिसके नुकसान का भार आपको ही उठाना पड़ता है.

सम्पत्ति की रक्षा में हमारी मदद करें.

●

पश्चिम रेलवे

समाजवादी देशों की कहानियों का यह विशिष्ट खंड

इस विशिष्ट खंड की कहानियां तीन समाजवादी देशों की कहानियां हैं; जो उन देशों की मूल भाषाओं या उपभाषाओं से सीधे अनूदित की गयी हैं. इन पांचो लेखकों के नाम हिंदी के प्रबुद्ध पाठकों के लिए अपरिचित नहीं हैं इन कहानियों में से कुछ तो ऐसी हैं जो बिलकुल विदेशी नहीं लगती, अपने ही आसपास की लगती हैं, हंगरी की दोनों कहानियां ऐसी ही हैं.

हंगेरियाई लेखक फ्रिजेश कारिथी और लायोश बिरो पारिवारिक और व्यतिगत मानसिकताओं के प्रख्यात लेखक हैं. इसी तरह सोवियत लेखक शोलोखोव सामाजिक और मानवीय संघर्षों के सिद्धहस्त रचनाकार हैं. शोलेखोव को उनके प्रसिद्ध उपन्यास —'क्वाइट फ्लोज द दोन'— पर नोबल पुरस्कार मिल चुका है. उनकी सभी रचनाओं में अपनी जमीन की सौंधी महक स्पष्ट महसूस होती है.

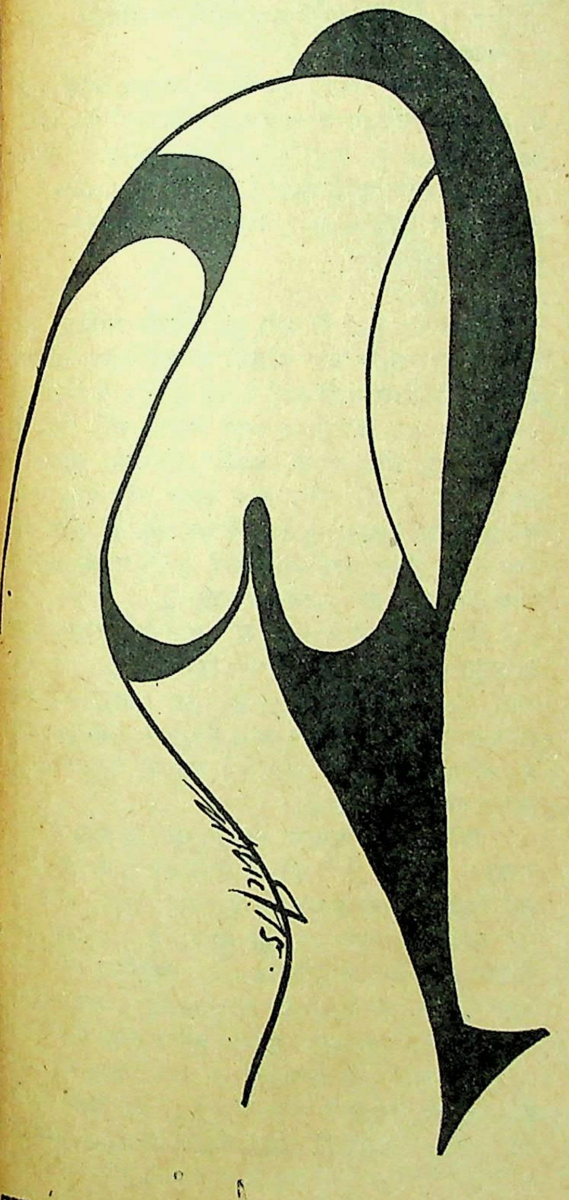

यूगोस्लाव लेखक आइवो एंड्रिच वहां के एक मात्र लेखक हैं जिन्हें नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है. यह पुरस्कार उन्हें १९६१ में प्राप्त हुआ. एंड्रिच की रचनाओं का प्रमुख विषय है — तुर्क साम्राज्य के दिनों में उनकी जन्मभूमि बोस्निया. 'बोस्नियन स्टोरी', 'डेविल्स यार्ड' और 'द ब्रिज ऑन द ड्रीना' उनकी रचनाओं के कुछ प्रमुख अंग्रेजी अनुवाद हैं. इतिहास का गहरा रंग और प्रतीकात्मक दृष्टि उनकी रचनाओं में स्पष्ट है, जो इस विशिष्ट खंड में प्रकाशित कहानी 'जीपा का पुल' में भी देखी जा सकती है.

मीरोस्लाव क्रलैंझा योगोस्लाविया की ह्रवाती भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं. उनकी कहानी 'बैरक नं. पांच' क्रलैंझा के कहानी संग्रह–'ह्रवाती देवता — मंगल' से ली गयी है. १९२२ में जब यह संग्रह प्रकाशित हुआ तो इसने न केवल यूगोस्लाविया अपितु चेकोस्लोवाकिया, बुल्गारिया, पोलैंड आदि देशों में भी हलचल मचा दी थी.

मीरोस्लाव क्रलैंझा ने बुडापेस्ट की सैनिक अकादमी में शिक्षा प्राप्त की और प्रथम विश्वयुद्ध में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया.

यह कहानी भी उनके उसी अनुभव का परिणाम है. उन्हें कहानियों और कविताओं की अपेक्षा नाटकों, निबंधों और उपन्यासों के कारण अधिक प्रतिष्ठा मिली.

प्रस्तुत विशिष्ट खंड की लगभग सभी कहानियां मानवीय संवेदनाओं की कहानियां हैं.

निशानी

• शोलोखोव

जले हुए बारूद की बदबू वाले कुछ कारतूस, एक हड्डी, एक नक्शा, हमले-संबंधी एक रिपोर्ट, तथा तमगे वाली एक लगाम, जिसमें से घोड़े के पसीने की दुर्गंध आ रही है, और रोटी का एक बड़ा-सा टुकड़ा—ये सब चीजें मेज पर पड़ी हैं. और एक खुरदरे-से बेंच पर, जो गीली दीवार की काई से गंदा बना हुआ है, नौजवान स्क्वैड्रन कमांडर निकोलाई बैठा हुआ है. ठंड से सुन्न बनी हुई उसकी अंगुलियों में एक पेंसिल है. मेज पर बहुत पुराने इश्तहार बिखरे पड़े हैं, और उनके पास एक फॉर्म पड़ा है, जो पूर्ण रूप से भरा नहीं गया है. उसमें लिखा हुआ है— 'कोशेवोई निकोलाई, स्क्वैड्रन कमांडर. खेत-मजदूर. युवक कम्यूनिस्ट.'

'उम्र' के सामने पेंसिल धीरे-धीरे लिखती है—'१८'.

निकोलाई के कंधे चौड़े हैं, और वह अपनी उम्र से बड़ा दिखाई देता है. उसकी आंखों के गिर्द झुर्रियां पड़ी हुई हैं, और उसकी कमर किसी बूढ़े व्यक्ति की कमर की तरह झुकी हुई है.

फौज में वह अभी 'लड़का और अनाड़ी' समझा जाता है, लेकिन साथ ही उसके बारे में यह भी कहा जाता है कि 'ऐसा कौन है, जिसने डाकुओं की दो टोलियों का सफाया कर डाला हो और अपना एक भी आदमी न मरवाया हो? फिर जिसने किसी अनुभवी नेता की तरह अपने फौजी दस्ते का छह महीने तक नेतृत्व किया हो?'

निकोलाई को किसी सपने की तरह यह याद है कि वह पांच-छह वर्ष का था तो कैसे उसके पिता ने उसे उठा कर अपने फौजी घोड़े पर बैठाया था.

—इसकी गरदन के बालों को पकड़ कर रखना,बेटा, उसने कहा था.

तब उसका पिता जर्मनी के खिलाफ लड़ने के लिए जा रहा था. और फिर ऐसे लापता हो गया था कि लौट कर नहीं आया था.

निकोलाई को अपने पिता से विरसे में घोड़ों का प्यार, बहादुरी और एक बड़ा-सा तिल मिला था, जो उसी की तरह उसकी टांग पर, टखने से कुछ ऊपर दिखाई देता था. पंद्रह साल की उम्र तक वह खेतों में काम करता रहा था. फिर वह लाल फौज में भर्ती हो गया था. पिछली ग्रीष्म ऋतु में जबकि वह दोन नदी में नहा रहा था तो पास में नहा रहे फौजी कमीसार ने उसकी टांग पर के तिल को देख कर कहा था—तुम खुशकिस्मत हो. कहते हैं तिल खुशकिस्मती की निशानी होता है.

—अच्छी बात कही है! निकोलाई ने हंस कर कहा था. मैं बचपन से ही यतीम रहा हूं, और तब से ही मैंने खून-पसीना एक करके जिंदगी बिताई है— यह है मेरी खुशकिस्मती! तभी वह गोता लगा कर दोन के दूसरे किनारे की ओर चला गया था.

वह घर जिसमें निकोलाई ने डेरा लगाया हुआ था, नदी के ऊपर बढ़ी हुई चट्टान पर बना हुआ था.

एक दिन निकोलाई घर से बाहर भूरी घास पर लेटा हुआ था, जो कि ओस के कारण गीली बनी हुई थी. पशुओं के बाड़े में से घर की मालकिन की आवाज सुनाई दे रही थी, जो गाय को टिक कर खड़े होने के लिए कह रही थी. साथ ही गाय के बछड़े के रंभाने और बालटी में दूध दुहे जाने की आवाज सुनाई दे रही थी.

कुछ ही देर के बाद फाटक चीखा और वहां बैठा हुआ कुत्ता भौंका.

—कमांडर घर में हैं? सार्जेंट की आवाज आयी.

—यहां हूं मैं, निकोलाई ने कहा. क्या बात है?

—गांव से एक आदमी ने आ कर बताया है कि सालशक जिले की तरफ से डाकुओं का एक गिरोह इधर आ निकला है और उसने ग्रूशीको स्टेट-फार्म पर कब्जा कर लिया है.

निकोलाई ने उसी समय घर में जा कर अपनी कमर में तलवार बांधते हुए सोचा,एक और गिरोह! और मैं सोच रहा था कि यहां से कहीं जा कर पढ़ूं-लिखूंगा. . . .लेकिन अब एक और गिरोह आ गया है. . . .अब और खून-खराबा होगा. काश, कहीं मैं शहर जा सकूं! वहां जा कर तालीम हासिल कर सकूं! . . .

* *

टीलों पर चूहों से भरी हुई जंगली झाड़ियां फैली हुई हैं, और चारों ओर पक्षियों के पंजों और बिल्लियों की पूंछों के निशान दिखाई दे रहे हैं. दूर चमकती हुई बड़ी सड़क पर अतामान अपने गिरोह को लिये जा रहा है. वह और उसके साथी सोवियत शासन से संतुष्ट नहीं हैं. तीन दिन से वे बाघों की तरह घास-मैदान के उस इलाके में से आगे बढ़ रहे हैं. और तीन दिन से ही निकोलाई कोशेवोई अपने फौजी दस्ते के साथ उसका पीछा करता आ रहा है.

उस गिरोह के आदमी, जो पुराने तजुर्बाकार फौजी हैं, बहुत कठिनाइयों भरा जीवन बिता रहे हैं. पर अतामान हिम्मत नहीं हार रहा है. वह रकाबों पर खड़ा हो कर एक नजर देख कर घास-मैदान का जायजा लेता है, और उस सफर का मीलों में अंदाजा लगाता है, जो जंगल तक फैला हुआ है.

दाढ़ियों वाले कजाक किसान नदी के पास के चरागाहों में जौ बोते हैं. वे जौ की ऐसी शराब बनाते हैं कि वह किसी युवती के आंसुओं से ज्यादा साफ होती है. यह सदियों से चली आ रही लीक है, क्योंकि उनके पिता-पुरखे पीने के शौकीन थे. इसीलिए तो 'दोन कजाक फौज' की मोहर पर एक शराबी कजाक दिखाया गया है. और इसीलिए अतामान हमेशा नशे में होता है.

सात सालों से अतामान ने अपना गांव नहीं देखा है. पहले वह जर्मनों के कब्जे में रहा, फिर उसने वरैंगल की फौज में नौकरी की, फिर कंटीले तारों के पीछे कैद काटी, फिर एक तुर्की जहाज में नौकरी की, और फिर इस गिरोह का मुखिया बन गया. अब उसका दिल सख्त

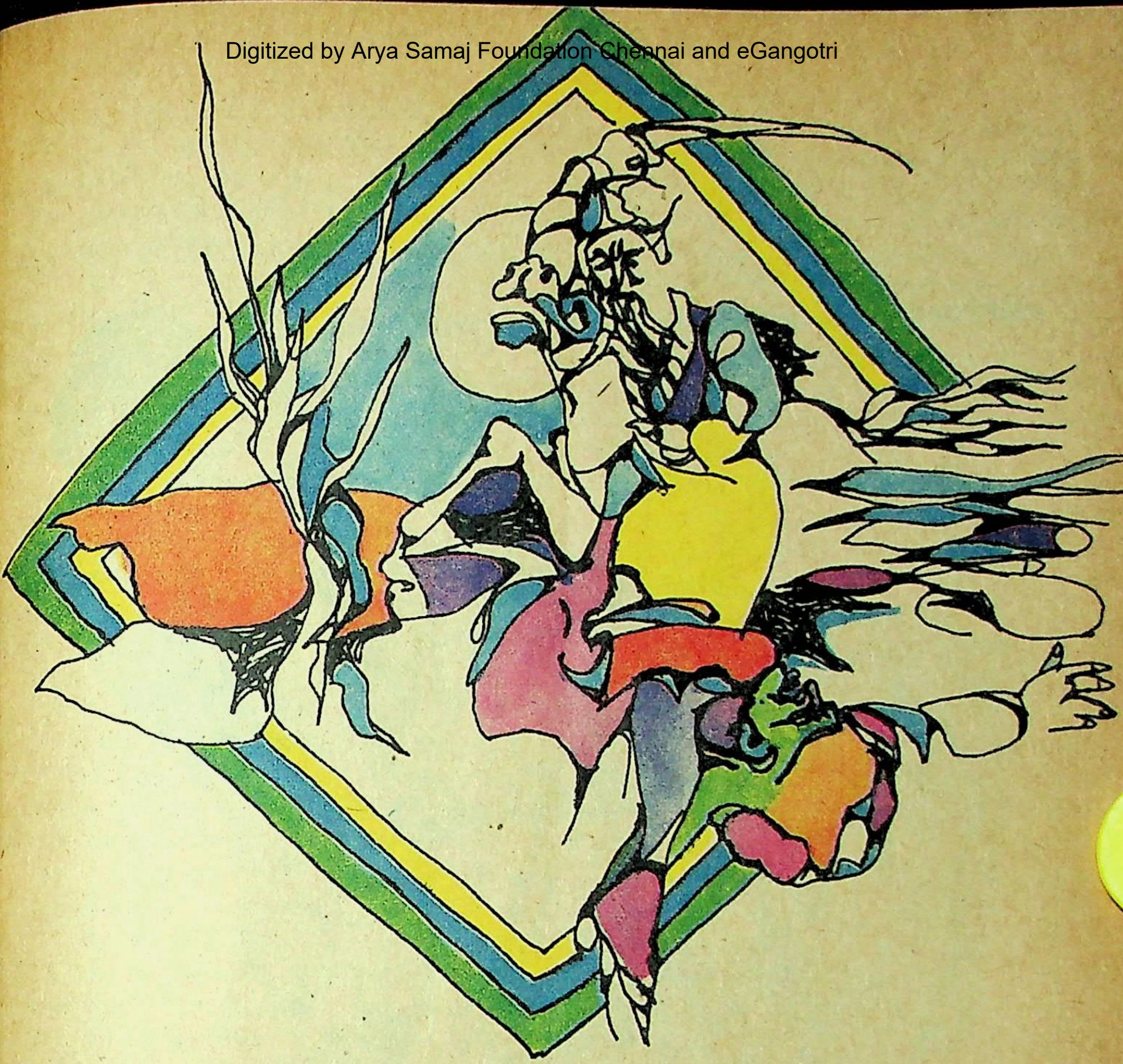

बन गया है. कोई छिपी हुई चीज उसके दिल में आंखें खोलती है, उसका प्रत्येक अंग जैसे बीमार बन जाता है, और वह महसूस करता है कि वह बीमारी न भुलाई जा सकती है, न नक्शे में डुबोई जा सकती है, फिर भी वह पीता है, रोज पीता है, क्योंकि दोन के इलाके के घास-मैदान में उगने वाले जौ बहुत मीठे और महकदार होते हैं, जो सूरज की तपिश पी कर बढ़ते-फूलते हैं, और गांव की भूरे कपोलों वाली स्त्रियां ऐसी खालिस शराब कशीद करती हैं कि वह किसी झरने के पानी से भी ज्यादा साफ होती है.

* *

प्रात:काल के समय कोहरा पड़ा, और सुबह होने पर लूकिच ने देखा कि उसकी पनचक्की पर बर्फ जमी हुई थी. तभी चक्की के नीचे से एक चूहा निकल कर अपनी तरल आंखों से उसे देखने लगा. ऊपर छत के शहतीर पर बैठा हुआ कबूतर 'गुटर-गूं' कर रहा था.

लूकिच घर से बाहर निकला और उस बाग में गया, जहां उसने मधुमक्खियां पाली हुई थीं. वह आराम करने के लिए वहां लेट गया. उसने भेड़ की खाल ओढ़ ली और कुछ ही देर में उसे नींद आ गयी.

घोड़ों की टापों की आवाज सुन कर उसकी नींद खुली तो उसने दो घुड़सवारों को अपनी ओर आते हुए देखा. उनमें से एक ने ऊंची आवाज में उसे बुलाया.

लूकिच आगे बढ़ा.

—हम लाल फौजी हैं, बाबा, हम से डरने की जरूरत नहीं है! अतामान ने कहा. हम एक गिरोह का पीछा कर रहे थे कि अपने साथियों से बिछुड़ गये हैं. शायद तुमने हमारे दस्ते को इधर कहीं देखा हो?

—कुछ लोग यहां से गुजरे तो थे...

—किधर गये हैं?

—यह तो मुझे पता नहीं...लूकिच ने कहा और एक ओर को चल दिया.

तब अतामान ने कमान की तरह मुड़ी हुई अपनी टांगों पर खड़े हो कर कहा— सुनो बाबा! हम कम्युनिस्टों का सफाया कर रहे हैं. और अब तुम्हारा काम है कि हमारे सत्तर घोड़ों के लिए रातब-दाना तैयार करके रखो. और खबरदार, अगर मुंह खोला तो!....

—मेरे पास अनाज नहीं है! लूकिच ने नफरत से कहा. अतामान ने उसे कमीज के कॉलर से पकड़ लिया और घुटने की ठोकर मार कर एक मकान की ओर

श्रीनिवास नारी-शक्ति को नयी दिशा प्रदान करेगा

जीवन तथा परिवर्तन की एक अटूट, अनंत प्रक्रिया :

आधुनिक नारी के मनपसंद कपड़े।
चित्ताकर्षक प्रिण्ट, रंगों की बहार।
'टेरीन', टेरीन / काटन तथा काटन के नाना प्रकार के पोशाक के कपड़े।

श्रीः

दि श्रीनिवास काटन मिल्स लिमिटेड

गया, जिसमें अनाज की भरी हुई बोरियां पड़ी थीं.

—मुझ पर रहम करो, बेटा! लूकिच ने कहा, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

अतामान के साथियों ने अनाज की बोरियां निकाल कर खोलीं. सारा आंगन सुनहरे दानों से भर गया.

★ ★

सुबह उदास, गीली और उमस भरी थी.

लूकिच संतरी से बचता हुआ आगे बढ़ा और उस रास्ते पर चल पड़ा, जिसका सिर्फ उसी को पता था. वह रास्ता जंगल में से हो कर जाता था. उसके उस पार, गांव के पास जाने पर एक संतरी ने उसे रोका.

—मैं पनचक्की वाला हूं, लूकिच ने कहा. पनचक्की से आया हूं. मुझे काम है यहां. कमांडर से मिलना है.

संतरी उसे अपने साथ ले गया. जब उसे निकोलाई के सामने ले जा कर खड़ा किया गया तो उसने अतामान के गिरोह की खबर दी, जिसने उसकी पनचक्की पर डेरा लगाया हुआ था और जिसके आदमी दिल खोल कर वोद्का पी रहे थे.

—चलने की तैयारी करो! निकोलाई ने संतरी से कहा और लूकिच की ओर देख कर नर्मी से मुसकराया.

कई रातें सो न सकने के कारण निकोलाई के चेहरे का रंग फीका पड़ा हुआ था. वह घोड़ा दौड़ाता हुआ मशीनगन वाली गाड़ी के पास पहुंचा, और उसने हुक्म दिया—ज्यों ही हम हमला करें, उनके दायीं तरफ गोलियां चलाना!

फिर वह अपने फौजी दस्ते के पास गया.

बलूत के छोटे रह गये वृक्षों के उस पार कुछ घुड़सवार दिखाई दिये, जो चार-चार की कतारों में बड़ी सड़क पर चले जा रहे थे. उनके बीच में मशीनगन वाली गाड़ियां जा रही थीं.

निकोलाई ने ऊंची आवाज में हमला करने का हुक्म दिया, तो जंगल के सिरे पर मशीनगनों ने बेतहाशा गोलियां बरसायीं.

गोलियों की आवाजें गूंज रही थीं.

—ठहरो, मशीनगनें संभाले रहना! जंगल में घुस जाओ! जंगल में! अतामान ने रकाबों पर खड़े हो कर ऊंची आवाज में कहा. उसके साथी घिर गये थे, और भयभीत बने हुये बिखरने लगे थे.

अतामान ने अपने घोड़े को मोड़ा तो दूर एक घुड़सवार को अपनी ओर आते हुए देखा. वह जैसे उड़ता हुआ आ रहा था. उसके हाथ में तलवार चमक रही थी. उसकी गरदन में लटक रही दूरबीन और उसके कोट को देख कर अतामान ने अनुमान लगाया कि वह कोई साधारण लाल फौजी नहीं था. तभी उसने अपने घोड़े की लगाम खींची और दूर से उस घुड़सवार का जवान चेहरा देखा, जो गुस्से से लाल-सुर्ख बना हुआ था. अतामान का घोड़ा बेचैनी से उछलता हुआ पीछे की ओर जा रहा था और अतामान हाथ में पिस्तौल पकड़े उसे आगे बढ़ने के लिए कह रहा था.

तभी उसने सामने बढ़े आ रहे काले कोट वाले व्यक्ति पर गोली चलायी. घोड़ा बीस कदम और आगे बढ़ा और ढह पड़ा. लेकिन निकोलाई उठ कर तेजी से अतामान की ओर बढ़ा. वह उसकी ओर दौड़ता हुआ गोलियां चला रहा था.

वृक्षों के उस पार कोई जानवर की तरह कराहा और गिर पड़ा. सूरज बादलों के पीछे छिप गया, और घास-मैदान और जंगल पर छायाएं फैलने लगीं.

—यह दुधमुंहा खामख्वाह मौत की तरफ बढ़ा आ रहा है! अतामान ने अपने होंठों में कहा.और जब उस ने देखा कि निकोलाई की पिस्तौल की सारी गोलियां चल चुकी हैं तो उसने अपने घोड़े को एड़ लगायी और झील की तरफ बढ़ा.

कुछ आगे जाने पर उसने एक ओर झुक कर अपनी तलवार खींची. और दूसरे ही क्षण उसे निकोलाई का शरीर अपने वार के नीचे निढाल-सा होता प्रतीत हुआ, और वह धरती पर ढह गया. फिर उसने घोड़े से उतर कर निकोलाई की गरदन में से दूरबीन निकाली, उसकी टांगों की ओर देखा, जो अभी तक कांप रही थीं, और उसके चमड़े के बूट उतारने के लिए उसके पास बैठ गया. उसके घुटने पर पांव रख कर उसने एक बूट उतारा. लेकिन दूसरी टांग की जुराब उसके साथ इस तरह चिपटी हुई थी कि उस पांव का बूट न उतरा. अतामान ने गुस्से में गाली दी और उसने बूट और जुराब को एक साथ खींचा. जुराब उतरते ही उसके टखने के कुछ ऊपर कबूतरी के अंडे जितना बड़ा तिल दिखाई दिया तो एकाएक अतामान के हाथ रुक गये. फिर जैसे वह डर गया कि निकोलाई कहीं जाग न जाये. उसने उसका ठंडा पड़ चुका चेहरा धीरे-धीरे अपनी ओर घुमाया. उसके मुंह में से निकल रहे खून से उसका हाथ रंग गया. एक क्षण के लिए उसने सख्त नजर से उसे देखा और दूसरे ही क्षण उसे बाहों में भर लिया.

—बेटा! . . . उसके मुंह से निकला, मेरा निकोलाई! . . . मेरा अपना खून! . . .

फिर उसके चेहरे को दोनों हाथों में ले कर उसने ऊंची आवाज में कहा— बोलो, कुछ तो बोलो, बेटे! कैसे? . . . क्यों?

आखिर वह उसकी निर्जीव बनी हुई आंखों में झांकता हुआ एक ओर को ढह गया. फिर उसने उसकी खून से सनी हुई पलकें ऊपर उठायीं, उसके शिथिल पड़ चुके शरीर को हिलाया! . . .निकोलाई ने दांतों तले अपनी नीली पड़ चुकी जीभ का सिरा दबाया हुआ था, जैसे उसे डर हो कि उसके मुंह से किसी बहुत बड़े भेद की बात निकल जायेगी. अतामान ने उसके ठंडे पड़ चुके हाथों को चूमा और पिस्तौल की नली अपने मुंह में डाल कर गोली चला दी.

शाम के समय जब घुड़सवार वृक्षों के पीछे से निकल कर आये और हवा पर तैरते उनकी बातों के स्वर, घोड़ों का हिनहिनाना और रकाबों के खनकने की आवाजें उधर आयीं तो अतामान के उलझे हुए बालों वाले सिर पर बैठी एक चील न चाहते हुई भी उड़ी और पतझड़ के सलेटी आकाश में गायब हो गयी. □□□

(अनुवाद : सुखबीर)

हैलो. . .

—हैलो. मैं एक बहुत ही बढ़िया सेब खा रही हूं. . .

—आप मुझसे क्या चाहती हैं?

—आपको.

—आप कौन हैं?

—एक लड़की.

—क्या मैं आपको जानता हूं? मेरा मतलब है कि पहले कहीं आपकी और मेरी मुलाकात. . .

—जी नहीं, पर मैंने आपको कई बार देखा है. और अभी इत्तफाक से मैंने सोचा कि आपको रिंग किया जाय.

—यह कहने के लिए कि आप एक अच्छा सेब खा रही हैं?

—बस यही.

—खूब . . . आपकी आवाज अच्छी है.

—शुक्रिया! अच्छा अब फोन बंद करूं. . .

—इतनी जल्दी? और हां, आपने मुझे फोन किस लिए किया था?

—यह मालूम करने के लिए कि आपकी आवाज कैसी है.

—ठहरिए. अभी बंद मत कीजिए. आपकी आवाज बड़ी मधुर है!

—यही आपने अभी पहले कहा था. अच्छा, गुडवाई.

—सुनिए, अगर आपने टेलीफोन बंद कर दिया, तो मैं चौकड़ी भूल जाऊंगा.

—क्या खूब! श्रीमान्, टेलीफोन मैंने आपको किया है, आपने मुझे नहीं. इसलिए इसे बंद——

—सुनिए, कम-से-कम अपना नाम तो बता दीजिए.

—इससे आपके लिए क्या फर्क पड़ता है. मान लीजिए – मेरा नाम है निताशा, केतै, कतेनका, इकातेरिना —आपको जो भी नाम सब से अच्छा लगे.

—खुद आपको इनमें से कौन-सा नाम पसंद है?

—दरअसल इनमें से मुझे एक भी नाम पसंद नहीं है. मुझे करीना नाम अच्छा लगता है.

—बहुत खूब. . . अच्छा, करीना , क्या मैं आपको टेलीफोन कर सकता हूं?

—नहीं. और फिर आप नंबर भी तो नहीं जानते.

—आप अपना टेलीफोन नंबर बताइए ना.

—हरगिज नहीं.

—कोई बात नहीं. लेकिन मुझे फौन करेंगी ना? ओ. के. . .

—हैलो, हैलो, . . . आप सुन रहे हैं?

—हां.

—क्या कर रहे हैं?

बहुत दिन बीते

• याकोव सीगेल

—सोच रहा हूं.

—मैं आपको फौन करूंगी. कल सुबह इसी वक्त.

—ठीक है. कल सुबह छह बजे.

कल सुबह छः बजे

—मैं एक बहुत ही बढ़िया सेब खा रही हूं. हैलो!

—मैं इस टेलीफोन के पास आधा घंटे से बैठा हूं.

—आपने छह बजे के लिए कहा था. छह ही तो बजे हैं.

—शुक्रिया.

—शुक्रिया कहने की तो कोई बात नहीं.

—करीना . . .

—जी. . . ?

—मैं आपसे कुछ पूछूं, तो जवाब देंगी?

—यह तो सवाल पर निर्भर करता है. खैर, पूछिए.

—उम्र कितनी है?

—सोलह. लगभग सोलह वर्ष. और आप सत्रह वर्ष के हैं. . . और आपका नाम मीशा है. . .और आप २३ पैत्रोवका स्ट्रीट में रहते हैं.

—आप यह सब कुछ कैसे जानती हैं?

—मैं आपके बारे में सब कुछ जानती हूं.

—यह अच्छी बात नहीं है.

—क्यों?

—क्योंकि आप मेरे बारे में सब कुछ जानती हैं और मैं आपके बारे में कुछ भी नहीं जानता. क्या आपका कद लंबा है?

—दरमियाना.

—वाह!

—जी हां. अच्छा, अब मैं फौन. . .

—सिर्फ एक मिनट. मुझे अब फौन कब करेंगी?

—मैं आपको फौन क्यों करने लगी?

—क्योंकि, जब आपने. . .

—मैं कुछ नहीं जानती.

—तो आप मुझे अपना नंबर क्यों नहीं बता देतीं.

. . . . . .

—कुछ सोचने लगीं.

—लिखिए : ५२६८९.

★ ★

उसी दिन शाम को ६.१० बजे

—टेलीफोन इनक्वायरी?

—जी. हमारे योग्य सेवा?

—बात यह है, मेरे पास एक टेलीफौन नंबर है. मैं उसके द्वारा पता मालूम करना चाहता हूं. इस संबंध में आप मेरी कोई सहायता करेंगे?

—माफ कीजिए. हम ऐसी जानकारी नहीं देते.

—लेकिन मुझे पते की इसी वक्त सख्त जरूरत है.

—क्षमा चाहते हैं. इस संबंध में हम आपकी कोई सेवा नहीं कर सकते.

—तो मैं यह जानकारी कहां से प्राप्त करूं?

—आप इसके लिए टेलीफोन डायरेक्ट्री देखिए.

—वर्षों लग जायंगे ' टेलीफोन डायरेक्ट्री से पता मालूम करने में.

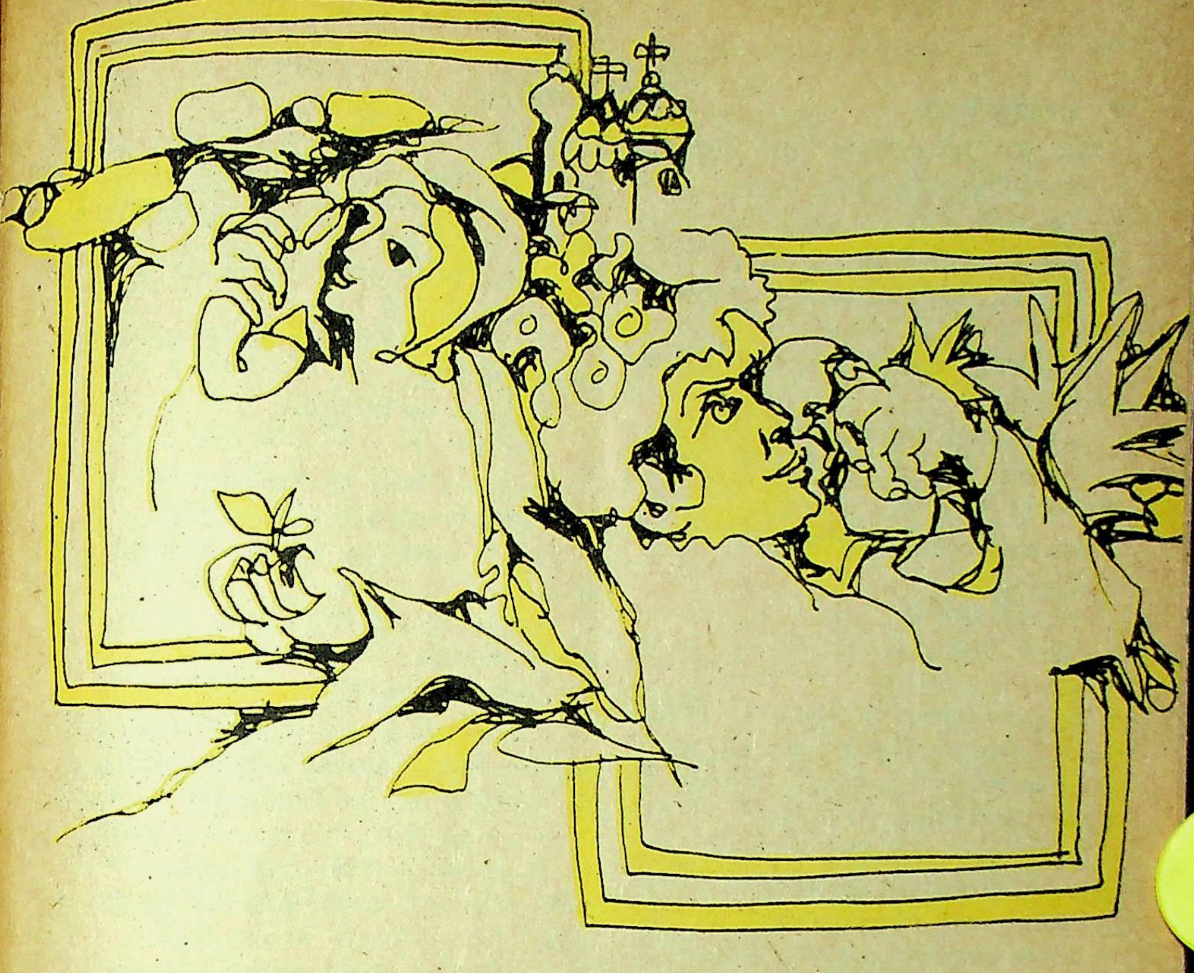

—हमें आपके साथ हमदर्दी है.

★ ★

दो दिन बाद

—मैं करीना से बात करना चाहता हूं.

—इस नंबर पर इस नाम का कोई नहीं है.

—है भई, सौलह साल की एक लड़की है!

—तब वह कात्तय्या ग्रादोवा होगी. वह ही ऐसे अजीब-अजीब नाम सोचती है. बेशक, करीना. . . कात्तय्या ही है!

—हैलो

—करीना? मैं बोल रहा हूं.

—मुझे मालूम है.

—जब मैंने इनसे कहा कि मुझे करीना से बात करनी है, तो इन्होंने बताया कि इस नाम की कोई. . .

—यह मेरा गुप्त नाम है, जिसे सिर्फ आप जानते हैं.

—मैं इसे अब किसी दूसरे को नहीं बताऊंगा. लेकिन अब तो मुझे आपका सरनेम भी मालूम हो गया है. . . ग्रादोवा. क्यों? ठीक है न? अब मैं आपके सरनेम से टेलीफोन डायरेक्ट्री में आपका पता मालूम कर लूंगा.

—ऐसा मत कीजिए. फिर भी आप मालूम करना चाहते हैं, तो कर लीजिए. आपको पता मिलेगा नहीं. फौन हमारे नाम से नहीं हैं.

—आपकी कितनी मधुर आवाज है. चाहता हूं, देखूं, आप दिखने में कैसी हैं.

—मैं बताये देती हूं— ठीकठाक.

—लेकिन मैं तो खुद अपनी. .

—बस, बस, बस. कहा ना, ठीकठाक हूं. अच्छा, गुडबाई.

★ ★

कुछ और दिनों के बाद

—करीना बोल रही हैं? मैं करीना से. . .

—कौन? किससे?

—मेरा मतलब है. . . कांतय्या. . . कांतय्या ग्रादोवा.

—क्या-क्या अजीब नाम सोचते हैं, ये लोग. कांतय्या घर में नहीं है.

★ ★

और कुछ दिनों के बाद

—मैं कांतय्या ग्रादोवा से बात करना चाहता हूं.

—सारा ग्रादोवा परिवार बाहर गया है.

★ ★

कुछ दिन और गुजरने के बाद

—मैं कांतय्या ग्रादोवा से बात करूंगा. क्या वह घर हैं?

—मैं उसकी मां बोल रही हूं. वह अपनी दादी के यहां गांव गयी है.

—आयें, तो कहिए मीशा का फौन आया था.

★ ★

जून १९४१ के अंत में

—कांतय्या ग्रादोवा से बात करनी है.

—वह है नहीं.

—तो उनकी माताजी. . .

—ठहरिए, देखती हूं.

—हैलो.

—हैलो, आप कांतय्या की माताजी बोल रही हैं?

—हां. कांतय्या कल आयेगी. कल फोन करना.

—मैं कल फौन नहीं कर सकता. . . मैं जा रहा हूं.

—क्या आप निष्कासित कर दिये गये हैं.

—नहीं. मैं मोर्चे पर जा रहा हूं. कल चला जाऊंगा. कांतय्या आये, तो उन तक मेरी शुभकामनाएं पहुंचा दीजिए.

—मेरी ओर से तुम्हें शुभकामनाएं. तुमने अपना नाम क्या बताया?

—मीशा.

★ ★

चार साल बीत जाने के बाद

—कांतय्या ग्रादोवा से बात करनी है.

—कौन? किससे?

—कांतय्या ग्रादोवा. वह इसी टेलीफोन नंबर पर. . .

—इस नाम का यहां कोई नहीं है.

—युद्ध से पहले तो वह यहीं रहती थीं.

—एक मिनट, मैं अपने पड़ोसी से पूछता हूं.

—हैलो. आप किसे पूछ रहे हैं?

—कांताय्या ग्रादोवा. युद्ध से पहले वह . . .

—मैं समझ गया. उनका परिवार तो चार साल पहले ही इस फ्लैट से चला गया. उसके बाद में वे यहां फिर कभी नहीं आये. उन्हें निष्कासित कर दिया गया था.

—तो वे मास्को में भी नहीं हैं?

—हैं, अपने पिता की मृत्यु के बाद वे यहां नहीं आये.

—कांतय्या. . .

—अपने पति के साथ रहती है. उसके एक बच्चा है. उसकी मां भी उसके साथ ही रहती है.

—आपको उनका टेलीफोन नंबर पता है?

—ठहरिए यहीं कहीं दीवार पर लिखा है. यह रहा—८३०१६८

★ ★

उसी दिन

—आप ८३०१६८ से बोल रही हैं?

—जी. कांतय्या या इकातेरिनिया ग्रादोवा है?

—अब वह ग्रादोवा नहीं रहीं. वह जैम्सतोवा हो गयी हैं. और वह मैं हूं. हैलो मीशा. हैलो. . .

—यह तुमने कैसे जाना कि मैं बोल रहा हूं?

—बहुत आसान है.

—चार वर्ष से अधिक बीत गये. फिर भी तुम मेरी आवाज पहचान गयी.

—हां. और मुझे खुशी है कि. . .

—मैं जिंदा हूं?

—हां. और आपने मुझे फोन किया.

—तुम्हारी आवाज भी पहले जैसी ही है.

—मेरी आवाज साढ़े चार साल पहले ऐसी नहीं थी!

—अरसा तो करीब पांच साल का हो गया है. तो अब तुम जैम्सतोवा हो?

—हां, मैंने शादी कर ली.

—मुझे मालूम है. और मुझे यह भी मालूम है कि तुम्हारे एक बच्चा है. और यह भी कि तुम्हारी माताजी साथ रहती हैं और तुम्हारा टेलीफोन नंबर. . . और. . . कि तुम विवाहित हो.

—यह सारी जानकारी सही है. अब आप मेरे बारे में सब कुछ जानते हैं और मैं आपके बारे में कुछ भी नहीं जानती.

—मेरे संबंध में जानने के लिए कुछ है भी नहीं. मैं तो अन्य लोगों की तरह एक साधारण पुरुष हूं. युद्ध में मोर्चे पर गया. दो बार जख्मी हुआ. . .

—बुरी तरह?

—एक बार बुरी तरह जख्मी हुआ. लेकिन समय ने सारे जख्म भर दिये. अपने बारे में और क्या बताऊं? लगता है, समय के साथ-साथ उम्र में तेजी से बढ़ रहा हूं.

—पांच साल बीत गये!

—मेरे एक पुराने सूट की जेब में तुम्हारे टेलीफोन नंबर की चिट थी. मैंने रिंग किया. और अब बातें कर रहा हूं उस व्यक्ति की मेहरबानी से जिसने मुझे यह फोन नंबर अभी बताया.

—शुक्रिया.

—और अब आप विवाहित हैं. . .

—काफी दिन हो गये शादी किये.

—तुम्हारी आवाज कुछ क्षमा प्रार्थी-सी सुनाई देती है.

—यह महज एक इत्तफाक है.

—तुम्हें अपने पति से प्रेम है?

—अत्यधिक. वह भी युद्ध में बुरी तरह जख्मी हुए थे. मुझे अपने बच्चे से भी अत्यधिक प्यार है. वे दोनों मुझे बेहद प्यार करते हैं.

—करीना...

—....

—करीना, मैं तुम्हें देखना चाहता हूं?

—"......"

—तुम जवाब क्यों नहीं देतीं? क्या सोच रही हो?

—जो कुछ सोचना था, मैं पहले ही सोच चुकी हूं.

—कितनी मधुर आवाज है!

—यह हमारी मुलाकात की कोई वजह नहीं है.

—क्यों?

—क्योंकि आप मेरे संबंध में मेरी आवाज मधुर होने की वजह से सोचते हैं. सचमुच मेरी आवाज दिलकश है. और मुझे डर है कि इसी आधार पर कहीं आप मुझे दिलकश तो नहीं समझते. आप मेरी बात समझे?

—बात समझ में नहीं आयी.

—समझ जायेंगे. वक्त आने पर सब कुछ हो जाता है. और अब सिर्फ इतना याद रखिए कि पांच वर्ष पहले एक लड़की थी, जिसका नाम करीना था और उसकी आवाज बड़ी मधुर थी.

—सुनिए, अब आप मेरी बात का जवाब नहीं दे रहे. आप खामोश हैं.

—मैं सोच रहा हूं.

—अच्छा, मीशा. मेरी शुभकामनाएं. जीवन में सुखी रहो.

—कुछ नहीं जानता, क्या होगा. लेकिन सुखी रहने की कोशिश करूंगा.

—सब ठीक हो जायेगा. अब हम दोनों एक-दूसरे से गुड बाई कहें.

—करीना, जब तुम संबंध तोड़ ही रही हो, तो कोई अच्छी बात कहो.

—अच्छी बात? जैसे?

—कोई एसी बात जिसे तुम सबसे बढ़िया समझती हो.

—मैं एक बहुत ही बढ़िया सेब खा रही हूं...

□□□

(अनुवाद : हमीदुल्ला खां)

जर्मन लघुकथा

अपनी-अपनी हैसियत

● लेसिंग

एक बार पशुओं में विशेष अधिकारों के बारे में बहस छिड़ गयी. बहस का कोई नतीजा न निकलने पर घोड़े ने कहा—आदमी से सलाह लेनी चाहिए. क्योंकि वह इस झगड़े में शामिल नहीं है इसलिए वह निष्पक्ष हो कर राय देगा.

—लेकिन क्या उसमें इतनी अक्ल भी है? छछूंदर ने पूछा, हमारे गुण तो ज्यादातर गहराई में छिपे रहते हैं. उन्हें ढूंढ़ने के लिए आदमी की बहुत गहरी अक्ल की जरूरत पड़ेगी.

—बहुत अक्ल की बात कही है! चूहे ने कहा.

—मैं नहीं मान सकता कि आदमी में इतनी अक्ल होगी, खरगोश ने कहा.

—चुप रहो, घोड़े ने कहा, हम अच्छी तरह जानते हैं कि जिस किसी को अपने पक्ष की सच्चाई पर भरोसा नहीं होता, वही सबसे पहले इनसाफ करने वाले की अक्ल पर शक करता है.

आखिर आदमी को फैसला करने के लिए कहा गया.

—बस, एक बात, शेर ने आदमी से कहा, फैसला करने के पहले यह बताओ कि वह कौन-सी कसौटी है, जिस पर तुम हमारी योग्यता परखोगे?

—कसौटी? आदमी ने कहा, कसौटी यही होगी कि मेरे लिए कौन ज्यादा फायदेमंद है और कौन कम.

—बहुत खूब! शेर ने गरजकर कहा, तब तो मैं गधे से भी नीचा साबित होऊंगा. नहीं, तुम हमारा फैसला नहीं कर सकते. चले जाओ हमारे बीच से!

आदमी चला गया, तो छछूंदर ने कहा—अब? क्यों घोड़े, तुमने देख लिया कि शेर का भी यही खयाल है कि आदमी फैसला नहीं कर सकता. शेर भी हमारी तरह ही सोचता है.

—पर तुम से कहीं ज्यादा ऊंचे स्तर पर, शेर ने बाकी सब की ओर हिकारत से देखते हुए कहा. फिर, कुछ देर चुप रह कर उसने कहा, अच्छी तरह सोच-विचार करने पर मैं समझता हूं कि हमें विशेष अधिकारों के बारे में आपस में झगड़ना नहीं चाहिए. तुम मुझे सबसे ऊंचा मानो या सबसे नीचा, इसकी मुझे कोई परवाह नहीं है. मेरे लिए बस इतना ही काफी है कि मैं अपनी हैसियत जानता हूं. उसी समय वह वहां से चला गया.

समझदार हाथी, साहसी बाघ, ईमानदार रीछ, चालाक लोमड़ी, नेक घोड़ा, सभी उसके पीछे-पीछे चल दिये. आखिर वे सभी जानवर चले गये, जो अपनी हैसियत जानते थे.

जो सबसे बाद में गये और जो सबके चले जाने पर अफसोस करते थे, वे थे—बंदर और गधा.

□□□

(अनुवाद: सुरजीत)

एयर-इंडिया प्रस्तुत करती है सप्ताह में पैंसठ उड़ानें—५ महाद्वीपों के लिए.

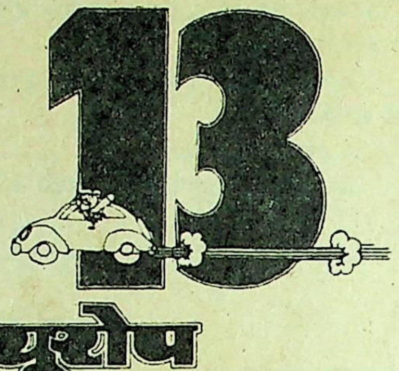

यूरोप

यूरोप के लिए सप्ताह में १३ उड़ानें
लंदन? नौ ७४७ विमानों को आपका इंतज़ार है. इनमें से तीन, शुक्रवार, शनिवार और मंगलवार को, तेज़ गतिवाले हैं. अन्य छह में आपको रोम, पेरिस या फ्रैंकफ़र्ट हो कर जाने की सुविधा मिलती है. इसके अलावा दो ७०७ विमान जिनेवा हो कर. मॉस्को? दो ७०७ विमान.

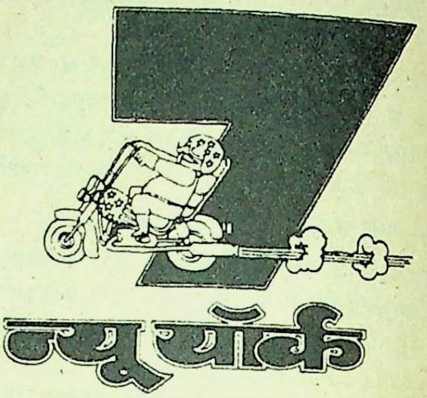

न्यू यॉर्क

न्यू यॉर्क के लिए सप्ताह में ७ उड़ानें
हर दिन ७४७ विमान की एक उड़ान. मध्य पूर्व और यूरोप होते हुए. हमारे विशेष एक्सकर्शन फ़ेयर के अन्तर्गत न्यू यॉर्क जा कर वापस लौटने का किराया आम तौर पर लगनेवाले एकतरफ़ा किराये से भी कम पड़ता है.

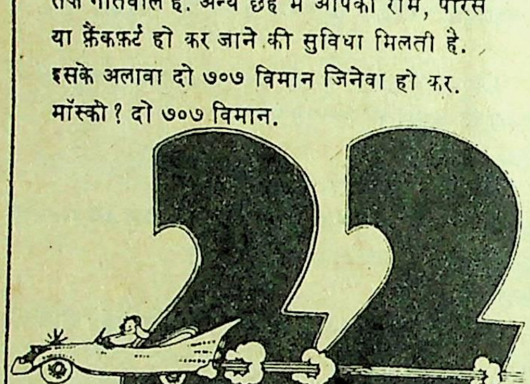

मध्य पूर्व

मध्य पूर्व के लिए सप्ताह में २२ उड़ानें
बेरूत? पाँच ७४७ विमान उड़ान भरने को तैयार. कुवैत? चार ७४७ तथा दो ७०७ विमानों में से आप मनपसंद चुनाव कर सकते हैं. दुबई के लिए चार ७०७ विमानों में से कोईसा भी चुनिए. बहरैन तथा मस्कत के लिए तीन उड़ानें तथा आबू धाबी, कैरो और तेहरान में से प्रत्येक के लिए दो उड़ानें. इसके अलावा अदन, दौहा या दहरान में से प्रत्येक के लिए एक ७०७ विमान.

साथ ही हर सप्ताह:
६ उड़ानें
जापान के लिए हौंग कौंग हो कर—
४ **टोकियो** के लिए
२ **ओसाका** के लिए. १० उड़ानें
दक्षिण पूर्व एशिया के लिए—
६ **बैंकॉक** के लिए और
४ **सिंगापुर** के लिए.
२ उड़ानें
ऑस्ट्रेलिया के लिए
३ उड़ानें
पूर्व अफ़्रीका के लिए
२ उड़ानें
मॉरिशस के लिए.

एयर-इंडिया
आपकी मनपसंद एयरलाईन

AI. 9084

रूसी लघुकथा

हीरोइन की तलाश

निर्देशककार्ल विस्थेनिन को अपनी नयी फिल्म के लिए हीरोइन नहीं मिल रही थी. 'लड़की सुंदर होनी ही चाहिए' उसमे सोचा. चुस्त बदन, लंबा कद, सुरीली आवाज, आंखों में चमक और मुस्कान में बिजली. इस के अतिरिक्त घुड़सवारी में निपुण होनी चाहिए. लेकिन ऐसी लड़की मिले कहां से?

उसी समय टेलफोन की घंटी बजी.

—नमस्कार कार्ल; मैं हूं.

—नमस्कार समसोन कार्पाविच, क्या कहा? आप एक लड़की को जानते हैं. वह आपकी रिश्तेदार है? खूब! उम्मीदवार तो वैसे बहुत हैं लेकिन मैं स्वयं उसका इंटरव्यू लूंगा.

संध्या को कार्ल, समसोन कार्पाविच के घर पहुंचा. जब चाय पी चुके तो लड़की ने कमरे में प्रवेश किया.

—यह है हमारी जूलियेत्ता! कहिए कैसी लगी?

कार्पाविच को ऐसा लगा मानो कार्ल कुछ क्षण सोच में पड़ कर बोला—क्यों नहीं, क्यों नहीं, मुझे कोई एतराज नहीं लेकिन बात दरअसल यह है कि फैसला अकेले मेरे हाथ में नहीं है.

—खैर, कोई बात नहीं! कार्पाविच ने बात का रुख बदला. तुमने नया फ्लैट अलाट करवाने के लिए आवेदन दिया है न, उसमें बड़ी मुश्किल पड़ गयी है! जहां तक मेरी पहुंच है, मैं भरसक प्रयत्न कर चुका हूं. लेकिन सफलता की कोई आशा नहीं है.

निर्देशक ने झट से सुर बदला और बड़े उत्साह से बोला—चायदानी पकड़ने की अदा तो देखो कितनी अनूठी है! जूलियेत्ता तुम कल स्टूडियो में आओ.

स्टूडियो आने के निमंत्रण से जूलियेत्ता आनंद से पुलकित हो उठी और अगले दिन वहां जा पहुंची. कार्ल नें उसका परिचय अन्य कलाकारों से करवाया परंतु उसके प्रति उनका व्यवहार मैत्रीपूर्ण न था.

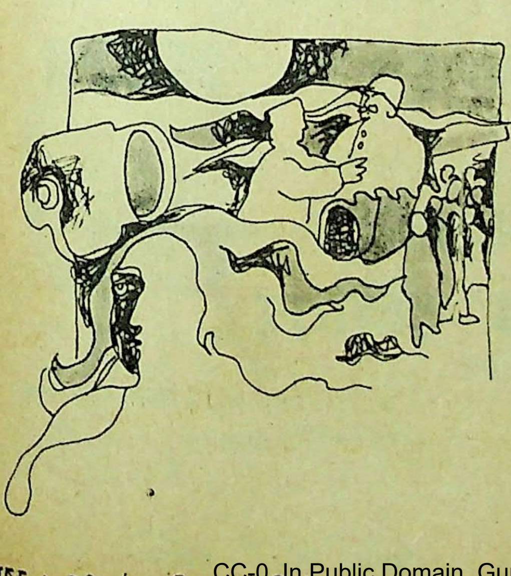

—हे प्रभु, कैसी भौंड़ी सूरत है!

—कैसी बर्फानी आंखें हैं!

—बोलती है तो लगता है मानो कौआ बोल रहा है!

—क्या मंदबुद्धि पायी है!

—हंस रही है या रो रही है, पता चलाना मुश्किल है.

—इस नौ मन की धोबिन के लिए घोड़ा कहां मिलेगा?

—बस, बस बहुत हो गया, आलोचकों को चुप कराते हुए निर्देशक बोला.

—आज सिनेसंसार में सब कुछ संभव है. मेकअप से सब दोष छिप जाते हैं.

—माना लेकिन उसकी कमर का क्या करेंगे?

—कार्सेट पहनाएंगे.

—कद?

—उसके साथी ऐक्टरों को उससे दूर खड़ा करेंगे.

—आखें?

—आंखों का इतना बड़ा क्लोज अप लेंगे कि सारी स्क्रीन भर जाए—और यह आंखें किसी अन्य लड़की की होंगी.

—आवाज?

—उसके गानें आपेरा की प्रसिद्ध गायिका कलाकार गाएगी!

—मुस्कान?

—उसकी जगह ड्रामा की सुप्रसिद्ध कलाकार कैमरे के सामने मुस्कराएगी. घोड़े पर पुरस्कार प्राप्त कुशल घुड़सवार को बिठाएंगे और कैमरा पीछे से तस्वीर लेगा. नृत्य के लिए प्रसिद्ध बालेरीना की सेवाएं प्राप्त की जाएंगी.

इस प्रकार प्रधान निर्देशक ने सब बाधाओं पर विजय प्राप्त की.

छः महीने बाद पत्रिकाओं में एक नयी फिल्म के चर्चे हुए :

'सिने संसार की नवोदित तारिका जूलियेत्ता को उसकी सफलता पर बधाई देना जरूरी है. यह शानदार विजय केवल नवयुवती अभिनेत्री की ही नहीं, बल्कि सारे स्टूडियो की है.' □□□

(अनु: रमेंद्रस्वरूप शर्मा)

चेहरे पर
लाए...

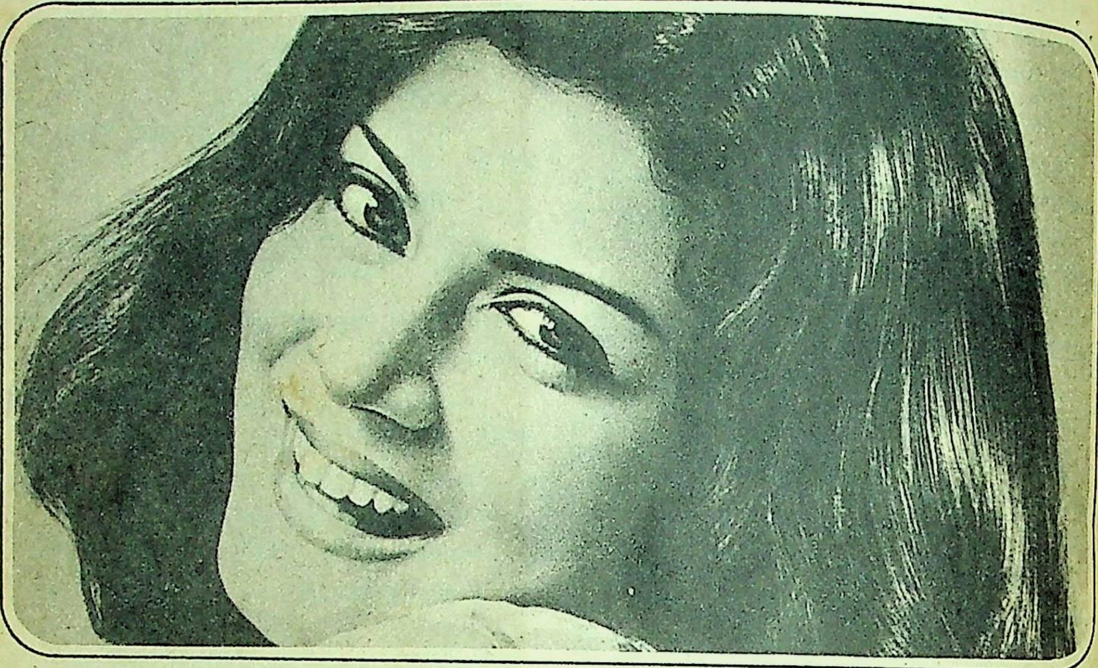

...दिल की
जवानी

त्वचा में कोमल बेदाग़ जवानी की झलक ...
पाण्ड्स कोल्ड क्रीम से. यह उन सभी क्रीमयुक्त प्राकृतिक तेलों से मिश्रित है. जिनकी एक सुंदर रूपरंग के लिए आपको आवश्यकता है. इसे अपनी त्वचा के पोषण के लिए मलिए और जाड़े की ज़ुल्मी बयारों से त्वचा बचाइए.

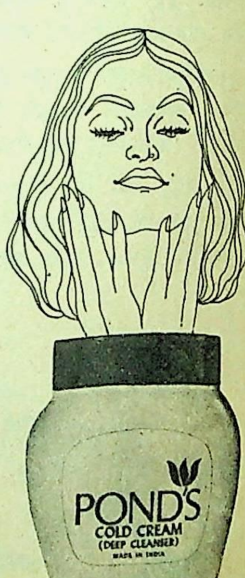
POND'S
COLD CREAM
(DEEP CLEANSER)
MADE IN INDIA

आपकी... युवा त्वचा का आधार
पाण्ड्स कोल्ड क्रीम

चीज़ब्रो पाण्ड्स इन्क. (सीमित दायित्व के साथ यू एस ए में स्थापित)

लिंटास - CPC. 6-140 HI

चार रूसी व्यंग्य कथाएं

ज्ञान ही शक्ति है

गधा राह में मुर्गे से मिला. मुर्गा बोला--हलो, गधे!

--हलो. गधे ने शुष्कता से उत्तर दिया--कृपया आगे से मुझे गधा कह कर न पुकारें.

--क्यों? मुर्गे ने आश्चर्य से पूछा--क्या तुम्हारा गधापन खत्म हो चुका है?

--एक तरह से तुम्हारी बात ठीक है, गधे ने कहा--अब मुझे मेरी विद्वता के प्रमाण स्वरूप एक डिग्री प्रदान की गयी है.

--वास्तव में! अरे वाह, लेकिन क्या मुझे बताओगे कि तुम्हें कौन-सी डिग्री मिली है?

--इक्वस ऐसीनस मैमेलिया नॉन आर्डियो डैक्टाइला. गधा सगर्व बोला.

मुर्गा बहुत प्रभावित हुआ. □

आलसी बिल्ली

छोटा-सा चूहा जब स्टोर में घुसा तो उसकी आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं. वहां अल्मारी के ऊपर के खाने में सूअर का मांस, बीच के खाने में पनीर और सबसे नीचे बहुत सा अनाज रखा हुआ था.

चूहे की आंखों में शरारत तैर उठी. सबसे पहले उसने पनीर के टुकड़े कुतरे. फिर अनाज की बोरियों में छेद कर कुछ अन्न पेट में भर लिया. लेकिन जब उसने मांस पर हाथ साफ करना शुरू किया तो उसने महसूस किया कि एक जोड़ा आंखें उस पर लगी हुई हैं. वह मुड़ा तो स्तब्ध रह गया. दाहिनी ओर खिड़की के पास एक बड़ी बिल्ली धूप सेंकती हुई उस नन्हें से चोर को देख रही थी.

--मैं तो गया. चूहे ने सोचा---यहां तो छिपने के लिए भी कोई जगह नहीं है.

--क्या कर रहा है चूहे? बिल्ली ने चूहे को लगातार घूरते हुए पूछा.

--मैं. . .मैं. . .मैं. . .बस--चूहा बिल्ली की हरी चमकती हुई आंखों से धीरे-धीरे दूर हटते हुए हकलाया.

--ग्. . .ग्. . .गेट आउट. आलसी बिल्ली जंभाई लेती हुई बोली. □

(प्रस्तुतकर्त्ता : अनिल कुमार गंगल)

समानता

एक बड़ी मछली ने एक छोटी मछली को जा घेरा और उसे निगलना चाहा.

छोटी मछली बोल पड़ी--यह अन्याय है. मैं भी जीना चाहती हूं. सारी मछलियां कानून के सम्मुख बराबर हैं.

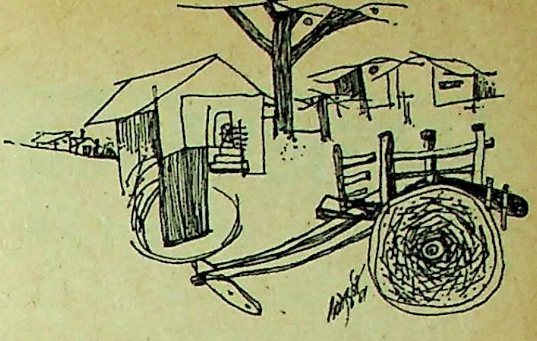

बड़ी मछली ने उत्तर दिया--मैं यह बहस करना नहीं चाहती कि हम समान हैं या नहीं, कृपया तुम अगर मुझे निगल सकती हो तो निगल जाओ.

छोटी मछली बड़ी मछली को कोंचने की कोशिश करने लगी. अंत में, आह भर कर बोली--तुम जीतीं, मुझे निगल जाओ. □

ज्ञानवान बटिया-पत्थर

एक शहर में बटिया-पत्थर की बनी सड़क थी. उस पर एक गाड़ी जा रही थी. उसके पहिये ने सड़क पर एक बटिया-पत्थर को उखाड़ दिया. वह पत्थर स्वयं से बोला--मैं यहां अन्य बटिया-पत्थरों के साथ बंधा हुआ क्यों पड़ा रहूं?

एक लड़का उधर से गुजरा और उसने उसे उठा लिया.पत्थर ने सोचा--मैं यात्रा करना चाहता था और मैं यात्रा कर रहा हूं.

लड़के ने पत्थर को एक घर पर फेंका. पत्थर ने सोचा--मैंने उड़ना चाहा था और इसलिए अब मैं उड़ रहा हूं.

पत्थर कांच की खिड़की से जा टकराया. कांच टूट गया, और टूटते हुए चीखा--ओह, बदमाश! देखो तुम क्या कर रहे हो!

किंतु पत्थर ने उत्तर दिया--तुमने मेरी राह रोकने का पर्याप्त प्रयत्न किया. मैं लोगों का अपनी राह में फंसना पसंद नहीं करता.

पत्थर मुलायम बिस्तरे पर जा पड़ा और सोचने लगा--वाह, मैं खूब उड़ा; अब मुझे कुछ देर तक लेटना तथा आराम करना चाहिए.

एक नौकर अंदर आया और उसने पत्थर को खिड़की से बाहर फेंक दिया, वह पुनः उस बाटिया-पत्थर की गली में जा गिरा.

तब वह अपने साथियों से चीखता हुआ बोला--भगवान का लाख शुक्र है भाइयो, मैं अभी हाल ही में एक मकान से घूम कर लौटा हूं, किंतु मैंने महसूस किया है कि मैं अभिजात-वर्ग की तनिक भी परवाह नहीं करता, मेरा दिल तो सदैव साधाहरण लोगों के लिए उत्कंठित रहता है, सो मैं आप लोगों के पास आ गया हूं. □

(प्रस्तुतकर्ता : र. कु. बैब)

एकतरफा प्यार

• क्रिजेश कारिथी

आठ साल के अंतराल के बाद मैं फिर बर्लिन जा रहा था, जहां मैंने अपनी जवानी के दो सबसे खूबसूरत और सबसे उदास साल भी बिताये थे. इस बार मैं काम से आया था, तीन दिन ठहरने के इरादे से. मैं फ्रेडरिखस्ट्रास स्टेशन की सीढ़ियां उतर रहा था कि तभी दर्द का वह अहसास मुझ पर हावी हो गया जिससे मैं उन दिनों में क्षण भर भी मुक्त नहीं हो सका. मैं उस मनोदशा का वर्णन नहीं कर सकता, सिर्फ यह कह सकता हूं कि उन तीन दिनों में मैंने केवल अतीत को जिया. . .उन्हीं दो वर्षों को जिनकी गंध और रंग मैं उसी तरह खो चुका था जैसे मृतक के प्राण. मैं अपनी तुलना उस मनुष्य से कर सकता हूं जो हाथ खो चुका है और वह व्यथा के साथ उस सुखद समय की याद करता है जब उसका हाथ उसके दिमाग को यह खबर देता था कि उसे चोट आ गयी है. मैंने उन दुःखों को याद किया जो अब नहीं थे, और जिसके बारे में मैंने अब जा कर अनुभव किया कि उन्हीं में वह सब कुछ निहित था जो मेरी जिंदगी में चौंधिया देने और असहनीय होने की हद तक खूबसूरत था.

वे दुख अब नहीं थे, और जब मैं फ्रेडरिखस्ट्रास पर चल रहा था. अपने दिमाग को उन परस्पर जुड़ी जगहों और घटनाओं को याद करने के लिए झकझोर डाला. इस कैफे में मैं एक बार बैठा था, किसी के इंतजार में. . . वहां पुल के नीचे डेनिस से मिला था, उसकी आत्महत्या की कोशिश के बाद. . .वो डाकघर है जहां मैंने अपनी जिंदगी में लिखे सबसे सुंदर पत्र डाले थे और. . .और वे खो गये थे. . .सब कुछ मैंने देखा और याद किया, लेकिन मुझे धुंधली-सी याद आ रही थी कि मैं कुछ भूल रहा हूं, कुछ ऐसा जो बहुत ही अहम है, वह कड़ी जिसने सारी चीजों को एक पूर्ण इकाई में मिला दिया था.

मैं उसे भूल चुका था, लेकिन मेरी गोपन इंद्रियों और मेरे अवचेतन अहम् की इच्छाशक्ति ने उसे बिलकुल साफ-साफ देख लिया होगा. वरना यह कैसे हुआ कि मेरे कदम लेसिंग थिएटर की ओर बढ़ते जा रहे थे, जिसके नजदीक, एक गंदे चौराहे पर एक निहायत घटिया कैफे की खिड़की के पीछे मुझे अचानक फेलिक्स स्टाल नजर आ गया.

अनजाने ही मैं उसी को खोज रहा था, विशुद्ध सहजबोध से, क्योंकि यह उम्मीद शायद मैं कर ही नहीं सकता था कि वह उसी कैफे में, यहां तक कि उसी टेबुल पर बैठा होगा जहां आठ साल पहले बैठा करता था. हम जुदा हुए उसके बाद उसका क्या हुआ, यह न मैं जानता था, न ही जान सकता था. पर मन ही मन में मान चुका था कि अगर वह जिंदा है, तो वह सामान्य इंसानी जिंदगी नहीं जी रहा होगा कि या तो वह पागलखाने में होगा, या किसी मठ में, या शायद अफ्रीका में, और शायद इंसान की शक्ल में भी नहीं, चिड़िया या जंगली जानवर के रूप में ! मैं फेलिक्स स्टाल में मौजूद उस भयावह, ठोस जीवन शक्ति के आवेग की, उस अंधेरी, यातनाजनक, हताश वहशी कामना के आवेग की कल्पना नहीं कर सकता था जो दिनों, महीनों और वर्षों के व्यतीत होने की संकीर्ण सीमाओं में दबी हुई थी.

और अब-जब मैंने उसे देखा, मैं यह नहीं मानना चाहता था कि खुद को सूखे जंगल में फेंकी चिनगारी की तरह या ज्वालामुखी के मुंह पर पानी की तरह क्षार-क्षार हुए बिना फेलिक्स स्टाल उन तीन हजार दिनों और रातों की विराट सुरंग पार कर सका होगा. मगर फेलिक्स स्टाल वहां मौजूद था, और उसी के साथ वे शानदार दो वर्ष भी शहर की खाक छानते हुए बितायी गयी रातें, सबेरे टहलते हुए, लंबी खामोशियां, अपने चारों ओर हवा में काल्पनिक आकृतियां और व्यंग्यचित्र बनाते और उन पर उन्मुक्त तथा व्यग्र हमारी हंसी, रहस्यमय आकार जिनका अन्वेषण करते वह कभी थकता नहीं और जो मध्ययुगीन रेखांकनों के दैत्यों, भूत-प्रेतों और बौनों की तरह हमारे चारों ओर धक्कमधुक्का करते रहते थे.

मुझे देखते ही उसका चेहरा सुर्ख हो गया. वह बहुत कम बदला था. उसका चेहरा कुछ भर गया था, लेकिन ताज्जुब कि उद्दाम हठीली वासना द्वारा उकेरी गयी उसके चेहरे की सुपरिचित झुर्रियां और शिकनें और भी गहरी हो गयी थीं.

शुरू में हम लोग फालतू बातों पर बातें करते रहे, हालांकि स्नेह के साथ और खुशी को दबाते हुए, मैंने महसूस किया कि आठ साल में वह ऐसे किसी आदमी से नहीं मिला जिससे उन्मुक्त बातचीत कर सके. फिर अनजाने ही हमारी बातचीत पुराने विषयों पर मुड़ गयी. आठ वर्ष पहले की तरह ही हम दोनों लोगों और चीजों पर अपनी-अपनी राय का इजहार करते रहे. पता नहीं कैसे, हममें से किसी को यह सूझा ही नहीं कि इस बीच हमारी जिंदगी क्या और कैसी रही है. अनायास मैंने ध्यान दिया कि फेलिक्स बार-बार अपनी घड़ी देख रहा है. सिर्फ तभी मुझे सारी चीजें याद आयीं—-तुम्हें किसी से मिलना है? मैंने कहा.

उसने मुझे देखा. स्पष्ट था कि वह कुछ कहना चाहता है, लेकिन बिना कुछ कहे वह दूसरी ओर देखने लगा. मुझे एक भारी दया और साथ ही अजीब-सी ईर्ष्या ने जकड़ लिया. मुझे उसके चेहरे की दयनीयता से, निराश अंदाज में उसके सामने देखने से जलन हुई.

—-क्या वह अभी भी बर्लिन में है?

फेलिक्स ने सिर हिला दिया.

—-या उसी के लिए तुम यहां बैठे हो? अभी वह कहां है?

—-लेसिंग थिएटर में.

—अभी हमारे पास १५ मिनट और हैं, अपनी घड़ी पर नजर डालते हुए मैं बोला 'मैं नाटक के विज्ञापन देखना चाहूंगा. क्या तुम थिएटर जाकर उसका इंतजार करोगे?

फेलिक्स ने सिर हिलाया. एक घंटे बाद, जब मैं अपने पहले झटके से मुक्त हो चुका था तो मैं हैरत से सोचता रहा कि उन पंद्रह मिनटों में मेरे दिमाग में यह क्यों नहीं आया कि मैं उससे पूछूं, कि उन आठ सालों में उन दोनों के बीच क्या-कुछ हुआ. उस औरत के प्रति फेलिक्स की उस नायाब, खूबसूरत दहकती, दयनीय और कमीनी कशिश ने क्या-क्या वारदातें करायीं, क्या गुल खिलाये? सारी दुनिया को, समय को और स्थान को भूल, केवल हन्ना के बारे में सोचते हुए, उसके बीमार-से जर्द रंग, उसके प्यारे प्यारे हाथों के बारे में, जो मर्दाने आंसुओं से धुले हैं, उसके अकथनीय रूप से प्यारे सिर, उसके रेशमी कपड़ों की मुलायम सरसराहट के बारे में सोचते हुए, फेलिक्स का वहां बैठना बिल्कुल स्वाभाविक लगा, यह इतना स्वाभाविक था कि फेलिक्स को वहीं बैठा होना चाहिए और बरसों तक इंतजार करना चाहिए. . .दूर से उनकी एक झलक भर पाने की खातिर, या उस घर को देखने की खातिर जहां वह शायद घुसी हो, या उस सड़क को देखने की खातिर जहां से वह कल शायद गुजरी हो.

मेरे सवाल उनके प्रेम संबंधों की मौजूदा स्थिति जानने के इरादे से नहीं पूछे गये थे. मैं साफ देख रहा कि उसका प्यार वही है जो पहली बार देखने पर था, बल्कि उसे देखने का उसके बारे में सुनने से भी पहले से था, क्योंकि फेलिक्स को इस दुनिया में हन्ना के लिए अकूत कशिश ही लायी थी, जिसकी सुगंध अनस्तित्व के अंधेरे शून्य में भी तिर कर उस तक पहुंच गयी होगी.

—क्या तुम उससे मिल चुके हो?

उसने सिर हिलाया, लेकिन मैं समझ गया कि वह इस सवाल से उकता चुका है. हन्ना से उसके संपर्कों के बारे में मैंने और जो भी सवाल किये उसके उसने संक्षिप्त, यकायक जवाब दिये, या फिर कुछ नहीं बोला. फिर भी उसने बताया कि एक बार हन्ना उससे मिलने आयी थी. उन्होंने कहीं चले जाने का कार्यक्रम बनाया था, शायद रोम जाने का, और यह कि हन्ना को अपने पति से अलग हो जाना चाहिए.

घाव अलग-अलग आकारों के और छोटे-बड़े हो सकते हैं।

उसी तरह घावों के अनुसार नयी बैन्ड-एड* ब्रान्ड पट्टियाँ मिलती हैं।

स्टैण्डर्ड स्ट्रिप
कटाव और खरोंच के लिए

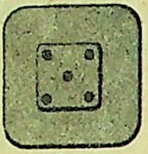
पैच
जहाँ पट्टियाँ न बाँधी जा सकें उन घावों के लिए

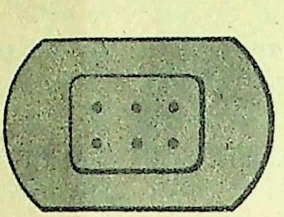
जायन्ट स्ट्रिप
बहुत बड़े घावों के लिए

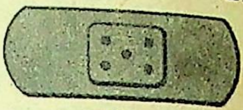
लार्ज स्ट्रिप
बड़े घावों के लिए

स्पॉट
फोड़े-फुन्सियों के लिए

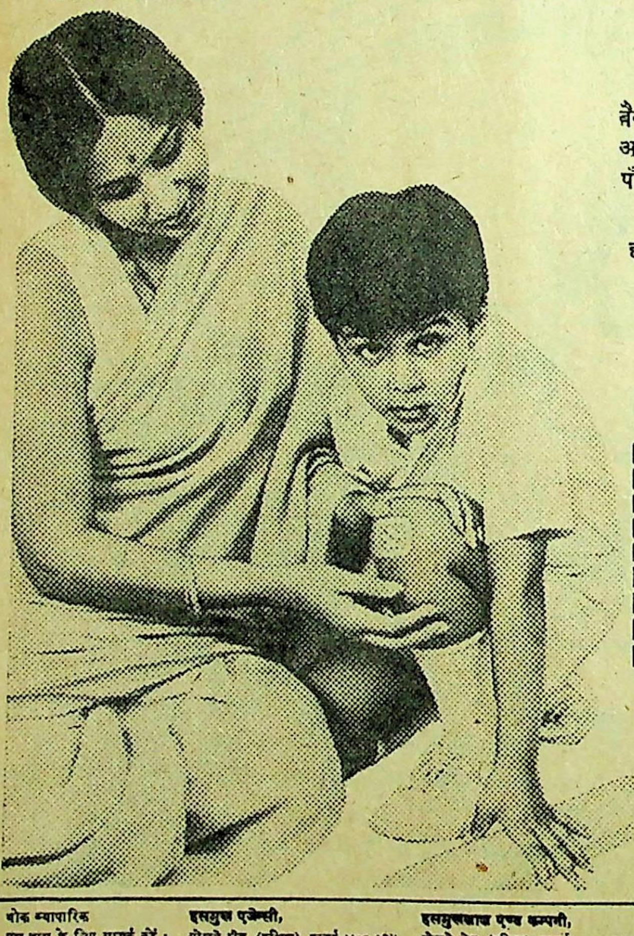

घावों को छूत लगने का खतरा रहता है। उनकी, नयी बैन्ड-एड* पट्टियों से सुरक्षा कीजिए। अब ये अलग-अलग आकारों और साइज़ों में मिलती हैं — सभी प्रकारों की पट्टियाँ पाँच-पाँच एक साथ सुविधाजनक पैकेट में मिलती हैं।

सावधानी बरतिए — बैन्ड-एड* पट्टियाँ लगाइए। हमेशा कुछ पट्टियाँ अपने पास रखिए।

हमेशा नयी बैन्ड-एड ब्रान्ड पट्टियों का नाम अवश्य देखिए। इनके बदले और कुछ मत स्वीकारिए।

OBM/4533 HIN

Johnson & Johnson* • Trademark © J&J 75

थोक व्यापारिक पूछ-ताछ के लिए सम्पर्क करें :
हसमुख एजेन्सी, गोखले रोड, (दक्षिण), बम्बई-४०० ०२५
हसमुखलाल एण्ड कम्पनी, गोखले रोड, (दक्षिण), बम्बई-४०० ०२५
ठक्कर परषोत्तम हीरजी एण्ड कम्पनी, जॉली सेंटर बेसमेंट, सांताक्रुज, बम्बई-४०० ०५४
जवाहर मेडिकल एण्ड जेनरल स्टोर्स, ९९/१०१ के. एन. रोड, बम्बई-४०० ००१

--तुम उतनी दूर पहुंच चुके थे, मैंने साश्चर्य पूछा, वह तुम्हारे साथ चली जाने को तैयार हो गयी थी?

उसने जल्दी से सिर हिला दिया.

--अच्छा, फिर क्या हुआ?

जाहिर था कि वह इस बारे में बातचीत के लिए इच्छुक नहीं, और मैंने सोचा कि शायद इसलिए कि उनका कार्यक्रम असफल हो गया था.

--हम लोग स्टेशन पर दोपहर में मिलने वाले थे. मैं वहां था, इंतजार में, फेलिक्स की आवाज मारी थी.

--तो?

फेलिक्स उछलकर खड़ा हो गया. वह आगे कुछ बर्दाश्त नहीं कर पाया.

--कितने बजे हैं? उसने कहा.

मैं भी उठ गया. पर मैं उस किस्से का अंत जानना चाहता था और प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे देख रहा था. फेलिक्स झेंप गया और बोला--फिर कभी, बूढ़े यार! क्या अभी तक आठ नहीं बजे?

हम लोगों ने बिल चुकाया और गैस-बत्तियों की रूखी चमचमाहट में थिएटर की ओर जल्दी-जल्दी चले. हममें से किसी ने कोई बात नहीं की. नाटक खत्म हो गया था और थिएटर के बाहर राजसी मोटरें आर्क लैंपों के नीचे एकत्र हो रही थीं. पहले फेलिक्स ने उसे देखा, उसने कुछ कहा नहीं, पर मेरी बांह भींच कर पकड़ ली. वह भयानक रूप से पीला पड़ गया था. हमसे कोई बीस कदम पर हन्ना एक मोटर की तरफ भागती-सी जा रही थी. उस भीड़ में वह एक सुंदरता के चुंधियाने वाले द्वीप की तरह थी, जो कि उसके लिए स्वतः ही रास्ता देती जाती थी. फेलिक्स एकटक उसे देखता निश्चल रहा. मैं उत्तेजित हो गया था.

--आओ चलें, मैंने कहा, हम लोग उससे बात करें. उसे शायद अब भी मेरी याद होगी. क्या तुम उससे बात नहीं करना चाहते?

फेलिक्स ने सिर हिलाया. वह मुसकरा रहा था, विक्षिप्त सुख से उसका चेहरा गौरवान्वित हो गया था.

वह फुसफुसाया--किसलिए? वह मुझसे क्यों मिलेगी? क्या यह शानदार नहीं है, इसी तरह उसकी ओर देखते रहना?

उसके स्वर में कहीं कुछ आह्लादसूचक था.

--तुम उसके बारे में क्या सोचते हो, उसने आगे कहा. देखो, अभी हम उसी जगह पर चल रहे हैं जहां कुछ क्षण पहले वह चल रही थी. देखो. . .वह परे है. पहुंच से बाहर . . . फेलिक्स कांप रहा था. अगर वह चाहती है कि मैं इसी वक्त मर जाऊं तो मैं खुशी से मर जाऊंगा अगर वह मुझे उसके लिए मरने की इजाजत दे दे. . .

मुझे गुस्सा आ गया.

--बेवकूफ, मैंने कहा, वह एक मिनट में चली जायेगी. तुम क्यों नहीं चलते और उनसे बात कर लेते?

फेलिक्स ने मुझे रोक लिया. अपना सिर हिलाता चुपचाप खड़ा रहा.

--मैं भयानक रूप से उसे प्यार करता हूं, वह बोला.

हन्ना अब तक चली गयी थी. हम लोग करीब पांच मिनट तक चुपचाप चलते रहे. फिर मैंने उसे देखा तो आश्चर्य हुआ कि उसके चेहरे पर शांति थी, बल्कि कुछ ऊब भी. उसने एक जमुहाई भी ली, और जमुहाई टूटने के पहले ही बोला:

--तुम कहां ठहरे हो?

--तुम चाहो तो मैं तुम्हें घर तक पहुंचा दूं, मैंने जवाब दिया.

--ठीक है, फेलिक्स ने एक नयी अपरिचित आवाज में कहा.

मुझे आश्चर्य हुआ. यह बिल्कुल कोई अजनबी था, जिससे मैं कभी भी नहीं मिला होऊंगा.

--हम लोग पैदल चल सकते हैं, उसने कहा. दूर नहीं है, संपादक को दफ्तर के पास ही रहना चाहिए.

★ ★

फिर वह अपने अखबार पर चहक-चहक कर बातें करने लगा, उसकी नीति का विस्तार से वर्णन करते हुए, जब तक कि हम एक खूबसूरत नयी इमारत के पास नहीं पहुंच गये.

--तुम थोड़ी देर के लिए भीतर नहीं आओगे क्या? उसके बाद तुम जहां चाहोगे, मैं साथ चलूंगा. मैं बस अपनी पत्नी को बताना चाहता हूं कि मैं खाना घर पर नहीं खाऊंगा.

--तुम्हारी शादी हो गयी है?

वह कुछ बुदबुदाया जो मैं सुन नहीं सका. लिफ्ट ऊपर जाने लगी. हमने एक आरामदेह-से फ्लैट के हाल में अपने कोट और हैट रख दिये.

फेलिक्स आगे बढ़ा और दरवाजे में से बात करने लगा. उसका स्वर काफी उदासीन था.

--अच्छा, तुम कपड़े बदल रही हो? डार्लिंग, मैं तुम्हें 'डिस्टर्ब' नहीं करूंगा. मैं सिर्फ यह कहना चाहता था कि मैं घर खाना नहीं खाऊंगा.

दरवाजा खुला और एक औरत बाहर आयी, सादी घरेलू पोशाक में. वह हन्ना थी.

मुझे याद नहीं कि मैंने हन्ना से क्या कहा या कि हकलाते हुए क्या कहा. मैं बिल्कुल भौंचक्का रह गया था. मैं फेलिक्स की उदासीन, अधीर आवाज को सुनकर यथार्थ के प्रति सचेत हुआ.

--मैं कह रहा हूं कि मुझे जाना है. तुम सो जाओ और मेरा इंतजार मत करना. कल मैं अलेक को ले आऊंगा. और तब तुम उससे गपशप कर लेना. गुड बाई!

हन्ना चुपचाप फर्श पर टकटकी लगाये रही.

हम सीढ़ियों पर आ चुके थे लेकिन मैं कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं था. फेलिक्स हंसा, पर यह जबरदस्ती की हंसी थी जिसमें खुशी का पुट भी न था.

--गधे, मैं मजाक कर रहा था, वह बोला, तुम मुंह क्यों बनाते हो?

ताक़त

अपनी ताक़त को बनाए रखने के लिए ओकासा की चांदी चढ़ी टॉनिक टिकियाँ लीजिए. शक्ति और स्फूर्ति के लिए मशहूर टॉनिक ओकासा. तंदुरुस्ती की एक निशानी ओकासा.

ओकासा

टॉनिक टिकियाँ

पुरुषों के लिए चांदी वाली

सभी बड़े-बड़े केमिस्टों के यहाँ मिलता है।

OKASA CO. PVT. LTD.
12K Gunbow Street,
P. B. No. 396 Bombay 400 001

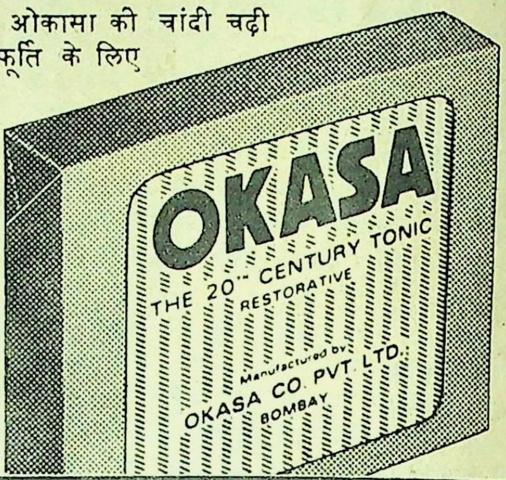
OKASA
THE 20TH CENTURY TONIC
RESTORATIVE
Manufactured by
OKASA CO. PVT. LTD.
BOMBAY

उसकी
सुन्दरता का
रहस्य ही
ऐटेक्स सौंदर्य प्रसाधन
EYETEX
EYETEX BINDI
EYETEX
ARAVIND LABORATORIES MADRAS-33

फिर उसने गंभीर मुद्रा में कहा––तो, तुम्हें पता है उस बार स्टेशन पर. . .वह आयी और हम लोग साथ-साथ चले गये. हमारी शादी हुए ६ साल हो चुके हैं. . .

अंततः जुबान खुली, मुझे अपमान और गुस्सा महसूस हो रहा था. थिएटर के सामने मुझे बनाने और खुद का तथा मेरा अपमान करने का उलाहना मैंने उसे दिया.

वह अपनी पत्नी के बारे में पागलों की तरह, बोल कर और व्यवहार में तारीफ किये जा रहा था और फिर मुश्किल से घंटे भर बाद क्यों वह लगभग जानवरों की तरह उससे वर्ताव कर रहा था? इसी तरह मैं बोलता चला गया.

सड़क पर पहुंच कर मैंने उसे देखा. उसका चेहरा सौम्य और धैर्यपूर्ण दीख रहा था, उसी पुरानी उदासी के साथ उसने अपने घर की खिड़की की तरफ उलट कर देखा और अंततः स्नेहिल और मृदुल उदासी से भरे स्वर में जवाब दिया––मैं जरा भी मजाक नहीं कर रहा था, उसने कहा और मैंने देखा उसके चेहरे पर वही मुस्कराहट थी जो किसी मां के चेहरे पर, लोरी गाकर बच्चे को सुलाने के बाद आती है. मैं उसे नहीं बता सकता कि मैं उसे कितना प्यार करता हूं. वह मेरी पत्नी है. वह कभी नहीं जानेगी क्योंकि हम हमेशा साथ रहते हैं.

वह कहता गया––वह मेरी है और उसे उसी तरह प्यार करना है. मैं दूसरे ढंग से उसके साथ व्यवहार नहीं कर सकता. 'मैं तुम्हें प्यार करता हूं,' यह कहना अजीब, पहले से बहुत भिन्न लगेगा. पर कभी-कभी सड़क पर जब वह किसी दुख में विचारमग्न चलती होती है, या जब कभी दरवाजे की दरार में से उसे मैं काम करते देखता हूं, तब उसे देखकर मेरा हृदय कांप उठता है. . . वही पुरानी हन्ना, अप्राप्य, जिसके लायक मैं नहीं. तब मैं उसे उस एकमात्र सच्चे प्यार से देखता हूं––आशा-रहित प्यार क्योंकि जो प्यार आशारहित नहीं, वह प्यार नहीं है.

बहुत समय तक हम लोग बोले नहीं. कुछ देर बाद फेलिक्स की आवाज सुनायी पड़ी, मानो कहीं दूर से आ रही हो––कभी-कभी मेरी इच्छा होती है कि वह मर जाय. तब मैं सब कुछ सहेज लूंगा, फ्लैट में ताला डाल दूंगा और चाभी स्प्री नदी में फेंक दूंगा. और फिर मैं रात में कब्रगाह जाया करूंगा और उसकी कब्र के पास रोऊंगा. . . मैं खुल कर रोऊंगा, जीभर कर, यह सोचकर खुश, कि वह मुझे सुन नहीं सकती और मेरी वासना तृप्त नहीं कर सकती, कि वह वही पुरानी हन्ना है जो बर्लिन की सड़कों पर हमारे चारों ओर, एक सौम्य रहस्यमय मुस्कान अपने चेहरे पर और अपनी अंगुली, ओंठो पर रखे हुए फुदकती रहती है. पुरानी हन्ना. . .मेरा यौवन. . .

□□□

(अनुवाद : चंद्रकिरण राठी)

जर्मन लघुकथा

वज़न

• हर्डर

हक्कम नाम का खलीफा अपने महलों के बागों को दूर-दूर तक फैलाना चाहता था. सो, उसने इर्द-गिर्द की सभी जमीनें उनके मालिकों से मुंहमांगी कीमतें देकर खरीद लीं. वहां एक गरीब विधवा की भी थोड़ी-सी जमीन थी, जो अपने पिता-पुरखों की उस निशानी को बेचना नहीं चाहती थी. उसने खलीफा को अपनी जमीन देने से इंकार कर दिया. खलीफा को उस पर बहुत गुस्सा आया और उसने उसकी जमीन जबर्दस्ती ले ली.

विधवा रोती-कलपती हुई इंसाफ मांगने के लिए काजी के पास गयी.

उन दिनों इब्न बशीर शहर का काजी था. उसने सारी बात सुनी, तो उसे लगा कि मामला बहुत पेचीदा है. विधवा स्त्री कानूनी तौर पर अपना हक ले सकती थी, लेकिन खलीफा को कानून का पालन करने के लिए कहना आसान काम नहीं था, क्योंकि वह अपनी मर्जी को ही कानून समझता था.

आखिर काजी एक गधे के गले में बहुत बड़ा बोरा लटका कर महल की ओर चल पड़ा.

खलीफा ने उसे गधे के साथ देखा, तो उसे हैरानी हुई. फिर, उसे और भी हैरानी हुई, जब काजी उसके पांव पर गिर कर बोला––हुजूर, मुझे इस जमीन की मिट्टी इस बोरे में भरने की इजाजत दीजिये.

खलीफा ने इजाजत दे दी.

काजी ने बोरा भर लिया, तो उसे उठाकर गधे पर रखने के लिए खलीफा से मदद मांगी.

खलीफा को यह मांग और भी अजीब लगी. तभी कुछ सोच कर उसने बोरा उठाने में उसकी मदद करनी चाही. पर बोरा हिल नहीं रहा था. खलीफा ने कहा––इसका वजन तो बहुत ज्यादा है.

तभी काजी ने कहा––हुजूर, आपको यह वजन इतना ज्यादा लगा है, पर यह तो उस मिट्टी का बहुत छोटा-सा हिस्सा है, जो आपने गरीब बेवा से छीनी है. अगर यह इतना ज्यादा वजन है, तो कयामत वाले दिन दुनिया का काजी छीनी हुई जमीन का सारा वजन अपने कंधों पर रखना चाहेगा, तो आप उसकी कैसे मदद करेंगे?

यह सुनकर खलीफा हैरान-परेशान रह गया. फिर उसने काजी की हिम्मत और अक्ल की दाद दी और विधवा को उसकी सारी जमीन वापस कर दी.

□□□

(प्रस्तुतीकरण : सुखबीर)

वियना का हीरा

• लायोश बिरो

वियना की सड़कों पर तेज वासंती हवा थी. शोल्ज परिवार के तीनों लड़के, जो कोर्ट थिएटर आर्केस्ट्रा के सदस्य थे, थियेटर से बाहर आये. उन्होंने अपने कोट के कालर ऊंचे कर लिये और उदास भाव से घर की तरफ चल पड़े. घर में उन्हें मां मिली— एक हताश, सतायी हुयी बूढ़ी औरत. सौम्यता के साथ उसने उनके लबादे ले लिये और उनका 'सपर' लाने रसोई में चली गयी.

तीदों शोल्ज लड़के टेबल पर नीची नजरें किये उदास बैठे थे.

—क्या पिताजी अभी घर नहीं आये हैं? दांत किटकिटाते हुए रूडोल्फ ने पूछा.

—नहीं, अभी वे घर नहीं आये हैं, उसकी मां ने विनम्र जल्दबाजी में जवाब दिया.

रूडोल्फ खाने लगा. मां ने कुछ देर इंतजार किया लेकिन हमेशा की तरह उसके किसी भी लड़के ने उससे बात करने की कृपा नहीं की, इसलिए वह चुपचाप दयनीय भाव से रसोई में खिसक गयी. तीनों लड़कों ने उदास चुप्पी में खाना खाया.

— मैं अब और नहीं सह सकता, मैक्सीमिलियन ने अपना सिंह जैसा सिर हिलाया. मैं यहां से चला जाऊंगा, उसने गंभीर आवाज में कहा जिसमें दर्द की गूंज थी.

बुर्ज के नीचे एक अच्छा कमरा है, एक नानबाई का घर है, उसकी बेटियां खूबसूरत हैं, रूडोल्फ बोला.

—तब फिर हम लोग वहीं चले जायेंगे, मैक्सीमिलियन ने कहा.

विचारों में डूबे वे खाते रहे. खाना खत्म होने के कुछ पहले उन्होंने बाहर अपने पिता की आवाज सुनी, इसलिए पाइप जला कर बिस्तरों पर लेट गये. इसी बीच उनके पिता, श्रीमान शोल्ज, सम्राट के दरबार के अवकाशप्राप्त संदेशवाहक, धीरे-धीरे, पर शोर मचाते हुए खाने के कमरे में घुसे. उस शाम वह अपने अंतरंग मित्रों के साथ बहुत देर तक पेरिस में शुरू हुई क्रांति के बारे में बातें करते रहे थे.

मेज पर उनके बैठने से पहले ही पत्नी खाना ले आयी थी फिर भी वह भुनभुनाने लगे— और क्या, अगर मैं भूखों मर जाऊं तो तुम्हें तो खुशी ही होगी. तुम तो चाहोगी कि मुझे दफन कर दो, क्यों लिजी, है न? लेकिन कोई फायदा नहीं होगा, लिजी, मैं तुम्हें दफन कर दूंगा. तुम्हारी लाश देखे बगैर मैं मरूंगा नहीं.

दयनीय, कांपती हुई वह औरत खाना लगा रही थी— तुम कांप रही हो! श्रीमान शोल्ज गरजे. तुम उस वक्त क्यों नहीं कांपती थी? उस वक्त तो सिर्फ तुम्हारा पापी शरीर तड़प रहा था, तुम्हारी हरजाई आत्मा नहीं.

पत्ते की तरह कांपती हुई वह औरत अलग हट कर रसोई में चुपचाप लौटने लगी—रुको! भूतपूर्व अदालती संदेशवाहक गरजा. वह औरत रुक गयी. श्रीयुत शोल्ज खाते जाते, पीते जाते और बोलते जाते—मुझे मालूम है. तुम मना रही हो कि . . . लेकिन तुम्हारी प्रार्थना का कोई फायदा नहीं होगा. चाहे जो हो, तुम नरक में जाओगी. लेकिन तुम्हें वहां भेजूं उससे पहले अपने कानूनी पति को धोका देने का प्रायश्चित तुम्हें करना पड़ेगा. अगले दस साल में तुम्हें तुम्हारे न्यायाधीश के सामने भेज दूंगा. लेकिन तब तक मैं तुम्हें सजा देता रहूंगा.

बगल के कमरे में तीनों लड़के बेचैनी से करवटें बदल रहे थे— वह फिर उसे मारेगा, रूडोल्फ फुसफुसाया. मैक्सीमिलियन ने अपने कंधे उचका दिये— क्या तुम अब इसके आदी नहीं हो गये हो? उसने कहा.

फ्रांज के होंठ फड़क उठे— २२ साल से, उसने उदासी से कहा—बहुत लंबा समय है, बहुत दुख वह उठा चुकी है लेकिन. . .

हम जिंदगी भर यही भोगते रहे हैं, रूडोल्फ ने चिड़चिड़े स्वर में कहा.

—लेकिन हमें अभी यही और भी भोगना पड़ेगा, मैक्सीमिलियन ने पूरा किया, उस कलंक के लिए जो उसने हमारे माथे पर लगा दिया है.

—कोई नहीं जानता, फ्रांज विद्रोही स्वर में बोला. हम लोग जानते हैं यही बहुत है, मैक्सीमिलियन का स्वर कठोर था.

वह बिस्तर से उठ गया और कमरे में चहलकदमी करने लगा. उधर डाइनिंग रूम में भूतपूर्व अदालती संदेशवाहक खाना खा चुका था और अपनी पत्नी को पीटने की तैयारी कर रहा था.

—घुटनों के बल बैठ जाओ! वह गरजा. जिस पति को तुमने धोखा दिया है उसके सामने घुटनों के बल बैठ जाओ. क्या तुम स्वीकार करती हो कि तुमने मुझसे विश्वासघात किया है?

—हां, थरथराती हुई औरत ने कबूल किया.

—तुम्हारे कितने प्रेमी थे?

—एक. मैं कसम खाती हूं.

—वह कौन था?

उस औरत ने कराहते हुए बहुत धीमे जवाब दिया. मैक्सीमिलियन दरवाजे के पीछे खड़ा कांप रहा था.

डायनिंग रूम में भूतपूर्व दरबारी अर्दली खड़ा हो चुका था और जी भर कर पिटाई के लिए खुद को तैयार कर चुका था.

उसने अपनी बांहें उठायीं लेकिन तभी दरवाजा धमाके के साथ खुला और मैक्सीमिलयन धड़धड़ाता हुआ घुसा, एक क्रुद्ध हाथ ने भूतपूर्व दरबारी संदेशवाहक की उठी हुई बांह पकड़ ली.

—उसे छोड़ दो, मैक्मीमिलियन चीखा, वह बहुत भोग चुकी है.

—क्या मैंने तुम्हें ऐसा ही व्यवहार करना सिखाया है? शोल्ज गुस्से से गुर्राया.

—नहीं, मैक्सीमिलियन ने कहा. ऐसा नहीं, लेकिन

हम बहुत भोग चुके.

—उसने वेदी के सामने ली गयी कसमें तोड़ी हैं.

—उसके लिए वह बहुत दुःख उठा चुकी है, रूडोल्फ ने कहा.

—तुमने उसे अलग क्यों नहीं कर दिया? फ्रांज गुस्से से बोला.

—अगर तुमने उसे रखा है तो उसे सताओ मत.

भूतपूर्व दरबारी संदेशवाहक सजा की माप-तोल करना चाहता था. लेकिन उसके तीनों बेटे उसे पकड़ कर तीसरे कमरे में डाल आये और ताला बंद कर दिया.

आंखों में आंसू भरे हुए वह औरत डाइनिंग रूम के बीच खड़ी थी. उसके विनम्र हाव-भाव वही थे. वह अपने स्कर्ट की सलवटें ठीक कर रही थी. उसके तीनों लड़के उसे घेर कर गहरी उलझन में खड़े थे.

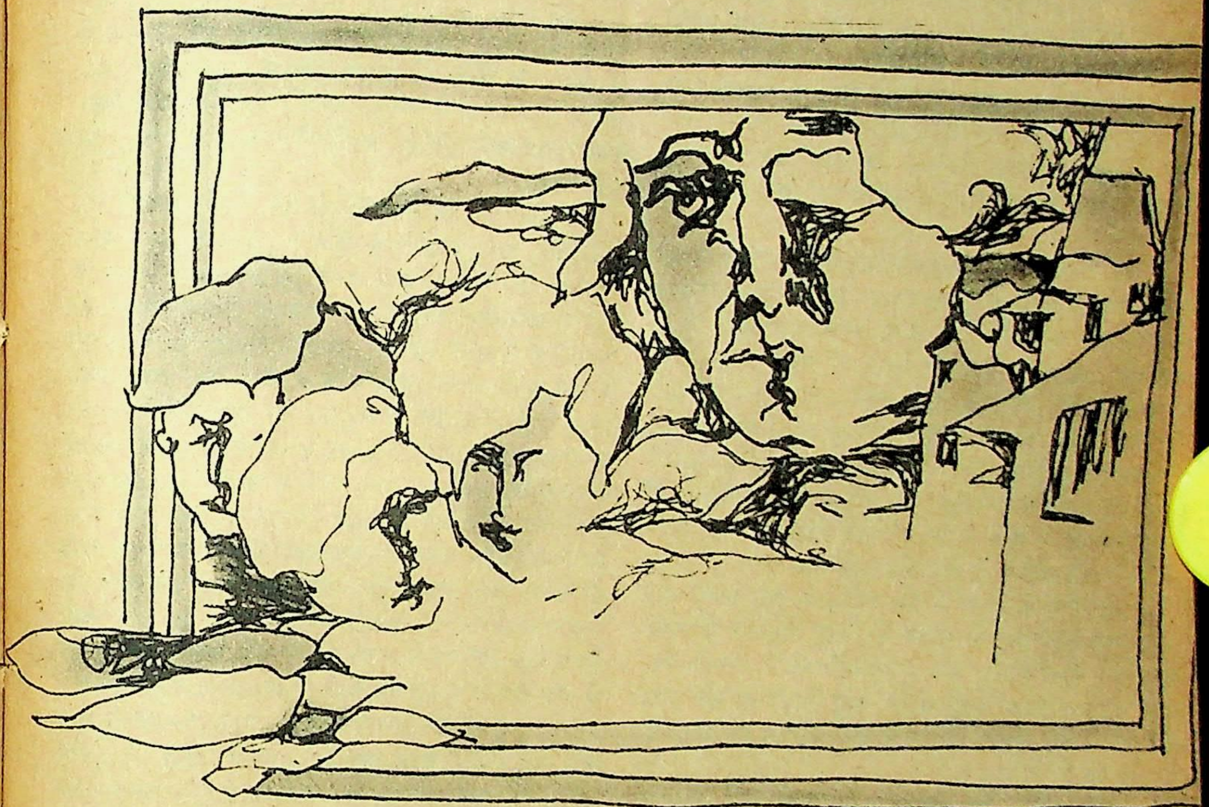

—बैठ जाओ. . . मां! मैक्सीमिलियन ने कहा.

फ्रांज ने उसके सामने एक कुर्सी खींच दी.

उन्होंने उसे टेबल के सिरे पर बैठाया. पर कुछ देर तक वे कुछ भी न बोल सके. तीनों लड़के अपनी मां से घृणा करते हुए बड़े हुए थे और आत्मीय बातचीत और संवेदना के शब्द मुश्किल से ही निकल पाते थे.

उस औरत की दुखपूर्ण भयभीत आंखों ने तीनों लड़कों पर सूक्ष्म दृष्टि डाली.लड़कों ने अपनी नजरें नीची कर लीं अंत में मैक्सीमिलियन ने अपना सिह जैसा सिर उठाया और कहा —मां, जो तुमने अभी कहा, क्या वह मैंने ठीक से सुना है?

—क्या?

—वह नाम. . . उस आदमी का नाम जिस साथ. . .वह कौन था?

औरत की थकी पलकें उसकी भीगी पलकों पर छ गयीं. —बीथोवेन, वह फुसफुसायी.

तीनों लड़कों ने चौंक कर एक दूसरे को देखा.

—कौन-सा बीथोवेन? वह मुश्किल से.कह पाया.

उस औरत की मुरझायी पलकें फिर खुलीं —

केवल एक ही था. उसने धीमी आवाज में उत्तर दिया.

—लुडविग वान बीथोवेन, मैक्सीमिलियन ने विस्मय से फुसफुसा कर पूछा.

—लुडविग वान बीथोवेन, उसकी मां ने जवाब दिया—जब हम लोग एक ही घर में रहते थे. इसलिए मैंने तुम सब को संगीतकार बनाया.

कमरे में शांति छा गयी. लड़के इस आघात से चुप थे. फिर वे अपनी मां के और करीब खिसक गये और संकोच से उसकी ड्रेस थपथपायी. रुडोल्फ ने निवेदन-सा करते हुए द्रवित स्वर में कहा—मां. . .हम लोगों को बताओ.

—हम लोगों को उसके बारे में बताओ, फ्रांज बोला.

घनी भौंहों वाले मैक्सीमिलियन ने धीरे-से अपना सिर हिलाया. औरत ने उनकी ओर देखा. फिर दूर कहीं देखती रही और धीरे-धीरे उसकी आंखों में कोमल प्रकाश आ गया. कातर, एक स्वप्निल स्वर में वह बोलने लगी और तीनों संगीतकार सांस रोके, लालायित श्रद्धानत गहरे भावावेश में सुनने रलगे. □□□

(अनुवाद : चंद्रकिरण राठी)

जीपा का पुल

• आइवो एंद्रिच

अपनी वजारत के चौथे साल बड़े वजीर यूसुफ की हालत डांवाडोल हो गयी और एक खतरनाक षड़-न्त्र का शिकार होकर वह सुल्तान की नजरों से गिर या. इसी परेशानी में सारा जाड़ा बीत गया और वसंत भी जाता रहा. (वह वसंत भी कितना कठोर और ठंडा था, जो ग्रीष्म की चमक का रास्ता रोके किसी जिद्दी की तरह अड़ा था.) मई के महीने में कहीं जाकर यूसुफ अपनी क़ैद से बेदाग बाहर आया और जिंदगी फिर अपनी रफ्तार पर आ गयी. वैसी ही शांत और रंगारंग––जैसे कुछ बदला ही नहीं. लेकिन ठंड के दिनों में जिंदगी और मौत, प्रसिद्धि और विनाश के बीच फासला कितना कम था! क्या ऐसा कोई फासला था भी? उन दिनों ने विजयी यूसुफ में अतृप्ति और असंतोष की एक छाप छोड़ दी थी.

कैद के दिनों की जिल्लत में अकेले रहते-रहते वजीर अपने पिछले दिनों की याद करता रहा, अपनी शुरुआत के दिन उसे याद आते रहे, और अपने शहर की याद में वह डूबा रहता. हताशा की स्थिति में पड़कर मन बार-बार पीछे लौट जाता है. उसे अपने माता-पिता की याद आयी. (दोनो की मौत बहुत पहले हो चुकी थी, जब वह सुल्तान-के दरोगा-घुड़साल का सहायक ही था. उनकी कब्रों पर उसने सफेद पत्थर लगवा दिये थे.) बोस्निया में बसे, उसे अपने गांव जीपा की याद आयी, जहां से सिर्फ नौ साल की उम्र से ही वह बाहर आ गया था.

तकलीफ के दिनों में दूर-दराज में बसे अपने गांव जीपा की याद कितनी सुखद थी, जहां घर-घर में उसके नाम की चर्चा होती, और कुस्तुनतुनिया में उसकी सफलता की कहानियां कही जातीं. वहां किसी को भी उसके जीवन का यह अंधेरा मालूम न था और न इस सफलता की कीमत ही मालूम थी.

उसी गर्मी में उसे बोस्निया से आनेवालों से बात करने का मौका मिला. तरह-तरह के प्रश्न वह उनसे पूछता रहा, और वे बताते रहे– वहां जीवन कैसा है, युद्ध और विद्रोह के बाद वहां अकाल, अव्यवस्था, भूख और महामारियां कैसे फैलती रहीं. वहां के लोगों को हर तरह की सहायता का आदेश उसने दिया, जीपा में रहने वाले हर तरह के लोगों को. और इसी के साथ उसने यह जांच भी करवाई कि सार्वजनिक निर्माण के लिए वहां की सबसे बड़ी आवश्यकता क्या है. उसे मालूम हुआ, गांव के चार घराने अब भी बड़े संपन्न थे, लेकिन शेष सारा गांव और आसपास का पूरा इलाका अब कंगाल हो चुका था. सबसे बुरी बात तो यह थी जीपा पर अब तक कोई पुल नहीं था. जीपा और ड्रीना के संगम के पास एक पहाड़ी पर यह गांव था और विजीग्राद जानेवाली सड़क ऊपर की तरफ सिर्फ पचास कदम पर जीपा से होकर जाती थी. लकड़ी के जितने भी पुल बनाये जाते, वे पानी में वह जाते. सारी पहाड़ी नदियों की तरह कभी तो जीपा में बाढ़ आ जाती और वह पुल डूब जाता, या कभी ड्रीना की बाढ़ से जीपा का पानी भी चढ़ जाता, और लकड़ी के पुल का नाम-निशान भी नहीं रह जाता. ठंड के दिनों में चिकनी, फिसलन-भरी बर्फ से लकड़ी का पुल ढंक जाता और आदमियों तथा जानवरों को भी जान का खतरा हो जाता. ऐसे में यदि कोई वहां एक पुल बनवा देता, तो वहां के लोगों की यही सबसे बड़ी सेवा होती.

वजीर ने मस्जिद के लिए छह दरियां दिलवाइं. जीपा पर एक पुल बनवाने का फैसला भी उसने उसी समय कर लिया.

उन दिनों कुस्तुनतुनिया में एक इतालवी इंजीनियर रहता था. आस-पास के इलाकों में उसने कई पुल बनाये थे और इस काम में उसे अच्छी शोहरत हासिल थी. वजीर के खजांची ने उसे इस पुल के लिए काम पर लगा लिया और वजीर के दो आदमियों के साथ उसे बोस्निया भेज दिया.

विजीग्राद में जब वे पहुंचे, तो बर्फ अभी भी जमी थी. कई दिनों तक तो शहर के लोग इस झुके हुए, पके बाल लेकिन लाल जवान चेहरे वाले इंजीनियर को पत्थर के पुल के आस-पास टहलते बड़े अचरज से देखा करते. दो पत्थरों के जोड़ से वह गारे का चूना निकालता, उंगलियों से उसे चूरा करता और जीभ में लगा-लगा कर उसका स्वाद लेता. फिर पुल के मेहराब की लंबाई अपने कदमों से नापता. कुछ दिनों तक वह बाजा में पत्थर की खानों को जा-जाकर देखता रहा. पुल के पत्थर वहीं से लाये गये थे. मजदूरों को भी साथ लेकर वह वहां गया और खानों को साफ करवाया. ढेर सारी मिट्टी वहां जम गयी थी और चीड़ वगैरह के छोटे-छोटे झाड़ उग आये थे. जब तक पत्थर की अच्छी मोटी, चौरस पर्त उन्हें नहीं मिल गयी, वे तब तक खोदते ही गये. विजीग्राद के पुल में लगे पत्थरों से यह पर्त कहीं ज्यादा सफेद और ठोस थी. फिर वह ड्रीना के किनारे-किनारे जीपा तक चला गया और वह स्थान उसने बताया, जहां से पत्थर की ढुलाई करनी थी. वजीर के दो आदमियों में से एक अब पुल की सारी योजना और खर्चे का हिसाब लेकर कुस्तुनतुनिया चला गया.

इंजीनियर वहीं रहकर प्रतीक्षा करता रहा. लेकिन वह न तो विजीग्राद में रहना चाहता था और न जीपा के ही किसी मकान में. ड्रीना और जीपा के संगम के पास एक पठार-सा था. उसने वहीं लकड़ी का एक झोपड़ा डाल लिया और रहने लगा. अपना सारा समय वह नक्शे बनाने और पत्थरों को काटने-तराशने में बिता देता. तरह-तरह के पत्थरों की परख करता रहता, या फिर जीपा का पाट देखा करता.

कुस्तुनतुनिया जाने वाला वह आदमी भी एक दिन आ गया और पुल के लिए आवश्यक धनराशि का एक-तिहाई भी लेता आया.

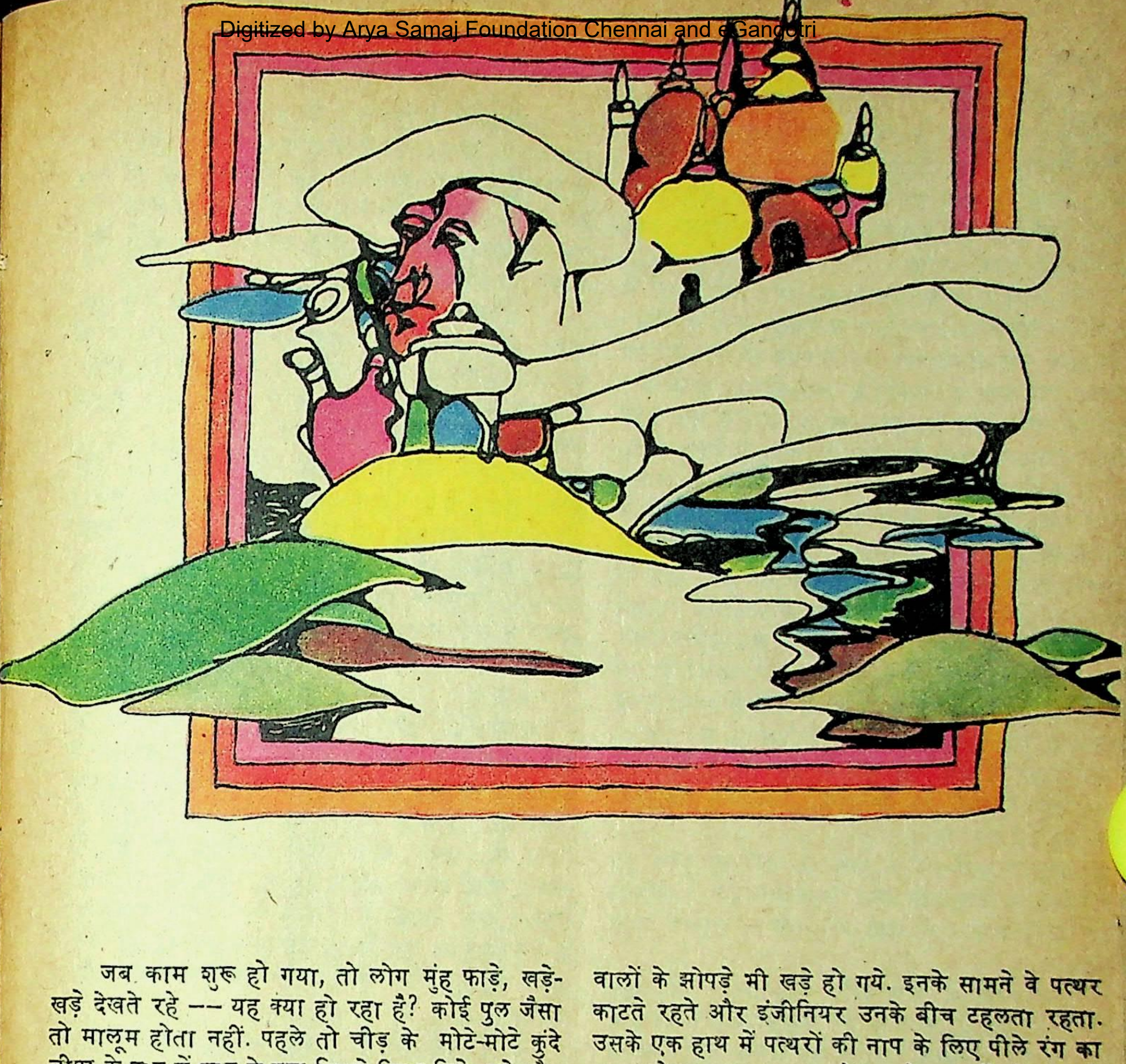

जब काम शुरू हो गया, तो लोग मुंह फाड़े, खड़े-खड़े देखते रहे –– यह क्या हो रहा है? कोई पुल जैसा तो मालूम होता नहीं. पहले तो चीड़ के मोटे-मोटे कुंदे जीपा के पाट में धार से कुछ तिरछे बिछा दिये गये और उनके बीच दो कतार में खूंटे लगाये गये. घनी झाड़ी से उन्हें अच्छी तरह बांध दिया गया और दोनों कतारों के बीच किसी खंदक की तरह मिट्टी भर दी गयी. इस तरह नदी की धारा को मोड़ दिया गया और उसका आधा पाट सूख गया. यह काम पूरा हुआ ही था, कि एक दिन पहाड़ों पर आसमान टूट पड़ा. जीपा में अचानक बाढ़ आ गयी. पहली ही रात जीपा का यह नया बांध जाता रहा. सबेरा होते-होते वहां का पानी तो उतर गया, लेकिन बांध जगह-जगह से टूट गया. खूंटे उखड़ कर वह गये और मोटे-मोटे कुंदे भी टेढ़े हो गये. किसानों-मजदूरों में अफवाह गर्म थी कि जीपा अपने ऊपर कोई पुल बनने नहीं देगी. लेकिन तीसरे ही दिन इंजीनियर ने पहले से ज्यादा गहराई पर नये खूंटे लगाने को कहा और बचे हुए कुंदों को सीधा करके एक लाइन में करवाया. फिर बहुत नीचे, गहराई में, मजदूरों का शोर होने लगा और एक खास लय में घन चलाने की आवाज आने लगी.

★

तना सब हो जाने के बाद हर्जेगाविना से पत्थर काटनेवाले और डलमैशिया से मिस्त्री आ गये. बाजा की खान [illegible] पत्थरों की ढुलाई भी शुरू हो गयी. पत्थर काटने वालों के झोपड़े भी खड़े हो गये. इनके सामने वे पत्थर काटते रहते और इंजीनियर उनके बीच टहलता रहता. उसके एक हाथ में पत्थरों की नाप के लिए पीले रंग का एक स्क्वेयर हुआ करता और दूसरे हाथ में हरे रंग की डोरी से सीसे का लंगर लटकता रहता. दोनो चट्टानी किनारों को काटने का काम खत्म होते-होते लाई हुई रकम भी खत्म हो गयी. सारे मजदूरों में बेचैनी फैल गयी. वहां के लोग भी यही कहने लगे––बस, अब बन चुका पुल! कुस्तुनतुनिया से आने वाले यही कहते, वजीर अब बिल्कुल बदल गया है. कोई नहीं जानता, उसे कोई बीमारी हो गयी, या किसी परेशानी ने उसे आ घेरा है. दिन-ब-दिन उससे मिलना दूभर होता गया. खास कुस्तुनतुनिया में शुरू किये गये कामों को भी भूलकर उसने हाथ खींच लिया. लेकिन कुछ दिनों बाद वजीर ने एक आदमी के हाथ शेष रकम भेज दी. और पुल का काम फिर शुरू हो गया.

सेंट डेमेट्रियस डे से एक दिन पहले लकड़ी के पुल से जीपा पार करते हुए लोगों ने देखा, गहरे-भूरे रंग के दोनो किनारों पर तराशे हुए सफेद पत्थरों की एक चिकनी दीवाल-सी उठ रही है. उसके चारों ओर लकड़ी के सांचे लगे हुए हैं. दिन-ब-दिन यह दीवाल बढ़ती जाती थी. और तभी उस मौसम का पहला पाला पड़ा. काम बंद हो गया. सारे मजदूर जाड़े में घर चले गये. लेकिन इंजीनियर ने वहीं लकड़ी के झोपड़े में सारा जाड़ा बिता दिया.

सारा समय वह झुके-झुके नक्शे देखा करता और हिसाब लगाया करता लेकिन अधूरे बने पुल तक वह प्रायः जाया करता. वसंत के साथ जब बर्फ का पिघलना शुरू हुआ, तो जब देखो, वह पुल के सांचे के पास बहुत परेशान हाल टहलता ही नजर आता.

सेंट जार्ज डे के पहले सभी कारीगर अपने घरों से वापस आ गये और काम फिर चल पड़ा. गर्मी के बीचों-बीच काम पूरा भी हो गया. पुल के सांचे को खोलते समय मजदूर बहुत खुश थे. लकड़ी के आड़े-तिरछे तख्तों और कुंदों की जगह अब एक साफ, सफेद, छरहरा पुल नजर आया. दोनों चट्टानों के बीच सिर्फ एक ही मेहराब था.

इस वीरान, उजाड़ इलाके में एक इतने सुंदर पुल की कल्पना भी कठिन थी. लगता था, जैसे इस किनारे से उस किनारे तक झाग के फव्वारे उठ आये हों, और दोनों फ़व्वारों ने आपस में मिल कर एक मेहराब बना दिया हो और क्षण भर के लिए उसी हालत में ठिठके-से रह गये हों. पुल के पीछे, मेहराब से होकर ड्रीना का नील-विस्तार था और आगे, काफी नीचे, फेनिल जीपा. आंखों को इस सुंदर, मेहराबदार पुल का अभ्यस्त होने में काफी समय लग गया. मेहराब क्या था– मालूम होता था, उड़ान भरते वक्त किसी ने उसे क्षण भर के लिए पकड़ लिया हो और फिर से उड़ जाने के पहले हरी-नीली पहाड़ियों पर उसे कैद कर रखा हो.

अब तो आस-पास के गांवों से लोगों का हुजूम पुल को देखने के लिए आने लगा. विजीग्राद और रोजेतिका जैसे शहरों के लोग भी आते, और पुल की तारीफ किया करते.

अपने यहां से कोई वजीर पैदा करना ऐसा कुछ आसान तो नहीं है, जीपा के लोग पुल की दीवाल पर हाथ फेरते जवाब में कहते. दीवाल ऐसी साफ और चिकनी थी, जैसे पत्थरों को काटकर नहीं, पनीर से बनी हो.

पहले-पहले दर्शकों का रेला जब पुल के पास आकर विस्मय से खड़ा देखता रहा, तभी इंजीनियर सारे मजदूरों का चुकारा कर के सभी कागजात और औजारों के साथ वजीर के आदमियों को लेकर कुस्तुनतुनिया के लिए चल पड़ा.

उसके चले जाने पर वहां के लोग तरह-तरह से उसकी चर्चाएं करने लगे. सालेम एक घुमंतू कामगार था. अपने घोड़े पर लादकर वह इंजीनियर के लिए विजीग्राद से जरूरी सामान लाया करता और इंजीनियर के झोपड़े में जाने वाला तो अकेला वही था.

––सच, औरों की तरह वह नहीं है. जाड़े में दस-पंद्रह दिनों तक जब काम बंद हो जाता, तो मेरी मुलाकात तो उससे न होती, लेकिन जब भी मैं वापस आता, उसकी सभी चीजें वैसी ही अस्त-व्यस्त पड़ी रहतीं, ठीक उसी तरह, जैसी मैं उन्हें छोड़कर गया होता. लड़की के ठंडे झोपड़े में वह चमड़े की बंदर टोपी में कंधे तक ढका बैठा रहता था. ठंड से सिकुड़े-सिमटे, नीले पड़े हाथों में हरकत होती रहती. वह पत्थर काटता रहता, और झुककर कुछ-कुछ नोट किया करता. मैंने जब भी देखा, उसे यही करता पाया. और भाई, डेढ़ साल तक उसने जैसी मेहनत की, उसका अंदाज करना भी मुश्किल है. और काम खत्म होते ही वह कुस्तुनतुनिया के लिए चल पड़ा. हम लोग जब नाव पर उसे उस पार छोड़ने गये, तो घोड़े पर सवार होकर वह जो चला, तो उसने लौट कर न तो एक बार हमारी ओर देखा और न पुल की ओर ही.

नवाले इंजीनियर के बारे में एक-एक बात पूछा करते और उसकी एक-एक बात सुनकर अचरज में डूब जाते. उन्हें अफसोस इस बात का होता कि विजीग्राद की सड़कों पर जब वह चला करता, तो उन्होंने उसे ज्यादा गौर से क्यों नहीं देखा.

इस बीच इंजीनियर अपनी यात्रा पर ही था और कुस्तुनतुनिया से दो पड़ाव पहले उसे प्लेग हो गया. बुखार की हालत में जब वह वहां पहुंचा, तो घोड़े पर बैठे रहना भी उसके लिए दूभर हो रहा था. वहां सबसे पहले वह इतालवी मिशन के एक अस्पताल में पहुंचा और दूसरे दिन ठीक उसी समय एक इसाई साधु की बांहों में उसने दम तोड़ दिया.

★ ★

दूसरे दिन सुबह तक वजीर को इंजीनियर की मृत्यु का समाचार मालूम हो गया. पुल के नक्शों के साथ शेष भुगतान के बिल वजीर के सामने पेश किये गये. इंजीनियर को अपने वेतन का सिर्फ एक तिहाई ही मिला था. उसने न तो कोई वसीयत ही की थी और न कोई उसका वारिस ही था. कुछ देर तो वजीर सोचता रहा. काफी-कुछ सोच कर उसने इंजीनियर के शेष वेतन का एक तिहाई उस अस्पताल को देने तथा बाकी दो तिहाई से गरीबों को खिलाने-पिलाने का आदेश दे दिया.

ढलती गर्मी की एक सुबह जब वह ऐसा आदेश दे ही रहा था, तो कुस्तुनतुनिया के एक नौजवान मुल्ला की एक दरख्वास्त वजीर के सामने आयी. उसने दरख्वास्त की थी कि उसने सुना है, वजीर ने बोस्निया में एक पुल बनाया है. उसकी मंशा थी कि उस पुल पर कुछ लिखा दिया जाय, जैसा कि प्रायः हुआ करता है. लोगों को यह मालूम तो हो कि इसे किसने बनवाया और कब बनवाया. हर बार की तरह वजीर की खिदमत में वह फिर हाजिर है. अपनी दरख्वास्त के साथ उसने पुल पर लिखा जाने वाला मजमून भी नत्थी कर रखा था. उसने बड़े परिश्रम से उसे तैयार किया था और वजीर से उसे स्वीकार करने की प्रार्थना की थी. एक अच्छे, खास किस्म के कागज पर लाल-सुनहले अक्षरों में कुछ-कुछ ऐसे भाव की पांच पंक्तियां थीं––

'उत्तम शासन और शालीन योग्यता ने आसपास में जब हाथ मिलाये, तो इस सुंदर पुल का जन्म हुआ. इस लोक में, और परलोक में भी, यह पुल लोगों को खुशियां लायेगा. यह यूसूफ का गौरव है.'

मजमून के नीचे एक अंडाकार सील थी, जिसके बड़े हिस्से में लिखा था––"युसुफ इब्राहीम : खुदा का असली बंदा." और सील के छोटे हिस्से में वजीर का आदर्श वाक्य था––"मौन में ही सुरक्षा है."

वजीर बहुत देर तक दरख्वास्त को लिये बैठा रहा. उसका एक हाथ कविता की इन पंक्तियों पर था और दूसरा इंजीनियर के बकाया वेतन वाले बिल और पुल के नक्शों पर. काफी देर तक वह इस दरख्वास्त और दूसरे कागजात पर सोचता रहा.

इस गर्मी में वजीर की बदहाली और कैद को दो साल हो गये थे. हुकूमत में अपनी वापसी के बाद शुरू-शुरू में वजीर को अपने-आप में ऐसी कोई बदलाहट नजर नहीं आयी. वह अपनी अपनी सबसे बढ़िया उमर में था, जब आदमी अपनी जिंदगी की पूरी अहमियत महसूस करता है. अपने सारे दुश्मनों को उसने मात दे दी थी और अब वह पहले से कहीं ज्यादा ताकतवर हो गया था. अभी हाल की बदहाली में गहरी खाइयों का अंधेरा, और अब हुकूमत की ये ऊंचाइयां—— सब कुछ उसके सामने एकदम साफ था. लेकिन वक्त की रफ्तार के साथ उसे अपनी कैद के दिन भूलने के बजाय और-और याद आते. वही ख्याल हमेशा उसका पीछा करते. और जब-कभी ऐसे ख्यालों को जबरन दबाने में वह कामयाब हो भी जाता, लेकिन रात के सपनों का क्या करता?

अपने आसपास की चीजों को लेकर वजीर साहब अब बहुत देर-देर तक सोचा करता. जिन छोटी-छोटी बातों की तरफ उसने पहले कभी गौर भी नहीं किया था, अब वही उसे बात-बात में चिड़चिड़ा बना देतीं. उसने हुक्म दे दिया, उसके महल की सभी मखमली चीजों को बदलकर चिकना-चमकीला और मुलायम सूती कपड़ा लगा दिया जाय, जिससे हाथों की छुवन से उनमें कोई सरसराहट न हो. पर उसके कमरे से ऐसे सारे फर्नीचर और हथियार हटा दिये गये जिनमें सीपियों का काम था.

अब तो हर बात में उसे गोपनीयता और गहरे अविश्वास की जरूरत महसूस होने लगी. एक बात यह उसके दिमाग में जाने कैसे बहुत गहरे बैठ गयी कि आदमी का हर काम उसका एक-एक शब्द, उसे मुसीबत में डाल सकता है. और जो कुछ वह देखता, सुनता, कहता या सोचता, उन सबसे यह आशंका जुड़ जाती. विजयी वजीर को अब जीवन का भय व्यापने लगा था. और इस तरह अनजाने ही वह मृत्यु के उस चरण में आ पहुंचा, जहां मनुष्य को ठेठ वस्तुएं नहीं, उनकी छायाएं घेरती हैं. अनिष्ट की आशंका उसे धीरे-धीरे कुतरती गयी और वह अंदर ही अंदर टूटता रहा. अपने मन की बात वह किससे कहता? और अंदर ही अंदर उसकी टूट जब पूरी हो गयी, तो उसकी हर बात से यह जाहिर भी होने लगा. लेकिन कोई उसे समझाता भी कैसे? लोग यही कहते——मौत, सिर्फ मौत!

★ ★

आज सुबह से वजीर फिर बहुत बेहाल था. रात भर उसे नींद नहीं आयी. लेकिन मस्तिष्क बहुत शांत और संतुलित था. आंखों की पलकें बहुत भारी थीं. सुबह की ताजगी में उसका चेहरा बर्फ की तरह ठंडा था. उसे उस विदेशी इंजीनियर का ख्याल आता रहा, जो अभी-अभी चल बसा था. वजीर को उन गरीबों का भी ख्याल आया जिन्हें इंजीनियर की बकाया रकम से खाना मिलेगा. उसे बोस्निया के दूर, उदास पहाड़ी इलाके याद आये. (बोस्निया का ख्याल उसे हमेशा ही उदासी से भर जाता!) इस्लाम की रोशनी भी वहां का अंधेरा दूर नहीं कर पायी थीं. वहां जीवन कितना कृपण और कठोर था, तकलीफों में घिसटता यों ही बीत जाता. ऊंचे ख्यालों से उसका कभी कोई वास्ता नहीं होता. और अल्लाह की दुनियां में ऐसे कितने इलाके थे? कितनी दुनियांएं थीं जिन पर कोई पुल न था? कितनी जगहों में पीने का पानी न था?

उसकी आंखों के सामने तरह-तरह की जरूरतों और तकलीफों और भय का एक पूरा संसार आ गया.

वजीर के ग्रीष्म-निवास की छोटी-छोटी हरी खपरैलें धूप में चमक रही थीं. वजीर ने मुल्ला के मजमून को देखा, आहिस्ते से अपना हाथ उठाया, और पूरे मजमून को दो बार काट दिया. एक क्षण के लिए वह रुका, फिर सील के जिस हिस्से में उसका नाम था, उसे भी काट दिया. सिर्फ वह वाक्य ही अब रह गया——'मौन में ही सुरक्षा है.' एक क्षण के लिए वह फिर रुका, सिर्फ वह वाक्य उसके सामने था. उसने फिर अपना हाथ उठाया और कलम को जोर से दबाते हुए उसने वह आदर्श वाक्य भी काट दिया.

इस तरह वह पुल बिना किसी नाम के ही रहा आया. उसमें नाम का कोई पत्थर वगैरह कभी नहीं लगा.

दूर, बोस्निया की धूप में वह पुल चमकता रहता और चांद की रोशनी में जगमगाया करता, आदमियों और जानवरों को एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुंचाया करता. किसी भी नये निर्माण के आसपास मिट्टी-मलबे का जो ढेर हुआ करता है, वह भी धीरे-धीरे बराबर होता गया. सांचे की लकड़ियां और बल्लियां कुछ तो लोग उठा ले गये, और कुछ नदी की बाढ़ में बह गयी. पत्थर काटने की जगह के नाम-निशान बरसात में जाते रहे. लेकिन उस इलाके से न तो पुल का कोई मेल बैठ पाया, और न पुल से उस इलाके का ही. दूसरे किनारे से देखने पर पुल का सफेद, बुलंद मेहराब हमेशा अकेला, टटका-सा मालूम होता, और हर आने वाले को किसी एकदम नये ख्याल की तरह अचरज में डाल देता.

यह कहानी बताने वाला पहला आदमी था जिसे यह पता लगाने की इच्छा हुई कि यह पुल यहां बना, तो कैसे बना! यह एक शाम की बात थी. थका-हारा वह पहाड़ों से वापस आया और पुल की दीवाल से टिककर बैठ गया. गर्मी के दिन थे. दिन के समय बेहद गर्मी होती, और रातें ठंडी हुआ करतीं. पुल के पत्थर से जब उसने अपनी पीठ टिकायी, तो दिन की गर्मी से वह अब भी बहुत गर्म था. पसीने से उसका सारा बदन चिपचिपा रहा था. बगल में बहती ड्रीना से टंडी हवा का एक झोंका जो आया, तो ऐसे में उसे पुल के गर्म पत्थर का स्पर्श बड़ा सुखद मालूम हुआ. दोनों को एक दूसरे की बात समझते देर न लगी. और तभी उसने निश्चय किया, वह इस पुल की कहानी लिखेगा. □□□

(अनुवाद : अशोक कुमार झा)

बैरक नंबर पांच

• मीरोस्लाव क्र्लेझा

प्रभु-सत्ता सपन्न माल्टा-संघ के सर्वोच्च सेनापति काउंट मावसीमिलियन एक्सिलरोड को उसके चौदहवें वर्ष में ही बड़े-बड़े समारोह के साथ संत जान के शिवैलियर द जस्टिस की उपाधि (चांदी के क्रास सहित) मिल गयी थी. उच्च माल्टा-संघ के उच्च पदाधिकारी के योग्य होने के लिए सोलह कुलीन और शूरवीर पूर्वजों का वंशज होना आवश्यक था; उसके स्थान पर काउंट मावर्सीमिलियन एक्सिलरोड ने अपने पिताश्री और उच्च कुलीन राजकुमारी अपनी मातुश्री के पूर्वजों में अट्ठाईस परों के टोप और हैल्मेट गिनाये थे, जिनके नीचे नीलाभ रक्त प्रवाहित हुआ था; जब माल्टा-संघ के बड़े महंत ने स्वर्णिम मुहरों से युक्त ये बहुमूल्य दस्तावेज मंत्रालय को उच्च और सबसे महत्वपूर्ण "अनुमति" के लिए भेजे, तो यह एक बड़ी घटना थी जैसी कि इस भूगोल पर कभी-कभार ही घटा करती है.

काउंट मावसीमिलियन एक्सिलरोड का जीवन पर्यंत केवल एक ही ध्येय था, कि अपनी उच्च माल्टा-सेना के लिए—धर्म के लिए—नंगी तलवार खींच ले, अपने भारी सिलवटों वाले काले लबादे को ओढ़ ले और दुस्साहसी मस्तकों को मृत्यु के मुख में धकेल दे. जैसे कि जब वह पहली बार येरूशलम गया तो सांता मारिया लातीना के संगमरमर पर दुखी हो कर बहुत रोया कि उसे यह सौभाग्य प्रदान नहीं किया गया कि यहां, आठ सौ वर्ष पहले, महान गौटफ्रीड बुयौन्स्की के साथ अपनी कुलीन अस्थियां विसर्जित कर पाता, यदि वह नहीं तो फिर कम-से कम यह कि लगभग तीन सौ वर्ष बाद जन्म लेता जब कि रोदोस और माल्टा पर तोपें गरजी थीं. लेकिन नहीं! वह इस गोले पर ऐसे कायर और मूर्ख काल में गिरा, जब कि कुलीन वियर द लिं'ल—आदाम एक प्रकार से समाजवादी आंदोलन-कर्त्ता बन गये हैं और पहली मई को गरीब लोगों को विद्रोह के लिए उकसाते हैं, और जब कि सैनिक-अभ्यास सबसे बड़ी घटना होती है, जिसमें अंधेरे में गोली दागते हैं, और वह भी डरते-डरते , क्योंकि कोई वित्त मंत्री या कोई 'मूर्ख' संसद चीखती रहती है कि शस्त्रास्त्र पर बहुत व्यय होता है. थू भाप के इंजनों का यह जड़मति काल, जिसमें सब कुछ पटरियों से और तथाकथित सामाजिक, अर्थात् समाजवादी जनतंत्रता से बंधा हुआ है, और जिसमें माल्टा - सेना के कुलीन वीर नागरिक-टोप लगाये होटलों में बैठते हैं, और जब द्वंद्वयुद्धों पर वैधानिक प्रतिबंध है.

काउंट मावसीमिलियन एक्सिलरोड पूरे तिरेसठ वर्ष तक यों ही व्यर्थ दुखी होता रहा, तब एक दिन सो कर उठा तो मानो स्वप्न देख रहा हो: नौकर ने उच्च संघ के महंत का संदेश ला कर दिया कि लामबंदी की घोषणा कर दी गयी है, और प्रभु-सत्ता संपन्न माल्टा-संघ, अपनी उच्च परंपरा के अनुसार, महान नारे "धर्म के लिए' के नाम पर झंडा उठायेगा और कहीं विदेश में जा कर सम्राट की सेना की पिछली पंक्तियों मे डेरे लगायेगा और चिकित्सा सेवा का संगठन करेगा. इस प्रकार काउंट मावसीमिलियन एक्सिलरोड महान माल्टा-चिकित्सालय का संचालक बन गया. अस्पताल बयालीस बड़ी-बड़ी लकड़ी की बैरकों का बना था, अपना बिजलीघर, रेड क्रास की परिचारिकाएं समूची कंपनी इत्यादि, इत्यादि. सेनाएं पूर्व में सौ किलोमीटर दूर मर रही थीं, फिर पश्चिम में आ गयीं दो सौ किलोमीटर की दूरी पर, बाद में फिर पूर्व, लड़ाई के मौसम के अनुसार; यह थी लड़ाई, और काउंट एक्सिलरोड अपने माल्टा-सर्कस को ले कर पूरे दो साल पूर्व से पश्चिम तक, स्तानिस्लावोव से क्राकोव तक, फिर उलटा पूर्व तक, घूमता रहा; और अब उन्नीस सौ सोलह की अगस्त है, सूरज की गरमी बयालीस डिग्री सेंटीग्रेड है, और स्थिति चिंताजनक और गंभीर है.

अस्पताल भरा है डेढ़ हजार बीमार खोपड़ियों से और हालात ऐसे नजर आते हैं कि रूस दायें और बायें रेल की लाइन काट देगा, और श्रीमान् काउंट, माल्टा के महान शिल्पी, दो सप्ताह बाद मास्को में होंगे. दोपहर के लगभग संदेश आया कि रूस ने वास्तव में उत्तर में दो स्टशनों के बीच लाइन उड़ा दी है, लेकिन अस्पताल अभी वहीं रहे क्योंकि प्रत्याक्रमण की तैयारी हो रही है. रूस ने उत्तर में लाइन काट दी है, उसका मतलब हुआ कि उस लाइन का सारा परिवहन दक्षिण को जाने लगा है, फलस्वरूप टक्कर स्वाभाविक ही है (बहत्तर मृत और कितने ही घायल), साथ ही यह भी स्वाभाविक ही है कि सभी गाड़ियां बिना खान-पान के सामान के रह गयीं, सो घायल लोग पांच दिन से पानी के लिए चिल्ला रहे थे और उन्हें खाने के लिए (ओह, हंसिये मत, ये सच है!) पेट के कीड़ों से बचाने वाली मीठी गोलियां दी जा रही थीं और उस लाइन के सभी स्टेशनों पर मार-काट हुई, और काउंट एक्सिलरोड को अपने पहले से ही भरे अस्पताल में पांच सौ मरीज और लेने पड़े. वह दिन उस गर्मी का सबसे गरम दिन था; सूरज ने औपचारिक रूप से अपनी आग से धरती को सेक-सेक कर भुरभुरा बना दिया था. ऐसा लगता था मानो किसीने सफेद, लकड़ी के बैरक पर जलता हुआ भट्टी का पत्थर फेंक दिया था और सब ओर आग लग गयी थी.

* *

पांच सौ नये घायलों में, जिन्हें काउंट एक्सिलरोड को अपना अस्पताल भरा होने पर भी लेना पड़ा था, एक विद्यार्थी वीदोविच भी था, उसके फेफड़ों में गोलियां लगी थीं सो खून बह रहा था. सत्य ही है कि मनुष्य कहीं भी इतना लथपथ नहीं होता जितना युद्धस्थल

पर, लेकिन जब वींदोविच को, अगस्त मास में जानवरों के डिब्बे में भर कर लाये गये गंदे मरीजों की भांति, बड़े भाप के स्नानघर में ले गये, जो इतना गंदा था, तो उसका जी और भी खराब हुआ होगा.

कंक्रीट के उस कुंड में बदबूदार पीला पानी शोर मचा रहा था, भूरे रंग का साबुन झाग दे रहा था और खून में रंगी पट्टियां और रूई के फाहे तैर रहे थे. मवाद के फाहे. पानी में भाप उठ रहीं थीं, और कीचड़ और मिट्टी की बदबू आ रही थी; फव्वारों में से भाप बरस रही थी, और गाढ़ी भाप में काली छायाएं दिखाई दे रही थीं जो धुंध में इधर-उधर भाग रही थीं, और सभी चेहरे सूजे हुए और खून से लथपथ; कहीं पर डायनामाइट की धमक; अगस्त की दोपहर. शावर के नीचे कांच की मेज पर एक आदमी मरणासन्न था, वहां दूसरा चीख रहा था; अदृश्य कीड़ों की भांति भनभनाते पंखे. और खाकी रूमाल बांध रूसी बोरों की भांति नये घायल पदार्थ ला रहे थे, और परिचारिकाएं और घायल और डाक्टर, सभी चिल्ला रहे थे., सभी इधर-उधर भाग रहे थे, सभी के दिमाग चकरा रहे थे.

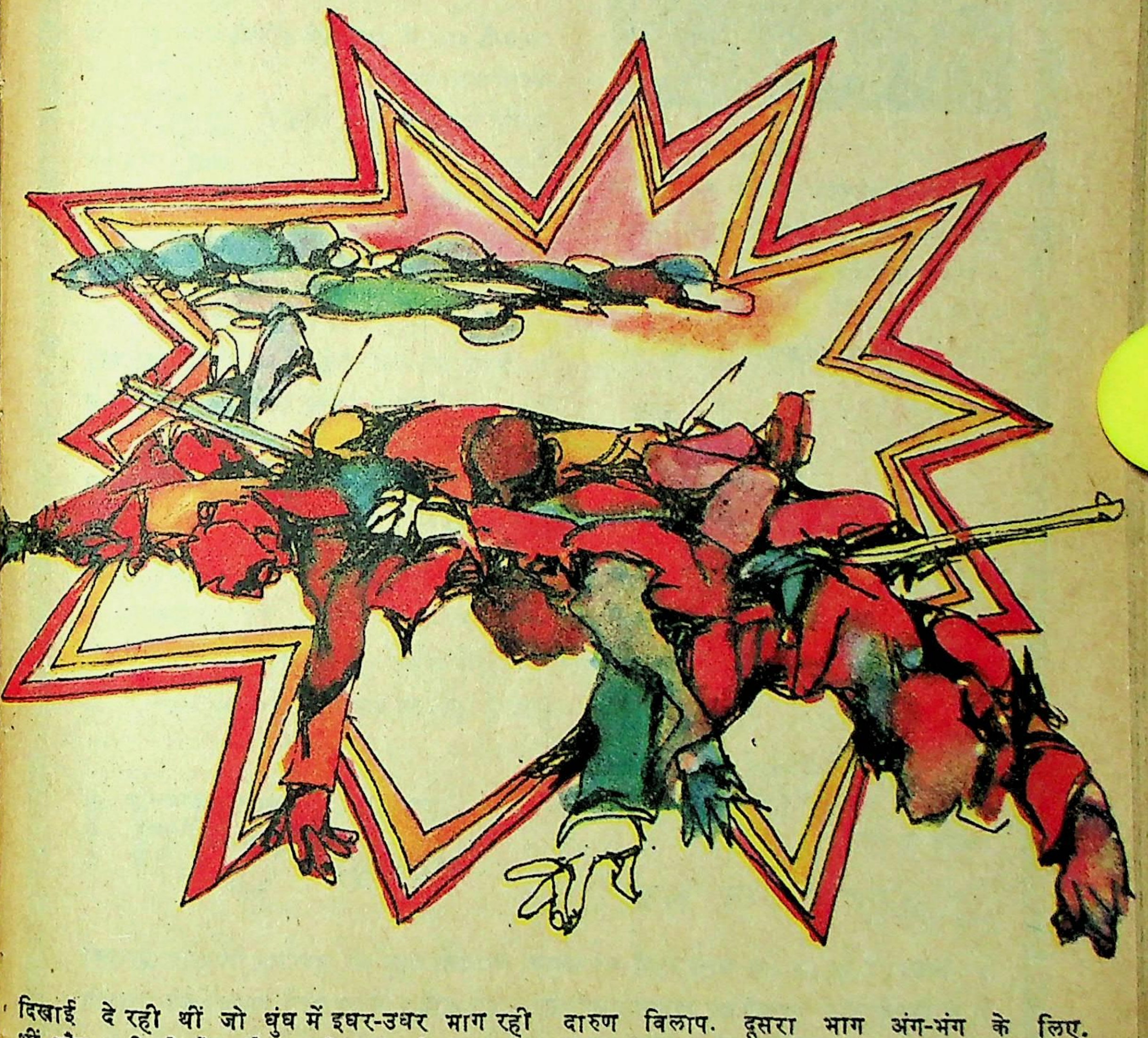

कीचड़ और खून के उस नर्क में नहला कर बैरक पांच-ब में ले गये जो किसी सामान ढोने वाली नाव के पेट-सी लग रही थी. निर्दयी प्रोटेस्टेंट दृष्टिकोण से नापतोल कर वहां बासठ बिस्तर लगाये गये थे, हरेक पर एक शरीर, और हर शरीर के ऊपर एक बोर्ड जिससे पता लग सके कि उस शरीर की क्या हालत है. नाव के पेट को तीन भागों में बांटा हुआ है. पहले में टूटी हुई हड्डियां खपच्चियों-सी बाहर निकली हुई. लोग दिन में चुपचाप पड़े रहते, केवल रात को सुनाई पड़ता उनका दारुण विलाप. दूसरा भाग अंग-भंग के लिए. (हाथ या पर, या हाथ और घावों को बांधा नहीं जाता बल्कि वे जालीदार कपड़े के नीचे सूखते रहते हैं, सुखाने के लिए रखे गये मांस की भांति.) तीसरा ग्रुप, बांये प्रवेश द्वार तक, "रंगरूटों" का. यह नयी भर्ती केवल पांच-ब से आगे जाने के लिए की जाती है. वह "रंगरूट" स्नानघर से मृत्युशाला को जाता है. और जब किसी को तीसरे ग्रुप में रखा जाता है तो सारी बैरक पांच-ब जान जाती है कि मामला क्या है, मृत्यु का नया

कथा-साहित्य के प्रेमियों के लिए राजकमल की अपूर्व भेंट

हिन्दी के अद्वितीय कथाकार
भगवतीचरण वर्मा की
कहानी-कला का अपूर्व निदर्शन

मोर्चाबन्दी

भगवतीचरण वर्मा

ये कहानियाँ आपको सात्विक मनोरंजन में, हँसते हुए सोचने में और जीवन के उलझाव में निहित नयी चेतना ढूँढ़ने में आपकी मदद करेंगी।

मूल्य [सजिल्द संस्करण] : रु० २०/-

भगवती बाबू की महत्त्वपूर्ण कृतियों के पेपरबैक संस्करण

सबहिं नचावत राम गोसाईं	~~२०.००~~	१५.००
रेखा	~~३५.००~~	१५.००
सामर्थ्य और सीमा	~~१५.००~~	७.५०
वह फिर नहीं आयी	~~६.५०~~	४.००

हिन्दी की नयी पीढ़ी के बहुचर्चित हस्ताक्षर
महेन्द्र भल्ला की सशक्त लेखनी से
रंग-भेद के जलते हुए सवाल पर
हिन्दी का पहला उपन्यास

दूसरी तरफ़

महेन्द्र भल्ला

इनसान से इनसान की संज्ञा छीनकर उसे 'रंगीन' के खाने में बैठा देने की जिस क्रूर मनोवृत्ति से **महेन्द्र भल्ला** इंगलैण्ड में निरन्तर चार साल तक जूझते रहे, उसका निस्संग चित्रण करनेवाला अत्यन्त मर्मस्पर्शी उपन्यास !

मूल्य [सजिल्द संस्करण] : रु० २५/-

उर्दू के महान उपन्यासकार **मिर्ज़ा हादी रुस्वा** का लखनऊ की एक वेश्या के जीवन पर आधारित प्रख्यात उपन्यास

उमराव जान 'अदा'

साथ में बिलकुल **मुफ्त !**

३१ दिसम्बर १९७५ तक मोर्चाबन्दी का अथवा भगवती बाबू की उपरोक्त पेपरबैक पुस्तकों में से किन्हीं तीन पुस्तकों का अथवा दूसरी तरफ का आदेश भेजने वाले पाठकों को उमराव जान 'अदा' का सुमुद्रित संस्करण उपहारस्वरूप !

आज ही आदेश भेजकर अपना उपहार सुरक्षित करायें

राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०
८ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-११०००६

उम्मीदवार, रंगरूट!

जब घायल वीदोविच को बैरक में ला कर नं. आठ पर लिटाया गया, तो ग्रुप नं. एक (टूटी हड्डी) के एक लंबे-तड़ंगे हंगेरी ने तिरस्कार की भावना से थूका और उंगलियों से हवा में क्रॉस बनाया :

—नो हात, इस्तैनैम (फिर वही, हे भगवान) इसे सीधा ही मृत्युशाला ले जा सकते थे.

—नया नं. आठ आया है, बेटो !

—नं. आठ! नं. आठ!

आवाज सारी बैरक में फैल गयी और बहुत से सिर उठ आये उस नये नं. आठ को देखने के लिए. सच है! जिंदगी ने उन सबकी जड़ें उखाड़ दी हैं, खून निचोड़ लिया है! परंतु, फिर भी, यदि किसी के पैर नहीं है, तो भी वह नं. आठ तो नहीं! वह नं. इक्कीस है! या फिर नं. पंद्रह!

—मेरे हाथ नहीं! हां! हड्डी भी मेरी टूट गयी है! हां! लेकिन जी रहा हूं! हे भगवान! जिये जा रहा हूं! यदि कल रूसी एक काला ताबूत ला कर उस में नये नं. आठ को ठूंस दें, तो भी मैं आराम से अपना पाइप भरूंगा और मक्खियों को देखता रहूंगा कि वे कहां चिपकती हैं जिलैटिन पर, और दूध भी पीता रहूंगा! यह भी तो आखिर जीवन है, दुर्भाग्य नं. आठ तो नहीं!

आज चार दिन से नं. आठ बराबर बदल रहा है! अभी सुबह ही रूसी बंदी अपने एक रूसी साथी को ले गये हैं. उसकी आंतें चिथड़े हो गयी थीं, और दो दिन और दो रात चिल्लाता रहा था. रूसी से पहले यहां पर कोई भला-सा वियेना का नागरिक था, और अब वीदोविच आ गया है.

नं. सात पर, वीदोविच की बायीं ओर, एक मंगोल पड़ा है, साइबेरिया का, सिर में गोली लगी है, तीन दिन से तड़प रहा है. कुछ चिल्लाता भी है, कुछ तीखे स्वर, लेकिन उन्हें कोई समझता नहीं; सब सोचते हैं कि वह खत्म हो गया, पर फिर से उछल पड़ता है और गिर जाता है; सिर पर बंधी पट्टियों से जलते खून की लाल धारा बहने लगती है. नौ नंबर पर एक युवा स्लोवाक मरणासन्न है, गले की नली में गोली लगी है. उसकी सांस की नली काट दी गयी है और कांच की नली से सांस लेता है, नली में कफ के झागों, मवाद और लिम्फ की गर्गलाहट स्पष्ट सुनाई देती है.

और बैरक पांच-ब में शर्तें लगने लगीं वीदोविच के सिर के लिए, कि सुबह नहीं पकड़ेगा.

—जानता हूं हमारे डाक्टर को. जब उसे तुरंत ही छुरी के नीचे नहीं ले गये, तो इसका मतलब आमेन ही है!

—झूठ! यदि ऐसा होता तो सुबह के लिए छोड़ देता उसे! अभी लड़का ही है!

—वह वियेना का 'पहाड़ी' चावल खाता था, हंसता था! और हमें फौरन छुरी के नीचे भेज दिया गया था.

—तो फिर, क्या? एक-एक काली बोतल की पक्की? सुबह तक?

—पक्की! काली बोतल की!

★ ★

और यों शुरू हुई सितंबर की रात.

बड़े-बड़े, चमकीले तारे जल उठे, और गहरे नीले आकाश ने क्रिस्टल के प्याले की तरह एक्सिलरोड के अस्पताल सहित सारी घाटी को ढक लिया, हजारों टन सफेद गैसें बैरक पांच-ब पर छा गयीं, कहीं भी हवा का झोंका नहीं कि क्षण भर को भी कंपा जाये. मक्खियां सो चुकी हैं और बैरक में अब भनभनाहट नहीं है; मनुष्य के मांस से भरी हुई इस विकृत नाव पर कहीं बीच में एक हरी बत्ती जल रही है, और सब कुछ इस आधे अंधेरे में तैर रहा है. अंधेरा, अंधेरा, हलका अंधेरा, और दर्द, अकथनीय दर्द, जो दिन में छिप गया था, अब हर पोर में सांस ले रहा है और हृदय की हर धड़कन से फूट रहा है. हर आदमी दांत भींच रहा है, पसीने में ठिठुर रहा है, झाग निकल रहे हैं, होठों और जीभ को काट रहा है, और तभी निचला जबड़ा कहीं भिच जाता है, चेहरा अत्याचारी की तरह ऐंठने लगता है, और पेट के तले से स्वर चीखता है.

—मामा मिया, मामा मिया (मां मेरी)—कहीं गहराई से कोई इतालवी भाषा में चीखा.

—भगवान, हे भगवान, हे भगवान!—आंतों में गोली वाला रूसी दहाड़ा; फिर से शांति, हरी शांति, धुंधलका.

बहुत खून बहने से निचुड़ा हुआ वीदोविच दोपहर के बाद सारे समय सोता रहा था, अब जग आया था, पर उसे पता नहीं कि वह कहां है, क्या हुआ था और कैसे वह यहां आ पहुंचा. आदमियों के चीत्कारों की आवाजें सुनाई दे रही हैं, उसके घावों की लपकन शांत कहीं पड़ी है, और जोश मानो बुझ गया है. कमजोर वीदोविच को मुश्किल से एक ठंडी-सी जगह मिली तकिये पर. जलती पलकें फिर से चिपक गयीं और उन पर बहरी और भारी शांति पड़ गयी, प्यास भी कहीं उड़ गयी. और बैरक उस आरामदेह काले लबादे में खोने लगती कि तभी सारी बैरक को मूर्तिमान दर्द की तड़पती पुकार भेद जाती, कि उस आवाज से अचानक ही सारी इमारत की नींद टूट जाती, तकिये के किसी ठंडे किनारे पर इतनी कठिनाई और श्रम से छिनी गयी नींद, और सब कुछ एक अकेले ही क्षण में टूट जाता.

और सारी रात बार-बार यही होता रहता, हर नये सिरे से.

अवश्य ही रात काफी जा चुकी है क्योंकि हरे पर्दों पर साफ रोशनी पड़ने लगी है. बाहर संतरी चिल्ला रहे हैं; सुतली पर चढ़ती बेल सुबह की हवा से जैसे कांप रही हो. रोशनियों पर पतंगे मंडराने लगे हैं और पंख फड़फड़ा रहे हैं.

—कितने बजे हैं?

समय नहीं है! कुछ भी नहीं है! केवल दर्द!

—मामा मिया! मामा मिया! हे भगवान! हे भगवान!

—उफ, एक मिनट के लिए ही नींद आ जाये! एक

सैकिंड के लिए ही!

—हे भगवान!

दूसरे दिन सुबह हालात में गंभीर परिवर्तन होने लगे. रूसी सुबह होने से पहले ही दक्षिण में घुस आये और सम्राट को और राजा की अंतिम रेल लाइन को भी काट दिया, फलस्वरूप रेलगाड़ियां वापस आने लगीं. मशीन चालकों को आदेश मिला हुआ था सो इंजन खिलौनों की भांति हवा में उड़ने लगे. चारों ओर बरबादी नजर आ रही थी. तोपखाना, घायल लोग, शस्त्रागार, कालोंच लगी चिमनियों वाली बड़ी-बड़ी भट्टियां डिवीजनों की, पुल लगाने का सामान, घोड़े, बाढ़; फटते इंजनों के कर्कश धमाके. सारी सुबह सेनाएं मार्च करती रहीं; माल्टा-अस्पताल की अ, स और द बैरकों के मरीज (हलकी चोटों वाले, जो स्ट्रेचरों पर नहीं लाये जाते बल्कि स्वयं ही घिसटते हैं) कांटेदार तारों से झांक-झांक कर इस भयंकर दृश्य को देख कर खुश हो रहे थे, जहां सेनाएं पीछे हट रही थीं और जहां लोग धूप से झुलस-झुलस कर मरेंगे, जब कि वे फिर भी कुछ-न-कुछ अच्छे ही हैं. यहां रेडक्रॉस के नीचे खड़े हैं, और उन्हें कहीं नहीं भगाया जायेगा; यदि रूसी आ गये तो उस दशा में भी उन्हें कहीं दूर ले जाया जायेगा, रूसी अस्पतालों और शिविरों में, और वहां लड़ाई नहीं होगी, और वे जीवित बच जायेंगे और इस प्रकार लड़ाई, संभवतः, उनके लिए तो आज सुबह ही समाप्त हो जायेगी. और, लड़ाई जितनी जल्दी हो सके समाप्त हो जाये, यही एकमात्र विचार है उनके मनों में.

काउंट माक्सीमिलियन एक्सिलरोड,, माल्टा-अस्पताल के प्रमुख, ने कुलीन स्त्रियों (दो-तीन काउंटेसों और एक जनरल की पत्नी को) कारों में भेज दिया और स्वयं वहीं खतरे में अंत तक अपने माल्टा के झंडे के नीचे बने रहने का निश्चय किया. मृत्युशाला में घंटा बज रहा था. काउंट एक्सिलरोड अपनी माल्टा-क्रॉस लगी काली वरदी में घूम रहा था, हर सुबह की भांति बैरकों का चक्कर लगा रहा था और नंगी पीली लाशों को देख रहा था जिन्हें रूसी ताबूतों में ले जा रहे थे; रूसी लाशों को ले जाते हुए कांउट का अभिवादन करते और टोपी उतार कर उसके सामने जमीन तक झुकते.

—कौन कह सकता था कि पिछले बारह घंटों में सारे अस्पताल में इतनी ढील-ढाल आ जायेगी.

—हां, सच है! कल का दिन असाधारण रूप से व्यग्र था. दुष्ट सूरज ने सबके दिमागों को गरम कर दिया था, और डराने वाली खबरें, गुप्त-संकेत, उड़ाये गये इंजन, इन सब ने 'मूड' पर असर किया था. लेकिन आज, जब कि टुकड़ियां बाहर निकल रही हैं, और जब सब कुछ शतरंज के बोर्ड जैसा लगता है देखने में, कि मुहरे कैसे गिर रहे हैं, आज यह सब पहले से अधिक स्पष्ट है और अधिक विनाशकारी लग रहा है. कैसे हिम्मत पड़ी उस जमादार की कि कल, ऐसे वक्त में, महामहिम के सामने कोन्याक पिये? उसने देख लिया था कि काउंट आ रहे हैं, फिर भी आराम से पीता रहा, मानो उसे इस सब से कोई मतलब न हो. और ये सब मरीज भी कैसे दांत निकाल रहे हैं, मानो उपहास कर रहे हों? और ये रूसी क्या गा रहे हैं? (ये रूसी बंदी अपनी-अपनी बैरकों में काम करते-करते गा रहे हैं क्योंकि आज धार्मिक त्यौहार है.) अच्छा, ये लो! आज कोई भी नहीं नाच रहा, हालांकि अस्पताल के आदेश में इस पर विशेष जोर दिया गया है! कहीं भी कोई भी नहीं है! और वह भी इस भीड़-भाड़ में अकेला पड़ गया है!

★ ★

काउंट अकेला खड़ा है छाया-सा और बुरी तरह घबराया हुआ है. उसे अपने अंदर शक्ति भी नहीं महसूस हो रही थी कि वस्तुओं को उनके ठिकानों पर लगवा दे, दरअसल उसे पता भी नहीं कि क्या करे. प्रधान कार्यालय से संबंध नहीं स्थापित कर सकता क्योंकि उनकी स्थिति का पता नहीं, और डिवीजन के मुख्य अधिकारी अभी कुछ मिनट पहले सामने से गुजरे हैं गाड़ियों में, बिना यहां रुके! काउंट ने आखिर अपने सभी विभागाध्यक्षों की बैठक की, कि आगे क्या करना है, इस बात का निश्चय किया जाये.

कुछ लोग इस पक्ष में थे कि पचास प्रतिशत कर्मचारी रह जायें और बाकी पचास प्रतिशत चले जायें; दूसरे लोग इसके विरुद्ध थे, और तीसरे न पहले के लिए न दूसरे के लिए बल्कि किसी तीसरे के लिए, और यह खींचातानी इतनी देर तक चलती रही कि निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकला, 'अनिश्चित काल तक'.

यह 'अनिश्चित काल' उधर शाम के पांच बजे से ही लागू हो गया, जब यह स्पष्ट हो गया कि अस्पताल संभवतः इसी रात दो लाइनों के बीच आ जायेगा; क्योंकि ऐसा लग रहा था कि रूसी युद्ध क्षेत्र के इस भाग में हमारी टुकड़ियों से संपर्क नहीं रख रहे. और यदि यह बड़े ढंग का पूर्वनियोजित प्रत्याक्रमण, जिसकी घोषणा अड़तालीस घंटे पूर्व की जा चुकी है, सफल नहीं हुआ (जो कि बहुत संभव है), तो कल इस वक्त संभवतः किसी रूसी डिवीजन का सैनिटरी अधिकारी माल्टा-अस्पताल के बारे में अपने निर्णय सुना रहा होगा.

यों अंततः फैसला कर ही लिया गया कि काउंट एक्सिलरोड सर्जनों और बहुमूल्य उपकरणों तथा पचास प्रतिशत कर्मचारियों के साथ एक फार्म पर रात बितायेंगे, यहां से कोई पंद्रह किलोमीटर दूर पश्चिम में और वहां किसी बड़े ग्रुप से संपर्क स्थापित करके या लिख कर रोष प्रकट करें कि अस्पताल को और उसको क्यों भूल गये, जैसे कि वह कोई पिन हो; लेकिन वह पिन नहीं है, बल्कि डेढ़ हजार घायल सिरों वाला माल्टा-अस्पताल है.

अंतिम टुकड़ियां यहां से गुजर चुकी हैं, तोपों के धमाके पास में सुनाई दे रहे हैं. मरीजों ने कांटेदार बाड़ को तोड़ डाला और सड़क की खाइयों पर आ कर बैठ गये और लड़ाई से आ रहे लोगों से 'उसके' बारे में बातचीत करने लगे. 'वह' तो ब्रूसिलोव है. 'वह' तो रूसी है.

—कहां है 'वह'? क्या 'वह यहीं है'? क्या करता

है 'वह'? कब आयेगा 'वह'? 'वह' तो रास्ते में है, भगवान कसम. 'वह' वियेना तक कहीं नहीं रुकेगा. 'वह' आगे बढ़ रहा है.

सैनिक थके हुए थे, प्यासे थे, और हरेक अलग-अलग बात बताता था, कुछ भी पता नहीं चल सका, अलबत्ता 'वह' जरूर आ रहा था.

शाम हो गयी, रिफ्लैक्टर आसमान में घूमने लगे, और दूर तोपें गरज रही थीं, आखिरी टुकड़ी भी गुजर गयी, लेकिन 'वह' नहीं आया. 'वह' अज्ञात कारणों से रुक गया था और ऐसे विचित्र ढंग से मानो सांस रुक गयी हो. इसी ढंग से 'वह' खड़ा हो गया और अब भी खड़ा है.

अस्पताल के सामने तीन किलोमीटर पर माखल्ली के जंगल में मटमैला पानी वहता है, वहां पुल जल रहे थे और सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा था; और दूसरे किनारे पर शांति थी जैसे कि वहां कोई नहीं था. उस रहस्यमयी समय में, जब कि कुछ भी पता नहीं था, न यह कि 'वह' कहां है, न यह कि 'वह' कर क्या रहा है, सारे अस्पताल को ऐसा महसूस हो रहा था कि वह वियेना और मास्को के बीच हवा में लटक रहा था, और बहुत कुछ संभव था कि वह वियेना की अपेक्षा मास्को के पास आता जा रहा था——किसीने मौज में आ कर स्टोर में से एक कोन्याक की बोतल चुरा ली, क्योंकि किसे पता कल क्या हो? रूसी कमिसारियट-अधिकारी आस्ट्रिया वालों से भी अधिक ठाठ-बाट वाले हैं.

स्टोर में कोन्याक थी, काली बुर्गंदर थी, हंगेरी देसी शराब और शैम्पेन थी; एक घंटे के अंदर सारा माल्टा-अस्पताल नाक तक नशे में धुत था. बैरकों में केवल शराब ही शराब बह रही थी, और बीयर की भरी बोतलें फूट रही थीं, क्योंकि शराब के सामने बीयर कौन पिये! रूसी बंदी, अपने सपनों की दुनियां में खोये कि बस कल ही अपने यूराल के गांवों में, वोल्गा के किनारे होंगे, सभी बैरकों में नाचने लगे, और जब एक हंगेरी डाक्टर ने संतरियों की ओर पिस्तौल चला कर अल्कोहल पर बारूद से काबू पाना चाहा तो झगड़ा और बंदूकबाजी शुरू हो गयी और वह हंगेरी डाक्टर हार कर पीछे हट गया और नर्सों के साथ अंधेरे में गायब हो गया. लोगों ने दो जर्मन नर्सों फ्रीड और मरियाना (जिसका मंगेतर वैरदून में मर गया था, और जो सदा उल्स्टाइन की रचनाएं पढ़ा करती थी) को उनके कमरों में जा कर पकड़ लिया और उनके साथ बलात्कार किया; उसके बाद सब बिगड़ गये, और स्वतंत्रता के नाम पर सबने खूब पी, पागल हो गये, और सब कुछ नशीले स्वप्न-सा लगने लगा.

——बैंक, रैस्तो! रैस्तो, बैंक (ताश के खेल में प्रयुक्त जर्मन भाषा के शब्द) ——आवाजें आ रही हैं, ताश फेंटे जा रहे हैं, शराब पी जा रही है, सभी चेहरे चीनी समुद्री डाकुओं से लग रहे हैं, टेढे-मेढ़े और लटके हुए, गंदे दांतों से सजे हुए; खीसें निपोरी जा रही हैं: रैस्तो, आइन्त्स (ताश का एक खेल)! कोई सिरफिरा बैरक की दुछत्ती पर चढ गया और नाचने लगा, छत का प्लास्टर नीचे झड़ने लगा, और ऐसा लगने लगा कि दुछत्ती फट पड़ेगी और सब कुछ नष्ट हो जायेगा. उधर 'स' बैरक से हार्मोनिका, ओकरीना और वायलिन की आवाजें आ रही है. वहां सिर्मिया के लोग हैं, सो उनका बस 'और मामा और ताता' गीत गूंज रहा है. यह उच्छृंखल, विनोदी गज पांच-ब में स्पष्ट सुनाई दे रही है जहां विदीर्ण, निराश वीदोविच पड़ा है, और एक ही विचार बराबर उसके दिमाग में घुमड़ रहा है: क्या मेरा आपरेशन करेंगे? यदि यह सब आज बाहर निकाल लेते तो इतना खून न बहता! कहां हैं ये लोग? क्यों नहीं आपरेशन करते मेरा? क्या हो रहा है ये सब!

——रैस्तो! आइन्त्स! रैस्तो! बैंक!

तिरोला वाले कोरस गाने लगे, उन निर्देशों को पढ़-पढ़ कर जो अस्पतालों में तीनों तथाकथित राष्ट्रभाषाओं में लटके रहते हैं. हंगेरी भी चुप नहीं रहे, उनके पीछे-पीछे वे भी अपना हंगेरी पद गाने लगे:

हर खाने से पहले धोओ हाथ,
हर निवृत्ति के बाद धाओ हाथ,

इसी पद को, हवाती देशरक्षा भाव में, कोई नहीं गाता, बल्कि उससे चिढ़ते हैं मानो कोई अफ्रीकी बात हो. स्ताइर (आष्ट्रिया के उप प्रदेश) का एक पहाड़ी टुकड़ी का सैनिक, जिसे कम दीखता था (जिसके चश्मे के शीशों में से उसकी हरी आंखें फूली हुई, कांच की गोली-सी, दिखाई देती हैं), हंसी से फटा जा रहा था. उसके गले में कफ उफन रहा था, गड़गड़ा रहा था, वह लाल पड़ गया था, और भी बुरा हाल होने वाला था, प्रचलित हवाती गीत को पढ़ते समय उसकी जबान लड़खड़ा रही थी: 'हर खाने से पहले धोओ हाथ, हर निवृत्ति के बाद धोओ हाथ'.

——हाहा! यह 'धोओ' क्या मूर्खतापूर्ण बात है!

——वाजिस्टास! वाजिस्टास (यह क्या है)! पैदाइशी बेवकूफ. निक्स! निक्स (नहीं, नहीं)! तू बता दे उसे, क्या पूछ रहा है! दोस्त! ओ दोस्त! ले पी!

——प्यारे भाइयो! दया करो! शांति! दर्द होता है मेरे! बहुत भयंकर दर्द है! वीदोविच चीखा, लेकिन उसकी आवाज खो कर रह गयी.

किसीने हंगेरियन में पूछा——क्या मतलब? दर्द? कैसा दर्द?

——और मामा और ताता...

तोपों की गरज बढ़ गयी थी मानों बैरक के नीचे कोई लकड़ी काट रहा हो.

★ ★

अड़तालीस घंटे पूर्व घोषित वह बड़ा प्रत्याक्रमण वास्तव में सफल रहा. भोर होते-होते रूसियों को एक ही धक्के में पीछे दूर तक खदेड़ दिया गया. दोनों ओर से उन्हें घेर कर लगभग पंद्रह पैदल बटालियनें और कई तोपखाने कैद कर लिये गये. काउंट माक्सीमिलियन एक्सिलरोड लिख्तेन्स्ताइन की बैरोनैस के साथ साढ़े नौ बजे कार से अस्पताल पहुंचे.

सबसे पहले तो जर्मन लड़कियों (नर्सों) के बलात्कार की गहरी छानबीन हुई, लगभग साढ़े बारह बजे

सात रूसियों को गोली मार दी गयी, इन्होंने मरने से पूर्व स्वयं ही अपनी कब्रें खोदी थीं, और लगभग साढ़े तीन सौ बदमाशों को (आंखों के मरीज, खुजली और गुप्त रोगों के मरीज और गोलियों से हलके घायल; इनके अलावा बैरकों–अ २,३,४,५ के ऐसे सभी मरीज जिनका तापमान ३८ सेन्टीग्रेड से कम था) लड़ाई में भेज दिया गया, और साढ़े दस बजते-बजते अस्पताल में सेंट जॉन के माल्टा संघ वाली मुस्तैदी छा गयी.

साम्राज्य के झंडे और अनुशासन की धाक जमाने के लिए, जो उस रात इतना सामायिक लग रहा था, काउंट एक्सिलरोड ने अस्पताल को आदेश दिया कि पिछली रात वाली महान विजय को मशालों की परेड और सलामी से मनाया जाये. सभी मरीज (विना भेदभाव के) काले-पीले झंडे के सामने लाइनें वनायेंगे, और जो लेटे हैं उन्हें रूसी बंदी स्ट्रेचरों पर लायेंगे, लेकिन परेड में सभी आयेंगे. ऐसा ही हुआ.

सभी बैरकों ने परेड में भाग लिया और हरेक के हाथ में जलती हुई मशाल दी गयी. परेड का संचालन एक रसद-अधिकारी ने किया, जो अपने जीवन में कभी भी घोड़े पर नहीं बैठा था. परेड में कई सौ लोग थे सिर पर खून में सने भूरे रूमाल बांधे हुए और हरेक के हाथ में लाल या हरी मशाल थी.

जब उस शर्मनाक परेड से वीदोविच को बैरक पांच-ब में वापिस लाये तो वह बुखार से जल रहा था.

पिछली रात ही सबका हाल बुरा था, और अब, शराब का भूत उतरने के बाद, सारी बैरक का दर्द और भी गहरा हो गया था. सात नंबर के साइबेरियन ने पिछली रात बहुत पी ली थी, सो सुबह होते-होते दम तोड़ गया, तीसरे पहर कहीं उसे बाहर ले गये, सब ओर भयंकर गंध थी क्योंकि उस उफनते खून ने आग पकड़ ली थी. कृत्रिम खाना खाने वाला नंबर नौ का स्लोवाक बहुत तड़प रहा था, उसकी सांस लेने की आवाज सुनाई पड़ रही थी. वहां दूर, हंगेरियों के बीच में, एक रूसी बुरी तरह चीख रहा था. रात को नाचना चाहता था और अब पागलों की तरह दहाड़ रहा था.

—आत्स अत्या डर इस्तैन्नैत, एन्नैक अ रूस्किनाक! रूस्की (उस रूसी के बाप के भगवान)'!

—चुप! तू रूसी! क्यों दहाड़ रहा है?

—मेरे भी दर्द होता है, पर चुप हूं!

—मैं सोना चाहता हूं! तुम्हारी कम्बख्त मां की. . .!

—रूसी चुप!

—प्स्स्त! शांति! प्स्स्त! प्स्स्त!

वीदोविच लेटा हुआ बैरक के झगड़े को सुन रहा है, उसे अंत का आभास होने लगा है.

—आखिर मैं क्यों पैदा हुआ, और क्या ध्येय है मेरे पैदा होने का? मेरी मृत्यु कितनी शर्मनाक है! कितनी गहरी शर्म की बात! मैं अभी जीवित रहना चाहता था, खेल-खिलाना चाहता था! पर क्या हो गया? अस्पताल और केवल अस्पताल! इस भू-गोल के कौन-से शब्द इस अस्पताल का ध्येय स्पष्ट कर सकते हैं? अस्पताल ही अस्पताल! मैं पूरे दो सालों से केवल अस्पतालों में ही फिर रहा हूं. सजे हुए शहरी अस्पताल उनकी कुलीन वेश्याएं! मठ, जिनमें तपेदिक के रोगी मरते रहते हैं! बैरक! इतनी गंदी, सड़ी, जूओं से भरी लकड़ी की बैरकें! उफ, कितना अफसोसनाक और घृणित है यह सब!

दर्द शुरू हो गया था और सारी बैरक पांच-ब में फैले हुए विदीर्ण और खून बहाते असंख्य अंगों को अधिकाधिक ऐंठने लगा था. दर्द वृहदाकार रूप धारण करने लगा था और लोगों ने ईश्वर को पुकारना आरंभ कर दिया था. स्वयं ईश्वर ही अब अंतिम अपील के रूप में पुकारा जा रहा था, जैसे कि राजकीय कार्यालय को अपीलें भेजी जाती हैं जबकि अन्य कोई चारा नहीं रह जाता.

किसी हंगेरी ने अपने ईश्तैन (भगवान) को बुलाया कि उसकी सहायता करे! कि वह ईश्तैन बड़ी-सी काउब्वाय पैंट पहन कर आये, दो-तीन बोतलें सांड के लाल खून की पी जाये, और शैतान की कोई धुन वायलिन पर निकाले, और या तो वह एक बार मर ही जाये या फिर पुनर्जीवित हो जाये. इस प्रकार अब और नहीं चल सकता! भगवान, भगवान! भगवान! —किसी बिजांत प्रतिमा की भांति पारदर्शी और पीला रूसी चिल्ला रहा है और अपने रूसी भगवान से, जो फर का बड़ा कोट पहने क्रेमलिन में स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा है, प्रार्थना कर रहा है. वह रूसी मनुष्य इतनी जोर से चिल्लाता है कि उसकी आवाज मास्को-माता तक पहुंच जाये, हाथ जोड़ता है और नवजात शिशु की भांति रोता है : भगवान! हे भगवान!

वीदोविच चौंक पड़ा, और उसे लगा जैसे ईश्तैन उस हंगेरी के पास आ गया है और उसके विस्तर पर बैठा है, और उसे बोतल से पिला रहा है, हंगेरी पिये जा रहा है, पिये जा रहा है, उधर वायलिन बज रहा है, आह, कितना सुखद है किसी के हाथों से पीना. वायलिन की धुन पर! बहुत सुखद है यह! नींद आने लगती है! उधर रूसी साम्राज्य का भगवान भी अपने जलूस के साथ बैरक में घूम रहा है; प्रतिमाएं चमक रही हैं, पवित्र माता के घंटे बज रहे हैं और बुद्ध भगवान, सफेद दाढ़ी वाला, रेशमी फर कोट पहिने रूसी आंतों को टटोलता है और उस रूसी के पेट में से खूनी गोली को निकाल लेता है, अब आराम है, आह., आराम है, धन्यवाद तुझे, हे भगवान, अब आराम है!

—देखा! उनमें से हरेक का अपना ईश्वर है! हरेक का अपना ईश्वर है!

—और वह इतालवी (मामा मिया! मामा मिया!) उसके भी हैं कार्डिनल, पोप और रोमन झंडे, रूसी, हंगेरी, उनके भी अपने मालिक भगवान हैं, और मेरा कौन है? मेरे भी दर्द होता है! मुझे भी गोली लगी है वैसे ही जैसे कि उनको! पर मेरा कोई नहीं है!

और यों वीदोविच को दर्द हुआ कि वह भी हाथ उठा कर किसी की ओर फैलाता, लेकिन उसके हाथ

हवा में ही रह गये, और उसे एक भयंकर रिक्तता का अनुभव हुआ, गला घुटने लगा, और जोर से रो पड़ा वह.

--ओह, हां, अपनी सराय के सामने मैंने लटके हुए ख्रीस्त को देखा था! वह असली हवाती ख्रीस्त था, उसकी सभी तेतीस पसलियां टूटी हुई थीं, सीने पर स्तनाग्रों के स्थान पर छेद थे, असंख्य घावों से रक्त बह रहा था! और मैंने कभी भी उसमें विश्वास नहीं किया! वैसा लकड़ी का ख्रीस्त कीचड़ से भरी सड़क पर, जहां मैला फेंका जाता है; उसके पास से हो कर कोई शराबी भी नहीं गुजरता कि उसे श्राप न देता जाता हो; वैसा लकड़ी का हवाती ईश्वर, नंगा, दरिद्र, जिसके बायां पैर नहीं, ओह, ईश्वर सैनिक टोपी वाला, वह, वह,--उससे प्रार्थना करूं कि मेरी सहायता करे...

'लीब' फाटैरलांट, मास्ट रुहिग जाइन,
व्हीर व्हौलैन आले म्युटैर जाइन--
ट्रौय श्टैश्ट ऊंट फैस्ट डी व्हाश्ट आम राइन.'
(एक जर्मन जन-गीत)

--क्या है? पागल हो गया हूं क्या मैं? ये मैं किससे प्रार्थना कर रहा हूं? दर्द होता है मेरे! मैं प्रार्थना कर रहा हूं! कैसी आवाजें हैं ये?

* *

बाहर से, वीदोविच के सिर पर लटक रहे पर्दे से हो कर, पीला प्रकाश आ रहा था और नारी-स्वर प्रार्थना में रत सुनाई पड़ रहे थे, शांत स्वरों में गायी जा रही पंक्तियां. और सुनाई पड़ रही थी क्रिस्टल के गिलास की आवाज! शांत खनक, शांत स्वर, लेकिन स्पष्ट: "'लीब' फाटैरलांट, मास्ट रुहिग जाइन. . ."

बैरक पांच-ब के पास ही छाया थी जिसके नीचे नियम से डाक्टर लोग और रैडक्रॉस के गिरजाघर की स्त्रियां शाम का भोजन करती थीं. आज शाम उस विशिष्ट भोज पर अपवादस्वरूप काउंट एक्सिलरोड भी उपस्थित थे ताकि विजय का समारोह मनाया जाये.

विजयोल्लास से भरे हुए (जबकि ऐसा लग रहा था कि गलत चाल चल गयी है, और फिर भी स्थिति इतने विचित्र ढंग से पलट गयी) और अपनी उन जर्मन महिलाओं द्वारा गाये देशभक्तिपूर्ण गीत के आवेश में, जो युद्ध के कामों में जी-जान से तत्पर थीं, माल्टा-संघ के सर्वोच्च सेनापति, काउंट माक्सीमिलियन एक्सिलरोड उठे और उन्होंने विजय की बधाई के लिए गिलास ऊंचा किया. वे तत्रमहती की उन विजयों का उल्लेख गर्व से कर रहे थे जिनके कारण माल्टा का झंडा भी अजेय और प्रभुतासंपन्न लहरा रहा था.

--देवियो! श्रेष्ठ फादर जोवानी बतिस्ता चेस्की अ सान्ता क्रोच, जिसने अपनी आंखों से जैकब-अनुयायियों का आक्रमण अपने इस पवित्र माल्टा-क्रास पर देखा, उस माल्टा-क्रास पर, जिसका यहां प्रतिनिधित्व करने का संम्मान मुझे प्राप्त है, उस कुलीन वीर ने अपनी दैनिकी में, देवियो, यों लिखा है: जब तत्र-ईश्वरीयता बुझे सूर्य के ऊपर अच्छे और बुरे का भेद करेगी तो माल्टा के काले भारी कोट ईश्वरीय छाया में रक्षकों के रूप में खड़े होंगे. . .

वीदोविच ने गिलासों की खनक सुनी और उस काउंट सेनापति की आवाज को भी पहचान लिया, उ शाम की परेड के समय के काउंट के छद्म वेश व याद आ गयी.

--मैं पागल हो गया हूं! मैं प्रार्थना करना चाहत तो था! ओह! और वे बाहर गा रहे हैं! वास्तव में विजय का अभिवादन! और वह माल्टा का वीर भाष दे रहा है. . .

--नं. नौ को क्या हुआ? उसने गले का प्लास्ट उतार फेंका है! उसके खून बह रहा है! नर्स!

--कहीं कोई नहीं है! नर्स कहां है? नं. नौ. .

बाहर छाया में, पुते हुए तख्तों के दूसरी ओ गिलास खनक रहे थे, और यहां, पीड़ा के क्षोभ में नं. न ने अपना प्लास्टर उतार फेंका और खून बहने लग

वीदोविच चिल्लाना चाहता था, लेकिन आवा नहीं निकली. अब स्पष्ट था कि नं. नौ के लिए मोमबत्त जलाने की आवश्यकता थी.

--मोमबत्ती जलाने की आवश्यकता है! मृतक व आत्मा की शांति के लिए!--बार-बार यही दुहरा र था, उसकी आंखें नं.नौ के खून के ढेर में गड़ कर रह गय थीं. अपनी समस्त शक्ति से उसने चीखना चाह लेकिन आवाज मानो छलनी में से निकल कर खो गयी

--चुप! धर्मात्मा तेरी मां की. . . !

--आत्स अपाद इस्तैनैत! शन्द! (हंगेरिय गाली, जिसका अर्थ है--तेरे बाप के भगवान की. . चुप!)

--नं. नौ मर गया! नं. नौ मर गया! और बहादुर लोग बाहर गा रहे हैं, गिलास बजा रहे हैं! फादर जोवानी बतिस्ता अ सान्ता क्रोच! देखूं तो सहँ उसे! देखूं जरा माल्टा के उस वीर को. . .

अंतिम प्रयास के जोश में, जो कि वास्तव में घातक तड़प थी, वीदोविच प्रेत की भांति उठा और सिर की पट्टी उतार फेंकी! वहां एक वर्गाकार स्थान पर रोशनी थी और हलके हरे प्रकाश में चमकती पत्तियों की छाया में दिखाई दे रही थी सफेद स्त्रियां, लाल क्रास लगाये, हलके नशे में, हंसती हुई, भावी खून बहाने वालों की भावी जननियां.

--थू--वीदोविच चिल्लाना चाहता था, उसके मस्तिष्क में स्पष्ट विचार आया कि उस सफेद मेजपोश पर अपने कीचड़ भरे चीनी मिट्टी के बर्तन फेंक दे और सब कुछ गंदा कर दे--गंदा कर दे ताकि उस सफेद मेजपोश पर एक बड़ा भारी धब्बा पड़ जाये, और सब चिल्ला पड़ें: दाग, दाग!

अपने इस अंतिम, गरीब विचार को कार्यरूप मे परिणित करने के लिए वीदोविच प्याले के लिए झुका उसे लगा कि गिर रहा है. उसके हाथ भयंकर पदार्थ मे सनते जा रहे हैं--सब कुछ खून में डूब गया जो तेज धार से बह रहा था. . . □□□

(सूबी-हवाती (हवाती-सूबो) से अनूदित
अनुवाद --श्यामराज सिंह जैन)

• मुरलीधर जालान

गलत नंबर

•सविता बैनर्जी

मेरा पहला प्रश्न यही था—यह अचानक काया पलट कैसे? नहीं ऐसी बात नहीं है कि सब कुछ अचानक ो ऐसा हो गया. यह भी मैं बाद में जान पायी कि उन्हें स खेलने की बुरी लत लग गयी थी. पहले से यदि ान पाती तो शायद यह दशा नहीं होती. उसने बड़ी ीनता महसूस करते हुए कहा.

—तुम ऐसा सोचती हो. मैं शर्मिदा हूं. मैंने तो से ही पूछ लिया था. क्या मैं नहीं जानता कि तुम कतनी खुशहाल फैमिली में ब्याही थी. मुझे तो खैर सकी जानकारी कुछ ज्यादा ही है, क्यों ?. . .सुस्मिता रे व्यंग्य को समझ गयी थी. उसने मेरी ओर एक बार खा और एकदम डूबे हुए स्वर में बोली—शायद उसी भिमान से मुझे यह दिन देखना पड़ा है. वह शायद रोने ो हो गयी थी. आंसुओं को छिपाने की कोशिश में ह दूसरे कमरे की ओर जाने लगी. मैंने सुना, उसी मरे में से कुछ कराहने जैसी आवाज आ रही थी. . .

मैं वाकई लज्जित हुआ. हालांकि जिस समय से मैं हां आने के लिए तैयार हो रहा था न जाने कितनी ार कोई गाली मेरे ओंठों तक आ-आ कर लौट गयी थी. ग रहा था, जब तक मैं उसके सामने जा कर गाली थूक नहीं दूंगा, मेरी तबियत हलकी नहीं होगी लेकिन उसके सामने आ कर मेरी स्थिति ऐसी हो गयी कि कब वह अपने किये का एक बार अफसोस जाहिर करे, और मैं हथियार डाल दूं. वैसे जिस समय उसने मुझे फोन पर बुलाया था, तो मैं यकीन नहीं कर पा रहा था कि सुस्मिता मुझसे बात कर रही है. मुझे लगा उस नाम की कोई दूसरी लड़की बोल रही है. पर मेरा नाम बिगाड़ कर उसी लहजे में जब उसने पुकारा तो मैं इस सिगनल को पहचान गया था.

सुस्मिता! आठ साल पहले जो मेरे जीवन में आ कर भी नहीं आ सकी, जिसने मुझे पहचानने से भी इनकार कर दिया था, वह फिर फोन पर बुलाये, घर आने के लिए प्रार्थना करे, यह अपने आप में एक घटना थी. पता पूछता हुआ मैं वक्त पर पहुंच गया था. अफसर की बेटी, धनी पति की पत्नी, इस गंदी कालोनी में रह सकती है, इस कल्पना से मुझे कुछ अजीब-सी हैरानी हो रही थी. सूट और टाई-इस जगह के लिए चौंकाने वाली चीजें थीं. चारों ओर से गोबर और नाले की बदबू आ रही थी.

जब तक मैं उसकी दयनीय दशा के बारे में सोच रहा था और आसपास खुद देख भी रहा था, मेरे अंदर एक क्रूर आनंद लहरा रहा था. लेकिन जैसे ही मुझे इन टूटे-फूटे मकानों के बीच इस बेहतर मकान का नंबर दिखाई दिया, मैंने अपने भीतर दप से कुछ बुझता महसूस किया. लेकिन खैर कुछ ही मिनट बाद मैंने पाया मैं उस दूसरे संकोच से उबर चुका हूं, जिसे इस कालोनी में घुसते ही महसूस कर रहा था. न जाने कितनी आंखें मुझे घूर रही थीं और मैं सिमटता जा रहा था. कई व्यक्तियों के चेहरों से मुझे स्पष्ट लगा कि उनकी आंखों में पढ़ा जा सकता है कि मैं रास्ता भूल गया हूं, हालांकि एक खिलाड़ीनुमा लड़के का अनुमान सही था कि मैं अवश्य ही मि. मजुमदार के घर आया हूं. यह बात वह अपने साथी को फुसफुसाने के अंदाज में जोर-जोर से ही कह रहा था ताकि मैं भी सुन लूं. मेरे मन में हुआ कि उससे कह दूं, तुम ठीक कह रहे हो.

दरवाजा सुस्मिता ने ही खोला और मेरी ओर गौर से देखने के बजाय—आइए, कह कर अंदर लौट गयी. मैं पीछे-पीछे हो लिया.

* *

एक साधारण-सा बड़ा कमरा है जिसे कुछ ड्राइंग रूम जैसा सजाने की काफी कोशिश की गयी है. एक-सोफा-कम-बेड है जो शायद ज्यादातर बेड के हिसाब से इस्तेमाल किये जाने के कारण लक्षझड़ हो चुका है. जिस पर अधमैला-सा बेड-कवर ढका हुआ है. दूसरी तरफ कुछ बक्सेनुमा सामानों को ढक कर बैठने के लिए जगह बना दी गयी है जिस पर दो कुशन रखे हैं. कोने में तिपाई पर फूलदानी रखी है जिसमें लगे प्लास्टिक के फूल मैले हो चुके हैं. बेहतर होता वगैर फूल के ही फूलदानी रखी रहती. एकाएक मुझे लगा इस कमरे में सुस्मिता मौजूद नहीं है इसलिए मैं कमरे के निरीक्षण में बुरी तरह फंस, गया हूं. यह एहसास होते ही मैं दूसरे कमरे की तरफ देखने लगा जहां सुस्मिता गयी है और

अभी तक नहीं लौटी है. . .

मुझे खीज होने लगी थी कि वह मुझे यहां बैठा कर अंदर से आने का नाम नहीं ले रही है, शादी के बाद लड़कियां एटिकेट निभाना भी भूल जाती हैं. करीब पंद्रह मिनट होने को हुए तो मैंने सोचा आवाज दूं और तभी सुना, अंदर कोई घरघराते स्वर में किसी पर नाराज हो रहा है. मेरा मन हुआ उठ कर देख आऊं, लेकिन एक निहायत बेमानी डर धीरे-धीरे मुझ में पैठता जा रहा था. हालांकि बीच-बीच में मैं अपने को घुड़क देता था. 'हुंह, क्या कर लेगा कोई, उसने बुलाया है तभी तो आया हूं'-लेकिन मैंने सोचा मेरे पास क्या सबूत है. और तब मुझे एकाएक आठ साल पहले का वह दृश्य याद आ गया जब सुस्मिता ने कितने ही लोगों के सामने कह दिया था, 'क्या सबूत है कि मैं तुम्हें पहचानती हूं?' मुझे लगा, म नर्वस हो रहा हूं. मेरी नसों में एक ठंडी सरसराहट फैलने लगी, लगा, मैं बोलूंगा तो मेरी आवाज जरूर कांप जायेगी.

एक मिनट बाद तौलिया से हाथ पोंछती हुई सुस्मिता निकली. बोली—माफ करना मैं एक काम में फंस गयी थी. दरअसल मजुमदार साहब करीब एक साल से बीमार हैं, उन्हें बेडपेन दिया था.

मेरे मुंह से निकला—बीमार? तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया ?

वह बोली—उससे भी बड़ी ट्रैजेडी यह है कि उनकी नौकरी भी छूट चुकी है, पहले ही. यही सब कुछ बताने के लिए तो तुम्हें बुलाया है. फोन पर कितना बताती ! जानती हूं, तुम तो मुझे माफ करोगे नहीं.

—पर. . .मैं बीच में ही भावुक हो कर बोल पड़ा—तुमने मुझे बुलाया यह क्या मेरे लिए बड़ी बात नहीं है.

—श. . .श. . . सुस्मिता ने मुंह पर उंगली रख कर आहिस्ते बोलने के लिए संकेत किया. मैं फिर डर-सा ही गया. मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर वह कह क्या रही है. वह बताने लगी—उनकी बीमारी ने मुझे तबाह कर दिया है. मेरे पास अब कुछ भी नहीं है कि मैं उनका इलाज करा सकूं. दो साल हो गये मेरे डैडी को गुजरे यह तो तुम्हें मालूम ही होगा शायद?

—अच्छा? मैंने इस तरह से कहा जैसे मुझे इस बात की जानकारी नहीं थी. हालांकि मुझे लगा इस प्रदर्शन की कोई जरूरत नहीं थी. लेकिन वह बोले जा रही थी. डैडी के न रहने से मेरा आसरा बिल्कुल खतम हो गया. भाई कोई है नहीं जो मेरी कुछ मदद करे. इनके भाई भी होने न होने के बराबर ही हैं. मुश्किल तो यह है कि मैं इनके बारे में, या अपनी स्थिति के बारे में किसी से कुछ कहती हूं—या फोन करती हूं तो ये चीखने लगते हैं—झूठ बोलती हो, दुनियां को दिखाना चाहती हो कि मेरा पति निकम्मा है, मुहताज है. अब इनसे पूछो, क्या रखा है मेरे पास. कहां से रुपए लाऊं? कैसे इलाज कराऊं? और कुछ दिनों बाद तो पेट भरना भी मुश्किल हो जायेगा. बस, चीखना चिल्लाना शुरू कर देते हैं. वैसे डाक्टरों का कहना है कि लंबी बीमारी के कारण इनकी दिमागी कमजोरी बढ़ गयी है, इसलिए ऐसी हरकतें करते हैं. . .

मैं अब तक सचेत हो गया था और उसके बुलाने का मकसद भी मेरे सामने स्पष्ट हो चुका था.

मन के कोने में शायद कहीं कुछ पुरानी बातों को फिर से उलटने-पलटने की इच्छा दबी थी. उन सबकी कोई गुंजाइश नहीं है जान कर मैं औपचारिक बातों पर उतर आया. मन-ही-मन यह भी सोचता रहा कि अच्छे फंसे.

मैंने उससे पूछा—क्या बीमारी है?

उसने बताया —किडनी खराब हो चुकी हैं, खून नहीं बनता. खून की कमी के कारण पैरों में सूजन आ गयी है. बहुत दिनों तक अस्पताल में रखा. अस्पताल में भी इन्होंने चीखना शुरू कर दिया था. कहते, मुझे घर ले चलो. मैं यहां मर जाऊंगा. क्या मार डालने का इरादा है? पैसों की भी तंगी होने लगी थी, मैं इन्हें घर ले आयी. और यह मकान! पिताजी होते तो मुझे यहां रहने देते! सुस्मिता की आंखों में आंसू भर आये थे. गला रुंध गया था.

मैं चुप था. सब तटस्थ भाव से सुन रहा था. मैंने महसूस किया मेरी दिलचस्पी धीरे धीरे कम होती जा रही है. हालांकि उसकी व्यथा-कथा सुन कर मुझे कहीं बड़ी शांति मिल रही थी. मुझे लगा जो गालियां मैं उसके लिए बार बार उगलना चाह रहा था, वे सब उसने अपने आप ही स्वीकार ली हैं. अगर मैं चाहूं कि उसे अपमानजनक बातें सुनाऊं तो शायद इस समय वह अपने स्वार्थ के लिए सब सह लेगी.पर मैं इसके लिए तैयार कहां था? मैं अब, एक दूसरा ही दांव लगाने की सोच रहा था और उस ताश के पत्तों के खुलने की प्रतीक्षा कर रहा था. मैंने उससे कहा—अच्छा यह बताओ, क्या मैं मजुमदार साहब से मिल सकता हूं? तुमने पहले तो कभी उनसे मिलाया नहीं था?

वह बड़े संकोच में बोली—पहले परिचय नहीं कराया उस बात को कह कर मुझे लज्जित न करो लेकिन अब. . .मैंने अभी बताया न कि वह किसी को जाहिर नहीं करने देते कि हमें किसी प्रकार की सहायता की जरूरत है या हम कष्ट में हैं. किसी अपरिचित आदमी को देख कर तो और भी चिढ़ते हैं, अस्पताल में भी पास के घर का कोई आदमी यदि यूं ही पूछ लेता कि क्या तकलीफ है तो उसीको भला बुरा कह देते थे.

—तो क्या उन्हें इस समय पता नहीं चल रहा है कि तुम किसीसे बातें कर रही हो? मैंने हैरत से पूछ

उसने बताया—हां उन्हें यही मालूम है कि मैं हमारे घर के मुनीम जी से बातें कर रही हूं जो मेरे डैडी के पास रहा करते थे. वैसे वे खुद यहां तक आने में असमर्थ हैं.

अब मैंने अपने को थोड़ा मजबूत पाया. अच्छी तरह से बैठता हुआ बोला—अच्छा तो बताओ तुमने मुझे क्यों याद किया?

मेरी बात का जवाब न दे कर उसने मुझ से सीधा प्रश्न किया—तुमने शादी कर ली? पता नहीं क्यों मैं

स प्रश्न से अंदर से तिलमिला गया. मुझे लगा उसका ह प्रश्न बड़ा बेअदब है.

मैं उसकी तरफ गौर से देख कर बोला—इसका उत्तर या दूं कि तुम्हें अच्छा लगे या तुम्हारे हित में हो? ऐसा त्तर देते समय मुझे लगा मैंने बड़ी शालीनता से उत्तर दिया है. मैं अब कुछ क्रूरता से पेश आने के लिए प्रस्तुत ोने लगा. अपने को एक बार फिर निराश पा कर मैं तिशोध लेने के लिए सोचने लगा. मैं चाहने लगा कि रे जवाब से वह आहत हो. अब तक मैं जिस विनम्रता ो ओढ़ने की कोशिश कर रहा था, मैंने उस आवरण ो उतार फेंका. एकाएक मुझे एहसास हुआ कि वह मुझसे उपकृत होना चाहती है और उसने सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए ही मुझे बुलाया है. उसके लिए मेरा कोई महत्व हीं है बस किसी तरह वह अपना काम निकालना चाहती है. अचानक मैं बहुत घटिया तरीके से सब सोचने लगा. मैं किसलिए उसकी मदद करूं? मैं अब उसके लिए क्यों मर मिटूं, क्या गारंटी है कि मुझे फिर से बेवकूफ नहीं बनाया जा रहा है. मैं सब करता यदि इसी में मुझे सुख मिलता. लेकिन मुझे लगा, सुख प्रतिशोध लेने में अधिक है.

मुझे अपने उन तमाम दोस्तों के चेहरे याद आने लगे जिन्होंने मेरी हालत पर तरस खा कर कहा था—दोस्त, जिसने तुम्हें तबाह कर दिया कहो तो हम उसे भी सुख-चैन से न रहने दें. लेकिन तब मैंने ऐसा करने के लिए उन्हें मना कर दिया था. पर आज मुझे लगा यह दया करने के काबिल नहीं है.

मैंने देखा वह रो रही है. कुछ देर मैं उसे गौर से देखता रहा. सोचने लगा, रोने की भी शायद किस्में होती हैं. अभिनय में भी लोग रो लेते हैं बिना ग्लिसरीन के. इतनी संवेदना पैदा कर लेते हैं तभी तो! फिर लगा, वह शायद पश्चाताप के कारण रो रही है लेकिन दूसरे ही क्षण लगा, ऐसा भी तो हो सकता है वह अपने पति की हालत को सोच कर रो रही हो. या अपनी दुर्दशा के लिए. मैं संभल गया. अपने अंदर उमड़ती हुई दया पर, जो शायद जोर मारने जा रही थी, वहीं रोक लगा दी.

अचानक मुझे वह बात याद आ गयी. जिसे मैं कुछ देर पहले सोच रहा था. मैं बिल्कुल संयत हो गया. अगली जानकारी के लिए बात शुरू करना जरूरी था. बोला—तुम रो क्यों रही हो?

वह बोली—तुम मुझ पर अविश्वास कर रहे हो.

मैं चौंका, लगा पकड़ा गया हूं. पर संभल कर बोला—कैसी बातें कर रही हो! तुमने अविश्वास का क्या देखा? यही न कि तुम्हारे प्रश्न का सीधा जवाब न दे कर मैंने जरा घुमा कर दिया है? खैर छोड़ो. यह बताओ अब करना क्या है. डाक्टर क्या कह रहे हैं?

—डाक्टर तो डाक्टरों जैसी भाषा बोलते हैं. कहते हैं, 'अच्छे हो जायेंगे, कोशिश कर रहे हैं. लेकिन मुझे तो कोई आसार दिखाई नहीं दे रहे, उसने हताशा के स्वर में बताया.

मैं थोड़ा आश्वस्त हुआ. मेरा क्रोध अब धीरे-धीरे छंटने लगा था. लगा मैं अपने दांव में सफल हो जाऊंगा. मैं सोचने लगा, हो सकता है यह मुझे ले कर कोई दूसरा स्वप्न देख रही हो. रुपये-पैसों की कमी तो बात की बात है. अगर यह बात न भी हो तब भी न जाने क्यों मुझे इस भ्रम पर विश्वास करना अच्छा लगा और मैं मन-ही-मन इस दांव को खेलने के लिए राजी हो गया.

हारे हुए को जीतने की आशा बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए, ऐसा कौन कह सकता है. हार-जीत का खतरा तो उठाना ही चाहिए. शायद सुस्मिता को अंत में मेरी ही शरण में आना पड़े. और यह मेरी बहुत बड़ी जीत होगी.

* *

करीब पंद्रह बीस रोज तक मैं अपने सौ रुपये के नोट को नहीं भूल पाया. बार-बार मुझे यही लगता रहा कि मुझे रुपये नहीं देने चाहिए थे. इसलिए नहीं कि रुपये बहुत ज्यादा थे बल्कि इसलिए कि बात कुछ बनी नहीं और रुपये बेकार ही गये. इसके अतिरिक्त उसके लिए भी ये रुपये पर्याप्त नहीं थे. यह जान कर भी मुझे बहुत बुरा लगा. सुस्मिता की तरफ से अभी तक कोई खबर नहीं मिली थी. हर हालत में मुझे यही लगा, मैंने रुपया यूं ही बहा दिया. लेकिन मुझे लगा काफी दिन हो चुके हैं, मुझे वहां जाना चाहिए. न जाने मैं ही कौन-सी शान हूं? जरा यह तो पता चले कि क्या प्रतिक्रिया हुई? उसके पति की तबीयत के बारे में भी पूछना जरूरी था. दिखाने के लिए भी और अपने स्वार्थ के लिए भी. मुझे पूरा यकीन था कि उसका पति अब बचेगा नहीं.

मैं आज बिल्कुल साधारण कुरता-पायजामा पहन कर गया था. वही कमरा था. बिल्कुल जैसे का तैसा. सुस्मिता मुझे कुछ ज्यादा चिंतित-सी लगी. मैंने पूछा—कैसी तबियत है मजुमदार साहब की? उसने बताया अब पहले से अच्छे हैं, और उनके एक मित्र ने जिनके भाई डॉक्टर हैं, इलाज के लिए विशेष व्यवस्था करवा दी है कम खर्च में. सुन कर मुझे बड़ी निराशा हुई. मुझे लगा अब रुकना नहीं चाहिए. लगा सुस्मिता को अब मुझसे कोई काम नहीं है. उसके चेहरे की उदासी से यही लग रहा था. मैंने महसूस किया, अब मैं न कोई बात शुरू कर सकता हूं न समाप्त. बड़ी जड़ परिस्थिति थी. मैं उसकी तरफ देखने लगा कि शायद वह ही कोई बात कहेगी पर वह चुप थी. अपनी अंगुली की अंगूठी को जो गफ गयी थी, खोलने की कोशिश-सी करती रही. उसके चेहरे पर उदासी के कई रंग आ-जा रहे थे. मुझे यह सब भावुक अभिनय-सा लगा. मैं झटके से उठ खड़ा हुआ, और "अच्छा, अब चलूं" कह कर चलने को हुआ. मुझे एक बार फिर आश्चर्य हुआ और क्रोध भी कि उसने मुझे थोड़ी-देर बैठने तक को नहीं कहा. मैंने अपने को संयत किया और बिना उसकी तरफ देखे सीधा निकल आया.

इस घटना को हुए एक साल गुजर गया. न मैंने उसकी कोई खबर ली और न उसने ही कभी फोन किया. बीच-बीच में मुझे अपने सौ रुपये के नोट की याद आ जाती थी. शर्म की वजह से मैंने इस घटना के बारे में अपने दोस्तों को कुछ नहीं बताया था.

इस बीच में मैंने एक निहायत साधारण-सी लड़की से शादी कर ली थी. जिससे मेरा परिचय लोकल ट्रेन में रोज के आने-जाने के दौरान हुआ था. इस शादी से मेरे दोस्त तो खुश हुए ही थे, मैं भी खुश था. मैं पिछली बातों को भुला चुका था. विशेष कर दांव खेलने और प्रतिशोध लेने जैसी बातों को. बल्कि इन सबकी जगह सुस्मिता के प्रति मात्र एक हिकारत भरी भावना शेष रह गयी थी.

दो दिन से मेरी पत्नी नर्सिग होम में थी. उसके प्रीमैच्योर बच्चा होने वाला था. मैं उसके लिए बुरी तरह परेशान था, उसकी हालत बहुत नाजुक थी. मैं आफिस से छुट्टी ले कर आ रहा था कि लिफ्ट में एक साथी ने बताया कल तुम टेबल पर नहीं थे.दो बार तुम्हारा फोन आया था. मैं कल भी छुट्टी ले कर चला गया था, याद करते हुए मैंने उसीसे पूछा कि कौन था? उसने बताया उसने नाम नहीं बताया, किसी लड़की की आवाज थी. मैं इतना चिंतित और व्यस्त था कि सोच नहीं पाया कि वह कौन हो सकती है. एक बार लगा, जरूर नर्सिग होम से किसीने फोन किया होगा. पर वहां तो मैं कल भी गया था और आज सुबह भी. किसीने फोन के बारे में नहीं बताया.

दूसरे दिन मैं नर्सिग होम जाने के लिए तैयार हो रहा था. सुबह मेरी पत्नी का आपरेशन हुआ था. वहां से आ कर नहा-धो कर फिर जा रहा था. दिमाग बहुत बोझिल था. लग रहा था कोई बुरी खबर मिलने वाली है. हालांकि डॉक्टर ने बताया था ऑपरेशन सफलतापूर्वक हो गया है, लेकिन २४ घंटे तक निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता. चिंता के लिए यह काफी था. मैं निकलने को ही था कि डाकिया एक पत्र डाल गया. पते की लिखावट देख कर मैं चौंका. पत्र सुस्मिता का था. पहले सोचा आ कर पत्र पढ़ लूंगा लेकिन फिर सोचा पढ़ ही लूं. लिखा था. . . 'एक सप्ताह पहले मजुमदार साहब का देहांत हो गया. . .तुम आ सकोगे तो मुझे काफी राहत मिलेगी. . . .और अंत में अपने नाम के पहले —'तुम्हारी' लिखा था. एक गाली के साथ मैंने पत्र को एक तरफ डाल दिया और कमरे में ताला लगा कर बाहर निकल गया. मैंने देखा, पत्नी सोयी हुई थी. शायद बेहोश थी. मैंने डाक्टर और नर्स से उसके बारे में पूछताछ की. दोनों ने आश्वासन दिया——सब ठीक है. मैं पत्नी के पीले चेहरे को एकटक देख रहा था. मुझे उसकी तरफ देख कर अजीब अनुभूति हो रही थी. नाक में नली और खून दिये जाने के दृश्य को देख कर मेरा दिल बैठा जा रहा था. नर्स और डाक्टर आ-आ कर उसकी नब्ज देख रहे थे.

करीब एक घंटे बाद पत्नी ने कराहते हुए आंखें खोलीं. डाक्टर ने झुक कर उससे तबीयत के बारे में पूछा, उसने कोई जवाब नहीं दिया सिर्फ कराहने जैसी आवाज करती रही. मैंने आगे बढ़ कर उसका हाथ अपने हाथ में लिया, उसके सर पर हाथ फेरा. आधा-घंटे बाद उसने फिर आंखें खोलीं- तबीयत के बारे में पूछने पर अपने संकेत से बताया कि ठीक है. मैं आश्वस्त हुआ. नर्स चार्ट में कुछ लिखने लगी, उसने थर्मामीटर भी लगाया, यह सब देख कर मुझे तसल्ली -सी हो रही थी. दो-घंटे बाद जब मैं उठने की सोच रहा था, तब उसने बहुत आहिस्ते से पूछा——कोई चिट्ठी आयी है?

मैं चौंक सा-गया था. बोला——नहीं. पत्नी का आशय उन पत्रों से था जो उसकी तबीयत खराब होने की वजह से रिश्तेदारों के आते थे. उठने के पहले मैंने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा और काफी भरोसा दे कर चला गया.

घर आ कर मैंने सुस्मिता के पत्र को तह-दर-तह फाड़ कर कूड़ेदान में फेंक दिया और खाना खाने बैठ गया. सालों बाद मैं अपने को बहुत हलका महसूस कर रहा था. □□□

२२/५/२, रुस्तमजी स्ट्रीट, कलकत्ता–१९

एक लघुकथा

शिव ओम का छुरा

• रामसरूप अणखी

और फिर जब वह तबादले के बाद इस स्कूल में आयी थी, तो उसने शिव ओम मास्टर को फांस लिया था.

शिव ओम की जिंदगी में वह पहली औरत थी.

एक निश्चित समय तक ही वह किसी मर्द को अपने साथ संबंधित रखती . . . और फिर दूसरा मर्द . . . फिर तीसरा . .

शिवओम के लिए यह बहुत बड़ा हादसा था. वह तो पागल होता जा रहा था.

उसके पुराने यार भी कभी-कभी स्कूल आते. वह उन सबसे हंस कर मिलती, चाय पिलाती और कोई बहाना बना कर चलता करती. शिवओम को लगता, वह कितनी विशाल-हृदया है——लेकिन शारीरिक संबंध तो केवल उसीसे हैं.

लेकिन जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वह भी छोड़ दिया गया है तो वह पागल होता जा रहा था.

और फिर एक दिन शिवओम ने उसकी बगल में छुरा घोंप दिया था.

उस दिन के बाद से इस स्कूल में एक सहम-सा छा गया है. शिवओम तो सर्विस में रहा नहीं. लेकिन उसकी रूह बिखर कर हर मर्द में समा गयी है. हर अध्यापिका ने अपने-अपने प्यार को दोनों हाथों से थाम रखा है. शिवओम का छुरा हरेक की आंखों के सामने लटक रहा है. □

एक आधुनिक औरत की मौत

• स्वदेश दीपक

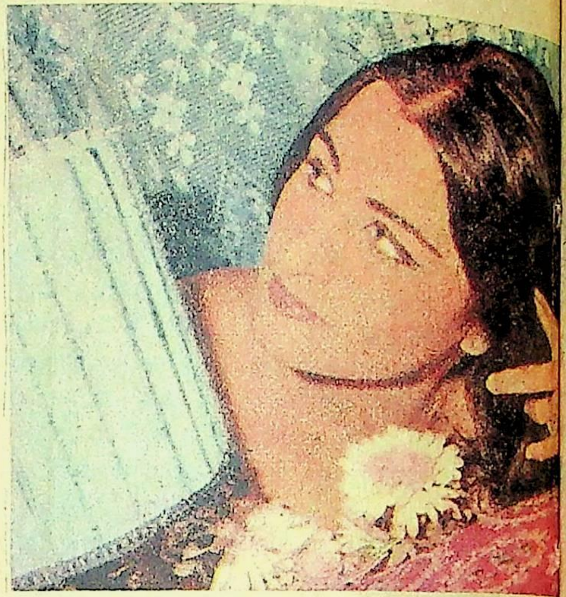

• प्रबोध मोदीवाला

दोपहर के बाद सो कर उठा ही था कि जितेंद्र आ गया. सबसे पहले उसने मेरे हाथ का चाय का प्याला ले कर, मेरी उंगलियों से जलता हुआ सिगरेट छीन कर पीना शुरू कर दिया. उसके बाल पहले से भी लंबे हो गये हैं. एक कान बालों से बिल्कुल ढक गया है. यही हाल रहा तो कुछ दिनों के बाद दूसरा कान भी दिखना बंद हो जायेगा. अब उसने चाय का प्याला खत्म करके नीचे रख दिया है. फिर उसने नजरें जमा कर मेरे चेहरे की ओर देखा और एक शरारती मुसकान उसकी आंखों में, होंठों पर कौंध गयी. आजकल कालेज में पढ़ाने से छुट्टियां हैं. जानता हूं लेट–लेट कर मैं और मेरा चेहरा कुछ मोटे-से हो गये हैं, मर गये हैं. जितेंद्र ने कहा––सुना भाई हलवाई, आजकल क्या लिखा जा रहा है? सच पूछ तो तेरे चेहरे को कोई देखे तो यही कहेगा कि वेल फेड हलवाई है. अपनी दुकान पर बैठा सारी मलाई खुद खा जाता है.

––देख ओये पंडित, नजर न लगा देना. बड़ी मुश्किल से वजन बढ़ाया है,

––छोड़ बेटे, क्यों मजाक करता है, मेरी सारी रेजिमेंट के जवान अगर लाईन में खड़े हो कर तुझे दो घंटे देखते रहें न तो भी तुझें नजर नहीं लगेगी.

हम दोनों हंस पड़ते हैं. जितेंद्र जब भी थोड़े वक्त के बाद मिलता है, पहली बात मेरी अच्छी होती हुई सेहत के बारे में होती है. वह खुद खूब-खूब हैल्दी है. लेकिन इस बात को वह भी टालरेट नहीं कर सका, स्वीकार नहीं सका कि हिंदुस्तान में कोई लेखक क्यों कर स्वस्थ हो सकता है. इस देश की धरती तो केवल फिल्मों में ही हीरे-मोती और सोना उगलती है.

––तू पंद्रह दिन कहां गुम रहा?

––बस जरा पाकिस्तान तक गया था.

––क्यों अब क्या हो गया? युद्ध तो बंद हो चुका है.

––राजे युद्ध तेरी कहानियों में बंद हो गया होगा. हमारे लिए तो अगर शत्रु की कोई भी सैनिक हलचल हो तो युद्ध होने का सिगनेल समझो.

जितेंद्र सेना में कैप्टन है. वह करता क्या है, इसका अंदाजा ही लगाना पड़ता है. परिचय हुआ था तो पहला ख्याल उसका लंबा पतला चेहरा, बड़े-बड़े बाल देख कर यही आया था कि चित्रकार होगा. वह अपने बारे में, अपने काम के बारे में बिल्कुल बात नहीं करता. काफी लंबे परिचय के बाद उसने बताया था कि शत्रु–क्षेत्र में कोई मील अंदर जा कर उसकी सैनिक गतिविधियों की टोह लेने का वह विशेषज्ञ है. तब मैंने पूछा था कि वह खाता-पीता क्या है, इतने दिन शत्रु-क्षेत्र में रह कर. उसने कहा था, की न हलवाइयों वाली बात. पहली फिक्र तुझे खाने-पीने की लगी है. अरे मैंने ब्रिटेन में जा कर कमांडो कोर्स किया है. जंगल में सांप, मेंढक, और कितने छोटे-मोटे जानवर होते हैं. मजे से जब जी चाहे, लंच-डिनर करो. बिल देने की भी कोई चिंता नहीं. यह सब जानने के बाद मुझे पता चला कि सेना वालों ने उसे लंबे-लंबे बाल क्यों रखने दिये हैं. अगर शत्रु-क्षेत्र में पकड़ा जाये तो सिविलियन दिखे, अपने आपको सिविलियन बताये और आराम से शत्रु-जेल में कई साल गुजार आये. सेना उसकी किसी प्रकार की जिम्मेदारी नहीं लेगी.

अब तक वह मेरे तीन सिगरेट खत्म कर चुका है.

––और बता? कोई शेर-चीते वाली कहानी लिखी कि नहीं.

मेरी कुछ कहानियों में जानवरों के प्रतीक जरा ज्यादा आ गये थे इसलिए जितेंद्र ने उन्हें शेर-चीते वाली कहानियों का नाम दे रखा है. सेना में होने के बावजूद भी हिंदी की कहानियां वह खूब जम कर पढ़ता है, उन्हें समझता है. मैं कोई जवाब नहीं देता. वह फिर कहता है–सुन, शाम को स्टैंडर्ड में आ जाना. और तीस-चालीस रुपये भी जेब में डालते आना. एक लड़की को खाने पर बुलाया है.

––लड़की? कौन लड़की? मुझे उससे क्या लेना है?

––बेटे, तुझे तो सिर्फ लिख देना है. लेना तो मुझे कुछ है हीं. हां, कहानियों पर रिसर्च कर रही है. पचास के बाद के लेखकों पर. दो चार लाइनें तुझ पर भी लिखना

चाहती है. मेरी मुलाकात चंडीगढ़ में हुई थी. बातों-बातों में तेरा जिक्र चल निकला. मैंने तुझे मिलाने के लिए उसे यहां बुला लिया.

—क्यों! कुछ काम बनने की उम्मीद है क्या? उस पर इतना प्रभाव जमाने की कोशिश कर रहा है.

—देखते जाओ. मैं टोह तो ले चुका हूं. दुश्मन कमजोर ही समझो. आज रात आक्रमण भी हो ही जाये शायद.

—ठीक है. तेरे लिए यह भी कर दूंगा. वह चंडीगढ से आयेगी कैसे?

—शर्मा अपनी कार में उसे लेता आयेगा.

—शर्मा? अब वह बीच में कहां से टपक पड़ा?

—उसी ने तो मुझे केतकी माथुर से मिलाया था. अच्छा, सात बजे पहुंच जाना. पैसे ले कर. सुन? मैं तेरे लिए सिगरेट लिये जा रहा हूं. तू और मंगवा लेना. और वह मेरी शिमला की डिब्बी उठा कर चलता बना.

तो उसका नाम केतकी है. मैं मन ही मन कुछ खूबसूरत वाक्य अपनी कहानियों के बारे में तराशने लग पड़ा. किसी सुप्त कोने में अच्छा भी लगा कि मेरा नाम थीसिस में आ जायेगा. . . .यह शर्मा के साथ उसकी जान-पहचान कैसे हो गयी? शर्मा एक सफल सेल्जमैन है दवाइयों का. जितेंद्र के साथ ही कालेज में पढ़ा है. हिंदी कहानियों के बारे में मेरी और जितेंद्र की बहसें सुनकर वह बोर हो गया था. इसलिए एक बार उसने तीन सौ रुपये की कहानियों की पुस्तकें खरीद कर पढ़ डालीं ताकि हमारी बातचीत में में वह भी हिस्सा ले सका करे. हम तीनों में वह ही कैपिटेलिस्ट है इसलिए शाम को होटल का बिल और खर्चा उसे ही देना पड़ता है. ऊपर से उसके अमीर होने की वजह से हम जी भर कर उसे गालियां भी दे लेते हैं. मैंने जिंदगी में ऐसा आदमी कभी नहीं देखा जिसे जितनी गालियां दो, बदले में उतना ही प्यार करता है.

● उमेश व्यास

शाम को मैं स्टैंडर्ड जानबूझ कर देर से पहुंचा. लंबे सोफे पर शर्मा, जितेंद्र बैठे थे और उनके बीच में केतकी. जितेंद्र ने मेरा उससे परिचय कराया. उसने मोटा-सा चश्मा पहन रखा है. क्षणभर को मेरी ओर रिसर्च वाली निगाह से देखा फिर हल्के-से 'हैलो' कहकर चुप हो गयी. मैंने डिब्बी से सिगरेट निकाला. शर्मा ने विदेशी सिगरेट का पैकेट मेरी ओर बढ़ा कर कहा—ले मेरे महान लेखक, क्यों सरदी में शिमला सिगरेट पीता है? आज इम्पोर्टेड सिगरेट पी और ऐश कर!

शर्मा में यह खूबी है कि माहौल को कभी भी भारी और गंभीर नहीं होने देता. उसके होते किसी प्रकार की लिट्रेरी बातचीत करना भी कठिन है. आजकल की कहानी पर बात हो रही होगी तो वह मोपासां की कहानियों को बीच में घसीट कर सब कुछ चौपट कर डालेगा, बहस का खून कर देगा.

केतकी ने भी एक सिगरेट निकाल कर जला ली है. होटल में बैठे दूसरे लोगों ने उसकी ओर चौंक कर देखा है. यह शहर सेना की छावनी होने के कारण ही महत्त्वपूर्ण है. औरतें अगर शराब पियें तो कुछ अजीब नहीं समझा जाता क्योंकि आर्मी और वायुसेना के अफसरों के साथ आयी औरतें अक्सर ड्राई जिन के दो-तीन पैग पी लिया करती हैं.

बेरा आर्डर लेने के लिए बड़ी देर से आसपास मंडरा रहा है. मैं, जितेंद्र और शर्मा रोज यहां आते हैं. उसे हमारी पसंद का पता है. बिना पूछे उन दोनों के लिए रम के लार्ज पैग और मेरे लिए चाय ले आया करता है. लेकिन आज लड़की को साथ देखकर आर्डर की प्रतीक्षा कर रहा है. मैंने उसे चाय का सेट लाने के लिए कहा. जितेंद्र ने बीच में टोक दिया—की न हलवाइयों वाली बात! तू चाय अपने लिए मंगवा. हम तीनों रम पियेंगे.

तभी केतकी मुझसे पूछती है—आप ड्रिंक नहीं करते?

—नहीं, मैंने जरा चिढ़ कर कहा, कोई लेखक अगर ड्रिंक न करे तो उसे इस बात की पूरी एक्स्पलेशेन देनी पड़ती है.

—कभी नहीं पी क्या?

मेरे बोलने से पहले शर्मा ने जवाब दिया—साला पीता था! तेरा जितना वजन है न केतकी, उतनी शराब पी चुका होगा. अब डाक्टरों ने डंडा दिखाया है तो मसीहा बन गया है.

उन तीनों ने पीनी शुरू कर दी है. केतकी ने रम का पहला घूंट भरा तो मैं उसका चेहरा देखता रहा. हिंदुस्तान की सबसे तेज शराब पीने पर उसका चेहरा क्या कड़वायेगा? लेकिन नहीं. बड़े आराम से वह लंबे-लंबे घूंट भर रही है. मैंने नोट किया कि उसकी आंखें धीरे-धीरे चश्मे के अंदर नहीं घूमतीं बल्कि छोटी-छोटी छलांगें लगा कर इधर-उधर जाती हैं. जितेंद्र ने तब उससे कहा– जो कुछ इस राईटर से पूछना है, पूछ लो. ताकि फिर आराम से काम की बातें की जा सकें.

अब वह संभल कर बैठ गयी है. शिकार पर उछलने से पहले बिल्ली की तरह. मुझे लगता है कि उसके रम पीने के कारण और मेरे कुछ न पीने के कारण एक अदृश्य-

सी टैंशन की दीवार हमारे बीच उठ रही है. उसने पहला सवाल गोली की तरह मेरी ओर दागा——आप कहानियां क्यों लिखते हैं?

सचमुच इस सवाल से मैं उखड़ गया. मैं उस जैसी समझदार लड़की से किसी अर्थयुक्त प्रश्न की आशा रखता था. जितेंद्र शायद सेंस कर गया है कि उसके सवाल का मैं बुरा मान गया हूं. शर्मा मुझसे जवाब देने को कहता है.

——बस लिखता हूं. मेरी मरजी. आप तो यूं सवाल कर रही हैं जैसे कोई थानेदार किसी चोर से कहे कि तुम चोरी क्यों करते हो?

वह पलभर अपनी कैंची जैसी आंखों से मेरी ओर एकटक देखती है. फिर गिलास उठा कर रम खत्म कर देती है.

——आप काम क्या करते हैं?

——तुझे बताया तो था, कालेज में पढ़ाता है. जितेंद्र ने कहा

——तभी, आपका सोचने का तरीका भी प्राध्यापकों जैसा है. यह मत करो, वह मत करो. आपको मुझे सिगरेट, शराब पीते देख कर शॉक लगा है. आप सोचते हैं, औरत सिर्फ वही है जो कहानियों, किस्सों में रहती है, वास करती है. आपने सोचा होगा कि मैं आपको पूजा की निगाह से देखूंगी. वह रबिश है. आज की औरत मॉडर्न है. आधुनिक है. वह टसवे बहाती हुई, गालों पर आंसुओं के नदी-नाले फैलाती हुई मर्दों के पीछे नहीं घूमती.

——चियर-चियर! शर्मा ने उसे शह दी, वैसे लगता है, कालेज की किसी डिबेट से कोई टुकड़ा काट कर तुम बोल गयी हो. हम पढ़ते थे तब अगर आधुनिक नारी पर बात होती थी तो लड़कियां इसी प्रकार की दलीलें दिया करती थीं.

——शर्मा यू आर ए रियल बास्टर्ड, वह खीझ कर बोली.

——आई डोंट नो. यह सवाल तुम मेरी मां से पूछना. शर्मा ने बिना परेशान हुए जवाब दिया. अब फिर वह आक्रमण की मुद्रा में मेरी ओर मुड़ी.

——आपकी वह कहानी जिसमें आपने चीते का प्रतीक लिया था, हम सबको बहुत अच्छी लगी. यूनिवर्सिटी में हम लोगों ने उस पर खूब बहस की लेकिन उसका अंत कमजोर था.

मैं जानता हूं, यह वह नहीं बोल रही. कोई उसका प्राध्यापक, आलोचक बोल रहा है जिसे हम नये लेखकों ने मिलकर यह खिताब दे रखा है कि हिंदुस्तान में केवल वही है जिसने आलोचना में चुटकलेबाजी आरंभ की है. आजकल उसका एक वाक्य बड़ा प्रसिद्ध है. मैंने खिचाव कम करने के लिए उसी आलोचक का वाक्य कोट किया.

——कहानी का आरंभ अंत है और अंत आरंभ.

उसने झटके के साथ गिलास नीचे रख दिया. उसे पता चल गया है कि उसी के हथियार से मैंने उस पर वार किया है.

——अरे ठीक से जबाब दे. क्या हठयोग के फारमूले बता रहा है! टेक हर सिरयसली. जानते हो, अलीगढ़ की गोल्ड मेडलिस्ट है. इसका डाक्टरेट का थीसिस पूरा ही समझो. साले तुझे इम्मार्टल कर देगी, जितेंद्र ने मुझे टोका.

मेरे जवाब देने से पहले ही शर्मा बोल पड़ा——अरे केतकी, तू अलीगढ़ की है. कमाल है. अच्छा तेरे पिताजी क्या करते हैं?

वह समझ रही है, शर्मा उसे बनाने की कोशिश कर रहा है. वह जवाब में सवाल पूछती है——अलीगढ़ की क्या चीज फेमस है?

——ताले! शर्मा ने झट से जवाब दिया.

——तो बस, मेरा बाप ताले बनाता है.

——अच्छा! फिर तो ठीक है. अपने बाप से कह न तेरे लिए भी मजबूत-सा ताला बना दे. चेस्टिटी-बेल्ट पर लगा लेना.

शर्मा की बात पर होटल में हंसी का एक गोला फूट गया. हंस केतकी भी रही थी लेकिन उसकी हंसी केवल मुंह से निकल रही थी, दिल से नहीं. मैंने शर्मा को टोका कि उसे ऐसी बेहया बातें नहीं करनी करनी चाहिये. जवाब केतकी ने दिया——मुझे डिफेंड करने की कोई नीड नहीं. तुम मर्द लोग अंदर से सब कमजोर होते हो. कमजोर और अर्थोडाक्स. अब अगर मैं सिर्फ एक आदमी के साथ शारीरिक संबंध रखूं तो तुम लोग मुझे 'अच्छी प्रेमिका' के नाम से पुकारोगे. अगर मैं उसे छोड़ कर किसी और के पास जाऊं, वही काम करूं, तो तुम लोग वेश्या और काल-गर्ल कहोगे. काम तो मैं वही एक-सा करती हूं.

——हियर-हियर! तूने इस लेखक की तो बोलती बंद कर दी, शर्मा ने केतकी को उकसाया. मैं जानता हूं, अब उसे मुझसे भिड़ा कर मजे लेना चाहता है.

——सुन शर्मा! मेरी साईड लेने की जरूरत नहीं. तू चाहे मुझे कार में घुमा, चाहे होटल में पिला, मैं तेरे साथ रात रहूंगी नहीं. और फिर मुझे बता, मैं तेरे साथ क्यों कर रात को रहूं? केतकी ने अब तक तीसरा पेग खत्म कर लिया है.

शर्मा ने बड़े फिल्मी अंदाज में जवाब दिया——मिस केतकी माथुर, तेरे मेरे साथ रात को रहने के कई रीजन हो सकते हैं. पहला रीजन तो यह है कि मैं हिंदुस्तान का सबसे बदसूरत और अगली आदमी हूं. मेरा कद पांच फुट, चार इंच हैं और वजन दो सौ दस पौंड. मुहल्ले की औरतें अपने बच्चे को मेरा नाम लेकर डराती हैं इसलिए मैं अपनी किस्म का अकेला, यूनीक आदमी हूं. दूसरा रीजन यह है कि मेरे ख्याल से तुम भी हिंदुस्तान की नहीं तो इस प्रांत की सबसे बदसूरत औरत हो. तुम्हारा माप क्या होगा? मेरे ख्याल से ४०–४०–४०. बस हम दोनों यूनीक हैं. इसलिए क्या हमारे दोनों के साथ सोने के लिए यह रीजन काफी नहीं? केतकी उसे घूर कर देखे जा रही है. शर्मा बड़े आराम से मुसकरा

रहा है.

जितेंद्र कहता है—सुन बे ड्रेकुला की औलाद! क्या किसी औरत को परेशान करने से, तंग करने से, तू सोचता है कि तू उसे मना सकता है, फंसा सकता है?

—बेटे, तू अपनी फौज की बातें ही किया कर. तुझे साईकालोजी से क्या लेना! मेरा सोचने का अपना तरीका मैंने तो शादी भी इसी तरह अपनी बीवी को फंसा कर, डरा कर ही की थी. तू क्या सोचता है, वर्ना मेरी मैरिज हो सकती थी क्या?

अब तक होटल से ग्राहक उठकर जा चुके हैं. होटल लगभग खाली है. मैनेजर और वेटर शायद हम लोगों के उठने की इंतजार में हैं. एक वेटर काऊंटर के साथ पीठ लगाये लगातार हमारी ओर देख रहा है. नया-नया आया है. हम लोगों को पहली बार देख रहा है. हमारी बातें उसे अजीब लग रही हैं.

केतकी जान गयी, शर्मा उसे बातों में हरा गया है. वह उससे भी ज्यादा आधुनिक सिद्ध हुआ है. अब उसे रम हिट कर चुकी है. वह बौखला रही है. जितेंद्र की ओर देखती है. वह वैसे ही तटस्थ बैठा है. मैं जानता हूं, जितेंद्र किसी का पक्ष नहीं लेगा.

यह शायद इंटेलिजेंस वालों की ट्रेनिंग का परिणाम है. वह हमेशा सब कुछ वाच करता है. खुद कहीं भी हिस्सा नहीं लेता किसी बात में. फिर परिणाम निकाल दिया करता है.

वह फिर मेरी ओर देखती है. शायद वह मुझे तीनों में सबसे कमजोर समझ लेती है. इस वक्त उसकी आंखें बिल्कुल सुरंग जैसी दिख रही हैं. काली स्याह, और धुंये, धुंध से भरी हुई. वह झगड़ने वाले अंदाज में मुझे कहती है—आप अपने आपको बहुत बड़ा लेखक समझते हैं!

जवाब शर्मा देता है. उसने आजकल कई कहानी लेखकों को पढ़ लिया है. शायद केतकी पर अपने साहित्यिक होने का प्रभाव डालना चाहता है—अरे यह अपने को प्रेमचंद और चेखव बनाने के सपने देखता है!

—अरे यह लोग प्रेमचंद्र का क्या मुकाबला करेंगे? वह तो साहित्य-सम्राट हैं. यह क्या अच्छी कहानियां लिखेगा. शेर-चीतों और मरी हुई चीजों के सिवा इसे दिखाई क्या देता है?

—आ गयी न टिपिकल हिंदी वालों की मीन और कमीनी बातों पर! तुम लोग प्रेमचंद से आगे बढ़ ही नहीं सकते. और जानती हो, फारेन में दुनिया की हर अच्छी कहानी पर फिल्में बनती हैं. तुम लोग आधुनिक बातें कर सकते हो. तुम्हारी मेंटल स्टेज अभी प्रेमचंद युग वाली ही है. सत्य का बोलबाला, झूठ का मुंह काला. आगे बढ़ने से, आगे सोचने से डर क्यों लग जाता है? इस वक्त क्या तुम्हारे अंदर चीता नहीं दहाड़ रहा है जो किसी न किसी का मुंह नोच लेना चाहता है? जितेंद्र ने धीमी लेकिन सर्द आवाज में कहा. जितेंद्र इसीलिए मेरे इतने करीब है कि वह सोचने में भी आधुनिक है, केवल बातें करने में नहीं. जिंदगी में सिर्फ साहित्य ही ऐसी चीज हैं जिसे वह सीरयसली ले सका है.

केतकी की आंखों की सुरंगें सुलग रही हैं. मुझे बुरा लगता है कि जितेंद्र को इतनी बड़ी बात नहीं करनी चाहिए थी. वह फिल्टर वाला सिगरेट मुंह में रखती है. हम नोट कर रहे हैं कि सिगरेट वह उल्टा लगा रही है, फिल्टर की ओर से सुलगा रही है.

वह वेटर जो काउंटर के पास खड़ा था, अब बिल्कुल केतकी के सोफे के सामने खड़ा हो कर उसे घूरे जा रहा है. जवान है, शायद नया-नया आया है. उसे मैनर्ज का पता नहीं.

केतकी की काली सुरंगों जैसी आंखें वेटर पर पड़ती हैं. उसे शायद अब पता चलता है कि वेटर बड़ी देर से वहां खड़ा उसे घूरे जा रहा है. वह सुलग रही है.

—यह तुम किस होटल में मुझे ले आये हो? ब्लडी, डर्टी पीपल. वेटर को इतनी तमीज भी नहीं. कैसे सामने खड़ा देखे जा रहा है!

—अरे, तुम्हें क्या कहता है! तुम्हारे लिए तो सब मर्द एक जैसे हैं. तुम तो आधुनिक हो, जितेंद्र ने कहा.

—जितेंद्र, प्लीज उसे हटा दो. मुझे बुरा लग रहा है!

—मैं कुछ नहीं कहता, जितेंद्र ने उसे, वेटर को, हम सबको वाच करते हुए कहा.

—तुम कावर्ड हो. डरपोक हो. एक औरत को प्रोटेक्ट नहीं कर सकते तो साथ किस दम पर लाये थे?

—अच्छा, तो तुम्हें भी प्रोटेक्शन की जरूरत है, जितेंद्र ने पूछा.

शर्मा शायद ऐसी ही मनोवैज्ञानिक स्थिति की तलाश में था. वह अपनी जगह से उठा. वेटर के सामने जा कर खड़ा हो गया. फिर उसने वेटर को कमीज के कॉलर से पकड़ा. उसे खींच कर अंदर, किचन के दरवाजे पर छोड़ आया. वह लौट कर अपनी जगह पर आ गया है.

केतकी बड़ी प्रशंसायुक्त आंखों से उसे देख रही है. और मैं फिर महसूस करता हूं, एक आधुनिक औरत की मेरे सामने मृत्यु हो गयी है. आधुनिकता पंख लगा कर उड़ गयी है, ओढ़ा हुआ लबादा उतर गया है. उसे भी साधारण मिडल-क्लास औरतों की तरह मर्द का संबल चाहिये. अब उसकी आंखों की सुरंगें सुलगनी बंद हो गयी हैं. केवल अंधेरा ही अंधेरा, गहरा, घना और अकेला वहां दिखाई दे रहा है. और अचानक बाकी सारी दुनिया मर गयी है. हम बाहर निकलते हैं. जितेंद्र अपना स्कूटर स्टार्ट करता है. शर्मा की कार स्टार्ट हो जाती है. केतकी पहले जितेंद्र के स्कूटर को देखती है, फिर शर्मा की कार को. फिर वह एक झटके से शर्मा की कार का दरवाजा खोल कर उसके पास जा बैठती है.

शर्मा शरारती अंदाज में कार के तीन छोटे-छोटे हार्न देता है, बजाता है. और उस अंधेरे में कार आगे सरक जाती है. □□□

अंग्रेजी विभाग, जी. एम. एन. कालेज,
अंबाला छावनी.

आत्मरचना (२७)

गर्दिश के दिन

•राजेंद्र यादव

जून, १९७२ से 'सारिका' में इस महत्वपूर्ण लेख-माला की शुरुआत हुई थी और अब तक आप इसमें हरिशंकर परसाई, शानी, से. रा. यात्री, राही मासूम रजा, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, चंद्रकांत बक्षी, शैलेश मटियानी, मधुकर गंगाधर, ईश्वर चंदर, शांतनु आचार्य, कृष्णा सोबती, मधुकर सिंह, इब्राहीम शरीफ, रवींद्रनाथ त्यागी, फिक्र तौंसवी, दामोदर सदन, हृदयेश, रामसरूप अणखी, एम. टी. वासुदेवन नायर, कृष्णप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, तथा रॉबिन शॉ पुष्प की आत्मरचनाएं पढ़ चुके हैं. तमाम संघर्षों, व्यक्तिगत तनावों और दुख-सुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है और साथ ही सामान्य व्यक्ति के रूप में किस तरह संघर्षरत रहती है—— इसी संघर्षशील यथार्थ का निरूपण करने वाली प्रख्यात लेखकों की आत्मरचनाएं इस स्तंभ के अंतर्गत दी जा रही हैं. इस अंक में पढ़िए प्रख्यात हिंदी कथा-लेखक राजेंद्र यादव की यह आत्मरचना जो अपने आप में स्वतंत्र कथा-रचना भी है. यादवजी ने इसका शीर्षक दिया है——'वहां तक पहुंचने की दौड़.'

● ●

बस, उस सामने वाली झाड़ी तक ही तो पहुंचना है...

उसे लगता है, इस बार वह काफी सुरक्षित जगह आ गया है. इस खेत को पार करते ही पगडंडी और फिर झाड़ियों का झुरमुट . . .वहीं बैठ कर वह कुछ देर सुस्तायेगा, तभी देखेगा कि गोलियों की खरोंचें, स्पलिंटर्स या टूटते मकानों के ईंट-पत्थर शरीर में कहां-कहां लगे हैं. अभी तक अपने बचे रहने पर आश्चर्य होता है. शायद कोई भी चीज किसी खतरनाक जगह नहीं लगी है, वरना वह तो वहीं ढेर हो जाता. उसने फिल्मों, टेलीविजन में देखा है. उपन्यास-कहानियों में पढ़ा है. और सुन-समझ कर ऐसा लगता है, जैसे उस सबको आंखों और चेतना से भोग भी चुका है: गोली या फटते गोलों के टुकड़े उछलते हैं, धूल-मिट्टी या दूसरी चीजों के परखचे उड़ते हैं और धुआं साफ होते-होते तो आदमी मलबे का ढूह रह जाता है. इस तरह मरने से पहले अपने शरीर को ऐंठते और मरोड़ खाते खुद कितनी स्पष्टता से जी चुका है. वह दौड़ रहा है, जाने कितने घंटों और युगों स दौड़ता रहा है और अभी भी उसे सामने की झाड़ी दीख रही है, निरंतर कम होती दूरी दीख रही है; इसीसे क्या यह साबित नहीं होता कि वह मरा नहीं है?

पर सुनते हैं, लड़ने और भागने के दौरान जो चोटें महसूस नहीं होतीं, वे बाद में जिंदगी भर टीसती रहती हैं. ऐसे समय तो एक ही उन्मत आवेश, एक ही उन्माद होता है, इस स्थिति से जैसे भी हो, बच निकलो. . . लेकिन इसके बाद गुजरी हुई स्थिति का बार-बार लौटता आतंक, शरीर और चेतना पर लगे घावों का नस-तोड़ दर्द, खुली आंखों में मंडराता संत्रास——आदमी सिर्फ चारपाई पर पड़ा पागलों की तरह चीखता और कराहता है. . . क्या वह भी इसी तरह असहाय और अपंग. . .कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि वह झाड़ी के नीचे बैठे और उठ ही न पाये . . .? या बैठते ही देखे कि चारों तरफ से हमलावरों ने उसे घेर लिया है और वह सिर्फ निरुपाय हो कर मौत के नंगे पंजों का अपनी तरफ बढ़ना देख रहा है?. . .तब इस 'गुड्डी' का क्या होगा? कहीं वह झाड़ी भी तो दुश्मन को छिपाये उसकी घात में नहीं बैठी? फिर किधर जायेगा?. . . .कोई-न-कोई रास्ता वहां भी निकलेगा—उसने अपने आपको समझाया.

पहले किसी तरह वहां तक पहुंचे तो सही——वह अपने आपसे बोला, और कंबल में लिपटे बंडल को उसने और भी जोर से छाती पर चिपका लिया——इस तरह कि उस पर दबाव न पड़े; और तब धिक्कार में उसने अपने आपको गाली दी; देखो, वह सिर्फ अपने बारे में सोच रहा है, अपने शरीर और जीवन की चिंता कर रहा है और गुड्डी की बात एकदम भूल ही गया है. लेकिन इस क्षण वह और गुड्डी अलग कहां हैं? बल्कि इस समय जिस स्थिति से गुजर रहा है, वह तो सिर्फ गुड्डी के ही लिए है. उसे अपने आपको नहीं, सिर्फ इस गुड्डी को सुरक्षित जगह पहुंचा देना है. . . किसी तरह इसे बचा ले, फिर भले ही झाड़ियों के नीचे ढेर हो जाये. . .मुन्नी, मैं अपने लिए नहीं, सिर्फ तेरे लिए भाग रहा हूं. . .यह बात वह गुड्डी का नाम ले कर कहना चाहता था, लेकिन अचानक लगा, जैसे उसका नाम ही भूल गया. . .अरे, यह क्या हुआ? वह चौंक कर सहसा ठिठक गया, इसका नाम मुझे क्यों नहीं याद आ रहा? उफ, क्या नाम है तेरा. . .? आयशा, मरियम, मीना. . .नहीं, नहीं. यह इसका नाम नहीं है. सचमुच ही अपनी बच्ची का नाम भूल गया क्या? कहीं उसकी याददाश्त तो एकदम नहीं खत्म हो गयी? अब, अच्छा, मेरा अपना, खुद का क्या नाम है? अभी-अभी कुछ हुआ जरूर है उसके साथ! लेकिन फिर उसने जोर से सिर को झटका दिया और दौड़ने लगा. . .नाम-वाम पीछे याद आते रहेंगे, पहले वहां पहुंचो. . .जैसे भी हो. . .

काश, वह झाड़ियों के भीतर जा कर पाये कि वहीं कोई और भी छिपा बैठा है. . .चौंक और डर कर वह वहां से भी भागने की बात सोचे और तभी लग कि वह एक औरत है. . .तब तो वह गुड्डी को उसे सौंप ही सकता है. हर औरत मां होती है. वह जरूर इसे बचा लेगी. पाल देगी. . .लेकिन दोनों को ही आगे या वहां किसी ने पकड़ लिया या मार दिया तो? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा. जो इस मार-धाड़, गोलाबारी और अंधाधुंध भाग-दौड़ में नहीं हुआ, वह वहां कैसे होगा? होना होता तो अभी तक हो जाता. अभी भी तो हो सकता है! और मान लो कि ऐसा चमत्कार हो कि वह औरत इसकी मां ही हो तो? वह तो शायद खुशी से वहीं मर जायेगी. . .अपनी गुड्डी को पाने की खुशी में जोर-जोर से रोने-धोने लगे तो? इन औरतों के साथ यही मुसीबत है. बहुत खुश होंगी तो रोयेंगी, बहुत दुखी होंगी तो रोयेंगी. . .वह कमबख्त उस वक्त हम तीनों को पकड़वा देगी. पहचानते ही मैं उसका मुंह दबा दूंगा. . . .

जरूर वहां झाड़ी के पीछे कोई चमत्कार उसकी प्रतीक्षा कर रहा है, हजारों बार की तरह फिर एक विश्वास उसके भीतर एटम-बम के धुएं जैसा कुकुरमुत्ते की शक्ल में आकार ग्रहण करता महसूस होता है. मान लो, ऐसा चमत्कार हो ही जाये और हम तीनों फिर से मिल जायें . . .? फिर तो दोनों मां-बेटी मिल कर मेरी इन खरोंचों, घावों और बाहरी-भीतरी चोटों को अपनी सेवा से संभाल लेंगी. . .भले ही वह फिर जिंदगी भर चारपाई से न उठ पाये. उसने देखा कि वह एकदम असहाय और असमर्थ पड़ा है और मां-बेटी चिंता से उसके आस-पास घूम रही हैं. कभी उसकी सेवा-सफाई करती हैं, कभी करवट बदलती हैं, कभी कुछ खिलाने-पिलाने के लिए सहारा दे कर उठाती हैं. . . गुड्डी पास बैठ कर उसे अखबार और किताबें सुनाती है, अपने और उसके बचने-भागने की पूरी कहानी विस्तार सुनती है, और भय, आतंक, आश्चर्य से आंखें फैल कि उस सबकी कल्पना करती है. सुनाते-सुनाते वह फिर इसी क्षण में लौट आता है. गुड्डी, मुझे तो विश्वास नहीं होता कि मैं तुझे लिये हुए इस सबसे गुजरा हूं. . .

★ ★

गुजरा कहां हूं, सुअर, गुजर रहा हूं! उसने अपने को झकझोर कर फिर वापस हांका. उल्लू के पट्ठे, यह समय भविष्य में जीने का नहीं, इस क्षण को पार कर लेन का है, दहकते अंगारों की इस पट्टी को फलांग कर दूसरी तरफ चले जाने का है. मान लो, आज या कल इस स्थिति से बच कर निकल भी गया तो क्या इसी बीच गुड्डी इतनी बड़ी हो जायगी कि सेवा करते हुए तुम्हारी चारपाई के आस-पास घूमे? या बैठ कर कहानियां सुने-सुनाये? डेढ़-साल की बच्ची, अभी पूरे वाक्य तो बोल नहीं पाती. . .कभी-कभी यह साली कल्पना भी कैसी प्रखर हो जाती है! कल्पना नहीं, सिर्फ इस क्षण से छूट भागने का बहाना. गुड्डी तो वह है जो इस फट कर चिथड़ा हो गये कंबल में लिपटी तुम्हारे हाथ में है. . . पता नहीं, इसमें लिपटी सांस भी ले पा रही है या नहीं. बेहोश तो जरूर हो गयी है. . . .कहीं एकदम ही. . . और वह याद करने की कोशिश करने लगा कि घर से भागते हुए जब चौखट गिरी थी तो उसे मैंने अपनी बाहों और कंधों पर ही तो झेला था, गुड्डी को चोट कहां लगने दी थी? कंधे से ले कर कुहनी तक बायां हाथ बहुत दर्द कर रहा है. कपड़े और खाल फटने की तो कोई चिंता नहीं, कहीं हड्डी न टूट-टाट गयी हो. . .अभी नहीं, अभी नहीं—उसी झाड़ी के नीचे बैठ कर देखूंगा कि क्या टूटा है, क्या बचा है. . .वहां बैठ कर वह जरूर सुरक्षित सांस ले सकेगा. . . . .इस अंधी और दिशाहीन दौड़ को समाप्त करके सोचेगा कि आगे क्या करना है. काश, उसे जरा दम लेने का मौका मिल जाये. . . बस, फिर तो पचास मील आगे और दौड़ लेगा. . .

लेकिन वहां से भी अगर पिछली दर्जनों बार की तरह भागना पड़ा तो? पता नहीं, कितनी बार उसे लगा है कि उस दीवार की आड़ में सुरक्षा है, उस मोड़ को पार कर ले तो खतरे से बाहर हो जायेगा! इस गली के पास ही तो पुरानी इमारत का खंडहर है, उससे लगा कब्रिस्तान है, वहां जरूर सांस ले सकने की गुंजाइश मिलेगी. लेकिन हर जगह ही तो खतरा उसे और बड़ा हो कर मिला है—खूंखार, पागल भेड़िये की तरह उस पर झपट्टा मारने को तैयार. . . . .कहीं उसे बहुत पास ही बूटों और लोगों के भागने की भारी धमकती हुई आवाजें मिली हैं, कहीं पहले से ही कराह कर दम तोड़ते कटे-फटे, सुरक्षा की खोज में भागे हुए उसी जैसे लोग मिले हैं, और कहीं उसके पहुंचने से पहले ही आकाश-पाताल को फोड़ने वाले धमाके हुए हैं. और सब कुछ खूनी कौंध के साथ आंख-फोड़ विस्फोट से टुकड़े-टुकड़ों में बिखर गया है. तब हर बार उसने गनीमत की सांस छोड़ कर सोचा है, अच्छा हुआ वहां नहीं था. वरना. . .बचपन में उसने बनैले सुअर

को मारे जाते देखा था. . .चारों ओर से लोग भाले, गंडासे, कुल्हाड़ियां और डंडे लिये दौड़ते थे, ढोल बजाते, चीखते, पुकारते, हांकें लगाते. . .कभी-कभी तो फेंके हुए भाले की पूरी फाल पेट में लिये-लिये ही सुअर दौड़ता था. . .भाले के पीछे घिसटते डंडे के साथ खून की धार छोड़ता हुआ, चिचियाता और चीखता हुआ. . .

समझ में नहीं आता, कौन हैं जो यों एक-एक घर को फूंक रहे हैं, सभी कुछ तोड़े-फ़ोड़े और तहस-नहस किये जा रहे हैं? कभी-कभी उसे लगता है जैसे माहौल में 'हर हर महादेव' और 'अल्लाहो अकबर' का शोर हो रहा है. तो कभी लगता है जैसे हमलावरों में जनेऊ और भारी मूंछों वाले लोग हैं जो दहाड़ रहे हैं : नीच, कमीनो! ठाकुरों और ब्राह्मणों की बराबरी करोगे. . .हम एक-एक घर फूंक देंगे. . .बच्चे-बच्चे को चीर देंगे. . .कभी कहीं से सुनायी देता है : साला जनखा, बंगाली—हम पंजाबियों और पठानों के मुंह लगता है, तेरे काजी नजरुस्सलाम और मुजीब की मां . . .नहीं, नहीं, ये सब तो बहुत पुरानी पढ़ी-सुनी अखबारी बातें उसे याद आ रही हैं. . .यह तो कोई और ही आफत है. शायद कुछ लोग कह रहे थे, शहर को दुश्मनों ने चारों तरफ से घेर लिया है, यह उन्हीं का हमला है. . .एक-एक घर की ईंट बजा देंगे . . .या शायद कोई यह भी कह रहा था कि अपनी ही हारी हुई फौजें पीछे भाग रही हैं. सब जानते हैं, हारी हुई फौजें, हमलावर फौजों से ज्यादा खूंखार होती हैं. वे अपने ही शहर, फैक्टरियां और पुल उड़ाती हैं. अपने ही रसद और हथियारों के गोदामों को आग लगाती हैं, फसलें, खेत, दूकानें जला कर फूंक देती हैं और अगर बची रहीं तो अगले दिन मुनादी करा देती हैं, यह सब दुश्मन ने किया है. . .दुश्मन की फौजें अपने जैसे कपड़ों और निशानों में आयी थीं. . . हां-हां, हमारे लिए तो 'दुश्मन' ही हैं, 'जीत की योजनाओं' में मारे जाते हों, या 'हार के बचाव में. . .' मरना तो हमें ही है, हमारे तो दोनों ही दुश्मन हैं. सरहदों पर बैठे हुए, या सरहद बनाने वाले. शहरों, खेतों, या पुलों की भी कैसी बदकिस्मती है. . .हर हालत में रौंदा उन्हें ही जाना है. . . लेकिन आज स्थायी सरहद रह कहां गयी है? हारे हुओं की सरहद क्या होती है? चाहे कितने पीछे सरकते जाओ, फुफकारते अजगर-सी सरहद उतनी ही पीछे दौड़ती आती है. . .

मगर कहीं कोई दीखे, या पहचान में आये तो कम-से-कम यह तो समझ में आये कि दुश्मन है कौन! अपने 'दुश्मन' हैं या बाहरी? यह भी तो याद नहीं आ रहा कि यह लड़ाई कब शुरू हुई थी, किन-किन के बीच शुरू हुई थी. अब तो चीजें कुछ-कुछ दीखती हैं, वरना जब 'हमला' हुआ था, तब तो बहुत ही अजीब हालत थी. आसमान में छाया हुआ गाढ़ा-गाढ़ा धुआं, बीच-बीच में इधर से उधर उछाली जाती या फेंकी हुई टूटी-फूटी चीजें. . .किवाड़,कुर्सियां, शहतीरें या शरीर के हिस्से. . . लेकिन सबसे ऊपर एक-दूसरे के पीछे दौड़ते काले धब्बों और चकत्तों की शक्ल में निरंतर और लगातार गूंजता एकरस शोर. . .पता नहीं चलता था कि यह शोर टैंकों, मोटर-गाड़ियों, हवाई-जहाजों का था या माहौल में गूंजती चीख-पुकार, नारों और दहाड़ों का मिला-जुला गड्मड् शोर था. . .कभी बहुत ही पास, कभी कहीं बहुत दूर गूंजते धमाके और धड़-धड़, भड़-भड़ की कराहों के साथ गिरते मकान, फाटक, मीनारें या परकोटे की दीवारें. . .ऐसे में कोई किसे पहचाने? गौर से किसी भी चीज को दखने की फुरसत किसे है? सिर्फ ऐसा लगता था जैसे दिमाग में किसी भारी चक्की का इंजन चल रहा है और उसे बंद करने का स्विच टूट गया है : देखते रहो, कुछ पता ही नहीं चलता कि आखिर देख क्या रहे हो. मानो दूसरी और चीजों की तरह देखने और समझने को जोड़े रखने वाले सारे तारों को किसी ने डायनामाइट से उड़ा दिया है, और वहां सिर्फ लगातार गूंजती मशीनी थर्राहट और सांय-सांय गोलियों-सा गुजरता कुछ है. . . जो मौत को देख कर डरे हुए कुत्ते-सा रिरियाता-भौंकता है. भागो-भागो, यह जगह ठीक नहीं है, इस जगह खतरा है; यहां से भागो. देखो, उधर से कोई आ रहा है. उस दीवार के पीछे बंदूक की नली-सा कुछ दीखता है. . .धांय की आवाज के साथ ही चीख कर कोई लुढ़क जाता है. . .कहीं भी जाओ, किसी की भी आड़ लो, लेकिन यहां से भागो. . .

* *

हर क्षण लगता है, यहां नहीं, वहां. . .वहां नहीं, उधर. बिना चेहरे के कुछ लोग हैं; लेकिन दहकते शोलों-सी आंखें हैं, हाथों में खून-सनी संगीनें लिये दल-के-दल पीछा कर रहे हैं, इधर से उधर दौड़ रहे हैं. लोग नहीं, सिर्फ संगीनें, आंखें और भारी-भारी बूट हैं जो धमाधम हर गली, हर मोड़, हर दरवाजे और हर चौराहे पर खड़े हैं. . .कुछ लाइन लगा कर सीढ़ियों पर चढ़-उतर रहे हैं, कुछ निशानों की ताक में खिड़कियों से झांक रहे हैं. घिर गया हूं. . .घिर गया हूं.. . .अब कोई बचाव नहीं है, अपने आप से वह कहना चाहता है, लेकिन सिर्फ एक रिरियाहट भीतर से उभरती लगती है. क्या कोई उसे अपने लिए नहीं, अपने लिए कतई नहीं, बस सिर्फ इसलिए माफ नहीं करेगा कि वह निरीह, निरपराध बच्ची को बचाने के लिए ही भाग रहा है. . . वह न कुछ चुरा कर भाग रहा है, न उसका इरादा किसी को नुकसान पहुंचाने का है. चेहरों पर इन लोगों ने चढ़ा क्या रखा है? किसी का अलग से कोई नाक-नक्श पहचान में ही नहीं आता, सब एक जैसा थोबड़ा चढ़ाये हैं. अगर इस तरह के ढाटे न बांधे होते तो हो सकता है किसी को पहचान ही लेता. . .हो सकता है उनमें कोई उसका परिचित होता. सभी तो बाहर से आये हुए नहीं होंगे. . .कुछ तो यहीं के, हो सकता है, उनके पास-पड़ोसी ही हों, और उसे जानते हों. मगर यह पता कैसे लगे?. . .मान लो, इधर-उधर से, सामने-पीछे से आंखों, संगीनों, भालों-गंडासों और बूटों का एक झुंड अचानक घेर लेता है, तो वह क्या करेगा? कंबल लिपटे बंडल को आगे बढ़ा कर घिघियाते हुए भीख मांगेगा : भाइयो, मुझे मत मारो, मैं अपने लिए नहीं, इस बच्ची के लिए इधर से उधर जान बचाता भाग

रहा हूं, इस पर रहम करो. . .इसने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा. . .बिगाड़ा मैंने भी नहीं है, लेकिन इसे तो अभी कुछ भी करने-न करने का मौका ही नहीं मिला. . .लेकिन वे लोग उसकी गिड़गिड़ाहट सुनेंगे? उसकी बात का विश्वास करेंगे?. . .नहीं, उनमें से एक संगीन या बर्छी झपट कर उससे बंडल छीन लेगी और फिर वे उसके सामने ही उसे गेंद की तरह इधर से उधर उछालेंगे. . .संगीनों और भालों पर लोकेंगे. . .कुछ देर वे मनोरंजन करेंगे और फिर धांय की एक आवाज के साथ सभी कुछ समाप्त हो जायेगा. . .

और इस भयानक कल्पना के बाद वह और भी बेतहाशा भागा है. कहीं यह कल्पना एक चालाकी ही तो नहीं है––एक हलका-सा सवाल उसके भीतर उठा है; क्या ऐसा तो नहीं है कि वह भीतर से जानता है कि गुड्डी मर चुकी है, अब उसको दिखा कर, हमलावरों की दया उभार कर वह अपने-आपको बचा लेना चाहता है? . . .अपनी जान बचाने के लिए गुड्डी की लाश का इस्तेमाल कर रहा है? इस प्रश्न ने उसे भीतर तिलमिला जरूर दिया था. . .लेकिन भागने में कहीं कोई ढील नहीं आयी थी. उसकी दौड़ और जोर से जारी रही. . .कभी लेट कर जमीन पर घिसटते हुए, कभी घुटनों के बल, और कभी तीर की तरह. . .सिर्फ एक जगह, अंधेरी-सी गली में, मलबे और कूड़े के ढेर के पीछे उसे पल भर का अवसर मिला था. उसने बंडल जमीन पर रख कर थरथराते हाथों से कमीज उतार डाली थी, उसकी बांहें फाड़ डाली थीं, कमीज फिर से पहन कर बंडल छाती से चिपकाया था और ऊपर-नीचे बांहों को रस्सियों की तरह बांध लिया था ताकि बंडल कमीज के अंदर और ऊपर-नीचे से सुरक्षित रहे. बड़ी अजीब, सुखद, सांत्वना देती-सी गर्मी उसे छाती पर महसूस होती रही थी. और इस तरह उसके दोनों हाथ खाली हो गये थे. लेकिन भागते हुए वह दोनों हाथ वहां रख कर बंडल को साध लेता था. जमीन पर रेंगते हुए, उसे बचा कर कुहनियों और घुटनों के बल सरकता था और उसे हर समय लगता रहता था जैसे ऊपर और नीचे पेटियों की तरह कसी कमीज की बांहें ढीली हो गयी हैं और बंडल अब सरक कर गिरने ही वाला है. . .नहीं, वह उसे गिरने नहीं देगा. जैसे भी हो, उसे तो कहीं बचाव की जगह पहुंचा ही देना है (काश, आदमी के पास भी कंगारू की तरह की ऐसे अवसरों के लिए एक थैली होती. . .) शायद इस तरह अलग शब्दों में वह सोचता भी नहीं था: उसकी संपूर्ण चेतना में समायी हुई निश्शब्द और अनकही स्थिति ही यही थी. . .लेकिन इसके साथ ही दो बातें और दिमाग में आयी थीं. हाथ में, सामने, बच्ची रहती है तो हमला करने वाला एक बार सोचता है. हो सकता है वह खुद भी बाल-बच्चों वाला हो और अपने भीतर दया महसूस करे. . .अब तो किसी को कुछ पता ही नहीं चलेगा कि उसके पास कोई बहुत नाजुक, नन्हीं-सी, धड़कती जान है. फूली हुई कमीज के भीतर तो कुछ भी हो सकता है, चुरा कर उठायी हुई चीज, कोई कीमती सामान, या दूसरों को मारने के लिए कोई गोला-बारूद, या दुश्मन की खबर कहीं अपनों तक पहुंचाने के लिए वायरलेस-सेट. . .यानी इससे खतरा और बढ़ गया है. दूसरी बात पर उसने खुद अपने आपको धिक्कारा. . . बच्ची मर तो गयी ही है, बेजान शरीर और मिट्टी के ढेले में फर्क क्या है? अगर किसी ने सामने से संगीन, भाला या ऐसी ही कोई चीज मारी तो हो सकता है उसके अपने शरीर तक पहुंच ही न पाये. . .लेकिन इस विचार के साथ ही ग्लानि का एक ऐसा ज्वार उसे अपने भीतर उमड़ता लगा कि मन हुआ, वहीं ढह कर बैठ जाये और चीख-चीख कर पुकारे : आओ, आओ, मुझे मारो, मारो, मुझे गोद दो, संगीनों और गंडासों से मेरी बोटी-बोटी काट डालो. मेरे पास बचाने के लिए कुछ है, इस बात पर बिल्कुल रहम मत करो. . .तुम्हें कसम है जो मेरा रेशा-रेशा न बिखेर दो. . .मैं नीच, कायर, इसे भी इस्तेमाल करना चाहता था. . .इसे. . . मेरे ऊपर थूको, रहम दिलो. . .!

पता नहीं, कितनी बार यह बात उसके मन में आयी कि इस आतंक और तनाव के नस-नस तोड़ देने वाले दबाव को वह कितनी देर और बर्दाश्त करेगा? क्यों नहीं यहां पड़ कर दम तोड़ देता? क्यों नहीं लोगों के सामने जा कर भीख मांगता : मेरे ऊपर दया करो. मुझे मार दो. . .इस अंधी दौड़ से मैं तंग आ गया हूं, जहां न कोई बचाव है, न रास्ता, न मौत है, न भागने की दिशा. . . तुम्हारे हाथ की जरा-सी हरकत से मैं मुक्त हो जाऊंगा. . .मुझे जिंदगी नहीं, सिर्फ इस यातना से मुक्ति चाहिए. . .इस संत्रास से खींच कर मुझे बाहर निकाल दो. . .मैं तुम्हारा बहुत-बहुत शुक्रगुजार रहूंगा. बहुत बार तो सचमुच उसे खुद डर लगा कि कहीं वह ऐसा कर ही न डाले और अपने को ले जा कर उनके सामने न फेंक दे––या पुकार कर उन्हें ही न बुला ले. . .नहीं जानता, उसे ऐन मौके पर कौन रोक लेता था––अपनी कायरता या इस . . .इस गुड्डी को बचाने की इच्छा. . . .

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद जिन कथाकारों ने हिंदी कथा-लेखन को नयी दिशाएं दीं और कहानी को रोमांसवादी प्रवृत्तियों से निकाल कर उसे यथार्थवादी परिवेश से जोड़ा, उन कथाकारों में राजेंद्र यादव का नाम अग्रिम पंक्ति में आता है. 'नयी कहानी' आंदोलन के प्रणेताओं में इनका स्थान प्रमुख है. विशिष्ट कृतियां हैं –– 'जहां लक्ष्मी कैद है,' 'छोटे-छोटे ताजमहल', 'अपने पार', 'टूटना और अन्य कहानियां' (कहानी-संग्रह); 'उखड़े हुए लोग', 'सारा आकाश', 'मंत्र-बिद्ध', 'कुलटा' (उपन्यास); 'एक दुनिया समानांतर' (संपादित कहानी-संग्रह) आदि.

उसे लगता है जैसे एक अंध-विश्वास उसके भीतर, उसके अस्तित्व में, समाया हुआ है––वह अब तक बच और भाग इसीलिए पा रहा है कि उसके पास यह 'बंडल'

है! वरना ऐसे हालात में, उसके यूं बचे रहने का, इधर से उधर भागने की जी-तोड़ कोशिश या अपने भीतर उस शक्ति को पाने का कोई कारण है? उसके भीतर मर-मर कर जीता हुआ यह बल इस 'बंडल' के साथ होने का है, या इस अनकहे निर्णय या कसम का कि यह है, तो इसे बचाना ही है? हर कसम क्या मुक्का तान कर ही खायी जाती है? कुछ कसमें, आपके अनचाहे-अनजाने आपके अस्तित्व में अपने आप एक रूप नहीं ले लेतीं? बल्कि वह कसम और आप अलग नहीं होते. . .ऐसे संकटों में तो कसम है, इसीलिए आप होते हैं. चूंकि यह कसम शब्दों का आकार दे कर आपके 'होने' से अलग नहीं कर दी जाती, इसलिए 'अंध-विश्वास' जैसी लगती है. . .

पता नहीं, कितनी बार उसे लगा है कि अब उससे एक इंच नहीं सरका जायेगा, अगला पांव उठा सकना असंभव है, लेकिन कोई है जो उसे पीछे से धकेल देता है—सामने से खींच लेता है! गुड्डी के नाम पर वह एक बेजान बोझ को व्यर्थ ही तो नहीं ढोये फिर रहा? कई बार उसने अपने से पूछा है. इसमें अब कुछ नहीं रखा, इसे एक तरफ फेंको और हलके हो कर देखो, इस स्थिति में क्या हो सकता है. मगर फिर फौरन ही दूसरी आवाज उभरती है, मरी नहीं है, मरी नहीं है, सिर्फ बेहोश हो गयी है. मर गयी होती तो उसकी सारी शक्ति उसी क्षण चुक गयी होती. . . उसके भीतर की यह शक्ति, उसे बचाने की यह आस्था गुड्डी ही तो दे रही है, उसकी अपनी तो नहीं है, कहीं और से ही आ रही है. एक बार तो शायद ऐसा हुआ भी था (देखो, साथ-साथ घटित होती हुई बातों को वह कैसे भूलता चलता है, पता ही नहीं कि हुआ था या सिर्फ सोचा था!) कि टूटे हुए किवाड़ के नीचे उसने बहुत आहिस्ता से बंडल सरका दिया था, और वह अपने को तोड़ कर वहां से हट आया था. पर फिर उसे लगा, इतने मलबे, लाशों में आज नहीं तो कल, कुत्ते-बिल्ली जरूर अपना भोजन तलाश करेंगे. कौन छोड़ देगा इस मुलायम और स्वादिष्ट भोजन को? दूर ओट से खड़े हो कर गठरी को ताकते हुए उसे लगा था जैसे उसमें हलकी-सी जुंबिश हुई है. और फिर उससे रहा नहीं गया. दुगने वेग और आवेग से उसे उठा कर उसे छाती से चिपका लिया और तब आसपास के प्रति झटके से संयत हो कर एक तरफ भागा. . .

★ ★

अपने आप पर उसे बेहद आश्चर्य भी होता है: इतना प्यार, इतना लगाव और गुड्डी को बचा लेने की ऐसी अदमनीय, उद्दाम भावना उसके भीतर कहां छिपी थी? यह सही है कि 'बाप' होने के बाद उसने अपने भीतर ऐसे अनेक परिवर्तन पाये थे, जिनकी उसने कल्पना भी नहीं की थी. लोगों के प्रति उसका रवैया कुछ अजीब ढंग से कोमल हो गया था. पहले वह चीजों और बातों को सिर्फ अपनी निगाह से ही देखता था, निर्द्वंद्व और लापरवाह था, लेकिन गुड्डी के बाद ऐसा नहीं कर पाता था. जैसे उसकी कल्पना-शक्ति एकदम उर्वर हो गयी थी. पहले वह लोगों और स्थितियों को सिर्फ इकहरा और इकलौता देखता था; अब उनके पीछे बहुत कुछ दीखने लगा था. हर व्यक्ति जैसे एक झरोखा था और उसके पार वह एक निहायत परिचित, अपने जैसे संसार को देखता था, कहीं उसमें हिस्सा लेता था. उसके साथ उसका अतीत और भविष्य भी दीखता था. हर बच्चे के पीछे कहीं एक छोटा-सा घर, उसके मां-बाप, भाई-बहन दीखते थे. अपने इस बदलाव से वह भीतर ऐसा भरा-भरा महसूस करता था, कि खुद-ब-खुद उसका मन कुछ भला और अच्छा करने को करता; खराब और बुरा करने की बात सोचते ही कोई उसका हाथ पकड़ लेता. शरीर-विज्ञान की यह मशीनी बायलॉजिकल प्रक्रिया और उसका परिणाम इस तरह के आध्यात्मिक और भौतिक कायाकल्प करती है, जैसे इस अनुभूति ने भीतर से उसे बहुत समृद्ध और उदात्त कर दिया था. बाप होना सिर्फ एक घटना नहीं, मानसिक जीवन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण मोड़ है, इस पर उसका मन घंटों बोलने को करता, लेकिन जब बोलने लगता तो खुद कानों को वे बातें वैसी ही साधारण और रोजमर्रा की लगतीं, जैसी सब लोग बोलते हैं. तब वह झेंप जाता. अकसर झुंझलाता भी कि ये झिझक, झेंप, आगा-पीछा सोचना, हर चीज को दूसरों की निगाह से देखना, जाने कितनी फालतू किस्म की बीमारियां उसे लग गयी थीं, जिन्हें पहले उसने कभी नहीं जाना. घर से बाहर निकलता तो गुड्डी मानो एक तार उससे बांध देती. वह कहीं भी रहता, उस तार का खिंचाव लगातार महसूस होता रहता.

हालांकि एक अफसोस भी उसे कम नहीं था: सारे दिन में उसके साथ बिताने के लिए मुश्किल से घंटा-आध घंटा निकाल पाता होगा. हर क्षण एक चीज को महसूस करते रहना और सबसे कट कर केवल उसी के साथ होना दो अलग बातें हैं. . . वही अपने काम, इधर-उधर की भाग-दौड़, दोस्त, राजनीति, या अपनी ही योजनाओं में उसके पास घर के लिए समय ही कहां होता था! —यह सारे समय तुम्हारे लिए ही टुकुर-टुकुर देखती है, जब तक आते हो, थक कर सो जाती है! उसकी मां शिकायत करती. और तब अपने सारे मानसिक कायाकल्प के बावजूद वह अपने आपसे सीधा सवाल पूछ लेता: सचमुच, उसके मन में पिता जैसी कोई भावना भी है, या सिर्फ उसने एक भ्रम पाल लिया है? गुड्डी की मां तो आरोप करती ही थी, लेकिन वह खुद शंका करता था कि क्या सचमुच 'बाप' जैसी कोई भावना उसमें है भी? दूसरों को देख कर यह बात और शिद्दत से उठती: कैसे वे बच्चों को ले कर दुलराते हैं, बातें करते हैं, अकसर उन्हीं के बारे में बोलते रहते हैं, घंटों का समय निकाल कर उनके साथ खेलते-घूमते हैं, और तब अपने को धिक्कारता कि वह अपनी बच्ची के बारे में इस तरह क्यों नहीं बोल पाता? वह यही मान कर क्यों संतुष्ट और शांत रहता है कि गुड्डी है और घर में खेल रही है? औरों जैसा उसके भीतर वह सब कुछ क्यों नहीं उमड़ता? जरूर उसकी बनावट में कुछ कसर है, वरना ये सारी इच्छाएं तो बहुत स्वाभाविक हैं. लेकिन अब अचानक ही यह प्यार, यह अपने आपको झोंक कर गुड्डी को बचा

लेने वाला 'बाप' उसके भीतर कहां से फूट कर बाहर निकल आया है? और इस समय तो ऐसा लगता है, जैसे वह क्षणों और टुकड़ों में नहीं, अपने पोर-पोर में, अपनी संपूर्णता में मुजस्सिम बाप है. हो सकता है, इस क्षण को पार करके वह बच जाये. किसी तरह इसे बचा ले, सब कुछ पहले जैसा शांत और व्यवस्थित हो जाये, कहीं से पत्नी भी सुरक्षित आ मिले और सारा जीवन पहले की तरह चल निकले, तब क्या वह फिर से अपनी उसी दुनिया में नहीं लौट जायेगा? वही जीने और जीविका की समस्या, वही दोस्तों और देश की राजनीति, वही सुबह से शाम तक की भागदौड़, वही रात देर-देर से आना. . . शायद उन सब में उलझ कर, दिन के चौबीस घंटों में उसे कभी खयाल भी नहीं आयेगा कि वह 'बाप' भी है, उसकी एक बच्ची भी है. है तो है, उसके लिए क्या चौबीस घंटे गले में तख्ती लटका कर घूमता रहे?. . . यह सही है कि इन भीषण क्षणों से गुजर कर ऐसी लापरवाही तो वह नहीं दिखा पायेगा, लेकिन इस क्षण, काश, 'वह' औरत देखती कि कैसे मैं अपने रेशे-रेशे से 'बाप' हूं! उसे अपने पर गर्व हुआ और न जाने किन अदृश्य लोगों को संबोधित करके उसने कहा—— गधो, चौबीस घंटे अपने को बाप-बाप कहना, बच्चों से खिलवाड़ करके अपने को ताजा कर लेना——तुम्हारा अपना अहंकार और स्वार्थ है! जब तुम बच्चों के प्रथम आने पर, इनाम जीतने पर, लोगों को चकित कर देने वाली प्रतिभा या कला पर फूल कर उनके साथ तस्वीरें खिचवाते हो, उस समय तुम 'बाप' बिलकुल नहीं होते, बाप का गौरव भोगते उस समय निहायत स्वार्थी और दंभी व्यक्ति होते हो, और बच्चे का 'कमाल' तुम्हारे इस दंभ को सींचने का बहाना होता है! वह सिर्फ खाद होता है, जिसे खा कर तुम पौधे की तरह इठलाते हो. उस समय तुम बच्चे पर गर्व नहीं करते——तुम्हें सामाजिक प्रतिष्ठा देने का एक जीवित माध्यम तुम्हारे अपने पास है, इस पर गर्व करते हो. . . मूर्खो, आदमी 'बाप' जिंदगी के सिर्फ ऐसे ही कुछ क्षणों में होता है——संपूर्ण और अखंडित. . . ठीक उन्हीं क्षणों में जब औरों के लिए वह बिल्कुल 'बाप' नहीं होता...

* *

लेकिन बिना किसी द्वंद्व, शंका या दुविधा के क्या ठीक ऐसा ही उसके साथ नहीं हुआ है? क्या उसके मन में इस स्थिति से बचने की बात नहीं आयी थी? जब पागलों की तरह सायरन चीखा था और माहौल में जैसे हजारों घंटे-घड़ियाल बजने लगे थे, विराट चक्की चलने का शोर चारों तरफ गूंजने लगा था——उस समय उसने क्या एकदम वैसा ही व्यवहार किया था जैसा इस क्षण सोच रहा है? तब क्या वह बौखलाया-सा, घबराया, छिपने की तलाश करता इस कमरे से उस कमरे में नहीं भागा था? और जब अचानक गोलियां चलने और गोलों के फटने के साथ, लोगों की चीख-पुकार, रोने-धोने की आवाजें आने लगी थीं, तो क्या वह दौड़ कर बड़े-से पलंग के नीचे ठीक वैसा ही औंधा नहीं जा लेटा था, जैसा कि बताया गया था——कुहनियों के बल थोड़ा-सा उठा हुआ, कानों में उंगली दिये हुए. इस बीच एक क्षण भी गुड्डी का खयाल आया? वह तो बाद में, बहुत बाद, जब उसने अपने आपको सुरक्षित होने का आश्वासन दे लिया, तो झटके से चौंका : अरे गुड्डी? तब भी क्या पहली बार यही नहीं सोचा था कि आदमी में जीने की, बचाव की आदिम इच्छा बहुत प्रबल होती है, वह जरूर कहीं-न-कहीं आड़ की जगह चली गयी होगी. जब यह सब गुजर जायेगा तो उसे कहीं-न-कहीं से जरूर खोज निकालूंगा! इस समय अपनी जगह छोड़ कर बाहर निकलना खतरनाक है. मगर फिर उससे वहां लेटे नहीं रहा गया था और वह फटे-मरयिे गले से 'गुड्डी' पुकारता इस तरह भागा था जैसे जलते घर में भागते हों. . . बक्सों के पीछे गुड्डी दबी-दुबकी बैठी थी. उसने सहमे, भयभीत खरगोश जैसी उस चीज को उठा लिया था और फिर वापस अपनी जगह आ लेटा था, अपने को उस पर बिछाये हुए——लेकिन बोझ संभाले. तब उसे उसकी मां का ख़याल आया था. पता नहीं कमबख्त कहां चली गयी है! अब याद ही नहीं आ रहा, क्या कह कर गयी थी. उस उल्लू की पट्ठी को नहीं पता था क्या, कि बाहर की हालत क्या है?

. . . काश, इस समय वह भागती-हांफती कहीं से प्रकट हो जाये तो उसे उसकी अमानत सौंप कर जान छुड़ाये. . . इस वक्त 'बाप' वह जरूर है, लेकिन, गुड्डी को सौंपना तो उसे ही है, यह अमानत उसी की है. सारे लगाव, भय, परेशानी और चिंता के बावजूद वह इस बात को एक क्षण नहीं भूल पाया था! हर क्षण लगता था कि किसी भी पल वह आ सकती है. . . झुंझलाहट भी होती थी कि क्या झंझट छोड़ गयी है मेरे लिए! . . .

* *

फिर तभी रोशनदान, कांच की खिड़कियां, किवाड़ जोर के धमाकों से हिलने और भड़भड़ाने लगे थे, चारों तरफ कांच के टुकड़े उछलने लगे थे. छत और दीवारों के टुकड़े, धूल और धुआं, सीमेंट के ढोके धड़-धड़ बरसने लगे थे. और अचानक चारों तरफ अंधेरा-सा छा गया. अभी तक उसके भीतर एक विश्वास पल रहा था, आस-पास की बिल्डिंगों और मकानों पर हमले हो सकते हैं, बम और गोलियों की जद में सब कुछ आ सकता है, लेकिन उसका अपना घर अछूता रहेगा. . .लेकिन अब कहीं उसके भीतर के चौकन्ने पशु ने सूंघ लिया था : यहां से जितनी जल्दी हो सके भाग निकलो. . . घिर जाओगे, निकलने का कोई रास्ता नहीं रहेगा. यही क्षण है, सब कुछ तोड़ो और भागो. बाहर सिर्फ एक हमला होता है और अगर वह आपकी अपनी किलेबंदी को तोड़ देता है तो आपके बचाव की अपनी सारी चीजें, एक-एक करके आपके ऊपर हमला करना शुरू कर देती हैं. दुश्मन को दूर रखने वाले सारे तरीके आपको खुद घोंट कर मार डालने को आपके सामने आ खड़े होते हैं. अपनों से आप बच कर कहां जायेंगे?

वह फुर्ती से, आहिस्ता, सरक कर बाहर आया, चुपके से खींच कर पलंग पर पड़ा कंबल उठाया,

जल्दी-जल्दी उसमें बंडल की तरह गुड्डी को लपेटा और फिर बगटुट भागा——बाहर. . .और बाहर निकलने से पहले ही वह चौखट गिरी थी, जिसे उसने दोनों बाहें उठा कर कंधों पर झेलने की कोशिश की थी. . . . तब जैसे बेबस भाव से, बंडल उसके हाथों से सरक कर नीचे जा गिरा था, उसके दोनों हाथ लुंज की तरह झूल आये थे. लगा कि अब जिंदगी भर कभी कोई चीज नहीं उठा पायेगा. पहली बार तो कई क्षण अंधेरी आंखों के आगे तारे नाचने लगे थे और खड़े रहना मुश्किल हो गया था. . . फिर पता नहीं कैसे, उसने झूलते हाथों को साध कर बंडल संभाला था. अचानक तब उसके भीतर एक नया आदमी उठ खड़ा हुआ था. . . . जो 'गुड्डी' का 'बाप' था!

अब तो लगता है, वह काफी सुरक्षित जगह आ गया है, अंगारों में दहकता, भट्टी-सा नरक कहीं पीछे छोड़ आया है. . . वह खेत, वह पगडंडी और फिर वह झाड़ियों का झुरमुट. . .फिर शायद कोई खतरा नहीं रहेगा. वहीं बैठ कर वह सुस्तायेगा. . . . तब फिर इस सारे भयानक दृश्य को दुबारा जियेगा—— अभी तो सिर्फ वहां तक भागना है, जैसे भी हो. . .

* *

लेकिन इसका क्या यकीन कि वहां पहले से कोई खतरा उसकी ताक में नहीं बैठा? सैकड़ों बार टूट कर, धोखा खा कर भी क्यों ऐसे विश्वास फिर-फिर मन में सिर उठाते हैं? क्या इसी भ्रम में वह अब मौत के जाल में फंसे एक चूहे की तरह इधर-उधर नहीं भागता फिरता है? क्या उसे अभी भी ऐसा नहीं महसूस होता जैसे सुरंगों की एक भूलभुलैयां के बीचों-बीच वह दिग्भ्रांत-सा खड़ा है, बाहर निकलने की पागल उत्तेजना में कभी वह एक सुरंग में भागता है और आगे जा कर पाता है कि वहां रास्ता बंद है, फिर वापस लौटता है, और दूसरी में दौड़ लगाता है. . .जहां सुरंग बंद होती है, वहां उसे भयानक बदबू आती है, जैसे कुछ लोग वहां पहले भी पहुंचे होंगे और हताश हो कर वहीं दम तोड़ बैठे होंगे. . . सड़ी हुई लाशों की बदबू देर तक उसका पीछा करती है. . . मैं भी शायद कहीं पस्त हो कर लाशों के ढेर में एक हो जाता. . . मेरी बदबू भी शायद इसी तरह निकास के रास्ते की खोज में भटकने वालों के पीछे फेंके हुए नाग-पाश-सी लपकती. . . अगर मेरे पास. . . यह गुड्डी न होती. . . जरूर इन लोगों के पास 'बचाने' के लिए कुछ न रहा होगा. . हो सकता है ये भी गुड्डी जैसा कुछ-न कुछ ले कर घरों से भागे हों, और रास्ते में हार कर इधर-उधर उसे फेंक दिया हो. . नतीजे में उनकी सारी जीवनी-शक्ति इकहरी रह गयी हो——तभी तो चुक गयी!

लेकिन आखिर, मैं भी इसे या अपने को बचा कर क्या कर लूंगा? जिंदा रह कर ही क्या होता है? लाखों-करोड़ों लोगों में एक गुड्डी, या एक मैं——रहे, न रहे. . . फर्क कहां है? अपने आपको या गुड्डी को संसार की सबसे कीमती चीज मान कर बचाये रखने के मोह से छुटकारा पाना ही, इस यातना से बच निकलना है. इस बंडल ने उसे शक्ति दी हो, या न दी हो, लेकिन भीतर से कमजोर जरूर बना दिया है. जैसे अभी ही उसके भीतर प्रार्थना जैसी कुछ गूंजने लगी थी : हे भगवान, तुम्हें मैंने कभी नहीं माना, आज सच्चे मन से प्रार्थना करता हूं, इसे बचा लो! इसे सुरक्षित कहीं पहुंचा दो. . . अगर इस बार यह चमत्कार हो गया तो सारी जिंदगी भगवान का विश्वास फैलाने में लगा दूंगा. . . वह है, जरूर है. उसने मेरी गुड्डी को बचाया है. . . या अगर मैंने इस खेत को किसी तरह पार कर लिया तो मान लूंगा कि मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता. . . उस झाड़ी का आकार दूर से बिल्कुल मंदिर के कलश जैसा दीखता है. . . .

* *

उसे सचमुच ऐसा लगता रहा है जैसे वह हर सड़क पर दौड़ कर उसी एक चौराहे पर निकल आता है. क्या सारे समय वह इसी चौराहे के आसपास घूमता रहा है, घूमता रहेगा? क्या उसकी यह सारी दौड़ सिर्फ एक दायरे में घूमने की दौड़ है? कभी खतरे के बिंदु से बहुत दूर और बाहर निकल आने का भ्रम, और फिर अचानक अपने को उसके बीचों-बीच पाना. . . कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह इससे बाहर निकलना ही नहीं चाहता? किसी खतरे और हमले के भय से भागते रहना, कहीं उसकी आदत ही तो नहीं बन गयी है? बाहर निकल आयेगा तो चूर-चूर हो कर गिर पड़ने के सिवा रास्ता ही क्या बचेगा? और गिरना वह नहीं चाहता, इसलिए जानबूझ कर खतरे के आसपास बने रह कर, अपने को चाबुक मार-मार कर भगा रहा है—— लेकिन कब तक? टूट कर ढह जाने का बिंदु जब तक स्थगित हो सके. . . फिर गिरना तो है ही——सांस कब तक साथ देगी?. . . क्यों जी, ठीक इसी क्षण भी तो कुछ लोग ठीक इसी तरह अपना कुछ 'कीमती' बचाने के लिए भाग रहे होंगे, उसी की तरह खतरे और मौत के साथ चूहे-बिल्ली की मजबूरी का खेल खेल रहे होंगे? काश, उनमें से कुछ मिल जाते तो अकेले पड़ जाने की यह घुटन तो नहीं होती. . . जरूर ऐसे लोग उसे मिले होंगे. लेकिन निगाह टिका कर उन्हें पहचानने की फुरसत उसके पास कब थी? उसे तो हर भागता हुआ आदमी 'दुश्मन' लगता था. हो सकता है औरों को खुद वह 'दुश्मन' लगा हो! जरा किसी को रोक कर पूछ ही लेता, लेकिन अनजान आदमी को एक-दूसरे पर विश्वास कैसे होता? फिर अपनी कीमती चीज, उसे बचाने की कमजोरी, किसी को बतायी भी तो नहीं जाती——झपट कर छीन ही ले तो? मगर क्या उनके दिमाग में भी यह बात नहीं आती कि हम सारे भागे और खदेड़े हुए लोग मिल कर एक-दूसरे की हिम्मत ही नहीं बंधाते, शायद अपनी-अपनी कीमती चीजों को बचाने के लिए एक मोर्चा भी बना सकते हैं. . . सवाल यही है कि पहल कौन करे. . .? अकेला आदमी, कब तक अपनी भीतरी शक्ति को निचोड़-निचोड़ कर अपने को घसीटता रहेगा?. . .

उसने कभी एक पोलिश फिल्म देखी थी. उसका एक

दृश्य दिमाग पर इस तरह खुद गया है कि न चाहने पर भी बार-बार, समय-असमय उभर कर उसे कंपा देता है. कुछ लोगों ने सत्ता के खिलाफ विद्रोह किया था. उन्हें पकड़ कर एक अकेले किले में यातनाएं दी जाती थीं. यातना का एक तरीका कितना भयानक था. . . कैदियों को छत पर बैठा दिया गया : खुले मैदान में सिपाहियों की दो लाइनें आमने-सामने खड़ी हो गयीं— बीच में गली-सी छोड़ कर पच्चीस इधर, पच्चीस उधर. हरेक के हाथ में कोड़े. इस 'गली' के दोनों सिरों पर मुहाने बंद करते हुए दो सिपाही. बीच में अठारह-उन्नीस साल की एक 'विद्रोही' लड़की, एकदम नंगी छोड़ दी गयी. हर सिपाही उसे कोड़ा मारता था, वह बिलबिला कर आगे भागती थी— और फिर कोड़ा पड़ता था, फिर अगला सिपाही, फिर उसके बाद वाला. . . सिरे वाला सिपाही उसे धक्का दे कर फिर वापस मोड़ देता. दोनों ओर लगातार कोड़े खा कर, चीखती, हांफती, कराहती वह जिस तरह इस सिरे से उस सिरे तक भागती थी, वह दृश्य पता नहीं क्यों उसके दिमाग से निकलता ही नहीं है : बहुत बार वह लड़खड़ा कर गिरती, उसे फिर खड़ा कर दिया जाता. दौड़ा-दौड़ा कर उसे उन्होंने चूर-चूर कर दिया था, और हर क्षण लगता था कि वह अब गिरी, अब गिरी. इस बार नहीं उठ पायेगी. आखिर वह गिर ही पड़ी और फिर कोड़ों या ठोकरों के बावजूद उठी ही नहीं. ऊपर से देखते कैदियों में कुछ उस दृश्य को देख कर पागल ही हो गये, कुछ ने वहीं से छलांग लगा कर आत्महत्या कर ली. . . खुद जब यह दृश्य उसके सामने आता है, नाभि से उठ कर कै करने जैसी अनुभूति उसे होने लगती है. बार-बार समझाता है कि वह सिर्फ सिनेमा का एक दृश्य था और वे सभी लोग अभिनेता थे. लेकिन इससे उस दृश्य के आतंक में कोई अंतर नहीं पड़ता. इस क्षण वह यातना भोगती हुई लड़की कौन है? वह खुद? बंडल में लिपटी गुड्डी? . . . इस समय इन सारी बातों को छांटने का मौका कहां है? सब कुछ तो गड्मड् हो गया है. इस समय तो सच्चाई सिर्फ इतनी है कि कहीं धुंधलके में एक लड़की है और उसे कोड़े खाते हुए दौड़ना है, इस सिरे से उस सिरे तक. वह जानती है कि यह दौड़ उसे कहीं नहीं ले जायेगी, उसे तो जब तक सांस लेने की संभावना है, या जब तक होश है, तब तक सिर्फ कोड़े खाना है और दौड़ना है— जब तक बिल्कुल चूर-चूर हो कर ढेर नहीं हो जाती. . . झाड़ियों के उस झुरमुट तक तो उसे पहुंचना ही है. . .

* *

क्यों जी, आदमी के मन में यह उम्मीद नाम की चीज क्या है? क्यों नहीं यह एक-दो बार टूट कर ही समाप्त हो जाती? क्यों हमेशा कहीं कुछ बचा रहता है और जरा-सा बहाना पा कर इस तरह सारे सोच पर छा जाता है? यही नहीं, आपके सारे क्रिया-कलाप, हर हरकत को वही तय करने लगता है? अब, वह अच्छी तरह जानता है कि वहां झाड़ी में कुछ नहीं है. हर आड़ और बचाव ने उसे इसी तरह के झूठे आश्वासन दे कर दौड़ाया है. अकसर वहां पहुंच कर उसने देखा है कि दूर से जो जगह बहुत सुरक्षित लगती है, पास पहुंच कर बिल्कुल वैसा नहीं होता. पहुंच कर पाता है कि यहां तो घिर जाने या पकड़ लिये जाने के और भी ज्यादा खतरे हैं : तब, इस दायरे में घूमते रहने का अर्थ क्या है? इस निरर्थक और लक्ष्यहीन दौड़ को यहीं खतम कर देने से उसे रोके कौन हुए है?

मान लो, वह यह ठान ले कि कहीं कोई गुड्डी नहीं है, कहीं वह खुद नहीं है, उसे कोई भय नहीं है. जब खतरा ही नहीं है, तो उसे बचाने की भावना या कहीं पहुंच जाने की दौड़ भी नहीं है . . . आस-पास कहीं कुछ नहीं हो रहा. मेरे साथ कुछ भी नहीं हुआ है. मैं किसी भी स्थिति से नहीं गुजरा. . . मेरा कोई कुछ भी बना-बिगाड़ नहीं सकता, इसलिए मुझे भी कुछ नहीं करना. . . मान ही लो, वह ऐसा तय करके यहां बैठ भी जाये, खुले में, तो क्या फर्क पड़ेगा? अपने सोचने की ही तो बात है, बाकी तो सचमुच कहीं क्या फर्क पड़ता है? आदमी सोच लेता है, इसीलिए समय, स्थान और चीजों से जुड़ जाता है. यानी समय, स्थान, चीजें उससे नहीं जुड़तीं— वह अपने-आपको उनसे जोड़े होने का भ्रम पालता है. मान लो, वह इसी क्षण तय कर ले कि न उसका कोई अतीत है, न भविष्य, न वर्तमान— न वह कहीं से भाग कर आया है, न उसे कहीं भागना है— घर, गुड्डी, वह झाड़ी, इन सबसे उसका कोई संबंध नही है— तो? मैं सिर्फ एक बात कहता हूं. अगर सोच ले तो कहां, क्या बदल जायेगा? क्या वह उतना ही निश्चित नहीं हो जायेगा जितनी ये और 'चीजें'? मैं इसीलिए तो इन सबसे बंधा, या जुड़ा हूं कि ऐसा सोचता हूं, अपने आपको उन सबसे 'जुड़ा हुआ' मानता हूं. मेरे भीतर की सारी प्रतिक्रियाएं इस जुड़े होने के तनाव से ही पैदा होती हैं. लड़की को इस तरह कोड़े मार-मार कर दौड़ाना तो वास्तव में एक रूपक है. सोच को खींच कर अपने को वापस लाने का निर्णय कर लो, तो कोई भी आपका क्या कर सकता है? एक बार अपने को वापस खींच कर इस स्थिति को देख लेने में हर्ज ही क्या है?

सुनते हैं, योगी लोग इसी तरह अपने आपको सबसे तोड़ कर अपने आपको खींच लेते हैं और मुक्त हो जाते हैं. न उन्हें धूप लगती है न ठंड. भूख-प्यास भी शायद महसूस नहीं होती. वे कांटों की सेज पर भी उसी आराम से सोते हैं, जैसे गद्दे पर. सिर्फ अपने मन को मोड़ लेने की बात है. . . मगर सिर्फ इस तरह की कल्पन करना अच्छा लगता है, ऐसा हो कहां पाता है? . . इसे कहीं सुरक्षित जगह पहुंचाने की इच्छा को क्या वह एक पल भी मन से निकाल पाया है? हां, कभी-कभी बीच बीच में उसे एक अजीब-सी बात जरूर महसूस होती है लगता है जैसे गुड्डी, उसका अपना शरीर, पता नहीं कब के छूट चुके हैं, उसके हाड़-मांस उसके साथ नहीं हैं, वह सिर्फ एक हवा है, भागते रहने की एक इच्छा है— अशरीरी और निराकार. . . इसी को शायद लोग 'प्रेत

(आगे पृष्ठ ७६ पर)

एक और वापसी

• अमरेंद्र अमर

रिक्शेवाले को पैसे देने के बाद निश्चित-सा वह गली में मुड़ा. सामान के नाम पर एक चमड़े का मृतप्राय सूटकेस और छोटे-मोटे सामानों से लथपथ एक प्लास्टिक की डोलची. गली लंबी थी. गश्त लगाने वाला सिपाही आता दिखाई पड़ा. वह धीरे-धीरे चल रहा था. हर कदम पर लगता घर का फासला थोड़ा और बढ़ जाता. सुनने वाले के लिए विचित्र बात थी. आधी रात का वक्त होगा. सिपाही नजदीक आ गया. टार्च की रोशनी बेमतलब ढंग से फेंक कर बोला-- कौन हो तुम?

एक क्षण के लिए उसकी बोलती बंद हो गयी. फिर संभलते हुए उसने कहा-- पास ही रहता हूं. छुट्टी पर घर आया हूं, कोई खास बात है--आखिरी पंक्ति अपने आप उसके होठों से छूट पड़ी थी-- अंधेरे की वजह से वह सिपाही की आंखों की हिंस्र चमक को नहीं देख पाया. फिर भी उसे लगा--अब मार खाने की बारी आ सकती है.

--चुपचाप घर चले जाओ इसी में खैरियत है. सिपाही आगे बढ़ गया. वह हताश भाव से आगे बढ़ा-- दूर पर कुत्तों का भौंकना. गली का स्तब्ध चिर-परिचित सन्नाटा अपने आप में कितना सुकून देने वाला है--उस पराये बड़े शहर में ऐसी बात कहां? वह भीतर से कुछ आर्द्र हो चुका था.

. . . पूरे छह महीने बाद वह लौटा था-- उस दिन चूल्हा ठंडा था. पत्नी और छोटे बच्चों का उतरा हुआ चेहरा उसे भीतर तक तराश गया था. सारा दिन यूंही भटकता रहा. परिचितों ने मुंह फेर लिये थे. बार.बार पैसे कौन देता-- और क्यों देता? पराये शहर की बेतरह भाग-दौड़, भूख और तिरस्कार के बीच अचानक एक उद्योगपति ने अपने यहां नौकर रख लिया. घर के कामकाज के लिए उसे रखा गया. धीरे-धीरे काम काफी बढ़ गया. आराम के नाम पर सिर्फ रात को चार घंटे सोना. हां, खाने-पीने का सुख था. उसने कई किताबों में सेठों व मिल मालिकों का जिक्र पढ़ा था-- यहां बात मिलती थी. मालिक कम बोलते थे पर बला का तेज गुस्सा था. साफ-सुथरा रहने और नियम से तड़के काम पर हाजिर होने के संबंध में उन्होंने कहा था-- अगर आपको हमारे घर का नियम -कायदा पसंद न हो तो, सैकड़ों जगहें हैं--वहां जाइए. मैं बार-बार समझाता नहीं. वह सकते में आ गया था. जीवन में पहली ऐसी कड़क झिड़की किसी ने दी थी. अपने छोटे-से शहर में चौक के पास उसकी छोटी-सी परचून की दुकान थी. यार-दोस्तों में बैठ कर वह बड़े फक्र से कहता--यार, मैं किसी का गुलाम नहीं जो वक्त पर हाजिरी दूं. तुम लोग हो कि दस बजते-बजते जैसे-तैसे खा कर भाग खड़े होते हो. जवाब में दोस्त फब्तियां कसते--शेखी मत बघारो मियां, इस छोटी -सी दुकान पर गज भर की जबान चलाते हो जिसमें मुश्किल से दो हजार का माल होगा.

किसकी नजर लगी-- परिवार को दो वक्त की रोटी देने वाली हर दुकान चलती हुई कहलाती है— वहीं 'खंखर' हो उठी-स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है. एक वक्त खाना बनने लगा.. दिन में हलका नाश्ता, फिर भारत की 'पौष्टिक अमृतधारा चाय'. शुरू-शुरू में बच्चों ने प्रतिवाद दिया-- फिर धीरे-धीरे तमाचे, झिड़कियों ने उनके दिमाग बदल दिये. राकेश बीस साल का था. रात-दिन फिल्म में काम करने के सपने पाले हुए रहता. अपने कम कपड़ों के बावजूद अपनी सुगठित देह-यष्टि के कारण वह काफी स्मार्ट दिखाई देता. दूसरी तरफ रीना सोलह की थी. दोनों समय चूल्हे-चौके की इबादत में मशगूल रहती. वक्त मिलता तो पॉकेट बुक सीरीज के उपन्यास पढ़ती और खोई-खोई आंखों से देर तक खुले आसमान को अपलक देखती रहती.

कई दिनों से दुकान बंद रखने का खयाल उस पर हावी रहा. सामान के नाम पर खाली डिब्बे और टूटी-फूटी जंग खाई कुछ वस्तुएं, नहीं, अब और इसकी नुमाइश नहीं करेगा. घनघोर अंधेरी सुबह थी उस दिन. पानी बेहताश रात से बरस रहा था. कुहरे में बंद शहर, अंधेरे में गुमशुदा कोठरी की मानिंद लग रहा था. रात भर वह दुकान में रहा. खास दोस्तों के बीच शराब और भूनी मछलियां चलती रहीं. उसने दुकान भीतर से बंद कर रखी थी. पीछे की तरफ वाली खिड़की खुली थी. वहां पहुंचता कौन? गहरा नाला आठों पहर बुदबुदाता रहता. कहकहों का दौर रह-रह कर चलता. बाहर राकेश बुरी तरह भीग रहा था. मगर कान सटाए बड़े मनोयोग से कुछ सुनने का प्रयत्न कर रहा था. कुछ देर तक की दम-साध मेहनत ने असर दिखाया था-- साले को मारो गोली-- बस यही टुकड़ा राकेश के कानों से टकराया. यही पिताजी की आवाज है. वह वापस मुड़ा. काफी भीग चुका था. जूते-चप्पलों को पचाने लायक पानी सड़क पर बह रहा था.

'मां-मां' चीखता हुआ वह चौके में घुस गया था. मा-बेटी रोटी-दाल गले से उतार रही थीं. सब्जी महीने में शायद ही किसी दिन मयस्सर होती थी. जवान बहन की बिलकुल परवाह न करते हुए एक बारगी उबल पड़ा था --पिताजी दुकान में बैठ कर शराब पी रहे हैं. मैंने अपनी आंखों से देखा है-- मां! इस तरह कब तक चलेगा? हम तबाह हो रहे हैं और पिताजी जश्न मना रहे हैं.

दिन के दस बजे वह लड़खड़ाता हुआ सड़क पर चल रहा था. वर्षा हो रही थी. सवारियां और लोग बहुत कम थे. घर में मृतवत् सन्नाटा था. वह जानता था-- आज कयामत आयेगी. पिछले कई महीनों की चखचख

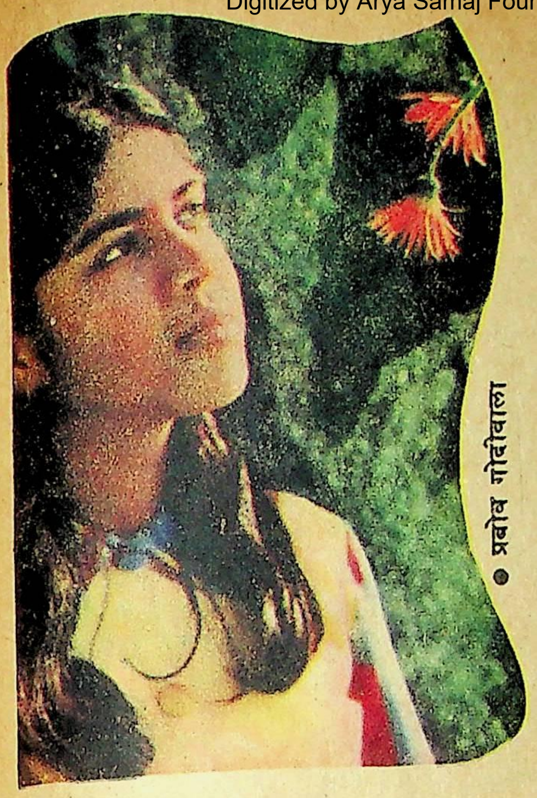

● प्रबोध गोदीवाला

का पूर्ण विराम आज हो जाये. उसने भी सोच लिया था–किसीने चूं-चपड़ की तो वह सिर फोड़ देगा. लोगों ने समझ क्या रखा है उसे?

दरवाजा पत्नी ने ही खोला था. ताज्जुब कि एक शब्द भी मुंह से नहीं निकला. पहला बार बुरी तरह खाली गया. रीना दीनता की प्रतिमूर्ति बनी बरामदे में खड़ी थी. वह देर तक गरजता रहा और सन्नाटे से जवाब-तलब करता रहा. कहीं कोई शब्द नहीं. पत्नी ने होंट कसम खा कर सी लिये थे इस बार. गजब की रणनीति उसने इख्तियार की थी. हवा में तलवार कब तक भांजता रहता—मर्माहत-सा वह चुप हो गया. मुलायम हो कर उसने पूछा—बच्चे सो गये. . .खाना -वाना खा चुके?

—रात से एक दाना अन्न नहीं है. पानी पिला कर सुलाया है. स्वर अत्यंत संयत—दूर से आती हुई किसी टूटती आवाज की तरह.

—और तुमने कुछ खाया है? गलती से उसने पूछ लिया था—शायद तेज नशे की वजह से.

—एक मुसकराहट पत्नी के होठों पर बिजली की तरह कौंधी और राख हो गयी.

उसका चेहरा मुर्दे जैसा हो गया. काश, वह अपनी आंखें देख पाता इस वक्त. वह कट कर रह गया. क्या ही अच्छा होता—पत्नी उस पर थूक कर चली जाती. या वह उसे गोली मार देता. इस वक्त एक ही कमरे में दोनों का एक दूसरे का सामाना करना कितना असह्य और दुख़दायी है. फिर कुछ नहीं हुआ. 'क्लाइमेक्स' आ जाने के बाद स्थितियां अपने आप वापस लौट जाती हैं, जैसे बमवर्षक यान अपना काम पूरा करने के बाद खुद-ब-खुद लौटते हैं.

उसके बाद की निरर्थक दौड़-धूप के बाद उसने चुपके से यह संकल्प लिया—राकेश सयाना है. वक्त पड़ने पर वह सब संभाल लेगा. संभालना ही होगा. यही सोच कर उसने दिल को मना लिया. आज रात को वह कलकत्ता चला जायेगा.

★ ★

अभी बरसात की मनहूस दोपहरी बीती न थी. वह हार कर अपने कमरे में लेट गया था. कल से यह कमरा कहां, पत्नी और बच्चे कहां? वह फिर उन्हें देख पायेगा, उसकी आंखें भर आयी थीं. बला से उसे कोई कापुरुष कहे, वह निरुपाय प्रस्थान कर रहा है. पत्नी पड़ोस में चली गयी थी. वह उपन्यास नहीं पढ़ सकती. क्लब जाने का तो खैर सवाल ही नहीं उठता. ऐसे में यह भोंडी औरत दुखों से बिलबिला कर किसी सहेली की शरण लेती है तो हर्ज ही क्या है? कल से इन्हीं पड़ोसियों की सहानुभूति पर उसे जीना है. उसकी आंखों से आंसू बह चले थे.

दिन ढलते ही वह सुनार की दुकान पर था. जमाने दराज की एक हलकी सोने की अंगूठी उसने बढ़ायी—खीझे हुए चेहरे के साथ दुकानदार ने बिना मोल-तोल किये कहा था—चालीस रुपए मिलेंगे. ज्यादा एक पाई भी नहीं दे सकता. उसे बुरा लगा था. रुपए ले कर वह तेज कदमों से घर लौट रहा था.

ठंडी रसोई में गुमसुम पत्नी को बैठे देख कर उसने हंसते हुए कहा—आज भूखों मारने का इरादा है क्या? गुस्सा थूको. लो ये रुपये, सामान मंगवा लो. मैं जानता हूं, तुम्हारे छूते ही रसोई जानदार हो जायेगी. बच्चों का घर है, इस तरह मातम नहीं मनाना चाहिए. भगवान दयालु हैं कहीं न कहीं से वह इंतजाम कर देते हैं. पत्नी का चेहरा चमक उठा था—शायद उसकी बातों ने बहुत दिनों के बाद उसे छुआ था. इस तरह होशो हवास में बात करना उसके लिए कुछ महीनों से कभी न हुआ था. तैयारी के नाम पर कुछ नहीं. एक सफेद साफ बुश्शर्ट और पैंट और फटा हुआ चमड़े का पोर्टफोलियो बैग. दुकान जाते वक्त यही लिबास रहता था उसका.

पत्नी ने पूछा—कहां चले? खाना तो खा लो. दिन-रात काम की फिक्र करोगे तो क्या हाल होगा? उसका ईमान कांप गया था. चट्टानी संकल्प थरथराता-सा जान पड़ा था.

फिर किसी तरह उसने खुद को संभाला —बस अभी आता हूं. राकेश कहां है?

—वह घर पर रहता ही कब है? यार दोस्तों के साथ बेमतलब घूम रहा होगा. तुम कुछ कहते ही नहीं.

उसने सिर झुकाये हुए कहा था—आज उसे डांटूंगा. तुम बच्चों को खिलाओ मैं अभी आया. शायद उसे यकीन था अगर उसने पत्नी की तरफ ताका तो जाना नहीं हो सकेगा.

गाड़ी जब चली तो ऐसा लगा—वह जाग रहा है या दुःस्वप्नों से लड़ रहा है. उसे जड़ भाव से बैठा देख कर एक जटाधारी ने गांजे की चिलम बढ़ायी—लपलप सुलगी हुई आग—उसने एकबारगी वह आग अपने

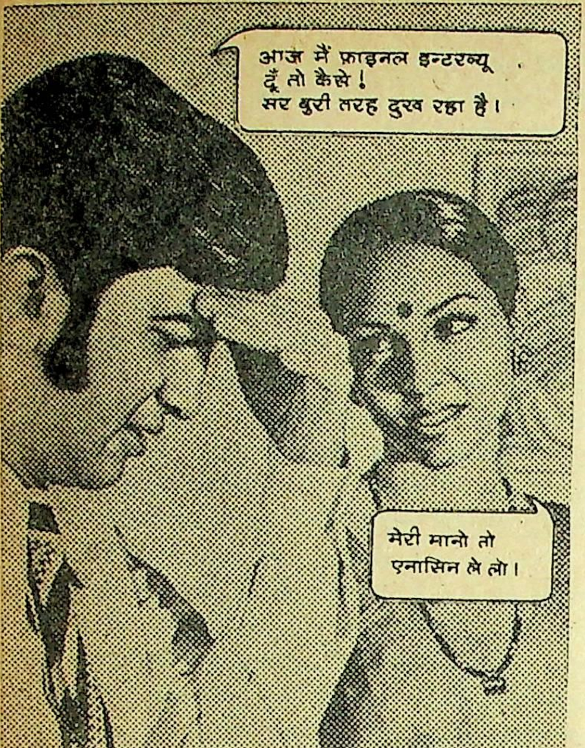
आज मैं फ़ाइनल इन्टरव्यू दूँ तो कैसे ! सर बुरी तरह दुख रहा है।
मेरी मानो तो एनासिन ले लो।

जल्द आराम पाने के लिए
तेज़ असर
और विश्वसनीय
एनासिन लीजिए

ज़ असर–एनासिन में वह दर्द-निवारक दवा ज़्यादा है, जेस की दुनिया-भर के डॉक्टर सिफ़ारिश करते हैं। सी लिए एनासिन दर्द से जल्द आराम दिलाती है।

श्वसनीय–एनासिन आपके डॉक्टर की दवाई की तरह ग्राओं का नपा-तुला सम्मिश्रण है। इसी लिए एनासिन र लाखों लोगों को पूरा भरोसा है।

ासिन बदन के दर्द, दाँत के दर्द, सर्दी-जुकाम और लू की पीड़ा से भी जल्द आराम दिलाती है।

तेज़ असर और विश्वसनीय
एनासिन
रत की सब से लोकप्रिय दर्द-निवारक दवा
/8-74
Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

भीतर उड़ेल ली थी. चिलम की तीसरी आवृत्ति ने उसे सोचने पर मजबूर कर दिया था—वह 'सिद्धार्थ' हो गया है. वह सोचने लगा—सिद्धार्थ उसकी दैनिक परिस्थितियों से नहीं लड़ सकते थे—हार जाते, किसी लायक न रहते.

* *

. . . सूटकेस रख कर वह बुत बन गया था. संयोग की बात थी, आस-पास के घरों से कोई बाहर नहीं निकला था– कहीं वह सिपाही लौटता तो बस मौत थी. अपनी मूर्खता पर उसे बड़ा गुस्सा आया- वाकई वह ज्यों का त्यों रहा– आवेश के गुजरने के बाद भीगा-भीगा-सा आर्द्र पुरुष. दरवाजे की सांकल बजाने से पहले उसने बची-खुची हिम्मत बटोरी. आवाज को सहज बनाने के क्रम में उसने पुकारा—राकेश. एक सन्नाटा-सा खिंचा वातावरण में और किसीके आने की आहट सुनाई पड़ी. उसका दिल धड़कने लगा था — कौन हो सकता है? राकेश नहीं आ सकता – पत्नी ही होगी.

वह सामने खड़ी थी. आश्चर्य, खुशी का कोई भाव नहीं था चेहरे पर एक कृत्रिम सहजतावश बोली—आ गये? पहले तो मुझे यकीन ही न आया – तुम हो सकते हो! . . .

उसे धक्का-सा लगा — क्या मेरे वापस लौटने की उम्मीद तुमने छोड़ दी थी?

—नहीं, नहीं – वह सकुचाते हुए बोली – इस बीच न कोई चिट्ठी, न तार. इसीसे मैंने समझा जब आओगे खबर हो जायेगी. वह चुप. यह कमबख्त शिकायत क्यों नहीं करती? ताने उलाहने से भरी बातें कहां भूल गयी? जरूर उसके पीछे कोई विस्फोट हुआ है और अब ज्वालामुखी शांत है.

—बच्चे – उसने सिर झुकाये पूछा.

—सो रहे हैं– पड़ोस में बारात आयी थी. थोड़ी देर पहले सब आपस में झगड़ रहे थे.

—और सब ठीक ठाक?

—सब ठीक ठाक है. उसने इस अंदाज में कहा जैसे उल्लू बना रही हो.

—अच्छा रीना कहां है – सो रही है?

—इतने उतावले क्यों हो रहे हो– हाथ-मुंह धो कर कुछ खाओ-पियो. सुबह उठ कर बच्चों की बारी-बारी से शिनाख्त करना.

इस सफाई से उसने भीतर खंजर घुसा दिया कि वह आह भी न कर सका. रास्ते में उसने इन चोटों के बारे में सोचा था. . . पर यहां अब सब खल रहा है. कमरे की हालत देख कर जी और कुढ़ गया. यहां-वहां मैले कपड़ों के ढेर-जूठे बर्तन और भी बहुत सारे गलीज.

चाय आ गयी थी .

—क्या बात है सुनीता? पहेलियों के अंदाज में बातें करोगी तो गला दबा दूंगा. साफ-साफ बताती क्यों नहीं? रीना मर गयी क्या? यह कहते हुए उसका जी धक् से कर गया.

—मर जाती तो ठीक. तुम्हारे गायब होने के दूसरे हफ्ते वह सहेली के घर गयी. राकेश छोड़ने गया था. वहीं लता के यहां– शर्माजी की बेटी. हम उनके घर वालों पर

भरोसा नहीं करते तो किस पर करते! वहां से लौटी ही नहीं. लता कहती है कि उसने साथ चलने की जिद की. अपने छोटे भाई को साथ भेजा भी पर रीना ने जबर्दस्ती कह - सुन कर उसे रास्ते से लौटा दिया. उस लड़के ने भी यही बात कही. कहां गई– कुछ पता नहीं. राकेश ने जहर तक खाने की धमकी दी. उसे मैंने समझाया कि आफत अपने आप टल गयी बेटा तुम नाहक जान क्यों देते हो? वह चुड़ैल-बेशर्म इसी काबिल थी. हमारे मुंह में कालिख पोतने के लिए ही उसने जन्म लिया था.

वह तिल-तिल कटता जा रहा था. अभी पत्नी के आवेश पूर्ण संवाद जारी थे– जानते हो, एक दिन मेरे बहुत पूछने पर राकेश ने बताया था कि एक लड़के से उसका मेल जोल था. तुम्हारे रहते भर में यह सब चल रहा था और तुम्हारी आंखें बंद रहीं.

––तुम्हारे कहने का मतलब है यह सब मेरी वजह से हुआ है यकायक वह सुलग उठा.

—और क्या – लगा, रगों में भूचाल-सा आ गया. उसके हाथ उसकी गरदन को जकड़ने ही वाले हैं. फिर कैसे यह जलजला गुजर गया उसे नहीं मालूम. पत्नी सहम उठी थी.

––विश्वास करोगे? राकेश की आंखों में पहली बार मैंने बेबसी के आंसू देखे, वह बहुत निराश हो कर मेरे पास आया ––मां, अब क्या होगा? मैंने समझाया, अच्छा ही होगा, हिम्मत से काम लो, बेटा. एक रोज सामने वाले बैंक बाबू की बीवी आयी – वह भी पहली बार. बड़ी कुढ़न हुई. घर की बखिया उघड़ जायेगी. खैर, सोचा हुआ गलत निकला. कहने लगीं – राकेश लाटरी टिकटों की एजेंसी क्यों नहीं ले लेता. छोटे पैमाने से काम शुरू करे. फिर अपना स्टाल जमा ले. जब तक कुछ करता नहीं, यह शगल बुरा नहीं. मैंने भी देखा, पते की बात कर रही हैं. चंद, अनाथ लड़का जिसने पैरों पर खड़े होने के लिए क्या कुछ नहीं किया– आज एक रिक्शे पर लाटरी की टिकटें लिए दिन-रात फिरता है. मैंने हामी तो भर दी फिर खयाल आया यहां खाने के लाले पड़े हैं एजेंसी के लिए पैसे कहां से आयेंगे? मेरी चुप्पी वह ताड़ गयी. जानते हो, एजेंसी के लिए रुपए देते हुए उन्होंने कहा– बहन, उधार दे रही हूं. जब हों तब लौटा देना. आदमी एक दूसरे के काम न आये तो उसे जानवर ही कहना चाहिए था. मैं अवाक रह गयी थी, क्या दुनियां में ऐसे लोग भी हैं? तुम्हारे राकेश ने तब से बड़ी मेहनत की है. आज भी उसीकी बदौलत दोनो वक्त चूल्हा जलता है. बच्चों को पानी पी-पी कर सोना नहीं पड़ता. . .

वह जड़वत सुनता रहा. वह इस लायक नहीं रह गया था कि सवाल जवाब करे. घुटन का बर्फीला सैलाब उसे चारों ओर से दबोचे था. पत्नी की ओर आंखों की टकटकी मरे हुए पक्षी .के समान थी–– शायद अभी पत्नी के आवेश की लहर बची थी– विनय मुद्रा में बोली –– देखो, राकेश से रीना की बात मत करना. उसका दिल टूट जायेगा. . .

उसने सुना या नहीं वही जाने. □□□

द्वारा कृष्णकांत प्रसाद, कोयरी बारी, धर्मशाला रोड, गया

femina विशेष उपहार अंक १९ दिसंबर '७५ अंक

बडे दिन का उपहार
आपके
बजट के
अनुसार

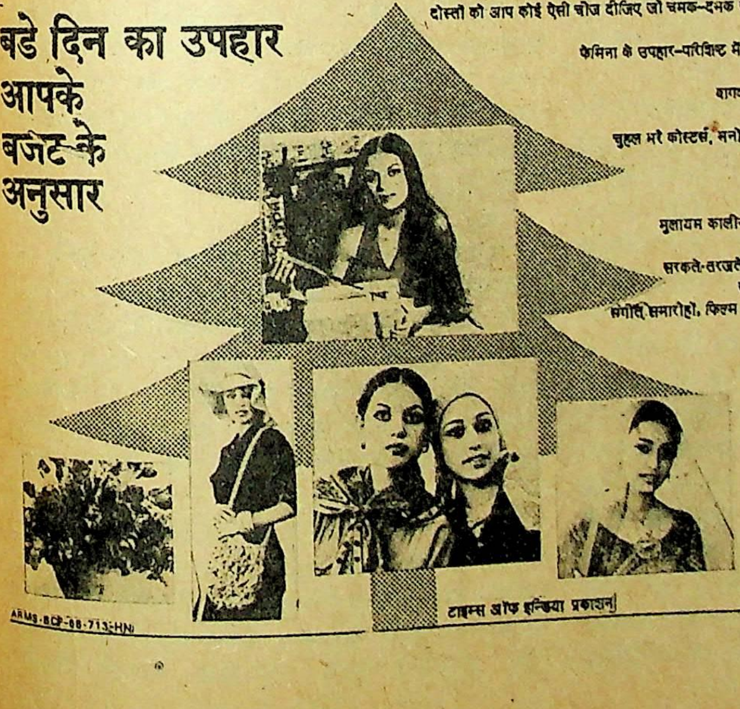

इस साल अपने मित्रों को आप एक सुखद आश्चर्य भेंट दीजिए—हर बार की तरह वही घिसा-पिटा नीरस उपहार नहीं. दोस्तों को आप कोई ऐसी चीज दीजिए जो चमक-दमक रखती हो, जो टिकाऊ हो और जो प्रसन्नता लेकर आये, और आपकी जेब को भी जो भारी न पड़े.

फेमिना के उपहार-परिशिष्ट में से चुनाव कीजिए. अधिकतर उपहार ५० रु. से कम मूल्य के. आपके सामर्थ्य की सीमारेखा में

बागवानी के लिए पौधे, सुगंधित सिगार, सुनहरी मछली...सब वर्ग‍ के खरी-खोटी चीजें

चुहल भरे कोस्टर्स, मनोरंजक पोस्टर्स, नयी चलन के हाल्टर ब्लाउज, पिस्तौल, टार्च. त्योहार की पसंद

अंगूर की शराब, मद्य ब्रांडी, चाकलेट, रम केक. हमेशा के लिए यादगारें

मुलायम कालीन, आलीशान मेजपोश, पुरानी अमूल्य तस्वीरें, क्रिस्टल के पात्र साज-श्रृंगार के लिए

सरकते-सरसराते स्कार्फ, चांदी की पायल, जयपुरी आभूषण, पटसन के झोले...

साथ ही यह जानकारी कि उपहार कूपन, पुस्तक उपहार शुल्क, संगीत समारोहों, फिल्म समारोहों और टेस्ट मैचों के सीजन टिकट कहां से प्राप्त करें ?

इसके अलावा

बड़े दिन की कहानी

कैसे इस त्योहार से जुड़े रीति-रिवाजों का जन्म हुआ ?

क्या मलेरिया वापस आ गया है ?

हां. पहले से भी ज्यादा प्रबल रूप का.

चिर-प्रतीक्षित प्रतियोगिता के परिणाम.

नारी की प्रतिष्ठा को कैसे सुधारा जाये ?

व अन्य सभी स्थायी स्तंभ

टाइम्स ऑफ इन्डिया प्रकाशन

femina
हर पखवाड़े में नयी उमंग नयी तरंग

ARMS-BCP-88-713-HN

नये सफेद गुलाब

• उर्मि कृष्ण

चेतन का बायां घुटना सो गया था. दोनों टांगों में वह भारीपन और अकड़ाव महसूस कर रहा था. बिट्टू ने अपनी छोटी-छोटी बांहें उसकी गर्दन में डाल रखी थीं. और सिर उसकी छाती पर टिकाया हुआ था. चेतन ने उसे पीठ पर दोनों हाथों से थामा हुआ था. साथ वाली खाली सीट होने पर उसने सोचा था कि बिट्टू को वहां लिटा दे. पर दुःखी और उदास बिट्टू की नींद में विघ्न डालने को उसका मन नहीं माना.

––अंकल मम्मी क्यों रोती हैं ?

––अंकल हम मम्मी के पास फिर आयेंगे न ? . . . कब?

––अंकल, आनंद अंकल अच्छे नहीं हैं.

बस छूटने के बाद भी बिट्टू इसी तरह के प्रश्न दुहराता रहा था, और अंत में रोने लगा था. फिर रोते-रोते ही सो गया था. चेतन उसे दुलराता––बहलाता रहा था. पर उसका मन भी बार-बार भर आता था. बस पर उन्हें छोड़ने आयी भाभी का पथराया हुआ भावहीन चेहरा . . .उसका बिट्टू को खूब कस कर चिपटाये रखना और बार-बार उसका मुंह, माथा और सिर चूमना . . . या बिट्टू के प्रश्नों पर भी मौन ही रहना. जैसे वह नींद में चल रही हो, और फिर बिट्टू को उसे सौंपते समय उसके चेहरे पर पीड़ा की हजारों रेखाओं का एक साथ उभर आना . . . भाभी के चेहरे पर पीड़ा का वैसा जाल उसने इससे पहले कभी नहीं देखा था. भाई की मृत्यु का तार पढ़ते समय भी नहीं . . . तब तो भाभी एकदम पत्थर हो गयी थी.

इन आठ-दस महीनों में सब कुछ कितना बदल गया है––उसके लिए, बाऊजी के लिए, मां के लिए, भाभी के लिए. बिट्टू के लिए . . .वह मन में कितना उछाह ले कर गया था . . . खूब घूमे-फिरेगा, मौज करेगा, सेहत बनायेगा और साथ-साथ भैया उसे कंपीटीशन की तैयारी कराते रहेंगे. उसे चुना जाना लगभग निश्चित लगता था. इतनी अच्छी तैयारी और फिर भैया की पहुंच और संपर्क. सबसे बड़ी बात यह कि भाभी से उसकी खूब पटती थी. इतनी कि भाभी के पास जा कर रहने की बात सुन कर ही वह उछल पड़ा था.

कितने सुखद लगते थे वे क्षण. भाभी का टेबल पर चाय का कप रख कर जाना. बनावटी रोष में उसे रोज सुबह जगाना. कभी पानी के छींटे मारना या कभी बिट्टू से कान खिचवाना और भाभी का शशि-रशि रूप, जो उसकी आंखों में अब तक बसा है, जरा नहीं धुंधलाया. सजी-सजी, सुंदर भाभी के सम्मुख नींद से आंखें खोलना चेतन को बहुत अच्छा लगता था. इसीलिए भाभी उसे झकझोर कर कह जाती––मैं तैयार होती हूं. तब तक तुम भी तैयार हो जाओ. पर चेतन सोता ही रहता.

––भई तंग कर दिया मुझे तुम्हारी नींद ने, चेतन.

––ऊं हूं, सोने दो ना.

––अपनी बीवी को ऐसे सिरहाने बैठा कर सोते रहना, तब बतायेगी .

भाभी का मधुर परिहास चेतन के रोम-रोम को गुदगुदा जाता. वह ऐसे क्षण एकटक भाभी को देखता रहता. ओठों तक कहने को शब्द आता––'क्या तुम जैसी पत्नी मिल सकेगी, भाभी?' पर ऊपर से मजाक का उत्तर मजका में ही देता,

––भाभी जब तुम आधी तैयार हो लो तब मुझे जगाया करो. तुम्हें तैयार होने में घंटा भर लगता है और मुझे दो सेकंड.

––बस-बस रहने दो. जब देखती हूं हाथ में कंघा-शीशा लिए नजर आते हो.

भाभी हंसती हुई चली जाती. उसकी देह से फूटती महक कमरे के कोने-कोने में भर चेतन को और अधिक मत्त बना देती. उसका सोने-सा रूप, कोयल-सी आवाज, उन्मुक्त मजाक, सभी में एक ऐसा मोहक जाल था जिसने चेतन को बांध लिया था.

उस दिन वे दोनों लॉन में बैठे चाय पी रहे थे. उसको एकटक अपनी ओर देखते पा कर भाभी ने मजाक में कहा था––ऐसे क्या देख रहे हो चेतन? नीयत तो ठीक है?

भाभी की खुली मजाक पर वह मुसकरा दिया. पर भीतर-ही-भीतर लज्जित-सा हो उठा. कत्थई रंग की साड़ी पर लगी सफेद किनारी में भाभी खिल रही थी. उसे सदा गहरे रंग पहनने पसंद थे जो उसके गौर वर्ण को दूना उभार देते थे. जी में तो आया था उलट कर वह भी कोई जोरदार मजाक कर दे, पर तभी खतरे का सायरन बज उठा. भाभी का खिला चेहरा मुरझा कर पीला हो आया. खाइयां खुदी हुई थीं. पर दिन में वे लोग कभी खाइयों में नहीं घुसते थे. बल्कि प्रायः घरों से निकल कर आकाश में जहाजों को ढूंढने लगते.

★ ★

सीतापुर के स्टैंड पर झटके से बस रुकी तो बिट्टू कुनमुनाने लगा. घुटन बढ़ जाने से वह जाग उठा. चेतन उसे ले कर बाहर निकल आया कि टांगें सीधी कर ले. बिट्टू को उसने चाकलेट बार ले दिया, जो हमेशा बड़े चाव से खाता था. बिट्टू ने उसे ले लिया पर बोला कुछ नहीं. न मुसकराया, न ही उसे खाना शुरू किया. उसकी आंखों में अब तक उदासी भरी थी.

लड़ाई के दौरान बिट्टू कितना उत्तेजित रहता था. वह अपनी सैनिक वर्दी पहने, एयरगन लिये जिस तिस पर ठांय-ठांय करता फिरता. हवाई हमले के दौरान भी वह घबराता नहीं था. भाभी उसकी सुरक्षा के लिए अकुलाती. उसके पीछे-पीछे भागती फिरती

पर वह खंदक में जाने को तैयार न होता. चेतन के साथ बाहर ही रह कर आसमान में जहाज तलाश करता.

भाभी काफी डर जाती थी. चेतन, बिट्टू और अपने से भी अधिक चिंता उसे भैया की थी. बीच में एक दिन भैया के तीन पत्र एक साथ आये थे. उसके बाद कोई नहीं. पूरी कॉलोनी में ऐसा ही हाल था. अधिकांश अफसर विभिन्न मोर्चों पर गये हुए थे. पीछे थीं महिलाएं, बच्चे या परिवार के अन्य व्यक्ति. अपने पूरे जोश-खरोश और राष्ट्रीय उत्साह के बावजूद सहमे-सहमे और चिंतित. अदृष्ट की आशंका जैसे सबको भीतर-ही-भीतर खाये डाल रही थी. दिन में पत्नियां झुंड बना कर घर-घर जातीं. सूचनाओं और कुशल-मंगल का आदान-प्रदान होता. लगभग नित्य ही किसी-न-किसी घर में तार आता और वहां मातमी भीड़ जुड़ जाती.

रोज घर से मां और बाऊजी की चिट्ठियां आतीं. चंदनपुर पर भी बमबारी हो रही थी और उसके वहां चले जाने पर मां-बाऊजी को काफी धीरज बंधता. पर भाभी और बिट्टू को अकेले छोड़ जाने की वह कल्पना भी नहीं कर सकता था. वह मां-बाऊजी को रोज सांत्वना भरे पत्र लिखता. भैया जाते समय कह गये थे कि वह मां-बाऊजी के पास चला जाय. सावित्री के लिए उतनी चिंता की बात नहीं है. वैसे वह भी भाभी के साहस से अपरिचित न था. पर ऐसे मौके पर उसे अकेले छोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता था. और फिर एक दिन उनके दरवाजे पर भी तार वाले ने दस्तक दी थी. तार वाले को देखते ही वह सब कुछ समझ गया था ... भाभी भी. भाभी का बदन कांपने लगा था. पर वह रोयी नहीं थी. निढाल-सी हो कर सोफे में धंस गयी थी और उसकी आंखें शून्य को ताकने लगी थीं. उनके यहां भी भीड़ इकट्ठी होने लगी थी. कुछ आने वाली स्त्रियां रो भी पड़ीं. पर भाभी बुत बनी बैठी रही. वह जब बिट्टू को उसकी गोद से ले कर अलग लिटाने लगा था तब सहसा भाभी फफक-फफक कर रो पड़ी थी. चेतन ने भाभी के हाथ मजबूती से थाम लिये थे. वह कुछ भी कह नहीं पाया था. भाभी बहुत देर तक रोती रही थी और वह केवल चुपचाप उसके कंधों पर हाथ रखे रहा था या उसके हाथ थामे रहा था.

मां और बाऊजी के आने पर घर में कुहराम मच गया था. पर भाभी की आंखों के आंसू शायद बहुत लजीले थे जो सबके सामने नहीं निकलते थे. उसने भाभी को छिप कर रोते देखा था. वह मौन, निःशब्द रुदन चेतन को कंपा देता था. ऐसे में वह बढ़ कर उसके हाथ थाम लेता था. उसे धीर बंधाने के सहारे शायद इससे उसका अपना त्रास भी कम होता था. आज यह जान पड़ता है भाभी भी उसके सामने रोने में संकोच नहीं करती थी.

बिट्टू हाथ में चाकलेट का बार लिये फिर ऊंघने लगा था. चेतन ने उसे गोद में सुला लिया और सिर पर थपकियां देने लगा. थपकियां देता उसका हाथ

• मुरलीधर, जालान

धीरे-धीरे कब रुक गया उसे ध्यान नहीं. आज जिस घर को भाभी छोड़ आयी है, उसीको उसी दिन न छोड़ने पर वह कितनी दृढ़ थी.

मां और बाऊजी ने अपने साथ चलने के लिए भाभी को कितना कहा था पर भाभी ने शांत ठंडे स्वर में कह दिया था कि वह अभी यहीं रहेगी. भविष्य के लिए किसी निर्णय पर वह अभी नहीं पहुंची है. वे उसके स्वभाव से परिचित थे. भाभी के मौन को देखते हुए उन्हें अधिक कहने का साहस भी नहीं हुआ था. चेतन के लिए भाभी ने इच्छा की थी कि वह अभी वहीं रह जाय. उसे प्रतियोगिता की तैयारी के अतिरिक्त और कुछ काम भी न था. मां-बाऊजी उसे कह गये थे कि वह बहू को समझाने का प्रयत्न करे कि वह उन्हीं के साथ रहे. इस आग्रह के पीछे और कितने दबाव काम कर रहे थे, यह चेतन जानता था. पर उसे इस विषय में सोच कर भी ग्लानि होती है. वैसे यह सच था कि बाऊजी बिट्टू को बेहद प्यार करते थे. वह उनका एकमात्र पौत्र था. वह भी जेठे लड़के की संतान. पर भाभी के लिए यह बात उतनी गण्य न थी. भाभी ने अपने पीहर जाने से भी इनकार कर दिया था. उससे यह बात छिपी नहीं थी कि जीवन का भार ढोने के

लिए उसे तुरंत सक्रिय हो जाना होगा. भैया की पेंशन का अभी कुछ निश्चित नहीं था. फंड से कितने दिन चल सकता है? भाभी पीहर में भी और अब यहां भी अभिजात रहन-सहन की अभ्यस्त थी. चेतन भी भाभी के इससे वंचित होने की कल्पना नहीं कर पाता था. ऊपर से बिट्टू का दायित्व . . . क्वाटर भी शायद देर-सबेर छोड़ना पड़े.

★ ★

उस दिन कैप्टन आनंद आये थे. मोर्चे से लौटते ही सबसे पहले वे उनके यहां आये थे. चेतन उन्हें भाई के घनिष्ठ मित्र के रूप में जानता था. सदा के गंभीर कैप्टन आनंद का चेहरा आज अधिक गंभीर हो उठा था. वे तीनों देर तक बैठे रहे थे. चुपचाप. उठते समय भाभी के कंधे थपथपाकर उन्होंने केवल इतना कहा था कि सावित्री, साहस रखो, बहादुर लड़की बनो. आज चेतन ने पहली बार किसी के सामने भाभी की आंखों में आंसू देखे थे. कितने ही लोग आ कर और आंसू बहा कर चले जाते थे पर भाभी निर्विकार मुद्रा में बैठी रहती, पाषाण-प्रतिमा-सी. मिस्टर आनंद की संवेदना ने शायद भाभी को कहीं गहरे में छू लिया था. नहीं तो सांत्वना के लंबे-लंबे भाषणों पर भी चेतन ने भाभी की आंखें सूखी ही देखी थीं.

कैप्टन आनंद रोज आने लगे थे. वे और भाभी चुपचाप बैठे रहते. बिट्टू उनके बीच खेलता रहता. भाभी ने अब काली साड़ी पहनना छोड़ कर सफेद पहनना शुरू कर दी थी. कभी-कभी शाम के समय वह उसे किसी हलके रंग की साड़ी में देखता. पर बिना बिंदी का उनका सूना चेहरा देख कर उसके मन में कहीं एक कील-सी चुभ जाती. मेरून रंग की साड़ी से लिपटा, बिंदी लगा भाभी का चेहरा अकसर उसकी आंखों में भर जाता. चेतन को यह सोच कर दुःख होता कि भाभी का वह पुराना रूप शायद अब वह कभी नहीं देख सके.

कैप्टन आनंद प्रायः शाम को आ जाते. अकसर वे तीनों गुमसुम बैठे रहते. कोई कुछ न बोलता. बीच में नौकर आ कर चाय रख जाता या फिर बिट्टू कोई फरमाइश ले कर आ जाता. बिट्टू आता तो आनंद उसे गोद में उठा लेते और खिलाने लगते.

भाभी की ओर से आनंद प्राविडेंडफंड, पेंशन आदि के कागजात भरवा कर भिजवा रहे थे. उनकी राय थी कि भाभी को नौकरी कर लेना चाहिए. इससे भविष्य के लिए आधार बनेगा और मन भी दूसरी ओर लगेगा. चेतन का भी यही मत था और आनंद भाभी के लिए नौकरी खोजने में लग गये.

भाभी के मन पर जमी बर्फ की पर्त पिघलने लगी थी. वह अब कभी-कभी स्वयं नौकर को साथ ले खरीद-दारी को चली जाती थी चेतन के साथ टहलने निकल जाती. कैप्टन आनंद आते तो वह उनका स्वागत करती और वे बातों में लग जाते. कभी कोई हंसी की बात होती तो उसके चेहरे पर फिर मुसकराहट के फूल खिल उठते. वे लोग एक दो पिक्चरें भी देख आये थे. चेतन इससे काफी कुछ आश्वस्त और निश्चित अनुभव करने लगा था.

★ ★

मार्च का अंत चल रहा था. हवा में वह सर्दी न रही थी. धूलभरी तेज हवाएं चलती रहतीं और छोटा-सा लॉन झरते हुए सूखे पत्तों से भर जाता. अब शाम को खुले में लॉन–चेयर्स डाल कर बैठना अच्छा लगता. शाम की सुनहरी धूप और तेज हवा..., वे वहीं चाय मंगा लेते. चाय पीते हुए वह जब भी भाभी की ओर देखता वह उसे सूखे झरते हुए पत्तों की ओर देखती नजर आती. फिर कभी उसकी आंखें ऊपर पेड़ की डालियों को देखने लगतीं. डालियों के सिरे पर नन्हीं-नन्हीं कोपलें आ रही थीं. उन्हें देखना चेतन को भी अच्छा लगता.

चेतन चाय लेने के बाद उठ जाता, पर भाभी और आनंद वहीं बैठे रहते. अक्सर अंधेरा घिरने के बाद तक भी. दूर से उनकी मुद्राओं से लगता कि वे धीमे स्वरों में बातें कर रहे हैं. या वे लॉन में ही धीरे-धीरे टहलने लगते. चेतन ने कई बार नोट किया कि कभी सहसा वह उनके सामने पड़ जाता है तो वे यकायक चुप हो जाते हैं. कोई नया विषय छेड़ना चाहते हैं पर स्थिति सहज नहीं हो पाती. तब से वह ध्यान रखने लगा था कि उनके एकांत में बाधा न बने.

सफेद गुलाब की क्यारियों में फूल खिलने लगे थे. भाभी को सफेद गुलाब बेहद प्रिय था. चेतन कुछ फूल तोड़ कर भाभी के पास ले गया—भाभी लो तुम्हारे गुलाब खिल आये हैं. जूड़े में लगाओ न. भाभी ने मुसकरा कर उससे फूल ले कर कार्निस पर रख दिये.

शाम को आनंद के लौटने पर भाभी भीतर आयी तो उनके जूड़े में सफेद गुलाब सजे हुए थे. चेतन की दृष्टि सहसा कार्निस की ओर उठ गयी—वहां सुबह वाले फूल वैसे के वैसे धरे थे.

चेतन के दायें पैर में झुनझुनाहट होने लगी थी इसलिए उसने बिट्टू को उठा कर बायें पैर पर सुला लिया. दूसरा पैर सीट के नीचे लटका लिया. किसी बड़ी नदी के पुल पर से बस निकली तो दो क्षण के लिए चेतन का ध्यान बाहर खिंच गया. नदी समाप्त होते ही वह फिर अपने में लौट आया.

उस दिन वह अचानक भाभी के कमरे में घुसा तो उसे समझ नहीं आया वह खड़ा रहे या चला जाय. मिस्टर आनंद को नमस्ते करने का भी उसे ध्यान न रहा. बिट्टू अपनी एयरगन से खेल रहा था. कैप्टन आनंद भाभी के गले में बांहे डाले उन्हें बिट्टू का खेल दिखा रहे थे. (आज कितने लंबे अर्से के बाद चेतन ने भाभी के चेहरे पर खिली मुसकान देखी थी) इस समय भाभी से जब उसकी आंखें मिलीं तो मुसकराना चाह कर भी वह मुसकरा नहीं सका था.

उस दिन शाम तक भाभी के सामने नहीं गया. अंधेरा होते-होते उसका मन भाभी के लिए अधीर होने लगा. वह भाभी के कमरे तक आया. कमरे में

अंधेरा भर 'जाने पर भाभी ने बत्ती नहीं जलाई थी. दरवाजे के पास लगे स्विच को उसने दबा दिया. भाभी टेबल पर सिर रखे औंधी बैठी थी. चेतन ने जा कर जब उसका सिर उठाया तो सारा चेहरा आंसुओं से तर था. उसने भाभी के दोनों हाथ कस कर पकड़ लिये. देर तक चुपचाप खड़ा रहा. नौकरानी बिट्टू को दरवाजे पर छोड़ गयी तो चेतन ने उसे उठा कर भाभी की गोद में बैठा दिया. उसका विचार था बिट्टू के गोद में आने पर भाभी कुछ बहल सकेगी. पर उसे सीने से लगा भाभी और अधिक फफक पड़ी.

अब भाभी जब बिट्टू को सीने से लगाती उसकी आंखें भरी होतीं. जब बिट्टू खेलता रहता तो वह उसे देर तक एकटक देखती रहती. कई बार खेलते हुए या सोते हुए बिट्टू को उठा कर वह अपनी छाती से चिपटा लेती.

कई बार चेतन देखता, भाभी अलमारी की अपनी सारी साड़ियां फैला कर बैठी है. उन्हें देखती रहती है और फिर रख देती है. अपनी शादी की साड़ी को हाथ में ले कर सहलाती, देर तक देखती रहती और फिर एक उदासी से घिर कर उसे जहां की तहां रख देती. कई बार अपने गहनों के डिब्बों को खोलती, देखती और धीरे से रख देती. वह घर की सभी वस्तुओं को घंटों खड़ी देखती रहती. कभी हलके से उन पर हाथ घुमाया करती और कभी किसी से सिर टिका आंखें बंद किये देर तक खड़ी रहती. उसके ऐसे व्यवहार से चेतन डर-सा जाता.

★ ★

उस दिन दोपहर के खाने के बाद भाभी ने उसे अपने कमरे में बुला कर कहा था—चेतन, तुमसे एक बात कहनी है भैया, भाभी के कांपते स्वरों से चेतन चौंक उठा.

—इस घर में उनके अतिरिक्त तुम ही मेरे सबसे अधिक अपने रहे हो. तुमने सदा मुझे समझा है. आशा है अब भी गलत न समझोगे.

—कहो तो भाभी, चेतन के शब्द बहुत धीमे-से निकले थे.

—और मुझे तुम्हारी सलाह भी चाहिए, चेतन. मैं गलती पर होऊं तो मुझे वैसा कह देना. रोक देना, पर घृणा की दृष्टि से न देखना.

—कैसी बातें करती हो भाभी ?

भाभी कुछ क्षण मौन रही फिर धीमे से बोली—मैं कैप्टन आनंद से विवाह कर रही हूं.

चेतन को अपनी छाती के भीतर गोला-सा उठता अनुभव हुआ. वह कुछ बोल नहीं पाया. सिसकी की आवाज से ही उसकी निगाह भाभी की ओर गयी. उसके चेहरे पर आंसुओं की धाराएं बह रही थीं. आंसू और पीड़ा की असंख्य रेखाएं—चीनी के बर्तनों पर पड़ीं—'क्रेजिंग' जैसी.

चेतन ने उसके आंसू पोंछने के लिए हाथ बढ़ाया. पर फिर उसे कंधे से लगा लिया उसका शरीर सिसकियों से हिल रहा था. चेतन उसकी पीठ भी न सहला सका, केवल कंधे थामे रहा.

शांत होने पर भाभी ने कहा था—चेतन अकेली स्त्री बहुत कमजोर होती है भैया! पढ़ाई-लिखाई अपनी जगह ठीक है. पर . . . आनंद से आशा है कि वह बिट्टू को भी प्यार दे सकेंगे. उलझनें तो इसमें भी बहुत-सी हैं . . . . पर और कौन-सा रास्ता सरल है?

चेतन ने कहा—भाभी मैं तुम्हें गलत नहीं समझ रहा.

शाम को कैप्टन आनंद आये थे.

चेतन रोज की तरह उनका स्वागत करने को उठा. उसने उनसे हाथ मिलाया, पर वह स्वयं अपने हाथ की पकड़ ढीली अनुभव कर रहा था. वह एक क्षणांश को ही उनसे आंखें मिला सका था. उसने अपने को बहुत अस्तव्यस्त अनुभव किया और बहाना बना-कर जल्दी से उठ आया.

बाद में उसे अपने आचरण पर झेंप और झुंझलाहट हुई थी. उसने कोई अभद्रता नहीं की—यह ठीक है, पर वह सहज क्यों नहीं रह पाया. आखिर भाभी और आनंद क्या बुरा कर रहे हैं? यह प्रश्न सारी रात उसको मथता रहा था. यह उसके सामने आरंभ से ही बहुत साफ था कि इसमें कहीं ऐसा कुछ नहीं जिसे बुरा कहा जा सके. उसने खूब सोच कर भी देख लिया था . . . पर. फिर वह इसे सहजता से क्यों नहीं ले पा रहा? क्यों वह उद्विग्न हो उठा है? भाभी के प्रति तो नहीं पर आनंद के प्रति वह कहीं गहरे में विरक्ति अनुभव कर रहा था और इसीको ले कर अपने ऊपर खीझ रहा था कि उसके और आनंद के मध्य जो एक अदृश्य पारदर्शी दीवार उठ आयी है, वह बहुत प्रयत्न करने के बावजूद गिर नहीं रही. वह आनंद से अब भी मिलता और बोलता था पर उसे अपना व्यवहार स्वयं उखड़ा-उखड़ा लगता. परिवार के घनिष्ट मित्र के रूप में आनंद से पहले जैसी आत्मीयता क्यों नहीं रही थी? उसने मां और बाऊजी को भाभी का मिर्णय और अपनी सहमति की सूचना दे दी थी. उन्होंने अपना घोर विरोध तो प्रकट किया था पर साथ ही अपनी विवशता से समझौता भी कर लिया था.

सिविल विवाह के समय वह भाभी के साथ कचहरी गया था. भाभी की ओर से केवल वही उसके साथ था. आनंद ने कुछ चुने हुए मित्रों को एक होटल में पार्टी दी थी. भाभी बहुत साधारण से शृंगार में इसमें सम्मिलित हुई थी. आज उसके बिंदी लगे चेहरे को चेतन बार-बार देख लेता था. उसने नोट किया था भाभी बड़े प्रयत्न से अपने चेहरे पर मुसकराहट बनाये रख रही है.

परीक्षा को कुछ ही दिन शेष थे तथा भाभी के विशेष आग्रह पर चेतन भैया के उसी सरकारी क्वाटर में रुक गया था.

आनंद के साथ भाभी को विदा कर जब वह इस घर में घुसा था तो उसके पैर आगे नहीं बढ़ रहे थे. घूमने-फिरने के शौकीन बिट्टू का बार-बार

उसे टा-टा करना, भाभी का भरी आंखों से उसकी ओर देखना तथा आनंद का हाथ मिला कर उसकी पीठ थपथपा देना देर तक याद आता रहा. वह बगीचे में गुलाब के फूलों को तब तक खड़ा देखता रहा था जब तक कि अंधेरे ने उन्हें छुपा न दिया. जब बोझिल कदमों से वह अंदर घुसा तो यह पांच कमरों का मकान उसे किसी भुतहे महल से कम न लगा था. वह पलंग पर औंधा पड़ गया और माथा तथा नाक तकिये पर रगड़ता रहा था.

चेतन ने उस दिन पक्का सोच लिया था कि कल से वह किसी और जगह रहने चला जायेगा. . .पर इतनी जल्दी कमरा मिलना आसान कहां था.

कल तक जो भाभी थी वह आज मिसेज आनंद हो गयी है.

वह फिर भी सावित्री को भाभी ही कहता रहा था. भाभी तथा मिस्टर आनंद के बार-बार कहने पर भी वह उनकी कोठी में रहने नहीं जा सका था. हां कभी नित्य और कभी एक-आध दिन के अंतर से वह भाभी को मिल आता था. बिट्टू के साथ खेल आता था.

भाभी की सामाजिक स्थिति ही नहीं बदली थी और भी सब कुछ बदल रहा था. भाभी भैया के घर से एक भी वस्तु साथ नहीं लायी थी. यह सामान उन्होंने घर मां के पास पहुंचाने को कहा था, या जैसा भी वह चाहें करें. भाभी अपने कपड़े तक नहीं लायी थी. कई कीमती साड़ियां उन्होंने आया को दे डालीं थीं. वह भाभी को नया घर सजाते देखता तो उसे सब याद आ जाता.

बिट्टू को नये घर में आना अच्छा लगा था. उसने पूछा था--मम्मी हम आनंद अंकल के घर क्यों जा रहे हैं? भाभी ने कहा था, बेटे अब इन्हें अंकल नहीं कहते, ये तुम्हारे नये डैडी हैं.

बिट्टू ने अपनी नजरें आनंद की ओर उठा कर बड़ी मासूमियत से झुका लीं. वह यह तो जान चुका था कि उसके डैडी अब नहीं आयेंगे, पर यह नये डैडी वाली बात उसकी समझ में नहीं आयी थी.

आनंद ने बढ़ कर बिट्टू को गोद में उठा कर चूम लिया--बिट्टू हमारा राजा बेटा है!

बिट्टू उनकी गर्दन में बाहें डाले-डाले बोला--अंकल अंकल हैं, डैडी नहीं हैं. भाभी और आनंद दोनों का मुख एकदम म्लान हो आया था.

★ ★

यों सब ठीक चल रहा था, पर कभी-कभी भाभी का व्यवहार कुछ विचित्र-सा हो उठता. कभी वह सारा सारा दिन छाया की तरह बिट्टू के संग-संग लिपटी रहती. उसके बाल सहलाते--सहलाते वह न जाने कहां खो जाती. उसका मुख विषाद की घटाओं से घिर जाता, किंतु सहसा वह उसे आया को सौंप देती कि उसे उनके पास से ले जाय. ऐसे में वह बिट्टू के रोने--बिलखने पर भी उसे पास नहीं फटकने देती. भोला बिट्टू अपनी मम्मी के इस मूड-परिवर्तन पर रो-धो कर रह जाता. पर चेतन और आनंद सावित्री की इस दशा पर चिंतित थे. आनंद अपनी ओर से बिट्टू का पूरा-पूरा ध्यान रखता. वह एक पिता का कर्तव्य पूरी ईमानदारी से निभा रहा था. पर भाभी . . .!

एक दिन भाभी सहसा बिट्टू पर, जो उनकी अथाह ममता का केंद्र था, बिगड़ उठीं. बिट्टू इस अप्रत्याशित आघात से बुरी तरह चिघाड़ कर रो पड़ा. चेतन ने उसे भाभी से छुड़ाया तो भाभी भी फूट पड़ी और सोफे में धंस कर फफकने लगी.

बिट्टू के बाद चेतन ने भाभी को चुप कराया. वह भाभी से इस विषय पर बात करना चाहता था, पर क्या कहे और कैसे कहे, उसे कुछ भी सूझ नहीं रहा था.

फिर भाभी स्वयं ही भीगे कंठ से बोली--बिट्टू को तुम्हीं ले जाओ भैया, नहीं तो मैं पागल हो जाऊंगी . . .बाबूजी और अम्माजी भी बिट्टू को मांग रहे थे न. इतना कहते-कहते उन्हें फिर जोर की रुलाई आ गयी.

★ ★

भाभी बस स्टैंड तक उन्हें छोड़ने आयी थी. आनंद भी साथ आये थे. वे लोग समय पर ही आये थे, पर बस लेट थी. आनंद कुछ आवश्यक काम बता कर चले गये थे या शायद इस स्थिति को बर्दाश्त न कर पाने के कारण. भाभी रुकी रही, उसने बिट्टू को गोद में उठा लिया था, हालांकि बिट्टू को नीचे खड़े रहना अच्छा लग रहा था. वह एक दो बार ऊब कर कुनमुनाया भी, पर भाभी ने उसे नीचे उतारने के बजाय और अधिक कस लिया. बस के आने तक वह उसे इसी तरह छाती से चिपटाये खड़ी रही. जब बस में लोग चढ़ रहे थे तब भाभी बिट्टू को ताबड़तोड़ चूमे जा रही थी. उसकी आंखों में पानी उतर आया था और निचला ओंठ बार-बार थरथरा जाता था. बिट्टू को चेतन को देते समय उसके दोनों कपोलों पर आंसुओं की धार बह आयी जिसे उसने शीघ्र ही आंचल से पोंछ डाला. वह फिर-फिर आंखें पोंछती और फिर-फिर उनमें पानी उतर आता. बीच-बीच में उसके ओंठों से सिसकी निकल जाती. चेतन को भाभी की यह अव्यवस्थित मुद्रा तथा संयत होने का प्रयास बुरी तरह बींध गया था. उसे लगा यदि उसने भाभी से आंखें मिलायीं तो उसकी अपनी आंखें भी भीज जायेंगी.

बिट्टू को पहले जब यह बताया गया था कि वह अंकल के साथ जायेगा. दादी और बाबा के पास जायेगा तो उसने खूब उछाह दिखाया था. पर अब वह रोने लगा था.

बस में चढ़ते हुए चेतन ने कहा था--भाभी औरों के लिए तो कुछ नहीं कहूंगा पर बिट्टू की ओर से तुम मुझ पर विश्वास कर सकती हो. चेतन आगे और कुछ भी कहना चाहता था पर उसका गला भर आया था.

बस चल पड़ी थी. चेतन को दूर तक भाभी के जूड़े में सजा सफेद गुलाब दिखाई देता रहा था. □□□

४१७४ कोतवाली मोहल्ला, अम्बाला छावनी (हरियाना)

चोर

• सारंग बारोट

• रजनीकांत

सरल स्वभाव के दलाल दंपति के यहां रूखी की नौकरी का चौथा वर्ष चल रहा था. तभी एक दिन अचानक उसके सेठ दिनकरभाई और सेठानी शोभना कुछ चिंता में पड़ गये.

चार वर्ष की रूखी की नौकरी से दोनों काफी संतुष्ट थे. और इस संतोष का पुरस्कार वे उसे न देते, ऐसे वे कंजूस भी न थे; इसलिए रूखी को उसके काम के लिए अच्छे वेतन के अतिरिक्त हर वर्ष दीपावली पर कुछ अतिरिक्त उपहार भी मिलता था. रूखी खाना बनाने का काम करती थी और पचास रुपये से शुरू हुआ उसका वेतन चार वर्षों में सौ रुपये तक पहुंच गया था. वेतन के अतिरिक्त नौकरी के पहले वर्ष में पचास, दूसरे वर्ष सौ और उसके बाद के वर्ष में दो सौ रुपये उसे हर दीपावली पर मिले थे. कपड़े वगैरह और दूसरी जो छोटी-छोटी चीजें शोभना ने उसे खुले हाथों दी थीं, वे अलग. अकेली-अकेली रूखी के लिए यह सब उसकी आवश्यकताओं से अधिक था. उस परिवार के लिए रूखी अब खाना बनानेवाली न रह कर उस घर की सदस्या बन गयी थी.

दिनकर और शोभना के लिए रूखी लगभग अनिवार्य बन गयी थी. तीन वर्ष पूर्व जब से रोहित का जन्म हुआ, तब से तो उसके बिना काम चलता ही न था. उसके जन्म के बाद आया की आवश्यकता हुई तब रूखी ने आया रखने के लिए स्पष्ट मना किया था और रोहित की देखभाल की जिम्मेदारी स्वयं उठा ली थी. और इस कार्य में वह इतनी सफल रही थी कि आज तक रोहित को लेकर उन्हें एक बार भी डॉक्टर के पास नहीं जाना पड़ा था. ऐसी सेविका को नौकरी से हटाना पड़े, तो यह विचित्र स्थिति ही थी. दिनकर और शोभना दोनों ही चिंतित थे.

चार वर्षों की नौकरी के बीच कभी चुटकी भर धूल भी न चुरानेवाली इस सेविका की गति अब बदल रही थी, बदल कर दिन-दिन अधिक बिगड़ती जा रही थी, ऐसा दिनकर और शोभना को लग रहा था. उन्हें विश्वास नहीं होता था किंतु पहले कभी नहीं होता था ऐसा कुछ न कुछ उस घर में घटता रहता था और उसके-पीछे रूखी के अतेरिक्त दूसरे किसी का हाथ नहीं हो सकता था.

—पिछले तीन दिन से रोहित का बंदर नहीं मिल रहा है, एक दिन शोभना ने दिनकर से धीरे-से कहा.

—बंदर! जनक ने जापान से भेजा था वह?

—हां.

—पूरे पचास रुपये का खिलौना इस तरह गायब हो जाय और हम धीमे स्वर में बातें करने के सिवा कुछ न करें यह स्थिति तो असह्य है, शोभना. अब तो इस संबंध में कुछ करना ही पड़ेगा. इधर कोई सप्ताह ऐसा नहीं गया जब घर में-से कुछ न कुछ गायब न हुआ हो.

—इस सप्ताह तो दूसरी बार ऐसा हुआ है. अभी चार दिन पहले चांदी के दो चम्मच गुम हुए थे और आज वह बंदर.

—मुझे लगता है कि रूखी से अब साफ-साफ बातें करनी होंगी.

—इस तरह बातें करने से समस्या नहीं सुलझेगी. वह तो कहेगी, भाई, मैं तो कुछ नहीं जानती.

—तो फिर क्या करें?

—मुझे तो कोई उपाय नहीं दिखता है. रूखी पर विश्वास रखकर अब तक मैं तीन नौकर बदल चुका, लेकिन चोरी का क्रम तो जारी ही है. इस बात से स्पष्ट है कि चोरी के पीछे उसी का हाथ है. नहीं तो सभी नौकर चोर नहीं होते.

—किसी न किसी तरह उसे चोरी करते हुए पकड़ना चाहिये. सिवा इसके दूसरा कोई चोरी नहीं करता होगा और वह ऐसा करती होगी, इसका विश्वास भी नहीं होता.

—मैंने बहुत प्रयत्न किये, किंतु किस समय कौन वस्तु गुम हो जाती है और कहां गायब हो जाती है, यह समझ में नहीं आया. एक बार रूखी रोहित को बाहर घुमाने ले गयी थी तब नौकर को एक निरर्थक काम के बहाने बाहर भेजकर रूखी के कमरे की तलाशी ली थी. उसका बक्सा भी देख डाला, लेकिन कुछ भी हाथ न लगा.

—तुम्हें एक बात समझनी चाहिये कि इस तरह चोरी की वस्तुएं कोई अपने पास नहीं रखता. या तो उसे तुरंत निकाल देता है अथवा ऐसी जगह छिपा देता है, जहां जल्दी कोई नहीं पहुंच पाता.

—किंतु हमारे बंगले में ऐसी कौन-सी जगह है? मैं तो प्रायः सभी जगह देख लेती हूं, पर कभी कुछ सुराग

हाथ नहीं लगता. बालु तो बर्तन-कपड़े साफ कर तुरंत चला जाता है. और बालु जैसे तो तीन नौकर बदले, फिर भी चोरी होती ही रहती है. मुझे तो लगता है कि अब-तक हमारा विश्वास बनाए रखने के लिए अच्छा व्यवहार रख रूखी अपने मूल स्वभाव पर आ गयी है. मुझे तो इस बात का डर है कि कभी लंबा हाथ साफ कर वह स्वयं रफूचक्कर न हो जाए. आभूषण तो मैं सम्हाल कर रखती हूं, फिर भी. . .

—मुझे लगता है कि हम एकाध छोटा आभूषण कम करने की तैयारी करके भी रूखी को पकड़ने का प्रयत्न करें. पकड़ी जाए तब उसकी खबर लेंगे.

और योजनानुसार शोभना ने रसोईघर में हाथ धोने से पहले सोने के पट्टेवाली अपनी हाथघड़ी, रूखी आसानी से देख सके, इस तरह एक ताक पर रख दी और फिर घड़ी को वहीं छोड़कर ऐसे बाहर चली गयी जैसे भूल गयी हो.

पर उसकी योजना व्यर्थ सिद्ध हुई. कुछ देर बाद रूखी ने शोभना को घड़ी देते हुए कहा—लीजिये, बहन! आप रसोईघर में ताक पर भूल गयीं थीं. दिनकर को और शोभना को आश्चर्य हुआ. उनकी समझ में नहीं आया कि रूखी वास्तव में चोर है या नहीं?

घड़ी तो रूखी दे गयी, लेकिन आश्चर्य की बात यह हुई कि उसी दिन दो स्टील के कटोरे गुम हो गये. क्या समझा जाए? क्या किया जाय? दिनकर और शोभना की चिंता दिनों-दिन बढ़ रही थी, किंतु दोनों ने अब इस बात का किसी न किसी तरह अंतिम फैसला करने का निश्चय कर लिया था.

★ ★

कुछ ही दिनों बाद जब दिनकर का सिगरेट-लाइटर गुम हो गया तब उसने रूखी को बुला कर शोभना की उपस्थिति में कहा—मेरा सिगरेट-लाइटर देखा है, रूखी?

—नहीं तो.

—रूखी, घर में से आए दिन चीजें गुम होती हैं, यह तो तुम जानती हो न?

—हां, साहब!

—मेरी समझ में नहीं आता कि कौन चीजें चुरा ले जाता है.

—मेरी समझ में भी यह बात नहीं आती. पहले नौकरों पर शक होता था, लेकिन तीन चार नौकर बदलने के बाद भी चीजें निरंतर गुम होती रहती हैं. और बालु तो साहब, हाथ का साफ आदमी है, इसका तो मैंने इतमीनान कर लिया है.

—तो फिर चीजें जाती कहां हैं? जमीन तो खा नहीं जाती. बालू चोर नहीं है, तो फिर क्या मैं चोर हूं?

—मैं समझती हूं. साहब. . . .

—क्या समझती हो?

—यही कि यदि इस तरह वस्तुएं गुम होती रहीं तो संदेह मुझ पर ही किया जायगा. लेकिन साहब, मैं इतने समय से आपके यहां काम करती हूं, कभी एक पैसा भी. . .

—आदमी की मति फिरते देर नहीं लगती, रूखी.

—साहब!

—हां रूखी, घर में से कौन चीजें चुराता है, यह अब हमसे छिपा नहीं है.

—आपको मुझपर शक है?

—नहीं तो दूसरे किस पर शक करें?

—साहब. . .! भगवान की कसम खा कर कहती हूं कि जब से जन्म लिया है तब से मैंने कभी किसी की चोरी नहीं की.

—जो चोरी कर सकता है, वह झूठी कसमें भी खा सकता है.

—मेरा कौन है जिसके लिए मैं चोरी करूंगी? आगे-पीछे कोई खानेवाला नहीं है और पेट की खाई तो आप जैसों की सेवा करने से भर जाती है. मैं आपको किस तरह विश्वास दिलाऊं कि मैं चोर नहीं हूं. भगवान की कसम के सिवा मेरे पास दूसरा कोई तरीका भी तो नहीं है, साहब!

—लोग झूठी कसम भी तो खाते हैं. तुम्हें अपनी सफाई देने का प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है. हम ने रास्ता सोच रखा है.

—तो साहब, जो रास्ता तय कर रखा हो, उसे आजमा कर देख लें. अंत में जो सत्य होगा, वह सामने आ जाएगा.

—हमने तुम्हें नौकरी से हटाने का निश्चय कर लिया है.

—ठीक है साहब, आप मालिक हैं. पर इस तरह माथे में काला टीका लगा कर न निकालें. मैं वास्तव में चोर नहीं हूं.

—यह तो तुम्हारे जाने के बाद अपने आप समझ में आ जाएगा. तुम्हारे जाने से चोरी बंद हो जाएगी तो हमें दूसरे किसी विश्वास की जरूरत नहीं रहेगी.

—हे राम! इस अवस्था में ऐसे सेठ-सेठानी की तरफ से ऐसा कलंक लगवा कर तुम मुझे किस पाप की सजा दे रहे हो, प्रभु! कहती हुई रूखी वहां से चली गयी.

★ ★

दूसरे दिन रूखी घर छोड़नेवाली थी. निर्णय दिनकर ने किया था और उसे हटानेवाला भी वह स्वयं ही था, फिर भी वह मन ही मन दुखी हो रहा था. शोभना को भी रूखी का जाना अच्छा नहीं लग रहा था. पर दोनों जानते थे कि ऐसी उदारता मात्र एक कमजोरी है. रूखी को हटाने के सिवा दूसरा कोई उपाय न था.

पर दूसरे दिन रूखी न जा सकी. उस रात को ही उसे ज्वर हो आया. दूसरे दिन डाक्टर को बुलवाना पड़ा, ऐसी स्थिति हो गयी और तीसरे दिन उसे सन्निपात हो गया. ज्वर के ताप में वह अनेक टूटे वाक्य बोलती थी लेकिन सब का भावार्थ एक ही था—मैं चोर नहीं. . . हे भगवान मेरे माथे ऐसा कलंक क्यों लगाते हो, प्रभु!

चार दिन बीत गये, लेकिन रूखी का ज्वर नहीं उतरा. डाक्टर ने धीमे-से कहा था कि वह शायद नहीं

बचेगी. कोई बहुत बड़ा आघात लगा है इसे. ज्वर काबू में नहीं आ रहा है.

इस स्थिति में पांचवें दिन एक घटना ऐसी घटी कि दिनकर और शोभना दोनों कांप उठे.

दिनकर का कीमती सिगरेट-केस गुम हो गया था.

बीमार-बेहोश रूखी तो चारपाई से उठ नहीं सकती थी. तो फिर किसने चोरी की? और रूखी के बदले कोई दूसरा चोर निकला तो. . .तो? जैसे कोई बहुत बड़ी भूल हो गयी हो और उसका प्रायश्चित करना चाहते हों, इस प्रकार भारी मन से दिनकर और शोभना रूखी को जीवित रखने का जी-तोड़ प्रयास करने लगे. उसे अस्पताल में दाखिल करना पड़ा. बड़े-बड़े डाक्टरों का उपचार होने लगा. किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि एक गरीब विधवा के लिए दिनकर और शोभना इतना धन पानी की तरह क्यों बहा रहे हैं? उसका इतना अधिक ख्याल क्यों रख रहे हैं? दोनों के चेहरों पर उदासी छा गयी थी, दोनों पति-पत्नी एक दूसरे को भाषा की सहायता के बिना ही कह रहे थे, न हो ऐसी निष्कलंक सेविका की हत्या का पाप हमारे सिर लगे.

* *

जब-जब रूखी कुछ होश में आती तब दिनकर या शोभना जो भी उसके पास होता, उससे कहता—हमें विश्वास हो गया है रूखी, कि तुम चोर नहीं हो. तुम अस्पताल में पड़ी हो, फिर भी घर में चोरी होती रहती है. हमने नाहक तुम्हारे ऊपर संदेह किया.

कुछ दिनों तक तो रूखी ने ऐसे वाक्यों का जवाब नहीं दिया किंतु एक दिन उसकी तबीयत जरा ठीक थी, तब उसने कहा—मुझे जीवित रखने के लिए ऐसा कहते हैं! किसलिए बापू? एक बार इज्जत गयी, फिर मेरे लिए जीना बेकार है.

रूखी ने यह कहा तो सही, किंतु शोभना और दिनकर के शब्दों ने भी उस पर असर किया था और उसकी तबीयत में कुछ सुधार होने लगा था.

—हम झूठ नहीं कहते, रूखी! शोभना और दिनकर उससे कहते.

—सच कहते हों तो यह भी बता दें कि चोर कौन है ताकि मेरी आत्मा की सद्गति हो.

—अभी हम उसे पकड़ नहीं पाये हैं, पर उसका पता चलते ही हम उसे तुम्हारे सामने जरूर पेश करेंगे. फिर तुम्हें ही उसे जो सजा देनी हो, देना.

—सजा तो इस समय मैं भोग रही हूं.

—अब ज्यादा दिन नहीं भोगनी पड़ेगी. निश्चय ही कोई बाहरी आदमी चोरी-छिपे आता है या शायद शरीफ लगता बालु ही इस तरह आ कर चीजें उठा ले जाता होगा. सिगरेट-केस के बाद नये जूते गुम हो गये. बालु की अनुपस्थिति में ही जूते गये थे, लेकिन चोरी-छिपे वही आ कर नहीं उठा ले गया होगा, इसका क्या विश्वास? तुम चिंता न करो, रूखी! बालु हो अथवा बाहर का कोई आदमी, अब वह अवश्य ही पकड़ा जाएगा.

—और पकड़कर यहां मेरे पास लाएंगे, तभी मुझे विश्वास होगा.

—ऐसा ही होगा, रूखी! तुम जल्दी स्वस्थ हो जाओ. रोहित तुम्हारे बिना नहीं रहता है. तुम स्वस्थ हो कर घर नहीं आओगी तो शायद वह बीमार पड़ जाएगा.!

—भगवान उसे सौ वर्ष की आयु दें! ईश्वर मेरी लज्जा रखेगा और वास्तविक चोर पकड़ा जाएगा तो मुझे आप के घर की छाया से अलग कुछ प्रिय नहीं है. सेठ, वहां नहीं आऊंगी तो कहां जाऊंगी?

* *

और जल्दी ही वास्तविक चोर पकड़ा गया. चोरी गयी सभी वस्तुएं भी मिल गयीं. उन सभी वस्तुओं की थैली के साथ दिनकर और शोभना अस्पताल गये और जाते ही रूखी को सूचित किया—चोर पकड़ा गया, रूखी!

—सच?

—सच, रूखी! देखो, ये गुम हुई वस्तुएं भी वापस मिल गयी हैं, कहते हुई शोभना ने सारी वस्तुएं रूखी को दिखला दीं.

—अंत में मेरे भगवान ने मेरी लाज रख ली! कह कर रूखी आर्द्र बन गयी, मेरी प्रार्थना अंत में उसने सुन ली!

—अरे, यह तो पूछो कि चोर कौन था?

—मुझे यह जानकर क्या करना है? जाने दें साहब, वह अपना किया, आप भोगेगा!

—पर यहां तो उसका किया तुम्हें भोगना पड़ा न रूखी! पता है, चोरी कौन करता था?

—कौन करता था?

—यह बदमाश, कहते हुए दिनकर ने रोहित को आगे किया.

—यह! रूखी की आंखों में आश्चर्य था, यह मेरा रोहित?

—हां, रूखी! जो हाथ लगता, उस वस्तु को उठा कर घर में जो वर्षा का पानी जमा करने का कुआं है न, उसमें छोड़ आता था. आज पूजा में से भगवान की मूर्ति उठा कर कुएं में डालते हुए पकड़ा गया. बालु को कुएं में उतारा तो खोई हुई सारी वस्तुएं मिल गयीं.

—तो भगवान पानी में गये और सारी वस्तुएं ढूंढ़ लाए.

—बोलो रूखी, अब इस चोर को क्या सजा दें? शोभना ने रूखी से पूछा.

पर तुरंत रोहित ने सफाई दी.

—मैं चोरी नहीं करता था. . .मैं तो कुएं के पानी में 'मम्म' करता था. □□□

(गुजराती से अनुवादक : गोपालदास नागर)
७, करेलवाड़ी, ठाकुरद्वार, बंबई-२.

पारदर्शी चेहरा

• ब्रजकुमार मित्तल

जोरों से बारिश हो रही है. जैसे सारा आकाश धरती पर टूट पड़ेगा. बाहर-भीतर सब भीगा-भीगा-सा लगता है. भाभी पीछे की सीट पर लेटी हैं चुपचाप. ओबरा से मिर्जापुर जाना है. जाना ही है, रुक नहीं सकते भाभी के लिए. भैया चुपचाप ड्राइव कर रहे हैं. कहने को है भी क्या? इस तूफानी बारिश में एक प्रश्न मन में उठता है और चुप हो जाता है. . . . यह भयंकर तूफानी बारिश, क्या होगा? सच है, क्या होगा? इस प्रश्न का उत्तर अभी तक कोई नहीं दे सका इसलिए तो लोग इससे कतरा कर निकल जाते हैं. भाई साहब, ने पूछा—— अखिल ! सर्दी तो नहीं लग रही है ?

मैंने पीछे लेटी भाभी की ओर मुड़ कर पूछा—— भाभी. . . . ?

——नहीं . दबी-सी आवाज में भाभी ने कहा.

वाइपर शीशे पर बहने वाले पानी को बराबर पोंछ रहा है ताकि उस पार साफ साफ देखा जा सके. भैया ने सिगरेट जलाते हुए कहा—— ड्राइव करोगे? मैंने उतरे मन से उनकी ओर देखा.

——अच्छा ठीक है. कह कर भैया फिर शांत हो गये जैसे अपनी किसी गहराई में डूब गए हों.

एक ठोस नीरवता को तोड़ती हुई भाभी की बुझी-बुझी खांसी—— मैं एक बार भाभी को ध्यान से देखना चाहता हूं पर न जाने क्यूं डर कर अपनी जगह बैठा रह जाता हूं.

——जरा देखो, पेपर्स में क्या है? अपनी जेब की ओर इशारा करते हुए भैया ने कहा.

मैं रिपोर्ट निकाल लेता हूं. एक प्रश्न मेरे मन में उठता है—— यह सब चुपचाप हो गया मुझे भैया ने यह सब पहले क्यों नहीं बताया? ये पेपर्स मुझे घर पर क्यों नहीं दिखाए? ये प्रश्न अंदर ही अंदर मर जाते हैं. मैं चुपचाप पेपर्स पढ़ने लगता हूं.

——केस इज सीरियस, इमीजिएट केयर. मैंने शीशे के पार आंखें गड़ा दीं—— मुझे लगा जैसे आकाश कई टुकड़ों में बिखर गया है, और उसकी मोटी-मोटी दरारों से धरती पर पानी गिर रहा है, गिरता रहेगा, कब तक? जब तक सारी दुनिया पानी की पर्त से ढक न जायेगी—— जब तक सब कुछ बदल न जायेगा. भैया गंभीर हैं. उनका चेहरा उदास है. वे पत्थर की तरह जड़ हैं. चुपचाप ड्राइव कर रहे हैं, जैसे बोलने के लिए उनके पास कुछ भी नहीं बचा. अब क्या होगा? मैं अर्थ पर अर्थ बुनने लगता हूं. आगे-पीछे का कितना कुछ सोच जाता हूं—— हजरतगंज की एक शाम—— एक तो अवध की शाम, दूसरे साथ में नयी भाभी. मैं अचानक पूछ बैठता हूं—— एक फास्ट कलर की साड़ी खरीदोगी ना?

——हां, तुम्हारी पसंद की.

मैं अपनी खुशियों में डूब जाता हूं—— एक बात कहूं भाभी?

——हूं.

——बुरा तो न मानोगी ?

——अरे! बुरा क्यों? हंसते हुए भाभी ने कहा.

——आपको तो साड़ी पहनना अच्छा नहीं लगता.

——तब?

——तब ! इस शब्द के साथ ही मुझे याद हो जाता है—— युनिवर्सिटी में इंगलिश एसोसिएशन का क्लोजिंग फंक्शन है. मिस दवा को पहली बार साड़ी पहने देख कर मैं अपने आप को रोक नहीं सका था—— माफ करना मैडम, तुम्हारा साड़ी पहनना कुछ अच्छा नहीं लगा.

——तब ! उसने भी यही कहा था, ठीक यही.

मैंने यूं ही कही थी मन की एक बात. मुझे उससे आगे बढ़ने की कोई गुंजाइश नहीं लगी थी. मैंने भाभी की ओर देखा. वे हंस रही थीं. मेरे सिर से एक बोझ-सा उतर गया. मुझे कुछ हलकापन महसूस हुआ. भैया न जाने किस मूड में थे, बोले—— ठीक ही तो कह रहा है, तुम तो अभी स्टूडेंट लगती हो. जाओ अखिल के साथ रिसर्च कर लेना इलाहाबाद.

सच, भाभी को अगर इलाहाबाद ले आता तो शायद यह न होता. ओबरा के पानी से यह सब हो गया, दो वर्षों में ही इतना परिवर्तन? इतना सब कुछ? पानी वैसे ही बरस रहा है, वायपर वैसे ही अपना काम कर रहा है, कार वैसे ही दौड़े रही है, भैया वैसे ही चुप हैं, शांत. एकदम शांत. मैं पीछे लेटी भाभी के सांसों की आहट पाने का प्रयास करता हूं. शीशे के बाहर अनवरत बूंदों का अंधेरा भरा हुआ है. सब राबर्ट्सगंज पीछे छूट गया. मड़ियान जानेवाला है—— सड़क के दोनों ओर बसा हुआ एक छोटा-सा बस-स्टेंड—— यहां के रसगुल्ले बहुत अच्छे होते हैं. मन में आया भाभी को बता दूं कि कितना शौकीन हूं मैं रसगुल्लों का! वे कहेंगी, घर चल कर बना दूंगी. जी भर कर खाना. तभी भैया बोले—— अखिल! इन्हें कोई बीमारी नहीं थी?

——कोई बीमारी नहीं थी?

——हां.

——इन्होंने खुद यह. . . . ये हर वक्त उदास रहती थीं, खोई-खोई-सी, पता नहीं क्यूं? मैंने शीशे के बाहर देखा—— एक ठूंठ सड़क के दायीं ओर घोर बारिश में चुपचाप खड़ा है, उदास-उदास, बुझा-बुझा-सा हर वक्त क्या सोचा जा सकता है? भाभी हर वक्त क्या, . . . जो हर वक्त सोचेगा, उसका क्या हाल होगा? वह कैसे जिएगा? वही जो भाभी का हुआ. भाभी का चेहरा, उस पर ठहरी एक सहमी-सी उदासी. लगातार बंद रहनेवाले दो सूखे होंठ—— जब भी खुलते तो बंद होने के प्रयास में लग जाते, कभी-कभी गहरा निःश्वास. बस यही शेष रह गया था भाभी के पास इन दो वर्षों में. हजरतगंज में मेरे साथ चलनेवाली

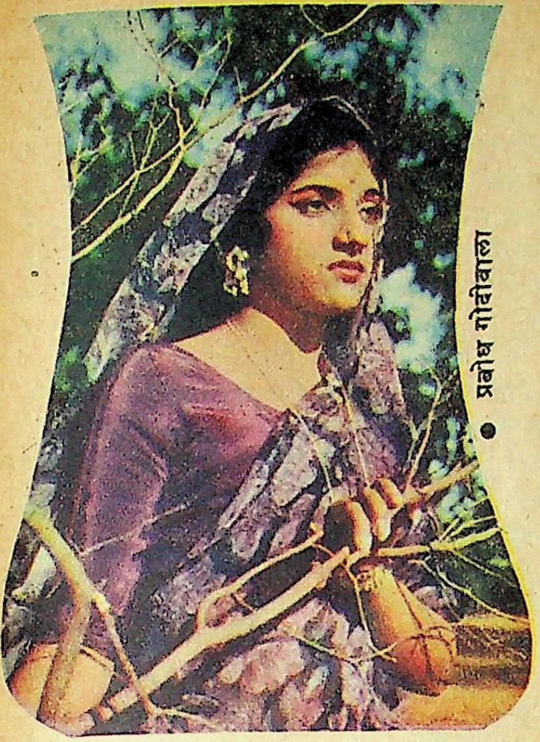
● प्रबोध गोयीवाला

खिली हुई भाभी, अब पीछे की सीट पर लेटी हैं, चुपचाप, खाली-खाली, अस्तित्वहीन. ये ठीक हो जायेंगी? हो जायेंगी? वैसी ही? मन के एक कोने एक नुकीला तीर-सा चुभ कर रह जाता है.

जब मैंने इलाहाबाद से जा कर पहली बार भाभी को इतनी कमजोर देखा तो पूछा था—– भाभी यह क्या हो गया आपको? इतनी कमजोर क्यों हो गयीं आप? —–कुछ नहीं थोड़ी तबीयत खराब हो गयी थी. हलकी-सी हंसी में ढक कर भारी उदासी दे दी थी उन्होंने मुझे. वह अंदर ही अंदर छुप कर रह गयी थीं. इसी प्रकार जब भी मैंने भाभी की हालत की बात उठायी, हर बार वह इस सत्य से कतराते नजर आयीं.

भाई साहब ने एक दिन मुझे बैठाते हुए कहा था—– हर वक्त सोचती रहती है न जाने क्या? बस धुल रही है यूं ही. वैसे बीमार नहीं है.

—–लेकिन अब तो बीमार हैं ही.

—–जब मैंने उन्हें हर वक्त खोई-खोई-सी देखा तो मुझे लगा जैसे उनका कुछ पीछे छूट गया है. वह पत्थर की एक शिला की तरह इस घर में हैं. बस हर वक्त काम-धाम और एक घोर चुप्पी, न हंसना, न बोलना. जब मुझसे न सहा गया तो मैं ने बात साफ करनी चाही. उन्हें बैठा कर कसम खिलाई कि आखिर बात क्या है, इतनी उदासी का कारण क्या है? वह सच्चाई से भागने का प्रयत्न करती रहीं. फिर मेरे जिद करने पर उन्होंने बताया कि उनकी शादी पहले कहीं और होने को थी पर संयोग से वे यहां चली आयीं.

यकायक भैया चुप हो गये. उनकी आंखें फैल कर स्थिर हो गयीं, जैसे दूर उन्होंने कुछ पकड़ लिया हो जिसे वे छोड़ना नहीं चाहते थे. मैंने कहा—– यह तो बहुत ही स्वाभाविक है, कि एक लड़की की शादी दस जगह होने को होती है पर होती तो एक जगह है.

—–नहीं अखिल.

. . . .

—–वह अब भी उसके बारे में सोचती रहती है. यहां तो वह सिर्फ एक पत्थर की तरह है. और मेरा उस पत्थर से क्या संबंध है, यह तुम जानते हो.

भैया कुछ भावुक हो चले थे. उनकी आंखों में एक गहरी खामोशी उतर आयी थी और वे उस खामोशी में डूब कर रह गये थे.

मैं सब कुछ समझ गया. भैया को मैं अच्छी तरह जानता हूं. उनकी आदत है कि जिस बात को पकड़ते हैं, फिर यूं ही नहीं छोड़ते. छोटी-सी-छोटी बात को भी खूब चीर-फाड़ कर देखते हैं. संदेह उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है—– भाभी कालेज में पढ़ती थीं, वहां के एक अध्यापक से या किसी एक लड़के से उनका प्रेम-संबंध रहा होगा. या फिर ऐसा ही कुछ, वे किसी को चाहती होंगी—– अपने जीवन से भी अधिक. यह सब शादी के पहले की बातें हैं. शादी के पहले एक जिंदगी होती है, जिसे कई ढंग से जिया जाता है, या कहिए जीना पड़ता है. उसके लिए इतना आग्रह क्यों? इतने प्रश्न कैसे? पर कुछ लोग बीती बातों को इतना कस कर पकड़ते हैं कि उनका वर्तमान और भविष्य भी निष्प्राण हो जाता है. भाई साहब ने दुखी होते हुए कहा था—–अखिल ! वह इस घर में कभी संपूर्णता नहीं भर सकती क्योंकि वह खुद अधूरी है.

पर मैं जानता हूं भैया का संदेह भाभी को कभी पूर्ण नहीं होने दे सकता इसीलिए वह तिल-तिल कर कटती गयीं और आज केवल एक अस्तित्वहीन संदर्भ की तरह रह गयी हैं.

एक बार मैं जब ओबरा आया था तो डाइनिंग टेबुल पर खाते वक्त मैं भाभी को छेड़ बैठा था—– भैया की हेल्थ का राज क्या है? आपका बनाया हुआ ऐसा खाना? ऐसा कहने पर भाभी अपने ही अंदर छुप गयी थीं. एक बार मेरी ओर देख कर जैसे दूर जा खड़ी हुई थीं. और भाई साहब वह तो जैसे छुपने के लिए खाने वाली प्लेटों के नीचे जगह ढूंढ़ रहे थे. बात टालने के लिए भाभी ने कहा था—– अखिल! क्यों शेखर : एक जीवनी ले आ सकोगे. आखिर वह सब क्यों था? मैं आज उस सब का अर्थ समझ रहा हूं. क्या भाभी बीती जिंदगी को अब भी ढो रही हैं? क्या वे अपने आपको भैया से नहीं जोड़ पायीं? पर मुझे लगा कि उन दिनों के बीच एक दीवार बन चुकी है.और वे दोनों उस केबाहर और पार जी रहे हैं. दीवार किसने बनाई, मैं इसको जानता हूं. भाभी की पग-पग परीक्षा ली गयी होगी, उनके एक-एक सांस पर संदेह किया गया होगा. और वे इस परीक्षा में घुल कर गयी.

मैंने पीछे मुड़ कर देखा—– भाभी की आंखें बंद हैं और उनके होठों पर एक मरा हुआ हास स्थिर हो गया है.

—भाई साहब?

—हां!

—यह सब क्यों हो गया?

—क्या बताऊं?

—तो क्या यह सब यूं ही हो गया? खेल-खेल में? औपचारिकता में? मैं उन दिन बहुत भरा हुआ था. मन करता था बहुत कुछ कह डालूं—आपके भाभी के संबंधों के बीच संदेह की दीवार जो आपने बनाई है, सदैव रही है. भाभी उसी की छाया में अपने-आपको दुबका कर जीने का प्रयास करती रहीं. इसीलिए अब वे केवल एक छाया रह गयी हैं. मात्र छाया—आज जिसे केवल देखा जा सकता है, स्पर्श नहीं किया जा सकता. आपने जिन आंखों से भाभी को देखा, उनमें एक प्रश्न सदैव तैरता रहा. और दृष्टि के इसी प्रश्न-चिह्न ने भाभी को तोड़ दिया, पूरी तरह. प्यार एक भावना है जो विश्वास की नींव पर खड़ा रेत का महल है. जरा से संदेह से वह धूल में बिखर सकता है.

भाई साहब चुपचाप सुन रहे थे. उनका चेहरा देखकर लग रहा था कि जैसे वे अपनी सच्चाई को ढूंढ़ने का प्रयास कर रहे हों.

पीछे की सीट पर भाभी एक रेखा की तरह अचेत पड़ी हैं—मुख पर युगों की चिता के अवशेष उलझे-उलझे हुए बाल, पारदर्शी-चेहरा—जिसके आर-पार सब कुछ स्पष्ट दीख पड़ता है. कोई भी उस चेहरे से भाभी को पूरी तरह पढ़ सकता है. मुझे लगा जैसे वह कह रही हैं—मुझ पर शक किया जा रहा है जो मुझे कहीं भी जुड़ने नहीं देता. सच, कहीं भी नहीं.

बाहर वही धुंआधार बारिश और पारदर्शी शीशे की धुंधलाती पानी की बूंदें. वही शीशे पर तेजी से रेंगता वैपर. इस अजीब-सी शांति में मेरा दम घुट रहा था. मेरे अंदर विचारों का दबाव बढ़ रहा था. मैं दर्द की परतों में दबता जा रहा था—आपने मुझे कुछ नहीं लिखा? मैं भाभी को इलाहाबाद बुला लेता. यह हालत तो न होती?

—क्या लिखता? कोई बीमारी तो हो. भैया ने बड़ी गहराई से कहा. सच है, संदेह कोई बीमारी तो नहीं है. जिसका इलाज ही न हो वह बीमारी ही क्या?

कार तेजी से सड़क पर पड़े पानी के छींटे उड़ाती दौड़ रही थी. भाभी डाक्टर तक पहुंच जाए तो मैं सब ठीक कर लूंगा, सब लौटा लूंगा. सब लौट आएगा? वैसा ही. भाभी के साथ मैं फिर वही अखिल. वही भैया. नहीं, यह शायद कभी न होगा. क्या सब कुछ बदल जायेगा? क्या भाभी उनकी नजरों में पीछे के जीवन से कटी हुई एक नयी चीज हो सकेंगी? क्या दीवार टूट जाएगी?

मिर्जापुर रेलवे फाटक बंद था. रिक्शाओं, बसों, तांगों तथा ट्रकों की एक लंबी कतार में जाकर हमारी कार भी रुक गयी. एक सरदार कह रहा था—ओ मुंडिया, तू की करदा पिया ऐं? ना सानूचा ते ना पाणी, ओए तू किना बेदर्दी ऐ. . .

बेदर्दी! निष्ठुर!! पत्थर!!! कौन?

मैंने अपने-आपको पकड़कर कहा—अखिल भैया का संशय भी ठीक हो सकता है. क्या जाने भाभी ही अपने आपको. . . पर इतनी सच्चाई ये जीने वाली कर सकती है, कुछ छुपा नहीं सकती.

हास्पिटल में अचेत पड़ी भाभी को अंदर ले जाया जाता है. डाक्टर गोपाल (भैया के दोस्त) भाभी को देखते हैं. मैंने सोचा कि वे कुछ पूछेंगे पर वे भैया के कंधे पर हाथ रख कर बोले—अच्छा, यह बताओ इंजीनियर! तुम तो बड़े फूंक-फूंक कर कदम रखने वाले थे, इतने लापरवाह कब से हो गए. शादी ने बदल दिया है शायद. भैया मेरी तरफ देखते हैं और मैं भाभी के कमरे की तरफ.

★ ★

कई दिनों से मैं भाभी के पास हूं. उनकी हालत कुछ ठीक हो रही है. उनके चेहरे पर फिर से ताजगी आने लगी है. भैया भी यहीं रहते हैं, पर कभी-कभी वे चले जाते हैं. मैं भाभी के पास बैठा हूं—भाभी सच बताओगी?

—नहीं मैं तो झूठ बोलूंगी. कहो क्या बोलूं?

—मेरे पास रह सकोगी एक आध साल?

—बस एक आध साल ही रखोगे?

बहुत दिनों के बाद इनमें इस तरह की बात देखता हूं.

—रह सकेंगी आप भैया से अलग? यह पूछकर मुझे लगा जैसे मैंने अपराध किया हो. पता नहीं क्यों.

—नहीं,. . . ना बाबा. कहकर भाभी ने मुझे देखकर आखें नीचे कर लीं.

—तो फिर पूछना ही बेकार है. मैंने कुछ नाराज होते हुए कहा.

—अरे नाराज हो गए. मुझसे भी नाराज? एक ही तो भाभी हूं, मैं तुम्हारी, सिर्फ एक. अधिकार के स्वर में उन्होंने घोषणा की.

मुझे लगा जैसे नये ढंग से रहने के लिए नयी भाभी ठीक हो रही हैं. संदेह के दुःख से मुक्त, हंसमुख, अधिकार-युक्त भाभी.

भाई साहब कह कर गये हैं, आज नहीं आएंगे. कोई बात नहीं. अब भाभी ठीक हैं. मैं जी भर कर उनसे बातें करता हूं. मन की सारी उदासी छंट जाती है.

बाजार से लौटकर आया तो पता चला कि भाभी की तबीयत अचानक खराब हो गयी है. मैं उनके कमरे की ओर दौड़ जाता हूं. भाभी छाती पर हाथ रखे चीख रही हैं. एक नर्स उन्हें थामे हुए है. दिल पर मालिश कर रही है. दूसरी नर्स दवा तैयार कर रही है. डाक्टर गोपाल दौड़कर आते हैं. इंजेक्शन देते हैं. मैं भाभी का सिर उठाकर दवाई पिलाता हूं पर दवाई होठों के दोनों ओर से बाहर निकल जाती है.

★ ★

मिर्जापुर से ओबरा लौटना है. कई दिन बाद भी इस शहर में वही उदासी, वही वीरानगी है. मैं स्टेयरिंग पर बैठा हूं, भैया मेरी बगल में बैठे हैं. डा. गोपाल चुपचाप खड़े हैं. मैं कार स्टार्ट करता हूं. भैया हाथ उठाते हैं. डा. गोपाल भी हाथ जोड़ते हैं. वही रास्ता, पर बेहद

पराया-सा लगता है. वही सड़क पिघली-पिघली लगती है. मैं कार चला रहा हूं पर लगता है कि कार किसी खाई में गिरने को है. आसमान साफ है. धूप जैसे उफनकर बाहर आ गयी है. मैं चाहता हूं कार को ले जा कर किसी समुद्र की ऐसी गहराई में उतर जाऊं जहां हजारों लोगों को आखें सिर्फ पत्थर की हों. जहां आदमी को तोड़ताड़-कर जीने के लिए फेंक दिया गया हो. जहां आदमी का एक-एक कतरा काटा जा रहा हो.

मैं अचानक भैया को देखता हूं. उनकी उदासी मुझे खल जाती है. मुझे लगता है कि वे अभी-अभी ठहाका मार कर हंसेंगे. पर ऐसा नहीं होता. कुछ भी नहीं होता. कार की स्पीड बढ़ाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि आज पीछे की सीट खाली है. □□□

११८, हिंदू होस्टल,
इलाहाबाद युनिवर्सिटी,
इलाहाबाद.

लघुकथा

भिक्षा और दान

समूची श्रावस्ती नगरी निद्रामग्न है. प्रभात बेला समीप है, फिर भी मंदिरों में घंटे-घड़ियाल बजने अभी प्रारंभ नहीं हुए. इतने में ही नगर में मध्य मार्ग में एक पुरुष ध्वनि गूंज उठी——हे नागरिकों, क्या तुम सोते ही रहोगे, आंखें नहीं खोलोगे? मुझे भिक्षा चाहिए, अपने लिए नहीं, भगवान तथागत के लिए.

यह धीर-गंभीर स्वर सुनकर स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाएं सभी अपनी शैय्यायों से आंखें मलते उठ खड़े हुए. देखते क्या हैं कि एक भिक्षु भिक्षा का पात्र फैलाये कह रहा है—त्याग से बढ़कर संसार में कोई धर्म नहीं, तुम भी कुछ त्याग करो श्रावस्ती के धर्मप्राण नागरिकों.

भगवान बुद्ध के प्रिय शिष्य अनार्थपिंडद् की इस चुनौती ने सभी नागरिकों को झकझोर कर रख दिया. राजा ने सोचा यह राजवैभव, ऐश्वर्य तथा अधिकार व्यर्थ है. गृहस्थ विचार में पड़ गये कि क्या वास्तव में ग्राहस्थजीवन, धनसंपदा का कोई अर्थ है? और कोमलांगियों के नयनों से तो आंसू झरने लगे. विलासी जन भी द्रवित हुए बिना न रह सके. उनके मन में विचार उठा कि आखिर कल शाम को जो माला उनके गले की शोभा बढा रही थी, जिसमें लगे फूल विहंस रहे थे, आज भोर होते ही क्या वे मुरझा नहीं गये? क्या यह सुख क्षणिक नहीं है?

प्रायः सभी के मनों में एक साथ विचार उठे——यह प्रातः बेला तो दान देने की सर्वोत्तम घड़ी है ही. क्यों न भगवान बुद्ध को दान देकर हम भी पुण्य तथा यश के भागी बनें?

फिर क्या था, मुख्य राजमार्ग पर माणिक-रत्नों, आभूषणों की वर्षा होने लगी. वृद्धा, वयस्क महिलाओं की कौन कहे, नवपरिणीताओं तक ने कण्ठों से हार, बाजूबंद निकाल कर फेंकने शुरू कर दिये. देखते ही देखते समूचा राजमार्ग हीरे-जवाहिरातों, माणिक-आभूषणों से भर गया.

किंतु यह क्या, भिक्षु अनार्थपिंडव की पुकार तो चल ही रही है. अतुल धनराशि को रौंदता हुआ वह आगे बढ़ता ही जा रहा है. उसका भिक्षापात्र तो खाली ही है. वह कहता जा रहा है——भगवान् बुद्ध के लिए भिक्षा दो. आखिर कुछ नागरिकों से न रहा गया. अपनी-अपनी ऊंची अटारियों से नीचे उतर करबद्ध हो उन्होंने भिक्षु से पूछ ही तो लिया——हे भिक्षु, तुम श्रेष्ठ तो हो ही किंतु उससे भी बढ़ कर विचित्र हो! संसार की संपदा तुम्हारे पैरों तले है जो कोई भी वस्तु खरीद सकती है. किंतु एक तुम हो कि उसे रौंदे चले जा रहे हो. तुम्हें किस वस्तु की भूख है जो इससे खरीदी नहीं जा सकती? तुम्हारे प्रभु की इच्छा क्या है?

——तो सुन लो! वे हीरे-जवाहिरात नहीं बल्कि सर्वश्रेष्ठ दान चाहते हैं.

नागरिक एक दूसरे का मुंह ताकने लगे. न तो वे भिक्षु को समझ पा रहे थे और न उसके भगवान को. वे ठगे-से खड़े रह गये और भिक्षु नगर का द्वार लांघ चला गया.

दुपहरिया होने को आयी. भिक्षु अनार्थपिंडद् अरण्य में से होकर गुजर रहे हैं, पसीने से लथपथ, किंतु उनका धीर-गंभीर स्वर अब भी गुंजरित हो रहा है——भगवान बुद्ध के लिए भिक्षा दो!

किंतु यह क्या? इस निर्जन वन में किसने उत्तर दिया? ओह यह तो भूमि पर पड़ी एक निर्धन नारी है जिसके शरीर पर न तो आभूषण हैं और न ही ओढनी. सिर्फ एक वस्त्र से वह अपने को किसी तरह ढके हुए है.

क्षीण मुसकान के साथ भिक्षु को संबोधित करते हुए उसने कहा—हे भिक्षुश्रेष्ठ, तनिक ठहरिये! महामना भगवान तथागत को मुझ निर्धन नारी की यह तुच्छ भेंट प्रदान करिये!

और इतना कहकर वह समीप ही झाड़ी में जा छिपी. कुछ समय उपरांत उसमें से निकला उसका दाहिना हाथ जिसमें था उसके शरीर में लिपटा हुआ एकमात्र वस्त्र

और ज्यों ही भिक्षु समीप आया, उस हाथ ने वह वस्त्र उसकी झोली में डाल दिया. और भिक्षु उसे मस्तक से लगाकर बोल पड़ा——धन्य हो देवी, तुम्हारा दान सर्वश्रेष्ठ है.

गर्दिश के दिन

(पृष्ठ ५९ से आगे)

कहते हैं— एक अतृप्त आकांक्षा. . .

और इस विचार से घबरा कर जैसे वह खुद-बखुद ठिठक गया— कहीं सचमुच ही तो ऐसा नहीं है कि किसी बम, किसी संगीन या किसी भारी चीज की मार से उसका शरीर पहले ही छूट चुका हो, और सिर्फ एक अशरीरी आकांक्षा बन कर भागा चला जा रहा हो?. . . या जिसे वह गुड्डी समझ कर छाती से समेटे है, वह केवल गुड्डी के होने का एहसास ही हो?. . . इस तरह की आकस्मिक मृत्यु वाले लोग कब शरीर छोड़ कर इस अशरीरी दुनिया में पहुंच जाते हैं, शायद खुद भी नहीं जानते! भयंकर आशंका से उसने सामने बंधी गुड्डी को छू कर, दबा कर देखा, फट कर तार-तार हो गये अपने कपड़ों को टटोला, अभी-अभी लगे घुटने के घाव से निकले खून की चिपचिपाहट महसूस की. . . लेकिन इससे सिद्ध कहां होता है कि यह 'शरीर' होने के पुराने अभ्यास की भावना नहीं, साक्षात् शरीर है? तभी, तभी. . . उसने जैसे हताश हो कर अपने आपसे कहा, तभी तो वह 'बचता' चला आ रहा है! दरअसल जिसे वह 'बचना' समझ रहा है, वह उसका 'न होना' ही है. . . किसी को वह दीखता ही नहीं होगा. वह अपने आपको जो चाहे समझे, किसी और को क्या पता कि सामने ही एक 'शरीरी आकांक्षा' भी भटक रही है! जरूर यही बात है. . . यह बात न होती तो कैसे वह उस भूकंप और तूफान से गुजर आया होता. . . अब?. . . अब क्या हो?

अचानक उसे बहुत बेचैनी होने लगी कि कैसे वह अपने 'होने' को प्रमाणित करे? कम-से-कम खुद को तो पता चलना चाहिए कि आप हैं भी या नहीं? अगर नहीं हैं, तो इस भाग-दौड़ से कोई फायदा? फिर आपका कोई क्या बिगाड़ सकता है? तब तो किसी हमले, किसी चोट का कोई डर ही नहीं है! सचमुच यह स्थिति कैसी मजेदार है कि हमला करने वाले संगीनें, बंदूकें, छुरे, तलवारें लिये आपके सामने खड़े हैं और आप निडर हो कर उनके सामने घूम रहे हैं, उन्हें मुंह चिढ़ा रहे हैं और हंस रहे हैं, क्योंकि उनके लिए आप हैं ही नहीं—सिर्फ एक पारदर्शी हवा है, जिसके आर-पार सब कुछ देखा जाता है!. . .

और क्यों जी, अगर आप हैं और यह समझ कर उनके सामने पहुंच जाते हैं कि 'हैं ही नहीं', तो? लेकिन यह तय कैसे हो कि आप हैं या नहीं? नहीं, यह खुद तय नहीं हो सकता. . . किसी के सामने पहुंच कर, किसी को छू कर, (यानी फिर दूसरों से जुड़ कर?) या किसी से बात करके ही यह तय होगा. . . लेकिन ऐसा कोई भी तो नहीं दीखता, जिससे 'बात' की जा सके, जिसके सामने जा कर खड़े हुआ जा सके और उसकी प्रतिक्रियाओं से जांचा जा सके कि हां, आप हैं! और उसने पलट कर हमला कर दिया तो?. . . या उसके पास घातक हथियार हुआ तो? अभी तो सिर्फ शक है, फिर तो सचमुच शरीर छोड़ने की नौबत आ जायेगी. . . बड़ी मुसीबत है. करूं क्या! बौखला कर उसने लगातार गुड्डी को आवाजें दीं. . . गुड्डी, गुड्डी. . . . जागो बेटा, देखो, अम्मा आ गयी. . . और जब अपनी आवाज खुद कानों में पहुंची, तो चौंक कर चुप हो गया. . . इस तरह आवाजें दे कर खुद खतरे को क्यों बुला रहा है? उसने दांत पीसे. . . अम्मा. . . पता नहीं साली कहां जा मरी. . . मेरी जान को यह मुसीबत छोड़ कर. . . अब मैं न भाग सकता हूं, न छोड़ सकता हूं, न आसानी से मर सकता हूं, और तो और, इसके सिवा और कुछ सोच भी नहीं पाता. . . और वह फिर घिसट-घिसट कर भागने लगा. . . साथ ही उसे यह भी लगता रहा जैसे वह किसी हेलिकॉप्टर में बैठा है. . . नीचे इस भुनगे जैसी चीज को तटस्थ भाव से भागते और घिसटते 'देख' रहा है. . . पूरा न सही, उसका कोई हिस्सा जरूर 'प्रेत' हो गया है, वरना वह इस तरह 'तटस्थ ऊंचाई' से अपने इस छटपटाते 'व्यक्ति' को ऐसे साफ-साफ देख कैसे लेता. . .?

* *

उसने दोनों मुट्ठियों में रेत ले कर अपने मुंह, गरदन और बांहों पर मली. एक तो घावों, खरोंचों और चोटों में इससे आराम मिलता है, पसीना बह-बह कर, गले या पिंडलियों में चींटी रेंगने जैसी अनुभूति नहीं देता— और सबसे बड़ी बात, आपको कोई पहचान नहीं सकता. . . अगर अपने आपको शीशे में देखूं तो आंखों के दो सूराखों वाला मिट्टी का ढूह लगूं—यह सोच कर उसे कहीं हलका-सा आश्वासन मिला कि अब शायद कोई विशेष रूप से 'उसे' पहचान नहीं पायेगा. हां, इतना ही जानेगा कि कोई है— पता नहीं शत्रु या मित्र. . . पूरी रोशनी न हो तो शायद मिट्टी का ढेर, या मेंड़ जैसी ही कोई चीज समझे. उसने अपने आपसे कहा, हो सकता है प्रेत की तरह एकदम 'अशरीरी' या अदृश्य न हुआ होऊं, लेकिन 'मेरी अपनी पहचान' तो निश्चय ही अब नहीं रह गयी—कीचड़ में लथपथ कोई भी एक आदमी! सचमुच गौर से देखने पर भी कोई आदमी उसे नहीं पहचान पायेगा? बहुत-बहुत मन हुआ कि शीशा होता तो देखता कैसा लगता है. या गुड्डी ही होश में होती तो उसकी प्रतिक्रिया देख कर वह तय कर लेता कि उसकी 'पहचान' बाकी है या नहीं? हां, आवाज से शायद पकड़ लेती. उसने गला खंखार कर आवाज निकालने की कोशिश की— सपाट और व्यक्तित्वहीन. अपनी इस कोशिश पर खुद उसे हंसी आयी. आदमी का बाहरी रूप-रंग कैसे उसकी चाल, ढाल, व्यवहार और बोली को तय कर देता है! आप एक बार यह मान लीजिए कि आप, आप नहीं— दुष्यंत हैं, सिद्धार्थ हैं— आपका सारा रंग-ढंग, बोली-लहजा, यहां तक कि सोचना तक वैसा ही हो जायेगा! इस क्षण वह एक 'बे-पहचान' आदमी का रूप बनाये है, इसलिए उसका सारा व्यवहार वैसा ही होने लगा है : कल मान लो वह बंदर या भालू का वेश बना ले तो क्या ठीक है, वैसा ही व्यवहार नहीं करने

लगेगा! उसी तरह चलने या गले से आवाजें निकालने लगेगा?...

लेकिन उसे सचमुच पहचानता कौन है? बाप, भाई, पति, दोस्त, या एक शहरी आदमी—क्या अलग-अलग लोगों के सामने उसके अलग-अलग रूप नहीं हैं? अच्छा या बुरा, सब लोग उसे उतना ही तो पहचानते हैं, जितने से उनका संबंध है. इस क्षण जान बचा कर, सिर छिपा कर भागता हुआ एक आदमी... इन सब में 'वह' खुद कहां है? इन सबसे हट कर क्या आदमी की अपनी कोई ऐसी 'पहचान' होती है जो कि सिर्फ उसकी 'अपनी' होती है, और किसी दूसरे की नहीं होती? अगर वह पकड़ा जाये तो लोग किसी के 'बाप', किसी के पति, किसी दफ्तर के नौकर, किसी के भाई, किसी शहर, मोहल्ले या मकान के 'रहने वाले' को ही मारेंगे—'उसे' कहां पहचान पायेंगे, मारने से पहले या बाद? — इन सारे 'नामों' के लबादों के नीचे वह तो अभी तक एक गुमनाम व्यक्ति ही रह कर मर जायेगा. शायद कहीं कुछ कीमती बचाने के लिए, यूं भागते हुए गोली या भाला खा कर मर जाना इतनी बड़ी ट्रेजेडी नहीं है, जितनी बड़ी ट्रेजेडी यह है कि आप मर जायें और कोई जान ही न पाये कि जो मारा गया है, वह है कौन. खुद आपको यह बताने का मौका ही न मिले... बाद में रह जाये सिर्फ एक लावारिस, गुमनाम, बेपहचान लाश...

* *

इस क्षण एक भयानक संभ्रम के साथ उसे महसूस हुआ कि वह सिर्फ सामने वाली झाड़ी की ही तरफ नहीं भाग रहा... पीछे खून की होली खेलते, लूटते, चीखते, चिल्लाते लोगों की तरफ भी भाग रहा है! ... उसकी यह सारी दौड़, अपनी पहचान खो कर अदृश्य, अशरीरी और आसपास की हवा-पानी जैसी चीज बन कर अपने को 'खो देने' की ही दौड़ नहीं है, बल्कि अपने को 'पहचाने' जाने की, अपनी इस पहचान को स्थापित करने की—युद्धक्षेत्र में जा कर अपने होने की सूचना देने की, भी दौड़ है... चाहे इस पहचाने जाने के एकदम बाद ही उसे क्यों न मर जाना पड़े—इस कीमत पर भी... उस क्षण सचमुच बेहद शिद्दत से उसे महसूस हुआ कि यह दौड़ इकहरी नहीं, हर पल दुहरी रही है— एक साथ दो धरातलों पर रही है और तब वह किसी भी तरह तय नहीं कर पाया कि वह मौत से बच कर भागता रहा है, या मौत की तरफ भागता रहा है... वह 'गुमनामियत' की तरफ भाग रहा है या अपनी 'पहचान' स्थापित करने की तरफ...

इस दुतरफा दौड़ के संभ्रम और कन्फ्यूजन को वह अपने लिए ही समझ सके, या आत्मसात् कर पाये, इससे पहले ही एक अजीब बात उसके मन में आयी : हो सकता है कि वह दौड़ ही न रहा हो, सिर्फ खड़ा हो, और उसे लग रहा हो कि वह यहां से वहां दौड़ रहा है... उसने पागल की तरह जोर से सिर झटका और नींद से जागे हुए आदमी की तरह इधर-उधर आगे-पीछे देखा... नहीं-नहीं, ऐसी बात न्हीं है. काफी चीजें पीछे छूट गयी हैं, उसके और झाड़ी के बीच की दूरी निश्चय ही कम हुई है, अभी-अभी वह जलते हुए शहर के मकान, चौराहे, रास्ते और मोड़ छोड़ कर आया है. बात इतनी ही है कि वह बेहद थक गया है, या यह भी हो सकता है कि ऐसे आतंक-प्रद नस-तोड़ अनुभव से गुजरा है कि 'बच निकलने' की उसकी इच्छा ही मर गयी है, और अभ्यास-वश ही झाड़ी की तरफ दौड़ रहा है, और जानता है कि इस दौड़ को वह कभी भी खत्म कर सकता है : उसके खड़े रहने या बैठने में अब कहीं कोई फर्क ही नहीं रह गया है! इसके साथ ही, अचानक और अकारण ही एक सपना उसे याद आने लगा. जान बचाने के लिए दौड़ते हुए इस सपने के याद आने की बात सोचते हुए उसे बेहद आश्चर्य और झल्लाहट भी महसूस हुई : यह भी कोई समय है, सपना याद आने का?...लेकिन लाख न चाहने पर भी सपने का एक-एक रंग कैसा चटख हो कर जागा है उसके भीतर!... एक टैक्सी की छत पर वह लेटा है, पीली छत, नीचे की काली बॉडी, चमकता हुआ बोनेट, टैक्सी का मीटर... टैक्सी पूरी स्पीड से भाग रही है, और नीचे ड्राइवर अपने साथी को कोई किस्सा सुना रहा है. आसमान भूरा काला है और वे लोग पुराने बने हुए भारी, नीची मेहराबों वाले पुलों में से गुजरते हैं...ऊपर लेटे होने के कारण वह धुआंरे-गेरुए भारी पुलों की छतों को एकदम साफ देखता है. टैक्सी एक बहुत बड़े, शायद अशोका, होटल पहुंच कर रुकती है. वहां उत्सव-समारोह जैसा कुछ हो रहा है. बहुत-सी झंडियां लगी हैं, द्वार बने हैं... चारों तरफ बहुत बड़े-बड़े बैंगनी, मखमल जैसे चमकदार गलीचे फैले हैं...पीले, लाल, बैंगनी गुब्बारों के गुच्छे और कतारें लटकी हैं. लोग बढ़िया सूटों और औरतें रंग-बिरंगी साड़ियों, स्कर्टों और कोटों में आ रही हैं. पता नहीं, कब और कैसे वह, बैंगनी कालीन बिछी ऊंची-सी छत के एकदम किनारे पर जा बैठा है और नीचे, खुले में होते समारोह को देख रहा है...यहां टैरेस सिर्फ इतनी ऊंची है कि नीचे के लोग हाथ बढ़ायें तो वह छू सकता है...वह उनकी सारी बातें, बहसें, कहकहे और मजाक सुन सकता है...सबके हाथों में कोई प्लेट या गिलास है. शायद उन्हें पता भी नहीं है कि 'ऊपर' से उन्हें कोई देख रहा है. वह इतने किनारे बैठा है कि हर क्षण हाथों का सहारा दे कर नीचे फिसलने से अपने आपको रोके हुए है. फिसल कर वह उनमें शामिल हो सकता है, लेकिन वह वहीं रहना चाहता है, ऊपर...उसे हर क्षण खयाल है कि बाहर टैक्सी उसकी राह देख रही है. फिर कुछ बदलता है और गहरे चॉकलेट के रंग वाली साड़ी पहने एक औरत के साथ वहीं खुली छत के किनारे पर वह अपने को संभोग करते हुए देखता है...औरत का चेहरा नहीं दीखता. हां, खुशबू की लपट उसके नथुनों तक आती महसूस होती है. यह बात उसे काफी मजेदार लगती है कि नीचे लोग हंस-खा रहे हैं, और उनसे हाथ भर की ऊंचाई पर ही वह ऐसी निश्चिंतता से औरत को भोग रहा है और इस बात का किसी को आभास भी नहीं है...फिर भी सावधानी के तौर

पर दोनों ने अपने शरीर से कोई भी कपड़ा नहीं उतारा है. . .छत के किनारे से फिसल कर वह नीचे गिरने-गिरने को होता है कि उसकी आंख खुल जाती है. .

जिस रात उसने यह सपना देखा था, तब भी सोचता रहा था कि इसका क्या अर्थ है, इसमें मन के भीतर की क्या चीज अभिव्यक्त होती है? लेकिन इस समय तो उसे बेहद खीझ और झुंझलाहट हो रही थी. . . कोई मौका है इस सपने के याद आने का? और देखो, न सिर्फ याद आ रहा है, बल्कि एक-एक रंग कितना साफ और चमकीला हो कर दीख रहा है! . . . जैसे रंगीन फिल्म का कोई दृश्य हो. . .वह औरत कौन हो सकती है? गुड्डी की मां तो नहीं थी. उसके हाथ, कोमल पकड़, चुंबन, सभी कुछ याद है––सिर्फ चेहरा सामने नहीं आता. . .अगर बच गया तो जरूर किसी मनोविज्ञान-वेत्ता से इसका अर्थ पूछेगा. . .ताज्जुब की बात है, इस सारे समारोह या सपने में न कहीं गुड्डी है, न गुड्डी की मां. . .

गुड्डी की मां होगी कहां इस समय. . .? लगता है जैसे कहीं बहुत-बहुत दूर चली गयी है और शायद कभी वापस लौट कर नहीं आयेगी. . .लेकिन इस 'बला' का मैं क्या करूं? 'पापा, देखिए, हमने आपके नेल-पॉलिश लगायी. आप सो रहे थे, आपको तो पता भी नहीं. .' यह वाक्य इस समय कहां से उछल कर आ गया? 'हम पापा को दूध पिलायेंगे. . .' और फिर पापा की तस्वीर के मुंह में दूध की बोतल लगाना. क्यों ये सब उसे इस बेमौके याद आ रहा है? . . .अरे कमबख्त, यह समय इस सब में 'डूबने' का नहीं, इस सबको भविष्य के लिए बचा लेने का है. . .अंधेरी सुरंग के दूसरे सिरे पर दीखती रोशनी तक भाग लेने का है. . .भागो-भागो. . .खूंखार और खौफनाक, भूखे भेड़ियों की लपलपाती जीभों और गुर्राती आंखों वाले इस चारों तरफ से दबोचते अंधेरे के पार निकल जाओ, जैसे भी हो, अपने लिए नहीं, इसके लिए. . .

★ ★

मगर जरा-सा रुक कर, बार-बार उभरते मन के संदेह को मिटा क्यों नहीं लेता? वहां पहुंच कर बंडल में मरी हुई गुड्डी को पाने के धक्के से अभी ही छुटकारा क्यों नहीं पा लेता? इस समय उसमें सब कुछ बर्दाश्त कर लेने की ताकत है. . .अगर मर ही गयी है तो एक तरफ फेंक-फांक कर इस बचाव की लड़ाई से छुट्टी पाओ. . .फिर तुम भी एक बंदूक, एक भाला, एक तलवार या कोई भी चीज उठा कर इन हमलावरों में शामिल नहीं हो सकते? सचमुच उसे लगा कि इस गुड्डी के नाम पर वह अपने भीतर की कायरता को कब तक पालता रहेगा? ये खून के प्यासे, जल्लादों जैसे दीखने वाले हमलावर भी तो भीतर से डरे हुए, अपनी ही कायरता के दंश से खाये हुए उस जैसे लोग हैं! वह भी अंधाधुंध गोलियां चलाये, लूट-पाट मचाये और जो सामने आये, उस पर संगीन ले कर झपट पड़े. . .उन्हें तो शायद पता भी नहीं चलेगा कि कब उनमें एक और आदमी आ शामिल हुआ है! इस डर और खतरे से बचने का सिर्फ एक ही उपाय है! तब वह खुद औरों के लिए एक खतरा हो जायेगा. . .अपने जैसे कमजोर, मुलायम और डरे हुए लोगों को दौड़ा-दौड़ा कर मारने वाला एक आतंक. . . सिर्फ बच-बच कर भागते, अपने को इस-उस आड़ में छिपाते लोगों की इस माहौल में कोई जगह नहीं है. . .और अगर उसे यही जीवन जीना है, तो किसी गिरती छत, किसी गोली, किसी संगीन या किसी उड़ते पत्थर-भाले का निशाना बन कर मर ही जाना चाहिए. . . मर भी गया तो दुनिया में कहां क्या रुक जायेगा. . .?

नहीं-नहीं, गुड्डी का बहाना झूठ है. वह अच्छी तरह जानता है कि गुड्डी बेहोश नहीं है, मर गयी है. वह तभी मर गयी थी, जब अपने घर की ही चौखट उस पर गिरी थी, भरपूर और बेरहम. . .इस भाग-दौड़ के बावजूद क्या उसे एक क्षण का भी समय नहीं मिला कि वह कंबल खोल कर देख लेता, उसकी सांस को महसूस करके समझ लेता कि उसमें कुछ बचा भी है या नहीं? लेकिन नहीं, उसने जान-बूझ कर ऐसा नहीं किया. वरना हो सकता है, इतनी देर से अपने बचाव की इस दौड़ का सारा भ्रम, इस कायरता की सारी गरिमा चूर-चूर हो जाती. जिन बातों और जिन भावनाओं को भीतर जगा-जगा कर वह अपने आपको दौड़ाये जा रहा है, वे सब कहां से आतीं? फिर तो निश्चय ही हो जाता कि वह लाश को लिये-लिये भाग रहा है. और तब इसे फेंकने के सिवा कोई रास्ता नहीं रहता. . .या कहना चाहिए, निर्णय लेने की अनिवार्य मजबूरी से बच निकलना असंभव हो जाता. . . उसकी यह सारी दौड़ किसी भी निर्णय से बचते जाने की दौड़ के सिवा और क्या है? तब हो सकता है कि उसे हमलावरों में शामिल हो जाने का ही निर्णय ले लेना पड़ता. . . वह भी उछल-उछल कर लोगों को मारता. . .जरूरत-बेजरूरत की चीजें छीनता. . .औरतों-बच्चों के नाजुक शरीर में घप् से संगीन घोंपने का मजा लेता. . .सुनते हैं निरंकुश क्रूरता, और बे-लगाम हिंसा का भी अपना एक नशा और आनंद है, एक शब्दातीत थ्रिल है–– अगर यह सब न होता तो आदमी में इतना जोश, यह उत्साह और शक्ति-सामर्थ्य कहां से आते? कम-से-कम एक बार हिंसा के इस सुख को जान लेने में बुराई क्या है?

अभी तक इन लोगों में शामिल हो जाने की बात उसके मन में क्यों नहीं आयी? इतना तो उसे भी पता ही था कि उसके आस-पास ही कुछ लोग हैं जो चुप-चाप इस तरह की ट्रेनिंग ले रहे हैं. कुछ स्थानों की सूचना भी उसके पास थी, जहां मारने, लूट लेने, आग लगाने या पीछा करके दबोच लेने की शिक्षा दी जाती है. सुना था कि सबसे पहले व्यक्ति, देश, मानवता और जाने किस-किसके भविष्य की सुरक्षा वाले बौद्धिक विमर्श होते हैं––व्यक्ति को मानसिक रूप से ऐसे सिद्धांतों के आदर्श और लक्ष्य समझाये जाते हैं, जहां ये सारे कार्य गलत न लगें. व्यक्तिगत रूप से की गयी हत्या आदमी

की आत्मा पर बोझ बनी रहता है, सिद्धांत और आदर्श के लिए की गयी हत्या उसे आध्यात्मिक शक्ति देती है. इसमें दोनों तरफ से व्यक्ति की अपनी पहचान को निकाल देना होता है. न आप व्यक्ति हैं, न वह जो मरता है. वह आपका नहीं, आपके आदर्शों का दुश्मन है. अतः उसे हटा देना हत्या करना नहीं, महान लक्ष्य को प्राप्त करने का एक प्रयास है. अगर इस ट्रेनिंग का वह शुरू से ही एक हिस्सा बन जाता तो शायद आज यह परेशानी न होती. . .

उसके दफ्तर और घर के पास-पड़ोस के जाने कितने लोग चुप-चुप वहां जाते थे; इसकी जानकारी उसे थी. कुछ ने उससे कहा भी कि अगर वह चाहे तो चल सकता है, मगर लापरवाही से उसने टाल दिया. हुंह, हमें उस सबसे क्या! हमारी तो यही शांत जिंदगी ठीक है, जहां एक बच्ची से सारा घर जगमगाया रहता है. उसके साथ बिताने को चाहे समय न मिल पाता हो, लेकिन हर पल, जाने-अनजाने नसों के भीतर कोई घुटनों चलता रहता है, किलक कर हंसता है, गोद में आने को मचलता है, दूध न पीने की जिद करता है और बाजार घूमने के लिए हाथ-पांव मारता है. सोती हुई बच्ची कैसी नन्हीं देव-शिशु-सी लगती है! सोचता था कि उसी की मुसकराहटों में जिंदगी का कुछ समय निकल जायेगा, हमें छुरे-तलवारों के खेल या ट्रेनिंग से क्या करना है! ताज्जुब होता था कि इस बच्ची के होने ने उसकी सारी बनावट में कितना बदलाव पैदा कर दिया था. वह कहीं भी कुछ क्रूर, गलत या झूठ करने को होता तो भीतर धुंधलके में एक निराकार हाथ उसकी कलाई पकड़ लेता. वह अपने आपको इतना शांत, भरा, व्यस्त और उल्लसित-सा अनुभव करता रहता कि कभी खयाल भी न आता कि कहीं कुछ लोग आसपास ही लूट-पाट और मार-पीट की ट्रेनिंग ले रहे हैं. कभी-कभी किसी दोस्त से हंसी-मजाक या बहस करते हुए उसे अचानक ध्यान आता : हो सकता है, यह भी वैसी ही ट्रेनिंग ले रहा हो. इस खयाल के साथ ही वह झटके से चुप हो जाता. फिर अपने आपको समझाता कि यह उसका भ्रम है. अगर यह वैसी ट्रेनिंग ले रहा होता तो शायद मुझसे ऐसे मुक्त भाव से न मिलता. और यह भी हो सकता है कि मेरा संपर्क ही इसके भीतर के किसी कोमल और मानवीय भाव को जगाये रखे. . .अब तो अफसोस ही होता है कि आसपास को भूल कर मुग्ध भाव से जीते चले जाने की कितनी भारी कीमत उसे चुकानी पड़ रही है. गुड्डी जिंदगी को आनंद-उल्लास से भरने का स्रोत हो सकती है, जिंदगी को बचाने का हथियार तो नहीं हो सकती. बच्चा सिर्फ सार्थकता दे सकता है, सुरक्षा नहीं. और यह क्षण तो अपने सबसे मूल्यवान और सार्थक को बचा लेने का है. चूंकि अपने सार्थक और मूल्यवान को बचाना असंभव और नामुमकिन हो गया है, इसलिए हमलावरों में शामिल हो कर हरेक के सार्थक और मूल्यवान को समाप्त कर देना चाहिए—यह उससे नहीं हो पा रहा है. . .कमजोर, कायर, बुजदिल कुछ भी सही, इस स्थिति में आ कर वह 'उनका' हिस्सा नहीं ही हो पायेगा. . .उसके प्रारब्ध में सिर्फ बचाव की लड़ाई ही रह गयी है. . .

* *

उसे अकसर आश्चर्य होता है कि क्या सचमुच इन लोगों के पास कुछ भी मूल्यवान और सार्थक ऐसा नहीं रह गया है, जिसे बचाने की बात मन में आये? तभी तो ये लोग दल-के-दल दूसरों के सार्थक और मूल्यवान को तहस-नहस करते, लूट-पाट मचाते इधर से उधर दौड़ रहे हैं. हाथों में न सही, क्या मन में भी इनके कोई 'गुड्डी' नहीं है? रही तो जरूर होगी, लेकिन या तो इन्होंने उसे कहीं फेंक-फांक दिया है, या अपने भीतर ही उसकी लाश को दफना कर अब बनैली चिंघाड़ों के साथ संगीनें ले कर निकल आये हैं. जब अपनी ही गुड्डी नहीं रहती तो वे किसी की भी गुड्डी को जीवित और साबुत नहीं छोड़ेंगे. . .यानी इनका लक्ष्य मैं नहीं, मेरे हाथों का यह बंडल है——यानी सारी आफत की जड़ यही है, वरना मुझे मार कर इन्हें क्या मिलेगा? ओहो! कितनी सीधी-सी बात है! इन्हें कुछ लेना थोड़े ही है! ये तो संगीनों की रोशनी में सिर्फ उस संतोष को तलाश कर रहे हैं कि जो कुछ इनके अपने पास नहीं है, उसे कहीं भी किसी दूसरे के पास क्यों छोड़ा जाये?. . . उसे ही, आखिर, इस बंडल से इतना मोह क्यों है? क्यों नहीं दोनों हाथ बढ़ा कर कह देता, लो दोस्तो, जिस चीज की तुम्हें तलाश है, वह यह है. इसे कोंचो, मारो, रौंदो, कुचलो, और मुझे चारों ओर से ठोकर खाती फुटबाल की नियति से छुटकारा दिलाओ. . .यह न हो तो मैं भी तुममें एक हूं? फर्क कहां है? मगर इतने से वे मान जायेंगे? उन्हें कुछ भी चाहिए कहां?. . . उन्हें तो आखेट का सुख चाहिए. . .

लेकिन नियति को चुन सकना, या यूं झटके से बदल सकना क्या अब सचमुच उसके हाथ में रह गया है? गुड्डी मर गयी है या जिंदा है, नहीं जानता. उसके मर जाने की सचाई का सामना न कर पाने की कायरता ही, हो सकता है, उसे दौड़ा रही हो. हो सकता है, उसकी यह दौड़ उसे कहीं न ले जा रही हो, और यह भी सच हो कि वह सिर्फ अपनी जान बचाने के लिए, जादुई तावीज की तरह गुड्डी को लिये-लिये भाग रहा हो, और तावीज का जादू एक चुटकी राख से ज्यादा कुछ न रह गया हो. . . इस सबको न वह अलग-अलग करके सोच सकता है, न कोई निर्णय ले सकता है. . . सिर्फ इतना साफ है कि इसी बंडल ने अब तक की इस सारी दौड़ को सार्थकता दी है. . .

और वह तो अपनी एक बहुत भीतरी सतह पर सिर्फ इतना जानता है कि जरा सांस लेने का मौका, सुस्ता लेने की सुरक्षा मिल जाये तो गुड्डी के शरीर की हलकी-सी बची गरमाहट को भी वह जीवन में बदल सकता है. . . उसका मर जाना असंभव है और तब यह सारी यात्रा, अंगारों से नंगे पांव गुजरने की सारी यातना सिर्फ एक बीता हुआ दुःस्वप्न बन कर रह जायेगी.

लेकिन पहले उस झाड़ी तक तो पहुंचे. . .□□□

दीदी के आने की खबर सुन कर जहां सारे घर में खुशी की एक लहर दौड़ गयी थी, वहां थोड़ी ही देर बाद सब के चेहरे पर उदासी का एक सैलाब-सा उतर आया था. यह सैलाब पापा के चेहरे से होता हुआ सबके चेहरे पर फैलता चला गया था.

—पत्र दोबारा तो पढ़ना. अचानक ही यहां चले आने का प्रोग्राम कैसे बन गया? ममी का एक-एक शब्द जैसे किसी कब्र के नीचे से निकल रहा हो. क्षण भर में पापा के चेहरे पर उदासी की जगह क्रोध की रेखाएं खिंच आयीं. पत्र को पटकते हुए बोले थे, क्या अनपढ़ समझ रखा है मुझे?

—मैंने यह कब कहा? ममी कुछ गुस्से में कह कर एकदम सहज हो उठी थीं. कुछ क्षण रुक कर बोलीं, सुधीर भी साथ ही आ रहा है?

—नहीं, अकेली बच्चों को ले कर आ रही है. पापा जैसे न चाहते हुए भी ममी की बात का उत्तर दे गये थे.

—शुक्र करो, वह साथ नहीं आ रहा वर्ना. . . .

—क्या रज्जो कुछ न पूछेगी?

—तो पहले सोचना था इस बात का. . . . मैं न कहती थी सोच-समझ कर पैसा खर्च करो.

न चाहते हुए

—विकेश निझावन

—क्या सब कुछ मैंने अपने लिए ही किया है?

—अपने लिए किया है या दूसरों के लिए, किया तो तुम्हीं ने ही है. ममी का गला पूरी तरह भर्रा आया था. पापा असहाय-सी दृष्टि से भैया के चेहरे की ओर देखने लगे.

भैया, जो अब तक खामोश खड़े थे, फट से पड़े —इसमें परेशान होने की क्या बात है! पैसा ही है न, कर देंगे वापिस. और सर फटकते हुए वे तेजी से बाहर चले गये थे.

दरवाजे को भीतर से बंद कर मैं अलमारी में से पास-बुक निकाल कर देखने लगा था. जानता था, पास-बुक में तीन हजार रुपया रह गया है, लेकिन इस सच्चाई को जैसे झुठला देना चाहता था. इस बार तीन हजार के अक्षर, लिखे होने की बजाय खुदे हुए-से महसूस होने लगे थे. और उन अक्षरों के बीच एक प्रश्न उभर आया था— बाकी का तीस हजार रुपया? चार वर्षों में तीस हजार रुपया खर्च हो गया. दीदी सुनेगी तो क्या कहेगी?

दीदी को देहली से ले आने के बारे में ममी ने भैया से बात की तो भैया बोले— शील को भी जा कर लाना है. वह अकेली कैसे आयेगी? मन में आया था कह दूं, दीदी इतनी दूर से आ सकती है तो भाभी नहीं आ सकती. लेकिन यह सब कह पाना क्या इतना आसान था? तभी पापा भीतर आते हुए बोले थे— देहली तो मैं चला जाऊंगा, तुम बहू को जा कर ले आना.

अगले रोज शाम को भैया फरीदाबाद और पापा देहली चले गये थे. उन दोनों के चले जाने से घर में छा गये मौन के साथ उदासी जैसे और बढ़ गयी थी. ममी रह-रह कर एक उसांस-सी भरतीं— हाय राम, अब क्या होगा. और इधर-उधर पड़ी चीजों को एकटक घूरने-सी लगतीं.

—ममी, दीदी परायी थोड़ी ही है. हमने जो कुछ खरीदा है, उन्हें देख कर दीदी प्रसन्न ही होगी.

—तू नहीं जानता, जहां पैसे की बात आ जाये, वहां अपने भी पराये हो जाते हैं. और लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?

लोग सुनेंगे? उन्हें कैसे पता चलेगा? कौन बतलायेगा? दीदी नहीं-नहीं, यह भला कैसे हो सकता है.. और उस रोज न जाने क्या-क्या सोचता चला गया था मैं.

अगले दिन शाम की गाड़ी से पापा, दीदी, बिटु और टिंकू आ गये थे.

—अरे, तुम तो बहुत बड़े हो गये हो. मुझे गले से लगाते हुए दीदी बोली थी. कुछ क्षण दीदी के सीने पर चेहरा गड़ाये खड़ा रहा. जी चाहा था, फूट-फूट कर रो दूं. लेकिन अपने को संभालते हुए बोला था— हां दीदी, हर कोई बड़ा हो जाता है. देखो न, टिंकू भी तो कितना बड़ा हो गया है. मेरी इस साधारण-सी बात पर दीदी इस तरह हंस पड़ीं, मानो मैंने कोई बहुत बड़ी बात कह दी हो.

—भैया नजर नहीं आ रहे? उधर-उधर नजर दौड़ाते हुए दीदी बोली थी.

—बहू को लेने गया हुआ है. आज आ तो जाना चाहिए था. शायद रात की गाड़ी से आ जाये.

न जाने क्यों मन ही मन ममी की बात पर मुस्करा दिया था. तभी मन में एक विचार उठा था, हंसी का एक ठहाका लगा कर कहूं, दीदी, भैया तुम्हारे डर से रुक गये होंगे.

—ममी, भैया की शादी पर हम कुछ न भेज सके. भाभी के लिए दो साड़ियां और भैया के लिए घड़ी इन्होंने ले कर भी रखी थी. लेकिन उस समय कोई लानेवाला ही नहीं था. वॉय पोस्ट भेजना तो और भी मुश्किल है. इतने की चीज नहीं होतीं जितनी ऊपर ड्यूटी लग जाती है.

तभी टिंकू ने दीदी के गले में बाहें डालते हुए कुछ कहा था.

—ममी, बच्चों को भूख लगी है.

—क्या खायेंगे ये?

—एग्ज.

ममी की बात का जवाब टिंकू ने दिया था.

—अंडे तो फ्रिज में रखे होंगे. डाईनिंग रूम की ओर नजर दौड़ाते हुए पापा बोले थे.

—पापा, फ्रिज कब लिया? पापा इधर-उधर देखने

● रघु राय

लगे थे, मानो फ्रिज का नाम ले कर कोई बहुत बड़ी भूल कर बैठे हों.

—अभी पिछले साल ही तो लिया है. तुम्हारी भाभी की बहुत इच्छा थी कि फ्रिज ले लिया जाये.

—हां, होनी भी क्यों नहीं चाहिए. बहुत आराम रहता है इन चीजों से. वहां पर तो इन सबके बिना गुजारा ही नहीं.

—सुधीर का काम-काज कैसा चल रहा है? पापा ने शायद विषय बदलने के लिए ही यह बात पूछी थी.

—पापा, काम तो ठीक है. मेहनत बहुत करनी पड़ती है. सुबह आठ बजे जाते हैं और रात आठ बजे के बाद ही लौटते हैं. कई बार तो बच्चे पूछ बैठते हैं, ममी, पापा कहां गये हुए हैं?

—पिछले दिनों तूने लिखा था कि सुधीर बीमार भी रहा.

—हां पापा, वहां का क्लाईमेट भी इन्हें सूट नहीं किया. डाक्टर ने तो यह भी कहा था, इन्हें सर्दियों में इंडिया आ जाना चाहिए. लेकिन ये नहीं माने. कहने लगे. पहले तुम चली जाओ. पापा और भैया से राय लेकर लिखना, तब मैं आ जाऊंगा.

—वह ठीक कहता है. आजकल यहां नौकरी मिलना भी तो आसान नहीं.

—नौकरी तो अब ये करना भी नहीं चाहते. कह रहे थे, इंडिया में ही कोई अच्छा-सा बिजनस शुरू कर लें. तीस-पैंतीस हजार रुपया यहां जमा है ही. कुछ ये वहां से आती दफा ले ही आयेंगे.

—लेकिन बिजनेस चलना भी तो आसान नहीं.

—हां, यही तो अभी सोचना है.

—अब बिजनस की बातें ही करते रहोगे या इन्हें कुछ खाने भी दोगे, ममी पास आते हुए बोली थीं.

दीदी उठ कर किचन में चली गयी.

रात खाना खाने के बाद दीदी काफी देर तक वहां के बारे में बताती रहीं. रह-रह कर ममी की आंखें विस्मय से फैल-सी जाती थी.

अभी बातें चल ही रही थी तो भैया और भाभी आ गये.

जिस आदर और स्नेह से भैया और भाभी ने दीदी का स्वागत किया था, वह चंद ही दिनों तक रहा.

एक रोज दीदी छत पर थीं तो भैया कह रहे थे—इतनी तो हम लोगों की कमाई नहीं जितना इन लोगों के आने से खर्च बढ़ गया है. अंडे और मीट के बिना इनका गुजारा नहीं, तभी सीढ़ियों पर हलकी-सी पदचाप से भैया खामोश हो गये थे.

अगले रोज अपने कमरे में बैठा पढ़ रहा था तो दीदी भीतर आयी. न जाने क्यों दीदी से नजर मिला पाने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी.

—अगले वर्ष क्या करने का इरादा है? कुर्सी के कंधे पर हाथ रखते हुए दीदी बोली थीं.

—प्री-मेडिकल तो नहीं करूंगा. इतने मुश्किल सब्जेक्टस मुझसे नहीं पढ़े जाते.

—सुन!

—हूं. मैंने नजर उठायी. महसूस किया कि दीदी कुछ और कहना चाहती हैं. यह सब तो शायद. . . .

—पास-बुक कहां है ?

लगा, जैसे पैरों तले से जमीन खिसक गयी है. यह बात मुझसे ही क्यों पूछती दीदी ने. . . .? जाती दफा पास-बुक मुझे ही रखने को कह गयी थीं, शायद इसलिए.

—पापा के पास है? मेरे चेहरे पर उतर आयी घबराहट को देखते हुए ही शायद दीदी ने कहा था.

—नहीं तो. अनायास ही जैसे मुंह से निकल आया. पास-बुक पापा को ही दे दी होती तो अच्छा था. अपने आप सामना करते इस स्थिति का.

—तो कहां है?

—अल्मारी में रखी है. उठने को हुआ तो दीदी ने मेरा कंधा दबा दिया, तू बैठ, मैं उठा लाती हूं.

एक तिरछी नजर दीदी की ओर डाली. अल्मारी खोल वह इधर-उधर देखने लगी थीं.

—यही है न? दीदी पास आते हुए बोलीं.

बिना कुछ कहे-सिर हिला दिया था. दीदी पास-बुक खोलने लगीं. लगा था, अभी कोई विस्फोट होगा.

—पैसा किसी को दिया हुआ है?

—नहीं. चाहते हुए भी दीदी के चेहरे की ओर देख न पाया. दीदी सामनेवाली कुर्सी पर बैठ गयी थीं.

—कुछ लिया है इनका?

क्षण भर को दीदी के चेहरे की ओर देखा और फिर गर्दन झुका ली.

—बोलते क्यों नहीं? इस बार दीदी का स्वर कुछ कठोर था. सहसा ममी की बात 'पैसे की बात आ जाये तो अपने भी पराये हो जाते हैं' मस्तिष्क में दौड़ गयी थी.

—पिछले साल. . . . स्कूटर का नंबर आ गया था तो भैया ने. . . . कुछ दबे हुए स्वर में इतना ही कह पाया था.

—स्कूटर पर कितने लगे होंगे, चार हजार. बाकी का पैसा कहां गया?

एक बार फिर असहाय-सी दृष्टि दीदी की ओर डाली.

—घर में स्कूटर आ गया है. . . . फ्रिज. . . . कूलर. . . . बड़ी अलमारी. . . .क्या ये भी उन्हीं पैसों से नहीं लिये?

दीदी सब समझ गयी हैं. मैं बुत-सा बना बैठा रहा.

—मैं तो आते ही समझ गयी थी. जिन चीजों को पापा बीस वर्षों में न खरीद सके, वो सब चार वर्षों में खरीद लेना इतना आसान था? भाभी दहेज में कुछ लायी नहीं. . . .और पम्मी को सब कुछ दिया गया था . आखिर कहां से आ गया था वह सब. . . . ? बिट्टू, ये मत सोचो मुझे इस बात से दुख हो रहा है कि ये सब क्यों हो गया. लेकिन मेरा भी तो कुछ सोचा होता. . . . अगर ये साथ आ जाते तो?

मेरे भीतर भर आयी घुटन, आंसुओं में बदल चुकी थी. रुआंसे-से स्वर में दीदी पुनः बोली—न जाने मैं सब कुछ तुम्हीं से ही क्यों कह गयी. जिनसे कहना चाहिए, उनके आगे जबान नहीं खुलती. अब इन्हें क्या लिखूं! कल वाले पत्र में भी इन्होंने यही लिखा था कि पापा और विजय से बिजनेस के बारे में बात करूं. आखिर क्या बात करूं? पापा इतना पैसा जुटा पायेंगे अब? क्या इन सब चीजों को बेच सकते हैं?

★ ★

उस रोज से दीदी के सामने बहुत कम गया था. रात काफी देर तक करवटें बदलता रहा. नींद आयी तो एक अजीब-सा ख्वाब आंखों में तिर आया. ममी और दीदी का किसी बात पर झगड़ा हो रहा है. पापा उन्हें समझा रहे हैं. तभी भैया ने जीजाजी के बारे में कुछ अपशब्द कहे हैं और दीदी चिल्ला-सी पड़ी हैं. उन्हें दोष देने की बजाय जरा अपनी ओर भी देखा होता. कुछ भी शर्म होती तो मेरे आने से पहले ही चीजों को बेंच दिया होता.

—दीदी! तभी एक हल्की-सी चीख के साथ. . . . मैं उठ बैठा था.

—क्या बात है? पास वाले पलंग पर दीदी करवट बदलते हुए बोलीं. ऐसा लगा जैसे दीदी पहले से ही जाग रही हैं.

—कुछ नहीं! और मैं फिर लेट गया.

—तबीयत तो ठीक है न? मेरे माथे पर हाथ रखते हुए दीदी बोलीं.

—हां, बस यूं ही.

—स्वप्न आ रहा होगा.

मैं निरुत्तर-सा आकाश की ओर देखने लगा था. तभी एक तारा टूटा और मैंने आंखें बंद कर लीं. फिर एक के बाद एक ना जाने कितने तारे टूटने लगे थे.

सुबह नींद कुछ देर से उघड़ी. दीदी उठ गयी थीं. टिंकू और बिंदू एक दूसरे के सीने पर हाथ रखे सो रहे थे. उनका भोला-सा चेहरा देख मन में प्यार उमड़ आया था.तभी दीदी चाय का प्याला लिये भीतर आयीं.

—लो, चाय पियो.

—मैं खुद ही. . . .

—आज हमारे हाथ की चाय पियो. सारी उमर दूसरों की सेवा कर के कभी-कभी यह जी नहीं चाहता कि कोई हमें भी पूछे? मैंने महसूस किया कि दीदी यह मुझे नहीं कह रही, बल्कि यह उसका अपना ही आक्रोश है जिसे वह किसी भी रूप में जता देना चाहती है. तभी वह हंसते हुए बोली थीं—सुबह-सुबह कहां की फिलासफी ले बैठी. मैं न चाहते हुए भी फीका-सा मुस्करा दिया. दीदी एक टक मेरे चेहरे की ओर देखनें लगी.

—बहुत जल्दी घबरा जाते हो. जिंदगी में जो भी मुश्किल सामने आती है, उसका कोई न कोई हल भी अवश्य होता है. दीदी ने जिस आश्वासन से कहा, लगा था, जैसे दीदी को भी अपनी समस्या का कोई हल मिल गया है. मैंने एक प्रश्नवाचक दृष्टि दीदी पर डाली.

—तुम पढ़-लिख जाओ, अच्छे सेटल हो जाओ, मुझे और कुछ नहीं चाहिए.

आज दीदी के चेहरे पर उदासी की कोई झलक नहीं थी. बल्कि पहले की अपेक्षा अधिक प्रसन्न नजर आने लगी थीं.

—सुनो, आज बैंक से तीन सौ रुपया निकलवा लाना. किसी से बतलाना नहीं. हां, यह भी नहीं कहना कि मैंने पास-बुक देखी है.

—अगर पास-बुक पापा ने मांगी तो?

मैंने जिस दृढ़ता से प्रश्न किया, दीदी उसी दृढ़ता से बोली थीं—तो बतला देना कि मेरे पास है.

कल तक मैं अपने को जितना कमजोर महसूस करने लगा था, आज मेरे भीतर उतनी ही दृढ़ता समा गयी थी.

शाम की डाक से जीजाजी का एक और पत्र आया.

—क्या लिखा है? दीदी पत्र पढ़ चुकीं तो पापा बोले थे. ममी और भैया भी पास ही खड़े थे.

—कुछ भी तो नहीं, बस ठीक-ठाक ही लिखा है.

—कुछ आने के बारे में? भैया बोले थे.

दीदी ने बिना कुछ कहे पत्र भैया की ओर बढ़ा दिया. सभी की नजर भैया की ओर उठ गयी थी.

—न जाने जीजाजी ने यहां आने की रट क्यों लगा रखी है. पत्र पढ़ने के बाद भैया बोले.

—मैं भी यही सोचती हूं. . . .बिजनेस चलाना कोई आसान थोड़े ही है. और फिर बच्चे भी यहां एडजस्ट नहीं हो पा रहे हैं. जब से आये हैं, बिंदु बीमार रहने लगी है. पिंकू की पढ़ाई में भी हर्जा होगा. यहां और वहां की पढ़ाई में भी तो कितना फर्क है.

दीदी कह रही थीं तो मैंने देखा, ममी पापा एक दूसरे के चेहरे की तरफ देखने लगे हैं.

—अप्रैल में पिंकू की क्लासें शुरू होनी हैं. एक महीना रह गया है. सीट बुक करवाने के लिए अभी देहली जाना पड़ेगा, नहीं तो बाद में मुश्किल पड़ती है.

—टिकट पर कितना पैसा लगेगा? मुझे अगले सप्ताह देहली जाना ही है, करवाता आऊंगा, भैया बोले.

—यहां तो टिकट बनने में देर लगती है. इन्हें लिख दूंगी, ये वहीं से बनवा कर भेज देंगे. तुम सीट का पता कर आना ताकि टिकट पर डेट लिखवायी जा सके.

—रज्जो, तुम्हारा वो पैसा. . . .

—पापा, अभी उसे यहीं जमा रहने दो. दीदी ने

झट से पापा की बात काट दी थी, आखिर हमें आना तो यहां है. जब तक ये वहां काम कर सकते हैं, ठीक हैं, उसके बाद इंडिया आ कर कोई काम शुरू कर देंगे.

—लेकिन. . . .

पापा कुछ कहने लगे. तो ममी ने उनका हाथ दबा दिया था. पापा खामोश हो गये.

दीदी एकटक खिड़की से बाहर देखे जा रही थीं.

—पापा, सोचती हूं, एक-दो रोज के लिए निम्मो आंटी के पास हो आऊं. पता नहीं फिर कब आना हो.

—हां-हां, क्यों नहीं. बेशक कल ही चली जाओ.

अगले दिन सुबह ही दीदी ने निम्मो आंटी के पास जाने का प्रोग्राम बना लिया था.

स्टेशन तक मैं ही छोड़ने गया था दीदी को. रास्ते में दीदी बोली थीं—इनका कोई पत्र आये तो मुझे 'रिडायरेक्ट' कर देना. हो सकता है मैं कुछ दिन यहां रुक. . .

—लेकिन. . . . .

—पापा से तो यों ही दो-चार रोज के लिए बोल दिया था. . . . बिट्टू, सच कहूं, वहां से आते हुए सोचा था जितने दिन भी यहां रहूंगी, इस घर की दीवारों के भीतर ही रहूंगी. तुम नहीं जानते, इन दीवारों को देखने के लिए भी कैसा मोह-सा बना रहता था.

. . . . लेकिन अब यहां एक अजीब-सी चुभन महसूस होने लगी है. शुरू-शुरू में मेरे लिए सभी की भागदौड़ लगता था, जैसे मेरे आने की खुशी में हैं. लेकिन अब लगता है, जैसे वे मेरा कर्ज उतार रहे थे. वर्ना अब इतना बदलाव क्यों आ गया होता. . .

रिक्शा ने मोड़ लिया. स्टेशन सामने ही था.

—जाते ही वहां से पत्र डालूंगी. तुम आ जाना, कुछ घूम-फिर लेंगे.

रिक्शा से उतरे तो गाड़ी की आवाज सुनायी दी.

—मैं टिकट लेती हूं, तू अटैची ले कर भीतर चल. बच्चों को भी ले जा.

गाड़ी ने पहली व्हिसल लगायी तो दीदी भीतर आ गयी थीं.

—हां, मैं तो भूली ही जा रही थी. ये तीन सौ रुपया ले, पास-बुक में जमा करवा देना. आज ही.

—लेकिन तुम्हारे पास. . . .

—सुबह ममी से कुछ पैसे मांग लिये थे. यदि उन्हें तीन सौ का पता चलता तो. . . . ?

तभी गाड़ी ने दूसरी व्हिसल वजायी.

—अच्छा तू चल. मैं जाते ही पत्र लिख दूंगी. . .

मैं फुदकता हुआ-सा नीचे उतर आया. मन में आया था, भाग कर दीदी के पास जाऊं और रुपये उसके हाथ में रख कर, कहूं—दीदी, उन्हें पता चलना ही चाहिए.

लेकिन, गाड़ी छकछक करती हुई आगे बढ़ गयी थी. . . . और पीछे धुएं का एक धुंधलका-सा फैलता चला गया था. □□□

द्वारा—डा. एस. एस. निझावन, रेलवे रोड,
अंबाला शहर.

लघुकथा

प्रायश्चित

जगदीशनारायण वर्मा

कालेज का जीवन. क्लासों में प्रोफेसरों को परेशान करने के नित नये तरीके भरे दिन और बाहर धमा-चौकड़ी, मौज-मस्ती, सिनेमा-नाटक.

कालेज जीवन का एक और पहलू. धीर-गंभीर विद्यार्थी क्लासों में सामने की बेंचों पर बैठकर ध्यानपूर्वक लेक्चर सुनते, विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में शांतिपूर्वक किताबें पढ़ते, नोट्स लेते और आपस में केवल पढ़ाई की ही बातें करते. उसी समय मैं एक ऐसे विद्यार्थी से प्रभावित हुआ जिसे ठाटबाट की दुनिया की कोई खबर, परवाह न थी. अपनी धीर-गंभीर मुद्रा में, नाक की सीध में वह क्लास में आता, न किसी से हंसना, बात करना और न मिलना-जुलना.

हमारा परिचय पढ़ा और मित्रता गहराई. वह अक्सर मेरे डेरे पर आने-जाने लगा. उसके पिता साधारण किसान थे. उसकी फीस का खर्च मुश्किल से निकलता. पर था वह कुशाग्र बुद्धि, अध्ययन-मनन में रत और सदा प्रथम.

मैं था अक्सर टाई-सूट में लैस. मैं अपनी जैसी आर्थिक स्थितिवाले मित्रों की संगति में सिनेमा देखता और रेस्त्रां वगैरह में जलपान करता. मैं उसे अक्सर रेस्त्रां में अपने साथ ले जाता और पैसे दिया करता. इससे मेरे अहंभाव की तुष्टि ही होती, परंतु वह बाद में मुझे पूरे पैसे चुका जाता.

कालेज में सोशल गैदरिंग के दिन थे. मेरा मित्र कई दिनों से कालेज में दिखाई न दे रहा था और मैं उसे भूल ही गया. ऐसे ही में एक रात को वह मेरे डेरे पर आया. वह कुछ परेशान था. पूछने पर उसने मुझे हंसते हुए बताया कि वह कालेज छोड़कर नौकरी कर लेगा क्योंकि वह अपने पिता पर पढ़ाई का और अधिक बोझ नहीं डाल सकता. बात यह थी कि फीस न जमा करने पर उसका नाम कालेज से कट जाता. मेरे पास काफी रुपये थे पर मैं इंकार कर गया.

सोशल गैदरिंग के उपलक्ष्य में उन रुपयों से मैंने एक ऊनी सूट सिलवाया और जाड़े की एक शाम गैदरिंग के किसी अतिथि को लेने रिक्शे पर स्टेशन जा रहा था कि देखा मेरे मित्र जैसा ही कोई सिर पर गमछा लपेटे, किसी यात्री का सामान लिये चला जा रहा है. मुझे ऐसा लगा मानों मेरे नये ऊनी सूट में आग लग गयी हो.

दूसरे दिन कालेज खुलते ही मैंने मित्र की फीस भर दी और उसे लेने उसके डेरे पर जा पहुंचा. परंतु मुझे पता चला कि वह अपनी फीस पूरी करने के लिए कई दिनों से कुली का काम कर रहा है. उसी दिन से मैंने कीमती वस्त्र त्याग दिये. □

हमारे भी हैं मेहमाँ कैसे-कैसे

—प्रभाकर माचवे

भूतपूर्व क्रांतिकारी भरतरामजी आये तो उनके साथ में एक ऊंची-सी सांवली लड़की भी थी. बड़ा-सा कुंकुम लगाये, ऊंचा जूड़ा पहने, चेहरे पर सारी दुनिया को तुच्छता से देखने का भाव. मैंने कहा—नमस्कार, भरतरामजी, 'जेल की दीवार' पढ़ी थी, उसके बाद तो कई बरस दर्शन नहीं हुए. और आपकी तारिफ?

भरतरामजी कुछ लजाते हुए बोले-मालती है. इसी साल हिंदी में पी. एच डी. किया है. जरा दिखाना तो अपना थीसिस. साथ के झोले से एक पांच सेर का मोटा टाइप किया हुआ ग्रंथ निकल पड़ा. 'भारतीय भाषाओं में कृष्ण और राधा के प्रेम की तुलना में ब्रजभाषा का मर्म रस' जैसा कुछ विषय था. मैंने मन में कहा धन्य है आपकी विद्वत्ता! फिर भरतरामजी लजाकर बोले—दो वर्ष के भीतर मालू ने यह साधना की. मैंने भी कुछ सहायता कर दी थी.

फिर पता चला कि मालती को दिल्ली में कहीं कोई काम मिल रहा है और सबसे बड़ी कठिनाई आवास की थी. मेरे पास भी कोई अधिक स्थान नहीं था. दो-ढाई कमरे थे. यह यहीं कुछ दिनों के लिए रह जायगी. सवाल एक, डेढ़ हफ्ते का है. बाद में तो उसे श्री गगनेंद्रजी ने एक अच्छी जगह देने के लिए कह दिया है. अब यह परदेश है. और आप जानते हैं कि मालती के लिए अकेले रहना कैसे संभव है, वह छोटी जो है. मालतीजी के आकार-प्रकार से वे ३५ से कम की नहीं होंगी. प्रौढ़ कुमारिका थीं. पता नहीं विवाह क्यों नहीं हुआ था?

मैंने जब घर आ कर पत्नी से कहा कि 'बेचारे मुसीबत में हैं. थोड़े से दिन रह लेंगे तो क्या होगा?' तो श्रीमती, जिनका इन व्यावहारिक मामलों में हमसे कहीं अधिक सही दृष्टिकोण होता है, खूब भिन्नायीं—कहां-कहां के चपड़कनाती आप घर पर ले आते हैं! यह आपका हिंदी साहित्य-प्रेम और यह साहित्यकारों के प्रति दया-करुणा हमें कहीं का नहीं रहने देगी!

मैंने कहा—ऐसा नहीं कहते! ब्रिटिश जमाने में भरतरामजी ने बम बनाये थे और सशक्त क्रांतिकारियों के साथ थे.

—तब जो होगा सो होगा. अब तो ट्यूशन करते हैं और वह भी लड़कियों के! सारी क्रांति अब कहीं लुप्त हो गयी है!

—अब मैं क्या करूं, वचन दे चुका हूं. लड़की बहुत सुशील और विनम्र जान पड़ती है.

—तुम्हें तो सभी लड़कियां अच्छी जान पड़ती हैं.

—खैर, तुम्हीं देख लेना...

दूसरे दिन वे दाखिल हो गयीं. उन दिनों मेरी पत्नी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था. मेरी बच्ची की उम्र ११ बरस की थी. और घर में मैंने सोचा, चलो एक पढ़ी-लिखी और सहेली आ जाने से पत्नी का जी भी बहल जायेगा और थोड़ी बहुत मदद भी हो जायेगी. उन्हीं दिनों हमारा पहाड़ी नौकर भी गायब हो गया था.

अब डॉ. मालती अपना रूप धीरे-धीरे दिखाने लगीं. वे हर जरा-जरा-सी चीज के लिए मेरी बेटी को हुक्म देतीं—जा एक गिलास पानी ला... मेरी कंघी उठा ला... मेरी वो किताबें उधर रख देना. खुद काम करने से इस भद्र अर्द्ध-शिक्षिता महिला को नफरत थी. हर शनीचर-इतवार को यह दिल्ली से चली जातीं. भरतरामजी मेरठ रहते थे. फिर उनके काम के घंटे भी और थे. सबेरे उन्हें विशेष प्रकार का नाश्ता ही लगता था. चाय वे पीती नहीं थीं तो उन्हें गिलासभर दूध चाहिए. फिर वे दोपहर को कालज से पढ़ा कर लौटतीं तो भोजन. उनकी रुचि विशेष थी. हम जो कुछ जैसा खाते थे, उससे उनकी जीभ का समझौता नहीं हो पाता था. फिर शाम को वे फिर बाहर कहीं दोस्त महिलाओं के साथ चली जातीं. कभी-कभी ये मित्राएं भी आतीं और उन सब का चायपानी होता. मेरी पत्नी सब बरतन समेटती और धोती. यह विदुषी कभी इतना भी मुंह से नहीं कहती—मदद करने आऊं?

हमारी बेटी ने एक मजाक उनके बारे में प्रचलित कर दिया था—आंटीजी हर बार कहती हैं, मैं तुम्हें सिनेमा दिखाने ले जाऊंगी पर वे बहुत कंजूस हैं. बस के पैसे भी तो वे मांग कर ले जाती हैं.

मेरी पत्नी ने सोचा कि इस भलीमानुस की समस्या आवास की है न? तो चलो पड़ौस के एक पंजाबी की पहचान से करौल बाग में एक कमरा इन्हें किराये दिलवा दिया. पहले मालती ने बहुत नाक-भौं सिकोड़ी, फिर सामान वहां जा कर रख दिया. हर सप्ताहांत पर वह कालेज से हमारे ही यहां आतीं. कहतीं—भाभी, भूख लगी है, कुछ खाने को दीजिए. मेरठ की बस फिर चली जायेगी. और हर सोमवार को सबेरे फिर आ धमकतीं. असल में मालती को अपना काम खुद करने की न आदत थी, न चाह. वह सदा निर्भर रहती आयी थी.

एक सप्ताह बाद पंजाबी पड़ोसिन के यहां वह मकान मालकिन आयी—भाभी, आपने भी अच्छी किरायेदार मेरे लिए खोज कर दी है! वह हमारे ही घर पर अक्सर खाना खाती है. कभी कहती है, राशन नहीं है. कभी कहती है, स्टोव में किरासीन नहीं है. कभी कहती है, बल्ब फ्यूज हो गया है. घर में बहुत कम रहती है.

तीन महीने बीत गये. डॉ. मालती ने किराया नहीं दिया. जब मेरी पत्नी ने उन्हें पूछा तो बोलीं—प्राइवेट कालेज है. अभी तनखा नहीं मिली. दूसरी बार

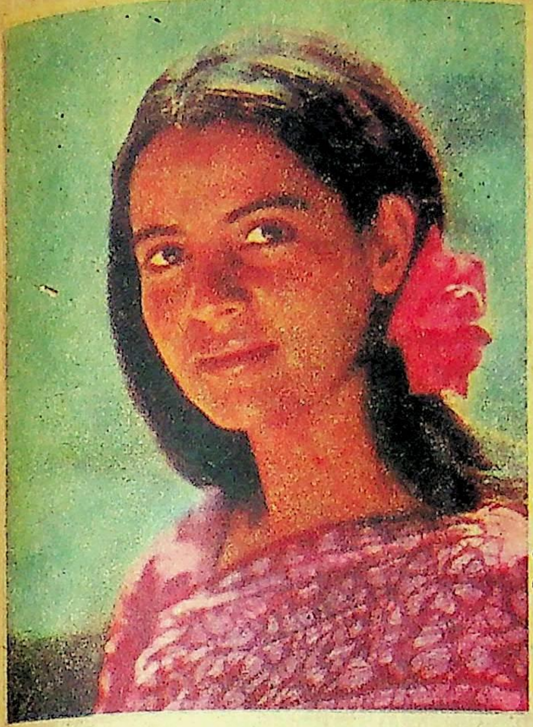

● गिरीश शुक्ला

कहा— इस महीने मेरे पैसे ज्यादा खर्च हो गये. वह रेशमी साड़ी मैंने खरीद ली थी न? फिर मकान-मालकिन से वह खूब झगड़ा कर बैठीं. बोलीं— किराये का मतलब किराया है. उसी में बिजली-पानी सब शामिल समझिये. मैं अलग से पैसे नहीं देनेवाली हूं.

धीरे-धीरे पता चला कि डा. मालती अपने वंश में अकेली पढ़ी-लिखी औरत हैं. बाप की बड़ी जमींदारी थी. पर शराब और दूसरे व्यसनों में सब खत्म कर दिया. उनकी इच्छा अपनी बेटी की अच्छी जगह शादी कर देने की थी. पर ये क्रांतिकारी साहब उनके जीवन में आ गये और डा. मालती को पिता से घृणा हो गयी, पिता को डा. मालती से.

पिता, मित्र, गुरु, अभिभावक सबका स्थान भरतरामजी ने ले लिया. भरतरामजी ने उसके जीवन में क्रांति पैदा कर दी. रातदिन उसकी स्तुति कर के उसे सिर चढ़ा लिया—ओ हो, साहित्य की समझ जैसी मालू की है, और किसी लड़की की नहीं.

—युनिवर्सिटी का मुंह देखने की जरूरत क्या है? प्रभाकर पास कर लो, फिर अंग्रेजी का एक पर्चा ले कर बी. ए. फिर एम. ए. और पी. एच डी. . अब तो रास्ता सीधा है. कई लोअर डिवीजन क्लर्क, बिना कालेज का मुंह देखे, यों डाक्टर हो गये. फिर मालू में तो जन्मजात प्रतिभा है.

—श्यामवर्ण है तो क्या हुआ? राधा का वर्ण क्या था?

—मालू की रंगों की 'च्वाइस'. अरे साहब क्या कहने हैं!

क्रांतिकारीजी की पढ़ाई वैसे अपने बल पर ही हुई थी. जब-जब उन्हें शब्द कम जान पड़ते, वे संस्कृत के भारी भरकम शब्दों का सहारा लेते, या फिर अंग्रेजी के उलटे-सीधे शब्दों का. उनका यह खयाल था कि वे और मालू अंग्रेजी में भी बहुत अच्छी कविता कर लेते हैं!

सबसे खराब बात दोनों की यह थी कि दोनों ही घोर स्वार्थी थे. न तो मालू को वे मेरे घर लाये, उससे पहले उनसे कोई घनिष्टता थी, न अंतिम बार जब उन्हें मुझे डांटना ही पड़ा तब तक या बाद में उन्होंने एक अक्षर से भी हमारे प्रति कृतज्ञता व्यक्त की. उन्हें न इस बात का खयाल था कि मेरी पत्नी बीमार है तो घर में कुछ मदद करें; न इस बात का विचार था कि मेरे पास आनेवाले लोगों में सब तरह के लोग होते हैं तो उसमें क्यों पड़ें? पर मालतीजी का गुणगान यह भरतरामजी की मुख्य टेक थी.

एक बार एक विदेशी सज्जन मेरे घर पर आये. भाषावैज्ञनिक थे और मैं उन्हें हिंदी के व्याकरणों की पुस्तकों में क्या-क्या दोष है, यह बतला रहा था कि भरतरामजी डॉ. मालती के साथ टपक पड़े. बिना संदर्भ के उन्होंने अंग्रेजी में फरमाना शुरू किया—ग्रामा? अजी उसमें क्या रक्खा है? डा. मालती ने तो दस दिन में हर 'फ़ारेनर' की समझ में आये, ऐसी हिंदी की 'औथोंनोग्राफी. . .' मैं ऊपर बता चुका हूं कि लंबे-लंबे शब्द बिना आगे-पीछे का विचार किये, प्रयोग में लाने का उन्हें 'मॅनिया' था.

विदेशी सज्जन पहले तो इस बात को गंभीरता से सही समझे. बाद में जब उन्होंने उनकी थोड़ी और बातें सुनीं तो वे जान गये कि ये दोनों यों ही बातें बनाते हैं. पर इन मेहमानों के मारे मेरी हालत बहुत खराब होती गयी. मैं और लोगों के सामने यह भी नहीं कह सकता था कि ये दोनों यों ही गपोड़िये हैं.

मुझे चित्रकला से शौक है. और उसके बारे में काफी पढ़ा है, देखा है, कुछ पेंटिंग सीखा भी हूं. एक दिन मेरे एक पुराने चित्रकार मित्र आ गये और हम बड़े मजे से पुराने दिनों की बातें कर रहे थे कि क्रांतिकारी श्री भरतरामजी और उनकी परमप्रिय शिष्या, हिंदी साहित्य की डाक्टर, मालतीजी पधारीं.

मैंने परिचय करा दिया—ये प्रसिद्ध चित्रकार जोशी हैं. हमारे साथ हैं और स्कूल आफ आर्ट्स में थे. और ये हैं भूतपूर्व क्रांतिकारी भरतरामजी और हिंदी की डाक्टरनी मालतीजी. लेखक-लेखिका हैं.

जोशीजी ने अपनी दाढ़ी खुजलाई और जैसे किसी से परिचय न हुआ हो, वैसे आराम से चर्चा आगे चलायी—तो ऐसा हुआ कि अपने साथ वह पागल भास्कर नहीं था—वह मुझे मिल गया, राजस्थान में. अब मजे में है—शादी कर ली है, अब तक उसका ब्रह्मचर्य का व्रत बदल गया था. अब तो वह अच्छी तरह चाय-कॉफी ही नहीं, सिगरेटें और शराब भी पीने लगा था. शादी के बाद वह सब चित्रकारी भूल गया. . .

भरतरामजी ने बीच में टोका—कुछ लोग सिद्धांत छोड़ कर अवसरवादी हो जाते हैं. मगर हमारी डा. मालती ठीक मेरी ही तरह आदर्शवादी हैं. एक बार प्रतीज्ञा की तो देखिये दो साल में १००० पृष्ठों का

थीसिस लिख डाला. साधारण काम नहीं है. उसमें कितने ग्रंथों का निचोड़ है. और देखिये साहब यह चित्रकला की बात जो है न, मैं बता दूं, मालू. . .

मालती लजाई. भरतरामजी लजाये—अब बता ही देता हूं. मालू ने बड़े-बड़े चित्र बचपन में बनाये थे. चादरों पर. तकिये के गिलाफों पर, दीवारों पर—वह ग्रामकला में लोकधर्मी वर्ण-भंगिमा का चमत्कार था.

जोशी से रहा नहीं गया—तो आपने चित्रकला कहां सीखी?

मालती चुप! भरतरामजी ने तुरंत उत्तर दिया—जन्मजात प्रतिभाओं को कहीं सीखने जाना पड़ता है? क्रोचे ने कहा है कि 'जीनियस इज बार्न.'

आखिर डा. मालती ने वह कमरा भी छोड़ा और किराया भी नहीं दिया. हमें वह पंजाबी पड़ोसिन को देना पड़ा. फिर मालतीजी हमारे घर पर आकर बिराजमान हो गयीं. वे घर में इस तरह रहती थीं कि मेहमान न हो कर घर की स्वामिनी हों. वह अक्सर पुरुषों की बैठक में ही जमी रहतीं. मैं कहीं साहित्यगोष्ठी में जाने को होता, तो डा. मालती सबसे आगे.

हम गरीब लोग थे और तिल का तेल खाते थे. वे अपनी अमीरी जताते हुए कहतीं—हम तो घी के बिना कोई चीज नहीं खा सकते.

डा. मालती हमारी प्रादेशिक संस्कृति की काफी आलोचना करती थीं. अपनी थीसिस में सारे भारत की चर्चा करने का दंभ भरनेवाली यह भद्र महिला ठीक तरह से न बोल सकती थीं, न लिख सकती थीं. मेरी बेटी कहती—पता नहीं कैसे पढ़ाती होंगी!

और उसकी बात सच निकली. डा. मालती जिस कालेज में काम करती थी, वहां ज्यादा चल नहीं सकीं. और एक दिन वे गयीं हमने छुट्टी की सांस ली.

इसके बाद न उन्होंने एक चिट्ठी लिखी, न हमें याद किया. दो वर्ष बाद एक दिन शाम को जब हमारे घर में बहुत से मेहमान थे, दरवाजे पर घंटी बजी. विनम्र भाव से भरतरामजी लजाने हुए खड़े थे—आप बहुत व्यस्त हैं क्या?

—नहीं तो! मैंने कहा.

—एक रात आपके यहां रुक सकेंगे? एक कमरा हमें मिल जाता. . .

—आइये! आपको असुविधा हो सकती है.

—कोई बात नहीं, कोई बात नहीं. मैं अभी आया. वे अपने साथ सामान ले आये—दो बिस्तरे, एक बड़ा संदूक, कुछ टोकनियां. और फिर लजाकर बोले—मालू भी साथ में है. उसे रात में एक्सीडेंट हो गया. पैर को चोट आयी है.

—कहां है?

—बाहर खड़ी है.

फिर मेरी श्रीमतीजी उनकी सेवा के लिए पुल्टिस बनाने में लग गयीं. फिर से भोजन बनाया गया. भरतरामजी ने कहा—मालू को अब की बार यहीं दिल्ली में एक और कालेज में काम मिल गया है. □□□

१२०. रवींद्र नगर, नयी दिल्ली-११

विविधा

अखिल भारतीय परिचर्चा

साहित्य और संस्कृति में दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध संघर्ष

दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावाद अपने मूल चरित्र में बहुरूपिया होता है; वह जाति, धर्म संप्रदाय, वर्ण, भाषा आदि के अनेक मुखौटे धारण कर साहित्य और संस्कृति के क्षेत्रों में प्रवेश करता है और अपनी काली छाया डाल कर आम आदमी और पाठक-दर्शक वर्ग को प्रगति के मार्ग से विरत कर उसकी मानसिकता को कुंठित और कलुषित बनाता है, उनके अंदर अनास्था और हताशा उत्पन्न करता है और इस प्रकार वह प्रत्येक देश में फासिस्ट तंत्र स्थापित करने का धरातल निर्मित करता है. प्रतिक्रियावाद अपनी यह जीवनघाती भूमिका केवल साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, वरन कला, संस्कृति, दर्शन, राजनीति, इतिहास आदि के क्षेत्रों में बड़े सुगठित और सुनियोजित ढंग से पूरी करती है ताकि फासिस्ट तंत्र के लिए समग्र वातावरण बन सके. . .इसलिए प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध संघर्ष एक अनिवार्य संघर्ष है; यह प्रगति, मानवता और जीवन की रक्षा का संघर्ष है; यह एक बहुमुखी एवं अनवरत संघर्ष है जिसके अनेक मोर्चे हैं. प्रतिक्रियावाद को परास्त करने के लिए सबसे पहले उसके मजबूत मोर्चे और गढ़ पर आक्रमण करना नितांत आवश्यक होता है—यह मोर्चा साहित्य का मोर्चा है, जहां वह कथ्य के साथ-साथ शिल्प के क्षेत्र में भी सक्रिय रहता है. . .

यही वे कुछ वैचारिक निष्कर्ष हैं जो विगत १३ अगस्त, १९७५ को नयी दिल्ली के विठ्ठलभाई पटेल हाउस में 'राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ' के तत्वावधान में साहित्य और संस्कृति में दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध संघर्ष विषय पर आयोजित साहित्यकारों के एक 'अखिल भारतीय सेमीनार' से उभर कर सामने आये. सर्वश्री कालिंदीचरण पाणिग्रही, प्रोफेसर मोहन सिंह, गुलाम रब्बानी ताबां, डा. भगवतशरण उपाध्याय और केदारनाथ अग्रवाल के अध्यक्ष-मंडल ने इस राष्ट्रीय सेमीनार की अध्यक्षता ग्रहण की थी. पूर्वाह्न-अधिवेशन में परिचर्चा में भाग लेने वाले वक्ता थे—सर्वश्री

→

सतीश
कांग,
उपाध्या
नाथ,
मोहन अ
डा. ख
अधिवेश
शरण उ
चर्चा
जाफरी,
तनवीर,
जीत सि
वेशनों
आये सौ
के साहि
गोष्ठी
महामंत्री
वि
नामवर
वाद क
क्षेत्र है
हिंदी
ढांचा
और यह
हुआ है
विचार
से, 'जि
भाषा
सांप्रदा
भावों
उ
वाद क
व जा
दक्षिणप
इन दू
समर्थन
किया है
मुसलमा
गायब
भरी हु
हुआ है.
वह 'हि
बना है.
डो
कि गत
जो सब
है, वह
उग्रवादी
सृजन.
के विरु
बहुत ब

सतीश कालसेकर, कुलबीरसिंह कांग, शमशेरबहादुर सिंह, रमेश उपाध्याय, नारायण सुर्वे, कामतानाथ, प्रो. मोहनसिंह, ललित मोहन अवस्थी, मोहन श्रोत्रिय और डा. खगेंद्र ठाकुर. सायंकालीन अधिवेशन में मुख्य वक्ता डॉ.भगवतशरण उपाध्याय के अतिरिक्त परिचर्चा में सर्वश्री अली सरदार जाफरी, तरुण सान्याल, हबीब तनवीर, कैफी आजमी और करनजीत सिंह ने भाग लिया. दोनों अधिवेशनों में देश के विभिन्न भागों से आये सौ से अधिक विभिन्न भाषाओं के साहित्यकार उपस्थित थे. विचार गोष्ठी का संचालन महासंघ के महामंत्री श्री भीष्म साहनी ने किया.

विषय-प्रवर्त्तन करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने कहा––प्रतिक्रियावाद का पहला मोर्चा भाषा का क्षेत्र है. स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में हिंदी भाषा व शब्दावली का पूरा ढांचा बिगड़ा है, भ्रष्ट हुआ है–– और यह प्रतिक्रियावादियों के कारण हुआ है. एक ओर तो पश्चिमी विचारधारा के अंधाधुंध अनुवाद से, जिसे हिंदी पचा नहीं पाती, भाषा भ्रष्ट हुई है, और दूसरी ओर सांप्रदायिक एवं सामंतवादी दुष्प्रभावों ने हिंदी को भ्रष्ट किया है.

उन्होंने कहा कि प्रतिक्रियावाद का दूसरा मोर्चा सांप्रदायिक व जातिवादी प्रवृत्तियां रही हैं. दक्षिणपंथी शक्तियों ने साहित्य में इन दूषित प्रवृत्तियों को भरपूर समर्थन और प्रोत्साहन प्रदान किया है. इन वर्षों में हिंदी कहानी से मुसलमान चरित्र और पात्र एकदम गायब हो गये. वह हिंदू चरित्रों से भरी हुई है. शायद यह अनजाने हुआ है. किंतु यह एक सच्चाई है कि वह 'हिंदू दुनिया' का कथा-साहित्य बना है.

डॉ. नामवर सिंह ने आगे कहा कि गत वर्षों में हिंदी साहित्य में जो सबसे खतरनाक प्रवृत्ति उभरी है, वह है एक विशेष प्रकार के उग्रवादी-विरोधवादी साहित्य का सृजन. इन वर्षों में 'एस्टेब्लिशमेंट' के विरुद्ध 'प्रोटेस्ट' का साहित्य बहुत बड़ी मात्रा में लिखा गया है और उसे क्रांतिकारी साहित्य की संज्ञा दी गयी है. लेकिन हमें इस 'प्रोटेस्ट' के साहित्य को बारीकी से देखना है और यह समझना है कि वह कैसा 'प्रोटेस्ट' है जो नागार्जुन जैसे कवि को जे. पी. से जोड़ देता है. वस्तुतः हुआ यह है कि हर प्रकार का 'प्रोटेस्ट' का साहित्य एक होने लगा––अति उग्र, अति वाम और अति दक्षिण, सभी तत्व इस 'प्रोटेस्ट' में एक में मिल गये हैं. इस प्रकार जो 'टोटल प्रोटेस्ट' सामने आया है, वह जे. पी. के 'टोटल रेव्योल्यूशन' के अलावा कुछ नहीं है, वह नकारवाद है, 'निहिलिज्म' है.

इसी सिलसिले में 'न्यू लेफ्ट' या नव-वाम का उल्लेख करते हुए डा. नामवर सिंह ने कहा––न्यू लेफ्ट के पीछे इजारेदारों और साम्राज्यवादियों का हाथ है. नव-वाम साम्यवाद-विरोधी और मार्क्सवाद-विरोधी है.

डा. नामवर सिंह के बाद मराठी लेखक सतीश कालसेकर ने उनकी कई स्थापनाओं से असहमति व्यक्त करते हुए कहा––सारे विरोधी साहित्य और सभी विरोधी आंदोलनों को एक घेरे में समेट देना गलत है. हमें सही 'विरोध' को देखना और समझना होगा. एक 'प्रोटेस्ट' ऐसा भी है जो जे. पी. से कभी नहीं मिला, बल्कि जिसने जे. पी. का भी मजबूत विरोध किया. सतीश कालसेकर ने इसी संदर्भ में समांतर कथा-साहित्य और दलित साहित्य का विशेष रूप से और विस्तारपूर्वक उल्लेख किया और कहा कि इन दोनों ने सांप्रदायिकता के विरुद्ध, वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध, शिव सेना के विरुद्ध और पूंजीवादी-प्रतिक्रियावादी - अतिवादी शक्तियों के विरुद्ध सतत संघर्ष चलाया है. उनका कहना था प्रतिक्रियावाद की प्रवृत्तियां नहीं बदलतीं, उनका स्वरूप बदलता है.

पंजाबी-लेखक कुलबीरसिंह कांग ने संदेह जाहिर किया कि 'प्रोटेस्ट' का तेवर छोड़ देने से हम कहीं 'एस्टेब्लिशमेंट' के साथ न जुड़ जायें.

हिंदी के वरिष्ठ कवि शमशेर बहादुर सिंह ने आधुनिकतावाद के नाम पर पश्चिम के अंधानुकरण को खतरनाक प्रवृत्ति बताया और पश्चिम की जर्जर विचारधारा को प्रतिक्रियावाद-पोषक कहा. उन्होंने आंचलिक साहित्य की संघर्षशील परंपरा को स्पष्ट किये जाने का आग्रह किया.

मराठी कवि नारायण सुर्वे ने साहित्य और कला के क्षेत्रों में साम्राज्यवादी दुष्प्रभावों का जिक्र करते हुए कहा कि ऐसे संगठनों और फाउंडेशनों का भंडाफोड़ किया जाना चाहिए जो धन का प्रलोभन दे कर हमारे युवा लेखकों को गुमराह करते हैं.

हिंदी-कथाकार कामतानाथ ने साहित्य के क्षेत्र में प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध संघर्ष में समांतर लेखन को कारगर अस्त्र बताया और समांतर वैचारिकता को आम आदमी की सामाजिक क्रांतिकारी चेतना का अभिन्न अंग बताते हुए कुछ समांतर कहानियों और कथाकारों का उल्लेख किया. उन्होंने ध्यान दिलाया कि हमें कथ्य के साथ-साथ शिल्प के क्षेत्र में भी प्रतिक्रियावादी साजिशों और हथकंडों पर नजर रखनी चाहिए.

पंजाबी के प्रो. मोहन सिंह ने दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावाद को फासिस्टवाद का मुख्य आधार बताया और साहित्य में उपनिवेशवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध जम कर संघर्ष किये जाने की आवश्यकता पर जोर दिया.

हिंदी लेखक - समालोचक ललितमोहन अवस्थी ने कहा कि प्रतिक्रियावाद साहित्य में चार प्रकार से अपनी भूमिका निभाता है. वह साहित्य को राजनीति से अलग रखने की आवश्यकता पर जोर देता है, जो अपने आप में एक अत्यंत खतरनाक और जीवनघाती राजनीति है. साहित्य और कला की शुद्धता व पवित्रता का नारा घोर प्रतिक्रियावादी नारा है. इसके अतिरिक्त प्रतिक्रियावाद स्वस्थ मानवीय मूल्यों को नकारता है और उनके प्रति अनास्था को

प्रोत्साहन देता है. आधुनिकतावाद की आड़ में पश्चिम की जर्जर योगवादी-हिप्पीवादी विचारधारा का आयात और प्रचार इसी साजिश का अंग है तथा साहित्य और कलाओं में नग्नता, अपराध और हिंसा को अधिकाधिक प्रोत्साहन देना भी मानवीय मूल्यों की हत्या कर समाज में अराजकता फैलाने के तहत ही किया जाता है. साहित्य में गाली-गलौजवाद को प्रोत्साहन देना तथा लुंपेनवादी मानसिकता का प्रचार करना भी प्रतिक्रियावादी हथकंडा है. इनके अलावा वह साहित्य में रूपतत्व पर अधिक जोर देता है तथा अंतर्वस्तु, अभिव्यक्ति और प्रेषणीयता को हिकारत की नजर से देखता है. इसीलिए प्रतिक्रियावाद अमूर्ततावाद, प्रयोगवाद, बिंबवाद जैसे तमाम शिल्पगत नारों को उछालता है और दुरूहता, जटिलता व अस्पष्टता के जाल में कथ्य को फंसा कर अभिव्यक्ति एवं प्रेषणीयता की हत्या करता है.

राजस्थान के श्री मोहन श्रोत्रिय ने दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावाद से बड़ा खतरा आधुनिक संशोधनवाद को बताया और इस संदर्भ में 'चिरंतन वाम' के विचार का उल्लेख किया, जिसे उन्होंने चिरंतन प्रतिपक्ष के रूप में व्याख्यायित किया.

बिहार के डॉ. खगेंद्र ठाकुर ने १९५२-५३ में जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में बर्लिन में अमरीकी कांग्रेस फॉर कलचरल फ्रीडम के अधिवेशन का हवाला दिया, जिसमें संपूर्ण प्रतिबद्ध लेखन की निंदा करते हुए सामाजिक मसलों से वितृष्णा उत्पन्न करने वाले लेखन की अहमियत पर जोर दिया गया था.

सेमीनार के अपराह्न-अधिवेशन के मुख्य वक्ता विख्यात इतिहासकार और पुरातत्ववेत्ता डॉ. भगवतशरण उपाध्याय ने अपने एक घंटे के विद्वत्तापूर्ण भाषण में संस्कृति और इतिहास के क्षेत्र में प्रतिक्रियावादी साजिशों को विस्तार के साथ बेनकाब किया और कहा कि प्रतिक्रियावाद विज्ञान, इतिहास और संस्कृति के क्षेत्रों में अंध राष्ट्रीयतावाद के अस्त्र को इस्तेमाल करता है. वह कहता है विज्ञान में भारतीयता बरती जाये और इतिहास का भारतीयकरण किया जाये. यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हिंदूवादी दर्शन का ही प्रतिरूप है जो शुद्ध फासिस्ट दर्शन है. गणित और रसायन की भांति किसी राष्ट्र का मानव-इतिहास भी देशगत नहीं होता, वह सार्वभौमिक होता है. खेद है, अभी तक भारत का जन-इतिहास नहीं लिखा गया.

उर्दू के वरिष्ठ शायर अली सरदार जाफरी ने कहा कि फासिस्ट तंत्र और प्रतिक्रियावाद का सबसे मजबूत हथियार होता है झूठ और फरेब का प्रचार ताकि जनता को गुमराह किया जा सके. इसके उन्होंने कई उदाहरण दिये. उन्होंने इकबाल से ले कर आज तक की उर्दू शायरी में इनसान के तसव्वुर की भी विस्तार के साथ विवेचना की और पुरानी और मुर्दा परंपराओं को छोड़ने पर जोर दिया.

बंगाल के लेखक तरुण सान्याल ने जन-संचार साधनों की महत्वपूर्ण भूमिका पर जोर देते हुए खेद प्रकट किया कि इनमें प्रगतिशील लेखकों का नगण्य प्रभाव है और 'व्यवस्था से न जुड़ने' के ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण का शिकार हो कर हमने उन्हें प्रतिक्रियावादियों के हाथों में सौंप दिया है.

नाट्यकर्मी हबीब तनवीर ने नाटक, रेडियो और टेलीविजन के क्षेत्र में अपने व्यावहारिक अनुभवों और प्रयोगों की चर्चा करते हुए कहा कि इनका उपयोग प्रतिबद्ध लेखकों और सांस्कृतिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा आम जनता के हित में कारगर तरीके से किया जा सकता है. देश के प्रगतिशील रंगकर्मी हमेशा आम आदमी के साथ जुड़े रहे हैं, इसीलिए आज की रंगकला में जो कुछ सर्वोत्तम है, वह प्रगतिशीलता से जुड़ा हुआ है.

पंजाबी के करनजीत सिंह ने साहित्य और संस्कृति के अलावा शिक्षा और पत्रकारिता के क्षेत्रों में भी प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध संघर्ष को तेज किये जाने की आवश्यकता पर जोर दिया.

प्रगतिशील शायर कैफी आजमी ने परिचर्चा को अपने जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि बताया और कहा कि उन्होंने इतना कुछ सीखा है, जिससे फासिस्ट और रजतपसंद ताकतों के खिलाफ जिंदगी की आखिरी सांस तक लड़ते रहने का जोश मुकम्मिल हुआ है.

अंत में परिचर्चा में भाग लेने वाले सभी वक्ताओं और श्रोताओं के प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए अपने समापन भाषण में डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि प्रतिक्रियावाद आज क्रांति के लिबास में आ रहा है और उसने आम जनता के नारे ग्रहण कर लिये हैं. इसलिए हमें यह भली भांति समझना होगा कि प्रतिपक्ष के दो धड़े हैं—एक सी. पी. आई. का और दूसरा गैर-सी. पी. आई. का. साहित्य में भी हमें यह विरोध दो धड़ों में देखना चाहिए. एक पॉजिटिव प्रतिपक्ष है, दूसरा निगेटिव. हमें प्रतिक्रियावाद के खिलाफ लड़ाई में उसके सबसे मजबूत व बड़े गढ़ पर हल्ला बोलना है और यह लड़ाई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक—सभी मोर्चों पर लड़ी जायेगी. हमें संयुक्त मोर्चे की नयी अवधारणा ग्रहण करनी है. यह कट्टरपंथी दृष्टिकोण अब पुराना पड़ गया है कि हम सरकार के साथ खड़े हो कर क्यों लड़ें? दूसरी चीज—हमें परंपरा की स्वस्थ सामाजिक व्याख्या करनी चाहिए. और तीसरी अहम बात यह है कि हम रचनात्मक कल्पनाशीलता से संपृक्त हों और हम इस लड़ाई को रचना के स्तर पर ही लड़ें तथा अपनी कृतियों में आम जनता की लड़ाकू प्रवृत्ति को ग्रहण करें.

☐ **ललित मोहन अवस्थी**

०४६५८२

चौथा समांतर लेखक सम्मेलन : एक रिपोर्ट (५)

गत २७, २८, २९ और ३० जनवरी को मद्रास तथा कालीकट में समांतर लेखकों का चौथा सम्मेलन हुआ, जिसमें हिंदी के अलावा डोगरी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु तथा मलयालम के लेखकों ने भी भाग लिया. मद्रास में, तथा कालीकट में हुई तीन गोष्ठियों की रिपोर्ट आप पिछले अंकों में पढ़ चुके हैं. यहां पढ़िए इस रिपोर्ट की अंतिम किस्त.

२९ जनवरी की रात लोग फिर उसी कमरे जमा हुए और बातों का सिलसिला एक बार फिर शुरू हुआ. बात वैचारिक स्पष्टता को ले कर शुरू हुई, परंतु विषय लेखकीय संवेदना एवं उसकी अभिव्यक्ति के इर्द-गिर्द केंद्रित हो गया. यात्री ने कहा कि जहां एक ओर यह आवश्यक है कि लेखक अपनी राजनीतिक समझदारी में साफ हो और उसे साफ-साफ व्यक्त कर सके, वहीं यह भी आवश्यक है कि वह अपनी रचना में भी ईमानदार रहे, क्योंकि कभी-कभी होता यह है कि लेखक रचना से कुछ कहता है, और तात्कालिक जरूरत के लिए जुबान से कुछ. वैसे एक अच्छा लेखक एक अच्छा वक्ता हो और अपनी बात ईमानदारी से कह सके, तो यह एक आदर्श स्थिति होगी, हालांकि सभी ईमानदार लेखक अच्छे वक्ता हों, यह जरूरी नहीं है.

लेखक की इस कहने की शक्ति का जिक्र करते हुए दामोदर सदन ने कहा, यह कतई जरूरी नहीं है कि लेखक भाषण देना जाने. मैं खुद नहीं जानता, लेकिन एक बात जानता हूं कि इस देश में गलत निर्णय करने वाले लोग ज्यादातर सात-आठ पैंतरेबाज वक्ता थे. उन्होंने लेखकीय पैंतरेबाजी का जिक्र करते हुए कहा कि आज तमाम नव-प्रगतिशील लेखक बात-बात पर क्रांति की बातें करते हुए उछलने लगते हैं, मगर देश की प्रतिक्रियावादी ताकतों के खिलाफ मोर्चा लेना तो दूर, एक मामूली-सा निंदा-प्रस्ताव पास करने में हद से ज्यादा हिचकिचाते हैं, पीछे हटते हैं. वे इसे राजनीतिक या नागरिक सवाल मानते हैं. पर जब हम नागरिक और लेखक की सत्ता के बीच भेद नहीं करते तो लेखक के नाम पर नागरिक सवालों और नागरिक के नाम पर लेखन के सवालों से कैसे कतरा सकते हैं?

इस पर कामतानाथ ने कहा, सवाल मात्र बोलने और राजनीतिक बात करने का नहीं है. सवाल है, लेखक की अपनी नागरिक समझ और उसके अपने स्टैंड का, और इससे भी बढ़ कर अपनी समझ और स्टैंड को लेखन की गरिमा सहित स्पष्ट रूप से व्यक्त करने का. फिर चाहे यह काम बोल कर किया जाये, रचनात्मक साहित्य लिख कर किया जाये, अथवा टिप्पणी लिख कर. मगर यह कहते हुए अफसोस होता है कि लोग इन बातों से कतराते हैं और तभी लगता है कि कहीं कुछ गड़बड़ है. क्योंकि अब इसमें शक की गुंजाइश नहीं है कि लेखकीय ईमानदारी और लेखक का अपना कुल पक्ष (टोटल स्टेंड) राजनीतिक समझ के बगैर नहीं निर्मित हो सकता.

हिमांशु जोशी ने कामतानाथ की बात से सहमति प्रकट की. उन्होंने कहा कि इस देश, बल्कि पूरे विश्व, में एक विचित्र स्थिति व्यापी हुई है, इसलिए यह जरूरी है कि इन स्थितियों के लिए जिम्मेदार सारी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों की हमें जानकारी हो. उन्होंने कहा कि लेखक के लिए अब यह संभव नहीं है कि वह इन स्थितियों के प्रति तटस्थ रहे, क्योंकि अब इससे काम नहीं चल सकता. इस सबके साथ जरूरत इस बात की भी है कि हम समांतर लेखकों की यह समझ समान दिशा की ओर अग्रसर और सही हो, वरना हम लेखक विचारों और उसके लेखन में तालमेल नहीं बैठा पायेंगे.

हृदय लानी ने अपनी बात जरा दूसरे ढंग से रखी. उन्होंने इस देश की तमाम खामोश जनता की तरफ इशारा करते हुए कहा कि इस देश में हजारों लोग ऐसे हैं, जो अपनी तकलीफ कहना नहीं जानते, यहां तक कि वे यह भी नहीं समझ पाते कि जो तकलीफ वे भोग रहे हैं, वह कौन-सी तकलीफ है, तथा इसके लिए जिम्मेदार कौन है. ऐसी स्थिति में आज का लेखक भी अगर खामोश या तटस्थ रहना चाहता है, तो यह बात किसी के गले नहीं उतर सकती. तटस्थता और निस्संगता को आज का साहित्यिक मूल्य नहीं माना जा सकता.

* *

धीरे-धीरे बात कहानियों की तरफ मुड़ गयी. और यह गोष्ठी अविस्मरणीय इसलिए बन गयी कि सभी लेखकों ने समांतर लेखन की बेबाक और क्रूर समीक्षा शुरू की. कमलेश्वर ने कहा कि समांतर रचनात्मकता के विरोधी कतिपय लोगों के अपने मंतव्य हो सकते हैं, जिनके तहत वे हमारी रचनाओं पर आक्षेप करते हैं, पर हमें अपनी रचनाओं की गहरी खोजबीन करनी चाहिए, उनकी रचनात्मक क्षमता-अक्षमता की बेबाक परख करनी चाहिए और बिना लाग-लपेट के अपने लेखन की कमजोरियों को समझना चाहिए—स्वयं अपने सामने लाना चाहिए. और इसके बाद सैकड़ों कृतियों की जो समीक्षा शुरू हुई, वह सचमुच अद्वितीय थी. सारे लेखक अपनी रचनाओं की आसक्ति से अलग हट कर विशुद्ध पाठक के रूप में पूरे लेखन का जायजा ले रहे थे. . . हर कमी की ओर इशारा कर रहे थे. बड़ी निर्ममता और गहरी सूझ-बूझ से समांतर लेखकों ने अपने समस्त रच-

नात्मक परिदृश्य का विश्लेषण किया, अपनी कमियों को स्वीकारा और इन कमियों को रचनात्मक स्तर पर दूर करने के लिए कृत-संकल्प हुए. सचमुच यह एक अद्भुत अनुभव था. समांतर लेखन के पॉजिटिव पक्ष का विश्लेषण भी हुआ. आशीष ने श्रवणकुमार की कहानी **'नहीं, यह कोई कहानी नहीं'** का जिक्र करते हुए कहा कि कमलेश्वर की कहानी **'बयान'** के बाद श्रवण की यह कहानी बहुत झकझोरने वाली (डिस्टर्बिंग) कहानी है, जिसमें झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले बेजुबान इनसानों की इंतहाई तकलीफ का बहुत दर्दनाक वर्णन किया गया है.

वीरेंद्र सक्सेना ने से. रा. यात्री की कहानी **'अंधेरे का सैलाब'** को एक महत्वपूर्ण कहानी बताते हुए कहा कि इस कहानी में निम्न-मध्यवर्गीय परिवार के एक तरफ निरंतर टूटने और दूसरी तरफ नव-कुबेरों के निरंतर विकसित होने का बहुत अच्छा वर्णन प्रस्तुत किया गया है.

बात कहानियों पर हो रही थी, इसलिए बहुत-सी महत्वपूर्ण कहानियों की चर्चा हुई. लोगों ने यह महसूस किया कि कमलेश्वर की **'मानसरोवर के हंस'**, कामतानाथ की **'अंत्येष्टि'**, इब्राहीम शरीफ की **'मक्कार'**, जितेंद्र की **'शहादतनामा'**, आलमशाह खान की **'परायी प्यास का सफर'**, सुदीप की **'अंतहीन'**, लानी की **'दूसरा इसरार'**, राम सुरेश की **'तूती की आवाज'**, जवाहर सिंह की **'आषाढ़ का एक दिन'**, सुभाष पंत की **'गाय का दूध'**, मधुकर सिंह की **'पूरा सन्नाटा'**, हिमांशु जोशी की **'समुद्र और सूर्य के बीच'**, राम अरोड़ा की **'विदा-अलविदा'**, सुधा अरोड़ा की **'दमनचक्र'**, ओम गोस्वामी की **'बुर्जुआ'**, सदन की **'हवा'**, मनीष की लघुकथाएं तथा मेहरुन्निसा परवेज, हृदयेश, हबीब कैफी, स्वदेश दीपक, राकेश वत्स, प्रदीप पंत, विमल, मणि मधुकर, सूर्यबाला, शिव शर्मा, प्रभु जोशी, अंजनी आदि की कहानियां पिछली कहानियों से एकदम अलग नजर आती हैं और इनमें निश्चय ही एक ताजगी है, फिर भी लोगों ने महसूस किया कि अभी बहुत सारी कहानियां मध्यवर्गीय चेतना से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो पायी हैं, और आज जरूरत इस बात की है कि कहानियों में आदमी के संघर्ष, जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और वर्ग-चेतना का सम्यक विश्लेषण मिले, कहानियों का परिदृश्य और व्यापक हो . . . ग्रामीण और औद्योगिक यथार्थ की रचनाएं सामने आयें. इसी संदर्भ में शौरिराजन ने आज के समांतर लेखन की शक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा कि समांतर लेखक आज के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों के ज्वलंत पक्षों को लेखन के द्वारा स्पष्ट करने में अपनी पूरी ताकत से जुटा हुआ है.

समांतर लेखन और कहानियों पर बात होते-होते अचानक किसी ने सवाल किया कि क्या एक गैर-जिम्मेदार लेखक की एक अच्छी कहानी को सही कहानी कहा जा सकता है? इस पर कामतानाथ ने कहा, पहली बात तो ऐसा संभव नहीं है, और अगर अपवाद स्वरूप ऐसा हो भी, तो इससे कहानी का महत्व, कुल महत्व या प्रभाव (टोटल इंक्पेट) एकदम उलटा पड़ेगा. तभी किसी ने कमलेश्वर की उस बात की तरफ इशारा किया, जिसमें उन्होंने कहा था कि क्रांति के लिए उचित भूमिका तैयार करने में लेखक का पक्ष बहुत महत्वपूर्ण होता है. आज के लेखक को इस बात की जानकारी निश्चय ही होनी चाहिए कि कहानी या कहानियों द्वारा निर्मित जन की मानसिकता या क्रांति की उचित भूमिका का फायदा गलत लोग न उठाने पायें. यानी लेखक के लिए आज यह बहुत जरूरी हो गया है कि वह 'इस्तेमाल की राजनीति' से पूरी तरह परिचित रहे.

रात के दो बजे रहे थे. अंततः लेखक आज के महत्वपूर्ण मुद्दों पर आपस में बातचीत करते हुए अपने-अपने कमरों की ओर विश्राम करने के लिए चले गये.

दूसरे दिन, यानी ३० जन की सुबह दस बजे सब लोग फि उसी कमरे में एकत्र हुए अ इस बात की जरूरत महसूस गयी कि समांतर की पिछ गोष्ठियों (बंबई, कानपुर औ मांडू) की रपट पढ़ी जाये, ता सभी गोष्ठियों में शामिल न पाये लोग उन गोष्ठियों के मह त्वपूर्ण विचार-विमर्श से अवगत हो सकें. बंबई गोष्ठी की रपट ज्यादातर लोगों ने **'समांतर संकलन—१'** से पढ़ रखी थी कानपुर गोष्ठी की रपट यात्री ने पढ़ी. और मांडू की कमलेश्वर ने

रपट सुनने के बाद बातों का सिलसिला फिर शुरू हो गया आम आदमी, मध्यवर्ग, प्रतिबद्धता संबद्धता, क्रांति और क्रांति की उचित भूमिका, वर्ग-चेतना आदि विभिन्न पहलुओं पर बातें हुईं औ लोगों ने स्वीकार किया कि समांतर सोच ने एक लंबा फासला तय किया है और समांतर-लेखकों में प्रतिबद्धता, संबद्धता और व चेतना को ले कर कहीं कोई अस्पष्टता नहीं है.

★ ★

३० जनवरी की शाम अत्यंत महत्वपूर्ण थी. कालीकट में मलयालम के विख्यात लेखकों के साथ मिली-जुली वार्ता का आयोजन था कालीकट विश्वविद्यालय से बस द्वारा लोग वहां पहुंचे, तो एम. टी. वासुदेवन नायर, एन. पी. मोहम्म और कुंजब्दुल्ला जैसे लेखक वहां मौजूद थे. और मौजूद थी वहां की तमाम जनता. जिस हाल में आयोजन किया गया था, वह खचाखच भरा था. सबसे पहले इब्राहीम ने समांतर लेखकों का वहां की जनता और मलयालम लेखकों से परिचय कराया. फिर समांतर की मद्रास और कालीकट विश्वविद्यालय में हुई गोष्ठियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए इब्राहीम ने कहा कि हम समांतर के लोग किसी भाषा में हमारी तरह सोचने और लिखने वाले लोगों का आदर करते हैं.

इसके बाद सुप्रसिद्ध मलयाल

, विचारक, संपादक एम.
देवन नायर ने समांतर
का केरल की जमीन पर
रते हुए कहा कि हमारे
मांतर को कोई भी लेखक
त नहीं है, क्योंकि हम
लेखन से पूरी तरह परि-
ने का निरंतर प्रयत्न करते
लयालम में हिंदी का काफी
उपलब्ध है. इसीलिए हम
कहानी की तमाम धाराओं
रंतर परिचित होते रहे हैं.
कहा कि दसेक वर्ष पहले हिंदी
में एक दुखद-सा दौर चला
क कहानियां विकृत सेक्स,
ीपन और व्यक्तिगत कुंठा
तनिधित्व करने लगी थीं. तब
हुत दुख होता था– यह जान
क कहानी जमीन से उखड़ती
ही है, लेकिन फिर धीरे-धीरे
र लेखकों ने एक ऐसी सोच
हानियों का सृजन किया कि
कहानी प्रेमचंद की कहानी-
से जुड़ गयी है. खुशी होती
ब कहानी आज के आदमी
उसके जीवन के विविध पक्षों
संघर्षों का चित्रण करते हुए
आती है. उन्होंने कहा, यह
य ही एक ऐतिहासिक मौका
र गर्व का विषय है कि आज
तकलीफों से जुड़े समांतर
ों की चौथी गोष्ठी केरल में
ी है. उन्होंने बताया कि मल-
में भी आज लेखकों की
चिंताएं वही हैं, जो समांतर
की हैं.

(बाद में एक अनौपचारिक
के दौरान एम. टी. वासुदेवन
ने कहा कि हमें समांतर
यों में सम्मिलित हो कर
खुशी होगी.)

एन. पी. मोहम्मद ने बहुत
ल्लास भरी, किंतु संक्षिप्त
के दौरान कहा कि समांतर
अब केवल हिंदी का ही नहीं,
लयालम लेखकों का भी लेखन
म भी आप सब की तरह
ो की जीने की लड़ाई में पूरी
शामिल हैं और आप सबसे
कर, आपकी बात जान कर
स्त अनुभव कर रहे हैं.

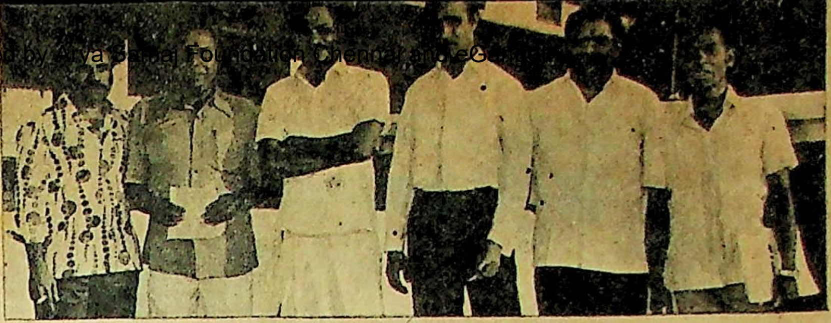

सम्मेलन में भाग लेने वाले कुछ लेखक—(बायें से) कुंजब्दुल्ला, कमलेश्वर, एम. टी. वासुदेवन नायर, इब्राहीम शरीफ, डा. मलिक मोहम्मद तथा एक अन्य लेखक

इसके बाद कुंजब्दुल्ला ने एक संक्षिप्त पेपर पढ़ा, जिसमें उन्होंने बताया कि आज के मलयालम लेखकों की सारी चिंताएं समांतर लेखकों की चिंताओं से अलग नहीं हैं, इसलिए हम मलयालम लेखक अब अपने को समांतर लेखक ही मानते हैं.

कुंजब्दुल्ला के बाद कमलेश्वर ने अपनी बात लोगों के सामने रखी. समांतर लेखन का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि पिछले कुछ वर्षों में भारतीय कहानी में एक अजीब मोड़ आ गया था. कहानी जीवन से कट कर अजनबीयत और शून्य की बात करने लगी थी. लेखक लिखता था, क्योंकि वह सिर्फ लेखक था, आदमी हो कर इस जमीन पर आना, उसकी निगाह में एक इत्तिफाक था, इसलिए आदमी, आदमी का संघर्ष और जीवन उसे या तो रहस्यमय लगता था, या फिर बकवास. उस दौर की तमाम कहानियां एक उलझाव से भरी रहती थीं, जिनमें जिंदगी की बजाय सब कुछ होता था.

उन्होंने उस दौर की कुछ कहानियों का जिक्र करते हुए बताया कि उस दौर की कहानियां बातों, बातों और बातों से भरी पड़ी थीं. नकारवाद उस दौर की कहानियों का मुख्य स्वर था. ऐसे में समांतर के कुछ ईमानदार और जीवन को जीवन मानने वाले लेखकों ने जीवन को जीवन की तरह माना. लोगों को बताया कि जीवन यह है और जीवन ऐसा है, और यह भी बताया कि इस तरह के जीवन को जन्म देने वाली शक्तियों की इस देश में जड़ें बहुत मजबूत हैं.

समांतर लेखकों का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि हममें से तमाम लोग विविध क्षेत्रों से आये हैं. कोई क्लर्क है, तो कोई अध्यापक, कोई खदान मजदूर, कोई डाक्टर, तो कोई इंजीनियर और बहुत-से लोग ऐसे हैं, जो बावजूद अपनी तमाम योग्यता के, अभी कुछ नहीं हैं और जीवन को पकड़ पाने की आपाधापी में लगे हुए निरंतर संघर्ष कर रहे हैं. इसीलिए हमारे लिए आदमी अजूबा नहीं है, उसके संघर्ष अजूबे नहीं हैं और इसलिए आज की पूरी जिंदगी भी अजूबा नहीं है. आम आदमी की जिंदगी के विविध पहलुओं को, चाहे वह किसी भी रूप में हो, हम अपनी कहानियों में निरूपित करते हैं, और इसके साथ ही जिंदगी को इस कदर सड़ा देने वाली पूंजीवादी और साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ निरंतर जूझते रहना कर्तव्य मानते हैं.

कालीकट (शहर) की इस गोष्ठी के बाद समांतर की यह चौथी गोष्ठी एक नागरिक समारोह के बाद समाप्त हुई, हालांकि बातों, आपसी बातों, मलयालम लेखकों से बातों का सिलसिला बहुत देर तक चलता रहा.

अंत में अलग-अलग गाड़ियां उन्हें उनके शहरों की ओर ले जाने के लिए चल पड़ीं और समांतर का चौथा ऐतिहासिक सम्मेलन तमिल, तेलुगु, मलयालम, हिंदी, गुजराती, मराठी, डोगरी आदि के समकालीन समर्थ और युवा रचनाकारों का अभिनव संगम बन कर समाप्त हुआ. □□□

केवल बिनाका टॉप टूथपेस्ट ही मुँह की पूरी रक्षा करता है

ARMS-CBT/20-608 HN

देखिये!
बिनाका टॉप का
विशेष फैलने वाला
तत्व किस प्रकार
काम करता है।

काँच की प्लेट में थोड़ा-सा पानी डालिए। थोड़ा-सा कोयले का चूरा या रंगीन पाउडर पानी पर छिड़किए।

पानी में बिनाका टॉप घोलिए। मिश्रण की एक बूंद काँच की प्लेट के बीचों-बीच डालिए।

अब देखिए कि बिनाका टॉप कितनी तेज़ी से चारों तरफ़ फैलता है... पानी की सतह पर फैले हुए मैल को काटता है और पानी कितना साफ़-सुथरा हो जाता है।

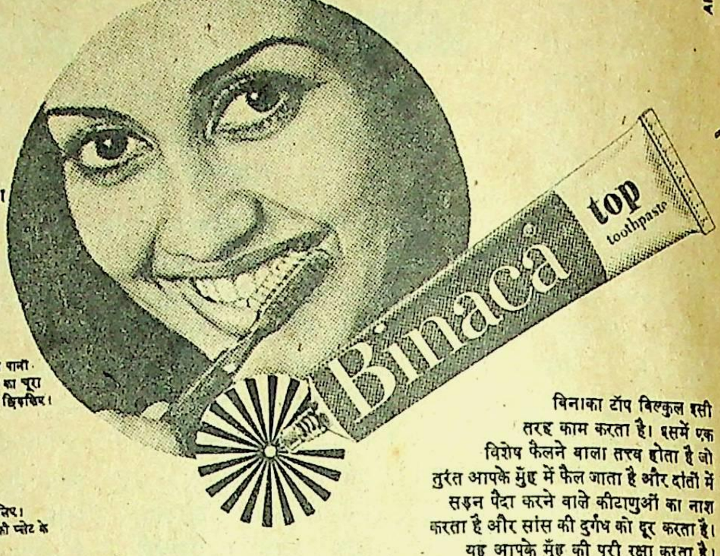

बिनाका टॉप बिल्कुल इसी तरह काम करता है। इसमें एक विशेष फैलने वाला तत्व होता है जो तुरंत आपके मुँह में फैल जाता है और दांतों में सड़न पैदा करने वाले कीटाणुओं का नाश करता है और सांस की दुर्गंध को दूर करता है। यह आपके मुँह की पूरी रक्षा करता है।

बिनाका टॉप टूथपेस्ट
व बिनाका टूथब्रश मुँह की पूरी रक्षा के लिए

सीबा-गायगी

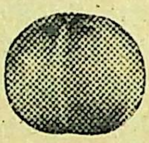

आमला आपके बालों के लिये फ़ायदेमंद है

ज़ुलामला उस से भी अधिक फ़ायदेमंद है।

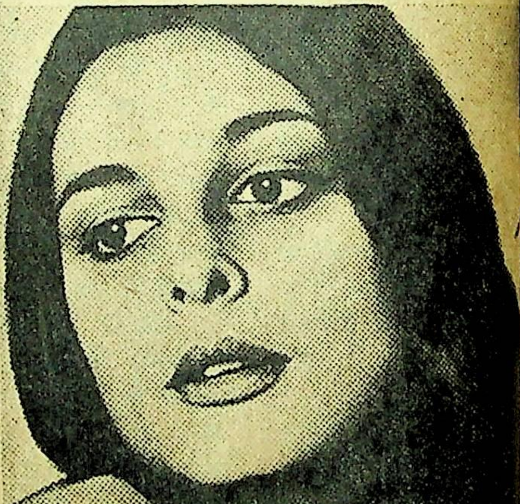

क्योंकि ज़ुलामला में आमला के साथ साथ शिकाकाई, सरसों और दूसरी जड़ी-बूटियां भी शामिल हैं।

ज़ुलामला बालों को धोता ही नहीं बल्कि बालों का पोषण भी करता है। ज़ुला
की जड़ों में प्राकृतिक चिकनाहट को कायम रखता है जिसे साधारण साबुन और
कैमिकल शैम्पू ख़त्म कर देते हैं। यह आप के सिर की ख़ुश्की को दूर करता है,
गिरने से रोकता है और समय के पूर्व बालों को सफ़ेद होने से बचाता है।

ज़ुलामला बालों की हिफ़ाज़त के लिये

HD-3831 A1-H

जागिए ! जगाए रिचब्रू चाय

लिपटन रिचब्रू चाय से ताज़गी मिले, तबीयत खिले

तन जगाए, मन खिलाए...लिपटन रिचब्रू.
गहरा गाढ़ा रंग, जानदार शानदार स्वाद.
मन आगे आगे, तन में ताज़गी जागे...
जैसे आपको उमंगों में बहा ले जाय!

LIPTON RICHBRU
NEW!
LIPTON RICHBRU
TEA
THE GREAT REFRESHER

रिचब्रू...'जग जगाता' स्वाद

लिंटास-LPT.RB.3-140 HI

बेकार के खतरे क्यो उठाओ ?

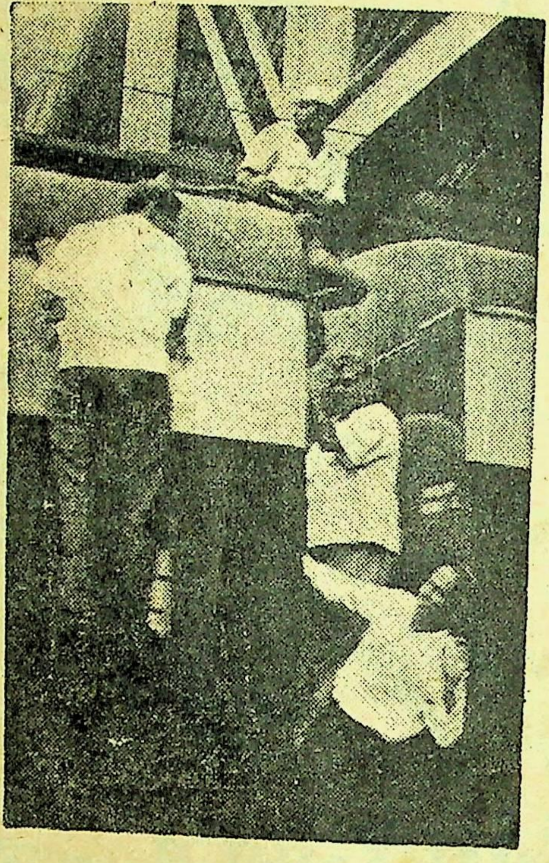

उपनगरीय गाड़ियों के डिब्बों की छतों,
बफरों और खिड़कियों की छड़ों पर चढ़कर
यात्रा न करें ।
इससे आप अपनी जान गवां बैठेंगे
या हाथ-पांव तुड़वा बैठेंगे ।
और फिर यह अपराध भी है ।

मध्य रेल

'आज के युवा वर्ग के लिए..

नेसा

परिधान

नेसा आपकी पसंद के लिये बनाते हैं—
विविध प्रकारके 'टेरिन' काटन सूटिंग,
शर्टिंग, साडीयां और ड्रेस मेटेरियल्स

न्यू स्वदेशी मिल्स,
अहमदाबाद

Sobhagya NS-11 Hin

बेनेट ,कोलमैन एंड कंपनी' लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बार्क्स २१३, बंबई–१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली–१; कलकत्ता आफिस : १३ १ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट. लंदन आफिस : ३०–ए, डिस्ट्रिक्ट रोड, सडबरी, वेम्बले, मिडिलसेक्स, यू. के.

पंजीयत सं. एम. एच. [illegible]

नैसर्गिक सौंदर्य बनाये रखिए

अफगान स्नो

सौंदर्य प्रसाधन प्रयोग कीजिए

अपने नैसर्गिक सौंदर्य का उचित प्रकार से ध्यान रखिए. अपने सौंदर्य को फूल की पंखुड़ी की तरह मुलायम एवं शबनम की तरह तरोताजा रखिए. अनेक प्रयोगों से हमने सिद्ध कर दिया है कि अफगान स्नो सौंदर्य प्रसाधन अर्थात् "सौंदर्य की अमूल्य भेंट" है, इसीलिए स्त्रियां अपने सौंदर्य की रक्षा के लिए इन प्रसाधनों पर भरोसा करती हैं, आप भी भरोसा कीजिए.

AFGHAN
AFGHAN LIQUID MAKE UP
AFGHAN

ई. एस. पाटनवाला, बंबई-४०००८६.

AFGHAN
AFGHAN
HEENA
KAMAL

Compiled
1999-2000